

हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहाशय,
सिद्धान्त-वरिधि, शब्द-रत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम. ए. ए. ए. ए.
तथा हिन्दूके विद्वानों द्वारा मण्डित ।

—*—
एकविंश भाग

[बहुम-वीररूपति]

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XXI.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārṇava,

Siddhānta-varidhi, Śabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Banglā Sāhitya Parīshad
and Kāyastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-

bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism;

Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,

Associate Member of the Asiatic

Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. C. Sen. at the Visvakosha Press

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta

1930.



हिन्दी

विष्वकोष

एकविंश भाग

वसुम (सं० स्त्री०) धनिष्ठा नक्षत्र । (वृ० सं० १०१६)

वसुमंरित (सं० त्रि०) धनपूर्ण ।

वसुमार्ग—एक प्राचीन कवि ।

वसुभूत (सं० पु०) एक गन्धर्वका नाम ।

वसुभूति (सं० पु०) १ एक वैश्वका नाम । (मनु. २।३२

टीकामें कुल्लुक. २ एक ब्राह्मणका नाम ।

(कथासरित्सा० ७३।२०६)

वसुभूयान (सं० पु०) १ सप्तर्षिके मध्य एक ऋषि । २

वसिष्ठके एक पुत्रका नाम ।

वसुमत् (सं० त्रि०) धनयुक्त, अर्धवान ।

वसुमतो (सं० स्त्री०) वसुनि धनरत्नानि सन्त्यस्योः

इति वसु-मतुप्-स्त्रीप् । १ पृथिवी । २ छाः पणोंका एक

युक्त । - इसके प्रत्येक चरणमें तगण और सगण होते हैं ।

वसुमतीपति (सं० पु०) वसुमत्याः पतिः । पृथिवीपति,

राजा ।

वसुमत्ता (सं० स्त्री०) वसुः अस्त्वयं, मतुप्, वसुमतो

भावः तल-टाप् । वसुमतका भाव या धर्म, धनवत्ता ।

वसुमन्स (सं० पु०) पुराणानुसार एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका

नाम ।

वसुमय (सं० त्रि०) वसु स्वरूपे मयट् । वसुस्वरूप ।

वसुमान (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्यंतका नाम जो

उत्तर दिशामें है ।

वसुमित—एक बौद्ध आचार्य । ये महायान शाखाके
अन्तर्गत वैभाषिक सम्प्रदायके थे । इनका निवास
काश्मीरके पश्चिम अश्मांपरान्त देश कहा गया है ।

वसुमित—शुभमितवंशीय एक अति प्रबल पराक्रान्त राजा
कालिदासके मालविकाग्निमित्र नाटकसे जाना जाता है,
कि ये सुप्रसिद्ध वैदिकमार्गप्रवक्ता तथा अश्वमेधयज्ञ-
कारी अग्निमित्तके पीत्र थे । ये ही यज्ञके अश्वको रक्षाके
लिये नियुक्त किये गये थे । इन्होंने सिन्धुनदीके तीर
यवनोंको पराजित करके जयश्री प्राप्त की थी । इनकी
ही वीरतासे पाटलिपुत्रमें अश्वमेधयज्ञ सुसम्पन्न हुआ
था । इसके जन्मसे दो सौ वर्ष पहले इस महावीरका
अभ्युदय हुआ ।

वासुपुराणीय राजगृह-माहात्म्यमें लिखा है, कि
प्राचीनकालमें वसु नामक एक राजा थे । ये ब्राह्मण-
वंशीय थे । उनको वीरता तथा पौरुष त्रिभुवनमें विख्यात
था । राजगृहके यन्में उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था ।
इस यज्ञमें उन्होंने द्राविड, महारारण्य, कर्णाट, कौकिल, तैलंग
प्रभृति कई एक देशोंसे श्रेष्ठ गुणसम्पन्न सुशाल तथा वेद-
वेदांगधारका दक्षिणात्य ब्राह्मणोंको बुलाया था । उन
लोगोंके गोतोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं—१ वत्स,
२ उपमन्यु, ३ कौण्डिन्य, ४ गर्ग, ५ हारित, ६ गोतम,

० ग्राह्यद्वय, ८ भरद्वाज, ६ कौशिक, १० काश्यप, ११ पत्तिष्ठ, १२ वात्स्य, १३ सायणि, १४ परासर । उक्त सभी महारामायण भाष्येदी शम्भुलक्षण-शायध्यायी थे । राजाने यह पूरा दानिके बाद उन लोगों को राजशुद्धपुरका राज्य दिया था । इसके अलावे राजाने उन लोगोंके मध्य भक्तिगोत्रवालोंको गिरिमन्त्रमें पर्यं उनके मध्य बनेकोंको पैकुण्डपदके निबट्ट प्राक्षण ग्रासन प्रदान किया था । इसके सिवाय उन लोगोंको पृथक् पृथक् दक्षिणा भी मिली थी । उसी दिनसे उक्त विप्रगण इस तोषमें पूजित होते आ रहे हैं ।

नब प्रदान उठता है, कि उक्त प्राक्षणपर्यंशोप बसुराज कीन थे । महाभारत और पुराणमें जरासन्धके पितामह गिरिमन्त्रप्रतिष्ठाता जिस बसुराजका उल्लेख है, वे जातिके क्षत्रिय थे, प्राक्षण नहीं । इस प्रकार प्राक्षण बसुराज जो स्वतन्त्र व्यक्ति थे, इसमें सम्बन्ध नहीं ।

पूर्व ही लिख जाये हैं, कि ईसा-जन्मके दो सौ वर्ष पहले शुक्लयंशका अश्वयुद्ध हुआ । यिष्णु और भागवत-पुराणके मतसे—नीचंयंशोप शोच राजा शुद्धयकी मार कर पुष्पमित्तने शुक्लयंशको प्रतिष्ठा की । पुत्रमित्त घोर बौद्ध-विद्वेषी थे । विध्यायदान नामक प्राचीन बौद्धग्रंथमें पता चलता है, कि राजा पुष्पमित्तने अनोकको प्रतिष्ठित धारासो हजार धर्मराजिकाको ध्यंस करनेकी अनुमति दी था । उनके ही पुत्र कालिदासके 'मालापकामिमित्र' नाटकके नायक अग्निमित्त थे । अग्निमित्त भी अश्वमेध यह पर्यं वैदिकक्रियाका अदका उदार कर विषयात द्रुप थे । इन्होंने अग्निमित्तके पीत बसुमित्त थे । बोधगयासे उनकी दिलासिपि और नामा रूपानेसे उनकी मुद्रा आविष्टन हुई है । यही बसुमित्त राजशुद्धमादास्य वर्णित बसुराज हैं । प्राक्षण-भक्त बसुमित्तने दक्षिणी ब्राह्मणको राजशुद्ध-नगरी बान कर पूर्वभारतमें प्राक्षण-धर्मप्रचार करनेके लिये उन्हे प्रतिष्ठित किया था । बसुमित्तके बाद और भी पाँच शुक्लयंशो राजाओंने राजत्व किया । पीछे कण्व गोत्र बालुदेव नामक शुक्ल रीनापतिने अपने प्रभुको मार जाता और शुक्ल-नामाश्रय बनने काधिकारमें कर लिया ।

बसुर (सं० पु०) १ बसुल, देव । (ति०) २ पुष्ट ।

बसुरसित (सं० पु०) एक बौद्ध आचार्यका नाम ।

बसुरथ—एक कवि ।

बसुरात (सं० पु०) पुराणानुसार एक ऋषिका नाम । (मार्क० पु० ११४।१३)

बसुरधृ (सं० पु०) एक प्रकारके देवता ।

बसु रुचि (सं० पु०) एक गणधर्यका नाम ।

(भयर् ८।१०।२७)

बसुरूप (सं० पु०) शिव ।

बसुरेता (सं० पु०) १ अग्नि । २ शिव ।

बसुरोचिस् (सं० पु०) बसुवा रोचन्ते अस्मिन्निति रुचन्तीति (बही रूपे संज्ञाने । उच्य २।११२) इति इतिन् । १ पक्ष । (पु०) २ एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम ।

बसुरोधो (सं० पु०) शिव ।

बसुल (सं० पु०) बसुं श्रुतिं लाति गृह्णातीति ला-क । देवता ।

बसुपणि (सं० पु०) १ धनतोष, धन बचाना । २ धनमान ।

बसुवन (सं० पु०) १ बसुवान, धन देना । (ह्यो०) २ वृद्ध-रसेदिनाके अनुसार ईशान कोणमें स्थित एक देव ।

बसुपाह (सं० पु०) १ धनी । २ एक ऋषिका नाम ।

बसुपाहन (सं० ति०) कोपयुक्त ।

बसुविद्व (सं० ति०) बसुनि निपास स्थानानि विमृते विद्व-विप् । १ निपासस्थानका प्रापक, जिसे रहनेके लिये जगद मिलो हो । (पु०) २ अग्नि ।

बसुवृष्टि (सं० स्त्री०) धनदान ।

बसुनकि (सं० स्त्री०) एक बौद्ध-मिक्षणोका नाम ।

बसुभयस् (सं० ति०) १ धनपान, शीलतमं । २ व्यासार्थ ।

बसुभ्यो (सं० स्त्री०) स्वन्दकी अनुचरी एक मातृकाका नाम । (भाग ६ प०)

बसुभृत (सं० ति०) १ महाधनी, बड़ा शीलतमं । (पु०) २ अतिगोर्वा एक ऋषिका नाम ।

बसुभ्रेष्ठ (सं० स्त्री०) परमा शोण्या भ्रेष्ठ । कथ्य शोरी ।

बसुभेन (सं० पु०) बसुरोग, कर्षाराज ।

बसुभार (सं० पु०) एक ऋषिका नाम ।

बसुसारा (सं० स्त्री०) कुर्बेरी पुरी, अलका ।

वसुसेन (सं० पु०) कर्णराज ।

वसुसेन—एक कवि ।

वसुस्थली (सं० स्त्री०) वसुना धनानां स्थली । कुबेरकी पुरी, अलका ।

वसुहंस (सं० पु०) वसुदेवके पुत्र एक यादवका नाम ।

वसुहृद् (सं० पु०) वसुनां हीतीनां हृद् इव । चक्रवृक्ष, अगस्तका पेड़ ।

वसुहृत्क (सं० पु०) वसुहृद् स्वार्थे कन् । चक्रवृक्ष, अगस्तका पेड़ ।

वसुहोम (सं० पु०) १ वह होम जो वसुके उद्देशसे दिया जाता है । २ पुराणानुसार अङ्गदेशके एक राजाका नाम ।

वसुक (सं० स्त्री०) १ साम्भर लवण । २ चक्रवृक्ष, अगस्तका पेड़ ।

वसुजू (सं० लि०) १ धनाभिलाषी, धनकी इच्छा करनेवाला । (पु०) २ अतिशय एक सूक्ष्मद्रष्टा ऋषिका नाम ।

वसुत्तम (सं० लि०) महाधनवान्, बड़ा शीलतमन्दा ।

वसुमती (सं० स्त्री०) वसुमती, पृथ्वी ।

वसुया (सं० स्त्री०) धनेच्छा, धनकी कामना ।

वसुयू (सं० लि०) धनेच्छु, धनकी कामना करनेवाला ।

वसुल (सं० वि०) १ पास पहुँचा हुआ, मिला हुआ, प्राप्त । २ जो खुका लिया गया हो, जो हाथमें आया हो, लब्ध । (पु०) ३ उषस देवी ।

वसुली (सं० स्त्री०) १ सुकृता करानेकी क्रिया, दूसरेसे रुपया पैसा या वस्तु लेनेका काम । २ दाकी निकला या छोड़ता हुआ रुपया लेनेका काम ।

वसुक (सं० पु०) वसुक-भाषे घञ् । अश्ववसाय ।

वसुकथ (सं० पु०) बहूते इति वसुक गतौ वाहुलकार्थे अघञ् । एकहायण वस, बकेना बलड़ा ।

वसुकथनी (सं० स्त्री०) वसुकथ एकहायणी वससः, तीन नोयते इति नो-क्लिप् ऊप् । चिरमस्ता गाभी, बकेनी पाय । इसके दूधका गुण त्रिदोषनाशक, तर्पण और बलकर माना गया है ।

वसुकराटिका (सं० स्त्री०) वृश्चिक ।

वसुन (सं० पु०) वसुयते पञ्चार्थे वसुयते इति वस्त

कर्मणि घञ् । १ छाग, बकरा । (स्त्री०) २ वस्तु देवी ।

वस्तक (सं० स्त्री०) छत्तिम लवण, बनाया हुआ नमक ।

वस्तकर्ण (सं० पु०) वस्तस्य छागस्य कर्णाकृतिः पत्तावच्छेदे अस्त्यस्येति वस्तकर्ण अर्श आदित्वादाच् । शालवृक्ष, साखूका पेड़ ।

वस्तगन्धां (सं० स्त्री०) वस्तस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः । वह जिसकी गंध बकरे-सी हो ।

वस्तमोदा (सं० स्त्री०) वस्तं छागं मोदयतीति मुप्-णिच् अच् । वजमोदा ।

वस्तथ (सं० लि०) वस-तथ्य । वासाहं, वासके योग्य ।

वस्तथ्यता (सं० स्त्री०) वस्तथ्यस्य भावः तल टाप् । वस्तथ्यका भाव या धर्म, वास ।

वस्तान्त्री (सं० स्त्री०) वस्तस्यैव अन्नमस्याः, गौरादित्वात् ऊप् । छागलाक्षिप्त । पर्याय—वृषगन्धाप्या, मेपान्त्री, वृषपत्रिका, अजान्त्री, वोरकी । गुण—कटु, कास दोषनाशक, गर्भजनक और शुक्रवर्द्धक । (राजनि०)

वस्ति (सं० पु० स्त्री०) वसति मूत्रादिकमत्र, वस (वसेत्ति । उप् ४।१७६) इति ति । १ नामिका अधो-भाग, पेड़ । २ मूत्राशय, पेशाबकी थैली । ३ वस्तिवृक्ष यन्त्र, पिचकारी । वैद्यकमें वस्तिविधिका विषय अर्थात् पिचकारी देनेको प्रणाली इस प्रकार लिखी है—

वस्ति दो प्रकारकी होती है, अनुयासनवस्ति और निरुहवस्ति । इन दोनों प्रकारकी वस्तिधेयमें स्नेह द्वारा जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे अनुयासनवस्ति तथा प्याथ, दुग्ध और तैल द्वारा जो वस्ति प्रयोग किया जाता है, उसे निरुहवस्ति कहते हैं । वस्ति द्वारा (मृगादिके मूत्राशय द्वारा) प्रयोग करना होता है, इस कारण इसको वस्ति कहते हैं ।

म. लाथवस्ति अनुयासनवस्तिका भेदमात्र है । इसकी माला दो या एक पल है । रुक्ष व्यक्ति, तीक्ष्णान्निस्मृष व्यक्ति तथा जिनके केवल वायुप्रबल है, वे अनुयासनवस्तिके उपयुक्त हैं । कुष्ठरोगी, मेहरोगी, स्थूलकाय और उदररोगीके लिये अनुयासनवस्ति उपकारी नहीं है ।

अजीर्णरोगी, उग्मादरोगी, मृत्पांशु रोगी तथा शोथ, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, कास और क्षयरोगाक्रान्त व्यक्तिके पक्षमें अनुयासन और आस्थापन ये दोनों ही प्रकारकी वस्ति प्रशस्त है ।

मुषणादि घानु, पृश्न, बांस, मन्ड, दूध, शूकूम या मणि आदि द्वाग मल प्रस्तुत करना होगा। यस्मिन्-प्रयोगमें एकसे छः वर्षके रोगोंके लिये ६ उंगलीका, ७ वर्षमें १२ वर्ष तकके लिये ८ उंगलीका, १२ वर्षमें ऊपर रोगियोंके लिये १२ उंगली लम्बा मल बनाया होगा। उम मलका छेद पचाक्रम मूंग, कलाय और घेरके बीजके बराबर होगा। उसका गोदुमाकार होना आवश्यक है। मलका मूल भाग गोदुमाकार बना कर मुषकी और क्रमशः सूदन करना होगा।

शूग, छाग, शूकर, गो मधया महिषकी मूलकीय यस्मिन् द्वारा यस्तिकार्य करना होगा। सभी प्रकारकी यस्ति-की कयायादि द्वारा कञ्चन कर लेना होगा। उसका शूद्र, स्निग्ध मध्य दृढ़ होगा मायश्यक है। यणमें जो यस्मिन्प्रयोग किया जाना है, उसका मल श्लक्ष्ण और आठ अंगुल, परिणाहमें शूद्र पदोंकी मलिकाके समान तथा छेद मूंगके बराबर बनाना होगा।

यस्तिके अच्छो तरह प्रयुक्त होनेसे शरीरका उपचय, पर्णको उत्कर्षता, बल और आरोग्य तथा परमायुकी वृद्धि होती है। शीत और चमत्कालमें दिनको स्नेह-यस्ति तथा शीत, गर्म और शरत्कालमें अनुवासन-यस्तिका प्रयोग न करे। क्योंकि एक समय स्नेहभोजन और अनुवासन दोनों प्रकारके स्नेह सेवित होनेसे मलना और मूर्च्छा होती है तथा अरवण कश्चर्य भोजन करके भी अनुवासन करना उचित नहीं, करनेसे बल और पर्ण-का हानि होता है। अल्पय सुविचित्रसकृते चाहिये, किं किञ्चिद्रूप भोजन करा कर अनुवासन यस्तिकी प्रयोग न करे।

यस्तिकी प्रयोग करनेमें पहले माताके ऊपर विरोध लक्ष्य करना होगा। क्योंकि हीनमत्तमें यस्तिकी प्रयोग करनेसे कोई फल नहीं होता तथा अधिक माता होनेसे भी आमात, क्षामिन् और अनीमात रोग उत्पन्न होता है।

अनुवासनयस्तिकी छेद माता ६ पल, मलना माता ३ पल और हीनमाता २ पल है। जिस स्नेह द्वाग यस्ति प्रयोग करना होगा, उस स्नेहके मात गोर्वा और गोश्वरका बूतोंकी मूल माता ३ माता, मलना माता ४ माता तथा हीनमाता २ माता है।

विदेनके बाद यस्तिप्रयोग करनेमें ७ दिनके बाद तथा शरीरमें बलौपचय होनेसे आहार कर कर माय-कालमें अनुवासनयस्तिकी प्रयोग करना होगा। अनुवा-सनकिया करनेमें रोगोंके शरीरमें मल लगा कर कुछ उष्ण जल द्वारा स्नान करना और पाँचे भोजनके बाद ही बन्ध रहलना होगा। इसके बाद घानु, मूल और मलप्रयोग होनेसे स्नेहयस्तिकी प्रयोग हितकर है।

जिस समय स्नेहयस्तिकी प्रयोग करना होगा, उस समय रोगोंकी बाईं पर्यट सुलाये। पाँचे उमकी बाईं जांच फैला कर और दाहिने जांच निकुट्टा कर गुणदेन-में स्नेह मुशान करे। अगस्त्य विचित्रमक यस्तिके मुंह-को मूल द्वारा बंध कर बाये हाथमें उमका मुंह पकड़े और दाहिने हाथमें गुणदेनमें योजना करके मध्य घेगसे पीछन करे। तीस माता काल इमो प्रकारे पीछन करना होगा। दूसरे समय कमी मो पीछन करना उचित नहीं। यस्तिप्रयोगके समय जैभाई करना, छांसना, और हिनकना आदि मना है।

इस प्रकार स्नेह अस्तःप्रविष्ट होनेसे एक ही घापय उच्चारण करनेमें जितना समय लगे, उतना समय रोगोंकी उत्तानमायमें सोना चाहिये। पहले जो माता और कालका विषय कहा गया है, उसका नियम इस प्रकार स्थिर करना होता है—अपनी जांच पर उंगली मलना कर दाघ घुमा कर उम जगह लायेमें जितना समय लगता है, उतने समयको एकमात्रा कहने है। अथवा आँसके पर शर मूढ़ने और मोलनेमें या सुकृष्णका उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयका मात माता है।

अच्छो तरह यस्तिप्रयोग होनेसे यस्तिपीर्वा मारे शरीरमें बहुत जन्म पैल जाय, इसके लिये विचित्रसकृते चाहिये, कि ये रोगोंकी दोनो जांच और आङ्कको शीत शर आङ्कपुन और तीन बार प्रमाहण करे। इसके बाद रोगोंके बरत, परतल और कटिदेन इन सब कथामोमें हस्त द्वाग माघान तथा कटिदेन परत कर जट्या पर तंग बार लिये करे। दो पाँचों द्वारा भी पूर्णरूप मलना पर धारणा करना होगा। इस प्रकार निकृष्ट कार्य

सम्पन्न होनेसे रोगीको सखशय्या पर शयन करा कर नींद लानेकी कोशिश करनी चाहिये ।

अनुवासन क्रियाके बाद यदि बिना उपद्रवके घायु वार मलके साथ स्नेह बहुत जल्द निकल आवे, तो उस व्यक्तिकी अनुवासनक्रिया अच्छी तरह हुई है, जानना होगा । इस प्रकार स्नेह निकलनेसे यदि भूख मालूम पड़े, तो सायंकालमें सुसिद्ध घन या लघुद्रव्य खिलाना होगा । दूसरे दिन रोगीको उष्ण जल वा धनिये और सोंठका काढ़ा बना कर पिलाना होगा । इस नियमके अनुसार ६, ७, ८ वा ९ वार स्नेहवस्तिका प्रयोग कर पीछे निरूहवस्तिका प्रयोग करे ।

पहले जो वस्तिप्रयोग क्रिया जाता है उसके द्वारा मूत्राशय और वदक्षुण स्निग्ध होता है । दूसरी वार शिरोगत वसु विनष्ट होती है, तीसरी वार ल और वर्णकी उत्कर्षता, चौथी वार रस, पाँचवीं वार रक्त, छठी वार मांस, सातवीं वार मेद, आठवीं वार अस्थि तथा नवमीं वार वस्तिप्रयोग द्वारा मज्जा स्निग्ध होती है । अठारह दिन यथाविधि वस्तिप्रयोग करनेसे शुक्लगत दोष प्रशमित होता है । प्रति अठारहवें दिनमें जो व्यक्ति नियमपूर्वक वस्तिक्रिया करता है वह हाथीके समान यवधान, घोड़ेके समान वेगवान् और दिघताके समान प्रभावशाली होता है ।

रक्षता और घायुका प्रकोप रहनेसे प्रति दिन स्नेहवस्तिका प्रयोग करे, किन्तु अन्धान्य स्थानोंमें अग्निमात्रा होनेकी आशङ्कासे तीन दिनके अन्तर पर वस्तिप्रयोग कर्त्तव्य है । रक्ष व्यक्तियोंको अल्पमात्रामें दीर्घकाल तक स्नेह प्रदान करनेसे जिस प्रकार कोई अनिष्ट नहीं होता, उसी प्रकार स्निग्ध व्यक्तियोंको अल्पमात्रामें निरूहवस्तिका प्रयोग करनेसे भी कोई अपकार न हो कर विशेष उपकार होता है ।

वस्तिप्रयोग करनेसे यदि वह अच्छी तरह भीतर घुस कर प्रयोग करने हो बाहर निकल आवे, तो पुनर्वार पूर्वमात्रासे अल्प मात्रामें प्रयोग करे ।

घमन विरेचनादि द्वारा यदि शरीरको शोधन न करके अनुवासनवस्ति प्रयोग किया जाय, तो उस स्नेहके मलके साथ संयुक्त हो कर बाहर न निकलनेसे शरीर

की अव्यसन्नता, उदराध्मान, शूल, श्वास तथा पक्षाशयमें गुरुत्व उपस्थित होता है । ऐसी हालतमें निरूहवस्ति अथवा तोक्ष्ण औषधके साथ तोक्ष्णकचर्त्तिकी प्रयोग करे । घायुका अनुलोमकारक, मलशोधक, अधव स्निग्धकारक विरेचन तथा तोक्ष्ण नस्य भी इस अवस्थामें प्रशस्त है ।

स्नेहवस्तिके नहीं निकलनेसे यदि कोई उपद्रव न हो, तो जानना चाहिये, कि रक्षतासे प्रयुक्त हो वह न निकलेगी । अतएव उसे समय किसी प्रकार प्रतीकारकी चेष्टा न करनी चाहिये । एक दिन रातकी अपेक्षा करनी होगी, यदि इसमेंसे स्नेह न निकले, तो संशोधक औषध द्वारा दोषकी शान्ति करे । किन्तु स्नेह निकालनेके लिये फिरसे स्नेहका प्रयोग न करना होगा, करनेसे विशेष अनिष्ट होता है । गुलश्च, परण्ड, पुतिकरञ्ज, अडूस कत्तूण, शतमूली, भिण्टी और काकजङ्घा प्रत्येक एक पल, जी, उड़व, तीसी, बेर और कुलघो, दो दो पल, इन्हें एक साथ मिला कर चार द्रोण जलसे सिद्ध करे । पीछे एक द्रोण (६४ सेर) शेष रहते उतार कर उससे १६ सेर तैलपाक करे । कटकायं जीवनीयगणकी औषध प्रत्येक एक पल करके ग्रहण करे । इस तैलसे यदि अनुवासनवस्तिका प्रयोग क्रिया जाय, तो सभी प्रकारके वातजरोग विनष्ट होते हैं ।

अनुपयुक्त नलादि द्रव्य द्वारा वस्तिक्रियाके दोषसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, इस कारण विशेष साधधान हो कर वस्तिक्रिया करे । स्नेहपानसे आहारादिकी जो व्यवस्था है, इसमें भी उसी व्यवस्थाके अनुसार चले ।

निरूहवस्ति—निरूहवस्ति कारणभेदसे अनेक प्रकारकी है । यह दोष और घातुओंकी यथास्थानमें स्थापन करती है, इस कारण इसका एक नाम आस्थापन है । निरूहवस्तिकी श्रेष्ठमात्रा १। प्रस्थ (द्वादश सेर), मध्य मात्रा १ प्रस्थ (दश सेर) और हीनमात्रा षड् सेर है ।

जो व्यक्ति अत्यन्त स्निग्ध, उरिङ्गुष्ट दोषसम्पन्न, उरःक्षतरोगाक्रान्त, कृश तथा उदराध्मान, घमि, हिका, अरी, कास, श्वास, गुहा रोग, शोथ, अतोसार, विसर्चिका, कुष्ठ, मधुमेह और जलोदरादि रोगाभिभूत व्यक्ति यवर्गमेंयती स्त्रीको आस्थापन प्रयोग न करे ।

जो व्यक्ति पातव्याधि, उद्वायर्त, घातरक्त, विदग्धवर, मूच्छा, मूष्णा, उदर, आनाह, मूत्रहृच्छु, अग्नी, पृथि, अयुक्, मन्दाग्नि, प्रमेह, मूल, अग्निपित तथा हृद्दरोगा काष्ठ हैं, वे यथाविधान निरुद्धवस्तिका प्रयोग करें।

यामु, मल और मूत्र परिवर्धनके बाद स्नेहान्धपद्रु और उष्ण जलमें स्नान करा कर क्षुधित अवस्थामें दो पहरको घण्टे मध्य रत्न यथायोग्य निरुद्धवस्तिका प्रयोग करें। निरुद्धवस्ति अर्थात् तरह प्रयोजित होनेसे मुहूर्त्तकाल तक जब बाहर न निकले, तब तक उरकट भावमें बैठा रहे यदि मुहूर्त्तकालके अन्तमें जो वहिर्गत ग हो, तो शोथक औषध या क्षार, मूल, अम्ब और सौन्ध्य द्वारा फिरसे निरुद्धवस्तिका प्रयोग करें।

कफ, पित्त, यामु और मल प्रमाणव्यय वहिर्गत हो कर शरीर जब हल्का हो जाता है, तब उसे सुमिरुद्ध कहते हैं तथा जिसके वस्तिपेगको मलरनाके कारण मल निःसारण न हो कर मूत्ररोग जट्टा और अघचि उत्पन्न होती है, उसको दुर्मिरुद्ध कहते हैं। आरुघापन और स्नेहवस्तिका अच्छी तरह प्रयोग होनेसे वस्ति द्वारा प्रसिद्ध औषध निःसारण, मनस्तुष्टि, देहकी स्निग्धता और इषधि प्रगमिन होती है। इस नियमसे दो बार, तीन बार या चार बार यथायोग्य विधेयता करके पण्डितोंके निरुद्धवस्ति-का प्रयोग करना चाहिये।

निरुद्धवस्ति वायुरोगमें उष्ण स्नेहके साथ एक बार, वैशिक व्याधिमें उष्ण दुग्धके साथ दो बार तथा शैथिल्य रोगमें उष्ण, कषाय, बृद्ध और मूत्राधिके साथ तीन बार प्रयोग करें। उक्त प्रकारसे निरुद्धवस्तिका प्रयोग कर वैशिक व्याधि सभग्नकी दुग्ध, शैथिल्यक व्याधि-सभग्नकी घृह, और वायुरोगसभग्नकी मांसरसके साथ ओष्ठन करा कर पीछे अनुपासनप्रयोग करना होता है।

शुक्रमार, बृद्ध तथा बालकीके विधे मूद्रवस्ति जल कारक है। इन्हें शीतलवस्तिका प्रयोग करनेसे उनके बल और परामुखा हास होता है। पहले उल्बनेशन वस्ति, मध्यमें शोषहर वस्ति तथा पश्चात् संज्ञमनोप वस्ति का प्रयोग करना उचित है।

श्लेष्मणवस्ति—पररुद्धवस्ति, परिशुष्ण, विष्णु, सौन्ध्य, कषय तथा हृद्दरोग के रक्त द्वारा जो वस्तिप्रयोग

किया जाता है, उसे उल्बनेशन वस्ति कहते हैं। दोषहर वस्ति—जलमूली, घटिपधु, विरर तथा इन्ड्री इन सब द्रव्योंको कांजी और गोमूत्रके साथ मिला कर जो वस्ति-प्रयोग किया जाता है, उसका नाम शोषहर वस्ति है। संज्ञ-मनोप वस्ति—मिषंगु, यष्टिमधु, मुस्तक और रसांजन, इन्हें दुग्धके साथ मिला कर जो वस्ति प्रयोग किया जाता है, उसे संज्ञमनोप वस्ति कहते हैं। लेखनवस्ति—तिफला के काष्ठ, गोमूत्र, मधु तथा धयशारके साथ उपणादि गणका चूर्ण प्रशेष दे कर उससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसको लेखनवस्ति कहते हैं।

पृंहणवस्ति—पृंहण द्रव्यके पयाध और जायनीप-गणके बलके साथ छत और मांसरस मिला कर उससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसको नाम पृंहणवस्ति है।

विच्छिन्नवस्ति—भूमिकुष्माण्ड, मारंगी, बहुवारक तथा जालगली पुष्पके मंङ्कुर इन सब द्रव्योंको दुग्धके साथ सिद्ध कर मधु और रक्त मिला जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे विच्छिन्नवस्ति कहते हैं। छाग, मेघ और कृष्णसार इनका रक्त ग्रहण करना होता है। इसकी मात्रा बारह पल अर्थात् डेढ़ सेर है।

निरुद्धवस्तिका स्नेह बनानेका विधान—पहले २ तोला सैन्ध्यक और ४ पल मधु एक साथ मिला कर पीछे ६ पल स्नेह, २ पल बहक द्रव्य, ८ पल पयाध तथा ४ पल प्रशेष-का द्रव्य इन्हें एकत्र मध कर उससे निरुद्धवस्ति प्रदान करें। उक्त प्रणालीसे प्राप्त सामग्रीका परिमाण कुल २४ पल होगा।

पातजत्रय रोगमें ४ पल मधु और ६ पल स्नेह, विषज रोगमें ४ पल मधु और ३ पल स्नेह तथा कफज रोगमें ६ पल मधु और ४ पल स्नेह द्वारा निरुद्धवस्तिका प्रयोग करें।

मधु सेलवस्ति—परणकाष्ठ ८ पल, मधु और तैल दोनों मिला कर ८ पल, मजूका माघ पल तथा सैन्ध्य माघ पल इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एक काष्ठकण्ड द्वारा अच्छी तरह पीछ कर जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे मधुसेलवस्ति कहते हैं। इस वस्ति द्वारा मेघ, शुष्ण, हृदि, प्लीहा, मल और उद्वायर्त नष्ट होता तथा शरीर

उपचित बल, वर्षा, शुक्र और अग्निकी वृद्धि होती है।

यापनवस्ति—मधु, घृत और दुग्ध प्रत्येक २ पल तथा हृष्या और सैन्धव प्रत्येक २ तोला ले कर अच्छी तरह घोंटे। इससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे यापनवस्ति कहते हैं।

युकरधोवस्ति—परण्ड मूलका काष्ठ, मधु, तैल सैन्धव, वच तथा पिप्पली इन सब द्रव्योंको एकत्र कर उससे जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसे युकरधोवस्ति कहते हैं।

सिद्धवस्ति—पञ्चमूलका काष्ठ, तैल, पिप्पली, मधु, सैन्धव तथा पट्टिमधु इन सबको एकत्र कर जो वस्तिप्रयोग किया जाता है, उसको सिद्धवस्ति कहते हैं।

निरुहवस्ति प्रयोगके बाद उष्ण जलमें स्नान करे, दिनको न सोवे और अजीर्ण जनक वस्तु न खावे।

उत्तरवस्ति—उत्तरवस्तिनल १२ अंगुल लम्बा होगा तथा उस नलके मध्यदेशमें एक कर्णिका (गोकर्णादिवत्) बनानी होगी। नलका अग्रभाग मालती पुष्पके घृतकी तरह तथा छेद ऐसा होना चाहिये, कि उसके मध्य हो कर एक सरसों निकल सके।

पचीस वर्षसे कम उमरवाले ध्यतिके लिये स्नेहकी मात्रा ४ तोला तथा उससे ऊपरवालेके लिये ८ तोला बनलाई गई है। रोगीको पहले आस्थापन द्वारा शोधन करके स्नान करावे। पीछे तुसिके साथ भोजन करा कर आसन पर घुटना टेक बैठावे। इसके बाद स्नेहसिक शलाका द्वारा पहले अन्वेषण करके पीछे घृतप्रक्षित नल लिङ्गके मध्य धीरे धीरे प्रवेश करावे। ६ अंगुल प्रविष्ट होनेसे वस्तिपीड़न होगा। पीछे नलको धीरे धीरे बाहर कर लेना होगा। अनन्तर स्नेह प्रत्यागत होनेसे स्नेहवस्तिके विधानानुसार क्रिया करनी होगी।

स्त्रियोंके लिये दश अंगुल लम्बा तथा कनिष्ठागुलिके समान बड़ा बना कर नल प्रस्तुत करे। उसका छेद मूंगके बराबर होगा। इसके अपत्यपथमें चार अंगुलका तथा मूलरुच्छमें उसको तरह सूक्ष्म नल प्रस्तुत करके २ अंगुल भर प्रवेश करा कर वस्ति प्रयोग करे। बालकोंके मूलरुच्छ रोगमें एक अंगुलका नल काममें लावे। चिकित्सक स्त्रियोंकी योनिमें सूक्ष्म नल धीरे धीरे प्रवेश करावे, पर जिससे वह कृपित न हो, इस पर विशेष

ध्यान रहे। नलको आकृति मालती पुष्पके घृतके समान होनी चाहिये। गर्भाशय शोधनके लिये स्नेह दो पल तथा मूलरुच्छके लिये एक पलका प्रयोग करे।

स्त्रियोंको उत्तरवस्ति प्रयोग करनेमें पहले उत्तान भागमें सुला कर दोनों घुटने उठा कर वस्ति प्रयोग करे। उस उत्तरवस्तिका यदि वहिर्निःसरण न हो, तो पुनर्घार संशोधक द्रव्यके साथ वस्ति प्रदान करे। अथवा योनिमार्गमें मूत्रनिःसारक अधच स्निग्ध संशोधक द्रव्य-संयुक्त दूध नलवस्तिके प्रयोग करे।

वस्तिक्रिया द्वारा किसी स्थानमें दाह उपस्थित होनेसे क्षीरो वृक्षके बवाय और शीतल जल द्वारा फिरसे वस्तिका प्रयोग करे। वस्ति प्रयोग द्वारा पुरुषके शुक्रद्रव्य तथा स्त्रियोंके आर्च व द्रव्य विनष्ट होते हैं। किन्तु प्रमेह रोगाक्रान्त ध्यतिकी कभी भी उत्तरवस्तिका गद्योग न करे। (भावप्र० पूर्वख०) निरुह शब्द देखो।

वस्तिक (सं० पु०) पिचकारी।

वस्तिकर्म (सं० पु०) लिङ्गेन्द्रिय, गुदेन्द्रिय आदि मार्गोंमें पिचकारो देनेकी क्रिया।

वस्तिकर्माद्य (सं० पु०) वस्ति कर्मणा तच्छोधनव्यापारेण आल्यः, वस्तिशोधने पवास्य प्रचुरकार्माकरत्वात् तथात्वं। अरिष्ट वृक्ष, रौटेका पेड़।

वस्तिकुण्डलिका (सं० स्त्री०) मूत्राघात रोग-भेद। इसका लक्षण—जब द्र तथेगसे पथगमन, परिश्रम, अभिघात और पीड़न द्वारा मूत्राशय अपने स्थानसे ऊपरको उठ कर गर्भकी तरह स्थूल हो जाता है, तब शूल, स्पन्दन और दाहके साथ थोड़ा थोड़ा मूत्र निकलता है। नामिके अधोदेशमें पीड़न करनेसे धारावाहिकरूपमें मूत्र निकलने लगता है तथा रोगी स्तम्भता और उर्ध्व एन द्वारा पीड़ित होता है। मूत्राघात रोगमें ये सब लक्षण दिखाई देनेसे उसे वस्तिकुण्डलिका कहते हैं। इस रोगमें प्रायः वायुकी ही अधिकता रहती है। यह शूल और विषकी तरह भयङ्कर होता है। इस रोगके उत्पन्न होते ही चिकित्सकको चाहिये, कि बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करे। इस रोगमें पिचाधिक्य होनेसे दाह, शूल और विषर्ण होता है। कफकी अधिकता होनेसे देहकी गुफता

और जोग, स्त्रियां, सफेद साध साध गाढ़ा मूत्र निक-
सता है।

वस्तिकुण्डलिका रोगमें यदि वस्तिका सुखरुग्ण
कात्त कर्तृक साधन भयथा पहिनेमें पित्त जमा हो जाय,
तो उते भस्माध्य समझना चाहिये। यदि इस रोगमें
वस्तिका सुखरुग्ण कफ कर्तृक साधन और वस्तिके मध्य
वायु कुण्डलीभूत हो कर न रहे, तो रोगको साध्य समझना
चाहिये। वस्तिके मध्य वायुके कुण्डलीभूत हो कर रहनेसे
रोगको विषामा, मोह और श्वास उपस्थित होता है।

(भाष्यमें मूत्रपावोरोगाधिक)

वस्तिद्वार (सं० श्लो०) वस्तिद्वार, मूत्रद्वार।

वस्तिगल (सं० श्लो०) मूत्र।

वस्तिपात (सं० पु०) एक मूत्ररोग। इसमें वायु विगड
कर वस्ति (वेष्टू)में मूत्रका रोक देता है।

वस्तिजोष (सं० श्लो०) शतपङ्कविद्येय, वेष्टूका ऊपरो
भाग।

वस्तिग्राह (सं० श्लो०) वस्तिवेष्टना, वेष्टूमें दृष्ट होना।

वस्तिजोषण (सं० श्लो०) १ मदन काल, मीनकाल। २ मदन
पूष, मीनकालकापेष्ट।

वस्तु (सं० श्लो०) वस्तुतांति वस्तु (गवेष्टव्य। उच्य १।३६)
इति मुत् । १ द्रव्य, चीज। २ यह जिसका वस्तिरय हो,
यह जिसकी मर्या हो, यह जो सधमुच्य हो। जैसे—हर
कोई वस्तु नहीं। ३ प्रधानीके मन्ने
परिद्वयभाग जगत्में दो प्रकारकी वस्तु होती हैं—नाय
और जगत्। लेकिन वेदान्तदर्शनके अनुसार जगत्में
वस्तु एक ही सच्चिदानन्द सद्रूप प्राप्त हो वस्तु है।
सद्गुरुके सिवाय और वस्तु नहीं है। अज्ञान आदि उक्-
तमूढ भयवस्तु है। (वेदान्तप्रकार) ४ कार्य। ५ अर्थ।
(इन्द्रमण्ड ५।३५, मीनकाल) ६ इतिरूप, वृत्तान्त।
७ मन्थान्त। ८ मरय। ९ नाटकका कथन या भाषण,
कथावस्तु। १० नाटकीय कथावस्तु दो प्रकारकी होती
गई है—व्यक्तिगत जिसमें नायकका चरित्र हो और
सामाजिक जिसमें नायकके प्रतिरिक्त और किमीका
चरित्र बोधमें सां गथा हो। जगत्क देना।

वस्तुका (सं० श्लो०) वस्तु सिद्धार्थ वत्। वस्तुका नाक,
वस्तुता नामका भाग।

वस्तुको (सं० श्लो०) वस्तुका गीतद्विरात् ऋषे । वास्तुका
नाक, वस्तुता नामका भाग।

वस्तुमान (सं० पु०) १ किसी वस्तुको पहचान। २ मूल
तत्परका बोध, मरयको जागकारो, तत्त्वज्ञान।

वस्तुता (सं० अर्थ०) वधार्थता, मरयमुच्य, मरयत्तम्।

वस्तुता (सं० श्लो०) वस्तु भाषे तन् टाप। वस्तुका भाष
या धर्म, वस्तुत्व।

वस्तुधर्म (सं० पु०) वस्तुका धर्म, वस्तुत्व।

वस्तुनिर्देश (सं० पु०) मङ्गलाचरणका एक भेद जिसमें
पावाका कुछ भागमा दे दिया जाता है।

वस्तुपाठ (सं० पु०) सुराष्ट्रके एक प्रसिद्ध जैन-कवि।

वस्तुपत्त (सं० श्लो०) वस्तुका गुण।

वस्तुभाष (सं० पु०) वस्तुका धर्म या रूप।

वस्तुभेद (सं० पु०) वस्तुका प्रकार।

वस्तुशर (सं० पु०) यह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें
जगत् जैसा द्रव्य है, उसी रूपमें उसकी सत्ता मानो जाती
है। जैसे—न्याय और यैशेविक। यह सिद्धान्त अद्वैत-
वादका विरोधो है जिसमें नामरूपात्मक जगत्की सत्ता
मानो जाती।

वस्तुविचार (सं० पु०) वस्तुका गुण निर्धारण।

वस्तुविषय (सं० श्लो०) वेदान्तके मन्ने वधाध्यैका
विषय।

वस्तुनातिक (सं० श्लो०) वस्तुको जतिक।

वस्तुनात्मन (सं० श्लो०) वस्तुनिर्णय।

वस्तुज्ञान्य (सं० श्लो०) द्रव्यहीन।

वस्तुस्थापन (सं० श्लो०) मोक्षप्राप्तोमें वस्तुका रूपांतर
परदा।

वस्तुमा (सं० श्लो०) उपमात्, दृष्टारभेद।

वस्तव (सं० श्लो०) धर्म-किन्त्व वस्तिर्थांमस्तत्सर्वा साधु
वस्ति इति वत्। (तथ भाष्यः । वा ५।५।६०) दृष्ट, धर,
वस्तुको जगत्।

वस्त (सं० श्लो०) वस्तुने भाष्यात्पने मनेनेति धर्म साधजा-
दने दृत् । (तथ भाष्यः । उच्य ४।१५८) वस्तिर्थांमस्त-
के उपपुक्त कर्णाम्भवादि प्रस्तुत वस्तु, कवटा।
धर्मव—भाष्यकारक, धामन्, गैक, धामन्, धंजुक, (भाष्य)
सिधय, मोन, म्मक, बर्षे, नाटक, कजिपु, (धराधर)

वासन, द्विचय, छाद, वास । (शब्दरत्ना०) धर्मशास्त्रकार भृगुने वस्त्रकी परिधानविधिके सम्बन्धमें कहा है, कि विकृष्ट अर्थात् काष्ठ लगाये बिना, उत्तरीयहीन, आधा नंगा वा बिलकुल नंगा हो कर कोई श्रोत वा स्मार्त्त कर्म न करना चाहिये ।

परिधानके बाहर यदि काष्ठ लगा रहे, तो यह आसुरी प्रथा हो जाती है, इस कारण सम्पूर्ण संवृतकच्छ होना ही उचित है । "परीधानाद्द्विः कक्षा निवन्धा ह्यासुरी भवेत् ।" (स्मृति) वीधायनके मतसे बाईं ओर, पृष्ठ और नाभि इन हीन स्थानोंमें तीन कक्ष हैं, इन तीन कक्षोंको ठीक करके जो ब्राह्मण वस्त्र पहनते हैं, वे शुचि होने हैं ।

प्रचेताका कहना है, कि जो वस्त्र नामिदेशमें पहननेसे दोषोंं घुटने तक लटकता है, उसका नाम अन्तरोय है । यह वस्त्र उत्तम है । यह अच्छिन्न होना आवश्यक है । स्मृतिशास्त्रमें लिखा है, "दशा नामी प्रयोजयेत् । नम्यात् कर्मणि कञ्चुकीति । उत्तरीयधारणं चोपधीतवत् ।" अर्थात् दशा वा वस्त्रका प्रान्तभाग नामिदेशमें खेंस दे । कञ्चुको हो कर अर्थात् किसी प्रकारका अंगरखा पहन कर कोई विहित कर्म न करे, कर्मकालीन उपवीतवत् पवित्र उत्तरीय धारण करे ।

पूर्वोक्त भृगुके वर्णनानुसार मालूम होता है, कि सभीको दो दो वस्त्र अर्थात् परिधेय और उत्तरीय धारण करना चाहिये ।

वस्त्रधारणके गुण—निर्गल वस्त्र पहननेसे कामोद्दीपन, प्रसांशालाभ, दीर्घायु, अलक्ष्मीनाश तथा आत्म प्रसाद होता है । इससे शरीरकी शोभा बढ़ती और पहननेवाला सम्भ्यसमाजमें जाने लायक होता है ।

स्नानके बाद कपड़े ले शरीरकी अच्छी तरह मलना चाहिये । इससे देहकी कान्ति खुलती है तथा देहके अनेक कण्डुदोष जाते रहते हैं । सभी प्रकारका कीपेय घन्त्र अर्थात् पट्टवस्त्र वा तसर-वस्त्र अथवा चित्र-वस्त्र और रक्तवस्त्र शीतकालमें पहनना उचित है । सर्षोक्ति इससे वात और श्लेष्मकेप प्रशमित होता है । पवित्र सुशीनकापाय-वस्त्र गित्तहर है, इसलिये उन्ने प्रीष्मकालमें पहना उचित है । यह वस्त्र जितना

ही हलका होगा उतना ही अच्छा है । शीतातपनिवारणमें शुक्रवस्त्र न तो शुभद है और न उष्ण ही है । ऐसा वस्त्र वर्षामें व्यवहार करना होता है । मनुष्यको मैला कपड़ा कभी न पहनना चाहिये । इससे कण्डू और रुमि उत्पन्न होते हैं तथा यह ग्लानिकर और लक्ष्मीभाग्य-हर है ।

स्वप्नयोगमें वस्त्रादि दर्शन एकान्त शुभप्रद है । कन्या, शुक्रवस्त्र-परिधापी गौर वर्ण चंचल छोटे छोटे लड़केको, छल, दर्पण, विप और आमिय तथा शुक्रवर्णके पुष्प, वस्त्र और अपवित्र आलेपनको स्वप्नमें देखनेसे आयु आरोग्य तथा बहुवित्त लाभ होता है । (वाभट शरीरस्थान ६ अ०)

नववस्त्र शास्त्रानुसार दिन देख कर पहनना होता है । अशास्त्रीय दिनमें पहननेसे अशुभ होता है । ज्योति-स्तस्त्रचर्चमें लिखा है, कि अपने जन्मनक्षत्रमें और अनुराधा, विशाखा, हस्ता, चित्रा आदि कुछ विहित नक्षत्रोंमें तथा वृहस्पति, शुक्र और बुध दिनमें वा किसी उदसवर्गमें नया वस्त्र पहनना चाहिये । (ज्योतिस्तस्त्र)

दिन न देख कर जिस किसी दिनमें नया वस्त्र पहननेसे नाना प्रकारका अमङ्गल होता है, विहित दिनमें नया वस्त्र पहननेसे उसका विपरीत फल अर्थात् मङ्गललाभ अत्यय्यम्भावो है । कर्मलोचनमें लिखा है, कि रविवारको नया वस्त्र पहननेसे अल्प धन, सोमवारको व्रण तथा मङ्गलवारको नाना फलेज होता है । फिर विहित दिनमें अर्थात् बुध, वृहस्पति और शुक्रवारमें नया वस्त्र पहननेसे यथाक्रम प्रभूत वस्त्र लाभ, विद्या और विज्ञ समगम तथा नाना प्रकारका भोगसुख, प्रमोद और श्रद्धालाभ होता है । इन्में छोड़ कर शनिवारको नववस्त्र कदापि न पहनना चाहिये, पहननेसे रोग, शोक और फलह हमेशा हुआ करता है ।

मलिन वस्त्रको क्षारसे परिष्कार करना उचित है । फिर यह क्षार भी दिन कुदिन देख कर काममें लाना होता है । सर्षोक्ति निषिद्ध दिनमें क्षार मिलानेसे वस्त्र स्वामीके सात कुल दूष्य हो जाते हैं । वस्त्रमें क्षार मिलानेके निषिद्ध दिन ये सब हैं, शनि और मङ्गल, पछो और द्वादशी तथा श्राद्धदिन ।

चराहमिदिरको वृहत्संहितामें लिखा है, कि वस्त्रके

मनो कोनोंमें देवनामोंका तथा उसके दृग्गान्धी और वाग्गान्धीमें नरनामका वास है । अथानिष्ट तीन अंशोंमें निजापरमाणु वास करते हैं । नया या पुराना कणवा यदि काली, गोबर या कोचड़से मिल हो अथवा टिम्न, प्रदग्ध या शुकुटिन हो जाय, तो सुपुष्ट, शुभ या अशुभ फल भव्य, अगन्तर या अधिक होनेको सम्भावना है । उच्चर गन्ध इय प्रकार होनेमें भी उक्त गुणानुगुण फल हुआ करता है । यत्नका जो भाग राक्षसाघिष्टन है, वह उक्त प्रकारका होनेसे रोग या मृत्यु होती है । मनुष्य भाग पैसा होनेसे पुत्रलाभ तथा लैङ्गकी वृद्धि एवं देवनाम पैसा होनेसे भोगकी वृद्धि होती है । किन्तु प्रान्त भाग यदि धीमा हो हो, तो अनिष्ट होनेकी ही विशेष सम्भावना है ।

घरके देवाघिष्टन टिम्न अंशमें यदि कण्डू, प्लघ, उन्धक, कपोत, काक, कटवाद्, गोमायु, पट, उष्ट्र या सपे तुल्य भाकार दिखाई दे, तो पुत्रकी मृत्युके समान भय उपस्थित होता है । घरके राक्षसाघिष्टन टिम्न अंशमें छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, यक्षभाग, धौरुस, कुन्द, मण्डुल और तोरण भादिका भाकार दिखाई देनेसे थोड़े ही दिनोंमें पुत्रके लक्ष्मोलाभ होता है ।

मनुष्य जब नववस्त्र पहनेते हैं, तब घरके अघिष्टनी नक्षत्रगत होनेसे प्रभूत वस्त्रलाभ, भरणोगत होनेसे अघट्टण-भय, हस्तिकामत होनेसे अग्निभय तथा रोहिणी गत होनेसे उर्ध्वे अर्धसिद्धि होता है । इसके सिवा मृगनिशामें मृषिक्रमण, भाद्र नक्षत्रमें प्राणदान, पुनर्वसुमें शुभागमन तथा पुष्या नक्षत्रमें घनलाभ होता है । अरुन्धेयामें विन्धोप, मध्यमें मृत्यु, पूर्णमासुतोमें राजप्रभय तथा उच्चर-पञ्चसुतोमें घनागम होता है । हेरतामें कर्मसिद्धि, चित्तमें शुभागम, स्वोतो नक्षत्रमें शुभसौत्रवकी प्राप्ति तथा विमाशामें जननिपत्ता होती है । अनुशामें सुहृद् सम्भोगम, अंधेयामें वल्लभन, मूत्रामें जनप्यायन तथा पूर्वाषाढामें माया रोग उत्पन्न होते हैं । उत्तराषाढा नक्षत्रमें मित्र भङ्ग, धधन्नामें भैरवीय, धनिष्ठामें धान्यनाश और जलनिशामें विनष्टन महाभय उपस्थित होता है । पूर्णमासुदरमें जलभय, उत्तर-भाद्रपदमें पुत्रलाभ और वैश्वोमें धननाशकी सम्भावना है ।

जो उद्विगित नक्षत्रमें नववस्त्र पहनेते हैं, उर्ध्वे रक्त फलाफल हुआ करता है । किन्तु नक्षत्रोंके गुणपरिचित या अमङ्गलदर होनेमें भी ब्राह्मणकी आज्ञासे उन सब नक्षत्रोंमें नववस्त्र परिधान इष्टफलप्रद होता है । इसके सिवा राजासौका दिया हुआ या विवाह-विधिलक्ष्य परम योग भी सुफलप्रद माना गया है, कर्तव्येका तात्पर्य यह कि विवाहमें, राजसभामागमें तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे गुणपरिचित अमङ्गल नक्षत्रमें भी नववस्त्र पहना जा सकता है । (वृहस्प ० ७१ म०)

घर दान करनेसे अघोर फल होता है । शुक्तिरक्षणमें लिखा है, कि यत्नदानकर्ता चन्द्रजेठमें जाते हैं ।

जो ब्राह्मणोंको उत्तम परम दान करते हैं, अन्तमें उनके पथ सुललित-शोचन तथा घल भी मध्य परिपूर्ण होते हैं ।

अग्निपुराणके वम और शर्मिनीशाखायामें इस यत्नदानका पुण्यमाहात्म्य लिखा है : विस्तार हो जानेके मयसे यहाँ पर नहीं लिखा गया ।

सर्पदेवदेवीको पूजामें यत्नदान भावश्यक है । किन्तु किस पूजामें कौन यत्न विहित या निषिद्ध है, ज्ञानानुसार यह ज्ञान कर यदि देवोद्देशसे दान किया जाय या उसे पहन कर पूजा की जाय, तो प्रष्टन पूजाका फललाभ होता है ।

अग्निपुराणके क्रियायोग नामक अध्यायमें लिखा है, कि दुर्जल, पट्ट, कपिये' पादकल और कर्पास भादि मिय और सुपेशर अच्छे अच्छे यत्न द्वारा विष्णुकी पूजा करनी होती है ।

किन्तु इस विष्णुपूजामें मोल, रक्त या अर्पित यत्न पहना निषिद्ध है । पूजक यदि मोल, रक्त या अन्यल्प अर्पित यत्न पहन कर विष्णुपूजा करें, तो ज्ञान्यज्ञानन से उर्ध्वे अघराधी होना पड़ता है । उक्त नवराशका विशेष विशेष प्रायश्चित्त कदा गया है । यह प्रायश्चित्त करके पूजक निरपराध या निष्पत्य हो सकते हैं ।

वराहपुराणमें भगवानमें स्वयं कहा है, कि जो स्वयिक मोल यत्न पहन कर विरो पूजा करता है, उसे आगमें धीय गी चर्च तब द्दाम हो कर रहना पड़ेगा । किन्तु इस अथगण्य योग्यकक प्रायश्चित्त है । यह प्रायश्चित्त मिय

चान्द्रायणव्रत है। चान्द्रायण करनेसे ही वह व्यक्ति उक्त पाप वा अपराधसे मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार रक्त वस्त्र पहन कर भी विष्णुपूजादि करना निषिद्ध है। उक्त वराहपुराणमें दूसरी जगह लिखा है, कि रक्त वस्त्र पहन कर विष्णुपूजा करनेसे रजस्वला स्त्रियोंके जो रक्त मोक्षण होता है उस रक्तसे लिप्ताङ्ग हो कर उक्त पूजकको पन्द्रह वर्ष तक नरकमें वास करना पड़ेगा। इस अपराध-शोधनका प्रायश्चित्त है—सत्तरह दिन एकहार, तीन दिन वायुमक्षण तथा एक दिन जलाहार।

काला वस्त्र पहन कर भी विष्णुपूजादि नहीं करनी चाहिये। करनेसे पूजकको पहले पांच वर्ष तक घून हो कर जन्म लेना पड़ेगा, पीछे कैदी काष्ठभक्षक कोट, उसके बाद चौदह वर्ष तक गाराघत योनिका भोग करना होगा। इस जन्ममें उक्त व्यक्तिको सित पाराघत हो कर किसी प्रतिष्ठित विष्णुविग्रहके पास हो वास करना पड़ेगा। इस अपराधका प्रायश्चित्त है सात दिन तक याचक भक्षण तथा तीन रात सिर्फ तीन श्वेतुपिण्ड भोजन। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने हीसे उसके पाप दूर होंगे।

अधीत वस्त्र पहन कर विष्णुपूजादि करना मना है। इसमें भी अपराध है। अपराधको उन्मत्त हाथी, ऊँट, गधे, गोदड़, घोड़े, सारङ्ग और मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार सात जन्मके बाद अन्तमें मनुष्य योनि लाभ होनेसे वह विष्णुभक्त और गुणज्ञ होगा। इसीसे उसका अपराध जाता रहेगा। किन्तु इस जन्ममें ही इस प्रकार अपराध-मोचनका प्रायश्चित्त है। भक्तियुक्त हो कर उसका अनुष्ठान करना पड़ेगा। इसका प्रायश्चित्त है तीन दिन याचक भोजन और तीन दिन विषवाक भोजन। इसके सिवा तीन दिन कणमश हो कर तथा तीन दिन पायस खा कर बिताना होगा। प्रायश्चित्त द्वारा पापक्षय होने हीसे मुक्तिका पथ उन्मुक्त हो जायगा।

दूसरेका वस्त्र पहन कर भी विष्णुकी पूजा आदि नहीं करनी चाहिये। करनेसे अपराधी होना पड़ता है। रतना ही भयो इस अपराधके फलसे इक्कीस वर्ष तक मृग-योनिका भोग करना होता है। पीछे एक जन्म लंगड़ा

रह कर मूर्ख और माधन हो कर समय व्यतीत करना होगा। किन्तु इस अपराधसे मुक्ति पानेका प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त करते जानेंमें विष्णुमें अटल भक्ति हो, थोड़ा भोजन करे। माघ मासके शुक्लपक्षीय द्वादशीके दिन क्षान्त, दाग्त और जितेन्द्रिय भावसे अनन्यमनसे विष्णुध्यानमें मग्न हो जलामाय पर अवस्थान करे। पीछे जब रात घीत जाय और सूर्य उद्य हों, तब पञ्चगव्य खा कर अचिरात् सर्व क्लिष्टपसे मुक्त होंगे।

दशान्वित वस्त्र पहनने की ही विधि है। दशाहीन वस्त्र अवैध है, वह धर्म-कर्ममें उपयुक्त नहीं होता। वस्त्रविशेष प्रतिग्रह करने पर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। हारीत कहते हैं, कि “मणिवासोपवादीनां प्रतिग्रहे सावित्राष्टशतं जपेत्।” “अष्टसहस्रं अष्टोत्तरसहस्र-मिति”। (शुद्धितत्व)

कालिकापुराणमें लिखा है—कपास, कम्बल, चरकल और काँपेयज, ये सब वस्त्र देवोद्देशसे समस्तक पूजा करके उत्सर्ग करेंगे। किन्तु जो वस्त्र दशाहीन, मलिन, जीर्ण, छिन्न, परकीय, मूषिकदण्ड, सूचीविद्ध, व्यवहृत, केशयुत, अधीत किंवा श्लेष्मा तथा मूलादि द्वारा दूषित हो, वैसा वस्त्र देवोद्देशमें किंवा देव वा पैत्र्य कर्म उपलक्ष्ये दान करना उचित नहीं। प्रत्युत ये सब वस्त्र इन सब स्थानोंमें यज्जैन करना ही कर्त्तव्य है।

उक्त पुराणमें दूसरी जगह लिखा है—उत्तरीय, उत्तारासंग, निचोल, मोद्वेलक और परिधान नामक पञ्चविध वस्त्र बिना सिलाई किये हुए व्यवहार वा दान करनेकी विधि है, किन्तु शनसूत्रनिर्मित वस्त्र, नौशार (मसहरी), आतपत्र, चंडातक (स्त्रियोंकी चोलोकें कपड़े) एवं दूष्य अर्थात् धरुगृह, ये सब कपड़े सिलाई किये जाने पर भी दूषित नहीं होते।

इसके अतिरिक्त पताका और ध्वजादिमें सिलाई किये हुए कपड़े ही आवश्यक हैं।

भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजाके कपड़े भिन्न भिन्न होते हैं। किस देवताकी कौन वस्त्र देना होता है, उसके सम्बन्धमें कालिकापुराणमें इस तरह लिखा है—

रक्तवर्ण काँपेय वस्त्र महादेवको देना प्रमत्त है, इसी तरह पीतवर्ण काँपेय वस्त्र वासुदेवकी, लाल कम्बल

निवर्त्तन एवं विचित्र निरङ्गुलक यत्र सव देवदेवियोको
 नर्पण किया जा सकता है । इनके अन्तर्गत मूर्त्तों
 कपडा भी मूर्त्तों देवताओंको चढाया जा सकता है ।
 जो कपडा बिल्कुल ही लाल रंगका हो, उसे दसुदेव
 मूर्त्त निवर्त्तन अर्पण करना निषिद्ध है । नील और रक्त-
 वर्णान्ध्रिय यत्र सर्व्यं ही निषेध माना गया है । देव
 और वैशाखोंमें विद्यमान, उसे बिल्कुल ही व्यवहारमें
 नहीं लायेंगे । जो विद्यमान ही पर भी प्रमादयुक्त नील
 और रक्तवर्ण यत्र विद्यमान ही मूर्त्तों समर्पण करेंगे, उन्हें
 उक्त मूर्त्तका कोई भी फल प्राप्त न होगा । विचित्र यत्र
 नील वर्ण होने पर, यह एकमात्र महादेवों-देवोंको चढाया
 जा सकता है । इनके सिवाय दूसरे किसी भी देवताके
 उद्देशमें अर्पण करना निषिद्ध है । द्विपक्षके मध्य जिहा-
 तत्त्व प्राप्त है एवं देवताओंके मध्य जिस तत्त्व प्राप्त
 है, उक्त तत्त्व भूयोंके मध्य वर ही प्राप्त है । यत्रके
 द्वारा लक्षा निवारण होनी है, यत्र पाषोंके मात्र करने-
 में समर्थ होता है, वर द्वारा सर्वविधि प्राप्त होती है
 एवं यत्र चारों फलोंका देनेवाला है ।

मांस, यमन, जप, ज्ञान, अत्यन्त और कामद्वय
 ये कई एक यत्र अर्पण ही द्वारा पवित्र राखी जा सकता
 है । ये सब चीजें दूसरेके हाथोंमें चढाने ही अपवित्र हो
 जाती है । कपडे यदि कुछ छोटे गये हों, या गिरीके
 द्वारा खाली बने गये हों, किंवा छोटी द्वारा छोटे गये
 ही और अब ये कपडे सुतलेके निचे क्षिप्त परिष्कारकी
 ओर पसार गये हों, तब उन्हें अर्पण ही सम्भवा चाहिये
 अर्थात् इस तत्त्व कपडे अर्पण ही हट जाते हैं ।

(कर्मोपनिषत्)

पौष्टि ह्य कपडे पूर्य उत्तारको ओर पसारना चाहिये,
 पवित्र या क्षिप्तकी ओर पसार कर सुताये गये कपडे
 निराले पौष्टि ज्ञान पर पवित्र होते हैं ।

अथवा कहते हैं, कि जिस व्यक्ति अपने हाथों ही
 कपडे धो कर किसी धर्मोपनिषत् व्यवहार करेंगे । पौष्टि
 के पौष्टि गये कपडे या क्षिप्त ही अर्पण यत्र के कर्मों
 धर्मोपनिषत् नहीं करेंगे । किन्तु ही, पुन, मित्र, जप, नम, नम
 अथवा अथवा, अथवा अथवा या मूर्त्त पवित्र यत्र सब
 विद्यमान होना ।

ज्ञान करनेके बाद मस्तकके अर्पणपत्रके निचे
 दोना दाना साया बाँधना चाहिये । मूर्त्त, यत्र, मूर्त्तके-
 रत्नों, अर्पण तथा दूसरेका यत्र पहन कर धर्मोपनिषत्
 नहीं करना चाहिये ।

अन्तर्गत विचित्र रक्तवर्ण, अत्यन्त रक्तवर्ण, नील-
 वर्ण, मलयुगों वा द्वादीन वर्णोंका त्याग करेंगे ।

किन्तु आचाररत्नमें लिखा है, कि अन्तर्गतवर्णोंमें
 द्वादीन वर्णसे भी धर्मोपनिषत् किया जा सकता है ।

दूसरोंके पहने हुए तथा लाल, मन्त्रिण वा द्वादीन
 कपडेका व्यवहार निषेध है । बाल देव यत्र ही
 पहनेके साथ धारण करना चाहिये । जिक, रत्ने अर्पण
 वा मन्त्रिण यत्र कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये ।

ज्ञान करनेके बाद अर्पण यत्र धारण करना
 चाहिये । भीन कपडेके समाघ रत्न पर ज्ञान शीम,
 आविर्, मेवादेवोंके कपडा किया योग्य धारण करेंगे ।
 मोटा मोटी बान यह है, कि इन सब कपडोंमें किसी
 एक कपडेके पहन कर द्वितीय धर्मोपनिषत् होना कपडेका ।
 अर्पण कपडा पहन कर निच्य मीमंसिक किया करनेके
 कोई फल नहीं होगा एवं अर्पण कपडा पहन कर दान
 करनेमें भी निष्फल होता है ।

ज्ञान करनेके बाद अर्पण किया निचे हुए ही मूर्त्तों
 कपडेका अल मित्रोपनिषत् नहीं चाहिये । जाबानिने कहा
 है, कि अर्पणके पहने जो व्यक्ति अन्तर्गतके छोटे कपडेका
 मन्त्र निषोचना है, उसके विद्यमान देवताओंके साथ
 निराला ही कर पत्ते ज्ञान है ।

ज्ञान करनेके उपरान्त भीम हुए कपडेमें
 जो व्यक्ति मन्त्र वा मन्त्र त्याग करेगा, यह तीन बार प्राला-
 यान करके फिरसे ज्ञान करने पर मूढ होगा । मोटा
 कपडा सर्व्यदा पहने रहना निषेध है । अर्ध यत्र भी
 मान बार यात्रा करके मूढ ही ज्ञान है ।

संज्ञान, पुष्पिता, अन्तर्गत, अन्तर्गत एवं अन्तर्गत
 द्वितीय धर्मोपनिषत् वा अन्तर्गत यत्र प्राप्त करना
 निषेध है ।

यत्र (संज्ञान) यत्र, कपडा ।
 अन्तर्गत (संज्ञान) अन्तर्गत द्वितीय धर्मोपनिषत् । २ अथ,

छाता । वख्रस्य कुट्टिमं क्षुद्रगृहं । २ वख्रनिर्मित गृह,
खेमा ।

वख्रकुल—शिलालिपि-वर्णित राजभेद ।

वख्रगृह (सं० ह्री०) वख्रनिर्मितं गृहं । वख्रनिर्मित
शाला, खेमा । पर्याय—पटवास, पटमय, दृष्य, स्थल ।

वख्रग्रन्थि (सं० पु०) वख्रस्य ग्रन्थिः । नीचो, नाडा,
इजारखेन्द ।

वख्रघर्घरी (सं० खी०) वख्रनिर्मिता घर्घरीय । वाघ-
यन्त्रविशेष, एक प्रकारका बाजा ।

वख्रच्छत्र (सं० त्रि०) परिधृत चास, वख्रावृत ।

वख्रद (सं० त्रि०) वख्रदानकारी, कपड़ा देनेवाला ।

वख्रदा (सं० खी०) कपड़ा देनेवाली ।

वख्रदानकथा (सं० ह्री०) वासदान, कपड़ा देना । यह
बड़ा पुण्यजनक है । सूर्य और चन्द्रग्रहणमें अन्न और
वख्र दान करनेसे वैकुण्ठ लाभ होता है ।

वख्रनिर्णोजिक (सं० पु०) वख्रघोतकारी, घोषी ।

वख्रप (सं० पु०) १ एक जानिका नाम । (भारत ५।५।१।१५)
२ एक तीर्थ । इसका नाम पुराणोंमें 'वख्रापथ क्षेत्र'
मिलता है । यह आज कलका गिरनार है जो गुजरातमें
है । ३ रेशम, ऊन तथा सब प्रकारके वस्त्रोंकी पहचानने
और उनके भाव आदिका पता रखनेवाला राजकर्मचारी ।

वख्रपञ्जुल (सं० पु०) कोलकन्द ।

वख्रपरिधान (सं० ह्री०) १ वेशसजा । २ कपड़ा पह-
नना ।

वख्रपुत्रिका (सं० खी०) वख्रनिर्मिता पुत्रिका पुत्तलिका ।

वख्रनिर्मित पुत्तलिका, कपड़े का पुतला ।

वख्रपूत (सं० त्रि०) वख्र द्वारा परिष्कृत, कपड़ोंसे छाना
हुआ ।

वख्रपेशी (सं० खी०) वख्र द्वारा पेशित ।

वख्रवन्ध (सं० पु०) नीची ।

वख्रमचन (सं० पु०) कपड़े का बना हुआ घर, खेमा ।

वख्रमूषण (सं० पु०) १ पटवास । २ रक्ताञ्जन । ३ साकु-
कण्ड वृक्ष ।

वख्रमुग्धा (सं० खी०) वख्रस्य भूषणं रागो यस्याः ।
मञ्जिष्टा, मज्जीठ ।

वख्रमपि (सं० पु०) तस्कर, चोर ।

वख्रयुगल (सं० ह्री०) परिच्छदद्वय, जोड़ा कपड़ा ।

वख्रयुगिन् (सं० त्रि०) युगलयस्त्रधारी, दो कपड़ा पह-
ननेवाला ।

वख्रयुग्म (सं० ह्री०) वख्रस्य युग्मं । वख्रद्वय, जोड़ा
कपड़ा ।

वख्रयोनि (सं० खी०) वख्रस्य योनिवत्पत्तिकाकरणं ।
वसन्तोत्पत्तिकाकरण, सूत आदि जिससे कपड़ा बाना
जाता है ।

वख्ररङ्गा (सं० खी०) कैवर्त्सकी ।

वख्ररञ्जक (सं० पु०) कुसुम्भ वृक्ष ।

वख्ररञ्जन (सं० पु०) राजयतीति राज-णिच्-स्युट्, वख्रानां
रञ्जनः । कुसुम्भ वृक्ष ।

वख्ररञ्जिनी (सं० खी०) मञ्जिष्टा, मज्जीठ ।

वख्ररागधृत् (सं० पु०) नील होराकसीस ।

वख्रवत् (सं० त्रि०) वख्र अस्त्यर्थे मनुप् मस्य व ।
वख्रविशिष्ट ।

वख्रविलाम् (सं० पु०) वख्रेण विलासः । कपड़ा द्वारा
विलास, उत्तम वख्र पहन कर गर्व करना ।

वख्रवेश (सं० पु०) वख्रगृह, खेमा ।

वख्रवेश्मन् (सं० ह्री०) वख्रस्य वेश्म । कपड़े का घर,
खेमा ।

वख्रवेष्टिन (सं० त्रि०) वख्रेण वेष्टित । वख्र द्वारा
आच्छादित ।

वख्रामार (सं० पु०) १ वख्रगृह, खेमा । २ कपड़ेकी
दुकान ।

वख्राञ्जल (सं० ह्री०) कपड़े का एक छोर ।

वख्रान्त (सं० पु०) कपड़े का चारों कोना ।

वख्रान्तर (सं० ह्री०) अन्यन् वख्रं । अथर वख्र, दूसरा
कपड़ा ।

वख्रापथक्षेत्र (सं० ह्री०) एक प्राचीन और पवित्र तीर्थ-
स्थान । महाभारतमें यह स्थान 'वख्रप' कह कर उक्त है ।

इसका वर्त्तमान नाम गिरनार है । यहाँ भय और भयानी-
की मूर्त्ति विराजित हैं । (५० नील २४) स्कान्दके नागर
और प्रभासतलएण्डमें इस क्षेत्रका माहात्म्य वर्णित है ।

उज्जयन्त देवो ।

वख्रापहारक (सं० पु०) कपड़ा बुननेवाला ।

यस्त्रापरहारिन् (सं० पु०) यस्त्रापरहारक देशो ।
 यस्त्रास (सं० स्त्री०) यस्त्रासक अर्थात् ।
 यस्त्रास-प्राप्त (सं० त्रि०) अर्थे यस्त्रासक्यादिन् ।
 यस्त्रासकर्म (सं० पु०) यस्त्रासक, कर्मकेका टुकड़ा ।
 यस्त्रिन् (सं० त्रि०) १ यस्त्रयुक्त, जो कर्मका महने हुए
 हो । २ उदात्तल ।
 यस्त्रोत्कर्षण (सं० स्त्री०) यस्त्रव्ययण, कर्मका छोड़ना ।
 यस्त्र (सं० स्त्री०) यस्त्र नियमसे आच्छादने या (पाठान्त-
 र्वादिभ्यां नः । उच् १।६) इति कर्मणादी यथायथं न ।
 १ यस्त्र । २ मूल्य । ३ यस्त्र । ४ द्रव्य, चीज । ५ घन ।
 ६ प्रवृत्ति, भादि । यस्त्रे आच्छादयति शरीरमिति कर्त्तरि
 ण । ७ स्वक, यस्त्रल, छाल ।
 यस्त्रक (सं० स्त्री०) कटोभूषण, कर्मपत्तो ।
 यस्त्रमा (सं० स्त्री०) यस्त्रं यस्त्रं मोष्यति यस्त्र-सिप उ,
 त्विषो टाप् । स्त्रायु ।
 यस्त्रिक (सं० त्रि०) यस्त्रेण जीयति (यस्त्राधिक्यवाटठन
 वा ४।४।१२) यस्त्र-ठन । यस्त्रात्त जीविकानिर्वाहकारो,
 जीविको कर भणनो जीविका चलानेवाया ।
 यस्त्र्य (सं० त्रि०) यस्त्रं मूल्यं तदर्थेति यस्त्र । मूल्यार्थे,
 मूल्यके योग्य । "तस्मै यस्त्र्यस्य नाहं विद्यामि" (शूक्
 १०।३।३) 'यस्त्र्यस्य यस्त्रं मूल्यं तदर्थस्य' (शायण)
 यस्त्र (सं० पु०) प्रार्थना, स्तुति । २ गुण, सिद्धत । ३
 विरोधता ।
 यस्त्रन् (सं० स्त्री०) यस्त्र ।
 यस्त्र्य (सं० त्रि०) १ घनयान् । २ सौन्दर्यज्ञानी । ३ मूल्य-
 यान् । ४ यथाज्ञानी ।
 यस्त्रयसि (सं० स्त्री०) जीवयमासि । "यस्त्रयसि यस्त्रयस्ये"
 (शूक् १।२।४)
 यस्त्रोभूष (सं० स्त्री०) यस्त्रोभूष । (यस्त्रो १६।१।४)
 यस्त्रि (सं० स्त्री०) यस्त्रिमापते ।
 यस्त्र (सं० पु०) १ दो चोत्तोक भाषणसे मित्रत्व, मित्रता ।
 २ सयोग, मित्रत्व, विरोधता प्रेमी और प्रेमिकाका
 मित्रत्व ।
 यस्त्रयन् (सं० पु०) इयमनुके पुत्र मिथिलाके एक राजा ।
 का नाम । (मत्स्य ६।१।२५)

यस्त्रो (सं० स्त्री०) १ भगि सुन्दर, बड़ा सुबहुरत । २
 परीक्षाके योग्य ।
 यस्त्रोक्तारा (सं० स्त्री०) यस्त्रोक्तपु रसाकरेपु सारा । १
 इन्द्रपुत्री । २ इन्द्रनदी । (भात ३।१८।१०२) ३ यज्ञ ।
 ४ कुपेरपुत्री । (भात ७।६।१५) ५ कुपेरनदी । (इम)
 यस्त्रवाह—यस्त्रं प्रेसिडेन्सीके सीतापु प्रातस्त्रय एक
 छोटा सामल राज्य । अभी यह छोटे छोटे अंशोंमें
 विभक्त हो गया है । राजस्व योग हजार ४० है जिसमेंसे
 ७६६ ४० अंशरेज सरकारको देना पड़ता है । इस
 सम्पत्तिके मध्य चार गाँव प्रधान है । भू-परिमाण ६८
 वर्गमील है ।
 यस्त्रित (सं० त्रि०) १ क.पु.लेहनकारो, कुष्वरु चाटने-
 वाला । (पु०) २ यूप, पैट, मादि ।
 यस्त्र (सं० पु०) यस्त्रेण युगमनेनेति यस्त्र (गोपराश्रमि ।
 वा ३।३।१।६) इति अस्त्रवधेन सायु । १ यूपस्त्रय प्रदेन,
 पैलका कथा । यस्त्रेण यस्त्र-अच् । २ गोटक, गोटा ।
 ३ यायु । ४ यथ, मार्ग । ५ नद । (त्रि०) ६ वाहक, बोध
 उडा कर ले जानेवाला ।
 यस्त्र (हि० स्त्री०) १ एक जम्बू जिसके द्वारा दूसरे
 मनुष्यमें वास्तव्य करके समय-किसी मंत्रसे मनुष्यका
 संकेत किया जाता है, कर्मकारक प्रथम यूपय मर्षनाम ।
 जिते,—तुम जाओ, यह माना है । २ एक विद्वेगकारक
 जम्बू जिससे दूसरे या परेष्ट यस्त्रुगीका संकेत करने
 है । जिते,—यह और यह दोनों एक ही हैं ।
 यस्त्र (सं० पु०) यस्त्रेण यस्त्र-मन्त्र । १ यूप, पैट । २
 वाहक, मार्ग ।
 यस्त्रासो (सं० स्त्री०) यस्त्रासो इत्य । पैटकी यह घोषा
 कटु तथा कासरोमनाजक और कुष्वरुके बड़ा गया
 है । इसका यथाय—यस्त्रासो, मेषासो, यूपयतिवत ।
 यस्त्रि (सं० पु०) यस्त्रेण यस्त्र-अस्त्रि-अस्त्रि-अस्त्रि-
 उच् ४।६०) इति अस्त्रि । १ यायु । २ गो, गामो ।
 ३ ससिध ।
 यस्त्रो (सं० स्त्री०) यस्त्रेण यस्त्रुकाय होय । नदी ।
 यस्त्रु (सं० पु०) यस्त्रु (कौशिकी-शब्दः । उच् ३।३।३)
 इति यस्त्रु । १ यस्त्रि, यस्त्रो । २ यूपय, पैट । ३ यस्त्रेण ।
 ४ यस्त्रेण । (त्रि०) ५ यस्त्रेण-अस्त्रेण ।

वहन (सं० क्ली०) उद्यतेऽनेनेति वह-करणे ल्युट् । १ ढोड़, तरेदा, वेडा । २ खीच कर अथवा सिर या कंधे पर लाव कर एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना । ३ ऊपर लेना, उठाना । ४ कंधे या सिर पर लेना । ५ खम्भेके नी मागोंमेंसे सबसे नीचेका भाग । (त्रि०) ६ वाहन, ढोनेवाला ।

वहनमङ्ग (सं० पु०) १ टूटो हुई नांव । २ वहननिवृत्ति । वहनीय (सं० त्रि०) वह-अनीयर् । १ उठा या खीच कर ले जाने योग्य । २ ऊपर लेने योग्य ।

वहन्त (सं० पु०) वहति वाताति वह (वृभृवहिवीति । उष्ण, ३।१२८) इति ऋच् । १ वायु । उद्यते इति कर्मणि ऋच् । २ बालक ।

वहम (अ० पु०) १ विना संकल्पके चित्तका किसी बात पर जाना, मिथ्या धारणा, भ्रूडा खयाल । २ भ्रम । ३ व्यर्थकी शंका, मिथ्या संदेह, फजूल शक ।

वहमी (अ० वि०) १ पृथा संदेह द्वारा उत्पन्न, भ्रम जन्य । २ वहम करनेवाला, जो अर्थ संदेहमें पड़े, किसी बातके सम्बन्धमें जो व्यर्थ मला बुरा सोचे । ३ भ्रूडे खयालमें पड़ा रहनेवाला ।

वहल (सं० पु०) उद्यतेऽनेनेति बहु वाहुलकात् अलच् । १ नौका, नाव । (त्रि०) २ दूढ़, मजबूत ।

वहलगन्ध (सं० क्ली०) वहलः प्रचुरो गन्धो यस्य । शम्बर चन्दन ।

वहलक्षस् (सं० पु०) वहलानि प्रचुराणि चक्षुषीव पुष्पाण्यस्य । मैपभृङ्गो, मेडासींगी ।

वहलत्वच (सं० पु०) वहला दृढात्वचा वल्कलं यस्य । श्वेत लोभ्र, सफेद लोघ ।

वहला (सं० स्त्री०) वहलानि प्रचुराणि पुष्पाणि सन्त्यस्य वा इति, अर्थ आदित्यादच् । १ शतपुष्पा । २ स्थूलैला, बड़ी इलायची । ३ दीपक रागकी एक रागिनीका नाम ।

वहशत (अ० स्त्री०) १ जंगलीपन, असम्भ्यता, घर्नरता । २ पागलपन, बावलापन । ३ उजड़पन : ४ विकलता, भवराहत । ५ डरावनापन । ६ चित्तकी चंचलता, अधीरता । ७ वहल पहल या रानक न होना, सखाटापन, उदासी ।

वहशो (अ० त्रि०) १ जंगलमें रहनेवाला, जंगली ।

२ असम्भ्य । ३ जो पालतु न हो, जो आदमियोंमें रहना न जानता हो । ४ भड़कनेवाला ।

वहाँ (हि० अव्य०) उस जगह, उस स्थान पर । जैसे— 'वहाँ' का प्रयोग पासके स्थानके लिये होता है, वैसे ही इस शब्दका प्रयोग दूरके स्थानके लिये होता है ।

वहा (सं० स्त्री०) वहतीति वह-अच् टाप् । नदी ।

वहायो (अ० पु०) मुसलमानोंका एक सम्प्रदाय जो अब्दुल वहाव नजदीका चलाया हुआ है । अब्दुल वहाव अरबके नज्द नामक स्थानमें पैदा हुआ था । वह मुहम्मद साहबके सर्वोच्चपदकी अस्वीकार करता था । इस मतके अनुयायी किसी व्यक्ति या स्थानविशेषकी प्रतिष्ठा नहीं करते । अब्दुल वहावने अनेक मसजिदों और पवित्र स्थानोंको तोड़-फोड़ डाला और मुहम्मद साहबकी कब्रकी भी खोद कर फेंक देना चाहा था । इस मतके अनुयायी अरब और फारसमें अधिक हैं ।

वहिः (सं० अव्य०) जो अंदर न हो, बाहर । हिन्दीमें इस शब्दका प्रयोग अकेले नहीं होता, समस्तरूपमें होता है । जैसे—वहिर्गत, वहिष्कार, वहिरङ्ग इत्यादि ।

वहिःकुटीचर (सं० पु०) वहिः कुट्यां चरतीनि चर-ट । कुलीर, केकड़ा ।

वहिःशीत (सं० पु०) वाहरका शीतलता ।

वहिःश्री (सं० अव्य०) १ बाह्यतः । २ वहिरभिमुख ।

वहिःसंस्थ (सं० त्रि०) वाहरमें अवस्थित ।

वहिःस्थ (सं० त्रि०) वहिरस्थ, बाहरकी ओर ।

वहित (सं० त्रि०) अवहोपतेऽस्मेति अघ धा-क्त, अव-स्यातो लोपः । १ अवस्थित । २ क्यात, प्रसिद्ध । ३ प्राप्त । ४ कृतवहन ।

वहित (सं० क्ली०) वहति द्रव्याणीति वह (अशिवादिभ्यश्चोर्षी । उष्ण ४।१७२) इति इत् । नौका, नाव ।

वहितक (सं० क्ली०) वहित स्वार्थे कन् । जलयान, नाव, जहाज ।

वहितमङ्ग (सं० पु०) टूटो हुई नाव ।

वहिर (सं० त्रि०) वहनशील ।

वहिनो (सं० स्त्री०) नौका, नाव ।

वहिरङ्ग (सं० पु०) १ शरीरका बाहरीभाग, देहका बाहरी हिस्सा । २ दम्पती । ३ आगन्तुक व्यक्ति, कहीं बाहर-

में भाषा हुआ भादमी । ४ यह जो किसी यन्त्रके भीतरों मध्यको न जानता चाहता हो । ५ यह मनुष्य जो अपने स्वयं वा मंत्र-शक्ति म हो, वायव्य भादमी । ६ प्रथमों यह कृत्व जो भादिमें किया जाय । (ति०) ७ यहिमाश्रयो, ऊपर ऊपरका, बाहरका । ८ समाप्त रूपको, फालगु । ९ जो मारकाय न हो, जो भीतरोंमध्य न हो ।

बहिरङ्गता (सं० स्त्री०) बहिरङ्गका भाग या धर्म ।

बहिरङ्गत्व (सं० क्लो०) बहिरङ्गता देखा ।

बहिरङ्ग्ये (सं० मध्य०) बहिरङ्गागमें, तगरके बाहरके प्रागमने ।

बहिरंगल (सं० पु०) दूरवाजेके बाहरका भाग्यल ।

बहिरंघे (सं० पु०) बाह्यभाष ।

बहिरिन्द्रिय (सं० स्त्री०) १ कर्मान्द्रिय । २ बाह्यकरण भाग, कर्मान्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय ।

बहिरंगन (सं० ति०) १ जो बाहर गया हो, निकटा हुआ, बाहरका । २ दारोके, चमड़े पर स्थोत्रकादिका भाषि-भाष्य या शोभविशेषका उद्भव ।

बहिरंगमन (सं० क्ली०) किसी कामके लिये गरमी बाहर जाना ।

बहिरंगमित्त (सं० ति०) बाहर जानेवाला ।

बहिरंगिनि (सं० पु०) पक्षके, बाहर पाशुके जनपद ।

बहिरंगेह (सं० मध्य०) गरके बाहर ।

बहिरंगाम् (सं० मध्य०) भांभके बाहर ।

बहिरंग (सं० पु०) १ विदेग । २ बाहरका स्थान । ३ मन्त्रण स्थान । ४ दार, दरवाजा ।

बहिरंगी (सं० क्ली०) बहिरंगी दार । तोरल, बाहरी फाटक, बाहर फाटक ।

बहिरंगीप्रकोष्ठक (सं० पु०) बहिरंगीप्रकोष्ठक । १ गरके प्रागका बाहरी प्रकोष्ठ, यथाव—प्रधान, मध्य, कनिष्ठ ।

बहिरंगीमा (सं० स्त्री०) बुझी ।

बहिरंगीपारल (सं० क्ली०) बहिरंगी, बाहर जाना ।

बहिरंगी (सं० ति०) बाह्य प्रहरी ।

बहिरंगीय (सं० क्ली०) १ बहिरंगीय, बाहर होता । २ बाहरका धार ।

बहिरंगी (सं० ति०) बाह्यभाष ।

बहिरंगी (सं० ति०) बहिरंगी-क । बहिरंगी बहिरंगल (सं० ति०) १ बाह्य । २ मनके बाहर ।

बहिरंगी (सं० ति०) बहिरंगी-विषये मुझ प्रयोग मध्य । विमुष्य ।

बहिरंगी (सं० क्लो०) १ तीर्थगमन वा विदेगवाता । २ सुदार्थगमन, लक्ष्मीके लिये जाना ।

बहिरंगी (सं० क्लो०) बहिरंगी देखा ।

बहिरंगी (सं० ति०) बाहरमें यत्न वा उस भाष्यभाषी रसित ।

बहिरंगी (सं० पु०) १ दृष्टवोग । २ एक अष्टिका नाम ।

बहिरंगी (सं० पु०) देखा गचित्तों यह स्वयं आ किसी क्षेत्रके बाहर बड़ाय हुए भाषार पर गिराया जाता है ।

बहिरंगी (सं० स्त्री०) कोरे पैसा उड़ा वाचक वा प्रदत्त जितका उत्तर बतानेके लिये श्रोतामें कहा जाय, पढेही । पहेलियाँ दो प्रकारकी होती हैं । जिनके उत्तरका शब्द पहेलियोंके वाचकके अन्तर हो रहता है, ये धर्मवाचिका और जिनके उत्तरका पूरा शब्द पहेलियोंके अन्तर नहीं होता ये बहिरंगीयिका कहलाती हैं ।

बहिरंगी (सं० ति०) बाहरी भाष्ययत्न ।

बहिरंगी (सं० क्लो०) अक्षरका ।

बहिरंगीकार (सं० पु०) १ बाह्यभाषका वैपरीय । २ विद्वत्पुत्र । ३ उपदेश ।

बहिरंगी (सं० स्त्री०) यह जिनको बाह्य द्रव्य ही बाह्यिद या बाह्य पदार्थ ही कर्म हो ।

बहिरंगी (सं० स्त्री०) १ वैदिका बहिरंगी । २ वाचकोव वैदिका बहिरंगी ।

बहिरंगी (सं० ति०) वैदिके बहिरंगीमें विपश्यत ।

बहिरंगी (सं० क्ली०) १ भाष्यका । २ गरके बाहर या मुद्राजनके भाष्यताजमें रुज कुजमादि ।

बहिरंगी (सं० ति०) १ उच्छ्वस्युक्त मनुष्य । २ लंबट ।

बहिरंगी (सं० पु०) बहिरंगी-विषय बाह्य । १ कर्त्तव्य के कर्ता । (ति०) २ बहिरंगी-लक्ष्य ।

बहिरंगी (सं० ति०) बाह्य, बाहरका ।

बहिरंगी (सं० क्ली०) १ बाह्येन्द्रिय, बाहरकी इन्द्रिया, यथा कर्मान्द्रिय और यथा कर्मान्द्रिया । इन का अन्तः-करणको भीतरकी इन्द्रिय कहते हैं । २ विद्याजन, धार करवा ।

वहिकार (सं० पु०) विताड़न, दूर करना ।
 वहिकार्य (सं० लि०) १ त्यागोपयोगी, छोड़नेके लायक ।
 २ ताड़नीय ।
 वहिकुटीचर (सं० पु०) कर्कट, केकड़ा ।
 वहिकृत (सं० लि०) १ विताड़ित, बाहर किया हुआ ।
 २ परित्यक्त, त्यागा हुआ, अलग किया हुआ । ३ बाह्य-
 रूपने प्रदर्शित ।
 वहिकृति (सं० स्त्री०) वहिकार ।
 वहिक्रिय (सं० लि०) पवितकृत्यवर्जित, जो शास्त्र-
 कथित धर्म-धर्ममें अथवा यज्ञादि क्रियासम्पादनमें अपने
 समाजसे निषिद्ध या स्वाधिकाररहित हो ।
 वहिक्रिया (सं० स्त्री०) धर्मकर्मका वहिरङ्ग ।
 वहिष्णत् (सं० अन्व०) बाहरस्थित, बाहरमें ।
 वहिष्ठ (सं० लि०) बहुभारवाही, अधिक भार उठाने-
 वाला ।
 वहिष्पट (सं० स्त्री०) मातृवल्लभेद, शरीरका एक प्रकारका
 कपड़ा ।
 वहिष्प्राकार (सं० पु०) दुर्गका बाहरी प्राचीर ।
 वहिष्प्राण (सं० पु०) १ जीवन । २ श्वास वायु ।
 ३ प्राण तुल्य प्रिय वस्तु । ४ गर्भ ।
 वहिस् (सं० अन्व०) बाह्य ।
 वह्री (हि० अन्व०) उसी स्थान पर, उसो जगह । जग
 वहाँ शब्द पर जोर होता है, तब 'ही' लानेके कारण उस
 का यह रूप हो जाता है ।
 वह्री (हि० सर्व०) १ उस तृतीय व्यक्तिकी ओर निश्चित
 रूपसे संकेत करनेवाला सर्वनाम जिसके सम्बन्धमें
 कुछ कहा जा चुका हो, पूर्वोक्त व्यक्ति । जैसे—यह वह्री
 आदमी है जो कल आया था । २ निर्दिष्ट व्यक्ति, अन्य
 नहीं । जैसे—जो पहले वहाँ पहुँचेगा वही इनाम
 पावेगा ।
 वह्रीपस (सं० लि०) अति विपुल ।
 वह्रीय (सं० पु०) १ शिरा, रक्तवाहिनी नाड़ियोंका एक
 वर्ग । २ स्नायु । ३ मांसपेशी, पुष्ट ।
 वहूलार—बाँकुड़ा जिलाके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।

यह बाँकुड़ा नगरसे १२ मील दूर पारिकेश्वर नदीके
 दक्षिणी तट पर अवस्थित है । यहांके सिद्धेश्वरका
 मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है । यह मन्दिर नाना प्रकारके
 शिल्पचतुर्धर्मके साथ पत्थरोंका बना है । मन्दिरस्थ
 शिवलिंग देखनेसे यहाँ शैवधर्मकी प्रधानता अनुभूत
 होने पर भी मन्दिरमालस्थ उलंग जैनमूर्तियोंकी निरी-
 क्षण करनेसे मालूम पड़ता है, कि प्राचीनकालमें यहाँ
 जैनधर्मका विद्योद प्रादुर्भाव था । इस समय उस सम्प्र-
 दायके प्रतिष्ठित मन्दिर तथा मठादिकी दीवारोंका चिह्न
 तक घिलुप्त हो गया है, सिर्फ यत्नपूर्वक रखी हुई उनकी
 भन्न प्रतिमूर्तियाँ वर्तमान मन्दिरोंकी दीवारोंमें लगाई
 गयी हैं । इनके अलावे मन्दिरमालमें दशभुजा तथा गणेश-
 की मूर्तियाँ भी हैं ।

इस मन्दिरके सामने एक, चारों कोणों पर चार पर्व
 अन्य तीन दिशाओंमें सात छोटे छोटे मन्दिर सुस-
 ज्जित हैं ।

वहूदक—संन्यासो सम्प्रदायमेव । सूतसंहितामे कुटी-
 चक, वहूदक, हंस तथा परमहंस नामक चार प्रकारके
 संन्यासियोंका विवरण दिया गया है । वहूदक सांग्र-
 दाधिकगण संन्यास धारण करनेके बाद ही बन्धु पुत्रादि-
 का परित्याग करके मिश्रावृत्ति द्वारा अपनी जोयिका
 गलायेगी । वे एक गृहस्थके घरका अन्न ग्रहण
 नहीं कर सकते, उन्हें सात गृहस्थोंके गृहसे भिक्षा लेनी
 होगी । गोपूँछके फेशकी डोरी द्वारा बद्ध त्रिदंड, शिष्य,
 जलपूर्णपात्र, फीपीन, कमण्डलु, गात्राच्छादन, क्रन्धा,
 पादुका, छत्र, पावतत्रय, सूची, पक्ष्णी, यद्राक्षमाला,
 योगपट्ट, वहिर्वास, खनिक तथा कृपाण, वे ग्रहण कर
 सकते हैं । इनके अतिरिक्त वे सारे शरीरमें भस्मलेपन
 पर्व लिपुण्ड्र, शिक्षा तथा यज्ञोपवीत धारण करेंगे । वे
 वैश्राध्यन तथा देवताराधनामें रत हो कर पर्व सर्वादा
 वेतुकी यातोंका परित्याग करके अपने इष्टदेवकी विंसा
 में मग्न रहेंगे । संन्यासके समय उन्हें गांधर्वीका जप
 करके अपने धर्माचित क्रियाशुष्ठान करना चाहिये ।

वहूदक लोग संन्यासियोंके सर्वकालपूज्य देवता
 महादेवकी ही उपासना किया करते हैं । नित्यस्नान,

श्रीलाकार तथा अभिप्राय करमा उन लेखीका प्रयास
 कलम ही । ये दागिजा, काम, खोप, हर्ष, रोप, निराम,
 मीठ, दमन, एवं प्रभृतिके प्रकरणी न होयें, प्रतीति इत्यसे
 उनके साधारण भर्मी प्रकाशन कहुं सक्तया है । ये
 नाममात्रपर अमुपान किया करते हैं । इस साधनपर
 संस्कारिणक मोक्षार्थीको होते हैं । मृत्युके बाद इन
 संस्कारिणको मृतदेहको जलमें भसा देने है ।

पहेलूक (सं० पु० ४ विमोचक पृष्ठ, वहेदेका पेट ।

पहेलिया—उत्तर-पश्चिम आरतयाको स्वाध जति । पौरा-
 तिक किम्वदन्तीके अनुसार जादितके भीमस टामा पवि-
 यारिणी ब्राह्मिकके गर्भमें इनको उत्पत्ति हुई है । ब्रह्मा-
 की पुत्रावजातिके साथ इन लीलोका नाम प्राप्त कइया है
 एवं ये दोनों जतिवा परस्पर एक मूलश्रुतको विभिन्न
 ज्ञाना कइ कर अपना परिचय देता है, किन्तु गान्धर्वक
 में समाहित विवादाई कथनमें आयद मदी है । कोरे
 कोई बदेनिया अदनेकी कारणी जतिकर दइ कइयते है
 एवं परिणामात्पुत्रं बहेलिया लोग भीलजतिमें अपनी
 उत्पत्ति खोकार करते हैं ।

इन धेणोके बहेलिया लोग अपना पशु मनुष्य कानो-
 के लिये कहते है, कि उन लीलोके भादू पुत्र सुविभवाज
 बालोका बाद जिनके निरकृष्ट पर्यंतका परिचय करके
 मदीं कइयतेके साथ इन देजमें आ कर गता मये । उन
 दिनों ये लोग उत्तरे मध्यमें स्वधश्रुति अवलम्बन कर
 प्राप्त करते थे । अपनापुत्र कृष्णमें मधुप्रायाममें उन लीलो
 को बहेलियाके नाममें अभिहित किया । जिनांपुत्रवादी
 बहेलिया लोग कहते है, कि श्रीरामबादू पशुपत्यामें प्राप्त
 करकेके समय एक मधुप्रायामकी प्रामे देण कर प्राममें
 उत्तर रावणानुचर प्रायेणकरी । माधुप्रायमें पाते होयें ।
 तब मारीचकी उजलायें लीला रही गीं, तब मनुष्य
 श्रीरामबादू लीलोमम ही कर इतर उत्तर प्रामे दू
 प्राये होयें हाथीको बार बार मरते लये । उभये लीलो
 दो हाथीके मारके से मीन काइर हुआ । उभये मीने मनुष्य
 कयी एक कोर पुत्रन पैदा हुआ । मनुष्यन कामकाइके उभे
 कइया मरदीको लिये कइयते मियुक्त किया । मरीके
 संस्कार कइते कइयतेके नाममें विष्णुकर दइ ।

जिनांपुत्र, पारक, मियुक्त, पशुपत्या मरुति

मनुष्यमें इन लीलोके पाको, श्रीरामन, मरुति, मियुक्त,
 कविमया, कर्षी, लीलोका प्रभृति स्वयं कइ है । पुत्रा-
 मरुके बहेलियोंके मध्य बहेलिया, जिहिकाकार, कर्षी,
 पुरकोरा, उलराया, हतारो, खेरोया और मूर्खीया एवं
 मूत्र बहेलियोंके मध्य कोरिया, बाहपार, मूर्खीय, मूर्खीया
 और मामलार प्रभृति विभिन्न कृत्तियोंके अनुसार
 ज्ञाना निर्दिष्ट है । अथोपचारके बहेलियोंके मध्य म्पु-
 पंदी, पानिया तथा कर्षीया नामक तीन प्रकाश-विभवाज
 देने जते है । ये लोग भावनेमें पुत्र तथा नन्दाओके
 भावन प्रयास कर सक्ते है ।

सामाजिक क्षेत्र वा अथवा विचारके लिये उन लीलोके
 मध्य एक संघादन है, 'मार्गी' समाजिचारे एक व्यक्ति
 इन समाजे मनुष्यमें कइते है । 'मार्गी' समाजके प्रयास
 कइत हरिणोंके साथ सांनवार वा इस पापके लिये
 किसी मनुष्यको बहकने एवं शरीर वा सामाजिक
 निष्ठादि उल्लंघन करनेके अथवाकोका दण्ड विधान किया
 करते है ।

विष्णुपुत्र वा माधुप्रायका बाद दे करके लोग परस्पर
 विभिन्न ज्ञानाओके साथ युक्तकथाका विवाद करते है ।
 जिन संजमें ये लोग एक बार युक्त विवाद करते है,
 उन संजमें कुटुम्बिका जिनके दिनें तब समाज रहती है
 उभये दिनें तब उन संजमें नन्दाका विवाद नहीं करी ।
 यदि व्यक्ति दो कर्मीको एक साथ परकीकृपमें प्रण नहीं
 कर सकते, एक परकीकृ मृत्युके बाद साधक साथ
 जाते कर सकते है । साधक कइया वा सोमजनाइकी
 अथवा हो जते पर संघादनके अर्थमें यह कइया कि
 दुपरी म्पे प्रदूष कर सकला है । लीलोके बालोकाके
 किमी न.व.के मध्य सुनिज प्राममें माणल हो जते पर
 उभये विवा मायाकी रूपे कइयते कइयते होना कइया है
 एवं शरीर लीलोका भील विष्णुका कइया है ।

प्रधान तथा मदीं आ कर विवाद मनुष्य लोक करते
 है । साधारणतया कइको प्राये साथ अइ परकी
 मरुतामें हो कइते है । विवाद मनुष्य लोक हो जते
 पर लीलोकेका कोई कइयते नहीं कइया । विष्णुपुत्र
 मरुते मधुप्रायक लिये विवाद कर सकला है, किन्तु ये

किसी मृत पत्नीके स्वामीके साथ ही प्रथमतः विवाह करनेकी वाध्य होती है।

रमणीके गर्भघती होने पर उस गृहणी कोई वृद्धा वा गृहकत्री एक पैना वा एक मुट्ठी चावल उस गर्भिणी रमणीके मस्तकमें छुभा कर काल्द्वोरकी पूजाके निमित्त अन्न रख देता है। सूतिकागारमें चमारिन धाई आ कर प्रसव कराती है एवं नवज्मान शिशुका नाड़ीच्छेद करके पुष्पादि घटक बाहर गाड़ देती है। गृहस्थ सूतिकागारके सामने विष्वदण्ड इत्यादि रख कर भूतयोनिका प्रकोप निवारण करता है। ये लोग पथारीति अन्यान्य स्थानीय उच्च वर्णोंकी तरह सूतिकागृहके अवश्यकरणीय कार्य सम्पादन करने हैं। जन्मके छठे दिन पछी पूजा होती है। इस दिन प्रातःकालमें प्रसूतिके स्नान करने पर चमारपत्नी सूतिकागार परित्याग करके चली जाती है। इसके बाद हजामिन आ कर प्रसूतिके आश्रयकीय कार्य करने लगता है। १२ दिनमें बरदा पूजा पर्यन्त हजामिनको सूतिकागारमें रहना पड़ता है। इस रोज स्नान तथा नवत्यागके बाद प्रसूति और जातबालक शुद्ध हो कर अपने परिवारके साथ आहार विहारमें प्रवृत्त होते हैं। इस दिन जाति कुटुम्बकी भोज खिलाया जाता है।

इनलोगोंके विवाहकी प्रथा अधिक अंशमें अन्यान्य निरुद्ध श्रेणियोंके प्रथामे मिलती जुलती है। विवाहसे घर कन्या सुखी होगी वा नहीं, यह विवाह गृहस्थका मंगलजनक होगा वा नहीं, इत्यादि बातें आचार्यसे पता लगाया जाता है। जब भव लक्षण मंगलपूर्ण दीख पड़ने हैं, तब लड़केके पिताके हाथमें कुछ दे कर विवाह की बात पक्की की जाती है। वहेलियोंमें दोला प्रथासे विवाह होता है। इसमें विवाहकी बात पक्की होने पर निर्दोश दिनसे आठ दिन पहले ही कन्याको घरके घर आना पड़ता है। थोड़ा धूम धाम होता है। विवाहके तीन दिन पहले मण्डप तैयार किया जाता है। मण्डपके ठीक मध्यभागमें लाङ्गलके काण्ड, बंजदण्ड और केल्लेका थंभ बांध कर उनके नीचे जोबली, मून्ल, जाँता, फलसी प्रभृति वस्तुएं सजा कर रखी जाती हैं। इस रोज सन्ध्याके समय 'मदमंगर' होता है। विवाहके पहले

दिन 'भतदान' होता है, जिसमें आत्मीय स्वजनको भोज दिया जाता है।

विवाहके दिन वर क्षीर-कर्मके बाद स्नान करके नाना वेशभूषासे सुसज्जित होता है एवं सन्ध्याके नमय घोड़े पर सवार हो कर ग्रामके कई स्थानोंमें परिभ्रमण करनेके बाद घर लौट आता है। इसके बाद विवाहकाल उपनीत होने पर घरके घरके अन्दर ले जाते हैं एवं वर और कन्याके एक जगह बैठ जाने पर कन्याके पिता आ कर दोनोंकी 'पांव-पूजा' करते हैं। इसके अनन्तर ये कुश ले कर 'कन्यादान' करते हैं और वर कन्याकी मांगमें 'सिंहदान' करता है। इसके पीछे वर और कन्याको चादरोंमें 'गैठ बन्धन' करके दोनोंकी मंडपके मध्य ढंडके चारों ओर पाँच बार घुमाने हैं। इस समय उपस्थित रमणियां उन दोनोंको देह पर भुट्टाका लाया छीटती रहती हैं।

इसके बाद वर और कन्या कोहदरघर जाती है। यहां चरकी सालो तथा पत्नीसाला नाना प्रकार की हंसी मजाक किया करता है। इसके पीछे जाति कुटुम्बोंका भोज होता है।

विवाहके बाद काल्द्वोर और निमन परिहारकी पूजा होती है। चौथे दिन वर और कन्या हजामिनके साथ किसी निकटवर्ती जलाशय पर जाती है एवं पवित्र जल पूर्ण 'कलस' और 'बन्धनवार' जलमें निक्षेप करके स्नान करता है। इसके बाद घर लौटनेके समय रास्तेमें ग्रामके निकटवर्ती पीपलके नीचे ये दोनों पितृपुरोंके उद्देशसे पूजा करती हैं।

मृत्युकाल उपस्थित होने पर ये लोग मृमूर्धुकी गृहके बाहर ले जाते और उनके मुपमें गंगाजल, सूर्य तथा तुलसीके पत्ते रखते हैं। जित समय ये सब वस्तुएं नहीं मिलती, उस समय दही और सक्कर आदि मिश्रण देते हैं। मृत ध्याकिको श्मशानमें ला कर स्नान कराते हैं, इसके बाद उम मृत देहको नयी कपड़े पहना कर चिता पर रखते हैं। कोई निकटवर्ती ध्याकिक मुलामि देता है। दाहकर्म समाप्त होने पर स्नान करके ये लोग घर लौट आते हैं एवं नौम और अमिका स्पर्श करते हैं। दूसरे दिन पंडित आ कर हजामके द्वारा चट्टकी डाली

" वादुर्वात्तौ दक्षिणार्धमत्तौ वृत्तौ च ।
पदेनमत्तौ च सुम्भाः द्वेषोपेतव्यवस्थाः ॥"
(अ० १००)

अन एव मोर यदि मोर दुमरो मोर प्रत्यम रहे, नन
उनके बीच हो कर मानन करना निषेध है ।

" दौ (दौ) वृत्तौ (वृत्तौ) अद्वयत्तौ वर्द्धितव्यौ ।
इत्यत्र च न मन्वन्व इत्यत्रोपादं परे ॥" (अ० १००)

विरवादिनरचयमे नो विद्या न, यथा— " नामि प्राद्वन-
वोपयता अपेक्षा नः सम्यगे प्राद्वनयोमं शुदादिप्रवेर-
नुकवायु अपेक्षा ॥" इसके द्वारा दो ओर अर्थ में पर
बाध दो पर मानन करना निषेध है, पर ही भाषा
जाता है ।

वर्द्धितुपादायै अतिव्यञ्जनकं मन्वन्वयै इव प्रकार
विद्या है— मनुष्यको धरती से कर उसके साथ अंक
योग । पीछे उसे हाथों ममानेमें उचामकर अति-
व्यञ्जन होता है । निम्नोक्त रस मर्षके मूलमें विद्या
कर अतिव्युद्गमे फेकनेमें अतिव्यञ्जन होता है । वापसी-
का उद्गर से कर मन्वन्वको भरवाके साथ मोला बनाये,
अन्तमें उसे एक साथ आनेमें प्रयाग करे । इस प्रकार
प्रयोग करनेमें अन्वत्तौ अतिव्यञ्जन होता है । सुविद्यतक
(लौट १, वच, निषेध और अकार (मोघः) धरा कर
अन्व अन्व जिहा द्वारा अति लेदन का भा मन्वत्ता है ।
गौरवभा ओर मनुष्यताका श्रुति फेक सव्य निपात्त मन्व
उच्चारण कर मान करनेमें उममें द्वैव अतिव्यञ्जन
होता है । मन्व यथा—

" यो अतिव्यञ्जनं कर ।" (अ० १०० १००)

१ इत्यत्रेक एक तुक्का नाम या निषेधद्वारे अत्यन्त
दूमा यः । (मन्वत्त १०० १०१) १ यामका योत्ता
योत्तायति एक अक्षरका नाम । २ तुर्व्वत्तुव तुक्का नाम ।
३ द्विरुत्त २५ (१००) ३ तुर्व्वत्तुवत्त एक वादुर्वात्त नाम ।
(मन्वत्त १०० १०१)

वर्द्धितर (अ० १००) १ विद्युत्त, विद्यता । २ अद्वयत्तौ ।
३ अक्षरक, यमो ।

वर्द्धितर (अ० १००) १ वर्द्धित ३०० वर्द्धितुं वर्द्धितौ
इ. इ. इ. च। प्रा. वर्द्धित, वर्द्धित, वर्द्धित ।

वर्द्धितर (अ० १००) १ वर्द्धित ३०० वर्द्धितुं वर्द्धितौ ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर (अ० १००) वर्द्धितर ।

वह्निप्रिया (सं० स्त्री०) स्वाहा ।
 वह्निवधू (सं० स्त्री०) वह्नेर्वधूः । स्वाहा ।
 वह्निवोज (सं० स्त्री०) वह्नेर्वोजं । १ स्वर्ण, सोना । ब्रह्मवैवर्तपुराणके ध्रीकृत्याजन्मखण्डमें स्वर्णकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है । स्वर्णकी सभामें एक बार सध देवता बैठे हुए थे और रम्भा नाच रही थी । निविड़ नितम्बिनो रम्भाको देख कर अग्निदेव काम-गोडित हुए और उनका चौर्यं स्तूलित हो गया । लज्जा-घरा इसे उरहोंने कपड़ोंसे ढाँक लिया । कुछ दिनों पीछे वह दमकती हुई धातु हो कर चमक छेद कर नीचे गिरा, जिससे स्वर्णकी उत्पत्ति हुई । २ तत्रन्तं 'रं' धीज ।
 वह्निभूतिक (सं० स्त्री०) रौप्य, चाँदी ।
 वह्निभोग्य (सं० स्त्री०) वह्नेरभोग्यं भोगार्हं । हव्य-त्वात् । घृत, घी ।
 वह्निमत् (सं० लि०) वह्निमद्ग्रश ।
 वह्निमथन (सं० पु०) अग्निमथयश्श, गनियारीका पेड़ ।
 वह्निमथना (सं० स्त्री०) वह्निमथन देखो ।
 वह्निमथ्य (सं० पु०) वह्नये अम्युत्पादनार्थं मथयते इति मथ्य-घञ् । अग्निमथ्य वृक्ष, गनियारीका पेड़ ।
 वह्निमय (सं० लि०) वह्नि-नस्वरूपे मयत् । अग्निमय, अग्निस्वरूप ।
 वह्निमारक (सं० स्त्री०) वह्निं मारयति चिनाशय-तीति मृ-णिच्-ण्युल् । जल ।
 वह्निमित्त (सं० पु०) स्वह्नि-मित्तं यस्य । वायु, हवा ।
 वह्निमुख (सं० पु०) देवता । यज्ञकी अग्निमें डाला हुआ भाग देवताओंको पहुँचता है इसीसे ये वह्निमुख कहलाते हैं ।
 वह्निमुखी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिका, विपलांगूलिया ।
 वह्निरस (सं० पु०) आग्न्युत्पाप, अग्निकी ज्वाला या तेज ।
 वह्निरथि (सं० स्त्री०) महाज्योतिष्मती लता ।
 वह्निरेतत् (सं० पु०) वह्नौ रेतो यस्य, अग्निनिषिक्त चौर्यत्यादवासा तथात्वं । गिय ।
 वह्निरोहिणी (सं० स्त्री०) अग्निरोहिणी ।

वह्निरोह (सं० स्त्री०) ताम्र, ताँवा ।
 वह्निरोहक (सं० स्त्री०) वह्निदेवताके लीहकं । कांसा, काँसा ।
 वह्निवपत्रा (सं० स्त्री०) लाङ्गलिया, कलिहारी या कलि-यारी नामका विष ।
 वह्निवत् (सं० लि०) वह्नि अस्त्यर्थे मनुष्यस्य व । आग्नियुक्त, वह्निनिविष्ट ।
 वह्निवर्ण (सं० स्त्री०) वह्नेरिच रक्तो वर्णो यस्य । १ रक्तोत्पल, लाल कमल । (लि०) २ अग्निवर्ण, लाल रंगका ।
 वह्निवह्लम (सं० पु०) वह्नेर्यह्लमः प्रियः उद्योपकृत्यात् । सज्ज रस ।
 वह्निवोज (सं० पु०) १ निम्बुकवृक्ष, नीबूका पेड़ । (स्त्री०) २ स्वर्ण, सोना । ३ निम्बुक फल, नीबू ।
 वह्निजाला (सं० स्त्री०) अग्निशाला, होमपेड़ ।
 वह्निशिक्ष (सं० स्त्री०) वाह्गुरिच शिक्षा यस्य । कुसुम्भ ।
 वह्निशिखर (सं० पु०) वह्निरिच शिखरं यस्य । लोचमस्तक ।
 वह्निशिक्षा (सं० स्त्री०) वह्निरिच शिक्षा यस्याः । १ लाङ्गलिया, कलिहारी या कलिहारी नामका विष । २ धातकी, धयका पेड़ । ३ प्रियङ्गु । ४ गजपिप्पली, गजपोपल ।
 वह्निशुद्ध (सं० लि०) अग्नि द्वारा विशुद्ध किया हुआ ।
 वह्निश्वरी (सं० स्त्री०) १ स्वाहा । २ लक्ष्मी ।
 वह्निस्संघक (सं० पु०) वह्ने संघा यस्य, ततः कन् । त्रिन्नकवृक्ष, चोतेका पेड़ ।
 वह्निस्संस्कार (सं० पु०) वह्नेः संस्कारः । अग्नि-संस्कार ।
 वह्निस्सख (सं० पु०) वह्नेर्जडराग्नेः सखा टच् समा-सान्तः । १ जोरक, जोरा । २ वायु ।
 वह्निस्साक्षिक (सं० ध्व०) अग्निं साक्षात्कृतं जो कार्यं निष्पन्नं हुआ है ।
 वह्न्य (सं० स्त्री०) वहतीति वह् (भन्त्याश्वाच । उच्य- ४।२११) इति यक्-प्रत्ययेन सायुः । १ वाहन । वह-

हृद्य, श्वास, कुष्ठ, मेह, ज्वर और कृमिनाशक। इसका फल—विचित्रक, कटु, कुष्ठ, कफ और वायुनाशक, केशका हितकर, कृमि, श्वास, कास, शोथ, आम और पाण्डुनिवारक। (भावप्र०)

वाकुल (सं० क्ली०) वकुलस्येदमित्ति वकुल (तस्येदम् । पा ४।३।१२०) इत्यण् । वकुल फल ।

वाकोवाक्य (सं० क्ली०) कथोपकथन, वातचीत ।

वाकोवाक्य (सं० क्ली०) १ परस्पर कथोपकथन, वात चीत । (Dialogue) २ परस्पर तर्क । ३ तर्कविद्या । छान्दोग्योपनिषद्में नारदने सनत्कुमारोंसे अपनी जिन जिन विद्याओंके ज्ञाता होनेकी बात कही थी, उनमें 'वाकोवाक्य' विद्या भी थी ।

वाकलह (सं० पु०) वाचा कलहः । वाक्य द्वारा कलह, वातका रूपड़ा ।

वाका (सं० स्त्री०) चरकके अनुसार एक प्रकारका पक्षी ।

वाकोर (सं० पु०) वाचि, कौतुक वाक्ये कोर शुक्रमिय-स्यात् । श्यालक, साला ।

वाककलि (सं० स्त्री०) वाचा कलिः । वाक्य द्वारा कलि, वातकी क्रीड़ा ।

वाककली (सं० स्त्री०) वाककलि देवो ।

वाकचक्षुस् (सं० क्ली०) वाक्य और चक्षु ।

वाक्यचपल (सं० पु०) वाचा चपलः । १ बहुत बातें करनेवाला, बातें करनेमें तेज, मुहजोर । २ भड़-मड़िया ।

वाकछल (सं० क्ली०) वाचा छलम् । न्यायशास्त्रके अनुसार एक छल । यह तीन प्रकारका होता है,—वाकछल, सामान्य छल और उपचार छल । जय वकाके साधारण रूपसे कही हुए कथनमें दूसरे पक्ष द्वारा अभिप्रेत अर्थसे अन्य अर्थकी बहाना उसे केवल चक्रमें डालनेके लिये की जाती है, तब वाकछल कहा जाता है । जैसे वकाने कहा,—'यद् बालक नव वर्षल है' अर्थात् नये कंबल वाला है । इसका प्रतिवादी यदि यह अर्थ लगावे, कि इस बालकके पास कंधोंमें नौ कंबल हैं, और कहे—'नौ कंबल कहाँ हैं, एक ही तो है।' तो यह वाकछल होगा ।

छत्र शब्द देखो ।

वाकछलाश्रित (सं० लि०) जो हर बातमें छलकी बात करते हैं ।

वाकत्वच् (सं० क्ली०) वाक्य और त्वक् ।

वाकस्विप् (सं० क्ली०) वाङ्माधुर्षे, वाक्यका तेज ।

वाकपटु (सं० लि०) वाचा पटु । वाक्कुशल, वाग्मी, वात करनेमें चतुर ।

वाकपटुता (सं० स्त्री०) वाक्पटु-भावे तल् टाप् । वाक्पटु-का भाव या धर्म, वाक्पटुत्व ।

वाक्पति (सं० पु०) वाचां पतिः । १ बृहस्पति । २ विष्णु । ३ अनवद्य वचन, पटु वाक्य, निर्दोष वात ।

वाक्पतिराज (सं० पु०) १ सुप्रसिद्ध कवि हर्षदेवके पुत्र । ये राजा यशोधर्मके आश्रित थे । इन्होंने प्राकृतमें गौड़वहो (गौड़वध) नामक काव्यकी रचना की है । ये भवभूतिके समसामयिक थे । २ मालवका एक परमार राजा जो सीयकका पुत्र था । इस नामका एक और राजा हुआ है ।

वाक्पतीय (सं० क्ली०) वाक्पति-विरचित ग्रन्थ । (तैत्ति० मा० २।७।३१)

वाक्पत्य (सं० क्ली०) वाक्पतिर्य । (काठक ३।७२)

वाक्पथ (सं० लि०) वाक्यकथनोपयोगी, वान कहनेके उपयुक्त ।

वाक्पा (सं० लि०) वाक्पटु । (ऐतरेयमा० २।२७)

वाक्पाकथ्य (सं० क्ली०) वाचा कृतं पाकथ्यं । अग्रिय वाक्योच्चारण, वाक्यकी कठोरता । यह सात प्रकारके व्यसनोंके अन्तर्गत एक व्यसन है ।

इसके लक्षण—

"देशजातिवृन्वादीनामशोभान्यङ्गसंयुतम् ।

यदचः प्रतिभूतार्थं वाक्पाकथ्यं तदुच्यते ॥"

(याज्ञवल्क्य)

'देशादीनां आक्रोशान्यङ्गसंयुतं, उच्चैर्भाषणं आक्रोशः श्यङ्गमवद्यं तदुभययुक्तं यत्प्रतिकूलार्थं उद्वेगजननार्थं वाक्यं तदुवाक्पाकथ्यं कथ्यते ।' (मिताक्षरा)

देश, जाति और कुलशोलादिका उद्वेग करके जो निन्दनीय वाक्य प्रयोग किया जाता है, उसे वाक्पाकथ्य कहते हैं । जिसे जो वाक्य प्रयोग करना उचित नहीं, उस वाक्यके प्रयोग करनेसे वाक्पाकथ्य होता है । प्रचलित

शुभाशुभ वाक्य—जो वाक्य स्वर्ग वा अपवर्गकी सिद्धिके लिये बोला जाता है और जो वाक्य सुननेसे इदलोक और परलोकका मंगल होता है, उसीको शुभ-वाक्य कहते हैं। राग, द्वेष, काम, क्रुपणा आदिके वश-में हो कर जो वाक्य कहा जाता है, जिस वाक्यके सुनने या कहनेसे निरयका कारण होता है, वही अशुभवाक्य कहलाता है। कभी ऐसा अशुभवाक्य न सुनना चाहिए और न बोलना चाहिए। वाक्य विशुद्ध, सुमिष्ट, मृदु या ललित होनेसे सुन्दर नहीं होता, जो वाक्य सुननेसे अधिधाका नाश होता है, संसारफलेश दूरीभूत होता है एवं जो सुननेसे पुण्य होता है, वही सुन्दर वाक्य है। वाक्यकर (सं० पु०) १ एकको बात दूसरेसे कहनेवाला, दूत। (ति०) २ वचनभाषो, बातें बनानेवाला। वाक्यकार (सं० पु०) रचनाकार। वाक्यगमित (सं० ह्री०) वाक्यपूर्ण, वह जो सुन्दर पदादि द्वारा बना हो। वाक्यग्रह (सं० पु०) अर्थग्रहण। वाक्यता (सं० खी०) वाक्यका भाव या धर्म। वाक्यपूरण (सं० ह्री०) वाक्यका समाप्त होना। वाक्यप्रचोदन (सं० पु०) अनुज्ञावाक्य। वाक्यप्रचोदनात् (सं० अर्थ०) आशानुसार। वाक्यप्रतोद (सं० पु०) कट्टक, परुष या रुद्ध वाक्य। वाक्यप्रलाप (सं० पु०) १ असम्बन्ध वाक्य, बेलगानकी बात। २ वाग्मिज। वाक्यप्रसारिन् (सं० लि०) १ वाचाबल, बोलनेमें तेज। २ वाग्चिस्तारकारी, बात बढ़ानेवाला। वाक्यभेद (सं० पु०) मोमांसाके एक ही वाक्यका एक ही कालमें परस्पर विरुद्ध अर्थ करना। वाक्यमाला (सं० खी०) वाक्यलहरी, वाक्यसमूह। वाक्यश्रेय (सं० पु०) १ कथावसान। २ वाक्यका शेष। वाक्यसंयोग (सं० पु०) वाक्संयोग, वाङ्निरोध। वाक्यसंयोग (सं० पु०) वाक्यका मिलन, वाक्ययोजना। वाक्यसङ्कीर्ण (सं० पु०) वाक्यशार्दता। वाक्यस्वर (सं० पु०) वातकी आवाज, बोलनेका शब्द। वाक्याध्याहार (सं० पु०) कहनेमें तर्क। वाक्यार्थ (सं० पु०) कहनेका मर्म।

वाक्यार्थोपमा (सं० खी०) वाक्यार्थका सादृश्य। वाक्यालङ्कार (सं० पु०) वाक्यकी शोभा, वाक्यच्छटा। वाक्यैकवाक्यता (सं० खी०) मोमांसाके अनुसार एक वाक्यकी दूसरे वाक्यसे मिला कर उसके सुसंगत अर्थका बोध कराना। वाक (सं० ह्री०) सामभेद। वाक्य (सं० लि०) वक एवम्। वक सम्बन्धी। वाक्संयोग (सं० पु०) वाचः संयोगः। वाणीका संयोग, अन्यथा वान न बहना, अर्थ वातें न करना। वाक्सङ्ग (सं० पु०) वाक्यग्रह। वाक्सिद्धि (सं० खी०) वाणीकी सिद्धि अर्थात् इस प्रकारकी सिद्धि या शक्ति कि जो बात मुंहसे निकले यह ठीक घटे। वाक्स्तम्भ (सं० पु०) वाक्यस्तम्भन, वाक्यरोध कर देना। वागतोत (सं० पु०) अतोत वाक्य, बीतो हुई बात। वागन्त (सं० पु०) वाक्यका शेष। वागपहारक (सं० पु०) १ पुस्तक-चोर। २ निपिद्धवाक्य पाठकारी। वागर (सं० पु०) वाचा इयर्त्ति गच्छतीति ऋ अच्। १ वारक। २ श्राण, सान। ३ निर्णय। ४ वृक, भेड़िया। ५ मुमुक्षु। ६ पण्डित। ७ निभेष, निडर। वागसि (सं० खी०) तलवारकी तरह तीक्ष्णवाक्य। वागा (सं० खी०) बहगा, लगाम। वागार (सं० लि०) वाचि आशावाक्ये आरु कर्मकट इव मर्मच्छेदकत्वात्। आशा दे कर निराश करनेवाला, आसरेमें रख कर पीछे छोला देने वाला, विध्वासघातो। वागाग्नि (सं० पु०) बुद्धदेव। वागीश (सं० पु०) वाचामीशः। १ वृहस्पति। २ प्रह्ला। ३ वाग्मी, कवि। (ति०) ४ वक्ता, शच्छा बोलनेवाला। वागीश—न्यायसिद्धान्ताज्ञानके रचयिता। वागीशतीर्थ—एक प्रसिद्ध शैव धर्माचार्य। ये क्वीन्द्र-तीर्थके बाद मठके अधिकांशो हुए। इनका पूर्ण नाम रङ्गा-चार्य या रघुनाथाचार्य था। १३४४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। स्मृत्यर्थसागरमें इनकी धर्मव्याख्या कीर्तित है। वागीशत्व (सं० ह्री०) वागीशत्वभावः त्व। वाक्यति-का भाव या धर्म, उत्तम वाक्य।

अन्न नहीं खाना चाहिये । हठात् खा लेनेसे तीन रात उपवास एवं जान कर अर्थात् बार बार खानेसे बारह पण दान दे कर प्रायश्चित्त करे ।

वाग्देवता (सं० स्त्री०) वाचां देवता । वाणी, सरस्वती । वाग्देवी (सं० स्त्री०) वाचां देवी । सरस्वती, वाणी । वाग्देवीकुल (सं० स्त्री०) विज्ञान, विद्या और वाग्मिता ।

वाग्देवत्वचय (सं० पु०) वह चय जो सरस्वतीके उद्देश्यसे पकाया गया हो ।

वाग्दोष (सं० पु०) १ घोलनेकी त्रुटि । २ व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ या दोष । ३ निम्दा या गाली ।

वाग्द्वार (सं० स्त्री०) वाग्देव द्वार । वाक्पथ द्वार ।

वाग्भट—१ राजा मालवेन्द्रके मन्त्री । २ निघण्टु नामक वैदिक ग्रन्थके रचयिता । ३ एक पण्डित तथा नेमिकुमारके पुत्र । इन्होंने अलङ्कारतिलक, छन्दोनुशासन और टोका, वाग्भटालङ्कार और शृङ्गारतिलक नामक काव्य रचे । ४ अष्टाङ्गहृदयसंहिता नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता । इनके पिताका नाम सिंहगुप्त और पितामहका वाग्भट था । ५ पदार्थचन्द्रिका, भावप्रकाश, रसरत्नसमुच्चय और शास्त्रदर्पण आदि ग्रन्थके प्रणेता ।

वाग्भट (सं० पु०) वाग्भट देखो ।

वाग्भृत् (सं० स्त्री०) वाक्पथपोषणकारी, वाक्पटु ।

वाग्मायन (सं० पु०) वाग्मिनो गोत्रापत्यं (अश्वविद्यः) फञ् । पा ४।१।१० इति फञ् । वाग्मीका गोत्रापत्य ।

वाग्मिता (सं० स्त्री०) वाग्मिनो भावः । वाग्मीका भाव या धर्म, अच्छी तरह बोलनेकी शक्ति ।

वाग्मिन् (सं० स्त्री०) प्रशस्ता वाग्स्त्वस्येति (वाचो ग्मिनिः । पा १।२।१२४) इति ग्मिनिः । १ बका, वाचाल । २ पटु ।

(पु०) प्रशस्ता वाग्स्त्वस्येति ग्मिनि । ३ सुराचार्य, वृहस्पति । ४ एक पुर्वंशो राजा । (भारत १।६।७)

वाग्मी (सं० स्त्री० पु०) वाग्मिन् देखो ।

वाग्मूल (सं० स्त्री०) जिसके वाक्पथका मूल है ।

वाग्म (सं० स्त्री०) वाचं परिमितं वाक्पथं याति गच्छतीति वाक् । १ परिमितभाषी । २ निर्वेद । ३ फल्य ।

वाग्मत् (सं० स्त्री०) वाचि वाक्पथे यतः संयतः । वाक्पथसंगत, वाक्पथसंयमनकारी ।

वाग्मन (सं० स्त्री०) वाचां यमनं । वाणीका संयम, बोलनेमें संयम ।

वाग्याम (सं० स्त्री०) वाग्मत्, वाक्पथसंयमकारी । वाग्मज्ज (सं० स्त्री०) वाग्देव वज्रं । १ कठोर वाक्पथ । २ श्राप । (ति०) ३ कठोर वाक्पथ बोलनेवाला ।

वाग्मत् (सं० स्त्री०) वाक्पथसदृश, कथानुयायी ।

वाग्मवाद (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्तिका नाम । (पा ६।३।१०६)

वाग्मवादिनी (सं० स्त्री०) सरस्वती ।

वाग्मविद् (सं० स्त्री०) वाग्मी, सुभाषक ।

वाग्मविदग्ध (सं० स्त्री०) वाचा विदग्धः । १ वाक्चतुर, बातचीत करनेमें चतुर । २ वाक्पथवाणमे जर्जरित । ३ पण्डित ।

वाग्मविदग्धा (सं० स्त्री०) वाक्चतुरा, बातचीत करनेमें चतुरा स्त्री ।

वाग्मविन् (सं० स्त्री०) वाक्पथयुक्त ।

वाग्मविप्रय (सं० स्त्री०) वेद पाठ करनेके समय मुहसे निकला हुआ धुक ।

वाग्मविलास (सं० पु०) बानन्दपूर्वक परस्पर सम्भाषण, बानन्दपूर्वक बातचीत करना ।

वाग्मविसर्ग (सं० पु०) वाक्पथयाग, बात बन्द करना ।

वाग्मविसर्जन (सं० स्त्री०) वाग्मविसर्ग, बात बन्द करना ।

वाग्मवार्थ (सं० स्त्री०) ओजस्वी ।

वाग्मवैदग्ध्य (सं० पु०) १ बात करनेकी चतुरता । २ सुन्दर अलङ्कार और चमत्कारपूर्ण उक्तियोंकी निपुणता । काव्यमें वाग्मवैदग्ध्यकी प्रधानता मानते हुए भी काव्यकी आरमा रस ही कहा गया है । अग्निपुराणमें स्पष्ट लिखा है—'वाग्मवैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस पवात जीवितम् ।'

वाग्मव (सं० पु०) १ पुरोहित । २ ऋत्विज् । (निघण्टु ३।१८) ३ मेधावी । (निघण्टु ३।१५) ४ वादक, घोड़ा ।

वाग्मवै (सं० स्त्री०) राजवंशभेद, वाग्मव राजवंश ।

वाग्मवै (सं० पु०) समुद्र ।

वाग्मक (सं० स्त्री०) वह्नाराजपुत्र ।

वाग्मनिघन (सं० पु०) सामभेद ।

वाग्मती (सं० स्त्री०) स्तुतिरूपा वाग्मनस्या इति वाक्-

वागीश्वरम्—शत्रुनाशकम् और मङ्गलवादीके रचयिता ।
 वागीश्वर (सं० स्त्री०) वाचाश्वरी । सरस्वती ।
 वागीश्वर (सं० पुं०) वाचाश्वर इय । १ मञ्जुघोष
 बोधिसत्व । २ जैनविशेष । ३ गृहस्पति । ४ ब्रह्मा ।
 (त्रि०) ५ वाक्पति, अच्छा बोलनेवाला ।
 वागीश्वर—१ मानसतोहरके प्रणेता । २ मङ्गलके समसाम-
 यिक एक कवि । ३ एक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता ।
 वागीश्वरकीर्ति (सं० पुं०) एक शाचार्यका नाम ।
 वागीश्वरभट्ट—काश्यप्रदेशीपंचांगके प्रणेता ।
 वागीश्वरी (सं० स्त्री०) वाचाश्वरी । सरस्वती ।
 वागीश्वरीदत्त—पारदकरशूलसूत्रव्याख्याके रचयिता ।
 वागुनी (सं० स्त्री०) सोमराज्ञी, वाकुची ।
 वागुञ्जर (सं० पुं०) एक प्रकारकी मछली ।
 वागुण (सं० पुं०) १ कर्मरङ्ग, कनरत्न । २ वैद्यक, भांडा ।
 वागुत्तर (सं० स्त्री०) वक्त्रा और उत्तर ।
 वागुदा (सं० स्त्री०) यातीति या गतिवचनयोः (मद्गुदा
 दत्तव । उष् १४२) इति उरच् प्रत्ययेन गुणागमेन च
 साधु । मृगोके फंसानेका जाल ।
 वागुरि (सं० पुं०) एक प्रसिद्ध जिलगविम् ।
 वागुरिक (सं० पुं०) वागुर्या चरतांति वागुरा (चरति ।
 वा वागुरि) इति ठक् । मृगस्थल, दिग्ग फंसानेवाला
 जिकारी ।
 वागुलि (सं० पुं०) वागदान, डिब्बा ।
 वागुलिक (सं० पुं०) राजाओंका वह सेवक जिसका
 काम उनको वाग मित्ताना होता है, मयाम ।
 वागुम (सं० पुं०) एक प्रकारकी मछली ।
 वागुपम (सं० पुं०) मूढ एकता, विश्व वागी ।
 वागुपान (सं० पुं०) नदीया जिलास्थ ग्रामभेद ।
 (त्रिकाल ८१६)
 वागुप (सं० पुं०) १ वक्त्रक । २ भद्रं भूषेत् ।
 वागुद (सं० पुं०) वाचा मोक्षके मोक्षोद्येति गुद-
 कीद्वारा क । एक प्रकारका पत्थर । मनुस्मृतिमें लिखा
 है, कि जो गुद श्रुता है, वह दूनरे अन्नमें वागुद पत्थर
 होता है ।
 वागुनि (सं० पुं०) वाचा गुदनि रश्मोति गुद (श्रु-
 पत् ६७ । उष् ४ १२८) इति इन्, स च चिन् । वाग्-
 वागीश्वरी, राजाओंका वह सेवक जो उनमें वाग मित्ताना है ।

वागुलिक (सं० पुं०) वागुलि स्थायं कन् ।
 वागुलि देतो ।
 वागुल (सं० स्त्री०) वागेव जालमिति रूपककर्मधा० ।
 वातीकी लपेट, वातीका आडम्बर या मरमार ।
 वागुदम्बर (सं० पुं०) वाग्दम्बर, वातीकी लपेट ।
 वाग्दण्ड (सं० पुं०) वागेव दण्डः । मला घुटा कहने-
 का दण्ड, मौखिक दण्ड, डाँट दण्ड ।
 वाग्दत्त (सं० त्रि०) वाचा दत्तः । वक्त्र द्वारा दत्त,
 मुँहसे दिया हुआ ।
 वाग्दत्ता (सं० स्त्री०) वाचा दत्ता । यह कन्या जिसके
 विवाहको बात किसीके साथ ठहराई जा चुकी हो, फेरल
 विवाह संस्कार होनेसे वाची हो । पूर्वकालमें पचा-
 भी, कि कन्याका पिता जामाताके पास जा कर कहता
 था, कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा । आज कल इस
 प्रकार तो नहीं कहा जाता, पर परछा या फलदानकी
 टीका बढ़ाया जाता है ।
 वाग्दुद्रि (सं० त्रि०) वाचि द्रिद्रि इय । मित्तवापी,
 घोड़ा बोलनेवाला ।
 वाग्दुल (सं० स्त्री०) वाचा दुर्लभिय । भोग्याघर, भोड ।
 वाग्दान (सं० स्त्री०) वाचां दानं । वाग्दान, कन्याके
 पिताका किसीसे जा कर यह कहना कि मैं अपनी कन्या
 तुम्हें दूँगा । वाग्दानके पहले कन्याको मृत्यु हो
 जानेसे सब धर्मोंका एक दिन भोग्य होना है । किन्तु
 वाग्दानके बाद अगर कन्याकी मृत्यु हो जाय, तो दोनों कुल
 भोग्य पितृ और भस्मकुलमें लोग दिन भोग्य होगा ।
 लेकिन आज कल वाग्दान न रहनेसे विवाहके पहले तक
 कन्याकी मृत्यु होनेमें एक दिन भोग्य मानना होता है ।
 वाग्दुष्ट (सं० त्रि०) वाचा शुद्धेऽपि वक्त्रुनि मधुदुष्टव-
 र्वाद्दुष्टवर्षयेन दुष्टः । १ पश्यमापी, कृपुमापी । २ अमि-
 जस, जिसे किसीने ज्ञाय दिया हो, जिसे किसीने बताया
 हो । मनुभाष्यकार मेघानिबिधके मतसे पश्य और मित्तवा-
 पादोके वाग्दुष्ट कहने हैं ।
 'वाग्दुष्टः पश्यमापी भजिजस इत्यर्थे' (वृत्तक)
 'वाचा दुष्टा पश्यानुत्तमापी' (मेघनिबिध) धारककर्ममें
 वाग्दुष्ट प्रामाण्य वशमेव मान्य मया है ।
 प्राग्दुष्टवर्षयेनमे लिखा है, कि वाग्दुष्ट कन्याके

अन्न नहीं खाना चाहिये । हठात् खा लेनेसे तीन रात उपवास एवं जान कर अर्थात् बार बार खानेसे बारह पण दान दे कर प्रायश्चित्त करे ।

वाग्देवता (सं० स्त्री०) वाचा देवता । वाणी, सरस्वती । वाग्देवी (सं० स्त्री०) वाचा देवी । सरस्वती, वाणी । वाग्देवीकुल (सं० स्त्री०) विद्वान, विद्या और वाग्मिता । वाग्देवत्वचय (सं० पुं०) यह चय जो सरस्वतीके उद्देश्यसे पकाया गया हो ।

वाग्देश (सं० पुं०) १ घोलनेकी कृति । २ व्याकरणसम्बन्धी कृतियाँ या देश । ३ निम्दा या गाली ।

वाग्द्वार (सं० स्त्री०) वागेव द्वार । वाक्पथरूप द्वार ।

वाग्भट—१ राजा मालवेन्द्रके मन्त्री । २ निघण्टु नामक वैदिक ग्रन्थके रचयिता । ३ एक पण्डित तथा नेमिकुमारके पुत्र । इन्होंने अलङ्कारतिलक, छन्दोनुशासन और टोका, वाग्भटालङ्कार और शृङ्गारतिलक नामक काव्य रचे । ४ अष्टाङ्गहृदयसंहिता नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता । इनके पिताका नाम सिंहगुप्त और पितामहका वाग्भट था । ५ पदार्थचन्द्रिका, भावप्रकाश, रसरत्नसमुच्चय और शास्त्रदर्पण आदि ग्रन्थके प्रणेता ।

वाग्भट्ट (सं० पुं०) वाग्भट देलो ।

वाग्भृत् (सं० स्त्री०) वाक्पथपोषणकारी, वाक्पट्ट ।

वाग्भायन (सं० पुं०) वाग्मिनो गोत्रापत्यं (अश्वदिग्मिः फञ् । पा ४।१।११०) इति फञ् । वाग्मीका गोत्रापत्य ।

वाग्मिता (सं० स्त्री०) वाग्मिनो भाषा । वाग्मीका भाषा या धर्म, अच्छी तरह बोलनेकी शक्ति ।

वाग्मिन् (सं० स्त्री०) प्रशस्ता वाग्मिन्स्त्विति (वाचो गिमनिः । पा ४।१।१२४) इति गिमनिः । १ वका, वाचाल । २ पट्ट । (पुं०) प्रशस्ता वाग्मिन्स्त्विति गिमनि । ३ सुराचार्य, वृद्धस्त्विति । ४ एक पुष्यवंशी राजा । (भारत १।६।५७)

वाग्मी (सं० स्त्री० पुं०) वाग्मिन् देलो ।

वाग्मूल (सं० स्त्री०) जिसके वाक्पथका मूल है ।

वाग्म (सं० स्त्री०) वाचं परिमितं वाक्पथं याति गच्छतीति वाक् । १ परिमितभाषी । २ निर्वेद । ३ फल्य ।

वाक्पथ (सं० स्त्री०) वाचि वाक्पथे यतः संयतः । वाक्पथसंगत, वाक्पथसंयमनकारी ।

वाक्पथन (सं० स्त्री०) वाचां यमनं । वाणीका संयम, बोलनेमें संयम ।

वाग्पाप (सं० स्त्री०) वाक्पथ, वाक्पथसंयमकारी । वाग्पत्र (सं० स्त्री०) वागेव पत्र । १ कठोर वाक्पथ । २ ग्राप । (लि०) ३ कठोर वाक्पथ बोलनेवाला ।

वाग्पथ (सं० स्त्री०) वाक्पथसदृश, कथानुयायी ।

वाग्वाद (सं० पुं०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्तिका नाम । (पा ६।३।१०६)

वाग्वादिनो (सं० स्त्री०) सरस्वती ।

वाग्विद् (सं० स्त्री०) वाग्मी, सुभाषक ।

वाग्विद्गद्य (सं० स्त्री०) वाचा विद्गद्यः । १ वाक्चतुर, वातचीत करनेमें चतुर । २ वाक्पथवाणमे जर्जरित । ३ पण्डित ।

वाग्विद्वाधा (सं० स्त्री०) वाक्चतुरा, वातचीत करनेमें चतुरा स्त्री ।

वाग्विन् (सं० स्त्री०) वाक्पथयुक्त ।

वाग्विप्रुष (सं० स्त्री०) वेद पाठ करनेके समय मुहसे निकला हुआ धुक ।

वाग्बिलास (सं० पुं०) ज्ञानन्दपूर्वक परस्पर सम्भाषण, ज्ञानन्दपूर्वक वातचीत करना ।

वाग्बिसर्ग (सं० पुं०) वाक्पथयाग, वात बन्द करना ।

वाग्बिसर्जन (सं० स्त्री०) वाग्बिसर्ग, वात बन्द करना ।

वाग्बोध (सं० स्त्री०) बोझली ।

वाग्बोधध्व (सं० पुं०) १ वात करनेका चतुरता । २ सुन्दर अलङ्कार और चमत्कारपूर्ण उचितियोंकी निपुणता । काव्यमें वाग्बोधध्वकी प्रधानता मानने हुए भी काव्यकी आत्मा रस ही कहा गया है । अग्निपुराणमें स्पष्ट लिखा है—'वाग्बोधध्व प्रधानेऽपि रस एवात्त जीवितम् ।'

वाघन् (सं० पुं०) १ पुरोहित । २ ऋषियज्ञ । (निघण्टु ३।१८) ३ मेधावी । (निघण्टु ३।१५) ४ वाहक, घोड़ा ।

वाघेष्ठ (सं० स्त्री०) राजवंशभेद, वाघेष्ठ राजवंश । कथेष्ट देलो ।

वाङ्क (सं० पुं०) समुद्र ।

वाङ्कक (सं० स्त्री०) यङ्गराजपुत्र ।

वाङ्कनिघन (सं० पुं०) सामभेद ।

वाङ्कमती (सं० स्त्री०) स्तुतिरूपा वागस्तस्या इति वाक्-

मनुष्य-जीव। एक मनु। यह नेपालमें ही और आज कल बागमती बहती है। घरादपुराणके गोर्ण-माहात्म्यमें इस नदीको अस्वत्थ पवित्र, गङ्गासे भी पवित्र कहा है और इसमें स्नान करने तथा इसके किनारे मरने में विष्णुदेवकी प्राप्ति बतलाई गई है।

वाटम्पु (सं० ह्रीं०) वाक्के मधु। वाक्के मधु, अति सुमिष्ट मधुर वाक्प।

वाटम्पु (सं० त्रिं०) वाचा मधुरः। वाक्के मधुर, वाचका मीठापन।

वाटम्प (सं० त्रिं०) वाक् स्वल्पं, वाक् मयट्। १ वाक्वात्मक, यचन-सम्बन्धी। म, य, र, स, त, ज, भ, न, ग, ल, ये दश अक्षर लैटोषवर्गे विष्णुकी तरह समस्त वाक्के परित्याप्त हैं। ये गद्य और पद्यके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। गद्य और पद्य शब्द दो। २ यचन द्वारा किया हुआ। यचनों द्वारा किये हुए पाप चार प्रकारके कहे गये हैं—पाठ्य, अनृत, वैशुन्य और अस्वस्थ प्रलाप। किसी किसीके मतसे यह पाप छः प्रकारके हैं—पद्य यचन, भववाद्, वैशुन्य, अनृत, घृष्टालाग और निष्ठुर वाक्प। ये छः प्रकारके पाप उक्त चार प्रकारके मध्य निविष्ट रहनेसे विरिध परिहार हुए हैं।

दूमरेके देश, जाति, कुल, विद्या, जित्त, आचार, परिच्छद, आरोर और कार्यादिका उल्लेख करके प्रत्यक्षरूपसे जो शेष-यचन होता है, उसीको पठ्य कहते हैं। जिस वाक्के सुननेसे क्रोध, सन्ताप और ताम होता है, यह भी पद्यपद्य वाक्प है। चक्षुष्मान् पृथिके। चक्षुहीन पद्य प्राज्ञणके चाण्डालादि कहना भी पठ्य है। पठ्य वाक्के परीक्षमें उदाहरणके नाम भववाद् तथा मुद्य, नृपति, बभु, स्याता और मित्वादिके समीप सर्वोपचानके जिये जा शेष कहा जाता है, उसको वैशुन्य कहते हैं। अनृत देश प्रकारका है—अमत्य और अस्वाद्। देशराष्ट्र प्रमङ्ग, पदार्थ परिचयन पद्यं नर्महास प्रयुक्त जो वाक्प है, उसे ष्यंभामान, मुत्ताङ्गका उन्नेत्र, भववित्र वाक्पप्रयोग, बध्नासे उच्चारित वाक्प तथा स्वोद्युप मिथुनात्मक जो वाक्प है, यह निष्ठुर वाक्प कहलाता है। इस तरहका उच्चारित वाक्प ही वाटम्पु पद्य है। ३ जो पठन-पाठनका विषय हो। (ह्रीं०) ४ गद्य-पद्यमत्त वाक्प आदि जो पठन-पाठनका विषय हैं, साहित्य।

वाटम्पु (सं० ग्रीं०) वाटम्पु-जीव। सरस्वती। वाटम्पु (सं० ह्रीं०) वचो माधुपं। वाक्के मधुरता, मीठा बचन।

वाटम्पु (सं० ह्रीं०) वाचां मुपमिध। एक प्रकारका गद्य काव्य, उपन्यास।

वाचंयम (सं० पुं०) वाचो वाक्वात् यच्छति विरमतीति यम उपरमे (वाचियमो पठे। पा ३।१।४०) इति सञ् (वाचं यमपुरन्दरी। पा ३।३।६६) इति अमन्तत्वं निपादयते। १ मुनि। २ मीनप्रती, मीन धारण करनेवाला पुरुष।

वाचंयमस्य (सं० ह्रीं०) वाचं यमस्य भावाः स्य। वाचं-यमका भाव या धर्म, वाक्पसंयम।

वाच् (सं० ग्रीं०) उच्यतेऽस्मीं मनवाधेति यच् क्तिपु दोषोऽस्मत्प्रसारणञ्। १ वाक्प, वाणी, वाचा। २ सरस्वती।

वाच (सं० ग्रीं०) वाचपति गुणगिति यच-जिच् भच्। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका शुण स्यादु, स्निग्ध, श्लेष्मयद्क और वायुसन्तानाक माना गया है। (राजर्षे)

वाच (सं० ग्रीं०) जेयमें रत्नकी या कलाई पर बाँधनेको घड़ी।

वाचक (सं० पुं०) व्यक्ति मजिघा गृह्य योऽवयमान् इति यच-ण्युच्। १ जम्बू। प्रकृति और प्रत्यय द्वारा जम्बू-वाचक होता है। मुखबोचटीकामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—प्रत्यक्षरूपसे जो साङ्केतिक अर्थ धारण करता है, उसको वाचक कहते हैं।

वाचयतीति यच-जिच्-ण्युच्। २ कथक, पुराणादि पढ़नेवाला। इस नाममें प्राज्ञणको नियुक्त करना चादिपे, प्राज्ञणके मन्त्राया दूमरे वर्णको पाठक नियुक्त करनेसे तरक होता है।

जो वाचकको पूजा करते हैं, देवता उनके प्रति प्रणम होते हैं। पुराणादि पाठ करनेवालोंको साद्वि, कि ये पाठकको सर्वदा सम्बुष्ट रने। पुराणादि पाठकालमें प्रति पर्व सामाजिक दिन कथकको उपशान् आदि देना उचित है।

पाठक जो पाठ करे, वह सुबुद्ध तथा भद्र समाचारों को पाठ करनेके समय उनका चित्त स्थिर रहना चाहिये

जिससे सब गद् रूपरूपसे उच्चारित हो, इसके प्रति उम्हें विशेष लक्ष्य रखना उचित है। ऐसा पढ़ना चाहिये, कि सब कोई उसे समझ सके। जो इस प्रकार पाठ कर सकते हैं, वे व्यास कहलाते हैं। पाठ शुरू करनेके पहले पाठकको उचित है, कि वे पहले देवता और ब्राह्मणकी अर्चना कर लेंगे।

वाचकता (सं० स्त्री०) वाचकस्य-भायः तल् टाप्। वाच-पश्य, वाचकका भाव या धर्म, पाठ, वाचन।

वाचकदृश्य (सं० स्त्री०) वाचकता देखो।

वाचकधर्मलुता (सं० स्त्री०) वह उपमा जिसमें वाचक शब्द और सामान्य धर्मका लोप हो।

वाचकपदं (सं० स्त्री०) मावयञ्जक वाच्य।

वाचकलुता (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उपमालंकार जिसमें उपमावाचकके शब्दका लोप होता है।

वाचकाचार्य (सं० पुं०) एक जैनाचार्यका नाम।

(सर्वदर्शनसंग्रह ३४८)

वाचकूटी (सं० स्त्री०) घचक्र, ऋषिकी अपत्यस्त्री, गार्गी।

(शतपथब्रा० १४, ६।६।११)

वाचकोपमानधर्मलुता (सं० स्त्री०) वह उपमा जिसमें वाचक शब्द, उपमान और धर्म तीनों लुप्त हों केवल उपमेय भर हीं।

वाचकोपमानलुता (सं० स्त्री०) उपमालंकारका एक भेद। इसमें वाचक और उपमानका लोप होता है।

वाचकोपमेवलुता (सं० स्त्री०) उपमालंकारका एक भेद। इसमें वाचक और उपमेयका लोप होता है।

वाचकश्री (सं० स्त्री०) गार्गी, वाचकूटी।

वाचन (सं० स्त्री०) घच-णिच्-त्त्युट्। १ पठन, पढ़ना।

२ कहना, बताना। ३ प्रतिपादन।

वाचनक (सं० स्त्री०) वाचनेन कायतीति-कै-क। प्रदेलिका, पहेली।

वाचनालय (सं० पुं०) यह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकें और समाचारपत्र आदि पढ़नेको मिलते हैं, रीडिंग रूम।

वाचनिक (सं० स्त्री०) वाच्ययुक्त।

वाचनवित् (सं० स्त्री०) घच-णिच्-त्त्युट्। वाचक, वाचने-वाला।

वाचध्रवस् (सं० पुं०) वाच्यदाता।

वाचसांपति (सं० पुं०) वाचसां सर्वविद्यारूपवाच्यमानों पति; अभिधानात् पठ्या मलुक्। वृहस्पति।

वाचस्पत (सं० पुं०) वाचस्पतिके गोत्रमें उत्पन्न पुत्र। (शास्त्रां ब्रा० २६।१५)

वाचस्पति (सं० पुं०) वाचःपतिः (पठ् याः पतिपुत्रेति। पां० ३।१।१३) इति षष्ठी। १ शब्दप्रतिपालक।

२ देवगुरु वृहस्पति। कहते हैं, कि इन्होंने ही चार्वाकदर्शनका मूल वृहस्पतिसूत्र लिखा। ३ एक प्राचीन वैचारण और आभिधानिक। हेमचन्द्र, मेदिनीकर तथा

हारावलीमें पुरुषोत्तमने इनके कोपका उल्लेख किया है। ४ एक कवि। क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठामरणमें इनका परिचय है। इनका पूर्व नाम था—शब्दार्णव वाचस्पति।

५ अध्यापयञ्ज्यादिकाके प्रणेता। ६ वर्द्धमानेन्दुबध्याय-पञ्चपादिकाके रचयिता। ७ स्मृतिसंग्रह और स्मृति-सारसंग्रहके सङ्कल्यिता। ८ आठद्वन्द्वेण नामक माधव-निदानकी टीकाके प्रणेता। ये प्रमोदके पुत्र थे। ९ शाकुन-शास्त्रके प्रणेता।

वाचस्पति गोविन्द—मेघदूतटीकाके रचयिता।

वाचस्पति मिश्र—१ मिथिलावासी एक पण्डित। इनके रचे आचार-चिन्तामणि, कृत्यमहार्णव, तीर्थ-चिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, पितृभक्तिरङ्गिणी, प्रायश्चित्तचिन्ता-मणि, विद्याचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शुद्धि-चिन्तामणि, शूद्राचारचिन्तामणि, श्राद्धचिन्तामणि और द्वैतनिर्णय ग्रन्थ मिलते हैं। यह शोकोक्त ग्रन्थ इन्होंने पुरुषोत्तमदेवकी माता और भैरवदेवकी महिषी जयादेवीके आदेशसे रचा था। इनके बड़ाया इनकी धनाई गणयात्रा, चन्द्रनधेनुदान, तिथिनिर्णय, शब्द-निर्णय और शुद्धिप्रथा नामक बहुत-से स्मृतिव्यवस्था पुस्तकें मिलती हैं। २ काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता। चण्डिकासकी टीकामें इनका मत उद्धृत है। ३ एक वेदान्तिक और नैयायिक। ये मार्चण्डतिलकस्वामीके शिष्य थे। इन्होंने तत्त्वविन्दु, वेदान्ततत्त्वकीमुद्दी, सांख्य-कीमुद्दी, वाचसंहार नामक वेदान्त, तत्त्वशास्त्री, योग-सूत्रभाष्यव्याख्या और युक्तिदीपिका (सांख्य) नामक

योग, न्यायकणिकाधिधियैकटीका, न्यायतत्त्वाद्यलोक,
न्यायतलटीका, न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, भाग्यो या शारी-
रकनाथ विभाग आदि ग्रन्थ लिखे। न्यायवाचार्थने सर्व
दशमसंमदमें, यद्यमानने न्यायकुमुमाञ्जलिप्रकाशमें तथा
जटुरमिश्रिने वैशेषिक सूत्रोत्पत्ति ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत
किया है। ६६८ अक्षरमें इनका न्यायसूचीनिबन्ध शेष
हुआ। मयदेशमद और एरियमियेय देला। ४ भास्कराचार्यद्वारा
सिद्धाभ्ताजिरोमणि ग्रन्थके एक टीकाकार।

वाचस्पत्य (सं० लि०) १. बृहस्पतिको मतसम्बन्धीय
वाचस्पति देवपुरोहितमनुजाने वाचस्पत्यः। २. पुरोहित-
कर्मकर्ता। "बृहस्पतिर्ह वै देवानां-पुरोहितमन्वस्ये
मनुष्यभर्ता पुरोहिता इति ब्राह्मणे बृहस्पतिं यः स्मृतं
विभर्त्सति मन्वस्यबृहस्पतिपदस्य ध्यामथानात्।"

(महाभारत १३ एवं नीलकण्ठ)

वाचा (सं० स्त्री०) १. वाषप, वचन, शब्द। २. वाणी।
वाचाट (सं० लि०) कुटिमत्तं यद् भाषने इति वाच-
(भागना टये बहुवार्थिणि। पा ५, ३।२५) इति शब्दत्वं।
१. वाचाल। २. बहो, वदवादी।

वाचापत्र (सं० स्त्री०) प्रतिज्ञापत्र।
वाचावट (सं० पु०) प्रतिज्ञावट, वचन देनेके कारण
वियन, वादेमें रचना हुआ।

वाचावभान (सं० पु०) प्रतिज्ञावद होना।
वाचावभान (सं० स्त्री०) १. कथाका भाग्यन। २. वागा-
लम्बन।

वाचाल (सं० लि०) यद् कुटिमत्तं भासते इति वाच-
(पा ५।३।२५) इति शब्दत्वं। १. वाक्पटु, बोलनेमें
तेज। २. वदवादी, व्यर्थ बोलनेवाला।

वाचालता (सं० स्त्री०) वाचालस्य भावः तत्-टाप्।
१. बहु-वाचिता, बहुत बोलनेवाला। ३. बातचीतमें
निपुणता।

वाचाविकट (सं० लि०) वाङ्- निवममसोऽम्।
वाचावृत्त (सं० लि०) १. वाचयमे बहो, जो वाचनोत्तम
पदा हो। (पु०) २. चौदह मन्वन्तरके अनुसार देव-
यजमैर्ह। (विष्णुपु०)

वाचवनेन (सं० लि०) निष्पावादेशे, भुङ् वेऽनेवात्ता।
(अष्ट १०, २०, ३१२)

वाचिक (सं० लि०) वाचुःशब्दः। १. वाचो-सम्बन्धी।
२. वाचार्थके किंवा हुआ। ३. संकेतके कहा हुआ। (पु०)
४. अभिनयका एक भेद जिसमें केवल वाचविविध्याम
द्वारा अभिनयका कार्य सम्पन्न होता है।

वाचिकपत्र (सं० स्त्री०) वाचिकस्य सन्देशस्य पत्रम्।
१. लिपि। २. सम्वाद-पत्र।

वाचिकद्वारक (सं० पु०) वाचिकस्य मन्त्रेणस्य द्वारकः।
१. लेखन। २. दूत।

वाचो (सं० स्त्री०) १. वाचययुक्त। २. सूचक, प्रकट
करनेवाला, बोध करनेवाला। यह शब्द सामान्यमें
समस्त पदके अन्तमें जानेसे वाचक और विधापकका
अर्थ होता है। जैसे,—पुरयवाचो—पुरयवाचक।

वाचोयुक्ति (सं० लि०) वाचि वाचये युक्तिर्भवेत्य।
१. वागमी। (स्त्री०) वाचो यचमो युक्तिः (वाग्दिक्
परयज्ञपो युक्तिदयदशेषु। पा ६।३।२९) इतिभ्य वासिंकीपरवा
पठ्वा अलुक्। २. वाचयगे युक्ति बताना।

वाचोयुक्तिपटु (सं० लि०) वाचो युक्तौ वाक्कुशिल-
स्यापे पटुः। वागमी।
वाचय (सं० लि०) उच्यते इति वाच्-पयन्, यचोऽग्रभ-
संताप्या इति न कृत्यं। १. कुटिमत्त। २. होन। ३. वच-
मार्ह, कहने योग्य। ४. अभिधेय, अभिप्रा द्वारा जिसका
बोध हो, शब्दसंबंध द्वारा जिसका बोध हो। जिस
शब्द द्वारा बोध होता है, उसे 'वाचक' और जिस वस्तु-
वा अर्थका बोध होता है, उसे 'वाच्य' कहते हैं। (स्त्री०)
वाच-पयन्। ५. अभिधेयार्थ। ६. निष्पादन। वाच्यार्थं हेनो।

वाचयता (सं० स्त्री०) वाचयस्य भावः तत्-टाप्। वाचयस्य,
वाचयका भाव या धर्म।
वाचयन्निष्ठा (सं० लि०) विशेषपदका अनुगत। विशेषण
पदमें व्याकरणके नियमानुसार पूर्वपदको वाच्य और
निष्ठाका अनुगत होता है।
वाचयन्निष्ठाः (सं० लि०) वाचयन्निष्ठा संज्ञाविहितम्।
वाचयन्निष्ठास्य (सं० स्त्री०) वाचयन्निष्ठाका भाव।
वाचयवचन (सं० पु०) वाचयका गोत्रावयव।

(वैदिकसं० ५।३।३६)

वाच्यार्थ (सं० पु०) मूल शब्दार्थ, यद् अभिप्राय जो
शब्दके निम्न अर्थ द्वारा ही प्रकट हो, संकेत रूपमें

स्थिर शब्दोंका नियत अर्थ। अग्निधा, लक्षणा और ध्वजना
के तीन शक्तियाँ शब्दको मानी जाती हैं। इनमेंसे प्रथमके
सिवा और सबका आधार 'अग्निधा' है, जो शब्द-संकेत-
में नियत अर्थका बोध कराती है। जैसे,—'कुत्ता' और
'श्रमली' कहनेसे पशुविशेष और वृक्ष-विशेषका बोध होता
है। इस प्रकारका मूल अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है।

अन्वयान्तर देखो।

वाच्यावाच्य (सं० पु०) भली बुरी या कहने न कहने
के योग्य बात। जैसे,—उसे वाच्यावाच्यका विचार
नहीं है।

वाज (सं० क्ली०) १ घृत, घी। २ यज्ञ। ३ अन्न। ४ चारि,
जल। ५ संग्राम। ६ बल। (पु०) ७ शरपक्ष, वाणमेंका
पंख जो पीछे लगा रहता है। ८ शब्द, आवाज। ९ पक्ष,
पलक। १० वेग। ११ मुनि।

वाज (अ० पु०) १ उपदेश, शिक्षा। २ धार्मिक व्याख्यान।
३ धार्मिक उपदेश, कथा।

वाजकर्मन् (सं० लि०) शक्तियुक्त कर्मकारी।
वाजकृत्य (सं० क्ली०) वह कार्य जिसमें बल या शक्तिका
आवश्यक हो।

वाजगन्ध (सं० लि०) शक्तिहीन, निर्बल।

वाजजठर (सं० लि०) हरिजठर, धृतगर्भ।

वाजजित् (सं० लि०) शक्तिजयकारी।

वाजजिति (सं० स्त्री०) शक्ति, क्षमता।

वाजजित्या (सं० स्त्री०) गन्धजयो, शक्तिशालिनी।

वाजद् (सं० लि०) वाजं अन्नं ददाति दान्क। अन्नदाता।

'मन्दाय वाजदा युवं' (शुक्. १।१३।१) 'वाजदा वाजस्य
अन्नस्य दातारो' (गायत्र्य)

वाजदायन् (सं० लि०) अन्नदाता।

वाजदायर्त्स् (सं० क्ली०) एक सामका नाम।

वाजद्रविणस् (सं० लि०) अन्न और घनयुक्त।
(शुक्. १।१३।६)

वाजपति (सं० पु०) १ अन्नपति। २ अग्नि।
(शुक्. १।१३।३)

वाजपत्नी (सं० स्त्री०) १ अन्नरक्षयिणी। २ धेनु।

वाजपस्त्य (सं० लि०) अन्नपूर्ण। (शुक्. १।१३।२१)

वाजपेय (सं० पु० क्ली०) वाजमन्त्रं घृतं वा पेयम्-

श्रेति। एक प्रसिद्ध यज्ञ जो सात श्रौत यज्ञोंमें पाँचवां है।
कहते हैं, कि जो वाजपेय यज्ञ करते हैं, उन्हें स्वर्ग प्राप्त
होता है।

वाजपेयक (सं० लि०) वाजपेय सम्यन्धा।
वाजपेयिक (सं० पु०) वाजपेय यज्ञार्थ-पुत्रादि आवश्यकोय
द्रव्य।

वाजपेयी (सं० पु०) १ वह पुत्र्य जिसने वाजपेय यज्ञ
किया हो। २ ब्राह्मणोंकी एक उपाधि जो कान्यकुब्जोंमें
होती है। ३ अत्यंत कुलीन पुत्र्य।

वाजपेशस् (सं० लि०) अन्न द्वारा अश्लिष्ट, अन्नयुक्त।
वाजप्य (सं० पु०) एक गोताकार ऋषि। इनके गोतके
लोग वाजप्यायन कहलाते हैं।

वाजप्रमदस् (सं० लि०) १ घन द्वारा तेजस्वी, बड़ा
दौलतमंद। (पु०) २ इन्द्र।

वाजप्रसवीय (सं० लि०) अन्नोत्पादनसम्यन्धी।
(शतपथब्रा० १।२।२।१)

वाजप्रसव्य (सं० लि०) अन्नोत्पादनीय।

वाजदन्धु (सं० पु०) बलपति।

वाजवो (अ० लि०) वाजिवी देखो।

वाजभर्मन् (सं० लि०) जिससे अन्न या बलका भरण
हो।

वाजमर्मीय (सं० क्ली०) एक सामका नाम।

वाजभृत् (सं० क्ली०) एक सामका नाम।

वाजमोजिन् (सं० पु०) वाजं भुङ्क्ते इति जिनि। वाजपेय
याग।

वाजम्बर (सं० लि०) हविर्लक्षणान्नका भस्त्रां।

वाजरत्न (सं० लि०) १ उत्तम अन्नयुक्त। २ शस्त्र।
(शुक्. १।१३।१२)

वाजरत्नायन (सं० पु०) सोमशुभ्रमन्त्रका अर्पण।
(ऐतरेय ८।२।१)

वाजवत (सं० पु०) एक गोतकार ऋषि। इनके गोतके
लोग 'वाजवताग्रि' कहलाते हैं।

वाजवत् (सं० लि०) १ बलकारी। (शुक्. १।१३।३)
२ अन्नयुक्त। (शुक्. १।१२।६)

वाजश्रव (सं० पु०) पुराणानुसार एक ऋषिका नाम।

वाजश्रवस् (सं० पु०) १ वाजश्रवाके गोतमें इत्यन्न पुत्र्य।

२ एक ऋषि जिनके पुत्रका नाम "नन्दिनेना" था और जो अपने पिताके मृत्यु होने पर यमराजके यहाँ चला गया था। यहाँ उसने उनसे ज्ञान प्राप्त किया था।

याज्ञधिया (सं० पु०) १ अग्नि । २ एक गौतमकार ऋषिका नाम ।

याज्ञध्रुव (सं० लि०) यह व्यक्ति जो धन द्वारा विद्ययात् हो।

याज्ञम (सं० क्लो०) एक मामका नाम ।

याज्ञमन (सं० पु०) १ निय । २ विष्णु । ३ याज्ञसनेय ज्ञाशामुक्त ।

याज्ञसनि (सं० पु०) १ अग्रदाता । २ सूर्य ।

याज्ञसनेय (सं० पु०) १ यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम । इसे याज्ञवल्क्यने अपने शुभ वैशम्पायन पर मृत्यु हो कर उनकी पढ़ाई हुई दिया उमरने पर सूर्यके तपसे प्राप्त की थी । मत्स्यपुराणके अनुसार वैशम्पायनके ज्ञापसे याज्ञसनेय शाखा नष्ट हो गई । पर आज कल शुक यजुर्वेदकी जो संहिता मिलती है, यह याज्ञसनेयसंहिता कहलाती है । २ याज्ञवल्क्य ऋषि ।

याज्ञसनेयः (सं० लि०) याज्ञसनेय ज्ञापाध्यायी ।

याज्ञसनेयसंहिता (सं० खो०) शुक यजुर्वेद ।

यजुर्वेद देतो ।

याज्ञसनेयिन् (सं० पु०) याज्ञसनेयेन प्रोक्त वेदमस्त्य-स्पेति इति । यजुर्वेदी ।

याज्ञमति (सं० खो०) १ अग्राम, युद्धस्थल । (शूक् १।२।१२) २ अग्रजाम । (शूक् ६।४।३६)

याज्ञमाम (सं० क्लो०) एक मामका नाम ।

याज्ञम् (सं० लि०) याज्ञ संज्ञाम सरति सूक्तिम् । संज्ञामसरण, युद्धमें जाना ।

याज्ञमजस (सं० पु०) येन राजाका नाम । (निष्पुत्रुपाथ)

याज्ञमय (सं० पु०) कामभय देणे ।

याज्ञमैत्र (सं० पु०) ज्ञातिविशेष । (माह० पु० ५।२।२०)

याज्ञमिया (सं० खो०) याज्ञिनो घोटकस्य गन्धोऽम्ब-स्यानिति, अन्व टाप् । अम्बगन्ध, कामगंध ।

याज्ञिन (सं० लि०) ऋषिन्, जन्म किया हुआ ।

याज्ञिस्त (सं० पु०) याज्ञिना वन्द्य-पुण्यं मय्य । कामय, मद्गुप्त ।

याज्ञिस्तक (सं० पु०) यास्तक, अद्गुप्त ।

याज्ञिदैत्य (सं० पु०) एक वासुदेवका नाम । यह जेजोदा पुत्र था ।

याज्ञिन् (सं० पु०) याज्ञो वेगोऽस्त्वस्येति याज्ञिन् । १ घोटक, घोड़ा । याज्ञा पशोऽस्त्वस्येति । २ याण । ३ पशु । ४ यसाक, अद्गुप्त । याज्ञति गच्छतीति याज्ञि-निनि । (लि०) ५ चलनविधि, चलनेवाला । ६ अन्नविधि, अन्नयुक्त । याज्ञा पशोऽस्येति । ७ पशुविधि ।

याज्ञिन (सं० क्लो०) १ आमिक्षामस्तु, फटे हुए दूधका पानी । घैवकमें इसे रुचिकर तथा मृत्वा, दाद, रक्त-पित्त और उवरका नाजक किया है । २ दधि । (पु०) ३ अर्थ ।

याज्ञिनो (सं० खो०) याज्ञिन्-द्वीप् । १ अम्बगन्ध, अमगंध । २ घोटकी, घोड़ी । पर्याय—घट्टया, घामो, प्रसूना, भास्यो । इसके दूधका गुण—रस, शकट, लवण, दोषन, लघु, वेदस्थानिकर, बलकर तथा कान्ति-गर्दक । दहीका गुण—मधुर, कषाय, कफघोषा और मूर्च्छाक्षीरनाजक, रस, वातघर्दक, क्षीपक और गैरक्षीर-नाजक । घीका गुण—कटु, मधुर, कषाय, घोड़ा क्षीपक, मूर्च्छानाजक, शुभ और वातघर्दक ।

याज्ञिनोवत् (सं० लि०) अन्न वा बलविधि ।

याज्ञिनोवत्सु (सं० लि०) याज्ञिनोवत्, अन्न वा बल-विधि ।

याज्ञिनेव (सं० पु०) याज्ञिनोपुत्र, अग्रजाम ।

याज्ञिपुष्ट (सं० पु०) याज्ञिनः पृष्टमित्य भाहतिरन्वेति । १ अग्रजानपुष्ट । २ घोटकी घोट ।

याज्ञिष (अ० वि०) उच्चित, ठीक, मुनासिब ।

याज्ञिषी (अ० वि०) उच्चित, ठीक, मुनासिब ।

याज्ञिपुत्र-भद्रा (अ० वि०) १ यह रक्त या घन जिनके देनेका समय जा गया हो, यह रक्त जिनका दे देना उचित हो या जिनके देनेका समय पूरा हो गया हो । (पु०) २ येना घन या रक्त ।

याज्ञिपुत्र-भद्र (अ० पु०) यह जन्म जो बान्गनी बन्धो-यस्तके समय जन्मेइसके और काशकर्मके बीच गावके विवाह आदिके साधनमें किसी जगती है ।

याज्ञिपुत्र-पुष्ट (अ० वि०) १ जिसके वग्ल करनेका

घक आ गया हो । (पु०) २ पेसा घन या रक्म ।
 वाजिभ (सं० क्ली०) भविष्यो नक्षत्र । (बृहत्सं २३६)
 वाजिभक्ष (सं० पु०) वाजिभिर्मक्ष्यते इति भक्ष-कर्मणि
 घञ् । चणक,चना ।
 वाजिभोजन (सं० पु०) वाजिभिर्मोज्यते इति भुज कर्मणि
 ल्युट् । मुद्ग, मुभ ।
 वाजिभत् (सं० पु०) पटोल, परवल ।
 वाजिभेघ (सं० पु०) अभ्येघ ।
 वाजिभेघ (सं० पु०) कालभेद ।
 वाजिराज (सं० पु०) १ पिण्णु । २ उच्चैःश्रवा ।
 वाजियाहन (सं० क्ली०) छन्दोभेद । इसके प्रत्येक चरण-
 में २३ अक्षर होते हैं जिनमेंसे ८वां और २३वां अक्षर
 लघु तथा बाकी गुरु होता है ।
 वाजिविष्टा (सं० स्त्री०) १ अश्वत्थ, पीपल । २ घोड़े की
 विष्टा ।
 वाजिशतु (सं० पु०) अश्वमारुक्ष, कनेरका पेड़ ।
 वाजिशाला (सं० लि०) वाजिनां शाला गृहं । अश्वशाला,
 अस्तवल ।
 वाजिशिरा (सं० पु०) १ भगवान्‌के एक अवतारका नाम ।
 २ एक दानवका नाम ।
 वाजिसनेयक (सं० लि०) वाजसनेयक ।
 वाजी (सं० पु०) वाजिन्‌पेला ।
 वाजीकर (सं० लि०) १ वाजीकरण रसायन-प्रस्तुतकारी ।
 २ भौतिक क्रिया या व्यायामादि कौशलप्रदर्शनकारी ।
 वाजीकरण (सं० क्ली०) अवाजी या जीव क्रियेत्प्रेनेति कृ-
 ल्युट्, अभूततद्भावे चिब । यह आयुर्वेदिक प्रयोग जिससे
 मनुष्यमें वीर्य और पुंसत्वकी वृद्धि हो । इसके लक्षण—
 “पद्मद्वयं पुंसं कृणात् वाजिभत् सुरतकामम् ।
 तद्वालीकरणमालयात् मुनिभिर्मिषजा वरैः ॥”
 (भाष्य० वाजीकरण्याधि०)
 जिस द्रव्यका सेवन करनेसे मनुष्य अश्वके समान
 सुरतक्षम होता है अर्थात् जिस क्रियाके द्वारा घोड़ेके
 समान रति शक्ति बढ़ती है, उसे वाजीकरण कहते हैं ।
 क्षमायतः जिसकी रतिशक्ति अल्प तथा अतिरिक्त स्त्री-
 सद्वासादि दुष्क्रियाके द्वारा हीन हो गई है, उसे वाजी-
 करण औषध सेवन करना विधेय है । शरीरके मध्य

शुक्र धातु ही श्रेष्ठ है तथा यह धातु शरीर-पोषणकी एक-
 मात प्रधान है, सुरतार् इस धातुकी घटती होनेसे जिससे
 यह धातु बढ़े, उसका उपाय करना सर्वनामायसे उचित
 है । नहीं तो शुक्रका क्षय होनेसे सभी धातुका क्षय हो
 कर अकालमें शरीर नष्ट हो जानेकी पूरी सम्भावना है ।
 इसलिये भी वाजीकरण औषधादिका सेवन करके क्षीण
 शुक्रको पूर्ण करना नितान्त प्रयोजन है ।

साधारणतः—घी, दूध, मांस आदि पुष्टिकर आहार
 उपयुक्त परिमाणमें सेवन करनेसे वाजीकरणका प्रयोजन
 बहुत कुछ सिद्ध होता है । जो सब वस्तु मधुर रस,
 स्निग्ध, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और तृप्तिजनक है, वही
 साधारणतः तृप्य या वाजीकरण कहलाती है । प्रियतमा
 तथा अनुरक्ता सुन्दरी युवती रमणी ही वाजीकरणकी
 प्रथम उपादान है । भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि क्लैब्य
 अर्थात् क्लीवता (सुरतशक्तिहानि) होने पर वाजीकरण
 औषधका सेवन करना होता है, इसलिये वाजीकरण-
 के पहले क्लैब्यके लक्षण, संख्या और निदानकी बात
 कही जाती है ।

मानव जब सुरतक्रियासे आसक्त हो जाता है, तब
 उसे क्लेय कहते हैं । क्लेयका भाव क्लैब्य है । यह क्लैब्य
 सात प्रकारका होता है । इसके निदान आदि इस प्रकार हैं
 भय, शोक और क्रोधदि द्वारा अथवा गह्वय सेवन करने
 किंवा अनभिप्रेता द्रव्या खोके साथ समगोच करनेसे
 मनकी भीति न हो कर वरं असुस्थता पड़ जाती है ।
 इससे लिङ्गको उत्तेजना-शक्ति जाती रहती है, इसीको
 नाम मानस-क्लैब्य है ।

अतिरिक्त क्लृ, अम्ल, लवण और उष्ण द्रव्य सेवन
 करनेसे पित्तकी वृद्धि हो कर शुक्र धातु क्षय हो जाता
 है । इससे जो शिथल उत्तेजना रहित हो जाता है
 उसे पित्तज क्लैब्य कहते हैं । जो व्यक्ति वाजीकरण
 औषध सेवन न करके अतिरिक्त मैथुनासक्त होता है
 उसे भी शुक्रक्षय हेतु क्लैब्य उत्पन्न होता है । बलवान्
 व्यक्ति अत्यन्त कामांतुर होने पर अगर मैथुन करके शुक्र
 वेग धारण करे, तो उसे शुक्र स्तब्ध होनेके कारण
 क्लैब्य रोग होता है । जन्मसे ही क्लैब्य होने पर वाजी-
 करण औषध सेवन करनेसे कोई फल नहीं होता । वीर्य

पादिनी निराचोड़ हेतु जो फलैय उपस्थित होता है, यह भी असाध्य है।

साध्य कलैय मेगमें हेतुके विपरीत कार्य करना उचित है, कारण निदान परियोजना ही सब तरहकी चिकित्सानि उत्तम है। पीछे उमें बाजोकरण औषध सेवन करना चाहिए।

मानवगण अच्छी तरह काया जोषन कर १६ वर्षके बाद ७० वर्ष तक बाजोकरण औषध प्रयोग करें। अविशुद्ध शरीरमें बाजोकरण औषधका सेवन करना उचित नहीं, उनसे शरीर का नागा तरहका अनिष्ट हुआ करता है। विशुद्ध शरीरमें बाजोकरण औषध व्यवहार करनेसे रतिप्रतिष्ठ बढ़ती है।

गिलासी, अर्धजाली और रूपवीचनसम्पन्न मनुष्योंके तथा पशु-मनोवाचोंके बाजोकरण औषध सेवन करना कर्त्तव्य है। वृद्ध मरणोन्मुख, म्रैद्युनके कारण झोण, फलैय और अन्तर्गुह विनिष्ट प्राणिजनोंके एवं जिनकी इच्छा जिनकीता म्रिय होनेकी है, उनमें लिये बाजोकरण औषध दिन भर तथा म्रिनि और यत्नपूर्वक है।

माना प्रकार सुलकर, आहारोय और पाणोय, मोत, रमणीय वाक्य, स्पर्शासुग, निलकादि भारिणी रूपवीचन-सम्पन्ना कामिनी, शवणसुखकर मोत, ताम्बूल, मद्य, मान्य, मनोहर गन्ध, चित्रित रूपदर्शन, उद्योग एवं मनका मोतिकर प्रप्यमसुह मानवीका बाजोकरण कदलाता है।

स्वर्णमाक्षिक, पारदमस और लोहचूर्ण मधुके साथ एवं हरीतकी, जिनाजतु और विष्टुके साथ इकोम दिन तक चाटनेसे जन्मो वर्षका वृद्धा भी जवानकी तरह स्वायम्भू कर सकता है। मुलशका रस, जोषा हुआ अन्न, सोय, इलायची, चोनी और पिपलीका चूर्ण इन शरीरी मधुके साथ चाटनेसे एक मी स्वोमे सम्भोग किया जा सकता है। जीवित वृद्धोंको मादके दूध द्वारा मोहक चूर्ण, चोनी, मधु और चोके साथ पाचन बना कर खानेसे वृद्ध व्यक्ति भी रति प्रतिक्रमण होता है। चोड़ा अन्नमधु रसि ८ मीर, चोनी २ मीर, मधु साथ पाच, सोड ८ मागा, चो भाच पाच, मिर्च ४ मागा और मोत भाच छयाक पचन करके मारक कण्डों में छाने।

पीछे उसमें कस्तूरी और चन्दन मिला कर अगुद द्वारा पूरित करके कपूरके योगसे उसे सुमन्वित कर ले। इस तरह रमाला प्रस्तुत कर सेवन करनेसे उत्तम बाजोकरण होता है। मकरोभयने अपने सेवनके लिये यह मायिदकार किया है। यह अनिद्राप सुषदायक तथा कामानि-सन्दीपक है।

मोक्षक बीज, कोकिलाक्ष बीज, सम्भगम्पा, जामुली, गालमूला, शुक्रजिम्बोवोज, यष्टिमधु, विष्टयन और बना एक साथ चूर्ण कर चोमें भूत कर दूधमें सिद्ध करे। पीछे उसे चोनीके साथ मोदक तैयार कर भगिनेके बलानुसार पानेसे उत्तम बाजोकरण होता है। साथ बाजोकरण औषधोंका सार ले कर यह बनाया गया है, इसलिये यह सब बाजोकरणोंसे श्रेष्ठ है। यह औषध बनानेमें चूर्णसे छाट गुमा दूध; चूर्णके बराबर चो तथा सबके बराबर चोनी देनी होती है। इस तरह जो मोदक तैयार होता है, उसे रतिवर्द्धक मोदक करते हैं।

जोषा हुआ अन्न ४ भाग, जोषा हुआ रंता २ भाग तथा पारदमस १ भाग, इन्हें एकत्र पोस कर समपरिमाण कृष्णचुस्तुका चूर्ण मिलाया होगा। पीछे उसमें शारचोनी, इलायची, तैजपल, मागजेजर, ज्ञानिकल, मरिच, पीपल, सोड, लौंग और जामोपल प्रत्येकका २ भाग अच्छी तरह चूर्ण कर एकत्र मिलाये। इस मिश्रित समो चूर्णके साथ दो गुनी चोनी मिलायी होगी, इसके बाद दूध और मधुके साथ पोस कर मोदक बनाये। यह मोदक भगिनेके बलानुसार सेवन करनेमें जोष ही आनन्द बढ़ता और भोकेकी वार्जिनियोंके साथ संभोग करनेकी सामर्थ्य होगी है।

बकरेका अष्टकेय या कपुदका अष्टका पीपल और मैचपके साथ मिला कर चोमें भूत कर पानेसे अरवत पूष होता है।

रतिपत्नी सुषारीका मण्ड अष्ट करे, पीछे इस मण्डके उत्तम सिद्ध कर जब मुलायम हो जाय, तो उसे निकाल कर सुपा से। अच्छी तरह दूध आनेके बाद उसे चूर्ण कर कण्डों में छान से। यह चूर्ण १५ मीर, ८ गुला दूध और साथ मीर चोनी पाक करके इतनी १५ मीर चोनी छान से। जब एकदम रतिवर्द्धक जाय, कर

उसे उतार ले। पीछे उसमें निम्नोक्त चूर्ण मिला दे। यह चूर्ण जैसे—इलायची, वीजवन्द, पीपल, जातोफल, खैर, जातोपत्र, आदित्यपत्र, तेजपत्र, दारचोनी सोंठ, खसकी जड़, पथरचूर, मोथा, त्रिकला, वंशलोचन, शतमूली, शूकशिम्वी, द्राक्षा, कौकिलोक्ष बीज, गोक्षुरबीज, बृहत्तो, पिण्डखजूर, क्षोरा, घनियाँ, यष्टिमधु, पानीफल, जोरा, कृष्णजोरा, अजवायन, घोजकोप, जटामांसी, सौंफ, मेथी, भूमिकुष्माण्ड, तालमूली, असगंध, कचूर, नागकेश, मरिच, पियाल बीज, गजपिप्पली, पद्मबीज, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, लवंग इन सबोंके प्रत्येकका चूर्ण आध पाव। अनन्तर उसमें पारेका भस्म, राँगा, सीसा, लोहा, अन्न, फस्तूरी और कपूरका चूर्ण थोड़ी मात्रामें मिला कर यह मोदक तैयार करे। अग्निके बलानुसार मात्रा स्थिर कर सेवन करना उचित है। भुक्तान्न अन्न अच्छी तरह परिपाक होने पर आहारके पहले यह सेवन करना चाहिये। इससे जठरान्न, बल, बौर्य और कामवृद्धि होती है एवं घातकषय नष्ट और शरीरकी पुष्टि हो कर शब्दके समान मैथुनक्षम होता है।

इस तरीकेसे रतिवह्नभूषणपाक प्रस्तुत करके सुरा, धुस्त्रबीज, शकरन्द, सूर्यावर्च, हिङ्गुल बीज और समुद्रफेन प्रत्येक ओषधि तोला, खस फलका छिलका आधा छटाक एवं सब चूर्णोंका अर्द्धश अंगका चूर्ण मिला कर जो मोदक बनाया जाता है, उसे कामेश्वरमोदक कहते हैं। यह बहुत अच्छा वाजीकरण है।

सुपक आमका रस १॥४ एक मन चौबोस सेर, चीनी ८ सेर, घृत ४ सेर, सोंठका चूर्ण १ सेर, मरिच ५॥ आध सेर, पीपल ५॥ एक पाव और जल १६ सेर इन सबोंको एकत्र कर मिट्टीके बरतनमें पाक करे। पाक करनेके समय मथानीसे आलौड़न करना होता है। जब यह भाड़ा हो जाय, तब उसे मोचे उतार कर उसमें घनियाँ, जोरा, हरीतकी, चिता, मोथा, दारचोनी, पोपलामूल, नागकेश, इलायचीका दाना, लवङ्ग और जातोपत्र प्रत्येकका चूर्ण आध पाव डाल दे। ठण्डा हो जाने पर उसमें फिर एक सेर मधु मिला दे। भोजन करनेके पहले अग्निके बलानुसार मात्रा स्थिर कर इसका सेवन करना होता है। इससे मद्यनो आदि अनेक प्रकारके रोग,

प्रशमित होते तथा बल और बौर्यकी वृद्धि हो कर शब्दके समान मैथुनक्षम होता है। यह अति उत्तम वाजीकरण है। इसका नाम आध्रपाक है। अतिशय इन्द्रियसंवेतनादि द्वारा शिश्नकी उत्तेजना कम पड़ जाने पर गोक्षुरचूर्ण बरुकीके दूधमें पाक करे। पीछे उसमें मधु मिला कर सेवन करनेसे रोग बहुत जल्द आराम होता है।

तिलका तेल ५४ सेर, कदकार्य रक्तचन्दन, अगुरु, कृष्णागुरु, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, कुश, काश, शर, इक्षुमूल, कपूर, मृगनाभि, लताकस्तूरी, कुंकुम, रक्तपुनर्नवा, जातोफल, जातोपत्र, लवङ्ग, बड़ो और छोटी इलायची, काकलाफल, पृषवा, तेजपत्र, नागकेश, गंगेरन, खसकी जड़, जटामांसी, दारचोनी, घृतकपूर, शैलज, नागरमोथा, रेणुका, प्रियंगु, तारपिन, गुग्गुलु, लाक्षा, नखी, धूना, घबका फूल, वांला, मजिष्ठा, तगरपादिका तथा मोम इन सबोंके प्रत्येकका आध तोला, चार गुने जेलमे यथाविधान पाक करें। यह तेल देहमें लगानेसे अस्सी धर्यका वृद्ध भो शुक्राधिकयसे युवाकी तरह खियोंका प्रिय होता है। खास कर बन्ध्या स्त्री अगर यह तेल लगाये, तो उसका बन्ध्यापन दूर हो जाय। इसको चन्दनादितैल कहते हैं।

दशमूल, पीपल, चिता, खैर, बहेड़ा, फटफल, मरिच, सोंठ, सैन्धव, रक्तरोहितक, दन्ती, द्राक्षा, कृष्णजोरा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, आमलकी, विडङ्ग, काकड़ासौंगी, देवदारु, पुनर्नवा, घनियाँ, लवंग, अमलतास, गोखरु, पृच्छदारु, पटार और घोरणकी जड़ प्रत्येक एक पाव और हरीतकी ५८ सेर इन सबोंको एकत्र कर दो मन जलमें पाक करे। हरीतकी अच्छी तरह सिद्ध होने पर उसमें मधु दे। पीछे तीन दिन, पांच दिन और दश दिनमें फिर उसमें मधु डालना होगा। इस तरह जब हरीतकी दृढ़ हो जाय, तब घीके बरतनमें उसे मधुपूर्ण कर रखे। इस मधुपक हरीतकीके सम्बन्धमें धन्वन्तरिने कहा है, कि यह धानेसे श्वास, काश आदि नाना प्रकारके रोग दूर होते हैं एवं बलबौर्य वृद्धि हो कर रोगी अत्यधिक सुरतक्षम होता है।

शूकशिम्वी बीज आध सेर और घृत ५४ सेर गायके दूधमें पाक करे। पीछे जब यह गाढ़ा हो जाय, तब उसे

उत्तर ले। तदनन्तर वक्त योजका छिन्नका उभयपक्षमें योग कर उभयो गोमो बनाये और उमें योगमें पाक करके दो गुणो गोमोमें छोड़ दे। पीछे उमें निचाल कर मधुमें यह गोमो डुबी कर रख दे। यह छान् तोला मुखह और नाममें बानेमें मुक्तो तरलता गष्ट करके शिरनको उचोतना बढ़तो और घोड़ेको तरद रतिगति उत्पन्न करता है। इसका नाम बानरो घटिका है।

आहारकरम, मीठ, लवंग, कुंकुम, पीपल, जातीफल, जातोपुष्प, रक्तचन्दन प्रत्येकका चूर्ण भाघ छटाक तथा अहिषेण भाघ पाय इन सबको एकत्र कर मधुके साथ एक माशा भर रातमें सेवन करनेसे शुक्रसन्निभ हो कर अत्यन्त रतिगति बढ़तो है।

(भाग० वाजीकरणपि०)

गामरुमें लिखा है, कि विषयो वाजीकरणयोगममूह व्यवहार करें, कारण इस वाजीकरण औषधका सेवन करनेसे तृष्टि, पुष्टि, गुणवान् पुत्र पर्यं सदा आनन्द बढ़ता है। इससे वाता अर्थात् आयुके समान सुखसुखता पैदा होती है। इसलिये इस योगका नाम वाजीकरण हुआ है। इसमें त्रिविकेर्ष चूर्ण होते तथा प्रेमो उनके अतिशय म्रिय हो जाते है। यह योग देहका बलवर्द्धक, धर्मकर, यशस्वन् तथा आयुवर्द्धक होता है। जो निर्यत हो गया है, अथवा रोग जोकादिके द्वारा म्रियका गरीर जोणं हो गया है, उमें गरीर हावको रक्षाके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना निश्चय अच्छो है। यह व्यक्ति भी वाजीकरणयोग प्रयोग कर गरीरको सामर्थ्य तथा बहु श्रोत्रे सम्भोग करनेको शक्ति लान करते हैं।

विन्ता, जरा, र्वाधि, पछेजजनक बर्म, उगवास तथा अतिरिक्त श्रोत्रमूत्रादि द्वारा देहका शुक्रसप होना है। इस कारण देहका बल और शुक्रसप निवारणके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना विधेय है। जिसमें पुत्रको श्रोत्रो-मूत्र-विषयमें अचको तरह शक्ति और अतिशय शुक्र उत्पन्न होता है, उमें वाजीकरण करने है।

यदि अतिरिक्त श्रोत्रमूत्र दिवा ज्ञाप अथवा वाजीकरण औषध सेवन न किया जाय, तो अग्नि, कण्ठ, अण्डाशय, हृत्ता, हृत्प्रदेशीर्ष, उदर, गोप, उच्छ्वास, कर्पूर, उदर, सर्वा, धातुकी शोषता, वायुनशोष, शोषता,

ध्वजमूत्र, और श्रोत्रो अश्रियता यह सब घटना घटती है। इसलिये इन सबको उपक्रम होनेसे वाजीकरणका सेवन करना नितांत आवश्यक है।

जो सब द्रव्य मधुर, स्निग्ध, मातुष्कर, धातुवीर्य, गुरु और चिसका साट्टोलाङ्गनक है, उसे दूध या वाजीकरणयोग कहने है। उद्धको भीमें भूत कर दूधमें सिद्ध करके घोत्रोके साथ खानेसे रतिगति बढ़तो है। गन्तूकी दो तोला, दूध एक पाय, जल एक सार, शेष एक पाय यह पानेसे भी रतिगति वृद्धि होती है। क्षुद्र सिमुलका मूत्र और तालमूत्रो एकत्र चूर्ण कर घो और दूधके साथ व्यवहार करनेसे वाजीकरण होता है। भूमिकुष्माण्ड के मूत्रका चूर्ण, घी, दूध या यक्षुमधुरके रसके साथ खाने से वृद्ध व्यक्ति भी युवाको तरह सामर्थ्यवान् होता है। भागलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें सात बार भाषना दे कर घो और मधुके साथ सेवन करके पीछे भाघ पाय पायका दूध पानेसे पीछे बढ़ता है।

अत्यन्त उग्र, कट्टा, तिलक, कपाय, भाज, शार, नाक या अधिक लयण खानेसे घोर्मो क्षानि होती है। सुतरां वाजीकरणयोग सेवन करनेके समय यह सब द्रव्य बहुत सेवन न करे। गोपलका चूर्ण, स्निग्ध, लयण, घो और दूधमें सिद्ध बकरेका दोत्रोकोप खानेसे घोर्वको वृद्धि होती है। बिना मूत्रोका निन्द बकरेके अष्टशोषके साथ सिद्ध कर दूधमें एक बार भाषना दे। पीछे उमें खानेसे अधिक परिमाणमें रतिशक्तता उपजती है। भूमिकुष्माण्डका चूर्ण भूमिकुष्माण्डके रसमें भाषना दे कर पूत्र और मधुके साथ भाषण करनेसे रतिगति बढ़तो है। आमलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें भाषना दे कर घो और घोत्रो या मधुके साथ सेवन करने पर अचको वर्षका वृद्ध भी युवाके समान रतिगति गन्गन्त होता है। भूमिकुष्माण्डका मूत्र और यक्षुमधुर एकत्र सेवन करके पी और दूधके साथ खानेसे वृद्ध भी तरलत्वके प्राप्त होता है। आमलकीके बीज और छयाक बीजका चूर्ण मधु, घोत्रो और धरोपण दूधके साथ सेवन करनेसे शुक्र हाव नहीं होता। शतमूत्रा और कर्षामूत्रका चूर्ण यद्यथा मिश्र करेतामूत्रका चूर्ण दूधके साथ खानेसे घोर्वको वृद्धि होती है। यहिमधु चूर्ण शोत्रो घो और मधुके साथ

सेवन कर दूध पीनेसे अतिशय वीर्य वृद्धि होती है। गोक्षुर बीज, छत्ताक, शतमूली, आलकुशी बीज, गोपचरुबी- और बीजबंदका मूल इन सबोंका चूर्ण अग्निके बला-नुसार उपयुक्त मात्रामें रातको सेवन करनेसे अतिशय रतिक्षमता उपजती है। सद्यमांस वा मछली खास कर पीठिया मछली घीमें भून कर रोज खानेसे खीसङ्गम करनेसे कमजोरी नहीं मालूम पड़ती।

शतमूलीचूर्ण ५२ सेर, गोक्षुर बीज ५२ सेर, सुधनी ५११ सेर, गुलञ्ज ५३७ छटाक, मेलाचूर्ण ५४ सेर, चितामूल चूर्ण ५१ सेर, तिल तण्डुल ५२ सेर, मिळा कर द्विकटु चूर्ण ५१ सेर, चीनो ५८१० सेर, मधु ५४१७ छटाक, धी ५२७ छटाक, भूमिकुष्माण्डका चूर्ण ५२ सेर, एकत्र करके घृतमाण्डमें रखना होगा। इसकी मात्रा २ तोला है। इसका सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग और जरा दूर हो कर बल और वीर्य तथा इन्द्रियशक्ति बढ़ती है। इसका नाम नरसिंहचूर्ण है।

इनके सिवाय गोधूमघृत, वृहदश्वगन्धादि घृत, गुडकुण्णमाण्डक, वृहच्छतावरोमोदक, रतिवह्नुमोदक, कामाग्निस्वामीपनोदक, क्षारप्रदोषक बण्डा-प्रक, मन्मघाघ्नरस, मकरध्वजरस, कामिनीमदभञ्जन, हरशशाङ्क, कामधेनु, लक्षणाढीद, गन्धानृतरस, स्वर्ण-सिन्दूर, सुसुन्दरी गुड़िका, पल्लवसारतैल, धोगोपालतैल, मृतसञ्जीवनीसुरा, दशमूलारिप और मदनमोदक आदि औषध सेवन करनेसे बल और वीर्यादि वर्धित हो कर उत्तम वाजीकरण होता है। इन सब औषधोंकी प्रस्तुत प्रणाली उन उन शब्दों और औषधरत्नावलीके वाजीकरणाधिकारमें देखो। इनके अलावे ध्वजभङ्गाधिकारमें जिन सत्र योग और औषधादिका वर्णन है, वह सब भी वाजीकरणमें विशेष प्रशस्त है। अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश-घृत, धूम्रदानानन्दमोदक, कामिनी द्रवपै, स्वल्पवन्द्रोदय और वृहदश्वगन्धा, मकरध्वज, सिद्धसूत, कामदीपक, सिद्धशालमेलोत्पल, पञ्चशर, त्रिकण्टकाद्यमोदक, रसायन, चन्दनादि तैल, पुष्पघन्वा, पुष्पचन्द्र और कामाग्नि-स्वामीपन आदि औषध भी वाजीकरणमें विशेष फल-प्रद है।

जातीपल, नागेश्वर, पीपल, कंकोर, माञ्जुफल, श्यामा-

लता, कटफल, अनन्तमूल, अगुरु, घच, कचूर, वमि-मस्तकी, जटामांसी, शिमूलमूल, धौ फूल, कटकी, गोक्षुर बीज, मेघी, शतमूली, आलकुशी बीज, छत्राक बीज, पिठवन, घनुरा बीज, पद्म, कुट्ट, उत्पल केशर, यष्टिमधु, चन्दन, जायफल, भूमिकुष्माण्ड, तालमूली, कदली, म्रियंगु, जीवक, ऋषभक, सोंठ, मरिच, त्रिफला, इलायची, गुड-त्वक्, धनिर्वा, तोपचोनी, द्विजलबीज, लवङ्ग, आकरकरा, बाला, कर्पूर, कुंकुम, मृगनाभि, अन्न, सोना, चांदी, सोसा, रांगा, लोहा, होरा, तर्वा, मुका, रससिन्दूर, हरि ताल इन सबोंके प्रत्येकका समभाग तथा इनको चौमन्नी भर भङ्गाका चूर्ण और सर्वसमष्टिका अर्द्धक चीनी, चीनीके बराबर मधु, धोड़ा जल, इन सबोंको एक साथ मन्द अग्निमें लेईके समान पाक करना होगा। पीछे इसमें थोड़ा घी मिलाना होगा। यह औषध उत्तम वाजीकरण होता है। इसका सेवन करनेसे देहकी पुष्टि और बल-वीर्यादिकी वृद्धि होती है। ग्लेच्छ घा घबनेने यह सुफर औषध निकाली है, इसलिये इसका नाम मोकरवा है।

यह सब वाजीकरण औषध सेवन करनेके बाद उप-युक्त परिमाणमें दूध और ठण्डा जल पी कर प्रकुलचित्तसे इन्द्रिययोगान्ता रसव्या रमणोंके साथ रतिक्रीड़ा करनेसे तनिक भी घातु-वैषम्य उपस्थित नहीं होता। जो नारी सुरुपा, युवती, सुलक्षणसम्पन्ना, वयस्या और सुशिक्षिता होती है, उसे वृषतमा कहते हैं।

चरक, सुश्रुत, चाभट, हारीतसंहिता आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें वाजीकरणाधिकारमें इस योगका सभी विषय लिखा है। अधिक हो जानेके भयसे यहाँ पर कुल नहीं लिखा गया। जिन सब ग्रन्थोंसे रलकी वृद्धि होती है, उन सबोंको गृह्य या वाजीकरण कहते हैं।

जिन सब औषधोंसे शुक्तराल्य विनष्ट होता है, उनका सेवन करने पर भी वाजीकरणक्रिया सम्पन्न होती है।

वाजीकर्या (सं० ह्री०) वाजीक्रिया, वाजीकरण ।
वाजीविधान (सं० ह्री०) सुरतशक्तिवृद्धिकी विधि ।
वाजेच्या (सं० खो०) यज्ञकी दांति ।
वाज्य (सं० पु०) वाजस्य गोत्रापत्यं वाज्र (गगादिभ्यो यञ् । पा ४।१।१०५) इति यञ् । वाजका गोत्रापत्य ।

उतार ले। तदनन्तर उक्त वोजका छिलका उत्तमरूपसे पीस कर उसको गोली बनावे और उसे घोंमें पाक करके दो गुनी चीनीमें छोड़ दे। पीछे उससे निकाल कर मधुमें यह गोली डुबो कर रख दे। यह ढाई तोला सुवह और शाममें खानेसे शुककी तरलता नष्ट करके शिश्नकी उत्तेजना बढ़ाती और थोड़ेकी तरह रतिशक्ति उत्पन्न करती है। इसका नाम वानरी घटिका है।

आकारकरम, सोंठ, लवंग, कुंकुम, पीपल, जातीफल, जातीपुष्प, रक्तचन्दन प्रत्येकका चूर्ण आध छटाक तथा अहिफेन आध पाव इन सबको एकत्र कर मधुके साथ एक माशा भर रातमें सेवन करनेसे शुकस्तम्भित हो कर अत्यन्त रतिशक्ति बढ़ती है।

(भाव० वाजीकरणाधि०)

वामदमें लिखा है, कि विषयी वाजीकरणयोगसमूह व्यवहार करें, कारण इस वाजीकरण औषधका सेवन करनेसे तृष्टि, पुष्टि, गुणवान् पुत्र एवं सदा आनन्द बढ़ता है। इससे वाजा अर्थात् अश्वके समान सुरतक्षमता पैदा होती है। इसलिये इस योगका नाम वाजीकरण हुआ है। इससे स्त्रियोंके दर्प चूर्ण होते तथा प्रेमी उनके अतिशय प्रिय हो जाते हैं। यह योग देहका बलवर्द्धक, धर्मकर, यशस्कल्प तथा आयुवर्द्धक होता है। जो निर्बल हो गया है, अथवा रोग शोकादिके द्वारा जिसका शरीर जोर्ण हो गया है, उसे शरीर क्षयकी रक्षाके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना निहायत जरूरी है। वृद्ध व्यक्ति भी वाजीकरणयोग प्रयोग कर शरीरकी सामर्थ्य तथा पटु स्त्रीसे सम्भोग करनेकी शक्ति लाभ करते हैं।

चिन्ता, जरा, व्याधि, बंलेशजनक कर्म, उपवास तथा अतिरिक्त स्त्रीसङ्गमादि द्वारा देहका शुकक्षय होता है। इस कारण देहका बल और शुकक्षय निवारणके लिये वाजीकरणयोग सेवन करना विधेय है। जिससे पुण्यको स्त्री-सङ्गम-विषयमें अश्वकी तरह शक्ति और अतिशय शुक उत्पन्न होता है, उसे वाजीकरण कहते हैं।

यदि अतिरिक्त स्त्रीसङ्गम किया जाय अथवा वाजीकरण औषध सेवन न किया जाय, तो ग्लानि, कम्प, अवसन्नता, श्याता, इन्द्रियदीर्घत्व, उषर, शोष, उच्छ्वास, वपदंश, उषर, अर्श, धातुकी क्षीणता, वायुपकोप, हृष्यता,

ध्वजमङ्ग, और स्त्रीकी अप्रियता यह सब घटना घटती है। इसलिये इन सबोंका उपक्रम होनेसे वाजीकरणका सेवन करना नितान्त आवश्यक है।

जो सव द्रव्य मधुर, स्निग्ध, आयुष्कर, धातुपोषक, गुरु और चित्तका बाह्यलादजनक है, उसे वृष्य या वाजीकरणयोग कहते हैं। उड़को घोंमें भून कर दूधमें सिद्ध करके चीनीके साथ खानेसे रतिशक्ति बढ़ती है। शतमूली दो तोला, दूध एक पाव, जल एक सेर, शेष एक पाव यह पीनेसे भी रतिशक्ति वृद्धि होती है। क्षुद्र सिमुलका मूल और तालमूली एकत्र चूर्ण कर घों और दूधके साथ व्यवहार करनेसे वाजीकरण होता है। भूमिकुष्माण्डके मूलका चूर्ण, घों, दूध या बहडुगुरके रसके साथ खानेसे वृद्ध व्यक्ति भी युवाकी तरह सामर्थ्यवान् होता है। आमलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें सात बार भावना दे कर घों और मधुके साथ सेवन करके पीछे आध पाव गायका दूध पीनेसे वीर्य बढ़ता है।

अत्यन्त उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल, क्षार, शाक वा अधिक लवण खानेसे वीर्यकी हानि होती है। सुतरां वाजीकरणयोग सेवन करनेके समय यह सब द्रव्य बहुत सेवन न करे। पीपलका चूर्ण, सैन्धव लवण, घों और दूधमें सिद्ध करके दोनोंकोप खानेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। विना भूसीका तिल करकेके अण्डकोपके साथ सिद्ध कर दूधमें एक बार भावना दे। पीछे उसे खानेसे अधिक परिमाणमें रतिक्षमता उपजती है। भूमिकुष्माण्डका चूर्ण भूमिकुष्माण्डके रसमें भावना दे कर घृत और मधुके साथ भक्षण करनेसे रतिशक्ति बढ़ती है। आमलकीका चूर्ण आमलकीके रसमें भावना दे कर घों और चीनी या मधुके साथ सेवन करने पर अस्ती वर्षका वृद्ध भी युवाके समान रतिशक्ति-सम्पन्न होता है। भूमिकुष्माण्डका मूल और बहडुगुर एकत्र पेयण करके घों और दूधके साथ खानेसे वृद्ध भी तरुणत्वका प्राप्त होता है। आमलकीके बीज और छत्राक वोजका चूर्ण मधु, चीनी और धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे शुक क्षय नहीं होता। शतमूली और करंजामूलका चूर्ण अथवा सिर्फ करंजामूलका चूर्ण दूधके साथ खानेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। यद्यपि चूर्ण २ तोला घों और मधुके साथ

सेवन कर दूध पीनेसे अतिशय वीर्य वृद्धि होती है। गोक्षूर बीज, छत्राक, शतमूली, आलकुशी बीज, गोपवदशी-बीर बीजबद्धका मूल इन सबोंका चूर्ण अग्निके बला-नुसार उपयुक्त मात्तमें शतकी सेवन करनेसे अतिशय रतिक्रमता उपजती है। सद्यमांस वा मछली खास कर पोडिया मछली घीमें भून कर रोज खानेसे खोसङ्गम करनेसे कमजोरी नहीं मालूम पड़ती।

शतमूलीचूर्ण ५२ सेर, गोक्षूर बीज ५२ सेर, सुधनी ५२॥ सेर, गुलञ्ज ५३ छटाक, मेलाचूर्ण ५४ सेर, चितामूल चूर्ण ५१ सेर, तिल तण्डुल ५२ सेर, मिला कर त्रिकटु चूर्ण ५१ सेर, चीनी ५८॥० सेर, मधु ५४॥ छटाक, घी ५२ छटाक, भूमिकुष्माण्डका चूर्ण ५२ सेर, एकल करके घृतभाण्डमें रचना होगा। इसकी मात्ता २ तोला है। इसका सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग और जरा दूर हो कर बल और वीर्य तथा इन्द्रियशक्ति बढ़ती है। इसका नाम नरसिंहचूर्ण है।

इनके सिवाय गोधूमाद्यघृत, पृहदश्वगन्धादि घृत, गुडकुष्माण्डक, पृहच्छतावरीमोदक, रतिवल्हमोदक, कामानिसन्द्रीपनमोदक, क्षारप्रदीपोक अण्डा-प्रक, ममनथाभ्ररस, मकरध्वजरस, कामिनीमदभञ्जन, हरशशाङ्क, कामधेनु, लक्ष्णालौह, गन्धामृतसरस, स्वर्ण-सिन्दूर, सुसुन्दरी गुडिका, पल्लवसारतैल, श्रोमोपालतैल, मृनसञ्जीवनोसुरा, दशमूलारिष्ट और प्रदनमोदक आदि औषध सेवन करनेसे बल और वीर्यादि वर्द्धित हो कर उत्तम वाजोकरण होता है। इन सब औषधोंको प्रस्तुत प्रणाली उन उन जग्धों और भैषज्यरत्नावलीके वाजोकरणाधिकारमें देखो। इनके अलावे ध्वजभङ्गाधिकारमें जिन सब योग और औषधादिका वर्णन है, वह सब भी वाजो-करणमें विशेष प्रशस्त है। अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश-घृत, धीमदनानन्दमोदक, कामिनी दर्पप्र, सल्लवचन्द्रोदय और पृहदश्वगन्धोदय, मकरध्वज, सिद्धसूत, कामदीपक, सिद्धशात्मलोकलव, पञ्चशर, त्रिकण्टकाद्यमोदक, रसाला, चन्दनादि तैल, पुष्पचन्दा, पूर्णचन्द्र और कामानि-सन्द्रीपन आदि औषध भी-वाजोकरणमें विशेष फल-प्रद हैं।

आतीरल, नागेश्वर, पीपल, कंकोज, माञ्जफल, श्यामा-

लता, कटफल, अनन्तमूल, अगुरु, पच, कचूर, रमि-मस्तकी, जटाभांसी, शिभूलमूल, धी फूल, कटकी, गोक्षूर बीज, मेघो, शतमूली, आलकुशी बीज, छत्राक बीज, पिडवन, धनूरा बीज, पद्म, कुट, उत्पल केशर, यष्टिमधु, चन्दन, जायफल, भूमिकुष्माण्ड, तालमूली, कदली, प्रियंगु, जीवक, ऋषभक, सोंठ, मरिच, त्रिकला, [इलायची, गुड-त्वक्, धनियां, तोपचीनी, हिजलबीज, लवङ्ग, आकरकरा, वाला, कर्पूर, कुंकुम, मृगनाभि, गज्र, सोना, चांदी, सोसा, राँगा, लोहा, होरा, ताँवा, मुका, रससिन्दूर, हरि-ताल इन सबोंके प्रत्येकका समभाग तथा इनकी चौबन्नी भर भङ्गाका चूर्ण और सर्वसमष्टिका अर्द्धक चीनी, चीनी-के बराबर मधु, थोड़ा जल, इन सबोंकी एक साथ मन्द अग्निमें लेईके समान पाक करना होगा। पीछे इसमें थोड़ा घी मिलाना होगा। यह औषध उत्तम वाजोकरण होता है। इसका सेवन करनेसे देहकी पुष्टि और बल-वीर्यादिकी वृद्धि होती है। श्लेच्छ वा यवनोनि यह सुकर औषध निकाली है, इसलिये इसका नाम मोकरवा है।

यह सब वाजोकरण औषध सेवन करनेके बाद उप-युक्त परिमाणमें दूध और ठण्डा जल पी कर प्रफुल्लचिन्त-से इन्द्रिययोगक्रान्ता रससा रमणीके साथ रतिक्रीड़ा करनेसे तनिक भी घातु-वैषम्य उपस्थित नहीं होता। जो नारी सुरूपा, सुवती, सुलक्षणसम्पन्ना, वयस्या और सुशिक्षिता होती है, उसे वृथ्वतमा कहते हैं।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीतसंहिता आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें वाजोकरणाधिकारमें इस योगका सभी विषय लिखा है। अधिक हो जानेके भयसे यहाँ पर कुल नहीं लिखा गया। जिन सब ग्रन्थोंसे एलकी वृद्धि होती है, उन सबोंको गृह्य या वाजोकरण कहते हैं।

जिन सब औषधोंसे शुक्रतारव्य विनष्ट होता है, उनका सेवन करने पर भी वाजोकरणक्रिया सम्पन्न होती है।

वाजोकार्य (सं० क्लो०) वाजोक्रिया, वाजोकरण।

वाजोविधान (सं० क्लो०) सुरतशक्तिवृद्धिकी विधि।

वाजेध्या (सं० स्त्री०) पक्षकी दंति।

वाज्य (सं० पु०) धातव्य गोत्रापत्यं वाज (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।२०५) इति यञ्। वाजका गोत्रापत्य।

वाञ्जय (सं० त्रि०) वञ्ज (अल्पादिभ्यो ङञ् । पा ४।२।८०) इति ङञ् । वञ्जका अदूरभव, वञ्ज पतनके स्थान पर वास करनेवाला ।

वाञ्जनीय (सं० त्रि०) १ चाहनेवाला । २ जिसकी इच्छा हो ।

वाञ्ज्या (सं० स्त्री०) वाञ्ज्यमिति वाञ्जि इच्छायां गुरोश्चेत्यः टाप् । आत्मवृत्तिगुणविशेष, चाह । पर्याय—इच्छा, काञ्छा, स्पृहा, ईहा, तृप्, लिप्सा, मनोरथ, काम, अभिलास, तर्प, आकाञ्छा, कान्ति, अप्रचय, दोहद, अभिलाप, रुक्, रुचि, मति, दोहल, छन्द । सिद्धान्तमुक्तावलीके अनुसार वाञ्ज्या नामक आत्मवृत्ति दो प्रकारकी होती है । एक उपायविषयिणी, दूसरी फलविषयिणी । फल का अर्थ है—सुखकी प्राप्ति और दुःखका न होना । 'दुःखं माभूत् सुखं मे भूयान्' हमें दुःख न हो एवं सुख हो, ऐसी फलविषयिणी जो आत्मवृत्ति है, उसे फलविषयिणी वाञ्ज्या कहते हैं । इस फलेच्छाके प्रति फलज्ञान हो कारण है एवं उपायेच्छाके प्रति इष्टसाधनताज्ञान कारण है, इष्टसाधनताज्ञान न होनेसे वाञ्ज्या नहीं हो सकती । इष्टसाधनताज्ञान अर्थात् मेरा यह कार्य अच्छा होगा यह ज्ञान न होनेसे कार्यकी प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती । हर कामके पहले ही इष्टसाधनताज्ञान हुआ करता है ।

वाञ्जित (सं० त्रि०) वाञ्ज-क्त । अभिलषित, इच्छित, चाहा हुआ ।

वाञ्जित् (सं० लि०) वाञ्जनीय वाञ्ज णिनि । वाञ्जनीय, अभीष्ट ।

वाञ्जिनी (सं० स्त्री०) वाञ्जनीया नारी । पर्याय—लज्जिका, फलवृत्तिका ।

वाट (सं० पु०) वट्यते वेष्ट्यते इति वट-वञ्ज् । १ मार्ग, रास्ता । २ वास्तु, इमारत । ३ मण्डप । वटस्थेदमिति वट-वञ्ज् । (त्रि०) ४ वट-सम्बन्धी । (स्त्री०) ५ मण्डप । वाटक (सं० पु०) वृह, घर ।

वाटघान (सं० पु०) १ एक जनपद । यह काश्मीरके नैऋतकोणमें कहा गया है । नकुलके दिग्विजयमें इसे पश्चिममें और मत्स्यपुराणमें उत्तरदिशामें लिखा है ।

२ ब्राह्मणी माता और वर्णाब्राह्मणया कर्महीन ब्राह्मणसे उत्पन्न एक संकर जाति । (मनु १०।२१)

वाटमूल (सं० त्रि०) वटमूल-सम्बन्धी ।

वाटर (सं० स्त्री०) वटैः वृत्तं (लुश्रामपरटत्पादपादम् । पा ४।३।११६) इति अण् । वटर कर्त्तृक वृत्त, चोर वा शठ कर्त्तृक वृत्त ।

वाटर (अ० पु०) पानी ।

वाटररूप (अ० वि०) जिस पर पानीका प्रभाव न पड़े, जो पानीमें न भोग सके ।

वाटर वषट् (अ० पु०) १ नगरमें पानी पहुंचानेका विभाग, पानी पहुंचानेकी कलका कार्यालय । २ पानी पहुंचानेकी कल, जलकल ।

वाटरशूट (अ० स्त्री०) पानीमें कूद कर तीरनेकी क्रीडा, जलक्रीडा ।

वाटशृङ्खला (सं० स्त्री०) वाटरोधिका शृङ्खला शाक-पार्थिवादिवत् मध्यपदलोपः । पथरोधक शृङ्खला ।

वाटिकपि (सं० पु०) वटाकोरपत्वं पुमान् वटाकुं (वाहवा-दिभ्यश्च । पा ४।१।६६) इति इञ् । वटाकुका गोत्रापत्य ।

वाटिका (सं० स्त्री०) वट्यते वेष्ट्यते प्राचीरादिभिरिति वट वेष्टने संज्ञायामिति ष्वुल् टाप्, अत इत्वं । १ वास्तु, वाटी, इमारत । २ वाग, वगीचा । ३ द्विगुपत्नी ।

वाटा (सं० स्त्री०) वट्यते वेष्ट्यते इति वट वेष्टने घञ्, गौरादित्वात् ङीप् । १ वटवालक, वीजवृक्ष । २ वस्तु, इमारत, घर ।

भवन-निर्माणके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विशेष विशेष विधान है, उनके प्रति विशेष ध्यान रखते हुए निर्माण करना चाहिये । कारण जिस स्थान पर वास करना हो, उस स्थानके शुभाशुभके प्रति ध्यान रखना सर्वतो-भायसे विधेय है । पहले वाटीका स्थान निरूपण करके शल्योद्धारप्रणालीके अनुसार उस वाटीका शल्योद्धार करें । शल्योद्धार किये बिना वाटी तैयार नहीं करना चाहिये । दीव्य यथानियम भूमि छोड़ कर शल्यका अनुसन्धान करें । यदि उस वाटीमें पुरुष परिमित भूमि छोड़ कर भी शल्य नहीं पाया जाय, तो उस वाटीमें मिट्टीका घर बनाये । उसके नीचे शल्य रहने पर भी

कोई दोष नहीं, किन्तु जिस मण्डप में प्रासाद का निर्माण करना हो, उस स्थानको जोदनेसे जब तक जल न निकल जावे तब तक श्राव्य देखना होगा। यदि जल बहिर्गत होने पर्यन्त श्राव्य दिशाई न दे, तब वहां प्रासाद तैयार करने में कोई दोष नहीं है। देवज अच्छो तरह गणना करके देखेंगे, कि श्राव्य किस स्थान पर है, गणना द्वारा स्थान निरूपण करके जोदना आरम्भ करेंगे।

शलयोदार पृष्ठाक्षी शलयोदार शब्दमें देखें।

“गृहारम्भ” करने पर गृहस्वामिके अंगमें यदि अतिशय सुखलाहट पैदा होवे, तो समझना चाहिये, कि इसमें शक्य है। उस समय फिरसे शलयोदारको चेष्टा करनी चाहिये।

“यथात्मनेऽति कण्ड्वतिः सान्म्ये” यदि जल्पे।

शक्यं स्वपनयेत्तत्र प्रागादे भवनेऽपिवा ॥”

(ज्योतिस्तत्त्व)

जहां हाथसे नाप कर घर बनानेकी प्रथा है, वहां वेदुनोये मध्यमंगुलिके अप्रमाण पर्यन्त हाथ मान लेना होता है। “वाटी व्यवस्थाइस्तोऽप्यत्रकफोऽनुपकम मध्यमङ्गुल्यं प्रपठ्यन्तः।” (ज्योतिस्तत्त्व)

भवनके समूचे स्थानमें देवताओंका थोड़ा थोड़ा अग्रहार है। उसमें अट्टाईस भाग प्रेतांका, बीस भाग मनुष्योंका, बारह भाग गन्धर्षोंका एवं चार भाग देवताओंका स्थान निर्दिष्ट है। इन सब भागोंको सिंघर करके, प्रेतका जो निर्दिष्ट अंश है, उसमें गृहादि नहीं बनाना चाहिये। मनुष्यका जो बीस भाग निर्दिष्ट है, उसमें घर बनाना चाहिये, इस स्थान पर बनाये गये गृहादि मङ्गलदायक होते हैं। मण्डपके कोनेमें, अन्तमें या बीचमें घर बनाना उचित नहीं, कारण यह है कि भवन-जनित प्रस्तुत भूमिखण्डके कोनेमें गृहादि निर्माण करनेसे धनहानि, अन्तमें बनानेसे दुष्टमनोंका भय एवं बीचमें घर बनानेसे सर्वनाश हो जाता है।

इसके पूर्व एवं उत्तरकी भूमि क्रमशः ढालवो होनी चाहिये, इन्हीं दोनों दिशाओंसे ही कर जल निकला करेगा। दक्षिण और पश्चिमकी भूमि निम्न करना उचित नहीं। घाटोंके पूर्वकी ओर क्रमशः निम्न भूमि रहनेसे वृद्धि, उत्तरकी ओर होनेसे धन लाभ, एवं पश्चिमकी भूमि

ढालवो होनेसे धन हानि और दक्षिणमें नीची भूमि रहनेसे मृत्यु होता है, अतएव दक्षिण और पश्चिमकी भूमि भूज कर भी ढालवो नहीं करनी चाहिये।

मकानके पूर्व बटवृक्ष, दक्षिणमें उदुम्बर, पश्चिममें पीपल और उत्तरमें छत्र वृक्ष रोपना चाहिये। इन चारों दिशाओंमें इन चार तरहके वृक्षोंका रोपना शुभ है। इनके अतिरिक्त इस भूमिमें जम्बीर, पुग, पनस, आम्रक, केतकी, जातो, सरोज, तगरपत्र, मल्लिका, नारियल, कदली और पाटला वृक्ष लगानेसे गृहस्वर्षोंका मङ्गल होता है। इन सब वृक्षोंके रोपनेमें दिशाका नियम नहीं है। ये सुविधानुसार हर एक दिशामें लगाये जा सकते हैं। दाड़िम, अशोक, पुन्नाग, बिल्व और केशर वृक्ष शुभजनक हैं, किन्तु इसमें रक पुष्पका वृक्ष कदापि लगाना न चाहिये, यह वृक्ष अमंगल-कारक है। इसके अलावे क्षीरो अर्थात् जिस वृक्षसे दूध बहता हो, वह वृक्ष, कंटकी वृक्ष और शादमलि वृक्ष रोपना उचित नहीं, कारण क्षीरो वृक्ष लगानेसे पशुका भय एवं शादमलि वृक्षसे गृहविच्छेद होनेकी सम्भावना रहती है।

भवनमण्डपके किस स्थानमें कौनसा वृक्ष रोपना विहित वा निषिद्ध है, कौन कौन वृक्ष रहनेसे और किस किस वृक्षके निकट शिविर या किला संस्थापन करनेसे फेसा शुभाशुभ होता है तथा किस दिशामें जल रहनेसे मंगल होता है एवं उसके द्वारा, गृहादिके प्रमाण और लक्षणादिके सम्बन्धमें ग्रहपुराणमें इस तरह उल्लेख किया गया है—

श्रीभगवान् कहते हैं—गृहस्वर्षोंके आश्रममें नारियल-का वृक्ष रहनेसे मंगल होता है। यदि यह वृक्ष गृहके ईशानकोणमें या पूर्वकी ओर रहे, तो पुत्र लाभ होता है। तहराज रसाल (आम्र वृक्ष) मन्व प्रकारसे मङ्गलाई और मनाहर होता है। यह वृक्ष पूर्व ओर रहनेसे गृहस्वर्षोंका सम्पत्ति लाभ होता है। इसके अतिरिक्त बिल्व, पनस, जम्बीर और बदरी वृक्ष घाटोंके पीछेकी ओर रहनेसे पुत्रप्रद होते हैं एवं दक्षिणकी ओर रहनेसे वे धन प्रदान करते हैं। जम्बुवृक्ष, दाड़िम, कदली और आम्रातक (आमड़ा) वृक्ष पूर्वकी ओर रहनेसे संयुक्त होते हैं एवं दक्षिणमें रहनेसे मित्तकी संख्या बढ़ाते हैं। गुवाक वृक्ष

दक्षिण तथा पश्चिमकी ओर रहनेसे धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त होती है, ईशानकोणमें होनेसे सुख प्राप्त होता है एवं इसके अलावे वे वृक्ष किसी भी स्थानमें रहनेसे मंगलकारक होते हैं। मकानके सभी स्थानोंमें चम्पक वृक्ष रोपा जा सकता है। यह वृक्ष गृहस्थोंके मंगल करनेवाला है। इनके अतिरिक्त अलाबु, कृष्णाण्ड, मापाम्बु मुकाभुक, कजूर, कर्बेटो, वास्तुक, कारवेल, चार्चोकु और लताफल ये सब वृक्ष शुभप्रद हैं। भवनमण्डपमें रोपे जानेके लिये ये सभी वृक्ष प्रशस्त हैं।

इनके अलावे कितने ही अशुभ वृक्षोंके नाम भी उल्लेख किये जाते हैं, यथा—किसी प्रकारका जंगली वृक्ष ग्राम तथा मकानमें नहीं रहने देना चाहिये। चटवृक्ष शिविर के पास रोपना उचित नहीं, इससे चौरोंका भय रहता है। चटवृक्षके दर्शन करनेसे पूण्य होता है; यह वृक्ष नगरमें लगाना चाहिये। शरवृक्षसे धन और प्रजाका निश्चय क्षय होता है, इस लिये यह वृक्ष शिविरमें लगाना विद्वकुल ही निषेध है; किन्तु हाँ, नगरमें रहनेसे विशेष क्षति नहीं। मूल बात यह है, कि यह वृक्ष ग्राम या शहरमें रोपना निषिद्ध नहीं है, वरं ठीक ही है। चाटीके सम्बन्धमें जो विलकुल ही निषिद्ध है, अभिष्ट व्यक्त उसका त्याग करेंगे। कजूरका पेड़ मकानमें रोपना निषिद्ध है, ग्राम या नगरमें यह वृक्ष लगानेसे हानि नहीं। इन स्थानोंमें यह वृक्ष लगाये जा सकते हैं। चना और धान मंगलप्रद हैं। ग्राम, नगर तथा शिविरमें इशुवृक्षका होना बहुत ही मंगलजनक है। अशोक और हरीतकी वृक्ष ग्राम तथा नगरमें रोपनेसे मंगल होता है। मकानमें आवलेका पेड़ लगाना अशुभ है।

मकानके पास कदम्ब वृक्ष नहीं लगाना चाहिये, किन्तु मकानमें यह वृक्ष रोपना शास्त्रमें शुभजनक कहा गया है। इसके अतिरिक्त मूली, सरसों जाक भी नहीं लगाना चाहिये, ऐसा ही प्रवाद है, किन्तु शास्त्रमें इसका विधि निषेध नहीं देखा जाता।

इस प्रणालीमें वृक्षादि लगा कर, पहले नागशुद्धि स्थिर करके तब गृहादि निर्माण करना चाहिये। नाग वास्तु प्रमाण गाल द्वारा याम पार्श्वमें शयन करता है; भाद्रपद, भाद्रियन और कार्तिक मासमें पूर्वकी ओर,

अग्रहण, पीप और माघ मासमें दक्षिणकी ओर, फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मासमें पश्चिमकी ओर एवं ज्येष्ठ, आषाढ़ और ध्रावण मासमें उत्तरकी ओर शिर करके शयन करता है। गृहारम्भ कालमें यदि नागका मस्तक छोड़ा जाय, तो मृत्यु होती है, गृहमें जांदनेसे पुत्र और भार्याका नाश होता है एवं जंघा छोड़नेसे धन क्षय होता है। किन्तु नागके उद्गार प्राप्तमें छोड़नेसे सभी तरहसे मंगल हो मंगल होता है; इसलिये लोगोंके गृह-निर्माणके समय नागशुद्धिकी ओर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये।

गृहका मूल पूर्व, पश्चिम, उत्तर वा दक्षिण जिस ओर हो अर्थात् गृहका प्रधान दरवाजा जिस ओर किया जाय उसीके अनुसार पूर्व वा उत्तरादि मुख स्थिर करके नागशुद्धिका निर्णय करना चाहिये।

गृह-निर्माण करनेके समय ईशान कोणमें देवता का घर, अग्निकोणमें रसोईघर, नैऋतकोणमें शयनगार एवं वायुकोणमें घनागारका निर्माण करना चाहिये।

नागशुद्धि होने पर भी सभी महानिर्माण नहीं बनाना चाहिये, ज्योतिषिक मास, पक्ष, तिथि तथा नक्षत्र आदि निर्णय कर भवन-निर्माण करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये। वैशाख मासमें गृहारम्भ करनेसे धनरत्न लाभ होता है; ज्येष्ठ मासमें मृत्यु, आषाढ़में धनरत्न एवं ध्रावण मासमें गृहनिर्माण करनेसे काष्ठन तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। भाद्रपद मासमें घर बनाना अशुभ है, आश्विनमें गृह निर्माण करनेसे पत्नीनाश, कार्तिक मासमें धनसम्पत्तिलाभ, अग्रहण मासमें अन्नवृद्धि, पीप मासमें चोरका भय, माघमासमें अग्निभय, फाल्गुन मासमें धनपुत्रादिका लाभ एवं चैत्रमासमें गृह निर्माण करनेसे पीडा होती है। इस नियमसे मासका निर्णय करके नागशुद्धि देखनी होती है। शुक्लपक्षमें गृहारम्भ वा गृहप्रवेश करना चाहिये। कृष्ण पक्षमें गृहारम्भ वा गृहप्रवेश करनेसे चौरोंका भय रहता है। भाद्रपद आश्विन तथा कार्तिक मासमें उत्तर मुखका, अग्रहण, पीप और माघ मासमें पूर्वमुखका, चैत्र और वैशाखमासमें दक्षिण मुखका, ज्येष्ठ, आषाढ़ तथा ध्रावण मासमें पश्चिम मुखका

गृह आरम्भ करना चाहिये। इन सब गहनोंमें इन सब दिशाओंकी नागशुद्धि रहती है। वाटीके प्रधान गृह-विषयमें इस तरह नागशुद्धिका निर्णय करना चाहिये। अग्रधान गृहमें इस तरहकी नागशुद्धि न देखने पर भी काम चले सकता है। इसमें किसी किसीका मत है, कि यदि दिन उत्तम पाया जाय एवं चन्द्र तारादि शुद्ध रहे, तो गृहआरम्भमें मासका दोष नहीं लगता।

सोम, बुध, गृहस्वपति और अनिवारके विशुद्धकालमें (अर्थात् जिस समय गुरु शुक्रकी बाल्यवृद्धास्तजनित कालशुद्धि न रहे) शुक्लपक्षमें युतयामितादिमेघरहित दिनको उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, रेहिणी, पुष्या, भाद्र, अनुराधा, हस्ता, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, मूला, अश्विनी, रैवती, मृगशिरा तथा श्रवणा नक्षत्रमें वज्र, शूल, व्यतीपात, परिघ, गण्ड, अतिगण्ड और विष्कुम्भके अतिरिक्त शुभयोग, शुभतिथि तथा शुभ करणमें गृहकार्य आरम्भ किया जा सकता है। विधि, भद्रा, चन्द्रदग्धा, मासदग्धा प्रभृति, जो साधारण कार्यमें निषिद्ध हैं, उन्हें भी देवना होगा। तिथिके सम्बन्धमें एक विदोषता यह है, कि पूर्णिमासे ले कर अष्टमी पर्यन्त पूर्व मुखका, नवमीसे लेकर चतुर्दशी पर्यन्त उत्तर-पूर्वका, अमावस्यासे ले कर अष्टमी पर्यन्त पश्चिम मुखका तथा नवमीसे ले कर शुक्ल चतुर्दशी पर्यन्त दक्षिण मुखका गृह आरम्भ नहीं करना चाहिये। यह अत्यन्त निषिद्ध है।

निम्नोक्त काष्ठ द्वारा गृहद्वार तथा कपाट तैयार नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है। क्षीरवृक्षोद्भय दाह, (अर्थात् जिस वृक्षसे लासा या गोंद निकलता हो) जिम वृक्ष पर चिड़िया वास करती हो, जो वृक्ष आँधीसे उमड़ कर गिर गया हो वा जिस वृक्षमें आग लग गई हो, ऐसे वृक्षका काष्ठ गृहमें लगाना उचित नहीं। इसके अलावे हाथी द्वारा भय, वज्रमय, चैत्य तथा देवालपोत्पन्न श्वशानजात, देवाधिष्ठित काष्ठ भी गृहकार्यमें वर्जनीय हैं। कदम्ब, निम्ब, विभीतकी, प्लक्ष और आत्मलीवृक्षके काष्ठ भी गृहकार्यमें प्रयोग नहीं करना चाहिये। इन सब वृक्षोंके अतिरिक्त साल या साखूवृक्ष द्वारा गृहादिके कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं।

गृहमें एङ्गमें जब मिट्टीका घर बनाना हो, तब जिस स्थान पर घर बनाना है, उस स्थानके ईशानकोणसे काटीगरके चारो कोनोंमें चार खूँटे गाड़ने चाहिए। किन्तु जिस स्थान पर ईंटका मकान बनाना हो, वहाँ अग्निकोणमें स्तम्भ खड़ा करना पड़ता है। इस प्रकार स्तम्भ वा सूत्र दोनों ही स्थानों पर यथाविधान पूजादि करना आवश्यक है।

गृहस्थोंको मकानमें कचूर, मयूर, शुक और सारिका पक्षा पोसना चाहिये; इन पक्षियोंसे गृहस्थोंका मंगल होता है।

भवनमण्डपमें हाथीकी हड्डी एवं घोड़ेकी हड्डीका रहना मंगलजनक है। किन्तु अन्यान्य जन्तुओंकी हड्डी रहनेसे अमंगल होता है। बन्दर, मनुष्य, गाय, गधे, कुत्ते, बिल्लो, भेड़ किंवा सूअर इन सब जन्तुओंकी हड्डियाँ अमंगलकारक होता है।

शिविर वा वासस्थानके ईशानकोणमें पोछेकी और अथवा उत्तरकी ओर जल रहनेसे मंगल होता है, इनके अलावे और-किसी ओर जल रहनेसे अशुभ फल होता है। अभिशय्यकि गृह वा निकेतन-निर्माण करनेके समय उसको लम्बाई चौड़ाई समान न करे। गृहके चौकोन होनेसे गृहस्थोंके धनका नाश अथव्ययमायी है। गृहकी लम्बाई अधिक, चौड़ाई उसकी अपेक्षा कम होना ही उचित है। लम्बाई चौड़ाई क्रमां वेगी करनेके समय मापके परिमाणमें जिससे शून्य न पड़े, इसका ध्यान रखना चाहिये अर्थात् उनके मापके परिमाण दश, घोस तीस न हो। कारण इसमें यदि शून्य पड़ेगा, तो गृहस्थोंके शुभ फलके समय भी शून्य ही आ उपस्थित होगा।

गृह या चहारदीवारोंके दरवाजेकी लम्बाई तीन हाथ एवं चौड़ाई-कुछ कम अर्थात् दो होनेसे शुभ होता है। गृहके डीक मध्यस्थलमें द्वार निर्माण करना उचित नहीं। घोड़ा न्यूनाधिक होनेसे ही मंगल होता है।

चौकेन शिविर चन्द्रवेध होनेसे ही मंगलजनक होता है। सूर्यवेध शिविर अमंगलकर है। शिविरके मध्यभागमें तुलसीका पीयां रोपना उचित है, उससे धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त होती है, शिविरके

दक्षिण तथा पश्चिमकी ओर रहनेसे धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त होती है, ईशानकोणमें होनेसे सुख प्राप्त होता है एवं इसके अलावे ये वृक्ष किसी भी स्थानमें रहनेसे मंगलकारक होते हैं। मकानके सभी स्थानोंमें चम्पक वृक्ष रोपा जा सकता है; यह वृक्ष गृहस्थोंके मंगल करनेवाला है। इसके अतिरिक्त अलाबु, कुम्भाएड, मायाम्बु कुकाभुक, खजूर, कर्बंटी, घास्तुक, कारयेल, वासार्कु और लताफल ये सब वृक्ष शुभप्रद हैं। भवनमण्डपमें रोपे जानेके लिये ये सभी वृक्ष प्रशस्त ।

इनके अलावे कितने ही अशुभ वृक्षोंके नाम भी उल्लेख किये जाते हैं, यथा—किसी प्रकारका जंगली वृक्ष प्राम तथा मकानमें नहीं रहने देना चाहिये। घटवृक्ष शिविर के पास रोपना उचित नहीं; इससे चोरोंका भय रहता है। घटवृक्षके दर्शन करनेसे पूष्य होता है; यह वृक्ष नगरमें लगाना चाहिये। शरवृक्षसे धन और प्रजाका निश्चय क्षय होता है, इस लिये यह वृक्ष शिविरमें लगाना विनकुल ही निषेध है; किन्तु हाँ, नगरमें रहनेसे विशेष क्षति नहीं। मूल बात यह है, कि यह वृक्ष प्राम वा शहरमें रोपना निषिद्ध नहीं है, चरं टोक ही है। चाटीके सम्बन्धमें जैा विलकुल ही निषिद्ध है, अभिष्ट व्यक्ति उसका त्याग करे। खजूरका पेड़ मकानमें रोपना निषिद्ध है, प्राम वा नगरमें यह वृक्ष लगानेसे हानि नहीं। इन स्थानोंमें यह वृक्ष लगाये जा सकते हैं। चना और घान मंगलप्रद हैं। प्राम, नगर तथा शिविरमें इक्षुवृक्षका होना बहुत ही मंगलजनक है। अजोक और हरांतकी वृक्ष प्राम तथा नगरमें रोपनेसे मंगल होता है। मकानमें भायलेका पेड़ लगाना अशुभ है।

मकानके पास कदम्ब वृक्ष नहीं लगाना चाहिये, किन्तु मकानमें यह वृक्ष रोपना शास्त्रमें शुभजनक कहा गया है। इसके अतिरिक्त मूली, सरसीं जाक भी नहीं लगाना चाहिये, ऐसा ही प्रवाद है, किन्तु शास्त्रमें इसका विधि निषेध नहीं देखा जाता।

इस मणालीसे घृष्टादि लगा कर, पहले नागशुद्धि स्थिर करके तब गृहादि निर्माण करना चाहिये। नाग चाहेतु प्रमाण मात्र द्वारा वाम पार्श्वमें जयन करता है, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक मासमें पूर्वकी ओर,

अग्रहण, पीप और माघ मासमें दक्षिणकी ओर, फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मासमें पश्चिमकी ओर एवं ज्येष्ठ, आषाढ और धावण मासमें उत्तरकी ओर शिर करके जयन करता है। गृहारम्भ कालमें यदि नागका मुस्तक छोड़ा जाय, तो मृत्यु होती है, पृष्ठमें छोड़नेसे पुत्र और भायोंका नाश होता है एवं जंघा चोड़नेसे धन क्षय होता है। किन्तु नागके उग्र प्रातमें छोड़नेसे सभी तरहसे मंगल ही मंगल होता है; इसलिये लोगोंका गृह-निर्माणके समय नागशुद्धिकी ओर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये।

गृहका मुख पूर्व, पश्चिम, उत्तर वा दक्षिण जिन ओर हो अर्थात् गृहका प्रधान दरवाजा जिस ओर किया जाय उसीके अनुसार पूर्व वा उत्तरदि मुख स्थिर करके नागशुद्धिका निर्णय करना चाहिये।

गृह-निर्माण करनेके समय ईशान कोणमें श्वेता का घर, अग्निकोणमें रसांशुघर, नैऋतकोणमें शयनागार एवं वायुकोणमें घनागारका निर्माण करना चाहिये।

नागशुद्धि होने पर भी सभी महोत्सवों पर नहीं वनाना चाहिये, उषातिपेक मास, पशु, तिथि तथा नक्षत्र आदि निर्णय कर भवन-निर्माण करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये। वैशाख मासमें गृहारम्भ करनेसे धनरत्न लाभ होता है; ज्येष्ठ मासमें मृत्यु, आषाढमें धनरहन एवं धावण मासमें गृहनिर्माण करनेसे काञ्चन तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। भाद्रपद मासमें घर बनाना अशुभ है, आश्विनमें गृह निर्माण करनेसे पक्षीनाश, कार्तिक मासमें धनसम्पत्तिनाश, अग्रहण मासमें अज्ञवृद्धि, पीप मासमें चोरका भय, माघमासमें अग्निभय, फाल्गुन मासमें धन-पुत्रादिका लाभ एवं चैत्रमासमें गृह निर्माण करनेसे गीड़ा होता है। इस नियमसे मासका निर्णय करके नागशुद्धि देखनी होती है। शुक्रपक्षमें गृहारम्भ वा गृह-प्रवेश करना चाहिये। कृष्ण पक्षमें गृहारम्भ वा गृहप्रवेश करनेसे चोरोंका भय रहता है। भाद्रपद आश्विन तथा कार्तिक मासमें उत्तर मुखका, अग्रहण, पीप और माघ मासमें पूर्वमुखका, चैत्र और वैशाखमासमें दक्षिण मुखका, ज्येष्ठ, आषाढ तथा धावण मासमें पश्चिम मुखका

गृह आरम्भ करना चाहिये। इन सब महीनोंमें इन सब दिशाओंकी नागशुद्धि रहती है। वाटीके प्रधान गृह-विषयमें इस तरह नागशुद्धिका निर्णय करना चाहिये। आम्रधान गृहमें इस तरहकी नागशुद्धि न देखने पर भी काम चल सकता है। इसमें किसी किसीका मत है, कि यदि दिन उत्तम पाया जाय एवं चन्द्र तारादि शुद्ध रहें, तो गृहआरम्भमें मासका दोष नहीं लगता।

सोम, बुध, गृहस्वपति और शनिवारको विशुद्धकाल-में (अर्थात् जिस समय गुरु शुक्रको बाल्यवृद्धास्तजनित कालशुद्धि न रहे) शुक्लपक्षमें युतयोमितादिनेष्वरहित दिनको उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, रेहिणी, पुष्या, भाद्रा, अनुराधा, हस्ता, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, मूला, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा तथा श्रवणा नक्षत्रमें वज्र, शूल, व्यतीपात, परिध, गण्ड, अतिगण्ड और विष्कम्भके अतिरिक्त शुभयोग, शुभतिथि तथा शुभ करणमें गृहकार्य आरम्भ किया जा सकता है। विधि, भद्रा, चन्द्रदशा, मासदशा प्रभृति, जो साधारण कार्यमें निषिद्ध हैं, उन्हें भी देवता होगा। तिथिके सम्बन्धमें एक विशेषता यह है, कि पूर्णिमासे लेकर अष्टमी पर्यन्त पूर्व मुखका, नवमीसे लेकर चतुर्दशी पर्यन्त उत्तर-पूरुषका, अमावस्यासे लेकर अष्टमी पर्यन्त पश्चिम मुखका तथा नवमीसे लेकर शुक्ल चतुर्दशी पर्यन्त दक्षिण मुखका गृह आरम्भ नहीं करना चाहिये। यह अत्यन्त निषिद्ध है।

निम्नोक्त काष्ठ द्वारा गृहद्वार तथा कपाट नैवार नहीं करना चाहिये, करणसे अशुभ होता है। क्षीरिगृहोद्भव दाह, (अर्थात् जिस वृक्षसे लासा या गोई निकलना हो) जिम वृक्ष पर चिड़िया वास करती हो, जो वृक्ष आँधीसे उल्टा कर गिर गया हो वा जिस वृक्षमें बाग लग गई हो, ऐसे वृक्षका काष्ठ गृहमें लगाना उचित नहीं। इसके अलावे हाथी द्वारा भन, वज्रमान, चैत्य तथा देवालयोद्भव शमशानजात, देवाद्यधिष्ठित काष्ठ भी गृहकार्यमें बर्जनीय हैं। कदम्ब, निम्ब, विभीतकी, प्लक्ष और शालमलीवृक्षके काष्ठ भी गृहकार्यमें प्रयोग नहीं करना चाहिये। इन सब वृक्षोंके अतिरिक्त साल वा साखूवृक्ष द्वारा गृहादिके कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं।

गृहमण्डपमें जयमिट्टी का घर बनाना हो, तब जिस स्थान पर घर बनाना है, उस स्थानके ईशानकोणसे कारीगरके चारो कोनोंमें चार खूँटे गाड़ने चाहिये। किन्तु जिस स्थान पर ईंटका मकान बनाना हो, वहाँ अग्निकोणमें स्तम्भ खड़ा करना पड़ता है। इस प्रकार स्तम्भ वा स्तूल दोनों ही स्थानों पर यथाविधान पूजादि करना आवश्यक है।

गृहस्थोंको मकानमें कबूतर, मयूर, शुक और सारिका पक्षा पोसना चाहिये; इन पक्षियोंसे गृहस्थोंका मंगल होता है।

भवनमण्डपमें हाथीकी हड्डी एवं घोड़ेकी हड्डीका रहना मंगलजनक है। किन्तु अन्यान्य जन्तुओंकी हड्डी रहनेसे अमंगल होता है। बन्दर, मनुष्य, गाय, गधे, कुत्ते, बिल्ली, भेड़ किंवा सूअर इन सब जन्तुओंकी हड्डियाँ अमंगल-कारक होता है।

गिरि वा वासस्थानके ईशानकोणमें पीछेकी ओर अधया-उत्तरकी ओर जल रहनेसे मंगल होता है, इनके अलावे और किसी ओर जल रहनेसे अशुभ फल होता है। अग्निशय्यकी गृह वा निकेतन-निर्माण करनेके समय उसको लम्बाई चौड़ाई समान न करे। गृहके चौकोन होनेसे गृहस्थोंके धनका नाश अवश्यम्भावी है। गृहको लम्बाई अधिक, चौड़ाई उसकी अपेक्षा कम होना ही उचित है। लम्बाई चौड़ाई क्रमो वेगी करनेके समय मापके परिमाणमें जिससे शून्य न पड़े, इसका ध्यान रखना चाहिये अर्थात् उनके मापके परिमाण दश, घीस तीस न हो। कारण इसमें यदि शून्य पड़ेगा, तो गृहस्थोंके शुभ फलके समय भी शून्य ही था उपस्थित होगा।

गृह या चहारदीवारीके दरवाजेकी लम्बाई तीन हाथ एवं चौड़ाई कुछ कम अर्थात् दो होनेसे शुभ होता है। गृहके डीक मध्यस्थलमें द्वार निर्माण करना उचित नहीं। धोड़ा न्यूनाधिक होनेसे ही मंगल होता है।

चौकोन शिवर बन्दरवेध होनेसे ही मंगलजनक होता है। सूर्यवेध शिवर अमंगलकर है। गिरिके मध्यभागमें तुलसीका पीघा रोपना उचित है, उससे धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त होती है, शिवरके

स्वामीको पुण्य होता है एवं हृदयमें हरिभक्तिका संचार होता है। प्रातःकाल तुलसीवृक्षके दर्शनसे स्वर्णदान करनेका फल प्राप्त होता है। गिबिर वा वासस्थानके मध्य निम्नोक्त पुष्पादि द्वारा उद्यान तैयार कर लेना कर्त्तव्य है। यथा—मालती, यूथिका, कुन्द, माधवी, फेंकी, नागेश्वर, मल्लिका, काञ्चन, चकुल, और अपराजिता। शुभाशुभ पुण्योका उद्यान पूर्व तथा दक्षिणकी ओर लगाना चाहिये। इससे गृहस्थोका शुभ-समागम अवश्यभावी है।

गृहस्था लोग सोलह हाथ ऊंचा गृह एवं बीस हाथ ऊंचा प्राकार तैयार नहीं करें। इस नियमके व्यतिक्रमसे अशुभ फल मिलता है। मकानके निकट बर्दई, तैली वा सोनार प्रभृतिके बसाना ठीक नहीं। दूरदर्शी गृहस्था यथासाध्य ग्राममें भी इन लोगोंको बसाने न देंगे। गिबिरके निकट ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऊँचे शूद्र, गणक, भट्ट, वैद्य किंवा मालीको ही बसाना चाहिये।

गिबिर वा किलेकी छाई सी टाथकी होनी चाहिये एवं गिबिरके पास ही रहनी चाहिये। उसको गहराई दश हाथसे कम होना ठीक नहीं। इसके द्वारा सांकेतिक होना जरूरी है। येसा सांकेतिक द्वारा बनना चाहिये जो शत्रुओंके लिये गम्य, किन्तु मित्रोंके लिये सुगम हो।

शालमली, तिमिडू, हिमताल, निम्ब, सिन्धुवार, ऊड़ू-श्वर, घुस्तूर, घट किंवा परंड, इन सब वृक्षोंके अतिरिक्त और सब वृक्षोंके काष्ठ गिबिरमें लगायेंगे। यज्ञहृत वृक्ष गिबिर वा वासस्थानमें रखना उचित नहीं, उससे स्त्री, पुत्र और गृह सभीका नाश हो जाता है।

(ब्रह्म० पु० हृष्यजन्मलं० १०२-५०)

नया मकान तैयार होने पर वास्तु याग करके उसमें प्रवेश करना चाहिये। वास्तु यागमें असमर्थ होने पर यथाविधान गृहमें प्रवेश करना सुक्तिसंगन है।

वास्तुयागका विषय वास्तुयागशब्दमें देखो।

हृदयतत्त्वमें गृहप्रवेश करनेकी विधि इस प्रकार निर्दिष्ट है—गृहप्रवेशमें जिस तरह पूजादि करनी पड़ती है, गृहप्रवेशमें भी उनी तरह करनी चाहिये।

शुभ दिनमें जिस दिन गृहमें प्रवेश करना हो, उस

दिन गृहस्वामी प्रातःकाल प्रातःक्रिया तथा छानादि समापन करके यथाशक्ति ब्राह्मणकी काञ्चनादि दान करे। इसके बाद गृहप्राङ्गणमें द्वारके सामने एक जलपूर्ण कुम्भ स्थापन करना चाहिये। इस कुम्भके गालमें दधि लगा कर ऊपर आध्रपल्लव और फल पुष्पादि रखना होता है। गृहस्वामी नये घल तथा पुष्पमाल्यादिसे भूषित हो कर एवं पत्नीको बाईं ओर ले कर उस कुम्भके मस्तक पर धानसे भरा हुआ सूप रखे। इसके बाद गोपुच्छ स्पर्श करके नये गृहमें प्रवेश करे।

पीछे मामर्थ्य होने पर यथाविधान गृह-प्रवेशोक्त पूजादि स्वयं करे। असमर्थ होने पर पुरोहित द्वारा पूजादि करावे। व्यवहार है, कि इस समय गृहिणी नये गृहमें प्रवेश करके नये पात्रमें दूध उवाळती है, यह दूध उवाळ कर गृहमें गिर जाता है।

गृहप्रवेशमें पूजापद्धति—पुरोहित स्वस्तिवाचन करके संकल्प करे। ॐ अघोत्यादि नवगृहप्रवेशनिमित्तिक वास्तुदोषोपशमन कामः वास्तु पुजनमहं करिष्ये। इस तरह संकल्प और तत्सूक्त पाठ कर यथाविधि घट-स्थापनादि करके स्वामी पूजा करे। शालग्रामकी भी पूजा की जा सकती है। पहले नवगृह तथा गणेशादिकी प्रणवादि नमोस्त द्वारा पूजा करके निम्नोक्त श्रेणणकी पूजा करनी चाहिये। 'ॐ गणेशाय नमः' इत्यादि रूपसे पूजा करनी होती है, पीछे इन्द्र, सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक, शनिश्चर, राहु, केतु, और इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद क्षेत्रपाल समूह, क्रूरप्रहसमूह तथा क्रूर भूत समूहकी पूजा करेगे। ॐ क्षेत्रपालेभ्यो नमः ॐ भूत-क्रूरभूतेभ्यो नमः ॐ क्रूरभूतेभ्यो नमः इस तरह पूजा करनी पड़ती है। इसके पश्चात् प्रसादा वास्तुपुत्रय, गिन्धी, ईदा, पृथ्वी, जयन्त, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, अग्नि, पूषा, वितथ, प्रह्वनक्षत्र, यम, गन्धर्व, मृग, वित्तगण, दीवारिक, सुमीय, पुत्रदन्त, वरुण, शैव, पाप, रोग, महि, मूष्य, विश्वकर्मा, महाद्, श्री, द्विज, पाप सायित, विषसक्त, इन्द्रात्मज, मिल, यद्र, राजयक्ष्मन्, पृथ्वीधर, ब्रह्मण, चरकी, विदारी, पूतना, पापराक्षसी, सरुम्, अर्पमा और विलपिञ्जकी पूजा करके ॐ नमस्ते वृद्धकाय विरणये

परमात्मने स्वाहा' मन्त्र द्वारा विष्णुकी पूजा की जाती है। इसके बाद श्रीवासुदेव और पृथ्वीकी करनी होती है।

इस प्रकार पूजा करके स्वर्गलोक विधि द्वारा शाल-होम करना पड़ना है। इसके उपरान्त दक्षिणान्त तथा अग्निद्रावधारणादि करके कार्य शेष करना चाहिये। पीछे ब्राह्मणभोजन तथा समर्थ होने पर आत्मीय स्वज-नादिकी भोजन करना चाहिये।

वाटीदीर्घ (सं० पु०) वाट्यां वास्तुभूमौ दीर्घः सर्वोच्च-त्वात् । इत्कटवृक्ष ।

वाट्टक (सं० क्लो०) भृष्ट यव, भुजा हुआ जी ।

वाट्टदेव (सं० पु०) एक राजाका नाम ।

(राजतर० ७ १३३)

वाट्य (-सं० क्लो०) वाट्यालक, बला, धरियारा ।

वाट्यक (सं० क्लो०) भृष्ट यव, भुजा हुआ जी ।

वाट्यपुष्प (सं० क्लो०) १ चन्दन । २ कुङ्कुम, केशर ।

वाट्यपुष्पिका (सं० क्लो०) वाट्यपुष्पी, बला ।

वाट्यपुष्पी (सं० क्लो०) वाट्यं वाट्यां साधुवेष्टनीयं वा पुष्पं यस्याः गौरादित्वात् ङीप् । वाट्यालक, बला, बीजवृक्ष ।

वाट्यमण्ड (सं० पु०) यवमण्डविशेष, बिना भूमी या छिलकके दले हुए जीका मण्ड । एक भाग दले हुए जीकी चांगुने पानीमें पकानेसे वाट्यमण्ड बनता है। वैद्यकमें यह हल्का, खचिकर, दीपन, हृद्य तथा पिच, -श्लेष्मा, मायु और आनाहनाशक कहा गया है।

वाट्या (सं० क्लो०) यद्यते वेष्टते इति यट-वेष्टने ण्यत् यद्वा वाट्यां वास्तुप्रदेशे हिता, वाटी यत् टाप् । -वाट्यालक, बीजवृक्ष ।

वाट्यापनी (सं० क्लो०) श्वेत वाट्यालक, -सफेद बीजवृक्ष । (चरकसू० ४ अ०)

वाट्याल (सं० पु०) वाटी-अलनि भूयतेति अल्-अण् । वाट्यालक, बीजवृक्ष ।

वाट्यालक (सं० पु०) वाट्याल एव स्वार्थे कन्, वाटी अलति भूयतेति अल्-णुल् वा । १ धरियारा, बीज-वृक्ष । प्रयाग—जीतपाकी, वाट्या, मद्रादनी, बला, वाटी, विनय, वाट्याली, वाटिका । २ पीनपुष्पबला, पीला बीजवृक्ष ।

वाट्यालिका (-सं० क्लो०) लघु वाट्यालक, छोटा धरियारा ।

वाट्याली (सं० क्लो०) वाट्याल गौरादित्वात् ङीप् । वाट्यालक, बीजवृक्ष ।

वाङ् (सं० पु०) धातुनामनेकार्थत्वात् वाङ्-वेष्टने भावे घञ् । वेष्टन, घेठन ।

वाङ्भीकार (सं० पु०) यङ्भीकारवंशोय एक वैयाकरण-का नाम । (अथर्वशां० ३२६)

वाङ्भीकार्य (सं० पु०) वाङ्भीकारवंशोद्भव । (पा ४।२।१५१)

वाङ्घ (सं० पु०) वाङ् यज्ञान्तःस्नानं वाति प्राप्नोति वाङ्-वा-क । १ ब्राह्मण । यङ्घवायां घोटक्यां जाता यङ्घा-अण् । २ यङ्घवानल । पर्याय—शौर्व्व, सर्वरंक, अर्घ्याग्नि, यङ्घामुख । ३ यङ्घामसूद, घोड़ियोंका झुण्ड । (त्रि०) ४ यङ्घा-सम्बन्धी ।

वाङ्घवर्ष (सं० क्लो०) उत्तरमें स्थित एक गांव । (पा ४।२।१०४)

वाङ्घहरण (सं० क्लो०) घोड़ी ले कर भागना । वाङ्घहारक (सं० पु०) यङ्घवा अपहरणकारी, यह जो घोड़ी चुराता हो ।

वाङ्घहार्य (सं० क्लो०) यङ्घाहृत क्रीतदासका कार्य ।

वाङ्घाग्नि (सं० पु०) १ समुद्रके अन्दरकी भाग । २ समुद्री भाग, यह भाग जो समुद्रमें दिखाई देती है ।

वाङ्घाग्निरस (सं० पु०) म्घौल्याधिकारमें रसौपध-विशेष । इसके बनानेकी तरिका—विशुद्ध पाण, गंधक, ताँवा और हरताल इगका बराबर बराबर भाग ले कर आकके दूधमें एक दिन मई न करके गुंजा भरकी गोली बनावे । यह औपध मधुके साथ चाटनेसे हृद्योत्प्रेरण प्रशमित होता है ।

वाङ्घवानल (सं० पु०) यङ्घवानल, वाङ्घाग्नि ।

वाङ्घवेय (सं० क्लो०) यङ्घवा (यवादिभ्यो ढक् । पा ४।२।१०) इति ढक् । यङ्घवानल, यङ्घा-सम्बन्धी ।

वाङ्घ्य (सं० क्लो०) वाङ्घवानां समूहः (ब्राह्मणभावन-शाब्धान्त) पा ४।२।४२ इति समूहार्थे यन् । वाङ्घ्य-समूह, घोड़ियोंका झुण्ड ।

वाङ्घीपुत्र (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम ।

वाङ्मय (सं० पु०) वङ्मयसका पुत्र । (संस्कृत० ५।१३५)
 वाङ्मय (सं० पु०) एक ऋषिका नाम । (शं ३।३।१८६)
 वाङ्मय (सं० अर्थ०) अक्षय, वस, बहुत हो चुका ।
 वाङ्मयिक (सं० लि०) अतिशक्तिसम्पन्न, बड़ा बल-
 वान् ।

वाण पु०) वाणः शब्दस्मदस्यास्तीति वाण अच् । १
 अत्रविशेष । धनुर्वेदमें इसका विवरण लिखा है, कि वाण
 किस तरहका अच्छा होता है और उसमें युद्ध किया जा
 सकता है, पहले गंत्यनुसार धनुष तैयार कर पीछे वाण
 तैयार करना चाहिये । सुलक्षणांश्चैत शरोके अग्रभागमें जो
 लोहेका फला होता है, उसे वाण कहते हैं । वाण लोहेका
 बगता है । शुद्ध, बज्र और दान्त आदि कई तरहके लोहा
 होते हैं, इनमें बड़ा और शुद्ध लोहेसे ही अग्र तैयार किये
 जाते हैं, विन्तु वाण शुद्ध लोहेका बने तो अच्छा होता
 है । इन शुद्ध लोहेसे कई तरहका फला तैयार होता है ।
 जिस फलाका तेज (घार), तीक्ष्ण और क्षतरहित बनाना
 हो, तो उसमें बज्र लेप करना चाहिये । फला पक्ष प्रमाण
 विशिष्ट बना कर पीछे लक्षणाक्रान्त शरमें जोड़ना पड़ता
 है । यह फला कई तरहके होते हैं । आरामुल, क्षूरप्र, गो-
 पुच्छ, अर्द्धचन्द्र, सुख्यप्रमुख, माला सद्गुण, घटसहस्र,
 द्विमल्ल, कर्णिक और काकुण्टुब इत्यादि बहुत तरहके नाम
 और विभिन्न देशोंमें विभिन्न प्रकारके फला शय्या
 किये जाते हैं ।

फलाके आकारगत जो घैलक्षण्य विषय निर्दिष्ट हुआ
 है, वह केवल दिवानेके लिये नहीं, उससे किनने ही काम
 होते हैं । आण्मुख नामक वाणसे मर्मभेद किया जाता है,
 अर्द्धचन्द्रवाणसे प्रतिस्पर्द्धी योद्धाका शिर काटा जा सकता
 है और आण्मुख तथा मूचाप्रमुख वाणसे ढालको फाड़ा
 जा सकता है । कार्मुक काटनेके लिये क्षूरप्र वाण,
 हृदय पिद्ध करनेके लिये मल्ल (माला) और धनुषका
 गुण और आनेवाले शरोंको काटनेके लिये द्विमल्ल नामक
 वाण प्रशस्त है । काकुण्टुबका फलासे तीन अंगुल
 परिमित लीढ़ विद्ध किया जा सकता है और लीढ़-
 कण्ठप्रमुखवाणसे तीन अंगुल गहरा घाय किया जा
 सकता है ।

फला प्रस्तुत करनेके समय उत्तम रूपमें पानी देना

पड़ता है । काटने मारने आदि बहुतरे कार्योंके लिये
 उपयुक्त बहुत तरहके फला तय्यार कर उनमें अत्रविधा-
 के अनुसार पानी देना पड़ता है । पानीसे ही शरोंके
 सुन्दर घार शोर वे मजबूत होते हैं । फलामें पानी देने-
 का तरीका बड़े शारङ्गधरने इस तरह बताया है—उत्तम
 औषध लेप कर जिस तरह फल पर पानी देनेका विधान
 है, उसी विधानके अनुसार पानी चढ़ा कर फला तय्यार
 किया जाये, तो उससे दुर्भेद्यलीढ़ मो काटा जा सकता
 है । पीपल, नमक (सेन्धा) और कुड ये सब अच्छे तरह
 गोमूलमें मिला कर फला पर लेपना चाहिये । इन
 लेप कर फलाको आगमें गर्म कर देना चाहिये । पीछे
 जब यह लाल हो जाये, तो आगसे निकाल ले और ललाई
 दूर हो जाने पर फिर उत्तम ही अवस्थामें तेलमें डुबा दे ।
 इस प्रणालीसे पानी चढ़ाने पर बहुत अच्छा वाण
 तय्यार होता है ।

दूसरी तरकीब—सरसों और शब्द अच्छी तरह पीस
 कर फला पर लेप कर उसे प्रज्वलित अग्निमें डाल दे ।
 जब आगमें उस पर मोरपंखकी तरहका रंग दिखाई दे,
 तब आगसे इसे निकाल जलमें डुबा देनेसे यह फला
 बहुत तीक्ष्णधारयुक्त और मजबूत होता है ।

घृहसंहितामें लिखा है, कि घोड़ी, ऊँटनी तथा
 हथिनोके दूधसे पानी चढ़ाने पर फलाको घार तेज होती
 है । मिठा इसके मछलीके पिच्छ, हरिणीका दूध, कुतिया-
 का दूध और बकरीका दूध द्वारा पानी चढ़ाने पर उस
 वाणसे हाथीका सूँठ मो काटा जा सकता है । कम्बुकी
 गोद, हुड्डटङ्गाका अङ्गार, कयूतर और चूरेका विट इन
 सबोंको एकमें मिला कर पोसना चाहिये फिर फलामें
 लेप कर आगमें तया देना चाहिये । बीच बीचमें इन
 पर तेल दिया जाय, गो और अच्छा हो । ऐसा करनेसे वाण
 तेज धरयाला और मजबूत होता है । इस तरह लोहेसे
 पानी चढ़ा कर वाण तैयार करना चाहिये । यह वाण
 जिन शरमें बढाया जाता है, उमका वृत्तान्त इस तरह
 लिखा है—

शर (वृणविशेष) बहुत मोटा या बहुत पतला न
 होना चाहिये । यह पराव भूमिमें पैदा हुआ न हो,
 इसमें गिरह या गटि न हों, पका हुआ गोल और पीछे

रंगका होना चाहिये। उपयुक्त समयमें शर तैयार कर उसमें फलक या वाण गिरी देना चाहिये, गांठवाला या लम्बा शर वाणके लिये उपयुक्त नहीं होता। कड़ा, गोल और अच्छी भूमिमें उदपन्न लकड़ी ही तीर निर्माणके लिये उत्तम होता है। जलाधिक्य, तृणाधिक्य और छायाधिक्य भूमिमें जो शर उदपन्न होता है, वह उतना दृढ़ नहीं होता और घुना हुआ होता है। जहाँ धूप अधिक होती हो और जहाँ थोड़ा बहुत बालू भी हो, वहाँका उदपन्न शर बहुत उत्तम होता है। इस तरहका दो पीने दो हाथ लम्बा शर कनिष्ठा उंगलीके समान मोटा होना चाहिये। यह शर कहीं टेढ़ा हो तो उसमें सीधा कर देना चाहिये। ऊपर जो परिमाण शरका लिखा गया, उससे कम या अधिक न हो। मुष्टिवद बांया हाथसे दाहने कंधे तक मुष्टिवद दो हाथ होता है। इतने बड़े तीरको मनुष्य धनुष पर चढ़ा कर कानों तक उसे खोल सक्ता है। शर अधिक लम्बा होनेसे खींचनेमें असुविधा होती है। सरसे उसकी गति ठीक नहीं होती।

वाण किसी लक्ष्य स्थान पर ही छोड़ा जाता है। छोड़ा हुआ वाण यदि लक्ष्यस्थल पर न जा शर उधर चला गया, तो यह व्यर्थ हुआ। वाण शर उधर न जाय इसलिये लोग वाणोंमें पक्षियोंके पाँव या पर लगाते थे। पर जोड़नेसे वाण सीधे अपने लक्ष्यस्थानको ही जायेगा, टेढ़ा मेढ़ा नहीं जायेगा।

बीजा, हंस, शशा, मत्स्यरङ्ग, बगुला, युद्ध और कुरी (टिटहरी) पक्षीका पर इसके लिये उत्तम होता है। प्रत्येक शरमें समानतर पर चार पर बाँचना चाहिये। वे पर भी अंगुल परिमाण हों, किन्तु विशेषतया यह होनी चाहिये धनुष पर नढ़ानेवाले वाणके शरमें १० अंगुल परों और चैणव धनुके वाणमें ६ अंगुल परोंको योजना करनी होगी। यह योजना ताँत या मजबूत सूतेसे होनी चाहिये।

इस तरहके परवाले शरके नोक पर फन्ना चढ़ाया जाता है, नहीं तो वह युद्धयोगी नहीं होता। जिस शरका अग्रभाग या नोक मोटा होता है, वह खी जातीय शर कहा जाता है और जिसका पिछला भाग मोटा होता

है, उसको पुरुष जातीय और जिसके अग्र और पाश्चात्य दोनों भाग एक समान होते हैं, वह शर नपुंसक जातीका कहा जाता है। नारी जातिकी शर बहुत दूर तक जाता है और पुरुष जातिकी शर दूरके लक्ष्यको भेद करता है और नपुंसक जातिकी शर केवल लक्ष्य भेदके लिये उपयुक्त है।

जो वाण सर्वोत्तममय अर्थात् जिसका सब भव्य लोहेका हो, उसे नाराच कहते हैं। शरके वाणमें जैसे चार पर संयुक्त रहता है; वैसे ही इस नाराचवाले वाणमें पाँच पर जोड़े जाते हैं। ये शर वाणसे कुछ मोटा और लम्बा होगा। सभी इस नाराच वाणको चला नहीं सकते हैं। सिवा इसके लघुतालिक वाण नलाकार मन्त्रसे छोड़ा जाता है। यह पहाड़ या किम्बो ऊँचे स्थानसे नीचेकी ओर छोड़नेमें उपयुक्त होता है।
ननोकास्त्र देखा।

२ मन्त्रभेद, वाणमन्त्र। यह मन्त्र जो जानते हैं, वे मनुष्य, पक्षी, पशु, वृक्ष, लता आदिकी विविध प्रकारसे दुःख दे सकते हैं। किन्तु वाणमन्त्रका कोई भी शास्त्र दिखाई नहीं देता। यह केवल गुरुपरम्परा ही प्रचलित मान्य होना है। वाणमन्त्र छोड़ा भी जाता है और रोका भी जाता है। पर्वतिका वाण शब्द देखा।

वाणिक (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (संस्कारकौमुदी) वाणवेल—आपसमें मन्त्रात्मक वाण-निर्देशरूप युद्ध। इसमें एक आदमी मन्त्र प्रयोग करता है और दूसरा उसके चिरुद्ध शक्ति-सम्पन्न मन्त्र प्रयोग कर उस मन्त्रका प्रभाव र्ध कर डालता है। जो इस मन्त्रों अर्धवस्त और प्रयोगपादश्रीं हैं, वे गुणो बहलाने हैं। इस देशमें साधारणतः सँपेरे ही इस वाणमन्त्र का अभ्यास करते हैं। बहुत जगह नोच जानिके हिन्दू और मुसलमान ही यह मन्त्र सीखते हैं।

सँपेरे जिस वाणमन्त्रका प्रयोग करते हैं उनमें युद्धों के नष्ट करनेका मन्त्र अलग है। बहुतेरे फलने लदे घुन्नको देखते ही मन्त्र द्वारा उसे नष्ट कर डालते हैं। हाथमें सरसों और धूल ले कर मन्त्र पढ़ कर जिस अभिप्रेत वस्तु पर फेंकी जाती है, वही वस्तु या वृक्ष स्थल कर नष्ट हो जाता है। सँपेरेमें इनकी शक्ति है, कि य

वाण मार कर शत्रुके मुखसे भां खून तक निकाल सकता है।

इस वाणखेलकी तरह मारण, स्तम्भन, प्रशाकरण, उच्चाटन आदि विषयके भी मन्त्र है। भौतिकविद्या देखो। वाणगङ्गा (सं० खी०) एक नदी। लोमजतीर्थ गार कर यह नदी बह चली है। कहते हैं, कि राज्ञस राज रावणने वाणकी नोकसे हिमालय भेद कर इस नदीको निकाला था।

वाणगोचर (सं० पु०) वाणका निर्दिष्ट गतिस्थान (Range of an arrow)।

वाणचालना (सं० खी०) वाणप्रयोग। धनुष और तोर योगसे लक्ष्य प्रस्तुत वेधनेका कौशल वा प्रणाली। पाश्चात्य भाषासे इस तोरक्षेप प्रथाको Archery कहते हैं। वैशम्पायनोक्त धनुर्वेदमें इसका विषय विस्तार पूर्वक लिखा है। धनुर्वेद देखो।

ऐतिहासिक युगको प्रारम्भावस्थामें, जिस समय इम देशमें आग्नेयास्त्रका (नालिकादि युद्धयन्त्र Canon) विशेष प्रचार नहीं था, यहाँ तक कि, जिस समय लोग लीह द्वारा फलकादि निर्माण करना नहीं सीखा था, उस समय भी लोग बंगखंड ले कर धनुष, शरखंड ले कर इपु-एवं चक्रमकी द्वारा शरकी जालाका तैयार करने में अभ्यस्त थे। हम लोग इतिहास पाठते एवं प्राचीन नगर वा प्रामादिके ध्वंसावशेषमें आदिम जातिके इस अस्त्रके बहुतसे निदर्शन पाते हैं। इस समय भी कई एक देगके आदिम आसभ्य जातिके मध्य यह प्रथा विद्यमान है। पीछे जब उन सब जातियोंके मध्य सम्-ता-लोकका विस्तार होने लगा, तबसे ये सम्भ्य-समाजको अनु-करण कर इस युद्धास्त्रकी उन्नति करके वाणनिर्माणके विषयमें एवं उसके चलानेके अपूर्व कौशल प्रदर्शन करने में समर्थ हुए थे।

प्राचीन वैश्विक युगमें हम लोग वाणप्रयोगके प्रष्ट निदर्शन पाते हैं। तुम्हें शार्दूलय चन्द्रेण अनाथं जातिके साथ निरन्तर युद्धकार्यमें व्यापृत थे, भारतवासी उन्ते भापे जातिकी सन्तान धनुष, इपु प्रभृति अस्त्र-योगसे जिस तरह युद्धकार्य परिचालना करती थी,

श्रुत्वेदसंहितामें उसके भूरि भूरि प्रमाण पाये जाते हैं(१)। भापे और असुर (द्रुपु या राज्ञस)के संघर्षकी कथा जो उक्त महाप्रथमें वर्णन की गई है, उसका हा अविष्टत चित्र पौराणिक वर्णनामें भी प्रतिफलित(२) देखा जाता है।

रामायणीय युगमें राम-रावणके युद्धके समय एवं भारतीय युद्धमें कुक पांडवके मध्य भोपण वाण युद्ध हुआ था; खेळल मानव जगत्में दो नदीं देवजगत्तमें भी वाणका व्यवहार था। स्वयं पशुपति पाशुपत अस्त्रसे परिशोभित थे()। देवसेनापति कुमार कार्तिकेयने धनुर्वान घारण करके असुरोंका संहार किया था। पुराणमें अग्नि, वरुण, विशु, प्रह्ला प्रभृति देवताओंके अपने अपने निर्दिष्टमिष वाणोंका उल्लेख पाया जाता है(४)। राम-रावणके युद्धमें

(१) शुक ५, ५२, ५५ और राममें एवं ६२, २७, ४६, ४७ एकमें श्रुति, वाशी, धनु, इपु प्रभृति अस्त्रोंका उल्लेख है।

(२) शुक १११, १२, २१, २५, ३३, १००, १०१, १०५, १२१ प्रभृति युक्त भाष्योचना करनेसे इन्द्रादि कर्त्तृक मनुष्योंके नाशको जो कथा पाई जाती है, वृषसंहार, शारकावच, अन्धक निधन, सुर-नाश, विपुर-दाह, मधुकैटभादि विनाश उक्तका विकास-मात्र है।

(३) श्रिगपुराण और महाभारत। महादेवने अर्जुनकी धीरतासे प्रसन्न हो कर कर्ण और निगत कर्षादि निधनेके निमित्त उक्त अस्त्र दान किया था।

(४) विभिन्न भेष्योंके वाण अर्थात् उनकी भेदगतिके विभिन्न रूपकी होती हैं। वर्तमान समयमें अर्द्धचन्द्र, कोष्पाकार, त्रिकलक वा बहुकोक आकासुक वाण मोठ, संघाशोक मध्य एवं प्राचीन रावणशोक अस्त्रागारमें परिशोधित होते हैं। पुराणमें जो वरुणवाण द्वारा अग्निवाण काटनेकी कथा है, अधिक संभव यह इस तरहके विभिन्न पदकका गुण ही होगा। उक्त समयके वेदपूर्वक विपरलक्ष्य तथा विद्वह्वल वे एवं ये एक वाणका प्रयोग देरते ही उसके विपरीत अर्थात् प्रत्या-लान समयक अस्त्र प्रयोग करना जानने थे अथवा ये सब वाण मन्त्रसिद्ध थे वा वादा एवंप्र प्रदौर काजमें उते मन्त्रपुतः करके प्रयोग करते थे, ऐसा भी कहा जा सकता है।

इन सब देवाधिष्ठित वाणोंका बहुत प्रयोग किया गया था। रावणका मृत्युवाण इस ध्रेणीका बलकारस्वरूप कहा जा सकता है। दुष्मन्तादि राजगण वाण ले कर शिकार करते थे(१)। सूर्यवंशप्रदीप महात्मा रघुने वाण ले कर फोरसवालों पर विजय प्राप्त करनेके अभिप्रायसे गमन किया था। रामायणके अन्दर वसिष्ठ और विश्वामित्रके युद्धमें शक वाहिक आर यवन जातीय योद्धा भी थे, इसको कथा है। यह कहना व्यर्थ है कि वे उस समय युद्धमें धनुर्वाण भी व्यवहार करते थे।

महाभारतमें लिखा है, कि द्रोणाचार्यसे पांडवोंने वाण चलानेकी शिक्षा पाई थी। एकलव्य द्रोणाचार्यकी मूर्ति बना कर स्वयं अध्वयसायसे गुहकी शिक्षा अपहरण करने लगा। वाणविद्यामें पारदर्शिता लाभ करनेके बाद वह गुह द्रोणकी दक्षिणा देनेके लिये तैयार हुआ। गुहने उसकी अद्भुत शिक्षा-कौशल देख उसके दाहिने हाथकी वृद्धांगुलि मांगी। घोर बालक एकलव्यने गुहकी सुहमांगी दक्षिणा दे कर अपने महत्त्वकी रक्षा की।

महाभारतीय इस विवरणकी पट्टेसे मातृम होता है, कि उस समय राजपरिवार, साधारण जनसमाज या सभी क्षत्रियोंको वाण-शिक्षा प्राप्त करना प्रधान कर्तव्य हो गया था। ताड़का-निघन कालमें श्री-रामचन्द्रके वाणसे मार्गेच राक्षसका लङ्का चला जाना, द्रौपदीके स्वयंवरमें चक्रवर्ण पथसे अर्जुन द्वारा मछलीका नेत्र भेदन, कुरुकुलपितामह महामति भोष्मका शर-शय्या निर्माण प्रभृति पौराणिक आषयानोंमें वाण चलानेका चरम दृष्टान्त है।

इसके बाद भी हिन्दू राजे तोर धनुष ले कर युद्ध करते थे। सिकन्दरके भारतक्रमणके समय युद्धक्षेत्रमें सहस्रों तीरन्दाजोंकी अवतारण देखी जाती है। आर्सेनल-अक-बरीमें लिखा है, कि मुगल-सम्राट अकबरदाहके अखा-

गारमें सिन्धु सिन्धु प्रकारके तोर, तुणीर तथा धनुष थे। इस समय बन्दूक और तोपोंका विशेष प्रचार होनेके कारण वाण द्वारा शत्रुओंके संहार करनेकी आवश्यकता बहुत कम हो गई; किन्तु फिर भी ऐसा नहीं कह सकते, कि उस समय तीरन्दाज विकूल हो नहीं रहे। तब भी रणदुर्मद राजपूतवोर, भोल एवं भोल-प्रभृति दुर्दंष्ट्र असभ्य जातियाँ तीरधनुष द्वारा रणक्षेत्रमें शत्रुओंका नाश किया करती थीं।

अंग्रेजी अधिकारमें भी संचाल लोण तोर धनुष द्वारा युद्ध करते थे। उनकी वाण-शिक्षा अद्भुत, लक्ष्य स्थिर और सुनिश्चित एवं संहार अपरिहार्य था। सुदूर वनान्तरालसे आततायिकों लक्ष्य करके वे लोग जो वाण छोड़ते थे, उससे शत्रुके मरनेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता था। इस समय इस विद्याका पूरा हास हो जाने पर भी "संचालीका काँड़" जनसाधारणके हृदयमें वाणशिक्षाको पराकाष्ठा जगा देता है।

सिर्फ भारतवर्षमें ही नहीं, एक समय यूरोपीय पार्श्वराज्य जगत्में भी इसका यथेष्ट व्यवहार था। प्राचीन ग्रीक जाति तीर-धनुष ले कर युद्ध करती थी। प्राचीन यवन लोग (Jonian) भी हाथमें धनुर्वाण धारण किये रणक्षेत्रमें दिखाई देते थे। वे लोग प्राचीन ग्रीस वा इल्लिनिस्वासियोंकी अन्यतम शाखा कहे जाते थे। कार्यजितोय योद्धृ-वृ-द, सुविख्यात रोमकगण, हूण, गथ और आण्डाल प्रभृति यन्त्र जातियाँ, यहाँ तक, कि सुशिक्षित अंग्रेज जातिके आदिपुरुष एवं इंगलैण्डके आदि निवासी घृटन लोग भी वाण चलानेमें विशेष पारदर्शी थे। उन देशोंका इतिहास ही इसका साक्ष्य दे रहा है।

पार्श्वराज्य जगत्की सुप्राचीन ग्रीक और रोमन जातियोंके अभ्युत्थानके पहले असीरीय (Assyrians) एवं शक (Scythians) जातियोंके मध्य घोड़े जाते जानेवाले रथ पर चढ़ कर युद्ध करनेकी रीति थी। इस समय भी यहाँके सुवृहत् प्रासादागाररूप प्रस्तरफलक-आदि-में वाणपूर्ण तुणीरसंयुक्त रथादिका चित्र अङ्कित देखा जाता है। असीरीय जातिकी वाण-विद्याका पूर्णप्रभाव उनकी कीलरूपा (Cuneiform) वर्णमाला द्वारा उपलब्धि

(१) महाकवि कालिदास प्रभृतिके काव्यनाटकादिमें तीर धनुषके व्यवहारका उल्लेख देखा जाता है। उसके द्वारा अनुमान होता है, कि इन सब कवियोंके समयमें राजे मर्राजे स्वयं तोर धनुष ले कर शिकार लोका करते थे एवं उनके सेना विमारा-में यथेष्ट तीरन्दाज सेने थी।

की जाती है। अनुमान होता है, कि उन लोगोंके प्राण थे; इसीलिये उन लोगोंने वाणके अन्नकीलकका अनुकरण करके अपनी अन्नमाला तैयार की थी।

प्राचीन मित्रराज्यमें भी तीरधनुषका अभाव नहीं था। कालदीय, वाविलनीय, पार्थीय, शक, याहिक और प्राचीन फारसी जातिओंके मध्य वाणाखका बहुत प्रचार था। सुतरां अनुमान होता है, कि अति प्राचीनकालमें धनुष और वाण युद्धके प्रधान अस्त्र गिने जाते थे एवं जनसाधारणका उसकी विशेष यत्नसे शिक्षा दी जाती थी।

वाणजित् (सं० पु०) विष्णु ।

वाणतूण (सं० पु०) वाणाधार, तूणीर, तरकश ।

वाणघा (सं० पु०) तूणीर, तरकश ।

वाणानासा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम ।

वाणनिद्रत (सं० स्त्री०) वाणाखसे मित्र ।

वाणपञ्चानन (सं० पु०) एक प्रसिद्ध कवि ।

वाणपथ (सं० पु०) वाणगीचर ।

वाणपाणि (सं० स्त्री०) वाणास्त्र द्वारा सुसज्जित ।

वाणपात (सं० पु०) १ वाणनिक्षेप, वाण फेंकना ।

२ दूरत्वपरिमापक, यह जिससे दूरी निकाली जाय ।

वाणपातवर्तिन् (सं० स्त्री०) अदूर अवस्थित, पासमें रहनेवाला ।

वाणपुद्ग (सं० स्त्री०) वाणका अन्न और पुच्छमाग ।

वाणपुर (सं० स्त्री०) वाणराजकी राजधानी ।

वाणमट्ट (सं० पु०) एक सुप्रसिद्ध कवि ।

वाणमय (सं० स्त्री०) वाण द्वारा समाच्छन्न ।

वाणमुक्ति (सं० स्त्री०) वाणव्युक्ति, किसी वस्तु पर निगाना करना ।

वाणनाक्षण (सं० स्त्री०) वाणमुक्ति देना ।

वाणयोजन (सं० स्त्री०) १ तूणीर, तरकश । २ धनुषकी ज्यामें वाण लगा कर निगाना करना ।

वाणप्रपथ (सं० स्त्री०) आश्रमाचारविशेष ।

वाणप्रथ देतो ।

वाणरसी (सं० स्त्री०) वाणरसीका अपव्रज ।

वाणराज (सं० पु०) वाणासुर ।

वाणरेखा (सं० स्त्री०) वह रेखा या क्षत-ला वाणके लगनेसे हो ।

वाणलिङ्ग (सं० स्त्री०) स्थावर जिवलिङ्गभेद । नर्मदाके किनारे ये सब लिङ्ग पाये जाते हैं । लिङ्ग शब्द देतो ।

वाणशाल (सं० स्त्री०) वाणाधार, वाणधनाला ।

वाणवर्षण (सं० स्त्री०) वाणवृष्टि, वृष्टिके समान वाण गिरना ।

वाणवधार (सं० पु०) एक प्रकारका अंगारवा, लौह-वर्धक ।

वाणसन्धान (सं० स्त्री०) लक्ष्य करके वाणयोजना ।

वाणसिद्धि (सं० स्त्री०) वाणके सहारे लक्ष्यभेद करना ।

वाणसूता (सं० स्त्री०) उष ।

वाणहन् (सं० पु०) १ वाणारि । २ विष्णु ।

वाणावली (सं० स्त्री०) १ वाणोंकी आवली, तीरोंकी कतार

२ श्लोकीका पञ्चक, एक साथ बने हुए पाँच श्लोकी ।

३ तीरोंकी लगातार कतार ।

वाणि (सं० स्त्री०) वणि-णच् इन् (सर्वधातु-इन्)-उष्

४।१७) इति इन् । वयन, बोना । पर्याय-व्युक्ति, व्युक्ति ।

२ वाप दृष्ट ।

वाणिज (सं० पु०) वणिज्-घार्थे-भण् । १ वणिक,

बनिया । २ वाडवाणि ।

वाणिजक (सं० पु०) वणिज देतो ।

वाणिजकविध (सं० स्त्री०) वाणिजकानां विषयो-दिशः

(भेरिकमार्येषु कार्यादिभ्यो विधलभक्तयो । पा ४।१।४) इति

विधल् । वणिकोंका स्थान, वाणिज्यस्थान ।

वाणिजक (सं० पु०) वाणिज देतो ।

वाणिज्य (सं० स्त्री०) वणिजो भायः कर्म पा यतिज्

ध्वप् । वीश्य-वृत्ति, क्रय-विक्रयका कार्य । पर्याय—भरवा-

नून, वाणिज्य, वणिक पथ । (नट्प्रथ)

ज्योतिषमें लिखा है, कि वाणिज्य या व्यापार-

का आरम्भ किसी शुभ दिनको करना चाहिये । अशुभ

दिनको वाणिज्य आरम्भ करने पर घाटा या नुकसान

होता है । भरणी, अश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूष

कल्मषी और पूषापादा आदि नक्षत्रोंमें वस्तु देयना

शुभ है; किन्तु अशुभ नक्षत्रोंमें वस्तु देयना

शुभ और देयना अशुभ है । (ज्योतिषशास्त्र)

इस तरह खरीदने बेचनेका लक्ष्य रख कर कारोबार करनेसे उत्तरोत्तर उन्नति होती है।

हाण, गोरखा और वाणिज्य वैश्यकी वृत्तियाँ हैं। वैश्य इन्हीं वृत्तियोंसे अपनी जीविकाका निर्वाह करे। किन्तु ब्राह्मण पर जब विपद् उपस्थित हो अर्थात् जब अपनी जीविका-निर्वाह नहीं कर सके, तब वह वाणिज्य-वृत्तिसे ही अपनी जीविका चला सकते हैं। ब्राह्मणकी आपत् कालमें किस वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये, इसके सम्बन्धमें मनुने लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी धर्मनिष्ठामें व्याघात उपस्थित होने पर निपिद्ध वस्तुओंको त्याग वैश्यकी वाणिज्य-वृत्तिसे अपनी जीविका चला सकेगे।

निपिद्ध वस्तुएँ—सब तरहके रस, तिल, मस्तक, सिद्धान्न, नमक, पशु और मनुष्यका बेचना बहुत मना है। कुसुमादि द्वारा रंगे लाल रंगके सूतेसे बने सब तरहके वस्त्र, मन और अतसो तन्तुमय वस्त्र, भेड़के रोपके बने कम्बल आदिका बेचना भी मना है। जल, शय्य, विष, मांस, सोमरस, सब तरहके गन्ध द्रव्य, दूध, दही, भोग, घी, तैल, शहद, गुड़ और कुश ये सब चीजें बेचनी न चाहिये। सब तरहके वन्य पशु, विशेषतः गजादि दंष्ट्र, अवण्डित खुर, अश्वदि, सिया इसके मद्य और लाह, चपड़ा आदि कमी भी न बेचना चाहिये। तिल विषयमें विशेष यही है, कि लामकी आशासे तिल बेचना उचित नहीं। किन्तु खर्च पैदा की हुई तिलकी बेचनेमें कोई दोष नहीं। (मनु १० अ०)

ब्राह्मण और क्षत्रिय इन सब वस्तुओंकी छोड़ वाणिज्य कर सकेगे। ये दोनों जातियाँ आपसमें मिल कर एक साथ वाणिज्य कार्य आरम्भ करें और उनमें यदि कोई प्रतारणा करे या किसीके ध्यान न देनेसे वाणिज्यमें क्षति हो, तो राजा उसको दण्डका विधान करे।

महर्षि याज्ञवल्क्यने लिखा है—जो सब वणिक् एक साथ मिल कर व्यवसाय करें (जैसे आज कल लिमिटेड कम्पनी प्रतिष्ठित होती है।) उसमें जिसका जैसा भाग होगा, उसीके अनुसार उसकी घाटा, नफा सहना होगा। इन हिस्सेदारोंमें यदि कोई निपिद्ध कामको करे, या

वह ऐसा काम करे जिससे व्यवसायमें क्षति हो, तो उसे ही उस क्षतिकी पूर्ति करनी होगी। यदि कोई विपद्की दुहाई दे, तो वह साधारण लामांगका दणवां अंश पानेका अधिकारी होगा। राजाकी आज्ञा ले कर व्यवसाय आरम्भ करना होगा। राजा ही बेचनेवाली चीजका मूल्य निर्धारित करता है। इसीलिये उमको कररूपमें लामांशके २० भागका एक भाग दिया जाता है। राजा जिस चीजको बेचनेकी मनाई करे वह और राजोचित चीजें, बेचने पर वह ले लेगा।

यदि वणिक् वाणिज्य करते समय शुल्क घटानेके लिये पण्यद्रव्यके परिमाण विषयमें झूठ बोले, शुल्क ग्रहण स्थानसे दल जाये और विवादास्पद द्रव्य खरीदे बेचे, तो उसे पण्यद्रव्यको अपेक्षा अत्रशुना दण्ड होगा। वाणिज्य करते समय किसी हिस्सेदारकी मृत्यु हो जाय, तो उस समयमें वाणिज्यमें उसका जो धन रहेगा, राजा उसको उत्तराधिकारीको दिला देगा। इसमें जो शेष होगा, वह लामसे वञ्चित कर दिया जायेगा।

राजा पण्यद्रव्यके प्रकृत मूल्य तथा लानेका क्रियाया आदि खर्चका हिसाब कर वस्तुका मूल्य निर्धारित कर दे, जिससे खरीदने और बेचनेवाले दोनोंकी क्षति न होने पाये। राजा अच्छी तरह जांच पड़ताल कर चीजोंका मूल्य निर्धारित करे। राजाके निर्धारित मूल्यसे ही वणिक् नित्य चीजें बेचा करे। वणिक् खरीदनेवालेसे मूल्य ले कर चीजें उस न दे, तो उसके रुपयका सूद जाड़ कर या उस वस्तुको बेच कर जो लाम हो, उस लामके साथ उसे खरीददारको चुकाना होगा। देगी खरीददारके प्रति यह नियम है। यदि वह खरीददार विदेशी हो, तो खरीदो चीज विदेशमें ले जा कर बेची जाने पर वहां जो लाम होता, उसका हिसाब जाड़ कर विदेशी खरीददारको उसे देना पड़ेगा।

बेचनेवालेके देने पर भी यदि खरीदनेवाला माल नहीं लेता, फिर भी देवोपद्रव्य तथा राजोपद्रव्यसे वह नष्ट हो जाये, तो खरीददारका ही माल्ल नष्ट होता है। बेचनेवाला इस मालका जिम्मेवार नहीं। बेचनेके समय यदि बेचनेवाला बुरी चीजको अच्छी कर कर बेचे, तो बेची हुई चीजके क्षमसे दूने दामके दण्डका यह अधिकारी

होता है। खरीददार माल खरीदनेके बाद मालका दाम कम हुआ है या अधिक या बेचनेवाला माल बेच चुकने पर मालका दाम अधिक हुआ है या नहीं यह न जान कर मालके खरीद फरोख्तके सम्बन्धमें दुःख प्रकट न कर सकेगा। यदि ये करें, तो उस खरीद-फरोख्त किये हुए मालके दामके छठवां अंशके दण्डाधिकारी होंगे।

जो घणिक राजनिरूपित मूल्यसे कम और अधिक जान कर और गुट्ट बांध कर लोगोंके कष्टकर मूल्यकी वृद्धि करे, तो राजा उनको उत्तम साहस दण्डका विधान करे और जो देशान्तरसे आये हुए मालको हीन मूल्यमें लेनेके लिये रोक रखे या एक मूल्य प्रदण कर बहु-मूल्य पर बेचे तो भी उनका उत्तम साहस दण्ड होगा। जो व्यक्ति चञ्चल करनेके समय दण्डोंमें कम तौले, तो उसको दो मी पण दण्ड होगा। औषध, घृत, तैलादि लेह द्रव्य, नमक कुंकुमादि गन्ध, धान, गुड़ आदि चीजोंमें मिलावटी चीज बेचने पर बेचनेवालेको सोलह पण दण्ड होगा।

मालका खरीदना, बेचना तथा एक देशकी उपजों हुई चीज दूसरे देशमें भेजना या दूसरे देशसे मंगाना इसीको व्यवसाय कहते हैं। प्राचीन कालमें इन्हीं निपनों का पालन कर मारनमें कारोबार होता था।

(यात्र ७० २ म०)

बहुत पुराने समयमें भारत या एजियाई महादेशके सभी भूखण्डोंमें या यूरोप आदि देशोंमें भी एक घेरोरु वाणिज्य-प्रणय प्रथाहित होता था। केवल स्थलपथमें या समतल मैदानमें ही व्यवसाय नहीं चलता था। भारतीय घणिक उस उच्चाल तरङ्गपूर्ण समुद्रकी छाती पर और नदीयज्ञ पर बड़ी या छोटी नावोंकी सहायतासे जातीय शीशुदिके मूल-वाणिज्यको फैलाया था। इधर जिन तरङ्ग वे दक्षिण समुद्रके पूर्व और पश्चिम भूमण्डलमें आते आते थे, वैसे ही वे घनसङ्कुल भाषावद गिरि-संक्रांतोंको पार कर या बड़ों पर्वतश्रेणियोंकी पार कर मध्य-एजिया और यहाँसे यूरोपके प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरोंमें जाते थे। ये अपने नावोंकी सहायता तथा आवश्यक विदेशी चीजोंकी खरीद कर आते थे।

हिरोपोतस्, ट्रायो, प्लिनी आदि यूनानी ऐतिहासिकों की विवरणोंसे मालूम होता है, कि एकमात्र लाल समुद्रसे भारतीय घणिक यूरोपमें माल ले जाते थे। द्रव-नगर कायम होनेसे पहले गरम मसाला, औषध और अन्यान्य माल पूर्व-भारतसे उक्त पथसे भेजा जाता था। घणिकगण जहाज लाल भारत महासागरकी पार कर घेरे घेरे लालसागरमें पहुँचते थे और क्रमसे आर्सिनो (Suez) बन्दरमें जहाजसे माल उतार लेते थे। यहाँसे दल बांध कर वे पैदल चल कर भूमध्यसागरके किनारे पर अवस्थित (Cassow) कासी नगरमें पहुँचते थे। ये कासी नगर आर्सिनो बन्दरसे १०५ मीलकी दूरी पर अवस्थित था।

स्ट्राबोने लिखा है, कि वाणिज्यकी सुविधाके लिये सहज और सुगम रास्ता निकालनेमें भारतके घणिक सम्प्रदायकी दो शर रास्ता बदलना पड़ा था। सुप्रसिद्ध फारसी-स्थपति M. de Lseps सन् १८६६ ई०में सब ओर रास्ता फैलानेके लिये स्वेज नहर काट कर प्राच्य और प्रतीच्य वाणिज्यका सुयोग संघटन कर गये हैं, बहु शताब्द पहले मिन्सराज सिसोटीसने उस रास्तेका सूत्रपात कर रखा था। ये लालसागरके तटसे नीलनदीकी एक शाखा तक खाल कटवा कर उसी रास्तेसे पणपद्रव्य ले जानेके लिये बहुतसे जहाज बनवाते थे। किन्तु किसी कारणसे इस कामसे उनका जो हट गया।

दसके बाद प्रायः ईसोसन् १०००के पहले इज्रायल पति सलोमनने वाणिज्य विस्तारके लिये लालसागरके किनारेसे एक और पथ खोल कर उसी पथसे जहाज द्वारा पणपद्रव्य ले जानेकी सुविधा की थी। उनके वाणिज्य जहाज मोर्फर (सीबोर) और सार्सिस नगरसे केवल सोना, चाँदी और देशकिसती पर्यर ले कर इजि-भोगोवाकी राजधानीमें जाते थे। इसवाणिज्यसमूहसे उनकी बहुत कुछ धनप्राप्ति हुई थी। उनके प्रासादमें चाँदीका इतना भण्डार था कि जिसकी गिनती तक

• Solomon king of Israel. made a navy of Ships in Evgion-geber. which is beside Eloth on the Shove of the Red Sea in the land of Edom (1 Kings X. 26)

नहीं हो सकती थी। उनका पानदान और ढाल सोने-का बना था।

प्रीक भौगोलिककी वर्णनासे ज्ञाना जाता है, कि ओफिर (सीवीर) जनपद भारतका तत्कालप्रसिद्ध कोई एक बन्दर था। तारिससगामी जहाज तीन वर्ष पर इजिप्शनगोवार लौट आते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर भिन्न भिन्न स्थानोंमें वाणिज्यके कारण रास्तेमें ठहरते जाते थे। यह सब जहाज प्रधानतः सोना, चांदी, हाथी-दांत, अपे नामक बंदर और मोर आदि लाते थे। तारिससके इस दूरत्यको देखनेसे मालूम होता है, कि यह स्थान सम्भवतः मलक्का, सुमात्रा, यव और वर्णोबो द्वीपके पास न था, क्योंकि ऐसा होनेसे अवश्य ही वनमानुस दिखाई पड़ते तथा उस वाणिज्ययात्राके विवरणमें उस घटनाका समावेश कर साधारणकी दृष्टि आकर्षण करते। इसलिये अनुमान होता है कि पूर्व-भारतीय द्वीपपुञ्जके अंशभूत नहीं थे।

इस समयके बणिकोंकी भांति प्राचीन बणिक लोग भी अरब उपसागरको पार कर मालवाके उपकूलस्थ मुजिरिस बन्दर पहुँचते थे। इस समुद्रयात्रामें उन्हें सिर्फ ४० दिन लगते थे। मेसोपोटेमिया, पारस्य-उपसागरके किनारे रहनेवाली आकास जाति तथा फणिक बणिक लोग बहुत दिनों तक इस पथसे पूर्व देशी वाणिज्यकार्यका परिचालना करते थे। इन सब बणिकोंके साथ वाणिज्य करनेके लिये भारतीय बणिक उस समय इस पथसे मिस्रराज्य तक जाते थे।

लुएकी राहसे भी ये भारतीय वनिये बहुत दूर पश्चिम तक जाते थे। ये दल बांध कर वाणिज्य द्रव्य ऊंटकी पीठ पर लाद कर एक स्थानसे दूसरे स्थानकी जाते थे। इस वाणिज्य-यात्रामें ये सब कमी कभी स्थानीय सरदारोंको जोत कर ये देश लूट लेते और लूटका माल ले कर आगे बढ़ते थे। इस कारण उन्हें विभिन्न समयमें विभिन्न पथोंका अवलम्बन करना पड़ता था। बाइबिल धर्मग्रन्थके एजिकायेल (Ezekiel) विभागमें तथा लिगो (Levi. C. h.) को विवरणमें अफ्रिकाके रेगिस्तानमें, उत्तर-पश्चिमाके लुणमण्डित प्रातरमें तथा विभिन्न गिरि-

संकटोंको पार कर भारतीय वनियोंकी वाणिज्य यात्राकी बात लिखी है*।

रोमन सम्राट् अगस्टसके राजत्वकालमें, अीलास गेलियसने प्राच्य वाणिज्यका विषय उल्लेख कर लिखा है कि अरबी बणिक लोग एक विस्तृत सेनावादिनोंके समान दलबद्ध हो कर यूरोपके प्रतीच्य जनपदोंमें जाते थे। उन सबोंकी यह वाणिज्ययात्रा बणिकदलकी सुविधाके अनुसार तथा पीनेके जलके अनुसार होती थी। एक दल एक नियत समयमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको रवाना हो कर राहकी सराय या चाट्टीमें ठहरता था, ठीक उसी समय दूसरी ओरसे और एक दल बणिक आ कर एक साथ मिल जाता था। बणिकोंका यह सम्मेलन उन लोगोंकी आत्मारक्षाका एकमात्र उपाय था, ऐसा कहा जा सकता है।

एक समय दो बणिकदल येमनसे निकले। एक दल द्रामातीसे ओमान द्वारा परिचालित हो कर पारस्यो-पसागरके रास्ते पर चला आया और दूसरा दल हेजाज घूम कर लालसागरके किनारे पेद्रा पहुँचा। यहाँसे यह दल दो दलोंमें बँट कर एक गाजा नगरको ओर और दूसरा दूसरे पथसे इमरकस नगर चला गया। येमनसे पैदल पेद्रा जानेमें करीब ७० दिन लगते थे। यूनानो ऐतिहासिक आथेनाडोरसकी वर्णनामें बणिकोंकी जिन सब सरायोंका उल्लेख देखा जाता है, इम्मायल और इब्राहिमके समय ये सब वाणिज्य समृद्धिसे पूर्ण थीं; ऐसा अनुमान होता है।

बणिकसम्प्रदायके इस तरह जाने आनेसे मायादित

* "Having arrived at Bactria, the merchandise then descends, the Icarus as far as the Oxus, and thence are carried down to the Caspian. They then cross that sea to the mouth of the Cyrus (the Kur) where they ascend that river, and on going on shore are transported by land for five days to the banks of the Phasis (Rion) where they once more embark, and are conveyed down to the Euxine." (Pliny)

(Maadite) ज्ञानिका कर्मक्षेत्र विशेष रूपसे परिवर्धित हुआ था। क्योंकि उन्होंने बणिक्सम्प्रदायकां ऊँट भाड़े देकर, उन्हें पथ दिखा कर, उनका रक्षक हो कर अथवा उन लोगोंके साथ मिलकर वाणिज्यकी पर्यालोचना करके मोटी रकम पाई थी। कालक्रमसे इस खुदकी वाणिज्यमें बड़ी गड़बड़ी हो गई। राष्ट्रविप्लव या प्राकृतिक परिस्थानसे यह विपर्यय घटा था। इस पथमें जितने समृद्धि गाली नगर या वाणिज्यकेन्द्र थे, देवसंयोगसे वे सभी श्रोमण्ड तथा नगर जनहीन हो गये और उसकी वाणिज्य समृद्धिका भी हास हो गया। आज भी हीरानके आसपास बलुई प्रान्तमें मरुसागरके तीरवर्ती मरुदेशमें तथा टाइबेरियस फालके सांशकटस्थ ऊँचे स्तम्भों, मन्दरादि तथा रङ्गमञ्चोंमें प्राचीन गौरवका निदर्शन जगा रहा है।

पेट्रासे दमस्कस जानेके रास्तेमें उत्तर सीमान्तमें पामिरा, फलाडेलफिया और देकपोलिसके नगर मिलते हैं। ग्रीक और रोमन जातियोंके अश्वयुत्थान कालमें पेट्राम वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति थी। पथेनोडोरस लिखते हैं, कि घोर घोर बह नष्ट हो कर मरुभूमिमें पर्यवसित हो गया। सैकड़ों वर्ष तक इस रूपमें रहने पर भी उसकी कांक्षिणी विहङ्गुल हो लुप्त नहीं हुई। इस समय भी स्थान स्थान पर उन सब ध्वस्त स्तूपोंके स्तम्भ तथा प्रासादादि विद्यमान हैं, जो भ्रमणकारियोंके हृदयमें प्राचीन वाणिज्यगौरवकी क्षीणस्मृति उत्प्रेषण करते हैं। यह पेट्रा नगर उत्तर-पश्चिम पश्चिमा तथा यूरोपीय वाणिज्यका केन्द्रस्थान था। दक्षिणाञ्चलसे समागत बणिक्-सम्प्रदाय यहाँ आ कर उत्तर देशीय वाणिकोंसे अपना पण्यद्रव्य बहल कर लौट जाता था।

शाकशाळा रोमसाम्राज्यके अयसान होने पर वाणिज्यका हास हो गया एवं उसके साथ साथ क्रमसे लालसागरोपकूल और अरबका वाणिज्य-पथ छोड़ दिया गया। इसके कई शताब्दोंके बाद जिस समय जेनेवा-वासियों पुनः वाणिज्यके उपलक्षमें जहाज द्वारा समुद्रमें खाना खाना आरम्भ किया, उस समय यह पथ उन लोगोंके गमनागमनकी सुविधाके लिये मूर्त हो गया। पूर्व भासत और यूरोपमें फिर व्यापार चलने लगा। उस

समय पश्चिम-भारतका पण्यद्रव्य जल तथा स्थल पथसे नौका और ऊँटों द्वारा सिन्धुतटसे हो कर हिमालय तथा काबुलकी पार्वत्य अधितयकाभूमिमें आ कर क्रमसे समरकन्द पहुँचता था। यहाँ तक, कि मलबा द्वीपजात द्रव्य भारतसमुद्र, बंगोपसागर, इतके बाद गंगा और यमुना नदोंसे होते हुए पथ उत्तर-भारतके अगम्य पथको पार करके समरकन्दमें जाता था। समरकन्द उस समय महासमुद्रशाळा तथा वाणिज्यका केन्द्र था। यहाँ भारत, पारस और तुर्कके प्रधान प्रधान बणिक्-पकल हो कर अपने अपने देशीय पण्य हेतु फिर करत थे।

यहाँसे वे सब चीजें जहाज द्वारा काश्पीयसागरके दूसरे पारस्थित अष्ट्राखान् बन्दरकी मैत्री जाती थीं। अष्ट्राखान् बन्दर बलगा नदीके मुहानेपर अवस्थित रहनेके कारण पण्यद्रव्य अन्यत्र ले जानेमें बड़ी सुविधा होती थी। यहाँसे सभी चीजें फिर नदीकी गहसे रेंडिजान प्रदेशान्तर्गत नोवोगोरोद नगरमें लाई जाती थी। यह नगर वर्तमान निज्नी नोवोगोरोद नगरमें बहुत दक्षिणमें अवस्थित था।

नोवोगोरोदसे इन सब चीजोंको कई मोल मुश्कोकी राहसे ले जाते थे। इसके बाद डान् नदीके किनारे पहुँच कर उन द्रव्योंको छोटी छोटी नौकाओं पर लाद कर जेनेवा आज़ीफ़सागरके किनारे काफ़ा तथा प्युडोसिया बन्दरमें ले जाते थे। काफ़ा बन्दर उस समय जेनेवावासियोंके अधिकारमें था। यहाँ वे लोग गलीबस् नामक जहाज द्वारा आते थे एवं भारतीय पण्यद्रव्य ले कर अपने देशकी लौट जाते थे। पाँछे वे उन सब द्रव्युत्पत्तिकी यूरोपके माना स्थानोंमें बिक्री करनेके लिये भेज देते थे।

अर्मोनियन-सम्राट् कामीडीटरके राजत्वकालमें एक और वाणिज्य-पथका आविष्कार हुआ था। उस समय बणिक्गण जर्जियाके मध्य हो कर भी काश्पीय सागरके किनारे भात तथा यहाँसे पण्यद्रव्य जलपथ द्वारा कालासागर तीरवर्ती विविक्त बन्दर ले जाने थे। पाँछे यहाँसे वह सब द्रव्य यूरोपके माना स्थानोंमें भेजे जाते थे। उसी समय भारतोप वाणिज्यके लिये अर्मोनियोंके साथ

भारतवासियोंका विशेष बन्धुत्व हो गया। एक अमेरियन सम्राट् इस समय वाणिज्य-पथ सुगम करनेके लिये कास्पियसागरसे कालासागरके किनारे तक १२० मील लम्बा एक नहर खुदवाने पर बाध्य हुआ, किन्तु यह काम शेष होते न होते वह एक युतचरके हाथ मारा गया। उससे यह महदुह शेष कार्यमें परिणत न हो सका।

इसके बाद विनिसवासो वणिक वाणिज्यक्षेत्रमें उतरे। वे लोग भारत आनेके लिये सबसे सुगम रास्ता निकाल कर अति शीघ्र यूफ्रेटिस नदी होते हुए भारत आये।

विनिसवासो वणिक लोग भूमध्यसागर पार हो कर अफ्रिकाके त्रिपलीराज्यमें आ कर वैदल विख्यात झालेपो यन्दर आते थे। पीछे वहांसे वे लोग यूफ्रेटिस तीर-वर्ती बीरनगर आकर पणपद्रथ बेचते थे। यहाँ नौकाके सहारे त्रिप्रिस नदीके किनारेके बगदाद नगरमें ले जाते थे। बगदादमें पुनः नावमें लाद कर यह सब द्रथ त्रिप्रिस द्वारा बसरा नगरमें एवं पारस्योपसागरस्थ हम्जुज द्वीपमें आते थे। हम्जुज (Ormuz): उस समय दक्षिण-एशियाका सर्वप्रधान वाणिज्य-यन्दर था। यहाँ पाश्चात्य-वणिक गण स्वदेशजात मखमल, सूती कपडा और अपरापर द्रथके बदले पूर्वदेशजात गरम मसाला, ओषध और बहुमूल्य प्रस्तर आदि ले जाया करते थे।

विनिसवासो वणिकोंकी प्राच्यवाणिज्यमें विलक्षण अर्थशाली होते देख यूरोपकी दूसरी जाति भी ईर्षान्वित हो उठी तथा इसी तरह पुर्तगीज लोग भारतीय वाणिज्यका अंशमागी होनेके लिये बहुत चेष्टाके बाद १५ वीं सदीके शेषमें उत्तमागा अन्तरोप चेर कर दक्षिण भारतके कालिकट यन्दरमें आ जुटे। इस पथसे पाश्चात्य वणिकोंकी प्रायः चार सदी तक भारतके साथ वाणिज्य करके अन्तमें राजा सलोमन और टायर-पति हिरामके प्रवर्तित लालसागर पथका अनुसरण करना पड़ा। इस

पथसे स्वेजनहर खोजनेके बाद भारत और यूरोपके वाणिज्यकी धीरे धीरे वृद्धि होने लगी है।

पुर्तगीजोंने उत्तमागा अन्तरोप घूम कर भारतमें आनेके समय अफ्रिकाके पूर्व उपकूल पर समृद्ध राज्य सौर नगर देख कर उन सब स्थानोंमें वाणिज्यार्थ उपनिवेश स्थापन किये। उस समयसे बहुत पहलेसे यहाँ पश्चिम-भारतमें सिन्धुप्रदेशीय और कच्छवासो हिन्दू तथा अरबी और फारसी उपनिवेश स्थापन कर वाणिज्य कार्यको देखभाल करते थे।

पुर्तगीज द्वारा अफ्रिकाके दक्षिण-समुद्र हो कर भारत जानेका पथ खुल जानेसे विनिस और जेनोवावासी वणिकोंके सिर पर चञ्जाघात हुआ, कारण जलपथसे स्थल-पथमें विभिन्न देग हो कर जानेसे बहुत खर्च पड़ता था, इस लिये उससे पणपद्रथका मूल्य भी बहुत अधिक लगता था। धीरे धीरे पुर्तगीज लोग पाश्चात्य वाणिज्यके प्रधान परिचालक हो उठे। उस पर वैदेशिकके प्रति विद्वेय-वशतः तथा समुद्रपथ पर अपना एकाधिपत्य जमानेकी इच्छाकर पुर्तगीज वहांके हिन्दू और अरबों वणिकों पर अत्याचार करने लगे।

आपसके द्वन्द्व और प्रतियोगितासे शत्रुता दिन पर दिन बढ़ती ही गई। पुर्तगीज तिजारत छोड़ कर चोरो-डकैती करने लगे। वे लोग समुद्रपथसे दूसरे दूसरे वणिकोंका सर्वस्व लूटने लगे। समी सगड़ित हो उठे। अन्तमें प्राण तथा सम्पत्ति जानेके भयसे अरबों और भारतीय वणिक वैदेशिक वाणिज्य-यात्राकी जलाञ्जलि दे अपने अपने स्थान पर लौट आनेकी बाध्य हुए। साथ ही साथ भारतीय वाणिज्य-प्रभाव खर्च हो कर पाश्चात्य संसर्ग लोप हो गया।

यूरोपीय वनिधे इस प्रकार अफ्रिका-उपकूलमें वाणिज्य करनेके लिये आ कर उस देगके अधियासियोंकी शान्ति और सुख बढ़ानेमें जिस तरह पराङ्मुख हो अरबी अर्ध-पिपासा शान्ति करनेकी अपसर हुए थे, उसी तरह वे लोग जगदीश्वरके कोपानलमें पड़ कर अपनी सञ्चित सम्पत्तिसे वृष्टित हुए। उनके प्रतियोगी अरूरेत, फ्रांसिसी, जर्मन और डेनमार्क वणिकोंकी प्रतिद्वन्द्वितासे उनकी यह उच्छुद्ध वाणिज्य प्रतिपत्ति प्रमथाः नष्ट हो गई और

इंग्लैण्डके महाकवि सेन्सीयरके Merchant of Venice ग्रंथमें आलेखन्दरकी समुद्रकी कथा एवं अन्धकवि मिष्टनेक "Paradise lost" ग्रन्थमें हर्मज और भारतके धन-रत्नका उल्लेख है।

उन लोगोंने वाणिज्य-प्रमायके साथ साथ वेपनिवेश स्थापन कर जितने छोटे छोटे राज्य अपने दखलमें किये थे, वे भी मष्ट हो गये।

तदनन्तर मोटो रकम पानेकी आशासे पण्यद्रव्यका वाणिज्य छोड़ कर जब पुर्तगोज लोम मानव विक्रय एवं मनुष्य पकड़नेके लिये दिन रात परिश्रम और अधव्य-सायमें निमग्न रहने लगे, तभीसे पुर्तगाल राज्य पापपंक्रमें शुरी तरह फँस गया और उसी पापसे उन लोगोंका वाणिज्य भी विलुप्त हो गया। वास्तवमें पुर्तगोजोंके प्राचीन मानचित्रोंमें जो सब स्थान सीधमालापूर्णा नगरोंसे परिशीमित एवं अलंकृत दृष्टिगोचर होते हैं, पापी पुर्तगोजोंके घृणित आचरण तथा घृणित शुलाम बेचनेके व्यवसाय (Capture and Sale of Slave) से वे सब स्थान जनहीन मरुभूमिमें परिणत हो गये। पर्यटकों कालके मानचित्रोंमें फिर उन सब स्थानोंके नाम सन्नि-येक्षित नहीं हुए। वे सब स्थान इस समय "महात-आरण्य" प्रदेश कहलाते हैं।

पश्चिमायासी बणिक्-सम्प्रदायके मध्य-भारतके उत्तर-पश्चिम उपकूलयासी विभिन्न धेणोंके हिन्दू वाणिज्य प्रमायमें बहुत पृथक्कालसे ही विशेष प्रभावान्वित हैं। उनके लिये कोई नहीं कह सकता, कि किस समयसे वे लोग अफ्रिकाके उपकूलमें वाणिज्य करने आ रहे हैं। उन सबोंमें कोई किसी समय अफ्रिकामें ओषुनके साथ नहीं आये। वे लोग कुछ वर्षों तक कार्यस्थानमें रह कर अपने देशका लौट जाते थे एवं फिर जब कभी आवश्यकता होती थी, तब वे विदेशकी यात्रा करते थे, नहीं तो अपने देशमें ही दूकान करके वाणिज्य कार्य सम्पादन करते थे।

पुर्तगोज लोगोंने जिस समय अफ्रिका एवं भारत और पूर्व भारतोष द्वीपोंके उपकूलभागमें अपना अधि-कार जमा लिया था, उस समय उक्त बणिक्-सम्प्रदायके कितने ही लोग अफ्रिकासे भाग दिये गये। इस धेणोंके लोगोंमें भारतिया और बनिवा जातिके लोगोंकी संख्या ही अधि-क थी। वे लोग इस समय भी सुदूर अफ्रिका भूमिमें अपनी जालीय निष्ठा तथा विद्युत्ताकी रक्षा करते हुए

जीवन यापन करते हैं। इस समुद्रयात्रासे वे लोग जातिच्युत या नमाजमष्ट नहीं हुए।

इसके अनिश्चित भारतवासियोंके साथ उत्तर तथा मध्य-पश्चिमाखंडका वाणिज्यकार्यके परिचालनार्थ भी भी कई एक पार्थक्य पथोंका परिचय पाया जाता है। अफगानिस्तान, फारस, पश्चिम तुर्किस्तान प्रभृति देशोंमें पण्यद्रव्य ले जानेमें बणिकोंकी प्रधानता मुले-मानों पर्वतमालाके संकट समूह, पेशावरके पार्थक्यपथ, गण्डावाके निकटवर्ती मूलासंकट तथा बोलन गिरि-पथसे जाना होता है। सिन्धुसे कन्दहार (गान्धार) राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये बोलनके अगम्यपथसे प्रायः 800 मील भूमिकी पार करना होता है। डेरा-इस्मालख़ाँकी विपरीत दिशामें मुलेरीके संकटपथसे हो कर अफगानिस्तान और पंजाबका वाणिज्य चलता है। पेशावरसे काबुलकी राजधानी प्रत्यागमन करनेके लिये ब्याघ्राना और तातारा नामक दो गिरिपथोंकी पार करना पड़ता है। सिन्धुप्रदेशके निवारपुर नगरसे पण्यद्रव्य शरीर कर बणिक्गण घोरि घोरि बोलनका गिरिपथ पार कर कन्दहार या कलात् नगरमें आते हैं। इस शैथिल्य स्थानके बणिकोंके साथ मध्य पश्चिमायासी बणिकोंका व्यापार चलता है। गजनोंसे गंगाल पथकी पार करके डेराइस्मालख़ाँमें आना होता है। इस पथसे पश्चिमायाजाति पैदल चल कर व्यापार किया करते हैं। वे द्रुमुपकृतिक और बणिक्-वृत्तिधारी हैं। हीबरकी घाटी पास हो कर काबुल जानेका एक मोर सुविस्तृत रास्ता है। प्रति वर्ष भारतमें जिस पण्यद्रव्यकी सामदानी रपतगो होती है, उसका मूल्य दो करोड़ रुपयेसे कम नहीं है।

• "The Bhatia and Banya who form a large number of these traders are Hindus and are very strict ones; yet it is remarkable that they may leave India and live in Africa for years without incurring the penalty of loss of caste which is enforced against Hindus leaving India in any other direction." (Cyclo. India)

पञ्चायतों के कारण ही कर यारकन्द कासघर और चोताधिकृत भूटान राज्यमें देशीय बणिक् विस्तृत वाणिज्य करते हैं। वे लोग अमृतसर और जालन्धरसे पण्यद्रव्य संग्रह करके उत्तर-पश्चिमामिमुख हिमालय पर्वत लांघ कर तथा काङ्गडा और पालमपुर हो कर लेह प्रदेशमें पहुँचते हैं। यहाँ पण्यद्रव्य लानेमें पहाड़ों बकरा और नील गायके बलावा और कोई यान-वाहन नहीं है। अङ्गरेज सरकार इन पथसे रातकार्यकी परिचालनाकी सुविधाके लिये खर्चसे काम लेती है। १८६७ ई०में लेह नगरमें एक अंग्रेज राजकर्मचारी नियुक्त हुआ। उसने वाणिज्यकी उन्नतिके लिये उसी साल पलानपुरमें एक मेला लगाया। यह मेला अब तक लगता है, जिसमें यारकन्दवासी सैकड़ों बणिक् आते हैं। साधारणतः दक्षिण अफगानिस्तानकी यात्री जाति, गुलेरी संकटक पोचिन्दा लोग, तुर्किस्तानकी पराछा जाति तथा यारकन्दके फरियाकास गण बड़े उस्तादसे यहाँ वाणिज्य चलाते हैं। उनके मुखसे हर साल नये नये पर्यटनका विवरण, विभिन्न जाति और नगर तथा रास्तेके नाना बर्तमानोंकी कथा सुनी जाती है। अफगानिस्तानके प्रधान वाणिज्यकेन्द्र काबुल, कन्दहार और हिराट नगर हैं। इन तीन स्थानोंसे यूरोप, फारस और तुर्किस्तानके साथ भारतका वाणिज्य चलता है। बोखारा और खोतानका रेशम, फिर्मान और खोकराका पशम प्रधानतः उक्त तीन स्थानोंमें आता है। यूरोपीय बनिधे अपने अपने देशोंका वस्त्र तथा भारतीय बनिधे नील और मसाला ले कर यहाँ आपसमें अदल बदल लेते हैं। मार्घावका समतल प्रातर तथा उजबक सामन्त राज्योंकी अतिक्रम कर बणिक् दल उत्तरपश्चिमामिमुख घामियान् शैलमालामें और कुन्दुज जातिके अधि कृत प्रदेशोंमें आ कर यूरोपीय बणिक् दल बदकसानकी चुन्नी और कोकवा उपत्यकाका चैदुर्थ (Lapi-Jazuli) नामक सूतयवान् प्रस्तरका संग्रह करनेमें लग जाता है। यहाँसे यह अषसास, जाकजातैस, आमु दरिया और सैर दरिया नामक चार नदियोंके निकटवर्ती समतल भू-भागमें आता है। बोखारा राजधानीसे याल्प और समरकन्दमें वाणिज्य चलता है।

समरकन्दसे बनिधे ओरेनबर्गमें और अन्यान्य

सोमान्तवर्षी नगर हो कर वर्षों वर्षों पर खुदकीकी राहसे कस राज्यमें आया करते हैं। कोई कोई दूर यहाँसे यारकन्द हो कर पश्चिम चीनमें, कोई मसैद होते हुए फारस तथा कोई काबुल और पेगाघर पथसे भारत आया करते हैं।

काबुलके पश्चिम बोखारेका पथ—यह पथ घामियान्, शैघान, दोभाव, हिवाँक, हमराक, सुलतान, कुलम, बाल्व, किलिफ फार्द और कर्षि हो कर चला गया है। बोखारेका विस्तीर्ण वाणिज्यका भाग लेनेके लिये समरकन्द, खोकरा और तासकन्दका बणिक्दल हमेशा यहाँ जाता आता है तथा काबुलसे वह फिर यह सब पथ ले कर पेगाघर, कोहाट, डेराइसमाइल खाँ और बग्नु जिलेमें आता है। खैबर, तातार, भावक्षाना और गण्डाल गिरिपथ हो कर पश्चिमदेशकी सब दिशाओंसे बणिक् पेशावरमें तथा कोहाटसे धुल और कूतम नदीको उपत्यका हो कर दूसरे रास्तेसे पण्यद्रव्य ले जाते हैं। गोमाल पहाड़ोंके रास्तेसे डेराइसमाइल खाँ हो कर जिचिस्तानमें पहुँचते हैं। इस प्रकार कुलु हो कर लोदकमें अमृतसर हो कर यारकन्दमें तथा पेशावर और हजारा हो कर बजौरमें पण्यद्रव्यका कारबार हुआ करता है।

हिन्दुस्तान तिब्बत नामक भूटान राज्यमें जानेके मुख्य रास्तेसे यहाँका वाणिज्य चलता है। यद्गट नामक स्थानमें शतद्रु नदी इस पथको पार कर चली गई है। तिब्बतके अन्तर्गत गःरतोरुनगरमें वर्षमें दो बार बड़े बड़े मेले लगते हैं। इस मेलेमें लद्दाख, नेपाल, काश्मीर और हिन्दुस्तानके बहुतेरे बनिधे पण्यद्रव्यकी खरीद बिक्रीके लिये जाते हैं। इनके बलावा गद्वाकराज्यके अन्तर्गत नीलनघाट, माना और नोतिसंकट तथा कुमायूँके अन्तर्गत वयान, धर्म और जोहर गिरिसंकट हो कर थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है।

कुमायूँ, पिलिमित, खेरो, भड्डोव, गोंडा, चस्तो और गोरखपुरसे बणिक् नेपालराज्यमें आ कर पण्यद्रव्य बदला करते हैं। काठमाण्डू राजधानीसे दो पहाड़ों रास्ते हिमालय पार कर ब्रह्मपुत्र (तुसान् नदी) की उपत्यकामुभि तक पहुँच गये हैं। इन पथोंसे भी नेपाल

उन लोगोंने वाणिज्य-प्रभावके साथ साथ उपनिवेश स्थापन कर जितने छोटे छोटे राज्य अपने दखलमें किये थे, वे भी नष्ट हो गये।

तदनन्तर मोटो रकम पानेकी आशासे पण्यद्रव्यका वाणिज्य छोड़ कर जब पुर्त्तगोज लीग मानव विक्रय एवं मनुष्य पकड़नेके लिये दिन रात परिश्रम और अधधव-सायमें निमग्न रहने लगे, तभीसे पुर्त्तगाल राज्य पापपंक्तमें धुरी तरह फँस गया और उसी पापसे उन लोगोंका वाणिज्य भी विलुप्त हो गया। वास्तवमें पुर्त्तगोजोंके प्राचीन मानचित्रोंमें जो सब स्थान सौधमालापूर्णा नगरोंसे परिशीभित एवं अलंकृत दृष्टिगोचर होते हैं, पापी पुर्त्तगोजोंके घृणित आचरण तथा घृणित गुलाम बेचनेके व्यवसाय (Capture and Sale of Slave) से वे सब स्थान जनहीन मरुभूमिमें परिणत हो गये। परवर्त्तों कालके मानचित्रमें फिर उन सब स्थानोंके नाम सन्नि-वेशित नहीं हुए। वे सब स्थान इस समय "अज्ञात-आरण्य" प्रदेश कहलाते हैं।

पश्चिमावासी बणिक्-सम्प्रदायके मध्य-भारतके उत्तर-पश्चिम उपकूलवासी विभिन्न श्रेणीके हिन्दू वाणिज्य प्रभावमें बहुत पूर्वकालसे ही विशेष प्रभावान्वित हैं। उनके लिये कोई नहीं कह सकता, कि किस समयसे वे लोग अफ्रिकाके उपकूलमें वाणिज्य करने आ रहे हैं। उन सर्वोंमें कोई किसी समय अफ्रिकामें स्त्रीपुत्रके साथ नहीं आये। वे लोग कुछ वर्षों तक कार्यस्थानमें रह कर अपने देशका लौट जाते थे एवं फिर जब कभी आवश्यकता होती थी, तब वे विदेशकी यात्रा करते थे, नहीं तो अपने देशमें ही दूकान करके वाणिज्य कार्य सम्पादन करते थे।

पुर्त्तगोज लोगोंने जिस समय अफ्रिका एवं भारत और पूर्व भारतिय द्वीपोंके उपकूलभागमें अपना अधिकार जमा लिया था, उस समय उक्त बणिक्-सम्प्रदायके कितने ही लोग अफ्रिकासे भगा दिये गये। इस श्रेणीके लोगोंमें आटिया और बनिया जातिके लोगोंकी संख्या ही अधिक थी। वे लोग इस समय भी सुदूर अफ्रिका भूमिमें अपनी जातिय निष्ठा तथा विशुद्धताकी रक्षा करते हुए

जीवन यापन करते हैं। इस समुद्रयात्रासे वे लोग जातिच्युत या समाजभ्रष्ट नहीं हुए।

इसके अतिरिक्त भारतवासियोंके साथ उत्तर तथा मध्य-एशियाखंडका वाणिज्यकार्यके परिचालनार्थ और भी कई एक पार्वत्य पथोंका परिचय पाया जाता है। अफगानिस्तान, फारस, पश्चिम तुर्किस्तान प्रभृति देशोंमें पण्यद्रव्य ले जानेमें बणिकोंकी प्रधानतः सुलेमानो पर्वतमालाके संकट समूह, पेशावरके पार्वत्यपथ, गण्डावाके निकटवर्त्ती मूलासंकट तथा बोलन गिरिपथसे जाना होता है। सिन्धुसे कन्दहार (गान्धार) राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये बोलनके अगम्यपथसे प्रायः ४०० मील भूमिकी पार करना होता है। डेरा-इस्मालखोंकी विपरीत दिशामें गुलेरीके संकटपथसे हो कर अफगानिस्तान और पंजाबका वाणिज्य चलता है। पेशावरसे काबुलकी राजधानी प्रत्यागमन करनेके लिये शायबाना और तातारा नामक दो गिरिपथोंकी पार करना पड़ता है। सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर नगरसे पण्यद्रव्य खरीद कर बणिकगण धीरे धीरे बोलनका गिरिपथ पार कर कन्दहार का कलात् नगरमें आते हैं। इस शेषोक्त स्थानके बणिकोंके साथ मध्य पश्चिमावासी बणिकोंका व्यापार चलता है। गजनीसे गोमाल पथको पार करके डेराइस्मालखोंमें आना होता है। इस पथसे पवित्रजाति पैदल चल कर व्यापार किया करते हैं। वे दस्युप्रकृतिक और बणिक्-वृत्तिधारी हैं। खैबरकी घाटी पास हो कर काबुल जानेका एक और सुविस्तृत रास्ता है। प्रति वर्ष भारतमें जिस पण्यद्रव्यकी आमदनी रपतनी होती है, उसका मूल्य दो करोड़ रुपयेसे कम नहीं है।

* "The Bhatia and Banya who form a large number of these traders are Hindus and are very strict ones; yet it is remarkable that they may leave India and live in Africa for years without incurring the penalty of loss of caste which is enforced against Hindus leaving India in any other direction." (Cyclo. India)

पञ्जाबसे कारमोर हो कर यारकन्द कासघर और सोनाधिकृत भूटान राज्यमें देशीय बणिक् विस्तृत वाणिज्य करते हैं। ये लोग अमृतसर और जालन्धरसे पण्यद्रव्य संग्रह करके उत्तर-पश्चिमाभिमुख हिमालय पर्वत लांघ कर तथा काङ्गडा और पालमपुर हो कर लेह प्रदेशमें पहुँचते हैं। यहाँ पण्यद्रव्य लेनेमें पहाड़ी बकरा और नील गायके अलावा और कोई यान-वाहन नहीं है। अङ्गरेज सरकार इन पयसे रातकार्यको परिचालनाको सुविधाके लिये लखरसे काम लेती है। १८६७ ई०में लेह नगरमें एक अंग्रेज राजकीयकारी नियुक्त हुआ। उसने वाणिज्यकी उन्नतिके लिये उसी साल पलानपुरमें एक मेला लगाया। यह मेला अवनत लगता है, जिसमें यारकन्दवासी सैकड़ों बणिक् आते हैं। साधारणतः दक्षिण अफगानिस्तानकी यात्री जाति, गुलेरी स'कटके पोविन्दा लोग, तुर्किस्तानकी पराछा जाति तथा यारकन्दके करियाकास गण बड़े उत्साहसे वहाँ वाणिज्य चलाते हैं। उनके मुल्लसे हर साल नये नये पर्वतनका विचरण, विभिन्न जाति और नगर तथा रास्तेके नांना फलेशीकी कथा सुनी जाती है। अफगानिस्तानके प्रधान वाणिज्यकेन्द्र काबुल, कन्दहार और हिराट नगर हैं। इन तीन स्थानोंसे यूरोप, फारस और तुर्किस्तानके साथ भारतका वाणिज्य चलता है। बोखारा और खोटाणका रेशम, किर्मान और खोकन्दका पशम प्रधानतः उक्त तीन स्थानोंमें आता है। यूरोपीय बनिधे अपने अपने देशोंका वस्त्र तथा भारतीय बनिधे नील और प्रसाला ले कर वहाँ आपसमें अदल बदल लेते हैं। मार्चावका समतल प्रान्तर तथा उजबक सामन्त राज्योंको अतिक्रम कर बणिक्दल उत्तरपश्चिमाभिमुख यामिधान् शैलमालांमें और कुन्दुज जातिके अधि कृत प्रदेशोंमें आ कर यूरोपीय बणिक्दल बर्कसानको खुशो और कोकचा उपत्यकाका घैदुर्ये (Lapi-lazuli) नामक मूल्यवान् प्रस्तरका संग्रह करनेमें लग जाता है। यहाँसे यह अथसास, जाकजतैस, आमु दरिया और सैर दरिया नामक चार नदियोंके निकटवर्त्तों समतल भू-भागमें आता है। बोखारा राजधानीसे याल्ख और समरकन्दमें वाणिज्य चलता है।

समरकन्दसे बनिधे ओरेनबर्गमें और अन्यन्य

सोमान्तवर्त्ती नगर हो कर वर्ष वर्ष पर खुश्कीकी राहसे रूस राज्यमें आया करते हैं। कोई कोई दूध यहाँसे यारकन्द हो कर पश्चिम चीनमें, कोई मसद होते हुए फारस तथा कोई काबुल और पेशावर पधसे भारत आया करते हैं।

काबुलके पश्चिम बोखारेका पध—यह पध यामिधान्, शैघान, दोआब, दिवाँक, हसरक, सुलतान, कुलम, बादख, किलिफ फार्द और कर्पि हो कर चला गया है। बोखारेका विस्तीर्ण वाणिज्यका भाग लेनेके लिये समरकन्द, खोकन्द और तासकन्दका बणिक्दल हमेशा वहाँ जाता आता है तथा काबुलसे वह फिर यह सब पण्य ले कर पेगावर, कोहाट, डेराइसमाइल वॉ और वन्नु जिलेमें आता है। खैबर, तातार, आबखाना और गण्डाल गिरिपथ हो कर पश्चिमदेशकी सब दिशाओंमें बणिक् पेशावरमें तथा कोहाटसे धुल और कूरम नदीकी उपत्यका हो कर दूसरे रासनसे पण्यद्रव्य ले जाते हैं। गोमाल पहाड़ोंके रास्तेमें डेराइसमाइल खाँ हो कर जिविस्तानमें पहुँचते हैं। इस प्रकार कुलु हो कर लोडकमें अमृतसर हो कर यारकन्दमें तथा पेशावर और हजारा हो कर बजौरमें पण्यद्रव्यका कारबार हुआ करता है।

हिन्दुस्तान तिब्बत नामक भूटान राज्यमें जानेके मुख्य रास्तेसे यहाँका वाणिज्य चलता है। वङ्गट्ट नामक स्थानमें शतद्रु नदी इस पथकी पार कर चली गई है। तिब्बतके अन्तर्गत गारलोकनगरमें वर्षमें दो बार बड़े बड़े मेले लगते हैं। इस मेलेमें लद्दाख, नेपाल, काश्मीर और हिन्दुस्तानके बहुतेरे बनिधे पण्यद्रव्यकी खरीद विक्राके लिये जाते हैं। इनके अलावा गढ़वालराज्यके अन्तर्गत नोलनघाट, माना और नीतिलंकट तथा कुमायूँके अन्तर्गत वयान, धर्म और जोहर गिरिलंकट हो कर थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है।

कुमायूँ, विलिमित, खैरो, भड़ोव, गोंडा, वन्तो और गोरखपुरसे बणिक् नेपालराज्यमें आ कर पण्यद्रव्य बदला करते हैं। काठमाण्डू राजधानीसे दो पहाड़ी रास्ते हिमालय पार कर ब्रह्मपुत्र (सुसान्पू नदी) की उपत्यकाभूमि तक पहुँच गये हैं। इन पथोंसे भी नेपाल

उन लोगोंने वाणिज्य-प्रभावके साथ साथ उपनिवेश स्थापन कर जितने छोटे छोटे राज्य अपने दखलमें किये थे, वे भी नष्ट हो गये।

तदनन्तर मोटो रकम पानेकी आशासे पण्यद्रव्यका वाणिज्य छोड़ कर जब पुर्तगाल लैग मानव विक्रय एवं मनुष्य पकड़नेके लिये दिन रात परिश्रम और अधव्य-सायमें निमग्न रहने लगे, तभीसे पुर्तगाल राज्य पापपंक्तमें घुरी तरह फँस गया और उसी पापसे उन लोगोंका वाणिज्य भी विलुप्त हो गया। वास्तवमें पुर्तगालीके प्राचीन मानचित्रोंमें जो सब स्थान सौधमालापूर्णा नगरोंसे परिशोभित एवं अलंकृत दृष्टिगोचर होते हैं, पापी पुर्तगालीके घृणित आचरण तथा घृणित शुलाम बेचनेके व्यवसाय (Capture and Sale of Slave) से वे सब स्थान जनहीन मरुभूमिमें परिणत हो गये। परवर्ती कालके मानचित्रमें फिर उन सब स्थानोंके नाम सन्नि-वेशित नहीं हुए। वे सब स्थान इस समय "अज्ञात-आरण्य" प्रदेश कहलाते हैं।

पश्चिमावासी बणिक्-सम्प्रदायके मध्य-भारतके उत्तर-पश्चिम उपकूलवासी विभिन्न श्रेणीके हिन्दू वाणिज्य प्रभावमें बहुत पूर्वकालसे ही विशेष प्रभावान्वित हैं। उनके लिये कोई नहीं कह सकता, कि किस समयसे वे लोग अफ्रिकाके उपकूलमें वाणिज्य करने आ रहे हैं। उन सर्वोंमें कोई किसी समय अफ्रिकामें खीपुलके साथ नहीं आये। वे लोग कुछ वर्षों तक कार्यस्थानमें रह कर अपने देशका लौट जाते थे एवं फिर जब कभी आवश्यकता होती थी, तब वे विदेशकी यात्रा करते थे, नहीं तो अपने देशमें ही दूकान करके वाणिज्य कार्य सम्पादन करते थे।

पुर्तगाली लोगोंने जिस समय अफ्रिका एवं भारत और पूर्व भारतीय द्वीपोंके उपकूलभागमें अपना अधिकार जमा लिया था, उस समय उक्त बणिक्-सम्प्रदायके कितने ही लोग अफ्रिकासे भगा दिये गये। इस श्रेणीके लोगोंमें आटिया और बनिया जातिके लोगोंकी संख्या ही अधिक थी। वे लोग इस समय भी सुदूर अफ्रिका भूमिमें अपनी जातीय निष्ठा तथा विशुद्धताकी रक्षा करते हुए

जीवन यापन करते हैं। इस समुद्रयात्रासे वे लोग जातिच्युत वा समाजभ्रष्ट नहीं हुए।

इसके अतिरिक्त भारतवासियोंके साथ उत्तर तथा मध्य-एशियाखंडका वाणिज्यकार्यके परिचालनार्थ भी कई एक पर्वत्य पथोंका परिचय पाया जाता है। अफगानिस्तान, फारस, पश्चिम तुर्किस्तान प्रभृति देशोंमें पण्यद्रव्य ले जानेमें बणिकोंको प्रधानतः सुलेमानो पर्वतमालाके संकट समूह, पेशावरके पार्श्वत्यपथ, गण्डावाके निकटवर्ती मूलासंकट तथा बोलन गिरिपथसे जाना होता है। सिन्धुसे कन्दहार (गान्धार) राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये बोलनके अगम्यपथसे प्रायः ४०० मील भूमिको पार करना होता है। डेर-इस्मालखीकी विपरीत दिशामें सुलेतीके संकटपथसे हो कर अफगानिस्तान और पंजाबका वाणिज्य चलता है। पेशावरसे काबुलकी राजधानी प्रत्यागमन करनेके लिये आबखाना और तातारा नामक दो गिरिपथोंको पार करना पड़ता है। सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर नगरसे पण्यद्रव्य खरीद कर बणिकगण घरे-घरे बोलनका गिरिपथ पार कर कन्दहार वा कलात् नगरमें आते हैं। इस श्रेणीके स्थानके बणिकोंके साथ मध्य पश्चिमावासी बणिकोंका व्यापार चलता है। गजनीसे गोमाल पथको पार करके डेर-इस्मालखीमें आना होता है। इस पथसे पौषिन्दाजाति पैदल चल कर व्यापार किया करते हैं। वे दस्युप्रकृतिक और बणिक-घृत्सिघारी हैं। खैबरकी घाटी पास हो कर काबुल जानेका एक और सुविस्तृत रास्ता है। प्रति वर्ष भारतमें जिस पण्यद्रव्यकी आमदनी-रपतनी होती है, उसका मूल्य दो करोड़ रुपयेसे कम नहीं है।

• "The Bhatia and Banya who form a large number of these traders are Hindus and are very strict ones; yet it is remarkable that they may leave India and live in Africa for years without incurring the penalty of loss of caste which is enforced against Hindus leaving India in any other direction." (Cyclo. India)

पञ्जाबसे काश्मीर हो कर यारकन्द कासघर और चोनाधिकृत भूटान राज्यमें देशीय बणिक् विस्तृत वाणिज्य करते हैं। वे लोग अमृतसर और जालन्धरसे पण्यद्रव्य संग्रह करके उत्तर-पश्चिमामिमुख हिमालय पर्वत लांघ कर तथा काङ्गडा और पालमपुर हो कर लेह प्रदेशमें पहुँचते हैं। यहाँ पण्यद्रव्य लानेमें पहाड़ी बकरा और नील गायके अलावा और कोई यान-वाहन नहीं है। अङ्गरेज सरकार इन पयसे रातकार्यको परिचालनाको सुविधाके लिये लखनसे काम लेती है। १८६७ ई०में लेह नगरमें एक अंग्रेज राजकर्मचारी नियुक्त हुआ। उसने वाणिज्यकी उन्नतिके लिये उसी साल पञ्जानपुरमें एक मेला लगाया। यह मेला अथक लगता है; जिसमें यारकन्दशानी सैकड़ों बणिक् आते हैं। साधारणतः दक्षिण अफगानिस्तानकी याबी जाति, गुलेरी स'कटके पोयिन्दा लोग, तुर्किस्तानकी पराछा जाति तथा यारकन्दके करियाकास गण बड़े उदाहरणसे वहाँ वाणिज्य चलाते हैं। उनके मुखसे हर साल नये नये पर्वतनका विवरण, विभिन्न जाति और नगर तथा रास्तेके नाना बरेशोंकी कथा सुनी जाती है। अफगानिस्तानके प्रधान वाणिज्यकेन्द्र काबुल, कन्दहार और हिंराट नगर हैं। इन तीन स्थानोंसे यूरोप, फारस और तुर्किस्तानके साथ भारतका वाणिज्य चलता है। बोखारा और खोटेनका रेशम, किर्मान और कोकन्दाका पशम प्रधानतः उक्त तीन स्थानोंमें आता है। यूरोपीय बणिये अपने अपने देशोंका वस्त्र तथा भारतीय बणिये मील और मसाला ले कर वहाँ आपसमें अदले बदले लेते हैं। मार्घावका समतल प्रान्तर तथा उन्नतक सामन्त राज्योंको अतिक्रम कर बणिक्दल उत्तरपश्चिमामिमुख यामियान् शीलमालामें और कुन्दुज जातिके अधि कृत प्रदेशोंमें आ कर यूरोपीय बणिक्दल धक्कसानकी चुन्नी और कोकचा उपत्यकाका घैदुये (Lapi-lazuli) नामक मूल्यवान् प्रस्तरका संग्रह करनेमें लग जाता है। यहासे यह अषस्तास, जाकजालेस, आमु दरिया और सेर-दरिया नामक चार नदियोंके निकटवर्ती समतल भू-भागमें आता है। बोखारा राजधानीसे याल्ख और समरकन्दमें वाणिज्य चलता है।

समरकन्दसे बणिये ओरेनबर्गमें और अन्याय

सोमान्तवर्ती नगर हो कर वर्षा वर्षा पर खुश्कीकी राइसे रुस राज्यमें आया करते हैं। कोई कोई दूर यहाँसे यारकन्द हो कर पश्चिम चीनमें, कोई मसैद होते हुए फारस तथा कोई काबुल और पेशावर पथसे भारत आया करते हैं।

काबुलके पश्चिम बोखारेका पथ—यह पथ यामियान्, शौघान, दोआब, हिर्वाक्, हुसराक, सुलतान, कुनम, बादश, किलिफ फार्द और कपि हो कर चला गया है। बोखारेका विस्तोर्ण वाणिज्यका भाग लेनेके लिये समरकन्द, कोकन्द और तासकन्दका बणिक्दल हमेशा वहाँ जाता आता है तथा काबुलसे यह फिर यह सब पण्य ले कर पेशावर, कोहाट, डेराइसमाइल खाँ और वन्नु जिलेमें आता है। खैबर, तातार, आबश्राना और गण्डाल गिरिपथ हो कर पश्चिमदेशकी सब दिशाओंसे बणिक् पेशावरमें तथा कोहाटसे थुल और फूम नदीकी उपत्यका हो कर दूसरे रास्तेसे पण्यद्रव्य ले जाते हैं। गोमाल पहाड़ोंके रास्तेसे डेराइसमाइल खाँ हो कर गिर्विस्तानमें पहुँचते हैं। इस प्रकार कुलु हो कर लोडकमें अमृतसर हो कर यारकन्दमें तथा पेशावर और हजारा हो कर बजौरमें पण्यद्रव्यका कारवार हुआ करता है।

हिन्दुस्तान तिब्बत नामक भूटान राज्यमें जानेके मुख्य रास्तेसे वहाँका वाणिज्य चलता है। चङ्गू नामक स्थानमें शतद्रु नदी इस पथको पार कर चली गई है। तिब्बतके अन्तर्गत गारतोकनगरमें वर्षमें दो बार बड़े बड़े मेले लगते हैं। इस मेलेमें लद्दाख, नेपाल, काश्मीर और हिन्दुस्तानके बहुतेरे बणिये पण्यद्रव्यको खरोट विक्रीके लिये जाते हैं। इनके अलावा गढ़वालराज्यके अन्तर्गत नोलनघाट, माना और नोतिलकट तथा कुमायूँके अन्तर्गत घयान, धर्म और जोहर गिरिसंकट हो कर भोड़ा बहुत वाणिज्य चलता है।

कुमायूँ, पिलिमित, खेरो, मड़ोंव, गोंडा, यन्तो और गोरखपुरसे बणिक् नेपालराज्यमें आ कर पण्यद्रव्य बदला करते हैं। काठमाण्डू राजधानीसे दो पहाड़ों रास्ते हिमालय पार कर ग्रहणुव (त्सान्गू नदी) की उपत्यकामूमि तक पहुँच गये हैं। इन पथोंसे भी नेपाल

धीर तिष्ठतका वाणिज्य यथेष्टरूपसे चलता है। नेपालके इस वाणिज्यका मूलांश बंगालसे ही सम्पन्न होता है।

अंगरेजाधिकृत भारतके कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कराची, कोलम्बो, त्रिनकमली, गल, रङ्गून, मौलमिन, आकायाब, चटगाँव, कोकनाडा, नागपत्तन आदि प्रधान प्रधान नगर वाणिज्यकेन्द्र हैं। इन सब जगहोंसे नदी, रेल या रैलगाड़ी द्वारा पण्यद्रव्य ला कर समुद्र-तोरके बन्दरमें जहाज पर लादा जाता है।

विस्तृत विवरण रत्नपथ शब्दमें देखो।

उन्नति और अवनतिका कारण।

ऋग्वेदीय युगमें हम आर्यजातिके वाणिज्यनिरत देखते हैं। उन्होंने कपड़ा, चुनना, हथियार बनाना और खेती बारी करनेमें काफी शिक्षा पाई थी तथा वे लोग सब द्रव्यादिका खरीद-बिक्री जानते भी थे, उक्त ग्रन्थसे इसका पारिचय मिलता है। उसी पूर्वतन आर्यजातिके समयसे ही भारतमें वाणिज्यकोत प्रवाहित तथा प्रती उद्देश्यसे उनका स्थलपथसे विभिन्न देशोंमें जाना और उपनिवेश स्थापन हुआ था, उसे कौन खलीकार करेगा ?

उपनिवेश और आर्यशाब्द देखो।

आर्यजातिके उपनिवेश स्थापनसे जाना जाता है, कि वे लोग समुद्रपथसे भी गमनागमन करते थे। ऋग्वेदके "शतारिक्तं नाभं" शब्दमें शतपत्रयुक्ता समुद्रगामितो नाभिका उल्लेख देखा जाता है। महाभारतके जतुशुद्ध-पर्वोध्ययमें यश्वयुक्ता नाभोंकी वर्णना मिलता है। नदी-वाहूनप यद्गुराउयमें भी उस समय नौ-निर्माणको परिपाटीका अभाव न था। महावंश ग्रन्थमें बङ्गवासियोंके रिहलजिजयकी कथा है। रघुवंशमें रघु द्वारा नौबल-गन्धित यज्ञभूपातिथीको पराजयकथा विवृत है। मुसलमानों अगस्तमें भी उस नौ-निर्माणविद्याकी अद्यनति नहीं हुई। बङ्गोभर मत्तापारिष्यका इतिहास पढ़तेसे उसका परिचय मालूम हो जाता है।

पैसा रामभता गलत है, कि ऊपरकी नावें केवल य लिये ही उपयुक्त थीं। जो नावोंकी छे राश्य जोतनेके समय नावोंमें सवार हो जा भी सकते थे।

धनपति आदि सौदागरोंकी वाणिज्य-याता उक्त स्मृतिकी धोतिका है।

जब ढाका, सुवर्णग्राम, सप्तग्राम, चटगाँव आदि स्थान बङ्गालके व्यावसायिक केन्द्र थे, तब यह बात कौन खीकार न करेगा, कि नावों द्वारा ही मालांकी आमदनी और रफतनी होती थी। इतिहासके पढ़नेवालोंसे लिपा नहीं, कि वैदेशिक उसी समय जहाजों पर चढ़ कर यहाँ आये थे। जहाँ आज कलकत्तका भागारिधीके बक्ष पर सैरुडों वैदेशिक जहाज दिखाई देने हैं, वहाँ सन् १८०१ ई०में बहुसंख्यक देशी शिदानिमित्त वाणिज्यकी नावें शोभा पाती थीं। उस समयकी इस दृश्यको देख कर उस समयके गयरनर जनरल लार्ड वेलेसलोन इंग्लैण्डके अफसरोंको पत्र द्वारा सूचना भेजी थी कि कलकत्तके बन्दर में बहुतेरी पेसी व्यावसायिक सुन्दर नावें मौजूद हैं, जाल एडन तक जानेमें समर्थ हैं।

सन् १८०७ ई०में कम्पनाके आशानुसार डाकुर सुना पन उत्तर-भारतके शिदर-वाणिज्यका अवस्थाके सम्बन्धमें जाँच-पड़तालके लिये पटना, शाहाबाद आदि स्थानोंका परिदर्शन करने गये थे। उन्होंने जो रिपोर्ट तयार की उससे मालूम हुआ, कि पटने जिलेमें उस समय घाने रुपयेका पीने दो मन मिलता था। वहाँ २४०० बाघे जमीनमें कपास तथा १८०० बाघे भूमिमें ऊँच बोई गई थी। २३०४२६ खिर्वाँ चुन कात कर अपनी जोशिकों निर्वाह करती थीं। दिनमें क घण्टे काम करने पर भी इससे पर्यमें १०८१००% खर्चा लाम होता था। अंग्रेज वाणिज्योंके निग्रहसे सूक्ष्म या बारीक सूत रफतना काम हानेके साथ साथ उनके कारोबारकी अद्यनति और उनका ज्ञान कष्टकर होने लगा। उस समय वहाँक बख चुननेवाले जुलाहिया ताँती साल मरका खर्च छोड़ कर ७॥ लाख

फतुहा, गया, नवादा आदि स्थान प्रसिद्ध थे। शाहाबाद जिलेमें २॥ लाख रुपयेका सूत कातती ताँती या कर्षे चलते थे। इन

तय्यार होता

नमक और

भागलपुर जिलेमें उस समय चावल एक रुपयेकी ३९१ सेर दिकता था। १२०० बीघे जमीनमें कपास बोई जाती थी। तसर बुननेके लिये ३२७५ और सूती कपड़ा बुननेके लिये ७२७६ कर्घे चलते थे। गोरखपुरमें १७५६०० औरते चरखा चका कर दिन बिताती थीं। यहां ६११४ कर्घे चलते थे। सालमें २०० से ४०० तक नावे बनाई जाती थीं। सिवा इसके यहां जमक और चीनीके कितने ही कारखाने थे। दिनाजपुरमें ३६००० बीघेमें पटुआ, २४००में कपास, २४०००में ऊज, १५००० बीघेमें नील, और १५०० बीघेमें शम्बाक बोई जाती थी। इस जिलेमें १३ लाखसे अधिक गाधे और बैल थे। ऊंचे घरानेकी विधवायें और गृहस्थोंकी औरते सूता कात कर साल भरके खर्चकी छोड़ कर ६१५००० का उपाजन करती थीं। ५०० सी घर देगम व्यवसायी वर्गमें १२०००० नफा करते थे। कपड़ा बुननेवाले सालमें १६७४००० रुपयेका माल तैयार करते थे। मालदहकी सुमलमानियोंमें दस्तकारीका विशेष प्रचलन था। सूत और कपड़ोंमें नाता तरहकी रंगाई करके भी बहुतेरे एक जोविका निर्वाह करते थे। पुर्णिया जिलेमें खिया प्रतिवर्ष ३००००० रुपयेकी कपाम खरीद कर जो सुत कातती थीं वह बाजारमें १३००००० रुपयेकी दिकता था। ३५०० कर्घोंमें ५६००० रुपयेका कपड़ा तैयार होता था। इसमें शिली प्रायः डेढ़ लाख रुपये नफा उठाते थे। सिवा इसके १०००० कर्घोंमें मोटा कपड़ा बुन कर घे ३२४०००० रुपये नफा करते थे। सतरंजी, फौता, भादिके भी व्यवसायकी अवस्था बहुत अच्छी थी।

* हुइटीके मुउसे सुना जाता है कि इस देगमें विद्यापती एक प्रचलन करनेके लिये कम्पनीने लोकोिका सुत कावनेवाली औरतेके चले हुइवा दिये थे। स्थानविशेषमें चर्ला पर गुफतर कर लगा दिया गया था। प्रायमें कम्पनीका आदमी आ रहा है यह सुन कर औरते ताजावमें चर्ला हुआ रहती थीं। यह प्रवाद यदि सत्य न हो तो न हो, किन्तु गुफतर कर स्थापित करनेके वे इतिहासमें बहुतेरे प्रमाण मित्रते है वया—

हपारा यह उन्नत व्यवसाय किस तरह घीरे पारे चिल्लुत हुआ था, यह निम्नलिखित राजनिप्रदके इतिहासकी आलोचना करनेसे साफ तीर पर मालूम हो जायेगा।

मलबारसे केलिको नामकी छोटकी पहले विलायतमें बहुत रफतनी होती थी। सन् १६७६ ई०में इंग्लैण्डमें कपड़ा तय्यार करनेका पहला कारखाना खोला गया। सन् १७०० ई०में इस शिल्पकी उन्नतिके लिये भारत-वर्षके केलिको छोटकी आमदनी बन्द कर दी गई। यहांकी पारलियामेण्टने एक कानून बना भारतीय छोट पर प्रति वर्गगज पर अन्दाज डेढ़ आना कर लगा दिया। इसके साथ ही सदाके लिये भी आमदनी पर कर बांधा गया था। दो वर्षके बाद विलायती जुलाहोंके कहने सुनने पर यहांकी सरकारने केलिकोका कर हूना बड़ा दिया। सन् १७२० ई०में विलायतमें केलिकोकी आमदनी कतई बन्द कर दी गई और बाजारमें इसका बेचा जाना बन्द कर दिया गया। यह कानून जारी किया गया, कि जो भारतकी केलिको बेचेगा, उस पर दो सी रुपयेका जुर्माना होगा और जो इसका व्यवहार करेगा, उस पर पचास रुपये जुर्माना होगा।

"Francis Carnac Brown had been born of English parents in India and like his father had considerable experience of the cotton industry in India. He produced an Indian, charka or spinning wheel before the Select Committee and explained that there was an oppressive Moturfa tax which was levied on every charka, on every house, and upon every implement used by artisans. The tax prevented the introduction of sawgins in India"—India in Victorian Age, P. 135.

उस समयके विद्वान्नी जुसाई कनइका पाठ हुनना नहीं जानते थे। वे इस विधाके भारतीय विशेषतः ब्रह्मो जुलाहोंके सील लये थे।

* Useful Arts and Manufactures of Great Britain, p. 363.

इसी तरह अन्यान्य मालों पर भी कर लगाया गया था। नीचेकी फिहरिस्त देख कर आपकी आँखें खुल सकती हैं।

घृतकुमारी (धीकवार) सैकड़े	७०	से	२८०
हींग	२३३	"	६२२
पलाच	१५०	"	२६६
काफी	१०५	"	३७३
मिर्च काली	२६६	"	४००
चीनी	६४	"	३६३
चाय	६	"	१००
कम्बल	८४॥		
चटाई	८४॥		
मसलिन	३२॥		
केलिके	८१		
कपास प्रतिमन	१५		
सूती कपड़ा सैकड़े	८१		
लाह	८१		
रेशम	२॥ ४	सेर	

इसके बाद रेशमी वस्त्रकी आमदनी लण्डनमें कतई बन्द कर दी गई। यदि कोई यह आमदनी करता था, तब अफसर उस मालको बाजारमें आने नहीं देते थे। तुम्हें ही वह माल जहाज़ पर चढ़ा कर भारत लौटा दिया जाता था।

इस कम्पनीकी कोठीमें देशी गिहरी बलपूर्वक पकड़ कर या पेशगी दे कर काम करने पर बाध्य किये जाने लगे। फलतः देशी कारखानोंकी नुकसान होने लगा। उस पर देशी माल पर उल्लिखित ऊँचा कर लगानेसे यहाँका शिल्पशास्त्रिय क्रमशः लुप्त हो गया। इस तरह कौशलसे भारतीय गिहरीका विनाश साधन किया गया और युरोपीय बणिक् राजसत्ता-प्रभावसे इस देशमें विलायती मालकी आमदनी करने लगे। सन् १७६४ ई०में जिस भारतमें १५६ पौण्डसे अधिक विलायती सूती कपड़ोंकी आगदनी नहीं हुई थी, सन् १८०६ ई०में उसी भारतमें १ लाख १८ हजार चार सौसे अधिक पौण्डका कपड़ा आया था। उस समयसे क्रमशः भारत-वर्षमें विलायती मालकी आमदनीकी अधिकता होने लगी। किन्तु विलायत और अन्यान्य देशोंमें भारतीय

मालको रफ्तकी उत्तरोत्तर कम होने लगे। निम्नलिखित फिहरिस्तसे मालूम हो जायेगा, कि देशी शिल्पकी अवनतिका घेग किस तरह प्रबल हो उठा था।

विलायतमें जानेवाले भारतीय मालका हिसाब इस तरह है—

रुई	१८१८ ई०	१२ १२४ गांठ।
"	१८२८	४१२५ "
कपड़ा	१८०२	१४८१७ "
"	१८२६	४३३ "
लाह	१८२४	१७६०७ मन
"	१८२६	८२५१ "

अन्यान्य मालोंकी कमी होने पर भी नील और रेशमकी रफ्तकी इस समय बढ़ने लगी थी। उसीके साथ-साथ मुकदर मुदकके लिये विलायतमें रेशमी वस्त्रकी प्रतिपत्ति बहुत कम होने लगी।

सन् १८१३ ई० तक एकमात्र ईष्टइण्डिया कम्पनी ही भारतमें माल आमदनी और रफ्तकी किया करती थी। इसी सालसे इंग्लैण्डके सभी बणिक् भारतीय व्यवसायोंको हाथमें करने पर उद्यत हुए और क्रमसे बाजार पर अधिकार कर बैठे। अतएव भारतका बाजार विलायती मालसे भर उठा। सन् १८२६ ई०में कुल प्रायः ६५॥ लाख पाउण्ड या साढ़े छः करोड़ रुपयेका माल भारतमें आया था। भारतीय शिल्पविज्ञानकी नष्ट करनेके लिये कम्पनी पूर्वोक्त उपायोंका अवलम्बन कर ही शान्त न हुई, वरं उसने भारतमें देशी शिहरी पर कड़ा कर बैठा दिया था। लाई वेष्टिकके जमानेमें विलायती कपड़ा भारतमें सैकड़े २॥ पर दे कर बेचा जाता था; किन्तु इस भारतमें यदि भारतीय अपने पहननेके लिये कपड़े तय्यार करें, तो उन्हें सैकड़े १७॥ रुपये कर देना पड़ता था। चमड़ेकी बनी देशी वस्तुओं पर अफसर १५ फी सदी कर वसूल करते थे। देशी चीनी पर विलायती चीनीकी अपेक्षा ५ अधिक कर देना पड़ता था। इस तरह भारतके २३५ तरहकी विभिन्न वस्तुओं पर अन्तर्वाणिज्यविषयक कर (Inland duties) बैठाया गया था। प्रायः ६० वर्ष तक इस तरह ऊँचे दरसे कर प्रदान करने पर बाध्य किये जानेसे

भारतीय शिल्प और व्यवसाय बहुत धोड़े ही दिनोंमें चौपट हो गया।

इसो तरहके अत्याचारसे धीरे धीरे विदेशमें भारतीय मालकी रफतनी कम होने लगी। अमेरिका, जैनमार्क स्पेन, पुर्तगाल, मरोच शीघ्र और एशियाखण्डके अन्धान्य प्रदेशोंके साथ भारतीय शिल्प-वाणिज्य-सम्बन्ध प्रायः लुप्तमा हो गया। सन् १८०१ ई०में इस देशमें अमेरिकाको १३६३३ गांठ कपड़ा भेजा गया था। सन् १८२६ ई०में यह रफतनी घट कर बहुत ही कम हो गई अर्थात् २५८ गांठ माल जाने लगा। सन् १८०० ई० तक हर वर्ष डेन मार्कमें न्यूनतम १४५० गांठ कपड़ा भेजा जाता था। किन्तु सन् १८२० ई०के बाद इस देशमें १५० गांठ कपड़े से अधिक नहीं गया। सन् १७६६ ई०में भारतने पुर्तगालमें ६७१४ गांठ कपड़ा भेजा था। सन् १८२५ ई०के बाद १००० गांठसे अधिक कपड़ा वहां भेजा जा न सका। सन् १८२० ई० तक अरब और फारस सागरके किनारेके प्रदेशोंमें ४ हजारसे ७ हजार तक गांठें भारतने भेजी जाती थीं। किन्तु सन् १८२५ ई०के बाद इस प्रांतमें २००० गांठोंसे अधिक कपड़ा भेजा न जा सका। महम्मद रैता जाके जमानेमें बङ्गीय जुलाहे अपने देशके छः करोड़ आदिमियों को कपड़ा पहना कर प्रतिवर्ष १५ करोड़का कपड़ा विदेशों को भेजते थे। इस समय वर्षमें वे ३ लाखका भी माल भेज नहीं रहे हैं। ऊपरके विवरणसे सहज ही हृदयङ्गम किया जा सकता है, कि अंग्रेजोंने भारतीय शिल्प वाणिज्यको नष्ट करनेमें कौसी प्रबल चेष्टा की थी।

१८वीं सदीके अन्तमें इंग्लैण्डके अर्थनैतिक अभाव वाणिज्यके प्रसारकी दृष्टिको चेष्टा करने लगे। जब तक भारतका शिल्प-व्यवसाय नष्ट नहीं हो गया तब तक वे इस चेष्टासे चिरन न रहे। सन् १८३६ ई०में भारतके अन्तर्वाणिज्य कर उठा लिया गया। उस समय देशो शिल्प-व्यवसायियोंकी देह रक्तशून्य हो गई थी। अब फिर उनमें सिर ऊंचा करनेकी ताकत न रह गई। इसके बाद रेल निकाल कर गांध तथा अन्य सवारियोंका व्यवसाय भी चौपट किया गया। प्रांमोंमें भी विदेशी मालोंको पहुँच जानेसे देशका वारिद्र्य दिनों-दिन बढ़ने लगा।

विद्ययात राजनोतिह प्रोचोनि भारतीय वाणिज्यको कमीकी ओर लक्ष्य कर कहा था कि भारतकी उर्वरभूमिमें अधिकतासे शस्य उत्पन्न होने पर और नाना प्रकारके वाणिज्य द्रव्यको प्राप्तिकी सुविधा होने पर भी यद्यार्थमें इस समय दरिद्र भारतका दिनोदिन अर्थात्तय बढ़ रहा है। सौदागरोंके अधिक दरिद्र न होने पर भी, उनके वाणिज्य-शक्ति-परिचालनका पूर्णतः अभाव दिखाई देता है। फलतः आज भारतका वाणिज्य इस तरह अवनत हो रहा है। नीचे उनका ही वाक्य उद्धृत कर दिया जाना है—

"India is a country of unbounded material resources, but her people are poor. Its characteristics are great power of production, but almost total absence of accumulated capital. On this account alone the prosperity of the country essentially depends on its being able to secure a large and favourable outlet for its superfluous produce. But her connection with Britain and the financial results of that connection compel her to send to Europe every year about 20 millions' worth of her products without receiving in return any direct commercial equivalent. This excess of exports over imports is; he adds, the return for the foreign capital which is invested in India, including under capital not only money, but all advantages, which have to be paid for, such as intelligence strength and energy, on which good administration and commercial prosperity depend. From these causes, the trade of India is in an abnormal position, preventing her receiving the full commercial benefit which would spring from her vast material resources."

सन् १६०६ ई०के बङ्गविच्छेदके समयसे भारतमें विशेषकर बङ्गालमें स्वदेशीका जोरों पर आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलनने भारतके पुराने गिलोद्वारकी बहुत अधिक चेष्टा की। बङ्गालके इस आन्दोलनसे भारत-

चयमें वाणिज्य-संसारमें हलचल मूच गई। इस आन्दोलनसे भारतके शिल्पोद्योगका बड़ा सहारा मिला। तबसे दिनों दिन करघे और चरखेका प्रचार बढ़ रहा है। इस समय देशके लोग साहसे प्रेम करते देखे जाते हैं। फलतः खहरका प्रचार तथा देगी चीजोंका वाणिज्य बढ़ने लगा है। कितने ही हिन्दुस्तानी पुंजीपति असंख्य धन लगा कर फलकारखाने खोले हुए हैं। इस समय देगी फलकारखानेमें ताता कम्पनीका कारखाना अधिक माल तैयार कर रहा है। इन्में लोहेके समान तैयार होते हैं। इस तरह भारतीय शिल्प-वाणिज्यकी उन्नति धीरे धीरे अभ्यसूची हो रही है। अभी तक विदेशी राज्य कायम रहनेसे किम् तरह भारत शिल्पोन्नति कर सकता है। फिर इन्में अभी तक जो कुछ उन्नति की है, वह एक परतल्ल राष्ट्रके लिये कम नहीं और यह आशा होती है, कि समयका परिवर्तन हुआ है। इस नये युगमें नये उत्साहसे लोग देशीकी वनी चीजों पर ममता प्रकट करने तथा उसे अपनाते लगे हैं; किन्तु तब तक देगी चीजोंका प्रसार और उसकी उन्नति अभी नहीं बढ़ सकती जब तक विलायतकी तरह भारतमें भी विलायती चक्रोंकी आगदनीकी रोकनेकी चेष्टा भारत-सर्वकारकी ओरसे न हो।

वाणिज्यदूत (सं० पु०) वह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देशके प्रतिनिधि रूपसे दूसरे देशमें रहता और अपने देशके व्यापारिक स्वार्थोंकी रक्षा करता हो, कामल। वाणिज्या (सं० स्त्री०) वाणिज्य टाप अभिधानात् स्त्रीत्वं वाणिज्य, तिजास्त।

वाणिनी (सं० स्त्री०) घण-शब्द निनि, डीप्। १ नर्सकी। २ छेक, सूराख। ३ मत्त स्त्री। ४ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं जिनमेंसे १, २, ३, ४, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १५ वाँ लघु और बाकी शुच होते हैं। इसका लक्षण "तजम जरैयदा मयति वाणिनी गेयुषतीः" (तन्द्रीमञ्जरी)

वाणी (सं० स्त्री०) वाणि- वा डीप्। १ सरस्वती। २ चचन- मुहसे निकले हुए सार्थक शब्द। ३ वाक्यशक्ति। ४ खर। ५ वागोन्द्रिय- जीम, रसना।

वाणीकवि - वाणीकारिकाके रचयिता।

वाणीकूट लक्ष्मीधर—एक प्राचीन कवि।
वाणीचि (सं० स्त्री०) वाप्रू पा, स्तुति, वाक्यरूपास्तुति। (शुक्र ११०१५)
वाणीनाथ—जामविजयकाव्यके प्रणेता।
वाणीवत् (सं० त्रि०) वाक्य सद्गता।
वाणीवाद (सं० पु०)-तर्क।

वाणीविलास—१ पद्यालीधृत, एक कवि। २ परागरीकाके रचयिता।
वाण्य (सं० पु०) वाणराजसम्बन्धीय अन्न या द्रव्य विशेष।
वाण्यवर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। वाण्यवर देला।

वात (सं० पु०) वागीति वाक्। १ पञ्चभूतके अन्तर्गत चतुर्थभूत, वायु, हवा। पर्याय—गन्धवाह, वायु, पवमान, महाबल, पवन, स्पृशीन, गन्धवाह, मरुत्, आशुग, श्वसन, मातरिष्वा, नभस्वत्, मातृक, अनिल, समीरण, जगत्पाण, समीर, सदागति, जीयन, पूषदश्व, तस्वी, प्रमञ्जन, प्रधावन, अनवस्थान, धूनन, मोटन, खग। गुण—जड़ताकर, लघु, शीतकर, रुक्ष, सूक्ष्म, संज्ञानक, स्तोकर। माचु-र्यग्निभक्षण, साम्रकाल, अपराह काल, प्रत्युपकाल और अन्नजीर्ण काल ये सब समय कुपित हुआ करते हैं। वायु शब्द देला।

२ वैद्यकके अनुसार शरीरके अन्दरकी वह वायु जिसके कुपित होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते हैं। शरीरमें इसका स्थान पक्वाण्य माना गया है। कहते हैं, कि शरीरकी सब धातुओं और मल आदिका परिचालन इसीसे होता है आर श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इन्द्रियोंके कार्योंका भी यही मूल है। वातव्याधि देला।

वातक (सं० पु०) वात पय चञ्जलः इयाद्ये कन्, यद्वा वातं करोतीति क्-अभ्येभ्योऽपिति उ। अशनपर्णी।

वातकण्टक (सं० पु०) एक प्रकारका वातरोग। इसमें पाँचकी गाँठोंमें वायुके घुसनेके कारण जोड़ोंमें बड़ी पीड़ा होती है। यह रोग ऊँचे नाचे पैर पड़ने या अधिक परिश्रम करनेसे होता है। इसमें बार बार रक्तमोक्षण करना आवश्यक है। रेडीका तेल पीने और सूर द्वारा दग्ध करनेसे भी यह रोग प्रशमित होता है।

वातकफहर (सं० पु०) वह उषर जो वातश्लेष्मके प्रकोपसे होता है।

वातकर्मन्- (सं०-ह्री०) वातस्य कर्मः । मरुत्क्रिया, पर्वन, पादना ।

वातकलाकल (सं० पु०) वायुका हिलोल ।

वाताकन् (सं०, त्रि०) वातोऽतिशयितोऽस्त्वस्येति वा ।

वातातिरात्र्याः कुक्चु । पा० (१२१२६) इति इनि कुक्चु ।

वातरोगयुक्त, जिम्मे वातरोग-हृत्मा हो, जो वातरोगसे पीड़ित हो ।

वातकी (सं० उग्रो०) श्लेष्मालिकावृक्ष, नील सिंधुवारका पीपल ।

वातकुण्डलिका (सं० स्त्री०) वातेन कुण्डलिका । मूत्राघात-

रोगमेव, एक प्रकारका मूत्ररोग । इसमें वायु-कुण्डला-

कार हो कर पेड़में घूमता रहता है, रोगको-पेशाब

करनेमें पीड़ा होती है और धूँव धूँव करके पेशाब उतरता

है । मूत्रकुण्डका रोग यदि मनुष्य कुपटप करके रुखा

घस्तुएँ खाता है, तो यह उपद्रव होता है । मूत्रपात देना ।

वातकुम्भ (सं० पु०) वातस्य कुम्भदेवः । गजकुम्भका

अधोभाग ।

वातकेतु (सं० पु०) वातस्य केतुरिय । धूल, गर्द ।

वातकेल (सं० स्त्री०) वात-सुखे भाषे घञ्, वातेन सुखेन

केलियत् । १. कलालाप, रुन्दक अलाप । २. पिड गद्दत-

ज्ञत; उपपत्तिके ज्ञातोंका क्षत ।

वातकोपन (सं०, त्रि०) वातस्य कोपनः । वातकोपक,

वायुयुक्त, जिससे वायु कुपित, होती है ।

वातषय (सं० पु०) वातकिकं गोलमें उत्पन्न पुरुष ।

(पा १२१५१)

वातशोभ (सं० पु०) वातेन क्षमितः । वायु द्वारा आलो

दित ।

वातखुड़ा: सं० पु०) रोगविशय । पर्याय—घातया, पिच्छल-

स्कोट, घामा, वातशोणित, वातहुड़ा ।

वागजंकुश (सं० पु०) वातव्याधि-रोगाधिकारमे एक

प्रकारकी रसीपथ ।

वातगण्ड (सं० पु०) समूहेन गण्डः । वातज गलगण्डरोग ।

इसमें गलेकी नसोंकालो या लाल और कड़ी हो जाती है

और बहुत दिनमें पश्तो है ।

वातगण्डा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम ।

(राजव० ७६६५)

वातागमिन् (सं० पु०) वातेन वायु वा सह गच्छतीति गम-गानि । पक्ष ।

वातगुल्म (सं० पु०) १ वातुल, पागल । वातेन जातो

गुल्मः । २ एक प्रकारका गुल्मरोग जो वातके प्रकोपसे

होता है । वैद्यकके अनुसार अधिक भोजन करने, रुखा

अन्न खाने, बलवान्से लड़ने, मलमूल-रोकने या अधिक

विरचनादि लेने तथा उपवास करनेसे यह रोग होता है ।

इसके लक्षण—वातगुल्म कभी छोटा और कभी बड़ा

होता है, जितना भि, वसित या पार्श्वदिमें इधरसे उधर रेंगता

सा जान पड़ता है । इस रोगमें मल और अपानवायु रुक

जाते हैं जिससे गलदोष और मुखशोष उत्पन्न होता है ।

जिससे यह रोग होता है, उसका शरीर सौंभला ज़ा

लाल हो जाता है । कभी कभी बड़ो पीड़ा होती है ।

यह पीड़ा प्रायः भोजन पचनेके बाद खाली पेट होने

पर घंट जाता है । यह दृशद्रव्य, कपाय, तिक्त और कटुरस

युक्त द्रव्यका सेवन करनेसे भी साधारणतः परिवर्द्धित

होता है ।

इसकी चिकित्सा—वातगुल्ममें दूधत लानेके लिये

परदका तेल या दूधके साथ इरीतकी पीना अथवा

स्निग्ध स्वेद देना होगा । स्वजिकाक्षार २ माशे, कुट

२ माशे तथा केतकी जटाकी क्षार ४ माशे इन सबोंका

देड़ोंके तेलके साथ पीनेसे वातजन्म गुल्म शोष ही प्रश-

मित होता है । इस रोगको तिक्त, मोर, मुर्गा, बगुला

और बचक चिड़ियाके मासका शोषा तथा घी और

साडो चायलका मात खानेके लिये देना होगा ।

(भाष०) गुल्मरोग देला ।

वातगोपा (सं० त्रि०) वायु द्वारा रक्षित ।

वातघ्न (सं० त्रि०) वातं हन्ति इत-ढक् । १ वातनाशक,

वातरोगमें उपकारक । (पु०) २ वातज्वरमें मधुराम्ल

लयन-द्रव्य । (सुश्रुत सू० ४३ अ०)

वातघ्नो (सं० स्त्री०) १ शालपर्णा । २ अश्वगन्धा, अस-

गंध । ३ शिगुडो क्षुप । (राजनि०)

वातचक्र (सं० स्त्री०) १ उर्वोत्पत्तिका एक योग । वृद्ध

दिवाने लिखा है, कि भाषादा पूर्णमासे दिन जब सूर्यदेव

अस्त होते हैं, तब आकाशसे पूर्वी वायु पूर्व समुद्रकी

तरंगोंकी सहाय कर घूमता घूमती चन्द्रसूर्यकी किरणोंके

तथा मुझे मारनेकी तरह दर्द होता है और निरचल हो जाता है।

कुपित वायु यदि मंदाघातुमें मिल जाये तो मांसगत वायुसा लक्षण होता है। विशेषता यह है, कि शरीरमें फोड़ा होता-और थोड़ी वेदना होती है।

कुपित वायु अस्थिका यदि आश्रय ले, तो अस्थि और उंगलियाँक पर्वोंमें वेदना, शूल, मांसक्षय, बलह्रास तथा अनिद्रा होती है और शरीरमें हमेशा दर्द रहता है। कुपित वायु यदि मज्जामें आश्रय करे तो ऊपर जैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं और यह किसी तरह आराम नहीं होता।

कुपितवायु बोधपंगत होनेसे बोधर्ष जट्ट गिरता है या उद्वेगन करता है। खिाँके आमगर्भपात या गर्भशुष्क होता है। शुककी विकृति होती रहती है।

त्वक्गत वायुरोगमें स्नेह मर्दन और स्वेद प्रयोग विशेष उपकारी है। रक्तमें प्रवेश किये वातरोगमें शातल अनुलेपन, विरेचन, रक्तभाक्षण, मांसाश्रित घातमें विरेचन और निरुहविपित प्रदान, अस्थि और मज्जागत वातमें देहके भीतर और बाहर स्नेहका प्रयोग विशेष उपकारक होता है। शुकगत वायुके प्रथमनक लिये मनको प्रसन्नता, सम्पादन और हृद्यप्रवाहा अन्न पानोप, बलकारक और शुकजनक द्रव्य सेवन करना उचित है।

स्थानविशेषकी वातव्याधिक्या विषय कहा जाता है। दुपितवायु कोष्ठसमूहमें यदि अचस्थान करे तो मलमूत्रकी रोकता है और मध्न, हृदुरोग, गुल्म, भरा (बवासाँर) और पार्श्वशूल पैदा करता है। आम्राशय, अन्याशय, पक्काशय, सूत्राशय, रक्ताशय, उन्दक और कुष्कुल इन्हीं स्थानोंको कोष्ठ या 'कोठा' कहते हैं। इन्हीं कोठोंमें समाई हुई वायुका ऊपरी निदान बतलाया गया है। इसके प्रत्येकका लक्षण कहते हैं।

आम्राशय आश्रित घातमें दुपित वायु आम्राशयमें समा जाने पर हृद्य, पार्श्व उदर और नाभिदेशमें वेदना, तुष्य, उद्वार-बाहुल्य, विद्विचिका (हँसा) स्नोसी, कण्ठ-शीप और दूमा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नामि और स्तन इन दोनोंके बीचके स्थानको आम्राशय कहते हैं।

आम्राशयगत वायुमें पहले लघन, पीछे अनिद्रासि कारक और व्याचक-ओषध और घमन या तोक्षण विरेचन

लेना चाहिये। भोजनके लिये पुरानी सूँगी दाल, बज और साठी चावलका भात दितकर होगा। गन्ध सुण, हरी तक्री, सोंठ और पुष्करमूल सब मिलाकर २ सोले, जल आधसेर, शेष आध पाव; विलय, गुडच, देवदार और सोंठ-ये सब मिलाकर देा तोले, जल आध सेर, शेष आध पाव; अतिविषा, पोषल और विट्त्वण—ये सब दो तोले, जल आध सेर, शेष आध पाव—यह तीन प्रकारके काढ़े आमवा में विशेष उपकारी होते हैं। सिवा इनके चिरैता, इन्द्रयध, आकनादि, फुटको, आतइच और हरोतकी (याँगी) इन सब द्रव्योंमें प्रत्येक आध आध तोला मिला कर—अच्छी तरह चूर्ण कर, इस चूर्णको आध तोला ले करगर्भपातोसे सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे आम्राशयगत वायु विद्वरित होती है। यह औषध छः दिन तक खाना चाहिये। ये औषध एक साथ न कूट पीस कर दूसरो रीतिसे भी सेवन की जा सकती है। इस प्रत्येक आध तोला औषध को अलग अलग छः दिनों तक सेवन किया जा सकता है। यदि ऐसा करना हो अर्थात् पुष्क पुष्क सेवन करना हो तो पहले दिन घमनको दवा ले के कर लेना चाहिये। इसके दूसरे दिनसे दवा लेना आरम्भ करना आवश्यक है। पहले दिन चिरैताका, दूसरे दिन इन्द्रयध, तिसरे दिन आकनादिका चूर्ण फगसे सेवन करना उचित है। यह छः दिनों तक सेवन करना पड़ता है, इससे पट्टकरण योग्य भी कहते हैं।

पक्काशयगत वायुके लक्षण—दुपित वायु अब पक्काशयमें पहुँच जातो है, तो पेटमें 'गड़ गड़' शब्द होने लगता है, दर्द, वायुकी श्लेष्मता, सूत्रकण्डू, मलमूत्रकी रुग्णता (फकावट), आनाह, और स्थानमें दर्द होता है। इस वातव्याधिमें अनिद्राकारक और उद्वारवर्तनाशक क्रिया करनी होगी। इसमें स्नेहविरेचन भी हितजनक है। उद्वेगत वातमें धार और चूर्णादि अनिद्राप्रदीपक द्रव्य भी सेवनोप है। कांख या कुङ्गितक वातमें सोंठ, इन्द्रयध और चिरैताका चूर्ण जरा सुमसुमा (कुष्ठ गर्भ) जलके साथ सेवन करना चाहिये।

गुह्यगत वातके लक्षण—गुह्यगत वातमें मल और वातकीका अधरोध, शूल, उद्वारपान, गश्मरी (पंथरी) और शर्करा (स्नोनी) उत्पन्न होती है और जंघा

उके, त्रिक, पादों, अंश और पीठमें वेदना उत्पन्न होती है। इस रोगमें उदरावरोधकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

हृद्गत चातको उपशमन करनेके लिये मिर्च (काली) का चूर्ण और गुड़, सुमसुमा जलके साथ सर्वे सेवन करना चाहिये; इससे हृद्गत वायु विनष्ट होता है। दैवदाघ और साँठ समभागसे पीस कर सहने लोयक उष्णजलके साथ पान करतेसे हृद्गत चातकी वेदना दूर होती है।

श्रोतादिगत चातके लक्षण—दुपित वायु कर्ण आदि इन्द्रियोंमें या जिस किसी इन्द्रियमें रहती है, उस इन्द्रियके श्रोतावरोध कर उसका कार्य नष्ट कर देती है। सुनरां वह इन्द्रिय विकल होती है। श्रोतादि इन्द्रियोंमें समाई हुई वायुमें वायुनाशक साधारण क्रिया और स्नेहप्रयोग, अम्यङ्ग, अवगाहन-स्नान, मर्दन और आलेपन-प्रयोग करना चाहिये। सिराओंमें गई हुई वायुके लक्षण—दुपित वायुके सिराओंमें आश्रय करने पर सिराओंमें वेदना, सकोच और वहिरायाम (पृष्ठनत), अन्तरायाम (कोडनत) खट्टी और कुज्जरीरोग हुआ करता है। इस वातमें स्नेहमर्दन, उपनाह (पुलटिस), आलेपन और रक्तमोक्षण विधेय है।

सन्धिगतका लक्षण—जब हुए वायु सन्धियोंमें समा जाती है, तब सन्धियोंका बन्धन ढीला, शूल (दर्द) और शोष हो जाता है। इसमें अग्निकर्म, स्नेह और पोलटिसका प्रयोग हितकर होगा। खीरेको जड़, पीपल और गुड़ इन सबीको समभाग ले कर पीसना चाहिये। इसके दो तोले नित्य सेवन करनेसे सन्धिगत वायु आराम हो जाती है।

इन व्याधियोंमें हनुस्तम्भ, अर्धित, आक्षेप, पक्षाघात (लकवा) और अपतानक रोग यथा समय बड़े यत्नसे चिकित्सा करतेसे इन रोगोंका कोई रोगी आराम हो जाता है किन्तु बहुत आराम नहीं भी होते। बलवान् व्यक्तियोंमें यह रोग यदि हो और उसमें कोई उपद्रव न हो, तो यह रोग साध्य होता है। विसर्प, गृह, वेदना, मलमूत्रावरोध, भूच्छां, अरुचि और अग्निमान्द्य द्वारा पीड़ित और मांस-बलक्षीण होने पर लकवाके रोगी या चातरोगीको जीवन को देना पड़ता है। सूजन, चमड़ेमें स्पर्शज्ञानका अभाव,

अङ्गमङ्ग, कम्प, उदरापान और अत्यन्त वेदना ये सब उपद्रव होने पर चातरोगीको यचना कठिन है।

चातव्याधिकी सामान्य चिकित्सा—चातव्याधिमें तैल मर्दन ही परमात्म औषध है। मापादि तैल, महा मापादि तैल, मधुम-नागयण तैल और महानारायण तैल इस रोगका अति उत्तम औषध है। सिवा इसके रास्नादि काढ़ा, गहायोगराजगुग्गुल, लहसून् कलक, रसोनाष्टक, चातरिरस आदि औषधियां भी उपकारो है। रोगीके बलावल, अग्निदीप्ति आदि देख कर औषध और तैल—इन दोनोंका व्यवहार करना करीब है।

(भावप्र० चातव्याधि)

मैपज्यरत्नावलीमें चातव्याधि रोगाधिकारमें निम्न लिखित तैल और औषध निर्दिष्ट हुई हैं:—**तट्याणलेह**, स्वल्पलहसूगणिएड, त्रयोदशाङ्गुगुग्गुल, स्वल्पविष्णुतैल, मध्यमविष्णुतैल, घृहृष्टिष्णुतैल, नारायणतैल, मध्यम-नारायणतैल, सिद्धार्थकतैल, हिमसागरतैल, वायुछाया-सुरेन्द्रतैल, महानारायणतैल, महावलतैल, पुष्पराज-प्रसारिणीतैल, महाकुक्कुटवांसतैल, नकुलतैल, माप-तैल, स्वर्णमापतैल, वृहन्मापतैल, महामापतैल, निरा-मियमहामापतैल, कुज्जप्रसारिणी तैल, रस्तजतिका-प्रसारिणी तैल, एकदशशतिका महामसारिणी तैल, अष्टादशशतिकाप्रसारिणी तैल, त्रिशतीप्रसारिणी तैल, महाराजप्रसारिणी तैल, चन्दनाभ्युसाधन महा-सुगन्धितैल, लक्ष्मीविलासतैल, नकुलाघपुन, छाग लाघपुन, घृहृच्छायाघपुन, चतुसुधरस, चिन्तामणि चतुसुध, योगेन्द्ररस, रसराजरस, वृहद्वातचिन्तामणि, और यलाधि आदि औषध, तैल और घृत अनिहित हुए हैं। सिवा इसके छोटे छोटे विविध योग और पाचन आदि विषय भी लिखे हुए हैं।

(मैपज्यरत्ना० चात-व्याधि)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इस रोगके लिये निम्नलिखित औषध निर्दिष्ट हुई हैं। द्विगुणाधररस, चाताङ्कुञ्ज, वृहद्वातगजाङ्कुञ्ज, महावातगजाङ्कुञ्ज, वातनागधररस, पातारिरस, अग्नितारिरस, वातकण्ठधररस, अश्वानन्द रस, चिन्तामणिरस, चतुसुधरस, लक्ष्मीविलासरस, श्रीसङ्घटी, पिण्डीरस, कुञ्जविनोदरस, शोतारिरस,

वातविघ्न'सो रस, पलासादिवटी, दशसारवटी, गगनादिवटी, सर्वाङ्गसुन्दर रस, तारकेश्वर और चिन्तामणिरस । (स्तेन्द्रधाररस वात-व्याधिरोगाधि०)

चरक, सुश्रुत और चागमद प्रभृति वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रोगका निदान और चिकित्सा आदिका विषय विशेष-रूपसे लिखा हुआ है। विस्तार भयसे यहाँ उनका पृथक् रूपसे लिगिवद्ध किया न गया ।

पचपापचयः—वातव्याधिमें स्निग्ध और पुष्टि-कर भोजनादि नितान्त उपयोगी हैं। दिनको पुराने चावलका भात, मूँग, मटर और चनेकी दाल, कपई, मुगरो, रेहू आदि मछलियोंका शोरवा, रेहूँका मुण्ड, वकरैका मांस, गुलर, परवल, अर्कई आदि तरकारियाँ, मषछन, अंगूर, दाड़िम, पका हुआ मोठा धाम आदि फल भी खाया जा सकता है। रातको पुड़ी या रोटी, मोहनमोग (हलश)। सवेरे गायको धारका दूध पीना अच्छा है।

वर्जितकर्म—शुष्पका, तीक्ष्णवीर्य, रूखा, अम्ल-जनक द्रव्य भोजन, श्रमजनक कार्य-सम्पादन, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, निरन्तर बैठे रहना, आतपसेवा, इच्छाप्रतिकूल कार्यादि, मलमूल नृणा, निद्रा और भूख आदिका वेग धारण, रातिको जागरण और मैथुन अनिष्टकारक है।

उरुस्तम्भ और आमवात भी वातरोगमें माना गया है। इस लिये इन दोनों रोगोंके निदान और चिकित्सादिका विषय भी यहाँ लिखा जाता है—

उरुस्तम्भ रोगका निदान—अधिक शीतल, उष्ण, द्रव, कठिन, गुरु, स्निग्ध वा रुखा पदार्थ भोजन, पहलेका किया हुआ भोजन जब तक पचे नहीं, तब तक ही फिर भोजन, परिश्रम, शरीरका परिचालन, दिनको सोना और रात्रिजागरण, आदि कार्योंसे कुपितवायु, श्लेष्मा, और आमरक्त-युक्त पित्तकी दुपित कर उसमें अवस्थित होने पर उरुस्तम्भ रोग उत्पन्न करता है।

इसके लक्षण—इस रोगमें उरुस्तम्भ, जीतल, अचेतन माराक्रान्त, और अत्यन्त वेदनायुक्त होता है और उठना बैठना मुश्किल हो जाता है। इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, अङ्गवेदना, रतैमित्य—अर्थात् शरीरमें गींगी वज्र-

के स्पर्शका ह न होना, आलस्य, कै, अगचि, ज्वर, वैरकी अवसन्नता, स्पर्शशक्तिका नाश और कष्टसे सञ्चालन, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

उरुस्तम्भ होनेके पहले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, स्तेमित्य ज्वर, रोमाञ्च, अगचि, कै और जंघा और ऊपरमें दुर्ललता आदि ये हो सब पूर्वरूप दिखाई देते हैं।

इस रोगके अरिष्ट लक्षण—इस रोगमें दाह, सूँ चूमनेकी-सी वेदना, कन्ध आदि उपद्रव होते हैं। पैसा होने पर रोगीके जोनेकी आशा नहीं रहती। चिकित्सा—जिन क्रियाओं द्वारा कफको शान्ति होती है, अथच वायुका प्रकोप अधिक न होने पाये, उरुस्तम्भमें वैसे ही चिकित्साकी जरूरत है। फिर भी रुक्ष क्रिया द्वारा कफको शान्त कर पीछे वायुको शान्त करना चाहिये। पहले स्वेद, लंघन और रुक्ष क्रिया करना कर्त्तव्य है। अधिक रुक्षक्रिया द्वारा वायुके अधिक कुपित हो जानेसे निद्रानाश आदि उपद्रव उठ खड़े होने पर स्नेह स्वेद आदिका व्यवहार करना चाहिये। डहर करञ्जाका फल और सरसों या अश्वगन्धा, आकन्द, नीम या देवदारुका मूल या दन्ती, इन्दुरफानी, रास्ना और सरसों या जैत, रास्ना, सहिजनकी छाल, घच, गुडूचो और नीम ये कष्ट्योंमें कोई एक योग नेमूतके साथ पीस कर उरुस्तम्भमें लेप करना होगा। सरसोंका चूर्ण और नोनो मिट्टी मधु (सद्द) के साथ मिला कर या घतुरेके रसमें पीस कर गरम गरम प्रलेप करना चाहिये। काले घतुरेकी जड़ चेंडोफल, लहसुन, काली मिर्च, कालाजीग, जैतका पत्ता, सहिजनकी छाल और सरसों इन सब दवाओंको गोमूतके साथ पीस गरम कर प्रलेप करनेसे इस रोगको शान्ति होती है।

त्रिफला, पीपल, मोया, कटकी इनका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कटकी, इन दवा चोर्णोंका चूर्ण आध तोला शददके साथ सेवन करनेसे उरुस्तम्भ आराम होता है। पीपलामूल, मेला और पीपल,—इसका काढ़ा बना कर इसमें मधुका छोटा दे कर पीनेसे भी यह रोग दूर होता है। महातकादि और विप्लवादि पाचन, गुञ्जा-भद्रस, अष्टकद्वयतैल और महासैन्धवादि तील आदि औषध भी उरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग की जा सकती है।

आमवातके निदान और लक्षण—एक साथ दूध और मछलीका विरुद्ध भोजन, स्निग्धान्न भोजन, अधिक मैथुन, व्यायाम, तैरना, जलकोड़ा, अग्निमान्द्य, और गमनागमनशून्यता आदिसे अपक आहार रस, आमाशय और सन्धिस्थल, आदि कफस्थानमें वायु सञ्चिन और दुषित हो आमवात उत्पन्न करता है। अवायुहारिक वातमें इस रोगको घायुरोग कहते हैं। अङ्गमर्दन, अरुचि, तृष्ण, आलस्य, दिहका भारीपन, उजर, अग्निरिपाक और सूजन ये कई आमवातके साधारण लक्षण हैं। कुपित आमवातके उपद्रव—आमवात कुपित होने पर सब रोगोंकी अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है और उस समय हाथ, पैर, गिर, गुल्फ, कटि, जानु, उरु और सन्धिस्थानोंमें अत्यन्त वेदनायुक्त सूजन पैदा होती है। और भी इस समय दुष्ट आम (आंव) जिन जगहोंमें रहता है, उन स्थानोंमें बिच्छूके झंक्की तरह वेदना, अग्निमान्द्य, मुख-नाकसे जल गिरना, उत्साहहानि, मुँहका फोकापन, दाह, अधिक मूत्रप्राय, कालमें दर्द, और कठिनता, दिनको निद्रा, रातको अनिद्रा पिपासा, फे. भ्रम, हृदय वेदना, मलव्यता, शरीरकी जड़ता, उदरमें शब्द और आनाह आदि उपद्रव होते हैं। घातज आमवातमें शूलयत् वेदना वैक्तिक गालदाह और शरीरमें लालिमा और कफजमें भीगे कपड़ेके निचोहनेकी तरह अमुषय, भारीपन और खुजलाहट ये ही सब लक्षण दिखार् देते हैं। दो या तीन दोषोंके संमिश्रणसे ये सारे लक्षण मिले हुए दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—पोड़ाकी प्रथमावस्थामें उत्तम रूपसे चिकित्सा करना आवश्यक है। नहीं तो कष्टसाध्य या असाध्य हुआ करता है। बालुकी पुटली गर्म कर इससे दर्दको जगद सेंकना चाहिये। कपासका बीज कुलधी तिल, जी, लाल परदकी जड़, मसोना, पुनर्नवा, शानपौज—इन सब चीज या इनमें जोही मिल जाये, उसको कूट कर मट्टेमें गिगा कर दो पुटली तैवार करनी होगी। एक हाथीमें मट्टे दे कर एक बहुतेरे छिद्रवाले ढकनेसे हाड़ी ढक कर मुँह पर लेप देना होगा। पोछे मट्टेसे भरी हाड़ी अग्नि पर चढ़ाकर ढकने पर एक एक पुटली गर्म करनी होगी, इस गर्म पुटलीसे सेंकने पर

आमवातका दर्द दूर होता है। इस सेंकना नाम शंकरसेक है। छलक, सहिजनकी छाल, नोनी मिट्टी गोमूलमें पोस कर इसका लेप करनेसे आमवातकी पोड़ा शान्त होती है। अथवा सोया, वच, सोंठ, गोखरू वरुणछाल, पीला बीजवन्, पुनर्नवा, कचूर, गन्धभादुल, जैतका फल और होंग—इन सब चीजोंको मट्टेके साथ पीस कर गर्म करके लेप करना। काला जीरा, पीपल, नाटा बीजका गूदा, सोंठ बराबर भाग ले कर अरकके रसमें पीस गर्म कर प्रलेप देनेसे शीघ्र पोड़ा शान्त होती है। तीन कांटासीज, गोंद, नमक मिला कर दर्दको जगह लगानेसे दर्द दूर होता है।

चिता, कटकी, आकनादि, इन्द्रपय, आतरुच और गुलञ्ज अथवा देवदाक, वच, मोषा, सोंठ और हरीतकी इनका समभाग पीस कर गरम जलके साथ हर रोज पीनेसे आमवात गट्ट होता है। कपूर, सोंठ, हरीतकी, वच, देवदार, आतरुच और गुलञ्ज मिला हुआ २ तोले जल आध सेंर, शेष आध पाय यह काढ़ा पीनेसे आमवातका दोष दूर होता है।

पुनर्नवा, पुरती, मेरेण्डा और वनतुलसी या सूची-सुषी, सहिजन और पारिजातका काढ़ा बना कर सेवन करनेसे आमवात दूर होता है। रेड़ीकी जड़ दूधमें पका कर घाटने या गोमूलके साथ गुग्गुलु पीनेसे बड़ा उपकार होता है। सोंठ, हरीतकी और गुलञ्ज मिला हुआ २ तोले, जल आध सेंर, शेष आध पाय—इस काढ़े में घोड़ा गुग्गुलु डाल कर थोड़ा गरम रहे तब पीनेसे कमर, जांघ, ऊरु और पीठकी वेदना दूर होती है। हिंग १ भाग, चम्य २, चिटलघण ३, सोंठ ४, पीपल ५, मंगरैला ६ तथा पुष्करकी जड़ ७ भाग इन सबोंका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे आमवात शीघ्र हो निराहृत होता है। इनके अलावे हिङ्गादिचूर्ण, पिप्पलाचचूर्ण, पट्टाचचूर्ण, रसोनादिरुपाय, रास्नापञ्चक, शट्यादि, रास्नासक्त, पुनर्नवादिचूर्ण, अमृताचूर्ण, अरुमुषादिचूर्ण, असोनक चूर्ण, शुण्ठीधन्याकघृत, शुण्ठीघृत, काञ्चिकपट्टपञ्चघृत, शृङ्गवेराचघृत, इन्द्रघृत, पाण्यन्तरघृत, महाशुण्ठीघृत, अममोदादि प्रसारणीलेह, अष्टमुण्ठी, रसोनपिण्ड, प्रसारणीतैल, द्विपञ्चमूलाघृतैल, सैन्धवादिनैल, वृद्ध

सैन्धवादि तैल, स्वल्पप्रसारिणीतैल, दशमूलाद्यतैल, मध्यम-
रास्नादिकाद्य, महारास्नादिकाद्य और रास्नादशमूल-
धादि औषध इस रोगमें बड़े फायदेमंद हैं।

(भावप्र० आमवातरोगाधि०)

वातव्याधि रोगोक्त कुञ्जप्रसारिणी और महामाप
धादि तैल भी इसमें विशेष उपकारक हैं।

भेषज्यरत्नावलीके इस रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध
दो हुई हैं, जैसे—रास्नादि दशमूल, रास्नातप्तक, रास्ना-
पञ्जक, वैश्वानरचूर्ण, अजमोदाद्रिघटक, आमगजसिंहमोदक
रसोनपिण्ड, महारसोनपिण्ड, यातारिगुग्गुलु, योगरज-
गुग्गुलु, वृद्धयोगराजगुग्गुलु, वृद्धसैन्धवाद्यतैल, द्वितीय
सैन्धवाद्यतैल, आमवातारिषाटिका, आमयातारिरस,
आमवातेश्वररस, त्रिकाट्यादिलोह, विडङ्गादिलोह, पञ्जा-
ननरमन्त्रोद, वातगजेन्द्रसिंह और विजयभैरवतैल आदि
और विविध मुष्टियोग बहिहित हैं।

(भेषज्यरत्ना० आमवातरोगाधि०)

पथ्यापथ्य—दिनमें पुराना चावल, कुलधी, उड़ुद,
मूँग, चना और मसूरको दाल, परवल, डुंवर, मानकचू,
फरेला, साहजम, घैगन, अदरक आदि तरकारीएँ बकरी,
कबूतर-आदिके मांसका जूप, जितना घी पचा सके
उतना घी, अम्ल और मधु आहार करें। रातमें रोटी या
पुट्टी और यह सब तरकारी-सेवनीय है। स्नान जितना
कम करे, उतना ही अच्छा है। नितान्त ही स्नानका
आवश्यक होनेसे गरम जलमें स्नान करना होगा। घायु
का प्रकोप अधिक होनेसे नशोंमें स्नान या सोतेके प्रति
फूल तैलना उपकारी है।

निषिद्ध कर्म—कफजनक भ्रवा, मलमूत्र, गुड़, दही,
उड़ुद और बहुत मीठा खाना, मलमूलादिका घेगघारण,
दिवानिद्रा, रात्रिजागरण और ठंडक विशेष अपकारी है।
स्वर रहने पर अन्न खाना बन्द करे हलका पदार्थ खाना
चाहिये।

होमिभौषधिक मतसे चिकित्सा।

यह रोग साधारणतः तीन प्रकारका है—(१) पष्यूट
(Acute Rheumatism) या तरुण और कठिन। (२)
स्व-पष्यूट (Sub-acute) या अप्रबल। (३) क्रान्तिक
(Chronic) या पुराना। पहले या दूसरे प्रकारके रोग

सहजमें आराम हो जाते तथा तीसरे प्रकारका रोग
कष्टदायक होता है, यह सहजमें नहीं छूटता।

तरुणवात (Acute rheumatism)

तरुण और कठिन या पष्यूट वातरोगमें (Acute
Rheumatism) एक वा उससे अधिक प्रशियमें विशेष
प्रकारका प्रदाह उत्पन्न होता है। सभी संघियां एक
घार या क्रम क्रमसे आक्रान्त होती हैं। इससे प्रबल-
उपरमें सभी लक्षण मौजूद रहने हैं। इसलिये इसका
दूसरा नाम—रूमेटिक फिवर (Rheumatism fever)
है।

डा० प्राउट (Dr. Prout) का कहना है, कि पसीने
द्वारा चमड़ेसे लाकटिक एसिड बाहर होता है। कभी
कभी शरीरकी हालतमें यह बहुत अधिक निकलता है।
उस समय शरीरमें ठंडी हवाके लगनेसे उक्त एसिड
बाहर नहीं निकल सकता तथा उसको, उक्त जनाने लिये

प्रशियका रक्तामुखावा विधानसमूह प्रदाहम्यत्तुआ करता
है। बहुतेरे इस मतको मानते हैं। किन्तु परीक्षा द्वारा
लोहमें उक्त प्रकारका एसिड नहीं पाया जाता, अथच यह
पेरिटोनियम कैटरमें इञ्जेक्ट करनेके समय लथवा-सेचन
करनेके पीछे प्रबल वातरोगके सभी प्रधान उपसर्ग
(पेरिकार्डिटाइटिस और प्लेडोकार्डिटाइटिस आदि पीड़ा)

प्रकाश करता है, किन्तु उससे भी सभी संशियवां प्रदाह-
युक्त नहीं होती। डा० ह्यूटर (Dr. Hueter) कहते
हैं, कि रक्तस्रोतमें एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिन्न प्रवेश
करता है तथा उसको उक्त जनाने कारण प्लेडोकार्डि-
टाइटिस और गांठोंमें जलन होती है। डा० ड्रकवर्थ और
चार्लोट साहब (Dr. Duckworth and Charcot) का
मत है, कि किसी किसी मनुष्यको एक साधारण शारी-
रिक प्रकृति होती है। जिससे रूमेटिज्म या गांठ रोग
उत्पन्न होता है। डा० हचिन्सन (Dr. Hutchinson) का
कहना है, कि शीत या ठंडक लगनेसे सब गांठोंमें एक
प्रकारका काट्यारेल प्रदाह पैदा होता है।

यह पीड़ा कभी कभी कुलगत, अर्थात् विद्युत्पुनोसे
सिल जाती है। साधारण २५से ले कर ३५ वर्ष उम्र-
वाले व्यक्तियोंको यह पीड़ा होते देखा जाता है। काना
कायैयशात् पुण्य तथा दरिद्र लोग सर्वथा इस रोगसे

आक्रान्त रहते हैं। कहीं कहीं बालकोंकी भी यह पीड़ा हुआ करती है। न अधिक उठान अधिक गरम देशोंमें या भौंगी जगहमें वास करने, शारीरिक अस्वस्थता और मनःकष्ट रहने तथा गाने गाली गाँठमें जोड़ लगनेसे यह रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है।

पसीना निकलते समय शीत लगने, देर तक भौंगी फण्डा पहन कर रहने और अनियम आहार करनेसे यह रोग धर दबाता है। चोर्थ रोकने अथवा बच्चोंको हमेशा स्नान पिलाने, किसी कारणवश स्वच्छता कियेका लोप होने (जैसे स्कालेट् फिवरमें) और अधिक अङ्ग हिलाने डुलानेसे यह रोग हो सकता है।

शारीरिक परिवर्तनमें बड़ी बड़ों गाँठोंके फाइब्रोसिस् और साइनोवियल् विधातमें प्रदाहके चिह्न देखे जाते हैं। साइनोवियल् विधातमें आरकिया और स्थूल तथा यहाँकी सभी रक्तनालियाँ स्फूर्ण होते देखे जाती हैं। ग्रन्थिमें लिम्फा, तरल सिरम् और कमी कमी मवाद रहता है तथा उसके बीच कार्टिलेज क्षत हो सकता है। निकटकी श्वेत जगह सिरम् द्वारा स्फोट होतो है। हृत्पिण्डाभ्यन्तरमें विशेषतः भालभोंके ऊपर स्तर स्तरमें फाइब्रिन देखा जाता है। पेरिकाडाइटिस, एण्डोकार्डाइटिस, माइनोकार्डाइटिस, मेनिन्जाइटिस तथा कमी कमी प्लूरिसिस और न्यूमोनियाके लक्षण मीज्द्र रहते हैं। खूनमें घेरी फाइब्रिन उपपन्न होता है तथा उसमें स्वभावतः सख्त अंशका तीसरा अंश फाइब्रिन रहता है, किन्तु इस पीड़ा में यह द्विगुण रहता है। खून चुस कर काँचके गिलासमें रखनेसे उस पर गाँथकी चरबी या तेलके समान मलाई पड़ जाती है।

साधारण लक्षण—सर्वाचार शीत और कम्य द्वारा पीड़ा शुरू हो कर पीछे उबर आता है। चमड़ा गरम तथा पसीनेसे भरा रहता है, कमी कमी उस पर फुन्सियाँ होते देखी जाती हैं। पसीनेसे एक प्रकारकी नट्टी गन्ध निकलती है। गाँठमें घेदना होनेसे रोगीका मुख मलिन और कष्टकर होता है। नाड़ा तेजसे चलता है। व्यास अधिक लगता है, भूय कम हो जाती है, जोम मूलसे भर जाती है, मूत्र रुद्ध हो जाता है, अस्थिरता तथा कमी कमी प्रलाप आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं। मूत्र

धोड़ा और लाल होता है, उसके अघश्वेषमें अधिक इन्डरेटस पाया जाता है। कमी कमी सामान्य पलवृत्तेन रहता है। उताप एक सप्ताह तक बढ़ कर पीछे कम हो जाता है, किन्तु प्रातःकालमें लवण विराम देखा जाता है। बहुत जगह तापमान १०० से १०४ तक, कमी कमी ११० से ११२ तक हो सकता है। उताप अधिक होनेसे सभी लक्षण अत्यन्त गुरुतर हो जाते हैं। रोगी बड़ा दुर्बल हो जाता है और अस्थिरता तथा धीच बोचमें काँपता है। क्रमशः अधिक प्रलाप और अन्यान्य विकारोंके सभी लक्षण उपस्थित होते हैं, अन्तमें जोण्डिस, रक्तस्राव, उदरामय या श्वासच्छेद द्वारा मृत्यु हुआ करतो है। हृत्पिण्ड आक्रान्त होनेसे रोगी का कार्डियक स्थानमें अघच्छेदता और वेदना मालूम होती है।

सर्वाचार जंघा, कंधुनो, गुल्फ और मणिबन्धकी सभी सन्धिवाँ आक्रान्त होती हैं, किन्तु दूसरी दूसरी सन्धिवाँ भी पीड़ित होती हैं। क्रमशः बहुत सन्धिवाँमें ही प्रदाह उत्पन्न होता है। कमी कमी एक सन्धिवाँ जलन दूर होती और दूसरी सन्धिवाँ जलन बढ़ जाती है। हमेशा दोनों पाश्योंकी सभी सम सन्धिवाँ एक साथ आक्रान्त होते देखी जाती हैं। पीड़ित सन्धि स्फोट, उच्चत, घेदना युक्त तथा ललाई लिये होती है। चारों पाश्योंके विधान सिरमके द्वारा स्फोट तथा यहाँका चमड़ा अंगुलीसे दबानेसे धस जाता है। अङ्ग हिलाने डुलानेसे घेदना होता है। घेदना कतकन तथा समय समय पर यह पेसी असह्य हो जाती है, कि रोगी चिन्ता कर रोने लगता है। सन्धिके अधिक स्फोट होनेसे कभी कभी घेदना कम हो जाती है।

सर्वथा एण्डोकार्डाइटिस, पेरिकाडाइटिस, निमोनिया तथा प्लूरिसिस उपस्थित होते हैं। खीकी अपेक्षा पुरुषमें अधिक पेरिकाडाइटिस दृष्टिगोचर होता है। कारण जवान पुरुष हमेशा कष्टकर व्यवसाय अवलम्बन करता है। कहीं कहीं पेरिटोनियाइटिस, मेनिन्जाइटिस, फेरिया, टेनिंजलाइटिस, अर्न्यालेमिया, स्फेरोटाइटिस या मास्टाइटिस देखे जाते हैं। परथिमा, कार्टिकरिया पथिउच आदि चर्मरोगोंमें भी दृष्टिगोचर होता है। प्रति दिन हृत्पिण्डकी परीक्षा करनी उचित है। युवक श्वेतों

हृत्पिण्डसे आक्रान्त होता है। इससे अनुमान होता है, कि हृत्पिण्डके बालघने ऊपरका फाइब्रन चूर्ण उपच्छन्नाकारमें चल कर मसितकमें आवद होनेसे कोरिया उपस्थित हो सकता है। साधारणतः बालकोंको कोरिया हुआ करता है। बालक और युवकके शरीर में खास कर सभी सन्धिघातोंके पास छोटा छोटा अर्बुद पैदा होता है एवं बीच बीचमें यह अर्बुद हो जाता है।

अधिकंश रोगी आराम हो जाता है; किन्तु किसी न किसी आभ्यन्तरिक यन्त्रमें विशेषतः हृत्पिण्डके छेदमें कुछ परिवर्तन जरूर रह जाता है। यह रोग फिर हो सकता है। क्रमशः सभी सन्धिघात मजबूत और विरुद्ध होते देखी जाते हैं तथा कभी कभी इन सब स्थानोंमें शूलयत् वेदना होती है।

गाउड, परिसिप्ल्यास, पायिमिया, इनपलुपञ्ज, द्विचनेसिस, हिलोपसि फिवर और डेड गुञ्जरके साथ इस रोगका सम्म होता है। पहले पीड़ाके साथ पृथक्ता पोछे घर्णनीय होता है। परिसिप्ल्यास तथा डेड गुञ्जर की तरह शरीरमें पित्त उछल आता है। द्विचनेसिस रोगमें अत्यन्त दुर्बलता, उदरामय और विकारके सभी लक्षण जल्द ही उपस्थित हो जाते हैं। रिलापसि फिवरसे रोगी धार धार आक्रान्त हुआ करता है। पायिमिया पीड़ासे नाना स्थानोंमें फुंसियाँ निकल आती हैं तथा इनपलुपञ्जमें सर्दी होती है।

यह रोग ३से ६ सप्ताह तक रोगीको कष्ट देता है। प्रबल वातरोग प्रायः आरोग्य होता है, किन्तु उत्तापकी अधिकता, प्रल.प, भाक्षेप, अचैतन्य, हृत्पिण्ड या फुस फुसकी अनेक तरहकी पीड़ा और विकारके दूसरे दूसरे लक्षण मीज्ज रहनेसे गुरुतर कष्टा जाता है। इसकी गतिके मध्य कोरिया उपस्थित होनेसे रोग प्रायः सांघातिक होता है।

रोगीको फाल्गुन अथवा दूसरा कोई गरम कपड़ा पहननेका परामर्श देना आवश्यक है। पीड़ित अङ्ग तकिये पर स्थिरतासे रखना चाहिये। शरीरमें किसी तरहकी उल्टी हवा न लगायें। हृत्पिण्डकी परीक्षा करनेके लिये अंगरक्षे में एक छेद रखना उचित है तथा उससे हो कर हर रोज छेदेसकोप द्वारा साघात सुने। व्यास बुझानेके लिये लेमनेड, पालिवाटर अथवा यफं दे। उत्ताप दूर करनेके

गरजसे उक्त वाद्य क्रिया टर्किंस वाद्य उत्ताप एवं अधिक रहनेसे घेद पैकिंग अथवा कोल्ड वाद्य व्यवहार करे।

पहुंतीका कहना है, कि स्यालिसिन् स्यालिसिलिक एसिड किंवा स्यालिसिलेट अब सोडा १०से २० ग्रोनकी मात्रामें ३४ घंटे पर देनेसे बड़ा फायदा पहुँचता है। किन्तु पीड़ाकी सभी अवस्थाओंमें उसका व्यवहार नहीं किया जाता। विकारके सभी लक्षण रहते अथवा हृत्पिण्ड आक्रान्त होनेसे उससे उपकार नहीं, बल्कि अपकार हो सकता है। उत्ताप अधिक रहनेसे तथा व्याधि सामान्य रहनेसे उक्त औषध सब तरहकी घेदना और उत्ताप निवारण करतो है सही, पर कहीं कहीं उतना फायदा नहीं पहुँचातो। विप्लव नगरके रहनेवाले ८१० स्पेन्सर (Dr. Spencer) ने १५ ग्रोन स्यालिसिलिक एसिड, २ ड्राम लाइकर एमोनिया साइट्रिस तथा १॥ ग्रोन एकपुष्ट ओपिआइ जलके साथ मिला कर ३४ घंटे पर गांठकी जलनमें व्यवहार कर फल लाभ किया है। कितने चिकित्सक जलन या दर्द मिटानेके लिये दूसरी दूसरी अवसादक औषध, जैसे—एक्रोनाइड, डिजिटेलिस, पिट्टेपारिन् और मेरिट्रिया आदि व्यवहार किया करते हैं; किन्तु यह औषध बड़े सावधानीसे प्रयोग करना उचित है। इस रोगमें क्षार औषध बड़ी फायदेमंद होती हैं। उनमेंसे पटाश सम्बन्धी लवण विशेषतः पाइकार्ब, साइट्रास, नाइट्रास और आइसोडिड तथा फ्लूफेट या चैनजथेड आय एमोनिया विशेष फलप्रद है। कभी कभी नेबूके रससे भी फायदा पहुँचता है। घेदनामें अफीम और मर्फिया व्यवहार करना चाहिए। अन्यान्य औषधोंमें ट्रायमिथामाइन इकथियन, टिं अर्गट और टिं एकटिया रिसोमोसा विशेष उपकारी है। उबर कुछ कम होने पर फुनान दे सकते हैं। पहले रक्तमोक्षण और पारदघटित औषध प्रयोग होती थी, अब उस आधुनिक चिकित्साका प्रचलन एकदम नहीं देखा जाता। कोई कोई कलचुसाई दिया करते हैं। कलेजेमें घेदना होनेसे उसका व्यवहार करना एकदम मना है। पीड़ा कठिन और विकारयुक्त होनेसे उन्नेजक औषध तथा सुरा दी जा सकता है। यथानियम उपसर्गादिकी चिकित्सा करना आवश्यक है।

कोई कोई चिकित्सक फूली हुई गांठमें जोंक लगाने-को सलाह देने हैं; किन्तु उसकी उतनी आवश्यकता नहीं। पीड़ित स्थानमें नाईटर वा पापिस्ट्रैट कोमेन्टशन करें। वेलेडोना वा ओपिआई लिनिमेण्ट मर्दन अथवा अफीम वा वेलेडोनाकी पोस्टिग देनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। कोई कोई पीड़ित गांठको स्थालसिलेट आय सोडा लेसनसे भिगेते रहनेका परामर्श देते हैं। दूसरे दूसरे प्रत्येक उसके ऊपर कैल्डकाम्पेस देनेको कहते हैं। पीड़ाके कम हो जाने पर गांठके ऊपर लाइकर पपिसपाष्टिक्लूसा लेप किंवा एमोनियाकाम्प्रेटर द्वारा देना चाहिए। गांठमें अधिक मवाद पैदा हो जाने पर पस्पिरेटर द्वारा उसे बहा देना उचित है। ज्वर तथा वेदनाके कम हो जाने पर कडुलिवर आयल तथा टिं ट्रिल व्यवहार करें। -

अप्रबल वातरोग (sub acute rheumatism)

इस वातरोगमें एक वा दो गांठें बहुत दिन पर्यन्त आक्रान्त रह जाती हैं। कुछ कुछ ज्वरके लक्षण भी वर्तमान रहते हैं। प्रसिध्दा परिवर्द्धित वा विकृत नहीं होता। एक सामान्य कारण या कर भी वेदना बढ़ जाती है। रोगीका स्वास्थ्य जिस तरह रहना चाहिये, उससे और भी घट जाता है। प्रबल वातरोगकी चिकित्साके समान इसमें औषध आदिकी व्यवस्था करनी चाहिये।

पुराना वातरोग (Chronic Rheumatism.)

संचराकर बुद्धोके ही यह व्याधि होता है। यह कभी कभी तरुण वातरोगके परिणामके फलसे उपस्थित होता है। इसमें सभी गांठ मोटी कड़ी हो जाती हैं तथा रोगीको चलने फिरनेमें बड़ा दर्द होता है। रातमें तथा शीत और वर्षाके समय यह वेदना और इसके सभी लक्षण दिनाईं पड़ने हैं। कभी कभी घृद्ध थकियोंकी गांठें विद्यत हो जाती हैं, उन्हें गांठवात (RheumaticGout) कहते हैं।

इस रोगमें शरीरमें ठण्डा लगाना उचित नहीं। पलालेन आदि गर्म कपड़ा पहनना आवश्यक है। गर्म या टर्किंस बाथ तथा गंधक, नमक और क्षार आदि मिले मलमें स्नान कराना चाहिए। पीड़ित प्रसिध्द पर कोई उच्च

जक वा एनोइइन औषध (कास्फर ओपिआई, वेलेडोना वा एकोनाइट लिनिमेण्ट) मालिश कराना उचित है। आभ्यन्तरिक औषधोंमेंसे पोटर शो आईओस्ट्रिट, कडुलि-भार भावल, फेरि आईओडाइड, गंधक, सार्ज, टिं एक्-टिया रिसमोसा और गोपेकम आदि प्रयोग करने योग्य हैं। समय समय पर गांठ पर क्लिपर किंवा टिं आईओडिन्का प्रलेप दिया जाता है। एमक्लाय्द्रम एमोनिया-कम्प वा मार्किवोरियल गुाष्टर द्वारा गांठ पर पट्टी बांधनी चाहिये। गांठ पर गंधक लगा कर उस पर पलालेन बेंडेज बांधनेसे वेदना कम हो जाती है। कभी कभी अथिराम ताड़ित स्रोत देनेसे और शरीरको मालिश करनेसे बड़ा फायदा पहुंचता है। रोगीको बीच बीचमें घुमने फिरनेका परामर्श देना चाहिए। यूरोपीय चिकित्सक लेग हारोमेट, मिग्वि आदि घातु मित्रा हुआ जल पीनेको अनुमति देते हैं।

पेशिक वात (Myalgia or muscular rheumatism)

पेशीके क्रियाविषयके बाद अथवा शीतल वायु संस्पृष्ट होनेसे पेशिक वात उत्पन्न होता है। यह रोग प्रायः हृषक और दुर्बल स्त्रियोंका रूआ करता है। रातमें अथवा हठात् यह पीड़ा शुरू हो जाती है। पीड़ित पेशीमें वेदना और आकृष्टता रहती है, छूने अथवा हिलाने डुलानेसे यह बढ़ता है। जघनोमें उच्चापके साथ वेदना भी बढ़ती है। कभी कभी पेशीमें स्पन्दन या आक्षेप उपस्थित होता है। रोगी पीड़ित अङ्गको स्थिरमाध्यमे रखना पसन्द करता है। कहीं कहीं पीड़ित पेशीको धीरे धीरे दधानेसे आरामः मालूम पड़ता है। ज्वरके सब लक्षण नहीं रहते; किन्तु अनिद्रा और वेदनासे रोगी थोड़ा सुस्त पड़ जाता है। कलेजे पर आघात नहीं पहुंचता। थोड़े दिनों तक प्रबल अवस्था रहती है। उसके बाद पुराना हो जाता है। अप्रबल अवस्था-में उच्चाप छूनेसे वेदना घट जाती है, सही पर वर्षाकालमें वायु लगनेसे यह फिर बढ़ जाती है। यह पीड़ा बार-बार हो सकती है।

कहीं कहीं इसके त्रिविध नाम है; गिरको पेशी रोगाक्रान्त होनेसे सेफेलेडिनिया (Cephalodynia) ; गलेके पेशी रोगाक्रान्त होनेसे टॉर्टिकोलिस (Torticollis)

या राइनैक् (Wrynock); पीटकी-पेशी-रोगाक्रान्त
 हेनेसे डोरोडिनिया (Dorsodynia) कर्मर पेशीमें
 रोगाक्रान्त हेनेसे लम्बेगे (Lumbago) तथा पंजरकी
 पेशी रोगाक्रान्त हेनेसे प्युरोडिनिया (Pleurodynia)
 कहते हैं। इनमेंसे कितने ही विषयोंकी विस्तार रूपसे
 आलोचना करनेकी जरूरत है।

कभी कभी 'वाय' पंजरके जोड़ोंकी पेशी तथा हण्टर
 कण्ठके लुक्-पेकुराहस और सेरेलस मीगनस आदि मांस
 पेशी आक्रान्त होती है। निम्नानु प्रश्यासमें तथा खांसने या
 दृष्टिकी मोनेके समय उनका घेदना बढ़ जाती है। कभी
 कभी एंजुरिसके साथ इमका भ्रम हो सकता है। किन्तु
 एंजुरिसमें उबरके लक्षण और मर्दन (Friction)
 मौजूद रहते हैं। समय समय पर जोर खांसी हेनेसे
 पेशीरोगके समान दोनों पंजरमें पीड़ा होती है।

लम्बेगे—इसमें कर्मरकी एक बगलमें अध्या दोनों
 बगलमें हमेशा कर्मर के घेदना होती रहती है। रोगीकी
 उठने बैठनेमें बड़ा दर्द होता है। वह बक हो कर चलता
 है। क्यानेसे तथा बहुत जगह उतापसे घेदना होती है।

राइनैक्—इसमें सर्वदा मन्तक-चालक पेशी आक्रान्त
 होती रहती है। रोगीका कंधा एक ओर टेढ़ा हो जाता
 है और हिलाने-डुलानेसे घेदना होती है। इनके
 अलावे कभी कभी प्लाएटर फोसिया, डायफ्राम और
 चक्षुगोलककी पेशी भी आक्रान्त हो सकती है।

तदुपरोक्तस्थानोंमें पीड़ित पेशी स्थिरतासे रखनी
 चाहिये। एडुरोडिनियामें आक्रान्त पार्श्व एक टुकड़ा
 एलिक प्लाएटर द्वारा प्राप करें। लम्बेगे पीड़ामें एम्प्लास्ट्रम
 फेरि द्वारा प्राप करें उसके ऊपर फलानेलाका वैड्रेज बांध
 कर रखना उचित है। दूसरे दूसरे तरीकेसे माष्टर्ड
 प्लाएटर, तापिनका संक अध्या पारिहेड फोमेण्टेषन
 विधेय है। शुष्क उतापसे घेदना बढ़ती है। कभी
 कभी फोमलतासे मलनेसे उपकार होता है, लम्बेगे पीड़ा-
 में प्रकीयाया इजेक्सन करनेसे दर्द कम हो जाता है।
 कोष्ठ-परिष्कारके लिये शाब्द्यतरिक विरेचक औषध देना
 उचित है उसके बाद पोटाजी चाइकाय या आइओडिड
 धारया मोडि सालिसिलेट मीथन तथा रातको अफोम
 दे पसीना निकालनेके लिये उर्ग पाणी और घालस्नान

(Vapour bath) करया जाता है। कहीं कहीं भीमा या
 सूजा कापि और जोक लगानेसे फायदा होता है।

रोग पुराना हो जाने पर ह्योराइड बाय पमोनिया,
 पोटाजी आइओडिड, गोपेक्मू, मेजिरन, थासैनिक, नाना
 प्रकारके घालसम्, कलुचिकम, टि एक्टिया रेमिनोसी
 तथा मेजेरियन आदि व्यवहार करनेको विधि है।
 पुराने रोगमें प्रदीर्घाश्वित सेधीन पर टि आइओ-
 डिन, किलएर, अनेक प्रकारकी मारिश, ताड़ित सीत
 तथा करिगांस (Gomphites) लीहपोर आदि सेलन
 किया जाता है।

गनीरियासे होनेवाला वातरोग (Gonorrheal Rheumatism)
 प्रमेह रोगीकी एक व्यक्तिको एक प्रकारकी वातरोग
 होता है। डा० गैरोड (Dr. Garrad) ने उसे पार्श्वमिर्-
 के समान पीड़ा बतलाया है, किन्तु डा० हचिन्सन्ने
 (Dr. Hutchinson) उसे प्रवृत्त वातरोग कहा है।

घुटनेमें यह रोग अधिक देखा जाता है। किन्तु
 दूसरी दूसरी स्थानोंमें भी पीड़ित होती है।
 प्रदीर्घाश्वित लिफ और सिरम् निकलता है। पांडिन
 संस्थि देवनेमें संकीत, चमकीली तथा आच्छ होतो है,
 कभी कभी उससे मवाद भी निकलता है। यह
 पीड़ा हमेशा होती रहती है और संस्थिके बीचमें मधुपस्य
 लिगेमेण्ट और कार्टिलेज क्षन होनेसे सभी प्रस्थियों विह्वल
 दिखाई पड़ती है। कभी कभी अंगसंचालनसे रोगीके
 उसमें माह्लि स्थीका अनुभव होता है। समय समय
 पर अचलसंस्थि (Anchlylosis) उपस्थित होती है।

साधारण लक्षणोंमें शारीरिक अस्वस्थता, दुर्बलता
 इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। इस पीड़ाके मोगकालमें
 एण्डोकाइडिटिस, पेरिकाइडिटिस तथा एडुरिस उपस्थित
 हो सकते हैं। एण्डोकाइडिटिस होनेसे प्रायः एण्डोका-
 डियममें क्षत होता है।

घुटना आक्रान्त होनेसे उसे माकेएण्टर एत वाइके
 (Mc. Intyres splint) ऊपर रख कर फोमेण्ट करना
 चाहिये। प्रमेह रहने पर गंधूले उसे आराम करनेकी औषध
 प्रयोग करना उचित है और रनिमें फोमस पायडरकी
 प्रयोग करना चाहिये। यदि रोग दुर्बल
 हो तो पहले शराब पीछे पोटाजी आइओडिड तथा घाल-

रोगकी अन्यान्य औषध व्यवहार करना चाहिये। रोग पुराना होनेसे पहले गांठ पर किसी प्रकारका लिनिमेण्ट मईन करना तथा गांठका कुछ संचालन करना आवश्यक है। गांठमें मवाद हो जाने पर पम्परेटर नामक यन्त्रसे उसको बाहर निकालना चाहिये।

रूमेटाइड आर्थराइटिस (Rheumatoid Arthritis)

इसे रूमाटिजम् और गांठटकी मध्यवर्ती पीड़ा कहते हैं। इसमें प्रथमोक्त पीड़ाकी तरह हृत्पिण्ड आक्रान्त नहीं होता अथवा शोथक व्याधिके समान सन्धि-को अस्थि फुलो हुई नहीं दिखाई देती। इस रोगमें सन्धियां क्रमशः विकृत हो जाती हैं। इस रोगका दूसरा नाम आर्थराइटिस डिफॉर्मन्स (Arthritis Deformans) है।

२०से ले कर ३० वर्षकी स्त्री तथा दुर्बल और दरिद्र मनुष्य साधारणतः इस पीड़ासे पीड़ित होते हैं। ठंडा लगने, आघात पहुंचने, मनस्ताप, चिन्ता या मस्तिष्कमें प्रका, पहुंचने अथवा अन्यान्य कारणोंसे यह रोग उपस्थित होता है।

पीड़ित सन्धिप्रका साइनोवियल विधान देखनेमें आर-क्तिम, और स्थूल, अधिकांश कार्टिलेज और लिगेमेण्ट क्षतयुक्त, अस्थिका शेष भाग चमकीला और विषदित तथा स्थान स्थान पर हाथी दाँतके समान सफेद और कठिन होता है। इस पीड़ामें अनेकानेक पेशी विशेदता, डेल्टोयिड, स्कंधकी त्रिकोणपेशी इत्यादोसाई तथा फिरर अस्थिके नोचेको पेशी अत्यन्त क्षय प्राप्त होते देखी जाती है।

यह पीड़ा कमजोर या पुरानी अवस्थामें उपस्थित हो सकती है। डॉ० स्पेन्सरने इस पीड़ाके लक्षणोंको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है—(१) हृत्पिण्डका क्रिया-पिषय, (२) धर्मके, विशेषतः चक्षुके चतुष्पाश्र्वमें कृष्णधर्मा तथा मस्तकके अग्रभागमें पीतवर्णविवर्णताका देना।

(३) पांसोमोटर नामके परिवर्तनके कारण चमड़े और दाढ़की शोथलता। (४) अंगुठे और कलाईमें वेदना कमजोर होनेसे बहुतसी प्रन्धियां आक्रान्त तथा दिग्भ्रमें लाल, फुकी और चमकीली होती हैं। रोगीको इन सब अवस्थाओंमें वेदना और परतरी मालूम

होती है तथा उबरेके समी लक्षण उपस्थित रहने हैं, किन्तु क्रमाटिजम्के समान अत्यन्त घर्म अथवा हृत्पिण्ड आक्रान्त होते देखा नहीं जाता। रोग पुराना हो जाने पर पहले एक प्रन्धि सूजी हुई, वेदनायुक्त और उत्सत होती है। एकसे दो सप्ताहमें प्रदाह कम होता है। किन्तु पुनः थोड़े ही दिनोंमें ये सब लक्षण उपस्थित होते और अन्यान्य सन्धियां आक्रान्त होते देखी जाती हैं। प्रन्धियां क्रमशः एक और विकृत हो जाती हैं। हाथकी मांसपेशी क्षय प्राप्त होती है। वे धिं पाल्सीके साथ इस रोगका भ्रम हो सकता है। हाथ पांवकी समी उंगलियां ऊंची, मजबूत और विकृत हो जाती हैं। इसलिये रोगी चलने फिरनेमें असमर्थ हो जाता है। कभी कभी जड़की अस्थि और सायार्केल चार्डिब्राकी सन्धि आक्रान्त होते देखी जाती है।

साधारण लक्षणोंमें पीड़ाके प्रारम्भमें सामान्य शीत, उबरे, क्षुधामांघ, अनिद्रा, अस्थिरता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रातमें दर्द बढ़ जाता है। रोग पुराना होने पर पीड़ित व्यक्ति अत्यन्त दुर्बल और जीर्ण जीर्ण हो जाता तथा पेटिसके समी लक्षण मौजूद रहते हैं।

इस रोगसे गांठ और रूमाटिजमका भ्रम हो सकता है; इसके परस्परकी पृथक्ता पहले ही लिखी जा चुकी है।

अपवर्ण पीड़ा प्रायः आराम हो जाती है; पुरानी होने पर आराम होना कठिन है, किन्तु रोगी बहुत दिनों तक जीता रह कर रोग भोग करता है।

रोगीको हमेशा गर्म वस्त्र पहननेकी सलाह देनी चाहिये। शीथलोंमें कुनारन, कडलिवर धावेल, सिरप फेरो आइभो-डिड, पोटाश आइभोडिड, आर्सेनिक, गोपेकम्, टिं एकटिया रिसमोसा, टिं साइमिसिपयूगो, घातव जल तथा लौह-घटित सब औषध उपकारी है। स्फीत और वेदनायुक्त स्थानमें टिं आइभोडिड, कार्बनेट धाव सोडा या लिथिया लोसन तथा नाना प्रकारका लिनिमेण्ट दिया जा सकता है। मांसपेशी क्षयप्राप्त होनेसे ट्रिक्लिनिया और तडिड् स्त्रोत व्यवहार या निधमित रूपसे मईन करना चाहिये। जोजन-के लिये लघुपाक अथवा बन्धकारक और तरल द्रव्य देना उचित है। समय समय पर थोड़ी जराब देना और बीच बीचमें अन्न सामान्य भावसे संचालित करना उचित है।

छोटी सन्धिषोका वात, या गाउंटः (Gout)

छोटी सन्धिषोमें यह एक प्रकारका विषजनित प्रदाह है। इस पीड़ामें खूनमें यूरिक एसिडका अधिकत्व दिखाई देता है तथा पोडित ग्रन्थिमें यूरैट आब सोडा संचित होता। इस रोगका दूसरा नाम पोडाग्रा (Podagra) है।

उक्त व्याधिके निदानके विषयमें चिकित्सकोंके भिन्न भिन्न मत हैं। डा० गाउड (Dr Garrod) का कहना है, कि इस पीड़ामें लहूमं यूरिक एसिडका भाग ज्यादा रहता है तथा वह नियमितरूपसे दूध न हो कर सन्धिषोमें जमा हो जाता है। रासायनिक परीक्षा द्वारा स्थिर हुआ है, कि पोडित व्यक्तिके खून, मूत्र, विल्टरके रस तथा कभी कभी उदरो रोगजनित सिरममें उक्त यूरिक एसिड पाया जाता है। फिर दूसरी श्रेणीके चिकित्सक, विशेषतः डा० ओर्ड (Dr. Ord) और डा० ब्रिस्टो (D. Bristowe) कहते हैं, कि विषान-विशेषकी खराबोके कारण यहाँ पहले यूरैट आब सोडा उत्पन्न होता है तथा वहाँसे रक्त संचालित हो कर कर्णके और अन्त्यान्व्य कार्टिलेजोंमें संजलित हो जाता है।

यह एक कौलिक पीड़ा है। ३० वर्षसे ज्यादा उम्र वाले व्यक्तिका ही यह पीड़ा होती है। कभी कभी एकको छोड़ दूसरे व्यक्तिके यह पीड़ा घर लेती है। कई जगहमें तो यह देखा जाता है, कि उसका विघातक पदार्थ मातृ रक्त द्वारा परिचालित होता है। अर्थात् जिस व्यक्तिके यह पीड़ा होगी उसके पोतेकी अपेक्षा नाती ही अधिक आक्रान्त होते हैं। बहुत अधिक मांस खानेसे और शराब पीनेसे, मैथुन करनेसे मालसी मनुष्यके उठे बेशमें रहनेसे, या मीठा कपड़ा पहननेसे और थोड़ी उमरमें शादी करनेसे यह रोग घर बढाता है।

कभी कभी अधिक शारीरिक या मानसिक परिधम करनेसे शरीरमें विशेषतः पसोना चलनेके पथ ठण्डी हवा लगनेसे, गांठमें कोट लगनेसे, घेरी खानेसे तथा क्रोध, शोक, अतिदाय उल्लास इत्यादिसे यह भी रोग उत्पन्न होता है।

कभी कभी पाँयके अंगूठे गांठ विशेषतः मेटटोसों फेनेड्रिपल (Metatarso Phatangeal) प्रदेश आक्रान्त होता है। उस समय वह देखनेमें फूला हुआ और

लाल होता है। कहीं कहीं दूसरी दूसरी सन्धिषोमें भी प्रदाहके चिह्न रहते हैं। पहले ग्रन्थिके कार्टिलेजके उपरो- विभागमें यूरैट आब सोडा सूक्ष्माकारमें संचित होता है, पीछे यहाँके लिगेमेंट और साइनोवियल विधाओंमें क्रमशः सञ्चरित और संशुद्धित होता है तथा उसी लिये सभी सन्धिषां मजबूत और विद्वत देखी जाती हैं। कभी कभी सभी टोफाई धमड़ेको विशेषण करके बाहर निकल पड़ते हैं। समय समय पर कर्ण, नासिका, लेरिंस और भाँलकी पपनियों पर ऐसा पदार्थ देखा जाता है। मूत्रपथ संकुचित और प्रदाहयुक्त होता है तथा उसके स्थान स्थान पर टोफाई बाहर होता देखा जाता है।

गाउंट प्रधानतः दो प्रकारका है, जैसे—(१) नियमित या रेगुलर (Regular) तथा (२) अनियमित या इररे- गुलर (Irregular or non-articular)

नियमित गाउंट पीड़ा अकस्मात् आरम्भ हो जाती है। पीड़ा आरम्भ होते ही पाकाशयमें अन्तिकी अधिकता, छातीमें दाह, यकृतकी क्रियामें व्यतिक्रम, हृत्कम्प, गिरमें दबे, शिरका घूमना, दृष्टिकी वैलक्षण्य, आलस्य, स्वभावका परिवर्तन, भ्रामिन्ना, स्वप्नदशन, पैरका पेशीमें कम्प, दमेकी तरहका कष्ट, अधिक पसोना खाना, थोड़ा मूत्र और मूत्रमें अधिक गन्धगी बेबी जाती है। कभी कभी रोगके पहले या रोगके समय, मूत्रमें पबुमेन पाया जाता है। फिर किसी किसी स्थलमें ये सब लक्षण नहीं भी दिखाई देते और रोगिके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्यके विषयमें भी कोई विशेष विलक्षणता नहीं दिखाई देती। केवलमात्र एक या दो सन्धिषोमें कुछ अल्प-काल्यन्ता मालूम होती है।

कभी कभी सा. रातके अन्तिम समयमें अर्थात् रात २से ५ बजे तक पैरके अंगूठेमें दर्द उत्पन्न होता और बढ़ने लगता है। किसी किसी स्थानमें यही गांठ बारम्बार आक्रान्त होते देखी जाती है। किन्तु कई बार अन्त्यान्व्य छोटी सन्धिषां भी पीडित होती हैं। हाथ पैरका बड़ी सन्धिषां कभी कभी आक्रान्त होती हैं। इसकी चेष्टना जलन, फटने और खुभनेकी तरह होती है और दिनमें कम और रातके बढ़ती है और मीठ असह्य हो जाता है। पलवान् व्यक्तियोंमें रोगवन्तता अधिक होती

सिरमें सञ्चित होनेसे सन्धिघात फूल जाती, वहाँका चमड़ा लाल, उन्नत और चमकीला तथा नसे फूल जाती और फूला हुआ स्थानमें अंगुली दबानेसे दब जाता है। अलग वम होनेसे स्वरू खलित होता दिखाई देता और वहाँ झाज पैदा हो जाती है।

शोथ और कम्पके साथ पीड़ा आरम्भ होती है। शरीर रंगमें और पसीनेसे तरबतर हो जाता है; किन्तु प्रबल घात रोगकी तरह अत्यधिक पसीना नहीं दिखाई देता है। मूत्र थोड़ा, काले रंगका और यह युरेट्स द्वारा परिपूर्ण हो जाता है। स्वभावतः २४ घण्टेमें ८ ग्राम यूरिक ऐसिड मूत्रके साथ बाहर निकलता है। ऐसा मान्य होता है, कि गठिया घातरोगमें यूरिक ऐसिड अधिक गिर रहा है, किन्तु सांख्यिकी अपेक्षा अधिक नहीं गिरता। म्यूरैक्सिड (Murexal) परीक्षा द्वारा यह निर्णय किया जाता है। सिवा इसके, मूत्रमें अधिक परिमाणमें गुलाबी रंग या सुर्खी तरह गन्दगी होती है। प्रातःकाल उबर होता है। अन्याय लक्षणोंमें रोगको अनिद्रा, अस्थिरता, क्षुधामान्द्य, पित्तास, कोष्ठबन्ध और पैरोंमें कंपकंपी दिखाई देती है। पाकान्न और यकृतकी क्रियामें अतिकम हो जाता है। अन्तमें पसीना, उदरामय या अस्वच्छ मूत्रत्यागके बाद उबर और वेदनाका सम्पूर्णरूपसे रुक जाता है। चार पांच दिन अथवा दो चार सप्ताहमें व्याधिकी शान्ति देली जाती है। गोड़ा वर्षके अन्तमें फिर पैदा हो जाती है। रोग यदि जड़ पकड़ लेता है, तो वर्षमें दो या तीन बार भी हो सकता है।

इस तरह चारैवार और पदार्थक्रमसे रोग होने पर पीड़ा पुरातन हो जाती और पीड़ित सन्धि दृढ़ विचरित और विरुन हो जाती है। वहाँका चमड़ा बेगनी और नीली धमनियोंसे घिर जाता है। सब सन्धिघातोंमें युरेट भाव सोडा सञ्चित हो मिट्टीयत्वे जाता। उमकी अकटोण या टोफार् (Tophai) अस्थिज स्फीति हड्डीका फूलना कहते हैं। अन्तमें चमड़ा फट कर क्षत उत्पन्न हो जाता है और वहाँसे मोला पदार्थ बाहर निकलता रहता है। कभी कभी भावे, कान और नाकके कार्टिलेजोंमें टोफार् सञ्चित होता है। रुद्धावस्थाके विच्छेद भागमें हो

यह दिखाई देता है। वहाँ पहले एक अलमला फोड़ा उत्पन्न होता है पीछे यह फट जाता और उससे दूधकी तरह एक शुद्ध रस निकलता है। इस प्रकार शंश फुन्सियाँ हो जाती हैं और रसके गाढ़ा होने पर मालाकी गुटिका-सी दिखाई देती है। अधिक इस घात रोगसे पीड़ित होने पर शरीर जोर्ण शीर्ण और दुर्बल तथा पाण्डु वर्णका हो जाता है। इसके साथ ही हृत्कम्प और पेशियोंके स्पन्दन आदि लक्षण मौजूद रहते हैं। समय समय पर सोनेमें दांत किटकिटाना और सामान्य उबर होता है। मूत्रमें पल्चूमन रहता है; किन्तु उसका आपेक्षिक शुक्लत्व अपेक्षाकृत गमन होता है। पीड़ित व्यक्तिकी वेद पित्तपर्णिका (आर्टिकेरिया) गठनिका (परिघिया), पामा (एक्जिमा) और विचार्थिका (सोरापैसिस) आदि चर्मरोग होते हैं। किसी किसी रोगीका नाक पदार्थक्रमसे निर्य उन्नत और लाल होते देखा जाता है।

अनियमित या स्थानान्तरणामी घात।

गठिया घात गांठोंमें दिखाई न दे कर शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें आक्रमण करता है, इससे इसको स्थानान्तरणामी घात कहते हैं। यह लुप्त (Suppressed) और आभ्यन्तरिक (Retrocedent) भेदसे दो तरहका है। गांठोंमें घातके लक्षण सामान्य भावसे रह कर अन्यान्य स्थानोंमें प्रकाशित होने पर यह लुप्त हो कर स्थान विचरण (Metastasis) द्वारा अन्यान्य स्थानोंमें संञ्चालित होता है। इसको रिट्रोसोडेंट गांठें कहते हैं।

इससे स्नायुमण्डली यदि आक्रान्त हो तो शिरमें दर्द, शिरका घूमना, मृगो और कंपकंपो आदि उपस्थित हो जाते हैं। कभी कभी मेनिंजाइटिस या रज्यास रोग दिखाई देता ही है। अन्यान्य लक्षणोंमें कई तरहके स्नायु शूल, दाघ पैरकी कटकर कंपकंपी या अघ-शता वर्त्तमान रहती है। कभी कभी कटि स्नायु शूल (Sciatica) उपस्थित हो जाता है।

पाकयत्न आक्रान्त होने पर पार्थिविके निकट अन्तर आक्षेपिक वेदना, अत्यन्त कठोर समर्थ समर्थ पर दुर्बलता और दिमागका चिह्न दिखाई देता है। कभी कभी भोजन करनेमें भी रुक होता है, कभी कभी अंगुली और

उदरामय दिखाई देता है। समय-समयमें यकृतकी क्रियामें बाधा उपस्थित होती है और उसमें वसा उत्पन्न होता है। गले और जिह्वामें अनेक परिवर्तन देखे जाते हैं। विशेषता यह होती है कि जीभके भीतर दर्द हो जाता है।

हृत्कम्प और हृत्पिण्डके स्थानमें अस्वच्छन्ता और समय-समय मूर्छा और शरीर ठण्डा हो जाता है। हृत्पिण्डका स्पन्दन कम होता अति मृदु और ठहर ठहर और कभी तेजीके साथ होता और अनियमित होता है। नाड़ी अत्यन्त दुर्बल और क्षीण रहती है। किसी किसी जगह चक्षाशूल (Angina Pectoris) पोड़ा उपस्थित होती है। तड़प वातरोगमें हृत्पिण्डके भीतर जो सब परिवर्तन होते हैं उसमें वैसे नहीं होते। किन्तु हृद्देष्टमें सादा दाम और घाल्वाँमें प्राचीन प्रदाह या अण्डकृताके चिह्न मौजूद रहते हैं।

दमा, सुश्क खाँसी और कभी कभी पम्फिसिमा आदि खाँसी रोग भी हो सकते हैं। श्लेष्मामें यूरिक एसिडकी सूक्ष्म कणिकाएँ दिखाई देती हैं। कभी कभी दिक्की आती है।

मूत्रपत्रमें पूर्ववत् नाना विधित उपस्थित होती है। सिया इसके प्राचीन सिस्टाइटिस और मूत्रमें पत्थर भी आता है।

चमड़ेमें पुपाना एक्जिमा, सोरायसिस, आर्टिकरिया, मूराइगो और एक्तो आदि चर्मरोग और कभी कभी गार्गारिटिस या इटिमें याधा उपस्थित होती है।

रूमाटिज्म और रूमाटिक गार्गारिटिसके साथ इस रोगका सम्बन्ध हो सकता है। विशेष विवेचनाके साथ इसका मूलाव्यय करना आवश्यक है।

गठिया वातरोगकी प्रबल अवस्थामें कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। किन्तु भीतरी वस्तुके आक्रान्त होने पर विपद् आनेकी सम्भावना रहती है। पारम्पर या पदार्थकमसे या कौलिक भावसे होने पर शरीर धीरे धीरे क्षीण होता है। मूत्रपत्रमें पुपाना प्रदाह रहने पर पीड़ा कठिन-सम्भूता चाहिये।

रोगके वातम्भार, आक्रमणकी अवस्थामें रातको एक मृदु विरेचन घटिका (पिल-कलसिम्पके ३ ग्राम और कैल्-मेल २ ग्राम) दे कर दूसरे दिन सुबेरे विरेचनार्थ सेना

और सल्टका प्रयोग करना चाहिये। इन पीड़ाका विशेष औषध कल्चिक्रम है। यह वाइकार्बोनेट या एसिटेट भाव पोटास अथवा कार्बोनेट भाव लिथियामके साथ मिला देना उचित है। उबर रहने पर उक दवाएँ लाइकर एमोनिया एसिटेटसके साथ देना उचित है। उत्ताप अधिक रहने पर एण्टोफेब्रिन, एण्टोपाइरिन या फेनासिटिन सदा मात्रामें व्यवहार करना चाहिये। कभी कभी सेलिसिलेट भाव सोडासे उपकार होता है। पारपेरिजान तो विशेष उपकारी है। चमड़ेकी क्रिया-वृद्धि करनेके लिये गर्म-जल, पोषा और गर्म जलसे स्नान किया जा सकता है। वेदना-निवारणके लिये अफीम और मॉर्फियाका प्रयोग करना चाहिये। निद्राके लिये पारफॉरालिहाइड या माल्फेनालु विशेष उपकारी है। पहले लघुपाक आहार देना चाहिये। रोगीके दुर्बल होने पर शीघ्र दूध आदि बलकारक द्रव्य और थोड़ी ब्राण्डो (शराब) देना जरूरी है। पोर्ट या विस्के-मच (शराब) देना मना है। आक्रान्त सर्पिणियोंमें ओपियाई, गैलेडेना या एकोनाइड, लिनिमेड मल कार फ़ालालेन (कपड़ा) द्वारा ढाँक कर रखना चाहिये। रेकमोक्षण करना उचित नहीं। किन्तु कभी कभी लिटर साल्गस उपकार होता है। प्रदाह कम होने पर भी वाण्डेज बांधना उचित है। क्योंकि उससे गाँठीकी सूजन कम हो जाती है।

विरामकी अवस्था अथवा पुराने पीड़ामें रोगीको सदा फ़ालालेन पहनने, नियमित आहार और व्यायाम करनेका परामर्श देना चाहिये। कभी कभी इसके द्वारा भी रोग आरोग्य होता है। अधिक मांस, चीनीकी कोई चीज, शराब या फल खाना अच्छा नहीं। मांसमें भेड़ और पक्षीका मांस व्यवहार किया जा सकता है। कुछ लोग शाक-सब्जियोंके व्यवहार करनेका परामर्श देते हैं। क्लारेट, मोजल या सेरी थोड़ी मात्रामें हो जा सकता है। अथवा चाय या कॉफीका सामान्य रूपसे व्यवहार किया जा सकता है। इससे उपकार ही होता है। श्रुत जगहोंमें साधारण नमकी जगह सेना नमकके व्यवहारसे फायदा होता है। सादा साफ़ जलका व्यवहार करना चाहिये। सोडावाटर पोषा कर्तव्य मना कर देना चाहिये। चमड़ेकी क्रियाकी वृद्धि करनेके लिये टर्किस या गर्म जलमें शरीर

पौल लेनेकी तरहका स्नान (Ho Bath) कराया जा सकता है। निरन्तर किसी विषयकी चिन्ता या रातका जागना, अच्छा नहीं। जहाँ वायु का परिघर्षन नहीं होता ऐसे गर्म प्रदेशमें रहनेसे विशेष फल लाभकी आशा रहती है। विरामके समय काँचनेट आफ पौटास या लिथिया-के साथ बाँधनाम् अथवा एकद्राक्ष कलचिकाई दिनेमें तीन घार सेवन करनेके लिये दिया जा सकता है। अन्योष्य औषधोंमें कुनाईन टो वाँ इतपयूजन-सिनकोना, लीह घटित औषध; आसॅनिक, गोयकम, पोटाशो आइसोडिड या ब्रोमिड; येल्वायेट ऑय्रॅ पमोनिया; फस्केट भाव सोडा या प्मोनिया; नाश्ट्रेट भाव पमाइल-निम्बू का रस और विविध धातव जल व्यवहार्य है।

पीड़ित गाँठों पर प्लेनाइडिन लीनोमिएट मलना और पुंराने ईमें पेटो बांधना उचित है। श्वेत होने पर काँचनेट भाव पेटास या लिथियाके लोसनमें कपड़े का एक टुकड़ा भीगा कर उस पर घरेसे फायदा पहुँचता है। पीड़ाके सन्धिस्थलको छोड़ कर किसी अन्यन्तर यन्त्रमें जाने पर सन्धिस्थलमें उत्तेजक लिनोमिएट मलना उचित है। मस्तिक आक्रान्त होने पर इपॉर, मस्के, कफर, इत्यादि व्यवहार किये जाते हैं। कभी कभी गाँठमें द्रापिंगा पेटो बांधने पर उपकार होता है। सामान्य वातरोगमें मंत्रसांपन्न आभ्युत्तापमें संक कर उसका रस प्रदाहयुक्त गाँठ पर मलनेसे उपकार होता है। कभी कभी चेरकी लकड़ा या आकन्द-लकड़ी की भाग जला कर उस स्थान पर से कनेसे फायदा होता है। आकका पत्ता या कदमका पत्ता सेक कर सूजी हुई गाँठ पर बांधनेसे गाँठकी सूजन कम होती है। ऐसे स्थलमें कोई कोई गोड्याघाली गाँठ पर तारपीनका तेल, कपूर, सरसों का तेल या कोई लिनिमेण्ट-मल कर नमक मिले हुए कचूके हरे पत्तेकी टुकड़ा टुकड़ा कर बांधनेकी सलाह देने हैं। इससे गाँठका सञ्चिब बिलन रक परिष्कृत हो जाता है और पीड़ा कुछ कम हो जाती है। गन्ध-मादुलियाका पत्र जलमें पका कर उसको भापसे लेंकनेसे इस रोगमें विशेष फल मिलता है।

वातशूल (सं० पु०) अग्नि।

वातशोर्ष (सं० क्लो०) वातस्य शोर्षमिष। वस्ति, पेद्। वातशूल (सं० क्लो०) यह शूलरोग जो वातसे होत। सूत्र शब्द देखो। वातशोणित (सं० क्लो०) वातज शोणितं दुष्टकं यच्च। वातरोग। वातरक शब्द देखो। वातशोणितिन् (सं० त्रि०) वातरक रोगी, जिसे वातरक रोग हुआ हो। वातश्लेष्मज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर। वात और कफवर्द्धक आहार तथा विहार द्वारा वायु और कफ वर्द्धित हो कर आमाशयमें जाता है। पीछे यह दूषित वायु और कफ कोष्ठकी अग्निकी बाहर ला फज ज्वर उत्पादन करती है। वातश्लेष्म ज्वर होनेके पहले वातज्वर और कफज्वरके सभी पूर्व लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस ज्वरमें शरीर भीगा कपड़ा पहननेके समान मालूम, पूर्वमेद अर्थात् ग्रन्थिवेदना, निद्रा, शरीरकी शुद्धता, शिरःपीडा, प्रतिश्याय, खाँसी, अधिक पसीना, सर्वांग तथा ज्वरका मध्यम वेग होता है। विशेष विवरण ज्वर शर्ममें देखो।

वातसख (सं० पु०) वातस्य सखा टच् समासान्त।

वायुसखा, अग्नि, हुताशन। (भागवत ६।२।२१)

वातसङ्ग (सं० पु०) वातरोग।

वातसह (सं० त्रि०) वातं वातजन्तितरोगं सहते सह भच् १ अत्यन्त वायुयुक्त; वायुरोगप्रस्त। २ वायुवेग सहन करनेवाला।

वातसार (सं० पु०) विदूरक्ष, येलका पेद्। (पैयकनि०)

वातसारधि (सं० पु०) वातः सारधिः सहापो यस्य। अग्नि।

वातस्कन्ध (सं० पु०) वातस्य स्कन्ध इव। आकाशका यह भाग जहाँ वायु चलती रहती है।

वातस्तग्मनिका (सं० स्त्री०) चिच्च, इमलो।

वातखन (सं० त्रि०) धान एव खनः शश्रो यस्य। अग्नि। (श्रूक् ५।६।१६)

वातहत (सं० त्रि०) वातेन हतः। १ वायु द्वारा हत। २ वातुल, वायुके कोपसे जिमकी बुद्धि ठिकाने न हो।

वातहतवर्तमन् (सं० क्लो०) नेत्रवर्तमन्त रोगमेद। इसके लक्षण—जिस नेत्ररोगमें वेदनाके साथ या वेदना न हो क

उदरामय दिखाई देता है। समय-समयमें यक्ष्णकी क्रियामें बाधा उपस्थित होनी है और उसमें घसा उत्पन्न होता है। गले और जिहामें अनेक परिवर्तन देखे जाते हैं।

विशेषता यह होती है कि जीभके भीतर दृढ़ हो जाता है।

हृत्प्रणय और हृत्पिएडके स्थानमें असह्यता और समय समय मूर्च्छा और शरीर उष्ण हो जाता है। हृत्पिएडका स्पन्दन कमो होता अति मृदु और ठहर ठहर और कभी तेजीके साथ होना और अनियमित होता है।

नाड़ी अत्यन्त दुर्बल और क्षीण रहती है। किसी किसी जगह चक्षुःशूल (Aurina Pectoris) पीड़ा उपस्थित होती है। तक्ष्ण चातरोगमें हृत्पिएडके भीतर जो साथ परिवर्तन होते हैं उसमें वैसे नहीं होते। किन्तु

हृदयेमें सादा दाय और चालुओंमें प्राचीन प्रदाह या अण्य कृष्टनात्रं चिह्न मौजूद रहते हैं।

दमा, खुश्क खांसी और कभी कभी पम्फिसिमा आदि खांसी रोग भी हो सकते हैं। श्लेष्मामें यूरिक एसिडकी सूक्ष्म कणिकायें दिखाई देती हैं। कभी कभी हिचकी आती है।

मूत्रपत्रमें पूर्ववत् नाना विकृति उपस्थित होती है। सिवा इसके प्राचीन सिस्टाइटिस और मूत्रमें पत्थर भी आता है।

चमड़ेमें पुराना पक्ष्जिमा, सोरायैसिस, आर्टि-फेरिया, प्रुराइटिस और पक्ष्नी आदि चर्मरोग और कभी कभी हाइड्रॉसिस या टुपिमें बाधा उपस्थित होती है।

रुमाटिज्म और रुमाटिक आर्थाइटिसके साथ इस रोगका भ्रम हो सकता है। विशेष विवेचनके साथ इसका भ्रमगाय करना आवश्यक है।

गठिया चातरोगकी प्रबल अवस्थामें कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। किन्तु भीतर वस्त्रोंके आक्रान्त होने पर विषदु आनेकी सम्भावना रहती है। चर्मरोग या पक्ष्णवदमसे या कौलिक भावसे होने पर शरीर घोर घोर जोर्ण होता है। मूत्रपत्रमें पुराना प्रदाह रहने पर पीड़ा कठिन-समूहना चाहिये।

रोगके चर्मरोग, भाकमणकी अवस्थामें रातका एक मूदु विरेचन घटिका (पिंडु-कल्पसिन्धके ३ प्रेन और केल-सेल २ प्रेन) से कर दूसरे दिन सपेरे विरेचनार्थ सेना

और सल्टका प्रयोग करनी चाहिये। इस पीड़ाका विरोध औषध कल्चिकम् है। यह वाइकार्बोनेट या एसिटेट भाय पोटास अथवा कार्बोनेट भाय लिथियामके साथ मिला देना उचित है। उबर रहने पर उक्त दवायें लाकर पनी-निया एसिटेटसके साथ देना उचित है। उत्ताप अधिक रहने पर पेटोफेक्ट्रिन, पेटोपाइरिन या फेनासिटिन सदा

मात्रामें व्यवहार करना चाहिये। कभी कभी सेलिस् लिट भाय सोडासे उपकार होता है; पारपेरिजाइनः तो विशेष उपकारी है। चमड़ेकी क्रिया सुद्धि करनेके लिये गर्म जल पोवा और गर्म जलसे स्नान किया जा सकता है। वेदना-निवारणके लिये अफीम और मोर्फियाका प्रयोग करना चाहिये। मित्रके लिये पारपेरिजाइड या सालफेनालु विशेष उपकारी है। पहले लघुपाक

आहार देना चाहिये। रोगके दुर्बल होने पर शौरवाद्युध आदि बलकारक द्रव्य और पोष्टी प्राण्डी (शराब) देना जरूरी है। पोष्टी या विषय-मद्य (शराब) देना मना है।

आक्रान्त सन्धियोंमें शोषियाई, वेलेडेनाः या पकेनाइड, लिग्निएड मल कर फलालेन (कपड़ा) द्वारा ढांक कर रखना चाहिये। रक्तमोक्षण करना उचित नहीं किन्तु कभी कभी छिद्र संलग्नसे उपकार होता है। प्रदाह कम होने पर भी बाण्डेज बांधना उचित है। शरीरके

उत्तसे गांठोंकी सूजन कम हो जाती है।

विरामकी अवस्था अथवा पुरानी पीड़ामें रोगीको सदा फलालेन पहनने, नियमित आहार और व्यायाम करनेका परामर्श देना चाहिये। कभी कभी इसके द्वारा भी रोग आरोग्य होता है। अधिक मांस, चीनीकी कोई चीज, शराब या फल खाना अच्छा नहीं। मांसमें भेड़ और पक्षीका मांस व्यवहार किया जा सकता है। कुछ लोग शाक-सब्जियोंके व्यवहार करनेका परामर्श देने हैं।

क्लारेट, मोजल या सीरो पोष्टी मात्रामें दो जा सकते हैं। अथवा चाय या कफीका सामान्य रूपसे व्यवहार किया जा सकता है। इससे उपकार हो जाता है। बहुत जगहोंमें साधारण नमकी जगह सेना नमकके व्यवहारसे फायदा होता है। सादा साफ जलका व्यवहार करना चाहिये। सोडावाटर पोषा कर्तव्य मना कर देना चाहिये। चमड़ेकी क्रियाकी सुद्धि करनेके लिये टर्किम या गर्म जलमें शरीर

पौड लेनेकी तरहका स्नान (Hot Bath) कराया जा सकता है। निरन्तर किसी विषयकी चिन्ता या रातका जागना, अच्छा नहीं। जहाँ घायुका परिवर्तन नहीं होता ऐसे गर्म प्रदेशमें रहनेसे विशेष फल लाभकी आशा रहती है। विरामके समय कार्बोनेट आफ पोटास या लिथियाके साथ बाइनम् अथवा एकद्राकृत कलचिकोई दिनमें तीन बार सेवन करनेके लिये दिया जा सकता है। अन्याय औपशोमि कुनाइन टो यो इनपयूजन सिनकोना, लीड घटित औपय; आर्सेनिक, गोयकम, पोटाशी आइसोडिड यो ब्रोमिड; यैजायेट ऑय पमोनिया, फ्लूकेट भाव सोडा यो पेमोनिया, नाइट्रेट भाव पमाइल निम्बूका रस और विविध धातव जल व्यवहार्य है।

पीड़न गांठों पर पनाडाइन लीनोमैण्ट मलना और पुराने दर्दमें पेट्री बांधना उचित है। क्षत होने पर कार्बोनेट भाव पोटास या लिथियाके लेसनमें कपड़े का एक टुकड़ा भोगा कर उस पर धरनेसे फायदा पहुँचता है। पीड़के स्थितस्थलको छोड़ कर किसी अभ्यन्तर यन्त्रमें जाने पर स्थितस्थलमें उतेजक लिनोमैण्ट मलना उचित है। मस्तिस्क आक्रान्ति होने पर इधर, मस्क, कैफर, इत्यादि व्यवहार किये जाते हैं। कमी कमी गांठमें ट्राय या पेट्री बांधने पर उपकार होता है।

सोमाम्बे वातरोगमें मनेसापत्रे अभ्युत्तापमें संक कर उसका रस प्रदाहयुक्त गांठ पर मलनेसे उपकार होता है। कमी कमी बेलको लकड़ा या आकन्दलकड़ी की आंग जला कर उस स्थान पर से कनेसे फायदा होता है। आकका पत्ता या कदमका पत्ता सेक कर सूजी हुई गांठ पर बांधनेसे गांठकी सुजन कम होती है। ऐसे स्थलमें कोई कोई गोड़्याघाली गांठ पर तारपीनका तैल, कपूर, सरसोंका तैल या कोई लिनिमैण्ट मल कर नमक मिले हुए कंचुके हरे पत्तेको टुकड़ा टुकड़ा कर बांधनेकी सलाह देते हैं। इससे गांठका सञ्चिन विहन रक परिवर्तित हो जाता है और पीडा कुछ कम हो जाती है। गन्ध भादुलिकाका पत्र जलमें पका कर उसकी भागसे सेकनेसे इस रोगमें विशेष फल मिलता है। वातश्ले (सं० पु०) अग्नि।

वातशीर्ष (सं० क्लो०) वातस्य शीर्षमिव। यस्ति, पेड। वातशूल (सं० क्लो०) यह शूनरोग जो वातसे होना शूत शब्द देखो।

वातगोणित (सं० क्लो०) वातज शोणितं दुष्टरक्तं यच। वातरोग। वातरक्त शब्द देखो। वातशोणितित् (सं० त्रि०) वातरक्त रोगी, जिस वातरक्त रोग हुआ हो।

वातश्लेष्मज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर। वात और कफवर्द्धक आहार तथा विहार द्वारा वायु और कफ वर्द्धित हो कर आमाशयमें जाती है। पीछे यह दूषित वायु और कफ कोष्ठकी अग्निको बाहर ला कर ज्वर उत्पादन करती है। वातश्लेष्म ज्वर होनेके पहले वातज्वर और कफज्वरके सभी पूर्व लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस ज्वरमें शरीर भौंगा कपड़ा पहननेके समान मालूम, पूर्वभेद अर्थात् ग्रन्थिवेदना, निद्रा, शरीरकी शुष्यता, शिरःपोड़ा, प्रतिश्याय, खांसी, अधिक पसोना, सर्नाप तथा उवरका मध्यम वेग होता है।

विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

वातसख (सं० पु०) वातस्य सखा टच् समासान्त। वायुसखा, अग्नि, हुताशन। (भाग१त ३।१।२१)

वातसङ्ग (सं० पु०) वातरोग।

वातसह (सं० त्रि०) वातं वातजनितरोगं सहते सह अच् १ अत्यन्त वायुयुक्त, वायुरोगग्रस्त, २ वायुवेग सहन करनेवाला।

वातसार (सं० पु०) विद्वयसूक्ष्म, येलका पेड़। (वैयकनि०)

वातसारधि (सं० पु०) वातः सारधिः सहापो यस्य। अग्नि।

वातसकन्ध (सं० पु०) वातस्य सकन्ध इय। आकाशका यह भाग जहाँ वायु चलती रहती है।

वातस्तम्भनिका (सं० स्त्री०) चिच, इमली।

वातखन (सं० त्रि०) वात एव खनः शब्दो यस्य। अग्नि। (शृक् ५।६।१६)

वातहत (सं० त्रि०) वातेन हतः। १ वायु द्वारा हत।

२ वातुल, वायुके कोपसे जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो।

वातहतवदमन् (सं० क्लो०) नेत्रवदमगत रोगभेद। इसके लक्षण—जिस नेत्ररोगमें वेदनाके साथ या वेदना न हो क

यत्संज्ञिघ्न-घिश्लेषप्रयुक्त निमेष उन्मेषरहित होता है तथा भ्रगकृताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे वातहत-धर्म कहते हैं। नेत्रोग नष्ट देते।

वातहन् (सं० त्रि०) वातं हन्तीति हन् क्प्। वातघ्न, वातनाशक औषध।

वातहर (सं० पु०) हरतीति ह-भच्, वातस्य हरः। वात-नाशक।

वातहरवर्ग (सं० पु०) वातनाशक द्रव्यसमूह। जैसे—महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके परएड, दो प्रकारके चच, दो प्रकारकी निगुण्डो तथा होंग।

वातहुडा (सं० श्लो०) १ वात्या। २ विच्छिन्नस्फोटिका। ३ योयिन्, धीरत।

वातहोम (सं० पु०) होमकालमें सञ्चालित वायु।

(यतपथभा० ११४२१)

वाताषय (सं० श्लो०) वात-भाषया षयः। वास्तुमेद। पूर्व और दक्षिणकी ओर घर रहनेसे उसको वाताषय वास्तु कहते हैं। यह वाताषय वास्तु शूद्रस्त्रोके लिये शुभप्रश्न नहीं है, क्योंकि इससे कलह और उद्वेग होता है। २ वात भाषयासे युक्त, वातनामविशिष्ट।

वाताट (सं० पु०) वात इव भटति गच्छतीति अट्-भच्। १ सूर्याभ्य, सूर्यका घोड़ा। २ वातमुग, हिरना।

वाताण्ड (सं० पु०) वातद्रूपती अण्डो यसमाद्। मुक्क-रोगविशेष, अंडरोगका एक रोग जिसमें एक अंड चलता रहता है।

वातातपिक (सं० श्लो०) एक प्रकारका रसायनका मेद। वातातोसार (सं० पु०) वातजन्यः अतोसारः। वायुजन्य अतोसार रोग। अतोसार रोग देते।

वाताहनक (सं० पु०) वात भटना षट्य, कप् समा-सान्ताः। वातप्रहृति।

वाताहमज (सं० पु०) वातस्य आहमजः। वायुपुत्र, हनुमान्, भीमसेन।

वाताहमान् (सं० त्रि०) वातरूप प्राप्त।

(शुक्लप्रयत्नः ११४६ मरीचरः)

वाताद् (सं० पु०) वाताय वातनियुक्तये अघत्रे इति अद्-घञ्। क्लृप्तविशेष, बादामवृक्ष (Prunus amygdalis) यह बादाम कट्ट, मिष्ट और बनबादामके भेदसे तीन

प्रकारका होता है। पर्याय—वातघैरी, नेत्रोपमफल, वाताघ गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, वातघ्न, शुक्रकारक, गुद। मन्त्रा-का गुण—मधुर, पृथ्वी, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विहारके लिये विशेष उपकारक है। (भाष्य०) बादाम देते।

वाताधिप (सं० पु०) वातस्य अधिपः। वायुका अधि-पति।

वाताध्वन् (सं० पु०), वाताय वातगमनाय अधरा। वातायन, भरोबा।

वातानुलोमन (सं० त्रि०) वातस्य अनुलोमनः। वायुका अनुलोम करना, वायु जिससे अनुलोम हो, उसका उधार करना, धातुओंके ठीक रास्तेसे जानेका अनुलोमन करते हैं।

वातानुलोमिन् (सं० त्रि०) वातानुलोम अस्तरणे इति, वायुका अनुलोमयुक्त, जिनको वायुकी अनुलोम गति होती है। (सुभुत पु०)

वातापद (सं० त्रि०) वातं अपहन्ति हन-क। वातघ्न, वातनाशकारक।

वातापि (सं० पु०) एक असुरका-नाम। यह असुर हृद्की धमनी नामकी पत्नीसे उदात्त हुआ था। अगस्त्य ऋषि इसे ला गये थे। (मंगवत०) इस असुरने दूसरे कदरमें विप्रवित्तिके औरस और सिंहिकाके गर्भसे जन्म प्रदण किया था। (मत्स्य० ६ अ०, अग्निपु० काश्यपवचन) महाभारतमें लिखा है, कि वातापि और वातापि दो भाई थे। दोनों मिल कर ऋषियोंके बहुत सताया करते थे। वातापि तो भेद-वग जाता था और उसका भाई वातापि उसे मार कर प्राणियोंके भोजन कराया करता था। जब ब्राह्मण लोग था चुकते, तब यह वातापिका नाम ले कर पुकारता था और वह उनका पेट फाड़ कर निकल आता था। इस प्रकार उग दोनोंने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उग दोनोंके घर भाये। आतापिने वातापिके मार कर अगस्त्यके खिलाया और फिर नाम ले कर पुकारने लगा। अगस्त्यजीने उदात्त ले कर कहा, कि यह तो मेरे पेटमें कामोका पत्र गया। अब उसको भाशा छोड़ दे। इसी प्रकार अगस्त्यने वातापिका संहार किया। (भाष्य-वचन० ६०-६६ अ०)

(१) अगस्त्यका प्रणाममन्त्र—

“वातापिद्धितो येन वातापिच्च निराकृतः ।

समुद्रः शेषितो येन समेऽगस्त्यः प्रदीदतु ॥”

२ स्थूल शरीर । “वातापि पीव इन्द्रव” (श्रुक् १।२८७।८) वातापिद्धि (सं० पु०) वातापि द्वेष्टीति द्विप विषय । अगस्त्य मुनि ।

वातापिन् (सं० पु०) वातापि नामक असुर ।

वातापिपुत्र—प्राचीन चालुक्यराज पुलिकेशीकी राजधानी । ‘जाङ्गल इमे वादामी कहते हैं । वादामी शब्द देखो ।

वातापिसूदन (सं० पु०) वातापि सूदते इति सूद सपु । अगस्त्य ।

वातापिहन् (सं० पु०) वातापि हन्ति हन विषय । अगस्त्य ।

यत्ताप्य (सं० त्रि०) १ वायुपूर्ण । (पु०) २ उदक, जल । ३ सोम । (श्रुक् २।२३।३। वायण) ।

वातामिष्यन्द (सं० पु०) वायुअमित नेत्ररोग, वायुके कारण आँखका आना । इस रोगमें आँखोंमें लूई चुगमि-की-सी बेदना होती और उनसे शीतल अश्रुस्राव तथा रोगीके शिरमें शूल और रोमाञ्च होता है ।

(भावप्र० नेत्रोगाधि०) नेत्ररोग देखो ।

वाताघ्न (सं० स्त्री०) वायुसे सन्तापित मिथाला ।

वाताम (सं० पु०) वादामी ।

वातामोदा (सं० स्त्री०) वातेन प्रसूत आमोदो यस्यामि । कस्तूरी ।

वाताप्य (सं० स्त्री०) पत्र, पेड़का पत्ता ।

वातापन (सं० स्त्री०) वातस्य अघ्नं गमनागमनमार्गः ।

१ गवाक्ष, भरोजा । (पु०) वातस्यैव अघ्नं गतिर्वयस्य ।

२ घोटक, घोड़ा । (त्रिका०) ३ अनिलके गोत्रसे उत्पन्न । ये श्रुक् १०।१६८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा श्रुवि थे । ४ उलके गोत्रोत्पन्न । ये श्रुक् १०।१८६ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा श्रुवि थे । ५

रामायणके अनुसार एक नगरका नाम ।

वातापनीय (सं० पु०) वातापन-प्रवर्तित वेदकी एक शाखा ।

वातापु (सं० पु०) वातमवते इति अथ बाहुलकात् उष्ण । द्रविण, दिग्म ।

वातारि (सं० पु०) वातस्य वातरोगस्य अरिः । १ परशु

वृक्ष, रैड । २ शतमूली । ३ पुनदाती नामकी लता । ४ शैफालिका, निगुण्डो । ५ यवानो, अजवायन । ६ भार्गी, भारंगी । ७ स्तुहो, धूसरी । ८ विडङ्ग, वायविडङ्ग । ९ शूरण, जिमीकन्द, भोल । १० महातक, मिलावा । ११ जतुका, जन्तुका लता । १२ शतावरी, सतावर । १३ श्वेत निगुण्डो, सफेद सिंहाक । १४ पोत लोघ, पीलो लोघ । १५ शुक्र रसोग, सफेद लहसुन । १६ तिलक वृक्ष । १७ पृथुमिश्र-श्याणक, श्वेत परण्ड, सफेद रैड । १८ नालवृक्ष, नीलका पीप, वा

वातारि (सं० पु०) मुक्कट्टि और प्रणाधिकारोगमें औषध विशेष । प्रस्तुतप्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिकला ३ भाग, चितामूल ४ भाग, शुग्गुल ५ भाग, इन्हें रैडोके तेलके साथ घोट कर गौली बनाये । अनुगान—सौंड और रैडोके मूलका काड़ा या अदरकका रस और तिलतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ पर रैडोका तेल लगा स्वेद प्रदान करे । पीठे धिरेचन होनेसे स्निग्ध और उष्ण-द्रव्य भोजन कराये । इससे वृद्धि रोग प्रशमित होता है ।

(भैषज्यरत्ना० मुक्कट्टि और प्रणाधि०)

वातारिशुग्गुल (सं० पु०) १ वातव्याधि रोगाधिकारमें औषधविशेष । २ आमवात रोगाधिकारमें औषधविशेष । प्रस्तुतप्रणाली—रैडोका तेल, गन्धक, शुग्गुल और त्रिकला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक मास तक लगातार प्रातःकालमें उष्णजलके साथ सेवन करनेसे आमवात, कटिशूक और पङ्कता आदि नाना प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना० आमवातरोगाधि०)

वाताप्य (सं० त्रि०) वात द्वारा पाने योग्य ।

(श्रुग् भाष्य वायण १।२।२।८)

वातारितण्डुला (सं० स्त्री०) विडङ्गा । (राजनि०) धातानी (सं० स्त्री०) वातस्य अली वक्ष । वात्या, वायु । वाताश (सं० पु०) वातमश्नाति अश घञ् । गयनाश, वायुका पीना ।

वातामिन् (सं० त्रि०) वातमश्नाति अश-णिनि । पयनामिन्, हवा पी कर रहनेवाला ।

वाताशवं (सं० पु०) वात स्य जीघागो अश्वः । कुलोन्

घटर्मसंगि-विश्लेषप्रयुक्त निमेष उग्मेपरहित होता है तथा भ्रजकताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे घातहत-घटर्म कहते हैं। नेत्रोग गन्ध देला ।

घातहन् (सं० लि०) घातं हन्तीति हन् क्प् । घातघ्न, घातनाशक औषध ।

घातहर (सं० पु०) हरतीति हृ-भच्, घातस्य हरः । घात-नाशक ।

घातहरयमै (सं० पु०) घातनाशक द्रव्यसमूह । जैसे—महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके पररुद्र, दो प्रकारके घच, दो प्रकारकी नियुंण्टी तथा हींग ।

घातहुङ्गा (सं० स्त्री०) १ घात्या । २ पिच्छिलस्फोटिका । ३ योयित्, खीरत ।

घातहोम (सं० पु०) होमकालमें सञ्चालित घायु ।

(शतपथब्रा० १।४२।१)

घाताणव (सं० स्त्री०) घात-भाषया यस्य । घास्तुमेद । पूर्वं और दक्षिणकी ओर घर रहनेसे उसके घाताणव घास्तु कहते हैं । यह घाताणव यास्तु गृहस्थोंके लिये शुभमद् नहीं है, क्योंकि इससे कलह और उद्वेग होता है । २ घात भाषयासे युक्त, घातनामविशिष्ट ।

घाताट (सं० पु०) घात इव भटति गच्छतीति अट्-भच् । १ सूर्याभ्य, सूर्यका घोड़ा । २ घातमृग, हिरना ।

घाताण्ड (सं० पु०) घातदूषयती अण्डौ यस्मात् । सुष्ठु-रोगविशेष, अण्डरोगका एक रोग जिसमें एक अण्ड चलना रहता है ।

घातापिक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रसायनका भेद । घातापीसार (सं० पु०) घातजन्य-भतोसारः । घायुजन्य भतोसार रोग । भतोसार रोग देला ।

घातात्मक (सं० पु०) घात भरमा यस्य, क्व समा-सान्ताः । घातप्रकृति ।

घातात्मज (सं० पु०) घातस्य आत्मजः । घायुयुक्त, हनुमान्, भीमसेन ।

घाताराम् (सं० लि०) घातरूप प्राप्त ।

(शुक्लपत्रः १६।४६ महोपर-)

घाताद् (सं० पु०) घाताय घातनिघृण्यसे अघने इति अद्-घञ् । फलवृक्षविशेष, बादामवृक्ष (Prunus amygdalus) यह बादाम कटु, तिष्ठ और बनबादामके भेदसे तीन

प्रकारका होता है । पर्याय—घातवैरी, नेत्रोपमफलं, घाताश्रुण—उष्ण, सुस्निग्ध, घातघ्न, शुक्रकारक, गुण । मन्त्रा-का गुण—मधुर, श्लथ, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विहायके लिये । विशेष उपकारक है । (भावप्र०) बांशाम देला ।

घाताधिप (सं० पु०) घातस्य अधिपः । घायुका अधि-पति ।

घाताध्वन् (सं० पु०) , घाताय घातगमनाय अध्वान् । घातायन, भरोबा ।

घातानुलोमन (सं० लि०) घातस्य अनुलोमनः । घायुका अनुलोम करना, घायु जिससे अनुलोमा हो उसका उपाय करना, घातुओंके ठीक रास्तेसे जानेका अनुलोमन करने हैं ।

घातानुलोमिन् (सं० लि०) घातानुलोम भस्त्रवर्षे इति, घायुका अनुलोमयुक्त, जिनकी घायुकी अनुलोम गति होती है । (शुभ्रत पु०)

घातापह (सं० लि०) घातं भूयहन्ति हत-क । घातघ्न, घातनाशकारक ।

घातापि (सं० पु०) एक असुरका नामः । यह असुर ङ्ङकी घमनी नामकी पत्नीसे उदार हुआ था । भगस्त्व ऋषि इसे स्था गये थे । (भावप्र०) इन असुरने दूसरे कसमें विप्रचित्तिके मीरस और सिंहिकाके गर्भमें जन्म प्रदण किया था । (मत्स्य० ६ म०, अग्नि० पु० काश्याय वं०) महाभारतमें लिखा है, कि घातापि और घातापि दो भाई थे । दोनों मिल कर ऋषियोंके बहुत मत्थाया करते थे । घातापि तो भेद बन जाता था और उसका भाई घातापि उसे मार कर ब्राह्मणोंके औजस्य कराया करता था । जब ब्राह्मण लोग खा चुकते, तब यह घातापिका नाम ले कर पुकारता था और यह उगका पेट फाड़ कर निकल जाता था । इस प्रकार उन दोनोंने बहुतसे ब्राह्मणोंकी मार डाला । एक दिन भगस्त्व ऋषि उन दोनोंके घर आये । घातापिने घातापिके मार कर भगस्त्वके खिलाया और फिर नाम ले कर पुकारने लगा । भगस्त्वजीने उदार से कर कहा, कि यह तो मेरे पेटमें कमोका पच गया । अब उसकी भाशा छोड़ दे । इसी प्रकार भगस्त्वने घातापिका संदार किया । (भावप्र० वना० ६०-६५ म०)

अथवाह्यका प्रणाममन्त्र—

‘श्राद्धाभिर्भक्तिवो येन वातापिन्ध्व निराकृतः ।

समुद्रा शोषितो येन समेदगस्त्यः प्रसीदतु ॥’

२ स्थूल शरीर । ‘वातापि पीव इन्द्रव’ (शुक् १।१८७।८)

वातापिद्धि (सं० पु०) वातापि द्वेष्टेति द्विप्विचिप् ।

अगस्त्य मुनि ।

वातापिन्ध्व (सं० पु०) वातापि नामक असुरं ।

वातापिपुत्र—प्राचीन चालुक्यवंशीय पुलिकेशीकी राजधानी ।

‘आंज कल-इमे बादामी कहते हैं । बादामी शब्द देखा ।

वातापिसूदन (सं० पु०) वातापि सूदते इति सूदलपु ।

विश्वस्त्य ।

वातापिहन् (सं० पु०) वातापि हन्ति हन क्विप् ।

अगस्त्य ।

वाताप्य (सं० त्रि०) १ वायुपूर्ण । (पु०) २ उदक ।

जल । ३ सोम । (शुक् ६।६३।५ वायव्य)

वातामिषण्ड (सं० पु०) वायुजनित नेत्ररोग, वायुके

कारण, आंखका आना । इस रोगमें आंखीमें सूई चुभाने-

की-सी बेदना होती और उससे जोतल अंधुछाव मथा

रोगीके शिरमें शूल और रोमाञ्च होता है ।

(आमय-निश्रोगाधि०) निश्रोग देखा ।

वाताघ्न (सं० स्त्री०) वायुसे सन्ताड़ित मिथाला ।

वाताम (सं० पु०) वांदाय ।

वातामोदा (सं० स्त्री०) वातेन प्रसूत आमोदो यस्याः ।

कस्तूरी ।

वाताप्य (सं० स्त्री०) पत्र, पेड़का पत्ता ।

वातापन (सं० स्त्री०) वातरूप अयनं गमनागमनमार्गः ।

१ गवाक्ष, भरौछा । (पुं०) वातरूपेय अयनं गतिर्यस्य ।

२ घोरक, घोडा । (त्रि०) ३ अनिलके गोत्रसे उत्पन्न । ये

शुक् १०।१६८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा अपि थे । ४ अलके गोत्रो-

त्पन्न । ये शुक् १०।१८६ सूक्तके मन्त्रशब्दा अपि थे । ५

रामायणके अनुसार एक नगरका नाम ।

वातापनोय (सं० पु०) वातापन-प्रवर्तित वेदकी एक

शाखा ।

वातापु (सं० पु०) वातामयते इति अथ वाहुलकात् उण् ।

हरिण, डिरन ।

वातारि (सं० पु०) वातस्य वातरोगस्य अरिः । १ वरुण्ड

वृक्ष, रेंड । २ शतमूली । ३ पुत्रदात्री नामकी लता । ४

शैकालिका, निगुण्डो । ५ यवानो, अजशायन । ६ भार्गी,

भारंगो । ७ स्तुहो, घूररोट विडङ्ग, वायविडङ्ग । ८ शूरण,

जिमीकन्द, भोल । १० महातक, मिलावा । ११ जनुका,

जन्तुका लता । १२ शताचरी, सतावर । १३ श्वेत निगुण्डो,

सफेद सिंहारु । १४ पीत लोघ, पीलो लोघ । १५ शुक्र

रसोन, सफेद लहसुन । १६ तिलक वृक्ष । १७ पुपुगिश्व-

श्वोणक, श्वेत परण्ड, सफेद रेंड । १८ गोत्रवृक्ष, गोत्र-

का पीथा,

वातारि (सं० पु०) मुक्कवृद्धि और प्रणाधिकारोगमें औषध

विशेष । प्रस्तुतप्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग,

त्रिफला ३ भाग, चितामूल ४ भाग, गुग्गुलु ५ भाग, इन्हें

रेंडोके तेलके साथ घोट कर गोलो बनावे । अनुगान—

सौंठ और रेंडोके मूलका काड़ा या अदरकका रस और

तिलतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ

पर रेंडोका तेल लगा स्वेद प्रदान करे । पीछे विदेचन

होनेसे दिनभ्य और उष्ण-द्रव्य भोजन करावे । इससे वृद्धि

रोग प्रशमित होता है ।

(भैषज्यरत्ना० मुक्कवृद्धि और प्रणाधि०)

वातारिगुग्गुलु (सं० पु०) १ वातघ्नाधि रोगाधिकारमें

औषधविशेष । २ आमघात रोगाधिकारमें औषधविशेष ।

प्रस्तुतप्रणाली—रेंडोका तेल, गन्धक, गुग्गुलु और

त्रिफला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक

मास तक लगातार प्रातःकालमें उष्णजलके साथ सेवन

करनेसे आमघात, फटिशूक और पङ्कता आदि नाना

प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना० आमघातरोगाधि०)

वाताप्य (सं० त्रि०) वात द्वारा पाने योग्य ।

(शुग् भाष्य वायव्य १।२।१।८)

वातारितण्डुला (सं० स्त्री०) विडङ्गा । (राजनि०)

वातानी (सं० स्त्री०) वातरूप आली वृक्ष । वास्या, वायु ।

वाताग्न (सं० पु०) वातामयान्ति अग्न घञ् । गयनाश,

वायुका पीना ।

वातानिन् (सं० त्रि०) वातमयान्ति अग्न-जिनि ।

पयनाजिन, हवा पी कर रहनेवाला ।

वाताशय (सं० पु०) वात रस शीघ्रगो अशयः । कुन्डोन

घटर्मसंघिघ-विश्लेषप्रयुक्त निमेष उष्मेपरहित होता है तथा भणकताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे घातहत-
घारमें कहते हैं। नेत्रोग दग्ध देतो।

घानघ्न (सं० त्रि०) घातं हन्तीति घ्न क्त्वि। घातघ्न,
घातनाशक औषध।

घातहर (सं० पु०) हरतीति हृ-भच्, घातस्य हरः। घात-
नाशक।

घातहरवर्ग (सं० पु०) घातनाशक द्रव्यसमूह। जैसे—
महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके परण्ड, दो प्रकारके चब, दो
प्रकारकी निगुण्डो तथा हींग।

घातहृष्टा (सं० स्त्री०) १ घातया। २ पिच्छिलस्फोटिका।
३ योषिव्, औरत।

घानहोम (सं० पु०) होमकालमें सञ्चालित घायु।

(गणपथना० ६।४२।१)

घाताष्य (सं० स्त्री०) घात-भाषया यस्य। घास्तुमेद्।
पूर्व और दक्षिणकी ओर घर रहनेसे उसको घाताष्य घास्तु
कहते हैं। यह घाताष्य घास्तु शृङ्खलके लिये शुभमद्
नहीं है, क्योंकि इससे कलह और उद्वेग होता है। २
घात भाषयासे युक्त, घातनामविशिष्ट।

घाताट (सं० पु०) घात इव अटति गच्छतीति अट्-भच्।
१ सूर्याभ्य, सूर्यका घोड़ा। २ घातमृग, हिरना।

घाताण्ड (सं० पु०) घातदूषितौ अण्डौ यस्मात्। मुख-
रोगविशेष, अण्डरोगका एक रोग जिसमें एक अण्ड
चलता रहता है।

घातातपिक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रसायनका मेद्।
घातातीसार (सं० पु०) घातजन्यः भतीसारः। घायुजन्य
भतीसार रोग। भतीसार रोग देतो।

घातात्मक (सं० पु०) घात अत्मा यस्य, कप् समा-
सात्ता। घातप्रकृति।

घातात्मज (सं० पु०) घातस्य जातमजः। घायुयुक्त,
हनूमान्, भीमसेन।

घातात्मान् (सं० त्रि०) घातरूप प्राप्त।

(शुक्रसूत्रः १६।४६ महोपरः)

घाताद् (सं० पु०) घाताय घाननिघृत्तये यद्यने इति घट्-
घम्। फलप्लविसीय, बादामदृश (Prunus amygdalae)
यद् बादाम कट्ट, गिट और बमबादामके भेदसे तीन

प्रकारका होता है। पर्याय—घातघेरी, नैलोपमफल, घाताघ्न
गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, घातघ्न, शुक्रकारक, गुण। मज्जा-
का गुण—मधुर, मृष्य, पित्त और घायुनाशक, स्निग्ध,
उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विहारके लिये विरह्य
उपकारक है। (भायप्र०) बोधाम देतो।

घाताधिप (सं० पु०) घातस्य अधिपः। घायुका अधि-
पति।

घाताध्यन् (सं० पु०), घाताय घातगमनाय अध्या।
घातायन, भरोबा।

घातानुलोमन (सं० त्रि०) घातस्य अनुलोमनः। घायुका
अनुलोम करना, घायु जिससे अनुलोम हो उसका उपाय
करना, घातुओंके ठीक रास्तेसे जानेका अनुलोमन करते
हैं।

घातानुलोमिन् (सं० त्रि०) घातानुलोम अस्त्वर्थे इति,
घायुका अनुलोमयुक्त, जिनको घायुकी अनुलोम गति
होती है। (सुभूत पु०)

घातापह (सं० त्रि०) घातं भगहन्ति हन-क। घातघ्न,
घातनाशकारक।

घातापि (सं० पु०) एक असुरका नाम। यह असुर
हृद्बकी धमनी नामकी पत्नीसे उदात्त हुआ था। अगस्त्य
ऋषि इसे का गये थे। (महाभारत०) इन असुरने दूसरे
कलामें विप्रचित्तिके औरस और सिद्धिकाके गर्भसे जन्म
प्रदण किया था। (मत्स्य० ६ मं०, अत्रि० पु० काथर्वीय बंत्त)
महाभारतमें लिखा है, कि, घातापि और घातापि दो भाई
थे। दोनों मिल कर ऋषियोंके बहुत मताया करने थे।
घातापि तो भेद बन जाता था और उसका भाई घातापि
उसे मार कर ब्राह्मणोंके मौज्ज करवाया करता था। जब
ब्राह्मण लोग छा सुते, तब यह घातापिका नाम ले कर
पुकारता था और यह उसका पेट फाट कर निकल जाता
था। इस प्रकार उन दोनोंने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार
डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनोंके घर आये।
घातापिने घातापिका मार कर अगस्त्यके लिलाया और
फिर नाम ले कर पुकारने लगा। अगस्त्यकोने डकार
ले कर कहा, कि यह तो मेरे पेटमें कभीका पच गया।
अब उसकी भासा छोड़ दे। इसी प्रकार अगस्त्यने
घातापिका संहार किया। (भायव कथा० ६५-६६ मं०)

१. अंगारस्यका प्रणाममन्त्र—

“आतापिर्मिच्छिते येन वातापिन्च निराङ्गवः ।

समुद्रा शेषितो येन समेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥”

२ स्थूल शरीर । “वातापे पीव इन्द्रव” (श्रुक् १।१८७।८)

वातापिद्धि (सं० पु०) वातापि द्वेष्टोति द्विप् विषप् ।
अगस्त्य मुनि ।

वातापिन् (सं० पु०) वातापि नामक असुर ।

वातापिपुर—प्राचीन चालुक्यवराज पुलिकेशीकी राजधानी ।
‘आज कल इसे बादामी कहते हैं । बादामी कन्द देखो ।’

वातापिसूदन (सं० पु०) वातापि सूदते इति सूद सन्तु ।
अगस्त्य ।

वातापिहन् (सं० पु०) वातापि हन्ति हन क्विप् ।
अगस्त्य ।

वाताप्य (सं० त्रि०) १ वायुपूर्ण । (पु०) २ उदक,
जल । ३ सोम । (श्रुक् २।६३।५ वायव्य)

वातामिष्यन्द (सं० पु०) वायुअमित नेत्ररोग, वायुके
कारण आँखका आना । इस रोगमें आँखोंमें सूई चुभने-
की-सी वेदना होती और उनसे शीतल अंशुसाँव तथा
रोगीके शिरमें शूल और रोमाञ्च होता है ।

(भावप्र० जैत्रोगाथि०) निषेध देखो ।

वातास्र (सं० स्त्री०) वायुसे सन्तहित मेघमाला ।

वाताम (सं० पु०) वादास्र ।

वातामोदा (सं० स्त्री०) वातेन प्रसृत आमोदो यस्यामी
कस्मूतो ।

वाताप (सं० स्त्री०) पत्र, पेड़का पत्ता ।

वातापन (सं० स्त्री०) वातस्य अयत्नं गमनागमनमार्गः ।

१ गवाक्ष, भरौजा । (पु०) वातस्यैव अयत्नं गतिर्व्यस्य ।

२ घोटक, घोड़ा । (त्रि०) ३ अनिलके गोत्रसे उत्पन्न । ये

श्रुक् १०।१६८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे । ४ उलके गोत्रो

त्पन्न । ये श्रुक् १०।१८६ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे । ५

पतावणके अनुसार एक नगरका नाम ।

वातापनीय (सं० पु०) वातापन-प्रवर्तित वेदकी एक

शाखा ।

वाताशु (सं० पु०) वातमयते इति अथ वाहुल्यकात् उष्ण ।

हरिक, डिरन ।

वातारि (सं० पु०) वातस्य वातरोगस्य औरि । १ परण्ड

पृष्ठ, रेंड । २ जतमूली । ३ पुनदातो नामकी लता । ४
शेकालिका, निगुण्डो । ५ यवानो, अजशायन । ६ मार्गी,
भारंगो । ७ स्तुही, शूद्रो । ८ चिङ्गु, वाघचिङ्गु । ९ शूरण,
जिमीकन्द, थोळ । १० मद्दातक, मिलावा । ११ जतुका,
जस्तुका लता । १२ जताघरी, मताथर । १३ श्वेत निगुण्डो,
सफेद सिंहारु । १४ पोत लोघ, पोलो लोघ । १५ शुङ्ग
रसोग, सफेद लहसुन । १६ तिलक पृष्ठ । १७ पृथुगिरिव-
शयोनक, श्वेत परण्ड, सफेद रेंड । १८ गोलपृष्ठ, गोल-
का पीघा,

वातारि (सं० पु०) मुष्करुद्धि और घणाधिकारोगमें औषध
विशेष । प्रस्तुतप्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग,
त्रिकला ३ भाग, चितामूल ४ भाग, गुग्गुल ५ भाग, इन्हें
रेंडोके तेलके साथ घोंट कर गोलो बनावे । अनुपान—
सोंड और रेंडोके मूलका काढ़ा या अदरकका रस और
तिलतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ
पर रेंडोका तेल लगा खेद प्रदान करे । पीछे विरेचन
होनेसे स्निग्ध और उष्ण-द्रव्य भोजन पराये । इससे पृद्धि
रोग प्रगमित होता है ।

(मैषज्वरत्ना० मुष्करुद्धि और घणाधि०)

वातारिशुग्गुलु (सं० पु०) १ वातप्याधि रोगाधिकारमें
औषधविशेष । २ आमवात रोगाधिकारमें औषधविशेष ।
प्रस्तुतप्रणाली—रेंडोका तेल, गन्धक, गुग्गुल और
त्रिकला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक
मास तक लगातार प्रातःकालमें उष्णजलके साथ सेवन
करनेसे आमवात, फटिशून और पङ्कता आदि नाना
प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

(मैषज्वरत्ना० आमवातरोगाधि०)

वाताप्य (सं० त्रि०) वात द्वारा पाने योग्य ।

(श्रुक् भाष्य वायव्य १।१२।१८)

वातारितण्डुला (सं० स्त्री०) विडङ्गा । (राजनि०)

वातानी (सं० स्त्री०) वातस्य आलो यज्ञ । वात्या, वायु ।

वाताज (सं० पु०) वातमयान्ति अज घञ् । गयनाज,
वायुका पीना ।

वातामिश्र (सं० त्रि०) वातमयान्ति अज-जिति ।

यवनामिश्र, दूध पी कर रहनेवाला ।

वाताश्व (सं० पु०) वात इव शीघ्रगो सश्वः । कुलोत्त

घटनेसंगिध-विश्लेषयुक्त निमेष उष्मेपरहित होता है तथा अशक्तताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे वातहत-घटने कहते हैं। नेत्रोप नष्ट देखो।

वातहन् (सं० लि०) वातं हन्तीति हन् किप्। वातघ्न, वातनाशक औषध।

वातहर (सं० पु०) हरतीति ह-भच्, वातस्य हरः। वात-नाशक।

वातहरवर्ग (सं० पु०) वातनाशक द्रव्यसमूह। जैसे— महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके परएड, दो प्रकारके घन, दो प्रकारकी तिगुण्डो तथा हींग।

वातदुष्टा (सं० स्त्री०) १ घातया। २ पिच्छिलस्फोटिका। ३ योपित्, भीतर।

वातदोम (सं० पु०) दोमकालमें सञ्चालित वायु।

(गणपथना० ६।४२।१)

वाताघ्न (सं० स्त्री०) वात-भाषया यस्य। घातुमेद। पृथ्वी और दक्षिणकी ओर घर रहनेसे उसको वाताघ्न वास्तु कहते हैं। यह वाताघ्न वास्तु शुद्धस्थानोंके लिये शुभमङ्ग नहीं है, क्योंकि इससे कलह और उद्वेग होता है। २ वात भाषयासे युक्त, वातनाशकवाशिष्ठ।

वाताट (सं० पु०) वात इव भटति गच्छतीति अट्-भच्। १ सूर्याभ्य, सूर्यका घोड़ा। २ वातमृग, हिरण।

वाताण्ड (सं० पु०) वातद्विपती अण्डो यस्मात्। मुष्क-रोगविशेष, अङ्गुलीरोगका एक रोग जिममें एक अङ्ग चलना रहता है।

वातातपिक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रसायनका मेद। वातातीसार (सं० पु०) वातजन्यः अतीसारः। वायुजन्य अतीसार रोग। अतीसार रोग देखो।

वातातनक (सं० पु०) वात भ्रमणा यस्य, कप् समा-भावात्। वातप्रकृति।

वातातमज (सं० पु०) वातस्य आतमजः। वायुयुक्त, हनूमन्, भीमसेन।

वातातमान् (सं० स्त्री०) वातरूप प्रातः।

(शुक्रसंयुक्तः १६।४६ गर्हापरः)

वाताद (सं० पु०) वाताय वागनियुत्ये अघने इति अद्-घम्। फलवृत्तविशेष, बादासदृश (Prunus amygdalae) यह बादास कटु, तिष्ठ और बमबादासके भेदसे शीत

प्रकारका होता है। पर्याय—वातघेरी, नेत्रोपमफल, वाताघ्न गुण—उष्ण, सुस्निग्ध, घातघ्न, शुककारक, गुण। मज्जाका गुण—मधुर, श्लेष्म, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विहायके लिये विशेष उपकारक है। (भाष्य०) बादास देखो।

वाताधिप (सं० पु०) वातस्य अधिपः। वायुका अधि-पति।

वाताध्यन् (सं० पु०), वाताय वातगमनाय अधः। वातायन, भरोधा।

वातानुलोमन (सं० लि०) वातस्य अनुलोमनः। वायुका अनुलोम करना, वायु जिससे अनुलोम हो उसका उबार करना, धातुओंके ठीक रास्तेसे जानेका अनुलोमन करने हैं।

वातानुलोमिन् (सं० लि०) वातानुलोम भ्रष्टवर्षे इति, वायुका अनुलोमयुक्त, जिनको वायुकी अनुलोम गति होती है। (शुभ्र० पु०)

वातापह (सं० लि०) वातं भवहन्ति हन-क। वातघ्न, वातनाशकारक।

वातापि (सं० पु०) एक असुरका नाम। यह असुर हृद्की धमनी नामकी पत्नीसे उदात्त हुआ था। अगस्त्य ऋषि रसेला गये थे। (भागवत०) इस असुरने दूसरे कदामें धिप्रचित्तिके नीरस और सिद्धिकामे गर्भसे जगम प्रदण किया था। (मत्स्य० ६३०, भाग० पु० कावर्ष्यावर्षे) महाभारतमें लिखा है, कि वातापि और वातापि दो भाई थे। दोनों मिल कर ऋषियोंके बहुत सताया करने थे। वातापि तो भेद बना जाता था और उसका भाई वातापि उसे मार कर प्राज्ञणोंके भोजन कराया करता था। जब प्राज्ञण लोग का सुते, तब यह वातापिका नाम ले कर पुकारता था और यह उनकी पेट काट कर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनोंने बहुतसे प्राज्ञणोंकी मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनोंके घर भाये। वातापिने वातापिके मार कर अगस्त्यके खिलाया और फिर नाम ले कर पुकारने लगा। अगस्त्यजीने उकार ले कर कहा, कि यह तो मेरे चेष्टने कमीका पक्ष गया। अब उसकी भागा छोड़ दे। इसी प्रकार अगस्त्यने वातापिका संहार किया। (भाष्य० ६३०-६३५)

श्वेतस्यैव प्रणाममन्त—

“वातापिण्डितो येन वातापिभूच निरङ्कितः ।

समुद्रं शोषयितो येन समेऽगस्त्यः प्रधीदतु ॥”

२ स्थूल शरीर । “वातये पीव इन्द्रव” (श्रृं ११२८७५८)

वातापिण्डि (सं० पु०) वातापि द्वेषोति द्विपू किये ।
अगस्त्य मुनि ।

वातापिन् (सं० पु०) वातापि नामक अंसुर ।

वातापिपुर—प्राचीन चालुक्यराज पुलिकेशीकी राजधानी ।

‘वाञ्जकल-इने वादामी कहते हैं । वादामी शब्द देखो ।

वातापिसूत्र (सं० पु०) वातापि सूत्रे इति सूत्र-स्यु ।

‘अगस्त्य’

वातापिहृत् (सं० पु०) वातापि इन्ति हन् विभप् ।

‘अगस्त्य’

वाताप्यः (सं० लि०) १ वायुपूर्ण । (पु०) २ उरक,

जल । ३ सोम । (श्रृं २६३१५ वायण)

वातामिष्यन् (सं० पु०) वायुजनित नेत्ररोग, वायुके

कारण आँसूका आना । इस रोगमें आँसूमें सूई चुभने-

की-सी वेदना होती और उनसे शीतल अंध्रुछाव तथा

रोगीके शिरमें शूल और रोमाञ्च होता है ।

(भावप्र० नेत्रोपाधि०) नेत्ररोग देखो ।

वातास्र (सं० स्त्री०) वायुसे सन्तान्द्रित मेघमाला ।

वाताम (सं० पु०) वादाम ।

वातामोदा (सं० स्त्री०) वातेन प्रसूत आमोदो यस्याः ।

कस्तूरी ।

वाताम्र (सं० स्त्री०) पत्र, पेड़का पत्ता ।

वातायन (सं० स्त्री०) वातस्य अयनं गमनागमनमामी ।

१ गवाक्ष, अरोजा । (पु०) वातस्यैव अयनं गतिर्यस्य ।

२ मोरक, घोड़ा । (पिका०) ३ अनिलके गोत्रसे उत्पन्न । ये

श्रृं १०११८ सूक्तके मन्त्रद्वया अस्ति ये । ४ उलके गोत्रो

त्पथ । ये श्रृं १०१८६ सूक्तके मन्त्रद्वया अस्ति ये । ५

(रासायणके अनुसार एक नगरका नाम ।

वातायनीय (सं० पु०) वातायन-प्रवर्तित वेदकी एक

श्रृं १०१८६ सूक्तके मन्त्रद्वया अस्ति ये । ५

वातायु (सं० पु०) वातायन इति, अथ प्राहुलकात् षण् ।

हरिण, दिव्य ।

वातारिः (सं० पु०) वातस्य वातरोगस्य अरिः । १ संसंख

वृक्ष, रेंड । २ शतमूली । ३ पुत्रदात्री नामकी लता । ४

शेफालिका, निर्गुण्डी । ५ यथानी, अजवायन । ६ भार्गी,

भारंगो । ७ स्तुदी, धूरर । ८ विडङ्ग, वायविडङ्ग । ९ शूरण,

जिमोक्कन्द, ओल । १० म्लतातक, मिन्दावा । ११ जतुका,

जन्तुका लता । १२ शताघरी, सतावर । १३ श्वेत निर्गुण्डी,

सफेद सिंहाक । १४ पीत लोघ, पीली लोघ । १५ शुद्ध

रसोन, सफेद लहसुन । १६ तिलक वृक्ष । १७ पृथुशिव-

श्याणक, श्वेत परण्ड, सफेद रेंड । १८ नीलवृक्ष, नील-

का पीथा,

वातारि (सं० पु०) सुकरुद्धि और व्रणाधिकारोर्गमें औषध

विशेष । प्रस्तुतप्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग,

लिफला ३ भाग, चितामूल ४ भाग, गुग्गुलु ५ भाग, इन्हें

रेंडोके तेलके साथ घोट कर पीली बनाये । अनुमान—

सौंठ और रेंडोके मूलका काढ़ा या अदरकका रस और

तिलतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ

पर रेंडोका तेल लगा श्वेद प्रदान करे । पीछे विरचन

होनेसे स्निग्ध और उष्ण-द्रव्य भोजन पराये । इससे वृद्धि

रोग प्रशमित होता है ।

(मैयवरत्ना० सुकरुद्धि वीर प्रणाधि०)

वातारिगुग्गुलु (सं० पु०) १ वातश्याधि रोगाधिकारमें

औषधविशेष । २ आमवात रोगाधिकारमें औषधविशेष ।

प्रस्तुतप्रणाली—रेंडोका तेल, गन्धक, गुग्गुलु और

लिफला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक

मास तक लगातार प्रातःकालमें उष्णजलके साथ सेवन

करनेसे आमवात, फटिशून् और पङ्कता आदि नाना

प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

(मैयवरत्ना० आमवातरोगाधि०)

वाताप्य (सं० लि०) वात द्वारा पाने योग्य ।

(श्रृं भाष्य वायण ११२११८)

वातारितण्डुला (सं० स्त्री०) विडङ्गा । (राजनि०)

वातानी (सं० स्त्री०) वातस्य आली घन । वात्या, वायु ।

वाताश (सं० पु०) वातमश्नाति अश घञ् । यथनाश,

वायुका पीना ।

वातानिन् (सं० लि०) वातमश्नाति अश-णिनि ।

पयनाशिन, हवा पी बर रहनेवाला ।

वाताश्वं (सं० पु०) वात इव शीघ्रगो अश्वः । कुलीन

घटर्मसृष्टि-विश्लेषप्रयुक्त निमेष उग्मेदरहित होता है तथा अजाकृताके कारण नेत्र बंद नहीं होता उसे घातहत-घटर्म कहते हैं। नेत्रोग नष्ट देता।

घातहन् (सं० लि०) घातं हन्तीति हन् क्प्। घातघ्न, घातनाशक औषध।

घातहर (सं० पु०) हरतीति ह-भच्, घातस्य हरः। घात-नाशक।

घातहरवर्ग (सं० पु०) घातनाशक द्रव्यसमूह। जैसे—महानिम्ब, कपास, दो प्रकारके परण्ड, दो प्रकारके घन, दो प्रकारकी निगुण्डा तथा होंग।

घातद्रुहा (सं० स्त्री०) १ घातघ्। २ पिच्छिलस्कोटिका। ३ योपिन्, बीरन।

घातहोम (सं० पु०) होमकालमें मञ्जालित घायु।

(शतपथभा० १५२१)

घाताशय (सं० स्त्री०) घात-भाषया यस्य। घास्तुमेद्। पूर्वं भीर वृष्टिणको भोट घर रहनेसे उसको घाताशय घास्तु कहते हैं। यह घाताशय घास्तु शूरस्वीके लिये शुभमद्र नहीं है, क्योंकि इससे कलह भीर उद्देग होता है। २ घात भाषयासे युक्त, घातनामविशिष्ट।

घाताट (सं० पु०) घात इय भटति गच्छतीति अट्-भच्। १ सूर्याभ्य, सूर्यका घोड़ा। २ घातमृग, हिरना।

घाताण्ड (सं० पु०) घातद्रूपती अण्डो यस्मात्। सुख-रोगविशेष, अंडरोगका एक रोग जिसमें एक अंड चलना रहता है।

घातातपिक (सं० स्त्री०) एक प्रकारका रसायनका मेद्।

घातानीमार (सं० पु०) घातजन्यः अनोत्सारः। घायुजन्य अनोत्सार रोग। अर्थात् रोग देता।

घातातनक (सं० पु०) घात भरता यस्य, कप् समा-स्तान्। घातमहति।

घातातमज (सं० पु०) घातस्य आतमजः। घायुयुक्त, हनूमान्, भोमसेन।

घातारमात् (सं० लि०) घातरूप प्राप्त।

(शुभ्रतपत्र। ११५६ मरीचरः)

घाताद् (सं० पु०) घाताय घातनिष्पन्नये अघते इति अद्-प्रत्। फलद्रुमविशेष, बादायामद्रुम (Prunus amygdalas) यह बादायाम कट्ट, मिष्ठ और हनबादायामके मेद्से छोन

मकारका होता है। पर्याय—घातघेरी, नेत्रोपमफल, घाताशुण्य—उष्ण, सुस्निग्ध, घातघ्न, शुककारक, मुद्ग। मञ्जा-का गुण—मयुद्, गृष्य, पित्त और घायुनाशक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक तथा रक्तपित्त विहारके लिये विशेष उपकारक है। (भयम०) बादायाम देता।

घाताधिप (सं० पु०) घातस्य अधिपः। घायुका-मधि-पति।

घाताध्वन् (सं० पु०), घाताय घातगमनाय, अधरा। घाताधन, धरोक्षा।

घातानुलोमन (सं० लि०) घातस्य अनुलोमनः। घायुका अनुलोम करना, घायु जिससे अनुलोम हो उमका उपाय करना, घातुओंके ठोक राखनेसे जानेको अनुलोम करने हैं।

घातानुलोमिन् (सं० लि०) घातानुलोम भस्त्रयै इति, घायुका अनुलोमयुक्त, जिनकी घायुकी अनुलोम गति होती है। (शुभ्रत पु०)

घातापह (सं० लि०) घातं अपहन्ति हन-क। घातघ्न, घातनाशकारक।

घातापि (सं० पु०) एक अस्तुरका-नाम। यह अस्तुर कृद्की घननी नामकी पत्नीसे उतरा हुआ था। अगस्त्य ऋषि इसे ला गये थे। (भागवत०) इन अस्तुरने दूसरे कदामें धिप्रचित्तिके बीरस और सिद्धिके गर्मसे जन्म प्रदण किया था। (मत्स्य० ई म०, अरि० पु० कार्याय नव) महाभारतमें लिखा है, कि घातापि और घातापि दो जाट थे। दोनों मिल कर ऋषियोंके बहुत सताया करने थे।

घातापि तो मेद् वन जाता था भीट वनका भाई घातापि उमें मार कर प्राज्ञाणोंके भोजन कराया करना था। जब प्राज्ञाण लोग ला सुते, तब यह घातापिका नाम ले कर पुकारता था और यह उमका पेट फाड़ कर निकल जाता था। इस प्रकार उम दोनोंने बहुतसे प्राज्ञाणोंकी मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनोंके घर आये।

घातापिने घातापिकोंके मार कर अगस्त्यके खिलाया और फिर नाम ले कर पुकारने लगा। अगस्त्यउने उठकर ले कर कहा, कि यह तो मेरे पेटमें कमीका पक्ष गया। अब उमको भाया छोड़ दे। इसी प्रकार अगस्त्यने घातापिका संहार किया। (भागवत० १०-१८ अ०)

१. भगस्त्यका प्रणाममन्त्र—

२. वातापिर्भक्षितो येन वातापिन्च निराहृतः ।

३. समुद्र शोषितो येन समेद्रगस्त्वः प्रसीदतु ॥”

४. २ स्थूल शरीर । “वातापि पोष इन्द्रव” (शुक् १।१८७।८)

वातापिपिद्धि (सं० पु०) वातापि द्वेष्टीति द्विप् चिचप् ।

अगस्त्य मुनि ।

वातापिन् (सं० पु०) वातापि नामक असुरं ।

वातापिपुर—प्राचीन चालुक्यराज पुलिकेशीकी राजधानी ।

(आज कल इसे वादामी कहते हैं । वादामी शब्द देखो ।

वातापिसूदन (सं० पु०) वातापि सूदते इति सूद ह्यु ।

“भगस्त्ये” ।

वातापिहन् (सं० पु०) वातापिं हन्ति हन क्विप् ।

“भगस्त्ये” ।

वाताप्य (सं० लि०) १. वायुपूर्ण । (पु०) २. उष्ण ।

(जल) ३. शोम । (शुक् २।६३।५ वायव्य)

वाताभिगन्ध (सं० पु०) वायुजनित नेत्ररोग; वायुके

कारण आंखका आना । इस रोगमें आंखोंमें सूई चुगने-

की-सी बेदना होती और उनसे शीतल अश्रुछाव तथा

रोगीके शिरमें शूल और रोमाञ्च होता है ।

(भावप्र० जिक्रोमाधि०) निषेधन देखो ।

वाताभ्र (सं० स्त्री०) वायुसे सन्ताड़ित मेघमाला ।

वाताम (सं० पु०) वादाम ।

वातामोदा (सं० स्त्री०) घातेन प्रसृत आमोदो यस्याः ।

कस्तूरी ।

वाताय (सं० स्त्री०) पत्र, पेड़का पत्ता ।

वातायन (सं० स्त्री०) वातस्य ज्वरं यमनाममनमार्गः ।

१ गवाक्ष, भरौछा । (पु०) वातस्यैव अयनं गतिर्यस्य ।

२ प्रोक्क, घोड़ा । (त्रिका०) ३ अनिलके गोत्रसे उत्पन्न । ये

शुक् १०।१६८ सूक्तके मन्त्रप्रदा ऋषि थे । ४ उलके गोत्रो

त्पन्न । ये शुक् १०।१८६ सूक्तके मन्त्रप्रदा ऋषि थे । ५

(राजायणके अनुसार एक नगरका नाम ।

वातायनीय (सं० पु०) वातायन-प्रवर्त्तित वेदकी एक

शाखा ।

वातायु (सं० पु०) वातमयते इति अथ बाहुलकात् उष्ण ।

दक्षिण, दिन ।

(वातारिः (सं० पु०) वातस्य वातरोगस्य अरिः । ३. परच्छ

वृक्ष, रेंड । २ गतमूली । ३ पुनदाक्षी नामकी लता । ४

शीफालिका, निरुण्डी । ५ यधानी, अजवायन । ६ भार्गी,

भारंगी । ७ स्तुही, धूर । ८ विडङ्ग, वायविडङ्ग । ९ शूरण,

जिमीरन्ध, ओल । १० भल्लातक, मिलावां । ११ जतुका,

जम्बुका लता । १२ गताघरी, सताघर । १३ श्वेत निरुण्डी,

सफेद सिंहाहू । १४ पोत लोघू, पीली लोघ । १५ शुक्र

रसोन, सफेद लहसुन । १६ तिलक वृक्ष । १७ पुष्पशिव-

श्याणक, श्वेत परण्ड, सफेद रेंड । १८ नीलवृक्ष, नील-

का पौधा,

वातारि (सं० पु०) मुक्कड्दि और घ्राणधिकारोगमें औषध

विशेष । प्रस्तुतप्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग,

तिफला ३ भाग, चितामूल ४ भाग, गुग्गुलु ५ भाग, इन्हें

रेंडोके तेलके साथ घोट कर गोलि बनाये । अनुपान—

सोंठ और रेंडके मूलका काढ़ा या अदरकका रस और

तिलतेल है । इस औषधका सेवन करा कर रोगीकी पीठ

पर रेंडोका तेल लगा स्वेद प्रदान करे । पीछे घिरेचन

होनेसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन कराये । इससे वृद्धि

रोग प्रशमित होता है ।

(भैषज्यरत्ना० मुक्कड्दि औ० घ्राणधि०)

वातारिगुग्गुलु (सं० पु०) १ वातघ्राधि रोगाधिकारमें

औषधविशेष । २ आमवात रोगाधिकारमें औषधविशेष ।

प्रस्तुतप्रणाली—रेंडोका तेल, गन्धक, गुग्गुलु और

तिफला—इन्हें एक साथ पीस उचित मात्रामें एक

मास तक लगातार प्रातःकालमें उष्णजलके साथ सेवन

करनेसे आमवात, फटिशून् और पङ्कता आदि नाना

प्रकारके रोग शान्त होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना० आमवातरोगाधि०)

वाताय्य (सं० लि०) वात द्वारा पाने योग्य ।

(श्रुम भाष्य वायव्य १।१२।१८)

वातारिपण्डुला (सं० स्त्री०) विडङ्गा । (राजनि०)

वाताक्षी (सं० स्त्री०) वातस्य आली यत् । वात्या, वायु ।

वाताश (सं० पु०) वातमयनाति अश घञ् । यथनाश,

वायुका पीना ।

वाताशिन (सं० लि०) वातमंशनाति अश-णिनि ।

पवनशिन, हवा पो कर रदनेवाला ।

वाताश्वं (सं० पु०) वात इव शीघ्रगो अश्वः । कुलोन

अथ। पथ्य—हृषोत्तम, जारप, अन्नानेय। (वि०)।
 वाताप्लीमा (सं० स्त्री०) वातेन अप्लीमा। वातप्राधि
 रोगविशेष। वद्वि नामिके नांके अप्लीमा (मोल पथर)
 सट्टन फटिन गांठ उदरत्र हो तथा बह गांठ कमी सखल
 और कमी निरचल भावमें रहे तथा उद्दायननियमित
 उन्नत और मलमूत्रका अयरोधकारी हो, तो उसे वाताप्लीमा
 कहते हैं। इस रोगमें शुष्म और अग्निद्रुचिको तरह
 चिकित्सा करने होती है। वातप्राधि देते।
 वातामद (सं० लि०) वात वातजनितरोग आसहते इति
 आमद-अथ। वातुल, वायुप्रधान।
 वातामू (सं० स्त्री०) वातेन असू। वातरक्त, वातरक्त-
 रोग।
 वाताहत (सं० लि०) वायुताहित।
 वाति (सं० पुं०) वाति गच्छतीति वा (वावेर्निच्। उष्
 ५६) इति मति। १ वायु। २ सूर्य। ३ चन्द्रमा।
 'वातिरादिन्त्येतामेषाः' (रमय) -
 वातिक (सं० पुं०) वाताद्वातेन वात उन्मू। १ वायुज
 व्याधि, वायुमें उदरत्र रोग। (स्त्री०) वांत (वातविच
 श्लेष्माभ्याः सामनेकापेदादस्त्वयान्। पा १।१।३८) इत्यस्य
 वासिंकोरथ उन्मू। २ वायुका जमन और कोपन
 द्रव्य। (लि०) ३ वातिक रोगाकारत, व्यर्थ बकने-
 वाला, पाघाल।
 वातिकशण्ट (सं० पुं०) वागिदपण्ट, यह जिनके अग्नि-
 दोषसे अंडकोप नष्ट हो गया हो।
 वातिकप्रिय (सं० पुं०) अम्लपेतस, अम्लपेत।
 वातिकरक्तपित्त (सं० स्त्री०) वायु जग्य रक्त पित्त।
 वातिकपण्ट (सं० पुं०) वातिकेन पण्टः।
 वातिकपथ देना।
 वातिग (सं० पुं०) वातिं वायुं गच्छतीति गमत्।
 १ अट्टा, अट्टा, वेगन (लि०) २ वातुपाशो। (मेदिनी)
 वातिगम (सं० पुं०) वाति वायुं गमयति प्रापयतीति
 गम-अथ्। वातांशु, वेगन।
 वातिद्वन (सं० पुं०) वातांशु, वेगन।
 वातीक (सं० पुं०) पसिपिदेय, एक प्रकारका छोटा पत्ती
 इसके मांसका गुण—मधु, तीक्ष्ण, मधुर और कषाय।
 (सुश्रुत सूत्रपाठ ४६ अ०)

वातीकार (सं० पुं०) वातकर। (अथर्व ३।८।२०)
 वातीकृत (सं० लि०) वातयुक्त। (अथर्व १।२।६।१)
 वातोप (सं० स्त्री०) वाताय वातनिद्रुपदे द्विः वात-उ।
 काञ्चीक, कांती।
 वातुल (सं० पुं०) १-वास्या, हवा। (लि०) २-वायु-
 प्रधान। ३ उन्मत्त, पाथला।
 वातुलानक (सं० पुं०) एक नगरका नाम। (राजतरङ्गिणी)
 वातुलि (सं० स्त्री०) तक्ष-मूलिका, बादुर।
 वातूक (सं० पुं०) मरुत्वविशेष, एक प्रकारको मछली।
 वातूक (सं० पुं०) वातानां समूहः (वातादूना। पा ४।२।४२)
 इत्यस्य वासिंकोरथा उल्ल, यद्वा वाताः सग्वस्मिन्मिति
 वात (विष्णुस्मृत्यन्व। पा २।६।१०) इति लय 'वात दन्तपलेपि
 उच्छु' यद्वा वातानां समूहः वातं न सहते इति वा
 (वातात् उन्ने च, वातं न सहते इति च। पा १।२।११३);
 इत्यस्य वासिंकोरथा उल्लच्। १ वास्या, हवा। (लि०)
 २ वायुप्रधान। ३ उन्मत्त, पाथला।
 वातून्मत्त—एक प्रसिद्ध तन्त्रशास्त्र। यह वातुलागम,
 वातुलशास्त्र, वातुलोत्तर या आदिवातुन्मत्त, वातुल-
 शुद्धागम या वातुलमूल नामसे प्रसिद्ध है। हेमाद्रिने
 इस तन्त्रका पचन उद्गृह्यन किया है।
 वातू (सं० पुं०) वातीति वा-न्च्। वायु, हवा।
 वातीभ्रतोर्य (सं० स्त्री०) एक तोषिकका नाम।
 वातीदय (सं० लि०) वातज रोग।
 वातीदर (सं० स्त्री०) वातेन उदरं। वातजनितोदर रोग
 विशेष। इसमें हाथ, पाँव, नाभि, कान, पसलें, पेट,
 कमर और पोटमें पीड़ा होती है, सूखी चोँसी भागी है,
 शरीर भारी रहता है, भूँगेमें बैठन होती है और मलका
 अयरोध हो जाता है। पेटमें कमी कमी गुद्गुद्गाहट भी
 होता है और पेट फूला रहता है। पेट ठोकनेसे पेशा
 जगद् निकलता है, जैसे हवा भरी हुई मशक ठोकनेसे।
 (वाचस्प ० उदरोगवि०)
 वातीदरिन् (सं० लि०) वातीदररोगी।
 वातीन (सं० लि०) वातमुपवति उष् रुण्। वायुरीन।
 वातीना (सं० स्त्री०) वातिजगद्गुप, वाती नामको वास।
 (रायनि०)
 वातीपपन (सं० लि०) वातपिपन। (शुक्र १।६।१०)

वातोमी (सं० स्त्री०) ग्वारह अक्षरोंका एक वर्ण। इसमें मंगण, मंगण, तमण और अंशमें दो गुरु होते हैं।

वातोत्खन (सं० लि०) वातेन उखनः। १ वाताधिक, वायुप्रधान। (पु०) २ एक प्रकारका, सन्निपातउवर। इसमें रोगीको श्वास, खाँसी, भ्रम और मूर्च्छा होनी है तथा वह प्रलाप करता है। उसकी पमलियोंमें पोड़ा होती है, वह जमाई अधिक लेता है और उसके मुँहका स्वाद कसैला रहता है। यह वातोत्खन उवर बहुत भयानक होता है। विशेष विवरण स्वर्ग कन्दमें देखो।

वात्य (सं० लि०) १ वायु सम्बन्धीय। २ वायुमव। (शुक्लयजुः १६।३६)

वात्यो (सं० स्त्री०) वातानां समूहः, वात (पाशादिभ्यो यः। वा ४।२।५६) इति य लिप्यां टाप्। वातसमूह।

वात्स (सं० पु०) वत्स-अण्। १ ऋषिभेद, गोत्र-प्रवक्तक ऋषि। (स्त्री०) २ सामभेद।

वात्सक (सं० स्त्री०) वत्सानां समूहः वत्स (गोश्रोत्रोद्भूति। वा ४।२।३६) इति युञ्। १ वत्स-समूह। (अमर) वत्सक-स्येदमिति वत्सक-अण्। २ कूटजसम्बन्धी, इन्द्रयध-सम्बन्धी।

वात्समं (सं० पु०) वत्समी ऋषिका गोत्रापत्ये। यह एक प्रसिद्ध वैवाकरण और आचार्य थे। (वैत्ति० प्राति० १०।२३) ऋक् १०।४५ सूक्त और शुक्लयजुः १२।२८ मन्त्रमें उनका उल्लेख है।

वात्समीय (सं० लि०) वात्समी सम्बन्धीय। (शतपथब्रा० ६।१।४।१५)

वात्सरिक (सं० पु०) ज्योतिषी। वात्सवन्ध (सं० पु०) वत्सवन्धेनकाष्ठ, बछड़ा बांधनेका बूँदा।

वात्सल्य (सं० पु०) वत्सल पद स्वर्घो वञ्ज्। १ रस-विशेष, वह स्नेह जो पिता या माताके हृदयमें संततिके प्रति होता है। वत्सलस्य भावः वत्सल्य इत्यम्। (स्त्री०) २ स्नेह, प्रेम।

साहित्यमें जिस तरह नायक-नायिकाके रतिभावके वर्णन द्वारा ऋतुर रस माना जाता है, उसी तरह कुछ लोग माता-पिताके रतिभावके विभाव, अनुभाव और संचारी सहित वर्णनके वात्सल्य रस मानते हैं। परन्तु

यह सर्वसम्मत नहीं है। अधिर्वांश लग दाम्पत्य रतिके सिवा और प्रकारके रति भावको 'भाव' ही मानते हैं। वात्सशाल (सं० पु०) वत्स-शालासम्बन्धीय। वात्सि (सं० पु०) वत्सिके गोत्रापत्ये।

(ऐतरेयब्रा० ६।२५)

वात्सी (सं० स्त्री०) वात्स्य-शालासे उत्पन्न स्त्री।

वात्सीपुत्र (सं० पु०) १ आचार्यभेद। (शतपथब्रा० १।४।४।३१) २ नापित, नाई।

वात्सीपुत्रीय (सं० पु०) वात्सीपुत्रके शाखाध्यायी व्यक्ति-मात।

वात्सीमाण्डवीपुत्र (सं० पु०) आचार्यभेद। (शतपथब्रा० १।४।४।३०)

वात्सीय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद।

वात्सीद्धरण (सं० लि०) वत्सोद्धरण सम्बन्धीय। (वा ४।३।६३)

वात्स्य (सं० पु०) वत्स्यगोत्रापत्ये वत्स (गर्गादिभ्यो यञ्। वा ४।१।१०५) इति यञ्। १ सुनिविशेष, वत्सका गोत्रापत्ये। वात्स्यगोत्रके ५ प्रवर हैं—शीर्ष, फ्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्सुवन्त्। कात्यायन-श्रीतसूत्र और अथर्वप्रतिशाषणमें इसका उल्लेख है। २ एक ज्योतिर्विद्। हेमादिने इनका उल्लेख किया है।

वात्स्यगुरुमक (सं० पु०) जातिविशेष।

वात्सयायन (सं० पु०) वत्स्यगोत्रापत्ये युवा, वत्स व्यञ्, ततो युनि फक्। १ सुनिविशेष। पर्याय—महानाग, पशिलखामी। २ कामसूत्रके रचयिता।

न्याय शब्द और कामशास्त्र शब्द देखो।

वात्स्यायनीय (सं० लि०) वात्स्यायन कृत कामसूत्र।

वाद (सं० पु०) वद घञ्। १ यथार्थबोधेच्छु सापय, यह वात-चोत जो किसी तत्त्वके निर्णयके लिये हो।

'वाद' न्यायके सोलह पदार्थोंमें दशवां पदार्थ माना गया है। जब किसी वातके सम्बन्धमें एक कहता है, कि यह इस प्रकार है और दूसरा कहता है, कि नहीं, इस प्रकार है और दोनों अपने अपने पक्षकी युक्तियोंको सामने रखते हुए कथोपकथनमें प्रवृत्त होते हैं, तब वह कथोपकथन 'वाद' कहलाता है।

तत्त्वनिर्णय वा विजय अर्थात् दूसरेकी पराजयके उद्देशसे

न्यायानुगत यथन पराजयका नाम कथोरूपधन है। यह कथोरूपधन तीन प्रकारका है—याद, जल्प और विनष्टा। जय-पराजयके लिये नहीं, केवल तत्त्वनिर्णयके उद्देशसे जो वाद-चीत होती है उसका नाम याद है। वादमें वादी और प्रतिवादी दोनोंके तत्त्वनिर्णयकी ओर ही लक्ष्य रहते हैं। इसमें दोनों अपने अपने कथनको प्रमाणों द्वारा पुष्ट करने हुए दूसरे प्रमाणोंका खण्डन करते हैं। इसमें सिद्धान्तका किसी तरह अपलाप नहीं किया जाता तथा यह पक्ष-अध्यायसे युक्त होता है। फलतः चोतराग अर्थात् अपनी जय या प्रतिपक्षकी पराजयके विषयमें अमि-लापशून्य व्यक्तिका कथन ही याद है। तत्त्वनिर्णयके प्रति लक्ष्य न रख कर प्रतिपक्षकी पराजय तथा अपनी जयके उद्देशसे जो बातचीत होती है उसका नाम जल्प है। जल्पमें वादी और प्रतिवादी दोनों ही अपने पक्षका समर्थन और पर-पक्षका खण्डन करते हैं। अपना कोई भी पक्ष निर्दिष्ट न करके, केवल दूसरेके पक्ष खण्डनके उद्देशसे जो कथोरूपधन होता है उसका नाम विनष्टा है।

जल्प और विनष्टाओं में प्रतिपक्षकी पराजयके लिये उल्ल, जाति और निप्रदृष्टान्तका उद्घोषण किया जा सकता है। परन्तु वादमें यह नहीं हो सकता। केवल तत्त्वनिर्णयके लिये हेतुमात्र तथा और भी दो एक निप्रदृष्टान्तका उद्घोषण किया जा सकता है। जो तत्त्व-निर्णय या विजयके अमिलापो सर्वज्ञसिद्ध अनुभवका अपलाप नहीं करते, जो ध्येयवादिमें पट्ट हैं, कथनके उपयुक्त व्यापारमें उक्ति प्रत्युक्ति आदिमें समर्थ अधय कलहकारो नहीं है, वे ही कथनके अधिकारी हैं। फिर जो तत्त्व-ज्ञानोन्मुख हैं, उचित बात बोलते हैं, प्रतिभावाली हैं और युक्तिसिद्ध अर्थ स्वीकार करते हैं, जो प्रतारक नहीं हैं तथा प्रतिपक्षका निरहकार नहीं करते, वे ही वादके अधिकारी हैं। वादमें समाजी अपेक्षा नहीं, जल्प और विनष्टाओं में समाजी अपेक्षा है। जिस जनतामें राजा या कोई भी क्षमतावाली व्यक्ति मध्यस्थ रहते हैं उस जनसमूहका नाम समा है।

कथन या ज्ञानोप विचारप्रणाली इस प्रकार है। पहले वादी मत-विचारवास्तविक अपने पक्षका स्थापन कर

उसमें सम्भाव्यमान दोषका खण्डन करे। प्रतिवादी अपने अज्ञानादिको दूर करनेके लिये अर्थात् वे वादीकी बातको अच्छी तरह समझ सके हैं, यह दिखलानेके लिये वादीके मतका अनुवाद कर दोष दिखलाते हुए उसका खण्डन तथा प्रमाणोपस्थापनपूर्वक अपने मतका स्थापन करे। इसके बाद वादी प्रतिवादीके कथनोंका अनुवाद करके अपने पक्षमें प्रतिवादी द्वारा दिखलाये गये दोषोंकी उद्धार कर प्रतिवादीके स्थापित पक्षका खण्डन करे। इस नियमके अनुसार वादी और प्रतिवादीका विचार चलता रहेगा। आखिरमें जो इस नियमका उल्लङ्घन करने है अपना अगवसरमें अर्थात् जिस समय परपक्षमें दोष दिखाना होता है उस समय न दिखला कर, दूसरे समयमें दिखलाते हैं, वे भी निगृहीत अर्थात् पराजित होते हैं।

इस नियमके अनुसार विचार करके जयलभ करने होते वाद होगा ऐसा नहीं, सिद्धान्तित विषय उक्त नियमके अनुसार प्रमाणादि द्वारा सिद्धान्त होनेकी ही वाद कहते हैं।

इसका तात्पर्य यदि और भी विशदरूपसे किया जाय, तो यह कहा जा सकता है, कि परस्पर विजिगोषु न हो कर केवल प्रकृत विषयका तत्त्व-निर्णय करनेके लिये वादी और प्रतिवादीका जो विचार हो उसको वाद कहते हैं। प्रमाण और तर्कद्वारा अपने पक्षका समर्थन और पर-पक्षका खण्डन कर सिद्धान्तके अतिरेषो पक्षायव्ययुक्त होनेवाली वादी और प्रतिवादीको उक्ति और प्रत्युक्तिको वाद कहते हैं। यहाँ यह जगूा हो सकती है, कि वादी और प्रतिवादी दोनोंके वाच्य किस प्रकार प्रमाण-तर्कादिविधि हो सकते हैं? इसका उत्तर यही है, कि शास्त्रने सिद्ध प्रमाण, तर्कादि बतलाया है अर्थात् अनु-सार वाच्योपस्थापन करना होगा, इच्छानुसार वाच्य प्रयोग करनेमें काम नहीं चलेगा।

यदि मनुष्य भूलसे प्रमाणात्मात्र, तर्कात्मात्र, सिद्धान्त और न्यायानुगत प्रयोग करे, तो भी विचारके वादरूपकी दानि न होगी। वादविचारके सभी अधिकारी नहीं हैं। जो प्रकृत तत्त्वनिर्णयोन्मुख, यथार्थवादी, पक्षकादि दोष-शून्य, प्रकृत उपयोगी वाच्यवक्तृत्वमें समर्थ हैं, जो न समझ सकें पर भी सिद्धान्त विषयका अपलाप नहीं करते

तथा युक्तिसिद्ध विषयको स्वीकार करते हैं, ये ही वाद-विचारके अधिकारी हैं। परन्तु मेरी जीत होगी, इस क्वालसे मनुष्य यदि प्रमाणादि कह कर प्रमाणाभासादिका प्रयोग करे, तो वाद नहीं होगा। तत्त्वनिर्णयके लिये वाद-प्रतिवाद ही वादलक्षणका लक्षण है तथा अपने पक्षको दृढ़ करनेके लिये हेतु और उदाहरणका अधिक प्रयोग युक्तियुक्त होनेके कारण वाद-विचारकी जगह अवयवकी अधिकताका आदर हुआ है। उदाहरण वा उपनयरूप अवयवका प्रयोग नहीं करनेसे प्रकृत अर्थ सिद्ध नहीं होता, इसीसे सूत्रमें पञ्चावयव शब्द निर्दिष्ट हुआ है। पञ्च अवयव शब्दके द्वारा पक्षका न्यून परिहार हुआ है, पञ्चावयवकी अधिकता होनेसे उसमें दोष न हो कर परन्तु श्रेष्ठ ही होगा। दूसरा तात्पर्य यह भी है, कि पञ्चावयवयुक्त इस शब्द द्वारा हेतुभासका निराश तथा सिद्धान्तविरोधी शब्द द्वारा अपसिद्धान्तकी भी निराश किया गया है।

वादक (सं० लि०) वादयतीति वद-णिच्-पुल्ल्। १ वाद्य-कर, बाजा बजानेवाला। २ वक्ता। ३ तर्क या शास्त्रार्थ करनेवाला, वाद-विवाद करनेवाला।

वादचञ्चु (सं० पु०) शास्त्रार्थ करनेमें पटु; वाद करनेमें दक्ष।

वाददण्ड (सं० पु०) सारङ्गी आदि बाजोंके बजानेकी कमानी।

वादान् (सं० क्ली०) वद-णिच्-ह्युट्। १ वाद्य, बाजा। २ बाजा बजाना।

वादनक (सं० क्ली०) वादन-स्वार्थे कन्। वाद्य, बाजा।

वादनदण्ड (सं० पु०) वेहला आदिका तन्त्रिवस्त्र बजानेकी छड़ी।

वादापट्टि—मगद्गज प्रदेशके अन्तर्गत सलेम जिलेके उत्तुर्कर तालुकाका एक बड़ा गाँव। यहाँ प्राचीनत्वके निदर्शन-स्वरूप कुछ शिलालेख विद्यमान हैं।

वादप्रतिवाद (सं० पु०) शास्त्रीय विषयोंमें होनेवाला कथोपकथन, बहस।

वादयुद्ध (सं० पु०) वादे शास्त्रीय विवादे युद्ध। वाद-विषयमें युद्ध, शास्त्रीय क्लगडा, शास्त्रीय कलह।

वादर् (सं० पु०) वदरात् वदराकारकार्पासफलोद्भवम्, वद-

अण्। १ कार्पास निर्मित वस्त्रादि, कपासके सूतका कपड़ा। वदर स्वार्थे अण्। २ कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। ३ वदरी वृक्ष, वेरका पेड़।

वादर्ङ्ग (सं० पु०) अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़।

वादरत (सं० लि०) तर्क वा मीमांसामें नियुक्त।

वादरा (सं० स्त्री०) वदरवत्, फलमस्त्यस्याः वदर-अच्, ततष्ठाप्। कार्पासवृक्ष, कपासका पेड़। पर्याय - कार्पासी, सूत्रपुष्पा; वदरी, समुद्रागता।

वाद्रायण (सं० पु०) वदरायणे वदरिकाश्रमे निवसतीति वदरायण-अण्। व्यासदेव, वेदव्यास। व्यासदेव देवता।

वाद्रायणि (सं० पु०) वाद्रायणस्यापत्यमिति अपत्यार्थे ङ्। १ व्यासके पुत्र शुक्रदेव। वाद्रायण एव स्वार्थे ङ्। २ व्यासदेव।

वाद्दरि (सं० पु०) वाद्रायणके पिता। इनका मत वेदान्त-दर्शनमें प्रायः उद्धृत है।

वाद्दरिक (सं० लि०) वदरं चिन्तति इत्यर्थे ङ्। वदर चयनकर्त्ता, वेर धीननेवाला।

वाद्दल (सं० क्ली०) मधुघण्टिका, जैत्रो मधु, मुलेठो।

वाद्दवती (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

वाद्दवाद (सं० पु०) तर्क, बहस।

वाद्दवादिन् (सं० पु०) वाद् वदति वद-णिनि। एक 'जिन'का नाम। पर्याय—आर्हत।

वाद्दविवाद (सं० पु०) शाब्दिक क्लगडा, बहस।

वाद्दसाधन (सं० क्ली०) १ अपकार करना। २ तर्क करना।

वाद्दसागर (सं० पु०) स्वर्गदेशका एक नगर।

(भ० महालयम्)

वादा—१ चम्पारणके अन्तर्गत एक ग्राम। (भ० ब्रह्मलयम् २४६) २ कलकत्तेके दक्षिणमें उपस्थित एक लघुनगरी जलाशय। वादा देखा।

वादा (अ० पु०) १ नियत समय वा घड़ी। २ प्रतिष्ठा, इकरार।

वादानुवाद (सं० क्ली०) तर्क-वितर्क, शास्त्रार्थ, बहस।

वादान्य (सं० लि०) वदान्य एव स्वार्थे अण्। बहुप्रद, उदार।

वादाम (सं० क्ली०) स्थानामध्यात्, कल, वदाम। वदाम देखो।

वादापन (सं० पु०) वाद्यस्य गीतापरत्यं (भरतदिभ्यः षच् । वा ४।१।१३०) इति षच् । वाद्यके गीतापरत्य ।
 वादान् (सं० पु०) मत्स्यमेव, सहस्रत्रयं नामक मछली ।
 वादि (सं० लि०) वाद्यवति व्यक्तमुच्चारयति यद् निष्च् (दण्डिपरिपत्रोक्तं । उच्य ४।१२४) इति षच् । विद्वान् ।
 वादिक (सं० लि०) तार्किक ।
 वादिन (सं० लि०) निनादित, बजाया हुआ ।
 वादिनस्य (सं० स्त्री०) यद् निष्च् तदय । वाद्य, बाजा ।
 "गोनेन वादिनस्येन निरये मामनुशास्यति ।"

(भास १।३।६७ श्लोक)

वादिन (सं० स्त्री०) वाद्यने यद्-निष्च् (भूवादिभ्यो षिच् । उच्य ४।१२०) इति षिच् । वाद्य, बाजा ।
 वादितवम् (सं० लि०) वादित, कल्पवर्षे भानुप् मरुप य । वाद्य सङ्ग, बाजेकी तरह ।
 वादिन् (सं० लि०) यद्-तोनि यद्-निष्च् । १ यत्ना, बोलनेवाला । २ जिसको बातका पहले पहल प्रस्ताव करनेवाला, जिसका प्रतिवादीकी ओरसे शण्डन होता है । ३ कविवाद्ये, मुद्रके । जो राजद्वारमें पहले पहल मालिग करना है, उसे वाद्ये और जिसके विरुद्ध मालिग की जाती है, उसे प्रतिवाद्ये कहते हैं ।
 वादिनीकराचार्य—भासः पर्यमपि और सप्ततिररतमालिकाके रचयिता ।
 वादिर (सं० स्त्री०) यद्दी सङ्गं सूक्ष्म फलद्रुश, बेरके समान छोटे फलवाले पेड़ ।
 वादिराज (सं० पु०) वादियु गन्धर्व राजते इति राज-किन् । मञ्जुषीय ।
 वादिराज—१ जैनमत-मण्डन और भगवद्गीता-कताभाषणके प्रणेता । २ भेदोच्चरण, सुक्तिमन्त्रिका और विवरण-प्रण नामक दोनों ग्रन्थके रचयिता । ३ मारायणो नामक व्याकरणके प्रणेता ।
 वादिराजशोध—शोधप्रबंधकाव्य और कविमतोन्निषण्यकाव्यके रचयिता । १३३६ ई०में इनका देहाण हुआ ।
 वादिराजपति—शोधप्रबंधोक्तके रचयिता ।
 वादिराजनिष्य—नामापत्य संघट्टीकाके प्रणेता ।
 वादिराजनामो—१ भूमीजके रचयिता । भास्यशोधक महात्मारजभारतदर्शनिकके प्रणेता ।

वादिवाद्योभर (सं० पु०) एक प्राचीन कवि । 'दीगानस्ये' इनका श्लोक उद्धृत किया है ।
 वादिन (सं० लि०) साधुवाद्ये ।
 वादिभोपलभ—प्रतिघानचिन्तामणिटीकाके रचयिता ।
 वाद्ये (सं० पु०) वादिन देवी ।
 वाद्येन्द्र—१ एक प्रसिद्ध वार्शानिक । विष्णुमदने इनका उल्लेख किया है । २ कविकर्पटिकाकाव्यके प्रणेता ।
 वाद्येन्द्र (सं० पु०) वादिनां इन्द्रः । वादिराज, मञ्जुषीय ।
 वाद्येभसिद्—एक जैन पण्डित । इन्होंने मण्डवितामणि नामक ग्रन्थ लिखा है ।
 वाद्येभर (सं० पु०) वादिनामोभरः । वादिराज, मञ्जु-षीय ।
 वाद्युनि (सं० पु०) विष्णुमित्रके एक पुत्रका नाम ।
 (भास १।३।६७)

वाद्य (सं० स्त्री०) वाद्यवन्ति ध्वनयन्तीति यद्-निष्च्-यत् । १ मत्स्यवाद्य, बाजा बजाणा । २ वादित, बाजा ।
 वार्धय—भातोद्य । यद् वाद्य चार प्रकारका होता है—तन, भासद, सुगिर और घन ।
 बिना तालके गानकी शोभा नहीं होती, गानकी पूर्णताके लिये तालकी आवश्यकता है, यह ताल वादितसे उत्पन्न हुआ है; इसलिये वाद्य गति श्रेष्ठ है । फिर यह वाद्य तन, सुगिर, भासद और घन श्रेष्ठे चार प्रकारका है । वाद्योंके मध्य तन्त्रोगत वाद्यका तन, यंत्रों प्रभृतिके सुगिर, यन्त्रोपकरणके भासद एवं तालादिके घन कहते हैं ।

तन वाद्य वधा—भासायणो, प्रत्यवोणा, किन्नरी, लघु-किन्नरी, विष्णुकी, पहकी, उषेष्टा, चित्रा, ज्योष्यनी, प्रथा, हस्तिना, दृष्टिका, कृष्णो, गारुडो, परिवादिनी, निगधी, ननचन्द्रो, मञ्जुसिंहो, संघो, भीष्मचरो, विगाधी, निरुष्य, सुफलय, यदा, चारणशून्य, यद्र, नारमण्डल, कविकान्त, मधुसूदन्यो और घोणा प्रभृति तन्त्रोगत वाद्यवस्तुके तन वाद्य कहते हैं ।

सुगिर वाद्य वधा—यंत्रो, गारो, मधुरी, तिलारी, मञ्जु, नारद, सुरदो, सुरवी, युजा, श्रेष्ठिका, धरनाभि, विगा, क्षावादिन, यंत्रो और यन्त्रोयंत्रः प्रभृति सुगिर वाद्य हैं ।

आनन्दवाद्य यथा—मुरज, पटह, ढका, विम्बक, वर्षवाद्य, प्रणव, घन, सरयजा, लावजाह, त्रियल्य, करट, कमट, भेरी, कुडका, हुडका, फनस, मुरली, भल्ली, दुकरी, दौण्डशाजी, डमक, रमुकी, मड्ड, कुण्डलो, तड गुंमामा, रण, अमिघट, दुग्दुमी, रज, डुडुकी, ददुर और उपाङ्ग प्रभृति आनन्द-वाद्य कहलाते हैं।

कांस्यताल अर्थात् करताल प्रभृतिको घन कहते हैं।

पुराणमें लिखी हुई घटनाका अचलम्बन करके सांगीत-वर्मादरकार लिखते हैं, कि कविमणी और सरयनामा प्रभृति श्रोत्रुणको आठ पटरानियोंके विद्याहकालमें ये चारों प्रकारके वाद्य एक साथ बजाये गये थे। इन चारों प्रकारके वाद्यके मध्य देवताओंके त्त, गन्धर्वोंके शूपिर, राक्षसोंके आनन्द एवं किन्नरोंके घनवाद्य थे; किन्तु भगवान् श्रोत्रुणपृथ्वी पर श्रवतार ले कर ये चारों प्रकारके वाद्य इस मत्स्यमुवनमें ले आये, तबसे ये वाद्य पृथ्वीमें प्रचलित हैं।

विष्णुमन्दिरमें ये सब वाद्य बजानेसे विष्णु सन्तुष्ट हो कर अमिमतफल प्रदान करते हैं; इसलिये विष्णुमन्दिरमें प्रातः और सन्ध्याके समय इन सब वाद्योंका बजाना उचित है। शास्त्रमें जो विष्णुशब्द अमिहित है, वह केवल उपलक्षण है। विष्णु शब्दसे सभी देवताओंका बीध होता है। अतः सब देवताओंके मन्दिरमें उसी तरह बजा बजानेकी विधि है।

शिवमन्दिरमें भल्लक (कांस्य निर्मित करताल); सूर्यमन्दिरमें शङ्ख; दुर्गामन्दिरमें वंशो तथा माधुरी बजाना नियम है एवं विरचिके मन्दिरमें ढाक और लक्ष्मीके मन्दिरमें घण्टा नहीं बजाना चाहिये। यदि कोई वाद्यादि करनेमें असमर्थ हो, तो वे घण्टा बजा सकते हैं, कारण घण्टा सब वाद्योंका स्वरूप बतलाया गया है।

वाद्य सङ्गीतका एक प्रधान अङ्ग है। गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनोंके एकत्र समावेशको ही सांगीत कहते हैं। कुछ लोग गीत और वाद्य इन दोनोंके सांयोगिको ही सांगीत कह गये हैं। उनके मतानुसार गीत और वाद्य ही प्रधान हैं, नृत्य इन दोनोंका अनुगामी है। कोई कोई तो गान, वाद्य और नृत्य प्रत्येकका ही सांगीत

कहते हैं। कारण, वाद्याभावसे गान और नृत्य शोभा नहीं पाते।

यह वाद्य फिर तालके अधीन हैं, वे ताल वाद्यादि लोगोंके सुखदायक न हो कर केवल श्लेषद्वय होते हैं। वह ताल फिर त्रिधात्मक अर्थात् काल (क्षणदि), क्रिया (तालकी घटना), मान (दोनों क्रियाओंके मध्य विश्राम) नामक तीन विभागोंके समाश्रय हैं। ताल शब्दसे व्युत्पत्तिगत अर्थसे इसकी सार्थकता प्रतिपन्न होती है। प्रतिष्ठार्थक वाचक 'ताल' धातुके वादघण प्रत्यय द्वारा ताल शब्द निष्पन्न होता है। इससे बोध होता है, कि गान, वाद्य और नृत्य ये तीनों जिसके द्वारा प्रतिष्ठित होते हैं, उसे ही ताल कहते हैं। काल, मार्ग (गति-पथ) क्रिया, अंग, प्रद, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार ये दशों तालके प्राणस्वरूप हैं। इन दशों प्राणात्मक तालके जाननेवाले व्यक्तिको ही सांगीत-प्रवीण कह सकते हैं। वे ताल गानेवाले व्यक्तिको सांगीत विषयमें मृग कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं है। जिस तरह साधारण नौका विना कर्ण (पतवार) की सहायताके विपथके सिवाय कभी सुपथगामिनी नहीं हो सकती उसी तरह वे ताल गाना आनन्द प्रदान करनेके बदले कर्णकट्ट ही होता है।

तालके दश प्राणान्तर्गत 'काल' मात्रा नामसे अमिहित होता है। इस मात्राके पाँच भेद हैं, यथा—अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु और प्लुत। इनके सांकेतिक नाम—अणु, द्रु, ल, ग और प। इन्हें लिपियुक्त करनेके समय १, ०, १, ६, इस प्रकारसे लिखना होता है। एक स्त्री पत्रपत्र उपेयुपरिभावसे रख कर सूई द्वारा गायमें जितना समय लगता है, उसे क्षण कहते हैं। एक क्षणमें अणु-द्रुत वा अणु, दो क्षणमें द्रुत वा द, दो द्रुतमें चार क्षणमें लघु वा ल, दो लघुमें (आठ क्षणमें) गुरु वा ग एवं तीन लघुमें (बारह क्षणमें) प्लुत वा प हीगा। किसी किसी सांगीतज्ञ पंडितने पाँच लघु घणोंके उच्चारण-समयके एक लघुमात्रा बतलाया है एवं तदनुसार ही अणुद्रुतादिमात्रा काल निर्दिष्ट किया है।

इन सब मात्राओंके विभिन्न प्रकारके विन्याससे बहुसंख्यक तालोंको उत्पत्ति हुई है। उनमें कतिपय

ताओंके नाम तथा माताओंके विद्याम नीचे विपलाये गये हैं। तात् प्रथमता 'मार्ग' और 'देशों'भेदसे दो प्रकारका है। प्रत्यादि देवगण और भरतादि संगीतविद्युगण देवदेव महादेवके सामने जो संगीत प्रदान करने के, उसे मार्ग एवं मित्र मित्र देनके रीत्यनुसार लक्ष्मिदेवासिधोंके निरक्षरिणके द्वारा आहृष्ट और अनुरंजित होते हैं, उन्हे संगीत कहते हैं। इस तरह संगीत दो प्रकारके होनेके कारण ताल में दो प्रकारके हैं।

संगीतविशेषमें सुनिपुण व्यक्ति ही गायक या गच्छकके भ्रमनिराकरणनिमित्त कांक्ष्यनिर्मितघनवाद्य बाधार्थ 'करताल' या 'मंत्रोत्ता' आदिके आघात द्वारा ताल बता देते। तालमें सम, अतीत और अनागत—ये तीन प्रकारके प्रद हैं। एक साथ गान और ताल आरम्भ होनेसे उसे समप्रद, गीतारम्भके पहले तात्के आरम्भ होनेसे अनागतप्रद एवं गानारम्भके बाद तालके आरम्भ होनेसे अनागतप्रद कहते हैं। कियेके समय सामान्य सामान्य विभागके लय कहते हैं। लय द्रुत, मध्य और विलम्बित भेदसे तीन प्रकारका है। अति शीघ्रगतिके द्रुत, उमकी दूनी धीमी गतिके मध्य एवं मज्यापेक्षा दूनी धीमी गतिके विलम्बित लय कहते हैं। इन तीनों प्रकारकी लयकी फिर समा, स्रोतोबहा और गोपुच्छा, ये तीन प्रकारकी गतियाँ हैं। आदि, मध्य और अन्तमें एक दो समा रहनेके समा, अन्तके स्रोतकी तरह बजी द्रुत और कमो मन्दगतिसे गाये जानेके स्रोताग्रहा एवं द्रुत, मध्य और विलम्बित, इन तीनों ही भाषोंमें गाये जानेके गोपुच्छा गति कहते हैं। संकृत श्लोकादिमें जिह्वाके विभाग-स्थानके त्रिम प्रकार यति कहते हैं, उन्ही प्रकार तालके लय प्रकृतिविषय भी यति नामसे गनिहित है।

यद्यपि ताल, यति और लय त्रिस प्रकार भावश्यक हैं, मात्रानिरूपणमें भी इनकी धैर्यो ही आवश्यकता है। मात्राकी मात्राकी रक्षा नदी होनेसे संगीतका पद गंग हो जाता है इस संगीतकी कोई मर्यादा नदी। इस कारण निरुपार्थिके विवेकरूपमें सामान्य ऊपर ४वाम रहना चाहिये। अनुपुत्रकी मादोकी गतिके परिमाणसे बाधार्थ एक आघातके बाद विरामागममें फिर आघातके

समय तक १ मात्रा घर कर ले जा सकते हैं। इन तरह एक एक आघातके एक मात्रा काल विघट कर उत्तोक शीघ्र प्लुन करके एक, द्वि, त्रि प्रभृति मात्राकाल निर्दिष्ट होता है। घटिकावन्तके समविरामान्तर आघात से कर भी मात्राका निरूपण हो सकता है। हमारे देशके फीर कोई गायक और वादकगण अपनी अपनी इच्छाके अधीन बाधार्थ अपने स्वर और हाथोंके धमनके अनुसार काल स्थिर कर लेते हैं।

गायक और वादक एकमात्रा काल मांग कर उस समय विघट करेंगे, द्विमात्रा काल विघट करनेमें उसी निर्दिष्ट एकमात्रा कालका शीघ्र करना होगा। ये त्रि वा चतुर्मात्रामें उसी तरह त्रिगुणा या चोगुणा समय पर लेंगे। उसी तरह ८ मात्राओंके एकलित करनेसे एक मार्ग होता है। किस तालमें कितनी मात्राएँ बाधार्थ कितनी मात्राओंमें एक एक ताल होता है, वह तालविशेष के पदार्थमें जाना जाता है। तालके समा विभागकी गम लय एवं लघु गुरु निर्देशका नाम प्रश्न है। संगीतके छन्दकी तरह तालका भी पद है। इस पद या गिराके चार भेद हैं, यथा—यियम, गम, अतीत और अनागत। इनके मध्य फिर विराम, मुहूर्त, गणु, द्रुत, लघु, प्लुन, मधया गणु, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुन, विराम और लघुविराम ये सात भङ्ग हैं।

मार्ग और देशी, इन दोनों तालोंके मज्य पहले मार्ग, इसके बाद देशी तालके नाम और मात्रानिम्न्यास प्रदर्शित किये जाते हैं।

मार्गताल।

गद्यपद्य, पाद्यपद्य, पद्य वितापुत्र, मधकेहाथ और उद्यपद्य, ये पाँचों मार्गताल पहले यथाक्रमसे देवदेव महादेव के सपोशात, धामदेव, ईजान, अघोर और तरपुत्र, इन पाँचोंके सुवनने उररम्भ हुए। ये पाँचों ताल देवदेवकी ही स्पर्शहृत होते हैं।

मार्गताल।

क्रम	तालके नाम	मात्रा-गुणता	मात्रा-विभाग
१	गद्यपद्य	८	६३३
२	पाद्यपद्य	९	६३३
३	पद्य वितापुत्र	१२ वा १४	६३३३६ वा ६३३३

संख्या	तालेक नाम	मात्रा-संख्या	मात्रा-विन्यास
४	समयकेष्टाक	६	६'६६६
५	उदुघट्ट	६	६'६६६
	देशी ताल ।		
६	गादि वा रास	१	१'
७	द्वितीय	३	००॥
८	तृतीय	१॥	०' वा ०००'
९	चतुर्थ	२॥	॥०
१०	पञ्चम	१	००
११	निःशङ्कुली	११	६'६'६६।
१२	दर्पण	३	००६
१३	सिंहचक्र	१६	६६६'६६'६६'
१४	रतिलील	६	॥६६ वा ॥००००००००
१५	सिंहलील	२॥	॥०००
१६	कन्दर्प	७ वा ५	००६'६। वा ००६
१७	घोरचक्र	४	॥००६
१८	रंग	४	००००६
१९	श्रीरङ्ग	८	॥६।६'
२०	सद्यरी	१५	००'१००'१००'१००' १००'१००'१००'१००'
२१	प्रत्यङ्ग	८	६६६॥
२२	यतिलम्ब	२	००।
२३	गञ्जलील	४	॥॥'
२४	हंसलील	२	॥'
२५	घर्णमिन्न	४	००।६
२६	त्रिमिन्न	६ वा ३॥	६६६' वा ६६०
२७	राजचूडामणि	८ वा ५॥	००॥१००६' वा ००।०।६
२८	रङ्गोद्यत वा रङ्गोद्यत	१०	६६६।६'
२९	रङ्गमनोपक	१०	६६६।६६'
३०	राजताल	१२	६६'००६।६०
३१	स्वल्प	५	॥००॥
३२	मिश्र	१७	००००'००००'। ००००'६'६००६६
३३	चतुरस्र	६	६।००६
३४	सिंहचक्रोद्भित	२४	॥६'६६'६'६६'६'

संख्या	तालेक नाम	मात्रा-संख्या	मात्रा-विन्यास
३५	जय	६वा८ वा ०॥	॥६॥००६ वा ६। वा ६॥॥०००६'
३६	चनमाली	७	००००॥००६
३७	हंसनाद	८	६'००६'
३८	सिंहनाद	८ वा ६	६६।६वा६६।६'
३९	कुडु कक	३	००॥
४०	तुरङ्गलील	२ वा ६	००'०० वा ००'॥६'
४१	शरमाली	६ वा २॥	॥०००० वा १०
४२	सिंहनन्दन	३२	६६।६'६००६६।
४३	त्रिमङ्गी	६	॥६६ वा ६।६'
४४	रङ्गभरण	६	६६॥६'
४५	मञ्चक	८ वा ५ वा १५॥	॥६'॥॥'वा६॥०'० वा ॥६'६६'६६'०'
४६	मुद्रितमञ्च	८	६॥॥॥॥'
४७	मञ्च	८	॥॥६॥॥
४८	कोकिलप्रिय	६	६'६'
४९	निःसारक	२ वा १	॥' वा ००'
५०	राजविद्याधर	४	६६००
५१	जयमङ्गल	८	॥६'६' वा ६६६॥॥
५२	मल्लिकामोद	४	॥००००
५३	विजयानन्द	८	॥६६६
५४	क्रीडा वा चण्ड-निःसारक	१	००'
५५	जयश्री	८	६'६'६' वा ६॥६॥
५६	मकरकन्द	४	००॥॥
५७	कोर्त्ति	१० वा ६	६६'६६' वा ६६'६६'
५८	श्रीकोर्त्ति	६	६६॥'
५९	प्रति	२ वा ३	१०० वा ॥००
६०	विजय	६ वा ८	६'६६। वा ६'६६'
६१	विन्दुमाली	६	६००००६
६२	सम	२ वा ३॥	१००' वा ॥'०००
६३	नन्दन	६	॥००६'
६४	मञ्जिका	५॥ वा ६	६०६' वा ६'६'॥
६५	दीपक	७	०।६।६ वा ०॥६६६
६६	उद्दीक्षण	४	॥६
६७	डेञ्जिका	३	६।६ वा ६६

क्र.सं.	वापके नाम	भाषा संख्या	भाषा विन्यास
६८	विषम	५ या २	००००'००००' या ००००
६९	घर्णासिद्धि	५	॥००१००
७०	घनिनश्चल	५	॥०००६
७१	घनंग	८ या ५॥	१६'५६' या १०॥६
७२	घाम्दी	८ या ४॥	१००॥६६' या १०॥६
७३	माल	५	॥११००'
७४	घूर्णाश्चक्राल	५	००००६१
७५	संस्कृताल	५ या ३	००६६' या १०६६'
७६	सुनकाल	५	६६१
७७	सममकाल	५	१६६
७८	कस्तुरक	६	॥११६
७९	धनताली	॥	०
८०	कुमुद	५	१००॥६ या १००००६
८१	सनुमाल	३॥	६०००
८२	शोभरी	२	॥
८३	समंग	५	६६' या ११६
८४	रावर्षोच	६	६१६००
८५	समम	४ या ६	॥१६६६' या ६६६६
८६	समुपरोध	१ या २	१' या ११'
८७	सतापरोध	४	६'००'
८८	शक्य	७	००'१
८९	सगंधम	३॥	६'०००' या १६'०'
९०	समुमुंश	७	१६१६'
९१	समुन	३	००६
९२	सतिमश	४ या १०	६६' या ६॥ या ६६६६६०
९३	सार्धो-शोषन	१५	६६६६'६६६६०
९४	सति	३	१६
९५	सोम	४०	०१६'
९६	सरोजपति	२	००००
९७	सलिल	४	००१६'
९८	साधुगो	२	००००'
९९	साम्भारोपन	७	००१६१६'
१००	साम्भोज	५	००'१६'
१०१	साम्भोजपिप	७	६६१६'
१०२	साम्भोजन	७	६६६६'

क्र.सं.	वापके नाम	भाषा संख्या	भाषा विन्यास
१०३	समक	१४ या १२	॥१६६६'६६६' या ६६६६६६
१०४	सद'म'	५	००१६'
१०५	सामयस'न	४॥	००'०६'
१०६	सपताल'	३	००००००
१०७	सम्भारकोप	१॥	०००'
१०८	सद'स	२	॥
१०९	सद'सय	४	१६'
११०	सिलोकिम	६	६००६'
१११	सज	४	॥११
११२	सर्वापति	३ या ८	॥०० या १६६६'
११३	सिंह	३	१००००
११४	सरण	२	६
११५	सारस	४॥	१०००॥
११६	सद'ह	३॥	०००॥
११७	सद'काल	१६ या ३	६६६६'६६६' या ११'
११८	सय	१८॥	६६६६'६६६६'०००
११९	सक्य	१० या २॥	६६६००६६ या १०
१२०	सद'ताली या सिपुट	२॥	०॥
१२१	ससा	६	॥००१६
१२२	सद'य	१२	॥६६६६'६६'
१२३	सुकुन्द	५ या ३॥	१००००६ या १०० या १००००
१२४	सुविन्द	७	१००६६'
१२५	सद'धपति	८	॥६६६'
१२६	सोरा	५	॥११
१२७	सद'स्यो-सद'स्योपण	७	६६६००
१२८	सम	३॥ या ५	००००॥१'
१२९	साम्भुगायु	३॥	०१६
१३०	साम्भारोप'ट	३॥	६१०
१३१	साम्भुगायु	११	१६६६६६१
१३२	साम्भुगायु	११	००३६६६६१
१३३	सिम	१०	१०
१३४	सद'पान	३॥	०१००१
१३५	साम्भोज	३	६'
१३६	सद'य	७ या ८	१००००००० या १६६६'

वाचस्पत्य (सं० प्र०) वाचस्पत्यं वाचस्पत्यं । वाच-
स्पत्यं वाच, सुख आदि शब्द ।

वाचस्पत्य (सं० प्र०) वाचस्पत्यं । यह संगीतका एक
भंग गीता जाता है । इसे सुख और हार्मोनिक बजाया
पड़ता है । भाति प्राचीन कालमें ही भावसमाप्तमें
वाचस्पत्य तथा वाचस्पत्यका व्यवहार चला आता है ।
भावगण वाचस्पत्यकी उच्चतर स्वरसंगममें उन्नत हो
उठते थे ; केवल सुखमें ही नहीं, ये संगीतके सुगमय
निर्देशनमें घेड़ कर वाचस्पत्यके सुमधुर शब्द और वाच-
स्पत्यात्ममें भी भावनेकी भावप्रस्तुतिमें अत्यन्त उत्तम
में सुधी देते थे । वाचस्पत्यके ६४७०२६-३१ भावमें
सुखप्रस्तुतिकी कथा है । "यह वाच उच्च स्वरमें विशिष्ट-
भावना करनेवाला एवं सैनिकीका बलवत् नकारो था ।
यह सुखप्रस्तुति सब प्राकृतिकोंके निकट घोषणा करनेके लिये
निरूप्य उच्च रथ किया करता था ।"

इन सब उक्तियों द्वारा ज्ञान पड़ता है, कि भावगण
सुखप्रस्तुति वाचके वाचस्पत्यमें सुख करनेके लिये उद्भूत
हो उठते थे । उक्त शब्द उन लोगोंकी बलप्रदान करता
था । इससे अनुमान होता है, कि उन प्राचीन वैदिक
सुखके भाव्य लोग वाचस्पत्यकी प्रकृति किन्तु तरह
विनिर्दिष्ट होते थे एवं ये उन समय वाचस्पत्यके वैभव
तानवाद्यमें केवल वाचस्पत्यी थे । वैदिकसुखके बाद
प्राचीन और उपनिषद्सुखमें भाव्योंके अन्तर् वाचस्पत्यका
विशेष प्रमाण था । वाचस्पत्यमें शक्तिशाली भावनाओं
के द्वारा विचार्य गूँथ उठते थे । समापत्तय और
महावाचस्पत्य सुखमें इन लोग रणभेरी, सुखप्रस्तुति, इत्यादि
प्रभृति भवेत् सुख और समापत्तयका उद्देश्य देण
पति है । ये वाचस्पत्य उन समय एक साथ बजाये जाते
थे, इसमें शक्य नहीं ।

इसका सुखप्रस्तुति समय वाचस्पत्यके वाचस्पत्य-
संग पर विचारमान थे, उस समय भारतमें वाचस्पत्यका
अर्थ भाव था—उच्च समय वाचस्पत्य तथा वाचस्पत्य
स्विकी गीत, वाच और सुखकी प्रकृति प्रदान करने की ।
विचारवाचके वाचस्पत्यमें उद्देश्यका देणमें अन्तर्वाचस्पत्य
स्विकी प्रकृति प्रदान करना ही इसका उद्देश्य प्रमाण है ।

सुखप्रस्तुति प्रमाण है, कि वाचस्पत्य वाचस्पत्यके

ही घोषणा वाचस्पत्यमें समर्थ थी । महर्षि वाचस्पत्यका बल बल
कर हरिनाम लेने लो थे, किन्तु उनका बल वाच स्प-
त्य तथा लयमें पूर्णरूपमें व्यक्त नहीं होता था । इस
सम्बन्धमें इन तरहकी एक वधागत है—वाचस्पत्यके प्रमाण
अभिमान था, कि ये संगीतज्ञातमें विशेष वाचस्पत्यी थे ।
उनके इस अभिमानका तोड़नेके लिये एक दिन भगवाण
विष्णु वाचस्पत्यको साथ ले कर सुख करनेके लक्ष्यमें देव
लोकमें जा उपस्थित हुए । वाचस्पत्य वहाँ पर बने पर
हस्तप्रदानि भण्य वाचस्पत्यकी देव कर सुखप्रस्तुति प्रकृति
उनकी उस कठण देनाका कारण पूछा । इस पर उन
लोगोंने जवाब दिया—“हम लोग देवादिदेव सुख साध-
नागिणों हैं, वाचस्पत्य नामक एक ऋषिके अत्यन्त एवं
महात्मनसे साधनागिणों वाचस्पत्य करनेके कारण हम
लोगोंकी यह जोचनाय देना हो गयी है ।” वाचस्पत्य हम
समय भगवाणकी उल्लंघना समझ कर माना प्रकृति
भगवाणकी स्तुति करने हुए प्रहर्षित प्रस्थान किया ।

इन वधागतमें जो कुछ भी हो, किन्तु वाचस्पत्यके
साधना नहीं होनेमें वाचस्पत्यकी शक्ति शक्ति, पर
अन्तर्वाचस्पत्य समझा जाता है ।

हम लोगोंके देनाका घोषणाय ही सर्वप्रमाण है । यह
समय वाचस्पत्यके वाचस्पत्यकी वाचस्पत्य प्रकृति
था । समय वाचस्पत्यके वाचस्पत्यके वाचस्पत्य प्रकृति
और वाचस्पत्यके साथ साथ उनमें नाममें भी उद्देश्य
हुआ । यह वाचस्पत्य भी बलवत्ता है । वाचस्पत्य नाम
प्रकारकी होती है, उनमें प्रकृतिमें एक साथ बलवत्ता है,
उत्तम प्रकृति, ही वाचस्पत्यकी प्रकृति, भाग वाचस्पत्य-
की प्रकृति बलवत्ता है । वाचस्पत्यका वाचस्पत्य अन्तर्वाचस्पत्य-
की प्रमाणों वाचस्पत्यके वाचस्पत्य वाचस्पत्यके वाचस्पत्य
हम तत्त्वकी घोषणाका नाम विचारना था । वाचस्पत्यके
वाचस्पत्यका नाम वाचस्पत्यकी है । सुखके संघट्टाया ही
वाचस्पत्य बलवत्ता प्रमाण है, उच्च अन्तर्वाचस्पत्य है, यह हम
समय वाचस्पत्य प्रकृति बलवत्ता है । इसी तरह वाचस्पत्यकी
सुख वाचस्पत्य प्रमाण है ।

वाचस्पत्यके वैदिकवाचस्पत्यके भी वाचस्पत्यके वाचस्पत्य
वाचस्पत्य प्रकृति है । प्राचीन वाचस्पत्यके वाचस्पत्यके वाचस्पत्य
उत्तम है । केवल वाचस्पत्य ही नहीं, अन्य वाचस्पत्यके

सुप्राचीन असीरीय, कालदीय प्रभृति राज्यवासी भी महानन्दर्क महोत्सवादिमें वाद्य बजाते थे। उस समय भी देवमन्दिरोंमें शङ्ख, घण्टा तथा घंशी प्रभृति वाद्य बजानेकी रीति थी। कुरानमें वाद्य बजानेका उल्लेख नहीं है, ऐसा जान कर मुसलमानोंने सिरिय तथा पारस्यका पुरातन संगीत नष्ट कर डाला था, किन्तु पीछे खलीफा हारून-अल रसोदके उत्साहसे फिर गाने बजानेकी प्रतिष्ठा हुई। उनकी मृत्युके बाद खलीफागण जितने ही विलासप्रिय होते जाते थे, उतनी ही गान और वाद्यकी उन्नति होती जानी थी।

संगीतोत्साही राजाओंमें भारतके मुगलसम्राट् अकबरशाहकी सर्वश्रेष्ठ आसन दिया जा सकता है। वे राज्यशासनके समय युद्धविग्रह तथा व्यवस्थाप्रणयनमें निरन्तर लीन रहने पर भी संगीतके अनुशोदनमें यथेष्ट आग्रह प्रकाश करते थे। उनकी समानं सुविद्यतात गायक गोपाल नायक, मियां तानसेन "भृति विद्यमान थे। कहते हैं, कि दीपक गानमें गला नष्ट हो जातेके बाद तानसेन सहनार् तैयार करके रागरागिणियोंका आलाप करते थे।

भारतवासियोंकी तरह प्राचीन यूनानियोंकी भी यही धारणा थी, कि देवगण ही संगीतविद्या और वाद्ययन्त्रके मूर्तिकर्ता हैं। इसीलिये उन लोगोंने एक एक देवताको उनके प्रिय एक एक वाद्ययन्त्र दे कर सजा रखा है। शिवके हाथमें विषाण, विष्णुके हाथमें शंख, सरस्वतीके हाथमें घोणा तथा कृष्णके हाथमें घंशी एवं अन्यान्य हिन्दू देव-देवियोंके हाथोंमें जिस तरह मित्र मित्र वाद्ययन्त्र परिशोभित देखे जाते हैं, उसी तरह यूनानियोंके मिनर्मा, मर्कुरी प्रभृति देवताओंके हाथोंमें वाद्ययन्त्र विन्यस्त हैं।

ऐसा कहा है, कि एक समय नीलनदमें वादू आनेसे एक बार हो बहुसंख्यक मछलियां और कछुए किनारे की भूमिमें आ गये। उनमेंसे एक कछुएका मौसं जब धीरे धीरे गल गया, तब भी पृष्ठारिषि पर कुछ नसें शुक्ररूपसे विद्यमान थीं। एक दिन वरुण देव (Mercury) नदीके किनारे भ्रमण कर रहे थे, अकस्मान् उसी कछुएकी पीठ पर उनका पाँव पड़ गया।

पाँवके आघातसे तद्भ्यन्तरस्थ शिराओंसे एक सुन्दर स्वर उत्पन्न हुआ। उस समय मर्कुरी उसे उठा कर बजाने लगे, उसीसे लायर (-Lyre) नामक प्रथम वाद्यस्वरकी सृष्टि हुई। उसी लायर यन्त्रका अनुकरण करके परिवर्त्तिकाळमें हार्प (Harp) एवं उसके बाद नाना प्रकारके तारयुक्त यन्त्रोंका आविष्कार हुआ। सिंगा बहुत पहलेसे ही प्रचलित था। भैंस वा गोकें सींगको खीखला करके बजानेकी रीति इस समय भी प्रायः सभी देशोंमें देखी जाती है। ताँबेका बना हुआ रामसिंगा इस शृंगवाद्यसे स्वतन्त्र है।

प्राचीनकालमें भारतकी तरह मिस्रराज्यमें भी सिंगा एवं एक प्रकारके ढाकका पूरा प्रचार था। मिस्रदेशीय लोग इनके अलावे लायर तथा एक प्रकारकी घंशी भी बजाते थे। क्रिओपेट्राके समय भी मिस्रमें गीत वाद्ययन्त्रका यथेष्ट समादर था; किन्तु जब यह देश रोमनोंके अधिकारमें चला गया, तब राजपुरुषोंकी आह्लासे गीत वाद्ययन्त्र बन्द कर दिये गये। एशियाके मध्यवर्त्ती बाबिलन राज्यमें तथा प्राचीन पारस्यमें विलासिताकी बढ़तीके साथ साथ गानवाद्यकी विशेष उन्नति हुई। यहूदी लोग जिस समय मूसाके अधीन मिस्र राज्यसे भग झड़े हुए, उस समय उन लोगोंमें वाद्यवाद्यका अभाव नहीं था। किन्तु उनके वाद्ययन्त्रोंकी आवाज़ उतनी अच्छी नहीं होती थी।

उस समय समाजके शृंखलायुद्ध न होनेके कारण सर्व्वदा ही युद्धविग्रह उपस्थित हुआ करता था। इस कारण उस समयके गानवाद्य केवल संग्रामकी प्रवृत्तिको उत्तेजित करनेवाले होते थे। इसीलिये ऋग्वेदके पद्य मंडलके ४७वें सूत्रमें दुन्दुभिकी वलप्रदान करनेवाला वाद्ययन्त्र कहा गया है। उस समय योद्धागण जिस तरह भयंकर वेशभूषामें सुसज्जित हो कर भोपण मूर्ति धारण करते थे, उनके वाद्ययन्त्र भी उसी तरह गयानरु शब्द करते थे। इतिहासके पढ़नेसे पता चलता है, कि कार्यन्तोष-वीर हामिबल जामाके युद्धमें (४०० पू० २०२ अब्द में) ८० हाथियोंके साथ रोमनोंको पददलित करनेके लिये अग्रसर हुए, उस समय रोमनेंति इस तरह भयङ्कर भेरीय किया था, कि सब हाथी भयभीत हो कर

इसमें उपर प्राय गये। निरुद्धके समय ध्रुवानी मोत धातुकीकी बड़ी उन्नति हुई थी। सर्वे निरुद्ध पार्श्वी-पोलिमके राजनिहासन पर बैठ कर गानवाद्य सुना करते थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राचीन यूनान और रोमनोंमें बहुत पहलेसे ही वाद्य-वादनकी प्रथा मानी जाती थी। उनके बाद चीने चीने सारे पाश्चात्यजगत्में वाद्यवादनकी धार हीने लगी। उनमें इतनीगद्यमें इस कलाविद्युकी सर्वापेक्षा विशेष उन्नति हुई।

रोमन-कवि टाइटम् लुक्रेटियम् केरग्ये ईसाके अगममें पढ़ गये पहले "दि रेस मेदुरा" नामक स्वरचित प्रथममें वाद्यवादनकी उन्नतिके विषयमें एक भद्रुत्तरव्य प्रकाश किया है। वह पौराणिक कथाओंमें किन्तु ही उन्नत्य है और इसे कविकी व्यासायिक अभिप्राय ही कह सकते हैं।

कविकीके मुनीमल काव्यकलाकी बात छोड़ कर वाद्यवादनके धर्मशास्त्रवाङ्मयोंमें भी वाद्यवादनके इतिहासके साक्षर्योंमें दो एक बातें देनी जाती हैं। बाबिलियों-लिखा है, कि बाबा आदमके बादकी सप्तवी पीढ़ीमें सुबायने सबसे पहले वाद्यवादन से कर पृथको पर भयभार लिया। इस समय पीला और चंगी—इन दोनों-का उद्गम पाया जाता है। पत्तनः मजिका और तम्बु, ये ही दोनों वाद्यवादन सर्वप्रथम व्यवहारमें लिये गये। इसके बाद इन्हीं दोनों यन्त्रोंके द्वारा गाना प्रकाशके वाद्यवादन बनाये गये और इस समय भी बनाये जा रहे हैं।

हिन्दुशास्त्रमें भी वाद्यवादन ही, कि वाद्यवादन यद्दिशिने इतिहासकीविधि वाद्यवादन बनायेकी निष्ठा प्राप्त की थी। तैदो निष्ठाके बहाने इतिहास गये थे। ये स्वयं इतिहासमें अनेक प्रकारके वाद्यवादनके व्यवहार देखा जाये है। इस साक्षरके इतिहासके प्राचीन पौराणिक साक्षर यद्दिशाविधि वाद्यवादन निरुद्ध था। यह देखा एक निरुद्ध प्रमाण है, कि प्राचीन इतिहास प्राय वाद्यवादन प्राचीन कालमें व्यवहार पट्टु थे। अतः, साक्षरोंमें तथा साक्षरजगत्में वद पीला मधुमिक निरुद्धकीकी संख्याके विद्या प्रकार पुनः मरी कही जा

सकती। इतिहासके निरुद्ध निरुद्ध कीर्तिहस्तोंमें एक प्रकारके वाद्यवादनके निरुद्ध हैं। ये सब निरुद्ध समके उत्पन्न प्रमाण है, कि प्राचीन समयमें इतिहासमें वाद्यवादन निर्माणाकी गये उन्नति हुई थी।

ऐतिहासिक यमेनियमने वैदिक उरमयके विद्यु विवरणोंमें एक अगद लिखा है, कि इस उरमयमें निरुद्ध निरुद्ध वाद्यवादन से कर छ। सौ वाद्यवादन इतिहास हुए थे।

हिन्दु इतिहासमें भी प्राचीन वाद्यवादनका उद्गम है। यूनान निरुद्ध समय भयवादनके प्रथममें मल ही कर गान गाने थे, उन समय भक्त मणी निरुद्धम एवं उरवी मदनकी रमणियाँ "टैम्बुरिन" (Tambourine) नामक वाद्यवादन बना कर गृह्य करती थीं। टैम्बुरिनके विवरण पहलेमें प्राप्त पटना है, कि हमारे देगोंमें प्रचलित यद्दिनी और टैम्बुरिन—दोनों एक ही प्रकारके वाद्यवादन थे। यद्दिनीके प्रथम उरमयमें वाद्यवादन व्यवहार था, किन्तु आर्यवर्षके विषय यह है, कि युरी-दिन लोग ही यद्दिनीव्यवहार वाद्यवादनका काम करने थे। मलयोमनके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय दो साथ वाद्यवादन तथा वाद्यक इष्टे हुए थे। किन्तु सर्वेसे ऐतिहासिक इस संवत्की आर्या संवत्वादन मरी कर गये। एक हिन्दु वैद्यके लिखा है, कि प्राचीन समयमें हिन्दुओंके देवमन्दिरोंमें उद्गम प्रकारके वाद्यवादन इतिहास में। राजा टैम्बुरिन प्रकारके वाद्यवादन बताने थे।

प्रोकोपे वाद्यवादनके इतिहासके साक्षर्योंमें कई प्रकार और युक्तके पाई जाते हैं। इस साक्षर्यों वाद्यवादनकी (Mischini) समय ही सर्वापेक्षा कविक प्रासायिक है। प्राचीन प्रोक्त लोग जहानों और चंगी प्रवृत्ति वाद्यवादन बड़े प्रथममें बनाया कही थे। सोबदेगो कीर्ण, निरुद्ध और निरुद्ध प्रवृत्ति वाद्यवादनकी भी संकेत प्रमाण था। निरुद्ध ही लोग यद्दिनी व द्रुपों प्रवीण थे। ऐनकी संकेतम् और मकेटिनकी यद्दिनी बतानेकी निष्ठा ही थी। किन्तु भीमकी मिसियाह संज्ञाके बनावे मारा युनान विद्युत् ही मया था। अतः हीरेरिम नीरुद्धकीकी उरवी चंगीका नाम सुन कर इस साक्षर मन्मथ्य ही पट्टे थे, कि अनेक साथ दर उद्गमके यह

मन्दिर बनाया था। धियनगरके संगीतज्ञ पण्डित इस-
मोनियसके फ्लुटनिर्माणमें लगभग ६ हजार रुपये खर्च
हुए थे।

रोमन लोगोंने प्रीकोसे जिस तरह शिक्षा-विद्यानादिकी
शिक्षा प्राप्त की थी, संगीत-सम्बन्धमें भी वे यूनानियोंके
वैसे ही श्रुणो थे। रोममें जयडाक, सि'गा प्रभृतिका भी
पूरा प्रचार था। रोमन संगीतज्ञ मिद्रमियसके ग्रन्थमें
जलतरंग बाजेका उल्लेख है। लेखकने उस ग्रन्थमें अरिष्ट-
कम नामक हारमोनियमका भी उल्लेख किया है।

प्रतीच्य देशमें ख्रिष्टीय दशवीं वा ग्यारहवीं शताब्दी
पर्यन्त वाद्ययन्त्रकी सविशेष उन्नतिको उल्लेख देखा
नहीं जाता। वर्त्तमान आरगन (Organ) यूनानियोंके
जलतरंग वा हाईड्रोनिक्कन यन्त्रका विकाशमात्र है।
यह आरगन (Organ) ख्रिष्टीय दशवीं शताब्दीमें भी
ईसाइयोंके निर्जाघरमें बजाये जाते थे, किन्तु उस समय
उसकी बनावट वर्त्तमान आरगनकी तरह सुन्दर न थी।

ये सब वाद्ययन्त्र धीरे धीरे किस तरह समयेत
संगीतके भिन्न भिन्न अङ्गोंके पूरक हुए थे, वह वाद्य-
सङ्गीतकी आलोचना किये बिना अच्छी तरह समझमें
नहीं आ सकता। सङ्गीत देखो।

गान, वाद्य और नृत्य—इन तीनोंको ही सङ्गीत कहने
हैं। इनमें वाद्य ही एक प्रधान अङ्ग है। किन्तु यह वाद्य
फिर यन्त्रके अधीन है, इस कारण भारतीय सङ्गीत
शास्त्रसे ले कर यहाँ किनने ही विषयोंका उल्लेख किया
जाता है। वाद्ययन्त्र प्रधानतः "तत", "अधनद" वा
"आनद", "शुपिर" और "घन", इन चार भागोंमें विभक्त
हैं। जो सब वाद्ययन्त्र तन्त्र अर्थात् पीतल और लोहके
बने तार अधया तन्तु (ताँत)के सहयोगसे बजाये
जाते हैं, उन्हें "तत" यन्त्र कहते हैं, जैसे—वीणादि।
जिन सब वाद्ययन्त्रोंके मुख्य चर्मोवनद अर्थात् चमड़ेसे
आच्छादित रहते हैं, वे 'आनद' यन्त्र कहलाते हैं, जैसे—
मृदंगादि। जो यन्त्र वाँस, काठ धातुओंके बने होते हैं
एवं जो मुखसे फूँक कर बजाये जाते हैं, उन्हें
"शुपिर" यन्त्र कहते हैं, जैसे—वंगी आदि। जो गन्ध यन्त्र
काँसे प्रभृति धातुओंसे बनाये जाते हैं एवं जिनसे
वाद्यमें नाल दिया जाता है, उनका नाम "घन" यन्त्र है,

जैसे—करतालादि। इन चारों प्रकारके वाद्ययन्त्रोंमें 'तत'
यन्त्र ही सर्वप्रथम है और बहुत संख्यामें विभक्त है। इसके
स्वर बढ़ा हो सुमधुर होता है, किन्तु इसके बजानेमें बहुत
परिश्रम करना पड़ता है। पहले "तत" और इसके
बाद अधनददि यन्त्रोंके विषय यथाक्रमसे वर्णन किये
जाते हैं।

ततयन्त्र।

आंठापिनो, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, विपश्चो, सल्लरी,
उपेष्ठा, चित्ता, घोषवती, जया, हस्तिका, कूर्मिका, कुञ्जा,
सारङ्गो, परिवादिनी, त्रिखरी, श्वेततंतो, नकुलोष्ठी, उंसरी,
भीडम्बरी, पिनाक, निर्वंग, पुष्कल, गदा, वारणहस्त, रुद्र-
वीणा, स्वरमंडल, कपिनास, मधुस्यन्दो, घना, महतीवीणा,
रञ्जनी, शारदी वा सारद, सुग्माद वा सुरसो, स्वर-
शृङ्गार, सुरबहार, नादेश्वर वीणा, भरत वीणा, तुम्बुरु
वीणा, कात्यायन वीणा, प्रसारणो, इसराज, मायूरी वा
तायूश, अलावू सारङ्गो, मोन सारङ्गो, सारिन्द्या, एरतंतो
वा एकतारा, गोपीयन्त्र, आनन्दलहरी और मोचङ्ग
इत्यादि यन्त्र "तत" कहलाते हैं। संस्कृत संगीत-ग्रन्थमें
कितनेके तो सिर्फ नाम और कितनेके आकार आदिका
भी वर्णन है। उन सब यन्त्रोंके आकारादि क्रमशः यहाँ
वर्णन किये जाते हैं।

पिनाक।

पिनाकके आकारादिके देखनेसे मालूम पड़ता है, कि
मनुष्यकी प्रथमायस्था में संगीतकी प्रवृत्ति बलवती होने
पर सर्वप्रथम पिनाककी वृत्ति हुई, इसके बाद मानव
जातिकी सभ्यताकी वृद्धिके अनुसार भिन्न भिन्न आकार-
के ततयन्त्रोंका आविष्कार हुआ होगा। पिनाक देवनेमें
ठीक ज्या-युक्त धनुषके समान होता है। दाहिने हाथकी
अंगुली द्वारा इसकी तारमें आघात करके यह यन्त्र
बजाया जाता है। बाँगे हाथके अल्पाधिक दबावके कौशल
से इससे ऊँचा नोचा स्वर निकाला जाता है।

एकतंत्री वा एकतारा।

एक छोटे कड़े का तृतीयार्ध काट कर बकरेके चमड़े
द्वारा उस कटे हुए मुखको आच्छादित करना होता है
एवं उसमें सात आठ अंगुल परिधिवाला तथा डेढ़ हाथ-
लम्बा एक बाँसका डण्डा उस कड़ेके अण्डेसे संयोजित

पर उनके मन्त्रकर्मों से ही जो लोग संसृष्ट होने पर
 होइयासी मूर्खों का ही है। इसके बाद सोदिके
 शास्त्रों पर विचार करने से पूर्व दुःखता विचार उन लोगोंके
 चित्तके लिये ही दिखाने की योजना पड़ता है। तबपश्चात्के लिये
 दिखाने में निम्न प्रकार पर तार तोड़ा जाता है, उसे पानी
 कहते हैं। पानी के पये पानी पर ही होने दूध या
 उसीके समान और किसी दूसरे दूध पराधीनता बना हुआ
 एक तालमाल रहता है। उसके ऊपर ही प्राणमें तब
 स्थापन एवं स्वयं कष्टकरके अनुसार बांध कर मायक
 उसे मानने चाहते कहते पर रहता है। इसके बाद माने
 चाहते ही हाथकी तर्जनीमें मायाय से कर इन मायपत्रकी
 बनावट है। यह संज्ञा बहुत प्राचीन है। मान्य रहता है,
 अनुपकी मन्त्रकर्मके प्रथम मूलभागमें ही विचारके बाद
 इन संज्ञाकी मूर्च्छा ही होगी। इन संज्ञाके लिये एक तब
 जगता माना है, इसीलिये लोग इसे एकताओं या एक
 ताया कहता है। प्राचीनकालमें सभी संज्ञाएँ स्वयंमाया
 इन संज्ञाकी व्यवहारमें लाते थे। सोदिके मन्त्रकर्मके माय
 माय अनेकानेक उदरह्य तबपानीकी मूर्च्छा होनेके कारण
 प्राणिक मन्त्रकर्मका उग पत्रकी व्यवहारमें नहीं लाते।
 इन समय निम्नोक्तियों से ही इनका व्यवहार करते हैं।

मन्त्राग्निः ।

अपानिनेमोः ह मूर्च्छा तब एक रक्षणमूर्च्छा संज्ञा
 जगता रहता है। इन संज्ञाके समानागमें एक तुलना एवं
 निम्न प्राणमें एक प्रदूषणकार कारिण कल्पना सोल्य जगता
 रहता है। इन संज्ञाके सोदिके आदि किसी प्राणिक तार
 नहीं जगता माना। मन्त्र के पद पर कर्मात्मके लीन मूर्च्छा
 व्यवहारमें लाते जाते हैं। उन लोगों मूर्च्छाकी मन्त्र, मन्त्र
 और तार स्वयं भाव्य पर एक अपने कल्पकालमें
 बना करके मायक चाहते हाथकी तर्जनीमें और
 मन्त्रका संसृष्टोंके आवापमें तथा हीव हाथकी संसृष्टियों
 की मन्त्रकर्मों इन संज्ञाकी कहते हैं।

मन्त्रो पन्थाः ।

प्राचीन संज्ञाकालमें जगता माना है, कि
 तबपश्चात्के मन्त्रों की जगता मन्त्र दुःखतन तथा मन्त्रकर्मका है।
 मन्त्रों के मन्त्र मन्त्रों का सोल्यका व्यवहार करते थे,
 चाहते थे सोदिके मन्त्रों के मन्त्रों की जगता माना कहते हैं।

संज्ञाकालमें जो व्यवहारका उदरह्य जगता
 है, मान्य होता है, उसी व्यवहारका नाम मन्त्रके
 परिवर्तन होनेमें मन्त्रों की जगता वद माया होता है। इन संज्ञा
 में एक बांधका संज्ञा बना रहता है। स्वयंकी मन्त्रकर्म
 के लिये उसे संज्ञाकी सोदिके ही मूर्च्छा एवं मन्त्रकर्मके
 व्यवहार रहता है। उस व्यवहारमें उन्नीसमें से कर
 बान्धन एवंत कर्म मन्त्र (इन्धन) निर्माण कारिकाय
 विद्यमान रहती है। ये सब कारिकाय संज्ञाके ऊपर ही
 द्वारा चलाते रहती है। उन्नीस कारिकायोंमें प्रथम विद्यता
 ही मन्त्रक व्यवहार निर्दिष्ट रहता है अर्थात् मन्त्रके
 कारिकायें वदमादि प्रथम-विद्यता स्वयं निरवता है।
 इन संज्ञाकी मन्त्र मूर्च्छाओंमें प्राणिकी बने माय तार
 मन्त्र रहते हैं। उनमें ही सोदिके बने होते हैं और
 तार पौतकके। मन्त्र-निर्माण तारोंकी पन्था तार एवं
 पौतक निर्माणकी कल्पना तार कहते हैं। सोदिके मन्त्रों
 तारोंमें एककी मायकी अर्थात् प्रथम तार कहते हैं।
 इन तारों मन्त्रमन्त्रका मन्त्रक तार मन्त्रके तार संज्ञाके
 की गीति है। दूसरे ही तारोंमें एककी मन्त्रमन्त्रका
 वदमा और एक तारतन करके बांधेगा होता है।
 पौतकके तारों तारोंमें एककी मन्त्रमन्त्रका वदमा,
 दूसरेकी पन्था, सोदिकी मन्त्रमन्त्रके निम्न मन्त्रका
 वदमा और एककी बांधे तारकी उमका ही पन्था करके
 बांधना होता है। इन संज्ञाकी बांधे हाथकी तर्जनी
 और मन्त्रमन्त्रोंमें मन्त्रकर्मों कारिकायोंका मन्त्रकर्म
 करते हुए चाहते हाथकी तर्जनी और मन्त्रमन्त्रों द्वारा
 बनावट होता है, विद्यता इन संज्ञाकी संसृष्टियोंमें ही संसृष्ट
 मन्त्रका वदमा जगता रहता है। चाहते हाथकी तर्जनी
 संसृष्टियोंके मन्त्रकर्मके लिये बांध बांधने व्यवहार की जगता
 है, एवं बांधे हाथकी तर्जनी संसृष्टियों की इसी तरह मन्त्र
 संज्ञाके कारण बांध बांधने व्यवहार होता है। सोल्यका
 व्यवहारमें मन्त्रमन्त्रकर्म होता है। संज्ञाकर्म का पौतक
 मन्त्रकर्मका सोल्यमें मन्त्रकर्म होता है। यह सोल्यकर्म
 मन्त्रके ही मन्त्रकर्म देमन्त्रके लिये ही सोल्य
 निर्माण मन्त्रकर्मका कारण बनेके कारण निम्न निम्न मन्त्रों
 विद्यमान ही मन्त्र है।

कूर्मी वा कच्छपी वीणा ।

कच्छपीवीणाका खोल कच्छपपृष्ठकी तरह चिपटे कद्दू द्वारा बना रहता है ; इसलिये उसे कच्छपी वीणा कहते हैं । इस वीणाकी लम्बाई सर्वत्र-ही प्रायः चार फीटकी होती है ; किन्तु कोई कोई इसकी लम्बाईमें ज्यादा कमी भी कर दिया करते हैं । आकारमें कुछ बड़ी होनेसे रागका आलाप एवं छोटी होनेसे गत्तु बजानेमें अधिक सुविधा होती है । कच्छपीकी लम्बाई चार फीट होने पर उसकी पन्धीसे प्रायः सात अंगुल ऊपर तन्त्रासन एवं प्रायः साढ़े तीन फीट ऊपर तन्तु स्थापन करनेकी विधि है । परिमाणमें चार फीटकी कमी पेशी होनेसे उसीके अनुसार तन्त्रासन एवं तन्तु स्थापन करना होता है । मालूम पड़ता है, प्राचीनकालमें कच्छपी वीणामें सिर्फ तीन तार लगाये जाते थे, इसी कारण कच्छपी वीणा सेतार वा सितारके नामसे भी विख्यात है । पारस्य भाषामें 'से' शब्दसे तीन संख्याका बोध होता है, सुनरा-सेतार वा सितार शब्दसे तीन तारविशिष्ट यन्त्रका बोध होता है । किन्तु इस समय कच्छपीमें तारकी जगह पांच वा सात तार लगाये जाते हैं । कच्छपीमें जो पांच तार लगे रहते हैं, उनमें दो तो लोह निर्मित पकड़े एवं तीन पीतल निर्मित कच्चे तार रहते हैं । लोहनिर्मित दो तारोंके मध्य एकको मन्द्रसप्तकके मध्यम और दूसरेको उसका ही पञ्चम करके बाँधना होता है । पीतलके बने हुए तीन तारोंके मध्य दो तारोंको मन्द्रसप्तकके पड़ज एवं एकको मन्द्रसप्तकके निम्न सप्तकका पड़ज करके बाँधनेकी रीति है । सात तार विशिष्ट कच्छपीमें चार लोहे और तीन पीतलके तार रहते हैं, उनमें लोहेके दो एवं पीतलके तीन तारोंको पूर्वोक्त नियमसे बाँध कर लोहनिर्मित शेष दो तारोंसे एकको मध्यसप्तकका पड़ज एवं दूसरेको उस सप्तकका पञ्चम करके बाँधना होता है । इन दोनों तारोंको 'बिकारी' कहते हैं । कच्छपीके डंडेके ऊपर स्वरस्थानमें सतह लोहादि कठिन धातु निर्मित सारिकाप ताँत द्वारा दृढ़तासे बंधी रहती है, उनके द्वारा मन्द्रसप्तकके पड़जसे तार सप्तकके मध्यम पर्यन्त थे दाईं सप्तक स्वर सम्पन्न होते हैं । उक्त सतरह सारिकाओंके मध्य एकसे मन्द्र-

सप्तकका कोमल निपाद, एकसे मध्य सप्तकका तीव्र मध्यम स्वर पाया जाता है, अन्यन्य विकृत स्वरको आवश्यकता होने पर उन उन सारिकाओंको डंडेके ऊदुर्ध्वाधोभावमें उठा कर तथा झुका कर कोमल और तीव्र कर लेना पड़ता है । कच्छपी वीणा बजानेके समय यन्त्रके पिछले हिस्सेको वादक अपने सामने रख कर तुम्बेकी बगलकी दाहिने हाथके कब्जेसे अच्छी तरह दबा कर एवं डंडेका बाँधे हाथ द्वारा हलकेसे पकड़े रहता है । इसके बाद दाहिने हाथको तर्जनी द्वारा तन्त्रासन एवं सारिकाओंके मध्यस्थ शून्य स्थानमें आघात करने पर बाँधे हाथको तर्जनी तथा मध्यमांगुली द्वारा जिस समय जिस स्वरकी आवश्यकता होती है उस समय उस सारिकाके ऊपरका तार दबा कर वैसे स्वर निकाला जाता है । कच्छपी वीणामें भी कालचक्र तथा देशमेदसे नाम और आकार धारण कर लिया है ।

विल्वरी वा वितन्नी वीणा ।

वितन्नीके अद्भुतवृद्धादि प्रायः कच्छपीके समान ही होते हैं, विशेषता इतनी ही है, कि इसका खोल कद्दू का न हो कर काठका बना रहता है । इसमें सिर्फ तीन तार व्यवहृत होते हैं । उन तीनों तारोंमें एक लोहेका पका और पीतलके दो कच्चे तार रहते हैं । लोहेके तार को नायको अर्थात् प्रधान तार कहते हैं, उसे मध्यसप्तकके बीचमें बाँधना होता है । पीतलके तारोंके मध्य एकको मन्द्रसप्तकका पड़ज एवं दूसरेको मन्द्रसप्तकके निम्नसप्तकका पञ्चम करके बाँधना होता है । वितन्नीमें भी कच्छपीकी तरह सतह सारिकाप रहती है एवं उनके द्वारा ही दाईं सप्तक स्वर निष्पन्न होते हैं । इसके धारण तथा बजानेकी प्रणाली कच्छपीके समान है ।

किन्नरी वीणा ।

प्राचीन समयमें किन्नरीका खोल नारियलकी माला से बनाया जाता था, किन्तु इस समय उसके बदले वृहदाकार पक्षियोंके छिन्न वा चाँदी प्रभृति धातुओंसे तैयार किया जाता है; किन्तु इस स्वरमें किसी तरहका अन्तर नहीं आता । किन्नरीमें सिर्फ पाँच तार व्यवहार किये जाते हैं । पाँचों तारोंमें कच्छपीके जो जो तार जिस जिस स्वरमें आवद्ध करनेकी विधि है, इसके तार भी उन्हीं

ही ये पारंपरिकतन्त्रिकाएँ अकारित और ध्वनित हो कर स्थरकी गम्भीरता प्रकाश करती हैं। इस यन्त्रकी धारणा और वादनप्रणाली रुद्रवीणाके धारण तथा वादन प्रणालीके समान है, सिर्फ विशेषता यह है, कि रुद्रवीणा बाँधे हाथकी तर्जनीमें मछलीका चोंट्टा बाँध कर एवं उसके द्वारा तारों या तारोंमें आघात करके बजाई जाती है और इसके बजानेमें बाँधे हाथकी कनिष्ठादि चार उँगलियाँ व्यवहृत होती हैं। इनके बजानेमें मछलीका चोंट्टा उँगलीमें बाँधनेकी आवश्यकता नहीं होती। बंगालमें इस यन्त्रका अधिक प्रचार नहीं है। पश्चिम देशीय लोग ही अधिकतर इसका व्यवहार करते हैं। मुसलमान राजाओंके राजदरबारमें इसका बड़ा आदर था।

स्वरशृंगार।

स्वरशृंगारका खोल कद्दूका बना होता है। इसमें एक कठिन पदार्थका तन्त्रासन तथा काठका बना एक डंडा रहता है। उस डंडेका ऊपरी भाग ओहेंके एक पतले चदरेसे मढ़ा रहता है। स्वरकी गम्भीरताके लिए इस यन्त्रके ऊपरी भागमें और एक कद्दू लगा रहता है। इस यन्त्रकी छूटियोंमें तीन पीतलके और तीन लोहेके तार व्यवहृत होते हैं। उन तीन पीतलके तारोंमें एक मन्द्रसप्तकके पड़ममें, एक मध्यम एवं लोहेके तीन तारोंमें एक मध्यसप्तकके पड़म और दो पंचम स्वरमें बाँधे जाते हैं। इस यन्त्रमें सारिकाएँ नहीं रहतीं। इसकी धारण और वादनक्रिया रुद्रवीणाकी धारण और वादनक्रियाकी अनुरूप होती है। यह यन्त्र और यन्त्रोंकी अपेक्षा आधुनिक जान पड़ता है। मालूम होता है, कि महती कच्छपी और रुद्रवीणाके संयोगसे इस वीणाकी उत्पत्ति हुई है।

सुरवहार।

अगर रूढ़ गौर करके देखा जाय, तो सुरवहार और कच्छपी वीणा वास्तवमें एक ही यन्त्र है। सिर्फ अन्तर इतना है, कि सुरवहारके डंडेमें और एक लकड़ीका टुकड़ा लगा रहता है तथा उसमें कई एक छोटी छोटी खूटियाँ लगी रहती हैं एवं उन सब छोटी छोटी खूटियोंमें पीतलके तार बाँधे रहते हैं। इन तारोंकी वादक अपनी

इच्छाके अनुसार ही बाँध लेता है। इन तारों पर आघात करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती, प्रधान तारमें आघात करनेसे ही वे ध्वनन उठते हैं। इसमें और एक विशेषता यह है, कि कच्छपी वीणामें एक ही तन्त्रासन व्यवहार होता है और इसमें दो। इन दोनों तन्त्रासनोंमें एकका आकार दूसरेका अपेक्षा कुछ छोटा होता है। यह छोटा तन्त्रासन प्रधान तन्त्रासनसे प्रायः एक बालिशत ऊपर रहता है, उसके ऊपर उक्त पीतलके अप्रधान तार लगे रहते हैं। सुरवहारका आकार कच्छपीकी अपेक्षा कुछ बड़ा होनेके कारण उसका स्वर ऊँचा और अधिक क्षण स्थायी होता है। सुरवहारकी तार संख्या, सारिका, विन्यास, धारण तथा वादन प्रणाली कच्छपीके समान ही होती है। यह एक आधुनिक यन्त्र है। जान पड़ता है, कि एक सौ वर्षोंमें पहले यह यन्त्र नहीं था।

मरतवीणा।

मरतवीणा बहुत हालका यन्त्र है। यह रूप है, कि रुद्रवीणा और कच्छपी वीणाके मेलते इसकी उत्पत्ति हुई है। क्योंकि इसका खोल तो रुद्रवीणाके समान लकड़ीका बना रहता है; किन्तु डंडा, खूटियाँ, तारसंख्या, स्वरबन्धन, सारिकाविन्यास तथा धारण और वादन-प्रणाली कच्छपी वीणाकी तरह होती है। इसमें विशेषता इतनी ही है, कि इसका एकमात्र नायकी तार लोहेका बना होता है, दूसरे दूसरे अप्रधान तार धातुओंके बने नहीं होते, बल्कि उनकी जगह तार ही व्यवहृत होती है।

तन्त्रुव वीणा।

इस वीणाका खोल कद्दूका बना होता है। इसमें एक काठका डंडा, चार खूटियाँ और मजबूत काठका बना एक तन्त्रासन रहता है। इस वीणामें दो लोहेके और दो पीतलके सिर्फ चार तार व्यवहृत होते हैं। इन चारों तारोंमें लोहेके दो तार मध्यसप्तकके पड़म, पीतलका एक मन्द्रसप्तकके पड़म और एक पञ्चम स्वरमें बाँधा जाता है। इस यन्त्रका डंडा बाँधने हाथकी अनामिका और अँगूठेसे पकड़ कर एवं मध्यमाँगुठोसे आघात दे कर इसकी वादनक्रिया सम्पन्न होती है। इसमें सारिकाएँ नहीं होतीं एवं जो तार जिस स्वरमें आवद्य रहता है,

घातुओंके बने होने हैं एवं उसी प्रकार स्वरोमें भाष्य रहते हैं। इसका आकार अपेक्षाएत अधिक छोटा होता है, सुत्रों इसमें मूच्छं नापिहीन सामान्य सामान्य राशों की गन् अच्छी तरह बसाई जा सकती है। इसका आकार छोटा होनेके कारण अत्यन्त मृदु एवं ध्रुवणसुगन्दायक होता है। इस यन्त्रकी वादन-क्रिया कच्छुओंको तरह ही होती है। इस यन्त्रके नाम और आकार भो समवमेद् तथा वेगमेद्गी गाना प्रकारके हो गये हैं।

विपन्वो घोषा

विपच्छांका आकार प्रायः किन्नरीके आकारके समान ही होता है। अन्तर सिर्फ इतना ही है, कि इसका खोल डिम्बादिका न हो कर तितलीकाका बना होता है। इसका षयपष, धारण, स्वर बन्धन तथा वादनक्रिया विन्नरीके समान ही होती है।

नादेशरघोषा

वेदला और सितार इन दोनोंके मेलसे नादेशरकी उत्पत्ति हुई है। मादुम होता है, यह आधुनिक यन्त्र है। इसका खोल वेदलाके खोलका तरह एवं छंदा, सारिका, तारसंघा तथा तारबन्धन-प्रणाली सितारकी अनुरूप होती है।

रद्रघोषा

रद्रघोषाके खोल और छंदा एक अष्टाष्ट काठके बने होते हैं। इसका खोल बकरेके चमड़े से मढ़ा रहता है। इस यन्त्रमें मा हस्तिदन्तादि कठिन पदार्थका बना एक तन्त्रासन रहता है। रद्रघोषामें किसी प्रकारके घातु-निर्मित तार व्यवहृत नहीं होते। उनके बदले इसमें दू तानि लवधार की जाती हैं। उन तानियोंमें एक मन्द्र-सतरके पद्धतमें, एक गौघार, एक पञ्चम, एक मध्यसतरके पद्धतमें, एक श्रुपम और एक पञ्चमस्वर्गमें श्रांघो जाती है। रद्रघोषामें सारिका नहीं रहती। इस यन्त्रकी धारण कच्चे पर रस कर बड़ी मणलीकी बों 'इटा बांधे' हाथ की तन्त्रांशमें मृन्तेरे बांध कर उसीके द्वारा स्वरस्वाममें संपर्पण करने हुए दाहिने हाथके मंगुठे और तन्त्रांश में बाधात करने हैं, इस तरह इनकी वादनक्रिया निगमन होती है। इसकी वादनक्रियामें महती घोषादिये हुए

अधिक परिधम और स्वरस्वामकी भाष्यपकना है, क्योंकि इसमें सारिका विन्यास न रहनेके कारण आनुमानिक स्वरस्वाममें संपर्पण करके पद्धतादि स्वर निकालना पड़ता है। विशेष स्वरबोध न रहने पर इसका बजाना कठिन है, इसीलिये मादुम पद्धता है, इसके बजानेवालोंकी संघथा अधिक देखी नहीं जाती।

रञ्जनी घोषा।

रञ्जनीघोषा महतीघोषाके समान होती है, अन्तर इतना ही है, कि इसका छंदा बाँसका न हो कर काठका बना रहता है और आकारमें महती घोषाकी अपेक्षा यह कुछ छोटा होता है। इसके दोनों पार्श्वमें दो बद्ध रहते हैं। इसके तारोंकी संघथा सात है। सारिकाओंकी संघथा एवं तारबन्धनादि कच्छुओंके समान होते हैं।

शारदी घोषा वा शार।

शारदी घोषाके छंटेसे ले कर खोल तक रद्रघोषाकी तरह एक लकड़ीके टुकड़ेसे बने होते हैं। इसका छंदा ऊपरकी ओर पतला एवं नीचेकी ओर खोलके पास चौड़ा रहता है। छंटेकी मोतरका ऊपरी भाग इस्पात भादि घातुओंसे मढ़ा रहता है। इसका खोल बकरेके पतले चमड़े से भाच्छादित रहता है। इसमें सारिकाएँ नहीं रहती। छः रूँटियोंमें सिर्फ छः ताने लगे रहती हैं। किसी किसी शारदीघोषामें तानके बदले पीतल प्रभृति घातुओंके बने तार भी व्यवहारमें लाये जाते हैं। वाद्यक अपने अपने इच्छानुसार ही इन यन्त्रमें तान या तार लगाने हैं। उन तानों या तारोंके मध्य एक मन्द्रसतरके पञ्चम, दो मध्य-सतरके पद्धत, दो मध्यसतरके मध्यम एवं एक पञ्चमस्वरमें बांधा जाता है; किन्तु विशेष विधिबना करके देवनेने बोध होता है, कि छः तानोंकी जगह चार ही तानोंमें इस यन्त्रका कार्य चल सकता है, क्योंकि इसमें दो दो तान सम स्वरमें लगी रहती हैं। उक्त छः रूँटियोंके अन्त्ये इस यन्त्रको बगलमें सततसे ले कर ग्याह पदगत अन्त्याय रूँटियां होती हैं। उनमें पीतल भादि घातुओंके बने तार लगे रहते हैं। इन तारोंका 'पार्श्व-तन्त्रिण' या 'तरक' कहते हैं। पार्श्वतन्त्रिण हाथे इच्छाशामे स्वर्गमें भाष्य रहती है। इन तारोंमें भाषात करनेकी भाष्यपकना नहीं होती, प्रधान तानोंमें भाषात करनेमें

ही ये पाद्वर्तनत्रिकाएँ अकारित और ध्वनित हो कर स्वरकी गम्भीरता प्रकाश करती हैं। इस यन्त्रकी धारणा और वादनप्रणाली रुद्रवीणाके धारण तथा वादन प्रणालीके समान हैं, सिर्फ विशेषता यह है, कि रुद्रवीणा बाँधे हाथकी तउर्जनीमें मछलीका चोड़टा बाँध कर एवं उसके द्वारा तारों या तारोंमें आघात करके बजाई जाती है और इसके बजानेमें बाँधे हाथकी कनिष्ठा चार उँगलियाँ व्यवहृत होती हैं। इसके बजानेमें मछलीका चोड़टा उँगलीमें बाँधनेको आवश्यकता नहीं होती। बंगालमें इस यन्त्रका अधिक प्रचार नहीं है। पश्चिम देशीय लोग ही अधिकतर इसका व्यवहार करते हैं। मुसलमान राजाओंके राजत्वकालमें इसका बड़ा आदर था।

स्वरशृंगार।

स्वरशृंगारका खोल कद्दूका बना होता है। इसमें एक कठिन पदार्थका तन्त्रासन तथा काठका बना एक डंडा रहता है। उस डंडेका ऊपरी भाग लोहेके एक पतले चद्रेसे मढ़ा रहता है। स्वरकी गम्भीरताके लिए इस यन्त्रके ऊपरी भागमें और एक कद्दू लगा रहता है। इस यन्त्रकी छूटियोंमें तीन पीतलके और तीन लोहेके तार व्यवहृत होते हैं। उन तीन पीतलके तारोंमें एक मन्द्रसप्तकके पञ्चम, एक गान्धार, एक पंचम एवं लोहेके तीन तारोंमें एक मध्यसप्तकके पञ्चम और दो पंचम स्वरमें बाँधे जाते हैं। इस यन्त्रमें सारिकाएँ नहीं रहतीं। इसकी धारण और वादनक्रिया रुद्रवीणाकी धारण और वादनक्रियाकी अनुरूप होती है। यह यन्त्र और यन्त्रोंकी अपेक्षा आधुनिक जान पड़ता है। मालूम होता है, कि महती कच्छपी और रुद्रवीणाके संयोगसे इस वीणाकी उत्पत्ति हुई है।

सुरवहार।

अगर खूब गौर करके देखा जाय, तो सुरवहार और कच्छपी वीणा वाद्ययन्त्रमें एक ही यन्त्र है। सिर्फ अन्तर रहता है, कि सुरवहारके डंडेमें और एक लकड़ीका टुकड़ा लगा रहता है तथा उसमें कई एक छोटे छोटे खूटियाँ लगी रहती हैं एवं उन सब छोटे छोटे खूटियोंमें पीतलके तार बाँधे रहते हैं। इन तारोंकी धादक गवनी

इच्छाके अनुसार ही बाँध लेता है। इन तारों पर आघात करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती, प्रधान तारमें आघात करनेसे ही वे ध्वनित उठते हैं। इसमें और एक विशेषता यह है, कि कच्छपी वीणामें एक ही तन्त्रासन व्यवहार होता है और इसमें दो। इन दोनों तन्त्रासनोंमें एकका आकार दूसरेकी अपेक्षा कुछ छोटा होता है। यह छोटा तन्त्रासन प्रधान तन्त्रासनसे प्रायः एक बालिशत ऊपर रहता है, उसके ऊपर उक्त पीतलके अधिधान तार लगे रहते हैं। सुरवहारका आकार कच्छपीकी अपेक्षा कुछ बड़ा होनेके कारण उसका स्वर ऊँचा और अधिक क्षण स्थायी होता है। सुरवहारकी तार संख्या, सारिका विन्यास, धारण तथा वादन प्रणाली कच्छपीके समान ही होती है। यह एक आधुनिक यन्त्र है। जान पड़ता है, कि एक सी धर्षसे पहले यह यन्त्र नहीं था।

भरतवीणा।

भरतवीणा बहुत हालका यन्त्र है। यह रूप है, कि रुद्रवीणा और कच्छपी वीणाके मेलसे इसकी उत्पत्ति हुई है। क्योंकि इसका खोल तो रुद्रवीणाके समान लकड़ीका बना रहता है; किन्तु डंडा, खूटियाँ, तारसंख्या, स्वरवन्धन, सारिकाविन्यास तथा धारण और वादन-प्रणाली कच्छपी वीणाकी तरह होती है। इसमें विशेषता इनकी ही है, कि इसका एकमात्र नायकी तार लोहेका बना होता है, दूसरे दूसरे अधिधान तार धातुओंके बने नहीं होते, बल्कि उनकी जगह तार ही व्यवहृत होती हैं।

गुम्बुफ वीणा।

इस वीणाका खोल कद्दूका बना होता है। इसमें एक काठका डंडा, चार खूटियाँ और मजबूत काठका बना एक तन्त्रासन रहता है। इस वीणामें दो लोहेके और दो पीतलके सिर्फ चार तार व्यवहृत होते हैं। इन चारों तारोंमें लोहेके दो तार मध्यसप्तकके पञ्चम, पीतलका एक मन्द्रसप्तकके पञ्चम और एक पञ्चम स्वरमें बाँधा जाता है। इस यन्त्रका डंडा दाहिने हाथकी अनामिका और अँगूठेसे पकड़ कर एवं मध्यमाँगुनीसे आघात दे कर इसकी वादनक्रिया सम्पन्न होती है। इसमें सारिकाएँ नहीं होतीं एवं जो तार जिस स्वरमें आवद्य रहता है,

वसके अनिश्चित और कोई दूसरा स्वर प्रकटित नहीं होता। पीतलका यह तार जिसे मन्द्रसप्तकका पञ्चम करके बाँधनेकी रीति है, किसी किसी रागके गानके समय यह मध्यम स्वरमें भी बाँधा जा सकता है। यह यन्त्र गानके समय केवल मायकके स्वरविधामके लिये ही व्यवहृत होता है, इसके अलावे स्वतन्त्ररूपसे कभी बजाया नहीं जाता। किसी किसी देशमें इस यन्त्रमें छःसे डेढ़ कर द्वा पद्वन्त तार एवं पचीससे डेढ़ कर सैंतालिस पद्वन्त सारिकायें विन्यस्त रहती हैं। मालूम पड़ता है, उन देशोंमें इसकी वादन प्रणाली तथा व्यवहार स्वतन्त्ररूपमें होता है। कहा जाता है, कि यह यन्त्र पहले पहल तुम्बुदुर्गधर्मने बनाया था, इसीलिये इसका नाम तुम्बुदुर्गघोषा पड़ा है।

कारवायन घोषा।

कारवायन घोषाके नाम, उत्पत्ति तथा निर्माताके नामके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी बातें कही जाती हैं, किन्तु हम लोकोके विचारसे कारवायन श्रुतिने ही पहले पहल इसका निर्माण किया था, इसमें संशय नहीं। ये इस यन्त्रमें एक सौ तार व्यवहार करते थे, उसीके अनुसार यह यन्त्र पहले जतनश्री नामसे विख्यात था; किन्तु आधुनिक कारवायन घोषामें सौ तारकी जगह सर्वथ बाईससे डेढ़ कर तीस पद्वन्त तारोंका ही व्यवहार देखा जाता है। ये सब तार लोहेके बने होते हैं और उनकी लम्बाई प्रायः दो हाथकी होती है। इस यन्त्रकी एक हाथ लम्बाई और साध हाथ चौड़ाई एक लकड़ीके सँदूकमें मूर्तियों द्वारा भायत करनेकी रीति देखी जाती है। जिन यन्त्रोंमें बाईस तार बंधे रहते हैं, उन बाईस तारोंके ऊपरके प्रथम सात तार मन्द्रसप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर निषाद पद्वन्त, द्वितीय सात तार मध्यमसप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर निषाद पद्वन्त, तृतीय सात तार तारसप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर निषाद पद्वन्त एवं बाईसवाँ तार तारसप्तकके पञ्चमस्यसे बंधे जाते हैं। कुछ लोग प्रथम तीस तारोंमें एक मन्द्रसप्तकमें पञ्चम, षष्ठ्य, निषाद, चौथेसे डेढ़ कर द्वासे तकके सात तार मध्यसप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर निषाद पद्वन्त; अथवाद्वेषे सप्तदशसे तकके तार तारसप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर निषाद पद्वन्त एवं अठारदशसे डेढ़ कर

बाईससे तकके तार तारसप्तकके उच्च सप्तकके पञ्चमसे डेढ़ कर पञ्चम पद्वन्त स्वरमें बांधते हैं। इसके अलावे समय इस यन्त्रकी समस्तल स्थानमें रहते हैं। इसके बाद दोनों हाथोंमें दो तिकोणाकृति कोरे बर्तन पदार्थ धारण करके अत्यन्त सावधानीके साथ इसे बजाते हैं। इसका स्वर बहुत ही मोटा होता है। जिन यन्त्रोंमें तीस तार रहते हैं, उसके दाईस तार तीस पूर्वक निषमने ही बंधे जाते हैं और बाकी तार मायक भावप्रवृत्तानुसार कोमल एवं तीस शक्ति बंध लेते हैं।

प्रहारघोषी घोषा।

एक पाँच तारवाली कच्छपी घोषाके छण्डेकी बगलमें और एक तीन तारवाला छोटा उलटा लगा कर प्रहारघोषी घोषा बनाते हैं। इस यन्त्रके प्रधान छण्डेमें सोलह और छोटे छण्डेमें सोलह, इस प्रकार इसमें बत्तीस सारिकायें विन्यस्त रहती हैं। प्रधान छण्डेमें चंधे पाँच तारोंमें दो मन्द्रसप्तकके निम्नसप्तकके पञ्चमसे, दो मध्यम और एक एक पंचम स्वरमें एवं छोटे छण्डेके तीन तारोंमें एक मन्द्रसप्तकके पञ्चम, एक मध्यम और एक पञ्चम स्वरमें भायत रहते हैं। मधुवी घोषादि अन्योन्य यन्त्रोंमें दाईस सप्तक स्वर पाये जाते हैं; किन्तु प्रसारिणोंमें सगुं तीस सप्तक स्वर निकलते हैं। इसकी वादन प्रणाली अन्योन्य यन्त्रोंकी वादन प्रणालीके समान नहीं होगी। यह यन्त्र किसी समस्तल स्थान या गोदुर्गमें रक्त कर बाँध कर एक छण्डेमें भाषाण करके बजाया जाता है। उन भाषाणके साथ साथ बाँधे हाथके अंगुष्ठोंमें डबा कर एवं सारिकाओंके ऊपर संघर्षण करके प्रत्येक स्वर निहायना पड़ता है। यह यन्त्र आधुनिक है।

स्वरघोषा।

स्वरघोषा यन्त्र बहुत प्राचीन है। इसका मूल बद्ध बना होता है। इसमें एक लकड़ीका छण्डा लगा रहता है। यह यन्त्र यन्त्रघोषाके बहुत कुछ मिलता जुड़ता है। विशेषतः सत्ये इनको ही है, कि यन्त्रघोषाका पश्चिमीय वर्धोक्त लोक यन्त्रके मूला रहता है और यह पश्चिमीय वर्धोक्तके बड़े लकड़ीका एक पत्थकी लम्बाई भाषाणित रहता है। इसमें आठ तार व्यवहार किये जाते हैं। ये तार एक मन्द्रसप्तकके पञ्चम, एक

पञ्चम और दो मध्यसप्तकके पड़जमें बांधे जाते हैं।

सारङ्गी

सारङ्गी अति प्राचीन यन्त्र है, कहने हैं, कि लङ्काके राजा रावणने पहले पहल इसकी सृष्टि की थी। यह यन्त्र बहुत प्राचीन समयसे ही अविष्टन नाम और आकार से भारतवर्षमें चला आ रहा है; किंतु दूसरे दूसरे देशोंमें यह यन्त्र आकारादिमें कुछ बदल बदल कर भिन्न भिन्न नामसे विख्यात हो गया है। इस यन्त्रके खोल और डंडे एक ही लकड़ीके बने होते हैं। इसका खोल चमड़े द्वारा और डंडा पतले काष्ठफलक द्वारा मढ़े रहते हैं। डंडेके दोनों पार्श्वमें दो दो करके चार खूंटियां रहती हैं। उन खूंटियोंमें चार तांत बंधी रहती हैं। डंडे की बगलमें कई एक अप्रधान तारकी खूंटियां रहती हैं। पूर्वोक्त चार तांतोंमेंसे एक मन्द्रसप्तकके पड़ज, एक पञ्चम दो मध्यसप्तकके पड़ज करके बांधे जाते हैं। इसमें सारिकाओंका व्यवहार नहीं होता। यह यन्त्र अंगुल्यादिके द्वारा बजाया नहीं जाता, चरन् अथवा पुच्छवद एक धनुहोसे बजाया जाता है। धनुहोके संचालनके साथ साथ तंतुओंमें बांधे हाथकी कनिष्ठादि चार उंगलियोंके अगले भागसे संघर्षण करके स्वर निकाले जाते हैं। इस यंत्रकी मधुर ध्वनि कोमलकण्ठी स्त्रियोंके स्वरके अनुरूप होती है। यदि एक घरमें यह यन्त्र बजाया जाय और पासके दूसरे घरमें कोई सुकण्ठी स्त्री गान करे, तो अति स्वरहृद्यकि भी दोनोंके स्वरकी पृथक्ता जल्दी अनुभव नहीं कर सकते।

इस्यार-

इस्यारका समूचा अंग एक ही काष्ठखण्डका बना होता है। इसका खोल प्रायः सारङ्गीके खोलके समान और डंडा सितारके डंडेके समान रहता है। पांच तार वाले सितारके तार जिस धातुके बने होते हैं पंच जिस स्वरमें बांधे रहते हैं, इस्यारके पांचों तार भी उसी धातुके बने होते हैं तथा उसी स्वरमें बांधे रहते हैं। अन्तर सिर्फ इतना ही है, कि इसमें वादकके इच्छानुसार पीतलके कई एक अप्रधान तार लगे रहते हैं। उन अप्रधान तारोंका स्वर बन्धन भी वादकके इच्छाधीन रहता है। वादक इसयन्त्रकी सरल भावसे खड़ा करके पंच

बांधे हाथसे पकड़ते हैं। इसके बाद दाहिने हाथसे धनुही पकड़ कर संचालन करते हुए इसकी वादन-क्रिया निष्पन्न करते हैं। इसकी सारिकाओंके ऊपर बांधे हाथकी तर्जनी और मध्यमांगुली सञ्चालन करके प्रयोजनानुसार सभी प्रकारके स्वर निकाले जाते हैं। इस यन्त्रका नायकी तार ही प्रधानतः बजाया जाता है और दूसरे दूसरे तार स्वरसंयोजनके लिये व्यवहृत होते हैं। यह यन्त्र भी प्रायः सारङ्गीकी तरह स्त्रियोंके गानके माधुर्य-सम्पादनके लिये ही व्यवहृत होता है। कभी कभी यह स्वतंत्रभावसे भी बजाया जाता है। यह भी एक आधुनिक यन्त्र है।

मायूरी।

विशेष विवेचना कर देखनेसे मायूरी कोई स्वतन्त्र यन्त्र नहीं कहा जा सकता; इस्यार यन्त्रमें खोपड़ेके मुख पर एक काठका बना मयूरका मुख लगा देनेसे ही मायूरीयन्त्र बन जाता है। इसके आकारादि तथा वादन-क्रिया, इस्यारके समान ही होती है।

अलावूसारंगी।

अलावूसारंगी सारंगीका ही एक अंग है। इन दोनोंमें अन्तर यह है, कि सारंगी लकड़ीके एक टुकड़ेसे बनाया जाता है और इसका पिछला भाग काठका न हो कर एक दीर्घाकार कद्दूका बना होता है; इसी कारण इसे अलावूसारंगी कहते हैं। पश्चात्पूर्वोक्त अलावूके अतिरिक्त अन्यान्य अंग प्रत्यंग काठके बने रहते हैं। इसकी प्रधान तांत, अप्रधान तार, स्वरबन्धनादि सब कुछ सारंगीके समान ही होते हैं; सिर्फ वादन-प्रणालीमें कुछ अन्तर देखा पड़ता है। सारंगीको जिस तरह गोदमें सरलभावसे खड़ा करके बजाना पड़ता है, इसे उस रूपमें खड़ा करके पकड़ना नहीं पड़ता; चरन् इसकी पन्धकी ओरसे इसे कन्धे पर स्थापन कर पंच बांधे हाथकी एथेली और अंगूठे द्वारा पकड़ कर अन्धान्ध उंगलियोंके अप्रभाग इसकी तंतुओंके ऊपर संचालन करके स्वर निकालना पड़ता है। मूल बात यह है, कि अलावूसारंगी आधुनिक येदलीकी रीतिसे बजाई जाती है।

मीनसारंगी।

इसराज और मीनसारंगी एक ही यन्त्र है, अन्तर

मिर्क होना ही है, कि हमाराका मोल और उँडा होनी ही काठके बने होते हैं । इसके पिछले खोलमे ले कर उँडेके अग्रभाग तक एक दीर्घाकार, किशु पन्ने पन्ने खलायूदा बना रहता है । इसके अन्त्ये और और मंग प्रदंग, तार, अग्रपान तार, वायुनयनाछो दरपादि हमारेके अनुकरा होती है । इन यन्त्रके मूत्रप्रारणमे एक काठकी बनी मछलीका मुख भावद्व रहता है, इसीलिसे इन मीनसारंगो कहते हैं ।

स्वरमंग ।

स्वरमंग यन्त्र अग्रपान ताररहित हमाराका नामांतर मात्र है । स्वरमंगकी बनावट तथा वायुनक्रिया यिनहुल हमाराका तरह होती है । यह यन्त्र बहुत गया है ।

सारिण्डा ।

सारिण्डाके सगी भयवव एक टुकड़े अण्डक काठके बने होते हैं । इनके ध्वनिकोपना कुछ अंग चमड़ेसे मड़ा होता है और उस चमड़े पर एक तन्त्रामन सडे दलमे बांधा रहता है । इसमें किन्ना भी धानुका बना हुआ तार या ताँन व्यवहृत नहीं होता । घोड़ेकी पूँछके बने हुए तोन तार लगाये जाते हैं । उन तोन तारोंमेंसे दोकी मध्यमतरक वस्तु अ और एककी पञ्चम करके बांधना होता है तथा बद्धकी सारंगीकी तरह कंधे पर रख और बाएँ हाथमे पकड़ कर एक घोड़ेकी पूँछके बालमे बंधे हुए धनुनीमे बजाना होता है । यहदेरे लाप इत्यादि निर्णय भरो कर लवे हैं, सारिण्डा और सारंगी इन दो यन्त्रोंमें कीम किमके अनुकरण पर बना है, किशु दोनों पक्षीका आकार देखते र यह स्पष्ट मान्य होता है, कि सारिण्डाका अनुकरण र सारंगी बना है । पक्षीके अनुकरणका मन्ववत की उन्नतिके साथ साथ जिन प्रकार बहुतमे यन्त्र कमजा उन्नत हो गये हैं, उसी प्रकार यह भी हुआ है । इन यन्त्रका अन्ना मन्ववमन्त्रमे व्यवहार मड़ा होता । फीर भाव निष्क अनुकरणके दरपाछो दरपाछे इसकी बजा और गीत गा कर मोक्ष मागते हैं ।

सर्पकण ।

कीर उँड हाथ तथा गाँदर एक पतला बाँसका उँडा ही । इसकी गाँदो और छाँसा भावद्व अविष्ट

भायमें रख कर ऊपरका भाग मागका पाठ कर भय कर दिया जाये, बाकी स्राधे भागकी तिर दो बल्लोरे आकारमें बना कर उसमें दोनों और कटे हुए हाथ लालये एक कद्दू या काठका खोल बांध दिया जाये । दो उमके ऊपरी भागकी चमड़ेसे ढक कर उस चमड़ेके ठोक मध्यभागमें एक लोहेके तारका एक छोट बस और दूसरा छोरे पंजराके अविष्ट अंगमें मड़ी हुई मूँरमें योजित करना होता है । यहदृष्टभागकी दाहिने हाथभी तर्जनीको छोड़ बाकी चार उँगनीसे पकड़ कर तर्जनीमे बजाना होता है । इसमें केवल एक स्वर निकलता है । परंतु यज्ञानेयले कौमलपूर्वक यंत्रधारक चार उँगनीके मूँरों और प्रसारणमे उस एकमात्र स्वरकी ऊँचा नीचा कर सकते हैं । स्वयं यंत्रोंमें इस यंत्रकी गजना नहीं की जाती । भीतर्गानेयले इन वस्तु कर द्रवाजे द्रवाजे गान करते और भागी जीविषा चलाते हैं ।

आनन्द-जरी

आनन्द-जरीकी गोपीयन्त्रके खोलकी तरह प्रायः बाध हाथ खोलके ऊपर चमड़ेसे मड़ा बना होता है । उस चमड़ेके ठोक मध्य भागमें एक ताँन बांधी होती है । ताँनके इस प्रायकी चर्माच्छादित एक छोटे बरतनमें संवत्त दाएँ तरफके खोलके बाएँ मन्त्रमे जारमे बजाते हैं । छोटे बरतनके बाएँ हाथमे पकड़ कर दाहिने हाथमे एक लवणकी मूँरोंमें उस तन्त्रुमें आगान करने होमे भावात्र निकलती है । बाएँ हाथके पिचापकी बनी पेंती होमे सुरकी गोवा और ऊँचा किया जाता है । यह यन्त्र भी मिर्क भोपायमें व्यवहार करने हैं ।

गारु ।

गारु यन्त्र त्रिजुलकी तरह भी बद्धा इन्वतता बना होता है । इसके दोनो बगलें कुछ मोटी होती हैं, मध्य भागमें एक झूलकी मोँककी तरह बहुत पतला पन्तर रहता है । यन्त्रके दाएँ हाथमे पकड़ कर दक्षिण हाथकी तर्जनीके बजाते हैं । किशु सारकी दीर्घखाल कथायो करके दिये आवाजके साथ साथ बड़े जारमे मुँहमे आवाज देता होता है । इसमें केवल एक स्वर रहता है । किशु बजायैयाने उस यन्त्रमे यन्त्रकी जड़मे बांधा मोन मगा

कर खरको ऊंचा नीचा कर सकते हैं। यद्यपि इस यन्त्रके स्वरमें उतनी मधुरता नहीं है, तथापि पेशवतान वादनके साथ बजाये जानेसे शरारत भी नहीं लगता।

भवनद्वय वा भानद्वय-यन्त्र।

पटह या नागरा, मर्हल या मादल, हुड्डूक, आकरट, अघट, रज्जा, डमक, डका, कडूली, टुकरी, त्रिवली, डिण्डिम, दुन्दुभि, भेरी, निःसान, तुम्बकी, टमको, मण्ड, कम्बूज, पणव, कुण्डली, पादवाद्य, शर्कर, मट्ट, मृदङ्ग या वीज, तबला, डोलक, डोल, काड़ा, जगन्नाथ, नासा, दमामा, टिकारा, जोड़वाई और खुरदक ये सब यन्त्र भवनद्वय यन्त्रमें गिने जाते हैं। उन सब यन्त्रोंके केवल नाम दिये गये हैं उनके आकारादि मङ्गल ग्रन्थमें भी नहीं देखे जाते और न इनका व्यवहार ही दिखाई देता है। सभी भवनद्वय यन्त्र सभ्य, वाहिरद्वारिक, प्राग्य, सामरिक और माङ्गल्य इन पांच श्रेणियोंमें विभक्त होते हैं।

पटह वा नागरा।

पटहका आकार छोटे और बड़े के भेदसे दो प्रकारका होता है। दोनों प्रकारके पटहके खोल मिट्टीके बने होते हैं। बड़े पटहका मुंह चौड़ा होता, तलदेश कमशः सूक्ष्म ही कर कोणाकारमें परिणत हो गया है। इस यन्त्रका मुंह मोटे चमड़ेसे मढ़ा होता है। छोटा पटह देवनेमें कुछ गोल होता है। इसके भी आच्छादनादि बड़े पटह जैसे होते हैं, परंतु इसमें पशुके पर आदि अनेक वस्तु आबद्ध रहती हैं। यह यन्त्र प्रायः काड़ा नामक एक दूसरे यन्त्रके साथ बजाया जाता है। बजानेवाले यन्त्रको रस्तीसे बांध कर गलेमें लटका लेते और दोनों हाथमें दो छड़ों ले कर उसे बजाते हैं, किंतु बड़ा पटह इस प्रकार बजाया नहीं जाता। उसे जमीन पर रख दो छड़ेसे टिकारा नामक यन्त्रके साथ बजाते हैं। कभी कभी युद्ध-विजेताओंके सम्मानार्थ यह यन्त्रके समय हाथीकी पीठ पर बजाते हुए भी देखा जाता है। पटह, वाहिरद्वारिक और भति प्राचीन यन्त्र हैं।

मर्हल।

भानद्वय यन्त्रके मध्य मर्हल ही सर्वश्रेष्ठ है। मर्हलका खोल मैद, लालचंदन, फटहल आदि लकड़ियोंका बना होता है। इनमें सैरकी लकड़ी ही सबसे अच्छी है। लाल

चन्दन लकड़ीके बने हुए मर्हलकी ध्वनि भी गम्भीर, रमणीय और उच्च होती है। मर्हल अकसर आध हाथ लम्बा और बाईं ओरका मुंह वारह तैरह उंगलीका होता है। दाहिनी ओरका मुंह उससे एक या आध उंगली कम और मध्य भाग मुंहसे कुछ लम्बा होता है। छः महानेके बकरेके चमड़ेसे दोनों मुंह मढ़े जाते और ये चमड़ेकी धज्जीसे परस्पर संयोजित रहते हैं। उन धज्जियोंमें हस्तियन्त्र तथा और किसी कठिन पदार्थके बने हुए आठ गुल्म आवद्ध होते हैं। स्वरको ऊंचा और नीचा करनेके लिये उन गुल्मोंको लोहेके हथौड़ेसे सञ्जातित कर लेते हैं। यन्त्रके दाहिने मुंहके शोक घोचमें गरम, गेरु मिट्टी, गेहूँका आटा या चिउड़ा, इन सब पदार्थोंका जलमें मिला कर लगभग चार अंगुल भर गोल मोटा लेप लगा देते हैं, बाईं ओर लेप नहीं लगाना होता है। इस यन्त्रको गोदमें रख कर बजाया जाता है। मर्हलको ही अथ मृदङ्ग वा पखावज कहते हैं। संघाल आदि असभ्य जातियों इसी जातिके बाजा बजा कर गोतादि करते हैं, वह मर्हल वा मादल कहलाता है। यह यन्त्र सभ्य यन्त्रमें गिना जाता है और दोनों हाथसे इसे बजाते हैं तथा यह प्रुपदादि उच्चाङ्ग गीतके साथ सङ्गत हुआ करता है।

मुरज।

मुरज मर्हलके समान, पर उससे कुछ छोटा होता है। इसका बायां मुंह आठ उंगली और दाहिना मुंह सात उंगली चौड़ा होता है। इसकी लम्बाई एक हाथसे कुछ अधिक होती है। बजानेवाले रस्तीसे इसकी गलेमें लटका कर बजाते हैं। इसकी बाईं ओर भी मसालेका लेप रहता है।

मृदङ्ग।

मृदङ्ग यन्त्र बहुत प्राचीन है। पुराणमें लिखा है, कि जब त्रिपुरारि महादेवने देवताओंके अजेय भति दुर्दान्त त्रिपुरासुरको युद्धमें मार कर बड़े आनन्दसे ताण्डवनृत्य आरम्भ किया, उस समय असुरके शरीरसे निकले हुए रुधिरसे समराङ्गणका भूमि सिक हो कर्तव्यमें परिणत हो गई थी, उस कर्तव्यसे सृष्टिकर्त्ता पद्मपोति प्रधान मृदङ्गका मेखड़ा, चर्मसे आच्छा-

द्वीपों, जिनमें चर्मसंबंधक रजतु और धमिगमे गुल्म बना कर गमनायकको महादेवके नृत्यमें ताल देनेके लिये प्रदान किया था। गणेशने उस मृदङ्गको बजा कर महादेव के नृत्य और देवताओंके हर्षको बढ़ाया था। इस यंत्रका प्रवाल मङ्गल मेघदा हो दे जो मिट्टीका बना होता है। भाधुनिकमेघदा ही प्रथम मृदङ्ग रचयाकर है। विशेषता इतनी ही है, कि प्रलयवृद्ध मृदङ्ग गुल्मयोजित था, मेघद्वेमें गुल्म गर्भो रहता। इस यंत्रके दोनों मुँहमें लेप रचना है। इस यंत्रका केवल कोसंनानादिमें व्यवहार होता है।

तबला।

तबला भाधुनिक मृदङ्गका अनुकरणमात्र है। यह यंत्र दो भागोंमें विभक्त है, एक भागका डोंचा मृदङ्गके जैसा बाउका बना होता है, दूसरा मिट्टी या क्लिमी धातुका। लकड़ीके भागको दहिना या तबला और मिट्टीके भागको बायाँ या दुग्गी कहते हैं। दोनों भाग पर सरेम धादिको बनो हुरे म्पाहोकी गोल् टिकिया धपडो तरह जमा कर निकले पत्थरसे घोटी जाती है। दाहिनेसे उभय मधुर और बायेंसे गम्भीर नादसर निकलता है। यह चमड़ेके कोलेसे जिमे बन्दी कहते हैं कम कर बाँध दिया जाता है। इस बन्दी और कूँड़ेके बीचमें काठकी सुलियाँ रच दी जाती हैं। इन सुलियोंकी सहायतासे तबलाका स्वर आयदरगतानुसार चढ़ाने या उगारने में। दुग्गी या बायाँ कमी चर्मो अकेला ही बजाया जाता है, पर तबला कमी भी नहीं।

दोलक।

दोलकका मेघदा लकड़ीका बना होता है। इसके दोनों मुँह पर पतला चमड़ा चढ़ाया रहता है। चढ़ाने समय चमड़ेको शिमा कर एक बाँसकी गोल् कमानोंमें इस तरह लपेटते हैं कि यह कमानो चमड़ेसे ज्वाहन हो कर दोलकके मेघद्वे पर भा कर चिपक जायो है। इसी कमानोमें दोनों और छोटे मगना कर बस देते हैं। इन छोटेसे छोटे या पीतलकी छोटी छोटी बड़ियाँ चढ़ाने रहती हैं। इन बड़ियोंको मृदालीसे दोलक तन जाता और उगारोमें उभर जाता है। इन दोलकके दोनों मुँहका ज्वाम दायाँ एक मगना हो रहता है। किन्तु इसका मध्य भाग अर्धचन्द्रावृत्त वृत्त मीटा रहता है। रामायण मान तथा मेदिनी रामायणिलोमें भी चढ़े चरबहन होता है।

दफला।

भारतीय मधु यंत्रोंको अपेक्षा दफलेका अधिक बड़ा है। इसका भी मेघदा लकड़ीका बना होता है। दोनों मुख समग्रामविनिष्ट और चमड़ेसे छाया हुआ रहता है। दोनों ओरके चमड़े तन या चमड़ेकी पीसी छोरीसे कसे रहते हैं। इसका एक ही मुख दोनों हाथसे लकड़ीसे बजाया जाता है। इस यंत्रकी शोभा बहानेके लिये बजानेवाले इसमें पक्षियोंके पर लगाते हैं। बजानेवाले मोटी रस्सीमें यंत्रको बाँध लेते और गलेमें डाल कर पूर्वोक्त रीतिसे बजाया करते हैं। यह यंत्र देवो-रसयो या पर्वोपनृत्यमें ही अधिक व्यवहृत होता है। बद्मालमें इसे टाक कहते हैं। यह बहुत प्राचीन वाद्य है। कारण, रामायणो युद्धके समय यही वाद्य बजा था। रामायणमें इसका विस्तारित भावसे उल्लेख पाया जाता है। इसकी ध्वनि बहुत कर्कश होती है।

दोल।

दोलका माकार दोलककी तरहका है। फिर भी इसका माकार उममे कुछ बड़ा है। इसके बायें मुँह पर एक ममाना लिया हुआ रहता है। इसे दोरीमें बाँध कर गलेमें खुला कर दाहिने हाथसे ताल देने और बायें हाथसे एक मोटी लकड़ीसे बजाने हैं। यह दोलक विवाहादि उत्सवोंमें व्यवहृत किया जाता है। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि यह दोल ही सम्भारादिके मगघ दोलकके रूपमें परिणत हुआ है।

वाजा।

वाजेका भी मेघदा लकड़ीका ही होता है। इसके एक ही मुख रहता है। यह भी पिछले भागकी अपेक्षा बहुत चौड़ा रहता है। चमड़ेको छोरीसे बंधा रहता है और चमड़ेसे ही छाया हुआ रहता है। इसे धरती बाँध कर गलेमें झूला लेते हैं। ये दाहिने हाथसे घेन हमा बजाने और बायें हाथसे ताल डोकते हैं। किन्तु केवल काश कमी नहीं बजाना, छोटे बजारे तथा जगजगके मगघ हो उत्सवोंमें बजता है।

गमगम।

इस वाजिका मेघदा मिट्टीका बना रहता है। यह अपेक्षाएन बड़ा और चढ़े टकमेंही तरहका होता है।

इसका छाया हुआ चमड़ा सूतकी डोरी या चमड़े की डोरीसे कसा जाता है। सौन्दर्य बढ़ानेके लिये इस बाजेमें पक्षियोंके पर जोड़े जाते हैं। रस्सोंमें बांध कर लोग इसे बजाते हैं। दोनों हाथोंमें लकड़ी ले कर उनसे ही बजाया जाता है। इसके साथ छोटे नकारेका भी व्यवहार होता है। उरसवीं, विशेषतः मुसलमानी पर्वोंमें इसका अत्यधिक व्यवहार होता है।

तासा ।

तासा देखनेमें उपयुक्त जगन्मयकी तरह है। विशेषता यह है, कि छाजनीका चमड़ा कुछ अपेक्षाकृत मोटा होता है। यह जगन्मयके साथ बजता है। इसके बजानेका कायदा जगन्मयकी तरह ही है। विवाहादि उरसवींमें अधिक व्यवहृत होता है।

नौबत ।

इसका आकार नकारेकी तरह होता है। केवल बजनेमें कुछ कम होता और यह पतले चमड़ेसे छाया रहता है। दरवाजे पर नकारेकी तरह दोनों हाथोंसे छोटी छोटी लकड़ियोंसे बजाया जाता है।

दगामा ।

नौबतकी तरह ही इसका आकार और नौबतके उपकरणोंसे ही यह तय्यार होता है। विशेषता यह है, कि नौबत बाजेकी अपेक्षा इसका मुख चौड़ा और इसका चमड़ा कुछ मोटा होता है। दगामा भी नौबतके साथ ही बजता है। दगामा पहले युद्धके बाजेमें शामिल था।

जोड़घार ।

जोड़घार और कुछ नहीं एक ढोलके ऊपर दूसरा छोटा ढोल जोड़ा रहता है। इससे छोटे ढोलसे उच्च और यहू ढोलसे निम्न स्वर निकलता है। जब जैसे स्वर निकालनेकी आवश्यकता होती है, तब वैसे ही ढोल पर आघात किया जाता है। यह बाजा पहले प्रायः बङ्गालमें देखा जाता था। अब उसका प्रचार बहुत कम हो गया है। या यों कहिये, कि अब इस बाजेका लेवा ही हो गया है।

डमरू ।

डमरू बहुत पुराना बाजा है। देवदेव महादेव इसको बजाते थे। किन्तु इस समय तो सपेरे या मालु या

बन्दर नचानेवालोंका बाजा बन रहा है। इसके दोनों मुँह चौड़े होते हैं और बीचमें पतला रहता है। यह मूठमें पकड़ कर बजाया जाता है। इसकी छवाई भी चमड़े की होती है और चमड़े की डोरीसे इसके दोनों ओरके चमड़े कसे रहते हैं। चमड़े की डोरीमें एक शीशेकी गोला बंधी रहती है। डमरूके हिलाने डुलानेसे यह बजता है। यह बाजा बड़ा विमोहक है। इस बाजे पर भी लोगोंका अधिक ध्यान आकर्षित होता था।

खुरदक ।

खुरदकके दोनों मेखड़े छोटे नकारेके समान होते हैं। ये मेखड़े मिट्टीके बने होते हैं। इनमें सिर्फ एकका मुख कुछ अधिक चौड़ा होता है। इन दोनों मेखड़ेके मुखमें इस प्रकार कौशलसे चमड़े मढ़े जाते हैं, कि एकसे उच्च और दूसरेसे नादस्वर निकलता है। जिससे नादस्वर निकलता है, उसके चमड़े मसालेका रहता है। यह दोनों हाथोंके आघातसे बजाया जाता है। इसे रोशन-चीकीके साथ बजाते हैं।

शुपिरयन्त्र ।

जो सब यन्त्र छिद्रयुक्त होते हैं, उन्हें शुपिरयन्त्र कहते हैं। यह यन्त्र मुखसे फूँक मार कर बजाया जाता है। चंशी, पार, पाविका, मूरली, मधुकारी, काहला, सिंगा, रणसिंगा, रामसिंगा, शङ्ख, भुङ्गदी, तुका, स्वर-नाभि, मलापिक, चर्मचंशी, सजलचंशी, रोशनचीकी, शङ्खनाई, कलम, तुरही, मेरो, गोमुखी, तुबड़ी तथा वेणु प्रभृति यन्त्र शुपिरयन्त्रके अन्तर्ग गिने जाते हैं। बड़े दुःखका विषय है, कि इनके अधिकांशके नाम ही पाये गये हैं, आकारादिका कोई चिह्न भी परिलक्षित नहीं होता। शुपिरयन्त्र प्रधानतः चंशी, काहल, सिंगा और शङ्ख, इन चार जातियोंमें विभक्त है।

चंशी ।

यह यन्त्र पहले गोलाकार, सरल पर्यं गाँठहीन वाँस-का ही बनाया जाता था; इसीलिये इसका नाम चंशी पड़ा। मनुष्यकी सम्पत्ता वृद्धिके साथ साथ धीरे, चन्दनादि काष्ठ। सुवर्ण प्रभृति धातु और हाथोंके दाँत-से भी यह चित्त तैयार होने लगा है; किन्तु इसके नाममें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। चंशीके मध्यका छिद्र

कविप्रामुखिकी परिधि को भवेत्ता भविष्य होना टोक नहीं, यह बात भंगुलमें ले कर एक हाथ तक लयी होती है। इनका विशेषता प्रायः बन्ध तथा अर्धभाग गुना रहता है। प्रायः सुगमं धीरुष्ण जो पंगो बसाते थे, लोग उमें ही मुल्की रहते हैं। पंगोके ऊपरभागमें प्रायः तीन भंगुल मोंचे जो भवेत्ताएक एक बड़ा छिद्र रहता है, उसका नाम कुतकाररश्म या फूंकनेका छिद्र है। कुतकाररश्मके प्रायः चार भंगुल मोंचे घेको मुठलीके बराबर छः स्वरके छिद्र होते हैं। पंगोको दोनों हाथोंके भंगुले और तर्जनीके मध्यभागमें एकदू कर दोनों हाथोंकी मनामिका, मध्यमा और तर्जनी, इन छः उंगलियोंके द्वारा इसकी वादन-क्रिया निपटन को जानी है। कुतकाररश्ममें फूंक कर एवं पूर्वोक्त छः स्वरके छिद्रों पर उक्त भंगुलियों का भावप्रकृतानुसार संवादन करते हुए वादक अपने इच्छानुसार गाना बजाते हैं। यह यंत्र धीरुष्णका बड़ा प्यार था, इसलिये कई स्थानों तो उन्हें ही इसका निर्माता बजाते हैं। इस समय यह यंत्र भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न आकारमें बदल कर अनेक नामसे विख्यात हो गया है। जो कुछ भी हो, किन्तु भारतवर्ष में ही पहले यदल इसका स्वरि दूर, इसमें कुछ भी तन्धेद नहीं।

सक नहीं।

सरलपंगोके आकारादि प्रायः मुल्कीके समान ही होते हैं, विशेषता केवल इसकी ही है, कि मुल्कीके कुतकाररश्ममें फूंक फूंक कर स्वर निकाले जाते हैं और इसके कुतकाररश्ममें न फूंक कर पंगोके खुले निराधारकी ही मुल्की फूंक कर स्वर निकालते हैं। इसके कुतकाररश्ममें पाशु निर्माण होती है, इसलिये इन छिद्रों कुतकाररश्म न रह कर सामुग्र्य बचना ही मुक्तिराम है। मुल्की जिस प्रकार बजानागमें पदपों जानी है, यह उस प्रकार बजाने नहीं जानी। इन सरलपंगोमें पदप कर बजाते हैं; इसलिये यह सरलपंगोके नामसे विख्यात है। इसकी वादन-प्रणाली मुल्कीके समान ही होती है।

सकती।

अवर्षकी वादन-प्रणाली किन्तु निम्नकी तुलना है:

किन्तु इसमें सामुग्र्य नहीं होता। इसकी और सरलपंगोकी वादन-प्रणाली एक-सी होती है। यदि कुछ अन्तर है, तो इसका हो, कि इसे मुल्केके एक पार्श्वमें बजानावसे एकदू कर बजाना होता है।

कम।

कलमका साकार बहुत कुछ बरभीके कमके आकारमें मिलता ज़ुबता है, इसलिये यह कममें नामसे विख्यात है। इसको लम्बाई अल्पाद्य पंगोकी भवेत्ता कुछ छोटी होती है, किन्तु स्वरछिद्रादि पंगोके बराबर ही होते हैं। यह यंत्र सरलपंगोकी रीतिसे ही बजाई जाती है। इन दोनोंकी वादन-प्रणालीमें अन्तर यह है, कि सरलपंगो फूंक कर बजाई जाती है और इसके निराधारको दोनों ओरोंसे एकदू कर बजाते हैं। इसके सुगम भागमें एक छोटा-सा नल रहता है बजातेके पहले उस नलकी मुल्केके भूकरी तर कर लेना पड़ता है।

रोजनीकी।

रोजनीकीका साकार देखनेमें चमूरेके फूत्रके समान होता है। इस यंत्रका ऊपरी भाग मोचले काठका बना होता है और मोचला भाग पीतल आदि धातुओंका। किसी किसी रोजनीकीका सारा भाग लकड़का ही बना रहता है। इसके लम्बाई बंगालमें प्रायः एक हाथसे अधिक नहीं होती, किन्तु कान्ची, लकनऊ आदि प्रांतोंमें यह पंगालकी रोजनीकीकी भवेत्ता कहीं बड़ी होती है। इसके मुलमें एक नल लगा रहता है। वादक इस नलकी अपने मुखमें ले कर बजाते हैं। इस यंत्रका साकार जितना लम्बा होगा, भाषात उतनी ही मोची होगी। रोजनीकीका स्वरद्वयके साथ बजाई जाती है।

रहनी।

गहनाई और रोजनीकीकी दोनोंके ही आकारादि सबी विषयोंमें एक-ही होना है, केवल स्वरको सामान्य प्रकृत्याके कारण भिन्न भिन्न नामसे विख्यात है। ये दोनों यंत्र एक ही रीतिसे बजाये जाते हैं। रोजनीकीकी स्वर गहनाईकी भवेत्ता कुछ ऊंचा होता है। इन दोनों यंत्रोंमें अन्तर यह है, कि रोजनीकीकी स्वरद्वय का दोनद्वयके साथ बजाई जानी है और गहनाई दोनद्वयके साथ।

वेणु ।

वेणुयन्त्र वेणु-अर्थात् बाँसका बना होता है । इसी-
लिये इसका नाम वेणु पड़ा होगा । इसकी लम्बाई घंशो
जातीय सभी प्रकारके यन्त्रोंकी अपेक्षा बड़ी होती है ।
इस यन्त्रमें एक तरफ छः और दूसरी तरफ एक छिद्र
होता है । इसको वादन प्रणाली स्वतंत्र है । वादक इस
यन्त्रको किंचित् थकभावसे एक-दु-कर एवं मुखको कुछ
टेढ़ा कर, आहिस्ते आहिस्ते फूँक कर बजाते हैं । फुरकार
के तारतम्यानुसार नाना प्रकारके स्वर निकाले जा सकते
हैं । यह यन्त्र बहुत आसानीसे बजाया जाता है । प्रयोग
वादक इससे बहुत ही मधुर स्वर निकाल सकते हैं ।

विगा ।

गाय, महिष आदि लम्बे सींगवाले पशुओंके सींगसे
यह यन्त्र तैयार किया जाता है । यह वाद्ययन्त्र बहुत
प्राचीन है । यहाँ तक, कि यह शुपिर यन्त्रका आदि यन्त्र
बना जा सकता है । भून भावन भवानीपति शंकर
सर्वदा इस यन्त्रका व्यवहार करते थे । उक्त पशुओंके
सिंगके पतले भागमें एक छोटा सा छेद करके, उसीमें
सुँह लगा कर इसे बजाते हैं ।

रणविगा ।

रणसिंगका आकार बहुत बड़ा होता है । यह यन्त्र
पीतलादि धातुओंसे तैयार किया जाता है एवं मुखसे
फूँक कर बजाया जाता है । रणक्षेत्रके मध्य सैनिकोंके
कोलाहलमें यादुवयन्त्र द्वारा जिस समय सैनिकोंकी
प्रोत्साहित, आह्वान अथवा किसी प्रकारका इशारा करने-
की सम्भावना रहती है, उसी समय यह यन्त्र व्यवहृत
होता है । इसको सांकेतिक ध्वनिके द्वारा सेना अपने
सेनापतिका अभिप्राय आसानीसे समझ लेती है । यह
यन्त्र रणक्षेत्रमें बजाया जाता है, इसी लिये यह रणसिंगा
कहलाता है ।

रामविगा ।

रामसिंगा भी धातुका बना हुआ एक बहुत बड़ा
कुण्डलाकार यन्त्र है । इसका व्यास रणसिंगेकी अपेक्षा
बड़ा होनेके कारण इसका स्वर भी उसकी अपेक्षा बड़ा
गम्भीर होता है । यह यन्त्र रणसिंगेकी वादन-प्रणालीसे
ही बजाया जाता है । यह यन्त्र वेणुवसम्प्रदायके महो-
रसवादिमें अधिक व्यवहृत होता है ।

तुरही ।

तुरहीका आकार सीघा होता है । यह पीतलकी बनी
होती है । यह यद्यपि इसके द्वारा सैन्यप्रोत्साहादि कोई
कार्य सम्पन्न नहीं होता, तथापि रणक्षेत्रमें ही इसका
व्यवहार होता है । कभी कभी यह नौवतखानेमें भी
बजाई जाती है । इसका आकार रणसिंगेसे कुछ छोटा
होता है । यह यन्त्र रणसिंगेकी वादन-प्रणालीसे बजाया
जाता है ।

मेरी ।

मेरीका दूसरा नाम दुन्दुभि है । यह यन्त्रने में बहुत
कुछ दूरबोधयन्त्रके समान होता है । इस यन्त्रके
चलके भीतर एक और नल इस कीशालसे घुमाया रहता
है, कि बजानेके समय हाथके सञ्चलन द्वारा इससे नाना
प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र प्राचीन
समयमें युद्धयन्त्रमें ही गिना जाता था । किन्तु इस समय
नौवतके बजानेके बाद यह यन्त्र बजाया जाता है ।

शङ्ख ।

शङ्ख दूसरे यन्त्रोंकी तरह मनुष्योंके हाथका बनाया
यन्त्र नहीं है । यह एक प्राकृतिक यन्त्र है । समुद्रमें शंख
नामक एक प्रकारका जानवर होता है । प्रकृति ने उसके
आच्छादनीकोषकी इस ढाँचिसे तैयार कर रखा है, कि
लोग उसके ऊपरी भागमें सिफ़ एक छोटा सा छिद्र
करके बजाया बना लेते हैं । शंख बहुत प्राचीन यन्त्र
है । यह इस समय केवल मंगल-कार्यमें ही बजाया जाता
है, किन्तु प्राचीनकालमें युद्धके समय ही इसका अधिक
व्यवहार होता था । इस यन्त्रके मुखमें एक अंगुल
प्रमाण छेद करना पड़ता है । इस यन्त्रके बजानेके लिये
उसी छेदमें पूरी ताकतसे फूँकना पड़ना है । यह
यन्त्र जितनी ताकतसे फूँका जाता है, ध्वनि भी उतनी ही
ऊँची होती है । प्राचीन कालमें मनुष्य पूरे बलवान होते
थे, इसलिये उस समयके लोगोंके शंखकी आवाज
बड़े गम्भीर होती थी । यहाँ तक कि उस समयके
घोरोंके शंखकी गम्भीर ध्वनिले लोगोंका कलेजा काँप
उठता था ।

तित्तिरी ।

आधुनिक तुपड़ी ही पहले तित्तिरीके नामसे विषयान-

कमिष्टासुखिकी परिचितो भवेत्ता मपिच द्वावा टोक मही, यद् वाट भंगुनो मे वर पद हाथ तक लक्षो होता है। इसका निरीक्षण प्रायः बन्ध तथा अयोभाग जुना रहता है। प्रायः मुगमें धोहूला तो वंशो बजाते थे, लोग उसे ही मुग्लो कहते हैं। वंशोंके ऊपरीभागमें प्रायः तीन भंगुल गोथे जो अविनाशक पद बड़ा छिद्र रहता है, उसका नाम कुटकाररम्रम वा फूंकनेका छिद्र है। कुटकाररम्रके प्रायः चार भंगुल गोथे देखीं मुठलीके बगबर छः स्वरके छिद्र होते हैं। वंशोंकी दोनों क्षाओंके भंगुठे और तर्जनीके मध्यभागमें पकड़ कर दोनों क्षाओंकी मनामिका, मध्यमा और तर्जनी, इन छः उंगलियोंके द्वारा इसकी वादन-क्रिया निरान्न को जाती है। कुटकाररम्रमें फूंक कर पक्ष पूर्वोक्त छः स्वरके छिद्रों पर उक्त भंगुलियों का भावप्रवृत्तानुसार मन्वाद्यन करते हुए वादक अपने इच्छानुसार गाना बजाते हैं। यह यंत्र धोहूलाका बड़ा प्यास था, इसलिये कई रविकि तो उन्हें ही इसका निर्माता बजाते हैं। इन समय यह यन्त्र मिश्र मिश्र देशोंमें मिश्र मिश्र भाकारमें बदल कर अनेक नामसे विषयगत हो गया है। जो कुछ भी हो, किन्तु भारतपर्यन्त ही यह पहलें पहलें इसका स्पष्ट पुरे, इसमें कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

मध्य वंशो।

मरुत्ववंशोंके भाकारादि प्रायः मुग्लोंके समान ही होते हैं, विशेषता केवल इतनी ही है, कि मुग्लोंके कुटकाररम्रमें फूंक फूंक कर स्वर निकाले जाते हैं और इसके कुटकाररम्रमें न फूंक कर वंशोंके खुले निरावाहनही हो मुग्लों फूंक कर स्वर निकालते हैं। इसके कुटकाररम्रमें वायु निर्गत होती है, इसलिये इन छिद्रों की कुटकाररम्र न कर कर वायुम्रम रहता ही युक्तिरंगन है। मुग्लो निम्न प्रकार यक्षतायमें पकड़ो जाते हैं, यह उभ प्रकार पकड़ो नहीं जाते। इन मरुत्वजगमें ही पकड़ कर बजाते हैं; इसीलिये यह मरुत्ववंशोंके नामसे विषयगत है। इसकी वादन-प्रणाली मुग्लोंके समान ही होती है।

स्वरवत्तः।

स्वरवत्तः मरुत्ववंशोंमें विद्यमान निम्नो जुरता है।

किन्तु इसमें वायुम्रम नहीं होता। इसकी और मरुत्ववंशोंकी वादन-प्रणाली एक-सी होती है। यह कुछ भन्तर है, तो इतना ही, कि इसे मुग्लोंके एक कर्ममें पकड़वाये पकड़ कर बजाता होता है।

कमल।

कलमका भाकार बहुत कुछ करभीके कमलके भाकारमें मिलता जुलता है, इसीलिये यह कलमके नामसे विषयगत है। इसकी लम्बाई अल्पाल्प वंशियोंकी अपेक्षा कुछ छोटी होती है, किन्तु स्वरछिद्रादि वंशोंके बगबर ही होते हैं। यह यन्त्र मरुत्ववंशोंकी रीतिमें ही बजाई जाते हैं। इन दोनोंकी वादन-प्रणालीमें अन्तर यह है, कि मरुत्ववंशो फूंक कर बजाई जाते हैं और इसके शिष्टभागको दोनों भोठोंसे पकड़ कर बजाते हैं। इसके मुग भागमें एक छोटा-सा नल रहता है बजातेके पहलें उस नलकी मुग्लोंके भूकसे तर कर लेना पड़ता है। रीतिरचोकी।

शैजानघोषोका भाकार देलनेमें घन्तूके फूटने समान होता है। इस यंत्रका ऊपरी भाग जोखने काठका बना होता है और मोचला भाग पीतल भादि धातुओंका। किसी किसी शैजानघोषोका सारा भाग लकड़ोका ही बना रहता है। इसकी लम्बाई वंशानमें प्रायः एक हाथमें मपिच नहीं होती, किन्तु कानो, ललनऊ भादि प्रयोगोंमें यह वंशाद्यको शैजानघोषोकी अपेक्षा कहीं बड़ी होती है। इसके मुगमें एक नल लगा रहता है। वादन इस नलकी अर्थमें मुगमें ले कर बजाते हैं। इस यंत्रका साकार जितना लम्बा होगा, भावात्त उतना ही मोपी होगी। शैजानघोषोको सुदृक्के साथ बजाई आते हैं।

दहनार्।

दहनार् और शैजानघोषो दोनोंके ही भाकारादि सभी विषयोंमें एक-सै होते हैं, केवल स्वरको सामान्य ध्रुवत्ताके कारण निम्न निम्न नामसे विषयगत हैं। ये दोनों यन्त्र एक ही रीतिमें बजाये जाते हैं। शैजानघोषोका स्वर दहनार्की अपेक्षा कुछ ऊँचा होता है। इन दोनों यंत्रोंमें अन्तर यह है, कि शैजानघोषोको सुदृक्का देलनके साथ बजाई आते हैं और दहनार् शैजानघोषो साथ।

वेणु ।

वेणुयन्त्र वेणु अर्धात् बाँसका बना होता है । इसी लिये इसका नाम वेणु पड़ा होगा । इसकी लम्बाई घंशी ज्ञातीय सभो प्रकारके यन्त्रोंकी अपेक्षा बड़ी होती है । इस यन्त्रमें एक तरफ छः और दूसरी तरफ एक छिद्र होता है । इसको वादन-प्रणाली स्वतंत्र है । वादक इस यन्त्रकी किञ्चित् धकभावसे एक-दु-एक एवं मुखकी कुछ देढ़ा कर, आहिस्ते आहिस्ते फूँक कर बजाते हैं । कुल्कार के तारतम्यानुसार नाना प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र बहुत आसानीसे बजाया जाता है । प्रयोग वादक इससे बहुत ही मधुर स्वर निकाल सकते हैं ।

विगा ।

गाय, महिप आदि लम्बे सींगवाले पशुओंके सींगसे यह यन्त्र तैयार किया जाता है । यह वाद्ययन्त्र बहुत प्राचीन है । यहाँ तक, कि यह शुषिर यन्त्रका आदि यन्त्र कहा जा सकता है । भून भावन भवानीपति शंकर सर्वदा इस यन्त्रका व्यवहार करते थे । उक्त पशुओंके सिंगके पतले भागमें एक छोटा सा छेद करके, उसीमें सुँह लगा कर इसे बजाते हैं ।

रणविगा ।

रणसिंगका आकार बहुत बड़ा होता है । यह यन्त्र पीतलादि धातुओंसे तैयार किया जाता है एवं मुखसे फूँक कर बजाया जाता है । रणक्षेत्रके मध्य सैनिकोंके कोलाहलमें यादुययन्त्र द्वारा जिस समय सैनिकोंको प्रोत्साहित, आह्वान अथवा किसी प्रकारका इशारा करनेकी सम्भावना रहती है, उसी समय यह यन्त्र व्यवहृत होता है । इसकी सांकेतिक ध्वनिके द्वारा सेना अपने सेनापतिका अभिप्राय आसानीसे समझ लेती है । यह यन्त्र रणक्षेत्रमें बजाया जाता है, इसी लिये यह रणसिंगा कहलाता है ।

रामविगा ।

रामसिंगा भी धातुका बना हुआ एक बहुत बड़ा कुण्डलाकार यन्त्र है । इसका व्यास रणसिंगीकी अपेक्षा बड़ा होनेके कारण इसका स्वर भी उसकी अपेक्षा बहो गम्भीर होता है । यह यन्त्र रणसिंगीकी वादन-प्रणालीसे ही बजाया जाता है । यह यन्त्र वेणुवसम्प्रदायके महोत्सवादिमें अधिक व्यवहृत होता है ।

तुरही ।

तुरहीका आकार सीधा होता है । यह पीतलकी बनी होती है । यद्यपि इसके द्वारा सैन्यप्रोत्साहादि कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता, तथापि रणक्षेत्रमें ही इसका व्यवहार होता है । कभी कभी यह नौवतखानेमें भी बजाई जाती है । इसका आकार रणसिंगीसे कुछ छोटा होता है । यह यन्त्र रणसिंगीकी वादन-प्रणालीसे बजाया जाता है ।

मेरी ।

मेरीका दूसरा नाम दुन्दुभि है । यह देखने में बहुत कुछ दूरबीक्षणयन्त्रके समान होता है । इस यन्त्रके नलके भीतर एक और नल इस कीशब्दसे घुमाया रहता है, कि बजानेके समय हाथके सञ्चलन द्वारा इससे नाना प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र प्राचीन समयमें युद्धयन्त्रमें ही गिना जाता था । किन्तु इस समय नौवतके बजानेके बाद यह यन्त्र बजाया जाता है ।

शङ्ख ।

शङ्ख दूसरे यन्त्रोंकी तरह मनुष्योंके हाथका बनाया धत नहीं है । यह एक प्राकृतिक यन्त्र है । समुद्रमें शंख नामक एक प्रकारका जानवर होता है । प्रकृति ने उसके षाच्छादनीकोषकी इस ढाँचिसे तैयार कर रखा है, कि लोग उसके ऊपरी भागमें सिर्फ एक छोटा सा छिद्र करके वाजा बना लेते हैं । शंख बहुत प्राचीन यन्त्र है । यह इस समय केवल मंगल-कार्यमें ही बजाया जाता है, किन्तु प्राचीनकालमें युद्धके समय ही इसका अधिक व्यवहार होता था । इस यंत्रके मुखमें एक अंगुल प्रमाण छेद करना पड़ता है । इस यंत्रके बजानेके लिये उसी छेदमें पूरी ताकतसे फूँकना पड़ता है । यह यंत्र जितनी ताकतसे फूँक जाता है, ध्वनि भी उतनी ही ऊँची होती है । प्राचीन कालमें मनुष्य पूरे बलवान होते थे, इसलिये उस समयके लोगोंके शंखकी आवाज बड़ो गम्भीर होती थी । यहाँ तक कि उस समयके यूरोंके शंखकी गम्भीर ध्वनिले लोगोंका कलेजा काँप उठता था ।

तिचिरी ।

आधुनिक तुपड़ी ही पहले तिचिरीके नामसे विख्यात

कमिष्ठामुलिकी परिधि को अवेता अधिच होना सोर नदी, यह आठ भंशुदो ले कर एक हाथ तक लम्बी होती है । इसका निर्माण प्रायः बन्ध तथा बायोनाम गुला रहता है । प्रायः मुगमें धोरुण्य जो घंशो बजाते थे, लोग उमें ही मुग्यो कहते हैं । घंशोके ऊपरीभागमें प्रायः तीन अंगुल लंबी जो अवेताकन एक बड़ा छिद्र रहता है, उसका नाम कुतकारम्भ या कूंकनेका छिद्र है । कुतकारम्भके प्रायः पार संशुज लंबे घेरती मुदलीके बराबर छः स्वरके छिद्र होते हैं । घंशोकी दोनी हाथोंके अंगुठे और तर्जनीके मध्यभागमें एकदू कर दोनी हाथोंकी जनामिका, मज्जा भी तर्जनी, इन छः अंगुठियोंके द्वारा इसकी यादन-क्रिया नियन्त्रण की जाती है । कुतकारम्भमें कूंक कर एक पूर्वीक छः स्वरके छिद्रों पर एक अंगुलिनी वा भावदवकानुसार संशान्द करते हुए यादक अपने स्थानानुसार गाना बजाते हैं । यह यत्र धोरुण्यका बड़ा प्यार था, इसलिये कई स्थानों तो उन्हें 'दा' इसका निर्माण बजाते हैं । इस समय यह यत्र मित्र मित्र दोनोंमें मित्र मित्र आकारमें बहल कर अनेक नामसे विख्यात हो गया है । जो कुछ भी हो, किन्तु भारतवर्ष में ही पहले बहल इसका स्वरि धरे, इसमें कुछ भी लम्बे नदी ।

एक घंशो :

सखलघंशोके आकारादि प्रायः मुग्योके समान ही होते हैं, विधि तथा केवल इसकी हा है, कि मुग्योके कुतकारम्भमें कूंक कूंक कर स्वर निकाले जाते हैं और इसके कुतकारम्भमें न कूंक कर घंशोके लुने निराधारणकी दो मुगमें कूंक कर स्वर निकालते हैं । इसके कुतकारम्भमें वायु निर्गत होती है, इसलिये इस छिद्रकी कुतकारम्भ न बंद कर वायुम्भ बंदना ही युक्तिमंगत है । मुग्यो जिस प्रकार बहलभावसे एकदो जाती है, यह उस प्रकार एकदो नहीं जाती । इसे सखलघंशोके दो एकदू कर बजाते हैं ; इसीलिये यह सखलघंशोके नामसे विख्यात है । इसकी यादन प्रणाली मुग्योके समान ही होती है ।

अधरुण्य :

अधरुण्य सखलघंशोके (छिद्र) निराली सुदना है :

किन्तु इसमें वायुम्भ नदी होता । इसकी भीतर सखलघंशोकी यादन प्रणाली एक-सो होती है । यदि कुछ अन्तर है, तो इतना ही, कि इसे मुगके एक पारसे एकमात्रसे एकदू कर बजाता होता है ।

जनम ।

कलमका आकार बहुत कुछ बरगोके जनमके आकारमें मिलता जुड़ता है, इसलिये यह जनमके नामसे विख्यात है । इसकी सख्याई अल्पव्यय संज्ञियोंकी अवेता कुछ छोटी होती है, किन्तु स्वरछिद्रादि घंशोके बराबर ही होते हैं । यह यत्र सखलघंशोकी रीतिमें ही बजाई जाती है । इन दोनोंकी यादन-प्रणालीमें अंतर यह है, कि सखलघंशो कूंक कर बजाई जाती है और इसके निराधारणकी दोनी भोडोंसे एकदू कर बजाते हैं । इसके मुग भागमें एक छोटा-सा तल रहता है बजावके पहले उस तलकी मुगके भूकसे तल कर लेना पड़ता है ।

रोमन्घोकी ।

रोमन्घोकीका आकार देलनेमें धरुण्यके फूडके समान होता है । इस यत्रका ऊपरी भाग स्थानके काठका बना होता है और मोचला नाम पीतल आदि धातुओंका । किसी किसी रोमन्घोकीका सार भंग लकड़ीका ही बना रहता है । इसकी सख्याई बंगालमें प्रायः एक हाथमें अधिच नदी होती, किन्तु कानो, लक्ष्मण आदि प्रान्तोंमें यह बंगालकी रोमन्घोकीकी अवेता करी बड़ी होती है । इसके मुगमें एक तल लगा रहता है । यादक इस तलकी अपने मुगमें ले कर बजाते हैं । इस यत्रका आकार जितना लम्बा होगा, भाषागत उतनी ही गीबो होगी । रोमन्घोकी स्वरद्वयके साथ बजाई जाती है ।

दरुण्य ।

इदनाई और रोमन्घोकी दोनोंके ही आकारादि मनों विषयोंमें एक-सो होते हैं, केवल स्वरकी सामान्य दृष्टवृत्तके कारण मित्र मित्र नामसे विख्यात है । ये दोनों यत्र एक ही रीतिमें बजाये जाते हैं । रोमन्घोकीका स्वर इदनाईकी अवेता कुछ ऊंचा होता है । इन दोनों यत्रोंमें अन्तर यह है, कि रोमन्घोकी स्वरद्वय का स्वरद्वयके साथ बजाई जाती है और इदनाई केवल एक साथ ।

वेणु ।

वेणुयन्त्र वेणु अर्धात् बाँसका बना होता है ; इसी-
लिये इसका नाम वेणु पड़ा होगा । इसकी लम्बाई घंशो
जातीय समी प्रकारके यन्त्रोंकी अपेक्षा बड़ी होती है ।
इस यन्त्रमें एक तरफ छः और दूसरी तरफ एक छिद्र
होता है । इसकी वादन प्रणाली स्वतंत्र है । वादक इस
यन्त्रको किञ्चित् धकमाँघसे पकड़ कर एवं मुखको कुछ
टेंदा कर, आहिस्ते आहिस्ते फूँक कर बजाते हैं । फुत्कार
के तारतम्यानुसार नाना प्रकारके स्वर निकाले जा सकते
हैं । यह यन्त्र बहुत आसानीसे बजाया जाता है । प्रयाण
वादक इससे बहुत ही मधुर स्वर निकाल सकते हैं ।

सिंगा ।

गाय, गह्विप आदि लम्बे सो'गवाँले पशुओंके सो'गसे
यह यन्त्र तैयार किया जाता है । यह वाद्ययन्त्र बहुत
प्राचीन है । यहाँ तक, कि यह शुपिर यन्त्रका आदि यन्त्र
यहाँ जा सकता है । भून भावन भवानीपति शंकर
सर्वदा इस यन्त्रका व्यवहार करते थे । उक्त पशुओंके
सिंगके पतले भागमें एक छोटा सा छेद करके, उसीमें
सुई लगा कर इसे बजाते हैं ।

रणसिंगा ।

रणसिंगेका आकार बहुत बड़ा होता है । यह यन्त्र
पीतलादि धातुओंसे तैयार किया जाता है एवं मुखसे
फूँक कर बजाया जाता है । रणक्षेत्रके मध्य सैनिकोंके
कोलाहलमें वाद्ययन्त्र द्वारा जिस समय सैनिकोंकी
प्रोत्साहित, आह्वान अथवा किसी प्रकारका इशारा करने-
की सम्भावना रहती है, उसी समय यह यन्त्र व्यवहृत
होता है । इसकी सांकेतिक ध्वनिके द्वारा सेना अपने
सेनापतिका अभिप्राय आसानीसे समझ लेती है । यह
यन्त्र रणक्षेत्रमें बजाया जाता है, इसी लिये यह रणसिंगा
कहलाता है ।

रामसिंगा ।

रामसिंगा भी धातुका बना हुआ एक बहुत बड़ा
कुण्डलाकार यन्त्र है । इसका व्यास रणसिंगेकी अपेक्षा
बड़ा होनेके कारण इसका स्वर भी उसकी अपेक्षा बहो
गम्भीर होता है । यह यन्त्र रणसिंगेकी वादन-प्रणालीसे
ही बजाया जाता है । यह यन्त्र वैष्णवसम्प्रदायके महो-
त्सवादिमें अधिक व्यवहृत होता है ।

तुरी ।

तुरहीका आकार सीधा होता है । यह पीतलकी बनी
होती है । यद्यपि इसके द्वारा सैन्यप्रोत्साहादि कोई
कार्य सम्पन्न नहीं होता, तथापि रणक्षेत्रमें ही इसका
व्यवहार होता है । कभी कभी यह नौवतखानेमें भी
बजाई जाती है । इसका आकार रणसिंगेसे कुछ छोटा
होता है । यह यन्त्र रणसिंगेकी वादन-प्रणालीसे बजाया
जाता है ।

मेरी ।

मेरीका दूसरा नाम दुन्दुभि है । यह यन्त्रने ने बहुत
कुछ दूरवीक्षणयन्त्रके समान होता है । इस यन्त्रके
नलके भीतर एक और नल इस कीशब्दसे घुमाया रहता
है, कि बजानेके समय हाथके सञ्चलन द्वारा इससे नाना
प्रकारके स्वर निकाले जा सकते हैं । यह यन्त्र प्राचीन
समयमें युद्धयन्त्रमें ही गिना जाता था ; किन्तु इस समय
नौवतके बजानेके बाद यह यन्त्र बजाया जाता है ।

शङ्ख ।

शङ्ख दूसरे यंत्रोंकी तरह मनुष्योंके हाथका बनाया
यंत्र नहीं है । यह एक प्राकृतिक यन्त्र है । समुद्रमें शंख
नामक एक प्रकारका जानवर होता है । प्रकृति ने उसके
आच्छादनीकोषको इस ढाँचसे तैयार कर रखा है, कि
लोग उसके ऊपरी भागमें सिर्फ एक छोटा सा छिद्र
करके बाजा बना लेते हैं । शंख बहुत प्राचीन यन्त्र
है । यह इस समय केवल मंगल-कार्यमें ही बजाया जाता
है, किन्तु प्राचीनकालमें युद्धके समय ही इसका अधिक
व्यवहार होता था । इस यंत्रके मुखमें एक अंगुल
प्रमाण छेद करना पड़ता है । इस यंत्रके बजानेके लिये
उसी छेदमें पूरी ताकतसे फूँकना पड़ता है । यह
यंत्र जितनी ताकतसे फूँका जाता है, ध्वनि भी उतनी ही
ऊँची होती है । प्राचीन कालमें मनुष्य पूरे बलयान होते
थे; इसलिये उस समयके लोगोंके शंखकी आवाज
बहो गम्भीर होती थी । यहाँ तक कि उस समयके
घोरोंके शंखकी गम्भीर ध्वनिले लोगोंका कलेजा काँप
उठता था ।

तित्तरी ।

आधुनिक तुपड़ी ही पहले तित्तरिके नामसे विख्यात

को । इस पत्रमें निजलाजक अथवा होना है । इसलिये इसका नाम निजलो पत्रा होगा, यही कि निजला नाममें निजलाजक विचित्र भाषामान मान्य पत्रा है । निजलाजके निजले हिस्सेमें दो मन्त्र लगे रहते हैं । उन दोनों मन्त्रोंमें स्वर्-छिद्र रहते हैं । निजलाजके ऊपर भागमें एक छोटा-सा छिद्र रहता है, उसी छिद्रमें कृत्क कर यह पत्र बजाया जाता है । किन्तु निजलो पत्र इस मन्त्रों से बजा कर नकारके बजाते हैं । प्रायोगिक बालमें प्राणि लोग अन्धकारके बन्धने मृगके समझते यह पत्र नीवार करने से । उस समय यह निजलो पत्र घनमें जोड़े नामसे विषयात् था । इस पत्र में जो दो मन्त्र लगे रहते हैं, उनमें पहले सुर मन्त्र जाता है और दूसरेके द्वारा इच्छानुसार स्वर निकाला जाता है ।

घनपत्र ।

भौंवर, चण्डा, बौंरो, घंटा, छाटी घण्टी, जुपुद, मत्तौरा, बरनागी, पट्टनामो, रामबरनाला और सतलसव ता मन्त्ररंग इत्यादि पत्र घनपत्रमें गिने जाते हैं । ये सब पत्र मोटे, ऊँचे, बीच प्रयुक्त धातुओंसे नीवार दिये जाते हैं ; किन्तु इनके नामसे छान होता है, कि प्रायोगिक बालमें ये पत्र मोटेके बने होते थे । कारण यह है कि मोटेका दुर्भवा नाम घन है पर्यं इस धातुमें नीवार होनेके कारण हो यदि इसका नाम घन रखा गया हो, तो बौंरो आश्चर्य नहीं । जो कुछ भी हो, किन्तु इसमें स्वर्-छिद्र नहीं, कि घनपत्र बहुत प्रायोगिक है, यहाँ मन्त्र, कि धातुओंके आधिकारके समर्थ हो इसका व्यवहार होता था रहा है । घनपत्रके अधिकांश ही स्वर्णमय हैं ; केवल मत्तौरा, बरनामो, बौंरो और पट्टनामो अथवा पत्रके साथ बजाते जाते हैं ।

भाषा ।

भौंवरका आकार पहले आकारों बहुत कुछ मिलता जुलता है । इसका किनारा ऊँचा और समतल होता है । इसके किनारेमें ही छिद्र होने है । उन दोनों छिद्रोंमें ही कर एक छोटी बंधा रहती है । कदाच उम छोटीकी काट हाथों पर कर इस पत्रकी ध्वनिके दूर दूरिसे हाथों पर कर पत्रों के द्वारा न पत्र करके दोगे

बजाते हैं । प्रायोगिक बालमें यह पत्र बौंरो की ध्वनिके समीप नीवार किया जाता हो । किन्तु इस पत्र पर पाया मन्त्र ही काँसेका बनाया जाता है । भौंवर बहुत प्रायोगिक पत्र है । इसका आकार इसका काँसे नाम ही दे रहा है । इस पत्रमें केवल भौंरो ही निकलता है, इसीलिये यह पत्र भौंवरके नामसे निकलता है । यह पत्र पहले दूराहातादि कार्योंमें व्यवहार होता था ; किन्तु इस समय यह केवल देवताओंके उन्मेषोंमें ही बजाया जाता है । किन्तु किन्तु अन्धकारों यह बौंवर कहलाता है ।

पट्टी ।

पट्टी काँसेकी बनी होती है । इसका आकार मोटे और कुछ मोटा होता है । इसके किनारोंमें एक छिद्र रहता है । उस छिद्रमें एक छोटी बंधी रहती है । वादक उस छोटीकी बंधि हाथों पर कर पत्र किन्तु ऊँचे स्थानमें लटक कर दाहिने हाथों पर एक लकड़ीके टुकड़ेमें पत्र पर आयात करने, इसकी वादनक्रिया निष्पन्न करते हैं । यह पत्र देवताओंकी आराधने समयमें दूर हाथ, संवाद भाषण एवं समयके अन्त्यमें व्यवहार होता है । समपनिकरक पट्टीका आकार कुछ बड़ा होता है ।

बौंरो ।

बौंरो देवमें प्रायः भौंवरके समान ही होता है । इसके किनारोंमें भी एक छिद्र रहता है जिसमें एक बंधी बंधी रहती है । वादक उस छोटीकी बंधि हाथों पर कर और दाहिने हाथों पर छोटे लकड़ीके टुकड़े द्वारा पत्र पर आयात करते बजाते हैं । यह पत्र लज्ज, देव उन्मेषादि भाषण पत्रोंके साथ बजाया जाता है ।

घंटा ।

घंटेका आकार बौंवरके बंधेकी तरह मोटा होता है । इसके मध्यक पर एक लकड़ी रहता है, इस लकड़ीके मध्य भागका कुछ अंश पत्रमें जुड़ा रहता है तथा इसी पर छिद्र और उस छिद्रके साथ एक क्षीणिकार भागमें निम्न लोहाका एक छोटा भाग लकड़ीके टुकड़ेका बंधि हाथों पर कर कर अन्त्यमें करते ही वादनक्रिया निष्पन्न होती है । यह पत्र देवपूजाके समय ही व्यवहार होता है ।

सुदृढपिठका या घुंघरू।

घुंघरू पीतलका बना होता है। इसका आकार छोटा घकलू जैसा, पर खोखला होता है। भीतरमें बहुत छोटी सोसेकी गोली रहती है। कुछ घुंघरूगोंको एक साथ रस्सीमें बांध कर पांयमें पहनना होता है। चलते वा नाच करते समय उससे एक प्रकारकी अस्फुट ध्वनि निकलती है।

नूपुर।

नूपुर कांसेका बना होता है। इसकी बनायट कुछ टेढ़ी होती है, देखनेमें यह बहुत कुछ पाजेबके जैसा लगता है। इसके भीतर भी घुंघरूकी तरह छोटी छोटी सोसेकी गोलियां रहती हैं। यह प्रायः ताण्डवनृत्यमें ही व्यवहृत होता है।

मन्दिरा।

मन्दिरा या मञ्जीरा कांसेकी बनी हुई छोटी छोटी कटोरियोंकी जोड़ी है। उनके मध्यमें छेद होता है। इन्हीं छेदोंमें डेरा पहना कर उसकी सहायतासे एक कटोरीसे दूसरी पर चोट दे कर सङ्गीतके साथ ताल देते हैं। यह यंत्र सुदृढ़, तयशा और डोलक आदि आनन्द बाजोंके साथ ताल देनेके लिये व्यवहृत होता है। इसका दूसरा नाम जोड़ी भी है।

करवाली।

पद्मपत्र सदृश गोलाकार कांसेका बना हुआ पतला समतल यन्त्र करताली कहलाता है। यह एक तरहकी दो करताली होती है। इसका मध्यभाग कुछ उठा होता है। इसके बीचमें छेद रहता है, उस छेदमें रस्सी बंधी होती है। रस्सीकी उंगलीमें लपेट कर दोनों करताली दोनों हाथों बजाई जाती है। यह यंत्र आनन्दयंत्रके साथ व्यवहृत होता है।

पटताली।

पटतालीकी हिन्दीमें चटताली और चङ्गलामें चर-ताली कहते हैं। यह कठिन लोह (इस्पात) से बनाई जाती है। इसकी लम्बाई आध विलश्न है, दूध-दहन मोटी नहीं, पीठ मोल और पीठ समतल, मध्यस्थरसे दोनों ओरका अग्रभाग क्रमशः सूक्ष्म होता है। बजाने समय चार पटतालियां एक साथ व्यवहृत होती हैं। दोनों हथेली

पर दो दो पटतालियां रख कर उंगलीसे बजाने हैं। इसका बजाना बहुत कठिन है, इस कारण इसके बजानेवाले बहुत कम मिलते हैं। प्लेयतान-वादनके साथ इसका वाद्य सुन्दर मान्य होता है।

रामकरताली।

करतालीसे कुछ बड़े यन्त्रको राम-करताली कहते हैं। इसके वादन आदि अन्याय्य विषय करतालीके समान होते हैं।

सतसराव या जत्रतरङ्ग।

यह यन्त्र प्रथम सृष्टिकालमें कांस्यादि धातु अथवा एक एक पडजादि सप्तस्वरविशिष्ट और अनुरणात्मक पदार्थके बने हुए सात सराय वा टकनसे बनाया जाता था, इस कारण इसे सप्तसराव कहते थे। पीछे जय उसके बदले चीनी मिट्टीके सात कटोरेमें आद्यशक्तानुसार जल डाल कर सात स्वर मिला लेनेकी प्रथा आदिष्टत हुई, -भीसे यह सप्तसराव नामके बदलेमें जल-तरङ्ग कहलाने लगा है। अभी सात कटोरेका व्यवहार न हो कर जिससे ढाई सप्तक स्वर पाये जायं उतने ही कटोरेका व्यवहार देखनेमें आता है। यह यन्त्र बजानेके समय वादक उन कटोरेकी शब्द चन्द्राकारमें सत्ता कर रखते हैं और दोनों हाथोंसे दो छोटे मुटुगर, दण्ड वा लकड़ोंके आघात द्वारा उन कटोरेकी बजाते हैं। इसमें शब्दानुसार गतादि बजाये जाते हैं, इस कारण यह यंत्र स्वतःसिद्ध यन्त्रमें गिना गया है। इसका वाद्य सुननेमें बहुत मधुर होता है, किन्तु विना सम्प्राप्तके बजानेसे यह ध्रवणमधुर न हो कर ध्रवणरुद्ध होता है।

इसके सिवा भारतवर्षमें और भी अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंका प्रचलन देखा जाता है। इन यन्त्रोंमें कोई प्राचीन देश यंत्रोंके संयोगसे, कोई वैदिक यंत्रविशेषके अनुकरण पर और कोई प्राचीन और आधुनिक देश यंत्रोंके संमिश्रणसे उत्पन्न हुआ है।

शिलाविज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ यूरोपपरण्डमें अनेक प्रकारके वाद्ययंत्रोंकी भी उत्पत्ति हुई है तथा उस नये आविष्कारके साथ ही उनका संस्कार और उन्नति होती जा रही है। यद्यपि उन सब यंत्रोंका विशेष परिचय न दे कर फेचल कुछ यंत्रोंके नाम और उनके इतिहास दिये जाते हैं—

कां । इस समयमें निजवाक्य पराहण होता है । इसप्रकारे इसका नाम निमित्तो पड़ा होगा, क्योंकि निमित्तो अर्थमें निजवाक्यका विविक्त आभास मान्य पड़ता है । निजवाक्यके निमित्तो द्वितीये दो मन्त्र लगे रहते हैं । इन दोनों मन्त्रोंमें ३ अक्षर-छिद्र रहते हैं । निजवाक्यके रूपमें आगमें वह छोटा-सा छिद्र रहता है, उसी छिद्रमें दूध भर कर वह पत्र बजाया जाता है । किन्तु अंगम इसी मुखमें ग बजा कर माथमें बजाये है । प्राचीन जालमें प्राण शिवा अन्त्यापूर्वके रहते मृगके समझते यह पत्र तैयार करते थे । उस समय यह निमित्तो मन्त्र चामेचनीके नामसे विप्रवात था । इस पत्र में जो दो मन्त्र लगे रहते हैं, इनमें एकसे सुर भरा जाता है और दूसरेके द्वारा इन्द्रानुमात् स्वर निकाला जाता है ।

पञ्चमः ।

अर्धरत्न, पट्टो, क्रीमो, गंडा, छोटो पट्टो, नूपुर, मसोरा, बरगानी, पट्टमालो, सामकरनागा और मसरासक वा मन्त्ररथेण इत्यादि पत्रे पञ्चमं तमे गिते ज्ञाने हि । ये सब पत्र लोहे, चाँदे, बौध्म प्रभृति धातुओंमें तैयार किये जाते हैं ; किंतु इनके नामसे छान्त होता है, कि प्राचीन जालमें ये पत्र लोहेके बने होते थे । कारण यह ही कि गंधिका दुमरा नाम पत्र है एवं इस धातुमें तैयार होनेके कारण ही यदि इनका नाम पत्र रखा गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं । जो कुछ भी हो, किंतु हममें सर्वदेह महां, कि मन्त्ररथ बहुत प्राचीन है, यही मन्त्र, कि धातुओंके आविष्कारके समयमें ही इसका व्यवहार होता था ; रहा है । मन्त्ररथके अविद्योग ही अन्त्यापूर्व है ; वे पत्र मसोरा, बरगानी, क्रीमो और पट्टमालो मन्त्ररथके साथ बजाये जाते हैं ।

साधारः ।

अर्धरत्न नामक पट्टो मन्त्ररथे बहुत बृहत्तमया पुराणा है । इसका किन्तु, ऊँचा और समतल होता है । इसके किनारोंमें दो छिद्र होते हैं । उन दोनों छिद्रोंमें दो बर पत्र छोड़े बंधा रहती है । बाहर उभय छिद्रोंकी बरें हाथमें पकड़ कर इस मन्त्ररथे मुखमें हुए अर्धरत्न दोपले पर रखना ; उदें द्वारा आघात करने एवं

बजाये है । प्राचीन जालमें यह पत्र हिमो में धातुके अर्धो ग तैयार किया जाता है ; किन्तु इस मन्त्ररथ पर प्रायः सर्वत्र ही कर्मिका बनाया जाता है । अर्धरत्न बहुत प्राचीन पत्र है । इसका मन्त्रो एवमा अर्धरत्न नाम ही दे रहा है । इस पत्रमें केवल अर्धो मन्त्र निकलता है, इसीप्रकारे यह पत्र अर्धरत्नके नामसे विप्रवात है । यह पत्र पट्टो मूलाहारादि कर्मोंमें व्यवहृत होता था ; किंतु इस समय यह केवल देवताओंके मन्त्ररथोंमें ही बजाया जाता है । किन्तु किन्तु मन्त्ररथोंमें यह भी मन्त्र बजाया जाता है ।

पट्टो ।

पट्टो कर्मिको बनी होती है । इसका आकार दोन और कुछ मोटा होता है । इसके किनारोंमें एक छिद्र रहता है । उस छिद्रमें एक छोटी थेंबी रहती है । बाहर उस दोनोकी बरें हाथमें पकड़ कर मन्त्ररथ किन्तु अर्थमें मन्त्ररथोंमें लटकना पर दाहिने हाथमें एक मन्त्ररथके अर्धरत्नमें पत्र आघात करने इसके पार्श्वस्थित मन्त्ररथ करने है । यह पत्र देवताओंको मन्त्ररथोंमें मन्त्ररथ मूलाहारा, सर्वपाद ज्ञापन एवं मन्त्ररथोंके अन्त्यापूर्व मन्त्ररथ होता है । मन्त्ररथरूपक पट्टोका आकार बृहत् पड़ा होता है ।

क्रीमोः ।

क्रीमो देवतामें प्रायः अर्धरत्नके समान ही होता है । इसके किनारोंमें जो एक छिद्र रहता है किन्तु एक थेंबी बंधी रहती है । बाहर उस छिद्रोका बरें हाथमें पकड़ और दाहिने हाथमें एक छोटे मन्त्ररथके अर्धरत्न पत्र पर आघात करने बजाये है । यह पत्र दक्ष, देव इत्यादि मन्त्ररथ मन्त्रोंके साथ बजाया जाता है ।

गंडाः ।

पट्टिका आकार कर्मिके पट्टोकी तरह शिवा होता है । इसके मन्त्ररथ पर एक मन्त्र रहता है, उस मन्त्रके मूलाहारा बृहत् मन्त्र मन्त्रोंमें मूलाहारा है तथा इसमें एक छिद्र और उभय छिद्रके साथ एक क्रीमोका मन्त्ररथ मन्त्ररथ मन्त्ररथ द्वारा आघात रहता है । पट्टोका बरें हाथमें पकड़ कर मन्त्ररथ मन्त्ररथोंका मन्त्ररथ मन्त्ररथ होता है । यह पत्र देवताओंके मन्त्ररथोंमें लटकना होता है ।

सुदृष्यपिठकां वा धुंधरु ।

धुंधरु पीतलका बना होता है। इसका आकार छोटा घड़ल जैसा, पर खोखला होता है। भीतरमें बहुत छोटी सीसेकी गोली रहती है। कुछ धुंधरुओंके एक साथ रस्सीमें बांध कर पांयमें पहनना होता है। चलते वा नाच करते समय उससे एक प्रकारकी अस्फुट ध्वनि निबलती है।

नूपुर।

नूपुर कांसेका बना होता है। इनकी बनावट कुछ टेढ़ी होती है, देखनेमें यह बहुत कुछ पाजेषके जैसा लगता है। इनके भीतर भी धुंधरुकी तरह छोटी छोटी सोनेकी गोळियां रहती हैं। यह प्रायः ताण्डवनृत्यमें ही व्यवहृत होता है।

मन्दिरा।

मन्दिरा या मञ्जीरा कांसेकी बनी हुई छोटी छोटी कटोरियोंकी जोड़ी है। उनके मध्यमें छेद होता है। इन्हीं छेदोंमें डोरा पहना कर उसकी सहायतासे एक कटोरीसे दूसरी पर चोट दे कर सङ्कीर्णके साथ ताल देने हैं। यह यंत्र मृदङ्ग, तबला और ढोलक आदि आनन्द बाजोंके साथ ताल देनेके लिये व्यवहृत होता है। इसका दूसरा नाम जोड़ी भी है।

करताली।

पद्मपत्र सदृश गोलाकार कांसेका बना हुआ पतला समतल यन्त्र करताली कहलाता है। यह एक तरहकी दो करताली होती है। इसका मध्यभाग कुछ उठा होता है। इसके बीचमें छेद रहता है, उस छेदमें रस्सी बंधी होती है। रस्सीको उंगलीमें लपेट कर दोनों करताली दोनों हाथों बजाई जाती हैं। यह यंत्र आनन्दयंत्रके साथ व्यवहृत होता है।

पट्टाभी।

पट्टाभीकी हिन्दोमें बटनाली और बङ्गालमें खरताली कहते हैं। यह कठिन लोह (इस्पात) से बनाई जाती है। इसकी लम्बाई आध यिल्लन है, देह बहुत मोटी नहीं, पीठ गोल और पेट समतल, मध्यस्थसे दोनों ओरका अग्रभाग क्रमशः सूक्ष्म होता है। यज्ञाने समय चार पट्टालियां एक साथ व्यवहृत होती हैं। दोनों हथेली

पर दो दो पट्टालियां रख कर उंगलीसे बजाने हैं। इसका बजाना बहुत कठिन है, इस कारण इसके बजानेवाले बहुत कम मिलते हैं। ऐश्वतान-वादनके साथ इसका वाद्य सुन्दर मालूम होता है।

रामकरताली।

करतालीसे कुछ बड़े यन्त्रको राम-करताली कहते हैं। इसके वादन आदि अन्यान्य विषय करतालीके समान होते हैं।

चतुश्राव या जलतरङ्ग।

यह यन्त्र प्रथम सृष्टिकालमें कांस्यादि धातु बाधया एक एक पडजादि सप्तस्वरविशिष्ट और अनुरणात्मक पदार्थके बने हुए सात सराय वा ढकनसे बनाया जाता था, इस कारण इसे सप्तसराय कहते थे। पीछे जब उसके बदले चीनी मिट्टीके सात कटोरेमें आद्यश्रयकता-नुसार जल डाल कर सात स्वर मिला लेनेकी प्रथा आविष्कृत हुई, -भीसे यह सप्तसराय नामके बदलेमें झल-तरङ्ग कहलाने लगा है। अभी सात कटोरेका व्यवहार न हो कर जिससे ढाई सतक स्वर पाये जायं उतने ही कटोरेका व्यवहार देखनेमें आता है। यह यन्त्र बजानेके समय वादक उन कटोरेोंकी अर्द्धचन्द्राकारमे सजा कर रखते हैं और दोनों हाथोंसे दो छोटे मुडगर, दण्ड वा लकड़ोके आघात द्वारा उन कटोरेोंकी बजाते हैं। इसमें शृङ्खलानुसार गतादि बजाये जाते हैं, इस कारण यह यंत्र स्वतःसिद्ध यन्त्रमें गिना गया है। इसका वाद्य सुननेमें बहुत मधुर होता है, किन्तु विना अभ्यासके बजानेसे यह श्रवणमधुर न हो कर श्रवणकटु होता है।

इसके सिवा भारतवर्षमें और भी अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंका प्रचलन देखा जाता है। इन यन्त्रोंमें कोई प्राचीन दो यन्त्रोंके संयोगने, कोई वैदिक यन्त्रविशेषके अनुकरण पर और कोई प्राचीन और आधुनिक दो यन्त्रोंके संमिश्रणमे उरयत्र हुआ है।

शिलाविज्ञानकी उन्नतिके साथ साथयूरोपम्वएडमें अनेक प्रकारके वाद्ययंत्रोंकी भी उत्पत्ति हुई है तथा उस नये आविष्कारके साथ ही उनका संस्कार और उन्नति होती जा रही है। यद्यपि उन सब यंत्रोंका विशेष परिचय न दे कर बसल कुछ यंत्रोंके नाम और उनके इतिहास दिये जाते हैं—

वर्द्धितव--आर्ये वदन्ते शीतदेशेभ्य इमं वंशका
वदन्त्याः होला भा । वर्द्धितवकायमे तमेभो शीत प्राग्भ्ये मः
वद वंश वनाया ज्ञाना हे । मन् १८२८ ई०मे इहूनीयमे
इयका प्रचार हुआ ।

श्रीविक्रमशायो--यत्र ज्ञानाय तन्मुनिभिश्च एक प्रचार-
को घोला हे । अथवा ज्ञानक वंशनिर्माणा सुमनिस
प्राप्त नरवाने इयका आविष्कार किया ; यत्र वंश
वास्तुवशास्त्रे हो ज्ञानाया ज्ञाना हे ।

पैत-शास्त्र--यत्र वदन्त पुत्राना वाचस्पत्य हे । हिम
शीत शीतमे इम वंशका वदन्त प्रचार था । भाज
भी नवाशरीरके हाशरीरके मे वद प्रचलित हे । ऐतमाकं
साधिसासी पदमे इम वंशके नवाशरीरके मे गये । इदानी,
पैतरीरके शीत शरीरके प्राग्भ्ये भी इम वंशका सर्वेष्ट
प्रचारा हुआ ज्ञाना हे ।

पैतमयुग--वास्तुनिमित्त एक प्रचारका वाचस्पत्य हे ।
मिदर द्यायदेवमे इम वंशका इहूनीयमे प्रचार किया ।
यत्र कृक वर ज्ञानाया ज्ञाना हे ।

विगत--वदन्ते निवासो मेवा इम वाचस्पत्यका
प्रचारा प्रथम थे । अतो वास्तुनि-वाचस्पत्यके भाज-
भुंका हो नर इम वंशको वदन्त उच्यते हो महे हे ।

वास्तुनिमित्त--मुर शीत शीतमे वद इम शीत वंशको
वना भा ज्ञाना प्रथमे हे । यत्र यत्र नवाशरीरको वीर-
काया हो ।

वस्तुनिमित्त--१८२१ ई०मे ऐतरीय श्रुतियोंमे इम
वाचका आविष्कार कर अर्धे ज्ञान पर इयको श्रुतियों
हो ।

वर्द्धितव--यत्र प्रचारका मन्तो वास्तुनिमित्त । सुग्रीवो
शरीरका इयका प्राग् वदन्त मंत्र होला हे ।

श्रीविक्रमशायो--यत्र प्रचारको वंशको १७०मे मन्तोके
इम प्राग्भ्ये ऐतरीय प्राग् वदन्ते मन्तोके वदन्ते इम
वाचका आविष्कार किया । मन् १८२१ ई०मे इहूनीयमे
इयका प्रचार हुआ ।

विगत--वदन्ते, यत्र वदन्त प्राग्भ्ये वदन्त हे ।
वर्द्धितव शरीरके वदन्त हे, कि मन्तोके वदन्ते इम
वाचका आविष्कार किया । विगत सुग्रीववास्तुनिमित्त
विगत महे कि कृके शीत शरीरके अथवा नवाशरीर
हे । अथवा वदन्ते वदन्त वदन्ते इम वाचका प्रचार हे ।
कृक--कृक वा वंश । श्रीविक्रमशायोके प्राग्भ्ये

पैतशास्त्रमे इयका आविष्कार किया था । इतिव शीत
सुग्रीवमे इयका प्रचार प्रचार हे । भाज भी सुग्रीव वंशका
प्रचारा होला हे ।

शीत--वास्तुनिमित्त वाचस्पत्य । शीतदेशमे इम
वाचस्पत्यका प्रचार हुआ शीत मन्तो इयका सर्वेष्ट प्रचार
हे । विगत मन्तो सुग्रीवमे इम वाचका इयका सर्वेष्ट
प्रचार था, कि वास्तुनि वास्तुनिमित्तको विगतमे अथवा
वाचा वदन्तको भी । शीतमे वा प्राग् वदन्ते हे । विगत
को सर्वेष्ट वदन्त ज्ञानाया ज्ञाना हे ।

श्रीविक्रमशायो--यत्र वाचके मन्तोमे इम प्रचारका
वाचस्पत्य ज्ञानाया ज्ञाना था । मन्तो इयका प्रचारा यत्र
मन्तोमे शीत हो गया हे ।

श्रीविक्रमशायो--वदन्तोका ज्ञाना हे, कि वदन्त वाच-
स्पत्य सुग्रीवमे आविष्कार हुआ हे ; किन्तु प्राग्भ्येमे विगत
मन्तो हे । सुग्रीववास्तुनिमित्तके इयका भाज सुग्रीवके वदन्त
वदन्ते प्राग्भ्ये मन्तोमे इयका प्रचार था । विगत मन्तोके विगत
मन्तोके एक श्रुतिये हो पदमे पदमे इयको उच्यते को ।

शायो--घोला ; वदन्त प्राग्भ्ये वदन्त हे । इयका शीत-
हाम वदन्ते विगत मन्तो हुआ हे । १७० ई०मे प्राग्भ्ये
शरणाभ्ये पैतरीय मन्तोको सुग्रीव विवेकियन प्रचारमे
इयको वदन्त उच्यते को ।

श्रीविक्रमशायो--वास्तुनिमित्त वाचस्पत्य । जर्मनीमे इम
वंशका आविष्कार हुआ । सुग्रीव सुग्रीवके प्रचाराभी
इम वंशको ज्ञानाया वदन्त प्रचार करत हे ।

श्रीविक्रमशायो--वदन्ते वदन्ते विगतवास्तुनिमित्तको सर्वेष्ट वाच-
स्पत्यविगत । विगतमे वदन्ते इयका वदन्त प्रचार था ।
किन्तु विगतमे वंशके आविष्कारके प्राग्भ्ये इयका प्रचार
कर हो गया हे । सुग्रीव मन्तोके वदन्ते मन्तो वदन्त विगत-
मन्तो था । सुग्रीव मन्तोमे इहूनीयमे इयका प्रचार हुआ था ।

वर्द्धितव शरीर--यत्र वदन्त शरीर वाचस्पत्य हे ।
इयका प्रचार वदन्त मंत्र होला हे । अतो इयका प्रचारा
वदन्त मंत्र होला हे ।

वाचस्पत्य--यत्र वंश भी कृक वर ज्ञानाया ज्ञाना
हे । वदन्ते मन्तो इयको वदन्त मन्तो होने, इयको वदन्त
कृक पर हो मन्तो प्रचार हे ।

वर्द्धितव--यत्र वदन्ते शरीर होला हे शीत शरीरके
वाचस्पत्य ज्ञानाया ज्ञाना हे ।

उयुस हार्प—यह बालकोंके खेलनेका वाद्ययंत्र है।
 स्पूट—यह गीटर या सितार आदि जैसा वाद्य-
 यंत्र है। सितारकी तरह बजाया जाता है। अति
 प्राचीन समयमें यह यंत्र प्रचलित था। प्राचीनतम
 अंगरेज-कवि चत्सारेके प्रथममें इस वाद्ययंत्रका उल्लेख है।
 गीटरके प्रचलनके बाद स्पूटका व्यवहार घट गया है।

लायर—तारविशिष्ट वाद्ययंत्रोंमेंसे यही वाद्ययंत्र
 सबसे प्राचीन है। इजिप्टके अधिवासियोंमें प्रवाद
 है, कि पृथिवी निर्माणके दो हजार वर्ष पीछे मर्करोदेवने
 इस यंत्रकी सृष्टि की। परिफेफानसके प्रथममें इस यंत्र-
 का उल्लेख देखा जाता है। प्रोसवासियोंने इजिप्ट
 वासियोंसे इस यंत्रका व्यवहार सीखा है। पहले लायर
 तीन तारोंसे बनाया जाता था। इसके बाद म्युजिनेने
 एक तार और बढ़ा दिया। पीछे आर्कियसने एक तार,
 लोनकने एक तार और सङ्गीतज्ञ पण्डितोंने एक और तार
 बढ़ा कर लायरको सप्तस्वरोंमें परिणत किया। पाथे-
 गेरसने इसमें एक और तार जोड़ दिया था। स्पारह
 तारों। लायर भी देखनेमें आता है। दयुनाईमें
 दामिस्ती नामक एक वाद्ययंत्रके निर्माताने घोड़ेके
 शिरकी हड्डीके साँचिमें एक लायर बनाया था।

ओ-यप—इसका दूसरा नाम इटवय है। यह यंत्र
 फूँक कर बजाया जाता है। इसकी आवाज मोठी और
 बहुत स्पष्ट होती है।

अफि-प टाइड—सन् १८४० ई०में यह वाद्ययंत्र आवि-
 ष्कृत हुआ। सर्टेंट नामक यंत्रकी उन्नतिके लिये इस
 यंत्रकी सृष्टि हुई थी।

अरगान—पाश्चात्य प्रदेशमें जितने प्रकारके वाद्ययन्त्र
 हैं, अरगान उनमें सबसे बड़ा और प्रधान है। बहुत दिन
 हुआ, इस वाद्ययंत्रकी सृष्टि हुई है। इसकी प्राचीन
 इतिहासका पता नहीं-लगता। इस जातिके यन्त्रमें
 ड्राडिनके काष्ठमें 'भोकरु क्रम' नामक यन्त्र का उल्लेख
 मिलता है। उन्होंने लिखा है, कि सेण्ट सेसिना
 इसके आविष्कारक थे। यूरोपीयनोंके उगसना-मन्दिरमें
 यह यन्त्र रखा जाता है। यह यन्त्र सबसे पहले गिरजामें
 कब प्रवेश हुआ था उसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।
 कुछ लोग कहते हैं, कि सन् ६७० ई०में पोप मिटालियनने
 गिरजाघरमें इस यन्त्रका व्यवहार प्रवर्तित किया। फिर

किसीका कहना है, कि ग्रीकराज कप्रोनियसने ७५५ ई०में
 एक अरगान फ्रांसके राजा पेपिनको प्रदान किया। उन्हीं-
 ने इस कर्मिण नगरके सेण्ट-कर-डिनो गिरजामें रखा।

चाल्समनके शासन-कालमें यूरोपके अधिकांश नगरके
 गिरजाघरमें ही अरगानका व्यवहार प्रचलित हुआ। ११वीं
 सदीके पहले तक इसकी उतना उन्नति नहीं हुई थी।

११वीं सदीके शेष भागसे ही अरगानकी चाबीका
 बनना शुरु हुआ। इस समय मैन्डिबर्गके गिरजामें जो
 अरगान रखा गया था उसमें १६ चाबियाँ थीं। इसके बाद
 से चाबीकी संख्या बढ़ने और उसकी उन्नति होने लगी।
 द्वितीय चाल्सके राजत्वकाल तक भी इङ्ग्लैण्डमें अरगान
 नहीं बनाया गया था। इस समय पूरितन ईसाइयोंके
 प्रादुर्भावसे गिरजाघरमें सङ्गीत-माधुर्यादि विलुप्त
 हुए। किन्तु उसके बाद होसे इङ्ग्लैण्डमें फिर अरगानका
 व्यवहार होने लगा। इस समयसे अङ्गरेज शिलियोंने
 अरगानका बनाना आरम्भ किया। अभी अङ्गरेजोंके बनाये
 हुए अरगानका बहुत आदर है। यूरोपके निर्मालागत
 स्थानोंमें बड़े बड़े अरगान देखनेमें आते हैं। हायरलेनका
 अरगान १०३ फुट ऊँचा और ५० फुट चौड़ा है। इसमें
 ८००० पाइप लगे हैं। १७३८ ई०में मूलरने इस अरगान-
 को बनाया था। रटारडममें भी प्रायः उसी तरहका
 एक अरगान है। सेमेली नगरके यन्त्रमें ५३०० पाइप हैं।
 इङ्ग्लैण्डके बरमिंघम टाउनहालमें, मिडल प्रासादमें, रायल
 अलवर्टहालमें तथा अलेकजण्ड्रा प्रासादमें आदर्शनीय
 बड़े बड़े अरगान हैं।

पै एडयन पाइप—यह प्राचीन वाद्ययंत्र है। यूरोपीय
 पैन नामक देवताने इसका आविष्कार किया, इस कारण
 यह यंत्र उन्हींके नाम पर पुकारा जाता है।

पियानो-फर्टि—'पियानो' शब्दका अर्थ कोमल और
 'फर्टि' का अर्थ उच्च है अर्थात् जिस यन्त्रसे कोमल और
 उच्च दोनों प्रकारके स्वर निकलते हैं उसका नाम पियानो-
 फर्टि है। १५वीं सदीके पहले भी इस प्रकारका यन्त्र
 प्रचलित था, इसके बहुतसे प्रमाण भी मिलते हैं। डान-
 लिमर, ह्येघार्ड, वारजिनल आदि यन्त्र हमी जातिके
 हैं। पलिजावियुके समय चारजिन्यास यन्त्र प्रचलित
 हुआ। इसके बाद हार्पिसकर्डका नाम भी हयाण्डेल,
 हेडन, मोजाट और स्कारनोटीके ग्रन्थमें मिलता है।

इस प्रकार यह बात धीरे धीरे परिष्कार हो कर उपम
 भाषाओं बनाया गया था। सन् १७१२ ईसवीं प्रथम
 विद्यापीठों में प्रतिष्ठित हुआ। येरिस नगर के मास्टर
 नामक एक वादुवपति निर्माणाधीन गुरुकुल में एक
 पाठ्य निर्माण किया। यही विद्यापीठों प्रथम उत्पत्ति है।

इसके बाद यशोधरमियाजी महोदयों की द्वारा इस
 पंथको बहुत उत्पत्ति हुई थी। इसी समयमें यह पंथ
 विद्यापीठों कहलाने लगा। १७६० ईसवीं सरदर महार-
 के सुनो नामक एक व्यक्ति ने तथा ज्ञानिके मित्रवर-
 मीन नामक एक दूसरे व्यक्तिने विद्यापीठों बना कर
 उनका स्थापनाय करना आरम्भ कर दिया। प्रथम
 देनाई विद्यापीठवत वर्षों तक पंथको यही उत्पत्ति कर
 गये हैं। यह सन् १८०६ ईसवीं थाग है। उनके समोधि
 विद्यापीठ वराङ्गमें १८२१ ईसवीं समाप्त १८२७ ई० तक
 विद्यापीठों पंथकी बहुत उत्पत्ति को है। सि० देनाक वराङ्ग
 नाम विद्यापीठों निर्माता हैं। इसमें बाद साउथपीठों
 इस प्रकारके पंथको उत्पत्ति को। ये ही परिष्कृत विद्यापीठ-
 के साधक हैं। सभी साधक गुरुकुल, इष्टीयत और
 वादिकों प्रभावोंके अनुसार बनाये गये, वे प्रचारके
 विद्यापीठ प्रचलित देते जाते हैं। किन्तु प्रथमके विद्यापीठ-
 वतकी निर्माणाधीन सभी गुरुकुल वराङ्ग जाते हैं।
 विद्यापीठों गुरुकुल समाप्तमें सभी बहुत प्रचलित
 हैं। प्रायः सभी धर्मिकों के घरमें यह पंथ देना जाता है।
 साधक — महाशार प्राचीन वादुवपतिविरत।
 ईश्वरिण — यह संप्रयोग तरह एक प्रकारका प्राचीन
 वादुवपति है। इसका विषय पढ़ने लिखना तो मुक्त है।
 साधक — वेदका। किन्तु साधक वेदिकों गुरु हैं।

इसका नाम प्रथम वादिक है। कुछ समय पहले है, कि
 यह संप्रयोग वादुवपति है। फिर विद्यापीठ कहलाने है कि
 प्राचीन कालमें भी वेदका प्रचलित था। वेदिकों प्रचलित
 कालमें विद्यापीठों प्रचलित देना मुक्त है, किन्तु कालों को
 एकत्र ही हो गया। किन्तु नामों और प्रचलितों
 अर्थयम इस दो वादुवपतिोंके निर्माणमें वेदिकों बनाकर
 को जैसी उत्पत्ति को है, वेसी उत्पत्ति यही भी किन्तु
 भी गयीं को।

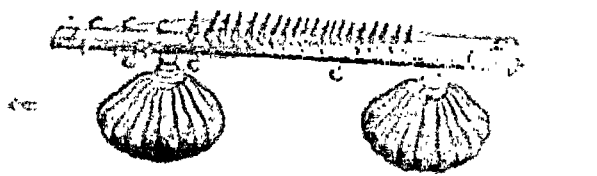
प्राचीनता — यह भी वेदिके जैसा एक पंथ है।
 भारत और आर्याभूमिमें बहुत काम प्रचलित है।

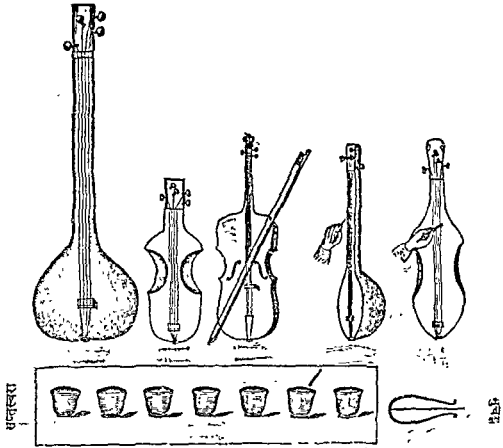
उक्त भारतीय और यूरोपीय पंथोंकी छान कर
 यूरोपीय सभ्यता देनाई और भी अधिक प्रचारके वादुव-
 पति प्रचलित देते जाते हैं। विद्यापीठ, साधक, ईश्वर,
 प्राणिके (गुरुकुल) और गुरु साधक और भी अधिक प्रचारके
 यूरोपीय वादुवपति हैं। किन्तु यह जामेके भवने उन सब
 का उत्पत्ति गयीं गयीं किया गया।

इस देनाई प्रभावोंके तरह एक प्राचीन वादुवपति
 हुआ है। १ ईसवीं कीर्तिमें साधकोंके कई नामके
 प्रचलित गये किन्तु यह एक छोटे प्रचलित गये जाते हैं।
 उन नामके एक एक प्रचलित पर एक प्रचलितको मोक्षके
 साधक कहते हैं प्रथम और मोक्ष पर निश्चयता है।
 इसका स्वर प्रचलित प्राचीन तरह प्रचलित और प्रचलित
 है। सभी सभी नामके बहुत प्रचलित पाठ्य पाठ
 प्रचलित होता दिखाने देना है।

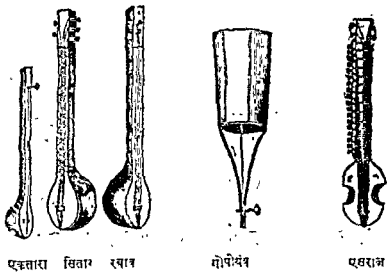
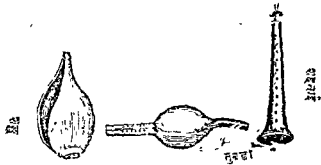
येमें प्रचलित निर्माण प्रचलित नाम प्रचलित प्रचलित
 नामका एक नाम प्रचलित किया जाता है। इसका
 'वादुवपति' का नामिका वादुवपति 'साधक' और इस-
 को प्रचलित कहलाने है।

भारतीय वादुवपतिविरत।



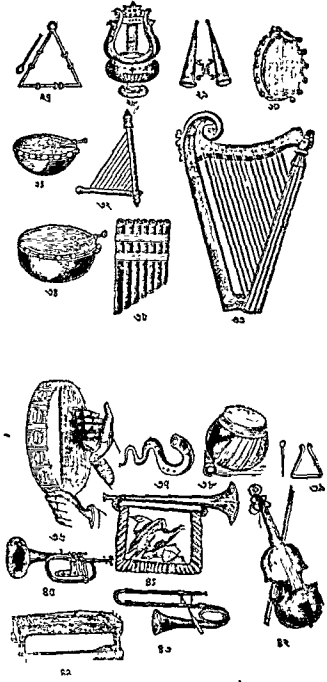


ऊपरके बायें से १ तन्बूरा, २ चारङ्ग, ३ वेहवा, ४ सुरसारङ्ग, ५ सरद



एकतारा सितार रबाब सोपीयंत्र एकराज

यूरोपीय वाद्ययन्त्र



१ पकड़ियाँ। २ यूलिबनहाय। ३ टेनर, यह डबल भासका है। ४ बासुन। ५ हाण्ड समेत विगल। ६ पॉलिडयन वाद्य। ७ चैम्बो। ८ काद्यानेटस। ९ पनसियेण्ड सिम्बल। १० क्लारियून। ११ क्लारिओनेट। १२ कनसार्तिना। १३ हाम। १४ गिटर। १५ सत्राजिओ-लेट। १६ पलूट। १७ हडनय और ओवी। १८ ट्राईकोर्डो। १९ फ्रेड-हर्न। २० लायर। २१ हाण्टो-हर्न। २२ ल्यूट। २३ अर्गन। २४ ओकोहोडो। २५ फेटलूहाम। २६ हाय।

२७ दूसरी तरहका द्रायफ्लूट। २८ लागर। २९ हर्न वाद्यविशेष। ३० जगन्मय नामक भाकरका वाद्य। ३१ गङ्ग नामक आन्द यंत्र। ३२ एक प्रकारका हार्प। ३३ कानूनकी तरह यंत्र। ३४ वृद्धा-कार गङ्ग। ३५ पैलिडयन बड़ा वाद्य। ३६ डेम्बुरिन। ३७ सारपेण्ड। ३८ टेमटैम। ३९ द्रायफ्लूट और रड। ४० कनेट प-पिण्ड। ४१ ड्रम्पेट। ४२ भायोनिन। ४३ ड्रम्यन। ४४ सोनोमिटर। यह दूसरी तरहका जिथर है।

वाचिक (सं० त्रि०) वनसम्भवधिय ।
 वाचनीय (सं० पु०) कैवर्त्तमुस्तक, केवटी, मोथा ।
 वाचोर् (सं० पु०) १ वनसवृक्ष, वेंत । २ वाञ्जलुवृक्ष,
 जलधेत । पर्याय—वृत्तपुष्प, शाखाल, जलधेतस,
 व्याधिघात, परिष्वाद्य, नाद्रेय, जलसम्भव । गुण—तिक,
 शिशिर, रक्षोघ्न, घ्नणशोषण, पित्तास्र और कफदोष
 नाशक, संप्राही और कपाय । (राजनि०) ३ हृक्षवृक्ष,
 पाकड़का पेड़ ।
 वाचोर्क (सं० स्त्री०) वाचोर् इव प्रतिकृतिः इवार्थे कन् ।
 मुञ्जवृण, मूँज ।
 वाचोर्ज (सं० स्त्री०) १ कुष्ठोपघ, कुट । (पु०) २ मुञ्जा,
 मूँज ।
 वाचोर् (सं० स्त्री०) वने जले भयं वन-ढम् । कैवर्त्तमुस्तक,
 केवटी मोथा ।
 वाच (सं० पु०) वन-कर्मणि क् । वनन की हुई वस्तु,
 उदोसे निकली चीज ।
 वाचान्ता (सं० पु०) वाचमन्तीति अच्-अण् । कुकुर,
 कुत्ता ।
 वाचान्ताग्नि (सं० पु०) वाचमन्तश्नाति अश्-णिनि ।
 १ वाचान्ता, कुत्ता । (त्रि०) २ वननभोगी, उदो खाने-
 वाला ।
 भोजनके लिये ब्राह्मण कभी भी अपने कुल और
 गोत्रका परिचय न दें । जो भोजनके लिये अपने कुल
 या गोत्रकी प्रशंसा करते हैं, पण्डितोंने उन्हें 'वाचान्ताशो'
 कहा है ।
 मनुने लिखा है, कि जो ब्राह्मण अपने घरसे दूर होते
 हैं वे वाचान्ताशो (वामभोगी) उचालामुख प्रेत होते हैं ।
 वाचि (सं० स्त्री०) वन-किञ् । वनन, कै ।
 वाचिका (सं० स्त्री०) कटुकी, कुटकी ।
 वाचिकम् (सं० पु०) वाचि करोति कृ-किप् तुक्च ।
 मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़ । (त्रि०) २ वननकारी,
 उदो करनेवाला ।
 वाचिक (सं० त्रि०) वाचि ददाति दा-क् । वनन-
 कारक, उदो करनेवाला ।
 वाचिक (सं० स्त्री०) कटुकी, कुटकी ।
 वाचिकोपघो (सं० स्त्री०) जोरक, जीरा ।

वाचिकम् (सं० पु०) वाचि हरतीति ह-किप् । लीह-
 कएटक वृक्ष, मैनफलका पेड़ ।
 वाचन (सं० पु०) वचनका गोत्रापत्य ।
 (भाव०भी० १२।११।२)
 वाच्य (सं० स्त्री०) वचनार्थं समूह इति वन-यत्-टाप् ।
 वनसमूह ।
 वाच (सं० पु०) वच-घञ् । १ वचन, वचना । २ मुण्डन ।
 उत्पत्तेऽस्मिन्निति वच अधिकरणे घञ् । ३ क्षेत्र, खेत ।
 (पा ५।२।४६ सूत्र-भट्ट जीदीक्षित)
 वाचक (सं० त्रि०) वच-णिच् ष्वल् । वचनकारयिता,
 वोज बोनेवाला ।
 वाचदण्ड (सं० पु०) वाचाय वचनाय दण्डः । वचनाय
 दण्ड, कपड़ा धुननेकी ढरकी । पर्याय—चेमा, चेमन्,
 वेम, वायदण्ड । (भरत)
 वाचन (सं० स्त्री०) वच-णिच्-ल् युट् । वोज बोना ।
 वाचनि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तकं प्रथिमेद् ।
 (वंस्कारकौमुदी)
 वाचस (फा० वि०) लौटा हुआ, फिरा हुआ ।
 वाचसी (फा० वि०) १ लौटा हुआ या फेरा हुआ ।
 (स्त्री०) २ लौटनेकी क्रिया या भाव । ३ किसी दो
 हुई वस्तुको फिर लेने या ली हुई वस्तुको फिर देनेका
 काम या भाव ।
 वाचातिनामैघ (सं० स्त्री०) सामभेद् ।
 वाचि (सं० स्त्री०) उत्पत्ते पञ्चादिकमस्यमिति वच
 (वसि वपि यजि वाजि प्रजोति । उप् ५।१२४) इति इञ् ।
 वापो, छेडा जलाशय ।
 वाचिका (सं० स्त्री०) वाचि स्वार्थे कन्-टाप् । वापो,
 बाथली ।
 वाचित (सं० त्रि०) वच-णिच्-क् । १ वोजाहत, बोया
 हुआ । २ मुण्डित, मूड़ा हुआ । (स्त्री०) ३ धान्य-
 विशेष, बोभारी धान ।
 वापो (सं० स्त्री०) वाचि रुद्रिकारादिति डीप् । जला
 शयविशेष । जो जलहीन देशमें जलाशय खुदवाते हैं
 उन्हें स्वर्गलाम होता है ।
 वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि वापोका जल शुद्ध, कटु,
 हृत् (लघणाक), पित्तवर्द्धक तथा कफ और वायुनाशक
 होता है ।

वाप्याको मालूम थी। अतएव अपने साधियोंकी साथ ले कर वाप्या वहीं पहुँचे। राजाने बड़े आदरसे उनको रत्ना और अपना सामन्त बनाया। इससे पहलेके सामन्तोंको बड़ी ईर्ष्या हुई। यहाँ तक कि एक समय जब शत्रुओंने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब उन सामन्तोंने साफ ही कह दिया, कि जिसका आदर करते हो उसीको लड़नेके लिये भेजो। वाप्याने उस लड़ाईमें जयलाम किया।

राजा मानसे तिरहुतन सामन्त इसी चिन्तामें लगे थे, कि कोई शत्रु सरदार मिले, तो उसे चित्तौड़का सिंहासन दे दे और राजा मानको पदच्युत कर दे। अन्तमें सामन्तोंने वाप्या ही को इस कामके लिये स्थिर किया। वाप्याने भी इस कार्यमें अपनी सममति दे दी। इसीको सार्थ कहते हैं। आज वाप्याने अपने धात्रपदाता मामाके उपकारका कैसा सुन्दर यशला दिया।

पचास वर्षसे अधिक अवस्था होने पर वाप्या रावल चित्तौड़का राज्य अपने पुत्रोंको दे कर खुरासन चले गये। वहाँ इन्होंने बहुत-सी मुसलमान स्त्रियोंसे व्याह किया था।

वीरकेशरी महाराज वाप्या रावलने एक सौ वर्षकी पूरो आयु पाई थी। इन्होंने काश्मीर, ईराक, ईरान, तुरान और काफरिस्तान आदि देशोंको जीता था और उन देशोंके राजाओंकी कन्याओंको व्याहा था। इन्हें ३० पुत्र उत्पन्न हुए थे।

वाप्य (सं० क्री०) वाप्यां भव मिति वापी (दिगादिभ्यो-यत्। पा ४।३।५) इति यत्। १ कुट्टीयध, कुट। (अमर) २ जालिघानपमेद्, सोचारी घान। ३ वापीभव जल, शायलीका पानो। इसका गुण—वानश्लेष्मनाशक, क्षार, कटु और पित्तवर्द्धक। वप प्यत्। ४ वपनीय। वीने योग्य।

वाप्यक्षीर (सं० क्री०) मामुद्ग लवण। (राजनि०) वाप्यट (सं० पु०) १ वैद्यसंहिताके प्रणेता। २ जारज्-दर्पणनिघण्टुकार, वाग्भट।

वायाजी भौसले—एक महाराष्ट्र सरदार। ये प्रसिद्ध मंशराष्ट्रकेजरो निवाजोके प्रतिमह थे।

वायासाह्व—निवाजोके वैमान्य व स्रता याद्वीजोके पीत्र

ये तञ्जोरके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनकी मृत्युके बाद उनकी पत्नी सियानभाईने १७३७ से १७४० ई० तक राज्य किया।

वाम् (सं० पु०) १ गन्ता। २ स्तोता।

वाम (सं० क्री०) वा (अर्त्ति स्तुतु हु स पूर्णाति। उण् १।३६) इति मन्। १ धन। (पु०) २ कामदेव। ३ इर, महादेव। ४ कुच, स्तन। ५ भद्राके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (भागवत १०।१।१७) ६ ऋषीकके एक पुत्रका नाम। ७ चन्द्रमाके रथके एक घोड़े का नाम। ८ अक्षरोंका एक वर्णपृष्ठ। इसके प्रत्येक धरणमें सात जगण और एक यगण होता है। इसे मञ्जरी, मकरन्द और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकारका सवैया ही है। ९ वास्तुक।

(ति०) वमति धमते वेति वम् उद्दिरणे (व्यतिवकण्ठे-भ्यो षः। पा ३।१।५०) इति ण। १० बल्लु, सुन्दर। ११ प्रतिकूल, खिलाफ। १२ वननीय, याजननीय। १३ कुटिल, टेडा। १४ दुष्ट, नीच। १५ जो अच्छान हो, सुरा। १६ सद्य, दक्षिण या दाहिनेका उलटा, वायाँ। द्विजको बाँधे हाथसे जलपान वा भोजन नहीं करना चाहिये। बाँधे हाथसे जलपान उडा कर भी जलपान करना उचित नहीं।

वामः वामरस्तेनोद्भूत्य पित्रेद्रवणं वा जसम्।
वामः नोचरेदनुपस्यूय वामसु रेवः समुत्सृजेत् ॥”
(कूर्मपुरा १५ अ०)

ज्योतिषकी प्रश्नगणनामें वाम और दक्षिणभेदसे शुभाशुभ फलाफलका तारतम्य कहा है।

वामक (सं० ति०) १ वाम सम्बन्धीय। (क्री०) २ बङ्ग-मङ्गीका एक भेद। (भिकमोर्वेकी ५।१।२०) ३ बौद्धग्रन्थोंके अनुसार एक चक्रवर्ती।

वामकक्ष (सं० पु०) एक गोलकार ऋषिका नाम। इनके गोलके लोग वामकक्षायण कह जाते थे।

वामकक्षायण (सं० पु०) वामकक्षके वंशोत्पन्न एक ऋषिक नाम। (सतपथब्रा० ७।१।२।११)

वामकेश्वरतन्त्र—एक तन्त्रका नाम।

वामच्युट (सं० पु०) जातिभेद। (हरिवंश)

वामसुष्ट (सं० क्री०) वामकेश्वरतन्त्र।

चापी खनन करनेमें पहले दिशाओं स्थिर करना होता है। अग्नि, वायु और नैऋतकेणमें चापी नहीं खुदवाना चाहिये। अग्निकेणमें खुदवानेसे मनस्ताप, नैऋतमें क्रूरकर्मकारी, वायुकेणमें बल और पिस्तनाश आदि विविध अनिष्ट होने हैं। अतएव उन सब दिशाओं-का परित्याग कर अन्य दिशामें चापी खुदवानी चाहिये।

चापी, कूप और तड़ागादि खुदवा कर उसकी पचा-विधान प्रतिष्ठा करनी होती है। अप्रतिष्ठित चापीके जलसे देवता और पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध तर्पणादि नहीं किये जाते। इसी कारण सबसे पहले उसकी प्रतिष्ठा करनेमें कहा है। जो चापी आदि खुदवा कर उसका प्रतिष्ठा कर देता है उसे इस लोकमें यश और परलोकमें अनन्त स्वर्गलाभ होता है।

वापीक—एक प्राचीन कवि।

वापीह (सं० पु०) चापीं जहानोति हा-स्वामे क, पाने वापीजलवर्षनादन्य तथात्वम्। चातक पक्षी, पपीहा। वापुमष्ट—उत्सर्जोत्पक्रमप्रयोगके प्रणेता। ये महादेवके पुत्र थे।

वापुपुरनाथ—एक महाराष्ट्र सचिव। ये धारराजके मन्त्री थे (१८१० ई०)।

वापुहोलकर—एक महाराष्ट्र सेनापति (१८१० ई०)।

वापुय (सं० लि०) वापुष्मान्, शरीरविशिष्ट। "वृक्षः क्षुणोति वापुयो माध्वी।" (ऋक् ५।७।५) वापुयः वपुष्मान्। (भाष्य)

वाप्या रावल—मेवाड़राज्यके स्थापनकर्ता। बलभी राज्य-ध्वंसके समय राजा कनकसेनके वंशधर इधर उधर मारे मारे फिरते थे। राजा गिलादित्यके वंशधर प्रहादित्यने इधर प्रदेशमें एक छोटा-सा राज्य बसा लिया था। कालचक्रके प्रभावसे उस समय प्रहादित्यके वंशमें एक तीन वर्षका बालक चाप्या ही शेष रह गया। इसके पिता नागादित्यके स्वाधीनताप्रिय भौलोंने मार डाला था। इस प्राचीन वंशका लोप हुआ चाहता था, क्योंकि तीन वर्षके बालक चाप्याकी रक्षा करनेवाला कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता था।

चाप्याके पूर्वपुत्र गिलादित्यकी प्राणरक्षा, कमला नामकी एक ब्राह्मणीने की थी, यह बात इतिहासके

पाठकोंसे छिपी नहीं है। कमलाके ही वंशधर इस राजवंशके पुरोहित थे। उन्होंने राजकुमारके निकर भांडेर नामक किलेमें आश्रय लिया। यहांके यदुवंशी भौलोंने उन्हें आश्रय दिया। जब पुरोहित ब्राह्मणोंके वहां रहनेमें भी शक्य हुई, तब वे वहांसे बालकको ले कर पराशर नामक स्थानमें गये। यह स्थान त्रिकूटपर्वतके सधन वनमें था। उसी त्रिकूटपर्वतकी तटहटीमें नागेन्द्र नामक एक ग्राम बसा हुआ था। वहां शिवोपासक ब्राह्मण रहते थे। उन्हींके हाथमें चाप्या सोपा गया। राजकुमार निर्भय हो कर वनमें विचरने लगा।

चाप्या रावल तटहटीमें उक्त ब्राह्मणके वहां भी चराया करता था। उस प्रदेशके राजा एक सोलहवीं क्षत्रिय थे। वहां सावनका झूलन बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। राजकुमारी अपनी सन्निधियोंके साथ उस दिन वनमें पधारी। परन्तु झूलसे उनके पास रस्सी नहीं आई थी, वे झूला डालती तो कैसे? उसी समय अचानक चाप्या रावल वहां चला गया। उन लोगोंने उससे रस्सी मांगी। चाप्या बड़ा ही चञ्चल तथा हंसोड़ था। उसने कहा, मुझसे विवाह करो, तो मैं रस्सी ला दूँ। एक और तमाशा शुरू हुआ। उन कन्याओंके साथ राजकुमारके विवाहकी विधि बर्ती जाने लगी। गांठ बांधी गई। क्या उस समय किसीने यह समझा था, कि यह तकली विवाह ही किसी समय असली विवाह होगा।

सोलहवीं राजकुमारी जब घ्याहने योग्य हुई, तब सोलहवीं राजा बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने घर दृढ़नेके लिये देश विदेश मनुष्य भेजे। परन्तु इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सबको चकित होता पड़ा। एक ज्योतिषीने राजकुमारीका जन्मपत्र देख कर कहा, कि इसका विवाह हो गया है। सोलहवीं राजके आश्चर्यकी ठिकाना न रहा। राजाको पिछली बातें अर्थात् विवाहकी घटनाकी खबर लगी। इसकी खबर कुमार चाप्याको भी लगी। अतएव राजकुमार डरके मारे बालीय और देव नामक दो भौल बालकोंको साथ ले विजनवनमें चले गये।

उन दिनों किसीद्वयमें मीर्यकुलके राजा मान राज्य करते थे। चाप्या उनका मांजा होता था। यह बात

वाप्यांको मालूम थी। अतएव अपने साथियोंको साथ ले कर वाप्या वहाँ पहुँचे। राजाने वड़े आदरसे उनको रखा और अपना आमन्त्र बनाया। इससे पहलेके सामन्तोंको वड़ी ईर्ष्या हुई। यहाँ तक कि एक समय जब शत्रुओंने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब उन सामन्तोंने साफ ही कह दिया, कि जिसका आदर करते हो उसीको लड़नेके लिये भेजो। वाप्याने उस लड़ाईमें जयलाम किया।

राजा मानस तिरस्कृत सामन्त इसी चिन्तामें लगे थे, कि कोई अच्छा सरदार मिले, तो उसे चित्तौड़का मिर्हासन दे दे और राजा मानको पदच्युत कर दे। अन्तमें सामन्तोंने वाप्या ही को इस कामके लिये स्थिर किया। वाप्याने भी इस कार्यमें अपनी सम्मति दे दी। इसीको स्वार्थ कहते हैं। आज वाप्याने अपने आश्रयदाता मामाके उपकारका कैसा सुन्दर बदला दिया।

पचास वर्षसे अधिक अवस्था होने पर वाप्या रावल चित्तौड़का राज्य अपने पुत्रोंको दे कर खुरासन चले गये। वहाँ इन्होंने बहुत-सी सुसलमान स्त्रियोंसे व्याह किया था।

वीरकेशरी महाराज वाप्या राघवने एक सौ वर्षकी पूरों आयु पाई थी। इन्होंने काश्मीर, ईराक, ईरान, तुरान और काफरिस्तान आदि देशोंको जीता था और उन उन देशोंके राजाओंकी कन्याओंको व्याहा था। इन्हें ३० पुत्र उत्पन्न हुए थे।

वाप्य (सं० क्लो०) वाप्यां भव मिति वापी (दिगादिभ्यो-यत्। वा ३।१।१४) इति यत्। १ कुड्डीवध, कुट। (अंभर) २ शालिधान्यभेद, वावारी धान। ३ वापीभव जल, शबलोका पानी। इसका शुण—चानश्लेषनाशक, क्षार, कटु और पित्तवर्द्धक। वष-प्यत्। ४ चपनीय। होने योग्य।

वाप्यशोर (सं० क्लो०) सामुद्र लक्षण। (राजनि०) वाभट (सं० पु०) १ वैद्यसंहिताके प्रणेता। २ शाक-दर्पणनिघण्टुकार, वाभट।

वायाजी भोसले—एक महाराष्ट्र सरदार। ये प्रसिद्ध महाराष्ट्रकेशरी निवाजीके प्रतिपामह दे।

वायामाह्व—शिवाजीके वैमाले व भ्राता वाङ्गोजीके पौत्र

वे तञ्जोरके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनकी मृत्युके बाद उनकी पत्नी सियानभाईने १७३७ से १७४० ई० तक राज्य किया।

वाम् (सं० पु०) १ गन्ता। २ स्तोता। वाम (सं० क्लो०) वा (वर्षी स्तु सु हु च पूर्णति। उण् १।३६) इति मन्। १ धन। (पु०) २ कामदेव। ३ हर, महादेव। ४ कुन्व, स्तन। ५ भद्राके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (भागवत १०।६।१।७) ६ ऋचीकके एक पुत्रका नाम। ७ चन्द्रमाके रथके एक घोड़ेका नाम। ८ अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक धरणमें सात जगण और एक यगण होता है। इसे मञ्जरी, मकरन्द और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकारका सवैया ही है। ६ वास्तूक।

(त्रि०) चर्मात चर्मते वेति वम् उद्भिरणे (व्यवहितिकवन्ते-भ्यो षा। वा ३।१।१४०) इति ण। १० बल्लु, सुन्दर। ११ प्रतिकूल, खिलाफ। १२ वननीय, याजनीय। १३ कुटिल, टेढ़ा। १४ दुष्ट, नीच। १५ जो अच्छा न हो, बुरा। १६ सव्य, दक्षिण या दाहिनेका उलटा, वायाँ। द्विजकी बाँये हाथसे जलपान वा भोजन नहीं करना चाहिये। बाँये हाथसे जलपान उठा कर भी जलपान करना उचित नहीं।

वामः वागस्तेनोद्भूय पितृद्वयव्य वा अक्षम्।
नोत्तरेदनुस्पृश्य नाप मु रेतः समुत्सृजेत् ॥

(कूर्मपु० १५ अ०) ज्योतिषकी प्रश्नगणनामें वाम और दक्षिणभेदसे शुभाशुभ फलाफलका तारतम्य कहा है। वामक (सं० त्रि०) १ वाम सम्बन्धीय। (क्लो०) २ अङ्ग-मञ्जीका एक भेद। (शिक्रमोर्वशी ५।१।२०) ३ बौद्धग्रन्थोंके अनुसार एक चक्रवर्ती।

वामकक्ष (सं० पु०) एक गोत्रकार ऋषिका नाम। इनके गोत्रके लोग वामकक्षापण कहे जाते थे।

वामकक्षापण (सं० पु०) वामकक्षके वंशोत्पन्न एक ऋषि-का नाम। (शतपथभा० ७।१।२।११)

वामकेभ्वरतन्त्र—एक तन्त्रका नाम।

वामचूड (सं० पु०) जातिभेद। (हरिवंश)

वामजुष्ट (सं० क्लो०) वामकेभ्वरतन्त्र।

वामतन्त्र (सं० स्त्री०) तन्त्रविशेष ।

वामता (सं० स्त्री०) वामस्य भावः तल्लटाप् । प्रति-
कृतत्व, वामत्व, वामका भाव या धर्म ।

वामतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद । (बृहन्नीलतन्त्र २१)

वामवक्ष (सं० पु०) व्यक्तभेद । (कथासरित्सागर ६८, ३४)

वामदत्ता (सं० स्त्री०) नर्त्तकीभेद ।

(कथासरित्सा० ११२।१६७)

वामदृज (सं० स्त्री०) वामा मनोहरा दृक् दृष्टिर्ब्रह्मिण्या ।

सुन्दरी नारी, खूबसूरत औरत ।

वामदेव (सं० पु०) वाम एव देवः । १ शिव, महादेव ।

(भारत १।१।३४) २ गीतमगोलसम्भूत ऋषिभेद, गीतम
गोत्रोप एक वैदिक ऋषि । यह ऋग्वेदके चाँधे मण्डलके
अधिकांश सूक्तोंके मन्त्रद्रष्टा थे । ३ दशरथके एक मंत्रीका
नाम ।

वामदेव—एक ष्यवहारविद् । हेमाद्रिने परिशेषश्रृण्डमें
इनका उल्लेख किया है । २ एक कवि । ३ मुनिमत-
मणिमाला नामक एक द्वािधितिके प्रणेता । ४ वर्ष-
मञ्जरी नामक उद्योतिःशास्त्रके रचयिता । ५ हठयोग-
विधेयके प्रणेता ।

वामदेव उपाध्याय—१ शाह्निकसंक्षेप और गृह्यार्थदीपिका-
के रचयिता । लाला ठपकुर नामक अपने प्रतिपालक
को प्रार्थनाके अनुसार इन्होंने शाह्निकसंक्षेप लिखा ।

२ श्राद्धचिन्तामणिदीपिका और स्मृतिदीपिकाके
रचयिता ।

वामदेवमट्टाचार्य—स्मृतित्चन्द्रिकाके प्रणेता ।

वामदेवमहिता—एक प्रसिद्ध तन्त्रग्रन्थ । श्रीरामने इसकी
टीका लिखी है । इन ग्रन्थमें बटुकभैरवपूजापद्धति और
गायत्रीरूपका विशेष वर्णन है ।

वामदेवगुरु (सं० पु०) शैवमतभेद । (सर्वदर्शनसहिता)

वामदेवी (सं० स्त्री०) १ सावित्री । २ दुर्गा ।

वामदेव्य (सं० स्त्री०) १ वामदेवमन्त्रग्रन्थीय । (पु०) २
ऋग्वेदके १०।२७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा श्लोमुचके गित्पुरुष ।

३ वृहस्पत्यके पूर्वपुरुष । ४ मूर्च्छभयके गित्पुरुषभेद ।

५ राजपुत्रभेद । (भारत उपाध्याय०) ६ एक ग्रन्थकर्ता ।

७ प्राणतल्लोपस्य पर्यतभेद । (भाग० १।२०।१०) ८ कल्प-
भेद । ९ सामभेद ।

वामध्वज—न्यायकुसुमाञ्जली टीकाके प्रणेता ।

वामन (सं० पु०) वामपति चमत्त वा मद्रिमिति वाम-पिच्छ-
ल्यु । १ दक्षिण दिग्गज । (भागवत १।२०।३६) २ महानल-
पुष्पी । ३ अङ्कोटपुत्र । (मेदिनी) ४ हरि, विष्णु । ५ शिव,
महादेव । ६ एक तरहका घोड़ा । ७ दनुर्के पुत्रका नाम ।

८ एक तरहका सर्प । ९ गङ्गावर्णीय पक्षिविशेष । (भारत
१।१०।१।१०) १० हिरण्यवर्गका पुत्र । (हरिवंश २५।३६)

११ कौञ्चद्वीपके अन्तर्गत एक पर्वतका नाम । कौञ्च द्वीपमें
कौञ्चपर्वत ही प्रधान है । इस पर्वतका दूसरा नाम वामन

पर्वत है । १२ एक तीर्थका नाम । यह तीर्थ सर्व पापनाशक
है । इस तीर्थमें स्नान, दान और श्राद्धादि करनेसे सब

तरहके पापोंका विनाश होता है । १३ महापुराणोंमें अन्य-
तम, वामनपुराण । देवोभागधत्के मतसे इस पुराणकी

श्लोकसंख्या दश हजार है ।

भगवान् विष्णुके अवतार वामनदेवकी लीला इस
पुराणमें वर्णित है । पुराण ३३८ देखो ।

१४ विष्णुका पञ्चम अवतार । जब धर्मकी हानि और
वधर्मकी वृद्धि होती है, तब भगवान् धरणी पर अवतार

लेते हैं । दैत्यपति बलिने स्वर्ग-राज्यका अधिकार कर देय-
ताओंकी निर्वासन दण्ड दिया था । इस बलिके ध्वन

करनेके लिये भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण किया
था । भागवतमें लिखा है कि राजा परीक्षितने शुक्रदेवसे

पूछा,—हे ब्राह्मण ! भगवान् विष्णु किस कारण वामन
रूपमें अवतारण हुए और दीन मनुष्यको तरह बलिके पास

सीन पैर भूमिकी याचना कर और उसे प्राप्त करके भी
उन्होंने किस कारणसे उसको बाँधा था ? इन सब

बातोंकी पूर्णरूपसे समझानेकी कृपा कीजिये । मुझे
इन सब बातोंके जाननेके लिये बड़ा फीतुदल हो रहा है ।

सर्वाँके पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरका मित्रा मांगना तथा निर्दोष
बलिकी याचना कोई सहज घटना नहीं है, बरं माश्वर्य-

जनक है । भाव विशेषरूपसे इस प्रश्नका उत्तर दे कर
मेरे सन्देशको दूर कीजिये ।' श्रीशुक्रदेवजीने राजा

परीक्षितके इस प्रश्नके उत्तरमें कहा था,—दैत्य-
राज बलि इन्द्रको भीन कर स्वर्गके इन्द्र हो गये । दैयता

बनाधको तरह बलि द्वारा वितार्पण हो कर वारो' और
भागने लगे । इन्द्रमाता अदितिकी इस बातसे बड़ा

आगने लगे । इन्द्रमाता अदितिकी इस बातसे बड़ा

कष्ट हुआ। उन्होंने कातरस्वरमें भगवान् कश्यपसे कहा था,—भगवन् ! सपत्नी-पुत्र दैत्योंने हमारी धी और स्थानको अपहरण कर लिया है। आप हम जोगियोंकी रक्षा कीजिये। शत्रुओंने हमें निर्वासित कर दिया है। आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरे पुत्र फिर अपने स्थानोंको पा जायें। अदितिके इस तरह कहने पर प्रजापति कश्यपने विस्मित हो कर कहा, कि अहो ! विष्णु-मायाका कैसा असीम प्रभाव है ! यह जगत् स्नेहा-वद् है। आत्मा-मिन्न भौतिक देह ही कहाँ है ? फिर प्रकृति बिना आत्मा ही कहाँ है ? अहो ! कौन किसका पति, कौन किसका पुत्र ? केवल मोह ही इस बुद्धिका एकमात्र कारण है। तुम आदिदेव भगवान् वासुदेव-को उपासना करो। यही तुम्हारा मङ्गल करूँगे। दोनोंके प्रति वे बड़े दयालु रहते हैं। भगवान्को सेवा अमोघ है। सिवा इसके और किसी तरहसे कुछ फल नहीं हो सकता। इस समय अदितिने पूछा, कि किस प्रकारसे उनकी आराधना करनेकी होगी ? इस पर कश्यप-ने कहा था, देवि ! फाल्गुन महीनेके शुक्लपक्षमें १२ दिनों तक पयोव्रत करो, ऐसा करकेसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो पुत्ररूपमें जन्म ले कर तुम लोगोंके इस दुःखको दूर करेंगे।

अदितिने कश्यपसे इस व्रतका अनुष्ठान करनेका आदेश पा कर वैसा किया। कुछ दिन बीतने पर देवमाता अदितिने भगवान्को गर्भमें धारण किया। इसके बाद भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीका अनादि भगवान् विष्णुने श्रवणा नक्षत्रके प्रथमांश अमिजित सुहस्रमें जन्म लिया। इस दिन चंद्रमा श्रवणानक्षत्रमें घास करते थे। अध्वनी प्रभृति सभी नक्षत्र तथा देव-गुरु बृहस्पति शुक प्रभृति प्रह्वण भी अनुकूल रह कर शुभावह हुए थे। इस तिथिके दिनके मध्यभागमें भगवान्ने जन्मग्रहण किया था। इसीलिसे इस द्वादशोका नाम व्रजवाटादगी है। वामनदेवके भूमिष्ठ होते ही शङ्ख, दुन्दुभि प्रभृतिना सुसुल शब्द होने लगा। अक्षरायें हार्चित हो कर नाचने लगीं। अदिति परम-पुरुषकी लकीय योगमायासे देह धारण कर गर्भमें जन्म ग्रहण करते देव आश्चर्यान्वित और सन्तुष्ट हुईं। कश्यप

भी आश्चर्यान्वित हो कर जय जय शब्द उच्चारण करने लगे। अथक ज्ञानस्वरूप भगवान्की चेष्टा अनुभूत है। उन्होंने प्रभा, भृगुण, बन्ध द्वारा प्रकाशमान देह धारण की थी। सहसा उसी देहने तटकी तरह वामनकुमारकी मूर्त्ति धारण कर ली। महर्षियोंने इनको वामनरूपमें प्रवर्त्तित देव स्तव करना आरम्भ किया। कश्यपने विधिपूर्वक जातकमें संस्कार काट्ये कर उपनयन संस्कारसे संस्कृत किया। इस उपनयनके समय सूर्यदेव सावित्री और बृहस्पति ब्रह्मसूत्रपाठमें प्रवृत्त हुए और कश्यपने उनको मेखला पहनाया। वामनरूपी जगत्पतिको पृथ्वीने कृष्णा-जिन, सोमने दण्ड, माताने कौपीन, सर्गने छल, ब्रह्मने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुश और सरस्वतीने अक्षमाला पहनाई। वामनदेवके उपस्थित होने पर यक्षराजने उनको भिक्षापाल और स्वयं अम्यिकाने उनको भिक्षा दी। इस समय वामनदेवने मुता, कि दैत्यराज बलिने अबमेघ यज्ञका अनुष्ठान किया है। उस समय वामनदेव ब्राह्मण-रूपमें भिक्षा मांगनेके लिये उसके पास गये। समूचा बल उनमें मौजूद था। सुतरां उनके चलनेसे प्रत्येक पद पर पृथ्वी कांपने लगी। नर्मदा-तटके उत्तर तट पर भृगु-कण्ड नामक क्षेत्रमें बलिके पुरोहित और ब्राह्मणोंने श्रद्धा यह आरम्भ किया था। भगवान् वामनदेव वहां पहुँचे। भगवान्की तेजःप्रभा देख कर सब स्तम्भित हो गये।

माया वामनरूपधारी हरिके कटिदेशमें मूर्त्तिकी कर्धनी, कृष्णाजिगमय उत्तरोप यज्ञोपवीतवत् वाम कंधे पर नियोजित, मन्त्र पर जटा और इनकी देह छोटी देख भृगुगण उनके तेजसे अभिभूत हो उठे। उस समय बलिने उठ कर भगवान् वामनदेवका पैर धो कर उनसे यिनम्रयुक्त घचनोंमें कटा, "ब्राह्मण ! आपके आर्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? आशा कीजिये, आपका मैं क्या उपकार कर सकता हूँ ? आप ब्रह्मर्षियोंकी मूर्त्तिमती तपस्या है। आपके पार्षणसे हमारा पितृकुल परि-रुप्त हुआ और कुलकी पवित्र हुआ। आपकी जो इच्छा हो वही मांगिये। अनुमान होता है, कि आप कुछ पांचनेके लिये ही आये है। भूमि, स्वर्ण, उत्तमोत्तम पासस्थान, मिथान्न, समृद्धशालो ग्राम आदि जो कुछ आवश्यक हो आशा कीजिये, मैं उसका पालन करूँ !"

भगवान्ने बलिके वाक्य पर सन्तुष्ट हो कर कहा:—
तुमने अपने कुलके अनुसार ही यह जिष्टाचार
दिखाया है। तुम्हारे कुलमें किसीने किसी ब्राह्मणको
दान देनेका कह पाछे उससे इन्कार नहीं किया है।
इसके बाद वामनदेवने कहा, दैत्यराज। मैं और दूसरा
कुछ नहीं चाहता। मैं अपने इस पैरसे तीन पैर नाप कर
भूमि चाहता हूँ। तुम दाता हो और जगत्के ईश्वर हो।
जितना आवश्यक हो, विद्वान् व्यक्तिको उतना ही मांगना
चाहिये।

उस समय वामनके इस तरह कहने पर राजा बलिने-
कहा,—“आपका वाक्य वृद्धकी तरह है, किन्तु आप बालक
मालूम होने हैं, अतएव आपकी बुद्धि मूर्खकी तरह है।
पर्यंकि स्वार्थके विषयमें आपको ज्ञान नहीं है। मैं
त्रैलोक्यका ईश्वर हूँ। मैं एक द्रोण मांगने पर दे सकता
हूँ। किन्तु आप इतने अविद्य हैं, कि मुझको संतुष्ट कर
तीन पैर भूमि चाहते हैं। मुझको प्रसन्न कर दूसरे
पुरुषसे प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं रहती। अतएव
उस वस्तुकी नाप प्रार्थना करें जिससे आपके वृद्ध-
संसारका काम मजेमें चल जाये।”

उस समय भगवान्ने कहा,—“राजन्। त्रैलोक्यमें जो
कुछ विषयतम अभीष्ट वस्तु हैं, वे सभी अजितेन्द्रिय पु
वको दान कर नहीं सकती। जो व्यक्ति तीन पैर भूमि
पा कर संतुष्ट नहीं होते, नववर्षविशिष्ट एक क्षीप
लाभसे भी उसको भागा पूरी नहीं होती। तब वह
सातां क्षीपोंकी कामना करते लगता है। कामनाकी
अवधि नहीं है। पुराणोंमें मैंने सुना है, कि वेणु, गन्ध
आदि राजे सप्तद्वीपके अधीश्वर हो कर पर्व यावत्तीय
अर्घ, कामना भोग करके भी विषयभोगकी लुप्तासे
रहित नहीं हो सके। सन्तुष्ट व्यक्ति इच्छामत्त वस्तुकी
भोग कर सुखसे रहता है, किन्तु अजितेन्द्रिय व्यक्ति
त्रिलोक प्राप्त होने पर भी सुखी नहीं होता।”

उस समय वामनदेवकी बात सुन कर राजा बलि
हंसने लगे और उन्होंने “लीजिये” यह कह
कर भूमिदान करनेके लिये जलका पाल हाथमें ले लिया।
किन्तु सर्वप्रथम शुक्याचार्यने विष्णु-उद्देश्यको समझ
कर बलिके कहा—“बलि! यह साक्षात् विष्णु है। देव-

ताओंके कार्यसाधनके लिये कल्पके औरस तथा
अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। तुम अपनी लाई हुई
विषयको देख नहीं रहे हो। इनकी दान देना स्वीकार
कर तुम लाभ नहीं उठाओगे। दैत्यों पर महाविषय
उपस्थित है। माया वामनरूपी भगवान् विष्णु तुम्हारा
स्थान, ऐश्वर्य, धन, तेज, यज्ञ विद्या आदि सब अ-
हरण कर इन्द्रको प्रदान करेंगे। विश्व इतकी देह
है, ये तीन पैरोंसे तीनों लोकों पर आक्रमण करेंगे।
तुम्हारा सर्वस्व नष्ट हुआ। इन वामनदेवके एक पैरसे
पृथ्वी, दूसरे पैरसे स्वर्ग और इस विशालदेहसे मगन-
मण्डल व्याप्त होगा। तीसरे पैरके लिये तुम क्या दोगे ?
तुम्हारे पास कुछ नहीं रहेगा। यदि नहीं दोगे, तो
तुम अपनी प्रतिष्ठा भ्रष्ट होनेका दोगो वन कर नरक
जाओगे। जिस दानसे अर्जुनोपाय, बिलकुल नहीं रह
जाता, वह दान वधार्थ प्रशंसा नहीं है। धृतिमें गो
लिखा है, कि श्रीविलासके समय प्राण-संकट उपस्थित
होने पर हास्य-परिहासमें विषयके समय घरके गुण
वर्णन करनेमें, जीविकावृत्ति की रक्षाके लिये और गो-
ब्राह्मणकी रक्षाके लिये भूट घोलनेमें दोष नहीं होता,
अतएव इस प्राण संकटके समय भूट घोल कर भी अपनी
देह बचाओ। इससे तुम्हारा अनिष्ट नहीं होगा।”

राजा बलि शुक्याचार्यकी इस बात पर जरा और कट
कहने लगे, “आपने जो उपदेश दिया, वह सर्वथा
सत्य है, जिससे किसी समयमें अर्थ, काम, यज्ञ आदिमें
व्याघात उपस्थित न हो, गृहस्वर्वाका यथार्थ धर्म है।
किन्तु मैं प्रहादका पील हूँ। दूंगा कह कर मैंने जिस-
की बात दी है, अब सामान्य बद्धकी तरह मैं ब्राह्मणको
कैसे न दूंगा। पृथ्वीने कहा है, कि भूडे नादमीके त्रिवा
में सब किसीका भार सह सकते हैं। ब्राह्मणके
उपनेमें मुझे जैसा भय हो रहा है, नरक, दृष्टिगत,
सिंहासनच्युत या मृत्यु होनेसे भी वैसा भय नहीं
होगा। अतएव मैंने जब एक बार देना स्वीकार किया
है, तो मैं स्वयं अपनी प्रदानको उलट न सकूंगा।”

शुक्याचार्यने बलिकी बात पर गाराज हो कर यह
ज्ञाप दिया, कि “तुम मूर्ख हो कर पाण्डुर्यादिमातृके
कारण मेरी भाषाकी अवज्ञा करने हो, इसलिये

तुम निकट भविष्यमें श्रोत्रप हो जाओगे।" गुरु शुकाचार्यके शापसे भी बलि विचलित न हुए और अपने सत्यधर्मपर अटल रहे। इसके बाद उन्होंने वामनको भूमिदानका सङ्कल्प पढ़ा। यजमान बलिवने वामनदेवके चरणान्को धो कर उस जलको शिर पर धारण किया। इस समय स्वर्गके देवता इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर पुष्प-गृष्टि करने लगे।

देखते देखते वामनदेवका शरीर भाववर्धकरूपसे बढ़ गया। गुणत्रय इसी रूपके अन्तर्गत थे। अतएव पृथ्वी, आकाश, दिक् स्वर्ग, विद्यर, समुद्र, पशु, पक्षी, नर और देवतागण सभी इसी रूपमें अधिष्ठित थे। बलिवने देखा, कि विश्वसृष्टि हरिके चरणोंके नीचे रसा तल, दोनों चरणोंमें पृथ्वी, जङ्घायुगलमें पर्वतश्रेणी, घुटनेमें पक्षिगण और ऊरुद्वयमें मयद्गण, वसनमें संध्या, गुह्यमें प्रजापति, नितम्बमें आप और असुरगण, नाभि-देशमें आकाश, कर्णोंमें सातो समुद्र, चक्षुस्थल पर सभी तारे, हृदयमें घर्मा, स्तनद्वयमें श्रुत और सत्य, मनमें चन्द्र और वक्षस्थलमें कमला विराज रही है, यह देख राजा बलि स्तम्भित हुए।

उस समय भगवान् वामनने एक पैसे पृथ्वी, शरीरसे आकाश और वायु द्वारा दिङ्मण्डल पर आक्रमण किया। इसके बाद उन्होंने दूसरा पैर फैलाया, इस पैरमें सबे जरा भर ही हुआ। किंतु तीसरे पैके लिये अब कुछ न बचा। दूसरे चरणने ही क्रमसे जनलोक, तपोलोक आदि लोकों पर आक्रमण कर सत्यलोक पर प्रभुत्व जमाया। देवताओंने उनका यह मयङ्कर रूप देख कर उनकी स्तुति करती आरम्भ की।

कमसे विष्णुने अपने विस्तारको धीरे धीरे कम कर दिया और फिर अपना पूर्व रूप धारण किया। असुरोंने वामनके इस हृदयको मायाजाल समझ कर महायुद्ध करनेका आयोजन किया। किंतु राजा बलिवने उनको मना कर कहा, कि तुम लोग युद्ध न करो, शास्त हो। समय हम लोगोंके लिये अच्छा नहीं है। कालको अनि-क्रम करनेमें कोई समर्थ नहीं हुआ है। बलिकी बात सुन कर दैत्य विष्णुके पार्श्वोंके भयसे रसातलमें घुम जाने पर तैयार हुए।

इस समय वामनदेवने बलिवसे कहा, कि तुमने मुझको तीन पैर भूमि दान की है, दो पैरों यह सब कुछ हो गया। अब तीसरे पैके लिये भूमि कहाँ है, दे। इस समय मैंने तुम्हारे सब विषयों पर आक्रमण कर लिया, फिर तुम अपने खोखले वाक्यको पूरा न कर सके। अतएव तुमको इस प्रापसे नरकमें जाना होगा। अतः तुम शुकाचार्यकी आज्ञा ले कर नरकका रास्ता पकड़ो।

भगवान्के इस वाक्य पर बलिवने कहा,—मैंने जो कुछ कहा है, उसे भूठ कभी न होने दूंगा। आप अपने तीसरे पैके मेरे मस्तक पर धर दें। भगवान्ने बलिकी इस तरहसे निमज्ज कर उसको बांध दिया। बलिकी यह दुर्दशा देख प्रह्लाद आ कर भगवान्की स्तुति करने लगे।

बलिकी पत्नी विश्व्यावलि पतिकी बांधा हुआ देख डर कर कहने लगे—भगवन्। आपने बलिका सत्य हरण कर लिया। अब इनको पाशमुक्त कीजिये, बलि निगृहीत होनेके उपयुक्त नहीं। बलिवने अज्ञानभावसे आपके समूची पृथ्वी दान कर दी है। अपने वाइवलसे जिन सब लोकोंको जीता था, उन सबको आपके हवाले किया। जो सामान्य पुत्र्य हैं, वे भी आपको चरण-पूजा कर उत्तमा गति लाभ करते हैं और बलिवने तो आपके चरणोंमें अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। इनकी ऐसी दशा न हीनो चाहिये। इसलिये आप इनको मुक्त करें।

भगवान्ने बलि-पत्नीसे कहा—मैं जिस पर दया दिखता हूँ, उसका अर्थ छीनता हूँ। क्योंकि अर्थसे ही ममताकी उत्पत्ति होती है। इसी ममताके कारण मानवों और मेरो अथवा होती है। जीवात्मा अपने कर्मके कारण पराधीन हो कर लज्जकोट आदि अनिर्वोक्त परिभ्रमण कर अन्तमें मानवध्यान पाती है। उस समय यदि जन्म, कर्म, ध्यान, रूप, विद्या, ऐश्वर्य या धन आदिसंश्रित नहीं होता तो उसके प्रति मेरो दया हुई है, ऐसा समझना होगा। जो मेरे भक्त हैं, वे धन सब वस्तुओं द्वारा विमुग्ध नहीं होते। इन दैत्यश्रेष्ठ कीर्त्तियुद्धन बलिवने दुर्जया मायाको जीत लिया है और कष्ट पा कर भी यह मुग्ध नहीं हुआ, यित्हीन हुआ है, स्थानस्रष्ट हो कर बांधा गया है, शत्रु द्वारा बांधा गया है, जाति द्वारा परित्यक्त और गुरु द्वारा तिरस्कृत और भमिशत

हुआ है; फिर भी बलिने सत्यधर्म नहीं छोड़ा है। अतएव बलि 'परम भक्त श्री सत्यवादी है। अतएव जो स्थान देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, मैंने बलिको यही स्थान दिया है। बलि सावर्णि मन्वन्तरका इन्द्र होगा। जितने दिन यह मन्वन्तर नहीं आता, उतने दिनों तक यह विश्व कर्मा द्वारा निर्मित सुतलमें वास करे। मेरी दृष्टि रहनेसे धायिष्वायि, धाम्नि, तन्द्रा, परामय और भीतिक उदरपत्ति यहाँ कुछ भोग होगी। इसके बाद धामनदेवने बलिसे कहा, तुम अपने जातिवालोंके साथ देवतादुर्लभ सुतलमें जाओ। तुम्हारा मङ्गल है। इस स्थानमें तुमको कोई परामय नहीं कर सकेगा। मैं स्वयं यहाँ रह कर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। बलि इसके बाद सुतलमें गये। धामनदेवने स्वर्ग इन्द्रको प्रदान किया। इस तरह धामनने अदितिकी घासना पूर्ण की थी।

(भागवत ८।१४-२४-४०)

धामनपुराणके ४८वें अध्यायसे ५३ अध्याय तक भगवान् धामनदेवके अथार और लीला वर्णित है। स्थानाभायके कारण यहाँ उद्धृत किया न गया। केवल इसमें एक विशेष बात यह है, कि भगवान् धामनदेवने पहले धुन्धुमे तीन पैर पृथ्वीरूपांग उसको निरूहीत किया। पीछे बलिके यत्नमें जा कर उनके सर्वोत्थको उन्होंने हरण किया और इन्द्रको प्रदान किया।

धामनमूर्त्तिकी रचनाके सम्बन्धमें हरिमक्तिविलासमें इस तरह लिखा है,—

इस मूर्त्तिकी दोनों भुजाओंका आयतन त्रिगोलक, यक्षःस्थल विस्फोर्ण, हाथ पैर चतुर्धाश, मस्तक पृथक्, ऊरुद्वय और मुखप्रदेश आयामविहीन, कटि मोटी (पश्चाद्भाग) पाश्र्वे और नाभि भी मोटी होगी। मोहनार्थ धामनदेवकी मूर्त्ति ऐसी ही होनी चाहिये।

यह मूर्त्तिके समग्र भक्तिके मांघ धामनमूर्त्ति तैवार करने चाहिये। यह मूर्त्ति वीनगात्र, दृष्ट्यधारी, मध्य यनोद्यन, दुर्वादलप्रथम और कृष्णाजिनधारी होगी।

(त्रि०) धामनमूर्त्ति धर्माणचन्द्रयु। १३ बलिभुद्र।

पदार्थ—शब्द, नीच, लघु, हृष्य, अनुप, अनागत। (जटापर)

धामन—एक प्रसिद्ध कवि। यह काश्मीरराज जयापीडके मन्त्रा थे। (राज्याभिषेक ४।१६६)

श्रीरस्वागो, अमिनव गुप्त और चर्चमानने इनकी बनाई हुई कवितादि का उल्लेख किया है। सायणाचार्यने धानुयुक्तिमें इन्हें चैषाकरण, काव्यरचयिता और सन्न-प्रतिपालक कहा है। अविभ्रातविधापर व्याकरण, काव्यालङ्कारसूत्र और वृत्ति तथा काशिकावृत्ति नामक कुछ ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

ठीक ठीक यह कहा जा नहीं सकता, कि प्लवाङ्क, उणादिसूत्र और लिङ्गसूत्रके रचयिता धामन आचार्य और उक्त कवि एक व्यक्ति थे या नहीं। शैविक व्यक्तिके पञ्जिका और जैनेन्द्रका मत उद्धृत किया है।

धामन—कुछ प्राचीन ग्रन्थकार १ उपाधिग्रन्थिसम्बन्धके रचयिता। २ धारिणशुद्धसूत्र-कारिकाके प्रणेता। ३ ताजिकतन्त्र, ताजिक साधोत्तर, धामनजातक और श्रीजातक नामक कुछ उद्योति-शास्त्रोंके रचयिता। ४ धामननिघण्टु धामननिघण्टु नामक ग्रन्थके प्रणेता। ५ धामनकारिका नामक व्याकरणके प्रणेता। ६ प्लिकश्रांग्राधके रचयिता। हेमाद्रि-परिचये-अष्टमें इसका उल्लेख मिलता है। ये वत्सगोत्रीय थे। धामनदेव, कामदेव और हेमाद्रि नामक तीन पण्डित इनके योग्य पुत्र थे। ७ एक प्रसिद्ध मीमांसाशास्त्रवेत्ता। चारित्रसिद्धने इनके मतकी प्रशानता दिखलाई है।

धामन—१ चट्टलके अन्तर्गत एक ग्राम। (भविष्यम० ल० १।१३३) २ लिपुपुराज्यकी राजधानी। अमरतोलासे १ योजन पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। (देशपत्नी)

३ विशालके अन्तर्गत एक ग्राम।

(भविष्यम० ल० ३।१५३)

धामन आचार्य करञ्ज कविसाधर्ममाम—१ प्राकृतचन्द्रिका और प्राकृतविङ्गलटीकाके रचयिता। २ प्रतिहारसूत्रनामक आदि ग्रन्थोंके प्रणेता प्रसिद्ध पण्डित धर्मरामके पिता। धामनक (सं० पु०) कौञ्जद्वीपका एक पर्वत।

(विश्वपु० ५।३।५)

धामनश्लेष्—भोजके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान।

(भविष्यम० ल० २।६।६)

धामनकाशिका (सं० स्त्री०) धामन रचित काशिकावृत्ति। धामनत्रयादित्ये (सं० पु०) काशिकावृत्तिके टीकाकार। धामनरथः (सं० स्त्री०) धामनस्य भाग्यः रथः। धामनता, धामनका भाग्य या धर्म, अति दृष्टता, मोक्षता।

वामनतंत्र—एक तंत्रग्रन्थ।

वामनदत्त—संस्कृतप्रकाशके प्रणेता।

वामनदेव—एक कवि। वामन देवो।

वामनद्वादशी (सं० स्त्री०) वामनदेवताके द्वादशीप्रत विशेष। वामनद्वादशीप्रत देवो।

वामनद्वादशीप्रत (सं० स्त्री०) वामनदेवताके द्वादशीप्रत। श्रवणाद्वादशीमें कर्त्तव्य वामनदेवता प्रतविशेष। द्वादशीके दिन वामनदेवके उह शसे यद् व्रत करना होता है, इस कारण इसके वामनद्वादशीप्रत कहते हैं। हरिभक्तिविलासमें इस व्रतको विधान इस प्रकार लिखा है—

श्रवणाद्वादशीके पहले एकादशीके दिन निरम्य उपवासी रह कर यह व्रत करना होता है। भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशीकी श्रवणा द्वादशी कहते हैं। अतएव पार्श्वपरिवर्त्तन एकादशीमें उपवासी रह कर यह व्रत करना उचित है। द्वादशीके क्षय होने पर एकादशीकी रातको या दूसरे दिन द्वादशीको वामनदेवकी पूजा करे। सोना, चांदी, तांबा या बांस—इनमेंसे किसी एकका पाल बना कर ताम्रकुण्ड स्थापन करे तथा बाई बगल छतरी, खड़ाऊ, बांसकी अच्छी छट्टी, अक्षत और कुश रखना होता है। गन्ध, पुष्प, फल, धूप, नाना प्रकारके नैवेद्य, भोक्षमोज्य और गुडोदन आदि द्वारा वामनदेवकी पूजा करना होता है। नृत्य-गीतादि द्वारा रात्रिजागरण करना आवश्यक है। पहले वामनदेवकी अर्घ्य दे कर पीछे पूजा करना होता है। इस अर्घ्यमें कुछ विशेषता है, यह यह कि सफेद नारियलके पानीसे अर्घ्य देवे।

इसके बाद दोनों पादमें मस्त्वकी, दोनों जानुमें कुम्भीकी, गुहामें बराहकी, नाभिमें नृसिंहकी, प्रक्षरस्थलमें वामनकी, दोनों कक्षमें परशुरामकी, दोनों भुजाओंमें रामकी, मस्तकमें हृणकी और सर्वाङ्गमें बुध तथा कर्दवीकी अर्चना करनी चाहिये "ओं मस्त्वाय नमः पादयोः" इत्यादि कवसे पूजा करनी होगी। इसके बाद "ओं सर्वेषु आयुषेभ्यो प्रमः" कह कर समो आयुषकी पूजा करना चाहिये। पीछे विधानानुसार मन्त्र पढ़ कर आचार और द्विजगणको दान दे देना आवश्यक है। उहें भी एक द्रव्य मन्त्र पढ़ कर ग्रहण करना उचित है।

इसके बाद व्रतकारो द्विच्युक्त धृत-परीस कर-पहले

द्विजातियोको भोजन करावे, पीछे शम्भुवाघवोंके साथ आप-भोजन करे। वामनपुराण और भविष्योत्तरपुराणमें इस व्रतविधिका वर्णन है।

ग्रहवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि द्वादशीके दिन बहुत सघेरे नदीसङ्गम पर जा कर संकटा करना होगा। उनका पीछे एक माशा सोनेसे या शक्तिके अनुसार वामनदेवकी मूर्त्ति बनानी चाहिये। उस मूर्त्तिको कुम्भके ऊपर सुवर्ण-पालमें रख कर पीछे स्नान करा उसकी पूजा करे।

अर्घ्य देनेके बाद ब्राह्मणको छत्र, पादुका, गो और कमण्डलु दान करना होता है। रात्रिकालमें नृत्य-गीतादि द्वारा रात्रिजागरण करना उचित है। द्वादशीमें ब्राह्मणको भोजन करा कर आप पारण करे। द्वादशीके रहते ही पारण करना उचित है।

जो विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें समो प्रकारका सुख-सौभाग्य प्राप्त होता है। जो पिता-माताके उह शसे यह व्रतफल अर्पण करते हैं, वे कुन्दाता हो कर पितृभ्रूणसे उत्तीर्ण होते हैं। इस व्रतके करने-वाले हरिधाममें जा कर ७७ युग वास करते हैं और पीछे इस पृथ्वी पर जन्म ले कर राजा होते हैं।

(हरिभक्ति १५ वि०)

वामनपुराण (सं० स्त्री०) अष्टादश पुराणोंमेंसे एक पुराण। पुराण शब्द देवो।

वामनमट्ट—निराशकसमप्रदायके एक गुरु। ये रामचन्द्र मट्टके शिष्य और कृष्णमट्टके गुरु थे।

वामनमट्ट—दृग्दृष्टनाकर और शररत्नाकर नामक अग्नि-धातके प्रणेता। यह वरहस्पतिसौम्य कीर्ति-पञ्चाके पुत्र और बरदानिविन्तके पीत थे।

वामनमट्टवाण—रघुनाथचरित और शृङ्गारभूषण नामक भाणके प्रणेता।

वामनपृत्ति (सं० स्त्री०) वामनचित्र काजिकपृत्ति।

वामनप्रत (सं० स्त्री०) वामनदेवताके प्रतम्। वामन द्वादशीप्रत।

वामनसिंहरजमणदेय—दाक्षिणात्यके एक राजा।

वामनसिंहराज—एक हिन्दुराज। आप दाक्षिणात्यमें राज्य करते थे।

वामनसूक्त (सं० स्त्री०) वैदिक स्तोत्रमेंसे।

वामनस्थली—वर्षद्वैप्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद। इसका वर्तमान नाम वरगलि या वनस्थली है। जूनागढ़से यह ८ मील दूर पड़ता है। यहाँके लोग आज भी एक स्थानकी वामनराजका प्रासाद बतलाते हैं। उक्त वामनराजकी राजधानी अथवा वामनापतारके पविल तीर्थक्षेत्रसे इस स्थानकी प्रसिद्धि खोकार की जा सकती है। एक समय यहाँ राजा प्राहरिपुकी राजधानी थी। स्कन्दपुराणान्तर्गत प्रमासुखण्डमें भी इस प्राचीन देशकी समृद्धिका परिचय मिलता है।

वामन स्वामिन् (सं० पु०) एक प्राचीन कवि ।

वामना (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम ।

वामनाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद, एक विख्यात टोकाकार ।

वामनानन्द—कोकिलारहस्य और श्यामला-मन्त्रसाधन के प्रणेता ।

वामनिका (सं० स्त्री०) १ खर्वाकारा स्त्री, बीनी स्त्री ।

२ स्कन्दानुचरमातृभेद, स्कन्दकी अनुचरी एक मातृकाका नाम ।

वामनी (सं० स्त्री०) १ खर्वा स्त्री, बीनी औरत । २ घोटकी, घोड़ी । ३ एक प्रकारका योनिरोग ।

वामनोरुन (सं० लि०) मर्दन द्वारा सङ्कोचित, जो मल कर छोटा किया गया हो ।

वामनोति (सं० पु०) धनका नेता । (अ० ६।४७।७)

वामनीय (सं० लि०) वक, टेढ़ा ।

वामनेत्र (सं० स्त्री०) घर्षण्यासे वाम नेत्र स्पृश्य येन ।

१ दीर्घ ईकार । २ वामलोचन, बाईं आँख ।

वामनेत्रा (सं० स्त्री०) सुन्दरी स्त्री, खूबसूरत औरत ।

वामनेन्द्र स्वामि (सं० पु०) आचार्यभेद । ये तत्त्वबोधिनो के प्रणेता ज्ञानेन्द्र सरस्वतीके सुद भे ।

वामनोपपुराण—उपपुराणभेद ।

वामनोज्ज्वल (सं० स्त्री०) वामं भजते भज-ण्वि । धन-भागो ।

वामभृत् (सं० स्त्री०) इष्टकामेद, यज्ञकुण्ड बनानेकी एक प्रकारकी ईंट । (शतपथब्र० ७।४।२।३१)

वाममार्ग (सं० पु०) वामः मार्गः । वामाचार, वेदविहित दक्षिण मार्गके प्रतिपक्ष मार्गः मन तिसमें मघ, सांस, धामिचार आदि-निषिद्ध बातोंका पियान रहता है ।

वाममाली (सं० पु०) सहायविधिर्णित राजभेद ।

(ध्या० ३१।३०)

वामरथ (सं० पु०) एक गोकर्णर ऋषिका नाम । इनके गोत्रवाले वामरथ्य कहलाते थे ।

वामरथ्य (सं० पु०) वामरथके गोत्रापत्य ।

(वा ४।१।१२)

वामलूट (सं० पु०) वामं यथा तथा लुनातीति लु बाहुलकात् रक् । वल्लोक, दोमकका भौटा ।

वामलोचन (सं० स्त्री०) वामनेत्र, बाईं आँख ।

वामलोचना (सं० स्त्री०) वामे चाचणो लोचने यस्याः । स्त्रीभेद, खूबसूरत औरत ।

वामशिव (सं० पु०) कथासरित्सागरचर्चित व्यक्तित्व ।

वामवेधशुद्धि (सं० स्त्री०) वामे प्रतिफूले यो वेधस्ताद्विषये शुद्धिविगोघ्नं, या वामेन विपरोतेन धेधेन शुद्धिः ।

ज्योतिषोक्त चन्द्रशुद्धिविधेय । इस वामवेध-शुद्धिका

विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—जिसको जो राशि

है उस राशिसे द्वादश, चतुर्थ और नवम गृहस्थित चन्द्रके

विकरत होने पर भी यदि शुक्र, शनि, मङ्गल, बृहस्पति

और रवियुक्त गृहसे सप्तम गृहमें हों, तो वामवेधशुद्धि

होती है । इसमें विकरत चन्द्र भी शुभफलदाता होते हैं ।

फिर ये विकरत चन्द्र, शुक्र, शनि, कुज, बृहस्पति और

रवियुक्तसे दशम, पञ्चम और अष्टम गृहमें वास करते

तथा अपनी राशिमें यथाक्रम अष्टम, पञ्चम और द्वितीय

गृहमें हो कर भी शुभफलदाता होते हैं ।

वामा (सं० स्त्री०) वामति स्त्रीन्दर्व्ये इति वाम उवलादित्वा-

द्वय् टाप, यथा वामति प्रतिफूलमेवायं कथयति या वामो

क्रामोऽन्त्यस्था इति अशी भादिसंवाद्य् । १ सामान्या स्त्री,

स्त्रीमातृ । २ दुर्गा । ३ दश अक्षरोंके एक वृत्तका नाम ।

इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण और भगण तथा

अन्तमें एक सुन्द होता है ।

वामाक्षि (सं० स्त्री०) वाममक्षि । १ वामवधु, बाईं

आँख । २ दीर्घ ईकार ।

वामाक्षी (सं० स्त्री०) वामे मनोहरे भक्षिणी यस्याः, पद्-

ममासागतः लोपः । १ वामलोचना, सुन्दर स्त्री । २ दीर्घ

ईकार ।

वामाचार (सं० पु०) वामो विपरोतो धेद्विषुदो या

आचारः । तत्सोक्त आचारविधेयः ।

पञ्चतत्त्व (मघ, मांस, मत्स्य, मुद्गा और मैथुन) इस पञ्च मकार और खपुण्य (रजसलला खोके रज) द्वारा कुल स्त्रीकी पूजा तथा वामा हो कर पराशक्तिकी पूजा करनी होती है। इससे वामाचार होता है। जो वामाचारो हों, वे इसी विधानसे कार्यादि करें। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है, कि जो इस आचारके अनुसार चलेंगे, उन्हें नरक होगा।

चारों वेदमें पशुभाव प्रतिष्ठित है अर्थात् वेद-विहित आचार या वैदिक-आचार ही तान्त्रिक मतसे पश्वाचार है तथा वामादि जो तीन आचार हैं वे दिव्य और वीर-भावमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् वामादि जो आचार हैं वे दिव्य और वीराचार हैं। आचारोंमें वेदाचार श्रेष्ठ हैं। वेदाचारसे वैष्णवाचार तथा वैष्णवाचारमे शैवाचार, शैवसे दक्षिणाचार, दक्षिणसे वामाचार, वामसे सिद्धान्ताचार और सिद्धान्तसे कौलाचार श्रेष्ठ है।

वामाचारके मतसे मद्यादि द्वारा देवोंको अर्चना करनी होती है सद्यो, पर यह सर्वोंके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मण वामाचारी हो कर देवोंको मघमांस न चढ़ावें और न स्वयं सेवन करें।

कुलस्त्रीकी पूजा, मघ मांसादि पञ्चतत्त्व और खपुण्य का व्यवहार वामाचारके प्रधान लक्षण हैं*। मद्याद दान और सेवन वामाचारियोंका प्रधान कर्त्तव्य है। इसके बाद वामास्वरूपा हो कर परमाशक्तिकी पूजा करनी होती है, नहीं करनेसे सिद्धिलाम नहीं होता।

रातको छिप कर कुलक्रिया और दिनको वैदिक-क्रिया करनेका विधान है। वामाचारी कौलगण चिररूप पुण्य, प्राणरूप धूप, तेजोरूप क्षोप, वायुरूप चामर आदि कल्पित उपचार द्वारा आग्तारिक साधना करने हैं। इसका नाम अन्तर्पाग है। पटचक्र-वेद इस अन्तर्पागका प्रधान अङ्ग है। पटचक्र देखो।

अन्तर्पाग साधनमें प्रवृत्त वीराचारी वा वामाचारी मघमांसादि भगवतीको अर्चना करते हैं। कुलार्णवमें ऐसे साधकको देवीका प्रिय कहा है। यहाँ तक, कि कुल शास्त्रकारोंने समीको मघमांस द्वारा पूजा करनेकी विधि दी है,—

“शैवे च वैष्णवे शिवे चोरे च गतदर्शने ।

बोद्धे पाशुपते शक्ये ऋते क्लामुखे तथा ॥

सदस्त्रवामसिद्धान्तवैदिकादिपु पावति ।

विनाशितशिताभ्याश्च पूजनं विफलं भवेत् ॥”

(कुलार्णव)

कुलार्णवमें यह भी लिखा है, कि सुरा शक्तिस्वरूप, मांस शिवस्वरूप और उस शिवशक्तिके भक्त स्वयं भैरव-स्वरूप हैं*।

इस देगमें वीराचारो साधारणतः चक्र बना कर उपासना करते हैं। चक्रनिर्माणकी प्रणाली इस प्रकार है—साधकगण चक्राकारमें वा श्रेणीक्रमसे अपनी अपनी शक्तिके साथ ललाटमें चन्दनका प्रलेप दे कर युगक्रमसे भैरव-भैरवी भावमें बैठें। वे दलमध्यस्थित किसी स्त्रीको साक्षात् काली समझ कर मघमांसके साथ उसकी पूजा करें। किसी स्त्रीको इस प्रकार पूजा करनी होती है, तन्त्रमें यों लिखा है:—

“नतो कापालिकी वैष्णवा रजकी नापिताग्रना ।

ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपात्रकन्यका ॥

मालाकारस्य कन्या च नवकन्याः प्रकीर्तिनाः ।

विशेषे पर्ययुता सर्वा एव कुलाह्वना ॥

रूपधीवनक्षत्रम्भा शीलश्रीभाग्यशालिनी ।

पूजनीया प्रयत्नेन ततः सिद्धिर्भवेद्भूम ॥”†

(सुतशाधनतन्त्र १ म पटल)

* तन्त्रकी यह व्याख्या ईसाई-धर्मशास्त्र धारविश्वमें भी है। शाक लोग जिस प्रकार शिवको मास और शक्तिको मद्य करते हैं उसी प्रकार रोमन कैथलिक ईसाई लोगोंमें भी वीशु-सृष्टिके रक्तको मद्य स्वीकार किया है।

† देवतौतन्त्रमें चण्डाली, पवनो, बौद्ध, रजकी आदि चौंसठ प्रकारकी कुक्षिशिवीका उल्लेख है। निरन्तरतन्त्रकारका कहना है, कि वे सब रुद्ध उपवासक नहीं हैं, उनके विशेष विशेष कार्यविधानके गुणशापक हैं।

* “पञ्चतत्त्व” खपुण्यश्च पूजयेत् कुलधोषितम् ।

वामाचारो भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम् ॥”

(आचारमेदतन्त्र)

† “मघं मांसं च मत्स्यं च मुद्गामैथुनमेव च ।

मकारपञ्चकन्यैव महानावकनाशनम् ॥” (श्यामारहस्य)

चक्रगत परपुरुष ही उन सब कुलस्त्रियके पति हैं, कुलधर्मसे विवाहित-पति पति नहीं हैं। पूजाकालके नियम अन्य समयमें परपुरुषको हृदयमें स्थान न दें। पूजाके समय वेश्याकी तरह सर्वाकी परितोष करना उचित है।

साक्षात् कालोत्तरुपा ऊपर कही गई कुलनारीको पूजा करके वामाचारी मंथादि शोधन कर पीने हैं। प्राणतोषिणीतन्त्रमें लिखा है, कि ललाटमें सिन्दूरचिह्न और हाथमें मदिरासय धारण कर गुरु और दिवताका ध्यान करते हुए उसे पान करे, सुरापालकी हाथसे पकड़ कर तदन भावमें मद्यपानकी इस प्रकार बन्धना करनी होती है।

"भ्रीमन्त्रे रथशेखरप्रविलसयन्द्रामृतप्लावितम्
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीसुरगणैः सिद्धैः समारापितम्।
भानन्दाण्यैकं महात्मकमिदं साक्षात् शिष्यबामृतम्
बन्धे भ्रीमयं कराम्बुजगतं पानं विष्णुदिग्दर्म् ॥"

(वामारहस्य)

इस प्रकार विशेष विशेष मन्त्रोंद्वारा पांच बार पानकी बन्धना करके पांच पाल मद्य ग्रहण करना चाहिये। जब तक इन्द्रियां चञ्चल न हो जायें, तब तक पान करता रहे। पीछे चक्रादिके कल्याण और उनके विपक्षके विनाशके उपदेशसे शान्तिस्तोत्र का पाठ कर कुलकियाका अनुष्ठान करना होता है। इसके बाद भानन्दोक्तशस—कुलार्णवके ५म अण्डमें यह लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे वे मद्य गुहातिगुहा नहीं लिखे गये। बोराषादी देलो। वामाचारिन् (सं० खी०) वामाचारः अस्त्यर्थे इति। वामाचारयुक्त, जिन्होंने वामाचार अयलभ्यन किया है। वामाचोड्डन (सं० पु०) पीलुवृक्ष, पीलुका पेड़। वामावर्त्त (सं० खी०) घामिन भावर्त्तः। १ वामदिग्मे आयर्चानयुक्त, जो किसी बन्धुकी बाईं ओरसे आरम्भ

की जाय। २ जिसमें बाईं ओरका घुमाय या भंवर हो। ३ जो बाईं ओरसे चला हो।

वामावर्त्तफला (सं० पु०) ऋदि। (पैचकनि०)
वामावर्त्त (सं० खी०) भावर्त्तकी लता।
वामिका (सं० खी०) वामा-स्वाधी पन्तु टापि मत इर्वी।
चाण्डिका।

वामिन् (सं० खी०) १ यमनशील, उठती करनेवाला।
२ उद्विग्नशील, उगलनेवाला। ३ वामाचारी।

वामिनी (सं० खी०) योनिरोगविशेष। इसमें गर्भाशयसे छः सात दिन तक रजका स्राव होता रहता है। इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती।

वामियान्—अफगानिस्तानकी सीमा पर अवस्थित एक शैलमाला। चीनपरिधाजकने यहाँ इस नामके एक नगर और उस नगरमें अनेक बौद्धमूर्तियोंका उद्घोष किया है।
वामिल (सं० खी०) वाम-इलच्। १ दामिक, पाषण्डो।
२ वाम, बायाँ।

वामो (सं० खी०) वाम-डीप्। १ शृगाली, गौडूँ।
२ बड़या, घोड़ा। ३ रासगो, गदहो।

वामोयभाष्य (सं० खी०) भाष्यप्रथमैद्।
वामितर (सं० खी०) वामादितरः। दक्षिण, बायेंका उल्टा।
वामोठ (सं० खी०) सुन्दर ऊरविशिष्ट।

वामोठ (सं० खी०) वामी सुन्दरी ऊर यस्याः (संक्षिप्तं कनकप्रणवामदिम्ब। पा १।४।७०) इति ऊर्ध्वं। नारोगिशेष, सुन्दरी खी।

वाम्नी (सं० खी०) एक वैदिक ऋषिकन्या।

(पञ्चविंशत् ११६।१८)

वामनेय (सं० पु०) वाम्नीके अग्रपत्य।
वाम्य (सं० खी०) १ यमनीय, यमनयोग्य। (साङ्ख्यपर्यायिणा)
२ वामसम्यग्योग्य। (वाहित्यदर्पण) (पु०) ३ वामदिग्-
ऋषिके एक घोड़ेका नाम।

वाघ्र (सं० पु०) १ वघ्रके गोतापत्य। २-सामनेय
वाघ्रिङ्ग—यशोर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन-ग्राम।

(सविंशत् ११।१८)

वाय (सं० पु०) १ यवन, युवना। २ माघन।
वायक (सं० पु०) वायकोति-घे-णुल्। १ समूह, टेर।
२ तन्मुवाय, सुनाही।

• "आगमोक्तः शम्भुरागमोक्तविर्गुः।

स पतिः कुलजाधार्य न पतिश्च विशाहिः ॥

विवाहितवित्तयागे दुष्यन् न कदाचनैः।

विवाहितं पतिं नेव तदनेद्रे दोषकर्मणि ॥"

(निवृत्तरत्न)

वायव (सं० पु०) वयवके पुत्र । राजा पाशुपत इनके 'वशधर थे ।'

वायवी—पश्चिम यज्ञवासी निम्नश्रेणीकी एक जाति ।
इस जातिके लोग अक्सर न्यूनेका व्यवसाय किया करते
हुं ।- वाटी देखो ।

वायदि (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली ।
Pseudentropius taakree.

वायदण्ड (सं० पु०) वायस्य दण्डः यद्वा वायवेऽनेनेति
वाय, वाय एव दण्डः । वायदण्ड, जुआहोंकी ढरकी ।

वायन-(सं० स्त्री०) विष्टकविशेष, यह मिठाई या परचाय
की देवपूजा या विवाहादिके लिये बनाया जाय ।

वायनिन् (सं० पु०) एक ऋषिपुत्र । (चल्काकीमुदो)
वायउरु (सं० स्त्री०) जुआहोंके करघेकी वी या कंधी ।

वायलपाड़—मन्द्राजप्रदेशके कड़ावा जिलान्तर्गत वायल-
पाड़ तालुकेका सदर । यहाँ प्रतनतत्त्वके निदर्शनस्वरूप

रायस्वामीका एक प्राचीन मन्दिर और शिलालेख है ।
वायत्र (सं० लि०) वायोर्घं वायु-अणु । वायुसम्बन्धीय ।

वायवी (सं० स्त्री०) १ उत्तरपश्चिमदिक्, उत्तर-पश्चिमका
कोना । २ कासिकके अनुचर एक मातृमेद ।

(भारत ६।४६ ३७)

वायवीय (सं० लि०) वायुसम्बन्धीय । जैसे—वायवीय
परमाणु ।

वायव्य (सं० लि०) वायुर्देवतास्येति वायु- (वाय्वुषि-
क्रयते यत् । वा ४।२।३१) इति यत् । १ वायुसम्बन्धीय ।

२ वायुघटित, वायुसे बना हुआ । ३ जिसका देवता
वायु- ही । (पु०) ४- यह कोण या दिशा जिसका

अधिपति वायु है, पश्चिमोत्तर दिशा । ५ चौबीस हजार
छः सौ श्लोकात्मक वायुपुराण । यह अठारह पुराणोंमें

एक है । पुराण शब्दमें विस्तृत विवरण देसे । ६ एक
-अक्षरका नाम ।

वायस (सं० पु०) वयते इति वय-गती । (वयश्च । उण्
- ३।१२०) इति वसच्, सच क्त् । १ अगुवृक्ष, अग-
का पेड़ । २ श्रीवास, सरल निर्वास । ३ काक, कौवा ।

गनिपुराणमें लिखा है, कि अरण्यके श्येनो नामकी परनो-
से जटायु और सम्पाति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

इसो जटायुसे काककी उत्पत्ति हुई ।

काकके एक चक्षु नष्ट होनेका कारण नृसिंहपुराणमें
इस प्रकार लिखा है—जब चितकूट पर्वत पर राम और

सीता दोनों रहते थे, उस समय एक दिन एक कौबिने
सीताके स्तनमें चोंच मारी थी । स्तनसे रक्तका बहना

देख कर रामचन्द्रने कौबिका वध करनेके लिये ऐषिकार
फेंका । यह कौवा इन्द्रका पुत्र था, इसलिये वह उरके

मारै इन्द्रके पास भाग गया । वहाँ उसने अपना
अपराध स्वीकार कर प्राणभिक्षा मांगी । इस पर इन्द्र कोई

उपाय न देख देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास गये
और उस कौबिकी प्राणदान देनेकी प्रार्थना की । रामचन्द्र-

ने कहा, मेरा अन्न निष्फल होनेकी नहीं, इसलिये यह
अपनी एक आंख दे देवे । कौवा राजी हो गया और

यह बाण एक आंख नष्ट करके ही स्थिर हुआ । तभीसे
कौबिकी सिर्फ एक आंख है । (नरसिंहपुराण ४३ अ०)

पूरकविण्डदानके बाद काकके उद्देशसे बलि देने
होती है । काक धर्माधर्मका साक्षी है तथा विण्डदानादि-

का विषय यमलोकमें जा कर यमराजसे कहता है ।
नयात्र ध्रातके बाद भी काकके उद्देशसे बलि देनेकी

प्रथा है । काकचरित मालूम होने पर भूत, भविष्य और
वर्तमान विषय जाने जा सकते हैं ।

विशेष विवरण काक शब्दमें देखो ।

(लि०) २ वायससम्बन्धीय ।

वायसजङ्घा (सं० स्त्री०) १ काकजङ्घा, चकसेनो ।
२ गुञ्जामूल, घुंघचीकी जड़ ।

वायसतनु (सं० पु०) १ हनुके दोनों जोड़का नाम ।
२ काकतुण्डिका, कौआठोंठी । ३ कौबिकी टोंटी ।

वायसतीर (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम ।
वायसविद्या (सं० स्त्री०) वायससम्बन्धीय विद्या, काक-

चरित ।
वायसादनो (सं० स्त्री०) वायसेन अद्यते इति अद्-कर्मणि-

ल्यट्, ङीप् । १ महाज्योतिष्मती लता । २ काकतुण्डो,
कौआठोंठी ।

वायसान्तक (सं० पु०) पेचक, उल्टू ।
वायसारति (सं० पु०) वायसस्य अरातिः शत्रुः । पेचक,

उल्टू ।
वायसाहा (सं० स्त्री०) वायसस्य आहा नाम यस्याः ।

१ काकनामा, सफेद लाल घुंघुचो। २ काकमाचो, मकोय।

वायसी (सं० स्त्री०) वायसानामियमिति तत्प्रियत्वान्, वायस-अण्-डोप्। १ काकोडुम्बरिका, छोटी मकोय जिसमें गुच्छोंमें गोलमिर्चके समान लाल फल लगते हैं। २ महाउपोतिधमती लता। ३ काकनुण्डी, कीमाडोडी। ४ ध्वेत गुग्गुला, सफेद घुंघुचो। ५ काकजङ्घा, मांसी। ६ महाकरञ्ज, बड़ा फंजा।

वायसावह्नी (सं० स्त्री०) करञ्जवह्नी, लताकरञ्ज।
वायसीशाक (सं० स्त्री०) शाकविशेष, काकमाचोका साग।

वायसेशु (सं० पुं०) वायसानामिधु रिव प्रियत्वाम्। काश, कांस नामकी घास।

वायसेलिका (सं० स्त्री०) वायसेली सद्यो कन्, टाप्। १ काकोली, मालकंगनी। २ मधूली, जलमें उत्पन्न होनेवाली मुलेठी। ३ महाउपोतिधमती लता। ४ पल-शाकविशेष।

वायसेली (सं० स्त्री०) वायसान् ओलण्डपतीति ओलण्डि-उरदोपे 'मन्वेव्यपि दृश्यते' इति ड शकन्धवादि-रवान् अस्य लोपः। काकोली, मालकंगनी।

वायु (सं० पुं०) वातांति वा गतिगन्धनयोः (हवापानिमिस्व-दिवाभ्युद्भूय उच्यते। उच्यते १।१) इति उण् (आतोयुक् चिच्य क्रोः। पा ७।१।३३) इति युक् पञ्चभूतके अन्तर्गम भूतविशेष हवा, पवन। पर्याय—अवसन, स्पर्शन, मातरिध्वा, सदा गति, पृथग्भव, गन्धघट, गन्धवाह, अनिल, साशुग, समोर, मादत, मद्यन्, जगत्प्राण, समोरण, नमस्मान्, वात, पवन, पयमान, प्रभञ्जन। (भर) अजगत्प्राण, गन्धाम, वाह, धूलिध्वज, फणिसिध, वाति, नमःप्राण, भोगिकास्त, स्वकम्पन, अक्षति, कम्पलक्ष्मा, शसोनि, धायक, हरि। (हरदरनावती) वास, सुभाज, सुगन्धादन, सार, चञ्चल, विहग, प्रकम्पन, नमःस्वर, निध्वासक, स्तनून, पृथगं-पतिः। (अदापर)

वेदान्तके मतानुसार आकाशसे वायुकी उत्पत्ति है। जब भगवान्ने परांचर जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा प्रकट की, तब पहले आरमासे आकाशकी, आकाशसे वायुकी, वायुमें अग्निकी, अग्निसे जलकी और जलमें पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई।

"तस्मादेतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशां-
द्रायुः धायोरनिरन्तरावः अद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते"
(भृति) वायु पञ्चभूतमें दूसरी है और आकाशमें उत्पन्न हुई है, इसी कारण इसके दो गुण हैं—शब्द और स्पर्श।

प्राण, अपान, समान, उदान और प्यान ये पञ्चवायु हैं। ऊर्ध्वगमनगोल नोसाप्रस्थानमें अवस्थित वायुका नाम प्राण, अधोगमनगोल वायु आदि स्थानमें स्थित वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनगोल समस्त शरीरस्थायी वायुका नाम प्यान, ऊर्ध्वगमनगोल कण्ठ-स्थायी उत्कण्ठगोल वायुका नाम उदान, पीत मन्त्र-जलादिके समीकरणकारी वायुका नाम समान है। समीकरणका अर्थ परिपाक अर्थात् रस, कषिर, शुक्रपुरो-पादि करना है। हम लोग जो सब वस्तु खाते हैं, एकमात्र वायु ही उन्हें परिपाक करती है।

सांस्थाचार्यगण नाग, कूर्म, छकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक और भी पांच प्रकारकी वायु स्वीकार करते हैं। उद्विरणकारी वायुका नाम नाग, चतुः उन्मी-लनकारी वायुका नाम कूर्म, सघाजनक वायुका नाम छकर, जन्मनकारी वायुका नाम देवदत्त और पोषणकारी वायुका नाम धनञ्जय है। वैदिकान्तिक आचार्योंने प्राणादि पांच वायु स्वीकार की है सही, पर नागादि पांच वायु उक्त प्राणादि पांच वायुमें अवस्थित है, इस कारण पञ्च-वायु स्वीकार करने होसे इन सब वायुकी सिद्धि हुई है।

यह प्राणादि पञ्च वायु आकाशादि पञ्चभूतके रजः-भंगसे उत्पन्न हुई हैं। प्राणादि पञ्चवायु पञ्चभूमिंप्रिय-के साथ मिल कर प्राणमय कीच कहलाती हैं। गर्भना-गमनादि क्रियामात्रय होनेके कारण इन पञ्चवायुके रजःभंगका कार्य कहते हैं। भावापरिच्छेदमें लिखा है, कि अपावज और अनुष्ण शीतस्पर्श वायुका धर्म है। यह तित्त्वगमनगोल तथा स्पर्शादितिल्लक है अर्थात् स्पर्शे द्वारा इसे जाना जाता है। शब्द, स्पर्श, श्रुति और कम्प द्वारा वायुका अनुमान किया जाता है अर्थात् विशा-तीय स्पर्श, विलक्षण शब्द मृणादिकी धृति और शावादि-के कर्म द्वारा ही वायुका ज्ञान होता है।

जिस वस्तुमें रूप नहीं, स्पर्श है, उसका नाम वायु है। पृथिवी, जल और तेज वस्तुमें रूप है, आकाशादि

वस्तुमें स्पर्श नहीं है, इस कारण वे वायु नहीं हैं। वायु दो प्रकारकी है नित्य और अनित्य। वायव्य परमाणु नित्य और तद्गमिन् वायु अनित्य है। अनित्य वायुके भी फिर तीन भेद हैं, शरीर, इन्द्रिय और विषय वायुलोकस्थ जीवोंका शरीर वायव्य है। व्यजनवायु अङ्ग-सङ्गजलके शीतल स्पर्शको अभिव्यक्त करती है, त्वगिन्द्रिय भी स्पर्श-मात्र ही अभिव्यक्त है, अतएव यह वायव्य है। शरीर और इन्द्रियकी छोड़ कर बाकी सभी वायुका साधारण नाम विषय है। जन्मद्रव्यमात्र ही पृथिवी, जल, तेज और वायु इन चार भूतोंसे घोड़ा बहुत सम्बन्ध रखता है। तथा यह चार भूतोंके जन्मद्रव्यका आरम्भक वा समा-यापिकारण है।

शब्दके आश्रय द्रव्यका नामका आकाश है। शब्दमें एक अधिकरण वा आश्रय अवश्य है, वही आकाश कह-लाता है। शब्दकी उत्पत्तिके लिये वायुको अपेक्षा रहने पर भी वायुशब्दका आश्रय नहीं है। क्योंकि, वायुका एक विशेष गुण स्पर्श है। यह स्पर्श वायुद्रव्यमात्र ही अर्थात् वायु जब तक रहती है, तब तक उसमें स्पर्शगुण भी रहता है। किन्तु शब्द वेसा नहीं है। वायु रहते हुए भी शब्द नष्ट हो जाता है। वायुके विशेष गुण स्पर्शके साथ ऐसी विलक्षणता रहनेके कारण शब्द वायुका विशेष गुण नहीं है। शब्द यदि वायुका विशेष गुण होता, तो स्पर्शकी तरह वह भी वायुद्रव्यमात्र ही सक्तता था।

परमाणुरूप वायु नित्य है, यह पहले लिखा जा चुका है। अद्रव्युक आरम्भके संयोगसे पहले पवनपरमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति होती है। सभी पवनपरमाणुके परस्पर संयोगसे द्वाणुकादिकर्ममें महान्वायु उत्पन्न होती है तथा अनन्तरत कम्पमान हो कर आकाशमें अधस्थित रहती है। नियमगमन वायुका स्वभाव है। उस समय ऐसे दूसरे किसी भी द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती जिससे वायुका वेग प्रतिहत हो सके। वायुकी सृष्टिके पीछे उसी प्रकार वायु वा जलीय परमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति हो कर द्वाणुकादिकर्ममें महान् सलिलराशि उत्पन्न होती तथा वायुवेगसे कम्पमान हो कर वायुमें अधस्थित रहती है। (न्याय०) वैशेषिकदर्शनकार कहते हैं—“स्पर्श-वायु कथम्”—(४।२।१)

शङ्करमिश्रने वायुके लक्षणमें लिखा है—“स्पर्शर-विशेष गुणसमानाधिकरण-विशेषगुण-समानाधिकरण-जातिमत्त्व-वायुलक्षणम्।”

अर्थात् पदार्थकी जिस जातिमें स्पर्शगुणके सिवा अन्यगुण गुणोंके असमानाधिकरणविशिष्ट विशेष गुणका समानाधिकरणजातिमत्त्व विद्यमान है, वही वायु है। महर्षि कणादने केवल स्पर्शगुण द्वारा ही वायुका लक्षण सिद्ध किया है। महर्षि कणादने वायुसाधनप्रकरणमें लिखा है—“स्पर्शश्च वायोः”—(६।२।१)

शङ्करमिश्रने वैशेषिकसूत्रोपस्कारमें लिखा है—“चका-रात् शब्दघृत्तिका समुच्चोच्यते।”

अर्थात् “स्पर्शश्च” शब्दके अन्तमें जो “च” कार है यह चकार समुच्चयके अर्थमें व्यवहृत हुआ है। इसमें शब्द, घृति और कम्प इन तीनोंके भी वायुलक्षणके अन्तर्भूक सम्बन्धना होगा। शब्दस्पर्शश्च वैगवत् द्रव्या-निघातनिमित्तक है, शब्दसन्तति वायुका एक लक्षण है। ङके आघातसे मैटोसे जो शब्द निकलता है उसका वह शब्दसन्तान वायु ही लक्षण है। आकाश-से तृणतुलादि विघ्न अवस्थामें पतमान रहता है, यह भी वायुके अस्तित्वका परिचायक है; यही घृत्तिका उदा-हरण है। इस प्रकार वायुकी अस्तित्वके सम्बन्धमें कम्प भी एक लक्षण है। वायुके सम्बन्धमें वैशेषिक-दर्शनके द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें बहुत गहरी आलोचना की गई है।

सांख्यदर्शनके मतसे शब्दतन्मात्र और स्पर्शतन्मात्र-से वायुकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण वायुके दो गुण हैं,—शब्द, और स्पर्श। जो जिससे उत्पन्न होता है, यह उसका गुण पाता है तथा उसमें भी एक विशेष गुण रहता है। वायुका विशेष गुण स्पर्श है तथा शब्दतन्मात्र-से हुआ है, इस कारण शब्द और वायुका गुण ज्ञानना होगा। सांख्यकारिकाके भाष्यमें शोडशपादने लिखा है—

“शब्दतन्मात्रादाशुः स्पर्शतन्मात्रात्तन्मः रसउन्मात्रादायः गन्धतन्मात्रात् सूक्ष्मी एव पञ्चम्यः परमाणुगुणः पञ्चमराता न्युत्पच्यते।”

किन्तु पाचस्यतिमिदं कहते हैं—

"इन्द्रतन्मापवहितार् स्वयंतन्माशुद् वायुः—शब्दस्वर्गगुणः ।" इत्यादि ।

साव्यकारिका—

"सामान्यकरकश्रितवाद्यायाः वायवः पञ्च ।" २६ सूत्र ।

इस सूत्रके भावमें गौडवायुगुणिते पञ्चवायुके क्वापा-सम्बन्धमें संक्षेपतः बहुभाषाप्रकाशक अनेक वाते कहे हैं ।

पुराणमें लिखा है, कि वायु ४६ है । ये सभी भवितिके पुत्र हैं । इन्द्रने इन्हें देवत्व प्रदान किया । यह वायुदेहकी वाह्य और अन्तर्भेदसे द्वा प्रकारकी है । जैसे—प्राण, ध्यान, ध्यान, सामान, उदान, नाग, कूर्मा, ककर, देवदत्त और धनञ्जय । इन द्वा प्रकारकी वायुके कार्यं पृथक् पृथक् है । जैसे, प्राणवायुका कार्यं—वहिरंगमन, जगान-का कार्यं—अधोगमन, ध्यानका कार्यं—आकुञ्चन और प्रसारण, समानका कार्यं—असित पोसादिका समतानवन, उदानका कार्यं—ऊर्ध्वानयन । ये पाँच वायु भास्तर हैं अर्थात् ये शरीरके भीतरमें काम करते हैं । नागादि पाँच वायु बाह्य हैं अर्थात् शरीरके बाहरी भागमें काम करती हैं । जिस क्वापा द्वारा उद्गार कार्यं सम्पन्न है उस वायुका नाम नाग है । इसी प्रकार उम्मीलनकारी वायुका नाम कूर्मा, क्षुपाकार वायुका नाम ककर, जूभाण करका नाम देवदत्त तथा सर्वव्यापी वायुका नाम धन-ञ्जय है । (भागवत) मत्त शब्दमें वीरायिक विवरण देते ।

भाष्यप्रकाशमें लिखा है—वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । इनके विकृत होनेसे वेद नष्ट होती हैं । भवित्कन भवस्थानमें रहनेसे शरीर सुस्थ रहता है ।

वायुका स्वरूप यथा—वायु अत्यान्व देव, घातु और मल आदिके प्रेरक हैं अर्थात् इन्हें दूसरी जगह भेजते हैं । फिर यह आशुशरीर, रजोगुणात्मक, सूक्ष्म, दृश्य, शोतगुणयुक्त, लघु और गमनशील भी है । अत्यान्व देवकं प्रयोगमें लिखा है, कि भवित्कन वायु द्वारा उरमाह, ध्याम, प्रभास, वेष्टा (कायिकं वधापार), वेग, प्रवृत्ति, घातु और इन्द्रियोंकी घटना तथा हृदय, इन्द्रिय और चिन्मपारण ये सब क्वापा स्रष्टी तरह सम्पादन होती हैं । यह रजोगुणात्मक, सूक्ष्म, शोतगुणात्मक, लघु, गमनशील, लघु, सूक्ष्म, योगवाही और संवोजक टापा भी प्रकारकी होती है । यह तैज और सोमके साथ संयुक्त

होनेसे शोतजनक होती है तथा वैदोत्पादक सामप्रियोंकी विभक्त कर भिन्न भिन्न आकारमें यथायोग्य स्थान पर पहुँचती है, इस कारण तीन दोषोंमें घातुको ही प्रधान कहा है । पकाशय, कटी, सन्धि, श्रोत, अस्थि और स्वशोन्द्रिय हैं, उनमेंसे पकाशय प्रधान स्थान है ।

परमात्र वायु पित्तकी तरह नामभेद, स्थानभेद और क्वापाभेदसे पाँच प्रकारकी है । जैसे—उदान, प्राण, समान, भयान और ध्यान । स्थान और क्वापाभेदसे एक ही वायु उन सब पृथक् पृथक् नामोंसे पुकारा गई है । कण्ठ, हृदय, अनाशय, मलाशय और समस्त शरीर इन पाँच स्थानोंमें यथाक्रम उदान, प्राण, समान, भयान और ध्यान ये पाँच वायु रहती हैं । जो वायु भ्वास्त-प्रभासके समय ऊर्ध्वगामी होती है और गर्भात् शरीरसे निकलती है, उसे उदानवायु कहते हैं । उदानवायु द्वारा वायुप्रधान और सञ्जीत मादि क्वापा-निर्वाह होती है । इसकी विकृति होने से वेदमें रोग उत्पन्न होता है ।

भ्वास्त-प्रभासके समय जो वायु वेदमें प्रवेश करती है उसका नाम प्राणवायु है । इस वायु द्वारा कार्यं हृदयस्तु पेटमें घुसती है, यही जीवनरक्षाका प्रधान कारण है । किन्तु इस वायुके दूषित होनेसे प्रायः क्षिप्ता (दिघकी) और भ्वास्त मादि रोग हुआ करते हैं ।

जो वायु आमाशय और पकाशयमें विचरण करती है उसका नाम समानवायु है । यह समानवायु अन्नके साथ संयुक्त हो कर उदरस्थित अन्नको परिपाक करती है तथा अन्नके परिपाक होनेसे जो रस और मलादि उत्पन्न होता है उसे पृथक् करती है । किन्तु यह समान वायु यदि दूषित हो, तो इससे मध्वाग्नि, अतिसार और शुल्म मादि रोग उत्पन्न होते हैं ।

भयानवायु पकाशयमें रह कर यथासमय वायु-मल, मूत्र, शुक्र और आर्चवकी गोचे डेळता है । इस भयानवायुके दूषित होनेसे वस्ति और गुहादेज संबंधित नामा प्रकारके कठिन, रोग, शुक्राप और प्रमेह तथा ध्यान और भयानवायुके दूषित होनेसे जो सब रोग हो सकते हैं ये सब रोग उत्पन्न होते हैं ।

सर्ववेदवाही ध्यानवायु द्वारा रसवहन, धर्म और

रक्तसायनधागामन, उपश्लेष्मण, उत्श्लेष्मण, निमेष और उन्मेष
ये पांच प्रकारकी चेष्टाओं निर्वाहित होती हैं।

शरीरकी क्रियायें स्थानवायुसे सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् प्रायः सभी क्रिया स्थानवायु
सहायतासम्पन्न होती हैं। इस वायुकी प्रस्यन्दन, उद्वहन,
प्रसृष्टरण, विरेचन और धारण ये पांच प्रकारकी क्रियायें हैं।

इसके विगडनेसे प्रायः सर्वदेहगत रोग उत्पन्न होते हैं।
वक पांच प्रकारकी वायुके एकत्र कुपित होनेसे शरीर
निश्चय ही विनष्ट होता है।

वायुका कार्य—सभी भागमें आमाशय श्लेष्माका,
विज्ञानय पित्तका, और उपवाशय वायुका अद्यत्स्थिति-
स्थान है। ये तीन देय शरीरमें सर्वत्र और सर्वदा

उपस्थित रहते हैं। इन तीन क्षेत्रोंमें वायु शरीरके सभी
अध्यातमों और मलादि पदार्थोंको चालित करती है तथा
वायु द्वारा ही उत्साह, श्वास, प्रश्वास, श्लेष्मा, वेग आदि

और इन्द्रियोंके कार्य सम्पादित होते हैं। वायु सम्भवतः
अप्यक्ष, सूक्ष्म, शीतल, लघु, गतिशील, माशुकारी, खर, मृदु
और योगात्मा ही है। सन्निघ्न श, अङ्गप्रत्यङ्गादिका विशेष,
मुद्गरादि आघात या शूलकी तरह अथवा सूक्ष्मविधकी

तरह, विदारणकी तरह अथवा उज्ज्वल वस्त्रकी तरह,
अग्निदेना, स्फूर्दाहता, अङ्ग ही अयसंप्रता, मलमूत्रादिका
अनिर्गमन और श्लेषण, अङ्गमङ्ग, शिरादिका संसृजन,
हार्मोनाल, कम्पनककशता, अचिघरता, सञ्चित्रता, रसादिका

श्लेषण, स्पर्शन, स्तम्भ, कयाय-स्वाद तथा स्वाय या अयण-
वर्णता, ये सब वायुके कार्य हैं। शरीरमें वायुके विगडने-
से ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

वायुप्रकोप और शान्ति—वायु कभी विगडती ही और
किस अवयवसे वायुका प्रकोप शांत होता है, इसका
विषय वैद्यक-ग्रन्थमें वर्णित नहीं है,—मलान्त्र जीवके साथ

मृदुलुब्ध, अतिरिक्त व्यायाम, अधिक मैथुन, अत्यन्त अय-
व्ययन, एकसे स्थायते गिरना, तेजीसे चलना, पीठन या
आवागमन, लंगघना, तीरता, रातको जागना, बोध टैग,

अध्यायन करना, घोड़े की सवारी पर बहुत दूर तक जाना,
मलमूत्र, अथेष्मायु, शुक्र, बीज, उद्गार, हिक्का और आँसूका
वेग रोकना, कडुमा, ताँता, कलैका, कूबा, हल्ला और

अन्तर् प्रदार्थ तथा मूत्रासाम, सुखांसां, जेरी, कौर्वां,
उद्गारक, सौंवा और तिशी च्यावल, मूंग, मसूर, धरहर
और जिम आदि पदार्थ खाना, उपवास, विषमाशन,
अजीर्ण रदने मोजन, धर्माङ्गु, मेधागमकाल, भुक्तानकाल
परिपाककाल, अवरालकाल तथा वायुप्रवाहका समय ये
सभी वायु प्रेषणके कारण हैं।

उद्गारक, सौंवा और तिशी च्यावल, मूंग, मसूर, धरहर
और जिम आदि पदार्थ खाना, उपवास, विषमाशन,
अजीर्ण रदने मोजन, धर्माङ्गु, मेधागमकाल, भुक्तानकाल
परिपाककाल, अवरालकाल तथा वायुप्रवाहका समय ये
सभी वायु प्रेषणके कारण हैं।

घृणतैलादि स्नेहपान, स्वेदप्रयोग, श्लेष्मणन,
विरेचन, अनुवासन, मधुर, अम्ल, लघुण और उष्णद्रव्य
भोजन, तैलाभ्यङ्ग वस्त्रादि द्वारा घेष्टन, मय्यदर्शन,
श्लेष्मल कायादिका प्रसेक, पैष्टिक और गौहिक मद्यपान
परिपुष्ट मांसका रसमोजन तथा सुख स्वच्छन्दता आदि
कारणोंसे वायुकी शान्ति होती है।

वायुका गुण—अत्यन्त रुद्रताजनक, विघ-
णनाजनक और स्तब्धताकारक; दाह पित्त, स्वेद, मूर्च्छा
और पिपांमनाशक है, अथवात अर्थात् वायुशून्य स्थान
इसका विपरीत गुणयुक्त है। सुखजनक वायु अर्थात् मन्द
मन्द शीतल वायु मोक्षकालसे शरत्काल तक सेवनीय
है। परमांय और आरोग्यके लिये सर्वदा वायुशून्य
स्थानमें रहना चाहिये।

पूर्वदिशाकी वायु—गुरु, उष्ण, स्निग्ध, रक्तद्रूपक,
विदाही और वायुवर्द्धक, ध्रास्त और क्षीणकक, व्यक्तिके
लिये हितजनक स्वादु अर्थात् भक्ष्यद्रव्योंकी मधुरतावर्द्धक
लघुणरस, अभिष्यन्दी तथा स्वगक्षोप, अर्था, विष, कृमि,
स्निग्धात, अवर, श्वास और आमघातजनक है।

दक्षिण दिशाकी वायु—स्नादित, रक्तपित्तशिक, लघु,
शीतधीर्मा, श्लकारक, चक्षुके लिये हितकर, यह वायु
शरीरकी वायुको बढ़ानेवाली नहीं है।

पश्चिम दिशाकी वायु—तीक्ष्ण, शोधक, श्लकारक,
लघु, वायुवर्द्धक तथा मेद, पित्त और कफनाशक है।
उत्तर दिशाकी वायु—शीतल, स्निग्ध, व्याधिबीहितो
की त्रिदोषप्रकोपक, सुदृक, सुख, व्यक्तिके लिये बल-
कारक, मधुर और मृदुवीर्मा है।

अग्निकोणकी वायु—दाहजनक और रुद्र, निम्न-
क्षीणकी वायु अविदाही, वायुकोणकी वायु तिकरस,
इयानकोणकी वायु कटुरस, विशुष्यमायु अर्थात् सर्व-
व्यापी वायु परमायुके लिये अहितकर तथा प्राणिजोंके
लिये शोभजनक है। इसलिये विश्ववायुका सेवन न करना
चाहिये, कनेसे स्वास्थकी हानि होती है।

पंखेकी वायु—हाथ, स्वेद, मूँछों और धागितनागक है, ताइके पंखेकी वायु सिद्धोपनागक, बांसके पंखेकी वायु उष्ण और रक्त-विच्छेदकीयक, चामर, पल्ल, मयूर और घेंसके पंखेकी वायु त्रिदोषनागक, सिन्धु और हृदयप्राही है। जितने प्रकारके पंखे हैं उनमें यही पंखे अच्छे माने गये हैं।

सर्वथयापी, आशुकारो, बलवान्, अल्पकोपन, स्वातन्त्र्य तथा बहुदोषघ्न ये सब गुण वायुमें हैं, इस कारण वायु सभी दोषोंसे प्रबल है। वायुविद्युत्तिका लक्षण—यात-प्रकृतिके मनुष्य आगरणशोल, अहमेकविजिष्ट, दस्त और पद स्फुरित, कृश, द्रुतगामी, अत्यन्त वायव्यधी, कृश तथा स्वप्नावस्थामें आकाशमें घूम रहा है, ऐसा मालूम होता है।

धामतका कहना है, कि यातप्रकृति मनुष्य प्रायः दो दोषात्मक अर्थात् दोषयुक्त होते हैं। उनके पेश और हाथ पैर फटे और कुछ कुछ पाण्डुरांगके हो जाते हैं। यात-प्रकृतिके मनुष्य श्रोत्रदेवी, चक्षु रक्षति, चक्षु र स्मरणशक्ति, चक्षुबुद्धि, चक्षु र दृष्टि, चक्षु र गति और चक्षु र कार्य-विशिष्ट होते हैं। ऐसे मनुष्य किसी व्यक्तिका भी विश्वास नहीं करते, मन सदा सन्दिग्ध रहता है। ये मनर्षी वायव्य-प्रयोग किया करते हैं। ये थोड़े धनी, अहा-सन्तान, अहा बर्फ, अहावायु और अहा निद्रा विशिष्ट होते हैं। इनका वायव्य शीघ्र और गह्रद एतद्युक्त और टूटा होता है अर्थात् कण्ठसे निकलने समय वायव्य टूट फूट कर निकलते हैं। ये प्रायः नास्तिक, विहासपर, सहोत, हास्य, मृगया और पापकर्मों लालसाश्रित होते हैं। मयूर, अम्ब और लघण रसविजिष्ट और उष्णद्रव्य भोजन इनको प्रिय है। ये दुबले पतले और लम्बे होते हैं। इसके चलनेमें पैरका मटं मट शब्द होता है। किसी विषयमें इनकी दृढ़ता नहीं रहती और ये अजिज्ञेय्य होते हैं। यातप्रकृति व्यक्ति सेवा करने योग्य नहीं, क्योंकि ये मोक्षार्थके प्रति सत्-व्यवहार नहीं करते। इनकी मूर्ति खर, जरा पाण्डुरांग-की, मोलाकोट, विह्वलनासकी और दृष्टिवादी होती है। निद्राके समय इनकी मूर्ति बन्द रहती है और स्वप्नावस्थामें ये वर्षन और घूँस पर आरोहण करते तथा आकाशमें विचरण करते हैं।

ये यज्ञोद्दीन, परधोकातर, शीघ्रः कोपनस्वभाव, मोर, उनको पिण्डका ऊपरकी ओर चिंचो रहती है। कुत्ता, ह्यार, ऊँट, गृध्रिनी, खुहिया, कौआ और उड़ू भी यानप्रकृतिके होते हैं। (भावा ७)

घरक, सुधूत आदि ग्रन्थमें भी वायुका विशेषरूपसे गुण वर्णन किया गया है। विषय बहू आनेके कारण उनका उल्लेख नहीं किया गया।

वायुके तत्त्वधर्मों दार्शनिक विचार।

निष्कृतिका कहना है—“वायुधर्मैतैवेदर्शा-स्वाधुनि कर्मणाः।” निष्कृतिमात्रकार कहते हैं—“सततमनी याति गच्छति।” इसके द्वारा मालूम होता है, कि जो सतत गतिशील है, यही वायुके नामसे प्रसिद्ध है।

उपनिषद्में जगत्सृष्टि की आलोचनामें वायुका विषय आलोचित हुआ है। तैत्तिरीय उपनिषद्के प्रह्लादम्बवागी-ने लिखा है—

“तस्माद्वा एतस्माद्वात्मान आकाशः समुद्भूतः” (मंदा-नन्दवक्त्रो १२) अर्थात् उन अनन्त परमात्मसे सृष्टि-मान पदार्थके अयकाशस्वरूप सर्वनाम रूपका निर्वाहक शब्द गुणपूर्ण आकाशको उत्पत्ति हुई है।

इसो आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई है। जहाँ किण्व है, वहाँ हो गति है। (Motion) है, क्योंकि क्रिया-के शब्द हेतु-कम्पन (Vibration) उत्पन्न होता है। कम्पनका प्रतिरूप हो गति है। गतिहेतु स्वर्ण है। यह अनन्तः सत्पक्ष पदार्थ, सक्रिय हो कर भी शब्द और स्वर्ण पूर्ण है। इसमें शब्द और स्वर्ण दोनों ही हैं। जहाँ आकाश (Space) है वहाँ ही ज्ञानसत्ता/क्रिया-जगित शब्द और स्वर्ण है। इसीसे धृतिमें कहा है— “आकाशाद्वायुः”

इस बातका ऐसा तात्पर्य नहीं, कि वायुकी (Motion) गति पहले न थी। यह बात कही जा नहीं सकती, कि यह किस कारण पदार्थ और आकाश इसका समुत्पादक हैं। समग्र ही सत्यक सत्यमें शीघ्र था। इस अर्थकने ही शब्द जगत्का विकास है। “येदात्मै” इसका प्रमाण है, सर्वपदार्थमें भी है और तो क्या श्रोतज्ञानममें मति रूपरूपमें उसका उल्लेख है।

पूरोपेय विज्ञानमें जो यह सिद्धांत स्थिर हुआ है।

परिष्ठितप्रवर—हर्षट-स्फेसरने अपने First Principle नामक ग्रन्थमें लिखा है—

“An entire history of any thing must include its appearance out of the Imperceptible and its disappearance into the Imperceptible.”

यह अव्यक्त पदार्थ नियत परिणामो बता कर वेदान्त मतमें माया नामसे अभिहित है। फिर इसका परिणाम-प्रवाह निरव्य होनेसे सांख्य मतमें यह सत्तामसे अभिहित हुआ है। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि वायु अन्य पदार्थ है। जहां क्रियाशालिनी शक्ति है, वहां ही गति है। शक्ति जैसे अनन्त है, गति भी वैसे ही अनन्त है। अनादिकालसे कम्पनका कभी भी विराम नहीं। अव्यक्त प्रकृतिमें जो निहित अवस्थासे सुप्तशक्ति (Potential energy) रूपमें अवस्थित था, क्रियाके उद्रेकमें वही कर्मशक्तिरूपमें (Potential energy) प्रकाशित हुआ।

इस अवस्थामें गति वा कम्पन वा स्पर्शकी उत्पत्ति हुई। अनन्त आकाशमें (Atmosphere) अनन्त रहते हुए इस गतिका अवस्थान और प्रवाह-विद्यमान है। पाश्चात्य विद्वानविद्यु पण्डितोंका कहना है, कि चन्द्रसूर्य-ग्रहनक्षत्रादिके भिन्न-भिन्न जगत्तमें भी इस प्रकारका कोई पदार्थ अवश्य विद्यमान है। प्रति-प्रवाहमें, प्रति कम्पनमें तानका प्रभाव (Rhythm) अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। तान-क्रममें ही मानो इस कम्पनका विरप्रवाह घर्षमान है। इसी लिये श्रुतिने कहा है—

“छन्दोसि धे, विवर्त्तुष्याणि।” (शतपथब्रा०)

यह सती विश्व छन्द है। यही छन्द भूलोक, अन्तरीक्ष लोक तथा स्वर्गलोक है।

“मन्वेन्दः प्रमाच्छन्दः। प्रतिमच्छन्दः।”

(गुणस्यसुवैदव हिवा)

परिदृश्यमान भूलोक मितच्छन्दः अन्तरीक्षलोक प्रतिमच्छन्दः तथा च लोका प्रतिमितच्छन्दः है।

“इन्दोम्य एव प्रथममेतद्विरव” ध्वस्तं—वाच्यपदीय।

अर्थात् यह विश्व पहले छन्द होसे विवर्त्तित हुआ है।

जो गति तान तालमें नृत्य करती है, वही छन्द है। यही छन्द विश्व-विवर्त्तनका कारण है। स्फेसरने इसीको Rhythm of motion कहा है। यह वायुका ही परिचायक है। श्रुतिने फिर कहा है—

“वायुना वै गौतमसूत्रेणाऽव्यक्तं लोकः पररच लोकः सर्वाणि च भूतानि सम्बन्धानि भवन्ति।”

अर्थात् हे गौतम ! यह वायु सूत्रस्वरूप है। मणि जिस प्रकार सूत्रमें ग्रथित रहती है, उसी प्रकार समस्त भूत वायुसूत्रमें ग्रथित है।

कठश्रुतिने भी यह स्वीकार किया है, कि जैसे—

“यदिर” किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति त्रिःसुतम्।

महद्भयं ब्रह्मसुतं यत्तद्विदुर भूतास्ते भवन्ति।” (ई ग्ली)

अर्थात् यह समस्त जगत् प्राणस्वरुका ब्रह्मसे निःसृत और कम्पित होता है। यह ब्रह्म उद्यतयज्ञकी तरह भयानक है। उसी प्रकार उन्हें जो जानते हैं, ये अमृत होते हैं।

यहां पर 'एजति' शब्दको अर्थ कम्पित है। वेदान्तदर्शनके मतसे वायुविज्ञानका यह कम्पनात्मक (Vibratory) ब्रह्म बहुत भयानक है। जगत्के समस्त पदार्थ कम्पनमें (Vibration) अवस्थित है। कहते हैं, कि इस कम्पनसे कम्पनके सातमस्वरुप ब्रह्मको उपलब्धि होती है, महर्षि वादरायणने इसका सूत्र किया है—

“कम्पनात्” (वेदान्तदर्शन १।३।३४)

इस वायु या कम्पन वा गति-शक्तिसे ही सभी जीव परिणामको प्राप्त होते हैं। हार्बट स्फेनसारने भी यह बात स्वीकार की है। जैसे—

“Absolute rest and permanance do not exist. Every object, no less than the aggregate of all object undergoes from instant to instant some alteration of state. Gradually or quickly it is receiving motion or losing motion.”

यह विश्वविषयको वायु वा कम्पन ही (Vibration) सृष्टि (Evolution) वा वस्तु-लय (Involution) का कारण है। यह जगत् आविर्भाव और तिमोभावकी निरूप-प्रतिमा है। यह आविर्भाव और तिमोभाव-जिस

देवतस्वयमे संप्रतिष्ठ होता है, यही देवता वायु-देवता है।
धृतिने कहा है—

“वायुमेके भूयन् पृथिव्ये रूपं रूपं पृथिव्यो यत्न ।
एतदवशा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं पृथिव्यो वदिभ ॥”
(ऋ० ५।१०)

अर्थात् जिस तरह एक ही वायु भुवनमें प्रविष्ट हो कर अनेक घस्तुभेदोंमें उसी प्रकारकी ही-गर्भ है, उसी तरह एक ही सर्वभूतकी अन्तरात्मा अनेक घस्तुभेदोंमें उगो प्रकारकी हैं तथा सभी पदार्थोंके वाहक भी है। इसमें वायुकी विषयविसादितता प्रमाणित हुई।

इस वायुसे अग्नि उत्पन्न होती है। जैसे धृतिने कहा है -

“वापैरग्निः”—तेजिरीय उपनिषत्, मद्रानन्दयदन्ती १।३।

वायुमें ही अग्नि भी जो उत्पत्ति होती है, वैज्ञानिक युक्तिमें भी इसका समर्थन किया जा सकता है। बिना अक्सिजनके दहन-क्रिया असम्भव है। पाश्चात्य विज्ञान-के मतमें अक्सिजन वायुका एक प्रधान उपादान है। फिर वायुको यदि गति (Motion) कहा जाय, तो भी इसमें हम लोग अग्निकी उत्पत्तिका प्रमाण पाते हैं।
हायड्रॉ स्फेयरने लिखा है—

“Conversely, motion that is arrested produces under different circumstances, heat, electricity magnetism and light. * * * We have abundant instances in which arises as motion ceases” First Principle, p. 198.

यह वायु सर्वथा अग्निके साथ संयुक्त रहती है। जैसे—

“य देवात्मानं स्फातुवन्नदित्यं शिरीषं वायुं शरीरम् ।
शुद्धदायक उपनिषत् ।

अर्थात् अग्नि, वायु और आदित्य एक ही पदार्थ लिये हो कर पृथिवी, अन्तरिक्ष और चन्द्रोक्तमें अघाटित हैं।

वायु अग्निका तेज है, इसका भी प्रमाण मिलता है। जैसे—

“वापैर्वा अग्नेस्तोत्रं मह्यं वायुग्निं सन्वेति ॥”

अर्थ-प्रमाणित हुआ, कि वायु और अग्नि वे दोनों शक्ति सर्वथा एक साथ संयुक्त हैं। अथवा अग्नि और

अग्नि आकाशमें ही प्रतिष्ठित है। छान्दोग्यसूक्तिमें लिखा है—

“सर्वाधिष्ठा इगानि भूतान्वाकाशदिवः समुत्पन्नित् आकाशं पृथ्वन्तं पृथ्वाकाशेक्षेत्रेभ्यो ब्रवायनाकाशः परायणम् ॥”

आकाश ही से सब भूतोंकी उत्पत्ति हुई है इसे पाश्चात्य वैज्ञानिक भी मानते हैं।

वायुविज्ञान शास्त्रमें विस्तृत विवरण देते।

वायुक (सं० पु०) वायु स्वार्थे कन् । वायु, तथा वायुकेतु (सं० स्त्री०) वायु केतुश्चरतो वाहनं वा यस्याः । पूजि, धृत् ।

वायुकेत (सं० स्त्री०) वायुघत् चलनरहित, जिनको किरण वायुके समान तेज है।

वायुकोण (सं० पु०) पश्चिमोत्तर दिशा।

वायुगण्ड (सं० पु०) अजोर्ण।

वायुगुलम (सं० पु०) वायुना घृत् गुलम इयं । इ पात-चक्र, बवंडर । २ वायु रोगभेद । वायु के कुपित होनेमें जब गुल्मरोग उत्पन्न होता है, तब उसे वायुगुल्म कहते हैं।

इसका लक्षण—घृत्, अन्नपानाद्य, विषय-भोजन अत्यन्त भोजन, बलवान्के साथ घृत् आदि विरुद्ध चेत्या, मलमूत्रादिका वेगवारण, शोकवयुक्त मनःशृण्ण, विरि-चगादि द्वारा अत्यन्त मलमूत्र और उपवास इन सब कारणोंसे वायु कुपित हो कर वायुजन्य गुल्म उत्पन्न करती है। यह गुल्म घटता बढ़ता और सारे पेटमें फैलता रहता है। कभी इसमें दर्द होता और कभी नहीं भी होता है। इस गुल्मरोगमें मल और अजोपात संरुद्ध, मलजीय उपस्थित होता है। इस रोगीका शरीर श्याम वा मरुणवर्णका हो जाता है। हृदय, कुक्षि, पाश्यं, अङ्ग और जिह्वामें घेदना होती है। सायां हुमा पदार्थ जब पच जाता है, तब इस रोगका उपद्रव और भी बढ़ता है। पीछे भोजन करनेसे उसकी जागृत होती है। यह रोग रुक्मद्रव्य, श्याम, तिल और चट्टुरसयुक्त द्रव्य खानेसे बढ़ता है। (सायणनि० पुरम-भोग्यपि०) गुल्मरोग बद्ध होता।

वायुगोप (सं० स्त्री०) वायु रक्षक, वायु-जित्तकी रक्षा हो।

वायुग्रन्थ (सं० त्रि०) वायुना ग्रन्थः । वायु रोगा-
क्रान्तिः ।

वायुजः (सं० त्रि०) वायु-जन-ड । वायुसे उत्पन्नः ।

वायुञ्जाल (सं० पु०) सप्तधर्मसे एक ।

वायुदेव (सं० क्ली०) वायोर्भावाः त्व । वायु का भाव या
धर्म, वायुका गुण । वायु-देवो ।

वायुनाक (सं० पु०) वायु ना दीर्घवर्ते इति-दृ-उण् । मेघ,
बादल ।

वायुदिश (सं० स्त्री०) वायु कोण, पश्चिमोत्तर दिशा ।

वायुकोम (सं० त्रि०) वायु कुपित ।

वायुदेव (सं० त्रि०) वायुदेवता-सम्बन्धीय ।

वायुदेवत (सं० त्रि०) वायुदेवता अस्य अण् । वायुदेवताक,
जिसका अधिष्ठात्री देवता वायु हो ।

वायुदेवत्व (सं० त्रि०) वायु देवता-त्वम् । वायु देवत ।

वायुधारण (सं० क्ली०) वायु का वेग रोकना ।

वायुनिघ्न (सं० त्रि०) वायु ना निघ्नः । वायुग्रन्थः ।

वायुपप (सं० पु०) वायु ना पप्था यच् समासः ।

वायुगमनागमनका पथ, हवा जाने जानेका रास्ता ।

वायुपुत्र (सं० पु०) १ हनुमान् । २ भीम ।

वायुपुर (सं० क्ली०) वायोः पुरं । वायुलोक ।

वायुपुराण (सं० क्ली०) अठारह पुराणोंमेंसे एक ।

पुराण शब्द देखा ।

वायुफल (सं० क्ली०) वायुना फलति प्रतिफलतीति
फल-अच् । १ इन्द्रधनुष । वायो फलमिव । २ करका,
भोला ।

वायुभक्ष (सं० त्रि०) वायु भक्षोऽस्य । वायुभक्षक,
जो वायु पान करते हैं ।

वायुभक्ष्य (सं० पु०) वायुभक्ष्योऽस्येति । १ सप,
साँप । (त्रि०) २ घातभक्षक, हवा जानेवाला ।

वायुमृति (सं० पु०) एक गणघर । (जैनहरिवंश ३१)

वायुभाजन (सं० पु०) वायु भोजनोऽस्य । १ वायु भक्षक,
सर्प । (त्रि०) २ वायु भक्षक, वायु भोजनकारी ।

(भाग० ७, ४, २३)

वायुमण्डल (सं० पु०) आकाश जहाँ वायु प्रवाहित होता
है । वायुविज्ञान देखा ।

वायुग्रन्थ (सं० त्रि०) वायु-अस्त्वर्थे मनुष्ये । वायु-
विशिष्ट, वायुयुक्त ।

वायुमय (सं० त्रि०) वायु स्वरूपे मयट् । वायुस्वरूप ।
वायुमदह्विषि (सं० स्त्री०) ललितविस्तरके अनुसार
एक लिपिका नाम ।

वायुयज्ञा (सं० स्त्री०) १ वायुजन्म पीडा । २ वायु,
जन्म चक्षुःपीडा ।

वायुरोपा (सं० स्त्री०) रात्रि, रात ।

वायुलोक (सं० पु०) १ वायुवीथ्य लोक, वायुसम्बन्धीय
लोक । २ आकाश ।

वायुवर्त्मन् (सं० क्ली०) वायोवर्त्म । आकाश ।

वायुवाइ (सं० पु०) वायुना उद्धति इति यह-घम् । धूम,
धूआं ।

वायुवाहिनो (सं० स्त्री०) वायु यहतीति यह-णिनि,
ङीप् । वायुसञ्चारिणी शिरां, वे शिरापं जिन्से हवा
सञ्चारित होती है ।

वायुविज्ञान—इस नदी-नदी-नगर-अरण्यवादि समाकांक्षी भूत
धरित्री धरिणी परसे अद्भुत-प्रद-नक्षत्रादि-खचित
अनन्त आकाशमें हवा जो एक महाशून्य देखते हैं क्या यह
वास्तवमें महाशून्य है ? हमारा मोटा आँखें चाह आ
कहें, किन्तु सूक्ष्म विज्ञानदृष्टिसे देखने पर यह मालूम
होता है, कि इस जगत्में शून्य नामका कोई पदार्थ नहीं
है । प्रकृतिने संसारमें कहीं भी शून्य नहीं छोड़ा है,
प्रकृति वास्तवमें शून्यका चिर-शत्रु है । जिसे हम
मोटा दृष्टिसे शून्य कहते हैं, वह मा शून्य नदी, वायु
पूर्ण है । एक काँचकी नलिका देखनेमें शून्य दिखाई
देती है, किन्तु यह मा शून्य नदी । क्योंकि जब इसमें
जल भर दिया जाता है, तब इससे वायु बाहर निकल
जाती है यह हम आँखोंसे देखते हैं । हमारी जहाँ तक
दृष्टि शीघ्र सकती है, उससे बहुत दूर तक आकाश-
मण्डल वायुमण्डलसे भरा हुआ है । यह वायुमण्डल
वो भागों विभक्त है । ऊपरमें स्थिर वायु है,
उत्तापधिषयकी कमीवेशसे इस अंशका कुछ भा परि-
वर्तन नहीं होता । नीचेमें उत्तापके परिवर्तनक साथ
साथ वायुमण्डलके बहुतरे परिवर्तन नजर आते हैं ।
इस वायुमण्डलके परिवर्तनशाल अंशका अपेक्षा
अपारवत्त नशाल अंशका परिमाण बहुत अधिक है ।

इस विशाल वायुमण्डलके बाद मा शून्य नामका

कोई पदार्थ नहीं है। विद्युत्वायो ईथर (Ether) अनन्त आकाशमें व्याप्त है। ईथर होनेमें ही जगत् सूक्ष्म प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है और सूक्ष्म किरण भी उत्पन्न हो रही हैं। इस विज्ञान विश्व-प्रज्ञाएडमें मूल्यका पूर्णतः अभाव है। जो हो, वायु विज्ञान ही हमारा आलोच्य विषय है। प्राश्चात्य-विज्ञानकी विविध शाखायें वायुविज्ञानकी आलोचनासे भरी हुई हैं। ज्योतिर्विज्ञान, रसायनविज्ञान, शब्दविज्ञान (Acoustics), उष्मिति विज्ञान, (Hygrometry), वायु प्रवाहादि विज्ञान (Pneumatics), वृष्टि नूतनता विज्ञान (Meteorology), शरीरविषय-विज्ञान (Physiology), स्वास्थ्य-विज्ञान (Hygiene) और तापविज्ञान (Thermology) आदि यन्त्रोंने विज्ञानोंमें वायु विज्ञानका तत्त्व बहुत कुछ विप्लव हुआ है। हम संक्षेपमें उसके सम्बन्धमें यहाँ कुछ आलोचना करते हैं।

ऊँचाई।

हम वायुमण्डलकी ऊँचाईका अन्दाजा लगानेमें वैज्ञानिकोंने बड़ा परिश्रम किया है। किसी समय इसकी ऊँचाईका अन्दाजा ४५ मीलके लगभग लगाया गया था, किन्तु इसके बाद स्थिर हुआ कि, वायु मण्डलकी ऊँचाईका परिमाण १२० मील है। परन्तु विषुवप्रदेशके उर्वरुभागमें लघु स्थिर वायु इसकी अपेक्षा और भी ऊँचाई पर है। यहाँ इसका परिमाण दो सौ मीलसे कम न होगा। ज्योतिर्विज्ञानसे वायुमण्डलकी ऊँचाई का निर्णय करनेमें यथेष्ट साहाय्य मिला है।

भारोपन।

परीक्षासे वायुके भारोपनका भी अन्दाजा किया गया है। एक काँचकी गलिक्रासे वायु निकालनेवाले पात्र द्वारा वायु निकाल लेने पर वजन करनेमें जो तील होगा, वायु भरते हुई गलिक्राकी तील उससे भारी हो जायेगी। मछली जैसे जलरानिमें तैरती किराने की और उसकी ऊपरका गुप्तर माछू मरी हैता, उसी तरह मानव ममात्र भी वायुके भारोपे विचरता बर रहा है, इसने उसका शुक्रमार अनुभव करनेमें यह भवर्ष नहीं।

रत्न।

कविधोंने आकाशकी अनन्त नीलिमाके रोगा-माधुर्यका वर्णन किया है। आकाशका यह रंग वायुका ही रङ्ग है। दूरके पर्वतों पर जो नीलिमा दिखाई देती है, यह भी वायुका रङ्ग ही है। दक्षिण या उत्तर-पश्चिम या पूर्व चाहे जिधर तुम दूरको मोर देखो उधर ही, घन नीलिमा-माधुर्य तुम्हारे नेत्रोंमें प्रतिमात होगा, यह जो वायुका रङ्ग है। यही देख कर कुछ लोग कहते हैं, कि वायुका रङ्ग नीला है। किन्तु इसके सम्बन्धमें किनने ही वैज्ञानिकोंकी रुचना सुनी जाती है। कुछ लोगों का मत है, कि वायुका कोई भी रङ्ग नहीं, परं वह घोर अल्पका-पूर्ण है। धूम्रवागमें जो व्यक्ति सुदूर आकाशमें विचरण करते हैं, वे दूर-देवमें काला रङ्ग देखते हैं। इससे कुछ वैज्ञानिक फलना करते हैं, कि वायुवीय परमाणुकी विचरणतासे सब रङ्गोंका प्रभाव दिखाई देता है। इसीविषे लघुगम स्थिर वायुप्रदेशमें सब रङ्गोंके अभावमें काला ही रङ्ग दिखाई देता है। आकाशमें जो नीला रङ्ग दिखाई देता है, वह घनीभूत वायुमें सौरकिरणके नीले रङ्गका प्रतिफलनमात है। सौरकिरण जब घनवायुकी ओर कर घट्योकी ओर भागे बढ़ती है, तब उसकी नीली ज्योतिः वायुके स्तरमें नीला रङ्ग प्रतिफलित करती है। किसीने विश्लेषण प्रणालीसे (Spectrum analysis) इसके सम्बन्धमें बहुतसे तत्त्व प्रकाशित किये हैं। वायुमें अशोष वायु मिला रहता है, इस वायुकी भेद कर सौर किरण वायुमण्डलमें नाना वर्णवैचित्र्य प्रकट करती है। जलोप वायुजनित वर्णवैचित्र्य ही इसका कारण है। समुद्र और आकाशकी नीलिमाके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने ही रङ्गोंका निर्देश किया है। एक मोला, दूसरा चक्रवाल रत्नाके किनारे पोखी वर्ण या रङ्ग वायु-वीय पदार्थकी मोलिमाकिरण प्रतिफलन ही (Reflection) आकाशकी मोलिमाका कारण है। वायुशक्ति का आलोक-प्रेरणा (Transmission of rays) पोखी वर्ण या रङ्गका कारण है। वायुमण्डलके रङ्गोंकी परीक्षा करनेके लिये ससुरोट (Saussure) नामक एक वैज्ञानिक परिष्कृत माइनोमिटर (Cyanometer) और डायफो-नोमिटर (Diaphanometer) नामक दो दम्ब आदि-

रकार किये हैं। इनसे वायुमण्डलके रङ्गकी जंचाई हो सकती है।

वायुकी इस नीलिमाके सम्बन्धमें वैशेषिक दर्शन-विदोंने किसी समय अच्छी तरह गवेषणा की थी। श्रीपाद शङ्करमिश्रने वैशेषिक उपस्कारमें लिखा है—

“ननु दधिघबलआकाशमिति कथं प्रतीतिरितिचेन्न मिहिरमहसां विशदकृपाणामुपलम्भात्तथाभिमानात्। कथं तर्हि नीलनभ इति प्रतीतिरिति चेन्न, सुमेरोर्दक्षिण दिशामाकश्य स्थितस्येन्द्रनीलमयशिखरस्य प्रमामालाकतां तथाभिमानात्। यत् सुदूरं गच्छन्नयश्च; परावर्त्तमानं स्वचक्षुःकणोनिकामाकलयत्तथाभिमानं जनयतीति मतं तदुक्तम्। पिङ्गलस्यारनयनाभाय तथाभिमानात्। इहे दानो रूपादिकमिति प्रत्ययात् द्विकालयोरपि रूपाद् चतुर्धमिति चेन्न समवायेन पृथिव्यादीनां तल्लक्षण स्वीकरवात्। ननु सम्बन्धान्तरैर्गापि इहेदानां रूपावत्यन्त-
१५ इत्याय प्रतातः सवेधारतैर्दककालयोः।”

५म, १म आ० द्वितीय अध्याय।

वायुकी नीलिमाके सम्बन्धमें वैशेषिक दर्शनके उप-स्कारमें प्रश्न उठने का कारण यह है, कि वायुराश दार्शनिक प्रत्यक्षके विषयभूत नहीं। किन्तु वायुका रूप स्वीकार कर लेने पर अर्थात् “वायुका रङ्ग नीला है” यह बात स्वीकार करने पर यह दार्शनिक प्रत्यक्षका विषय हो जाता है। इसीसे उपस्कार प्रथमें सिद्धान्त किया गया है, कि आकाशमें जो नीलादि रूपके अस्तित्वकी प्रतीति होती है, यह आकाशादिका रङ्ग नहीं, नियोगतः समुच्चयतः या विषयगतः किमी तरहसे ही नभः प्रभृति द्रव्यके रूप आदि नहीं रह सकते; फिर भी जिस वर्णकी उपलब्धि होती है वह भ्रान्ति प्रतीतिमात्र है। शङ्करमिश्रने इस भ्रान्तिको बुरा करनेके लिये बहुतेरी युक्तियोंकी अवतारणा की है। समुद्र और वायुराशमें हम जो नीलिमा देखते हैं, यह नीलिमा यस्तुगत नहीं। यह उक्त पदार्थद्वय में सौरकिरणके नीलवर्ण प्रतिफलनसम्भूत वर्णमात्र है। यदि यह घटतेगत होता, तो गृहस्थान्तरस्थ घापुराशिकी और घट्टेके समुद्रजलकी हम नील वर्णका ही देखते हैं। आकाशकी नीलिमा कबिकी कबानारूपी भाँसोंमें जो घनीभूत सौन्दर्यका विषय प्र-विपत हुआ, दार्शनिक

और वैज्ञानिकोंकी सूक्ष्म दृष्टिके तोत्र प्रकाशमें यह सौन्दर्यमयी कविचर्णित शोभागुच्छटा सम्पूर्णरूपसे विद्युत् हो जाती है।

वायुका रासायनिक तत्त्व।

प्राच्य पण्डितोंने वायुको पञ्चभूतोंके अन्तर्गत एक भूत माना है। पाश्चात्य पण्डित बहुत दिनों तक इसको भूत ही मानते थे। हम आज भी वायुको भूत ही स्वीकार करते हैं। किन्तु यह भी यक्तव्य है, कि हमारे शास्त्रकारोंका बताया भूतपदार्थ और पाश्चात्य पण्डितोंका बताया मूलपदार्थ (Element) एक नहीं। पाश्चात्य ज्ञानमें बहुत दिनों तक हमारे इस पञ्च महाभूत Element नामसे पुकारा ही जाता था, किन्तु पाश्चात्य रसायन-शास्त्रमें इस समय प्रमाणित हुआ है, कि क्षिति, अप, मघत् और ज्योम—ये मूलपदार्थ या “एलिमेंट” नहीं हैं। किन्तु इससे हमारे शास्त्रोप “भूत” नामधेय संज्ञाके परिचरान को आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि पाश्चात्य पण्डित इस समय एलिमेंटमें जो सम्भक्त हैं, हमारा भूत शब्द जैसे पदार्थका वाचक नहीं। इस समयके पाश्चात्य रासायनिक पण्डितोंका कहना है, कि वायु, जल, पृथ्वी मूल पदार्थ नहीं, वरं ये मूल पदार्थके संयोगसे उत्पन्न होने हैं। अग्नि आज भी पदार्थ नहीं है, यह रासायनिक मूल पदार्थका क्रियाफलविशेष है। विश्वेषणी क्रियाकी अति सूक्ष्म प्रणाली द्वारा जो पदार्थ किसी दूमरी जातिके पदार्थसे किसी तरह विश्लिष्ट नहीं किया जा सकता, वही पदार्थ इस समय मूलपदार्थके नामसे परिचित है। इस समय मूल पदार्थकी संख्या सत्तरसे भी बढ़ गई है। फिर हालके रसायनविद्द पण्डितोंने परमाणुत्वमें एक युगान्तर उपस्थित कर वर्त्तमान रसायनविज्ञानके मूल पदार्थ निर्णय-विभागमें महाविच्छेद्य उपस्थित कर दिया है। वर्त्तमान विज्ञान अब इस सिद्धान्तकी ओर अग्रसर हो रहा है, कि ये सब मूल पदार्थ एक ही मूल पदार्थके अवस्थान्तरमात्र हैं।

जो ही, जब तक यह सिद्धान्त स्थापित नहीं होता तब तक हमें इसी वर्त्तमान रसायन-विज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार ही चलना होगा। यूरोपके वैज्ञानिक युगके प्रारम्भसे अब तक वायुके रासायनिक तत्त्वके सम्बन्धमें

कोई पदार्थ नहीं है, विद्युत्वायु ईथर (Ether) अत्यन्त आकाशमें व्याप्त है। ईथर होनेसे ही जगत् सूर्य प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है और सूर्यकिरणों में उत्पन्न हो रहा है। इस विनाश विद्युत्-प्रत्याघटने शून्यका पूर्णतः अभाव है। जो रो, वायु विज्ञान ही हमारा आलोच्य विषय है। पाश्चात्य-विज्ञानकी विविध शाखायें वायुविज्ञानकी आलोचनासे भरी हुई हैं। ज्योतिर्विज्ञान, रसायनविज्ञान, शब्दविज्ञान (Acoustics), उष्मिति विज्ञान, (Hygrometry), वायुप्रवाहादि विज्ञान (Pneumatics), पृथिव्याका विज्ञान (Meteorology), शरीरविषय-विज्ञान (Physiology), स्वास्थ्य-विज्ञान (Hygiene) और तापविज्ञान (Thermology) आदि गहने विज्ञानोंमें वायुविज्ञानका तत्त्व बहुत कुछ विद्युत् हुआ है। हम संक्षेपमें उसके सम्बन्धमें यहाँ कुछ आलोचना करते हैं।

ऊँचाई।

हम वायुमण्डलकी ऊँचाईका अन्दाजा लगानेमें वैज्ञानिकोंने बड़ा परिश्रम किया है। किसी समय इसकी ऊँचाईका अन्दाजा ४५ मीलके लगभग लगाया गया था, किन्तु इसके बाद स्थिर हुआ कि, वायुमण्डलकी ऊँचाईका परिमाण १२० मील है। परन्तु विषुवप्रदेशके उष्णभागमें लघु स्थिर वायु इसकी भवेत्ता और भी ऊँचाई पर है। यहाँ इसका परिमाण दो सौ मीलसे कम न होगा। ज्योतिर्विज्ञानसे वायुमण्डलकी ऊँचाईका निर्णय करनेमें यथेष्ट साहाय्य मिला है।

भारोपन।

परीक्षासे वायुके भारोपनका भी अन्दाजा किया गया है। एक काँचकी नलिकासे वायु निकालनेवाले बाल द्वारा वायु निकाल लेने पर वजन करनेसे जो तीव्र होगा, वायु भरने हुई नलिकाकी तौल उसमें भारो हो जायेगी। मछली जैसे जलराजिमें तैरती फरसो है और उसकी ऊपरका मुहुर्य मासूम नहीं होता, उसी तरह मानव समझ भी वायुके बोझमें घिबरेण कर रहा है, इससे उसका मुहमात्र अनुभव करमें यह सत्य नहीं।

रक्त।

कवियोंने आकाशकी अत्यन्त नीलिमाके शोभा-मायुर्व्यक्त वर्णन किया है। आकाशका यह रंग वायुका ही रङ्ग है। दूरके पर्वतों पर जो नीलिमा दिखाई देती है, यह भी वायुका रङ्ग ही है। दक्षिण या उत्तर-पश्चिम या पूर्व चाहे जिधर तुम दूरको ओर देखो उधर हो, घन नीलिमा-मायुर्व्य तुम्हारे नेत्रोंमें प्रतिभात होगी, यह भी वायुका रङ्ग है। यद्ये देख कर कुछ लोग कहते हैं कि वायुका रङ्ग गोला है। किन्तु इसके सम्बन्धमें किनारे ही वैज्ञानिकोंकी कलना सुनी जाती है। कुछ लोगों का मत है, कि वायुका कोई भी रङ्ग नहीं, परं वह घोर आन्धकार-पूर्ण है। ध्योमयानमें जो व्यक्ति सुदूर आकाशमें विचरण करते हैं, वे दूर-देगमें काला रङ्ग देखते हैं। इससे कुछ वैज्ञानिक फलना करते हैं, कि वायुवीच परमाणुकी विचरणतासे सब रङ्गोंका अभाव दिखाई देता है। इसीनिघे लघुम स्थिर वायुप्रदेशमें सब रङ्गोंके अभावमें काला हो रङ्ग दिखाई देता है। आकाशमें जो नीला रङ्ग दिखाई देता है, यह घनोभूत वायुमें सौरकिरणके नीले रङ्गका प्रतिफलनमात्र है। सौरकिरण जब घनवायुकी ओर कर पृथ्वीकी ओर आगे बढ़ती है, तब उसकी नीली ज्योतिः वायुके स्तरमें गोला रङ्ग प्रतिफलन करती है। किसीने विश्लेषण प्रणालीसे (Spectrum analysis) इसके सम्बन्धमें बहुतसे तत्त्व प्रकाशित किये हैं। वायुमें अन्योय वायु मिला रहना है, इस वायुकी मंद् कर सौर किरण वायुमण्डलोंमें नागा वर्णवैचित्र्य प्रकट करती है। जलीय वायुमण्डलित वर्णवैचित्र्य ही इसका कारण है। समुद्र और आकाशकी नीलिमतके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने दो रङ्गोंका निर्देश किया है। एक नीला, दूसरा चकचाल रेखाके तिनारे पोंको वर्ण या रङ्ग वायुवीच पदार्थका नीलिमाकिरण प्रतिफलन हो (Reflection) आकाशकी नीलिमाका कारण है। वायुगतिक आलोकप्रेरणा (Transmission of rays) पोंसे वर्ण या रङ्गका कारण है। वायुमण्डलके रङ्गोंकी परीक्षा करनेके लिये सन्तोकर (Santour) नामक एक वैज्ञानिक परिष्कृत मायानोमिटर (Cyanometer) और जायन्त-नोमिटर (Diaphanometer) नामक दो यन्त्र आदि-

रूपकार किये हैं। इनसे वायुमण्डलोंके रङ्गकी जंचाई हो सकती है।

वायुकी इस नीलमाके सम्बन्धमें वैशेषिक दर्शन-विद्वानोंने किसी समय अच्छी तरह गवेषणा की थी। श्रीपाद् शङ्करमिश्रने वैशेषिक उपस्कारमें लिखा है—

"ननु दधिचलभाकाशमिति कथं प्रतीतिरोतिवैच मिहिरमहसां विशद्वरूपाणामुपलम्भात्तथाभिमानात्। कथं तर्हि नालनम इति प्रतीतिरिति चेन्न, सुमेरोर्दक्षिण दिशामाक्रम्य स्थितरूपेन्द्रनोलमप्रशिखरस्य प्रमामालाकतां तथाभिमानात्। यत् सुदूर गच्छच्चक्षुः परावर्त्तमानं स्वक्षुक्कणीकामाकलयत्तथामिमानं जनयतीति मतं तदुक्तम्। पिङ्गलसारनयनागपि तथाभिमानात्। इहे दानो क्वाधिकमिति प्रत्ययात् दिक्कालधोरपि रूपाद् चतुर्दशमिति चेन्न समवायेन पृथिव्यादीनां तत्तक्षण स्यात्कतवात्। ननु सम्बन्धान्तरैर्गापि इहेदानां रूपात्प्रवत्-
१५ इत्यापि प्रतातेः सर्वधारतैर्दिक्कालयोः।"

५म, १म भा० द्वितीय अध्याय।

वायुकी नीलमाके सम्बन्धमें वैशेषिक दर्शनके उप-स्कारमें प्रश्न उठने का कारण यह है, कि वायुराजि दार्शनिक प्रत्यक्षके विषयोभूत नहीं। किन्तु वायुका रूप स्वीकार कर लेने पर अर्थात् "वायुका रङ्ग नीला है" यह बात स्वीकार करने पर यह दार्शनिक प्रत्यक्षका विषय हो जाता है। इसीसे उपस्कार ग्रन्थमें सिद्धान्त किया गया है, कि आकाशमें जो नीलादि रूपके अस्तित्वको प्रतीति होती है, वह आकाशादिका रङ्ग नहीं, नियोगतः समुच्चय यथा या विकसतः किमी तरहसे हो नभः प्रभृति द्रव्यके रूप आदि नहीं रह सकते; फिर भी जिस वर्णों उप-लक्ष्य होता है वह प्राप्त प्रतीतिमात्र है। शङ्करमिश्रने इस अर्थको बुरा करनेके लिये बहुतेरी युक्तियोंकी श्रव तारणा की है। समुद्र और वायुराशिमैं हम जो नीलिमा देखते हैं, वह नीलिमा यन्मुगत नहीं। यह उक्त पदार्थद्रव्य में सौरकिरणके नीलवर्ण प्रतिफलनसम्भूत वर्णमात्र है। यदि वह यन्मुगत होता, तो गृहस्थान्तरस्थ वायुराशिकी और घड़ेके समुद्रजलकी हम नील वर्णका ही देखने हैं। आकाशको नीलिमा कृत्तिकी बहुरनारूपी मांझोंमें जो घनीभूत सौन्दर्यका विषय प्र-विपत हुआ, दार्शनिक

और वैज्ञानिकोंको सूक्ष्म दृष्टिके तोय प्रकाशमें यह सौन्दर्यमयो कविवर्णित शोभाकण्टा सम्पूर्णरूपसे विलुप्त हो जाती है।

वायुका रासायनिक तत्त्व।

प्राच्य पण्डितोंने वायुको पञ्चभूतोंके अन्तर्गत एक भूत माना है। पाश्चात्य पण्डित बहुत दिनों तक इसको भूत ही मानते थे। हम आज भी वायुको भूत ही स्वीकार करते हैं। किन्तु यह भी वक्तव्य है, कि हमारे शास्त्रकारोंका बताया भूतपदार्थ और पाश्चात्य पण्डितोंका बताया मूलपदार्थ (Element) एक नहीं। पाश्चात्य देशोंमें बहुत दिनों तक हमारे इस पञ्च महाभूत Element नामसे पुकारा हो जाता था, किन्तु पाश्चात्य रसायन-शास्त्रमें इस समय प्रमाणित हुआ है, कि क्षिति, अप, मघ्न, मीर ह्योम—ये मूलपदार्थ या "एलिमेंट" नहीं हैं। किन्तु इसने हमारे शास्त्रीय 'भूत' नामधेय संज्ञाके परिष्कारन को आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि पाश्चात्य पण्डित इस समय एलिमेंटमें जो सम्भक्त हैं, हमारा भूत शब्द वैसे पदार्थका वाचक नहीं। इस समयके प्राच्य ह्य रासायनिक पण्डितोंका कहना है, कि वायु, जल, पृथ्वी मूल पदार्थ नहीं, वरं ये मूल पदार्थके संयोगसे उत्पन्न होने हैं। अग्नि आज भी पदार्थ नहीं है, यह रासायनिक मूल पदार्थका क्रियाफलविशेष है। विश्लेषणो क्रियाकी अति सूक्ष्म प्रणाली द्वारा जो पदार्थ किसी दूमरी जाति-के पदार्थसे किसी तरह विश्लिष्ट नहीं किया जा सकता, वही पदार्थ इस समय मूलपदार्थके नामसे परिचित है। इस समय मूल पदार्थकी संख्या सत्तरसे भी बढ़ गई है। फिरहालके रसायनविद्व पण्डितोंने परमाणुत्वधर्ममें एक युगान्तर उपस्थित कर वर्त्तमान रसायनविज्ञानके मूल पदार्थ निर्णय-विभागमें महाविच्छेद्य उपस्थित कर दिया है। वर्त्तमान विज्ञान अब इस सिद्धान्तकी ओर अग्रसर हो रहा है, कि ये सब मूल पदार्थ एक ही मूल पदार्थके अग्रस्थान्तरमात्र हैं।

जो हो, जब तक यह सिद्धान्त स्थापित नहीं होता तब तक हमें इसी वर्त्तमान रसायन-विज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार ही चलना होगा। यूरोपके वैज्ञानिक युगके आरम्भसे अब तक वायुके रासायनिक तत्त्वके सम्बन्धमें

आलोचनायें होनी भा रहती हैं, जोसे उनका हम संश्लेषमें प्रतिष्ठाम देगे।

वायुके उदाहरण विवेचनका इतिहास ।

वायु पहले यूरोपमें भी मूल पदार्थ ही मानी जाती थी । सन् १७२० ई०में फ्रांसिसोसो रासायनिक पण्डित कॅरी (Cavendish) ने देखा, कि टोम और सोसा ग्लुबो वायुमें जलानेसे उनका भारीपन बढ़ जाता है । यह देख उसके मनमें एक यितक उत्पन्न हुआ । उसने स्थिर किया, कि आकाशकी वायुमें ऐसा कोई पदार्थ है, जो उन घातुओंके जलानेके समय उनके साथ मिल जाता है और इस सम्मेलनके फलसे इनका गुरुत्व बढ़ जाता है । उसने यह, स्पष्टता-निर्णय नहीं किया, कि यह पदार्थ क्या है ।

इसके बाद सन् १६७३ ई०में मेयो नामक एक अङ्गरेज रसायनविद पण्डित वायुकी रासायनिक परीक्षामें प्रवृत्त हुआ । इनने परीक्षा करके देखा, कि वायुमें सो-तरहके वायु (Gas) मिले हुए हैं । इन वायुओंके गुणागुणके सम्बन्धमें भी उसने परीक्षा की थी । उसका विश्वास हो गया था, कि इन दो वायुओंमें एक जोषन-धारणके अनुकूल और दूसरा प्रतिवृत्त है ।

१८वीं सदीके पहले भागमें भी इन दोनों वायुओंका नाम भाविष्टत हुआ न था । उस समयके रसायन-शास्त्रमें वायुविवेचनके बहुतेरे प्रमाण हैं । डाक्टर प्रिष्टलीने वायुके इस वातका नाम Dephlogisticated air रखा था । डाक्टर शोलेने (Scheele) इस वायुकी Empyreal air भी कहा है । कन्डररेट (Cavendish) ने इसकी एरूममें Vital air कहा था । सन् १७७३ ई०की १७वीं सगणकी डाक्टर विष्टलीने सबसे पहले इसका विशेष विवरण प्राप्त किया । सन् १७७६ ई०में आयुनिक रसायनके जगद्गता सुविष्णव फ्रांसिसोसो रसायनविद पण्डित लामोवाजोव (Lavoisier) ने इस पदार्थका अविमजन (Oxygen) नाम रखा ।

डाक्टर प्रिष्टलीने मरिटा सिस्टूर जला कर इसमें अविमजन पदार्थ भलग किया । मरिटा सिस्टूरकी पदार्थकें वैज्ञानिकोंने Phlogiston कहना था ।

संक्षेपमें Red lead नाम रखा है । किन्तु सन् १७७२ ई०में वैज्ञानिक पण्डित रादरफोर्डने वायुमें आ-द्रोजन बनग किया था । नाद्रोजन हो पहले Phlogisticated air नामसे प्रसिद्ध था । पण्डित रादर-फोर्डने यह वायुमें फस्फरस नामक मूल पदार्थकी जला कर वायुस्थित नाद्रोजनकी अविमजनसे पृथक् किया । फस्फरस जलने समय वायुस्थित अविम-जनके साथ मिल जाता है । किन्तु नाद्रोजनके साथ फस्फरसके उस सम्मेलनका कोई सम्बन्ध नहीं । अतः कठ्यायुमपवायने फस्फरस जलने समय अविम-जाव नाद्रोजन ही अविमज रह जाता है ।

लामोवाजोवने जिस प्रयोगसे इन दो पदार्थोंका विवेचन किया है, उनकी प्रतिक्रिया लिखी जाती है— एक यह कांचके बरतनमें कुछ घोड़ा-सा पारा रख कर कई दिनों तक लगातार उसमें गर्मी प्रदान कर उसमें देखा, कि पारेका रंग जर्द तथा यह चूर्णकार (धूल-कण)के रूपमें हो गया है और वायु-स्थित वायुका घजन एकवृत्तता कम है । इन लाल चूर्ण पदार्थोंकी यह एक कांचके बरतनमें रख उसमें उत्साव देनेमें प्रवृत्त हुआ । इसके फलमें उसमें एक वायुका उद्गम हुआ । यह वायु परीक्षा कर देखा गया, कि उसमें दहनभावका विशेषत्वसे बढ़ गई है । लामोवाजोवने सबसे पहले इस पदार्थकी अविमजन नामसे भाविष्टत किया । अविमजन यूनानी भाषाका शब्द है । Oxus का अर्थ अमृत वा वसिष्ठ और Gen उत्पन्न करना जो अमृत उत्पन्न करता है, उसीका नाम अविमजन है । लामोवाजोवका विश्वास था, कि यही पदार्थ आन्-द्रजातका मूल कारण है । किन्तु इस समयकी खोज-ने यह पारणा लुप्त हो गई है । अब इसका प्रमाण मिलने लगा, कि येसे वासिष्ठ बहुत है, जितना अविम-जन नहीं है । दूसरी ओर क्षार पदार्थोंके (Alkalies) भी अविमजन दिखाई दे रहा है ।

अब इसकी व्याख्या की जायेगी, कि किन तरह लामोव प्रयोग इसका विवेचन किया था । वायुस्थित वायुके अविमजनके साथ पारा उत्साव द्वारा मिल कर लोहितवर्ण चूर्ण पदार्थ (Red oxide of Mercury)

उत्पादन करना है और पालमें नाइट्रोजन बाकी रह जाता है। बहुत अधिक उत्पादसे यह लोहितवर्ण पदार्थ विशिष्ट हो कर फिर यह पारा और अक्सिजन वाष्प—इन दो पदार्थोंमें परिणत हो जाता है। अक्सिजन अलग करनेका उपाय इस तरह है—

तुम एक कांचके नलमें रेड अक्साइड आव मरकुरी नामक पदार्थको रख कर इसे गर्म करो। थोड़ी देरके बाद एक बत्ती जला कर उसे इस तरह घुमा दो कि उसके मुँह पर अनिस्फुल्लिङ्ग मौजूद रहे। इस नोकदार बत्तीको आग नलमें घुसेड़ते ही यह जल उठेगा। इसका कारण यह है, कि उक्त रेड अक्साइड आव मरकुरी उत्पादके फलसे पारा और अक्सिजन वाष्पमें विशिष्ट हो जाता है। अक्सिजन गैसमें जलनेवाली शक्ति बहुत प्रबल है। अतएव इसमें अनिरुणाका संयोग होने ही यह मोरसे जल उठता है।

फ्लेमिन्ग या प्राचीन विद्वान् ।

अथ नाइट्रोजनकी बात कही जायेगी। पहले ही कहा गया है, कि सन् १७७२-६०में एडिनबराके सुविषयात वैज्ञानिक डाक्टर रांदरफोर्डने नाइट्रोजन पदार्थको वायुसे अलग किया। उन्होंने इसका Mephitic air नाम रखा। इसके बाद डाक्टर प्रिष्टलीने इसका Phlogisticated air नाम रखा। वायुसे नाइट्रोजन निकालनेके बहुतेरे उपाय हैं। यहां उन सर्वोका उल्लेख करना नप्रासङ्गिक बोध होता है। जो हे, १८वीं सदीके रसायनविज्ञानमें जो सब पदार्थ वायुके उत्पादन कहे जाते थे, उनको एक फिहरिस्त नीचे हो जाती है—

- १ डिफ्लजिडिफेरेड एयर या अक्सिजन।
- २ फ्लजिडिफेरेड एयर या नाइट्रोजन।
- ३ नाइट्रस एयर या नाइट्रिक अक्साइड।
- ४ डिफ्लजिडिफेरेड नाइट्रस एयर या नाइट्रस अक्साइड।

५ इनफ्लेमिबल एयर या हाइड्रोजन।

६ फिक्सड एयर कार्बोनिक एसिड।

७ आलबेलाइन एयर या आमोनिया।

वायुके उत्पादनके विषयमें भाषुनिक विद्वान् ।

इस समय ये नाम छोड़ दिये गये हैं। रसायन-

विद्याविद् परिष्ठतीने अनेक उपायोंसे वायुराशिका उत्पादन विप्लेपण कर उसका परिमाण स्थिर किया है। आज कलके परिष्ठतीने वायुके जिन उत्पादोंमें और परिमाणोंका प्रदर्शन किया है, उनको फिहरिस्त नीचे हो जाते हैं—

अक्सिजन	२०.६१
नाइट्रोजन	७७.६५
जलय-वाष्प	१.४०
कार्बोनिक ऐनडाइड	०.०४

सिवा इनके ओजोन (Ozone) नाइट्रस एसिड, आमोनिया, कार्बोरेटेड हाइड्रोजन और प्रधान प्रधान ग्रहकी वायुमें सालफोरेटेड हाइड्रोजन और सलफ्यूरस एसिड दिखाई देने हैं। सिवा इनके तरह तरहके उद्वेग यान्त्रिक पदार्थ (Volatile organic matter), रोगोत्पादक जीव, (Pathogenic Germs) और माइक्रोब (Microbe) वायुमें उड़ते फिरते हैं।

अमिनय मूल पदार्थ।

सिवा इनके विशुद्ध वायुमें इस समय और भी कितने ही मूल पदार्थ आविष्कृत हुए हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानविद् लार्ड राले (Lord Raleigh) और यूनिवर्सिटी कालेजके रसायनशास्त्रके अध्यापक विलियम रामसे (William Ramsay) इन दोनों वैज्ञानिक परिष्ठतीने प्रभूत अर्थ अर्थ और खूब जांच पड़तां कर वायु में पांच अमिनय मूलपदार्थों को देखा है। जैसे—आर्गन (Argon), हेलियम (Helium), नोबन (Neon), क्रिप्टन (Crypton) और जेनन (Xenon) ये पांच पदार्थ वायुवायु हैं।

वायु में हाइड्रोजन।

१८वीं सदीके रसायनिक परिष्ठत यह जाते थे, कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु वे हाइड्रोजन नाम नहीं जानते थे। इस समय कोई यह खुल कर नहीं कहना था, कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु सुविषयात क्रोस्तोनी परिष्ठत गाउटे (Gautier) ने बहुत परीक्षा करके निर्णय किया है, कि हाइड्रोजन नामक मूलपदार्थ विशुद्धावस्था में सदा-वायुमें विद्यमान रहता है—अतः प्रति स्तु प्रचार

माटोन्नतार्थे होनी या रही है, मंगे उनका हम संश्लेषमें परिनिहाम देगा।

वायुने उन्नतान विरलेपनका इतिहास।

वायु पहले यूरोगमें भी मूल पदार्थ ही मानो जातो थो। सन् १७३० ई०में फ्रांसिसी रामार्वायिक पण्डित अरि (Gentry) ने देखा, कि टोन और सोसा म्युली वायुमें जलानेसे उनका भारोवन बढ़ जाता है। यह देख उसके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ। उसने निरूप किया, कि भाकाजकी वायुमें येसा कोई पदार्थ है, जो उन धातुओंके जलानेके समय उनके साथ मिल जाता है और इस सम्मेलनके फलमें इनका गुणत्व बढ़ जाता है। उसने यह स्पष्टता-निर्णय नहीं किया, कि यह पदार्थ क्या है।

इसके बाद सन् १७७३ ई०में मैरी नामक एक भूदुरेज रसायनविद् पण्डित वायुकी रसायनिक परीक्षा में प्रवृत्त हुआ। इसने परीक्षा करके देखा, कि वायुमें दो तरहके वायु (Gas) मिले हुए हैं। इन वायुओंके गुणागुणके सम्बन्धमें भी उसने परीक्षा की थी। उसका विश्वास हो गया था, कि इन दो वायुओंमें एक जीवत-धारणके अनुकूल और दूसरा प्रतिवृत्त है।

१८वीं शताब्दी पहले भागमें भी इन दोनों वायुओंका नाम भाविदहन हुआन था। उस समयके रसायन-शास्त्रमें वायुविदलेपनके बहुतेरे प्रमाण हैं। डाक्टर मिदलोंने वायुके इस वायुका नाम De-phlogisticated air रखा था। डाक्टर शोलेने (Scheele) इस वायुको Empyrean air भी कहा है। कन्डरसेट (Cavendish) ने इसको यूरुमेंने Vital air कहा था। सन् १७७४ ई०की १२वीं मगसूनकी डाक्टर मिदलोंने सबसे पहले इनका विशेष विवरण प्राप्त किया। सन् १७७६ ई०में भायुनिक रसायनके जगद्गता सुविद्यमान फ्रांसिसी रसायनविद् पण्डित लाभोवाजिये (Lavoisier) ने इस पदार्थका अधिकतम (Oxygen) नाम रखा।

डाक्टर मिदलोंने मरिया मिग्नूर बना कर इसमें अधिकतम पदार्थ अलग किया। मरिया मिग्नूरकी वायुत्व ही शक्तिमें Phosphorus Rubrum या

संश्लेषमें Red lead नाम रखा है। किन्तु सन् १७७२ ई०में घीमानिक पण्डित राइफोर्डने वायुमें नाटोन्नत अलग किया था। नाटोन्नत ही पहले Phlogisticated air नामसे प्रसिद्ध था। पण्डित राइफोर्डने यह वायुमें फल्फरम् नामक मूल पदार्थकी जला कर वायुस्थित नाटोन्नतकी अधिकतमसे वृद्ध किया। फल्फरम् जलने समय वायुस्थित अधिकतमके साथ मिल जाता है। किन्तु नाटोन्नतके साथ फल्फरमके उस सम्मेलनका कोई सम्बन्ध नहीं। अतः रुडवायुमयवादी फल्फरम् जलने समय अलग-अलग नाटोन्नत ही अलगिद रह जाता है।

लाभोवाजियेने जिस प्रणालीसे इस दो पदार्थोंका विरलेपन किया है, उनकी प्रतिक्रिया-निष्पत्ति आती है—एक बन्द काँचके बरतनमें कुछ घोड़ा-सा पारा रख कर कई दिनों तक लगातार उसमें गर्मी-प्रदान कर उसमें देखा, कि पारेका रंग जर्डी तथा यह चूर्णाकार (धूल-कण) के रूपमें हो गया है और वायुस्थित वायुका पत्रन एकपञ्चमांश कम है। इन लाल चूर्ण पदार्थोंको यह एक काँचके बरतनमें रख उसमें उष्ण देनेमें प्रवृत्त हुआ। इसके फलमें उसी एक वायुका उद्गम हुआ। यह वायु परीक्षा कर देखा गया, कि उसमें दहनकरवा विशेषरूपसे बढ़ गई है। लाभोवाजिये सबसे पहले इस पदार्थकी अधिकतम नाम भाविदहन किया। अधिकतम यूनानी भाषाका शब्द है Oxus का अर्थ अम्ल या पवित्र और Gen उदभव करना जो अम्ल उदभव करता है, उसीका नाम अधिकतम है। लाभोवाजियेका विश्वास था, कि यही पदार्थ वायु-उत्पादनका मूल कारण है। किन्तु इस समयकी शोधमें यह धारणा लुप्त हो गई है। अब इसका प्रमाण मिलने लगा, कि येमें पवित्र बहुत है, जिसमें अधिकतम नहीं है। दूसरी ओर क्षार पदार्थों (Alkalies) को अधिकतम दिखाई दे रहा है।

अब इसकी व्याख्या की जावेगी, कि किस तरह लाभोवाजियेने इसका विरलेपन किया था। वायुस्थित वायुके अधिकतमके साथ पारा उष्ण द्वारा मिल कर लोहितचूर्ण चूर्ण पदार्थ (Red oxide of Mercury)

उत्पादन करता है और पात्रमें नाइट्रोजन बाकी रह जाता है। बहुत अधिक उत्पापसे यह लोहितवर्ण पदार्थ विश्लिष्ट हो कर फिर यह पारा और अक्सिजन वाष्प—इन दो पदार्थोंमें परिणत हो जाता है। अक्सिजन अलग करनेका उपाय इस तरह है—

... तुम एक काँचके नलमें रेड अकसाइड आय मरकुरी नामक पदार्थको रख कर इसे गर्म करो। योही देखके वाद एक बत्ती जला कर उसे इस तरह बुझा दे कि उसके मुँह पर अनिस्फुल्लिङ्ग मीजूद रहे। इस नोकदार बत्तीको आग नलमें घुसेड़ते हो यह जल उठेगा। इसका कारण यह है, कि उक्त रेड अकसाइड आय मरकुरी उत्पापके फलसे पारा और अक्सिजन वाष्पमें विश्लिष्ट हो जाता है। अक्सिजन गैसमें जलनेवाली शक्ति बहुत प्रबल है। अतएव इसमें अग्निकणिका संयोग होते हो यह मोरोसे जल उठता है।

प्लानिफिन या प्राचीन विद्वान् ।

अब नाइट्रोजनकी बात कही जायेगी। पहले ही कहा गया है, कि सन् १७७२ ई०में एडिनबराके सुविख्यात वैज्ञानिक डाक्टर रांदरफोर्डने नाइट्रोजन पदार्थको वायुसे अलग किया। उन्होंने इसका Mephitic air नाम रखा। इसके बाद डाक्टर प्रिप्लेनेने इसका Phlogisticated air नाम रखा। वायुसे नाइट्रोजन निकालनेके बहुनेरे उपाय हैं। यहाँ उन सर्वोत्तम उल्लेख करना नप्रासङ्गिक बोध होता है। जो हो, १८वीं सदीके रसायनविज्ञानमें जो सब पदार्थ वायुके उपादान कहे जाते थे, उनकी एक फिहरिस्त नीचे दी जाती है—

- १ डिपलजिएफेन्टेड एयर या अक्सिजन ।
 - २ फ्लजिएफेन्टेड एयर या नाइट्रोजन ।
 - ३ नाइट्रास एयर या नाइट्रिक अकसाइड ।
 - ४ डिपलजिएफेन्टेड नाइट्रास एयर या नाइट्रास अकसाइड ।
 - ५ इनफ्लेमैबल एयर या हाइड्रोजन ।
 - ६ फिक्सड एयर कार्बोनिक् एसिड ।
 - ७ मालफेलाइन एयर या आमोनिया ।
 - ८ वायुके उपादानके विषयमें आधुनिक विद्वान् ।
- इस समय ये नाम छोड़ दिये गये हैं। रसायन-

विद्याविद्दु पण्डितोंने अनेक उपायोंसे वायुशक्तिका उपादान विश्लेषण कर उसका परिमाण स्थिर किया है। आज कलके पण्डितोंने वायुके जिन उपादानों और परिमाणोंका प्रदर्शन किया है, उनकी फिहरिस्त नीचे दी जाती है—

अक्सिजन	२०.६१
नाइट्रोजन	७७.६५
जलीय वाष्प	१.४०
कार्बोनिक् पेनडाइड	०.०४

सिवा इनके ओजोन (Ozone) नारटिक एसिड, आमोनिया, कार्बोरेटेड हाइड्रोजन और प्रधान प्रधान ग्रहकी वायुमें सालफोरेटेड हाइड्रोजन और सलपयूरस एसिड दिखाई देने हैं। सिवा इनके तरह तरहके उद्वेग यान्त्रिक पदार्थ (Volatile organic matter), रोगोत्पादक जीज, (Pathogenic Germs) और माइक्रोब (Microbe) वायुमें उड़ते फिरते हैं।

अभिनव मूल पदार्थ ।

सिवा इनके विशुद्ध वायुमें इस समय और भी कितने ही मूल पदार्थ आविष्कृत हुए हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानविद्दु लार्ड राले (Lord Raleigh) और यूनिवर्सिटी कालेजके रसायनशास्त्रके अध्यापक विलियम रामसे (William Ramsay) इन दोनों वैज्ञानिक पण्डितोंने प्रभूत अर्थ धन्य और खूब जाँच पड़ताल कर वायुमें पाँच अभिनव मूलपदार्थों को देखा है। जैसे—आर्गन (Argon), हेलियम (Helium), नोबन (Neon), क्रोप्टन (Crypton) और जेनन (Xenon) ये पाँच पदार्थ वायुयुग्मे हैं।

वायुमें हाइड्रोजन ।

१८वीं सदीके रसायनिक पण्डित यह जानते थे, कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु ये हाइड्रोजन नाम नहीं जानते थे। इस समय कोई यह खुल कर नहीं कहता था, कि वायुमें हाइड्रोजन है। किन्तु सुविख्यात फ्रांसिसी पण्डित गांटे (Gantier) ने बहुत परीक्षा करके निष्कर्ष किया है, कि हाइड्रोजन नामक मूलपदार्थ विशुद्ध वायुमें सदा-वायुमें विद्यमान रहता है—प्रति एक हजार

भागमें दो भाग हाइड्रोजन मिलता है। अणुवायु जलोजन में इस सिद्धांतका समर्थन किया है।

शुद्ध वायुका गुणत्व।

उत्प्रेतः किट्रिकवाहो देखनेमें मायूम होता है, कि अक्षिमज्जत और नाइट्रोजन—ये दो मूलवस्तुयों ही वायुके प्रमाण उपादान हैं, कार्बोनिक् एमिड और जलिय वायु आदिके परिमाण हेगमेद और समपमेदसे परिचरान-ज्ञोक है। आर्गोनिया, सालफारेटः, हाइड्रोजन और मायुपयुक्त एमिड आदिका परिमाण भी हेग और वान मेरसे परिचरान होने रहते है। किन्तु अक्षिमज्जत और नाइट्रोजनके परिमाण तथा अनुपातमें कोई अक्षिज्जत नहीं दिखाई देता। विज्ञानविद्वद् एण्ड्रिज वायुट (Piot) और आरगोवोने (Ar-gon) विद्युत्वायुके गुणत्वके सम्बन्धमें ज्ञान पद्धतात्क वर निघर किया है, कि मध्यवर्ती उष्णता-में (Temperature) एकमी क्यूबिक इन्च शुद्ध वायुका वजन ६१ ग्रेनेसे कुछ अधिक है। वह जलकी अपेक्षा ८१६ गुना हलका है। पर्योके प्रथम अक्षिमज्जतकी मात्रा अधिक परिमाणमें रहती है।

वायुके समुच्चै अक्षिमज्जत और नाइट्रोजन मिले हुए रहते है। इसकी रासायनिक संमिश्रण या (Chemical Combination) कहते है। वायुमें स्थिर अक्षिमज्जत और नाइट्रोजनका सम्बन्ध घेना दृढ़ नहीं है। प्रयोगन होनेसे सहसा एक दूसरेसे अलग हो सकता है। इस तरह सहज और सहसा विश्लेषण प्रकिया सम्भावित न होने पर वायु क्षण बई सम्बन्धवत्क प्रयोगनोंकी सिद्धि नहीं होनी। इस समयकी गैरी वायुयत्ता जयैनी।

अक्षिमज्जत और नाइट्रोजनका विभेयण।

वायुमें अक्षिमज्जत और नाइट्रोजन—ये दो प्रधानतम उपादान है। इन दिनों उपादानोंके पृथक् करने तथा उनके परिमाण निर्देश करनेके जो उपाय है, उनके सम्बन्धों की बातें यहां बहो ज्ञानी है। वायुके अक्षिमज्जत और नाइट्रोजनका परिमाण निर्णय करनेमें 'रूडिमीमिटर' (Rudimentary) नामक मजिजायुक्त एकका प्रयान महदा-यक है वा यो कहिये, कि वायुके परिमाण निर्णय करनेके लिये दो हायड्रोजन वायु हुई है। इस यत्नमें एक निर्दिष्ट परिमाणसे वायु में निर्दिष्ट परिमाण हाइड्रोजनके

साथ मिला कर तद्विज द्वारा वायुका संयोगमयम करना होगा। इस परीक्षामें वायुमण्डलकी अक्षिमज्जत हाइड्रोजनके साथ मिला कर जलोजनकारमें परिणत होगा है। जो बाकी रहता है, यही अतिरिक्त हाइड्रोजन और नाइट्रोजन है।

इस परीक्षाका फल निकालनेके लिये निम्नलिखित प्रनालोका अयव्ययन करना चाहिये।

$$x = \frac{y + z - w}{3}$$

- य—का अर्थ वायु जिन परिमाणसे लो गां यो।
- ॥
- य—का अर्थ जिन परिमाणसे हाइड्रोजन तथा गुमा वायु बन गया था।
- फ—का अर्थ फल।

यदि ५० क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुके साथ ५० क्यूबिक सेण्टिमिटर हाइड्रोजन मिला कर तद्विज हाइड्रोजनके बाद ६८.६ क्यूबिक सेण्टिमिटर बाकी रहता है, तो समझना होगा कि ३१.५ क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुमें जलोजनकार वायुय वर लिया। किन्तु दो परिमाण हाइड्रोजन और एक परिमाण नाइट्रोजन मिलानेसे जल उत्पन्न होता है।

$$\frac{31.5}{2} = 15.75$$

- १ परिमाण अक्षिमज्जत १०.४६।
- २ परिमाण हाइड्रोजन २०.१२।
- ५० क्यूबिक सेण्टिमिटर वायुमें यदि १०.४६ अक्षिमज्जत हो, तो एकमी संजमै २०.१२ होगा। अथवा वायुमण्डलकी वीकडे २०.१२ अक्षिमज्जत और ३०.८८ नाइट्रोजन है। औजोन द्वारा वायुका अक्षिमज्जत वीकडे २३ और नाइट्रोजनका परिमाण ३७ भाग वादा ज्ञानी है।

वायुके अक्षिमज्जत और नाइट्रोजनका परिमाण निर्णयके लिये और जो उपाय है उनमें एक उपाय यह है—

एक घोट्टे पोर्सिलेन बरतन पर एक टुकड़ा फस्फोरस रख कर एक जलपूर्ण चौड़े पात्र पर रखिये । इसके बाद समान रूपसे छः भागोंमें विभक्त दोनों ओर खुले मुँहकी बोतलके आकारका एक कांचका बरतन उक्त पोर्सिलेन पात्रको ढांकते हुए इस तरहसे रखना चाहिये, कि पात्रका एक अंश ही जलमें डूबा रहे । पात्र पर जो एक काग लगा रहेगा, इसके नीचे पीतलकी सांकल इस तरहसे लटकती रहेगी, कि उसके दूसरे छोर पर फस्फोरसके छू सके । काग निकाल कर पीतलकी सांकल दीपके प्रकाशोंमें गर्म कर इसके द्वारा फस्फोरसके टुकड़ेसे छुआ देना चाहिये और काग मजबूतीसे बन्द कर देने पर गर्म सांकलके स्पर्शसे फस्फोरस जल उठेगा और कांचका पात्र सदा धूपसे भर जायेगा जब बरतन ठण्डा होगा तब आप देखेंगे, कि जल ऊपर चढ़ कर बरतनके द्वितीयार्ध पर अधिकार किये हुए है और अर्धके चार अंश खाली पड़े है ।

फस्फोरस वास्तविक वायुका आध भाग अक्सिजनके साथ मिलनेसे जो सादा धूपके आकारका एक पदार्थ उत्पन्न होता है, वह फस्फोरस ट्राइऑक्साइड (Phosphorus Trioxide p. 20) नामसे अभिहित होता है । यह जलमें गलनेवाला है अतएव थोड़ी ही देरमें बरतनमें रखे जलके साथ मिल फस्फोरस एसिडरूपमें अवस्थान करता है । जो बहुतव्य वाष्प है, यह बरतनके चार अंशों पर अधिकार कर लेता है । परीक्षा करने पर यह नाइट्रोजन मान्य हो सकता है ।

इसी परीक्षासे यह भी प्रमाणित होता है, कि ४ आयतन (Volume) नाइट्रोजन और एक आयतन अक्सिजन है । देखा जाता है, कि वायुमें जो सब उपादान हैं, उनमें नाइट्रोजन और अक्सिजनका भाग हो सर्वाधिक अधिक है, अतएव वायुका रूप और धर्मके सम्बन्धमें जानना ही, तो उसके प्रधान प्रधान उपादानोंके रूप और धर्मको आलोचना करना चाहिये । इसके लिये अक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक् एसिड, जलीय वाष्प और हाइड्रोजन आदि पदार्थोंके सम्बन्धमें किञ्चित् विस्तार रूपसे आलोचना की जाती है ।

अक्सिजन ।

हमने इससे पहले ही अक्सिजन और नाइट्रोजनके
Vol. XXI, 40

आविष्कारका विवरण प्रकाशित कर दिया है । मिटली, शिले, लामोवाजीय आदि पण्डितोंने इस बातको आलोचन की है, कि किस तरह वायुसे अक्सिजन और नाइट्रोजन पृथक् किया जाता है । रसायनविज्ञानमें मूलपदार्थोंका जो संक्षिप्तचिह्न है, उसमें अक्सिजन बड़ेजी O अक्षरसे चिह्नित है, यह एक मूलपदार्थ है, इसका पारमाणविक गुणत्व—१६ है । वायुके साधारण तापमें (Temperature) और दबावमें अक्सिजन वाष्पावस्थामें अवस्थान करता है ।

अक्सिजनका नामकरण ।

हमने पहले ही कहा है, कि डाक्टर मिटलीने इसको डिफ्रजिफिकेटेड एयर (Dephlogesticated air) कहा था । डाक्टर शिलेने (Scheel) इम्पिरियल एयर (Impyrical air) कहा था । सुविख्यात कप्टरसेटके मतसे इसका नाम मिटल एयर या प्राणवायु होना चाहिये । लामोवाजीय ही इसके इस वर्तमान नामके आविष्कर्ता हैं । हमारे शाङ्खधरके मतसे इसका नाम होना चाहिये विष्णुपदामृत अम्बरपीप्लु ।

अक्सिजन उत्पादन प्रणाली ।

अक्सिजन गैस उत्पादन-प्रणालीके सम्बन्धमें पहले दो-एक प्रणालियोंका दिग्दर्शन कराया गया है । वैज्ञानिक कई प्रणालियोंसे अक्सिजन उत्पादन करते हैं । (१) मेङ्गोनिज-डाइ-अक्साइड नामक पदार्थको उत्तप्त करते करते जब यह लाल हो जाता है तब उससे ट्राइमेङ्गोनिज ट्रेटक्साइड और अक्सिजन वाष्प उत्पन्न होते हैं ।

(२) साधारण क्लोरेट अथ पोटाससे दो अनेक समयमें अक्सिजन गैस उत्पन्न किया जाता है । क्लोरेट अथ पोटास गर्म करनेसे यह विभक्त हो कर क्लोराइड अथ पोटाशियम और अक्सिजन वाष्प उत्पन्न कर देता है ।

(३) क्लोरेट अथ पोटासके साथ मेङ्गोनिज-डाइ-अक्साइड या सुखी बालू अथवा कांचका सुर्ण मिला कर गर्म करनेसे बहुत थोड़े समयमें ही अधिक परिमाणमें अक्सिजन गैस प्राप्त होता है । तत्पश्चात् करनेकी प्रणाली इस तरह है—

एक भाग क्लोरेट अथ पोटासके साथ इसका एक

धीमां भाग में पूरे मित्र दां-अपवाद मिला कर रिट्टे नामके एक यन्त्रमें रक्षना होगा। एक गलाकार वायु-पात्रो मलसंयुक्त काग द्वारा इसका मुँह उल्लसकपत्रे बन्द करना होगा। इसके बाद इस रिट्टे यन्त्रको एक भाषाट-दण्डमें जोड़ कर इसके ठोक नीचे स्विस्सेट लेम्प जला देना होगा। गर्मी पाते ही अक्सिजन गैस उत्पन्न होने लगेगी। यह गैस संस्र कर देना हो, तो जलपूर्ण गमला या यूमेटिबट्रक नामक यन्त्रविशेषका व्यवहार करना होता है। परिदृष्ट मध्य कांचको बोटलको गमले या यूमेटिबट्रक जलसे पूर्ण कर उसके ऊपर अंधो मुगो रखनी होगी। अक्सिजन निकलना आरम्भ होने पर वायुवाहिका मली बोटलके मुँहके नीचे धरते ही धुंधलुधु करके इसमें वायु प्रविष्ट होगा, जब बोटलका समूचा जल बाहर निकल जायेगा, तब कांचके कागमें बोटलका मुग उभरतासे बन्द करना होगा। एक तरफका गोंद तैयार कर उसे बन्द करना चाहिये। गोंद—दो भाग मोम और एक भाग गारियलका तेल मिला देनेसे तैयार होता है। बोटल व्यवहार करोसे पहले उस कागको इसी गोंदमें डुबा लेना चाहिये।

(४) उष्णपत्रे साहाय्यसे गंधकाणु-विच्छिन्न करने को अक्सिजन पाया जा सकता है।

(५) तद्विद्य संयोगसे जल विच्छिन्न करने को अक्सिजन उत्पन्न होता है।

अक्सिजनका सम्बन्ध।

अक्सिजन मुक्तायुष्णमें पदुरिक्तके सिवा प्रायः सभी मूलपदार्थोंके साथ मिला रहता है। यह अत्याम्य पदार्थोंके साथ मिल कर तीन तरहके योगिक पदार्थ उत्पन्न करता है। जैसे—अपवाट्ट, पक्षि और मनुकीहल। जैसे कई पदार्थ हैं, जो अक्सिजनमें जम और पक्षिमें वृष्ट अथवा परिवर्त होमे हैं। अक्षर कदकोरम, केमि-यम आदि इसी जातिके पदार्थ हैं।

अक्सिजनका स्वरूप।

अक्सिजन गैस ह्यूरोम, स्वाइडोम और गंधकोज है। यह कैलीके दिवाई भी नहीं पदता और यह बहुत लघु है और हाइड्रोजनको अपेक्षा १६ गुना भारी है। साधारण वायुमें जैसे अक्सिजनका प्रमाण आदि गुण

दिवाई देने हैं, जैसे ही अक्सिजनमें भी विद्यमानधारक आदि गुण मौजूद हैं। जोवमको क्रियाओंके निर्वाहे जिसे अक्सिजनको बहुत आवश्यकता है। साधारण वायुकी अपेक्षा अक्सिजन अतिउत्तर दोषांकार तक जोवन-रक्षाके जिसे उपयोगी है। इसीजिसे इसका दूसरा नाम प्राणवायु वा Vital air है।

पृथ्वीकी वायुसे अक्सिजन बहुत भारी है। यह भी अथुविक इत परिमित अक्सिजन वायु मध्यम परिमित ताप और दबावसे ३४ प्रोसको अपेक्षा भी यत्रने अधिकतर भारी होता है। उम अवस्थामें पृथ्वीकी वायुका वजन ३१ प्रोससे जरा अधिक है। अक्सिजन गैस ज्वमे कुछ द्रवणीय है। इसको स्फोय प्रभावता-परिमाण-स्थानके बाम गुना अधिक दबावता स्थानविनिष्ट जल में अक्सिजन द्रवित हुआ करता है। इसके उपर प्रकाशको कोई क्रिया नहीं। अथवायु घालीकी तरह उष्णपत्रे अक्सिजन फैलता है। विज्ञानिके प्रमाणसे भी इसके गुणमें कोई परिवर्तन दिवाई नहीं देता। शीघ्र तथा प्रघाव (दबाव)-में इसके मूल वा अक्षिप्त नहीं बनाया जा सकता। अक्सिजन आज जो मूलपदार्थमें ही परिगणित होता है। किन्तु कुछ लोग इन पिपवमें मशह करने हैं। आज कल्पके वैज्ञानिकोंका कहना है, कि जिस सिद्धान्तमें पहले परमाणुके अविनाश्य मानना जाता था, वह मिश्रण प्रमाणक है। प्रत्येक परमाणुको घेवु निकलू द्रवम पदार्थ (Electron) समझिमान है। वर्तमान रसायनविज्ञानमें जिस सब मूलपदार्थोंका उल्लेख किया जा चुका है, उनमें हाइड्रोजन सर्वोपेक्षा लघुतराव है। हाइड्रोजनके मात्र पर ही अथवायु मूल पदार्थोंका नाम मिलीन हुआ है। इन सबमें प्रोभासी मात्रम हुआ है, कि इन हाइड्रोजनका एक परमाणु अक्षिप्त घेवु निकल पदार्थ (Electron)के एक द्रव्यपरिगणित पदार्थको समझि और कैमिडिन वा विद्योगिकक घेवु निकल अक्षिप्त हैं। यद्यपि ये परमाणु कैलीके दिवाई नहीं देते, किन्तु इनके अक्सिजनका प्रमाण अक्षाट्ट और अक्षर है।

अक्सिजनका सिलार।

जलमें जिसमें मूलपदार्थ हैं, इनके अक्सिजन सर्व

हो:सुलभ है। भूमाग्निकी: जलराशिमें इसका नी-का
 ८ अंश, चायुमें चारका एक अंश, सिलिका, चक और
 प्लिओमिनामें आधा अंश विद्यमान है। सिलिका
 चक और प्लिओमिना—ये तीन ही पदार्थ पृथ्वीके
 प्रधानतम उत्पादन हैं। प्राणियोंकी प्राण-रक्षाके लिये
 अक्सिजनकी निरर्थक आवश्यकता है। मङ्गलमय भगवान्ने
 इसीके लिये जगत्के सब अंशोंमें इस प्रयोजनीय पदार्थ-
 का समावेश कर रखा है। अनन्त भूवायुमें नाइट्रोजनके
 साथ अक्सिजन मिश्रित भावसे पड़ा हुआ है। उद्भिद्
 जगत्के अस्पन्दर अक्सिजनको प्रचुरता दिखाई देती है।
 जगत्प्राण सृष्टि अपनी किरणोंके उद्भिद्पत्रके आर्द्र अन्त-
 स्तलकी पार कर उससे अक्सिजन खींचता है और धरणी-
 के प्राणियोंके उपकारार्थ अक्सिजन सञ्चय और वितरण
 कर प्राणियोंका हितसाधन करता है। इससे उद्भिद्-
 रोज्यका भी परम उपकार होता है। कार्बोन उद्भिद्के
 जीवनीय है। भूवायुमें जो कार्बोनिक एसिड सञ्चित
 होता है, पत्तोंजिनितर्गत अक्सिजन द्वारा वह कार्बो-
 निक एसिड विश्लेषण कर उद्भिद्को कार्बोन द्वारा
 परिपुष्ट करता है। उद्भिद् प्राणिराज्यमें कार्बोनिक
 अक्सिजनके इन तरह आदान-प्रदान द्वारा विश्वनियन्ता-
 के विश्वकार्यमें सुन्दरता, मितव्ययिता और निरतिशय
 सुन्दर विधान दिखाई देता है।

पहले ही कहा गया है, कि फ्रान्सीसी पण्डित
 लाओयाजोयने इस पदार्थका अक्सिजन नाम रखा है।
 Oxus एक यूनानी शब्द है। इसका अर्थ अगल है—
 Gennao अर्थात् "में उत्पादन करता हूँ" इन ही शब्दोंसे
 Oxygen शब्दको उत्पत्ति हुई है। यह अम्लउत्पादक
 है। इससे लाओयाजोयने इसका अक्सिजन नाम रखा
 था। उस समय इसका ऐसा नाम रखनेके कई कारण
 थे। अकार या गन्धक रक्त वायुमें जलानेसे एक तरह-
 के वायवीय पदार्थकी सृष्टि होती है। अकार या गन्धक-
 दहन-जनित वायु जलमें द्रवीभूत होती है। इस जलको
 अम्लसार होता है। इसीलिये लाओयाजोयने उस वायु-
 वीय पदार्थको अक्सिजन या अक्जिन नाम रखा।
 किन्तु इसके बाद डेवी (Davy) पत्तोरीनने पदार्थकी
 परीक्षा-भारमा कर देखा कि हाइड्रोजेनिक एसिड

अत्यन्त तीव्र अम्ल पदार्थ है। फिर भी, इसमें कण-
 मात्र भी अक्सिजन नहीं है। फिर दूसरी ओर सेण्डियम
 और पोटेशियम आदि पदार्थ अम्लजन या अक्सिजन-
 के साथ मिल कर जिन सब यौगिक पदार्थोंकी सृष्टि
 करने हैं, उन सब पदार्थोंमें अम्लसाद बिलकुल ही नहीं
 रहता। उल्टे इसमें तीव्रकारक हो स्वाद मिलता है।
 अतएव अक्सिजन नामकी व्युत्पत्तिगत अर्थ ले कर
 विचार करने पर यह जिस पदार्थके वाचकरूपमें व्यव-
 हृत हुआ है, उसके विषयका यथार्थ भाव इस नामसे
 प्रकट नहीं होता। प्रत्युत यह भ्रान्तिका ही उत्पादक है।

अक्सिजनमें जलनेकी शक्ति।

अक्सिजन अग्निका अधिप्राप्ती-क्षयता है। अक्सिजन-
 के बिना 'जलन-क्रिया' असम्भव हो जाती है। इसीलिये
 पाश्चात्य विज्ञानमें किसी समय अक्सिजन अग्निवायु
 (Fire air) नामसे पुकारा जाता था। घघकती लकड़ियां
 अक्सिजनके स्पर्श करते ही और भी जल उठती हैं। जो
 सब पदार्थ साधारणतः अदाह्य कहे जाते हैं, उनमें यदि
 अक्सिजनका स्पर्श हो जाये, तो वह जलने लायक हो जाते
 हैं। लोहा जब अग्निमें जल कर लाल हो जाता है, तब
 इसमें अक्सिजन गैस सृष्टि होने पर लौह भी जल उठता
 (लौ निकल आता) है। अक्सिजन गैसमें जब फस्फोरस
 जलता है, तब उम अग्निका जो प्रकाश होता है, वह
 असह्य हो जाता।

अक्सिजनका गैस न रहने पर कुछ भी नहीं जलता।
 फोयला हो ही या किरासन तेल हो—इनमें कोई भी बिना
 अक्सिजनके नहीं जल सकता। हाइड्रोजन वायु दाह्य,
 किन्तु दाहक नहीं। तुम हाइड्रोजनसे भरो बोतल नीचे
 मुख करके रक्ते और इसमें जलता हुई बत्तीका संयोग करो
 तो वह तुरन्त ही बुझ जायगी। किन्तु हाइड्रोजन
 वायु बोतलके मुँहमें प्रवाहीन शिबामें जलती रहेगी।
 हाइड्रोजनसे भरो बोतलमें एक क्षीपणिका घुसेइने पर
 क्षीपणिका बुझ जाती है। इसका कारण यह है, कि
 हाइड्रोजन दाहक पदार्थ नहीं। किन्तु कोई अग्निमुख
 पदार्थ अक्सिजनसे भरो बोतलके मुखमें प्रवेश कराते ही
 यह अधिकतर प्रबल वेगसे जल उठता है।

अब प्रश्न यह है, कि अक्सिजन स्वयं दाह्य पदार्थ

चीपाई भाग भेङ्गे निज डार्क-अक्साइड मिला कर रिटर्ट नामके एक यन्त्रमें रखना होगा। एक गलाकार वाष्प-याही नलसंयुक्त काग द्वारा इसका मुँह उत्तमरूपसे बन्द करना होगा। इसके बाद इस रिटर्ट यन्त्रको एक आधार-ब्लॉकमें जोड़ कर इसके ठोक नीचे स्प्रिरोट लैम्प जला देना होगा। गर्मी पाते ही अक्सिजन गैस उत्पन्न होने लगेगी। यह गैस संघ्रण करना हो, तो जलपूर्ण गमला या यूमेटिक ट्रफ नामक यन्त्रविशेषका व्यवहार करना होता है। परिष्कृत स्वच्छ काँचकी बोतलको गमले या यूमेटिक ट्रफ जलसे पूर्ण कर उसके ऊपर अधो मुखी रखनी होगी। अक्सिजन निकलना आरम्भ होने पर वाष्पघाहिका नली बोतलके मुँहके नीचे धरते ही बुदबुद करके इसमें वाष्प प्रविष्ट होगा, जब बोतलका समूचा जल बाहर निकल जायेगा, तब काँचके कागसे बोतलका मुख उत्तमतासे बन्द करना होगा। एकतरहका गोंद तैयार कर उसे बन्द करना चाहिये। गोंद—दो भाग मोम और एक भाग नारियलका तेल मिला देनेसे तैयार होता है। येनल व्यवहार करनेसे पहले उस कागको इसी गोंदमें डुबा लेना चाहिये।

(४) उत्पादके साहाय्यसे गंधकामु-विच्छिष्ट करके भी अक्सिजन पाया जा सकता है।

(५) तड़ित् संयोगसे जल विच्छिष्ट करके भी अक्सिजन उत्पादित होता है।

अक्सिजनका सम्मेलन।

अक्सिजन मुक्तावस्थामें पदार्थके सिवा प्रायः सभी मूलपदार्थोंके साथ मिला रहता है। यह अन्यान्य पदार्थोंके साथ मिल कर तीन तरहके योगिक पदार्थ उत्पन्न करता है। जैसे—अक्साइड, पसिड और अलकोहल। ऐसे कई पदार्थ हैं, जो अक्साइडमें कम और पसिडमें कुछ अधिक परिणत होते हैं। अक्कार फस्फोरस, क्रोमियम आदि इसी जातिके पदार्थ हैं।

अक्सिजनका स्वरूप।

अक्सिजन गैस शुद्धीन, स्वाद्धीन और गंधहीन है। यह नेत्रोंसे दिखाई भी नहीं पड़ता और यह बहुत स्वच्छ है और हाइड्रोजनकी अपेक्षा १६ गुना भारी है। साधारण वायुमें जैसे स्थितिव्यापकता आदि गुण

दिखाई देने हैं, वैसे ही अक्सिजनमें भी स्थितिव्यापकता आदि गुण मौजूद हैं। जीवनकी क्रियाओंके निर्वाहके लिये अक्सिजनकी बड़ी आवश्यकता है। साधारण वायुकी अपेक्षा अक्सिजन अधिकतर दीर्घकाल तक जीवन-रक्षाके लिये उपयोगी है। इसीलिये इसका दूसरा नाम प्राणवायु या Vital air है।

पृथ्वीकी वायुसे अक्सिजन बहुत भारी है। एक-सौ पर्युविक इञ्च परिमित अक्सिजन वाष्प मध्यम परिमित ताप और दबावसे ३४ ग्रैनकी अपेक्षा भी वजनमें अधिकतर भारी होता है। उस अवस्थामें पृथ्वीकी वायुका वजन ३१ ग्रैनसे जरा अधिक है। अक्सिजन गैस जलमें कुछ द्रवणीय है। इसकी स्वकीय व्यापकता-परिमाण-स्थानके बीस गुना अधिक व्यापकता स्थानविशिष्ट जलमें अक्सिजन द्रवित हुआ करता है। इसके ऊपर प्रकाशकी कोई क्रिया नहीं। अन्यान्य-वायुओंकी तरह उत्पादके अक्सिजन फैलता है। विजलीके प्रभावसे भी इसके गुणमें कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। शीथ तथा प्रचाप (दबाव)-से इसके नम्र या कठिन नहीं बनाया जा सकता। अक्सिजन आज भी मूलपदार्थोंमें ही परिगणित होता है। किन्तु कुछ लोग इस विषयमें संदेह करते हैं। आज कलके वैज्ञानिकोंका कहना है, कि जिस सिद्धान्तसे पहले परमाणुके अविभाज्य समझा जाता था, वह सिद्धान्त भ्रमात्मक है। प्रत्येक परमाणुकी वैद्युतिक क्षुद्रतम पदार्थ (Electron) समष्टिमात्र है। वर्तमान रसायनविज्ञानमें जिन सब मूलपदार्थोंका उल्लेख किया जा चुका है, उनमें हाइड्रोजन सर्वापेक्षा लघुपदार्थ है। हाइड्रोजनके मान पर ही अन्यान्य मूलपदार्थोंका मान निर्णीत हुआ है। इस समय परीक्षासे मालूम हुआ है, कि इस हाइड्रोजनका एक परमाणु उत्स्रित वैद्युतिक पदार्थ (Electron)-के एक हजार परिमित पदार्थोंकी समष्टि और नेगेटिव या विद्योमसंकेत वैद्युतिक शक्तिपूर्ण है। यद्यपि ये परमाणु नेत्रोंसे दिखाई नहीं देते, किन्तु इनके अस्तित्वका प्रमाण अकाट्य और अक्षण्य है।

अक्सिजनका विस्तार।

जगत्में त्रितने मूलपदार्थ हैं, उनमें अक्सिजन-सघन

हो: सुलभ है। भूमापकी: जलराशिमें इसका नी:का ट:अंश, वायुमें चारका एक अंश, सिलिका, चक और एलिभोमिनामें आधा अंश, विद्यमान है। सिलिका चक और: एलिभोमिना—ये तीन ही पदार्थ पृथ्वीके प्रधानतम उपादान हैं। प्राणिवीकी प्राण-रक्षाके लिये अक्सिजनकी नित्य आवश्यकता है। मङ्गलमय भगवान्ने इसीके लिये जगत्के सब अंशोंमें इस पथोजनीय पदार्थ-का समावेश कर रखा है। अनन्त भूवायुमें नाइट्रोजनके साथ अक्सिजन मिश्रित भावसे पड़ा हुआ है। उद्भिद् जगत्के अन्धन्तर अक्सिजनको प्रचुरता दिवाई देती है। जगत्प्राण सृष्टि अपनी किरणोंके उद्भिद्पत्रके आर्द्र अन्त-स्नन्तको पार कर उससे अक्सिजन खींचता है और घरणीके प्राणिकोंके उपकारार्थ अक्सिजन सञ्चय और वितरण कर प्राणिवीका हितसाधन करता है। इससे उद्भिद्-राज्यका भी परम उपकार होता है। कार्बन उद्भिद्के जोषणोंपाव है। भूवायुमें जो कार्बनिक पसिद् सञ्चित होता है, पत्रराशिविनिर्गत अक्सिजन द्वारा वह कार्बनिक पसिद् विश्लेष हो कर उद्भिद्के कार्बन द्वारा परिपुष्ट करता है। उद्भिद् प्राणिराज्यमें कार्बनिक अक्सिजनके इस तरह आदान-प्रदान द्वारा विश्वनियन्ताके विश्वकार्यमें सुष्ठुहूका, मितव्ययिता और निरतिशय सुन्दर विधान दिवाई देता है।

पहले ही कहा गया है, कि फ्रान्सीसी पण्डित लामोवाजीयने इस पदार्थका अक्सिजन नाम रखा है। Oxus एक यूनानी शब्द है। इसका अर्थ अम्ल है—Genno अर्थात् "में उत्पादन करता हूँ" इन दो शब्दोंसे Oxygen शब्दका उद्भव हुआ है। यह अम्लउत्पादक है। इससे लामोवाजीयने इसका अक्सिजन नाम रखा था। उस समय इसका ऐसा नाम रखनेके कई कारण थे। अङ्गार या गन्धक रज्ज वायुमें जलानेसे एक तरहके घाययोग पदार्थकी सृष्टि होती है। अङ्गार या गन्धक-दहन-जनित वायु जलमें डूबीभून होती है। इस अलका अम्लमार होता है। इसीलिये लामोवाजीयने उक्त वायु-योग पदार्थको अक्सिजन या अम्लजन नाम रखा। किन्तु इसके बाद डेवी (Davy) चर्चोरिनने पदार्थकी परीक्षा-भारम्भ कर देला कि हाइड्रोजनिक-पसिद्

अत्यन्त तीव्र अम्ल पदार्थ है। फिर भी, इसमें कण-माल भी अक्सिजन नहीं है। फिर दूसरी ओर सोडियम और पोटेशियम आदि पदार्थ अम्लजन या अक्सिजनके साथ मिल कर जिन सब यौगिक पदार्थोंकी सृष्टि करने हैं, उन सब पदार्थोंमें अम्लत्वाद् विलकुल ही नहीं रहता। उल्टे इसमें तीव्रशरका ही स्वाद् मिलता है। अतएव अक्सिजन नामकी व्यवहारात् अर्थ ले कर विचार करने पर यह जिस पदार्थके वाचक-रूपमें व्यवहृत हुआ है, उसके विपक्का यथार्थ भाव इस नामसे प्रकट नहीं होता। प्रत्युत यह झान्तिका ही उत्पादक है।

अक्सिजनमें जलनेकी शक्ति।

अक्सिजन अग्निका अधिष्ठातो-देवता है। अक्सिजनके बिना 'जलन-क्रिया' असम्भव हो जाती है। इसीलिये पाश्चात्य विद्वानोंमें किसी समय अक्सिजन अग्निवायु (Fire air) नामसे पुकारा जाता था। घघकतो लकड़ियों अक्सिजनके स्पर्श करते ही और भी जल उठती हैं। जो सब पदार्थ साधारणतः अदाहा कहे जाते हैं, उनमें यदि अक्सिजनका स्पर्श हो जाये, तो वह जलने लायक हो जाते हैं। लोहा जब अग्निमें जल कर लाल हो जाता है, तब इसमें अक्सिजन गैस स्पृष्ट होते पर लौह भी जल उठता (लो निकल आता) है। अक्सिजन गैसमें जब फस्फोरस जलता है, तब उस अग्निका जो प्रकाश होता है, वह अस्हा हो जाता।

अक्सिजनका गैस न रहने पर कुछ भी नहीं जलता। कोयला ही हो या किरासन तेल-हो—इनमें कोई भी बिना अक्सिजनके नहीं जल सकता। हाइड्रोजन वायु दाह्य, किन्तु दाहक नहीं। तुम हाइड्रोजनसे भरी बोतल गोचे मुख करके रखो और इसमें जलता हुई यत्कीका संयोग करो तो वह तुरन्त ही बुझ जायगा। किन्तु हाइड्रोजन वायु बोतलके मुँहमें प्रमाहीन शिलामें जलती रहेगी। हाइड्रोजनसे भरी बोतलमें एक द्वापशिखा घुसेरने पर द्वापशिखा बुझ जाती है। इसका कारण यह है कि हाइड्रोजन दाहक पदार्थ नहीं। किन्तु बोर अग्निमुख पदार्थ अक्सिजनसे भरी बोतलके मुखमें प्रवेश कराते ही यह अधिकतर प्रबल-वेगसे जल उठता है।

अब प्रश्न यह है, कि अक्सिजन सयं दाह्य पदार्थ

है या नहीं? इसके उत्तरमें केवल यही कहना है, कि अक्सिजन सहज ही दाह्य नहीं है। किन्तु यदि हाइड्रोजन वाष्पपूर्ण किसी कांचके पात्रमें एक नलके द्वारा अक्सिजन वाष्प टुका कर इसमें अनिसंयोग कर दिया जाये, तो नलके मुंहमें अक्सिजनका वाष्प जलता रहेगा। अतएव स्थल-विशेषमें अक्सिजन दाह्य पदार्थकी क्रिया और हाइड्रोजन दाहककी क्रिया प्रकट करता है। निम्न-लिखित परीक्षाओं द्वारा अक्सिजनकी दाहिका शक्तिका सिद्धान्त किया जा सकता है—

(क) एक टेटे मुलके तात्र (तांघे)के तारमें छोटी मोमबत्ती धसा कर उसे जला अक्सिजनपूर्ण बोतलमें प्रवेश करानेसे वह बत्ती जलती हो रहेगी।

(ख) जलती हुई बत्ती घुमा देने पर जब तक उसकी नाक पर अग्नि-स्फुल्लिङ्ग भीजूद है तभी तक अक्सिजनकी बोतलमें प्रवेश करनेसे बत्ती फिट जल उठेगी।

(ग) तारमें बांध दीपके प्रकाशमें लोहितोत्सर्प कर कोयलेके एक टुकड़ेकी अक्सिजनपूर्ण बोतलमें यदि डुबा दिया जाये, तो यह कोयलेका टुकड़ा उज्ज्वल प्रकाश और स्फुल्लिङ्ग देता हुआ जलता रहेगा।

(घ) तुम लभ्ये बेटवाले एक कलुछमें (Deflagrating spoon) गन्धक जला कर अक्सिजनकी बोतलमें डुबा दे। गन्धक धैर्यनी रङ्गका आलोक प्रकाशित कर जलता रहेगा।

(च) पूर्वोक्त पात्रमें छोटा एक टुकड़ा फस्फोरस रख कर अक्सिजनपूर्ण बोतलमें डुबा देनेसे दृष्टिको चका चौंध पैदा करनेवाले प्रकाशके रूपमें वह जलने लगता है और उस बोतलमें श्वेत धुमां सञ्चित हुआ करता है।

(छ) मेगनेसियम धातुका एक तार दीपशिखामें गर्मा कर अक्सिजन पूर्ण बोतलमें डुभा देनेसे विचित्र आलोक प्रकाशित होता है और तार जलने लगता है।

(ज) घड़ीके सिपङ्गकी एक ओर द्रवीभूत गन्धक लगा देने पर अनिसंयोग करनेसे वह जलने लगता है, किन्तु घड़ीका सिपङ्ग नहीं जलता। इस समय यह जलता हुआ सिपङ्गमुखा अक्सिजनकी बोतलमें डुबानेसे प्रबल तैलीके साथ सिपङ्ग जलने लगता है और उससे लोहितवर्ण गलित लौहचूर्ण खारों और फैल कर सुन्दर दृश्य उत्पन्न करता है।

जीवदेहमें अक्सिजनको क्रियाके सम्बन्धमें बहुतै प्रयोजनीय जानने लायक विषय हैं। फिजियलजी (Physiology) या शरीरतत्त्वमें इसके सम्बन्धमें विस्तार पूर्वक गवेषणाके साथ आलोचना को जायगी। तन्वासा-प्रवाहमें वायुका प्रयोजन और परिवर्तन, रक्तसंशोधनमें और दैहिक ताप-उत्पादनमें (Oxidation) और दैहिक शक्तिके उत्पत्तिसाधनमें और देहापादान् भादि गठन और ध्वंसकाध्यमें अक्सिजनका प्रभुत्व और उसकी प्रक्रियाकी वहां ही विशेष रूपसे आलोचना को जायेगी।

ओजोन (Ozon.)

ओजोन (Ozone) अक्सिजनकी ही एक-पृथक्, सूचित है या यों कहिये, कि यह घनोभूत अक्सिजन है। तीन आयतन अक्सिजनके घनोभूत हो वे आयतनोंमें परिणत होने पर इसका घर्मा अक्सिजनकी तरह नहीं रहता। उस समय इसमें एक तरहकी घू आती है। वज्रगतके समय वायुराशिसे एक तरहकी घू आती है। यह ओजोनको ही घू है।

प्रस्तुतप्रणाली।

सिमेन साहबने ओजोन प्रस्तुत करनेके लिये एक प्रकारका नल तैयार किया है। इस नलमें अक्सिजन प्रविष्ट कर नलके चैटरी और प्रवर्तनकुण्डलके साथ जोड़ दिया जाता है। इससे तद्विस्तृष्णुलिङ्ग उत्पादन करने पर नलके दूसरे मुखसे ओजोन निकलने लगता है। ओजोन ही या नहीं—इसकी परीक्षा कर देखनेके लिये पेटाशियमका एक टुकड़ा आइसोटाइड श्वेतसाराके द्रवणमें मोगा कर नलसे निकले वाष्पके साथ घुमानेसे यह टुकड़ा नीले रङ्गका हो जाता है।

२। फस्फोरस वायुमें खुला रखनेसे ओजोन प्रस्तुत होता है।

तुम एक चौड़े मुनवाली बड़ी बोतलमें थोड़ा जल रखो, उसमें फस्फोरसका एक टुकड़ा इस ढंगसे रखो कि इसका अधोभाग जलमें ऊपरी भागका स्पर्श कर ले। इसके बाद कांचके कागसे बोतलका मुंह बन्द कर दो। इस इत्तमें ओजोन तैयार होने लगेगा।

ओजोनका स्व और घर्मा।

ओजोन बिना रङ्गका गह्वर्य सामयिक पदार्थ है।

इसकी वृ-कं चारे में पहले ही लिखा जा चुका है। तद्वि-
यन्त्र-परिचालनमें भी इसी प्रकारका आचरण होता है।
यह अक्सिजनसे २५ गुना भारी है। समधिक दबाव
और शैथिल्य द्वारा यह तरल अवस्थामें परिणत हो सकता
है। इसके रासायनिक तत्त्वके सम्बन्धमें इसके
पहले ही लिखा जा चुका है। कार्बोनिक् एसिड गैसमें
इसका अस्तित्व नहीं रहता। नगरकी अपेक्षा छोटे छोटे
गाँवोंकी वायुमें अधिक भोजन रहता है। भोजनमें
आकाशका विष शोषण या विनष्ट होता है। कुछ
लोगोंका कहना है, कि यह मेलेरिया और हीजेके
बीजाणुओंका नाश करता है। इस समय चिकित्सा
विज्ञानमें भोजनका व्यवहार बहुत होने लगा है। कुछ
लोगोंका मत है, कि आकाशका रंग नोला इसी भोजन-
के कारण हो हुआ है।

नाइट्रोजन (Nitrogen)

वायुका और एक उपादान नाइट्रोजन है।
वायुशक्तिमें नाइट्रोजनका परिमाण सबसे अधिक
है। यह पहले ही कहा गया है, कि पाँच भाग
वायुमें एक भाग अक्सिजन और बाकी चार भाग
नाइट्रोजन है। प्राकृत जगत्में नाइट्रोजनका परिमाण
अत्यधिक है। प्राणिजगत्के साथ इसका सम्बन्ध
अति प्रयोजनीय है। इसीलिये मङ्गलमय विधाताने
वायुमण्डलका ३१ भाग केवल इस मूलपदार्थ द्वारा
ही पूर्ण कर रखा है। अण्डलालिक पदार्थके (Alba-
minoids) मध्यमें नाइट्रोजन ही प्रधानतम उपादान
है। जीव और उद्भिद्जगत्में नाइट्रोजन व्यापकरूपसे
अवस्थान कर रहा है। पतित पदार्थोंमें नाइट्रोजन
बहुत अधिक नहीं दिखाई देता। हममें केवल सोरामें
यह मूलपदार्थ दिखाई देता है। नाइट्रोजन मिश्रण
पदार्थोंमें नाइट्रिक एसिड और अमोनियाका लेशमात्र
आमास सब तरहको भूमिमें दिखाई देता है।

मौलिक नाइट्रोजन गैसमें (N₂ एक अनुपातमें)
पाया जाता है वायुमें यह पदार्थ पृथक् किया जा
सकता है। अक्सिजनसे दहनक्रियाके अनुकूल है,
घैसे नाइट्रोजनका धर्म नहीं है, इसलिये सृष्टिकार्ये सुनि-
यमके साथ सम्पन्न हो रहा है। वायुमें यदि शुद्ध

अक्सिजन रहता, तो अति द्रुतगतिसे दहनकार्य
सम्पन्न होता। ऐसा होनेसे हमारा रसोई बनाने तथा
दीप जलाने आदिका कोई कार्य सुसम्पन्न नहीं होता।
लकड़ों या कोयलेमें आगका संयोग करने पर यह तुरंत
जलने लगता है। प्रदीप प्रज्वलन करने ही उस-
की बसी जल जाती। हम लोग लकड़ी या वन्य आदि-
दाह पदार्थका निरापद् व्यवहार नहीं कर सकते थे।
धूमके घरमें आग स्पर्श करते ही वह भस्म हो जाता।
हम वायुके साथ जो अक्सिजन ग्रहण करते हैं, यह हमारी
देहके सूक्ष्म अवयव पर मृदु दाइनका कार्य सम्पन्न
करता है। इसके फलसे ताप और दीहिक शक्तिका उत्पन्न
होता है। यदि वायुमें नाइट्रोजन न रहता, केवल अक्सि-
जन ही रहता, तो जीवनी शक्तिकी क्रिया किसी तरह
शुद्धलाके साथ सुसम्पन्न नहीं होती। दाहिका शक्ति
विशिष्ट अक्सिजनके साथ अधिक मात्रामें नाइट्रोजन-
विमिश्रित रव अक्सिजनकी संहारिणी शक्तिका नियमित
किया गया है। प्रकृति का यह विधान विष्वक्त्रों ज्ञानमयी
महाशक्ति मङ्गलमयी लीलाका उज्ज्वलतम निदर्शन है।

नाइट्रोजनका स्वरूप और वर्ण।

नाइट्रोजन अदृश्य वायव्योय पदार्थ है। इसमें
स्वाद, वर्ण या गन्ध नहीं है। रेगनेट्ट (Regnault) ने
कहा है, कि वायुकी तुलनामें इसका आपेक्षिक गुणत्व
०.९७०२ है। अतएव यह वायुकी अपेक्षा लघुतर है।
एक मिटर परिमित नाइट्रोजनकी गुणत्व १.२५ ग्राम है।
एक भाग जलमें १.४८ भाग नाइट्रोजन द्रव्योभूत हो सकता
है। पहले ही कहा गया है, कि १७७२ ई०में रदार-
फोर्ड साहबने नाइट्रोजनका आविष्कार किया। इसके
ठीक पाँच वर्ष बाद अर्थात् १७७७ ई०में फ्रांसोसी
डाक्टर लाभोयाजीय डाक्टर रदारफोर्डने मिश्रित मिश्र
किया था। सबसे पहले कहा गया है, कि चिस तरह
नाइट्रोजन वायुके अक्सिजनसे अलग किया जा सकता
है, चिस तरह नाइट्रोजन उत्पन्न होता है।

नाइट्रोजन दाह पदार्थ नहीं है। नाइट्रोजनसे दीप
जिवा चुक जाना है। इसका किसी तरहका विपन्नक
काम नहीं, फिर भी यह जीवन रक्षके सम्बन्धमें भी
साक्षात् भागमें बड़े साहाय्य नहीं करता। रासायनिक

परिष्कृत नाइट्रोजनको तरल अवस्थामें परिणत करनेमें भी समर्थ हुए हैं। साधारण अवस्थामें ताप या तड़ित आदि द्वारा नाइट्रोजनको किसी तरहकी विकृति या परिवर्तन नहीं होता। किन्तु निर्दिष्ट उच्चतर तापसे (Temperature) धारण मेगनेसियम, मैग्नेशियम और टिटैलियम आदि मूलपदार्थ इसके साथ मिल कर नाइट्रोजन रूपमें परिणत हो जाने हैं। साधारणतः अक्सिजनके साथ भी नाइट्रोजन मिल सकता है। उच्चप देने पर भी मिलावट नष्ट नहीं होती। किन्तु इसमें धीरे धीरे तड़ित स्फुल्लिङ्ग प्रविष्ट करा देने पर इन दो गैसोंसे परमाणु पृथक् होने लगते हैं।

साधारण्य और रासायनिक विमिश्रण।

वायुराजिमें अक्सिजन और नाइट्रोजन मिले हुए रहते हैं। निम्नलिखित परीक्षासे यह मालूम होता या प्रमाणित होता है।

१—जबो दो वायव्योय पदार्थोंमें रासायनिक सम्मेलन होता है, तभी उच्चाप उद्भूत होता है और उत्पन्न पदार्थ का आयतन उत्पादक पदार्थसमूहके आयतनसे पृथक् हो जाता है। वायुनिहित अक्सिजन और नाइट्रोजन-इन दोनों गैसोंका जो निर्दिष्ट प्रमाण है, इन दो गैसोंका यह परिमाण किरा पालमें मिला देने पर यह सब प्रकारकी वायु की तरह कार्य करता और वैसे ही परिलक्षित भी होता है। किन्तु इस मिलावटके फलसे तापोत्पत्ति या आयतनका परिवर्तन दिखाई नहीं देता। इसका यह एक प्रमाण है, कि वायु रासायनिक (Chemically) भावसे मिला हुआ पदार्थ नहीं है।

२—एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थका रासायनिक सम्मेलन होनेसे परमाणु गुरुत्व संख्याके अनुपातके अनुसार ऐसी मिलावट होगी रहती है। ऐसी अनुपातोंके मिया किसी तरह ऐसी मिलावट नहीं होती। किन्तु वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजन जिन परिमाणसे रहता है, उससे पारमाणविक गुरुत्व संख्याके किसी तरहका अनुपात विद्यार्थ नहीं देता। अतएव वायु राजिमें अक्सिजन और नाइट्रोजनकी जो मिलावट है, वह रासायनिक सम्मेलन नहीं है।

३—रासायनिक सम्मिलित पदार्थोंके विच्छिन्न करने-

से उनके उपादानोंमें कोई पृथक्ता नहीं दिखाई देती और न इनके परिमाणके अनुपातमें ही कोई क्याघात उपस्थित होता है। किन्तु वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजनका परिमाण सब समय एक परिमाणसे दिखाई नहीं देता। अवस्थाभेदसे परिमाणमें विमिश्रता देखी जाती है। वायु यदि रासायनिक विमिश्रणका फल होती, तो इस तरहके उपादानके परिमाणमें भी अनुपातका पार्यथ्य परिलक्षित नहीं होता। अतएव सिद्धान्त हुआ है, कि वायुमें अक्सिजन और नाइट्रोजनका जो सम्मेलन देया जाता है, वह रासायनिक सम्मेलन नहीं है।

नाइट्रोजन और आर्गन।

प्रोफेसर रामजे और लाई रैलेने वायु राजिकी परीक्षा करके इसमें 'आर्गन' नामका एक अभिन्नय मूल पदार्थ प्राप्त किया है। वायुमें अक्सिजन मिला कर इसमें स्फुञ्जित तड़ित प्रविष्ट करा देने पर अक्सिजन और नाइट्रोजन रासायनिक भावसे मिल जाते हैं; लेकिन किसी एक पदार्थकी कमी रह जाती है, वह है आर्गन। इसका आणविक गुरुत्व ४० है। आर्गन और किसी मूलपदार्थसे नहीं मिलता। वायुमें जितना नाइट्रोजन रहता है, उसमें सैकड़ एक भाग आर्गन है। इसके स्वरूप, प्रमाण और प्रतिपत्तिके सम्बन्धमें विशेष कुछ मालूम नहीं हुआ।

नाइट्रोजनकी प्रयोजनीयता।

नाइट्रोजनकी एक प्रयोजनीयता अथसे पहले लिखी जा चुकी है अर्थात् अक्सिजनकी दाहिकाशक्तिके जगत्के प्रयोजनीयताके संयमित रहनेके निमित्त नाइट्रोजनका बहुत प्रयोजन है। यदि नाइट्रोजनके भूमिमें रहे तो जमीन को उत्पादका शक्ति प्रवर्द्धित होती है। किन्तु इसकी प्रयोजनीयताके सम्बन्धमें रसायनशास्त्रविद्वु-पण्डित अथ भी सविशेष अनिश्चिता प्राप्त नहीं कर सके हैं। उद्भिद्समूह साध्यात-सम्बन्धमें नाइट्रोजन प्रदण नहीं कर सकता। दहनक्रिया या निश्वास-प्रश्वास क्रियाके साध्यात्-सम्बन्धमें इसकी अपनी कोई मिया दिखाई नहीं देनी। केवल अक्सिजनका किया संयम ही इसका प्रधान कार्य स्थिर हुआ है। अक्सिजनके साथ नाइट्रोजनके

बदले दूसरा किसी मूलपदार्थके वायुरागिमें विमिश्रित रहने पर उसमें विप-क्रियाकी आशङ्का रहती थी। हम जो सब यान्त्रिक नाइट्रोजनमय पदार्थ (Nitrogenous Organic matter) देख रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि वायुका नाइट्रोजन ही उन सब पदार्थोंकी पुष्टि करता है। साधारणतः इस जगत्में जो कुछ दग्ध होता है, उस दहनक्रियाके समय नाइट्रिक एसिडकी उत्पत्ति होती है। कहे तो कह सकते हैं, कि वायुरागिमें तद्विज्ञप्तिकी क्रियामें भी नाइट्रिक एसिड उद्भूत होता रहता है। यह नाइट्रिक एसिड आकाशके आमोनियाके साथ विमिश्रित हो जाता है, तब नाइट्रेट भाव आमोनिया प्रस्तुत होता है।

जर्मन डाक्टर स्कनविलने परीक्षा कर देखा है, कि नाइट्रोजन गैस और जल एकत्र कर नाइट्राइट भाव आमोनियामें परिणत होता है। यह अक्सिजनके संयोगसे बहुत जल्द नाइट्रेट भाव आमोनियामें परिणत होता है। यह नाइट्रेट वृष्टिके साथ जमीन पर गिरता है। उन्नी संयोगमें उज्ज्वलके मूलमें नाइट्रेट सञ्चित होता है। उज्ज्वलमूल द्वारा नाइट्रेट पदार्थ प्रज्ञप करता है। पूर्वोक्त प्रणालीसे जो नाइट्रेट उद्भूत होता है, उसको वैज्ञानिक नाइट्रिकेशन (Atmospheric nitrification) कहते हैं। इसके द्वारा उद्भूत जगत्का जो उपकार होता है, यह सहज ही अनुभव होता है।

कार्बोनिक् एसिड।

वायुका एक दूसरा उपादान—कार्बोनिक् एसिड है। उज्ज्वल और जागत्य पदार्थके दग्धावशेष अद्धार नामसे प्रसिद्ध है। इस अद्धारके रासायनिक लोग कार्बोन नामसे पुकारते हैं। कार्बोन या अद्धार एक मूल पदार्थ है। हीरा प्राकृतिक इस अद्धारका दूसरा रूप है। कोयला जलानेसे अक्सिजनके साथ मिल कर कार्बोनिक् एसिड उत्पन्न होता है। भूमिमें अमीम अनन्त अद्धार की खान मौजूद है। अद्धारके स्वभावमें यहां हमारा और कुछ नहीं कहना है। कार्बोनिक् एसिड गैस वायुका एक उपादान है। सुनरा उसको आलेखना प्रयोजनोय है।

कार्बोनमन अक्साइड (Carbonmon oxide) कार्बन और अक्सिजन मिल कर देा प्रकार यौगिक गैस उत्पन्न करते हैं। कार्बोनमन अक्साइड और कार्बोनिडाइ-अक्साइड। थोड़ी हवा या वायुमें कोयला जला देने पर उसमें समभायसे अक्सिजन मिल कर कार्बोनमन अक्साइड गैस उत्पन्न होता है। सुननेमें पथर कोयला जलानेके समय दही गैस उत्पन्न होता है। यह गैस नील-शिला फौला कर जलता है। इसमें एक भाग अक्सिजन और एक भाग कार्बोन विद्यमान रहता है। इसीलिये इसका साङ्केतिक चिह्न C O है। यह वाष्प स्वादगन्धहीन है। फिर यह अदृश्य भी है और जलमें गलनेवाला भी नहीं। दग्ध होनेके समय इसमें नीली लपट निकलती है। इस समय वायुसे अक्सिजन पा कर कार्बोन-डाइ-अक्साइडमें परिणत होता है। इसकी परीक्षा यह है, कि कार्बोनमनअक्साइड वाष्पपूर्ण थोतलमें एक जलती हुई बत्ती घुसा देने पर बत्ती तुरत ही बुझ जाती है। किन्तु योतलके मुन पर उक्त वाष्प जलता रहता है।

यह वाष्प अत्यन्त विषमय है। सांससे जरीरमें प्रवेश करने पर जिरमें थोड़ा, स्नायवीय दुर्बलता और सञ्चादीनता होती है और ता बया—इससे मृत्यु तक हो जाती है। घरमें कोयला या लकड़ी जला और किवाड़ी बन्द कर सोने पर कार्बोन मनअक्साइडके प्रभावसे मृत्यु तक हो सकती है। कई जगहोंसे ऐसी मृत्यु हो जानेके समाचार मिले हैं। इस देशमें सूतिका गृहमें आग रखनेकी प्रथा दिवाई देती है। किन्तु सब किसोका इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि किवाड़ी बन्द कर कोयला या लकड़ीके जलानेसे मृत्यु तक हो सकता है। क्योंकि यह वाष्प कभी कभी विषका भी काम देता है।

कार्बन-डाइ-अक्साइड (Carbon Di-Oxide)।

जो हो इस समय हम वायुके कार्बोन एक्साइड (या साधारण बातमें कार्बनिक एसिड)के विषयमें कुछ कहेंगे। इसका दूसरा नाम कार्बोन-आन अक्साइड है। १७७५ ई०में लामेयाजोयने हीरा जलानेके समय कार्बोनिक् एसिडका आविष्कार किया था। इसके पहले सुन

१७५९ ई०में डाक्टर एलेकने (लाइमटोन) चूनेके पत्थरमें इसका अस्तित्व जाविष्कार किया और इसका Fixed air नाम रखा। इसका पारमाणविक गुणत्व ४४ है। विशाल वायुमें इसका परिमाण बहुत कम हो जाता है—२५०० भाग वायुमें एक भाग कार्बोनिक डाइ अक्साइड साधारणतः देखा जाता है स्थानभेदसे इसके परिमाणका शून्याधिषय भी हुआ करता है।

उत्पत्ति।

शहरकी वायुमें कार्बोनिक एसिड गैसका परिमाण अधिक है। मनुष्य प्रश्वास, पदार्थदहन (Combustion), (Putrefaction) और उत्सेचन (Fermentation) नाना प्रकार कार्यों द्वारा वायुराशिमें अनवरत कार्बोनिक एसिड गैस सम्मिलित हो रहा है।

श्वसकिया और कार्बोनिक एसिड गैस।

पीछे यह हम अच्छी तरह समझायेगे, कि श्वास-क्रियामें किस तरह कार्बोनिक एसिड तैयार किया जाता है। यहाँ केवल इतना कह रखते हैं, कि मनुष्यकी देहके भीतर भी अङ्गार पदार्थ विद्यमान रहता है। उनी अङ्गार-पदार्थके साथ अक्सिजनका संयोग होनेसे ही एक तरहकी मृदुदहन क्रिया या (Oxidation) आरम्भ होता है। इसके फलसे कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है। प्रश्वाससे यह वायु निकल कर वायुमें मिल जाता है। निम्नलिखित परीक्षासे यह साफ मालूम होता है, कि निश्वास और प्रश्वास वायुमें कार्बोनिक एसिडके परिमाण किस तरह शून्याधिषय हैं। दो बोतलोंमें साफ चूनेका जल रनिधे। रबड़ और लकड़ोका नल बीनलोंमें इस तरहसे लगा शीजिये कि नलके द्वारा श्वास लेने पर एक बोतलके बोचसे आकाशकी वायु प्रवेश कर सकती हो और नलसे श्वास-त्याग करने पर दूसरी बोतलके बोचसे प्रश्वास वायु निकल सकती हो। इस तरह नलसे कई बार श्वास लेने और छोड़ने पर दिखाई देगा, कि बोतलमें बाहरकी वायु प्रविष्ट हुई है और उसका चूना मिला हुआ जल बहुत कम परिमाणमें घुला हुआ है, किन्तु जिसमें निश्वास-परित्याग किया गया, उसमें स्थित जल दूधकी तरह घुल गया है। कार्बोनिक एसिड गैसके स्पर्शसे चूनेका जल घुलता है। जिस घरमें बहु-

संख्यक लोग एकट्ठा रहते हैं, उस घरका हार बन्द कर देनेसे उसमें अधिकतर कार्बोनिक एसिड गैस उत्पन्न होता है। साफ चूनेका जल घरमें रख कर उसकी परीक्षा की जा सकती है।

दहनक्रिया।

अङ्गार या तद्व्युत्पन्न पदार्थ वायुमें दहन होने पर उसका अङ्गारांश वायुस्थित अक्सिजनके साथ मिल कर कार्बोनिक एसिडमें परिणत होता है। दहनक्रियाके आधिषयसे कार्बोनिक एसिडके उत्पादनके परिमाणको वृद्धि होती है।

पचन क्रिया।

जीव जन्तु तथा उद्भिज्ज पदार्थमालमें ही शून्याधिक परिमाणसे अङ्गार मौजूद है। ताप और आर्द्रता पचन-क्रियाके सहायक हैं। इन सब पदार्थोंके पचनके समय कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होता है। कप्रदधान और जलीय भूमिकी ऊपरकी वायुमें कार्बोनिक एसिड वायु अधिक परिमाणसे (प्रति दश हजार भागमें सत्तर भागसे नरभे भाग तक सञ्चित होता है) इनसे या मोहरीसे जो दुर्गन्ध वाष्प उठता है, उसके प्रति दश हजार भागमें २००से ३०० भाग कार्बोनिक एसिड वाष्प विद्यमान रहता है। समय समय पर यह विषाक वायु डेन साफ करनेवालोंकी मृत्युकारण बन जाती है। पुराने कुएँमें भी कई कारणोंसे कार्बोनिक एसिड गैसकी अधिकतावाश कूपके साफ करनेवालोंकी मृत्यु होते देखे गये हैं।

उत्सेचन (Fermentation)।

गुड़, यवादि अन्न और अंगूरका रस—पकनेके समय कार्बोनिक एसिड गैस उत्पन्न होता है। शराब तैयार करनेवाले कारखानोंमें भी कार्बोनिक एसिड गैसका परिमाण अधिकतासे दिखाई देता है।

धर्म।

कार्बोनिक एसिड अदृश्य वर्णों और गन्धविहीन वाष्प है। यह दाहक नहीं और न दाह्य हो है। यह अपरिचालक है। जलता हुई बत्तीसे इसकी परीक्षा की जा सकती है। कार्बोनिक एसिड गैससे परिपूर्ण एक बोतलमें एक जपती हुई बत्तीको घुसेदने पर यह बुझ

जायेगी और न वाष्प ही जलेगा। कार्बोनिक् एसिड गैस धनिशिला युक्तानेमें परम सहायक है। इसीलिये यह कहीं कहीं खानकी आग बुक्तानेके लिये व्यवहृत हुआ है। यह वाष्प वायुकी अपेक्षा भारी है। यद्यपि यह अद्रव्य है, तथापि इसको एक पात्रसे दूसरे पात्रमें बनायास हो ढाला जाता है। रसायनविदु निम्नलिखित प्रक्रियासे इसकी परीक्षा करने हैं। पहले तो यह एक काँचके पात्रका घजन स्थिर कर लेते हैं। पीछे यह पलड़े पर रख कर उसमें कार्बोनिक् एसिडसे भरी शीशी को ढाल देने हैं। यद्यपि अद्रव्य वाष्पकी देख न सकेगा, किन्तु यह दिखाई देगा, कि इसके भारी घजनसे पलड़ा नीचा हो गया।

प्रस्तुत-पुष्पाक्षी।

सफेद जड़ोंके साथ या मार्बलके साथ सलफ्यूरिक या हाइड्रोक्लोरिक एसिडके क्रियानिबन्धन-यन्त्रविशेषसे कार्बोनिक् एसिड गैस उत्पन्न होता है। कार्बोनेट अथवा लाइम मो ऑक्साइड अथवा कालसियममें परिणत होता है। इसी समय कार्बोनिक् एसिड उत्पन्न होता है।

कार्बोनिक् एसिडकी अवस्था।

कार्बोनिक् एसिड कठिन, तरल और वायवीय पदार्थ है। यह तीन अवस्थाओंमें विभाई देता है। कारण हीटकी ३० डिग्री तापमें कार्बोनिक् एसिड तरल अवस्था में परिणत होता है। तरल कार्बोनिक् एसिड वर्षाहीन या रद्दरहित है, जलमें और चर्बों पदार्थमें अद्रवणीय है। किन्तु यह इथर, अलकोहल, वाइसलफाइड आद्य कार्बोन, नापूथा और तारपीन तेलमें मिश्रित होता है। लिक्विड कार्बोनिक् गैस विकीर्ण होते होते अत्यन्त शीतल हो जाता है। इस अवस्थामें कार्बोनिक् एसिड तुपारकी तरह जम जाता है।

वाष्पीय कार्बोनिक् एसिड रङ्गविहीन है। कुछ लोग कहते हैं, कि इसमें अमृतगन्ध और अमृतस्वाद है। सामायिक उष्णतासे यह जलमें द्रवीभूत हो जाता है। किन्तु निरिष्ट अंशके अधिक क्रिसी प्रकार प्रचापसे हो शोषित नहीं होता। प्रचाप दूर हो जाने पर गैस जलसे निकलते समय सुदुबुद्ध दिखाई देता है। सोडावाटर या लेमनेडवाटरके खोलनेके समय इसी कारण सुदुबुद्ध दिखाई देता है। कार्बोनिक् एसिड पोनेसे कोई अप-

कार नहीं होता; फिर भी विद्रित् वायुके साथ मिल कर इसके बाघात करने पर जीवननाशकी भयङ्कर आगङ्गा हो सकती है। कार्बोनिक् एसिड गैससे दीपक बुझ जाता है। इसके लिये जलते हुए दीपकसे परीक्षा की जा सकती है, वाष्पमें कार्बोनिक् एसिडकी मात्रा अधिक है या नहीं किन्तु इस परीक्षा पर ही निर्भर रहनी चाहिये। जिस वायुमें सुन्दरतापूर्वक जलनक्रिया निर्वाहित होती है, उस वाष्पके आघ्राणसे भी अचेतनता, नाना तरहकी पीड़ा और तो क्या मृत्यु तक होते देखी गई है। यद्यदीपके 'उपास' उपत्यकी और नेपलसके निकटवर्ती गेटाभिककी उपत्यकामें और रेनिस प्रसियामें भीलके निकट बहुत कार्बोनिक् एसिड गैस उत्पन्न होता है।

हमने यहां वायुके तीन उपादानोंके सम्बन्धमें किञ्चित् आलोचना की। इसके बाद वायुमें मिली हुई एक वस्तुकी आलोचना करना आवश्यक प्रतीत होता है। वह पदार्थ—जलय वाष्प है। वायुमें जलीय वाष्प मिला रहता है। इसलिये मेघ, वृष्टि, कुदरे आदिकी उत्पत्ति होती है। किन्तु यहाँ इस पदार्थकी आलोचना करनेसे पहले मानव-देहमें वायुका अणिसजन और कार्बोनिक् एसिड क्या क्या काम करते हैं, उसकी थोड़ी आलोचना करनी जरूरी है। अतएव अणिसजन, नाइट्रोजन और कार्बोनिक् एसिडके तत्त्वोंका उल्लेख करनेके बाद ही यहाँ देहमें वायुके सम्बन्ध विचार प्रसङ्गका उल्लेख करना चाहिये। अतः पहले इसके सम्बन्धमें आलोचना कर पीछे जलीय वाष्पके (Aqueous Vapour) सम्बन्धमें आलोचना की जायेगी।

मानवदेहमें वायुकी क्रिया।

मनुष्यकी देहके प्रधान उपादानोंमें रक्त-राशिही बात पहले उल्लेख करनेकी जरूरत है। यह शोणितराशि दो तरहके पथमें जीवके देहाराज्यमें विचरण करती है,—धमनी (Artery) पथमें और शिरा (Vein) पथमें। धमनीका रक्त उज्ज्वल रङ्गहित, शिराका रक्तदुग्धमालाल है। परीक्षा करके देखा गया है, कि धामनिक और शीरक रक्तके इस वर्ण पार्थप्यका एकमात्र कारण—

अक्सिजन और कार्बोनिक एसिड गेम है। गिराके रक्तमें अक्सिजन कार्बोनिक एसिडका (हामोग्लोबिनका वाहक) बहुत अधिक है। कार्बोन—अङ्गार। अङ्गार काले रङ्गका है, अतएव गिराका रक्त भी काला है।

यह बात निश्चय है, कि समूची देहमें यह वायवीय पदार्थ विचरण कर देहका ताप संरक्षण और पुष्टि-साधन कर रहा है। देहका प्रत्येक गठन-उपादान ही अक्सिजन ले रहा है। कार्बोनिकके साथ अक्सिजन मिल कर देहमें दहनक्रिया सम्पादन कर रहा है। इससे कार्बोनिक एसिड और तापकी उत्पत्ति होती है। प्रति दिन ही देहके भीतर ये कार्य हो रहे हैं। दैहिक पदार्थ वायु-राशिके अक्सिजनको ग्रहण करनेके लिये दुर्गन्ध द्वारा पोंडित क्षुधासक्तकी तरह या चिरहिणी घनवालाओंकी तरह हमेशा व्याकुल रहता है। फिर भी, देहप्रकृति कार्बोनिक एसिड तथा देहके क्षयमास पदार्थोंका वहिकार करनेके लिये प्रस्तुत रहती है। देहके क्षुद्रतम अवयव (Tissue) रक्तकी लेहितरूपसे अक्सिजन संग्रह करते हैं। धालकी तरह वारोक्त वारोक्त घमनिषोंके प्राचीरकी भेद कर रक्तके हिमोग्लोबिनके अक्सिजन दैहिक रक्तमें (Lymph) और छोटे छोटे देहोपादान कोषमें प्रविष्ट होते हैं। ऐसी जगहों पर क्षयमास यान्त्रिक पदार्थोंमें संस्थित अक्सिजन कार्बोनिकके साथ मिल कर तापीउपादान करता है। अक्सिजन कार्बोनिकके साथ मिल जानेसे ही कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है। टिशु या दैहिक उपादानविशेषस्थित कार्बोनिक एसिड रस (Lymph)के बीचसे हो कर केशिकाके प्राचीरकी भेद कर उसके रक्तमें पहुँच जाता है। समग्र दैहिक उपादानमें अक्सिजन और कार्बोनिक एसिडका यह जो आदान-प्रदान होता है—यही अन्तरीण श्वासक्रिया (Internal respiration या Tissue respiration) नामसे विख्यात है। इसकी प्रक्रियाके संक्षिप्त नाम इस तरह हैं,—वायुमय अक्सिजन फुफ्फुसके वायु कोषमें प्रविष्ट होता है और इसके प्राचीरकी पार कर शरीरक रक्तके हिमोग्लोबिन पदार्थके साथ सामान्याकारमें मिल जाता है। यह मिला हुआ पदार्थ अक्सिडिमी

ग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) नामसे प्रसिद्ध है। यह अक्सिडिमीग्लोबिन टिशु पदार्थमें प्रविष्ट होने पर इसका अक्सिजन पृथक् हो जाता है। इस अवस्थामें ऐसा समझा जा नहीं सकता, कि अक्सिजन नित्य ही टिशुस्थित कार्बोनिकके साथ मिल कर कार्बोनिक एसिडका उत्पादन करेगा और ऐसा सिद्धान्त भी समीचीन नहीं, कि हाइड्रोजनके साथ मिल कर नित्य ही यह जलमें परिणत होगा। मांसपेशियोंमें कभी कभी अक्सिजन संरक्षित अवस्थामें विद्यमान रहता है। यह संक्षिप्त अक्सिजन टिशुमें विद्यमान रहनेके कारण विद्युत् नाइट्रोजन गैसके संपर्कमात्रसे पेशियां कुञ्चित हो जाती हैं और इस अवस्थामें भी कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होता है। एक मेढककी १ विद्युत् नाइट्रोजन भरी घोटालमें कई घण्टे तक रखनेसे भी उसकी जीवनी-क्रियामें जरा भी व्याघात उपस्थित नहीं होता और उस समय भी उसकी पेशियोंसे कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होता रहता है।

प्रश्वास-प्रत्येक वायु।

यह सहज ही समझमें आता है, कि प्रश्वास वायुमें कार्बोनिक बहुत अधिक रहता है। हम निश्वासके जो वायुग्रहण करते हैं और प्रश्वासके समय जो वायु छोड़ते हैं—इन दोनों तरहकी वायुके उपादानके विनिर्णायक दो सूत्रियां दी जाती हैं।

निश्वासकालीन वायुके उपादानकी परिमाण—

अक्सिजन २०.८४ (से.क्यू.)

नाइट्रोजन ७६

कार्बोन डाइ-अक्साइड ०.०४

जलवाष्प वाष्पका परिमाण यहाँ नहीं दिया जाता।

प्रश्वासकालीन वायुका उपादानका परिमाण—

अक्सिजन १६.०३

नाइट्रोजन ७६.०२

कार्बोन डाइ-अक्साइड ३.३ से. ५.५

इस सूत्रोंके स्पष्ट तात्पर्य होता है, कि कार्बोनिक एसिडका परिमाण प्रश्वासवायुमें जितना अधिक है। समग्रतः वायुमें नाइट्रोजनके परिमाणको बहुत कम अंशसे ले ली जा सकती है। इसके साथ जानिये पदार्थका

संमिश्रण भी परिलक्षित होता है। सुनरां देखा जा रहा है, कि नाइट्रोजन देहमें प्रवेश करनेके समय भी जिस ओसतसे प्रवेश करता है, लीटनेके समय भी उसी ओसतसे ही बाहर निकलता है। इसकी विशेष कोई क्षति-वृद्धि नहीं होती। वायुमें इस समय आगेन, क्रिपटन, हिलियम और जौनन प्रभृति पांच प्रकारके वभिन्न मूलपदार्थ आविष्कृत हुए हैं। ये नाइट्रोजनके अन्तर्भुक्त हैं। अक्सिजन और कार्बोनिक एसिडमें ही परिवर्तन प्राधान्य परिलक्षित होता है। प्रश्वास वायुमें अक्सिजन ५ भाग कम होता और कार्बोनिक एसिड ४ भाग बढ़ता है। प्रश्वास वायुमें किञ्चित् एमोनिया, यत्किञ्चित् हाइड्रोजन और बहुत सामान्य कार्बोरेटेड हाइड्रोजन भी दिखाई देता है। निश्वास, प्रश्वास और कार्बोनिक एसिडके इस पार्थक्य विचारसे समझमें आता है, कि प्रश्वासके साथ जिस ओसतसे कार्बोनिक एसिड निकलता है, निश्वास उसकी अपेक्षा अधिकतर अक्सिजन ग्रहण करता रहता है।

फुफ्फुसके भीतरी वायवीय पदार्थका परिमाण।

वैज्ञानिक अनुसन्धितरसुओंने इसके सम्बन्धमें यथेष्ट विचार किया है, कि हम निश्वासके साथ नासिका और मुँह वायु द्वारा श्वास-नलीके पथसे जो वायु फुफ्फुसके कोषमें प्रदण करते हैं, उस वायवीय पदार्थमें किस प्रकार परिवर्तन होता है। उनका कहना है, कि वायुका स्वभाव यह है, कि यह जब किन्सी पात्रविशेषमें आबद्ध होता है, तब उक्त पात्रमें वायुका प्रचाप पड़ता है। पारद-समन्वित यन्त्रविशेषके साहाय्यसे यह प्रचाप नापा जा सकता है। फुफ्फुसके भीतर जब वायु समा जाती है, तब फुफ्फुसोय वायुकोषमें स्थित तरल रक्तके साथ उस वायुका अक्सिजन और कार्बोन-डाइ-अक्साइडका संघान उपस्थित होता है।

हमारे प्रश्वासके समय फुफ्फुसमें वायुकाजि बिलकुल बाहर नहीं निकल जाती। वायुकोषमें यथेष्ट वायु सञ्चित रहती है। इस वायुको पाश्चात्य विद्वानोंमें Residual air नाम रखा गया है। (इसके सम्बन्धमें और भी कई बातें हैं, ये इसके बाद दिखाई देंगी।) प्रश्वासके वायवीय पदार्थका जो परिमाण निर्णय किया गया है,

उस सिद्धान्तके अनुसार फुफ्फुसके अन्तर्हित वायुका परिमाण और परिवर्तन नहीं जाना जा सकता है। फुफ्फुसके अन्तर्गतमें वायुकोषस्थ वायु फुफ्फुसमें लाये शैरिक रक्तके संस्पर्श और संघर्षसे किस रूपमें प्रवर्तित होता है, उसके विनिर्णयके लिये आधुनिक वैज्ञानिकोंने एक प्रकार फुफ्फुस नल (Lung-catheter)की सृष्टि की है। यह नल अति नमनीय है। यह बहुत आसानीसे वायु नलीमें प्रवेश करा दिया जा सकता है। इसके साथ बहुत पतली रबड़की नली जुटी रहती है। फुफ्फुस पर यह फूल जाती है। यह छोटी वायु नलीमें प्रविष्ट करा कर इस यन्त्रके साहाय्यसे फुफ्फुसके निष्कृत प्रदेशस्थ वायुकोषकी वायुकी भी इसके द्वारा बाहर ला देने पृथक् कर परीक्षा की जा सकती है। इसी तरह फेथोटर प्रविष्ट करानेमें श्वासक्रियामें कोई व्याघात उपस्थित नहीं होता। सुविध्यात जर्मन अण्ड्यापक गामजोने एक कुत्तेके फुफ्फुसकी वायुका विश्लेषण किया था। उसमें मालूम हुआ था, कि इसमें कार्बोनिक डाइ-अक्साइडका परिमाण था—सेकड़े ३.८। किन्तु प्रश्वासकी वायुमें ठीक इसी समय कार्बोन डाइ अक्साइडका परिमाण था—सेकड़े २.८ भागमात्र। अक्सिजनके परिमाणके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त हुआ है, कि प्रश्वासकी वायुमें सेकड़े १६ भाग अक्सिजन रहनेसे फुफ्फुसके अन्तर्गतस्थ अक्सिजनका परिमाण होगा—सेकड़े १० भागमात्र।

पाश्चात्य शरीर-विचय-शास्त्रके आधुनिक पण्डितोंने इस बात पर पूर्ण रूपसे विचार किया है, कि श्युमेटिकम्, (Pneumatics) और हाइड्रोस्टैटिक्स (Hydrostatics) विज्ञानके नियमावलम्बसे जीवदेहके शोणितसंस्पर्श और शोणित संघर्षसे वायवीय अक्सिजन और कार्बोन डाइ अक्साइडका परिवर्तन होता है। पण्डितप्रवर हर्म्सलीने अपने 'फिजीओलॉजी नामक ग्रन्थमें इसके सम्बन्धमें कुछ आभास दिया है। किन्तु इस समय भी इन सब विषयोंका सुसिद्धान्त नहीं हो सका है।

रक्तमें अक्सिजन।

उन्मुक्त वायुमें इलमें अक्सिजनका जो प्रचाप है, फुफ्फुसके वायुकोषस्थित अक्सिजनका प्रचाप उसकी अपेक्षा कम है। किन्तु शैरिक रक्तमें अक्सिजनका जो प्रचाप

रहता है, वायुकोषके अक्सिजनका प्रचाप उसकी अपेक्षा अधिकतर है। अतएव वायुकोषव्यवस्था अधिक शरीरिक रक्तराशिमें प्रवेश करता और रक्त हिमोग्लोबिन या रक्तकणामें मिल जाता है। इस मिले हुए पदार्थका अक्सि-हिमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) नाम पड़ा है। ऐसी अवस्थामें रक्तके दूसरे पदार्थको (Plasma) अधिकतर अक्सिजन ग्रहण करनेको सुविधा प्राप्त होती है। फिर दूसरे पक्षमें रक्तका सूत्रमा पदार्थमें यदि अक्सिजनका प्रचाप अधिक हो, तो और टिशुमें यदि कम हो, तो रक्तके सूत्रमा पदार्थसे दैहिक टिशुमें अक्सिजन प्रधावित होता है। अक्सिजनके सूत्रमासे दैहिक रस (Lymph) रससे टिशुमें उपस्थित होता है। इस अवस्थामें अक्सि-हिमोग्लोबिनसे अक्सिजन विच्युत हो जाता है। इस तरह हिमोग्लोबिन अक्सिजनको जो कर भी मलिन और विष हो जाता है।

रक्तमें कार्बोनिक एसिड।

देहकी जिम्मे जगह चायवीय पदार्थका प्रचाप अधिकतर है, उसी जगह कार्बोनिक एसिड अधिक मात्रामें उत्पन्न होता है। दैहिक टिशुराशिमें ही कार्बोनिक बम्पाउट अधिक मात्रामें परिलक्षित होता है। यह टिशुमें पहले देहके रसमें (Lymph), वहांसे रक्त, वहांसे फुफ्फुस और वहांसे पृथक् ही वायुकोषमें उपस्थित हो कर प्रत्येकके साथ कार्बोनिक एसिडके रूपसे बाहर निकलता है।

शोणितराशिके शोणितरूपाव (Corpuscle) और सूत्रमा पदार्थमें विभक्त कलने पर शोषक पदार्थमें ही कार्बोनिक एसिडका परिमाण अधिकतर दिखाई देता है। वायु निकालनेवाले किसी यन्त्रमें रक्त रखनेसे दिखाई देता है, कि उससे चायवीय वायुराशि बुदबुदाकारमें बाहर होती है। इसमें किसी तरहका शोण प्रभाव एसिड द्रव्य मिलानेसे भी इसमें फिर कार्बोनिक एसिड बाहर न हो। किन्तु सूत्रमा पदार्थमें अधिकतर कार्बोनिक एसिड बाहर निकलता है। फिर भी इसमें प्रायः सैकड़ें ५ भाग कार्बोनिक एसिड रह जाता है। फल्कोरिक्त एसिडकी तरह शोषण एसिड न मिलानेसे सूत्रमामें निःशोषित रूपसे कार्बोनिक एसिड निरसक नहीं होता।

लौहित रक्तरूपा रक्तके सूत्रमा पदार्थमें सम्मिश्रित करनेमें भी फल्कोरिक्त एसिडकी तरह कार्य करता है। अर्थात् इसके द्वारा भी सूत्रमाका कार्बोनिक एसिड अंग बाहर हो सकता है। इसीलिये कुछ लोगोंका कहना है, कि अक्सिहिमोग्लोबिनमें एसिडका घर्म है। एक ही भाग शरीररक्तमें Venous blood) ४० भाग कार्बोनिक एसिड है। पेटाव या सूत्रमें सैकड़ें ७ भाग कार्बोनिक एसिड दिखाई देता है।

श्वसनक्रियाका विवरण।

प्राचीन पाश्चात्यव्यक्तित्वा-विज्ञानविदुं परिदृष्टिकोशा विश्वास है, कि नाक और मुंहसे वायुमलीकी राहमें वायु फुफ्फुसके वायुकोषमें पहुँच जाती और वृषित रक्तका शुद्ध कर देती है। फुफ्फुसमें रक्तका अपरिष्कृत पदार्थ अक्सिजनकी सहायतासे दूर हो जाता है। अतः फुफ्फुस ही तापोत्पादनकी एकमात्र स्थली (घैली) है। किन्तु इसके बाद वैज्ञानिक गवेषणासे प्रमाणित हुआ है, कि शरीरिक रक्त फुफ्फुसमें प्रविष्ट होनेसे पहले भी इससे यथेष्ट परिमाणसे कार्बोनिक एसिड मिला रहता है। इससे नये अनुसन्धानका पथ फेल गया। अनुसन्धितरु वैज्ञानिकोंने देखा, कि रक्तमें भी अक्सिजन या मृदुदहनक्रिया सम्भवनीय है। ये यह भी समझ गये हैं, कि देहके अन्त्यान्व स्थानोंके तापोसे फुफ्फुसका ताप अधिक नहीं। ये सब देव कर उन्होंने सीखा, कि रक्तमें ही मृदु दहनक्रिया सम्भव होती है। देर न लगी, कि उनकी अपनी भूल समझ पड़ी। उन्होंने जब स्थिर किया है, कि समग्र देहकी धातु या टिशुमें ही यह मृदुदहनक्रिया (Oxydation) निरव्यक्त होती है। उन्होंने परीक्षा कर देखा है, कि रक्तके बिना भी जीवदेहमें यह क्रिया कुछ देर तक चल सकती है। एक मेट्रकली देहमें रक्त शोषण कर इसका घमनिघोमें यदि लगभगत्रल भर दिया जाय और उसको विशुद्ध अक्सिजनके वायुमें रखा जाय, तो भी उसको दैहिकपरिस्रमणक्रिया (Metabolism) कुछ देर तक व्यथाहृत रह सकती है। उसकी देहमें रक्त न होने पर भी अक्सिजन और कार्बोनिक एसिडके आदान और परिवर्तन प्राकृतिकमें कुछ देर तक कोई भी व्याघात उपस्थित नहीं होता।

इसोलिये आधुनिक जरोरतरव्यथ परिदृष्टोंके मतसे केवल फुफ्फुससंक्रान्त श्वासक्रिया एकमात्र श्वासक्रिया कह कर अभिहित नहीं होती। देहके भीतर प्रति मुहूर्त्त प्रति उपादान घातुषी-प्रतिक्रियामें जो श्वासक्रिया चल रही है, देह-प्रकृति उस गूढ़ रहस्यकी उदात्तनके लिये पाश्चात्य परिदृष्ट मानवदेशमें पायुक्रियाके सम्बन्धमें बहुत गवेषणा कर रहे हैं। यदि सम्पूर्ण देहमें इसी तरह श्वासक्रियाका उद्देश्य संसाधित न होता, तो दैनिक कार्य किसी तरह सुदृङ्खलित रूपसे परिचालित होनेकी सम्भावना न थी। देहमें प्रति मुहूर्त्तमें इतना अधिक कार्बोनिक् एसिड संचित होता है और अक्सिजनका इतना अधिक प्रयोजन होता है, कि केवल फुफ्फुसीय श्वासक्रिया पर निर्भर करने पर किसी प्रकार भी दैनिक कार्य निरापदकर से निर्वाहित नहीं होता। सुतरां ऐसा नहीं, कि श्वास क्रिया कहनेसे केवल श्वासयन्त्रकी मांसपेशीकी क्रियाके प्रभावसे फुफ्फुसके सङ्कोचन और प्रसारण-जनित बाहरी वायुका प्रदण और फुफ्फुसीय वायुकी परिवर्तन-क्रियामात्रकी सम्भवा होगा।

श्वासक्रियाकी सहा आधुनिक विज्ञानमें खूब चौड़े अर्थमें व्यवहृत हो रही है, इससे पहले भी उसकी भावोद्यना की जा चुकी है। समग्र देहव्यापिनी श्वासक्रिया या टोशु रैस्पिरेशन (Tissue Respiration) के सम्बन्धमें यद्यपि आमास दे कर अब फुफ्फुसीय श्वास-क्रिया (Pulmonary-Respiration)के सम्बन्धमें भावो-चना को जाती है।

श्वासक्रिया-यन्त्र।

मुखके भीतरके घुष्टदेशीय स्थान फेरिन्स (Pharynx) नामसे प्रसिद्ध है। इसके साथ शोक और मुंहका भी संबंध है। सुतरां इन दोनों पथोंसे ही उत्तम वायु प्रविष्ट होती रहती है। इसके निम्नभागमें दो ग्लेटिग रहता है। ग्लेटिग जिहाके निम्नभागमें स्थित है। ग्लेटिग-फेरिन्स का ही निम्नान है। यद्यपि पाँदुके जानेका पथ है। उनके सामने एक कपाट रहता है। उसका नाम— ρ_0 , ρ_{10} ग्लेटिग है। यह हृद् परदा है। उसके नीचे ही लेरिन्स (Larynx) या कण्ठनाली है। इसके नीचेका नाम ट्रेक्रिया है। ट्रेक्रिया उपास्थियन्त्र पदार्थ

द्वारा गठित है। अतः यह कठिन है। गलेके ऊपरका कुछ अंश ट्रेक्रिया नामसे प्रसिद्ध है। इस ट्रेक्रियाके अधोभागमें ही वायुनाली या ब्रोङ्कस (Bronchus) है। ब्रोङ्कस ट्रेक्रियाकी एक शाखा है। ट्रेक्रियामें दो शाखाओंमें विभक्त हो कर फुफ्फुसमें प्रवेश किया है। वे हमारे अनेक उपशाखाओंमें भी विभक्त हैं। इस तरह छोटे छोटे उपशाखा Bronchioles नामसे अभिहित हैं। ये सब छोटे छोटे उपशाखायें क्रमशः सूक्ष्म होते होते अवशेषमें इनफंडीबुलम (Infundibulum) नामक सूक्ष्म वायु प्रवाहिकामें परिणत हुई हैं। इसकी लम्बाई एक इंचके तीस भागका केवल एक भाग है। ये सब छोटी छोटी वायुप्रवाहिकायें फुफ्फुसमें बहुसंख्यक कोषोंमें विभक्त हुई हैं। ये सब कोष आल्वेओली (alveoli) या वायु-कोष कहलाते हैं। इन वायुकोषोंके साथ प्रपरिष्कृत शोणित-कैशिका-समूह घनिष्ठ रूपसे संस्पृष्ट हैं। हृत्-पिण्डसे फुफ्फुसीय घननके साथ जो अपरिष्कृत शैरिक रक्तारशि फुफ्फुसके क्षुद्रतम कैशिकामें सञ्चित होती है। कार्बोनिक् एसिड आदि संयुक्त उस रक्तारशिके साथ इन सब वायुकोषोंकी वायु सहज ही संस्पृष्ट होती है। ये दोनों ओरसे वायुकोषोंकी वायुके साथ आदान प्रदान कार्य सम्पन्न करते हैं।

फुफ्फुसमें वायवीय पदार्थका आदान-प्रदान।

हम इनका उद्देश्य कर चुके हैं, कि लाहित या लाल शोणितकणा अक्सिजन प्राप्त करनेके लिये लालावित रहती हैं। रक्तारशिकाकी ओर (Haemoglobin) अक्सिजन आरुण्य होता है। वायुकोषोंके बीच शैरिकरक्तसे पूर्ण कैशिकास्थित रक्तमें कार्बोनिक् एसिडका भाग अधिकतर है।

दूमरी ओर वायुकोषमें अक्सिजनका भाग अधिकतर है। वायवीय पदार्थके प्रचापके नियमानुसार शैरिकरक्तमें अक्सिजन अधिक मात्रासे प्रविष्ट होता है। इस समय शैरिक रक्तके ध्वंसप्राप्त पदार्थनिहित कार्बोनिक् एसिडमें परिणत होता है। रक्तके साथ भी कार्बोनिक्-एसिड मिला रहता है। यह कार्बोनिक् एसिड रक्त-पादिनीसे वायुकोषमें प्रेरित होता है। अक्सिजन हिमोस्टीबिनके साथ सम्मिलित हो कर शोणित राशिका

समुच्चयल बना देता है तथा इनके कार्बोनिक् एसिडकी मात्राकी यथासम्भ्य ह्रास कर देता है, सूक्ष्मतम यान्त्रिक पदार्थ भी वायुकोषमें प्रेरित होता है। इस तरह रफत परिष्कृत हो फुस्फुसंत्य गिराके पथसे हृत्पिण्डके थाये प्रसोष्टमें उपस्थित होता है। वहांसे धमनीके पथसे सारे शरीरमें संचालित होता है और देहका टीशु या मौलिक घातुसमूह भी अफिसजनवाह्यरक्त-स्रोतसे अपने अपने प्रयोजनानुसार अफिसजन ग्रहण और कार्बोनिक् एसिड परिव्याग क्रिया करता है। इस तरह धमनीकी शाखा और उपशाखा, क्षुद्रतर शाखा और क्षुद्रतम शाखा परिष्करण कर अन्तमें यह रक्त फौजिकाके संयोगमुखमें क्षुद्रतम, क्षुद्रतर, क्षुद्र, वृहत् और वृहत्तम गिरावधसे स्रमण करने शरते हृत्पिण्डके दक्षिण-कक्ष-संदुक से वृहत् गिरामें पतित हो अन्तमें हृत्पिण्डके दाहने कक्षमें प्रवेश करता है। इस अवस्थामें इसमें अफिसजनका अंश बहुत कम और कार्बोनिक् एसिडका भाग बहुत अधिक बढ़ता रहता है। हृत्पिण्डसे फिर प्राणस्वरूप अफिसजन प्राप्तके लिये और जीवन-संघातक पार्श्वीक एसिड गैस परिव्याग करनेके लिये यह रक्त-राशि अति व्याकुलतापूर्वक फुस्फुसकें वायुकोषमें सुखकर स्थलमें आ कर वायुके लिये मुंह फैलाती है। तुषारपातसे जीतासे पथिक जैसे मौरकिरण या कर नयजीवन प्राप्त करता है, ये सब शैरिक रक्त भी अफिस-जन स्पर्शसे जैसे ही समुच्चयल और प्रकुल हो जाते हैं। इनका कालापन दूर होता है। कार्बोनिक् एसिडके प्रभावसे (इनके विपादमें गिरी हुई) विपण्य देह अफिस-जन प्राप्त कर विपस्पर्शसे विमुक्त होती है और प्रत्येक रक्तकणा यथाधर्म प्रकुल (Fatter) और समुच्चयल हो उठती है।

अफिसजनकी मिश्रता।

हम सबसे पहले कह चुके हैं, कि अफिसजन रक्त-कर्णिकासे (हिमोग्लोबिनसे) मिलते ही तुरन्त उससे मले लग कर मिश्रता कर लेता है। इससे मिश्र कर यह दूसरी एक मूर्ति चारण करनेकी चेष्टा करता है। मानो इसकी मिश्रताकी इतिभो होगी ही नहीं। इस कुशल मिलनमें मानो फेवल सम्भोगणीत है, किन्तु

मथुराकी विरहव्यथित विद्योगिनियोंका विपादने मत्त वद-तान नहीं। किन्तु यह धारणा स्रममूलक है। अफिस-जन मिलके सङ्गसे सुप्तो होनेकी अपेक्षा स्वज्ञानको बलवृद्धि करके ही अधिकतर सुप्तो होता है। हिमोग्लो-बिनका अफिसजन जब टोशुमें अफिसजनका प्रभाव कम देखता है, तभी इस मिल हिमोग्लोबिनका माध छोड़ कर दैहिक रसकी (Lymph) आनन्दतरङ्गमें बढ़ता हुआ टोशुमें जा मिलता है। हिमोग्लोबिन तब इस चिरवञ्चन, अगन्त सुहृद्द मिलके विद्योगमें रञ्जन और विपाण्य हो जाता है और इस मिलके लो कर धीरे धीरे गिराके अन्धकारभंगमें डूब जाता है।

त्वक् की श्वासक्रिया।

हम पहले ही कह आये हैं, कि दैहिक रोशु द्वारा भी श्वासक्रिया अच्छी तरह निर्वाहित होती है। फलतः जरा जांच करने पर मालूम होगा, कि हमारी सारी देह ही मानो सञ्चित कार्बोनिक्-परिहार और अफिसजन-ग्रहण करनेके निमित्त निरन्तर चेष्टा कर रही है। दिन रात हमारे देह-राज्यमें इस आदान-प्रदानका विपुल आधि-जन और महान् व्यवसाय चल रहा है, जिसे हम देखने भी नहीं। भीतरी उपादान और फुस्फुसपन्थ—एन दोनोंकी धात छोड़ देने पर भी दिखाई देता है, कि हमारी देहके बाहरी त्वक्-राशि भी इस व्यापारमें सदा व्यस्त है। त्वक् में भी यथेष्ट फौजिका नाड़ी विद्यमान है। वायुकोषमें जिस तरह एगिथिलियम नामकी चहारे-दीयारी है। त्वक् में उसी जातिकी भिन्नो वर्त्तमान है। किन्तु त्वक्की भिन्नो फुस्फुसकी भिन्नोकी अपेक्षा अधिकतर मोटी है। फुस्फुसकी भिन्नो बहुत पतली है। सुप्तं फुस्फुसकी अपेक्षा नर्ममें बहुत जबर स्पर्श करने पर भी त्वक्की रक्तधारामें वायु देरमें पहुँचती है। इस कारण फुस्फुस द्वारा जितने समयमें ३८ भाग कार्बो-निक् एसिड ग्रहणित होता है, त्वक् द्वारा उतने ही समयमें एक भाग फेवल कार्बोनिक् एसिड बाहर निक-लता है। किन्तु जन्वीय वायव निकलनेका चौड़ा पथ त्वक् ही है। फुस्फुससे जित्नी भीमतेत जलापवायव बाहर निकलता है, त्वक्के जन्वीय वायवके निकलनेका भीमत्त उससे दुगना है। साधारणतः त्वक् पथसे प्रायः

एक सेरके अन्दाज़ जलीय वाष्प निकलता है। देहका आयतन, उष्णता और वायुको शीतोष्णताको भ्रूताधिकताके अनुसार जलीय वाष्पके निकलनेका भी तारतम्य दिखाई देता है।

फुफ्फुसका वायु-गोपन।

प्रतिश्वासमें प्रायः पांच ली घन सेण्टिमिटर वायु फुफ्फुसमें आती है और फुफ्फुसके मध्यस्थित दूषित वायुसे मिलती है। इससे कार्बो-निक एसिडका भाग अधिक हो जाता है। प्रश्वासके द्वारा दूषित वायुका सब अंश बाहर नहीं निकल पाता। अतएव प्रत्येक बारके निश्वासमें वायु फुफ्फुस मध्यस्थित दुषित वायुके दश भागके एक भागके साथ मिल जाती है। अतएव आठसे दश बार तक श्वासक्रिया करने पर फुफ्फुसकी वायु विशोधित है। यहां हमारे योगशास्त्रके प्राणायाम प्रणालीके अनेक सूक्ष्मतरवों पर सूक्ष्म रूपसे विचारनेकी जरूरत है। प्राणायाम प्रणालीमें बहुतैरे सूक्ष्मतरव निहित हैं।

वायुके चापकी कमी और उष्णता अशुभ फल।

मनुष्य वायुके समुद्रगर्भमें वसता है। हमारी देहके प्रत्येक वर्गदृश्य स्थानके हिस्साके प्रायः साढ़े-सात सेर वायुमण्डलका चाप (दबाव) (Pressure) है। अतः सारी देह पर वायुमण्डलीके चापका परिमाण ३०से ४० हजार पाउण्ड है। एक पाउण्ड आध सेरका होता है। इनका हम लोग जरूर भी अनुभव नहीं करते, कि हमारे चारों ओर इतना वायुका चाप है। मछली जैसे जलधर्मियों वास कर जलके भारकी परवाह नहीं करती, कुपसे जलसे भरा घड़ा खोचनेके समय जैसे जलके नीतरके घड़ेका भार मालूम नहीं होता, किन्तु जलक बाहर जब घड़ा खोच आता है, तब घड़ेमें भरे जलका भार मालूम होता है, वैसे ही हम वायुके समुद्रमें विचरण कर रहे हैं और वायुके भारकी उपलब्धि नहीं कर सकते। वायुमण्डलीका यह चाप हमारी देहके लिये श्वासप्रणतः प्रयोजनीय हो गया है। प्रत्युत इस चापकी कमी होने पर हम लोगोंको अनुविद्या होती है।

वायुमण्डलका प्रभाव कम होने पर मानवदेहकी केशिकामें और श्लैष्मिक झिल्लोंमें रक्तचिपचप हो जाता

है। इससे धर्माचिपचप, रक्तस्राव और श्लैष्मश्लरण हो सकते हैं।

(२) केशिकाओंके कार्य-शीघ्रत्व निवन्धन हृदय-स्पन्दन, घनश्वास और श्वासच्छुद्ध हो सकता है।

(३) वायुका चाप कम होने पर उसमें अक्सिजनकी मात्रा भी कम हो जायेगी। अतः परिमित अक्सिजन ग्रहण कर देहको यथार्थ कार्बो-निक एसिड बाहर करनेको पूर्ण सुविधा नहीं मिलती। इससे देहमें कार्बो-निक एसिड थिप सञ्चित होता है और इससे बहुतैरे अमङ्गल होते हैं।

(४) अक्सिजनकी कमीसे मेगस स्नायुका मूलदेश उत्तेजित होता है और इससे विवमिया और वमन उपस्थित होता है।

(५) वायुप्रकोपके हाममें दैहिकयन्त्रसे शोणित-प्रवाह बाहरकी ओर आरुढ़ होता है, मस्तिष्कका रक्त प्रवाह-हास होता है, इसके फलसे मूर्च्छां हाँप हृण्ट आदि नाना प्रकारके दुर्लक्षण दिखाई देते हैं।

वायुका चापचिपचप और अशुभ फल।

वायुके चापकी अधिकतासे भी बहुत अशुभफल होता है। उच्च स्थानमें जैसे वायुका चाप कम हो जाता है। भूगर्भमें, समुद्रके नीचे खानमें या गहरे कुपमें वायुका चापचिपचप होता है। इन सब स्थानोंमें प्रति वर्गदृश्य परिमाण स्थानमें वायुमण्डलीका ६०७० पाउण्ड चाप हो सकता है। चापचिपचपसे त्वक् रक्तान्त्र्य होता है। पसीना बन्द होता, श्वासक्रिया कम हो जाती, निश्वास सहज और प्रश्वास स्वाम करनेमें श्लेश होता है। निश्वास और प्रश्वासके विरामका समय सुशीघ्र हो जाता है। फुफ्फुसका आयतन बढ़ता, पेनाथकी वृद्धि और हृत्पिण्ड धीरे धीरे कार्य करने लगता है। वायुके चापचिपचपमय स्थानमें वास करना जिनका अभ्यास है, उनके सहसा ऊपर उठ जाने पर उनकी देहके त्वक्में पक्षाएक रक्त आ उपस्थित होता है। नाक मुंहमें रक्तस्राव हो सकता है। स्नायुमण्डलीके रक्तान्त्र्यतावगतः पक्षाघात (लक्ष्या) रोग भी उपस्थित हो सकता है अक्सिजन हमारे लिये बहुत ही हितकर है। किन्तु परिमाणाचिपचप होने पर इससे भी हमारा जीवन नष्ट हो जाता है। मरवन्त चाप

प्राप्त घनीभूत अक्सिजनके सैकड़ों ३५ भाग रक्तमें जोषण होने पर देहमें धनुष्टूकारकी तरह रोग उत्पन्न होता है और उममे मृत्यु भी हो जाती है ।

देहमें कार्बोनिक एसिडके बढ़नेके कारण—

(१) पेजी-क्रिया—मांस पेजीके अधिक सञ्चालित होने पर कार्बोनिक एसिडकी वृद्धि होती है ।

(२) श्वेनसार जातीय पदार्थ अधिक परिमाणसे भोजन करने पर प्रभासकी अधिक मात्रामें वृद्धि होती है ।

(३) तीस वर्षकी उम्र तक कार्बोनिक एसिडकी मात्रा बढ़ती है । पचास वर्षकी अवस्थाके बाद क्रमशः इसकी मात्रा कम होने लगती है । स्त्रियोंका आर्सेन-शोषण कुछ कम अर्थात् वैतालिस वर्षकी अवस्थासे कार्बोनिक एसिडका परिमाण ह्रास होने लगता है । पुष्टकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रभासमें कार्बोनिक एसिड स्वभावतः कम रहता है ।

(४) उबरादि रोगके समय प्रभासमें कार्बोनिक एसिडकी मात्रा बढ़ जाती है ।

(५) शैथन्यमें श्वास-क्रियाकी वृद्धिके साथ-साथ कार्बोनिक एसिड भी अधिक परिमाणसे बाहर निकलता है ।

(६) दिनमें प्रचुर परिमाणमें कार्बोनिक एसिड बाहर निकलता है । रातकी क्रमशः कम होता है । शनमें आधी रातको इसकी मात्रा बिलकुल कम हो जाती है ।

(७) वारंवार प्रभासके समय प्रत्येक प्रभासमें कार्बोनिक एसिडकी मात्रा कम रहने पर भी यह श्वास अधिक मात्रामें निकलता है । इससे ऐसा न समझना होगा, कि टीसु पदार्थमें अधिक परिमाणसे यह श्वास उत्पन्न होता है । वास्तविक बात यह है, कि प्रभास जिनना घन घन निकलता है, उसके साथ प्रत्येक बार उतना ही कार्बोनिक एसिड निकलता है । सुनरा मूल बात यह है, कि मात्राकी अधिकता होगी ही ।

(८) आहारके साथ घण्टे बाद कार्बोनिक एसिडकी मात्रा बढ़ती है । यह वृद्धि केवल आहार ग्रन्थके ग्रहण-जनित होगी है ।

वायवीय उपादानका सामाधिक नियम यह है, कि उन्मुक्त अवस्थामें वे इनके परिमाणके अनुपातका साम्यसंरक्षण करते रहते हैं । माग लीजिये, कि चारों-मिटरमें पारदके द्वारा वायुका घाप ७२० मिलिमिटर है । वायुराशिमें अक्सिजनका परिमाण एक पञ्चमांश है । इसके प्रचापका अनुपात भी उक्त ७२० मिलिमिटर परिमाणका एक पञ्चमांश है, अर्थात् चारों-मिटर प्रचाप-माप-जन्तित है ।

कुसुममें वायवीय उपादानके अनुपातका साम्यसंरक्षण ।

उन्मुक्त वायुमें कार्बोनिक एसिडका प्रचाप बहुत कम है । किन्तु कुसुममें कार्बोनिक एसिडकी मात्रा अधिक है । प्रागुक्त प्राकृतिक नियमके अनुसार अक्सिजन वायुराशिमें अनुपातिक साम्यसंरक्षणके निमित्त सर्वदाही प्रस्तुत रहता है । जहां अक्सिजनकी मात्रा कम रहती है, दूसरे स्थानोंसे अक्सिजन अपने स्वजातियोंकी अनुपातिक मात्रा संरक्षण करनेके लिये उसी ओर दीड़ता है और बाहरी वायु कुसुमके भीतर प्रवेश कर अक्सिजनका स्थानोप-भवायु पूर्ण कर देती है । यह ही प्रकृतिका एक महामङ्गल विधान ।

अक्सिजन और कार्बोन डाइ-अक्साइडके २४ घण्टेके बाद ।

प्रासययन्क व्यक्ति २४ घण्टेमें श्वासक्रियासे दस हजार प्रेन परिमित अक्सिजन ग्रहण करता है । २४ घण्टेके परित्यक्त कार्बोनिक एसिडमें ३३०० प्रेन या १८ तोला अङ्गार रहता है । देहसे प्रति २४ घण्टेमें प्रायः पण्ड १८ तोला अङ्गार कार्बोनिक एसिडके आकारमें निकल जाता है । इस तरह कुसुमके पथमें जलीय वाष्पकारमें जो जल बाहर निकलता है, उसका परिमाण भी साढ़े चार छटांकि है । पथम, भूवायुका प्रचाप और रसो पुष्पादि अद्वय इस परिमाणमें न्युनाधिक दुष्प करता है । अल्पययन्क व्यक्तिकी देहमें जित परिमाणसे अक्सिजन गृहीत होता है, उसकी तुलनामें बहुत कम परिमाणमें कार्बोनिक एसिड बाहर निकलता है । वास्तविक वास्तविकीकी अपेक्षा अधिक मात्रामें कार्बोन डाइ-अक्साइड परिव्याग करने है । वृद्धिवायुकी उम्रका हासनिष्पन्नसे देहका ताप कम होने पर कार्बोन डाइ-अक्साइडकी मात्रा भी कम हो जाती है । बाहरके तापकी

घृद्धिसे देहका उत्ताप बढ जाने पर इस गैसकी मात्रा भी बढ जाती है। फिर दूसरी ओर बाहरकी वायु जरा भी शीतल हो और उसमें यदि दैहिक उत्तापका हास न हो, तो अधिक मात्रामें कार्बोनिक एसिड परित्यक्त होता है। वायुमें सैकड़ों ०८ भाग कार्बोनिक एसिड उत्पन्न होने पर यह असुलकर हो जाता है और सैकड़ों एक भाग कार्बोनिक एसिडमें वह विपयत् हो उठता है।

रवायक्रियामें वायवीय पदार्थोंका विनियम।

जलीय पदार्थके साथ वायवीय पदार्थका समिश्रण होने पर कई छोटी छोटी क्रियायें दिखाई देने लगती हैं। यदां फुस्फुसोयी रक्तमें आकाशगोय वायुके संस्पर्श और आघातके फलसे वायवीय पदार्थोंमें परस्पर आदान-प्रदान क्रियामें जो परिवर्तन होता है, उसके सम्बन्धमें बहुत थोड़ी आलोचना करते हैं। हमारे रक्तके साथ अक्मिजन और कार्बोनिक-डाइ-अक्साइडका जो सम्बन्ध है, अक्सै पहले उसका उल्लेख किया गया है। अर्थात् रक्तके हिमोग्लोबिनमें अक्मिजन आच्छेद होता है। दूसरी ओर ग्लूजना पदार्थके (Na H CO₃) कार्बोन अक्साइडका बहुत थोड़ा रासायनिक सम्बन्ध है। और यह सम्बन्ध भी बहुत गिथिल है। वायुशून्य पातमें रक्त रज कर उसमें जरा उत्ताप देने पर ही वायवीय पदार्थ पृथक् हो जाते हैं। इस समय फुस्फुसके भीतर इनका कुछ परिवर्तन साधित होता है या नहीं, इसके सम्बन्धमें जरा आलोचना करके देना जाये।

फुस्फुसके रक्ताधारमें अपरिष्कृत रक्त भी प्रवाहित होता है। इन सूक्ष्मतर और मूक्ष्मतर रक्ताधारके दोनों पार्श्वोंमें ही वायुकोय (Alveolar air cells) दिखाई देता है। रक्ताधारका रक्त कार्बोनिक एसिडसे पूर्ण है। फिर वायुकोयकी वायुमें अक्मिजनका परिमाण अधिक है। कार्बोनिक एसिड रक्तके साथ मिला हुआ रहता है। प्रचाप और उत्तापके सिवा उससे उक्त श्वासके विशिष्ट होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं। इस बातकी आलोचना करनेके पहले तरल पदार्थके साथ गैसका जो सम्बन्ध है, उसके बारेमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। खुले वायुमें विशुद्ध जल रज निर्दिष्ट परिमाणसे ताप देने पर निर्दिष्ट परिमाणसे वायु जलमें

मिल जायगी फिर वायुके अर्द्ध आयतन जलमें यदि निर्दिष्ट परिमाणसे वायु सङ्कुचित की जाय, तो भी जल उसी परिमाणसे वायुको ही आरम्भमात करेगा। वायुका आयतन चीगुना अधिक होने वह भी इस निर्दिष्ट परिमाणसे अधिक जलमें मिल न सकेगा।

शैरिक रक्तवायुकोयका पार्श्वस्थ कैशिकामें एहूजनेके समय उसका हिमोग्लोबिनमें अक्मिजन नहीं रहता। इससे कार्बोन-डाइ-अक्साइड अधिक मात्रामें विद्यमान रहता है। दूरवर्त्तों यन्त्रोंके गठनोपादान या टीशुसे शैरिक रक्त कार्बोन-डाइ-अक्साइडमें प्रवेश कर जाता है। इपर वायुकोयके प्राचोरके साथ इस अपरिष्कृत रक्ताधारके प्राचोरमें सटे रहनेसे वायुकोयके अक्मिजन ग्रहण करनेमें इनकी यथेष्ट सुविधा होती है। वायुकोयकी वायुमें सैकड़ों दश भाग अक्मिजन रहता है। कुत्तेके फुस्फुसकी परीक्षा कर देखा गया है, कि उसमें सैकड़ों २८ भाग कार्बोन डाइ-अक्साइड रहता है। इस समय प्रश्वासवायुमें कार्बोन डाइ-अक्साइडका परिमाण सैकड़ों २८ भाग परिलक्षित होता है। डालटेन (Dalton) तरल और वायवीय पदार्थके संघात-सम्बन्धमें जिस नियमका आविष्कार किया है, उसके अनुसार अनुमान किया जा सकता है, कि इस अवस्थामें अक्मिजन रक्तमें प्रविष्ट होगा और उसके प्रचापमें कार्बोन डाइ-अक्साइड वायुकोयमें आ उपस्थित होगा। हम धीरे धीरे इस पर सूक्ष्मरूपसे विचार कर रहे हैं। फुस्फुसमें सैकड़ों १० भाग अक्मिजन रहेगा, अक्मिजनके प्रचापका परिमाण ७६ मिलिमिटर है। पन्धिस मिलीमिटर प्रचापमें ही हिमोग्लोबिनसे अक्मिजन पृथक् हो जाता है। उसकी तुलनामें अक्मिजनका चाप दश अल्पतर अधिक है। किन्तु शैरिक रक्तका हिमोग्लोबिन सम्बन्ध ही अक्मिजनविहीन (Reduced) है। अब स्पष्ट रूपसे कृतान किया जा सकता है, कि इस अवस्थामें सूक्ष्मतर प्रचामिकी तरह या सांघ्रियनिक स्तरसे सूक्ष्मतरोंके जल पानेको तरह रक्तके हिमोग्लोबिन अक्मिजनकी आरम्भमात करनेके कष्ट करेगा हा करेगा। किन्तु लघु वायु निर्ष्कृतने सूक्ष्म होने पर वायु अक्मिजन उभरने अक्मिजन बन रहता है। फिर...

माया और भी कम हो जाती है। इस अवस्थामें अक्सिजनका प्रवेशगलाभ अल्पमत्र हो जाता है। कार्बोन डाइ-अक्साइडका विनिमय नियमके सम्बन्धमें आज भी कोई शक्यता सिद्धान्त नहीं हुआ है। अबसे पहले फुम्फुसीय कैथोडर द्वारा कुत्तेके फुम्फुसमें कार्बोन-डाइ-अक्साइडके परिमाणकी परीक्षाके सम्बन्धमें जो लिखा गया है, उससे मालूम हुआ है, कि कुत्तेके फुम्फुसकी वायुमें सेकड़ें ३.८ भाग कार्बोन-डाइ-अक्साइड विद्यमान रहता है। फिर इधर हृत्पिण्डके दक्षिण वक्षके अपरिष्कृत रक्तमें भी कार्बोन अक्साइडका परिमाण प्रायः सेकड़ें तीन भाग है। जब तक वायु-कोषका कार्बोन-डाइ-अक्साइडके परिमाणके साथ फुम्फुसीय रक्ताधारका कार्बोन-डाइ अक्साइडमें पूर्ण समता नहीं होती, तब तक रक्ताधारसे कार्बोन डाइ-अक्साइड वायु-कोषमें प्रविष्ट हो सकती है। फलतः इसके सम्बन्धमें आज भी विशुद्ध सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। अध्यापक गायजो (Arthur Gungee M. D; F R S.) का अनुमान है, कि वायुकोषका प्राचीर सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतरंग होने पर भी कार्बोन-डाइ अक्साइड क्षरण करनेमें सक्षम है; उसकी यथेष्ट क्षमता है। वायुकोषके प्राचीरकी इस जीव-शक्तिको (Vital power) स्वीकार न करनेसे केवल डालटेनके उद्भावित प्राकृत नियमके ऊपर निर्भर करने पर फुम्फुसके कार्बोन डाइ अक्साइडकी विनिमय व्याख्याकी विशेष अनुविधा हो सकती है। और तो क्या इसके द्वारा इस सूक्ष्मक्रियाकी आज भी सङ्ख्यापत्र संस्थापन करना असम्भव हो उठता है।

श्वस-क्रियाका प्रकार।

फुम्फुसमें वायुग्रहण करनेकी क्रिया—निश्वास नामसे अभिहित और फुम्फुससे वायु छोड़नेकी प्रश्वास कहते हैं। नाक या मुँह,—ये दोनों ही वायुग्रहण और छोड़नेके पथ हैं। इनमें एकके एक जाने पर भी दूसरेमें श्वासकी क्रिया चलती रहती है। शरीर-विचय-आम्ब्रियुट पॉन्टोनोने वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार फुम्फुस सम्बन्धीय वायुका प्रकारभेद विधा है। फुम्फुसोप वायुके परिमाणभेदसे दो वद प्रकारभेद निर्णय हुआ है।

प्रातःपश्चिम दोनोंके फुम्फुसमें धीकीसी घण्टे जो वायु

भाती जाती है, उसकी समष्टि हेग्मि साहबके मतसे ६ लाख ८० हजार घनश्व है। मारसेटके मतसे ४ लाख घनश्व है। अमेरिकाके डॉक्टर हेपरके मतसे ६ लाख छिपासी हजार है। किन्तु धर्मसे इसका परिमाण दुगुना हो सकता है। हेपर साहबका कदना है, कि धर्म-जीवियोंके फुम्फुसमें २४ घण्टेमें १५६६८३६० घनश्व वायु भाती जाती है।

निश्वास-प्रश्वास।

निश्वास-प्रश्वास या श्वासक्रिया किस तरह समग्र होती है, वक्षसाचीर किस तरह विलोडित होता है, किस-किस मांसपेशीके प्रभावसे यह कार्य होता है,— इन सबका गृह्यन्त "श्वासक्रिया" शब्दमें विस्तारित रूपसे दिया गया है। यहाँ जिन क्रियाओंसे वायुका संश्लेषण है, वही लिखना जायेगा। प्रश्वासकी अपेक्षा निश्वास शब्दकाल स्थायी है। निश्वास और प्रश्वासमें जरा-सा विराम है। यह विराम बहुत अवलक्षण स्थायी है। किसी किसी व्यक्तिकमें आज भी यह विराम अनुभूत नहीं होता। मुँह बन्द रहने पर साधारण नाकसे ही यह वायु भाती जाती है। नाकके दोनों छिद्रोंसे एक साथ ही वायु नहीं बहती। पवन-विजय-सरोद्वयमें इसके सम्बन्धमें विशेष आलोचना दिव्याई देती है। योगशास्त्रके किसी-निसी प्रथममें भा इसका उल्लेख है। नासारभ्रम जो प्रश्वास वायु निकलती है, उसका विशेष नियम है। किसी निश्चित समय तक दाहने और निश्चित समय तक बाँये नाकसे प्रश्वास वायु प्रवाहित होती रहती है। "सरोद्वय" शब्दमें इसके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक आलोचना देना उचित है। यद्यपि प्राचीरकी वायुके नापनेके लिये एक तरहके एक यन्त्रका आविष्कार हुआ है, इसका नाम थोराकोमिटर (Thoracomete) या स्टीथोमिटर (Stethometer) वक्षसाचीर विलोडन (Movement) नापनेके लिये भी एक प्रकारका एक यन्त्र निकला है। इसे स्टीथोग्राफ (Stethograph) प्यूमोग्राफ (Pneumograph) कहते हैं।

श्वस-वायुकी संख्या।

विश्रामके समय प्रति मिनट १६ में २४ बार श्वास वायु प्रवाहित होती है। हृत्पिण्डके साथ इसका एक

आनुपातिक सम्बन्ध है। एक बार श्वासक्रियाके समयमें चार बार हृत्स्पन्दन होता है। श्वासवायुकी गतिकी समना सदा स्थिर नहीं रहती। डाक्टर कोयेटोलेटने (Quelet) इसका एक नियम दिखलाया है। उनका फ़दवा है—

वर्ष	मिनट	बार
१ वर्षकी उम्रमें	१ मिनटमें	४४
५ " "	" "	२६
१५ से २० तक	" "	२०
२० से ३० तक	" "	१६
३० से ५० तक	" "	१८.१

(१) परिश्रमसे श्वासवायुक्रिया घन घन होती है।
 (२) तापकी वृद्धि होने पर भी श्वासवायुकी क्रिया घन घन होती है।

(३) बार्ट (Bert) ने प्रमाणित किया है, कि श्वासवायुका प्रताप जितना बढ़ेगा, श्वासक्रियाका द्रुतत्व उतना ही कम होगा। किन्तु इससे निश्वासकी गम्भीरता (Depth) बढ़ जायगी।

(४) शूल लगते ही श्वासक्रियाकी कमी हो जाती है। भोजन करने समय और करनेके बाद प्रायः एक घण्टा तक श्वासक्रिया बढ़ती है। इसके बाद यह घटती रहती है। भोजन न करनेसे श्वासक्रियाकी वृद्धि नहीं होती। श्वासवायुकी गति बहुत छोड़े समयके लिये स्वेच्छानुसार नाना प्रकारसे प्रवर्तित की जा सकती है।

अन्यवायुके सिवा बायवीय पदार्थके निम्नवर्षका पक्ष।

जिस वायुमें अक्सिजनका अभाव है, वैसी वायुके निषेवणसे श्वासमारोध होता है। कार्बोनिक एसिडकी मात्रा बढ़ने पर यह विषयन् क्रिया करता है। इससे माधारणतः मादकता-उत्पादक विषयकी क्रिया प्रकाशित होती है। किन्तु अक्सिजनका अभाव न रहने पर इनके द्वारा श्वासरोध हो सकता है। किन्तु कार्बोनिक अक्साइड भयङ्कर विष है। कोयलेके रोमोंमें यह विष प्रचुर परिमाणसे दिगार देता है। जिस घरमें वायु जानेका पथ नहीं रहता, द्वार या कपाटादि बन्द रहते हैं, ऐसे घरोंमें रहनेवालोंकी कोयलेके धुँपमें मिल कर यह विष भीषण

विषयु उपस्थित करता है। यह विष वेदमें घुस कर रक्तके हिमोग्लोबिनमें मिले अक्सिजनकी चट कर जाता है। सुतराँ अक्सिजनके अभावके कारण दैहिकक्रियाके लिये विषम विपत्ति खड़ी हो जाती है। एक ओर कार्बोनिक एसिडकी वृद्धि, दूसरी ओर अक्सिजनकी कमी—ये दोनों दैहिकक्रियामें घोरतर अनर्था उत्पादन कर जीवनीगति-को विताडित कर देतो है।

वायुमें यथेष्ट परिमाणसे नाइट्रोजन वस्तमान रहता है। इस नाइट्रोजनका अभाव होने पर यदि हाइड्रोजनसे इस अभावकी पूर्तिकी जाये और उसमें यदि अक्सिजन पूरी मात्रामें मौजूद हो, तो उमंगके द्वारा भी दैहिक कार्य निर्वाहित हो सकता है। सलफरेटेड-हाइड्रोजन अहितकर पदार्थ है। इसमें रक्तसंशोधन-क्रियामें व्याघात उपस्थित होता है। नाइट्रास अक्साइड भयङ्कर मादक विष है। अधिक मात्रामें कार्बोन डाइ-अक्साइड सल-फ्यूरस और अन्यान्य एसिड वायु, श्वास-क्रिया-निर्वाह के लिये एकान्त अनुपयोगी है। श्वास-क्रियाके सम्बन्धमें अन्यान्य विषय श्वास क्रियामें देखो।

स्वास्थ्य और वायु।

स्वास्थ्यके साथ वायुका जैसा घनिष्ट सम्बन्ध है, और किसी वस्तुके साथ वायुका वैसा सम्बन्ध दिव्याई नहीं देता। जीवनरक्षाके लिये वायु कितना आवश्यकीय है, इसका परिचय हम पहले दे चुके हैं। इस वायुके दूषित होने पर इससे जो अनुपकार होता है, उसका अनुभव सहज ही होता है।

वायु दूषित होनेका कारण।

फरि कारणोंसे वायु दूषित हो सकती है। वायवीय उपादानोंमें कार्बोन-डाइ-अक्साइड, जलीय वायु, आमो-निवा, सलफरेटेड, हाइड्रोजन आदिके अधिक मात्रामें मिले रहने पर वायु स्वास्थ्यके लिये एकान्त अनुपयोगी हो जाती है। प्रश्यासमें हम जो वायु छोड़ते हैं उसमें वायु-राशि सुतराँ रूपसे कार्बोन-डाइ-अक्साइड द्वारा दूषित हो जाती है। स्वाभाविक वायुराशिमें सेकड़े १०००० भागमें ४ भाग मात्र कार्बोनिक एसिड विद्यमान रहता है। किन्तु प्रयासस्थक वायुमें कार्बोनिक एसिडका परिमाण १०००० भागमें प्रायः तांत सौ से चार सौ

भाग है। इस तरह प्राणिकव्युत्पत्ति विषय वायुराजि-
की कार्यात्मिक एक्टिविटी द्वारा दूषित कर देता है। किन्तु
प्रकृतिमें सुन्दर विधानसे उदुमिदु जगत् इस विषयवत्
वायुयुक्त पदार्थको अपने कार्यमें उपयुक्त कर वायु
राजिके विषयके भावसे मुक्त कर देता तथा उसे निमल बना
देता है। सबसे पहले इसका उल्लेख किया जा चुका
है, कि कार्यात्मिक एक्टिविटी वायु निषेधणसे क्या अप-
कार होता है।

प्रश्नाससे परित्यक्त तरह-तरहके यान्त्रिक पदार्थ
(Organic substance) द्वारा वायुराजि दूषित हो
जाती है। विग्रह कार्यात्मिक एक्टिविटीको अपेक्षा प्रश्नास-
त्यक्त कार्यात्मिक एक्टिविटी अधिक अपकारो है। यथाकि
उसमें यान्त्रिक पदार्थों मिला रहता है। कलकत्तेको काली
काठको घटना यदि सत्य हो, तो कहना होगा कि उन
आदिमियोंको मृत्युका एकमात्र कारण वन्दु कोठरीमें
बहुतेरे आदिमियोंके प्रश्नास परित्यक्त कार्यात्मिक एक्टिवि-
टी वायुका प्रहण ही है। अष्ट्रेलिया युद्धके आरम्भमें जिन
३०० कैदियोंमें २६० कैदियोंको मृत्यु हो गई थी, यह भी
इसी कारण हुई थी। येमो किलानी ही ऐतिहासिक
घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता है। फलतः प्रश्नास
परित्यक्त वायु अत्यन्त विषमय पदार्थ है, इस बातका
ध्यान समीचीन रखना चाहिये। किसी घरमें यह वायु
सञ्चित हो, तो यह घर दुर्गन्धमय हो जाता है। यदि उस
घरके लोगोंको उस दुर्गन्धका अनुभव न हो, तो न समी, किन्तु
याहसे आये दूसरे आदिमियोंको उस दुर्गन्धका अनु-
भव जोष ही हो जाता है। वन्दु घरमें बहुतेरे मनुष्योंका
एक अत्यन्त बड़ा ही अहितकर है। सिया इसके
कार्योन्मत्त-अपकार, कार्यात्मिक एक्टिविटी-आदिमियोंके
मरणकारण, नाइट्रिक और नाइट्रिक एक्टिविटी, धुएँका भोल, धूल
एक्टिविटीवायुमय, उदुमिदुवृक्ष, उच्च, रैनमसूत्रय वायुका
चापको धूलि, लीहकण और नाना प्रकारके जीवाणुओं
द्वारा वायु दूषित होती है। इतनाकि, वायुमय, पदा-
प्रणालीका कार्यात्मिक, यान्त्रिकके द्रव्यवादिकी वायुमय
आदि उक्त सब प्रकारके वायुके दूषित होनेका मुख्य
कारण है।

इसकी मनुष्ये दूषित होनेके कारण।

कलकत्तेके कार्यात्मिक और वायुमय, यान्त्रिक पदार्थका

आयुर्जना, तन्वाकृता धुमा, पचन और उदुमन-क्रिया
(Putrefaction and Fermentation) यन्त्रियोंको विष्ट-
रूढा। आयुर्जना और मिलागाडो, मिट्टीमें सर दिष्टे गये
तालावके ऊपर भीमसे विषयवायुका निकलना, पैगाना, पदा-
प्रणालीका मोरीको विष्टरूढा, गोमाला (गोसार), ग्यात-
पाडा, पशुविक्रमस्थान, वाजार, मेहतरीका दिष्टे, गोवृथान
जलीयभूमि, कारखाना, (जैसे मोट्टेके कारखानेसे हा-
डोकोरिक् एक्टिविटी, तांयिके कारखानेसे सलपूररिक्, और
सलपूररिक् एक्टिविटी और आर्सेनिकका धुमा, ईंटोंके
पत्ताये और सांभेष्टके कारखानेमें कार्यात्मिक-मनपसार
याव, गिरीय और अस्थि-अङ्गारके कारखाने और गोसार
से प्रचुर परिमाणसे यान्त्रिक आर्सेनिक (Organic)
पदार्थ, रबड़के कारखानेसे कार्बोन-डाइ-सल्फाइड प्रभृति
नाना प्रकारके विषमय वायु निकला करती है।) शामुन,
संभ्रम, मलिनवयवसंभ्रम, चमड़ेके कारखाने और व्यसय,
यत्र आदिने रंगनेके घर, गिल्टो करनेके कारखाने, राम
पथको धूलि आदि कारणोंसे शहरको वायु दूषित होती
रहती है। इसके बाद रोगजीवाणुओं (pathogenic ger-
mes) से वायुके दूषित होनेका सदा खर बना रहता है।
शहरके वेसोंके प्रकाशसे भी वायु दूषित होती रहती है।
इन सब कारणोंसे वायु दूषित होती और उसी वायुके
निषेधणसे नाना प्रकारके रोग देहमें उत्पन्न हो जानेके
कारण शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। और तो क्या
इस दूषित वायुसे मद्यप्राणनाशक रोग भी उत्पन्न
होने हैं। वायुमें सेदुल्यमान कां तरहके रोगोत्पादक
दुर्गन्धके पदार्थ भरे पड़े हैं। उन सब पदार्थोंको वेसोंसे न
देखने पर भी हम इनके प्रमाणसे नाना तरहके वायुके
रोगोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं। प्रत्येक मनुष्यको इस
बातका ध्यान रखना चाहिये, जिससे इन सब दूषित
पदार्थोंसे वायुराजि दूषित न होने पाये।

जन्मो वायु।

वायुमें और भी एक पदार्थ दिष्टाई देता है—उत्तका
नाम है जलीयवायु। वायुमें स्थान और आर्सेनिक
अनायिक परिमाणसे जलीयवायु मिला रहता है।
मृत्वी वायुमें जल वायुका परिमाण होता है। यह
वायुराजिमें मिला रहता है।

जलीय वाष्पका प्रमाण ।

डाक्टर डाल्टनका कहना है; कि फारनहीटके २१२ डिग्रीके तापसे प्रति मिन्ट ४.२४४ ग्रोन जल वाष्पमें परिणत होता है । सूर्योत्तापसे जो जल वाष्प बन जाता है; आन सहजमें ही उसकी परीक्षा की जा सकती है ।

जलीय वाष्पकी उत्पत्ति ।

जलके साथ तापका स्पर्श ही इस वाष्पोत्पत्तिको एकमात्र कारण है। अनिके ताप, सूर्यके ताप, दैहिक ताप, भूमिके अन्वन्तरस्थित ताप आदि द्वारा विविध प्रकारके जलीय पदार्थ उत्पन्न हो कर वाष्परूपमें परिणत होते हैं। प्रधासवायुके द्वारा भी वायुमें जलीय वाष्पकी मात्रा बढ़ जाती है। त्वक्से ही दैहिक जलीय पदार्थ वाष्परूपसे बाहर हो कर वायुसे मिल जाता है। लकड़ी, कोयला और कई तरहके हीपकोंके जलानेसे भी जलीय वाष्पकी उत्पत्ति होती है। समुद्र तथा तालाब आदि जलाशयोंसे इस प्रकार जितना जल निरप वाष्पमें परिणत हो आकाशमें उड़ जाता है, उसकी आलोचना करने पर विस्मित होना पड़ता है। वैज्ञानिकोंने अनुमानिक गणनामें मिड्रान्त क्रिया है २,०५,२००,००,००,००,० (२ नील ५ लख २ अर्ब) मन जल वाष्परूपसे पृथ्वी पर गिरता है। सिवा इसके कुरोडों मन जल शिशिर, तुपार, छिन्न तुपार, शिलावृष्टि, कुहरे आदिमें परिणत होता है। विशाल विषुल आकाशकी वायुराशिमें वाष्प रूपमें इतना अधिक जल रहता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि निरप पृथ्वीसे एक लख मन और प्रति घण्टेमें ४,१६,६६,६६,६६६ मन जल वायुराशिके साथ वाष्पकारमें मिल जाता है। सूर्य-किरण ही इस जलाकर्षणका प्रधानतम हेतु है। पृष्टि, शिशिर, तुपार, शिला, कुहरे आदिका मूल कारण यह जलीय वाष्प है। वाष्प आवृत्त स्थानापेक्षा भनावृत्त स्थानमें अधिक परिमाणसे उत्पन्न होता है। जिस जलसे वाष्प उत्पन्न होता है, उसके निकट चारों ओर यदि उष्ण वायु प्रवाहित होनी, तो उससे शीघ्र शीघ्र वाष्प उत्पन्न होता है। गभीर वायुकी अपेक्षा छिछले वातमें बहुत जल्द वाष्प उत्पन्न होता है। वायुके साहाय्यसे भी वाष्प उत्पन्न होता है। जल और वायुकी उष्णता बराबर होनेसे जलकी अपेक्षा वायु—१५ तापानुसे अधिक शीतल

होनेसे वाष्पोद्गममें यथेष्ट वाष्प उत्पन्न होती है। वायु वाष्पमें परिपूर्णरूपसे सिकत होने पर भी वाष्पोद्गममें क्याघात उपस्थित होता है।

शीतकालमें वायु बहुत शुष्क होती है। इसीलिये शीतकालमें बहुत वाष्प उत्पन्न होता है। प्रीष्मवायुकी उष्णता ही अधिक परिमाणसे वाष्पोद्गम होनेका कारण है। किन्तु इस समयमें वायुराशि शीत ऋतुमें उदर्यत वाष्पराशिक द्वारा परिसिक रहती है, अतएव वायुमें अधिक वाष्प मिश्रित हो नहीं सकता। इसीलिये जलाशय आदि शीतकालमें जितने सूखते हैं, प्रीष्मकालमें उनना नहीं सूखते। इसी तरह शीत-प्रीष्मतात वाष्प वर्षा में वृष्टिरूपसे गिरता है। हमें आकाशमें इस जलीय वाष्पके विविधरूप दिखाई देते हैं, जैसे—मेघ, वृष्टि, शिशिर, छिन्न तुपार और शिला आदि। जलीय वाष्पको बात कहने पर इन सब बातोंकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है।

कुहरा ।

पशले कुहरेकी बात लिली जानी है। वाश्वात्य वैज्ञानिकोंने इसके सम्बन्धमें बहुतेरी आलोचनार्थ की हैं। ऊपर भागमें जो जलीय वाष्पराशि वायुकी स्वच्छतामें बाधा डालती है, उसीसे साधारणतः कुहरा कहने हैं। कुहरे और वृष्टिमें थोड़ा ही प्रार्थव्य है। आकाशके ऊपरी स्तरमें जो घनभूत वाष्पराशिघ्नमण करता है, उसीको मेघ कहते हैं। कुहरे भी मेघ ही सही, किन्तु यह भूभागके अति निकट ही सञ्चिन होता है, कुहरा शूद्रतम जलविन्दुकी (Aqueous Spherules) समष्टि है। यह सब जलविन्दु इनने छोटे हैं, कि बिना अनुयोक्षणके दिखाई नहीं देते। जिस कारणसे शिशिरकी उदरति होती है, उसके विपरीत हेतुसे ही कुहरा उत्पन्न होता है। भार्द्र भूभागका तापमानकी (Temperature) तत्संलग्न वायुराशिके उष्णतामानकी अपेक्षा कुछ अधिक होनेसे कुहरेकी उदरति होती है। भार्द्र और अपेक्षाएत अधिक उत्तम भूभागसे उद्भूत जलीय वाष्प निकटस्थ शीतल वायुके स्पर्शसे घनभूत होता है और छोटे छोटे जलविन्दुओंमें परिणत होता है, यही कुहरा है। कुहरेके उद्गमके लिये दो अवस्थायें प्रयोजनीय हैं। ऊपरकी वायुराशिकी

भाग है। इस तरह प्राणिकजन्म विषय वायुराजि-
की कार्यात्मिक पसिड द्वारा दूषित कर देता है। किन्तु
प्रकृतिके सुन्दर विधानमें उद्भिद्जन्म इस विषयमें
वायुयोंग पदार्थकी अपने कार्योंमें व्यवहृत कर वायु
राजिके विषयके भारमें मुक्त कर देता तथा उसे निमज्ज बना
देता है। अबमें पहले इसका उल्लेख किया जा चुका
है, कि कार्यात्मिक पसिडमय वायु निषेधणसे पया भय-
कार होता है।

प्रश्याससे परित्यक्त तरह-तरहके यान्त्रिक पदार्थों
(Organic substance) द्वारा वायुराजि दूषित हो
जाती है। विमुक्त कार्यात्मिक पसिडकी अपेक्षा प्रश्यास
त्यक्त कार्यात्मिक पसिड अधिक भयकारो है। यथाकि
उसमें यान्त्रिक पदार्थों मिला रहता है। कलकत्तेकी काली
काठरोकी घटना यदि सत्य हो, तो कहना होगा कि उन
आर्द्रमियोंकी मृत्युका एकमात्र कारण बन्द कौठरोमें
बहुतेरे आर्द्रमियोंके प्रश्यास परित्यक्त कार्यात्मिक पसिड
मय वायुका प्रथम ही है। अष्ट्रेटिज युद्धके अन्तमें जिन
३०० कैदियोंमें २६० कैदियोंकी मृत्यु हो गई थी, यह भी
इसी कारण हुई थी। ऐसी कितनी ही ऐतिहासिक
घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता है। कलता प्रश्यास
परित्यक्त वायु भयङ्कर विषमय पदार्थ है, इस बातका
ध्यान राभोकी रखना चाहिये। किन्ती घरमें यह वायु
अशुद्धि हो, तो यह घर दुर्गन्धमय हो जाता है। यदि उस
घरके लोगोंको उस दुर्गन्धका अनुभव न हो, तो न समी,
किन्तु गहरसे आये दूसरे आर्द्रमीको उस दुर्गन्धका अनु-
भव जोष ही हो जाता है। बन्द घरमें बहुतेरे मनुष्योंका
एकव्य भयस्थान बसा ही अदितकर है। मिया इसके
कार्योन्-अभ्यसाह, कार्यात्मिक पार-मलकाहट-प्रामोनिषम
मलकाहट, नाइट्रिक और नाइट्रिक पसिड, धुरंका भोज, धूल
एकियेज्यामकोष, उद्भिद्जन्म, उल, रोगमन्त्रय वायुकोला,
वायुकी भूलि, लौहकला और भावा प्रकारके जीवाणुओं
द्वारा वायु दूषित होती है। दूधमकिया, प्रश्यास, पया-
प्रजातीका वायोडम, बालिष्यके दूधपादिको आवाजीना
आदि उक्त सब प्रकारके वायुके दूषित होनेका मुख्य
कारण है।

मरुकी वायुके दूषित होनेके कारण।
कलकात्तेकी शुभा और वायुर्जना, पानिज्य पदार्थोंका

भायर्जना, तम्याहूका शुभा, पचन और उरसेचन-रिक्त
(Putrefaction and Fermentation) यन्त्रियोंकी विमु-
कृता। भायर्जना और मिलागाड़ी, मिट्टीसे भर दिरे गये
तालाबके ऊपरकी भूमिसे विषवायुका निकलना, पैगता, पया-
प्रणालियां गोरोकी विशुद्धता, गोनाला (गोमार), ग्याल-
पाडा, पशुविकारस्थान, वाजार, मेहतरोका शिपो, गोस्वथान
जलीयभूमि, फारलाना, (जैने सोड़े के कारवानेसे हाह-
डोकोरिफ पसिड, तांयिके कारवानेसे मजपयूरिक, और
सलपयूरस पसिड और आर्सेनिकता शुभा, ईंठोके
पत्ताये और सोभेष्टके फारवानेसे कार्वोम-अतभमाह
याह, निरोय और अस्थि-अप्यारके कारवाने और गोसार
से प्रचुर परिमाणसे यान्त्रिक अर्थात्मिक. (Organic)
पदार्थ, रबड़के कारवानेसे कार्बोन-डाह-सल्फाइड प्रशुनि
नाना प्रकारको विषमय वायु निकला करती है।) गामुक
संम्रद, मलिनयक्षसंम्रद, चमड़ेके कारवाने और अ्यमाप,
यक्ष आदिने रंगनेके घर, मिट्टो करनेके कारवाने, राज-
एथकी धूलि आदि कारणोंसे जहरकी वायु दूषित होती
रहती है। इसके बाद रोगजीवाणुओं (pathogenic ger-
mes) से वायुके दूषित होनेका सदा खर बना रहता है।
जहरके नेमोंके प्रकाजमें भी वायु दूषित होती रहती है।
इन सब कारणोंसे वायु दूषित होती और उसी वायुके
निषेधणने नाना प्रकारके रोग दुर्दम उत्पन्न हो जानेके
कारण शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। और भी क्या
इस दूषित वायुसे मद्यपाननाशक रोग भी उत्पन्न
होने हैं। वायुमें दोदुल्यमान कां तरहके रोमीत्याह
हजारों पदार्थ भरे पड़े हैं। उन सब पदार्थोंकी नेतीमें न
देगने पर भी हम इनके प्रमाणमें नाना तरहके प्वातीके
रोमीसे आभासत हुआ करते हैं। प्रत्येक मुद्दणकी इस
धानका ध्यान रखना चाहिये, जिससे इन सब दूषित
पदार्थोंसे वायुराजि दूषित न होने पाये।

अन्तमे वार्य।

वायुमें और भी एक पदार्थ दिव्याई देता है—उसका
नाम है जलीयवायु। वायुमें अथान और जलमेंरुमें
अन्तमधिक परिमाणमें जलीयवायु मिला रहता है।
मूटों पापसे जल वायुक्रममें परिष्कृत होता है। यह
वायुराजिमें मिला रहता है।

जलीय वाष्पका प्रमाण ।

डाक्टर डाल्टनका कहना है; कि फारनहीटके २१२ डिग्रीके तापसे प्रति मिनट ५.२४४ ग्रोन जल वाष्पमें परिणत होता है । सूर्योत्तापने जो जल वाष्प बन जाता है; आन सहजमें ही उसकी परीक्षा की जा सकती है ।

जलीय वाष्पकी उत्पत्ति ।

जलके साथ तापका स्पर्श हो इस वाष्पोत्पत्ति का एकमात्र कारण है । अनिके ताप, सूर्यके ताप, दैहिक ताप, भूमिके अल्पतरुस्थित ताप आदि द्वारा विविध प्रकारके जलीय पदार्थ उत्पन्न हो कर वाष्परूपमें परिणत होते हैं । प्रभावसंवायुके द्वारा भी वायुमें जलीय वाष्पकी मात्रा बढ़ जाती है । स्वयंसे ही दैहिक जलीय पदार्थ वाष्परूपसे बाहर हो कर वायुसे मिल जाता है । लकड़ों, कोंबल और कई तरहके दीपकोंके जलानेसे भी जलीय वाष्पकी उत्पत्ति होती है । समुद्र तथा तालाब आदि जलाशयोंसे इस प्रकार जितना जल नित्य वाष्पमें परिणत हो आकाशमें उड़ जाता है, उसकी आलोचना करने पर विस्मित होना पड़ता है । वैज्ञानिकोंने अनुमानिक गणनामें सिद्धांततः क्रिया ही २,०५,२,००,००,००,०० (२ कोट ५ लख २ अर्ध) मग जल वाष्प रूपसे पृथ्वी पर गिरता है । सिवा इसके करोड़ों मग जल मिशिर, तुपार, छिन्न तुपार, जिलावृष्टि, कुहरे आदिमें परिणत होता है । विशाल विपुल आकाशकी वायुराशिमें वाष्परूपमें इतना अधिक जल रहता है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि नित्य पृथ्वीसे एक लख मग और प्रति घण्टेमें ४,१६,६६,६६,६६ मग जल वायुराशिके साथ वाष्पकारमें मिल जाता है । सूर्यकिरण ही इस जलाकर्षणका प्रधानतम हेतु है । पृष्टि, मिशिर, तुपार, जिला, कुहरे आदिका मूल कारण यह जलीय वाष्प है । वाष्प भावृत स्थानापेक्षा अनावृत स्थानमें अधिक परिमाणसे उत्पन्न होता है । जिस जलसे वाष्प उत्पन्न होता है, उसके निकट चारों ओर यदि उष्ण वायु प्रवाहित होती; तो उससे जो प्रशीघ्र वाष्प उत्पन्न होता है । गनीर वाष्पकी अपेक्षा छिछले वाष्पमें बहुत जल्द वाष्प उत्पन्न होता है । वायुके साहाय्यसे भी वाष्प उत्पन्न होता है । जल और वायुकी उष्णता बराबर होनेसे जलकी अपेक्षा वायु—१५ तापानुसे अधिक शीतल

होनेसे वाष्पोद्गममें यथेष्ट वाष्प उत्पन्न होती है । वायु वाष्पमें परिपूर्णरूपसे सिक होने पर भी वाष्पोद्गममें व्याघात उपस्थित होता है ।

शीतकालमें वायु बहुत शुष्क होती है । इसीलिये शीतकालमें बहुत वाष्प उत्पन्न होता है । प्रथमवायुकी उष्णता ही अधिक परिमाणसे वाष्पोद्गम होनेका कारण है । किन्तु इस समयमें वायुराशि जीत ऋतुमें उन्त्यन वाष्पराशिक द्वारा परिमित रहती है, अतएव वायुमें अधिक वाष्प मिश्रित हो नहीं सकता । इसीलिये जलाशय आदि शीतकालमें जितने सूखते, प्रथमकालमें उनना नहीं सूखते । इसी तरह शीत-प्रोन्मनात वाष्प वर्षामें वृष्टिरूपसे गिरता है । हमें आकाशमें इस जलीय वाष्पके विविधरूप दिखाने देते हैं, जैसे—मेघ, वृष्टि, शिशिर, छिन्न तुपार और जिला आदि । जलीय वाष्पकी बात कहने पर इन सब बातोंका कुछ आलोचना करना आवश्यक है ।

कुहरा ।

पहले कुहरेकी बात लिखी जाती है । वाष्पवायु वैज्ञानिकोंने इनके समग्ररूपमें बहुतेरी आलोचनार्ये की हैं । ऊपरके भागमें जो जलीय वाष्पराशि वायुकी स्वच्छतामें बाधा डालती है, उसीसे साधारणतः कुहरा कहने हैं । कुहरे और वृष्टिमें थोड़ा ही प्रार्थक्य है । आकाशके ऊपरी स्तरमें जो घनोभूत वाष्पराशिसमूह करता है, उसीको मेघ कहते हैं । कुहरे भी मेघ है मही, किन्तु यह भूमिगतके अति निकट ही सञ्चित होता है, कुहरा शूद्रतम जलविन्दुकी (Aquous Spherules) समष्टि है । यह सब जलविन्दु इतने छोटे हैं, कि बिना अणुशीक्षणके दिखाने नहीं देते । जिस कारणसे मिशिरकी उत्पत्ति होती है, उसके विपरीत हेतुसे ही कुहरा उत्पन्न होता है । आर्द्र भूमिगत तापमानकी (Temperature) तत्समलभ वायुराशिके उष्णतामानकी अपेक्षा कुछ अधिक होनेसे कुहरेकी उत्पत्ति होती है । आर्द्र और अपेक्षाकृत अधिक उत्तम भूमिगत उद्भूत जलीय वाष्प निकटस्थ शीतल वायुके स्पर्शसे घनोभूत होता है और छोटे छोटे जलविन्दुओंमें परिणत होता है, यही कुहरा है । कुहरेके उद्गमके लिये दो अवस्थायें प्रयोजनीय हैं । ऊपरकी वायुराशिकी

अथवा पृथिवीके पृष्ठदेशका तापान्तर्य तथा वायुमण्डल
की सांद्रता इत्यादि सव्यथाओंके रहनेसे कुहरेको
उत्पत्ति अथव्यभवायी है। सुमो पोल्टियर (Peltier
तथिभूतिकके साथ कुहरेका सम्बन्ध विनिर्णय कर दो
प्रकारके कुहरेका नाम लिख गये हैं। जैसे—रेजिनाम
(Resinous) और मिट्टियस (Vetrious)। इस श्रेणीक
नामधेय कुहरेके भी प्रकारमेइका उल्लेख दिशाई देना है,
यिषय बढ जानेके कारण यहां सब विषयोंकी आलोचना
नहीं की गई। सिवा इसके सूखे कुहरे (Dry fogs)
के सम्बन्धमें भी वैज्ञानिक आलोचना देखी जाती है
इसके साथ जलीय वाष्पका कोई सम्बन्ध नहीं। यह
एक प्रकारके धुएँके सिवा और कुछ नहीं है।

मेघ।

इसके बाद मेघके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आव-
श्यकता प्रयोज्य होती है। सूर्यका एक नाम सूर्यप्रान्त
भी है। महाप्रान्त सूर्यप्रार फैला कर नद, नदी, समुद्र
और अन्त्याय्य सभी जगहानोंका जल शोषण किया करने
है। यह शोषित जलराशि वाष्परूपमें ऊपर उठती है।
जलराशि मिलना ऊपर उठती है, उतना ही यह अधिक-
तर शीतल वायुके साथ स्पृक होती है। १८००
फोर्ट ऊर्ध्वगमिण वायुका शीतल परकके शीतल की तरह
अनुभूत होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि इस
शीतल वायुके स्पर्शमें जलीय वाष्प घनीभूत हो कर
मेघके रूपमें परिणत होता है। किन्तु यह मत सर्व-
सम्मत नहीं। जलाय वाष्प जैसे कुहरेका कारण है,
ऐसे ही यह मेघका भी कारणत्वक है। मेघोंके ऊंचे
चढ़नेके कई कारण हैं। यथा—वायुकी शीतोष्ण-मागता,
सांद्रता, अणु और समुद्र या पर्वतका सांभोष्य।
सुन्दारतप मेघ भूतृष्टमें दो-सी वा तीन सी गग
ऊंचाई पर विनयन करते हैं। फिर आसके समान
शून्य अल्पमात्रा भूतृष्टमें चार-पाँच गोल ऊपर विचरण
करती है।

मेघके वर्णनका विवरण।

भूभाग की समुद्रादि असाजपमे उच्चय वन जलीय
वाष्प ऊपर उठती है। अतमें आकाशके विस्तार अत्यन्तकी
वायुराशि इसी अल्पमात्रमें पूर्णरूपमें परिविक (Sta-

rate) हो जाती है। इसके बाद भी यदि शोषेमें
वाष्पोद्गम होना रहे, तो वायुराशि पूर्णरूपमें सांद्र होभी
है। जलायवाष्प घनीभूत होता और मेघरूपमें परिणत
होता है।

मेघका नामकरण।

सुविज्ञ वैज्ञानिक पण्डित मि० होवर्डने (Howard)
मेघके प्रकारमेइ और नामकी बताना की है। उच्चतर
गगनपटमें कागजुन्न परिच्छिन्न जो मेघभाग उठना
फिरता है, यह सिरस (Cirrus) नामसे अभिहित है।
इस तरहका मेघ प्रबल धायु वा भाँवोका पूर्णगमन
प्रकाशक है। दूसरे प्रकारका मेघ कूमूलस (Cumulus)
नामसे विदित है। इसको प्रथिक मेघ भी कह सकते
हैं। ये मेघ भी शुद्ध हैं। ये पर्वतकी तरह आकाशमें
विनयन करते हैं। दूसरे मेघका नाम स्ट्रेटस (Stratus)
है। इस तरहके मेघ घनीभूत हैं। ये आकाशमें अनु-
प्रस्थ भावमें स्तर-स्तरमें विनयन करते हैं। उपर्युक्त,
जलाभूमि प्रभृतिसे कुदासः या कुदा उठ कर इस तरह-
के मेघोंकी सृष्टि करता है। इन तीन तरहके मेघोंके सिवा
पादयाय्य वैज्ञानिक लोगोंमें मेघोंके और भी बहुतेरे नाम
बतलाये हैं। जिन मेघोंकी अलघारामे वस्तुवाका ताँपिन
अङ्ग सुशोभल होता है, यह घनरूपन विनयनयुक्त इयामन
वायु पटल निरगस नामसे विख्यात है।

वेधविन्दु।

मेघविन्दु या कुदरा निनिरविन्दुकी तरह चला जलतप
नहीं है, यह गगनके पुटपुटकी तरह शून्यगर्भ है। यह
अप पृष्ठमें परिणत होता है, तब उभकी गर्भशून्यता गष्ट
होती है। उस समय यह जलतप हो जाता है। मान-
मेइमें वायुराशिको शीतोष्णता-मागतां जो पार्थक्य
होता है, उसके अनुसार मेघविन्दुके आकारमें भी पार्थ-
क्य होता है। अगमन महोमें यूपोवों इसका आकार
बहुल होता होता है। उस समय उभका परिमाण—
एक इञ्च '०००६' अंशमात्र है। द्विगमनमें इसका
आकार बढा दिशाई देता है। उस समय इसका परि-
माण एक इञ्चके—'००१५' अंशमें परिणत होता है।

मेघमें शीतोष्णता।

मेघके तद्विपुलसम्बन्धमें प्राचीन वैज्ञानिक पण्डितोंमें

लेम (Lame), बेकरेज (Bequerel) और पेल्टियर (Peltier) आदि परिदृष्टीने गवेषणापूर्ण आलोचना की है। आकाशमें पतङ्ग उड़ा कर परिदृष्टगण प्राचीन समयमें भी इसके सम्बन्धमें अनेक तथ्य जान सके थे। आंधीवाले मेघके साथ तडित्की अति घनिष्ठता है। हम विषय बढ़ जानेके भयसे और अपासङ्गिकताके कारण यहाँ उन सब विषयोंकी आलोचना करना सुसङ्गत नहीं समझते।

मेघ और विषुव-प्रदेश।

विषुव प्रदेशके साथ मेघोंका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। उष्णमण्डलके बीचका प्रदेश सूर्यके उत्तापसे अधिकतर उत्तम होता है। उत्तम भूभाग और जलभागसे अधिक मातामें जलीयवाष्प आकाशके उच्चस्तरमें उठ कर घनीभूत होता है। यह यहाँ बहुत समय तक अपेक्षा-रहित स्थिर रहता है, उससे भूभाग सूर्यके प्रचण्ड तापसे कुछ धेर तक बचा रहता है। अनप्य जलाशयोंद्वारा जलीयवाष्पोद्भवका परिमाण कुछ कम हो जाता है। इस तरह विषुव प्रदेश जोयोंके रहने लायक रहता है।

मेघका कार्य।

केवल धारा बरसा कर पृथ्वीको शीतल कर देना मेघका उद्देश्य नहीं है। मेघ द्वारा सूर्यका ताप और नैराश्यापोद्भवका हास होता है। जीवजगत्के लिये यह दो अवस्थाये प्रयोजनीय हैं।

मेघको कलमयाना।

आकाशमें कब कौन मेघ किस तरहका दिखाई देता है, उसका कैसा फल होता है, हमारे पराशरसंहिता आदि शास्त्रोंमें तथा घाघ और शुद्धोंके वचनोंसे उसका बहुत विवरण मालूम होता है। पारचाह्य वैज्ञानिक-गण भी इसके सम्बन्धमें कुछ कुछ अनुसन्धान कर चुके हैं। यथा—

सिरस—ऊँचे आकाशमें अत्यन्त ऊपर इस जातिके रजतसुन्न अत्रोंको दंडुले देखने पर जानना होगा, कि शीघ्र ही आकाशमें परिवर्तन होगा। प्रीथकालमें यह एदि होनेका पूर्व लक्षण सूचित करता है। शीतकालमें इस जातिके मेघ देखनेसे यह जान लेना चाहिये, कि शीघ्र ही अधिक मातामें हुपाववात होगा। इस मेघके

साथ प्रायः ही दक्षिण-पश्चिम और बढ़नेवाली वायुके प्रवाहका सम्बन्ध है। इस वायुके संस्पर्शसे सिरस मेघ क्रमशः घनीभूत होता, वायु भी क्रमशः आर्द्र हो जाती है, इसके बाद वृष्टि होती है।

सिरोपयूमूलस—यह मेघ तापोद्भवका परिचायक है।

इस तरहका मेघफल-विचार यूरोपीय वैज्ञानिकोंकी गवेषणाके अन्तर्भूत है। किन्तु इसके सम्बन्धमें भारतीय परिदृष्टीको गवेषणा ही अधिकतर समीचीन है।

सन् १८६१ ई०में म्यूनिक (Munich) नगरमें इण्टर-नेशनल मिट्टिरैलजिकल कन्फेरेन्समें स्थिर हुआ, कि मेघ साधारणतः पाँच भागोंमें विभक्त हैं। जैसे—

(क) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करनेवाले मेघ (Very high in the air)।

(ख) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करनेवाले मेघ (At a medium height)।

(ग) भूपृष्ठके निकटवर्ती मेघ (Lying low or near earth)।

(घ) वायुके उच्च प्रवाहस्तरस्थ मेघ (In ascending current of air)।

(च) आकार परिवर्तनोन्मुख वाष्प (Masses of vapour changing in form)।

मेघ वाष्पके घनीभूत दृश्यमान अवस्थामात है। दो कारणोंसे वाष्प घनीभूत हो कर मेघके रूपमें परिणत होता है।

(१) वायुका स्तरविशेष शिथिलवृत्तीयत हो कर तटस्थानीय जलीय वाष्पोंको न्यूनधिक परिमाणसे साम्भ्य जलदाकारमें (Stratus) परिणत कर सकता है।

(२) अथवा आर्द्र वायुराशि शीतल जलीय वाष्प-राशियोंमें प्रविष्ट हो कर उनको गिरिनिभ मेघमें (Cumulus) परिणत कर सकता है।

मेघतत्त्वविद् परिदृष्टीने मेघोंको प्रायः चार भागोंमें विभक्त किया है। इनका नाम और विवरण पहले ही लिखा जा चुका है। यहाँ केवल यहो यक्त्य है, कि

अपेक्षा पूर्णपूर्वक वृद्धदेवता तापविषय चयना वायुगति-
की भावना इत्यादि अन्वेषणात्मक रहनेसे कुहरेको
उत्पत्ति अस्पष्टमानवी है। सुमो पेल्टिएर (Peltier
तद्विज्ञानिकके साथ कुहरेका सम्बन्ध विनिर्णय कर दो
प्रकारके कुहरेका नाम दिये गये हैं। जैसे—रेजिनास
(Resinous) और विट्रियस (Vitrious)। इस श्रेणीक
नामधेय कुहरेके भी प्रकारभेदका उल्लेख दिखाई देता है
विषय बढ जानेके कारण यहां सब विषयोंकी आलोचना
महीं की गई। मिया इसके सूखे कुहरे (Dry fog)-
के सम्बन्धमें भी वैज्ञानिक आलोचना देखी जाती है
इसके साथ जलधय वाष्पका कोई सम्बन्ध नहीं। यह
एक प्रकारके धुपके सिया और कुछ नहीं है।

मेघ।

इसके बाद मेघके सम्बन्धमें कुछ कहनीकी आव-
श्यकता प्रतीत होती है। सूर्यका एक नाम सहस्रांशु
भी है। सहस्रांशु सहस्रतर फेला कर नद, नदी, समुद्र
और अन्यान्य सभी जलनाशोंका जल जोषण किया करते
हैं। यह जोषित जलराजि वाष्परूपसे ऊपर उठती है।
जलराजि जिनका ऊपर उठती है, उनका ही यह अधिक-
तर जोषण वाष्पके साथ मग्नक होती है। १८०००
फीट ऊर्ध्वस्थित वाष्पका शीतय यत्नके शीतयकी तरह
समुभूत होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि इस
जोषण वाष्पके रूपमें जलधय वाष्प घनीभूत हो कर
मेघके रूपमें परिणत होता है। किन्तु यह मत सर्वो-
त्तम नहीं। जलधय वाष्प जैसे कुहरेका कारण है,
ऐसे ही यह मेघका भी कारणस्वरूप है। मैकोंके ऊंचे
पठारके वही कारण हैं; यथा—वाष्पकी जोषोण-भागना,
भावेता, क्षुब्ध और समुद्र या पर्वतका आघोष।
गुरुभागमे मेघ भूच्छने खोनी या तीन सौ गज
ऊंचाई पर विचरण करते हैं। फिर आसके समान
गुरु अक्षमाला भूच्छने घाट-पीय मोल ऊपर विचरण
करती है।

मेघके लक्षण (विशेष)।

भूभाग या समुद्रादि अनाजयमे उक्ताय वन जलधय
वाष्प ऊपर उठता है। अन्तमें आकाशके चित्रों रूपककी
वायुराजि इसी अन्वेषणमें पूर्णरूपसे परिचित (Satu-

rate) हो जाती है। इसके बाद भी यदि कोईमे
वाष्पोद्भूत होता रहे, तो वायुराजि पूर्णरूपसे भाद्वी होती
है। जलोपवायव घनीभूत होता और मेघरूपमें परिचित
होता है।

मेघका नामकरण।

सुविध वैज्ञानिक परिचित मिं होवट्टेन (Howard)
मेघके प्रकारभेद और नामकी बचता की है। उपर
गमनपटमें कागसुक्ष्म परिच्छिन्न जो मेघरूप उक्ता
फिरता है, वह सिरस (Cirrus) नामसे अभिहित है।
इस तरहका मेघ प्रबल वायु वा भावोंका पूर्णरूप
प्रकाशक है। दूसरे प्रकारका मेघ कूम्बुलस (Cumulus)
नामसे विदित है। इसकी प्रौथिक मेघ भा कह सकते
हैं। ये मेघ भी शुभ्र हैं। ये पर्वतकी तरह साकाशमें
विचरण करते हैं। दूसरे मेघका नाम स्ट्रेटस (Stratus)
है। इस तरहके मेघ घनोभूत है। ये आकाशमें अनु-
प्रत्य भावसे स्तर-स्तरमें विचरण करते हैं। उपरवा,
जलाभूमि प्रभृतिमें कुहस्ता या कुहरा उठ कर इस तरह-
के मेघोंकी सृष्टि करना है। इन तान तरहके मेघोंके सिवा
पाश्चात्य वैज्ञानिक लोगोंमें मेघोंके और भी बहुतेरे नाम
बनगये हैं। जिन मेघोंकी अलघारासे वायुवाका तापिन
अद्भुत सुगीतल होता है, यह घनरूपन स्निग्धमधुंर दशम
चारिष पटल निगमस नामसे विख्यात है।

विषयवस्तु।

मेघविषय वा कुहरा निगिरविषयकी तरह मना जलधय
महां है, यह साधुनके पुत्रपुत्रकी तरह दुष्प्रयत्न है। यह
अब पृथ्वीमें परिणत होता है, तब उसकी गर्भोद्भवता बढ
होती है। उस समय यह जलधय हो जाता है। माग
भेदमें वायुराजिकी शीतोष्णता-भागमें जो पार्थिव
होता है, उमके अनुसार मेघविषयके आकारमें भी पार्थ-
व्य होता है। अगम्य गहोमें सूतेगमें इसका आकार
बहुत छोटा होता है। उस समय उसका परिमाण—
एक इंच १००० अंशमात्र है। दिनभरमें इसका
आकार बढा दिनादि देता है। उस समय इसका परि-
माण एक इंचके—१००१ अंशमें परिणत होता है।

मेघके गौरवार्थ।

मेघके गौरवार्थ अन्वेषणमें प्राचीन वैज्ञानिक पंडितोंमें

लेम (Lame), बेकरेले (Bequerel) और पेन्टियर (Peltier) आदि पण्डितोंने गवेषणापूर्ण आलोचना की है। आकाशमें पतङ्ग उड़ा कर पण्डितगण प्राचीन समयमें भी इसके सम्बन्धमें अनेक तथ्य जान सके थे। अफोपोवाले मेघके साथ तड़ित्तुकी गति घनिष्ठता है। हम विषय बढ जानेके भयसे और अपासङ्गिकताके कारण यहाँ उन सब विषयोंकी आलोचना करना सुसङ्गत नहीं समझते।

मेघ और विद्युत्-प्रदेश।

विद्युत् प्रदेशके साथ मेघोंका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। उष्णमण्डलके बीचका प्रदेश सूर्यके उत्तापसे अधिकतर उत्तम होता है। उत्तम भूभाग और जलभागसे अधिक मात्रामें जलीयवाष्प आकाशके उच्चस्तरमें उठ कर घनीभूत होता है। यह यहाँ बहुत समय तक अपेक्षा-रहित स्थिर रहता है, उससे भूभाग सूर्यके प्रचण्ड तापसे कुछ दूर तक बचा रहता है। अतएव जलाशयोंसे जलीयवाष्पोद्गमका परिमाण कुछ कम हो जाता है। इस तरह विद्युत् प्रदेश जीवोंके रहने लायक रहता है।

मेघका कार्य।

केवल धारा बरसा कर पृथ्वीकी शीतल कर देना मेघका उद्देश्य नहीं है। मेघ द्वारा सूर्यका ताप और नैशवात्पोद्गमका हास होता है। जीवजगत्के लिये यह दो अवस्थायें प्रयोजनीय हैं।

मेघको फलगणना।

आकाशमें कब कौन मेघ किस तरहका दिखाई देता है, उसका फीसा कल होता है, हमारे पराजरसंहिता आदि शास्त्रोंमें तथा घाघ और सुड्डोंके पद्योंसे उसका बहुत विवरण प्राप्त होता है। पादचाह्य वैधानिक-गण भी इसके सम्बन्धमें कुछ कुछ अनुसन्धान कर चुके हैं। यथा—

सिरस—ऊँचे आकाशमें अत्यन्त ऊपर हम जानिके रजतशुभ्र गर्जनोंकी दीङ्गते देखने पर जानना होगा, कि शीघ्र ही आकाशमें परिवर्तन होगा। प्रौथमकालमें यह घृष्टि होनेका पूर्व लक्षण सूचित करता है। शीतकालमें इस जातिका मेघ देखनेसे यह जान लेना चाहिये, कि शीघ्र ही अधिक मात्रामें तुषारपात होगा। इस मेघके

साथ प्रायः ही दक्षिण-पश्चिम और बहनेवाली वायुके प्रवाहका सम्बन्ध है। इस वायुके संस्पर्शसे सिरस मेघ क्रमशः घनीभूत होता, वायु भी क्रमशः आर्द्र हो जाती है, इसके बाद घृष्टि होती है।

सिरोपय्यूखलस—यह मेघ तापोद्भवका परिचायक है।

इस तरहका मेघकल-विचार यूरोपीय वैज्ञानिकोंकी गवेषणाके अन्तर्भूत है। किन्तु इसके सम्बन्धमें भारतीय पण्डितोंकी गवेषणा ही अधिकतर समीचीन है।

सन् १८६१ ई०में म्यूनिख (Munich) नगरमें इण्टर-नेशनल मिटिरोलजिकल कन्फेरेन्समें स्थिर हुआ, कि मेघ साधारणतः पाँच भागोंमें विभक्त है। जैसे—

(क) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करनेवाले मेघ (Very high in the air)।

(ख) आकाशके उच्चतर प्रदेशमें विचरण करनेवाले मेघ (At a medium light)।

(ग) भूपृष्ठके निकटवर्ती मेघ (Lying low or near earth)।

(घ) वायुके उच्च प्रवाहस्तरस्थ मेघ (In ascending current of air)।

(च) आकार परिवर्तनोग्मुख वाष्प (Masses of vapour changing in form)।

मेघ वाष्पके घनीभूत द्रव्यमान अवस्थामात्र है। दो कारणोंसे वाष्प घनीभूत हो कर मेघके रूपमें परिणत होता है।

(१) वायुका स्तरविशेष शिथिलवत् शीतल हो कर तटस्थानीय जलीय वाष्पोंको न्यूनाधिक परिमाणसे सामर्थ्य जलदाकारमें (Stratus) परिणत कर सकता है।

(२) अथवा आर्द्र वायुराशि शीतल जलीय वाष्प-राशियोंमें प्रविष्ट हो कर उनको गिरिनिम्न मेघमें (Cumulus) परिणत कर सकता है।

मेघतत्त्वविद पण्डितोंने मेघोंकी प्रायः चार भागोंमें विभक्त किया है। इनका नाम और विवरण पहले हो लिखा जा चुका है। यहाँ केवल यही पक्ष है, कि

१) स्ट्रेटस मेघ सुदोर्घ और भाषागमि चक्रवातकी तरह (Horizontally) स्तर स्तरमें व्यवस्थान करते हैं।

(२) क्यूमुलस मेघ पर्यन्ताकार हैं। इनका वायव्युपरपक्ष घनीभूत है।

(३) सिरस (Cirrus) मेघ आकाशके अत्युच्च प्रदेशमें कानाबुलुम-बाननकी तरह व्यवस्थान करते हैं। इनका वायव्य सर्वापेक्ष अल्प परिमाणसे घनीभूत है। इनके निधरण और भी अनेक प्रकार उरपन्न होनेवाले मेघोंके नाम लिखे गये हैं। जैसे—सिरोक्लूडस, स्ट्रेट-क्लूडस, सिरोस्ट्रेटस इत्यादि।

(४) निम्बस (Nimbus) मेघ वृष्टि धारापर्वी हैं। यह मेघ आवागम्य मेघोंसे भूतृष्टसे बहुत निश्चय विचरण करनेवाला है।

अब ठक मेघोंके व्यवस्थिति-व्यवस्थानभेदसे जो ध्रुवी-विभाग किया गया है, अब उनकी उच्चताके सम्यग्धर्मे साधारणता जा सिद्धाले स्थापित हुआ है, चाहे यह प्रकाशित किया जाता है।

(क) पूर्वोक्त चिह्नित मेघध्रुवी साधारणतः १०००० ऊँचे पर विचरण करती हैं। सिरस, सिरो-स्ट्रेटस और सिरोक्लूडस मेघ इसी ध्रुवीके अन्तर्गत हैं।

(ख) निम्बस ध्रुवी मेघ १०००० से ६००० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। जैसे सिरोक्लूडस और सिरोस्ट्रेटस।

(ग) निम्बस मेघमात्रकी ऊँचाई १००० से २०००० गज तक है। स्ट्रेटक्लूडस और निम्बस इसी ध्रुवीके अन्तर्गत हैं।

(घ) उच्च वायु स्तरमें विचरणजाल मेघोंकी निम्न प्रायः १६०० गज ऊँचाई और निम्नकी ऊँचाई ३००० से ५००० गज है। क्यूमुलस और क्यूमुलानिम्बस मेघ इसी ध्रुवीके हैं।

(ङ) मेघमनोमय वायव्य १५०० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। स्ट्रेटस इसी ध्रुवीका है।

वायुके साथ मेघ वृष्टि आदिवा सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। वायुका ताप, वायुका अल्प-ऊर्ध्वस्तर विचरणजाल वायुकी गतिता भी उष्णताके साथ मेघ वृष्टि आदिवा बहुत घनिष्ठता है। अतएव वायुविज्ञान देखते हैं

सब विषयोंकी आलोचना अर्थात् प्रयोजनीय है। मेघमनो-का जो ध्रुवी-विभाग किया गया, उसके सम्बन्धमें आइं भी कोई विशेष रूप निरूपित नहीं हो सके है। इसके सम्बन्धमें आज भी मिटिपरलोजिस्ट्रि (Meteorologist) पण्डितोंने दृष्टेय रचयेना करने काशय्यको है, कि निम्न विषयसे और किस प्रणालीसे आकाशमन्त्रालयमें सर्व-गाला गठित होनी है। मेघके साथ वायुका और वायुकी गतिके सम्बन्ध-विचारमें एक तरहके वैज्ञानिकोंका विशिष्ट आरुष्ट हुआ है। अतो भी ये किसी पण्डितसाक्षर पर नहीं पहुंचे हैं। साधारण रूपक वा किमान और मन्त्र भी अब मेघ देण सूत्रान गृष्टिका अन्तर्गत लया लेते हैं, तब यह निश्चय है, कि वैज्ञानिक विवेकपूर्वसे मासोसंगी करने पर किसी उत्तम सिद्धांत पर पहुंचेंगे। चाहे इसके सम्बन्धमें कुछ संक्षिप्त भाषा दिया जाता है—

(१) स्ट्रेटस मेघकी देण कर समभन्ता होगी, कि ऊर्ध्वधर्मगमनशील वायुका प्रवाह बहुत कम है।

(२) क्यूमुलस मेघ ऊर्ध्वधर्मगमनशील वायु प्रवाहके प्रवाहका परिचायक है। भूतृष्टका ऊपरी भाग गरम हो कर अपने ऊपरकी वायु ऊर्ध्वकी ओर उठती है। इसी वायुके प्रभावसे आकाशका मेघ ऊपर चढ़ता रहता है। मेघस्तर गरम हो कर भी अपने ऊपरकी वायुको ऊर्ध्वकी ओर परिचालित कर सकता है। फलतः वायुवाहक अतएव घनीभूत होनेसे उसमें स्वीकर इस तरहसे जोषित होता है, कि सब जलीयवस्तुको वाह कर मुर्च-किरण भूतृष्ट पर पतित नहीं हो सकता है। यह विकार्य न हो ऊपर वायुवाहिकी उन्नत करती है। निम्नभाग भी भूतृष्ट स्थाप्य रूपमें शीतल होता है। क्यूमुलस मेघ देण कर यह भी अनुमान होता है, कि आर्द्र वायुवाहिकी किसी पर्यन्त प्रतिबन्धकीव्यपत्तकी ओर प्रवर्तित हो रही है। चाहे जिस तरह बनी गये, वायु स्थितियों को ऊर्ध्वधर्मगामी होगी, ऊँचे स्थानके कम प्रवाहसे वायुवाहिकी उन्नत हो चली और चैतना जायेगी। वायु-मिश्रणकी चैतना है, उरताके अनुसार यह शीतल भी हुआ करता है।

थर्मोडायनामिक्स (Thermodynamics) का नाम विज्ञानमें इस विषय पर संघट्टे गालीबना की गई है।

वायुकी यह शैत्य वृद्धि शीतल वायु समिश्रणजनित नहीं है। तापविकोरणयशतः भी नहीं, अथवा ऊर्ध्ववैशिकी संशोध शीलताके कारण भी नहीं है। इस शैत्य-प्राप्तिका हेतु स्वतन्त्र है। सन् १८२६ में वैज्ञानिक पण्डित एसपाईने (Essey) ताप-विज्ञानका नियम आविष्कार किया है, उससे मालूम होता है, कि तापकार्यफलसे विमिश्रित होता रहता है। वायुप्रवाह निहिष्ठ परिमाणसे ऊपर उठने पर शीतल होता है और उसके फलसे वायुमें मिश्रित जलीयवाष्प घनीभूत होता है। मेघ गठनके समय तापराशिमें प्रच्छन्नमायसे विमिश्रित रहता है। मेघयुक्त वायुके निम्नगामी होने पर इसमें प्रच्छन्न ताप प्रकाशित होता है। इसमें विकोरण द्वारा वायुराशिसे खूब कम मात्रामें ताप कम हो जाता है। घृष्ट होनेके समय यदि वायुका प्रच्छन्न ताप कम न हो, तो उक्त वायुके अधोगामी हो जाने पर भूतल पर अत्यन्त उष्ण वायुका प्रवाह अनुभूत होता है। दिनके प्रथम सूर्योत्तापमें और शुष्क वायु प्रवाहमें अनेक समय मेघ गठित होते न होते हो वाष्पीभूत हो जाता है। इसी वायुको कृष्णवायु कहते हैं। किन्तु वायुके आर्द्र होने पर इस वायुराशिमें सूर्योत्तापमें जो परियत्तन होता रहता है, वह परियत्तन अधो-संघटनके अनुकूल है।

वायुके जलीय वाष्पका विस्तृत विवरण प्रकाशित करने पर घृष्ट, शिला और शिशिरराशिकी घाते विस्तृत रूपसे लिखनी पड़ेगी। किन्तु यहाँ उसका स्थानामात्र है। इन सब विषयोंको उन उन शब्दोंकी ब्याख्यानमें देखो।

हाइड्रोमिटरलज्जी और हाइगोमेट्री।

वायुके जलीयवाष्पके सम्बन्धमें जो सविस्तार आलोचना देखना चाहें, उनको चाहिये, कि वे हाइड्रोमिटरलज्जी (Hydrometeorology) और हाइगोमेट्री (Hygrometry)के सम्बन्धमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंका पाठ करें। हाइड्रोमिटरलज्जी विज्ञानमें कुहरा, मेघ, घृष्ट, सुपाप, मिगिर, जिला अ.दि.का विस्तृत विवरण लिखा हुआ है। हाइगोमिटरलज्जीमें घृष्ट शब्दमें भी इस विज्ञानके सम्बन्धमें आलोचना देखनी चाहिये। हाइगोमिटर (Hygrometer) यन्त्र द्वारा वायुराशिके

विविध अवस्थागत जलीयवाष्पकी स्थितिस्थापकता आदिका परिमाण कर उसके सम्बन्धमें आलोचना करना ही हाइगोमेट्री नामक विज्ञानका उद्देश्य है। इन दोनों विज्ञानोंमें वायुके जलीयवाष्प सम्बन्धीय विविध तथ्य जाने जा सकते हैं। आधुनिक मेटेयरलज्जी (Meteorology) सम्बन्धीय ग्रन्थोंमें भी इसके सम्बन्धमें बहुतरे सूक्ष्म तथ्य लिखे जा रहे हैं। सिधा इसके क्लासिफिकेशन (Classification) सम्बन्धीय गवेषणामें वायुके जलीय वाष्पका कुछ कुछ विवरण लिखा गया है। लण्डनके मेटेयरलज्जिके आफिससे भी इस विषयके बहुतरे ग्रन्थ निकल रहे हैं। सन् १८८५ ई.में वैज्ञानिक पण्डित फेर्रेलेने Recent Advances in Meteorology नामक जिस ग्रन्थकी रचना की है, उसमें भी इस विषयके अनेक आधुनिक सिद्धान्त ज्ञाने जा सकते हैं।

हमने लेखके आरम्भमें कहा है, कि वायुमण्डल नाइट्रोजन, ऑक्सिजन, जलीयवाष्प, कार्बोनिक एसिड गैस, आर्गोनिया, आरगन, निबन, हेलियम, क्रिपटन और निरि-तशय कम मात्रामें हाइड्रोजन और हाइड्रो-कार्बन पदार्थका एक मिश्रण पदार्थ है। इसमें नाना प्रकारके धोत्राणु और धूलि आदि भी उड़ती फिरती है। किन्तु वे सब पदार्थ वायुके अङ्गीय नहीं। वायुके इन सब उपादान-पदार्थोंमें जलीय वाष्पका परिमाण चिरचञ्चल है। दिन, काल और उष्णता आदि भेदसे जलीय वाष्पका पथेष्ट तारतम्य हो जाता है। सिधा इसके अन्याय्य उपादानोंमें वैसा तारतम्य नहीं होता। हमने पहले ही कहा है,—कि वायुमें

ऑक्सिजन	२३.१६ भाग
नाइट्रोजन और आरगन	७६.७७ भाग
कार्बोनिक एसिड	४ भाग
जलीय वाष्प	अनिर्दिष्ट
आर्गोनिया और अन्याय्य वाष्प पदार्थ	०.०१

मात्रामें विद्यमान हैं। हमने अब तक इन सब उपादानोंमें ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड और जलीय वाष्पके सम्बन्धमें आलोचना की है। वायुमें जो आर्गन (Argon) निबन (Neon), हेलियम (Helium) और क्रिपटन (Krypton) नामके नयाविष्कृत मूल

१ द्रेट्स मेघ सुदीर्घ और आकाशमें चक्रवाली तरह (Horizontally) स्तर-स्तरमें अवस्थान करते हैं।

(२) क्यूम्यूलस मेघ पर्वताकार हैं। इनका वायु तुषारवत् घनीभूत है।

(३) सिरस (Cirrus) मेघ आकाशके अत्युच्च प्रदेशमें काशुकुसुम-काननकी तरह अवस्थान करते हैं। इनका वायु सर्वापेक्षा अल्प परिमाणसे घनीभूत है। इनके मिश्रणसे और भी अनेक प्रकार उरपन्न होनेवाले मेघोंके नाम लिखे गये हैं। जैसे—सिरोक्यूमलस, द्रेट-क्यूमलस, सिरोद्रेटस इत्यादि।

(४) निम्बस (Nimbus) मेघ वृष्टि धारावर्षी हैं। यह मेघ अग्राग्य मेघोंसे भूगुच्छसे बहुत निकट विचरण करनेवाला है।

अब तक मेघोंके अवस्थिति-अवस्थानभेदसे जो श्रेणी-विभाग किया गया है, अब उनकी उच्चताके सम्बन्धमें साधारणतः जो सिद्धान्त स्थापित हुआ है, नीचे यह प्रकाशित किया जाता है।

(क) पूर्वोक्त चिह्नित मेघश्रेणी साधारणतः १००० ऊँचे पर विचरण करती है। सिरस, सिरो-द्रेटस और सिरोक्यूमलस मेघ इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

(ख) चिह्नित श्रेणी मेघ ३०००से ६००० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। जैसे सिरोक्यूमलस और सिरोद्रेटस।

(ग) चिह्नित मेघमालाकी ऊँचाई १००० से २००० गज तक है। द्रेटक्यूमलस और निम्बस इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

(घ) उच्च वायु स्तरों विचरणशील मेघोंकी मिति प्रायः १४०० गज ऊँची और शिखरकी ऊँचाई ३००० से ५००० गज है। क्यूमलस और क्यूम्युनिम्बस मेघ इसी श्रेणीके हैं।

(ङ) मेघगठनोन्मुख वायु १५०० गजकी ऊँचाई पर विचरण करता है। द्रेटस इसी श्रेणीका है।

वायुके साथ मेघ वृष्टि आदिका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। वायुका ताप, वायुका अधःऊर्ध्वस्तर विचरणशील वायुकी शोभता भी उष्णताके साथ मेघ वृष्टि आदिका बहुत घनिष्ठता है। अतएव वायुविज्ञान-लेखमें इन

सब विषयोंकी आलोचना अतीव प्रयोजनीय है। मेघमालाका जो श्रेणी-विभाग किया गया, उसके सम्बन्धमें आज भी कोई विशेष तथ्य निरूपित नहीं हो सका है। इसके सम्बन्धमें आज भी मेटियरलजीविद (Meteorologist) एण्डरसन यद्येष्ट गवेषणा करने आरम्भ को है, कि किस नियमसे और किस प्रणालीसे आकाशमण्डलमें मेघमाला गठित होती है। मेघके साथ वायुका और धारकी गतिके सम्बन्ध-विचारमें एक तरहके वैज्ञानिकोंका विश्व आकृष्ट हुआ है। अभी भी ये किसी एक सिद्धान्त पर नहीं पहुँचे हैं। साधारण रूपक या किसान और मजदूर भी जब मेघ देख तूफान वृष्टिका अन्दाजा लगा लेते हैं, तब यह निश्चय है, कि वैज्ञानिक विशेषरूपसे आलोचना करने पर किसी उत्तम सिद्धान्त पर पहुँचेंगे। नीचे इसके सम्बन्धमें कुछ संक्षिप्त मर्म दिया जाता है—

(१) द्रेटस मेघको देख कर समझना होगा, कि ऊर्ध्वगमनशील वायुका प्रवाह बहुत कम है।

(२) क्यूम्यूलस मेघ ऊर्ध्वगमनशील वायु प्रवाहके प्रवाहका परिचायक है। भूगुच्छके ऊपरी भाग गरम हो कर अपने ऊपरकी वायु ऊर्ध्वकी ओर उठती है। उसी वायु के प्रभावसे आकाशका मेघ ऊपर चढ़ता रहता है। मेघस्तर गरम हो कर भी अपने ऊपरकी वायु को ऊर्ध्वकी ओर परिचालित कर सकता है। फलतः वायुराशि अत्यन्त घनीभूत होनेसे उसमें सौरकर इस तरहसे शोषित होता है, कि सब जलीयकणाको पार कर सूर्यकिरण भूगुच्छ पर पतित नहीं हो सकती है। यह विकीर्ण न हो ऊपर वायुराशिको उत्तत करती है। निम्नभाग और भूगुच्छ सिन्धु छायामें शीतल होता है। क्यूम्यूलस मेघ देख कर यह भी अनुमान होता है, कि आर्द्र वायुराशि किसी पर्वतकी प्रतिबन्धकयोग पदार्थकी ओर प्रवाहित हो रही है। चाहे जिस तरह पर्वत न हो, वायु जितनी ही ऊर्ध्वगामी होगी, ऊँचे स्थानके कम प्रचापमें वायुराशि उतनी ही चारों ओर फैलती जायेगी। वायुजितनी फैलता है, उसाके अनुसार वह शीतल भी हुआ करता है।

थर्मोडायनामिक्स (Thermodynamics) या ताप विज्ञानमें इस विषय पर यद्येष्ट आलोचना की गई है।

वायुको यह शैत्य वृद्धि शीतल वायु सम्मिश्रणजनित नहीं है। तापविकीरणवशतः भी नहीं, अथवा ऊर्ध्ववेद्यको स्वभांय शीतलाके कारण भी नहीं है। इस शैत्य-प्राप्तिका हेतु स्वतन्त्र है। सन् १८२६ ई०में वैज्ञानिक पण्डित पेसपार्देने (Esajy) ताप-विज्ञानका नियम आविष्कार किया है, उससे मात्तम होता है, कि तापकार्यफलसे विमिश्रित होता रहता है। वायुप्रवाह निर्दिष्ट परिमाणसे ऊपर उठने पर शीतल होता है और उसके फलसे वायुमें मिश्रित जलीयवाष्प घनीभूत होता है। मेघ गठनके समय तापराशिमें प्रच्छन्नभाषसे विमिश्रित रहता है। मेघयुक्त वायुके निम्नगामी होने पर इसमें प्रच्छन्न ताप प्रकाशित होता है। इसमें विकीरण द्वारा वायुराशिसे खूब कम मात्रामें ताप कम हो जाता है। घृष्ट होनेके समय यदि वायुका प्रच्छन्न ताप कम न हो, तो उक्त वायुके शोषी गामी हो जाने पर भूपृष्ठ पर अत्यन्त उष्ण वायुका प्रवाह अनुभूत होता है। दिनके प्रारंभ सूर्योत्तापमें और शुष्क वायु-प्रवाहमें अनेक समय मेघ गठित होते न होते ही वाष्पीभूत हो जाता है। इसी वायुको भूभावायु कहते हैं। किन्तु वायुके आर्द्र होने पर इस वायुराशिमें सूर्योत्तापमें जो परिवर्तन होता रहता है, वह परिवर्तन शोषी संघटनके अनुकूल है।

वायुके जलीय वाष्पका विस्तृत विवरण प्रकाशित करने पर घृष्ट, शिला और शिगिरराशिकी घाते विस्तृत रूपसे लिखनी पड़ेगी। किन्तु यहाँ उसका स्थानाभाव है। इन सब विषयोंकी उन उन रुब्रोंकी ब्याख्यामें देखो।

हाइड्रोमिटरलज्जी और हाइग्रोमेट्री।

वायुके जलीयवाष्पके सम्बन्धमें जो सविस्तार भावोचना देवना चाहें, उनको चाहिये, कि वे हाइड्रोमिटरियलज्जी (Hydrometeorology) और हाइग्रोमेट्री (Hygrometry) के सम्बन्धमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंका पाठ करें। हाइड्रोमिटरियलज्जी विज्ञानमें कुहरा, मेघ, घृष्ट, तुषार, शिगिर, शिला भ.दि.का विस्तृत विवरण लिखा हुआ है। हाइड्रोमिटरियलज्जीमें घृष्ट जन्ममें भी इस विज्ञानके सम्बन्धमें भावोचना देखनी चाहिये। हाइग्रोमिटर (Hygrometer) पञ्च ठारा मादुराजिके

विविध अवस्थागत जलीयवाष्पकी स्थितिरुपापकता आदिका परिमाण कर उसके सम्बन्धमें भावोचना करना ही हाइग्रोमेट्री नामक विज्ञानका उद्देश्य है। इन दोनों विज्ञानोंमें वायुके जलीयवाष्प सम्बन्धीय विविध तट्य जाने जा सकते हैं। वायुनिक मेटियरलज्जी (Meteorology) सम्बन्धीय ग्रन्थोंमें भी इसके सम्बन्धमें बहुतेरे सूत्र तत्त्व लिखे जा रहे हैं। सिधा इसके क्लासिफिकेशन (Glimatology) सम्बन्धीय गवेषणामें वायुके जलीय वाष्पका कुछ कुछ विवरण लिखा गया है। लण्डनके मितियरलजिकेल आर्गिससे भी इस विषयके बहुतेरे ग्रन्थ निकल रहे हैं। सन् १८८५ ई०में वैज्ञानिक पण्डित फेरैलेने Recent Advances in meteorology नामक जिस ग्रन्थकी रचना की है, उसमें भी इस विषयके अनेक आधुनिक सिद्धान्त जाने जा सकते हैं।

हमने लेखके आरम्भमें कहा है, कि वायुमण्डल नाइट्रोजन, अक्सिजन, जलीयवाष्प, कार्बोनिक् एसिड गैस, आमीनिया, आरगन, निबन, हेलियम, क्रिपटन और निरि-तशय कम मात्रामें हाइड्रोजन और हाइड्रो-कार्बन पदार्थका एक मिश्रण पदार्थ है। इसमें नाना प्रकारके योजाणु और धूल आदि भी उड़ती फिरती है। किन्तु ये सब पदार्थ वायुके अङ्गीय नहीं। वायुके इन सब उपादान-पदार्थोंमें जलीय वाष्पका परिमाण चिरचञ्चल है। दिन, काल और उन्नता आदि भेदसे जलीय वाष्पका घण्टे तारतम्य हो जाता है। सिधा इसके अन्याय्य उपादानोंमें वैसा तारतम्य नहीं होता। हमने पहले ही कहा है,—कि वायु में

अक्सिजन	२३.१६ भाग
नाइट्रोजन और आरगन	७६.७७ भाग
कार्बोनिक् एसिड	४ भाग
जलीय वाष्प	अनिर्दिष्ट
आमीनिया और अन्याय्य वाष्प पदार्थ	०.०१

मात्रामें विद्यमान हैं। हमने अब तक इन सब उपादानोंमें अक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक् एसिड और जलीय वाष्पके सम्बन्धमें भावोचना की है। वायु में जो आर्गन (Argon), निबन (Neon), हेलियम (Helium) और क्रिपटन (Krypton) नामके नवाविष्कृत सूत्र

पदार्थ हैं, उनके सम्बन्धमें कोई बात नहीं कही गई है। फलतः इनके गुणादिके सम्बन्धमें अब भी कोई विशेष तथ्य मालूम नहीं हुआ है। आर्गेन और नियन—इन मूल पदार्थोंको मन् १८६५ ई०में वैज्ञानिक एण्ड्रियस रासे और रामजेने वायुविच्छेद किया था। सन् १८६८ ई०में एण्ड्रियस रामजे और ट्रेमसेनने क्रिपटन नामक नये वायुविच्छेद मूल पदार्थकी खोज की थी। अभी तक इन पाँच मूलपदार्थोंके सम्बन्धमें कोई भी विशेष तथ्य नहीं मालूम हुआ है। अक्सिजनका घनत्व १६, नाइट्रोजनका १४, हाइड्रोजनका १ और आर्गेनके घनत्वका परिमाण १६.६ है। डेवेर (Dev. r) यद्यपि अन्यान्य वायव्य पदार्थोंसे हेलियमका पृथक् करनेमें समर्थ हुए हैं, किन्तु इनके गुणोंके सम्बन्धमें कुछ भी जान नहीं सके हैं। सुतरां इसके सम्बन्धमें आज भी कोई बात लिखनेके उपयुक्त तथ्य नहीं मालूम हुआ है। हम यहाँ आमोनियाकी बात लिख कर वायुके उपादान द्रव्यका रूप और धर्म आदिके सम्बन्धमें अपने प्रस्तावनाका उपसंहार करेंगे। आमोनिया एक उग्र गन्धयुक्त वर्षाहीन अद्रव्य वायव्य है। विशुद्ध वायुमें आमोनियाका परिमाण बहुत कम है। दश लाख भाग वायुमें एक भागसे अधिक आमोनिया नहीं रहता। नाइट्रोजन और हाइड्रोजन संश्लिष्ट जीवज पदार्थ पच जाने पर उससे आमोनिया वायव्य उत्पन्न हो कर वायुके साथ मिल जाता है। कोपला जलनेके समय भी यह उत्पन्न होता है। मोरो, शय समाधि, और जलाभूमिसे हो यह वायव्य उत्पन्न होता है। उद्भिद्-जगत्तमें आमोनियाकी आवश्यकता नहीं है। ये अपनी देह पुष्टिके लिये वायुके आमोनियासे नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। वायुमें सलफाइरेटेड हाइड्रोजन आदि और भी दो एक वायव्य पदार्थ अल्प अल्प परिमाणसे कभी कभी विमिश्रित अवस्थामें देखे जाते हैं। इनके विस्तृत विवरण प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं। इससे यह विषय छोड़ दिया जाता है।

प्राकृत विज्ञान और वायु।

हमने वायुके सम्बन्धमें रसायन-विज्ञान और शरीर विषय-विज्ञानके विषयमें संक्षिप्त रूपसे आलोचना की है। प्राकृत विज्ञानमें वायुके सम्बन्धमें कई यथेष्ट आलोच्य

विषय हैं। ये सब विषय अतीव जटिल और उच्च गणितज्ञानगम्य हैं। विशेषतः इसकी अनेक बातें साधारण पाठकोंको हृदयङ्गम नहीं हो सकतीं। ऐसे विविध कारणोंसे हम अत्यन्त संक्षेपमें वायु सम्बन्धों प्राकृत विज्ञानके कई विषयोंको आलोचना कर इस प्रस्ताव का उपसंहार करेंगे। जो इसके सम्बन्धमें संक्षिप्त विवरण जानना चाहें, उनको अंग्रेजी भाषामें लिनि मेटियरलोजी (Meteorology) और प्नेमेटिक्स (Pneumatics) आदि ग्रन्थोंमें कई विशेष तथ्य मिल सकते हैं। यहाँ और कई विषयोंका उल्लेख किया जाता है।

वायुमण्डलकी सीमा।

वायुमण्डलकी सीमा निर्धारित नहीं हो सकती। उच्च पदार्थविमुक्त आकाशमें कितनी दूर तक फैला हुआ है, इसके सम्बन्धमें प्रथम प्रारम्भमें यद्यपि हमने कुछ जिक्र किया, फिर भी; सूक्ष्म चिन्ताशील वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त यह है, कि सूर्य, चन्द्र और बहुदूरवर्ती तारा मण्डलमें भी वायव्य पदार्थोंकी गतिविधि विद्यमान है। फिर हमारे उपमोक्ष वायुमण्डलके उपादान और अन्यान्य प्रकाशिक वायुमण्डलके उपादान भव्य हो स्वतन्त्र और पृथक् हैं। इसका प्रमाण मिलता है कि हमारे सम्मोक्ष वायुमण्डलकी ऊपरी सीमा एकसौ मीलसे भी अधिक दूरी पर है। बहुदूरवर्ती नक्षत्रालोक-प्रतिकलन, अरुणोद्भालोक तथा प्रदीपालोक और सुदूरवर्ती पतितउलकाका आलोक देख कर वैज्ञानिक उद्योग-विद्योगोंसे स्थिर किया है, कि सैकड़ों मीलके ऊपर भी यह वायुमण्डल विद्यमान है। उसके ऊपर भी जो गति सूक्ष्म वायुमण्डल है, प्रोफेसर थार वस उद्घाटने सन् १६०० ई०के जनवरी महोत्सवमें "Science" नामक मासिक पत्रमें उसके सम्बन्धमें तनिक वैज्ञानिक गामास दिया है। इसका सारोत्तर है। भूपृष्ठमें अनुभूत न होनेका कारण यह है, कि यह सूक्ष्म स्थितिसामर्थ्य (dynamical equilibrium) अवस्थित है।

प्नेमेटिक्स (Pneumatics) - वायुगुण-विज्ञानमें वायुके गुण या धर्मका विस्तृत आलोचना हुई है। वायु गुण-विज्ञान ग्रन्थोंमें वयले, मेरिवट और चार्लस आदि वैज्ञानिकोंकी वायव्य वायु परीक्षाको सूक्ष्म कौशलरहित

अतः वायुचिह्न और गवेयणा या छानका परिचय प्रदर्शित हुआ है।

वायुमण्डलके शैत्योष्णता मान इत्यादिका विवरण।

वायुमण्डलके शैत्योष्णता-मानके (Temperature) सम्बन्धमें बुचन (Buchan) आदि वैज्ञानिकोंने बहुतेरी गवेयणा कर जगत्के प्रत्येक खण्डका विवरण संग्रह किया है और मानचित्रके साथ प्रकाशित किया है। वयोमयान प्रभुतिके साहाय्यमें इस विषयका निर्णय हुआ है। इसके सम्बन्धमें इस समय यथेष्ट गवेयणा चल रही है। सन् १६०० ई०के जनवरी महीनेमें प्रकाशित होनेवाली (Met Jeit) एक मासिक पत्रिकामें सूक्ष्म गवेयणापूर्ण एक उदाहरण प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। जलिय वाष्प-प्रचारके सम्बन्धमें भी इस तरहकी स्थानीय किहुरिस्त और मानचित्रके साथ विवरण प्रकाशित हो रही है। बारोमिटर यन्त्रके साहाय्यसे जगत्के भिन्न भिन्न अंशकी वायुके भारित्वके सम्बन्धमें भी बहुतेरे विवरण संगृहीत हो रहे हैं। इसके द्वारा मेघ, वृष्टि, नूफान और इसके विपरीत आकाशकी निर्मलता आदि विनिर्णयकी यथेष्ट सुविधा है। इस यन्त्रके सम्बन्धमें इसके बाद आलोचना की जायेगी।

वायुका प्रचाप।

वायुका प्रचाप चारों ओर समान भागसे मौजूद है। ऊपरसे भी जैसे वायुराशिका चाप बद्ध रहा है, नीचेकी ओरसे भी इसका चाप घैसे ही ऊपरकी उठता है। निम्नमुख (Downward) चाप अवक्षेपक नामसे और ऊर्ध्वमुख (Upward) चाप उत्क्षेपक नामसे परिचित है। इस प्रचापका अस्तित्व परीक्षासे प्रमाणित किया जा सकता है। पहले अवक्षेपक चापकी परीक्षा प्रदर्शित की रही है—

दोनों मुख खुले एक चौड़ी कांचकी नलिकाके एक मुखकी रबड़की चद्दरमें बन्ध कर और उसे एक रस्मीसे रबड़की चद्दरकी अच्छी तरह बांध देना चाहिये, जिससे खुलने न पावे। पीछे दूसरे मुँह पर मोम लगा कर वायु निकालनेवाले यन्त्रके छेद पर नलिकाकी मजबूतीसे बैठा देना चाहिये। उक्त यन्त्रके सञ्चालन करनेसे पहले वायु निकलती रहेगी। अतएव बाहरकी वायु-

राशिका अवक्षेपक चाप रबड़की चद्दर पर बड़नेसे यह नलिके भीतर दमिल हो जायेगी। इस यन्त्रके अधिक समय तक चालू रहने पर वायुके चापसे रबड़की चद्दर फट जायेगी।

निम्नलिखित परीक्षा द्वारा वायुके उत्क्षेपक चापका विषय जाना जा सकता है। एक कांचका ग्लास जलसे भर कर रखा जाये। एक कागजका छोटा टुकड़ा इसके मुँह पर इस तरह रखा जाये, कि इस कागज और जलके बीच कुछ भी वायु न रह जाये। कागजका टुकड़ा अंगुलियोंसे जरा दबा कर ग्लासकी जड़में उलट दिया जाय; किन्तु ऐसा करने पर भी ग्लासका जल कागजको छेद कर गिर न सकेगा। दूसरा कारण, ग्लासके नीचे वायुराशिका उत्क्षेपक चाप है। कागजको विस्तृति ४ वर्गइंच होने पर ३० सेर परिमित उत्क्षेपक वायुचाप-कागजको ग्लासके मुखमें डेकता है। क्योंकि, आध सेर जलका भार ३० सेर वायु प्रचापकी तुलना पर्याप्त अधिकतम है। किन्तु किसी प्रकार जल और कागज में वायु प्रविष्ट होने पर यह अवक्षेपक और उत्क्षेपक चाप परस्पर प्रतिहत होगा। सुनरा ग्लासका जल अतिरिक्त भारके कारण कागजके साथ अभ्यन्तित होगा।

वायुप्रचापमें इस नियमावलम्बनसे कई तरहके इन्द्रजालका कौतुक भी दिखाया जाता है। सहस्रछिद्र घड़े में जल लाके घटना भी सहज ही सम्पन्न होती है। घड़े के निम्नदेशमें बहुछिद्र रहने पर भी यदि अवक्षेपक वायुका चाप बन्ध कर दिया जाये अर्थात् घड़ा जलमें डुबा रहने पर ही यदि उमका मुँह अच्छी तरहसे बन्ध कर दिया जाये या पहले हीमें उसके मुखमें एक ढरुना गोंदसे बन्ध कर दिया जाय और उम ढरुनेमें एक छिद्र किया जाय और जलसे ऊपर उठानेके समय अंगुलीके सहारे छिद्र हट करके बन्ध कर दिया जाये, तो उमके नीचेके सहस्र छिद्रमें भी जल नहीं गिरेगा। परीक्षा द्वारा यह प्रमाणित हुआ है, कि चारों ओर ही वायुका चाप समस्तस्थित भावमें विद्यमान है। वायु निकालनेके यन्त्र द्वारा एक टोचके कनक्षरमें वायु-निकलने पर और उसके भीतर वायु प्रवेश करनेका कोई

उपाय न रहने पर वाहरकी वायु के चापसे कनस्तरका 'पार्थ शब्द' के साथ भीतरकी ओर धस जायेगा।

वायुको तरल बनाना (The Lequification of gases)।

वायुको तरल बनानेके लिये बहुत दिनोंसे चेष्टाये हो रही थी। किन्तु अक्सिजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजनको पारधात्य प्राचीन वैज्ञानिक किसी तरह इस अवस्थामें ला न सके। इसीलिये इनको नित्य वायु (Permanent-gas) कहा जाता था। सुविधात वैज्ञानिक फाराडेने (Faraday) प्रमाणित किया है, कि वायुके २७ परिमित प्रचापसे और ११० डिग्री शैतो-ष्णतामानसे भी उक्त ये तीनों वायुय पदार्थ तरल नहीं हुए। वैज्ञानिक पण्डित नेटटर (Natterer) वायु मण्डली ३००० परिमित प्रचापमें मो साफल्य लाभ नहीं कर सके। सन् १८७७ ई०में सुपण्डित कैलोटेट Kailletet और पिकेटेने (Pictet) इस विषयमें पहले पहल सफलता प्राप्त की। पिकेटेटकी परीक्षासे अक्सिजनके वायुमें वायुका आकार धारण किया था। किन्तु पिकेटेटने अक्सिजनको जलप्रन्तरल बनाया था। इसके बाद वब्लेइस्की (Von Wroblewsky) और ओल्जोइस्की (Olzewosky) अक्सिजन, नाइट्रोजन और कार्बोनिक प्पसाइडकी तरल बनानेमें समर्थ हुए हैं। प्रोफेसर डेवारने (Dewar) इसके सम्बन्धमें परीक्षाये की है। तरलीकृत वायु जलवन्तरल हो जाती है। यह जलकी तरह स्पष्ट है और इसकी जलकी तरह एक पात्रसे दूसरे पात्रमें ढाला जा सकता है। यह अत्यन्त शीतल, बर्फसे भी ३४४°C के परिमाणसे भी शीतल है। तरल वायु इनती शीतल है, कि बरफको उष्णता भी इसको साथ नहीं होती। बरफमें तरल वायु संरक्षित होने पर यह 'फट फट' कर चूरतो रहती है। बालकोहल आदि तरल पदार्थ पहले किसी तरह कठिन अवस्थामें परिणत नहीं किये जा सकते थे। किन्तु तरल वायुके संपर्कसे ये सब पदार्थ भी अब कठिन हो जाते हैं। इसकी इतनी अधिक शीतलता मनुष्योंके लिये भी असह्य है। जहां तरलवायु संपृष्ट होती है, वह स्थान अग्नि-पक्ष भुञ्जस जाता है। जोयदेहमें अति शैत्य और उष्णताकी क्रिया प्रायः एक ही तरहकी दिवाई देती है।

वायुका तरल बनाना इस समयके वैज्ञानिकोंका एक अद्भुत आविष्कार है। पहले तरलतासाधनमें बहुत धन खर्च होता था। इस समय अणुशक्ति 'फन' करनेमें ही वायुकी तरलता साधित हो रही है। आशा है, कि इससे मनुष्यके कितने ही काम होंगे।

वायुकी धूलिका।

वायुमण्डलके अनेक उच्च प्रदेश तक धूलिकाणि परिलक्षित होती हैं। इस समयके वैज्ञानिकोंने परीक्षा कर स्थिर किया है, कि वायुमें धूलिकणसमूह है। इसीलिये वायुमण्डलमें जलीय वायु संक्षिप्त हो कर मेघकी उत्पत्ति हो सकती है। वायुराशिमें दिवाई देनेवाली धूलिकणा हो जलीय वायु विन्दुकी विश्रामाधार है। यह विश्रामाधार न रहनेसे मेघोत्पत्ति असम्भव हो जाती। पृथ्वीके साथ साथ धूलिकणा गगनमण्डलसे गिर पड़ती है, इससे वायुराशि निर्माज हो जाती है।

वायु और शब्दविज्ञान।

शब्दकी गति वायु द्वारा साधित होती है। वायु शब्दका परिचालक है। वायु न रहनेमें हम कोई शब्द सुन नहीं सकते। सन् १७०५ ई०में वैज्ञानिक पण्डित होक्सबी (Howksbee) वायुके साथ शब्दका यह सम्बन्ध यन्त्रादिके माहात्म्यमें परीक्षा कर सुमिद्धान्तमें उपनोत किया। उनके यन्त्रके साथ एक घण्टा घटिका यन्त्रके घण्टेकी तरह लटकता है। इस यन्त्रके साथ एक धातव नल संयुक्त रहना होता है। यह नल कानके साथ इस भावसे जोड़ दिया जाता है, कि कानमें वायु प्रवेश न कर सके। वायु निकालनेवाले यन्त्रसे उस यन्त्रकी वायु निकाल कर उसमें घण्टेका शब्द करने पर शब्द सुनाई नहीं देता। फिर इसमें वायु प्रवेशके अनुगतसे शब्दकी स्फुटताका तारतम्य होता है। परीक्षा कर देया गया है, कि वायुके प्रचापके मूलाधिक्यश शब्द-धुतिक भी मूलाधिक्य होता रहता है। जितना ही ऊपर बढ़ा जाये, वायुका प्रचाप उतना उच्च होता जाता है। प्रचापको लघुताके अनुसार शब्दकी स्फुटताकी भी उसी परिमाणसे कमी होती रहती है। लघुतर वायु चापविशिष्ट स्थलमें अति निकटवर्ती तोषकी गज्जत या पटाघेके शब्दकी तरह सुनाई देती है।

यन्त्रविशेषों में मंचद वायुके कम्पन (Vibration of air) द्वारा अनेक तरहके वाद्ययन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। घंटी, शङ्ख, सिगा, तुम्ही और अन्यान्य बहुतोंरे वाद्ययन्त्रोंको सृष्टि हुई है। इन सब यन्त्रोंके मध्यस्थित वायु राशि ही शब्दउत्पादनकी कारण है। यन्त्रके वांस, काठ या गीतल आदि केवल शब्द भङ्गार परिवर्तनका सहायमात्र है। शब्दविज्ञानमें वायुके इस कृतिरूपके सम्बन्धमें बहुत गवेषणा और गणित-प्रक्रियासाध्य सिद्धान्त दिखाई देता है। गैस हारमोनियम एक तरहका अद्भुत वाद्ययन्त्र है। फोफले का गैस या हाइड्रोजन गैस, इस वाद्ययन्त्रका वाद्यक है। यन्त्र इस तरहसे बना है, कि उसके ग्लासनालिकाओंमें गैस रख कर यह गैस प्रदर्शित कर देने पर उससे जो वायु प्रवाहित होती है, उससे ही यन्त्रमें अद्भुत गीतिध्वनि उठा करती है। इस तरहके वाद्ययन्त्र अंग्रेजोंमें Singing flames के नामसे विषयान्त है। घेवल यन्त्रयूत वाद्य-वाद्य वाद्य ही इस शब्दका उपादान है।

वायुशब्दकी प्रबल परिचालक है। डाक्टर टिएडलने भी प्राचीन पण्डित हफसबोके पदाङ्कका अनुसरण कर इसके सम्बन्धमें बहुतोंरी परीक्षाये को है। डाक्टर टिएडलने रायल् इन्स्टीट्यूशनमें शब्दके सम्बन्धमें जो व्याख्या की थी, उसमें उन्होंने हफमलीके प्रस्तुत किये हुए यन्त्रकी तरह एक यन्त्रके साहाय्यसे वायुके साथ शब्दका सम्बन्ध बहुत सुन्दररूपसे दिखलाया है। एक वायु निकालनेवाले यन्त्रके वास निर्मित साधारण पर एक घण्टा रख वायु निकालनेवाले यन्त्र द्वारा उसको वायु निकाल लेते हैं, इस अवस्थामें इसके बीचके घण्टे-की यथेष्ट रूपसे दिलाने पर भी कोई शब्द सुनाई नहीं देता। इसके बाद उन्होंने इसको हाइड्रोजन वाद्य-से भर दिया। हाइड्रोजन वाद्य वायुकी अपेक्षा १४ गुना लघुतर है। इससे बहुत यत्नके बाद धोतुवर्ग इसका भवि भव्य शब्द सुन सके। फिर वे उसको वायुशून्य कर घण्टा धजाने लगे, श्रोतागण बहुत निकट जान लगा कर भी कोई शब्द सुन न सके। इसके बाद जब वे अलग अलग वायु प्रविष्ट करा कर घण्टा दिलाने लगे, तब वायुके घनत्वको दृष्टिके अनुपात वे

शब्द कमजा ही परिस्फुट रूपसे श्रुत होने लगा। इसी-लिये ही महर्षि कणाद शब्दके साथ वायुका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, हजारों वर्ष पहले इस सिद्धान्तको सूत्रा-कारमें संस्थापित कर गये हैं।

वायुका अस्तित्व अतुमव और प्रभाव।

वायु हमारी आँखोंसे दिखाई न देने पर भी हम इसके अस्तित्वको कई तरहसे अनुभव करने हैं। हम वायुके प्रवाहसे समझ सकते हैं, कि हवा बह रही है। हमारी देहमें जब वायु स्पर्श करती है, तब अनायास ही हम समझ जाते हैं। सरोवरकी मृदुल वीचिमालामें—समुद्र-की उच्चाल तरङ्गमें—कुसुमकाननमें सलज्जल शरीरोंके मुकी-मल पत्रके सिन्ध आह्वानमें और प्रलयङ्कर प्रमञ्जनके भाम भयङ्कर सृष्टिसंहारक आस्फालनमें—सर्वत्र ही वायुका अस्तित्व परिलक्षित होता है। अन्य जड़ पदार्थोंमें जिस तरह प्रतिरोधिका शक्ति है, वायु लघुतर होने पर भी जैसे ही इसमें भी प्रतिरोधिका शक्ति है; परिचालिका शक्ति भी है। वायु अनन्त शक्तिशाली है और इसका गुण भी अनन्त है। मानवीय विज्ञान अभी इसका लेशमात्र भी ज्ञाननेमें समर्थ नहीं हुआ है।

वायुप्रवाह।

पहले ही कहा गया है, कि वायुमें तरल पदार्थके सब तरहका धर्म विद्यमान है। इसीलिये उसको तरल पदार्थोंमें गणना होती है। जिस नियमसे तरलपदार्थकी गति नियन्त्र होती है, वायु भी कई अंशमें उसी नियमके अधीन है। किन्तु प्रमेद इतना ही है, कि अन्यान्य तरल-पदार्थोंमें अन्तराकर्षण अपेक्षाएत दृढ़ है, किन्तु वायुमें यह अन्तराकर्षणशक्ति बहुत लघु है। इसी कारणसे वायु अन्यान्य तरल पदार्थोंकी अपेक्षा सज्ज ही स्फोत होती है; अन्यान्य तरल पदार्थमें दृढ़तायन घेनी स्फोति-त होती।

तरल पदार्थका साधारण एक धर्म यह है, कि यह सर्वत्र ही समोच्चता सम्पादन करता है। किसी कारण यज इस समोच्चतामें विघ्न होनेसे यह स्वाभाविक धर्मा-नुसार एक बार आन्दोलित हो कर फिर समोच्चताको रक्षामें यत्नशील होता है। फिर यह ज्ञातसे संकुचित और तापसे स्फोत वा विषयित्व होता रहता है। भातध

दृढ़ पदांशपेक्षा सरल पदांशमें ही उष्णताजनित वृद्धि अधिक परिमाणसे दिखलाई देती है। वायु तरल पदांशों में क्षति सूक्ष्म है। इसीलिये प्रोपममें यह स्फोट होती है।

वायु स्वभावतः स्थिर भावसे पृथ्वीपृष्ठ पर सर्वत्र फैली हुई है। यदि किसी कारणसे किसी प्रदेशमें सूक्ष्म चाप अधिक हो, अथवा दावानल या अन्य किसी कारण-वशा यह प्रदेश अधिक उत्तप्त हो, तो शोकोक प्रकारसे यह तुरत हो स्फोट हो कर पार्श्ववर्ती वायुकी अपेक्षा बहुत हल्की हो जाती है। वायुधर्मके अनुसार यह ऊपर उठने लगती है। फिर प्रथमोक्त नियमके अधीन दूसरे दिक्स्थित शीतल और स्थूल वायु लघुवायु द्वारा परित्यक्त स्थानकी पूर्ण करती हुई उसी ओरको दौड़ती है। इस तरह उपर्युक्त दो स्थिर वायु निरन्तर सञ्चालित हो कर मन्द वायु, घुर्णितवायु (ववण्डर) और आंधी आदि उत्पादन करती रहती हैं।

वायु प्रति घण्टेमें आध कोस भ्रमण करती है, किन्तु यह गति हम उपलब्धि नहीं कर सकते। जो वायु प्रति घण्टे २ या २½ कोस भ्रमण करती है, उसका नाम मन्द वायु है। चौकोन एक हाथ परिमित स्थानमें यह वायु जिस वेगसे आहत होती है, उसका भार एक छटाँक वजनके अनुरूप है। प्रति घण्टेमें जो वायु ५७ कोस भतिक्रम कर सकती है, उसका नाम तेजो वायु है। यह वायु विशेष तेजोवन्त दानेसे घण्टेमें १०१५ कोस तक जा सकता है। उस समय उसके वेगका परिमाण चौकोन एक हाथका ३४ सेर होता है। सामान्य आंधी प्रति घण्टे पचीस या तीस कोस तक चली जाती है। इस समय उसके वेगका परिमाण प्रायः १२ सेर तक होता है। तूफान या आंधी सब समय एक समानसे नहीं आती। इस कारण इसके सम्बन्धमें कोई साधारण नियम निरूपित नहीं हो सकता, जो कहा गया, यह सामान्य आंधीके लिये स्थूल अनुमान है।

पृथ्वीके सुमेरु और कुमेरु (North and South Pole) केंद्र अत्यन्त शीतल हैं। उक्त स्थानद्वयसे जितने निरक्ष वृत्त या ध्रुवरेखाकी ओर अग्रसर हुआ जाता है, उतने ही प्रोपमकी अधिकता उपलब्धि होती है। इस कारण दोनों केंद्रोंसे निरक्षवृत्ताभिमुख दो वायु प्रवाहित होती हैं।

फलतः निरक्षवृत्तके सन्निकट उत्तम वायु ऊपर उठ कर ऊँचाईकी शीतल वायुसे मिल कर शीतल हो कर फिर केंद्रसे आई वायुका स्थान पूर्ण करनेके लिये केंद्रकी ओर दौड़ती है। इस तरह पृथ्वीके सन्निकट केंद्रसे निरक्षवृत्ताभिमुख दो वायुका प्रवाह और आकाशके ऊर्ध्वदेश हो कर इस तरहके दो वायु प्रवाह निरन्तर निरक्षदेशसे केंद्राभिमुख गमन करता है। इस वायु-प्रवाह-चतुष्टयकी कभी निवृत्ति नहीं होती। इसीसे इसको 'नियतवायु' कहते हैं।

सुमेरु केंद्रसे इस नियत वायुका जो प्रवाह परिचालित होता है, उसकी गति उत्तरमुखी है। किन्तु प्रत्यक्ष दृष्टिसे यह विशेष दृष्टिगोचर नहीं होता वरं ऐसा मालूम होता है, कि ईशानकोण या अनिकोणसे ही यह वायु आई है। ध्रुवीक पृथ्वीकी स्वभाविक गति पूर्वकी ओर है और उसका वेग बड़ा प्रबल है। यह प्रायः १ हजार ज्योतियों कोसस्थानमें व्याप्त हो कर प्रति घण्टेमें परिभ्रमण करती है।

अपवास्त आंधी आते रहने पर भी वायु कभी एक सी या सवा सी कोससे अधिक स्थानमें परिभ्रमण नहीं कर सकती। इससे सुस्पष्ट रूपसे समझमें आता है, कि उत्तर या दक्षिण ओरसे आंधी उठ कर चलनेसे पृथ्वीके सम्बन्धमें उसकी गति ऋतु नहीं रहेंगी और निरक्षवृत्त देशके लोग उस आंधीकी ईशान या अनिकोणसे आई हुई समझेंगे। पहले कही हुई नियत वायुका वेग आंधीके वेगकी अपेक्षा बहुत हल्का है। अतः यह पृथ्वीकी अवस्था और गतिके अनुसार स्वभावतः ही ईशान और अनिकोणागत होता है। इस वायु द्वारा समुद्रपथसे वाणिज्य-जहाजके आनेमें विशेष सुविधा होती है। इससे मल्लाह इसका पउय-वायु (Trade winds) कहा करते हैं।

सूर्योत्तापसे जलकी अपेक्षा स्थल भाग ही अधिक उत्तप्त होता है। सुनरां पृथ्वीके जलाकीर्ण भागसे जिस भागमें स्थल अधिक है, उसी स्थानमें अधिक उष्णता अनुभूत होती है। पृथ्वीकी अयस्थाके अनुसार हम जान सकते हैं, कि निरक्षवृत्तकी दक्षिण ओरकी अपेक्षा उत्तर ओर ही स्थलका भाग अधिक है। इसीलिये निरक्ष वृत्तका स्थान अधिक गर्म नहीं मालूम हो कर उसके

सात अंश उत्तर अधिक उष्णता उपलब्धि होती है। इस स्थानके दोनों पार्वतों में प्रायः ५ अंश परिमाण स्थान वायु द्वारा उत्तप्त हो कर ऊपर जाया करता है और उस स्थानको संपूर्ण करनेके लिये पूर्वोक्त वाणिज्यवायु प्रवाहित होती है। किन्तु पृथ्वीकी गतिकी यकतासे उसकी गति भी यक हो जाती है। इस स्थानके रहनेवाले लोग यह सहज ही प्रत्यक्ष नहीं कर सकते सही; किन्तु निरक्षवृत्तके उत्तर १०से २५ अंश तक पृथ्वीके उत्तर भागके स्थानमें और निरक्षवृत्तके २ अंशसे २३ अंश मध्यवर्ती स्थानोंमें दक्षिण-भागकी वाणिज्य वायु प्रवाहित होती रहती है।

इन दो वायुमण्डलोंके मध्यवर्ती स्थानोंमें नियत ही वायु ऊर्ध्व गमन करती रहती है। पृथ्वीके निकट चढ़ उतने सुस्पष्ट रूपसे अनुभूत नहीं होती। इन सब स्थानोंमें सदा ही निर्वातका ही अनुभव होता है। केवल बीच बीचमें इन स्थानोंमें भयानक आंधी (Cyclone) उठती देखी जाती है। महाद्व द्वीपस्थानको निर्वात और अस्थिर वायुमण्डल (Belt of Calms) कहते हैं। अटलाण्टिक महासागरके यक्षका यह स्थान Doldrums-के नामसे प्रसिद्ध है।

समुद्री पृथ्वी यदि जलमय होती, तो इस वाणिज्य-वायुका प्रवाह सर्वत्र समान रूपसे अनुभूत हो सकता था। किन्तु भूभागकी उष्णता और पर्वतादि बाधाप्रयुक्त क्षेत्रभागमें यह विशेष अनुभूत नहीं होता। केवल महा-समुद्र गर्भमें ही यह दिखाई देता है।

भारतमहासागरके उत्तर, पश्चिम और पूर्व भाग भूमि द्वारा घेरित है। विशेषतः हिमालय पर्वतश्रेणी महाप्राचीर रूपसे अपने उत्तर बहुत स्थानोंमें व्याप्त हो कर खड़ी रहनेके कारण उत्तरीकी वाणिज्यवायु उस टकरा कर ही रह जाती है, श्वर नहीं आ सकती अर्थात् हिमालयकी पार नहीं कर सकती। इसी कारणसे भारत-समुद्रमें उस वाणिज्य वायुका मात्र तक प्रचार नहीं हुआ है। इसके बदले इस देशमें और एक तरहकी वायु प्रवाहित होती है। यह प्रथम ६ महिने अग्नि-कोणसे और पिछले ६ महिने वायु-कोणसे प्रवाहित होती है। इसकी मानसून (monsoon) वायु कहने हैं। कालिकसे वीत तक

आग्नेय वायु (northwest monsoon) और वैशाखसे आश्विन तक वायव्य वायु (South-east monsoon) प्रवाहित होती है।

समुद्रमें यह वायु अनुभूत होनेसे पहले स्थलभागमें ही इसका प्रचार अधिक रहता है। इसी कारणसे आग्नेय मानसूनका अन्त होनेसे बहुत पहले हम फाल्गुन महिनेमें ही मलयानिल उपभोग किया करने हैं। प्रत्येक मौसमी वायुके प्रारम्भ होनेके समय विपरीत दिशाकी ओरसे आये वायु-प्रवाहके संघातसे प्रायः भयान्त आंधी, वृष्टि और तूफान आता है। निरक्षवृत्तके दक्षिण १० अंश तक मौसमी वायु शीतकालमें वायु-कोणने और ग्रीष्मकालमें अग्नि-कोणसे प्रवाहित होती है।

उत्तर वाणिज्य-वायुका जो मण्डल निर्दिष्ट हुआ है, उसके उत्तर वायु सर्वदा नैऋतसे प्रवाहित होती है। इसी कारणसे यहांके सब स्थान 'नैऋत वायु-मण्डल' के नामसे विख्यात है। दक्षिण-वाणिज्यवायु-मण्डलके दक्षिणमें वायु सर्वदा वायु-कोणसे प्रवाहित होती है इससे यह वायुमण्डल नामसे परिचित है।

वायु-प्रवाहके सम्बन्धमें ऊपर जो कहा गया यह वायुका साधारण नियम समझना चाहिये। एकमात्र यह महामसुद्रमें ही दिखाई देता है। पर्वत, मरुभूमि, वन, उपत्यका और नगरादिकी वाधा या सहायतासे स्थान विशेषमें वायु की प्रकृतिकी कई विलक्षणताये दिखाई देती हैं। यहां इसका विशेष विवरण देना अनावश्यक है। अरबकी मरुभूमिमें सिमुन नाम्नी एक प्रकारकी प्राणानाशिका उत्तम वायु प्रवाहित होती है। अफ्रीकाकी लम्बी चौड़ी सहारा नाम्नी मरुभूमिमें और अत्यान्त्य देशकी बालुकामय भूमिमें भी इस तरहकी उत्तम वायु उत्पन्न होती है।

समुद्रके किनारे दिनमें समुद्रसे भूमिकी ओर और रात्रिमें भूमिसे समुद्रकी ओर हमेशा वायु बहती रहती है। इसका कुछ विशेष कारण नहीं। सूर्योदयसे जलकी अपेक्षा स्थल ही ग्रीष्म उत्तम होता है। इसीलिये भूमिकी वायु उत्तम हो ऊपर उठनी लगती है और समुद्रकी शीतल वायु उस स्थानकी पूर्ण करनेके लिये उस ओर ही उठती है। रातकी जलकी अपेक्षा स्थल भाग ही शीतल होता है। अतः

दिनके विपरीत रातको भूभागका वायुप्रवाह समुद्रकी ओर दौड़ता है। इन दोनों वायुप्रवाहोंका नाम 'समुद्र-वायु' और भूमिवायु है। समुद्रतटके सिवा अन्यत्र वायुका यह प्रवाह अनुभूत नहीं होता।

स्थूल पदार्थोंपरि आहत लोप्टकी तरह वायु भी प्रत्यावर्तनशील है, इसी कारण वायुप्रवाह पर्वत या किसी प्राचीर आदिसे आहत होने पर वहाँसे प्रत्यावर्तन कर पहले जिस दिशासे प्रवाहित हुआ था, उससे ठीक दूसरी ओरकी चला जाता है। विपरीतकी ओर इस तरह दो वायुप्रवाहोंके परस्पर आहत होने पर बवण्डर या घूर्णितवायु उत्पन्न होती है। सिवा इसके कोई एक स्थान दृष्टात् वायुशून्य हो जाने पर उस स्थानकी पूर्ति करनेके लिये चारों ओरसे जोरसे वायुका आगमन होता है इसलिये भी घूर्णितवायु उत्पन्न होती है। घूर्णित-वायुकी उत्पत्ति आकाशमण्डलमें विद्युत् सम्पर्कीय अन्य किसी नैसर्गिक कारणसे भी हो सकती है। घूर्णितवायु अलगपरिसरविशिष्ट होने पर "धूलिध्वज" या बवण्डरके नामसे विख्यात होता है, यह भूतकी हवाके नामसे भी प्रसिद्ध है। इस वायुकी धूलिराशिमें कभी कभी पत्ते आदि सतम्माकारमें परिणत हो जाते हैं। पञ्जाब प्रदेशमें प्रोथमकालमें नित्य ही बवण्डर आदि धूल भूकण्ड दिखाई दिवा करते हैं। उत्तर-पश्चिमभारतमें कई जगह प्रोथमकालमें तू चलती है।

यह घूर्णितवायु घूमते घूमते कभी ऊपर कभी नीचे भाया करता है। इसके घूर्णितमण्डलकी परिधिका परिसर अधिक होनेसे प्रायः ही एक स्थानमें अग्रगमन हुआ करता और कभी कभी इसके द्वारा विस्फवजनक घटना भी हो सकती है। एक बार एक छोटे बवण्डरने एक घोषीके पसारें हुए कितने कपड़ोंकी कई सहस्र हाथ दूर पर फेंक दिया। लण्डनमें एक बार घोषीने कुछ कपड़ा सुत्तानेके लिये पसारा था, एक छोटे बवण्डरने भीषण वेगसे इन कपड़ोंका ले जा कर गिरजेके शिखर पर छोड़ दिया।

सामान्यतः इस वायुका वेग उच्चगत्त प्रवृत्त नहीं होता है। किन्तु इसकी क्षमता उतना सामान्य नहीं है। पतौक इस ज्ञानते है, कि बड़ी बड़ी अट्टालिकायें भी

इसके द्वारा नष्ट हो जाती हैं। घेष्टइण्डज द्वीपमें यह वायु एक बार ऐसा भयङ्कर हो उठी थी, कि उसने स्मरणमात्रसे शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। कभी कभी नगरों पर होती हुई यह वायु जय प्रवाहित होती थी, तब मकानोंकी ईंटें उजाड़ कर फेंक देती थी। एक सौ हाथसे अधिक चौड़ा और कई कोस लम्बा एक घरमें निर्माण कर दिया था। सुना जाता है, कि घूर्णितवायु द्वारा कई पोखरे और तलाबोंके घाटोंकी ईंटें भी उखड़ जाती हैं। वसुण्डाद्रोपस्थ दुर्गकी बवण्डर भूमिसे कई बार इस वायुके प्रभावसे प्रकाण्ड-प्रकाण्ड तोपें भी उड़ गई थी।

एक बार कलकत्तेके निकट 'घापा' नामक स्थानसे यह वायु उत्थित हुई थी। यह वेलियावाटा होता हुई कलकत्तेसे दक्षिण यैनिया-पोपार कोई आठ कोस तक गई थी। चौड़ाईमें प्रायः आध पाव कोस थी। इसमें उसको घर, द्वार, पक्ष जो कुछ मिले, उसने सबका मूलाच्छेद कर दिया था। इसी वायुसे प्रिंसप-साहबके मकानसे २० मनसे भारी लोहेके टुकड़े उड़ गये थे। ईंटके बने स्तम्भ टूट कर दूरपर जा गिरे थे। अधिक दिनकी बात नहीं १८वें शताब्दीके अन्तिम भागमें बङ्गालमें ऐसा दो घूर्णित वायु प्रवाहित हुई थी। पहले मैघना नदीके गर्मसे उठ कर ढाका नगरके प्रसिद्ध नवाबके घरका उठा कर समुद्रगर्भमें डूबा दिया था। पश्चिम बङ्गालमें ईष्टइण्डिया रेलपथके लहटरी स्टेशनके निकट एक गुड्मन्ट्रेन इस वायुसे उड़ कर रेल लाइनसे बहुत दूर पर जा गिरी थी।

इस वायुका मण्डल यदि सैकड़ों कोसका होता है, तो उसे आँधो कहा करते हैं। आँधो चाहे किसी तटकी पर्वों न हों, यह घूर्णित वायु या बवण्डर ही है। आँधो सदा ही बहती रहती है। इसके सामने जो चीज पडती है, उसकी गति भा उसीकी तरह ही जाती है। घूर्णनका मण्डल छोटा और बड़ा भी हो सकता है। किन्तु सबकी स्थूलगति प्रायः एक ही तरह है। इसीसे इसको घातायुवा कहते हैं। आँधो जिस ओर चाहे जा नहीं सकती। चन्द्र सूर्यकी गति जिस प्रकार स्थिर नियममें होती है, आँधो भी इसी तरह चर-

अलग्णनीय नियमके अधीन है। निरक्षरृत्के उत्तरकी सभी आंधियां पूर्वासे उत्तर और पश्चिम हो कर घूमती घूमती उत्तरकी ओर अग्रसर होती हैं और निरक्षरृत्के दक्षिण जो आंधियां उठती हैं, वह पश्चिमसे उत्तर और पूर्वा हो कर घूमती-घूमती दक्षिणकी ओर प्रस्थान करती हैं। इस तरह कितनी आंधियां आगे चले कर मण्डलाकारमें परिणत हो जाती हैं; किन्तु अब तक जो आंधियां दोख पड़ी हैं उनमें कोई भी दूसरीदृष्ट तरहसे आई नहीं देखी गई।

वायुगतिका ध्यान मलाहोंको बढ़ा काम देता है। क्योंकि इसके द्वारा वह अनायास ही आंधी तूफानसे भाग जहाज और अपना प्राण बचाते हैं। कितने ही इसी विधाके बलसे आंधीमें आत्मरक्षा करते हुए बहु दिनसाध्य पथको छोड़े ही दिनमें तय कर लेते हैं। एक बार एक जहाज थोपुरीघाम जगनाग-यात्रियोंको ले कर चङ्गोपसागरसे जा रहा था। कप्तानको असावधानीसे आंधी या तूफानमें पड़ गया। मलाह जहाजको बचानेके लिये यात्रियोंको समुद्रगर्भमें डाल देने पर दाय्य हुए थे। सन् १६०२ ई०में इसी तरह एक जहाज जापानो यात्रियोंको ले कर कलकत्तेसे रंगूनकी ओर जा रहा था। चङ्गोपसागरकी पार करते न करते अचानक उसकी तूफानका सामना करना पड़ा। फलतः यह दक्षिण-समुद्रमें ताड़ित हो कर भारतमहासागरके माझ-गास्कर छोपके निकट जा पहुँचा था।

रथचक्रके घूमनेके समय उसकी परिधिका वेग नाभि देशकी अपेक्षा अधिक द्रुत होनेका अनुमान होता है। किन्तु घाटके घूर्णनके समय डांक उसका विपरीत फल प्रत्यक्ष किया जाता है। तूफान या आंधीके मण्डलकी परिधि जिस वेगसे घूमती है, उसके मध्यभागमें उसकी अपेक्षा गुरुतर वेग मान्य होना है। इसीलिये आंधीके समय जहाँ उसका मध्यभाग उपस्थित होता है, वहाँ अधिकतर उपद्रव मंच जाता है।

वातावरणका घ्यास सब जगह एक समान नहीं रहता। घेष्ट एण्डिङ्ग प्रदेशमें आठ सौ कमी कमी दश सौ कोस तक घ्यापमान हो कर यह आंधी प्रवाहित हुई है। भारतसमुद्रमें ४१५ सौ कोसोंमें घ्यास हो कर साद

धापी आया करती है। चीनसमुद्रमें इसका यह घ्यास सङ्कीर्ण हो कर एक-सी या डेढ़-सी कोसका हो जाता है।

वातावरणकी गतिके विषयमें कोई स्थिरता नहीं। प्रति घण्टा ७से ५० घ्योतिमी कोस तक तूफान भ्रमण कर सकता है।

तूफानके भूभाग पर प्रवाहित होनेसे पर्यंत, वृक्ष, मकान, चहारदीवारीसे रक जानेके कारण इसकी गति धीमी पड़ जाती है।

समुद्रमें घेसी कोई बाधा न रहनेसे आंधी बहुत दूर तक भ्रमण किया करती और वहाँ अपने धर्म तथा लक्षणका प्रचार किया करती है। इसी कारण मलाह समुद्रमें तूफानके घर्म निरूपण करनेमें जैसा अक्सर पाते हैं स्थलके लोग घेसी सुविधा नहीं पाते। रेडफिल्ड, रोड, पिडिटन और मरे आदि यूरोपीयगण विशेष यरनसे वातावरणके घर्म-निरूपणमें कृतकार्य हुए थे।

समुद्रके जिस स्थानसे वातावरण प्रवाहित होता है, उस जगहकी जलराशिमें जैसा आंधीका जोर रहता है, उस हिसाबसे कमी कमी २०१२५५० हाथ तक ऊँचो लहर उठती है। कमी कमी तो इसके दुरगुनी तीगुनी ऊँचो तरंग उठा करतो है। इन उठो हुई तरंगोंकी दम चाहें, तो वातावरणको हलक कर सकते हैं। जहाजके लिये यह बहुत हानिकारक है।

इसके चारों ओर जो तरङ्गावित जलका द्योत उपग्र होता है उसकी वातावरणको कहते हैं। जलके इस स्याबलसे परिचित रहना प्रत्येक मलाहका काम है।

पृथ्वीके सभी हिस्सोंमें वातावरण हुआ करता है। किन्तु चङ्गोपसागर, मरीच छोपके निकटके भारतसमुद्र, चीनसमुद्र आदिमें इसका जैसा प्रकोप देखा जाता है, घेसा और कहीं दिखार नहीं देता। इसी कारण उक्त कई स्थानोंको भूगोलके जानकार वातावरण-मण्डल कहते हैं।

वातावरणके समय मुद्दुद्दु मेघगर्जन, विद्युत्-विकारा और प्रचुर वारिषर्षण होता है। इससे मान्य होता है, कि विद्युत्के साथ वातावरणका कुछ न कुछ सम्बन्ध है।

जिन घूर्णितवायुमें घूर्णितध्वज उत्पन्न होता है, वह समुद्रमें प्रवाहित होने पर ऊपर जलको उठा कर जल-स्तम्भ उत्पन्न करता है। समुद्रमें जहां जलस्तम्भ उत्पन्न होता है उसके ऊपरी भागमें मेघ रहता है। पहले प्रबल घूर्णितवायु उपस्थित होकर वहांका जल आलोकित करता है और चारों ओरकी तरङ्गों उस स्थानके मध्य भागमें द्रुतध्वजसे पहुंचती है। उससे प्रभूत जल और जलीय वाष्प ग्रीष्म ही राशिकृत होता और वाष्पमय एक शुष्ण-कार स्तम्भ उत्पन्न हो कर ऊपरको उठने लगता है। मेघोंसे भी एक शुष्ण निकल कर उसमें मिल गया है, येना ही अनुमान होता है। जहां दोनों शुष्णोंका संयोग होता है, उसका विस्तार दो तीन फीटसे अधिक न होता। सुना जाता है, कि जब शुष्णकार स्तम्भ दिखाई देता है, तब आवाज होती है।

सब जलस्तम्भ समानरूपसे लभ्ये नहीं होते। इनकी लम्बाई लगभग १७५० हाथ तक हुआ करती है। इसका पार्श्वदृश जैसा घना दिखाई देता है, वैसा मध्यभाग नहीं दिखाई देता। इससे मालूम होता है, कि यह दृश्य गर्भ अर्थात् पोला है। यह स्तम्भ प्रायः एक ही जगह स्थिर नहीं रहता। वायुकी गतिके अनुसार उसी ओर चला जाता है। यदि उसका ऊपरी भाग और अधोभागका वेग समान न रहे, तो क्रमशः वह विच्छिन्न हो जाता है। उस समय उसमें जो वाष्पराशि रहती है, वह छिन्न-भिन्न हो कर या तो वायुमें मिल जाती या समुद्रमें वर्षाके रूपमें गिर कर मिल जाती है। इसका यह भी निश्चय नहीं, कि यह कब तक रहता है। कभी कभी तो यह उत्पन्न होने ही विनष्ट हो जाता और कभी एक घण्टा तक भी स्थायी रहता है। जलस्तम्भ देखो।

वायुमण्डलके विविध तत्त्वपरिभाषक मन्त्र।

वायुमण्डलके जातोष्णतामाननिर्णय, आर्द्रता वृष्टि-वेक्षण, वायुवायु गुणत्व और वाष्प-निर्णय, वायुप्रवाहका दिशानिर्देश, इसकी गतिविधिवा निर्णय, वृष्टि और त्वारा स्थायित्वका परिमाण-निर्णय, मेघका प्रकारभेद, परिमाण और गतिनिर्देश आदि यन्त्रों पर व्यावहारिक निरीक्षणका विज्ञानकी उन्नति निर्भर कर करती है।

१५५३ ई०के प्रारम्भसे ही यूरोपमें कितने ही मनोविद्योनि

इस विषयमें मन लगाया। यूरोपीय सहज ही वाणिज्य-प्रिय हैं। जलपथसे वाणिज्य करने पर मेघ, वृष्टि, आंधी, तूफान, वायुकी गति आदिका परिज्ञान विशेष प्रयोजनीय है। सन् १५५३ ई०में टल्कानोके प्रोएड ड्यूक क्रिस्तोफोर्डिनएंडने वैज्ञानिक पण्डित लुइगी एण्टोनारोके (Luigi Antinory) तत्वावधानमें इटलीमें इसके सम्बन्धमें एक कार्याविभाग खोला। इसके बाद १६वीं शताब्दीमें जगत्के सब खण्डोंके तत्त्वसंग्रह करनेका विशाल भाषो-जन हुआ, उस समय इसके सम्बन्धमें और विषयों पर उत्तम गवेषणा हुई थी। रात्रिकालमें सौरपार्थिव तापका विकिरणातिशय, दिवाभागमें सौरिकिरण-विकिरणाधिषय, नभोमण्डलकी ज्योतिर्मय दृश्यवाला, वायु-स्तरकी घूर्णकणा और उसका रासायनिक उपादान आदि बहुतेरे विषयों पर गवेषणा करनेके निमित्त नाना प्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार आवश्यक हो गया। इसी अभावकी पूर्त्तिके लिये ही वैज्ञानिकगण विशेष परिश्रम और बुद्धिकौशलसे कई घन्टांमान यन्त्रोंका आविष्कार किया है। यहां अतीव प्रयोजनीय तथा प्रधान प्रधान यन्त्रोंका नामावली दी जाती है—

(१) धारमोमिटर (Thermometer) वायुके उत्ताप और शैत्यका परिमाण नापनेके लिये ही इस यन्त्रकी वृष्टि हुई है।

(२) बारोमिटर (Barometer)—इस यन्त्रमें वायुका भारित्व निर्णय होता रहता है। किन्तु इसके द्वारा बहुत बारीक मालूम होती है। इससे मेघ, वृष्टि और आंधी तूफानके सम्बन्धमें अनेक तथ्य मालूम हो सकने हैं। जिन सब तरह पदार्थोंका गुणत्व विनिर्णय हुआ है, उनके किसी पदार्थसे ही यह बारोमिटर तैयार हो सकता है। जल, ग्लिसरिन और पारद अनेक समय बारोमिटरके बनानेमें व्यवहृत होते हैं। किन्तु पारा ही इसके बनानेमें साधारणतः व्यवहृत होता है। सन् १६४३ ई०में गैलिलेओका छात्र टेरिसेल्लो (Torricelli) ने बारोमिटरका आविष्कार किया। एनिरायेड बारोमिटर (Aneroid Barometer), वाटर बारोमिटर और ग्लिसरिन बारोमिटर नामसे तीन प्रकारके बारोमिटरोका उल्लेख दिवाई देता है।

(३) एनिमोमिटर (Anemometer)—इस यन्त्रसे वायुकी गति नापो जा सकतो है। डाकूर लिण्ड (Dr. Lind) और डाकूर रचिनसन (Dr. Robinson) निर्मित एनिमोमिटर वर्तमान समयमें प्रचलित है।

(४) हाइग्रोमिटर (Hygrometer)—इस यन्त्रसे वायुकी आर्द्रताका परिमाण स्थिरीकृत होता है। स्कोवाकहोफार (Schwachhofer) या स्वेनसनके (Swenson) प्रस्तुत किये यन्त्र ही इस समय व्यवहृत हो रहे हैं।

(५) रेनगेज (Rain gauge)—इस यन्त्रसे वृष्टिका परिमाण निर्णय होता है। तुपारपातके परिमाण-निर्णय करनेके लिये भी ऐसा यन्त्र है।

(६) एयरपम्प (Air-pump)—वायु निस्कासन यन्त्र। इस यन्त्रसे वायुपूर्ण पात्रको वायु निकाली जाती है।

(७) इवापोरोमिटर (Evaporometer)—उद्भन वाष्प परिमापक। इस यन्त्रसे उद्भन वाष्पका परिमाण स्थिरीकृत होता है।

(८) सनसाइन रिकार्डर (Sunshine Recorder)—इस यन्त्रसे सूर्यकिरणका परिमाण निर्णय होता है। जार्जन साहब इस यन्त्रकी उद्भति कर फोटोप्राफिक सनसाइन रिकार्डर नामके एक यन्त्रका आविष्कार किया।

(९) नेफोस्कोप (Nephoscope)—मेघ और अन्यन्य घनोद्भन वाष्पको गतिनिर्णयके लिये इस यन्त्रका व्यवहार किया जाता है। मारविन (Marvin) साहबका बनाया यन्त्र ही प्रसिद्ध है।

(१०) डस्ट काउण्टर (Dust counter) वायवीय धूलिसंख्या-निर्णयक यन्त्र। एडेनवर्गके मिष्टर जान एटकिन (John Aitkin) इसके आविष्कारक हैं।

इसके सिवा प्राकृतविज्ञानके गरीशार्थ और भी अनेक यन्त्र वायुमण्डलके विविध तथ्य जाननेके लिये व्यवहृत होते हैं।

वायुवेग (सं० पु०) वायोवेगः। वायुका वेग, वायुकी गति। वायुवेगयन्त्र (सं० खी०) वायुवेगकी मगिनी या सहोदरा।

वायुगर्मा—आचार्यमिश्र। (वेनहरि० १४६।२००)

वायुप (सं० पु०) महस्वप्तिवेग, कालपस नामकी मछली। गुण—वृद्धक, बलकारक, मयुर और धातुपर्दक।

वायुसूत्र (सं० पु०) वायोः सूत्रा (राजाहः खलित्पथ्य्। पा १।४।६१) इति ट्य्। अग्नि, भाग। (भरत)

वायुसंज्ञ (सं० पु०) वायुः संज्ञा यस्य, इति विप्रदे ट्य् समासामायाः। (मनव सो। वा ७।१।६३) इति अन्तःशाब्दशः। अग्नि, भाग। (भरत)

वायुसूत्र (सं० पु०) वायो सूत्रः। १ वायुपुत्र हनुमान्। २ भाग।

वायुस्कन्ध (सं० पु०) वायुदेश, वायुस्थान। जहां वायु बहती हो।

वायुहन (सं० पु०) एक ऋषि जो मङ्गल ऋषिके तुतोप पुत्र थे। इनका जन्मवृत्तान्त इस प्रकार है—मङ्गल ऋषि एक बार सरस्वतीमें स्नान कर रहे थे। वहां उनकी सर्वाङ्ग सुन्दरी एक नन ली स्नान करती हुई दिखाई दी। उसे देख कर उनका वीर्य सजलित हो गया। उस रेतको उन्होंने एक घड़े में रखा, रक्ते ही वह सात भागोंमें विभक्त हो गया और उनसे वायुवेग, वायुबल, वायुहन, वायुमण्डल, वायुजाल, वायुरेना और वायुचक्र नामक सात महर्षि उत्पन्न हुए।

वायुहान (सं० खी०) वायुशून्य, गारोरवायुके प्रभावमें रहित।

वायोवस (सं० खी०) ययोवस (इन्द्र) सम्बन्धीय। (कत्या०श्री० ४।१।२४)

वायोत्रिष्टिक (सं० पु०) ययो अर्थात् पक्षाविषयक विद्याकी आलोचना करनेवाला।

वाच्य (सं० पु०) वच्यपुत्र, सत्यधवाः। (शुक १।७।११)

वाच्यभिमूत (सं० खी०) वायुना अभिमूतः। वायुप्रसृत, वायु द्वारा अभिमूत, वायुरोगी।

वाय्यास्वद (सं० खी०) वायूनातासार्द मञ्जुलक्ष्यः। आकाश।

वारंट (अं० पु०) अदालतका एक प्रकारका आदेशपत्र।

इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह काम करनेका अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे यह अन्यथा करनेमें असमर्थ हो। यह कई प्रकारका होता है, जैसे—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी, वारंट रिहाई आदि।

वारंट गिरफ्तारी (अं० पु०) अदालतका एक आदेशपत्र।

इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुच्यको पकड़ कर अदालतमें हाजिर करे।

वारंट तलाशी (अं० पु०) अदालतका एक आज्ञापत्र । इसके अनुसार किसी कर्मचारीको यह अधिकार दिया जाय, कि वह किसी स्थानमें जा कर वहाँका अनुसन्धान करे ।

वारंट रिहाई (अं० पु०) अदालतका एक आज्ञापत्र । इसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारीको यह इजाजत और हक मिले कि वह किसी आदमीको, जो जेल, हवालत या गिरफ्तारोंमें हो मुक्त कर दे; या किसी माल या सम्पत्तिको, जो कुर्क हो या किसीके तत्त्वावधानमें हो, मालिकको लौटा दे ।

वारं (सं० पु०) वारयनि नियते वेति वृ णिच्, अच्, घञ् या । १ समूह, राजि, डेर । २ छात्र, दरवाजा । ३ हर, महादेव । ४ कुञ्जवृक्ष, लटतीरा । ५ क्षण । ६ सूर्यादि वा सर, दिन. दिवस । सूर्यादिके दिनको वार कहते हैं । वार ७ हैं—रवि, सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक और जनि । साधन दिनको तरह वारको गणना होती है । सूर्योदयसे वारका आरम्भ मानना पड़ेगा । अर्थात् चादि निवृत्ति आदि कार्य सूर्योदय होनेसे हो होते हैं । सूर्योदयसे कुछ पहले यदि किसीको मृत्यु या जन्म हो, तो उसे साधनानुसार पूर्वदिन मानना होगा । सूर्योदयके बाद होसे यह दिन लेना होता है ।

रवि आदि ग्रहोंके भोग्य दिन हो उन सब नामोंसे पुकारे जाते हैं अर्थात् रविग्रहका भोग्य दिन रविवार कहलाता है । इसी प्रकार रवि आदि सात ग्रहोंके भोग्य दिन सात हैं, अतएव वार भी सात हुए हैं । इन सात वारोंमें सोम, शुक, बुध और वृहस्पति ये चार वार शुभ और बाकी तीन अशुभ हैं । इसलिये शुभ वारमें शुभ कर्म किया जा सकता है तथा अशुभ वारमें मङ्गलजनक कार्यमाल हो निषिद्ध है । इन सब वारोंके दिवा और राति भागके मध्य जो एक निर्रिष्ट अशुभ समय है उसे वारधेला और कालधेला कहते हैं । दिवा भागमें जो निर्रिष्ट अशुभ समय है उसे वारधेला और रातिकालके अशुभ समयको कालधेला कहते हैं । यह निर्रिष्ट समय हम प्रकार है—रविवारका चतुर्थ और पञ्चम यामार्द्ध (दिवामानके आठ भागमेंसे एक भाग) वारधेला तथा इसी प्रकार सोमवारका द्वितीय और सप्तम यामार्द्ध, मङ्गलवारका षष्ठ और द्वितीय यामार्द्ध, बुधवारका

तृतीय और पञ्चम यामार्द्ध, वृहस्पतिवारका सप्तम और अष्टम यामार्द्ध तथा शनिवार प्रथम, षष्ठ और सप्तम यामार्द्ध वारधेला है । वारधेलामें एक भो शुभ कर्म नहीं करना चाहिये । यह सभी कार्योंमें निन्दित है । कालधेला—रविवारके रातिकालका षष्ठ यामार्द्ध, सोमवारका चतुर्थ यामार्द्ध, मङ्गलवारका द्वितीय यामार्द्ध, बुधवारका सप्तम यामार्द्ध, वृहस्पतिवारका पञ्चम यामार्द्ध, शुकवारका तृतीय यामार्द्ध तथा शनिवारका प्रथम और अष्टम यामार्द्ध निन्दनीय है अर्थात् रातिकालमें यह सब समय छोड़ कर शुभ कार्य करना उचित है । इस कालधेलाके कालरात्रि भी कहते हैं । इस वारधेला और कालधेलामें यात्रा करनेसे मृत्यु, विवाह करानेसे वैश्य और व्रतानुष्ठानसे ब्रह्मवध होता है । अतएव इस समयमें सभी शुभ कर्मोंका परित्याग करना उचित है ।

सारसंग्रहके मतसे स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शनके समय वारके अनुसार फल होता है :—

“आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिप्रता ।

वेरया मङ्गलवारे च बुधे सोभाग्यवेष च ॥

वृहस्पती पतिः श्रीमान् शुभे पुत्रवती भवेत् ।

शनी कन्ध्यातु विशेषा प्रथमस्तो रजस्वला ॥” (मनुस्मृति)

रविवारमें विधवा, सोमवारमें पतिप्रता, मङ्गलवारमें वैश्या, बुधवारमें सोभाग्यवती, वृहस्पतिवारमें पति श्रीमान्, शुकवारमें पुत्रवती और शनिवारमें कन्ध्या होती है ।

कोष्ठोपद्रोपमें प्रति वारका फलाफल लिखा है । रविवारमें जन्म होनेसे जातबालक धर्माधी, तोषर्ष्व, सद्दिष्ट्यु, प्रियवादी और अन्न द्रव्यमें धनी होता है । सोमवारमें जन्म होनेसे कामो, स्त्रियोंके प्रियदर्शन, कामल वापयसम्पन्न और भोगो; मङ्गलमें क्रूर, साहसी, कीषो, कापिल बधवा श्यामवर्ण, परदार-नामो और कृषिकर्मानुरक्त; बुधवारमें बुद्धिमान्, परदारपरावण, कर्मवीर शरीरवाला, नास्त्रार्थमें पारंगामी, नृत्यगीत प्रिय और मानो; वृहस्पतिवारमें शास्त्रवेत्ता, सुन्दरवाक्पर्वानिष्ट, शान्तप्रकृति, भतिजन्य कामो, बहु पैपुण्यकर, हृद् बुद्धिसम्पन्न और दयालु; शुकवारमें जन्म होनेसे कुटिल, दीपेक्षीयो, नातिशास्त्राधवारु और स्त्रियोंका चित्तदार

तथा शनिवारमें जन्म होनेसे यह दोन, सनहन, कलहप्रिय, मुखरेगो और कृत्तिकागल होता है।

फलितज्योतिषमें मासके हिसाबसे चार जाननेका संकेत दिया गया है। यह चारगणना संकेत, शकाब्द, सन् या ख्रिष्टाब्द आदिसे ही निरूपित हो सकते हैं। नीचे चार-निर्णयके कुछ उपाय दिये गये हैं।

शकाब्दके अनुसार चारगणना—जिस शकाब्दके जिस मासके जिस दिनका चार जानना हो उस शकाब्दकी अठ्ठसंध्यामें उस शकाब्दके अङ्कका चतुर्थांश जोड़ दे। पीछे उसमें निम्नलिखित मासाङ्क और उस मासको दिनसंख्या तथा अतिरिक्त योग कर जो योगफल होगा उसको ७से भाग दे। भागशेष जो रह जायगा वही चारसंख्या होगी। यदि भाग शेष १ रहे तो रविवार और यदि २ रहे तो सोमवार जानना होगा इत्यादि।

यदि शकाब्दका चतुर्थांश पूर्णाङ्क न हो कर भगनाङ्क हो, तो उस भगनाङ्कके बदलेमें १ मानना होता है, जैसे—१७६६ ई, इसका चतुर्थांश ४४१।। होता है, पेसा न मान कर उसके बदले ४५० मानना होगा, फिर जिस शकाब्दका भगनाङ्क न हो, उस शकाब्दके केवल मात्रका ६ और आश्विनका २ मासाङ्क लेना होगा, नहीं तो पार्श्वलिखित मात्र और आश्विनका पूर्वनिर्दिष्ट मासाङ्क जोड़ कर गणना करनेमें अङ्कमें नहीं मिलेगा। गणनामें यदि कमी भूल जाये, तो १ बार दे देनेसे अङ्क निश्चय मिल जायेगा।

मासाङ्क

०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
विशाख	उष्य	आषाढ	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्तिक	अग्रहायण	पौष	माघ
									फाल्गुन
									चैत

उदाहरण—१७६६ शकाब्दकी ३१वाँ चैतकी कौन वार पड़ेगा ? वहाँ पर शकाब्द संख्या १७६६ और

- "सनपनारधनेव" सूत्रनेत्रेषु शुभ्यम् विपुकरपुगपदकं मासिकं ह्वाद्-पु-षड्म् । युगहरप्यधमनी कचरे तिह भारये पू-पुत्रुवर्णित् ओद्रेभारिषोपे ॥"

उसका चतुर्थांश ४५० है। अतएव शकाब्द १७६६ + उसका चतुर्थांश ४५० + मासाङ्क ६ + दिनाङ्क ३१ + अतिरिक्त २ = २२८८, इसमें ७का भाग देने पर भागशेष ६ रहता है, सुतरां १७६६ शकाब्दकी ३१वाँ चैतकी शुक्रवार पड़ेगा।

सन्की हिसाब-गणना—शकाब्दकी तरह सन्में भी सन्का चतुर्थांश मासाङ्क, दिनाङ्क और अतिरिक्त दो जोड़ दे। पीछे पूर्वोक्त क्रियाके अनुसार चार जाना जायेगा, किन्तु जिस सन्में ४का भाग देने पर १ बाकी रहता है (जैसे १२८१, १२८५ इत्यादि) उस सन्के मात्रमासमें ६ और आश्विनमें २ मासाङ्क जोड़ना होगा।

उदाहरण—१२८४ सालकी ३१वाँ चैतकी कौन वार पड़ेगा ? सन् १२८४ + उसका चतुर्थांश ३२१ + ६ दिनाङ्क ३१ अतिरिक्त = १६४४, इसमें ७का भाग दे देने पर भागशेष ६ रहता, अतएव उत्तर हुआ शुक्रवार।

- जनरगी—० अंगरेजी सालकी मंथ्या भी फरवरी—३ उसका चतुर्थांश तथा पार्श्वलिखित मार्च—३ मासाङ्क, दिनाङ्क और अतिरिक्त ६ अङ्क जोड़नेसे जो भागफल होता है, उसमें सातका भाग दे। भागशेष जो रह जाय उसमें रविवारसे गणना करके जो वार पड़ता है उसी वारके अंगरेजी वर्षके ४से भाग दे, यदि शेष कुछ न बचे, तो उस वर्षका फरवरी मास लिप-एयर होता है अर्थात् यह मास २८ दिनोंके बदले २६ दिनका दिसेम्बर—५ होगा। उक्त लिप-एयर वर्षमें मार्चसे दिसम्बर तक दस मासमें अतिरिक्त ६ जोड़ना नहीं पड़ेगा।

उदाहरण—अंगरेजी १८७८ ई०की २७वाँ मार्चकी कौन वार पड़ेगा ? अग्राङ्क १८७७ + चतुर्थांश ४७० + मासाङ्क ३ × दिनाङ्क २७ + अतिरिक्त ६ = २३८३, उसमें सातका भाग देने पर शेष ३ रहता है अतएव उस दिन मङ्गलवार पड़ेगा।

७ भावरण, टोकनेवाली यन्त्रु । ८ पल । ९ हाथ, दफा भवसर, जैसे—वारंवार । १० नदी या समुद्रका किनारा ।

११ वाण; तोर। १२ मदिवा-पात्र; मयका प्वाला।
१३ निवारण, रोक। १४ जल; पानी। १५ पिच। १६
कालाकेश। (भृक् २।५।४) १७ बारी, दाँव। १८ पूँछ।
(ति०) १९ परणोय। (भृक् १।१२।१)

वार (सं० स्त्री०) वारयति धियने वेति वृ णिच्-क्विय्।
१ जल, पानी। २ सुसज्जित भावमें अवस्थान; डाटाटाट
दिधाना।

वार—एक प्राचीन कविय।

वारक (सं० लि०) वारयति वृ-णिच्-णुल्। १ निवारक,
निषेध करनेवाला। (ह्री०) २ कष्टस्थान, घट स्थान
जहाँ पीड़ा हो। ३ याला, सुगंधवाला, एक सुगंधिन
वृण। (पु०) ४ अभय, घोड़ा। ५ अभयभेद, एक प्रकारका
घोड़ा। ६ अभयगति, घोड़े का कदम।

वारकन्यका (सं० स्त्री०) वारनारी, वेश्या, रंडी।

वारकिन् (सं० पु०) वारकोऽस्त्वयेति स्नि। १ प्रसि
वादी, शत्रु। २ समुद्र। ३ चित्राश्व, लड़ाईका घोड़ा।
४ पर्णजोयी, पत्ते खा कर रहनेवाला तपस्वी।

वारकी (सं० पु०) वारकिन् वेलो।

वारकीर (सं० पु०) वारो अवसरं कोलति वध्नाति कौतु-
कार्यं रज्ज्वा प्रेम्ना वा कोलक, लस्य रत्वम्। १ श्यालक,
साला। २ वारप्राही; भारवाही; बोनू होनेवाला। ३ द्वारी,
द्वारपाल। ४ वाइय, वाइवान्। ५ यूका, जू। ६ धेणि-
धेधिनो, धेणी बांधनेकी छोटी कंधी। ७ दृशाश्व, लड़ाई-
का घोड़ा।

वारगङ्गि—चम्पारनके अन्तर्गत एक प्राचीन प्राम।

(भविष्य-महाल० ४।२।२१-२११)

वारङ्ग (सं० पु०) वशी, चिड़िया।

वारङ्ग (सं० पु०) वारयतीति वृ अङ्गच् (यद्भ्योर्द्विरच्।
उप् १।१२१) इति धातोर्द्विः। १ यद्ग्य, वा तुष्टिकादिक
मुष्टि, तलवार छुरी आदिको मूठ। २ अङ्गुष्ठके आकार-
का एक बीजार। इससे धिक्किरसक अस्थिविगत जल्य
निकालते थे। (ग्रन्थ)

वारट (सं० ह्री०) वृ अटच्। १ क्षेप। २ शैतसमूह

वारटा (सं० स्त्री०) वारट टाप्। वारटा, दंसो।

वारण (सं० ह्री०) वृ णिच्-णुट्। १ प्रतिषेध, निवारण।
२ बधन। ३ निषेध, मनाही। ४ दस्त द्वारा निषेध,

हाथसे रोकना। (पु०) वारयति परवर्त्मनि वृ-णु।
५ हस्ती, हाथी। ६ वर्म, कवच, बचनर। ७ मद्ग्य।
८ वृरिताल। ९ कृष्णशिंशवा, काला सोसम। १० वारि-
भद्र। ११ श्वेतकूटज-वृक्ष, सफेद कोरेवाका फूल।
१२ छप्पय छन्दका एक मेट। इसमें ४१ गुरु, ७० सधु,
कुल १११ वर्ण वा १५२ माताएँ होती हैं। भयवा ४१
गुरु; ६६ लघु, कुल १०७ वर्ण वा १४८ माताएँ
होती हैं।

(ति०) वार-रण अच्; वारि जले रणति चरतीति।

१३ जलजाट, समुद्रोद्भव। १४ प्रतिबन्धक, रोकनेवाला।

वारणकणा। सं० स्त्री०) गजपिण्णली, गजपीणल।

वारणकृच्छ्र (सं० पु०) कृच्छ्रभेदः। इसमें एक महीने
तक पानोंमें जौका सत्तू घोल कर पीना पड़ता है।

वारणकेशर (सं० पु०) नागकेशर।

वारणपिण्णली (सं० स्त्री०) गजपिण्णली, गजपीणल।

वारणप्रतिवारण (सं० स्त्री०) १ कर्मादि द्वारा शीतल,
रक्षणोपयोगी, कवचविशिष्ट। (पु०) २ गजरक्षण, हाथोकी
रक्षा करना।

वारणवनेग शास्त्री—अमृतसृति नाम्नो प्रकिशाकीमुरी-
व्याख्याके प्रणेता।

वारणवल्गमा (सं० स्त्री०) कद्दली, केला।

वारणवृषा (सं० स्त्री०) वारणान् पुंशनातीति वृष-व
पृषोदरादित्वान् यस्य वः। कद्दली, केला।

वारणशाला (सं० स्त्री०) दक्षिणशाला, फोलछाना।

वारणसाहय (सं० ह्री०) गजसाहय, दक्षिणपुर।

वारणसां (सं० स्त्री०) वरणा च गसी च नदीद्वयं तस्य
अदूरे भया। (भद्रमन्त्र। वा ४।२।७०) इत्यण् ङोप्,
पृषोदरादित्वान् साधुः। वारणसां, काशां।

वारणसध्व (सं० ह्री०) रामायणोक्त जनपदभेदः।

(रामा० २।७।१६)

वारणा (सं० स्त्री०) वारण-टाप्। कद्दली, केला।

वारणानन (सं० पु०) गजानन, गणेश।

वारणावत (सं० ह्री०) महाभारतोक्त एक प्राचीन नगर।
यह दक्षिणपुरसे ले कर गङ्गाके किनारे तक विस्तृत था।
यहाँ पर दुर्योधनने पाण्डवोंको जलानेके लिये लाजापूर
बनवाया था। नीम उख मुरको जन्मा कर माना मोट

ज्ञाताभोके साथ छत्रवेशमें गङ्गा पार कर गये। कुछ लोग इसे करनालके सामपास मानते हैं और कुछ लोग इलाहाबाद जिलेके हंड़िया नामक स्थानके पास।

वारणावतक (सं० लि०) वारणावतसम्बन्धीय, वारणावतवासी ।

वारणाह्वय (सं० पु०) वारणसाह्वय, हस्तिनापुर।

वारणोय (सं० लि०) घृ-णिच्-अनीयत् । १ प्रतिघेय योग्य ।

वारणेन्द्र (सं० पु०) उरुहृष्ट हस्ती, सुन्दर हाथी ।

वारतन्त्रय (सं० पु०) वरतन्त्रके गौत्रापत्य ।

वारतन्त्रवीय (सं० पु०) वरतन्त्ररचिन । (वा. भा. १०२)

वारतीय (हि० खी०) वेश्या, यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है ।

वारत्र (सं० स्त्री०) वरत्रा-अण् । चर्मदन्धनी ।

वारत्रक (सं० लि०) वरत्रादेश-अण्, वरत्रासम्बन्धीय ।

वारद् (हि० पु०) वारुल, मेघ ।

वारदात (सं० स्त्री०) दुर्घटना, कोई भीषण या शोचनीय काण्ड । २ मार काट-दंगा-फसाद । ३ घटना सम्बन्धी-समानार ।

वारधान (सं० पु०) पीरगणिक जनपदभेद, इसे वाटधान भी कहते हैं ।

वारन (हि० स्त्री०) निछावर, बलि । यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है ।

वारना (हि० लि०) १ निछावर करना, उदमर्ग करना । (पु०) २ उदमर्ग, निछावर ।

वारनारी (सं० स्त्री०) वाराङ्गना, वेश्या ।

वारनितम्बिनी (सं० स्त्री०) वारनारी, वेश्या ।

वारवार (हि० पु०) १ नदी आदिकों यह किनारा और यह किनारा, भार पार । (अण्) २ इस किनारे से उस किनारे तक । ३ एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तक, एक बगलसे दूसरी बगल तक ।

वार्याणि (सं० पु०) पौराणिक जनपदभेद ।

वार्याश्व (सं० पु०) वाप्याश्व देवो ।

वारफल (सं० स्त्री०) प्रतिवारका शुभाशुभ निर्देश । सोम, शुक्र और बृहस्पतिवार सभी कामोंमें शुभ हैं, किन्तु मणि, रवि और मङ्गलवारको किसी-किसी कामके लिये

शुभ बतलाया है। राजाका अभिषेक, राजाको यात्रा, राजकार्य और राजदर्शन तथा अग्निकार्य आदि रविवारको ही प्रशस्त हैं। मेदाभिघात, सेनापतियोंका राजाष्टापालन और पुरवासियोंका दण्ड इत्यादि, पन्द्रह प्रकारके व्यायाम आहार गव्य इत्यादि तथा चौरोंका काम मङ्गलवारको ही शुभ है ।

स्थापन करना वा कार्य समाप्त करना, पुण्यकर्मदि करना, गृहप्रवेश, हाथीकी सवारी, घोड़ेकी सवारी, ग्रामप्रवेश तथा नगर और पुरप्रवेश शनिवारको ही शुभ कहा गया है ।

वारफेर (हि० स्त्री०) १ निछावर, बलि । २ यह रूपया पैसा जो बूढ़ा या दुर्लभके सिर परसे घुमा कर डोमनियोंका दिया जाता है ।

वारवाण (सं० पु० स्त्री०) वार वारणोय वार्ण वरमात् । कञ् कृ, अखतर ।

वारसुवा (सं० स्त्री०) वारसुवा देवो ।

वारमासीय (सं० पु०) बारह मासके अनुष्ठेय कर्म, बारह मासको अवस्था ।

वारमास्या (सं० स्त्री०) वारमासीय देवो ।

वारमुखी (सं० स्त्री०) वाराङ्गना, वेश्या ।

वारमुख्या (सं० स्त्री०) वारेषु वेश्यासमूहेषु सुख्या श्रेष्ठा । श्रेष्ठ वाराङ्गना । (भागवत० ६।१।३५)

वारम्बर (सं० अण्) पुनः पुनः, फिर फिर ।

वारयित्थ (सं० लि०) प्रतिघेयके योग्य, निवारण करने लायक ।

वारयिता (सं० पु०) वारयति दुर्नोतरिति घृ णिच्-तृच् । पति, स्वामी ।

वारयुवती (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वारयोपितृ (सं० स्त्री०) वारनारी, वेश्या ।

वारदन्ध (सं० लि०) वरदन्धि-अण् । वरदन्धिन प्रण्य ।

वारल—एक प्राचीन बड़ा ग्राम । (दिग्विजयप्रकाश)

वारला (सं० स्त्री०) वार लातीति ला-क । १ घटा, गंधिया कीड़ा । २ राजहंसी । ३ कदली, पेन्ना ।

वारलीक (सं० पु०) वधवज्रा तुण, वनरस ।

वारयक—एक छोटी नदी । यह देहभ्रम पर्वतसे निकलती है । इसका वर्तमान नाम वारवकी है ।

११ वाण, तोर । १२ मदिदा-पात, मद्यका प्वाला ।
 १३ नियारण, रोह । १४ जल, पानी । १५ पित्त । (६
 कालाकेज । (शूक् राधा) १७ चारो, दाँव । १८ पृष्ठ ।
 (ति०) १९ परणोय । (शूक् १।१२।१.)
 वार (सं० ह्री०) वारयति धियने धेति वृणिच् किय् ।
 १ जल, पानी । २ सुसज्जित भावमें अथस्थान, डाटवाट
 दिधाना ।

वार—एक प्राचीन कवि ।

वारकः (सं० ति०) वारयति वृणिच्-ण्युल् । १ निवारक,
 निषेध करनेवाला । (ह्री०) २ कष्टस्थान, यष्ट स्थान
 जहाँ पीड़ा हो । ३ बाला, सुगन्धवाला, एक सुगन्धित
 वृण । (पु०) ४ अभव, घोड़ा । ५ अभवभेद, एक प्रकारका
 घोड़ा । ६ अभवर्गात, घोड़ेका कदम ।

वारकन्यका (सं० स्त्री०) वारनारी, वेश्या, रंडी ।

वारकन् (सं० पु०) वारकोऽस्त्यप्येति इति । १ प्रसिं
 यादी, शत्रु । २ समुद्र । ३ चित्राभ्य, लड़ाईका घोड़ा ।
 ४ पर्णजोयी, पत्ते खा कर रहनेवाला तपस्वी ।

वारको (सं० पु०) वारकिन् देखो ।

वारकोर (सं० पु०) वारे अयसरे कीलति वधनाति कीतु-
 कार्यं रज्जवा प्रेम्ना वा कीलक, लस्य रत्वम् । १ प्वालक,
 साला । २ वारप्राही, मारवाही, वोह ढोनेवाला । ३ द्वारी,
 द्वारपाल । ४ वाड्य, वाड्यवादि । ५ यूका, जू । ६ धेणि-
 धेधनी, धेणी बांधनेकी छोटो कंधी । ७ द्युदाश्व, लड़ाई-
 का घोड़ा ।

वारगाड्—वम्पारतके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

(भविष्य-ब्रह्मण्ड ४।२।२१ १२१)

वारङ्ग (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया ।

वारङ्ग (सं० पु०) वारयतीति वृ अङ्गच् (यङ्भोर्द्विच ।
 उप् १।१२१) इति घातोर्द्विः । १ यद्ग, वा दुरितबादिक
 मुष्टि, तलवार दुरी भादिको मुष्ट । २ मङ्कुड़ेके भाकार-
 का एक बीजार । इससे चिकित्सक अस्वियमित शल्य
 निकालते थे । (ग्रन्थ)

वारट (सं० ह्री०) वृ अटच् । १ क्षेत् । २ क्षेत्रसमूह

वारटा (सं० स्त्री०) वारट-टाप् । वारटा, दंसो ।

वारण (सं० ह्री०) वृणिच्-ण्युट् । १ प्रतिषेध, निवारण ।
 २ वधन । ३ निषेध, मनाही । ४ दस्त द्वारा निषेध,

हाथले रोकना । (पु०) वारयति परयलमिति वृ-ण्यु ।
 ५ हस्तो, हाथी । ६ धर्म, कवच, बचतर । ७ मङ्गल ।
 ८ हरिताल । ९ कृष्णशिंशुवा, काला सोसम । १० वारि-
 भद्र । ११ श्वेतकूटज-वृक्ष, सफेद कोरीवाका वृक्ष ।
 १२ छप्पय छन्दका एक मेट । इसमें-४१ गुह, ६० सपु,
 कुल १११ वर्णं वा १५२ मातावं होती हैं भयं ४१
 गुह; ६६ लघु, कुल १०७ वर्णं वा १४८ मातावं
 होती हैं ।

(ति०) वार-रण अच्; वारि जले रणात् वारतीति ।

१३ जलजाट, समुद्रोद्भव । १४ प्रतिषेधक, रोकनेवाला ।
 वारणकणा । सं० स्त्री०) गजपिण्णली, गजपीपल ।

वारणकृच्छ्र (सं० पु०) कृच्छ्रभेद । इसमें एक महाने
 तक पानोंमें जीका सत्त घोल कर पीना पड़ता है ।

वारणकेजर (सं० पु०) नागकेजर ।

वारणपिण्णली (सं० स्त्री०) गजपिण्णली, गजपीपल ।

वारणप्रतिवारण (सं० स्त्री०) १ कर्मादि द्वारा शोभन,
 रक्षणयोगयोगी, कवचविशिष्ट । (पु०) २ गजरक्षण, हाथीकी
 रक्षा करना ।

वारणवनेग जास्त्री—अमृतमृति नाम्नी प्रक्रियाकीमुरी-
 व्याख्याके प्रणेता ।

वारणवदठमा (सं० स्त्री०) कदली; केला ।

वारणवृषा (सं० स्त्री०) वारणान् पुष्पातीति पुन-वृ
 वृषोद्वादित्स्यात् यस्य वा । कदली, केला ।

वारणशाला (सं० स्त्री०) हस्तिशाला, फीलघाना ।

वारणसाहय (सं० ह्री०) गजसाहय, हस्तिनापुर ।

वारणसी (सं० स्त्री०) वरणा च असी च नदीर्घर्षत्स्य
 अदूरे भया । (भद्रमगच । वा ४।२।७०) इत्यण्-स्त्रीप्,
 वृषोद्वादित्स्यात् सापुः । वारणसी, काशी ।

वारणस्थल (सं० ह्री०) रामायणोक्त जलप्रदूनेश् ।

(रामा० २।७।१६)

वारणा (सं० स्त्री०) वारण टाप् । कदली, केला ।

वारणानन (सं० पु०) गजानन, गणेश ।

वारणावत (सं० ह्री०) मद्राभारतौक एक प्राचीन नगर ।
 यह हस्तिनापुरसे ले कर गङ्गाके किनारे तक विस्तृत था ।
 यहाँ पर दुर्वायनेन पाण्डवोंको जलानेके लिये साक्षात्
 बनवाया था । भीम उस वृद्धको जला कर माता कीर

सूताओंके साथ छत्रवेशमें गङ्गा पार कर गये। कुछ लोग इसे 'बरनालके' भासवास मानते हैं और कुछ लोग इलाहाबाद जिलेके हंड़िया नामक स्थानके पास।
 वारणावतक (सं० लि०) वारणावतसम्बन्धीय, वारणा-वतवासो।
 वारणाह्वय (सं० पु०) वारणसाह्वय, इस्तिनापुर।
 वारणोय (सं० लि०) घृ-णिच्-बानोयर्। १ प्रतिषेध योग्य।
 वारणोन्द्र (सं० पु०) उत्कृष्ट इस्ती, सुन्दर हाथी।
 वारतन्त्र (सं० पु०) वरतन्त्रके गीतापत्य।
 वारतन्त्रवीथ (सं० पु०) वरतन्त्ररचिन। (पा ४३।१०२)
 वारतीय (हि० स्त्री०) देश्या, यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है।
 वारत्न (सं० स्त्री०) वरत्ना-अण्। चर्मदन्धनी।
 वारत्नक (सं० लि०) वरत्नादेश-भय, वरत्नासम्बन्धीय।
 वारद् (हि० पु०) धावल्, मेघ।
 वारदात (अ० स्त्री०) दुर्घटना, कोई भोवण या जोचनीय कोण्ड। २ मार काट-दंगा फसाद। ३ घटना सम्बन्धी समाचार।
 वारधान (सं० पु०) पौराणिक जनपदभेद, इसे वाटधान भी कहते हैं।
 वारन (हि० स्त्री०) निछायर, बलि। यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है।
 वारना (हि० स्त्री०) १ निछायर करना, उदसर्ग करना। (पु०) २ उदसर्ग, निछायर।
 वारनारी (सं० स्त्री०) वाराङ्गना, देश्या।
 वारनितम्बिनी (सं० स्त्री०) वारनारी, देश्या।
 वारवार (हि० पु०) १ नदी आदिका यह किनारा और यह किनारा, आर पार। (अण्य०) २ इस किनारे से उम किनारे तक। ३ एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तक, एक बगलसे दूसरी बगल तक।
 वारपाणि (सं० पु०) पौराणिक जनपदभेद।
 वारपाश (सं० पु०) वारपाणि देखो।
 वारफल् (सं० स्त्री०) प्रगिवारका शुभाशुभ निर्देश। सोम, शुक्र और गृहस्पतिवार सभी कामोंमें शुभ हैं, किन्तु मणि, रवि और मङ्गलवारको किस्ती किस्ती कामके लिये

शुभ पतलाया है। राजाका अभिषेक, राजाको यात्रा, राजकार्य और राजदर्शन तथा अनिकार्य आदि रविवारको ही प्रशस्त है। मेदाभिघात, सेनापतियोंका राजाछा-वालन और पुरवासियोंका दण्ड इत्यादि, पन्द्रह प्रकारके व्यायाम आहार गन्ध इत्यादि तथा चोरीका काम मङ्गल-वारको ही शुभ है।
 वारस्थापन करना वा कार्य समाप्त करना, पुण्यकर्मादि करना, गृहप्रवेश, हाथीकी सवारी, घोड़ेकी सवारी, ग्रामप्रवेश तथा नगर और पुरप्रवेश शनिवारको ही शुभ कहा गया है।
 वारफेर (हि० स्त्री०) १ निछायर, बलि। २ वह रूपया पैसा जो दुल्हा वा दुल्हिनके सिर परसे घुमा कर डोम-नियोंकी दिया जाता है।
 वारवाण (सं० पु० स्त्री०) वार वारणोय वारणं वसणात्। कञ्, क्, वखतर।
 वारधुवा (सं० स्त्री०) वारणधुवा देखो।
 वारमासीय (सं० पु०) वारह मासके अनुष्ठेय कार्य, वारह मासकी अवस्था।
 वारमास्या (सं० स्त्री०) वारमासीय देखो।
 वारमुञ्जी (सं० स्त्री०) वाराङ्गना, देश्या।
 वारमुक्या (सं० स्त्री०) वारेषु देश्यासमूहेषु मुक्या श्रेष्ठा। श्रेष्ठ वाराङ्गना। (मागवत० ६।१।१८)
 वारम्भार (सं० शब्द०) पुनः पुनः, फिर फिर।
 वारपितृय (सं० लि०) प्रतिषेधके योग्य, निवारण करने लायक।
 वारपिता (सं० पु०) वारपति दुर्नैररिति घृ-णिच्-त्घ्। पति, स्वामी।
 वारयुवती (सं० स्त्री०) देश्या, रंडी।
 वारयोपितृ (सं० स्त्री०) वारनारी, देश्या।
 वारयन् (सं० लि०) वरयन्-अण्। बरयन्चिह्न प्रथ्य।
 वारल—एक प्राचीन शब्द प्राम। (दिग्बिजयप्रकाश)
 वारला (सं० स्त्री०) वार लातीति ला-क। १ घरटा, गंधिया कोड़ा। २ राजहंसी। ३ कूदलें, फेंका।
 वारलीक (सं० पु०) वरयन्ना नृण, वनरुस।
 वारधक—एक छोटी नदी। यह देवुभ वर्यतसे निकली है। इसका वर्तमान नाम वारधको है।

वारवत्या (सं० स्त्री०) महाभारतके एक नक्षीका नाम ।

वारवन् (सं० लि०) पुच्छविशिष्ट, जिनके पूँछ हो ।

(शूक् १२७११)

वारवन्तीय (सं० स्त्री०) सामभेद । (वैतिलीपर्व० ५११८१)

वारवधू (सं० पु०) वेश्या, रंडी ।

वारवाणि (सं० पु०) वारं शब्दसमूह घणते इति घण-इण् ।

१ यंगीवाङ्म, यंगी बजानेवाला । २ उत्तम गायक ।

३ घर्नाञ्जल, न्यायाधीश, जज । ४ संवत्सर । (स्त्री०)

५ वेश्या । ६ घंघराभोमें ध्रोष्ठ ।

वारवाणी (सं० स्त्री०) प्रधान वेश्या ।

वारवारण (सं० पु०) वारवाण्य देखो ।

वारवाल (सं० पु०) काश्मीरका एक नगर ।

(राजतर० ११११)

वारवासि (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक जनपदका

नाम । (भारत भोग्य ६१४४) वाश्चारय भौगोलिक स्थितिने

Baroushi नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है ।

वारवाण्य—वारवाधि देखो ।

वारविलासिनो (सं० स्त्री०) वारान् विलासयतीति विल्स-

ण्-चूर्णनि-ङीप् । वेश्या, रंडी ।

वारवैला (सं० स्त्री०) दिनका यह यामाद् जिसमें शुभ-

काय निर्वापद बढाया गया है । प्रतिवार दिनको दो वार-

वैला और रातका एक कालवैला निर्दिष्ट हुई है । दिनके

प्रथम यामाद्को कुलिकवैला या वारवैला और द्वितीय

यामाद्को भी वारवैला कहते हैं ।

वार शब्दमें विल्लुज विवरण्य देखो ।

वारमत (सं० स्त्री०) दिनन्दिन प्रतकर्म ।

वारसुन्दरी (सं० स्त्री०) वारविलासिनी, वेश्या ।

वारसेया (सं० स्त्री०) १ वेश्यावृत्ति । २ वेश्यासमूह ।

वारखा (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वारानिधि (सं० पु०) वारान् जलानां निधिः, अद्भुतसं० ।

समुद्र ।

वारा (हि० पु०) १ शर्कराको बमत, किकापत्र । २ लाम,

कापयत् । ३ इषरका किमारा, वार । (पि०) ४ किकापत्र,

सन्ध्या । ५ जो निधापर हुआ है, जिनने किसी पर अपने-

का इतमगी किया हो ।

वारगङ्गा (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वाराटक (सं० पु०) वाराटकके पुं अणत्व ।

वाराटकीय (सं० लि०) वाराटक-गहादिभ्यश्च इति छ ।

वाराटक-सम्बन्धीय ।

वाराणसी (सं० स्त्री०) वरणा च भसी च, तपोनेपोरै

मवा (अद्भुतभरव । पा ४१२७०) इति भण्-ङीप्-दूरीः ।

काशीधाम ।

"वरणाली च नदी द्वे पुष्ये पापदरे उभे ।

तपोरन्तर्गता या तु सैव वाराणसी स्मृता ।"

अर्थात् वरणा और असी इन दो पुष्यपदा और पापदर

नदियोंके बीच जो स्थान अवस्थित है वही वाराणसी है,

मोक्षधाम काशी है । हिन्दू, जैन और बौद्ध इन तीनों

सम्प्रदायके निकट काशी तीर्थस्थान समझे जाते हैं ।

इनमेंसे हिन्दुओंके निकट यह सर्वप्रधान तीर्थस्थान कह

कर प्रसिद्ध है । काशी शब्दमें विल्लुज विवरण्य देखो ।

इस स्थानमें जिस प्रकार अति प्राचीन कालसे ब्राह्मणों

के निकट प्राधान्यशाम किया है उसी प्रकार बुद्धदेवके

अभ्युदयके समयसे बौद्धोंके समागम पर बौद्धजगत्की भी

किया था । वाराणसीके अन्तर्गत प्राचीन अश्विनरत्न

पर्यायान सारनाथमें आज भी उस सुवामनी बौद्धकीतिहा

निर्दर्शन देखनेमें आता है । मिट्टीके नाचेले दो हस्तारवर्षके

अधिक पुराने स्थापत्यशिल्प तथा सप्ताष्ट भगोव, सप्ताष्ट

कनिष्क और कनिष्कके अश्विन पूर्वभारतीय शकवीकी भी

सब गिलाजिपियां निकाली गई हैं, इनसे प्राचीन भारतके

पूर्वभारतीय और प्राचीन इतिहासके अनेक अतीततत्त्व ज्ञाने

जाते हैं ।

वाराणसीपुर—बाङ्गालके गङ्गद्वीपके अन्तर्गत एक नगर ।

(भविष्य पुराण० ११११)

वाराणसीश्वर—योरक्षीवसिद्धाशक्तके प्रणेता ।

वाराणसीहृदय—पुण्यतोषाहृदयभेद । (वाग्मिनीकण ६११२)

वाराणसीय (सं० लि०) वाराणसी-इक् (न्यायदिग्गो ४६०)

वाराणसी-जात ।

वाराणसीय (हि० पु०) १ इस गहल या उस पर्याय निर्गण,

किम्बो और निदगय । २ अर्धशत या अर्धशतका निरर्थक,

कन्धे अग्ने हृष मामन्धे का स्मृतना ।

वाराणिका (सं० स्त्री०) दुर्गा ।

वाराणिकन्दिन् (सं० पु०) वरिग ।

वारासन (सं० क्लो०) १ घरासन । २ जलाधार ।
 वाराह (सं० त्रि०) वराहस्येदमिति अण् । १ वराह-
 सम्बन्धीय । २ वराहमिहिद-मत सम्बन्धीय । वराह-
 स्वार्ये अण् । (पु०) ३ वराह, शूकर । ४ महाविण्डोतक
 वृक्ष । ५ कृष्णमदनवृक्ष, काली मैत्रिका वृक्ष । इसका गुण—
 घमनमें प्रशस्त, कटु, तिक्त, रसायन तथा कफ, हृद्दरोग,
 आमशय और पक्षाशयशोथक । ६ जलवेतस, पानीके
 किनारे होनेवाला वेंत । ७ देशभेद । (रुशिरपु० ६५।१६)
 वाराहक (सं० त्रि०) वाराहकन् । १ वराहसम्बन्धी ।
 (पु०) २ प्राणहर कीटभेद, प्राण लेनेवाला एक प्रकार-
 का कीड़ा ।

वाराहकन्द (सं० पु०) वाराही कन्द । वाराही देवी ।
 वाराहक्षेत्र—हिमालयस्थ देवस्थानभेद ।

(हिमवतखं० ३।४।२८)

वाराहतीर्थ—तीर्थविशेष । वाराहतीर्थेमाहात्म्यमें इस-
 का विवरण आया है ।

वाराहपत्नी (सं० स्त्री०) वाराहीकन्द, असर्गंध ।

वाराहपुट (सं० क्लो०) पुटभेद । अरत्नमाल कुण्डमें जो
 पुट दिया जाता है उसे वाराहपुट कहते हैं ।

वाराहपुटभाषना (सं० स्त्री०) अपलछन्न भाषना ।

वाराहपुराण (सं० क्लो०) अठारह पुराणोंमेंसे एक महा-
 पुराण । पुराण देखा ।

वाराहाङ्गो (सं० स्त्री०) दन्तोवृक्ष ।

वाराहा (सं० स्त्री०) वाराह-ङाप् । १ प्रह्लापो आदि
 भाठ मातृकाओंमेंसे एक । देवीपुराणमें लिखा है, कि
 वाराहा वराहदेवकी शक्ति है । हरिके अपरूप यक्षवराह-
 रूप धारण करने पर उसकी शक्तिने भी वाराहीरूप
 धारण किया था । (सप्तमो)

दुर्गापूजापद्धतिमें इस वाराहा देवीका इस प्रकार
 ध्यान लिखा है—

वाराहस्वामीं देवीं दंष्ट्रादुत्तनुधराम् ।
 शुभदां सुप्रभां शुभां वाराहां वां नमाम्यद्यम् ॥”

(हरनन्दिकेश्वरपु०)

वृद्धमरत्नमें वाराहीमहसूनामस्तोत्र तथा रुद्र-
 पामलमें वाराहांगोत्र लिखा है ।

२ योगिनीविशेष । पूजाके समय इन सब योगिनी
 Vol. XXI. 50

को भू'गार (सर्पजल-पाल)-में स्नान करानेको व्यवस्था
 है ।

३ एक प्रकारका महाकन्द । इसे हिन्दुओंमें गैठी, मराठी-
 में वाराहीकन्द, तेलगूमें गेलताडिचेट्ट, प्रासन्नण्डिचेट्ट
 और बम्बईमें डुकरकन्द कहते हैं । बहुतांका कहना है, यह
 अनूपदेशमें उत्पन्न होता है । इसके कन्दके ऊपर सूखर-
 के बालोंके समान रोएँ होते हैं । इसका आकार प्रायः
 शुद्धकी मेलीके समान होता है । पत्तियाँ कँटोली, बड़ी
 बड़ी तथा अनोदार होती हैं । अत्रिके मतसे यह कन्द
 अर्शोघ्न और घातगुल्मनाशक ; राजवह्निके मतसे
 श्लेष्मघ्न, पित्तहृत् और बलवर्द्धक तथा राजनिर्घण्टके
 मतसे तिक्त, कटु, विष, विच, कफ, कुष्ठ, मेह और कृमि-
 नाशक, पृष्य, घल्य और रसायन माना गया है ।

४ महीपत्रविशेष । ५ शुक्रभूमिकुष्माण्ड, विलारिकन्द,
 विदारोकन्द । ६ वृद्धशरक, विधारा नामक क्षुप । ७
 मिर्मिगु । ८ वराहकान्ता । ९ श्यामा पक्षी ।

वाराहीकन्द (सं० पु०) वाराही देवा ।

वाराहीतन्त्र—एक प्राचीन महातन्त्र । महाशक्ति वाराहीके
 नामानुसार इस तन्त्रका नाम पड़ा है । इस तन्त्रमें
 बौद्ध जैनादि तन्त्रोंका भी उल्लेख है ।

वाराहीय (सं० स्त्री०) वाराहमिहिर रचित बृहत्संहिता
 सम्बन्धीय ।

वारि (सं० स्त्री०) वारयति वृषामिति घृ-र्णञ्च् इन् (वलिव
 पियजिराजिमजियदिहनिवातिवादिवारिम्य इन् । उण् ५।१।२५)

१ जल, पानी । २ तरल पदार्थ । ३ तरल्य, तरलता ।
 ४ हीरक । ५ घाला, सुगन्धवाला । (स्त्री०) ६ वाणी,
 सरस्वती । ७ गजवन्धन, हाथोंके बांधनेकी अञ्जोर आदि ।
 ८ गजवन्धनभूमि, हाथोंके बांधनेका स्थान, फाल-
 घाना । ९ घन्नि, फेंदी । १० छोटा कलस वा गगरा ।
 (त्रि०) ११ घरणोय । (शुक्लपत्रपु० २१।६१)

वारि—नैऋतुकके वायवर्गन एक स्थान । (भविष्य ब्रह्मव्यह)

वारिकफ (सं० पु०) समुद्रपेन ।

वारिकर्पूर (सं० पु०) इल्लिस-मृत्कफ, हिलसा मछली ।

वारिकुम्भ (सं० पु०) शृङ्गारक, सिंघाडा ।

वारिकुम्भक (सं० पु०) शृङ्गारक, सिंघाडा ।

वारिक्रमि (सं० पु०) जलीका, जीक ।

वारिकीय (सं० पु०) कच्छप, कच्छुवा ।
 वारिगर्भोदर (सं० लि०) मेघ, वादल ।
 वारिचक्षर (सं० पु०) कुम्भिका, गिंघाडा ।
 वारिवर (सं० पु०) वारिपु चरतीति चर ट । १ मरुत्य,
 मछली । २ जङ्घ । ३ जङ्घनामि । ४ जलवर जम्बु-
 मात ।

वारिबामर (सं० स्त्री०) शैवाल, सेवार ।
 वारिज (सं० लि०) वारिण ज्ञापते इति वारि-जन-ञ ।
 १ जलजमात । (स्त्री०) २ द्रोणीलवण । ३ पथ, कमल ।
 ४ गीर्णसुवर्ण, चरा मोता । ५ लघुद्रु । ६ मरुत्य,
 मछली । ७ जङ्घ । ८ जम्बूफ, घोंघ । ९ कपर्दक,
 कौट्टी ।

वारिजाक्ष-विष्णुका सवतारोद्दे । यद् अथतार राम-
 कृष्णादि दशावतारस्ते भिन्न है । प्रत्याहृष्टपुण्यके अन्त-
 र्गत प्रधानकुमुदचन्द्रिकाके उत्तरखण्डमें इनका चरित
 विशदरूपसे वर्णित है—

गौड नारमन कुलमें थोड़कण्डके औरमसे यमुना-
 देवीके गर्भमें वारिजाक्ष सवतोर्ण हुए । उनकी परनी का
 नाम उपालिनी था । यथासम्प्य उनके लक्ष और
 सोशोर नामक दो पुत्र हुए । उनमें जीवन्तो अथवा
 भलीकक गटनाओंमें सन्निष्ठ "द्वादश वारिण मन्त्र"
 उद्देश्ययोग है । इस यज्ञमें सैकड़ों वारि, सिद्ध और
 संख्यामें पधारे थे । उनमेंसे गौडराजणकुलीज्ज्व और
 जिषयभम्पराक्रमसे महाभयद् सरस्वती, सञ्चिनाभयद्
 मरुत्यनी, शिवाभयद् सरस्वती, रामाभयद् मरुत्यनी और
 भवानभयद् मरुत्यनी गी धार्य हुए थे । इनके मिया द्रुविद्
 ज्ञातके पति जङ्घराचार्य, गीवाचार्य, शास्याचार्य, राम-
 चन्द्राचार्य और वंशप्राचार्य आदि गौडराचार्यका भी
 भागमम हुआ था ।

वारिजाक्ष तपस्वीमें नाम बरने है । ये दूमरी
 तरसे परम वैष्णव निष्कल्पमें कर्त्तव्य है । वैकुण्ठ
 विहारी विशुसे ये मिष्ट हैं ।

वारिजात (सं० लि०) १ वारिज, जलमें उदयन होने-
 वाला । (पु०) २ जङ्घनामि । वारिज देतो ।
 वारिनीयक (सं० लि०) १ जलघर, पानीमें रहनेवाला ।
 २ जलमें जो जीवन धारण करता है । (इन्द्रदेवा)

वारित (सं० लि०) निर्धारित, जो रोक गवा हो ।
 वारितर (सं० स्त्री०) उजोर, घस ।
 वारितस्कर (सं० पु०) १ मेघ, वादल । (लि०) २ वारि-
 शोषणकर्त्ता, जल सूंसेनेवाला ।
 वारिति (सं० स्त्री०) जलमें होनेवाली एक प्रकारकी
 औषध ।

वारिवा (सं० स्त्री०) वारिणखापने इति व-ञ । पत्र,
 छत्रो ।

वारिद (सं० लि०) वारि द्वातीति द्वा-क (काले-
 ऽनुसर्गकः । पा ३।२।२) १ जलदाता, वर्षा देनेवाला ।
 (पु०) २ मेघ, वादल । ३ मुस्तक, गोषा ।

वारिद्र (सं० पु०) चातक पक्षी, पयोदा ।

वारिधर (सं० पु०) धर्तीति घृ-भञ् वारिणी धरा ।
 मेघ, वादल । २ भद्रमुस्ता, नागरमोषा । (वैद्यकी)

वारिधानी (सं० स्त्री०) जलवात । (कथापरिभाषा)

वारिधापयन्त (सं० पु०) प्रविभेद् ।
 (भाष्यभाष्यन पद्य० १३।१।४)

वारिधार (सं० पु०) मेघ, वादल ।

वारिधारा (सं० स्त्री०) वारिणी धारा । जलधारा ।

वारिधि (सं० पु०) वारिणि धीयतेऽस्तिमिति धा
 (कर्मव्यधिकारो च । पा ३।३।३) इति हि । ममुद्र ।

वारिनाथ (सं० पु०) वारिणी नाथः । १ यवन । २ समुद्र ।
 ३ मेघ ।

वारिनिधि (सं० पु०) वारिणि निधायते अत्रेति नि धा-
 कि । ममुद्र ।

वारिण (सं० लि०) वारि विद्यति पा-क । जलवापिमात्र,
 जल पी कर रहनेवाला ।

वारिपथ (सं० पु०) वारिणी परयाः । जलपथ ।

वारिपथिक (सं० लि०) वारिणपेन गच्छतीति वारिपथ
 (उच्येत्पेनाहस्य । पा ५।१।०) इत्यत्र 'माहूय प्ररहमे
 वारिजङ्घूयकात्पारुषाङ्गुपसंभवात्' इति वारिजङ्घूयकात्
 डम् । १ जलपथपानी, जो जलपथमें जाता हो । २ वारि-
 पथमें माहूय, जिन जलपथमें सुखाया गया हो ।

(क्राशिका)
 वारिपणी (सं० स्त्री०) वारिण पणीव्यवस्था-वारिपणी
 (कर्त्तव्यार्थजुनेन पा । ४।१।६) इति डोप् । १ कुम्भिका,

जलकुम्भी । २-पानीकी काई ।

वारिवालिका (सं० खो०) वारोणि पालयति सूर्यरश्म्या-
दिभ्यो रक्षतीति पालि ण्वुल्-टाप्, अत इत्वं । धम्-
लिका, आकाशमूली, सिंघाडा ।

वारिपूर्णा. (सं० खो०) वारिपर्णा, जलकुम्भी ।

वारिपृथ्वी (सं० खो०) वारिजाता पृथ्वी । वारिपर्णा,
जलकुम्भी ।

वारिप्रवाह (सं० पु०) वारिणः प्रवाहः । निर्भटः ।

वारिप्रसादन (सं० क्लो०) वारिणः प्रसादनं । कनकफल,
निर्गली । यह जलमें देनेसे जल निमेल हो जाता है ।

वारिवदर (सं० पु०) वारिः परिपूर्यते वदर इव । प्राचीना
मलक, जल-बाँवला ।

वारिवदरा (सं० खो०) वारिवदर देखो ।

वारिप्राहो (सं० खो०) वारिजाता प्राहो । जलप्राहो
रूप ।

वारिमलकपटिका (सं० खो०) मज्जीर्णाधिकारका औषध-
विशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—पारे और गन्धकसे तैय्यार की
हुई कजली, भवरक, गुन्धकका पाल, बिड़ङ्ग और मिर्च
प्रत्येक समान भाग ले कर भदरकके रसमें मिलावे ।
बादमें एक माशेकी गोली बनावे । इसका सेवन करनेसे
अजीर्णरोग दूर होता है । (रसतना०)

वारिभय (सं० क्लो०) वारिणे नेत्रजलाय भयति प्रभवतीति
भू-भयः । १ छोतोऽञ्जन, सुरमा । (त्रि०) २ जलजात-
मात्र ।

वारभूमि—सर्गभूमिके अमृतगंत स्थानमेव ।

(भविष्य प्रदाल० ५०।१।२२)

वारिमसि (सं० पु०) वारि मसिरिव श्यामताजनकं यन्प,
सज्जलमेघस्येव कृष्णवर्णत्वात् तधाटयः । मेघः । (त्रिका०)

वारिमानः (सं० क्लो०) पाचनादिमें जलका परिमाण,
किस पाचनमें कितना जल देना चाहिये उसका
अन्दाजा ।

वारिमुच्य (सं० पु०) वारिमुञ्चतीति मुच्य-क्त्वि । मेघ,
बादल ।

वारिमुली (सं० खो०) वारिणि मूलं यस्याः (पाकरय-
पथेति । वा ३।१।२४) इति खोप । वारिपर्णा, जलकुम्भी ।

वारिमग्न (सं० क्लो०) जलवग्न, फीमारा ।

वारिर्वा (हि० खो०) निष्ठावर, बलि ।

वारिदध (सं० पु०) वारिपु रथ इव गमनसाधनत्वात् ।
मेलक, पेड़ा ।

वारिराशि (सं० पु०) वारिणां राशयो वन्न । १ समुद्र ।
वारिणां राशिः । २ जलराशि, जलसमूह ।

वारिदध (सं० क्लो०) वारिणि रोहति जायते इति दध
(इत्युभयमीकिरः कः । वा ३।१।२५) इति क । १ कमल,
पत्र । (त्रि०) २ जलजात, जलसे उत्पन्न ।

वारिलामन् (सं० पु०) वारिणि लौमानि यस्य यद्वा वारि
लोमनि यस्य । घघण ।

वारिवन्दनं (सं० क्लो०) वारियुक्तं वन्दनं यस्मात्, तन्-
सेवने मुखे जल निःस्रावणस्यार्थम् । प्राचीनामलक,
जलकुम्भी ।

वारिवन्दन्—१ आसामके अमृतगंत एव स्थान । (भविष्य-
प्रदाल० १६।३१) २ कोचविहारके उत्तरमें अवस्थित एक
बड़ा परगना ।

वारिवन्धक (सं० त्रि०) जिमसे जलघोत रुक सके, बांध ।

वारिवर (सं० क्लो०) करमईक, करींदा ।

वारिवर्णक (सं० क्लो०) जलका वर्ण, पानीका रंग ।

वारिबल्लमा (सं० खो०) विदारी, भुंङ्कुम्भडा ।

वारिवह (सं० त्रि०) जलवहनकारी, जल ले जाने-
वाला ।

वारिवहो (सं० खो०) कारवहो, करेला ।

वारिवालक (सं० क्लो०) सुगंधवाला ।

वारिवास (सं० पु०) वारि मगोपे वासांऽस्य, यद्वा वारि
अप्युर्विताग्नादिजलं वासवति सुगन्धि करोतीति वाम-
भण् । औष्णिक, कन्दशर ।

वारिवाह (सं० पु०) वारि वहतीति वह (कर्मयण्य् । वा
३।२।१) इति भण् । १ मेघ, बादल । २ मुस्तक, मोथा ।

वारिवाह सद्यद्विर्वर्णित एव राजाका नाम ।

(सध्या० ३।१।२५)

वारिवाहक (सं० पु०) जलवहनकारी, वह जो जल ले
जाता हो ।

वारिवाहन (सं० पु०) वाहयतीति वाहि-क्यु वारिणां
वाहनः । मेघ, बादल ।

वारिवाहिन (सं० क्लो०) जलवहनकारी ।

वारिकीन (सं० पु०) कच्छप, कच्छुआ ।
 वारिगर्भोदर (सं० त्रि०) मेघ, बादल ।
 वारिगणेश (सं० पु०) कुम्भिका, मिंघाडा ।
 वारिगर (सं० पु०) वारिपु नरतीति वार ट । १ मरम्प,
 मछली । २ जङ्गल । ३ जङ्गलमणि । ४ जलसर जम्बु-
 मास ।

वारिगामर (सं० स्त्री०) शीघाल, संघार ।
 वारिग (सं० त्रि०) वारिणि जायते इति वारि-जन-ङ ।
 १ जलजमास । (स्त्री०) २ द्रोणीलवण । ३ पद्म, कमल ।
 ४ गौर्मुखपर्ण, घरा मोता । ५ लघुङ्ग । ६ मरम्प,
 मछली । ७ जङ्गल । ८ जम्बू, घीघ । ९ कपडक,
 कीड़ा ।

वारिज्ञाप्त-विष्णुका भयनात्मदे । यह भयनात् राम-
 कृष्णादि दृशावनात्सं भिन्न है । प्रहाण्डपुराणके अन्त
 में प्रहाण्डमुदचन्द्रिकाके उत्तरप्रण्डमें इनका वारिज्ञ
 विग्रहरूपसे वर्णित है—

गौड नारमन कुलमें श्रीकण्ठके भीरुससे यमुना-
 देवीके गर्भमें वारिज्ञाप्त भयनीर्ण हुए । उनकी पत्नीका
 नाम उयालिनो था । यथासमय उनके लव्य भीरु
 भीषेर नामके पुत्र हुए । उनके जीवनकी अत्यान्व
 भलीकक घटनाओंमें तदनुष्ठित "द्रादज्ञ वारिग सत्र"
 उल्लेखयोग्य है । इस यज्ञमें सैकड़ों पति, सिद्ध भीरु
 संख्याको पधारें थे । उनमेंसे गौडप्राणकुलीय भीरु
 जिवपशुभ्राक्रमसे भयानग्द सरस्वती, सच्चिदानग्द
 सरस्वती, निघानग्द सरस्वती, रामानग्द सरस्वती भीरु
 भयानग्द सरस्वती भी भायें हुए थे । इनके मित्रा व्रिषिङ्ग
 जातिके वरि जङ्गलघाघी, भीमाघाघी, नाभ्याघाघी, राम-
 पशुघाघी भीरु केजवाघाघी भादि गोष्टाघाघीका भी
 भागमन हुआ था ।

वारिज्ञाप्त तत्कालीनमें याम करने हैं । ये दूमरी
 तदर्थमें याम वेक्षण जिवरूपमें वर्णित हैं । वैकुण्ठ
 विहारी विष्णुसे ये मिले हैं ।

वारिज्ञात (सं० त्रि०) १ वारिज्ञ, जनों उत्पन्न होने-
 वाला । (पु०) २ जङ्गलमणि । वारिज्ञ देवी ।
 वारिज्ञोदक (सं० त्रि०) १ जलसर, वारिगमें रहनेवाला ।
 २ जलमें जो जीवक धारण करता है । (वरुणदेव)

वारि (सं० त्रि०) गियाति, जो रीका गया हो ।
 वारितर (सं० स्त्री०) उजोर, घास ।
 वारितरकर (सं० पु०) १ मेघ, बादल । (त्रि०) २ वारि-
 जोगणकर्ता, जल चूमनेवाला ।
 वारिति (सं० स्त्री०) जलमें होनेवाली एक प्रकारकी
 औषध ।

वारिजा (सं० स्त्री०) वारिणजायते इति वी-ञ । उप,
 छत्रो ।

वारिद (सं० त्रि०) वारि दृशतीति वारि-क (कले-
 ऽनुपगतकः । पा ३।२।३) १ जलदाता, वर्षा देनेवाला ।
 (पु०) २ मेघ, बादल । ३ मुस्तक, मोथा ।

वारिद्र (सं० पु०) घातक पक्षी, पपीहा ।

वारिघर (सं० पु०) घरतीति घृ-भम् वारिणी घा ।
 मेघ, बादल । २ भद्रमुखा, नागरनीषा । (वैद्यकी)

वारिघातो (सं० स्त्री०) जलघात । (कयाघरिणम्)
 वारिघापयत (सं० पु०) श्रुतिभेद ।

(भाष्यलान पद्य १३।१।५)

वारिघार (सं० पु०) मेघ, बादल ।

वारिघारा (सं० स्त्री०) वारिणी घारा । जलघारा ।

वारिधि (सं० पु०) वारोणि धीयन्तेऽग्निमिति धा
 (कर्णवधिकरुणे च । पा ३।१।६३) इति कि । समुद्र ।

वारिनाभ (सं० पु०) वारोणा नाभः । १ वधन । २ समुद्र ।
 ३ मेघ ।

वारिनिधि (सं० पु०) वारोणि निधायन्ते अत्रेति नि धा-
 कि । समुद्र ।

वारिण (सं० त्रि०) वारि विवति वा-क । जलवायिनात्,
 जल गो कर रहनेवाला ।

वारिपथ (सं० पु०) वारोणां पथः । जनपथ ।

वारिपथिक (सं० त्रि०) वारिपथेन गच्छतीति वारिपथ-
 (उतर वधेनारतन । पा ३।१।७०) इत्यत्र 'माहूत प्ररते
 वारिङ्गल्लकान्माहूतान्पुर्वान्भवान्' इति - वारिङ्गल्लकान्
 टप् । १ जलपथगामी, जो जलपथमें जाता हो । २ वारि-
 पथमें माहूत, मित्रे जलपथमें सुजाया गया हो ।

(कश्चित्)

वारिपती (सं० स्त्री०) वारिणि पर्णाम्पत्तः, वारिद्वे
 (वरुणदेवस्युत्पत्तेः पा ४।१।६३) इति ङीष् । १ कुम्भिका,

जलकुम्भी । २ पानीकी काई ।
 वारिपालिका (सं० स्त्री०) वारीणि पालयति सूर्यरश्म्या-
 दिभ्यो रक्षतीति पालि ण्युल्-टाप्, अत इत्वं । धम्-
 लिका, भाकाशमूली, सिंघाड़ा ।
 वारिपूर्णाः (सं० स्त्री०) वारिपर्णा, जलकुम्भी ।
 वारिपृश्नी (सं० स्त्री०) वारिजाता पृश्नी । वारिपर्णा,
 जलकुम्भी ।
 वारिप्रवाह (सं० पु०) वारिणः प्रवाहः । निर्भरः ।
 वारिप्रसादन (सं० स्त्री०) वारिणाः प्रसादनं । कनकफल,
 निर्माली । यह जलमें देनेसे जल निर्मल हो जाता है ।
 वारिवद्वर (सं० पु०) वारि परिपूर्णां वद्वर इव । प्राचीना
 मलक, जल-बाँवला ।
 वारिवद्वरा (सं० स्त्री०) वारिवदर देवी ।
 वारिप्राहो (सं० स्त्री०) वारिजाता प्राहो । जलप्राहो-
 क्षप ।
 वारिमकवटिका (सं० स्त्री०) अजीर्णाधिकारका औषध-
 विशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—पारे और गन्धकसे तैय्यार की
 हुई कजली, शबरक, गुलञ्जका पाल, बिड़ङ्ग और मिर्च
 पर्येक समान भाग ले कर अक्षरकके रसमें मिलावे ।
 धर्म एक माशेकी गोली बनावे । इसका सेवन करनेसे
 अजीर्णरोग दूर होता है । (सरस्वती०)
 वारिमव (सं० स्त्री०) वारिणे नेत्रजलाय भवति प्रभवतीति
 भू-मच । २ स्त्रीतोऽञ्जन, सुरमा । (त्रि०) २ जलजात-
 मात्र ।
 वारभूमि—स्वर्गभूमिके अन्तर्गत स्थानमेव ।
 (भविष्य प्रसंगे ५०११३२)
 वारिमसि (सं० पु०) वारि मसिरिव श्यामताजनकं यस्य,
 सज्जलमेघस्येव कृष्णवर्णत्वात् तथात्वर । मेघः । (त्रि०)
 वारिमान (सं० स्त्री०) पाचनादिमें जलका परिमाण,
 किस पाचनमें कितना जल देना चाहिये उसका
 अन्दाजा ।
 वारिमुच्च (सं० पु०) वारिमुञ्चतीति मुच-क्विप् । मेघ,
 बादल ।
 वारिमूली (सं० स्त्री०) वारिणि मूलं यस्याः (पाकवर्ण-
 पदेति । वा ४१११४) इति श्लोके । वारिपर्णा, जलकुम्भी ।
 वारिवद्वर (सं० स्त्री०) जलवद्वर, कीभारा ।

वारियाँ (हि० स्त्री०) निष्ठापर, बाल ।
 वारिरथ (सं० पु०) वारिपु रथ इव गमनसाधनत्वात् ।
 भेलक, पेड़ा ।
 वारिराशि (सं० पु०) वारीणां राशयो यत्र । १ समुद्र ।
 वारीणां राशिः । २ जलराशि, जलसमूह ।
 वारिवद (सं० स्त्री०) वारिणि रोहति जायते इति यह
 (रघुनयनमीकरः का । पा ३।१।१५) इति क । १ कमल,
 पद्म । (त्रि०) २ जलजात, जलसे उत्पन्न ।
 वारिलामन् (सं० पु०) वारिणि लोमानि यस्य यद्वा वारि
 लोमिन यस्य । घटण ।
 वारिवदन् (सं० स्त्री०) वारियुक्तं घटनं यस्मात्, सत्-
 सेवने मुखे जल निःस्त्रायणत्वात् । प्राचीनामलक,
 जलकुम्भी ।
 वारिवदन्—१ आसामके अन्तर्गत एक स्थान । (भविष्य-
 प्रसंगे १६।११) २ कोयविहारके उत्तरे अवस्थित एक
 बड़ा परगना ।
 वारिवन्धक (सं० स्त्री०) जिससे जलघोल रुक सके, बांध ।
 वारिवर (सं० स्त्री०) करमईक, करींदा ।
 वारिवर्णक (सं० स्त्री०) जलका वर्ण, पानीका रंग ।
 वारिवह्नुमा (सं० स्त्री०) विद्यारी, भुंजि-कुहड़ा ।
 वारिवद (सं० स्त्री०) जलवहनकारी, जल ले जाने-
 वाला ।
 वारिवहो (सं० स्त्री०) कारवहो, करैला ।
 वारिवालक (सं० स्त्री०) सुगंधवाला ।
 वारिवास (सं० पु०) वारि समीपे वासांश्चेव, यद्वा वारि
 मध्यं विताग्नादिजलं वासयति सुगन्धि करोतीति वासा-
 धण् । श्लोणिष्ठक, कलवार ।
 वारिवाह (सं० पु०) वारि वहतीति यह (कर्मयव्यु । वा
 ३।२।१) इति श्लोके । १ मेघ, बादल । २ मुदतक, मोघा ।
 वारिवाह सद्माद्विर्वाणं त एव राजाका नाम ।
 (श्रद्धा ३।११५) ।
 वारिवाहक (सं० पु०) जलवहनकारी, यह जो जल ले
 जाता हो ।
 वारिवाहन (सं० पु०) वाहयतीति वाहि व्यु वारीणां
 वाहनः । मेघ, बादल ।
 वारिवादिन् (सं० स्त्री०) जलवहनकारी ।

वारिविहार (सं० पु०) वारिविधि विहारः । जलविहार, जल
क्रोडा ।

वारिण (सं० पु०) वारिणि सागरजने शोने इति शो-ञ ।
विष्णु ।

वारिणाग्र (सं० क्लृ०) वारिविषयकं नाग्रं । नाग्र-
भेदः । इमं नाग्रमेव यद् ज्ञानं होता है, किं हिंस
स्थानमे किंसां गृह्ये होगो और कब कब होगो । गांमुनि-
ने साशे घेद् और उनके अङ्गोसे सार उद्गृह्य कर यह
ज्ञान बनाया है । तिथि, नक्षत्र, मास, दिन, लग्न,
मुहूर्त और शुभयोग आदि तथा पूर्णपक्ष मासमें सुघ
और वृद्धगति देखनेमें जहां देवागमन होता है, वायु
घटां जा कर उदरगो है । पांटे उसोमें मेघादिके स्थान-
के कारण वारिका ज्ञान होता है ।

वारिजिरीषका (सं० खो०) जलजिरिषका वेदः ।

वारिशुक्ति (सं० खो०) जलशुक्ति, सोप ।

वारिस (सं० पु०) १ दायभागी पुत्रव, दायव । २ यह
पुत्रव जो किमांकी मृत्युके बाद उसको सम्पत्ति भादि-
का सामी और उसके म्रण आदि का देवदार हो ।

वारिसमय (सं० क्लृ०) वारिप्रधानदेशोपु मभय
उत्पत्तयेत्येव । १ लवङ्ग । २ मीथोरान्न, सुरमा । ३ उगीर,
गम । ४ गावनालज, मका, जुमार । ५ हृदिगज्जू । ६
धोणएउ चन्दन । ७ शमश, एक प्रकारका सरकण्डा ।
(ति०) ८ जलज्ञानमाय, जो कुछ जलमें हो ।

वारिसारथ्य (सं० क्लृ०) द्वाय, दृष्य ।

वारिसार (सं० पु०) भागवतके अनुसार चन्द्रमुनके एक
पुत्रका नाम ।

वारिमेत (सं० पु०) १ राजपुत्रभेदः । २ जनभेदः ।

(भात समार०)

वारो (सं० खो०) एवमेतेऽनयेति वृ निष् (वधि वधि यति
वति मति तदि इति यति वधि वारिभ इम् । उप् ५।१२५)
इति इम् वा वीच् । १ राजवर्णिकी, हाथीके हाथनेकी
जङ्घा । २ कलसी, छोटा गण्ड ।

वारार (सं० पु०) वार्यां गङ्गाव्यनमृवारिमतीति
इट् ५ । ह्यो, हायो ।

वारोद् (सं० पु०) वारोभाविष्ठा । समुद्र । (रे०)

वारोकेरी (दि० खो०) किंसां र्वाकिके ऊपर इउ

द्र्य वा भीर कोरे वस्तु घुमा कर इमन्निचे सोदना वा
उरसमें करना जिसमें उसकी सप थापार हुं हो
जाय ।

वारोग (सं० पु०) बालेद्र देखो ।

वार (सं० पु०) वारयति र्दृप्तिनि वि-निच् वाहुत्कान्-
उप् । विजयकृद्वा, विजयवदन्तो जिस-पर विजय
पताका चलती है ।

वारार—वर्हे देखो ।

वारज (सं० पु०) वीरसुपर्ण नाक ।

वारठ (सं० पु०) १ अमृतशय्या, मरण लाट । २ धरती,
यह टिकटो जिस पर मुखेको लेटा कर ले जाते है ।

वारङ्ग (सं० पु०) वरङ्ग सम्प्रथोय । (वा १५५, १६)

वारङ्क (सं० क्लृ०) वरङ्ग ज्ञानि सम्प्रथोय ।

वारङ्किक (सं० पु०) वरङ्कके मोक्षारव्ये ।

वारण (सं० क्लृ०) वरणी देवतास्येति वरण मन् । १
जल, पानी । २ जलमिषानक्षत्र । ३ उपपुराणविशेष ।
(देवीभागवत १।३।१५) ४ भारतवर्षके अष्टविशेष ।

(निष्पुत्राय ३।३६)

वारचार्य श्रीगोलिरीने Burron नामके इम स्थान-
का उल्लेख किया है । इसका वर्तमान नाम वरवार
है । आज भी देव नामक स्थानके निवाइ इम प्रागोन जन
पदा ध्यंसावशेष दिख ई देता है । ५ वर अक्षरा नाम ।
६ वरुण पुत्र, वरुणा नामका वेदः । ७ स्तुहीमेर, एक
प्रकारका मूँदर । ८ हरिताल, हरताल । ९ वाक्षारि
तिल । (ति०) १० वरुण सम्प्रथो ।

वारणक—महाद्रि वर्णित राजभेदः । (क्लृ० २७।१८)

वारणकर्म (सं० क्लृ०) वारुणं जलसम्पत्ति कर्मे । जल
जय जननादि, कूर्मा, गीला, बायमी आदि जलजय
बनवानेका काम । यह वारणकर्म उद्योगिक उद्योग
दिन नक्षत्र आदि देख कर करना होगा है ।

वारणतार्थ (सं० क्लृ०) तार्थभेद, वरुणतार्थ ।

वारणप्रधानिक (सं० क्लृ०) वरुण प्रधारा यह सम्प्र
थोय ।

वारणामत्रा (सं० खो०) मय, प्रसार ।

वारणि (सं० पु०) वरुणस्यापरमं पुमान्, वरुण इम् । १
अगस्त्य मुनि । २ वारिण । (भारत १।१।१०) ३ विनयाके

एक पुनका नाम । (भारत १६१५०) ४ भृशु । ५ सहाद्री धर्णिता एक राजाका नाम । (सहा० २७३८) ६ एक जन-पदका नाम । ७ दत्तिला हाथी । ८ धारण वृक्ष, धारणका पेड़ ।

घारणी (सं० स्त्री०) वृषणस्येयं (तस्येदं । पा ४।३।२०) इत्यण् ङोप् । १ सुरा, गराव । कई प्रकारकी मदिराका नाम घारणी है । जैसे—पुनर्वा (गद्दपुरना)को पीस कर बनाई हुई, ताड़ या लज्जुके रससे बनी हुई, साठी धानके चावल और हड़ पीस कर बनाई हुई ।

मनुने लिखा है, कि द्विज यदि अज्ञानपूर्वक घारणी मदिरा पीवे, तो उसको फिरसे उपनयन-संस्कार द्वारा विशुद्ध हो लेना चाहिये, परन्तु ज्ञानपूर्वक पान करनेसे उसके मरनेके बाद प्रायश्चित्त करना होता है ।

(मनु ११।१४०) मय रुन्द देवो ।

२ मदिराको अधिष्ठाता देवो । ३ वरुणकी स्त्री, वरुणानी । (भारत० २।६६) ४ एक नदीका नाम । (रामा० २।७०।१२) ५ पश्चिम दिशा । एक एक दिशाके एक एक अधिपति हैं । पश्चिम दिशाके अधिपति वरुण हैं, इसीसे पश्चिम दिशाका नाम घारणी हुआ है । ६ उपनिषद् विद्या जिसका उपदेश वरुणने किया था । "आनन्देन ज्ञातानि जीयन्ति आनन्दे प्रादयमि संविशन्तीति" "सैवा भार्गवो घारणी विद्या ।"

(तैत्तिरीयोपनि० ३।६)

७ अश्वकी छायाविशेष, घोड़ेकी एक चाल । ८ शतभिया नक्षत्र । ९ गण्डद्वारा, गण्डर द्वार । १० खनाम-षयात वृक्ष । कोट्टण देशमें इसे करयीरुणी कहते हैं । ११ हस्तिनी, हथिया । १२ इन्द्रवारुणी लता, इन्द्रवनकी वेल । १३ भृग्यामलकी, भुईं आवला । १४ मदादन्ती, नागधूल । १५ पृन्दाघनके एक कदम्बका रस जो वरुणकी छपासे बलरामजीके लिये निकला था । १६ कदम्बके पके हुए फलोंसे बनाया हुआ मद्य ।

१७ एक पर्व जो उस समय माना जाता है जब चैत महीनेकी छत्तीस त्रयोदशीको शतभिया नक्षत्र पड़ता है । घारणका अर्ध शतभिया नक्षत्र है । चैत मासकी छत्तीस त्रयोदशीके दिन शतभिया नक्षत्र होनेसे उस दिनको घारणी कहते हैं । यदि उस छतना त्रयो-

दशीमें शतभिया नक्षत्रका योग न हो, तो भी यह तिथि घारणी कहलाती है । नक्षत्रका योग होनेसे तो यह और भी पुण्यपद होती है । इस दिन यदि शनिवार पड़े, तो उसे महाघारणी और उस शनिवारमें यदि कोई शुभ योग हो, तो उसे महामहाघारणी कहते हैं । यह घारणी अतिशय पुण्य तिथि है, इस कारण इस तिथिमें स्नान और दान करनेसे अशेष पुण्य होता है । घारणी और महाघारणीमें विशेषता यह है, कि घारणी तिथिमें गङ्गास्नान करनेसे सौ सूर्यग्रहण कालीन गङ्गास्नानका फल, महाघारणीमें गङ्गास्नान करनेसे कौटिल्य सूर्यग्रहण कालीन गङ्गास्नानका फल तथा महामहाघारणीमें स्नान करनेसे त्रिकोटिकुलका उद्धार होता है । घारणीमें नक्षत्र-योग ही प्रधान है । शास्त्रमें लिखा है, कि उद्यत गामिनी तिथि ही आदरणीय है, किन्तु यह त्रयोदशी यदि उभय दिन लम्ब हो तथा जिस दिन नक्षत्रका योग पड़ता हो उसी दिन घारणी होगी । उद्यत या अस्तगामिनी होनेके कारण कोई विशेषता न होगी । यहाँ तक कि, यदि रात-को भी यह नक्षत्र पड़ता हो, तो उसी समय घारणी-स्नान होगा । फल नक्षत्रानुसार घारणी स्थिर करनेकी होती है । यदि नक्षत्रका योग न हो, तो तिथिके सम्बन्धमें जो व्यवस्था है, उनीके अनुसार होगी ।

घारणीमें गङ्गास्नान करते समय घारणी, महा-घारणी, महामहाघारणी जिस बार जैना योग हो उसका उल्लेख कर सद्बुद्ध करके स्नान करना होता है । शत-भिया नक्षत्र बिता कर स्त्रियोंको कमी भी रतान न करना चाहिये, करनेसे वे दुर्मेगा होती हैं । शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय-के लिये भी त्रयोदशी, तृतीया और दशमीमें स्नान करना निषिद्ध है, किन्तु यह काम्य स्नानपर है, घारणीस्नान निषिद्ध नहीं है ।

घारणीमें गङ्गास्नान करनेका सद्बुद्ध इस प्रकार है—'चैत्रे मासि ऋणेशो त्रयोदश्यां तिथौ 'घारण्यां' 'महाघारण्यां' 'महामहाघारण्यां' (जिन बार जैसा योग हो) गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये' कामना जैसा इच्छा हो, कर सकते हैं, पर सद्बुद्धके विधानानुसार नामगोलादि-का उल्लेख करना होगा ।

घारणी—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक नदीका नाम ।

(भविष्यसं० ४८।२८)

गारुणोपनिषद् (सं० पु०) गारुणया उपनिषद्, गारुणोपनिषद्मा
यन्मिथा । यज्ञः ।

गारुणोत्त (सं० पु०) गारुणोत्त, यज्ञः ।

गारुणोपनिषत्संज्ञा (सं० पु०) तोष्यभेदः ।

गारुण्य (सं० पु० पु०) पु० उ० । १ सर्वाङ्गका राज्ञा ।

२ नीमिकयाम, नायकस्य पानी निकालनेका बरतन । ३
कर्ममन्त्र, कर्मका मंत्र । ४ नेत्रमन्त्र, मन्त्रका कोषः ।

गारुण्य (सं० पु०) गारुण्य गीरादित्यान् टोष्य ।
ह्यारुण्यः, देहनी, दहन्तीति ।

गारुण्य (सं० पु०) यज्ञ या गारुणो मन्त्रयोः ।

गारुण्य (सं० पु०) अग्नि, भागः ।

गारुण्य (सं० पु०) गारुण्योपनिषत् एवः प्रसिद्ध जनपद
अथवा यज्ञके अधिवासी ।

गारुण्य वाग भाषया इमं स्थानके अधिवासियोंके
भाषा जो सामाजिक जीवनसम्बन्धमें भाष्यत हुए, ये ही
गारुण्य कहलाये । द्विष्विषयप्रकाशमें लिखा है—

पमानद्वारे पूर्वी कठारमें ले कर प्रत्यक्षके पश्चिम
तक अनेक नद-नदियोंमें युक्त गारुण्य नामक एक देश है ।
यह देश पश्चिम योजन विस्तृत एवं दुर्भिक्षादिमें अत्य-
न्त स्थित है । यहाँ यज्ञ नामक एक छोटी नदी सर्वदा प्रवा-
हित होती है । यहाँ ही इन्द्र द्वारा यज्ञोंके पर काटे गये
थे । यहाँ बहुसंख्यक कावर्णिकोंका वास है । ये कावर्ण्य
योग प्राप्तियोंका प्रतिरथ करते हैं । स्थान स्थान पर
विज्ञानिराजे राज्य करते हैं । यहाँके अधिवासियोंका प्रायः
सकल ही आदि जन्म-जन्मोंकी वा कर जन्म है । यहाँकी
जन-साधारण देवीतक भाषया विस्तृत है ।

किन्तु नदिराज-प्रत्यक्षमें लिखा है—

पमानद्वारे पूर्णभागमें एक प्रत्यक्ष देश है । यह
गारुण्यके नामसे विख्यात है । यह देश सर्वदा अनाज-
में दूरभरा रहता है । इस कश्चित्पुत्रमें गारुण्यके प्रायः सभी
अधिवासियोंका निवास तथा सदा-समयमें लीन है ।

१३ पूर्वी जनपदोंके प्रथम भागमें प्रसिद्ध सुसम्पन्न
पश्चिमिष्विषय मितराज लिखते हैं—यहाँके किशोर लक्ष्मणा
सती राजपते ही भाग है, अतः पश्चिमिष्विषय 'राज' (राज्य)
के नामसे एवं पूर्वी जन 'पश्चिम्य' (पश्चिम्य) के नामसे

विख्यात है । पश्चिमिष्विषयमें 'लक्ष्मण' (लक्ष्मणपुर)
अथवा पूर्वी जनमें 'पश्चिम्य' अथवा पश्चिम्य है । १० द्विष्विषयप्रकाश
अधिस्य प्रत्यक्ष और निगदाशकी वर्णनासे ज्ञाता जाता
है कि यत्मान मानव्य, दिनाजपुर, राजमाहो, शंकर
अथवा पश्चिम, ये कई एक जिलेका अधिकांश भाग एवं
रंगपुर और मैनसिंहका बहुत कुछ अंश गारुण्य कह-
लाता है ।

जो कुछ भी हो, किन्तु उत्तरमें कौशाम्बर, पश्चिममें
पद्मा, पश्चिममें महानन्दा और पूर्वमें कर्तोवा, इनके बीच
की भूमि पश्चिमिष्विषय या गारुण्य कहलाती है । यहाँ
प्रवाह है, कि उत्तर-भागमा दिनाजपुरके गारुण्य पर्वत
निर्दिष्ट होते पर भी कर्तोवा नदी ही जो प्रायः पश्चिम
मुखी हो कर यत्मान दिनाजपुर गहरके मध्यभागमें
होती हुई महानन्दाके साथ मिल गई थी, उम नदीके
दक्षिण तीरस्थ सभी देश गारुण्यदेशके अन्तर्गत हैं । किन्तु
हो तो गारुण्यके पश्चिमो सोमा कोशीनदी बहते हैं ।
कोशीनदीकी पश्चिमो सोमा निर्धारित करनेमें प्रत्यक्ष
साधन छोटा हो जाता है । पूर्वीक नदियोंके द्वारा उम-
के दोनों तीरस्थ स्थानके अधिवासियोंकी भाषा तथा
भाषा-प्रणाली और येन-भूयासो भी पृथक् पृथक्
होती है । यत्मान पूर्णिया जिलेका अन्तर्गत महानन्दा
महानन्दा नदीके बीच एक क्षेत्रमें अस्तिमित है ।
इस महानन्दाके अधिवासियोंकी भाषा उनके पूर्वीके
पश्चिमो दिनाजपुर जिलेके अधिवासियोंकी भाषाके
समान ही है । पूर्णिया जिला जिस अंशमें आता
होता है उम क्षेत्रके भाषा इनकी भाषादिकी पृथक्ता
अत्यन्त करके पूर्णिया प्रमाणित होता है, कि प्राचीन
समयमें गारुण्य देशका स्वीकारित गुरु रहस्य पक्षमें
था । किन्तु दिनाजपुर जिलेके पश्चिमो अंशकी भाषा
बहुधा दिनाजपुर जिलेके पश्चिमो अंशकी भाषा
विशुद्ध भाषा नहीं है ।

० Raverly's Tabakat i Nalini 1, 545-56, वि-
श्वकोशमें 'पश्चिम्य' पूर्व और पश्चिम कह कर उल्लेख किया है, अर्थात्
ही पश्चिम और उत्तर भागमा होता ।
१ Hunter's Statistical Account of Punjab.

पद्मानदी उत्तरकी ओर क्रमसे खिसक गई हैं। वर्त्तमान नदिया जिलेके कुण्डिया नामक स्थानके प्रान्तभागमें जो गड्डई-नामक नदी प्रवाहित होती है, यह भी एक समय पद्मानदीकी धारा थी। वर्त्तमान बागडोके उत्तर दिक्स्थ अनेक स्थानसे हो कर यहाँ तक कि पश्चिममें भागौरथी तीरस्थ नवद्वीपसे ले कर पूर्वकी ओर प्रताप-द्विर्षके यशोर नगरमें भी उत्तर भागसे होनी हुई सेनवंशीय राजाओंके समय एक विशाल नदी प्रवाहित होती थी, इस प्रदेशकी अवस्था निरीक्षण करनेसे ही थच्छो तरह जाना जाता है। और तो क्या—इस समय भी यहाँके कई एक निम्नस्थान 'पद्माकी खादी' के नामसे परिचित हैं।

करतोया नदीकी जो शाखा दिनाजपुर जिलेकी आठेयो नदीके साथ मिली थी, यह और मूल करतोया नदी अङ्कुरेजी शासनके प्रारम्भ कालमें वर्त्तमान तिस्ता या त्रिफोताके तीव्र वेगशाली होनेके कारण लुप्तप्राय हो गई है। दिनाजपुर प्रदेशमें पर्वतसे निकल कर कई छोटी छोटी नदियाँ आठेयो नदीमें गिरती हैं। काल-वक्रमे से सब नदियाँ रुद एवं महानन्दा नदीके पूर्वाभिमुखी शाखायें विलुप्त प्रायः हो गई हैं। एक समय वारेन्द्र देग आठेयो, करतोया तथा महानन्दाकी शाखा प्रशाखाओंमें सुशोभित था। प्राचीन विलुप्त तथा विध्वस्त जनपदोंका भग्नावशेष उन सब नदियोंके तीरवर्ती स्थानोंकी याद दिला रहा है। इस समय भी देवीके महास्नान मन्त्रमें अन्यान्य पवित्र नदियों के साथ आठेयो और करतोयाका नाम लिया जाता है। आठेयो और करतोया वे दोनों ही नदियाँ पहले समुद्रके साथ मिलती थीं।*

वारेन्द्र देगका नामकरण किस प्रकार हुआ, इसके

सम्बन्धमें लोग नाना प्रकारकी बातें कहा करते हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि एक समय पीप-नारायणी महायोगमें पाल उपाधिधारी वारह राजे भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोंसे इस प्रदेशमें आये। किन्तु पथकी दुर्गमताके कारण रास्तेमें ही योगका समय व्यतीत हो गया, तब उन राजाओंने अचिरपथे आनेवाले महायोगकी प्रतीक्षा करनेके लिये करतोया नदीके तीरवर्ती कई स्थानोंमें वास, राज्यस्थापन एवं राजधानीका निर्माण किया। क्योंकि वारह राजाओंने यहाँ राज्य-स्थापन किया था, इसका नाम वार + इन्द्र = वारेन्द्र पड़ा। यहाँकी स्थानीय किम्बदन्ती इसका ही समर्थन करती है। किन्तु यह सिद्धान्त बिल्कुल ही अप्रामाण्य नहीं माना जा सकता। वारेन्द्रके कुलाचार्योंका कहना है, कि 'वरेन्द्रा' (राज-शाहीके पश्चिम) नामक स्थानमें प्रद्युम्न नामक व्यक्ति-के नामानुसार प्रद्युम्नेश्वर नामधारी हरिहरकी मूर्ति स्थापित हुई और वरेन्द्रशूद्र द्वारा गामिन देग 'वारेन्द्र' नामसे पुकारा गया है।†

अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और गौड़ आदि देश नामकी उत्पत्तिकी जड़में जैसे राजाओंके नाम पर इन देशोंका नामकरण हुआ था, वैसे ही वरेन्द्रशूद्रके नाम पर वारेन्द्र देगका नामकरण हुआ होगा। जो हो, राठ और वरेन्द्र-इन दो नामोंका अत्यधिक प्रचलन वङ्गालमें वीर और हिन्दू राजाओंके अमलमें दिखाई देता है।

सुप्रसिद्ध गौड़ महानगरी वारेन्द्र देगके दक्षिण-पश्चिम ओर अवस्थित है। एक समय गङ्गा और महानन्दायें इस नगरोंकी घेर रखा था। ऐसा मान्य होता है, कि कालके प्रभावसे गङ्गाकी गति प्रवर्त्तित हो कर महानन्दाका कुछ अंश पस्त होनेके कारण इस महानगरीकी ओर वारेन्द्र देगका हृद मानो दूर पर लाया गया है। गौड़-महानगरीके मिया घर्त्तमान मालदह, दिनाजपुर, राजशाही और पाँकुडा जिलेमें हिन्दू और वीर राजाओंकी कारिगरीके मनावशेष विद्यमान हैं। मालदह जिलेके शिमास्नापुर

* महाभारत, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें करतोया मादिरभ्य वर्णित हुआ है। करतोया शब्द देवो। देवीकी भूभा-क स्नान-मन्त्रमें आठेयो और करतोयाका नाम है। "आठेयो भारती गङ्गा करतोया सरस्वती" सुकानन साक्षर इष्टमें दियया और इपटर साक्षरके रङ्गपुके विवरण प्रभृतिमें करतोयाकी उग-उपपत्ती भक्त्या लिखी हुई है।

† Cunningham's Archaeological Survey of India Vol xv.

† विष्णुपुराण।

यादलोपहृत (स'० पु०) यादलोपहृतम, यादलोपहृतमा
यन्देति वा । यदल ।

यादलोप (स'० पु०) यादलोपति, यदलोप ।

यादलोपधाराओं (स'० प्रो०) तोषभेद ।

यादल्ल (स'० पु० प्रो०) ए-उल्ल । १ साँपोंका राजा ।

२ नामैकवाक, नागमेसे पानी निकालनेका यत्न । ३
कृपांमल, कानका मैत्र । ४ गीतमल, सौन्दर्य का यत्न ।

यादल्लडा (स'० म्वा०) यादल्ल यादल्लिरवान् डोएप् ।
द्वारिगलडा, देदलो, दहलोज ।

यादल्लव (स'० वि०) यदल्ल वा यादलो मध्यमवाच ।

यादल्ल (स'० पु०) भागि, भाग ।

यारेन्द्र (स'० पु०) गौरीदेवतात्मने एक प्रसिद्ध जनपद
और यहाँके अधिवासी ।

यारेन्द्र यास भयवा इस स्थानके अधिवासियोंके
साथ जो सामाजिक यौनसम्बन्धमें भावद हुए, वे ही
यारेन्द्र कहलाये । द्विषिजयप्रकाशमें लिखा है—

पञ्चानदोंके पूर्वी कटारसे लेकर प्रत्यक्षके पश्चिम
तक अनेक नद-नदियोंमें युक्त यारेन्द्र नामक एक देश है ।
यद् देश पश्चिम योत्तम विस्तृत एवं दुर्भङ्गुणादिमें भर
है । यह उपवनके निकट तथा मन्दके दक्षिणमें अर-
स्थित है । यहाँ घाँसरा नामक एक छोटी नदी सर्वदा प्रवा-
हित होती है । यहाँ ही इन्द्र द्वारा यवनोंके पर काटे गये
थे । यहाँ बहुसंख्यक कायभोगीका वास है । वे कायस्थ
योग प्राप्तियोंका मन्त्रित्व करते हैं । स्थान स्थान पर
जिज्ञासिराजि राज्य करते हैं । यहाँके अधिवासी प्रायः
मठओ भादि जल-जन्तुओंकी खा कर जीते हैं । यहाँको
जन मत्पारण देवीमानक भयवा विष्णुमानक है ।

किर भित्तिर-उत्तमपदके लिखा है—

पञ्चानदोंके पूर्वभागमें एक उत्तमप देश है । यह
यारेन्द्रके आगम विस्तृत है । यह देश सर्वदा अनाज-
से हरानेवा रहता है । इस कलिपुत्रमें यारेन्द्रके प्रायः सभी
अधिवासो निवृत्तक तथा मठ-भागमें लीन है ।

इसमें अनाजोंके प्रथम भागमें प्रसिद्ध मुसलमान
पेरिदासिक निनहाज मिलते हैं—नागाके दिनारो लक्ष्मणा
वनी भागके दो भाग हैं । उनमें पश्चिममें 'राय' (राष्ट्र)
के नामसे एक पूर्वीमें 'विल्द' (यारेन्द्र) के नामसे

विश्रयण है । पश्चिमभागमें 'लक्ष्मणोर' (लक्ष्मणनगर)
और पूर्वीभागमें 'देवकोट' अयस्थित है । ७ द्विषिजयप्रकाश
अधिव्य संशयण' और निनहाजकी वर्णनामें जाता थातः
है कि यत्मान मानवृद्ध, दिनाजपुर, राजमादो, वाँडुका
घोरपायना, वे कई एक जिलेका अधिकांश भाग एवं
रंगपुर और मैनसि'दका बहुत कुछ भंडा यारेन्द्र पर
लाता है ।

जो कुछ भी हो, किन्तु उत्तरमें कोयराय, दक्षिणमें
पना, पश्चिममें महागन्दा और पूर्वमें करलोवा, इनके बीच
को भूमि यारेन्द्रभूमि वा यारेन्द्र कहलाती है । यहाँ
प्रवाद है, कि उत्तर-तोमा दिनाजपुरके पाददेग पूर्ण
निर्दिष्ट होने पर भी करलोवा नदीको जो जगता पश्चिम
मुक्तो हो कर यत्मान दिनाजपुरे ज़रकरके मध्यभागमें
होती हुई महागन्दाके साथ मिल गई थी, उस नदीके
दक्षिण तीरस्थ सभी देश यारेन्द्रदेशके अन्तर्गत हैं । चित्त
हो तो यारेन्द्रको पश्चिममें सोमा कोजीनदी बनाये है ।
कोजीनदीको पश्चिममें सोमा निर्धारित करनेसे मगपका
आयतन छोटा हो जाता है । पूर्वीक नदियोंके द्वारा उग-
के दोनों तीरस्थली स्थानके अधिवासियोंको भावा तथा
आमार व्यवहार और धेन-भूराको भी पूषरता स्थिति
होती है । यत्मान पूर्णवा जिलेका कृत्यगत महदुमा
महागन्दा नदीके बीच यह क्षेत्रमें सर्वस्वगत है ।
इस महदुमेके अधिवासियोंको भावा उनके पूर्वके
पशोमा दिनाजपुर जिलेके अधिवासियोंको भावके
समान हो है । पूर्णवा जिला जिस भंडावे आरम्भ
होता है उस भंडाके साथ इनको भावादिको पूषरता
अन्योन्य करनेसे पूर्वा तथा प्रमाणित होता है, कि प्रायोग
भागमें यारेन्द्र देशका मोलापटिन मुद्द रहस्य यत्मान
थातः कलता दिनाजपुर जिलेके पश्चिममें भंडाकी भावा
बंगला दिन्दो निश्चित है । पूर्णवाको भावा विष्णु
भागको नदी है ।

● Rovers's Tabakat i Nader, P. 55, 56, 57, 58
हामने लिखे पूर्व और पश्चिम कर कर उल्लेख किया है, उन्हें
ही संक्षेप और उत्तर मानना होता ।
* Hunter's Statistical Account of Punjab.

है। महामाताकी पुरीके बाहरी भागोंमें एक ओर कालीदह नामक बहुत बड़ा जलाशय और दूसरी ओर एक बहुत बड़ी खाई है। पुरीके बीचमें महामाताके मन्दिरके पीछेकी ओर केलिकदम्बकी जड़में एक 'साधतवेदी' चबूतरा है। कहा गया है, कि सातैलके राजा रामकृष्ण यहीं स्थापना करते थे। बहुत पहलेसे ही प्रति दिन मछली मांस आदि विविध भोगोंका नियम था। अबसे २२ वर्ष पहले सेवा-स्त राय बनमाली राय वहादुरके मछली मांसके भोग और बलिदानकी प्रथा रोक देने पर भी चालतेश्वरकी पुजा तान्त्रिक मतसे ही सम्पन्न होती है।

उक्त नोमगाछी नामक स्थानके निकट चैतघाटी नामक स्थानमें जो दगभुजा मूर्ति प्रायः तीन हाथ लम्बे एक पत्थर पर खड़ी हुई है। ऐसी जनश्रुति है, कि यह सुरथ राजा द्वारा स्थापित है। नोमगाछी नामक स्थान विराटके दक्षिण गोप्रद न होने पर भी वहाँ जयपाल नामक पराक्रान्त राजाने जयसामर नामक पोखरा खुदवाया और बहुतेरे मन्दिर बनवाये थे। उनके द्वारा उक्त दशभुजा मूर्तिको स्थापना कौन-सी विचित्रता होगी। यहाँ तान्त्रिक प्रथाके अनुसार मछली मांसके भोगका नियम आज भी वर्तमान है।

जिला पटना, धाना चाटमोहरके निकट सातैल बिलके बीच और छद्म आलेषो नदीके किनारे सातैलको राजधानी कालिका मूर्ति; उक्त जिलेके धाने दुलाईके अधीन शरप्रामके नागवंश द्वारा स्थापित कालिका मूर्ति; जिला राजशाहीके धाने बाघमाराके अन्तर्गत राम-रामा नामक स्थानमें ताहिरपुरके भौमिक जर्मोशरीरों द्वारा स्थापित श्रीमूर्ति और दिनाजपुरकी कालिका मूर्ति आदि शाकप्रभावकालकी बहुतैरी देवमूर्तियाँ और देव-स्थान इस प्रदेशमें वर्तमान हैं।

रानी भदानीने नाटोरसे भगानीपुर जानेके लिये एक चौड़े राजपथका निर्माण कराया। इस राजपथके बीच बीचमें ईंटके बाँधका मनावशेष, स्थान स्थानको छत्र-दानाके पोखरे आदि और इस रास्तेके निकट किन्हीं स्थानमें 'रानोका हाट' नामका एक स्थान भी वर्तमान है। सातैलकी रानी मत्पत्नी और नाटोरकी रानी मवानो द्वारा निर्मित राजपथ 'रानोका जङ्गल' नामसे

परिचित था। मुसलमान राजत्वकालमें राजशाहीके चारघाट अञ्चलसे जो एक राजपथ मुत्वा सेरपुरकी ओर और वहाँसे रंगपुरसे भासाम प्रदेशमें जानेके लिये बना था, * इस समय यह घिलुप्त हो गया है। इन सब राजपथोंके सिवा भीमके जङ्गल नामक राजपथका भग्नावशेष स्थान स्थान पर दिखाई देता है। विराट शब्द देखो।

बीह और हिन्दू राजत्वकालमें एक प्रधान राजाके अधीन कई सामन्त राजे रहते थे, नाना स्थानोंकी राजधानियोंके भगवानशेष देखनेसे उस बातका परिचय मिलता है। पाल उपाधिधारी बाहदुर राजाने पौवनारायणीके खानके लिये आ कर इस देगमें उपनिवेश स्थापित किया हो या नहीं किया हो अथवा पञ्जपाण्डवोंके आश्रयदाता विराट इस देगके राजा हों या न हों, चारेन्द्रकी नैसर्गिक अवस्था और वर्तमान भग्नावशेषपूर्ण विविध स्थानोंके प्रति दृष्टिपान करनेसे मालूम होता है, कि एक बार कई छोटे छोटे राजाओंकी समष्टिसे चारेन्द्र गठित हुआ था।

इस स्थानमें मिले प्राचीन ताम्रनामन और जिला-लिपियोंसे मालूम होता है, कि इसी सनकी छोटी शताब्दी तक यह स्थान गुप्तसम्राटोंके अधीन था। उनके अधीन दत्त उपाधिधारी सामन्तराजे राज्य करने थे। पाल राजाओंका प्रभाव नष्ट करके इसीसनकी दशवीं शताब्दीमें यहाँ फैयरा-प्रभाव फैला। फैयराओंकी कीर्तियाँ चारेन्द्रके स्थान-स्थानमें पाई जाती हैं।

ऐसा सुना जाता है, कि मुसलमानोंने बंगाल पर अधिकार कर कई जागीरोंकी सृष्टि की। ऐसा प्रवाद है कि ताहिरउल्ला खाँके नामानुसार ताहिरपुर प्रमनेका और लस्कर खाँके नामानुसार लस्करपुर आदि प्रमनेका नाम हुआ है। यह भी सुना जाता है, कि पटानोके समय लस्कर खाँको जागीर पद्माके उत्तरी किनारे पर थी। पीछे पद्मा नदीकी गति बदल कर इस प्रमनेका कुछ अंश पद्माके दक्षिण किनारे ही गया है। इस तरह जागीर-प्रदाय प्रथमके समय चारेन्द्र देगमें जो जर्मोशर था, वह राजा गणेशके नामसे ही विद्यमान था, ऐसा विश्वरूपसे प्रमाणित होना है। नगेत्तनचिन्तास आदि

* Stuart's History of Bengal.

नामक स्थानमें लक्ष्मणसेनकी बनाई एक शीर्षिका या
 तालाब, बिनामपुर जिलेके गङ्गासामुग्रमें महोपालशीर्षि
 नामकी अनासुषित कानि भीर राजस्थानके जिलेके धाना
 मन्दा भीर सिन्धा भादि पलायने गई बड़े बड़े जन्तुनाय
 भीर बोकुटा जिलेके भीतर धाना क्षेत्रनालके अधीन
 माल्दर तालाब भीर धाना नियमज्ञके लघीन प्रजाकी
 शीर्षि या तालाब (कहा गया है, कि जन्तुनायके नाम पर
 यह तालाब है। इसका अपभ्रंश माल्दर जन्तु है) धाना
 स्थानमें विनये हो तालाब घोघरे भादि, धाना सेरपुरके
 अन्तर्गत राजवाडा नामक स्थानमें जैन राजाओंकी
 अतिम राजप्रधानोंकी भादि भादि भीर जिला पबनाके
 धाना सामग्रम भीर प्रगना मयमनराहोंके अन्तर्गत
 नीमगाछी नामक स्थानमें जयस्यार तालाब मौजूद है।
 बोकुटा जिलेके सोन कौस उत्तर करतोपानट पर हो
 महास्थानमण्ड ७ नामक जो स्थान है, चीनपरिभ्राजकके
 पणोनानुसार यही दीपचुडन नामक प्राचीन नगर है।
 कथा पर्यमाण चैनिहामिचोने भी उग्रका समर्थन किया
 है। महास्थानम या बदल नामक प्राचीन प्रस्तास्यमा-
 लिपि इसी स्थानमें हो पर्यमाण है। उक्त महास्थान भीर
 गङ्गाबहाड़ीके सिवा घोघोंका भयन, क्षेत्रनाला, देवो-
 बोट, देवस्थान, विराट, मोमगाछी, भवानोपुर, भालता,
 चैतहाटी, १शुकी, काठोमी भादि बहुतैरे जनपद बीछीं
 भीर हिन्दुओंके राजपरकी विगतस्मृति विधोपण कर
 रहे हैं।

जैन राजाओंके समयमें ही बङ्गालके प्राणय भीर
 वादस्थ भीर लघी जालाके लोच वासिष्ठ विदेवणने
 पर्यमाण हो रहे हैं। मुसलमानोंके सामनबाजमें

• यह स्थान बहामोश या राजपरके ६०० अंश
 ६०० मोन पूर भीर मर देव है। य नाश्वानने दीपचुडन
 का आकन ४००० अंश वा ६६० मीलका अनुमान किया है।
 बोट देके अन्तर्गत भाग भा दीपचुडन देव समान ही है।
 महास्थान, बटा भीर बरतोना नदीके प्राचीन लपि पर बजान
 देना बाँड़े। पर्यमाण कनका कनो भीर दीपचुडन नदी हो लक्ष्मण

Consulting Geographer's official Geography of India
 1-188 १९०१

राजा गणेश स्वधीन हुए थे, ये भी वासिष्ठ देवनागरी के।
 भवानोपुर, भालता, चैतहाटी भादि स्थानोंके
 प्राचीन देवसेवा मुसलमानोंके समयमें बहुत समयके सि-
 लुप्त-हो गई थी। भवानोपुरकी महामाताका स्वर
 स्वतन्त्ररूपसे लिखा गया है। सुनते हैं, कि ये सब
 सेवाये फिर राजा मानसिंहके समयमें आरम्भ हुई।
 इन सेवाओंका भार कई संवामियोंके हाथमें सँभाल
 था, पाँचो सातैलकी जमींदारो संघटित होने पर पर
 भार सातैलके राजाके हाथ चला गया। गणेश पर
 देवो। जब सातैलकी जमींदारो नाटोरके राजाके हाथमें
 सँभाले, तब नाटोरके राजा रामजोधनरायने इन सेवाओंका
 भार ग्रहण किया। सातैलके राजाके वनाये गिरिगि
 पुरामे होने पर नाटोरकी प्राणस्मरणोंवा रानी मवाती
 भीर राजा रामकृष्णने गये सिन्धे तटगार करवाया।
 नाटोरकी सम्पत्ति नीलाम हो जाने पर भालता भीर चै-
 हाटी भादिकी सेवा किसी दूसरे आदमीके हाथ ली।
 ऐसा सुना जाता है, कि उक्त देवताओंकी पूजाका भार
 खदरल था। पुर्णितसव भादि गारे पर्य हो इन देव
 तामोंके सम्मूल मनाये जाते हैं। उक्त भालता नामक
 स्थान प्रगने भातुरिया तथा कुसुम्भी भीर बोकुटा भीर
 राजसाही जिलेकी मोमा पर अवस्थित है। राजसाही
 जिलेके सिन्धा धानेके भीतर भीर प्राग्वाहादमें बोकुटा
 जिलेमें जो रेलपथ गया है, उस पथके तालोड घेजमें
 ३४ मील दूर पर अवस्थित है। भालताकी देवसेवा
 जिस समय आरम्भ हुई, समग्रतः उस समय नाटोर
 नदी भालताके नीचे हो प्रवाहित हो रही थी। नाटोर
 भीर तुलसीगङ्गा भादि करतोपाकी प्राणायें हैं।
 भालतेभटो महामाताकी मूर्ति एक हाथ लगी है। श्री
 मूर्ति महा-सपेदा धरणात्मा रहती है। पुर्णित
 वा पुतागोके सिवा दूसरा भीर वन उत्तर भीर बटा
 नहीं लक्ष्मण। भालतेभटोके स्ववहार करके लक्ष्मण
 रीय वादुका रहती है। पुर्णित वज्रमें सिन्धुनाम्नमें
 महामाताकी पूजाकी पटलि भीर मज्र भादि गिराया
 जाता है। सब दूी वासके भूँडोतके बाल्य सातैलके राजाके
 दिने हुए भोमसिंह एक कालीन पर्यमाण भीर नाटोर
 राजाका मन्दिर भी बहन पुराता भीर वासलोप हो गया

है। महामाताकी पुरीके बाहरी भागमें एक ओर कालोद्द नामक बहुत बड़ा जलाशय और दूसरी ओर एक बहुत बड़ा खाई है। पुरीके बीचमें महामाताके मन्दिरके पीछेकी ओर केलिकदम्बकी जड़में एक 'साधतवेदी' चबूतरा है। कहा गया है, कि सातैलके राजा रामकृष्ण यहीं साधना करते थे। बहुत पहलेसे ही प्रति दिन मछली मांस आदि विविध भोगोंका नियम था। अथर्व २२ वर्ष पहले सेवा-इत राय वनमाली राय बहादुरके मछली मांसके भोग और बलिदानकी प्रथा रोक देने पर भी घालतेधरोकी पुजा तांत्रिक मतसे ही सम्भन्न होती है।

उक्त नौमगाछी नामक स्थानके निकट चैत्रघाटी नामके स्थानमें जो दगभुजा मूर्ति प्रायः नौन हाथ लम्बे एक पत्थर पर खुदो हुई है। ऐसी जनश्रुति है, कि यह सुरघ राजा द्वारा स्थापित है। नौमगाछी नामक स्थान विराटके दक्षिण गोप्रद न होने पर भी वहाँ जयपाल नामक पराक्रान्त राजाने जयसागर नामक पोखरा खुदवाया और बहुतेरे मन्दिर बनवाये थे। उनके द्वारा उक्त दगभुजा मूर्तिकी स्थापना कीन-सी विचित्रता होगी। यहाँ तांत्रिक प्रथाके अनुसार मछली मांसके भोगका नियम आज भी वर्तमान है।

जिला पटना, धाना चाटमोहरके निकट सातैल बिलके बीच और बड़ आब'यो नदीके किनारे सातैलकी राजधानीकी कालिका मूर्ति; उक्त मिलके धाने दुलाईके अधीन शरप्रामके नागवंश द्वारा स्थापित कालिका मूर्ति; जिला राजशाहीके धाने बाघमाराके अन्तर्गत रामरामा नामक स्थानमें ताहिरपुरके भौमिक जर्मोदरों द्वारा स्थापित श्रीमूर्ति और दिनाजपुरकी कालिका मूर्ति आदि ज्ञातप्रभावकालकी बहुतेरी देवमूर्तियाँ और देवस्थान इस प्रदेशमें वर्तमान हैं।

रानो भवानोंने नादोरसे भवानोपुर जानेके लिये एक चौड़े राजपथका निर्माण कराया। इस राजपथके बीच बीचमें हँडके बाँधका मन्नावशेष, स्थान स्थानकी छज-जाशके पोखरे आदि और इस रास्तेके निकट किमी स्थानमें 'रानोका हाट' नामका एक स्थान भी वर्तमान है। सातैलकी रानो सटपवतो और नादोरकी रानो भवानो द्वारा निर्मित राजपथ 'रानोका जङ्गल' नामसे

परिचित था। मुसलमान राजत्वकालमें राजशाहीके चारघाट अञ्चलसे जो एक राजपथ मुत्चा सेरपुरकी ओर और यहाँसे रंगपुरसे भासाम प्रदेशमें जानेके लिये बना था, * इस समय यह विलुप्त हो गया है। इन सब राजपथोंके सिवा मोगके जाङ्गल नामक राजपथका भन्ना विशेष स्थान स्थान पर दिखाई देता है। विराट शब्द देखा।

बौद्ध और हिन्दू राजत्वकालमें एक प्रधान राजाके अधीन कई सामन्त राजे रहते थे, नाना स्थानोंकी राजधानियोंके मन्नावशेष देखनेसे उस बातका परिन्धय मिलता है। पाल उपाधिधारी ब्राह्मण राजाने पीपनारावणोंके ज्ञानके लिये आ कर इस देशमें उपनिवेश स्थापित किया हो या नहीं किया हो अथवा पञ्चपाण्डवोंके आश्रयदाता विराट इस देशके राजा हों या न हों, वारेन्द्रकी नैसर्गिक अवस्था और वर्तमान भग्नावशेषपूर्ण विविध स्थानोंके प्रति दृष्टिपान करनेसे मालूम होता है, कि एक बार कई छोटे छोटे राजाओंकी समष्टीसे वारेन्द्र गठित हुआ था।

इस स्थानमें मिले प्राचीन ताम्रसामन और जिला-लिपियोंसे मालूम होता है, कि ईसा सनकी छठो शताब्दी तक यह स्थान गुप्तसम्राटोंके अधीन था। उनके अधीन दत्त उपाधिधारी सामन्तराजि राज्य करते थे। पाल राजाओंका प्रभाव नष्ट करके ईशोमनकी द्वावी शताब्दीमें यहाँ फैवस-प्रभाव फैला। फैवसोंकी कीर्तियाँ वारेन्द्रके स्थान-स्थानमें पाई जाती हैं।

ऐसा सुना जाता है, कि मुसलमानोंने बंगाल पर अधिकार कर कई जमीनोंकी सृष्टि की। ऐसा प्रवाद है कि ताहिरउल्लाहोंके नामानुसार ताहिरपुर प्रगनेका और लस्काहोंके नामानुसार लस्कापुर आदि प्रगनेका नाम हुआ है। यह भी सुना जाता है, कि पटानोंके समय लस्कारोंकी जमीन पन्नाके उत्तरी किनारे पर थी। पीछे पन्ना नदीकी गति बदल कर इस प्रगनेका कुछ अंश पन्नाके दक्षिण किनारे हो गया है। इस तरह जमीन-प्रदा प्रचलनके समय वारेन्द्र देशमें जो जमींदार था, यह राजा गणेशके तनमें ही विद्यमान था, ऐसा विशेषरूपसे प्रमाणित होता है। नदीनमविद्यास आदि

* Stuart's History of Bengal,

पैकालपत्रमें भी विभिन्न जमींदारोंके नाम प्राप्त होने हैं । नतीकान् डाकूके विना सैतरी मञ्जुनके प्रतापनाथी जमींदार थे । पट्टहथी नानापुरीके मन्थ भागमें ब्राह्मण जातिमें नाहरिपुर मानीक और पुटिया आदि और कावम्भ जातिमें दिनाजपुर और गद'नदीठोंके जमींदार क्षमताजानो थे । मानीक जमींदारोंके विस्तृत होनेके साथ नाटोरको जमींदारोंकी शक्ति हुई । इस प्रदेशमें खूँसी जातिके दुकलदाईको जमींदारी भी बहुत प्रचली है ।

मुसलमानोंके शासनमें पहले ही चारैन्द्र देशमें बहुतसे लोग पूर्वपट्टकी और भाग गये थे । पहले कमी कमी महाभारतमें बहुत लोग मर जाते थे । सन ११३६को महाभारतमें जनसंख्याका हानि होने लगा । इसके बाद बिजने ही स्थानोंमें मलेरिकाका प्रकोप फैला गया ।

हिन्दू और बौद्ध-जातके प्राचीन जनपदोंमें कई स्थानोंका विवरण दिया जा चुका है । अब पहाड़पुर, सोमोका जयम, कामाई, चाटनगर, दिवोरदोयो, शैतनाला, देवीवीठ, शिवस्थान और मुसलमान राजस्यकायकी विनाय राजपाना हस्तत पाण्डुभाका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है ।

पहाड़पुर ।

भारतमें नदीनदके परतीतनाथे दून चीन पुरष और मसिद महास्वानगदुमें प्रायः पट्टहथी जेम पश्चिम, जमानगदुकी दूसरी और और शक्तिविद्ध रेल-पथसे दो चीन पश्चिम पहाड़पुर स्थिति है । युक्तान्त महाद्व पहाड़पुरको 'स्थानोंका भौंडा' कहते थे ।

साहबकी और प्रायः पट्टहथी फीट मसकीकीर बड़े एक गेरेके मन्थस्थानमें ८० फुट ऊँचा मिट्टीका एक स्तूप है । इस स्तूपकी खुदपाया गया था । इसमें बहुत प्रचली मगत मर्दान् ५वींसे ७वीं शताब्दीके हिन्दूओंके स्थापन और साहबदेका उद्योग निश्चित विख्या है ।

बोलीका मन्थ ।

धुला मदीके बिजारे पहाड़पुरसे ३ चीन पश्चिम— 198 पश्चिम चीनमें, मङ्गलवादीके इसी पश्चिममें ब्रह्मण पश्चिम चीनमें सोमोका मन्थ मरिस्थित है । यहाँ मर्दान् मीन पुरातुक एक मन्थमें मसिद है । इसी लिये यह सोम-पुरा का सोम की गुका नामसे परिचित

है । युक्तान्तमें कहा है, कि महाद्विजाके मन्थ- क्षेत्रमें ही मसिद दिग्दर्श देना है, यह राजा देवराजक नामस्थान है । इस स्थानके लोग भी इसे मङ्गल दे- पालको छोटी कहते हैं । इस मसिद पर किसी तरहके निर्माण दिग्दर्श नहीं देना । महास्थानमें यह ३ सोमो की दूरी पर मरिस्थित है । प्रवाद यह है, कि सुदसे मन्थ- स्थानमें जातेके लिये एक सुन्दर है, इसमें एक निर्माण है । प्रयेज-पथके दाहिने और बाईं ओर गुफाओं और चिन्तितो है । नमसुख नाममें योगोंके रहनेका आशय है । सुदके दक्षिण दो छोटे-छोटे मसिद हैं । इनमें एक मसिद में नियन्त्रित स्थापित हुआ है और दूसरेमें मन्थविद्ध । इन सोमोके लक्षणके मूर्तियोंके चार मुख दिग्दर्श देते हैं । किन्तु इनके पांच मुख ही रहना समझा है । सुदके मसिदको बाहरी लम्बाई ३ फीट ७ इंच है । एक लघुगुप्त विष्णुमूर्ति है । लिये इसके एक निगुकी गोदमें ले कर एक मन्थ मर्दान् मूर्ति है । येष्ट मन्थका कहना है, कि यह मायादेवा कुंडकी गोदमें लिये लड़ी है । मायादेवोंका इस तरह निर्माण मूर्तियों द्वाइगोचर नहीं होना । शैतनाला या मन्थनाथमें इस तरहका एक मूर्ति है ।

भामरी या भामरी ।

योगीश्वरने प्रायः छेठ कीम दक्षिण पश्चिम दूर पर पर स्थान मन्थिथ है । पूर्व-पश्चिममें यह पर मन्थमें ही मन्थिक लम्बा है । ४६ फीट और मन्थरकार्य दिग्दर्श देते हैं । भामरीके छेठ मील उत्तर पश्चिम पुरातन मन्थ स्थानमें कई प्रतिमूर्तियाँ और एक सुन्दर "मन्थमि"- मूर्ति है । निचलनामें विष्णु भादिकी मूर्तियों विद्यमान हैं । सोमोके स्थानमें शिव मन्थीमें एक मन्थ हीना है ।

पारनगर ।

भामरीके मन्थ परतीतनाथे १२ मील पश्चिम, दक्षिण- पश्चिममें यह स्थान मरिस्थित है । इस स्थानके चारों ओर प्राचीन ईदें दिग्दर्श देती हैं । यहाँ दो छोटी छोटी मन्थ- मूर्तियाँ हैं । इस स्थानमें यह मील दक्षिण-पश्चिम स्थानोंके जमींदारों द्वारा स्थापित लया, विष्णु, और मन्थीकी मान मूर्तियोंका विद्यमान है । जमींदारोंकी बख्शरी मो लिये यह पर प्रचली इतनी बलदे गये हैं ।

विशेष बंधन ।

पारनगरमें ही, मोथ दूर पर दिवोरदोया मन्थ

यूहत् सरोवर है। यह समचतुष्कोण है। यह प्रायः १२०० फीट होगा। इसमें १२ फीट गहरा जल रहता है। इसके बीचमें पत्थरका एक लम्बा स्तम्भ है। यह जलके ऊपरसे १० फीट लम्बा है। सुनते हैं, कि वैशाखके प्रखर उतापसे जल सूख जाने पर इस स्तम्भ पर खुद्री हुई लिपि दिखाई देती है। नुकाननका अनुमान है, कि अबसे एक हजार वर्ष पहले धोवर राजाने इसे खुदवाया था।

यह कइनेको आवश्यकता नहीं, कि रामचरित-वर्णित कैवर्त्तराज दिव्योक्तके नामानुसार यह 'दिवोर दोम्बो' का नाम हुआ है।

क्षेत्रनाल ।

यह साधारणतः 'क्षेत्रनाल'के नामसे पुकारा जाता है। दिनाजपुरसे बाँकुड़ा तक यड़े राजपथमें दिनाजपुरसे ६० मील दक्षिण-पूर्व और बाँकुड़ासे २४ मील उत्तर-पश्चिममें यह स्थान अवस्थित है। यहाँ बाँकुड़ा जिलेका एक थाना है।

यहाँ प्राचीन ईंटोंका स्तूप, गृहन् जलाग्नय और पाषाण-प्रतिमूर्ति विद्यमान है। थानेके दक्षिणमें अवस्थित मिट्टीके स्तूप पर १२ फीट लम्बा और ६ फीट चौड़ा एक मन्दिरका भग्नावशेष दिखाई देता है। यहाँ एक पुण्यमूर्ति पीपलके वृक्षको जड़में अर्धाच्छादित अवस्थामें और १ फुट १० इञ्च ऊँची और ११ इञ्च चौड़ी चतुर्भुजा विष्णुमूर्ति है। सिवा इनके यहाँ प्रायः १ फुट १० फीट लम्बा एक आश्चर्य स्त्रीमूर्ति मनायस्थानमें अपने बायें हाथका तर्किया बना कर बाईं बगलमें लेटी हुई है। इसके निकट ही एक सुन्दर बालक लेटा हुआ है। इस मूर्तिके शीर्षस्थान पर एक सखी चमर झुला रही है और पैरको और दूसरी दासों चरण सेवा कर रही है। इसके दाहिने हाथमें एक पुण्य और गिर पर गणेशादि देवनाभोंके छोटे छोटे चित्र हैं। जप्याके नीचे फूल-फलोंमें भरी डाली रखी है। इसके पाददेशमें देवनागरा-शरमें लोहित लिपि है।

थानेके उत्तर कुछ दूर पर एक पोखरेके निकट महा देवजीका एक मग मन्दिर है। यहाँ चार प्रधान मूर्तियाँ हैं। एक तो पहले लिखी स्त्रीमूर्ति, इनके साथ नव-प्रदोंका चित्र भी दिखाई देता है। यह मूर्ति २ फीट ६

इञ्च लम्बी और ६ फुट ऊँची है। दूसरी हमीरीकी मूर्ति है। चार भुजाके हर गंभीरका चुम्बन कर रहे हैं। तीसरी मूर्ति ३ फीट ऊँची चतुर्भुज विष्णुमूर्ति है। चौथी छोटी एक मूर्ति बैठाई गई है। वेष्टमाकेटने इसको बौद्ध कहा है। सौभाग्यवशतः एक प्रतिमूर्तिके निम्नदेशकी भाग उपोडमें देवनागरमें बुद्धसूत्रका कुछ अंग लिखा है। जैसे—

"जो धर्महेतुप्रभवहेतु" इत्यादि।

क्षेत्रनालके ६-७ मील उत्तर-पूर्व ओर नादियाल द्वांगो नामक एक पोखरा है। इसके बीचमें एक ईंटकी बनी दीवार है।

देवीकोट।

पुनर्मया नदीके पूर्व-तट पर देवीकोट नामका एक प्राचीन दुर्ग संस्थापित है। यह स्थान पाण्डुआके ३३ मील उत्तर पूर्व तथा दिनाजपुरके दक्षिण पश्चिम ओर गीहके प्राचीन दुर्गके ७० मील उत्तर और उत्तर-पूर्वामें अवस्थित है। एक समय यह देवीकोट निःसम्भूत बहुत बड़ा एक जनपद था। इस समय भी नदीके किनारे प्रायः तीन मील स्थानमें इसका चिह्न दिखाई देता है। कहते हैं, कि यहाँ बाण राजाका दुर्ग था। हिजरी सन् ६०८में ई२४ तक ग्यासुदीनने राजदव किया था। इसके समयमें लक्ष्मणायनीसे देवीकोट तक एक चौड़ा राजपथ बना था।

जिस स्थानमें देवीकोट अवस्थित है, उस प्रदेशका पहले "देवीकोट सद्भवोर्ष" नाम था।

देवीकोटके दुर्गके अंशमें तीन खाइयाँ हैं और ये बृहत् मृन्मय प्राचीरसे परिवेष्टित हैं। जिसकी लोंग दुर्ग कहते हैं, यह निचिउ जङ्गलसे परिपूर्ण है। उममें मनुष्यका जाना असम्भव है। गढ़का आयतन प्रायः २००० फीट समचतुष्कोण है। दुर्गके दक्षिण-पश्चिम कोणमें मूळतान शाहकी मगजिद् है। इसके निकट ही जीव और अमृत नामके दो कुएँ हैं। मान्यम होता है, कि यह स्थान और पूर्ववर्णित महास्थान एक ही रूपमें हिन्दू गौरवमें विद्यमान हुआ है। यहाँ जीवकुण्ड और महास्थानमें जीवकुण्ड विद्यमान है।

देवीकोटके उत्तर प्रायः १००० फीट समचतु-

द्वीप मृग्याभोरने पिता हुआ और उसके उत्तर भी
 हम्रा सत्यका मृग्याभार है। ये दोनों बड़ी मजदूरके रूपमें
 दिव्याईं गये हैं। उत्तर भोरके भेरेमें उत्तर-वादिचम कोलमें
 मयावप-प्रांतको ममजिद है। पुकातन और कमिदामने मिया
 किया है, कि यह ममजिद किसों दिग्गु-मन्दिरके धर्ममा-
 संघ पर हो बनी थी। इस स्थानमें ही कमिदाम मयादधने
 बने परपर और ईंटों पर बादिच दिग्गु मन्दिर देखा
 था। पुकातन नदीके दूसरे पारमें पीर बहाउद्दीनकी मस-
 जिद है।

मयुधैरन स्थानको लखनौ प्रायः एक मील है।
 इसके दक्षिण ओर दुनदमा या छावनी है। इस छावनी-
 में दो बांघविनिष्ठ पथ पूर्णको तरफ सौदाज-दोगी और
 कामा-दोगी नामक सारपरके निकट गया है। पूर्णक
 शोषण, पूर्ण गिरिमहा लख ई देव कर इसे कमिदाम
 मयादध मुमजमानीका बनाया समझते हैं। किन्तु यह
 युक्तिमंगल नहीं, हम शोषक मयादधके जलानय दिग्गुभो-
 के बनाये बने जगहोंमें देखते हैं।

कामादोगी नामक सरोवरको लखनौ पार हमार
 फौज है और चौदह मील मी फौज है। प्रयाद है, कि
 पाणानुवरके परभो कामो रामोके नामानुसार इस सरो-
 वरका नाम रखा गया है। ये दोनों जलानय देवीकोटके
 दियेमें एक मीलको दूरी पर अवस्थित हैं।

सौदाज दोगीके उत्तरी तर पर मयावदानका
 'ममजाना' है। यहाँ जो ममजिद है, उसकी एक ओर
 ब्रजगढ़ और दूसरी ओर कियत (ममज पट्टेका
 स्थान) है। इसकी मजिहा मूल परधारी लुहा हुआ
 और इसका जोर्णदेग ईंटोंका बना है। इसके मात वा
 दायामें पाण स्थानमें सुदी दूर फारसी लिपि दिव्याईं
 देखा है। परन्तु निर्विमें की दोआमहा नाम दिखते मन्,
 ६३७ मयाका (१५) मयदध लारीण, दूसरी निर्विमें मिया-
 मुदुनका नाम और दिखते ७५५ तीसरी निर्विमें मम-
 मुदान मुमजम मयादध नाम और ८६५ मया निव्या
 मया है। चौथी निर्वि मयादधके पुममके पथी है। इस-
 में मयादध दुमनके राजपवालयका मया ११८ दिखते
 लिखा है।

देखनेवाली।

इसको मयावदानका देवनागा बहने है। यह भी एक

दिग्गु-मियाग है। दिनाजपुरके बड़े राजपवाके मजिद
 पाणमुभाके १५ मील उत्तर पर अवस्थित है। यहाँ बड़े छोटे
 छोटे जलानय है। यहाँके दिग्गु मजिदके परपथ की
 ईंटोंमें एक ममजिद लप्यार हुई है। इसकी दोरामें जो
 लिपि सुदी हुई है, वह अरबक बादयर्मजक है। इसमें
 यादवकजादका नाम और दिखते मन् ८६८ मया मुदा
 है। ममजिदकी प्रक्षिणामें कमने हो दिग्गुमया है। यहाँ
 भी एक याणुदेवकी मूर्ति है। प्रयाद है, कि उना हथके
 मयव श्रोष्ठानने मयावियर यहाँ कुछ दिनों तक अवस्थान
 किया था।

इजल पाण्डुभा।

पाण्डुभा मुमजमानीको राजधानी बनी थी। इसमें
 इसके माध हमारका गिरेवण जोड़ा गया। पाण्डुभाके
 नामकरणके मयस्थमें लोणी को येवो धारणा है, कि ३७
 पाण्डव भागलयासके लिये निकले थे, लख यहाँ भा कर
 एक वर्ष तक उन लोगोंने कियात किया था, इसीसे इस
 स्थानका नाम पाण्डुभा पड़ा। किन्तु वास्तवमें वह
 लोक नहीं।

पाण्डुभाके दक्षिण बड़े बड़े बड़े जलानय विद्यमान
 हैं। मिया इसके दिग्गु-मन्दिरके मयावशोषके विह
 बादिगा मयाजिद, एकलपता मुमज और नूरकुन मयम
 मयुनि दुधैरनेवर होने थे।

फिरोज मुमजकके भाकमयमें इलियामसादने पाण्डुभाके
 भाग एकजाला नामक स्थानमें आ कर राजधानी स्थापित
 की थी। इलियामसादके पुत्र गिजकन्दरामने दिखी
 ७५८में ७६५ तक राजतय किया। इस जगद यह का
 हमने एक बड़े भारी ममजिद लप्यार यहाँ भी। मीद-
 मयाकी राजधानीके बदलनेके बादमें ही पाण्डुभा लवरी
 भीदीन होने लगा।

नूरकुन मयमको ममजिद मयावलयका (उःहमरी
 नामसे परिचित है। मुजकमयादकी मयाके लिये इसको
 मूर्ति बहादुर जाल की गई थी। लखमें मयादका बहान
 है, कि ये मियाज भा-ला-रम-दकके पुत्र हैं। पर ८५१
 दिखते हैं इस मयावयमके छोटे कर वादीक मयाव।
 इसकी मयामें एक मजिदिका है। बहने हैं, कि यह
 मजिदिका मयादध मयव हमा बलनहीं गई थी। इसमें

धनानेकी ८६३ दिजरीकी २४ जिलदिल्ल तारोख लिखी है। कनिहम साहबका कहना है, कि यही नूरकुतब-आलमका असली मुम्बज है।

नूरकुतबके छद्मनामोंके जरा उत्तर सोना मसजिद है। इसमें लिगि उत्कीर्ण है, इससे मालूम होता है, कि मुकदमशाह द्वारा ६६० दिजरीमें यह निर्मित हुई है। इसके बनानेवालेने अपने पूर्वज नूरकुतबआलमके नामके अनुसार इसका नाम कुतबशाही मसजिद रखा है।

एकलषणा मुम्बज सोना मसजिदके कुछ उत्तर और दिनाजपुरकी ओर जानेवाले पथमें है। मालूम होता है, कि इसके निर्माणकार्यमें एक लाख रुपया खर्च हुआ था। इसीसे इसका एकलषणा नाम पड़ा। इसकी ईंटों पर भी हिन्दू-शिखरियों द्वारा बनी प्रतिमूर्तियाँ स्थापनमें दिखाई देती हैं।

आदिना मसजिद केवल पाण्डुरांमें ही नहीं, किन्तु यङ्गदेश मंत्रमें एक वास्तुदर्शका सामग्री है। इसकी लगभग प्रायः दस सौ हाथ और चौड़ाई डेढ़ सौ हाथ होगी। इसके पश्चिममें हिन्दू भाँवोंसे खुदा हुआ काच कार्य दिखाई देता है। ७७० दिजरी ६ रजबकी (सन् १३६६ ई०की १४वीं फरवरीकी) इलियास शाहके पुत्र सिकन्दर शाहने इसको तहयार कराया। इसमें जहाँ नमाज पढ़ी जाती है, उमके सामने ही अरबी भाषामें कुरानकी आयतें खुदी हैं।

इसके अलावे सत्तारिस घर 'सिकन्दरकी मसजिद' नामका मकान और कई भग्न अटालिकाओंके निह हैं। पाण्डुआ देखो।

बाँकुड़ा शहरके १२ मील उत्तर 'बगराई' नगरका भाग्यशेखर दिखाई देता है। इस स्थानका वर्तमान नाम यहाँकी भाषाके अनुसार 'चाँदमुआ' हुआ है। इस चाँद-मुआ प्रामके निकट सोहराई गोरारै नामके दो बिले हैं। बिलोंकी चौड़ाई कुछ कम होने पर भी सामान्य नहीं। यह देख कर अनुमान होता है, कि पहले यह कोई नदी-गर्भ था। गोरारै बिलके बीचमें पचासवींका चिह्न है। प्रयास है, कि बिलमें आने जातेके लिये एक समय ईंटोंका बना एक पथ था। जो दो बिलके किनारे पर पुराने ईंटोंके टुकड़े पाये जाते हैं। कहते हैं, कि ये सब

कीर्तियाँ चाँद साँदागरकी हैं। बाँकुड़ा मञ्चलके कुछ गंधी अपनेकी चाँद साँदागरके और कुछ वामबनिया-के गंधाघर बतलाते हैं। धारेन्द्रदेशमें गंध बणिक् एक समय धनी कहलाते थे। जयपुरहाट रेलस्टेशनसे डेढ़ मील पश्चिम येनाभावला नामक स्थानमें गंध-बणिक् ज्ञानीय राजीवलोचन मण्डल मुर्शिदाबादके सैठगंधकी तरह धनी था। १६वीं शताब्दीके प्रथम भागमें राजीवलोचन मण्डलकी मृत्यु हुई। येनाभावलाके द्वादश-जिय मन्दिर इस व्यक्तिके वैश्वदर्शका परिचय प्रदान कर रहे हैं।

२ गौडवङ्गवासी ब्राह्मण श्रेणीमें है।

धरेन्द्रभूमिमें आदिवास होनेके कारण धारेन्द्र नाम हुआ। धारेन्द्र और राहोय ब्राह्मण कुन ग्रन्थकी पढ़ कर हमें ज्ञात हुआ है, कि ६५४ शक आदिशूका अभ्युदयकाल है। इस समय उन्होंने कन्नौजसे सांगिक ब्राह्मण लानेकी चेष्टा की। उनके आमन्त्रणसे शाण्डिल्यगोत्रज क्षीरीग, भरद्वाजगोत्रज मेघातिथि, कश्यपगोत्रज धीतराग, वात्स्यगोत्रज सुधानिधि और मायर्णगोत्रज सौभरि-ये पांच धर्मात्मा गौडमण्डलमें आये। धारेन्द्रके कुन्धलाका कहना है, कि ये पञ्च महात्मा आदिशूके यशकी पूरा कर संदेश लौट गये। बंगालमें लौट जाने पर वहाँके लोगोंने उन लोगोंसे प्रायश्चित्त करनेकी कहा, किन्तु इन लोगोंने उत्तरमें कहा, कि वैश्वेश्वरगणेशविद्वांसोंको प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं। इससे दोनों दलोंमें भयङ्कर संघर्ष उपस्थित हुआ। उस समय ये पाँचों ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधित हो कर गौडदेशमें आदिशूके समामें लौट आये। गौड्राधिपने इनके मुँहसे सब हाल जान कर बड़े आदरसे गंगाके किनारेके निकट ही धार्ययुक्त भूमिमें इन लोगोंको बसाया।

आदिशूके यज्ञमें आये पाँचों विभोंके बहूनेरे पुत्रोंमें क्षीरीगके क्षमीर, क्षीरि, क्षीरीश्वर, मद्रूर और मद्रुनारायण ये पाँच, मेघातिथिके क्षीरवर्ण, गीतम, धाधर, शून्य, निय, दुर्गा, रधि और जगि ये साठ; धीतरागके सुपेय, दस, भाजुमिध और श्वानिधि ये चार; सुधानिधिके धरा-घर और छान्द्य ये दस और सौभरिके मद्रगर्भ, धेदगर्भ, पराशर और महेश्वर चार पुत्रोंके दो नाम कुल संघोंमें

दिवादि देने हैं। मदनदी मान्य होना, कि इन सब पुत्रों में तीन बड़ा और तीन छोटा है।

महर्षिगणधके निर्दोष पुत्रवर्षिहामे लिखा है, कि विष्णो-जके पुत्र शमीदा शरेन्द्र देवमें बसनेके कारण पारेन्द्र, नीले दासिनाकर, विश्वेश्वर वैदिक, मन्त्र पारशरत और भद्रनाथपन सन्धि ब्रह्मण्ये। दुर्जन मन्त्र देवों।

एष पारेन्द्र कुलवर्षिहामे भद्रनाथपन, पराशर, सुषेण, मौनम और पराशर ये पांच हो पारेन्द्र वा पारेन्द्र ब्राह्मणों के ब्राह्मण्युप बने जाने हैं और राष्ट्रीय कुलवर्षिहामे भद्रनाथपन, वश, वेदको, धोर्षे और छान्दस्य—ये पांच मनुष्य राष्ट्रीय ब्राह्मणोंके प्रसिद्ध योजपुत्र हैं। पारेन्द्रकृत वशिष्ठहामे और मां मान्य होना है, कि पारेन्द्र पञ्चयोजपुत्रका निम्नको बौद्धोंमें भी कोई पारेन्द्र और कोई राष्ट्रीय नामसे परिचित हुआ।

सर्वसाधारणका विधान है, कि राजा बहालमेंनके समयमें हा पारेन्द्र ब्राह्मणोंमें १०० गात्रों स्थिर हुई। किन्तु हम प्राचीन कुलप्रयोगोंके और पारशरगणिके इतिहासमें जान सकें हैं, कि ब्रह्मनाथदेवमें येकड़ो ग्राम प्राप्त कर पारेन्द्र ब्राह्मणोंमें सी सी गात्राका उत्पत्ति हो गई थी। पर्मपार्य योजपुत्रम पर अधिकार कर लेनेके बाद भद्र नाथपनके पुत्र आदिनामों मोक्षको घाममार गांव दान किया। पारेन्द्र कुलप्रयोगोंमें भद्रनाथपनके पुत्रमें हो पात्र-दानमें सर्वप्रथम ग्राम प्राप्त किया था, इनमें ये आदिनामों नामसे पुत्रोंमें जाने थे। आदिनाथ भद्रनाथपनके पुत्रको मन्त्र इन यंत्रके बहुरीरे मनुष्य पारशरगणोंमें प्राप्त प्राप्त और इनका परिपालन कर गये हैं। पारशरगणोंके निजा-निषिद्धी तथा ताप्रविक्रिषिरे इनका वधेष्ट प्रमाण मिलता है। ब्रह्मण्युप देवों।

आदिनाथपनको मन्त्र
राश्रीमें नामाव अना क
बदा—मैनपमके मन्त्रपुत्र
शेणोंके ब्राह्मण पारशरगणोंमें
ब्रह्मण्युपमन्त्रपुत्रके बसने
पुत्रपुत्रप
बौद्ध
धर्मका भी

रंजकारको तिलाञ्जलि दे दी थी। राजा बहालमेंनके नि- विजयमेनमें पारेन्द्र पर अधिकार कर बदा निर वैदिक मार्ग प्रवर्तनको चेष्टा की थी।

पारशरपिक महाराज विजयमेनके कुलपुत्रिच्छरी समाना करनेके लिये बहुरीरे वैदिक ब्राह्मणोंको बुला कर गोष्ठ्यात्ममें प्रतिष्ठित किया। उन्ही वैदिक ब्राह्मणोंके यत्नमें बहाके बौद्धतामिक पारेन्द्र मन्त्रागोने निर रिह-समाजमें प्रवेग कर पाया था। किन्तु वैदिक पने प्रवण करने पर भी बहाके ब्राह्मण ब्रह्मिण्युपमन्त्रको पूर्णरूपमें छोड़ न सकें थे। उनके प्रयासे राजा बहा-सेन जो साहित्यरूपमानुरक्त हो गये थे। इस साहित्यका प्रकारके लिये ही गोष्ठ्यामिक बहामने पुत्रमन्त्राहाको स्थापना की और नागा देवोंमें साहित्य पारेन्द्र मन्त्रों को भेजा था। पारेन्द्र ब्राह्मणोंको चेष्टाके बौद्धतामिक हिन्दूतामिक मन्त्रागोंमें मिल गये हैं।

पहले ही लिखा गया है, कि राजा बहालमेंनके १०० गात्रों ब्राह्मणोंको स्वोकार कर लिया। पारेन्द्र ब्राह्मणोंके प्राचीन कुलप्रयोगोंमें इन गात्रों नाममें मन्त्रेष्ट दिवादि देता है। गोये उन १०० गात्रों नामोंको उद्घुष्ट कर दिया जाता है।

ब्रह्मण्युपमन्त्रे—मैत्र, भाद्रपु, बरज, वातवर्षि, मनुष्यमा (मन्त्रागणमें गोषा), राशीदासी, (मन्त्रागणमें बलिहासे-या राशीदासी), गोदासी, चिरम (चिरलो), योम, वृज, मयो (मन्त्रागणमें कृषी या मन्त्रागणों), सुरसु, (मन्त्रागणमें मन्त्रागणों) कट या कटि (मन्त्रागणमें विदोरेष्ट), देवामो (मन्त्रागणमें मन्त्रागणों), पौष (मन्त्रागणमें वन वा बन्धामो), मन्त्रागणों (मन्त्रागणमें पारिकण्य, मन्त्रागणों और मन्त्रागणों—पद १८ गात्रों हैं। निषा इनके निर किमो किमो कुलप्रयोगोंमें मन्त्रागणोंमें पाथरीक गात्राका भी उल्लेख देना जाना है।

१ गोत्रमें—ब्रह्मण्युपमन्त्र, मन्त्रागणोंमें, तादिहो-या, कामेष्ट, मिहरी, माहोवाज, विदो-मन्त्रागणों मन्त्र। सुवर्णोत्तरक-१०१ १०१ है।
मन्त्रागणों, मन्त्रागणों, इषा, वेपुत्र (मन्त्रा-

नरसे अक्षक), जामसूनी, सिमली (मतान्तरसे ग्रीन-लम्बी), घोसाली (मतान्तरसे विजाला), तानुरी (मता-न्तरसे तालडू) घटमप्रामो, देवली, निद्राली, कुळुटो पीण्डवर्द्धनी, घोदप्रामो, ध्रुतकटो, अक्षप्रामो, साहरी, कालीप्रामो, कालीहय, पीण्ड काली कालिन्दी, चतुरापन्दी (मतान्तरसे सानन्दी)—ये २४ हैं ।

मरहाजगोत्रमें—भादद, माडुली (गाडियाल), आनुधी, राह, रत्नायली, उच्छरखी, गोच्छासी (वाचण्डी) छाल, ग्राकटी (मतान्तरसे काचडो), सिम्बीवहाल (सिहाल), साडियाल, श्लेशगामी, श्चियाल (मता-न्तरसे करी), पूनि, काछटो नन्दीप्रामो, गोप्रामो, निखटो समुद्र, पिपली, शृङ्गवृत्तार (या लखुंरी), बोलीटकरा, गोस्वालाग्नी (गोसालाक्षी)—ये २४ हैं ।

सावर्णगोत्रमें—सिंदियाल, पाकडो (पापुडो), शृङ्गी, नेदुडी उकुली, पुकडो, तलघार, सेतक, नाइप्रामो, (मतान्तरसे कलापेनी) मेधुडी (मतान्तरसे छेशुदो) कपालो, दुदुदो, पञ्चवटी, अण्डवटी, निकडो, समुद्र, केनुप्रामो, यवप्रामो, पुषक, और पुण्डवटी—ये २० हैं ।

३ वारेन्द्र कायस्थ, वारेन्द्रदेनवासी कायस्थ श्रेणीमें इस समय जिस स्थानको हम लोग वारेन्द्र समझते हैं । यही स्थान आदि गौडमण्डलके नामसे प्रसिद्ध था । अतः आदि गौडीयकायस्थ कहने पर वारेन्द्रवासी कायस्थ समझना चाहिये ।

वारेन्द्र कायस्थोंके पास टाकुर नामका एक ग्रन्थ है । इस ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है; कि यदुनन्दन नामक एक मनुष्य इसके रचयिता है । आदिशूरके समय जो कई कायस्थ जाये थे । उन्हींके विषयमें कुवञ्ज नगरवासी कुलीन कायस्थ काशीशामने जो कुलग्रन्थकी रचना की, उसीके आधार पर यदुनन्दनने शायं प्रथकी रचना की है । इससे समझमें आता है, कि यदुनन्दनके आदर्शका एक और 'टाकुर' ग्रन्थ था । उन्हींसे इस टाकुर आदर्शको बहुत बड़ा ग्रन्थ कहा है ।

उक्त टाकुर ग्रन्थमें लिखा है, कि बट्टालसेन डोम-कया लाने और मताचरणोय जातिवोंके जलाचरणोय करनेके लिये ब्राह्मण और श्रवारी बड़े विम्ववाग्निवत हुए । बट्टालको कीलोन्यवर्षादा अभिनय भावसे खूब होने पर

किसीको नया कुलीन बनाया गया नीर किसीकी कुली-नता छीन ली गई । विरोधतः पुत्रके बदले कुल कन्यागत करनेका आदेश दिया गया । यदुनन्दनने लिखा है, कि वैदिक ब्राह्मणोंमें, वारेन्द्र कायस्थानि और वैधानि इस अभिनय कौलोग्यको नहीं ग्रहण किया ।

देव और वैदिक बेलो ।

भृगुनन्दी नामक एक राजमन्त्रोने बट्टालसेनको इन सब असामाजिक कार्यसि विरत होनेके लिये उपदेश दिया । बट्टालभृगुनन्दीके दृष्टान्त और प्रमाण प्रयोगको वान सुन कर मडा क्रोधित हो उठे । शीघ्र ही राजमन्त्रो भृगु-नन्दीको बौद्ध करनेकी आज्ञा दी । आज्ञा यथाविधि मानो गई । भृगुनन्दी जेठ भवनमें लगे गये । वहांसे वह भाग निकले और उन्हीं देवकोटवासो उटाघर और कर्कट नाम नामके दो पराक्रान्त भूम्याधिपार्योंका आश्रय ग्रहण किया । देवकोट परामान दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत है । जटाघर और कर्कट नामके साहाय्यसे दास, नन्दी, चाकी, नाग, सिंद, देव और दत्त-इन सातघरोंसे समाज गठित हुआ । नरसुन्दर शर्मा नामक एक बट्टालकायस्थ भृगुनन्दी परिवर्षामे नियुक्त था । उक्त व्यक्तिकी भृगुनन्दी और मुरारि चार्किने 'अर्द्ध कुल' देनेको कहा था ; किन्तु जटाघरनामने उनका पहिंकार कर दिया ।

यदुनन्दनके डाकुर पाठसे प्रतीयमान होता है, कि पंडोवन्धनके समय पदनि आदि पर विचार कर वारेन्द्र-समाज संगठित हुआ । दासवंशके विचरणमें हरिपुर, नागडा और शुधि—इन तीन स्थानोंके नामका उल्लेख है ।

टाकुरमें दासवंशके प्राचीन समाजस्थान—वाको-प्राम, साधुवाली, गन्धमैठ, मैदान दोघो, विषाच्छल, चौपखी, पाथना, मालखी, केनुभाइंगना, मेहेरपुर, माणि-कादि और घर-प्राम लिखे हुए हैं ।

उक्त टाकुर-वर्णित नन्दीवंशके ये सब समाजस्थान हैं—बट्टार, पोत्राजिया, अष्टमुनिना, कालियाई, धामरा, मिथनिया, लखडुपुर, माधुआलो, दिलपनगर, रईमपुर, माणद, महिमापुर, वैशुनिया, कलतता, हामकुशा, मदेन-रीहाला, देवशूद्र, सिंदहंग, मेहेरपुर, के उगाटा, बमर-

दिखाई देने हैं। यद्यनहीं मान्य होता कि इन सब पुत्रों में कौन बड़ा और कौन छोटा है।

महेशमिश्रके निर्दोष कुलपञ्जिकामें लिखा है, कि क्षिति-शके पुत्र दामोदर वारेन्द्र देशमें बसनेके कारण वारेन्द्र, गौरी दाक्षिणात्य, विप्रवेश्वर वैदिक, जङ्गल पाश्चात्य और भट्टनारायण राठो कहलाये। कुलीन शब्द देखो।

इधर वारेन्द्र कुलपञ्जिकामें भट्टनारायण, धराधर, सुपेण, गौतम और परागर ये पांच ही वारेन्द्र या वारेन्द्र ब्राह्मणोंके वोजपुरुष कहे जाते हैं और राठोय कुलपञ्जिकामें भट्टनारायण, दक्ष, वेदगर्भ, श्रीहर्ष और छान्दड़—ये पांच मनुष्य राठोय ब्राह्मणोंके प्रसिद्ध वोजपुरुष हैं। वारेन्द्रकुल-पञ्जिकामें और भी मान्य होता है, कि वारेन्द्र पञ्चवोजपुरुषकी निचली पीढ़ीमें भी कोई वारेन्द्र और कोई राठोय नामसे परिचित हुआ।

सर्वसाधारणका विश्वास है, कि राजा बल्लालसेनकी समयमें ही वारेन्द्र ब्राह्मणोंमें १०० गात्रों स्थिर हुईं। किन्तु हम प्राचीन कुलग्रन्थोंके और पाठराजोंके इतिहाससे जान सकें हैं, कि बल्लालसेनसे सैकड़ों ग्राम प्राप्त कर वारेन्द्र ब्राह्मणोंमें सौ सौ गात्रोंकी उत्पत्ति हो गई थी। धर्मपाल पीण्डुवर्द्धन पर अधिकार कर लेनेके बाद भट्ट नारायणके पुत्र आदिगात्रों को भक्तोंको धामसार गांव दान किया। वारेन्द्र कुलग्रन्थोंमें भट्टनारायणके पुत्रने ही पालकशसे सर्वप्रथम ग्राम प्राप्त किया था, इससे ये आदिगात्रों नामसे पुकारे जाते थे। शाण्डिल्य भट्टनारायणके पुत्रकी तरह इस वंशके बहुतेरे मनुष्य पालराजाओंसे ग्राम प्राप्त और उनका मन्त्रित्व कर गये हैं। पालराजाओंकी शिलालिपियों तथा ताम्रलिपियोंसे इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। पाठराजवंश देखो।

शाण्डिल्यगोत्रकी तरह अन्यान्य गोत्र भी बौद्ध पालराजोंसे सम्मान लाभ करनेसे वञ्चित नहीं थे। और तो क्या—सेनवंशके अभ्युदयके कुछ समय बाद तक इस श्रेणीके ब्राह्मण पालराजोंसे ग्राम पाते रहे। वारेन्द्र-कथि कश्यपगोत्रोंय चतुर्भुजके वनाये 'हरिचरित' काव्यमें उनके पूर्वपुरुष स्वर्णरेखके करज ग्राम पानेकी बात लिखी है।

बौद्ध-प्रभावकालमें यहांके ब्राह्मणोंने बौद्ध-तान्त्रिक धर्मका आश्रय लिया था और उसके फलसे वैदिक

संस्कारकी तिलाञ्जलि दे दी थी। राजा बल्लालसेनके पित विजयसेनने वारेन्द्र पर अधिकार कर यहां फिर वैदिक मार्ग-प्रवर्तनकी चेष्टा की थी।

वास्तविक महाराज विजयसेनने कुरङ्गेष्टि-यज्ञकी समाधा करनेके लिये बहुतेरे वैदिक ब्राह्मणोंकी बुला कर गौडराज्यमें प्रतिष्ठित किया। उन्होंने वैदिक ब्राह्मणोंके यज्ञसे यहांके बौद्धतान्त्रिक वारेन्द्र-सम्प्रदायोंने फिर हिन्दू-समाजमें प्रवेश कर पाया था। किन्तु वैदिक-धर्म ग्रहण करने पर भी यहांके ब्राह्मण बौद्धतान्त्रिकताकी पूर्णरूपसे छोड़ न सके थे। उनके प्रभावसे राजा बल्लालसेन भी तान्त्रिकधर्मानुरक्त हो गये थे। इस तान्त्रिकता-प्रचारके लिये ही गौडराज्य बल्लालने कुलमर्यादाकी स्थापना की और नाना देशोंमें तान्त्रिक वारेन्द्र ब्राह्मणोंको भेजा था। वारेन्द्र ब्राह्मणोंकी चेष्टासे बौद्धतान्त्रिक हिन्दूतान्त्रिक समाजमें मिल गये हैं।

पहले ही लिखा गया है, कि राजा बल्लालसेनने १०० गात्रों ब्राह्मणोंको स्वीकार कर लिया। वारेन्द्र ब्राह्मणोंके प्राचीन कुलग्रन्थोंमें इस गात्रों नाममें मतभेद दिखाई देता है। नीचे उन १०० गात्रों नामोंको उद्धृत कर दिया जाता है।

कश्यपगोत्रमें—मैत्र, भादुङ्गी, करज, बालयष्टिक, मधुग्रामी (मतान्तरसे मोघा), राणोहारो, (मतान्तरसे बलिहारो-या राणोहाटो), मीदालो, किरण (किरणो), वीज, कुञ्ज, सनी (मतान्तरसे स्थवी या सरग्रामी), सुत्सु, (मतान्तरसे सहग्रामी) कट या कटि (मतान्तरसे विघोटकटा), धेलग्रामी (मतान्तरसे गङ्गाग्रामी), घोष (मतान्तरसे चम या बलग्रामी), मधुग्रामी (मतान्तरसे पारिश्रव), मठग्रामी और भद्रग्रामी—यह १८ गात्रों हैं। सिवा इनके फिर किसी किसी कुलग्रन्थोंमें अशुकोटि और आधर्षोत्त गात्रोंका भी उल्लेख देखा जाता है।

शाण्डिल्य गोत्रमें—रुद्रवाग्नि, साधुवाग्नि, लाहिरी चम्पटी, नन्दनवासा, कामेश्वर, सिंहरी, ताड़ोवाला, विशी, मरुथ्यासी, चम्प (मतान्तरसे जम्बू), सुवर्णतोटक, पुसला (पुपाण) और चेळुङ्गी १४ हैं।

वात्स्य गोत्रमें—सज्जामिनी, भीमकाली, भट्टगाली, कामकाली, कुङ्कुमल (कुङ्कुम्य), आदिवाल, सेतुक (मता-

न्तरसे लक्ष्मण), जामखंबी, सिमली (मतान्तरसे शीत-
लम्बी), घोसाली (मतान्तरसे विजाला), तानुरी (मता-
न्तरसे तालडू) चरमप्राप्ती, देवली, निद्राली, कृष्ण-
पीण्डवर्द्धनी, चोदप्राप्ती, ध्रुतकटी, अक्षप्राप्ती, साहरी,
कालीप्राप्ती, कालीहय, पीण्ड काली कालिन्दी, चतुरापन्दी
(मतान्तरसे सानन्दी)—ये २४ हैं ।

भरद्वाजगोत्रमें—मादङ्ग, नाडुली (नाडियाल),
भानुर्षी, राइ, रत्नायली, उच्छरली, गोच्छासी (वाचण्डी)
छाल, जाकटी (मतान्तरसे काचडू), सिम्बीबहाल
(सिहाल), साडियाल, श्लेष्मामी, श्चियाल (मता-
न्तरसे करी), पूनि, काछटी नन्दीप्राप्ती, गोप्राप्ती, निषटी
समुद्र, विपली, शृङ्गखुज्जारी (या खज्जुंरी), बोलोत्करा,
गोस्वालयम्बी (गोसालाक्षी)—ये २४ हैं ।

सावर्णगोत्रमें—सिन्धियाल, पाकडो (पापुडो),
शृङ्गो, नेदुडी उकुली, घुङ्गो, तलघार, सेतक, नाइप्राप्ती,
(मतान्तरसे कलापेनी) मेथुडुडी (मतान्तरसे छेसुरी)
कपालो, डुदुरी, पञ्चवटी, षण्डवटी, निकडो, समुद्र,
वंतुनामी, यथप्राप्ती, पुणक, और पुणहाटी—ये २० हैं ।

३ वारेन्द्र कायस्थ, वारेन्द्रदेवासी कायस्थ धेनीमेद
इस समय जिस स्थानकी हम लोग वारेन्द्र समझते हैं ।
यही स्थान आदि गोडूमण्डलके नामसे प्रसिद्ध था ।
अना आदि गोडीयकायस्थ कहने पर वारेन्द्रवासी कायस्थ
समझना चाहिये ।

वारेन्द्र कायस्थोंके पास ढाकुर नामका एक ग्रन्थ
है । इस ग्रन्थके पहनेसे मालूम होता है, कि यदुनन्दन
नामक एक मनुष्य इसके रचयिता है । आदिपूरके समय
जो कई कायस्थ भाये थे । उर्दोंके विषयमें कुवञ्च
नगरवासो कुलीन कायस्थ काशीदासने जो कुलग्रन्थकी
रचना की, उसीके आधार पर यदुनन्दनने धारमें ग्रन्थकी
रचना की है । इससे समझमें आता है, कि यदुनन्दनके
भादर्शका एक और 'ढाकुर' ग्रन्थ था । उर्दोंने इस ढाकुर
भादर्शको बहुत बढ़ा ग्रन्थ बढ़ा है ।

उक्त ढाकुर ग्रन्थमें लिखा है, कि बनशालसेन योग-
करवा स्थाने और अनाचरणीय जातिषोके जलाचरणीय
करनेके लिये ब्राह्मण और श्रवारी बड़े चिसमयान्वित हुए ।
यत्नालकी कौटोन्मदवर्दा अभिनय भावसे मृष्ट होने पर

किसीको नया कुलीन बनाया गया और किसीको कुलीन-
नता छोन ली गई । विशेषतः पुत्रके बदले कुल कन्यागत
करनेका आदेश दिया गया । यदुनन्दनने लिखा है, कि
वैदिक ब्राह्मणोंने, वारेन्द्र कायस्थानि और वैदीनि इस
अभिनय कौलीग्यको नहीं प्रदूषण किया ।

देव और वैदिक वेतो ।

भृगुनन्दी नामक एक राजमन्त्रीने बल्लालसेनको इन सब
असामाजिक कार्योंसे विरत होनेके लिये उपदेश दिया ।
यत्नाल भृगुनन्दीके दृष्टान्त और प्रमाण प्रयोगको शक
सुन कर महा क्रोधित हो उठे । शीघ्र ही राजमन्त्री भृगु-
नन्दी-को कैद करनेकी आज्ञा दी । आज्ञा यथाविधि
मानो गई । भृगुनन्दी जेल अवनमें लाये गये । वहाँसे वह
भाग निकले और उर्दोंने देवकोटवासो उटाघर और
कर्कट नाग नामके दो पराक्रान्त भृगुर्षाधकारियोंका
आश्रय ग्रहण किया । देवकोट वर्तमान दिनाजपुर
जिलेके अन्तर्गत है । उटाघर और कर्कट नागके
साहाय्यसे दास, नर्दो, चाकी, नाग, सिंह, देव और दत्त-
इन सातघरोंसे समाज गठित हुआ । नरसुन्दर नाम
नामक एक बहादुर कायस्थ भृगुनन्दी परिवर्षामें निगुक्त
था । उक्त व्यक्तिकी भृगुनन्दी और सुतरा चार्किने 'मह'
कुल' देनेको कहा था ; किन्तु उटाघर नागने उनका
वहिष्कार कर दिया ।

यदुनन्दनके ढाकुर पाठसे प्रतीयमान होता है, कि
पंडोबन्धनके समय पहलि आदि पर विचार कर वारेन्द्र-
समाज संगठित हुआ । दासवर्गके विघरणमें हरिपुर,
नागडा और शुधि—इन तीन स्थानोंके नामका उल्लेख
है ।

ढाकुरमें दासवर्गके प्राचीन समाजस्थान—याको-
प्राप्त, सायुवाली, मधमैल, मैदान दीघी, विपच्छल,
चौपक्षी, पायना, मालखी, केन्नुभाडांगा, मेहेरपुर, माणि-
कादि और घर-प्राप्त लिखे हुए हैं ।

उक्त ढाकुर-वर्णित नम्बर्धनके ये सब समाजस्थान
हैं—बडगाँव, पोताजिया, अष्टमुनिमा, कालियाई, धामरा,
निधलिया, चण्डापुर, सायुवाली, दिलपनार, रईमपुर,
माणिदह, महिमापुर, पैथुरिया, फरतजा, हामकुडा, मदेन-
रीहाला, देवशूद्र, सिंहसंगा, मेहेरपुर, केन्गाटा, कमर-

गांव और आरपाड़ा। इनमेंसे चल्हार, कलिबाई, खामरा, साधुखाली, महिमापुर, येथुरिया, करतजा, देवगृह, मेहेरपुर, केंउगाछी, कमरगांव और आरपाड़ा, इन सब स्थानों में बहुत दिनोंसे वारेन्द्र कायस्थोंका वास महीं है। अभी नाना स्थानोंमें उन सब समाज-वासियोंके वंश देखे जाते हैं।

वाकिंगणके समाज—सरिया, वाजुरस, मौरट, शिमला हिलञ्ज, अष्टमुनिगा, मेवोवाड़ी, केंसुआडांगा, गोविन्दपुर, सिकन्दरपुर (वहादुरपुर), चण्डीपुर, गाजना, दुर्लभपुर, प्रयामनगर, हेमराजपुर, रामदिया, चागुटिया, दिलपसार, रघुनाथपुर। इनके सिवा चाचकिया समाजका चाकि भी इस समाजमें देखा जाता है।

नागवंशके जटाधर और कर्कट नागके पिता शिवनाग देवकोटमें राज्य करते थे।

दोनों नाग जिस समय गजोर जिलेके शोलकूपामें आये थे, उसी समय वारेन्द्र कायस्थसमाज संगठित हुआ। महाराज प्रतापादित्यके पतनके बाद हीसे शोलकूपा विघ्न घस्तहुआ है। अत्याचारसे पीड़ित हो कितने ब्राह्मण-कायस्थ शोलकूपामें भाग गये।

ढाकुर-वर्णित नागवंशके समाजस्थान—शोलकूपा, सरग्राम, वासुडुली, हरिहर, रामनगर, कांटापुवरिया, पाथराइल, मालञ्जी, सिङ्गा, गाडाइह, नन्दनगाछी, फते उल्लापुर, पलासवाड़ी, किलगञ्ज, घुडका, सारियाकान्दी, गवड़ा, उद्दिघार, बालिवापाड़ा, गङ्गापाड़ा, भरनिया, स्थिनिया और आडानो।

करातिया व्वासिंहके वंशमें किसी किसोने वारेन्द्र समाजमें प्रवेश किया। सिंहका प्राचीन समाज—करतजा वा करातिया, जेमोकान्दी, परीशितदिया, चौया और उधुनिया।

देववंशमें कानसोनानके पुत्रदेव और कुलदेव वारेन्द्र पत्रोंमें गिने गये। देवगणके समाज ये सब हैं—कर्ण-स्वर्ण या कानसोना, तारागुनिया, काकदह, चिधलिया, चडिया, ताडाज और वरुनकोठी।

दत्तमें वटप्रामी और काउनाड़ी दत्त ही मूल हैं। काउनाड़ी दत्तवंशके समाज—रूपाट और सेखुपुर।

समाज-गठनकालमें भृगुनन्दी आदि सात घर वारेन्द्र-

के सामाजिक कायस्थरूपमें गिने गये थे। दास, नन्दी और चाकी ये तीनों सिद्ध घर एक-से हैं। कहते हैं, कि दोनों नागको भृगुनन्दीने सिद्धपद देना चाहा था, किन्तु नामोंने नहीं लिया, इस कारण सबोंने सिद्धगुल्य कह कर उनका प्रचार किया। नाग साय्यधेर्नाभुक हो कर गौरवान्वित हुए हैं। नागके बाद सिंहघर, इसके बाद देवदत्तघर अर्थात् सिद्ध ३ घर प्रथम भाग, नाम द्वितीय भाग, सिंह तृतीय भाग और देवदत्त चतुर्थ भाग, इस प्रकार सातों घरके भावोंका निर्णय हुआ था।

समाजघट्ट इन सात घरोंको छोड़ कर पीछे और भी कितने घर संयुक्त हुए थे।

वारेन्द्र-वंशवासी घोष, गुह, रक्षित, मित्र, सेन, कर घट, चन्द्र, रहा, पाल आदि उपाधिधारी कायस्थ भी अपनेको वारेन्द्र कहते हैं।

इन सत्तर घर कायस्थोंमें सिंह, घोष, मित्र और कर उत्तरराष्ट्रीय, नन्दी, रक्षित, गुह, घोष और चन्द्र बङ्ग तथा सेन और देव दक्षिण-राष्ट्रीय आनिका प्रमाण मिलता है। अवशिष्ट रक्षित, घर, राहा, यद्र, पाल, दाम और श्राण्डल्य दास ये सात घर किस धेर्नासे वारेन्द्रमें आये, उसका प्रमाण नहीं मिलता।

वारेन्द्र-कायस्थोंका आचार-व्यवहार बति पवित्र है। जिन्होंने उपनयन-संस्कार ग्रहण किया है उनका आचार व्यवहार ब्राह्मण जैसा है। पुत्रके जन्म लेते ही सृष्टिकाग्रमें तलवार रखना और अग्र-प्राशनके समय चरपाक आदि क्रियायें क्षात्रव्यवहारकी और विवाहमें कुशण्डिका आदि आचर-सदाचारके परिचायक हैं। बङ्गदेशीय कायस्थ जातिकी चार श्रेणियोंके आचार-व्यवहारमें थोड़ा बहुत अन्तर दिखाई देता है सही, पर मूलमें कोई अन्तर नहीं है। स्थानभेद और दीनता ही इस पृथक्ताका कारण है।

वारेन्द्र-कायस्थोंके विवाहमें पर्यायको जरूरत नहीं होती। पहले वक्षीय ब्राह्मण घटकका काम करते थे। पीछे वारेन्द्र-कायस्थोंने भी घटकका काम करना शुरू किया। यदुनन्दन भी वारेन्द्र-कायस्थ थे। देवीदास कां ब्यादिके समयमें एकता हुई पीछे बहुत दिन तक समस्त समाजकी फिर एकता नहीं हुई।

भाज कल राजसाहो, मालदह, पायना, बांहुडा,
दिनाजपुर, रङ्गपुर, नदिया, २४ परगना, यशोर और
मुर्शिदाबाद जिलेमें प्रायः सभी जगह वारेन्द्र-कायस्थोंका
वास है।

वारेन्द्री (सं० स्त्री०) देशविशेष, वारेन्द्रदेश। अभी यह
देश राजशाही विभागके अन्तर्गत है।

वार्कण्डि (सं० पुं०) वृकण्डके पुं अणस्य।

वार्कप्राहिक (सं० पुं०) वृकप्राहिके गोत्रापत्य।

वार्कजम्भ (सं० पुं०) १ वृकजम्भके गोत्रापत्य। २ एक
सामका नाम।

वार्कवन्धविक (सं० पुं०) वृकवन्धु (रेखात्वादिम्प्लकम् ।
पा ४।२।१६) इति अपत्यार्थे ङकम् । वृकवन्धुका
गोत्रज।

वार्कलि (सं० पुं०) वृकलाका गोत्रज।

वार्कलेय (सं० पुं०) वृकलाका गोत्रज। २ वार्कलाका
गोत्रज।

वार्कवञ्जक (सं० पुं०) वृकवञ्जिका गोत्रापत्य।

वार्कान्जोपुत्र (सं० पुं०) वार्कान्जमेद्र।

(नवपथमां १४।६।४३१)

वार्कान्वा (सं० स्त्री०) जलसे होनेवाला ज्योतिष्टोमादि
लक्षणकर्मा।

वार्क (सं० पुं०) वृक्षाणां समूहः इति वृक्ष-तस्य समूहः।
(पा ४।२।३७) इति ऊण् । १ वन। २ वृक्षकी छालका
यना हुआ वस्तु। त्रिं०) ३ वृक्ष सम्बन्धी या वृक्षका
बना हुआ। ६क्षसम्बन्धीय जिषलिङ्गकी पूजा करनेसे
पिसालाम होता है।

वार्कान् (सं० स्त्री०) एक मुनिकन्या। ये तपस्वि प्रधान
प्रभेता आदि द्वा भाइयोंकी सहधर्मिणी हुईं।

(भावत ६।१६१।१५)

वार्कान् (सं० स्त्री०) वृक्षस्वापत्य स्त्री, वृक्ष-अण् स्त्री।
वृक्षसे उत्पन्न एक प्राणिवस्ती।

वार्कान्का दूसरा नाम मारिया था। यह कण्डुमुनिके
गीरससे प्रम्नीया नामकी अप्सराके गर्भमें रह कर पीछे
पूरासे उत्पन्न हुई थीं। इनका विवरण विष्णुपुराणमें
इस प्रकार आया है—

पूरकालमें एक समय प्रचेतागण घोर तपस्या कर

रहे थे। ऐसी भरशित अवस्थामें वृक्षोंने पृथिवीको घेर
लिया, जिधर देखिये उधर वृक्ष हो नजर आने लगा।
प्रजाकी संख्या धीरे धीरे घटने लगी। इस समय
प्रचेतागण क्रुद्ध हो कर जलमें बाहर निकले। क्रोधके
मारे उनके मुखसे श्प्यु धीर अग्नि भाविर्भूत हुई। यापु-
ने वृक्षोंकी सुला दिया और अग्निने जला डाला। इस
प्रकार वृक्षका क्षय होने लगा।

अधिकार्य वृक्ष दग्ध हो गये। थोड़ेसे बच गये। इसी
समय राजा सोमने प्रचेताओंसे ज्ञा कहा, 'आप लोग
क्रोध न करें, वृक्षोंके साथ आप लोगोंकी एक मन्वि ही
जानी चाहिये।' सोमके अनुरोधसे प्रचेताओंने वृक्ष-
कन्या मारियाको भार्यारूपमें ग्रहण कर वृक्षोंके साथ मेल
कर लिया। इस वृक्षोत्पन्न कन्याका जन्मवृत्तान्त इस
प्रकार है—पुराकालमें कण्डु नामक एक श्वेद्विदु मुनि
थे। वे गौमतीके किनारे तपस्या करते थे। उनकी
तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्द्रने प्रम्नीया नामकी एक
परम सुन्दरी अप्सराको यहाँ भेजा।

अप्सराने आ कर मुनिकी तपस्यामें बाधा डाली।
मुनिने उसके साथ सौ वर्ष तक विहार किया। मन्त्र-
कन्दारमें रह कर ये दोनों विहार करते थे। सौ वर्षके
बाद अप्सराने इन्द्रके निकट जानेकी इच्छा प्रकट की,
किन्तु मुनिने जानेकी अनुमति न दी। पीछे सौ वर्ष
और उसके साथ विहार किया।

प्रचेताओंके मारियाको ग्रहण करनेके समय राजा
सोमने उनसे कहा था, यह कन्या आप लोगोंकी वंश-
वर्द्धि नो होगी। मेरे अर्द्ध तेज और आप लोगोंके अर्द्ध
तेजसे मारियाके गर्भमें वृक्ष नामक गजापति जन्म ग्रहण
करेगे। (विष्णु ०।१।५।१-६)

इस प्रकार कण्डु प्राणिते सैकड़ों वर्ष तक अप्सरा
के साथ विहार और विविध विषयोंका भोग किया।
अप्सराने इन्द्रालय जानेकी आज्ञा मांगी, किन्तु न मिली।
आगिरमें मुनिके नापथगमने - अप्सराको उग्रहोंके पास
रहना पड़ा। उन दोनोंका तप-मेरस दिनों दिन
बढ़ने लगा।

एक दिन मुनि व्यम्न हो कर कुटीरमें बाहर निकले।
अप्सराने पूछा—बहाँ जाते हैं, मुनि बोले 'मिगे'। सम्भ्यो-

पासनाके लिये जाता हूँ, नहीं जानेसे क्रिया लोप हो जायगी।' अक्सराने हंस कर कहा, 'इतने दिनों के बाद तुम्हारा धर्मक्रिया करनेका समय आया। इतने दिन जो बीत गये, धर्मो नहीं सम्बन्धोपासना की?' मुनिने उत्तर दिया, 'बाह! तुम तो सवेरे इस नदीके किनारे आई हो और पीछे मेरे आश्रममें घुसी हो। अभी सम्बन्धकाल उपस्थित है। इसमें उपवासकी क्या बात है?'

अक्सरा बोली, 'मैं यहाँ सवेरे आई हूँ सही, पर समय बहुत बीन गया। कितने वर्ष चले गये।' मुनिने बहुत प्याकुल हो कर पूछा, 'तुम्हारे साथ मैंने कितने दिनों तक रमण किया।' अक्सराने कहा, 'नौ सौ सात वर्ष छः मास तीन दिन।'

अक्सराके मुखसे यह सचो बात सुन कर मुनिको बहुत आत्मखानि हुई। मुनि अपनी आत्माको बार बार धिक्कारते हुए बोले, 'हाय! मेरी तपस्या नष्ट हो चुकी, बुद्धि मारी गई, मैं खोके साथ नीच दशामें पहुँच गया। इस प्रकार मुनि बहुत समय तक आत्मनिन्दा करने लगे। खोके प्रेममें फँस कर कर्त्तव्यपथसे भ्रष्ट हो गये, यह सोच कर उन्हें बड़ी विन्ता हुई और आखिर उस अक्सराको विदा किया। अक्सरा कांप रही थी, मुनिके भी क्रोधका पारावार न था, पर मुनिने उसे शाप नहीं दिया। उन्होंने अपनी अवाध्य इन्द्रियका ही दोष दिया था।

जो हो, अक्सरा चली गई, किन्तु मुनिके भयसे उसके शरीरसे चेशुमार पसीना आने लगा। जब वह शून्य मार्गसे आ रही थी, तब एक ऊँचे वृक्षके तरुणपल्लवमें उसने अपना पसीना पीछ लिया। ऐसा करनेसे मुनिके तेजसे जो उसे गर्म रह गया था, वह गर्म लोमकूप हो कर स्वैश्व-अलाकारमें निकल गया। पीछे अक्सराके स्वैश्वसे सिक हो बड़ाके खमी वृक्षोंमें गर्म धारण किया। इसी गर्मसे भारिका नामक नारौरजकी उत्पत्ति हुई।

वृक्षोंमें यह नारौरज के रूपमें प्रकृतियोंका क्रोध शान्त किया था। (विष्णु पु०)

वाच्य (सं० लि०) वृक्षसम्बन्धीय (क्ली०) २ वृत्ति, घेरा।

वाच्य (सं० पु०) वाचि करतीति है। इस।

वाच्यलाघ (सं० लि०) वच्यक सम्बन्धीय।

वाज (सं० पु०) पद्म, कमल।

वाड (अ० पु०) १ रक्षा, हिफाजत। २ किसी विधि कार्यके लिये घेर कर बनाया हुआ स्थान। ३ अल्पता या जेल आदिके अन्दरके पृथक् पृथक् विभाग। ४ नगरमें उनके महबले आदिका समूह जो किसी विधि कार्यके लिये जलय नियत किया गया हो।

वाडर (अ० पु०) १ वह जो रक्षा करता हो, रक्षक।

२ जेल आदिके अन्दरका पहरेदार।

वाणक (सं० पु०) लेखक।

वाणधप (सं० पु०) वर्षणका गोलज।

वाणध (सं० लि०) वर्षणनदी-सम्बन्ध, वर्षण नदीसे उत्पन्न।

वाणवक (सं० लि०) वाणव स्वार्थे कम्। वर्षण नदी-सम्बन्ध।

वाणिक (सं० लि०) वर्षणलेखन शीलमस्य वर्षण-उम्। लेखक।

वाच (सं० लि०) वृत्तिरस्त्यस्येति (प्रशाधदान्ची वृत्तियो यः। पा १।२।१०१) इति ण। १ निरामय, आतोय।

२ वृत्तिशाली, कामकाजी। (क्ली०) ३ असार।

वाचक (सं० पु०) १ पक्षिविशेष, बटेर। इसके मांसका गुण—अग्निवर्द्धक, शीतल, उच्च और तिदोपनाशक, रोचक, शुक्र तथा बलवर्द्धक। २ वाचाकी, भंडा।

वाचन (सं० लि०) वचनीभव।

वाचान्तधीय (सं० पु०) १ वरतन्तु-सम्बन्धीय। २ वेदकी एक शाखा।

वाचमानिक (सं० लि०) वचमान सम्बन्धीय।

वाचा (सं० खी०) वृत्तिरस्या अस्तोति (प्रशाधदान्ची-वृत्तियो यः। पा १।२।१०१) इति ण ततटाप्। १ भगवती, दुर्गा। २ देवीभगवती वचन तथा धारण करती हैं, इस कारण उनका वाचा नाम पड़ा है। २ वृत्ति, जीविका। ३ जनप्रति, अफवाह। ४ वृत्तान्त, संवाद। ५ विषय, मामला। ६ कथोपकथन, बातचीत। ७ वैश्ववृत्ति जिनके अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद हैं। वैश्वकी वाचा द्वारा जीविका निर्वाह करती वादिपे। ८ सारका वाच्यात्मिक संवाद।

वचरूपी धर्मने जब वाचाके सम्बन्धमें प्रश्न किया,

तय धर्मराज युधिष्ठिरने आध्यात्मिक भावसे उसका उत्तर इन प्रकार दिया था,—काल इस प्रलाण्डरूप कटाहमें मांस और मत्तुरूप दवाँ अर्थात् हृद्येको चला कर दिया और रात्रिरूप काष्ठ तथा सूर्यरूप अग्नि द्वारा प्राणियोंको जो पाक करते हैं, वही वाचां है ।

६ दूसरे द्वारा क्रय विक्रय होना । १० वाचांकी, वैगन । ११ एक प्रकारका पत्थर । १२ वृहती । १३ वाचांक पक्षी, बटेर ।

वाचांक (सं० पु०) वचांतेऽनेनेति घृत् (वृतेर्दक्षिच । उष् ३।७६) इति काकु 'बाहुलकात् उकारस्यार्थेऽथे वाचां-कवाचांथी' इत्युज्जलदत्तोपस्था सिद्ध' । १ वाचांकु, वैगन । २ वाचांक पक्षी, बटेर ।

वाचांकिन् (सं० पु०) वाचांकु, वैगन । (भरतीका भरत) वाचांकी (सं० स्त्री०) वृहती, छोटी कटाई । २ वाचांकु, भण्डा । ३ कण्टकारी, भटकटैया ।

वाचांकु (सं० पु० स्त्री०) वचांते इति घृत् (वृतेर्दक्षिच । उष् ३।७६) इति काकु । (Solanum melongene syn. S. Izoenlentum) स्वनामधेयात् फलवृक्ष । इसे हिन्दोमें वैगन मंडा, तैलकमें पहिरि घंगु, उरकलमें बाहृगुण, गुजरातीमें घांगे और तामिलमें कुडिरेक कहते हैं । संस्कृत. पर्याय—हिंगुली, सिहो, भण्डाकी, दुप्रवाषिणी, वाचांकी, वाचां, वचांतगुण, वाचांक, शाकविल्व, शामकूप्याड, वाचांक, वचांतगम, घृन्नाक, घृन्ग, भृन्ग, कष्टघृन्ताकी, कण्टालु, कण्टपालिका, निद्रालु, मांसकफली, घृन्ताकी, महोटिका, चित्तफला, कण्टकिनो, महती, कट्फला, मिश्रवर्णफला, मोलफला, रक्तफला, शाकधेया, पृच्छफला, मृपमिषफला । गुण—रुचिकर, मधुर, पित्तनाशक, बलपुष्टिकारक, हृद्य, मुद्ग और घानवर्द्धक ।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—स्वादु, तीक्ष्णोष्ण, कटुगण, पित्तनाशक, उषर, वात और घलांसघ्न, दोषघ्न, शुक्रवर्द्धक और लघु । बटेया वैगन कक और पित्तनाशक तथा सिद्ध किया हुआ वैगन पित्तवर्द्धक और मुद्ग होता है । वैगनको पका कर उसमें तैल नमक डाल कर खानेसे कफ, मेघ, घासु और आम जाता रहता है । यह भारवत् लघु और दोषघ्न है ।

आश्रेयस'हितामें लिखा है, कि वाचांकु निद्रावधक, मोतिकर, गुग्गु, घात, कास, कफ और अर्धचिकारक है । धर्मशास्त्रके मतसे हृद्योदगीके दिन वैगन नदी खाना चाहिये, खानेसे पुत्रवधका पाप होता है । यह अज्ञानता-यज्ञ खानेवालोंके लिये कदा गया ।

"वाचांकी मुवहानिःस्यात् चिररोगी च मापके ॥"

(तिथितत्त्व)

गोल कद्दू और दूध जैसे सफेद वैगन नदी खाना चाहिये । सफेद वैगन मूँगेके अडेके समान है, किन्तु यह अशरीरोगमें हितकर माना गया है । पूर्वक वाचांकु-से इसमें गुण थोड़ा है ।

आधिकतरवके मतसे वाचांकुका गुण—सप्तगुणयुक्त, अग्निवर्द्धक, वायुनाशक, शुक्र और शोणितवर्द्धक, हृद्वासा, कास और अर्धचिनाशक । वतिवा वैगनका गुण—कफ और पित्तनाशक, पक्केका गुण—क्षारक और पित्तवर्द्धक ।

वाचांविनि (सं० पु०) संवाद्वाता । (भाग ४।१७।१२)

वाचांपन (सं० पु०) वाचांतामपनमनेनेति । १ प्रवृत्ति, चर । पर्याय—हेरिक, गूढदुष्य, प्रणिधि, यथाहवर्ण, अवसर्प, मन्त्रविद् चर, स्पर्श, चार । २ दूत, पलचो । ३ वाचांशास्त्र । (त्रि०) ४ पृथान्तवाहक, समाचार ले जानेवाला ।

वाचांरम्म (सं० पु०) वाचांयां आरम्भः । हृषिकार्थ और पशुपालनादिका आरम्भ ।

वाचांलाप (सं० पु०) कथोपकथन, बातचीत ।

वाचांविह (सं० पु०) वाचां चान्यत्पण्ड्याद्वैवांतां घट-तोति घट मत् । १ वैवधिक, पनसारी । २ भाव-प्यव-विषयक विधिदर्शक नीतिशास्त्रविशेष, नीति-शास्त्रका यह भाग जो भाष्यवसे संबध रचता है । (Political Economy) (त्रि०) समाचार ले जाने-वाला ।

वाचांगिन् (सं० त्रि०) जो भोजनके लिये अपने मोक्षार्थिका परिचय देने हैं ।

वाचांहर (सं० पु०) हरतीति हृ-ऊय, वाचांया हर ।

पासनाके लिये जाता हूँ, नहीं जानेसे क्रिया लोप हो जायगी।' अक्षराने हंस कर कहा, 'इतने दिनों के बाद तुम्हारा धर्मक्रिया करनेका समय आया। इतने दिन जो बीत गये, क्यों नहीं सन्ध्योपासना की?' मुनिने उत्तर दिया, 'वाह! तुम तो सवेरे इस नदीके किनारे आई हो और पाँचे मेरे आश्रममें घुसी हो। अभी सन्ध्याकाल उपस्थित है। इसमें उपवासकी क्या बात है?'

अक्षरा बोली, 'मैं यहाँ सवेरे आई हूँ सही, पर समय बहुत बीन गया। कितने वर्ष चले गये।' मुनिने बहुत व्याकुल हो कर पूछा, 'तुम्हारे साथ मैंने कितने दिनों तक रमण किया?' अक्षराने कहा, 'नौ सौ सात वर्ष छः मास तीन दिन।'

अक्षराने मुखसे यह सच्ची बात सुन कर मुनिको बहुत आत्मम्लानि हुई। मुनि अपनी आत्माको वार वार धिक्कारने हुए बोले, 'हाय! मेरी तपस्या नष्ट हो चुकी, बुद्धि मारी गई, मैं खोके साथ नीच दशामें पहुँच गया। इस प्रकार मुनि बहुत समय तक आत्मनिन्दा करने लगे। खोके प्रेममें फँस कर कर्त्तव्यपथसे झपट हो गये, यह सोच कर उन्हें बड़ा चिन्ता हुई और आखिर उस अक्षराको विदा किया। अक्षरा कांप रही थी, मुनिके भी क्रोधका पारावार न था, पर मुनिने उसे शाप नहीं दिया। उन्होंने अपनी अवाध्य इन्द्रियका ही दोष दिया था।

जो हो, अक्षरा चली गई, किन्तु मुनिके भयसे उसके शरीरसे वैशुमार पसीना आने लगा। जब वह शून्य मार्गसे जा रही थी, तब एक ऊँचे वृक्षके तरणपट्टवमें उसने अपना पसीना पोछ लिया। ऐसा करनेसे मुनिके तेजसे जो उसे गर्भ रह गया था, वह गर्भ लोमकूप हो कर स्वेद-जलाकारमें निकल गया। पीछे अक्षराने स्वेदसे सिक हो यहाँके समीप वृक्षोंमें गर्भ धारण किया। इसी गर्भसे मारिया नामक नारीरत्नकी उत्पत्ति हुई।

वृक्षोंमें यह नारीरत्न दे कर प्रचेताओंका क्रोध शान्त किया था। (विष्णु पु०)

वाच्य (सं० लि०) १ वृक्षसम्बन्धीय (क्ली०) २ वृत्ति, घेरा।

वार्त्त (सं० पु०) वारि चरतीति ड। हंस।

वार्त्तलीय (सं० लि०) वार्त्तल सम्बन्धीय।

वाज (सं० पु०) पद्म, कमल।

वाड (सं० पु०) १ रक्षा, हिफाजत। २ किसी विनिष्ट कार्यके लिये घेर कर बनाया हुआ स्थान। ३ अल्पता या जेल आदिके अन्दरके पृथक् पृथक् विभाग। ४ नगरमें उनके महबले आदिकों समूह जो किसी विनिष्ट कार्यके लिये अलग नियत किया गया हो।

वाडर (सं० पु०) १ वह जो रक्षा करता हो, रक्षक।

२ जेल आदिके अन्दरका पहरेदार।

वाणक (सं० पु०) लेखक।

वाणक्य (सं० पु०) वणकका गोत्रज।

वाण्य (सं० लि०) वणु नदी-सम्भव, वणु नदीसे उत्पन्न।

वाणवक (सं० लि०) वाण्य स्वार्थ कन्। वणु नदी-सम्भव।

वाणिक (सं० लि०) वणिलेखनं शीलमस्य वण-उच्च्। लेखक।

वार्त्त (सं० लि०) वृत्तिरस्त्यस्वेति (प्रथाप्रदान्वा वृत्त्यो यः। पा १।२।१०१) इति ण। १ निरामय, आरोग्य।

२ वृत्तिशालो, कामकाजो। (क्ली०) ३ असार।

वार्त्तक (सं० पु०) १ पक्षिविशेष, बटेर। इसके मांसका गुण—अग्निवर्द्धक, शीतल, उच्चर और तिद्रोपनाशक, रोचक, शुक तथा बलवर्द्धक। २ वार्त्ताकी, भंटा।

वार्त्तन (सं० लि०) वार्त्तानोभव।

वार्त्तान्तवोय (सं० पु०) १ परतन्तु-सम्बन्धीय। २ वेदकी एक शाखा।

वार्त्तमानिक (सं० लि०) वार्त्तमान सम्बन्धीय।

वार्त्ता (सं० खी०) वृत्तिरस्या अस्तीति (प्रथाप्रदान्वा वृत्त्यो यः। पा १।२।१०१) इति ण ततएच्। १ भगवती, दुर्गा। देवीभगवती वार्त्तन तथा धारण करती हैं, इस कारण उनका वार्त्ता नाम पडा है। २ वृत्ति, जीविका।

३ जनधृति, अफवाह। ४ वृत्तान्त, संवाद। ५ विषय, मामला। ६ कथोपकथन, बातचीत। ७ वैश्ववृत्ति जिनके अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद है।

वैश्यकी वार्त्ता द्वारा जीविका निर्वाह करनी चाहिये।

८ संसारका आध्यात्मिक संवाद।

वार्त्तारूपी धर्मेन जब वार्त्ताके सम्बन्धमें प्रश्न किया,

तव धर्मराज गुधिष्ठिते आध्यात्मिक भावसे उसका उत्तर इस प्रकार दिया था,—काल इस ब्रह्माण्डरूप कटाहमें मांस और ऋतुरूप दूर्वां सर्वात् हृद्येको चला कर दिया और रात्रिरूप काष्ठ तथा सूर्यरूप अग्नि द्वारा प्राणियोंका जो पाक करते हैं, वही वार्ता है।

६ दूसरे द्वारा फय विक्रय होना । १० वार्ताकी, वैगन । ११ एक प्रकारका पत्थर । १२ वृद्धता । १३ वार्ताक पक्षी, बटेर ।

वार्ताक (सं० पु०) वर्त्ततेऽनेनेति वृत् (वृत्तेर्द्विरच । उण् ३।७६) इति काकु 'वाहुलकात् उकारस्यास्त्रेच्ये वार्ता-कवार्ताक्यौ हृत्पुञ्जलदत्तोपस्था सिद्धे' । १ वार्ताकु, वैगन । २ वार्ताक पक्षी, बटेर ।

वार्ताकिन् (सं० पु०) वार्ताकु, वैगन । (भरमटीका भरत) वार्ताकी (सं० स्त्री०) वृद्धता, छोटी कटार । २ वार्ताकु, भण्डा । ३ कण्टकारी, भटकटैया ।

वार्ताकु (सं० पु० स्त्री०) वर्त्तते इति वृत् (वृत्तेर्द्विरच । उण् ३।७६) इति काकु । (Solanum melongene syn, S. Isoententum) खानामखयात फलवृक्ष । इसे हिन्दीमें वैगन भंटा, तैलकूमें पहिरि वंगु, उदकलमें बाइरगुण, गुजरातीमें चोगी और तामिलमें कुठिरैकई कहते हैं । संस्कृत, पर्याय—हिंगुली, सिही, कण्टाकी, दुधधर्विणी, वार्ताकी, वार्ता, वार्तिङ्गण, वार्ताक, शाकविल्व, दामकुष्माण्ड, वार्ताक, वार्तागम, चूर्नाक, चङ्गण, अङ्गण, कण्टवृन्ताकी, कण्टालु, कण्टपात्रिका, निद्रालु, मांसकफली, घृन्ताकी, महोटिका, चित्तफला, कण्टकिनी, महती, फटफला, मिधवर्णफला, नीलफला, रक्तफला, शाकध्रेया, घृतफला, नूपमित्यफला । गुण—रुचिकर, मधुर, पित्तनाशक, बलपुष्टिकारक, हृद्य, शुद्ध और घातवर्द्धक ।

भावप्रकाशकें मतसे इसका गुण—स्वादु, तीक्ष्णोष्ण, कटुपाक, पित्तनाशक, उबद, वात और बलोलस्यन, दीपन, शुक्रवर्द्धक और लघु । कटैया वैगन करक और पित्तनाशक तथा सिद्ध किया हुआ वैगन पित्तवर्द्धक और शुद्ध होता है । वैगनको पका कर उसमें तेल नमक डाल कर खानेसे फक, मेद, वायु और आम जाता रहता है । यह अल्पवस्त लघु और दीपन है ।

आत्रेयसंहितामें लिखा है, कि वार्ताकु निद्रावद्धक, प्रीतिकर, शुद्ध, घात, फास, कफ और अर्चचकारक है । धर्मशास्त्रके मतसे त्रयोदशीके दिन वैगन नहीं खाना चाहिये, खानेसे पुत्रवधका पाप होता है । यह अज्ञानता-वश खानेवालोंके लिये कदा गया ।

“वार्ताकी सुतहानिभस्यात् चिररोगी च माषके ॥”

(वित्थित्त्वं)

गोल कद्दू और दूध जैसा सफेद वैगन नहीं खाना चाहिये । सफेद वैगन मूँके अंडेके समान है, किन्तु यह अर्थरोगमें हितकर माना गया है । पूर्वोक्त वार्ताकु-से इसमें गुण थोड़ा है ।

आह्निकतत्त्वके मतसे वार्ताकुका गुण—सतगुणयुक्त, अग्निवर्द्धक, वायुनाशक, शुक्र और शोणितवर्द्धक, हृदनास, फास और अरुचिनाशक । वतिया वैगनका गुण—कफ और पित्तनाशक, पषकेका गुण—क्षारक और पित्तवर्द्धक ।

वार्तापति (सं० पु०) स'वाद्दाता । (भाग ४।१७।११) वार्तापन (सं० पु०) वार्तानामपनमनेनेति । १ प्रवृत्तिह, चर । पर्याय—हेरिक, गूडपुत्रय, प्रणिचि, यथाहर्वर्ण, अवसर्प, मन्तवित् चर, स्पर्श, चार । २ दूत, पलचो । ३ वार्ताशास्त्र । (ति०) ४ वृत्तान्तवाहक, समाचार ले जानेवाला ।

वार्तारम्म (सं० पु०) वार्तायां आरम्भः । कृपिकार्य और पशुपालनादिका आरम्भ ।

वार्तालाप (सं० पु०) कथोपकथन, वातचोत । वार्तावह (सं० पु०) वार्तां घान्यतण्डुलादेवार्तां वहतीति वह-अच् । १ वैवधिक, पनसारी । २ आय-व्यय-विपपक विश्विदर्शक नीतिशास्त्रविशेष, नीतिशास्त्रके वह भाग जो आयव्ययसे संबंध रखता है । (Political Economy) (ति०) समाचार ले जानेवाला ।

वार्ताशिन् (सं० ति०) जो भोजनके लिये अपने गोत्रादिका परिचय देते हैं ।

वार्ताहर (सं० पु०) हरतीति ह-ऊच, वार्ताया हरः ।

वाचार्हादारक, संघादवाहक ।

वाचार्हाहर्त्त (सं० पु०) वाचार्हाहर, दूत ।

वाचित्क (सं० क्लृ०) वृत्तिप्रमंथसूत्रविदूतः तत्र साधुः
वृत्ति (कयादिभ्यश्च क् । पा ४।४।१०२) इति ठक् । १
किसी ग्रन्थके उक्त, अनुक्त और दुयक्त अर्थोंको स्पष्ट
करनेवाला वाक्य या ग्रन्थ । इसका लक्षण—

जिस ग्रन्थमें उक्त, अनुक्त और दुयक्त अर्थ स्पष्ट
होता है, उसका नाम वाचित्क है, अर्थात्
मूलमें जो विषय कहा गया है, उसे स्पष्ट करनेसे
मूलमें जो नहीं कहा गया है, उसे परिष्यक्त वा द्युत्पा-
दित तथा मूलमें जो दुयक्त अर्थात् अमङ्गल कहा गया है
उसका प्रदर्शन तथा ऐसे ही स्थानोंमें संगत अर्थ निर्देश
करना वाचित्ककारका कर्त्तव्य है ।

वाक्यायनका वाचित्क पाणिनीयसूत्रके ऊपर, उद्योत-
करका न्यायवाचित्क वाटस्यायनके ऊपर, भट्टकुमारिलका
तन्त्रवाचित्क जैमिनीयसूत्र तथा शबरस्वामीके भाष्य
के ऊपर रचा गया है । फलतः वाचित्कग्रन्थ सूत्र और
भाष्यके ऊपर ही रचा जाता है ।

वृत्ति, भाष्य आदि ग्रन्थ मूलग्रन्थको सीमा अतिक्रम
नहीं कर सकने अर्थात् भाष्यकार आदिको सम्पूर्णरूपसे
मूलग्रन्थके मतानुसार ही चलना होता है । किन्तु
वाचित्ककार सम्पूर्ण स्वाधीन हैं । भाष्यकार आदिको
स्वाधीन चिन्ता हो नहीं सकती । किन्तु वाचित्कके
लक्षणोंके प्रति ध्यान देने हीसे ज्ञात होता है, कि वाचित्क
कारको स्वाधीन-चिन्ता पूर्णमात्रामें यिक्याय पातो है ।
वाचित्क ग्रन्थ देखनेसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि वाचित्क-
कारने कई जगह सूत्र और भाष्यका मत खण्डन करके
अपना मत सम्पूर्ण स्वाधीन भावमें प्रकाश किया है ।

वाचित्ककारने स्वाधीनभावसे अपना जो मत प्रकाश
किया है, एक उदाहरण देखने हीसे उसका पता चल
जायगा, वाचित्ककारकी स्वाधीनताका एक उदाहरण
नीचे दिया जाता है । मीमांसादर्शनमें पहले स्मृतिशास्त्र-
का प्रामाण्य संस्थापन किया गया है । फोछे वेदविषय
स्मृति प्रमाण ही था नहीं, इस प्रश्नके उत्तरमें दर्शनकार

जैमिनिने कहा है कि 'विरोधे त्वनपेक्ष' स्वात्मनि ह्यनु-
मानम् अवश्य ही यह प्रश्न जैमिनिका उठाया नहीं है,
भाष्यकारने उस प्रश्नको उठा कर उसके उत्तर स्वरूप
जैमिनिके सूत्रको व्याख्यान की है । भाष्यकारकी व्याखाना-
का इस प्रत्यक्ष श्रुतिके साथ विरोध होनेसे स्मृतिवाक्य
अनपेक्षणीय है अर्थात् स्मृतिवाक्यको अपेक्षा न
करनी चाहिये । करनेसे उसका अनादर होगा । प्रत्यक्ष
श्रुतिके साथ विरोध नहीं रहने पर स्मृतिवाक्य द्वारा
श्रुतिका अनुमान करना संगत है । अपरोक्षेय श्रुति
स्वतन्त्र प्रमाण है । स्मृति परोक्षेय अर्थात् पुराणका
वाक्य है, अतएव स्मृतिका प्रामाण्य मूल प्रमाण सापेक्ष
है । पुराणका वाक्य स्वतःप्रमाण नहीं है । पुराणवाक्य-
का प्रामाण्य दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा करता है । क्योंकि
पुराणने जो जान लिया है, वही दूसरेकी वतानेके लिये
वे दाक्ष-प्रयोग वा वाक्यरचना करते हैं । अतएव इस-
से स्पष्ट ज्ञान होता है, कि जैसे ज्ञानमूलमें शब्द प्रयुक्त
हुआ है, वह ज्ञान यदि यथार्थ अर्थात् ठीक हो, तो तन्मू-
लक वाक्य भी ठीक अर्थात् प्रामाण्य होगा । वाक्य-
प्रयोगके मूलीभूत ज्ञान अवयव अर्थात् भूमात्मक होने-
से उसके अनुबलमें प्रयुक्त वाक्य भी अप्रामाण्य होगा ।
स्मृतिकर्त्ता शास है, उनका माहात्म्य वेदमें कीर्तित है ।
वे लोग मनुष्यको प्रतारित करनेके लिये कोई बात न
कहेंगे, यह अमम्वय है । इस कारण उन लोगोंकी
स्मृतिका मूल भूतवेदवाक्य समझा जाता है । उन लोगो-
ने वेदवाक्यका अर्थ स्मरण कर वाक्यकी रचना की है,
इसीसे उसका नाम स्मृति रखा गया है । स्मृतिवर्षित
विषय अधिकांश लौकिक है अर्थात् धर्मसम्बन्ध, पूर्वा-
नुभव स्मरणका कारण है क्योंकि अनुभूत पदार्थका
स्मरण ही नहीं सकता । मुनियोंने जो स्मरण किया है,
यह पहले उन्हें अनुभूत हो गया था, इसे अवश्य स्वीकार
करना पड़ेगा । वेदके सिवा अन्य उपायसे लौकिक
विषयका अनुभव एक तरहसे असम्भव है । अतएव स्मृति
द्वारा श्रुतिका अनुमान होना असंगत है । स्मृतिकारोंने
जो स्मरण किया है वह वेदमूलक नहीं है, वेदपर्यायी-
रचना करके हीसे इसका पता चल सकता है ।

अष्टाकर्म स्मार्त है, किन्तु वेदमें उसका उल्लेख है। जलाशयका खुदधाना और प्रपा अर्थात् पानीय शालाकी प्रतिष्ठा आदि स्मृति-उक्त कर्मोंका आभास भी वेदमें देखा जाता है। भाष्यकारके मत में जलाशयजनन, प्रपाप्रतिष्ठा आदि कर्म द्रष्टव्य हैं। क्योंकि इनसे मनुष्यकी भलाई होती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसलिये जलाशयादिका खुदधाना धर्मार्थ नहीं, लोकोपकारार्थ है। लोकोपकारार्थ अथवा धर्मार्थ होगा। स्मृति-घर्णित बहुतेरे विषयोंको वेदमूलकता जब स्पष्ट देखी जाती है, तब स्मृतिके जो सब मूलीभूत वेदवाक्य हम लोगोंके दृष्टिगोचर नहीं होते, उनका भी अनुमान करना सर्वथा समीचीन है। अन्नपाक करते समय चावल सिद्ध हुआ है वा नहीं—यह जाननेके लिये बरतनसे दो एक चावल निकाल कर दबाते हैं। हाथ से दबाने पर जब वह सिद्ध हुआ जान पड़ता है, तब लोग अनुमान करते हैं, कि सभी चावल सिद्ध हो चुके, क्योंकि सभी चावल एक ही समय आंच पर चढ़ाये गये हैं। उनमेंसे एकके सिद्ध होने और दूसरेके सिद्ध न होनेका कोई कारण ही नहीं रह जाता। इस युक्तिका शास्त्रीय नाम स्थालीपुलाकन्याय है। प्रकृत स्थलमें भी बहुत-सी स्मृतियां वेदमूलक हैं, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, इससे स्थालीपुलाकन्यायके अनुसार सभी स्मृतियोंकी वेदमूलकताका अनुमान किया जा सकता है।

इस बातको दार्शनिकोंने अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है; कि अनेक वेदगाथाएँ विलुप्त हुई हैं, जो विलुप्त हो गई हैं, वे पहले अवश्य थीं, अतः वेदवाक्यमूलक जो सब स्मृतियां प्रणीत हुई हैं उनका मूलीभूत वेदवाक्य शक्य न दिखाई देनेके कारण हम उन सब स्मृतियोंकी अप्रामाण्य नहीं कह सकते।

किन्तु जो सब स्मृतियां प्रत्यक्ष श्रुतिविरुद्ध हैं, भाष्यकारके मतानुसार वे अप्रामाण्य होंगे। क्योंकि वेदमूलक होनेके कारण ही स्मृति-प्रामाण्य है। वेदविरुद्ध स्मृति वेदमूलक हो नहीं सकती, परन्तु वेदके विपरीत होती है, इसलिये वह अप्रामाण्य है। सब पृच्छिये, तो स्मृतिके मूलरूपमें श्रुतिका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। कारण, प्रत्यक्ष श्रुतिविरुद्ध अनुमान ही नहीं सकता। वेद-विरुद्ध स्मृतिके कुछ उदाहरण भाष्य-

कारने दिखलाये हैं उनमेंसे एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। ज्योतिषोम यागमें सवे नामक मण्डपमें एक उदुम्बर वृक्षकी शाखा गाड़नी होती है। उस शाखाको स्पर्श कर उद्गाथा नामक ऋत्विक् सामगान करें, ऐसी श्रुति है। उदुम्बरकी शाखाको कपड़े से पूर्णतः ढक देवे, ऐसी भी एक स्मृति है, यह स्मृति उक्त वेदविरुद्ध है। क्योंकि, शाखाको पूर्णतः कपड़े से ढक देने पर उदुम्बरकी शाखा पर उपस्पर्श होगा अर्थात् उदुम्बर शाखासे संयुक्त चखका स्पर्श हो सकता है सही, पर उदुम्बर शाखाका स्पर्श नहीं हो सकता। उदुम्बरकी शाखाका स्पर्श करने पर सम्पूची शाखाका घेदन नहीं हो सकता। अतएव सर्ववेधेन स्मृति प्रत्यक्ष श्रुतिविरुद्ध है, इसलिये यह अप्रामाण्य है। आपत्ति हो सकती है, कि पूर्वानुभव नहीं रहने पर स्मृति या स्मरण ही नहीं सकता, सर्ववेधेन वेदविरुद्ध है, अतः सर्ववेधेनके विषयमें पूर्वानुभव होनेका कोई भी कारण नहीं। फिर, पूर्वानुभवके बिना स्मरण असंभव है। भाष्यकारने इसके उत्तरमें कहा है, कि किसी ऋत्विक् ने लोभवशतः चख ग्रहण करनेके लिये शाखाको पूर्णतः चखवेधेन कर दिया था, स्मृतिकर्त्ता यह देख भ्रममें पड़ सर्ववेधेनको वेदमूलक समझ सर्ववेधेन स्मृतिका प्रणयन किया है।

वार्त्तिक ग्रन्थमें भाष्यग्रन्थ व्याख्यात और समर्पित होने पर भी वार्त्तिककार भाष्यकारके इस सिद्धान्तको असङ्गत समझ कर दूसरे सिद्धान्त पर पहुँचे हैं। उनका कहना है, कि यह अच्छी तरह स्थिर हो चुका है, कि सभी स्मृतियां वेदमूलक हैं। ऐसा कोई भी एक स्मृतिवाक्य प्रत्यक्ष श्रुतिविरुद्ध होने पर भी वह वेदमूलक नहीं, लोभादि-मूलक है, यह किस प्रकार सिद्धान्त किया जा सकता है। सभी वेदवाक्य नाना शाखाओंमें प्रकीर्ण हैं। एक पुरुषका सभी वेदशाखाओंका पढ़ना विलकुल असंभव है। कोई कई शाखाएँ और दूसरे अन्यान्य कई शाखाएँ पढ़ते हैं। यह भी सोचनेकी बात है, कि सभी वेदवाक्य धर्मानुष्ठानके क्रमानुसार नहीं पढ़े जाते। उस प्रकार पढ़े जाने पर धर्मानुष्ठानके अनुरोधसे उनका सुप्रचार हो सकता था। साक्षात् सम्बन्धमें प्रचारित धर्मानुष्ठानके उपयोगी वेदवाक्य धर्मिकोंकी अवश्य पढ़ने होते हैं। इसके अतिरिक्त

तथा धर्मानुष्ठानके क्रमानुसार अपरिपठित वेदवाक्योंका विरलप्रचार देख कर भविष्यमें इनके विदुषत हो जानेकी आशङ्कामें परमकारणिक स्मृतिकारोंने वेदवाक्यगत आख्यानादि अंशोंको छोड़ वेदवाक्योंका अर्थ मङ्गलन करके स्मृति प्रणयन को है ।

उपाध्याय स्वयं कोई वेदवाक्य उच्चारण न करके भी यदि कहें, कि अर्थ या विषय अमुक शास्त्रोंमें या अमुक स्थानमें पढ़ा जाता है, तो ज्ञात अर्थात् संज्ञन और हिनोपदेश उपाध्याय पर पूर्ण विश्वास रहनेके कारण शिष्य उसोको ठीक समझ लेते हैं । उसी प्रकार स्मृतिवाक्य द्वारा भी वैसे ही वेदवाक्यका अस्तित्व विवेचित होना युक्तिसङ्गत है । मीमांसकके मतसे वेद नित्य हैं, किसीके भी वनाये नहीं हैं । अध्यापक परम्पराके उच्चारण या पाठ द्वारा अर्थात् कण्ठ, तालु आदि स्थानोंमें आभ्यन्तरोग वायुके अभिघातसे जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसी ध्वनि द्वारा नित्य वेदको केवल अभिव्यक्ति होती है । जिस प्रकार न्यायके मतसे चक्षुरादिके सम्बन्धविशेष अर्थात् सान्धविशेष द्वारा नित्य गोत्वादि जातिकी और आलोकादि द्वारा घटादिकी अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार मीमांसकके मतसे कण्ठ, तालु आदि स्थानोंसे उत्पन्न ध्वनिविशेष द्वारा नित्य वेदका अभिव्यक्त होना असङ्गत नहीं हो सकता । अध्यापक या अध्येताकी ध्वनिविशेष द्वारा जिस प्रकार वेदको अभिव्यक्ति होती है, स्मृतिकर्त्ताओंके स्मरण द्वारा उसी प्रकार वेदको अभिव्यक्ति होगी, इसमें शरा भी संदेह नहीं । स्मृतिकर्त्ता भी एक समय शिष्योंको पढ़ाते थे, उस समय भी उनके उच्चारणसे वेदकी अभिव्यक्ति होती थी, संदेह नहीं । तब फिर उनके स्मरणने क्या अपराध किया है, कि उससे वेदवाक्यकी अभिव्यक्ति न होगी ? अतएव ध्वनिविशेष द्वारा अभिव्यक्त वेद और स्मृतिकर्त्ताओंके स्मरण द्वारा अभिव्यक्त वेद दोनों ही समान हैं, इनमें शरा भी तारतम्य या बलाबलमाय नहीं हो सकता ।

स्मृत्यर्थभूति अर्थात् जिस श्रुतिका अर्थ स्मृत हुआ है, वह श्रुति और पठित श्रुति वे दोनों ही समान यलके हैं । इनमें एक दूसरेको बाधा नहीं दे सकता । स्मृतिशास्त्र में कोई एक स्मृति यदि प्राचीनतर अथैदिक होती, तो

शिष्ट लोग कभी भी उसका व्यवहार नहीं करते । केवल दूसरी दूसरी वैदिक स्मृतियोंका ही व्यवहार होता है । भवैदिक स्मृतिका त्वाग होता है । यथार्थमें कोई भी स्मृति अथैदिक नहीं है । समी स्मृति कठ मोर मीत्रायणोप आदि शाखापरिवेष्टित श्रुतिमूलक हैं, ऐसा देखनेमें आता है । इस पर वार्त्तिककार यह भी कहते हैं कि जब समी स्मृतिशास्त्र वेदमूलक हैं, तब उनमेंसे एक वाक्य जिनका मूलोभूत वेदवाक्य हम लोगोंके दृष्टिगोचर नहीं होता, वह वेदमूलक नहीं है । हमें यह कहनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, कि यह अन्यमूलक अर्थात् अस्मृतमूलक या लोभमूलक है । जो नैवायिकमन्त्र प्रत्यक्ष अर्थात् श्राना परिष्कृत श्रुतिविषय होने होंसे किसी स्मृतिवाक्यको अप्रामाण्य वह कर उपेक्षा या परित्याग करते हैं, कालान्तरमें उनके उपेक्षित स्मृतिवाक्यको मूलोभूत शास्त्रान्तरपठित श्रुति जब उनके श्रवणगोचर या ज्ञानगोचर होगी, तब उनको मुख्यकान्ति कैसे हो जायेगी ? इसमें संदेह नहीं ; कि उस समय वे अवश्य लज्जित हो जायेंगे, केवल यही नहीं, जो अपने ज्ञान हीका पर्वत समझते हैं अर्थात् उनको यह कर दूसरा कोई नहीं है, ऐसा जिनका क्वाल है उन्हें पद पदमें लज्जित होना पड़ता है । उनकी वाधावांघ व्यवस्था भी अव्यवस्थित हो जाती है । क्योंकि वे अपना परिष्कृत श्रुतिविषय कह कर एक समय जिस स्मृतिवाक्यको अप्रामाण्य साबित करने हैं, पहले उन्हें यदि अपने अपरिष्कृत स्मृतिवाक्यको मूलोभूत शास्त्रान्तर पठित श्रुति मान्य हो जाय, तो उसी स्मृतिवाक्यको उन्हें फिरसे प्रामाण्य या अबाधित मानना पड़ेगा ।

वार्त्तिककारने और भी कहा है, कि भाष्यकारने जो उदुम्बरको शाखाकी सर्वावेष्टित स्मृतिको श्रुतिविषय बताया है, वह युक्तिसंगत नहीं है । शास्त्रायनि-ब्राह्मणमें प्रत्यक्ष पठित श्रुति ही उसका मूल है । आं दुम्बरोप कुरुच्छोमाग और अथेभागके पृथक् पृथक् यन्त्रु द्वारा घेष्टन पर, ऐसी प्रत्यक्षश्रुति शास्त्रायनि-ब्राह्मणमें मौजूद है । वार्त्तिककार केवल इतना ही कह कर चुप नहीं हुए, उन्होंने श्रुतिको उद्धृत करके दिखला दिया भीदुम्बरोपेष्टन स्मृते यदि श्रुतिमूलक है, तो वह किसी भी मतसे कदाचित् द्वारा बाधित नहीं हो सकता । क्योंकि दोनों ही श्रुति हैं

अर्थात् समान बलके हैं, तब कौन किसको बाधा दे सकती है ?

दर्शणीयमास यागमें जी द्वारा होम करे, धान द्वारा होम करे, ऐसी दो श्रुति हैं। यहां जी और धान दोनों ही प्रत्यक्षश्रुतिबोधित हैं। इस कारण जी और धानका विकल्प सर्वसम्मत है। इच्छानुसार जी या धान इनमेंसे किसी एक द्वारा होम करने हीसे यागसम्पन्न होगा। इसी प्रकार प्रहनस्थलमें भी औदुम्बरीवेष्टन और औदुम्बरीस्पर्श करना, इन दोनों विषयको परस्पर विकल्पसम्भवे पर भी जी और धानकी तरह दोनोंका विकल्प ही ऐसा सिद्धांत करना ही भाष्यकारको उचित था। वेष्टन स्मृतिकी बाधित कहना युक्तिसंगत नहीं है। वेष्टमें यदि विषय बिलकुल न रहना, तो स्पर्शश्रुति-विषय होनेके कारण वेष्टन-स्मृति अनादरणीय होने पर भी हो सकता था। किन्तु वेष्टमें सैकड़ों जगह विषय देखनेमें आता है। इतना हो कहना पर्याप्त होगा, कि विकल्पकी जगह कल्पवृक्ष परस्पर विकल्प है, अतएव अपनी परिष्कारश्रुतिके साथ विरोध होनेसे वेष्टनस्मृतिको अग्रामाग्य सिद्धांत करना एकवचन असङ्गत हुआ है। यस्मिन्गत्या किन्तु प्रहनस्थलमें विरोध भा नहीं होता। क्योंकि, केवल वेष्टन तो स्पर्शश्रुतिके विकल्प नहीं हो सकता। स्पर्शनयोग्य दो

नोन उंगली भर स्थान छोड़ कर औदुम्बरीय उत्तर भागका स्पर्श करना ही उचित है। 'सर्वा औदुम्बरी वेष्टयि त्र्यया' सूत्रकार ऐसा नहीं करते। 'औदुम्बरी परिवेष्टयि त्र्यया' यही सूत्रकार का वाच्य है। यहां परि शब्द का अर्थ सर्वभाग है। अर्थात् ऊर्ध्वभाग और अधोभाग इन दोनों भागोंका वेष्टन करना ही सूत्रकारके वाच्यका तात्पर्य है। समो स्थानका वेष्टन करना उसका अर्थ नहीं है। याज्ञिक लोग औदुम्बरीय दोनों भाग वेष्टन करते हैं सदा, पर कर्णमूल प्रदेश वेष्टन नहीं करते।

याज्ञिककारका कहना है, कि सर्ववेष्टन वाच्य लोभमूलक भाष्यकारका कथना सङ्गत नहीं है। क्योंकि स्मृतिकी वेष्टन न करके केवल मूल और अग्रभागकी वेष्टन करनेमें कोई श्रुति नहीं। फिर, यह भी सोचनेकी बात है, कि औदुम्बरीय साक्षात्स्पर्श किसो तरह संभव नहीं होता, क्योंकि पहले कुश द्वारा औदुम्बरीय वेष्टन

करनेकी विधि है, पीछे कुशवेष्टित औदुम्बरीयको बर्ष द्वारा वेष्टन करना होता है। याज्ञिक लोग ऐसा ही किया करते हैं। खरवेष्टन ही लोभमूलक होनेके कारण अग्रामाग्य हुआ, कुशवेष्टनको लोभमूलक नहीं कह सकते।

भाष्यकारको ऐसा सिद्धांत करना भी उचित नहीं, कि तद्भाग आदिका उपदेश दृष्टार्थ है, धर्मार्थ नहीं। क्योंकि, वेष्टमें जिसे कर्त्तव्य बताया है, वही धर्म है, यह जैमिनीकी उक्ति है। इस बातको भाष्यकार भी असोकार नहीं कर सकते। दृष्टार्थ होने हीसे धर्म होगा, इसका कोई भी कारण नहीं। प्रत्युत तण्डुल-निष्पत्तिके लिये यथादिका अवहनन, चूर्णके लिये तण्डुलपेयण आदि हजारों दृष्टार्थ कर्म वेदविहित होनेके कारण धर्मरूपमें माने गये हैं। चार्वाक प्रभृति विषयवादी भी वेदविहित अदृष्टार्थ कर्मोंमें भी दृष्टार्थताकी कल्पना करते हैं। अतएव चाहे दृष्टार्थ हो चाहे अदृष्टार्थ, वेष्टमें जिसे कर्त्तव्य कहा है, वही धर्म है। चार्वाककारने इस प्रकार अनेक हेतु दिखलाते हुए भाष्यकारके मतका खण्डन किया है। उन्होंने भाष्यकारका मत खण्डन करके जैमिनि-सूत्रका दूसरी तरहसे अर्थ लगाया है।

वे करते हैं, कि जब यह स्थिर हुआ, कि श्रुति और स्मृतिमें विरोध नहीं है, विरोध रहनेसे वह श्रुतिद्वयके विरोधरूपमें ही पर्याप्तसित होना, दोनों श्रुतिके विरोधकी जगह विफल होता है, अर्थात् भिन्न भिन्न श्रुतिप्रतिपादित भिन्न भिन्न श्रुतियोंमें इच्छानुसार किसी एक कथनका अनुष्ठान करने हीसे अनुष्ठानता चरितार्थ होता है। तब जहां प्रत्यक्ष परिदृष्ट श्रुतिमें तथा स्मृतिमें भिन्न भिन्न रूपोंका कर्त्तव्य कहा गया है, वहां भी कोई एक अनुष्ठेय अवश्य होगा। उस अवस्थामें प्रयोग वा अनुष्ठानके नियमके लिये अनुष्ठानताओंके अत्यन्त हितैरूपमें जैमिनिने कहा है, कि धीत और स्मार्स पदार्थ परस्पर विकल्प होनेसे धीतपदार्थका अनुष्ठान होगा। धीतपदार्थके साथ विरोध न रहने पर स्मार्सपदार्थ धीतपदार्थकी तरह अनुष्ठेय है। स्मृतिकार जाबालने कहा है—

“श्रुति स्मृति विरोधेत् श्रुतिरेव गरीयसी ।
अविरोधे सदा कार्यं स्मरति वैदिकवत् सता ॥”

श्रुति और स्मृतिका विरोध होनेसे श्रुति हीं गुरुतरा है । अविरोधको जगह स्मार्त्तपदार्थ वैदिकपदार्थकी तरह अनुष्ठेय है । ऐसी व्यवस्थाका कारण यह है, कि सभी परप्रत्यक्षको अपेक्षा सुप्रत्यक्ष पर अधिक विश्वास करने हैं । स्मृतिका मूलभूत शाखान्तर विप्रकीर्ण श्रुति है, परप्रत्यक्ष होने पर भी अनुष्ठानता अपनी प्रत्यक्षश्रुति पर अधिक निर्भर करनेको बाध्य हैं । जी और धान दोनों ही प्रत्यक्ष श्रुतिविहित है, अतएव विकल्पित है । कोई अनुष्ठानता यदि उनमेंसे एक अर्थात् केवल जी या केवल धानसे सर्वदा यागानुष्ठान करे तो उसमें जिस प्रकार दोष नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतस्थलमें श्रौत वा स्मार्त्त इन दो-मेंसे किसी एकका अनुष्ठान शास्त्रानुसार होने पर भी केवल श्रौतपदार्थका अनुष्ठान करनेसे कुछ भी दोष नहीं हो सकता । प्रस्तावित जैमिनिस्त्रको दूसरी तरहसे व्याख्या करके वार्त्तिक करने यह भी स्थिर किया है, कि इस सूत्र द्वारा शब्दादि स्मृतिके धर्ममें प्रामाण्य नहीं है, यही समर्थित हुआ है ।

इस प्रकार वार्त्तिककारने कई जगह भाष्यकारका मत खण्डन करके अपना मत समर्थन किया है तथा कहीं कहीं ये सूत्रको भी खण्डन करनेसे बाज नहीं आये हैं । व्यापवार्त्तिककार उद्योतकरमिश्रने भी इसी प्रकार स्वाधोन भावसे अपना मत प्रकाश किया है । वार्त्तिक प्रथमात् ही इसी प्रकार स्वाधोन मत देने हैं ।

(पु०) घृत्तिप्रधीते वेद वा वृत्ति (कर्मक यादिसुशान्तात् उक् । पा ४।२।६०) उक् । २ घृत्तिमध्यपनकारो, घृत्ति या आचारशास्त्रका अध्ययन करनेवाला । घृत्ति साधुरिति घृत्ति (व्यादिभ्यङ्क । पा ४।४।१०२) इति उक् । ३ सूत्रघृत्तिमे निपुण । ४ प्रवृत्तिश्च, चर, दूत । ५ वीर्य जाति । ६ वार्त्तिकपक्षी, बटेर । ७ वात्तिकु, वीगन ।

वार्त्तिककार (सं० पु०) वार्त्तिकं करोतीति अण् । वार्त्तिकप्रथके प्रणेता ।

वार्त्तिककृत (सं० पु०) वार्त्तिकं करोतीति कृ क्विप् तुक्च । वार्त्तिककार ।

वार्त्तिका (सं० स्त्री०) वार्त्तिकरूपा । पक्षीविशेष, बटेर पक्षी ।

वार्त्तिकाल (सं० स्त्री०) सामभेद ।

वार्त्तिकेन्द्र (सं० पु०) क्रिमिपविद्यावित् (Alchemist) ।

वात्तूचन (सं० पु०) वृत्तचन इन्द्रस्यापत्यं पुमान् वृत्तचन अण् । १ अनुचन । २ जयन्त । (त्रि०) वृत्तचन-सम्बन्धोय । (भागवत ६।१२।३४)

वात्तूचुर (सं० पु०) सामभेद ।

वात्तूहृत्य (सं० त्रि०) वृत्तहननके निमित्त ।

वाह (सं० पु०) वार जलं ददातीति दा क । १ मेघ, वादल । (त्रि०) २ जलदाता ।

वाह (सं० स्त्री०) १ कृष्णलावोज, पुंघञो । २ वाक-चिक्षा । ३ दक्षिणावर्त्त शङ्ख । ४ भारगी । ५ कृमिज । ६ जल । ७ आश्रवोज । ८ रेणुम । ९ घोड़ेके गले परकी दाहिनी ओरकी मीरी ।

वाहल (सं० स्त्री०) वाग्मिः सलिलैर्वलतीति दल-भाव सदा मेघाच्छन्दनवृष्टिपातात्तथात्वं । १ दुर्दिन, बदली । (पु०) वाहं दल्यतेऽप्रेति दल (पुंलिङ्गशाघं प्रायेण । पा ३।१।२१८) इति घ; २-मेलानन्द, द्वावा ।

वाह (सं० पु०) वृद्धस्य गोत्रापत्यं (अनुष्ठानतस्यै विद्याभ्यासम् । पा ४।१।१०४) इति अण् । वृद्धस्य गोत्रापत्य ।

वाहक (सं० स्त्री०) वृद्धानां समूहः (गोशोकोष्ठांशोऽत् । पा ४।२।३६) इत्यत्र 'वृकाञ्चेति' काशकोक्तः सुम् । १ वृद्धसंघान्, वृद्धसमूह । वृद्धस्य भावः कर्मधेति मनोवादि-त्यात् सुम् । वृद्धका भाव वा कर्म, बुढावा । (त्रि०) ३ वृद्ध, वृद्ध ।

वाहक्य (सं० स्त्री०) वाहकमेव वाहक्यं चतुर्धर्णा-दित्वात्, सार्थं प्यञ् । वृद्धापस्था, बुढावा । पर्याय-वर्द्धक वृद्धस्य, स्याविरत्य । २ वृद्धि, बढती ।

वाहकक्षति (सं० पु०) वृद्धक्षतका गोत्रापत्यं, जयत्रंथ ।

वाहकक्षेमि (सं० पु०) वृद्धक्षेमका गोत्रापत्य ।

वाहनी (सं० स्त्री०) जलपात्र ।

वाहान (सं० पु०) वाहस्य गोत्रापत्यं (इतिवादिमोऽङ्गा । पा ४।१।१००) इति फक् । वाहका गोत्रापत्य, वृद्धका गोत्रज ।

वाहिक (सं० पु०) वारि जलानि धोयन्तेऽप्रेति धा-क्ति । समुद्र ।

वाङ्मय (सं० ह्री०) वाङ्मय समुद्र भवतीति भू अच् ।
द्रोणीलवण ।

वाङ्मयि (सं० पु०) वाङ्मयिक पृथोदरादित्वात् कलोपः ।

वाङ्मयिक, बहुत अधिक ध्यान लेनेवाला, सूक्ष्म ।

वाङ्मयिक (सं० पु०) वृद्धयर्थं प्रथमं वृद्धिः तां प्रपच्छतीति
(प्रपच्छति गद्य) । पा ४।४।३०) इति ङक् । 'वृद्धे वृथुपि
भावो-वषट्ठयः' इति वार्त्तिकोक्तः-वृथुपिभावः । वृद्धिजोवी,
सूक्ष्म । 'पर्याय—कुसीदक, वृद्धवाजीव, वाङ्मयि,
कुसीद, कुसीदक । (शब्दरत्ना०)

जो समान मूलधर्म धान आदि खराद कर अधिक
मूलधर्म—देता है—उसे वाङ्मयिक कहते हैं । वाङ्मयिक
व्यक्तिका हृद्य कथ्यमें नियुक्त करना उचित नहीं ।

ध्यान इच्छानुसार नहीं ले सकते, लेनेसे दुःखनीय
होना पड़ता है । शास्त्रमें वृद्धि या ध्यान लेनेका निर्दिष्ट
नियम है । वाङ्मयव्यसंदिताम्, लिखा है, कि वंशो
चोत्रमें सेकड़े पीछे अरसी भागमें एक भाग माह्वारी सूद
और जो चांज वंशक नहीं है उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
और शूद्र इन चार वर्णोंसे यथाक्रम सेकड़े पीछे सौ भाग
में दो भाग, तीन भाग, चार भाग और पांच भाग अर्थात्
ब्राह्मणको सौ पण कर्ज देने पर उनसे प्रतिमासमें दो
पण, क्षत्रियसे तीन पण इत्यादि क्रमसे सूद लेये ।

जो वाणिज्यके लिये दुर्गम स्थानमें जाते हैं, वे सेकड़े
पीछे बीस भाग सूद दें । अथवा सत्तौ वर्णोंको
चाहिये, कि वे समी जातिको ऋणके समय अपनी अपनी
निर्दिष्ट वृद्धि दें । बहुत दिनका ऋण रहने पर, फिर
धांच वीचमें सूद नहीं लेने पर सूद कहां तक बढ़ सकता
है, उसका धियप इस प्रकार लिखा है,—खा, पशु अर्थात्
गाय आदि यदि कर्जमें लो जाय तो उनका सूद उतना ही
बढ़ेगा जितना बछड़ेका मूल्य होगा, रस अर्थात् घृत
सैदाहिका सूद मूलधनसे आठ गुना बढ़ेगा । पत्र, धान्य
और सुषर्णका दुग, तिगुना और चौगुना सूद
होगा । वाङ्मयिक अर्थात् सूक्ष्मको इसी नियमसे
सूद लेना चाहिये । (वाङ्मय ३० २४०)

मनुने (८ अ०) वृद्धिक विषयमें ऐसा ही लिखा
है—उत्तमर्णं या महाजन यदि साधुओंका आचार एभरण
कर बन्धकरहितकी जगह प्रतिमासमें सेकड़े पीछे दो

पण सूद ले, तो उसे पापों नहीं होना पड़ता, सूक्ष्म
महाजन इसी प्रकार अपना दायित्व समझ कर वर्णानु-
सार ब्राह्मण ऋणासे सेकड़े पीछे दो पण, क्षत्रियसे तीन
पण, वैश्यसे चार पण और शूद्रसे पांच पण सूद माह्वारी
के हिसाबसे ले सकता है ।

एक मास, दो मास या तीन मासके करार पर यदि
कोई कर्ज ले और साल भर बीत जाये, तो महाजनको
उचित नहीं कि उससे करारसे अधिक एक पैसा भी सूद
लेये । अथवा उसे अशास्त्रोय सूद लेना भी युक्तिसंगत
नहीं है । अकवृद्धि, कालवृद्धि अर्थात् मूलधनसे दूनी
अधिक वृद्धि, कारिता (विषयमें पड़ कर ऋणा जो सूद
देना कबूल करता है) तथा कारिकावृद्धि अर्थात् अति-
शय पीड़नादि द्वारा लभ्य वृद्धि, ये चारों प्रकारकी वृद्धि
विशेष निन्दित है । यदि प्रतिमास सूद न ले कर असल
और सूद एक साथ लेना चाहे, तो यह मूलधनके दूनेसे
अधिक नहीं ले सकता । (मनु ८ अ०)

भगवान् मनुने कहा है, कि सूक्ष्मको अन्न नहीं
खाना चाहिये, खानेसे विष्टा खानेके समान पाप होता
है, क्योंकि उसका अन्न विष्टा सदृश है ।

सभी शास्त्रोंमें वृद्धिजोयोंको निन्दित कहा है, विशेष-
तः ब्राह्मणके लिये यह देपायह और पातित्यजनक
है ।

वाङ्मयिन् (सं० पु०) वृद्धिजोवी, सूक्ष्म ।

वाङ्मयी (सं० स्त्री०) अधिक ध्यान पर कर्ज देना ।
वाङ्मय्य (सं० ह्री०) वाङ्मय्यैव, वाङ्मयि एवम् ।
ध्यानवर्द्धन, अन्नको अधिक ध्यान पर देनेका व्यवसाय ।
यह निन्दित कार्य है ।

वाङ्मय (सं० ह्री०) वाङ्मय समुद्रस्फेदमिति वाङ्मय-ङम् ।
द्रोणीलवण । (राजनि०)

वाङ्मय (सं० ह्री०) वृद्धे इदमिति वृद्धिर् (चर्मणोऽम् । पा
६।१।१५) इति अच् । चर्मरञ्ज, चर्मरङ्को बद्धी ।

वाङ्मयिणस (सं० पु०) वाङ्मयिणसि नासिकास्फेदिति (मन् नासि-
काया वंश्यां नशं वास्फुजात् । पा ५।४।१८) इति अच्
नसदिशश्च (पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः । पा ८।४।३) इति
णत्वम् । १ पशु विशेष, गैर्वा । गद्यर देखे । २ छाग
भेद, यह धिया बकरा जिसका रंग सफेद हो और

जिसके कान इतने लम्बे हों कि पानी पीते समय पानीसे छू जाय। इस प्रकारका बकरा हृद्य और कथमें प्रशंसनीय है। ३ एक प्रकारका पक्षी। इसका गिर लाज, यथा नीला और पैर फाले और पंख सादा होता है। प्राचीन कालमें इस पक्षीका बलिदान विष्णुके उद्देश्यसे होता था। इसके मांससे यदि पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया जाय, तो वे अत्यन्त तृप्त होते हैं। इसके सिवा वाङ्मनिस नामक एक और भी पक्षी है जिसका पैर, गिर और नेत्र लाल तथा बाकी अङ्ग काला होता है।

“रक्तवादी रक्तशिरा रक्तवर्णनिर्द्वन्द्वमः।

कृष्णवर्णो न तथा पक्षी वाङ्मनिसो मतः”

(मार्कण्डेयपु०)

वाङ्मनिस (सं० पु०) वाङ्मनिस नामिका यक्ष, नासायाः नसादेशः। १ गण्डक, गैडा। २ पश्चिमिदेशे।

वाग्मट (सं० पु०) वारि जले भट इव। १ कुम्भीर, घडियाल। २ शिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वार्मण (सं० क्लो०) वर्मणां समूह वर्मन् (भिन्नादिभ्यो भञ्च् । पा ४।२।३८) इति ञ् । वर्मसमूहः।

वार्मणिव (सं० क्लि०) वर्मणो भमिजनोऽस्य (नृदीशनापुर-वर्मणोऽस्यादि । पा ४।३।६४) इति ढक् । वर्मणो जिनस-का भमिजन या चंश है।

वार्मिकापणि (सं० पु०) वर्मिणो गोत्रापत्यं (वाकिनादीनां कुक्च । पा ४।१।१५८) इति वर्मिण किञ् कुक्कागमश्च । वर्मिका गोत्रापत्यः।

वार्मिषय (सं० क्लो०) वर्मिकस्य भावः कर्म वा (पर्यस्त-पुरोहितदिभ्यो षक् । पा ४।१।१२८) इति यक् । वर्मि भाव या कर्म।

वार्मिण (सं० क्लो०) वर्मिणां समूहः वर्मिण ञण् । वर्मिसमूहः।

वार्मुच (सं० पु०) वाः वारि मुञ्चतीति मुच्-क्विप् । १ मेघ बाइल। २ मुहक, मोघ।

वाष्म (सं० क्लि०) वारि व्यञ्ज् । १ वारि-सम्बन्धी, जल सम्बन्धी। वृद्ध सम्मकी (गृहलोचनम्)। पा ३।१।२२४ इति ण्यत् । २ वरणीयः, अत्यिम् । ३ निवारणीय, जिसका निवारण हो सके। ४ जिससे वारण करना हो, जिससे रोक्ता हो।

वाष्वामाण (सं० क्लि०) निवारित, जो रोका गया हो।

वाष्वायन (सं० क्लो०) जलायन। (भाग० १।२।२६)

वाष्वात्मक (सं० पु०) जल-भावका।

वाष्वाद्भ्रुव (सं० क्लि०) वारिणि उद्भव उतरसिर्भाव । १ पत्र, कमल । (क्लि०) २ जलजातमात्र, पानीमें होनेवाला।

वाष्वाद्भ्रुवजोषिन् (सं० क्लि०) जन्तुजोषी।

वाष्वाकस् (सं० क्लि०) वारि शोकः भयस्थानं यस्य । जलीका, जोंक।

वारगि (सं० पु०) वारां राशिर्वाङ्मनिसुम् ।

वार्वट (सं० पु०) वार्मि वट्वने घेष्टे इति घञ्चयं क । यह्नित, नाय, घेष्टा।

वार्वणा (सं० खो०) नीलीमक्षिका, नीले रंगकी मक्खी।

वार्वर (सं० क्लि०) वार्वर सम्बन्धि।

वार्वरक (सं० क्लि०) वार्वर-स्वार्थे कन् । वार्वर सम्बन्धी।

वार्ष (सं० क्लो०) सामभेदः।

वार्षिष्ठा (सं० खो०) वार्षात्ता जिला शाकपार्थिवारि-त्वात् समासः। करका, भोला।

वार्य (सं० क्लि०) १ वर्या-सम्बन्धीय । २ वर्यासम्बन्धीय।

वार्यक (सं० क्लो०) वर्यस्येद्-वर्य-ञण, स्वार्थे कन् । पुराणानुसार पृथ्वीके दश भागोंमेंसे एक भागका नाम जिसे सुघृग्नेने विभक्त किया था।

वार्यगण (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेदः।

वार्यगणोपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेदः।

वार्यगण्य (सं० पु०) नाचार्यभेदः।

वार्यद (सं० क्लि०) वृषद-ञण । भाग, वंशसम्बन्धी । (उच्य ४।११)

वार्यदेश (सं० पु०) गोत्रभेदः।

वार्यपर्वणी (सं० खो०) वृषपर्वणीयां अयतः।

वार्यभ (सं० क्लि०) वृषभसम्बन्धीयः।

वार्यमाणयो (सं० खो०) वृषमाणोरपत्यं खो वृषमाणु-ञण् । वृषमाणुकन्या, धाराया । (भाष्यनरस्य ६० म०)

वार्यल (सं० क्लि०) वृषलस्य भावः कर्म या वृषल (दायव्यतपुगदिभ्योऽण् । पा ४।१।१३०) इति ञ्ण् । वृषलका भाव या कर्म, वृषलका भाव या कर्म।

वार्धलि (सं० स्त्री०) वृषल्याः अपत्यं वृषली (वाहा-
दिभ्यश्च । पा ४।१।६६) इति इज् । वृषलोका अपत्य ।
वार्धगतिक (सं० त्रि०) वर्धगतसम्बन्धीय ।
वार्धसंहस्रिक (सं० त्रि०) सहस्र वर्धसम्बन्धीय ।
वार्धकप (सं० त्रि०) वृषाकपि सम्बन्धीय ।
वार्धगिर (सं० पुं०) ऋद्धमन्त्र-द्रष्टा वृषागिरके पुत्र ।
वार्धवाणि (सं० पुं०) वर्धवाणके अपत्य ।
वार्धहर (सं० क्ली०) सामभेद ।
वार्धिक (सं० क्ली०) वर्धसु ज्ञातमिति वर्ध (वर्ध-भृत्कृ-
पा ४।१।१८) इति ठक् । १ त्वाद्यमाणा, वनफलोकी तरह
एक प्रकारकी लता । २ धून, धूप । (त्रि०) वर्ध भवः
वर्ध (कात्वात् ठक् । पा ४।३।११) इति ठक् । ३ वर्ध-
सम्बन्धी । ४ जो प्रति वर्ध होता हो, सालाना । ५ वर्ध-
कालोद्भव, वर्धकालमें होनेवाला ।
वार्धिकी (सं० स्त्री०) वर्धसु भवा वर्ध ठक् क्लीप् ।
१ लयमाणा लता । २ वर्धभव मलिकामेद, वर्धमें
होनेवाला घेलेका फूल (Jasminum sambac) । इसका
गुण—शोथल, हृद्य, सुगन्ध, पित्तनाशक, कफ, वात
विस्फोट और हृदिभोजनार्थक । (राजनि०) १ स फूलके
तेलमें मो वही सब गुण पाये जाते हैं । २ कांसरीज,
मोगरा ।
वार्धिय (सं० त्रि०) वार्धिक वृष्य ।
वार्धिला (सं० स्त्री०) वार्धाता शिला (शाकपार्थिवादिना-
मुपसंलथान उत्तरपदलोपश्च । पा २।१।६०) शाकपार्थिवादिवत्
समासा; पृषोदरादित्वात् शस्य पा । करका, ओला ।
वार्धुक (सं० त्रि०) वधुक-स्वार्थे ण्य । वर्धणशील,
हरसनेवाला ।
वार्धिक्य (सं० पुं०) वृष्टिद्वयके पुत्र उपरतुत, ऋद्धमन्त्र-
द्रष्टा एक ऋषि ।
वार्ध्य (सं० त्रि०) वृष्टिके योग्य ।
वार्धो (सं० पुं०) वृष्णिवन्ध, वृष्ण ।
वार्धि (सं० पुं०) वृष्णिवन्ध ।
वार्धिक (सं० पुं०) वृष्णिकस्व मोतापत्यं वृष्णिक
(शिवादिभ्योऽण् । पा ४।१।१२) इति अण् । वृष्णिकके
मोतापत्य ।
वार्धिवृद्ध (सं० त्रि०) वृष्णिवृद्धके अपत्यसम्बन्धी ।

वार्धोय (सं० पुं०) वृष्णिवन्धसम्भूत, श्रीहृष्णचन्द्र ।
वार्ध्य (सं० पुं०) वृष्ण ।
वार्धेण (सं० त्रि०) वर्धार्थसम्बन्धी ।
वार्धवाणि (सं० पुं०) वर्धवाणके मोतापत्य ।
वार्हत (सं० क्ली०) वृद्धत्याः फलमिति (८७त्वादिभ्योऽण्
पा ४।३।१६४) इति अण्, विधानसामर्थ्यात् तस्य फलेन
लुक । वृद्धनी फल, बड़ी कंटाईका फल ।
वार्हद्रथ (सं० पुं०) वृहद्रथस्यापत्यं पुमान् वृहद्रथ-अण् ।
१ जरासन्ध । वृहद्रथस्येदमिति अण् । (त्रि०) २
जरासन्ध-राजसम्बन्धी ।
वार्हद्रथि (सं० पुं०) वृहद्रथस्यापत्यं पुमान् वृहद्रथ-इज् ।
जरासन्ध ।
वार्हद्रथर (अ० पुं०) १ वह मनुष्य जो बिना किसी पुर-
स्कार वा चेतनके किसी कार्यामें अपनी इच्छासे योग
दे, स्वेच्छामेधक । २ वह सिपाही जो बिना चेतनके अपनी
इच्छामे फौजमें सिपाही या अफसरका काम करे. बल्लम-
देर ।
वाल (सं० पुं०) १ केश । २ बालक । बाल देखो ।
वालक (सं० पुं० क्ली०) बाल-वन् । १ परिधार्थे बलय,
कङ्कण । २ अंगुरीयक, अंगूठी । ३ गन्धद्रव्यविशेष,
बालछड़ । बाल पत्र स्वार्थे वन् । ४ शिशु, बालक ।
५ अक्षता, मूर्खता । ६ हयवालि, घोड़ेकी दुम । ७
हस्तिवात्रधि, हाथीकी दुम । ८ ह्येवर, सुगन्धवाला ।
६ केश, बाल ।
वालवन्धर (सं० पुं०) १ बालखिल्य मुनि । इनकी संख्या
६० हजार है । २ रथवेदके ८म मण्डलके सूक्तभेद ।
वालदैन (अ० पुं०) माता (पता, मां बाप ।
वालधि (सं० पुं०) वालाः केशाः धीपनेऽत्र बाल-धा-कि ।
केशयुक्त लाङ्गूल, दुम, पूछ । २ चामर ।
वालधिमिथ (सं० पुं०) चमरो मृग ।
वालपाश्वा (सं० स्त्री०) बालपाले केशसमूहे साधु तत्र
साधुप्रतिपत् । सीमन्तिकस्थित स्वर्णादि रचित
पट्टिका, एक प्रकारकी सोनेकी मांगटाका जिसे स्त्रियां
मांगपर पहनता हैं । २ बालपाश, सप्त मणि ।
वालवन्ध (सं० पुं०) १ केशवन्धन, जुड़ा बांधना । २ बालक
आदिको बन्धन ।

वालम्वदेश (सं० पु०) जनपदभेद ।
 बाल्य (सं० पु०) बच आदि ग्यारह करणोंमेंसे दूसरा
 करण । यह करण शुभ करण है । शुभकार्यादि इस
 करणमें किये जा सकते हैं । इस करणमें यदि किसी-
 का जन्म हो, तो यह बालक कार्यकुशल, स्वजनपालक,
 उत्तम सेनापति, कुलशीलभूक्त, उदार और बलवान् होता
 है । (कोश्टोप्र०)

बालवर्ति (सं० स्त्री०) बालनिर्मिता वर्ति, बालोंकी बनी
 हुई बर्ति ।

बालवाय (सं० स्त्री०) वैदूर्यमणि, लहसुनिया ।

बालवायज (सं० स्त्री०) वैदूर्यमणि ।

बालव्यजन (सं० स्त्री०) बालस्य चमर पुच्छस्य बालेन
 वा निर्मितं व्यजनं । चामर । पर्याय—रोमपुच्छ, प्रकी-
 र्णक । (हेम)

बालहस्त (सं० पु०) बाला-हस्त इव मक्षिकाद्वानां निबा-
 रकत्वत् । १ बालध, पूंछ, दूम । (त्रि०) बालानां
 केशानां हस्तः समूहः । २ केशसमूहः ।

बाल-विक (Volshevik)—बालसेविज्म नीतिका परि-
 पोषक । Russian Social Democrat party के मत-
 की और पीछे उनके कार्यों का नाम बालसेविज्म रखा
 गया है । किन्तु इस मतकी उत्पत्ति और उसकी परि-
 पुष्टि केवल रूसमें ही हुई थी, सो नहीं । यह यूरोपीय
 साम्यवादीकी ही एक शाखा है ।

आधुनिक बालसेविक मतवादकी उत्पत्तिका विषय
 कहनेमें सबसे पहले मार्क (K. Marx) और एङ्गल्सके
 (F. Engels) १८४७ ई०के Communist manifesto का
 उल्लेख करना आवश्यक है । उन लोगोंकी इस घोषणाको
 चरम साम्यवादियोंने मन्त्रवत् स्वीकार कर लिया है; तथा
 रूसमें साम्यवादिकगणतन्त्र (a Communist republic)
 की प्रतिष्ठित करनेके लिये इस घोषणाने रूस बाल सेविक
 के निकट पथप्रदर्शकका काम किया है । इसके बाद एक
 दूसरे कमनिष्कयीका नाम उल्लेखनीय है । तिनके कार्य-
 कलाप और प्रयत्नने इस मतवादकी नींव और भी मजबूत
 हो गई था उनका नाम था बाकुनिन (Bakunin) । राज-
 तन्त्र और भाईनकी ये शत्रुपक्ष समर्थते थे । अच्छे बुरे
 का विचार न करके राजतन्त्र और भाईनमें छेड़ छान

करना ही उनके जीवनका मूलमन्त्र था । इसी समय
 फ्रांस देशमें Syndicalism का प्रचार हुआ । इस
 प्रकार उपरोक्त तीन प्रकारके मतवादके एकत्र मिलनेसे
 बालसेविज्म मके तीन प्रधान भावार्थ (निम्न श्रेणी द्वारा
 समाज अधिकार, विप्लव खड़ा करनेकी शक्ति तथा छोटे
 दलसे प्रतिनिधि चुनना) संगठित हुए । १४-रूसकी
 प्रजा सभी मतोंकी अपेक्षा करके इसी मतकी काममें लाने-
 की तैयारी करने लगी । १९१७ ई०से अब बालसेविक-
 गण रूसमें शक्तिशाली हो रहे थे, तभीसे उनका मत
 साम्यवाद (Communism) कहलाने लगा है ।

मार्ककी मतानुयायी निम्न श्रेणीसे प्रतिनिधि चुनने-
 के लिये आरके शासनकालमें ही The Russian social
 Democrat party का संगठन हुआ । लण्डनमें १९०३
 ई० को इसके दूसरे अधिवेशनमें यह दल फिर दो भागों-
 में विभक्त हो गया । पहला दल बालसेविक या मुष्य
 दल और दूसरा मेन-सेविक या गीणदल नामसे प्रतिष्ठ
 हुआ । बालसेविक दलमें सदस्योंकी संख्या २६ और मेन-
 सेविक दलमें सिर्फ २५ थी । १९१० ई०के बाद ये दोनों
 दल फिर एक साथ न मिले । १९१२ ई०में लेनिन
 (Lenin) के नेतृत्वमें बालसेविकोंने प्रग चैठकमें चुनाव
 दलको न मान कर 'हम लोग ही मालिक हैं' इस प्रकार
 घोषणा कर दी । इस पर मेनसेविक दलने अब उनके
 साथ छेड़घाना की, तब इन लोगोंने 'सभी प्रकारके प्रजा-
 तन्त्रकी दूर कर जसो सोमियट शासन पद्धतिका प्रचार
 करना होगा' यही स्थिर किया । इस शासन-पद्धतिका
 अर्थ यह है सारी शक्ति सिर्फ एक गवर्मेण्टके हाथ रहेगी,
 उस गवर्मेण्टका प्रधान काम विप्लव खड़ा करना होगा
 और उसकी शासन-पद्धतिका देशके बान्याब्य दलोंकी
 अपेक्षा निम्न श्रेणीदल ही तनमनसे पालन करेगा । मेन-
 सेविक दल एक प्रजातन्त्र-मूल शासनपद्धति चाहता
 है और कृषकोंके साथ मेल करना अपनी कर्तव्य सम-
 क्षता है ।

१९०५ ई०के विप्लवयुगमें विप्लवी वर्मीसङ्घ (Revo-
 lutionary workers' councils) सबसे पहले बड़े
 बड़े बन्द कारखानोंमें दिखाई दिये और उन्हें
 बन्द कुठ सफलता भी मिली । गत महायुद्धके पहिलेसे

ले कर युद्धके समय तक बालसेविकोंका विद्रुप-कारो कार्यकलाप दिनों दिन बढ़ता गया। साम्य-वादीयोंकी (Communists) पद्धतिके अनुयायी सैनिकों तथा कलकारानोंने असन्तोषका बीज बोया गया। इसीके फलसे १६१७ ई०को जार गवर्नमेंण्टका पतन हुआ तथा केरेनस्की (Kerensky)के कुछ समय शासन करनेके बाद बालसेविकोंने पूरा अधिकार हासिल किया और एक नया शासनतन्त्र चलाया जिसका नाम रखा गया 'सोवियेट' (Soviet) वा शासनपरिषद् द्वारा परिचालित शासनतन्त्र। अन्यान्य विवरण रूस और वाइरिया रुबमें देखो।

बाला (सं० स्त्री०) १ स्वनामव्यात औपप्रविशेष। २ इन्द्र-वज्रा और उपेन्द्रवज्राके मेलसे बने हुए उपजाति नामक सोलह प्रकारके वृत्तोंमेंसे एक। इसके पहले तीन चरणोंमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं तथा चौथे चरणमें और सब दो रहता है, सिर्फ प्रथम वर्ण लघु होता है।

बालाक्षी (सं० स्त्री०) बाला: केशशय अक्षिसदृशश्च पुष्पं यस्याः। केशपुष्पा वृक्ष, एक पीधा जिसके फूलोंके दल बांलके आकारके लगते हैं। पर्याय—मानसा, दुर्गपुष्पी, केशधारिणी।

बालाप्र (सं० स्त्री०) १ केशाप्र। २ एक प्राचीन मान जो श्राद्ध रजका माना जाता था।

बालाप्रपोनिका (सं० स्त्री०) लताविशेष।

बालि (सं० पुं०) बाले केशे जातः बाल इन्। कपि विशेष; किष्किन्धाका बानर राजा जो शङ्खुदका पिता और सुमीवका बडा भाई था। पर्याय-बाली, बानर राज। विशेष विवरण बालि शब्दमें देखो।

बालिका (सं० स्त्री०) बाला एव बाल स्वार्थे-कन् टाप् शत इत्वं। १ बाला, कन्या। २ बालुका, बालू। ३ स्वर्ण-भूषण, बाला। ४ पला, इलायची।

बालिकाज्यविधि (सं० पुं०) बालिकाज्य देशः।

(वा १२१५४)

बालिकायन (सं० लि०) बलिकमें होनेवाला।

बालिबिह (सं० पुं०) पुलस्वयंकी कन्यासन्ततिके गर्भसे और क्रतुके औरससे उत्पन्न सातहजार ऋषिविशेष, बाल-

बिल ऋषि। प्रत्येक ऋषि डील डीलमें अंगूठेके बराबर हैं। (कूर्मपु० १२ अ०)

बालिद (अ० पुं०) पिता, धाप।

बालिन् (सं० पुं०) बाल-एव उत्पत्तिस्थानत्वेन विद्यते यस्य, बाल-इनि। १ इन्द्रके पुत्र बानरराज, शङ्खुदका पिता और सुमीवका बडा भाई। अमोघवीर्य इन्द्रदेवके वीर्य बालदेशमें गिरनेसे इसकी उत्पत्ति हुई, बाली नाम पड़नेका यही कारण है। बालि देखो।

बाला: केशाः सन्त्यस्य बाल इनि। (लि०) २ बाल-विशेष।

बाली (सं० पुं०) बालिन् देखो।

बालू (सं० स्त्री०) चलतेडूनेन चल-प्राणने चल-उण्। चल-बालुक नामक गन्धद्रव्य।

बालुक (सं० स्त्री०) बालु रेव स्वार्थे-कन्। १ पलबालुक, एक गन्धद्रव्य। (पुं०) २ पनियालू।

बालुका (सं० स्त्री०) बालुक-टाप्। १ रेणुविशेष, बालू। पर्याय—सिकता, सिका, शीतल, सूक्ष्मशर्करा, प्रवाही, महासूक्ष्म, पानीयवर्णिका। गुण—मधुर, शीतल, सन्तोष और भ्रमनाशक। (राजनि०) २ शाखा। ३ हस्त-पादादि, हाथ पैर। ४ कर्कटी, ककड़ी। ५ कर्पूर, कपूर। ६ वैद्यकीक यन्त्रविशेष, बालुकायन्त्र।

बालुकागड (सं० पुं०) बालुकयाः गडतीति तस्मात् क्षरति यां बालुकागड पचाद्यच्। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। पर्याय—सिताङ्ग।

बालुकात्मिका (सं० स्त्री०) बालुकाद्वात्मो स्वरूपो यस्याः कन् अत इत्वं। १ शर्करा, चीनी। (लि०) बालुका आत्मा यस्य। २ बालुकामय।

बालुकाप्रभा (सं० स्त्री०) बालुकानामुष्णरेणुनां प्रभा-यस्यां। एक नरकका नाम।

बालुकायन्त्र (सं० पुं०) औषध सिद्ध करनेका एक प्रकारका यन्त्र।

बालुकी (सं० स्त्री०) १ कर्कटीभेद, एक प्रकारकी ककड़ी। पर्याय—बहुफला, स्निग्धफला, क्षेत्ककटी, क्षेत्कदा, कान्तिका, मूलला। (राजनि०)

बालुकेश्वरतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

बालुङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटीभेद, एक प्रकारकी ककड़ी।

वालुक (सं० पु०) चलते प्राणान् हन्ति यः चल यधे
ऊक । विषमेद, एक प्रकारका जहर ।

वालेव (सं० पु०) चलये उपकरणाय साधुः बलि
(द्विदशमधिकले ठन् । पा ५।१।१३) इति ठन् । १ रासम,
गद्गा । २ दैत्यविशेष, बलिके पुत्र । दैत्यराज बलिके
पाण भादि सौ पुत्र थे जो वालेव कहलाने थे ।
(भगिनपुराण) ३ जनमेजय वंशोद्भव सुतमस राजाके पुत्र
का नाम । इनके पांच पुत्र थे, वे सभी वालेव नामसे
प्रसिद्ध थे । (हरिवंश ११ अ०)

४ अज्ञायलकी, एक प्रकारका करंज । ५ चाणक्य-
मूलक । ६ तण्डुल, चावल । ७ वितुन वृक्षकी छाल ।
८ पुत्र, बेटा । (त्रि०) ९ मृदु, कीमल । १० बालहित ।
११ बलियोग्य ।

वालक (सं० पु०) बलकस्य बलकलस्य विकारः बलक
(तस्य विकारः । पा ४।३।२३४) इति ङण् । बलक मन्वन्धो
यत्र, क्षीमादि बलक । शारङ्गमें लिखा है कि बालक शुराने
पाला बगलायोनिमें जन्म लेता है ।

वालकल (सं० त्रि०) बलकलस्येदं ञण् । बलकल निर्मित,
छालका बना हुआ ।

वालकली (सं० स्त्री०) मदिरा, गीड़ी मद्य ।

वालकण्य (सं० पु०) बलगुणोत्पापत्वार्थं (गर्गादिभ्ये ञ् ।
पा ४।१।१०५) इति ञ् । बलगुणका गोत्पापत्व ।

वालिक (सं० पु०) बलिके भयः बलिक-इञ् ।
वालमीकि मुनि ।

वालिकीय (सं० त्रि०) बालिकि (गर्गादिभ्यश्च । पा
४।३।२३८) इति छ । बालमीकि-सम्बन्धीय ।

वालमीक (सं० पु०) बलमीके भयः बलमीक-ङण् । क्षीमक-
से उदपन्न मुनिविशेष, बालमीकि मुनि ।

बालमीकमौम (सं० स्त्री०) बलमीकपूर्णा देवि ।

बालमीकि (सं० पु०) बलमीके भय-बलमीक-इञ्, या
बलमीकप्रमयो यस्माद्बालमीकिरित्यसौ इति ब्रह्मवैवर्त्तौ
कौ । भृगुपंचमीय मुनिविशेष ।

ये प्रचेता ऋषिके घंटाके सप्तस्तन द्वाये पुरय हैं ।
तमस्तनशेके तट पर इनका आश्रम था । एक बार ये तमस
नदीके निर्माल प्रलमें स्नान करनेकी इच्छामें अपने शिष्य
भरद्वाज मुनिके साथ यहाँ उपस्थित हुए । शिष्यकी

स्नानादिक वरके उपपुत्र एक हृदय घाटबता और उन-
की यहाँ उठनेके कह अपने निकटके बनेमें घुमने लगे ।
ऐसे समय उन्होंने देखा, कि एक पापमती निपादने भक्ता-
रण किसी कामबिह्वल क्रीडकी मार डाला । व्याध हाता
भाहत हो कर रक्तक बलेवर क्रीड घरातल पर पड़ा छ-
पट रहा था, ऐसे समय चिरविरह व्याधाका अनुभव कर
क्रीड छाती पीट पीट कर रोने लगे । ये सब घटनाये देव
महामुनि बालमीकिके मनमें व्याधा उद्रेक हुआ । क्रीडके
दुःखसे दुःखित हो कर बालमीकिने बड़े कठोर वचनोंमें
कहा,—“रे नीच निपाद ! तू कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं
कर सकेगा, क्योंकि तू इस कामबिगोहित क्रीडका
भक्षण यध किया ।” व्याधको इस तरह भविष्य दे
कर यह कातर मनसे शिष्यके पस चले । यहाँ इन्होंने
जा कर शिष्यसे सब बातें कहीं और यह भी कहा,
कि शोकसन्तत हृदयसे मेरे कण्ठ द्वारा पादयद्ग समाप्त
तन्त्रोल्लस्युक्त जो व्याध निकला है, यह श्लोककर्ममें
गण्य हो, अन्यथा न हो । यह सुन कर शिष्य भरद्वाज
भी परम आह्लादित हुए । पीछे गुरु-शिष्य समुत्प-
चित्तसे तमसाके निर्मल जलमें स्नानाहिक समाप्त कर
आश्रमकी ओर पधारे । आश्रममें जा कर बालमीकि
अन्यान्य कथायात्तमें व्यस्त थे सही, किन्तु इनके हृदयमें
श्लोककी चिन्ता जागरित थी । इसी समय सर्वलोक-
पितामह पद्मयोनि ब्रह्मा बालमीकिसे भेंट करनेके लिये
इनके आश्रममें आ पहुँचे । उनकी देव महामुनि बालमीकि-
ने शीघ्र ही उठ कर पाप-अच्छा-शामनमें उनको यथाविधि
पूजा की । ब्रह्माने इनके द्वारा समाप्त और पूजित हो
कर इनके शिष्य हुए आसन पर बैठ इनकी भी आसन पर
बैठनेकी कहा । दोनों यथोपयुक्त नामन पर बैठ गये ।
अब इस समय ब्रह्मा आश्रमके प्रत्येक पुरुषकी कुशल
पूछने लगे । महामुनि बालमीकि उनके प्रश्नोंका उत्तर
देते जाते थे ; किन्तु इनके मनमें रह रह कर उस क्रीड-
की बात जागरित हो उठती थी । इनके मुँहमें एक बार
निकल आया—“रे पापारमा निपाद ! तूने भक्षण
क्रीडकी मार कर भययज्ञ लिया ।”

बालमीकि ब्रह्माके समीप बैठ कर हृदयमें उठ क्रीड-
क्रीडके दुःखका स्मरण कर श्लोककी आपृति कर रहे

धे। ब्रह्माने मुनिका इस तरह शोकपरायण देख हृष्ट चित्तसे हास्यमुखसे मोठे वचनोंमें उनसे कहा, कि तुम्हारे कहते निकला यह वाक्य मेरे ही संकल्पसे हुआ है। यह तुम निश्चय समझो। अतएव इस विषयमें अबसे तुम अपने मनमें शोक न करो। तुम्हारा यह वाक्य ही जगत्में श्लोक कह कर प्रचारित हो। तुम इस श्लोकका ही अवलम्बन कर तैलोषयनाथ भगवान् रामचन्द्रका यावत्तीय चरित-वर्णन कर अक्षर कीर्ति-स्थापन करो। इस जगत्में जब तक सूर्या, चन्द्र, नद, नदी, प्रद, नक्षत्र आदि विद्यमान रहेंगे, तब तक जनसाधारणमें तुम्हारा यह रामगुणगाथा (रामायण) समुत्सुक चित्तसे सुनी जायेगी और पढ़ी जायेगी। स्वर्ग और मर्त्यमें तुम्हारा नाम अमर होगा।

पितामह ब्रह्मा ऐसा इनको उपदेश दे कर वहांसे अन्तर्हित हुए। इसके बाद सशिष्य वाल्मीकि विस्मय-सागरमें निमग्न हुए। इसके बाद तपोधन वाल्मीकिने रामायण-रचनानामें मन लगाया। पहले उन्होंने महर्षि नारदके मुंहसे रामचन्द्र ही सक्षित जीवनी सुनी थी; किन्तु इनकी रामायणकी रचना करना थी; इससे विशेषरूपसे भगवान् रामचन्द्रकी जीवनी जाननी पड़ी। ये इसके लिये समुत्सुक हो पूर्वाकी ओर मुंह कर आसन पर बैठे और आचमन कर कृताञ्जलिपूर्वक नेत्र मूंद कर ध्यानमग्न हुए। योगबलसे राजा दशरथके वृत्तान्तसे ले कर सीताके पाताल प्रवेश तककी घटनासे यह अय-मंत हुए।

इसके बाद महर्षिने इस वृत्तान्तकी छन्दोबद्ध कर प्राञ्जल भाषा और सुललित पदविन्यासमें लिपिबद्ध किया। यह हिन्दूकी राजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदिके आदर्शरूप है तथा भाषातत्त्वविद् आलङ्कारिक, विद्यानिवृद्ध दार्शनिक, अध्यात्मतत्त्ववेत्ता योगी ऋषि आदिके लिये यह सर्वजनसुलभ चिरप्रसिद्ध रामायण ग्रन्थ है। महर्षिने पहले ही इसे छः काण्ड तक पांच सौ सर्गों में और २४ सहस्र श्लोकोंमें पूर्ण किया।

इसके बाद अयोध्यापति रामचन्द्रके अश्वमेधय-युत्तान्त, वाल्मीकिके नामसे दूसरे किसी आदमीने किर-से सीतादेविके निर्वासनसे आरम्भ कर उनके पाताल-

प्रवेश तक वर्णन किया है। यही सातवां काण्ड या उत्तरकाण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

उक्त सप्तमकाण्ड रामायण ही वाल्मीकिका प्रधान परिचायक है और यह ग्रन्थ-रचना ही इनके कृत-कर्मोंमें प्रधानतम घटना है। पीछेके कुछ लोगोंने कहना आरम्भ किया कि यह रामायण रामचन्द्रके अवतारसे असली सहस्र वर्ष पहलेकी रचना है। किन्तु इसका कुछ प्रमाण नहीं। रामायण देखो।

श्रीरामचन्द्रकी आज्ञासे वृद्ध तुमंत सारथिके साथ महामति लक्ष्मणने गङ्गाके इस पार वाल्मीकिके आश्रमके निकट सोतादेविको निर्वासित कर दिया। उनकी रोदन-ध्वनि सुन कर मुनिबालकीने महामुनिसे जा कर संवाद दिया। ध्यानसे सब विषयोंकी जान मुनि जा कर सीता-देविकी साग्धवना दे कर उनको अपने साथ आश्रममें ले जाये। सीतादेवी मुनिके आश्रममें रहने लगीं। कुछ ही दिनके बाद उन्होंने दो यमज-पुत्र उत्पन्न किये। एक-का नाम लव और दूसरेका कुश था। महर्षिने इन दोनों उत्तानोंकी यज्ञके साथ शिक्षा दी। इन दोनों बच्चोंकी महर्षिने इस तरह घोषाके साथ ताल लय सुरके साथ रामायण गान करनेकी शिक्षा दी, कि उनके गान सुन कर रामचन्द्रके अश्वमेधयज्ञमें आये राजा, प्रजा, सैन्य-सामन्त, ऋषि, मुनि छोटे बड़े सभी व्यक्ति विस्मित हो उठे थे।

किम्बदन्तीके आधार पर किसी किनी भावारागण-कारने अपने ग्रन्थमें महामुनि वाल्मीकिके "वल्मीके भव" इस व्युत्पत्तिगत नामका युत्तान्त निम्नलिखितरूपसे प्रकट किया है, किन्तु वाल्मीकिके रचित मूल रामायणमें इसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। वह इस तरह है—

"आप सर्वथ सर्वोत्पापो यिभु हैं। आपकी अवस्थिति-की बात में क्या कह सकता हूँ! आपके नामकी महिमा लपार है। आपके नामके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया है। मैंने ब्राह्मणके घर जन्म लिया था सही; किन्तु दुर्भाग्यवशता चिरांतके घर रह कर सदा उनके अनुरूप काष्ठीयोंमें प्रवृत्त रहता था। एक दूद्राके गर्भसे मेरे कई सौ तान उत्पन्न हुए। उनके भरण पोषण करने-के लिये अनन्योपाय हो कर मुझे अगत्या धर्मभाव त्याग

कर तद्वद कार्यं भारम्भ करना पड़ा। एक दिन अपने पृथ्वि परिचालन करनेके समय कई ऋषियोंने मेरा साक्षात् दृशा, उन पर मैंने आक्रमण किया। इस पर उन लोगोंने मुझसे पूछा, कि तुम इस घृत्निका क्यों अवलम्बन लिये हो? इस पर मैंने उत्तर दिया, कि अपने परिवारके पालन-पोषणके लिये। यह सुन कर उन्होंने कहा, कि तुम पहले अपने घर जा कर पूछ आओ, कि वे तुम्हारे इस पापमें भागो होंगे या नहीं। पीछे हम लोगोंके पास जो कुछ है, उसको तुम्हें दे जायेंगे। यदि तुमको विश्वास न हो तो तुम हम लोगोंको इस वृक्षमें बांध कर जाओ। प्रविषाणकी सुन कर मैं घर गया और अपने परिवार-वालोंसे पूछा, कि मेरे किये पापोंका भागीदार तुम लोग हो सकते हो या नहीं? परिवारके लोगोंने कहा "नहीं"। इससे मैं बहुत डर गया और दीड़ा ऋषियोंके पास आया। मैंने उन लोगोंसे बड़े अर्ज मिग्नतें कीं, कि आप लोग मुझे इस पापपट्टसे निकालें। आप लोग ऐसा कोई पथ बतलायें, कि मैं इस पापसे निवृत्त होऊँ। उन्होंने बहुत सोच विचार कर मुझे 'राम' नाम जप करनेका उपदेश दिया। इस पर मैंने कहा, कि ऐसा करनेमें मैं अक्षम हूँ। फिर उन्होंने विचार कर एक सूटे वृक्षको विजला कर कहा, कि देखो इस वृक्षको क्या कहते हैं, तब मैंने कहा, कि इसको 'मरा' कहते हैं। अच्छा तो तुम इसी वृक्षका नाम 'मरा' तब तक जपते रहो, जब तक हम लोग पुनः न आ जायें। मैंने ऐसा ही किया। बहुत दिनों तक ऐसा करते रहने पर यह नाम मेरी जवान पर जम गया। इस तरह सहस्र युग तक यह नाम जपते रहने पर मैंने जरीर पर बलीक जम गया। ऐसे समय ऋषियोंने आ मुझको पुकारा। पुकार सुनते ही मैं उठा और उनके समीप पहुँचा। उन्होंने कहा, कि जब तुम्हारा बलीकक मोतर फिर जम हुआ, तब तुम्हारा नाम बाल्मीकि हुआ अब तुम प्रार्थनमें गिने जाओगे।"

वाल्मीकीय (सं० लि०) वाल्मीकि महाद्विवात् ।
 १ वाल्मीकि-सम्बन्धीय । २ वाल्मीकीकी बनाई हुई ।
 वाल्मीकिभर (सं० श्लो०) तोषमेद् ।
 वासुदेव (सं० श्लो०) पद्म-स्यन् । वल्लभता, प्यार करनेका भाव या धर्म ।

वाच (सं० अर्थ०) यथाथंता, दस्तुतः ।
 वाचदूक (सं० लि०) पुनः पुनरतिशयेन वा गदति-गद् गद् यद् लुगन्त वाचद.धातु (उल्लादपरक । उष् ४.४१) इति ऊक्, सर्वस्वेतु (७ जसपदशाभिति । पा १.२।१६६) इति बहुलवचनान्द्वयतोऽपि ऊक । १ अतिशय वचननोन, वाग्मी । पर्याय—वाचायुक्तिगद्, वाग्मी, वक्ता, वचक, सुवचस्, प्रवाच् । (जटाधर) जो शास्त्रज्ञान-संग्रह तथा अतिशय युक्तियुक्त वचन बोल सकते हैं, उन्हें वाचदूक कहते हैं। २ बहुत बोलनेवाला ।
 वाचदूकत्व (सं० श्लो०) वाचदूकत्व भावः स्व । वाचदूकका भाव या धर्म, वाग्मिता ।
 वाचदूष्य (सं० पु०) वाचदूकस्य गीतापहव (कुर्वादिभ्यो यप् । पा ४।१।५१) इति यप् । वाचदूकका गीतापहव ।
 वाचय (सं० पु०) तुलसीविशेष ।
 वाचरो (सं० खं०) वयुर्प्रथ, वयुलका पेड़ ।
 वाचदि (सं० लि०) अल्पथं वहति यद्, यद् लुक् ।
 वाचद धातु-इम् । अत्यन्त बदनकारी, देवताओंकी तृप्तिके लिये बहुत ले जानेवाला । "ससपथति वाचदि।" (शुक् ६।६।६) 'वाचदि देवानां तृतरदपन्' वोढा। (भाष्य)
 वाचान (सं० लि०) अ यथं वाति वा यद्-लुक्-वाचा-धातु क । पुनः पुनः अभिगमनकारी ।
 वाचात् (सं० लि) वाचा तुच् । संमज्जोव, वगनीय । (शुक् ५।१।५)
 वाचुट (सं० पु०) यहिह, नाय, पेड़ा ।
 वाचूत् (सं० लि०) वा-वृत् क । वृत्तरण, जिसका परण किया गया हो । (अमर)
 वापैला (अ० पु०) १ विलाप, रोना पीटना । २ शीतल, हला, भिलाहट ।
 वाप (सं० लि०) १ निवेदिन । २ कन्दनशाल, बहुत रोनेवाला । (पु०) ३ वासक, अट्टसा । वाक्क देशों । ४ एक सामका नाम ।
 वापक (सं० लि०) १ निनादकारी, गिहानेवाला । २ कन्दनशाल, रोनेवाला । (पु०) ३ वासक, अट्टसा ।
 वापान (सं० लि०) १ नादकारी, चिहानेवाला । २ चद-चदानेवाला । ३ गिन मिनानेवाला । (श्लो०) ४ पक्षियोंका बोलना ; ५ भविष्योका गिनभिताना ।

वागो (सं० स्त्री०) वाग्धने, इति वागो ङव्दे (गुंरोरच-
ह्त्वाः । पा ३।३।१०३) इति अ स्त्रियां टाप् । वासक,
अडूसा ।

वाग्नि (सं० पुल्लि०) वाग्धने इति वागो (धत्विष्यविभिराजि-
नजिणदिहनिवाशिवादीति । उण् ४।१-५) इति इङ् । अग्नि,
वाग ।

वागिका (सं० स्त्री०) वागा स्वार्थे कन् टाप् अत इत्थं ।
वासक, अडूसा ।

वाग्नि (सं० स्त्री०) वाग्ध-शब्दे भाष्ये-क्त । १ पशु पक्षो
आदिका शब्द । धातुत्वामनेकार्थत्वात् वागो सुरभी-
करणे क्त । २ सुरभीकृत, सुगन्धित क्रिया हुआ ।

(अमरटीका-स्वामी)

वाशिना (सं० स्त्री०) वांश-क्त टाप् । १ स्त्री । २ करिणी,
हथिनी ।

वाग्नि (सं० लि०) शब्दयुक्त, वाक युक्त ।

वाग्निष्ठ (सं० लि०) वाग्निष्ठस्येदं ण्य । १ वशिष्ठसम्यग्धी,
वशिष्ठका । (ह्यो०) २ एक उपपुराणका नाम । ३ एक
प्राचीन तीर्थका नाम ।

वाग्निष्ठो (सं० स्त्री०) वाग्निष्ठस्येयमिति अण्-ङोप् ।
गोमती नदी ।

वाशी (सं० स्त्री०) शस्त्रभेद, काष्ठप्रच्छन्न शस्त्र ।

(शुक् ५।२६।३)

वाशीमत् (सं० लि०) वाशी अस्त्रर्थं मतुप् । वाशीयुक्त,
वागशस्त्रविशिष्ट । (शुक् ५।५।१२)

वाशुतो (सं० स्त्री०) वाग्धतेऽस्यामिति वाग्ध शब्दे (मन्दि-
वाग्निमिथिचितिवंशयङ्किभाउरच् । उण् १।३।६) इति उरच्-
टाप् । रात्रि, रात । (उज्ज्वल)

वाध्र (सं० स्त्री०) वाग्धतेऽस्मिन्निति वाग्ध (स्थपितशि-
वधि ऋकृति । उण् २।१।३) इति रक् । १ मन्दिर ।
२ वस्तुस्य, चौराहा । ३ दिवस, दिन ।

वाध्व (सं० पुल्लि०) वाधते इति वाध-लोट्ठने (शब्दशिल्प
कल्प-वाधस्व पर्यतत्वाः । उण् ३।२५) इति प-प्रत्यये
ध्रस्व पर्यन्तिपातनात् । १ लोह, लोहा । २ अश्रु, आँसू ।
३ कपटकारो, भट्कट्टेया । ४ उषा, धानन्द, ईर्ष्या और
आर्त्सि इन् तीन कारणोंसे अश्रु-जन्त उषा होती है । ५

भाव, माफ (l'apour) वात्प देलो

वाष्पक (सं० पुल्लि०) वाष्प संज्ञायां कन् । मारिष, मरसा
नामका स्थाप ।

वाष्पयन्त्र - यन्त्रविशेष । वाष्पयन्त्र देलो ।

वाष्पिका (सं० स्त्री०) वाष्प संज्ञायां कन्, टाप् अत इत्थं ।
हिशुपत्नी । पर्याय—कारघो, पृथ्वी, कवरी, पृथु, स्वयं पत्नी,
वाष्पोका, कर्षरी । गुण—कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, कृमि और
श्लेष्मानाशक ।

वाष्पी (सं० स्त्री०) वाष्प गौरादित्वात् ङोप्, वाष्पी स्वार्थे
कन्-टाप् । हिशुपत्नी, वाष्पिका ।

वाष्पीका (सं० स्त्री०) वाष्पी देलो ।

वाष्पीयपोत—घोमर । वाष्पीययन्त्र देलो ।

वास (सं० पुल्लि०) वसन्त्यन्तेति वस निघामे (इलम्ब) पा
३।३।२२१ इति घञ् । १ गृह, घर । वास्यते इति वास-
घञ् । २ वस्त्र, कपड़ा । वस-भावे घञ् । ३ अवस्थान,
रहना ।

चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि धनो, घेदविदु-
प्राहण, राजा, नदी और वैश्य ये पांच जहाँ नहीं हैं,
मनुष्यको वहाँ वास करना न चाहिये ।

४ वासक, अडूसा । ५ सुगन्ध, वृ ।

वासक (सं० पुल्लि०) वासयतोनि वासि-जुलुम् । १ स्वनाम-
प्रसिद्ध पुष्पशाक वृक्ष, अडूसा । २ एक कलिङ्गमें अडूसा,
आड सोगे और तेलङ्गमें अडसर, अघड़ोड़े कहते हैं ।
संस्कृत पर्याय—वैद्यमाता, सिंहा, वासिका, वृष, अटस्य,
सिंहास्य, वाजिदन्तक, वाशा, वागिका, वृश, अटरूप,
वागक, वासा, वाम, वाजो, वैद्यसिंहो, मातृसिंहो, वासका
सिंहपर्णी, सिंहका, मिपडमाता, वसादनी, सिंहासुखी,
कण्ठोरवी, शितकर्णी, वाजिपत्नी, नासा, पञ्चसुखा, सिंह-
पत्नी, मृगेन्द्राणी । गुण—तिक, कटु, कास, रक्त, पित्त,
कामला, कफवैरकस्य, ज्वर, श्वास और क्षयनाशक ।
इसके पुष्पका गुण—कटुपाक, तिक, कासक्षयनाशक ।

(राजनि०)

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि सरस्वती पूजामें वासक
पुष्प विशेष प्रशस्त है ।

२ गान्धाङ्गविशेष, गान्धका एक जंग । शङ्करके मतसे
मनोहर, कन्दर्प, चाव और नन्दन नामक इसके चार भेद
हैं । कोई विनोद, वरद, नन्द और कुमुदको इसके भेद
मानते हैं ।

३ वासर, दिन । ४ जालक रागका एक भेद ।

वासकणी (सं० स्त्री०) यानाया ।

वामकमज्जा (सं० स्त्री०) वासक के विषममागमवामरे सज्ज-
नोति मज्ज अच टाप, यथा वामकं वासवेद्यम सज्जतोति
सज्जि अण-टाप् । नायिकाभेदके अनुसार एक नायिका ।
जो नायिका नायकसे मिलनेकी नैवारो क्रिये हुए घर
आदि सज्जा कर धीरे भाव भी मज्ज कर बैठनी है उमे
वामकसज्जा कहते हैं ।

जो नायिका वेगभूया करके और घर आदि सज्जा
कर नायकको बाट जोहनी है उमाका नाम वासक-
मज्जा है ।

इमकी चेष्टा—मनोहरसामप्रो मन्थोपरिहास, दूती
प्रश्नसामग्री विधान और मार्गशिलोकनादि ।

(गीतगोविन्द ६।८)

यह वामकसज्जा मुग्धा, मध्या, प्रीड़ा और परकीय
नायिकाके भेदसे मित्र प्रकारकी है ।

वामकसज्जिका (सं० स्त्री०) वासकसज्जा ।

वामका (सं० स्त्री०) वामक-टाप् वासक वृक्ष,
धड़म ।

वामकेट (सं० पुं० स्त्री०) ए० प्रकारकी छोटी बंडी या कमार
तककी कुरती । इससे सिर्फ पीठ, छाती और पेट ढकना
है । इसमें आस्तोन नहीं होती, भागे भीर पांछेके कपड़ों-
में भेद रहता है । इसे कसनेके लिये पीछे बकसुधेश्वर दो
बन्द होय हैं ।

वासगृह (सं० स्त्री०) वासाय गृहं हं गृहमधपमाने
जयनगृहे च गृहास्तगृहे इत्येके निर्दान्तवान् गर्भया-
गारं गर्भागारं । १ गर्भागार । २ जयनागार, सोनेका
कमरा । ३ अस्तगुगृह, रनिवाम ।

वामगेह (सं० स्त्री०) वामगृह, मकान ।

वासत (सं० पुं०) वास्यते इति वासु शब्दे बाहुलकात्
अनच् । गर्हम, गर्हा । (रुद्रस्तोत्र०)

वासतामूल (सं० स्त्री०) सुगन्धित तामूल, सुगन्ध-
दार मसाला आदि डाला हुआ पाण ।

वासतोपर (सं० स्त्री०) वसतोपरो नामक सरसम्ब-
न्धीय ।

वामनेव (सं० स्त्री०) वसनी साधुरिति वसति (पश्चिमि
वसतिरसरे ६म् । पा ४।४।४५) इति डम् । वास-
योग्य, रूने लायक ।

वासतेयो (सं० स्त्री०) राति, रात ।

वामधूपि (सं० पुं०) वसधूपका गोलापरव ।

वामन (सं० पुल्लि०) वास्यते इति वासि-स्फुट् । १ पूषन,
सुगन्धित करना । २ वारिधाय, सुगन्धित धान ।
३ वस्त्र, कपड़ा । ४ वास । ५ हान । ६ निक्षेपापार ।
(ति०) ७ वसनसम्बन्धी, कपड़ेका । वामन क्षेत्रं
वसन (सवमानविशतिकषडस्त्रवकनादण् । पा ५।१।२०) इति
अण् । ८ वसन द्वारा कीत, कपड़ेसे परीदा हुआ ।

वासना (सं० स्त्री०) वासयति कर्मणा योजयति ज्ञो-
मनांसीति वस-णिच्-युच्, टाप् । १ प्रत्याना । २ हान ।
३ स्फुटित्वेत्, भावना, संस्कार । ४ श्वापके अनुसार
देहात्मबुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार । ५ दुर्गा । (रेगी ३०
५५ अ०) ६ अर्ककी स्त्री । (भागवत ६।६।१३) ७ इच्छा,
कामना ।

वासनाभव (सं० स्त्री०) वासना स्वरूपे भवत् । वासना-
स्वरूप ।

वासनाहय (सं० पुं०) नागवह्योयता ।

वासन्त (सं० पुं०) वसन्ते भव्यः वसन्तः (वन्धिवर्षाज्युन
क्षत्रभेद्योऽण् । पा ४।३।२६) इति अण् । १ शूद्र, ऊँट ।
२ कोकिल, कोयल । (राजनि०) ३ मलय वायु ।
४ मुद्ग, मूँग । ५ कृष्णमूद्ग, काली मूँग । ६ मदन-
पुत्र, मैनफल । (ति०) ७ अग्रदित, सायधान ।
८ वसन्तोत्त, वसन्त ऋतुमें बोधा हुआ ।

(विश्वाम्बरीपुरी)

वासन्तक (सं० स्त्री०) वसन्तस्तेष्टमिति वसन्त-रन् ।
१ वसन्त-सम्बन्धी । वसन्ते उत (मोन्यवस्तनादन्यवरस्ता-
पा ४।२।४६) इति युञ् । २ वसन्तोत्त, वसन्त ऋतुमें
बोधा हुआ ।

वासन्तिक (सं० स्त्री०) वसन्तमधीने षेद् देति वसन्त
(वगन्तादिभ्य षक् । पा ४।२।५३) इति ङक् । १ विदूषक,
भांडू । २ नर्तक, नाचनेवाला । (ति०) वसन्तस्तेष्ट-
मिति (वगन्तान्च । पा ४।२।२०) इति ङम् । ३ वसन्त
सम्बन्धी ।

वामनी (सं० स्त्री०) वसन्तस्तेष्टमिति वसन्त-मन्-
ङीप् । १ माधवीलता । २ यूपी, जूही । ३ पाटव,
पाटवका पुत्र । ४ कामोत्सव, मन्तोत्सव । पर्व-व-नीला-

पत्नी, मधूतसव, सुपसन्त, कामसद, कईनी। (विका०)

५ गणिकारी, गनियारी, नामक फूल। पर्याय—प्रह-
सन्ती, वसन्तजा, माघवा, महाजाति, शोतसहा, मधु
बहुला, वसन्तदूती। गुण—शोतल, हृद्य, सुरभि, धम-
दारक, मन्मदग्नेमाद्दायक। (राजनि०) ६ नवमल्लिका,
नेवार। (भाष्य०)

६ दुर्गा। वसन्तकालमें दुर्गादेवीकी पूजा की जाती
है, इसीसे इनका नाम वासन्ती पड़ा। शरत् और
वसन्त इन दो ऋतुओंमें भगवती दुर्गादेवीकी पूजाका
विधान है। शरत्कालकी पूजा अकालपूजा है, इसी
कारण शरत्कालमें देवीका बोधन करके पूजा करनी
होती है। शरत्ऋतु देवताओंकी रात्रि है, इस कारण
अकाल है, किन्तु वसन्तकालकी पूजा कालबोधित पूजा
है, इसीसे वासन्तीपूजामें देवीका बोधन नहीं है।

“मीनराशिस्थिते सर्वे शुक्लपक्षे नराधिप।

सन्तमी दशमी यावत् पूजयेदम्बिकां सदा ॥

भविष्योत्तरमें—

चैत्रे गालि स्थिते पक्षे सप्तम्यादिदिनश्रये।

पूजयेद्दशविधदुर्गां दशम्याश्च विस्मयेत् ॥”

सूर्यके मीनराशिमें जानेसे अर्थात् चैत्रमासमें सप्तमी-
से दशमी तक दुर्गादेवीकी पूजा करनी होती है। चैत्रकी
शुक्ला सप्तमी हीसे पूजाका आरम्भ है। यहाँ चैत्र
शब्दसे चान्द्रचैत्रतिथिका बोध होता है। मीनराशिमें
सूर्यके जाने पर ही पूजा होगी, ऐसा नहीं। चान्द्रतिथिके
अनुसार मीन और मेष इन दोनों राशिमें सूर्यके जानेसे
अर्थात् चैत्र और वैशाख इन दो मासोंके मध्य चान्द्र चैत्र
शुक्ला सप्तमीसे पूजा करनी होगी। यह पूजा तिथिद्वय
होनेसे चान्द्रमासानुसार होती है, सौरमासानुसार नहीं
होती।

जो यथाविधान प्रतिवर्ष वासन्ती-पूजा करते हैं,
उन्हें पुत्रपौत्रादि लाभ होने हैं तथा उनकी सभी
कामनायें पूरी होती हैं।

शारदीय दुर्गापूजाके विधानानुसार यह पूजा करनी
होती है। पूजामें कोई विशेषता नहीं है, शारदीय पूजा
जिस प्रकार चतुर्थपक्षी है अर्थात् स्नपन, पूजन, होम
और वलिदान इन चार अवयवोंसे विशिष्ट है, वासन्ती

पूजाकी भी उसी प्रकार जानना होगा। इसमें भी
स्नपन, पूजन, होम और वलिदान उसी प्रकारसे होता
है, कोई विशेषता नहीं है। यह पूजा नित्य है, इसलिये
सर्वोंको यह पूजा करना चाहिये। यदि कोई सप्तमीसे
पूजा न कर सके, तो अष्टमी तिथिमें पूजा करे। अष्टमीमें
असमर्था होनेसे केवल नवमी तिथिमें पूजाका विधान
है। अष्टमीसे आरम्भ करने पर उसे अष्टमी कल्प और
नवमीतिथिमें पूजा करनेसे उसे नवमी कल्प कहते हैं।
सप्तमी, अष्टमी और नवमी तिथिमें विधान रहनेसे उनमें-
से किसी एक दिनमें पूजा कर सकते हैं, ये सब विधान
देखनेसे वासन्तीपूजामें सप्तमी, अष्टमी और नवमी ये
तीन कल्प देखनेमें आते हैं।

इस पूजामें शारदीय पूजाकी तरह चण्डोपाठ करना
होता है। पद्योंके दिन सायंकालमें विल्ववृक्षके मूलको
आमंजन और प्रतिमाको जघियास कर रखना होता है।
दूसरे दिन सप्तमी तिथिमें आमन्त्रित विल्वशाखाको काट
कर उसको यथाविधान पूजा करनी होती है। इस पूजामें
और सभी विषय शारदीय पूजाकी तरह जानने होंगे।

ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है, कि पहले परमात्मा श्रोत्ररुण
जघ गोलोक्षधाममें रास करते थे, उस समय प्रथुमासमें
प्रमथन हो कर उन्होंने ही पहले पहल भगवती दुर्गादेवीकी
पूजा की थी। पीछे विष्णुने मधुकैटभ युद्धके समय देवोंके
शरण ली तथा उस समय ब्रह्मने देवी भगवतीकी पूजा
की। तभीसे इस पूजाका प्रचार है।

इसके बाद समाधि वैश्व और सुरथ राजाने भगवतीकी
पूजा की। इस पूजाके फलसे समाधिवैश्वकी निर्वाण
और सुरथ राजाको राज्यलाभ हुआ था।

७ एक प्रकारका छन्द। इस छन्दके प्रतिचरणमें १४
अक्षर रहते हैं। ६, ७, ८, ९वां अक्षर लघु और बाक्यों
अक्षर शुभ होने हैं।

वासन्तीपूजा (सं० स्त्री०) वासन्ती तद्वाच्यया पूजा। चैत्र-
मासको दुर्गापूजा।

“चैत्रे गालि स्थिते पक्षे नवम्यादि दिनश्रये।

प्रातः प्रातर्माहादेवीं दुर्गां भक्त्या पूजयेत् ॥”

(भाषातन्त्र ७ पदम्)

इस अष्टमी तिथिमें अर्थात् चैत्रमासकी शुक्ला अष्टमी

तिगिमें जन्मपूर्वा पूजाका विधान है। इस वासिपती अष्टमो
त्रिगिमें मन्त्रिपूर्वाक अन्तपूर्वाविधीकी पूजा करनेमें अन्त-
कष्ट दूर होता है और अन्तकालमें स्वर्गकी गति होती है।

वासिपर्वाय (सं० पु०) वासिपत्य पर्वायः। वासिपत्यर्चन,
दूमरी जगद् जा कर रहना।

वासिपामाद् (सं० पु०) वासिपयोग्य राजभवन, रहने लायक
महल।

वासिभवन (सं० स्त्री०) वासिप्य भवनम्। वासिगृह,
मकान।

वासिभूमि (सं० स्त्री०) वासिप्य भूमिः। वासिस्थान।

वासिपट्टि (सं० स्त्री०) पक्षी घैठनेकी कमान।

वासिपयोग (सं० पु०) वासाय सुगन्धार्थं युज्यते इति युज्
घञ्। १ चूर्ण। २ गन्धद्रव्य चूर्ण। इससे वस्त्रादि
सुगन्धित किये जाते हैं, इसीसे इसका वासिपयोग नाम
पड़ा है।

वासि (सं० पु० स्त्री०) वासिपतीति वसि अच् (वसि
कर्म भ्रमि चमि देवि वसिप्यतिच्। उष् ३।१३३) इति
शर। १ दिवस, दिन। २ नामविधेय। ३ विवाह, शासका
जयतगृह, यह घर जिसमें विवाह हो जाने पर स्त्री पुण्य
सुभाग रातकी सोते है।

वासिपत्यका (सं० स्त्री०) राति, रात।

वासिपत्य (सं० पु०) दिनहृत, सूर्य।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) दिनहृत्य।

वासिपत्य (सं० पु०) दिनमार्ण, पूर्ण।

वासिपत्य (सं० पु०) प्रातःकाल।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) बायुरा देवी।

वासिपत्य (सं० पु०) पूर्ण।

वासिपत्य (सं० पु०) सूर्य।

वासिपत्य (सं० पु०) मनुष्य प्रजा घण्ट। १ इन्द्र। (स्त्री०)
२ धनिष्ठा नक्षत्र।

वासिपत्य (सं० पु०) वासिपत्यनामने जन ष। वासिपत्य,
अर्जुन।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) १ निर्घरांत पत्निकी बच्चा।
२ सुवभृत्पत्निक कथाप्रसंगविधेय। गुण्यु देवी।

वासिपत्य (सं० पु०) वासिपत्य मन्त्रविधेय।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वासिपत्य वा दिव्य। वासिप-

सम्प्रभोव दिव्य, पूर्ण दिना। इन्द्र पूर्णदिनाके सपिपति
है, इसी कारण वासिपत्यइसे पूर्णदिनाका बोध होता है।
वासिपत्य (सं० पु०) वासिपत्य भयः प्रशमाः प्रशमाः।
इन्द्रके अयत्न, इन्द्रके परचाञ्छात, मिश्रु।

वासिपत्य (सं० पु०) वासिपत्य भावासा। वासिपत्य
भावासा, इन्द्रका भालय।

वासिपत्य (सं० पु०) वासिपत्य अर्जुन पुमान् वासिपत्यम्।
वासिपत्य, अर्जुन।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वसिपत्य स्त्री। वसु-भन्-पत्नी।
वासिपत्यकी माता, सत्यवती, मरुत्पत्नी।

वासिपत्य (सं० पु०) १ वासिपत्यके पुत्र व्यास। २ वासिपत्य
अर्जुन।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वासिपत्य विषय। वासिपत्य, वासि-
पत्य।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वसुपत्येऽननेति वसि भाच्छादने (वसि-
पत्य। उष् ३।२१७) इत्यमुन, स च-पितृत्वं। यत्न, कपट।
ज्ञानमें दूसरेके परिधेय वस्त्र पहननेसे प्रेता किया है।
(मनु ३।६६) वस्य शब्द देवो।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वासिपत्य मत्तयतीति सत्तयित्य-
अण् टाप्। भाद्र प्रकारकी नायिकाओंमेंसे एक। अर्जुन,
उत्कण्ठना, लक्ष्मा, प्रोपितभक्तिका, कलहास्तिका,
वाजसत्ता, स्वाधीनमर्त्या और अभिमारिका वही भाद्र
प्रकारकी नायिका है। वासिपत्य देवो।

वासिपत्य (सं० स्त्री०) वासिपत्योनि वसि-पितृ-अच्-टाप्।
१ वासिपत्य, अर्जुन। २ वासिपत्य, माधवी लता।

वासिपत्य (सं० पु०) रत्नविस्तीर्णविधेय।
वासिपत्यविधेय। प्रस्तुत-प्रणाली—अर्जुन मूर्तकी उंच
६४ पल पाकाओं जल १६ मीर, ५० पल कुम्भाग्रहण्य, इन्द्र,
२ सेर गोम भुजना गोमा। बाँटे मधु जैसा उमका रंग
होने पर उममे खोनी, अर्जुनका काढ़ा और कुम्भाग्रहण्य
ये तीनों द्रव्य डाल कर पाक करे। पाक हो जाने पर
सोया, आमलकी, घंटाहीतन, कर्पूर, दारुणीनी, मैत्रय
और इलायची इत्येक द्रव्य २ तोला, एलायुक्त, मीठ,
चमिदा, बालोमिक प्रत्येक एक पल और पीपल इत्येक डाल
कर अच्छी तरह मिश्रण और तब सोये उतार लें। इसके

वाद् ठंडा हो जाने पर उसमें १ सेर मधु मिला कर छोड़ दे। इसकी मात्रा रोगीके बलानुसार १ तोलासे २ तोला स्थिर करनी होगी। इसके सेवनसे कास, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हृत्प्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग प्रशमित होने हैं। रक्तपित्ताधिकारकी यह एक उत्कृष्ट औषध है। (भैषज्यरत्ना० रक्तपित्तरोगाधि०)

वासामण्ड (सं० पु०) रक्तपित्तरोगाधिकारोक्त औषध-विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—१०० सेर जलमें १०० पल अडूसके मूलकी छाल डाल कर पाक करे। जब काढ़ा २५ सेर रह जाय, तब उसमें १०० पल चीनी डाल कर फिर पाक करे। अनन्तर उपयुक्त समयमें ८ सेर हरीतकी-का चूर्ण डालना होगा। इसके वाद् पाक सिद्ध होने पर २ पल पीपलका चूर्ण तथा १ पल दारचीनी छोड़ कर नीचे उतार ले। ठण्डा होने पर १ सेर मधु मिलाये। मात्रा रोगीके बलानुसार स्थिर करनी होगी। इसके सेवनसे रक्तपित्त, काश, श्वास और यक्ष्मा आदि कास रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्ना० रक्तपित्तरोगाधि०)

वासामार (सं० पु०) वामस्य आमारः। वासयुद्, वास-स्थानं। पर्याय—भोगयुद्, कन्याट, पट्वाट, निष्कट। (वि०।)

वासामृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—अडूसकी शाखा, पल और मूल कुल मिला कर ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कलकके लिये अडूसका पुष्प ४ सेर, बी ४ सेर, इन्हें घृतपाकके नियमानुसार पाक करना होगा। घृतपाक शेष होने पर जब ठंडा हो जाय, तब उसमें ८ पल मधु मिलाया होगा। इसके सेवनसे रक्तपित्तरोग अति शीघ्र नष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्नाधि० रक्तपित्तरोगाधि०)
वासामृत्नाद्यतैल (सं० क्ली०) कासाधिकारोक्त तैली पधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—तिलतैल १६ सेर, काढ़े-के लिये अडूसकी छाल १२१ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; लाव ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; रक्तचन्दन, गुलज, परङ्गी, दशमूल और कण्टकारी प्रत्येक २११ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; बृहतीका पानी १६ सेर कद्वार्थ रक्तचन्दन, रेणुका, खट्वाशी, अमगंध, गन्धमादुली, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, पीपलमूल, मेद, महामेद,

त्रिकटु, रास्ना, मुलेठी, शैलज, कन्नूर, कुट, देवदाग, प्रियंगु, बहेड़ा प्रत्येक १ पल, तैल पाकके नियमानुसार इस तैलका पाक करना होगा। इस तैलकी मालिस करने-से कास, उ्वर, रक्तपित्तपाण्डु आदि रोग जाते रहने हैं। (भैषज्यरत्ना० काशरोगाधि०)

वासामतक (सं० त्रि०) वसाति जनपद-सम्बन्धीय।

वासाम्प्य (सं० पु०) वसाति जनपद।

वासामयिक (सं० त्रि०) विद्युत्प्रकारभव।

(महाभारत नीलकण्ठ)

वासामलेह (सं० पु०) अवलेह औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—अडूसकी छाल २ सेर, पाकके लिये जल १६ सेर, शेष ४ सेर; नियमपूर्वक पाक करके काढ़ा तट्पार करे। पीछे छान कर उसमें एक सेर चीनी और एक पाव घी मिलाये और फिरसे पाक करे। लेहवत् हो जाने पर एक पाव पीपलचूर्ण डाल कर अच्छी तरह मिलाये। बादमें नीचे उतार कर ठंडा होने पर १ सेर मधु मिलाये। यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास और रक्तपित्त आदि रोगनाशक माना गया है।

(भैषज्यरत्ना० काकाधिका०)

यह औषध वासामलेह और वृद्धासावलेहके भेदसे दो प्रकारकी है।

वासामन्था (सं० स्त्री०) हृत्त्वर्वा। (वैद्यकनि०)

वासि (सं० पु०) वस निवासे (वसि वसि यजि राजीति। उण्-४।२२४) इति इज्। कुठारमेद, वसूला।

वासिका (सं० स्त्री०) वासैव स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। वासक, अडूस।

वासित (सं० क्ली०) वास्यने स्मेति घोस-क। १ सत, पक्षीका शब्द। २ ज्ञानमात्र। (त्रि०) ३ सुरभीकृत, सुगन्धित किया हुआ। पर्याय—भाविन। ४ स्थान, मशहूर। ५ वस्त्रवेष्टित, कपड़े से ढका हुआ। ६ आट्टी-कृत, गोला किया हुआ। ७ पच्युपित, वासी। ८ पुरा-तन, पुराता

वासिता (सं० स्त्री०) वासयतीति वस निवासे णिच्, क, टाप्। १ स्त्रीमात्र। २ करिणा, हृयिनी। ३ चन्द्र-शेखरके मतसे आवी छन्दका एक भेद। इसमें ६ शुभ और ३६ लघुवर्ण होने हैं।

वासिन् (सं० त्रि०) वासकारो, बसनेवाला ।
 वासिनो (सं० त्रि०) वासोऽस्या अस्तीति वाम इति
 ङीप् । शुद्धभिक्षु, सुखी कठमरेया ।
 वासिल (न० वि०) १ प्राप्त, पहुँचाया हुआ । २ मिला
 हुआ, जो वसूल हुआ हो ।
 वासिलान (न० पु०) वह धन जो वसूल हुआ हो, वसूल
 हुए धनका योग ।
 वासिष्ठ (सं० त्रि०) वसिष्ठेन कृतमित्यण् । १ वसिष्ठ-
 सम्बन्धी । (पु०) २ रक्षित, रक्षक । ३ वसिष्ठकृत योग-
 शास्त्रादि, योगशास्त्रिण ।
 वासिष्ठरामायण (सं० षष्ठी०) योगशास्त्रिण रामायण ।
 वासिष्ठमूल (सं० षष्ठी०) वसिष्ठरचित मूलग्रन्थ ।
 वामी (सं० स्त्री०) वासयतीति वासि अच् गौरादित्वाच्
 ङीप् । १ तक्षणी, बसुला जिससे बड़ई लकड़ी छीलने
 हैं । (त्रि०) २ वासिन देवो ।
 वासीफल (सं० षष्ठी०) फलविशेष ।
 वासु (सं० पु०) सर्वोऽत्र वसति सर्वेषांसी वसतीति
 वस बाहुलकात् उण् । १ नारायण, विष्णु । २ परमात्मा,
 श्रीनिवास । ३ पुनर्वसु नक्षत्र । (उण् १११ । उज्ज्वल)
 वासुकी (सं० पु०) वसुकस्यापत्यमिति वसुक-इप् ।
 अद्रिपति, षाड नागोंमेंसे दूसरा नाम । पर्याय—संपराज ।
 मनसा पूजाके दिन अष्टनागको पूजा करनी होती है ।
 वासुकेय (सं० पु०) वसुकस्यापत्यमिति वसुक-इप् ।
 वासुकि ।
 वासुकेयलम् (सं० स्त्री०) वासुकेयण वासुकेः स्वसा
 भगिनी । मनेसादेवो ।
 वासुदेव (सं० पु०) वसुदेवस्यापत्यमिति वसुदेव
 (भूवन्वसुद्विष्णुवसुवन्व) वा १११११४) इति भण् ।
 यद्वा सर्वेषांसी वसतवामरूपेण विष्णुमरत्तयादिति वस
 यादृत्कादुण् वासु, वासुदेवासौ देवधेति कर्मधारयः ।
 भोक्तृत्वा । पर्याय—वासुदेवम्, मत्प, सुभद्र, वासुभद्र,
 बह्मजित्, वद्गियम्, प्रदिनश्रेय, प्रदिनमद्र, वाशप्रस,
 मार्ग, वसु, लोहितश, परमावबहुक । (गण्डमाता)
 वासुदेवकी भामिनिकिके सम्बन्धमें इस प्रकार
 लिखा है :—

“एवं शोभो वसुदेवस्य वसुत्वधेति वै षण् ।

ततः न वासुदेवेति विद्विषि परिगं षो ॥”

(विष्णुपुराण ११२ पं०)

सभी पदार्थ जिसमें वास करने हैं तथा सभी
 जगद्जिनका वास है और जिनमें सर्वजगत् उत्पन्न होता
 है तत्त्वदर्शियोंने उन्हींका नाम वासुदेव रखा है । विष्णु-
 पुराणमें दूसरी जगद् भी वासुदेवका भामिनिकिक देवो
 जाती है । प्रत्यक्षैवत्तपुराणमें लिखा है, कि वासु भर्षान्
 जिसके लोभकूपनिकरमें सभी विश्व अग्रहित्य हैं, पर
 सर्वनियाम महान् विराट् पुरुष हैं, उसके देव भर्षान्
 प्रभु परब्रह्म हैं, इन्हींसे सभी घेद, पुराण, इतिहास और
 वास्तुमें वासुदेव नाम हुआ है ।

“वायः श्रदिशितस्य विष्वाति यस्य लोमसु ।

तस्य देवः परब्रह्म वासुदेव इतीरितः ॥

वासुदेवेति तन्नाम येदेसु च चतुर्षु च ।

पुराणैस्वेतिहासेषु याथादिषु च द्रव्ये ॥”

(मद्रवैवर्त्सपु० श्रीकृष्णजन्मसं० पृ ३०)

भाद्रहरणाष्टमी तिथिमें भगवान् विष्णुने वसुदेवमें
 देवकीके गर्भमें जन्मग्रहण किया ।

विशेष विषय कृष्ण रूपमें देतो ।

वासुदेव मन्त्र और पूजादिका विषय तत्तत्कार्य
 इस प्रकार लिखा है—

‘भो नमो भगवते वासुदेवाय’ वासुदेवका यही द्वादश
 क्षरमन्त्र है । यह मन्त्र कनागकल्प है । इन्हीं मन्त्रमें
 वासुदेवकी पूजा करने होते हैं । पूजा-प्रणामी इस प्रकार
 है—पूजाके नियमानुसार प्रातःकृत्यादि पीठन्यास तद
 कार्य समाप्त करके कराङ्गनाम करना होगा ।

इसके बाद मन्त्रनाम करना होता है । न्यास करने
 के बाद मूर्त्तिपूजास्थान और व्यापकन्यास करके वासुदेव
 का ध्यान करना होता है । ध्यान इस प्रकार है—

“विष्णुं शारदचन्द्रकोटिकहनं ब्रह्मं रघुपतिं गदा—

मन्मोर्त्तं दशर्षं मितावन्तित्यं कान्त्यं जगन्नीहन्म् ।

भाबदाद्वाराकृष्यहजराशोर्त्तिं स्तुत्वा कृष्णं ॥

श्रीवत्साङ्गुदारां कौस्तुभरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुभम् ॥”

इस प्रकार ध्यान करके मनसोपचारमें पूजा करनेके
 बाद कृष्ण स्थापन करना होता है । पीठपूजा करके निरामे

ध्यान करे। पीछे भावाहन और नियमपूर्वक पोड़शोप-
चारसे पूजा करके पञ्च पुष्पाञ्जलि द्वारा भावरण और
देवताकी पूजा करनी होगी। जैसे—अग्नि, नैऋत, वायु
और ईशान इन चार कोनोंमें, मध्यमें तथा पूर्वादि चारों
दिशामें, ओं हृदयाय नमः, ओं शिरसे स्वाहा, ओं
शिखायै वषट्, ओं कवचाय हुं, ओं नेत्रत्रयाय वीषट्, इस
पञ्चाङ्गकी पूजा करके गार्हत्यादि शक्तिके साथ वासुदेवादि
और केशवादिकी पूजा, पीछे इन्द्रादि और वज्रादिकी
पूजा करके धूपादि विसर्जन तक सभी कर्म समाप्त करने
होते हैं। यह मन्त्र पुष्पधरण करनेमें बारह लाख जप
और जपका दशांश होग करना होगा। (तन्त्रसार)
वासुदेव—१ सुप्रसिद्ध शकाधिय। उत्तर-भारत इनके अधि-
कारमें था। शकराजवंश देखो।

२ चाराणसो अञ्जुके एक राजा। ये काशीजण्ड-
टोकाकार रमानन्दके प्रतिपालक थे।

३ एक प्राचीन कवि। शुभायितावली और सुक्ति-
कर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है। ये सर्वश वासु-
देव नामसे भी प्रसिद्ध थे। महन्त वासुदेव नामक एक
दूसरे कविका नाम मिलता है, ये सर्वश वासुदेवसे
भिन्न थे।

४ एक वैद्यक ग्रन्थकार, वासुदेवानुभवके रचयिता,
क्षेमादित्यके पुत्र। रसराजलक्ष्मी नामक वैद्यकग्रन्थमें
इनका मत उद्धृत हुआ है।

५ अद्वैतमकरन्द टीकाके रचयिता।

६ काल्याणनश्रीतसूत्रके एक प्राचीन टोकाकार।
मनन्त और देवमद्वेने इनका मत उद्धृत किया है।

७ कृतिदीपिका नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता।

८ कौशिकसूत्रपद्धति नामक अथर्ववेदीय संस्कार-
पद्धतिकार।

९ एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्, जातमुकुट, नेत्रमाला
और घोरपराक्रमके रचयिता।

१० फेरलावासी, एक प्रसिद्ध कवि। इन्दोम त्रिपुर-
दहन, भ्रमरदूत, युधिष्ठिरविजय और वासुदेवविजय
आदि काव्योंकी रचना की है।

११ धातुकाव्यके रचयिता। भाव 'नानेरी' नामसे भी
प्रसिद्ध थे।

१२ न्यायरत्नावली नामक न्यायसिद्धान्तमञ्जरीके
टीकाकार।

१३ न्यायसारपदपञ्जिकाके रचयिता।

१४ परीक्षापद्धति नामक स्मार्त्तग्रन्थके प्रणेता।

१५ एक वैवाकरण। माघवीय धातुवृत्तिमें इनका
मत उद्धृत हुआ है।

१६ श्रीमद्भुभागवतके १०म स्कन्धकी धुयराजिनी
नाम्नी टीकाके रचयिता।

१७ वास्तुमदीप नामक वास्तु सम्बन्धीय ग्रन्थके
रचयिता।

१८ शोड्धयायनयूरासंग्रहके प्रणेता।

१९ ध्रुतवीथप्रवीथिनीकी ध्रुतवीथटीकाके
रचयिता।

२० सारस्वतप्रसाद नामक सारस्वत व्याकरणके
टीकाकार।

२१ प्रमाकरमट्टके पुत्र, कर्पूरमञ्जरीप्रकाश और
पयोप्रदन्मर्दानप्रकार नामक मीमांसाग्रन्थके प्रणेता।

२२ द्विवेदी श्रीपतिके कनिष्ठ पुत्र, आधवर्णनप्रमिता-
श्वराके रचयिता।

वासुदेव अध्वरिन्—एक प्रसिद्ध मीमांसक, बोरोश्वके
शिष्य और महादेव वाजपेयीके पुत्र। इनके बनाये हुए
वैधायनीय पशुप्रयोग, पशुव्यकारिका, प्रयोगरत्न,
महाग्निचयनप्रयोग, वैधायनीय महाग्निसर्वाभ्य, मीमांसा
कुतूबल, पाञ्चिकसर्वाभ्य, साधितादि काठकचयन, सोम-
कारिका और वासुदेवदक्षितकारिका आदि ग्रन्थ
मिलने हैं।

वासुदेव (सं० पु०) यसुदेव गण नतः स्वार्थे कन् ।
वासुदेव, श्रीकृष्णसम्बद्ध।

वासुदेव कविकवचर्त्ती—ताराविलासोदय नामक नाटिक
ग्रन्थके प्रणेता।

वासुदेवज्ञान—अद्वैतप्रकाश और कीर्त्याराजके प्रणेता।

वासुदेवदक्षिण—१ पारस्करसूत्रपद्धतिके प्रणेता। २ वाल-
मनोरमा नामक व्याकरणके रचयिता।

वासुदेव अध्वरिन् देवो।

वासुदेव द्विवेदी—सांख्यतत्त्वदीपके प्रणेता।

वासुदेवमिय (सं० पु०) कृष्णमिय।

राजा और सेनापतिके गृहका जो व्यास है उसमें ०० जोड़ कर ११६ भाग दे । भागफल जो होगा प्रधान द्वारका विस्तार उतना ही जानना होगा । विस्तारको उंगलीमें माप कर जितना उंगली होगो उतने ही उसे पड़ा करना होगा । द्वार विस्तारका आधा ही द्वारका विस्तार-ज्ञान कहा गया है ।

प्रमाणार्थि भिन्न जातियोंके गृहव्यासके पञ्चमाशमें अठारह उंगली जोड़ देनेसे जो होगा वही उनके गृहद्वारका परिमाण है । द्वारपरिमाणका अष्टमांश द्वारका विस्तार और विस्तारमें दूने द्वारको ऊँचाई होनी चाहिए ।

उच्छ्राय जितना हाथ ऊँचा होगा, उतनी ही उंगली उसको चौड़ाई होगी । घरको दोनों ही प्रायाण्य इसी प्रकार होंगो तथा प्राणिके परिमाणसे डेढ़ गुना उदुम्बरका परिमाण होगा । जिसका जितना हाथ उच्छ्राय होगा, उसको १७६ गुना कर ८०६ भाग देने पर भागशेष जो होगा वही इसके मूलको चौड़ाई है । उच्छ्रायमें नीं गुने और अस्मी हाथमें उसके द्वांगको घटानेसे जो बचेगा वही स्तम्भके अक्ष भागका परिमाण है ।

स्तम्भका मध्य भाग होने पर उसे रुचक, अठकोना होने पर वज्र, मोलहकोना होने पर द्विषय, बसोम कोना होने पर प्रसोमक और नून गुप्त होने पर उसे वृत्त कहते हैं । ये पाँचों प्रकारके स्तम्भ शुभफलप्रद होते हैं ।

स्तम्भके परिमाणमें इका भाग देनेसे भागफल जो होगा उसका नाम यदन है । उसमेंसे सर्व निम्नस्थ नयम भागको यदन, अष्ट भागको घट, सप्तम भागको पद्य, पष्ठ भागको उलरोष्ठ और पञ्चम भागको भारतुला कहते हैं । ये यथाक्रम एक दूसरे पर चढ़े होते । चतुर्थ भागका नाम 'तुला', तृतीय भागका नाम उपतुला, द्वितीय भागका अक्षतिविद तथा प्रथम भागका नाम अतिवृद्ध है । ये सब यथाक्रम चतुर्थांशमें हीन होया ।

जिस वास्तुके चारों ओर इमें प्रकारके जो यदन और द्वार रहता है उसे 'सर्वतोमण्ड' नामक वास्तु कहते हैं । यह राजा, राजाधिक्य व्यक्ति और देवताओंके लिये उत्तमकर है ।

जिस वास्तुके शालाकुक्ष्यके चारों ओर समी भिन्न-वृद्धिप्रदक्षिण भागमें निम्न भाग तक जाने हैं । उसे नम्यायर्ष नामक वास्तु कहते हैं । इसके पश्चिम ओर द्वार नहीं रहेगा, किन्तु दूसरी ओर द्वार रहेगा । जिस वास्तुके अलिन्द प्रदक्षिणभाषमें द्वारके निम्न भाग तक जाने हैं वह शुभदायक है, इसके सिवा और समी मग्न है । इस वास्तुका नाम पदमान है । इसमें दक्षिण ओर द्वार नहीं रहता । जिसके पश्चिम ओर एक और पूर्व ओर दो अलिन्द शेष तक रहते हैं तथा जिसके दो ओर अलिन्द उरिधत और शेष सीमा विद्युत रहती है, उसके 'स्वस्तिक' नामक वास्तु कहते हैं । इसमें पूर्वद्वार शुभदायक नहीं है ।

जिसके पूर्व ओर पश्चिमके अलिन्द अक्षयण होते हैं, तथा बाकी दो पूर्व ओर परिमालिन्द तक जाने हैं उसे 'रुचक' नामक वास्तु कहते हैं । इसमें उत्तर द्वार अक्षयण है, किन्तु अन्यत्र समी द्वार शुभप्रद होते हैं । स्वस्तिक और रुचक मध्यफलद तथा अक्षयण वास्तु राजाओंके लिये ही शुभप्रद हैं । जिसके उत्तर ओर शालाका नहीं रहती वह द्विषयाम, त्रिजालाविनिष्ट होनेसे 'पथ्य' और पूर्वको ओर शाला नहीं रहनेसे वह 'सुशेन' नामक वास्तु कहलाता है । ये सब वास्तु शुभफलप्रद हैं, जिसके दक्षिणमें शाला नहीं रहती उसे 'सुती' त्रिजाला-क' कहते हैं । यह वास्तु धननाशक है । पश्चिम-जालाहीन वास्तुको पक्षघ्न कहते हैं । इसमें पुष्य नामक और घेर होता है । जिसके पश्चिम ओर दक्षिणमें शाला होनी ही उसका नाम 'सिद्धार्थ' है । पश्चिम ओर उत्तरमें शाला रहनेसे उसको 'यमसूदा', उत्तर और पूर्वमें शाला रहनेसे 'दण्ड' तथा पूर्व ओर दक्षिणमें शाला रहनेसे उसको 'वात' वास्तु कहते हैं ।

पूर्व और पश्चिमकी ओर शालाविनिष्ट वास्तु 'सुशुक्र' तथा दक्षिण और उत्तर शालाविनिष्ट वास्तु 'काय' कहलाता है । 'सिद्धार्थ' वास्तुमें सर्वजाति, 'यमसूदा'में गृहमासीकी मृत्यु, 'दण्ड' वास्तुमें दण्ड और यद्य, 'वात' वास्तुमें कर्मदोष, 'सुशेन' में विवाह और 'काय' वास्तुमें क्षति विशेष होता है ।

समी वास्तुमाण्डलकी बाज लियो जाती है । वास्तु

मण्डल दो प्रकारके हैं, एकाशीति पद और चतुर्षष्टि पद इनमें एकाशीति पद वास्तुमण्डलके लिये पूर्वायत दश-रेखा और उसके ऊपर उत्तरायत दश रेखा अङ्कित होनेसे एकाशीति कोष्ठा होगी, इस एकाशीति पाद वास्तुमण्डलमें ४५ देवता रहते हैं, गिवा, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृगु और अन्तरीक्ष ये सब देवता ईशान-कोणसे यथाक्रम निम्नभागमें अवस्थित हैं। अग्नि कोणमें अनिल है। इसके बाद क्रमानुसार निम्नभागमें पूषा, वितथ, गृहत्वक्षन्, यम, गन्धर्वा, भृङ्गराज और मृग अवस्थित हैं। नैऋतकोणसे ले कर यथाक्रम पिता, दैवारिक (सुग्रीव), कुसुमदत्त, वरुण, असुर, शोष और राजयक्ष्मा तथा वायुकोणसे ले कर क्रमशः तत, अनन्त, वासुकि, महाद, सोम, भुजङ्ग, अदिति और दिति ये सब देवता विराजित हैं। मध्यस्थलकी नवकोष्ठामें ब्रह्मा विराजमान हैं। ब्रह्माके पूर्व ओर अर्यमा है। इसके बाद सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा, शोष और आपवत्स नामक देवगण प्रदक्षिण क्रमसे एक एक कोष्ठाके अन्तर पर ब्रह्माके चारों ओर अवस्थित हैं। आप नामक देवता ब्रह्माके ईशान कोणमें, सावित्र अग्नि-कोणमें, जय नैऋतकोणमें तथा रुद्र वायुकोणमें विद्यमान हैं। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और अदिति ये सब वर्णदेवता हैं। इस पञ्चवर्गमें पांच पांच देवता विराजित हैं। ये सब देवता पञ्चपदिक हैं, अथशिष्ट चाहा देवता द्विपदिक हैं, किन्तु इनकी संख्या चोस है। फिर अर्यमा आदि चार देवता जो ब्रह्माके चारों ओर विराजित हैं वे त्रिपदिक हैं। यह वास्तु पुरुष ईशानकी ओर मस्तक रखते हैं। इनके मस्तक पर निम्नमुखमें अनल वर्चमान है। इनके मुखमें आप, स्तनमें अर्यमा और चक्षुस्थलमें आगवत्स विराजित हैं। पर्जन्य आदि सभी वाह्यदेवता यथाक्रम चक्षु, कर्णा, उरः और अस्तस्थलमें अवस्थित हैं। सत्य प्रभृति पञ्च देवता भुजाओं तथा हस्तमें सावित्र और सविता वर्चमान हैं। विनथ और गृहत्वक्षन् पार्श्वमें, जठरमें विवस्वान् तथा दोनों उर, दोनों जात्रु, दोनों अङ्घ्रा और स्फिक इन सब स्थानोंमें क्रमानुसार यमादि देवता अधिष्ठित हैं। ये सब देवता दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित हैं। वाम पार्श्वमें भी इसी प्रकार है। वास्तु

पुरुषके मेढस्थलमें शत्रु तथा जयन्त हृदयमें ब्रह्मा और चरणमें पिता वर्चमान हैं।

अथो चतुर्षष्टिपद वास्तुमण्डलका विषय लिखा जाता है। चतुर्षष्टिपद वास्तुमण्डल बना कर उसके प्रत्येक कोणमें निर्धक् भावसे रेखा अङ्कित करनी होती है। इस वायुमण्डलके मध्यस्थ चतुर्षष्टिमें ब्रह्मा हैं। ब्रह्माके कोणस्थ देवगण अर्द्धपद हैं। वहिःकोणमें अष्ट देवता अर्द्धपद हैं उनमें उभयपदस्थ देवता सार्द्धपद है। उक्त देवताओंसे जो अवशिष्ट हैं वे द्विपद हैं; किन्तु इनकी संख्या चोस है। जहां वंशसम्पात है अर्थात् दोनों रेखाएँ मिली हैं, वह स्थान तथा सभी कोष्ठाओंके समतल मध्यस्थान इनके कर्मस्थल है। प्राह व्यक्तियोंको उसे कभी भी पीड़ित नहीं करना चाहिये। वह मर्मस्थान यदि अपवित्र भाण्ड, फील, स्तम्भ वा शल्यदि द्वारा पीड़ित हो, तो गृहस्वामीके उस अङ्गमें पीड़ा अनिवार्य है। अथवा गृहस्वामी दोनों हाथोंसे जो अङ्ग खुलवाये गे, जहां अग्निकी विश्रुति रहेगी। वास्तुके उस स्थानमें शल्य है, ऐसा जानना होगा। शल्य यदि दास्यम हो, तो धनका नाश होगा। अस्थिजात शल्य निकलने पर पशुपीड़ा और रोगजन्य भय होता है। लीहमय होनेसे शल्यमय तथा कपाल वा केशमय होनेसे गृहपतिको मृत्यु होती है। अङ्गार रहनेसे स्तेयभय तथा भस्म रहनेसे सवेदा अग्निभय हुआ करता है। मर्मस्थानस्थ शल्य यदि स्वर्ण वा रजतके सिवा कोई दूसरा पदार्थ हो, तो अशुभ है। तुषमय शल्य वास्तु पुरुषका मर्मस्थान है, अथवा चाहे कोई भी स्थानगत क्यों न हो, वह अर्थागमको रोकता है। और तो क्या, यदि हस्तिदन्तमय शल्य भी मर्मस्थानगत हो, तो वह भी दोषका आकर या खान है।

पूर्वोक्त एकाशीति पद वास्तुमण्डलकी जिस कोष्ठमें रांग देवता पतित हुआ है उससे ले कर वायु पर्यन्त पितासे हुताशन, वितथसे शोष, सुकथसे भृगु, जयन्तसे भृङ्ग और अदितिसे सुग्रीव पर्यन्त सूत्रदान करनेसे जो गौ स्थान स्पर्श करेगा, वह अति मर्मस्थान है। वास्तु गृहका परिमाण जितना हाथ है उसको इकासी भाग करनेसे प्रत्येक कोष्ठा जितने हाथकी होगी उसका आठवाँ भाग हो मर्मस्थानका परिमाण होगा।

राजा और मेनापतिके गृहका जो व्यास है उसमें ७० जोड़ कर १३६ भाग है । भागफल जो होगा प्रधान द्वारका विस्तार उतना ही जानना होगा । विस्तारको उँगलोंने नाप कर जितनी उँगली होगी उतनी ही उसे चढ़ा करना होगा । द्वार विस्तारका आधा ही द्वारका विस्तारमान कहा गया है ।

प्रज्ञाणादि विभिन्न जातिघोके गृहघ्यासके पञ्चमांशमें अटारह उँगली जोड़ देनेसे जो होगा वही उनके गृहद्वारका परिमाण है । द्वारपरिमाणका अष्टमांश द्वारका विस्तार और विस्तारमें दूने द्वारकी ऊँचाई होनी चाहिए ।

उच्छ्राय जितना हाथ ऊँचा होगा, उतनी ही उँगली उमका चौड़ाई होगी । घरकी दीर्घाई हो जायाए' इसी प्रकार होगी तथा प्राणाके परिमाणमें डेढ़ गुना उदुम्बरका परिमाण होगा । जिनका जितना हाथ उच्छ्राय होगा, उमको १७में गुना कर ८०से भाग देने पर भागशेष जो होगा वही इसके मूलकी चौड़ाई है । उच्छ्रायसे नीं गुने और सन्तो हाथमें उसके दशांशकी घटानेसे जो बचेगा वही स्तम्भके अक्ष मापका परिमाण है ।

स्तम्भका मध्य भाग होने पर उसे दक्ष, अष्टकोना होने पर वज्र, सोलहकोना होने पर छिवज्र, बसोम कोना होने पर प्रलीनक और १३ गुण होने पर उसे वृक्ष कहते हैं । ये पाँचों प्रकारके स्तम्भ शुभफलप्रद होने हैं ।

स्तम्भके परिमाणमें ६का भाग देनेसे भागफल जो होगा उमका नाम पदम है । उममेंसे सयं निम्नस्वयं नयम भागको चदन, अष्ट भागको घट, सतम भागको पच, चतु भागको उत्तरोष्ठ और पञ्चम भागको भारगुना कहते हैं । ये चत्वारण एक दूसरे पर लगे होंगे । चतुर्थ भागका नाम 'गुला', गृहोप भागका नाम उपगुला, द्वितीय भागका अर्धविज्र तथा प्रथम भागका नाम अत्रिन्द है । ये सब चत्वारण चतुर्थांशमें हीन होगा ।

जिस वास्तुके चारों ओर इसी प्रकारके जो पदम और द्वार रहता है उसे 'सर्पनामद' नामक वास्तु कहते हैं । यह राजा, राजाद्विज्र अर्थात् और देवताओंके लिये बल्लाभकर है ।

जिस वास्तुके जालाकुण्डके चारों ओर समो कर्तव्य प्रदक्षिण माघमें निम्न भाग तक जाने हैं । उमें नग्धावर्त्त नामक वास्तु कहते हैं । इसके पश्चिम और द्वार नहीं रहेगा, किन्तु दूसरे ओर द्वार रहेगा । जिस वास्तुके अत्रिन्द प्रदक्षिणभाषमें द्वारके निम्न भाग तक जाने हैं यह शुभदायक है, इसके सिवा और समो मगुम है । इस वास्तुका नाम चन्दमान है । इसमें दक्षिण ओर द्वार नहीं रहता । जिसके पश्चिम और पश्च और पूर्व ओर दो अत्रिन्द शेष तक रहते हैं तथा जिसके दो ओरके अत्रिन्द उरिषत और शेष सीमा विद्युत् रहनी है, उत्तरे 'स्वस्तिक' नामक वास्तु कहते हैं । इसमें पूर्वद्वार शुभायद नहीं है ।

जिसके पूर्व और पश्चिमके अत्रिन्द अक्षतगन होने हैं, तथा बाकी दो पूर्व द्वार पश्चिमाक्षिण तक जाने हैं उसे 'दक्षक' नामक वास्तु कहते हैं । इसमें उत्तर द्वार अक्षतगन है, किन्तु अल्पान्य समो द्वार शुभप्रद होने हैं । स्वस्तिक और दक्षक मध्यफलद तथा अर्धविज्र वास्तु राजाओंके लिये ही शुभप्रद है । जिसके उत्तर और शालाका नहीं रहती यह द्विगुणाय, त्रिशाळाविज्र होनेसे 'घन्य' और पूर्वकी ओर शाला नहीं रहनेसे यह 'सुशेत' नामक वास्तु बहलाना है । ये सब वास्तु शुभफलप्रद हैं, जिसके दक्षिणमें जाला नहीं रहती उसे 'गुती-विजा-क' कहते हैं । यह वास्तु घननाशक है । पश्चिम जालाहीन वास्तुको पक्षघन कहते हैं । इसमें पुत्रका नाश और घैर होता है । जिसके पश्चिम और दक्षिणमें जाला होता है उसका नाम 'मिहारा' है । पश्चिम और उत्तरमें जाला रहनेसे उसकी 'यममूर्त्ति', उत्तर और पूर्वमें जाला रहनेसे 'दण्ड' तथा पूर्व और दक्षिणमें जाला रहनेसे उसकी 'शत' वास्तु कहते हैं ।

पूर्व और पश्चिमकी ओर जालाविज्र वास्तु 'घट-सुन्दरी' तथा दक्षिण और उत्तर जालाविज्र वास्तु 'काय' बहलाना है । 'मिहारा' वास्तुमें अर्धप्रति, 'यममूर्त्ति' गृहनामोकी गुरु, 'दण्ड' वास्तुमें दक्ष और पच, 'शत' वास्तुमें बभ्रुश्रेय, 'गुती' में विजय और 'काय' वास्तुमें शक्ति विशेष होता है ।

धनी वास्तुमण्डलीय वान लिकी जाती है । वास्तु

मण्डल दो प्रकारके हैं, एकाशीति पद और चतुःषष्टि पद इनमें एकाशीति पद वास्तुमण्डलके लिये पूर्वायत दश-रेखा और उसके ऊपर उत्तरायत दश रेखा अङ्कित होनेसे एकाशीति कीछा होगी, इस एकाशीति पाद वास्तुमण्डलमें ४५ देवता रहते हैं, शिवा, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृगु और अन्तरीक्ष ये सब देवता ईशान-कोणसे यथाक्रम निम्नभागमें अवस्थित हैं। अग्नि-कोणमें अनिल हैं। इसके बाद क्रमानुसार निम्नभागमें पूष, वितथ, वृहत्सन्त, यम, गन्धर्वा, भृङ्गराज और मृग अवस्थित हैं। नैऋतकोणसे ले कर यथाक्रम पिता, दौशारिक (सुग्रीव), कुसुमदत्त, चरण, असुर, शोष और राजयश्मा तथा वायुकोणसे ले कर क्रमशः तत, अनन्त, वासुकि, भद्राद, सोम, भुम्भु, अग्नि और दिति ये सब देवता विराजित हैं। मध्यस्थलकी नवकोष्ठामें ब्रह्मा विराजमान हैं। ब्रह्माके पूर्व ओर अर्धमा हैं। इसके बाद सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, राजयश्मा, शोष और आपवत्स नामक देवगण प्रदक्षिण क्रमसे एक एक कोष्ठके अन्तर पर ब्रह्माके चारों ओर अवस्थित हैं। आप नामक देवता ब्रह्माके ईशान कोणमें, सावित्र अग्नि-कोणमें, जय नैऋतकोणमें तथा रुद्र वायुकोणमें विद्यमान हैं। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और अदिति ये सब वर्गदेवता हैं। इस पञ्चवर्गमें पांच पांच देवता विराजित हैं। ये सब देवता पञ्चपदिक हैं, अर्थात् शिष्ट बाह्य देवता द्विपदिक हैं, किन्तु इनकी संख्या बीस है। फिर अर्धमा आदि चार देवता जो ब्रह्माके चारों ओर विराजित हैं वे त्रिपदिक हैं। यह वास्तु पुरुष ईशानकी ओर मस्तक रखते हैं। इनके मस्तक पर निम्नमुखमें बनल चर्चामान है। इनके मुखमें आप, स्तनमें अर्धमा और वक्षस्थलमें आपवत्स विराजित हैं। पर्जन्य आदि सभी बाह्यदेवता यथाक्रम चक्षु, कर्ण, उरः और अंशुस्थलमें अवस्थित हैं। सत्य प्रभृति पञ्च देवता भुजाओं तथा हस्तमें सावित्र और सयिता चर्चामान हैं। वितथ और वृहत्सन्त पार्श्वमें, जठरमें विवस्वान् तथा दोनों उर, दोनों जात्रु, दोनों अङ्गुली और स्फिक्र इन सब स्थानोंमें क्रमानुसार यमादि देवता अधिष्ठित हैं। ये सब देवता दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित हैं। वाम पार्श्वमें भी इसी प्रकार है। वास्तु

पुरुषके मेढ्रस्थलमें शत्रु तथा जयन्त हृदयमें ब्रह्मा और चरणमें पिता चर्चामान हैं।

अभी चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डलका विषय लिखा जाता है। चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डल बना कर उसके प्रत्येक कोणमें निर्घक भावसे रेखा अङ्कित करनी होती है। इन वायुमण्डलके मध्यस्थ चतुःपदमें ब्रह्मा हैं। ब्रह्माके काणस्थ देवगण अर्द्धपद हैं। यहिःकोणमें अष्ट देवता अर्द्धपद हैं उनमें उभयपदस्थ देवता साध-पद है। उक्त देवताओंसे जो अवशिष्ट हैं वे द्विपद हैं; किन्तु इनकी संख्या बीस है। जहां वंशसम्पात है अर्थात् दोनों रेखाएं मिली हैं, वह स्थान तथा सभी कोष्ठाओंके समतल मध्यस्थान इनके कर्मस्थल हैं। प्राह्य व्यक्तियोंको उसे कभी भी पीड़ित नहीं करना चाहिये। यह मर्मस्थान यदि अपवित्र भाण्ड, कौल, स्तम्भ वा शस्त्रादि द्वारा पीड़ित हो, तो गृहस्वामीके उस अङ्गमें पीड़ा अनिवार्य है। अथवा गृहस्वामी दोनों हाथोंसे जो अङ्ग खुलवाये, जहां अग्निकी विद्यति रहेगी। वास्तुके उस स्थानमें शल्य है, ऐसा जानना होगा। शल्य यदि दारुमय हो, तो घनका नाश होगा। अस्थिजात शल्य निकलने पर पशुपीड़ा और रोगजन्य भय होता है। लौहमय होनेसे शत्रुमय तथा कपाल वा केशमय होनेसे गृहपतिको मृत्यु होता है। अङ्गार रहनेसे स्तेयभय तथा भस्म रहनेसे सर्वदा अग्निभय हुआ करता है। मर्मस्थानस्थ शल्य यदि स्वर्ण वा रजतके सिवा कोई दूसरा पदार्थ हो, तो अशुभ है। तुपमय शल्य वास्तु पुरुषका मर्मस्थान है, अथवा चाहे कोई भी स्थानगत क्यों न हो, वह अर्थागमको रोकता है। और तो क्या, यदि हस्तिदन्तमय शल्य भी मर्मस्थानगत हो, तो वह भी दीपका आकर वा खान है।

पूर्वक एकाशीति पद वास्तुमण्डलकी जिस कोष्ठमें रांग देवता पतित हुआ है उससे ले कर वायु पर्वन्त पितासे हुताशन, वितथसे शोष, मुखसे भृगु, जयन्तसे भृङ्ग और अदितिसे सुग्रीव पण्य सुखदान करनेसे जो भी स्थान स्पर्श करेगा, वह अति मर्मस्थान है। वास्तु एहका परिमाण जितना हाथ है उसको इकासी भाग करनेसे प्रत्येक कीछा जितने हाथकी होगी उसका आठवां भाग ही मर्मस्थानका परिमाण होगा।

घातु नरके पद और हस्त जितने हस्तपरिमित होगे, उतने आंगुष्ठ परिमित घातुका घंटा (कडी) होगा। यंत्रध्यात्मका अर्थान ही घातुका जिराममाण है। गृहस्थामो यदि सुच पादों, तो गृहके मध्यस्थानमें प्रज्ञाको रथे तथा उच्छिष्टादि उपायात्ममें पदापूर्वक उनको रक्षा करें, नहीं करनेमें गृहस्थामोका अनिष्ट होता है। घातु-नरका दक्षिण हस्त हीन होनेमें अर्धक्षय तथा अङ्ग नाशनका दोष होता है। इसी प्रकार घाम हस्त हीन होनेसे अर्ध शीत घातुकी हानि, मन्तक हीन होनेमें सब गुणोंका नाश तथा चरण पैकल्पसे रथोदोष, सुग नाश और प्रेष्यता हुआ करती है। यदि घातु नरका मर्पाङ्ग अविफल रहे, तो मान, अर्थ और नाना प्रकारके सुच होते हैं।

गृह, नगर तथा ग्राम सभी जगह इसी प्रकार देवगण प्रतिष्ठित हैं। उन सब स्थानोंमें यथानुरूप प्रलया प्रभृतिकी वास करना होता है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंका वासगृह यथाक्रम उत्तरादिकी ओर बनाता उचित है। किन्तु नरका दरवाजा इस प्रकार बनाता चाहिये कि घरमें सुखने समय पद दाहिनी ओर पड़े। अर्थात् पूजाभिमुख घरका दरवाजा उत्तराभिमुख होगा। इसी प्रकार दक्षिणाभिमुखका प्राङ्गमुण, पश्चिमाभिमुखका दक्षिणाभिमुख और उत्तराभिमुखका पश्चिमाभिमुख गृह-द्वार होना उचित है।

कदां द्वार करनेसे कीटा फल होता है अभी उन्नीका विषय लिखा जाता है। एकाजोति पदमें गौशुने मूत्रमें भयथा घातुपक्षि पदमें घातुने मूत्रमें विभक्त करने पर जो रस खर होने उनका फल यथाक्रम निम्नोक्त प्रकारसे हुआ करता है। जैसे—जिमी और पर्यन्तादि देवताके ऊपर द्वार बनानेमें अग्निमय, स्त्रीरज्य, प्रभूतघन, राज यन्त्रमन्त्रा, श्लोचनरता, मिष्ठा, फूरुता तथा सोमे होती है। दक्षिणात्मामें इसी प्रकार अनासुरज्य, प्रिय, मोघता, मद्य-पातस्तुतुदि, मयूरता, हस्तघनता, अनासुरता तथा पुत्र और गोप्यता मान होता है। पश्चिममें सुग घोडा, विपुर्दि, घनपुत्रताय, सुग-अर्ध-कल मयूर, घन मयूर, क्षामय, घनताय और रोग तथा उत्तरमें यथ-यथ-विपुर्दि, घनपुत्रताय, मयूरताय, सुग, सुग, रथी

दोष और निषेधता होती है। पशु, पुरा, कोण, स्वाम और अग्नादि द्वारा विद्य होनेसे सभी द्वार अनुनय होते हैं। किन्तु दरवाजेकी लम्बाईमें दूनो अंगोस छोड़ कर यदि दरवाजा बनाया जाय, तो कोई दोष नहीं होता। रचनाविद्य द्वार नाशका कारण होता है तथा दूताविद्य द्वारमें कुमारादेव लगता है। इसके लिये, यक्षुर्निर्मित द्वारमें जोर, अहस्तायी द्वारसे स्वय, फूरायिद्वारसे भयस्मार देग, देवताविद्य द्वारसे विनाश, स्तम्भविद्यसे रथोदोष तथा प्रज्ञाभिमुख द्वारमें कुलनाश होता है। यदि द्वार स्वयं खुल जाय, तो उन्माद देग, स्वयं बंद ही जाय, तो कुलनाश, परिमाणसे अधिक होने पर रात्रि-मय तथा परिमाणसे कम होने पर दक्षुमय और व्यसन होता है। द्वारके ऊपर द्वार होनेमें तथा ऊपर द्वार सट्ट अर्थात् मट्टोर्ण है उससे अमङ्गल होता है। जिस द्वारका विनया मग्य चौड़ा होता है वह सुखपद तथा कुलद्वार कुलनाशका कारण होता है। द्वारके अति पीछे होनेमें पीछा, अन्वर्धिनन द्वार अनायका कारण, बाह्य-विनय द्वार प्रयान्दोषक तथा दिग्घ्नान्त द्वारमें दक्षुभज पीछा होती है। रूप और शब्द अभिनायो व्यक्तियोंके मूलद्वारमें सटा कर अन्य द्वार नहीं बनाता चाहिये। पद, फल और पत्र मादि किसी मङ्गलमय द्रव्य द्वारा उसे मट्टोर्ण करना भी उचित नहीं।

घरसे बाह्य ईशानादि कोणमें यथाक्रम नरकी, विश्व-रिका, पूतना और राक्षसो रहती है। पुर, भवन वा ग्रामके उन सब कोणोंमें जो वास करने है उन्हें दोष नहीं होता। किन्तु उन सब स्थानोंमें यदि भयपत्र बाह्य वस्त्रयत्र आतिथीका घाम दा, तो उनको पूर्ण होतो है।

घातुकी किम दिनामें कौन युद्ध रहनेमें कीटा फल होता है अभी यही लिखा जाता है। पश्चिम अर्धमें घातुके दक्षिणादि दिनाओंमें यदि पाण्डु, पट, पूवर और वापनके पेट हों, तो अशुभ, किन्तु उत्तरादि अर्धमें होने पर शुभ है। घातुके समोप वपटकमय युद्धों अशुभय, लोरोयुद्धमें अर्धनाश तथा फलोयुद्धमें प्रज्ञाका क्षय होता है। अथवा 'इन सब युद्धोंका लक्ष्यहीनो जो घर बननेके काममें न काम चाहिये। यदि इन सब युद्धोंकी यदि कटका न पादें, तो इनके निश्चय प्रमाण,

अशोक, अरिष्ट, बकुल, पनस, जामो, और शाल वृक्ष लगा देना चाहिये। जिस पर औषध, वृक्ष वा लता उत्पन्न हो, जो मधुर वा सुगन्ध तथा स्निग्ध, सम और अशुषिर हो वही मिट्टी उत्तम मानी गई है।

वास्तुके सामने मन्त्रीका घर रहनेसे अर्धनाश, धूर्तका घर रहनेसे पुत्रहानि, देवकुल रहनेसे उदुवैग तथा चतुष्पथ होनेसे अकारिष्ठा या अयश होता है। इसी प्रकार घरके सामने चैत्रवृक्ष (जिस वृक्ष पर, देवताका वास है) रहनेसे प्रदमय, वलमीत और उसीके कारण छोटे छोटे गड्ढे रहनेसे विषदु, गर्त भूमिके पास हीमें रहनेसे पिपासा तथा घूर्माकार स्थान रहनेसे घननाश होता है।

प्रदक्षिण क्रमसे उत्तरादि प्लवभूमि ब्राह्मणादि जातियोंके लिये प्रशस्त है। अर्थात् उत्तरप्लव भूमि ब्राह्मणके लिये, पूर्वनिम्न क्षत्रियके लिये, दक्षिणनिम्न वैश्यके लिये तथा पश्चिमनिम्नभूमि शूद्रके लिये प्रशस्त है। ब्राह्मण सभी स्थानोंमें वास कर सकते हैं, किन्तु दूसरे दूसरे वर्णोंको अपने अपने शुभस्थानमें वास करना उचित है। घरके भीतर हाथ भर लम्बा चौड़ा एक गोल गड्ढा खोद कर उसी मिट्टीसे फिर उसको भर दे, यदि मिट्टी कम हो जाय तो उस पर वास नहीं करना चाहिये, करनेसे अनिष्ट होता है। यदि मिट्टी समान हो तो समफला और यदि अशुभ हो, तो उत्तम होता है। अथवा उस गड्ढेको पानीसे भर कर एक सौ कदम चले, पीछे फिर लौट कर यदि देखे, कि वह पानी घटा नहीं है, तो उस भूमिको अत्यन्त प्रशस्त समझना चाहिये। अथवा उस गड्ढेमें एक आठक जल डाल कर सौ कदम आगे बढ़े पीछे लौट कर जलको तौले। यदि वह ६४ पल हो तो स्थान शुभप्रद समझा जाता है। अथवा आम मृत्पात्रमें चार दीप रख कर उन्हें गड्ढेके भीतर चारों कोनोंमें बाल दे। जिस कोनको बत्ती अशुभ जलगे उस वर्णके लिये वह भूमि प्रशस्त है। अथवा उस गड्ढेमें श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण ये चार पुरुष रख कर दूसरे दिन देखे, कि जिस वर्णका पुरुष खलन नहीं हुआ है उस जातिके लिये वह भूमि प्रशस्त है। इन सब परीक्षाओंमें से जिस परीक्षामें जिसका जो भरे उसके लिये वह

उत्तम है। सित, रक्त, पीत और कृष्णवर्णकी भूमि यथाक्रम ब्राह्मणादि चारों वर्णके लिये शुभप्रद है। अथवा घृत, रक्त, अन्न और मद्यके समान गन्धवती भूमि यथाक्रम ब्राह्मणादि चतुर्वर्णके लिये मङ्गलकर है। कुश, शर, दुर्वा और काशयुत या मधुर, कपाय, अम्ल और कटुका स्वादवती भूमि यथाक्रम ब्राह्मणादि चारों वर्णके लिये शुभावह है। गृहारम्भके पूर्व सबसे पहले वास्तुभूमिमें हल खला कर धानका बीया बोवे। पीछे वहाँ पर एक दिन-रात ब्राह्मण और गौ-को बसावे। अनन्तर देवता द्वारा निर्दिष्ट प्रशस्त कालमें गृहपति ब्राह्मणोंको प्रशस्तित उस भूमि पर जा विविध भक्ष, दधि, अक्षत, सुगन्धि कुसुम और धूपदि द्वारा देवता, ब्राह्मण और स्थपतिकी पूजा करे।

गृहपति यदि ब्राह्मण हो तो वे अपना मस्तकस्पर्श तथा कर रेखाकी कल्पना करे। क्षत्रिय होनेसे उन्हें पक्षस्थल, वैश्य होनेसे ऊर्ध्वय, शूद्र होनेसे अपना पादस्पर्श कर नोच डालनेके समय रेखा की कल्पना करनी होगी। अंगुष्ठ, मध्यमा या तर्जनी अंगुलि द्वारा रेखा खींचनी होगी। अथवा स्वर्ण, मस्ति, रजत, मुक्ता, दधि, फल, कुसुम या अक्षत द्वारा खींची हुई रेखा शुभप्रद होती है। शल्य द्वारा रेखा खींचनेसे शलाघात हीसे गृहपतिकी मृत्यु, लौह द्वारा खींचनेसे घन्घनमय, मरुम द्वारा अग्निमय, तृण द्वारा चौरभय तथा काष्ठ द्वारा रेखा खींचनेसे राजमय होता है। रेखा यदि चक्र पाद द्वारा लिखित या बिरूप हो, तो शत्रुमय और फलेश होता है। चर्म, अङ्गार, अस्थि वा दन्त द्वारा रेखा चाङ्कित होनेसे गृहस्वामीका अमङ्गल होता है। अपसश्रु क्रमसे यदि रेखा खींची जाय, तो चैत्र, प्रदक्षिणा क्रमसे (अर्थात् वामभागसे आरम्भ करके क्रमशः दक्षिण-भागमें जो रेखा खींची जाती है, उसे प्रदक्षिण रेखा कहते हैं। अथवा अपनी ओर खींची हुई रेखाका नाम भी प्रदक्षिण है) रेखाकी कल्पना करनेसे सगुण्यता होती है। इस समय कठोर वचन बोलना, धूक फेंकना अमङ्गलजनक है।

अथवा वास्तु मध्यस्थ शलयादि (हस्त)का विन्दय लिखा जाता है। स्थपति उस अर्धनिचित या सगुण्य वास्तुके मध्य प्रवेश कर सभी निमित्त तथा गृहस्वामी किस

स्थानमें रह कर तीन सङ्कल्पों करते हैं उसे देगे, उस समय यदि संप्रदीप्त रहे, ० अकुनि यदि पुनः ही तरह चोखार करे, श्रुदपति जो अङ्क स्वर्श करे, उस स्थानमें उखा भङ्गही अस्थि है, ऐसा जानना होगा। अकुनिके चोखार करने समय यदि हाथो, घोडा, गाय, अमाशिव, श्रुवाल, विष्टाल आदि जन्तु मर्द करे तो जानना चाहिये, कि उस स्थानमें प्रश्र करनेवाले जन्तुका अस्थि मशी है। मृतप्रसागित होनेसे यदि मर्दकेका रेंकना सुनाई दे, तो अस्थिरूप जल्य स्थिर करना चाहिये। अथवा यह मृत यदि कुले या श्रुवालसे लाया जाय, तो भी अस्थिरूप जल्य स्थिर करना होगा। ज्ञान्ता दिनामें अकुन यदि मधुर प्रश्र करे, तो श्रुदपतिके अङ्कस्वप अङ्कतुल्य वास्तुके उस सङ्कस्थानमें अर्धरूप जल्य है, ऐसा जानना होगा। इस समय मृत यदि छिद्र हो जाय, तो श्रुदपतिके मृत्यु होती है। कौत्र यदि अवाद्यमुप हो तो मदान् रोग उत्पन्न होता है। श्रुदपति और स्वपतिके स्मृति ग्रह हो जानेसे मृत्यु होती है। उस समय यदि कंधे परसे जल का घड़ा जमीन पर गिर पड़े, तो निरीरोग, जलदूषण ही जाय तो वंगमें उपद्रव, फूट जाय तो कर्म

कलांता बच और यदि यह हाथसे गिर पड़े, तो मृत्युकी मृत्यु होगी है।

वास्तुके दक्षिण पूर्वकोणमें वृक्षा करके पश्चिमे पश्चिमिया या इंटर रहे। अथवा पश्चिमि दक्षिण प्रक्षिप्तकोणमें रखना होगा। स्तम्भोंको भी इसी प्रकार मधुर कर देना होगा। उम्हें द्वारको तरह उम्भन कर छत्र और पालयुक्त ध्रुव और विलेपन देनेके बाद वृक्षों सावधानसे उखाया होगा। आकम्पित, पतित, दुःस्थित या अथलीन पतिते द्वारा यदि स्तम्भ पर फल गिर पड़े तो शश्रुप्रश्रके विषयमें जो फल कटा गया है इसमें भी यही फल होगा।

वास्तुभवन यदि पूर्व की ओर उत्तरकी ओर उम्भन हो तो धनक्षय और पुत्रनाश होता है। उसके पुनोन्मयुक्त होनेसे पुत्रवध, एक होनेसे बन्धुविनाश तथा विपुत्रमयुक्त होनेसे यहाँको शिष्योका गर्भनाश होता है।

यदि श्रुदपतिग्नय ममो पश्चिमीको वृद्धिके कामना रहे, तो वास्तुभवनके नारों और समागमायने भूमिको पद्धित करे। किमो कारणायन यदि पश्चिम और पश्चिम करना हो, तो पृष्ठ या उत्तरकी ओर उसे बढ़ाना होगा। किन्तु पारमविक वास्तुके सिर्फ पश्चिम और बढ़ाना उचित नहीं, इससे दोष होता है। वास्तु यदि पूर्व और बढ़ाया जाय, तो मित्रसे वैद, दक्षिणकी ओर बढ़ानेमें मृत्युका अथ, पश्चिममें अर्थनाश तथा अग्नि कोणमें बढ़ानेमें जन स्थाय हाता है।

वास्तुमृदके ईनायकोणमें द्वेषमन्दिर, अग्निकोणमें स्वयं-श्रुद, नैऋतकोणमें भाण्ड और उपस्कारादि पूर तथा वायुकोणमें घनागार और घाव्यागार निर्माण करना होगा है। वास्तुके पूरार्दि ममो दिनाभोमें यदि जन रहे, तो प्रदक्षिण-कर्ममें निरन्तरिगण फल होते है। जैमि-सुतदादि, अग्निभय, जलभय, स्वोक्त, छोडोय, निरन्तरता। कमा घन-वृद्धि और कमी सुत वृद्धि होती है। अथवा पूर पर पत्तोंके घोंसले हो, जो मान, मृद और श्रुय हो, तो देवाद्युक्त और इनायन पर उपद्रव हुआ ही, जो शोरमुक्त भय हो, तथा जिनीतक (बदेष्टा) और अर्धन (पशुकाष्ठ) इन सब वृष्टीको छोड़ कर अन्त्याय वृक्ष पर बनायेके सिधे कार मर्दने हैं। शक्तिहायमें मृदका अर्धन

० पूर्वोदयेके पारमें एक पक्ष तक ईमानकोष मद्धारियो, पूर्वदिशा होना, मयिनकोष भूमिका तथा अर्धरूप पांच दिशामें गन्ता, इसके बाद एक पक्ष तक पूर्वदिशा अर्धरियो, अर्धको होना, दक्षिण भूमिका और अर्धरूप पांच दिशावे गन्ता, मृदोय प्रश्रमें आनेको अर्धरियो, दक्षिण होना, नेत्रुं तो भूमिका तथा अर्धरूप पांच दिशा भूमिका, पशुमंदरमें अर्ध पर्यंत दक्षिणदिक् अर्धरियो, नेत्रुं तो होना, दक्षिण भूमिका तथा अर्धरूप पश्चिमदिक् अर्धरियो, चोटे अर्धके प्रथम प्रश्रमें नेत्रुं तो अर्धरियो, पश्चिमा होना, पाचवी भूमिका तथा दोय पश्चिमदिक् अर्धरियो, अर्धके मृदोय प्रश्रमें पश्चिमा अर्धरियो, पाचवी होना, उत्तरका भूमिका तथा अर्धरूप पांच दिशा गन्ता, अर्धके मृदोय प्रश्रमें अर्धको अर्धरियो, उत्तरका होना, दोयकी भूमिका तथा दोय दिशा गन्ता, अर्धके अर्धके प्रश्रमें पूर्वोदयेके पूर्वोदयेके अर्धरियो, दोयकी अर्ध, पूर्व भूमिका तथा अर्धरूप पांच दिशावे गन्ता अर्धरियो है।

(अन्त्यायवृक्ष)

दान और पूजन करके दूसरे दिन सवेरे प्रदक्षिण करनेके बाद वृक्षच्छेदन करे। छिन्न वृक्ष यदि उत्तर वा पूर्व दिशामें गिरे तो शुभ है। इसका विपरोत होनेसे अशुभ होता है। वृक्ष काटने पर यदि उस काटे हुए स्थानका वर्णन बदले, तो यह शुभकर है तथा वही वृक्ष घर बनानेके लायक है। काटनेके बाद यदि वृक्षका सार भाग पोला हो जाय, तो वृक्षके ऊपर गोपा है, ऐसा जानना होगा। उसका वर्ण मंजीठकी तरह हो जानेसे भेक, नोला होनेसे सर्प, लाल होनेसे सरद, मूंगकी तरह होनेसे प्रस्तर, कविल वर्णका होनेसे चूहा तथा खड़ुगकी तरह सामायुक्त होनेसे उसमें जल है, ऐसा जानना होगा।

वास्तुमवनमें प्रवेश कर धान्य, गो, गुरु, अग्नि और देवताओंके ऊपरी भाग पर नहीं सोना चाहिये, सोनेसे भाग्यलक्ष्मी धरसन्न होता है। वंश या लकड़ीकी कड़ुके नीचे सोना उन्नित नहीं। उत्तर-शिरा, पश्चिम शिरा, नान' वा आर्द्र'चरण हो कर कभी भी सोना नशे' चाहिये। गृह प्रवेशके समय गृहको तरह तरहके फूलोंसे सजावे, वन्दनवार लगावे, जलपूर्ण कलस द्वारा शोभित कर रखे, धूप, गन्ध और बलि द्वारा देवताओंके प्रति पूजा करे तथा प्राणियोंके द्वारा मङ्गलध्वनि करावे। (बृहत्सं० ५३ अ०)

गरुडपुराणमें वास्तुका विषय संक्षेपमें इस प्रकार लिखा है—गृहारम्भके पहले वास्तुमण्डलकी पूजा करनी होती है, इससे गृहमें कोई विघ्नबाधा नहीं पहुंचती। वास्तुमण्डल एकाशीति पद होगा। उस मण्डलके ईशान-कोणमें वास्तुदेवता मस्तक, नैर्ऋतमें पादप तथा वायु और अग्नि-कोणमें हस्तद्वयकी कदवनी करके वास्तुकी पूजा करे। आवासगृह, वासभवन, पुंर, ग्राम, वाणिज्य स्थान, उपवन, दुर्ग, देवालय तथा मठके आरम्भकालमें वास्तुयाग और वास्तुपूजा आवश्यक है।

प्रथमतः मण्डलके यहिभागमें बत्तीस देवताओंका आवाहन और पूजन करके उसके भीतरां भागमें तेरह देवताओंका आवाहन और पूजन करना होता 'उक्त बत्तीस देवताओंके नाम ये हैं—ईशान, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, प्रहरीत्र, यम, गन्धर्व, भृगु, राजा, मृग, पितृगण, दीवारिक, सुमोय, पुण्यन्त, गणाधिप, असुर, शैव, पाद, रोग, अहिसुष्य, भङ्गाट, सोम, सप, अदिति और दिति।

इसके बाद मण्डलके मध्य ईशान कोणमें आप, अग्नि-कोणमें सावित्र, नैर्ऋतकोणमें जय और वायुकोणमें यद, इन चार देवताओंको पूजा करनी होगी। मध्यस्थ नव पदके मध्य ब्रह्माकी पूजा शेष करनेके बाद निम्नोक्त मण्डलाकार अष्टदेवताओंको पूजा करनी होती है। पूर्वादि दिशाओंमें एकादिकमसे उन आठ देवताओंका पूजन करना कर्त्तव्य है। अष्टदेवताके नाम—अर्यमा, सविता, विष्वान, विद्युत्पापिप, मिल, राजयक्ष्मा, पृथ्वी-धर और अपवत्स इन सब देवताओंका यथाक्रम प्रणवादि नमस्कार करनेके बाद पूर्व दिशामें, अग्नि-कोणमें, दक्षिण-दिशामें नैर्ऋतकोणमें, पश्चिम दिशामें, वायुकोणमें, उत्तर-दिशामें और ईशान कोणमें पूजा करे।

दुर्गका निर्माण करनेमें भी गृहादिके निर्माणकी तरह एकाशीति पद वास्तुमण्डल करना होगा। इसमें थोड़ी विशेषता है। वायुमण्डलके ईशानकोणसे ले कर नैर्ऋतकोण तक तथा अग्निकोणसे वायुकोण तक सूत्र-पात करके दो रेखायें खींचनी होंगी। इन रेखाओंका नाम वंश है। एकाशीति पद वास्तुमण्डलके यहिभागस्थ द्वारिगत् पदके मध्य जिस पञ्चपदमें अदिति, दिति, ईश, पर्जन्य और जयन्त ये पञ्च देवता हैं, दुर्गके एकाशीति पद वास्तुमण्डलमें भी वहां पञ्च देवताकी जगह अदिति, हिमवान्, जयन्त, नायिका और कालिका इन पञ्चदेवकी चित्रपस्त करना होगा। दूसरे सप्तविंशति वा सत्तारिस पदोंमें गन्धर्वे आदिसे ले कर सर्पराज पर्यन्त जो सत्तारिस देवता हैं उनको जगह किसा भी देवताका नाम बदलना नहीं होगा। गृह और प्रासादनिर्माणमें इन बत्तीस देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।

वास्तुके सम्मुख भागमें देवालय, अग्नि-कोणमें पाकशाला, पूर्वदिशामें प्रवेशनिर्माणपथ और वागमण्डप, ईशानकोणमें पदवस्त्रयुक्त गन्धपुष्पालय, उत्तर दिशामें भाण्डारागार, वायुकोणमें गोशाला, पश्चिमदिशामें वातायनयुक्त जलागार, नैर्ऋतकोणमें समिचक्रुश काष्ठादि-का गृह और भस्त्रशाला तथा दक्षिण ओर मुन्दर अतिथिशाला बनावे। उसमें आसन, शय्या, पादुका जल, अग्नि, दीप और योग्य भूय रखे। समस्त गृहोंके

अथवा भागको मंगल बद्धकी-पूजा और पांच प्रकार-
के पुस्तुम द्वारा सुनीमित करना होगा ।

वास्तुमण्डलके परिभाषामें चारों ओर प्रकार बनाये ।
उस प्रकारकी जगह पांच हाथ होगी । इस प्रकारमें
चारों ओर चतु-उपवन द्वारा सुनीमित करके विष्णुपुस्तुका
निर्माण करे ।

प्रामाद-निर्माणमें चतुर्नाष्टि या चौंसठ पद वास्तु-
मण्डल करके उसमें वास्तुदेवताकी पूजा करनी होगी ।
उस वास्तुमण्डलके मध्यगत चार पदमें प्रता और तद्-
मनोरथ ही प्रतिपदमें अथवादि देवताओंकी पूजा करे ।
वास्तुमण्डलके ईशानादि चार कोणगत चार पदमें एक
एक कर्पूरेवा शोध कर उससे अर्द्धभागमें विभक्त करे
और प्रति कोणमें दो दो करके साठ पद बनाये । उन
साठ पदोंमें ईशानादि कोणसे आरम्भ कर जिम्बो बादि
देवताओंकी स्थापन करना होगा । उन सप्त देवताओं-
की तथा उनके पार्श्वस्थ ही प्रतिपदमें अथवात् देवताओं-
की पूजा करनी होगी है ।

इस प्रकार चतुर्नाष्टिपद वास्तुमण्डल बना कर ईशाना-
नादि चार कोणोंमें चरको, पिशाची, पूषा और पाप-
राक्षसों इन चार देवताओंकी पूजा करे । पीछे यदि
भागमें ईशानादि और हेतुकादि देवताकी पूजा करनी होगी ।
हेतुकादिगणके नाम ये हैं—हेतुक, तिरुपगतक, अग्नि,
बैताल, वध, अग्निजिह्व, कालक, कराल और एकपाद ।
पूजाके बाद ईशानकोणमें भीमरूपा, यत्नालमें प्रेतनायक
और वाकानाममें गणधनाला तथा क्षेत्रगणकी पूजा करे ।
वास्तुकी बीछाई (जलनी होगी) उससे लम्बाई का गुणा करे ।
यह गुणनफल ही 'वास्तुनामि' वास्तुक्षेत्रफल होगा ।
इस वास्तुनामिमें आठवा भाग दे । भागके जो रह
जायगा उसे भाग कहते हैं । उस वास्तुनामिमें दूसरी
बार भागमें गुणा करने पर गुणनफल जो होगा उसमें
सत्सईसका भाग दे । भागका जो जो बचेगा उसका नाम
वास्तुनामलनामि रखा गया है । अब उस भागके वास्तु-
नामलनामिमें आठवां हिस्सा भाग दे । उसके छह हिस्सा
की 'अथ' कहते हैं । उस वास्तुनामलनामिमें चारों ओर गुणा
कर गुणनफलमें ३ का भाग दे । भागके जो बचेगा
उसका नाम 'विधि' है । इस विधि बहुत द्वारा ही बाह्य

मण्डलकी भंज स्थिर होगा । यही देवन क्षत्रिक
है ।

उक्त वास्तुनामिमें आठसे गुणा कर गुणनफलमें
होगा उसे 'विष्णु' कहते हैं । उस विष्णुपुस्तुमें चौपद
भाग देनेकी आवश्यक जो बचेगा उसमें पुस्तुनामिमें आठ
तथा पांचका भाग देनेमें भागके जो बचेगा उसमें
पुस्तुनामिमें प्रत्येक निर्णय होगा । इसी प्रकार मन्त्र
भाष, उष्य, स्थिति और मन्त्रका निर्णय ही
ज्ञाता है ।

वास्तुके कोष्ठ या मोर्चेमें गृह बनाये, पृष्ठमें गरी
वास्तुदेवताकी स्थापनामें पवित्र करना तथा वास्तुनामिमें
सुखाना चाहिये । इसकी आवश्यकता नहीं है । गृह की
प्रामादके द्वारा बनानेके निवाम में है—सिद्ध, कर्मा और
तुनानामिमें अथवात्, अग्नि, अग्नि, अग्नि इन तीन भाग
में पूर्णों और मन्त्र, उत्तरीकी और पृष्ठ, दक्षिणकी और
क्षीर और पश्चिमकी और अथवात् रत्न कर वास्तुनामिमें
सुखाये । उक्त तीन भागमें दक्षिणकी और उत्तरीकी गृह
बनाये ।

अभी वास्तुनामिका विषय लिखा जाता है । वृत्त
चतु और मकर राजिम अथवात् अथवात्, पांच और म
इन तीन भागमें वास्तुनामिका जिन दक्षिण, पृष्ठ पूर्ण, म
पश्चिम और पाद उत्तर रहता है । इसीविधि उस म
पश्चिमकी और पूर्णकारी गृह बनानेका कहा है । वृत्त
मोन तथा मेष राजिम अथवात् वास्तुनामि, मेष और मेष
इन तीन भागमें वास्तुनामिका मन्त्रक पश्चिममें, दक्षि
में पृष्ठ, उत्तरमें कोष्ठ और पूर्णमें पाद रहता है । इस म
उत्तरीकी और दक्षिणकारी गृह बनाया अधिग है । द
मिथुन और कर्कट राजिम अथवात् उष्य, भाषाट में
अथवात् भागमें वास्तुनामिका मन्त्रक उत्तरमें, पृष्ठ पश्चि
में, कोष्ठ पूर्णमें और पद दक्षिणमें रहेगा । इस भाग पृ
की और पश्चिमकारी गृह बनाये । पूर्णकार जिन
मन्त्रा होगा उस भागका उत्तरका उत्तरका होगा अथवात् । इ
प्रकार अष्टशतभिन्निष्ठ गृह बनाना कर्णिक है । वास्तुना
जिन भागमें जिन और पृष्ठ उत्तर में भाग है, उस भाग
उस और उत्तर अथवात् भागः आरूपाभिन्निष्ठ निर्माण की
जिसमें अथवात् जिन और पृष्ठ ही अथवात् निर्माण जिन

घरका ईशानकोण प्लव होनेसे पुत्रकी हानि होती है। इसी प्रकार दक्षिण प्लव होनेसे वीर्यहीनता, अग्नि कोण प्लव होनेसे वन्धन, वायुकोण प्लव होनेसे पुत्र और सुनुसिलाभ, उत्तर प्लव होनेसे राजभय तथा पश्चिम प्लव होनेसे पीड़ा, वन्धन इत्यादि फल होता है। गृहके उत्तर ओर द्वार करनेसे राजभय, सन्ताननाश, सन्तति-हीनता, जल, बुद्धि, धनहानि, कलङ्क, पुत्रविनाश आदि नाना प्रकारके अशुभ होते हैं।

अभी पूर्वद्वारी गृहका फल लिखा जाता है। गृहके पूर्व ओर द्वार बनानेसे अग्निभय, अनेक कन्यालाभ, धन प्राप्ति, मानबुद्धि, पदोन्नति, राज्यविनाश, रोग आदि फल हुआ करते हैं। गृहद्वार-निर्णय करनेके विषयमें ईशानसे ले कर पूर्व पर्यन्त दिग्भाग पूर्वदिक्, अग्निसे दक्षिण पर्यन्त दक्षिणदिक्, नैऋतसे ले कर पश्चिम पर्यन्त पश्चिमदिक् तथा वायुसे उत्तर पर्यन्त उत्तरदिक् कहलाता है। गृहके चार दिशाके आठ भाग करके द्वार प्रस्तुत करनेका फलाफल माना जा सकता है।

वास्तुभवनके पूर्वमें पीपल, दक्षिणमें बाकड़, पश्चिममें न्यगोध, उत्तरमें गूलर और ईशानकोणमें शाहमली वृक्ष लगाना चाहिये। इस विधिके अनुसार गृह और प्रासाद बनानेसे सर्वविधन विनष्ट होता है। (गण्डपु० ५६ अ०)

इसके अलावा मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, देवीपुराण, सुक्तिफलपत्र, वास्तुकुण्डली आदि ग्रन्थोंमें वास्तुके सम्बन्धमें विस्तार आलोचना देखी जाती है। विस्तार और पुनरुक्ति हो जानेके भयसे उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। यह और प्राग्ध शब्द देखो।

फिर अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें वास्तु-निर्माणकी प्रणाली विविध हुई है। उनमें विश्वकर्मारचित विश्वकर्माप्रकाश और विश्वकर्माय शिल्पशास्त्र मयदानवरचित मयशिल्प और मयगत्, काश्यप और भरद्वाजरचित वास्तुतत्त्व, वैशानम् और समत्कुमाररचित वास्तुशास्त्र, मानवसार या मानसार वस्तु, सारस्वत, अपराजितापृच्छा या सान रत्नकोष, हयशीर्षपञ्चरात्र, भोजदेव रचित समराङ्गणसूत्र-धार, सूर्यधारमण्डन रचित वास्तुसार या राजवल्लभमण्डन या सकलाधिकार, महाराज श्यामसाह ड़ार-रचित वास्तुनिरामणि आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इनके सिवा

योग, वास्तुपूजादि सम्बन्धमें भी अनेक संस्कृत ग्रन्थ देखे जाते हैं। यथा—

कृष्णाशङ्कर और कृपाराम रचित वास्तुचन्द्रिका, नारायणभट्ट रचित वास्तुपुण्यविधि, याज्ञिकदेवकृत वास्तुपूजनपद्धति, शाकलीय वाम्पुपूजाविधि, वासुदेवका वास्तुप्रदीप, रामकृष्ण भट्टकृत आश्वलायतगृह्योक्त वास्तु-शास्त्रि, शौनकेाक्त वास्तुशान्तिप्रयोग, दिनकरभट्टकी वास्तुशास्त्रि, रमारार रघुनन्दनका वास्तुयागतत्त्व, टोडर-मल्लका टोडरानन्द वा वास्तुसौष्य।

वास्तु (अ० पु०) १ सम्बन्ध, लगाव। २ निवृत्ता। ३ स्त्री और पुरुषका अनुचित संबंध।

वास्तुक (सं० स्त्री०) वास्तु पत्र वास्तु-स्वार्थ कन्। १ शाकभेद, वयुआ नामका साग। इसे अंगरेजोंमें *Chenopodium album*, महाराष्ट्रमें चक्रवत् और कर्णाटमें चक्रवर्त्त कहते हैं।

भावप्रकाशके मतसे यह वास्तुक शाक छोटे और बड़े पत्तेके भेदसे दो प्रकारका होता है। चक्रवत्के मतसे इसका रस पकाने पर लघु, प्रमायमें कृमिनाशक तथा मेघा, अग्नि और बलकर है। क्षारयुक्त होनेसे यह कृमिहन, मेघ्य, रुचिकर तथा अग्नि और बलवृद्धिकर माना गया है। राजनिघण्टुके मतसे इसका गुण मधुर, शीत क्षार, ईष्यम्ल, त्रिदापन्न, रोचन, उबरघ्न, अशोष तथा मल मूलशुद्धिकारक है। अति साँझिताके मतसे इसका गुण—मधुर, दृढ तथा घात, पिच और अशरीरोगके लिये हितकर।

२ जीवशाक। ३ पुनर्नया, गद्दपूरना।

वास्तुकशाकट (सं० स्त्री०) वास्तुकशाकक्षेत्र।

(राननि०)

वास्तुकाकार (सं० स्त्री०) पट्टाशाक, पाट या पट्टयेका साग।

वास्तुकालङ्क (सं० पु०) तरभुजलता, तरभूज।

वास्तुकी (सं० स्त्री०) चिल्ली शाक।

वास्तुकर्मन् (सं० स्त्री०) वास्तुके आरम्भमें करने योग्य अनुष्ठान।

वास्तुप (सं० त्रि०) वास्तु-पाक। वास्तुपति, वास्तुके अधिपत्यादी देवता।

वास्तुपरीक्षा (सं० स्त्री०) वास्तुमी परीक्षा । वास्तुकी परीक्षा, गुणागुणका विचार करना, कीम वास्तु गुण ही और हीन समुच्च उमका निर्णय करना । वास्तु देखो ।

वास्तुपूजा (सं० स्त्री०) वास्तु-पुण्य या वास्तुदेवताकी पूजा । नवग्रहप्रवेशमें वास्तुपूजा या वास्तुगोपका विधान है । वास्तुका देखो ।

शाखादि दिशाके प्रारम्भमें भी वास्तुपुण्यकी पूजा करना होता है । वास्तु उम पूजामें उतनी विशेषता नहीं, साधारण नियममें मग्न होना है । वास्तुपूजाके लिये एक निर्दिष्ट उत्तम दिन माना गया है, वह दिन है—संक्रान्तिके संक्रान्ति । इस पौरसंक्रान्तिके दिन प्रायः सभी हिन्दुओंका घर वह वास्तुपूजासहित प्रयत्नित देना जाता है । ऐतिहासिक स्थानोंको संरक्षण कर्त्तव्य-देगमें विशेषतः पूज्यमञ्जर्यमें इस पूजामें घोषा विशेषता है ।

इस संक्रान्तिके दिन एक और विष्टत पायसादिका जैसा प्रयुक्त भाषाजग है, दूसरो और पैसा दो वास्तुपूजाका सामग्री है । प्रायः प्रति प्रायमें वास्तुपूजा करनेका एक एक निषा हुआ उत्तम स्थान रहता है । उमो स्थानमें प्रायः सभी प्रायवासी जा कर बहो भूमिधाममें वास्तुपूजा करते हैं । कंठ केई अपने घरमें मध्याह्निके बादर किमो निर्दिष्ट स्थानमें वास्तुपूजा करते हैं ।

वह पूजा मन्त्र विष्टतृप्तके मोचे हुआ करता है । प्रत्येक निर्दिष्ट स्थानमें एक एक विष्टतृप्त रहता है । कहीं उम गृहको शाखाया हा गाए कर पूजा करते हैं । पूजा करनेके पूर्व दिग्में दो दशमूलमें देशो मन्त्रण करनेको होता है । उम घेदिक् ऊपर घटस्थापन करनेके बाद घटके चरों और भद्रत वापन छिद्रक दिया जाता है । वास्तुदेशके पाय हो मिष्टाका एक पुत्रमीर बनाया होता है । उम कुम्हारका पुत्रक पुरोदिकके बाहिरी और रहता है । पूजाके सामग्रीके अनुसार कुम्हारका तारण्य होता है । जहाँ जहाँ पूजा भूमिधाममें होती है, यहाँ यहाँ कुम्हारका आकार कर्त्ता बनाया जाता है । जिकके अनुसार पेशुगेपकार या श्वोपकार-ही पूजा की जाती है । इस पूजामें घटके चरों और घोटो कच्छरका बलिदान दिया जाता है । श्रेष्ठ और बड़े ही

प्रकारके कच्छरको बलि होना है । जहाँ घटके चरों नहीं होते यहाँ काममें कम कच्छर बलि स्थाप्य है । सबसे पीछे उक्त कुम्हारको बलि दी जाती है । कच्छरकेमें इस पूजामें बजे गजे तथा भागेद-पंजाद गृह होगे है ।

कहीं कहीं वास्तुपूजा घटमें ही होती है । घटमें एक गूँटी जिसे वास्तुगूँटी कहते हैं । घटके दोमें निर्दिष्ट रहती है । उमोमें प्रति वर्ष वास्तुपूजा होती है । वास्तुगूँटीके सिम्बर भादिसे सजाते घोट साधारण नियममें नैवेद्यादि द्वारा पूजा करते हैं ।

वास्तुधाम (सं० पुं०) वास्तुधेग-निमित्तकः धामः । वास्तु प्रवेग-निमित्तकः धामविशेष । वास्तुधाम करके नवग्रहमें प्रवेग करना होता है । यह वष्ट करके घटकेत करनेसे वास्तुका श्रेय प्रजानित होता है, इसी कारण नवग्रहमें जानेके समय वास्तुधाम करना उचित है । वास्तुधामका विषय बहुत संशयमें लोचि लिखा जाता है ।

वास्तु सम्स्थापय सभी कार्योंमें वास्तुधाम करना होता है । नवग्रहमें जाने समय एकजोति पर वास्तुधाम तथा नवदेवगृह प्रतिष्ठाके समय चतुर्दिपर वास्तुधाम विधेय है ।

अनुम दिनमें वास्तुधाम नहीं करना चाहिये, जन्म-अपकी प्रतिष्ठा या नवग्रह-प्रतिष्ठाके समय वास्तुधाम करनेका विधान है । अतएव ज्योतिषीक गृहप्रथेय वा गृहारम्भक दिग्में या जन्मजयमतिष्ठोक दिनमें करना होता है । ह्यन्विधे उद्येतिषमें वास्तुधामके दिग्दिशि गृहकल्पमें उल्लेख नहीं है । दिग्दिश विषय पर और बड़े मन्द देखो ।

वास्तुधामविधान—जिस दिन वास्तुधाम करना होगा, उमके पूर्व दिन यथाविधान गृहाधामो और पुत्री-दिग् देना ही संभव हो कर रहे । वास्तुधाम करनेमें होगा, आचार्ये प्रह्ला और मन्दक्य इन चार ब्राह्मणोंकी भावश्यकता है । यथा ये चारों ब्राह्मण संदग हो कर रहेंगे, घटमें जहाँ वास्तुधाम होगा, यहाँ वर देदी बनाती देगी । उम देदीको ऊँचाई एक हाथ भी मन्त्राई तथा कीर्त्तुई चार हाथ देगी । मोहरीके देदीके लोच कर उम पर घटस्थापन करना देता है । वास्तुधाम करनेके मन्दक्य हके अर्द्धमूत्र माग्नीमुचध्यायका विधान है ।

जिस दिन वास्तुधाम होगा, उस दिन मन्त्री अथवा

प्रातःहृत्पादि करके पहले स्वस्तिवाचन और संकल्प करे। स्वस्तिवाचन यथा—ओं कर्त्तव्येऽस्मिन् वास्तुवागकर्मणि ओं पुण्याहं भयन्तोऽधिद्रुवन्तु, ओं पुण्याहं ओं पुण्याहं ओं पुण्याहं, यह कह कर तीन बार अक्षत छोटना होता है। ओं कर्त्तव्येऽस्मिन् वास्तुवागकर्मणि ओं ऋद्धिर्भयन्तोऽधिद्रुवन्तु ओं ऋद्धयतां ओं ऋद्धयतां ओं ऋद्धयताम्, पीछे ओं कर्त्तव्येऽस्मिन् वास्तुवागकर्मणि ओं स्वस्ति भयन्तोऽधिद्रुवन्तु ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति। इसके बाद 'ओं स्वस्तिना इन्द्रः' इत्यादि और पीछे 'सूर्यः-सोमा यमः कालः' मन्त्रका पाठ करें। जो सामवेदी हैं, वे सोमं राजानं वरणमग्निमित्थादि मन्त्र पढ़ें। इसके बाद सूर्यार्घ्य और गणपत्यादि पूजा करके संकल्प करना होता है। जिस कोशामें संकल्प किया गया था, वह जल ईशानकोणमें फेंक कर घेदाभुसार संकल्पसूक्तका पाठ करना होता है।

द्वेषप्रतिष्ठा और मठप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें जो वास्तु-याग होता है, उसके संकल्पमें धोड़ीसो पृथक्ता है। तिथ्यादिका उल्लेख कर द्वेषप्रतिष्ठा होने पर "एतद्वास्तु-शमनद्वेषप्रतिष्ठाकर्माभ्युद्युद्यार्थं", मठप्रतिष्ठा होनेसे एतद्वास्तुशमनमठप्रतिष्ठाकर्माभ्युद्युद्यार्थं सगणाधिपत्यादि रूपमें सङ्कल्प करना होता है।

इस प्रकार सङ्कल्प करके जो सब ब्राह्मण यज्ञ करेंगे उनका वरण कर देना होगा। वरणकालमें पहले गुरुका वरण करके पीछे अन्यका वरण करना होगा। गुरु वरणके बाद ब्रह्मवरण, ब्रह्मवरणके बाद हेतुवरण, आचार्यवरण और सद्रूप वरण करना होगा। इन तीन-वरण वाष्योर्षीमें कुछ ओं विशेषता नहीं है, केवल हेतु-वरणकी जगह हेतुर्कर्म करणाय, आचार्यवरणकी जगह आचार्यकर्मकरणाय भवन्तुमहं वृणे' इस प्रकार कहना होगा।

हृत्ती इस प्रकार वरण करके पीछे वृद्धिश्चाद करे और प्रतिगण यथाविधान यह यज्ञ आरम्भ कर दे। कर्म-कर्त्ता यदि पुष्य हो, तो वृद्धिश्चाद करना होता है, स्त्री होनेसे वृद्धिश्चाद नहीं होगा।

वास्तुवागके लिये जो वेदी बनाई गई है उस वेदी पर ५ घट और १ शान्तिकलस स्थापन करना होता

है। घट और कलसको जलसे भर कर उसके ऊपर पञ्चपल्लव तथा अष्टाण्ड फल और शान्तिकलसमें पञ्च-रत्न डाल कर उसको कपड़े से ढक देना होगा। पीछे हीताको पञ्चगव्यके पृथक् पृथक् मन्त्र द्वारा उसे शोधन कर निम्नोक्त मन्त्रसे कुशोदक देना होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

"ह्रौं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अभिवर्तोर्वाहुर्भवा पुण्यो हस्ताभ्यां हस्तमाददे।" पीछे पञ्चगव्य और कुशोदकको एकल कर गायत्री पढ़नेके बाद वेदी पर सेक करना होता है। इसके बाद पट्टिकुषान्य, ह्रैमन्तिक-घान्य, मुद्ग, गोधूम, अ्येतसर्षप, तिल और यवमिश्रित जल द्वारा फिरसे वेदीको सेक करना होता है।

वास्तुवागकी वेदी पर पांच वर्णके चूर्ण द्वारा वास्तु-मण्डलको प्रस्तुत करना होता है। उसी वास्तुमण्डलमें पूजा करनी होगी। वेदीके पूर्वांशमें मण्डल करनेकी जगह ईशानकोणसे ले कर मण्डलके चारों कोणोंमें चार खैरके खूटे मन्त्र पढ़ कर गाड़ने होते हैं।

इसके बाद आग्नि सर्प आदिको मासभक्त बलि दे कर उन गड़े हुए चार खैरके खूटोंके बीच वास्तुमण्डल बनाये। इस मण्डलके चारों कोणोंमें ब्रह्ममालासमन्वित चार कलस और बीचमें ब्रह्मघट स्थापन करे। इस प्रकार घटस्थापन करके पाश्वर्कें घटमें नवग्रहकी पूजा और पूर्वाधिकमसे पुनः भूनादिको मासभक्त बलि देनी होगी। उक्त प्रकारसे बलि दे कर यथाविधान सामान्य अर्घ्य और न्यासादि करने होते हैं। इस समय भूत-शुद्धि करना आवश्यक है।

अनन्तर मण्डलमें ईशानादि पैतालीस देवताओं तथा मण्डल पार्श्वमें रुद्रादि अष्ट देवताओंका संस्थापन करके यथाशक्ति इनकी पूजा करनी होती है। ईश इहा-गच्छामच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ अन्नाधिष्ठानं कु-मम पुत्रां गृहाण' इस प्रकार आवाहन करके पूजादि करनेका विधान है। एतत् पाठं ०० ईशाय नमः इस प्रकार पाद्यादि उप-चार द्वारा पूजा करनी होती है।

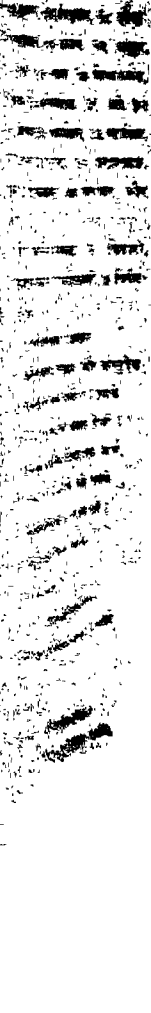
ईशादि पैतालीस देवता ये सब हैं—१ ईश, २ पर्जन्य, ३ जयन्त, ४ शक्र, ५ भास्कर, ६ सत्य, ७ भृश, ८ ध्योमन्, ९ अग्नि, १० पुष्य, ११ वितथ, १२ गृहक्षत, १३ यम,

वास्तुशास्त्र (श्री श्री) का
 परीक्षा, मुनामुसका विचार
 और तीन भागों में विभाजित
 वास्तुशास्त्र (श्री श्री) का
 पूजा । वास्तुशास्त्र में
 विभाजित है । वास्तुशास्त्र के

भाषादि विचारों के प्रारम्भ में
 बहना होता है । वास्तुशास्त्र
 नहीं, साधारण नियमों के अन्तर्गत
 के लिये एक निर्दिष्ट उपाय दिना
 है—यौवनवाचको संकारण । इस
 प्रायः सभी हिन्दुओं के घर एक
 देवा आती है । लेकिन अगत्यान्व
 देवों में विशेषतः पूर्वपक्ष में
 देवा है ।

इस संकारण के दिन एक को
 जिला प्रमुख आयोजन है, दूसरा को
 का समारोह है । प्रायः प्रति प्रा
 एक एक जिला दुभा उत्तम स्थान
 प्रायः सभी प्रायः सभी जा कर
 पूजा करते हैं । कोई कोई भय
 बाद किमी निर्दिष्ट स्थानों में

एक पूजा अथवा निवेदन
 प्रत्येक निर्दिष्ट स्थानों में एक
 नहीं इस प्रकार प्रायः प्रा
 पूजा करने के पूर्व दिनों में
 करने होता है । उस दिने
 बाद घटके यों और
 जाता है । वास्तुशास्त्र के
 बनाया होता है । उस
 दाहिनी ओर रहता है ।
 कुम्भीरका साधारण होता
 में होती है, यहाँ यहाँ
 जाता है । अन्तिम अनु
 की पूजा की जाती है । इस
 कल्याण वसिष्ठान वि



इत्यादि पराधर पदोंमें ३३ पृष्ठिन देवताओं
 की इजाजत या स्वाहा इस क्रममें आहुति प्रा
 की जाती है। स्वाहा इयं मां करो पर मी कर
 इयंके बाद पूर्वाजमें एकमात्रि अर्चने
 दि (सप्तमोभिष) वास्तुशास्त्र पदोंमें
 इयंके इयं स्वाहुति प्राय होता है ।
 अन्तिम पक्ष विवेकानन्द द्वारा प्रस्तुत पद

भी आगये स्विष्टिने स्वाहा' इयं क्रममें
 कर पीछे महाशक्तिशालीपदोंमें अर्चन
 करती करती होगी । इस अर्चन के
 पर वास्तुशास्त्र की भाग करके अर्चने

किमी इजाजत या स्वाहा' इत्यादि क्रममें
 देवताओंको वास्तु दे । पीछे साधारण पूर्व
 कर पीछे हुए अर्चनको अर्चनको अर्च
 अर्चन अर्चन द्वारा अर्चन करे ।
 बाद, कर्करीके समुत्तम नाम द्वारा अर्च
 या वास्तुशास्त्र के अन्तिमोत्तम हाथ
 स्थानमें बार अर्चनो निम्नो अर्चन अर्च
 मोरमें अर्चनो कर अर्चन कर है । पीछे
 भी पीछे वास्तुशास्त्र अर्चनो विचार कर
 दिने साय वास्तुशास्त्र अर्चनो अर्चन अर्च
 पर हाथे ।

बाद अर्चनो अर्चन कर अर्चनो अर्चन
 अर्चनो अर्चनो अर्चन

नमः	नमः
वि	वि
दो	दो

१. 'ओं इमधे' इस प्रकार विसर्जन करके दक्षिणा देनी होती है। पीछे घुट होता, आचार्यों आदिकी धरणाकी दक्षिणा दे कर वह दक्षिणा उन्हें दे देनी होगी। पीछे अष्टिद्रावधारण और वैगुण्यसमाधान करना होगा।

२. पहले लिखा जा चुका है, कि वास्तुयोग चतुःषष्टिपद और एकाशीतिपदके भेदसे दो प्रकारका है। यह पद्धति कहा गई है वह चतुःषष्टिपद वास्तुयोगविषयक है। एकाशीतिपद वास्तुयोग प्रायः इसी पद्धतिके अनु- रूप है, केवल पुत्राकालमें कुछ देवताओंको छोड़ और सभी प्रायः एकसे हैं।

३. एकाशीतिपद वास्तुयोग-प्रयोग—पूर्वोक्त नियमके अनुसार स्वस्तिवाचन सज्जडा आदि करके मण्डल करनेके स्थानमें चार खूँटे गाड़ने और मायमक्त बलि देनेके बाद पञ्चवर्ण चूर्ण द्वारा एकाशीतिपद वायुमण्डल अङ्कित करना होगा। मण्डलके वहिर्भागमें मायमक्त बलि देनेकी विधान है।

इसमें शिवी आदि देवताओंकी पूजा करने होती है। देवताके नाम ये हैं—शिवी, पञ्चेश्वर, जयन्त, कुलिशोयुध, सूर्य, सत्य, शृंग, आकाश, वायु, पुष्य, वितथ, शृङ्गक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दीवारिक, सुग्रीव, पुष्यदन्त, वरुण, असुर, शोष, पाप, अदि, मुखर, भद्रादि, सोम, सर्प, अदिति, दिति, अप, सावित्र, जय, रुद्र, अर्धोमन्, संघित, विवस्वत्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मन्, पृथ्वीधर, आपधरस, ब्रह्मन्, चरकी, विदारी, पूतना और पापराक्षसों।

इन सब देवताओंकी पूजामें होम और पायसका प्रयोग होता है। मण्डल और देवतामें जो कुछ प्रभेद है उसे छोड़ और सभी कर्म पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार करने होंगे। इसी कारण इसके विषयमें और कुछ नहीं लिखा गया। ईशान्दि चरकी पर्यन्त देवताके बदलेमें शिवी आदि पापराक्षसों पर्यन्त देवताकी पूजा होगी वस, इतना ही प्रभेद है। इसमें वायुदेवादि देवताकी भी पढ़लेकी तरह पूजा होती है।

वास्तुयोगकी वेदी पर पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा जो वास्तुमण्डल अङ्कित करना होता है वह चतुःषष्टिपद वास्तुयोगमें एक प्रकारसे और एकाशीतिपद वास्तु-

योगमें भिन्न प्रकारसे है। इन दोनों मण्डलोंका विषय यथाक्रम नीचे लिखा जाता है।

चतुःषष्टिपदवास्तुमण्डल—पूर्वास्य पुरोहित वेदीके पूर्वोक्त मध्यस्थत्रमें मण्डल अङ्कित करे। (सूत्रमें सफेद कड़ोका दाग दे कर जो घर बनाया जाता है वह घर ठीक होता है) पहले हाथ भर लम्बे चौड़े स्थानके चारों पार्श्वमें हाथ भर लम्बे सूतसे चार दाग दे कर चतुःकोण मण्डल बनाये। उस सूतका मध्यस्थल निर्णय करके पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें दो सरल रेखाओंके छौंचनेसे ८ घर होंगे। पीछे मध्यरेखाके दोनों पार्श्वमें तीन तीन रेखा पूर्व पश्चिमकी ओर खींच कर ठोक उसी तरहकी ओर भी छः छः सरल रेखाये खींचे। ऐसा करनेसे पार्श्वरेखाके साथ पूर्व-पश्चिममें ६ और उत्तर दक्षिणमें ६ सरलरेखा अङ्कित करने पर ६४ समान घर बनेंगे।

इसके बाद मण्डलके ईशान और नैऋतकोणस्थित दो घरोंके ईशान और नैऋत कोणकी ओर बकरेखा तथा वायु और अग्निकोणस्थित घरमें वायु और अग्निकोणकी ओर बकरेखा खींचे। ऐसा करनेसे ४ आधिके हिसाबसे ८ घर बनेंगे। ऊर्ध्ववर्षद बलिमें वह आधा घर, एकपद बलिमें एक घर और द्विपद बलिमें ऊपर नीचे दो घर तथा चतुष्वद बलिमें ऊपर नीचे दो और उसके पार्श्ववर्त्तों में दो चार घर समझे जाते हैं।

पूर्वास्यकर्ता शुक्र, कृष्ण, पीत, रक्त और धूम्र इन पांच वर्णके चूर्णको ले कर ईशानकोणसे दक्षिणावर्त्त-क्रमसे पूर्वा, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर तक परिव्यालन करे। मण्डलके मध्य केवल २८ घर शून्य छोड़ देने होंगे।

किस देवताका कौन घर है, उमका नाम तथा उस घरमें किस वर्णका चूर्ण लगेगा उसका विषय नीचे लिखा जाता है। उसी प्रणालीके अनुसार चूर्ण द्वारा यह मण्डल बनाना होगा।

ईशानकोणस्थित घरके ऊपर अर्द्धांशमें ईश, शुक्र, अर्द्धपद अर्द्धात् ईशानस्थान, श्वेनवर्ण अर्द्धशुद्ध (१०), उसके दक्षिण पार्श्वमें पञ्चेश्वर, पीत, एकपद (२), उमके दक्षिण जय, धूम्र, द्विपद (४) शक्र, पीत, एकपद (५)

१० गणपति, १५ भूत, १६ मृग, १७ विष्णुपत्न, १८ शीवा
 रिच, १९ सुमोय, २० पुत्रादत्त, २१ वरुण, २२ भसुर,
 २३ गोप, २४ पात्र, २५ देव, २६ नाग, २७ विष्णुवर्मन,
 २८ भद्रदार, २९ पञ्चभर, ३० नागराज, ३१ श्री, ३२
 दिशि, ३३ शत्रु, ३४ भाग्यवतरा, ३५ भद्रमेनन, ३६ मायिन,
 ३७ मायिनी, ३८ विष्णुपत्न, ३९ इन्द्र, ४० इन्द्राग्रज,
 ४१ मित्र, ४२ वरु, ४३ राजपञ्चन, ४४ घनाघर और
 ४५ प्रदत्त ।

एकदादि अष्ट देवता—१ स्वल्प, २ विश्वी,
 ३ भद्रमेनन, ४ पुत्रना, ५ जमनक, ६ पावराक्षरी, ७ विनि-
 विन्न, ८ परकी ।

इस सब देवताओंकी पूजाके बाद मण्डल मन्त्रस्मरण
 प्रत्यक्षमें परमात्मिनिता पारसुदेव, लक्ष्मी और पारसुदेव
 मन्त्रकी घोषशोभाकारमें पूजा करनी होगी है । इसके बाद
 धराकी और पीछे याम्बुवृन्दकी पूजा करनी होगी ।

अनन्तर प्रत्यक्षमें अक्षयपायल, विष्णुद्वय, स्वर्ण, शीतल
 और पूर्वोक्त साठा घानका घोष ग्राह्य और उसके मुखमें
 प्रत्यक्षिण रत्न मुखके साथ धरतीको स्थापन करे । इस
 कुम्भमें याम्बुवृन्द देवताका स्थापन कर विशेषरूपसे
 पूजा करनी होगी है ।

पीछे पञ्चकुम्भके पूर्वोक्त ईशानकीर्णमें अक्षि अक्षयमें
 विष्णुदेव ज्ञानिहस्तस्य स्थापन करे । उस कल्पके मुखमें
 साम, गोपल, वरु, वाकडू और याम्बुवृन्द दे घोष प्रकाशके
 पक्ष्य तथा गन्ध दे कर इसके ऊपर लये दृढकर्ममें धाम
 और पत्त तथा कुम्भमें पञ्चम पीछे है ।

उस कुम्भमें भाग्यधाम, सप्तधाम, वन्दनीय, मन्वी-
 राजुम, हर, मोक्षल, वरु (परावर) इन सात स्थानों
 को मिट्टी की छायानी होगी है ।

इस प्रकार पूजादि करके होम करना होगा है ।
 मन्त्रके पश्चिम होमके सममुख भगवती द्वारा नमस्कार
 कीजा स्थितिहस्त बना कर विष्णुदेव उसके बायें कुम्भ-
 दिक्कन करनी होगी । इस समय पादपाक करना होगा
 है । पीछे मन्त्र कर्मके अन्तर्गतों सविष्णुकी मन्त्रमें
 ध्यान कर याम्बुवृन्दियन पुत्र द्वारा महाप्राणहृतिहोम करना
 रक्षित है ।

इसके बाद याम्बुवृन्द, विरु, मय या वरुकुम्भके सन्निध

में पूर्वोक्त ईन्द्रादि घानाघर पक्ष्य ४४ पूजित देवताओंके
 से प्रत्येकको भी ईशानाग स्वाहा इम कल्पमें संपूर्ण होम
 होम करे और भी अन्तमें स्वाहा इम कल्पसे एक ही कर
 साहजिक है । इसके बाद पूर्वोक्तमें एकदादि अष्टदेवता
 तथा पारसुदेवादि (लक्ष्मीसिद्ध) याम्बुवृन्द पक्ष्य वरु
 देवताओंमें प्रत्येकको द्वाग द्वाग साहजिक द्वारा होम करे
 पीछे पुनःपुनःसिद्धि घोष विष्णुदेव द्वारा मन्त्र गढ़ कर
 होम करे ।

इसके बाद भी मन्त्रसे सिद्धिहोम स्वाहा इम कल्पमें
 पुनः द्वारा होम कर पीछे महाप्राणहृतिहोमपक्ष्य मन्त्र कर्म
 अन्तमें कर उद्देश्य व मी करना होगा । इस उद्देश्य कर्मके
 बाद वरुमोक्षण पर पापमको ५३ भाग करके ऊपरके घोष-
 में 'एव पापमवर्तिका जी ईशान मन्त्र' इत्यादि कर्मके बाद
 पक्ष्य पूजित देवताओंको पापम दे । पीछे साधारण पूर्वो
 की और मुख कर पीछे हृय सपत्नीक यममानकी मन्त्र
 गढ़ा कर साहित्यकर्मअंग जल द्वारा सन्निहित करे ।

ज्ञानिकके बाद कर्त्तरीके मुखमुख नास द्वारा उर
 दाह्य और मण्डल या याम्बुवृन्द सन्निहितमें हाथ मर
 लाये पीछे स्थापनमें पाद उभयों मिट्टी और गन्ध
 बनाये और मोक्षरसे विष्णुदेव कर मुद्र कर दे । पीछे
 भाग्यधाम पूर्वोक्तों पीछे याम्बुवृन्द द्वाराकी विष्णु करे,
 बायें भाग्यधामके साथ याम्बुवृन्दके प्रत्यक्ष उदा कर
 इस स्थान पर लाये ।

इसके बाद भाग्यधाम पुत्रना देह कर कुम्भके मन्त्र
 पीछे और घटमें जल ले कर घटनके उद्देश्य अर्पण
 प्रदान करे ।

पीछे कर्त्तरीके जल, सप्त जल और मन्त्रके जल
 से गढ़ मन्त्रों भर कर भी इस मन्त्रमें मुक्त पुत्र प्राप्त है ।
 इस पुत्रके सन्निधानमें होमियं मृग और वायवीय होम-
 में अग्रज होगा है । इसके बाद पर मन्त्र ईन्द्र मन्त्र
 मन्त्रमें घरी पर गाह दे ।

उस पक्ष्यके मन्त्र, वरुमोक्षण तथा साहित्य और
 कर्त्तरी पायल, मृग, मोक्षल, सपत्नी, मित्र और वरुमोक्षण
 कर मुद्र सिद्धि । इसकी पुनः नम देना होगी ।

इसके बाद भाग्यधाम याम्बुवृन्दके पूजित देव-
 ताओंकी उदा द्वारा मन्त्र गढ़ कर देवमन्त्र करे ।

(१) 'ओं झमधंवे' इस प्रकार विस्तारन करके दक्षिणा देनी होती है। पीछे घृत होता, आचार्यर्षी आदिको वरणकी दक्षिणा दे कर वह दक्षिणा उन्हें दे देनी होगी। पीछे अष्टिद्रावधारण और वैगुण्यसमाधान करना होगा।

पहले लिखा जा चुका है, कि वास्तुयाग चतुःषष्टिपद और एकाशीतिपदके भेदसे दो प्रकारका है। यह पद्धति कही गई है वह चतुःषष्टिपद वास्तुयागविषयक है। एकाशीतिपद वास्तुयाग प्रायः इसी पद्धतिके अनु-रूप है, केवल पूजाकालमें कुछ देवताओंको छोड़ और सभी प्रायः एकसे हैं।

एकाशीतिपद वास्तुयाग-प्रयोग—पूर्वोक्त नियमके अनुसार स्वस्तिवाचन सङ्कटा आदि करके मण्डल करनेके स्थानमें चार खूँटे गाड़ने और मायमक बलि देनेके बाद पञ्चवर्ण चूर्ण द्वारा एकाशीतिपद वायुमण्डल अङ्कित करना होगा। मण्डलके घटिभागमें मायमक बलि देनेका विधान है।

इसमें शिबो आदि देवताओंकी पूजा करनी होती है। देवताके नाम ये हैं—शिबो, पञ्चम्य, जयन्त, कुलि शायुध, सूर्य, सत्य, भृंग, आकाश, वायु, पूरण, वितथ, यूरक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुभोव, पुण्यदन्त, वरुण, असुर, शोष, पाप, अहि, मुष्य, भृङ्गा, सोम, सर्प, अदिति, दिति, अप, साधिन, जय, रुद्र, अर्धामन, सवितृ, विवस्वतृ, विद्युधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मन्, पृथ्वीधर, भापयत्स, ब्रह्मन्, चरको, विदारी, पूनना और वापरोक्षसो।

इन सब देवताओंकी पूजामें होम और पापसका प्रयोजन होता है। मण्डल और देवतामें जो कुछ प्रभेद है उसे छोड़ और सभी कर्म पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार करने होंगे। इसी कारण इसके विषयमें और कुछ नहीं लिखा गया। ईशादि चरकी पर्यन्त देवताके बदलेमें शिबो आदि पापराक्षसी पर्यन्त देवताकी पूजा होगी वस, इनका ही प्रभेद है। इसमें वास्तुदेवादि देवताकी भी पहलेकी तरह पूजा होती है।

वास्तुयागकी वेदी पर पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा जो वास्तुमण्डल अङ्कित करना होता है वह चतुःषष्टिपद वास्तुयागमें एक प्रकारसे और एकाशीतिपद वास्तु-

यागमें भिन्न प्रकारसे है। इन दोनों मण्डलोंका विषय यथाक्रम नीचे लिखा जाता है।

चतुःषष्टिपदवास्तुमण्डल—पूर्वोक्त पुरोहित वेदीके पूर्वोक्त मध्यस्थानमें मण्डल अङ्कित करें। (सूतमें सफेद कड़ोका दाग दे कर जो घर बनाया जाता है वह घर ठीक होता है) पहले हाथ भर लम्बे चौड़े स्थानके चारों पार्श्वमें दाघ भर लम्बे सूतसे चार दाग दे कर चतुःकोण मण्डल बनावे। उस सूतका मध्यस्थल निर्णय करके पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें दो सरल रेखाओंके खींचनेसे ८ घर होंगे। पीछे मध्यरेखाके दोनों पार्श्वमें तीन तीन रेखा पूर्व पश्चिमकी ओर खींच कर ठीक उसी तरहकी और भी छः छः सरल रेखायें खींचे। ऐसा करनेसे पार्श्वरेखाके साथ पूर्व-पश्चिममें ६ और उत्तर दक्षिणमें ६ सरलरेखा अङ्कित करने पर ६४ समान घर बनेंगे।

इसके बाद मण्डलके ईशान और नैऋतकोणस्थित दो घरोंके ईशान और नैऋत कोणकी ओर चक्ररेखा तथा वायु और अन्निकोणस्थित घरमें वायु और अन्निकोणकी ओर चक्ररेखा खींचे। ऐसा करनेसे ४ भाषिके हिसाबसे ८ घर बनेंगे। ऊर्ध्वपद बलिमें वह आधा घर, एकपद बलिमें एक घर और द्विपद बलिमें ऊपर नीचे दो घर तथा चतुःषष्टि बलिमें ऊपर नीचे दो और उसके पार्श्ववर्ती दो दो चार घर समझे जाते हैं।

पूर्वोक्तकर्त्ता शुक्र, कृष्ण, पीत, रक्त और धूम्र इन पांच वर्णके चूर्णको ले कर ईशानकोणसे दक्षिणावर्त्त-क्रमसे पूर्वा, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर तक परिचालन करें। मण्डलके मध्य केवल २८ घर शून्य छोड़ देने होंगे।

किस देवताका कौन घर है, उसका नाम तथा उस घरमें किस वर्णका चूर्ण लगेगा उसका विषय नीचे लिखा जाता है। उसी प्रणालीके अनुसार चूर्ण द्वारा यह मण्डल बनाना होगा।

ईशानकोणस्थित घरके ऊपर अर्द्धांशमें ईश, शुक्र, अर्द्धपद अर्धात् ईशास्थान, श्वेनवर्ण अर्द्धशुद्ध (॥०), उसके दक्षिण पार्श्वमें पञ्चम्य, पीत, एकपद (२), उसके दक्षिण जय, पूष, द्विपद (४) शक्र, पीत, एकपद (५)

१४ गणधर, १५ भृश, १६ मृग, १७ विष्णुमय, १८ दीवा
 रिक्, १९ सुषोम, २० पुत्राश्रय, २१ यद्वन, २२ अशुभ,
 २३ जीव, २४ वाय, २५ शैव, २६ जाम, २७ विश्वरमेव,
 २८ मन्त्राद, २९ मन्त्रेश्वर, ३० नागराज, ३१ श्री, ३२
 शक्ति, ३३ भाव, ३४ भावपरम, ३५ यद्वेगन, ३६ नाविक,
 ३७ नाविकता, ३८ विवलय, ३९ इन्द्र, ४० इन्द्राग्रमन्त्र,
 ४१ मित, ४२ इन्द्र, ४३ शशपरमन्त्र, ४४ धराधर और
 ४५ प्रद्वन् ।

स्कन्दादि ऋषि देवता—१ स्कन्द, २ विहारी,
 ३ स्कन्दमन्त्र, ४ पूषता, ५ अन्वक, ६ पावराक्षसी, ७ विजि
 विष्णु, ८ शरकी ।

इन सब देवताओंकी पूजाके बाद मन्त्राल मन्त्राभिषेक
 प्रत्यहमें परमादिगित यासुदेव, लक्ष्मी और यासुदेव-
 मन्त्रकी पाहुणोपचारमें पूजा करने होनी है । इसके बाद
 धराकी और सोते यासुदेवकी पूजा करनी होगी ।

अनन्तर प्रत्यहमें अन्ननवापण, विष्णु मन्त्र, स्कन्द, वीर्य
 और पूर्वांक साठो धामका शीत ज्ञाते और उसके सुलयें
 प्रत्यहिन एक मूत्रके साथ पढ़नीं व्यापण करे । इन
 बुझमें यासुदेव देवताका भाषाहन कर विशेषरूपमें
 पूजा करने होनी है ।

सोते पशुबुझके पूर्वाक्षर ईशानकीनमें दधि मन्त्रमें
 विष्णुविज नागिनकस्य व्यापण करे । उस बुझमें सुषोम
 नाम, सोमज, यद, पाकूठ और यद्वन् पर ये पाँच प्रजाके
 पशु तथा मय दे कर उनके ऊपर मधे दक्षकमें धान
 और फल तथा बुझमें पशुपाल छोड़ दे ।

उस बुझमें भास्वनाम, पात्रस्थान, यन्त्री, शरी-
 मन्त्र, हर, सोमूय, रथ (यद्वन्) इन नाम भगानों
 को मिष्टो भी जातनी होनी है ।

इस प्रकार पूजादि करने हीम करना होता है ।
 मन्त्रालके परिचय होताके समुच्च मागमें हाथ भर लक्ष्मी
 कीका स्पर्शिकर बना कर विष्णुमन्त्र जपके बाद पुनः
 विवका करने होगी । इस समय यादवाक करना होना
 है । सोते प्रद्वन् जपके आरम्भमें मन्त्रिकों मन्त्रमें
 डाल कर मन्त्रविधि पून द्वारा मन्त्राहमिदोम करना
 अधिक है ।

इसके बाद मन्त्र, मित, यद वर यद्वन्करके मन्त्रिक

ये पूर्वांक ईजादि धराधर स्कन्दादि पूजित देवताओंके
 से मन्त्रेककी को ईशानाय स्वाहा इन मन्त्रमें स्पर्शिकर
 होम करे और जो मन्त्रमें स्वाहा इन मन्त्रमें वर ही इन
 आहूत है । इसके बाद पूर्वाकमें स्कन्दादि मन्त्रोका
 तथा यासुदेवार्थ (लक्ष्मीमिथ) मन्त्रमूत्र पर्वण वरु
 देवताओंमें मन्त्रेकको वन वन स्पर्शिकर द्वारा होम करे ।
 सोते पूनमन्त्रमिथ पाँच विवकाय द्वारा मन्त्र वर
 होम करे ।

इसके बाद भी मन्त्रमें स्पर्शिकरमें स्वाहा इन मन्त्रमें
 पून द्वारा होम कर सोते महास्पर्शिकरमें मन्त्रेक
 भाषाण कर उर्वीय वरु करना होगा । इस उर्वीय वरुके
 बाद उद्वीयव वर पापवकी ५३ भाग करके जपके छोरे-
 में 'वय पापवमन्त्रः श्री ईशाय मन्त्रः इत्यादि मन्त्रमें वरु
 पर्वण पूजित देवताओंकी पापव दे । सोते भाषाणमें पूर्वे
 की और मुन वर येते हुए मन्त्रकीक वमन्त्राको मन्त्र
 पदा वर मागिकावमन्त्राज्जि जप द्वारा मन्त्रेक करे ।

नागिनके बाद करेकीके मन्त्रमूत्र नाच द्वारा मन्त्र
 ज्ञाते और मन्त्राल वा यासुदेके मन्त्रिकोंमें हाथ भर
 लक्ष्मी सोते व्यापणमें याद उंगको मिष्टो मोद मन्त्र
 रनाम और सोदरमें विष्णोम कर मन्त्र कर दे । सोते
 भाषाणमें पूर्वांशुकी येत मन्त्रमूत्र मन्त्राकी मन्त्रा करे,
 बादमें यादार्थिके साथ यासुदेवमन्त्रमें मन्त्रपट्ट उदा वर
 इन व्यापण पर साथे ।

इसके बाद भाषाणमें पुष्ट्या देक कर बुझके मन्त्रो
 येते और यदमें जप ले कर यद्वन्करे उर्वीय वरु
 मन्त्रा करे ।

सोते वरुकीके जप, मन्त्रजप और मन्त्रपट्टके जप
 में यद वरुं भर कर भी इन मन्त्रों मन्त्र पुन हाथ दे ।
 इन बुझके स्पर्शिकरमें सोतेमें मुम और भाषाणमें ही-
 में मन्त्रा होना है । इसके बाद यद वरु ईद ले कर
 मन्त्रमें यद्वी वरु पाद दे ।

उस मन्त्रमें पशुपाल, यद्वीयव तथा मन्त्रिक और
 स्पर्शिकर मन्त्र, मूत्र, सोमूय, मन्त्र, मित और यद्वीयव
 कर मन्त्र मिष्टोम इनको पुनः भर देना होगी ।

इसके बाद भाषाणमें यासुदेवमन्त्रमें पूजित देव
 ताओंकी मन्त्र द्वारा मन्त्र वरु कर उर्वीय वरु है ।

होनेके बाद अथगिष्ट उनतोस घरोंमें पूर्वाधिक्रमसे दक्षिण-
वर्त्तमें अङ्कित करना होता है।

पर्जन्य एकपदके नीचे आप, श्वेत, एकपद (५३) उसके पार्श्वमें जयन्त द्विपदके नीचे आपवत्स, गौर, एकपद (५४) उसके दक्षिण कुलिशागुघ सूर्य, सद्य-
पदतयके नीचे अर्धमा, पाण्डुरवर्ण, त्रिपद (५७) भृगु द्विपदके नीचे इन्द्रात्मज, पीत, एकपद (५८) आकाश एकपदके नीचे सावित, रक्त, एकपद (५९) गृहक्षत, यम, मन्धर्वा इन तीन घरोंके नीचे विवस्थत्, रक्त, त्रिपद (६२) भृङ्गराज द्विपदके नीचे विद्युघ्राधिप, पीतवर्ण, एकपद (६३) मृग एकपदके नीचे जय, श्वेत, एकपद (६४) पुष्यदन्त, घठण, असुर, त्रिपदके नीचे मित, शुक्र, त्रिपद (६७) ज्योष द्विपदके नीचे राजवध्मा, पीत, एकपद (६८) रोग, एकपदके नीचे रुद्र, शुक्र, एकपद (६९) भद्राट, सोम, सर्प त्रिपदके नीचे पृष्वीघर, श्वेत, त्रिपद (७२) मध्यस्थलके नौ घरोंमें ब्रह्म, रक्त-
वर्ण, नयपद (८१)।

इस प्रकार ८१ घर पूर्ण करके मण्डलके बाहर चारों
कोणमें चार पुसलिकाकी तरह अङ्कित करे—ईशानकोणमें
चरकी रक्तवर्ण। (१) अग्निकोणमें विदारी कृष्णवर्ण
(२) नैऋतकोणमें पूतना श्यामवर्ण (३) वायुकोणमें
पापराक्षसी गौरवर्ण (४)।

उक्त प्रकारसे मण्डल बना कर उसमें उल्लिखित देव-
ताओंकी पूजा करना होता है। वास्तुगृहप्रतिष्ठास्थलमें
एकाशीतिपद वास्तुमण्डल बना कर उसमें वास्तुयाग
करे।

वास्तुयागतत्त्वमें लिखा है, कि यदि वास्तुयागमें
यह मण्डल न बना सके, तो शालग्राम शिला पर उन सब
देवताओंकी पूजादि करे।

यह विधान असमर्थके लिये जानना होगा। उक्त
प्रकारसे मण्डल बना कर ही वास्तुयाग करना उचित है।
वास्तुयागके शेषमें दानादि द्वारा ब्राह्मणोंकी परितोष करे।
पुरोहितको सर्वोपधि द्वारा यज्ञमानका शांतिविधान
करना चाहिये। इस प्रकार वास्तुयाग करनेसे वास्तुके
सभी शेष जाते रहने हैं। (वास्तुयागस्य)

वास्तुयाग करने पर भी गृहप्रवेशकी जो सब विधियां

हैं, उनके अनुसार गृहमें प्रवेश करना होता है। यह भी
वारी शब्द देखो।

वास्तुवस्तुक (सं० क्लो०) वास्तुक शाक, वधुजा नाम-
का साग।

वास्तुविद्या (सं० खो०) वास्तुविषयक विद्या, यह
विद्या जिससे वास्तु या इमारतके सम्बन्धकी सारी
बातोंका परिज्ञान होता है। शिष्यशास्त्र देखो।

वास्तुविधान (सं० क्लो०) वास्तुनो विधानं। वास्तु-
विषयक विधान, वास्तु विधि।

वास्तुशांति (सं० खो०) वे शांति आदि कर्म जो नवयोन
गृहमें प्रवेश करते समय किये जाते हैं।

वास्तुशास्त्र (सं० क्लो०) वास्तुविषयक शास्त्रं। वास्तु-
विषयक शास्त्र, वास्तुविद्या। जिस शास्त्रमें मान रहनेसे
वास्तुविषयक सभी तत्त्व जाने जा सकते हैं उसे वास्तु-
शास्त्र कहते हैं। शिष्यशास्त्र देखो।

वास्तुसंमद (सं० पु०) वास्तुशास्त्रभेद।

वास्तुह (सं० त्रि०) वास्तुहन्ता, निवित् स्थान हनन-
कारी। (ऐतरेयब्रा० ३।११)

वास्तुक (सं० पु० क्लो०) वसन्ति गुणा अत्रेति वस ऊचुका-
दयश्चेति साधु। शाकधिशेष, वधुजा। पर्याय—वास्तु,
वास्तुक, वस्तुक, वस्तुक, हिलनोविका, शाकराज, राज-
शाक, चक्रासौ। गुण—मधुर, शीतल, क्षार, मादक,
त्रिदांपनाशक, रुचिकर, उव्रनाशक, अर्शरोगमें विशेष
उपकारी, मल और सूत्रशुद्धिकारक। (राजनि०)

वास्ते (अ० अथ०) १ निमित्त, लिये। २ हेतु, सबब।
वास्तेय (सं० त्रि०) १ वस्तिस्वग्न्धी। २ वस्नस्वग्न्धी।
३ वास्तुस्वग्न्धी। वस्ती भव (दत्तकुलिकालशिवस्वयम्पदे
डम्। पा० १।३।५६) इति ढम्। ४ वस्तिभव। (दान्दोय-
३।१६।१) वस्तिरिय वस्ति (वस्ते ढम्। पा० १।३।१०२)
इति ढम्। ५ वस्तिस्वहृत्।

वास्तोष्पति (सं० पु०) वास्तोगृहक्षेत्येव पतिरधिष्ठाता
वास्तोष्पतिगृहमेवाच्छ व। इति निपातनात् अलुक-
पदवद्, यद्वा वस्तवन्तरीसु तस्य पतिः पाता विभुत्वेन
इति निष्पन्दुटीकायां देवराजयजुषा ५।४।६ १ इन्द्र।
२ देवतामात्र। (भागवत १०।१०।५३) (त्रि०) गृहपाल-
विता, घरका पालन करनेवाला। (शूक् ७।५।१)

मन्त्रः, मन्त्रः, पञ्चमः (३) मन्त्रः, मन्त्रः, द्विज (८)
 मन्त्रः, मन्त्रः, पञ्चमः (१) अग्निहोत्रम् इषोम, कृष्णः,
 अर्धपद (१०), अग्नि, इषोम, अर्धपद (१०), पूषणः,
 इषोम, पञ्चमः (११) विषयः, इषोम, द्विज (१२) गृह-
 षण, इषोम, पञ्चमः (१३) वनः, इषोम, पञ्चमः (१४) मन्त्र-
 षण, द्विज (१५) मृद्, इषोम, पञ्चमः, मैत्रिकोत्रम्—
 मृग, वीर, अर्धपद (१६) विष्णु, इषोम, अर्धपद (१७)
 वीरारिः, मृद्, पञ्चमः (२०) सुभोषः, इषोम, द्विज (२२)
 पुण्डरीक वीर, पञ्चमः (२३) पञ्चलः, मृद्, पञ्चमः (२४)
 अर्धुः, इषोम, द्विज (२५), वीर, नाभावर्णः, पञ्चमः
 (२६) चातुर्वीर्यम्—वीर, इषोम, अर्धपद (२७)
 वीर, इषोम, अर्धपद (२८) मीर, इषोम, पञ्चमः (२९)
 विषयः, वीर, द्विज (३१) अर्धपद वीर, पञ्चमः (३२)
 वनोन्मत्तः, मृद्, पञ्चमः (३३) नाभरामः, इषोम, द्विज
 (३४) अरि, वीर, पञ्चमः (३५) मीरम् ईमानहोत्रम्
 द्विज, इषोम, अर्धपद (३६) ।

इय प्रकार चारो तोरके परीम पांच वर्णके चूर्ण
 द्वेके बाद पूरं भोके पर्याप्तके संवत्त पोतमृदके
 निम्नपूरमें मन्त्रः, मन्त्रः, पञ्चमः (३७) मन्त्र संवत्त मन्त्रः,
 पूषण, द्विजके नामे मृदाय परीम भाष्यमन्त्रः, वीर, पञ्चमः
 (३८) इयके द्विज ५ तथा ३ संवत्त मृदके मोये चार
 चारोंमें इषोमा, इषोम, चतुर्षु (४२) एम संवत्त
 मन्त्रः, मन्त्रः, द्विजके नामे मन्त्रः, मन्त्रः, मृद्, पञ्चमः
 (४३) इम संवत्त मृदावदके नामे मन्त्रः, इषोम, पञ्चमः
 (४४) मृदाय, वन इषोम संवत्त मन्त्रके नामे विषयम्,
 इषोम, चतुर्षु (४८) २० दीर्घारिः मन्त्रः, पञ्चमःके
 नामे इषोम, वीर, पञ्चमः (४९) सुभोष २२ द्विजके
 नामे इषोम मन्त्र वीर, पञ्चमः (५०) पुण्डरीक पञ्चल
 २३, २४ मन्त्रके मोये मन्त्रः, इषोम, चतुर्षु (५४)
 अर्धुः द्विजके नामे मन्त्रः, वीर, पञ्चमः (५५)
 २७ वीर, नाभावर्णः, पञ्चमःके नामे मन्त्रः, मृद्, पञ्चमः
 (५६) अर्धपद, पञ्चमः २८, २९ मन्त्रके नामे मन्त्रः,
 वन, चतुर्षु (६०) नभावर्णमें मन्त्रः, इषोम, चतु-
 र्षु (६४) ।

मन्त्रके बाद चारों दिशाओंमें पुनः चारों
 द्वेकी ईमानहोत्रमें चारों चतुर्षु (६४) ।

पूरमें मन्त्र वीर (६) मन्त्रहोत्रमें विषयों मन्त्रों
 (७) द्विजमें अर्धपद इषोम (८) मैत्रिकोत्रमें पुष्यः
 इषोम (९) पञ्चममें मन्त्र इषोम (१०) चतुर्वीर्यमें
 मन्त्र इषोम (११) इषोममें विषय मन्त्र (१२)

इय प्रकारके चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु

पञ्चकोनियत चतुर्षु मन्त्र—चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 मन्त्रमें इषोम चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु

इम प्रकारके चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु
 चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु

ईमानहोत्र मृदों मन्त्रों, इषोम, पञ्चमः (१) इयके
 द्विज पर्याप्त, वीर, पञ्चमः (२) अर्धपद, मृद्, द्विज
 (३) कुनिमामन्त्रः, वीर, द्विज (४) मृद, इषोम, द्विज
 (५) मन्त्र, इषोम, द्विज (६) मृग, वीर, द्विज (७)
 मन्त्रः, मृद्, पञ्चमः (१२) अग्निहोत्रम्—वीर, मृद्,
 पञ्चमः (१४) पूषण, इषोम, पञ्चमः (१५) विषयः,
 इषोम, द्विज (१६), गृहण, इषोम, द्विज (१७) वनः,
 इषोम, द्विज (१८) मन्त्र, वीर, द्विज (१९) अर्ध-
 पद, इषोम, द्विज (२०) मृग, वीर, पञ्चमः (२१)
 मैत्रिकोत्रम्—सुभोष, इषोम, पञ्चमः (२२) वीरारिः,
 इषोम, पञ्चमः (२८) विष्णु, इषोम, द्विज (३०) पुण-
 ढरीक, इषोम, द्विज (३२) पञ्चल, इषोम, द्विज (३३)
 अर्धुः, इषोम, द्विज (३४) वीर, इषोम, द्विज (३५)
 वीर, मृद्, पञ्चमः (३६) चातुर्वीर्यम्—वीर, इषोम, पञ्च-
 मः (४०) अर्धपद, इषोम, पञ्चमः (४१) मृद, इषोम,
 द्विज (४२) अर्धपद, वीर, द्विज (४३) वीर, मृद्,
 द्विज (४४) अर्धपद, इषोम, द्विज (४५) अर्धपद, इषोम,
 द्विज (५१) मीर द्विज, इषोम, पञ्चमः (५२) ।

इम प्रकार चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु चतुर्षु

होनेके बाद अग्रगण्य उनतोस घरोंमें पूर्वादिकमसे दक्षिण-
वर्त्तमें अङ्कित करना होता है ।

परम्य एकपदके नीचे आप, श्वेत, एकपद (५३)
उसके पार्श्वोंमें जयन्त द्विपदके नीचे आपवत्स, गौर,
एकपद (५४) उसके दक्षिण कुलिशायुष सूर्य, सत्य-
पदत्रयके नीचे अर्धमा, पाण्डुरवर्ण, त्रिपद (५७) भृश
द्विपदके नीचे इन्द्रात्मज, पोत, एकपद (५८) आकाश
एकपदके नीचे सावित, रक्त, एकपद (५९) गृहक्षत,
यम, गन्धर्व इन तीन घरोंके नीचे विवस्वन्, रक्त, त्रिपद
(६२) भृङ्गाक्ष त्रिपदके नीचे विबुधाधिप, पोतवर्ण,
एकपद (६३) मृग एकपदके नीचे जय, श्वेत, एकपद
(६४) पुष्पदन्त, धरुण, असुर, त्रिपदके नीचे मित्र,
शुक्र, त्रिपद (६७) शोष द्विपदके नीचे राजवध्ना, पोत,
एकपद (६८) रोग, एकपदके नीचे रुद्र, शुक्र, एकपद
(६९) भद्राट, सोम, सर्प त्रिपदके नीचे पृथ्वीधर,
श्वेत, त्रिपद (७२) मध्यस्थलके नीचे घरोंमें ब्रह्म, रक्त-
वर्ण, नवपद (८१) ।

इस प्रकार ८१ घर पूर्ण करके मण्डलके बाहर चारों
कोणमें चार पुच्छलिकाकी तरह अङ्कित करे, ईशानकोणमें
चरको रक्तवर्ण । (१) अग्निकोणमें विदारी कृष्णवर्ण
(२) नैऋतकोणमें पूतना श्यामवर्ण (३) वायुकोणमें
प्रापराक्षसी गौरवर्ण (४) ।

उक्त प्रकारसे मण्डल बना कर उसमें उल्लिखित देव-
ताओंकी पूजा करनी होती है । वासुगृहप्रतिष्ठास्थलमें
प्राशातिपद वास्तुमण्डल बना कर उसमें वास्तुयाग
करे ।

वास्तुयागतत्त्वमें लिखा है, कि यदि वास्तुयागमें
यह मण्डल न बना सके, तो शालग्राम शिला पर उन सब
देवताओंकी पूजादि करे ।

यह विधान असमर्थके लिये जानना होगा । उक्त
प्रकारसे मण्डल बना कर ही वास्तुयाग करना उचित है ।
वास्तुयागके शेषमें दानादि द्वारा ब्राह्मणोंको परितोष करे ।
पुरोहितको सयोंपधि द्वारा यज्ञमानका शान्तिविधान
करना चाहिये । इस प्रकार वास्तुयाग करनेसे वास्तुके
सभी शेष जाते रहते हैं । (वास्तुयागवत्स)

वास्तुयाग करने पर भी गृहदेवशकी जो सब विधियाँ

हैं, उनके अनुसार गृहमें प्रवेश करना होता है । यह भी
घाटी शब्द देखो ।

वास्तुवस्तुक (सं० क्लो०) वास्तुक शाक, वधुआ नाम-
का साग ।

वास्तुविद्या (सं० खो०) वास्तुविषयक विद्या, यह
विद्या जिससे वास्तु या इमारतके सम्बन्धकी सारी
बातोंका परिज्ञान होता है । शिष्यशास्त्र देखो ।

वास्तुविधान (सं० क्लो०) वास्तुनो विधान । वास्तु-
विषयक विधान, वास्तुविधि ।

वास्तुशान्ति (सं० खो०) ये शान्ति आदि कर्म जो नवीन
गृहमें प्रवेश करते समय किये जाते हैं ।

वास्तुशास्त्र (सं० क्लो०) वास्तुविषयक शास्त्र । वास्तु-
विषयक शास्त्र, वास्तुविद्या । जिस शास्त्रमें ज्ञान रहनेसे
वास्तुविषयक सभी तत्त्व जाने जा सकते हैं उसे वास्तु-
शास्त्र कहते हैं । शिष्यशास्त्र देखो ।

वास्तुसंग्रह (सं० पु०) वास्तुशास्त्रसंग्रह ।

वास्तुह (सं० त्रि०) वास्तुहस्ता, निवित् स्थान हनन-
कारी । (ऐतरेयब्रा० ३।११)

वास्तुक (सं० पु० क्लो०) वसन्ति गुणा अत्रेति वस ऊरूका-
दयचेति साधु । शाकविशेष, वधुआ । पर्याय—वास्तू,
वास्तुक, वस्तुक, हिलभौविका, शाकराज, राज-
शाक, चक्राण्ठी । गुण—मधुर, शीतल, क्षार, मादक,
विदोषनाशक, रुचिकर, ज्वरनाशक, अग्नीरोगमें विशेष
उपकारी, मल बाँध मूत्रशुद्धिकारक । (राजनि०)

वास्ते (अ० अण्य०) १ निमित्त, लिये । २ हेतु, सबव ।

वास्तेव (सं० त्रि०) १ वस्तिस्वग्न्धी । २ वस्तिस्वग्न्धी ।

३ वास्तुस्वग्न्धी । वस्ती भयं (दंतकुम्भिकशिवस्त्यस्यदे

द्व्य् । पा ५।३।१६) इति द्व्य् । ४ वस्तिमयं (द्वान्द्वोग्य-

३।१६।२) वस्तिरिव वस्ति (वस्ते द्व्य् । पा ५।३।१०१)

इति द्व्य् । ५ वस्तिस्वद्वय ।

वास्तोष्पति (सं० पु०) वास्तोगृहक्षेत्रस्य पतिरधिष्ठाता

वास्तोष्पतिगृहमेवाच्छ च । इति निपातनात् अलुक-

पत्वद्भ्य, यद्वा वस्त्वन्तरीक्षं तस्य पतिः पाता विमुस्वेत'

इति निघण्टुटीकायां देवराजयज्या ५।४।६) १ इन्द्र ।

२ देवतामात्र । (भागवत १०।१०।१३) (त्रि०) गृहपाल-

विता, घरका पालन करनेवाला । (शूक् ७।१५।१)

साधारणतः लघुणपरिष्कृत जल १०२ डिग्री तापान्शमें, स्रोतपरिष्कृत जल ११६ डिग्री तापान्शमें, कार्बोनेट आयोटाश परिष्कृत जल १३५ डिग्री तापान्शमें और चूर्ण विभिन्नित जल १७६ डिग्री तापान्शमें खोलता है।

मुसोने ससिओकी परीक्षासे स्थिर किया है, कि माट क्लड्ड पर्वत पर १८५ डिग्री तापान्शमें जल उबलता है। यह पर्वत समुद्रवक्षसे तीन मील ऊंचा है। मुसो विरुकी गणनामें देखा गया है, कि पेचिसपोडा पर्वत पर भी १८५ डिग्री तापान्शमें जल खोलने लगता है। प्रति ५६६ फीटकी ऊंचाईमें १८ डिग्री स्फोटनाङ्क का तादरभ्य होता है। घातचपातमें २१२ डिग्री तापान्शमें और ग्लासपातमें २१४ डिग्री तापान्शमें स्फुटित होता है। फिर किसी पातक अभ्यन्तर भागमें कलई का देने पर उसमें २२० डिग्री उच्चाप देनेसे भी जल नहीं उबलता। नमक, चीनी और अन्धान्य पदार्थ मिले हुए जलको उबालनेमें अधिक मात्रामें ताप देनेकी आवश्यकता है। मेथेलिक, इथिलिक, प्रामिलिक और बुटिलिक भेदने जो पलकोहल है, उनके स्फोटनाङ्क भी मिश्र भिन्न हैं। इसी तरह हाइड्रोकार्बन, वेजोल, टेलिओल आदि भी मिश्र-मिन्न तापान्शमें स्फुटित होते हैं। (जलीय वाष्पके सम्बन्धमें अन्धान्य विषय वायुज्ञान, वृष्टि और गिशिर, शब्दोंमें देखना चाहिये।)

वाष्पयन्त्र (Steam Engine) — वाष्पके प्रभावसे चली हुई कल।

वर्तमान समयमें अग्निकाश पाठकोंने विविध स्थलोंमें एोम-पञ्जिन देखे होंगे। इस समय हम हाटमें, घाटमें, पथमें, मैदानमें, नगरमें, प्रान्तरमें समी जगह एोम पञ्जिनका बहुत प्रचलन देख रहे हैं। किस समय किस तरह किसके द्वारा सर्वप्रथम इस पञ्जिनका आविष्कार हुआ, इस बातकी जाननेके लिये किसको कौतुहल न होगा? इस समय हम जिसे एोम पञ्जिन कहते हैं, वह पहले फायर पञ्जिन नामसे पुकारा जाता था। हिन्दी भाषामें एोम पञ्जिन या फायर पञ्जिन 'वाष्पयन्त्र' नामसे अभिहित होता है। यद्यपि संस्कृत भाषामें वाष्प शब्द ऊष्मा और जलीयवाष्प दोनोंका ही परिचायक है। अग्निसम्भवापी जलरागिसे वाष्पका निकालना और संवद्ध पातकके संकोर्ण छिद्रव्ययसे

उसे प्रबल वेगसे बाहर निकालनेकी घात अति प्राचीन कालमें भी मानवमण्डलीकी मालूम थी। ईसासे १०० वर्ष पहले प्राचीन यूनान नगरीमें एक प्रकार वाष्पीय यन्त्रकी काटर्भणालीकी घात प्राचीन यूरोपके वैज्ञानिक इतिहासमें लिखा है। मिस्र और रोमके प्राचीन इतिहासमें भी विविध प्रकारके वाष्पयन्त्रोंका उल्लेख दिखाई देता है। किन्तु वाष्पयन्त्र द्वारा गतिक्रिया निष्पादित हो सकती है और यह उस गतिक्रियाका अति ध्रष्टसाधन है, इङ्ग्लैण्डके माथिक्स आय चाचेटरके समयसे पहले किसीको विदित न था। सन् १६६३ ई०में उन्होंने एक छोटा प्रथम प्रणयन किया, इसका नाम "A century of the Nomes and Scantlings of inventions" है। इस प्रथममें उन्होंने जलीय वाष्पकी गतिक्रिया-निष्पादनी शक्तिके उल्लेख उन्हींके सबसे पहले ऊपर जल उठानेके लिये एक वाष्पयन्त्रका आविष्कार किया। इसीसन्की १७वीं शताब्दीके अन्तमें वाष्पीय यन्त्रसाधनकी सविशेष चेष्टा परिलक्षित होती है। इस समय फ्रान्सीसी वैज्ञानिक सुप्रसिद्ध पेपिनने (Papin) वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति की। ये मारबार्ग नगरके गणितशास्त्रके अध्यापक थे। उस समय फ्रान्सदेशमें इनकी तरहका सुविश्व पञ्जीनपर दूसरा कोई न था। ये पिष्टन (Piston) और सिलिण्डर (Cylinder) आदिके सहयोगसे वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति की।

पेपिनके प्रवर्तित एोम पञ्जिनमें अनेक लुटियाँ थीं। यह कभी भी कार्ययोगी नहीं हुई। टयास सेमरी नामक एक अङ्गरेजने जो एोम पञ्जिन बनाया था, उससे ही सबसे पहले एोम पञ्जिनका व्यवहार जनसमाजमें प्रवर्तित हुआ। सन् १६६८ ई०में उन्होंने इसकी रजिद्रो कराई। इन सब कलोंसे जल ऊपर उठानेका कार्य लिया जाता था। इसके बाद कितने ही इसी-नियर नाना प्रकारके एोम पञ्जिनोंका निर्माण किया है। किन्तु ये सब यन्त्र जैसे प्रयोजनोय नहीं समझे गये। सन् १७०५ ई०में डार्टमाउथ निवासी न्यूकामेन नामक एक कर्मकारने एक नई तरहके वाष्पयन्त्रका निर्माण किया। इस यन्त्रमें वाष्पराशि-के घनोभूत करनेके लिये अभिनय उपाय विदित हुआ

किसीने हस्तक्षेप नहीं किया। सन् १७८२ ई०में मार्किंस डी० लुफ्रय जोनाथान हानके प्रस्तावकी कार्यरूपमें परिणत करनेमें प्रयासी हुए। इन्होंने एक छोटी छीम-बोट तय्यार कर सोननदमें डाल एक अभिनय नाय चलानेकी चेष्टा की। किन्तु उनको वह चेष्टा फलवती नहीं हुई। सन् १७८७ ई०में स्काटलेण्डके अन्तः-पातो डाहस उनटन निवासी मिष्टर मैट्रिक मिलरने एक पुस्तकमें एक घोषणा प्रचारित की, कि वे छीम पंजिनमें साहाय्यसे नाय चलायेंगे। इस पंजिनके चक्के भी रहेंगे। वाष्पके बलसे चक्का घुमने लगेगा और इसके फलसे नाय चलने लगेगा। विलियम सिमिटन नामक एक तर्कण-व्यक्त इञ्जीनियर द्वारा उन्होंने यह यत्न तैयार कराया था। डाहस उनटन भीलके निर्मल सलिलमें मिष्टर मिलरने इस तरह नाय चलानेका कौशल दिखाया।

सन् १७८६ ई०में इन्होंने एक बड़े आकारके छीमरमें यह यत्न सन्निवेशित किया। इस छीमरने घण्टेमें ७ मील पथ तय किया था। इसके बाद सन् १८०१ ई०में मिष्टर सिमिटनने एक छीमर तय्यार किया। यह छीमर क्लाइड नहरसे आया जाया करता था। किन्तु क्लाइड नहरका किनारा टूट जानेके भयके कारण अधिकारियोंने रोक दिया।

अमेरिकाके एक इञ्जीनियरने स्काटलेण्डसे छीमर बनानेकी कलाको सीखा सन् १८०७ ई०में सबसे पहले हडसन नदीमें छीमर चलानेकी चेष्टा की। सन् १८१२ ई०में इंग्लैण्डमें छीमबोट प्रचारित हुआ। पहले छीमर 'कमेट' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। मिष्टर हेनरीवेल इसके निर्माता थे, इसमें जो वाष्पीय यन्त्र था, वह चार घोड़ेका बलवाला था। सन् १८२१ ई०में लण्डनसे लिये तक छीमर द्वारा आना-जाना जारी किया गया।

सागर पार करनेके लिये इस समय सहस्र सहस्र छीमर तैयार किये जा चुके हैं; किन्तु सबसे पहले अमेरिकासे ही एक छीमर सागर पार कर लिवरपुल आया था। इसका नाम था—'सभाना'। अमेरिकासे लण्डन तक आने में इस छीमरको २६ दिन लगे थे। इङ्ग्लैण्डके सर्वप्रथम समुद्रगामी वाष्पीय जहाजका नाम सिरियस (Sirius) था। सन् १८३८ ई०में सिरियस लण्डनसे १७ दिनमें

अमेरिकामें उपस्थित हुआ। इसके बाद द्रुतगामी जहाज तय्यार हुए। इस समय लिवरपुलसे अमेरिकाके न्यूयार्क तक जो छीमर आते जाते हैं, उनमें कई १० दिनमें ही पहुंच जाते हैं। सन् १८८३ ई०में बना "अलस्का" और "अरिसम" नामक छीमर लिवरपुलसे सात दिनोंमें ही न्यूयार्कमें पहुंच गये। अलस्का छीमर इस तरह सुन्दर रीतसे परिचालित होता था, कि इसके आने जानेके निर्दिष्ट समयमें कभी पांच मिनटका भी फर्क नहीं पड़ता था।

वास्पेय (सं० पु०) नागकेशर। (खमाला)

वास्य (सं० लि०) वास-यत्। १ आच्छादनीय, ढकने लायक। २ निवासनीय, रहने लायक।

वास् (सं० पु०) दिन, रोज। वाश देखो।

वाभक्ति (सं० पु०) वारो जलस्थ किटीः शूकरः।

१ शिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वाभमदन (सं० क्ली०) वारो दलस्य सदनं। जलाधार।

वाह (सं० पु०) उद्यतेऽनेनेति वह करने घञ्। १ घोटक, घोड़ा। २ घृष, वैल। ३ महिष, भैंसा। ४ वायु, हवा। ५ चाहु। ६ प्राचीन कालका एक तौल या मान। चार पल (८ तोला=१ पल)का एक कुड्डव, ४ कुड्डवका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ८ आढककी एक द्रोणी, २ द्रोणीका एक सूर्य, ढेढ़ सूर्यकी एक खारी, दो खारीकी एक गोणी और ४ गोणीका एक वाह होता है।

अमरटीकाकार स्वामीके मतसे ४ आढकका एक द्रोण, १६ द्रोणकी एक खारी, २० द्रोणका एक कुम्भ और १० कुम्भका एक वाह माना गया है।

७ प्रवाह। ८ वाहन, सयारी। (लि०) ६ वाहक, लाद कर या लौंच कर ले चलनेवाला।

वाह (फा० अर्थ०) १ प्रशंसासूचक शब्द, धन्यवाद। कभी कभी अत्यन्त हर्ष प्रकट करनेके लिये यह शब्द दो बार भी आता है। जैसे, वाह, वाह, आ गये। २ आश्चर्य-सूचक शब्द। ३ घृणाघोतक शब्द। ४ आनन्दसूचक शब्द।

वाहक (सं० लि०) वहतीति वह-ण्वुल। १ वहनकर्ता, बोध दाने या लौंचनेवाला। (पु०) २ सारथि।

था। डाक्टर हुकने इस सम्बन्धमें न्यूकामनषेा यथेष्ट उपदेश प्रदान किया। इससे पहले सिलिण्डरके बाहर शीतल जल डाल कर वाष्पराशि घनीभूत करनी होती थी। उसमें कण्टकी सीमा न थी, किन्तु सहसा निर्माताके हृदयमें एक युद्धि आयिर्भूत हुई। उन्होंने एक दिन एका-एक सिलिण्डरके बीचमें शीतल जल "क्षेपण कर देखा कि उससे सहजमें ही और जल्दीसे वाष्प घनीभूत होता है। इससे वाष्पके शक्तिवद्धनकी अनेक सुविधाये हुईं। यह एंजिन "एटमस्फेरिक एंजिन" (Atmospheric Engine) नामसे अभिहित होता था। वेस्टन, स्मीटन और अन्यान्य इंजिनियर इस यन्त्रकी बहुत उन्नत की। ईसवी सनकी १८वीं शताब्दीमें केवल जल ऊपर उठाने-के लिये ही यह यन्त्र व्यवहृत होता था।

श्रीम एंजिनकी उन्नति करनेवालोंमें जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे ग्लासगो नगरमें गणित-संक्रान्त यन्त्रादिका निर्माण किया करते थे। सन् १७६३ ई०में ग्लासगो युनिवर्सिटीके एक अध्यापकने उनके एक एटमस्फेरिक एंजिनका आदर्श मरम्मत करने-के लिये दिया। वाटने इस आदर्श यन्त्रको पा कर इसके द्वारा नाना तरहकी परीक्षा करनी आरम्भ की, उन्होंने देखा पिष्टन (Piston) के प्रत्येक अभिघातके लिये जिम्स हिस्सावसे वाष्प खर्च होता था, वह सिलिण्डरके वाष्पकी अपेक्षा अनेक गुना अधिक था। वाटने इस विषयकी परीक्षा करनेमें जलके वाष्पमें परिणत होनेके सम्बन्धमें कई घटनाओंका सन्दर्शन किया। उन्होंने अपने गवेषणालय फलमें विस्मित हो डाक्टर ब्लैकसे इस गवेषणाकी बात कही। इस शुभ सम्मेलनके फलसे वाष्पयन्त्रके अभिनव उन्नतिको पथ प्रसारित हो उठा। इसी समयसे सिलिण्डरके साथ कन्डेन्सर (Condenser) नामक एक आधार संयोग किया गया। इसी आधारके साहाय्यसे वाष्प घनीभूत होनेका उपाय बहुत सहज हो गया। यह कन्डेन्सर एक शीतल जलाधार पर संस्थापित कर वाटने वाष्प घनीभूत करनेका उत्तम बन्व्यवस्था किया। जलाधारका जल गर्म होनेसे ही उस जलको फेंक शीतल जल दिया जाता था। इस प्रकारसे कन्डेन्सर शीतल जलसे संस्पृष्ट

हो वाष्पराशिको सदा घनीभूत करनेमें समर्थ होता था। वाटने "एटमस्फेरिक शीम एंजिनमें" और भी उन्नति की। इसके बाद इस विभागमें कार्टराइट (Cartwright) का नाम सुना गया। इनके द्वारा वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई है। कार्टराइटने ही पहले घातविष्टनका व्यवहार किया था। सन् १७२५ ई०में ल्यूपोरने हार्-प्रेशर एंजिनकी (High pressure Engine) सृष्टि की। इसके बाद शीमर, रेल आदि यानोंके परिचालनके लिये गणितविज्ञानके साहाय्यसे प्रचुर तथ्य सङ्कलित कर एक अभिनवयुग प्रवर्तित किया गया है। वायलरके वाष्प तैयार करनेकी शक्तिके साथ वाष्पीययानकी गति और तन्निहित भारतवका विचार करना आयश्यक है। सन् १८३५ ई०में काउएट डी-पेम्बरने इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त संस्थापन किया। वाष्पयन्त्रके अवयवोंमें निर्मालिखित अवयव ही प्रधान हैं—

१—बुझी और जलोत्तापपात्र (Furnace and Boiler)

२—वाष्पपात्र और सञ्चालनदण्ड (Cylinder and piston.)

३ घनत्वसाधक और वायुनिर्माणयन्त्र (Condenser and air pump)

४ मेकानिज्म (Mechanism) इनमें प्रत्येकके बहुतेरे अङ्ग और उपाङ्ग हैं। बाहुल्यके डरसे इन सब नामोंका उल्लेख किया न गया।

ये सब वाष्पयन्त्र इस समय कितने ही प्रयोजनोंय काटवोंमें व्यवहृत हो रहे हैं। रेल, शीमर वाष्पशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। मालूम होता है, कि भ्रष्ट भविष्यमें श्लेपिकर रेल यन्त्र भी समी प्रगढ़ वाष्पीय रेल-यन्त्रका स्थान अधिकार कर लेगा। अतीसे वेसा प्रतीत होता है।

वाष्पवेद (स० पु०) गुलमरीगमें निकलनेवाया पत्तीना।

वाष्पीयपौत - १७३७ ई०में जेनाथान हानने एक छोटो-सी पुस्तिकाकी रचना की। इस पुस्तिकामें उन्होंने शीमर प्रस्तुत करनेकी उपयोगिता विषय पर एक लेख लिखा था। किन्तु वर्षके बाद धर्य बीत गये। इसके सम्बन्धमें

किसीने हस्तक्षेप नहीं किया। सन् १७८२ ई०में माक्सि डी० लुफ्रय जोनाथान हानके प्रस्तावकी कार्यालयमें परिणत करनेमें प्रयासी हुए। इन्होंने एक छोटी छीम-बोट तय्यार कर सोननदोंमें डाल एक अभिनव नाव चलानेकी चेष्टा की। किन्तु उनकी यह चेष्टा फलवती नहीं हुई। सन् १७८७ ई०में स्काटलेण्डके अन्ता-पातो डालस उनटन निवासी मिष्टर मैट्रिक मिलरने एक पुस्तकमें एक घोषणा प्रचारित की, कि वे छीम पञ्जिनमें साहाय्यसे नाव चलायेंगे। इस पञ्जिनके चषके मो रहेंगे। वाष्पके बलसे चषका घुमने लगेगा और इसके फलसे नाव चलने लगेगी। विलियम सिमिडन नामक एक तरुण-वयस्क इञ्जीनियर द्वारा उन्होंने यह यन्त्र तैयार कराया था। डालसउनटन भीलके निर्मल सलिलमें मिष्टर मिलरने इस तरह नाव चलानेका कौशल दिखाया।

सन् १७८६ ई०में इन्होंने एक बड़े आकारके छीमरमें यह यन्त्र सन्निवेशित किया। इस छीमरने घण्टेमें ७ मील पथ तय किया था। इसके बाद सन् १८०१ ई०में मिष्टर सिमिडनने एक छीमर तय्यार किया। यह छीमर क्लाइड नहरसे आया जाया करता था। किन्तु क्लाइड नहरका किनारा टूट जानेके मयके कारण अधिकारियोंने रोक दिया।

अमेरिकाके एक इञ्जीनियरने स्काटलेण्डसे छीमर बनानेकी कलाकी सीख सन् १८०७ ई०में सबसे पहले हडसन नदीमें छीमर चलानेकी चेष्टा की। सन् १८१२ ई०में इंग्लैण्डमें छीमबोट प्रचारित हुआ। पहले छीमर 'कमेट' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। मिष्टर हेनरीवेल इसके निर्माता थे, इसमें जो वाष्पीय यन्त्र था, यह चार घोड़ेका बलवाला था। सन् १८२१ ई०में लण्डनसे लिये तक छीमर द्वारा आना-जाना जारी किया गया।

सागर पार करनेके लिये इस समय सहस्र सहस्र छीमर तैयार किये जा चुके हैं; किन्तु सबसे पहले अमेरिकासे ही एक छीमर सागर पार कर लिबरपुल आया था। इसका नाम था—'समाना'। अमेरिकासे लण्डन तक आनेमें इस छीमरकी २६ दिन लगे थे। इङ्ग्लैण्डके सर्वप्रथम समुद्रगामी वाष्पीय जहाजका नाम सिरियस (Sirius) था। सन् १८३८ ई०में सिरियस लण्डनसे १७ दिनमें

अमेरिकामें उपस्थित हुआ। इसके बाद द्रुतगामी जहाज तय्यार हुए। इस समय लिबरपुलसे अमेरिकाके न्यूयार्क तक जो छीमर आते जाते हैं, उनमें कई १० दिनमें ही पहुंच जाते हैं। सन् १८८३ ई०में बना "अलस्का" और "अरिसम" नामक छीमर लिबरपुलसे सात दिनोंमें ही न्यूयार्कमें पहुंच गये। अलस्का छीमर इस तरह सुन्दर रीतिसे परिचालित होता था, कि इसके आने जानेके निर्दिष्ट समयमें कभी पांच मिनटका भी फर्क नहीं पड़ता था।

वास्पेय (सं० पु०) नागकेशर। (खगला)

वास्प (सं० लि०) वास-यत्। १ आच्छादनोय, ढकने लायक। २ निवासनीय, रहने लायक।

वास (सं० पु०) दिन, रोज। वाध देखो।

वाःकिटि (सं० पु०) वारो जलस्य किटीः शूकरः।

१ शिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वाःमदन (सं० क्ली०) वारो दलस्य सदनं। जलाधार।

वाह (सं० पु०) उद्यतेऽनेनेति वह करने घञ्। १ घोटक, घोड़ा। २ घृष, वैल। ३ महिष, भैंसा। ४ वायु, हवा। ५ वाहु। ६ प्राचीन कालका एक तौल या मान। चार पल (८ तोला=१ पल)का एक कुडव, ४ कुडवका एक प्रस्य, ४ प्रस्यका एक आढक, ८ आढककी एक द्रौणी, २ द्रौणीका एक सूर्य, डेढ़ सूर्यकी एक खारी, दो खारीकी एक गोणी और ४ गोणीका एक वाह होता है।

अमरटीकाकार स्वामीके मतसे ४ आढकका एक द्रौण, १६ द्रौणकी एक खारी, २० द्रौणका एक कुम्भ और १० कुम्भका एक वाह माना गया है।

७ प्रवाह। ८ वाहन, सवारो। (ति०) ६ वाहक, लाद कर या खींच कर ले चलनेवाला।

वाह (फा० अर्थ०) १ प्रशंसासूचक शब्द, धन्यवाद। कभी कभी अत्यन्त हर्ष प्रकट करनेके लिये यह शब्द दो बार भी आता है। जैसे, वाह, वाह, आ गये। २ आश्चर्य-सूचक शब्द। ३ घृणाघोतक शब्द। ४ आनन्दसूचक शब्द।

वाहक (सं० लि०) वहतीति वह-ण्युल्। १ वहनकर्ता, बोध दोगे या खींचनेवाला। (पु०) २ सारथि।

था। डाक्टर हुचने इस सम्बन्धमें न्यूयामनवे। यथेष्ट उपदेज प्रदान किया। इससे पहले सिलिण्डरके बाहर शीतल जल डाल कर वाष्पराशि घनीभूत करने की होती थी। उसमें कपटी सीमा न थी, किन्तु सहसा निर्माणांक हृदयमें एक सुद्धि आविर्भूत हुई। उन्होंने एक दिन एका-एक सिलिण्डरके बीचमें शीतल जल श्लेषण कर देवा कि उससे सहजमें ही और जल्दीसे वाष्प घनीभूत होता है। इसमें वाष्पके शक्तिवर्द्धनकी अनेक सुविधायें हुईं। यह एंजिन "एटमस्फेरिक एंजिन" (Atmospheric Engine) नामसे अभिहित होता था। घेरटन, स्मीटन और अन्याय्य इंजिनियर इस यन्त्रकी बहुत उन्नत की। इहो सन्की १८वीं शताब्दीमें केचल जल ऊपर उठाने-के लिये ही यह यन्त्र व्यवहृत होता था।

टीम एंजिनकी उन्नति करनेवालोंमें जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे ग्लासगो नगरमें गणित-संक्रान्त यन्त्रादिका निर्माण किया करते थे। सन् १७६३ ई०में ग्लासगो युनिवर्सिटीके एक अध्यापकने उनको एक एटमस्फेरिक एंजिनका आदर्श मरम्मत करने-के लिये दिया। वाटने इस आदर्श यन्त्रको पा कर इसके द्वारा नाना तरहकी परीक्षा करने आरम्भ की, उन्होंने देखा पिष्टन (Piston) के प्रत्येक अभिघातके लिये जिस हिसाबसे वाष्प लर्का होता था, यह सिलिण्डरके वाष्पकी अपेक्षा अनेक गुना अधिक था। वाटने इस विषयकी परीक्षा करनेमें जलके वाष्पमें परिणत होनेके सम्बन्धमें कई घटनाओंका सन्दर्शन किया। उन्होंने अपने गवेषणालक्षण फलमें विस्मृत हो डाक्टर ब्लैकसे इस गवेषणाकी बात कही। इस शुभ सम्मेलनके फलसे वाष्पयन्त्रके अभिनय उन्नतिका पथ प्रसारित हो उठा। इसी समयसे सिलिण्डरके साथ कन्डेन्सर (Condenser) नामक एक आधार संयोग किया गया। इसी आधारके साहाय्यसे वाष्प घनीभूत होनेका उपाय बहुत सहज हो गया। यह कन्डेन्सर एक शीतल जलाधार पर संस्थापित कर वाटने वाष्प घनीभूत करनेका उत्तम बन्धोबद्ध किया। जलाधारका जल गर्म होनेसे ही उम जलको फेंक शीतल जल दिया जाता था। इस प्रकारसे कन्डेन्सर शीतल जलसे संस्पृष्ट

हो वाष्पराशिको सदा घनीभूत करनेमें समर्थ होता था। वाटने "एटमस्फेरिक टीम एंजिनमें" और भी उन्नति की। इसके बाद इस विभागमें कार्टराइट (Cartwright) का नाम सुना गया। इनके द्वारा वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई है। कार्टराइटने ही पहले घातविप्रेतघा व्यवहार किया था। सन् १७२५ ई०में ल्यूयोवने हाई-प्रेसर एंजिनकी (High pressure Engine) सृष्टि की। इसके बाद टीमर, रेल आदि यानोंके परिचालनके लिये गणितविज्ञानके साहाय्यसे प्रचुर तथ्य सङ्कलित कर एक अभिनवयुग प्रवर्तित किया गया है। वायलरके वाष्प तैयार करनेकी शक्तिके साथ वाष्पीयमानकी गति और तन्निहित भारित्वका विचार करना आवश्यक है। सन् १८३५ ई०में काउएट डो-पेयरने इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त संस्थापन किया। वाष्पयन्त्रके अवयवोंमें निम्नलिखित भाग्य ही प्रधान हैं—

१—चुहो और जलोत्तापपात्र (Furnace and Boiler)

२—वाष्पपात्र और सञ्चालनदण्ड (Cylinder and piston.)

३ घनत्वसाधक और-वायुनिर्माणयन्त्र (Condenser and air pump)

४ मेकानिज्म (Mechanism) इनमें प्रत्येकके बहुतेरे अङ्ग और उपाङ्ग हैं। बाहुतथके डरसे इन सब नामोंका उल्लेख किया न गया।

ये सब वाष्पयन्त्र इस समय कितने ही प्रयोजनोपकाटवोंमें व्यवहृत हो रहे हैं। रेल, टीमर वाष्पशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। मालूम होता है, कि बहुत अविश्वमें इलेक्ट्रिक रेल यन्त्र भी समी जगह वाष्पीय रेल-यन्त्रका स्थान अधिकार कर लेगा। अतोसे ऐसा प्रतीत होता है।

वाष्पयन्त्र (म० पु०) शुद्धरोगमें निकलनेवाला पसोता।

वाष्पीयपोत - १७३७ ई०में जेनामान हानने एक छोटी-सी पुस्तिकाकी रचना की। इस पुस्तिकामें उन्होंने टीमर प्रस्तुत करनेकी उपयोगिता विषय पर एक टेल लिखा था। किन्तु वर्षके बाद वर्ष बीत गये। इसके सम्बन्धमें

क्रिसीने हस्तक्षेप नहीं किया। सन् १७८२ ई०में मार्किस डी० लुफ्रेय जोनाथान हानके प्रस्तावकी कार्याक्रममें परिणत करनेमें प्रयासी हुए। इन्होंने एक छोटी छीम-बोट तय्यार कर सोननद्रांमें डाल एक अमिनय नाव चलानेकी चेष्टा की। किन्तु उनको वह चेष्टा फलवती नहीं हुई। सन् १७८७ ई०में स्काटलेण्डके अन्तः-पातो डाहस उनटन निवासी मिष्टर मैट्रिक मिलरने एक पुस्तकमें एक घोषणा प्रचारित की, कि वे छीम पञ्जिनमें साहाय्यसे नाव चलायेंगे। इस पञ्जिनके चपके भी रहेंगे। वाष्पके बलसे चक्का घुमने लगेगा और इसके फलसे नाव चलने लगेगी। विलियम सिमिडन नामक एक तरुण-वयस्क इञ्जीनियर द्वारा उन्होंने यह यन्त्र तैयार कराया था। डाहसउनटन भोलके निर्मल सलिलमें मिष्टर मिलरने इस तरह नाव चलानेका कौशल दिखाया।

सन् १७८६ ई०में इन्होंने एक बड़े आकारके छीमरमें यह यन्त्र सन्निवेशित किया। इस छीमरने घण्टेमें ७ मील पथ तय किया था। इसके बाद सन् १८०१ ई०में मिष्टर सिमिडनने एक छीमर तय्यार किया। यह छीमर क्लाइड नहरसे आया जाया करता था। किन्तु क्लाइड नहरका किनारा टूट जानेके मयके कारण अधिकारियोंने रोक दिया।

अमेरिकाके एक इञ्जीनियरने स्काटलेण्डसे छीमर बनानेकी कलाको सीखा सन् १८०७ ई०में सबसे पहले हडसन नदीमें छीमर चलानेकी चेष्टा की। सन् १८१२ ई०में इंग्लैण्डमें छीमबोट प्रचारित हुआ। पहले छीमर 'कमेट' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। मिष्टर हेनरीवेल इसके निर्माता थे, इसमें जो वाष्पीय यन्त्र था, वह चार घोड़ेका बलवाला था। सन् १८२१ ई०में लण्डनसे लिये तक छीमर द्वारा आना-जाना जारी किया गया।

सागर पार करनेके लिये इस समय सहस्र सहस्र छीमर तैयार किये जा चुके हैं। किन्तु सबसे पहले अमेरिकासे ही एक छीमर सागर पार कर लिवरपुल आया था। इसका नाम था—'सभाना'। अमेरिकासे लण्डन तक आने में इस छीमरकी २६ दिन लगे थे। इङ्ग्लैण्डके सर्वप्रथम समुद्रगामी वाष्पीय जहाजका नाम सिरियस (Sirius) था। सन् १८३८ ई०में सिरियस लण्डनसे १७ दिनमें

अमेरिकामें उपस्थित हुआ। इसके बाद द्रुतगामी जहाज तय्यार हुए। इस समय लिवरपुलसे अमेरिकाके न्यूयार्क तक जो छीमर आने जाते हैं, उनमें कई १० दिनमें ही पहुंच जाते हैं। सन् १८८३ ई०में बना "अलस्का" और "अरिसम" नामक छीमर लिवरपुलसे सात दिनोंमें ही न्यूयार्कमें पहुंच गये। अलस्का छीमर इस तरह सुन्दर रीतिसे परिचालित होता था, कि इसके आने जानेके निर्विघ्न समयमें कभी पांच मिनटका भी फर्क नहीं पड़ता था।

वास्पेय (सं० पु०) नागकेशर। (खमाला)

वास्य (सं० ति०) वास-यत्। १ आच्छादनीय, ढकने लायक। २ निवासनीय, रहने लायक।

वाध (सं० पु०) दिन, रोज। वाध देखो।

वाःकिटि (सं० पु०) वारो जलस्य किटोः शूकरः।

१ शिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वाःमदन (सं० क्लो०) वारो दलस्य सदनं। जलाधार।

वाद् (सं० पु०) उद्यतेऽनेनेति वह करने घञ्। १ घोटक, घोड़ा। २ वृष, बैल। ३ महिष, भैंसा। ४ वायु, हवा। ५ चाहु। ६ प्राचीन कालका एक तौल या मान। चार पल (८ तोला=१ पल)का एक कुड्डव, ४ कुड्डवका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ८ आढककी एक द्रोणी, २ द्रोणीका एक सूर्प, डेढ़ सूर्पकी एक खारी, दो खारीकी एक गोणी और ४ गोणीका एक वाह होता है।

अमरटीकाकार स्वामीके मतसे ४ आढकका एक द्रोण, १६ द्रोणकी एक खारी, २० द्रोणका एक कुम्भ और १० कुम्भका एक वाह माना गया है।

७ प्रवाह। ८ वाहन, सवारी। (ति०) ६ वाहक, लाद कर या खींच कर ले चलनेवाला।

वाह (फा० अर्थ०) १ प्रशंसासूचक शब्द, धन्यवाद। कभी कभी अत्यन्त हर्ष प्रकट करनेके लिये यह शब्द दो बार भी आता है। जैसे, वाह, वाह, आ गये। २ आश्चर्य-सूचक शब्द। ३ धृष्टान्तसूचक शब्द। ४ आनन्दसूचक शब्द।

वाहक (सं० ति०) वहतीति वह-ण्वुल्। १ वहनकर्ता, बोध दाने या खींचनेवाला। (पु०) २ सारथि।

था। डाक्टर हुकने इस सम्बन्धमें न्यूयामनषेा यथेष्ट उपदेश प्रदान किया। इससे पहले सिलिण्डरके बाहर शीतल जल डाल कर वाष्पराजि घनीभूत करनी होगी थी। उसमें कण्टी सीमा न थी, किन्तु सहसा निर्झरातये हृदयमें एक बुद्धि आविर्भूत हुई। उन्होंने एक दिन एका-एक सिलिण्डरके बीचमें शीतल जल "क्षेपण कर देखा कि उससे सहजमें ही और जल्दीसे वाष्प घनीभूत होता है। इससे वाष्पके शक्तिवर्द्धनकी अनेक सुविधायें हुईं। यह एंजिन "पटमस्फेरिक एंजिन" (Atmospheric Engine) नामसे अभिहित होता था। घेइटन, स्मोटीन और बन्त्याग्व इंजिनियर इस यन्त्रकी बहुत उन्नत की। ईसवी सन्की १८वीं शताब्दीमें केवल जल ऊपर उठाने-के लिये ही यह यन्त्र व्यवहृत होता था।

छोम एंजिनकी उन्नति करनेवालोंमें जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है। घे ग्लासगो नगरमें गणित-संक्रान्त यन्त्रादिका निर्माण किया करते थे। सन् १७६३ ई०में ग्लासगो युनिवर्सिटीके एक अध्यापकने उनके एक पटमस्फेरिक एंजिनका आदर्श मरम्मत करने-के लिये दिया। वाटने इस आदर्श यन्त्रको पा कर इसके द्वारा नाना तरहकी परीक्षा करनी आरम्भ की, उन्होंने देखा पिष्टन (Piston) के प्रत्येक अभिघातके लिये जिस हिस्सावले वाष्प लर्चा होता था, वह सिलिण्डरके वाष्पकी अपेक्षा अनेक गुना अधिक था। वाटने इस विषयकी परीक्षा करनेमें जलके वाष्पमें परिणत होनेके सम्बन्धमें कई घटनाओंका सन्दर्शन किया। उन्होंने भवने गवेषणाच्छेप फलमें विस्मित हो डाक्टर ब्लैकसे इस गवेषणाकी बात कही। इस शुभ सम्मेलनके फलसे वाष्पयन्त्रके अभिनय उन्नतिकी पथ प्रसारित हो उठा। इसी समयसे सिलिण्डरके साथ कन्डेन्सर (Condenser) नामक एक आधार संयोग किया गया। इसी आधारके साहाय्यसे वाष्प घनीभूत होनेका उपाय बहुत सहज हो गया। यह कन्डेन्सर एक शीतल जलाधार पर संस्थापित कर वाटने वाष्प घनीभूत करनेका उत्तम बन्दीबस्त किया। जलाधारका जल गर्म होनेसे ही उस जलके कंठ शीतल जल दिया जाता था। इस प्रकारसे कन्डेन्सर शीतल जलसे संस्पृष्ट

हो वाष्पराजिको सदा घनीभूत करनेमें समर्थ होता था। वाटने "पटमस्फेरिक छोम एंजिनमें" और भी उन्नति की। इसके बाद इस विभागमें कार्टराइट (Cartwright) का नाम सुना गया। इनके द्वारा वाष्पयन्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई है। कार्टराइटने ही पहले घातवधिपिष्टनका व्यवहार किया था। सन् १७२५ ई०में ल्यूथोवने हाई-प्रेसर एंजिनकी (High pressure Engine) सृष्टि की। इसके बाद छीमर, रेल आदि यानोंके परिचालनके लिये गणितविज्ञानके साहाय्यसे प्रचुर तथ्य सङ्कलित कर एक अभिनययुग प्रवर्तित किया गया है। वाष्पयन्त्रके वाष्प तैयार करनेकी शक्तिके साथ वाष्पीययानकी गति और तमि-हित भारित्यका विचार करना आवश्यक है। सन् १८२५ ई०में काउएट डी-पेम्बर्ने इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त संस्थापन किया। वाष्पयन्त्रके अवयवोंमें निम्नलिखित भाग्य ही प्रधान हैं—

१—चुली और जलोत्तापपात्र (Furnace and Boiler)

२—वाष्पपात्र और सञ्चालनपिष्ट (Cylinder and piston)

३ घनत्वसाधक और-वायुनिर्माणयन्त्र (Condenser and air pump)

४ मेकानिज्म (Mechanism) इनमें प्रत्येकके बहुतेरे अङ्ग और अपाङ्ग हैं। बाहुद्वयके डरसे इन सब नामोंका उल्लेख किया न गया।

ये सब वाष्पयन्त्र इतं समय कितने ही प्रयोगयोग्य पाठ्योंमें व्यवहृत हो रहे हैं। रेल, छीमर वाष्पशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। माल्टूम होता है, कि बहुत भविष्यमें इलेक्ट्रिक रेल यन्त्र भी समी जगह वाष्पीय रेल-यन्त्रका स्थान अधिकार कर लेगा। अभीसे ऐसा प्रतीत होता है।

वाष्पवेद (स० पु०) गुल्बरोगमें निकलनेवाला पत्थीना।

वाष्पीयपोत -- १७३७ ई०में जेनाभात हानने एक छोटो-सी पुस्तिकाकी रचना की। इस पुस्तिकामें उन्होंने छोमर प्रस्तुत करनेकी उपयोगिता विषय पर एक लेख लिखा था। किन्तु वर्षके बाद वर्ष पीत गये। इसके सम्बन्धमें

किसीने हस्तक्षेप नहीं किया। सन् १७८२ ई०में मार्किस डी० जुफ्रेय जोनाथान हानके प्रस्तावकी कार्याक्रममें परिणत करनेमें प्रयासी हुए। इन्होंने एक छोटी छोम-बोट तय्यार कर सोननद्रांमें डाल एक अभिनव नाव चलानेकी चेष्टा की। किन्तु उनकी वह चेष्टा फलवती नहीं हुई। सन् १७८७ ई०में स्काटलेण्डके अन्ता-पातो डावस उनटन निवासी मिष्टर मैट्रिक मिलरने एक पुस्तकमें एक घोषणा प्रचारित की, कि वे छोम पंजिनमें साहाय्यसे नाव चलायेंगे। इस पंजिनके चक्के भी रहेंगे। वाष्पके बलसे चक्का घुमने लगेगा और इसके फलसे नाव चलने लगेगी। विलियम सिमिटन नामक एक तरुण वयस्क इञ्जीनियर द्वारा उन्होंने यह यन्त्र तैयार कराया था। डावसउनटन भूलके निर्मल सलिलमें मिष्टर मिलरने इस तरह नाव चलानेका कीशाल दिखाया।

सन् १७८६ ई०में इन्होंने एक बड़े आकारके छोमरमें यह यन्त्र सन्निवेशित किया। इस छोमरने घण्टेमें ७ मील पथ तय किया था। इसके बाद सन् १८०१ ई०में मिष्टर सिमिटनने एक छोमर तय्यार किया। यह छोमर क्लाइड नहरसे आया जाया करता था। किन्तु क्लाइड नहरका किनारा टूट जानेके भयके कारण अधिकारियोंने रोक दिया।

अमेरिकाके एक इञ्जीनियरने स्काटलेण्डसे छोमर बनानेकी कलाकी सीख सन् १८०७ ई०में सबसे पहले हडसन नदीमें छोमर चलानेकी चेष्टा की। सन् १८१२ ई०में इंग्लैण्डमें छोमबोट प्रचारित हुआ। पहले छोमर 'कमेट' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। मिष्टर हेनरीवेल इसके निर्माता थे, इसमें जो वाष्पीय यन्त्र था, यह चार छोड़े का बलवाला था। सन् १८२१ ई०में लण्डनसे लिघे तक छोमर द्वारा आना-जाना जारी किया गया।

सागर पार करनेके लिये इस समय सहस्र सहस्र छोमर तैयार किये जा चुके हैं। किन्तु सबसे पहले अमेरिकासे ही एक छोमर सागर पार कर लिवरपुल आया था। इसका नाम था—'सभाना'। अमेरिकासे लण्डन तक आने में इस छोमरको २६ दिन लगे थे। इंग्लैण्डके सर्वप्रथम समुद्रगामी वाष्पीय जहाजका नाम सिरियस (Sirius) था। सन् १८३८ ई०में सिरियस लण्डनसे १७ दिनमें

अमेरिकामें उपस्थित हुआ। इसके बाद द्रुतगामी जहाज तय्यार हुए। इस समय लिवरपुलसे अमेरिकाके न्यूयार्क तक जो छोमर आते जाते हैं, उनमें कई १० दिनमें ही पहुंच जाते हैं। सन् १८८३ ई०में बना "अलस्का" और "अरिसम" नामक छोमर लिवरपुलसे सात दिनोंमें ही न्यूयार्कमें पहुंच गये। अलस्का छोमर इस तरह सुन्दर रीतिले परिचालित होता था, कि इसके आने जानेके निर्दिष्ट समयमें कभी पांच मिनटका भी फर्क नहीं पड़ता था।

वास्पेय (सं० पु०) नागकेशर। (खमाला)

वास्प (सं० त्रि०) वास-यत्। १ आच्छादनीय, ढकने लायक। २ निवासनीय, रहने लायक।

वास्त (सं० पु०) दिन, रोज। वाश देखो।

वाग्किटि (सं० पु०) वारो जलस्थ किटीः शूकरः।

१ शिशुमार, सूँस नामक जलजन्तु।

वाग्मदन (सं० क्ली०) वारो दलस्य सदनं। जलाधार।

वाद् (सं० पु०) उल्लेखनेति वह करने घञ्। १ घोटक, घोड़ा। २ घृष, घैल। ३ महिष, भैंसा। ४ वायु, हवा। ५ वाहु। ६ प्राचीन कालका एक तौल या मान। चार पल (८ तोला=१ पल)का एक कुडव, ४ कुडवका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ८ आढककी एक द्रौणी, २ द्रौणीका एक सूर्प, डेढ़ सूर्पकी एक खारी, दो खारीकी एक गोणी और ४ गोणीका एक वाह होता है।

अमरटीकाकार स्वामीके मतसे ४ आढकका एक द्रोण, १६ द्रोणकी एक खारी, २० द्रोणका एक कुम्भ और १० कुम्भका एक वाह माना गया है।

७ प्रवाह। ८ वाहन, सवारो। (त्रि०) ९ वाहक, लाद कर या खींच कर ले चलनेवाला।

वाह (फा० अर्थ०) १ प्रशंसासूचक शब्द, घन्ययाद्। कभी कभी अत्यन्त हर्ष प्रकट करनेके लिये यह शब्द दो बार भी आता है। जैसे, वाह, वाह, आ गये। २ आश्चर्य-सूचक शब्द। ३ घृणाघोतक शब्द। ४ आनन्दसूचक शब्द।

वाहक (सं० त्रि०) वहतीति यह-ण्युल्। १ वहनकर्ता, बोध देने या खींचनेवाला। (पु०) २ सारथि।

धा। डाक्टर हुकने इस सम्बन्धमें न्यूकामनवा यष्टि उपदेश प्रदान किया। इससे पहले सिलिण्डरके बाहर शीतल जल डाल कर वाष्पराजि घनीभूत करने होती थी। उसमें कष्टकी सीमा न थी, किन्तु सहसा निर्भाताके दृढयमें एक बुद्धि आविर्भूत हुई। उन्होंने एक दिन एका एक सिलिण्डरके बीचमें शीतल जल "क्षेपण कर देवा कि उससे सहजमें ही और जल्दीसे वाष्प घनीभूत होता है। इसमें वाष्पके शक्तिवर्द्धनको अनेक सुविधायें हुईं। यह एंजिन "एटमस्फेरिक एंजिन" (Atmospheric Engine) नामसे अभिहित होता था। घेइरन, स्मीटन और गन्यान्व इंजिनियर इस यन्त्रकी बहुत उन्नत की। इसी सन्तकी १८वीं शताब्दीमें वेंचल जल ऊपर उठानेके लिये ही यह यन्त्र व्यवहृत होता था।

श्रीम एंजिनकी उन्नति करनेवालोंमें जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे ग्लासगो नगरमें गणित-संक्रान्त यन्त्रादिका निर्माण किया करते थे। सन् १७६३ ई०में ग्लासगो युनियरसिटिके एक अध्यापकने उनके एक एटमस्फेरिक एंजिनका आदर्श मरमात करने के लिये दिया। वाटने इस आदर्श यन्त्रके पा कर इसके द्वारा नाना तरहकी परीक्षा करने औरम्भ की, उन्होंने देखा पिष्टन (Piston) के प्रत्येक अभिघातके लिये जिस दिसावसे वाष्प प्रर्षा होता था, वह सिलिण्डरके वाष्पकी अपेक्षा अनेक गुना अधिक था। वाटने इस विषयकी परीक्षा करनेमें जलके वाष्पमें परिणत होनेके सम्बन्धमें कई घटनाओंका सुन्दरान किया। उन्होंने अपने गवेषणालय फलमें विस्मित हो डाक्टर ब्लैकसे इस गवेषणाकी बात कही। इस शुभ सम्मेलनके फलसे वाष्पयन्त्रके अभिनय उन्नतिको पथ प्रसारित हो उठा। इसी समयसे सिलिण्डरके माथ कनडेन्सर (Condenser) नामक एक साधार संयोग किया गया। इसी साधारके साहाय्यसे वाष्प घनीभूत होनेका उपाय बहुत सहज हो गया। यह कनडेन्सर एक शीतल जलाधार पर संस्थापित कर वाटने वाष्प घनीभूत करनेका उत्तम बन्दीबस्त किया। जलाधारका जल गर्म होनेसे ही उम जलके कैक शीतल जल दिया जाता था। इस प्रकारसे कनडेन्सर शीतल जलसे संस्पृष्ट

ही वाष्पराजिको सक्ष घनीभूत करनेमें समर्थ होता था। वाटने "एटमस्फेरिक एंजिन एंजिनमें" और भी उन्नति की। इसके बाद इस विभागमें कार्टराइट (Cartwright) का नाम सुना गया। इनके द्वारा वाष्पयन्त्रकी यष्टि उन्नति हुई है। कार्टराइटने ही पहले घातवपिष्टनका व्यवहार किया था। सन् १७३५ ई०में ल्यूयोवने हाई-प्रेसर एंजिनकी (High pressure Engine) सृष्टि की। इसके बाद एंजिन, रेल आदि यानोंके परिचालनके लिये गणितविज्ञानके साहाय्यसे प्रचुर तथ्य सङ्कलित कर एक अभिनययुग प्रवर्तित किया गया है। वाटलरके वाष्प तैयार करनेकी शक्तिके साथ वाष्पीययानकी गति और तन्निहित भारित्वका विचार करना आवश्यक है। सन् १८३५ ई०में काउण्ट डी-पेय्वरने इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त संस्थापन किया। वाष्पयन्त्रके भवयुवीं निर्मल्लिखित भाष्य ही प्रधान है—

१—बुद्धी और जलोत्तापपात्र (Furnace and Boiler)

२—वाष्पपात्र और सञ्चालनदण्ड (Cylinder and piston)

३ घनत्वसायक और वायुनिर्माणयन्त्र (Condenser and air pump)

४ मेकानिज्म (Mechanism) इनमें प्रत्येकके बहुतेरे अङ्ग और उपाङ्ग हैं। बाहुदयके डरसे इन सब नामोंका उल्लेख किया न गया।

ये सब वाष्पयन्त्र इस समय कितने ही प्रयोगयोग फाटवींमें व्यवहृत हो रहे हैं। रेल, एंजिन वाष्पशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। मालूम होता है, कि बहुत भविष्यमें इलेक्ट्रिक रेल यन्त्र भी उसी तरह वाष्पीय रेल-यन्त्रका स्थान अधिकार कर लेगा। अतःसे ऐसा प्रतीत होता है।

वाष्पयष्टि (म० पु०) गुदवरीगमें निकलनेवाला पानी।

वाष्पीयपोत - १७३७ ई०में जेताभान हानने एक छोटी-सी पुस्तिकाकी रचना की। इस पुस्तिकामें उन्होंने एंजिन प्रस्तुत करनेकी उपयोगिता विषय पर एक लेख लिखा था। किन्तु वर्षके बाद वर्ष बीत गये। इसके सम्बन्धमें

भाग, कौल। पर्याय—कक्ष, भुजकेटर, दौमूल, खण्डिक, कक्षा।

वाहुल (सं० पु०) १ कार्तिक मास। २ ववाकरणका अनुशासनविशेष। ३ परमिं देखो।

वाहुल्य (सं० क्ली०) बहुलरूप भावः प्यण्। आधिपत्य, अधिकता।

वाहुवार (सं० पु०) श्लेष्मास्तक वृक्ष, बहेड़े का वृक्ष।

वाहूक (सं० पु०) छत्रपेशी नलराजा। नक्ष देखो।

वाह (सं० त्रि०) वह्निसम्यग्धीय, यनिसम्यग्धीय।

वाह्येय (सं० पु०) आचार्यभेद।

वाह्य (सं० क्ली०) बाह्यते चाल्यते इति वाहि प्यत्। १

यान, सवारो। वह-प्यत्। २ वदनीय, उठा या खींच कर ले जाने योग्य। ३ वहिः, बाहर। ४ पृथक् अलग।

वाहीक (सं० क्ली०) वाहा कन्। १ वाह्य। २ बाहक, गाड़ी, छकड़ा।

वाह्यकायनि (सं० पु०) बाह्यका गोत्रापत्य।

वाह्यिकी (सं० स्त्री०) अग्निप्रकृतिक्रीटभेद।

(सुभुत कल्पत्रां ८ अ०)

वाह्यत्व (सं० क्ली०) बाह्यस्य भावः त्व। बाह्यका भाव, वाः घर्म।

वाह्ययुति (सं० पु०) रसका संस्कारविशेष।

(रसवि० ३ अ०)

वाहास्क (सं० पु०) वाहास्कका गोत्रापत्य।

वाहास्कायन (सं० पु०) वाहास्कका गोत्रापत्य।

वाहास्तर (सं० त्रि०) १ भीतर और बाहरका। २ भीतर और बाहर।

वाह्येन्द्रिय (सं० क्ली०) बाह्यमिन्द्रियं। वहिरिन्द्रिय, पाँचों बाह्येन्द्रियाँ। इन्द्रिय ग्यारह हैं जिनमेंसे ५ बाह्येन्द्रिय, ५ अन्तरेन्द्रिय और मन उभयेन्द्रिय हैं। आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा ये पाँच बाह्येन्द्रिय तथा घ्राणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पाँच अन्तरेन्द्रिय हैं। आँख आदि पाँच इन्द्रियोंका काम बाह्य वियवोंका प्रदान करना है, इसीसे उनको बाह्येन्द्रिय कहते हैं।

(भाष्यत्रि०)

वाहिक (सं० पु०) १ देशभेद, वाहिक देश। २ कुंकुम, केशर। ३ हिंशु। ४ खोताजन, सुरमा।

वाहिक (सं० पु०) १ देशभेद। एक देश जो भारतको उत्तर पश्चिम सीमा पर था। साधारणतः आज कलके 'बलब' के आसपासका प्रदेश ही जिसे प्राचीन पारसी 'वकतर' और यूनानी 'चैट्रिया' कहते थे, वाहिक माना गया है, परन्तु पादशास्य पुरातत्त्वविद्गुं इसे आज कलके भारतवर्षके बाहर नहीं मानना चाहते।

२ वाहिकदेशजात घोटक, वाहिक देशका भोड़ा। ३ एक गन्धर्वका नाम। (शब्दरत्ना०) ४ प्रतीपके एक पुत्रका नाम। (भारत १६५४५५) ५ कुंकुम, केशर। ६ हिंशु, होंग।

वि (सं० अव्य०) १ निग्रह। २ नियोग। ३ पादपूरण। ४ निश्चय। ५ असहन। ६ हेतु। ७ अव्यति। ८ विनियोग। ९ ईष्वर्थ। १० परिभ्रम। ११ शुद्ध। १२ अवलम्बन। १३ विधान। १४ विशेष। १५ गति। १६ आलम्ब। १७ पालन। (शब्दरत्ना०) उपसर्गविशेष, प्र, परा आदि उपसर्गोंमेंसे एक उपसर्ग। मुच-बोधटीकाकार दुर्गादासने इस उपसर्गके निष्कृत अर्थ लगाये हैं। विशेष, जैसे—विकराल, पिहीन। वैरुष्य, जैसे—विविध। निषेध या चैपरोत्य। जैसे,—विक्रय, विकच्छ।

वि (सं० पु० स्त्री०) वाति गच्छतीति वा (वाते विञ्च। उण् ३।१३३) इति इण् सच-डित्। १ पक्षी, चिड़िया। (क्ली०) २ अन्न, अनाज। (शत०त्रा० १४।८।१२।३) (पु०) ३ आकाश। ४ चक्षु, नेत्र।

विंदुर (दि० पु०) किसी पदार्थ पर दूसरे रंगके लगे हुए छोटे छोटे चिह्न, बुँदकी।

विंदा (सं० त्रि०) विंगति पूरणे डट्, तेलोपः। क्रमसे बीसके स्थान पर पड़नेवाला, बीसवाँ।

विंशक (सं० त्रि०) विंशत्या क्रोतः विंशति (विंशति विंश-द्व्यांङ्बुत वंशावा। पा१।१।२४) इत्युन (तिविंशतेर्डिति। पा१।४।१२४) इति तिलोपः। विंशतिक्रोत, जो बीसमें खरीदा गया हो।

विंशत (सं० त्रि०) बीस।

विंशति (सं० स्त्री०) दशपरिमाणस्य पंचि विंशतीति निपातनात् सिद्धं। १ बीसको संख्या। २ इसका सूचक अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—२०। (त्रि०) ३ जो गिनतीमें बीस हो।

वाहकत्व (सं० ह्री०) वाहकत्व भावः त्व । वाहकता भाव या धर्म दोनेका काम ।

वाहद्विपत् (सं० पु०) वाहानां घोटकानां द्विपत् शत्रु । महिप, भैसा ।

वाहन (सं० ह्री०) वहत्यनेनेति वह करणे ल्युट् (वाहन-मादिवात् । पा ८।४।८) इत्यत्र वहते ल्युटि धृद्धिरिदं व सूत्रे निपातनात् इति भट्टोजिदीक्षितोपत्या निपातनात् धृद्धिः । इस्ती, अभ्य, रथ और घोलादि यान्, हाथी घोड़े रथ और पालकी आदिकी सवारी । २ वाहक, दोने-पाला ।

वाहनता (सं० स्त्री०) वाहनत्व भावः तल-टाप् । वाहः गत्य, वाहनका धर्म या कार्य ।

वाहनप (सं० पु०) वाहन पा क । वाहनपति ।

वाहनप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) वाहनकी क्षानधियपक एक प्रणाली । (ब्रह्मवि० १६६ प्र०)

वाहनिक (सं० स्त्री०) वाहनेन जीवति (वेतनादिभ्यो जीवति । पा ४।४।१२) वाहन-ठक् । वाहन द्वारा जीविका-निर्वाह-कारी, बोध डो कर अपना गुजारा चलावेवाला ।

वाहनोप (सं० स्त्री०) वह-णिच् अनोपर । वहन करनेके योग्य ।

वाहरिपु (सं० पु०) वाहानां घोटकानां रिपुः । महिप, भैसा ।

वाहवाही (फा० स्त्री०) लोगोंकी प्रशंसा, स्तुति ।

वाहध्रेष्ठ (सं० पु०) वाहेषु वाहनेषु ध्रेष्ठः । अश्व, घोहा ।

वाहस् (सं० ह्री०) स्तोत्र ।

वाहस (सं० पु०) उग्रते इति वह (वहिष्मन् पिप् । उष् ३।१।६) इति असच्, स च णित् । १ अजगर । "वायाप्राः प्रतिधत्तायै वाहसः" (वैतिलोपच० १।१।१४।१) २ वादि-निर्वाण । ३ मुनिप्रणय, सुसनी नामका साग ।

वाहा (सं० स्त्री०) वह आज्ञादित्वात् टाप् । वाहु ।

वाहावाहवि (सं० अथ०) वाहनिर्व्याहृमिद्युं दुमिद् प्रवृत्तं । वाहुयुद्ध, हाथापीटो ।

वाहिक (सं० पु०) वाहेन परिमाणविशेषेण कृतं वाह (अणमणे निष्कादिभ्यः । पा १।१।२०) इति ठक् । १ टगा, बट्टा टोला । २ गोवाह, गाहो, छकटा । (ति०) ३ भारवाहक, बोध दोनेवाला ।

वाहित (सं० स्त्री०) वह णिच्-क् । १ खालित, सहाया हुआ । २ प्रापित, प्राप्त किया हुआ । ३ प्रवाहित, बहा हुआ । ४ प्रतारित, पोसा छाया हुआ । ५ वज्रित, टगा हुआ ।

वाहिता (सं० स्त्री०) वाहिनी भावः तल-टाप् । वहन-कारीका भाव या धर्म ।

वाहित्व (सं० स्त्री०) वहनकारी, दोनेवाला ।

वाहितृ (सं० ह्री०) गजकुम्भका अधोभाग ।

वाहिन (सं० स्त्री०) वाह-भस्त्वयं इति । वहनकारी, दोनेवाला ।

वाहिनी (सं० स्त्री०) वाहा वाहनानि घोटकादीनि सत्य-स्यामिति वाह-रनि । १ सेना । २ सेनाका एक भेद । इसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल होने थे । ३ नदी । ४ प्रवाहशीला ।

(मार्कण्डेयपु० ३८।२६)

वाहिनीपति (सं० पु०) वाहिण्याः सेनायां पतिः । सेना-पति । वाहिन्याः नद्या पतिः । २ समुद्र ।

वाहिनीपति महापात्र भट्टाचार्य—नवदोपके प्रसिद्ध नैवा-यिक वासुदेव सार्वभौमके पुत्र । इन्होंने पद्मपरमिप्र रचितं तत्त्वचिन्तामणि-आलोचकी शब्दालीकृतोत्त नाम्नी टीका लिखी है । आप उरकलपतिके प्रपान मन्त्री थे । वासुदेव सार्वभौम देखो ।

वाहिनीश (सं० पु०) वाहिन्याः ईशः । वाहिनीपति । वादिपात (सं० वि०) १ प्यर्थ, फजूल । २ घुरा, खतर ।

वाहिष्ठ (सं० स्त्री०) घोड़ तम । (शुक ५।२।१०)

वाही (सं० वि०) १ सुस्त, ढोला । २ निकम्मा । ३ बुद्धि-हीन, मूर्ख । ४ आचारा । ५ वेदिकानिका, देवता ।

वाहीतवाही (सं० वि०) १ वेदवा, आचारा । २ अंड-बंड, बेसिर पैरका । (स्त्री०) ३ अंड-बंड धारण, गाली गलीज ।

वाहु (सं० पु०) वाधने गज्जनि वाध लोडने (भारि-दति कर्मोति । उष् १।२८) इति कुहकारादेशणच । १ हाथके ऊपरका भाग जो कुदनी और कंधेके बीचमें होता है, मुकुटवृष्ट । पर्वण्य—मुम, प्रयेष्ट, शोष्, वाह, दोष । २ पणितनायकमें त्रिकोणादि क्षेत्रोंके किनारेकी रेखा, मुखा । वाहुमूल (सं० ह्री०) वाहोर्मूलम् । मुकुटवृष्टका भाव ।

भाग, कौल। पर्याय—कक्ष, भुजनेांटेर, दोमूँल, खण्डिक, कक्षा।

वाहुल (सं० पु०) १ कासिक मास। २ व्याकरणका अनुशासनविशेष। पवर्गमें देखो।

वाहुल्य (सं० स्त्री०) बहुलस्य भावः व्यण्। आधिषय, अधिकता।

वाहुवार (सं० पु०) श्लेषभागतक वृक्ष, बहेड़ेका वृक्ष।

वाहुक (सं० पु०) छत्रवेशी मलराजा। नक्ष देखो।

वाहु (सं० त्रि०) वह्निसम्बन्धीय, अग्निसम्बन्धीय।

वाह्वेय (सं० पु०) आचार्यभेद।

वाह्य (सं० स्त्री०) बाह्यते चाल्यते इति वाहि ष्यत्। १

यान, सवारो। वह-ष्यत्। २ वहनीय, उठा या खींच

कर ले जाने योग्य। ३ वहिः, बाहर। ४ पृथक् अलग।

वाहीक (सं० स्त्री०) वाह्य कर्म। १ वाह्य। २ बाह्यक,

गाड़ी, छकड़ा।

वाह्यकायन्ति (सं० पु०) वाह्यकका गोत्रापत्य।

वाहीकी (सं० स्त्री०) अग्निप्रकृतिकोटभेद।

(सुभुक्त कल्पशा० पृ ८०)

वाह्यत्व (सं० स्त्री०) वाह्यस्य भावः एव। वाह्यका भाग वाधर्म।

वाह्ययुति (सं० पु०) रसका संस्कारविशेष।

(रसवि० ३ अ०)

वाह्यस्क (सं० पु०) वाह्यस्कका गोत्रापत्य।

वाह्यस्कायन (सं० पु०) वाह्यस्कका गोत्रापत्य।

वाह्यान्तर (सं० त्रि०) १ भीतर और बाहरका। २ भीतर और बाहर।

वाह्येन्द्रिय (सं० स्त्री०) वाह्यमिन्द्रियं। वहिरिन्द्रिय,

पाँचों भातेन्द्रियाँ। इन्द्रिय ग्यारह हैं जिनमेंसे ५ वाह्येन्द्रिय, ५ अन्तरेन्द्रिय और मन उभयेन्द्रिय हैं। आँल,

कान, नाक, जीभ और त्वचा ये पाँच वाह्येन्द्रिय तथा

वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पाँच अन्तरेन्द्रिय

हैं। अतएव आदि पाँच इन्द्रियोंका काम वाह्य विषयोंका

प्रदण करना है, इसीसे उनको वाह्येन्द्रिय कहते हैं।

(भाष्यपरि०)

वाहिक (सं० पु०) १ देशभेद, वाहिक देश। २ कुंकुम,

केशर। ३ हिंशु। ४ अतोत्पन्न, सुरमा।

वाहिक (सं० पु०) १ देशभेद। एक देश जो भारतकी उत्तर पश्चिम सीमा पर था। साधारणतः आज कलके 'बल्ल' के आसपासका प्रदेश ही जिसे प्राचीन पारसी 'वकतर' और यूनानी 'चैकिद्रिया' कहते थे, वाहिक माना गया है, परन्तु पाश्चात्य पुरातत्त्वविद्द इसे आज कलके भारतवर्षके बाहर नहीं मानना चाहते।

२ वाहिकदेशजात घोटक, वाहिक देशका घोड़ा।

३ एक गन्धर्वका नाम। (शब्दरत्ना०) ४ प्रतीपके एक

पुत्रका नाम। (भारत १६५५५) ५ कुंकुम, केशर। ६

हिंशु, होंग।

वि (सं० अव्य०) १ निग्रह। २ नियोग। ३ पादपूरण।

४ निश्चय। ५ असहन। ६ हेतु। ७ अव्याप्ति। ८ विनियोग।

९ ईषदर्थ। १० परिभव। ११ शुद्ध। १२

अवलम्बन। १३ विद्यान। १४ विशेष। १५ गति।

१६ आलम्ब। १७ पालन। (शब्दरत्ना०) उपसर्ग-

विशेष, प्र, परा आदि उपसर्गोंमेंसे एक उपसर्ग। सुघ-

बोधटीकाकार दुर्गादासने इस उपसर्गके निम्नोक्त अर्थ

लगाये हैं। विशेष, जैसे—चिकुराल, चिहीन। चैरूप्य,

जैसे—विविध। निषेध या वैपरीत्य, जैसे—विक्रय,

विकच्छ।

वि (सं० पु० स्त्री०) वासि गच्छतीति वा (वाते ङिञ्च। उष्

३। १३३) इति इण् स्व-ङित। १ पक्षी, चिड़िया। (स्त्री०)

२ अन्न, अनाज। (शत०ब्रा० १५। १२। ३) (पु०) ३

आकाश। ४ चक्षु, नेत्र।

विंदुर (दि० पु०) किसी पदार्थ पर दूसरे रंगके लगे हुए

छोटे छोटे चिह्न, बुँदकी।

विंश (सं० त्रि०) विंशति पूरणे ङट्, तैल्लोपः। क्रमसे

बीसके स्थान पर पड़नेवाला, बीसवाँ।

विंशक (सं० त्रि०) विंशतया क्रीतः विंशति (विंशति विंश-

द्व्यान्तुन वंशावा। पा ५। १। २४) इत्युन (तिविंशतीति। पा

६। १। २४) इति तिलोपः। विंशतिक्रीत, जो बीसमें खरोदा

गया हो।

विंशत (सं० त्रि०) बीस।

विंशति (सं० स्त्री०) द्वेदशपरिमाणस्य पंचि विंशतीति

निपातनात् सिद्धं। १ बीसको संस्था। २ इसका

सूचक अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—२०। (त्रि०)

३ जो गिनतीमें बीस हो।

विज्ञानिक (सं० ति०) संध्यावा क्व स्यादाहोविद्ये ।
 विज्ञति त्रिंजन्ता क्व, संध्यायां चाम्प्या क्व स्यात् ।
 विज्ञानयोग्य, बीसको संख्या ।
 विज्ञातितम (सं० ति०) विज्ञतेः पूरणः विज्ञति (विज्ञत्या-
 दिव्यस्तमद्वयतत्त्वाः । वा १२।२६) इति तमङ्गागमः ।
 विज्ञ, बीसवा ।
 विज्ञतिप (सं० पु०) विज्ञति-पा-कः । विज्ञतिका
 अधिपति, बीस गणोंका मालिकः ।
 विज्ञतिगत (सं० स्त्री०) विज्ञत्याः गतः । विज्ञति शत,
 बीस सौ ।
 विज्ञतिमाह्व (सं० स्त्री०) बीस हजार ।
 विज्ञतोश (सं० पु०) विज्ञत्याः ईशः विज्ञतिका
 अधिपति ।
 विज्ञतोशिन (सं० पु०) विज्ञत्याः ईशो, ईश-पति ।
 बीस ग्रामका अधिपति ।
 विज्ञत्वधिपति (सं० पु०) विज्ञत्याः अधिपतिः ।
 विज्ञतिपति, बीस ग्रामका अधिपति ।
 विज्ञाद्गु (सं० पु०) राघण (रामायण ७।३।२।५)
 विज्ञिन (सं० पु०) विज्ञति प्रामेने अधिपति । १ विज्ञति
 प्रामपति, बीस गणोंका मालिकः । २ विज्ञति, बीसको
 संख्या ।
 विज्ञोत्तरी दशा (सं० स्त्री०) ज्योतिष्येक दशाभेदः ।
 इस दशामें प्रदोका १२० वर्ष तक भोग होता है । इसी-
 से इसका नाम विज्ञोत्तरी दशा हुआ । इस दशामें
 मानवजोपनका शुभाशुभ फल निर्णय किया जाता है ।
 दशा बहुत तरहकी होमें पर भी इन कालकालमें एक
 मासिकीके दशानुसार ही फल होता है ।
 "कल्पे लक्षदश प्रोक्ता संतापं योगिनोऽमुता ।
 द्वापरे दशरीशेन कर्मो नानिप्रिको ददा ॥" (अग्निपुराण)
 इस मासिकीके दशामें दो दशामें हैं—अष्टोत्तरी
 और विज्ञोत्तरी । भारतमें ये दो दशामें प्रचलित हैं ।
 पराशरस्मृतिकें पञ्चोत्तरी, द्वाद्शोत्तरी आदि दशामों-
 का भी उल्लेख है, किन्तु इनका इस समय व्यवहार
 दिखाई नहीं देता । साधारणतः वहाँ पुरातन दशामोंका
 ही व्यवहार देखा जाता है । अधिपति ज्योतिषिन्नु ही
 अष्टोत्तरी मतसे गणना करते हैं । कुछ ऐसे भी हैं, जो

अष्टोत्तरी और विज्ञोत्तरी दोनों मतोंका व्यवहार
 करते हैं ।

युक्त प्रदोशके विन्ध्य पर्वतके पूर्णमें एकमात्र विज्ञो-
 त्तरी मतसे फल गणना की जाती है या यों कहिये कि
 यहाँ अष्टोत्तरी मतसे गणना की ही नहीं जाती । हाँ पर
 दशा और भी वहाँ प्रचलित है । उसका नाम है—
 योगिनो दशा । इस दशाका कुछ कुछ व्यवहार यहाँ
 देखा जाता है ।

पञ्जालमें अष्टोत्तरी मतका ही प्राबल्य है । इन दोनों
 दशाओंकी फलगणनामें कहीं कहीं फलका तारतम्य
 दिखाई देता है । ज्योतिषियोंका कहना है, कि इन दशामों-
 के अनुसार जा फल निर्णय होगा, यह होगा ही होगा ।
 ऐसी दशामें इसके व्यतिक्रम होनेका कारण क्या ? इसके
 उत्तरमें उनका कहना है, कि अष्टोत्तरी और विज्ञोत्तरी इन
 दोनों दशामोंमें जिसकी जिस दशाके फलका अधिकार
 है, उसको उसी फलका भोग करना होगा । दूसरी दशामें
 उसका फल न होगा । कुछ उद्योगियों तो गणना
 कार्यके भ्रमको ही फल व्यतिक्रमका कारण बताते हैं ।

अष्टोत्तरी और विज्ञोत्तरी—इन दो मासिकीके दशा
 होने पर भी नक्षत्रोंका क्रम एक तरहका नहीं है । हरिका
 नक्षत्रसे आरम्भ कर अभिजित्के साथ २८ नक्षत्रोंके तीन
 चार इत्यादि क्रमसे राहु प्रभृति प्रदोकी अष्टोत्तरी दशा
 होती है । किन्तु विज्ञोत्तरी दशा ऐसी नहीं है । यह दशा
 किसी एक विशेष नियम पर निर्भर कर प्रतिपादित हुई
 है । भगवान् पराशरने अपनी संहितामें इसका विशेष
 रूपसे उल्लेख किया है, किन्तु हम संक्षेपमें इसका कुछ
 परिचय देते हैं ।

किसी निर्दिष्ट राजिका त्रिकोण अर्थात् पञ्चम और
 नवम राजिके साथ भाषसमें इनका सम्बन्ध है, अर्थात्
 यह एक दूसरेका द्वेषता है—पराशरने अपनी संहितामें
 उक्त नियमसे राजियोंका दृष्टि साक्षर्य निर्दिष्ट किया है,
 त्रिकोणस्थ राजियोंके मतसे त्रिकोणस्थ नक्षत्रोंके भी
 परस्पर सम्बन्ध है । नक्षत्रोंकी संख्या २८में इका भाग
 देने पर प्रत्येक भागमें ६ नक्षत्र होते हैं । अतः जिस
 किसी नक्षत्रसे गणनापरा और दक्षिणावर्शक्रमसे जा
 जा नक्षत्र दशामें हैं, उन नक्षत्रोंका उस उस नक्षत्रका

त्रिकोणस्थ नक्षत्र जानना होगा। जैसे कृत्तिका नक्षत्रसे दक्षिणावर्त्त और चागावर्त्त गणनामें उत्तरफलगुनी और उत्तरपादा नक्षत्र दशम या त्रिकोण नक्षत्र होता है।

अतएव अथ मालूम हुआ, कि कृत्तिका नक्षत्रके साथ उत्तर-फलगुनी और उत्तरपादा, केवल इन दोनों नक्षत्रों हीके त्रिकोण या दृष्टि-सम्बन्ध रहनेसे कृत्तिका नक्षत्रमें जिस प्रहको दशा है, इन दो नक्षत्रोंके भी उन्हीं प्रहोंको दशा होगी। कृत्तिका नक्षत्रमें रविकी दशाका उल्लेख है, अतएव इन दो नक्षत्रोंकी भी रवि दशा ही जाननी होगी। इनके परस्पर परवर्त्ती तीन नक्षत्रोंमें चन्द्रकी दशाका अधिकार है। २७ नक्षत्रोंमें चन्द्र रोहिणी नक्षत्रमें अवस्थित रहने पर बहुत प्रसन्न रहता है। इसीलिये पराशरने रोहिणी नक्षत्रके ही चन्द्रके दशारम्भक निर्देश किया है।

उक्त प्रकारके नियमसे ही प्रत्येक तीन तीन नक्षत्रमें मङ्गलादि प्रहको दशा कल्पित हुई है। विंशोत्तरी दशामें अष्टोत्तरी दशाका मत अभिज्ञित नक्षत्रसे गणना नहीं की जाती है और रविसे केतु तक नवप्रहके प्रत्येक तीन तीन नक्षत्रोंमें दशाधिकार व्यवस्थापित हुआ है। अष्टोत्तरी मतसे केतुकी दशा नहीं है। किन्तु विंशोत्तरी-दशाके अनुसार केतुप्रहकी दशा मानो जाती है। इसलिये ही अष्टोत्तरी दशाके क्रमके साथ इसका बहुत पार्ष्वय है।

विंशोत्तरी मतसे रवि आदि प्रहोंकी दशा भोगकाल अर्थात् महादशा इस तरह निर्दिष्ट हुई है, रविकी महादशाका भोगकाल ६ वर्ष, चन्द्रका २० वर्ष, मङ्गलका ७ वर्ष, राहुका १८ वर्ष, बृहस्पतिक १६ वर्ष, शनिक १६ वर्ष, बुधका १७ वर्ष, केतुका ७ वर्ष, शुक्रका २० वर्ष कुल १२० वर्षमें दशाके भोगका गन्त होता है। इससे इसका नाम विंशोत्तरी हुआ है। परन्तु इसमें अष्टोत्तरी दशाकी तरह नक्षत्र-संख्याके अनुसार दशाका वर्ष विभाग कर भोग्य दशा निकाली नहीं जाती; इसमें प्रत्येक नक्षत्रमें ही पूर्ण दशाका भोग्यवर्ष घर कर गणना करनी होती है। इस समय मालूम हुआ है, कि अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी दोनों मतसे ही रविसे मङ्गल तक ये तीन दशाक्रम परस्पर ऐष्य हैं, इसके बादसे ही व्यतिक्रम हुआ है। रवि और बुधके

सिवा अन्याय्य प्रहोंके दशावर्षको संख्या भी मित्र प्रकारकी है।

त्रिकालदर्शी पराशर मुनिने कलिके जीवोंको भाग्य-चक्रके फलाफलको जाननेके लिये एकमात्र प्रत्यक्षकाल-प्रद विंशोत्तरी दशाका निर्देश किया है। यद्यपि अष्टोत्तरी और विंशोत्तरी आदि कई नाक्षत्रिकी दशाके निर्णयकी स्वतन्त्र व्यवस्था है तथापि पराशरके मतसे इस कलिकालमें विंशोत्तरी दशा ही फलप्रद है। सुनरां दशा-विचारमें फलाफल निर्णय कर देखनेसे विंशोत्तरी मतसे ही देखना आवश्यक है। इस दशाका विचार करनेसे महादशा, अन्तर्दशा और प्रत्यन्तरदशाको निकाल कर उनके सम्बन्धमें विचारपूर्वक फल स्थिर करना होता है।

किस किस नक्षत्रमें किस प्रहकी दशा होती है, उसका विषय इस तरह निर्दिष्ट हुआ है। पहले ही कहा गया है, कि कृत्तिका नक्षत्रसे इस दशाका आरम्भ होता है। कृत्तिका उत्तरफलगुनीनक्षत्रमें रविकी दशा होती है, उसका भोग्यकाल ६ वर्ष है, रोहिणी, हस्ता और ध्रुवणा नक्षत्रमें चन्द्रका भोग्यकाल १० वर्ष; मृगशिरा, चित्ता और घनिष्ठा नक्षत्रमें मङ्गलका भोग्यकाल ७ वर्ष; आर्द्रा, स्वाति और शतमिषा नक्षत्रमें राहुका भोग्यकाल १८ वर्ष; पुनर्वसु, विशाखा या पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें बृहस्पतिक भोग्यकाल १६ वर्ष; पुष्या, अनुराधा या उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें शनिक भोग्यकाल १६ वर्ष; अरुण्डा, ज्येष्ठा या रेवती नक्षत्रमें बुधका भोग्यकाल १७ वर्ष, मघा, मूला या अश्विनी नक्षत्रमें केतुका भोग्यकाल ७ वर्ष है। पूर्वफालगुनी, पूर्वाषाढा और भरणी नक्षत्रमें केतुका भोग्यकाल २० वर्ष हुआ करता है।

इन महादशाओंका निर्णय कर पीछे अन्तर्दशाका निदचय करना चाहिये। जातकका जन्म समय स्थिर कर तत्कालिक नक्षत्रका जितना दण्ड गत हुआ है, उसका ठीक कर इस दशा भोग्यवर्षका भाग कर शुक्र भोग्यकाल निर्णय करना होता है। नक्षत्रमान साधारणतः ६० दण्ड है। एक मनुष्यका कृत्तिका नक्षत्रमें ३० दण्डके समय जन्म हुआ। कृत्तिका-नक्षत्रमें रविकी दशा होती है, उसका भोग्यकाल ६ वर्ष है। यदि समूचा कृत्तिकानक्षत्रमें अर्थात् ६० दण्डमें ६ वर्ष भोग

हो, तो ३० दृष्टका कितना भोग होगा ? इससे स्पष्ट समझमें आता है, कि नक्षत्रमानके अर्द्धसमय व्यतीत होने पर जन्म हो, तो रविकी दशाका भी अर्द्धकाल (३ वर्ष) भुक्त हुआ है और बाकी अर्द्धकाल भोग्य है। इस तरह भुक्त भोग्य स्थिति कर दशाका निरूपण करना होगा।

निम्नोक्त क्रमसे अर्द्धदशा निकालनी चाहिये।

विशोत्तरी मतकी अर्द्धदशा—

वर्ष मास दिन	वर्ष मास दिन
रविकी महादशा ६ वर्ष	र, पु, ०१ ६१ १८
नक्षत्र ३, १२, २१।	र, ज, ०१ ११। १२
र, र, ०१ ३१ १८	र, पु, ०१ १०। ६
र, च, ०१ ६। ०	र, के, ०१ ४। ६
र, म, ०१ ४। ६	र, शु, १। ०। ०
र, रा, ०१ १०। २४	सर्वयोग ६ वर्ष।

चन्द्रदशा १० वर्ष। मङ्गलदशा ७ वर्ष।

वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
नक्षत्र ४, १३, २२।	नक्षत्र ५, १४, २३।
च, च, ०१ १०। ०	म, म, ०१ ४। २७
च, म, ०१ ७। ०	म, रा, १। ०। १८
च, रा, १। ६। ०	म, पु, ०१ ११। ६
च, पु, १। ४। ०	म, श, १। १। ६
च, ज, १। ७। ०	म, पु, ०१ ११। २७
च, सु, १। ५। ०	म, के, ०१ ४। २७
च, के, ०१ ७। ०	म, शु, १। २। ०
च, शु, १। ८। ०	म, र, ०१ ४। ६
च, र, ०१ ६। ०	म, च, ०१ ७। ०

कुल १० वर्ष।	कुल ७ वर्ष।
राहुकी महादशा १८ वर्ष	युद्धस्वतिकी महादशा १६ वर्ष
नक्षत्र ६, १५, २४	नक्षत्र ७, १६, २५
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
रा, रा, २। ८। १२	पु, पु, २। १। १८
रा, पु, २। ४। २४	पु, ज, ६। ६। १२
रा, ज, २। १०। ६	पु, सु, २। ३। ६

वर्ष मास दिन	वर्ष मास दिन
रा, पु, २। ६। १८	पु, के, ०। ११। ६
रा, के, १। ०। १८	पु, शु, २। ८। ०
रा, शु, ३। ०। ०	पु, र, ०। १०। १८
रा, र, ०। १०। २४	पु, च, १। ४। ०
रा, च, १। ६। ०	पु, म, ०। ११। ६
रा, म, १। ०। १८	पु, रा २। ४। २४

कुल १८ वर्ष।	कुल १६ वर्ष।
जिनिकी महादशा १६ वर्ष	सुषकी महादशा १० वर्ष
नक्षत्र ८, १७, २६	नक्षत्र ६, १८, २७
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
ज, ज, ३। ०। ३	सु, पु, २। ४। २७
ज, पु, २। ८। ६	सु, के, ०। ११। २७
ज, के, १। १। ६	सु, शु, २। १०। ०
ज, शु, ३। २। ०	सु, र, ०। १०। ३
ज, र, ०। ११। १२	सु, च, १। ५। ०
ज, च, १। ७। ०	सु, म, ०। ११। २७
ज, म, १। १। ६	सु, रा, २। ६। १८
ज, रा, २। १०। ६	सु, पु, २। ३। ६
ज, पु, २। ६। १२	सु, ज, २। ८। ६

कुल १८ वर्ष।	कुल १७ वर्ष।
केतुकी महादशा ७ वर्ष	शुक्रकी महादशा २० वर्ष
नक्षत्र १०, १६, १	नक्षत्र ११, २०, २
वर्ष, मास, दिन	वर्ष, मास, दिन
के, के, ०। ४। २७	शु, शु, ३। ४। ०
के, शु, १। २। ०	शु, र, १। ०। ०
के, र, ०। ४। ६	शु, च, १। ८। ०
के, च, ०। ७। ०	शु, म, १। २। ०
के, म, ०। ४। २७	शु, रा, ३। ०। ३
के, रा, १। ०। १८	शु, पु, २। ८। ०
के, पु, ०। ११। ६	शु, ज, ३। २। ०
के, ज, १। १। ६	शु, सु, २। १०। ०
के, सु, ०। ११। २७	शु, के, १। २। ०

कुल ७ वर्ष। कुल २० वर्ष

इन कोशुमें जिस प्रदकी महादशा देखनी हो देखी जा सकती है। महादशा और अन्तर्दशा ठीक हो जाने पर प्रत्यन्तर दशाका निरूपण करना होता है। महादशा, अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर दशा स्थिर कर फल विचार करना होगा।

महादशा और अन्तर्दशा ठीक कर उस पर फल निरूपण करना होता है। इस महादशाका फल विचार करने पर कुण्डली प्रहोंकी अवस्थितिका ज्ञान रहना आवश्यक है। प्रहोंकी शुभाशुभ स्थानमें अवस्थान और आपसमें दृष्टिसम्बन्ध और आधिपत्यादि दोष आदि देख करके तब फल निरूपण करना चाहिये, नहीं तो फलका वैलक्षण्य दिखाई देता है।

विंशोत्तरी दशाके मतसे रवि आदि प्रहोंकी महादशा इस तरह कही गई है—रविकी महादशामें चोर्षा, मनका उद्वेग, चौपाये ज्ञानयत्नोंसे भय, गो और भूतधनाग, पुत्रदारादिके भरणयोगमें बलेश, गुरुजन और पितृ नाश और नेत्र-पीड़ा आदि अशुभ फल होने हैं।

चन्द्रकी महादशामें—गन्धर्वसिद्धि, स्त्री-सम्बन्धमें धन-प्राप्ति, नाना तरहके गन्धद्रव्य और भूषणोंकी प्राप्ति, और बहुत धनागम प्रभृति विविध सुख होता है। इस दशामें केवल वातजनित पीड़ा होती है।

मङ्गलकी महादशा—अन्न, अग्नि, भू, वाहन, भ्रैषज्य, गृहपञ्चन आदि नाना तरहके असदुपायसे धनागम, सर्पादा पितरक और उबरपीड़ा, मोचाङ्गना सेवन, पुत्र, दारा, बन्धु और गुरुजनके साथ विरोध रहता है।

राहुकी महादशा—सुख, वित्त और स्थानताश, कलस और पुत्रादिका वियोगदुःख, परदेशवास, सशके साथ नियत विद्यादकी इच्छा प्रभृति अशुभ फल होते हैं।

शुक्रकी महादशा—स्थानकी प्राप्ति, धनागम, यानवाहन लाभ, चित्तशुद्धि, ऐश्वर्य प्राप्ति, ज्ञान और पुत्र-दारादि विविध प्रकारसे सुख सीमाय होता है।

शनिकी महादशा—अन्न, गर्दभ, ऊँट, वृद्धाङ्गना, पक्षी और कुशान्य लाभ, पुत्र, प्राम और जलाधिपतितसे अर्थ लाभ, मोच कुलका आधिपत्य, मोचसङ्ग, युद्ध स्त्री-समागम प्रभृति फललाभ होते हैं।

शुभकी महादशा—गुरु, बन्धु और मित्रोंसे धनाङ्गन,

कीर्ति, सुख, सत्कर्म, सुवर्ण आदि लाभ, व्यवसायसे उन्नति और वातपीड़ा होती है।

केतुकी महादशा—बुद्धि और विवेकनाश, नाना प्रकारकी व्याधि, पापकार्यकी बुद्धि, सदाङ्गेश आदि नाना प्रकारके अशुभ फल होते हैं।

शुक्रकी महादशा—स्त्री पुत्र और धनलाभ, सुख, सुगन्ध, माल्य, वस्त्र, भूषणलाभ, यानादि प्राप्ति, राजतुल्य यशोलाभ इत्यादि विविध प्रकारका सुख होता है।

रवि आदि प्रहोंकी महादशाका फल इसी तरह निर्दिष्ट हुआ है। किन्तु इसमें विशेषता है। ऐसा न समझना चाहिये, कि रविकी दशा होने ही बराबर दशा होगी और चन्द्रकी दशामें सदा मङ्गल ही होगा। फिर रवि साधारणता बराबर फल देनेवाला है और चन्द्र अच्छा। रविकी महादशा जाने पर यह देखना चाहिये, कि दुःस्थानगत है या नहीं? और उसका आधिपत्य दोर है या नहीं? यदि दुःस्थानगत और आधिपत्य दोष दृष्ट हो, तो उक्तरूपसे अशुभफल होता है। फिर, रवि यदि शुभ स्थानाधिपति और शुभस्थानमें स्थित हो, तो उक्त प्रकारसे बुरा फल न हो कर शुभ फल होता है। चन्द्र स्वभाविक शुभफलदाता होने पर भी यदि दुःस्थानगत हो कर आधिपत्य दोषसे दिखाई देता हो, तो उससे शुभफल न हो कर अशुभफल ही हुआ करता है।

इस तरह अन्तर्दशा कालमें जिस प्रदका जो मिले है, उससे मिलके साथ मिले रहने पर शुभफलदाता और शत्रुके साथ मिले रहने पर अशुभ फलदाता हुआ करता है। प्रहोंका विचार कर और जो सब सम्बन्ध कहे गये हैं, उनका विचार कर फल निर्णय करना चाहिये।

प्रहोंका शुभाशुभ फल उनकी दशामें ही हुआ करता है। जो प्रद राजयोगकारक हैं, उनी प्रदकी दशामें राजयोगका फल होता है। जो प्रद मार्केश होता है, उसी प्रदकी दशामें मृत्यु होती है। सुतरां जो कुछ शुभाशुभ फल हैं, वे सभी दशाके समय ही भोग हो जाते हैं।

कलिकालमें परमात्म विंशोत्तरी दशा ही प्रत्यक्ष फलप्रदा है। पराशरने अपनी संहितामें यह विशेष भाषने प्रतिपादन किया है और दशा-विचारप्रणाली-

विषयमें विविध प्रणालियोंके विषय पर उपदेश दिया है। सुनरां विज्ञोत्तरो-दना विचार करते पर एकमात्र पराशरसंहिताका अथवाभन कर विचार करनेसे उत्तम रूपमें विचार किया जा सकता है। अष्टोत्तरी महादनाकी विचारप्रणाली विज्ञोत्तरोके समान नहीं, पूर्णरूपसे विभिन्न है। कुछ लोग एक नियमसे दोनों दशाओंका विचार करते हैं। किन्तु इसमें फलका तारतम्य दिमाई देना है। येही दशामें समझना होगा, कि विचारप्रणालीमें भ्रम है।

किर जो ग्रह दुःस्थानगत हैं अर्थात् पट्ट, अष्टम और द्वादशस्थ हैं; ये दोनों दशाओंमें अशुभ फलप्रद होते हैं। विशेष भावसे विवेचना कर दशा-विचार करना चाहिये। नहीं तो प्रति पद पर फलका भ्रम हो सकता है। विज्ञोत्तरो-दना-विचार करने पर पराशरसंहिताके अच्छी तरहसे पढ़ लेना चाहिये, उसीके तात्पर्यके अनुसार विचार करना उचित है। दशा पर विचार करते समय महादना, अल्पदशा और प्रत्यन्तदशा इन तीनोंके सामने रख इनके सम्बन्धमें अथवाभन और आधिपत्य देखा कर तब फल निर्णय करना उचित है। पराशरविज्ञोत्तरी दशा ही एकमात्र फलप्रदा है, किन्तु यह भी कहना ठीक न होगा, कि अष्टोत्तरी दशाका फल ठीक नहीं होता। पराशरसंहिता देखो।

विश्वान्विका (सं० स्त्री०) मेट्टका विवृत ग्रहद।

विक (सं० स्त्री०) सचःप्रसूता गोशोर, सुरन्तकी व्याई गोका दृष।

विकट्ट (सं० पु०) गोशुर, गोशरक।

विकट्टिक (सं० लि०) विकट्ट सारभवीय।

विकट्टन (सं० पु०) पदरो सट्टन मूकम फलका वृक्ष, एक प्रकारका जंगली पेड़। इसे बंटाई, निरिणी और बंज भी कहते हैं। संहृत-पयांय—सादुक्लक, रूपावृक्ष, प्रविणल, व्याप्रवाय, धुग्वाय, मधुपर्णी, कण्टपाय, यहफल, गोपपट्टा, रूपाग्र न, मृदुफल, इन्तकाष्ट, पशोय प्रनवायुय, विण्टार, हिमक, पूत, किट्टीनी, वैकट्टन, पुनिट्टन, कण्टकारी, किट्टीनी, रूपाग्रक। (अष्टापर)

इस प्रकारके पत्ते छोटे छोटे और डालियोंमें काटे होये हैं। इसके फल बेरके आकारके, तथा पकने पर मोठे होते हैं, लेकिन अथवाभनो हालमें गटमोठे होये हैं।

यसोके लिये सूया इसीको लकड़ोके बनावेला विधान है। इसका फल लघु, दीपन और पातक तथा बमल और लोहाका नाजक माना गया है।

विकट्टना (सं० स्त्री०) मतिबला।

विकट्टनीमुखी (सं० लि०) कण्टकयुक्त मुकविनिष्ट, जिसके मुंह पर काटे होते हैं।

विकच (सं० पु०) विगतः कर्चो यस्य केजशूष्यवायु, यदा विनिष्टः, कचो यस्य प्रभूतकेट्टवात् । १ क्षणक। २ केतु, ध्वजा। ३ केतुप्रद। इनकी संख्या ३५ है। ये घृहस्वतिके पुत्र माने जाते हैं। इनमें निष्ठा नहीं होती। यर्ष सफेद होता है और ये प्रायः क्षीण दिशामें उदय होते हैं। इनके उदयका फल अशुभ माना जाता है। (लि०) विकचति विकचतीति विकच अच् । ४ विकसित, शिला दुष्ठा। विगतः कचो यस्य । ५ केजशूष्य, जिसमें बाल न हो।

विकखा (सं० स्त्री०) महाधायगणिका, गोरवमुण्डी।

विकचालम्बा (सं० स्त्री०) दुर्गा।

विकच्छ (सं० स्त्री०) विगतः कच्छो यस्य । कच्छादित, विना काष्ठके। विकच्छ हो कर अर्थात् विना काष्ठ लगाये कोई भी चर्मकार्य नहीं करना चाहिये। किन्तु मृतत्वामके समय विकच्छ होना ही कर्त्तव्य है, नहीं तो काष्ठके दाहिनी या बाई ओरसे पेनाब करनेसे यह पण्यकन देवता या पितृमुपामें पतित होता है।

२ जिसके दोनों ओर तराई या कछार न हो, जिसके किनारे पर दुन्दुल या गीली जमीन न हो।

विकच्छन (सं० लि०) कच्छपशूना।

(कण्ठवित् ११।१३५)

विकट (सं० पु०) विकटति पुरस्तादिक पर्यतीति विकट पचायच् । १ विकटोटक। (कण्ठवित् १०) २ माकु-कण्टक । (रात्रि०) ३ तीमसता । (वैश्विक०) ४ शूतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । (भारत १।६।२६) विकट (संमोक्षण कटव् । पा १।२।२६) इति कटव् । (लि०) ५ विनाल । ६ विकराल, अय्युर । ७ वक्र, टेढ़ा । ८ कटिक, मुदिबल । ९ दुर्गम । १० दुस्साध्य । ११ दानु, दंतुता ।

विकटमाम (सं० पु०) नगरभेद।

विकटस्व (सं० स्त्री०) विकटस्व भाव, विकट-स्व ।
 विकटका भाव या धर्म, विकटता ।
 विकटनितम्ब (सं० स्त्री०) विकट नितम्बो यस्याः ।
 विकट नितम्बयुक्ता स्त्री, विकराल चूतड़वाली औरत ।
 विकटमूर्त्ति (सं० स्त्री०) उदकट आकृतियुक्त, भयङ्कर
 आकारवाला ।
 विकटवदन (सं० पुं०) १ दुर्गाके एक अनुचरका नाम ।
 २ भोपण मुख, भयङ्कर मुँह ।
 विकटवर्मान् (सं० पुं०) एक राजपुत्र । (दशकुमार)
 विकटविशयण (सं० पुं०) सम्भर-मृग ।
 विकटशृङ्ग (सं० पुं०) सम्भर मृग । (बैद्यकनि०)
 विकटा (सं० स्त्री०) विकट-टाप् । बुद्धदेवकी माता
 मायादेवकी नाम । यह बौद्धदेवी थी । पर्याय—
 मंरीचि, त्रिमुखा, वज्रकालिका, वज्रवाराही, गौरी, पोलि-
 रथा । (विक्र०)
 विकटाक्ष (सं० पुं०) एक असुरका नाम । २ घोर दर्शन,
 विकराल मूर्त्ति ।
 विकटानन (सं० पुं०) १ भोपणवदन, डरावना चेहरा ।
 २ धुनराष्ट्रके पुत्रका नाम ।
 विकटाभ (सं० पुं०) एक असुरका नाम । (हरिवंश)
 विकटक (सं० पुं०) विशिष्टः कण्टकी यस्य । १
 यथास, जयासा । २ स्वनामस्मयात्पृष्ठ, विकंकट ।
 गुण—कषाय, कटु, उष्ण, रुचिप्रद, दोषन, कफहारक,
 यक्षरङ्ग विधायक । (राजनि०)
 विकटकपुर (सं० स्त्री०) १ एक नगरका नाम । २
 पैकुण्ड ।
 विकटपन (सं० स्त्री०) विकटपत्रे इति विकटपत्र श्लाघायाम्
 भाषे ल्युट् । १ मृध्याश्लाघा, झूठो प्रशंसा । (त्रि०)
 विकटपत्रे आत्मनमिति विकटपत्र-ल्युट् । २ आत्म-
 श्लाघाकारी, ऊपरी प्रशंसा करनेवाला ।
 विकटपना (सं० स्त्री०) विकटपत्रे निच्-युच् टाप् । आत्म
 श्लाघा, अपनी बड़ाई ।
 विकटथा (सं० स्त्री०) विकटपत्रे अच् टाप् । श्लाघा,
 आत्मप्रशंसा ।
 विकटिधन (सं० स्त्री०) विकटिधनुं जीलमस्य वि-कथ
 (वीकृष्यलक्षकसम्भः । पा ३।२।१४३) इति चिनुण् । वि-क-
 रथाकारी, अपनी प्रशंसा करनेवाला ।

विकथा (सं० स्त्री०) १ विशेष कथा । (पा ४।४।१०२)
 २ कुत्सित कथा । (जैन)
 विकट्ट (सं० पुं०) यादवभेद । (हरिवंश ३।१२८ स्तो०)
 विकनिकहिक (सं० स्त्री०) सामभेद । कहीं कहीं 'विक-
 विकहिक' भी लिखा जाता है ।
 विकपाल (सं० स्त्री०) कपालविच्युत । (हरिवंश)
 विकम्पन (सं० पुं०) १ राक्षसभेद । (भाग० ६।१०।१८)
 (स्त्री०) वि-कम्प-ल्युट् । २ अतिशय कम्प ।
 विकम्पित (सं० स्त्री०) विकम्प-क्त । अतिशय कम्पित,
 बहुत चञ्चल ।
 विकम्पिन् (सं० स्त्री०) वि-कम्प-णिनि । कम्पनयुक्त,
 विशेषरूपसे कम्पनविशिष्ट ।
 विकर (सं० पुं०) विकीर्णते हस्तपदादिकमनेनेति वि-क
 (श्रुदोरप् । पा ३।३।५७) इत्यर्थः । १ रोग, व्याधि । २
 तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एकका नाम ।
 विकरण (सं० स्त्री०) व्याकरणोक्त प्रत्ययकी एक संज्ञा ।
 विकरणी (सं० स्त्री०) तिल्लुकपृष्ठ, तेंदूका पेड़ ।
 विकरार (अ० वि०) व्याकुल, घेँचीन ।
 विकराल (सं० स्त्री०) विशेषेण करालः । भयानक,
 भोपण, डरावना ।
 विकरालता (सं० स्त्री०) विकरालस्य भाव तल-टाप् ।
 विकरालका भाव या धर्म ।
 विकरालमुख (सं० पुं०) मकरभेद ।
 विकर्ण (सं० पुं०) १ कर्णके एक पुत्रका नाम । २ दुर्यो-
 धनके एक भाईका नाम । यह हृकशेत्रकी लड़ाईमें मारा
 गया था । (भारत १।२।१७।४) ३ एक सामका नाम ।
 ४ एक प्रकारका घाण । (त्रि०) विगनी कर्णी यस्य ।
 ५ कर्णरहित, जिसके कान न हो ।
 विकर्णक (सं० पुं०) १ ग्रन्थिपर्णभेद, एक प्रकारकी
 गंडिवन । २ शिषका व्याङ्गि नामक गण ।
 विकर्णरोमन् (सं० पुं०) ग्रन्थि-पर्णभेद, गंडिवन ।
 विकर्णिक (सं० पुं०) सारस्वत-देश, काश्मीर देश ।
 (हेम)
 विकर्णी (सं० पुं०) १ एक प्रकारकी ईंट, जिससे यज्ञकी
 वेदी बनाई जाती थी । २-एक सामका नाम ।
 विकर्त्तन (सं० पुं०) विशेषेण कर्त्तनं यस्य विभ्यकर्त्त-

यत्नलोहितरवाद्भवत्तवात्वं । १ सूयं । २ नक्तं पूरु, भक्तवत् ।

विकर्त्तुं (सं० वि०) १ प्रलयकर्त्ता । "तं हि कर्त्ता विकर्त्ता घ भूतानामिह सर्वान्तः" (भास्करवचनं) २ क्षतिकारक, अनिष्ट करनेवाला । ३ दमन द्वारा विह्वलितसम्पादक । ४ निप्रदकारक ।

विकर्त्तन् (सं० क्त०) वि विकर्त्त कर्म । १ विकर्त्त कर्म, विद्यदाचार । (त्रि०) वि विकर्त्त कर्म यस्य । २ विद्यद कर्मकारो, दुताचारो ।

विकर्मण्यु (सं० लि०) विकर्म विद्यद कर्म करोतीति कृ-क्विप् तुक्च । निविद्य कर्मकारी । मनुमें लिखा है, कि निविद्य कर्मकारियोंको गवाहो नहीं लेनी चाहिये । ऐसे लोगोको गवाहो अप्राप्त है ।

विकर्मण्य (सं० वि०) विकर्मणि विद्यदाचारे तिष्ठतीति क्त्वा क । धर्मशास्त्र अनुसार यह पुण्य जो वैद्विकद कर्म करता हो, वैद्यके विद्यद आचार करनेवाला व्यक्ति ।

विकर्षे (सं० पु०) विहृषयतेऽस्ती इति यद्वा विहृषयते पर-प्राणा भवेनेति वि-हृष-घञ् । १ बाण, तीर । विहृष भाषे घञ् । २ विकर्मण, मोचना ।

विकर्षण (सं० क्त०) वि हृष क्युट् । १ भाकर्षण, मोचना । २ विभाग, हिस्सा ।

विकल् (सं० वि०) विगतः कलोऽप्यन्वयनिर्घोषः । १ विह्वल, धवाकुल । २ भग्नपूर्ण, क्षणिक । ३ हासप्रसन्न, घटा हुआ । ४ कलाहीन । ५ सन्ध्याभायिक, अनीमर्गिक । ६ भग्नमर्ष । ७ रहित । (कलो०) ८ कलाका पण्डितमांश, कलाका मांडवी भाग, विकला ।

विकलता (सं० क्त०) विकलस्य भावः तन्द् टाप् । विकलता भाव वा धर्म, बेचैनी ।

विकल्पव्ययिक (सं० पु०) विकल्पव्ययिकस्य कन् । स्वभा-यसः पालिहोम, अगमसे हो जिसके दाघ नहीं है ।

विकला (सं० क्त०) विगतः कलो मधुरालापे यस्या, श्रुती तु स्त्रिया मीनित्वादिहितस्याम् । १ शत्रुहीना स्त्री, यह स्त्री जिसका दृशोदर्शन होना बंद हो गया हो । २ यमा-का मांडवी शंभ । ३ पुष्यप्रदो गणिका नाम । ४ समप-का एक अक्षर्य छोटा भाग ।

विकलाङ्ग (सं० लि०) विकलाति भङ्गति यस्य । भूमाङ्ग,

जिसका कोई अंग टूटा या घराब हो । जैसे—भ्रम, लंगड़ा, काना, संज्ञा आदि ।

विकलास (दि० पु०) एक प्रकारका प्राणोत्त शब्द । यह चमड़े से मंडा जाता था ।

विकलित (सं० लि०) १ व्याकुल, बेचैन । २ गुणो, पीड़ित ।

विकलो (सं० क्त०) विगता कला यस्या गौरादित्यान् ङीप् । शत्रुहीना स्त्री, यह स्त्री जिसका दृशोदर्शन होना बंद हो गया हो ।

विकलेन्द्रिय (सं० क्त०) विकलानि इन्द्रियानि यस्य । १ जिसकी इन्द्रियां धर्मों न हो । २ जिसको कोई इन्द्रिय पराब हो सपथा विलकुल न हो ।

विकल्प (सं० पु०) विद्यद कल्पनमिति वि-हृष घञ् । १ स्रान्ति, भ्रम, धोखा । २ बदलन । (मेदिनी) ३ विपरीत कल्प, विद्यद कल्पना । ४ विविध कल्पना, ज्ञाना भांतिसे कल्पना करना । ५ विभिन्न कल्पना विशेष, इच्छानुवाचो कल्पनाविशेष ।

स्मृतिशास्त्रमें यह विकल्प दो प्रकारका माना गया है, एक व्यवर्तगत या व्यवस्थायुक्त विकल्प और दूसरा ऐच्छिक या इच्छानुवाचो ।

स्मृतिशास्त्रके मतसे आकाङ्क्षा पूर्ण होने पर विकल्प होता है । जिसमें दो प्रकारकी विधियां मिलती हो उसे व्यवस्थायुक्त कहते हैं । यथा "दशशोभामाम यामो यव द्वारा होम करे, प्रादि द्वारा होम करे" इसमें दो प्रकार-को धृतियां देखनेमें आती हैं । यद्यपि यव भीर प्रादि इन दोनोंके ही प्रत्यक्ष धृतिबोधित होनेके कारण यव भीर प्रादिका विकल्प हुआ । इच्छानुसार यव या प्रादि इनमें से किसी एक द्वारा होम करने होने का मन्त्र होना । यही इच्छा विकल्प है । इस प्रकार विकल्पाको जगद होमों कल्प परस्पर विद्यद मालूम होते हैं, किन्तु विचारविषये यदि विचार किया जाये, तो दोनोंमें कोई विद्यदता नहीं है । क्योंकि किसी एक विधिके अनुसार कार्य करने होते कार्यको मिति होता है । अतएव इसको इच्छा-विकल्प कहते हैं । स्मृतिमें लिखा है, कि इच्छाविकल्पो ८ दोष हैं ।

प्रादि द्वारा यव करे और यव द्वारा यव करे, ये दोनों

विधियाँ, इनमेंसे किसी एकका पक्ष अवलम्बन करनेसे चार चार दोष होते हैं, अतएव दोनों पक्षमें कुल ८ दोष हुए। यथा—प्रमाणत्वपरित्याग और अप्रामाण्यप्रखणन, प्रामाण्योजोचन और प्रामाण्यहानि, ब्राह्मिके लिये चार कुल ८ दोष हुए। कहीं कहीं ब्राह्मि द्वारा याग करनेसे प्रतीत यवप्रामाण्यका परित्याग होता है और अप्रतीत यवके अप्रामाण्यका परिकल्पन होता है तथा परित्यक्त यव प्रामाण्यका उज्ज्वलन और स्वीकृत यवके अप्रामाण्यकी हानि होती है। इस प्रकार चार चार करके ८ दोष हुए। जिनकी विधियाँ हैं, जहाँ उन सब विधियोंका अनुष्ठान करना होता है वहाँ व्यवस्थित विकल्प हुआ करता है। व्यवस्थित विकल्पकी जगह एककी वाद दे कर एकका अनुष्ठान करनेसे काम नहीं चलेगा, सर्वोंका अनुष्ठान करना ही पड़ेगा।

एकाग्रताके लिये विविध कल्पित होते हैं इस कारण विकल्प है। इच्छा विकल्पमें ८ दोष हैं, यह आगङ्गा कर दो तिथिमें उपवास करे, जहाँ ऐसी विधि है वहाँ इच्छा विकल्प नहीं होगा, व्यवस्थितविकल्प होगा।

व्याकरणके मतमें भी एक कार्य एक जगह होगा, दूसरी जगह नहीं होगा, ऐसा जो विधान है उसे विकल्प कहते हैं।

६ पातञ्जलदर्शनके मतसे त्रिचतुस्त्रिमेद। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच त्रिचतुस्त्रिमेद हैं। वस्तु नहीं रहने पर भी शब्दज्ञानमाहात्म्य-निवर्धन जो वृत्ति होती है, उसका नाम विकल्प है। चैतन्य पुरुषका स्वरूप है, यह एक विकल्पका उदाहरण है। क्योंकि पुरुष चैतन्यस्वरूप है, अर्थात् चैतन्य और पुरुष एक ही पदार्थ है। अतएव चैतन्य और पुरुषका धर्मधर्मिभाव वस्तुगत्या नहीं है। अध्व चैतन्य पुरुषका स्वरूप इसी प्रकार धर्मधर्मिभावमें व्यवहृत होता है। मिथ्याज्ञानका नाम विपर्यय है, शुक्ति या सोपमें रजत-बुद्धि-विपर्ययका उदाहरण है। विशेष दर्शन होने पर सर्वसाधारणके लिये दो रजतबुद्धिबाधित प्रतीत होती है। बाधितका निश्चय हो जानेसे उसके द्वारा फिर किसी भी रूपका व्यवहार नहीं होता, विकल्पकी जगह सर्वसाधारणकी याधबुद्धि विलकुल नहीं होती, विचार-

निपुण सुधियोंकी ही बाधबुद्धि होती है। फिर बाधबुद्धि होने पर भी उसका व्यवहार विलुप्त नहीं होता। विपर्यय और विकल्पके इस सूक्ष्म भेदके प्रति लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। पातञ्जलमें लिखा है, वास्तुके स्वरूपकी अपेक्षा न करके केवल शब्दजन्य ज्ञानानुसार जो एक प्रकारका बोध होता है उसीको विकल्पवृत्ति कहते हैं। देवदत्तका कर्म्यल, यहाँ पर देवदत्तका स्वरूप जो चैतन्य है, उसकी अपेक्षा न करके देवदत्त और कर्म्यलमें जो भेद होता है वही विकल्पवृत्ति है।

७ अद्यान्तर कल्प। ८ देवता। ९ अर्धाङ्गारभेद। जहाँ तुल्यबलविशिष्टका चातुरीयुक्त विरोध होता है वहाँ विकल्पालङ्कार हुआ करता है। १० नैयायिकोंके मतसे क्षामभेद, प्रकारस्वरूप विपयताभेदज्ञान। (न्यायद०) ११ वैचित्र्य। १२ घटकके मतसे समवेत दोषोंकी अज्ञात कल्पना अर्थात् व्याधि होनेके पहले शरीरमें दोषोंकी जो हास वृद्धि हुआ करती है, उसकी न्यूनाधिक कल्पनाका नाम विकल्प है। १३ समाधिभेद, सविकरक समाधि और निर्विकल्पकसमाधि।

विकल्पक (सं० पु०) विकल्प स्वार्थे क्त।

विशेष देखो।

विकल्पन (सं० क्त०) विकल्प वयुट्। विविध कल्पन। विकल्पनीप (सं० लि०) विकल्प अनोवर्त्। विकल्पहं, विकल्पके योग्य।

विकल्पवत् (सं० लि०) विकल्प अस्त्वर्थे नतुप् मन्थ घ। विकल्पयुक्त, विकल्पविशिष्ट।

विकल्पसम (सं० पु०) न्यायदर्शनमें २४ जातियोंमेंसे एक। इसमें चादीके दिये गये दृष्टागतमें अन्य धर्मकी योजना करने हुए साध्यमें भी उसी धर्मका आरोप करके चादीकी युक्ति। मिथ्या खण्डन किया जाता है।

विकल्पसम्प्राप्ति (सं० स्त्री०) वातादि दोषोंकी मिश्रित अवस्थामें प्रत्येकके अज्ञातकी कल्पना करना।

विकल्पगुणपत्ति (सं० पु०) पक्षान्तरमें अनुपपत्ति।

(सर्वदर्शनसंग्रह ११।१६)

विकल्पासह (सं० लि०) विकल्पसे मिसकी उपति हो।

(सर्वदर्शन ११।२०)

विकल्पित (सं० लि०) विकल्पवत्। १ विविधरूपमें

विकल्पित, जिसको बनना कई तरहसे की गई हो ।
२ सन्दिग्ध, जिसके सम्बन्धमें निश्चय न हो । ३ विमा-
पित, घमकता हुआ । ४ अनियमित, जिसका कोई
नियम न हो ।

विकल्पित् (सं० लि०) विकल्प-वृत्ति । विकल्पयुक्त,
निश्चयविहित ।

विकल्प्य (सं० लि०) विकल्प-यत् । विकल्पनीय, विकल्प-
के योग्य ।

विकल्पय (सं० लि०) विकल्पः कल्पनीय वक्ष्य । पाररहित,
निश्चय, जिसमें पाप न हो ।

विकल्प्य (सं० पु०) जानिमेद् । (भारत भोष्पवर्ष)

विकल्प (सं० लि०) कथनरहित, कथनरूप, बिना
बचनरके ।

विकल्पिकदिक (सं० लि०) साममेद् । कहीं कहीं दिक-
विकल्पिक और विकल्पिकदिक भी देखा जाता है ।

विकल्पय (सं० लि०) कथनपरहित । (एतेरप्या० ७२७)

विकल्प (सं० लि०) विकल्प-वचन् । विकल्पों, शिंङ्गे-
वाला । २ विसरणमोल । (भरत)

विकल्पा (सं० स्त्री०) विकल्पतीति विकल्प गती अच् टाप् ।
१ मज्जिष्ठा, मज्जोष्ठ । (ममरटी० २५५०) २ मांसरोहिणी ।

(सामनि०)

विकल्प्य (सं० लि०) विकल्प वरच् । विकल्पर ।

(भरत)

विकल्प (सं० पु०) विकल्पतीति विकल्प-अच् । अष्ट्रमा ।

विकल्पन (सं० लि०) विकल्प-वचन् । प्रस्तुतन, कृतना,
विकल्पना ।

विकल्पा (सं० स्त्री०) विकल्पतीति विकल्प-अच्-टाप् ।
मज्जिष्ठा, मज्जोष्ठ ।

विकल्पित (सं० लि०) विकल्प क । प्रस्तुतित, लिखा
हुआ । पर्याय—उज्ज्वलित, उज्ज्वल, विगत, उज्ज्व-
लित, विकल्पित, उज्ज्वल, उज्ज्वल, विगत, उज्ज्वल,
दमित, विकल्पित, विकल्प, आकीर्ण, कुल, संकुल, कुल,
उज्ज्वल, दमित, दानी, कुलित, उज्ज्वल, प्रकृत ।

(सामनि०)

विकल्प (सं० लि०) विकल्पतीति विकल्प-वचन् । (एते-
रप्या० ७२७) १ विकल्प । २ विकल्प-

मोल, विलनेवाला । पर्याय—विकल्पो (पु०) २६८
काव्यालङ्कार । इसमें पहले कोई विधायक वाक्य
उसको पुष्टि सामान्य बातसे की जाती है ।

विकल्परा (सं० स्त्री०) विकल्प-टाप् । रत्नपुराणा,
लाल गद्दहपुराणा ।

विकल्पक (सं० पु०) प्रार्थमेद् ।

विकल्प (सं० लि०) काकुल्लग्य, जिसके कूपड न हो ।
(वा १५११४८)

विकल्प (सं० लि०) विकल्प कांक्षा वक्ष्य । भारती-
रहित, इच्छाका भाव ।

विकल्प (सं० स्त्री०) १ विसंवाद । २ श्यामाप,
शाकांक्षाहीन ।

विकल्प (सं० लि०) कामनाशून्य, निष्काम ।

विकार (सं० पु०) विकल्पन् । १ प्रकृतिका सम्पत्ता
भाव, किन्ता वस्तुका रूप, रङ्ग आदि बदल जाना ।
पर्याय—परिणाम, विवृति, विक्रिया, विकल्प । प्रकृति-
का दूसरी भवस्थामें बदलनेका नाम विकार है । रूप
जब बदलीमें बदलता है, तब उसको विकार कहते हैं ।
इसी प्रकार सोनेका कुण्डल, मिट्टीका घड़ा ।

सांख्यदर्शनके मतसे यह जगत् प्रकृतिका विकार है ।
प्रकृति विवृत हो कर जगत् रूपमें परिणत हुई है । परि-
वर्तमान जगत् का मूल प्रकृति है । जब जगत् का नाम
दोगा, तब सिके प्रकृति हो रह जायगी । सख्य, रक्षा
और तमोगुणको साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है ।

विकृति और प्रकृति वद्वे हैं ।

द्रव्यका रूप ही प्रकृति है, उसके दूसरी भवस्थामें
मानेका नाम विकार है ।

२ धैर्यके मतसे रोग ।

धानुसायका नाम प्रकृति है, धानुको विवर्तना होने-
से उसके विकार कहते हैं । यही विकार रोग कह-
लाता है । धानुको विवर्तना नहीं होनेमें व्याधि नहीं
होती । धानुको साय भवस्थामें प्रकृति जिन प्रकार
रहती है, धानुको विवर्तनामें उम प्रकार नहीं रहने और
प्रकारको ही जानते हैं । (भाष्य-वचन० २५०) ३ मरकट,
मण्डो । ४ मितकके पार प्रयाग नित्यीमें वद । इस-
के अनुसार एक वर्षके स्थानमें दूसरा वर्ष ही जाना

है। ५ द्वापकी समाप्ति, खराबो। ६ दोष, घुराई।

७ मनकी वृत्ति या प्रकृति। ८ उपद्रव, हानि।

विकारत्व (सं० ह्रो०) विकारस्य भावः त्व। विकारका भाव या धर्म।

विकारमय (सं० लि०) विकारस्वरूपे मयत्। विकार-स्वरूप।

विकारयन् (सं० लि०) विकार अस्त्यर्थे मत्तुप् मस्य घ। विकारयुक्त, विरुद्ध।

विकारिता (सं० खी०) विकारिणो भावः तल-टाप्। विकारित्व, विकारका भाव या धर्म।

विकारिन् (सं० लि०) वि-कृ-णिनि। विकारयुक्त, विकारविशिष्ट।

विकारो (सं० लि०) १ विकारयुक्त, जिसमें विकार हो। २ क्रोधादि मनोविकारोंसे युक्त, दुष्ट वासनावाला।

(पु०) ३ साठ स'वत्सरोर्मेसे एक स'वत्सरका नाम। विकार्य (सं० लि०) वि-कृ-ण्यत्। १ विरुद्धिप्राप्त द्रव्य।

३ व्याकरणिक कर्मकारकमेद्। व्याकरणके मतसे कर्म-कारक तीन प्रकारका होता है, निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य।

विकार्य कर्मके फिर दो भेद हैं, प्रकृतिका उच्छे-दक और प्रकृतिका गुणान्तराधायक। यथा—'काष्ठ' भस्म करोति' काष्ठ भस्म करता है, यहाँ पर प्रकृतिका

(काष्ठका) उच्छेद होनेके कारण 'प्रकृतिका उच्छेदक' विकार्य कर्म हुआ। 'सुवर्णं कुण्डलं करोति' सोनेका

कुण्डल बनाता है, यहाँ पर प्रकृति (सुवर्ण) रूपांतरित हो जानेके कारण 'प्रकृतिका गुणान्तराधायक' विकार्य कर्म हुआ।

विकाल (सं० पु०) विरुद्धः कार्यान्तर्हः कालः। १ दैव-पैदाइकर्मका विरुद्ध काल, ऐसा समय जब दैवकार्य या पितृकार्य करनेका समय बीत गया हो, साथ कालका समय। इस कालमें दैव और पैतृ कर्म निरपिद्ध बताया गया है, इसीसे इसको विकाल कहते हैं। पर्याय—

सायं, दिनान्त, सायाह्न, सायम्, उत्सव, विकालक। २ अतिकाल, देर।

विकालक (सं० पु०) विकाल पक्ष स्वार्थे कन्। विकाल, सायं काल।

विकालिका (सं० खी०) विहातः कालो यवा, कन् टाप् विकालिका (सं० खी०) विहातः कालो यवा, कन् टाप्

अत इत्वं। ताम्रो, जलघड़ो, इससे काल मान का ज्ञान होता है, इसीसे इसको विकालिका कहते हैं।

विकाश (सं० पु०) वि-काश-दोर्तो-घञ्। १ प्रकाश। २ प्रसार, फैलाव। ३ आकाश। ४ विपमगति। ५ मस्कुदन, खिलाना। ६ एक काथ्यालङ्कार, इसमें किसी वास्तुका बिना निजका आधार छोड़े अत्यन्त विकसित होना वर्णन किया जाता है। किसी वस्तुकी वृद्धिके लिये उसके रूप आदिमें उत्तरोत्तर परिवर्तन होता।

(लि०) निर्जन, एकाग्र।

विकाशक (सं० लि०) वि काश्यति वि-काश ल्यु। १ प्रकाशक। २ विकाशन।

विकाशन (सं० ह्रो०) वि काश ल्युट्। प्रकाश, मस्कु-दन, खिलना।

विकाशिन (सं० लि०) विकाशोऽस्यास्तोति विकाश-होन। विकाशशील, खिलनेवाला।

विकाशिन (सं० लि०) विकाशोऽस्यास्तोति विकाश-होन। विकाशशील, खिलनेवाला।

विकाशिन (सं० लि०) विकाश अस्त्यर्थे इति। विकाश-शील, खिलनेवाला।

विकास (सं० पु०) वि-कल-घञ्। १ विकाश, खिलना। २ प्रसार, फैलाव। ३ एक प्रसिद्ध पाश्चात्य सिद्धान्त।

इसके आचार्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणिविज्ञानवेत्ता हैं। इस सिद्धान्तमें कहा है, कि आधुनिक समस्त सृष्टि और उसमें पाये जानेवाले जीव जन्तु तथा वृक्ष आदि एक ही मूलतत्त्वसे उत्तरोत्तर निकलते हैं। ४ किसी पदार्थका उत्पन्न हो कर अन्त या धारम्मसे भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़ना, क्रमशः उन्नत होना।

विकास (सं० पु०) वि-कल-घञ्। १ विकाश, खिलना। २ प्रसार, फैलाव। ३ एक प्रसिद्ध पाश्चात्य सिद्धान्त।

इसके आचार्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणिविज्ञानवेत्ता हैं। इस सिद्धान्तमें कहा है, कि आधुनिक समस्त सृष्टि और उसमें पाये जानेवाले जीव जन्तु तथा वृक्ष आदि एक ही मूलतत्त्वसे उत्तरोत्तर निकलते हैं। ४ किसी पदार्थका उत्पन्न हो कर अन्त या धारम्मसे भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़ना, क्रमशः उन्नत होना।

विकास (सं० पु०) वि-कल-घञ्। १ विकाश, खिलना। २ प्रसार, फैलाव। ३ एक प्रसिद्ध पाश्चात्य सिद्धान्त।

इसके आचार्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणिविज्ञानवेत्ता हैं। इस सिद्धान्तमें कहा है, कि आधुनिक समस्त सृष्टि और उसमें पाये जानेवाले जीव जन्तु तथा वृक्ष आदि एक ही मूलतत्त्वसे उत्तरोत्तर निकलते हैं। ४ किसी पदार्थका उत्पन्न हो कर अन्त या धारम्मसे भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़ना, क्रमशः उन्नत होना।

विकास (सं० ह्रो०) वि-कल-ल्युट्। प्रकाशन, मस्कुदन, खिलना।

विकासना (सं० लि०) विकसित होना, खिलना। २ प्रकट होना, जाहिर होना।

विकासिता (सं० खी०) विकसितो भावः तल् टाप्। विकासीका भाव या धर्म, विकाशन।

विकिर (सं० पु०) विकिरति मृत्तिकादीन् भोजनार्थमिति

वि क विदीये 'दगुपयेति' कः । पत्नी, निद्रिया । २ कूप, कुमां । विदीयेति इति वि-क-पप्रथेक । पूजाकालमें विद्याभ्यासार्थां क्षेपणाय नपुत्रुनादि, यद् वाचन चापल्यो पूजाके समय विद्यन भादि दूर करनेके लिये चारों ओर फेंका जाता है । पूजाके समय जिससे भूत भादि विघ्नवाधा उपस्थित न कर सकें, इसलिये मग्न पद कर मग्न चारों ओर फेंकना होता है । इसीको विकिर कहते हैं ।

नमनसारमें निद्रा है, कि लाज (साया), चन्द्र, विदायं, मम्म, दूयां, कुन और मग्न ये सब विकिर कहलाते हैं तथा भूनादि द्वारा होनेवाला विघ्नसमुद्भूतके नाशक है । (तन्त्रसार)

४ प्रनिद्राधादिका विण्ट । श्राद्धकालमें भनिद्राधाके उद्देश्यसे जो विण्ट दिया जाता है उसको विकिर कहते हैं । वितादिका विण्ट जिस प्रकार हस्तके विघ्ननाश द्वारा देना होता है, इस भनिद्राधका विण्ट उस प्रकार नहीं देना होता है, इसका कारण इसका विकिर नाम पड़ा है ।

जिनके यथाविधान श्राहनादि संस्कार नहीं होते तथा जिनके श्राद्धकर्ता कोई नहीं हैं उनके उद्देश्यसे यह विकिरविण्ट देना होता है ।

(श्लो०) ५ जलविशेष । नदी भादि स्थानोंके निकट में बालुकायों भूमि रहती है और उस भूमिको पौधेमें या जल निकलता है उसे ही विकिर कहते हैं । यह जल भोगल, स्यप्य, निर्शय, लघु, सुषर (कसेला), स्यादिष्ट, पित्तनाशक और अन्य कफघटक माना गया है । ३ क्षाल, गिरना ।

विकिरण (सं० श्लो०) वि कूपुट् । १ विशेयन, इषर उपर फेंकना । २ विदिमन । ३ विप्रायन । (पु०) ४ मर्कट्या, मदारका पेठ ।

विकिरिद्रि (सं० श्लो०) विविषि वागादि उपद्रवनाशक । नाता प्रकारके उपद्रव मष्ट करनेवाला ।

विकिरक (सं० पु०) प्रायोजकालका बहुपौका यद् प्रकारका मग्न । यह प्रायः मग्न ही दाय या ५२ इन्द्रका होता था ।

विकीरण (सं० पु०) मर्कट, जाल मदार । (भावने०)

विकीर्ण (सं० श्लो०) विकीर्ण्यन्ते स्मेति वि-क-क । १ विशिप्त, चारों ओर फैला या छिनराया हुआ । प्रसिद्ध, मग्नहृत् । (श्लो०) ३ प्रविशरणमेष्ट, मंडिरन । ४ मर्कट उच्चारणमें होनेवाला एक प्रकारका शेष । विकीर्णक (सं० श्लो०) विकीर्ण-कम् । १ प्रविशरणमेष्ट, मंडिरन । (श्लो०) २ विशिप्त, इषर उपर छिनराया हुआ ।

विकीर्णका (सं० श्लो०) प्रविशरणमेष्ट । विकीर्णकालक (सं० पु०) रत्नाकर्तृत्वा, लालमस्तकन पेठ । विकीर्णरोमन् (सं० श्लो०) विकीर्णानि रोमाप्यर्थास्मिर्मानि । स्थानेषु, एक प्रकारका सुगंधित घोंघा । विकीर्णसंघ (सं० श्लो०) विकीर्णमिति संज्ञा यस्य । स्थानेषु, एक प्रकारका सुगंधित घोंघा ।

विकुक्षि (सं० पु०) इक्ष्वाकुराजके बड़े लक्ष्मका नाम । (श्लो०) २ कुक्षिदोन, जिसका पेट फूला या भागेको निकला हुआ हो, मोंधवाला ।

विकुक्षिक (सं० श्लो०) कुक्षिदोन, मोंधवाला । विकुज (सं० श्लो०) कुज मिश्रण । मङ्गलवार मिश्रण ।

विकुजयोन्तु (सं० श्लो०) कुज, रवि और इन्द्र मिश्रण ; मङ्गल, रवि और शुक मिश्रण यार ।

विकुण्ट (सं० श्लो०) १ कुण्टारहित, कुज धारवाला, कुर्द या भुधराका उतरा । (पु०) २ चौकुण्ट । त्रिवां कूप । ३ विशुकी माना ।

विकुण्डन (सं० पु० श्लो०) १ कुण्टारहित, तैल धार । क्षोषल, कनजोरो ।

विकुण्टल (सं० श्लो०) कुण्टारहित, जिसके कुंडल न हो । विकुरमा (सं० श्लो०) विकुरवर्णमें निम्न ।

विकुम्भ (सं० पु०) कनकट्ट, भगुरेका पेट । विकुम्भण्ट (सं० पु०) चौदनाखाल, मण्डपनामेष्ट ।

विकुम्भं (सं० श्लो०) विग्नवशमक, थावार । विकुम्भान (सं० श्लो०) विकुम्भे इति विकुम्भानम् । १ हर्षमाण । २ विकुम्भान ।

विकुम्भिन (सं० श्लो०) पालिक विकुम्भयम् । विग्नवशमक थावार, मनायनोप मरना ।

विकुम्भ (सं० पु०) विकुम्भानि वि-क-म्-म् । (की० श्लो०) २५ शर । उपधाया उपशः । शुकुमा ।

विकृज् (सं० पु०) १ पेटकी बीली । २ मधुमखण्डिका गुन्
गुन् शब्द ।

विकृजन (सं० क्ली०) विरूपरूपसे कृजन, खूब जोरसे
आयाज करना ।

विकृजन (सं० क्ली०) पार्श्वदृष्टि । पेचातान ।

विकृनिका (सं० स्त्री०) विकृण-अच् स्वार्थे क, अत इत्वं ।
नासिका, नाक ।

विकृवर (सं० त्रि०) मनोरम, सुन्दर ।

विकृन् (सं० त्रि०) विकृ क । १ चीमत्स, महा या कुरूप
हो गया हो । २ रोगयुक्त, बीमार । ३ असंस्कृत, जिसका
संस्कार न हुआ हो, विगड़ा हुआ । ४ अङ्गविहीन ।
५ अधूरा, अपूर्ण । ६ विद्रोही, अराजक । ७ अस्वाभाविक,
असाधारण । ८ मायावी ।

(क्ली०) ९ विकार । बोलनेकी इच्छा रहते हुए भी
जो लज्जा, मान और ईर्ष्यादिजन्यतः न बोला जाय, पर
चेष्टा द्वारा व्यक्त हो जाय, पण्डितोंने उसीका नाम विकृत
रखा है ।

१० प्रमयादि साठ संवत्सरोंमेंसे चौबीसवाँ संवत्सर ।
मविष्णुपुराणमें लिखा है, कि विकृत वर्षको प्रजा प्रपीडित
प्याधि और जोकथुक होती है तथा अधिक पाप करनेके
कारण उनके शिर, अक्षि और वक्षमें पीड़ा होती है ।

बोलनेके समय जब लज्जाके कारण मुहसे एक भी
शब्द न निकले और मुँह विकृत हो जाय, तब यह अल-
ङ्कार होगा ।

११ दूसरे प्रजापतिका नाम । १२ पुराणानुसार
परिवर्त्त राक्षसके पुत्रका नाम ।

विकृतिव्य (सं० क्ली०) विकृतस्य भावः त्य । विकृतका
भाव या धर्म, विकार ।

विकृतद्रु (सं० पु०) विघाघरविशेष । (कथाविरत्ता०
७७१६) (त्रि०) २ विकृतद्रुयुक्त, जिसके दाँत बड़े
बड़े और कुरूप हों ।

विकृतदृष्टि (सं० पु०) पार्श्वदृष्टि पेचातानो ।

विकृतस्वर (सं० पु०) यह स्वर जो अपने नियत स्थानसे
हट कर दूसरी श्रुतियों पर जा कर उदरता है । सङ्गीत-
शास्त्रमें १२ विकृत स्वर माने गये हैं, यथा—च्युत पङ्कज,
मच्युत पङ्कज, विकृत पङ्कज, साधारण गान्धार, अन्तर

गान्धार, च्युत मध्यम, अच्युत मध्यम, त्रिध्रुति मध्यम
केजिक पञ्चम, विकृत धैवत, केजिक निषाद और
कादली निषाद ।

विकृता (सं० स्त्री०) एक योगिनीका नाम ।

विकृति (सं० स्त्री०) वि कृ क्त्वा । १ विकार । २ रोग ।
३ डिम्ब, अण्डा । ४ मयादि । सांख्योक्त विकृति ।

सांख्यदर्शनमें लिखा, कि मूल प्रकृति अविकृत है
अर्थात् किसीका विकार नहीं है, यह स्वरूपायस्थानों हीं
लगती है । सत्त्व, रज और तमोगुणकी साम्यायस्थाका
नाम ही प्रकृति है । महावादि सान ही अर्थात् महत्, अह-
ङ्कार और पञ्चतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-
तन्मात्र) ये सात प्रकृति विकृति हैं । जब प्रकृति जगत्
रूपमें परिणत होती है, तब पहले प्रकृतिके यही ७ विकार
होते हैं । मूल प्रकृतिसे ही ये सात विकार होते हैं, इस
कारण इन्हें प्रकृति विकृति कहते हैं । फिर १६ केवल

विकृति अर्थात् विकार ८, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय
और मन ये ग्यारह इन्द्रिय और पञ्च महाभूत ये १६ केवल
विकार हैं, अहङ्कारसे ग्यारह इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रसे
पञ्च महाभूत उत्पन्न होने हैं, ये १६ प्रकृति विकृति अह-
ङ्कार और पञ्चतन्मात्रसे उत्पन्न होती हैं, इस कारण इन्हें
केवल विकृति कहने हैं । पुरुष प्रकृति भी नहीं है और
विकृति ही है । यह प्रकृति और विकृतिसे स्वतन्त्र है ।

सांख्यके मतसे प्रकृतिके दो तरहके परिमाण हुआ करते
हैं, स्वरूप परिमाण और विरूप परिमाण । स्वरूप परि-
णाममें प्रलयायस्था और विरूप परिणाममें जगद्वस्था
है । थोड़ा गौर कर देखनेसे मान्य होता है, कि सभी

जागतिक तत्त्वोंको चार ध्रेणोंमें विभक्त किया जा सकता
है । कोई तत्त्व तो केवल प्रकृति ही है अर्थात् किमिकी
भी विकृति नहीं । कोई तत्त्व प्रकृति विकृति है अर्थात्
उभयात्मक है, उसमें प्रकृति धर्म भी है और विकृतिधर्म
भी, अतएव ये प्रकृति विकृति हैं । कोई कोई तत्त्व केवल
विकृति है अर्थात् किसी तत्त्वकी प्रकृति नहीं है । फिर

कोई तत्त्व अनुभवात्मक है, प्रकृति भी नहीं है और न
विकृति ही है । ये चार ध्रेणो छोड़ कर और किसी
प्रकारका तत्त्व देखनेमें नहीं आता ।

प्रकृति शब्दका अर्थ उपादानकारण और विकृतिका

त्रि क विशेषे 'इमुकयेति' क। १ पक्षो, विद्युत्वा। २ कृप, कुमा। विद्युत्वेने इति विकृ-वचने क। पूजाकालमे विद्योत्समारणाद्यो यथाय नन्दुवादि, यह सप्तम चायल मो पूजाके समव विद्यत भादि दूर करनेके लिये चारी भोर फेंका जाता है। पूजाके समव त्रिगमे भूत भादि विद्यतवाया उपस्थित न कर सकें, इसलिये मग्न पद कर सप्तम चारी भोर फेंकना होता है। इसको विकिर कहते हैं।

लक्ष्मणारामे लिखा है, कि लाज (लावा), चन्दन, विद्यार्थ, मग्न, दूर्वा, कुज भोर अक्षत ये सब विकिर कदनाते हैं तथा भूनादि द्वारा होनेवाला विद्यतसमुद्भूत नाशक है। (उत्पत्ता)

४ भनिदग्धादिका विष्ट। अयत्कालमे भनिदग्धाके उद्देगसे मो विष्ट दिवा जाता है उसको विकिर कहते हैं। विषादिका विष्ट जिस प्रकार हस्तके विद्युत्वाप द्वारा देना होता है, इस भनिदग्धाका विष्ट उस प्रकार नहीं देना होता है, इसका कारण इसका विकर नाम पड़ा है।

जिसके यथाविधान दाहनादि संस्कार नहीं होते तथा जिसके धातुकता कोई नहीं है उनके उद्देगसे यह विकिरविष्ट देना होता है।

(श्लो०) ५ मलविशेष। मद्यो भादि स्थानोंके निकट मो बालुकामयो भूमि रदती है और उस भूमिकी योद्देगसे मो मल निकलता है उसे ही विकिर कहते हैं। यह मल धोतल, लवण, निर्दोष, लघु, सुषर (कसीला), म्यादिष्ट, विषमनामक और अन्य कतयर्द्धक माना गया है। ३ क्षरण, गिरना।

विकिरण (सं० श्लो०) वि कृत्स्नपुट। १ विशेषण, इपर उपर फेंकना। २ विहितन। ३ विभाजन। (पु०) ४ अर्धवृत्त, महाका पेड।

विकिरिष्ट (सं० श्लो०) विकिचि घातादि उपद्रवनामक, माना प्रकारके उपद्रव मद्य करनेवाला।

विकिरक (सं० पु०) माधोसकालका बद्धवोला एक प्रकारका घात। यह प्रायः सवा दो हाथ या ४२ इञ्च का होता था।

विकारण (सं० पु०) मह वृत्त, लाल मदार। (म. १००)

विकीर्ण (सं० श्लो०) विकीर्णानि स्मेति वि-कृ-ष्ट। १ विशिष्ट, चारी भोर फेंका या छिनटाया हुआ। प्रसिद्ध, मगहटा। (श्लो०) ३ प्रविधायनोद्, गडिरन। ४ सरके उधारणने होनेवाला एक प्रकारका दोष।

विकीर्णक (सं० श्लो०) विकीर्ण-कन्। १ प्रविधायनोद्, गडिरन। (वि०) २ विशिष्ट, इपर उपर छिनटाया हुआ।

विकीर्णका (सं० स्त्री०) प्रविधायनोद्।

विकीर्णकलक (सं० पु०) रत्नार्थवृत्त, लालमदारका पेड।

विकीर्णोमन् (सं० श्लो०) विकीर्णानि रोमापवर्णानामानि। स्त्रीमेवक, एक प्रकारका सुगंधित घोंघा।

विकीर्णसंघ (सं० श्लो०) विकीर्णमिति संघा यस्य। स्त्रीमेव, एक प्रकारका सुगंधित घोंघा।

विकुक्षि (सं० पु०) इक्ष्वाकुसामके बड़े सड़केका नाम। (श्लो०) २ कुक्षिहीन, जिसका पेट फूला या बागेंही निकला हुआ हो, सोदपाला।

विकुक्षिक (सं० श्लो०) कुक्षिहीन, सोदपाला।

विकुज (सं० श्लो०) कुज भिन्न। मङ्गलवार भिन्न।

विकुजयोन्तु (सं० श्लो०) कुज, रवि और इन्तु भिन्न। मङ्गल, रवि और चांद्र भिन्न चार।

विकुल (सं० श्लो०) १ कुण्डारहित, कुज चारवाला, कुर्त्त या मुगरका उदटा। (पु०) २ वैकुण्ड। त्रिगो ३ ५ ३ विष्णुकी माना।

विकुलठ (सं० पु० श्लो०) १ कुण्डारहित, त्रिग चार। द्वौपल्य, कमजोरो।

विकुलठल (सं० श्लो०) कुण्डलरहित, जिसके कुंडल न हों।

विकुलमा (सं० स्त्री०) विशेषकपसे निम्ना।

विकुलम (सं० पु०) कमकवृत्त, भगुरेका पेड।

विकुलमाण्ड (सं० पु०) बौद्धनाम्योः भवदेवताभेद।

विकुल्लेण (सं० श्लो०) विष्णवप्रसक्त व्याघा।

विकुल्लोण (सं० श्लो०) विकुल्ले इति विकृ-जालम्। १ हंसनाल। २ विहतिप्राण।

विकुल्लिन (सं० श्लो०) दासि विकुल्लेयम्। विष्णवप्रसक्त व्याघार, जगन्मलय चरना।

विकुल्ल (सं० पु०) विकुल्लोति विकृ-कल रक्त् ३ को र्भेद। रक्त् ३ ५ ३ ५, उपवाया उपवा। अश्रुता।

विकृज (सं० पु०) १ पेटकी बोली । २ मधुमखलीका गुन् गुन् शब्द ।

विकृजन (सं० क्री०) विरपरूपसे कृजग, खूब जोरसे आवाज करना ।

विकृजन (सं० क्री०) पार्श्वदृष्टि । पेचातान ।

विकृनिका (सं० स्त्री०) विकृण-अच् स्वायें क, अत इत्यं । नासिका, नाक ।

विकृवर (सं० त्रि०) मनोरम, सुन्दर ।

विकृत (सं० त्रि०) विकृ क । १ बीभत्स, भद्रा या कुरूप हो-गया हो । २ रोगयुक्त, बीमार । ३ असंस्कृत, जिसका संस्कार न हुआ हो, बिगड़ा हुआ । ४ अङ्गविहीन । ५ अपूरा, अपूर्ण । ६ विद्रोही, अराजक । ७ असामाधिक, असाधारण । ८ मायावी ।

(क्री०) ६ विकार । बोलनेकी इच्छा रहते हुए भी जो लज्जा, मान और ईर्ष्यादिवशतः न बोला जाय, पर चेष्टा द्वारा व्यक्त हो जाय, परिवर्तने उसीका नाम विकृत रखा है ।

१० प्रमवादि साठ संवत्सरोंमेंसे चौबीसवाँ संवत्सर । भविष्यपुराणमें लिखा है, कि विकृत वर्षको प्रजा प्रपोद्धित म्प्यधि और शोकयुक्त होती है तथा अधिक पाप करनेके कारण उनके गिर, अक्षि और वक्षमें पीड़ा होती है ।

बोलनेके समय जब लज्जाके कारण मुहसे एक भी शब्द न निकले और मुँह विकृत हो जाय, तब यह अलङ्कार होगा ।

११ दूसरे प्रजापतिका नाम । १२ पुराणानुसार परिवर्त्त राक्षसके पुत्रका नाम ।

विकृतित्व (सं० क्री०) विकृतस्य भाग्यः त्व । विकृतका भाव या धर्म, विकार ।

विकृतदंष्ट्र (सं० पु०) विद्याधरविशेष । (कथावहिरिवा० ७७।६) (त्रि०) २ विकृतदंष्ट्रायुक्त, जिसके दाँत बड़े बड़े और कुरूप हों ।

विकृतदृष्टि (सं० पु०) पार्श्वदृष्टि पेचातानी ।

विकृतस्वर (सं० पु०) यह स्वर जो अपने नियत स्थानसे हट कर दूसरी धुनियों पर जा कर उद्वरता है । सङ्गीत-शास्त्रमें १२ विकृत स्वर माने गये हैं, यथा—उच्युत पञ्चज, अच्युत पञ्चज, विकृत पञ्चज, साधारण गान्धार, अन्तर

गान्धार, उच्युत मध्यम, अच्युत मध्यम, त्रिध्रुति मध्यम, कैशिक पञ्चम, विकृत धैवत, कैशिक त्रिपाद और कादली त्रिपाद ।

विकृता (सं० स्त्री०) एक योगिनीका नाम ।

विकृति (सं० स्त्री०) विकृ क्तिन् । १ विकार । २ रोग । ३ डिम्ब, अण्डा । ४ मघादि । सांख्योक्त विकृति ।

सांख्यदर्शनमें लिखा, कि मूल प्रकृति अचिकृत है अर्थात् किसीका विकार नहीं है, यह स्वरूपावस्थामें ही लगती है। सत्त्व, रज और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम ही प्रकृति है। महदादि सात ही अर्थात् महत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-तन्मात्र) ये सात प्रकृति विकृति हैं। जब प्रकृति जगत् रूपमें परिणत होती है, तब पहले प्रकृतिके यही ७ विकार होते हैं। मूल प्रकृतिसे ही ये सात विकार होते हैं, इस कारण इन्हें प्रकृति विकृति कहते हैं। फिर १६ केवल विकृति अर्थात् विकार ८, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन ये ग्याह १न्द्रिय और पञ्च महाभूत ये १६ केवल विकार हैं, अहङ्कारसे ग्यारह इन्द्रिय और, पञ्चतन्मात्रसे पञ्च महाभूत उत्पन्न होते हैं, ये १६ प्रकृति विकृति अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रसे उत्पन्न होते हैं, इस कारण इन्हें केवल विकृति कहते हैं। पुरुष प्रकृति भी नहीं है और विकृति ही है। यह प्रकृति और विकृतिसे स्वतन्त्र है। सांख्यके मतसे प्रकृतिके दो तरहके परिमाण हुआ करते हैं, स्वरूप परिमाण और विकृत परिमाण। स्वरूप परिमाणमें प्रत्यावस्था और विकृत परिमाणमें जगद्ब्रह्मस्था है। छोड़ा और कर देखनेमें मान्यम होता है, कि सभी जागतिक तत्त्वोंको चार श्रेणीमें विभक्त किया जा सकता है। कोई तत्त्व तो केवल प्रकृति ही है अर्थात् किसीकी भी विकृति नहीं। कोई तत्त्व प्रकृति विकृति है अर्थात् उभयात्मक है, उसमें प्रकृति धर्म भी है और विकृतिधर्म भी, अतएव ये प्रकृति-विकृति हैं। कोई कोई तत्त्व केवल विकृति है अर्थात् किसी तत्त्वकी प्रकृति नहीं है। फिर कोई तत्त्व अनुभवात्मक है, प्रकृति भी नहीं है और न विकृति ही है। ये चार श्रेणी छोड़ कर और किसी प्रकारका तत्त्व देखनेमें नहीं आता ।

प्रकृति शब्दका अर्थ उपादानकारण और विकृतिवत्

अर्गं कार्यं है । इस जगत्का जो उत्पादन कारण है उसका नाम प्रकृति है । इस प्रकृतितत्त्वका उत्पादन कारणसे जगत्का जो कार्य हुआ है यही विकृति या विकार है ।

मूल प्रकृति अर्थात् त्रिमये जगत्को उत्पत्ति हुई है, त्रिमयका दूसरा नाम प्रपान है, किन्तो जो कारणसे उत्पत्ति उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि मूल प्रकृति कोई कारण जन्म होनेसे उस कारणकी उत्पत्तिके प्रति जो दूसरे कारणकी अपेक्षा करती है, फिर उसकी उत्पत्तिके लिये अन्यकारणकी आवश्यकता होती है । इस प्रकार उत्तरोत्तर कारणका कारण निर्देन करनेमें अनवरतप्रयोग होता है । अतएव मूल कारण अर्थात् प्रकृति किन्तो सत्य पदार्थमे उत्पन्न वस्तु नहीं है । यह जो क्षता मिट्ट है उमे अग्रथ स्वीकार करना पड़ेगा । अतएव यह सिद्ध हुआ, कि मूल प्रकृति अविकृति है, यह किन्तोकी भी विकृति नहीं ।

महत्तत्त्व, महद्भूततत्त्व और पञ्चतन्मात्र ये मान तत्त्व प्रकृति विकृति हैं अर्थात् यह प्रकृति भी है, विकृति भी है । कोई तत्त्वकी प्रकृति और कोई तत्त्वकी विकृति है । महत्तत्त्व मूल-प्रकृतिसे उत्पन्न है, अतएव यह मूल प्रकृतिकी विकृति है तथा महत्तत्त्वमे महद्भूत-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण यह महद्भूततत्त्वकी प्रकृति है । उक्त प्रकारमे महद्भूततत्त्व महत्तत्त्वकी विकृति है, फिर उसमे पञ्चतन्मात्र और स्वार्थ इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण उनको पञ्चतन्मात्र और स्वार्थ इन्द्रियों की प्रकृति कहते हैं । पञ्चतन्मात्र भी उन्ही प्रकार महद्भूत तत्त्वकी विकृति है तथा उसमे उत्पन्न पञ्चतन्मात्रकी प्रकृति है । पञ्चतन्मात्र और पञ्चतन्मात्र इन्द्रियों किन्तो भी दूसरे तत्त्वकी उत्पादन-कारण या कारणक नहीं होनी । इस कारण ये केवल प्रकृति हैं, किन्तोकी भी विकृति नहीं ।

पुनर अनुभवप्रसक्त है अर्थात् किन्तोकी प्रकृति (कारण) भी नहीं है और न विकृति (कार्य) ही है । पुनर कृतत्व है अर्थात् जगत्कारणका अनाश्रय, अविधारी और अनङ्ग है । पुनर दिगोत्रा कारण नहीं हो सकता । पुनर निरव है, उत्पत्ति उत्पत्ति नहीं है, इगोत्रिये कार्य भी नहीं हो सकता । अतएव पुनर मूल-प्रकृति विकृत हो गई है ।

है ! इसमें यादियोंका मतभेद देखनेमें आता है । परिष्कार यादो सांख्यशास्त्रियोंकी इस उक्तिको विधायिका वैशेषिक भाषायां स्वीकार नहीं करते । ये लोग प्रकृतिको विकृति मे यह जगत् मूल हुआ है, इस परिणामवाद्को स्वीकार न कर कहते हैं, कि यह प्रकृति विधायिका है । विधायी और विकारका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

किन्तो वस्तुकी सत्ताके साथ उसकी जो सम्बन्ध (सत्यरूप मान) है यही विकार है । फिर किन्तो वस्तुके विकृत या आरोपित द्रव्यमें, (जैसे सत्यमे प्रकृति (उत्पत्ति) की सत्ताका न रहना जान कर उसका (आरोपित द्रव्य का सर्वका) जो ज्ञान होता है उत्तरका नाम विधायी है । इसका तात्पर्य यह, कि परिणामवादियोंके मतमें कारण ही विकृत या अवस्थागतत्त्वका प्राप्त हो कार्यकारणमें परिष्कृत होता है । अतएव कार्यरूप वस्तु है, कार्यज्ञान निर्लेखक नहीं है ।

विधायीवादियोंके मतसे कारण अविकृत हो रहता है, अथय उसमें वस्तुगतता कार्य न रहने पर भी कार्यकी सत्ता प्रतीति होती है । दुग्धकी दधिमायावापति सादि-परिणामवाद्का दृष्टान्त रज्जुमें सर्पप्रतीति सादि विधायी-वादका दृष्टान्त है । वेदान्तिकोंका कहना है, कि त्रिम प्रकार सर्प नहीं रहने पर भी रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रपञ्च या जगत्के नहीं रहने पर भी प्रकृति प्रपञ्चकी प्रतीति होती है । रज्जुमे सर्प प्रतीतिज्ञा कारण त्रिम प्रकार इन्द्रियद्वये है, उसी प्रकार प्रकृतिमें प्रपञ्चकी का कारण अनादि अविधायक दोष है । रज्जुमें प्रतीतमान सर्प त्रिम प्रकार रज्जुका विधायी है, प्रकृतिमें प्रतीतमान प्रपञ्च भी उन्ही प्रकार प्रकृति विधायिका है । यथार्थमें प्रपञ्च नामकी कोई वस्तु ही नहीं है ।

इस पर सांख्यशास्त्रियोंका मत है, कि रज्जुमें सर्प प्रतीति होनेके बाद यदि मूल ध्यानमे सोचा जाय, तो मान्यम पड़ेगा, कि यह सर्प नहीं, रज्जु ही है । अतएव रज्जुमें सर्पप्रतीति सम्भवक है, इसमें संदेह नहीं । किन्तु प्रपञ्चके सम्बन्धमें इस प्रकार प्रमात्यक ज्ञान कार्यकी नहीं होता । अतएव प्रपञ्चप्रतीतिको अनुभवक नहीं हो सकता । इस मुक्तिके अनुसार सांख्यशास्त्रियोंका विधायी-वाद में अथवा द्वैतमाने हुए परिणामवाद् (विधायीवाद)

पक्षपाती हुए हैं। थोड़ा गौर कर सोचनेसे मालूम पड़ेगा, कि परिणामवादीमें कारण है, कार्यसे भिन्न नहीं है, कारण अवस्थान्तरमात्र है। दुग्ध दधि रूपमें, स्वर्ण कुण्डल रूपमें मिट्टी घट रूपमें और तन्तु पट रूपमें परिणत होता है। अतएव दधि, कुण्डल, घट और पट यथाक्रम दुग्ध, सुवर्ण मिट्टी और तन्तुसे वस्तुगतया भिन्न नहीं है।

अतएव ऐसी प्रतीति होती है, कि जगत् प्रकृतिका विकार या कार्य है। विकार या कार्यरूप जगत् सुखदुःखमोहात्मक है, इसलिये उसका कारण भी सुखदुःखमोहात्मक है, यह सहजमें जाना जाता है। (साल्पदार्शन) विशेष विनष्ट प्रकृति, परिणामवाद और वेदान्तराशनमें देखो।

विकृतिमत् (सं० त्रि०) विकृति अस्वर्थे मुमुक्षुः। विकृति-विशिष्ट, जिसमें विकार हो।

विकृतोद्ग (सं० त्रि०) १ विकृत उद्गविशिष्ट, तोड़वाला। (पु०) २ राक्षसमेद। (रामायण ३२६।३१)

विकृतित (सं० त्रि०) १ विशेषरूपसे कथित अच्छी तरह जोता हुआ। २ आरुष्ट, खोचा हुआ।

विकृष्ट (सं० त्रि०) विशेषेण कृष्ट-वि-कृत-क। आरुष्ट, खोचा हुआ।

विकृष्टकाल (सं० पु०) विकृष्टः कालः। चिरकाल, सष दिन।

विकेट और (सं० पु०) एक प्रकारका छोटा चक्रदार दर-याजा। यह प्रायः कमर तक ऊँचा और ऊपरसे बिलकुल खुला हुआ होता है। यह बागों आदिके बड़े दरवाजोंके पास ही इसलिये लगाया जाता है कि आदमी तो आ जा सके पर पशु आदि न आ सके।

विकेश (सं० त्रि०) विगतः केशो यस्य। १ केशवर्जित, केशरहित, गंजा। २ जिसके बाल खुले हों। (पु०) ३ एक प्राचीन ऋषिका नाम। ४ पुच्छल तारा। ५ एक प्रकारका प्रेत।

विकेशी (सं० स्त्री०) विगतः केशो यस्याः स्त्रीः। १ केश-वर्जिता, गंदा औरत। २ मही (पृथ्वी) रूप शिवकी परनीका नाम। ३ एक प्रकारकी राक्षसी या वृत्तना। ४ पटयस्त्रि, कपड़ेकी वस्ती।

विकोक (सं० पु०) एकानुरका पुत्र। कदिकपुराणमें लिखा है, कि रूकासुरके कौक और विकोक नामक दो

पुत्र थे, भगवान्ने कदिक अवतार ले कर दोनोंका वध किया। (कदिकपुराण २१ म०)

विकोष (सं० पु०) १ संक्ष की पीड़ा। कोप देखो (त्रि०) पीड़ित।

विकोश (सं० त्रि०) विकोप देखो।

विकोप (सं० त्रि०) विगतः कोषो यस्य। १ कोपरहित, कोप या म्यानसे निकली हुई। २ आच्छादनरहित, जिसके ऊपर किसी प्रकारका आवरण या आच्छादन न हो।

विक (सं० पु०) विक इति कायति शब्दायते कै क। करियायक, दास्योका वध्या।

विक्टोरिया—इङ्ग्लैण्डकी स्वनामघन्य अपीथ्वी और भारतवर्षकी सम्राज्ञी। भारतवर्षमें ऐसा एक भा व्यक्त नहीं, जो विक्टोरियाका नाम न जानता हो। इङ्ग्लैण्डके इतिहासमें ऐसे बहुत कम शासकोंका नाम देखा जाता है, जिनने विक्टोरियाकी तरह प्रसिद्धि लाभ की हो। दया, सहिष्णुता, न्यायपरता, उदारता आदि जिन गुणोंसे मनुष्य सुखवाति प्राप्त कर जगत्में अमर रहते हैं, उन सब गुणोंका विक्टोरियामें अभाव न था। इस कारण प्रायः सारी पृथ्वी पर सभी जातियाँ इन्हीं धन्दाकी दृष्टिसे देखती थीं। भारतवासियोंको इनसे जो उपकार हुआ है, वह आज तक उनके हृदयपटल पर अङ्कित है। उसके लिये वे आज भी महारानीका धन्दाकी दृष्टिसे देखते हैं।

सन् १८१६ ई०को २४ वीं मईकी इनका जन्म हुआ। इनके पिता इङ्ग्लैण्डके राजा ३रे जार्जके पुत्र थे। इनकी माता बहुत बुद्धिमती थीं। जिनसे विक्टोरिया मयिष्यमें एक हीनदार महिला बन, इस ओर माताका विशेष ध्यान रदता था। उहाँको शिक्षाके गुणसे आगे चल कर विक्टोरियाने अच्छी सुखवाति अर्जन की थी।

बचपनमें विक्टोरिया लण्डनके कैथेड्रल प्रासादमें पितामाताके साथ सादगो तौर पर रहती थी, अपना समय खेल फुटमें बिताया करती थी। यहाँ एक दिन जब इन्हें मालूम हुआ कि कुछ दिन बाद वे इङ्ग्लैण्डकी रानी होगी, तभीसे इन्होंने पढ़ना लिखना आरम्भ कर दिया। अठारह वर्षकी उमरमें ही वे विविध विद्यायामें पार-दर्शिनी हो गई थीं।

सन् १८३७ ई०को २०वीं जनवरी विक्टोरियाके नामा लुक्सेम्बर्गके राजा—४थे विलियमका देहांत हुआ। उम समय विक्टोरिया बेगिग'टन प्रामाण्यमें निद्रास्थीकी मारमें सुखमें मरे रही थी। बहुत सघेरे कुछ सम्प्राप्त व्यक्ति वहाँ पहुँचे और उन्होंने विक्टोरियाके बहादुर कि सभी ये समय प्रेड विट्टेनकी सपोधनी हुईं। रानी विक्टोरियाके जीवनका यह एक अमरणीय दिन है।

सन् १८४० ई०में अपने सघेरे भाई यूपराज अलबर्टके साथ इनका विवाह हुआ। अलबर्टने प्रायः बीस वर्ष तक राजाके शासनकार्यमें सहायता की थी। १८६१ ई०में उनको मृत्यु हुई।

सन् १८५८ ई०का जब भारतवर्षमें सिपाही विद्रोहका अचमाल हुआ, तब भारतका कुल शासनमार ईष्ट इण्डिया कम्पनीके हाथमें विक्टोरियाके अपने हाथमें ले लिया। यह उनके शासनकालकी एक सुषय घटना है। इस समयमें कम्पनीके शासनका अन्त हुआ और तमामे गवर्नर जनरल भारतवर्षके राज-प्रतिनिधि हुए हैं तथा यह पद चारसराय एण्ट गवर्नर-जनरल (Viceroy and Governor-General) नामसे प्रसिद्ध हुआ। सन् १८५८ ई०को १२वीं जून ३३वकी विक्टोरियाके भारतवर्षमें एक घोषणा प्रकट की। यह घोषणा भारतकी 'मैगनाकार्टा' (Magna charta of India) नामसे प्रसिद्ध हुई। उसका सभी भाषाओंमें अनुवाद हुआ तथा भारतवर्षके प्रत्येक जिलेमें यह अंतर-दार जगहोंमें पढ़ी गई। उस घोषणाके अनुसार जिलेमें उक्त गवर्नर मैग लिया था, उन्हें छोड़ बाकी सबकी अथवा अथवा अधिकार सीटा दिया गया। उस घोषणामें यह भी लिखा था, कि भारतवासियोंकी ज़ाति और धर्म पर किसी प्रकारका आक्षेप न किया जायेगा, प्राचीन रीति-रिवाजोंमें छोड़ छोड़ न हेगो तथा सभी जातिके लोगोंके घोषणागुमार सरकारों मीकरोंमें समान अधिकार रहेगा। इसी महान् उद्देश्यके कारण ये भारतवर्ष तथा भारतवासियोंके विरहमरणोप देश गई है।

१८७७ ई०की १२वीं जनवरीका दिनांकमें एक बड़ा बरबार हुआ था। उस बरबारमें भाव 'भारतको सारा' प्रकट हुईं। १८८७ ई०में महाराणी विक्टोरियाके शासन-

कालका समाप्ति वर्ष पूरा हुआ। इस उदयमें समस्त ब्रिटिश साम्राज्यमें स्वर्णसुषयी मन्त्र्य लीं। भारतवर्षमें भी इस महोत्सवमें शामिल होनेमें बहिन ग रहा। इसके दून वर्ष बाद १८९७ ई०में महाराणीके शासनकालका जब साठवाँ वर्ष पूर्ण हुआ तब बड़े पून-धामसे 'होरक जुबली' मनाई गई। ईगरीष्टके इतिहासमें इनके अधिक समय तक भीर किमोंके राज्य करनेकी बात दिलाई नहीं देनी।

महाराणीके राजत्वका अन्तिम समय बड़ी ही अनागतसे बीता। एक तो पुत्रजीव, उम पर इतिम अफ्रीका आदि स्थानोंमें घोर विप्लव, इसमें वे बहुत चिन्तित रहा करते थीं।

६४ वर्ष राज्य करकेके बाद १९०१ ई०को २२वीं जनवरीको महाराणी विक्टोरिया इस पुराधामकी छोड़ परलोक सिपाही। उनकी मृत्यु पर केवल इंग्लैंड ही नहीं, समस्त ब्रिटिश साम्राज्यमें जोर प्रकट किया गया। Frogmore Mausoleum में ४थी कवररोकी उनकी लाज दफनाई गई।

महाराणी विक्टोरियाके इस सुशोभे शासनकालमें प्रेड मिटेनमें बहुत परिवर्तन हुआ था। १८४० ई०के पहले छः पेंसिले कममें कहों मो लोडो नहीं भेदी जाती थी। किन्तु उनके शासनकालमें सर रोसेट्टिद्वारेके यत्नसे सिर्फ १ पेंसिले छोडो जाने जाने लगे।

विक्टोरियाके राजसिंहासन पर बैठनेके पहले विना-गतमें मराठीके पढ़नेका कोई धारण लूक न था, कैरलने की संख्या अधिक थी, किन्तु जबसे विक्टोरिया गरी पर पीठा, तबसे बहुतसे लूक छोले गये और कैरलनेकी संख्या बहुत घटा दी गई। उनके शासनकालमें ही विनागतमें रजगाड़का प्रचार हुआ। इसी वर्ष काली-ने विक्टोरियाका नाम विरहमरणोप है।

विक्टोरिया (अं० ग्रा०) १ एक प्रकारकी घोड़ागाड़ी। यह देशमें प्रायः ब्रिटिशमें मिलता जुलता, पर तमामे कुछ छोटी और हल्की होती है। इसकी प्रायः एक ही घोड़ा लोचना है। (पु०) २ एक छोटे प्रकार का जिनका पना है एक नामक एक मुरादिवनमें सन् १८५६ में समाया था।

विक्रम (सं० पु०) विक्रम-घञ् । १ शौर्यातिशय, शौर्य या शक्तिको अधिकता। पर्याय—अतिशक्तता शौर्य, वीरत्व, पराक्रम, सामर्थ्य, शक्ति, साहस । विशेषण कामतोनि विक्रम अच् । २ विष्णु । ३ कान्तिमात्र । ४ पादविशेष । (रामा० १।१२०) ५ विक्रमादित्य राजा । विक्रमादित्य देखो । ६ चरण, पैर । ७ शक्ति, ताकत । ८ स्थिति । विक्रमःस्थितिः प्रतिसंक्रमः महा प्रलयः । (स्वामी) ९ प्रभवादि साठ संवत्सरोंमेंसे चौदहवां संवत्सर । इस वर्षमें सभी प्रकारके शस्य उरधज होते हैं और पृथ्वी उपद्रवशून्य होती है । किन्तु लवण, मधु और गव्यद्रव्य महंगा बिकता है । १० स्वनामधेयत कविविशेष । इन्होंने नेमिदूत नामक एक खण्डकाव्य लिखा है । ११ वत्सप्रपुत्र । (भार्कपद्येयपु० ११७।१) १२ पक्षिको गति । १३ चलन, दंग । १४ आक्रमण, चढ़ाई । (त्रि०) १५ श्रेष्ठ, उत्तम ।

विक्रम—१ कामरूपमें प्रवाहित एक नदी । (भ०ब्रह्मल० १६।६३) २ आसामके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । (१६।४०)

३ पूर्व बङ्गका एक प्राचीन ग्राम । (१५।५३) ४ कुशद्वीपके अन्तर्गत एक पर्वत । (त्रि०पु० ५३।७)

विक्रमक (सं० पु०) कार्तिकेयके एक गणका नाम ।

विक्रमकेशरी (सं० पु०) १ पाटलिपुत्रके एक राजा । २ चण्डोमङ्गलवर्णित उज्जयिनोकै एक राजा । ३ मृङ्गाकदत्तराजके मन्त्री । (कथावर्ति)

विक्रमकेशरीरस (सं० पु०) ज्वराधिकारोक्त औषधविशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—जारित ताम्र १ तोला, रोष्य २ तोला, कजली २ तोला और कांडविप १ तोला, इनमेंसे पहले ताम्र और रोष्यको अच्छी तरह मईन कर एकत्र मिलावे । पीछे उसमें कजली और विप मिला कर नीचके मूलको छालके रससे २१ बार भावना दे और बादमें १ रत्तीकी गोली बनावे । इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ।

विक्रमचरित (सं० श्लो०) विक्रमादित्यका चरितविषयक ग्रन्थमेद ।

विक्रमचौद—कुमायूके एक राजा, हरिचौदके पुत्र । ये प्रायः १४२३ ई०में विद्यमान थे ।

विक्रमचोल—एक महापराक्रमी चोल राजा, राजराजदेवके

पुत्र । अनेक ताम्रशासनों और निलालिपियोंसे तथा 'विक्रमचोड़न उला' नामक ताम्रिल ग्रन्थसे इन चोल-राजका परिचय मिलता है । शेषोक्त ग्रन्थमें लिखा है, कि इन्होंने चेर, पाण्ड्य, मालय, सिहल और कोट्टणपतिको परास्त किया था । पल्लवराज तोण्डैमान, श्रेष्ठिपति काडुयन्, नुडुम्बवाडोके अविपति पल्लभ, अनन्तपाल, वत्सराज, वाणराज, विगर्त्तराज, चेदिपति और कञ्चिङ्गपति इनके महासामान्त गिने जाते थे । इनके प्रधान मन्त्रीका नाम था कण्णन् या वृष्ण । विक्रमचोलने १११२ से ११२७ ई० तक चोलराज्यका शासन किया । आप शैव थे ।

२ एक दूसरे चोल राजा । ये विक्रमचद्र नामसे भी परिचित थे । इनके पिताका नाम राजपरेण्डु था । आप १०५० शकमें कौनमण्डलका शासन करते थे ।

३ पूर्वनालुष्यवंशीय एक राजा ।

विक्रमण (सं० श्लो०) विक्रमलघुदू । विशेष, कदम रखना ।

विक्रमतुङ्ग (सं० पु०) पाटलीपुत्रके एक राजा । (कथावर्ति)

विक्रमदेव (सं० पु०) चन्द्रगुप्तका दूसरा नाम ।

विक्रमपट्टन (सं० श्लो०) 'विक्रमस्य पट्टन' । उज्जयिनी नगरी ।

विक्रमपति (सं० पु०) विक्रमादित्य ।

विक्रमपाण्ड्य—पाण्ड्यवंशीय एक राजा । मदुरामें इनकी राजधानी थी । वीरपाण्ड्यके मारे जाने पर कुलोत्तुङ्ग चोलकी सहायतासे आप मदुराके सिंहासन पर बैठे थे । यह १२वीं सदीके मध्यभागकी घटना है ।

विक्रमपुर (सं० श्लो०) विक्रमस्य पुरं । विक्रमपुरी, उज्जयिनी ।

विक्रमपुर—बङ्गाल-ढाकाके जिलेका एक बड़ा परगना । ढाकानगरसे १२ मील दक्षिणसे यह परगना शुरू हुआ है । इसके पूर्व इच्छामती और मेघना नदी, इसके पश्चिम घुडोगङ्गा, उत्तर जलालपुर परगना तथा इसके दक्षिणमें कौर्त्तिनाशा नदी प्रवाहित हो रही है । ढाका जिलेमें यह परगना बड़ा ही उपजाऊ और जस्यशाली है । यहाँ अधिक परिमाणमें धान, ऊन, कपास, पान, सुपारा,

विष्णु, मरुत तटद्वीपों का एक मण्डल और बहुत तटद्वीपों का एक प्रभाग होते हैं। परगनेके पूर्वे अंजलि मिटा या छोड़ दे, इस अंजलि बहुत उद्यान है। बीच बीचमें मत्स्येश्वर और कम चौड़ी विचारि दिवाई देनी है। पश्चिम अंजलि भीषा है। यहाँ १ बीस एक जमीन मन्थानद्वारे मन्थी परिपूर्ण है और सब समय जलसे पूजा रहना है।

अथ शिवीय विक्रमपुर परगनेमें ही पान शक्तिनी और उमरारका स्थिति है। इस शक्तिनी अधिपति शिवु है। शिवुओंमें प्रथम ही अधिपति है।

शिविक्रमपुरका नामक एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें लिखा है—

एकेश्वरीके पूर्व ८ कोस दूरी पर और इच्छामती नदीके किनारे सुवर्णप्राम अवस्थित है। इन्द्रपुरके उत्तर, अक्षयुतके पश्चिम, गङ्गाके दक्षिण और पद्मा नदीके पूर्व विक्रमपुर अवस्थित है। विक्रम नामक राजा की यहाँ राजधानी होनेसे इस स्थानका नाम विक्रमपुर हुआ। पूर्वकालमें अर्द्धद्वीप के समस्त राजागण कवच-तट ही कर इच्छामती नदीके किनारे स्वर्णदान दिया था। इस समय अर्द्धद्वीपों और दीनद्वीपोंकी बहुत धनदायक स्थिति थी। विक्रमपुरमें बहुतसे शिवुओंका स्थान है। यह स्थान परतारराजके प्रसिद्धस्थानके नाममें विख्यात है। विक्रमपुर बहुत प्राचीन स्थान है। येना जगता जगता है कि उच्चरिमाके इतिहासप्रसिद्ध मन्थ-रिक्तारिश्मने यहाँ था कर अपने नामको विर-मोनी के रूपके लिये यह नाम बनाया था। यही आदि विक्रमपुर कहनाया है। विक्रमेश्वर नामक शीत शिवी मन्थ राजा द्वारा मरुत नगर बनाया गया होगा। शिवु उच्चरिमाके राजा विक्रम शिवु द्वारा पूर्वे अंजलिमें था कर मण्डका बनाया मुक्तिरंगन बीच नदी द्वारा। फिर भी विक्रमपुर नाम ही अक्षर ही प्राचीन है। पश्चिमोत्तरी राजाओंके समय मरुत बहुत अक्षर मण्डक गिना जगता था। उनके पदवीका शीरे ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिवारिश्मि वा तादृशिविमें इसका उल्लेख नहीं है। पार्श्वके अधिपति के समय विक्रमपुर नामसे सुवर्णप्राम बीच शक्तिरु सं-पुत्र अक्षरान् अतीनी जलमयल विषय था। कुछ लोग इस प्राचीन स्थानको रामरुत और कुछ लोग मन्थार

कहते हैं। शिवु प्रथम स्थान विक्रमपुर परगनेके स्थान पर भी यह आदि विक्रमपुर नाम ही है। इसका कोश लोक निराकरण नहीं कर सका। इसका भी नहीं तोन हीन दूरी पर और शिवुओंका अक्षरके अधिपति सुभाषीन रामराजका अक्षरके अधिपति शिवु है। पान और मन्थपंजीय राजाओंके अधिपतिके समय मन्थ पूर्वे-पद्मान् और उत्तर-पद्मान्के अधिपतिन स्थान विक्रमपुरके अक्षरगत थे। मन्थपंजीय महाराज शिवीप्रामाधके मन्थ विक्रमपुरको प्राचीन राजधानी अक्षरके अधिपति हैं। इस समय भी अक्षरके अधिपति मन्थ तट परगनेके समुद्र तटका स्थान विक्रमपुरमें था गया था।

रामराजके पद्मान्मयका विमान अक्षरके अधिपति ३००० वर्गकोट अक्षर भूमिमें पदा हुआ है। पूर्वकाल राजप्रामादका कुछ भी अंजलि नहीं, केवल अक्षर हीना है और उसको पश्चिममें प्रायः २०० कोट विक्रमपुर कहा मदान है। इसको पार कर एक राज्या गया है। इस विषयके पद्मान्मयके किसी मन्थ आदिवा शिवु म होने पर भी इसके पार्श्व और बहुत दूर तक हीरोही देर और प्राचीन या अक्षरके अधिपति हीन पद्मनी है। यही बहुत हीरे से कर निरंतरके किनारे ही मन्थाने मन्थान बना लिये है।

इस अक्षरके अधिपति मन्थ ही मन्थिद्वारे नामका एक पद्मपुर है। कहा जाता है, कि यही पद्मपुर पद्मान्के भारतमें स्वर्णमोने और बादकी स्वर्ण शक्तिने यहाँ ही मन्थान देह विमान ही थी।

इस अक्षरके अधिपति 'मन्थ शिवेश्वर' नामक एक मन्थ है। सुना जाता है, कि इनो मन्थोवर्मे राजाप्रामा और इनके भारतमें स्वर्णमोने देहाधारेण रखा गया था।

एकके एक हीन दूर पर बाबा आर्य मन्थका अक्षर और मन्थिद्व है। कहते हैं, कि पद्मपुर पद्मान्के नाम ही पारका सुष्ठ हुआ था। पद्मान्को सुष्ठुके बाद पर पार ही परदे पद्म सुमयमान राजाके रूपमें बनवान् अक्षरका नामक बनाया। अक्षरके अधिपति 'मन्थार' मन्थेश्वर शिवु शिवुओंके लिये पवित्र है, यही ही यहाँके सुमयमानोंके लिये बाबा आर्यमका अक्षर और मन्थार ही नाम है। अक्षरके अधिपति।

रामपालके सिवा इस परगनेमें केदारपुर नामके स्थान-
में द्वादश भीमिकोंके अन्यतम चांद्राय और केदाररायका
सुदृढत धर्मसावरोप गङ्गा और मेघनाके संगमके निकट-
का मठ देखनेकी चीज है।

फिरङ्गीबाजार इच्छामती नदीके किनारे पर बसा
हुआ है। नवाब सायफ्ता खाँके जमानेमें सन् १६६३ ई०
में कई पुर्चगाली फिरङ्गी आराकानी राजाको त्याग कर
मोगलसेनापति हुसेनशेगका पक्ष ले यहां रहने लगे।
इसीसे यह स्थान फिरङ्गी बाजार नामसे प्रसिद्ध है। एक
समय यह स्थान कस्बाके रूपमें था, किन्तु इस समय
एक सामान्य छोटा गांव सा दिखाई देता है।

फिरङ्गीबाजारके प्रायः तीन मील दक्षिणमें इच्छामती-
के किनारे और एक प्राचीन स्थान है। यहां मीरजुमलाने
एक चौकोन किला बनवाया था। उस प्राचीन दुर्गके
भग्नावशेषमें कितनी ही ईंटे और घाट हैं। पहले मोगलों
के जमानेमें यहांके घाटमें शुद्ध यौ कर बचल किया
जाता था। इस समय कारके महीनेमें यहां एक मेला
लगता है। यह १५ दिनों तक ठहरता है। इस मेलेमें
पूर्वदङ्गलके बहुतेरे घातो आते हैं। इसमें पूर्व-दङ्गीय
उत्पन्न वस्तुओंका क्रयविक्रय होता है।

विक्रमवाहु (सं० पु०) सिंहलके एक राजा।

विक्रमराज (सं० पु०) राजा विक्रमादित्य।

विक्रमशोल (विक्रमशिला)—पालराजाओंके समय मगध
को दूसरे राजधानी। आज कल इसे शिलाय कहते हैं।
यह वर्तमान बिहार प्रदेशके मध्य बिहार महकमेसे प्रायः
३ कोस दूर पर राजगृह जानेके रास्ते पर अवस्थित है।
बौद्ध पालराजाओंके समय यह स्थान बहुत समृद्धिशाली
था। अनेकी मठ और स्तूपाराम शोभा दे रहे थे। पर आज
उनका नाम निशान तक भी नहीं है। केवल दो एक
प्राचीन बौद्धमूर्तियाँ उस क्षीण स्मृतिका परिचय दे रही
हैं। यहांका राजा आज भी बिहार भरमें प्रसिद्ध है।

धर्मपालके वंशमें विक्रमशोल नामक एक धीरपुत्रने
जन्म लिया। कुछ लोग कहते हैं, कि उर्दोंके नामा-
नुसार विक्रमशोल राजधानीका नाम पड़ा होगा। इन्होंने
विक्रमशोलके पुत्र सुवराज हारवर्षके आधर्ममें रह कर
प्रसिद्ध कवि गोष्ठाभिनन्दने रामचरित आदि काव्योंको
रचना की।

विक्रमसाही—ग्वालियरके तोमरवंशीय एक राजा, मान-
साहीके पुत्र। आप १६वीं सदीमें विद्यमान थे।

ग्वालियर देखो।

विक्रमसिन्धु—सिन्धुवंशीय येलदुर्गके एक सामन्त राजा,
२५ चाणुएडराजके पुत्र। ११०२ शकमें आप कलचुरि-
पति सङ्गमके अधोन विसुकाइ प्रदेशका शासन करते
थे।

विक्रमसिंह—एक पराक्रान्त कच्छघातवंशीय राजा,
विजयपालके पुत्र। अद्वितीय जैनपण्डित शान्तिपेणके
पुत्र विजयकीर्ति इनके सभा-पण्डित थे। दुवकुण्डसे
११४५ संवत्में उदकोर्ण इनकी शिलालिपि पाई गई है।

विक्रमसिंह—घण्टाराववंशीय मेवाड़के एक प्रसिद्ध राजा।
समरसिंहके पूर्वपुत्र। समरसिंह देखो।

विक्रमादित्य (सं० पु०) मोदकविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—
पहले २० गुन्धफलको घृतमें पाक कर पीछे उन फलोंको
निकाल कर बीस पल सौंड़में डाल दे। इसके बाद ताल-
मूली, तुरंगी, सोंठ प्रत्येक ४ तोला, जातीफल, ककूल,
लवंग, प्रत्येक २ तोला, मालता, कुलिञ्ज, कषाय, करमत्वक
प्रत्येक १ तोला, इन्हें एकत्र कर मोदक बनावे। प्रति दिन
यदि १ तोला मोदक और एक घृतपत्र आमलकी सेवन
करे, तो घातुक्षोणता, अग्निमान्द्य, सभी प्रकारके नेत्ररोग,
कास, भ्वास, कामला और बीस प्रकारके प्रमेह अति
शीघ्र नष्ट होते हैं।

विक्रमादित्य, (सं० पु०) सनामप्रसिद्ध नरपति। ये

विक्रमार्क नामसे भी विख्यात हैं। इस नामके वृत्संख्यक
नृपति विभिन्न समयोंमें उत्पन्न हो कर राज्यशासन कर
गये हैं। उनमें संवत्सप्तत्यर्चक विक्रमादित्यकी ही बात
पहले कहेंगे। इन नृपतिके सम्बन्धमें प्रवाद था कि
दन्तियोंके आधार पर कितने ही लेखकोंने कितनी ही
बाते लिखी हैं, पहले हम उर्दोंकी आलोचना करते हैं।
कालिदासके ज्योतिर्विद्यारण्य नामक ग्रन्थमें लिखा

है—

"श्रीविक्रमार्क धृतिस्मृति विचारविद्यारद पण्डितोंसे
समाकीर्ण एक सी अस्सोसे अधिक देशोंसे समन्वित
भारतवर्षके अन्तर्गत मालय देशके राजा हैं। मद्रावागो वर
रुचि, अशुद्ध मणि, शङ्कु, शीघ्रोपावरायण त्रिलोचनहृदि

पट्टपर्यंत छोटे समरसिंह आदि मन्वन्विय ब्राह्मणसिंह,
 अमरसिंह, पारुषाण, मन्वन्विय, पुमारसिंह आदि महा महा
 पट्टिभक्त लोग भीरु सिवा इनके पारुषाण, क्षत्रपण, येनाम
 भट्ट, पट्टपर्यंत, काजिनाम आदि कवि महाशय विक्रमार्क
 मुनिनीके समामें विराजमान थे। इन १६ देवस्य मन्व
 पट्टिनीके सिवा महाशय भीरु भी १०८ मन्वन्वियोमें
 समागत हो कर समासपट्टमें विराजमान होने थे। इन
 लोगोंके सिवा १६ ज्योतिषी भीरु १६ भासुपेंद्विद्वान्प
 विद्ययाकाशमिष्ठि जियर पर संवत् इन्के समीप
 बैठने थे। भट्ट (भार) भीरु पट्टिभक्त (चेहादार) भी
 भयने भयने बाधमें प्रवृत्त हो समाके समीप खड़े रहने
 थे। बरोड़ों सिवाही समाकी घेर समा मण्डलोकी रक्षा
 करते थे।

इन दिग्विजयों राजा विक्रमार्कके किरतों स्थानमें जाता
 करते समय बहुर करीब तक सौम्य लक्षी रहती थीं।
 इनमें सोम बरोड़ वैश्य, दान बरोड़ सवार (दायो, घोड़े
 आदिके सवार), चौतोग हजार लोग भी दायो भीरु
 पारुषाण भायें इनके साथ साथ रहती थीं। ये दिग्वि-
 जय कर कर लींटे थे, सब लोग इनकी अनुमति द्राविड़
 दूतका वरमाना परम्पु, साठारयोकी दायागिन बज्रपद-
 भुक्तदूतागके मन्व, गीदममुद्रके मन्व, मन्वित्त मुग्गां-
 रककरिके हरि (सिंह), धाराग्यकारके भयना (सूर्य),
 बरोड़ामुक्तके अश्रमा समभे थे भयान् परम्पु, दायागिन,
 मन्व, मन्व, सिंह, सूर्य भीरु बहुर थे जैसे क्रमते पूर,
 यम, भुक्त, समुद्र, दृष्टी, भाषकार भीरु पदके धर्म-
 के प्रति निवृत्त कारण होते हैं। जहाँमें मो पैस हो
 द्राविड़, साठ, पद्म, गीद, मुग्गां, पारुषाण, बरोड़
 आदि इन देवोंका धर्म-साधन दिया।

इनमें राजा विक्रमार्कके गोपीचौहंमुलका ही
 विक्रम होता है। इनमें केवल ये मुल ही नहीं थे,
 परं बहुरका तरह समस्तसमाय मुलमें, समुद्रकी तरह
 सामान्यो मुलमें, ब्रह्मण्यकी तरह दामके मुलमें, काम-
 देवकी तरह गीद्वयो मुलमें, देवताओंके सिद्धमान
 मुलमें और दुष्टका दमन, सिद्धका पालन आदि सभी
 मुलमें मुलकाय थे। उनका प्रमाण निम्नके यह है,
 कि समुद्रके, मन्व मुग्गां, मन्व पारुषाणसिंह पर बहुर

कर बहुरके भविष्यतियोंको ज्ञान देने थे। इन पर बहुरके
 भयनत मन्वक ही कर उनको भयानता बोधते करते थे,
 तो ये समापाम ही उनको उनका राज्य और देते थे।
 सिवा इनके मन्वमुक्त, काश्रम, भी, मन्व, मन्व आदि
 दान उनके निवृत्तके कारणोंमें परिगणित था।

महापुरुं उज्जयिनी इन विक्रमसिंहिणु महाशय विद्यया
 र्कको राजपानो भी भी बरोड़र कर्मदेनाभिवर्गिका सुभु
 संभाममें पछाड़ उलें कीर कर अपनी राजपानीमें ही मन्वे
 थे, फिर इज्जतके साथ उज्जयिनी उलको उग्य भी सिवा
 था। जिहोने संभाममें पञ्चमपत्रमाल मन्वीके पारुषाण
 कर बहुरमुगमें पृथ्वीमें मन्वाहृका प्रयत्न दिया, जिहोने
 राजरथनाम्ने भवन्तिबाकी प्रमाणदृष्टयो सुभ-मन्वीके
 मन्वित्त सोमा तक पट्टेय लुकी भी, एवं जिनके मन्वमें
 नियत देवद्विहित कर्मोंका अनुष्ठान होता था, जन्मदम्य
 जीवोंको मोक्षप्रदविना महाशय मन्वेवोमिने इन
 भवन्तिवर्ग विक्रमार्कको जय करें। (कर्मोतिव)

ज्योतिर्विद्वान्मन्वमें जिन विक्रमादित्यका क्या कर्म
 है, ये ही विक्रमार्कपरमरके प्रवर्षके प्रमिष्ट है। देवता-
 पयोमों भीरु सिद्धासनवतासोमें उनके मन्वमें बहुर-
 तीरे मन्वीकिक कथायें दियो हैं, किंतु मन्व कथायें मन्व
 ज्योतिष्याम (चेहादर्येय)की तरह विद्यार्यके होते पर
 भी उनके मुलमें येनिहासिक मन्वकाका मन्व नहीं मन्व
 होता। ज्योतिर्विद्वान्मन्वमें विक्रमादित्यका भी उपाय
 विशेष दिजाई देता है, उक्त उपायमान प्रयोगका मन्व
 करें, तो वेई मन्वुक्ति नहीं होगी। वेनामपयोमों
 भीरु सिद्धासनवतासोका मन्वकायें इतना प्रचार मन्व
 है, कि वहीका क्या भी विक्रमादित्यके नाममें परिगणित
 है।

वेनामपयोमों भीरु सिद्धासनवतासोका कथायेंका

● निदानवर्षाओं का विक्रमसिंह विक्रमार्कके मन्वें बहुरके
 विक्रमार्कके मन्वे सिद्धासनवतासो, विक्रमार्कके मन्वे बहुरके मन्वे, विक्रमार्क
 के मन्वे मन्वक पर मन्वका संप्रदुष्ट होने का सिद्धासनवता
 ही पर मन्व मन्वकमन्वकी मुलका ही विक्रमार्कके मन्वे
 विक्रमार्कके मन्वे मन्वकमन्व, विक्रमार्कके मन्वे बहुरके मन्वे
 विक्रमार्कके मन्वे विक्रमार्कके मन्वे बहुरका मन्वके मन्वे

भारतकी प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। किन्तु आलोचना करने पर ये ऐतिहासिक ग्रन्थ कोई सात आठ सौ वर्षसे अधिक पुराने न होंगे। इसी तरह ज्योतिर्विद्वामरणकारकालिदासने अपनेकी विक्रमांक के समसामयिक होनेका परिचय देनेकी चेष्टा की है सही; किन्तु मालूम हुआ है, कि यह ग्रन्थ सन् १२वीं सदीकी रचना है। सुतरां इन आधुनिक ग्रन्थों पर निर्भर करके ही विक्रमादित्यका इतिहास लिखना समीचीन नहीं होगा।

ज्योतिर्विद्वामरणकारने जो कई उज्ज्वल नक्षत्रोंका परिचय दिया है, उन महात्मनाओंके सम्बन्धमें मेरा कहना है, कि वे विक्रमादित्यके समसामयिक ही थे और इसमें भी सन्देह है, कि वे लोग परस्पर एक समयके थे या नहीं। युद्धगयासे बौद्ध भ्रमरदेवकी एक शिलालिपि आविष्कृत हुई थी। उस शिलालिपिके पढ़नेवाले विलकिन्स साहबके मतसे यह १२वीं शताब्दीकी लिपि है इसमें कालिदासके समासद और नवरत्नका भी उल्लेख है। यह भी हो सकता है, कि सम्भवतः इस तरहकी किसी लिपि और प्रवादसे ही पिछले कालमें विक्रमादित्यकी सभा और उनके नवरत्नकी बात प्रचारित हुई होगी।

द्वारा रचित है। मूल बात यह है, कि विशासनवतीसों और वेतालपचीसों इन दोनों पुस्तकोंके रचयिताके नाम तथा तारीखका ठीक पता नहीं है। किन्तु वेतालपचीसोंकी भाषाको देखने या इस बातका कई पुस्तकोंमें उल्लेख करनेसे यह अनुमान होता है, कि यह रचनाकीशत्रु साम्रज्यका ही होगा। क्योंकि उनकी बनाई पुस्तक कथासरित्सागरकी भाषासे इस वेतालपचीसोंकी भाषा बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसके यह अनुमान युक्तियुक्त नहीं कहा जायेगा। यह सोमदेव भट्ट सन् १२वीं शताब्दीमें काशीमें उत्पन्न हुए थे। ज्योतिर्विद्वामरणके रचयिता कालिदासके भी इसी समयके होनेका अनुमान किया जाया है। उन्होंने अपने ग्रन्थका भारम्भ कात्र कलिशाब्द ३०६ या २४ विक्रमसंवत् लिखने पर उनके ग्रन्थमें "शकः वराम्भोपियुगी (४४५) नितो ह्यतो मान" इत्यादि वचनोंसे ४४५ शक और 'मत्वा' वराहमिहिरादि मतै" इत्यादि उक्ति द्वारा भी उनका कात्र पकड़ा गया है। वराहमिहिर देखो।

मालवमें प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यने पितासे राज्यधिकार नहीं पाया था। उनके चैमालेय धृता अर्थात् सीतेले भाई भर्तृहरि ही मालवका शासन करने थे। किसी समय भर्तृहरिके साथ विक्रमादित्यका मतोमालिन्य हुआ, इससे विक्रमादित्य अत्यन्त क्षुण्ण हो मालव छोड़ कर चले गये और हीन दीन भेषमें गुजरात और मालवाके नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर कुछ दिनोंके बाद मालवमें ही लौट आये। इधर भर्तृहरि स्वपत्नीकी दुर्घरिखतासे विरक्त हो कर राजभोग त्याग कर जङ्गलमें चले गये। उन्होंने बाबा गोरखनाथजीके शिष्य हो कर योगमें मन लगाया ऐसे अवस्थामें विक्रमादित्यकी राज्यका भार लेना पड़ा। राजा होनेके बाद विक्रमादित्यने भारतवर्षके कितने ही प्रदेशोंको जीत कर अपना राज्य-विस्तार किया।

उद्धृत ग्रन्थ-निचय और प्रवादसे हमें जिन कवियों तथा पण्डितोंका परिचय मिलता है, वे विभिन्न समयके मालूम होते हैं। वररुचि भर्तृहरि आदि शब्द देखो।

पारचात्य पण्डित लोग कालिदासके बनाये रघुचर्यामें 'हृण' शब्द देख कर अनुमान करते हैं, कि हृणके अधिकांशकालके बादके ये कालिदास हैं। उनके मतसे गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तके समय ख्रीष्ट ५वीं शताब्दीमें हृणोंने भारत पर आक्रमण किया था। इसी तरह विक्रमादित्यके सम्बन्धमें भी वे कहते हैं, कि ज्योतिर्विद्वामरण के मतसे या संयत्के प्रारम्भानुसार विक्रमादित्य ख्रिष्टपूर्व प्रथम शताब्दीके मनुष्य कहे जाते हैं सही, किन्तु हम लोग ऐसा स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं। पत्रोंके प्रथम अर्धके समकालीनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। और तो क्या, जो विक्रमसंवत् प्रचलित है, यह ख्रीष्टीय ६ठी शताब्दी तक इस नामसे प्रचलित नहीं था। इस समयके पूर्वा यह अर्थ 'मालवगणसिधतयर्द्ध' कह कर ही प्रथित था। और तो क्या, यह अर्थ इस समय १६८७ तक प्रचलित रहने पर भी ७१४ विक्रमसंवत्के (६५७ ख्रिष्टाब्द पहले) विक्रमाब्दाङ्कित कोई शिलालिपि, ताम्रशासन या प्राचीन ग्रन्थ नहीं मिले हैं। चीनपरिभाषक ह्युयान सियाङ्गके भारतवर्ष-कालमें शिलादित्य मालवका राज्य करते थे। इनके पिताका नाम था—

प्रतिष्ठाके समयमें 'विक्रमसंवत्' या 'मालवगणेश्व' या मालवेश संवत् प्रचलित हुआ।

प्रवर्धचिन्तामणि, हरिभद्रकी आवश्यकटीका और जैनोंके तपागच्छपंचावलीसे ज्ञाना जाता है, कि चोर निर्वाणके ४६७ वर्ष बाद पादलिताचार्य, सिद्धिसेन-दिवाकर और चोर-निर्वाणके ४७० वर्ष बाद (ईसाके ५७ वर्ष पहले) संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य आविर्भूत हुए थे। उन्होंने उज्जयिनीके शकरराजको हटा कर सिंहासनारोहण किया।

जैनोंकी कालकाचार्य-कथामें लिखा है, कि शकवश भी जैन-धर्मका उत्साहदाता और अनुरागी था। उनके समयमें ही मालवमें विक्रमादित्यका अभ्युदय हुआ था। उन्होंने शकवशका ध्वंस किया। उनका राज्याधिकार समुद्रसिंसे पूर्ण और गौरवजनक हुआ। उन्होंने अपने नामसे संवत् प्रचलन और सारे राज्यके अधिवासियोंको भ्रष्टसे मुक्त किया। कुछ दिनोंके बाद ही फिर शक राजा देव पड़े। उन्होंने विक्रमादित्यके वंशका ध्वंस किया था। नवविक्रमादित्यके १३५ वर्ष बीत जाने पर उसके बदलेमें उस शकरराजने शकाब्द-प्रवर्तन किया। जैनाचार्य सुन्दरोपाध्याय द्वारा रचित

कल्पसूत्र-टीकामें देखा जाता है, कि राजा विक्रमादित्य शत्रु-जय देखनेके लिये गये, यहाँ सिद्धिसेन विद्याकरने उनको जैनधर्ममें दीक्षित किया। सिद्धिसेनके उपदेशसे विक्रमादित्यने संवत्सरका प्रवर्तन किया। इससे पहले वीर-संवत्सरका व्यवहार हीं था।

यह मालूम नहीं होता, कि विक्रमादित्यने कितने दिनों तक राज्य किया। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होने बहुत दिनों तक राज्यशासन किया था और इसलिये उनको संवत्सर-प्रवर्तन तथा मालवमें कई समाज-संस्कारोंकी सुविधायें प्राप्त हुई थीं; किन्तु यह नहीं मालूम होता, कि दीर्घकाल तक शासन करनेके बाद उनके सिंहासन पर उनका कोई वंशधर बैठा था या नहीं, क्योंकि इनके एक वर्षमें ही उज्जयिनीका राजासन पर शकाका कब्जा हो गया था।

शकरराजवंश और शकाब्द देखो।

विक्रमादित्यके वंशलोप और शकाधिकार हो जाने पर मालवाके अधिवासी अपने जातीय संवत्सरको बहुत दिनों तक चला नहीं सके। इसाकी चौथी शताब्दीके आरम्भ तक शकाधिकार पूर्ण रूपसे विद्यमान था।

२ विक्रमादित्य।

चीनपरिम्राजक ह्यूयान सियाङ्ग भारत-संमग्न-कालमें लिख गया है, कि बुद्ध-निर्वाणके सहस्र वर्षमें ध्रावन्ती-राज्यमें विक्रमादित्य नामका एक बड़ा ध्यायुं राजा था। यह नित्य गरीब और असहाय लोगोंकी पलाय सोनेका सिक्का बाँटता था। उसके अत्यधिक धनसे लजाना खाली होनेके भयसे कोपाध्यक्षने एक दिन राजासे कहा, कि राजकीय शून्य हो जाने पर उसमें धन खालनेके लिये जो अपिरिक कर लगाया जायेगा, उस क्रमारसे वृद्धि प्रजा कष्ट पायेगी। धनके लिये आपकी प्रशंसा होगी सही, किन्तु आप अपने मन्त्रियोंकी दृष्टिमें गिर जायेंगे। राजा विक्रमादित्यने कोपाध्यक्षकी बात पर ध्यान नहीं दिया और

* मालवसे आविष्कृत विभिन्न समयकी शिलालिपियोंमें 'मालव काज' 'मालवेश संवत्सर' और 'मालवगणेश्वरित्यम्ब' इत्यादि नाम पाये जाते हैं। जैने—

(१) मालवानां गण्यक्षित्या याते शतच्छत्रुये।

विनवत्यधिकेऽध्यानां भूतो सेव्यधनवत्यने ॥"

(अभ्युदयार्थकी दशपुरालिपि)

= ५६३ मालवगणेश्वर = ४३६ ई.। (Fleet's Gupta Kings, page 88.)

(२) "संवत्सरसुवैपतिः सपञ्चनवत्यागमैः।

वसतिमांसवैशानां मन्दिरं धुञ्जं डेः कृतम् ॥"

कल्पलिपि। (Indian Antiquary, Vol XIII p. 162)

(३) मालवकालाच्छरदा वटत्रिशतसंयुतेष्वतीतेषु नवसु शतेषु—(Archaeological Survey of India, Vol. X p. 33.)

Vol. XXI. 71

* "सिद्धिसेनेन विक्रमादित्य नामा राजा प्रतिबोधिः..... श्रीपुरि धानिन्प्यादिक्रमादित्या राजा संवत्सरं प्रवर्तयामास पूर्वसु भी वीरसंवत्सरमासीत।" (कल्पसूत्रटीका)

राजका काम पैसा हो जाते रखा । इसके बाद मनोदित्त नामके एक बौद्धाचार्यने अपने हजामके एक साथ स्वयं मुद्रा दान की है । इस दानके विषयमें विक्रमादित्यकी मातृगण दुभा, कि इसका उद्देश्य हो बौद्धाचार्यने पैसा दिया है, इस पर उन्होंने आना तख्तेके उजका आशय ही कर इसकी बहुत तख्तेमें तड्ड किया । उसमें मनोदित्तके नाममें बड़ी भोट लगी और इसके लिये ही उनकी मृत्यु हुई । इस मरनाके कुछ ही दिन बाद विक्रमादित्यने अपना राज्य छो दिया । इसके बाद जो राजा हुआ, उसको सभामें मनोदित्तके लिये पशुपशु विशेषरूपमें सम्मानन हुए थे ।

अध्यायक मोक्षगुप्तने एक विक्रमादित्यकी उद्योगोपनि शिलादित्य प्रजापतीनके पूर्वपक्षों विक्रमादित्यका होना आकार दिया है । पतागुप्तन और मोक्षगुप्तके मतमें मन् ५३० ईमें एक विक्रमादित्यका राजपाषाण हुआ था० । किन्तु यह मत हम सम्प्रामाण्य नहीं मानते । जोन बौद्धाचार्य-मतमें ईसामें ८५० वर्षों पहले गुप्तका निर्वाण हुआ । सुवर्ण गोनागिरामजके इस मतमें धावस्त्रीराज विक्रमादित्यकी ईसाकी दूसरी और निचरी गणनाकीका अनुभव कहा जा सकता है । ५५० गणनाकीमें पारसिमाजक फारिबाग भारतपरिदशनके लिये आया था । इस समय उसमें धावस्त्रीका उर्वरामावर्ष देना था । इसके भी प्रमाणित होना है, कि धावस्त्रीको मरुद्वीपके समयमें अर्धान् ईसाकी ७५० गणनाकीके पूर्व ही विक्रमादित्य वर्तमान थे । ऐसे समयमें ईसाके १३० गणनाकीके उद्योगोपनि हर्षविक्रमादित्यकी धावस्त्रीपति विक्रमादित्यके साथ अतिरिक्त-चरना नहीं की जा सकती । संभवतःसाम्राज्य दिग्भोजितिवर्षमें ७५० गणनाकीमें मान्यमें आ कर शिलादित्यका विद्वत्त्व संभव दिया था । यह मावद्वर्ष और धावस्त्रीकी मुद्रा नामें भने थे ।

३ विक्रमादित्य ।

सुवर्णगोप पद्यम चन्द्रगुप्तने कभीकी हन और राजा

भारतकी जोन पर विक्रमादित्यकी उद्योगि मन् ५३० गणनाके विक्रमादित्यकी तख्ते उद्योगि भी मन् ३३३ ईमें एक मया स-वैश्वर यथाथा था । फलतः लक्ष्मी देव-विश्वीकी द्वयिमें सुतशाल या सुतवर्षम् कहा गया है । सुतवर्षनके इतिहासमें यह नाम चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्यके नाममें प्रसिद्ध है । नेपालकी लिच्छवी राजकुमारों कुमारदेवोंके साथ उनका विवाद हुआ था । सम्भवतः नेपालमेंकी महापगारो वे उन्नत भारतके जनोभ्य दुर थे । मान्य होता है कि इसी कारणमें उनके कान्हे लिच्छके पर उनके नामके साथ कुमारों कुमारदेवों हल- "लिच्छवणा" का नाम दिखाई देता है ।

सुवर्णदेव देव ।

एक 'कुमारदेवों' के नाममें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके भीरावमें चन्द्रगुप्त नामक एक पुत्र उद्यम हुआ । उन्होंने अपने बाहुबलमें विम्वरवके बाद सारे भारतीयों और क्षत्रियारणके अधिवांस पर अधिकार कर दिया था । उनके ही प्रथम प्रजापति राज-प्रमाण बहुत कम हो गया था । उनको शिलानिधिमें मान्य होना है, कि माववगल भी उनके समयमें प्रथम थे, किन्तु गुप्तगाहकी अयोग्यता आकार करने पर बाधन दुर थे । महा-विदारकालमें भारतके अधिकाशों निर उद्योगि मन् ५३० धरमर वा म लके । इसी कारण उनको मरुद्वीप कीई शिलानिधि नहीं पाई जाती । गुप्त-विदारके विस्तारके साथ मावयमें बहुभेदे पराक्रम साम्राज्य दिखाई देने थे, ये गुप्तप्रार्थकी मयोग्यता आकार करने पर भी जोर्योवर्षमें बहुत होन ल थे । उनको जो शिलानिधिवा पाई गई है, उनमें उनके प्राचीन चन्द्रगुप्तके निदर्शन 'मालववर्षम्' का प्रयोग दिया गया है । परन्तु माववर्ष-मावक शिलामें शिलानिधिमें अतिरिक्त हुई है, उनमें विजयवर्षकी शिलानिधि ही बहुत लभ्य है ।० सामकना इसके कुछ समय पक्षी ही मयोग्य पारिषीके निर जातीय मयोग्य चन्द्रगुप्त हुआ था ।

४ विक्रमादित्य ।

चन्द्रगुप्तगुप्तके अन्तर्गत और राजादेवोंके मन् ५३०

• Max Müller's India what can it teach us p. 269
 1. Epist. Soc. Vol. 1, p. 269
 * Ep. Soc. Vol. 1 - p. 269, p. 273.

२रे चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ। ये भी पिताकी तरह दिग्विजयो थे। ये बड़े तेजस्वी, विचक्षण अभिनेता, सुरासक और परम धार्मिक थे। समुद्रगुप्तने उत्तर और दक्षिण भारत जय किया था, पर उनके मरते ही प्रान्तीय-सोमाके कई राजाओंने गुप्तवंशको अधीनता असोकार कर दी। २य चन्द्रगुप्तने गंधी पर बैठते ही एक ओर गङ्गापारकी पङ्क भूमिका और दूसरी ओर सिन्धु नदीका सप्तमुख विशेष कर वागियोंका दमन किया था। मालवमें शकाधिकारके लोप होने पर भी उस समय तक सुराद्रु वर्मान काठियावाड़में शकक्षत्रपण बहुते पराक्रान्त थे। गुप्तसम्राट् २रे चन्द्रगुप्तने मालव और गुजरात होते हुए अरब समुद्र की बीचमाला विस्तारित कर शकक्षत्रपोंको मूलसे नष्ट कर दिया। ये शकवंशके उच्छेद कालमें ३८८ से ४०१ ई० तक बहुत वर्ष तक महासमरमें लित थे। इस कालमें उन्होंने जिस तरह असाधारण चौरत्वका परिचय दिया था, चीरोंने उससे विमुग्ध हो कर उनको 'विक्रमादित्य' आख्यासे विभूषित किया था। पास्तयिक इम चौथे विक्रमादित्यके हाथसे ही शकक्षत्रपकुल एक ही बार नष्ट हुआ था। इसके बाद भारतके इतिहासमें और शकराजाओंका नामोनिशान भी नहीं मिलता। इस चौथे विक्रमादित्यके समयमें गुप्तसाम्राज्य इतनी दूरमें फैला था, कि पाटलिपुत्रमें रह कर सारे साम्राज्य पर शासन करना कठिन हो गया था। इस कारण उन्होंने अयोध्यामें अपनी राजधानी हटाई। किन्तु फिर भी, पाटलिपुत्र (पटना)-की महासमृद्धि और जनताकी वृद्धिमें कमी नहीं हुई। इस समय चीन परित्याजक फाहियान गुप्तराजधानीको देख कर उच्चयल भाषामें उनका परिचय दे गया है।

५ विक्रमादित्य ।

राजतरङ्गिणीके पढ़नेसे मालूम होता है, कि काश्मीरमें प्रवरसेनके सम्बन्धसे पहले उज्जयिनीमें विक्रमादित्य नामसे एक राजा राज करते थे। ये हर्ष विक्रमादित्यके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। उन्होंने शक-भ्लच्छोंको पराजय कर सारे भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया। ये असाधारण सुकृतमान, ज्ञानी और गुणियोंका आश्रयस्थान थे। इनकी समामें मातृगुप्त

नामक एक दिग्गन्तविश्रुत कवि अयस्थान करते थे। मातृगुप्तके अन्यान्य साधारणगुणका परिचय पा कर राजा विक्रमादित्यने उसको काश्मीर राज्य प्रदान किया। इन विक्रमादित्यके पुत्र प्रतापशील शिलादित्य हैं। चीनपरि-व्राजक ह्युनसियाङ्ग लिख गया है, कि उनके मालवामें उपस्थित होनेसे ६० वर्ष पहले यहाँ शिलादित्य प्रबल-प्रतापसे राज्य करते थे। पुराविद्दु फागुसन और अध्यापक मोक्षमूलरके मतसे उक्त विक्रमादित्यके नाम पर ही यथाधर्म संवत् प्रवृत्त हुआ। उनके यथार्थ अर्ध-के ६०० वर्ष पहलेसे उनकी अर्धगणना चलने लगी। किन्तु हम पाश्चात्य पण्डितोंके इस मतकी समीचीन नहीं कह सकते हैं। (१ विक्रमादित्यके सम्बन्धमें आलोचना द्रष्टव्य)

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे ५३०-५४० ई०में हर्ष विक्रमादित्यका राज्याभिषेक है।

६ विक्रमादित्य ।

सातवीं सदीके प्रारम्भमें काश्मीरमें भी विक्रमादित्य नामक एक पराक्रान्त नृपति राज करते थे। उनके पिताका नाम रणादित्य था। उन्होंने चक्रिभैरव नामक एक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा की थी। उनके ब्रह्म और गलून नामके दो मन्त्री थे। ब्रह्मने अपने नाम पर ब्रह्ममठ और गलूनने अपनी पत्नी रत्नावलोकके नाम पर एक विहार बनवाया था। विक्रमादित्य ४२ वर्ष राज्य भोग कर अपने कनिष्ठ भ्रातादित्यको राज्य दे गये। काश्मीर देखो।

७ विक्रमादित्य ।

घादामीके प्रसिद्ध प्रतोचप चालुक्यवंशमें विक्रमादित्य नामके एक नृपतिने जन्मग्रहण किया था। ये चौर-वर २रे पुलिकेशीके पुत्र और प्रतोचप चालुक्यवंशके प्रथम विक्रमादित्य कहलाते हैं। उनके और नाम हैं—सत्याश्रय और रणरसिक। प्रायः सन् ६५५ ई०में इनका अभिषेक हुआ था। पुलिकेशीकी मृत्युके बाद पल्लव, चोल, पाण्ड्य और केरलने विशद्व मचा दिया था। और तो षष्ठा पल्लवपति परमेश्वरके ताम्रगासनसे मालूम होता है, कि उनके भयसे विक्रमादित्य पहले भागने पर बाध्य हुए थे। किन्तु उन्होंने थोड़े ही दिनोंके बाद शंभुओं पर शासन स्थापित कर विक्रमादित्य नामका वर्ष साधक किया। (चालुक्य मन्द ६१५)

दानका काम जैसे ही जारी रखा। इसके बाद मनोहित नामके एक बौद्धाचार्यने अपने हजामको एक लाख स्वर्ण मुद्रा दान की है। इस दानके विषयमें विक्रमादित्यकी मालूम हुआ, कि श्यांबंश ही बौद्धाचार्यने ऐसा किया है, इस पर उन्होंने नाना तरहके छलका आश्रय ले कर उसको बहुत तरहसे तड़क किया। उससे मनोहितके मनमें बड़ी चोट लगी और इसके लिये ही उनकी मृत्यु हुई। इस घटनाके कुछ ही दिन बाद विक्रमादित्यने अपना राज्य खो दिया। इसके बाद जो राजा हुआ, उसकी सभामें मनोहितके शिष्य वसुवर्षु विशेषरूपसे सम्मानित हुए थे।

अध्यापक मोक्षमूलरने उक्त विक्रमादित्यको उज्जयिनीपति शिलादित्य प्रतापशोलके पूर्ववर्ती विक्रमादित्यका शोना खोकार किया है। फागुसन और मोक्षमूलरके मतसे सन् ५३० ई०में उक्त विक्रमादित्यका राज्यावसान हुआ था। किन्तु यह मत हम समीचीन नहीं समझते। चीन-बौद्धशास्त्र-मतसे ईसासे ८५० वर्ष पहले बुद्धका निर्वाण हुआ। सुतरां चीनपरिभ्राजकके इस मतसे ध्रावस्तीराज विक्रमादित्यकी ईसाकी दूसरी और तिसरी शताब्दीका मनुष्य कहा जा सकता है। ५वीं शताब्दीमें परिभ्राजक फादियान भारत-परिदर्शनके लिये आया था। इस समय उसने ध्रावस्तीका ध्वंसावशेष देखा था। इससे भी प्रमाणित होता है, कि ध्रावस्तीकी समृद्धिके समयमें अर्थात् ११वीं शताब्दीके पूर्व ही विक्रमादित्य वर्तमान थे। ऐसे स्थलमें ईसोके ६३० शताब्दीके उज्जयिनीपति हर्षविक्रमादित्यकी ध्रावस्तीपति विक्रमादित्यके साथ अभिन-कवचना नहीं की जा सकती। चीनपरिभ्राजक दियोनेसियाग्ने ७वीं शताब्दीमें मालवमें आ कर गिलादित्यका विवरण संभव किया था। यह मालवपति और ध्रावस्तीकी दूसरा सम्भक्ते थे।

१ विक्रमादित्य।

गुप्तवंशीय प्रथम चन्द्रगुप्तने शकेकी श्रां और उत्तर-

भारतकी जीत कर विक्रमादित्यकी उपाधि ग्रहण की। शाकरी विक्रमादित्यकी तरह उन्होंने भी सन् ३१६ ई०में एक नया संवत्सर चलाया था। फलतः वही पेटितासिकीकी दृष्टिमें गुप्तकाल या गुप्तसंवत् कहा जाता है। गुप्तवंशके इतिहासमें चह नाम चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध है। नेपालकी लिच्छवी-राजकुमारों कुमारदेवीके साथ उनका विवाह हुआ था। सम्भवतः नेपालियोंकी सहायतासे वे उत्तर भारतके अधोम्बर हुए थे। मालूम होता है, कि इसी कारणसे उनके चलाये सिक्के पर उनके नामके साथ कुमारों 'कुमारदेवी' तथा 'लिच्छवी' का नाम दिखाई देता है।

गुप्तजनक देखो।

उक्त 'कुमारदेवी' के गर्भसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके औरससे समुद्रगुप्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने बाहुबलसे विजयपुरके बाहर सारे आर्यापरां और दाक्षिणात्यके अधिकांश पर अधिकार कर लिया था। उनके ही प्रबल प्रतापसे शक-प्रभाव बहुत कम हो गया था। उनकी गिलादित्यसे मालूम होता है, कि मालवगण भी उनके समयमें प्रबल थे; किन्तु गुप्तसम्राट्की अधोनाता खोकार करने पर बाध्य हुए थे। शक-अधिकारकालमें मालवके अधिवासो गिर उठनेका सुअवसर पान सके। इसी कारण उनकी जातीय भङ्गाङ्गि कोई गिलादित्य नहीं पाई जाती। गुप्ताधिकारके विस्तारके साथ मालवमें बहुतेरे पराक्रान्त सामन्तोंने दिखाई देते थे, वे गुप्तसम्राट्की अधोनाता खोकार करने पर भी शौर्यवीर्यमें बहुत होन न थे। उनकी जो गिलादित्यियां पाई गई हैं, उनमें उनके जातीय धर्मवृत्तका निर्दर्शन 'मालवसंवत्' का प्रयोग किया गया है। भवतक मालवाब्ध्रापक जितनी गिलादित्यियां भाविष्ट हुई हैं, उनमें विजयगट्की स्तम्भलिपि ही बहुत प्राचीन है। सम्भवतः इसके कुछ समय पहले ही मालवपासियोंके फिर जातीय जोषनका अभ्युदय हुआ था।

५ विक्रमादित्य।

सम्राट् समुद्रगुप्तके औरस और दशादेवीके गर्भसे

• Max Muller's India what can it teachus, p. 289.

† Beal's Si-Yu-Ki, Vol, ii p, 261.

• Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, p. 253.

२रे चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ। ये भी पिताकी तरह दिग्विजयो धरे। ये बड़े तेजस्वी, विचक्षण अभिनेता, सुशासन और परम धार्मिक थे। समुद्रगुप्तने उत्तर और दक्षिण भारत जय किया था; पर उनके मरते ही प्रान्तीय-सोमाके कई राजाओंने गुप्तवंशको अधीनता मसोकार कर दी। २य चन्द्रगुप्तने गंधी पर बैठते ही एक ओर गङ्गापारकी पङ्क भूमिका और दूसरी ओर सिन्धु नदीका सप्तमुख विदीर्ण कर बागियोंका दमन किया था। मालवमें शाकाधिकारके लोप होने पर भी उस समयतक सुराष्ट्र वर्तमान काठियावाड़में शकक्षत्रपगण बहुत पराक्रान्त थे। गुप्तसम्राट् २रे चन्द्रगुप्तने मालव और गुजरात होते हुए अरब समुद्र की बीचमाला विस्तोभित कर शकक्षत्रपोंकी मूलसे नष्ट कर दिया। ये शकवंशके उच्छेद कालमें ३८८ से ४०१ ई० तक बहुत वर्ष तक महासमरमें लित थे। इस कालमें उन्होंने जिस तरह असाधारण घोरत्वका परिचय दिया था वीरोंने उससे विमुग्ध हो कर उनको 'विक्रमादित्य' आख्यासे विभूषित किया था। वास्तविक इस चौथे विक्रमादित्यके हाथसे ही शकक्षत्रपकुल एक ही बार नष्ट हुआ था। इसके बाद भारतके इतिहासमें और शकराजाओंका नामोनिशान भी नहीं मिलता। इस चौथे विक्रमादित्यके समयमें गुप्तसाम्राज्य इतनी दूरमें फैला था, कि पाटलिपुत्रमें रह कर सारे साम्राज्य पर शासन करना कठिन हो गया था। इस कारण उन्होंने अयोध्यामें अपनी राजधानी हटाई। किन्तु फिर भी, पाटलिपुत्र (पटना)-की महासमृद्धि और जनताकी वृद्धिमें कमी नहीं हुई। इस समय चीन परिभ्राजक फाहियान गुप्तराजधानीकी देख कर उज्ज्वल मायामें उनका परिचय दे गया है।

५ विक्रमादित्य।

राजतरङ्गिणीके पढ़नेसे मालूम होता है, कि काश्मीरमें प्रवर्त्तनके अभ्युदयसे पहले उज्जयिनीमें विक्रमादित्य नामसे एक राजा राज करते थे। ये ६वें विक्रमादित्यके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। इन्होंने शक-भ्लेच्छोंको पराजय कर सारे भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया। ये असाधारण सुकृतमान, ज्ञानी और गुणियोंका आश्रयस्थान थे। इनकी सामने मातृगुप्त

नामक एक दिग्गन्तविभूत कवि अयस्थान करते थे। मातृगुप्तके अन्याय्य साधारणगुणका परिचय पा कर राजा विक्रमादित्यने उसको काश्मीर राज्य प्रदान किया। इन विक्रमादित्यके पुत्र प्रतापगोल शिलादित्य हैं। चीनपरिभ्राजक ह्युनसियाङ्ग लिख गया है, कि उनके मालवामें उपस्थित होनेसे ६० वर्ष पहले वहां शिलादित्य प्रबल-प्रतापसे राज्य करते थे। पुराविद् फागुसन और अध्यापक मोक्षमूलरके मतसे उक्त विक्रमादित्यके नाम पर ही पाषाणमें संवत् प्रवृत्त हुआ। उनके यथार्थ अर्धके ६०० वर्ष पहलेसे उनकी अर्धगणना चलने लगी। किन्तु हम पाश्चात्य परिद्धतोंके इस मतको समीचीन नहीं कह सकते हैं। (१ विक्रमादित्यके सम्बन्धमें आलोचना द्रष्टव्य)

पाश्चात्य परिद्धतोंके मतसे ५३०-५४० ई०में ६वें विक्रमादित्यका राज्यारम्भ है।

६ विक्रमादित्य।

सातवीं सदीके प्रारम्भमें काश्मीरमें भी विक्रमादित्य नामक एक पराक्रान्त नृपति राज करते थे। उनके पिताका नाम रणादित्य था। उन्होंने यमिभेध्वर नामक एक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की थी। उनके ब्रह्म और गलून नामके दो मन्त्री थे। ब्रह्मने अपने नाम पर ब्रह्ममठ और गलूनने अपनी पत्नी रत्नावलोकके नाम पर एक विद्या बनवाया था। विक्रमादित्य ४२ वर्ष राज्य भोग कर अपने कनिष्ठ बालादित्यको राज्य दे गये। काश्मीर देखो।

७ विक्रमादित्य।

यादामीके प्रसिद्ध प्रतीचप चालुक्यवंशमें विक्रमादित्य नामके एक नृपतिने जन्मग्रहण किया था। ये घोर-घर २रे पुलिकेशीके पुत्र और प्रतीचप चालुक्यवंशके प्रथम विक्रमादित्य कहलाते हैं। उनके और नाम हैं—सत्याश्रय और रणरसिक। प्रायः सन् ६५५ ई०में इनका जन्मपेक हुआ था। पुलिकेशीकी मृत्युके बाद पल्लव, चोल, पाण्ड्य और केरलने विद्रोह मचा दिया था। और तो क्या पल्लवपति परमेश्वरके ताम्रगासनसे मालूम होता है, कि उनके भयसे विक्रमादित्य पहले भागने पर बाध्य हुए थे। किन्तु उन्होंने थोड़े ही दिनोंके बाद शंक्षुओं पर शासन स्थापित कर विक्रमादित्य नामका अर्थ सार्थक किया। (चालुक्य शब्द ६६५)

८ विक्रमादित्य ।

प्रतीच्य चालुक्यराज विजयादित्यके पुत्र और एक विक्रमादित्यका नाम पाया जाता है । ये प्रतीच्य चालुक्य-वंशके २२ विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं । ७१३से ७२७ ई० तक पादामोके सिंहासन पर ये अधिष्ठित थे । उनके तादृशासनमें लिखा है, कि उन्होंने राजपद पर अधिष्ठित होने हो अपने पितृवैरो पल्लवपति नन्दोपोत-धर्माके विरुद्ध अग्र धारण किया । तुद्राक नामक स्थान-में शेरों औरसे युद्ध हुआ । पद उचपति हार कर भागे । युद्धजयके साथ विक्रमादित्यने मणिमाणिक्य, हाथियों, घोड़ों और रणपाद्यवस्त्रों पर अधिकार कर लिया । इसके बाद उन्होंने काञ्ची पर आक्रमण किया सही; किन्तु इस प्राचीन तीर्थस्थानको उन्होंने नष्ट नहीं किया । परं यहाँके दीन क्षत्रियों और प्राक्षणोंको बहुत चतन प्रदान किया था और राजसिंहेश्वर और अभ्याय्य देवाल्योंका जोषों-द्वारसाधनपूर्वक इसे स्थर्णमण्डित कराया था । इसके बाद चोल, पाण्ड्य, केरल और कल्लभके साथ ये संग्राममें लित हुए ; इसके बाद उन समीने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली । उन्होंने हैहयवंशी दो राज-कन्याओंका पाणिग्रहण किया था । उनमें उषेष्टा लोक महादेवोंने (कलादगी जिलाके अन्तर्गत पट्टकल नामक स्थानमें) लोकेश्वर भामसे शिवमन्दिर और कतिप्राँ लैलोषयमहादेवोंने जैलो-षयेश्वर नामसे दूसरे एक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी । इन छोटी रानीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले कौत्सिधर्मा राजा विक्रमादित्यके उत्तराधिकारी हुए । यह विक्रम शीव थे, फिर भी इन्होंने जैन-देवालयका संस्कार और विजय पण्डित नामक एक जैनाचार्यको शासन-दान किया था ।

९ विक्रमादित्य ।

प्राच्य चालुक्यवंशमें दो विक्रमादित्यके नाम मिलते हैं । इनमें एक 'युवराज' उपाधिसे विक्रमित थे । यह युवराज विक्रमादित्यके पुत्र प्रथम चालुक्य भोग और चालुक्य भोगके पुत्र २२ विक्रमादित्य हैं । युवराज विक्रमादित्यके भतीजे तादृपके अन्वयपूर्वक बालक विजयादित्यको राज्यच्युत कर चालुक्यराज ग्रहण करने पर शैलोक विक्रमादित्यने फिर उसको हरा कर सिंहासन

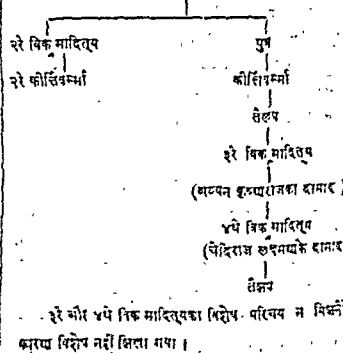
पर अधिकार कर लिया । उन्होंने ८४७ शकाब्दमें ११ मास मात्र चालुक्यराज भोग किया था । चालुक्य शैलो ।

१० विक्रमादित्य ।

६३० शकाब्दके तादृशासनमें प्रतीच्य चालुक्य वंशके तादृशासनदाताका एक विक्रमादित्य नाम भाया है । राजा सत्याधर्यके भतीजे (उसके भाई दुग्धामाके पुत्र ही उत्तराधिकारी हुए । कुछ लोग इन भ्रुपतिकी प्रतीक चालुक्यवंशके पाँचवें विक्रमादित्य कहते हैं ।

किन्तु प्रकृतपरविधु भाण्डारकर इनको पूर्वतम चालुक्य वंशीय न कह कर दूसरी शाखाके और पिछले प्रतीक चालुक्यवंशके १५ विक्रमादित्य कहते हैं । उनके मृत्यु ६३० शक (१०८ ई०) में राजाका अभिषेक हुआ । ६३६ शकमें खुदी तादृलिपिसे मालूम होता है । उन्हीं प्रमिलपतिकी पराजित, चैरोका प्रभाव लय और मर फोड़कणका सर्वस्व अपहरण कर उत्तरकी ओर कोदण्डगुप्तेना खड़ा किया । ६६२ शके तक उनके राजस्व उल्लेख पाया जाता है ।

८ विक्रमादित्यके प्रस्ताभमें प्रतीच्य चालुक्यवंशके शीव विक्रमादित्यका परिचय दिया गया है । इन २६ विक्रमादित्य 'प्राच्य' शमें ३२ और ४थे विक्रमादित्यका नाम मिलता है ।



इन विक्रमादित्यके पितामह तैलपने मालवके राजा मुञ्जका पराजित और निहत्त किया। उस समय भोज-राज बालक थे। भोजचरितमें लिखा है, कि भोजने जवान हो कर राजशासन आरम्भ किया। एक दिन अभिनयमें मुञ्जेकी अन्तिम दशाका चित्र देख उसके मनमें प्रतिशोध लेनेकी इच्छा बलवती हुई। फलतः भोजने बहुतेरे सामान्तोंके साहाय्यसे चालुष्यपतिकी भी मुञ्जेकी ही दशा कर दी। शास्टर भाण्डारकरके मतसे उससे पहले ही तैलपकी मृत्यु हुई थी। सुनरं उक्त प्रथम विक्रमादित्यने भोजके हाथसे मानवलीला संघरण की है।

११ विक्रमादित्य ।

चालुष्यवंशमें और भी एक प्रबल पराक्रान्त राजा हो गये हैं। वे पूर्वोक्त विक्रमादित्यके भ्राता जयसिंहके पीत सोमेश्वर आह्वयमल्लके पुत्र थे। कवि विद्यापति विह्वणरचित विक्रमाङ्कचरितप्रथममें इस नृपतिकी जीवनीके सम्बन्धमें इस तरह लिखा है—

उनके पिताका नाम आह्वयमल्ल था, त्रैलोक्यमल्ल भी इसका दूसरा नाम है। वे बड़े धीर पुरुष थे और इन्होंने बहुत देशों पर अधिकार किया था। किन्तु इतने वैभव और शक्ति अधिकारी होने पर भी और अपत्याभावमें इनका चित्त विषण्ण था। वे राजपाट परित्याग इसका भार मन्त्रियों पर सौंप, पुत्रप्राप्तिके लिये पत्नीके साथ शिवकी आराधनामें प्रवृत्त हुए और दोनोंने कठिन साधना की। एक दिन प्रातःकाल राजा त्रैलोक्यमल्लने प्रभातपूजाके समय यह देववाणी सुनी, कि "तुम्हारे" कठिन तपश्चर्यासे शिवजी प्रसन्न हुए हैं। महादेवके यत्से तुम्हें तीन पुत्र होंगे। इनमें मध्यम पुत्र ही योर्ष्यो-योर्ष्य प्रभावमें और औरयमें अनुत्पन्न और अश्लील होगा। पार्थिवोपति शङ्करका आशीर्वाद यिकल नहीं हो सकता। यथासमय उनकी पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। इस लड़केका नाम सोमेश्वर रखा गया, इसका दूसरा नाम था भुवनैकमल्ल। इसके बाद रागोकी फिर गर्भ हुआ। इस बार उनकी गमांवशामें बड़े आश्चर्यजनक स्नान दिखाई

देने लगे। प्रन्धकार विद्यापति विह्वणने इस विवरणको विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। जो हो, अच्छे शुभक्षण और शुभ-लभनमें वे पैदा हुए। इस पुत्रका असाधारणरूप लावण्य और देहज्योति देख नृपतिने उसका नाम विक्रमादित्य रखा। इनके और भी बहुतेरे नाम पाये जाते हैं— जैसे विक्रमणक, विक्रमणकदेव, विक्रमलाञ्छन, विक्रमादित्यदेव, विक्रमार्क, त्रिभुवनमल्ल, कलिविक्रम और परमाडिराय। इसके बाद त्रैलोक्यमल्लकी तृतीय पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम जयसिंह हुआ।

विक्रमादित्यके सान्न्दर्यको देख कर सशका चित्त आकृष्ट होता था। उनका यह रूपलान्घनयम शैशव-देहमें असाधारण विक्रमके चिह्न दिखाई देते थे। शैशव-क्रीडामें ही उसके भारी शौर्यशक्ति परिचय पाया जाने लगा। वे राजहंसीके पीछे पीछे दौड़ते हुए उनकी पकड़ने में प्रवृत्त होते थे।

पिञ्जराज्य सिंहशावरुके साथ खेल करते थे। बाल्यकालमें ही उन्होंने धनुर्विद्या भादिकी शिक्षा प्रदण की। सरस्वतीकी कृपासे काव्यादि शास्त्रोंमें भी उनको यथेष्ट ज्ञान था।

इस तरह उन्होंने धनुर्वेद आदि विविध विद्याजिज्ञासामें विक्रमादित्यका बाल्यकाल बीता। यौवनमें पदार्पण करते ही उनको समरकी प्रवृत्ति क्रमशः बलवती हो उठी। नृपति त्रैलोक्यमल्लने पुत्रकी युवराजपद पर अभिविक्त करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु विद्यायिनय-सम्पन्न विक्रमादित्यके जेठा माई सोमेश्वरके रहते उक्त पद पर विक्रमका अधिपति होना नितान्त असङ्गत था। ऐसा ही उन्होंने प्रचार भी किया। उन्होंने स्पष्ट ही कहा, कि इस पद पर मेरा अधिकार नहीं। उसके एकमाल अधिकारी मेरे जेठे माई ही हैं। उनके पिताने कहा,—भूतभावन अनादीपतिके विद्यानानुसार और जन्मनक्षत्रादिके प्रमाय-से यौवराज्यपदका तुम्हारा ही अधिकार स्थिर है। किन्तु विक्रमादित्य इस असङ्ग और असमीचीन प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए। राजाने पड़ले सोमेश्वरकी ही युवराज पद पर अधिष्ठित किया। किन्तु उनका चित्त विक्रमादित्यके प्रति आसक्त था। यद्यपि विक्रमादित्य युवराज पद पर अभिविक्त न हुए, तथापि वे राज कर्षण

• R. G. Bhandarkar's Early History of the Dekkan, p. 82,

रिल नहीं हुआ। ये नीरवताके साथ भारंके इस अपमानजनक बातोंकी सहन करने रहे। इधर जयसिंहकी रूपर्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। उस समय विक्रमादित्य बाध्य हो कर युद्धक्षेत्रमें जा पहुँचे। तब भी उन्होंने छोटे भारंके युद्धसे विरत होनेका उपदेश दिया, किन्तु यह मशान्य जयसिंहने किसी तरह उनकी बात नहीं मानी। अब युद्ध अनिवार्य हो उठा। किन्तु प्रबल पराक्रान्त विक्रमादित्यके प्रबल प्रहारके सामने जयसिंह और उसकी फौजोंका टडरना कठिन हो गया। फौजें भाग लड़ी हुईं। जयसिंह कैद कर लिया गया। विक्रमादित्यने इस अवस्थामें भी उस पर दयाका व्यवहार किया। ये युद्धके मत्त होने पर राजाघातोंमें लौट आये।

इसके बाद विक्रमादित्यके राज्यमें कोई उपद्रव नहीं हुआ। उनके राज्यमें अफाल या लोकपीडा भी न हुई। उन्होंने अपने अनुरूप पुत्र और यद्येध धनसम्पत्ति पा कर परम सन्तुष्ट हुए। दृष्टिदोषके प्रति उनकी असौम द्या थी उन्होंने धर्मशाला और शिवमन्दिर अपने नामसे प्रतिष्ठा कराई। उनकी अत्यव्य क्तिधर्मोंमें विश्वु कमलाविलासिका मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मन्दिरके सम्मुख एक विशाल सरोवर बना था। इसके चारों ओर बहुतेरे शिवमन्दिर और सुरभय हर्म्य आदि पूर्ण विक्रमपुर नामक एक विशाल नगरकी प्रतिष्ठा हुई थी।

इस तरह दीर्घकाल तक सुख शान्तिसे बीत जाने पर फिर चोलराजने विद्रोहमाचालभन किया। विक्रमादित्यका उद्देश्य दण्ड देनेके लिये काञ्ची नगरीको जाना पड़ा। इस युद्धमें भी अन्य समयकी तरह हार कर समी भाग गये। इन बार काञ्चीनगरी पर अपना कब्जा जमा कर कुछ दिनों तक यहाँ रुक कर विक्रमादित्य फिर कल्याण लौट आये। इसके बाद शान्तिसे दिन बिताने लगे।

विक्रमकी अग्रिम अवस्थामें पाण्ड्य, गोया और कोंकणके राजे, पाण्ड्यपति होयलस विष्णुवर्द्धनकी अधिनायकतामें एकत्र हो कर सभीने चालुक्यराज्य पर आक्रमण किया। विक्रमादित्यने 'आच' नामक एक सेनापतिकी इन सर्वोंके विध्वंस भेजा। रणसिंह 'आच'ने होय-

सलको दमन कर गोया पर अधिकार कर लिया, लक्ष्मणकी भागने पर बाध्य किया। पाण्ड्यके पोटे फौज बढ़ाई, मलयाँको हराया और कोंकणराजकी कैद किया। गया इनके उद्देश्यने कलिङ्ग, चङ्ग, मय, गुज्जर, मालव, कैसे और चोलपतिकी चालुक्यपतिकी अधीन बनाया था। विक्रमादित्य केवल दयावान, वीरवान और बहुलधैर्यवाने नाले ही नहीं थे, पर स्वयं विद्वान् और अतिशय पण्डितानुरागे थे। काश्मीरके सुप्रसिद्ध कवि विद्यापति विष्णु विक्रमादित्यके समापण्डित और राजकर्तृ थे।

विष्णु देते।

जो मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र भाज भी भारतमें प्रधान स्मार्त ग्रन्थके नामसे परिचित है, चालुक्यराज इन विक्रमादित्यकी समाधि विद्वानेश्वर उस मिताक्षरकी रचना कर विष्णुवात हुए थे। विज्ञानेश्वर देते।

कल्याणके सिंहासन पर विक्रम ५० वर्ष तक अविच्छिन्न थे। उन्होंने अपने अधिकारमें शकाब्दकी प्रचलन बन्द कर उसके बदलेमें चालुक्य-विक्रम-वर्ष चलाया था। यह वर्ष ११७ शक कादम्बुनी शुद्धा पंचमीको भारतमें हुआ। चालुक्यनृपतिकी मृत्युके बाद यह वर्ष उठा दिया गया।

विक्रमादित्यकी मृत्युके बाद १०४८ शक उनके पुत्र शै सोमेश्वरने विज्जराज्यकी प्राप्त किया।

१२ विक्रमादित्य।

दक्षिणापथके अन्तर्गत गुत्तल नामक सामन्त राज्यमें विक्रमादित्य नामसे तीन राजे राज्य करते थे। उनमें १ले व्यक्ति गुत्तलके शै राजा महादेवके पुत्र ई०स०की १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें मौजूद थे। २रे व्यक्ति उक्त जनपदके शै राजा गुत्तलके पुत्र थे इनका दूसरा नाम आदित्यदेव था। ये ११८२ ई०में विद्यमान थे। इसके बाद शै व्यक्ति २वे नृपति जिविदेवके पुत्र हैं। गुत्तलके इन शै विक्रमादित्यकी ११८५ शक (१२३२ ई०)में उत्तरीय शिलालिपि है। इस लिपिसे मालूम होता है, कि ये शै-गिरिके बादशरान महादेवके अधीन सामन्त थे।

१३ विक्रमादित्य।

दक्षिणापथके पाण्ड्यराज्यमें भी एक विक्रमादित्यका जन्म हुआ था। इनका दूसरा नाम विजयवाहु था। इनके पिताका नाम प्रभुनेश्वर था। ये बड़े प्रजाशक्त और १२वीं शताब्दीमें मौजूद थे।

१४ विक्रमादित्य ।

मेवाङ्कके प्रवराव-वंशीय एक राणा । राणा संग्राम सिंहके पुत्र विक्रमादित्य नामसे विख्यात थे सही; किन्तु यह नामके गुणके पूर्णतः अयोग्य थे । सन् १५६१ विक्रमो वा १५३५ ई०में इन्होंने मेवाङ्कके सिंहासन पर आरोहण किया । इनको अदूरदर्शिता और प्रजापीड़नसे सभी इससे नाराज रहते थे । इसका यह गुण-गौरव चारों ओर फैल गया । फलतः गुजरातके सुलतानने मेवाङ्क पर चढ़ाई कर दी । चित्तौररक्षा करनेके लिये बहुतेरे जोयन उतसर्ग किया । किन्तु सामन्तोंको घेष्टा और हुमायूँके आनेकी खबर पा कर सुलतानकी दाल न गली । यह अपनासा मुँह बना कर लौट गया । इस दारुण वैदेशिक आक्रमणसे जोय बचा । किन्तु उसका उप स्वभाव किसी तरह ज्ञान्त न हुआ । उसने एक सभाके बीच अपने पिताके जोयनदाता अमरके करीमचौदका अपमान कर दिया । इस पर सामन्तोंने उसको राज्य संयुक्त कर वनचौर बहादुरकी सिंहासनारूढ़ कराया ।

१५ विक्रमादित्य ।

बङ्गालके अद्वितीय और प्रतापादित्यके पिताका नाम विक्रमादित्य है । बङ्गज कुलमार्थमें धार्णित है, कि शुद्ध वंशमें रामचन्द्रका जन्म हुआ । यह भाग्य-परीक्षाके लिये वाणिज्यकेन्द्र सप्तग्राममें चले आये । यहाँ रामचन्द्रके तीन पुत्र हुए—भैवानन्द, शिवानन्द और गुणानन्द । कुछ दिनके बाद सोमप्रथमसे रामचन्द्र गौड़ दरबारमें किसी उद्य पद पर अविष्ठित हुए । उनका मृत्यु पर भवानन्दने अपने पैतृक पद पर अचिकार किया । भवानन्दके श्रीहरि तथा शिवानन्दके जानकीवल्लभ एक-एक पुत्र हुए । श्रीहरि और जानकीने थोड़े ही समयमें नाना भाषाओं तथा अल्प-शस्त्रमें निपुण्य लाभ किया । लड़कपनसे ही दोनों गौड़्राधिपके पुत्र क्याजिद और दाउदके साथ खेलते थे । गबोश्रुतिके साथ साथ उनकी परस्पर मित्रता सुदृढ़ हुई । उसी मित्रताके कारण जब दाउद गद्दा पर बैठा तब उसने श्रीहरिको 'विक्रमादित्य' और जानकीवल्लभको 'धसन्त राय'का पितृत्व दे कर अपने प्रधान मन्त्रो बना लिये । दोनों भाइयोंके उन्नांगसे गौड़राज्यमें सुश्रुतूला स्थापित हुई और गौड़ राजकीयकी भी यथेष्ट

वृद्धि हुई । उसीके साथ दाऊदकी स्वाधीन होनेको इच्छा भी बलवती हुई । कुछ ही दिनके बाद उसने दिल्लीके बादशाहकी अधीनता तोड़ स्वाधीन हो जानेकी घोषणा कर दी । बादशाहकी जगह अपने नामका फत्वा पाठ करनेका आदेश दिया । इसकी दृष्ट देनेके लिये मोगल-याहिनियां दिल्लीसे चलीं । युद्धका आयोजन देस कर विक्रमादित्यने दाऊदसे कहा, कि इस अशांतिके समय 'वजानेको कहीं सुरक्षित स्थानमें पर देना चाहिये । इस परामर्शके अनुसार वजानिमें जो बहुमूल्य धनरत्न सोना चाँदी हीरा जवाहर था, सब नायमें लाद कर यशोहर स्थानमें पहुँचा दिया गया । शत्रु मोगल पठानोंमें घोर-तर कई युद्ध हुए । अन्तमें दाऊद फँद कर लिया गया । सारा गौड़-यङ्ग फिर एक धार दिल्लीके बादशाहके शासनाधीन हुआ । राजा टोडरमलका ही अधीनतामें शाही फौज धारि धी । राजा टोडरमलने देखा, कि विक्रमादित्य और जानकीवल्लभ ये दोनों चतुर और कुशली हैं, इससे उन्होंने इन दोनोंको ही 'ऊँचा पद दिया । उनकी कार्य कुशलता पर मुग्ध हो कर बादशाहसे उनको समर्पण दिलवा दी, इसी समर्पणके बलसे विक्रमादित्यको यशोहरके पश्चिम गङ्गासे प्रहलजुक्त किनारे तक फैली हुई जमीन्दारी प्राप्त हुई । प्राचीन यशोहरमें उनके बहुतेरे राज प्रासाद बने । नानाविध पुण्यजनक कार्य करके यह गौड़ बङ्गमें विख्यात हुए । विक्रमादित्य राज्यकार्यके उपलक्ष्यमें गौड़में ही रहते थे, किन्तु उनके भाई वसन्तराय या उनके पुत्र प्रतापादित्य यशोहरके राजप्रासादमें रहते थे ।

सन् १५७५ ई०में जो महामारी हुई थी, उसमें गौड़ राजधानी श्रास्रष्ट और जनशून्य हो गई । इस पर विक्रमादित्यने गौड़ या अन्यत्र जगद्विसे मनुष्योंकी बुला कर यशोहरमें उन्हें बसाया था । प्रतापादित्य शब्द देखो ।

- विक्रमादित्यचरित (सं० कृ०) विक्रमचरित ।
 विक्रमार्क (सं० पु०) विक्रमादित्य देखो ।
 विक्रमिन् (सं० पु०) विक्रम देखो ।
 विक्रमा (सं० पु०) १ विष्णु । २ सिंह, शेर । (द्वि०)
 ३ अतिगम शक्तिविशिष्ट, विक्रमवाला, पराक्रमी । ४ विक्रमसम्बन्धी, विक्रमका । जैसे,—विक्रमो संवत् ।
 विक्रमोपाख्यान (सं० कृ०) विक्रमण्य उपाख्यान ।
 विक्रमचरित । . . .

विक्रमोर्वशी (स० खो०) बालिदासप्रणीत एक नाटक ।
कालिदास दोस्रो

विक्रय (स० पु०) विक्रयर्णमिति विक्री अच् (एच
या ३।३, ५६) विक्रयणकिया, मूल्य ले कर कोई पदार्थ
देना, बेचना । संलुप्त पर्याय—विपण, विपणन, पणन,
व्ययदार, पणाय ।

मनुष्य समाजमें कृयविक्रयका काम बहुत दिनोंसे
चला आ रहा है । प्राचीन शास्त्रकारगण इस सम्बंध-
में अनेक मालोचनाएं कर गये हैं । कृयविक्रयके
विषयमें बहुतसे विधिनिषेध भी शास्त्रमें देखे जाते हैं ।
मूल्य दे कर अथवा 'मूल्य दूंगा' ऐसा कह कर जो द्रव्य
ग्रहण किया जाता है उसे कृय और मूल्य या कर अथवा
कुछ दिनोंके करार पर जो द्रव्य दूसरेको दिया जाता है
उसे विक्रय कहते हैं ।

कारणवचनने कहा है, कि क्रेता या खरीदारने कोई
चोख खरीदी, पर उसका मूल्य न दे कर यह दूसरो जगह
चला गया, ऐसी अवस्थामें लिपक्ष अर्थात् पैतालास
दिनके बाद ही उसका मूल्य बढ़ेगा और विक्रेता यदि
यह पक्षित मूल्य लेवे, तो अग्राह्योय नहीं होगा ।

इनांलिये दृष्टपतिने कहा है, कि शूद्र, क्षत्र या अन्य
दिसो मूल्यवान् वस्तुके कृयविक्रयके समय लेखपत्र
प्रस्तुत करे और यह पत्र 'कृयलेख' कहलायगा ।

मनु कहते हैं, कि यदि कोई द्रव्य कृय या विक्रय
करके क्रेता या विक्रेता शीमें किसीके भी हृदयमें दुःख
हो जाये, तो वे दस दिनके भीतर उस द्रव्य या मूल्यको
वापस ले लें । इस अवस्थामें क्रेता और विक्रेता
दोनोंका ही सम्मान होता पड़ेगा ।

याज्ञवल्क्यके मतसे एक दिन, तीन दिन, पांच दिन,
दस दिन या माघ मास या एक मास तक चोख, रत्न
और खो पुरय भादि कृय-वदाधिको परीक्षा चल सकती
है । किन्तु इस निर्दिष्ट परीक्षकालके पहले यदि कृय
या खरीदी हुई वस्तुमें कोई दोष दिखाई दे, तो विक्रेताको
यह वस्तु लौटा देवे तथा क्रेता भी उसका मूल्य वापस
पायेगा । कारणवचनका कहना है, कि बिना दोष देखे
सुते जो वस्तु खरीदी गई है, किन्तु पीछे उसमें दोष
निकाला गया, ऐसी अवस्थामें विक्रेताको यह वस्तु लौटा

देना होगी, किन्तु पूर्वोक्त परीक्षाकाल बिना देनेमें काम
नहीं चलेगा । दृष्टपतिके मतसे कृय वस्तुकी स्वयं परीक्षा
करे, दूसरेसे कराये, इस प्रकार परीक्षण और बहसमें
होनेसे यह वस्तु खरीद कर पीछे विक्रेताको लौटा नहीं
सकने । ऐसी दृशामें विक्रेता उसे वापस देनेमें बाध्य
नहीं है ।

इस कृय-विक्रयके सम्बन्धमें नारदने कुछ विशेष बात
कहा है जो इस प्रकार है । कोई वस्तु मूल्य दे कर खरीदी
गई, पीछे यह अच्छी वस्तु न रहने अथवा अधिक मूल्य
होनेके कारण क्रेताको पसन्द न आई, ऐसी दृशामें
खरीदी हुई वस्तु उसी दिन अनिष्ट अवस्थामें विक्रेताको
लौटा देवे । उस दिन न लौटा कर यदि दूसरे दिन लौटाये
तो विक्रेता मूल्यका तीसरा भाग रख कर बाकी लौटा
देगा । तीसरे दिन यह वस्तु लौटानेसे यह दूसरे दिनके
प्राय मूल्यशुद्धा दूना पायेगा ।

याज्ञवल्क्यने कहा है, कि मूल्य दे कर कोई वस्तु खरीद
गई, परन्तु विक्रेतासे मांगने पर भी यह वस्तु न मिले ।
पीछे राजकीय या दैवघटनासे यह वस्तु नष्ट या सारा हो
गई । इस अवस्थामें वस्तुकी जो कुछ हानि होगी वह
विक्रेताको ही पूरा करनी पड़ेगी । इसके लिये क्रेता
दोषी नहीं है ।

नारदने कहा है, कि विक्रेता अपना सांदा बेच कर
यदि पीछे क्रेताको न दे और निर्द्वारित समापने और
यह उपहत, दुष्क या अघहन हो जाये, तो वह कर्तव्य
विक्रेताका ही होगा, क्रेता उसका दायी नहीं है । किन्तु
विक्रेताके यह वस्तु देने पर भी यदि क्रेता उर्ग न ले
और चला जाए, तो यह अनिष्ट क्रेताको ही यदन करना
पड़ेगा ।

अब विक्रयव्यापारमें निषेधविधिकी मालोचना करनेकी
चाहिये । व्याम्नेने कहा है, कि एक क्षातिगोत्रका शिविनन्द
स्यापरमन्वसि बेचने या दानादि करनेका अधिकार नहीं
होता । इसमें सबीकी मलाह लेनी पड़ेगी । मन्विर
क्षानियर्ष विभक्त अथवा अविभक्त भी बचें न हों, स्थापर
समाप्तने सबीका समान अधिकार है । इस अवस्थामें
एक श्वनिक दानविक्रयार्थ व्यापारके सम्पूर्ण अतिधिकारी है ।
दानवश्यमें निया है, कि यदि व्यापक काम या प्रभे,

तो एक व्यक्ति को भी स्थावरसम्पत्ति बेचनेका अधिकार है।

इस सम्बन्धका विस्तृत विचार आलोचना और मोमांसा दायभाग तथा मिताक्षरामें लिखा जा चुका है। इसलिये वह जानेके भयसे यहाँ पर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

शास्त्रमें वर्णनेद्वारा द्रव्यविशेषका विक्रय निषिद्ध बताया गया है। मद्यमांस येननेसे शूद्र उसी समय पतित समझा जायेगा, यही स्मृतिका मत है। कालिकापुराणमें लिखा है, कि शूद्रका मधु, चर्म, सुरा, लाक्षा और मांसको छेड़ और सभी प्रकारको वस्तु बेचनेका अधिकार है।

मनुमें कहा है, कि ब्राह्मण लौह, लाक्षा और लवण ये तीन वस्तु बेचनेसे तुरत पतित होता है। क्षीर अर्घान् दूध येननेसे तीन दिनके भीतर ही ब्राह्मणको शूद्रमें गिनतो की जायेगा।

यमके वचनमें लिखा है, कि जो गाय बेचता है उसे गायके शरीरमें जितने रैयें हैं उतने ही हजार वर्ष गौष्टमें कृमि हो कर रहना पड़ता है।

मनुने ग्यारहवें अध्यायमें कहा है, कि आत्मविक्रय तथा तद्भाग, उद्यान, उपवन, स्त्री और अपत्य आदि विक्रयकार्य उपपातकमें गणनीय है।

विक्रयक (सं० पु०) विक्री-ण्युल् । विक्रीता, बेचनेवाला।

विक्रयण (सं० स्त्री०) विक्री ण्युट् । विक्रय, विक्री।

विक्रयपत्र (सं० स्त्री०) विक्रयस्य पत्र । विक्रयका पत्र, वह पत्र जिसमें यह लिखा हो, कि अमुक पदार्थ अमुक स्थानके नाम इतने मूल्य पर बेचा गया।

विक्रयिक (सं० पु०) विक्रयेण जायतीति विक्रय (वस्त्र-क्रय-विक्रयत्वनम् । वा ४।४।१३) इति ठन्, यद्वा विक्री (क्रीय-इकन् । उण् २।४४) इति इकन् । विक्रीता, बेचनेवाला।

विक्रयी (सं० स्त्री०) विक्रीणातीति विक्री णिनि । विक्रयकर्त्ता, बेचनेवाला। (याज्ञवल्क्यप्र० २।१७३)

विक्रय (सं० पु०) (वीक्रेः । उण् २।१५) कस गती याचुर्दे ऋण्यं चोरायाया, वर्णविधेके पुनरायायां बहुल घञ् नाम्न् रैफादेशः । चाट्टमा । (उज्ज्वल)

विक्रान्त (सं० स्त्री०) विक्रम क । १ विक्रान्त मणि।

(राजनि०) २ त्रिविक्रमावतार विष्णुके द्वितीय पादक्षेप द्वारा अन्तरोक्ष आक्रमण। ३ सिंह, शेर। ४ हिरण्यवृक्षके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३।३८) ५ पुराणानुसार कुशलवाशके पुत्रका नाम त्रिमका जन्म मद्रालम्बाके गर्भसे हुआ था। (मार्कण्डेयपुरा २५.८) ६ व्याकरणमें एक प्रकारको संधि जिसमें विसर्ग अविच्छेद हो रहता है। ७ एक प्रजापतिका नाम। ८ चलनेका ढंग। ९ साहस्य, हिम्मत। १० एक प्रकारका मेादक पेय पदार्थ। (त्रि०) ११ विक्रमशाली, तेजस्वी, प्रतापी। १२ जिसको क्रान्ति नष्ट हो गई हो।

विक्रान्ता (सं० स्त्री) विक्रान्त-टाप् । १ वस्त्रादनी लता, गुडूच, गिलोय। २ अग्निमग्गवृक्ष, अरणो। ३ जयन्तो। ४ मूर्धिरुपर्णिका। ५ घराहकारता। ६ आदित्यमन्त्रका, अड़डुल। ७ अमराजिता। ८ रक्त लज्जालुका, लाल लज्जालु। ९ हंसपदी लता।

विक्रान्ति (सं० स्त्री०) विक्रम-क्रिन्त् । १ अश्वको एक गति, घोड़ेको सरपट चाल। पदार्थ—पुन्यायित। २ पादविशेष, कदम उठाना। ३ गति, चाल। ४ विक्रम, बल। ५ वीरता, शूरता, बहादुरी।

विक्रयक (सं० पु०) विक्रीणातीति विक्री-ण्युल् । विक्रीता, बेचनेवाला।

विक्रिया (सं० स्त्री०) विक्रणमिति विक्रि (क्रीः ञच् । वा ३।३।१००) इति ण टाप् । १ विकार, प्रकृतिका अन्यथाभाव। विद्यत होनेवाली क्रिया। साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि नायकनायिकोंके निर्विकार चित्तमें नायिका या नायकको देख जो प्रथम अनुराग उत्पन्न होता है उसे विक्रिया कहते हैं।

२ किमो क्रियाविद्यत होनेवाली क्रिया।

विक्रियोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारमेदः । इसका लक्षण—जहाँ उपमानके विचार द्वारा साम्य अर्थात् तुलना होती है, अर्थात् जहाँ प्रकृतिके विकृति द्वारा समता होती है या उपमेयका उपमान विकृत होता है वहाँ पर विक्रियोपमा होगी।

उदाहरण—हे तमयङ्गि! तुझारा गह यदन चन्द्र-विम्वसे उठहोगं तथा यद्यमर्मे-उद्धुधुको तरद टै।

यहां पर उतनाममून अम्बुविष्य और पद्मगमं ये दो प्रकृतिय
हैं, इसमें उतनीर्ण और उद्भुत होनेके कारण यद्मकी
विकृति हुई है। इसी प्रकार प्रकृतिकी समता होनेसे
विक्रियोपमा अलङ्कार हुआ है। इस तरह प्रकृतिकी विकृति
द्वारा जहां समता होगी वहां यह अलङ्कार होगा।

विक्री (दि० स्त्रा०) १. बेचनेकी क्रिया या भाव, विक्रय।
२. यह धन जो बेचने पर मिले।

विक्रीः (सं० पु०) त्रिविध क्रोड्या।

विक्रीयासम्प्रदान (मं० स्त्री०) विक्रीय न सम्प्रदान
क्षेत्रे यत्। अष्टादश विधाक्षेत्रे एक। इस विधाद
या व्यवहारके सम्बन्धमें घोरमिलौदयमें इस प्रकार
लिखा है—नाएद कहते हैं, कि मूल्य ले कर कोई वस्तु
बिक्री करे, पर बिक्रीदारकी यह नही गई, इसीका
नाम विक्रीयासम्प्रदान है और यही विधादवद कहलाता
है।

प्रधानतः पण्यद्रव्य दो प्रकारका है, स्थावर और
जड़म। इन दो प्रकारके पण्यकी क्रय-विक्रय विधि दो
प्रकारकी है। यथा—गणित, तुल्यममेय, क्रियाश्रित,
रूपसम्पन्न और धीयुक्त। पण्य-कथयिक्रयके व्यापार-
में ये छः प्रकारकी विधियां निर्दिष्ट हैं। इनमेंसे जो
गिन कर बिक्री जाता, उसका नाम गणित है अर्थात्
संख्यागण्य, यथा कमुक फलादि। तगजू पर जो
पत्तन किया जाता है, उसे तुल्यममेय है, यथा—हेम-
भग्नादि। मेष अर्थात् मांस लेने योग्य, यथा—
पश्यादि। रूपसम्पन्न अर्थात् रूपयुक्त वस्तु, यथा—
पण्यरुक्ता प्रभृति। धीयुक्तका अर्थ शीतिमान है,—
पश्यादि।

विक्रीताने पण्यका मूल्य लिया, क्रोताने यह पण्य
मांगा, पर विक्रीताने न दिय। येसो हालतमें यदि
यह स्थावरपण्य हुआ, तो विक्रीताको उसकी क्षति पूरा
करनी होगी अर्थात् विक्रय करनेके बाद उस वस्तुका
यदि उपयोग किया जाय, तो उसकी पूर्ति कर देनी
होगी। फिर यदि यह जड़म हुआ, तो क्रियाकालके
साथ क्रोताको पण्य देना होगा। क्रियाकालका अर्थ
देहनादि सम्पन्न बाधिये।

किन्तु इस व्यवस्थाको नहीं काममें लाया जाहिये, जहां

पण्यकालकी अपेक्षा पण्यदानकालमें यदि पण्य क्रयके
मूल्य पर बाजारमें बिके। परन्तु क्रयकालकी अपेक्षा उक्त
समय पर यह पण्य कम दाममें बिकता हो, तो बर्तमान
मूल्यके हिसाबसे पण्य लौटा कर उसके साथ मध्य
कालकालिक यदि त मूल्य क्रोताको देना पड़ेगा। फिर
यदि उस समय पण्यमूल्य समानाभावमें भी रहे, तो भी
बिक्रीदारकी कुछ सूद लगा कर देना होगा। यही ही
ग्राह्य-व्यवस्था।

याज्ञवल्क्यने कहा है, कि क्रोता या बिक्रीदार देना
निरतें भा कर यदि माल बिक्री, पर विक्रीतामें प्राण
मांगने पर भी न मिले, तो बिक्रीदारकी देनांतर जा कर
यह माल बेचनेमें जो लाभ होता, उसी लाभके हिसाब-
से विक्रीता क्रोताको मात्र लौटा देनेके लिये बाध्य है।

धर्मशास्त्रकार विष्णुने येसो हालतमें विक्रीताकी
दण्ड देनेकी व्यवस्था की है। उसके मतसे राजाको
जाहिये, कि ये विक्रीतासे सूद समेत पसल कर क्रोता
को देवे। इसको मलाया उसे एक मी पण दण्ड भी देवे।
विक्रीताके सम्बन्धमें जो व्यवस्था कही गई है उसे अनु-
तापहोन क्षुत्तिस्मय विक्रीता विपयमें ही जानना होगा।
किन्तु जहां विक्रीता अपना माल बेच कर उसी समय अनु-
तापयजतः यह माल क्रोताको न दे और जो क्रोता मात्र
बिक्री देनेके बाद अनुत्त हो कर उसे न ले, तो येसो
हालतमें क्रोता विक्रीता दोनोंकी ही दण्डमूल्यका दण्ड
भाग नुकसान सहना होगा। किन्तु क्रोता विक्रीताके
मध्य देना अनुताप यदि दण्ड दिनके बाद ही, तो फिर
मूल्यकी दण्डों भाग किसीको भी नहीं देना पड़ेगा।

यह पण्य या माल देहना या पाहलयोग्य रहे, तो फिर
उक्त व्यवस्था काममें न लाई जायेगी। येसो हालतमें
दण्ड दिनके मध्य अनुताप उपस्थित होनेसे दण्डों भाग
नुकसान मह कर यह अपना दण्ड या मूल्य वापस
पायेगा। दण्ड दिनके बाद अनुताप करना अनुचित है।
धर्मिक उस समय दण्ड या मूल्य वापस पायेगी व्यवस्था
नहीं है।

विक्रीताके विक्रयमें माल बिक्री कर क्रोता की
उत्ते प्रणय न करे और यह माल नुकसान हो जाय
तो क्रोता ही स्विक्रय होगा उन्हाको यह क्षति देनी

पड़ेगी। जहाँ क्रोताने माल खरीद कर विक्रोतासे मांगा नहीं और विक्रोताने भी नहीं दिया इधर चोरोंके उपद्रवसे माल नष्ट हो गया, तो क्रोता और विक्रोता दोनों हीकी समान हानि होगी। यही देवलमट्टका मत है।

नारदका कहना है, कि द्रव्य खरीदनेके बाद क्रोताको अनुताप हुआ, क्रोताके देने पर भी उसने नहीं लिया। ऐसी हालतमें विक्रोता यदि वह द्रव्य दूसरेके हाथ बेच डाले, तो उसका कोई अपराध न होगा।

जो विक्रोता पहले क्रोताको निर्दोष धस्तु दिखा कर पीछे चालाकीसे उसको हाथ दोषयुक्त वस्तु विक्रय करे और जो विक्रोता एकके हाथ माल बेच कर पीछे उसके अनुताप-उपस्थित नहीं होने पर भी दूसरेके हाथ बेच डाले, तो दोनों ही हालतमें विक्रोता ही अपराधी है। इस अपराधके दण्डस्वरूप विक्रोता क्रोताको दूना मूल्य देवे, साथ साथ विनय भी दिखावे।

ऊपर जो नारदकृत व्यवस्था कही गई, घृहस्पति, पाण्डवव्यवस्थादि धर्मशास्त्रकारगण भी उस व्यवस्थाको समर्थन कर गये हैं।

इसके अलावा घृहस्पतिने कहा है, कि विक्रोता यदि मत्त, उग्रमत्त, भोत, अत्याधोत वा अन्न अवस्थामें अधिक मूल्यका द्रव्य कम मूल्यमें दे डाले तो क्रोताको वह लौटा देना उचित है।

क्रोता 'माल खरीदूंगा' ऐसा कह कर चला गया, उसका मूल्य नहीं दिया और न पीछे समय पर खरीदनेके लिये आया तो विक्रोता क्रोताको वह माल दे या न दे, उसकी श्रुति है, उसे कोई दाप न होगा। जहाँ क्रोता पका पात करके विक्रोताको हाथ कुछ मूल्य दे चला गया; किन्तु निर्दिष्ट समयके मध्य वह लेने नहीं आया तो विक्रोता उस मालको दूसरेके हाथ बेच सकता है।

विक्रुष्ट (सं० लि०) विक्रुष्ट-क। निष्ठुर, निर्दोष, निष्ठुर।

विक्रोत (सं० लि०) विक्रोतानि विक्रु-नृच। क्रयविक्रयकर्त्ता, बेचनेवाला। पर्याय—विक्रयिक, विक्रयी, विक्रायक।

विक्रोहित (सं० लि०) विक्रोहित्वाये क। २ विविध

क्रोडा, नाना प्रकारके खेल। (लि०) २ विविध क्रोडायुक्त जिसमें तरह तरहके खेल हों।

विक्रोत (सं० लि०) विक्रु क। कृतविक्रय, जो बेच दिया गया हो।

विक्रोतव्य (सं० लि०) विक्रु-तव्य। विक्रयार्थ, बेचने योग्य।

विक्रुय (सं० लि०) विक्रीयते इति विक्रा (अचो घत्। पा ३।१।१७) इति घत्। विक्रययोग्य द्रव्य, विक्रयेवाला। पर्याय—पाणितव्य, पण्य।

विक्रोता (सं० पु०) विक्रीतृ देखो।

विक्रोग (सं० पु०) विक्रुणा घम्। विकृत शब्द।

विक्रोगयितृ (सं० लि०) विक्रुण-यृच्। विक्रोगकारक।

विक्रोष्ट (सं० लि०) विक्रुश-यृच्। विक्रोगकारी।

विक्रोच (सं० लि०) विक्रुचते इति विक्रु-पचायच्।

१ विह्वल, घेचन। २ विवश। ३ चञ्चल। ४ उद्वृण्वल।

५ कातर। ६ भीर, भीत। ७ उपहत। ८ अवधारणा समर्थ। एकर्त्तव्याकृत्तव्यनिर्णयमें असमर्थ। १० किंकर्तव्य-

विमुद्। ११ व्याकुलता। १२ जड़ता। १३ उदासीनता।

१४ घ्नान्त।

विक्रुयना (सं० स्त्री०) विक्रुयस्य भावात्तल-टाप्। विक्रुयत्य, घेचनो।

विक्रुवित (सं० लि०) विक्रुव युक्त, घेचन।

विक्रुत्ति (सं० स्त्री०) विक्रुद-त्तिच्। १ अनादिका पाक। २ द्रव्योभाय। ३ आर्द्रता।

विक्रुन्न (सं० लि०) विक्रुद-क्त। १ उरा द्वारा जोर्ण, जो पुराना है। जानेके कारण सड़ या गल गया हो। २ जोर्ण, पुराना। ३ आर्द्र, गीला। (मेदिनी)

विक्रुन्तु (सं० पु०) विशेष दुग्ध।

विक्रुष्ट (सं० लि०) विशेष रूपसे क्लान्त, बहुत थका हुआ।

विक्रुष्टेद् (सं० पु०) विक्रुष्ट-घम्। १ आर्द्रता, गीलापन। २ नासारेण, नाककी एक बीमारो।

विक्रुञ्ज (सं० पु०) विशेष कुञ्ज, भारी तकलीफ।

विक्रुञ्ज (सं० लि०) विक्रुञ्जक। १ विशेष रूपसे सन, पुरो तरह घायल। २ आघातघात, जिसे चोट लगी हो। ३ स्थण्डिल, सड़ संद किया हुआ।

विज्ञान (स० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग,
जो सर्वाधिक प्रचलन करनेमें होता है।

विज्ञान (स० पु०) विशेषरूपमें क्षरण।

विज्ञान (स० श्लो०) विशेषज्ञता।

विज्ञान (स० पु०) विज्ञान लक्ष्येषु। (वैद्यकटीका ०
१।१।११)

विज्ञान (स० पु०) विज्ञानमिति वि-ज्ञ- (बौध्भवः।
पा ३।३।५) इति घञ्। १ जघ्, भायाञ्। २ काम,
भांस्वो।

विज्ञानशून्य (स० श्लो०) विविध पापध्वंसकारो भवति
आदि। (गुणध्वजः १६।५६)

विज्ञित् (स० श्लो०) गियास्वो, वमनेयाञ्।

विज्ञित (स० श्लो०) वि-ज्ञि-य-क्त। १ त्यक्त, जिज्ञासा
एवम् किया गया हो। २ कम्पित, कंवा हुआ। ३ धेरित,
जेता हुआ। ४ फेंका या छितराया हुआ। ५ व्याकुल,
घबराया हुआ। ६ जिज्ञासा दिमामु छिकाने न हो, पागल
(श्लो०) ७ नितशुक्तिविशेष। पातञ्जलदर्शनमें लिखा

है, कि नितशुक्ति का निरोध करनेमें योग होता है। यह
चित्तशुक्ति गान प्रकारकी है, क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र
और निरुद्धावस्था। यह निरुद्धावस्था ही समाधिके लिये
उपयोगी है अर्थात् एकाग्र और निरुद्धावस्थामें ही योग
होता है, क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्तावस्थामें समाधि नहीं
होती।

रजोगुणका उद्भेद हो कर चित्तको जो चञ्चलावस्था
होती है, उग्रका नाम क्षिप्तावस्था है। इसमें चित्त क्षण-
मात्र भा स्थिर नहीं रह सकता, एक विषयमें दूसरे
विषयमें संचलन करता रहता है। इस समय चित्त वाह्य
विषयमें आसक्त हो कर सुखदुःखादिका भोग करता है।
रजोगुण ही चित्तको उग्र मय विषयोंमें ले जाता है।

द्वेषदानवर्गादिके चित्तको ही क्षिप्तावस्था
तमोगुणके उद्भेदमें कर्णवर्णादिके
रहता तथा चित्तको चित्तकी ही चित्तकी ही
चरने लगता है। चित्तकी ही चित्तकी ही
एकत्र और विषयोंमें चित्तकी ही उद्भेद
विश्लेषण

परित्याग कर सुखसाधनोन्मुख मञ्जलसंयुक्त आत्मोन्मुख-
जनक प्रत्यूहादि सत्कार्यमें अनुसक्त होता है। यह
अवस्था जनसाधारणके चित्तमें उत्पन्न नहीं होती,
देवता आदिके चित्तमें उत्पन्न होती है। क्षिप्त और मूढ़
अवस्थामें चित्त अस्थिर अवस्था धेनु है, रजो और तमोगुण
ही चित्तमें विक्षेप उपस्थित करता है। अतएव चित्त-
सावस्थामें मत्प्रवृत्तके प्रबल होनेसे चित्तका विक्षेप कुछ
उभ हो जाता है। रजो और तमोगुण सत्प्रवृत्तसे परा-
भूत हो अवस्थान करता है।

चित्त रजोगुण द्वारा अस्मिभूत हो माना प्रकारकी
प्रवृत्तसे घाला हो कर उसीके अनुसार कार्य करता है।
साध्यगतता यदि किसीके चित्तमें मत्प्रवृत्तका उद्भेद
हो, तो उसे लगभग जो दुःख नहीं रहता। इसी
प्रकार विक्षिप्तावस्था ही योगकी उपयोगी नहीं है। योग-
माध्यम लिखा है,—

"निरिन्द्रो चेतसि विद्योन्मेषधर्मीभूता समधिर्नियोगवद्भेदो वरति।"
(योगभाष्य १।२)

इसमें मत्प्रवृत्तकी कुछ प्रवृत्तता रहने पर भी
रजस्तमोप्रवृत्त चित्त-विक्षेप एकदम तिरौठिन नहीं होता,
अतएव इस अवस्थामें भी योग नहीं होता है।

इस विषयमें माध्वकारने कहा है, कि चित्त तिमि-
णात्मक है, रजोगुणके समुद्भेद या अधिकताके कारण
उग्र मय विषयोंमें परिवर्तित चित्तकी अस्थिर अवस्था
वस्था या तदवस्था चित्तका नाम क्षिप्त है। तमोगुणकी
समुद्भेदजनित निद्रावस्था या तदवस्था चित्तको मूढ़
कहते हैं। क्षिप्त और मूढ़ अवस्थामें योग ही किसी
प्रकारकी सम्भावना नहीं। क्षिप्त अवस्थामें कुछ
चित्तका नाम विक्षिप्त है। विक्षिप्त चित्तकी
हेतुके कारण उग्र मय सर्वात्मक प्रवृत्त
होती है, पर यह चित्तनिरोध
या नहीं होता; अतएव
चित्तको चित्तकी ही चित्तकी ही
चरण देवो।
तो जलाया या गाढ़ा
दिया गया हो।
होनेका भाव,

विद्यौर (सं० पु०) रत्नांक वृक्ष, मदारका पेड़ ।
 विद्यौरणी (सं० पु०) दुग्धिका, दुद्धी ।
 विद्युद् (सं० लि०) अतिक्षुद्र, बहुत छोटा ।
 विद्युद्घ (सं० लि०) क्षुब्ध, जिसके कानमें क्षीम उत्पन्न हुआ हो ।

विद्युत्मा (सं० स्त्री०) एक छायाका मान ।
 विक्षेप (सं० पु०) विक्षिप्त घञ् । १ प्रेरण, इधर उधर फेंकना । २ त्याग, छोड़ना । ३ विक्षेपण, इधर उधर हिलाना । ४ कम्पन, धरधराहट । ५ प्रसारन, फैलाना । ६ सञ्चालन, देखनेकी क्रिया । ७ भय, डर । ८ राजस्य, कर । ९ धनुषकी डोरी खींचना, चिह्न चढ़ाना । १० मनकी इधर उधर भटकाना, इन्द्रियोंकी चशमे न रखना । ११ प्राचीनकालका एक प्रकारका अस्त्र । यह फेंक कर चलाया जाता था । १२ सेनाका पड़ाव, छावनी । १३ बाधा, विघ्न । १४ सङ्गीतके मतसे सुरका एक भेद । १५ एक प्रकारका रोग । पातञ्जलदर्शनके मतमें चित्तविक्षेपके कारण ६ हैं । इन ६ कारणों द्वारा चित्त-विक्षिप्त होता है ।

“व्याधित्त्यानर्षण्यप्रमादात्सर्वविरतिरान्तिदर्शनात्तन्मभूमि-
 कत्वानारक्षिणानि चित्तविक्षेपेऽन्वरायाः” ।

(पातञ्जल० १।२६)

व्याधि, स्त्वान, सांगय, प्रमाद, मालस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलम्बभूमिकत्व ये ही नौ चित्तविक्षेप तथा योगके अन्तराय अर्थात् विघ्नस्वरूप हैं । योगाभ्यास-कालमें ये सब चित्तविक्षेप उपस्थित होते हैं, इनमें योग नष्ट नहीं होता ।

इन सब कारणोंसे मनकी एकाग्रता नहीं होती, परन्तु सर्वदा चित्तविक्षेप हुआ करता है । शरीरगत पातपित्तादि घानुकी विषमता होनेसे ही शरीरमें झर्रादि रोग उत्पन्न होते हैं, इसका नाम व्याधि है । किसी किसी कारण-वश चित्त अकर्मण्य हो जाता है, ऐसे चित्तको अकर्म-ण्यताको ही स्त्वान कहते हैं । उभवावलम्बन ज्ञानका नाम सांगय है । योग-साधन करनेसे फलनिर्दिष्ट होना या नहीं, ऐसी अनिश्चयज्ञानकी संशय कहते हैं । समाधि साधनमें उदासीनताका नाम प्रसाद है अर्थात् निद्रिके विषयमें दृढ़तर अध्ययसाधपूर्वक उदासीनताका परि-

त्याग नहीं करनेसे योग साधन नहीं होता । शरीर और चित्तकी गुरुताकी आलस्य कहते हैं अर्थात् जिस कारण-से शरीर और चित्तके गुरु होनेसे योगसाधनमें मन नहीं लगता वही आलस्य शब्दवाच्य है । विषयमें दृढ़ मन संयोगको अविरति और शुक्तिकादिमें रजतत्वादि-के ज्ञानकी भ्रान्तिदर्शन कहते हैं । शुक्तिका (सांग) में जिस प्रकार रजतकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार अप-रिणामदर्शियोंके विषयसुखको प्रकृत सुख समझ कर भ्रान्ति होती है, किसी कारणवश समाधिकी उपयुक्त भूमिकी अप्राप्ति का नाम अलम्बभूमिकत्व है । उपयुक्त स्थान नहीं मिलने पर योगका साधन कदापि नहीं होता, जहाँ तहाँ योगसाधन करनेसे तरह तरहकी विघ्नबाधाएँ उपस्थित होता हैं । लम्बस्थानमें मनकी अप्रतिष्ठाका नाम अनवस्थितत्व है, स्थानविशेषमें मानसिक अस्तन्तोप हुआ करता है ।

ये सब चित्तविक्षेप योगके अन्तरायस्वरूप हैं । इनके रहनेसे योग नहीं होता । पुनः पुनः एकतत्वाभ्यास द्वारा ये सब चित्तविक्षेप दूर होने हैं । (पातञ्जलदर्शन)

विक्षेपण (सं० स्त्री०) वि क्षिप लुपट् । विक्षेप, ऊपर अथवा इधर उधर फेंकनेकी क्रिया । २ हिलाने या भटकानेकी क्रिया । ३ धनुषकी डोरी खींचनेकी क्रिया । ४ विघ्न, बाधा ।

विक्षेपलपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद, एक प्रकारकी लेख-प्रणाली ।

विक्षेपजक्ति (सं० स्त्री०) विक्षेपज जक्तिः । मायाजक्ति । वेदागतके मतसे अज्ञानकी भाषण और विक्षेप नामकी दो जक्तियाँ हैं । वेदान्त रुद्र देवो ।

विक्षेत् (सं० लि०) वि-क्षिप-न्च् । विक्षेपकारक ।

विक्षोम (सं० पु०) वि-क्षु-भ-घञ् । १ मञ्जालन, हिलाने या भटकानेकी क्रिया । २ विदारण, फाड़नेकी क्रिया । ३ क्षीम, दुःख । ४ संघटन, मेल । ५ मनकी घञ्जलता । ६ भय, डर । ७ चित्तोद्वेगान्ति । ८ उद्रेक, अचिकता । ९ आँदास्य, उदासीनता । १० मोटरुण्ट्य, उदकण्डा । ११ हाथोंकी छातीका एक पार्श्व या भाग ।

विक्षोमण (सं० पु० स्त्री०) १ विदारण, फाड़ना । २ विक्षोम, मनमें बहुत अधिक क्षोम उत्पन्न होना या करना ।

विशय (मं० पु०) वैयक्तिके अनुसार एक प्रकारका रोग,
जो अविद्य, मद्य-पान करनेमें होता है।

विश्रुत (मं० पु०) विशेषरूपमें श्रुत।

विश्राम (मं० श्लो०) विशेष श्रमता।

विज्ञान (मं० पु०) विनिष्ट लक्ष्यवेद्य। (वैश्वीर्यभा०
१।५।११)

विज्ञानमिनि वि-श्- (श्लो० मन्त्रः)
या ३।३।५ इति शब्दः १ प्रकृत, भावात्तः २ कास,
मानी।

विज्ञानशुद्धि (मं० श्लो०) विविध पापशुद्धिकारो भक्ति
आदि। (मुक्तावधुः १६।५६)

विश्विन् (मं० श्लो०) गियासी, बसनेवाला।

विश्वित (मं० श्लो०) विश्विन् क। १ स्वयं, जिनका
स्वयं किया गया हो। २ कर्मिन्, कर्ता हुआ। ३ प्रेरित,
भेजा हुआ। ४ फौका या छितराया हुआ। ५ व्याकुल,
घबराया हुआ। ६ जिनका दिग्गम विक्रान्ति न हो, पागल।

(श्लो०) ७ चित्तचित्तविशेष। पातञ्जलदर्शनमें लिखा
है, कि चित्तचित्तिका निरोध करनेमें योग होता है। यह
चित्तचित्त पाँच प्रकारकी है, क्षिप्त, मूढ़, विश्वित, प्रकार
भीर निद्रावस्था। यह निद्रावस्था ही समाधिके लिये
उपयोगी है अर्थात् प्रकार भीर निद्रावस्थाओं में योग
होता है, क्षिप्त, मूढ़ भीर विश्वितवस्थाओं में समाधि नहीं
होती।

रजोगुणका उद्रेक हो कर चित्तको जो चञ्चलावस्था
होती है, उद्रेक नाम क्षिप्तावस्था है। इसमें चित्त क्षण-
मात्र भी स्थिर नहीं रह सकता, एक विषयसे दूसरे
विषयमें झूमन करता रहता है। इस समय चित्त बाह्य
विषयमें भागल हो कर सुखदुःखादिका जोग करता है।
रजोगुण ही चित्तको इन सब विषयोंमें प्रेरण करता है।
द्वैतदानवादिके चित्तकी ही क्षिप्तावस्था होती है।

तमोगुणके उद्रेकमें कर्त्तव्यकर्त्तव्यका छान नहीं
रहता तथा चित्तकी अविद्यके यन्त्रोत्पन्न हो विषय अर्थात्
करने लगता है। इसका नाम मूढ़ावस्था है। यह अवस्था
राजस और विज्ञानवादिके चित्तोत्पन्न उद्रेक होती है।

विश्वितवस्था—इस अवस्थामें मरुदगुणको प्रव-
त्तताके कारण चित्त दुःखमायन तापुविगर्हित कर्मों का

परिप्राय कर सुखमायनोत्पन्न सञ्जनमेयित भावोत्पन्न-
जनक धनपूजादि सदकार्यमें अनुत्क होता है। हर
अवस्था अज्ञसाधारणके चित्तमें उत्पन्न नहीं होती,
द्वैतवा आदिके चित्तमें उत्पन्न होती है। क्षिप्त भीर मूढ़
अवस्थासे चित्तित्त अवस्था श्रेष्ठ है, रजो भीर तमोगुण
ही चित्तमें विशेष उपस्थित करना है। अतएव चित्त-
मायस्थानमें मरुदगुणके प्रबल होनेसे चित्तका विशेष उद्रेक
जो होता जाता है। रजो भीर तमोगुण मरुदगुणसे परा-
भूत हो अवस्थान करता है।

चित्त रजोगुण द्वारा अभिभूत हो माना प्रकारकी
प्रवृत्तियों बाह्य हो कर उन्को अनुसार कार्य करता है।
मायव्यगतः यदि किसीके चित्तमें मरुदगुणका उद्रेक
हो, तो उमें लेगमात्र जो दुःख नहीं रहता। इनमें
प्रकार विश्वितवस्था भी योगको उपयोगी नहीं है। योग-
मायमें लिखा है,—

“चित्तचित्ते चेतयि विश्वेतेषामर्जोभूतः समाधिर्भोगस्ये कर्त्तव्यः।
(योगभाष्य ३।१)

इसमें मरुदगुणकी कुछ प्रबलता रहने पर भी
रजस्तमोजन्म चित्त-विशेष पकड़न निरोधित नहीं होता,
अतएव इस अवस्थामें भी योग नहीं होता है।

इस विषयमें भाष्यकारने कहा है, कि चित्त चित्त-
णात्मक है, रजोगुणके समुद्रेक का अधिकताके कारण
उन सब विषयोंमें परिचालित चित्तको अव्यक्त अविद्य-
वस्था या तदवस्था चित्तका नाम क्षिप्त है। तमोगुणकी
समुद्रेकजनित निद्रावस्था या तदवस्था चित्तको मूढ़
कहते हैं। क्षिप्त भीर मूढ़ अवस्थाओं में योगकी किसी
प्रकारकी समाधान नहीं। क्षिप्त अवस्थाओं में उद्रेक
विशेषयुक्त चित्तका नाम विश्वित है। विश्वित चित्तको
कदाचित् स्थिरता होनेके कारण उन समय क्षणिक रूप
निरोध हो सकता है सहो, पर यह चित्तविशेष
ज्ञानादिका परिप्राय या निवारक नहीं होता; अतएव
विश्वितवस्थाओं में योग नहीं होता। कर्त्तव्यकर्म देनी।

विश्वितक (मं० पु०) यह मूढ़ जगैर जो ज्ञाया या यादो
न गया हो, चित्तको ही ही कर्त्तव्य दिया गया हो।

विश्वितता (मं० श्लो०) विश्वित या पागल होनेका भाव,
पागलपन।

विश्वेश्वर (सं० पु०) रक्तार्क वृक्ष, मदारका पेड़ ।
 विश्वेश्वरणी (सं० पु०) दुग्धिका, दुहो ।
 विश्वद्र (सं० त्रि०) अतिशुद्ध, बहुत छोटा ।
 विश्वद्वय (सं० त्रि०) शुद्ध, जिसके मानमें क्षोभ उत्पन्न
 हुआ हो ।
 विश्वभा (सं० स्त्री०) एक छायाका मान ।
 विश्वेश (सं० पु०) विश्वेश्वर । १ प्रेरण, इधर उधर
 फेंकना । २ टबाग, छोड़ना । ३ विश्लेषण, इधर उधर
 हिलाना । ४ कम्पन, घरघराहट । ५ प्रसारण, फैलाना ।
 ६ सञ्चालन, देखनेकी क्रिया । ७ भय, डर । ८ राजस्व,
 कर । ९ धनुषकी डोरी खींचना, चिह्न चढ़ाना ।
 १० मनको इधर उधर भटकाना, इन्द्रियोंकी वशमें न
 रखना । ११ प्राचीनकालका एक प्रकारका अस्त्र । यह
 फेंक कर चलाया जाता था । १२ सेनाका पड़ाव,
 छावनी । १३ बाधा, विघ्न । १४ सङ्कीर्णके मतसे सुरका
 एक भेद । १५ एक प्रकारका रोग । पातञ्जलदर्शनके
 मतसे चित्तविश्लेषके कारण ६ हैं । इन ६ कारणों द्वारा
 चित्त-विश्लेष होता है ।

“व्याधिविहत्यानेसंशयप्रमादालस्यविरतिभ्रान्तिदर्शनाभ्रमभूमि-
 क्त्यानवस्थितानि चित्तविश्लेषेऽन्वरायाः” ।

(पाञ्चनन १२६)

‘व्याधि, स्तयान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति,
 भ्रान्तिदर्शन, आलस्यभूमिरूप ये हो नी चित्तविश्लेष तथा
 योगके अन्तराय अर्थात् विघ्नस्वरूप हैं । योगाभ्यास-
 कालमें ये सब चित्तविश्लेष उपस्थित होते हैं, इनमें योग
 नष्ट नहीं होता ।

इन सब कारणोंसे मनकी एकप्रता नहीं होती, परन्तु
 सधैरे चित्तविश्लेष हुआ करता है । शरीरगत वातपित्तादि
 धानुकी विषमता होनेसे ही शरीरमें उद्यत् रोग उत्पन्न
 होते हैं, इसका नाम व्याधि है । किसी किसी कारण-
 यत्न चित्त अकर्मण्य हो जाता है, ऐसे चित्तकी अकर्म-
 ण्यताको ही स्तयान कहते हैं । उभयावलम्बन ध्यानका
 नाम संशय है । योग-साधन करनेसे फलसिद्धि होगी
 या नहीं, ऐसे अनिश्चयज्ञानको संशय कहते हैं । समाधि
 साधनमें उदासीनताका नाम प्रसाद है अर्थात् सिद्धिके
 विषयमें इतना अध्यवसायपूर्वक उदासीनताका परि-

त्याग नहीं करनेसे योग साधन नहीं होता । शरीर और
 चित्तको गुह्यताको आलस्य कहते हैं अर्थात् जिस कारण-
 से शरीर और चित्तके गुह्य होनेसे योगसाधनमें मन नहीं
 लगता वही आलस्य शब्दवाच्य है । विषयमें दृढ़ मन
 संयोगको अविरति और शुद्धिदिग्दे रजतरवादि-
 के ज्ञानको भ्रान्तिदर्शन कहते हैं । शुद्धिका (सोप)में
 जिस प्रकार रजतकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार अप-
 रिणामदर्शियोंके विषयसुखको प्रकृत सुख समझ कर
 भ्रान्ति होनी है, किसी कारणवश समाधिको उपयुक्त
 भूमिको अप्राप्ति का नाम आलस्यभूमिरूप है । उपयुक्त
 स्थान नहीं मिलने पर योगका साधन कदापि नहीं जाता,
 जहां तहां योगसाधन करनेसे तरह तरहकी विघ्नबाधाये
 उपस्थित होता है । लस्यस्थानमें मनकी अप्रतिष्ठाका नाम
 अनवस्थितत्वं है, स्थानविशेषमें मानसिक असन्तोष
 हुआ करता है ।

ये सब चित्तविश्लेष योगके अन्तरायस्वरूप हैं । इनके
 रहनेसे योग नहीं होता । पुनः पुनः एकतत्त्वाभ्यास द्वारा
 ये सब चित्तविश्लेष दूर होने हैं । (पातञ्जलदर्शन)
 विश्लेषण (सं० स्त्री०) विश्लेषण । विश्लेष, ऊपर
 अधवा इधर उधर फेंकनेकी क्रिया । २ हिलाने या
 भटकानेकी क्रिया । ३ धनुषकी डोरी खींचनेकी क्रिया ।
 ४ विघ्न, बाधा ।

विश्लेषलिपि (सं० स्त्री०) लिपिभेद, एक प्रकारको लेख-
 प्रणाली ।

विश्लेषशक्ति (सं० स्त्री०) विश्लेषणशक्ति । मायाशक्ति ।
 वेदान्तके मतसे अज्ञानकी आवरण और विश्लेष नामकी
 दो शक्तियां हैं । वेदान्त शब्द देखो ।

विश्लेष (सं० त्रि०) विश्लेषण । विश्लेषकारक ।
 विश्लेष (सं० पु०) विश्लेषण । १ सञ्चालन, चलाने
 या भटकानेकी क्रिया । २ विदारण, फाटनेकी क्रिया ।
 ३ क्षोभ, दुःख । ४ संघटन, मेल । ५ मानुकी क्रिया । ६
 भय, डर । ७ चित्तोद्भ्रान्ति । ८ उद्वेग, अविश्रान्ति । ९
 कीदास्य, उदासीनता । १० अतीवृष्ट्य, उत्प्रेक्षा । ११
 हाथीको छानेका एक पार्श्व या भाग ।

विश्लेषण (सं० पु० स्त्री०) विश्लेषण, फाड़ना । २
 विश्लेषण, मनमें बहुत अधिक क्षोभ उत्पन्न होनेका
 करना ।

विद्योमी (मं० लि०) वि श्रुम विनि । विद्योमकारक, दुःख उत्पन्न करनेवाला ।

विद्य (मं० लि०) विद्य विद्यानाम् यन्त्रोया । गन्-मानिक, बिना नाकवाला ।

विद्यष्टिन् (मं० लि०) विद्यष्टि-विनि । विद्यष्टिकारक, दो दुःखों करनेवाला ।

विद्यन्त (मं० लो०) धनन, खोदना ।

विद्यन्तम् (मं० पु०) प्रज्ञा ।

विद्याहा (मं० पु०) गदङ्ग ।

विद्याद् (मं० पु०) वि ग्राह-भन् । विशेषरूपसे व्याधक या मन्त्रक । (मू० १०१८, ५)

विद्यादितक (मं० पु०) यह मृग जरीर जिमे पशुभिनि या खाला हो ।

विद्यानम (सं० पु०) वैद्यानम मुनिमेद ।

वैद्यानम देवो

विद्यामा (मं० लो०) जिह्वा, जीम ।

विद्याबंध (हि० लो०) कदंबो या जदरफो-सो बंध ।

विद्यु (मं० लि०) विद्यता नासिका यस्य, बहुलवधनाम् गामिकायाः स्यु । गतनासिक, बिना नाकवाला ।

विद्युर (मं० पु०) १ रासम । २ चौर ।

विद्येद् (मं० लि०) द्विषाह्य, दो भागोंमें बाँटा हुआ ।

(भागवत १।७.२१)

विद्ये (मं० लि०) विद्यता नासिका यस्येति बहुमी ।

(मन्थन । पा ८।४.२८) इत्यस्य चार्त्तिक्षेपत्वा नासिकायाः यथा । गतनासिक, जिमको नाक न हो, गकटा ।

विद्यन्त (मं० लि०) वि-व्या क । प्रसिद्ध, जिमे सब साम जानने हो ।

विद्यवनि (मं० लो०) वि वधा-विद्यम् । प्रसिद्धि, जोदरत ।

विद्यवन् (सं० लो०) वि वधा विद्य् म्पुट् । व्यावृत्त, प्रसिद्ध करनेवाला ।

विद्य (मं० लि०) विद्यता नासिका यस्य, याः पश्य यत्तयो इति नासिकाया य पश्य । १ अनासिक, बिना नाकवाला । २ उग्ननासिक, गकटा ।

विद्य (मं० पु०) विद्या, जल ।

विद्यन्त (मं० लो०) विद्यन्तम् । १ प्रान्तमुक्ति, कर्म सुकाला । २ द्विषाह लताया, सेना करनेवाला ।

विद्यन्त (सं० लि०) वि गन्-क । १ प्रान्तादंत, जिमको घनक भादि जानो रहो हो । पर्याय—निप्यत, अरोक, बीन ।

२ रांतल, विद्योम । ३ गतसे पहलेका, भगिन या बोले हुएसे पहलेका । ४ जो बहोँ इपर उपर चला गया हो ।

५ जो गत हो गया हो, जो बोल चुका हो । जर यह जन्म योगिक अवस्थामें किसी संहाके पहले जाता है, नच इसका अर्थ होना है—“जिसका मर हो गया हो ।” प्रेम—विद्यन्त उचर=जिसका उवर उतर गया हो । विद्यन्तवन्=जिमको भाँगे मर हो गई हो ।

विद्यन्तको (मं० लि०) विद्यता धीयेत्य इति बहुमांशो कप्रत्ययः । धीरहित, धोषप्र ।

विद्यन्तभव (सं० लि०) विद्यन्तं भवं यस्य । निर्जीव, घेटर ।

विद्यन्तगव्यज (सं० पु०) वीद्याधार्यमेद ।

विद्यन्तोज (मं० लि०) विद्यता शोके यस्य बहुमी । शोकहीन, जिमको कोई शोक न हो ।

विद्यन्तपूठ (मं० लि०) स्पृहाहीन, निस्पृह ।

(गीता ३ म०)

विद्यन्तमुक्तिका (मं० लो०) पुनः पुनरासंय दर्शन पर्यन्त प्रवृत्ति । (मुभूत यादीर १० म०)

विद्यता (मं० लि०) १ जो विद्या करनेके योग्य न रह गई हो । २ जो पर पुढ्यने प्रेम करतो हो ।

विद्यतार्त्तय (मं० लो०) विद्यन्तं भासंय हती यस्याः पद्-धादि । पद्यगत पर्यको यह लो जिमका (नासिकपर्या) स्त्रीदर्शन होना बह हो गया हो । पर्याय—निप्यतो, निप्यकला, निप्यकली, निप्यकला, विद्यतो, विद्यता ।

(मन्थनम् १०)

विद्यतारोह (मं० पु०) वीद्यभेद, योगारोह ।

विद्यति (मं० लो०) दुर्देगा, वराकां ।

विद्यतोत्प (मं० पु०) एक मुटका नाम ।

विद्यद् (मं० पु०) विविध जन्मकारो ।

विद्यदिग (मं० लि०) चारों मोट प्रचारित ।

विद्यन्तव (मं० पु०) १ विद्यन्तनीय । २ रम्यापीभ्य ।

विद्यन्थ (मं० लि०) १ मन्थहीन, जिममें किसी प्रकार के नून हो । २ पूर्वाभ्यन्त, बहुरूपदार ।

विद्यन्थक (मं० पु०) इन्द्रोत्पत्त ।

विगन्धि (सं० त्रि०) १ गन्धहीन । (क्री०) २ गन्धहीन पृक्ष ।

विगन्धिका (सं० स्त्री०) १ हपुषा, हाऊयेर । २ अज-
गंधा, तिलवन ।

विगम (सं० पु०) वि-गम (अष्टवृद्धनिरिचगमस्व । पा
३११५८) इति अप् । १ नाश । २ मोक्ष । ३ प्रस्थिति,
खला जाना । ४ निश्चयि, अन्त, आनमा । ५ क्षान्ति,
सहनशीलता ।

विगमचन्द्र (सं० पु०) वीरराजपुत्रभेद । (तारागाथ)

विगर्भा (सं० स्त्री०) विगतगर्भा, जिसका गर्भागत हो
गया हो ।

विगर्ह (सं० पु०) वि-गर्ह-अच् । निन्दा, शिखावत ।

विगर्हण (सं० स्त्री०) वि-गर्ह-ल्युट् । १ निन्दन, शिखा-
वत । २ भस्सन, डाँट, फटकार ।

“कृण्वे च भवती द्वेषे वसुदेवविगर्हणात् ।”

(हरिवंश ३६।२३)

विगर्हणा (सं० स्त्री०) वि-गर्ह-णिच्-टाप् ।

विगर्हण देखो ।

विगर्हित (सं० त्रि०) वि-गर्ह-क्त, विशेषेण गर्हितः ।

१ विशेषरूपसे गर्हित, जिसे डाँट या फटकार बतलाई
गई हो । २ निन्दनीय, बराब । ३ निषिद्ध ।

विगर्हिन् (सं० त्रि०) वि-गर्ह-णिनि । विगर्हकारक,
निन्द्याकारक ।

विगर्हा (सं० त्रि०) वि-गर्ह-यत् । १ निन्दायोग्य,
निन्दनीय । २ मर्दानायोग्य, डाँटने-फटटनेके योग्य ।

लौकिक या साम्राज्य निबन्धके साथ पणवधघनादि
द्वारा जो बात कही जाती है, उसे विगर्हकया कहते हैं ।
पण करके धारणयोग्यको साम्राज्ये निन्दा की हो, इस
कारण पण रत्न कर जो बात कही जाती है, वही विगर्ह-
कया है ।

विगर्हाता (सं० स्त्री०) विगर्हास्य भाषा, तल्-टाप् ।
विगर्हका भाव या धर्म ।

विगलित (सं० त्रि०) विशोषेण गलितः । १ स्थलित,
जा गिर गया हो । २ जो बह गया हो, जो चू कर या
टपक कर निकल गया हो । ३ शिथिल, ढीला पड़ा
हुआ । ४ बिगड़ा हुआ ।

विगाह (सं० त्रि०) विगाहते स्मेति वि-गाह क ।

१ स्नात, नहाया हुआ । २ प्रगाढ़, बहुत अधिक ।
३ प्रौढ़, खच्छी तरह बढ़ा हुआ । ४ कठिन, सघन ।

विगाथा (सं० स्त्री०) आर्ष्या छन्दका एक भेद । इसके
विषय पद्योंमें १२, दुमरेमें १५ और चौथेमें १८ मात्राएं
होती हैं और अन्तका वर्ण गुरु होता है । विषयगणोंमें
जगण नहीं होता, पहले दलका छठा गण एक लघुका
मान लिया जाता है । इसे विग्गाहा और उद्गुगति भी
कहते हैं ।

विगान (सं० स्त्री०) विरुद्ध गान परस्य । निम्दा ।

विगामन् (सं० स्त्री०) विविध प्रकारका गमन ।

(शुक १।१५।४)

विगाह (सं० त्रि०) वि-गाह-अच् । १ विगाहमान, सयंत्र
स्थापित । २ अवगाहनकर्ता, स्नान करनेवाला । (क्री०)

३ अवगाहन, स्नान । ४ विलोडन, मघना ।

विगाहन (सं० स्त्री०) वि-गाह-ल्युट् । अवगाहन, स्नान ।

विगाहमान (सं० त्रि०) वि-गाह-जानच् । १ अवगा-
हनकारी, स्नान करनेवाला । २ विलोडनकर्ता, मघने-
वाला ।

विगाहा (सं० त्रि०) वि-गाह-यत् । १ विगाहनयोग्य,
स्नान करने लायक । २ विलोडन योग्य, मघने लायक ।

विगिर (सं० पु०) विरिद्धर पक्षिभेद ।

विगोत (सं० त्रि०) वि-गी क । निन्दित, गर्हित ।

विगोति (सं० स्त्री०) १ निन्दा । २ एक प्रकारका छन्द ।

विगुण (सं० त्रि०) विपरीतो गुणो यस्य । १ गुण-वैरीरूप
विशिष्ट । २ गुणरहित, जिसमें कोई गुण न हो । ३ विरुद्ध,
बराब । ४ लुप्त, बारीक ।

विगुणता (सं० स्त्री०) विगुणस्य भावः तल्-टाप् । विगुण-
का भाव या धर्म ।

विगुल्क (सं० त्रि०) प्रसृत्, ज्यादा ।
(भारवज्ञानन पद्यसूत्र भा३।१७)

विगूढ (सं० त्रि०) विशेषेण गूढः, वि-गूढ-क्त । १ गर्हित ।
२ गुप्त ।

विगूह्य (सं० त्रि०) १ विप्रद्विषयवीभूत । २ हतविच्छेद,
अलग किया हुआ ।

विग्गाहा (दि० स्त्री०) विगाथा नामक छन्द ।

विगाथा देखो ।

विज्ञानो (मं० लि०) वि श्रुत-विनि । विज्ञानकारक, दुःख उत्पन्न करनेवाला ।
 विद्य (मं० लि०) विद्य विद्यातन्त्रम् यन्त्रोप । गन-
 नात्मिक, विद्या नाकवाला ।
 विद्यारिण्य (मं० लि०) विद्यारिण्य-विनि । विद्यारिण्यकारक,
 दो टुकड़े करनेवाला ।
 विद्यानन (मं० लि०) अन्नन, मोदना ।
 विद्यतन्त्र (मं० पु०) प्रत्या ।
 विद्यहा (मं० पु०) गण्ड ।
 विद्याद (मं० पु०) विद्याद-गन् । विशेषरूपसे व्यादक
 या गण्डक । (श्रु० १०३८५)
 विद्यार्थक (मं० पु०) यह मृग गरीर जिसे पशुभीने
 या खाता हो ।
 विद्यानम (मं० पु०) वीद्यानस मुनिभेद ।
 मोक्षान्न देवो
 विद्याना (मं० स्त्री०) जिहा, जीम ।
 विद्यापथ (दि० स्त्री०) कटुयो या अदरको-सी पंथ ।
 विद्यु (मं० लि०) विद्यता नात्मिका यत्प, बहुलपथनाम्
 नात्मिकायाः स्या । गननात्मिक, विद्या नाकवाला ।
 विद्युत (मं० पु०) १ राक्षस । २ चौर ।
 विद्येद् (मं० लि०) द्विषाह्वन, दो भागोंमें बाँटा हुआ ।
 (भागवत १।७.२१)
 विद्यय (मं० लि०) विद्यता नात्मिका यत्पेति यद्गमो ।
 (गणप्य) पा ८।४।२८ इत्ययम् पालिशोपपत्त्या नात्मिकायाः
 यथा । गननात्मिक, जिम्को माक न हो, गण्डक ।
 विद्यगत (मं० लि०) वि-कथा-क । प्रसिद्ध, जिसे सब
 लोग जानते हो ।
 विद्यवति (मं० स्त्री०) विद्यवति-कथ्य । प्रसिद्ध, जोडरग ।
 विद्यवतन (मं० स्त्री०) विद्यवति-कथ्य । व्यापनाम,
 प्रसिद्ध करना ।
 विद्य (मं० लि०) विद्यता नात्मिका यत्प, यः यदन
 यत्पत्थो इति नात्मिकायाः स्य सत्प । १ गननात्मिक,
 विद्या नाकवाला । २ (गननात्मिक, गण्डक ।
 विद्यत (मं० पु०) विद्यत, जन्तु ।
 विद्यतन (मं० स्त्री०) विद्यत-कथ्य । १ अन्नमुक्ति, कर्ज
 पुकामा । २ विद्याय अनाम, सेवा करना ।

विद्यत (मं० लि०) वि गम-क । १ प्रभासहित, जिम्को यत्प
 मादि जाती रहो हो । वर्षाप-निष्पन्न, अरोक, बौत ।
 २ रहित, विहीन । ३ गनसे पहलेका, अग्रिम या होने
 पहलेके पहलेका । ४ जो कहीं उपर उपर गया गया हो ।
 ५ जो गत हो गया हो, जो बौत पुका हो । जब यह गत
 योगिक अथवागमि किन्ही संज्ञाके पहले जाता है, जब इसका
 कार्य होता है—“जिम्का गत हो गया हो ।” जैसे,—विद्यत
 उपर—जिम्का उपर उतर गया हो । विद्यतपन—
 जिम्को भाँसे गत हो गई हो ।
 विद्यतशोक (मं० लि०) विद्यता भीषेय इति बहुलोद्दी
 कप्रपया । श्रांरहित, श्रोत्रध ।
 विद्यतमप (मं० लि०) विद्यतं मयं मप्य । निर्भीक,
 घेडर ।
 विद्यतारागध्वज (मं० पु०) वीद्यागार्थभेद ।
 विद्यतशोक (मं० लि०) विद्यतः शोभो यत्प बहुलो ।
 शोकहीन, जिम्को कोई शोक न हो ।
 विद्यतस्पृह (मं० लि०) स्पृहाहीन, निस्पृह ।
 (टीका ३ म०)
 विद्यतयूनिका (मं० स्त्री०) पुना पुनरासंय दर्शन पर्यग
 प्रसूति । (सुभूत गारीर १० म०)
 विद्यता (मं० लि०) १ जो विद्या करनेके योग्य गत
 गई हो । २ जो पर पुठपमे प्रेम करता हो ।
 विद्यतार्थ (मं० स्त्री०) विद्यतं भाष्यं रजो यस्याः यत्-
 प्रादि । पणनन पर्यको यह स्त्री जिम्का नात्मिकया
 रजोदर्शन होता कथ्य हो गया हो । - वर्षाप-निष्पत्तो,
 निष्कला, निष्कली, निष्कला, विकली, विद्यता ।
 (कथ्यगताः)
 विद्यताशोक (मं० पु०) बीदभेद, वीतशोक ।
 विद्यति (मं० स्त्री०) दृष्टना, कराही ।
 विद्यतोदय (मं० पु०) एक मुठका नाम ।
 विद्यद् (मं० पु०) विद्यय अथवागमि ।
 विद्यदित (मं० लि०) पारी भोर प्रयागिन ।
 विद्यतन्त्र (मं० पु०) १ विद्यतमोप । २ एवावयोग ।
 विद्यन् (मं० लि०) १ गण्यहीन, जिम्को किन्ही प्रया-
 की नु म हो । २ दुर्गन्धिन, बदबूदार ।
 विद्यवक (मं० पु०) दृष्टुकोदय ।

वै अन्नदान कर स्वयं भयगिष्ट अन्न भोजन करते हैं।
 विघ्नत (सं० पु०) विशेषेण हननमिति वि-हन घण्।
 १ व्याघात, विघ्न, बाधा। २ आघात, चोट। ३ विनाश।
 ४ विकलता, सफल न होना। ५ विध्वस्त, तोड़ना
 फोड़ना।
 विघ्नतक (सं० लि०) १ व्याघातक, विघ्न डालनेवाला।
 २ आघातकारो, चोट पहुंचानेवाला। ३ विनाशक, हत्या
 करनेवाला।
 विघ्नतन (सं० क्लो०) वि-हन-स्युट्। १ विनाश, हरया-
 करना। २ आघात, चोट पहुंचाना।
 विघ्नतो (सं० लि०) १ निवारक, रोकनेवाला। २ घातक,
 हत्या करनेवाला। ३ बाधादायक, बाधा डालनेवाला।
 ४ नष्ट। ५ व्याहृत, मना किया हुआ। ६ ध्वस्त, तहस
 नहस किया हुआ।
 विघ्नणिका (सं० स्त्री०) गालिका, नाक।
 विघ्नर्णन (सं० पु०) चारों ओर घुमाना, चक्कर देना।
 विघ्न (सं० लि०) रसेपेन। (श्रु० ३।५४।६)
 विघ्न (सं० पु० क्लो०) विहन्यनेऽनेनेति वि-हन क; पञ्चमे क-
 विघ्नानम्। पा ३।३।५८ १ व्याघात, अङ्गुवन, खलल।
 संस्कृत पर्याय—अन्तराय, प्रत्यूह। (अमर) २ कृष्ण-
 पाककण्ड। (शब्दचन्द्रिका)
 विघ्नक (सं० लि०) विघ्नकर, बाधा डालनेवाला।
 विघ्नकर (सं० लि०) विघ्नं करोतीति विघ्न-कृ-ट। विघ्न-
 कर्त्ता, विघ्न करनेवाला।
 विघ्नकर्त्तृ (सं० लि०) विघ्नकर, बाधा डालनेवाला।
 विघ्नकारी (सं० लि०) विघ्नं कर्त्तृ शीलमस्तेति, कृ-णिनि।
 १ घोरदर्शन। २ विघ्नतो, बाधा उपस्थित करनेवाला।
 विघ्नकृत (सं० लि०) विघ्नं करोतीति विघ्न-कृ-विघ्नप्।
 विघ्नकारी। वृहस्पतिनामं लिखा है, कि काक यदि बाँहें
 मोरसे प्रतिलोम गतिमें शब्द करता हुआ चला जाये,
 तो पात्रामें विघ्न उपस्थित होता है।
 फिर दूसरो जगह लिखा है, कि कुत्ता यदि दाँत
 चोला कर भौंठ चाटे, तो देवनेपालेको निष्टमोक्षण प्राप्त
 होता है। किन्तु भौंठ छोड़ कर यदि यह मुँह चाटे, तो
 परेले हुए मोक्षणमें भी बाधा पहुंचती है।

(वृहस्प० ८६।१७)

विघ्नजित् (सं० पु०) विघ्ननायक, गणेश।
 विघ्ननायक (सं० पु०) विघ्न नां नायकः विघ्नोऽभ्यस्तवात्।
 गणेश।
 विघ्ननाशक (सं० पु०) विघ्नानां नाशकः। गणेश।
 विघ्ननाशन (सं० पु०) नाशयतीति नाशनः विघ्नानां
 नाशनः, पठोत्त्। गणेश।
 विघ्नानि (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नप्रिय (सं० क्लो०) ययकृत यथागु, जीकी काँतो।
 विघ्नराज (सं० पु०) विघ्नानां राजा, दत्त।
 गणेश।
 विघ्नवत् (सं० लि०) विघ्नविशिष्ट, विघ्नयुक्त।
 विघ्नविनायक (सं० पु०) विघ्नानां विनायकः। गणेश।
 विघ्नहस्त (सं० पु०) १ गणेश। (लि०) २ विघ्नहर्त्ता,
 विघ्न हरनेवाला।
 विघ्नद्वारो (सं० पु०) १ गणेश। (लि०) २ विघ्नद्वारक।
 विघ्नधिप (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नान्नक (सं० पु०) विघ्नानामन्नकः। विघ्नहर, गणेश।
 विघ्नित (सं० लि०) विघ्नो जातोऽस्य तारकादित्यादित्त्।
 जातविघ्न, तिसके विघ्न उपस्थित हुआ है।
 विघ्नेश (सं० पु०) विघ्नानामीशः। गणेश।
 विघ्नेशवाहन (सं० पु०) विघ्नेशस्य वाहनः दत्त, मही-
 मूर्तिक, गणेशका वाहन, चूदा।
 विघ्नेशान (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नेश्वर (सं० पु०) विघ्नानामीश्वरः। गणेश।
 विघ्नेशानकाम्ना (सं० स्त्री०) विघ्नेशानस्य गणेशस्य
 काम्ना प्रिया; तत्पूजायामेनस्याः प्राशस्त्यात्। श्वेत-
 दूर्वा, सफेद दूध।
 विघ्न (सं० पु०) अश्वत्थुर, घोड़ेका खुर।
 विघ्निक (सं० लि०) घनराया हुआ।
 विघ्निक (सं० पु०) १ मन्त्रिकामेद्, एक प्रकारकी
 चमेकी। २ दमनक वृक्ष, दीनेका पेड़।
 विघ्नक (सं० लि०) १ चक्रहीन। (पु०) २ पुराणानुसार
 एक दानवका नाम।
 विघ्नक्षण (सं० पु०) विघ्नेषु च घटे चर्मादिमुपदिशतीति
 वि-घ्न-क्ष-न्मुदात्तेवयव इत्थाम्। पा ३।३।५८ः इति

विभक्त (सं० लि०) विभक्तः । १ भोज । २ उद्विग्न ।
 विभक्त (सं० लि०) १ गणनात्मक, गणना । २ मोषापी ।
 विभक्त (सं० पुं०) विभक्तं सुख दुःखकारिकं सुखान्ति विभक्त-
 चण्, यथा विविधैर्दुःखैरिभक्तं हाने इति विभक्त (प्र-
 वृत्तिरिवभवत् । वा ३।३।५८) इति भक् । १ अंगोर ।
 २ मुक्त, लङ्घनः । ३ विरोधमत्त, कलह । ४ विभाग ।
 ५ वाचस्पति, सनातनवाच्य । समासुर्मे जो वाच्य होता है,
 उर्मे शिष्ट वा व्यासवाच्य कहते हैं । इसका दूसरा नाम
 विस्तार भी है । योनां पक्षिणां प्रदा प्रहणं । ६ विहङ्ग,
 पक्षी । ७ देवमूर्ति । घातु या पापानादिमे देवताओंकी
 जो मूर्ति बनाई जाती है, उर्मे विभक्त कहते हैं । ८ विरोध
 छान्द । ९ प्रदा, भाषा, घोट । १० नीलिके छः गुणां-
 मेने एक, विभक्तिर्मे कूट वा कलह उद्वेग करना ।
 ११ विभिव, भाविव, कट्ट । १२ विस्तार, चौड़ाई ।
 १३ दूर वा अलग किया हुआ । १४ आहति, जघनः । १५
 अङ्गार, सहायक । १६ सांघवके अनुसार कोई तथ्य ।
 १७ निषका एक नाम । १८ सान्द्रके एक अनुसूक्त
 नाम । १९ अघातकत्वा । (भाषा ३।१।७७)
 २० विनिघानुभव ।
 विभक्त (सं० ली०) १ विरोधरूपसे प्रहण, चुन लेना ।
 २ रूप धारण करना, गहमे जाना ।
 विभक्त्यादेव (सं० पुं०) पालयनीय एक राजा ।
 पञ्चराजवंश देखो ।
 विभक्तान (सं० पुं०) कान्तोरके एक राजपुत्र ।
 (राजतरु ६।१३५)
 विभक्त्य (सं० लि०) विभक्त-मन्त्रवर्षं मगुप् मन्त्र्य ।
 विभक्तविभक्त, विभक्त्युक्त ।
 विभक्त्या (सं० ली०) विभक्त्यादेति भा ५-भक् ।
 पुष्ट, पीठ ।
 विभक्तो (सं० लि०) विभक्त-इति । १ लङ्घन भगना करने-
 वाला । २ मुक्त करनेवाला । ३ मुक्त-विभागका मन्त्रो या
 मन्त्रवर्ष ।
 विभक्तोप्य (सं० लि०) विभक्त-उप्य । विभक्तके योग,
 लङ्घन भगना करने लायक ।
 विभक्त (सं० ली०) विभक्तविषयीभूत, द्विगुके भाष्य पुष्ट
 हो सकें ।
 विभक्त (सं० लि०) विभक्तविषयेभूत, जो इस योग्य हो
 कि कर्मके भाष्य लङ्घन हो जा सकें ।

विभक्त (सं० लि०) वि-विभक्त्या भाष्यः कर्मः
 विभक्त्याभाष्य, विभक्त्या यथा अलग हो गया हो ।
 (शुक् ७।१।७७)
 विभक्तान (सं० ली०) विभक्त्यादेति, यत् इति ।
 विभक्त (सं० ली०) वि-भक्त-उप्युट् । १ विरोध, अहिं-
 तक अंगीको अलग भाग्य करना । २ व्यापार, लङ्घन
 कोटना । ३ विरोध, लक्ष करना । ४ विघात, विभक्त ।
 विभक्तिका (सं० स्त्री०) विभक्त्या घटिका यथा । लक्षणा
 एक छोटा मान, घटोका २३वां भाग ।
 विभक्ति (सं० लि०) १ क्रमके सांघाजक अंग कर्म
 अलग किये गये हो । २ जो मोह कोट्ट डाला गया हो ।
 ३ लक्ष, बरबाती ।
 विभक्त (सं० ली०) १ घंग, रांग । २ विघटन, खेदना ।
 विघटन (सं० ली०) वि घट्ट-उप्युट् । १ विरोध, अहिंसा,
 अंगको अलग करना । २ अविघात, परटना, ३ लक्ष
 मन, रगटना, हिलाना कुलाना । ४ शोचना ।
 विघटित (सं० लि०) वि घट्ट-इति । १ अशान्ति,
 अलगाव हुआ । २ विघट, उद्वेग हुआ । ३ अहित, मत्त
 हुआ । ४ अविहित, कटा हुआ । ५ विरोधित, अलग
 किया हुआ । ६ विघटित, गुला हुआ । ७ लक्षणा ।
 विघटित् (सं० लि०) वि घट्ट-इति । विघट्ट-मन्त्र,
 अलग करनेवाला ।
 विघन (सं० ली०) वि-घन (करदेडोविपुष्टु । वा ३।३।५८)
 इति भक् घनादेर्नाय । १ भाषात करना, घोट पहुँचाना ।
 २ एक प्रकारका बहुत बड़ा हथौड़ा, घन । ३ अङ्ग ।
 विघनं (सं० ली०) वि-घन-उप्युट् । अन्धो गरह लङ्घनं वा
 विघनेकी क्रिया ।
 विघनित् (सं० लि०) विरोध करने हरवाचारक, वा-
 काशो । (शुक् ६।१।७७)
 विघन (सं० ली०) विरोधित अघने इति वि भक् (का-
 शो ५।३।५८) इति भक् (पकोप-व । वा ३।३।५८)
 इति घनादेर्नाय । १ अघन, मोम । (पुं०) २ बट अल-
 लो देवना, विघन, मुक्त या अविनिघ्न कारिके आने पर अल-
 लो । ३ अघात, भाजन ।
 विघनाति (सं० लि०) विघने अल-ति अल-विनिघ्न ।
 जो घाता और लङ्घनान् विघुनीक, देवता और अविनिघ्न

वी अग्रदान कर स्वयं अवशिष्ट भस्म भोजन करते हैं।
 विघ्नत (सं० पु०) विशेषेण हननमिति वि-हन घण्।
 १ व्याघात, विघ्न, बाधा। २ आघात, चोट। ३ विनाश।
 ४ विकलता, सफल न होना। ५ विध्वस्त, तोड़ना
 फोड़ना।
 विघातक (सं० त्रि०) १ व्याघातक, विघ्न डालनेवाला।
 २ आघातकारी, चोट पहुँचानेवाला। ३ विनाशक, हत्या
 करनेवाला।
 विघातन (सं० क्लो०) वि-हन-क्युट्। १ विनाश, हरया-
 करना। २ आघात, चोट पहुँचाना।
 विघातो (सं० त्रि०) १ निवारक, रोकनेवाला। २ घातक,
 हत्या करनेवाला। ३ बाधादायक, बाधा डालनेवाला।
 ४ नष्ट। ५ व्याहृत, मना किया हुआ। ६ ध्वस्त, तहस
 नहस किया हुआ।
 विघृणिका (सं० स्त्री०) नासिका, नाक।
 विघूर्णन (सं० पु०) चारों ओर घुमाना, घबराना।
 विघृण (सं० त्रि०) रसेपित्। (भृक् ३।५।६।)
 विघ्न (सं० पु० क्लो०) विहन्यनेऽनेनेति वि-हन क; पञ्चमे क-
 विधानम्। पा ३।३।५८ १ व्याघात, अडचन, झलल।
 संस्कृत पर्याय-अमतराय, प्रत्युह। (अमर) २ कृष्ण-
 पाककण्डा। (रुद्रवन्दिका)
 विघ्नक (सं० त्रि०) विघ्नकर, बाधा डालनेवाला।
 विघ्नकर (सं० त्रि०) विघ्नं करोतीति विघ्न-कृ-ट्। विघ्न-
 कर्त्ता, विघ्न करनेवाला।
 विघ्नकर्त्तृ (सं० लि०) विघ्नकर, बाधा डालनेवाला।
 विघ्नकारी (सं० त्रि०) विघ्नं कर्त्तुं शीलमस्येति, कृ-लिति।
 १ घोरदर्शन। २ विघातो, बाधा उपस्थित करनेवाला।
 विघ्नहन (सं० त्रि०) विघ्नं करोतीति विघ्न-हन्-विघ्।
 विघ्नकारी। पृथ्वसंहितामें लिखा है, कि काक यदि बार्दि
 भोरसे प्रनिलोमं गतिमें शब्द करता हुआ चला जाये,
 तो यात्रामें विघ्न उपस्थित होता है।
 फिर दूसरी जगह लिखा है, कि कुत्ता यदि दान
 खोम कर भोज चोटे, तो देवनेवालेको निष्टमोक्षण प्राप्त
 होता है। किन्तु भोज छोड़ कर यदि वह सुँह चाटे, तो
 परेसे हुए भोजनमें भी बाधा पहुँचती है।

(५५५०० ५६१००)

विघ्नगिम् (सं० पु०) विघ्ननायक, गणेश।
 विघ्ननायक (सं० पु०) विघ्न नां नायकः विघ्नघाभ्यत्वात्।
 गणेश।
 विघ्ननाशक (सं० पु०) विघ्नानां नाशकः। गणेश।
 विघ्ननाशन (सं० पु०) नाशयतीति नाशनः विघ्नानां
 नाशनः, पठोत्त्। गणेश।
 विघ्नानि (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नप्रिय (सं० क्लो०) ययकृन् ययामु, जीकी कर्त्तो।
 विघ्नराज (सं० पु०) विघ्नानां राजा, ६ तत्।
 गणेश।
 विघ्नवत् (सं० त्रि०) विघ्नविशिष्ट, विघ्नयुक्त।
 विघ्नविनायक (सं० पु०) विघ्नानां विनायकः। गणेश।
 विघ्नहस्त (सं० पु०) १ गणेश। (ति०) २ विघ्नहर्त्ता,
 विघ्न हरनेवाला।
 विघ्नहर्ता (सं० पु०) १ गणेश। (त्रि०) २ विघ्नहारक।
 विघ्नधिप (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नान्नक (सं० पु०) विघ्नानामन्नकः। विघ्नहर, गणेश।
 विघ्नित (सं० त्रि०) विघ्नो जातोऽस्य तारकादित्वावित्।
 जातविघ्न, त्रिसके विघ्न उपस्थित हुआ हो।
 विघ्नेश (सं० पु०) विघ्नानामीशः। गणेश।
 विघ्नेशवाहन (सं० पु०) विघ्नेशस्य वाहनः ६-तत्। मदी-
 मूर्तिक, गणेशका वाहन, चूहा।
 विघ्नेज्ञान (सं० पु०) गणेश।
 विघ्नेश्वर (सं० पु०) विघ्नानामीश्वरः। गणेश।
 विघ्नेज्ञानकाम्ना (सं० स्त्री०) विघ्नेज्ञानस्य गणेशस्य
 काम्ना प्रिया; तत्पूजायामेतस्याः प्राशस्त्यात्। श्वेत-
 दूर्वा, सफेद दूब।
 विघ्न (सं० पु०) श्वेतलुर, घोड़ेका खुर।
 विघ्नित (सं० त्रि०) घबराना हुआ।
 विघ्निक (सं० पु०) १ मन्त्रिकामेद, एक प्रकारकी
 चमेक्री। २ दमनक वृक्ष, हीनेका पेड़।
 विघ्नक (सं० लि०) १ चक्रहीन। (पु०) २ पुराणानुसार
 एक दानवका नाम।
 विघ्नस्य (सं० पु०) विरोधे म चध्ये चर्मादिमुपदिशतीति
 वि-चस्र (अनुदात्तेवरन हकारः। पा ३।३।५८०) इति

कर्णरि मुष् । १ कण्डिक, विज्ञान् । (ति०) २ मियुन, कारदनी । ३ माताधंदनी । "विषयज्ञाना प्रथममा-
धुनम्" (शू० ४।३।२) विषयज्ञाना विविधं द्रष्टा'
(गणप्य) ४ मातो, विज्ञान् । ५ दस, वृत्तान् ।

विषयज्ञाना (मं० श्लो०) विषयज्ञान-राप् । सामदशनी ।
(धामि०)

विषयज्ञान् (मं० पु०) वि-घरा (घनेर्दुर्गुन्) गिक्व । उप-
४।३।२ इति मरिस । उपाधवाय, निराह ।

विषयज्ञान् (मं० ति०) विगतं प्रथमश्लेषेऽपि यत्तुनि भगवत
वक्षु मीय । १ विमला, उद्विग्नचित्त, उदास । विगते मष्टे
वक्षुषो यस्य । २ विगतवक्षु, त्रिस्तवी भांय नष्ट हो गां
हो । (पु०) ३ वृत्तियन्ताय एक घोटा ।

(हरिवं० १४।१।६)

विषयज्ञानु (मं० पु०) महाभारतोक रातमेद ।

विषयज्ञान (मं० ति०) विगनाति यथावर्षस्य (भवतुविचतु
मुयमुत्तगादि । वा १।४।७०) इति भष् समासान्त । विना
मारके ।

विषयज्ञान् (मं० पि०) विगतदशमो वस । चाद्रुहान, चाद्र-
रहित ।

विषयज्ञाना (मं० श्लो०) राति, रात ।

विषयज्ञाना (मं० श्लो०) राति ।

विषय (मं० पु०) वि-ग-भष् । १ मादियन, मांय वक्षु
नाम करमा । २ एकसोहस्य, इकट्टा करमा ।

विषयव (मं० श्लो०) विधेयेन ययने वा वि वि नमुट् ।
भायेयन, मांय-वदृत्तात् करमा । ३ एकसोहस्य, इकट्टा
करमा ।

विषयवपु (मं० ति०) गतिनाय मातक ।

विषयव (मं० ति०) वि-य-भष् । विषयव, पूनमा
दिरता ।

विषयव (मं० श्लो०) वि-वर नमुट् । अमन, वदेरन
करमा । २ यनमा ।

विषयवपेय (मं० ति०) वि-य-भष्-भष् । विषयवपेयं,
पूनन करमी मायक ।

विषयवता (ति० ति०) अमता दिरता ।

विषयवर्षिका (मं० श्लो०) विधेयेन ययने वा विविगवस्य
रक्षु दिशादेर्दुवका इति ययने भष्मि । रोहतामर ददृ

वृष्टम् । वा ३।३।१०८ इति प्युत् राप् । रांय अय रांय । १
रोगविरोध, माधि । वर्षाव—वक्षु, याम, याम । मक्षु—

श्यामवर्षे कष्टदृष्टा बहुव्ययवनीय तो गोटा ह्यय वैद्ये
उपव्य होमो हे उमे विषयिंका वदने हे । ति० ति० ति०-
का मत हे । ति विषयिंका मोर विरादिका होमी दृक् हो
रोग हे, केवल नामका प्रमेद हे । तिर कोरे कोरे वदने हे,
विषयिंका रोग हायमे मोर विरादिका रोग वैमी होमा
हे । तिर ति० ति० मतानुसार विषयदिका विषयिंकागी
विद्य हे । ह्येनी मोर मत्या अव बहुन ह्येने माध पर
जाता हे, तव उमे विषयदिका वदने हे ।

इय रोगमे भावप्रकाशोक्त वक्षुतिवकाददेद विरेक
उपकरा हे । कृष्णरोग वेतो ।

विषयिंका रोग मन्दावुष्टमे गिमा ज्ञाता हे, मन्दाव
पद रोग महापातकम हे ।

मुदितरवमे लिभा हे, कि महापातकी महापातके
कारण नरकमोगके बाद् जग ले कर महापातके भिद-
लरूप रोग भागता हे । महापातकम रोग होमेमे मर-
पातकता प्रायविशय करमे पर धर्मेकमेका मयिकामो होया
हे । अतएव विषयिंका रोगो महापातकी हे, एते धर्मे
कामे मयिकार महो हे ।

वृहत्संहितामे लिभा हे, ति मलिके कारण भूमि-
कस्य होमेमे विषयिंका रोग उपवम होमा हे । २ ति०
कुंसा ।

विषयिंका (मं० श्लो०) विनिरुचंका रोग । (युट्टुत्)

विषयिंका (मं० ति०) यार्तोहो ।

विषयिंका (मं० ति०) विविध द्रष्टा, विविध दर्शनद्वारा ।
"वं देवयोऽप्यथा म विषयिंका" (शू० ४।३।२) "विषयिंका
विविधं द्रष्टा" (गणप्य)

विषय (मं० ति०) वि-य-भष् । १ अमिर, अमन ।
२ ति० कगावर दितता वदता हो । ३ कषामो दटा दृष्म ।
४ दितता वा माद्रुनने दटा दृष्म ।

विषयता (मं० श्लो०) १ विषय होमेका द्विवा या भाव,
वक्षुदता । २ यवराह ।

विषयता (मं० श्लो०) वि-य-व-भष् । १ कषाम, २ कषाम ।

विषयिंका (मं० ति०) वि-य-भष् । १ अमिर, अमन ।
२ अमिर, अमन । ३ दितता वा कषामो दटा दृष्म-
दिमा दृष्म ।

विचार (सं० पु०) विशेषण चरणं पदार्थादिनिर्णये ज्ञानं विचार-घञ् । १ यह जो कुछ मनसे सोचा जाय अथवा सोच कर निश्चित किया जाय, किसी विषय पर कुछ सोचने या सोच कर निश्चय करनेकी क्रिया । २ यह बात जो मनमें उत्पन्न हो, मनमें उठनेवाली कोई बात, भावना, ख्याल । ३ तत्त्वनिर्णय, मुकद्दमेकी सुनवाई और फैसला, पथार्थनिर्णय, निष्पत्ति, मोर्मांसा, सन्दिग्ध विषयमें प्रमाणादि द्वारा अर्थ-परीक्षा । किसी सन्दिग्ध विषयका तत्त्व-निर्णय करनेमें प्रमाणादि द्वारा संदेह दूर करके जो पथार्थ तत्त्व-निर्णय किया जाता है, उसे विचार कहते हैं । पथार्थ—तर्क, निर्णय, गुणा, चर्चा, संख्या, विचारणा, चर्चन, संख्यान, विचारण, चितकं, ध्यूद, ध्युद, ऊह, चितकण, प्रणिधान, समाधान । (अटार)

४ नाट्यिक लक्षणविषय । युक्तियुक्त वाक्य द्वारा जहां अप्रक्षार्यका साधन होता है, उसे विचार कहते हैं ।

(साहित्य ई। ४४७)

मन्वादि धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि राजाका चाहिये कि ये पक्षपातशून्य हो कर यादो और प्रतिवादीका विवाद सुन कर उचित विचार करें । यदि स्वयं न कर सके तो प्रतिनिधिको नियुक्त करें । उसीसे यह कार्य होगा । विवादादिको मन्वादि शास्त्रमें व्यवहार नामसे उल्लेख किया है । राजा व्यवहारका निर्णय करनेके लिये मन्त्रणाकुशल मन्त्रियोंके साथ धर्माधिकार समा (विचारालय)में प्रवेश करें । ये यहाँ पर बड़े नम्रसे उठ वा बैठ कर विचारवार्थ करें । राजा जिन सब विषयोंका विचार करेंगे, वे गठारह प्रकारके माने गये हैं, इस कारण उनका अष्टादश व्यवहारपद नाम पड़ा है । ऋणादान, निःश्रेय, प्रत्यानिधिक्य, सम्भूयसमुत्थान, दत्ताप्रदानिक, धेतनादान, सम्पिदुष्यतिक्रम, क्रयविक्रयानुगत्य, स्वामिपाल-विवाद, सोमाविवाद, धाकपाठप, दण्डपाठप, स्तैय, माहस, खोसंभ्रण, स्त्रीपुत्रधर्मविभाग और धूत ये अष्टादश पद-व्यवहार अर्थात् विचार्य विषय हैं । गहो सब ले कर विवाद उपस्थित होता है । राजा धर्मका आश्रय ले कर इन सब विषयोंका विचार करें । राजा यदि स्वयं ये सब कार्य न चला सके, तो विद्वान् ब्राह्मणको इसमें नियुक्त करें । उन विद्वान् ब्राह्मणको लोग

सभ्योंके साथ धर्माधिकारणसभामें प्रवेश कर बैठ वा उठ कर विचार करना चाहिये ।

जिस सभामें ऋक्, यजुः और सामवेद्येत्ता येमें तीन सभ्य ब्राह्मण रहते हैं, उम सभ्याको ब्राह्मसभा कहते हैं । विद्वानोंसे परिचित इस सभामें यदि अन्याय विचार हो, तो सभी सभासद पतित होते हैं । विचारकोंके नामने यदि अधर्म कर्तृक धर्म और मिथ्या कर्तृक मत्प नष्ट हो, तो विचारकमण विनष्ट होते हैं । जो मनुष्य धर्मका नष्ट करता है, धर्म भी उसको नष्ट कर डालता है । अतएव धर्म अक्षिरमणाय नहीं है । धर्मका आश्रय ले कर निरपेक्ष भावमें विचार करना उचित है ।

अन्याय विचार करनेसे जो पाप होता है, उसके ४ भागोंमेंसे एक भाग मिथ्याभियोगीके, एक भाग मिथ्यासाक्षीके, एक भाग कुछ सभासदके और एक भाग राजाके प्राप्त होता है । किन्तु जिस सभामें न्याय विचार होता है वहां राजा निष्पाप रहने हैं, तथा सभ्यगण भी पापशून्य होते हैं ।

राजा शूद्रको कभी भी विचारकार्यमें नियुक्त न करें । वेदविद्व धार्मिक ब्राह्मणका यदि समाय हो, तो गुणहीन ब्राह्मणको विचारकार्यमें नियुक्त कर सकने हैं । यदि शूद्र मर्चनशास्त्रवेत्ता और व्यवहारविद्व भू फ्यों न हो, तो भी उसे विचारकार्यमें नियुक्त न करें । जिस राजाके सामने शूद्र धर्माधिकारका विचार करता है, उसका राज्य अति शीघ्र विनष्ट होता है ।

राजाके धर्मासन पर बैठ लोकपालोंकी प्रणाम कर स्थिरचित्तसे विचार करना चाहिये । ये अर्थ और धर्म दोनोंके समन्वय कर धर्म और अधर्मके प्रति दृष्टि रख ब्राह्मणादि वर्णाश्रमसे यादो प्रतिवादीके सभी कार्य देखें । राजा विचारके समय यादो और प्रतिवादीका मनोभाव जाननेको कोजिज करें । आकार, इक्षित, गति, चेष्टा, कथावाचा तथा नेत्र और मुख विचार द्वारा आदमीका मनोमत भाव जाना जाता है । अतएव उसके प्रति लक्ष्य रखना आवश्यक है ।

विचारार्थो हो कर यदि कोई राजाके निकट उपस्थित हो, तो राजा साक्षी द्वारा उसका सच्चा मन्त्रा निर्णय करके विचार करें । जहां साक्षी नहीं रहना है, वहां शपथ

प्र या उभय विचार करमा होमा हे । (पुं० ८५०)

यादवल्गवर्माहोमा हे विचार हे, कि राजा लोम
कुल्य हो कर धर्मजात्यनुसार विज्ञान प्राप्त्योके साथ
स्वयं विचार करें । मोमासा वनावर्णनादि तथा वेदजात्यमे
मसिद्ध, धर्म जात्यविदु, धार्मिक, मत्पथादो तथा मो
मत् और मितमे पक्षगतकुल्य हे, राजा उद्दी मय प्राप्ता-
पीको तथा वनिकीची समासद बनाये । अनिवाये कार्य-
यजनः राजा यदि स्वयं समासे म आ मके, तो ये एक
मयधर्ममंड प्राप्ताजनको पहा भिज दे । पूर्वोक्त समासदुपण
लोम कायया मपयनता धर्मजात्यविदुद या साधार-
गिरुद विचार करें, तो पराजिन स्वकिकी जो दृष्ट
हुवा हे, राजा उन विचारकीमे प्रयेकको उसका दूया
दृष्ट दे ।

विचारक विचारकालमे मासो प्रमाणादि से कर
विचार करें । वादो और प्रतिपादो इन दोनो पक्षमे यदि
गयादो तो ज्ञापे तो जिनका वोट ज्यादा हो उभो पक्षको
जोन होगो, दोनो पक्षमे यदि समान मनुष्य हो, तो जो
मजिक गुणवान हे उद्दीको वाग मजा हे । साक्षिगण
जिनको लिखित मतकाको मत्प वतथाये हे, यह जयो
होमा हे और जिनको लिखित प्रमेकाके विपरीत करदि
हे उनको पराजय होतो हे । कुछ मासो यदि एक तरह
कहे और भाग पक्षीय या स्वधर्माय दूमरे दूमरे मत्पथ
गुणवान स्वकि मधया बहुम-मे लोम दूमरे तरह सादु
प्रदान कहे, तो पूर्वमासो कृतमासो होगे । विचारमे परा-
जिन स्वकिको जो दृष्ट होमा, राजा कृतमासोको उभय
दूया दृष्ट दे । प्रामाण्य यदि कृतमासो हो, तो राजा उमे
राज्यमे विचार बाहर करें ।

राजा मासो प्रमाणादि से कर धर्मजात्यनुसार
विचार करेंगे । मयमे विचार करमे से यागजागो, इन
दोनों के मपजो और पराजोमे निरपणामो होमे हे ।
(८५०१११० २ ५०) विदो विदो मत्पथ मत्पथे देगे ।
विचार (सं० पु०) विचार लिप्युत्पुत् । १ मोमासा
कादक, विचार करमेकाया । २ म्पावकर्त्त, विचार करमे
काया । ३ विचार, मय पराजो, ४ मुमय, म मय ।
विचारकालः सं० पु० । विचार क म्प । १ वर जो किनी
प्रकारका विचार करमा हो । २ वर जो अनियोग भादि

मुन कर उभय विचार करमा हो, म्पावयोग ।
विचारक (सं० पु०) १ वर जो विचार करमा करमा
हो । २ वर जो अनियोग भादि का निर्पद या विरहाय
करमा हो ।

विचारणः सं० कर्त्त०) विचार लिप्युत्पुत् । १ विचार,
मोमासा । २ विचार, मजय । इन मयकायमे धावविदु-
हन-मत्पथपरिणित म्पथमे मोमासाय तर्काकार्त्तिये
लिखा हे—

विमो न किनी मंजोते एक धर्मनिजिष्ट पक्षमे जो
मनेक प्रकारका विपरीत तर्क विवर्क उपस्थित होमा हे
उमे मजय या विचारण करते हे । यह मोन प्रकारका माय
मया हे । पहला, विरुध धर्मके ऊपर लक्ष्य म करके किनी
एक धर्मका सामग्र्य देय एक पदायोमे दूमरे पदायोका
मजय, जेमे परिहायम या मकालि भादि न देय कर
केवल लक्ष्य भादि काहणितान मद्रुता देय कर हो
उभुमे सर्वका मजय होमा हे, यह उभु हे या मयो
दुमरा, मत्पथरया किनी प्रकारके धर्मको उपमेमि दृष्टि-
मोपर न हो कर हो दूमरे पदायोमे मजय उपस्थित होमा
हे, जेमे मजय निरव हे या अनिरव उ मोमरा, वेगे एक
मयाधारण धर्म देय कर मो कही कही विवर्कका
कारण हो जाना हे, जेमे मय्य दृष्टिमीका मयाधारण
धर्म हे, यह जो जितिके मिया और वेगे पदायो मदी हे,
दमका विरुधकयमे मनुममाम म करके मजय होमा हे,
कि जिति निरव हे या अनिरव । मयया मय्याविषयण
निरव हे या अनिरव ।

३ परांरन करना, गुमना निरमा । ४ परांरन करना,
गुमना निरमा ।

विचारणा (सं० कर्त्त०) विचार-लिप्युत्पुत् म्पुत् । १
विचार, विषयना । २ मोमासाजात्य । ३ गुमने निरवे
या गुमने निरमेको किना या भाग ।

विचारणाय (सं० वि०) विचार लिप्युत्पुत् मनीदुत् ।
१ विचार्ये, विचार करके मोमय । २ मक्षिण, किनी
प्रमादित करकेही मपयमपय हो । (५०) ३ ज्ञाप ।
विचारणा (दि० क्ति०) १ विचार करना, मोमना ।
२ कृतना । ३ मया मयाका, कृत्ना ।

विचारपति (दि० पु०) वर जो किनी वदु म्पावयोगमे

बैठ कर मुकदमों आदिके फैसला करता हो, न्यायाधीश ।
 विचारभू (सं० स्त्री०) विचारालय, अदालत ।
 विचारविनोद (सं० लि०) विचार-विचिन्तय । विचार-
 णीय, विचारके योग्य ।
 विचारधान (सं० पु०) वह जिसमें सोचने समझने या
 विचारनेकी अच्छी शक्ति हो, विचारशील ।
 विचारशक्ति (सं० स्त्री०) वह शक्ति जिसकी सहायतासे
 विचार किया जाय, सोचने या मला सुरा पहचाननेकी
 शक्ति ।
 विचारशास्त्र (सं० स्त्री०) मीमांसाशास्त्र । मीमांसा देखो ।
 विचारशील (सं० पु०) वह व्यक्ति जिसमें किसी विषयको
 सोचने या विचारनेकी अच्छी शक्ति हो, विचारधान ।
 विचारशीलता (सं० स्त्री०) विचारशील होनेका भाव
 या धर्म, बुद्धिमत्ता ।
 विचारस्थल (सं० पु०) १ वह स्थान जहाँ किम्को विषय
 पर विचार होता हो । २ न्यायालय, अदालत ।
 विचाराध्यक्ष (सं० पु०) वह जो न्याय-विभागका प्रधान
 हो, प्रधान विचारक ।
 विचाराध्यक्षमामम (सं० लि०) विचारके लिये विचार-
 पतियोंका एकत्र समावेश ।
 विचारालय (सं० पु०) वह स्थान जहाँ अभियोग
 आदिका विचार होता हो, न्यायालय, कचहरो ।
 विचारिहा (सं० स्त्री०) १ प्राचीनकालको यह दासी
 जो घरमें लगे हुए फूल पीपोंकी देख-भाल तथा इसी
 प्रकारके और काम करती थी । २ यह स्त्री जो अभि-
 योग आदिका विचार करती हो ।
 विचारित (सं० लि०) विचार संज्ञानेऽन्य इति विचार
 (सदस्य संज्ञानं तारकादिभ्य इत्च्) । पा १।२।३६ इत्च्,
 वि-चर-णिच्-क्त । १ विवेचित, जिम पर विचार किया
 जा चुका हो । पर्याय—विग्न, चित्त । (भर) २ जो
 भरो विचारापान है, जिम पर विचार होनेको हो ।
 विचारो (सं० लि०) विचार कर्त्तुं शिष्टोऽस्य विचार-
 णिनि । १ विचारकर्त्ता, जो विचार करता है । २ विचरण
 दर्ता, जो इधर उधर चलता हो । ३ जिस पर चलनेके
 लिये बहुत बड़े बड़े मार्ग बने हों, जैसे पूरवो । (पु०)
 ४ कर्मण्यके एक पुत्रका नाम ।

विचार (सं० पु०) धीरुण्यके एक पुत्रका नाम ।
 (भागवत १०:६:१६)
 विचार्य (सं० लि०) वि-चर-णिच्-यत् । विचारणीय,
 जिस पर विचार करनेकी आवश्यकता हो ।
 विचार्यमाण (सं० लि०) वि-चर-णिच्-ज्ञानच् । विचार
 णीय, विचार करनेके योग्य हो ।
 विचार (सं० लि०) वि-चल-अण् । अन्वयतर, भ्रम
 राल ।
 विचालन (सं० स्त्री०) विशेषण चालन, या वि-चल-
 णिच्-द्वयट् । विशेषरूपसे चालन, अच्छी तरह हटाना
 या चराना । २ नष्ट करना ।
 विचिन्त (सं० लि०) वि-चल-णिनि । विचलनशील,
 चञ्चल ।
 विचाल्य (सं० लि०) वि-चल-ण्यत् । विचालनीय,
 विचलनके योग्य ।
 विचि (सं० पु० स्त्री०) येवेकि जलानि पृथगिय करोति
 विच (शुभ्रात् कित्) । उण् ४।१।६ इति इन् सच्च कित् ।
 घोचि, तरङ्ग, लहर ।
 विचिकित्सन (सं० स्त्री०) विचिकित्सा, सन्वेद ।
 विचिकित्सा (सं० स्त्री०) विचि-किन्त्सन्मिति वि-कित्
 सन् भ, टाप् । १ सन्वेद, अनिश्चय । २ वह सन्वेद
 जो किसी विषयमें कुछ निश्चय करनेके पहले उत्पन्न
 हो और जिसे दूर करके कुछ निश्चय किया जाय ।
 विचिकीपित (सं० लि०) पराहितेच्छायुक्त ।
 विचिन्त (सं० लि०) विचिन्तयति वि-चित् कित् ।
 विचिक् द्वारा चयनकारी । (शुक्लपत्रोः ४:२४)
 विचित (सं० लि०) वि-च-क्त । अविष्ट, जिसका
 अन्वेषण हो चुका हो ।
 विचिन्ति (सं० स्त्री०) १ विचार, सोचना । २ अनु
 सम्भान, जांचपड़ताल ।
 विचित (सं० लि०) १ अचेत, बेहोश । २ जिसका
 चित्त ठिकाने न हो, जो अपना कर्त्तव्य न समझ सकता
 हो ।
 विचित्ति (सं० स्त्री०) १ बेहोशी । २ वह अवस्था
 जिसमें मनुष्यका चित्त ठिकाने न रहे ।
 विचिरव (सं० लि०) अनुसन्धेय, विचार्ये ।

विश्विज्ञ (सं० वि०) विश्वेन ज्ञितम् । १ कर्तृत्वज्ञोविश्विज्ञः
 ज्ञितम् इति प्रथमके संज्ञा । २ हिमयोः विश्वो प्रकाशो
 विश्वज्ञाना इति, विश्वज्ञान । ३ स्वप्न, सुन्दर । ४ जितके
 द्वारा ज्ञतमे विश्वो प्रकाशका भावार्थे उपक्रम इति, विश्विज्ञ
 वा विश्विज्ञ बलेश्वरान् ।

(पु०) शिवमनुके एक पुत्रहा नाम । (भा० सं० देव-
 पु० ३३०३१) ६ अमोक्षपुत्र । ७ जितकपुत्र । ८ मुञ्जपुत्र,
 मोक्षपुत्र । ९ अर्वाङ्गुलाश्रितेय । यह अमङ्गुल इम
 नामव होता है, जब किमो काजका मित्रिके जिये किमो
 प्रकाशका जन्मा प्रवत्ता कह्येका उपदेश दिया जाता है ।
 उदाहरण—

उत्पत्तिके जिये प्रणाम करना है, शोचनके जिये जो उम
 स्थापन करना है, सुखके जिये दुःखमोक्ष करना है, इसजिये
 संघर्षके जिये और कीज मुझे है ? यहाँ उत्पत्तिके जिये
 प्रणाम वा भज्य होता तथा सुखके जिये दुःखमोक्ष और
 शोचनके जिये प्रणामनाम अमिजयित कारविश्विके जिये
 विद्वत् विषयीका वर्णन हुआ है, इस कारण यहाँ
 विश्वामङ्गुल हुआ । जहाँ येमे विद्वत् विषयका वर्णन
 होगा, यहाँ यह अमङ्गुल होता है ।

विश्विजक (सं० पु०) विश्विज्ञानि विश्वानि यमिमन्, बहु-
 सोढी जन् । १ भूर्वाङ्गुल, भोजप्रयत्नका पुत्र । (मन्त्रि०)
 २ जितकपुत्र । ३ अमोक्षपुत्र । विश्विज ज्ञायो जन् ।
 ४ विश्विज ।

विश्विजकम (सं० वि०) विश्विज्ञः कथा यत्र । भावार्थ-
 कथायुक्त, विश्विज्ञ कानीमे मारा हुआ ।

विश्विजता (सं० स्त्री०) विश्विजक्य ज्ञाया जन् टाप् ।
 १ विश्विजका भाव वा धर्म । २ संवाचितमे होयेका भाव ।

विश्विजदेह (सं० पु०) विश्विज्ञा देहा यन्त्र । मेष, वादल ।
 २ ज्ञाना वर्णदेह, संवाचितमे अमोक्ष । ३ अमङ्गुलके अमोक्ष ।

विश्विजक्य (सं० वि०) विश्विज्ञं क्यं यत्र । भावार्थ-
 काविसिद्ध, भावार्थदेहा ।

विश्विजक्योर् (सं० वि०) विश्विज्ञं क्यंति द्वय विजि ।
 ज्ञानार्थं वर्णममोक्ष, अमिजक्योर् ।

विश्विजक्योर् (सं० पु०) विश्विज्ञानि कोषोर्ति कथना
 कथनार्थमेव शास्त्रविशेष, भावमनुसङ्गके पुत्र । भावार्थकथने
 विश्व है, कि कृदातीमेव शास्त्र भावमनुमे मङ्गुलके विश्व

दिया । मङ्गुलके नाममे मोक्ष उपक्रम हुए । यह विश्व
 शास्त्रा भावमनु मङ्गुलकथने कथाभावरूप पर मुण्ड हो गये ।
 अमङ्गुलके स्व विज्ञाका अमिजय भावमनु हो गया, जब ज्ञानो
 मे भावार्थके अमङ्गुलके प्रतिभा कर मङ्गुलकथने विज्ञाका
 विवाद करा दिया । मङ्गुलकथने मङ्गुलकथने नामके अमिज
 थी । मङ्गुलकथने विज्ञाकथने पहले ही परामर्शमे नामे रह
 चुका था और इसमे द्वैवाचनका अर्थ हुआ था । पीछे
 भावमनुमे मङ्गुलके विज्ञाकथने और विश्विज्ञकथने नामके ही
 पुत्र उपक्रम हुए थे । विज्ञाकथने तो छोटी स्ववर्णामे हो
 पर मङ्गुलके द्वारा मारा गया था, पर विश्विज्ञकथने रहने
 होने पर राश्याविचार गया था । इसमे काश्मिराकथने
 अमिजका और आशानिका नामके ही कथाओंके साथ
 विवाद किया । किन्तु मोक्षे हो दिनों बाद निमग्नान
 मङ्गुलकथने ही इसको मङ्गुलकथने ही । (विश्विज्ञकथनेके निमग्न-
 मङ्गुल पर ज्ञाने पर ज्ञितमे भावमनुका धर्म शोचन न ही,
 इस उपक्रमे मङ्गुलकथने अमोक्ष पहले पुत्र द्वैवाचनके
 पुत्राया और उमे विश्विज्ञकथनेके विषय (स्वयंके साथ
 निमोक्ष करनेका कहा । मङ्गुलकथने द्वैवाचनके पुत्राया और
 वाच्य नामके ही पुत्र उपक्रम किये थे ।

(भा० सं० अर्धव० ६५)

विश्विज्ञक्योर्वा (सं० स्त्री०) विश्विज्ञक्योर्वा मङ्गुलकथने ।
 मङ्गुलकथने ।

विश्विज्ञाना (सं० स्त्री०) यह स्थान जहाँ ज्ञानके प्रकाशके
 विश्विज्ञ ज्ञानार्थका अमङ्गुल हो, भावार्थकथने ।

विश्विज्ञा (सं० स्त्री०) विश्विज्ञं ज्ञानाविषय वर्णममोक्षकथा
 इति अर्था भावार्थकथनाद्व्युत्पत्तिवा टाप् । १ श्रुतीशास्त्र, अमोक्ष
 कथायुक्त । २ एक रागिनी । इमे कृष्ण शोचन मेषव शोचनी
 पांच श्रुतीशास्त्रेमे एक और कृष्ण शोचन शिवल, बारी, शीरी
 और उपशोचने मेषके चमो हूँ मङ्गुलकथनेके अमोक्ष है ।

(वि०) ३ विश्विज्ञकथनेविज्ञाना, ज्ञान विज्ञान ।

विश्विज्ञान् (सं० वि०) विश्विज्ञानि अङ्गुलि यन्त्र । १ मङ्गुल-
 मोक्ष । २ ज्ञान, भाव । ३ भावार्थके अमोक्ष ।

विश्विज्ञान्य (सं० स्त्री०) विश्विज्ञा, विश्विज्ञो ।

विश्विज्ञानोर् (सं० पु०) विज्ञाकारविज्ञोर् ।

(भावार्थकथने १७२१)

विश्विज्ञान (सं० वि०) विश्विज्ञं यत्र ज्ञानार्थके भावार्थके

द्विरावृत्तम् । १ नानावर्णयुक्त, रंग-विरंगा । २ आश्रयार्थ-जनक ।

विचिन्तन (सं० क्लृ०) चिन्ता करना, सोचना ।

विचिन्तनीय (सं० लि०) वि-चिन्ति-अनीयर् । विचिन्ति-लभ्य, जो चिन्ता करने या सोचने योग्य हो ।

विचिन्ता (सं० स्त्री०) विशेष-प्रकारसे : चिन्ता, सोच-विचार ।

विचिन्तित (सं० लि०) १ विशेष रूपसे चिन्तित । २ विशेष चिन्ताके विषयोभूत ।

विचिन्तितृ (सं० लि०) विचिन्ताक ।

विचिन्त्य (सं० लि०) वि-चिन्ति-यत् । १ विचिन्तनीय, जो विशेषरूपसे चिन्तन करने या सोचनेके योग्य हो । २ जिसमें किसी प्रकारका सम्बन्ध हो, सम्बन्धि ।

विचिन्त्यमान (सं० लि०) वि-चिन्ति-जानच् । जो चिन्तित होता है, जिसका विचार किया जा रहा है ।

विचिन्त्यत्क (सं० लि०) वि-चिन्ति-यत्कृ । विचिन्तनीय, जो चिन्तन करनेके योग्य हो ।

विचिलक (सं० पुं०) प्राणहर कौटम्बेद, सुधृतके अनुसार एक प्रकारका जड़रत्न कोड़ा ।

विचि (सं० स्त्री०) विचि (कृत्कारादिति) स्त्री । तरङ्ग, लहर ।

विचिरिन् (सं० लि०) चोरहीन, यत्नहीन ।

विचूर्णन (सं० क्लृ०) भवधूलन, अच्छी तरह चूर करना ।

विचूर्णित (सं० लि०) कण्डविकण्डित, जो चूरचूर किया गया हो ।

विचूर्णीभू (सं० स्त्री०) चूर्णीभू ।

विचूलन (सं० लि०) चूड़ापारो ।

विचुत् (सं० स्त्री०) विमुक्त, जिसे मुक्तिदान किया गया हो । (भृक्-सम्प्रसार)

विचेतन (सं० लि०) १ अचेतन, बेहोश । २ विवेकहीन, जिसे भले बुरेका ज्ञान न हो ।

विचेतयितृ (सं० लि०) भ्रष्टान, भयोध ।

विचेता (सं० पुं०) विचेतस् देशो ।

विचेत् (सं० लि०) भयोध, भ्रष्टान ।

विचेतव्य (सं० लि०) वि-चित्त-लभ्यत् । विचयनीय, जो पृथक् पृथक् भावमें एक एक कर सम्बद्ध किया जाय ।

विचेतस् (सं० लि०) विगतं विच्छद् या चेतो यस्य । १ विगतचित्त, जिसका चित्त ठिकाने न हो । २ विच्छद् चित्त, दुष्टचित्त । पर्याय—दुर्गमस्, अन्तर्गमस्, विगमस् । (हेम)

३ विशिष्ट ज्ञान हेतुभूत, जिससे विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न हो । ४ विशिष्ट ज्ञान, जिसे किसी विषयका विशेष ज्ञान हो । ५ अज्ञान, बेहोश । ६ दुष्ट, पाजी । ७ मूर्ख, बेवकूफ ।

विचेय (सं० लि०) वि-चि-यत् । विचयनीय, अभ्येयण करनेके योग्य ।

विचेष्ट (सं० लि०) १ चेष्टारहित, जिसमें किसी प्रकारकी चेष्टा न हो, जो हिलता डलता न हो । २ विच्छद् चेष्टाशून्य, जो विच्छद् चेष्टा करता हो ।

विचेष्टन (सं० क्ली०) विच्छद् चेष्टा । पीड़ा आदिसे बुरी चेष्टा करना, इधर उधर लोटना, तड़पना ।

विचेष्टा (सं० स्त्री०) बुरी या शराब चेष्टा करना, मुँह बनाना या हाथपैर पटकना ।

विचेष्टित (सं० लि०) विचेष्टेण चेष्टितं गतिर्वस्य । १ विगत । विशेषेण चेष्टितः इतिन इति । २ विशेष चेष्टायुक्त । विगतं चेष्टितमस्वेति । ३ चेष्टाशून्य । ४ अभ्येयित । (क्ली०) वि-चेष्ट-भाषे क्तः । ५ विशेष चेष्टा । ६ विवर्त्तन, झगड़परिवर्त्तन । ७ व्यापार, क्रिया ।

विच्छन्नक (सं० पुं०) सुनिषण्णक शाक, सुसनीका साग ।

विच्छन् (सं० पुं०) १ प्रासाद, महल । २ मन्दिर, देवालय ।

विच्छन्क (सं० पुं०) विशिष्टश्चोडोऽभिप्रायोऽन्य, विशिष्टेच्छानिमित्तो वा इति वि-च्छन्-स्वाध कन् । देवालय, देवमन्दिर । अमरदोकामे भरतने लिखा है, कि दो या तीन तलेका जो मकान बनाया जाता है, उसे विच्छन्क कहते हैं ।

विच्छन्दस् (सं० लि०) १ छन्दोहीन । (स्त्री०) २ छन्दो-वृत्तमेद ।

विच्छर्द (सं० पुं०) समूह, राशि ।

विच्छर्दक (सं० पुं०) विच्छन्दक देशो ।

विच्छर्दिका (सं० पुं०) यमन, कै, बल्लो ।

विच्छर्द (सं० पुं०) वेतसलना, वेतकी सता ।

विष्णुयाम (सं० खी०) विष्णुयामा। मनासे लक्ष्मणाय
 मनाय छाया कर्तोषे क्वात् सा येन् वृत्तां मभरन्वितो
 क्वात्। मना योत्सां पतिस्त्वं छाया विष्णुयामिति। (भरत)
 १ पतिस्त्वो छाया। (पु०) विनय्या छाया कालिदेव
 इति। २ मति। (भरत) ३ छायाया मनाय।

(वि०) विनया छाया दध्य। ४ छायायदित,
 जिनको छाया न पदमो हो। प्रायः वेग मना मना
 है, कि देवनाभो, क्षमयो, भूमो क्षीर प्रेयो मारिको छाया
 नरो पदमो। ५ कालिदाहित, भीहीन।

विष्णुयामा (सं० खी०) कालिदाहता।
 (कव्यादीन् १६।१३३)

विष्णुयामि (सं० खी०) विष्णु-किन्। १ मङ्गलाय,
 रंगो मारिमे जरीरको विजित करना। २ विष्णुदे,
 मङ्गलाय। ३ दारमेद, एक प्रकारका दार। ४ पेश,
 विनाय। ५ मेडापधि, परको क्षाया। ६ वैविना,
 विनयना। ७ विप्रौषा स्वामादिः मन्त्रद्वारविद्येय,
 माहितमे एक दाय विनयने स्वा योक्ते मङ्गलारी पुदयको
 मोहित करनेको योग्य करना है। ८ समरदार। ९ वैविज्य
 विनयना। (पु०) १० कवाय, कीयेका पेड़। ११ काट कर
 मजग का टुकड़ करना। १२ मुटि, कमी। १३ पेश-
 भूया मारिमे होमेनाको लापरवाही या बेवैगपन।
 १४ कविनामि मति।

विष्णुयाम (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विमक, जिनका
 भवने मून मङ्गके साथ वेरि संबंध न रह गया हो।
 २ मृगय, मुदा। ३ जिनका विष्णुदे हुआ हो। ४ जिनका
 मजग हो गया हो। ५ कुटि-ह।

(पु०) १ कायदेगमेदः ७ मजोर मजोमज, बहुत
 मङ्गला साथ आ करनेसे हो गया हो।

विष्णुयामि (सं० खी०) विष्णु-क। अनुविता, अनु
 र्वादिना।

विष्णुयामि (सं० खी०) वि-विष्णु-क। विष्णुदेवता,
 अलग अलग करनेवाला।

विष्णुदे (सं० पु०) वि-विष्णु-क। १ विरोध, विरट।
 २ काट वा छोड़ कर मजग करनेको क्रिया। ३ मजग
 कोसंग दूर करना, निजसाया न रह जाना। ४ विनी
 प्रकार मजग वा टुकड़ टुकड़ करना। ५ मजग, म-
 वादी। ६ पुनरुक्ता मजग वा मजग, परिष्ठात्।

७ कोसंगे पदमेवाया कविनाका मजग, मजग
 ८ विनयामि मति। ९ मजग।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विष्णु
 काट, विष्णुदे करनेवाला। २ जो काट वा छोड़ कर
 मजग करना हो। ३ विनायक, विनाय करनेवाला।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। विष्णु
 काट वा छोड़ कर मजग करनेको क्रिया, मजग करना।

२ मजग करना, बरबाद करना।

विष्णुदेगीय (सं० खी०) १ जो काट कर मजग करने
 योग्य हो। २ जो विष्णुदे करने योग्य हो।

विष्णुदे (सं० खी०) विष्णुदे मजग मजग विष्णु
 मति। विष्णुदेकारक, विष्णुदे करनेवाला।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। विष्णुदे मजग, जो
 काटने वा विनाय करनेसे योग्य हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय। २ जो
 कर मजग मीट विनाय प्रकार मजग मजग मजग मजग
 वि-विष्णु-क। ३ जो जोयित मजगमे मजग कर मजग
 मजग हो। ४ जो मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विष्णुदे (सं० खी०) वि-विष्णु-क। १ विनय, विनाय
 मजगमे मजग मजगमे मजग वा मजग मजग हो।

विजयविल (सं० क्ली०) पट्ट, कोचड़ ।
 विजय (सं० पु०) वि-जि-भावे भच् । १ जय, जीत, पराजयका उल्टा । हिन्दुओं में इस शब्दका व्यवहार खूब लिखने होता है । २ अर्जुन । अर्जुनके अनेक नाम हैं जिनमेंसे एक नाम विजय है । महाभारतके विराट-पर्वमें लिखा है, कि विराट्-राजकुमार उत्तर जय गो-रक्षाके त्रिवे कीरवोंके साथ युद्ध करने गये, तब अर्जुन वृद्ध-मन्त्रारूपमें उनके सारथी हुए थे । कार्यगति देख कर वृद्धमन्त्रालाने उत्तरके अपना परिचय दे दिया । उत्तरने अर्जुनके सभी नामोंको सार्थकता पूछी । अर्जुनने अपने अन्त्याय नामोंको उत्पत्तिका परिचय दे कर इस विजय नामका ऐसा अर्थ लगाया है,—'मैं रणदुर्मंद शत्रु सेनाओंके संप्रामर्श-जाना हूँ, किन्तु बिना उन्हें परास्त किये लौटता नहीं हूँ, इसीलिये सबोंने मेरा नाम विजय रखा है ।'
 विजयविल-विजय-नाटकमें बड़ी ही सार्थकताके साथ अर्जुनके विजयनामका उल्लेख देखनेमें आता है ।
 ३ इकोनवे तीर्थद्वारके पिता । ४ जिनबलमेद, जैनोंके शुद्धबलोंसे एक । ५ विमान । ६ यम । ७ कल्हिके पुत्र । (कल्हिकपुराण १३ अ०)
 ८ भैरवधंशीय कहराजपुत्र । ये काशीराज नामसे विख्यात थे । प्रसिद्ध छाण्डवयन इन्होंने ही लगवाया था । कालिकापुराणमें लिखा है, कि सुमतिके पुत्र कहरा और कल्पके पुत्र विजय थे । विजयने राजा हो कर प्रथम प्रतापसे पार्वियोंको परास्त किया । भारतीय सभी राजपुत्र उनके हाथ आये । पीछे इन्द्रके आदेशसे इन्होंने नौ योजनविस्तृत छाण्डवयन प्रस्तुत किया । इसी वनको अनिको तृप्तिके लिये अर्जुनने जलाया था । ९ विष्णुके एक अनुचरका नाम । (कालिकापुराण ६० अ०)
 १० बुद्धके एक पुत्रका नाम । ११ जयके एक पुत्रका नाम । १२ सञ्जयके एक पुत्रका नाम । १३ जयद्रथके एक पुत्रका नाम । १४ भाग्यधंशीय एक राजा । १५ सिंहलमें आर्यसभ्यताप्रवर्धक एक राजकुमार । विजयविंश देखो । १६ शुभ मुहूर्त्तमेद । १७ साठ संवत्सरमें पहला संवत्सर । १८ भोजन करना, खाना । १९ एक प्रकारका छन्द । वह के शयके अनुसार सर्वथैका मत्स्यवद् नामक मेद है ।

विजयक (सं० क्लि०) विजये कुशलः विजय-कर । विजेता, सदा जीतनेवाला ।
 विजयकण्टक (सं० पु०) विजये कण्टक इय । विजय-विघ्नहारी, विजयमें बाधा देनेवाला ।
 विजयकुञ्जर (सं० पु०) विजयाय यः कुञ्जरः । १ राज-याह्य हन्ती, राजाकी सवारीका हाथी । २ युद्धहत्ती, लड़ाईके मैदानमें जानेवाला हाथी ।
 विजयकेतु (सं० पु०) १ विजयध्वज, जयपताका । २ राजपुत्रमेद ।
 विजयक्षेत्र (सं० क्लि०) १ विजयस्थल । २ उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।
 विजयगढ़—युक्तप्रदेशके अलीगढ़ जिलान्तर्गत एक कृषि-प्रधान नगर । भूपरिमाण ४१ एकड़ है । यह अली-गढ़ शहरसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । यहां स्कूल, डाकघर और एक प्राचीन दुर्ग है । इनके सिवा कर्नल गाईनका स्मृतिस्तम्भ भी दिखाई देता है ।
 विजयगुप्त—पूर्ववर्णके एक प्रसिद्ध कवि । पद्मपुराण या मनसाकी पांचाली रच कर ये पूर्ववर्णमें बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं ।
 विजयचन्द्र—कन्नौजके राजमेद । कनौज देखो ।
 विजयचक्र (सं० क्लि०) विजयाय चक्रम् । ज्योतिषोक्त चक्रविशेष । इस चक्रके अनुसार नामोच्चारण करनेसे जय पराजयकी उपलब्धि होती है । नामोच्चारणका क्रम इस प्रकार है—भ्यास प्रवेशकालमें लन्संज्ञक वर्ण (य, फ, य, म, म, झ, झ, र, ई, उ, ऊ, ष्ट, ष्ट, ल, ल, प, चे, भो, भो) या स्वरके साथ घोषसंज्ञक वर्ण (ग, घ, ङ, ज, ञ, झ ; ङ, ट, ण ; व, म, म) का नाम उच्चारण करनेसे जय भीरु भ्यासनिर्गमकालमें अलन्संज्ञक वर्ण (य, व, र, ल, ह,) तथा अघोषमंज्ञक वर्ण (क, ख, ष, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ज, य, म) का नाम उच्चारण करनेसे पराजय होती है । (गरुडविजयचर्चास्वरोदय)
 विजयचूर्ण (सं० क्लि०) अर्श रोगका एक औषध । मस्तुत प्रणाली—सोंठ, पोपल, काली मिर्च, आमलकी, यवहार, हर्षिद्रा, दाकहरिद्रा, चर्द, चिरायता, इन्द्रिय, चिताका मूल, विजयबन्द, सोर्षा, पञ्चलवर्ण, पोपलमूल, वेरसोंठ और यमानो इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण कर समान

विच्छाय (सं० श्लो०) पक्षिणां छाया। समासे पृथ्व्यन्तात् परात् छाया फलोच्चे स्यात् सा चेत् वृहणां सम्बन्धिनी स्यात्। यथा घोषां पक्षिणां छाया विच्छायमिति। (भरत) १ पक्षियोंकी छाया। (पु०) विशिष्टा छाया कान्तिर्यस्य इति। २ मणि। (भरत) ३ छायाका अभाव।

(त्रि०) विगता छाया यस्य। ४ छायारहित, जिसकी छाया न पड़ती हो। प्रायः ऐसा माना जाता है, कि देयताओं, दानवीं, भूतों और प्रेतों आदिकी छाया नहीं पड़ती। ५ काम्तिरहित, श्रोहीन।

विच्छायता (सं० स्त्री०) कान्तिहीनता।

(क्यावरित् १६।११३)

विच्छित्ति (सं० स्त्री०) वि-छिद्-क्त्विन्। १ अङ्गराग, रंगों आदिसे शरीरको चित्रित करना। २ विच्छेद, अलगाय। ३ हारमेद, एक प्रकारका हार। ४ छेद, विनाश। ५ मोटावधि, घरकी दीवार। ६ वैचित्र्य, विचित्रता। ७ खियोंका स्वाभाविक अलङ्कारविशेष, साहित्यमें एक हाव जिसमें स्त्री छोड़े शृङ्गारसे पुष्यको मोहित करनेकी चेष्टा करती हैं। ८ चमत्कार। ९ वैशिष्ट्य, विशिष्टता। (पु०) १० कपाय, क्षीयका पेड़। ११ काट कर अलग या टुकड़े करना। १२ लुटि, कमौ। १३ घेप-भूया आदिमें होनेवाली लापरवाही या बेदेगापन। १४ कवितामें यति।

विच्छिन्न (सं० त्रि०) वि-छिद्-क्त्विन्। १ विभक्त, जिसका अपने मूल अङ्गके साथ कोई संबंधन रह गया हो। २ पृथक्, छुदा। ३ जिसका विच्छेद हुआ हो। ४ जिसका अन्त हो गया हो। ५ कुटिल।

(पु०) ६ बालरोगमेद। ७ गमौर सद्योमण, बहुत गहड़ा चाय जो कटनेसे हो गया हो।

विच्छुरित (सं० त्रि०) वि-च्छुर-क्त्विन्। अनुलित, अनु-रक्षित।

विच्छेत् (सं० त्रि०) वि-छेद्-त्त्विन्। विच्छेदकर्ता, अलग अलग करनेवाला।

विच्छेद (सं० पु०) वि-छिद्-क्त्विन्। १ वियोग, विरह। २ काट या छेद कर अलग करनेकी क्रिया। ३ क्रम या बीचसे दूट जाना, सिलसिला न रह जाना। ४ किसी प्रकार अलग या टुकड़े टुकड़े करना। ५ नाश, बर-बाही। ६ पुस्तकका प्रकरण या अध्याय, परिच्छेद।

७ बीचमें पड़नेवाला कविताका स्थान, अवकाश। ८ कवितामें यति। ९ छेप।

विच्छेदक (सं० त्रि०) वि-छिद्-क्त्विन्। १ विच्छेद-कारक, विच्छेद करनेवाला। २ जो काट या छेद कर अलग करता हो। ३ विभाजक, विभाग करनेवाला। विच्छेदन (सं० श्लो०) वि-छिद्-क्त्विन्। विच्छेद, काट या छेद कर अलग करनेकी क्रिया, अलग करना। २ नष्ट करना, बरबाद करना।

विच्छेदगीय (सं० त्रि०) १ जो काट कर अलग करनेके योग्य हो। २ जो विच्छेद करनेके योग्य हो।

विच्छेदी (सं० त्रि०) विच्छेत् शीलं यस्य वि-छिद्-क्त्विन्। विच्छेदकारक, विच्छेदन करनेवाला।

विच्छेद्य (सं० त्रि०) वि-छेद्-यत्। विच्छेदके योग्य, जो काटने या विभाग करनेके योग्य हो।

विच्छ्युत् (सं० त्रि०) वि-च्छ्यु-क्त्विन्। १ विगत। २ जो बट कर अथवा और किसी प्रकार इधर उधर गिर पड़ा हो। विच्छ्युत् क। ३ जो जोवित अङ्गमेंसे काट कर निकाला गया हो। ४ जो अपने स्थानसे गिर या हट गया हो।

विच्छ्युति (सं० स्त्री०) वि-च्छ्यु-क्त्विन्। १ वियोग, किसी पदार्थका अपने स्थानसे हट या गिर पड़ना। २ गर्मगत, गर्मका गिर जाना।

विजग्ध (सं० त्रि०) छाया हुआ, निगला हुआ।

विजङ्घ (सं० त्रि०) १ जिसकी जड़िं पट गई या न हो। २ जिस गाड़ोंमें धुरे और पहिये आदि न हों।

विजट (सं० त्रि०) जटा-रहित, जटाशून्य।

विजन (सं० त्रि०) विगतो जनो यस्मात्। निजन। पर्वथ-विधिक, छत्र, नागलाक, रहा, उपायु।

विजन (सं० पु०) हथा करनेका पंखा, बीजन।

विजनता (सं० स्त्री०) जनशून्यता, एकाग्रता का भाव।

विजनन (सं० श्लो०) वि-जन-क्त्विन्। प्रसव, जनन करनेकी क्रिया।

विजग्मन् (सं० त्रि०) विजद् जग्मन् यस्य। १ जरम, वेगला। २ विरहजग्म। (पु०) ३ वर्णसङ्कटाति भेद। ४ यह व्यक्त जो जाति-व्युत्तर कर दिया गया हो।

विजन्त्या (सं० स्त्री०) गर्माधारिणी, यह स्त्री, जो प्रसव करनेकी हो।

विजयपिल (सं० क्ली०) पट्ट, कोचड़ ।
 विजय (सं० पु०) । विजि-भावे अच् । १ जय, जीन,
 पराजयका उल्टा । दिग्दर्शमें इस शब्दका व्यवहार क्ली
 भिन्नमें होता है । २ अर्जुन : अर्जुनके अनेक नाम
 हैं जिनमेंसे एक नाम विजय है । महाभारतके विराट्-
 पर्वमें लिखा है, कि विराट्पराजकुमार उत्तर जब गो रक्षार्थके
 त्रिभे कीरवोंके साथ युद्ध करने गये, तब अर्जुन वृह-
 स्मलारूपमें उनके सारथी हुए थे । कार्यगति देख कर
 वृहस्मलाने उत्तरके अपना परिचय दे दिया । उत्तरने
 अर्जुनके सभी नामोंको सार्थकता पूछी । अर्जुनने
 अनेक अन्याय नामोंको उदाहरण परिचय दे कर इस
 विजय नामका ऐसा अर्थ लगाया है,—'मैं रणदुर्गद
 शत्रु सेनाओंके संप्राममें जाता हूँ, किन्तु बिना उन्हें
 परास्त किये लौटता नहीं हूँ, इसीलिये सबोंने मेरा नाम
 विजय रखा है ।'

विजयपिन-विजय-नाटकमें बड़ी ही सार्थकताके साथ
 अर्जुनके विजय नामका उल्लेख देखनेमें आता है ।
 ३ इक्षोमये तीर्थङ्करके पिता । ४ जिनबलमेद, जैनों-
 के शुद्धबलोंमेंसे एक । ५ विमान । ६ यम । ७ कल्पिके
 पुत्र । (कल्पिपुराण १३ अ०)

८ भैरववंशीय कल्पराजपुत्र । ये काशीराज नामने
 विजयपिन थे । प्रसिद्ध काण्डवयन इन्होंने ही लगवाया
 था । कालिकापुराणमें लिखा है, कि सुमनिके पुत्र
 कल्प और कल्पके पुत्र विजय थे । विजयने राजा हो
 कर प्रथम प्रतापसे पार्लियोंको परास्त किया । भारतीय
 सभी राज्य उनके हाथ आये । पीछे इन्द्रके आदेशसे
 इन्होंने भी योजनविस्तृत काण्डवयन प्रस्तुत किया ।
 इसी वनकी अनिकी तृप्तिके लिये अर्जुनने जलाया था ।
 ९ विष्णुके एक अनुचरका नाम । (कालिकापुराण ६० अ०)

१० सुज्यके एक पुत्रका नाम । ११ जयके एक
 पुत्रका नाम । १२ सञ्जयके एक पुत्रका नाम । १३
 जयद्रथके एक पुत्रका नाम । १४ धामध्रवंशीय एक
 रामा । १५ सिंहालमें आर्यसम्भवापराजका एक राज-
 कुमार । विजयवंश देखो । १६ शुभ मुहूर्त्तमेद । १७
 साठ संवत्सरमें पहला संवत्सर । १८ भोजन करना,
 खाना । १९ एक प्रकारका छन्द । यह केशवके अनु-
 सार सबैयका मलययद नामक मेद है ।

विजयक (सं० लि०) विजये कुण्डलः विजय-कर । विजेता,
 सदा जीतनेवाला ।

विजयकण्टक (सं० पु०) विजये कण्टक इय । विजय-
 विघ्नकारी, विजयमें बाधा देनेवाला ।

विजयकुञ्जर (सं० पु०) विजयाय या कुञ्जराः । १ राज-
 याह्य हन्तो, राजाकी सवारोका हाथी । २ युद्धहन्तो,
 लड़ाईके मैदानमें जानेवाला हाथी ।

विजयकेतु (सं० पु०) १ विजयध्वजा, जयपताका ।
 २ राजपुत्रमेद ।

विजयक्षेत्र (सं० क्ली०) १ विजयस्थल । २ उड़ीसाके
 अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।

विजयगढ़—युक्तप्रदेशके अजमेरगढ़ जिलान्तर्गत एक कृषि-
 प्रधान नगर । भूपरिमाण ४१ एकड़ है । यह अजमेर-
 गढ़ शहरसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । यहाँ
 स्कूल, डाकघर और एक प्राचीन दुर्ग है । इनके सिवा
 कर्नल गार्डेनका स्मृतिस्तम्भ भी दिखाई देता है ।

विजयगुप्त—पूर्वावृद्धके एक प्रसिद्ध कवि । पद्मपुराण या
 मनसाकी पांचाली रच कर ये पूर्वावृद्धमें बहुत प्रसिद्ध
 हो गये हैं ।

विजयचन्द्र—कन्नौजके राजमेद । कन्नौज देखो ।

विजयचक्र (सं० क्ली०) विजयाय चक्रम् । ज्योतिषोक्त
 चक्रविशेष । इस चक्रके अनुसार नामोच्चारण करनेसे
 जय पराजयकी उपलब्धि होती है । नामोच्चारणका क्रम
 इस प्रकार है—श्यास प्रवेशकालमें लन्संज्ञक वर्ण
 (य, फ, ब, म, म, झ, भा, र, ह, उ, ऊ, ष, प्र, ल, ल, प, च, झ, झी) या स्वरके साथ घोषसंज्ञक वर्ण (ग, घ, ङ, ज, झ, ञ ; ढ, ढ, ण ; व, म, म) का नाम उच्चारण
 करनेसे जय और श्यासनिर्गमकालमें अलन्संज्ञकवर्ण
 (य, य, र, ल, ह,) तथा अधोपसंज्ञकवर्ण (क, ख, न, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ज, य, स) का नाम उच्चारण
 करनेसे पराजय होती है । (नरपतिजयचर्यास्वरोद०)

विजयचूर्ण (सं० क्ली०) मर्त्य रोगका एक औषध । प्रस्तुत
 प्रणाली—सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आमलकी, यवक्षार,
 हरिद्रा, दाण्डहरिद्रा, चर्द, चिरायता, इन्द्रिय, घिताका मूल,
 विजयवन्द, सोर्षा, पञ्जवर्षण, पीपलमूल, बेलसोंठ और
 यमानो इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण कर समान

विच्छाप (सं० षडो०) पक्षिणां छाया। समासे पच्छयन्तात् परात् छाया पलोपे स्वात् सा चेत् बहुनां सम्बन्धिनी स्वात्। यथा योषां पक्षिणां छाया विच्छायमिति। (भरत) १ पक्षियोंकी छाया। (पु०) विशिष्टा छाया कान्तिर्यस्य इति। २ मणि। (भरत) ३ छायाका अभाव।

(त्रि०) विगता छाया यस्य। ४ छायारहित, जिसकी छाया न पड़ती हो। प्रायः ऐसा माना जाता है, कि देवताओं, दानवों, भूतों और प्रेतों आदिकी छाया नहीं पड़ती। ५ कान्तिरहित, शोहीन।

विच्छायता (सं० स्त्री०) कान्तिहोन्ता।

(कथावर्ति १६।११३)

विच्छित्ति (सं० स्त्री०) वि-च्छिद्-क्तिन्। १ अङ्गराग, रंगों आदिले शरीरको चित्रित करना। २ विच्छेद, अलगाय। ३ हारमेद, एक प्रकारका हार। ४ छेद, विनाश। ५ गोहावधि, घरकी दीवार। ६ वैशिश्र, विचित्रता। ७ स्त्रियोंका स्वभाविक अलङ्कारविशेष, साहित्यमें एक हाथ जिसमें स्त्री जोड़े शृङ्गारसे पुरुषको मोहित करनेकी चेष्टा करती हैं। ८ चमत्कार। ९ वैशिष्ट्य, विशिष्टता। (पु०) १० कपाय, फीकेका पेड़। ११ काट कर अलग या टुकड़े करना। १२ लुटि, कमी। १३ घेप-भूया आदिमें होनेवाली लापरवाही या बेदेगापन। १४ कथितामें यति।

विच्छिन्न (सं० त्रि०) वि-च्छिद्-क। १ विभक्त, जिसका अपने मूल अङ्गके साथ कोई संबंधन रह गया हो। २ पृथक्, जुदा। ३ जिसका विच्छेद हुआ हो। ४ जिसका अन्त हो गया हो। ५ कुटिद्र।

(पु०) ६ बालरोगमेद। ७ गभीर सघोषण, बहुत गहवा घाव जो कटनेसे हो गया हो।

विच्छुरित (सं० त्रि०) वि-च्छुर-क्त। अनुचित, अनु रक्षित।

विच्छेत् (सं० त्रि०) वि-च्छेद्-त्त्च्। विच्छेदकसां, अलग अलग करनेवाला।

विच्छेद (सं० पु०) वि-च्छिद्-घञ्। १ विभाग, विरह। २ काट या छेद कर अलग करनेकी क्रिया। ३ कम या शीघ्रसे टूट जाना, सिलसिला न रह जाना। ४ किसी प्रकार अलग या टुकड़े टुकड़े करना। ५ नाश, बर्बादी। ६ पुस्तकका प्रकरण या अध्याय, परिच्छेद।

७ बीजमें पड़नेवाला कविताका स्थान, अथकात। ८ कथितामें यति। ९ छेप।

विच्छेदक (सं० त्रि०) वि-च्छिद्-ण्वल्। १ विच्छेद-कारक, विच्छेद करनेवाला। २ जो काट या छेद कर अलग करता हो। ३ विभाजक, विभाग करनेवाला।

विच्छेदन (सं० षडो०) वि-च्छिद्-ण्वट्। विच्छेद, काट या छेद कर अलग करनेकी क्रिया, अलग करना। २ नष्ट करना, बरबाद करना।

विच्छेदनीय (सं० त्रि०) १ जो काट कर अलग करनेके योग्य हो। २ जो विच्छेद करने योग्य हो।

विच्छेदी (सं० त्रि०) विच्छेत् जीलं यस्य वि-च्छि-णिनि। विच्छेदकारक, विच्छेदन करनेवाला।

विच्छेद्य (सं० त्रि०) वि-च्छेद्-यत्। विच्छेदके योग्य, जो काटने या विभाग करनेके योग्य हो।

विच्छ्युत (सं० त्रि०) वि-च्छ्यु-क्त। १ विगत। २ जो कट कर अथवा और किसी प्रकार इधर उधर गिर पड़ा हो।

विच्छ्युत्क। ३ जो जीवित अङ्गमेंसे काट कर निकाला गया हो। ४ जो अपने स्थानसे गिर या हट गया हो।

विच्छ्युति (सं० स्त्री०) वि-च्छ्यु-क्तिन्। १ वियोग, किसी पदार्थका अपने स्थानसे हट या गिर पड़ना। २ गर्भागत, गर्भका गिर जाना।

विजम्ब (सं० त्रि०) जाया इमा, निगला हुआ।

विजम्बु (सं० त्रि०) १ जिसकी जधि फट गई या न हो। २ जिस गाड़ोंमें धुरे और पहिये आदि न हों।

विजट (सं० त्रि०) जटा-रहित, जटाशून्य।

विजन (सं० त्रि०) विगतो जने यसमात्। निर्जन। पर्याय—विधिक, छय, निगलाक, रटा, उपांशु।

विजन (हिं० पु०) हथा करनेका पंजा, बोजन।

विजनता (सं० स्त्री०) जनशून्यता, एकाग्रताका भाव।

विजनन (सं० षडो०) वि-जन-ण्वट्। प्रसव, जनन करनेकी क्रिया।

विजम्बन् (सं० त्रि०) विजम्बं जम्ब यस्य। १ ऊरव, देगला। २ विजटजम्ब। (पु०) ३ वर्ण-सद्वृत्तार्थमेद। ४ पद धर्माक जो ज्ञाति-च्युत कर दिया गया हो।

विजन्या (सं० स्त्री०) गर्भाचारिणी, पद स्त्री, जो प्रसव करनेकी हो।

विजयपिल (सं० क्लो०) पट्ट, कोचड़ ।
 विजय (सं० पु०) । विजि-भावे अच् । १ जय, जीत, पराजयका उल्टा । हिन्दूमें इस शब्दका व्यवहार क्लो-लिङ्गमें होता है । २ अर्जुन : अर्जुनके अनेक नाम हैं जिनमेंसे एक नाम विजय है । महाभारतके विराट्-पर्वमें लिखा है, कि विराट् राजकुमार उत्तर जब गो-रक्षके त्रिवे कीरवोंके साथ युद्ध करने गये, तब अर्जुन वृद्ध-म्लान्यरूपमें उनके सारथी हुए थे । कार्यगति देख कर वृद्धम्लाने उत्तरके अपना परिचय दे दिया । उत्तरने अर्जुनके सभी नामोंको सार्थकता पूछी । अर्जुनने अपने अन्त्यायुष नामोंको उत्पत्तिका परिचय दे कर इस विजय नामका ऐसा अर्थ लगाया है,—'मैं रणदुर्मंद शत्रु सेनाओंके संप्राममें जाता हूँ, किन्तु बिना उन्हें परास्त किये लौटता नहीं हूँ, इसीलिये सबोंने मेरा नाम विजय रखा है ।'
 विख्यात-विजयःनाटकमें यही सार्थकताके साथ अर्जुनके विजय नामका उल्लेख देखनेमें आता है ।
 ३ इसीमर्थे तीर्थङ्करके पिता । ४ जिनबलमेद, जैनोंके शुद्धबलोमेंसे एक । ५ विमान । ६ यम । ७ कल्किके पुत्र । (कल्किपुराण १३ अ०)
 ८ भैरवपंशीय कल्पराजपुत्र । ये काशीराज नामसे विख्यात थे । प्रसिद्ध छाण्डवयन इन्होंने ही लगवाया था । कालिकापुराणमें लिखा है, कि सुमतिके पुत्र कला और कल्पके पुत्र विजय थे । विजयने राजा हो कर प्रथम प्रजापति पार्ष्णिचोंको परास्त किया । भारतीय सभी राज्य उनके हाथ आये । पीछे इन्द्रके आदेशसे इन्होंने मी योजनविस्तृत छाण्डवयन प्रस्तुत किया । इसी यज्ञको अतिको तृप्तिके लिये अर्जुनने जलाया था । ९ विष्णुके एक अनुचरका नाम । (कालिकापुराण ६० अ०)
 १० च्युडके एक पुत्रका नाम । ११ जयके एक पुत्रका नाम । १२ सञ्जयके एक पुत्रका नाम । १३ जयद्रथके एक पुत्रका नाम । १४ भाग्यपंशीय एक राजा । १५ सिंहलमें आर्यसभ्यताप्रवर्धक एक राजकुमार । विजयविंश देखो । १६ शुभे मुहूर्त्तमेद । १७ साठ संपहरसमें पहला सयत्सर । १८ भोजन करना, खाना । १९ एक प्रकारका छन्द । वह केन्द्रके अनुसार सबैवेद्या मलयवद नामक भेद है ।

विजयक (सं० क्लि०) विजये कुण्डलः विजय-कर । विजेता, सदा जीतनेवाला ।
 विजयकण्टक (सं० पु०) विजये कण्टक इय । विजय-विघ्नकारो, विजयमें बाधा देनेवाला ।
 विजयकुञ्जर (सं० पु०) विजयाय या कुञ्जरः । १ राज-वाह्य हन्तो, राजाकी सवारोका हाथी । २ युद्धहन्तो, लड़ाईके मैदानमें जानेवाला हाथी ।
 विजयकेतु (सं० पु०) १ विजयध्वजा, जयपताका । २ राजपुत्रमेद ।
 विजयक्षेत्र (सं० क्लो०) १ विजयस्थल । २ उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान ।
 विजयगढ़—युक्तप्रदेशके अलीगढ़ जिलान्तर्गत एक कृषि-प्रधान नगर । भूप्रमाण ४१ एकड़ है । यह अली-गढ़ शहरसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । यहां स्कूल, डाकघर और एक प्राचीन दुर्ग है । इसके सिवा कर्नल गार्डेनका स्मृतिस्तम्भ भी दिखाई देता है ।
 विजयगुप्त—पूर्वायुद्धके एक प्रसिद्ध कवि । पद्मपुराण या मनसाकी पांचाली रच कर ये पूर्वायुद्धमें बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं ।
 विजयचन्द्र—कन्नौजके राजभेद । कन्नौज देखो ।
 विजयचक्र (सं० क्लो०) विजयाय चक्रम् । ज्योतिषोक्त चक्रविशेष । इस चक्रके अनुसार नामोच्चारण करनेसे जय पराजयकी उपलब्धि होती है । नामोच्चारणका क्रम इस प्रकार है—श्यास प्रवेशकालमें लन्संज्ञक वर्ण (य, फ, व, म, म, म, भा, र, ई, उ, ऊ, ष्ट, ऋ, लृ, लृ, प, ये, भो, औ) या स्वरके साथ घोषसंज्ञक वर्ण (ग, घ, ङ, ज, झ, ञ ; ढ, ढ, ण ; द, म, म) का नाम उच्चारण करनेसे जय और श्यासनिर्गमकालमें अलन्संज्ञक वर्ण (य, व, र, ल, ह,) तथा अघोषमंज्ञक वर्ण (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ड, ध, न) का नाम उच्चारण करनेसे पराजय होती है । (नरसिंहचर्यालम्बरीद०)
 विजयचूर्ण (सं० क्लो०) अर्श रोगका एक औषध । प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आमलकी, यशश्दार, हरिद्रा, दाशरिद्रा, चर्द, चिरायता, इन्द्रिय, चिताका मूल, विजयन्द, सोर्षा, पञ्चवयन, पीपलमूल, देवसोंठ और यमानो इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह चूर्ण कर समान

भागमें मिलाये और तथायोग्य नातामें सेवन करे, तो अर्थात् रोगका उपकार होता है। (चक्रदत्त)

विजयपट्टेन्द्र (सं० पु०) विजयपट्टेन्द्रो यस्मात् १ एक प्रकारका कथित द्वार जो द्वा द्वार लंबा और ५०४ लट्टियोंका मापा जाता है। कहते हैं, कि ऐसा द्वार केवल देवता लोग पढ़ते हैं। चार हाथ लंबा और १००८ लट्टियोंकी मुक्ताकी मालाकी इन्द्रपट्टेन्द्र कहते हैं। २ पाँच सौ मीनियोंका द्वार।

विजयप्रतिष्ठम (सं० पु०) जयद्वार, प्राचीनकालीन एक प्रकारका बड़ा ढोल जो युद्धके समय बजाया जाता था।

विजयतीर्था (सं० श्लो०) तीर्थभेद।

विजयदण्ड (सं० पु०) १. सैनिकोंका यह समूह अथवा सेनाका यह विभाग जो सदा विजयो रहता हो। २. सेनाका एक विनिष्ट विभाग जिस पर विजय विरोध-रूपसे निर्भर करते हैं।

विजयदत्त (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित नायक-भेद।

विजयदशमी—विजयदशमी देखो।

विजयदुर्ग (सं० पु०) जयद्वार, यह बड़ा ढोल जो युद्धके समय बजाया जाता है।

विजयदुर्ग—धर्म, प्रदेशके रत्नगिरि-जिलान्तर्गत एक वाणिज्यप्रधान बन्दर। यह अक्षांश १६° ३३' तथा देशांश ७३° २३' पू०के मध्य रत्नगिरि नगरसे ३० मील दक्षिणमें अवस्थित है। भारतके पश्चिम उपकूलमें ऐसा सुन्दर और चरविहीन बन्दर कहीं भी नहीं देखा जाता। समीपस्थानोंमें विशेषतः जब दक्षिण-पश्चिम मॉसुमी वायु बहती है, तब इस बन्दरसे बड़े बड़े जहाज लगर डाल कर रहते हैं। तुकान आदिका लक्षण न दिखाई देने पर ये सब जहाज स्वच्छन्दपूर्वक उपकूलके मध्यमें ही लङ्कर डालते हैं।

यहां जैसे जैसे लोगोंके अनेक प्रकारके लालीने और अलङ्कारादि बनायेका एक बड़ा कारखाना है। वर्तमान कालमें इन सब द्रव्योंका विशेष आदर न रहनेके कारण समाप्तोय जिल्लाको अययति हो गई है। धर्मतोषी मुख परगण अनेके समावमें श्रेणी होते जा रहे हैं। नगरके

वाणिज्यको छोड़ शुल्क (Customs) विभागका सामुद्रिक वाणिज्य ले कर यहां प्रति वर्ष १२ लाख रुपये मालकी आमदनी और १५ लाख रुपये मालकी रपतनी होती है।

बन्दरका दक्षिण भाग पूर्व जिल्लापर हो कर समुद्र-पथमें भुक्त रहा है। इस पथके शिबिर पर मुसलमान राजाओंने एक दृढ़ दुर्ग बनाया है। कीट्टणप्रदेशमें ऐसा सुरक्षित दुर्ग एक भी नजर नहीं आता। दुर्गके पार्श्वदेशोंमें प्रायः १०० फुट मोचे एक पहाड़ी भरना बहता है। उस भरनेसे पण्यद्रव्यादि लानेकी बड़ी सुविधा है।

दुर्ग बहुत पुराना है। विजापुरराजवंशके अस्त्युत्पत्ति में इस दुर्गके जीर्णोत्तर संस्कार और कलेवरको प्रतिष्ठित है। इसके बाद १७वीं सदीके मध्य भागमें महाराष्ट्रवर्ति शिवाजीने इस दुर्गको सुदृढ़ करनेके अभिप्रायसे इसके चारों ओर तीन पंक्तियोंमें चहारदीवार बाँधी कर दो तथा बहुतसे गोपुर या तोरण और दुर्गसंक्रान्त अन्याय्य अट्टा लिकादि भी बनवा दी थीं। १६६८ ई०में दूरयुवलयति अश्रियांने यहां अपने उपकूल भागको राजधानी बनाई थी। उस समय अश्रियांका आधिपत्य उपकूल भागमें ३०से ६० मील तक फैल गया था।

१७५६ ई०में हुगलीवासियोंने अङ्गरेजोंसेनाके हाथ आत्मसमर्पण किया तथा वहाँ अङ्गरेजोंके गोरखसे नगर और दुर्ग पर अधिकार जमाया। उसी वर्षके अन्तिम समयमें अङ्गरेजोंने दुर्गका आर-पेगयाके हाथ सौंप दिया था। इसके बाद १८१८ ई०में जमल रत्नगिरि जिला जय वृद्धिशगवर्में एडके हाथ आया, तब दुर्गाध्यक्ष अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। विजयदेशी (सं० स्त्री०) राजपरनीभेद।

विजयदशमी (सं० स्त्री०) द्वावृत्तीभेद। विजया देती।

विजयनगर—मन्द्राक्ष प्रदेशके चेल्लरी जिल्लान्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह छयसम्भूयमें परिणत एक बड़ा ग्राम समझा जाता है और अक्षांश १५° २०' ४० तथा देशांश ७६° ३२' पू०के मध्य फैला हुआ है। यह चेल्लरी सर-से ३६ मील उत्तर-पश्चिम हुङ्गमप्र नदीके किनारे अवस्थित है। यहां पहले विजयनगर राजवंशकी राजधानी थी। आज भी नगरके दक्षिण कमलापुर और आमगुल्लो तक प्रायः ६ मील विस्तृत स्थानमें उसका अस्त्युत्पत्ति

विधमान है। परवर्षीकालमें विजयनगरके राजे भान-
गुण्डीमें ही अपनी राजधानी उठा ले गये।

१३३६ ई०में बल्लालराजवंशके अघातनके बाद हरि-
हर और बुक नामके दो भाइयोंने हांफ्नी नगर बसाया।

१५६४ ई०में तालिकोटके युद्धके बाद उनके वंशधरोंने
कमला प्रमाथाभिव्यत हो कर इस स्थानकी बड़ी उन्नति

की। पीछे प्रायः एक सदी तक ये लोग यथाक्रम भान-
गुण्डी, चन्द्रगिरिमें अपनी शासनशक्तिको

अक्षुण्ण रख राजकार्य करते रहे थे। इसके बाद विजा-
पुर और गोलकुण्डा राजवंशके अशुभ्युद्ध पर विजातीय

दोनों शक्तियोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ और उसीके
फलसे आखिर विजयनगर राजवंशका अघातन हुआ।

प्रायः दस सदी तक इस हांफ्नीनगरमें राजपाट स्थिर
रख कर विजयनगरके राजोंने इसका क्षेत्रफल बढ़ाया तथा

ये कितने ही प्रासाद, मन्दिर और मनोहर स्तूपमालाओंसे
इसकी शोभित कर गये हैं। यह समृद्धि देख कर पाश्चात्य

सम्रणकारी Edwards Barbessa और Caesar Pre-
dericने लिखा है, कि इस प्रकारका धनजन और वाणिज्य-

समृद्धिसे परिपूर्ण नगर उस समय बहुत कम देखनेमें
आते थे। पैगूसे हीरा, चीन अलेकजन्द्रिया और कुनावर-

से रेशम तथा मलवारसे कपूर, मृगनाभि, पीपल और
चन्दन अधिक परिमाणमें यहाँ लाये जाते थे। सोजर

फ्रेडरिकने लिखा है, "मैंने अनेक देश और अनेक राज-
प्रासाद देखे हैं, किन्तु विजयनगरराज-प्रासादके साथ

उनकी तुलना नहीं हो सकती, इस प्रासादके भी प्रवेश-
द्वार हैं। पहले जब तुम राजप्रासादकी ओर जाओगे, तब

तुम्हें सेनापति और सेनादल कर्षूक रक्षित पांच द्वार
देखनेमें आदेंगे। इन पञ्चद्वारकी पार करनेसे उनके

भीतर पुनः अनेकद्वार ब्यार छोटे द्वार मिलेंगे। उन द्वारों
पर अति बलिष्ठ दरवान पहरा देते हैं। एक एक द्वार पार

कर भीतर प्रवेश करनेसे सुसज्जित और सुविम्बृत
प्रासाद देखनेमें आदेंगे।" उनके वर्णनानुसार जाना

जाता है, कि यह नगर चारों ओर प्रायः २४ मील विस्तृत
है। नगरकी रक्षाके लिये सोमानामागमें बहुतसे प्राचीर

बनये हैं। १८३२ ई०में मि० जे. केलसलने इस नगरकी पूर्ण-
Vol. XXI. 78.

तन ध्वस्त कीर्तियोंका महत्त्व देख कर लिखा है, कि
भाज भी यहाँ जो सब भग्नावशेष पड़े हैं। उन्हें देख कर

यह भानाजा नहीं लगाया जा सकता, कि ये सब अष्टा-
लिकायों किस कार्यमें व्ययहृत होती थीं। पर हां, उनके

स्थापत्यशिल्पकी पराकाष्ठाका अनुभव कर मन ही मन
उन शिल्पियोंकी कार्यकुशलताकी प्रशंसा करनी होती

है। उन अष्टालिकाओंमें जैसे बड़े बड़े प्रस्तरखण्ड गड़े
हैं, वैसे और कहीं भी दिखाई नहीं देते। कमलापुरके

निकट प्रस्तरनिर्मित एक जलप्रपातकी ओर उसके निकट
एक सुन्दर अष्टालिका है। यह अष्टालिका स्नानागारकी

नरद प्रतीत होती है। इसके दक्षिण एक मन्दिरमें रामायण
वर्णन अनेक दृश्य उत्कीर्ण देखे जाते हैं। राजप्रासादके

अन्तर्भूक हस्तिशाला, दरवारगृह और विश्रामभवन आज
भी उनके कार्यबलापका परिचय देते हैं। भग्न राज-

प्रासादादि तथा मन्दिरके अनेक स्थानोंको यहाँके लोगोंने
दरपेके लोभसे खोद डाला है।

इसके सिवा राजअन्तःपुर और प्राङ्गणभूमि आज भी
सुस्पष्टरूपमें दिखाई देती हैं। जगह जगह ऊँचे ऊँचे

प्रस्तरस्तम्भ विद्यमान हैं। उनमेंसे ४११ फुटका एक
जलस्तम्भ और ३५ फुटकी एक शिवमूर्ति विशेष उल्लेख-

नीय है। दानेदार पथरके ३० फुट लम्बे तथा ४ फुट
चौड़े और भां कितने प्रस्तर-खण्ड प्राचीर और घरकी

दीवारमें संलग्न दिखाई देते हैं। किन्तु ये सब किम
उद्देशसे संलग्न किये गये थे, उसका आज तक पता नहीं

चला है। राजप्रासादसे प्रायः १ पाव दूर नदीके किनारे एक
विष्णुमन्दिर है। यह आज भी कालके कवचसे गढ़ नहीं

हुआ है। यह मन्दिर भी दानेदार पथरका बना है। उस-
में शिल्पविभवसम्बलित और भां कितने स्तम्भ खड़े देखे

जाते हैं। दक्कीनगरमें आज भी बहुतसी जिलाजिगिर्वा उत्कीर्ण
दिखाई देती हैं। उनमें विजयनगर-राजधनका कीर्ति-

कलाप जड़ा हुआ है। विद्यानगर देखो। यहाँ प्रति वर्ष एक मेला लगता है।
विजयनगर—१ दिनाग्रपुर जिल्लेके अन्तर्गत एक परगना।
२ राजनाहो जिल्लेके गोदागाडो यानेके अधीन एक

प्राचीन बड़ा ग्राम। इसका दूसरा नाम विजयपुर भी था। यहाँ गोंडाधिप विजयनेनने राजधानी बसाई थी। विजयनेन दंगे।

विजयनगरम् (विजयानाग्राम) — मद्राज प्रेसिडेन्सीके विजयगण्डम जिलेकी एक बहुत बड़ी जमीन्दारी। दक्षिण भारतमें ऐसी प्राचीन और प्रतिपत्तिशाली जमीन्दारी थी। दूसरी नहीं है। इसका भू परिमाण प्रायः २६४ वर्ग मोन्द है। जयसे तोम वर्ष पूर्व इसकी जनसंख्या १८५६५८ और अक्षां १७° ५६ और १८° १६' ३० तथा देशां ८३° १७' और ८३° ३६' पूर्वके मध्यमें है।

यहाँके सत्वाधिकारी महाराज पशुपति आनन्द गजपतिराज (१८८८ ई०) राजपूतवंशसम्भूत थे। वंश आख्याविकासे जाना जाता है, कि इस वंशके आदि पुरुष माधववर्माने १५६१ ई०में सगन्धर्व आ कर छण्णान्दीके उपत्यकादेशमें एक राजपूत उपनिधेय स्थापन किया। धीरे धीरे इस वंशने बड़ी सहायिता प्राप्त की और बहुत दिनोंसे इस वंशके लोग गोलकुण्डाराज सरकारके सहकारी सामन्तरूपसे गण्य होने लगे। सन् १६५२ ई०में इस वंशके पशुपति माधववर्माने नामक एक व्यक्ति विशाखपत्तनके राजाके यथोक्त आ कर काम करने लगे। इसके बाद इस वंशके लोगोंका पोंडो दर पीटो इम राज वंशसे सम्बन्ध चला भाया और युद्ध आदिमें विशेष सहायता दे कर इन्होंने बहुत प्रतिपत्ति लाभ की। इन्हींके वंशधर सुप्रसिद्ध राजा गजपति विजयगरामराज फ्रांसोसी सेनापति बुनोके मित्र थे। इन्होंने अपने भुजबलसे धीरे धीरे कई सभ्यत्वों पर अधिकार कर अपनी सम्पत्तिका कलेधर पुष्ट किया। उस समयमें यह पशुपतिवंश उत्तम सरदारोंके एक महाशक्तिशाली राज वंशोंमें परिगणित है।

पेर विजयगराम राजने प्रायः सन् १७१० ई०में अपने पिताके मिंहासग पर आरोहण किया। सन् १७१२ ई०में इन्होंने पोतनूरसे राजघाट स्थानान्तरित कर अपने नाम पर इस स्थानका नाम विजयनगरम् रखा था। इसके बाद अपनी राजधानी सुदृढ़ करनेकी इच्छाले ये कुछ दिनोंके जिये एक दुर्ग निर्माण करनेमें बरस ल हुए। इसी समयमें धीरे धीरे जाना स्थानों पर अधिकार कर इन्होंने

अपने राज्यकी वृद्धि की। सन् १७५४ ई०में इन्होंने पहले चिकाकोलके फौजदार जाकारअली अफिके साहाय्य करनेके लिये उनसे मित्रता कर ली। किन्तु पोंडे उनका यह स्थान हुआ, कि इस मित्रताकी अपेक्षा यदि फ्रांसियोंसे सेनापति बुनोके साथ मित्रता की जाये तो पियोन लाभ होनेकी भाशा है। यह सोच कर उन्होंने फौजदारसे मित्रता भङ्ग कर फ्रांसोसियोंके साथ मित्रता कर ली। इन्होंने अपने पुराने शत्रु बविलोके सामन्तराजकी अपने नये मित्र फ्रांसोसियोंको सहायतासे मार कर अपना पुराना शत्रु चुनाया था, किन्तु इस विजयवा बहुत दिनों तक ये आनन्द उपभोग कर न सके। विजयके तीन रातके अन्त होते न होने वे बविलोके गुप्तघातकोंके हाथ मारे गये थे।

राजा पेर-विजयगरामके उत्तराधिकारी आनन्दरामने छिद्राखेयणमें तत्पर रह कर अपनी बुद्धिके दोषसे विपरीत राजनीतिक मार्गको तिलाञ्जलि दे समैय्य भागे वट्ट विजाखपत्तन पर आक्रमण और अधिकार कर उसकी अङ्गरेजोंके हाथ समर्पण किया। उस समय विजाखपत्तन फ्रांसोसियोंके हाथमें था। यह सन् १७५८ ई०की घटना है।

बङ्गालसे सेनापति फोर्डके समैय्य यहाँ पहुँच जाने पर उनके साथ राजा आनन्दरामने राजमद्रेयो और मडलीपट्टनकी ओर अपनी विजययात्रा शुरू की। पीछे यहाँसे लौटने पर यह कालके मुहूर्तमें पतित हुए। उनके दत्तपुत्र नाथलिंग विजयगरामराज राजपद पर प्रतिष्ठित हुए, किन्तु ये कुछ दिनों तक अपने पैनालेय साता सोतारामराजके तस्थाययानमें रहे। सोताराम चतुर, उच्चदृष्ट्य तथा सधैरासी थे।

सन् १७६१ ई०में उन्होंने पालाकिमडो राज्य पर आक्रमण किया। चिकाकोलके समीप साहाय्यकारी महाराष्ट्रसेनाके साथ पालाकिमडोराज पराजित हुए। इसके बाद उन्होंने सदलबल रातमद्रेयोकी ओर अग्रसर की कर उस पर भी अधिकार कर लिया। इस तरह विजयनगरम् राज्य थोड़े दो दिनोंमें बहुत बढ़ गया। चतुराई इमो समय विजयनगरम् सामग्य मात्रके अन्तर्गत पशुपतिराजवंशके ज्ञाननराधोनेमें जयपुर, पालकोट्टा और

अन्त्याय १५ बड़ो बड़ो जमींदारियोंका कार्य सञ्चालन न होता था। उन उन स्थानोंके अधिवासी विजयनगर-सम्राजको ही अपने राजा मानते थे।

सोताराम विशेष दृढ़ता, मनोयोगिता तथा कुशलताके साथ राजकार्य किया करते थे। वे नियमितरूपसे ३ लाख रुपये वार्षिक पेजकस् देते थे और अङ्कुरेजोसेनाका सदा राजभक्ति दिवाते थे। उनकी यह राजभक्ति इसलिये थी, जिससे वे कम्पनीसे अन्याय सुविधाओंकी प्राप्तिके साथ साथ दुर्द्धर्ष पाषाण्य सामन्तोंकी पशर्न लानेके लिये अङ्कुरेजोसेनाकी सहायता पा सकें। यद्यार्थमें इसी उपायसे पशुपतिगण अपनी शक्ति और अपनी धर्मसमर्थादाकी अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे।

राजा सोतारामने इस समय निर्विरोध प्रभुत्व परिचालित किया था। यह उनके भ्राता राजा विजयरामको समझा हो उठा। केवल उम्होंकी नहीं, बरं कितने ही सामन्त या सरदारोंको भी यह असह्य हो गया। इन लोगोंने कम्पनीसे प्रार्थना की, कि राजा सोतारामसे पदत्याग करा दिया जाये और राज्यकार्य चलानेके लिये जगन्नाथराजको उस पद पर आरूढ़ कराया जाये, किन्तु राजा सोताराम बड़ो शूद्रुशाले राज्यकार्य सम्पादन कर रहे थे और कम्पनीके छांटे बड़े कर्मचारी उनसे सशुभ्र थे। इससे उन लोगोंकी प्रार्थना अमार्ह्य हुई।

महामान्य कोर्ट भाव डिरेक्टर्स इङ्ग्लैण्डमें बैठ कर यहांकी कम्पनीके कर्मचारियों पर जो दोषारोपण करती थी, उसका कोई फल नहीं होता था। फलतः कम्पनीके कर्मचारियों पर स्थित लेनेके अभियोगमें कई नालिशें जापर हुईं। इस पर कोर्ट भाव डिरेक्टर्स मद्रासके गवर्नर सर टि रम्बोलकी और कौन्सिलके दो सरहोंको स्थानान्तर भेजने पर बाध्य हुए। यह सन् १७८१ ई०को घटना है।

सन् १७८४ ई०में विशालरत्न जिलेका यद्यार्थ विवरण संग्रह करनेके लिये एक 'सार्किट कमिटी' नियुक्त हुई। उसने पूरी तीरसे विवरण तयार कर डारैक्यूरीके पास भेजा। उसने उसमें लिखा था, कि विजयनगरसम्राज और उनके सामन्तोंके पास एकत्र १२ सहस्रसे भी अधिक फौजे हैं। सम्भव है, कि किसी समय कम्पनीके

लिये यह विपद्का कारण बनें। यह विवरण पढ़नेसे यहांके अधिकारियोंकी बन्द भावें खुलीं। डिरेक्टरीने सोतारामराजको कुछ दिनोंके लिये राज्यसे भलग किया। किन्तु सन् १७९० ई०में फिर सोतारामने विजयनगरमें आ कर अपना पद ग्रहण किया। इस बार भी पहलेकी तरह उम्होंने उच्चतम राजकर्मचारों, साधारण प्रजामण्डलों तथा सामन्तोंकी भी नियतन करना आरम्भ किया। फलतः उनका राजभोग कठिन हो गया। सन् १७९३ ई०में कम्पनीके अधिकारियोंने उनको मद्राजमें जा कर रहनेकी आहवा दी। उस समयसे विजयनगरके इतिहासमें उनका नाम विलुप्त हुआ।

पूर्व वर्णित नवालिय राजा विजयरामराजको नवालियों बोल गई, अब वे बालिय हो गये थे। इनने दिनों तक वे सोतारामके भयसे एक तरहसे जड़मत्तकी तरह दिन बिता रहे थे। उनके हृदयमें राज चलानेकी कोई शक्ति ही न थी। वे सर्वज्ञां थे और उनमें सोतारामकी तरह राजकार्य चलानेकी शक्ति, न रहनेके कारण वे जमीन्दारोंका काम उत्तमतासे चला न सके। फलतः कम्पनीकी नियमित समय पर पेजकस् दिया न गया। इसलिये उनकी सम्पत्ति बाकी मालगुजारीमें फंस गई। अण्णमार तथा राज्यकी गड़बड़ोसे राजकार्यका भाग बिरगड़ गया। कम्पनीने रुपयेकी घमेलीके लिये 'सम्भन' जारी किया। राजाने उसे अस्वीकृत कर दिया और अङ्कुरेजोके विरुद्ध युद्धकी तैयारी करने आरम्भ कर दी। इस समय उम्होंने स्पष्ट हो कहा था, कि मैं जोवित रह कर यदि पशुपतिराजवंशकी तरह राज्य शासन न कर सका, तो उनमें एक आइनाका तरह रणक्षेत्रमें वीरकी तरह अवश्य मर सकूंगा।

सन् १७९४ ई०की १०वीं जूनका कर्नल प्रेगडरगघने पन्नमाम् नामक स्वानमें राजा विजयराम पर आक्रमण किया। राजाने एक घण्टे तक अर्भजोंका सामना किया, किन्तु उनकी फौज अधिक देर तक यहां टिक न सकी। वे तितर-बितर हो कर भाग खड़े हुए। इस युद्धमें स्वयं राजा विजयराम तथा कई सामन्तराजे मारे गये थे।

राजा विजयरामराजके मरनेके बाद पशुपतिराजवंशका

भाग्यकाज बद्ध गया। किन्तु १८वीं शताब्दीमें पार-
वार परिवर्तन होनेके कारण पशुपतिराजवंशके ऐति-
हासिक प्रधान्य परिवर्द्धित हुआ। इस राजवंशके
अधिराज राज्य और उसके अधीन सामन्तोंका नासित
भूभाग एकत्र परामान विजयनगरम् जिलेके अन्तर्गत है।
इस विस्तारों भूभागके शासक राजा भी अधीन अर-
राज्यकी शक्तिसे सशयवान् थे।

इस राजवंशके सर्वप्रधान धर्मिक मीर्जा और माण्य
सुलतान नामसे सम्मानित होते थे। वे यथार्थमें विजया-
पट्टन राज्यके अधीन थे। किन्तु बलपूर्वसे पुष्ट हो कर
वे उस विषयमें विशेष लक्ष्य नहीं रखते थे। जब विजय-
नगरराज अपने प्रमुख विद्याभ्यस्तनगतिके साथ साक्षात्
करने जाते तब महामान्य ईश्वरिडया कम्पनी उनके
सम्मानके लिये १६ सम्मानसूचक तोपोंकी सलामी
दागती थी। १८४८ ई०में यह तोप भंग्या घट कर १३
हो गई। यंशके सम्मानस्वरूप ये शंज भी राजदत्त उपाधि
भोग करते आते हैं।

वर्तमान समय यह जमीन्दारी निरन्तरायी बन्दोबस्त-
के अधिकारभूक्त होनेसे उसके राजस्वका कुछ अति-
यत्न हुआ है। सही, किन्तु यथार्थमें इस राजवंशकी
दंशगत मठवादीका विशेष लाघव नहीं हुआ है। सन्
१८६२ ई०में अंग्रेज गवर्नमेण्टने उनका मस्य स्वीकार
कर फिर राजोपाधिदान की और साधारण जमी-
दारकी अपेक्षा उच्च-सम्मानका अधिकार दिया है।

सूत राजा विजयरामराजके नाबालिग पुत्र नारा-
यणबाबूने पञ्चनामके मुल्लके बाद स्वराज्यसे भाग पार्यत्य
जमीन्दारीका आश्रय ग्रहण किया। उनको ले सामन्तोंने
अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोहवाहिन प्रचलित करनेकी चेष्टा
की। अंग्रेजोंने पहले ही यह समाचार पा कर यथा-
समय उमका प्रतिकार किया था। इसके बाद अंग्रेजों-
के साथ राजाजी औरतमें सन्धिकी शान्ति चलने लगी।
राजाने स्वयं अंग्रेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। उस
समय अंग्रेजोंने उसके सस्य और न्यायिकारकी मरूपण
रख कर उनको एक सन्तद्वी थी। इस समयसे पार्श्वत्य
सारदार फिर राजाके अधीन न रहे। अंग्रेजमरकारने
उनका शासनभार अपने हाथमें रखा। इस समय विजय-

नगरका कुछ अंश अंग्रेज कम्पनीने अपने कर उसे
"हाथिली जमीन" नामसे निर्दिष्ट किया।

इस तरह विजयनगरम्की जमीन्दारीका आश्रय
बहुत कम हो गया। अंग्रेजोंने उस पर पैसाकस दुगुना
कर दिया। राजाको ६ लाख रुपया सालाना पैसाकस
देना कष्टसे स्वीकार करता पड़ा था और इसी कष्टसे
उनको कुछ श्रणजालमें फँसना पड़ा। सन् १८०२ ई०में
यहां चिरस्थायी बन्दोबस्त हुआ। उससे यह देखा गया,
कि उस समय यह जमीन्दारी २४ परगने और १५५
ग्रामोंमें विभक्त थी। उस समय इस तालुकेका राजस्व ५
लाख नियत था।

राजा विजयरामके पुत्र नारायण बाबूने सन् १७४४
ई०में राज्याधिकार किया और सन् १८४५ ई०में काशी-
धाममें परलोकयात्रा की। उस समय उनकी सम्पत्ति
विशेषरूपसे श्रणप्रस्त थी। उसके राज्यकालके प्रायः अर्ध-
समयसे अंग्रेज गवर्नमेण्टने उनके श्रण परिशोध करनेके
लिये स्वहस्तमें शासनेमार प्रदण किया। उनके परबतों
उत्तराधिकारी राजा विजयराम गजपतिराजने पूर्वाहण
श्रणके परिशोधनके लिये ७ वर्ष तक ऐसी व्यवस्था
जारी रखी। अन्तमें सन् १८५२ ई०में निष्ठर कोशिरसे
उन्होंने राजवमार प्रदण किया और वे स्वयं कार्य परि-
चालन करने लगे। इस समयसे इस विजयनगरम् राज्य
की श्रौष्टि हुई है और राजस्व भी प्रायः २० लाख दरवा
यसूल होने लगा है।

राजा विजयराम गजपतिराज एक उच्च शिक्षित,
सदाशय और अन्तःकरणके अंचले व्यक्ति थे। वे जिस
रूपसे राजकार्य परिचालन और प्रशासकोंका शासन करते
थे, उस तरहसे भारतके आचार्य स्वातंत्र्यके देगो राजाओंमें
काई भी उनके समकक्षी न हो सके। यह यथार्थ ही उस
उच्च गद्देके उपयुक्त पात्र थे। सन् १८६३ ई०में बड़े साह-
को व्यवस्थापकसभा (Legislative Council of India)
के सदस्य मनोनित हुए। सन् १८६४ ई०में अंग्रेजोंने
उनके आचरणों पर प्रसन्न हो कर उनकी महाराजकी
उपाधि और "हिज हाइनेस (His Highness)का सम्मान
प्रदान किया। इसके बाद वे K. C. S. I की उपाधि
से विभूषण किये गये। सन् १८७७ ई०में महाराजी

विक्टोरियाको घोषणामें (Imperial Proclamation)
 उनको भारतके सर्वप्रधान सरदारोंको श्रेणोंमें शामिल
 किया गया और उनके सम्मानके लिये १३ तोपोंको
 सलामी स्वीकृत हुई। इस श्रेणोंके सरदार यदि किसी
 कारणसे वाहसरायके समीप आये, तो वाहसराय भी
 उनके यहाँ जाने पर घाघ्य होंगे, यह उनके सम्मानके ही
 लिये था।

राजा विजयराम गजपतिराजके समय राज्यकी
 धीर्दृष्टिमें बड़ी उन्नति हुई। यह उनकी उच्चाशिक्षाका फल
 है। पक्का हास्ता, पुल, अस्पताल और नगरके अन्यान्य
 विषयोंकी उन्नतिके अनेक कार्योंमें उन्होंने मन लगाया
 था। उन्होंने अपने राजत्वमें वाराणसाधाममें, मद्राज
 नगरमें, कलकत्तेमें और सात समुद्रपारके इंग्लैण्डके
 लण्डन नगरमें जनसाधारणके कई हितकर कार्योंमें अपने
 दानधर्मका यथेष्ट परिचय दिया था। इस समय भी उन
 स्थानोंमें उनको उदारता तथा दानशीलताकी बहुतेरी
 कीर्तियाँ विद्यमान हैं। इन सब कार्योंके लिये उन्होंने
 प्रायः १० लाख रुपये खर्च किये। सिवा इस रकमके
 उन्होंने मरते समय दातव्य भाण्डार और शिक्षा-विभागकी
 १ लाख रुपये दान किया था।

सन् १८७८ ई०में महाराज विजयराम गजपति राज-
 की मृत्यु हुई। इसके बाद उनके पुत्र आनन्दराज पिनुरद
 पर अधिष्ठित हुए। सन् १८८१ ई०में उनके सम्मानार्थ
 उनको महाराजकी उपाधि दी गई। सन् १८८४ और
 १८९२ ई०में वे मद्राज व्यवस्थापकसभाके और सन्
 १८८८ ई०में बड़े लाटकी व्यवस्थापकसभाके सम्भ-
 निर्वाचित हुए। सन् १८९० ई०में वे K. C. I. E और सन्
 १८९२ ई०को २४वाँ मईको G. C. I. E. उपाधिसे विभू-
 पित हुए। दिल्लीके मुगल बादशाहने विजयनगरराज-
 की एक बहुत लम्बी उपाधि दी थी—'महाराजा साहब
 मैरवाण मुफ्फु कद्रदान करम् फरमायो मोठलेमान
 महाराजा मीर्जा माग्य सुलतान मुक बहादुर'। सन् १८९०
 ई०में मद्राज-सरकारने राजाको धनानुक्रमिक राजोपाधि
 प्रदान की। सन् १८५० ई०में आनन्दराजका जन्म हुआ।
 राजा आनन्दराजकी मृत्युके बाद राजा पशुपति विजय-
 राम राजगद्दी पर बैठे, किन्तु यह बालक थे। इससे राज्य-

का कार्यभार कोट्टे आय यार्डस्के हाथ आया। स्वयं
 मीर्जा माग्य सुलताना साहब धोमहा राजलक्ष्मी देव-
 देवो श्रीअलखरागेश्वरी महाराजो नाथालिग पुत्रको औरसे
 विजयनगरम्का राज्यकार्य देखतो थे। सन् १९०४ ई०में
 आप बालिग हुए। फलतः आपने सभी राज्यकार्यका भार
 अपने हाथमें लिया है। आप बड़े योग्य तथा धार्मिक
 हैं। आपका नाम है—मीर्जा राजा श्रीपशुपति अलख
 नारायण गजपतिराज माग्य सुलतान बहादुर मुक।

राजस्वकी वसूलीकी सुविधाओंके लिये यह जमीन्दारी
 ११ तालुकोंमें बाँट दी गई है। निकटके स्थानोंमें वामेज-
 सरकारकी जैसी शासनपद्धति है, उसी तरहकी शासन-
 पद्धति इनको जमीन्दारीमें भी है।

इस जमीन्दारीमें प्रायः ३० हजार पट्टादार मज्जा और
 १० हजार कीर्फा मज्जा हैं। यहाँ प्रायः २७५००० एकड़
 जमीनमें हल चला कर खेतों को ज्ञाती है। जलसे सोपोंची
 भूमिकी मालगुजारी (५)से (१०) रुपये तक प्रति एकड़ है
 और साधारण भूमि २॥) प्रति एकड़ है। बालीसर्गर्ष
 पहले इस तालुकका धार्मिक, राजस्व १० लाख रुपया
 नकद भदाय होता था। इस समय प्रायः १८ लाख रुपया
 वसूल होता है। यहाँके अधिवासी साधारणतः तेजगु-
 हिन्दू हैं। विजयनगरम् और विमलोपत्तन नामसे दो
 नगर तथा कई उपविधान प्रामोंमें यहाँका बाण्डव
 चलता है।

२ मद्राज-प्रेमिडेन्सीके विजगापट्टम् जिलेका
 विजयनगरम् जमीन्दारीका तालुक या उपविभाग। भू-
 परिमाण २१७ वर्गमील है। १८६ गांव और जिलेका
 सदर ले कर यह उपविभाग गठित हुआ है।

३ उक्त जिलेकी विजयनगरम् जमीन्दारीका प्रधान
 नगर। यह विमलोपत्तनसे ६॥ कोस उत्तर-पश्चिममें अव-
 स्थित है तथा अक्षा १८°७' उ० और देशां ८३°२५' पू०के
 बीच विस्तृत है। यहाँ राजप्रान्त, मुनिस्विण्ड आफिस,
 छावनी और सिनियर असिस्टेंट कलकुरका सदर
 आफिस है। यहाँकी जनसंख्या प्रायः ४० हजारके लग-
 भग है।

दगर पुर सुगठित है। यहाँके मकानोंकी छतों या
 तो टाटुई हैं या समतल हैं। वर्तमान भारत-सम्राट् मुय-

भाषयाकाश बद्ध गया। किन्तु १८वीं जन्माब्दीमें वारं-वार परिवर्तन होनेके कारण पशुनिराज्यवंशके ऐतिहासिक प्रधान्य परिवर्द्धित हुआ। इस राजवंशके अन्तिम राज्या और उसके अधीन सामन्तोंका शासन भूभाग एक परामान विजयनगरम् जिल्लेके बराबर है। इस विस्तीर्ण भूभागके शासक राजा भी अधीन नरद-राज्यको उत्तमै सहायमान थे।

इस राजवंशके सर्वप्रधान व्यक्ति मीर्जा और मान्य सुनुतान नामसे सम्मानित होते थे। ये यथाधर्म विजया-पट्टन राज्यके अधीन थे। किन्तु कलङ्घसे पुष्ट हो कर ये उम विषयमें विशेष लक्ष्य नहीं रखते थे। जब विजय-नगरराज अपने प्रभु विद्यालयसत्तपतिके साथ साक्षात् करने जाते तब महामान्य ईष्टरिहवा कम्पनी उनके सम्मानके लिये १६ सम्मानसूचक तोपोंकी मलामी दामनी थी। १८४८ ई०में यह तोप संख्या घट कर १३ हो गई। यंशके सम्मानस्वरूप ये आज भी राजदत्त उपाधि भोग करते आते हैं।

वर्षमान समय यह जमीन्दारी निरन्ध्यायी बन्दोबस्त-के अधिकारसूक्त होनेसे उसके राजस्यका कुछ परि-पत्तन हुआ है सदा, किन्तु यथाधर्म इस राज्यवंशकी पंशागत मर्यादाका विशेष लाघव नहीं हुआ है। सन् १८६२ ई०में अंग्रेज गवर्नमेण्टने उनका मर्यादा स्वीकार कर फिर राजतोपाधि दान की और साधारण जमी-दारकी अपेक्षा उच्च-भंगमानका अधिकार दिया है।

शून्य राजा विजयवामराजके नावाङ्गि पुत्र नारा-यणबाबूने पद्मनाभके युद्धके बाद स्वराज्यसे भाग पार्श्वय जमीन्दारीका आशय प्रदण किया। उनको छे सांमन्तोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोहवहि प्रश्वयित करनेकी चेष्टा की। अंग्रेजोंने पहले ही यह समाचार पा कर यथा-समय उनका प्रतिकार किया था। इसके बाद अंग्रेजों-के साथ राजाकी ओरसे सुमित्री बात चलने लगी। राजाने स्वयं अंग्रेजोंके हाथ आरममर्षण किया। उस समय अंग्रेजोंने उसके मर्यादा और स्वाधिकारकी अनुपण रख कर उनको एक समद ही भी। इस समयसे पार्श्वय सरदार फिर राजाके अधीन न रहे। अंग्रेजसरकारने उनका शासनमात करने हाथमें रखा। इस समय विजय-

नगरका कुछ अंश अंग्रेजकम्पनीने अपने कर देने "हादिली जमीन" नामसे निहिष्ट किया।

इस तरह विजयनगरम्की जमीन्दारीका भाषण बहुत कम हो गया। अंग्रेजोंने उम पर पैगकस दुगुना कर दिया। राजाको छ लाख रुपया सालाना पेनस देना कष्टसे स्वीकार करना पड़ा था और इसी रूपसे उनके कुछ प्रणजालमें फंसना पड़ा। सन् १८०२ ई०में यहाँ चिरस्थायी बन्दोबस्त हुआ। उससे यह देना गया, कि उस समय यह जमीन्दारी २४ परगने और ११५३ ग्रामोंमें विभक्त थी। उस समय इस तालुकेका राजस्व ५ लाख नियत थी।

राजा विजयवामके पुत्र नारायण बाबूने सन् १७१४ ई०में राज्यधिकार किया और सन् १८४५ ई०में कातो-धाममें परलोक-यात्रा की। उस समय उनकी सम्पत्ति विशेषरूपसे प्रणमस्त थी। उसके राज्यकारके प्राये अंग्रेज समयसे अंग्रेज गवर्नमेण्टने उनके प्रण परिशील करनेके लिये स्वहस्तमें शासनभार ग्रहण किया। उनके परवर्ती उत्तराधिकारी राजा विजयवाम गङ्गतिराजने पूर्णहण प्रणके परिगोषणके लिये ७ वर्ष तक येमो व्ययथा जारी रखा। अन्तमें सन् १८५२ ई०में निष्ठर कोञ्जिवरसे उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया और ये स्वयं कार्य परि-चालन करने लगे। इस समयसे इस विजयनगरम् राज्य-की धीवृद्धि हुई है और राजस्व भी प्रायः २० लाख रुपया वसूल होने लगा है।

राजा विजयवाम गङ्गतिराज एक उच्च शिक्षित, सदाशय और अक्ताकरणके शक्य व्यक्ति थे। ये जिस कालमें राजकार्य परिचालन और प्रशासकी शासन करते थे, उम तरहसे भारतके आशास्य हवानोंके वेमो राजाओंमें कोई भी उनके समकक्षी न हो सके। यह यथाधर्म ही उस उच्च पदके उपयुक्त पात्र थे। सन् ८६३ ई०में बड़े सार-की व्यवस्थापकसमा (Legislative Council of India) के सदस्य मनोनित हुए। सन् १८६४ ई०में अंग्रेजोंने उनके आचरणों पर प्रसन्न हो कर उनको "महाराज" की उपाधि और "हिज हाइनेस (His Highness)"का सम्मान प्रदान किया। इसके बाद ये K. C. S. I को उपाधि से विभूयित किये गये। सन् १८७७ ई०में महाराजी

क्रिया करते हैं। सभी मनुष्य अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार पूजाका आयोजन करते हैं। जो धनी हैं, वे प्रतिमूर्ति बना कर बधया पदमें चित्रित कर देवीकी पूजा करते हैं। प्रायः सभी जनसाधारण खपड़ेकी पीठ पर चित्रित माताकी पूजा क्रिया करते हैं। जो हो, इस दिन प्राणहणसे ले कर चण्डाल पर्यन्त लोकमाता की आराधनाके लिये व्यग्र रहते हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पूजाके दिन गृहकर्ता या कर्ताको सारा दिन निरग्न उपवासके बाद पूजाके अन्तमें नारियलका जल पो कर जागरण और घृतशोडादिमें सारी रात बितानी पड़ती है। क्योंकि, पेतो प्रसिद्धि है, कि उस दिन रातको लक्ष्मीने कहा था,—('नारिकेलजल' पीत्वा को जागरिं महोत्तले') 'नारियलका जल पो कर' आज कौन जगा हुआ है ? मैं उसे धनरत्न दूंगी' धनाध्यक्ष कुक्षरने भी वसो दिन उक्त अवस्थामें रह कर पूजा की थी। लक्ष्मीने उस दिन ऐसा कहा था। इस कारण उस दिनको 'दोता-ग' और उस दिनको लक्ष्मीपूजाको 'कोजागरी लक्ष्मी-पूजा' कहते हैं। पूजा तथा अन्याय्य मत नियमादिका विवरण कोजागर शब्दमें देखो।

विजयप्रशस्ति (सं० श्लो०) कवि श्रोद्धर्षचिंत छण्डकाव्य-मेव । इसमें राजा विजयसेनका कीर्तिकलाप वर्णित है।
 विजयभाग (सं० पु०) १ जयान्त । २ जयलाम ।
 विजयमैरवतैल (सं० श्लो०) आमयानरोगमें रघुवर्षार्ध पचवतैल । प्रस्तुत-प्रणाली—पारा, गन्धक, मैतसिल और हरिताल प्रत्येक द्रव्य २ तोला ले कर बांजीमें पीसे। पीछे उसमें एक षण्ड सूक्ष्म घर्र लिप्त कर दे। जब पद सूख जाय, तब बत्तीकी तरह जड़ दे। इसके बाद उस बत्तीको तैलाक करके उसके निम्न भागमें एक पात्र रत्न कर ऊर्ध्वभागको प्रउलित करे तथा यहाँ क्रमशः बत्तीके निःशेष न हो जाने तक फिरसे धारें धीरे तैल देता रहे। यह तैल पकने पर नीचेके बरतनमें टपक कर जमा हो जायेगा। इस तैलको मालिश करनेसे प्रबल वैश्या, पकाङ्गवात तथा वातकृमि आदि विधिघ्न वातरोग प्रशमित होते हैं। यह तैल दूधके साथ ३:४ विन्दुमात्रा-में भी पान किया जाता है।
 विजयमैरवस (सं० पु०) १ कास्तुरीको पद औषध ।

प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, विष, बबरक, हरिताल, विडङ्ग, मोथा, इलायची, पोपलमूल, नागेश्वर, सोंठ, पोपल, कालीमिर्चा, आमलकी, हरीतकी, बहेडा, चितामूल, घोषित जयपालवीज, प्रत्येक द्रव्यका चूर्ण एक एक तोला तथा गुड़ दो तोला, इन्हें एकत्र मिला कर अच्छी तरह महुँन करे। पीछे इसकीको गुठलीके समान इसकी एक एक गोली प्रति दिन प्रातःकालमें सेवन करनेसे कास, श्वास, अजीर्ण और अग्न्याग्नी रोग जाते रहते हैं।

२ कुष्ठरोगको एक औषध । प्रस्तुत प्रणाली—उर्ध्वपातित यन्त्रमें सप्त दोषनिमुक्त पारेको मन्त्रपूत कर मिट्टीके कड़ाहमें तथा कुम्भाण्डके रस या तैलादिके साथ दोलायन्त्रमें सात बार परिशोधित पारेसे दूनी हरताल तथा कैवर्त्तमुलकके रस और भ्रिण्टीके रसको युक्तिपूर्वक दे कर पारे और हरतालसे दूनी पलामकी मम्म देवे। अनन्तर भ्रिण्टीके रसमें सबको डुपा कर पोम्त के रसमें पुनः उम्रे आण्टुन करे। पीछे बड़ो सावधानीसे शालकी लकड़की आँचमें चौदोन पहर तक पाक करे। ठण्डा-होने पर कौनके बरतनमें उसे रव छोड़े। मधु और जल, नारियल, जिङ्गितोषवाघ या मधु और मोथेके रस करीब चार रत्तोसे ले कर प्रति दिन एक एक रत्ती करके बढ़ाये। इसमें वातरक्त, आम, सब प्रकारके कुष्ठ, अम्लपित्त, विस्फोट, मसूरिहा और प्रहर रोग नष्ट होते हैं। इसमें मछली, मांस, दही, साग, खट्टा और लालमिर्चा खाना मना है।

विजयमन्त्रिर्गद्ग—राजपूतानाके मन्त्रपुर राजवास्तवगत एक प्राचीन गढ़। यहाँ भरतपुरके पुराने राजे चास करते थे। आज कल यह विस्तारण ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया है।

विजयमर्दल (सं० पु०) विजयाव मर्दलः । दण्डा, प्राचीन कायका एक प्रकारका ढाल।

विजयमल (सं० पु०) एक राजाका नाम।
 (राजतर० ७/३१२)

विजयमाली (सं० पु०) एक धनिकका नाम।
 (कथाश० ७२/२२५४)

विजयमाल (सं० पु०) कउनाधिपति एक सामन्तराजका नाम। (राजतर० ७/३१६)

राज रूपमें इस नगरमें परिदृशनेके लिये गये थे। उनको उम घटनाको स्मृतिके लिये यहाँ एक राजारकी प्रतिष्ठा हुई है। राजा विजयराय मन्त्रविके लिये हुए टाउनहाल और मन्त्रालय राजकीय मन्त्रालयोंमें नगरको जोगा बढ़ रही है। मन्त्रालयके देगोय वैल सैम्पका एक एक दल यहाँ भाषा करता है। यहाँके गजेंद्र या धर्मराजक (Chaplain) रहते हैं, उनको मासमें दो बार खिवातोंको विनयोत्सव और चिकाकोल सनण करना पड़ता है। यह स्वान बहुत ल्यान्टपवद् है।

इस नगरमें एक गिर-कालेज है, जिसका कुलधर्च राजदरबारमें मिलता है।

विजयनन्दन (सं० पु०) इन्द्राकृत्यंगोय राजविशेष-पूर्णा—त्रप।

विजयनाथ—प्रहमायाध्याय नामक ज्योतिर्प्रश्नके रचयिता।

विजयनारायणम्—मन्त्रालयके तिरनेयली जिलान्तर्गत नानगुणोरी तालुकका एक नगर। यह नानगुणोरी मन्त्र-से ५ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

विजयवत् (सं० पु०) इन्द्र।

विजयवर्मा (सं० ख०) प्राचीनशाक। (पैदिक निष०)

विजयपण्डित—यङ्गनाथके एक सर्वप्रथम महाभारत-अनुवादक तथा राष्ट्रदेगके एक प्राचीन कवि। विजय पण्डितका भारत-तारपूर्णायाद 'विजयपण्डितकथा' नाम से प्रसिद्ध है।

विजयपताका (सं० खी०) १ सेनाकी यह पताका जो जीतके समय फहराई जाती है। २ विजयसूचक कीर्ति चिह्न।

विजयपर्वटी (सं० खी०) प्रहली रोगको एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—२ तोले पारेकी जपनीके पत्ते, दोकेके मूल, मन्त्रक और काकमाचोंके रस द्वारा आनुपूर्विक भाषना दे कर परिशुद्ध करे। पीछे २ तोला आमलमा मन्त्रक ले कर कुछ चूर्ण कर और पीछे भृङ्गराजके रसमें सुधी कर कटो-पूरमें सुखा ले। तीन बार इस प्रकार सुखाके बाद उसे आलमें द्रवोमृत कर बड़ी नेत्रोंके बायीं कानमें डाल दे। इसके बाद उसे पारेमें भरित ३ पं, गीय और त प्र मन्त्रके दो तोला मिला कर उक्त

गन्धके साथ अच्छी तरह घँटे और कजली बनाये। पीछे उम कजलीको एक लोहेके हतयेमें रख कर पीछे लकड़ीको भाग पर रख दे। जब यह अच्छी तरह सुखा जाय, तब गोबरके लिये हुए एक केलके पत्ते पर डाल दे। ऐसा करनेसे यह पपेटाकार अर्थात् पाटनीकी तरह होगा। उसीको विजयपपेटा कहते हैं। प्रहली, मन्त्र, कुष्ठ, मरी, शोथ और अज्ञानी रोगमें इसका व्यवहार किया जाता है। व्यवहारका नियम इस प्रकार है—प्रथम दिन दो रत्ती इस पपेटाका सुपारीके जलके साथ सेवन करना होता है। पीछे दिन प्रति दिन एक एक रत्ता बढ़ा कर जिस दिन बारह रत्ता पुरी हो जायेगी, उमके दूसरे दिन से फिर प्रति दिन एक एक रत्ता घटाना होगा। इस औषधका दिनके चार्थे दृष्टमें सेवन करना होता है।

पीछे भयल्यानुसार दिनमें ३४ बार करके सुपारीके दानोंके साथ सेवन कर सकते हैं। पण्डितकेके व्यवहार—औषध सेवनके तीसरे दिनमें मांसका जून और पून-दुग्धादि ध्ययकथेय है। काले रंगकी मछली, जलजन्तु। विद्वेषकद्वय (तेल या जिस किसी तरह हो मुगा दुग्धा पशुध), केला, मूला, तेल और तेलकी बपारो हुई तरकारी भादि खाना मना है। खीसम्भोग और दिवादिमा भी वर्जनीय है। (रोन्द्रवार० प्रहरीरोग)

विजयपाल (सं० पु०) १ एक प्राचीन संस्कृत कवि। २ राजानक विजयपाल नामसे प्रसिद्ध थे। ३ कर्मोकेके एक राजा। आप १०१६ मन्त्रमें विद्यमान थे। ३ एक पराक्रान्त मन्त्रेन्द्रराज को १०३७ ईमें मीरूद थे।

चन्द्राक्षय राजाके लेखी।

विजयपुर (सं० खी०) भविष्यप्रज्ञादृष्टयुक्त पञ्चदेगके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। विजयनगर देखो।

विजयपूर्णिमा (सं० खी०) विजयाष्टमिके अन्तर्गत पद्मेदेगको पूर्णिमा, आश्विनकी पूर्णिमा। इस पूर्णिमामें दिग्भुवाक हो बड़े उत्साहसे लक्ष्मीकी पूजा करते हैं। यद्यपि प्रति मासमें गृहपतिवारको या और किसी शुभ दिनको लक्ष्मीपूजा करनेका विधान है और इसीके अनुसार बहुतेरे वर्गिक पूजा भी करते हैं, परन्तु यथापूर्णादि कुदितके उक्त पूर्णिमाके दिन पूजा को भी, इसी कारण लीय अन्तर्गतकी माससे उन्नी दिन तकमन्त्रेन्द्रराजोके पूजा

किया करते हैं। सभी मनुष्य अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार पूजाका आयोजन करते हैं। जो धनो हैं, वे प्रतिमूर्ति बना कर अथवा पटमें चित्रित कर देवीका पूजा करते हैं। प्रायः सभी जनसाधारण लघुदेवी की पीठ पर चित्रित मानाकी पूजा किया करते हैं। जो हो, इस दिन ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल पर्यन्त लोकमता की आराधनाके लिये व्यग्र रहते हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पूजाके दिन, गृहकर्त्ता वा कलकौ सारा दिन निरम्यु, उपवासके बाद पूजाके अन्तमें नारियलका जल पी कर जागरण और घृतकोड़ादिमें सारी रात बितानी पड़ती है। क्योंकि, ऐसा प्रसिद्धि है, कि उस दिन रातको लक्ष्मीने कहा था,—('नारिकेलजल पीनेवा' को जागरिं महोत्तले') 'नारियलका जल पी कर आज कौन जगा हुआ है ? मैं उसे धनरत्न दूंगी' घनाध्यक्ष कुचेरते भी उसी दिन उक्त अवस्थामें रह कर पूजा की थी। लक्ष्मीने उस दिन ऐसा कहा था। इस कारण उस दिनको 'बीजागर' और उस दिनकी लक्ष्मीपूजाको 'बीजागरी लक्ष्मीपूजा' कहते हैं। पूजा तथा भक्त्याय मत्त नियमादिका विवरण बीजागर शब्दमें देखो।

विजयप्रशस्ति (सं० स्त्री०) कवि श्रोतृपरिचित खण्डकाध्य-
भेद। इसमें राजा विजयसेनका कीर्तिकलाप वर्णित है।
विजयभाग (सं० पुं०) १ जयांश। २ जवलाभ।
विजयभैरवतेल (सं० स्त्री०) आमवातरोगमें द्रव्यदार्म्य
पक्वतेल। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, मैनासिल
और हरिताल प्रत्येक द्रव्य २ तोला ले कर कांजीमें पीसे।
पीछे उससे एक खण्ड सूत्रम. घब्र लिप्त कर दे। जब
यह सूत्र जाय, तब बत्तीकी तरह जड़ दे। इसके बाद
उस बत्तीको तैनाक करके उसके निम्न भागमें एक पात्र
रम कर ऊर्ध्वभागको प्रखलित करे तथा यहाँ क्रमशः
बत्तीके निःशेष न हो जाने तक फिरसे घारी घारे तेल
देता रहे। यह तेल पकने पर मोचेके बरतनमें टपक
कर जमा हो जायेगा। इस तेलको मालिश करनेसे प्रबल
वेदना, एकाग्रता तथा बाहुकृम्य आदि विविध वातरोग
प्रशान्त होते हैं। यह तेल दूधके साथ ३४ विष्णुमाला-
में भी पान किया जाता है।
विजयभैरवस (सं० पुं०) १ कासरोगकी द्रव्य औषध।

प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, चिप, अवरक,
हरिताल, विडङ्ग, मोथा, इलायची, पीपलमूल, नागेश्वर,
सोंठ, पीपल, कालीमिर्चा, आमलकी, हरीतकी, बड़ेडा,
बितामूल, शोधित जयपालबीज, प्रत्येक द्रव्यका चूर्ण
एक एक तोला तथा गुड़ दो तोला, इन्हें एकत्र मिला कर
अच्छी तरह मई न करे। पीछे इसकीको गुठलीके समान
इसकी एक एक गोली प्रति दिन प्रातःकालमें सेवन
करनेसे कास, श्वास, अर्जाण और अन्याय्य रोग जाते
रहते हैं।

२ कुष्ठरोगकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—उर्ध्व
पातित यन्त्रमें सप्त दोषनिमुक्त पारेको मन्त्रपूज कर
मिट्टीके कड़ाहमें तथा कुम्भखण्डके रम या तैनादिके साथ
दोलायन्त्रमें सात बार परिशोधित पारेसे दूनी हरताल
तथा कौचसुस्तकके रम और मिट्टीके रमको युक्ति-
पूर्वक दे कर पारे और हरतालसे दूनी पलामकी भस्म
देये। अनन्तर मिट्टीके रसमें सक्की डुबा कर पोस्त
के रसमें पुनः उम आप्लुत करे। पीछे बड़ी सावधानी-
से शालकी लकड़ोको आँवमें चौबीस पहर तक पाक
करे। उष्ण-होने पर काँवके बरतनमें उसे रत्न छोड़े।
मधु और जल, नारियल, जिङ्गिनीषवाघ या मधु और
मोथेके रम करोच चार रत्तीसे ले कर प्रति
दिन एक एक रत्ती करके बढ़ाये। इसमें वातरक, आम,
सह प्रकारके कुष्ठ, अम्लपित्त, विस्फोट, मूर्च्छिका और
प्रदर रोग नष्ट होते हैं। इसमें मछली, मांस, दही, स्याग,
खट्टा और लालमिर्चा खाना मना है।

विजयमन्दिरगढ़—राजपूतानाके भरतपुर राज्यागतर्गत एक
प्राचीन गढ़। यहाँ भरतपुरके पुराने राजे वास करते
थे। आज कल यह विस्तीर्ण ध्वंसावशेषमें परिणत हो
गया है।

विजयमहल (सं० पुं०) विजयाय महलः। दृढा, प्राचीन
का तथा एक प्रकारका महल।

विजयमहल (सं० पुं०) एक राजाका नाम।
(राजतरंग ७, ७३२)

विजयमाली (सं० पुं०) एक धनिकका नाम।
(कथा ७, ७२, १२५)

विजयमित्र (सं० पुं०) कर्णनामिषवति एक मामन्तराजका
नाम। (राजतरंग ७, ३१६)

राज्य रूपमें इस नगरमें परिदृशीनके लिये गये थे। उनको उम घटनाकी स्मृतिके लिये वहाँ एक राजारकी प्रतिष्ठा हुई है। राजा विजयराम गजपतिके लिये हुए उअनहाल और मगधराज्य राजकीय अट्टालिकाओंमें नगरकी जीया बट्ट रही है। मगधराजके देगोव वैल सैयफ का एक एक हथ पदा भाषा करता है। यहाँके गजैत ज्ञा धर्मयाजक (Chaplain) रहते हैं, उनको मासमें दो बार रविवारोंको विनयोरत्न और गिकाकोल स्रमण करना पड़ता है। यह स्थान बहुत स्वान्दपन्न है।

इस नगरमें एक विजय-हालेज है, जिसका कुलधर्मी राजदरबारसे मिलता है।

विजयनगहन (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशोप राजविशेष-पर्याय—जय।

विजयनाथ—मद्राशाखाया नामक ज्योतिर्मन्थके रच-यिता।

विजयनारायणम्—मद्राजप्रदेशके तिरुनेयलो जिलान्तर्गत मानगुणोरो तालुकका एक नगर। यह मानगुणोरो मद्रसे ५ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

विजयगत (सं० पु०) इन्द्र।

विजयगती (सं० स्त्री०) ब्राह्मिनाक। (वेदिक निय०)

विजयपण्डित—बङ्गमाषाके एक सर्वप्रथम महामारत-अनुपादक तथा राङ्गदेशके एक प्राचीन कवि। विजय पण्डितका भारत-तारपर्यानुयाय 'विजयवाण्डवकथा' नाम से प्रसिद्ध है।

विजयपथाहा (सं० स्त्री०) १ सेनाकी यह पनाका जो जातके समय फहराई जाती है। २ विजयसूचक कोई गिद्ध।

विजयपर्वटी (सं० स्त्री०) प्रह्लां रोगको एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—२ तोले पारेकी जयतीके पत्ते, रेंडोके मूल, मद्धक और काकमाचोके रस द्वारा भातुपूर्विक भाषमा दे कर परिशुद्ध करे। पीछे २ तोला भागमला गन्धक ले कर कुछ चूर्ण कर और पीछे भृङ्गराजके रसमें सुको कर कटो-धूमने सुखा ले। तीन बार इस प्रकार सुखानेके बाद उसे भागिमें प्रथीमूय कर कटो सेओसे धारीक करहुमें ठान ले। इसके बाद उर पारेमें प्रति ३ प्लं हीन्य और त छ परदेक दो तोला मिला कर उक-

गन्धकके साथ मचटी तरह पीछे और करजली बनाये। पीछे उम कजजलीको एक लोहेके हतयेमें रख कर बेहो लकड़ोको भाग पर रख दे। जब यह मचटी तरह गर जाय, तब गोबरमें लिये हुए एक कंठिके पत्ते पर ठान दे। ऐसा करनेसे यह पर्वटाकार मर्षात् पाटनीको तरह होगा। उसको विजयपर्वटा कहते हैं। प्रह्लां, धन, कुष्ठ, मर्षा, गींध और मज्जाणे रोगमें इसका व्यवहार किया जाता है। व्यवहारका नियम इस प्रकार है—प्रथम दिन दो रत्तो इस पर्वटीका सुपारीके तलके साथ सेवन करना होता है। पीछे दिन प्रति दिन एक एक रत्ता बढ़ा कर जिस दिन बारह रत्तो पूरो हो जायेगो, उसके दूसरे दिन से फिर प्रति दिन एक एक रत्ता घटानो होगा। इस औषधका दिनके चाँये दृष्टमें सेवन करना होगा। पीछे भवस्थानुनार दिनमें ३५ बार करके सुपारीके दाँतोके साथ सेवन कर सकते हैं। पटनापर्वकी व्यवस्था—औषध सेवनके तीसरे दिनसे मांसका जून और पुन-दुग्धादि व्यवस्थेय है। काले रंगकी मछली, जवजरासे। विदम्बपकट्रय (नेल या जिम किसी तरह हो युवा हुआ पशार्थ), केला, मूली, मेल और तेलकी बघारो हुं तपकरी भादि खाना मना है। एकोसमोग और विपानिद भी चर्जनीय है। (रसेन्द्रसार० प्रर्थयोगे.)

विजयपाल (सं० पु०) १ एक प्राचीन संस्कृत कवि। ये राजानक विजयपाल नामसे प्रसिद्ध थे। २ कन्नोजके एक राजा। भाव १०१६ मगधमें विद्यमान थे। ३ एक पराक्रान्त चण्डेलराज जो १०३० ई०में मीरज्य है।

चन्द्रार्थ रावत देतो।

विजयपुर (सं० स्त्री०) मविश्वप्रसन्नखण्डवर्णिन बहूरीगके अगर्तन एक प्राचीन नगर। विजयनगर देतो।

विजयपूर्णिमा (सं० स्त्री०) विजयादनामीके इतराज्य पदनेयलो पूर्णिमा, मादिशनकी पूर्णिमा। इस पूर्णिमामे हिन्दूमात ही बहे उहमाहसे लक्ष्माकी पूजा करते हैं। पद्यमि प्रति मासमें पृथ्व्यातिथारकी या और किसी शुभ दिनको मन्मोपूजा करनेका विधान है और उगोके अनु-सार बहूनेरे उपांक पूजा भा करते हैं, परन्तु धनार्थाविधि कुदरेने उन पूर्णिमाके दिन पूजा की भी, इसी कारण लोग धनरसकी भागासे उगो दिन मननमें लक्ष्मीदेवीको पूजा

किया करते हैं। सभी मनुष्य अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार पूजाका आयोजन करते हैं। जो धनी हैं, वे प्रतिमूर्ति बना कर अथवा पटमें चित्रित कर देवीका पूजा करते हैं। प्रायः सभी जनसाधारण धूपके पीठ पर चित्रित मानाको पूजा किया करते हैं। जो हो, इस दिन ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल पर्यन्त लोकमता की भाराघनाके लिये व्यग्र रहते हैं, इसमें जरा भी सम्प्रेह नहीं। पूजाके दिन गृहकर्ता वा कर्ताकी सारा दिन निरगु उपवासके बाद पूजाके अन्तमें नारियलका जल पी कर जागरण और घूतकीडादिमें सारी रात बितानी पड़ती है। क्योंकि, ऐसा प्रसिद्धि है, कि उस दिन रातको लक्ष्मीने कहा था,—('नारिकेलजल' पीनेवा को जागरि महोतले') 'नारियलका जल पी कर आज कौन जगा हुआ है? मैं उसे धनरत्न दूंगी' घनाध्यक्ष कुचेरने भी उसी दिन उक्त अवस्थामें रह कर पूजा की थी। लक्ष्मीने उस दिन ऐसा कहा था। इस कारण उस दिनको 'बीजांगर' और उक्त दिनकी लक्ष्मीपूजाको 'कोजांगरी लक्ष्मीपूजा' कहते हैं। पूजा तथा भक्त्यान्वय त नियमादिका विवरण कोमांगर शब्दमें देली।

विजयप्रशस्ति (सं० स्त्री०) कवि श्रोहर्षरचित खण्डकाव्य-भेद। इसमें राजा विजयसेनका कीर्तिकलाप वर्णित है।
 विजयभाग (सं० पुं०) १ जयांश। २ जयलाम।
 विजयभैरवतैल (सं० स्त्री०) आमवातरोगमें व्यवहार्य पक्वतैल। प्रस्तुत-प्रणाली—पारा, गन्धक, मैन्सिल और हरिताल प्रत्येक द्रव्य २ तोला ले कर कांजीमें पीसे। पीछे उसमें एक पाण्ड सूक्ष्म यत्र लित कर दे। जब यह सूत्र जाय, तब बत्तीकी तरह जड़ दे। इसके बाद उस बत्तीको तैलाक करके उसके निम्न भागमें एक पाल रत्न कर ऊर्ध्वभागको प्रज्वलित करे तथा यहां क्रमशः बत्तीके निःशेष न हो जाने तक फिरसे धीरे धीरे तेल देना रहे। यह तैल पश्चिम पर मोचेके वरतनमें टपक कर जमा हो जायेगा। इस तैलको मालिङ्ग करनेसे प्रबल पेश्वा, पकाङ्गान तथा बाहुदुग्ध आदि विविध वातरोग प्रशमित होते हैं। यह तैल दूधके साथ ३/४ विन्दुमात्रा में भी पान किया जाता है।
 विजयभैरवस (सं० पुं०) १ कासरोगकी एक औषध।

प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, विष, शबरक, हरिताल, विडङ्ग, मोथा, इलायची, पोपलमूल, नागेश्वर, सोंठ, पोपल, कालीमिर्च, आमलकी, हरीतकी, बहेड़ा, विनामूल, शोधित जयपालवीज, प्रत्येक द्रव्यका चूर्ण एक एक तोला तथा गुड दो तोला, इन्हें एकत्र मिला कर अच्छी तरह महुँन करे। पीछे इसकी को गुडकी समान इसकी एक एक गोली प्रति दिन प्रातःकालमें सेवन करनेसे कास, श्वास, अर्तर्षा और अग्र्याभ्य रोग जाते रहते हैं।

२ कुष्ठरोगकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—उर्ध्वपातित यन्त्रमें सप्त दोपनिमुक पारेको मन्त्रपूत कर मिट्टीके कडाहमें तथा कुम्भाण्डके रस या तीश्रदिके साथ दोलायन्त्रमें सात बार परिशोधित पारेसे दूनी हरताल नया कैवर्तसुसकके रस और क्रिष्टीके रसको युक्तिपूर्वक दे कर पारे और हरतालसे दूनी पलासकी भस्म देवे। अनन्तर क्रिष्टीके रसमें सक्की डुबा कर पीसत के रसमें पुनः उसे व्याप्लुन करे। पीछे बड़ी सावधानीसे शालकी लकड़ीकी आँवमें चौबीस पहर तक पाक करे। ठण्डा होने पर काँचके बरतनमें उसे रख छोड़े। मधु और जल, नारियल, जिङ्गनीषवाघ या मधु और मोयेके रस करीब चार रत्तीसे ले कर प्रति दिन एक एक रत्ती करके बढ़ावे। इसमें यातरक्त, आम, सब प्रकारके कुष्ठ, अम्लपित्त, विस्फोट, मसूरिका और प्रदर रोग नष्ट होते हैं। इसमें मछली, मांस, दही, साग, लट्टा और लालमिर्च खाना मना है।

विजयमन्दिरगढ़—राजपूतानाके भरतपुर राज्यान्तर्गत एक प्राचीन गढ़। यहाँ भरतपुरके पुराने राजे वास करते थे। आज कल यह विस्तोर्षा ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया है।

विजयमहल (सं० पुं०) विजयवा महल। दका, प्रान्थन का एक प्रकारका ढाल।

विजयमल्ल (सं० पुं०) एक राजाका नाम।
 (राजतर० ७/७१२)

विजयमाली (सं० पुं०) एक धणिकका नाम।
 (कथाश० ७३/१८४)

विजयमिश्र (सं० पुं०) कश्मीरपिपि एक समाप्ततत्त्वका नाम। (राजतर० ७/१६६)

राज्य रूपमें इस नाममें परिदर्शनके लिये गये थे। उनको उम घटनाको स्मृतिके लिये यहाँ एक राजारको प्रतिष्ठा हुई है। राजा विजयवराह गजराजिके लिये हुए उस उतनहाल और अग्रगण्य राजकीय मद्राजिकामें नगरको जीना बंद रही है। मद्राजके देगोव वैज्ञानिकस्यका एक एक दल यहाँ भाषा करता है। यहाँके गजिनं ता धर्मगजक (Chaplin) रहते हैं, उनको नाममें दो बार रविवासीको विनयोपन और चिकित्साको सनप करना पड़ता है। यह स्थान बहुत व्याप्यवद् है।

इस नाममें एक गिण-कालेज है, जिसका कुलकर्त्ता राजद्वारमें मिलता है।

विजयनन्दन (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशीय राजविशेष-पर्याय—त्रय।

विजयनाथ—मद्राशाखाया नामक ज्योतिर्प्रस्थके-रचयिता।

विजयनाथपणम्—मद्राजप्रदेशके निर्मयलो जिलान्तर्गत मानमुण्डेरा तालुकाका एक नगर। यह मानमुण्डेरा सदरसे ५ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

विजयवत (सं० पु०) इन्द्र।

विजयवती (सं० स्त्री०) ब्राह्मिणी। (पैदिक-विप०)

विजयवर्षिष्ठ—पद्मनाभाके एक सर्पप्रथमः महाभारत-अनुवाद्क तथा राक्षसके एक प्राचीन कवि। विजयवर्षिष्ठका भारत-तारपर्वानुयाद् 'विजयवर्षिष्ठवक्रथा' नाम से प्रसिद्ध है।

विजयवराहा (सं० स्त्री०) १ सेनाकी यह पताका जो जीतके समय फहराई जाती है। २ विजयसूचक कोई निशान।

विजयवर्षिठी (सं० स्त्री०) प्रह्लां रोगको एक औषध। प्रस्तुत पत्ताली—२ तोले चारेकी जवलीके पत्ते, चेंडोके मूल, चारक और काकमाओके रस द्वारा मानुपूर्विक भाषना से कर परिशुद्ध करें। पीछे २ तोला आमलसा गन्धक से कर कुछ चूर्ण कर और पीछे मूत्रराजके रसमें डुबी कर कड़ी घृणमें सुषा से। तीन बार इस प्रकार सुषाके बाद उगे अस्मिमें प्रथोमूल कर कड़ी लोसि बाकी कचहमें घाल से। इसके बाद उम गारेमें त्रित ३ पं रीन और त छ प्रथेक दो सोमा मिला कर एक

गन्धकके साथ अचरी तरह पीछे और चरकली चरने। पीछे उम चरकलीको एक लोहेके कूपमें रख कर दे (शे लकड़ोको साथ पर रख दें। जब यह भाष्या तरह पर जाय, तब गोबरमें लिये हुए एक कंलेके पत्ते पर धान दें। ऐसा करनेसे यह वर्षाकार अर्थात् पाटनीको रूप होगा। उसीका विजयवर्षिठी करते हैं। प्रह्लां, सध, कुष्ठ, अर्श, गंध और अजापे रोगमें इसका व्यवहार किया जाता है। व्यवहारका नियम इस प्रकार है—प्रथम दिन दो रत्तो इस वर्षिठीका सुषाको मलके साथ सेवन करना होता है। पीछे दिन प्रति दिन एक एक रत्ता बढ़ा कर जिस दिन चारद रत्तो पुरो हो जायेगो, उसके दुगरे दिन से फिर प्रति दिन एक एक रत्ता घटाना होगा। इस औषधका दिनके चाँधे दुष्टमें सेवन करना होता है। पीछे भयस्थानुसार दिग्में ३५ बार करके सुषाको दाबोके साथ सेवन कर सकते हैं। पदप्राप्यकी व्याख्या—औषध सेवनके तीसरे दिनमें मांसका ज्वर और पृश्नि-दुग्धादि व्यवस्थेव है। काले रंगकी मछली, जवजगली। विद्वयपक्षद्वय (तेल या जिम्ब किसी तरह दो भुना हुआ पक्षार्थ), केला, मूली, मेल और तेलकी बघारो हुई तरकारी भादि खाना मना है। सोमसमोप और दिवादिना भी वर्जनीय है। (संस्कृतारत्न-प्रह्लांरोगे)

विजयपाल (सं० पु०) १ एक प्राचीन संस्कृत कवि। ये राजानक विजयपाल नामसे प्रसिद्ध थे। २ कन्नौजके एक राजा। आप १०२६ मगधमें विद्यमान थे। ३ एक पराक्रामत चरदेशराज जो १०३७ ई०में मीरुथ थे।

चन्द्रार्थ राजा य रत्तो।

विजयपुर (सं० स्त्री०) अविषप्रारण्यवर्षिष्ठ पद्मिणीके अशर्तक एक प्राचीन नगर। विजयनगर देखो।

विजयपूर्णिमा (सं० स्त्री०) विजयवद्वामाके उदयप पक्षमेंवाली पूर्णिमा, माघिपक्षकी पूर्णिमा। इस पूर्णिमामें हिन्दूमात हो बड़े उत्साहसे लक्ष्मीकी पूजा करते हैं। पद्यवि प्रति नाममें पूरुण्यतिथारको या और किसी द्युत दिनको महापूजा करनेका विधान है और उगाके प्रस्तु-मात बहनेरे कर्णक पूजा भी करते हैं, परन्तु यथाजातिभिर्न कुद्वेने उक्त पूर्णिमाके दिन पूजा को भी, एगो कारण से। चन्द्रार्थकी माजामे उगो दिन तमनममें लक्ष्मीदेवीकी पूजा

किया करते हैं। सभी मनुष्य अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार पूजाका आयोजन करते हैं। जो धनी हैं, वे प्रतिमूर्त्ति बना कर अथवा पटमें चित्रित कर देवीका पूजा करते हैं। प्रायः सभी जनसाधारण श्वशुरकी पीठ पर चित्रित माताकी पूजा किया करते हैं। जो हो, इस दिन ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल पर्यन्त लोकमाता की आराधनाके लिये व्यग्र रहते हैं, इसमें जरा मो सन्देह नहीं। पूजाके दिन गृहकर्त्ता या कलक्री सारा दिन निरगु उपवासके बाद पूजाके अन्तमें नारियलका जल पी कर जागरण और चतुर्दशीदिमें सारी रात बिताती पड़ती है। क्योंकि, पेसा प्रसिद्धि है, कि उस दिन रातकी लक्ष्मीने कहा था,—('नारिकेलजल' पोत्या' को जागरिं महोतले') 'नारियलका जल पी कर आज कीन जगा हुआ है? मैं उसे धनरत्न दूंगी' घनाध्यक्ष कुचेरते भी उसी दिन उक्त अवस्थामें रह कर पूजा की थी। लक्ष्मीने उस दिन ऐसा कहा था। इस कारण उस दिनको 'कीजा-गर' और उस दिनकी लक्ष्मीपूजाको 'कीजागरी लक्ष्मी-पूजा' कहते हैं। पूजा तथा अन्त्यापन नियमादिका विवरण कोलागर शब्दमें देखो।

विजयप्रशस्ति (सं० स्त्री०) कथि श्रोहर्षरचित खण्डकाव्य-मेद। इसमें राजा विजयसेनका कीर्तिकलाप वर्णित है। विजयभाग (सं० पुं०) १ जयांश। २ जयलाम। विजयमैत्रयैल (सं० स्त्री०) आमवातरोगमें रघुवद्राज्य पथवतैल। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, मैनासिल और हरिताल प्रत्येक द्रव्य २ तोला ले कर बर्तनीमें पीसे। पीछे उसमें एक णण्ड सूक्ष्म चक्र लित कर दे। जब यह सूष जाय, तब बत्तीकी तरह जड़ दे। इसके बाद उस बत्तीको तैलाक करके उसके निम्न भागमें एक पात्र रम कर ऊर्ध्वभागकी प्रवृत्तिन करे तथा वहाँ क्रमशः बत्तीके निशेय न हो जाने तक फिरसे घाँरे पीरे तेल देता रहे। यह तेल पकने पर मोचिके बरतनमें टपक कर जमा हो जायेगा। इस तेलकी मालिश करनेसे प्रबल वेदना, एकाग्रान तथा वातृहृष्य आदि विविध वातरोग प्रशान्त होते हैं। यह तेल दूषके साथ ३४ विन्दुमाता-में मो पान किया जाता है। विजयमैत्रयैल (सं० पुं०) १ कासरोगकी एक औषध।

प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, विष, शबरक, हरिताल, विडुङ्ग, मोथा, इलायचो, पोपलमूल, नागेश्वर, सोंठ, पोपल, कालीमिर्चा, आमलकी, हरिंतकी, बहेड़ा, विनामूल, शोधित जयपालवीज, प्रत्येक द्रव्यका सूर्ण एक एक तोला तथा गुड़ दो तोला, इन्हें एकल मिला कर अच्छी तरह महुँन करे। पीछे इसकी को गुडटीके समान इसकी एक एक गोली प्रति दिन प्रातःकालमें सेवन करनेसे कास, श्वास, अर्जाण और अश्याय्य रोग ज्ञाते रहते हैं।

२ कुष्ठरोगकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—उर्ध्व पातित यन्त्रमें सप्त दोयनिमुँक पारेकी मन्वपून कर मिट्टीके कड़ाहमें तथा कुम्भाण्डके रस या तैलादिके साथ होलायन्त्रमें भात बार परिशोधित पारेसे दूनी हरताल तथा क्वचत्सुम्भकके रस और मिट्टीके रसको युक्ति-पूर्वक दे कर पारे और हरतालसे दूनी पलामकी मसम देखे। अनन्तर मिट्टीके रसमें सबको डुबा कर पोस्त के रसमें पुनः उमे बाप्टुन करे। पीछे बड़ो सावधानीसे शालकी लकड़ोकी आँवमें चौबीस पहर तक पाक करे। ठण्डा होने पर कौनके बरतनमें उसे रज छोड़े। मधु और जल, नारियल, जिङ्गिनोषयाघ या मधु और मोयेके रस करोध चार रत्तीसे ले कर प्रति दिन एक एक रत्ती करके बढ़ाये। इसमें वातरक्त, आम, सब प्रकारके कुष्ठ, अम्लपित्त, विस्फोट, मसूरिका और प्रदर रोग नष्ट होते हैं। इसमें मछली, मांस, दही, साग, खट्टा और लालमिर्चा खाना मना है।

विजयमन्दिर्गद—राजपूजानाके भरतपुर राज्यवर्तन एक प्राचीन गढ़। यहाँ भरतपुरके पुराने राजे वास करते थे। आज कल यह विलीयं ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया है।

विजयमहल (सं० पुं०) विजयाय महल। दक्ष, प्राचीन का तथा एक प्रकारका ढाल।

विजयमहल (सं० पुं०) एक राजाका नाम। (राजतर० ७।१२२)

विजयमाली (सं० पुं०) एक धनिकका नाम। (कथाश० ७३।२५४)

विजयसिद्धि (सं० पुं०) कर्मनाचिपति एक मन्मथराजका नाम। (राजतर० ७।३६६)

विजयपाषा (स० स्त्री०) यह पाषा जो किमी पर किमी पहाड़की विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की जाय ।

विजयशिल—भाष्यनिदानके प्रसिद्ध टीकाकार ।

विजयराज (सं० पु०) अजोध्याके एक भीषण । प्रस्तुत-प्रलापों—पारा और सोमा प्रत्येक ८ तोला ले कर एक साथ मिलाये, पीछे ८ तोला राज्यक डाल कर तब तक मर्दन करे, जब तक उमका रङ्ग कजली-सा न निकल आवे । इसके बाद पयदास, माघोद्धार और मोक्षोका लाया प्रत्येक ८ तोला तथा द्वागमूला (विजयमूल, विजयन, छोटी बटाई, बडो कटाई, गीनक, घेल, सोनावाडा, गंमारि, गनिपारी और पाडा) और सिद्धिचूर्ण, प्रत्येक ४० तोला मिला कर पहले उक्त द्वागमूलोंके पत्राथमें भायना दे पीछे पत्राथम चिनामूल, भृङ्गराज और सदिञ्जलके मूलकी छालके रसमें पूषक पूषक भायना दे कर एक मिट्टीके बरतणमें रखे और ऊपरसे मुंह बन्द करके एक पहर तक पुटपाकके विधानानुसार पाक करना होगा । पीछे जोतल हो जाने पर उससे भीषण निकाल कर अदरकके रसमें उम घाटना होगा । तीन या चार रसों भर भीषण पाकके रसके साथ सेवन करनेसे अज्ञोर्ण रोग जाता रहता है ।

विजयराघव—एक प्रसिद्ध नैपायिक । अमभायपत, जग-कीर्तिमण्डल, यद्रूपाचारि और संस्कृत-पुस्तिकाये रसकी बनाई हुई हैं ।

विजयराघवगुरु—मध्यप्रदेशके ज्वालपुरका एक भूभाग । इसके उत्तर मैर, पूर्वमें देवा तथा पश्चिममें मुन्दाया तह-सीर और पलाराउर पड़ता है । भू परिमाण प्रायः ७५० वर्गमाइल है । पहले यह स्थान एक सामन्तराज्यके अधीन था । विवादादिदोहके समय राजपूतधर्मके बागो होने पर इनका राज्य जल हुआ । यह भूभाग हरिके निये प्रथम है । यहाँ लोहा पाया जाता है ।

विजयराज—गुजरातके पालुपर्वजोय एक गाँव, मुद्रवर्म-राजके पुत्र । ये ३१४ बलपूर्वी मगधमें राज्य करने थे ।

विजयराज भाष्यकार—१ पाण्डुसर्पेदित्त और मानसपुत्रन नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता । ये अनुसृज्यावादीके नियम थे । २ मन्तरत्नाकर नामक शास्त्रिक ग्रन्थके रचयिता ।

विजयवृक्षो (सं० स्त्री०) विजय वृष खरमो । विजयवृ-अधिष्ठातो देवो, जिसको रुद्रा पर विजय निर्भर माने जातो है ।

विजयवन् (सं० लि०) विजय अस्त्रयें मनुष्य मान्य व । विजययुक्त, विजयो ।

विजयवर्मा (सं० पु०) एक प्राचीन संस्कृत कवि । विजयधम (सं० पु०) विद्याधरमेद ।

(कृपाव० १५१३३१)

विजयजालि—एक पूर्वतन सम्देशराज । पन्द्रोप देवो ।

विजयजाल (सं० पु०) यह शक्ति जो बराबर विजय करता हो, सदा जीतनेवाला ।

विजयधरो (सं० स्त्री०) विजय वय धरो । विजयधर्या, विजयकी अधिष्ठाता देवी जिसको रुद्रा पर विजय निर्भर मानो जातो है ।

विजयसप्तमी (सं० स्त्री०) विजयवाषा सप्तमी । विजय-सप्तमी, रविवारयुक्त शुक्ल सप्तमी । (हरिमण्डित०)

विजयसागर (सं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पूत । इसमें लकड़ो भीजार बनाने और इमारतके काममें भागो है ।
विदेवदेवो ।

विजयसिंह—१ मारवाड़ जोधपुरके एक राजा । ये महाराष्ट्र पणसिंहके पुत्र थे । जब महाराज बलसिंहने विजयप-यन पहन कर प्राण त्याग किया, तब उनके पुत्र विजय-सिंहको उस बॉस यशो की सी । इनका पदवि-दिलीके बादशाहकी मनुष्य दुर्मल हो गई थी, तथापि विजयसिंहने प्रचलित शक्तिके अनुसार दिलीके बादशाहके समीप जयने अनिपेक्षका संघर्ष उत्रवाया । दिलीके बादशाह इस पर बड़े प्रसन्न हुए । इसी प्रकार भारत-के सभी प्रथम प्रथम राजाओंने उद्देश्य मारवाड़का अधि-पति सहर्ष स्वीकार किया । मारवाड़के प्रारंभिक महत्त्व-स्थानमें विजयसिंहका अनिपेक्ष हुआ था । महाराज विजयसिंह यहोंने जा कर मैरनामें अज्ञोर्णरोग होने तक रहे ।

इनकी राज्यकयुक्त रामसिंहने बहुत दिनों तक मुद्रवर्म-जित रहना पडा था । अन्तमें बहुत परिश्रमके बाद राम-सिंहकी मारवा पर पाला फिर मरा और विजयसिंह मार-वाड़के समीपभारत अधीनपर हुए ।

२ कलचूरिधर्मोय एक राजा तथा गयकर्णके पुत्र । ३ हर्षपुरीयगण्डके एक प्रसिद्ध जैनाचार्य । इन्होंने बहुत-से जैन-ग्रन्थोंको टीका लिखी । इनके शिष्य प्रसिद्ध चन्द्र-सूरि थे ।

विजयमिहल—सिंहलद्वीपके प्रथम भार्य राजा । महावंश नामक पालि इतिहासमें लिखा है, कि वज्राधिपके औरस-से कलिङ्गराजकन्याके गर्भसे सुव्यदेयो (सूर्पदेयो) नाम-की एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई । ज्यों ज्यों उसकी उम्र बढ़ती गई, त्यों त्यों उमरकी सुखेच्छा भी बढ़ती गई । यहां तक, कि उसने एक दिन गृहका परित्याग कर छत्रवेशमें सार्वभौमके साथ मगधकी ओर प्रस्थान कर दिया । लाल (राष्ट्र)के जङ्गलमें एक सिंह उन पक्षियों पर दूट पड़ा । राजकुमारीको वही छोड़ सभी जान ले कर भागे । सिंहेने राजकन्याको ले कर अपनी गुहामें प्रवेश किया । सिंहेके सहयामसे राजकन्याके गर्भ रह गया । यथासमय एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुईं । पुत्रका नाम सीहवाहु (सिंहवाहु) और कन्याका नाम सीहसोवलि (सिंहधोवली) रखा गया ।

सिंहवाहु विजयमें सिंहेसे प्रतिपालित हो भागे चल कर राष्ट्रदेशका अधिपति हुआ । उसके बड़े लड़केका नाम विजय और मोंकोलेका सुमित्रा (सुमित्त) था । विजय अथाध्य और प्रजापोषक तथा उसके साथों भी नीच प्रकृतिके थे । राष्ट्रवासो जनसाधारण विजयके व्यवहार पर बड़े विगड़ें और सर्वोंने मिल कर सिंहवाहुके पस अपना दुखड़ा रोया । इस प्रकार तीसरी बार पुत्रके विरुद्ध अभियोग उपस्थित होने पर राष्ट्रपतिने विजयके और उसके साथियोंके बाधे गिरफ्तो मुह्यता नाथ पर बिठा समुद्रमें फेंक देनेका हुक्म दे दिया । विजय और उनके साथ भी अनुचरोंसे लदा हुआ जहाज मद्रामुद्र-में जा लगा । एक दूसरे जहाजमें उन लोगोंको रखी और तीसरे जहाजसे उनके बालबच्चे भी मिले । जहां पुत्रोंका जहाज लगा, यह नागद्वीप जहां स्त्रियोंका लगा, यह महेन्द्र और जहां विजयका जहाज लगा, यह स्थान सुव्यारकपट्टन (सूर्यारकपत्तन) कहलाता था । सूर्यारकमें अधिवासियोंकी शत्रुताके भयसे विजय चरता

जहाज ले पुनः वहांसे रथाना हुए । इस बार ये ताम्रपर्णोंमें उतरे । जिम दिन विजय उक्त द्वीपमें पहुँचे थे, उसी दिन युद्धका निर्वाण (५४३ ई०के) पहल हुआ । इस समय ताम्रपर्णद्वीपमें यक्षिणोरानो कुषेणिको यमीभूत कर ताम्रपर्णोंके अधोभर हुए । विजयके पिता सिंहवह-ने सिंहका बध किया था, इस कारण उनके वंशधररण 'सोहल' (सिंहल) कहलाते हैं । विजयसिंहल ताम्रपर्णी द्वीपमें राज्य करने लगे, इस कारण वह द्वीप 'सोहल' (सिंहल) नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

विजयने सिंहलपति हो कर पाण्ड्यराजकन्यासे विवाह करना चाहा और इसी उद्देशसे यहां एक दूत भेजा । सिंहलाधिपकी प्रार्थना पर पाण्ड्यराजने अपनी कन्याको उम्हें अर्पण कर दिया । उस पाण्ड्यराजकन्याके साथ अनेक नरनारी सिंहल जा कर बस गये थे ।

विजयको वृद्धावस्थामें कोई पुत्रसम्पान न होनेके कारण इन्होंने अपने छोटे भाई सुमित्तक पास राज्यग्रहण करनेके लिये समाचार भेजा । इस समय सुमित्त राष्ट्रदेशके अधिपति थे । उनके कई पुत्र भी थे । उम्होंने बड़े भाईका अभिप्राय सुन कर अपने छोटे लड़के पाण्ड्यराजको सिंहल भेज दिया । देवके वहां पहुँचनेसे पहले ही विजय ३८ वर्ष राज्य करनेके बाद इस लोकसे चल बसे थे । पाण्ड्यराज ही राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए ।

विजयसेन—गौड़के सेनवंशीय एक प्रबल पराक्रान्त और प्रधान राजा । हेमन्तसेनके औरससे यगोशदेवोंके गर्भमें इनका जन्म हुआ । इन्होंने अपने बाहुबलसे नान्य-देव, राघव, वन्दन और वीर आदि महावीरोंका धर्म चूर्ण तथा गौड़, कामरूप और कलिङ्गपतिवों परागत किया था । श्रोत्रिय या वैदिकिद्राष्ट्रपतिने इनसे इतना प्रचुर धन पाया था, कि उससे उन लोगोंकी स्त्रियोंने

० महावंशमें विंइसका १७ प्रकार नामकरण यद्यपि होने पर भी उसके बहुत परसे जो यह स्थान विंइस नामसे प्रसिद्ध था, महाभारतमें इसका प्रमाण मिलता है विंइस देवों ।

विजयवाता (सं० स्त्री०) यह वाया जो किमी पर किसी प्रकारकी विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ली जाय ।
 विजयवाहित—साधयतिदानके प्रसिद्ध दोहाकार ।
 विजयवास (सं० पु०) भक्तोर्षीरोगकी एक औषधि । प्रस्तुत-प्रयोग—घारा और मोला प्रत्येक ८ मोला ले कर एक साथ मिलाये, पीछे ८ तोला गन्धक डाल कर तब तक मर्दन करे, जब तक उमका रङ्ग कालोप्राप्त न निकल जाये । इसके बाद वयक्षार, सान्धोक्षार और मोहामेका लाया प्रत्येक ८ मोला तथा द्वागमूला (विजयमूल, विटवन, छोटी कटाई, बडो कटाई, गोबरू, घेल, सोनाशठा, संभारि, गनिवारो और पाठा) और मिट्टिपूर्णे, प्रत्येक ४० तोला मिला कर पहले उक्त द्वागमूलके बराबरी भागना दे पीछे पचायन चिनामूल, मूद्गराज और सहिद्वजनके मूलही छालके रससे पृथक् पृथक् भागना दे कर एक मिट्टीके बरतनमें रसे और ऊपरसे मुँह बन्द करके एक पहर तक पुटपाकके विधानानुसार पाक करना होगा । पीछे जोतल हो जाने पर उसमें औषधि निकाल कर अदरकके रसमें उसे घोटना होगा । तीन या चार रत्नों भर औषधि पानके रसके साथ सेवन करनेसे भक्तोर्षी रोग जाता रहता है ।

विजयवाघव—एक प्रसिद्ध नैवायिक । असमयवत्त, जत-कोटिमण्डन, यद्गुणविचार भादि संस्कृत-पुस्तिकाये रचना बनाई हुई हैं ।

विजयवाघवाण्ड—मध्यप्रदेशके जयशङ्करका एक भूभाग । इसके उत्तर मैदर, पूर्वमें देवा तथा पश्चिममें मुणवार जल-स्रोत और पश्चात्तर पठार है । मू परिव्याय प्रायः ७५० वर्गमील है । पहले यह ज्वाल एक सारप्रतलानके अधीन था । निवाहा विष्टोदके समय राजवंशधर्मके बाधो होने पर उमका राज्य जन्म हुआ । यह भूभाग हर्षिके लिये प्रथम है । यही मोहा प्रायः जाता है ।

विजयराज—गुजरातके चालुक्यवंशज एक राजा, पुत्रवर्मा-राजके पुत्र । ये ३३४ बल्लभूरी मारकभूमे राज्य काये थे ।

विजयराज भा.रा.कां—१ याकण्डकपेटिका और मानवपुत्र नामक अस्कृत नामके ग्रन्थका । ये अनुसुजायकांके जिन्य थे । २ मन्त्रराजाकरनामक सांख्यिक ग्रन्थके रचयिता ।

विजयवधुमो (सं० स्त्री०) विजय वधुमदयोः । विजयवा अधिष्ठातो देवो, तिसको हवा पर विजय निर्मात मानो जाती है ।

विजयवधुम् (सं० लि०) विजय अस्तवधे मनुष् मर्य व । विजयवधुक्त, विजयो ।

विजयवधुर्मा (सं० पु०) एक प्राचीन संस्कृत कवि ।

विजयवधेग (सं० पु०) पिशाचरभेद ।

(कथा० २१२२२)

विजयनािक—एक पूर्वजन्म चन्देलराज । चन्द्रानेव देवो ।

विजयनाल (सं० पु०) यह व्यक्ति जो बराबर विजय करता हो, मर्या ज्ञोतयेवाला ।

विजयपथो (सं० स्त्री०) विजय वधु भी । विजयपथका, विजयकी अधिष्ठाता देवो तिसको हवा पर विजय निर्मात मानो जाती है ।

विजयपद्ममो (सं० स्त्री०) विजयपद्मवा नामो । विजय-समयो, रविशायुक शुक्रा मस्तो । (इतिविश्व०)

विजयपद्मगर (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष वृत्त । इसकी लकड़ो भीतार बनाने और इमारतके काममें जाती है ।
 विरेशारदेवो ।

विजयसिंह—१ मारवाड़ कोषपुरके एक राजा । ये महाराज चणसिंहके पुत्र थे । जब महाराज बलसिंहको विजयपथ पदन कर प्रायः स्वाम किया, तब उनके पुत्र विजयसिंहको उग्र बोस यर्षी हो गयो । इस समय चणसिंह विष्टोके बादशाहकी प्रभुता दुर्बल हो गई थी, तथापि विजयसिंहने प्रवर्धित शक्तिसे प्रभुवार विष्टोके बादशाहके समीप अपने भूमिपते का संवाद लेतवाया । विष्टोके बादशाह इन पर बड़े प्रसन्न हुए । इसी प्रकार भारतके सभी प्रयाग प्रयाग राजाभीने उन्हे मारवाड़की सधि पति सहर्ष स्वीकार किया । मारवाड़के मारोठ नामक ज्वालमें विजयसिंहका समिपेक हुआ था । महाराज विजयसिंह यहाँमें जा कर निरन्तरी भक्तोर्षीपुत्र होने तक रहे ।

इसकी राज्यपुत्र नामसिंहने बहुत दिनों तक पुत्रो लिये रहता पड़ा था । अन्तमें बहुत परिश्रमके बाद राज्यसिंहका नामा पर राजा विजयसिंह नामक विजयसिंह मारवाड़के मारोठनामक ज्वालमें हुए ।

२ कलचूरियंतीय एक राजा तथा गयकर्णके पुत्र । ३ हर्षपुरीयगण्डुके एक प्रसिद्ध जैनाचार्य । इन्होंने बहुत-से जैन-ग्रन्थों को टीका लिखी । इनके शिष्य प्रसिद्ध चन्द्र-सूरि थे ।

विजयसिंहल—सिंहलद्वीपके प्रथम आर्य राजा । महावंश नामक पालि इतिहासमें लिखा है, कि चङ्गाधिपके औरस-से कलिङ्गराजकन्याके गर्भसे सुप्यदेवी (सूर्यदेवी) नामकी एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई । उषो उषो उमकी उग्र चढती गई, ह्यो ह्यो उमकी सुखेच्छा भी बढ़ती गई । यहाँ तक, कि उसने एक दिन शूद्रका परिस्वाग कर छत्रवेशमें सार्धायाहके साथ मगधकी ओर प्रस्थान कर दिया । लाल (राट्टदेश)के जङ्गलमें एक सिंह उन पंथियों पर टूट पड़ा । राजकुमारोको यहाँ छोड़ मगो जान ले कर भागे । सिंहने राजकन्याको ले कर अपनी गुहामे प्रवेश किया । सिंहके सहवाससे राजकन्याके गर्भ रह गया । यथासमय एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई । पुत्रका नाम सोहयाहु (सिंहयाहु) और कन्याका नाम सोहसोबलि (सिंहशोबली) रखा गया ।

सिंहयाहु विजयमें सिंहसे प्रतिपालित हो भागे चल कर राट्टदेशका अधिपति हुआ । उसके बड़े लड़केका नाम विजय और गंभोलिका सुमित्रा (सुमित्र) था । विजय अयाध्य और प्रजापीडक तथा उसके साथो भी मोघ प्रकृतिके थे । राट्टवासो जनसाधारण विजयके व्यवहार पर बड़े विगड़ और सशोने मिल कर सिंहयाहुके पास अपना दुखड़ा रोया । इस प्रकार तीसरी बार पुत्रके विरुद्ध अमियोग उपस्थित होने पर राट्टपतिने विजयके और उसके साथियोंके आधे शिरको मुड़या नाय पर बिठा समुद्रमें फेंक देनेका हुक्म दे दिया । विजय और उनके साथ सी अनुचरोसे लड़ा हुआ जहाज महाममुद्र-में जा लगा । एक दूसरे जहाजसे उन लोगोंको खी और तीसरे जहाजसे उनके बालबच्चे भी मिले । जहाँ पुत्रोंका जहाज लगा, वह नागद्वीप; जहाँ स्त्रियोंका लगा, वह महेन्द्र और जहाँ विजयका जहाज लगा, वह स्थान सुप्पारकपट्टन (सुप्पारकवलन) कहलाता था । सुप्पारकमें अधिवासियोंको शत्रुताके भयसे, विजय अपना

जहाज ले पुनः वहाँसे रवाना हुए । इस बार थे ताम्रपर्णी-में उतरे । जिस दिन विजय उक्त द्वीपमें पहुँचे थे, उसी दिन बुद्धका निर्वाण (५४३ ई०के) पड़ल हुआ । इस समय ताम्रपर्णीद्वीपमें यक्षिणोक्ता राजा था । विजय वधे साहस और कौशलसे यक्षिणोरानो कुर्षिणको यजीभूत कर ताम्रपर्णीके मघोभर हुए । विजयके पिता सिंह वृ-ने सिंहका वध दिया था, इस कारण उनके वंशधरगण 'सोहल' (सिंहल) कहलाते हैं । विजयसिंहल ताम्रपर्णी द्वीपमें राजा करने लगे, इस कारण यह द्वीप 'सोहल' (सिंहल) नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

विजयने सिंहलपति हो कर पाण्ड्यराजकन्यासे विवाह करना चाहा और इसी उद्देशसे यहाँ एक दूत भेजा । सिंहलाधिपको प्रार्थना पर पाण्ड्यराजने अपनी कन्याको उम्दे भरण कर दिया । उम पाण्ड्यराजकन्याके साथ अनेक नरनारी सिंहल जा कर बस गये थे ।

विजयको पृथ्वायस्थामे कोई पुत्रसन्तान न होनेके कारण उन्होंने अपने छोटे भाई सुमित्रक पाम राज्यग्रहण करनेके लिये समाचार भेजा । इस समय सुमित्र राट्टदेशके अधिपति थे । उनके कई पुत्र भी थे । उन्होंने बड़े भाईका अमिप्राय सुन कर अपने छोटे लड़के पाण्डुवास-को सिंहल भेज दिया । देवके यहाँ पहुँचनेसे पहले ही विजय ३८ वर्ष राजा करनेके बाद इस लोहसे चल बसे थे । पोछे वासदेश ही राजसिंहासन पर अमिपिक हुए ।

विजयसेन—गोडुके सेनवंशीय एक प्रबल पराक्राम्त और प्रधान राजा । हेमस्तसेनके औरमसे यगोदाश्वीके गर्भसे इनका जन्म हुआ । इन्होंने अपने बाहुबलसे नात्य-देश, राघव, यक्ष्म और घोर बादि महायोदोंका हर्ष चूर्ण तथा गौड़, कामरूप और कलिङ्गपतिनी परात्म किया था । ध्वात्रिय था वेदविद्व प्राप्तिपाने इनसे इतना प्रचुर धन पाया था, कि उससे उन लोगोंको प्रियाने

७ महावंशमें सिंहलका इस प्रकार नामकरण वर्णित होने पर भी उनके बहु-परसे जो यह स्थान सिंहल नामसे प्रसिद्ध था, महाभारतमें इसका प्रमाण मिलता है सिंहल देशों ।

परिचयि तुला, मरकत, काञ्चनादि मालाहार पहने
लेवे; विजय वस्त्र में यह भी कर लेवे है। उद्योग
मनुष्यीं प्रयत्नोन्मुख (हारिहर) मन्दिर नीचे उरुको
में एक उन्मुखको प्रतिष्ठा की तथा देवमैयाके लिये
को मुखरा बालायां नियुक्त की। मेलाखर्चमें विरजु
करे।

१ (मं० खी०) १ तिथिविरोध । यह तिथि
मयातिथि नामसे प्रसिद्ध है । २ मसीहिय दुर्गाद्वारा
विजया वस्त्रो पहने लेवे। ३ पुत्राणानुसार पापेणोको
मन्त्रोका नाम भी योजनको करवा यो । ४ विष्वा
य ठार आराधित विद्याविरोध । विष्वायामने इस
थाको उपासना का यो । मन्त्रमे तादृक भादि
मन्त्रोके मन्त्रारके लिये उद्योगमें यह विद्या नामधार्द्रको
विद्या का यो ।

४ दुर्गा । (देवमन्त्र) देवीपुत्राणमे तिथ्या है, कि दुर्गामे
इ समय पदनामके एक दुर्गति मयुराजका मन्त्रार
का यो, इत्यन्तये मन्त्रामे वं इस जगन्मै विजया
मने प्रसिद्ध दुर्ग । ५ वसका खीका नाम । ६ ददा-
करे, हर्ग । ७ यम । ८ जयन्ती । ९ शोचालिका,
मुष्टा । १० मञ्जिष्ठ, मन्त्राड । ११ जगामिड, एक
मन्त्रका नामो । १२ गनिवारो । १३ स्थापार विपके मन्त्र-
मनीज लयनोर् । १४ सावित्र्य गिरिजा । १५
वयो वटा । १६ द्योपूजा । १७ द्येयवय, १८ सोला
१९ विजयवर् । २० मोलदुर्गा, मोली दुर्ग ।
२१ मादकद्रव्याचरो, मिकि, मांग । मन्त्रेण यथाय—
मोक्षार्थकथा, मन्त्रा, इन्द्रायाम, जया । (१०५५०) पोर-
का, मन्त्रा, यजन, मन्त्रा, आत्मार्थ, हायिणी । गुण—
दु, कथाय, जन्म, मिक, बालकपान, सर्वोद्धार, पापमन,
मन्, मेवाकाको और धर्म वीर्य । (१०५५०) भावमन्त्राजके
मन्त्र यह दृष्टव्यताक या माना यो है । राजवत्सलमे इस
मन्त्रका गुणके भावमन्त्रमे एक सुन्दर हीपरदुर्गे
काका का है—

२२ यह महाद्वादशोके मन्त्रमे द्वारद्वारोविरोध । प्र-
पुत्राणमे तिथ्या है, कि मुद्रावस्त्रोय द्वादशोके दिन धयथा
मन्त्रा पङ्क्तिमे यह दिन मति पुत्रपजनक होता है तथा यदो
द्वादशो विजया वदलागी है । इस पुत्रय तिथिके दिन
स्नान करनेमे सर्वोभोय स्नानका फल तथा पुत्रा मन्त्र-
से एक वर्षमायामो पूजाका फल प्राप्त होता है । इस दिन
एक बार जप करनेमे मन्त्रा बार जप करनेका फल होता
है तथा क्षम, प्रकल्पभोजन, होम, स्तोत्रपाठ मध्या उप-
वास मन्त्रा गुणमे परिणत होते हैं । इस विजया द्वादशो-
का माहात्म्य समस्तुय बढ़ा हो चमत्कार है । इस तिथिमे
मन करनेको विधि है । हरिकण्ठिभोसामे इस द्वादशो
मन्त्रका विधि इस प्रकार देखनेमें आती है—पहले गुण
को प्रणाम कर पाठे मन्त्रुय करे । इस मन्त्रुयको एक
विरोध मन्त्र है । जैत—

“मन्त्रावद्” मियाहास विपदवारमन्त्रेदरि ।
भोपुने विपकमानन्त तरपा मे भवाम्भुय ॥”

इसके बाद यथो भोवयोग काल म् स्थापन करे ।
उम कालमे ऊपर साध या योपय पात रचना होमा और
उमके ऊपर उपास्यदेवको स्नान करा कर स्थापन करवा
होमा । यह देवमूर्ति भोनेकी होगी तथा इसके हाथमें
दर और झाङ्गे रहेगा । पाठे देवमन्त्राको मन्त्रुयमन्त्र,
मुद्रावसन तथा पादुका और छत्र भादि मन्त्रामे लेगे ।

मन्त्रेद्वारके बाद यथाजाति पूज और मीनेय मन्त्राये ।
मीनेयके मन्त्रावमे कहा है, कि प्रयागना पुत्रपक मीनेय हा
मन्त्रामे । इसके बाद उम मन्त्रिको ज्ञान कर विनयि । दूसरे
दिन मन्त्रे स्नान कर देवादीनाके बाद पुत्राव्रति नाम
करे ।

इसके बाद देवोद्धारमे पुत्रा मन्त्रेद्वार और उमका
मन्त्रोचिदान तथा पाठे मन्त्रमन्त्रोक्त और पाण
साधारण, यदो विजयामन्त्रका विधि है ।

हरिकण्ठिभोसामके मन्त्रमे मादकामके सुवधारका
पादु यह विजयामन्त्र कथा मन्त्र, मो माहात्म्यमन्त्रामे
यह नामा मन्त्रोय धेनु होमा, इममे मन्त्रेद्वार मन्त्रे ।
३३ मन्त्रेद्वारका यो । मन्त्रेद्वारके मन्त्राव मन्त्राव्रति

पुत्रने जन्म लिया जिसका नाम सुहोत था ।

(महाभारत १'६५'८०)

२४ पुण्डरीकीय भूमन्युकी स्त्री । भूमन्युने विजया
के दाशार्ह नन्दिनीका पाणिग्रहण किया । इस विजया-
भर्मेसे सुहोत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

(महाभारत १'६५'३३)

२५ एक योगिनीका नाम । २६ वर्त्तमान अपसर्पिणीके
अर्हत्की माताका नाम । २७ दक्षकी एक कन्या-
नाम । २८ श्रीकृष्णकी माताका नाम । २९ इन्द्रकी
माता परकी एक कुमाराका नाम । ३० प्राचीनकालका
एक राजाके नाम । ३१ दश माताओंका एक मातृक छन्द ।
३२ अश्वरोंका कोई नियम नहीं होता और इनके अन्तमें
रखना अति मधुर-होता है । ३३ एक वर्णिक पृथु ।
३४ अस्थिक चरणमें आठ वर्ण होने हैं तथा अन्तमें लघु
गुह अथवा नगण भी होता है । ३५ काश्मीरके एक
नक्षत्रका नाम । ३६ मन्द्राजप्रदेशके एक गिरिसङ्कट
का नाम । ३७ सह्याद्रिपर्वतसे निकली हुई एक नदी का
नाम । (सह्याद्रिखं)

१ एकादशी (सं० स्त्री०) १ आश्विन मासके शुक्ल-
तीकादशी । २ फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी एका-
दशी ।

विजयादशमी (सं० स्त्री०) चान्द्राश्विनकी शुक्लादशमी ।
विजयादशमी तिथिमें मगवती दुर्गादेवीका विजयोत्सव
है, इसीसे इसको विजयादशमी कहते हैं । इस दिन
शिवजीको विजयके लिये यात्रा करनेकी विधि है । यह
विजयादशमी तिथिमें करने होगी । यदि कोई राजा दशमी-
उत्सव कर एकादशी तिथिकी यात्रा करे, तो साल
के भीतर उसकी कहीं भी जीत न होगी । यदि कोई
राजा यात्रा करनेमें असक्त हो, तो ब्रह्मादि अन्न जलकी
यात्रा करे । करनेका तात्पर्य यह, कि विजयादशमी
तिथिमें ही अपने या ब्रह्मादिकी भस्मरस यात्रा करने
दिये ।

विजयादशमी तिथिमें देवीकी यथाविधि पूजा करके बलि-
दान नहीं करना चाहिये, करनेसे यह राष्ट्र नष्ट हो
जाता है ।

इस तिथिमें गोरान्तकके बाद जल, गो तथा गोशालके

समीप भूमि पर खज्जन देवता शुभ है । इस समयमें कुछ
विशेषता है । वह यह, कि शुभ स्थानमें खज्जन देवनेसे
मङ्गल और अशुभ स्थानमें देवनेसे अमङ्गल होता है ।
पद्म, गो, गज, घोडा और महीरग आदि शुभ स्थानोंमें
देवनेसे मङ्गल तथा मरुम, अग्नि, काष्ठ, तुप, लोम
और तृणादि अशुभ स्थानोंमें देवनेसे अशुभ होता है ।
यदि अशुभ खज्जन का दर्शन हो, तो देवब्राह्मणका पूजा,
सर्षपविधि जलस्नान और श्रान्ति करना आवश्यक है ।

प्रवाद है, कि इस दिनकी यात्रा करनेसे साल भर
और कोई यात्रा नहीं करना होती । यही यात्रा समो
स्थलोंमें शुभ होती है । यही कारण है, कि बहुतेरे लोग
देवीनिरञ्जनके बाद उस वेदां पर वैद्य दुर्गा नाम जप कर
यात्रा करते हैं ।

दुर्गास्तत्रवपञ्जतिम् विजयादशमीकृतवका विषय इस
प्रकार लिखा है :-

"आर्द्राया बोधवेदेवी मूलेनेव प्रवेशयेत् ;

पूर्वां सराण्यां संपूज्य श्वयेन विमर्जयेत् ॥" (तिथितत्त्व)

आर्द्रा नक्षत्रमें देवीका बोधन, मूला नक्षत्रमें नव-
पत्त्रिकाप्रवेश, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्रमें पूजा
तथा श्रवणा नक्षत्रमें देवीका विमर्जन करना होता है ।
विजयादशमीके दिन श्रवणा नक्षत्र पड़नेसे विमर्जनके
लिये बहुत अच्छा है । उस दिन यदि श्रवणा नक्षत्र न
पड़े, तो केवल दशमी तिथिमें विमर्जन करना उचित
है । इस तिथिमें पूर्वाह्नकालके चरलानमें देवीका विम-
र्जनकाल है । विमर्जनमें चरलानका परिवर्तन करना
कदापि उचित नहीं ।

विजयादशमी प्रयोग—इस दिन प्रातःकालमें प्रातः
कृत्यादि करके भ्रामन पर बैठे । पीछे भावमन, सामा-
न्याहर्ष, गणेशादि देवता पूजा तथा भूतगुडि और ग्वा-
सादि करे । इसके बाद मगवती दुर्गादेवीका 'मो जटा-
जटममायुकां' इत्यादि मन्त्रोंसे ध्यान कर विशेषार्घ्य-
स्थापन तथा फिरसे ध्यान करे । बादमें शनिके अनु-
सार देवीको पूजा करना होगा । पूजाके बाद देवीका
स्तवपाठ करके प्रक्षिण करना होगा । अनन्तर पटपु-
त्रिनाम और चित्रिटकादि तथा मोरशीतसर्ग करके
भारती और प्रणाम करनेका विधान है ।

परिचयि मृगा, मरुत, काक्ष्यादि अन्तःकर परतने
ये ये । विजय दृष्टमे एक मी वर भये है । अश्विने
तनुयुधो पशु संभार (हरिश्च) तन्त्रि नीर उरके
मने एक ज्ञानावकी प्रतिष्ठा को तथा देवमेपाके विदे
त मी सुदृशो वागात् विपुल को । अन्तःकरने अश्वि
अप देवे ।

१३ (म'० स्त्री०) १ निमिर्विशे । यह निमि
ककानिध मममे प्रसिद्ध है । दसमीद्वय दुर्गाद्वय
विजया दसमे मरु देवे । २ पुराणानुसार पार्वतीकी
३ मन्त्रोका नाम तो मेलनकी कथा थी । ३ विजया
विजया सायापिन विद्याविशेष । विद्यामित्रने हम
थाको उपासना का थी । मन्त्रमे तादृका सादि
समीक वदारेके निवे अश्विमे यह विद्या रामचन्द्रको
उपना का थी ।

४ दुर्गा (देवमन्त्र) देवीपुराणमे लिखा है, कि दुर्गा
के मन्त्र पञ्चमामर एक दुर्गा अतुरराजका सांसार
का था, इसलिये तमामे ये इस जगत्मे विजया
मने प्रसिद्ध हुई । ५ पशुकी स्त्रीका नाम । ६ दस
की, हरी । ७ पशु । ८ जवन्ती । ९ सौम्यिका,
सुन्दरी । १० मञ्जिष्ठा, मजाठ । ११ जामोत्र, एक
कारका जामो । १२ मनिपायो । १३ कथावर विपके अन्त-
त माल विपके । १४ सावित्र्य गिरिका । १५
का वरा । १६ देवीद्वय । १७ देवकष, १८ मोगी
म । १९ विजयम् । २० सोमदूर्वा, सोली दू ।
१ मादकदूर्वापरीय, मजि, मीत । म'० मन्त्र पर्वत—
विपकविजया, अहू, अटामन, तथा । (मन्त्र०) सोर-
ता, मन्त्र, अन्तर, अन्तरा, अन्तरा, हविषा । गुण—
दु, कषाय, उष्ण, तिक्त, मालककृतन, म'० मन्त्र, पाचक,
मन्, मेधाकारक और श्रेष्ठ दायक । (मन्त्र०) भावप्रकाशके
मने यह दृष्टकालक भी माना गये है । दसकालमे इस
कालके गुणके अन्तर्गत एक सुन्दर वीर्यवृद्धी
कारक का है—

२२ यह महाद्वादशको मन्त्रमे द्वादशोविशेष । अश्वि
पुराणमे लिखा है, कि सुदृशको द्वादशके दिन अश्वि
मन्त्र पढ़नेमे यह दिन भक्ति पुण्यजनक होता है तथा यही
द्वादशी विजया कदमाती है । इस पुण्य निमित्तके दिन
स्नान करनेमे वर्षभरके स्नानका फल तथा पूजा मन्त्र-
मे एक वर्षकापिना पूजाका फल प्राप्त होता है । इस दिने
एक बार जप करनेमे सद्यः बार जप करनेका फल होता
है तथा राम, प्र ह्यणमोजन, होम, शोलापाठ अथवा उपा-
सना सद्यः गुणमे परिणत होते है । इस विजया द्वादशी-
का साक्षात्पुण्य समुच्चय कथा ही समस्तार है । इस निमित्त
मन करनेको विधि है । हरिमन्त्रविद्यामने इस द्वादशी
मन्त्रकी विधि इस प्रकार देवनेमे भागा है—यहमे सुद-
री प्रणाम कर पाठे मन्त्रजप करे । इस मन्त्रद्वारा एक
विशेष मन्त्र है । जैत—

“दाद-भर” निराहार विपलाहमदेवनि ।
मोदुदे विजयमन्त्र दसमी मे मन्त्राद्युत ॥”

इसके बाद मन्त्री मोदयोग कल्प्य स्वापन करे ।
उम कालके ऊपर तादृ या वीजप पात रक्षना होगा और
उमके ऊपर उपास्यदेवके स्नान करा कर स्वापन करना
होगा । यह देवमूर्ति सोनेकी होगी तथा इसके हाथमे
गर और जामू रहेगा । पाठे देवमन्त्रमात्रे सुसुखदम,
सुसुखमन तथा वादुका और छत सादि चढाये होगी ।

अर्घ्यदानके बाद पञ्चांगिक पूज और मीवेक चढ़ाये ।
मिथेयके मन्त्रजपमे करा है, कि प्रयागका पूजक मीवेक हो
चढ़ाये । इमके बाद उम सावित्री ज्ञान कर विनाये । दूसरे
दिन मन्त्रे स्नान कर देवावांताके बाद पुराणिक दान
करे ।

इसके बाद देवीदेवकी पुनः अर्घ्यदान और जपक
मन्त्रीरहितवान तथा पाठे मन्त्रमन्त्रोक्त और वापन
मागल्य, यही विजयापनका विधि है ।

हरिमन्त्रविद्यामने मन्त्रमे मादृमायके सुवकारका
यदि यह विजयमन्त्र किया मन्, तो साक्षात्पुण्यमामे
यह मन्त्र मन्त्रमे श्रेष्ठ होगा, इममे मन्त्रे मन्त्रे ।

२३ मन्त्रेयकी मन्त्र । मन्त्रेयके मन्त्रमे सुनिन्दकी
मन्त्रेयके मन्त्रमे मन्त्रमे मन्त्रमे मन्त्रमे मन्त्रमे

एक पुत्रने जन्म लिया जिसका नाम सुहोत था ।

(महाभारत १'६५।८०)

२४ पुण्यशोच भूमन्युकी स्त्री । भूमन्युने विजया नाम्नी दांशार्हानन्दिनीका पाणिप्रदण किया । इस विजयाके गर्भसे सुहोत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

(महाभारत १'६५।३३)

२५ एक योगिनीका नाम । २६ वर्तमान अपसर्पिणीके दूसरे अर्द्धत्की माताका नाम । २७ दक्षकी एक कन्याका नाम । २८ धीरुष्णकी माताका नाम । २९ इन्द्रकी पताका परकी एक कुमाराका नाम । ३० प्राचीनकालका एक बड़ा खेमा । ३१ दश माताओंका एक मातृक छन्द । इसमें अक्षरोंका कोई नियम नहीं होता और इनके अन्तमें रगण रचना अति मधुर होता है । ३२ एक चर्पिक वृक्ष । इसके प्रत्येक चरणमें आठ पर्ण होते हैं तथा अन्तमें लघु और गुरु अथवा नगण भी होता है । ३३ काशमोरके एक पवित्र क्षेत्रका नाम । ३४ मन्द्राजप्रदेशके एक गिरिसङ्घटका नाम । ३५ सहाद्रिवर्षोत्से निकली हुई एक नदीका नाम । (सहाद्रिव०)

विजया एकादशी (सं० स्त्री०) १ आश्विन मासके शुक्लपक्षकी एकादशी । २ फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी एकादशी ।

विजयादशमी (सं० स्त्री०) चान्द्राश्विनकी शुक्लादशमी । इस दशमी तिथिमें भगवतो दुर्गादेवीका विजयोत्सव होता है, इसीसे इसकी विजयादशमी कहने हैं । इस दिन राजाओंको विजयके लिये यात्रा करनेकी विधि है । यह यात्रा दशमी तिथिमें करने होगी । यदि कोई राजा दशमीका उलङ्घन कर एकादशी तिथिकी यात्रा करे, तो साल भरके अन्तर उमकी कर्तौ भी जीत न हाँगी । यदि कोई स्वयं यात्रा करनेमें मग्न हो, तो खड्ग आदि अस्त्र शस्त्रकी यात्रा कर रहे । कहनेका तात्पर्य यह, कि विजयादशमी तिथिमें ही अपनी या खड्गादिकी अस्त्रशस्त्र यात्रा करने चाहिये ।

दशमी तिथिमें देवीकी मध्याह्निक पूजा करके बलिदान नहीं करना चाहिये, करनेसे यह राक्षस नष्ट हो जाता है ।

इस तिथिमें भीराजके बाद जल, गो तथा गोशालके

समोप भूमि पर खज्जन देवता शुभ है । इस सम्बन्धमें कुछ विशेषता है । वह यह, कि शुभ स्थानमें खज्जन दधानसे मङ्गल और अशुभ स्थानमें खज्जनेसे अमङ्गल होता है । पद्म, गो, गज, घासा और महोरग आदि शुभ स्थानोंमें खज्जनेसे मङ्गल तथा भस्म, अम्पि, काष्ठ, नुप, लोम और तृणादि अशुभ स्थानोंमें खज्जनेसे अशुभ होता है । यदि अशुभ खज्जन जा दरान हो, तो देवप्राप्तनका पूजा, सर्वोपधि जलस्नान और शान्ति करना आवश्यक है ।

प्रवाद है, कि इस दिनकी यात्रा करनेसे साल भर और कोई यात्रा नहीं करने होती । यहो यात्रा सभी स्थलोंमें शुभ होती है । यही कारण है, कि बहुतेरे लोग देवीनिरञ्जनके बाद उस घंटी पर चैत दुर्गा नाम जप कर यात्रा करते हैं ।

दुर्गास्तवपद्धतिमें विजयादशमीकृतवका विषय इस प्रकार लिखा है :—

"आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत् ;

पूर्वाचराम्बां संपूज्य स्वयेन विमर्जयेत् ॥" (तिथितत्त्व)

आर्द्रा नक्षत्रमें देवीका बोधन, मूला नक्षत्रमें मध्याह्निकप्रवेश, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्रमें पूजा तथा श्रवणा नक्षत्रमें देवीका विसर्जन करना होता है । विजयादशमीके दिन श्रवणा नक्षत्र पड़नेसे विसर्जनके लिये बहुत अच्छा है । उस दिन यदि श्रवणा नक्षत्र न पड़े, तो फेवल दशमी तिथिमें विसर्जन करना उचित है । इस तिथिमें पूर्वाह्नकालके चरलम्नमें देवीका विमर्जनकाल है । विसर्जनमें चरलम्नका परिवर्तन करना कदापि उचित नहीं ।

विजयादशमी प्रयोग—इस दिन प्रातःकालमें प्रातःकृत्यादि करके आसन पर बैठे । पीछे आचमन, सामान्याचार्य, गणेशादि देवता पूजा तथा भूतशुद्धि और स्वासादि करे । इसके बाद भगवतो दुर्गादेवीका "भी जटाजूटममामुक्तं" इत्यादि मंत्रोंमें ध्यान कर विशेषार्घ्यस्वापन तथा किरमे ध्यान करे । बादमें प्रातःके मनुस्मार देवीकी पूजा करनी होती है । पूजाके बाद देवीका स्तवपाठ करके प्रदक्षिण करना होगा । अनन्तर पशुपितामन और विपिटादि तथा मोशोरसर्ग करके भारती और प्रणाम करनेका विधान है ।

विजयो विजयो विजयो वामो ज्ञान, वचनके समाप्ता घंटे तथा वाचिनाका शब्दा देवीकी मोग जगता जाता है। इसके बाद हाथ मोड़ कर निजनिविद्यन मग्न पड़ना होता है —

“मो विचरंते मन्त्रिणं विचरंते परमिणम् ।

मन्त्रं मन्त्रं मन्त्रं ह्यनुमन्त्राणामोचते ॥”

इसके बाद देवाके मन्त्रमें जितने जापवाक्य देवता है। उसको बमलन कर मन्त्रमें मोहा जन्म ज्ञान ‘मो मुने’ मुने’ अमल्य’ देखा पड़ते ।

बमलन देवाके वक्षिण-पश्चिम कोणमें एक मिथिल गण्डक बनाये। गण्डकके मध्य एक घट उस गण्डकमें एक ब्रह्मामुद्रा द्वारा एक पुष्प लेये और “मो निमोच्य पाणिभ्ये जना मो चण्डोभ्यो जना” इस मन्त्रमें बमलन निमोच्य घटके ऊपर एक कर पूजा करे। इसके बाद ‘मो ० मे’ वक्षिणको जग ‘इस मन्त्रमें पूजा करके देवाका वक्षिण पश्चिम पक्षमें मन्त्रपाठ करना होता है।

इसके बाद एक मिट्टी या भाँचेके बरतन पर दूधपत्र रखे और घटके जल उस बरतनमें डाल दूधन विमर्शन करे। वह दूधनयुक्त जल देवाके आगमें रखना होता है। उस पालके जलमें देवाका वाचन देवताके निवण है। उस जलमें देवाके वाचनपत्रा दर्शन कर देवाको प्रणाम करना होता है।

मन्त्रपाठ कर देवाका घट उठा लाये और उसके जल में पुष्प द्वारा मन्त्रपाठ करे तथा देवाको आतिथान और निमोच्य पुष्प द्वारा देवताका आशीर्वाद देवे। इस आतिथ और आशीर्वाद द्वारा देवाके वाचमें अब और मन्त्र होता है।

इस प्रकार देवाका विमर्शन करके जना प्रदाराके मोग वाचपारिपत्य देवा देवा निवणको मन्त्रों विमर्शन करे ;
(दुर्गासप्तशती)

देवा-विमर्शनके बाद ब्रह्मोंको प्रणाम और छोड़ीको आशीर्वाद तथा आतिथान करना होता है।

विजयपारिपत्य—१. प्रथम वाचनपत्रमें एक वृत्त मन्त्र। वाचन देवाके। २. वक्षिणपश्चिम, पश्चिमपश्चिम की एक मन्त्र।

विजयपारिपत्य—३. वाचनपत्रमें एक वृत्त मन्त्र। ११० मन्त्रों में विमर्शन है।

विजयपारिपत्य—एक विजयपत्र पदिपत्य। हरद्वीमें विजयपत्र, वाचनपत्र और वाचनपत्रों दोका विजयो है।

विजयपारिपत्य (मं० पु०) १. देवाके एक प्रकारकी भीषण। इसके बमलनकी तरहको—एक जग पादे और जो जग हरनाके मन्त्रपूज कर मिट्टीके बरतनमें रखे। मोटे इसके ऊपर देवाके वाचन पलाजममग दे कर बरतनके मुँहमें लेप लगाये और वीथीम पदर पाठ करे। ठंडा होने पर एक पादेकी ले कर काँचके बरतनमें माषपाणीरी रखे। इसी विधानसे और सब प्रकारका वृत्तयोग पूरा होता है। २. मन्त्रोंमें सातके साठ मुख्य मन्त्रोंमें एक।

विजयपारिपत्य—मोहापुत्रके एक अधिपति। प्रायः ११५० देवाके विधानम है।

विजयपारिपत्य (मं० पु०) पुराणानुसार एक दर्शनका नाम।

विजयपारिपत्य—मन्त्रों मन्त्रोंके एक प्रसिद्ध भोलापत्र।

विजयपारिपत्य (मं० त्मी०) ब्रह्मलोमिकाके एक भीषण। प्रकृतन पत्ताली—२ मोहा, वारा और २ मोहा मन्त्रके ले कर ब्रह्मोंके बनाये। मोटे जलमें मोहा, रुवा, तीता, मन्त्रेण २ मोहा मिटा कर उमें ब्रह्मके रममें छोड़ दे। मन्त्रपर उममें दूधो वृत्तके छिपकेकी मग्न मिटा कर मन्त्रों तरह मोटे मोटे गाए रकोकी मोदी बनये। एक एक मोदी प्रति दिन बरतनके दूध या पूजकको छानके बाद-के माग लेवन करे। मोटे मिट मन्त्राद मोहनके मग्न इसकी दो रको ले कर दूधिमिष्टान अमकके मग्न प्रायके माग काये। इस मोहनकाकी प्राय प्रति दिन एक एक रको बड़ा कर जित दिन दान रको पूरा हो जाय, उसके दूधरे शिवमें मिट एक एक रको करके पठवे इसका पठन ही मन्त्रों मन्त्र दानका जग और वक्षिणम (प्रायः जग जलमें मिट्टी कर ठंडा कि वा दूमा)।

विजयपारिपत्य (मं० त्मी०) अनामोमकी एक भीषण। प्रकृतन पत्ताली—पादा, मन्त्र, मोहा, विज, मन्त्र, विदु, देवुद, मोहा, इनपको, मोहनपूज, मन्त्रेण, विदु, विजय, तीता, जिना और जगजग मन्त्रेण मग्नम प्राय अमक करे। मोटे मन्त्रों दूधो पूज मिटा कर मोहा बनाये। इसमें अमक, चाय, सप, मूल्य, प्रदीप, विजयपत्र, मन्त्रिक, ब्रह्मलोमिका, दूध, वाचन, मन्त्र और मन्त्रपत्रके मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र लेये हैं।

विजयपारिपत्य (मं० त्मी०) अनामोमकी एक भीषण। प्रकृतन पत्ताली—पादा, मन्त्र, मोहा, विज, मन्त्र, विदु, देवुद, मोहा, इनपको, मोहनपूज, मन्त्रेण, विदु, विजय, तीता, जिना और जगजग मन्त्रेण मग्नम प्राय अमक करे। मोटे मन्त्रों दूधो पूज मिटा कर मोहा बनाये। इसमें अमक, चाय, सप, मूल्य, प्रदीप, विजयपत्र, मन्त्रिक, ब्रह्मलोमिका, दूध, वाचन, मन्त्र और मन्त्रपत्रके मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र लेये हैं।

विजयपारिपत्य (मं० त्मी०) अनामोमकी एक भीषण। प्रकृतन पत्ताली—पादा, मन्त्र, मोहा, विज, मन्त्र, विदु, देवुद, मोहा, इनपको, मोहनपूज, मन्त्रेण, विदु, विजय, तीता, जिना और जगजग मन्त्रेण मग्नम प्राय अमक करे। मोटे मन्त्रों दूधो पूज मिटा कर मोहा बनाये। इसमें अमक, चाय, सप, मूल्य, प्रदीप, विजयपत्र, मन्त्रिक, ब्रह्मलोमिका, दूध, वाचन, मन्त्र और मन्त्रपत्रके मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र लेये हैं।

विजयपारिपत्य (मं० त्मी०) अनामोमकी एक भीषण। प्रकृतन पत्ताली—पादा, मन्त्र, मोहा, विज, मन्त्र, विदु, देवुद, मोहा, इनपको, मोहनपूज, मन्त्रेण, विदु, विजय, तीता, जिना और जगजग मन्त्रेण मग्नम प्राय अमक करे। मोटे मन्त्रों दूधो पूज मिटा कर मोहा बनाये। इसमें अमक, चाय, सप, मूल्य, प्रदीप, विजयपत्र, मन्त्रिक, ब्रह्मलोमिका, दूध, वाचन, मन्त्र और मन्त्रपत्रके मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र लेये हैं।

विजयामसमी (सं० ख्री०) विजयासप्तमी । फलित
 ज्योतिषके अनुसार किमी मासके शुक्ल पक्षकी बृह
 सप्तमी जो रविवारको पड़ै । इस सप्तमी तिथिमें दान
 करनेसे विशेष फल हुंआ करता है ।
 विजयिन् (सं० वि०) विशेषेण जेतुं शोलमस्य वि-जि
 (वि-ट्-क्विभोति । ; पा ३.२.१५७) इति इति । १ जिमने
 विजय प्राप्त को हो; विजयः करनेवाला, जीतनेवाला ।
 (पु०) २ मञ्जु न ।
 विजयिन् (सं० लि०) विजिऊ, ऐसा मोजन जिममें अधिक
 रस न हो ।
 विजयगे (सं० लि०) विजयिन् देवो ।
 विजयेश्वर (सं० लि०) एक प्रसिद्ध मिश्र धार्मिक । भानन्द
 त्वातस्यवाद् न्यायाम् ही नामोद्दृष्टाका, व्यासकोर्ध्वजित
 तातवर्धनंन्द्रिकाके 'चन्द्रिकोदाहृतन्यायविवरण' और
 'अप्यथकोल पेटिका' आदि प्रणय इनके रचे हैं ।
 विजयेश्वर स्वामी—चक्रवीमांसाके रचयिता ।
 विजयेश (सं० पु०) १ शिवका एक नाम जो विजयके
 एक देवता माने जाते हैं । २ काशमीरके एक प्रसिद्ध शीव
 सोई । इसका वर्तमान नाम विजयोर है ।
 विजयेश्वर (सं० पु०) विजयेश देवो ।
 विजयैकादशी (सं० ख्री०) एकादशीभेद, आश्विन मास
 की शुक्ल एकादशी और फाल्गुनकी कृष्णा एकादशी ।
 विजयोदस्य (सं० पु०) विजयायामुदस्य । १ यह उदस्य
 जो किसी प्रकारकी विजय प्राप्त करने पर होता है ।
 २ यह उदस्य जो आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमीको
 होता है, विजयादशमीको होनेवाला उदस्य । हरिमक्ति-
 यिलासके मतसे विजयादशमीके दिन विजयोरस्य करना
 होता है । इस उदस्यका विधान इन् प्रकार लिखा
 है, कि रक्षःकुमारक धीरामचन्द्रकी राजवेगमें विभूयिन्
 करके रथ पर घेडा कर शमोवृक्षके न चे ले जाना होगा ।
 यही विभूयिर्षक पूजादि कर धारामचन्द्रको भीरु शमो
 वृक्षकी पूजा करके मन्त्र पढ़ना हाता है ।
 (हरिभक्तिसि० ११ वि०)
 विजय (सं० लि०) विजया द्वारा यस्य । १ उत्तरहित
 जिने जरा या युद्धापान भाषा हो । २ नवीन, नया ।
 (का०) ३ गुच्छ ।

विजय (सं० ख्री०) प्रलयकोकही एक नदीका नाम ।
 विजयार् (सं० लि०) विशेष प्रकारके जोगीजोगी, अथवा
 जार्णशार्ण । "पुण जरा कलेपर विजय रोकते त वे ।"
 (महाभात)
 विजय (सं० लि०) विगतं जतं यस्मान् । १ अथ दृष्ट
 जल या वर्षाका अभाव, सूखा । २ जतका न होना,
 पानीका अभाव । ३ विजय ।
 विजय (सं० ख्री०) चन्द्रयुगाक, चंचु या चैत्र नामका
 साग ।
 विजय (सं० पु०) विदेषेण जग्मन् । १ मन, फूट
 और तरह तरहकी ऊटपटांग बातें करना, प्यर्थका बहुत-
 सी बकबाद । २ किसी सज्जन या मने आदमीके सम्बन्ध
 में दोषपूर्ण फूटो बाने कहना ।
 विजयल—विजयें, पिच्छल ।
 विजयक—विजयका नामकी खोकी ।
 विजयापट्टम् (विशाखपत्तन) मद्राज प्रसिद्धसोके अथ-
 र्गत संभ्रंज अथिष्टन एक जिला । यह अक्षा० १७°१५' से
 २०°७' उ० और देशा० ८१°८७' से ८४°३५' पू०के लगभग द्वी
 जयपुर और विजयनगरम्की मूमर्षासि मिला कर इसका
 भूगर्माण १७२२२ वर्गमील है । स्थानका मापतन
 और जनसंख्याके हिसाबसे यह जिला मद्राजप्रसिद्धसोके
 अगवान्य जिलेसे बड़ा है । इसका जनसंख्या तीन
 लानसे ऊपर है ।
 इसको उत्तरी सीमा पर मझम जिला और विहार-
 उड़ीमेके देशोराज्य, पूर्वी सीमा पर मझम और बङ्गोप-
 सागर, दक्षिणी सीमा पर बङ्गोपसागर और गोदावरी
 जिला और पश्चिमी सीमा पर मध्यप्रदेश अवस्थित है ।
 १४ जनोद्धारियों, ३७ सरकाधिकारियोंकी भूमर्षाचियां
 और गोलकुण्डा, सर्वोसिद्धि और पान्डुरुण्डा नामक तीन
 सरकारी तालुकोंको ले कर यह जिला गठित है । इस-
 का प्राचीन नाम विशाखपत्तन है और विशाखपत्तन
 नगरमें ही जिलेकी अदालत प्रतिष्ठित है ।
 यह जिला मद्राज प्रसिद्धसोके उत्तर भंजमें समुद्री-
 पक्ष पर अवस्थित है । इनहासमें यह देशभाग उत्तर-
 सरकार (Northern Circars) नामसे जिहाबद्ध है ।
 पूर्वाभिभाग बङ्गोपसागरकी मालजलराज और उत्तरेके

विजया विजया देवतां वामां मया, वक्रगुणैः साधना सांठ
 मया साधिकायाः सदा देवोकी तेषां सदाया जाता दे ।
 इसके बाद हाथ छोड़ कर निरामन्विता मन्त्र पढ़ना
 होता है —

“सो विजयैः सविदुःम विजयैः सददित्यु ।
 सदां मयु मयु सां” स्वरूपसाधनादेवैः ॥”

इसके बाद देवतां सज्जिने आचरण देवता है ।
 उनको हमारा कर घटमें भीड़ा जल डाल “सो दूर्गे दूर्गे
 सात्म्य” देना पड़े ।

समस्त देवतां दक्षिण-पश्चिम कोणमें एक तिथीज
 मन्त्रज बनाये । मन्त्रघटके मध्य एक घट उम मन्त्रजमें
 एक लोहासमुद्रा द्वारा एक पुण सिंहे और “सो निरामन्व-
 यागिणी तमा सो वरुहेऽधर्मो तमाः” इस मन्त्रमें समस्त
 निरामन्त्र घटके ऊपर रण कर पूजा करे । इसके बाद
 “सो भद्रं वारिहवाये नमः” इस मन्त्रमें पूजा करते देवतां
 दक्षिण पारल पकड़ मन्त्रघट करता होगा ।

इसके बाद एक मिट्टा या सिंघेके बरतन पर दर्पण रखे
 और घटके का मल उम बरतनमें डाल दर्पण विमर्जन करे ।
 यह दर्पणमुक्त प्राप्त देवतां साधने स्थिता होता है । उम
 पत्रके तममें देवतां वाद्ययंत्र देवताका नियम है । उम
 तममें देवतां वाद्ययंत्रका दर्शन कर देवतांका प्रणाम करना
 होता है ।

समस्तगत कर देवताका घट उठा लाये और उमके तम
 में वज्रव द्वारा समस्तगत करे तथा समीकी नास्तिशय
 और निरामन्त्र पुत्र द्वारा देवताका आसीवां देये । इस
 नास्ति और आसीवां द्वारा मन्त्रोंके बानमें जप और
 मन्त्र होता है ।

इस पत्र देवताका विमर्जन करने काया प्रकारके मीन
 वाद्यदिके साथ देवताविमर्जा को मन्त्रों विमर्जन करे ।
 (दूर्गे-संस्कृत)

देवता-विमर्जनके बाद बहोको प्रणाम और छोड़ोको
 आसीवां देवता आस्तिशय करना होता है ।

विजयावली—२ मन्त्र साधनापूर्वकान् वृत्त मन्त्र ।
 सन्त्र देवतां । ३ दक्षिणावलीके वाद्ययंत्रकोट करे
 कर मन्त्र ।

विजयावली—३ मन्त्रसाधनापूर्वकान् एक वचनाः ३३५
 संस्कृत दे विजयावली ।

विजयावली—४ एक विजयावली पदिकतः । इत्योमें विजयावली
 सन्त्रदेवता और कारवाहोको टीका मिली है ।

विजयावली (सं० पु०) १ वैद्यकेमें एक प्रकारकी मन्त्र ।
 इसके बानमेंको मन्त्रकोष—एक भाग पारे और दो भाग
 दक्षिणाको मन्त्रपुत्र कर मिट्टीके बरतनमें रखे । गोठे उमके
 ऊपर दूर्गाके वाद्ययंत्र मन्त्रमन्त्र दे कर बरतनके मुँहमें
 मेल मन्त्रों और मन्त्रोंम पहर पाद करे । उठा होये पर उम
 पारेको ले कर कानिके बरतनमें मावसाधोमें रखे । इसमें
 मित्रयोग और मन्त्र प्रकाशक सुश्रीय दूर होता है ।
 २ मन्त्रोंमें सात्मके माठ मुक्त भेरीमें एक ।

विजयावली—५ लोहापुत्रके एक अविपति । प्रायः ३३५
 इन्में ये विजयावली है ।

विजयावली (सं० पु०) दुराणाजुमार एक परांतका नाम ।
 विजयावली—मन्त्री मन्त्रोंके एक प्रसिद्ध भोतराज ।

विजयावली (सं० मन्त्री) मन्त्रोंमेंको एक मन्त्र ।
 मन्त्रपुत्र मन्त्रों—२ मोला वाद्य और २ मोला मन्त्र
 ले कर मन्त्रको बनाये । गोठे उममें मोला, कला, तीरा,
 मन्त्रके २ मोला मित्रा कर उम सन्त्रके तममें छोड़ दे ।
 मन्त्रपर उममें दूर्गा वृत्तके मित्रकेको मन्त्र मित्रा कर
 मन्त्रा मन्त्र छोड़े और मन्त्र रत्नोको गोली बनाये । एक एक
 गोली प्रति दिन बरतनके दूध या वृत्तको छानके काढ़े-
 ये मन्त्र लेवण करे । गोठे मित्र मन्त्रा मन्त्रके
 मन्त्र इसका दो रत्ना ले कर दक्षिणादिम सात्मके मन्त्र
 मन्त्रके साथ थाये । इस मन्त्रमन्त्रको माया प्रति
 दिन एक एक रत्नो बदा कर मित्र दिन बना रत्नो पूरो दो
 जाय, इसके दूर्गा देवता मित्र एक एक रत्नो बरने पटाये
 इसका मन्त्र दे मन्त्रों मन्त्र वाद्यका मन्त्र और वाद्यमन्त्र
 (मन्त्र भाग तममें मित्रो कर उठा विजा हुआ) ।

विजयावली (सं० मन्त्री) मन्त्रात्मको एक मन्त्र ।
 मन्त्रपुत्र मन्त्रों—मन्त्र, मन्त्र, तीरा, विद्य, मन्त्र,
 विद्य, मन्त्र, मोला, मन्त्रको, गोठमन्त्र, मन्त्रके, मन्त्र,
 मित्र, मित्रा, तीरा, मित्रा और मन्त्रमन्त्र मन्त्रके
 मन्त्रका भाग लेवण करे । गोठे उममें दूर्गा मुद्र मित्रा
 कर मन्त्रा बनाये । इसमें मन्त्र, मन्त्र, मन्त्र, मन्त्र,
 विजयावली, मन्त्रके, मन्त्रके, मन्त्र, मन्त्र, मन्त्रके और
 मन्त्रमन्त्रके दूर्गा मन्त्र मन्त्र मन्त्र होता है ।

विजयामसमी (सं० खो०) - विजयाष्टमसमी । फलित
ज्योतिषके अनुसार किमी मासके शुक्ल पक्षको यह
सप्तमी जो रविवारको पड़ै । इस सप्तमी तिथिमें दान
करनेसे विशेष फल हुआ करता है ।

विजयिन् (सं० लि०) विशेषज्ञ जेतुं शीलमण्य विजि
(वि-दक्षिणोक्तिः) वा ३, २, १५७ इति इति । १ जितने
विजय प्राप्त की हो; विजय करनेवाला, जोतनेवाला ।
(पु०) २ अजुन ।

विजयिन (सं० लि०) विजित, देसा भोजन जितमें अधिक
रस न हो ।

विजयो (सं० लि०) विजयिन् श्रेणी ।

विजयोर्युग्यन्त्र—एक प्रसिद्ध सिद्ध वैज्ञानिक । आनन्द-
रत्नारण्यशास्त्र्यायाम् उक्तौ आमीरहाका, ध्यासनीर्या विन-
ताटपर्यान्त्रहाके 'चन्द्रिकोदाहृतन्यायविवरण' और
'अष्टादशकोल-पेटिका' आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं ।

विजयोर्युग्यन्त्र—चक्रवर्गीमांसाके रचयिता ।

विजयेण (सं० पु०) १ शिवका एक नाम जो विजयके
एक देवता माने जाते हैं । २ काश्मीरके एक सिद्ध शीघ-
रीर्षी । इसका वर्तमान नाम विजयोर्युग्यन्त्र है ।

विजयेश्वर (सं० पु०) विजये देवता ।

विजयैकादशी (सं० खो०) एकादशीभेद; आश्विन मास-
को शुक्ल एकादशी और फाल्गुनको कृष्ण एकादशी ।

विजयोर्युग्यन्त्र (सं० पु०) विजयायामुत्सवः । १ यह उत्सव
जो किसी प्रकारको विजय प्राप्त करने पर होता है ।

२ यह उत्सव जो आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमितीकी
होता है, विजयादशमीकी होनेवाला उत्सव । हरिभक्ति-
विलासके मतसे विजयादशमीके दिन विजयोर्युग्यन्त्र करने
होता है । इस उत्सवका विधान इस प्रकार लिखा
है, कि रघुःकुमारके धीरामचन्द्रकी राजवेगमें विभूषिण
करके रथ पर बैठा कर शमीवृक्षके न चे ले जाना होगा ।
यहाँ विधिपूर्वक पूजादि कर धारामचन्द्रकी और शमी-
वृक्षकी पूजा करके मूल पढ़ना होता है ।

(हरिभक्ति १५ वि०)

विजय (सं० लि०) विजिता जरा-यस्य । १ उत्तरीयत,
जिसे जरा या बुढ़ापान काया हो । २ नवान, नवा ।
(कृ०) ३ गुच्छ ।

विजरा (सं० खो०) ब्रह्मलोकरणी एक नदीका नाम ।
विजयर्षि (सं० लि०) विशेष प्रकारके जोगीर्षी, मरुत्त
जार्णगार्ण । "पुग जरा कलेरं विजय रोगोत्ते ।"
(महाभास)

विजय (सं० लि०) विगतं जन् यन्मात् । १ अन्वृष्ट,
जल या वर्षाका अभाव, सूखा । २ जटका न होना,
पानीका अभाव । ३ विजय ।

विजय (सं० खो०) यद्युगाय, कंचु या चंचु नामका
साग ।

विजय (सं० पु०) विदेषेण जन्मन् । १ मन, भूट
- और तरह तरहकी ऊटपटांग बातें करना, व्यर्थकी बहस-
सी बरकवाद । २ किसी सज्जन या भले आदमीके सम्बन्ध
में दोषपूर्ण भूडा बातें कहना ।

विजयल—विजय पेन, पिच्छल ।

विजयका—विजयका नामकी खोकरि ।

विजयापट्टम् (विगाणपत्तन) मद्राज प्रेसिडेन्सीके मध्य-
भूत अंश अखिल एक जिला । यह अक्षांश १७° १५' से
२०° ७' उ० और देशांश ८१° ८' से ८४° ३' पू०के लगभग है ।
जयपुर और विजयनगरम्की भूमिमांसि मिला कर इसका
भूगर्भमाण १७२२२ वर्गमील है । स्थानका आयतन
और जनसंख्याके हिसाबसे यह जिला मद्राज प्रेसिडेन्सी-
के अग्रगण्य जिलेसे बड़ा है । इसकी जनसंख्या तीन
लाखसे ऊपर है ।

इसकी उत्तरी सीमा पर गज्याम जिला और विहार-
उड़ीसेके देशोराज्य, पूर्वी सीमा पर गज्याम और बङ्गोप-
सागर, दक्षिणी सीमा पर बङ्गोपसागर और गोदावरी
जिला और पश्चिमी सीमा पर मध्यप्रदेश अवस्थित है ।
१४ जनोद्धारियां, ३७ सत्वाधिकारियोंकी भूमिमांसियां
और गोलकुण्डा, सर्वसिद्धि और फाल्गुण्डा नामक तीन
सरकारी तालुकोंको ले कर यह जिला गठित है । इस-
का प्राचीन नाम विगाणपत्तन है और विगाणपत्तन
नगरमें ही जिलेकी मद्रालत प्रस्थापित है ।

यह जिला मद्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर भंशमें समुद्रो-
पकूल पर अवस्थित है । इसहासमें यह देशसाम उत्तर-
सरकार (Northern Circars) नाममें लिखित है ।
पूर्वविभाग बङ्गोपसागरकी मध्यजलराज्य और उसके

उपकरणों में प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोगों से विज्ञान में बहुत बड़ा योगदान कर रहे हैं।

आधुनिक यंत्र का विकास भी इस समय विज्ञानादर्भ में हुआ है। पहले यंत्रों में कच्चे सामान प्रयोग करने की वजह से यंत्रों में अनेक त्रुटियाँ उत्पन्न होती थीं। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए यंत्रों में अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का प्रयोग करना अधिक आसान हो गया है।

इस प्रकार के यंत्रों का प्रयोग करने से विज्ञान में बहुत बड़ा योगदान हुआ है। इन यंत्रों से अनेक नए खोजें की गई हैं। इन खोजों से विज्ञान में अनेक नए सिद्धांत बने हैं। इन सिद्धांतों से अनेक नए यंत्र बने हैं। इन यंत्रों से अनेक नए खोजें की गई हैं।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

इस प्रकार के यंत्रों का प्रयोग करने से विज्ञान में अनेक नए खोजें की गई हैं। इन खोजों से विज्ञान में अनेक नए सिद्धांत बने हैं। इन सिद्धांतों से अनेक नए यंत्र बने हैं। इन यंत्रों से अनेक नए खोजें की गई हैं।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

यंत्रों के विकास में अनेक कठिनाईयाँ आती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए अनेक सुधार किये गए हैं। इन सुधारों से यंत्रों का विकास अधिक आसान हो गया है।

पत्तन नामके दो नगरोंकी उत्पत्त बोजोंकी रपतनी करनेके लिये बन्दर प्रतिष्ठित करनेके कारण इस स्थानके अधि-
वासियोंने लामकी प्रत्याशामें मत्त २० या ३० वर्षके बीच
दुगुने उरसाहसे इस स्थानको शस्यशाळी बना रखा है ।

यहाँकी सब जगह कृषिपरिचित श्यामल धान्यक्षेत्रोंसे
परिपूर्ण है । कहीं कहीं तम्बाकू और इन्धकी श्याम शिर-
मण्डित विस्तोर्ण उद्यानमाला परिशीमित है । केवल
समुद्रोपकूलपर्यन्त क्षेत्र इधर उधर गण्डरीलमालासे परि-
च्छिन्न हैं । इस शैलराजिके किसी एक निगर पर स्वाध्य
याम बनानेकी चेष्टा हुई थी, किन्तु विजागापट्टम्से वहा
माने जानेका पथ न रहनेके कारण यह चेष्टा कार्यमें परि-
णत न हुई ।

ऊपर पर्यंतोपरिष्ठ घनमालाकी जो बात कही गई,
उसका कुछ अंश अंग्रेजोंकी देख-रेखमें और कुछ अंश
यहाँके जमीन्दारोंके यत्नसे सुरक्षित है । उत्तरमें पाल-
कुण्डा शैलमाला पर, दक्षिण पश्चिममें गोलकुण्डा शैल-
शिखर पर और सर्वसिद्धि तालुकके उपकूलभागमें सर
कार द्वारा रक्षित बनमाला दिखाई देती है । जयपुरी,
त्रिजयनगरम्, पोनीलक्ष्मीपुरम्, गोलकुण्डा, सर्वसिद्धि
और पार्यंतोपुर तालुकके बनमें नानाजातीय वृक्ष उत्पन्न
होते हैं । सर्वसिद्धि तालुकके तुणाच्छादित मध्यम
प्रान्तरमें जो सत्र गुल्म उत्पन्न होते हैं, वह केवल जलानेकी
लकड़ी तथा पशुओंके लिये चारेके काममें आते हैं । यहाँ
गुग्गुल, वांस, गाल, आनन, मजुन, हरीतकी (छोटी हरी),
भाँवला आदि सायश्यकीय वृक्षोंकी कमी नहीं है ।

वर्त्तमान विजागापट्टम् जिहा हिन्दू इतिहासके प्रथम
कालमें प्राचीन कलिङ्गराज्यके अन्तर्भूक्त था । कुछ दिनों-
के बाद प्राक्य चालुक्यवंशके एक राजाने यह स्थान
अधिकार कर पहले ह्लोराके निकटपर्यन्त येँगी नगरमें राज
पाट प्रतिष्ठित किया । इसके बाद उन्होंने यहाँमें उठा हर
राजमहेन्द्रोमें अपना राजधानी कायम की । गज्जामसे
गोदावरीके किनारे तक समुद्रतीरपर्यन्त भूभागमें एक
समय जो राजशासन प्रतिष्ठित था, इस जगह भी उस
राज्यशासनका कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ । यह जनपद
किसी समय उड़ोसेके गजपति-राजवंशके और किसी
समय तेलिङ्गनाके अयोध्वरोंके शासनमें परिचालित हुआ

था । अतपय उक्त दो राजवंशोंके इतिहासमें इस प्रदेशका
इतिहास विशेषरूपसे संद्विलष्ट है ।

अपेक्षाकृत पिछले समय दक्षिणात्यके बाह्यणी राज-
वंशके मुसलमान राजा नरे महम्मदने उड़ोसेके सिंहा-
सन पर किसी राजकुमारको बैठानेकी चेष्टा करनेके उप-
लक्ष्यमें पुरस्कारस्वरूप उनसे खण्डपत्तनी और राजमहेन्द्रो-
को पाया था । इसके बाद बाह्यणी राजवंशके अघातनके
कारण राज्य भरमें घोर विष्टङ्गुला उत्पन्न हो गई । इस
समयमें उड़ोसेके राजाने इन सब स्थानों पर फिर कब्जा
कर लिया । किन्तु अधिक दिन तक इसका यह उपभोग
न कर सके । कुतुबशाहीराज इब्राहिमने इन सब प्रदेशोंको
तो जीता ही था, परं इसके साथ साथ उन्होंने उत्तरमें
त्रिंकाकोल तक समग्र देश अधिकार कर अपने राज्यमें
उन्हें मिला लिया था ।

सन् १६८७ ई०में दक्षिणात्यका प्रसिद्ध गोलकुण्डा
राज्य मुगल बादशाह औरङ्गजेबने हृदय लिया । यह
मुगल-साम्राज्यका नाममात्र अधिकारभुक्त होने पर भी
यघाटीमें मुगल यहाँ सुजासनका विस्तार नहीं
कर सके । ये यहाँ केवल सामयिक प्रभुत्व स्थापित कर
सके थे । उन्होंने इन प्रदेशोंको जमींदार और सामरिक
सरदारोंको बाँट दिया था । केवल विजागापट्टम् बाद-
शाहके शासनमें था । सम्राट्का प्रतिनिधि यहाँका
शासन करता था । यह प्रतिनिधि चिकाकोलमें रहता
था ।

ईसवी सनको १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें बङ्गदेशमें
प्रथम विनाशपरत्तनमें बन्दर स्थापित किया । सन् १६८६
ई०में बङ्गालके भगडे पर बादशाहके साथ बङ्गदेशी
कम्पनीका मनोमालिन्य उपस्थित हुआ । इन कारण यहाँके
मुसलमान-प्रतिनिधिने कम्पनीके कर्मचारियोंको कैद कर
उनकी कौडीकी लूट लिया और यहाँके अधिवासो बङ्ग-
देशीको मार डाला । किन्तु दूसरे वर्ष गोलकुण्डा शासके
अन्तर्गत मन्द्राज, मछलीपट्टम्, मध्यमम्, विजागपत्तन
आदि समुद्रके किनारेके प्रसिद्ध बन्दरोंमें बे-रोक बाणाय
करनेके लिये बादशाहकी ओरसे सेनापति लुडकिकार
पानि अंग्रेज कम्पनीको आदेशपत्र प्रदान किया । इसके
लिये सन् १६६२ ई०में लुडकिकार आने बङ्गदेश-कम्पनी

को अपनी सम्पत्तिकी रक्षा करनेके लिये विशालपत्तन बन्दरमें बिल बनानेकी आज्ञा दे दी। अंग्रेजोंने बाहरी शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा पानेके लिये एक सुदृढ़ किला बनाया था।

मुगल-शक्तिके अवनान होनेके बाद 'उत्तर सरकार' प्रदेश हैदराबादके निजामके हाथ आया। निजामने राज्यशासन और राजस्वकी घसृगीके सम्बन्धमें पहलेकी अपेक्षा अनेक सुश्रयस्थापने की थीं। उनके अधिकारके समय राजमहेंद्री और श्रीकाकोलमें एक मुसलमान राजकर्मचारी रहता था।

प्रथम निजामकी मृत्युके बाद हैदराबादका सिंहासन विकार ले कर उत्तराधिकारियोंमें विरोध उपस्थित हुआ। फ्रान्सीसियोंने सलाबतुज्जङ्गके हैदराबादके सिंहासन पर वैधानिक विशेष उद्योग किया था। इस उपकारके कारण सलाबतुज्जङ्गने उन लोगोंके हाथ मुम्बई नगर, इलोरा, राजमहेंद्री और श्रीकाकोल नामक चार सरकारोंको दे डाला। मन् १७५३ ई०ने फ्रान्सीस-सैनिकोंने महावीर युगोंने मज्जाबुल्लाने इस विषयका एक फरमान पाया था। इसके कुछ दिनोंके बाद मन् १७५७ ई०में तुगी वर्णाट्टर विभागके गवर्नर हुए। इस समय उनके द्वारा हानियालें युद्धों में ब्रिटीश विजयान अचरैय संघटित हुआ। इस युद्धमें फ्रान्सीसी सैन्यने जिन रणवातुओं और घटनाका प्रदर्शन किया था, वह उस स्थानके हिन्दुओंके हृदय पर गहरी रेख जन गई। वे इस अभावद काण्ड को भाज भी नहीं भूठे और मानके रूपमें माने हैं।

इस समय सरकार श्रीकाकोलके सम्भार्य हिन्दू-सामनेमें विजयनगरमें सिंहासन पर गजान्त-विजय-रामराज विराजमान थे। फ्रान्सीस-सैनिकोंने युगों युगोंके साथ उनका सहभाषण था। हिन्दू नरपतिके प्रति कृतज्ञता या पुष्पकारस्वरूप उन्होंने बलि अंतर राजस्व निर्धारित कर राजा गजपति-विजयरामकी श्रीकाकोल और राजमहेंद्री सरकार अर्पित कर दी।

इस समय विजयनगरमें फ्रान्सीसी सैनिकोंके साथ ब्रिटीशोंके राज-रङ्गायका सौती शत्रुता जाग उठी। विजयनगरमें राजने शत्रुता का श्रय करनेके लिये फ्रान्सीसी-सैनिकोंके अनुरोध किया। इस अहस्तात् एक दुर्घटना हो गई। रङ्गायकी

भेजी एक फीजने फ्रान्सीसियों पर आक्रमण कर दिया, किन्तु यह अमूर्ण था। रंगरायका उद्देश्य नहीं था, कि फ्रान्सीसियों पर आक्रमण किया जाये। इस घटनाके कारण फ्रान्सीसी स्वतः उनके विरोधी हो उठे। अर्ध विजयनगरमें राजकी मीका मिल गया। उन्होंने फ्रान्सीसियोंकी सहायतामें एक फीज भेज कर ब्रिटीशोंके पोर्षण-दुर्ग पर आक्रमण किया। क्रमशः यह काण्ड बढ़ता गया। नररक्तसे रणक्षेत्र प्लावित और भोपण-दुर्गमें परिणत हुआ। फिर मो रङ्गाय और उनके अनुचरयों फ्रान्सीसियोंके पदानत होने पर राजी नहीं हुए। किन्तु अन्तमें देखा गया, कि प्रबल शत्रु सैन्यके साथ थोड़ा सेना ले कर लड़ना और विजयलामकी भाषा करना श्रुता है। यह सौच विचार करके वे सब अपनी अपनी स्थियों और वास्तव्यको अपने हाथमें हत्या कर तलवार ले रणक्षेत्रमें उतरे। कई सामनेने रङ्गायकी आश्रय देनेकी बात कही थी, किन्तु उन्होंने शत्रुके सामनेसे भागनेको अपेक्षा युद्धमें मर जाना ही अन्त समय और भोपण-मार काट करने करने युद्धक्षेत्रमें वे काम लाये। रङ्गायके छोटे नावालिग पुत्रने इस भाषण हत्या काण्डमें रक्षा पाई थी। राजा का छोटे विरगामो नीकर बालकको ले कर भाग गया। राजा रङ्गायकी रणक्षेत्रमें पतित देख उनके चार विश्वसनीकरोंने राज-जोयनका प्रनिशोध लेनेकी प्रनिष्ठा की। ये चारों गहरी रातकी निश्चयसी अङ्गलसे निकल कर विजयनगरमें राजकी गिरिमें घुसे और उनकी मार कर युक्त भाषसे लीट जाये।

उपरोक्त रूपमें श्रीकाकोलकी शासनव्यवस्था स्थिर कर सैनिकपति युगोंने विशालपत्तनमें आ कर अङ्गरेजोंको कोटा पर अधिकार कर लिया। किन्तु फ्रान्सीसी अधिक समय तक फलमोग नहीं कर सके। बङ्गाल में यह संवाद पहुंचने पर लार्ड क्लाइवने १७५६ ई०में एक सैन्यदलके साथ वहाँ कर्नल फोर्डको भेजा। फोर्ड उत्तर-सरकारमें उपस्थित हो विजयनगरमें राजके साथ मिल गया। उक्त राजाने अपने पिताके प्रति फ्रान्सीसियोंकी मित्रतासे विरक्त हो कर फ्रान्सीसियोंके हाथसे उक्त राज्य विच्छिन्न कर लेनेके लिये पहले हीसे अङ्गरेजोंको बुला

लिया था । इस वर्षकी २०वीं अक्टूबरकी फीर्देने विजागापट्टम् आ कर विजयनगरम्की फीर्देके साथ मिल कर फ्रांसीसियोंके विरुद्ध युद्धयात्रा की । गोदावरी जिलेमें घोरतर संघर्ष हो जानेके बाद फ्रांसीसी सेना पराजित हुई, अंग्रेज सेनापतिने मछलीपत्तन दुर्ग पर अधिकार कर लिया । इस समय हैदराबादके निजामने मछलीपत्तनके खारों और कई प्रदेश इष्ट इण्डिया कम्पनीको हान किये । उत्तर सरकारमें फिर फ्रांसीसी अधिकार प्रतिष्ठित न हो सका, इसके लिये उनको उम्होंने ताकीद कर दी ।

सन् १७३५ ई०में लार्ड क्लाइवने दिल्लीके सभ्राट्के फरमानके अनुसार उत्तर सरकार प्रदेशका अधिकार प्राप्त किया । सन् १७७८ ई०में निजामके साथ अंग्रेजोंको एक सन्धि हुई । उसकी शर्तके अनुसार समग्र उत्तर सरकारनिजाम निःशेष अंग्रेजोंके हाथ आ गया । अता अल्पान्य प्रदेशोंके साथ इसी समय विजागापट्टम् जिला इष्ट इण्डिया कम्पनीकी राज्य सीमामें मिला लिया गया ।

इस जिलेके आन्वेष्य प्रतापदत्ता, शयशेयांग इतिहास विजयनगरम्के सीमायुक्तके साथ अधिकतर संश्लेष है । उस समय इस स्थानके राजन्यवर्गने ही इन प्रदेशोंके सर्वमय कर्ता रह कर दक्षिणारथमें हिन्दूराजकिका प्राधन्यस्थापन किया था । राजसूता सोतारामराज और दोषान जगन्नाथराजके राष्ट्रविभूषक कुचकमें पड़ कर फीट आष डिरेक्टरने सन् १७८१ ई०में मद्राजके गवर्नर सर टामस रमवोल्डकी बाध्य हो कर पदच्युत किया था ।

सन् १७८४ ई०में मद्राज गवर्नमेंटेके आशनुसार एक सर्किट-कमिटी संगठित हुई । इसने उत्तर सरकारोंके देणकी व्यवस्था और भाषके सम्बन्धमें विशेष अनुसन्धान कर पहले श्रीहाकील सरकारके कासिमकीटा विभागके सम्बन्धमें एक रिपोर्ट भेजी । इसमें उक्त विभागका जो संशय विजागापट्टम्में लिखा गया है, यह प्रायः ३ भागोंमें विभक्त देखा जाता है—१ गवर्नमेंटके तत्वावधानमें रहित हाजिरी जमीन । २ विजागा पट्टम् । ३ विभाग या इस नगरके चारों ओरके ३३ छोटे-छोटे गाँव । ३

गन्ध, गोत्रकुण्डा, जयपुर और पालकुण्डा नामक कर सामन्तराज्योंके साथ विजयनगरम्की जमीन्दारी ।

सर्किट-कमिटीको उक्त रिपोर्टमें विजयनगरका इस तरहका परिचय देने पर भी मद्राजमकराने उस समय उस पर हस्तक्षेप नहीं किया । उस समय विजागापट्टम्की मन्त्रिसभा और सरदारों द्वारा स्थानीय ग्रामनकार्य परिचालित होता था । किन्तु १७६४ ई०में प्रादेशिक मन्त्रिसभाका (Provincial Council) विलोप हो जाने पर समग्र उत्तर-सरकार विभिन्न कलषट्टरेटमें विभक्त हो गया और वर्त्तमान विजागापट्टम् जिला इस तरह तीन कलषट्टरीके भीतर आया ।

विजयनगरम्के भाग्यहीन राजा विजयराम भाने गई सोतारामके हाथमें पड़ कर कठयुवकीका तरह नाचने थे । यथार्थमें सोताराम ही राज्य करने थे । क्रमशः विजयरामका नाबालिगका समय बीत गया । अब उनके चित्तने यह भाव प्रबन्ध हो उठा, कि ये राज काल्यका भार स्वयं ले कर राज्य करेंगे । उम्होंने अपना प्रबन्ध करना शुरु किया, किन्तु सोताराम उनके पथके कांटे बने । इसके फलसे राजा और सोताराममें विरोधकी छुट्टि हुई । मद्राज-सरकारने दोनोंका विरोध मिटानेके लिये दोनोंको मद्राजमें बुलाया । इसके बाद न जाने विवाद मिटा या नहीं, ये गये या नहीं । किन्तु सरकारी पैगकस न देनेके कारण अंग्रेजोंका उन पर बड़ा तकाजा हुआ । इधर सुचायकरूस राज्यकार्य न चलनेके कारण रुपयेकी कमी हो गई । राजा 'पेगकस' दे न सके । रुपयेकी कमी तथा राज्य-सञ्चालनमें गड़बड़ी रहनेके कारण उनका चित्त सदा विभ्र रहना था । ये कई बार तो अंग्रेजोंमें टालमटोल कर रहे थे, किन्तु अन्तमें उम्होंने अंग्रेजोंका निरस्कार किया । फलतः दोनो दलमें युद्ध अनिवार्य हो उठा । अंग्रेजोंने केलिकी देखल कर लेनेके इरादेसे एक फौज भेजी । इधर राजाको भी खबर मिली । राजा भी अपने साथी सामन्तोंके साथ रणक्षेत्रमें आ उटे । उम्होंने विजयनगरम् और मछलीपत्तनके बीच पन्नानम् नामक स्थानमें आ कर अपना पैना खड़ा किया । लेफ्टनेण्ट कर्नेल प्रेडरवाएने आक्रमण कर उनको मार डाला ।

सारा किस्ता तमाम हुआ। यह सन् १८७४ ई०को १०वों जुलाईको घटना है। इस घटनामें उनके कितने प्रिय कर्मचारियोंकी जाने गई थीं।

मृत राजाके पुत्र नारायण बाबू पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हुए। बहुत कठिनतासे उनकी पैतृक सम्पत्ति उनके हाथ आई। वह भी कुल नहीं, जयपुर आदि पार्वत्य सदाशैके अनिष्टन प्रदेशोंका शासनभार अङ्गरेजोंने अपने हाथमें रखा।

बङ्गालमें निरस्थायी वन्दोवस्तसे बर वसुन्नीकी सुविधा देव सन् १८०२ ई०में उत्तर सरकार प्रदेशमें भी मन्द्वाज सरकारने वैसी ही व्यवस्था कराई अर्थात् वहाँ भी चिरस्थायी वन्दोवस्त हुआ। उस समय यह जिला १६ जमीन्दारियोंमें विभक्त था और इसका राजस्व ८०२५८० कराया निर्धारित हुआ। मन्द्वाज सरकारने उन समयकी सरकारी जमीनको छोटी-छोटी जमीन्दारियोंमें बांट दिया। इस तरह २६ जमीन्दारियोंकी मिला कर विजागापट्टम् तथा कलेकुरीकी सृष्टि हुई।

इस तरहके वन्दोवस्तसे राजा-प्रजामें बहुत असुविधा हुई। अंग्रेजोंके प्रति प्रजाका क्रोध दिनों दिन बढ़ने लगा। इसी मनोमालिन्यके कारण अंग्रेजोंके साथ पार्वत्य सामन्त राजाका अहरहः युद्ध हुआ था। अनेक युद्धोंमें अंग्रेजों सेना पराजित हुई। इस तरह विद्रोहमें ३० वर्ष गुजर गये। अन्तमें सन् १८३२ ई०को गज्जाम में एक भयानक विद्रोह कड़ा हुआ। अब मन्द्वाज सरकार स्थिर न रह सकी। इस विद्रोहके दमन करनेके लिये एक फौज भेजी गई। जार्ज रसेल नामक एक अंग्रेज वहाँका स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किये गये। उनके ऊपर ही विद्रोहके कारण अनुसन्धान करनेका भार दिया गया। उनको यह आशा दी गई, कि वे जा कर विद्रोहका दमन करें और जरूरत हो तो 'मार्शल ला' भी जारी कर दें और ऐसा चेष्टा करें कि भविष्यमें वहाँ फिर ऐसा विद्रोह न होने पावे।

मिएर रसेलने कार्यक्षेत्रमें उतरते ही देखा, कि विजागापट्टम्के दो जमीन्दार ही इस विद्रोहके कारण हैं। यह देख कर उन्होंने देर न कर उन दोनोंको दण्ड देनेके लिये उन पर आक्रमण कर दिया। उनमें एक सरदार पकड़े गये

और दूसरे भाग गये। ऐसे समय पालकुण्डाके जमींदार भी विद्रोही हुए। रसेल साहबने उनको भी बंधावा।

इसके बाद मिएर रसेलके परामर्शानुसार इस जिलेकी शासन-व्यवस्थामें बहुत परिवर्तन किया गया। पार्वत्य करद जमीन्दारोंकी सम्पूर्ण रूपसे जिलेके कलेकुरीके अधीन रखा गया। सन् १८३६ ई०में यह कानून जारी हुआ। इस कानूनके अनुसार इस जिलेका आठवाँ अंश शासित होने लगा। केवल प्राचीन हाविली जमीन तथा कुछ और स्थान इस पजेन्सीमें न रहनेके कारण त्रिकाकोलके सिविल और सेसन जज वहाँके विचारक हुए। सन् १८६३ ई० तक ऐसा ही व्यवस्था रही। इसके बाद विजयनगरम्, बग्गिलो और गोलकुण्डा एक पजेन्सीके शासनसे बाहर कर दिये गये। येसब ही इस समय पार्वत्य प्रदेश कहे जाते हैं।

इस परिवर्तनके बादसे ही यहाँका विद्रोह बहुत काम हो गया। सन् १८४५ से १८४८ ई० तक गोलकुण्डेके पार्वत्य सरदारोंने अंग्रेजोंकी फौजोंको विशेषरूपसे निर्धोतन किया। सरकारने वहाँकी रानोंको मार कर उनको सम्पत्तिको अर्ध कर लिया। सन् १८५७-५८ ई०में वहाँ भी एक बार विद्रोह हुआ था, किन्तु यह बहुत दूर तक न फैल सका अर्थात् शीघ्र ही दबा दिया गया। सन् १८४६-५० और १८५५-५६ ई०में राजा और उनके पुत्रके बीच विरोध होनेकी वजह जयपुर राज्यमें विद्रोह कड़ा हुआ। इस गृहविवादको मिटानेके लिये सरकारने हस्तक्षेप किया। अन्तमें अंग्रेज सरकारने घाटपर्वतमालाको छोड़के चार तालुकोंको अपने हाथमें कर लिया। इस तरह जयपुर राज्यके बाप-बेटेका झगड़ा तय हुआ। पीछे जब राजाकी मृत्यु हुई, तब उनका लड़का तलतूनशीन हुआ। इस समय सरकारने उन चार तालुकोंकी उन्हें लीटा दिया। यह सन् १८६० ई०की घटना है। उस समयसे जयपुरकी शासनशृङ्खलाका विस्तार करनेके लिये एक असिष्टेंट पजेण्ट और एक असिष्टेंट पुलिस सुपरिन्टेण्ट रखे गये। इस समय यह जयपुर इन दो अफसरोंके तद्विधानमें शासित हो रहा है। दीवानो और फौजदारी बदायलतें इन्हींके हाथमें हैं। सन् १८८६ ई०में गोदावरी जिलेके रम्पा प्रदेशमें एक विद्रोह उठा। यह धीरे धीरे

मुड़े मते फीर कर जयपुर तक चला आया। सरकारको इसके दमन करनेमें यड़ी जोटा करनी पड़ी थी।

विजयनगरम् राज्यमें भी उस समय कई राजद्वीह उठ खड़े हुए थे; किन्तु वे शीघ्र ही दबा दिये गये।

विजयनगरम् देखो।

इस जिलेमें विजागापट्टम् नगर, विजयनगरम्, बम्बिलो पत्तन, अलकापल्लो, आलूर, पार्थतीपुर, पालकुण्डा, विमली-पट्टम्, कासोमकोटा और शृङ्गवेर पुकोटा नामके दश नगर और प्रायः ८७५२ ग्राम हैं। यहाँ कई वर्णों के मनुष्योंका वास है। ईसाई और मुसलमानोंका भी अभाव नहीं। किन्तु हिन्दुओंकी आयादी ही अधिक है, पहाड़ी प्रदेशोंमें कन्द, गोड़, गड़वा, कोई प्रभृति जातियोंका निवास है। दक्षिण भागमें बनिया, कन्दभोरा, कन्दकापू, मतिया, और कोई नामक जातियोंके साथ उनके आयागत विशेष पार्थक्य नहीं। कन्द जानि पहले नरबलि देती थी। जिस उत्सवमें यह नरबलि दी जाती थी, उस उत्सवका नाम था—“मेरिया”। पालकोण्डाके डालुवें देशसे गुणापुरके पूर्वभाग तक स्थानोंमें शयर (सौर) नामक और एक आदिम असम्भ्य जातिका वास है।

विशेष बात उन जातियोंके स्वतन्त्र विवरणमें देखो।

यहाँ नाना जातिके अनाज पैदा होते हैं। बराह नदी, सारवा नदी और नागावली नदी तथा कोमरबोलू और कोण्डकोली नामकी भौलोंसे यहाँके खेतोंकी सिंचाई होती है। सिवा इसके उट्टेछ कार्पास वस्त्र और नकासी धार बरतनीका बहुत बड़ा कारवार होता है। अनेकपल्लो, पैरोंरोपेटा, नककिल्ली, तुम्नी और अन्यान्य ग्रामोंमें १२० नम्बरके सूतसे एक प्रकारका कपड़ा तय्यार किया जाता है। यह ‘पाञ्जाम’ नामसे प्रसिद्ध है। विशालपत्तन और चिकाकोलमें भी इस तरहका और दूसरी तरहका कपड़ा तैयार होता है। तीलिया और टेबिल-काथ (मैजको ढकने का वस्त्र) जिलेके नाना स्थानोंमें बुना जाता है। विशाल पत्तनमें हाथो दूत, मैसके सींग, शाहिलके कांटे और चाँदोंके तरह-तरहके खिलौने, अलङ्कार (महने आभूषण) गृहशोभाकी सामग्री तय्यार होती है। इसी शिल्पके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। लकड़ीकी सुन्दर-सुन्दर खुदाई आदि शिल्पका यहाँ अभाव नहीं। फिर पास रखनेका

पात्र, घर सजानेकी सामग्री आदि कई चीजें यहाँ तय्यार होती हैं।

पहले स्थल और जलपथसे यहाँके व्यवसायका वाणिज्य होता था। इस समय रेल हो जानेसे कलकत्तेसे मद्राज तक व्यवसाय वाणिज्यकी बहुत सुविधा हो गई है। विजागापट्टम्के उच्च ऋण्टमें सुप्रसिद्ध चलतेपर नामक स्थानमें खास्यवास है। यहाँ कितने ही गोरोंके रहनेके लिये वासभवन दिखाई देते हैं। बकतेव देखो।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण १४२ वर्ग-मील है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० १७° ४२' ३०" तथा देशा० ८३° १८' ५०" के मध्य अवस्थित है। यह नगर मद्राजसे (रेलसे) ४८४ मील पर और कलकत्तेसे ५४६ मील पर पड़ता है। इस नगरकी जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है और ७७४१ मकान हैं। जनसंख्यामें ३६३४६ हिन्दू और बाकीमें सब इतर जातिके लोग हैं।

यहाँ शिक्षालयोंकी भी कमी नहीं है। नीचे दर्जोंके स्कूलोंके सिवा दूसरे दर्जोंका कालेज (The/Mrs. A V, Narosingh Rao कालेज) है। इसमें लगभग ५०३ लड़के शिक्षा प्राप्त करते हैं। तीन हाई-स्कूल भी हैं। दो बाइकाओंके लिये भी हाई स्कूल हैं। एक रोमन कैथ-लिकों और दूसरा लण्डन-मिशनरी सोसाइटी द्वारा चलाया जाता है। सिवा इनके एक मिडिल स्कूल और एक अस्पताल भी हैं। सन् १८६४ ई०में विजयनगरम्में एक महाराजने इसकी प्रतिष्ठा की थी।

समुद्रके किनारे विशालपत्तन बन्दर अवस्थित है। इसकी दक्षिणी सोमा पर डब्लिन-नोज नामक पर्यतशृङ्ग और उत्तरी सोमा पर सुप्रसिद्ध बल्लेश्वरनाथ स्वास्थ्यनिवास है। बन्दरघाटसे कुछ उत्तर विशालपत्तन नगर अवस्थित है। यहाँके अधिष्ठात्री देवता विशाल या कार्तिकेयके नामानुसार इस स्थानका नाम विशालपत्तन हुआ है। विशाल स्वामीका मन्दिर समुद्रगर्भमें निर्माजिन है। हिन्दू अधिवासी आज भी योगके उपलक्षमें इस मन्दिरके निकट सागर-स्नान किया करते हैं। विशालपत्तनकी प्राचीन दुर्गतीमाके बीच डिग्रिकृ जजकी अदालत, द्रजरी,

मजिस्ट्रेट कोर्ट, सब-मजिस्ट्रेट अदालत, मुंसिफो अदालत, पोस्ट एण्ड टेलिग्राफ आफिस और पन्नागछाफ, गिरजा, वारूद और अस्त्रागार तथा छावनो मौजूद हैं। यहाँमें पांच मील उत्तर समुद्रके किनारे बाल्टेयार नामक स्थानमें अड्डेजोंकी छावनो थी। इस समय वहाँ जिलेके हाकिम हो रहते हैं। यहाँ डिविजनल पब्लिक वर्कस, इंजीनियर्स आफिस और इष्टकोष्ट रेलवेकी हेड आफिस है।

यहाँ चार प्रसिद्ध देवमन्दिर हैं। पागोडा प्दोटीमें फौदरामखामीका मन्दिर है। इसमें भगवान् राम लक्ष्मण और माता सीताकी मूर्ति विद्यमान है। प्रधान सड़ककी बगलमें श्रीजगन्नाथखामीका मन्दिर है। गरुड़ पक्षनाभ नामक यहाँके किसी वणिकने पुढपोत्तमक्षेत्रके जगन्नाथदेवके मन्दिरकी तरह इस मन्दिरकी तैयार कराया था। ईश्वरखामीके मन्दिरमें शिवमूर्ति प्रतिष्ठित है।

डॉर्फिननोज पहाड़के ऊपर कुछ वर्षके मकानोंका चिह्न है। पहले यहाँ एक छोटा किला था। इस समय उसके बदले वहाँ ५० वि० नरमिहरावका पञ्जागछाफ खड़ा है। पहाड़की उपत्यकामें राजा जो, एन, गन्तवतिरायका पुण्यस्थान है।

यहाँसे ४ मील दूर पर सिंहाचलके पूर्वा-दक्षिण गन्तमें एक झरना है। वह पुण्यधारा एक तीर्थारामें परिगणित है। यहाँ भी श्रीमाधवखामीका एक मन्दिर है। देवताके नामसे यह धारा माधवधाराके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ नित्य ही वसन्तका आवास है। धाराके निकट ही एक गुहा दिव्य देती है। जनसाधारण का विश्वास है, कि इस गुहामें माधवखामी आज भी विद्यमान हैं।

किम्बदन्ती है, कि १४वीं सदीमें कुलोनूकुचोलने इस नगरकी स्थापना की। कलिङ्ग विजयके साथ यह नगर मुसलमानोंके हाथ आया। जिलेका इतिहास देखो।

विजात (सं० त्रि०) विक्रम-जाति जन्म यस्य। १ घेत्तमा, जारज, घर्णोत्तर, दोगला। ज्योतिषमें लिखा है, कि त्रिम बालकके जन्मकालमें लग्न और चंद्रके प्रति गृहस्पतिक दृष्टि न रहे अथवा रविके साथ चंद्र

युक्त न हो तथा पापयुक्त चंद्रके साथ रविका योग रहे, वही बालक विजात होता है। द्वादशी, द्वितीया और सप्तमी तिथिमें रवि, शनि और मंगलवारमें तथा भानुपाद नक्षत्रमें अर्धांश कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, चित्रा, शिशाबा, उत्तराषाढा, घनिष्ठा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे जातबालक जाजत होता है। तिथि, वार और नक्षत्रके एक साथ मिलनेसे उक्त योग हुआ करता है।

(पु०) २ सखे छन्दका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें ५-५-४ के विश्रामसे १४ मात्राएँ और अन्तमें गण या यण होता है। इसकी पहली और आठवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। इसके अन्तमें जण, तण या रण नहीं होना चाहिये।

विजाता (सं० स्त्री०) १ जाज लड़की, दोगली। २ यह स्त्री जिने हालमें संनान हुई हो, जया। ३ विजातानि (सं० त्रि०) मित्र या दूसरी जातिका विजातीय (सं० त्रि०) विभक्त जानिमहैनि विजति। जो दूसरी जातिका हो, एक अथवा अपनी जातिसे गिनत जातिका।

विजातक (सं० त्रि०) हात। (भारत १३ पर्व) विजाति (सं० त्रि०) अपरिचित। (अथर्व ५-१७-१५) विजनु (सं० पु०) तलवार चलानेके ३२ हाथोंमेंसे एक हाथ या प्रकार।

विजानुप (सं० त्रि०) जनयिता। (श्रुक् १०-७७-१ हायण) विजापक (सं० स्त्री०) नामभेद। (श ४-२-१३३)

विजापयित् (सं० त्रि०) विजयकी घोषणा करनेवाला। (कथासरित्ता १-३५) विजामन् (सं० त्रि०) विविधजन्मा, जिसका नाना प्रकारसे जन्म हुआ हो।

विजामातृ (सं० पु०) गुणहीन जन्माता, यह जन्मई जो ध्रुत-शालचान् न हो। (श्रुक् ११-०-६-१) विजाति (सं० त्रि०) विविधजाति, क्षानियशिये। (श्रुक् १-१-६-१२)

विजार (हि० पु०) एक प्रकारकी मटियाँ भूमि। इसमें धान और कमी कमी चना भी बोया जाता है।

विजोऱरत (अ० खी०) वजोऱरका पद, धनं या भाव; मन्त्रित्य ।

विजोऱवत् (सं० त्रि०) ज्ञातपुत्र । (मथव्यं ६।३।१३)

विजोऱवन् (सं० त्रि०) विज्ञानता, विज्ञानकर्ता, पैदा करनेवाला । (ऋक् ३।१२३)

विजोऱगोप (सं० त्रि०) विजोऱगया अस्त्यस्येति अशो आदि-त्वाद्च् । जपेच्छुः विजोऱको इच्छा करनेवाला ।

(सिद्धान्तकौमुदी)

विजोऱगोपा (सं० ख०) विजेतुमिच्छा वि-जि-सन् आ खियां टाप । १ खोदप्रवृत्तासक्तिनिमित्तक निन्द्यत्यागेच्छा, यह इच्छा जिसके अनुसार मनुष्य यह चाहता है कि मुझ कोई यह न कह सक कि मैं अपना पेट पालनेमें असमथ हूँ । २ ध्यवहार । ३ उत्कर्ष, उन्नति । ४ विजय प्राप्त करनेका इच्छा ।

विजोऱगोपाघत् (सं० त्रि०) विजोऱगोपा विघतेऽस्य विजोऱगोपा-मनुप् मस्य वत्वम् । विजोऱगोपाविशिष्ट, त्रिसे विजोऱगोपा हो ।

विजोऱगोपाविबजित (सं० त्रि०) विजोऱगोपया विबजितः । विजोऱगोपाउदरं रहित, जिसे विजोऱगोपा नहीं हैं सिफे पेटको चिन्ता है । पर्याय—आधून, गौदरिक ।

विजोऱगोपावन् (सं० त्रि०) विजोऱगोपा अस्त्यस्य विजोऱगोपावन् । विजोऱगोपावान्, विजोऱगोपाविशिष्ट ।

विजोऱगोपाय (सं० त्रि०) विजोऱगोपा अस्त्यस्मिन् विजोऱगोपा (उत्कटादिमरुदः इति अनुश्रवणेऽपु । पा ४।२६०) छः । त्रिसमे या जहोः विजोऱगोपा हो ।

विजोऱगोपु (सं० त्रि०) विजेतुमिच्छुः वि-जि-सन् उः (सनातोमिन्न उः । पा ३।२।१६८) । जपेच्छाशाल, विजयवी इच्छा करनेवाला ।

विजोऱगोपुता (सं० खी०) विजोऱगोपु होनेका भाव या धर्म ।

विजोऱगोपुत्व (सं० खी०) विजोऱगोपु होनेका भाव या धर्म ।

विजोऱग्रहयितु (सं० त्रि०) विजोऱग्रहयितु विग्रहं कारयितुं इच्छुः वि-ग्रह-यि-सन् उः (सनातोमिन्न उः । पा ३।२।१६८) ।

युद्ध करानेमें इच्छुं क, जिसको युद्ध करानेकी इच्छा हो । विजिघत्स (सं० त्रि०) विजिघत्सता अस्त्यस्येति अशो आदि-त्वाद्च् । भोजनेच्छा, खानेका इच्छा करनेवाला ।

विजिघत्सु (सं० त्रि०) विद्वत्सुमिच्छुः वि-द्वन्-सन् उः (सनातोमिन्न उः । पा ३।२।१६८) । १ जिघांसापरायण, जो विशेष प्रकारसे हनन (हिंसा) करने में इच्छा करता हो । २ विचिन्ताचोणेच्छुः ।

विजिघत्सु (सं० त्रि०) विप्रतेतुमिच्छुः वि-ग्रह-सन् (सनातोमिन्न उः । पा ३।२।१६८) उः । विग्रहेच्छुः, युद्धां भिलाया, युद्धका इच्छा करनेवाला ।

विजिघत्सा (सं० खी०) विशेषरूपसे जाननेका इच्छा । (भाग० १।६-१६)

विजिघत्सासिन्य (सं० त्रि०) विजिघत्सासिनोय, विजिघत्सासि-के योग्य ।

विजिघत्सासु (सं० त्रि०) विजिघत्सासाकारो, विशेष प्रकारसे जाननेको इच्छा करनेवाला ।

विजिघत्सास्य (सं० त्रि०) विजिघत्सासिन्य, जिघत्साके योग्य ।

विजिट (अ० खी०) १ भेंट, मुद्राकांत । २ डाकुर आदि का रोगको देखनेके लिये आना । ३ यह धन जो डाकुर आदिको आनेके उपलक्षमें दिया जाय ।

विजिटर्षां युक्त (अ० खी०) किसी सार्वजनिक संस्थाकी यह पुस्तक जिसमें वहाँके अनेक जानेवाले अपना नाम और कभी कभी उस संस्थाके सम्बन्धमें अपना सम्मति भी लिखते हैं ।

विजिटिंग कांड (अ० पु०) एक प्रकारका बड़िया छोटा कांड । इस पर लोग अपना नाम, पक्ष और पंता छपवा लेते हैं और जब किनोसे मिलने जाने हैं, तब उसे अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये पहले यह कांड उसके पास भेज देते हैं ।

विजित (सं० त्रि०) विरंचेण जितः या वि-जि-क्त । १ पराजित, जिस पर विजय प्राप्त की गई हो, जो जित लिया गया हो । (पु०) २ यह प्रदेश जिस पर विजय प्राप्त की गई हो, जाता हुआ देश । ३ कोई प्रांत या प्रदेश । ४ फलित ज्योतिषमें यह प्रश्न जो युद्धमें किसी दूसरे प्रदेशसे बलमें कम होता है ।

विजितात्मा (सं० पु०) शिवका एक नाम ।
 विजितारि (सं० त्रि०) विजिता पराभूतः अरियेन । १
 जिसने अपने शत्रु को जीत लिया हो । (पु०) २ एक
 राक्षसका नाम । (रामायण ६।३५।१५)
 विजिताम्ब (सं० पु०) राजा पृथुके एक पुत्रका नाम ।
 (भागवत ५।६।१८)
 विजितासु (सं० पु०) विजिता असयो येन । १ वह जिसने
 प्राण जप किया हो । २ मुनिभेद । (कथावर्तिता ० ६।१।१०५)
 विजिति (सं० स्त्री०) वि-जि-क्तिन् । १ विजय, जीत ।
 २ प्राप्ति । (त्रि०) ३ विजिल । (अमरटी० राममु०)
 विजितिन् (सं० त्रि०) विजित, पराजित ।
 (ऐत०ब्रा० २।२१)
 विजित् (सं० त्रि०) विज-त्च् । १ पृथक्, भिन्न । २
 भीत, डरा हुआ । ३ कम्पित, कांपा हुआ ।
 विजित्स्वर (सं० त्रि०) वि-जि-क्स्वरपु तुगागमः । विजय-
 श्लोक, विजेता, जीतनेवाला ।
 विजित्स्वत्व (सं० क्लृ०) विजित्स्वरस्य भाव स्व । विजि-
 त्स्वरका भाव, धर्म या कार्य, विजय ।
 विजित्स्वरा (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम ।
 विजिन (सं० त्रि०) विजिञ् । (अमरटीका राममु०)
 विजिल (सं० त्रि०) १ ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस
 न हो । पर्याय—विच्छिन्न, विजयन्, विजिन, विजिल,
 उज्ज्वल, लालसाक, विम्विल, विजिञ् । (शब्दरत्ना०)
 (क्लृ०) २ एक प्रकारका दवा ।
 विजिविल (सं० त्रि०) विजिल ।
 विजिदायां (सं० स्त्री०) विदत्तुं मिच्छा वि-द्व-सन् विजि-
 हार्प-अह-टाप् । विहार करनेकी इच्छा ।
 विजिहोषु (सं० त्रि०) विदत्तुं मिच्छुः, वि-द्व-सन्, विजि-
 होषे-सम्नन्ताद् । विहार करनेमें इच्छुक ।
 विजिह्व (सं० त्रि०) विशषेण जिह्वः । १ चक, कुटिल,
 टेढ़ा । २ शून्य, खाली । ३ अस्पन्न ।
 विजावित (सं० त्रि०) विगतं जावितं यस्य । मृत, मरा
 हुआ ।
 विजोप (सं० त्रि०) जिसे जय प्राप्त करनेकी इच्छा हो ।
 विजु (सं० पु०) पक्षिपालक, वह जो चिड़िया पालता हो ।
 (ऐत०ब्रा० रामायण १।१७)

विजुल (सं० पु०) शाकमली कन्द । (राजनि०)
 विजुली (सं० स्त्री०) १ सहायद्विवाणत एक देवीका
 नाम । (सहा० ३।०।५६) २ विजुली देवी ।
 विजुम्भ (सं० पु०) वि-जु-म्भ-भच् । विजु-म्भण, विकारा ।
 विजु-म्भण (सं० क्लृ०) वि-जु-म्भ-भ्युट् । १ किसी पदार्थ-
 का मुँह खोलना । २ उवासी लेना, जमाई लेना । ३,
 धनुषकी डोरी खींचना । ४ भीँसिकीटना ।
 विजु-म्भमान (सं० त्रि०) वि-जु-म्भ-शानच् । विकाराशमान,
 प्रकाशशाल ।
 विजु-म्भा (सं० स्त्री०) उवासी, जमाई ।
 विजु-म्भित (सं० क्लृ०) वि-जु-म्भ-भक् । १ चेष्टा । (त्रि०)
 २ विकस्वर, विकसित । ३ व्याप्त । ४ जु-म्भायुक्त ।
 विजेतव्य (सं० त्रि०) वि-जि-तव्य । विजयाह, जो
 विजित करनेके योग्य हो, जो जीतनेके योग्य हो ।
 विजेता (सं० त्रि०) विजेत् देखो ।
 विजेत् (सं० त्रि०) वि-जि-तुच् । विजेता, जिसने विजय
 पाई हो, जीतनेवाला, विजय करनेवाला ।
 विजेन्य (सं० त्रि०) दूरदेशभव, जो दूर देशमें हो ।
 (श्रूक १।११।६।५)
 विजेय (सं० त्रि०) वि-जि-यत् । विजयाह, जिस पर
 विजय प्राप्त की जानेकी इच्छा हो, जीता जानेके योग्य ।
 विजेय (सं० पु०) विजय ।
 विजेयार (त्रि० पु०) एक प्रकारका वृद्ध वृक्ष जो साजका
 एक भेद माना जाता है । यह पूरों भारत तथा बरमामें
 बहुत अधिकतासे पाया जाता है । इसकी लकड़ी बहुत
 मजबूत होती है और खेतोंके बीजार धनाने तथा इमारत
 आदिके काममें आती है ।
 विजेसाल (त्रि० पु०) विजेसर देखो ।
 विजेर (त्रि० पु०) १ विजेरा देखो । (त्रि०) २ निर्धूल,
 कमजेर ।
 विजोयस् (सं० त्रि०) विशिष्टरूप सोम द्वारा प्रीणनकारी ।
 विजोहा (त्रि० पु०) एक वृत्तका नाम । इसके प्रायेण
 चरणमें दो रमण होते हैं । इसे जौहा, विमोहा और
 विजोहा भी कहते हैं ।
 विज्ज (सं० पु०) राजभेद । (राजत० ६।२०२७)
 विज्जन (सं० त्रि०) विजिल ।

विज्ञानामन् (सं० पु०) रानी विज्ञान-प्रतिष्ठित विहारभेद ।
(राजत० ८१३४४४)

विज्ञल (सं० क्लो०) १ घाण, तोर । (त्रि०) २ विजिल ।
(पु०) ३ वाट्यालक, घोसवन्द । (वैयकनि०)

विज्ञरपुर (सं० क्लो०) नगरभेद ।

विज्ञरविड्ड (सं० क्लो०) विज्जप्रपु (देखो) ।

विज्ञा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद । (राजत० ६१३४४४)

विज्ञाका (सं० स्त्री०) एक स्त्री कांधका नाम ।

विज्ञाका (सं० स्त्री०) विज्जका देखो ।

विज्ञल (सं० त्रि०) विजिल ।

विज्ञुल (सं० क्लो०) १ सुइदक, दारचोनी । २ स्वच, छिलका । (त्रि०) ३ परिच्छल ।

विज्ञुला (सं० स्त्री०) विज्जुत देखो ।

विज्ञुलका (सं० स्त्री०) जनुका या पहाड़ी नामकी लता ।

विज्ञोहा (हिं० पु०) विज्ञोहा देखो ।

विज्ञ (सं० त्रि०) विशेषण जानातति विज्ञा (आतम्बोप-
सर्गं । पा ३।२।३३) कः । १ प्रयोप, विचक्षण, ज्ञानो,
विशेषज्ञ । इवका पर्वीय नियुग कर्म देखो । २ परिणत,
विद्वन् ।

विज्ञता (सं० स्त्री०) १ विज्ञ होनेका भाव, जानकारी ।
२ सुद्विमत्तः । ३ पाण्डत्य, विद्वत्ता ।

विज्ञत्व (सं० क्लो०) विज्ञता देखो ।

विज्ञत (सं० त्रि०) जो बतलाया या सूचित किया गया
हो, जतलाया हुआ ।

विज्ञति (सं० स्त्री०) १ जतलाने या सूचित करनेकी
क्रिया । २ विज्ञापन, इशतहार ।

विज्ञतिका (सं० स्त्री०) प्रार्थना, निवेदन ।

विज्ञत्य (सं० त्रि०) जतलाने या सूचित करनेके योग्य ।

विज्ञुदि (सं० स्त्री०) जटामांसी ।

विज्ञुय (सं० पु०) यह व्यक्ति जो विज्ञ न होने पर भी
अपनेको विद्व बतलाता हो ।

विज्ञात (सं० त्रि०) विज्ञा-क । १ उपात, प्रसिद्ध ।
२ विदित, ज्ञात, जाना या समझा हुआ ।

विज्ञातवीर्य (सं० त्रि०) विज्ञात वीर्य येन वक्ष्य वा । १
जिसको शक्ति जान ली गई हो । २ जिसके द्वारा दूसरेकी
शक्तिका परिचय मिल गया हो ।

विज्ञातव्य (सं० त्रि०) जो जानने या समझनेके योग्य हो ।

विज्ञाता (सं० त्रि०) विज्ञातु देखो ।

विज्ञाति (सं० स्त्री०) १ क्षान, मग्न । २ गय नामक देश-
योनिभेद । ३ एक बलका नाम ।

विज्ञातु (सं० त्रि०) विज्ञाता, जो जानता या समझता हो ।

विज्ञान (सं० क्लो०) विविध विद्वष्यं वा ज्ञानं वि ज्ञान-तपुट् ।
१ ज्ञान । २ कर्म । ३ कर्मण, कर्मकुशलता । ४ मोक्षकी
छोड़ी अन्य (अर्थकानादि) उद्देश्यसे शिखर तथा शाखादि
विषयक ज्ञान, मोक्षानिष्ट अन्य अगन्तव्य दृष्ट्यादि विषय
तथा शिखर और शाखविषयक ज्ञान । विशेषतः अर
सामान्यतः यही दो प्रकारका ज्ञान है ।

विशेष और सामान्य इन दोनों पदार्थोंका हा जो
अवबोध (उपलब्धि) है, वही विज्ञान और ज्ञान कहा-
लाता है । मोक्ष (मुक्त), शिखर (चित्तादि), शाख
(व्याकरणदि), इन सब विशेष (सूक्ष्म) पदार्थोंकी
उपलब्धि तथा साधारण घटपटादि सभी पदार्थका उप-
लब्धिको ही ज्ञान और विज्ञान कहा गया है । "ज्ञाना-
न्मुक्तिः" "सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा प्रद्वं प्रपच्छति"

"प्रज्ञाणो नित्यविज्ञानानन्दरूपत्वात्" इत्यादि स्थानोंमें
विज्ञान और ज्ञान शब्द द्वारा मोक्ष आदि विशेष पदार्थों-
का अवबोध और "ज्ञानमस्ति सगस्तस्य जगतीविषय
गोचरे" "ये केचित् प्राणिनो लोके सर्वे विज्ञानिनो मता"

"घटत्वप्रकारज्ञानम्" इत्यादि स्थलोंमें उनके द्वारा
साधारण पदार्थको उपलब्धि होती है तथा चित्तज्ञान,
व्याकरणज्ञान, घटपट-विज्ञान इत्यादि शब्दोंका भी शाख-
में व्यवहार है । फिर यह भी कहा जा सकता है, कि "गुरु-
तमन्" शब्द जिस प्रकार गुरु और पक्षी मालका बोधक
है, ज्ञान और विज्ञान शब्द भी उसी प्रकार हैं अर्थात्
मोक्षज्ञान और तद्वितरज्ञानबोधक है ।

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि विद्यानानुसार, बीसह
प्रकारकी विद्याओंका यथार्थ अर्थ जान कर अर्थोपाजन-
पूर्वक यदि धर्मविषयक कार्य किया जाय, तो उन सब
विद्याओंके फलको विज्ञात कहते हैं । फिर धर्मकार्यसे
निवृत्त होने पर उस फलको विज्ञान नहीं कह सकते ।
५ माया वा अविद्या नामकी सृष्टि । ६ बौद्धमतसे
शास्त्ररूपज्ञान । ७ विशेषरूपसे शारमाका अनुभव ।

विजितात्मा (सं० पु०) शिवका एक नाम ।

विजितारि (सं० लि०) विजिता पराभूतः अरिष्येन । १ जिसने अपने शत्रु को जीत लिया हो । (पु०) २ एक राक्षसका नाम । (रामायण ६।३।१५)

विजिताश्व (सं० पु०) राजा पृथुके एक पुत्रका नाम ।
(भागवत ५।६।१८)

विजिताशु (सं० पु०) विजिता असवो येन । १ वह जिसने प्राण जप किया हो । २ मुनिभेद । (कथावर्तिष्ठा० ६।१०५)

विजिति (सं० स्त्री०) वि-जि-क्तिन् । १ विजय, जीत । २ प्राप्ति । (लि०) ३ विजिल । (अमरटी० रायमु०)

विजितित् (सं० लि०) विजित, पराजित ।
(ऐत०ब्रा० २।२१)

विजित् (सं० लि०) विज-त्च् । १ पृथक्, भिन्न । २ भीत, डरा हुआ । ३ कम्पित, कांपा हुआ ।

विजित्थर (सं० लि०) वि-जि-करप् तुगागमाः । विजय-शील, विजेता, जातनेवाला ।

विजित्थरत्व (सं० क्लृ०) विजित्थरस्य भाव स्व । विजित्थरका भाव, धर्म या कार्य, विजय ।

विजित्थरा (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम ।

विजिन (सं० लि०) विजिञ् । (अमरटीका रायमु०)

विजिल (सं० लि०) १ ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस न हो । पर्याय—पिच्छिञ्, विज, यन्, विजिन, विजिल, उज्जञ्, लालसाक, विजिलि, विजिञ् । (शब्दरत्ना०)
(क्लृ०) २ एक प्रकारका दवा ।

विजिलि (सं० लि०) विजिलिञ् ।

विजिदायां (सं० स्त्री०) विहर्त्तुमिच्छा वि-हृ-सन् विजि-हर्ष-अञ्-टाप् । विहार करनेकी इच्छा ।

विजिहोपु (सं० लि०) विहर्त्तुमिच्छुः, वि-हृ-सन्, विजि-होपे-सन्गताडु । विहार करनेमें इच्छुक ।

विजिह्ण (सं० लि०) विशपेण जिह्णः । १ एक, कुटिल, टेढ़ा । २ शून्य, खाली । ३ अस्पृश्य ।

विजावित (सं० लि०) विगतं जावितं यस्य । मृत, मरा हुआ ।

विजोप (सं० लि०) जिसे जय प्राप्त करनेकी इच्छा हो ।

विजु (सं० पु०) पक्षपालक, वह जो चिड़िया पालता हो ।
(ऐतरेय भाष्यक १।१७)

विजुल (सं० पु०) शाकमलो कन्द । (राजनि०)

विजुली (सं० स्त्री०) १ सद्यःद्रवणित एक देवीका नाम । (सद्यः ३।४६) २ विजुली देखो ।

विजुम्म (सं० पु०) वि-जु-म्-अच् । विजु-भ्रमण, बिकारा ।

विजु-भ्रमण (सं० क्लृ०) वि-जु-म्-अणुट् । १ किसी पशुधर-का मुँह खोलना । २ उबासी लेना, जंभाई लेना । ३ धनुषकी डोरी खींचना । ४ भीं-सिकोड़ना ।

विजु-भ्रमान (सं० लि०) वि-जु-म्-शानच् । बिकाराशान, प्रकाशशील ।

विजु-भ्रा (सं० स्त्री०) उबासी, जंभाई ।

विजु-भ्रित (सं० क्लृ०) वि-जु-म्-क्त । १ चेष्टा । (लि०) २ विकस्वर, विकसित । ३ व्याप्त । ४ जृम्भायुक्त ।

विजेतव्य (सं० लि०) वि-जि-त्तव्य । विजयाह, जो विजित करनेके योग्य हो, जो जीतनेके योग्य हो ।

विजेता (सं० लि०) विजेत् देखो ।

विजेत् (सं० लि०) वि-जि-न्त्च् । विजेता, जिसने विजय पाई हो, जीतनेवाला, विजय करनेवाला ।

विजिग्य (सं० लि०) दूरदेशमव, जो दूर देशमें हो ।

(भृक् १।२।६।५)

विजिप (सं० लि०) वि-जि-यत् । विजयाह, जिस पर विजय प्राप्त की जानेकी इच्छा हो, जीता जानेके योग्य ।

विजिप (सं० पु०) विजिप ।

विजोवार (हि० पु०) एक प्रकारका बड़ा वृक्ष जो सांझका एक भेद माना जाता है । यह पूर्वी भारत तथा बरमामें बहुत अधिकतासे पाया जाता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेतोंके जोजार बनाने तथा इमारत आदिके काममें आती है ।

विजोसाल (हि० पु०) विजोवार देखो ।

विजोार (हि० पु०) १ विजोरा देखो । (वि०) २ निर्बल, कमजोर ।

विजोपस् (सं० लि०) विशिष्टरूप सोम द्वारा प्रीणनकारी ।

विजोहा (हि० पु०) एक वृक्षका नाम । इसके प्रत्येक वरणमें दो रंग होते हैं । इसे जोहा, विमोहा और विजोहा भी कहते हैं ।

विज (सं० पु०) राजभेद । (राजत० ६।२०२७)

विजान (सं० लि०) विजिल ।

विज्ञानामन् (सं० पु०) रानी विज्ञा-प्रतिष्ठित विहारभेद ।
(राजव० ५, ३४४)

विजल (सं० क्लो०) १ घाण, तोर । (त्रि०) २ विजिल ।
(पु०) ३ घाट्यालक, शोजघद । (वैयकनि०)

विजलपुर (सं० क्लो०) नगरभेद ।

विजलविहङ्ग (सं० क्लो०) विजलपुर देखो ।

विजा (सं० खी०) राजकथाभेद । (राजत० ६, १४४)

विजाका (सं० खी०) एक खा कांथका नाम ।

विजाका (सं० खी०) विजका देखो ।

विजल (सं० त्रि०) विजिल ।

विजुन् (सं० क्लो०) १ गुडटाक, दारचीनी । २ त्वच,
छिलका । (त्रि०) ३ पांखल ।

विजुला (सं० खी०) विजुत दलो ।

विजुलका (सं० खी०) जतुका या पहाड़ी नामकी
लता ।

विजोहा (हिं० पु०) विजोहा देखो ।

विश्व (सं० त्रि०) विशेषण जानातीति वि-ज्ञा (भातभ्यो-
वर्ग) । पा ३।१।३३ ई कः । १ प्रबोध, विचक्षण, ज्ञानो,
विद्वेषक । इषका पथवि निपुण रुद्रमें देखो । २ परिदत्,
विद्वन् ।

विश्वता (सं० खी०) १ विश्व होनेका भाव, जानकारो ।
२ बुद्धिमत्तः । ३ पाण्डत्य, विद्वत्ता ।

विश्वत्व (सं० क्लो०) विश्वता देखो ।

विश्वत (सं० त्रि०) जो बतलाया या सूचित किया गया
हो, जतलाया हुआ ।

विश्वति (सं० खी०) १ जतलाने या सूचित करनेको
किया । २ विहापन, इतहास ।

विश्वतिका (सं० खी०) प्रार्थना, निवेदन ।

विश्वव्य (सं० त्रि०) जतलाने या सूचित करनेके योग्य ।

विश्ववृद्धि (सं० खी०) जटामांसी ।

विश्ववृष (सं० पु०) यह व्यक्त जो विज्ञान होने पर भी
अपनको विश्व बतलाता हो ।

विश्वत (सं० त्रि०) विश्व-क्त । १ उपात, प्रसिद्ध ।

२ विदित, ज्ञात, जाना या समझा हुआ ।

विश्वतवीर्य (सं० त्रि०) विश्वत वीर्य येन यस्य वां । १

जिसको शक्ति जान ली गई हो । २-जिसके द्वारा दूसरेकी
शक्तिका परिचय मिल गया हो ।

विज्ञातव्य (सं० त्रि०) जो जानने या समझनेके योग्य हो ।

विज्ञाता (सं० त्रि०) विज्ञातु देखो ।

विज्ञाति (सं० खी०) १ ज्ञान, समझ । २ गय नामक देश-
योनिभेद । ३ एक कल्पका नाम ।

विज्ञातु (सं० त्रि०) विज्ञाता, जो जानता या समझता हो ।

विज्ञान (सं० क्लो०) विविध विद्वेष या ज्ञानं वि-ज्ञान-ल्युट् ।

१-ज्ञान । २ कर्म । ३ कर्मण, कर्मकुशलता । ४ मोक्षकी

छोड़ी अर्थ (अर्थकानादि) उद्देश्यसे गिह्य तथा शास्त्रादि

विषयक ज्ञान, मोक्षनिष्ठ अर्थ अन्तर घट-टादि वि-क

तथा शिष्य और शास्त्रविषयक ज्ञान । विश्वतः अर

सामान्यतः यही दो प्रकारका ज्ञान है ।

विशेष और सामान्य इन दोनों पदार्थोंका हा जो

अवबोध (उपलब्धि) है, वहो विज्ञान और ज्ञान कह-

लाता है । मोक्ष (मुक्त), शिष्य (चित्तादि), शास्त्र

(व्याकरणदि), इन सब विशेष (सूक्ष्म) पदार्थोंकी

उपलब्धि तथा साधारण घटपटादि सभी पदार्थका उप-

लब्धिको ही ज्ञान और विज्ञान कहा गया है । "ज्ञाना-

स्तुक्तिः" "सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा प्रदं प्रयच्छति"

"प्रज्ञापो नित्यविज्ञानानन्दरूपत्वात्" इत्यादि स्थानोंमें

विज्ञान और ज्ञान शब्द द्वारा मोक्ष आदि विशेष पदार्थों-

का अवबोध और "ज्ञानमस्ति सगस्तस्य जन्तोविषय

गोचरे" "ये केचित् प्राणिनो लोके सर्वे विज्ञानिनो मता"

"घटत्वप्रकारकज्ञानम्" इत्यादि स्थानोंमें उनके द्वारा

साधारण पदार्थकी उपलब्धि होती है तथा चित्तज्ञान,

व्याकरणज्ञान, घटपट-विज्ञान इत्यादि शब्दोंका भी शास्त्र-

में व्यवहार है । फिर यह भी कहा जा सकता है, कि "गुरु-

त्वम्" शब्द जिस प्रकार गुरु और पक्षी मात्रका बोधक

है, ज्ञान और विज्ञान शब्द भी उसो प्रकार है अर्थात्

मोक्षज्ञान और तदितरज्ञानबोधक है ।

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि विद्यानानुसार, बीदह

प्रकारकी विद्याओंका यथार्थ अर्थ जान कर अर्थोपाजन-

पूर्वक यदि धर्मविषयके कार्य किया जाय, तो उन सब

विद्याओंके फलको विज्ञान कहते हैं । फिर धर्मकार्यसे

निवृत्त होने पर उस फलको विज्ञान नहीं कह सकते ।

५ प्राया वा अविद्या नामही वृत्ति । ६ बौद्धमतसे

आत्मरूपज्ञान । ७ विशेषरूपसे त्वात्ताका अनुभव ।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा परमात्मके अनुभवका नाम विज्ञान है।

प्राचीन संस्कृत साहित्यमें विज्ञान शब्दका बहुत व्यवहार देखा जाता है। ऐतिहासिक आलोक्तोंसे इस शब्दके प्रयोगकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है कि प्रत्येक युगमें ही लेखकोंने अनेक अर्थोंमें इस शब्दका व्यवहार किया है। श्रुतिमें भी नाना अर्थोंमें विज्ञान शब्दका प्रयोग है,—

(१) कहां ब्रह्म पदार्थ ही विज्ञान नामसे अभिविहित हुए हैं—जैसे "यो विज्ञानं ब्रह्म तद्युपास्ते" (छान्दोग्य) "विज्ञानानामन्दं ब्रह्म" (तैत्तिरीय) "विज्ञानं ब्रह्म यद्देदं" "विज्ञानं ब्रह्मोति व्यवजनाद्विज्ञानाद्भि, भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जीयन्ति, विज्ञानं प्रयन्ति" (तैत्तिरीय ३।५।१)

(२) कहां आत्मशब्दके प्रतिनिधिरूपमें विज्ञान शब्दका व्यवहार हुआ है, जैसे—"विज्ञानमात्मा" (श्रुति)

किर कहां आकाशको विज्ञान कहा गया है, जैसे—'तद्विज्ञ नमाराजम्'

(४) कहां भोज्ञानके अर्थमें भी विज्ञान शब्दका व्यवहार देखनेमें आता है, जैसे—"तद्विज्ञानेन परिपश्यति" (मुण्डक) "विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति" (छान्दोग्य ७।८।१) "आत्मता विज्ञानम्" (छान्दोग्य ७।२।१) "यो विज्ञानेन निष्ठानि ज्ञानास्मरति यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरारम्" । इन्द्र (यजक ३।६।२२)

(५) मुण्डक उपनिषद्में त्रिाशष्ट ज्ञानके अर्थमें विज्ञान शब्दका प्रयोग देखा जाता है जैसे—"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमवाभगच्छेत्" मुण्डक १।२।१२)

६) श्रुतमें कर्मकाण्डमें "यथा वेद कर्मकौशल" भी विज्ञान कहा है।

(७) क्षणिक विज्ञानवादी बौद्धोंका कहना है, कि विज्ञान ही आत्मा है। यहा आत्मका हम लोगोंके ज्ञानको कारणत्वका है। मनक मोनर यह विज्ञानकर आत्मा वर्तमान है। किन्तु वेदान्तवादीयों और सांख्यशास्त्रवादीयोंने इस मतका खण्डन किया है। पञ्चदशोमें लिखा है, कि क्षणिक विज्ञानवादी बौद्धगण विज्ञान ही आत्मा कहते हैं। इन लोगोंका विचार है, कि आत्मा सबके मोनर पदार्थ-बोधको कारण है। अतएव मनके अन्धन्तर रहकर

बोधकी कारण होनेके निमित्त विज्ञानको आत्मा कहा जाता है। किन्तु यह विज्ञान क्षणिक है।

अन्तःकरण दो प्रकारमें विभक्त है,—अहंभूति और इहंभूति। उनमेंसे अहंभूतिको विज्ञान कहते हैं तथा इहंभूतिको मन कहलाती है। अहंभूत्यात्मक विज्ञानके भाग्यतिक ज्ञानके बिना इहंभूत्यात्मक मनके वाद्यज्ञान नहीं होता। इसलिये विज्ञानको मनका अन्धन्तर और कारण बतलाया है। अतएव उमको आत्मा कहा जा सकता है। अतएव सु-स्थलमें क्षण क्षण अहंभूत्यात्मक विज्ञानका जन्म और विनाश प्रत्यक्ष होता है। इसीलिये उमको क्षणिक कहते हैं तथा वे स्वयं प्रकाशस्वरूप होते हैं। भागवतमें विज्ञानको आत्मा कहा गया है। यही जीवात्मा जन्मविनाश और सुख दुःखदिरूप संसारका मोका है। किन्तु क्षणिक विज्ञानको आत्मा नहीं कह सकते। क्योंकि, विद्यत आदिकी तरह यह विज्ञान अति अल्पकालस्वायी है। इसके सिवा और कुछ भी मालूम न होनेके कारण आधुनिक बौद्धोंने शून्यवादका प्रचार किया है।

सांख्यसूत्रकारने कहा है,—
"न विज्ञानमात्रं वाद्यप्रतीतेः।" (१।५२)
इससे विज्ञानवादी बौद्धोंका मत खण्डन किया गया है। शाङ्कराचार्यमें विज्ञानवादी बौद्धोंका मत खण्डन करनेके लिये बहुत सी युक्तियां निकाला गई हैं।

८ बौद्धोंका व्यवहृत यह विज्ञान शब्द क्षणविध्वंसि प्रपञ्च-ज्ञानमात्र है।

९ वेदान्तदर्शनमें "निश्चयवात्मिका बुद्धि" कर्ममें विज्ञान शब्दका व्यवहार दिखाई देता है। भग-इतमें इस अर्थमें भी विज्ञान शब्दका प्रयोग यथेष्ट है।

श्रीमद्भारतीतार्थ विचारण्य मुनीश्वरने पञ्चदशोकी टीकामें निश्चयवात्मिका बुद्धिको ही विज्ञान कहा है।

श्रुतिमें विज्ञानघनं, विज्ञानपति, विज्ञानमय, विज्ञानयन्त और विज्ञानात्मक आदि शब्दोंका अनेक प्रयोग देखनेमें आता है। जैसे गृहदारण्यके—"अनन्तमपारं विज्ञानघनमय" (२।५।२२) नारायणोपनिषद्में—"तदिमां पुरं पुण्डरीकं विज्ञानघनम्", परमहंसोपनिषद्में—"विज्ञानघनं पद्माक्षं", आत्मप्रयोगमें—"कारणरूपं बोधस्वरूपं विज्ञानघनम्", तैत्तिरीय उपनिषद्में—"श्रोतपति विज्ञानपति",

पुद्गलपरिचयः—“य एष विज्ञानमयः” (२।१।१५) “योऽयं विज्ञानमयः पुरुषः।”

तैत्तिरीयमें “अध्यान्वे आत्मा विज्ञानमयः” (२।४।१)

“कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा” (मुपब्रुकमें ३।२७)

“यस्य विज्ञानवान् भवति” (कठ ३।६)

“एष हि विज्ञानात्मा पुरुषाय” (प्रनोप ० ४।६)

इन सब स्थलोंमें कहीं विशिष्ट ज्ञान, कहीं प्रहाज्ञान, कहीं श्रवणमनननिदिध्यासनादिपूर्वक उपनिषद् ज्ञान-अर्थमें विज्ञान शब्दका प्रयोग हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीताके टीकाकारोंने इस शब्दके अनेक अर्थ लगाये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता १८वे अध्यायके ४२वें श्लोकमें “ज्ञानं विज्ञानमास्तित्वय” इत्यादि श्लोककी टीका में श्रीधरस्वामीने “विज्ञानमनुमयः” ऐसा अर्थ लगाया है। रामानुजने लिखा है, “परतत्त्वगतामाधारणनिश्रेय-यिषयं—विज्ञानम्”; जङ्कराचार्यने लिखा है, “विज्ञानं, कर्माकाण्डे ‘क्रियाकीशल’, प्रहाकाण्डे प्रहारमैवगानुमयः।” मधुसूदन सरस्वतीने जङ्कराचार्यकी व्याख्याकी ही ठीक बतलाया है। फिर दूसरी जगह अग्रेक्षणुभव ही विज्ञान शब्दके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है।

अग्रेजीमें जिसे Science कहते हैं, संस्कृतमें उसीका नाम विज्ञान है और उसी अर्थमें इसका प्रयोग होता है, जैसे पदार्थ-विज्ञान, रसायनविज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, जीवविज्ञान, उद्भिद्बिज्ञान इत्यादि। श्रीमद्भगवद्गीताका ७वाँ अध्याय पढ़नेमें मालूम होता है, कि पाश्चात्य भाषामें जिन श्रेणीके ज्ञानको Science कहते हैं, श्रीमद्भगवद्गीतामें उसी श्रेणीके ज्ञानको विज्ञान कहा है।

सुविख्यात फ्रांसीसी दार्शनिक पण्डित कामतेने (Comte) Inorganic तथा Organic Science याक्य द्वारा जो सभी विज्ञान अन्तर्भुक्त किये हैं, श्रीमद्भगवद्गीता-में भी उन सबका समावेश है। उसमें प्योम-विज्ञान, भू-विज्ञान है, वायवीय विज्ञान, उद्भिद्बिज्ञान-विज्ञान, ज्योति-विज्ञान, जीवविज्ञान तथा उनके अन्तर्भुक्त निखिलविज्ञान विषय व्यञ्जित हुए हैं। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता-में व्यञ्जित विज्ञान शब्द पाश्चात्यविज्ञानके Science शब्दके प्रतिनिधिरूपमें व्यञ्जित हो सकता है। भगव-

द्गीतामें “राजस ज्ञान” पद भी ‘विज्ञान’ शब्दके बदलेमें व्यवहृत हुआ है, जैसे—

—“युष्मत्त्वेन तु यज्ञज्ञानं नाताभावान् पृथग्विधान।

वेदि सर्वं यु मूलेषु तज्ज्ञानं विद्वि राजसम् ॥” (२।१।९)

भगवद्गीतामें विज्ञान शब्द प्रायः सभी जगह ज्ञान शब्दके साथ व्यवहृत हुआ है। जैसे—‘ज्ञानविज्ञान-तृप्नात्मा’ “ज्ञानं विज्ञानसद्वितम्” “ज्ञानं विज्ञानमास्ति कःम्” इत्यादि। श्रीमद्भगवतमें भी इन दोनोंका एकत्र सम्मिश्रण देखा जाता है, जैसे—

“ज्ञानं परमगुणश्च यदज्ञानमन्वितम्।”

(२५ स्कन्ध ६ अ०)

इन सब स्थानोंमें रामानुजाचार्यकी व्याख्या ही बहुत कुछ सङ्गत है अर्थात् ज्ञान शब्दका अर्थ भगवद्विषयक ज्ञान तथा विज्ञान शब्दका अर्थ निखिल इन्द्रियार्थविषयक विशिष्ट ज्ञान है—जैवज्ञान भी इसके अन्तर्गत है निखिल इन्द्रियार्थविषयक विशिष्ट ज्ञान ही आधुनिक विज्ञानका विषय है। कोमते (Comte) कहते हैं—

‘We have now to proceed to the exposition of the system; that is to the determination of the universal or encyclopaedic order which must regulate the different classes of natural phenomena and consequently the corresponding positive sciences’

श्रीमद्भगवद्गीताके इस ज्ञानविज्ञान नामक अध्यायमें समग्र विश्वतत्त्व-विज्ञानके साथ विश्वेश्वरके ज्ञानका आभास दिया गया है। विश्वविज्ञानकी मूलस्वरूपिणी महाशक्तिकी कथा इस अध्यायमें उल्लिखित हुई है। इस अध्यायमें प्रमाणित किया गया है, कि समग्र विश्वप्रपञ्च एक अष्टौय महाशक्तिका भिन्न भिन्न प्रकाशमात्र है।

इससे सावित होता है, कि सब प्रकारके प्रापञ्चिक पदार्थमें ही भगवत्शक्ति अंतर्भूतभावमें विद्यमान है। प्रापञ्चिक पदार्थसमूह जो उस अदृश्य शक्तिकी सत्त्वा पर ही विद्यमान है, हार्बट स्पेनसर भी यही भावात्मक बात कहते हैं, जैसे—

Every Phenomenon is a manifestation of force,

अर्थात् इस प्रपञ्च का प्रत्येक पदार्थ ही शक्तिका अभिव्यक्ति मात्र है। फलतः यह विश्वप्रपञ्च सर्वकारण श्रो-भगवान् की अभिव्यक्तिमयी लीला तरङ्ग मात्र है। गीता-का जो अंश उद्धृत हुआ, वह यथार्थमें ही विज्ञानका सार सत्य है। हावर्ट स्पेन्सर कहते हैं—

"The final out-come of that speculation commenced by the primitive man is that the power manifested through out the universe, distinguished as material, is the same Power which in ourselves swells up under the form of consciousness.

श्रीकृष्णने और भी कहा है—

"मयः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वं मिदं प्रोत सुखं मयिगयाह्वय ॥"
स्पेन्सरने कहा है—

"Ever in presence of an Infinite and Eternal Energy from which all things proceed,

चण्डामें लिखा है—

"सर्व विश्वं प्रवृत्ते ॥"

यही शक्ति विज्ञानको सार और मूल सत्य है। स्पेन्सर आदि पण्डितोंके चर्चनेके साथ हम लोगोंको ज्ञास्त्राय-शक्तिका बहुत प्रमेद है। यूरोपीय इस श्रणाके वैज्ञानिक पण्डित जो अणुशक्तिका बात कहते हैं, वह केवल अचित् प्रकृति- (Cosmophysical) तथा चित् प्रकृति- (Cosmopsychical) शक्ति (Energy) मात्र है। हम लोगोंका विज्ञान ज्ञानमय पुण्यकी ज्ञानमयी महाशक्तिकी वाह्य अभिव्यक्तिकी तरङ्गलाला दिखा कर अतिक्रमिक पुष्ट करनेमें सदायक होता है। श्रीभगवद्गीताको उक्तिवैकी पर्यालोचन करनेसे स्पष्ट जाना जाता है, कि इसमें एक ओर त्रिस प्रकार Redistribution of Matter and Motion आदि वैज्ञानिकतत्त्वके मूल योजना सूत्र मौजूद है, उसी प्रकार दूसरी ओर भगवद्भक्तिके उद्दीपक सारतत्त्वोंकी इसमें पूर्ण स्फूर्ति भी विद्यमान है। हम लोगोंके सांख्य और वैशेषिक आदि दर्शनोंमें जो सूक्ष्म वैज्ञानिकतत्त्व हैं, उसका प्रथम वैज्ञानिकतत्त्व ज्ञानमें लिखा जा चुका है।

कोमते (Comte) ने विज्ञानशास्त्रका पहले Inor-

ganic and organic phenomena इन दो भागोंमें विभक्त किया है। गीतामें भी अपरां और पराके भेदसे दो प्रकारकी प्रकृतिका उल्लेख किया गया है। ऊपर प्रकृति भूमि आप अंनल अंनिल आदि तथा परा प्रकृति जीवभूता प्रकृति है।

कोमतेने विज्ञानको प्रपाततः ५ भागोंमें विभक्त किया है। जैसे—

१। ज्योतिर्विज्ञान (Astronomy)

२। पदार्थविज्ञान (Physics)

३। रसायनविज्ञान (Chemistry)

४। शरीरविज्ञान (Physiology)

५। समाजविज्ञान (Sociology)

कोमतेके मतसे आधुनिक अन्याय्य बहुविध विज्ञान इन्हींके अन्तर्भूत है। किन्तु कोमतेने गणितविज्ञानको ही विज्ञानजगतके सर्वप्रथम सम्मानार्ह बताया है।

वेकन, कोमते, हरवर्ट, स्पेन्सर और येरन आदि पण्डितोंने विज्ञानशास्त्रके श्रेणो विभागके सम्बन्धमें गहरी आलोचना की है। १८१५ ई०का प्रकाशित Encyclopaedia Metropolitana नामक किसी प्रथम विज्ञानके चार मौलिक विभाग दिखलाये गये थे—

प्रथम विभागमें व्याकरण-विज्ञान, तर्कविज्ञान, अलङ्कारविज्ञान, गणितविज्ञान, मनोविज्ञान (Metaphysics), व्यवस्था विज्ञान (Law), नीतिविज्ञान और धर्मविज्ञान है। यहाँ पर हम लोगोंको अमरकोषकी लिखित "विज्ञानं गिहयशास्त्रयोः" कथा याद आ जाती है। टीकाकारने लिखा है, "शास्त्रं व्याकरणादि" अर्थात् व्याकरणादि शास्त्र मा विज्ञानराज्यके अन्तर्गत है।

द्वितीय विभागमें—मैकानिकस्, हाइड्रोस्टैटिक्स, ग्युमाटिक्स, अल्पिक्स और ज्योतिर्विज्ञान (Astronomy) है।

तृतीय विभागमें—माग्नेटिजम्, इलेक्ट्रिसिटी, ताप, आलोक, रसायन, शब्दविज्ञान वा आकुष्टिक्स (Acoustics), मिटियरलजो और उयुडैसी (Geodesy), विविध प्रकारका गिहय और चिहिरसा-विज्ञान मा इस विभागके अन्तर्गत है।

चतुर्थ विभागमें—इतिहास, जीवनी, भूगोल, अभिधान तथा अन्याय्य ज्ञानय्य विषय हैं।

१८२८ ई०को डाक्टर निल आर्नट (Dr. Neil Arnot) ने अपने पदार्थ विज्ञान ग्रन्थमें विज्ञानके चार विभाग किये हैं। यथा—प्रदार्थ-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, जीवन-विज्ञान और मनोविज्ञान। उन्होंने गणित विज्ञानको भी कोमतेकी तरह सम्मानास्पद आसन दिया है। डाक्टर आर्नटने वस्तुतत्त्वके मध्य उद्योतविज्ञान, भूगोल, खनि-विज्ञान (Minerology), भू-विज्ञान (Geology), उद्भिदविज्ञान (Botany), प्राणिविज्ञान (Zoology) और मानवजातिके इतिहास (Anthropology) आदिका विशेष उल्लेख किया है। अभी पाश्चात्य विज्ञानशास्त्र शतमुखी गङ्गाप्रवाहकी तरह सै हज़ों नामोंसे शिक्षार्थियोंके मानसनेत्रके सामने विज्ञानराज्यके अनन्तत्वकी महिमा और गौरव प्रकट कर रहा है। यहाँ तक, कि एक चिरिहस्त-विज्ञान ही अनेक शाखाओंमें विभक्त हुआ है। प्रत्येक विभागमें हो इस प्रकार विविध शाखा, उपशाखा और प्रशाखाके प्रसारने यह विज्ञानमहोरह अमी जनवंचनोद्योगौरवमयी विशालतामें अगनो महिमा उद्योपित कर रहा है। वैज्ञानिकत्व शब्दमें विस्तृत विवरण देलो।

८ ब्रह्म। ९ आत्मा। १० आकाश। ११ निश्चयात्मिका बुद्धि।
 विज्ञानक (सं० लि०) विज्ञानं स्वार्थं कन्। विज्ञान।
 'वाह्यार्थविज्ञानकशून्यवादे'। (हेम)
 विज्ञानकम्—ग्रन्थकस्मिन्।
 विज्ञानकेषल (सं० पु०) विज्ञानाकल।
 (सर्वदर्शन सं० ८६।१५)
 विज्ञानकोश (सं० पु०) वेदान्तके अनुसार-ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि, विज्ञानमय कोश। कोप देलो।
 विज्ञानकौमुदी (सं० खो०) वीद्वरमणीभेद।
 विज्ञानता (सं० खो०) विज्ञानका भाव या धर्म
 विज्ञानतौल्यमर्थ (सं० पु०) अङ्गोत्तरुह। (राजनि०)
 विज्ञानदेशन (सं० पु०) बुद्धभेद।
 विज्ञानपति (सं० पु०) परम ज्ञानी।
 विज्ञानपाद (सं० पु०) विज्ञानमेव पाद' लक्ष्यं यस्य।
 वेदव्यासका एक नाम।
 विज्ञानमहारक (सं० पु०) परम पण्डित।

विज्ञानमिश्र—एक प्रधान दार्शनिक। ये बहुत सी उपनिषद् और दर्शनादिका भाष्य लिख कर विद्यगत हो उठे हैं। इनके लिये ग्रन्थोंमें से कठबल्लो, की गण, तैत्तिरीय, प्रश्न, मुण्डुक, माण्डुक्य, मैत्रेय और श्वेताश्वतर आदि उपनिषद्का 'आलोक' नामक भाष्य, वेदान्तालोक नामक बहुत-सी प्रकृत उपनिषद्को समालोचना, इनके अतिरिक्त ईश्वर-गोताभाष्य, पातञ्जलभाष्यवार्त्तिक या योगवार्त्तिक (वैयासिकभाष्यकी टाका), भगवद्गोताटोका, विज्ञानामृत या ब्रह्मसूत्रश्रुत्याषया, सांख्यसूत्र या सांख्यप्रपञ्चनभाष्य, सांख्यकारिकाभाष्य तथा उपदेशरत्नमाला, ब्रह्मादर्श, योगसारसंग्रह और सांख्यसारधियेग नामक बहुतसे दार्शनिक ग्रन्थ मिलने हैं। इन सब ग्रन्थोंमें सांख्य-प्रपञ्चनभाष्य ही विशेष प्रचलित है। इन्होंने सांख्य-सूत्रवृत्तिकार अतिरिक्तमदृका मत उद्भूत किया है। फिर महादेव सांख्यसूत्रवृत्तिमें विज्ञानमिश्रक मत उद्भूत हुआ है। ये योगसूत्रवृत्तिकार भावागणेशदीक्षितके गुरु थे।

विज्ञानमय (सं० लि०) ज्ञानस्वरूप। (भागवत ११ २६।३८)
 विज्ञानमयकोप (सं० पु०) विज्ञानमयस्तदात्मकः कोप-इव आच्छादकत्वात्। शनेन्द्रियों और बुद्धिका समूह।
 विज्ञानमातृक (सं० पु०) विज्ञानं मातेव यस्य बहुप्रादी कन्। बुद्धका एक नाम।
 विज्ञानयति (सं० पु०) विज्ञानमिश्र।
 विज्ञानयोगिन् (सं० पु०) विशानेश्वर देलो।
 विज्ञानयत् (सं० लि०) ज्ञानयुक्त, ज्ञानी।
 (छान्दो० उ० ७, ८।१)
 विज्ञानवाद (सं० पु०) १ वह वाद या सिद्धान्त जिसमें ब्रह्म और आत्माको एकता प्रतिपादित हो। २ वह वाद या सिद्धान्त जिसमें केवल आधुनिक विज्ञानकी बातें ही प्रतिपादित या मान्यकी गई हों। ३ योगाचार।
 विज्ञानवादिन् (सं० पु०) विज्ञानवादी देलो।
 विज्ञानवादी (सं० पु०) १ वह जो योगके मार्गका अनुसरण करता हो, योगी। २ वह जो आधुनिक विज्ञानशास्त्रका पक्षपाती हो, विज्ञानके मतका समर्थन करने-वाला।
 विज्ञानाकल (सं० लि०) विज्ञानकेवल।

विज्ञानाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद ।

विज्ञानात्मा—ज्ञानात्माके शिष्य । इनके रचे नारायणोपनि-
पदुचिवरण और श्वेताश्वनरोपनिपदुचिवरण मिलते हैं ।

विज्ञानानुष्ठयायतन (सं० क्लो०) बौद्धमठभेद ।

विज्ञानामृत (सं० क्लो०) ज्ञानामृत ।

विज्ञानिक (सं० त्रि०) विज्ञानमस्त्वस्येति विज्ञान उन् ।

१ जिसे ज्ञान हो, ज्ञानविशेष । २ विद्व, पण्डित । ३ वैशा-
निक देखो ।

विज्ञानिता (सं० स्त्री०) विज्ञानमस्त्वस्येति विज्ञान-इन्-
तल्-टाप् । विज्ञानका भाव या धर्म, विज्ञानवेत्ता ।

विज्ञानिन (सं० पु०) विज्ञानी देखो ।

विज्ञानो (सं० पु०) १ वह जिसे किसी विषयका अच्छा
ज्ञान हो । २ वह जो किसी विज्ञानका अच्छा वेत्ता हो,
वैज्ञानिक । ३ वह जिसे आत्मा तथा ईश्वर आदिके
स्वरूपके सम्बन्धमें विशेष ज्ञान हो ।

विज्ञानोय (सं० त्रि०) विज्ञानमश्नुवो, वैज्ञानिक ।

विज्ञानेश्वर—एक अद्वितीय स्वामी पण्डित । मिताक्षरा
नामकी याज्ञवल्क्यटीका लिख कर ये भारतवर्षयात हो
गये हैं । मिताक्षराके अन्तमें पण्डितवर इस प्रकार आत्म-
परिचय दे गये हैं—

पृथ्वी पर बह्मणके समान नगर न है, न धा
और न होगा । इस पृथ्वी पर विक्रमाक सङ्ग
राजा न तो दखा हो जाना और न सुना हो जाता है ।
अधिरुषण १ विज्ञानेश्वर पण्डितकी भां दूमरेके साथ
उपमा नहीं दी जा सकती । ये तीन (स्वर्गके) कल्पतरु-
की भांति कदव पर्यन्त स्थिर रहे । दक्षिणमें रघुकु-
तिलक रामचन्द्रका निरन्तर कीर्तिरक्षक सेतुबन्ध, उत्तर-
में शैलाचिराज दिवालय, पूर्व और पश्चिममें उत्ताल-
तरङ्गसमाकुल तिमिमकसंकुल महासमुद्र, ये चतुःसोमा
विच्छिन्न विस्तृत भूभागके प्रमाणशाली राजाओंकी
विनिमित्तमस्तकस्थित रक्षारजिप्रभासि जिनके चरणयुगल
निपन प्रमाणित हैं, ये विक्रमादित्यदेव चन्द्रतारास्थिति
काल पदान्त इस निमित्त जगन्मण्डलका पालन करें ।

उक्त विक्रमादित्य ही प्रसिद्ध कल्याणपति प्रतोष्य
चालुष्यवंशीय त्रिभुवनमह विक्रमादित्य हैं । ये ईस्वी-
सन् ११वें सदीमें विद्यमान थे ।

विज्ञानेश्वरके पिताका नाम था पद्मनाभ । उनका
मिताक्षरा समस्त भारतका प्रधान धर्मशास्त्रनिबन्ध कह
कर प्रथित है । विशेषतः आज कल भी महाराष्ट्र प्रदेश-
में मिताक्षराके मतानुसार ही सभी आचार और व्यवहार-
कार्य सम्पन्न होते हैं । मिताक्षराके भलावा विज्ञानेश्वर
अष्टावक्रटीका और त्रिगच्छीकामाध्यकी रचना कर गये
हैं ।

विज्ञापक (सं० पु०) वह जो विज्ञापन करता हो ; सम-
झाने, बतलाने या जतलानेवाला ।

विज्ञापन (सं० क्लो०) विज्ञापिञ्च-न्पुट् । १ किसी
बातको बतलाने या जतलानेकी क्रिया, जानकाही कराना,
सूचना देना । २ वह पत्र-या सूचना आदि जिसके द्वारा
कांई बात लोगोंके बतलाई जाय, इशतहार ।

विज्ञापना (सं० स्त्री०) विज्ञापिञ्च-युच्-टाप् । विद्वत
करना, जतलाना, बतलाना ।

विज्ञपनां (सं० स्त्री०) कह कर या लिख कर किसी
विषयका आभेदन करना, दरवास्त, रिपोर्ट ।

विज्ञानोय (सं० त्रि०) विद्विष्य, जो बतलाने या जत-
लानेके योग्य हो, सूचित करनेके योग्य ।

विज्ञापित (सं० त्रि०) १ जो बतलाया जा चुका हो,
जिसका सूचना दी जा चुका हो । २ जिसका इशतहार
दिया जा चुका हो ।

विज्ञापिन् (सं० त्रि०) जतलाने या बतलानेवाला, सूचना
द देनेवाला ।

विज्ञापि (सं० स्त्री०) वि-ज्ञापिञ्च-क्तिन् । विशिष्ट देखो ।

विज्ञाप्य (सं० त्रि०) बतलाने योग्य, सूचित करनेके
योग्य ।

विज्ञेय (सं० त्रि०) वि-ज्ञा-यत् (भवो यत् । पा ३.१.६७) ।

विज्ञतय्य, विज्ञानोय, जो जानने या समझनेके योग्य हो ।

विज्य (सं० त्रि०) विगता ज्यां यसमाह । ज्यारहित, जिस-
में गुण न हो । "विज्यं एतथा महाधनुः ।"

(रामायण ३.६.१०)

विज्वर (सं० त्रि०) विगतां उवरो यस्व । १ विगत उवर,
उवग्मुक, जिसका उवर उतर गया हो, जिसका पुनार
दृष्ट गया हो । २ निश्चिन्त, बेचिन्त, जिसे सब प्रकार-
की चिन्ताओंसे मुक्तारा मिल गया हो । ३ विगतशोक,

जो सब प्रकारके झुंशों जादिसे मुक्त हो, जिसे किसी प्रकारका शोक या संताप न हो ।

विश्वरा (सं० स्त्री०) ज्वररहिता, वह स्त्री जिसका ज्वर उतर गया हो । 'विश्वरा ज्वरया त्यक्ता' । (हरिवंश)

विभ्रमर (सं० त्रि०) कर्कश ।

विभ्रामर (सं० स्त्री०) चक्षुः का शुक्लक्षेत्र, आँवका सादा भाग ।

विभ्रजोली (सं० स्त्री०) धेनो, पंक्ति ।

विट (सं० पु०) वेदतोति विट-क । १ कामुक, लंपट, वह जिसमें कामवासना बहुत अधिक हो । २ कामुकानुचर, वह जो किसी वेश्याका धार हो या जिसने किसी वेश्याका रख लिया हो । ३ धूर्त, चालाक । ४ साहित्यमें एक प्रकारका नायक । साहित्यदर्पणके अनुसार जो व्यक्त विषय-भोगमें अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर चुका हो, भारी धूर्त हो, फल या परिणामका एक ही अङ्ग देखता हो, वेगभूषा और वार्ते धनानेमें बहुत चतुर हो, वह विट कहलाता है । ५ एक पर्वतका नाम । ६ लघणभेद, साँचर नामक । ७ खदिरविशेष, एक प्रकारका खैर जिसे दुर्गन्ध खैर भी कहते हैं । ८ मृषिक, चूहा । ९ नारङ्ग वृक्ष, नारङ्गोका पेड़ । १० वातपुत्र ।

विटक (सं० पु०) १ प्राचीन कालकी एक जातिका नाम । २ पुराणानुसार एक प्राचीन देश जो नर्मदा नदीके तट पर था । ३ घोटक, घोड़ा ।

विटकारिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी ।

विटकृमि (सं० पु०) चुन्ना या चुनचुना नामका कीड़ा जो पश्योंका गुदामें उत्पन्न होता है ।

विटङ्क (सं० पु० स्त्री०) विशेषण टङ्कते सीधादिपु इति विटङ्क धन्वने घञ् । १ कपोतपालिका, कवृत्तरका दरवा, कानुक । सौधादिके प्रान्तभागमें काठका बना हुआ जो कवृत्तरके रहनेकी जगह होती है, उसे विटङ्क कहते हैं । अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि पक्षीका घासामात्र ही विटङ्क कहलाता है । २ सबसे ऊँचा सिरा या स्थान । ३ बड़ा ककड़ी । (त्रि०) ४ सुन्दर, मनोहर । ५ अलङ्कृत, शोभित ।

विटङ्कक (सं० पु० स्त्री०) विटङ्क पक्ष स्वार्थे कन् । विटङ्क । विटङ्कपुर (सं० स्त्री०) नगरभेद । (कथावर्तिता २५।३५)

विटङ्कित (सं० त्रि०) विटङ्क-अस्त्यर्थे तारकादित्वादि सच् । अलङ्कृत, शोभित ।

विटप (सं० पु० स्त्री०) वेदति शब्दापत्ते इति विट (विट-विटपविक्रिभोक्त्याः । उप् ३।१४५) इति क-प्रत्ययेन निपात-नाम् साधुः । १ वृक्ष या लताकी नई शाखा, कौपल । पर्याय—विस्तार, स्तम्भ ।

(स्त्री०) २ सुक्कवटक्षुण्णान्तर, स्नायु-मर्मभेद । वटक्षुण तथा दोनों मुखकें मध्य एक उँगलीका विटप नामक स्नायुमर्म है, इस मर्मके विकृत होनेसे पण्डता या शुक्की अल्पता हुआ करती है ।

(पु०) विटान् पातोति पा-क । ३ आदित्य पत्र । ४ छतनार पेड़, भाड़ो । ५ वृक्ष, पेड़ ।

विटपक (सं० पु०) दुष्ट, पात्रो ।

विटपश (सं० अर्थ०) विटप-शब् । शाखामेद ।

विटपिन् (सं० पु०) विटपः शाखादिरस्त्यस्येति विटप-इति । १ वृक्ष, पेड़ । २ वटवृक्ष, बड़का पेड़ । ३ अंजोरका पेड़ । (त्रि०) ४ विटपयुक्त, जिसमें नई शाखाएँ या कौपले निकली हों ।

विटपी (सं० पु०) विटपिन् देखो ।

विटपीमृग (सं० पु०) शाखामृग, बंजर ।

विटपुत्र—एक कामशास्त्रकार । कुटनीमत-ग्रन्थमें इनका नाम उद्धृत हुआ है ।

विटप्रिय (सं० पु०) विटानां प्रियः । १ मुद्गरवृक्ष, मोगरा नामक फूल या उसका पौधा । २ विटोका प्रिय ।

विटभूत (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक असुरका नाम ।

विटमाक्षिक (सं० पु०) विटप्रियो माक्षिकः । घातुविशेष, सोनामखली नामका खनिज द्रव्य । पर्याय—ताप्य, नदीज, कामारि, तारारि । स्वर्णमाक्षिक देखो ।

विटलघण (सं० स्त्री०) विटसंज्ञक लघणम् । विटलघण, साँचर नामक ।

विटवल्लभा (सं० स्त्री०) पाटली वृक्ष ।

विटवृक्ष—एक प्राचीन संस्कृत कवि । सुभाषितावली ग्रन्थमें इनकी कविता उद्धृत देखी जाती है ।

विटि (सं० स्त्री०) यदतोति विट-इन्, सच् कित् । रक्त-चन्दन ।

वितिकण्ठीघर (सं० पु०) वह जो लालचन्दनकी कण्ठी बांधता हो ।

विट् (सं० क्री०) विट्त्वण, साँवर नमक ।

विट्क (सं० क्री०) विष, जहर ।

विट्कारिका (सं० ज्यो०) पञ्चविशेष । पर्याय—कुणपी, तोतोटी, गोकिराटिका, विट्सारिका । (शारदाश्री)

विटकुल (सं० क्री०) विशा कुल । वैश्यकुल, वैश्य ।

(भाष्य० पृ० २१२)

वट्शिर (सं० पु०) विट्घत् दुर्गन्धः खटिरा । एक प्रकारका खैर जिसे दुर्गन्ध खैर भी कहते हैं । पर्याय—अरिमेद, हरिमेद, असिमेद, कालस्कन्ध, अरिमेदक । इसका

गुण—कषाय, उष्ण, सुख और दन्तपोड़ा, रक्तदोष, कण्डू, विष, श्लेष्मा, कृमि, कुष्ठ, प्रण और प्रहनाशक । (भाष्य०)

विटघात (सं० पु०) सूत्राघात नामक रोग ।

विट्चर (सं० पु०) विषि विद्यायां चरतीति चरट् । प्राग्वशुकर, गाँवोंमें रहनेवाला सुखर ।

विट्क (विट्कल)—१ दाक्षिणात्यके पण्डरपुरस्थित विष्णुकी एक मूर्त्तिका नाम । पण्डरपुर देखो ।

२ छायानाटकके प्रणेता । ३ रतिवृत्तिलक्षण नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता । ४ सङ्गीतनृत्यरत्नाकरके रचयिता । ५ केशवके पुत्र, स्मृतिरत्नाकरके प्रणेता । ६ यहशर्माके पुत्र । इन्होंने १६१६ ई०में कुण्डमण्डपसिद्धि और पीछे तुलापुष्पदानविधि तथा १६२८ ई०में मुहूर्त्तकल्पद्रम और उसकी टीका लिखी । ७ वाङ्माला नामक न्यायग्रन्थके रचयिता ।

विट्क आचार्य—१ एक ज्योतिर्विद्व । इन्होंने विट्कलोपद्धति नामक एक उद्योतिष प्रणयन किया । २ एक विधवात परिहृत । इनके पिताका नाम मूर्त्तिहाचार्य, पितामहका रामकृष्णाचार्य तथा पुत्रका नाम लक्ष्मीधराचार्य था । ये प्रक्रियाकीमुद्राप्रसाद, अष्टव्यार्थनिरूपण, वैष्णवसिद्धास्तदोक्तिका आदि ग्रन्थ बना गये हैं । अष्टोक्तिशक्तिने अनेक जगह इनकी निन्दा की है । ३ क्रियायोग नामक योगग्रन्थके रचयिता ।

विट्कदास—मथुरानिवासी एक परममत्त वैष्णव, बाला राजाके पुरोहित । यह कृष्णप्रेममें मत्त हो गृधकार्यका परिस्वाग कर सर्वदा एक निर्गुन स्थानमें रहता करते थे ।

जब राजाको इसकी खबर लगी, तब वे अपने पुरोहितका प्रकृत चरित जाननेके लिये एक दिन एकादशीकी रातको अन्यान्य मत्त वैष्णवोंके साथ इनकी बड़े आदरके साथ अपने घर लाये । दो मंत्रालके ऊपर सबोंको बैठक हुई, बहुत देर तक वैष्णवोंके भोतर विविध कृष्णकथा तथा नामकोत्तनादि चलने लगा । इसी समय विट्कदास प्रेमके आनन्दमें उन्मत्त हो नाचने लगे ; प्रेमोग्नाद् हो कर नाचते नाचते कुछ समय बाद पैर किसल गया और वे छन परसे जमीन पर गिर पड़े । यह देव स्वयं राजा तथा यहाँ पर जितने थे, सभी हाहाकार करने लगे, किन्तु परमकारुणिक भगवान्की कृपासे उनके शरीरमें जरा भी चोट न पहुँची । जब राजाके आनन्दको सोना न रही और उन्होंने बड़े श्रद्धान्वित हो उन्हे घर भेज दिया तथा उनको जोधनयाता जिससे बिना उद्रेग प्यतोत हो, उसके लिये उन्हींमें वृत्ति नियत कर दी । इसके बाद विट्कदास घरको परिस्वाग कर पहले पाटघरामें रहने लगे, पीछे अपनी माताके अनुग्रहसे तथा धीमोविन्ददेवकी आज्ञासे वे पुनः घर लौटे और यहाँ नियत वैष्णवसेवा करने लगे । इनके पुत्र रङ्गराय १८ वर्षकी अवस्थामें ही पिताके समान कृष्णमत्त हुए । उन्हींमें भाग्यवशतः जमीनके नीचे एक परम रमणीय विग्रह मूर्त्ति और कुछ धन पाया था । इससे विट्कदास बड़े उल्लासित हुए और पितापुत्र मिल कर कायमनोवाच्य द्वारा अत्यन्त भक्तिपूर्वक चिप्रहृदयकी सेवा करने लगे ।

विट्कदासकी कृष्णप्रेमोन्मत्तताका विषय मत्तमालमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन वे कोकिलकण्ठी किसी नरर्त्तकीके मथुरा सरमें रासलीला संगीत सुन कर इतने प्रेमोन्मत्त हुए, कि उन्हींने गृहस्थित सभी परखालङ्कारादिको उसे ला दिया । इतने पर भी वे संतुष्ट न हुए, आखिर उन्हींने रङ्गरायको उस नरर्त्तकीके हाथ सौंप दिया । सङ्गीतके बाद जब नरर्त्तकी रङ्गरायको अपने साथ ले चली, तब विट्कके धाट्टादान उपस्थित हुआ । उन्हींने नरर्त्तकीको प्रचुर अर्घ दे कर पुत्रकी वापस माँगा । रिश्ट पुत्रने अपनी असममति प्रकट करते हुए पितासे कहा, 'माने जब मुझे कृष्णके उद्देशसे प्रज्ञान कर दिया है, तब फिर प्रतिज्ञाकी कामना करना आपके लिये नितान्त अनु-

वित है। इस पर-विट्ठल लज्जित हो बैठे, नर्त्तकी फिरसे रङ्गरायको साथ ले चली। रङ्गरायसे मन्त्रदाक्षिता राजकन्याको जब यह हाल मालूम हुआ, तब वे दौड़ी आईं और गुह्रदेवकी मुक्तिके लिये उन्होंने नर्त्तकीको पकड़ लिया तथा यथासर्वथा पण करके नर्त्तकीसे गुह्रमुक्तिकी कामना की। किन्तु नर्त्तकीने राजकन्याका असौम सौजन्य देख कर कुछ भी प्रहण न किया और रङ्गरायको छोड़ दिया। राजकन्याने भी अपने सौजन्यको रक्षार्थके लिये मोक्षरथ अलङ्कारादि उतार नर्त्तकीको दे दिये और गुह्रदेवके साथ घर लौटी।

विट्ठल दीक्षित—१ सुप्रसिद्ध वल्लभाचार्यके पुत्र, एक वैष्णव-भक्त और दार्शनिक। चारणसौधाममें १५१६ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया। परम पण्डित पिताके निकट ये नाना जालोंमें शिक्षित हुए थे। वल्लभाचार्यकी मृत्यु होने पर इन्होंने मो आचार्यपद लाभ किया तथा बड़े उस्ताइसे पिताका मत प्रचार करने लगे। इनके उपदेश पर दक्षिण और पश्चिम भारतके बहूतरे मनुष्य इनके शिष्य हो गये, ये जिनमेंसे २५२ ग्रन्थ प्रघान थे। इन २५२ ग्रन्थोंका परिचय 'दो सौ बाघन वाचा' नामक हिन्दी ग्रन्थमें विवृत है। १५६५ ई०में विट्ठल गोकुल आ कर बस गये। यहीं ७० वर्षकी उम्रमें इन्होंने जीवन-लीला संवरण की। इनकी दो पत्नीके गर्भसे गिरिधर, गोविन्द, बालकृष्ण, गोकुलभाय, रघुनाथ, यदुनाथ और घनश्याम ये सात पुत्र उत्पन्न हुए।

विट्ठल दीक्षित बहुतसे संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना कर गये हैं। उनमेंसे अथतारतारतम्यस्तोत्र, भाषा, कायेनेतिविवरण, कृष्णप्रसामृत, गोना, मोतगोविन्द, प्रथमाष्टपदीविवृति, गोकुलाष्टक, जन्माष्टमोनिर्णय, जलमेदटीका, ध्रुवपद, नामचन्द्रिका, न्यासादेशविवरण, प्रबोध, प्रेसामृतभाष्य, भक्तिहेतुनिर्णय, भगवत्स्वतन्त्रता, भगवद्गोतानादपर्य, भगवद्गोताहेतुनिर्णय, भागवतस्वदोषिका, भागवतदशम-सर्कंधविवृति, भुजङ्गप्रयाताष्टक, यमुनाष्टपदी, रससर्वस्व, रामनयमोनिर्णय, वल्लभाष्टक, विद्वन्मण्डन, विवेकधैर्यो-श्रवटीका, शिक्षापत्र, शृङ्गाररामण्डल, पट्टपदी, संन्यास निर्णयविवरण, समयप्रदोष, सर्वोत्तमस्तोत्र, सिद्धांत-मुक्तावली, स्वतन्त्रलेखन, स्वामिनोस्तोत्र आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

२ आग्रयणपद्धतिके रचयिता।

विट्ठलमेष्ट—जयतीर्थकृत प्रमाणपद्धतिके टीकाकार।

विट्ठलमिश्र—१ ब्रह्मानन्दोपटीका और करणालङ्कृत नामकी समरसारटीकाके रचयिता।

विट्ठलेश्वर—पण्डुरपुरके प्रसिद्ध विठोबा-देवता।

विट्पण्य (सं० क्लो०) विद्यां पण्यं। वैश्योंके पेचनेकी पस्तु।

विट्पति (सं० पु०) विपः कन्यायाः पतिः। १ जामाता, दामाद। २ वैश्वपति।

विट्पालम—सुमिष्ट पालमशाक-भेद। इसकी जड़ ठाल कन्दयुक्त होती है। यह कष्ट बहुत मोटा होता है। इसकी तरकारी रीष कर खानेमें बड़ी अच्छी होती है। इसके पत्ते या साग उतने अच्छे नहीं होते। इस विट्मूलसे शर्करांश निकाल कर यूरोपीय विभिन्न देशवासी एक तरह दानिदार चीनी तैयार करते हैं। इस तरह जो चीनी बनाई जाती है, उसे (Beet Sugar) या विट्चीनी कहते हैं। आज कल भारतमें ईश या खजूरकी चीनीकी बड़ले विट्चीनीका ही वाणिज्य अधिक है। शर्करा देशों।

विट्प्रिय (सं० पु०) १ शिशुमार या सूँस नामक जल-जस्तु। विद्यां प्रियः। २ वैश्योंका प्रिय।

विट्शूद्र (सं० क्लो०) वैश्य और शूद्र।

विट्शूल (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका शूल-रोग। शूलरोग देखो।

विट्सङ्ग (सं० पु०) मलरोग, कब्जियन।

विट्सारिका (सं० स्त्री०) विट्प्रिया सारिका। एक प्रकारका पक्षी।

विट्सारो (सं० स्त्री०) विट्सारिका, सारिकाभेद।

विठेर (सं० पु०) धानी, वक्ता।

विठुर (विठौर)—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेका एक नगर। यह अक्षां २६°३७' उ० तथा देशां ८०° १६' पू०के मध्य कानपुर शहरसे १२ मील उत्तर-पश्चिम गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। इस शहरके गङ्गा तट पर अति सुन्दर घाट, वैवर्मन्दिर और बड़ी बड़ी अट्टालिकायें खड़ी हैं जिनसे यह स्थान बड़ा ही मनोरम दिखाई देता है। नदीके किनारे जो सब स्नान घाट हैं, उनमें ब्रह्मघाट ही प्रधान और एक प्राचीन तीर्थमें गिना जाता है।

प्रवाद है, कि प्रदाने सृष्टिकार्य समाप्त करके यहाँ एक अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया। यह-समाप्तिके बाद उनकी पाहुकासे एक कौटा इस जगह गिरा और सोपान पर गड़ गया। तीर्थयात्री इस जगह धा कर उस कटिकी पूजा करते हैं। प्रति वर्ष क्रांतिकी पूर्णिमाकी यहाँ बड़ी धूमधामसे एक मेला लगता है; किसी किसी वर्ष तिथिके विपर्ययके कारण यह मेला अगहन मासमें लगता है।

अयोध्याके नयाव गाजी उद्दोन हींदरके मन्त्री राजा टोकापेत् रामने बहुत रुपये खर्च कर यह घाट तथा उसके ऊपर घर बनवा दिया है। अन्तिम पेशवा बाजीराव यहाँ निर्वासित हो कर भाये थे। नगरमें उनका प्रासाद आज भी विद्यमान है। उनके दत्तकपुत्र नाना साहबकी उरोजनासे कानपुर विद्रोहमें खड़ा हुआ।

नाना साहब देखो।

१८५७ ई०की १६वीं जुलाईकी अङ्गरेज-सेनापति हायलकने इस स्थानको दृश्य किया। उसके आक्रमणसे बाजीरावका महल चूरचूर हो गया तथा नाना साहब भगा चले। पहले यहाँ बहुत लोगोंका वास था। स्थानोप नद्यालत यहाँसे उठ जाने पर उनकी संख्या बहुत घट गई है। किन्तु ब्राह्मणोंकी संख्या पूर्ववत् है। अधिकांश ब्राह्मण ब्राह्मणोंके पण्डा हैं। तीर्थस्थानके उपलक्ष्यमें यहाँ बहुतसे याली भाते हैं। इस नगरके पास ही गङ्गाकी एक नहर बह गई है। शहरमें एक प्राइमरी स्कूल है।

विड़ (सं० क्ली०) विड़-क। १ लवणविशेष, सौंवर नमक। पर्याय—विड़गन्ध, काललवण, विड़लवण, द्राविड़क, खण्ड, छतक, क्षार, आसुर, सुपाषय, खण्ड-लवण, पूर्ण, कृत्रिमक। गुण—उष्ण, क्षीपण, रुचिकर, घात, अमोर्ष, शूल, गुल्म और मेहनाशक। (राजनि०)
भावप्रकाशके मतसे—ऊदुर्ध्व-कफ तथा अधोवायु-का अनुलोमकारक, दीपन, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुचि कर, हृद्यवायो, विषम्य, आनाह, विटम्भकारक और शूल-नाशक। (भारत०)

२ विड़ङ्ग, वायुविड़ङ्ग। (राजनि०)

विड़ (सं० पु०) रगभारणके निर्मित व्यवहार्य क्षार बहू-द्रव्यविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—

थैतो शाक, रेंडीमूलकी छाल, पीतघोषा, कदलीकन्द, पुन-नैया, अड़सुकी छाल, पलाशकी छाल, हीजलबीज, निज, खर्णमाक्षिक, मूलक, शाकका फल, फूल, मूत्र, पत्र और काण्ड तथा तिलनाल, इन सब द्रव्योंको अलग अलग खण्ड करे। पीछे कुछ पीस कर शिलातल वा कपड़े इस प्रकार दग्ध करे, जिसमें क्षार अपरिच्युत न हो जाये। बादमें थैतो शाकसे मूल शाकके काण्ड तक पन्द्रह प्रकारके क्षार तथा तिलनालके क्षार इन सब क्षारोंको समान भागोंमें ले कर मूलवर्गमें अर्धात् हाथो, ऊँट, घोड़े, गर्दू, भैंस, गाय, बकरी और भेड़ इन भांड प्रकारके जन्तुओंके मूलमें अच्छी तरह अलौहित करे। कुछ समय बाद जब वह स्थिर हो जाये, तब ऊपरके मूलरूप निर्मल जलको साफ बारीक कपड़ेमें छान ले। अनन्तर किसी लोहेके बरतनमें उसे रख धीरे धीरे भाँच दे। जब उसमेंसे बुदबुद और वाष्प निकलना दिखारे दे अर्धात् यह अच्छे तरह ढौल रहा दे ऐसा मालूम दे, तब हीराकसोस, सौराष्ट्रसुस्तिका, पथशार, साचीक्षार, सुहागा, सोड, पीपल, मिर्च, गन्धक, चोमो, हींग और छः प्रकारके लवण, इन सब द्रव्योंका चूर्ण समान भागमें ले कर उक्त क्षारसमष्टिका चतुर्थांश उस खोलने हुए जलमें डाल दे। पाक शेष होने पर अर्धात् जलका तिहाई भाग शेष हो जाने पर उसे उतार किसी कठिन बरतनमें भर सुँद बंद कर दे और सात दिन तक जमानके अन्दर छोड़ दे। आठवें दिनमें यह एक क्षारजल जारणादि कार्यमें व्यवहार करने के लायक होगा। उल्लिखित प्रक्षेपणीय द्रव्योंके अन्तर्गत सुहागेकी प्रलानावृक्षकी छालके रसमें सी बार भाषना दे, पीछे उसे सुखा कर चूर्ण कर ले।

विड़गन्ध। सं० क्ली०) विटलवण, सौंवर नमक।

(राजनि०)

विड़ङ्ग (सं० पु० क्ली०) विड़ आकाश (विड़दिभ्यः विट् । उष् ११२०) इति अङ्गत्स न्य कित् । १ (Embelia ribes, Seeds of Embelia ribes) ध्वनानुवात औषध, वायुविड़ङ्ग। तेलङ्ग—वायुविड़पुच्छे, न्यर्द—पर्यादि, अम्वट, काकणाना, तामिल—वायुविट् । पर्याय—धेनु, अमोवा, चित्रतण्डुला, तण्डुल, किमिचन, रसायन, वायव,

भस्मक, वैलु, मोघा, तण्डुल, जन्तुघ्न, चित्रतण्डुल, क्रिमि-
शूल, गर्दभ, कैवल, विडङ्गा, क्रिमिहा, चित्रा, तण्डुला,
तण्डुलीयका, चातारितण्डुला, जन्तुघ्नी, मृगगामिनी,
कैराली, गह्वरा, कापाली, वरासु, चित्रवीजा, जन्तुहन्त्री ।
गुण—कटु, उष्ण, लघु, वातकफपोडा, अग्निमान्द्य,
अर्धचि, भ्रान्ति और कृमिदोषनाशक । (राजनि०) घोट्टा
तिक, कृमि और विपनाशक । (राजव०) भावप्रकाश-
के मतसे—कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुक्ष, अग्निवर्द्धक, लघु,
शूल, आध्मान, उदर, श्लेष्म, कृमि और विष्वन्धनाशक ।
(भावप्र०) (त्रि०) २ अमिष्ठ, जानदार ।

विडङ्गतैल (सं० ह्नी०) तैलीवधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—
सरसों तैल ४ सेंर, गोमूल १६ सेंर, बटकाय विडंग,
गन्धक, मनःशिला मिला कर एक सेंर । तैलपाकके
विधानानुसार यह तैल पाक करना होगा । यह तैल
सिरमें मालिश करनेसे समी जूँ भर जाती है । (भैषज्य-
रत्ना० कृमिरोगाधि०)

विडङ्गादि तैल (सं० ह्नी०) तैलीवधविशेष । इसके
बनानेकी तरकीब—तैल ४ सेंर, बटकाय विडङ्ग, मिर्च,
अकवनी की जड़, सोंठ, चितामूल, देवदारु, इलायची और
पञ्चलवण मिला हुआ १ सेंर । तैलपाकके विधानानुसार
यह तैल पाक करना होगा । यह तैल मालिश करने
और पानेसे श्लोषद (फोलापाव)-रोग विनष्ट होता है ।

(भैषज्यरत्ना० श्लोषदरोगाधि०)

विडङ्गादिलीद (सं० ह्नी०) औषधविशेष । प्रस्तुत-
प्रणाली—लोहा ४ पल, अबरक २॥ पल, त्रिफला प्रत्येक
७॥ पल, जल ३६० पल, शेष ४५ पल । इस षयाधमें
लोहे और अबरकको पाक करे । इन सब द्रव्योंको लोहे
या तंबिके धरतनमें घोंमी आँच पर रखा लोहेके हृत्थेसे
आलोडन कर पाक करना होगा । जब पाक शेष होने
पर हो, तब निम्नोक्त द्रव्य उसमें डाल दे । ये सब द्रव्य
ये हैं—विडङ्ग, सोंठ, घनिया, गुलझरस, जीरा, पलाश-
बीज, मिर्च, पीपल, गजपिपली, निसोध, त्रिफला, दन्ती-
मूल, इलायची, रेडोका मूल, पोपलका मूल, चितामूल,
मोघा और देवदारुकीबीज ; इनमेंसे प्रत्येक २ तोला ४
माशा और ८ रत्ती । मात्रा रोगोंके बलाबलके अनुसार
स्थिर करनी होगी ।

इस औषधके सेवनसे आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य
और हलीमक रोग शान्त होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना० आमवातरोगाधि०)

दूसरा तरीका—विडङ्ग, त्रिफला, मोघा, पिपली,
सोंठ, जीरा और मंगरौला, कुल मिला कर जितना हो
उतना लोहा इन्हें एकत्र मिश्रित कर यह औषध बनानी
होगी । इस औषधके सेवनसे प्रमेह रोग नष्ट होता है ।
इसकी मात्रा रोगोंके बलाबलके अनुसार और अनुपात
दोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा ।

(रसेन्द्रधारस० प्रमेहोगाधि०)

तीसरा तरीका—विडङ्ग, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा,
देवदारु, दाहुरिद्रा, सोंठ, पीपल, मिर्च, पोपलका मूल,
चर्द, चितामूल, ये सब द्रव्य समान भाग तथा उतने ही
लोहेको एक साथ मिला कर अष्टगुने मापके मूतमें पाक
करे । पाक शेष होने पर २ तोलेकी गोली बनावे । इसका
सेवन करनेसे पाण्डू और कामला आदि रोग प्रशमित
होते हैं । (रसेन्द्रधारस० पाण्डूरोगाधिकार०)

विडङ्गारिष्ट (सं० पु०) प्रणशोषाधिकारोक्त औषध-
विशेष । प्रस्तुत प्रणाली—विडङ्ग, पीपलमूल, रासना,
कूटजकी छाल, इन्द्रिय, आकनादि, पलबालुक, आम-
लकी, प्रत्येक द्रव्य ४० तोला ले कर ५१२ सेंर या १२ मन
३२ सेंर जलमें पाक करे । जब पाक हो कर शेष ६४ सेंर
(१॥४ सेंर) रह जाय, तब नीचे उतार ले । ठण्डा
होने पर उसे छान कर धवफूलका चूर्ण १॥ सेंर, दाद-
चीनी, इलायची, तेजपत्र प्रत्येक १६ तोला, प्रियंगु, रक्त
काञ्चनछाल, लोच प्रत्येक ८ तोला, सोंठ, पीपल, मिर्च,
प्रत्येक १ सेंर, ये सब चूर्ण तथा मधु ३७॥ सेंर उसमें
मिला कर एक मास तक आवृत घृतमाण्डमें छेड़ दे ।
इसका सेवन करनेसे विद्रधि, अमरी, मेह, उदरस्तम्भ,
अष्टोला, भगन्दर आदि रोग जाते रहते हैं ।

विडम्ब (सं० पु०) विडम्ब-अप । विडम्बन, अनुकरण ।
विडम्बक (सं० त्रि०) विडम्बयति विडम्ब-णिच्-ल्यु ।
१ विडम्बनकारी, ठोड़ ठोड़ अनुकरण करनेवाला, पूरी
पूरी नकल करनेवाला । २ अनुकरण करके बिद्वाने या
अपमान करनेवाला । ३ निन्दा या परिहास करनेवाला ।
४ प्रतारक, धूर्त ।

विडम्बन (सं० लो०) वि-डम्ब-न्त्युट् । १ किसीके रंग ढंग या चाल हाल आदिका ठीक ठीक अनुकरण करना, पूरो पूरो नकल करना । २ चिदाने या अपमानित करनेके लिये नकल करना, भांडुपन करना । ३ निन्दा या उपहास करना । ४ प्रतारण, ठगो ।

विडम्बना (सं० स्त्री०) वि-डम्ब, णिच्, युच्, टाप् । १ अनुकरण करना, नकल उतारना । २ किसीकी चिदाने या बनानेके लिये उसकी नकल करना । ३ हंसी उड़ाना, मजाक करना । ४ डांटना डपटना, फटकारना । ५ प्रतारण, ठगो ।

विडम्बनीय (सं० त्रि०) १ जो अनुकरण करनेके योग्य हो, नकल उतारने लायक । २ चिदाने या उपहास करनेके योग्य ।

विडम्बित (सं० त्रि०) वि-डम्ब-क्त । १ कृतविडम्बन, निन्दा या उपहास किया हुआ । पर्याय—व्यस्त, आकुल, दुर्गत । (शब्दमात्रा) २ अनुकृत, नकल किया हुआ । ३ यञ्जित, ठगा हुआ । ४ दुःप्रवित ।

विडम्बित् (सं० त्रि०) वि-डम्ब-रति । विडम्बकारो, विडम्बना करनेवाला ।

विडम्ब्य (सं० त्रि०) वि-डम्ब-यन् । १ उपहासास्पद । २ विडम्बनीय, विडम्बनके योग्य ।

विडरना (हि० क्रि०) १ इधर उधर होना, तितर बितर होना । २ भागना, दौड़ना ।

विडारक (सं० पु०) विडाल पक्ष स्वार्थे कन्, लस्य रः । विडाल, बिलो ।

विडारना (हि० क्रि०) १ तितर बितर करना, इधर उधर करना, छितराना । २ नष्ट करना । ३ भागाना, दौड़ना ।

विडाल (सं० पु०) विड-आक्रोशे (तमिःविःविः) त्रि । उष् १।१३० इति कालन । १ नेत्रपिण्ड । (मेदिनी) २ नेत्रोपविक्षेप । (भारम०) ३ सनामध्यात पशु, बिलो । पर्याय—सनु, माजोर, गृध्रनरक, आगुसुक, विराल (विडाल), दोमाश, नकडरो, जाहक, विडालक, तिशोक, जिहाप, मेनाद, सूचक, मूर्धिकापति, प्रालावृट, मायायी, दौमलोचन । (राजनि०)

बिल्लीकी वाण आकृति, मुँहकी गठन, पैरों पंजे और हड्डी आदिके साथ बाघका विशेष सीसादृश्य है । बिल्लियाँ बाघकी तरह ताक लगा कर और उछल कर चूहेका शिकार भी करती हैं । यह देख कर पाश्चात्य प्राणिविदोंने सिद्धांत किया है, कि यह खनाम-प्रांसद चतुष्पद जन्तु व्യാप्रजाति (Feline Tribe) के सभ्यतम हैं । इसीलिये ये बिल्लीको Felis Catus नामसे पुकारते हैं । इसी तरह हमारे देशमें भी यह "बाघकी मौसी" कहलाती है । बाघ शिकार पकड़ कर घुस पर नहीं चढ़ सकता ; किन्तु बिल्ली मुँहमें शिकार लिये घुस पर चढ़ जाती है । इसका यह गुण बाघके गुणसे विशेष है । इसीसे इसका नाम "बाघकी मौसी" हुआ है । किन्तु चोता, लकड़बाघा आदि छोटे कदके बाघोंकी घुस पर चढ़ते देखा गया है । बिल्लीको बाघकी माँमाँका पद कैसे मिला ? इसके सम्बन्धमें अपने यहां एक किम्बदन्ती प्रचलित है ।

यह बिल्ली जाति दो प्रकारकी है—प्राश्य या पालित और जङ्गली । इस जंगली बिल्लीको बनबिलाड़ कहते हैं । फिर इस बनबिलाड़में दो जातियाँ हैं । एक पालित विडालको वन्यप्रेणो, दूसरी प्रकृत बनबिलाड़ जाति । देश और आकृति-भेदसे पालित बिल्लियोंमें कई भेद दिखाई देते हैं । इसलिये इनका स्वतन्त्र नाम रखा गया है । प्राच्य और प्रतोच्य जगत्में जो सब विभिन्न जातीय पशु बिल्ली नामसे परिचित हैं, नीचे उनके नाम दिये गये ।

जैसे—Civet Cat, Genet Cat, Marten Cat, Pole Cat इत्यादि । माडागास्कर द्वीपकी लेगुर जाति Madagascar Cat और अफ्रीलिया द्वीपके प्रायकवाहो चर्गीकोपयुक्त पशु Wild Cat नामसे प्रसिद्ध हैं । भारतीय 'सतमन्वी-बिल्ली' इरपोरु सभायवालो और कुछ लाजुक और बनबिलाड़ अपेक्षाकृत उम्र समायावाले होते हैं । ये Lynx (Felis rufa) जातिके हैं । मिश्र-देशमें जो सब मामोबिल्लियाँ (Mummy cat) देखी जाती हैं, उनके साथ घसीमान F. Chaus—Marsh Cat, F. Caligulata और F. bubastes जातिका बहुत सीमादृश्य है । मिश्रदेशमें आज भी इन सब जातियोंकी

पालतू और जङ्गली बिल्लियाँ दिखाई देती हैं। पालास, ट्रेमिनिक और ब्लाइट आदि प्राणियोंका अनुमान है, कि उक्त पालतू बिल्लियाँ अपने वन्य-जातीय जीवोंके सामयिक संगतिविशेषसे उत्पन्न हैं। फिर उनके परस्पर संसर्गसे ऐसी एक नई विडालजातिकी उत्पत्ति हुई है।

स्कॉटलैंडमें F. Sylvestris, अल्जियर्समें F. Lybic और दक्षिण अफ्रीकामें F. Caffra नामसे तीन तरहके वनविडाल देखे जाते हैं। भारतमें साधारणतः ४ तरहके वनविडाल हैं, उनमें F. Chaus जातिकी पूँछ Jynx जाति की तरह है। हॉर्निस जिलेमें F. Ornata or torquata और मध्यप्रशियामें F. manal श्रेणोंके बहुतरे वन-विडालोंका वास है। मानवद्वीपमें (Isle of man) एक तरहकी बिना पूँछकी बिल्ली है। इसका पिछला पैर बड़ा होता है। एस्ट्रोमोवाकी पालतू क्रियल बिल्लियाँ (Creole cats) अपेक्षाकृत छोटी हैं। किन्तु इनका मुँह सूँकी तरह और लम्बा है। पैरागुई राज्यकी बिल्लियाँ छोटी और दुबली पतली होती हैं। मलयद्वीपपुञ्ज, श्याम, पेगु और ब्रह्म आदि प्राच्य जनपदोंमें जो सब पालतू बिल्लियाँ देखी जाती हैं, उनकी पूँछें सूँझाकार होती हैं और उनका अगला माग गठीला होगा है। चीनदेशमें एक जातिकी बिल्ली है, उनके काम बिपटे हैं। फारसकी विख्यात लम्बी अङ्गोरा बिल्लियाँ मध्यप्रशियाकी F. manal से उत्पन्न हैं। भारतकी साधारण बिल्लियोंसे इनका जोड़ लगता है।

पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा प्रशियाके दक्षिण और पश्चिम अंशोंमें ही विभिन्न जातीय बिल्लियोंका वास है। विभिन्न जातीय भाषाओंमें वन्य या पालित बिल्ली पुस या पुसी नामसे विख्यात है। पालित अधोत् जिन्हे गृहस्थ यत्नपूर्वक पालन करते हैं, उनमें भी किसी किसी बिल्लीका नाम पुसी, मेनी, पुली सुना जाता है। कभी कभी लोग पाली हुई बिल्लीकी पालतू कुत्तोंकी तरह पुकारते हैं, किन्तु इस जातिकी साधारण नाम बिल्ली ही है। विभिन्न भाषाओंमें इस शब्दकी संज्ञा— संस्कृतमें मार्जार, बंगलामें विडाल, बिरले, पुसी; भोट और सोर्या—सि-मि; तामिल—पोनी; तेलगु—

पिल्ली; फारसी—माइदा, पुलचाक; अफगान—पिस्चिक, तुर्क—पुस्चिक, कुर्द—पसिक; लिथुयानीय—पिरज़ींग; अरब—किट्ट; अङ्ग्रेजी—Cat, Pussy cat इत्यादि।

पहलेसे विभिन्न देशवासियोंमें बिल्ली पालनेकी रीति शीघ्र पड़ती है। केवल भारत ही नहीं, सुदूर पाश्चात्य भूखण्डोंमें भी आदरके साथ बिल्लियाँ पाली जाती थीं। प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंको पढ़नेसे हम बिल्ली तथा उसके स्वभावका परिचय पाते हैं। इससे बहुत-शताब्दी पहलेके रचित रामायण ग्रन्थ (६७३११)में बिल्लियों पर चढ़ कर राक्षसोंके युद्धक्षेत्रमें जानेकी बात लिखी है। बिल्लीके उछल कर चूहेका शिकार करनेकी धान भी हम उसी रामायणके लङ्काकाण्डसे जानते हैं। प्रसिद्ध चैवाकरण पाणिनिने भी मार्जारमूषिककी निरयविरोधिता जान कर ही समाप्तसूत्रमें (पा २।४।६) "मार्जारमूषिकम्" पदविन्यास किया है। बिल्लियाँ चूहेके शिकार करनेके समय ध्वाननिष्ठकी तरह धिनीत भावसे अवस्थान करती हैं। यह देव भगवान् मनुने (मनु ४।१६७) तत्पुत्रकानि मनुष्यको 'मार्जारलिङ्गिन्' शब्दसे अभिहित किया है। केवल भारतवासी ही नहीं, प्राचीन यूनानी, रोमन और इटालियन भी बिल्लीके द्वारा चूहेके मारे जानेकी बात जानते थे। प्राचीनकालमें बिल्ली चूहोंके शिकारके चातुर्यका चिह्न खिलौने और दीवार पर बनाया जाता था। आरिष्टलने चूहे मारनेवाले जिस पालित पशुका उल्लेख किया है, मध्यावक रोलेष्टने उसीकी वर्त्तमान प्रयत्नक्ष मार्टिन (Marten foina) नामक पशु कहा है। किन्तु यद्यार्थमें चूहा मारनेवाले यह जीव लम्बे Pole cat या Foulmart ही मालूम होते हैं।

कुर्दिस्तान, तुर्क और लिथुनियाके अधियासी बिल्लीकी बड़े प्यार करते हैं, मिन्नके अधियासी भी बिल्लियोंकी बहुत दिनोंसे प्यार करते आते हैं। बाइबिल ग्रंथमें या प्राचीन असीरीय प्रस्तर चित्रोंमें बिल्लियोंका चिह्न तक नहीं है। कहना न होगा, कि वर्त्तमान यूरोपमें बिल्लियोंका एकान्त अभाव है। हमारे देशमें जैसे फारसकी अंगोरा बिल्लियोंकी लोग शौकसे पालते हैं, यूरोपमें कोई कोई नादमी शौकसे ही बिल्लियाँ पालते

है। भारतमें ये फारसी बिल्लियाँ उद्भवयात्रा बणिकों द्वारा भारतमें लाई गई थीं। वास्तवमें ये अफगानिस्तानसे ही इस देशमें आती हैं और "कायुली बिल्ली" के नामसे पुकारे जाती हैं। लेस्डेनाएट इरखिनकी कहना है, कि फारसमें ऐसी बिल्लियाँ होते ही नहीं। अतएव इसे "फारसी बिल्ली" न कह कायुली बिल्ली कहना ही उचित है। कायुली इस जातिकी बिल्लियोंको रोयको पृथि करनेके लिये उगड़े नित्य सायुनसे घोंने सुखाते हैं।

हमारे देशकी बिल्लियाँ विशेष उपकारी हैं। ये चूड़ोंको मार कर सुगादि नाना रोगोंसे देशवासियोंको मुक्त करते हैं। मछलीके कड़े भी बिल्लियोंसे बेकार रहने नहीं पाते। फिर भी बिल्लियों द्वारा उद्भव भी कम नहीं होता। रसोई घरकी हँडियाँ फोड़ कर उसमें रचे हुए मछलीके टुकड़े घे ला जाते हैं। क्योंकि लिये रखा हुआ दूध आदि गोरस भी इनके मारे बचने नहीं पाता। इसीलिये मनुष्यमात्र बिल्लियों पर नाराज रहता है। बहुतरे बिल्ली देखने ही उन पर बिना प्रहार किये नहीं मानते। फिर जो क्यूतर पालने हैं, वे बिल्लीके एक भी क्यूतरके प्राण संहार पर उसे मार डालनेकी ही फिकरमें रहते हैं। हमने किसी किसीको इस देशके कारण बिल्लीको दंड टुकड़े कर डालते देखे हैं। हिन्दूगालमें बिल्लियोंका हत्या करनेको मनाही है। बिल्लीको हत्या करने पर महापातक होता है। यदि कोई बिल्ली मार डाले, तो उसको शूद्रहत्यायात्रा आचरण करना पड़ेगा।

(मनु ११।१११)

मनुमें लिखा है, कि बिल्लीका जूड़ा अन्न पाना नहीं चाहिये खानेसे प्रास-सुवर्चला नामक काष्ठ जल पान करना होता है।

बिल्लियोंको हत्या नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसके प्रायश्चित्तके विषयमें प्रायश्चित्त-विषयमें लिखा है, कि तीन दिन दुग्ध पान या पादच्छिद्य करना चाहिये। यह अथानमें हत्या करनेका है अथान् दीवात् बिल्ली मारनेका प्रायश्चित्त है। जान सुन कर बिल्लियोंको मारनेसे बारह रात्रि ह्य्य मतका अनुष्ठान करना होगा। यदि इस प्रायश्चित्तमें कोई असमर्पण हो, तो उनको यथाशक्ति

दक्षिणाके साथ दो धेनु दान करनी होंगी। यदि वह भी असमर्पण हो, तो ४ कार्पाषण दान करनेसे पापसे मुक्त हो जायेगा। खी, शूद्र, वालक और बृद्धके लिये अन्न प्रायश्चित्त ही विधये है। बिल्लियोंके बधसे जो पातक होता है, वह उपपातकोंमें गिना गया है।

बहुतेरे बिल्लीको पशुदेवोंकी अनुचरी मानते हैं। बुद्धियोंके मुंहसे सुना जाता है, कि बिल्ली पशुदेवोंकी याहन है। उसके मारनेसे पुत्र भादि नहीं होते और लेम यदि पेटमें चला जाय, तो यक्षमारोग या कांसोका रोग होनेकी सम्भावना रहती है। अध्ययनके समय गुरु और शिष्योंके बीचसे बिल्ली यदि पार हो जाये, तो उम समय दिन रात तक अध्ययन नहीं करना चाहिये। (मनु ४।१२६) वनाश्रुष्टिके समय यदि बिल्ली मिट्टी फेंकने दिखाई दे, तो शीघ्र ही श्रुष्टि होगी, ऐसा समझना चाहिये।

प्राग्य कृष्णकाय विद्वालोंके चर्चा संघर्षणसे अधिकतर वैद्य तिक-शक्ति विकीर्ण होती है। प्रसिद्ध कायुल देशीय पशुमयहुल बिल्लियोंके चर्मामें ऐसा वैद्य तिक तेज विशेष कम नहीं। अल्पान्य बिल्लियोंके चर्मामें अपेक्षाकृत कम तेज है। प्रयाद् है, कि काली बिल्लियोंकी हड्डि यदि मनुष्यके घरमें नीचे बसी हो, तो वह शल्यरूपमें गिनी जाती है। इससे उस मनुष्यके घरमें कभी मङ्गल नहीं होता, घर उसरोत्तर विपद् मानेकी सम्भावना रहती है। मारणक्रियाके निमित्त बहुतरे इस तरहकी काली बिल्लीकी हड्डि शल्यके घरमें गाड़ देने हैं। किन्तु इस आभिचारिक क्रियासे हिंसाकारक का ही समझल हुआ करता है। मानुषेद्गालमें लिखा है, कि बिल्लीको विष्ठा जलानेसे कर्मपथमें विक्षेप उपकार होता है।

पहले कहा जा चुका है, कि बिल्लीका चेहरा बाघकी तरह है। किन्तु आकारमें वे छोटी होती हैं। साधारणतः मस्तक और देहभाग ले कर इसकी लम्बाई १६ से १८" है और पूँछ १० से १२ इंच तक होती है। पैरों पञ्चमें पाँच नग रहते हैं। किसी किसी बिल्लीकी मध्य संघर्षा कम भी देयी जाती है। बिल्लियोंके नयनोंमें विष रहता है। नयनको संघर्षा कम होनेसे विषका बल भी कम

होता है। यदि यह किसीके किसी अङ्गमें, अपने नखसे विदीर्ण करे, तो उस स्थानमें विप चढ़ जायेगा। ऐसी दशामें यहाँ एक तपे लोहेसे दाग देना चाहिये। ऐसा करने पर विपका अमर मिट जाता है, नहीं तो यह विप प्रबल हो उठता और घाय बढ जाता है। इससे यन्त्रणा भी बढ जाती है।

ये साधारणतः ३, ४, या ५ शावक पैदा करती हैं, इन शावकोंके हस्तपदादि अवयव रहने पर भी यह एक विपणवत् हो दिखाई देते हैं। केवल प्राण ही जोयशक्ति-का परिचायक रहता है। उस समय इनके शरीरमें लोम नहीं रहता। यदि इस जातिका पुत्र्य इन शावकोंको देख ले, तो वह उन्हें चट कर जाता है। इसीलिये बिलियाँ अपने शावकोंको श्वर उधर चुराती फिरती हैं। २ सुगन्धमाज्जार, मुशक विलाव। (क्लो०) ३ हरिताल। विडालक (सं० क्लो०) १ हरिताल। (पु०) विडाल पव स्वार्थे कन्। २ विडाल, बिल्ली। ३ नेत्र रोगको एक औषध।

"विडालके बहिलेपो नेत्रे पदमविषज्जिते।

तस्य मात्रा परिक्षेया मुखालेपविधानवत् ॥"

(भावप्र० नेत्ररोगाधि०)।

नेत्रके यहिभागमें पद्मका परिस्थाप कर प्रलेप देनेको विडालक कहते हैं। इसकी मात्रा मुखालेपके समान होगी। मुखालेपकी मात्राके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है, कि मुखालेप ही हीन मात्रा एक उंगलीका चौथाई भाग, मध्यम मात्रा तिहाई भाग और उत्तम मात्रा एक उंगलीका अर्द्धांश है। यह लेप जब तक सूख न जाय, तब तक लगाये रखना होगा। सूख जाते ही उसे फेंक देना उचित है। क्योंकि सूखने पर उसमें कोई गुण नहीं रह जाता, बल्कि वह चमड़ेको दूषित कर डालता है।

विडालप्रलेप—मुलेठी, गेरुमिष्टी, सैन्धव, दाग-हरिद्रा और रसाञ्जन ये सब द्रव्य समान भाग ले कर जलमें पीसे और नेत्रके यहिभागमें प्रलेप दे। इस प्रलेपसे सभी प्रकारका नेत्र रोग आरोग्य होता है। रसाञ्जन या हरीतकी अथवा बिल्वपत्र या वच, हरिद्रा और सांड तथा गेरुमिष्टी द्वारा प्रलेप देनेसे भी सभी प्रकारके नेत्र-

रोग विनष्ट होते हैं। (भावप्र० नेत्ररोगाधि० विडालकविधि) विडालपद (सं० पु०) १ दो तोलेका परिमाण। (क्लो०) २ माज्जारचरण, विडालका पैर।

विडालपदक (सं० क्लो०) कर्पपरिमाण, सोलह माशका एक मान।

विडालाक्ष (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम जो महाराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें गया था।

विडाली (सं० स्त्री०) १ विदारोकन्द। २ माज्जारी, बिल्ली।

विडान (सं० क्लो०) वि डी-क। खगतिविशेष, पक्षियों-की उड़ानका एक प्रकार।

विडाल (सं० पु०) धेतको लता।

विडोजस् (सं० पु०) विप् व्याप्ती, विप-किप्, विट्-व्यापकं ओजा यस्य। इन्द्र। (अमर)

विडोजस् (सं० पु०) विड् आक्रोश शब्द्वेपमसहिष्णु ओजा यस्य। इन्द्र। (दिल्लकोप)

विड्गन्ध (सं० क्लो०) विट् विष्टा इव गन्धे यस्य। विट् लवण, साँचर ममक।

विड्ग्रह (सं० पु०) कोष्ठवद्धता, मलरोग, कश्जित।

(माषवनि०)

विड्घात (सं० पु०) मलमूत्रका अवरोध, पेशाव और पाषाणा रुकना।

विड्ज (सं० त्रि०) विपि विष्टायां जातः विप्-जन-ड। विष्टाजात, विष्टा आदिसे उत्पन्न होनेवाले कीड़े मकोड़े।

विड्डसिंह (सं० पु०) राजाके एक मन्त्रीका नाम।

(राजतर० ५२४७)

विड्दन्ध (सं० पु०) मलका अवरोध, कश्जित।

विड्भङ्ग (सं० पु०) विड्भेद, बहुत दस्त होना, पेट चलना।

विड्भुक् (सं० त्रि०) विपं विष्टां भुनक्ति, विप-भुज्-किप्। विड्भोजी, विष्टा खानेवाले कीड़े मकोड़े।

विड्भेद (सं० पु०) विड्भङ्ग।

विड्भेदिन (सं० त्रि०) विपं विष्टां भेदतुं शीलं यस्य। यह औषध या द्रव्य जो विरेचक हो, वृस्ताधर चीज या दवा।

विद् भोजिन (सं० लि०) विषं विष्टां भोजयुं शूलं यस्य ।
 विट् भुक्, विष्टा शानेवाला ।
 विद् भोजी (सं० लि०) विद् भोजिन देशी ।
 विट् लघण (सं० क्ली०) विट् लघण, सांघर नमक ।
 विट् घराह (सं० पु०) विट् प्रियो चराहः । प्राग्भृशकर,
 गांघीमें रहनेवाला सूअर ।
 विट् पल (सं० पु०) १ गोपक । २ निद्रादल ।

(पर्याय०)

विट् विघात (सं० पु०) एक प्रकारका मूत्रघातरोग ।
 उदायस रोगमें दुर्बल और रक्त व्यक्तिकी विष्टा, कुपित
 वायुके द्वारा मूत्रघात प्राप्त होनेसे वह रोगी उस समय
 बड़े बड़से विट् संमूह और विद् गुग्गुलुका मूत्रभाग
 करता है । रोगीकी इस भवस्थाके शास्त्रकारोंने
 विट् विघात कहा है । (भाष्यनि०)

विट् व्यमे (सं० पु०) विट् विघातरोग ।

विष्माम (सं० पु०) मलद्वार, गुदा ।

विष्मूत्र (सं० क्ली०) विष्टा और मूत्र ।

वितस (सं० पु०) वितस-घञ् । वितस, मृग जघया
 पक्षी आदिका फंसानेका जाल ।

वितण्ड (सं० पु०) १ अर्गलमेद, अगरी । २ हस्ती,
 हाथी ।

वितण्डक (सं० पु०) एक मन्थकसाका नाम ।

वितण्डा (सं० स्त्री०) वितण्डयते विहन्वते परपक्षोऽन
 येति वितण्ड गुरोश्चेत्यः टाप् । १ दूसरेके पक्षके दवाने-
 हुए अपने मतको स्थापना करना । (अमर)

कथा, घात, जल्य और वितण्डा इन तर्कोंका
 कथा कहते हैं । गीतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार
 दिया है—

“अतिरस्यस्थानरीनो वितण्डा ।” (गीतमसूत्र १२।१४)

प्रतिपक्ष स्थापनाहीन होनेसे उसके वितण्डा कहने
 है । तत्त्वनिर्णय या विजय अर्थात् यादिराज्यके
 उद्देशसे व्यापसङ्गत चञ्चनपरम्पराका नाम कथा है ।
 कथा तीन प्रकारकी है, वाद्, जल्य और वितण्डा । तर्कमें
 ह्राप या पराजय हो कोई हर्ज नहीं, केवल तत्त्वनिर्णय-
 का उद्देश कर जो सब प्रमाणादि उपयुक्त
 उसका नाम वाद् है । तत्त्वनिर्णयके प्रति

के प्रतिपक्षकी पराजय तथा अपनी जय मात्रके उद्देशमें
 जो कथा प्रवर्तित होती है, उसका नाम जल्य है । अन्यथा
 यादो प्रतिपक्षी दोनों ही अपने पक्षको स्थापन और पर-
 पक्षके प्रतिषेध करते हैं । अपना कोई भी पक्ष निर्दिष्ट
 न करके केवल परपक्ष खण्डनके उद्देशसे विजिगीषु
 व्यक्ति जिस कथाकी प्रवर्तना करते हैं, उसका नाम
 वितण्डा है ।

जल्य और वितण्डामें प्रतिपक्षी पराजयके लिये
 न्यायोक्त छल, जाति और निग्रहस्थानका उन्नायन
 किया जा सकता है । यह कथा केवल तत्त्वनिर्णयके
 लिये उपयुक्त होती है, इस कारण उसमें सभाकी जरूरत
 नहीं, किन्तु जल्य और वितण्डामें सभाकी जरूरत होती
 है । जिस जनतामें राजा या कोई क्षमताशाली व्यक्ति
 नेता तथा कोई व्यक्ति मध्यस्थ रहते हैं, उसी जनताका
 नाम सभा है । वाद् और न्याय देतो ।

२ धर्मका भंगड़ा या कटा-मुनी । ३ कर्चूका साथ
 और कन्द । ४ गिलाहय, शिलाग्रीत । ५ करवी ।
 ६ दर्वी ।

वितल (सं० लि०) वितल-क । १ विस्तृत, फैला हुआ ।
 (क्ली०) २ घोणा अथवा उससे मिलता जुलता हुआ
 और कोई वाजा ।

वितताध्वर (सं० लि०) यज्ञवेदीसम्बन्धी ।

(अथर्व्ये ६।१।२०)

वितति (सं० स्त्री०) वितत-क्ति । विस्तार, फैलाप ।

विततरुण (सं० क्ली०) लोभीका अनिन्दित कर्म, वित-
 स्थापण ।

वितरय (सं० पु०) विह्व्यके एक पुत्रका नाम ।

(भात १३ पर)

वितथ (सं० लि०) १ मिट्टा, भूट । २ निष्कल, व्यर्थ,
 बेतावदा ।

वितथता (सं० स्त्री०) वितथन्प भांवा तल्-टाप् । विनय-
 का भाव या धर्म, मिट्टाथव ।

वितथ्य (सं० लि०) वितथ-घञ् । मिट्टा, अस्तर, भूट ।

विन्दु (सं० पु०) विनमोतीति वि तन (अनादयथ) ।
 उप- प्रत्ययः । पञ्चाक्षरी वितन्ता या
 भेलम

वितनिट्ट (सं० लि०) वितनोति वि तन्- तुच् । विस्ता-
रक, फैलानेवाला ।

वितनु (सं० लि०) १ तनुरहित । २ अति सूक्ष्म ।

वितन्वत् (सं० लि०) वितनोति वि-तन् शच् । विस्तार-
कारक ।

वितन्तसाध्य (सं० लि०) १ विशेषरूपसे विस्तार्य,
स्तोत्र द्वारा बन्दनीय । २ शत्रुओंका हिंसक ।

वितपत्र (हि० पु०) १ वह जो किसी काममें कुशल हो,
धुस्पर्शन, दक्ष । (वि०) २ घबराया हुआ, व्याकुल ।

वितमस् (सं० लि०) विगतस्तमो यस्य । १ तमोगुण-
रहित । २ अन्धकारहीन ।

वितमस्क (सं० लि०) विगतस्तमो यस्मात्, कप समा-
सान्ताः । १ अन्धकारहीन, जिसमें अन्धकार न हो ।
२ तमोगुणरहित ।

वितर (सं० पु०) वि-त्-अप् । १ वितरण, देना । (लि०)
२ विपणन, दूर क्रिया हुआ । ३ विजिघ्रितर । ४ अत्यन्त,
अतिशय ।

वितरक (सं० वि०) वितरण करनेवाला, बाँटनेवाला ।

वितरण (सं० स्त्री०) वि-न्त् मावे ल्युट् । १ दान करना,
अर्पण करना, देना । २ बाँटना ।

वितरणार्था (सं० पु०) एक आचार्याका नाम ।

वितरम् (सं० अण०) वितर देखो ।

वितराम् (सं० अण०) और भी, इसके अलावा ।

(शतपथभा० १।५।१।२३)

वितरित (सं० लि०) जो वितरण क्रिया गया हो, बाँटा
हुआ ।

वितर्क (सं० पु०) वि-तर्क-अच् । १ एक तर्कके उपरान्त
होनेवाला दूसरा तर्क । २ सन्देह, संशय, शक । ३ अनु-
मान । ४ ज्ञानसूचक । ५ अर्थालङ्कारविशेष । सन्देह या
वितर्क होने पर यह अलंकार होता है । यह निश्चयागत
और अनिश्चयान्तमेदसे दो प्रकारका है । जहाँ सन्देह
निश्चय होता है, वहाँ निश्चयागत वितर्क तथा जहाँ
निर्णय नहीं होता, वहाँ अनिश्चयान्त वितर्क होता है ।

वितर्कण (सं० स्त्री०) वि तर्क ल्युट् । वितर्क ।

वितर्कयत् (सं० लि०) वितर्कः विघतेऽस्य वितर्कः मनुष्य
मस्य च । वितर्कयुक्त, वितर्कविशिष्ट ।

वितर्ष्य (सं० लि०) वि-तर्क-यत् । १ वितर्कणीय,
जिसमें किसी प्रकारके वितर्क या संदेहका स्थान हो ।
२ अत्यादचर्यरूपसे दर्शनीय, जो देखनेमें बहुत विलक्षण
हो ।

वितर्तुर (सं० क्ली०) परस्परव्यतिहार द्वारा तरण,
बार बार जाना । (ऋक् १।२०।२)

वितर्हि (सं० स्त्री०) वि-तर्ह-हिंसायां (सर्वावातुभ्य इन् ।
उण् ५।१।२७) इति इत् । वेदिका, वेदी, मंच ।

वितर्हिंका (सं० स्त्री०) वितर्हिं देव स्वार्थे कन् टाप् ।
वेदिका, वेदी ।

वितर्हो (सं० स्त्री०) वितर्हि-रुदिकारादिति स्त्रीप् ।
वेदी ।

वितर्हो (सं० स्त्री०) वेदी ।

वितल (सं० क्ली०) विशेषेण तलं । सात पातालों-
मेंसे तोमरा पाताल । देवीभागवतके अनुसार यही
दूसरा पाताल है । कहते हैं, कि यह पाताल भूनालके
अधोदेशमें अचिष्टित है । सर्वदेवपूजित भगवान् भवानो-
पति हाटकेश्वर नामसे अपने पार्षदोंके साथ इस पाताल-
में रहते हैं । प्रजापति ब्रह्माकी सृष्टि विशेषकर संसृष्टि-
नार्थ भूतनाथ भवानीके साथ मिथुनीभूत हो कर यहाँ
विराज करते हैं । इनके धीर्घसे हाटकी नामकी नदी
बहती है जिसे हुताशन वायुके साहाय्यसे उचलित हो
कर पीते हैं । यह पान करनेके समय इनके मुँह-
से जब फुककार निकलता है, तब उलसे हाटक नामक
सोना निकलता है । यह दैर्घ्याका बड़ा मिय है । दैत्य
रमणियाँ उस सोनेसे अलङ्कार आदि बना कर बड़े यत्न-
से उसे पहनती हैं । पाताल इन्द्र देखो ।

वितलिन (सं० पु०) वितललोकको पारण करनेवाले,
बलदेव ।

वितस्त (सं० लि०) वि-तस् क् । १ उपक्षीण । "वितस्त
वितस्तं भयति ।" (निष्क ३।२) २ वितस्ति देखो ।

वितस्तश्च (सं० पुं०) वितस्ता-दच्, संज्ञायां-ह्रस्व (पा
६।३।३) । मौढ्य वणिज्-भेद । (कथावर्तिता० २७।१५)

वितस्ता (सं० स्त्री०) पञ्जाबके अन्तर्गत नदीविशेष । इसे
आज कल भोलम् कहते हैं । यह नदी वेदवर्णित पञ्चनदी-
में एक है । ऋग्वेदके १० मण्डलमें इसका परिचय है ।

गाटक १५४६ ई०में लिखा गया । इसमें राधाकृष्णकी लीला और प्रेमभाव वर्णित हैं ।

विदग्धवेध—योगजनक नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता ।

विदग्धा (सं० स्त्री०) विदग्ध-टाप् । यह परकीया नायिका जो हांजियारोके साथ परपुरुषकी भगनी और अनुरक्त करे । यह दो प्रकारकी मानो गई है—याक्-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा । जो स्त्री भगनी पातचोतके कीमालसे पर पुट्ट पर भगनी कामयासना प्रकट करती है, वह याक्-विदग्धा और जो किसी प्रकारके क्रिया कलावसे भगनी भाव प्रकट करती है, वह क्रिया-विदग्धा कहलाती है ।

विदग्धाजोर्ण (सं० स्त्री०) धर्मोर्णरोगमेद । विससे यह रोग उत्पन्न होता है । इसमें भ्रम, तृष्णा, मूर्च्छा, विसके कारण पेटके भीतर नाना प्रकारकी वेदना, चर्म, दाह आदि लक्षण दिखाई देने हैं ।

पथ्य—लघुपाक द्रव्य, बहुत पुराना बारीक चावल, लावेका मांड, मूंगका जूस, हरिण, चरहा और लाया पक्षीके मांसका जूस, छोटी मछली, जालिञ्ज जाक, घेन्नाप, येनोजाक, छोटी मूली, लहसुन, सूर्य जेहड़ा, कषा केला, सहिजनका फल, पटोल, बतिया बैंगन, जटामांसी, बला, ककरोल, करेला, कटारि, अमादा, गंध-लिया, मेगशुद्धी, नोनी माग, सुसनी साग, भाँवला, नारंगी नीयू, बनार, जी, विसपापट्टा, मालवेतम, बिजौरा नीयू, मधु, मषलन, घी, महा, काँजी, कटुनील, हींग, लवण, अदरक, पमानो, मिर्च, मैथी, धनिवाँ, जीरा, सद्योजात क्षुधि, पान, गरम जल, कड़वा और तोता ।

अपथ्य—मलमूत्रादिका योगधारण, भोजनका समय शीत ज्ञाने पर भोजन करना, बहुत भूलुल्लगने पर थोड़ा खाना, चाये हुए पदार्थका पाक नहीं होने पर भी फिरसे भोजन कर लेना, रातकी जागना, जोजितप्राय, जमो-घान्य, बड़ो मछली, मांस, पोईका माग, अधिक जल पीना, विष्टक भोजन, सती प्रकारका माल, हालकी व्यर्थ पावका दूध, छेना, मध दूध, बहुत गाढ़ा दूध, गुग्गु, जकर, ताड़की भांडोका गूना, स्नेह द्रव्यका भक्षण नियेवन, अनेक प्रकारका मृदित जलपान करना, स्त्रोमविद्य (जैमि शीत मछली आदि), देन और कालियद (उषण)

उष्ण, शीतमें शीत) भग्नपानादि, भाषाजनकारक और सुदृशक द्रव्य तथा विरेचक पदार्थ खाना मना है । किन्तु मृदु विरेचक अर्थात् दूरीतकी आदि इसमें उपकारी है ।

इसकी चिकित्सा अतिमान्य मरुमें देते ।

विदग्धाभलट्टि (सं० स्त्री०) चक्षुरोगविशेष, भस्त्रिका एक प्रकारका रोग । यह बहुत अधिक खटाई घानेसे होता है और इसमें आँखें पीली पड़ जाती हैं ।

विदग्ध (सं० पुं०) राजकुलमेद । (गाठ भादिवर) विदग्ध (सं० पुं०) वेदानि विद (कविदिम्पादि) उल् ३११६) इति मध, अच्-ङित् । १ योगो । २ यज्ञ । (निपट्ट ३१७) ३ वैदिक कालके एक राजाका नाम । (शृक् ११३१६) ४ स्त्री । (त्रि०) ५ वेदितव्य, जो जाननेके योग्य हो । (शृक् ११७७)

विदग्धिर (सं० पुं०) श्रुपिमेद । (शृक् ११२११)

विदग्ध (सं० त्रि०) यज्ञार्ह, यज्ञके योग्य ।

(शृक् १११२०)

विदग्ध (सं० पुं०) चिरमेद । वेददत्तदेवा ।

विदग्धसु (सं० त्रि०) श्रापित घनयुक्त । (शृक् १११६)

विदग्धन् (सं० पुं०) श्रुपिमेद । वेददा देवो ।

विदर (सं० स्त्री०) विदोर्धतीति वि-ट्-भच् । १ विभ्य-सारक, कंकारी । (त्रि०) २ विदोर्ण । (पुं०) वि-ट्, (शूदोर्ण) । पा ३३१७) इति भष् । ३ विदारण करना, फाड़ना । ४ शनिमय, बड़ा डर ।

विदर (विदार)—दाक्षिणात्यके निजामाधिपत हेदराबाद राज्यका एक नगर । यह भूभाग १७°५३' उ० तथा देशांश ७७° ३४' पू०के मध्य हेदराबाद राजधानीसे ७५ मील उत्तरपश्चिम मझेरा नदीके किनारे अवस्थित है । बहूनोंका विश्वास है, कि प्राचीन विदर्भ देशकी जम्भूति आज भी विदर शब्दमें प्रतिध्वनित होती है । प्रत्यतद्व्य-विदर्भो धारणा है, कि सारा वेतारराज्य एक समय विदर्भराज्य नामसे उल्लिखित होता था । किन्तु उस समयकी विदर्भ राजधानी पीछे लौकिक विदर (विदर्भ) प्रयोगमें 'विदर' प्राप्त प्रात हो कर भी था नहीं, कह नहीं सकते ।

एक समय ब्राह्मणों राजाधीन इस नगरमें राजपाट स्थापन किया था । १६वीं सदीके मध्य भाग तक इस

राजधानीमें रह कर उन्होंने शासनदण्ड परिचालित किया। इस नगरके चारों ओर विस्तृत प्राचीर है। अभी यह संपूर्ण भग्नावस्थामें पड़ा है। प्राचीरके ऊपर एक स्थानके चमड़े पर २१ फुट लम्बो एक कमान रखी हुई है। इसके सिवा नगरमें १०० फुट ऊँचा एक स्तम्भ (minaret) तथा दक्षिण-पश्चिम भागमें कुछ समाधि मन्दिर आज भी दृष्टिगोचर होते हैं।

घातव पात्रादि बनानेके लिये यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यहांके कारीगर ताँबे, सोते, टीन और रांगेको एक साथ मिला कर एक अच्छी धातु बनाते हैं तथा उसीसे नाना प्रकारके चित्रित पात्र तैयार करते हैं। कभी कभी उन सब पात्रोंके भीतर वे सुनहली वा रुपहली कलरें कर देते हैं। अभी इस व्यवसायकी बहुत अव-
नति हो गई है। बेदार देखो।

विदरण (सं० स्त्री०) वि-दू-ल्युट् । १ विदार, फाड़ना । २ मध्य और अन्त शब्द पहले रहनेसे सूर्य वा चन्द्रग्रहणके मोक्षके दोनों नाम समझे जाते हैं अर्थात् मध्यविदरण और अन्तविदरण कहनेसे सूर्य और चन्द्रग्रहणमोक्षके दश नामोंमेंसे ये दो नाम भी पड़ते हैं। प्रहणके मोक्षकालमें पहले मध्यस्थल प्रकाशित होने पर उसे 'मध्यविदरण' मोक्ष कहते हैं। यह सुचाव दृष्टिप्रद नहीं होने पर भी सुमिश्रप्रद है, किन्तु प्राणियोंका मानसिक कोपकारक है। फिर मुक्तिके समय गृहीतमण्डलकी अन्तिम सीमामें निर्मलता और मध्यस्थलमें अन्धकारकी अधिकता रहने पर उसे 'अन्तविदरण' मोक्ष कहेंगे। इस प्रकार मुक्ति होने पर मध्यदेशका विनाश और शारदोय शस्यका क्षय होता है। (बृहत्संहिता ५८१, ८६, ६०) ३ विद्रधि-रोग।

विदर्भ (सं० पुं० स्त्री०) विशिष्टा दर्भाः कुशा यत्र, विगता दर्भाः कुशा यत इति वा । १ कुण्डिन नगर, आधुनिक बड़ा नागपुरका प्राचीन नाम।

"विगता दर्भाः यतः" इसकी व्युत्पत्तिमूलक किम्बदन्ती यह है, कि कुशाके आघातसे अपने पुत्रको मृत्यु हो जाने से एक मुनिने अभिशाप दिया जिससे इस देशमें अब कुश नहीं उत्पन्न होता है।

कोई क ई कहते हैं, कि विदर्भ देशका नाम बेदार है।

विदर नगर बेदारके अन्तर्गत है, इस कारण समस्त देशका 'विदर्भ' नाम पड़ा है।

२ खनामख्यात नृपविशेष। ये ज्यामघराजाके पुत्र थे। इनकी माताका नाम था शोष्वा। कहते हैं, कि इसी राजाके नाम पर विदर्भ देशका नाम पड़ा था। कुन, कथ, लोमपाद आदि इनके पुत्र थे।

(भागवत ६।२।४१)

३ मुनिविशेष। (हरिवंश १६६।८४) ४ दन्तमूलगत रोगविशेष, दाँतोंमें चोट लगनेके कारण मसूड़ा फूटना या दाँतोंका हिलना।

विदर्भजा (सं० स्त्री०) विदर्भे जायते इति विदर्भ-जन-ड टाप् । १ अगस्त्य ऋषिकी पत्नीका एक नाम। पर्याय—कौशीतकी, लोषामुद्रा। (विक्रमबशेष) २ दमयन्तीका एक नाम जो विदर्भके राजा भीमकी कन्या थी। ३ रुक्मिणीका एक नाम।

विदर्भराज (सं० पुं०) विदर्भाणां राजा (राजाहस्तलिख्य-ष्ट्व्। पा १।४।६१) इति समासान्तष्ट्व् । १ दमयन्तीके पिता राजा भीम जो विदर्भके राजा थे। २ रुक्मिणीके पिता भीमक। ३ चम्पूगमायणके प्रणेता।

विदर्भसुभू (सं० स्त्री०) विदर्भस्य सुभू रमणी। दमयन्ती। विदर्भाधिपति (सं० पुं०) विदर्भाणामधिपतिः। कुण्डिन-पति, रुक्मिणीके पिता भीमक।

विदर्भि (सं० पुं०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। विदर्भीक्रीण्डिन्य (सं० पुं०) एक वैदिक आचार्यका नाम। (शतपथब्रा० १।४।१।१२२)

विदर्व्य (सं० पुं०) फणाहोन सर्प, विना फनवाला साँप। (शाङ्खायन्य० ४।१८)

विदर्शिन (सं० स्त्री०) सर्वधादीसम्मत।

विदल (सं० पुं०) विघट्टितानि दलानि यस्य । १ रक्त-काञ्चन, लाल रंगका सोना। २ स्पर्णादिका अवयवविशेष। ३ विष्टक, पीठो। ४ दाडिम्बवीज, अनारका दाना। ५ चना। ६ यंशादिकृत पात्रविशेष, वाँसका बना हुआ दौरा या और कोई पात्र। (त्रि०) ७ विकसित, खिला हुआ। ८ दलहीन, विना दलका।

विदलन (सं० स्त्री०) १ मलने दलने या दवाने आदिकी क्रिया। २ टुकड़े टुकड़े या इधर उधर करना, फाड़ना। विदला (सं० स्त्री०) १ त्रिष्ट, निसोप। २ पात्रशून्या।

विदलान (सं० बली०) १ पक्षप्रदात्रि, पक्षाईं हुंरं दाल ।
२ यह अन्न जिसमें दो दल हों । जैसे—चना, उड़द,
मूंग, भरहद, मसूर आदि ।

विदलित (सं० त्रि०) १ मर्दित, जिसका अन्नो तरद
दलन किया गया हो । २ रौंदा हुआ, मला हुआ ।
३ विकसित । ४ विदारित, फाड़ा हुआ ।

विदलोष्टन (सं० त्रि०) चूर्णित, टुकड़े टुकड़े किया
हुआ ।

विदग्ग (सं० त्रि०) विगता दग्गा यस्य (गोत्रियोरवगमनेत्य
इति गोप्यत्वाद् व्ययम् । पा १।३।४८) दग्गाविहीन ।

विदा (सं० स्त्री०) विद् छाने (विद्भिदादिभ्योऽङ् । पा
३।३।१०४) इत्यङ् टाप् । छान, बुद्धि ।

विदा (दि० स्त्री०) मन्धान, रवाना होना । २ कहींसे
धलनेको आया या अनुमति ।

विदारि (दि० स्त्री०) १ विदा देनेकी क्रिया या भाव, कस-
मता । २ विदा देनेकी आज्ञा या अनुमति । ३ यह
धन आदि या विदा होनेके समय किसीको दिया जाय ।

विदारु अत्रिष्यपुराण वर्णित शाकटोपिशाहाणोंका घेद-
प्रभ । आजकल यह चन्ददारु नामसे प्रसिद्ध है । किसी
दिग्ग प्रथममें "विदुदु" प्रामादिक पाठ भी देखा जाता है ।
(अत्रिष्यपु १४ म०)

विदान (सं० स्त्री०) विभाग कर देना ।
(लघवप्रभा १४।८।७१)

विदाय (सं० पु०) विगतो दायो साक्षात् करणादिक्र-
मणं येन । १ विसर्जन । २ दान । ३ गमनानुमति,
जानेकी अनुमति, विदा । ४ प्रस्थान ।

विदायिन् (सं० त्रि०) विदायुं शोलं वक्ष्ये विदायिनि ।
१ दानकर्ता, दान करनेवाला । २ निवागक, जो ठीक
तरहसे चलाता या रक्षता हो । (स्त्री०) ३ विदाई देता ।

विदाय्य (सं० त्रि०) चेत्ता, जाननेवाला ।
विदार (सं० पु०) विद् टाप् । १ अलोच्छ्रयाम् । २ विदा-
रण । ३ युद्ध, समर ।

विदारक (सं० पु०) विदृणाति जलयानादीनि विद्-
प्लुत् । १ यह गूरा या पर्यंत आदि जो जलके बीचमें
हो । २ नदियोंके तलमें बनाया हुआ गड्ढा जिसमें नदीके
सूक्ष्मे पर मो पानी बचा रहता है । (स्त्री०) ३ वज्रसार,
भीसाद । (त्रि०) ४ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारण (सं० स्त्री०) विद्-णिच् भावे ल्युट् । १ शोभने
अलग करके दो या अधिक टुकड़े करना । २ मर
डालना, हत्या करना । ३ कनेर । ४ दारिया । ५ भीमा-
दर । (पु०) विदारणेन शतवाडस्मिन्निति विद्-णिच्
ल्युट् । ६ युद्ध, समर । ७ जैनेके अनुसार दृगरोके
पापों या दोषोंको घोषणा करना । (त्रि०) विदारयतीति
विद्-णिच् ल्यु । ८ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारि (सं० स्त्री०) विदारिका देलो ।
विदारिका (सं० स्त्री०) विद्-णिच्-ण्युल्-टापि मन
इत्यं । १ जालपणी । २ गंभारी वृक्ष । ३ विदारो रोग ।
४ कड़वी तृषी । (स्त्री०) ५ पृहलसंहिताके अनुसार
एक प्रकारको चाकिनो जो घरके बाहर अनिष्टोत्पत्ति
रहते है । (पृहलसं १३।३८)

विदारिगन्धा (सं० स्त्री०) क्षयविरोध, जालपणी । अंग्रेजों-
में इसे Hedysarum gangeticum कहते हैं ।

विदारिन् (सं० त्रि०) विद्-णिनि । विदारणकर्ता,
फाड़नेवाला ।

विदारिणी (सं० स्त्री०) विदारिन् स्त्रीप् । १ काशरोग,
गंभारी । २ विदारणकर्त्री ।

विदारो (सं० स्त्री०) विदारयतीति विद्-णिच् अच्
शौरादित्वात् स्त्रीप् । १ जालपणी । २ भूमिकुम्भादह,
मुर्दे कुम्हडा । पर्वाय—शौर्युक्ता, इक्षुगन्धा, क्रोश्री,
विदारिका, स्वादुगन्धा, सिता, शुक्रा, शृगालिका, तृण-
कन्दा, विहाली, पृष्यवल्लिका, भूक्ष्माण्डो, स्वादुलता,
गजेष्टा, धारिषदलमा भीर गन्धकला । गुण—मधुर,
नील, गुण, सिन्ध, अग्निविसनागक, कफकारक, पुष्टि,
पल भीर योग्यवर्क । (रात्रिनी)

३ भायवकाजके अनुसार भठारह प्रकारके कंठरोगों-
मेंसे एक प्रकारका कंठरोग । इसमें पित्तके विगहनेसे
गले भीर सुँद पर लाली भा जाता है, जलन होनी है
भीर बर्षुदार मांसके टुकड़े कट कट कर गिरने लगते
हैं । कहते हैं, कि जिस करबट रोगी अधिक मीठा है,
उम्नो भीर यह रोग उत्पन्न होता है । गर्शय मरद देलो ।

४ एक प्रकारका क्षुद्ररोग । इस रोगमें बहामें
भीर पक्ष्णसमिधमें भूमिकुम्भादहको भाइनि जैमी
काली कुंसियां निरमती है । उम्न विदारो या विदारिका

कहते हैं। यह रोग त्रिदोषसे उत्पन्न होता है तथा इसमें त्रिदोषके समी लक्षण दिखाई देते हैं।

इसको, चिकित्सा—इस रोगमें पहले जोंक द्वारा रक्त मीक्षण करना उचित है। इसके पक जाने पर जल प्रयोग करके मरणरोगकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

(भावम० छुद्रोगाधि०)

प्रयाद् है, कि इसके एकके निकलनेसे लगातार ७ फुंसियां निकल जाती हैं।

५ कर्णरोगभेद । (वाग्भट उ० १७ अ०) ६ प्रमेह रोगको एक पीड़का या फुंसो। (सुभ्रुत नि० ६ अ०) ७ सुवर्चला । ८ वाराहोक्तम् । ९ क्षीरकफौली । १० वामटोक गणविशेष । परएडमूल, मेवशुद्धो, श्वेत-पुनर्नवा, देवदाक, सुगानी, मायाणी, केवाच, जोषक, शालयान, पिठवन, घृहती, कण्टकारी, गोशूर, अनन्त-मूल और हंसपदो इन्हे विदार्याधिगण कहते हैं। गुण—हृदयका हितजनक, पुष्टिकारक, वातपित्तनाशक तथा शोथ, गुल्म, गालवेदना, ऊर्ध्वर्वासा और कासप्रगमक।

(वाग्भट उ० १५)

विदारीकन्द (सं० पु०) विदारी, भुरं कुम्हड़ा।

विदारीगन्धाः (सं० स्त्री०) विदार्या भूमिकुम्भाएडस्यैव गन्धो यस्यः। १ शालपर्णी। २ सुश्रुतके अनुसार शाल-पर्णी, भुरं कुम्हड़ा, गोशूर, विजयशर्द, गोपघृही, पिठवन, शतमूली, अनन्तमूल, जोषती, सुगवान, घृहती, कंटकारी, पुनर्नवा, परएडमूल आदि ओषधियोंका एक गण। इस गणकी सा ओषधियां वायु तथा पित्तकी नाशक और शोथ, गुल्म, ऊर्ध्वर्वासा तथा खांसी आदि रोगोंमें हितकर मानो जाती हैं।

विदारोगन्धिका (सं० स्त्री०) विदारीगन्धाः।

विदारोहय (सं० पु०) कुम्भाएड और भूमिकुम्भाएड, कुम्हड़ा और भुरं कुम्हड़ा। (वैद्यकि०)

विदार (सं० पु०) ककचवाद्, ककलास, गिरगिट।

विदासिन् (सं० स्त्री०) दस्यु। उपक्षये वि-दस-णिनि। उपक्षययुक्त।

विदाह (सं० पु०) वि-दह-घञ्। १ पित्तके प्रकोपसे होनेवाली जलन। २ हाथ पैरमें किसी कारणसे होनेवाली जलन।

विदाहक (सं० स्त्री०) विदाह-स्वाधे क्वः। १ जो विदाह उत्पन्न करता हो। २ विदाह देखो।

विदाहवत् (सं० स्त्री०) विदाहो विघतेऽस्य मनुप् मस्य य। विदाहयुक्त, जिसमें ज्वाला वा जलन हो।

विदाहिन (सं० स्त्री०) विदहतीति वि-दह-णिनि। १ दाहजनक द्रव्य, यह पदार्थ जिससे जलन पैदा हो। (स्त्री०) २ दाहजनक।

विदिकचङ्ग (सं० पु०) हरिद्राङ्ग पक्षी।

विदित (सं० स्त्री०) विदु-क्त्। १ अवगत, ज्ञात, जाना हुआ। २ अधिष्ठित। ३ उपगम। विदितं ज्ञानमस्या-स्तीति अर्थ आदिस्थाच्। (पु०) ४ कवि। ५ ज्ञाना-श्रय।

विदिध (सं० पु०) १ पण्डित, विद्वान्। २ योगी।

विदिश (सं० स्त्री०) दिग्भ्यां विगता। दो दिशाओंके बीचका कोना। जैसे—अग्नि या ईशान आदि। पर्याय—अपदिश, प्रदिश, कोण।

विदिशा (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार पारिवात्र पर्वतपाद् से निकली हुई एक नदीका नाम। (मार्कटपु० १७२०) २ वर्तमान मिलसा नगरका प्राचीन नाम। मिलसा रक्षा।

विदीगय (सं० पु०) पक्षांशविशेष, सफेद बगला।

(वैत्ति० सं० ५१६२२१)

विदीघयु (सं० स्त्री०) १ विलम्ब, देर। २ दीप्तिशून्य, धामाहीन।

विदीघिति (सं० स्त्री०) विगता क्षीधितया किरपानि यस्य। निर्मयूष, किरणहीन।

विदीपक (सं० पु०) प्रदीपक, दीभा।

विदीर्ण (सं० स्त्री०) वि-दृ-क्त्। १ बीचसे काड़ा या विदारण किया हुआ। २ मग्न, टूटा हुआ। ३ हत, मार डाला हुआ।

विदु (सं० पु०) वेत्ति संज्ञामनेनेति विद-वाङ्मकाल्त् कु। १-हाथोंके मस्तकके बीचका भाग। २ घोड़ेके कामके मोचेका भाग।

विदुत्तम (सं० पु०) विदो-ज्ञानिनां उत्तमः। १-सर्वक, यह जो सब बातें जानता हो। २ विष्णुका एक नाम।

विदुर (सं० स्त्री०) वेदितुं शीलमस्य विदु-कुरच् (विदि-

विदलान्न (सं० श्लो०) १ पक्वशक्ति, पकाई हुई दाल ।
२ यह अन्न जिसमें दो दल हों । जैसे—चना, उड़द,
मूँग, अरहर, मसूर आदि ।

विदलित (सं० लि०) १ मर्दित, जिसका अच्छी तरह
दलन किया गया हो । २ रौंदा हुआ, मला हुआ ।
३ विकसित । ४ विदारित, फाड़ा हुआ ।

विदलीकृत (सं० लि०) चूर्णित, टुकड़े टुकड़े किया
हुआ ।

विद्वज (सं० लि०) विगता दशा यस्य (गोलियोधसखर्जनस्य
इति गोपत्याद्भवम् । पा १।२।४८) द्वाविहीन ।

विदा (सं० स्त्री०) विद् ज्ञाने (विद्भिदादिभ्योऽङ् । पा
३।३।१०४) इत्यङ् टाप् । ज्ञान, बुद्धि ।

विदा (हि० स्त्री०) प्रस्थान, रवाना होना । २ कहींसे
चलनेकी आज्ञा या अनुमति ।

विदाई (हि० स्त्री०) १ विदा देनेकी क्रिया या भाव, रुख-
सता । २ विदा होनेकी आज्ञा या अनुमति । ३ वह
धन आदि जो विदा होनेके समय किसीको दिया जाय ।

विदाद् भविष्यपुराण-वर्णित शाकद्वीपिप्राणियोंका चेद-
प्रत्यय । आजकल यह चोन्द्राद् नामसे प्रसिद्ध है । किसी
किमी ग्रन्थमें "विदुद्" प्रामादिक पाठ भी देखा जाता है ।
(भविष्यपु० १४ अ०)

विदान (सं० स्त्री०) विभाग कर देना ।
(शतपथब्रा० १।४।८।७।१)

विदाय (सं० पु०) विगतो दायः साक्षात् करणादिक्रय-
मृणं धेत् । १ विसर्जन । २ दान । ३ गमनानुमति,
जानेकी अनुमति, विदा । ४ प्रस्थान ।

विदायिन् (सं० लि०) विदातुं शीलं यस्य विदा-णिनि ।
१ दानकर्ता, दान करनेवाला । २ निषामक, जो ठीक
तरहसे चलाता या रखता हो । (स्त्री०) ३ विदाई देना ।

विदाय्य (सं० लि०) वेत्ता, जाननेवाला ।

विदार (सं० पु०) विद् घञ् । १ जलोच्छ्वास । २ विदा-
रण । ३ युद्ध, समर ।

विदारक (सं० पु०) विद्वणाति जलयानादीति विद्-
ण्डुल् । १ वह वृक्ष या पर्वत आदि जो जलके बीचमें
हो । २ नदियोंके तलमें बनाया हुआ गड्ढा जिसमें नदीके
सूक्ष्मे पर भी पानी बचा रहता है । (स्त्री०) ३ वज्रक्षार,
'नौसादर' । (लि०) ४ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारण (सं० स्त्री०) विद्-णिच् भावे ल्युट् । १ बीचमें
अलग करके दो या अधिक टुकड़े करना । २ मार
डालना, हत्या करना । ३ कनेर । ४ खपरिया । ५ नौसा-
दर । (पु०) विदार्यते शतवाऽस्मिन्निति विद्-णिच्
ल्युट् । ६ युद्ध, समर । ७ जैनोंके अनुसार दूसरोंके
पापों या दोषोंकी घोषणा करना । (लि०) विदारपतीति
विद्-णिच् ल्युट् । ८ विदारक, फाड़ डालनेवाला ।

विदारि (सं० स्त्री०) विदारिका देखो ।

विदारिका (सं० स्त्री०) विद्-णिच् ण्डुल्-टापि अत
इत्वं । १ शालपर्णी । २ गंभारी वृक्ष । ३ विदारो रोग ।
४ कड़वी तूबी । (स्त्री०) ५ वृद्धत्व-हिताके अनुसार
एक प्रकारकी डाकिनो जो घरके बाहर अन्नकोणमें
रहती है । (वृद्धत्व० १।३।८)

विदारिगन्धा (सं० स्त्री०) क्षपविशेष, शालपर्णी । अंग्रेजी-
में इसे Hedysarum gangeticum कहते हैं ।

विदारिन् (सं० लि०) विद्-णिनि । विदारणकर्ता,
फाड़नेवाला ।

विदारिणी (सं० स्त्री०) विदारिन् ङीप् । १ काशरोग,
गंभारी । २ विदारणकर्त्री ।

विदारो (सं० स्त्री०) विदारयतीति विद्-णिच् अच्
गौरादित्वात् ङीप् । १ शालपर्णी । २ भूमिकुष्माण्ड,
सुरिं कुम्हड़ा । पर्याय—क्षीरशुक्ला, इक्षुगन्धा, क्रोद्धी,
विदारिका, स्वादुगन्धा, सिता, शुक्ला, शृगालिका, रूष्य-
कन्दा, विडाली, वृष्यवल्लिका, भूकुष्माण्डी, स्वादुलता,
गजेष्ट, घारिवल्लभा और गन्धकला । गुण—मधुर,
शीतल, शुद्ध, सिन्धु, अल्पचित्तागक, कफकारक, पुष्टि,
धल और वीर्यवर्द्धक । (राजनि०)

३ भावप्रकाशके अनुसार अठारह प्रकारके कंठरोगों-
मेंसे एक प्रकारका कंठरोग । इसमें पित्तके विगड़नेसे
गले और मुँह पर लाली आ जाती है, जलन होती है
और बच्चुदार मांसके टुकड़े कट कट कर गिरने लगते
हैं । कहते हैं, कि जिस कवच रोगी अधिक सोता है,
उसी ओर यह रोग उत्पन्न होता है । गलरोग शब्द देखो ।

४ एक प्रकारका क्षुद्ररोग । इस रोगमें कक्षमें
और वक्षससिन्धुमें भूमिकुष्माण्डीकी जाहति जैसी
काली फुंसियां निकलती हैं । उसे विदारो वा विदारिका

कहते हैं। यह रोग त्रिदोषसे उत्पन्न होता है तथा इसमें त्रिदोषके समी लक्षण दिखाई देते हैं।

इसको, चिकित्सा—इस रोगमें पहले ज्वर द्वारा रक्त-मोक्षण करना उचित है। इसके एक जाने पर शल्य-प्रयोग करके ग्रन्थरोगकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।
(भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

प्रघात है, कि इसके एकके निकलनेसे लगातार ७ फुंसियां निकल आती हैं।

५ कर्णरोगभेद। (यामट उ० १७ थ०) ६ प्रमेह रोगकी एक पीड़का या फुंसी। (सुभ्रुत नि० ६ थ०) ७ सुवर्चला। ८ वाराहकन्द। ९ क्षीरकंकाली। १० यामटोंक गणविशेष। परण्डमूल, मेघशृङ्गो, श्वेत-पुनर्नवा, देवदारु, सुगानी, मायाणी, कंधाच, जोषक, शालपान, पिठवन, घृह्णो, वण्टकारी, गोशूर, अनन्त-मूल और हंसपदो इन्हें चिदाय्यांविगण कहते हैं। गुण—हृदयका हितजनक, पुष्टिकारक, घातपित्तनाशक तथा शोथ, गुल्म, गात्रवेदना, ऊदुर्ध्वश्वास और कासप्रशमक।
(भागट ४० ६५० १५)

विदारिकन्द (सं० पु०) विदारो, भुर्रं कुम्हड़ा।
विदारोगन्धा (सं० स्त्री०) विदार्या भूमिकुष्माण्डस्यैव गन्धो यस्याः। १ शालपर्णी। २ सुश्रुतके अनुसार शाल-पर्णी, भुर्रं कुम्हड़ा, गोकुल, विजयन्द, गोपवल्ली, पिठवन, शतमूत्री, अनन्तमूल, जीवन्तो, सुगवनं, पृहती, कंटकारी, पुनर्नवा, परण्डमूल आदि औषधियोंका एक गण। इस गणकी स। औषधियां यासु तथा पित्तकी नाशक और शोथ, गुल्म, ऊदुर्ध्वश्वास तथा खांसी आदि रोगोंमें हितकर मानी जाती हैं।

विदारोगन्धिका (सं० स्त्री०) विदारोगन्धा।
विदारोद्वय (सं० पु०) कुष्माण्ड और भूमिकुष्माण्ड, कुम्हड़ा और भुर्रं कुम्हड़ा। (वैचकनि०)

विदाह (सं० पु०) ककचपाद, एकलास, गिरगिट।
विदासिन् (सं० लि०) दस्यु। उपक्षेपे वि-दस-णिनि। उपक्षेपयुक्त।

विदाह (सं० पु०) वि-दह-घञ्। १ पित्तके प्रकोपसे होनेवाली जलन। २ हाथ पैरमें किसी कारणसे होनेवाली जलन।

विदाहक (सं० लि०) विदाह-स्वार्थे कन्। १ जो विदाह उत्पन्न करता हो। २ विदाह देखो।

विदाहयत् (सं० लि०) विदाहो विघतेऽस्य मत्तुप् मस्य व। विदाहयुक्त, जिसमें ज्वाला वा जलन हो।

विदाहिन (सं० स्त्री०) विदहतीति वि-दह-णिनि। १ दाहजनक द्रव्य, वह पदार्थ जिससे जलन पैदा हो। (लि०) २ दाहजनक।

विदिकचङ्ग (सं० पु०) हरिद्राङ्ग पक्षी।

विदित (सं० लि०) विद-क्त। १ अवगत, ज्ञात, जाना हुआ। २ अर्थित। ३ उपगम। विदितं ज्ञानमस्या-स्तीति अर्थे आदिच्। (पु०) ४ कवि। ५ ज्ञाना-श्रय।

विदिथ (सं० पु०) १ पण्डित, विद्वान्। २ योगी।
विदिथ् (सं० स्त्री०) दिग्भ्यां विगता। दो दिशाओंके बीचका कोना। जैसे—अग्नि या ईशान आदि। पर्याय—अपदिश, प्रदिश, कोण।

विदिशा (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार पारिपात वर्चतपाद् से निकली हुई एक नदीका नाम। (मार्क०पु० ५७।२०) २ वर्त्मान मिलसा नगरका प्राचीन नाम। भगवता देसा।
विदीगय (सं० पु०) पक्षाविशेष, सफेद बगला।
(तैत्ति० ४० ५।६।२।२।१)

विदीधयु (सं० लि०) १ विलम्ब, देर। २ दीर्घशून्य, आभाहीन।

विदीधिति (सं० लि०) विगता दीधितयाः किरणानि यस्य। निर्मूल, किरणहीन।

विदीपक (सं० पु०) प्रदीपक, दीआ।

विदीर्ण (सं० लि०) वि-दू-क्त। १ बीचसे फाड़ा या विदारण किया हुआ। २ भग्न, टूटा हुआ। ३ हत, मार डाला हुआ।

विद्यु (सं० पु०) घेति संश्रामनेनेति-विद्य-धादुलकात् कु। १-हाथोंके मस्तकके बीचका भाग। २ घोड़ेके कानके बीचका भाग।

विद्युत्तम (सं० पु०) विदां-ज्ञानिनो उत्तमाः। १ सर्वज्ञ, वह जो सब बातें जानता हो। २ विष्णुका एक नाम।

विदुर (सं० लि०) वेदितुं शीलमस्य विदु-कुरष् (विदि-

भिदिच्छिद्रेः कुरच् । पा ३।२।१२) १ वेसा, जाननेवाला । २ नागर, चालाक । ३ पड़पन्तकारी । ४ घोर, पण्डित, ज्ञानी । (पु०) ५ स्वनामधेयता कौरवमन्त्री, धर्मके प्रवृत्तारविशेष । धर्मने माण्डव्य ऋषिके वाल्यकृत सामान्य अपराध पर उन्हें कठोर दण्ड दिया । इस पर माण्डव्यने धर्मको शाप दिया कि, 'तुम शूद्रयोनिमें जन्म लोगे ।' इधर जब कुरुवंशीय विचित्रवीर्यको पत्नी काशीराजकन्या अन्विकाको जब उनकी सास सत्यवतीने दूसरी बार कृष्ण-द्वैपायन द्वारा पुत्रोत्पादन करने कहा, तब उन्हें यह बात पसन्द न आई, क्योंकि वे महर्षिको उस कृष्णवर्ण देह, पिङ्गलवर्ण जटा, विशाल श्मश्रु और तेज-पुञ्ज सदृश प्रदीप्त लोचनोंसे भय खाती थी । इसलिये उन्होंने एक सुन्दरी दासीको अपने वेशभूषादि द्वारा भूषित कर ऋषिके समोप भेज दिया । इस दासीके गर्भसे महर्षि कृष्ण-द्वैपायनके औरससे धर्म ही महात्मा विदुर रूपमें उत्पन्न हुए । वे राजनीति, धर्म-नीति और अध-नीति विषयोंमें परमकुशल, क्रोधलोभविर्वाजित, शम-परायण तथा अद्वितीय परिणामदर्शी थे । इस परिणाम-दर्शिताके गुणसे इन्होंने पाण्डवोंको भारीसे भारी विपद्-से बचाया था । महामति भीष्मने महर्षिपति देवककी शूद्राणो गर्भसम्भूता रूपर्योवनसम्पन्ना एक कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया । विदुरने उस पारशवी कन्यासे अपने जैसे गुणवान् और विनयसम्पन्न कितने पुत्र उत्पादन किये ।

जब दुष्ट दुर्योधनकी क्रुमन्त्रणासे धृतराष्ट्रने यथासर्वात्स दंडपनेकी इच्छासे युधिष्ठिरादिका जतुगृह दाह द्वारा विनाश करनेका सङ्कल्प किया और इसी उद्देशसे उन्हें छलनापूर्वक चारणावत नगरमें भेजा, तब पाण्डवोंने केवल महाप्राज्ञ विदुरके परामर्श तथा कार्याकुशलतासे ही उस विपद्से मुक्तिलाभ किया था । इस समय विदुरने युधिष्ठिरको सलाह दी थी कि, 'जहां रहोगे उसमें निश्चयही चारों ओरका पथघाट इस प्रकार ठीक कर लेना जिससे अंधेरी रातको भी संयोगवशतः जाने जानें कि किसी प्रकारका विघ्न न हो और वह भी याद रखना कि यदि रातको दिग्भ्रम हो जाय, तो नक्षत्रादि द्वारा भी दिशाका निरूपण हो सकता है ।' इस तरह

अनेक प्रकारके सत्परामर्श देनेके बाद इन्होंने अपने एक विश्वस्त जनकको चारणावत नगरमें भेज दिया । सन-ने छोड़े ही समयमें पाण्डवोंके रहनेके लिये बलिष्ठ जतुगृहके नोचसे शङ्करी गृहकी तरह दोनों ओर निर्गमन पथ युक्त एक विचर छोड़ डाला । जिस दिन जतुगृहमें आग लगाई गई थी, उस दिन माताके साथ पाण्डवगण विदुरके पूर्ण परामर्शानुसार उसी सुरङ्गसे बाहर निकल गये थे ।

इस घटनाके कुछ समय बाद पाण्डवगण द्रौपदीको जीत कर अपने घर लौटे और इन्द्रप्रस्थनगरोमें उन्हीं राजधानी बसाई । यहाँ कुछ समय बाद उन लोगोंने राजसूययज्ञ किया । इस यज्ञमें उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा मिली । दुष्ट महाभिमानी दुर्योधन पाण्डवोंको प्रतिष्ठा देख जलने लगा और फिर उनके पीछे पड़ा । इस बार उसने पाण्डवोंको राज्यभ्रष्ट और विनष्ट करनेकी इच्छासे गङ्गि-को बुलाया और उसके बहकानेसे द्यूतकाङ्गामें उन्हें परास्त कर निर्वारित करना हो श्रेय समझा । तदनुसार धृतराष्ट्रको इसको खबर दी गई । धृतराष्ट्रने पुत्रके अनु-रोधसे पहले ब्राह्मणवर मन्त्री विदुरसे इस विषयमें समति मांगी थी । राजनीति-कुशल दूरदर्शी विदुरने इस कार्यमें भावी महान् अनिष्टको सम्भावना दिखलाते हुए जुभा खेलनेसे मना किया था । किन्तु स्वार्थसिद्धिके सामने उनकी सलाह क्या काम देती ? यह मन्त्री विदुर जो कुछ कहते, उसे धृतराष्ट्र अपने विरुद्ध समझता था । न्यायपरा-यणताके वशवर्ती हो विदुर कमो भी पाण्डवोंके विरुद्ध खड़े नहीं होते थे, यही इसका एकमात्र कारण था । अतएव धृतराष्ट्रने विदुरकी सलाह न सुन कर उनकी इच्छा नहीं रहते हुए भी द्यूतकोड़ाके लिये युधिष्ठिरको लाने इन्हें इन्द्रप्रस्थ भेजा । इसी अश-क्रोड़ाके फलसे पाण्डवोंको तेरह वर्ष वनमें और एक वर्ष अज्ञातवासमें विराटराजके यहाँ रहना पड़ा । इस व्यापारमें भी महारामा विदुरने पाण्डवोंकी रक्षाके लिये कोई कसर उठा न रखी थी, पर इसमें वे हस्तकार्य न हो सके ।

इसके बाद कुदृशैवयुद्धके प्रारम्भमें एक दिन रातको धृतराष्ट्रने अत्रश्यम्भाको महासमरका विषय सोचने हुए क्रिकर्तव्यविमूढ़ हो विदुरको बुला कर कहा, 'विदुर ! मैं

चिन्तारूपी अगलमें दब्य हो रहा हूँ, आज मुझे जरा भी नींद नहीं आती, अतएव जिससे अभी मुझे कुछ आनन्द मिले, वैसे ही विषयका कथोपकथन करो।' इसके उत्तरमें स्वार्थतत्त्वदर्शा महाप्राज्ञ विदुरने जो धर्ममूलक मोति-गर्भ उपदेशवाक्य कहना आरम्भ किया, उसके शेष होते न होते रात बीत गई। महाभारतमें यह प्रस्तावमूलक अध्याय 'प्रजागरपवाध्याय' नामसे वर्णित है। विदुरने इस अध्यायोक्त भूरि भूरि सारगर्भ उपदेश द्वारा स्वार्थलोलुप धृतराष्ट्रके मनको बहुत कुछ नरम कर दिया था, किन्तु वे सम्पूर्ण कृतकार्य न हो सके थे। धृतराष्ट्रने उनसे कहा, 'विदुर ! मैं तुम्हारे श्रेय 'सद्बुक्तिपूर्ण उपदेशोंकी हृदयङ्गम कर उसके प्रसार्थसे अच्छी तरह अवगत हो गया हूँ, परन्तु इससे होगा क्या ? दुर्योधनका जब क्याल आता है, तब बुद्धि पलाटा खा जाती है। इससे मैं अच्छी तरह समझता हूँ, कि दैवको अतिक्रम करना किसोका भी साध्य नहीं, दैव ही प्रधान है, पुरुषकार निरर्थक है।'

इसके बाद स्वर्ण भगवान् श्रीकृष्णके दूत-रूपमें हस्तिनापुर आने पर दुर्योधनने उचित स्वागत कर उन्हें अपने यहां निमन्त्रण किया। किन्तु भगवान् सहमत न हुए और बोले, "दूतगण कार्य समाप्त करके ही भोजन और पूजा करते हैं' अथवा लोगोंके विषय होने या किसीके प्रीतिपूर्वक देनेसे वे दूसरेका अन्न भोजन करते हैं, मेरा कार्य सिद्ध नहीं हुआ, मैं विषय भी नहीं' और न आप मुझे प्रीतिपूर्वक देते हो हैं, अतएव इस क्षेतमें सर्वात्र समदर्शी परमधार्मिक न्यायपरायण विशुद्धात्मा महाप्राज्ञ विदुरके सिवा और किसीके यहां आतिथ्य स्वीकार करना मैं अच्छा नहीं समझता।" इतना कह कर वे विदुरके घर चले गये। महात्मा विदुर योगिजनदुर्लभ भगवान्को अपने घरमें पा कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कायमनवाक्यसे सर्वोपकरण द्वारा उनकी पूजा की और अति पवित्र विविध मिष्टान्न तथा पानीय द्रव्य उन्हें प्रदान किया।

कुरुक्षेत्र युद्धके बाद पाण्डवोंने राज्य लाभ कर छत्तस वर्ष तक उसका उपभोग किया। उनमेंसे पन्द्रह वर्ष धृतराष्ट्रके मतानुसार उनका राज्य चलता रहा। इस समय भी महाप्राज्ञ विदुर धृतराष्ट्रके मन्त्री रह कर उन्हींके आदेशानुसार धर्म और व्यवहारविषयक कार्य देखते थे। महाप्राज्ञ विदुरकी सुनोति और सद्बुद्धव्यवहारसे बहुत कम खर्चमें सामन्तराजाओं द्वारा कितने प्रियकार्य सुसम्पन्न होते थे। उनके व्यवहारतत्त्व (मामला मुकदमा)को आलोचनाके समय उनसे अनेक आवद्ध व्यक्ति बध्दन्तुक होते थे तथा कितने वचार्ह व्यक्ति भी प्राणदान पाते थे। शीवायस्थामें मोक्षे-इती प्रकार विपुल कीर्तिके साथ पन्द्रह वर्ष तक धृतराष्ट्रके मन्त्री रह कर आश्रित उन्हींके साथ घनको चल दिये।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रसे मिलनेकी कामनासे उनके आश्रममें गये। उनके साथ विविध कथोपकथनके बाद धर्मराजने उनसे पूछा, "आपका, मेरी माता कुन्तीका और उपेष्टमाता गान्धारीका, महारामा प्राज्ञतम पितृव्य विदुर आदि सभी श्रेष्ठ व्यक्तिओंका धर्म कर्म किस प्रकार चलता है तथा तपोऽनुष्ठानकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है वा नहीं ?" उत्तरमें अश्वराज धृतराष्ट्रने कहा, "वत्स ! सभी अपने अपने धर्मकर्ममें

पूजन किया। धर्म और कोई खाद्यद्रव्य न रहनेके कारण उनका दिया हुआ केला ही वे बड़े आनन्दसे खाने लगे। इस समय विदुर राजसभामें थे। उनकी भगवान्के आनेकी खबर पाते ही वे घरकी ओर दौड़े।

दूसरी किंवदन्ती है, कि भगवान् जब विदुरके घर गये, तब विदुर दरिद्रतावशातः अन्य किसी प्यालवा-प्रीका संग्रह न कर सके और धर्ममें पड़लेते रखा हुआ जो चावलका कण था उसीसे उन्होंने भगवान्का आतिथ्य सत्कार किया। भगवान् भी परमभक्त विदुरके दिये हुए उस कणको खा कर परम सन्तुष्ट हुए। आज भी क्या घनी, क्या दरिद्र सभी आमन्त्रित व्यक्तिके लिये काये गये खाद्य द्रव्यको भक्ष्यता या व्यपकृत्यता दिव्यशक्तिये हुए कहते हैं "महाशय ! यह मेरे विदुरके कण हैं भयोन् यह आप जैसे महद्बुद्धिके शोभ्य नहीं।"

* भक्तमाल ग्रन्थमें लिखा है, कि विदुरकी अनुपस्थितिमें ही भगवान् उनके घर पधारे थे। उनको खाने विशेषरूपसे उनका Vol. XXI. 90.

निरत रह कर सुखसे समय बिताने हैं, किन्तु अगाध-
बुद्धि विदुर अनाहार रह कर अस्थिरचर्मावशिष्ट हो घोर
तपस्या कर रहे हैं। ब्राह्मणगण कभी कभी इस कानन-
के अति निर्जन प्रदेशमें उनके दर्शन पाते हैं।"
दोनोंमें इस प्रकार बातें चल रही थीं, कि इसी समय
मलदिग्धाङ्ग जटाधारी दिग्भर महात्मा विदुर उस
आश्रमके समीप ही दिखाई दिये। किन्तु वे एक बार
आश्रमका दर्शन करके ही हठात् लौट गये। धर्मपरायण
युधिष्ठिर उनके पीछे पीछे दौड़े। महात्मा विदुर क्रमशः
निविड अरण्यमें प्रवेश करने लगे। यह देख कर धर्मराज
ने कष्ट खरसे चिन्ता कर कहा, 'हे महात्मन् । मैं आपका
मिय युधिष्ठिर हूँ। आपके दर्शन करने आया हूँ।'
कष्ट खर सुन कर विदुर उसी विजन घिपिनमें एक
गृक्ष पकड़ कर खड़े रह गये। धर्मराजने अस्थि-
चर्मावशिष्ट महात्मके समीप जा कर फिर कहा,
"प्रभो ! मैं आपका मियतम युधिष्ठिर हूँ, आपसे साक्षात्
करने आया हूँ।" इस पर विदुरने कुछ भी उत्तर न दिया,
केवल एक दृष्टिसे धर्मराजकी ओर देखने लगे तथा योग-
बलसे युधिष्ठिरकी दृष्टिमें दृष्टि, गात्रमें गात्र, प्राणमें प्राण,
इन्द्रियमें इन्द्रिय संयोजित कर उनके शरीरमें प्रविष्ट
हुए। उस समय उनका शरीर कठपुतलीकी तरह
स्तब्ध और विचेतन हो उसी गृक्ष पर लटक रहा। अमो
धर्मराज युधिष्ठिर अपनेको पहलेसे अधिक बलशाली
समझने लगे तथा वैद्व्यासकथित अपना पुराना
वृत्तान्त उन्हें स्मरण होने लगा। अनन्तर वे जब विदुर-
के शरीरको दग्ध करने तय्यार हुए, तब आकाशवाणी
हुई कि, "महाराज ! महात्मा विदुरने यतिधर्म प्राप्त किया
है, अतएव आप उनका शरीर दग्ध न करें, वे सन्तानिक
नामक लोक प्राप्त कर सकेंगे, इसलिये आप उनके
लिये कुछ शोक भी न करें।" धर्मपरायण युधिष्ठिर इस
प्रकार दैववाणी सुन कर विदुरका शरीर न जला कर
अंधराजके आश्रममें लौट आये।

विदुर—एक वैष्णवमक। यह निष्काममायमें सर्वदा वैष्णव-
सेवामें निरत रह कर जैतारण प्राप्तमें रहते थे। वैष्णव-
के प्रति एकान्त रति रहनेके कारण भगवान् विष्णु इन पर
बड़े प्रसन्न हुए थे। किसी समय बहुत दिनों तक अना-

शुष्टि रही, खेतों बिलकुल होने न पाई, घरमें बीज तक न रह
गया। यह देख विदुरको बड़ी चिन्ता हुई, कि बिना
अन्नके वैष्णवकी सेवा किस प्रकार होगी ? भगवान् उनकी
वैष्णव-सेवाके प्रति ऐकान्तिकता देख उन पर बड़े प्रसन्न
हुए तथा रात्रिको उन्हें स्वप्न दिया कि, 'विदुर ! तुम
प्रसन्न हो कर खेतोंधारी करो, आवश्यकतानुसार अवश्य
फल उत्पन्न होगी, तुम्हारी वैष्णव-सेवामें जरा भी
विघ्न न होगा।' प्रातःकाल होने पर विदुरने वैसा ही
किया जैसा रातको स्वप्नमें कहा गया था।
थोड़े ही समयमें आशातीत शस्य उत्पन्न
हुआ। उनके घरमें प्रचुर शस्यकी आमदनी होने लगी।
यह देख उन्होंने ईश्वरको आन्तरिक धन्यवाद दे अपनेको
धन्यधन्य समझा।

विदुरता (सं० स्त्री०) विदुरका भाव।

विदुल (सं० पु०) विशेषेण दीलयतीति विदुल-क।
१ चेतस, चेत। २ अमलचेतस, अमलचेत। ३ बोल या
गंधरस नामक गन्धद्रव्य।

विदुला (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका धूर। इसे सातला
भी कहते हैं। २ विदुलद्विर।

विदुला—महाराज सौवीरकी महाराणीका नाम। यह
चोरवाला तथा गुणवती थी। इसके सामीकी मृत्यु
होने पर सिन्धुराजने इसके राज्य पर आक्रमण किया था।
प्रयत्न शत्रुके आक्रमणसे इसका पुत्र सञ्जय बड़ा भीत
हुआ था। परन्तु माता विदुलाके उत्साहसे उत्साहित
हो कर सञ्जयने युद्ध किया और अपने पिताके राज्यका
उद्धार किया। विदुलाके उपदेश प्रत्येक सत्पुत्र कह-
लानेके अभिलाषियोंको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

(महाभारत)

विदुप (सं० पु०) विद्वान्, पण्डित।

विदुपी (सं० स्त्री०) वेत्तीति विदेः शतृवसुः उदिगश्चेति-
डीप। विद्वान् स्त्री, पदवी हुई स्त्री।

विदुपोतरा (सं० स्त्री०) अयमनयोरतिशयेन विदुपी,
विदुपो-तरप्। दो स्त्रियोंमेंसे जो अधिक पण्डिता हो।

विदुष्कृत (सं० स्त्री०) निष्पाप। (कौश० उ० १५)

विदुष्टर (सं० स्त्री०) विद्वत्तरप्। विद्वत्तर, दो
विद्वानोंमेंसे जो श्रेष्ठ हो।

विदुष्यम्त (सं० त्रि०) विद्वानस्ति अस्यामिति विद्वस्-
मत्पु। विद्वद्व्युक्त, पण्डितसमन्वित।

विद्वन्मती (सं० स्त्री०) पण्डिता स्त्री।

विदुस् (सं० त्रि०) विद्वान्, पण्डित।

विदू (सं० पुं०) विदु, हाथीके मस्तकके बीचका भाग।

विदूर (सं० त्रि०) विशिष्ट दूर पक्ष। १ अतिदूरस्थित,
जो बहुत दूर हो। (पुं०) २ बहुत दूरका प्रदेश। ३ एक
देशका नाम। ४ एक पर्वतका नाम। कहते हैं, कि
वैदूर्यमणि इसी पर्वतमें मिलती है। ५ मणिविशेष।

वैदूर्य देखो।

विदूरग (सं० त्रि०) विदूरे गच्छतीति-गम ड। अति-
दूरगन्ता, बहुत दूर जानेवाला।

विदूरज (सं० स्त्री०) विदूरे पचते जायते जने-ड। १
विदूरपर्वतजात रत्न, विदूर पर्वतसे उत्पन्न वैदूर्य मणि।
२ (त्रि०) अतिदूरजात, बहुत दूरमें उत्पन्न होनेवाला।

विदूरत्व (सं० स्त्री०) विदूरस्य भावः त्व। विदूर होने-
का भाव, बहुत अधिक दूर होना।

विदूरथ (सं० पुं०) १ पुराणानुसार एक राजाका नाम।
(गर्भपुं० ८७ अ०) २ कुक्षेत्र। (भारत १६५।३६)

३ घृष्णिवंशोप एक राजाका नाम। इनके पुत्र शूर थे।

विदूरभूमि (सं० स्त्री०) विदूरस्य भूमिः। विदूर नामक
देश। कहते हैं, कि वैदूर्यमणि इसी देशमें होती है।

विदूरविगत (सं० पुं०) अन्तपत्र।

विदूराद्रि (सं० पुं०) विदूरनामकोऽद्रिः। विदूर पर्वत।
(जटाधर)

विदूषक (सं० त्रि०) विदूषयति आत्मानामिति विदूष्य-
णिच्-ण्युलु। १ कामुक, यह जो बहुत अधिक विपयी
हो। पर्याय—विडम्ब, व्यलोक, पटप्रह, कामकेलि, पीठ-
केलि, पीठमह, भविल, छिदुर, विट, चाटुवट्ट, वास-
न्तिक, केलिकल, वैहासिक, प्रहासी, मोतिद। (हेम)
२ परनिन्दक, यह जो दूसरोंकी निन्द्या करता हो।
पर्याय—खल, रङ्गक, अमीक, क्रूर, सूचक, कण्ठक, नाग,
मलनास्य, परद्वेषी। (शब्दमाला)

३ चार प्रकारके नायकोंमेंसे एक प्रकारका नायक।
पीठमह, विट, चेट और विदूषक यही चार प्रकारके
नायक हैं। यह अपने कौतुक और परिहास आदिके

कारण कामकेलिये सहायक होता है। इसे भाँड़ भी
कह सकते हैं।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि नाटकआदिमें जो कुसुम-
वसन्तादिके नामसे तथा वसन्त वा उस ऋतुसम्बन्धीय
किसी भी नामसे पुकारा जाता है और जिसकी क्रिया,
हाय भाव, वेशभूषा और वातचीतसे लोगोंके मनमें हंसी
उत्पन्न होती है, जो अपने कौशलसे दो आदमियोंमें भगड़ा
करता है, जो अपना पेट भरना या स्वाथसिद्ध करना
खूब जानता है, उसीको विदूषक कहते हैं। यह विदूषक
तथा विट, चेट आदि नायक शृङ्गार रसमें सहायक तथा
मानिनो नायिकाको मनानेमें बहुत कुशल देते ५।

प्राचीन कालमें राजाओं और बड़े आदमियोंके
मनोविनोदके लिये उनके दरबारमें इस प्रकारके मसखरे
रह करते थे जो अनेक प्रकारके कौतुक करके वेशकूप
बन कर अथवा बात बना कर लोगोंको हंसीया करते
थे। प्राचीन नाटक आदिमें भी इन्हे यथेष्ट स्थान मिला
है, क्योंकि इनसे सामाजिकका मनोरञ्जन होता है।

(त्रि०) ४ दूषणकारक। (भागवत० ५।६।१०)

विदूषण (सं० स्त्री०) वि दूष-ण्युट्। किसी पर विशेष
रूपसे दोष लगानेकी क्रिया, पेव लगाना।

विदूषणा (हिं० स्त्री०) १ सताना, दुःख देना। २ दोष
लगाना, दोषों उद्हराना। ३ दुःखी होना, पीड़ाका अनुभव
करना।

विदूति (सं० स्त्री०) मस्तकहीन, यह स्त्री जिसे स्तिर न
हो। (ऐतरेय उप० ३।१२)

विदूह (सं० त्रि०) विगतौ दूर्गां चक्षुषी यस्य। अन्ध,
जिसे दिखाई न पड़े।

विदेघ (सं० पुं०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ विदेह।
विदेह देखा।

विदेव (सं० पुं०) १ राक्षस। (अथर्व० १२।३।४३) २ यज्ञ।
(काठक २६।६)

विदेश (सं० पुं०) विप्रकृष्टो देशः। अपने देशको छोड़
कर दूसरा देश, परदेश।

विदेह (सं० पुं०) विगतो-वेदो देहसम्बन्धो यस्य। १ राजा
जनक। जनक देखा। २ प्राचीन मिथिला (वर्तमान तिर-
हुत)का एक नाम। ३ इस देशके निवासी। ४ राजा
निमिका एक नाम। निमि देखा।

(त्रि०) ५ कायशून्य, जो शरीरसे रहित हो। (भागवत ३।१०।७।२६) ६ पाटकीशिक देहशून्य, जिनके माता-पितृज पाटकीशिक शरीर न हो। देवताओंको विदेह कहा जाता है। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है—“भवप्रत्ययो विदेह-प्रकृतिलयानां।” (पातञ्जलसू० १।१६)

जो आत्मासे भिन्न अर्थात् जो आत्मा नहीं है उनको अर्थात् भूत, इन्द्रिय और प्रकृतिको आत्मरूपमें उपासना करते हैं उन्हें विदेह या देवता कहते हैं। इन सर्वोंको समाधि भवप्रत्यय अर्थात् अविद्यामूलक है।

वे लोग जो सिद्धि लाभ करते हैं, उसके मूलमें अविद्युपा रहती है। उसका समूल छेद या नाश नहीं होता। इसका तात्पर्य यह कि निराध समाधि दो प्रकारकी है, श्राद्धादि उपायजन्य और ब्रह्मानुमूलक। इनमेंसे उपाय जन्य समाधि योगियोंके लिये होता है। विदेह अर्थात् माता-पितृज देह रहित देवताओंको भवप्रत्यय (अज्ञानमूलक) समाधि होती है। यह विदेह देवगण केवल संस्कार-विशिष्ट चित्तयुक्त (इस चित्तमें किसी प्रकारकी वृत्ति नहीं रहती, चित्तका संस्कार होनेके कारण उसकी वृत्तिपाँ तिरोहित हुई है, अतएव यह चित्त दग्ध वीजभाव होनेसे संस्कृत हुआ है) हो कर मानो कैवल्य पदका अनुभव करते करने इसी प्रकार अपने संस्कार अर्थात् धर्मके परिणामको गौणमुक्ति अवस्थामें विताते हैं।

चौबीस जड़तत्त्वके उपासकोंको ही विदेह और प्रकृति-लय कहा है। केवल विकार अर्थात् पञ्चमहाभूत और एकादश इन्द्रिय इन सोलह पदार्थोंमेंसे किसी एक-को आत्मा समझ उसकी उपासना कर जो सिद्धि लाभ करते हैं उन्हींको विदेह कहते हैं।

प्रकृति शब्दसे केवल मूल प्रकृति और प्रकृति-विकृति (महत् अहङ्कार और पञ्च-तन्मात्र) समझी जायेगी। उक्त भूत, इन्द्रिय और प्रकृतिके उपासक सिद्धि लाभ करके मुक्तकी तरह अवस्थान करते हैं। भाष्यमें “प्रकृतिलीने वैकल्यपदमिधामयन्ति” प्रकृतिलीने विदेहोंका जो कैवल्य कहा है, उस कैवल्य शब्दसे निर्वाणमुक्ति न समझी जायेगी, गौणमुक्ति अर्थात् सायुज्य, सालोभय और सामीप्य समझा जायेगा। इन मुक्त विदेहोंके स्थूल शरीर नहीं है, चित्तकी वृत्ति भी नहीं है, यह मुक्तिका

सादृश्य है। संस्कार है, चित्तका अधिकार है, यह मुक्तिका त्रयन है, इसीलिये भाष्यकारने ‘वैकल्यपदमिव’, इस शब्दका व्यवहार किया है। इस शब्दसे किसी किसी रूपमें भेद और किसी रूपमें भवेद समझा जायेगा।

भोग और अपवर्ग ये दोनों, चित्तके अधिकार हैं। आत्मतत्त्वर साक्षात्कार होने हीसे अपवर्ग होता है। अनप्य जब तक चित्त आत्मतत्त्व-साक्षात्कार न कर सके, तब तक चाहे जिस किसी अवस्थामें क्यों न रहे, अवश्य लौट आना पड़ेगा। विदेह या प्रकृतिलयोंकी मुक्तिको स्वर्गावशेष कहा जा सकता है। क्योंकि, इसीसे प्रच्युति है। परन्तु कालका न्यूनतिरेक मात्र है। स्वर्ग-कालसे अधिककाल सायुज्यादि मुक्ति रहती है तथा आत्मज्ञान लाभ कर निर्वाणमुक्तिलाभकी भी सम्भावना है। चाहे जितना भी क्यों न हो, उक्त सभी ब्रह्मानुमूलक है अर्थात् अनात्माकी आत्मा जानना उसके सम स्थलोंमें है। इस कारण भगवान् शङ्कराचार्यने इस गौण-मुक्तिके प्रति जरा भी विश्वास न किया।

विदेहादिका मुक्तिकाल-विषय ब्रह्माण्डपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

हृन्दिपोपासकीका मुक्तिकाल दश मन्वन्तर, सुतम् भूतोपासकीका सौ मन्वन्तर, अहङ्कारोपासकीका हजार मन्वन्तर, बुद्धि उपासकीका दश हजार तथा प्रकृति उपासकीका मुक्तिकाल लाख मन्वन्तर है। ७१ दिव्य-युगका एक एक मन्वन्तर होता है। निर्गुण पुरुषको पानेसे अर्थात् आत्मज्ञान लाभ करनेसे कालपरिमाण नहीं रहता, तब फिर उन्हें लौटना नहीं पड़ता।

भाष्यकारका विषय है, कि विदेहोंका चित्त इस दीर्घ-काल प्रकृतिमें सम्पूर्ण लीन रह कर भी पुनः उक्त मुक्तिके बाद ठीक पूर्वरूपको धारण करता है। लयके पहले चित्त जैसा था, लयके बाद भी ठीक वैसा ही होता है। (पातञ्जल०)

विदेहक (सं० पु०) १. पुराणानुसार एक पर्यतका नाम। २ एक धर्मका नाम। (श्रुतस्यमा० १।२१२)
विदेहकूट—जैन पुराणानुसार एक पर्यतका नाम।
विदेहकैवल्य (सं० कृ०) विदेह कैवल्य कर्मधा०। निर्वाण

मोक्ष। जीवन्मुक्तके देहावमानके बाद जो निर्वाणमोक्ष लाभ होता है, उसे विदेहकैवल्य कहते हैं। उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते हैं, इस जगद् लीन हो जाते हैं। अर्थात् उसके मोक्ष लाभ होता है। भोग द्वारा प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होनेसे जीवन्मुक्त व्यक्तिके वर्तमान शरीर पतन होनेके बाद जो निर्वाणमोक्ष लाभ होता है, उसे अस्तप्रज्ञात मगधि कहते हैं।

विदेहत्व (सं० क्लो०) १ विदेह होनेका भाव या धर्म। २ मृत्यु, मौत, शरीरका नाश।

विदेहपति—१ एक प्राचीन आयुर्वेदविद्व। चागभट्टने इनका उल्लेख किया है। २ विदेह नामक स्थानके अधिपति, जनक।

विदेहपुर (सं० क्लो०) राजा जनककी राजधानी, जनकपुर।

विदेहा (सं० खो०) मिथिला नगरी और उस प्रदेशका नाम।

विदेहिन (सं० पु०) ब्रह्म।

विदेश (सं० त्रि०) दोपरहित, जिसमें किसी प्रकारका दोष न हो, वैश्व।

विदेश (सं० पु०) विशेषरूपसे देहान।

विद्व (सं० त्रि०) विद्यपते स्मेति, व्यपक। १ छिद्रित, बीचमेंसे छेद किया हुआ। २ क्षिप्त, फेंका हुआ। ३ सट्टण, समान, तुल्य। ४ वाधित, जिसमें बाधा पड़ी हो। ५ ताडित, याहत, जिसको चीट लगी हो। ६ प्रेरित, भेजा हुआ। ७ मक, टेढ़ा। (पु०) ८ सधियात। (क्लो०) ९ सद्योगविशेष।

विद्वक (सं० पु०) मृत्तिकाभेदकारी यन्त्रविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका यन्त्र जिससे मिट्टी छोटी जाती थी।

विद्वकर्ण (सं० पु०) अकवनादि।

विद्वत्व (सं० क्लो०) विद्वका भाव या धर्म।

विद्वपर्कटी (सं० खो०) गुल्मभेद (Pongamia glabra)।

विद्वमण (सं० क्लो०) यह सूजन जा शरीरके किसी अंगमें कटिनी मोरुके चुगने या दूट कर रह जाने-सी होती है।

विद्व (सं० खो०) एक प्रकारका शूद्ररोग जिससे शरीरमें बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं।

विद्वि (सं० खो०) व्यपक्ति (ग्रहणभावविद्यविश्वविचि-
वृन्वति पृच्छतिभूजतीनां इति च इति सम्प्रसारणम्। पा
६ ११६) आघान करना, मारना।

विद्यन् (सं० क्लो०) विद्यन इति विद्व-मनि (भावे)।
१ ज्ञान। २ मोक्षार्थ ज्ञान, परमार्थ-ज्ञान।

विद्यनापत् (सं० त्रि०) ज्ञान द्वारा व्याप्त या छातकर्म,
जो सब कर्मोंसे अवगत हो।

विद्यमान (सं० त्रि०) विद्-शानच्। वर्त्तमान, उपस्थित,
मौजूद।

विद्यमानता (सं० खो०) विद्युयमान होनेका भाव, उप-
स्थिति, मौजूदगी।

विद्यमानत्व (सं० क्लो०) विद्युयमानत्व भाव त्व। विद्य-
मान होनेका भाव, उपस्थिति, मौजूदगी।

विद्या (सं० खो०) विद्यनेऽतो इति विद्-संज्ञायाम् ष्यप्,
स्त्रियां टाप्। १ दुर्गा। (शब्दरत्ना०) २ गणिकारिका
गनियारी। ३ ज्ञान अर्थात् मोक्ष विषयमें बुद्धि। "मोक्षे
धोर्ज्ञानम्॥" (भर)

जिसके द्वारा परमपुरुषार्थका साधन होता है उसका नाम विद्युया है। यह विद्युया ब्रह्मज्ञानस्वरूपा है। परमात्म ब्रह्मज्ञान ही पुरुषार्थसाधन है। विद्या द्वारा इस पुरुषार्थका साधन होता है, इसीसे इसको ब्रह्मज्ञानरूपका कहा है।

४ विद्याहेतु शास्त्र। यह अठारह प्रकारका है। छः अङ्ग (शिक्षा, कला, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और निरुक्त) चार वेद (सान, ऋक्, यजुः और अथर्व), मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र और अर्थशास्त्र, यही अठारह विद्या है।

मनु कहते हैं, कि नीचसे भी उत्तमा विद्युया प्रदण की जा सकती है।

"अद्वयानः शुभा विद्यामाददीतावरादपि।

अन्त्यादपि परं धर्मं स्वीरजं दुष्कृ लादपि ॥"

(मनु २ अ०)

पुराणमें लिखा है, कि जो बाल्यकालमें विद्युयाध्ययन नहीं करते, वे इस जगत्में पशुकी तरह विचरण करते हैं। जो माता पिता अपने बालकोंको विद्युयाध्ययन नहीं कराते, वे शत्रुस्वरूप हैं। हंसमें बगला जिस प्रकार गोमा नहीं पाता, उसी प्रकार विद्याहीन मनुष्य इस जगत्में नहीं शोभता।

“माता जन्मः पिता वैरी बालो येन न पाठितः ।
न शोभते, समामध्ये ह'समध्ये वको यथा ॥”

(गण्डपु० ११० अ०)

विद्या रूप और धन बढ़ाती है, विद्या द्वारा मनुष्यका प्रिय होता है, विद्या गुहको गुह है, विद्या परम धन्य है, विद्या श्रेष्ठ देवता तथा यज्ञ और कुलकी उन्नति करनेवाला है। चोर सभी द्रव्योंको चुरा सकता है, पर विद्याको कोई भी नहीं चुरा सकता। (गण्डपु० ११० अ०)

हितोपदेशमें लिखा है, कि विद्या विनय देती है अर्थात् मनुष्य विद्यालाभ करनेसे विनोत होते हैं। विनयसे प.त्वय, पात्रत्वसे धन और धनसे धर्म तथा धर्मसे सुख होता है।

‘विद्या ददाति विनयं विनयाद्वाति पात्रता ।

पात्रत्वाद्जनमान्पोति घनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥’

(हितोपदेश)

जोष जिस किसी कार्यका अनुष्ठान करता है, उसका उद्देश्य सुख है, जिसमें सुख नहीं है, वैसे कार्यका कोई भी अनुष्ठान नहीं करता। यह सुख एकमात्र विद्या द्वारा ही प्राप्त होता है। अतएव सर्वोंको उचित है, कि वे बड़े यत्नपूर्वक विद्ययाभ्यास करें। विशुद्ध चित्तसे अनन्यकर्मा हो गुहके समीप विद्ययाभ्यास करना होता है।

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि बालकको उमर जब पांच वर्षकी होवे उसी समयसे उसको विद्यारम्भ करा दे। ज्योतिषीक शुभ दिन देख कर विद्यारम्भ करना होता है। हरिश्चयन मिनन कालमें, पृष्ठी, प्रतिपद, अष्टमी, रिक्ता, पूर्णिमा और अमावास्या तिथि, शनि और मङ्गलवारको छोड़ कर उत्तम दिनमें विद्यारम्भ करे। ज्योतिषमें लिखा है, कि पुष्या, अभ्यन्ता, हस्ता, स्वाती, पुनर्वसु, ध्रुवणा, घनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, मरणो, मघा, विशाखा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद, चित्रा, रैवती और मृगशिरा नक्षत्रमें, उत्तरा धणमें, शुक्र, बृहस्पति और रविवारको कालशुद्धिमें लगनका केन्द्र, पञ्चम और नवम शुभग्रहयुक्त होने पर अनाध्याय भिन्न दिनमें पांच वर्षके बालकको विद्यारम्भ करना चाहिये। विद्यारम्भ बृहस्पतिवारमें श्रेष्ठ तथा

शुक्र और रविवारमें मध्यम; शनि और मङ्गलवारमें अल्पायु तथा बुध और सोमवारमें विद्युदाहो न होता है।

इस प्रकार शुभ दिन देख कर ज्ञानवान् गुहसे विद्युदा रम्भ करना होगा। विद्युदाथों यदि विद्वान् गुहके पास जा कर विद्युदाके लिये प्रार्थना करे तो गुहको चाहिये, कि वे उसी समय उसको विद्युदा दान करें, नहीं करनेसे उनका कार्यनाश होता है तथा अन्तमें उन्हें सर्गकी प्राप्ति नहीं होती।

भगवान् मनुने कहा है, कि उदकृष्ट षोडश जिस प्रकार खारी जमीनमें नहीं बोया जाता, उसी प्रकार जहां धर्म पा अर्थलाभ नहीं है अथवा तदनुकूल सेवाशुभ्रपादि नहीं है, वहां विद्यादान करना उचित नहीं। जीवनोपायमें चाहे कितना ही कष्ट क्यों न होता हो, पर ब्रह्मवादी अध्यापकको चाहिये, कि वे अधोत विद्या किसीको भी दान न करे, विद्वेषतः अपात्रमें तो उन्हें कभी विद्यादान बोना ही नहीं चाहिये। विद्युदा प्राह्राणके समीप जा कर कहती है, कि “मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी यत्नपूर्वक रक्ष करना, अश्रद्धादि दोष दूषित अपात्रके हाथ कदापि मुझे अर्पण न करना। ऐसा करनेसे ही मैं अत्यन्त वीर्यवान् रहूँगी। जिसको सर्वदा शुचि, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी जानोगे, विद्यारूप निधि उसीको अर्पण करना।”

विद्युदादाता गुह अतिशय माननीय होते हैं, जो शिष्यको एक अक्षरको भी शिक्षा देते हैं पृथिवी पर ऐसा द्रव्य नहीं जिससे वह ऋण परिशोध किया जावे।

पहले शास्त्रानुसार विद्युदारम्भ करके विद्याशिक्षा करनी चाहिये।

हिन्दुशास्त्रमें विद्युदारम्भकी व्यवस्था इस प्रकार है— बालकके विद्यारम्भके पूर्व दिन गुहको चाहिये, कि वे यथाविधान संयत हो कर रहें। दूसरे दिन सवेरे गुह और शिष्य दोनों स्नान करके नव वस्त्र पहने। गुह प्रातः कृत्यादि करनेके बाद पवित्र स्थान पर पूर्वेकी ओर मुंह करके बैठें, पीछे आचमन करके स्वास्तवाचन करें। इसके बाद तिल, तुलसी, हरीतकी ले कर सङ्कल्प करें। सङ्कल्प हो जाने पर शालग्राम शिला वा घटस्थापनादि करके आसनशुद्धि, जलशुद्धि और सामान्यार्घ करना होगा। पीछे गणेश, शिवादिपञ्चदेवता,

आदिस्थादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पालोंकी पूजा करके विष्णु का ध्यान, पीछे विशेषार्घ और मनसादेवीकी पूजा कर ध्यानके अन्तमें तीन बार विष्णुको पूजा करनी होगी। अनन्तर विष्णुको प्रणाम करके लक्ष्मीका ध्यान और पूजन करे। पीछे सरस्वतीका ध्यान करके पूजा करनी होती है। 'पतन्प्रादुर्यं ओं सरस्वत्यै नमः' इस प्रकार पूजा करनेके बाद—

“ओ भद्रकाल्ये नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः।

वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ॥”

इस मन्त्रसे तीन बार पूजा करे। इसके बाद शकट्यानुसार यद्र, स्वविद्युया और नवग्रहको पूजा करनी होती है। अनन्तर बालक आसन पर बैठ और चन्द्रनादि लेप कर पुष्पाञ्जलि द्वारा उक्त देवताओंकी पूजा करे।

पूजाके बाद बालक पश्चिमकी ओर मुँह करके बैठे। गुरु पूर्वमुख बैठे और 'ओं तत्सत्' उच्चारण कर गिला-अण्ड या तालगल भादि पर बालकका हाथ पकड़ खड़ीसे अकारसे ले कर क्षकार पर्यन्त सभी अक्षरोंको लिखायें तथा तीन बार उन अक्षरोंको पढ़ावें। इस प्रकार लिखना पढ़ना हो जान पर बालक गुरुको प्रणाम करे।

इसके बाद गुरु दक्षिणान्त करके दक्षिणा प्रदण और शार्दमें अच्छिद्रावधारण तथा वैगुण्यसमाधान करें। विद्यारम्भके दिन बालकको निरामिय भोजन करना चाहिये। (कृत्यतत्त्व)

मन्वादिशास्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मणादि तीनों वर्ण उपासक संस्कारके बाद गुरुगृहमें जा कर जीवन वा चतुर्थ-भाग विद्याशिक्षामें वितावें। गुरु शिष्यको उपनयन दे कर पहले उसको आहुवोपान्त औच शिक्षा देवे तथा आचार-अभिपरिचर्या और सन्ध्योपासना भी सिखावे। अध्ययनकालमें शिष्य शास्त्रानुसार आचमन करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक उत्तमिमुखमें ब्रह्माञ्जलि करके पवित्रवेशमें बैठे। (अध्ययन कालमें कृताञ्जलिपुटसे गुरुके समोप बैठनेका नाम ब्रह्माञ्जलि है।) वेदाध्ययनके आरम्भ और अवसान कालमें शिष्यको प्रतिदिन गुरुके दोनों चरणोंकी वन्दना करनी चाहिये। उत्तान दक्षिणहस्त ऊपर और उत्तान घामदल नीचे करके दक्षिण हस्त द्वारा गुरुका दक्षिणपाद तथा घामहस्त द्वारा घामपद स्पृश करना

होगा। गुरु अवहित चित्तसे शिष्यको पाठ दे। शिष्यके अध्ययन आरम्भ करने पर गुरु उसे 'अध्ययन करो' ऐसा कह कर पढ़ाना शुरू कर दे तथा दूसरे दिनके लिये पाठ यहाँ तक रहा, कह कर पढ़ाना समाप्त कर दे। ब्राह्मण वेदाध्ययनके आरम्भ तथा समाप्तिमें प्रणवका उच्चारण करें, क्योंकि आरम्भकालमें प्रणवका उच्चारण नहीं करनेसे अध्ययन धीरे धीरे नष्ट हो जाता है। अध्ययनकी समाप्तिमें प्रणवोच्चारण नहीं करनेसे पाठ याद नहीं रहता। पवित कुशके आसन पर बैठ कर तथा दोनों हाथोंसे कुश पकड़ कर तीन बार प्राणायाम करनेके बाद प्रणवोच्चारणके योग्य होता है।

जो ब्राह्मण उपनयन दे कर शिष्यको यज्ञविद्युया और उपनिषद्के साथ समग्र वेदाशास्त्रका अध्ययन कराते हैं, उन्हें आचार्य और जो जीविकाके लिये वेदका एकदेशमाल अथवा वेदाङ्गका अध्ययन कराते हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। जन्मदाता और वेददाता दोनों ही पिता हैं, किन्तु जन्मदाताकी अपेक्षा वेददाता पिता ही श्रेष्ठ हैं। क्योंकि, द्विजोंका द्वितीय वा ब्रह्मजन्म ही सर्वोत्त शोभत है। वेदपारंग आचार्य सावित्री द्वारा यथाविधि जो जन्म प्रदान करते हैं, वही जन्म सत्य है। उस जन्मके बाद और अरामरण नहीं है। चाहे भोड़ा हो या बहुत, जो वेदज्ञान दे कर उपकार करने हैं उस उपकारके कारण शास्त्रानुसार उन्हें गुरु जानना होगा। वह गुरु सवापेक्षा माननोय है। शिष्यको अन्तःकरणसे सुश्रुपादि द्वारा उन्हें परितृप्त करना चाहिये। उपनोत द्विज गुरुकुलमें रहते समय वेदप्राप्ति ही योग्य तपस्या करेगे। अन्वेष-नादि नाना प्रकारकी तपस्या द्वारा तथा विविधोचित विविध प्रकारके सावित्र्यादि प्रतानुष्ठान द्वारा उपनिषद्के साथ समस्त वेदाध्ययन करना द्विजातिगोका कर्तव्य है।

शिष्य जब गुरुगृहमें रह कर वेदविद्या सीखे, तब उसे कुल नियमोंका पालन करना होगा। विद्यार्थी ब्रह्मचारी गुरुगृहमें इन्द्रिय संयम करके आत्मगत ऋष्ट वृद्धिके लिये निम्नोक्त नियमोंका प्रतिपालन करे। वे प्रति दिन ज्ञान करके शुद्धभावसे देव, ऋषि और पितृतर्पण, देव-पूजा तथा सायं और प्रातःममाधि द्वारा योग करे।

उन्हें मधुमांसभोजन, गन्धद्रव्यानुलेपन, मातृवादि धारण, गुडु आदि रस ग्रहण तथा स्त्रीसम्भोग न करना चाहिये। जो सब वस्तु स्वाभाविक मधुर हैं, किन्तु किसी कारणसे अम्ल हो गई हैं तथा दधि आदिका भोजन उनके लिये निषिद्ध है। प्राणोहिंसा, तैल द्वारा समस्त सर्वाङ्ग अन्वजन, कज्जलादि द्वारा चक्षुरञ्जन, पादुका वा छत-धारण, काम, क्रोध, लोभ तथा नृत्य, गीत और वादन, अक्षादिक्रीडा, घृया कलह, देशवात्सादिका अन्वेषण, मिथ्या कथन, कुटिसत अभिप्रायसे स्त्रियोंके प्रति दृष्टि और दूसरेका अनिष्टाचरण, विधार्थी ब्रह्मचारिको इन सबसे अलग रहना चाहिये।

सभी ब्रह्मचारिको सर्वत्र एक साथ सोना चाहिये। हस्त संखालन द्वारा रैतापात करना उचित नहीं और कामवशतः रैतापात करनेसे आत्मव्रत मिलकुल नष्ट हो जाता है। यहाँ तक, कि यदि अकामता ब्रह्मचारिके स्वप्नादि अवस्थामें रैतास्खलन हो जाय, तो उन्हें उसी समय ज्ञान कर सूर्यदेवकी अर्चना कर लेनी चाहिये तथा 'पुनर्मामेतु इन्द्रियं' अर्थात् मेरा वीर्य पुनः लौट आवे, इत्यादि वेदमन्त्र तीन बार जपने चाहिये। जल, पुष्प, समिध, कुश आदि जो कुछ गुरुको प्रयोजन हो उन्हें ला देना शिष्यका कर्तव्य है। गुरुके लिये प्रति दिन भोज्य मांस कर लाना भी शिष्यका एक कर्तव्य कडा है।

शिष्य इस प्रकार कठोर ब्रह्मचर्याका अवलम्बन कर गुरुसे विद्युयाध्ययन करे। यदि वेदविद् ब्राह्मण गुरु न मिलते हों, तो श्रद्धायुक्त हो कर दूसरे व्यक्तिसे भी श्रेयस्करको विद्युया लाभ कर सकते हैं। स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, हितवचन तथा शिष्यकार्य सघोसे सभी लाभ कर सकते या सोख सकते हैं। ब्राह्मण ब्रह्मचारी आपद्कालमें अत्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण मित्र दूसरे वर्णसे यदि विद्युयाभ्यास करे, तो कोई दोष नहीं। उतने दिनों तक पादप्रक्षालन और उच्छिष्ट भोजनादि मित्र उन्हें अनुगमनादि द्वारा गुरुको सुश्रूया करनी होगी।

जा शिष्य गुरुको कायमनोवाक्यसे प्रसन्न रखता है, उसके प्रति विद्युया प्रसन्न रहती है। विद्युयाके प्रसन्न होनेसे सर्व सम्पद् लाभ होती है।

अनध्यायके दिन विद्युयाशिक्षा नहीं करनी चाहिये।

प्रातःकालमें मेघका गर्जन होनेसे उस दिन भी शास्त्रकी चिन्ता न करे, करनेसे आयु, विद्युया, यश और धनको हानि होती है।

माघ, फाल्गुन, चैत और वैशाख इन चार महानोंमें यदि मेघ-गर्जन हो, तो पाठ बन्द कर देना होता है। प्रतिपद् और अष्टमी तिथि, त्रयोदशी और चतुर्दशीको रात्रि तथा अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें पाठ निषिद्ध है। ये सब तिथियाँ अनध्याय कहलाती हैं।

जितने प्रकारके दान हैं उनमें विद्युयादान सर्वश्रेष्ठ श्रेष्ठ है। कन्या और जलाशय दानमें तथा राजसूयादि यज्ञमें जो फल होता है विद्युयादान उससे भी अधिक फलप्रद है। एकमात्र विद्युयादानके प्रभावसे शिष्यलोककी गति होती है।

देवीपुराणके विद्युयादान नामक महाभाग्य-फल-ध्यायमें विशेष विवरण आया है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ कुल नहीं लिखा गया। सभी धर्मशास्त्रोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है, कि विद्युयादान सभी दानोंमें श्रेष्ठ है।

हेमाद्रिके व्रतखण्डमें लिखा है—जिन सब विद्युयाओंका विवरण ऊपर दिया गया उनमेंसे प्रत्येक विद्युयाके एक एक अधिष्ठात्री देवता है। ऋग्वेदके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा, यजुर्वेदके वासव, सामवेदके विष्णु, अथर्ववेदके महादेव, शिक्षाके प्रजापति, कल्पके ब्रह्मा, व्याकरणके सरस्वती, निरुक्तके वयण, छन्दके विष्णु, ज्योतिषके रवि, मोर्मासांक चन्द्र, न्यायके वायु, धर्मशास्त्रके मनु, इतिहासके प्रजापत्यक्ष, धनुर्वेदके इन्द्र, आयुर्वेदके धन्वन्तरि, कलाविद्युयाके महादेवी, नृत्यशास्त्रके महादेव, पञ्चरत्नके सङ्कर्षण, पाशुपतके रुद्र, पातञ्जलके अनन्त, सांख्यके कपिल, अर्थशास्त्रके धनाध्यक्ष और कलाशास्त्रके कामदेव हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंके अधिष्ठात्री देवता हैं।

श्रुतिमें विद्युयाके दो भेद बतलाये हैं, पराविद्या और अपराविद्युया। "यया ब्रह्मावगमः स परा, ययाश्चरप्रधिगम्यते सा परा।" (श्रुति) जिस विद्युयासे ब्रह्मज्ञान होता है, उसका नाम पराविद्युया है। ब्रह्मविद्युया ही पराविद्युया है। क्योंकि, ब्रह्मविद्युया वा ब्रह्मज्ञान होनेसे सत्सारनिवृत्ति होती है वा

अपवर्ग अर्थात् मोक्षलाभ होता है और सभी क्लेश दूर जाते हैं। अतएव ब्रह्मविद्यया पराविद्यया है। उपनिषद् नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ वा शब्दराशि-प्रतिपादित ब्रह्मविषयक विज्ञान ही पराविद्या है। यह पराविद्या ऋग्वेदादि नामसे प्रसिद्ध शब्दराशि वा तत्प्रतिपाद्य विषयके ज्ञानसे श्रेष्ठ है।

ऋग्वेदादि शब्दराशि वा तत्प्रतिपाद्य विषय अर्थात् कर्मका ज्ञान भी विद्यया तो है, किन्तु यह अपरा विद्यया है। ब्रह्मविद्यया कर्मविद्यासे उत्कृष्ट है। कर्मविद्यया स्वयं स्वतन्त्र-रूपमें अर्थात् उस समय फल नहीं देती। कर्मका अनुष्ठान करनेसे उसका फल किसी दूसरे समय होता है। कर्मफल विनश्वर है; किन्तु ब्रह्मविद्यया स्वतन्त्रभावमें उसी समय संसारनिवृत्तिका भी फल देती है, फिर भी यह फल विनाशो नहीं है। इस कारण वेदविद्यया और कर्मविद्ययासे ब्रह्मविद्यया श्रेष्ठ है।

"तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा फलयो व्याकरणं निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति।"

(मन्वोपनि०)

इसका तात्पर्य यह है, कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, फल, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः, ज्योतिष इन सबोंका विज्ञान तथा तत्प्रतिपाद्य कर्मविज्ञान अपरा-विद्यया है।

५ देवीमन्त्र ।

विद्याकर वाजपेयी—आचारपद्धतिके रचयिता। रघुनन्दनने अष्टाविंशतितरंगमें इनका घनक उद्धृत किया है।

विद्याकर मिश्र मैथिल—राक्षसकाव्यके टीकाकार।

विद्यागण (सं० पु०) ऋषिग्रन्थावलोकिशेष ।

विद्यागम (सं० पु०) विद्ययायाः आगमः । विद्ययालाम् ।

विद्यागुरु (सं० पु०) यह गुरु जिससे विद्यया मिली हो, पढ़ानेवाला गुरु, शिक्षक ।

विद्यागृह (सं० पु०) यह स्थान जहां विद्ययाशिक्षा दी जाती है, विद्ययालय, पाठशाला ।

विद्याचक्रवर्ती—सम्प्रदायप्रकाशिनो नामकी काव्यप्रकाश-टीकाके रचयिता ।

विद्याचण (सं० पु०) विद्यासुद्ध देखो ।

विद्यासुद्ध (सं० पु०) विद्यया वित्तः विद्यया (तेन वित्तसु-द्धुपवनी । वा १।२।२६) इति चतुषु सुद्धुप् च । विद्यया-

द्वारा रच्यते, यह जो विद्यया द्वारा मशहूर हो, विद्वान् ।

विद्यातीर्थ (सं० क्लो०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम । (पु०) २ तैत्तिरीयकसारके रचयिता । ३ गङ्गाचार्य-सम्प्रदायके ६९० गुरु ।

विद्यातीर्थं शिष्य—जोयन्मुक्तिविवेकके रचयिता । ये ही सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य थे ।

विद्यात्व (सं० क्लो०) विद्ययायाः भावः एव । विद्ययाका भाव या धर्म ।

विद्यादत्त—एक कवि । ये कायस्थजातीय तथा विजयपुर-राज जयादित्यकी सभामें मौजूद थे ।

विद्यादल (सं० पु०) भृङ्गशुभ्र, भोजपत्रका पेड़ ।

विद्यादाता (सं० लि०) विद्यादातृ देखो ।

विद्यादातृ (सं० लि०) विद्युर्वा ददातीति दा-तृच् । १ विद्यया शिक्षा देनेवाला । २ पांच पिताके अन्तर्गत एक पिता । अग्रदाता, भयताता, पत्नीके पिता, विद्ययादाता और जन्मदाता ये पांच पितृतुल्य हैं ।

विद्यादान (सं० क्लो०) विद्युर्वायां दानं । १ विद्युया देना, शिक्षा देना । ३ पुस्तक देना । विद्या शब्द देखो ।

विद्यादायाद (सं० पु०) विद्युर्वाका उत्तराधिकारो, शिष्य परम्परा ।

विद्यादास—ब्रजवासी एक वैष्णवकवि । १५६३ ई०में इनका जन्म हुआ था ।

विद्यादेशी (सं० खो०) विद्युया अधिष्ठाता देवो । १ सरस्वती । २ जैनियोंकी सोलह जिनदेवियोंमेंसे एक देवाका नाम ।

विद्याधन (सं० क्लो०) विद्युर्वाया अर्जितं धनं । विद्युया द्वारा उपार्जित धन । यह धन अविभाज्य है, कोई भी इसे बांट नहीं सकता । इसको स्वोपार्जित धन कहते हैं ।

विद्युर्वालय (छातृवृत्ति) धन, मितलब्ध (विद्याहके समय श्वाशुर आदिसे प्राप्त) धन तथा आर्त्यज्यलब्ध (परोहित्य क्रियालम्ब) धन दायादादि अर्थात् हिस्सेदार द्वारा विभक्त नहीं होगा ।

पण रत्न कर जो धन प्राप्त किया जाता है अर्थात् किसी एक विषयकी गीर्मांसा करनेके लिये विद्वान् व्यक्तिके पास उपस्थित हो उनसे कहा जाय, "आप इस विषयकी स्थिर कर दीजिये, मैं यह पण रखता हूँ,

मीमांसा होने पर वह आपका ही होगा। इस प्रकार जो धन लाभ होता है वह धन विभागयोग्य नहीं है। गिथ्य-से अध्यापनालब्ध धन, पीरोहित्य कार्य करके दक्षिणादि द्वारा प्राप्त धन, मन्दिग्ध प्रश्नका उत्तर दे कर पाया हुआ धन, स्वज्ञानज्ञान अर्थात् जास्त्रादिका यथार्थ तस्य वतला कर प्रतिग्रहलब्ध धन, गिल्पकार्यादि द्वारा प्राप्त धन, इन सब धनोंको विदुयाधन कहते हैं। यह विदुयाधन विभाज्य नहीं होता। दायादोंको इस धनमें हिस्सा नहीं मिल सकता। अपनी विदुया बुद्धिके प्रभावसे जो धन उपार्जन किया जाता है, वही विदुयाधन है। वह धन विद्वान् व्यक्तिका निजस्व होगा।

विद्याधर (सं० पु०) १ एक प्रकारको देवयोनि। इसके अन्तर्गत खेचर, गन्धर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं। २ सोलह प्रकारके रतिवर्णोंमेंसे एक प्रकारका रतिवन्ध। इसका लक्षण—

“नार्या ऊरुयुगं धृत्वा कराम्पां ताडयेत् पुनः।

कामयेन्निर्भरं कामी वन्धो विद्याधरो मत्तः ॥”

(रतिमञ्जरी)

३ एक प्रकारका अस्त्र। ४ विद्वान्, परिणत।

विद्याधर—कई प्राचीन कवि। १ दायनिर्णय और हेमाद्रिमयोगके प्रणेता। २ श्रौताधानपद्धतिके रचयिता।

३ एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्रवेत्ता। दानमयूखमें इनका उल्लेख है। ४ दूसरा नाम चरितवर्द्धन। ये साधारणतः साहित्यविद्याधर नामसे ही परिचित थे। इनके पिताका नाम रामचन्द्र भिषज् और माताका नाम सीता था। चालुक्यराज विसन्धेयके समय इन्होंने गिशुहर्तपिणो नामकी कुमारसम्मवतीका, साहित्यविद्याधरो नामकी नैरघोयटोका, राघवनाण्डवोयटीका, गिशुपालवधटोका तथा साधु अरुणमल्लके अनुरोधसे रघुवंशटीका आदि ग्रन्थ लिखे। ५ एक कवि, लुल्लके पुत्र। ६ एक कवि, शुक्रसुखवर्माके पुत्र।

विद्याधर—चन्देलवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम गोण्ड और माताका नाम भुवनदेवी था।

विद्याधर—एक बौद्धधर्मानुरागी। श्रावस्तिकी जिलालिपिसे जाना जाता है, कि ये अजापुत्र नगरमें बौद्धनियोंके रहनेके लिये एक मठ बना गये हैं। इनके पिता जनक

गाधिपुर (कम्बोज) राजगोपालके मन्त्री थे। विद्याधरने भी पीछे गोपालके वंशधर मदनका मन्त्रित्व किया था।

विद्याधरआचार्य—प्रसिद्ध तान्त्रिक आचार्य। तन्त्रसारमें इनका उल्लेख है।

विद्याधरकवि—एक ग्रन्थकार। इन्होंने कैलिरदम्पकाव्य, रतिरहस्य और एकावली नामक अलङ्कारग्रन्थ लिखे हैं। मल्लिनाथने किराताज्जुनीयमें शेषोक्त ग्रन्थका उल्लेख किया है।

विद्याधरत्व (सं० क्लो०) विद्याधरस्य भावः स्व। विद्याधरका भाव या धर्म।

विद्याधरपिटक (सं० क्लो०) बौद्धपिटकभेद।

विद्याधरभञ्ज—उड़ीसाके भञ्जवंशीय एक राजा, शिलामञ्जदेयके पुत्र।

विद्याधरवन्त (सं० क्लो०) विद्याधरामिषं यन्तं। औषध पाकार्थं वेदोक्त यन्त्रभेद। इस यन्त्रको प्रस्तुत-प्रणाली भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—एक धालीमें पारा रख कर उस पर दूसरी धालीको ऊर्ध्वमुखो रख मिट्टीसे बोलका जोड़ बन्द कर दे। ऊपरकी धालीमें पानी भर कर दोनों मिली हुई धालियोंको पाँच पहर तक आग पर रख उतार ले। इसके बाद ठंडे होने पर उस यन्त्रसे रस निकाल ले। इस तरह जो यन्त्र तैयार होता है, उसे विदुयाधर यन्त्र कहते हैं।

विद्याधररस (सं० पु०) उवराधिकारोक्त औषधविशय। पारा, गन्धक, तांबा, सोंठ, पीपल, मिर्च, निसोद्य, दन्ती-बीज, धतूरेका बीज, अकवचनका मूल और काठविष, समान समान भाग ले कर चूर्ण करे। कुल मिला कर जितना है उतना जपपालका चूर्ण उसमें मिलावे। पीछे उसे धूरके दूध और दन्तीके काढ़ेमें यथाक्रम अच्छी तरह भावना दे कर २ रत्तीकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे दस्त खुलासा उतरता है तथा सामञ्जस, मध्यज्वर और शुल्मरोग जादू जाने रहते हैं।

दूसरा तरीका—गन्धक, हस्तिाल, स्वर्णमाक्षिक, ताप्र, मैगसिल और पारद समान भाग ले कर एक साथ मिलावे। पीछे पीपलके काढ़े और धूरके दूधमें यथाक्रम एक एक दिन भावना दे कर २ रत्तीकी गोली

बनाये। अनुपान मधु और गायका दूध है। इसके सेवनसे यकृत प्लोहादि रोग नष्ट होते हैं।

विद्याधराग्र (सं० स्त्री०) शूलरोगको एक औषध। प्रस्तुत-प्रणाली—विडङ्ग, मोथा, आंबला, हरे, बहेड़ा, गुलझ, दन्तीमूल, निसोध, चितामूत्र, सोंठ, पोपल और मिर्च, प्रत्येक २ तोला, जारिन लोहा ३२ तोला, अवरकको भस्म ८ तोला, हंसपदोंके रसमें शोधित द्विगुलोत्प पारा १॥ तोला, शोधित गन्धक २ तोला। पहले पारा और गन्धकको कजली बना कर उसमें लोहा और अवरक मिलाये। पीछे और दूसरे दूसरे द्रव्य मिला कर घी और मधुके साथ उसे अच्छी तरह घोंट एक स्निग्ध भाण्डमें रखे। पहले २ या ३ माशा गायक दूध या छठे पानीके साथ सेवन किया जाता है। पीछे अवस्थानुसार उसकी मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है। यह नाना प्रकारके शूल और अम्लपित्तादि रोगनाशक तथा परिणामशूल को यह एक उत्कृष्ट औषध है।

विद्याधरो (सं० स्त्री०) विद्युदाधर नामक देवताकी स्त्री।

विद्याधरोभूत (सं० स्त्री०) अविद्युदाधरो विद्युदाधरोभूतः। जो विद्युदाधर हुआ हो। (कथासं० २५।३६२)

विद्याधरेन्द्र (सं० पु०) १ राजभेद, विद्युदाधरके राजा। (राजतर० १।११८) २ कपीन्द्र, जाम्बुवान्।

(महाभारत)

विद्याधरेश्वर (सं० पु०) पुराणानुसार एक शिवलिङ्गका नाम। (कूर्मपुराण)

विद्याधाम मुनिशिष्य—एक कवि। इन्होंने वर्णनउपदेश-साहस्रोपृष्ट नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

विद्याधार (सं० पु०) पण्डित, विद्वान्। (मालतीमाधव ४१।२)

विद्याधारिन् (सं० पु०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें चार मगण होते हैं।

विद्याधिदेवता (सं० स्त्री०) विद्युदायाः अधिदेवता। विद्युदाकी अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती।

विद्याधिप (सं० पु०) १ विद्युदा सिंखानेवाला, गुरु। २ विद्वान्, पण्डित।

विद्याधिपति—१ कवि रत्नाकरको उपाधि। क्षेमेन्द्रकृत

सुदुत्ततिलकमें इनका परिचय है। २ एक दूसरे कवि।

विद्याधिराज (सं० पु०) यह जो बहुत बड़ा पंडित हो।

विद्याधिराज—एक अद्वितीय पण्डित ये शिवगुरुके पिता तथा शङ्कराचार्यके पितामह थे

विद्याधिराजतीर्थ—माधवमतावलम्बी एक संन्यासी। ये आनन्दतीर्थके परवर्ती ७वें गुरु थे। इनका पूर्व नाम था कृष्णभट्ट। इनकी लिखी एक भगवद्गीताको टीका मिलती है। १३३२ ई०में इनकी मृत्यु हुई। स्मृत्यर्थसागरमें इसका उल्लेख है।

विद्याधोशतीर्थ—वेदव्यासतीर्थके शिष्य। इनका पूर्वनाम नृसिंहाचार्य था। १५७२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

विद्याधोशयडेक (सं० पु०) पण्डित, विद्वान्।

विद्याधोशखामो—एक पण्डित। स्मृत्यर्थसागरमें इनका उल्लेख है।

विद्याग्र (सं० पु०) विद्युदाधर नामको देवयोनि।

विद्यानगर—दाक्षिणात्यमें तुङ्गभद्रानदीके दहिने किनारे पर स्थित एक प्राचीन प्रधान नगर। दाक्षिणात्यके प्राचीन इतिहासमें विद्युदाधर बड़ा विख्यात और समृद्धिशाली स्थान था।

पैतिहासिकों और पर्यटकोंने इसका भिन्न भिन्न नाम रखा है। किसी समय विद्युदाधर कहनेसे उक्त नामानुसार दाक्षिणात्यका एक सुविशाल साम्राज्य समझा जाता था।

इस विद्युदाधरका प्राचीन नाम विजयनगर था। ११५० ई०में तुङ्गभद्राके दहिने किनारे राजा विजयवर्जने अपने नाम पर यह नगरो बसाई।

विजयनगरके भिन्न भिन्न नामोंको ले कर बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। इसका दूसरा नाम "विद्युदाधर या विद्युदाधरनु" भी है।

नुनिज (Nuniz)का कहना है, कि राजा देवराय एक दिन तुङ्गभद्रा नदीके अरण्यमय प्रदेशमें शिकार खेलने गये।

इस समय जहाँ प्राचीन विजयनगरका कंधहर पड़ा हुआ है, उस समय वहाँ घोर जंगल था। उन्होंने यहाँ आ कर एक विचित्र घटना देखी।

देवराय शिकारमें जा सब कुत्ते ले गये थे, उनके छोटे छोटे खरगोश द्वारा मारे जाने पर वे बड़े विस्मित हुए।

यह दृश्य देख कर जब वे लौट रहे थे, तब उन्होंने तुङ्गभद्राके किनारे एक तपस्वीकी देखा। उनके देख राजाने उनसे यह अन्न त और भलीकिक विवरण कह सुनाया।

इनका

इसका

इसका

मोमांसा होने पर यह आपका ही होगा" इस प्रकार जो धन लाभ होता है वह धन विभागयोग्य नहीं है। शिष्य-से अध्यापनालक्ष्य धन, पौरोहित्य कार्य करके दक्षिणादि द्वारा प्राप्त धन, सन्दिग्ध प्रश्नका उत्तर दे कर पाया हुआ धन, स्वज्ञानज्ञान अर्थात् शास्त्रादिका यथार्थ तत्त्व बतला कर प्रतिप्रदलक्ष्य धन, शिल्पकार्यादि द्वारा प्राप्त धन, इन सब धनोंको विदुष्याधन कहते हैं। यह विदुष्याधन विभाज्य नहीं होता। दायार्थोंको इस धनमें हिस्सा नहीं मिल सकता। अपनी विदुष्या बुद्धिके प्रभाव-से जो धन उपार्जन किया जाता है, वही विदुष्याधन है। यह धन विद्वान् व्यक्तिका निजस्व होगा।

विद्याधर (सं० पु०) १ एक प्रकारको देवयोनि। इसके अन्तर्गत खेचर, गन्धर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं। २ सोलह प्रकारके रतिवन्धोंमेंसे एक प्रकारका रतिवन्ध। इसका लक्षण—

"नार्या ऊरुयुगं धृत्वा कराम्पां ताडयेत् पुनः।

कामयेन्निभं रं कामी बन्धो विद्याधरो मतः ॥"

(रतिमन्जरी)

३ एक प्रकारका अष्ट। ४ विद्वान्, पण्डित।

विद्याधर—कई प्राचीन कवि। १ दायनिर्णय और हेमाद्रिप्रयोगके प्रणेता। २ अतीताघानपद्धतिके रचयिता। ३ एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्रवेत्ता। दानमयूखमें इनका उल्लेख है। ४ दूसरा नाम चरितवर्द्धन। ये साधारणतः साहित्यविद्याधर नामसे ही परिचित थे। इनके पिताका नाम रामचन्द्र भिषज् और माताका नाम सीता था। चालुक्यराज विजयदेवके समय इन्होंने शिशुहृत्पिपापो नामकी कुमारसम्भश्टीका, साहित्यविद्याचरो नामकी नैत्रधोवटीका, राघवशाण्डव्यटीका, शिशुपालशयटीका तथा साधु अरुणकमलके अनुरोधसे रघुवंशटीका आदि ग्रन्थ लिखे। ५ एक कवि, लुटलके पुत्र। ६ एक कवि, शुभकस्तुखवर्माके पुत्र।

विद्याधर—चन्देलवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम गोण्ड और माताका नाम भुवनेश्वरी था।

विद्याधर—एक बौद्धधर्मानुरागी। ध्यावस्तकी शिलालिपि-से जाना जाता है, कि ये अजायुष नगरमें बौद्धपनिधोके रहनेके लिये एक मठ बना गये हैं। इनके पिता जनक

गाधिपुर (कन्नौज) राजगोपालके मन्त्री थे। विद्याधर-ने भी पीछे गोपालके वंशधर मदनका मन्त्रित्व किया था।

विद्याधरभाचार्य—प्रसिद्ध तान्त्रिक भाचार्य। तन्त्रसार-में इनका उल्लेख है।

विद्याधरकवि—एक ग्रन्थकार। इन्होंने केलिरहस्यका, रतिरहस्य और पकावली नामक अलङ्कारग्रन्थ लिखे हैं। मल्लिनाथने किराताञ्जुनीयमें शेषोक ग्रन्थका उल्लेख किया है।

विद्याधरत्व (सं० क्लो०) विद्याधरस्य भावः त्व। विद्याधरका भाव या धर्म।

विद्याधरपिटक (सं० क्लो०) बौद्धपिटकभेद।

विद्याधरभञ्ज—उड़ीसाके भञ्जवंशीय एक राजा, मिला-भञ्जदेवके पुत्र।

विद्याधरयन्त्र (सं० क्लो०) विद्याधरामिषं यन्त्रं। औषध पाकार्थं वेदोक्त यन्त्रभेद। इस यन्त्रकी प्रस्तुत-प्रणाली भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है—एक घालीमें पारा रख कर उस पर दूसरी घालीको ऊर्ध्वार्धमुखी रख मिट्टी-से घोंसका जोड़ बँध कर दे। ऊपरकी घालीमें पानी भर कर दोनो मिली हुई घालियोंको पाँच पहर तक आग पर रख उतार ले। इसके बाद ठंढे होने पर उम यन्त्रसे रस निकाल ले। इस तरह जो यन्त्र तैयार होता है, उसे विदुष्याधर यन्त्र कहते हैं।

विद्याधररस (सं० पु०) उवराधिकारोक्त औषधविशय। पारा, गन्धक, तांबा, सोंठ, पीपल, मिर्च, निलोय, दन्ती-बीज, धतूरेका बीज, अकचनका मूल और काठबिष, समान समान भाग ले कर चूर्ण करे। कुल मिला कर जितना हो उतना जयपालका चूर्ण उसमें मिलावे। पीछे उसे धूररके दूध और दन्तीके काढ़े में यथाक्रम अच्छी तरह भावना दे कर २ रस्तीकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे दस्त खुलासा उतरता है तथा सामञ्जर, मध्यज्वर और गुल्मरोग आदि जाते रहते हैं। दूसरा तरीका—गन्धक, इरिताल, क्षणमांसिक, ताण्ड, मैगसिल और पारद समान भाग ले कर एक साथ मिलावे। पीछे पीपलके काढ़े और धूररके दूध में यथाक्रम एक एक दिन भावना दे कर २ रस्तीकी गोली

बनाये। अनुपान मधु और गायिका दूध है। इसके सेवनसे यकृत प्लोहादि रोग नष्ट होते हैं।

विद्याधराग्र (सं० क्ली०) शूलरोगको एक औषध। प्रस्तुत-प्रणाली—विडङ्ग, मोथा, आँबला, हरे, बहेड़ा, गुलझ, दन्तीमूल, निसोय, चितामूल, सोंठ, पोपल और मिर्च, प्रत्येक २ तोला, जारित लोहा ३२ तोला, अथकको भस्म ८ तोला, हंसपदोंके रसमें शोधित हिं गुलोत्थ पारा १॥ तोला, शोधित गन्धक २ तोला। पहले पारा और गन्धकको कञ्जली बना कर उसमें लोहा और अथक मिलावे। पीछे और दूसरे दूसरे द्रव्य मिला कर घाँ और मधुके साथ उसे अच्छी तरह घोंट एक स्निग्ध भाण्डमें रखे। पहले २ या ३ माशा गायकं दूध या टंडे पानोके साथ सेवन किया जाता है। पीछे अवस्थानुसार उसकी मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है। यह नाना प्रकारके शूल और अम्लपित्तादि रोगनाशक तथा परिणामशूलको यह एक उत्कृष्ट औषध है।

विद्याधरो (सं० स्त्री०) विदुषाधर नामक देवताकी स्त्री।

विद्याधरोभूत (सं० स्त्री०) अविदुषाधरो विदुषाधरोभूतः। जो विदुषाधर हुआ हो। (क्यास० २५।२६२)

विद्याधरेन्द्र (सं० पु०) १ राजभेद, विदुषाधरके राजा। (राजतर० १।११८) २ कपोन्द्र, जाम्बुवान्।

(महाभारत)

विद्याधरेश्वर (सं० पु०) पुराणानुसार एक शिवलिङ्गका नाम। (कूर्मपुराण)

विद्याधाम मुनिशिष्य—एक कवि। इन्होंने वर्णनउपदेश-साहस्रौष्ठि नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

विद्याधार (सं० पु०) पण्डित, विद्वान्। (मातृगीमाधव ४१।२)

विद्याधारिन् (सं० पु०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें चार मगण होते हैं।

विद्याधिदेवता (सं० स्त्री०) विदुषायाः अधिदेवता। विदुषाकी अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती।

विद्याधिप (सं० पु०) १ विदुषा सिष्यानेवालं, गुरु। २ विद्वान्, पण्डित।

विद्याधिपति—१ कवि रत्नाकरको उपाधि। क्षेमेन्द्रकृत

सुदुत्ततिलकमें इनका परिचय है। २ एक दूमरे कवि। विद्याधिराज (सं० पु०) यह जो बहुत बड़ा पंडित हो। विद्याधिराज—एक अद्वितीय पण्डित ये शिवगुरुके पिता तथा गङ्गाचार्यके पितामह थे। विद्याधिराजतीर्थ—माधवमतावलम्बी एक संस्थासे। ये आनन्दतीर्थके परवर्ती ७वें गुरु थे। इनका पूर्व नाम था कृष्णभट्ट। इनकी लिखा एक भगवद्गीताको टीका मिलती है। १३३२ ई०में इनको मृत्यु हुई। स्मृत्यर्थसागरमें इसका उल्लेख है।

विद्याधीशतीर्थ—वेदव्यासतीर्थके शिष्य। इनका पूर्वनाम नृसिंहाचार्य था। १५७२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

विद्याधीशवट्टेक (सं० पु०) पण्डित, विद्वान्।

विद्याधीशखामो—एक पण्डित। स्मृत्यर्थसागरमें इनका उल्लेख है।

विद्याग्र (सं० पु०) विदुषाधर नामकी देवयोनि।

विद्यानगर—दाक्षिणात्यमें तुङ्गभद्रानदीके दहिने किनारे पर स्थित एक प्राचीन प्रधान नगर। दाक्षिणात्यके प्राचीन इतिहासमें विदुषानगर बड़ा विख्यात और समृद्धिशाली स्थान था। पेरिहासिकों और पर्यटकोंने इसका भिन्न भिन्न नाम रखा है। किसी समय विदुषानगर कहनेसे उक्त नामानुसार दाक्षिणात्यका एक सुविशाल साम्राज्य समझा जाता था। इस विदुषानगरका प्राचीन नाम विजयनगर था। ११५० ई०में तुङ्गभद्रके दहिने किनारे राजा विजयशयने अपने नाम पर यह नगरो बसाई। विजयनगरके भिन्न भिन्न नामोंको ले कर बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं। इसका दूसरा नाम "विदुषाजन या विदुषाजनु" माँ है। नुनिज (Nuniz)का कहना है, कि राजा देवराय एक दिन तुङ्गभद्रा नदीके अरण्यमय प्रदेशमें शिकार खेलने गये। इस समय जहाँ प्राचीन विजयनगरका केंद्र पर पड़ा हुआ है, उस समय वहाँ घोर जंगल था। उन्होंने यहाँ आ कर एक विचित्र घटना देखा। देवराय शिकारमें जो सब कुत्ते ले गये थे, उनके छोटे छोटे खरगोश द्वारा मारे जाने पर वे बड़े विस्मित हुए। यह दृश्य देख कर जब वे लौट रहे थे, तब उन्होंने तुङ्गभद्राके किनारे एक तपस्वीको देखा। उनको देख राजाने उनसे यह अश्न त और मलौकिक विवरण कह सुनाया। इनका

नाम माधवाचार्य था। माधवाचार्यने कहा—'इस अरण्य में ऐसा स्थान कहाँ है, क्या हमें दिखा सकते हो?' राजा देवराय माधवाचार्यको अपने साथ ले उस स्थान पर पहुँचे। आचार्यने कहा 'राजा यह स्थान बड़ा रमणीय है। तुम यहाँ अपना राजप्रसाद और दुर्गी बनाओ। अगर तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारे बलवर्धकके प्रभाव और चमकते तुम्हारी जय जरूर होगी।' देवरायने इनकी स्मृतिके लिये इस स्थानका नाम 'विद्युयाजन' या "विद्युवाजनु" रखा।

फेरिस्ताके अभिमतसे इस नगरका नाम 'विद्यानगर' है। फेरिस्ताका कहना है, कि १३४४ ई०में वरकूलके निकटवर्ती स्थानवासो गादरदेवके पुत्र कृष्णनायक कार्णाटिकराज चेलनदेवके पास श्रुपकेसे गये और उनसे कहा 'हमने सुना है, कि दक्षिणात्यमें सुसलमानोंने धीरे धीरे अपना प्रभाव फैला लिया है, बहुतेरे सुसलमान यहाँ आ कर बस रहे हैं। हिन्दू साम्राज्यको तहस नहस करना ही उनका उद्देश्य है, इसलिये जल्द उन्हें नितान्द्रित कर देना नितान्त आवश्यक है।' चेलनदेवने यह सुनते ही देशके प्रधान प्रधान मनुष्योंका बुलाया तथा पहाड़ी प्रदेशमें निरापत्स्थान पर राजधानी स्थापित करनेका प्रस्ताव किया। कृष्णनायकने कहा 'यदि यह परामर्श स्थिर हो, कि हिन्दूमात्र ही सुसलमानोंके विरुद्ध लड़ें होंगे तब मैं सेनानायकका भार ग्रहण करने का प्रस्तुत हूँ।' प्रस्ताव कायम रह गया। चेलनदेवने अपने राज्यके सीमागत प्रदेशमें अपने पुत्र 'विजा' के नाम पर 'विज्ञाननगर' स्थापित किया। किसी किसी का कहना है, कि फेरिस्ताको यह उक्ति, अर्थोक्तिक और श्लोक है। विजयनगरके स्थापनके विषयमें फेरिस्तामें जो लिखा है, वह तारीख और विवरण रायचंगावली तथा विद्युवारण्यके ज्ञासनमें वर्णित विवरणके साथ मेल नहीं खाता। पुराणोक्त पर्याटक विजयनगरके विज्ञना (Bisnaga) कहते थे। इटलीके पर्याटकोंने भी यह नगर देखा था। उन्होंने इसका नाम विजेनगेलियो (Bezengalia) रखा था। कनाडो भाषाके प्राचीन तादृशासनमें यह स्थान पहले आनगुंडो कहलाता था। संस्कृतमें यह हस्तिनावती नामसे प्रसिद्ध था। विजेन-

नगर और विद्युयाननगर यह विजयनगरका ही दूसरा नाम है। १३३६ ई०में सुविख्यात महाप्रभावशाली सन्ध्यासो माधवाचार्य विद्युवारण्यने प्राचीन विजयनगरके ध्वंसावशेष पर पुनः नगर प्रतिष्ठित किया। माधवाचार्य विद्युवारण्य संक्षेपतः 'विद्युवारण्य' नामसे परिचित थे। उन्हींके नामानुसार प्राचीन विजयनगर 'विद्यानगर' नामसे अभिहित हुआ।

विद्यानगरका आधुनिक परिचय।

आज कल यह विजयनगर नहीं है, न यह जगद्विख्यात विद्युयाननगर ही है। किन्तु उस प्राचीन महासमृद्धिशाली नगरका चिह्न आज भी विलुप्त नहीं हुआ है। हम विजयनगर वा विद्युयाननगरका इतिहास लिखनेके पहले इसके वर्तमान नाम और अवस्थाका धोड़ा परिचय देने हैं। मद्राजके चेलुरी जिलेमें अभी हागो नामक जो लण्डहरयुक एक नगर देखनेमें आता है, यह विद्युयाननगरका स्मृतिचिह्नस्वरूप आज भी विद्युयमान है। हागो तुङ्गभद्रा नदीके तट पर चेलुरीसे ३६ मील दूर उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। इस ध्वंसावशेष-भूखण्डका परिमाण ६ वर्गमील है। आज भी यहाँ एक सालाना मेला लगता है। अभी हस्पेट नगरमें एक रेलवे स्टेशन हो गया है। इस स्टेशनसे हागो ६ मील दूर है। कमलपुर नामक एक सुप्रसिद्ध स्थान इस हागो नगरके अन्तर्गत है। तुंगभद्राके दहिने किनारेसे कमलपुर तीन मील दूर पर अवस्थित है। कमलपुरमें लोहे और चीनीका कारखाना है। यहाँ प्राचीन बहुतसे देवमन्दिरोंका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। नरपति राजाओंके समय हागो नगरी बड़ी समृद्धिशाली थी। नरपति राजाओंने हागोमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर देवमन्दिर बनवाये थे। ज्ञमणकारिणण उन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष अभी भी देखने आते हैं। उनमेंसे विरूपाक्ष, रामस्वामी, विठोवा और नरसिंहस्वामीके मन्दिर सबसे भेष्ट हैं। इनके अलावा अनेक मन्दिर और मण्डप टूट फूट गये हैं। विरूपाक्ष मन्दिरमें पद्यापनीश्वर महादेव विराजमान हैं। कोई कोई कहते हैं, कि यह मन्दिर माधवाचार्य विद्युवारण्य स्वामीके समयका बना हुआ है। उनका उपासनास्थान और समाधि आज भी मौजूद है। यहाँ उनके

शिथ्य लोग शङ्कराचार्यी नामसे पुकारे जाते हैं। ये इस विरूपाक्ष-मन्दिरके चिह्नमें रहते हैं। गोपुर, शिथी-लय और सामनेका मण्डप बहुत बड़ा और प्रनाइट-पत्थरका बना हुआ है। इसके सामनेकी तिप्पकुल पुष्करिणी चारों ओर प्रनाइट-पत्थरसे बंधी हुई है। यहाँ धार्मिक रथोत्सव होता है।

रामस्वामीका मन्दिर तुङ्गभद्राके तट पर अवस्थित है। इसके दूसरे किनारे श्रेष्ठमुख पर्वत है। रामस्वामीके मन्दिरसे आध मील दूर तुङ्गभद्राके दाहिने किनारे सुप्रसिद्ध विठोबा-मन्दिर विराजमान है। इसकी गठन और कार्य कार्य बहुत सुन्दर है। तालिकोटा-युद्धके बाद यवन सेनाओंने विजयनगर ध्वंस कर यह देवालय लूट लिया था। उन्होंने घनके लोभसे मूलस्थानसे श्रीमूर्त्ति दूरमें फेंक कर मन्दिरकी मेज तक तहस नहस कर डाली थी। आज कल विठ्ठलदेवकी श्रीमूर्त्ति दीर्घ नहीं पड़ती। मुसलमानोंके जुद्धसे श्रीमूर्त्ति अस्तित्वित हो गई है। प्राचीनकालकी गौरवकीर्त्तिके शेष चिह्नस्वरूप दुर्गाका भग्नावशेष आज भी मौजूद है। दुर्गके अन्दर राजभवनका भग्नावशेष, भग्न देवालय, विचारालय, हस्तियाला और उद्दरालाके सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। यह विशाल समृद्धिशालिनी नगरी अभी महाप्रमशानमें परिगणित हो गई है।

विधानगरका पूर्व इतिहास।

पूर्व ही कहा आये है, कि १५५० ई०में मृत्युति विजय-ध्वजने विजयनगर बसाया। किन्तु ११५० ई०के पहले ही इस प्रदेशकी समृद्धिशालिताका परिचय मिलता है। १३वीं सदीके प्रारम्भमें सलिमान नामक एक मुसलमान बनिपेने सबसे पहले यहाँका वृत्तान्त प्रकाशित किया। ये वसोरा नामक स्थानमें रहने थे। सलिमानने बलहरा राजाका नाम उल्लेख किया है।

सलिमानने और भी कहा है, कि थाफेक राजाका राज्य उतना बड़ा नहीं था। वहाँको खियोंका शरीर जैसा सुन्दर था वैसे भारतमें और कहीं भी नहीं। इस थाफेक राज्यके अलावा रहमी नामका और भी एक राज्य है। वहाँके राजाको काफी सेना थी। ये पचास हजार हाथी ले कर लड़ाईमें जाते थे। इस देशमें सूती

कपड़ा बड़ा सुन्दर और महीन तैयार होता था। अरबी प्रन्थके अनुवादक मुसो रेनो इस रहमी साम्राज्यकी दक्षिणात्यका सुप्रसिद्ध विजयनगर या विजयपुर बता गये हैं।

अब विजयनगरके संस्थापक विजयध्वजकी वंशावलीके सम्बन्धमें थोड़ी आलोचना की जाती है। दक्षिणात्यमें तुङ्गभद्रा नदीके उत्तरी तट पर आज कल जो आनगुंडो राज्य विद्यमान है, यही प्राचीन क्रिष्णन्ध्या कहलाता है। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि चन्द्रवंशिय नन्दमहाराज १०१४ ई०से ले कर १०७६ ई० तक आनगुंडोके राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित थे। वे अपने जन्मभूमि वाहिकदेशसे दक्षिणात्यमें भ्रमण करनेके लिये आये और विधाताके नियतिक्रमसे क्रिष्णन्ध्यामें अपने पराक्रमसे आनगुण्डो राज्यशकी एक अभिनव भित्ति कायम की। उनके तितोभायके बाद १०७६ ई०में चालुष्य महाराज राजगद्दी पर बैठे और १११७ ई० तक उन्होंने शासनकार्य चलाया। चालुष्यमहाराजके तीन पुत्र हुए—विजलराज, विजयध्वज और विष्णुवर्द्धन। विजलराजने कल्याणपुर जा कर एक स्वतन्त्र राज्य कायम किया। सबसे छोटे विष्णुवर्द्धनकी कोई बात इतिहासमें नहीं मिलती। मंभले विजयध्वज सचमुच विश्वविश्रुतकीर्त्ति स्वनामधन्य महापुरुष थे। इन्होंने ही पुण्यतोया तुङ्गभद्राके दहिने किनारे अपने नाम पर सम्भवतः ११५० ई०में विजयनगर नामक जगद्विख्यात नगर संस्थापन किया। ये १११७ ई०में आनगुण्डोके पैतृक राजसिंहासन पर बैठे थे। विजयनगर बसानेके बाद ५ वर्ष तक वे जीवित रहे। इनके परलोक सिंघात्ते पर ११५५ ई०में इनके पुत्र अनुवेम विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। ११७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इसके बाद इनके पुत्र भरसिंह देवरायने उसी वर्ष सिंहासन पर बैठ कर ६७ वर्ष तक राज्यभोग किया। ये बहुत दिनों तक विजयनगरके सिंहासन पर अर्चिष्ठित रहे, इसलिये मुसलमान लोग इनके नामके साथ उक्त राज्यका सम्बन्ध दृढ़ करनेके लिये विजयनगरको 'नरसिंह' कहा करते थे। १२४६ ई०में ये करालकालके मुघलमें पतित हुए। उसी साल रामदेवराय

राजगद्दी पर बैठे। रामदेवरायने १२४६से ले कर १२७१ ई० तक राजत्व किया। इसके बाद उनके पुत्र प्रताप १२७१ ई०से १२६७ ई० तक विजयनगरके सिंहासन पर प्रतिष्ठित रहे। १२६७ ई०में प्रताप रायकी मृत्यु हुई। तदनन्तर उसी वर्ष उनके पुत्र जम्बूकेश्वर रायने राजपद पर प्रतिष्ठित हो १३३४ ई० तक राज्य किया। जम्बूकेश्वरके कोई पुत्र न था। इनकी मृत्युके बाद सारे देशमें अराजकता फैल गई। इस समय माधवाचार्य विदुवारण्य ने शृङ्गेरी मठसे विजयनगर लौट कर वहाँ अपने नामानुसार विदुवानगरकी प्रतिष्ठा की। रायवंशावलीसे यह विवरण लिया गया है। धानगुण्डीके वर्त्तमान राजाके पास आज कल भी यह वंशावली मिलती है।

विधानगर।

जा हो, हमलोग ११५० ई०से विजयनगरका इतिहास स्पष्टरूपसे देत्र पाने हैं। किन्तु बहुत थोड़े दिनोंमें ही अनेक प्रकारकी शासनविशृङ्खलासे विजयनगरकी अद्यन्या शोचनीय हा गई थी। १३३६ ई०में विजयनगरके भन्नावशयके ऊपर माधवाचार्य विदुवारण्यने विदुवानगर बसाया। किस प्रकार उनके द्वारा विदुवानगर स्थापित हुआ, यह कहानी बड़ी विचित्र है।

विजयनगरके शेष शासनकर्त्ता जम्बूकेश्वर राय १३३५ ई०में परलोक सिंधारे। इनके कोई वंशधर न थे, जम्बूकेश्वरकी मृत्युके बाद विजयनगरका राजसिंहासन वृषतिशून्य हो गया जिससे बहुत जल्द ही चारों ओर घोर अराजकता फैल गई। समूचे देशमें अशान्तिकी भाग धधक उठी।

इस समय द्यामय श्रीभगवान्ने दाक्षिणात्यमें हिन्दू राजतंत्रका मूल सुदृढ़ करनेके लिये हिन्दूराज्य विस्तारका एक अभिनव अद्भुत उपाय रचा। जम्बूकेश्वरकी मृत्युके बाद एक वर्ष बीतते न बीतते १३३६ ई०में माधवाचार्यने विजयनगरके सिंहासन पर यादवसन्तति नामक एक नया राजवंश प्रतः प्रतः किया। इस वंशके आदिपुरुष युक्तराय थे। यहाँ माधवाचार्यका थोडा विवरण उल्लेख करना आवश्यक है।

माधवाचार्य परम पण्डित ब्राह्मण थे, किन्तु दारिद्र्य दशासे निस्पृह हो कर वे धन पानेके लिये हारपी नगरमें

भुवनेश्वरीदेवीके मन्दिरमें घोर तपस्यामें लग गये। लेकिन देवीने उनकी मनस्कामना पूरी न कर स्वप्नमें उन्हें आदेश किया—“तुम्हारी कामना इस जन्ममें पूरी न होगी, दूसरे जन्ममें तुम धनलाभ करोगे।” स्वप्नमें देवीका यह आदेश पा माधव उसी समय हारपीनगर परित्याग कर शृङ्गेरी मठ पहुँचे और वहाँ उन्होंनेसंन्यास लिया। अन्तमें वे इस मठमें जगद्गुरु चि शरण्य नामसे प्रसिद्ध हुए। माधवाचार्य विदुवारण्य चेदमाध्यकार सायणके भाई तथा स्वयं सर्वशास्त्रमें सुपण्डित थे। धर्मस्वर विवरण विचारण्य स्वामी शब्दमें लेलो।

जो हो, माधवाचार्यने जब सुना, कि विजयनगरके राजा जम्बूकेश्वरके मरने पर समूचे देशमें भीषण अराजकता उपस्थित हुई है, मुसलमान लोग दाक्षिणात्यमें अपन प्रभाव फैलानेके लिये प्रस्तुत हो रहे हैं तथा सनातन हिन्दुधर्मकी यथेष्ट ग्लानि हो रही है, तब माधव शृङ्गेरी मठके निवृत्त साधनपीठका परित्याग करके कन्नप्रद प्रदेश तरद तीर्थ गतिसं विशृङ्खलापूर्ण विषय व्यापारमय विजयनगरको ओर दीड़े। जिस सर्वमङ्गला भुवनेश्वरी देवीके पादमूलसे सत्र दिनोंके लिये विदाय ले कर माधवाचार्य सुदूर शृङ्गेरीमठ पहुँचे थे, वे सबसे पहले आमिन नगरमें उसी भुवनेश्वरीके मन्दिरमें आ कर प्रणत हो गड़े। देशकी रक्षाके लिये सर्वतयागो संन्यासीने अपनी मोक्षसाधना त्याग करके माताके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया। कितने दण्ड तथा प्रहर बीत गये, श्रीविदुवारण्यने देवीके चरणसे अपना स्त्रि न हटाया। अन्तमें द्यामयोंने साक्षात् हो कर कहा, “अब तुम्हारे वासना पूरी होगी। तुम जब माधवाचार्य थे, तब तुम्हें धन-प्राप्तिका वर नहीं दिया लेकिन अब तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है—तुम अब श्रीविचारण्य स्वामी सर्वतयागो संन्यासी हुए, अब तुम्हारे इस अभिनव जीवनमें यह प्राप्तिना पूरी हुई। तुम्हारे द्वारा अब विजयनगर क्रमशः श्रीसम्पन्न होगा।” विदुवारण्य स्वामीने शिर उठाया, इसी दिनसे उन्होंने विशाल विजयनगरका भार अपने कंधे पर लिया और साध्यान्तकी भलाईके लिये निष्कामभावसे जीवन समर्पण किया। १३३६ ई०में इस सर्वतयागो संन्यासीके पवित्रतम नामसे ही ध्वंसावशेष विजयनगरमें अतीव सम्पुष्टिशाली विदुवानगर प्रतिष्ठित हुआ।

विद्युवारण्य स्वामीने विद्युधानगर स्थापित कर दश वर्ष तक राज्यशासन किया। इसके बाद वे सङ्गमराज-वंशको सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर आप मन्त्री वन राज-कार्य चलाने लगे। यद्यपि विद्युवारण्य स्वामीने दश वर्ष तक स्वयं विद्युधानगरका शासन किया, तो भी वे राजा वा महाराज नामसे पुकारे न गये। सङ्गमराज प्रथम हरिहर नवस्थापित विद्युधानगरके प्रथम राजा हुए। हरिहरके चार भाई थे—कम्प, बुक्क, मारण्य और मुद्दण्य। ये सभी भाई समरपट्ट और अति विश्वासी थे। हरिहरने इन सबों पर राज्यका दायित्वपूर्ण कार्यभार सौंपा था। इससे एक ओर राजकार्यकी जैसी सुशृङ्खला और सुचन्द्रोद्यस्त हुआ, दूसरी ओर उनके भाई लोग भी वैसी ही राज्यकी सभी अवस्थाएं जाननेकी सुविधा समझ गये। विद्युधानगरके इतिहासमें प्रथम बुक्कका नाम घिरप्रसिद्ध है। समरविद्या में बुक्कका असाधारण वाणित्य था। ये समर-विभागके प्रधान कर्मचारी पद पर नियुक्त हुए। कड़ापा और नेल्लुर अञ्चलमें कम्प वन्दोद्यस्त और जमीन जमावृत्तिका कार्यभार इनके हाथ पड़ा। मारण्य कदम्ब राजाओंका प्रदेश अपने दखलमें कर महिसुरके पश्चिमके चन्द्रगिरि अञ्चलमें अधेस्थान करके वहाँका शासन करने लगे। हरिहरके एक पुत्र हुआ जिसका नाम पड़ा सोमन, किन्तु हरिहरके जीते ही सोमनकी मृत्यु हो गई और बुक्क ही युवराजके पद पर अभिषिक्त हुए।

किन्तु राजगुरु माघवाचार्य विद्युवारण्यको बिना सलाह लिखे इस विशाल साम्राज्यका एक तृण भी स्थानान्तरित नहीं होता था। उनके परामर्शसे ही पांचों भाई पांचों पाण्डवके समान राज-कार्य चलाते थे। शृङ्गेरी-मठके साथ विद्युधानगरका सम्बन्ध बढ़ा घनिष्ठ हो गया था। शृङ्गेरीमठका एक अनुशासन पट्टनेसे मालूम होता है, कि पांचों भाई और लड़केके साथ हरिहरने शृङ्गेरीमठके गुरु श्रीवाद् सजिष्य भारतीयोंके नौ गाँव प्रदान किये। हरिहरने शृङ्गेरीमठके निष्ठा हरिहरपुर नामक एक पृथक् पृथक् स्थापन कर केशवमठ नामक एक ब्राह्मणको उक्त गाँव दान कर दिया। हरिहरके समय महिसुरका अनेक अंश विद्युधानगरके अन्तर्भूक्त हुआ। हरिहरके ही दूतने दूतने राजा-सत्राद्ध सन्ध कर मान्य

करने थे। फेरिस्ता पट्टनेसे जाना जाता है, कि हरिहरने हिन्दू राजाओंके साथ मित्र कर शिष्टोक्त सुलतानके परास्त किया था। इस युद्धमें जग लाम वर वरङ्ग, शैवगिरि, होयगल, बनाना आदि दक्षिण अञ्चलके राजाओंके शासन बढ़तरी प्रदेश उनके कब्जेमें आ गये।

एक अनुशासन पट्टनेसे पता चलता है, कि हरिहरने नागरण्ड एक अपना शासनप्रभाव विस्तार किया था। वर्त्तमान महिसुरका उत्तर पश्चिम अंश ही नागरण्ड नामसे प्रसिद्ध है।

"राजवंश" नामक विजयनगरकी राजवंशावलीके विवरणसे जाना जाता है, कि हरिहरने १३३६से ले कर १३५४ ई० तक राज्य किया। किसी औरका कहना है, कि १३५० ई० पर्यन्त ही उनका राजत्वकाल था। इसके भीतर उन्होंने राज्य बढ़ानेके लिये बड़े-बड़े घेरा फोड़े। १३४४ ई०में समूचे दक्षिणात्यसे उन्होंने मुसलमानोंको भगा दिया था। कोई कोई कहते हैं, कि हरिहरका दूसरा नाम बुक्क था।

सुम्न्याप।

हरिहरकी मृत्युके बाद राजसिंहासन पर बौन बैठे, इसको ले कर विस्तर मतभेद देखा जाता है। हरिहरके पकलीते पुत्र उनके जीते ही मृत्युमुखमें पतित हुए थे। हरिहरके मरने पर उनके चार सहोदर भाई मौजूद थे, उनमेंसे कम्प ही बड़े थे। मि० स्यूथेलका कहना है, कि हरिहरके परलोकवासि होने पर कम्प ही राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे, किन्तु असाधारण घोर बुद्धि उन्हें विताडित कर अपने प्रभावसे ही सिंहासन अधिकार कर लिया। इस विषयमें बहुत तर्क वितर्क है। फलतः हरिहरके बाद बुक्क ही विद्युधानगरके शासनकर्त्ता हुए थे।

बुक्कगय ठोक कब सिंहासन पर बैठे, यह ले कर भी मतभेद है। किसीका कहना है, कि १३५० ई०में, फिर कोई कहते हैं, कि १३५५ ई०में वे राजगद्दी पर बैठे थे। बुक्कके असाधारण प्रताप था—उनके प्रभावसे समूचा दक्षिणात्य कांपता रहता था। एक ताम्रशासनमें लिखा है, कि बुक्कके शासनकालमें चतुर्मतो प्रचुर शैवगालिनी थी, प्रजातो किसी महारता कृत् न था, जनसमाजमें

सुखका प्रवाह प्रवाहित था और सारा देश घनधान्यसे समृद्धिशाली हो उठा था।

युद्धके राजत्वकालमें विदुषानगरका जो अनुल ऐश्वर्य हुआ था, अनेक ताम्रशासनमें उसका परिचय मिलता है। इस समय सुविशाल दुर्ग, हज़ारों सेना, सैकड़ों हाथी और विपुल युद्धसम्भार विदुषानगरकी विश्वविजयिनी कीर्ति उद्धोषित करता था।

युद्धके अघर तीन भाई अपने अपने निर्दिष्ट प्रदेशोंके अधिकारी हो कर उन्हीं सब प्रदेशोंका शासन करते थे। प्रावश्यकता पड़ने पर आपसमें सलाहके लिये समय समय पर ये लोग विदुषानगर आते थे। युद्धके शासनकालमें १३६१ ई०को दिल्लीके सुलतानके साथ विदुषानगरके राजाकी लड़ाई छिड़ी थी। उस समय युद्धराजाके एक असाधारण वीर सेनापति थे। उनका नाम था महिनाथ। महिनाथका नाम सुन कर सुसलमानोंका हृदय कांप उठता था। वे बहुत दिनों तक सेनापति रहे थे। उन्होंने अलाउद्दीनकी तथा महम्मद शाहकी परास्त किया था। किन्तु फेरिस्ता पढ़नेसे मालूम होता है, कि बालानो राज्यके अधिपति महम्मद शाहने युद्धराजाकी सेनाओंकी पानी पानी कर डाला था। उन्होंने स्वयं विदुषानगरमें प्रवेश कर विदुषानगरकी बड़ी दुर्दशा की थी। अन्तमें बहुत अनुरोध करने पर उनका क्रोध शांत हुआ। फेरिस्ताका कहना है, कि इस घोर युद्धमें पांच लाख हिन्दू मारे गये थे। मि० स्यूयेलने फेरिस्ताके इन सब विवरणोंको नितास्त अतिरञ्जित समझा है। फलतः फेरिस्ताने इस विषयमें जो विस्तृत विवरण लिखा है, वह बहुत कुछ झूठा भी है। फेरिस्ताके ग्रन्थकारने स्वजातियोंके मुझसे बहुत-सी अतिरञ्जित घटनाओंको सुन कर ही महम्मद शाहकी कीर्तिगौरव अथवा बढ़ावा दी है।

जो हो, इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि इस युद्धमें दोनों पक्षोंकी महती क्षति हुई थी। इस युद्धके बाद कुछ समय तक दोनों शासनकर्त्ताओंमें फिर युद्ध-विग्रह न हुआ था।

फेरिस्तामें युद्धरायको हरणराय कहा है। महिनाथ दामिनल नामसे पुकारे गये हैं। इस प्रकार अपरापर

नामोंकी भी यथेष्ट पृथक्ता देखी जाती है। फेरिस्ता पाठ करनेसे पता चलता है, कि किशन राय उर्फ युद्धरायके साथ महम्मद शाहके पुत्रकी और एक बार लड़ाई छिड़ी थी। इस युद्धमें युद्धराय भाग कर सेतुबन्ध रामेश्वर चले गये और वहाँ जङ्गलमें छिप रहे थे। किन्तु दूसरे दूसरे ऐतिहासिक फेरिस्ताकी इस उक्ति पर अविश्व्वास करते हैं।

नूनीज (Nuniz) ने लिखा है, कि देवराय (हरिहर राय) की मृत्युके बाद युद्धराय पर राज्य भार सौंपा गया। युद्धरायने विद्रोहियोंको विताडित कर बहुत-से स्थान अपने राज्यमें मिला लिये थे, यहाँ तक कि उन्होंने उड़ीसा तक अपने राज्यमें शामिल कर लिया था। इनके मरने पर इनके पुत्र सिंहासन पर आरूढ़ हुए। मि० स्यूयेलका कहना है, कि १३७६ ई०में युद्धरायकी मृत्यु हुई। महाराजाधिराज परमेश्वर वीर युद्धरायके पुत्रके प्रदत्त एक अनुशासनपत्रमें देखा जाता है, कि उन्होंने अपने पिताके शिष्यसायुज्य पानेके लिये १२६८ शकमें एक गाँव ब्राह्मणोंको दान किया। इस गाँवका नाम रखा गया युद्धरायपुर। आधुनिक ऐतिहासिकोंने सिद्धान्त किया है, कि १३५४ ई०से ले कर १३७१ ई० तक युद्धरायने राज्य किया था।

२५ हरिहर राय।

युद्धरायकी दो पत्नीके गर्भसे पाँच सन्तान पैदा हुईं। उनकी पहली स्त्रीका नाम था गौराश्रिका। इस गौराश्रिकाके गर्भसे हरिहरने जन्मग्रहण किया। १३७७ ई०से ले कर १४०४ ई० तक हरिहरने राजत्व किया था। हरिहर पिताके जेठे लड़के थे। इसलिये जब ये सिंहासन पर बैठे तब कोई छोड़छाड़ न हुई। हरिहरके साथ भी सुलतानके बालानो राज्यके मुसलमान शासनकर्त्ताओंका युद्ध हुआ था। इसमें हरिहरने ही विजय पाई थी।

मि० स्यूयेलका कहना है, कि हरिहर अपने लगभग २० वर्ष तक राज्यशासन किया था। हरिहर महाराजाधिराज उपाधिसे भूषित हुए थे। हरिहर देवमन्दिरमें यथेष्ट पृथक्ता बन्धोवस्त कर गये हैं तथा दक्षिणात्यमें उन्होंने अपने राज्यकी भित्ति मजबूत कर रखी थी। माघमाचार्य-

का माई स्थापण उनके प्रधान मन्त्री थे। इनके मुदा और पुरुष नामके दो सेनापति थे। २५ हरिहर धर्ममतमें बड़े उदार थे। वे दूसरे दूसरे सम्प्रदायके मन्दिर और मठादिके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। गुंडा नामक उनके और एक सेनापतिका परिचय मिलता है। हरिहरको राज्य पाते ही लड़ाईकी तैयारी करनी पड़ी थी। उन्होंने गोयानगरोसे मुसलमानोंको निकाल बाहर कर दिया था। इनको पाटनानीका नाम अलायिक था। शासनादि पढ़नेसे मालूम होता है, कि महिसुर, धारवाड़, काञ्चीपुर, चेङ्गलपट और त्रिचिनापल्लीमें भी इनका अधिकार फैल गया था। ये विरूपाक्ष शिष्यके उपासक थे।

बुकराय २५।

हरिहर २५ तीन पुत्रको छोड़ परलोक सिधारे। उनके प्रथम पुत्रका नाम सदाशिव महाराय, द्वितीयका बुकराय २५ (वे बुकराय देवराय नामसे भी विख्यात थे) और तृतीयका विरूपाक्ष महाशय था। इनमेंसे बुकराय २५ व देवरायने १४०४ ई०से १४२४ ई० तक राज्यशासन किया। बुकराय वा देवराय बड़े पराक्रमी थे। पिताकी मीज्जुदगीमें ये अनेक धार मुसलमानों सेनाका मुकाबला करनेके लिये समरक्षे ल भेजे जाते थे। देवरायको निहत करनेके लिये दाक्षिणात्यके मुसलमानोंने बड़ी चेष्टा की थी। दिल्लीके सुलतानने पढलो लड़ाई कर देवरायको निहत करनेके लिये प्रस्ताव किया। किन्तु वह परामर्श सुविधाजनक न होनेसे अन्तमें देवरायको या उनके पुत्रको छिपके मारनेका प्रस्ताव हुआ। सरानजी नामक एक काजी इस उद्देश्यसे कतिपय धंघुओंके साथ फकीरके वेशमें देवरायके शिविरमें समुपस्थित हुआ। देवरायके शिविरमें उस समय नर्त्तकी नाच करती थी। फकीरवेशी काजी और राजाके बन्धुगण उसी स्थान पर पहुंचे। दुष्ट काजीने एक नर्त्तकीको देख कर प्रणयों होनेका बहाना किया। यहां तक, कि उसका पाँव पकड़ कर उससे अनुरोध किया, कि तूम मुझे छोड़ राजसभामें जा नहीं सकती। नर्त्तकीने कहा—राजसभामें बाढ़के अलावा किसीको भी जानेका ह्युषम नहीं है। काजी साहब कब छोड़नेवाले थे। नर्त्तकी उसके गुण पर मुग्ध हो कर उसे सभामें ले गई। काजी और उसके बान्धव खोका रूप धर कर रंगभूमि-

में पहुंचे। इस सभामें देवरायके पुत्र उपस्थित थे। ये लोग नाना प्रकारके क्रीडाक्रीतुक दिखाने लगे। अंतमें तलवारका खेल शुरू हुआ। तलवार चलाते चलाते शेषमें इन दुष्टोंने देवरायके पुत्रको और बत्तो बुझा कर सामने जिसको पाया मार डाला। देवराय कहीं दूरमें थे, संवाद पाते ही वे शोकसे मलिन हो गये। दूसरे दिन सेनाधोके साथ वे अपनी राजधानी लौटे। मुसलमान-सेना प्रचुर धन और द्रव्यादि लूट कर ले गई। यह सेना विद्यानगरके चारों ओर हमला करके घूमने लगी। उस समय सैकड़ों ब्राह्मण भी मुसलमानोंके हाथ बन्दी हुए थे। अन्तमें प्रचुर धन दे सुलतानको परितुष्ट कर विद्या किया गया।

फिरोज शाहके इस अत्याचारसे विद्यानगरके दक्षिण-पश्चिमाञ्चल प्रदेशमें भीषण शोचनीय दशा उपस्थित हुई थी। देवराय (१५) हरिहर (२५) रायके प्रतिविम्बस्वरूप थे। किसी किसी ऐतिहासिकका कहना है, कि देवरायके राजत्वकालमें उनके सेनानायकने धारवाड़का दुर्ग बनाया। उस समय फिरोज शाहने इतना जुलम किया था, कि उनके भयसे हिन्दुओंको हमेशा शंका बनी रहती थी। एक घटनाकी बात लिखी जाती है। बाह्यनी राज्यके अन्तर्गत मुद्गलके एक सुनारकी कन्या फिरोज शाह द्वारा हर ली गई थी। इससे देवराय बड़े भीन हुए और उस समय उन्होंने इसकी कन्याको धारवारके राजाके साथ प्याह कर दिया। १४६७ ई०में इन्होंने फिरोज शाहको समुचित शिक्षा दी थी। उन्होंने दलबलके साथ बाह्यनीराज्यमें प्रवेश कर गाँव और नगर आदि लूटे। १४२२ ई०में महम्मद शाहके अतिक्रमणसे देवरायके खेमे पर आक्रमण करने पर उन्होंने ईशके जंगलमें भाग कर अपनी जान बचाई। अहम्मद शाहने उस समय घेरक-ठोक देवालय, ग्राम और नगरको लूटा तथा राजका भी कुछ अंश अपने राज्यमें शामिल कर लिया था। १४४४ ई०में देवरायने यह अंश फिर गढ़ाया। १४५१ ई०में उन्होंने मानवलोला संघरण की। देवरायके राजत्वकाल सम्बन्धमें इस ऐतिहासिककी उक्तिके साथ रायबंशावलका पार्थय दिखार देना है।

विजयराय १म।

देवरायको अनेक पुण्यक्रीतिके चिह्न ऐतिहासिकोंने संग्रह किये हैं। देवरायके पाँच पुत्र हुए, किन्तु वे चार पुत्रकी छोड़ परलोक सिधारे। छोटे लड़केको कैसे दुष्ट फाजोने मारा, यह विवरण पहले ही लिख आया है। उनको छोका नाम था पम्पादेवी। पम्पाके गर्भसे विजयराय, मास्कर, मलन, हरिहर आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। विजयरायने १४४२ ई०से १४४३ ई० तक सिर्फ एक वर्ष राज्यभोग किया। इससे इनके समय कोई विशेष घटना न घटी।

देवराय २य।

विजयरायको पत्नीका नाम नारायणाम्यिका था। नारायणाम्यिकाके गर्भसे विजयरायके दो पुत्र तथा एक कन्या जनी। इनके उपेष्ट पुत्रका नाम देवराय था। इन्होंने १४४३से १४४६ ई० तक राज्य किया। देवरायके छोटे भाई पार्वतीराय १४२५ ई०में मृत्युमुखमें पतित हुए। उनकी बहन हरिमादेवीके साथ सल्लुवतिष्प राजाका विवाह हुआ।

जिस समय द्वितीय देवरायने राज्यभार अपने हाथमें लिया, उस समय सारा दक्षिण गटव विधानगरके राजाके मातहतमें हो गया था। विजयनगरके राजवंश जाति-वर्णनिर्विरोधसे प्रजापालन करते थे। उन लोगोंके शासनसे शिल्पसाहित्य आदिकी खूब ही उन्नति हुई थी। देवरायके चाचा बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने महामण्डलेश्वर हरिहर राय नामकी क्याति पाई थी। देवराय जब नाथालिग थे, तब ये ही शासनकार्यकी देख-रेख किया करते थे। बहुतसे तादृशशासन और शिलालिपिमें इनके दानादिका उल्लेख मिलता है।

फेरिस्तामें देवरायके साथ मुसलमान-पति अलाउद्दीनके भाई मद्दमद खाँ का एक युद्ध-वृत्तान्त वर्णित है। फेरिस्ताका कहना है, कि देवराय अलाउद्दीनको सालाना कर देने थे। पाँच वर्ष तक उन्होंने कर नहीं दिया। पीछे वे देनेमें इत्कार चले गये। इस पर अलाउद्दीन बड़े गिड़गिड़ और देवरायका राज्य तहस-नहस कर डाला। देवरायने अन्नमें वीच दे दी, चाफो रकम तथा दो सौ नरसोंको उपहारमें दी। १४४२ ई०में देवराय अपनी अवस्था पर

बड़े चिन्तित हुए। मुसलमानोंका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता देख उनके मनमें आतङ्कता-सञ्चार हुआ। उन्होंने अपने मन्त्री, सभासद और सभापण्डितोंको बुला कर कहा, 'मेरे राज्यका परिमाण पहले तो राज्यके परिमाणसे कहीं अधिक है मेरी सेना, धनबल और युद्धका सामान मुसलमानोंसे उपादा ही होगा, कम नहीं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि फिर भी लड़ाईमें मुसलमानोंकी ही जीत हो रही है। इसका कारण क्या?' उत्तरमें किसीने कहा, कि मुसलमानोंके पुद्ग-सवार और घोड़े बहुत अच्छे हैं, हम लोगोंके जैसे नहीं हैं। किसीने कहा, कि सुलतानके तीरग्वंज बड़े सिद्ध-हस्त हैं, हम लोगोंके जैसे तीरन्दाज नहीं।

सुचतुर देवराय अपने सेनाबलकी कमजोरी देख सैन्यविभागमें मुसलमानों सेना भर्ती करने लगे। उन लोगोंको जागोर मिली, उपासनाके लिये मसजिद बनवा दी गई तथा राज्य भरमें द्विद्वारा पिटवा दिया गया, कि मुसलमानोंके प्रति कोई भी अत्याचार न कर सकेगा।

वे अपने सिंहासनके अग्रभाग पर अति सुसज्जित एक काठके बक्समें छुरानसरीक रखते थे। उनका उद्देश था, कि मुसलमान अपने धर्मानुसार उनके सामने ईश्वरोपासना कर सकें। उन्होंने मुसलमानोंके लिये जो सब मसजिदें बनवा दी थीं, आज भी उन सब मसजिदोंका भग्नावशेष हाथ्या या हस्तिनावती नगरमें दिखाई देता है। केवल देवराय ही नहीं, विधानगरके रायवंश धर्ममतके सन्तन्धमें उदार थे। उन लोगोंके विपुल राज्यमें हिन्दू मुसलमान और जैन आदि बहुतसे लोग रहते थे। वे लोग प्रत्येक धर्मसम्प्रदायका आदर करते थे तथा सभी धर्मोंकी मर्यादा रखते थे। देवराय (२य) राजनीतिमें बड़े सुपण्डित थे।

पारस्यदून अम्बुल रजाकके लिखित विवरणसे ज्ञान जाता है, कि देवरायका भाई देवराय और उनके दलबन्धकी मारकर स्वयं सिंहासन पानेके लिये पद्मवन्न कर रहा था। एक दिन उसके भाईने सभासदोंके साथ देवरायको अपने यहाँ निमन्त्रण किया। मीका देव कर उस दुष्टने देवरायके बहुतसे सभासदोंकी मार डाली और

आखिर देवरायको भी निमग्नपालयमें ले जा कर मारने-की चेष्टा की। किन्तु देवराय ताड़ गये और निमग्नपालयमें न गये। दुर्वृत्तने उसी जगह तलवारके प्रहारसे उन्हें जर्जरित कर दिया, वे मृतप्राय हो गये। उनका दुष्ट भाई उन्हें मरा जान कर चला गया। किन्तु भगवान्‌का कृपासे देवरायको जान न गई। पीछे उन्होंने दुष्ट भाईको उचित शिक्षा दी थी। अबदुल-रजाक स्वयं विद्वानगर गये। इन्होंने यह भी कहा है, १४४३ ई०के शेषमें देवरायके चञ्चोर दान-नायकने गुलबर्ग पर आक्रमण किया। इस घटनाके साथ फेरिस्ता-लिखित घटनाका मेल देखा जाता है। अबदुल रजाकका कहना है, कि देवरायके भाईको दुष्ट चेष्टासे विद्वानगरमें जो दुर्घटना घटी थी, अलाउद्दीनको भी यह संवाद मिला था। इस समय देवराय को संग करना सुविधाजनक समझ कर उसने बाकी कर मांग भेजा। इस पर देवराय उत्तेजित हो गये। दोनोंकी सीमा पर तुमुल संग्राम छिड़ गया। अबदुल रजाकने कहा—दाननायक गुलबर्गमें प्रवेश कर बहुत-से वस्त्रियोंके साथ लौटे। फेरिस्ताका कहना है, कि देवरायने बाह्यनाराज्यके मुसलमानों पर अनर्धक आक्रमण किया था। उन्होंने तुलुभद्रा पार कर मुद्रलका दुर्ग जोता, रायचूड़ आदि स्थानोंको दफल करनेके लिये पुनोको भेजा। उनकी सेनाने विजापुर पर आक्रमण किया और इन सब स्थानोंकी अवस्था शोचनीय कर डाली थी। उधर अलाउद्दीनने यह संवाद पा कर तेलिङ्गना, दीक्षतावाद और घोरसे सेनासंग्रह कर अहमदाबाद भेजा। इस समय उसकी गुड़सवार सेनाकी संख्या ५०००० और पदातिककी ६०००० थी। दो मासके भीतर तीन तुमुल युद्ध हुए—उन युद्धोंमें दोनों पक्षको महती क्षति हुई थी—हिन्दुओंने पहले जयलाम किया था, किन्तु आखिर खान जमानके आघातसे देवराय का बड़ा लड़का यमपुरकी सिंधारा। इस शोचनीय घटनासे हिन्दुसेना तितर बितर हो गई और मुद्रल दुर्गमें भाग चली। अन्तमें देवरायने मेल कर लिया।

अभी जो शासन और शासनलिपि आविष्कृत हुई हैं उनसे ज्ञाना जाता है, कि घोरप्रताप देवराय महारायने

भारतवर्षके दक्षिण प्रान्त तक अपना शासनप्रभाव फैलाया था। मद्रुरा जिलेके तिचमलय आदि स्थानोंमें भी देवरायका देवकीर्तिके विह्व दिव्याई देते हैं। देवरायने समग्र दक्षिणात्य, भारतके दक्षिण प्रान्त और पूर्वीय कूल पर्यन्त अपना राज्य फैलाया था। इनके समय विद्वानगरकी बहुत कुछ श्रेष्ठि हुई थी—मुसलमानोंको सामयिक कार्यामें नियुक्त कर इन्होंने सैन्यबल बढ़ाया था। देवरायके समय राजस्व भी बहुत बढ़ गया था। इन्होंने "गजयेण्डर" नामकी एक विशिष्ट उपाधि पाई थी। आप असानान्य घोर थे, फिर भी आपके हृदयमें यथेष्ट दया थी। उत्तरमें तेलिङ्गना और दक्षिणमें तञ्जोर पर्यन्त विस्तृत भूभागमें आप स्वयं परिभ्रमण कर देशको अवस्था जानते थे।

फेरिस्तामें लिखा है, कि अलाउद्दीनने देवरायसे बाकी कर मांगा था। देवरायसे कर मांगना अलाउद्दीनका बया अधिकार था, यह जानना कठिन है। वर्तमान ऐतिहासिक फेरिस्ताको इस उक्ति पर विश्वास नहीं कर सकते। फलतः कृष्णानदीकी सीमासे कुमारिका अन्तरीप पर्यन्त जिनका शासनदण्ड परिचालित होता था, वे अपनेको अलाउद्दीनका करद राजा स्वीकार करें, ऐसा हो ही नहीं सकता। पर हाँ, युक्तविषयमें परास्त होने पर कुछ अर्धदान करना असम्भव नहीं। देवराय मल्लिकार्जुन और विक्रपाक्ष से दो पुत्र छोड़ परलोकको सिंधारे।

मल्लिकार्जुन।

द्वितीय देवरायकी मृत्युके बाद विद्वानगरके सिंहासन पर कौन अधिकार हुआ, यह ले कर प्राचीन ऐतिहासिकोंमें बहुत मतभेद है। किन्तु अभी जो सब ताम्रशासन और शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं, उनकी आलोचना कर देखा गया है, कि २० शिलालिपिमें अविश्वदाित भाषमें लिखा है, 'देवरायकी मृत्युके बाद १४४६ ई०में उतके लड़के मल्लिकार्जुन राजसिंहासन पर बैठ १४६५ ई० तक राज्य-शासन किया। मल्लिकार्जुन विविध नामोंसे पुकारे जाते थे—इमाडि बौद्ध देवराय, इमाडि देवराय, घोर प्रताप देवराय। श्रीशैल पर जो मल्लिकार्जुनदेव है, उन्हींके नामानुसार इनका नामकरण हुआ। मिम्माना

दण्डनायक इनके प्रधान मंत्री थे। ये लोकानुरक्त राजा थे। १४६४ ई०में इनके एक पुत्ररत्नने जन्मग्रहण किया। इस पुत्रके सम्बन्धमें कुछ विशेष बातें नहीं जानी जाती। मल्लिकार्जुन स्वधर्मनिरत थे, इनका दान भी अनुलनोप था। रायव'शावलीमें मल्लिकार्जुनकी जगद-रामचन्द्र रायका नाम देखा जाता है। सम्भवतः रामचन्द्रराय इन्हीं मल्लिकार्जुनका नामाग्रतर है। द्वितीय देवरायने दो स्त्रीका पाणिग्रहण किया था। पहली स्त्री पदलवा-देवीके गर्भमें मल्लिकार्जुन और दूसरी सिंहलदेवीसे विरूपाक्ष उत्पन्न हुए थे।

विरूपाक्ष ।

मल्लिकार्जुनके स्वर्गवासी होने पर १४६६से १४७८ ई० तक विरूपाक्षने विधानगरका शासनभार ग्रहण किया। अभी इस सम्बन्धमें बारह शिलालिपियाँ पाई गई हैं। मल्लिकार्जुन और विरूपाक्षके राज्यशासनके सम्बन्धमें कोई विशेष ऐतिहासिक घटना नहीं जानी जाती। इन दोनोंमें कौन काम किया था, इनके समय प्रजाकी अवस्था ही कैसी थी, ये लोग किस प्रकार राज्य करते थे, इनके अधीन कौन कौन राजा किस किस प्रदेशका शासन करते थे, किस प्रकार इन दोनोंकी मृत्यु तथा किस प्रकार इनके वंशके बदले नये व्यक्तिने एकाएक राज्यमें प्रवेश कर राजसिंहासन पर अधिकार जमाया, इन सब घटनाओंका आज तक पता नहीं चला है। आज भी उन सब घटनाओंके ऊपर किसी प्रकारका ऐतिहासिक प्रकाश नहीं पड़ा है। १४६२ ई०में महम्मदशाह वाहानी के बेलगाँव लौटने पर भी विरूपाक्षने दक्षिणकी ओर मसलौपत्तन तक अपना राज्य फैलाया तथा युसुफ आदिलशाहकी वाहानी राज्यके विरुद्ध साहाय्य पहुँचाया था।

एक शिलालिपिमें स्पष्ट लिखा है, कि महाराजाधिराज राजा परमेश्वर शौधोर प्रताप विरूपाक्ष महाराजके शासन कालमें राज्य भरमें शान्ति और समृद्धि विराजती थी। इस समय राजतन्त्रों नायकने अमर नामक सम्राट्के आदेशसे अप्रदार अमृतान्तपुरमें प्रसन्नकेशय देवमन्दिरके निकट एक गोपुर बनवाया था। १४७८ ई०में यह शिलालिपि लिखी गई। इस प्रकार और भी कितनी

शिलालिपियाँ द्वारा जाना जाता है, कि विरूपाक्ष रायने १४७८ ई० तक राज्यशासन किया। विरूपाक्ष ही सङ्गम-वंशीय राजाओंमें अन्तिम राजा थे। इसके बाद एक दूसरे प्रभावशाली पुरुषने विद्वानगरके राजसिंहासन पर अधिकार जमाया।

सङ्गमराजवंशकी उत्पत्ति ।

अभी हमने विद्वानगरके जिन सङ्गम-राजवंशके राजाओंके नाम और शासनका बात लिखी है, वे लोग किस वंशके थे, यह ले कर अनेक मतभेद दिखाई देता है। कोई कोई कहते हैं, कि ये लोग देवगिरिके यादववंश-सम्भूत थे, फिर कोई धनवासीके कदम्बवंशसे ही इनकी उत्पत्ति बतलाते हैं। एक दूसरे सम्प्रदायने एक अज्ञत आशयान द्वारा इनका वंशनिर्णय कर रखा है। वे लोग कहते हैं, कि चरङ्गल राजाओंके गोपालक दो अल्पक्ष जब आनगुण्डी प्रामसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर जा रहे थे, तब माधवाचार्यने उन पर असीम कृपा बरसाई थी। उन्होंने अपने नाम पर विद्वानगर बसा कर हुबक वा हरहरको विद्वानगरके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। किन्तु अभी जो एक शिलालिपि पाई गई है, उससे मालूम होता है, कि यादववंशसे ही सङ्गमराजवंशका आधि-भाव हुआ है।

नरसिंहराजवंश ।

विरूपाक्षकी मृत्युके बाद सलुप नरसिंह विद्वानगरके सिंहासन पर बैठे। इन नरसिंहके साथ सङ्गम राजवंशका कोई भी सम्बन्ध न था। नरसिंहने अपने वाहुवलसे अनधिकार स्थानमें अपना प्रभाव फैला कर विद्वानगरके राजसिंहासन पर अधिकार जमाया। ऐतिहासिकोंने नरसिंहके 'पूर्व' पुरुषोंका नामोस्मरण किया है। नरसिंहके पितामहका नाम तिम्म, पिता महोका नाम देवको और पिताका नाम ईश्वर और माताका नाम लुक्कामा था। नरसिंहके और भी दो नाम हैं, नरेश और नरैय अयनीलाल। इनकी दो स्त्रियाँ थीं तिपाजोदेवी और नागलदेवी वा नागाशिवका। कोई कोई कहते हैं, कि नागाशिवका नरसिंहकी थी। १४७८से १४७९ ई० तक नरसिंहने राज्यभोग किया। इसके बाद उनके प्रथम पुत्र चोर नरसिंहेंद्र १४८७से १५०८ ई० तक

विद्वानगरके सिंहासन पर बैठे थे। इनके सेनानायक रामराजने कर्नूल जा कर वहाँके दुर्गाध्यक्ष यूसुफ आदिल सेधोयकको समरमें परास्त किया, पीछे वे दुर्गको अधिकार कर लश्कर (जागोरेदार) रूपमें कार्य्य करने लगे। इन समय चौर नरसिंहेंद्रके वैमात्रेय भ्राता कृष्णदेवराय उनके प्रबन्धीके कार्योंमें नियुक्त हुए थे। कृष्णदेवरायकी असाधारण क्षमता थी। तेलगुभाषामें कृष्णदेवका प्रशंसासूचक बहुत-सी कविताएँ देखी जाती हैं।

कृष्णदेव राय।

कृष्णदेवकी एक कवितासे ज्ञाता जाता है, कि १४६५-६०में कृष्णदेव रायालुका जन्म हुआ। विद्वानगरके राजाओंके इतिहासमें कृष्णदेवरायका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने १५०६ से १५३० ई० तक प्रबल पराक्रम और अदभ्य उत्साहके राज्यशासन किया। इनके शासनके समय विद्वानगरकी समृद्धि बहुत बढ़ी बढ़ी थी। कृष्णदेवने उत्तरमें कटक पर्यन्त अपनी विजयपताका फहराई थी। इन्होंने उड़ीसाके सुविषयात वैष्णव राजा प्रतापरुद्र देवकी कन्यासे विवाह किया। १५१६ ई०में उड़ीसाराजके साथ इनकी जो सन्धि हुई उससे उड़ीसा राज्यकी दक्षिण सीमा कोम्पापरुत्री विजयनगरकी उत्तर सीमा रूपमें निर्दिष्ट हुई। इन्होंने पहले द्राविडदेशको अपने राज्यमें मिला लिया। महिस्तुरके उमातुरके गङ्गा-राजने इनकी अधोनता स्वीकार की। इस युद्धमें शिव-समुद्रका दुर्ग और श्रीरङ्गपट्टन इनके हाथ लगा। इनके बाद सारा महिस्तुर इनके अधिकारमें आ गया। १५१३ ई०में इन्होंने नेलारके उदयगिरि प्रदेशमें अपनी गोटी जमाई। इसी स्थानमें कृष्णस्वामीका विग्रह ला कर इन्होंने विद्वानगरमें स्थापन किया। १५१५ ई०में इनके सेनानायक तिमम मरुत्तुने गजपति शासनकर्ताके अधिष्ठत कोण्डवीडू दुर्गको अधिकार किया। इसके बाद दक्षिण प्रायतके कितने दुर्ग इनके हाथ लगे थे। इस समय सारा पूर्वी उपकूल इनके शासनाधीन हुआ। १५१६ ई०में इन्होंने कृष्णानदोके उत्तर अपना शासन-प्रभाव फैलाया। १५१८ ई०में इन्होंने जं अनुशासन लिल कर देधोत्तर सम्पत्तिको प्रबन्ध कर दिया वह पण्डुरी-तालुकाके पेदकाकनी ग्राममें, धोरभद्रदेवके मन्दिरमें,

चापटला नगरमें तथा विजयवाड़ाके कनकदुर्गा-मन्दिरमें पाया गया है। १५२६ ई०में इन्होंने नरसिंहमूर्त्तिकी स्थापना की।

कृष्णदेवरायने पश्चिममें कृष्णा, उत्तरमें श्रीशैल, पूर्वमें कोण्डवीडू, दक्षिणमें तन्नपुर और मधुरा तक अपना राज्य फैलाया था। उन्हींके शासनकालमें मधुरामें नायक राज्य प्रतिष्ठित हुआ था। कृष्णदेवने संस्कृत और तैलङ्ग भाषाकी उन्नतिके लिये थड़ी चेष्टा की थी। उनकी सभामें अष्ट दिग्गज पण्डित रहते थे। कृष्णदेव शहर जैसे चौर थे, उधर उनकी भगवद्भक्ति भी यथेष्ट थी। महाराज प्रतापरुद्रने वेष्णव ज्ञान कर उनके हाथ अपनी कन्याको समर्पण कर दिया था। इसके सिवा उनकी और भी एक स्त्री थी। चिन्नादेवोसे एक कन्याने जन्मग्रहण किया। कृष्णदेव १५३० ई०में परलोकको लिये। मृत्युके समय इन्हें एक भी पुत्र न था।

अच्युत।

कृष्णदेव रायालुकी मृत्युके बाद अच्युतेन्द्र रायालु विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। १५३० से १५४२ ई० तक इन्होंने राज्य किया। अच्युत राय और कृष्णदेव रायको ले कर अद्भुत मतभेद देखा जाता है। एक ताम्र शासनसे मालूम हुआ है, कि अच्युत राय कृष्णदेव रायके वैमात्रेय भाई थे। कृष्णदेवके पिता नरसिंहने ओधि-भिका नामकी एक और स्त्रीका पाणिग्रहण किया था। इस स्त्रीके गर्भसे नरसिंहके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसीका नाम अच्युत या अच्युतेन्द्र था। कृष्णदेवके एक भी सन्तान न थी, फिर एक दूसरी शिलालिपिमें लिखा है, कि अच्युतेन्द्र कृष्णदेवके पुत्र थे। १५३८ ई०में अच्युतेन्द्रने कोण्डवीडू तालुकामें गोपालस्वामीका मन्दिर बनवा दिया था; शिलालिपिसे यह बात मालूम होती है। अच्युतेन्द्र थड़े धार्मिक थे। वे अपने पूर्वपुरुष कृष्णदेव रायालुकी तरह देवमन्दिर निर्माण, देवप्रतिष्ठा, प्राहणोंको प्रहोत्तर दान आदि अनेक सत्कार्योंमें रुचये धर्चा कर गये हैं। उन्हींने तिनयेल्ला नगरमें अपना आधिपत्य फैलाया और कर्नूलमें दुर्ग बनवाया था।

वदाशिव राय।

१५४२ ई०में अच्युतकी मृत्यु हुई। पीछे सदाशिव

रायातु विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। सदाशिवके शीशय कालमें अच्युतका देहान्त हुआ था। अच्युतके साथ सदाशिवका पया सम्बंध था, इस विषयमें भी बहुत मतभेद दिखाई देता है, काशीनगरकी एक प्राचीन लिपिसे जाना जाता, कि वरदादेवो नामकी अच्युतकी एक स्त्री थी, उस स्त्रीके गर्भसे चेड्डटाद्रि नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। चेड्डटाद्रिने अल्प काल तक राज्य किया था। उनको मृत्युके बाद सदाशिव नामक उनके एक आरमीयने राजसिंहासन पर दखल जमाया। सदाशिव रङ्ग रायके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था तिममाया देवी। वसन नामक स्थानमें जो प्राचीन लिपि पाई गई है, उसे देख कर मि० रास्तेने सिद्ध किया है, कि सदाशिव अच्युतके पुत्र थे।

जो ही, सदाशिव जब तक बालीग न हुए थे, तब तक उनके मन्त्रियोंने राजकार्य चलाया था। इन सब मन्त्रियोंके मध्य रामराय सर्वाप्रधान थे। रामरायको कुछ लोग रामराजा भी कहते थे। रामराय सदाशिवको सर्वदा नजरबंदी रख कर अपना मतलब गाँठ लिया करते थे। सदाशिवके मामा तथा अन्यान्य सचियोंको यह अच्छा न लगा और वे सबके सब रामरायके विरुद्ध पड़पन्न करने लगे। रामरायने अपनेको विपद्से बिरा देख कुछ दिनका अवकाश ले लिया। इस समय सदाशिवके मामा तिममराजने शासनभार अपने हाथ लिया। किन्तु उनके लौहशासनसे थोड़े ही दिनोंके मध्य प्रजा तंग तंग आ गई। यह देख सामन्त राजाओंने उनका काम तमाम करनेकी साजिश की। तिममराजने इस समय विजयपुरके इब्राहिम आदिल शाहकी सहायता देना स्वीकार किया था। मुसलमानोंका प्रादुर्भाव देख कर सामन्तराज गण कुछ दिन अथमत मस्तकसे प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु मुसलमानोंके चले जाने पर ही सामन्तोंने तिममराज को राजप्रासादमें फँद रखा। तिममराजसे यह कष्ट सहा न गया और उसने आत्महत्या कर ली। इस घटनाके बाद रामराज पुनः सदाशिवके नाम पर विजयनगरका शासन-परिचालन कार्य करने लगे।

रामराज।

सदाशिव नाममात्रके राजा थे। फलतः रामराज ही

विजयनगरके प्रकृत राजा समझे जाते थे। सदाशिवके बाद ही नरसिंह राजवंशका नाम विलुप्त हुआ। इनके बाद रामराजका वंश विजयनगरके राजवंशके इतिहासमें देखा जाता है। यही रामराज मंत्री थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। रामराजके पितामह रामराज नामसे भी परिचित थे। इनके पुत्रका नाम शोरङ्ग था। शोरङ्गका एक दूसरा नाम था शोरङ्ग रामराजा। शोरङ्ग भी मंत्री थे। तिममल या तिममलाम्यिका देवीके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके तीन लड़के थे, बड़ेका नाम रामराज था। रामराज ही विजयसिंहासनके अधिकारी हुए। इनके एक भाईका नाम तिमम या तिममल और दूसरेका चेड्डट या चेड्डटाद्रि था। तिमम या तिममलका हाल पीछे लिखा जायेगा।

रामराजने आदिलशाहके साथ एक बार संधि की थी। किन्तु समय और सुविधा देख उन्होंने सन्धि तोड़ आदिलशाहोंके अधिष्ठन राज्यके कुछ अंशोंको अपने राज्यमें मिला लिया। परन्तु इसका परिणाम बहुत घराब निकला। अली आदिलशाह गोलकुण्डा, अहमदनगर और विदर्भ राजाओंके साथ मिल कर रामरायके विरुद्ध तालिकोटमें आ धमके। उन लोनेने कृष्णा नदी पार कर दश मील दूर रामराजकी सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। सारी शक्तिके प्रदल आक्रमणसे भी चतुर रामराय बहुत देर तक युद्ध करने रहे थे, किन्तु आखिर विधेपाय देख वे भाग चले। मुसलमान-सेनाने उनका पीछा किया। पादकी डोनेवाले पादकी छोड़ चम्पन हुए। वे बन्दो हो कर आदिलशाहके सामने लाये गये। आदिलशाहने उनका शिर काट डाला। १५६० ई०को तालिकोटमें यह घटना घटी थी। इधर मुसलमानी सेनाके विद्वानगरमें प्रवेश करनेसे पहले ही सदाशिव रायातु पेशकूण्डाको भाग गये।

रामरायके पतनके समयमें और भी एक घृत्नागत सुननेमें आता है। कैशर फ्रेडरिक नामक एक पर्याटक तालिकोटा युद्धके दो वर्ष बाद घटना-स्थलमें आये थे। उन्होंने लिखा है, कि रामराजकी सेनामें दस मुसलमान सेनानायककी विध्यासघातकतासे ही रामराजकी पराजय हुई थी।

विद्यानगर छ'व ।

चाहे रामरायका पतन किसी भी कारणसे हो, पर उनके पतनके साथ ही सुविशाल विद्यानगर ध्वंस-प्राय हो गया। रामरायका हत्यासंबाध प्रचारित होनेके बाद हिन्दूसेना चारों ओर भागने लगी, हिंदू राजे बहुत डर गये, किसी किसीने पराक्रमशाली मुसलमान शासक-कर्त्ताओंका साथ दिया। १५६५ ई०में मुसलमानोंने अपने प्रतापसे, विद्रोही हिंदूओंकी तथा हिंदूराजकी विश्वासघातक मुसलमान-सेनाओंकी सहायतासे विजयनगर पर आक्रमण कर दिया। इस समय यदुवधि विद्यानगरकी परिधि ६० मीलसे कम होते होते २७ मील हो गई थी, तो भी इसके राजपथ, उद्यान, राजप्रासाद, देव-मंदिर, नगर, हर्म्यादि पार्श्ववर्ती अन्यान्य राजाओंको राजधानीसे कई गुणोंमें श्रेष्ठ थे। मुसलमानोंने क्रमागत अबाध और निर्विवादसे दश मास आक्रमण और लूट कर विद्यानगरकी समस्त शोमासम्पत्तु और विपुल वंशवको विध्वस्त तथा समृद्धिशाली सौन्दर्ययम विद्यानगरको शमशानमें परिणत कर डाला। देवालय ढोह दिये गये, मूर्तियाँ तोड़ दी गईं, राज-प्रासादकी ध्वंस कर घन-रत्नादि लूट लिये गये, हाट बाजार उजाड़ बना दिया गया, अधिवासी स्त्रीपुत्र ले कर अपने मानप्राणकी रक्षाके लिये भाग गये।

अन्यान्य राजगण ।

स्यूयेलका कहना है, कि इसके बाद श्रीरङ्गके द्वितीय पुत्र तिरुमलने १५६४ ई०से १५७३ ई० तक राज्य किया। किन्तु मि० स्यूयेलकी प्रदत्त संशयलोमें देखा जाता है, कि रामराजके दो पुत्र थे, वड़े का नाम कृष्णराज और छोटेका निरुमलराय था। कृष्णराजने भांगगुण्डीमें अपनी राजधानी बनाई थी। उनके एक भी पुत्र न था। रामरायके ज्येष्ठ पुत्र रहते हुए भी कनिष्ठ किस प्रकार राजगद्दी पर बैठा था, उसका कारण मालूम नहीं। तिरुमलकी चार खियाँ थीं, देङ्गलम्बा, राघवाम्बा, पद्मेम्बा और कृष्णवाम्बा। तिरुमलने १५६७ ई०को पेन्नकुण्डामें राजधानी प्रतिष्ठित की। इनके तीन पुत्र थे, श्रीरङ्ग उनके विद्याधी, तिरुमलदेव उनके श्रीदेव और चेङ्कटपति।

श्रीरङ्गका शासनकाल १५७४से १५८५ ई० तक

माना जाता है। तिरुमलने सिर्फ कई मास राज्यशासन किया। इसके बाद १५८५ ई०के शोवाद्धसे लगायत १६१४ ई० तक चेङ्कटपतिने राज्य किया। विद्यानगरके राजाओंकी मायगलक्ष्मी जब जाती रही, तब उसके साथ साथ राजधानीके स्थानमें भी बहुत हेर फेर हुआ था। चेङ्कटपति पेन्नकुण्डामें चन्द्रगिरिमें राजधानी उठा लाये। चेङ्कटपतिके बाद निम्नलिखित राजगण विजयनगरके राजा कह कर प्रसिद्ध थे।

नाम	ई०
श्रीरङ्ग (२य)	१६१६
राम	१६२०—१६२२
श्रीरङ्ग (३य) और चेङ्कटपति	१६२३
राम और चेङ्कटपति	१६२६—१६३६
श्रीरङ्ग (४थ)	१६३६—१६६५

इन सब राजाओंके नाम और शासनकालका समय बिलकुल ठीक है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। किन्तु श्रीरङ्गका शासनकाल १६३६ ई०के पूर्वसे आरम्भ हुआ था, इसमें संदेह नहीं। क्योंकि इन्हीं श्रीरङ्गने १६३६ ई०में अंगरेजोंको मद्राजका बन्दर दिया था। इसके बाद हम और एक तरहका राजवंश पाते हैं जो इस प्रकार है—

नाम	ई०
श्रीरङ्ग	१६६५—१६७८
चेङ्कटपति	१६७८—१६८०
श्रीरङ्ग	१६६२
चेङ्कट	१७०६
श्रीरङ्ग	१७१६
महादेव	१७२४
श्रीरङ्ग	१७२६
चेङ्कट	१७३२
राम	१७३६ ?
चेङ्कटपति	१७४४
* *	* *
चेङ्कटपति	१७६१—१७६३
दूसरे प्रथममें भिन्न विवरण देला जाता है, जैसे—	
श्रीरङ्ग रायायु	१५५७—१५८५

नाम	ई०
घेडूटपति मेघ रावातु	१५८५—१६१४
निजामदेव रावातु (पल्लूर राजधानीमें)	१६१५—१६२३
रामदेव रावातु	१६२४—१६३१
घेडूट रावातु	१६३२—१६४३
धीरङ्ग रावातु	१६४४—१६५४

इस प्रथम में इसके बादके और किसी भी शासन-कर्त्ताका नाम नहीं लिखा है। मधुराके राजा तिरुमलके पदग्रहणसे किस प्रकार विजयनगर राज्य विलुप्त हुआ उसका संश्रित विवरण इस प्रकार है—तिरुमल नायक विजयनगरके राजा नरसिंहके विद्रोही हो उठे। उस समय विधानगरके राजाओंकी राजधानी पल्लूरमें थी। जिजो, नञ्जाचर, मधुरा और महिसुरके राजगण उस समय भी विजयनगरके राजाको कर देते थे। बीच बीचमें अनेक प्रकारके उपद्रोहकन द्वारा राजाका सम्मान भी किया जाता था। किंतु विद्रोही तिरुमल विजयनगरकी घशयना स्वीकार करनेको प्रस्तुत न थे। नरसिंह रायने तिरुमल पर शासन करनेके लिये सेना इकट्ठी की। तिरुमलको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होने जिजिराजके साथ मेल कर लिया।

तिरुमल बड़े ही कुटिल थे। उन्होने नरसिंहरायको परास्त करनेके लिये गोलकुण्डाके सुलतानके साथ गल्लगायी। नरसिंह जब मधुरामें तिरुमल पर आक्रमण करने गये, तब गोलकुण्डाके सुलतानने अच्छा मौका पा कर उसी समय नरसिंहके राज्य पर हमला कर दिया। नरसिंह धीरबुद्धय थे। ये तिरुमलको कब्जेमें करके सेनाके साथ स्वदेश लौटे। पीछे उन्होने न आततायी सुलतानको अच्छी शिक्षा दे कर दे प्रासे निकाल बहाक किया, किंतु दूसरे वर्ष सुलतानने बहुत-सी सेनाके साथ धा कर नरसिंहको हराया। नरसिंह हतोत्साह हो कर दक्षिण देशके नायकोंके साथ मिलनेकी कोशिश करने लगे, किन्तु कोई फल न हुआ। पीछे १ वर्ष ४ मास तक ये नञ्जाचरके उत्तरी जङ्गलमें छिा रहे। इस समय उनके अमात्य और सेनाने, उन्हे छोड़ दिया था। नरसिंहने इसके बाद महिसुरराजका आश्रय लिया। इधर तिरुमल अनेक प्रकारकी घटनाओंमें पड़ कर सुमलभानोंकी अधीनता

स्वीकार करनेकी बाध्य हुए। तिरुमलकी निवृत्ततामें विना खून खराबोके मधुरा गोलकुण्डाके सुलतानके हाथ आया।

इसके बाद नरसिंह महिसुर राज्यसे भागपरीक्षाके लिये स्वदेश लौट आये। उन्होंने फिर सैन्यसंग्रह कर कुछ प्रदेशों पर अधिकार जमाया तथा गोलकुण्डाके सेनानायकको युद्धमें परास्त कर और भी कई प्रदेशोंका उद्धार किया। नरसिंहके पराक्रमसे दक्षिणार्थमें पुनः हिन्दुराज्यके अभ्युदयकी सम्भावना हो उठी। किन्तु ईर्ष्यापरायण तिरुमलको कुटिलबुद्धिसे हिंदुराजका आग्रापी सूर्य देखते देखते मेघाच्छन्न हो गया। तिरुमलके आमन्त्रणसे गोलकुण्डाके सुलतानने महिसुरके सेनापतिकी अनुपस्थितिमें महिसुरराज्य पर आक्रमण कर दिया। उसके फलसे विजयनगरका हिंदुराज्य सदाके लिये विध्वस्त हो गया। सच पुष्टिये, तो तिरुमल ही विजयनगरध्वंसके मुख्य कारण थे। इससे स्वदेश और स्वजातिद्रोही तिरुमलको क्षतिके सिवा कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तिरुमल इसके बाद सुलतान द्वारा विशेषरूपसे उरपीड़ित हुए थे।

दीर्घवश।

मि० स्यूथेलके मतसे पीछे घेडूटपतिसे अर्धात् १७६३ ई०के बाद तिरुमल राजाका नाम देखनेमें आता है। १८०१ ई०को १२वीं जुलाईको मि० मनरोने गयमेंटके पास आनगुण्डाके राजाओंका कुछ विवरण देने हुए एक पत्र लिखा। उन्होने लिखा—आनगुण्डाके वर्तमान राजा (१८०१ ई०में) विजयनगर राज्यके दीर्घ हैं। इनके पूर्वपुरुषोंने सुमलभानोंसे हरणयल्ली और चित्तलदुर्ग जागीरमें पाया था। १८०० ई०के आरम्भमें ये लोग मुगलबादशाहकी २००००) २० कर देते थे। १६४६ ई०में जब ये दोनों स्थान मराठोंके अधीन हुए तब आनगुण्डाके राजाकी दूज हजार २० तथा एक हजार पदानिक और एक सौ घुड़सवार सैन्य महाराष्ट्र प्रान्त कर्त्ताकी सेना पढ़ता था। १७८६ ई०में सौ सुलतानने यह जागीर जप्त कर ली। राजा तिरुमल निजामराज्यमें भाग गये तथा १७९१ ई० तक ये पलायक अवस्थामें बर्हा रहे। १७९६ ई०में उन्होने फिरसे आनगुण्डा पर चढ़ाई कर दी।

इन्होंने अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। किन्तु पीछे इन्हें वाधय हो कर आनगुण्डोका शासनभार निजामके हाथ सौंपना पड़ा। इससे राजा तिकमल निजामके वृत्तिभोगी हुए। तिकमलने १८०१ ई०से निजाम से वृत्ति पा कर १८२४ ई०को मानवलीला संवरण की। तिकमलके दो पुत्र थे। वित्तके मरनेसे पहले ही बड़े लड़के एक कन्याको छोड़ इस लोकसे चल बसे। छोटेका नाम घोर वेङ्कटानि था। विवाहके पहले ही इनकी मृत्यु हुई थी। वे १८३१ ई० तक जीवित थे। तिकमलकी पौतोके गर्भसे तिकमलदेव नामक एक पुत्र और लक्ष्मीदेवाम्मा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। तिकमल १८६६ ई०को पञ्चरथकी प्राप्त हुए। तिकमलदेवके तीन पुत्र और एक कन्या थीं। प्रथम पुत्र वेङ्कटरामराय, २य पुत्र कृष्णदेव राय, पीछे वेङ्कमा नामको एक कन्या और उसके बाद नरसिंह राजाका जन्म हुआ। नरसिंहने १८७० ई० में जन्मप्रदण किया। इसके एक वर्ष बाद बड़े भाईका और उसके भी एक वर्ष बाद दूसरे भाई कृष्णदेवराजका देहान्त हुआ। वेङ्कटरामराय दो कन्याको छोड़ स्वर्गवासी हुए।

विद्यानगरकी समृद्धि।

प्रसन्नसलिला तुङ्गभद्रा नदीके दाहिनी किनारे उस मझासमुद्रिशाली हिन्दू राजकीर्तिके चिह्नस्वरूप विद्यानगरका धर्मसायरीय आज भी विद्यमान रह कर विद्युवानगरकी प्राचीन गौरवमहिमाको घोषित करता है। श्रीमद्विद्यापण्य मुनिके समयसे ही विद्युवानगरके विपुल वैभवका सूत्रपात हुआ। उस शुभ समयमे ही इस विद्याल राज्यका परिमाण, अर्थगौरव और राजवैभव दिनों दिन बढ़ता गया। विद्युवानगरके विद्याल वैभवकी बात सुन कर पारस्य और यूरोप आदि स्थानोंके विदेशीय पर्यटकगण यह विद्याल नगर देखनेको आते हैं।

गणभेदो गिरिमालाकी तरह सुरक्षित सुदृढ़ दुर्गमाला, कब्रिकद्वान इन्द्रपुरीको मान करनेवाले वैभव-जोभासयो विपुल सुगम्य राजासनाद, नगरमें बहनेवाली बहुत-सी जलप्रवाहिका, शकुन्धटा आदि मुञ्चरित श्रीविप्रद गण अध्यूयित श्रेयमन्दि, अगण्य शिक्षार्थसंकुल विद्यालय, विविध काचकार्यलखित प्रतिहारीमण्डलाधिष्ठित

सुशोभित वल्लमण्डल, विविध द्रव्यसे परिपूर्ण भ्रमण्य लोकमुञ्जरित पण्यशाला, विलासिजनसुखतेष्य सुरम्य प्रमोदमवन, विरद्विस्तृशोभामय लतामण्डप, विविध कुलुमराजिराजित, मधुकरकरस्थित मनोहर पुष्पोद्धान, कमलकुमुदकण्ठारपुष्प सरोवर, सौधश्रेणीके मधयवसौ सरल और सुदीर्घ राजपथ, हस्तिशाला, अश्वशाला, गोध्यावास, फलके बोझसे अवनत फलोद्धान, मन्त्र-गयन, सभामण्डप, धर्माधिकरण आदि विविध नागरीय वैभवमें विद्युवानगर किसी समय जगत्के प्रधान शहरोंमें गिना जाता था। कृष्णदेव रायालुके शासनकालमें विद्युवानगरको समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। इस समय यसयपसनमूले ले कर नागनपुर पर्यन्त विद्युवानगर शहर विस्तृत था। इसकी लम्बाई १४ मील और चौड़ाई १० मील थी, इसका रकबा एक सौ चालीस वर्गमील था, तमाम धनी वस्ती नजर आती थी। दूर दूर देशोंसे आये हुए यणिक, राजपतिनिधि और राजदूतगण विद्युवानगरमें आ कर अपना अपना कर्म किया करते थे। विद्युवानगरके शासनकर्त्ताओंका समरविभाग बहुत ही बड़ा चढ़ा था। हजार हजार मनुष्य इस विभागमें सभी समय नियुक्त होते थे। युद्धके सामान सर्वदा सजा कर रखे जाते थे। कुशो, कसरत और विविध प्रकारके श्यायामकी चर्चाका अच्छा प्रबन्ध था। विद्युवानगरमें इस समय जो सब पहलवान दिखाई देने थे, भारतवर्षमें वैसे और कहीं भी न थे। फिर दूसरी ओर विविध विलासजनक कलाविद्युवाभी भी यथेष्ट चर्चा हुई थी। सुगायक, नर्तक और नर्तकियोंका भी अभाव न था। इस समय विद्युवानगरमें विविध शिवाकार्यकी उन्नति हुई थी। हजारों मनुष्य गिहय-कार्यकी उन्नति कर सुखसे जीविका निर्वाह करते थे। स्थापत्य कार्यसे भी हजारों मनुष्यकी जीविका चलती थी। अगण्य सौधसमाकीर्ण विद्यानगर हजारों स्थपतिकी जीविका प्रदान करता था, यह सद्गजमें अनुमान किया जा सकता है। नित्य ध्यवहाय अन्न और समराख निर्माणके कारण कर्मकारोंका खूब आदर होता था तथा उनकी खूब उन्नति हुई थी। फिर विद्युवानगर हिन्दू राजाकी राजधानी होनेके कारण यहां पीरीहियोजीजी ब्राह्मणोंकी संख्या भी बहुत ज्यादा थी। उस समय पर-

नाम	ई०
वेङ्कटपति देव रायालु :	१५८५—१६१४
चिक्कदेव रायालु (वल्लूर राजधानीमें)	१६१५—१६२३
रामदेव रायालु	१६२४—१६३१
वेङ्कट रायालु	१६३२—१६४३
धीरङ्ग रायालु	१६४४—१६५४

इस प्रथम ईसके बादके और किसी भी शासनकर्त्ताका नाम नहीं लिखा है। मधुराके राजा तिरुमलके पड़पत्तसे किस प्रकार विजयनगर राज्य विलुप्त हुआ उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—तिरुमल नायक विजयनगरके राजा नरसिंहके विद्रोही हो उठे। उस समय विद्यानगरके राजाओंकी राजधानी पल्लूरमें थी। जिज्ञो, तञ्जाचूर, मधुरा और महिसुरके राजगण उस समय भी विजयनगरके राजाको कर देते थे। बीच बीचमें अनेक प्रकारके उपद्रोहकन द्वारा राजाका सम्मान भी किया जाता था। किंतु विद्रोही तिरुमल विजयनगरकी वश्यता स्वीकार करनेको प्रस्तुत न थे। नरसिंह रायने तिरुमल पर शासन करनेके लिये सेना एकट्ठो की। तिरुमलको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने जिञ्जिराजके साथ मेल कर लिया।

तिरुमल वडे ही कुटिल थे। उन्होंने नरसिंहरायको परास्त करनेके लिये गोलकुण्डाके सुलतानके साथ मेलना की। नरसिंह जब मधुरामें तिरुमल पर आक्रमण करने गये, तब गोलकुण्डाके सुलतानने अच्छा मौका पा कर उसी समय नरसिंहके राज्य पर हमला कर दिया। नरसिंह वीरपुरुष थे। वे तिरुमलको कब्जेमें करके सेनाके साथ स्वदेश लौटे। पीछे उन्होने आततायो सुलतानको अच्छी शिक्षा दे कर देशसे निकाल बहार किया, किंतु दूसरे वर्ष सुलतानने बहुत-सी सेनाके साथ आ कर नरसिंहको हराया। नरसिंह हतोत्साह हो कर दक्षिण देशके नायकोंके साथ मिलनेकी कोशिश करने लगे, किन्तु कोई फल न हुआ। पीछे १ वर्ष ४ मास तक वे तञ्जाचूरके उत्तरी जङ्गलमें छिप रहे। इस समय उनके अमात्य और सेनाने, उन्हें छोड़ दिया था। नरसिंहने इसके बाद महिसुरराजका आश्रय लिया। इधर तिरुमल अनेक प्रकारकी घटनाओंमें पड़ कर मुसलमानोंकी अधीनता

स्वीकार करनेको बाध्य हुए। तिरुमलको निवृद्धितासे बिना खून बरायोके मधुरा गोलकुण्डाके सुलतानके हाथ आया।

इसके बाद नरसिंह महिसुर राज्यसे भाग्यपरीक्षाके लिये स्वदेश लौट आये। उन्होंने फिर सैन्यसंग्रह कर कुछ प्रदेशों पर अधिकार जमाया तथा गोलकुण्डाके सेनानायकको युद्धमें परास्त कर और भी कई प्रदेशोंका उद्धार किया। नरसिंहके पराक्रमसे दक्षिणात्यमें पुनः हिन्दुराज्यके अम्युदयकी सम्भावना हो उठी। किन्तु ईर्ष्यापरायण तिरुमलकी कुटिलचुस्त्रिसे हिंदुराजका आशा रणी सूर्य देखते देखते मेघाच्छन्न हो गया। तिरुमलके आमन्त्रणसे गोलकुण्डाके सुलतानने महिसुरके सेनापतिकी अनुपस्थितिमें महिसुरराज्य पर आक्रमण कर दिया। उसके फलसे विजयनगरका हिंदुराज्य सदाके लिये विध्वस्त हो गया। सच पुष्टिये, तो तिरुमल ही विजयनगर-ध्वंसके मुख्य कारण थे। इससे स्वदेश और स्वजातिद्रोही तिरुमलको क्षतिके सिवा कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तिरुमल इसके बाद सुलतान द्वारा विशेषरूपसे अट्पीडित हुए थे।

दीर्घवर्ष।

मि० स्यूयेलके मतसे पीछे वेङ्कटपतिसे अर्थात् १७६३ ई०के बाद तिरुमल राजाका नाम देखनेमें आता है। १८०१ ई०की १२वों जुलाईकी मि० मनरोने गवर्मेण्टके पास आनगुण्डाके राजाओंका कुछ विवरण देते हुए एक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा—आनगुण्डाके वर्तमान राजा (१८०१ ई०में) विजयनगर राज्यशके दाहिने हैं। इनके पूर्वपुत्रोंने मुसलमानोंसे हरपणग्रही और चित्तलदुर्ग जागीरमें पाया था। १८०० ई०के प्रारम्भमें ये लोग मुगलवाद्दाशहको २००००० रु० कर देते थे। १६४६ ई०में जब ये दोनों स्थान मराठोंके अधीन हुए तब आनगुण्डाके राजाको दश हजार रु० तथा एक हजार पदातिक और एक सौ घुड़सवार सैन्य महाराष्ट्र शासन कर्त्ताको देना पड़ता था। १७८६ ई०में टीपू सुलतानने यह जागीर जब्त कर ली। राजा तिरुमल निजामराज्यमें भाग गये तथा १७९१ ई० तक वे पलातक अवस्थामें यहाँ रहे। १७९६ ई०में उन्होंने फिरसे आनगुण्डा पर चढ़ाई कर दी।

इन्होंने अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार न की। किन्तु पीछे इन्हें वापस हो कर आनगुण्डोका शासनभार निजामके हाथ सौंपना पड़ा। इससे राजा तिरुमल निजामके वृत्तिभोगी हुए। तिरुमलने १८०१ ई०से निजाम से वृत्ति पा कर १८२४ ई०को मानवलोला संवरण की। तिरुमलके दो पुत्र थे। पिताके मरनेसे पहले ही बड़े लड़के एक कन्याको छोड़ इस लोकसे चले गये। छोटेका नाम थीर वैङ्कटराजि था। विवाहके पहले ही इनकी मृत्यु हुई थी। वे १८३२ ई० तक जीवित थे। तिरुमलकी पीतृके गर्भसे तिरुमलदेव नामक एक पुत्र और लक्ष्मीदेवाम्मा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। तिरुमल १८६६ ई०को पञ्चत्वकी प्राप्ति हुए। तिरुमलदेवके तीन पुत्र और एक कन्या थीं। प्रथम पुत्र वैङ्कटरामराय, २य पुत्र कृष्णदेव राय, पीछे वैङ्कटना नामकी एक कन्या और उसके बाद नरसिंह राजाका जन्म हुआ। नरसिंहने १८७० ई० में जन्मग्रहण किया। इसके एक वर्ष बाद बड़े भाईका और उसके भी एक वर्ष बाद दूसरे भाई कृष्णदेवराजका देहान्त हुआ। वैङ्कटरामराय दो कन्याको छोड़ स्वर्ग-वासी हुए।

विद्यानगरकी समृद्धि।

प्रसन्नसलिला तुङ्गभद्रा नदीके दाहिनी किनारे उस मठासमृद्धिशाली हिन्दू राजकीर्तिके चिह्नस्वरूप विद्यानगरका धर्मसावेश्य आज भी विद्यमान रह कर विद्युद्यानगरकी प्राचीन गौरवमहिमाको घोषित करता है। श्रीमद्विद्यारण्य मुनिके समयसे ही विद्युद्यानगरके विपुल वैभवाका सूत्रपात हुआ। उस शुभ समयसे ही इस विशाल राज्यका परिमाण, अर्धगौरव और राजवैभवा दिनों दिन बढ़ता गया। विद्युद्यानगरके विशाल वैभवाकी बात सुन कर पारस्य और यूरोप आदि स्थानोंके विदेशीय पर्याटकगण यह विशाल नगर देखनेको आते हैं।

गगनभेदी गिरिमाळाकी तरह सुरसिंह सुदृढ़ दुर्गमाळा, कविकवित इन्द्रपुरीको मान करनेवाले वैभवागोभामयो विपुल सुरम्य राजपासाद, नगरमें बहनेवाली बहुमती जलप्रवाहिका, शङ्खघंटा आदि सुखरित श्रीविग्रह गण अध्यूषित देवमन्दिर, अगण्य शिक्षार्थसंकुल विद्युद्यालय, विविध काव्यकार्यरचित प्रतिहारीमण्डलाधिष्ठित

सुनोभित वस्त्रमण्डल, विविध द्रव्यसे परिपूर्ण भगव्य लोकसुखरित पण्यशाला, विलासिजनसुखलेष्य सुरम्य प्रभोद्भवन, विरहरित्गोभामय लतामण्डप, विविध कुसुमराजिराजित, मधुकरकरम्बित मनोहर पुष्पोद्धान, कमलकुसुमकङ्कारपूर्ण सरोवर, सौधश्रेणीके मध्यवर्ती सरल और सुदीर्घ राजपथ, हस्तिशाला, अश्वशाला, गोधामावास, फलके बोझसे अवनत फलोद्धान, मन्त्रभवन, सभामण्डप, धार्माधिकरण आदि विविध नागरीय वैभवमें विद्युद्यानगर किसी समय जगत्के प्रधान शहरोंमें गिना जाता था। कृष्णदेव रायाजुके शासनकालमें विद्युद्यानगरकी समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। इस समय वसवपत्तनमूले ले कर नागनपुर पर्यन्त विद्युद्यानगर शहर विस्तृत था। इसकी लम्बाई १४ मील और चौड़ाई १० मील थी, इसका रकबा एक सौ चालीस वर्गमील था, तमाम धनी वस्ती नजर आती थी। दूर दूर देशोंसे भाषे हुए घणिक, राजप्रतिनिधि और राजदूतगण विद्युद्यानगरमें आ कर अपना अपना कर्म किया करते थे। विद्युद्यानगरके शासनकर्त्ताओंका समरविभाग बहुत ही बड़ा चढ़ा था। हजार हजार मनुष्य इस विभागमें सभी समय नियुक्त होते थे। युद्धके सामान सर्वदा सजा कर रखे जाते थे। कुशती, कसरत और विविध प्रकारके व्यायामकी चर्चाका अच्छा प्रबन्ध था। विद्युद्यानगरमें इस समय जो सय पहलवान दिखाई देने थे, भारतवर्षमें वैसे और कहीं भी न थे। फिर दूमरी ओर विविध विलासजनक कलाविद्युयाकी भी यथेष्ट चर्चा हुई थी। सुगायक, नर्तक और नर्तकियोंका भी अभाव न था। इस समय विद्युद्यानगरमें विविध शिक्षाकार्यकी उन्नति हुई थी। हजारों मनुष्य गिह्यकार्यकी उन्नति कर सुखसे जीविका निर्वाह करते थे। स्थापत्य कार्यसे भी हजारों मनुष्यकी जीविका चलती थी। अगण्य सौधसभामकीर्ण विद्यानगर हजारों स्थपतिकी जीविका प्रदान करता था, यह सहजमें अनुमान किया जा सकता है। नित्य श्रवहायै अख और समराल निर्माणके कारण कर्मकारोंका खूब आदर होता था तथा उनकी खूब उन्नति हुई थी। फिर विद्युद्यानगर हिन्दू राजाकी राजधानी होनेके कारण यहां पीरोहियोजकी प्राहणोंकी संख्या भी बहुत उगाढ़ थी। उस समय घर-

घर प्रतिदिन घृत यज्ञादि होते थे। मन्दिर मन्दिरमें देव-पूजा, भोग और आरत्तिके मङ्गल घाटुयसे विद्यानगर गूँज उठता था। फिर दूसरी ओर इञ्जिनियरगण पध-घाट और भवन आदि पर्यवेक्षण किया करते थे। टूटी-फूटी इमारत और राजपथकी मरम्मत होती थी। हाथी और घोड़ोंकी विविध शिक्षा देनेके लिये सैकड़ों आदमी नियुक्त रहते थे। ये लोग साधारण व्यवहार तथा सामरिक व्यवहारके लिये हाथी और घोड़ोंको उचित शिक्षा देते थे। राजकवि, राजपण्डित, राज-सभाकी नत्तकी तथा विविध शिक्षामें शिक्षित हजारों मनुष्य विद्यानगरमें वास करते थे। नाना श्रेणीके सम्प्रांत, सुशिक्षित, सद्ब्रजजात लोगोंके वाससे तथा नाना देशीय धनी धनिकोंके समागमसे विद्यानगरकी समृद्धि दिनोंदिन बढ़ती गई थी।

मि० ह्यूयेलने लिखा है, कि १५वीं और १६वीं सदीको विद्यानगरमें जो सब यूरोपीय पर्यटक आये थे उन्होनें साक साक लिखा है,—“आयतन और समृद्धिमें विद्यानगर यद्यार्थमें एक प्रधान नगर है। धन-गौरव और वैभवमहिमामें यूरोपका एक भी नगर विद्या-नगरके जोड़का नहीं है।”

२। निकोला (Nicolo) नामक एक इटलीके पर्या-टक १४२० ई०में विद्यानगर आये थे। इन्होंने अपने वृत्तान्तमें लिखा है, “अशेष समृद्धिशाली विद्यानगर पर्वतमालाके अनेक्य प्राञ्चरके पार्श्वमें अवस्थित है। इस नगरकी परिधिका विस्तार ६० मील है। अन्नमेदो प्राचीने पार्श्ववर्त्तों पर्वतश्रेणीके साथ सम्मिलित हो कर इस विशाल नगरको सुदृढ़ दुर्गमें परिणत कर दिया है। नब्बे हजार रणदुर्गद घोड़ा समरसाजमें सर्वादा सज्जित रहते हैं। भारतवर्षके अन्याय राजोंकी अपेक्षा विद्यानगर (Bizengelia)के राजाका वैभव प्रभाव और प्रतिपत्ति बहुत अधिक है।”

३। १४४३ ई०में अबदुल रजाक नामक एक पारसी पर्याटक विद्यानगरमें आये थे। वे बहुत-सी राज-धानियोंका विवरण लिख गये हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है, “विद्यानगर राज्यमें तीन सौ बन्दर हैं। प्रत्येक बन्दर किसी अंशमें कलिकाट बन्दरसे कम नहीं है।

विद्यानगरराज्यके उत्तरी प्रान्तसे दक्षिणी प्रान्त जानेमें तीन महीना लगता है। प्रतिदिन २० मीलके हिसाबसे जाने पर तीन महीनेमें अर्थात् ६० दिनमें १८०० मीलका रास्ता तै किया जाता है।” कुमारिका अन्तरोपसे उड़ीसाकी उत्तरी सीमा तक अवश्य हो १८०० मील होगा। किसी समय उड़ीसेके उत्तर प्रान्तसे कुमारिका अन्तरोप पर्यन्त विपुल भूभाग विद्यानगरके राजाके शासनाधीन था। कृष्णदेव रायालुके शासनकालमें भी हम विद्यानगर साम्राज्यकी ऐसी विशाल विस्तृति-की बात देखते हैं। अनप्य रजाककी उक्ति प्रत्युक्ति नहीं समझी जानी।

अबदुल रजाक पारसके राजदूत थे। विद्यानगर-राधिपतिने बड़े आदरसे उन्हें अपने राज्यमें बुलाया था। अबदुल रजाकने दूसरी जगह लिखा है, “विद्या-नगरके राजाका ऐश्वर्यप्रभाव सचमुच अनुलनीय है। इनके पर्वतके समान ऊँचे हजारसे अधिक हाथी देख कर मैं विस्मित हो गया हूँ। इनकी सैन्यसंस्था ग्यारह लाख है। सारे भारतवर्षमें ऐसे प्रभाव-शाली राजा और फही भी देखे नहीं जाते। जगत्-में इसके समान और कोई भी शहर है, ऐसा मैंने आज तक नहीं सुना है। राजधानीकी बनावट देखनेसे मालूम होता है, कि मानो त्रात प्राचीरसे वेष्टित सात दुर्ग हैं, जो क्रमविन्यस्तभावमें बनाये गये हैं। राजप्रासादके निकट चार विपुल पथशाला है। उनके ऊपर तोरणमञ्च पर दो श्रेणियोंमें मनोहर पथघोषिका है। पथशाला लम्बाई और चौड़ाईमें अति विशाल है। मणिकारोंके पास विक्र-पार्थ जो सब हीरा, मरकत, पत्थ और मोती मुक्त देखनेमें आया वैसी मणिमुक्ताको मैंने और कहा भी नहीं देखा। राजधानीमें चिकने पथरोंकी बनी बहुत-सी नहर देख कर मेरे आनन्दका वारावार न रहा। विद्यानगरकी जनसंख्या सचमुच असंख्य है। शासनकर्त्ताके प्रासादके सामने टकशाल-घर है। १२०० पहरू रात-दिन यहाँ पहरू देते हैं।” अबदुल रजाकने विद्यानगरका एक उत्सव अपनी आँखोंसे देख उसके सम्बन्धमें अति परिस्पुष्ट और सरस विवरण लिखिबद्ध किया है। उसके पढ़नेसे विद्यानगरके ऐश्वर्यके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें जानी जाती हैं।

४। नुनिज़ (Nuniz) नामक एक पुर्चगोज-परि-
याजकने लिखा है, कि जब विद्यानगराधिपतिने रायचूड
युद्धमें यात्रा की, उस समय उनके साथ ७०३०० पदाति,
३२६०० अश्वारोही सेना तथा ५६१ गजारोही सेना थी।
विद्यानगरके राजाधिराजके चीभवका कुछ आभास
पाठकोंको इस घृत्तान्तसे हो प्राप्त हो सकता है। उन्हो'ने
यह भी कहा है, कि पदाति और अश्वारोही सेनाके
अलावा ६८०० घुड़सवार और ५०००० पैदल सिपाही
राजाकी देहरक्षाका कार्य करते हैं। इन लोगोंको राजासे
घेतन मिलता है। इनके अलावा २०००० वल्लभधारी और
३००० ढालधारी सेना हाथियोंकी प्रहरीरूपमें उपस्थित
रहती हैं। इनके अश्वरक्षकोंकी संख्या १६००, अश्वशिक्षक
३०० और राजकीय शिल्पीकी संख्या २००० है। २००००
पालकी राजकार्यके लिये हमेशा तय्यार रहती हैं।

५। पिज ('Paes) नामक एक दूसरे पुर्चगोज
पर्याटकने कहा है, "कृष्णदेव रायालुके दश लाख सुशि-
क्षित पदाति और ३५ हजार घुड़सवार सेना युद्धके लिये
हमेशा सुसज्जित रहती हैं। इन्हे राजासे घेतन
मिलता है। राजा इन्हे जब चाहें, तब युद्धके लिये भेज
सकते हैं। बहुत दिनोंसे मैं इस प्रान्तमें हूँ। एक दिन
राजा कृष्णदेव रायालुने समुद्रके किनारे एक युद्धमें
१५०००० सेना और ५० सैनिक कर्मचारों भेजे थे। इनमें
घुड़सवार सेनाकी संख्या अधिक थी। राजा कृष्णदेव
घोड़े ही दिनोंमें २० लाख सुसज्जित सेनाका संग्रह कर
सकते हैं। इससे कोई ऐसा न समझे, कि वे राज्यकी
प्रजाशून्य करके ही सैन्यसंख्या बढ़ाते थे। विद्यानगरके
साम्राज्यकी जनसंख्या इतनी अधिक है, कि बीस लाख
मनुष्यके चले जाने पर भी कोई हर्ज नहीं। यह भी कह
देना अच्छा है, कि ये सब सैन्य राहके भिवारी या मध-
शीके चरवाहे नहीं थे ये सभी प्रकृत घोर और दुःसा-
हसो योद्धा थे।"

६। दुगार्से वारयोसा (Duarte Barbosa) नामक
एक पर्याटक १५०६ से १५१३ ई०के मध्य तमामतें भ्रमण
करते हुए यहां आये। इन्होंने लिखा है, "विद्यानगरकी
आबादी बहुत ज्यादा है। राजप्रसाद सुंदर और बड़े
बड़े हैं। इस नगरमें बहुतसे धनिकोंका वास है। राज-

पथ, उद्यान और वायुसेवन-स्थल बहुत लम्बे चौड़े
हैं। सभी जगह जनता टसाउस मरो हुई है। व्यवसाय
और वाणिज्य मानो अनन्त गौरवसे विद्यानगरमें विराज
कर रहा है। फोल्खानेमें ६०० हाथी और अस्तबलमें
२०००० घोड़े हमेशा मौजूद रहते हैं। राजाके घेतन-
भोगी १००००० (एक लाख) सेना सर्वदा उपस्थित
रहती है।"

७। सीजर फ्रेडरिक नामक एक परिव्राजकका
कहना है, "मैंने बहुत-सी राजधानियाँ देखी हैं, पर विद्याना-
नगर जैसी राजधानी कहीं भी देखनेमें न आई।"

८। कास्तेन हेडा (Casteu Heda) नामक एक पर्याटक
१५२६ ई०को विद्यानगरमें आये। वे कहते हैं, "विद्याना-
नगरका पैदल सिपाही सचमुच असांख्य है। ऐसा जनता-
पूर्ण स्थान और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। राजाके
पास एक लाख घेतनभोगी अश्वारोही सैन्य और चार
हजार गजसैन्य है।" इन सब विवरणोंसे विद्यानगरकी
अतुल समृद्धिका परिचय पाया जाता है। १०००००
पदाति, ३०००० अश्वारोही और ४००० गजारोही सैन्य
सिर्फ विद्यानगरकी रक्षाके लिये ही नियुक्त रहते थे।
राजाकी देहरक्षाके लिये ६००० सुशिक्षित सुसज्जित अश्व-
रोही सेना हमेशा राजाके साथ घूमा करता थी। राजाके
अपने व्यवहारके लिये एक हजार घोड़े थे, राजमहिषियोंकी
संवादहलके लिये मणिमुक्ता रत्नाभरणसे अलंकृत १२०००
जोरी रहती थी। विदेशीय पर्याटक अलङ्कार देख कर इन्हे
ही राजमहिषी समझते थे। राजसरकारके नित्य प्रयो-
जनोय कार्यव्यवहारके लिये जो सब लिपिकार, कर्मकार,
रजक और अन्यान्य कार्यकारी रहते थे, उनको संख्या
२००० थी। भूत्व-संघपाका पारावार न था। राजमहल-
में सिर्फ राजाके दो सौ पाचक हमेशा नियुक्त रहते थे।
कृष्णदेवराय जब रायचूड-युद्धमें गये थे, तब २०००० नत्ते
कियां युद्धक्षेत्रमें लाई गई थीं। राजप्रतिनिधि, शासन-
कर्त्ता, सैन्याध्यक्ष आदि ऊँचे ओहदेके राजपुरुषोंकी
संख्या २०० थी। इनके सहचर अनुचर देहरक्षक सैन्य
सामान्य और भूत्वपादिकी संख्या भी १००००० से कम न
थी। जहां सैन्यसंख्या इतनी थी, वहां घोड़ोंको साईस-
आदिकी संख्या कितनी हो सकती है, पाठक स्वयं अनु-
मान कर सकते हैं।

घर प्रतिदिन घत यथादि होते थे। मन्दिर मन्दिरमें देव-पूजा, भोग और आरत्तिकरके मङ्गल घाटुयसे विद्युवानगर गूँज उठता था। फिर दूसरी ओर इजिनियरगण पथ-घाट और भवन आदि पर्यवेक्षण किया करते थे। टूटी-फूटी इमारत और राजपथकी मरम्मत होती थी। हाथी और घोड़ोंको विविध शिक्षा देनेके लिये सैकड़ों आदमी नियुक्त रहते थे। ये लोग साधारण व्यवहार तथा सामरिक व्यवहारके लिये हाथी और घोड़ोंको उचित शिक्षा देते थे। राजकवि, राजपण्डित, राज-सभाकी नर्तकी तथा विविध शिक्षामें शिक्षित हजारों मनुष्य विद्युवानगरमें वास करते थे। नाना श्रेणीके सम्प्रांत, सुशिक्षित, सद्ब्रह्मजात लोगोंके वाससे तथा नाना देशीय धनी वणिगोंके समागमसे विद्युवानगरकी समृद्धि दिनोंदिन बढ़ती गई थी।

मि० स्पूयेलने लिखा है, कि १५वीं और १६वीं सदीको विद्युवानगरमें जो सब यूरोपीय पर्याटक आये थे उन्होने साक साक लिखा है,—“आयतन और समृद्धिमें विद्युवानगर यद्यार्थमें एक प्रधान नगर है। धन-गौरव और वैभवमहिमामें यूरोपका एक भी नगर विद्या-नगरके जोड़का नहीं है।”

२। निकोला (Nicolo) नामक एक इटलीके पर्या-टक १४२० ई०में विद्युवानगर आये थे। इन्होंने अपने वृत्तान्तमें लिखा है, “अशेष समृद्धिशाली विद्युवानगर पर्वतमालाके अन्तर्गत प्राचौरके पार्श्वमें अवस्थित है। इस नगरकी परिधिका विस्तार ६० मील है। अन्नभेदों प्राचीन पार्श्ववर्तियों पर्वतश्रेणीके साथ सम्मिलित हो कर इस विशाल नगरको सुदृढ़ दुर्गमें परिणत कर दिया है। नद्ये हतार रणदुर्गमें द्योद्धा समरसाजमें-सर्वादा सज्जित रहते हैं। भारतवर्षके अन्याय राजोंकी अपेक्षा विद्युवानगर (Bizengelia)के राजाका वैभव प्रभाव और प्रतिपत्ति बहुत अधिक है।”

३। १४४३ ई०में अबदुल रजाक नामक एक पारसी पर्याटक विद्युवानगरमें आये थे। वे बहुत-सी राज-घानियोंका विवरण लिख गये हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है, “विद्यानगर राज्यमें तीन सौ बन्दर हैं। प्रत्येक बन्दर किसी अंशमें कलिकाट बन्दरसे कम नहीं है।

विद्युवानगरराज्यके उत्तरी प्रान्तसे दक्षिणी प्रान्त जानें तीन महीना लगता है। प्रतिदिन २० मीलके हिसाबसे जाने पर तीन महीनेमें अर्थात् ६० दिनमें १८०० मीलका रास्ता तै किया जाता है।” कुमारिका अन्तरोपसे उड़ीसाकी उत्तरी सीमा तक अवश्य ही १८०० मील होगा। किसी समय उड़ीसेके उत्तर प्रान्तसे कुमारिका अन्तरोप पर्यन्त विपुल भूभाग विद्युवानगरके राजाके शासनाधीन था। कृष्णदेव रायलुके शासनकालमें भी हम विद्युवानगर साम्राज्यकी ऐसी विशाल विस्तृति-की बात देखते हैं। अनप्य रजाककी उक्ति अत्युक्ति नहीं समझी जानी।

अबदुल रजाक पारसके राजदूत थे। विद्युवानगराधिपतिने बड़े आदरसे उन्हें अपने राज्यमें बुलाया था। अबदुल रजाकने दूसरी जगह लिखा है, “विद्युवानगरके राजाका ऐश्वर्यप्रभाव सचमुच अतुलनीय है। इनके पर्यंतके समान ऊँचे हज़ारसे अधिक हाथी देख कर मैं विस्मित हो गया हूँ। इनकी सैन्यसंख्या ग्यारह लाख है। सारे भारतवर्षमें ऐसे प्रभाव-शाली राजा और कहीं भी देखे नहीं जाते। जगत्-में इसके समान और कोई भी शहर है, ऐसा मैंने आज तक नहीं सुना है। राजधानीकी बनावट देखनेसे मालूम होता है, कि मानो मात प्राचौरसे वेष्टित सात दुर्ग हैं, जो क्रमविश्वस्तभावमें बनाये गये हैं। राजमासादके निकट चार विपुल पण्यशाला हैं। उनके ऊपर तोरणमञ्च पर दो श्रेणियोंमें मनोहर पण्यवीथिका है। पण्यशाला लम्बाई और चौड़ाईमें अति विशाल है। मणिकारोंके पास विक-घाटों जो सब हीरा, मरकत, पद्म और मोती मुफे देखनेमें आया वैसी मणिमुक्ताको मैंने और कहीं भी नहीं देखा। राजधानीमें चिकने पत्थरोंकी बनी बहुत-सी नदरदेख कर मेरे आनन्दका पारावार न रहा। विद्युवानगरकी जनसंख्या सचमुच असंख्य है। शासनकर्ताके प्रासादके सामने टकशाल-घर है। १२०० पहरू रात-दिन यहाँ पहरू देते हैं।” अबदुल रजाकने विद्युवानगरका एक उत्सव अपनी आँखोंसे देख उसके सम्बन्धमें अति परिष्कृत और सरस विवरण लिपियद्ध किया है। उसके पढ़नेसे विद्युवानगरके वैश्वर्षिक सम्बन्धमें बहुत-सी बातें ज्ञानी जाती हैं।

४। नुनिज (Nuniz) नामक एक पुर्चगोज-परि-
प्राजकने लिखा है, कि जब विद्यानगराधिपतिने रायचूड़
युद्धमें यात्रा की, उस समय उनके साथ ७०३०० पदाति,
३२६०० अश्वारोही सेना तथा ५६१ गजारोही सेना थी।
विद्यानगरके राजाधिराजके वीभवका कुछ आभास
पाठकोंको इस वृत्तान्तसे हो प्राप्त हो सकता है। उन्हींमें
यह भी कहा है, कि पदाति और अश्वारोही सेनाके
अलावा ६८०० घुड़सवार और ५०००० पैदल सिपाही
राजाकी देहराका कार्य करते हैं। इन लोगोंको राजसे
वेतन मिलता है। इनके अलावा २०००० बल्लभारी और
३००० ढालधारी सेना हाथियोंकी प्रहरीरूपमें उपस्थित
रहती हैं। इनके अश्वरक्षकोंकी संख्या १६००, अध्यापक
६०० और राजकीय शिल्पियोंकी संख्या २००० है। २००००
पालकी राजकार्यके लिये हमेशा तय्यार रहती हैं।

५। पिज (:Paes) नामक एक दूसरे पुर्चगोज
पर्याटकने कहा है, "कृष्णदेव रायलुके दश लाख सुशि-
क्षित पदाति और ३५ हजार घुड़सवार सेना युद्धके लिये
हमेशा सुसज्जित रहती हैं। इन्हें राजसे वेतन
मिलता है। राजा इन्हें जब चाहें, तब युद्धके लिये भेज
सकते हैं। बहुत दिनोंसे मैं इस प्रान्तमें हूँ। एक दिन
राजा कृष्णदेव रायलुने समुद्रके किनारे एक युद्धमें
१५०००० सेना और ५० सैनिक कर्मचारों भेजे थे। इनमें
घुड़सवार सेनाकी संख्या अधिक थी। राजा कृष्णदेव
घोड़े ही दिनोंमें २० लाख सुसज्जित सेनाका संग्रह कर
सकते हैं। इससे कोई ऐसा न समझे, कि वे राज्यको
प्रजाभूषण करके ही सैन्यसंख्या बढ़ाते थे। विद्यानगरके
साम्राज्यकी जनसंख्या इतनी अधिक है, कि बीस लाख
मनुष्यके चले जाने पर भी कोई हर्ज नहीं। यह भी कह
देना अच्छा है, कि वे सब सैन्य राहके भिलारी या मधे-
शीके चरवाहे नहीं थे ये सभी प्रकृत घोर और दुःसा-
हसो योद्धा थे।"

६। दुआर्से चारबोसा (Duarte Barbosa) नामक
एक पर्याटक १५०६ से १५१३ ई०के मध्य तमामसे प्रमण
करते हुए यहाँ आये। इन्होंने लिखा है, "विद्यानगरको
आधाही बहुत ज्यादा है। राजप्रासाद सुंदर और बड़े
बड़े हैं। इस नगरमें बहुतसे घनिकोंका वास है। राज-

पथ, उद्यान और वायुसेवन-स्थल बहुत लम्बे चौड़े
हैं। सभी जगह जनता ठसाउस मरो हुई है। व्यवसाय
और वाणिज्य मानो अनन्त गौरवसे विद्यानगरमें विराज
कर रहा है। फोल्खानेमें ६०० हाथी और अस्त्रबलमें
२०००० घोड़े हमेशा मौजूद रहते हैं। राजाके वेतन-
भोगी १००००० (एक लाख) सेना सर्वदा उपस्थित
रहती हैं।"

७। सीजर फ्रेडरिक नामक एक परिप्राजकका
कहना है, "मैंने बहुत-सी राजधानियाँ देखी हैं, पर विद्या-
नगर जैसी राजधानी कहीं भी देखनेमें न आई।"

८। कास्तेन हेडा (Casten Heda) नामक एक पर्याटक
१५२६ ई०को विद्यानगरमें आये। वे कहते हैं, "विद्या-
नगरका पैदल सिपाही सचमुच अस्संख्य है। ऐसा जनता-
पूर्ण स्थान और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। राजाके
पास एक लाख वेतनभोगी अश्वारोही सैन्य और चार
हजार गजसैन्य हैं।" इन सब विवरणोंसे विद्यानगरकी
अतुल समृद्धिका परिचय पाया जाता है। १०००००
पदाति, ३०००० अश्वारोही और ४००० गजारोही सैन्य
सिर्फ विद्यानगरकी रक्षाके लिये ही नियुक्त रहते थे।
राजाकी देहराका लिये ६००० सुशिक्षित सुसज्जित अश्व-
रोही सेना हमेशा राजाके साथ घूमा करता थी। राजाके
अपने व्यवहारके लिये एक हजार घोड़े थे, राजमहिपियोंकी
संवाटदलके लिये मणिमुक्ता रत्नाभरणसे अचित १२०००
जोरी रहती थी। विदेशीय पर्याटक अलङ्कार देख कर इन्हे
ही राजमहिषी समझते थे। राजसरकारके नित्य प्रयो-
जनीय कार्यव्यवहारके लिये जो सब लिपिकार, कर्मकार,
रजक और अन्यान्य कार्यकारी रहते थे, उनको संख्या
२००० थी। भूत्व-संख्याका पारावार न था। राजमहल-
में सिर्फ राजाके दो सौ पाचक हमेशा नियुक्त रहते थे।
कृष्णदेवराय जब रायचूड़-युद्धमें गये थे, तब २०००० नर्स
कियां युद्धक्षेत्रमें लाई गई थीं। राजप्रतिनिधि, शासन-
कर्त्ता, सैन्याध्यक्ष आदि ऊँचे ओहदेके राजपुरुषोंकी
संख्या २०० थी। इनके सहचर अनुचर देहरक्षक सैन्य
सामान्त और भूत्वयादिकों संख्या भी १००००० से कम न
थी। जहाँ सैन्यसंख्या इतनी थी, वहाँ घोड़ोंकी सारिस-
आदिकों संख्या कितनी हो सकती है, पाठक स्वयं अनु-
मान कर सकते हैं।

शिक्षाविधानके लिये नाना प्रकारकी चतुष्पाठी और विद्यालय थे। वाणिज्य-व्यवसायकी उन्नतिके लिये विद्यानगराधिपोंने अच्छा प्रवन्ध कर दिया था। विलासी उपकरण द्रव्यके साथ शिल्पकी उन्नति अवश्य-म्माधी है। विद्यानगरमें शिल्पवाणिज्य और कृषिकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। राज्यकी समृद्धि और जनसंख्याकी अधिकता ही इसका अकारण्य प्रमाण है।

इस विशाल नगरमें चार हजार सुन्दर और विपुल-देवमन्दिर अर्चनावाद्यसे हमेशा गुंजा करते थे। इनके सिवा धर्मचर्चाके लिये और भी कितने छोटे छोटे मन्दिर बनाये गये थे, उसकी शुमार नहीं। विद्यानगरके राजाकी पादहीकी संख्या थी २००००। जब इतनी पादही हुई, तब पादही ढोनेवालोंकी संख्या कितनी हो सकती है स्वयं अनुमान कर सकते हैं। विद्यानगरकी विद्याल समृद्धि कविकी कल्पना वा उपान्यासकारकी असार जल्पना नहीं है। इसकी प्रत्येक वात प्रत्यक्षदर्शी इति-हामकारके सुदृढ़ प्रमाणके ऊपर प्रतिष्ठित है।

विजयनगर शब्द देखो।

विद्यानन्द—१ सुकवि। क्षेमेन्द्ररत्न कविकण्ठाभरणमें इनका उल्लेख है। २ एक वैयाकरण। भाष्यश्रमोंने इनका नाम उल्लेख किया है। ३ जैनाचार्यभेद। ४ अष्टसाहस्रीके प्रणेता। इनका अपर नाम पादकेशरी था।

विद्यानन्दनाथ—लघुपद्य और सौभाग्यरत्नाकर नामक तन्त्रमन्त्रके रचयिता।

विद्यानन्द निबन्ध—एक प्राचीन तन्त्रसंग्रह। तन्त्रसारमें इस ग्रन्थका उल्लेख मिलता है।

विद्यानाथ—१ प्रतापकदम्बशास्त्रिय नामक अलङ्कार और प्रतापकदम्बनाथ नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इन्हें कोई कोई विद्यापति भी कहा करते हैं। कवि ओङ्कारके काकतीयवंशोत्तर राजा २५ प्रतापकदम्बके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। (१३१० ई०)। २ रामायणटीकाके प्रणेता। इन्हें कोई कोई तामिल कवि वेङ्कटनाथ कह कर संबोध करते हैं। ३ ज्योतिषिसारके प्रणेता। वे श्रीनाथ-सूरिके पुत्र थे। इन्होंने राजा जयनारायणके आश्रयसे एक ग्रन्थ लिखा था। ४ वेङ्कटाक्षदेवतकव्यकी प्रणेता।

विद्यानाथ कवि—श्रीकव्यासी एक कवि। इनका जन्म १५७३ ई०में हुआ था।

विद्यापति—१ अतलचन्द्रिका नामक नाटकके प्रणेता। २ एक विद्यात न्यायवाग्योश। ये काव्यचन्द्रिकाके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित थे।

विद्यापतितीर्थ—माध्वसम्प्रदायके ग्यारहवें गुरु। ये रामचन्द्रतीर्थके शिष्य थे। १३७७ ई०में रामचन्द्रके मरने पर ये गद्दी पर बैठे। १३८४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। समुद्रयथंसागरमें इनका और इनके शिष्योंका परिचय है।

विद्यानिवास—१ दोलारोहण-पद्धतिके प्रणेता। २ मुष्क-बोधटीकाके रचयिता। ३ नवद्वीपवासी एक विद्यात पण्डित। ये भाषापरिच्छेदके प्रणेता विश्वनाथ तथा तत्त्वचिन्तामणिदीधितिष्याष्याके रचयिता रुद्रके पिता थे। इनके पिताका नाम था भवानन्द सिद्धान्तवाग्योश।

विद्यानिवास भट्टाचार्य—सञ्चरितमोर्मासाके प्रणेता।

विद्यानुलोमालिपि (सं० खी०) लिपिविशेष।

(लक्षितविस्वर)

विद्यापति—विद्यात ब्राह्मण कवि और अनेक ग्रन्थोंके रचयिता। इन्होंने उपयुक्त पण्डितवंशमें जन्मग्रहण किया था। इनके पूर्वपुरुष सबके सब विद्वान् और यशस्वी थे। पूर्वपुरुषोंके क्षीजपुरुषसे पुत्रपौतादिकममें इनकी वंशधारा नोचे लिखी जाती है।

१ विष्णुशर्मा, २ हरदित्य, ३ धर्मादित्य, ४ देवादित्य, ५ वीरेश्वर, ६ जयदत्त, ७ गणपति, ८ विद्यापति ठाकुर, ९ हरपति, १० रतिव्रत, ११ रघु, १२ विश्वनाथ, १३ परीताम्बर, १४ नारायण, १५ दिनमणि, १६ तुलापति, १७ परनाथ, १८ भाद्रवा, १९ नानु और कनिजाल। नानुलालके पुत्र बनमाली और फनिलालके पुत्र बदरीनाथ हैं।

विद्यापति ठाकुरके पिता गणपति ठाकुर मिथिलापति गणेश्वरके एक परम मित्र और संस्कृतवित् महापण्डित थे। गणपतिने स्वामी राजाके पारत्रिक मङ्गलके लिये अपना रचित "गङ्गाभक्तितरङ्गिणी" नामक ग्रन्थ उत्सर्ग कर दिया था। विद्यापतिके पितामह जयदत्त भी एक असाधारण पण्डित थे। 'योतोश्वर' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। जयदत्तके पिता वीरेश्वरकी उनके पाण्डित्य शृणु पर मिथिलापति कामेश्वरने यथेष्ट वृत्ति दी थी। वीरेश्वरकी बनारस हुई प्रसिद्ध 'वीरेश्वरपद्धति' के अनुसार आज भी मिथिलाके ब्राह्मण 'दशकर्म' किया करते हैं।

विद्युवापतिके चचेरे पितामह चण्ड श्वर महाराज हरिसिंह देवके महामहत्सुक साधिविग्रहक थे। उन्होंने 'स्मृतिरत्नाकर' नामके ७ स्मृतिनिबन्ध रचे हैं। इसके सिवा चारे-श्वरके पिता देवादित्य, पितामह धर्मादित्य और उनके पिता हर्षादित्य आदि मिथिलाका राजमणित्व कर गये हैं।

विद्युवापतिके प्रथम उत्साहदाता प्रतिपालक थे मिथिलाप्रेश शिवसिंह देव। अपने एक मैथिली पदमें उन्होंने 'गणसिंहक काल और गुणका इस प्रकार परिचय दिया है।

"अनन्त रत्नकर लक्ष्मण्य धारवई लक सगुद कर अग्नि सधी।
चैतकारि छुट जेठा मिलिभो पार वेरुंभई जाउजरी ॥

देवसिंह जं पुरमी छड्डी बढासन सुलाम करु।

हुहु सुतान निदे अय औअउ तपनहीन जग भरु ॥

देवहुभो प्रथमोको राजा पोरुस मोक पुण्य बोझिभो।

सवपत्ते गङ्गाभिलितकलेवर देवसिंह सुरपुर चलिभो ॥

एक दिख जनन सरुल दख चलिभो एक दिख सौ अमराय करु।

हुहुए दसदि मनोरथ पूरुको गरुप-दाप शिवसिंह करु ॥

सुतकुरुसुम पात्रि दिख पुरेको दुन्दुहि सुन्दर साद धरु।

वीरछप देवनको कारण सुगण्य सोमै गगन भरु ॥

अरुम्मी अयन्तेहि महामख राजसुम अश्वमेध जहा।

पपिहव पर आचार बलानिभ याचकको घरदान कही ॥

विज्रायई करार एहु गावए मानत मन आनन्द भयो।

सिंहावन शिवसिंह वरदो उछवै विचरि गयो ॥"

उक्त पदका तादर्थ्य यह है, कि २६३ लक्ष्मणाश्रुमें अथवा

१३२७ शकाश्रुके जैत्रमासकी पष्ठा तिथि ज्येष्ठानक्षत्रमें

पृथ्वयतिको देवसिंह सुरधामको सिधारे। उनके स्वर्ग-

वासी होने पर भी उनका राज्य शून्य नहीं हुआ। उनके

पुत्र शिवसिंह राजा हुए। शिवसिंहने अपने बाहुबलसे

मुसलमानोंको तुणके समान तुच्छ जान कर परास्त

किया। यवनराज जान ले कर भाग चला। स्वर्गमें दुन्दुमि

बजने लगी। शिवसिंहके मस्तक पर पुष्पधूप होने लगी।

विद्युवापति कवि कहते हैं, कि यही शिवसिंह अभी तुम

लोगोंके राजा हुए हैं। तुम लोग निर्भय हो कर वास

करो।

विसफी नामक ग्राम दिया था। यह ग्राम वर्त्तमान दर-
भङ्गा जिलेके सीतामढ़ी महकमेके अधीन जारील पर-
गनेमें कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ कविके
वंशधरोका आज कल वास नदी है। अभी ये लोग चार
पीढ़ोसे सीराठ नामक एक दुमरे ग्राममें रहते हैं। विसफी
ग्राम देनेके उपलक्षमें राजा शिवसिंहने विद्यापतिको
जो ताम्रशासन प्रदान किया था, उसके नष्ट हो जानेसे पर-
घर्त्तो कालमें और भी कितने जाली ताम्रशासन बनाये गये
हैं। इन ताम्रशासनोमें भी २६३ लक्ष्मणाश्रु टेंबा जाता
है। यहूनेरे श्रुते ताम्रशासनोको मूळ बतलाते हैं, पर
यह उनकी भूल है।

शिवसिंहकी पत्नी रानी लछिमा देवी भी विद्युवा-
पतिको बहुत उत्साह देती थीं। इसी कारण विद्युवा-
पतिके अनेक पदोंमें लछिमा देवीका नाम पाया जाता
है। उनकी पदावलीसे यह भी जाना जाता है, कि वे
गयासुधीन और नसिरा शाह नामके दो मुसलमान
राजाओंके भी कृपा-पाल थे। इसके सिवा उन्होंने रानी
विशवासदेवीके आदेशसे 'शैवसर्चस्वदार' और 'गङ्गा-
वाक्यावली' पीछे महाराज कीर्त्तिसिंहके आदेशसे 'कीर्त्ति
लता' तथा महाराज शैवसिंहके शासनकालमें सुधराज
राममद्र (रुनारायण)के उत्साहसे 'दुर्गामकितरङ्गिणी'-
को रचना की है। विद्युवापतिके किसी किसी पदमें
उनकी 'कविहण्डहार' उपाधि देवी जाती है।

पूर्वोक्त ग्रन्थोंके अलावा विद्युवापति-रचित पुरुष-
परोक्षा, दानवाक्यावली, वर्षहृत्प, विभागासार, गयापतन
आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं।

ये सब ग्रंथ आज भी मिथिलामें प्रचलित हैं। इनकी
मनोहर पदावलिमेंसे एक नोचे उद्धृत की जाती है—

'कृत चतुरानन मरि मरि जावत, ननु वा आदि भवगाना।

तोड़े जनमि पुनि तोड़े समावत, समार बहरी समाना।

बरुण पुत्र दिव, बरुल सगर निव, गगन मगन मेख चन्दा।

सुनि गेन कुमुदिनी तइभो वीरर घन, मूलख मुख अरविन्दा।

कमर वदन कवलय दुइ कोचन, अथर मधुर निरमाणे।

एकल शरीर कुमुभ तुम विरजित, किम दरै हृदय परवाने।

जनम अथवि हम रूप निहारब, नयन न विरपित मेख।

सै मधुर पौल भवण्यदि वनच, अतिवय परसि न गेख।

जिज्ञासाविधानके लिये नाना प्रकारकी चतुष्पाठी और विदुषालय थे। वाणिज्य-व्यवसायकी उन्नतिके लिये विदुषालयग्राहियोंने अच्छा प्रयत्न कर दिया था। विलासो उपकरण द्रव्यके साथ शिल्पकी उन्नति व्यवस्था-मायी है। विदुषालयमें जितपवाणिज्य और कृषिकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। राज्यकी समृद्धि और जनसंख्याकी अधिकता ही इसका अकाट्य प्रमाण है।

इस विशाल नगरमें चार हजार सुन्दर और विपुल-देवमन्दिर अर्चनावाद्यसे हमेशा गूँजा करते थे। इनके निवा धर्मचर्चाके लिये और भी कितने छोटे छोटे मन्दिर बनाये गये थे, उसकी शुमार नहीं। विदुषालयगर्क राजाकी पादहीको संख्या थी २००००। जब इतनी पादही हुई, तब पादही ढोनेवालोंकी संख्या कितनी हो सकती है स्वयं अनुमान कर सकते हैं। विदुषालयगर्की विशाल समृद्धि कविकी कल्पना या उपात्यासकारकी असार जल्पना नहीं है। इसकी प्रत्येक बात प्रत्यक्षदर्शी इति-हामकारके सुदृढ़ प्रमाणके ऊपर प्रतिष्ठित है।

विजयनगर शब्द देखो।

विद्यानन्द—१ सुकवि। क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरणमें इनका उल्लेख है। २ एक चैत्याकरण। भावशामति इनका नामोल्लेख किया है। ३ जैनाचार्याभेद। ४ अष्टसाहस्रीके प्रणेता। इनका अपर नाम पादकेशरी था।

विद्यानन्दनाथ—लघुपदनि और सौभाग्यरत्नाकर नामक तन्त्रमन्त्रके रचयिता।

विद्यानन्द निवन्ध—एक प्राचीन तन्त्रसंग्रह। तन्त्रसारमें इन ग्रन्थका उल्लेख मिलता है।

विद्यानाथ—१ प्रतापरुद्रप्रथोभूषण नामक अलङ्कार और प्रतापरुद्रकृत्याण नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने कोई कोई विदुषानिधि भी कहा करते हैं। कवि ओङ्कारके काकतीयवंशीय राजा २य प्रतापरुद्रके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। (१३१० ई०)। २ रामायणटीकाके प्रणेता। इन्होंने कोई कोई तामिल कवि चैदुपनाथ कह कर सम्बोधन करते हैं। ३ ज्योतिषसिद्धके प्रणेता। ये धीनाथ-सूरिके पुत्र थे। इन्होंने राजा अनुवसिंहके अनुरोधसे एक ग्रंथ लिखा था। ४ वेदान्तकलनरुमजरीके प्रणेता। विद्यानाथ कवि—दो भाववासी एक कवि। इनका जन्म १६७३ ई०में हुआ था।

विद्यानिधि—१ अतलचन्द्रिका नामक नाटकके प्रणेता। २ एक विद्यात न्यायवागीश। ये काव्यचन्द्रिकाके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित थे।

विद्यानिधितोर्धा—माधवसम्प्रदायके ग्यारहवें गुह। ये रामचन्द्रतोर्धके शिष्य थे। १३७७ ई०में रामचन्द्रके मरने पर ये गद्दी पर बैठे। १३८४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। स्मृत्यर्थसागरमें इनका और इनके शिष्योंका परिचय है।

विद्यानिवास—१ दोलाराहण-पद्धतिके प्रणेता। २ सुध-बोधटीकाके रचयिता। ३ नवद्वीपवासी एक विद्यशतं पण्डित। ये भाषापरिच्छेदके प्रणेता विश्वनाथ तथा तत्त्वचिन्तामणिदीधितिग्याध्यायके रचयिता सूदके पिता थे। इनके पिताका नाम था भवानन्द सिद्धान्तवागीश। विदुषानिवास भट्टाचार्य—सञ्चितमीमांसाके प्रणेता। विद्यानुलोमालिपि (सं० खी०) लिपिविशेष।

(लक्षितविस्तर)

विद्यापति—विषयात, ब्राह्मण कवि और अनेक ग्रन्थोंके रचयिता। इन्होंने उपयुक्त पण्डितवंशमें जन्मग्रहण किया था। इनके पूर्वपुरुष सबके सब विद्वान् और यशस्वी थे। पूर्वपुरुषोंके धोजपुरुषसे पुत्रपौत्रादिक्रममें इनकी वंशधारा नीचे लिखी जाती है।

१ शिष्णुशर्मा, २ हरादित्य, ३ चर्मादित्य, ४ देवादित्य, ५ चोरेश्वर, ६ जयदत्त, ७ गणपति, ८ विद्यापति ठाकुर, ९ हरपति, १० रतिप्रर, ११ रघु, १२ विश्वनाथ, १३ पीताम्बर, १४ नारायण, १५ दिनमणि, १६ तुलापति, १७ परुनाथ, १८ भाइया, १९ नानु और फनिलाल। नानुलालके पुत्र बनमाली और फनिलालके पुत्र सद्दीनाथ हैं।

विद्यापति ठाकुरके पिता गणपति ठाकुर मिथिलापति गणेश्वरके एक परम मित्र और संस्कृतविव महापण्डित थे। गणपतिने स्वर्गीय राजाके पारलिक मङ्गलके लिये अपना रचित "गङ्गामक्तिरङ्गुणो" नामक ग्रन्थ उत्सर्ग कर दिया था। विदुषापतिके पितामह जयदत्त भी एक असाधारण पण्डित थे। 'योगेश्वर' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। जयदत्तके पिता चोरेश्वरको उनके पाण्डित्य गुण पर मिथिलापति कामेश्वरने यथेष्ट वृत्ति दी थी। चोरेश्वरकी वंशी हुई प्रसिद्ध 'चोरेश्वरपद्धति' के अनुसार आज भी मिथिलाके ब्राह्मण 'दशकर्म' किया करते हैं।

विद्युद्यापतिके चचेरे पितामह चण्ड श्वर महाराज हरिसिंह देवके महामहत्तर सांघियप्रसिद्ध थे। उन्होंने 'स्मृतिरत्नाकर' नामके ७ स्मृतिनिबन्ध रचे हैं। इसके सिवा यार-श्वरके पिता देवाद्रिय, पितामह धर्माद्रिय और उनके पिता हराद्रिय आदि मिथिलाका राजमन्त्रित्व कर गये हैं।

विद्युद्यापतिके प्रथम उत्साहदाता प्रनिपालक थे मिथिलाधोग शिवसिंह देव। मयने एक मैथिली पदमें उन्होंने 'नायासिंहके काल और गुणका इस प्रकार परिचय दिया है।

"मनत्र रत्नकर लम्बव्य पारवर्षे सक्क सशुर कर अंगनि सव्ही।

चंत्कारि छुंठि जेठा मिअभो पार वेरुंनई जाउरवही ॥

देवसिंह अं पुदुमो लुइई अदासन सुराग सव्ही।

हुहु सुरागनि निदे अय होमउ तपनरीन जग भरू ॥

देखहुअमो वृथिमोको राजा पीरव मोक पुण्य बोझिमो।

सउरते गङ्गाभिन्नितकलेवार देवसिंह सुगुर चक्षिमो ॥

एक दिख सवन सकळ दल चक्षिमो एक दिख सौं जमराग चरू।

हुहुए दलकि मनोरय पूरमो गरुप दाप शिवसिंह करू ॥

सुरावकमुम पाजि दिख सुरमो हुनुदि सुन्दर सार परू।

वीरद्वय देखनको कारण सुरगय सोमं गगन भव ॥

अरुमो भपनेवेष्टि महामख राउसुभ भरवमेय जहा।

पविहउ पर भाचार बलानिभ यानकको धरदान करा ॥

विज्जावई करार एहु गावए मानउ मन आनन्द भयो।

दिंदासन शिवसिंह वरदो उदवै विरारि गयो ॥"

उक्त पदका तात्पर्य यह है, कि २६३ लक्ष्मणाश्रममें अथवा १३२७ अक्षांशके चैत्रमासकी पक्षा तिथि ज्येष्ठानक्षत्रमें श्रद्धेयपतिकी देवासिंह सुरागमकी सिधारें। उनके स्वर्ग-पासी होने पर भी उनका राज्य शून्य नहीं हुआ। उनके पुत्र शिवसिंह राजा हुए। शिवसिंहने अपने बाहुबलसे मुसलमानोंकी लूणके समान तुच्छ जान कर परास्त किया। यवनराज जान ले कर भाग चला। स्वर्गमें दुन्दुभि बजने लगी। शिवसिंहके मस्तक पर पुष्पवृष्टि होने लगी। विद्युद्यापति कवि कहते हैं, कि यही शिवसिंह अभी तुम लोगोंके राजा हुए हैं। तुम लोग निर्भय हो कर वास करो।

राजा शिवसिंहने प्रसन्न हो कर इन्हें विसपी वंश

विसपी नामक ग्राम दिया था। यह ग्राम वर्त्तमान दर-भङ्गा जिलेक सोतामढ़ी महकमेके अधीन जारैल पर-गनेमें कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहां कविके पंशधरोका आज कल यास नदी है। अभी वे लोग चार पीढ़ासे सोराठ नामक एक दूसरे ग्राममें रहते हैं। विसपी ग्राम देनेके उपलक्षमें राजा शिवसिंहने विद्यापतिको जो ताम्रशासन प्रदान किया था, उसके नष्ट हो जानेसे पर-पक्षीकालमें और भी कितने जाली ताम्रशासन बनाये गये हैं। इन ताम्रशासनोंमें भा २६३ लक्ष्मणाश्रम देखा जाता है। यहूनेरे इहां ताम्रशासनोंकी मूळ बतलाते हैं, पर यह उनको भूल है।

शिवसिंहकी परतो रानी लछिमा देवी भी विद्युद्यापतिकी बहुत उत्साह देती थीं। इसी कारण विद्युद्यापतिके अनेक पदोंमें लछिमा देवीका नाम पाया जाता है। उनकी पदायलोंसे यह भी जाना जाता है, कि वे गयासुरीन और नसिरा शाह नामके दो मुसलमान राजाओंके भी कृपा-पात्र थे। इसके सिवा उन्होंने रानी विध्यासदेवीके आदेशसे 'श्रीवसवस्यदा' और 'गङ्गा-याशवावली' पीछे महाराज कीर्तिसिंहके आदेशसे 'कीर्ति लता' तथा महाराज शैवसिंहके शासनकालमें युवराज राममद्र (ऊननारायण)के उत्साहसे 'दुर्गामकितरङ्गिणी'-को रचना की है। विद्युद्यापतिके किसी किसी पदमें उनकी 'कविहण्डहार' उपाधि देवी जाती है।

पूर्वके प्रथोके अलावा विद्युद्यापतिरचित पुरुष-परीक्षा, दानयाशवावली, वर्षहृदय, विभागसार, गयापतन आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं।

ये सब ग्रंथ आज भी मिथिलामें प्रचलित हैं। इनकी मनोहर पदायलियोंमेंसे एक नोचे उद्धृत की जाती है—
'कव चतुरानन मरि मरि जावत, ननु या आदि भवधाना।
तोहे जनमि पुनि तोहे समावत, सगर छरी समाना।
अवय्य पुरव दिख, बहल सगर निव, गगन मगन मेल चन्दा।
मुनि गेस कुमुदिनी तरो गेस घने, मूल सुल अरविन्दा।
कमर बदन कवलय दुइ जोचन, अथर मधुर निरमाये।
सकल शरीरकुसुम तुम शिरजिल, किम दर्श हृदय परवाने।
जनम अवधि हम रूप निहारव, नयन न विरपित मेस।
सैरे मधुर बोल अवय्यहि उनव, अविषय परसि न गेस।

ये चैतन्यदेवके पूर्ववर्ती चण्डिदासके समसामयिक थे। चैतन्यदेवके सम्प्रदायमें इनको पदावलियों का बड़ा आदर है। चैतन्यदेव भी इन पदावलियों का बड़ा आदर करते थे। जो हो, विद्यापति विहार प्रदेशके कवि और गौरव हैं।

२ एक वैदुष्यक ग्रन्थकार, चंशीधरके पुत्र। इन्होंने १६८२ ई०में वैदुष्यकरहस्यपद्धतिकी रचना की। इनका बनाया हुआ चािकतसाञ्जन नामक और एक ग्रंथ मिलता है।

विद्यापति विहङ्ग—कल्याणके चालुष्यराज विक्रमादित्यका समाके एक महाकवि। विक्रमाङ्कदेवचरित-काव्य और चौरपञ्चाशकाका रचना कर ये प्रसिद्ध हो गये हैं।

विक्रमाङ्कचरितके १८वें सर्गमें कविने अपना जैसा परिचय दिया है, उससे ज्ञाना जाता है, कि काश्मीरकी प्राचीन राजधानी प्रवरपुरसे डेढ़ कोस दूर खानमुख नामक स्थान है। यहाँ कुशक गातत्र मध्यदेशों ब्रह्मण-वंशमें कविने जन्मग्रहण किया। गोपादित्य नामक एक राजा यक्ष तायक कालके लिये मध्यदेशमें इनके पूर्वपुरुषको काश्मीर लाये। इनके प्रतिमह मुक्तिकलश और रिता-मह राजकलश दोनों ही अर्निहोला और घेड़पाठमें विशेष पारदर्शो थे। इनके पिता ज्येष्ठकलश भी एक वैद्याकरण थे। उन्होंने महामाष्यकी टोका प्रणयन की। इनकी माताका नाम नागदेवी था। छोटे भाई इष्टराम और आप दोनों ही कवि और पण्डित थे। विहङ्गने काश्मीरमें ही लिखना पढ़ना सीखा था। प्रचानतः चारों वेद, महामाष्य पयन्त व्याकरण और अलङ्कारशास्त्रमें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी।

लिखना पढ़ना समाप्त करके ये देशभ्रमण और हिन्दू राजानोंकी समामें अपनी कविता और विद्याका परिचय देनेके अभिप्रायसे घरसे निकले। पहले ये जन्मभूमिका परिचय कर यमुनातटसे होते हुए पवित्र तीर्थ मथुरामें पहुँचे। इसके बाद इन्होंने गङ्गाको पार कर कनोजमें पदार्पण किया। कनोजमें कई दिनोंका पथपर्यटन-होना दूर कर ये पहले प्रयाग और पच्छि बनारस आये थे। बनारससे फिर पूर्वदिशाको न जा कर इन्होंने

पश्चिमकी ओर यात्रा कर दी। इसी समय ढाहलपतिकर्णके साथ इनका परिचय हुआ। महावीर कर्णने इनका बहुत सत्कार किया। कर्णकी सभामें कविने बहुत दिन बिताया था। यहाँ इन्होंने कविगङ्गाधरको परास्त किया और रामचरितावधायक नामक एक काव्यकी रचना की। बीचमें ये सीतापतिकी राजधानी भयोप्या जा कर कुछ दिन ठहरे थे।

कल्याणपति सोमेश्वरने कर्णको परास्त या विनाश किया था। पीछे कर्णको समाका परिचय कर कवि पश्चिम भारतकी ओर चल दिये। धारा और अणहिल-व-ङ्का राजसभाका समुद्रि तथा सोमनाथके महात्म्यने हा कविको पश्चिमकी ओर आकृष्ट किया था। जो हो, दुर्भाग्यवशतः धारा नगरका दर्शन तथा धारापति पण्डितानुरागा भोजराजके साथ इनका साक्षात् लाम न हुआ। ये मालवके उत्तरसे होते हुए गुजरात चले गये। अणहिलवाङ्की राजसभामें शायद इनको आदर नहीं मिला, मालूम होता है, इसी कारण कविने गुजरा-तियाकी अमरनाको समालोचना का सामनायका दर्शन कर आप दक्षिण-भारतकी ओर अग्रसर हुए तथा रामेश्वर तकके स्थानोंका आपने परिदर्शन किया।

रामेश्वर दर्शनके बाद ये उत्तरको ओर आ कर चालुष्य राजधानी कल्याण नगरमें पहुँचे। यहाँ राजा विक्रमादित्यने इन्हें 'विद्यापति' या पण्डित राजपद दे कर सम्मानित किया। मालूम होता है, कविने इस कल्याण राजधानीमें ही जीवनकी शेषावस्था बिताई थी।

विद्यापति विहङ्गकी जीवनी पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि ११वीं सदीके तृतीय चतुर्थांशमें इनका साहित्य-जीवन और देशभ्रमण समाप्त हुआ। विक्रमादित्य विशुद्भनमल १०७६ ई०से प्रायः ११२७ ई० तक कल्याणमें अधिष्ठित थे। इसी समयके बीच विद्यापतिकी कल्याणपुरमें आ कर रहना माना जायेगा।

विद्यापतिलामी—एक प्राचीन स्मारक। स्मृत्यर्थसागरमें इनका मत उद्धृत हुआ है।

विद्यापुर (सं० क्र०) नगरभेद। (भारतीय ज्योतिःशास्त्र) विद्याभट्ट—एक पण्डित। इन्होंने विद्यामट्टपद्धति नामक

एक वैद्यकग्रन्थ प्रणयन किया । निर्णयामृतमें अल्लाङ्गनाथने इनका मत उल्लेख किया है ।

विद्यारण्य (सं० ह्री०) विद्युदापय आभरणं । १ विद्युदाभरण, विद्युदाभूषण । (त्रि०) विद्युदापय आभरणं यस्य । २ विद्युदाभूषण आभरणविक्रिष्ट, विद्युदायिभूषित ।

विद्यारण्य—अण्डनखण्डखादुपटीकाके प्रणेता ।

विद्याभूषण—एक प्रसिद्ध पण्डित । इनका प्रकृत नाम था बलदेव त्रिदुदाभूषण । इन्होंने १७२५ ई०में उटकलिकावल्लरी टीका, पेशवर्षेकादम्बिनीकाण्य, सिद्धान्तरत्न नामक गोविन्दभाष्यटीका, गोविन्दविठ्ठदायलीटीका, छन्दःकौस्तुभ और उसकी टीका, पदुयावली, भागवत-सन्दर्भ-टीका, साहित्यकौमुदी और रूपगोखामिरचित स्तवमालाकी टीका लिखी ।

विद्य भूम् (सं० पु०) १ विद्युदाधर । विद्युदां विभर्त्तीति भृक्त्विम् । २ विद्वान् ।

विद्यामणि (सं० पु०) विद्यापय मणिः । १ विद्युदाभूषण, विद्या । २ विद्युदाधन ।

विद्यामय (सं० त्रि०) विद्युदाभूषणमयम् । विद्युदाभूषण, विद्युदाभूषण, जो पूर्ण पण्डित हो ।

विद्यामहेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद ।

विद्यामाधव—मुहूर्तरादर्पणके रचयिता ।

विद्यामार्ग (सं० पु०) वह मार्ग जो मनुष्यको मोक्षकी ओर ले जाय, श्रेयः मार्ग ।

विद्यारण्य (सं० पु०) माधवाचार्य । संन्यासाश्रम प्रवर्ण करनेके पाछे ये इस नामसे परिचित हुए ।

विद्यानगर और विद्यारण्य स्वामी देखो ।

विद्यारण्य गुरु—शङ्करसम्प्रदायके ग्यारहवें गुरु ।

विद्यारण्यतीर्थ—एक संन्यासी । ये विष्णुश्रवणदत्तके गुरु थे । इन्होंने साधुवतरङ्ग ग्रन्थ बनाया ।

विद्यारण्यस्वामी (जगद्गुरु)—शङ्करमठवालयमी संन्यासिसम्प्रदायके ग्यारहवें गुरु । ये पुण्यपाद विद्युदाशङ्करतीर्थके (१३२८-१३३३ ई०) शिष्य थे । संन्यासाश्रम-प्रवर्ण करनेके बाद ये विद्यारण्यस्वामी या विद्यारण्य मुनिके नामसे परिचित हुए थे । सन् १३८० ई०में इनके पूर्वपत्नी सतीर्थ और १०वें गुरु भारती छण्णातीर्थके (१३३३-१३८० ई०) त्रितोषान होने पर ये श्रुङ्गेरी मठके

जगद्गुरु श्रीविद्यारण्यस्वामी नामसे विख्यात हुए । संन्यासाश्रम प्रवर्ण करनेके बाद विजयनगर या विद्युदाभूषणराजवंशसे आपका जैसा सम्बन्ध था, संन्यासोके जीवनकी वैसी घटना विशेष आलोचनाको सामग्री है ।

संन्यासाश्रमवालयमीके पहले इनका नाम माधवाचार्य था । दक्षिणात्यके सुप्रसिद्ध शास्त्रविदु भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण सायण इनके पिता थे । इनकी माताका नाम श्रीमतीदेवी था । वेदभाष्यकार सायणाचार्य इनके कनिष्ठ भ्राता थे ।

तुङ्गभद्रानदी तटवर्तीके सुप्रसिद्ध हाम्पीनगरके निवृत्त सन् ११८६ शकमें (१२६७ ई०में) माधवका जन्म हुआ । पिताके अध्यापनागुणसे दोनों दरिद्र ब्राह्मणकुमार विद्युदाशिक्षामें विशेष पारदर्शी हो उठे । साधु हो दोनों भाई धीरे धीरे पुण्यका भावसे या एकयोगसे वेदोपनिषदादिका भाष्य और नाना ग्रन्थ रचना करने लगे । संन्यासाश्रम प्रवर्ण करनेके पहले माधवाचार्यने आचारमाधव वा पराशरमाधव नामसे पराशरस्मृतिका व्याख्या, जैमिनीय न्यायमालाविस्तर या अर्थकरणमाला नामसे मार्मासासूत्रभाष्य, मनुस्मृतिव्याख्यान, कालमाधवीय या कालनिर्णय, व्यवहार-माधवीय, माधवीयदीविति, माधवीय भाष्य (वेदान्त), मुहूर्तरा-माधवीय, शङ्करविजय, सर्वदर्शनसंग्रह और वेदभाष्यादि कई ग्रन्थोंकी रचना की । इन सब ग्रन्थोंके अन्तिम भागमें माधवाचार्यने अपने पिताके नाम और गौतमादिका उल्लेख किया है* ।

दीक्षा लेनेके बादसे ही माधव प्रह्लाणोचित संस्कारवश तुङ्गभद्रा नदीके किनारे नित्य त्रा और स्नानादिसे निवृत्त हो हाम्पीके सुप्रसिद्ध भुवनेश्वरी मन्दिरमें जाते और वहाँ देवीको अर्चना करते थे । यौवनकी उद्दाम आकांक्षाने माधवाचार्यके हृदयको अच्छी तरह मघना धारमम किया । दारिद्र्य दुःखको सहते हुए शुभक शास्त्राध्ययन उनकी अच्छा न लगा । वे क्रममें अर्थान्ताशासे अभिभूत हो उठे । विजयध्वजवंशीय आनगुण्डो-राजवंशका पेशवर्दी

* डाक्टर बुर्णने वंशब्राह्मणकी उपकल्पिकामें विद्यारण्यके रचनाविषयमें विशेष गवेषण पूर्वा कृतिक पदशन की है ।

उनकी प्रयोद्धित करने लगा । वे परधोकातर हुए सही, किन्तु कर्मवश किसी वृत्तिने लग गये और उस-ही ही उनको अच्छा फल प्राप्त हुआ ।

स्वयं ऐश्वर्यावान् होनेको आशासे माधव इष्टदेविके शरणागत हुए और देविको तुष्टिके लिये बड़ा कठोरतासे तपासाधना करने लगे । देवो भुयन्श्वरीने प्रसन्न हो कर कहा, "वत्स ! इस जन्ममें तुम्हारे धनप्राप्तिकी कोई आशा नहै" । दूसरे जन्ममें मेरे प्रसादसे तुम अतुल सम्पत्तिके अधिकारो हो सकोगे ।"

देविके वाक्य सुन कर माधवके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । उन्होंने संसारधर्मकी निलाञ्जलि दे कर संन्यासाश्रम प्रदण किया । सन् १३३१ ई०में वे अपनी जन्मभूमि हाम्पो नगरको छोड़ कर शृंगेरीकी ओर चले और वहाँ पहुँच कर वहाँके सुप्रसिद्ध शङ्कर-मठाधिकारो आचार्य-प्रवर विद्याशङ्करतोर्थके चरणों पर गिरे । उस व्याकुल-चित्त युवक माधवको शान्तिके प्रयासो देव विद्यासार्थने उनको स्थान दिया और उनको विद्यावृद्धिका प्राख्य देव द्वाप्राचित्तसे उनको शिष्य पद पर नियुक्त किया । माधवाचार्यने उसी वर्षमें संन्यासाश्रम प्रदण किया था । इसके कुछ दिनोंक बाद विद्युयातीर्थ सन् १३३३ ई०में परलोकप्रयासो हुए । इसके बाद माधवाचार्यके अप्रवर्त्तो शिष्य भारतीकृष्ण जगद्गुरुकी गद्दी पर बैठे ।

इसो वर्षमें अर्थात् सन् १३३३ ३४ ई०में ही दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकको फौजाने दक्षिणराज्यके हिन्दू राजवंशके ऐश्वर्यासे ईर्षान्वित हो पहले आनगुण्डा पर आक्रमण किया । नगर पर घेटा डालनेके समय हिन्दू और मुसलमानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ । इस भावण युद्धमें विजयध्वजवंशीय अन्तिम राजा जम्बुकेश्वर मारे गये । वे राजा निःसन्तान थे । बादशाह यह सोचने लगे, कि गद्दी पर किसको बैठाया जाये; राज परिवारमें ऐसा कोई बच्चा न था, कि उसे गद्दी पर बैठाते । मन्त्रीने आ कर कहा, कि गद्दी पर बैठने लायक युद्धमें कोई नहीं बच्चा है । अन्तमें बादशाहने उसीको राज्यसिंहासन पर बैठाया ।

किशवदन्ती है, कि राजा

खेलनेके लिये तुङ्गभद्राके दक्षिणी किनारे (जहाँ इस समय विजयनगरका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है) घूम रहे थे । ऐसे समय उन्होंने देखा, कि एक खरगोज तेजीसे आ कर बाघ और सिंहशिकारी कुत्तोंको क्षत विक्षत और आहत कर रहा है । राजा अपने कुत्तोंको इस तरह आक्रान्त होते देख बहुत चकित हुए और इस अद्भुत और नैसर्गिक घटना पर विचार करने लगे । इसो चिन्तामें भ्रमन हो कर घरकी ओर चले । रास्तेमें उस नदीके किनारे उपासनामें रत एक (माधवाचार्य) संन्यासीसे मीट हुई । उन्होंने इस घटनाका विवरण उस संन्यासीसे कह सुनाया और इसका यथार्थ तत्त्व पूछा । उस समय संन्यासीने राजाको जहाँ यह घटना हुई थी, उस स्थानको बतलानेके लिये कहा । राजाने भी संन्यासीको वह स्थान दिखा दिया । संन्यासीने उस समय राजासे कहा, कि तुम इस स्थानमें किला और राजवासाद निर्माण करो । तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित यह नगर धनधान्य और राजशक्तिके अन्यान्य राजधानियोंका शीर्ष-स्थान अधिकार करेगा । राजाने उस संन्यासीका आदेश पालन किया । शीघ्र ही वहाँ एक प्रासाद और राजकाव्योपयोगो अट्टालकालये तैयार कर दो गईं । राजाने संन्यासीके मतानुसार इस नगरका नाम 'विद्युयाजन' रखा ।*

* पुर्तगोज भ्रमणकारो Fernao Nuniz अन्दाज सन १५३६ ई०में विजयनगरके राजा अच्युतरायको समामें उपस्थित थे । उन्होंने अपने भ्रमणवृत्तान्तमें उपर्युक्त घटनाका विवरण दिया है । उक्त किम्बदन्तीसे मालूम होता है, कि किसी संन्यासीके नामानुसार धरत विजयनगर पुनः संस्कृत हा कर 'विद्याजन' नामसे प्रसिद्ध हुआ है । विद्याजन कब विद्यारण्यका अपभ्रंश मालूम होता है, सम्भवतः विद्यारण्यनगर संक्षेपमें विद्यानगर हुआ है । मुन्त्रीके मतसे देवरायका पुत्र बुद्धकराय था । बुद्धकरायने बहामनके छोमान्त तक सारे उड़ीसे पर अधिकार कर लिया था । विद्यानगरको ऐतिहासिक पदवीलोचना कानेसे मालूम होता है, कि ये बुद्धका श्लेष देवराय प्रथम पराक्रान्त राजा थे । पुर्तगोजने ऐतिहासिक घटनाओंमें बड़ी गड़बड़ी मचा दी है । अपने ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है, कि बादशाह महम्मद सन १२३० ई०में आनगुण्डा पर आक्रमण किया और

दूसरी एक किम्बदन्तीसे जाना जाता है, कि मुसल-मानोंके युद्धमें अयुक्त राजा जम्बुकेश्वर मारे गये। इसके बाद राज्याधिकारके लिये राज्यमें घोरतर विप्लव उपस्थित हुआ। उत्तराधिकारियोंमें आपसमें सिंहासन पानेके लिये निरन्तर युद्धमें लिप्त रह कर देशमें घोरतर विश्रङ्खला पैदा कर दी। इसी अराजकताके दुर्दिनमें विजयनगर मरुभूमिके रूपमें परिणत हुआ।

शृङ्गेरो मठमें रह कर जन्मभूमिकी इस भयानक विपद्द को यात स्मरण कर माधवाचार्य (विद्यारण्य यति) का हृदय रो उठा। उनसे भव रहा न गया, शीघ्र ही वे शृङ्गेरोसे लौटे। मातृभूमिमें पहुँचने ही विद्यारण्यस्वामी अपने इष्टदेशके मान्द्रमें गये और खानादि कर विधिवत् देवीकी अर्चना करने लगे। उसके बाद द्वांने उनकी ध्यानमें दर्शन दे कर कहा,—“वत्स! समय पूर्ण हुआ है। तुमने संसारधर्म त्याग कर संन्यास ग्रहण कर नवीन जीवन प्राप्त किया है। अतएव गार्हस्थ्य जन्मके लिये यह तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। इस समय मेरे घर-प्रसादसे तुम बटुलसम्पत्तिके अधिकारो बन कर इस नष्ट राज्यका पुनरुद्धार कर सनातन हिन्दू-धर्मका विस्तार करो।”

देवीका आशीर्वाद शिर पर धारण कर विद्यारण्य स्वामीने देवीके चरणोंमें निवेदन किया, ‘मां! मैं अर्थके बिना कैसे नष्ट राज्यका उद्धार करूँ? और कैसे धनहीन प्रजामण्डल नगरका समृद्धि बढूँ सक्तो है?’ उम समय देवीके आदेशसे स्वर्णकी सृष्टि हुई। (जनसाधारणका विश्वास है, कि विद्यारण्य स्वामीने योगबलसे स्वर्ण-सृष्टि की थी। संस्थापकी अर्थका आवश्यकता नहीं। केवल दुःखा प्रजाका दुःख दूर करनेके लिये ही वे अर्थागम विद्युपाकी शिक्षा करते हैं। आज भी कितने ही साधु

मायः १२ वर्ष तक उक्त राजाके साथ युद्ध किया। मुनिअके ग्रंथमें संख्याविन्यासका भ्रम होगा। उसको १२३० की जगह १३२० मान लिया जाये और उसमें १२ वर्ष युद्धकाल जोड़ दिया जाये, वो १३३२ ई० मायः नम्बुकेसरका मूलकाल आ जाता है। मुनिअको शताब्द पूर्व संख्याको स्पष्टता साधने प्रामाणिक सावित किया है।

पुत्र्य ऐंसे ही अलौकिक शक्तिसम्पन्न देखे जाते हैं।) हतसर्वाल प्रजामण्डलो स्वर्ण प्राप्त कर फिर एक बार धन-गालो बन गईं। ये लोग अपने अपने घर बना कर जातीय व्यवसाय वाणिज्य करने लगे और नगरकी शोभा और समृद्धि बढाने लगे। राजाधिकृत या सरकारी भूमिमें जो सुवर्ण सृष्टि हुई, वह उठा कर राजकोषमें एकत्र कर दिया गया। इस समय विजयनगरके प्रणष्ट गौरवके पुनरुद्धारकी चिन्ता दूर हुई। शीघ्र ही विजयनगर धन और शस्यसमृद्धिसे परिपूर्ण हो गया। इस समय विद्यारण्य स्वामाने इस नगरका नाम अपने नाम पर विद्युपातनगर रखा। हाम्पोंके एक देवालयमें विद्यारण्य स्वामीको उत्कीर्ण इसके सम्बन्धको शिलालिपि दिखाई देती है। इस पर १२५८ ग० (१३३६ ई०) खुदा हुआ है। सुतरां इसके पूर्व तथा जम्बुकेश्वरकी मृत्युके बाद करीब १३३५ ई० में उन्हींने यह नगर स्थापित किया था। उन्हींने अपने या अपने प्रतिनिधि द्वारा प्रायः १६ वर्ष तक विद्युपातनगरका राज्य किया।

विद्यारण्यकी दैवशक्तिके प्रभावसे शीघ्र ही विद्युपा-नगर सुशासित और समृद्धिसम्पन्न हो उठा। योगमार्गा-नुसारो विश्व विप्र माधवाचार्यने तब धनमदसे मत्त रहना नहीं चाहा। विपयवैभवनिस्पृह संन्यासीकी तरह सदा परम तत्त्वान्वेषणमें रत रह कर जावनयात्रा निर्वाह करना ही उनकी याँआ हुई। उन्हींने अपने प्रिय शिष्य बुक्कके हाथ राज्यभार अर्पण कर दिया। इससे ही विद्युपातनगरमें संगमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई। हाम्पोंकी शिलालिपिमें राजा बुक्करायको यादवसन्तान होना लिखा है। कहीं कहीं उसको कुकर्णशोय भी माना गया है।

राजा बुक्क और विद्यारण्यके सम्बन्धमें दक्षिण-पाटयमें कई किम्बदन्तियाँ प्रचलित है। इससे विद्युपा-रण्यका बहुत कुछ परिचय मिलता है। यहाँ वे प्रसङ्ग क्रमसे उद्धृत कर दी जाती हैं—

(१) तुंगमन्ना नदीके किनारे एक गुहामें विद्यारण्य तपस्या करते थे। बुक्क नामक बंदीरका एक लड़का उनके लिये दूध दे जाता था। इस तरह कई वर्ष तक उन पुण्यात्माको उसने सेवा की। विद्यारण्य शृंगेरो

उनकी प्रवीणता करने लगा । ये परधीकातर हुए सही, किन्तु कर्मवश किसी दूसरी वृत्तिने लग गये और उस-से ही-उनको अच्छा फल प्राप्त हुआ ।

सर्व ऐश्वर्यावान् होनेको आशासे माधव इष्टदेवीके शरणागत हुए और देवीको तुष्टिके लिये बड़ा कठोरतासे तपसाधना करने लगे । देवी भुवनेश्वरीने प्रसन्न हो कर कहा, "वत्स ! इस जन्ममें तुम्हारे धनप्राप्तिको कोई भाशा नहीं । दूसरे जन्ममें मेरे प्रसादसे तुम अतुल सम्पत्तिके अधिकारी हो सकोगे ।"

देवीके वाक्य सुन कर माधवके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । उन्होंने संसारधर्मकी तिलाञ्जलि दे कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया । सन् १३३१ ई०में वे अपनी जन्मभूमि हाम्पी नगरको छोड़ कर शृंगेरी की ओर चले और वहाँ पहुँच कर वहाँके सुप्रसिद्ध शङ्कर-मठाधिकारी आचार्य-प्रवर विद्याशङ्करतीर्थके चरणों पर गिरे । उस व्याकुल-चित्त भुवक माधवको शान्तिके प्रयासों देख विद्यार्थीने उनको स्थान दिया और उनको विद्यावृद्धिका प्रालम्ब देख दयार्द्रचित्तसे उनको शिष्य पद पर नियुक्त किया । माधवाचार्यने उसी वर्षमें संन्यासाश्रम ग्रहण किया था । इसके कुछ दिनोंक बाद विद्युत्तीर्थ सन् १३३३ ई०में परलोक-प्रयासी हुए । इसके बाद माधवाचार्य-के अग्रवर्त्ती शिष्य भारतीकृष्ण जगद्गुरुकी गद्दी पर बैठे ।

इसो वर्षमें अर्थात् सन् १३३३ ३४ ई०में ही दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकको फौजनि दक्षिणात्यके हिन्दू-राजगणके ऐश्वर्यासे ईर्षान्वित हो पहले आनगुण्डा पर आक्रमण किया । नगर पर घेरा डालनेके समय हिन्दू और मुसलमानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ । इस भाषण युद्धमें विजयध्वजवंशाव्य अंतिम राजा जम्बुकेश्वर मारे गये । ये राजा निःसन्तान थे । बादशाह यह सोचने लगे, कि गद्दी पर किसको बैठाया जाये, राज परिवारमें ऐसा कोई वंश न था, कि उसे गद्दी पर बैठाले । मन्त्रोंने आ कर कहा, कि गद्दी पर बैठने लायक युद्धमें कोई नहीं बचा है । अन्तमें बादशाहने उसी मन्त्रों-को-राज्यसिंहासन पर बैठाया । इनका नाम था देवराय । किश्वन्ती है, कि राजा देवराय एक दिन शिकार

खेलनेके लिये तुङ्गभद्राके दक्षिणी किनारे (जहाँ इस समय विजयनगरका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है) घूम रहे थे । ऐसे समय-उन्होंने देखा, कि एक खरगोश तेंडीसे आ कर बाघ कीर सिंहाशिकारी कुत्तोंको क्षत विक्षत और आहत कर रहा है । राजा अपने कुत्तोंको इस तरह आक्रान्त होते देख बहुत चकित हुए और इस अद्भुत और नैसर्गिक घटना पर विचार करने लगे । इसी चिन्तामें मग्न हो कर घरकी ओर चले । रास्तेमें उस नदीके किनारे उपासनामें रत एक (माधवाचार्य) संन्यासीसे भेंट हुई । उन्होंने इस घटनाका विवरण उस संन्यासीसे कह सुनाया और इसका यथार्थ-तत्त्व पूछा । उस समय संन्यासीने राजाको जहाँ वह घटना हुई थी, उस स्थानको बतलानेके लिये कहा । राजाने भी संन्यासी-को वह स्थान दिखा दिया । संन्यासीने उस समय राजासे कहा, कि तुम इस स्थानमें किला और राजप्रसाद निर्माण करो । तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित यह नगर धनधान्य और राजशाक्तमें अत्यान्व्य राजधानियोंका शीर्ष-स्थान अधिकार करेगा । राजाने उस संन्यासीका आदेश पालन किया । शीघ्र ही वहाँ एक प्रसाद और राजकाव्योप-योगी गट्टालिकाये तैयार कर दो गईं । राजाने संन्यासी-के मतानुसार इस नगरका नाम 'विद्युत्तीर्थ' रखा ।*

* पुर्तगीज भ्रमणकारी Fernao Nuniz मन्दाज सन् १५३६ ई०में विजयनगरके राजा अच्युतरायको सभामें उपस्थित थे । उन्होंने अपने भ्रमणवृत्तान्तमें उपर्युक्त घटनाका विवरण दिया है । उक्त-किश्वन्तीसे मालूम होता है, कि किसी संन्यासीके नामानुसार अस्त विजयनगर पुनः संवृत्त हो कर 'विद्युत्तीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ है । विद्याजान कन्द विद्यारण्यका अपभ्रंश मालूम होता है, अन्वयतः विद्यारण्यनगर संक्षेपमें विद्यानगर हुआ है । तुनीजके मतसे देवरायका पुत्र सुकराय था । सुकरायने बहाम-के सीमान्त तक सारे उड़ीसे पर अधिकार कर लिया था । विद्या-नगरको ऐतिहासिक पर्वीछोचना करनेसे मालूम होता है, कि ये सुक या र्ले देवराय प्रव्रस पराक्रान्त राजा थे । पुर्तगीज पर्वीट्रने ऐतिहासिक घटनाओंमें यही गड़बड़ी मचा दी है । क्योंकि अपने ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है, कि बादशाह महम्मद तुगलकने सन् १२३० ई०में आनगुण्डा पर आक्रमण किया और

दूसरी एक किम्बदन्तीसे जाना जाता है, कि मुसलमानोंके युद्धमें अतुलक राजा जम्बुकेश्वर मारे गये। इनके बाद राज्यधिकारके लिये राज्यमें घोरतर विप्लव उपस्थित हुआ। उत्तराधिकारियोंने आपसमें सिंहासन पानेके लिये निरन्तर युद्धमें लिप्त रह कर देशमें घोरतर विश्रुद्धि पैदा कर दी। इसी अराजकताके दुर्दिनमें विजयनगर मरुभूमिके रूपमें परिणत हुआ।

शुङ्गेरो मठमें रह कर जन्मभूमिकी इस भयानक विपद्दुको बात स्मरण कर माधवाचार्य (विद्यारण्य यति) का हृदय रो उठा। उनसे भव रहा न गया, शीघ्र ही वे शुङ्गेरोसे लौटे। मातृभूमिमें पहुंचने ही विद्यारण्यस्वामी अपने इष्टदेवोके मान्द्रमें गये और ज्ञानादि कर विविध यत्न देवोंकी अर्चना करने लगे। उसके बाद देवाने उनकी ध्यानमें दर्शन दे कर कहा,—“वत्स! समय पूर्ण हुआ है। तुमने संसारधर्म त्याग कर संन्यास ग्रहण कर नवोन जीवन प्राप्त किया है। अतएव गार्हस्थ्य जन्मके लिये यह तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। इस समय मेरे वर-प्रसादसे तुम अतुलसम्पत्तके अधिकारी बन कर इस नष्ट राज्यका पुनरुद्धार कर सनातन हिन्दू-धर्मका विस्तार करो।”

देवोंका आशीर्वाद शिर पर धारण कर विद्यारण्य स्वामीने देवोंके चरणोंमें निवेदन किया, ‘मां! मैं अर्थके बिना कैसे नष्ट राज्यका उद्धार करूँ? और कैसे धनहीन प्रजागण्डला नगरका समृद्धि बढ़ सकतो है?’ उन समय देवोंके आदेशसे स्वर्णकी वृष्टि हुई। (तनसाधारणका विश्वास है, कि विद्यारण्य स्वामीने घोंगलसे स्वर्ण-वृष्टि की थी। संन्यासीकी अर्थका आवश्यकता नहीं। केवल दुःखी प्रजाका दुःख दूर करनेके लिये ही वे अर्थागम विद्युत्की शिक्षा करते हैं। आज भी कितने ही सधु

मायः १२ वर्ष तक उक्त राजाके साथ युद्ध किया। तुमिनेके ग्रंथमें संख्याविन्यासका भ्रम होगा। उसकी १२३० की जगह १३२० मान लिया जाये और उद्यमें १२ वर्ष युद्धकाल जोड़ दिया जाये, तो १३३२ ई० प्रायः लम्बुकेश्वरका मृत्युकाल था जाता है। गुगिजकी सताब्द पूर्व संख्याको ल्यपेक्ष साहजने प्रमात्तक सावित किया है।

पुत्र्य पत्ने ही अलौकिक शक्तिस्मय देखे जाते हैं।) हतमर्शल्य प्रजागण्डला स्वर्ण प्राप्त कर फिर एक बार धन-जालों बन गई। घे लोग अपने अपने घर बना कर जातीय व्यवसाय वाणिज्य करने लगे और नगरकी शोभा और समृद्धि बढ़ने लगे। राजाधिकृत या सरकारो भूमिमें जो सुवर्ण वृष्टि हुई, वह उठा कर राजकोषमें एकत्र कर दिया गया। इस समय विजयनगरके प्रणष्ट गौरवके पुनरुद्धारकी चिन्ता दूर हुई। शीघ्र ही विजयनगर धन और शस्यसमृद्धिसे परिपूर्ण हो गया। इस समय विद्यारण्य स्वामाने इस नगरका नाम अपने नाम पर विद्यवानगर रखा। हाम्पोंके एक देशालयमें विद्यारण्य स्वामीको उत्कीर्ण इसके सम्बन्धका शिलालिपि दिखाने देती है। इस पर १२५८ शक (१३३६ ई०) खुदा हुआ है। सुतरां इसके पूर्व तथा जम्बुकेश्वरकी मृत्युके बाद करीब १३३५ ई० में उन्होंने यह नगर स्थापित किया था। उन्होंने अपने या अपने प्रतिनिधि द्वारा प्रायः १६ वर्ष तक विद्यवानगरका राज्य किया।

विद्यारण्यकी वैशक्तिक प्रभावमें शीघ्र ही विद्यवानगर सुशासित और समृद्धिस्मय हो उठा। योगमार्गानुसारो विश्व विप्र माधवाचार्यने तब धनमदसे मत्त रहना नहीं चाहा। विपणवैमथनिसृष्ट संन्यासीकी तरह सदा परम तत्त्वान्वेषणमें रत रह कर जावनयात्रा निर्वाह करना ही उनकी वार्ता हुई। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य बुधरुके हाथ राज्यभार अर्पण कर दिया। इससे ही विद्यवानगरमें संगमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई। हाम्पोंकी जिन्नालिपिमें राजा बुधरुरायको यादवसन्तान होना लिखा है। कहीं कहीं उसको कुयवंशीय भी माना गया है।

राजा बुधरु और विद्यारण्यके सम्बन्धमें दाक्षिणात्यमें कई किम्बदन्तियां प्रचलित है। इससे विद्यारण्यका बहुत कुछ परिवय मिलना है। यहाँ वे प्रसङ्ग क्रमसे उद्धृत कर दी जाती हैं—

(१) तुंगमद्रा नदीके किनारे एक गुहामें विद्यारण्य तपस्वा करने थे। बुधरु नामक अहीरका एक लड़का उनके लिये दूध दे जाता था। इस तरह कई वर्ष तक उन पुण्यात्मकों उसने सेवा की। विद्यारण्य भुंगेरी

उनकी प्रशिक्षित करने लगा । वे प्रथमीकातर हुए सही, किन्तु कर्मावश किसी दूसरी वृत्तिने लग गये और उससे ही उनको अच्छा फल प्राप्त हुआ ।

स्वयं पेश्वट्टांसि होनेको आशासे माधव इष्टदेवोके शरणापन्न हुए और देवोकी तुष्टिके लिये बड़ा कठोरतासे तपासाधना करने लगे । देवी भुवनेश्वरीने प्रसन्न हो कर कहा, "वत्स ! इस जन्ममें तुम्हारे धनप्राप्तिकी कोई आशा नहै । दूसरे जन्ममें मेरे प्रसादसे तुम अतुल सम्पत्तिके अधिकारी हो सकोगे ।"

देवोके वाक्य सुन कर माधवके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । उन्होंने संसारधर्मकी तिलाञ्जलि दे कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया । सन् १३३१ ई०में वे अपनी जन्मभूमि हाम्पी नगरको छोड़ कर शृंगेरीकी ओर चले और वहां पहुंच कर वहांके सुप्रसिद्ध शङ्कर-मठाधिकारी आचार्य-प्रवर विद्याशङ्करतोषिके चरणों पर गिरे । उस व्याकुलचित्त भुवक माधवकी शान्तिके प्रयामो देख विद्यार्थीने उनको स्थान दिया और उनको विद्यावृद्धिका प्राख्य देख द्यार्द्रचित्तसे उनको शिष्य पद पर नियुक्त किया । माधवाचार्यने उसी वर्षमें संन्यासाश्रम ग्रहण किया था । इसके कुछ दिनोंक बाद विद्युयातीर्थ सन् १३३३ ई०में परलोकप्रवासी हुए । इसके बाद माधवाचार्यके अप्रवर्त्ती शिष्य मारतीकृष्ण जगद्गुरुकी गद्दी पर बैठे ।

इसो वर्षमें अर्थात् सन् १३३३ ३४ ई०में ही दिल्लीके बादशाह मदम्मद तुगलकको फौजाने दक्षिणात्यके हिन्दू राजवंशके पेश्वट्टांसि ईर्षान्वित हो पहले आनगुण्डा पर आक्रमण किया । नगर पर घेरा डालनेके समय हिन्दू और मुसलमानोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ । इस भोषण युद्धमें विजयध्वजधंशवा अंतिम राजा जम्बुकेश्वर मारे गये । ये राजा निःसन्तान थे । बादशाह यह सोचने लगे, कि गद्दी पर किसको बैठाया जाये, राज परिवारमें ऐसा कोई वचन था, कि उसे गद्दी पर बैठाते । मन्त्रोंने आ कर कहा, कि गद्दी पर बैठने लायक युद्धमें कोई नहीं बचा है । अन्तमें बादशाहने उसी मन्त्रोंको राज्यसिंहासन पर बैठाया । इनका नाम था देवराय । किम्बदन्ती है, कि राजा देवराय एक दिन शिकार

खेलनेके लिये तुङ्गभद्राके दक्षिणीकिनारे (जहां इस समय विजयनगरका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है) घूम रहे थे । ऐसे समय उन्होंने देखा, कि एक खरगोश तेजीसे आ कर वाघ और सिंहशिकारी कुत्तोंको क्षत विक्षत और आहत कर रहा है । राजा अपने कुत्तोंको इस तरह आक्रान्त होते देख बहुत चकित हुए और इस अद्भुत और नैसर्गिक घटना पर विचार करने लगे । इसी चिन्तामें मग्न हो कर घरकी ओर चले । रास्तेमें उस नदीके किनारे उपासनामें रत एक (माधवाचार्य) संन्यासीसे मेंट हुई । उन्होंने इस घटनाका विवरण उस संन्यासीसे कह सुनाया और इसका यथार्थ तत्त्व पूछा । उस समय संन्यासीने राजाको जहां वह घटना हुई थी, उस स्थानको बतलानेके लिये कहा । राजाने भी संन्यासीको वह स्थान दिखा दिया । संन्यासीने उस समय राजासे कहा, कि तुम इस स्थानमें किला और राजप्रासाद निर्माण करो । तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित यह नगर धनधान्य और राजशाक्तमें अन्यान्य राजधानियोंका शीर्षस्थान अधिकार करेगा । राजाने उस संन्यासीका आदेश पालन किया । शीघ्र ही वहां एक प्रासाद और राजकाट्योपयोगी अट्टालिकाएँ तैयार कर दी गईं । राजाने संन्यासीके मतानुसार इस नगरका नाम 'विद्युवाजन' रखा ।*

* पुर्तगोज भ्रमणकारी Fernao Nuniz अन्दाज सन् १५३६ ई०में विजयनगरके राजा अच्युतरायकी सभामें उपस्थित थे । उन्होंने अपने भ्रमणवृत्तान्तमें उपर्युक्त घटनाका विवरण दिया है । उक्त किम्बदन्तीसे मालूम होता है, कि किसी संन्यासीके नामानुसार ४२३ विजयनगर पुनः संस्कृत हा कर 'विद्याजन' नामसे प्रसिद्ध हुआ है । विद्याजन कन्द विद्यारण्यका अपभ्रंश मालूम होता है, सम्भवतः विद्यारण्यनगर संक्षेपमें विद्यानगर हुआ है । पुर्तगोजके मतसे देवरायका पुत्र बुक्कराय था । बुक्करायने बहामके सीमान्त तक सारे उड़ीसे पर अधिकार कर लिया था । विद्यानगरकी ऐतिहासिक पथ्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि २रे बुक्क या १ले देवराय प्रथम पराक्रान्त राजा थे । पुर्तगोज पर्वटकने ऐतिहासिक घटनाओंमें बड़ी गड़बड़ी मचा दी है । क्योंकि अपने ग्रन्थमें उन्होंने खिला है, कि बादशाह मदम्मद तुगलकने सन् १२३० ई०में आनगुण्डा पर आक्रमण किया और

विद्यारण्य स्वामी का विद्यालय था। इतिहासमें आज भी
विद्यारण्य की विद्यालय प्रथा का पतन हो रहा है।

विद्यालय प्रथा का जन्म दे लो।

विद्यारण्य ने कृष्णराजवंश की सुवर्गमें पहले बुकराय
को बुकराय और उनके बाद उनके पुत्र हरिहर (१म)
को बुकराय (२म) नाम रखा है। उक्त किम्बदन्तियोंसे
स्पष्ट है कि बुकराय हरिहर पहले और बुकराय
दूसरे हुए। राजवंश की सुवर्गमें भी हरिहर (१म) को
बुकराय (१म) (१२१४ ई०) और बुकराय (२म) को १३५४
ई० में बुकराय राज्यावासन करते देखा
जाता। सुवर्ग विद्यारण्यके शिष्य बुकराय हरिहरके
नाम से बुकराय मन्देद नहीं। यदि बुकरायप्रतापता बुकराय
विद्यारण्यके शिष्य ही, तो उनको और उनके पुत्र संगम-
राय को बुकराय ही कालचक्रमें फेंकने बिना ऐति-
हासिकी प्रस्थापना ही नहीं सकती।

उक्त ही था कि बुकराय, कि विद्यारण्य स्वामी
सन् १२१४ ई०में प्रथम विद्यारण्य प्रथम पूर्वक यतिधर्ममें
रहते हुए सन् १३१४ ई०में विजयनगर का कर
अपने नामकरके सिद्धी संस्कार कर उन्होंने उसका
नाम विद्यालय रखा। उस समय उनकी उम्र प्रायः
६५ वर्ष की थी। माधु विद्यारण्यने नाममात्रकी आशासे
कलेय पर मरगकी स्थापना की थी, ऐसा अनुमान
हुन-बुकराय नाममात्र हीना। बहुत सम्भव है, कि
हरिहर और बुकराय उनके प्रसाद और परामर्शसे राज्य
स्थापित किया था। हमसे उम्होंने बुकराय नाम पर ही
एव अन्ततः नामकरण किया हो। बुकराय मधमके
सन् १३५४ ई०में द्वितीयने १२७४ ई० तक राज्यशासन
किया था।

बुकराय के अनुसार विद्यारण्यस्वामी १३३१ ई०
में विद्यारण्य मन्त्रिमण भाष्यमें थे। सन् १३८० ई०में
उन्होंने अपना प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने पर १३८६
ई० में विद्यारण्य बुकरायके प्रतिद्वन्द्व हुए। अपने शिष्य
के नामसे विद्यालय स्थापित किया राजधानीकी रक्षाके लिये
विद्यारण्य, बुकराय और हरिहर द्वितीयकी परा-
जय की है। हमसे मन्देद करनेको प्रकृत नहीं।
बुकराय ही बुकराय करना होगा, कि ये सदा मरगो-

रूपसे मन्त्रिसभामें प्रस्तुत नहीं रहते थे। वे धीरे-धीरे
मठमें ही रहते थे और कभी कभी विद्यागर्गमें
आते थे। काशीघिलासांज्ञण माधवमन्त्री भादि दूसरे
कई व्यक्ति उनके आदेशसे राज्यकार्यको पर्याप्तोत्तम
किया करते थे।

विद्यारण्य (सं० पु०) विद्ययाधन, विद्यया।
विद्यारण्य (सं० पु०) विद्ययाः आरम्भः। वह संस्कार जिसमें
विद्ययाकी पढ़ाई आरम्भ होती है। विद्या देलो।
विद्याराज (सं० पु०) १ वीद यतिभेद। २ विष्णुमूर्त्तिभेद।
विद्याराम—रसदासकाके प्रणेता।
विद्याराशि (सं० पु०) शिष्य।
विद्यार्थान् (सं० पु०) विद्युगमर्थावित् शीलमस्य अर्था-
णिति। छात्र, वह जो विद्यया शिक्षाको प्रार्थना करता
हो।

विद्यार्थी (सं० पु०) विद्यार्थिन देलो।
विद्यालयकार मद्याचार्य (सं० पु०) १ संक्षिप्तसारके प्रसिद्ध
टीकाकार। २ सारसंग्रह नामक ज्ञानिसंग्रहके रचयिता।
३ विन्वमङ्गलरचित कर्णामुनिके टीकाकार।
विद्यालय (सं० पु०) विद्ययायाः विद्युवाशिक्षायाः मालया
स्थानं। विद्युवाशिक्षाका स्थान, पाठशाला।

प्राचीन भारतकी विद्युवाशिक्षाके स्थान पाठशाला
या गुरुकुलके वर्तमान यूरोपीय प्रथाके शिक्षास्थान स्कूल
(School) में बहुत अन्तर है। हम विद्यालयमें जब उच्च
श्रेणीकी शिक्षा दी जाती है, तब उसे विद्युविद्यालय या
कालेज (University या College) कहते हैं। विद्युवालय
या कालेजका मतलब कैसा होवे शिक्षा देनेमें
सुविधा होती है तथा बालक और युवकीकी शिक्षायोग्य
किन किन वस्तुओंका रहना आवश्यक है, उच्चशिक्षाप्रदान
वर्तमान पाश्चात्य परिदृष्टीमें पेशी मोज़ बरके उन
विषयकी एक तालिका बनार है। विद्युवालयके मुद्राशिक्षा
संस्थान निर्देश करके आज बहुरूपसे "School and
College" विषयक प्रयोग भी
में वर्तमान प्रथाके
Kindergarten School
देखा जाता है। विद्युवा
रूपमें देलो।

मठके जगद्गुरु हुए । उन्होंने अराजक विजयनगरमें था कर किसी राजवंशका सम्बन्धन न पा कर उस अहीरके पुत्र बुक्कको ही राजसिंहासन पर बैठाया ।

(२) योगी माधवानाथकी विजयनगरमें बहुत गुप्तधन प्राप्त हुआ । उन्होंने कुचवंशीय एक मनुष्यको यह धन दे दिया । इसी व्यक्तिने पोछे एक नये वंशकी प्रतिष्ठा की ।

(३) हुक और बुक्क नामक दो भ्राता घरङ्गलक प्रतापचन्द्रदेवके राजकीर्णोपभ्रंश थे । वे अपने गुरु विद्यारण्यके समीप शृङ्गेरो मठमें भाग आये और उनके प्रभावसे उन्होने सन् १३३६ ई०में विजयनगर साम्राज्य स्थापित किया । हुक पहले और उनके बाद बुक्क राजा हुए ।

(४) सन् १३३३ ई०में इवन बतूना भारतमें आये । उन्होंने विजयनगर राज्यस्थापनके सम्बन्धमें लिखा है, कि सुलतान महम्मदके भतीजे बहाउद्दीन घासनाथ कामिल्यराजके यहाँ आश्रय लेने पर सुलतान उसको दण्ड देनेके लिये मदलबल अप्रसर हुए । यह कामिल दुर्ग तुङ्गभद्राके किनारे आनगुण्डोसे ४ कोस पूर्वमें अवस्थित है । कामिलराजने भोत हो कर बहाउद्दीनको निकटवर्ती एक सरदारके पास भेज दिया । इसी सूत्रसे आनगुण्डोराजके साथ मुसलमानों सेनाओंका युद्ध हुआ । राजा युद्धमें मारे गये और उनके ११ पुत्र कैद कर लिये गये । सुलतानने उन्हें मुसलमान बना लिये । सुलतानकी आज्ञासे आनगुण्डो राजमन्त्री देवराय वहाँके अधीश्वर हुए । इसके बादके विषय पर इवन बतूना और नुनिजकी अनेक बातें मिलती हैं ।

(५) बुक्क और हरिहर (हुक) घरङ्गलराजके मन्त्री थे । सन् १३२३ ई०में घरङ्गलराज्य मुसलमानों द्वारा तहस नहस होने पर वे घोड़ेकी सवारोंसे आनगुण्डोमें चले आये । यहाँ माधवानाथसे ज्ञान पदचान हो जाने पर उनके साहाय्यसे ही उन्होंने विजयनगरराज्यकी स्थापना की ।

(६) सन् १३०६ ई०में मुसलमानोंने घरङ्गल पर घेरा डाला । इसके बाद यहाँ मुसलमान शासनकाल नियुक्त हुआ । इस मुसलमान शासककी अधीनतामें

बुक्क और हरिहर काम करने थे । सन् १३१६ ई०में द्वारसमुद्रके होयशल बल्लाल राजाओंके विरुद्ध मालिक काफूरके साहाय्यार्थ औरङ्गलके शासक उनको भेज दिया । यहाँ बल्लाल राजाओंसे हो कर ये दोनों भाई मदलबल आनगुण्डो राज आये । यहाँ एक मुद्दामें विद्यारण्य स्वामोसे उनका युद्ध हुआ । साधुत्तमने विद्ययानगर स्थापनमें उनको सहायता दी थी ।

(७) उक्त दोनों भाई दक्षिणात्यके शासक मुसलमानोंके अधीन काम करते थे । मालिक काफूरके स्तुष्टिके लिये वाध्य हो कर उनको धर्मनोतिविक्रम ही कार्य करने पड़े । इससे मनमें निर्वेद उपाय होने पर वे भाग कर पार्वत्य भूमिमें आये । उनके यहाँ बहुत आदमों मिला गये । विद्यारण्यस्वामोके मार्गदर्शसे वे यहाँ विजयनगर स्थापन करनेमें समर्थ हुए ।

(८) हुक और बुक्क दोनों ही होयशल बल्लाल नृपतियोंके अधीनमें सामन्तराज्य थे । राजदेशसे उन आनगुण्डो और उसके समीपवर्ती प्रदेशोंमें धूम सुन्धिवा मिली । यहाँ विद्यारण्यके साथ भेंट हो कर उनके परामर्शसे विजयनगर राज्य तथा राजवंश प्रतिष्ठा हुई । कसोपट्याटक निकटिन १४७४ ई०में भ्रातृसंमेलन करने आये थे । उनका कहना है, कि बुक्क और हरिहर धनवासीके फादर्यवशसम्भूत हैं । विजयनगर ही उनका राजपाट था । उन्होंने उनको "हिन्दुसुलतान कदम" कहा है ।

उपयुक्त किम्बदन्तियोंकी स्पष्टता आलोचना करने पर मालूम होता है, कि विद्यारण्य स्वामी शृङ्गेरो मठमें आचार्य होनेके बाद आनगुण्डो राज्यमें अराजकता देख कर वे तुङ्गभद्राके किनारे आ पहुँचे । यहाँ एक पर्यट-मुद्दामें वे योगसाधन कर रहे थे । उन्हींकी कृपासे बुक्कराय और हरिहर विद्ययानगर राज्यकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुए । यद्यपि शृङ्गेरो मठकी विद्यारण्योंमें और रायवशावलीमें विद्यारण्यके द्वारा विद्ययानगर प्रस्थापनकी बात लिखी है, तथापि यह स्वीकार करना होगा, कि उनके अनुश्रुत राजा बुक्करायने उन्हींके परामर्शसे इस विस्तीर्ण राज्यका विशेष

रक्षणके साथ प्राप्त किया था। इतिहासमें आज भी
बुधवार और हरिहरका प्रभाव आपिन हो रहा है।

विधानसभामें देखो।

विधानसभामें मद्रासराजवंशीकी सूचीमें पहले बुकराय
पंडे मद्रास और इसके बाद उनके पुत्र हरिहर (१म)
और बुक (२म) का नाम दिया है। उद्धृत किंवदन्तियोंसे
मान्य होता है, कि बुक या हरिहर पहले और बुक
पंडे का पुत्र। राजवंशीकी सूचीमें भी हरिहर (१म)की
मृत (१३११ ई०से १३५४ ई० और बुक (१म)की १३५४
ई०से १३७७ तक विजयनगरका राज्यासासन करते देखा
जाता है। सुनां विधारण्यके नियम बुक हरिहरके
नहीं थे, इनमें कोई संशय नहीं। यदि वंशप्रतिष्ठाना बुक
विधारण्यके नियम हैं, तो उनको और उनके पुत्र संगम-
राजके एक कथमें ही कालकवलमें फँके बिना ऐति-
हासिकों से सम्झना ही ही नहीं सकती।

वहने दो कदा जा चुका है, कि विधारण्य स्वामी
मृत (१३११ ई०में प्रप्रवर्गविजयनगर पूर्वक यतिधर्ममें
दक्षिण हुए। मृत १३२४ ई०में विजयनगर आ कर
वन्धुसंगमराज जिससे संस्कार कर उन्होंने उसका
पुत्र विधारण्य राजा। उस समय उनकी उम्र प्रायः
११ वर्षों की थी। साधु विधारण्यने नाममात्रकी आंशसे
काने नाम पर तपस्वी स्थापना की थी, ऐसा अनुमान
पूर्व-पुत्र नहीं मान्य होता। बहुत सम्भव है, कि
हरिहर और बुकने उनके प्रसाद और परामर्शसे राज्य
प्राप्त किया था। इससे उन्होंने बुकके नाम पर ही
इस प्रकार नामकरण किया हो। बुक पथमके
पुत्र गंगाहरिहर द्वितीयने १३७७ ई० तक राज्यशासन
किया था।

वहाँ सूचीके अनुसार विधारण्यस्वामी १३२१ने
द्वितीयके सेनापति आश्रममें थे। मृत १३८० ई०में
उनके मरणमें भारतीयोंकी मृत्यु होने पर १३८६
ई०के ही जयपुरय करसे प्रसिद्ध हुए। अपने हीय
की मृत्युमें उन्होंने अपने नियम राजधानीको रक्षाने निवे
दित प्रथम, बुक प्रथम और हरिहर द्वितीयको परा-
जित किया था, इसमें संशय करनेको प्रकृत नहीं।
अपने ही परलोकार करना होगा, कि वे सदा मन्त्री-

रूपसे मन्त्रिसभामें प्रस्तुत नहीं रहते थे। वे श्रीकृष्ण
मठमें हो रहते थे और कभी कभी विधागपरमें
आते थे। काशीविलाससिन्धु माधवमन्त्री आदि दूसरे
वही व्यक्ति उनके आदेशसे राज्यकार्यको पर्यालोचना
किया करते थे।

विधारण्य (सं० पु०) विद्युधाधन, विद्युदा।

विधारण्य (सं० पु०) विद्युदा; आरम्भः। यह संस्कार जिसमें
विद्युदाकी पढ़ाई आरम्भ होती है। विधा देखो।

विधारण्य (सं० पु०) १ बौद्ध यतिमेद। २ विष्णुसूक्तिमेद।

विधारण्य—रसदाधिकारके प्रणेता।

विधारण्य (सं० पु०) शिव।

विधारण्य (सं० पु०) विद्युदाधर्मवित्तु शीलमन्थ अर्ध-
णिति। छात्र, वह जो विद्युदा शिक्षाको प्रार्थना करता
हो।

विधारण्य (सं० पु०) विधारण्य देखो।

विद्यालङ्कार मन्त्राचार्य (सं० पु०) १ संक्षिप्तसारके प्रसिद्ध
टीकाकार। २ सारसंप्रद नामक ज्ञानिसंस्थके रचयिता।

३ विद्यमङ्गलरचित कर्णासुतके टीकाकार।

विद्यालय (सं० पु०) विद्युदाध्याय; विद्युदाजिज्ञासा भालया
स्थानं। विद्युदाध्यायका स्थान, पाठशाला।

प्राचीन भारतकी विद्युदाध्यायका स्थान पाठशाला
या शुभश्रमण वर्तमान यूरोपीय प्रथाके शिक्षास्थान स्कूल
(School)में बहुत अन्तर है। इस विद्यालयमें जब उच्च
श्रेणीकी शिक्षा हो जाती है, तब उसे विश्वविद्यालय या
कालेज (University या College) कहते हैं। विद्यालय
या कालेजका मकान कैसा होनेसे शिक्षा क्षेत्रमें
सुविधा होती है तथा बालक और युवकोंकी जिज्ञासावृत्ति
जिन दिन वस्तुओंका रचना आवश्यक है, उच्चजिज्ञासाप्रथ
वर्तमान पाश्चात्य परिदृष्टीने गरीबी भोग करने, उच्च
विवेकी एक ताजिका बनाई है। विद्यालयके शुभश्रमण
संस्थान निर्देश करनेके आज कल बहुतसे "School bul-
ding" विवरक प्रथम भी प्रकाशित हुए हैं। इन सब प्रथो-
में वर्तमान प्रथाके परिभाषित Boarding School,
Kindergarten School आदिकी या मन्त्री व्यवस्था
देखी जाती है। विद्युदाध्याय स्कूल की विधा-
स्थानः

मठके जगद्गुरु हुए। उन्होंने बराजक विजयनगरमें आ कर किसी राजवंशका सन्धान न पा कर उस अधीरके पुत्र बुक्कको ही राजसिंहासन पर बैठाया।

(२) योगी माधवानार्यको विजयनगरमें बहुत गुप्तधन प्राप्त हुआ। उन्होंने कुचवंशीय एक मनुष्यको यह धन दे दिया। इसी व्यक्तिने पोछे एक नये वंशकी प्रतिष्ठा की।

(३) हुक और बुक्क नामक दो भ्राता बरङ्गलके प्रतापरुद्रदेवके राजकीयाध्यक्ष थे। वे अपने गुरु विद्यारण्यके समीप शृङ्गेरी मठमें भाग आये और उनके प्रभावसे उन्होंने सन् १३:६ ई०में विजयनगर साम्राज्य स्थापित किया। हुक पहले और उनके बाद बुक्क राजा हुए।

(४) सन् १३३३ ई०में इवन बतूना भारतमें आये। उन्होंने विजयनगर राज्यस्थापनके सम्बन्धमें लिखा है, कि सुलतान महम्मदके भतीजे बहाउद्दीन घासनाभ्य कांभिवलय राजके यहाँ आश्रय लेने पर सुलतान उसको दण्ड देनेके लिये मदलबल अप्रसर हुए। यह कांभिल दुर्ग तुङ्गभद्राके किनारे आनगुण्डीसे ४ कोस पूर्वमें अवस्थित है। कांभिलराजने भोत हो कर बहाउद्दीनको निकटवर्ती एक सरदारके पास भेज दिया। इसी सुबसे आनगुण्डीराजके साथ मुसलमानी सेनाओंका युद्ध हुआ। राजा युद्धमें मारे गये और उनके ११ पुत्र कैद कर लिये गये। सुलतानने उन्हें मुसलमान बना लिये। सुलतानकी आज्ञासे आनगुण्डी राजमन्त्री देवराय वहाँके अधीश्वर हुए। इसके बादके विषय पर इवन बतूना और तुनिजकी अनेक बातें मिलती हैं।

(५) बुक्क और हरिहर (हुक) बरङ्गलराजके मन्त्री थे। सन् १३२३ ई०में बरङ्गलराज्य मुसलमानों द्वारा तहस नहस होने पर वे घोड़ेकी सवारोंसे आनगुण्डीमें चले आये। यहाँ माधवाचार्यसे ज्ञान पहचान हो जाने पर उनके साहाय्यसे ही उन्होंने विजयनगरराज्यको स्थापना की।

(६) सन् १३०६ ई०में मुसलमानोंने बरङ्गल पर घेरा डाला। इसके बाद यहाँ मुसलमान शासनकर्त्तानियुक्त हुआ। इस मुसलमान शासककी अधीनतामें

बुक्क और हरिहर काम करते थे। सन् १३१० ई०में द्वारसमुद्रके होयशल बहाल राजाओंके विरुद्ध प्रेरित मालिक काफूरके साहाय्यार्थ औरङ्गलके शासनकर्त्ताने उनको भेज दिया। वहाँ बदशल राजाओंसे पराजित हो कर ये दोनों भाई मदलबल आनगुण्डी राज्यमें भाग आये। यहाँ एक गुदामें विद्यारण्य स्वामीसे उनका परिचय हुआ। साधुत्तमने विद्युयानगर स्थापनमें उनको सहायता दी थी।

(७) उक्त दोनों भाई दक्षिणात्यके शासनकर्त्ता मुसलमानोंके अधीन काम करते थे। मालिककी मन्तुष्टिके लिये वाध्य हो कर उनको धर्मनोतिविरुद्ध निते ही कार्य करने पड़े। इससे मनमें निर्वेद उपस्थित होने पर वे भाग कर पार्वत्य भूमिमें आये। उनके दलमें यहाँ बहुत आदमी मिल गये। विद्यारण्यस्वामीके परामर्शसे वे यहाँ विजयनगर स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे।

(८) हुक और बुक्क दोनों ही होयसल बरङ्गल नृपतियोंके अधीनमें मामन्तराजे थे। राजदंशसे उनको आनगुण्डी और उसके समीपवर्ती प्रदेशोंमें घूमनेकी सुविधा मिली। यहाँ विद्यारण्यके साथ भेंट हो जाने पर उनके परामर्शसे विजयनगर राज्य तथा राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। कर्त्तापट्टाटक निरिदित १४४४ ई०में भारत भ्रमण करने आये थे। उनका कहना है, कि बुक्क और हरिहर वनवासिके कादम्बवंशसम्भूत हैं। विजयनगरमें ही उनका राजपाट था। उन्होंने उनको "हिन्दुसुलतान कदम" कहा है।

उपर्युक्त किम्बदन्तियोंकी स्थूलतः आलोचना करने पर मालूम होता है, कि विद्यारण्य स्वामी शृङ्गेरी मठमें आचार्य होनेके बाद आनगुण्डी राज्यमें बराजकर्त्ता देख कर वे तुङ्गभद्राके किनारे आ पहुँचे। यहाँ एक पर्वत-गुदामें वे योगसाधन कर रहे थे। उन्हींको क्रासे बुक्कराय और हरिहर विद्युयानगर राज्यकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुए। यद्यपि शृङ्गेरी मठकी विद्यारण्योंमें और रायचंशावलीमें विद्युयारण्यके द्वारा विद्युयानगर प्रस्थापनकी बात लिखी है, तथापि यह स्वीकार करना होगा, कि उनके अनुगृहीत राजा बुक्करायने उन्हींके परामर्शसे इस विस्तीर्ण राज्यका विशेष

से तटतटस्वना विद्युत् प्राणियोंको एकाएक मय देते हुए जीव और इन्धनके ढेर पर गिरती है।

यह उल्का अन्तरीक्षका ज्योतिः-पदार्थ मानी जाती है। ज्योतिःशास्त्रमें चिष्णप, उल्का, अशनि, विद्युत् और तारा ये पांच प्रकारके भेद लिखे हैं। इनमेंसे उल्काके अनेक भेद देखे जाते हैं। अशनि नामक व्रज मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पाषाण, गृह, तब और पश्यादि पर जोरसे शब्द करता हुआ गिरता है। पृथिवी पर गिरनेसे वह चक्रकेकी तरह घूम कर उस जगहको फाड़ देता है। विद्युत् हठात् तट-तट शब्द करके प्राणियोंको मयभीत तो कर देती है, पर वह साधारणतः जीव और इन्धनके ऊपर गिरती है तथा उसी समय उसको जला देती है। विद्युत्का आकार कुटिल और विशाल है।

विद्युत् और अशनि प्रायः एक ही है, किन्तु प्रकृति-विशेषकी पृथक्ता निरूपण करके उनके दो विभाग निर्देश किये गये हैं। उपोतिर्विद्युत् उतपलने अशनि शब्दका अर्थ "अशमवपणमुल्का भेदो वा" लगा कर सन्देहको दूर कर दिया है। अतएव इन्हें वर्तमान Meteorites वा aerolites समझनेमें कोई आपत्ति नहीं देखी जाती।

विद्युत् और अशनिका दूसरा अर्थ भी है, उसी अर्थमें साधारणतः उसका प्रयोग हुआ करता है। विद्युत्के उत्पत्ति कारणके सम्बन्धमें श्रीपतिने कहा है, कि सुजल समुद्रमें बाइबर्जिन नामकी अग्नि रहती है। उसीसे धूममाला निकल कर पवनद्वारा आकाश-पथमें लाई जाती और इपर उधर विक्षिप्त होती है। पोछे सूर्यकी किरण पड़नेसे जब वह उत्पन्न हो जाती है तब उसमेंसे जो सब अग्निस्फुल्लिङ्ग निकलते हैं, वही विद्युत् है। कभी कभी यह विद्युत् अन्तरीक्षसे स्थलित हो कर भू-पृष्ठ पर गिरती है तथा जगत्का बहुत अणिष्ट करती है। विद्युत्पातके सम्बन्धमें उक्त प्रथकारका कहना है, कि वैद्युत् तेजमें जब अकस्मात् मिट्टी आदि मिल जाती है, तब वह प्रतिकूल वा अनुकूल पवनके आघातसे आकाशमें घारयाकी तरह झमकन करने लगती है। अकालमें वृष्टि-पातके समय यह पृथिवी पर गिरती है। तथा वर्षाकालमें घूलकी नहीं उठनेसे विद्युत्पात भी होने नहीं पाता।

पार्थिव, जलीय और तेजसके भेदसे विद्युत् तीन

प्रकारकी है। वृत्तसंहितामें विद्युत्प्रता, विद्युत्प्राम्न आदि शब्दोंका प्रयोग देखनेसे मालूम होता है, कि यह सब शब्द विभिन्न प्रकारकी विद्युत्में ही आरोपित हुए हैं। उन्हीं आधुनिक वैज्ञानिकको Sinuous, ramified, meandering आदि अनेक प्रकारकी विद्युत् (lightning) समझनेमें कोई भ्रम न होगा। विद्युत्पुराणमें (१।१५) कपिला, अतिलोहिता, पोता और सिता नामकी चार प्रकारकी विद्युत्का उल्लेख है। श्रीधरसामोने लिखा है, कि तूफानके समय कपिला, प्रबल प्रीतिनकालमें अतिलोहिता, वृष्टिके समय पोता और दुर्मिक्षके दिन सिता नामकी विद्युत् दिखाई देती है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतसे मेघ ही विद्युत्का एकमात्र कारण है, किन्तु सभी अध्यापक इसे माननेको तैयार नहीं। परन्तु उन्होंने परीक्षा करके देखा है, कि समुद्र और स्थल भागकी ऊपरवाली वायुकी तड़ित् (Electricity) एक भाषापन्न नहीं है, किन्तु जलके वाष्पीभूत होते हो उसमें तड़ित् दिखाई देती है तथा मेघकी जलकणामें यह विद्यमान रहती है। वाष्पकणके एकत्र और घनीभूत होनेसे यह जलकणामें परिणत होती है तथा उसाके साथ आवृत्त तड़ित् विद्युत्के आकारमें दिखाई देती है। फिर वाष्पकणके घनीभूत होनेमें घूलकणाकी भी आवश्यकता होती है।

इन सब विषयोंकी एक एककी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि विद्युत्की सम्भावनाके सम्बन्धमें आधुनिक ज्ञानके साथ प्राचीन ज्योतिर्विदोंको उकिकी उतनी विभिन्नता नहीं है।

विद्युत् और अशनि एक नहीं है। उनके घातुगत अर्थसे ही पृथक्ता निरूपण की जा सकती। द्युत् घातु दीति अर्थमें विद्युत् तथा संहति अर्थमें अशघातुसे अशनि शब्द हुआ है। वेदमें अशना शब्दसे क्षेपणीय प्रस्तर समझा जाता है। इससे स्पष्ट ह्रात होता है, कि इन्द्रका यज्ञ परधर वा लोहेका था। अशनि शब्दसे हम लोग सिर्फ Globular lightning और lightning tubes or fulgurites समझा जाता है। श्रेयोके अर्थमें ही प्रचलित अंगरेजी Thunderbolt शब्दका व्यवहार हुआ है।

विद्यावंश (सं० क्ली०) विदुषाको तालिका । जैसे—धनुर्गिद्या, आयुर्गिद्या, शिल्पविदुषा, ज्योतिर्गिद्या इत्यादि ।

विद्यावत् (सं० लि०) विदुषास्त्वस्येति विदुषा-मनुष्य मस्य च । विद्याविशिष्ट, विद्वान् ।

विद्यावल्लभरस (सं० पु०) रसोपग्रविशेष । प्रस्तुत-प्रणोल—रस १ भाग, ताँबा २ भाग, मैन्सिल ३ भाग, हरताल १२ भाग, इन्दी एक साथ मिला कर करेलेके पत्तोंक रसमें घाटे । पंछे ताप्रापातके मध्यभागमें रख कर बालुका-यन्त्रमें पाक करे । यन्त्रके ऊपर रखे हुए धान जब फूट जायँ, तब पाकका दुआ जानना चाहिये । इसकी मात्रा २ वा ३ रत्ता है । यह विषमज्वरनाशक माना गया है । इसके सेवन कालमें तैलाभ्यङ्ग और अन्न-भोजन निषिद्ध है ।

विद्यावागश भट्टाचार्य—न्यायलीलावती-प्रकाशश्रीधरति-चिबेरके रचयिता ।

विद्यावान् (सं० पु०) विद्वान्, पण्डित ।

विद्याविद् (सं० पु०) विदुषां वेत्ति विद् जिप् । विद्वान्, पण्डित ।

विद्याविनाद (सं० पु०) विद्यया विनोदा । १ विदुषा द्वारा चित्ताविनोदन । २ संस्कृत शास्त्रविद् पंडितोंकी एक उपाधि । ३ निर्णयसिन्धुयुक्त एक स्मृतिनिबन्धकार । ४ भोजप्रबन्धधृत् एक ऋषि । ५ देवोमाहात्म्य टीकाकार । ६ प्राकृतपद्यटीकाके प्रणेता । ये नारायणके पुत्र थे ।

विद्याविषद् (सं० लि०) ज्ञानके विपरीत, बुद्धिसे बाहर ।

विद्याविशारद (सं० पु०) विद्यानिपुण, पण्डित ।

विद्यावेश्मन् (सं० क्ली०) विदुषाया वेश्म शृंहं । विदुषा-शृंहं, विदुषालय, स्कूल ।

विद्याव्रत (सं० पु०) वह व्रत जो गुरुके घर रह कर विदुषा-शिक्षाके उद्देशसे धारण किया जाता है ।

विद्याव्रतस्नातक (सं० पु०) मनुके अनुसार शूद्रव्रतभेद, विदुषा और व्रतस्नातक शूद्रस्य । जो गुरुके घर रह कर वेद समाप्त और व्रत असमाप्त करके अपना घर लौटता है, उसे विदुषाव्रतस्नातक और जो व्रत समाप्त और वेद असमाप्त करके अर्थात् सम्भूया वेद विना अध्ययन किये ही घर लौटता है, उसे व्रतस्नातक कहते हैं । वेद और व्रत दोनों समाप्त कर जो अपना घर लौटता है, वह विद्याव्रतस्नातक कहलाता है ।

विद्यासागर (सं० लि०) १ सर्वशास्त्रविद् । सागर जैसे सब रत्नोंका आधार है, वैसे ही सब विदुषाओंका जो आधार है, वही विदुषासागर कहलाता है । (पु०) २ एक लण्डनलण्डलायटीकाकार । ३ कलादीपिका नामकी भट्टिकाव्यटीकाके रचयिता । भरतमल्लिक और अमरकोष-टीकामें रमानाथने यह टीका उद्धृत की है । ४ महा-भारतके एक टीकाकार । ५ एक प्रसिद्ध बंगाली पंडित ।
शिवचन्द्र देखो ।

विद्यास्नातक (सं० पु०) मनुके अनुसार यह स्नातक जो गुरुके घर रह कर वेदाध्ययन समाप्त करके घर लौटा हो विद्युच्छत्र (सं० पु०) राक्षस ।

विद्युच्छिन्ना (सं० स्त्री०) १ स्थोत्र विपके अन्दर मूल विप । २ एक राक्षसाका नाम । (कथासरित्सा० २५।१६६)

विद्युज्जिह्व (सं० पु०) विद्युदिव चञ्चला जिह्वा यस्य । १ रामायणके अनुसार रावणके पक्षके एक राक्षसका नाम । २ एक यक्षका नाम ।

विद्युज्जिह्व (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम ।

विद्युज्ज्वाला (सं० पु०) एक राक्षसका नाम ।

विद्युज्ज्वाला (सं० स्त्री०) विद्युत् इव ज्वाला यस्याः । कालिकारो या कालियारो नामक वृक्ष ।

विद्युत् (सं० स्त्री०) विशेषेण द्योतते इति विद्युत् (भ्राजभासेति । पा ३।२।१७७) इति विष्वप् । १ सन्ध्या । (मेदिनी) विद्योतते या द्युत्-विष्वप् । २ तड़ित्, बिजली ।

पर्याय—शम्भु, शतहृदा, हादिनी, देवावती, क्षणप्रभा, सौदामिनी, चञ्चला, चपला, (अमर) धीवा, सौदाम्नी, चिलमीलिका, सज्जू, अचिरप्रभा, अस्थिरा, मेघप्रगा, अशनि, चटुला, अचिररोचि, राधा, नीलाञ्जना । (अटापर)

यह विद्युत् चार प्रकारकी है । अरिष्टनेमिकी पत्नीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है । (विष्णुपु० ११५ अ०)

इन चार प्रकारकी विद्युत्तमें कालिवर्णकी विद्युत् होनेसे वायु, लोहितवर्णकी होनेसे आतप, पीतवर्णकी होनेसे वर्षण तथा अस्तिवर्णकी विद्युत् होनेसे दुर्मिथ होता है । ३ एक प्रकारकी योगा ।

४ उदकाभेद । घृहत्संहितामें लिखा है, कि विषय, अशनि, विद्युत् आदि उदका अनेक प्रकारकी है । उनमें-

से तटतटस्रता विद्युत् प्राणियोंको एकाएक मय देते हुए जीव और इन्धनके ढेर पर गिरती है।

यह उरुका अन्तरीक्षता ज्योतिःपदार्थ मानो जाती है। ज्योतिःशास्त्रमें चिप्यं, उरुका, अशनि, विद्युत् और तारा ये पांच प्रकारके भेद लिखे हैं, इनमेंसे उरुकाके अनेक भेद देखे जाते हैं। अशनि नामक वज्र मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पाषाण, रुद्र, तक्ष और पशुआदि पर जोरसे शब्द करता हुआ गिरता है। पृथिवी पर गिरनेसे वह चक्केकी तरह घूम कर उस जगहको फाड़ देता है। विद्युत् दृष्टात् तट-तट शब्द करके प्राणियोंको मयभीत तो कर देती है, पर यह साधारणता जीव और इन्धनके ऊपर गिरती है तथा उसी समय उसको जला देती है। विद्युत्का आकार कुटिल और विशाल है।

विद्युत् और अशनि प्रायः एक ही है, किन्तु प्रकृति-विशेषको पृथक्ता निरूपण करके उनके दो विभाग निर्दिष्ट किये गये हैं। ज्योतिर्विद्युत् उरुका अशनि शब्दका अर्थ "अग्निवपणमुत्तका भेदो वा" लगा कर सन्देहको दूर कर दिया है। अतएव इन्हे घर्षमान Meteorites वा aerolites समझनेमें कोई आपत्ति नहीं देखी जाती।

विद्युत् और अशनिका दूसरा अर्थ भी है, उसी अर्थमें साधारणतः उसका प्रयोग हुआ करता है। विद्युत्के उदरपत्ति कारणके सम्बन्धमें श्रीपत्तिने कहा है, कि सुनल समुद्रमें बाहुवानि नामकी अग्नि रहती है। उसीसे धूममाला निकल कर पवन द्वारा आकाश-पथमें लाई जाती और इधर उधर विक्षिप्त होती है। पीछे सूर्यको किरण पड़नेसे जब यह उत्पन्न हो जाती है तब उसमेंसे जो सब अग्निस्फुल्लिङ्ग निकलते हैं, वही विद्युत् है। कभी कभी यह विद्युत् अन्तरीक्षसे स्थलित हो कर भू-पृष्ठ पर गिरती है तथा जगत्का बहुत अनिष्ट करती है। विद्युत्पातके सम्बन्धमें उक्त प्रथकारका कहना है, कि विद्युत् तेजमें जब अकस्मात् मिट्टी आदि मिल जाती है, तब यह प्रतिकूल वा अनुकूल पवनके आघातसे आकाशमें घाट्याकी तरह झमण करने लगती है। अकालमें दृष्टि-पातके समय वह पृथिवी पर गिरती है तथा वर्षाकालमें धूलके नहीं उठनेसे विद्युत्पात भी होने नहीं पाता।

पार्थिव, जलीय और तैजसके भेदसे विद्युत् तीन

प्रकारकी है। यहत्स'दितामें विद्युत्प्रकृता, विद्युत्प्रामन् आदि शब्दोंका प्रयोग देखनेसे मालूम होता है, कि यह सब शब्द विभिन्न प्रकारकी विद्युत्में ही आरोपित हुए हैं। उन्हे आधुनिक वैज्ञानिकको Sinuous, ramified, meandering आदि अनेक प्रकारकी विद्युत् (lightening) समझनेमें कोई भूल न होगा। विद्युत्पुराणमें (१।१५) कपिला, अतिलाहिता, पोता और सिता नामकी चार प्रकारकी विद्युत्का उल्लेख है। श्रीधरस्वामीने लिखा है, कि तुफानके समय कपिला, प्रथम शीघ्रकालमें अतिलोहिता, पृष्टिके समय पोता और दुर्गभक्षके दिन सिता नामकी विद्युत् दिखाई देती है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतसे मेघ ही विद्युत्का एकमात्र कारण है, किन्तु सभी अध्यापक इसे माननेको तैयार नहीं। परन्तु उन्होंने परीक्षा करके देखा है, कि समुद्र और स्थल भागकी ऊपरवाली वायुकी तड़ित् (Electricity) एक भावापन्न नहीं है, किन्तु जलके वाष्पीभूत होते ही उसमें तड़ित् दिखाई देती है तथा मेघकी जलकणामें यह विद्यमान रहती है। वाष्पकणके एकत्र और घनीभूत होनेसे यह जलकणामें परिणत होती है तथा उसाके साथ आयत तड़ित् विद्युत्के आकारमें दिखाई देती है। फिर वाष्पकणके घनीभूत होनेमें धूलकणोंकी भावश्यकता होती है।

इन सब विषयोंकी एक एककी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि विद्युत्को सम्भावनाके सम्बन्धमें आधुनिक ज्ञानके साथ प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी उक्तिकी उतनी विभिन्नता नहीं है।

विद्युत् और अशनि एक नहीं है। उनके घातुगत अर्थसे ही पृथक्ता निरूपण की जा सकती है। इयुत् घातु क्षीति अर्थम विद्युत् तथा संदति अर्थमें अशघातुसे अशनि शब्द हुआ है। वेदमें अशना शब्दसे क्षेपणीय प्रस्तर समझा जाता है। इससे स्पष्ट छान्न होता है, कि इन्द्रका वज्र पत्थर वा लोहेका था। अशनि शब्दसे हम लोग सिर्फ Globular lightning और lightning tubes or fulgurites समझा जाता है। श्लोक अर्थमें ही-प्रचलित अंगरेजी Thunderbolt शब्दका व्यवहार हुआ है।

निर्घात नामक एक और प्रकारका नैसर्गिक ध्यापार है। घृष्ट-संहिताकारका कहना है, कि एक पवन दूसरे पवनसे ताड़ित हो कर जब पृथिवी पर गिरता है, तब निर्घात होता है। उसका शब्द मैलव और जर्जर है। उस अनिलसे उत्पन्न निर्घातके पृथिवी पर गिरनेसे भूमिकम्प होता है। जिस निर्घातके गिरनेसे सारी पृथिवी काँप उठती है विचार कर देखनेसे मालूम होता है, कि वह 'a sudden clap of thunder' है। यह यथार्थमें वायुके सहसा आकुञ्चन और प्रसारणसे उत्पन्न होता है।

ज्योतिःशास्त्रमें प्रहरणार्थक वज्रके दो प्रकारके आकार बतलाये हैं। एक आकार विष्णुचक्रकी तरह गोल और दूसरेका आकार गुणक चिह्न (X) जैसा है। वज्र देखो।

हम लोगोंका विश्वास है, कि मेघ जलीय वाष्पसे उत्पन्न होता है। वही मेघ क्रमशः घनीभूत हो कर आकाश-मार्गमें परिभ्रमण करता है। जब वह मेघ किसी शीतल वायुस्तरमें पहुँचता है, तब धीरे धीरे शीतल हो कर घना होता है और पीछे उसीसे वृष्टि होती है।

वृष्टि देखो।

जब ये सब मेघ एक जगह जम कर क्रमशः घनीभूत होते हैं और दृशात् वृष्टि नहीं होती, तब उन मेघोंके आपसमें टकरानेसे अग्निस्फुल्लिङ्ग उत्पन्न होता है। यही विद्युत् है। इस विद्युत्के अङ्गस्पर्श करते ही उसी समय मृत्यु हो जाती है।

अनपढ़ लोगोंका विश्वास है, कि विद्युद्देवो स्वर्ग-वालाओंके मध्य अनुगमा सुन्दरी है। मेवसे जब यह संसार अंधकाराच्छन्न हो जाता है, तब यह देववाला मेघकी आड़में रह कर अपनी कनिष्ठाङ्गुलीकी सञ्चालन करती है। उसी उँगलीकी दासि हम लोगोंकी विद्युत् है।

अमेरिकावासी वैज्ञानिक पण्डित बेन्जामिन फ्राङ्कलिनने विशेष गवेषणा द्वारा यह सिधर किया है, कि विद्युत् (Lightning) और तड़ितालोक (electric spark) एक ही वस्तु है। ताड़ित देखो।

(पुं) ५ एक प्राचीन ऋषिका नाम। (त्रिं) चिगता इयुत्काम्तिर्दस्य। ६ निष्पन्न, जिसमें किसी प्रकारकी दोसि या प्रभा न हो। विशिष्टा द्युत् दोसिर्दस्य।

७ विशेष दीप्तिशाली, जिसमें बहुत अधिक दोसि हो। (शुक १२३।२)

विद्युत्ता (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, बिजली। २ महाभारतके अनुसार एक अत्सराका नाम। (भारत १३ पर्व) विद्युत्ताक्ष (सं० पुं०) १ वह जिसकी आँखें बिजलीके समान उज्ज्वल हों। २ कार्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

विद्युत्केश (सं० पुं०) विद्युत् इव दोसिगालिनः केना यस्य। रामायणके अनुसार हेमि नामक राक्षसका पुत्र। महामति हेमिने कालकी कथा भयासे त्रिवाह किया जिसके गर्भसे विद्युत्केशका जन्म हुआ। विद्युत्केशने सन्ध्याकी कन्या पीलोमीको व्याह। इसी पीलोमी और विद्युत्केशसे राक्षसोंके वंशकी वृद्धि हुई थी।

(रामायण उत्तरकाण्ड ७ अ०)

विद्युत्केशिन् (सं० पुं०) राक्षसराजमे।

विद्युत्त (सं० त्रिं०) १ उज्ज्वल आलोकविशिष्ट, चमकीली रोशनीवाला। (पुं) २ विद्युत्का भाव या धर्म, बिजली-पन।

विद्युत्पताक (सं० पुं०) प्रलयके समयके सात मेघोंमेंसे एक मेघका नाम।

विद्युत्पर्णा (सं० स्त्री०) एक अत्सराका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

विद्युत्पात (सं० पुं०) बिजलीका गिरना, वज्रपात।

विद्युत्पुञ्ज (सं० पुं०) १ विद्युत्समूहा। २ विद्युत्पाचरमेद। (कथापरित्या० १०८।१०७)

विद्युत्पुञ्जा (सं० स्त्री०) विद्युत्पुञ्जकी कन्या।

विद्युत्प्रभ (सं० त्रिं०) १ विद्युत्के समान प्रभाविशिष्ट। (पुं) २ एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व) ३ एक दैत्यका नाम।

विद्युत्प्रभा (सं० स्त्री०) १ दैत्योंके राजा बलिकी पोतीका नाम। २ अत्सराओंका एक वध। ३ रत्नवर्ष नामक रक्षराजकन्या।

विद्युत्प्रिय (सं० त्रिं०) विद्युत् प्रिया यस्य। १ जिसके विद्युत् था बिजली अच्छी लगनी हो। (स्त्री०) विद्युत्प्रियं, तदाकर्षकत्वान्। २ काँस्य धातु, काँसा नामक धातु-या उसका कोई वरगन जिसकी ओर बिजली जररी खिंचती है।

विद्युत् (सं० त्रि०) विद्युत् भव विद्युत्-यत् (पा ४।४।११०)। विद्युत्-यत्, विद्युत् या विजलीसे उत्पन्न। विद्युत्-यत् (सं० त्रि०) विद्युत्: सन्त्यस्मिन्नि विद्युत् मतुप मस्य चत्यम्। १ विद्युत्विशिष्ट, जिसमें विद्युत् या विजली हो, मेघ। (पु०) २ पर्वतविशेष।

(हरिवंश २२५।७१)

विद्युत्क्ष (सं० पु०) १ विद्युत्क्षेत्र। २ दैत्यभेद।

(हरिवंश)

विद्युद्गौरी (सं० स्त्री०) शक्तिमूर्त्तिभेद।

विद्युद्गोता (सं० स्त्री०) वसन्तसेन राजाकी बग्याका नाम। (कथासरित्सा० ३३।५५)

विद्युद्दस्त (सं० पु०) मरुद्भेद। (शृक् ५।७।२५)

विद्युद्द्वज (सं० पु०) १ असुरभेद। २ विद्युत्पताक देखो।

विद्युद्द्रव्य (सं० त्रि०) १ विद्युत्तमानमानोपेत, द्रोणितमान्मानयुक्त। (शृक् ३।१।१) २ द्रोणितविशिष्ट रथयुक्त। (शृक् २।५।१३)

विद्युद्द्वर्चस् (सं० त्रि०) १ विद्युत्के समान द्रोणितशाली। (पु०) २ देवगणभेद। (भारत १३ पर्व)

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) विशिष्ट द्रोणियुक्त।

विद्युद्गन्तस् (सं० त्रि०) विद्युत् विद्युत्तमान मह-तेजो यस्य। विद्युत्तमानतेजा, जिसकी प्रभा जाड्ज्वल्यमान हो।

विद्युद्गन्तक (सं० पु०) एक विशेष प्रकारका यन्त्र। इससे यह जाना जाता है, कि विद्युत्का बल कितना और प्रवाह किस ओर है।

विद्युद्गन्त (सं० पु०) १ विद्युद्गन्त दंशे। २ धानभेद। (रामायण ४।३।३१)

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) विद्युत्तमान भेदज्योतीनां माला। १ विजलीका समूह या सिलसिला। २ एक-छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें आठ आठ गुरुवर्ण अथवा दो मगण और दो गुरुवर्ण होते हैं और चार वर्णों पर पति होती है। ३ एक यज्ञिणीका नाम। ४ चोचराज सुरोद्को कन्याका नाम। (कथासरित्सा० ४।४।५६)

विद्युद्गन्त (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक राक्षसका नाम। यह गिषका परम भक्त था। देवादिदेव महादेवने इसे एक अत्युज्ज्वल सुवर्ण विमान प्रदान किया था।

विद्युद्गन्त उभी विमान पर चढ़ कर सूर्यके पीछे घूमा करता था। इससे रातके समय भी उस विमानकी हीतिसे अन्धकार नहीं होने पाता था। इससे घबरा कर सूर्यने अपने तेजसे यह विमान गला कर जमीन पर गिरा दिया था। रामायणमें कहा है, कि धर्मके पुत्र सुचेणके साथ इसका युद्ध हुआ था। २ महाभारतके अनुसार एक असुरका नाम। ३ एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक मगण, एक मगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। ४ पर्वत, मेघ।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) १ विद्युत्के समान मुग्धविशिष्ट, जिसका मुग्ध विजलीके समान हो। (पु०) २ एक प्रकारके उपग्रह।

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) विद्युत्, विजली।

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, विजली। २ एक वणिक्पत्नीका नाम। (कथासरित्सा० ६।१।२५) ३ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो मगण होते हैं। इसे शेषराज भी कहते हैं।

विद्युद्गन्त सरस्वती—वेदान्तस्वरकारके रचयिता। ये कैाल्येन्द्रज्ञानेन्द्रके शिष्य थे।

विद्युद्गन्त (सं० पु०) १ शिवमूर्त्तिभेद। २ मुक्तात्मसम्पदाविशेष।

विद्युद्गन्त (सं० पु०) १ ऐन्द्रजालिकभेद, एक जादुगरका नाम। (दशकुमार ४।५।१) २ विद्युद्गन्त देखो।

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) विद्युत्-विद्युत्-विद्युत्-विजली।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) १ द्रोणित, प्रभा, चमक। २ एक राजाका नाम। ३ एक अप्सराका नाम।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) प्रभाविशिष्ट।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) द्रोणितगोल।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) विद्युत्तमान-इति। प्रभाशाल।

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) व्यध-रक्त-दान्तादेशः सम्प्रसारणश्च। छिद्र, छेद।

विद्युद्गन्त (सं० स्त्री०) धामभेद।

विद्युद्गन्त (सं० त्रि०) १ स्थूल, मोटा ताजा। २ हृद्, मज्जन्, पका। ३ जो किसी कामके लिये अच्छी तरह तैयार हो। (पु०) ४ विद्युत् देखो।

का पाल या भाजन, जिसके साथ विद्वेष किया जाय।
 विध (सं० पु०) विध-क, अच् वा। १ विमान।
 २ गजभक्ष्य अन्न, हाथीके खानेका दाना। ३ प्रकार,
 भेद। ४ धेधन, छेद करना। ५ ऋद्धि, समृद्धि। ६ धेधन।
 ७ कर्म, कार्य। ८ विधान, विधि, निराम।
 विधत्री (सं० स्त्री०) प्रह्लाका शक्ति, महासरस्वती।
 विधन (सं० पु०) जिसके पास धन न हो, निर्धन, गरीब।
 विधनता (सं० स्त्री०) विधन होनेका भाव, निर्धनता,
 गरीबी।
 विधना (हि० कि०) १ प्राप्त करना, अपने साथ लगाना,
 ऊपर लेना। (स्त्री०) २ वह जो कुछ होनेको हो, भवि-
 त्त्यता, होना। (पु०) ३ विधि, प्रह्ला।
 विधनीकृत (सं० त्रि०) जा-निर्धन किया गया हो।
 "इयूतेन विधनीकृतः" (कथापरित्वा० २४।५८)
 विधनुष्क (सं० त्रि०) धनुर्हीन।
 विधनुस् (सं० त्रि०) च्युतधनु।
 विधन्मन् (सं० त्रि०) जिसका धनुष नष्ट हो गया हो,
 खरिडत धनु।
 विधमचूड़ा (सं० स्त्री०) जिसका अग्रभाग धा चूड़ा धूम
 या अग्निसंयुक्त हो।
 विधमन (सं० पु०) धौंकनी या नल आदिके द्वारा हवा
 पहुंचा कर आग सुलगाना, धौंकना।
 विधमा (सं० स्त्री०) वि-धमा-ग तस्मिन् परे धमादेशश्च।
 १ विकृत या विविध शब्दकारिणी। २ विकृतगमन-
 शोला।
 विधरण (सं० पु०) १ पकड़ना, रोकना। २ विधृति देखो।
 विधर्तृ (सं० त्रि०) वि-धृत्त्च्। १ विविध कारक।
 २ विधारयिता, विधारणकर्त्ता। ३ विधानकर्त्ता, विधान
 या विहित करनेवाला।
 विधर्म (सं० पु०) १ अपने धर्मको छोड़ कर और
 किसीका धर्म, पराया धर्म। २ अपने धर्मको छोड़ कर
 दूसरेका धर्म ग्रहण करना जो पाँच प्रकारके अधर्मोंमेंसे
 एक कहा गया है। (त्रि०) ३ धर्मशास्त्रनिन्दित्, जिसके
 धर्मशास्त्रमें निन्दा की गई हो। ४ गुणहोण, जिसमें
 गुण न हो।

विधर्मक (सं० त्रि०) विशिष्ट धर्मशील।
 विधर्मन् (सं० पु०) १ सुधर्म, उत्तमधर्मयुक्त। २ विधा-
 रक। ३ विधारण।
 विधर्मिक (सं० त्रि०) १ अधार्मिक, जो धर्मविरुद्ध
 आचरण करता हो। २ भिन्नधर्म, जो दूसरे धर्मका
 अनुयायी हो।
 विधर्मो (सं० त्रि०) १ धर्मघ्न, जो अपने धर्मके विपरीत
 आचरण करता हो। २ परधर्मावलम्बी, जो किसी दूसरे
 धर्मका अनुयायी हो।
 विधवता (सं० स्त्री०) वैधव्य, पतिराहित्य।
 विधवन (सं० स्त्री०) वि-धू ल्युट्। कम्पन, काँपना।
 विधवयोपित् (सं० स्त्री०) विधवा पथ योपित् भापित-
 पुंस्त्वस्वात् पुंस्त्वम्। विधवा स्त्री, रांड, बेरा।
 विधवा देखो।
 विधवा (सं० स्त्री०) विगतो धवो भर्ता यस्याः। मृत-
 भर्त्ताका स्त्री, जिस स्त्रीका पति मर गया हो। पर्याय—
 विश्वस्ता, जालिका, रण्डा, गतिनी, यति। (शब्दरत्ना०)
 धर्मशास्त्रमें हिन्दू विधवाके कर्त्तव्यकार्त्तव्यका विषय
 विशेषरूपसे वर्णित हुआ है।
 स्वामीकी मृत्युके बाद स्त्री उसका अनुगमन करे या
 प्रज्ञाचर्याका अवलम्बन कर जीवन अतिवाहित करे।
 स्वामीका अनुगमन या प्रज्ञाचर्य्ये दोनों ही इच्छा
 विकल्प हैं अर्थात् इच्छानुसार इन दोनोंमें एक करना
 होगा। प्रज्ञाचर्य्ये शब्दका अर्थ—मैथुन और ताम्बूल आदि
 विधर्जन संभक्तता होगा। "प्रज्ञाचर्य्यं उपस्थसंयमः"
 उपस्थ संयमका नाम ही प्रज्ञाचर्य्य है। प्रज्ञाचारिणी
 विधवाको स्मरण, कीर्त्तन, केलिप्रेक्षण, गुह्यमापण आदि
 शास्त्रिक अपराध मैथुन नहीं करना चाहिये। ताम्बूल-
 सेवन, अम्बुज्जन और फूलकी थालीमें भोजन, विधवाके
 लिये अवैध है। विधवाको दिनमें एक बार भोजन करना
 चाहिये। उसको पलङ्क पर सोना उचित नहीं, यदि
 वह सोये, तो उसके स्वामीकी अधोगति होती है।
 विधवाको किसी तरहके दत्त आदिको व्यवहार न करना
 चाहिये। नित्य कुशतिलोदक द्वारा चंद्र स्वामीका तर्पण
 करे। पुत्र और पौत्र न रहनेसे तर्पण अवश्य विधेय है।

यदि पुत्र और पौत्र हों, तो तर्पण नहीं भी करनेसे चल सकता है। वैशाख, कार्तिक और माघ मासमें विधवा को विशेष नियमवत्तो हो कर गंगादिका स्नान, दान, तीर्थ यात्रा और सर्वदा विष्णुका नाम स्मरण करते रहना चाहिये।

'काशीखण्ड'में विधवाके धर्म और कर्तव्याकर्तव्यका विषय इस तरह लिखा है—स्वामीकी मृत्यु होने पर यदि वह सती न हो सके, तो उसको उचित है, कि अपने चरित्रकी रक्षा अपनी जान दे कर करे। क्योंकि, चरित्र नष्ट होनेसे उसका नरक सुनिश्चित है। चरित्रहीन विधवाके पति और पिता, माता आदि सभी स्वर्गमें होने पर भी वहाँसे अधोगामी होते हैं। जो स्त्री पतिकी मृत्युके बाद यथानियम पातिव्रत्य धर्मका प्रतिपालन करती है, वह मृत्युके बाद फिर पतिसे मिल कर स्वर्गसुख भोग करती है। विधवाका चूड़ावन्धन पतिके वन्धनका कारण होता है। इसलिये विधवा सदा मस्तक मुण्डन कराती रहे। विधवाको रात दिनमें एक बार ही भोजन करना चाहिये, दो बार नहीं। तिराज, पञ्चरात्र या पञ्चव्रतका अवलम्बन या मासोपवासव्रत, चान्द्रायण, कृच्छ्र चान्द्रायण, पराकव्रत या तप्तकृच्छ्रव्रत आचरण करना चाहिये। जितने दिन विधवा जीवित रहे, उतने दिन यवाग्न, फल, शाक और केवल जल पान कर जीवनयात्रा निर्वाह करेगी।

विधवा यदि बलंग पर मोती है, तो वह अपने पतिके सुखकी इच्छासे जमीन पर ही सोना उचित है। विधवाकी कमो उबटन और गन्ध द्रव्य नहीं लगाना चाहिये। प्रतिदिन उसको अपने पिता और पितामहके उद्देश्यसे उनके नाम और गोत्रका उच्चारण कर कुश और तिलोदक द्वारा तर्पण करना चाहिये तथा उसे पतिस्वरूप विष्णुकी पूजा करना आवश्यक है। उसे सर्वव्यापक विष्णुका पतिरूपमें ध्यान करना चाहिये। पतिकी जीवित अवस्थामें विधवा जिन चीजोंका प्यार करती थी, वे सब चीजें सदा ब्राह्मणकी दान देती रहे। वैशाख, कार्तिक और माघ महानेमें विधवाको विशेष संयमसे रहना चाहिये।

स्नान, दान, तीर्थयात्रा, धारंवार विष्णुका स्मरण,
Vol. XXI 101

वैशाख महानेमें जलकुम्भदान, कार्तिक महानेमें देवस्थानमें घृतदोष दान, माघ मासमें धान्य और तिलका उत्सव करना विधवाका एकान्त कर्तव्य है। सिवा इसके वैशाख महानेमें बह जलसत्रकी प्रतिष्ठा और देवताओं पर जलधारा, पादुका, ब्यजन, छत्र, सूत्रमयत्र, कर्पूर-मिश्रित चन्दन, ताम्बूल (पान), सुगन्ध पुष्प, कई तरहके जलपात्र, पुष्पपात्र, तरह तरहके पानोप्य द्रव्य, अंगूर आदि फल पतिकी प्रातिके उद्देश्यसे सद् ब्राह्मणोंको दान दे।

यह कार्तिक मासमें यवान्न या एक प्रकारका अन्न भोजन करे। घृन्ताक और घरघटो खाना नहीं चाहिये। इस मासमें तेल, मधु और फूलको घालीमें भोजन विवकुल निषेध है। इस समय भीतायलम्बन करना ही उत्तम है। मौनी हो कर रहनेसे मासके अन्तमें घण्टादान, पात्रमें भोजन नियम करनेसे घृतपूर्ण कांस्य-पात्रदान, भूमिशय्या करनेसे अन्तमें शय्यादान, फल त्याग करनेसे फलदान, धान्य त्याग करनेसे धान्य या धेनु दान करना उचित है। देवादि गृहोंमें घृत प्रदोष दान अवश्य कर्त्तव्य और सब दानोंसे ही यह दान श्रेष्ठ है।

माघ मासमें सूर्य दिखाई देने पर स्नान करना विधवाओंके लिये उत्तम है। इसी तरह विधवा नित्य स्नान कर यथासामर्थ्य नियमसंयमका पालन करे। इस मासमें ब्राह्मणों, संन्यासियों और तपस्वियोंको पक्वान्न, मिष्ठान्न और अग्न्याय्य सुमिष्ट द्रव्य भोजन कराये। शीत निवारणके लिये सूखी लकड़ोंका दान, रुईदार मिर्झई या कुरता और दुपट्टा, मजोठ रंगसे रंगा कपड़ा, जातोफल, लवंग लगा कर पानका बोड़ा, विचित्र कम्बल, निर्वातगृह, कोमल पादुका और सुगन्ध उद्घर्त्तन दान करने चाहिये। देहागारमें कृष्णागुह आदि उपहार द्वारा पतिरूपी भगवान् प्राप्त हों, ऐसा भावना कर देवपूजा करनी चाहिये। इस तरह विविध नियम और व्रतोंका अनुष्ठान कर वैशाख, कार्तिक और माघ ये तीन महाने बिताने चाहिये।

विधवा स्त्री प्राण कष्टागत होने पर भी बेल पर न चढ़े और रंगीन वस्त्र न पहने। भर्त्सुतत्परवा विधवा पुत्रोंसे बिना पूछे कोई काम न करे। इस तरह दिन

विता कर विधवा भी मङ्गलरूपिणी होती है और उसको कहीं भी दुःख नहीं होता । फिर वह मरने पर पतिलोक पाती है । (काशीखं ५ भ०)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि विधवा-प्रतिदिन दिनके अन्तमें इविष्यान्न भोजन करे और सदा निष्कामा हो कर दिन बितावे । उत्तम-कपड़े पहनना, गन्धद्वय, सुगन्ध तेल, मास्य, चन्दन, शङ्ख, सिन्दूर और भूषण विधवाके लिये त्याज्य हैं । नित्य मलिन वस्त्र पहन कर नारायणका नाम स्मरण करना चाहिये । विधवा स्त्रीको चाहिये, कि वह एकाग्रचित्तसे भक्तिमती हो कर नित्य नारायणकी सेवा, नारायणका नामोच्चारण और पुत्र्यमातृको धर्मपुत्र जान कर देखे । विधवाको मीठा भोजन या अर्धसञ्जय नहीं करना चाहिये । वह एकादशी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी और शिव-चतुर्दशीको निर्जल उपवास करे । अघोरा और प्रेता चतुर्दशीनिघ्नं और चन्द्रसूर्यके ग्रहणके समय ब्रह्मद्वय विधवाके लिये निषिद्ध है । सिवा इनके और अन्य भोजन करनेमें कोई दोष नहीं । विधवाके लिये पान और मद्य गोमांसके बराबर है । सुनरां विधवा इन वस्तुओंको न खाये । लाल शाक, मसूर, जम्बीर, पर्ण और गोल कद्दू भी खाना मना है ।

पलंग पर सेनावाली विधवा अपने मृतपतिको अघोगति देती है और यदि यह यानवाहनोंका व्यवहार करती है, तो स्वयं नरकगामिनी होती है । सुतरां इनका परित्याग करे । केशसंस्कार, नात्रसंस्कार, तैलाभ्यङ्ग, दर्पणमें मुखदर्शन, परपुरुषका मुखदर्शन, यात्रा, नृत्य, महोत्सव, नृत्यकारी गायक और सुवेशसम्पन्न पुरुषको कदापि देखना विधवाके लिये उचित नहीं । सर्वदा धर्म-कथा श्रवण कर दिन बिताना चाहिये । (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

स्वामीकी मृत्युके बाद साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्यं व्रतावलम्बन कर दिन बिताये । यदि पुत्र न हो, तो भी एक ब्रह्मचर्य्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाती है । मनुमें लिखा है, कि पिताने जिसे दान या पिताकी आज्ञासे भ्राताने जिसे दान किया है, उस स्वामीकी जीवितकाल तक सुधूपा करना और स्वामीकी मृत्युके बाद व्यभिचार आदि द्वारा उनका उल्लंघन न करना स्त्रीमातृका कर्त्तव्य है ।

स्त्रियोंके विवाहके समय पुण्याहवाचनादि, स्मरणन और प्रजापति देवताके उद्देश्यसे जो होम करना होता है, वह केवल दोनोंके मङ्गलके लिये किया जाता है ; किन्तु विवाहके समय जो सम्प्रदान किया जाता है, उसीसे ही स्त्रियों पर स्वामीका सम्पूर्ण स्वामित्व उत्पन्न होता है । तबसे स्त्रियोंकी स्वामिपरतन्त्रता हो उपयुक्त है । पति गुणहीन होने पर भी उसकी उपेक्षा न कर देवताको तरह सेवा करना कर्त्तव्य है । स्त्रियोंके सम्बन्धमें स्वामीके विना पृथक्-पृथक् विधान नहीं है और न स्वामीकी आज्ञाके विना व्रत और उपवास ही करना होता है । केवल पति सेवा द्वारा ही स्त्रियां स्वर्ग जाती हैं ।

स्वामी जीवित रहे या मर गया हो, साध्वी स्त्री पतिलोक पानेकी कामना कर कभी उसका अप्रियाचरण न करे । पतिके मर जाने पर स्वेच्छापूर्वक मूल और फल द्वारा अपना जीवन क्षय करे । किन्तु कभी भी पतिके सिवा परपुरुषका नाम तक नहीं ले । जब तक अपनी मृत्यु न हो, तब तक मैथुन, मद्य, मांस-वर्जित हो कर क्लेशशङ्खिणी और नियमाचारी हो कर रहे । एकमात्र ब्रह्मचर्य्यका पालन करना ही विधवाका धर्म है । विधवा अपूत्रा होने पर भी ब्रह्मचर्य्यका पालन कर स्वर्ग जाती है । (मनु० ५ अध्याय)

सब धर्मशास्त्रोंमें इस बातकी पुष्टि हुई है, कि स्वामीकी मृत्युके बाद विधवा ब्रह्मचर्य्यका पालन कर जीवन बिताये । इस बातमें तनिक भी कोई विरोध दिखाई नहीं देता ।

कुछ लोग कहते हैं, कि जो विधवा ब्रह्मचर्य्य पालनमें असमर्थ है, उसके दूसरा विवाह कर लेनेमें शाल-चिरुद्ध नहीं होता । ये कहते हैं, कि "कली पराशरस्मृत्युत्" कलियुगमें पराशरस्मृति ही प्रमाणरूपमें प्राण्य है । अतएव पराशरने जो कहा है, उसका आदर करना इस युगमें लोगोंका कर्त्तव्य है । पराशरका मत है—

“नष्टे मृते प्रमदिते क्लीबे च पतिते पती ।
पद्मस्थापतु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥
मृते भर्तृरि या नारी ब्रह्मचर्य्यं व्यवस्थिता ।
या मृता-क्षमते स्वर्गं यथा वे ब्रह्मचारिण्यः ॥

तिसः कोट्योऽङ्कं कोटी च यानि लोमानि मानये ।

हावत् कालं वसेत् स्वर्गं भर्तारं यानुमानद्वित् ॥”

(पराशरघृहिता)

पतिके कहीं चले जाने, मर जाने, कृषि होने, संसार त्याग करने, अथवा पतित होने पर स्त्रियोंको दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। ऐसी विधि है।

जो स्त्री पतिके मर जाने पर ब्रह्मचर्यका पालन कर जीवन बिता देती है, वह मृत्युके बाद ब्रह्मचारियोंकी तरह स्वर्गलभ करती है। जो स्त्री पतिदेवके साथ सती हो जाती है, वह मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोपें हैं, उनमें दिन तक स्वर्गमें बास करती है।

पराशरस्मृतिके इस वचनके अनुसार विधवाओंकी तीन विधियां हैं। स्वामीके साथ सती होना, ब्रह्मचर्यका पालन करना तथा अन्य विवाह अर्थात् पुनर्विवाह जो विधवा सती होने और ब्रह्मचर्य पालन करनेमें असमर्थ है, यही दूसरा विवाह कर सकती, सभी नहीं। ब्रह्मचर्यव्रत पालन अतीव कष्टसाध्य है, सबके लिये सुगम नहीं है, अतः जो इसका पालन न कर सके, उसके लिये ही पराशरने विवाहकी आज्ञा दी है। सब शास्त्रोंमें इस विधवाविवाहका निषेध रहने पर भी इस कलियुगविहित पराशरस्मृतिका ऐसा ही मत है।

पूर्वोक्त पांच आपत्तिकाळमें 'पञ्चलापत्सु नारोणां पतिरन्यो विधीयते ॥' इस श्लोकांशके अर्थसे दूसरा पति कर लेनेकी विधि है। यदि अन्य पतिका अर्थ पालक लगाया जाये, तो कहना होगा कि पराशरकी इस आज्ञाका आशय पालक नियुक्त करनेका है। क्योंकि स्त्रियां किसी समय भी स्वतन्त्र नहीं रहतीं। पालक ही अर्थ ग्रहण करने पर तब धर्मशास्त्रोंसे पराशरका मत भी एक हो जाता है। इधर विधवा-विवाह निषेधक कई पाष्य भी शास्त्रोंमें देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत करते हैं:—

“यमुद्रयाप्राप्तोकारः कमवडलुविधारयाम् ।

द्विजानामवधर्षाम् कन्यापुत्रमस्तथा ॥

देवरेण सुजोषिमधुपके पशोर्वधः ।

भांशान् तथा शब्दे वानप्रस्थाशुमस्तथा ॥

दत्तापान्चैव कन्यायाः पुनर्दानं वरस्य च ।

दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधारवगैश्चकी ॥

महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मत्तं ।

इयान् धर्मात् कश्चिद्युगे वर्धनाहुर्मनीषिणाः ॥”

(एतुनन्दनभूत वृश्नानरदीप)

समुद्रयात्रा, कमण्डलुधारण, असवर्णविवाह, देवर द्वारा पुत्रोत्पादन, मधुपर्कमें पशुवध, श्राद्धमें मांस भोजन यानप्रस्थापलभ्यन्त, एक आदमीको कन्यादान कर उसी कन्याको फिर दूसरेके हाथ दान करना और बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य कलियुगमें वर्जित है।

“वह्वत् प्रदीयते कन्या हरस्तां चौरदण्डभाक् ।

दस्ताभि हरतु पूर्वात् शो वांश्चेदत्र आत्रजेत् ॥”

(याश्वक्य षंदिता १।६५)

वाक्य द्वारा ही हो या मन द्वारा ही हो, जब कन्या एक बार प्रदत्त हुई है, तब उसको हरण करने अर्थात् दुमरेके साथ विवाह कर देनेसे यह कन्यादाता चोरके जो दण्ड होता है, उसी दण्डसे दण्डित होगा। किन्तु जब पहले घरकी अपेक्षा उत्तम घर मिल जाये, तब चागृहस्थाको चाहिये, कि उस कन्याको उसी उत्तम घरको ही प्रदान करे। इस पचनसे मालूम होता है, कि पहले किसी घरसे विवाहकी पक्की बात हो चुकी हो और इसके बाद ही यदि अपेक्षाकृत उत्तम घर मिल जाये, तो उस वाक्यको तोड़ कर इसी उत्तम घरसे विवाह किया जा सकता है। किन्तु जिस कन्याका विवाह हो चुका है, उसका पुनः दान किसी शास्त्रमें दिखाई नहीं देता। और भी लिखा है:—

“अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्ष्मणो जियनुदरेत् ।

अनन्यपूर्विकां कान्तां समपिपटां यवीयसीम् ॥”

(याश्वक्य षं १।१२)

अस्खलित ब्रह्मचर्य द्विजाति नपुंसकनादि दायशून्या, अनन्यपूर्वा (पहले पात्रान्तरके साथ जिसका विवाह होनेकी स्थिरता तक न हो और दूसरेकी उपभुक्ता भी न हो, उसीको अनन्यपूर्वा कहते हैं) कान्तिमती असपिपटा और वयःप्रनिष्ठा कन्याको ग्रहण करे। इस वचनसे मालूम होता है, कि अनन्य पूर्विका विवाह न होगा।

विता कर विधवा भी मङ्गलरूपिणी होती है और उसको कहीं भी दुःख नहीं होता । फिर वह मरने पर पति-लोक पाती है । (काशीखं ४ अ०)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है, कि विधवा-प्रतिदिन दिनके अन्तमें इविश्यान् भोजन करे और सदा निष्कामा हो कर दिन बिताये । उत्तम कपड़े पहनना, गन्धद्वय, सुगन्ध तेल, माल्य, चन्दन, शङ्ख, सिन्दुर और भूषण विधवाके लिये तयाज्य हैं । नित्य मलिन वस्त्र पहन कर नारायणका नाम स्मरण करना चाहिये । विधवा स्त्रीको चाहिये, कि यह एकार्त चित्तसे भक्तिमती हो कर नित्य नारायणकी सेवा, नारायणका नामोच्चारण और पुरुषमात्रको धर्मपुत्र जान कर देखे । विधवाको मीठा भोजन या अर्घ्य सञ्चय नहीं करना चाहिये । यह एकादर्शा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी और शिव-चतुर्दशीको निर्जल उपवास करे । अघोरा और प्रेता चतुर्दशीतिथिमें और चन्द्र-सूर्यके प्रदणके समय व्रत द्वय विधवाके लिये निषिद्ध है । सिवा इनके और अन्य भोजन करनेमें कोई दोष नहीं । विधवाके लिये पान और मद्य गोमांसके बराबर है । सुतरां विधवा इन वस्तुओंको न खाये । लाल शाक, मसूर, जम्बीर, पर्ण और गोल कद्दू भी खाना मना है ।

पलंग पर सोनेवाली विधवा अपने मृतपतिको अधोगति देता है और यदि यह यानवाहनोंका व्यवहार करती है, तो स्वयं नरकगामिनी होती है । सुतरां इनका परित्याग करे । केशसंस्कार, नात्रसंस्कार, तैलाभ्यङ्ग, दर्पणमें मुखदर्शन, परपुरुषका मुखदर्शन, यात्रा, नृत्य, महोत्सव, नृत्यकारी गायक और सुविशसम्पन्न पुरुषको कदापि देखना विधवाके लिये उचित नहीं । सर्वथा धर्म-कथा श्रवण कर दिन बिताना चाहिये । (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

स्वामीकी मृत्युके बाद साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्यं प्रताव-लम्बन कर दिन बिताये । यदि पुत्र न हो, तो भी एक ब्रह्मचर्य्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाती है । मनुमें लिखा है, कि पिताने जिसे दान या पिताकी आज्ञासे धनाने जिसे दान किया है, उस स्वामीकी जीवितकाल तक सुश्रूपा करना और स्वामीकी मृत्युके बाद व्यभिचार आदि द्वारा उनका उल्लंघन न करना स्त्रीमात्रका कर्त्तव्य है ।

स्त्रियोंके विवाहके समय पुण्याहवाचनादि, स्वस्वयन और प्रजापति देवताके उद्देश्यसे जो होम करना होता है, वह केवल दोनोंके मङ्गलके लिये किया जाता है ; किन्तु विवाहके समय जो सम्प्रदान किया जाता है, उसीसे ही स्त्रियों पर स्वामीका सम्पूर्ण स्वामित्य उत्पन्न होता है । तयसे स्त्रियोंकी स्वामिपरतन्त्रता ही उपयुक्त है । पति गुणहीन होने पर भी उसकी अपेक्षा न कर देवताकी तरह सेवा करना कर्त्तव्य है । स्त्रियोंके सम्बन्धमें स्वामीके विना पृथक् यज्ञका विधान नहीं है और न स्वामीकी आज्ञाके विना व्रत और उपवास ही करना होता है । केवल पति सेवा द्वारा ही स्त्रियां स्वर्ग जाती हैं ।

स्वामी जीवित रहे या मर गया हो, साध्वी स्त्री पतिभक्त पानेकी कामना कर कभी उसका अप्रियाचरण न करे । पतिके मर जाने पर स्वेच्छापूर्वक मूल और फल द्वारा अपना जीवन क्षय करे । किन्तु कभी भी पतिके सिवा परपुरुषका नाम तक नहीं ले । अब तक अपनी मृत्यु न हो, तब तक मैथुन, मद्य, मांस-वर्जित हो कर ऋशसहिष्णु और नियमाचारी हो कर रहे । एकमात्र ब्रह्मचर्य्यका पालन करना ही विधवाका धर्म है । विधवा अपूजा होने पर भी ब्रह्मचर्य्यका पालन कर स्वर्ग जाती है । (मनु ५ अध्याय)

सब धर्मशास्त्रोंमें इस बातको पुष्टि हुई है, कि स्वामीकी मृत्युके बाद विधवा ब्रह्मचर्य्यका पालन कर जीवन बिताये । इस बातमें तनिक भी कोई विरोध दिखाई नहीं देता ।

कुछ लोग कहते हैं, कि जो विधवा ब्रह्मचर्य्य पालनमें असमर्थ है, उसके दूसरा विवाह कर लेनेमें शास्त्र-विरोध नहीं होता । वे कहते हैं, कि "कली पराशरः स्मृतः" कलियुगमें पराशरस्मृति ही प्रमाणरूपमें ब्राह्मण है । अतएव पराशरने जो कहा है, उसका आदर करना इस युगमें लोगोंका कर्त्तव्य है । पराशरका मत है—

'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे न पतिते पत्नी ।

पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

मृते भर्तृरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता ।

सा मृता-समते स्वर्गं यथा वे ब्रह्मचारिण्यः ॥

वित्तः कोऽप्योऽर्द्धकोटो च यानि लोमानि मानवे ।
तावत् कालं वसेत् स्वर्गं भर्त्वारं यानुगच्छति ॥”

(पराशर'हिता)

पतिके कहीं चले जाने, मर जाने, कृषि होने, संसार त्याग करने, अथवा पतित होने पर स्त्रियोंको दूसरा विवाह कर लेना चाहिये। ऐसी विधि है।

जो स्त्री पतिके मर जाने पर ब्रह्मचर्यका पालन कर जीवन बिता देती है, वह मृत्युके बाद ब्रह्मचारियोंकी तरह स्वर्गलाभ करती है। जो स्त्री पतिदेवके साथ सती हो जाती है, वह मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोप' है, उनमें दिन तक स्वर्गमें वास करती है।

पराशरस्मृतिके इस वचनके अनुसार विधवाओंकी तीन विधियां हैं। स्वामीके साथ सती होना, ब्रह्मचर्यका पालन करना तथा अन्य विवाह अर्थात् पुनर्विवाह जो विधवा सती होने और ब्रह्मचर्य पालन करनेमें असमर्थ है, वही दूसरा विवाह कर सकती, सभी नहीं। ब्रह्मचर्यग्रत पालन अतीव कष्टसाध्य है, सबके लिये सुगम नहीं है, अतः जो इसका पालन न कर सके, उसके लिये ही पराशरने विवाहकी आज्ञा दी है। सभ शास्त्रोंमें इस विधवाविवाहका निषेध रहने पर भी इस कलियुगविहित पराशरस्मृतिका ऐसा ही मत है।

पूर्वोक्त पांच आपत्तकालमें 'पञ्चलापत्सु नारोणां पतिरन्यो विधायते ॥' इस श्लोकांशके अर्थसे दूसरा पति वर लेनेकी विधि है। यदि अन्य पतिका अर्थ पालक लगाया जाये, तो कहना होगा कि पराशरकी इस आज्ञाका आशय पालक नियुक्त करनेका है। क्योंकि स्त्रियां किसी समय भी स्वतन्त्र नहीं रहती। पालक का अर्थ ग्रहण करने पर स्व भ्रमंशास्त्रोंसे पराशरका मत भी एक हो जाता है। इधर विधवा-विवाह निषेधक कई वाक्य भी शास्त्रोंमें देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत करते हैं—

“समुद्रयागस्वीकारः कमण्डलुविधारणम् ।

द्विजानामथवर्षासु कन्यायपयमस्तथा ॥

देवेषु सुतोपतिमधुपर्के पशोर्वचः ।

मांसादनं वधोऽद्याद् वानप्रस्थासमस्तथा ॥

दत्तायाम्बुव कन्यायाः पुनर्दानं वरस्य च ।

दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेघारवगैश्च ॥

महाप्रस्थानवचनं गोमेधश्च तथा मखं ।

इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यं नाहुर्मनीषिणः ॥”

(रघुनन्दनभूत वृहन्नारदीय)

समुद्रयात्रा, कमण्डलुधारण, असवर्णविवाह, देवर द्वारा पुत्रीत्यागन, मधुपर्कमें पशुवध, श्राद्धमें मांस भोजन वानप्रस्थावलम्वन, एक आदमीको कन्यादान कर उसी कन्याको फिर दूसरेके हाथ दान करना और बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य कलियुगमें वर्जित है।

“सहृत् प्रदीयते कन्या इरस्तां चौरदपदभाक् ।

दत्तामपि हेतु पूर्वात् यो वांश्चेद्वर आत्रनेत् ॥”

(याज्ञवल्क्य 'हिता १।६५)

वाक्य द्वारा ही ही यामन द्वारा ही हो, जब कन्या एक वार प्रदत्त हुई है, तब उसको हरण करने अर्थात् दुमरेके साथ विवाह कर देनेसे यह कन्यादाता चौरको जो दण्ड होता है, उसी दण्डसे दण्डित होगा। किन्तु जब पहले वरकी अपेक्षा उत्तम वर मिल जाये, तब वागदत्ताको चाहिये, कि उस कन्याको उसी उत्तम वरको ही प्रदान करे। इस पचनसे मालूम होता है, कि पहले किसी घरसे विवाहकी पकी बात हो चुकी हो और इसके बाद ही यदि अपेक्षाकृत उत्तम वर मिल जाये, तो उस वाक्यको तोड़ कर इसी उत्तम घरसे विवाह किया जा सकता है। किन्तु जिस कन्याका विवाह हो चुका है, उसका पुनः दान किसी शास्त्रमें दिखाए नहीं देता। और भी लिखा है—

“अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्ष्मणो विप्रमुदहेत ।

अनन्यपूर्विको कान्तां समपिण्डो यवीयसीम् ॥”

(याज्ञवल्क्य '० १।१।२)

असंखलित ब्रह्मचर्य द्विजाति नपुंसकनादि दोषशून्या, अनन्यपूर्वा (पहले पालान्तरके साथ जन्मका विवाह होनेकी स्थिरता मक न हो और दूसरेकी उपभुक्ता भी न हो, उसीको अनन्यपूर्वा कहते हैं) श्रान्तिमतो असपिण्डा और चयःकनिष्ठा कन्याको ग्रहण करे। इस वचनसे मालूम होता है, कि अनन्य पूर्विका विवाह न होगा।

इसके द्वारा दान कन्याका विवाह भी निषिद्ध हुआ है । व्यामसंहिता, वशिष्ठसंहिता प्रभृति संहिताओंमें भी अनन्यपूर्विकाका प्रहण निषिद्ध है । विधवा स्त्री अनन्यपूर्विका, अनन्यपूर्विका नहीं है, विधवाका विवाह अब अज्ञातस्त्री है ।

पारस्करश्रृंगसूत्रमें लिखा है, कि गुरुगृहसे समावर्त्तनके बाद कुमारीका पाणिग्रहण करो । कन्याको ही कुमारी कहते हैं । अदत्ता कन्या ही कुमारी कहलाती है । जो एक बार दान कर दी गई, वह पुनः प्रदान नहीं की जा सकती । कुमारीदानका ही विवाह कहा जा सकता है । विवाहिकाका फिरसे दान विवाह कहला नहीं सकता । "अग्नेमुपयाय कृमाय्याः पाण्यं गृह्णीयात् विपु-त्रिपुत्ररादिषु ।" (पारस्करगृह्ययज्ञ)

"कन्याग्रन्थार्थः कथ्यते, 'कन्या कुमारी' इत्यमरः, 'कन्यापदस्यादत्तस्त्रीमात्रवचनेन' इत्यादि दायभाग-टीकायां आचार्यचूडामणिः । 'कन्यापदस्यापरिणीता-मात्रवचनात्' इति रघुनन्दनः । इत्यादि वचनैः कुमारी-नामैव परिणये विवाहशब्दाव्यपत्वं न चूड्यायां ।" मनुने लिखा है, कि कन्या एक बार प्रदत्त और दानि अर्थात् दान भी एक बार होता है, यह दो बार नहीं होता । सम्पत्ति सज्जन द्वारा एक बार ही विभक्त होती है, इस तरह कन्याका दान भी एकबार ही होता है, द्वितीयबार नहीं ।

सकृदंशो निपतति सत्कृतकन्याय प्रदीयते ।

सकृदाहुदानीति शीप्येतापि वतां सकृत् ॥ (मनु ६।७०)

सुतरां इस वचनके अनुसार भी कन्याको एक बार दान कर चुकनेपर फिर उसको दान नहीं करना चाहिये । अतएव दत्ताकन्याके स्वामीके मृत्योपरान्त उसका विवाह नहीं होता । और भी लिखा है—

"यस्मै दद्यात् पिता रतेनात् भ्राता मातुमे विपुः ।

तं श्रधुपेत जीवन्तं संस्थितञ्च न क्षंधयेत् ॥

महलार्थं स्वस्त्ययनं यशस्तासां प्रजापतेः ।

प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥"

(मनु ५।१५१-१५५)

"मृते भर्तारि स्वाध्वी स्त्री व्रदाचर्ये" भ्यवस्थिता ।

स्वर्गं यगच्छत्पुत्रादि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

अपत्यलोभात् यावु स्त्री भर्तारमविवर्तते ।

तेह निन्दामवाप्नोति पतिलोवञ्च हीयते ॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चायिस्व परमदे ।

न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचित् भर्तापदिश्यते ॥

पतिं हित्वा पश्येत् स्वयुत्कृष्टं वा निषेवेत् ।

निन्दोव वा भवेत्पन्नोके परपूर्वेति चोच्यते ॥"

(मनु ५।१६०-१६३)

पिता या भ्रातानि जिसको दान किया है, साध्वी स्त्री उसीकी कायमनोवाक्यसे श्रुश्रूया करें । उसकी मृत्यु हो जाने पर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर दिन बिताये । इस ब्रह्मचर्यके गुणसे वह पुत्रहीनो होनेसे भी स्वर्ग जायेगी । जो स्त्री सन्तानकी कामनासे स्वामीका अतिवर्त्तन कर धर्मभारिणी होती है, वह इहलोकमें निन्दित और पतिलोकसे वञ्चित होती है । स्वामीके सिवा अन्यपुरुषसे उत्पन्न पुत्रसे कोई भी धर्मकार्य नहीं होता । इस तरह के धर्मभारसे उत्पन्न पुत्र शास्त्रके अनुसार पुत्र-पदके योग्य नहीं ।

मनुने विशेषरूपसे कहा है—न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचित् भर्तापदिश्यते अतएव विधवा स्त्रीका दूसरी बार पतिग्रहण विवाहपदवाच्य नहीं । परपुरुषके उपयोग द्वारा स्त्री संसारमें निन्दनीय होती है और दूसरे जन्ममें शृगालयोनिमें जन्म लेती है और तरह तरहके पापयोगोंसे आक्रान्त हो कर अत्यन्त बौद्धा भोग करती है । जो स्त्री कायमनोवाक्यसे संयत रह कर स्वामीकी अतिक्रम नहीं करती, वह पतिलोक पाती है । इससे विधवाओंको पुनः विवाह करना कदापि विधिषङ्कत नहीं ।

दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य, कमएडलु धारण, देवसे पुत्रोत्पत्ति, दत्ताकन्याका दान और द्विजातियोंका असवर्ण कन्याका पाणिग्रहण कलियुगमें निषिद्ध है । अर्थात् पहले ये सब प्रचलित थे । 'दत्ताकन्याका दान' इस अर्थसे विधवाका विवाह निषेद्ध बतलाया गया है । धर्मशास्त्रोंमें और भी लिखा है, कि इस कलियुगमें दत्तक और औरस इन दो प्रकारके पुत्रोंकी व्यवस्था है । इसके सिवा और जो पुत्र होते हैं, वह धर्मकार्यके अधिकारी न होंगे । विवाह पुत्रके लिये किया जाता है । विवाहिका विधवाके गर्भसे उत्पन्न पौनर्भका पुत्रत्व जब निषिद्ध हुआ, तब

विधवाका विवाह भी निषिद्ध है। विधवासे उत्पन्न पुत्र जब पिता माताके धार्मिक कार्योंका अधिकारी नहीं, तब विवाहके प्रयोजनकी अस्तिष्ठिसे यह विवाह ही निषिद्ध समझना होगा। कश्यपने दत्ता और चाग्दत्ता दोनों तरहकी स्त्रियोंके विवाहको निषिद्ध किया है।

चाग्दत्ता अर्थात् जिसके विवाहके लिये बात दे ही गई, मनोदत्ता, जिसके विवाहकी बात मनमें मान ली गई है; हतकीतुकमङ्गला, जिसके हाथमें विवाह-सूत्र बांधा जा चुका है; उदकस्पर्शिता अर्थात् जिसको दान दिया जा चुका है; पाणिगृहीतिका—जिसका पाणिप्रदहन-संस्कार हो चुका हो अथवा कुण्ड-एडिका नहीं हुई है; अग्निपरिगता—जिसकी कुण्ड-एडिका हो चुकी हो। पुनर्भ्रमप्रया, पुनर्भूके गर्भमें जिसका जन्म हुआ हो, ये सब बहिर्जात हैं अर्थात् इनका दूसरा विवाह न होगा। यदि किया जाये तो पतिकुल दम्प होता है।

कश्यपने चाग्दत्ता और दत्ता दोनोंका पुनर्विवाह निषेध किया है। सुतरां इनके घनानुसार भी विधवाका पुनर्विवाह निषिद्ध है। विशेष विवरण 'विवाह' शब्दमें देखो।

विधवापन (हिं० पु०) विधवा होनेकी अवस्था, यह अवस्था जिसमें पतिके मरनेके कारण स्त्री पतिहोन हो जाती है, रूढ़ापा, वैधव्य।

विधवावैदन (सं० क्लो०) विधवाविवाह।

विधवाश्रम (सं० पु०) विधवाओंके रहनेका स्थान, यह स्थान जहाँ विधवाओंके पालन पोषण तथा शिक्षा आदिका प्रबंध किया जाता है।

विधवस् (सं० पु०) ब्रह्मा।

विधवस् (सं० क्लो०) मधूच्छिष्ट, मोम।

विधा (सं० स्त्री०) वि-धा-क्त्प्। १ जल, आप। २ विध देखो।

विधातव्य (सं० त्रि०) १ विधेय, विधानके योग्य। २ कर्त्तव्य, करने योग्य।

विधाता—भृगु मुनिके पुत्रका नाम। मेघकी कन्या नियतिसे इनका विवाह हुआ था। विधाताके एक प्राण नामक पुत्र था। फिर प्राणके वेदशिरा और कवि नामके दो पुत्र थे।

विधाता (सं० पु०) विधातृ देखो।

विधातृ (सं० पु०) वि-धा-तृच्। १ ब्रह्मा। (अमर) २ विष्णु। (भारत १३।१४६।६४) ३ महेश्वर। ४ काम-देव। (मेदिनी) ५ मद्रिः। (राजनि०) ६ विधानकर्त्ता, बनानेवाला। ७ दाता, देनेवाला। ८ सर्वसमर्थ। ९ विहितकर्मनिष्ठता, यह जो शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। १० निर्माता, बनानेवाला। ११ व्यवस्था करनेवाला, ठोक तरहसे लगानेवाला। १२ सृष्टिकर्त्ता, जगत्की रचना करनेवाला। इन अद्वितीय शक्तिसम्पन्न सृष्टिकर्त्ता जगदोश्वरकी मायामें सभी जीव फँसे हुए हैं। वे सृष्टिकर्त्ताके अतिविविक्त कार्यकलाप देख उनका यथार्थ तत्त्वनिरूपण नहीं कर सकते और अप्रतिमकी तरह सर्वदा पड़े रहते हैं, क्योंकि वे (जीव) देखते हैं, कि इस जगत्प्रपञ्चमें कहीं तो तृणसे पर्यंत (दावानिके द्वारा), कीटसे सिंहशार्दूल, मशकसे गज, शिशुसे महावीर पुत्र्य तक विनष्ट होता है, कहीं मृषिक मण्डुक आदि खाद्य, माजूर भुजङ्गादि खाद्यकोंका विनाश करता है। कहीं विषय धर्मावलम्बी अग्नि और जलको वाष्पके आकारमें परिणत कर उसकी निर्मूलता सम्पादन करता है तथा अपने नाशयुक्त तृणादि द्वारा स्वयं विनष्ट होता है। यदि विचार कर देखा जाय, तो इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है, कि एक जह्मुनिने ही इस भूमण्डल-व्यापी सात समुद्रोंका जल पो लिया था।

१३ अधर्म। (त्रि०) १४ मेधावी, विद्वान्।

विधातृका (सं० स्त्री०) विधापिका, विधान करनेवाला।

विधातृभू (सं० पु०) विधातृब्रह्मणो भूक्तृत्त्विष्य। १ नारदमुनि। २ मरीच आदि।

विधात्रायुस् (सं० पु०) विधात्रायुर्जीवितकालपरिमाणं यस्मात्, सूर्यक्रियां विना वत्सरादिज्ञानासम्भवा-द्वाप्त्य तथात्वम्। १ सूर्य, वह जिनसे विधाताके स्पष्ट-पदार्थाका जीवित काल परिमित होता है। इनकी उदयास्त क्रिया द्वारा लोगोंके वत्सरादिका ज्ञान होता है तथा उससे जीवका आयुष्काल निकाला जाता है, इसी कारण सूर्यका विधात्रायुः नाम पड़ा है।

२ ब्रह्माको उमर। चौदह मन्वन्तर अथवा मनुष्य-मानके एक ऋतुका ब्रह्माका एक दिन, मानवीय तीन

इसके द्वारा वाग् दत्ता कन्याका विवाह भी निषिद्ध हुआ है। व्यामसंहिता, वशिष्ठसंहिता प्रभृति संहिताओंमें भी अनन्यपूर्विकाका ग्रहण निषिद्ध है। विधवा स्त्री अनन्यपूर्विका, अनन्यपूर्विका नहीं है, विधवाका विवाह अब अशास्त्रीय है।

पारस्करग्रन्थसूत्रमें लिखा है, कि गुरुगृहसे समा-चर्त्तनके बाद कुमारीका पाणिग्रहण करो। कन्याको ही कुमारी कहने हैं। अदत्ता कन्या ही कुमारी कहलाती है। जो एक बार दान कर दी गई, वह पुनः प्रदान नहीं की जा सकती। कुमारीदानका ही विवाह कहा जा सकता है। विवाहिकाका फिरसे दान विवाह कहला नहीं सकता। "अग्निमुपचाय कृमाय्याः पाणिं गृहीयात् त्रिपु-त्रिपुत्रादिपु।" (पारस्करश्रद्धयुव)

"कन्याशब्दार्थः कथ्यते, 'कन्या कुमारी' इत्यमरः, 'कन्यापदस्यापदस्यस्त्रीमातृवचनेन' इत्यादि दायभाग-टीकायां आचार्यचूडामणिः। 'कन्यापदस्यापरिणीता-मातृवचनात्' इति रघुनन्दनः। इत्यादि वचनैः कुमारी-नामैव परिणये विवाहशब्दावयवत्व' न चूढायां।" मनुने लिखा है, कि कन्या एक बार प्रदत्त और दानि अर्थात् दान भी एक बार होता है, यह दो बार नहीं होता। सम्पत्ति सज्जन द्वारा एक बार ही विभक्त होती है, इस तरह कन्याका दान भी एकबार ही होता है, द्वितीयवार नहीं।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्याय प्रदीयते।

सकृदाहुददीनीति शीघ्रेताण्यि सतां सकृत् ॥ (मनु २।१७०)

सुतरां इस वचनके अनुसार भी कन्याको एक बार दान कर चुकनेपर फिर उसको दान नहीं करना चाहिये। अतएव दत्ताकन्याके स्वामीके मृत्योपरान्त उसका विवाह नहीं होता। और भी लिखा है—

"यस्मै दद्यात् पिता येनात् भ्राता धानुमते पित्रः।

तं भ्रूषेत जीवन्तं संस्थितञ्च न क्षपेत् ॥

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञस्वासां प्रजापतेः।

प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥"

(मनु० ५।१५१-१५५)

"मृते भर्तृरि स्वाध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये" ध्यवस्थिता।

स्वर्गं यगद्धृत्युपादि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

अपत्यजोभात् यातु स्त्री भर्तारमतिवर्त्तते।
सेद निन्दामवाप्नोति पतिलोकवच्च हीमते ॥
नान्योत्थन्ना प्रजास्तीह न चायिष्य परिभ्रहे।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचित् भर्तृपदिश्यते ॥
पतिं हित्वा पृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निवेवते।
निन्द्येव वा भवेत्सौके परीर्वेति चोच्यते ॥"

(मनु ५।१६०-१६१)

पिता या भ्राताने जिसको दान किया है, सोध्वी स्त्री उसीकी कायमनोवाक्यसे श्रुधूया करें। उसकी मृत्यु हो जाने पर ब्रह्मचर्यका व्यवस्थान कर दिन बिताये। इस प्रसन्नचर्चके गुणसे वह पुत्रहीना होनेसे भी स्वर्ग जायेगी। जो स्त्री सन्तानको कामनासे स्वामीका अतिवर्त्तन कर व्यभिचारिणी होती है, वह इहलोकमें निन्दित और पतिलोकसे वञ्चित होती है। स्वामीके सिवा अन्यपुरुषसे उत्पन्न पुत्रसे कोई भी धर्मकार्य नहीं होता। इस तरह के व्यभिचारसे उत्पन्न पुत्र शास्त्रके अनुसार पुत्र-पदके योग्य नहीं।

मनुने विशेषरूपसे कहा है—'न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचित् भर्तृपदिश्यते' अतएव विधवा स्त्रीका दूसरो बार पतिग्रहण विवाहपदवाच्य नहीं। परपुरुषके उपभोग द्वारा स्त्री संसारमें निन्दनीय होती है और दूसरे जन्ममें शृगालयोगिनें जन्म लेती है और तरह तरहके पापयोगी-से आक्रान्त हो कर अत्यन्त पीड़ा भोग करती है। जो स्त्री कायमनोवाक्यसे संयत रह कर स्वामीके अतिक्रम नहीं करती, वह पतिलोक पाती है। इससे विधवाभों-को पुनः विवाह करना कदापि विधिषड्भूत नहीं।

दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य, कमण्डलु धारण, द्वेषसे पुत्रोत्पादन, दत्ताकन्याका दान और द्विजातिपोंका अस्-वर्ण कन्याको पाणिग्रहण कलियुगमें निषिद्ध है। अर्थात् पहले ये सब प्रचलित थे। 'दत्ताकन्याका दान' इस अर्थसे विधवाका विवाह निषिद्ध बतलाया गया है। धर्मशास्त्रमें और भी लिखा है, कि इस कलियुगमें दत्तक और औरस इन दो प्रकारके पुत्रोंकी व्यवस्था है। इसके सिवा और जो पुत्र होते हैं, वह धर्मकार्यके अधिकारी न होंगे। विवाह पुत्रके लिये किया जाता है। विवाहिका विधवाके गर्भसे उत्पन्न पौनर्भवका पुत्रत्व जब निषिद्ध हुआ, तब

विधवाका विवाह भी निषिद्ध है। विधवासे उत्पन्न पुत्र जब पिता माताके धार्मिक कार्योंका अधिकारी नहीं, तब विवाहके प्रयोजनकी अस्तित्वसे वह विवाह ही निषिद्ध समझना होगा। कश्यपने दत्ता और चाग्दत्ता दोनों तरहकी स्त्रियोंके विवाहको निषिद्ध किया है।

चाग्दत्ता अर्थात् जिसके विवाहके लिये बात दे की गई, मनोदत्ता, जिसके विवाहकी बात मनमें मान ली गई है; कृतकौतुकमङ्गला, जिसके हाथमें विवाह-सूत्र बांधा जा चुका है; उद्भ्रुकस्पृशिता अर्थात् जिसको दान दिया जा चुका है; पाणिमृदोतिका—जिसका पाणिप्रदहन-संस्कार हो चुका हो अथवा कुण्डिका नहीं हुई है; अनिपरिगता—जिसकी कुण्डिका हो चुकी हो। पुनर्भ्रूमवया, पुनर्भूके गर्भमें जिसका जन्म हुआ हो, ये सब वर्जित हैं अर्थात् इनका दूसरा विवाह न होगा। यदि किया जाये तो पतिकुल वध्व होता है।

कश्यपने चाग्दत्ता और दत्ता दोनोंका पुनर्विवाह निषेध किया है। सुतरां इनके पचनानुसार भी विधवाका पुनर्विवाह निषिद्ध है। विशेष विवरण 'विवाह' शब्दमें देखो।

विधवापन (हिं० पु०) विधवा होनेकी अवस्था, वह अवस्था जिसमें पतिके मरनेके कारण स्त्री पतिहोन हो जाती है, देहापा, वैधव्य।

विधवावेदन (सं० क्ली०) विधवाविवाह।

विधवाध्रम (सं० पु०) विधवाओंके रहनेका स्थान, वह स्थान जहाँ विधवाओंके पालन पोषण तथा शिक्षा आदिका प्रबंध किया जाता है।

विधस् (सं० पु०) ब्रह्मा।

विधस् (सं० क्ली०) मधूच्छिष्ट, मोम।

विधा (सं० स्त्री०) वि-धा-क्त्विप् । १ जल, आप । २ विष देखो।

विधातव्य (सं० लि०) १ विधेय, विधानके योग्य । २ कर्त्तव्य, करने योग्य।

विधाता—भृगु मुनिके पुत्रका नाम। मेरुकी कन्या नियतिसे इनका विवाह हुआ था। विधाताके एक प्राण नामक पुत्र था। फिर प्राणके वेदशिरा और कवि नामके दो पुत्र थे।

विधाता (सं० पु०) विधातृ देखो।

विधातृ (सं० पु०) वि-धा-तृच् । १ ब्रह्मा। (अमर)

२ विश्व। (भारत १३।१४।६।४) ३ महेश्वर । ४ काम-

देव । (मेदिनी) ५ मद्रिः । (राजनि०) ६ विधानकर्त्ता,

बनानेवाला । ७ दाता, देनेवाला । ८ सर्वसमर्थ ।

९ विहितकर्मोत्प्रेता, वह जो शास्त्रविहित कर्मोंका अनु-

ष्ठान करते हैं। १० निर्माता, बनानेवाला । ११ व्यवस्था

करनेवाला, ठोक तरहसे लगानेवाला । १२ सृष्टिकर्त्ता,

जगत्की रचना करनेवाला। इन अद्वितीय शक्तिसम्पन्न

सृष्टिकर्त्ता जगदोश्वरकी मायामें सभी जीव फँसे हुए हैं।

ये सृष्टिकर्त्ताके अतिविचित्र कार्यकलाप देख उनका

यथार्थ तत्त्वनिरूपण नहीं कर सकते और अप्रतिमकी

तरह सर्चदा पड़े रहते हैं, क्योंकि वे (जीव) देखते हैं, कि

इस जगत्प्रपञ्चमें कहीं तो तुलसे पर्वत (दावानिके द्वारा),

कोटसे सिंहशाहूल, मणकसे गज, शिशुसे महावीर पुरुष

तक विनष्ट होता है, कहीं सूयिक मण्डुक आदि ज्ञाघ,

माजौर भुजङ्गादि खादकोंका विनाश करता है। कहीं

विदग्ध धर्मावलम्बी अग्नि और जलको वाष्पके आकारमें

परिणत कर उसकी निर्मूलता सम्पादन करता है तथा

अपने नाशयुष्क तृणादि द्वारा स्वयं विनष्ट होता है। यदि

विचार कर देखा जाय, तो इससे अधिक आश्चर्य और

पया हो सकता है, कि एक जह्मुनिने ही इस भूमण्डल-

व्यापी सात समुद्रोंका जल पी लिया था।

१३ अधर्म। (त्रि०) १४ मेधावी, विद्वान्।

विधातृका (सं० स्त्री०) विधायिका, विधान करनेवाला।

विधातृम् (सं० पु०) विधातृप्रह्लणो भूरुत्पत्तिर्धैस्य ।

१ नारदमुनि । २ मरीच आदि।

विधातायुस् (सं० पु०) विधातुरायुर्जोवितकालपरि-

माणं यसमात्, सूर्यक्रियां विना वत्सरादिद्विज्ञानासम्भवा-

देवास्य तथात्वम्। १ सूर्य, वह जिनसे विधाताके

स्पष्ट पदार्थका जोवित काल परिमित होता है। इनकी

उदयास्त क्रिया द्वारा लोगोंके वत्सरादिका ज्ञान होता है

तथा उससे जीवका आयुष्काल निकाला जाता है, इसी

कारण सूर्यका विधातायुः नाम पड़ा है।

२ ब्रह्माकी उमर। चौदह मन्वन्तर अधवा मनुष्य-

मानके एक ऋषयका ब्रह्माका एक दिन, मानवीय तीन

सौ कल्पका ४२० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक मास (३० दिन)। इसी प्रकार ३६० कल्प, ५०४० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक वर्ष (१२ मास) होता है। ब्रह्माकी परमायु सौ संवत्सर तक है, जिसमेंसे ५० वर्ष या आधा समय धीत चुका। वर्त्तमान ५१वां वर्ष और श्वेतवाराहकल्प आरम्भ हो कर उसके ६ मन्वन्तर धीत गये हैं। अभी वैवस्वत मन्वन्तर चलता है।

विधानी (सं० स्त्री०) वि-धा-तृच्-ङीप् । १ विधान करने वाली, बनानेवाली, रचनेवाली । २ व्यवस्था करनेवाली, प्रबन्ध करनेवाली । ३ विपपली, पोपल ।

विधान (सं० स्त्री०) वि-धा-ल्युट् । १ विधि, नियम । २ करण, निर्माण, रचना । ३ करिकबल, उतना चारा जितना हाथी एक वार मुहमें डालता है, हाथीका प्रास । ४ वेदादिशास्त्र । (मनु १।३) ५ नाटकान्नाविशेष, नाटकमें वह स्थल जहाँ किसी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और दुःख प्रकट किया जाता है । ६ जनन, उत्पत्ति करना । ७ प्रेरण, भेजना । ८ आश्चर्यकरण, अनुमति देना । ९ धन, सम्पत्ति । १० पूजा, अर्चन । ११ शत्रुताचरण, हानि पहुंचानेका दांवपेच । १२ ग्रहण, लेना । १३ उपार्जन, हाशिल । १४ विषम । १५ अनुभव । १६ उपाय, ढंग, तरकीब । १७ विन्यास, किसी कार्यका आयोजन, कामका होना या चलना ।

विधानक (सं० स्त्री०) १ व्याधा, फलेश, यातना । २ विधि, विधान । (ति०) ३ विधानवेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला ।

विधानग (सं० पुं०) विधानं गायतीति गै-ठक् । पण्डित, विद्वान् ।

विधानज्ञ (सं० पुं०) विधानं जानातीति विधान् ज्ञा क । १ पण्डित, विद्वान् । (ति०) २ विधानवेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला ।

विधानशास्त्र (सं० स्त्री०) व्यवस्थाशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, आईन ।

विधानसंहिता (सं० स्त्री०) विधानशास्त्र ।

विधानसप्तमी (सं० स्त्री०) माघशुक्लासप्तमी ।

विधानसप्तमीव्रत (सं० स्त्री०) सप्तमी तिथिमें कर्त्तव्य व्रत-विशेष । यह व्रत माघ मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे

आरम्भ कर पौषमासकी शुक्लासप्तमी पर्यन्त प्रति मासकी सप्तमी तिथिमें करना होता है । इस व्रतमें सूर्यपूजा और सूर्यस्तवका पाठ करना कर्त्तव्य है । यह व्रत कर्नेसे रोग नष्ट होता है तथा संपत्ति लाभ होती है । यह व्रत मुख्य चान्द्र मासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें करनेका विधान है ।

इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है। व्रतके पूर्व दिन संयत हो कर रहना होता है। व्रतके दिन सबेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प करे, "ओं कर्त्तव्येऽस्मिन्विधानसप्तमीव्रतकर्त्तव्ये ओ पुण्याहं भक्तोऽपिभवन्तु ओ पुण्याहं" इत्यादि ३ वार पाठ करे । इसके बाद स्वस्ति और ऋद्धि तथा 'सूर्य सोमः' इत्यादि मन्त्रका पाठ कर सङ्कल्प करना होता है । जैसे—

"विष्णुरोम् तत्सदोमय माघे मासि शुक्ले पक्षे सतंग्यान्तिधावारभ्य पौषस्य शुक्लां सप्तमीं यावत् प्रतिमासोय शुक्लसप्तम्यां अनुक्रमोत्तः श्रोथुमुक्तदेवशर्मा आरोग्यसम्पत्कामः शमीप्लवत्फलप्राप्तिकामो वा विधानसप्तमीव्रतमहं करिष्ये ।"

इस प्रकार सङ्कल्प करके वेदानुसार सूक्त पाठ करे । पीछे शालग्रामशिला या घटस्थापनादि करके सामान्यार्था और आसनशुद्धि आदि करके गणेश, शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है । इसके बाद पौडशोपचारसे भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करके उनका स्तव पाठ करे । प्रति मासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें इसी नियमसे पूजा करनी होती है । किन्तु प्रत्येक मासमें सङ्कल्प नही करना होता । प्रथम मासके सङ्कल्पसे ही सभी मासोंका काम चला जाता है ।

यह व्रत करके बारहो महीनेमें बारह नियम पालन करने होते हैं। यथा—(१) माघमासमें अकथनके वृत्तोंका सिर्फ अंकुर खाना होता है । (२) फाल्गुनमासमें जमीन पर गिरनेसे पहले ही जो भर पीली गायका गोबर खानेका नियम है । (३) चैत्रमासमें एक मरिचकभक्षण, (४) ज्यैष्ठमासमें थोड़ा जल, (५) उज्जैनमासमें पके केलेके बीघकी कणामाल, (६) भाद्रपदमासमें यवपरिमित कुशमूल, (७) आश्विनमासमें अपराह्नकालकी

अथ हविष्यान्न, (८) भाद्रमासमें शुद्ध उपवास, (९) आश्विनमासमें २॥ प्रहरके समय सिर्फ एक वार मयूर-का अण्ड परिमित हविष्यान्न, (१०) कार्तिकमासमें अन्न प्रसूति मात्र कपिला दुग्ध, (११) अग्रहायणमासमें पूर्वोत्प हो कर वायुमक्षण, (११) पौषमासमें अति अल्प गन्धयुक्त भोजन। वारहों महोनेकी सप्तमीतिथिमें इसी प्रकार भोजन करनेका नियम है।

व्रत शेष हो जाने पर ब्राह्मण-भोजन और यथा विधानं व्रतप्रतिष्ठा करना आवश्यक है। पीछे दक्षिणात् और अग्निद्रावधारण करे। यह व्रत करनेसे सभी शोणोंसे मुक्तिकाम किया जाता है, तथा परलोकमें सुख-सम्पद् प्राप्त होती है। (कृतयतत्व)

विधानिका (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

विधायक (सं० लि०) विधा ण्युल्। १ विधानकर्ता, कार्य करनेवाला। २ निर्माता, बनानेवाला। ३ व्यवस्था करनेवाला, प्रपञ्च करनेवाला। ४ जनक, उत्पादक। ५ कारक, करनेवाला।

विधायिन् (सं० लि०) विधा-णिनि। विधानकर्ता।

विधार (सं० पु०) विधायक, वह जो धारण करता है।

विधारण (सं० क्तो०) वि-धु-णिच्-ल्युट्। १ विशेष रूपसे धारण करना। (लि०) २ धारक, धारण करनेवाला।

विधारय (सं० लि०) विविधधारणकारी।

(शुक्लयजुः १७८२ भाष्य)

विधारयितृ (सं० लि०) विशेषरूपसे धारण करनेके योग्य। (प्रश्नोपनि० ४१५)

विधारयितृ (सं० लि०) विधार्ता। (नियक १२।१४)

विधारा (हि० पु०) दक्षिण-भारतमें बहुतायतसे होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसका भाड़ बहुत बड़ा और इसकी शाखायें बहुत घनी होती हैं। इसको डालियों पर गुलाबके-से कांटे होते हैं। वृक्षके पत्ते शीत गं गुल लम्बे अण्डाकार और नोकदार होते हैं। डालियोंके स्तिरे पर चमकदार पीले फूलोंका गुच्छा होता है। वैदिकमें इसे गरम, मधुर, मेघाजनक, अग्निप्रदोषक, धानुषक और पुष्टिदायक माना है। उपदंस, प्रमेद, हृष्य, घातरक आदिमें इसे औषधीकी भांति व्यवहारमें लाते हैं।

विधारिन् (सं० लि०) विधारणशील, धारण करनेवाला।

विधायन (सं० क्तो०) वि-धाव ल्युट्। १ पश्चाद्भाव, पीछे पीछे दीडना। २ निम्नाभिमुख गमन, नीचेकी ओर जाना।

विधि (सं० पु०) विधति विद्धानि विश्वमिति विध विधानं विध इन् (इगुवधात् कित्। उण्य, ४।११६) १ व्रता। विधीयेते सुखदुःखे अनेनेति वि धा कि (उपसर्गे घोः कि। पा ३।३।६२) २ वह जिसके द्वारा सुखदुःखका विधान होता है; भाग्य, अदृष्ट, तर्कदोर। ३ क्रम, प्रणाली, ढंग। ४ किसी शास्त्र या ग्रन्थमें लिखी हुई व्यवस्था, शास्त्रोक्त विधान। ५ काल, समय। ६ विधान, व्यवस्था। ७ प्रकार, किसम। ८ नियोग। ९ विष्णु। १० कर्म। ११ गजप्रास, हाथीका चारा। १२ वैद्य। १३ अत्राप्तविषयका प्रापक, छः प्रकारके सूत्रलक्षणोंमेंसे एक। व्याकरण तथा स्मृति, श्रुति आदि धर्मशास्त्रोंमें कुछ विधियोंका उल्लेख है। उन सब विधियोंके अनुवर्ती हो कर उन शास्त्रोंका व्यवहार करना होता है। नीचे व्याकरणकी कुछ स्थूल विधियाँ दिखलाई जाती हैं,—जे सब सूत्र अत्राप्त विषयके प्रापक होते हैं अर्थात् जिस जिस सूत्रमें किसी वर्ण की उत्पत्ति वा नाग होता है तथा जिसमें सन्धि, समास वा किसी वर्णोत्पत्तिका नियेय रहता है, वे छः प्रकारके सूत्रलक्षणोंके अन्तर्गत विधिलक्षणयुक्त सूत्र हैं। जैमे— "श्चि अन्न" इस प्रकार सन्निवेश होने हीसे इकारकी जगह 'य' नहीं हो सकता, लेकिन यदि कहा जाय, कि "स्वरवर्णके पीछे रहनेसे इकारको जगह 'य' होगा" तभी हो सकता है। इसलिये यही अनुशासन अत्राप्त विषयका प्रापक हुआ। एक जगह दो सूत्रोंकी प्राप्ति रहनेसे जिसका कार्य बलवान होगा, यही नियम विधियुक्त सूत्र है अर्थात् प्राप्तिसत्तामें जो विधि है, उन्कीका नाम नियम है। सु (सुप्) विभक्ति पीछे रहनेसे एक साधारण सूत्रके बल पर ही तत्पूर्ववर्ती सभी रेफ स्थानमें विसर्ग हो सकता है। इस हिसाबसे यदि ऐसा विधान रहे कि, "सुप्के पीछे रहनेसे 'स', 'य' और 'त' की जगह जात रेफके स्थानमें विसर्ग होगा" तो ज्ञाना

सौ कल्पका ४२० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक मास (३० दिन)। इसी प्रकार ३६० कल्प, ५०४० मन्वन्तरका ब्रह्माका एक वर्ष (१२ मास) होता है। ब्रह्माकी परमायु सौ संवत्सर तक है, जिसमेंसे ५० वर्ष या आधा समय धीत युक्त। वर्तमान ५१वां वर्ष और श्वेतवाराहकल्प आरम्भ हो कर उसके ६ मन्वन्तर धीत गये हैं। अभी वैवस्वत मन्वन्तर चलता है।

विधात्री (सं० स्त्री०) वि-धा-तृच्-डोष् । १ विधान करने वाली, बनानेवाली, रचनेवाली । २ व्यवस्था करनेवाली, प्रबन्ध करनेवाली । ३ पिप्पली, पीपल ।

विधान (सं० क्ली०) वि-धा-ल्युट् । १ विधि, नियम । २ करण, निर्माण, रचना । ३ करिकवल, उतना चारा जितना हाथी एक बार मुंहमें डालता है, हाथोका प्रास । ४ वेदादिशास्त्र । (मनु १।३) ५ नाटकाङ्गविशेष, नाटकमें यह स्थल जहाँ किसी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और दुःख प्रकट किया जाता है । ६ जनन, उत्पत्ति करना । ७ भ्रंरण, भेजना । ८ आह्लाकरण, अनुमति देना । ९ धन, सम्पत्ति । १० पूजा, अर्चना । ११ शत्रुताचरण, हानि पहुँचानेका दांवपेच । १२ ब्रह्मण, लेना । १३ उपार्जन, हाशिल । १४ विषम । १५ अनुभव । १६ उपाय, ढंग, तरकीब । १७ विन्यास, किसी कार्यका आयोजन, कामका होना या चलना ।

विधानक (सं० क्ली०) १ व्याधा, घटेश, यातना । २ विधि, विधान । (त्रि०) ३ विधानचेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला ।

विधानग (सं० पुं०) विधानं गायतीति गै-ठक् । पण्डित, विद्वान् ।

विधानज्ञ (सं० पुं०) विधानं जानातीति विधान् ज्ञा क । १ पण्डित, विद्वान् । (त्रि०) २ विधानचेत्ता, विधि या रीति जाननेवाला ।

विधानशास्त्र (सं० क्ली०) व्यवस्थाशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, आईन ।

विधानसंहिता (सं० स्त्री०) विधानशास्त्र ।

विधानसप्तमी (सं० स्त्री०) माघशुक्लासप्तमी ।

विधानसप्तमीव्रत-(सं० क्ली०) सप्तमी तिथिमें कर्त्तव्य व्रत-विशेष । यह व्रत माघ मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे

आरम्भ कर पीपमासकी शुक्लासप्तमी पर्यन्त प्रति मासकी सप्तमी तिथिमें करना होता है। इस व्रतमें सूर्यपूजा और सूर्यास्तयका पाठ करना कर्त्तव्य है। यह व्रत करनेसे रोग नष्ट होता है तथा संपत्ति लाभ होती है। यह व्रत मुख्य चान्द्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें करनेका विधान है।

इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है। व्रतके पूर्व दिन संवत् हो कर रहना होता है। व्रतके दिन सवेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन और सङ्कल्प करे। "ओं कर्त्तव्येऽस्मिन्विधानसप्तमीव्रतकर्त्तारिण ओं पुण्याहं भवन्तोऽधिप्रवन्तु ओं पुण्याहं" इत्यादि ३ बार पाठ करे। इसके बाद स्वस्ति और ऋद्धि तथा 'सूर्य सोम' इत्यादि मन्त्रका पाठ कर सङ्कल्प करना होता है। जैसे—

"विष्णुतोमू तत्सप्तमीमघे माघे मासि शुक्ले पक्षे सप्तम्यान्तिधावारभ्य पीपस्य शुक्ला सप्तमीं यावत् प्रतिमासीय शुक्लसप्तम्यां अमुकगोत्रः धोऽभ्युक्तवैशर्मा आरोग्यसम्पत्कामः शमीव्रतव्रतफलप्राप्तिकामो वा विधानसप्तमीव्रतमहं करिष्ये।"

इस प्रकार सङ्कल्प करके वेदानुसार सूक्त पाठ करे। पीछे शालग्रामशिला वा घटस्थापनादि करके सामान्यार्घ और आसनशुद्धि आदि करके गणेश, शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है। इसके बाद पीडशोषचारसे भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करके उनका स्तव पाठ करे। प्रति मासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें इसी नियमसे पूजा करनी होती है। किन्तु प्रत्येक मासमें सङ्कल्प नहीं करना होता। प्रथम मासके सङ्कल्पसे ही सभी मासोंका काम चला जाता है।

यह व्रत करके बारहो महीनेमें बारह नियम पालन करने होते हैं। यथा—(१) माघमासमें अर्धघनके पत्तोंका सिर्फ अंकुर खाना होता है। (२) फाल्गुनमासमें जमीन पर गिरनेसे पहले ही जो भर पीली गायका गोबर खानेका नियम है। (३) चैत्रमासमें एक मरिचमक्षण, (४) वीशाषमासमें थोड़ा जल, (५) ज्यैष्ठमासमें पके केलेके बीबकी कणामाल, (६) आषाढमासमें यवपरिमित कुशमूल, (७) श्रावणमासमें अपराहकालकी

अथ हविष्यान्न, (८) भाद्रमासमें शुद्ध उपवास, (९) आश्विनमासमें २॥ प्रहरके समय सिर्फ एक बार मयूर-का अण्ड परिमित हविष्यान्न, (१०) कार्तिकमासमें अर्द्ध प्रवृत्ति मात्र कणिला दुग्ध, (११) अश्विमासमें पूर्वाह्न हो कर चायुभक्षण, (१२) पौषमासमें अति अल्प गव्यघृत भोजन । वारहों महोत्सवकी सप्तमीतिथिमें इसी प्रकार भोजन करनेका नियम है ।

अत शेष हो जाने पर ब्राह्मण-भोजन और यथा-विधान व्रतप्रतिष्ठा करना आवश्यक है । पीछे दक्षिणांत और अहिद्रावधारण करे । यह व्रत करनेसे सभी रोगोंसे मुक्ति लाभ किया जाता है, तथा परलोकमें सुख-सम्पद प्राप्त होती है । (इत्यतएव)

विधानिका (सं० स्त्री०) पृष्ठतो ।

विधापक (सं० लि०) वि-धा-पकुल । १ विधानकर्ता, कार्य करनेवाला । २ निर्माता, बनानेवाला । ३ व्यवस्था करनेवाला, प्रबन्ध करनेवाला । ४ जनक, उत्पादक । ५ कारक, करनेवाला ।

विधापिन् (सं० लि०) वि-धा-पिनि । विधानकर्ता ।

विधार (सं० पु०) विधापक, वह जो धारण करता हो ।

विधारण (सं० स्त्री०) वि-धा-पिन्-कृत्युट् । १ विशेष रूपसे धारण करना । (लि०) २ धारक, धारण करनेवाला ।

विधारय (सं० लि०) विधिधारणकारी ।

(शुक्लयजुः १७८२ भाष्य)

विधारयितव्य (सं० लि०) विशेषरूपसे धारण करनेके योग्य । (प्रश्नोपनि० ४।१२)

विधारयित् (सं० लि०) विधापत्ता । (निरुक्त १२।१४)

विधारय (हिं० पु०) दक्षिण-भारतमें बहुतायतसे होनेवाली एक प्रकारकी लता । इसका आड़ बहुत बड़ा और इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं । इसकी डालियों पर गुलाबके-से फांटे होते हैं । वृक्षके पत्ते तीन अंगुल लम्बे गण्डाकार और नोकदार होते हैं । डालियोंके सिरे पर चमकदार पीले फूलोंका गुच्छा होता है । वैदिकमें इसे गरम, मधुर, मेधाजनक, शान्तिप्रदीपक, धातुघटक और पुष्टिदायक माना है । उपर्युक्त, प्रमेह, क्षय, वातरक आदिमें इसे औषधकी भांति व्यवहारमें लाते हैं ।

विधारिन् (सं० लि०) विधारणशील, धारण करनेवाला ।

विधावन (सं० स्त्री०) वि-धाव-कृत्युट् । १ पश्चाद्वावन, पीछे पीछे दौड़ना । २ निम्नाभिमुख गमन, नीचेकी ओर जाना ।

विधि (सं० पु०) विधति विद्धानि विश्वमिति । अथ विधाने विध इन् (इगुभ्यात् कित् । उण्, ४।१।१६) १ ब्रह्मा । विधीयते सुखदुःखे अनेनेति वि धा-कि (उपठगे) धोः किः । पा ३।३।६२) २ वह जिसके द्वारा सुखदुःखका विधान होता है, भाग्य, अदृष्ट, तर्कदोर । ३ काम, प्रणाली, ढंग । ४ किसी शास्त्र या प्रन्थमें लिखी हुई व्यवस्था, शास्त्रोक्त विधान । ५ काल, समय । ६ विधान, व्यवस्था । ७ प्रकार, किस्म । ८ नियोग । ९ विष्णु ।

१० कर्म । ११ गजप्रास, हाथीका चारा । १२ वैद्य । १३ अप्राप्तविषयका प्रापक, छः प्रकारके सूत्रलक्षणोंमेंसे एक । व्याकरण तथा स्मृति, धृति आदि धर्मशास्त्रोंमें कुछ विधियोंका उल्लेख है । उन सब विधियोंके अनुधर्त्ता हो कर उन शास्त्रोंका व्यवहार करना होता है । नीचे व्याकरणकी कुछ स्थूल विधियाँ दिखलाई जाती हैं,—जो सब सूत्र अप्राप्त विषयके प्रापक होते हैं अर्थात् जिस जिस सूत्रमें किसी वर्णकी उत्पात्ति या नाश होता है तथा जिसमें सन्धि, समास या किसी वर्णोत्पत्तिका निषेध रहता है, वे छः प्रकारके सूत्रलक्षणोंके अन्तर्गत विधिलक्षणयुक्त सूत्र हैं । जैसे—“दधि मत्त” इस प्रकार सन्निवेश होने हीसे इकारकी जगह ‘य’ नहीं हो सकता, लेकिन यदि कहा जाय, कि “स्ववर्णके पीछे रहनेसे इकारको जगह ‘य’ होगा” तभी हो सकता है । इसलिये यही अनुशासन अप्राप्त विषयका प्रापक हुआ । एक जगह दो सूत्रोंकी प्राप्ति रहनेसे जिमका कार्य बलवान होगा, वही नियम विधियुक्त सूत्र है अर्थात् प्राप्तिस्त्तामें जो विधि है, उसीका नाम नियम है । सु (सुप्) धिमकि पीछे रहनेसे एक साधारण सूत्रके बल पर ही तत्पूर्ववर्त्ती सभी रेफ स्थानमें विसर्ग हो सकता है । इस दिसावसे यदि पेसा विधान रहे कि, “सुप्के पीछे रहनेसे ‘स’, ‘य’ और ‘न’ की जगह जात रेफके स्थानमें विसर्ग होगा” तो जानना

चाहिये, कि विभक्तिका 'सु' पीछे रहनेसे उसके पूर्व-वर्ती 'स', 'प' और 'न' की जगह जात रेफ भिन्न किसी दूसरे रेफ स्थानमें (साधारण सूत्रके षल पर) विसर्ग नहीं होगा। जैसे,—हविस्-सु=हविःसु, धनुस्-सु=धनुःसु, सञ्जप्-सु=सञ्जुःसु, अहनस्सु=अहःसु, किन्तु 'स' 'प' और 'न' की जगह जात रेफ नहीं होनेके कारण चतुर-सु=चतुर्षु इत्यादि स्थलोंमें प्राप्ति रह कर भी (इस नियम सूत्रके प्राधान्यप्रशस्तः) विसर्ग नहीं होगा। एकका धर्म दूसरेमें आरोप करनेका नाम अतिदेशविधि है, जैसे,—तिङ् (तिप्, तस, भि आदि) प्रत्ययके पीछे 'इण' धातुके सम्बन्धमें सूत्र होनेके कारण अन्तमें कहा गया कि, 'इण' धातुके समान "इक्" धातु जाननी होगी अर्थात् वरात 'इण' धातुका तिङन्तपद जिस जिस सूत्रमें सिद्ध तथा जिस जिस आकारका होगा 'इक्' धातुका तिङन्तपद भी उसी उसी सूत्रमें सिद्ध तथा उसी उसी आकारका होगा। उदाहरण,—इण्=इ-दिप् (लुङ्)=अगात्; इक्=इ-दिप् (लुङ्)=अगात्। शब्दाध्यायमें कहा गया "खरादिविभक्तिके पीछे रहनेसे स्त्री और भ्रू शब्दके धातुकी तरह कार्य होगा" अर्थात् वरात दी गई कि खरादि विभक्तिके पीछे रहनेसे 'श्री' 'भ्रू' आदि धातुप्रकृतिक दीर्घ ईकार और दीर्घ ऊकारान्त खोलिङ्ग शब्दकी तरह यथाक्रम स्त्री और भ्रू शब्दका पद सिद्ध करेगा। उदाहरण श्री औ=श्रियो। स्त्री-औ=स्त्रियो, यहाँ दोनों ईकारके स्थानमें 'इय' हुआ। भ्रू-औ=भ्रुवौ, भ्रू-औ=भ्रुवौ, दोनों स्थलोंमें दीर्घ ऊकारकी जगह 'ऊव' अर्थात् एक ही तरहका कार्य हुआ। विशेष विवरण अतिदेश शब्दमें देखो।

वैयाकरणके मतसे परवर्ती सूत्रमें पूर्वसूत्रस्थ पदों या किसी किसी पदका उल्लेख न रहने पर भी अर्थ-विधृतिकालमें उसका उल्लेख किया जाता है, इसे अधिकारविधि कहते हैं। यह सिंहावलोकित, मण्डुकप्लुत और गङ्गास्रोतके अेदसे तीन प्रकारका है। सिंहावलोकित (सिंहकी दृष्टिकी तरह) अर्थात् १म सूत्रमें,—"अकारके बाद आकार रहनेसे उसका दीर्घ होगा" यही कह कर २य सूत्रमें सिर्फ "इकारका गुण", ३यमें "पकारकी वृद्धि", ४थमें "टा-की जगह इन" इत्यादि प्रकारसे सूत्र विध्वस्त

रहने पर समझना होगा, कि प्रथमसे चतुर्थ सूत्र पर्यन्त दीर्घ, गुण, वृद्धि, इनादेश जितने कार्य होंगे, वे सभी अकारके उत्तर आयेगे। इस सङ्केतका साधारण नाम अधिकारविधि है; इसके बाद ५म सूत्रमें यदि कहा जाय कि, "इकारके बाद अकार रहनेसे उस इकारकी जगह 'य' होगा" तो यह अधिकार सिंहदृष्टिकी तरह एक लक्ष्यमें बहुत दूर जा कर रुक जाता है, इसी कारण वैयाकरणोंमें उसका नाम "सिंहावलोकित" रखा है। जहाँ १म सूत्रमें,—"अकारके उत्तर टा रहनेसे उसकी जगह इन होगा", २यमें "अट् र और प कारके बाद 'न' ण' होगा, ३यमें "अ"के पीछे रहने पर आकार होगा" (अर्थात् जिसके उत्तर 'म' रहेगा उसके स्थानमें आकार होगा) इस प्रकार दिखाई देनेसे यह अधिकारविधि "मण्डुक-प्लुति" कहलाती है। क्योंकि वह मेट्ककी छलांगकी तरह बहुत दूर नहीं जा सका। फिर शब्दाध्यायके १म सूत्रमें "शब्दके उत्तर प्रत्यय होगा" ऐसा उल्लेख कर २य सूत्रसे ले कर वह शब्दाध्याय समाप्त होनेके बाद तत्पर-वर्ती तद्धिताध्यायके शेष पर्यन्त यथासम्भव सी या सीसे अधिक सूत्रोंमें जितने प्रत्यय होंगे, वह प्रत्येक सूत्रमें "शब्दके उत्तर" इस बातका उल्लेख नहीं रहने पर भी, शब्दके उत्तर ही होगा, धातु आदिका उत्तर नहीं होगा। यह अधिकारविधि गङ्गास्रोतकी तरह उत्पत्ति स्थानसे बेरोकटोक सागरसङ्गम पर्यन्त अर्थात् यहाँ प्रकरणके शेष तक अप्रतिहतभावमें प्रवल रहनेके कारण वैयाकरणोंके निकट यह गङ्गास्रोत समझा जाता है। वैयाकरणोंने इसके सिवा संज्ञा और परिभाषा नामक दो और सङ्केतोंको बतला कर सूत्रसंस्थापन किया है। संज्ञा अर्थात् नाम, जैसे—व्याकरणके सिवा इसका अन्य शास्त्रमें व्यवहार नहीं होता, व्याकरणमें व्यवहार करनेका तात्पर्य है, सिर्फ ग्रन्थ संक्षेपके लिये; क्योंकि (अच् शब्दका प्रतिपाद्य) "अ या इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ड् ण् पे ओ औ" पीछे रहनेसे 'प' की जगह 'अप' न होनेके कारण अच्के पीछे रहनेसे 'प' की जगह 'अप' होता है। ऐसा कहनेसे ही संक्षेप हुआ। व्याकरण-सूत्रके परस्पर विरोधभङ्गन और ग्रन्थके संक्षेपके लिये शब्दकोति कुछ परिभाषाविधिका निर्देश किया है।

जैसे श्म सूत्रमें "अच्के पीछे रहनेसे 'य' की जगह 'अय' होगा" ऐसा कह कर ४यं सूत्रमें "एकारके वाद् अकार रहनेसे उस अकारका लोप होगा" कहनेसे, वस्तुतः कार्यस्थलमें दोनों सूत्रोंका परस्पर विरोध उपस्थित होता है। क्योंकि "हरे + अय" यहाँ पर अच् वा स्वरवर्ण पीछे और उसके पहले एकार रहनेसे श्म सूत्रकी प्राप्ति तथा अकारके पीछे अकार रहनेसे ४यं सूत्रकी प्राप्ति हुई है; चाहातः यहाँ दृढ़तासे ही दोनों सूत्रोंकी प्राप्ति देखी जाती है; किन्तु आचार्योंने इन दोनों सूत्रोंमें ऐसा कुछ भी न कहा, कि उससे दोनोंमें कोई एक बलवान् हो सकना है! ऐसे विरोधस्थलमें ही परिभाषाविधेकी जरूरत पड़ती है। इसकी मीमांसाके लिये "तुल्यबल-विरोधे परं कार्य" अर्थात् व्याकरणके संबन्धमें "दो सूत्रोंका बल समान दिखाई देनेसे परवर्ती सूत्र ही कार्यकारी होगा" तथा "सामान्यविशेषोपदेशोपविधिव्यबलवान्" अर्थात् "बहुतसे विषयोंकी अपेक्षा जोड़े विषयोंकी विधि ही बलवान् होगी" इन दोनों परिभाषा-विधिके व्यवहार होनेसे परवर्ती सूत्र अर्थात् विशेषविधिका कार्य ही बलवान् होगा। परवर्ती सूत्रमें विशेषता यह है, कि उसमें विषयोंका उल्लेख है; क्योंकि पूर्ववर्ती सूत्रमें समस्त स्वरवर्ण पीछे रहनेका विषय और परवर्तीसूत्रमें सिर्फ एक स्वरवर्ण पीछे रहनेका विषय है। फिर इस सम्बन्धमें न्याय है, कि, "अल्पतरविषयत्व" विशेषत्व" बहुतविषयत्व" सामान्यत्व" अर्थात् जहाँ कम विषयोंका निर्देश है, वहाँ विशेष और जहाँ अनेक विषयोंका निर्देश है, वहाँ सामान्यविधि जाननी होगी। व्याकरणमें ऐसा कितनी परिभाषाविधियोंका व्यवहार है जिनमेंसे अन्तरङ्ग, वहिरङ्ग, सायकाश, नित्यकाश, आगम, आदेश, लोप और स्वरादेशविधि सर्वदा प्रयोजनीय हैं।

प्रकृत अर्थात् शब्द या धातुका आश्रय करके गुण, र्थाद्, लोप, आगम आदि जो सब कार्य होते हैं, उन्हें अन्तरङ्ग तथा प्रत्ययका आश्रय ले कर जो सब कार्य होते हैं, उन्हें वहिरङ्गविधि कहते हैं। इन दोनोंका विरोध होनेसे अन्तरङ्गविधि बलवान् होगी। एक प्रकृतको ही आश्रय करके यदि इस प्रकार पूर्वपर दो

कार्योंका सम्भव हो, तो जो पूर्ववर्ती है उसे अन्तरङ्ग-तर विधि कहते हैं तथा वही विधि बलवान् होती है। जैसे अ-अ (लिट् श्म पु० १व०) = अ अ अ = अ ऊ-अ अभी 'अ' और 'अ' इन दो प्रकृतियोंमें पहलीकी जगह 'आर' और दूसरीकी जगह रकार होनेका सम्भव है, इस कारण इस अन्तरङ्गतर विधिबलसे पूर्ववर्ती अकारकी जगह 'आर' ही होगा। जिस विधिका विषय पहले और पीछे दोनों ही जगह है, उसे सायकाश और जिसका विषय केवल पहले है, पीछे नहीं; उसे नित्यकाश विधि कहते हैं। जिस विधिके अनुसार कोई वर्ण प्रकृति या प्रत्ययको नष्ट न करके उत्पन्न होता है, उसे आगम तथा जो वर्ण दोनोंका उपधातो ही कर उत्पन्न होता है, उसे आदेश कहते हैं। इन दोनोंमें आगमविधि बलवान् है। सभी प्रकारकी विधियोंमें लोपविधि ही बलवान् है। किन्तु लोप और स्वरादेश (स्वर वर्णोंका आदेश) इन दोनों विधियोंकी प्राप्तिके सम्बन्धमें यदि फिर विरोध हो, तो यहाँ स्वरादेशविधि ही बलवान् होगी।

इसके सिवा सर्वदा प्रचलित उत्सर्ग और अपवाद् नामकी दो विधियाँ हैं। प्रत्येक तरहसे सामान्य और विशेष विधिकी नामान्तर मात्र है। अर्थात् "सामान्य-विधिउत्सर्ग" "विशेषविधिरपवाद्" सामान्य विधि उत्सर्ग और विशेष विधि अपवाद् कहलाती हैं।

पूर्वमीमांसा नामक जैमिनिस्त्रके व्याख्याकर्ता गुरु और प्रगाकरने विधिके सम्बन्धमें व्याकरणघटित प्रत्ययार्थका विषय इस प्रकार कहा है। अट्टका कहना है, कि विधिलिङ्ग, लोट् और तच्चादि प्रत्ययका अर्थ है तथा उसका दूसरा नाम भावना है। अतएव शाब्दी भावना और विधि दोनों एक हैं। प्रगाकर और गुरु कहते हैं, कि विधिघटित प्रत्ययमात्र ही नियोगवाच्य है, इसलिये नियोगका ही दूसरा नाम विधि है।

महामहोपाध्याय के यन्त्रे भी पाणिनिके "विधिनित्यप्या-मन्व्यापिष्ट" संभ्रन प्रार्थनेषु लिङ् । (पा ३।३।१६१) इह सूत्रके महामोष्यही व्याख्यामें विधि शब्दका नियोजन अर्थात् नियोग ऐसा बयं जगया है। मान्यकाले खिला है, "विध्य-पीठयोः को विशेषः ?" "विधिर्नाम प्रत्ययम्" "मपीष्ट" नाम

"स्वर्गकामो यजेत" यह एक विधि है। यह विधि अर्थी विद्वान् और समर्था श्रोतुपुरुषोंकी यागकरणक और स्वर्गफलक भावनामें (उत्पादन विशेष) प्रवृत्ति उत्पन्न करती है अर्थात् उसको स्वर्गजनक यागानुष्ठानमें नियुक्त करती है। जो जो स्वर्गार्थी अथवा अधिकारी हैं वे सब याग करें तथा अपनेमें स्वर्गजनकः अपूर्व (पुण्यविशेष) उत्पादन करें। लक्षणका निष्कर्ष यह है, कि जो वाक्य कामोपुरुषके काम्यफल, लाभका उपाय बतला कर उसमें उसको आनुष्ठानिक प्रवृत्ति पैदा करता है, यही वाक्य विधि है।

वाक्य वा पदमाल ही धातु और प्रत्यय इन दोनोंके योगसे निष्पन्न होता है। वाक्य वा पदके एक देशमें

सत्कारपूर्विका व्यापारया।। कं यटने भाष्यकारधृत उक्त पाठकी ऐसी व्याख्या की है—"विष्यधीश्वोरिति। उभयोरपि नियोगरूपत्वादिति पूरनः। पेषणमिति, भृत्यादेः कल्याञ्चित् क्रियायः नियोजनमित्यर्थः। अधीष्टं नामेति, गुर्वद्विस्तु पूज्यस्य व्यापारयमधीष्टमित्यर्थः। पूषञ्चात् न्यायव्युत्पादनायै वा अर्थभेदमाश्रित्य भेदेनोपादानं विधिनिमन्त्रणादीनां कृतम्। विधिरूपता हि सर्वत्रान्वयिनी विद्यते।।" दोनों जगह एक ही नियोगरूप व्यापार होने पर भी विधि और अधीष्टमें भेद यह है, कि विधि प्रेषण अर्थात् भृत्यादिकी किसी कार्यमें नियोग करना। जैसे—"मवान् ग्रामं गच्छेत्" त् वा हुमः ग्राममें जायेगा या जाओगे। पूजनीय व्यक्तिवोंके सत्कार करनेका नाम अधीष्ट है। जैसे "भवान् पुत्रमभ्यापयेत्" आप मेरे पुत्रको पढ़ावे। इन दोनों ही जगह नियोग समझा जाता है, किन्तु पहले अव्यक्तकार और पीछे सत्कार पूर्वक, सब सिर्फ इतना ही प्रभेद है। अर्थप्रसन्न (विस्तृति) अथवा नाना प्रकारकी न्यायव्युत्पत्तिके लिये ही आचार्यने भूख सूत्रमें विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण आदिका भेद बतलाया है। फलतः एक नियोगरूप विधि ही सर्वत्र अन्वित रहेगी अर्थात् विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट आदि सभी जगह साधारणतः एक नियोगार्थी ही समझा जायेगा। क्योंकि 'इह भवान् भुञ्जीत' आप यहाँ भोजन करें, 'भवानिहासीत' आप यहाँ बैठें, इत्यादि यथाक्रम निमन्त्रण और आमन्त्रणके स्थानमें भी प्रायः एक नियोगकी छोड़ और कुछ भी नहीं देखा जाता।

जो लिङादि प्रत्यय योजित रहता है, वह प्रत्ययकी मुख्य अर्थभावना अथवा नियोग है। भावना शब्दका अर्थ उत्पादना है अर्थात् यह कुछ उत्पादन करनेमें प्रवृत्ति कराती है। भावना शब्दों और अर्थोंके भेदसे दो प्रकारकी है। "यजेत" इस वाक्यके प्रकृदेशमें जो लिङ् प्रत्यय है, [यज्-मते (लिङ्)] उसका अर्थ है भावना। अनप्य "यजेत = भावयेत्" अर्थात् उत्पन्न करेगा। यह भावना अर्थी है अर्थात् प्रत्ययार्थ लभ्य है। इसके बाद 'किं' 'केन' 'कथं' अर्थात् क्या, किससे? किस प्रकार इस प्रकारकी आकाङ्क्षा वा प्रश्न उठने पर तत्पुरणार्थ 'स्वर्गः, योगः, आभ्याधानादिभिः' स्वर्गकी यागके द्वारा इन सब पदोंके साथ अन्वित हो कर समस्त वाक्य एक विधि समझा जाता है।

लिङ्युक्त लौकिक वाक्य सुन कर भी ऐसी प्रतीति होती है, कि यह व्यक्ति मुझे इस वाक्यसे अमुक विषयमें प्रवृत्त होनेके लिये कहता है और मैं अमुक कार्यमें प्रवृत्त होता हूँ, यही इसका अभिप्रेत है। वक्ताका अभिप्राय तदुक्त विधिवाक्यस्य लिङादि प्रत्ययका बोध है। अतएव वह वक्ता गामो है। फिर अर्थोक्तये वेदवाक्यमें वह शब्दगामो है, अर्थात् लिङादि शब्द ही उस श्रोताको बतला देता है। यह शब्द गमिता होनेके कारण शास्त्री भावना नामसे प्रसिद्ध है। "स्वास्थ्यकारी प्रातर्भ्रमण करें" यह एक लौकिक विधिवाक्य है। यह वाक्य सुननेसे दो प्रकारका बोध होता है, एक प्रातर्भ्रमण स्वास्थ्यलाभका उपाय जो हम लोगोंका कर्त्तव्य है और दूसरा वक्ताका अभिप्राय—मैं प्रातर्भ्रमण कर सुस्थ हूँ। ऐसी दशामें वाक्य वैदिक होनेसे कहा जाता है, कि प्रथम बोध अर्थ और द्वितीय बोध शाब्दो है।

मूल बात यह है, कि विधिका लक्षण जो जिस प्रकारसे वर्णन करें, समी जगह अप्राप्तार्थ विषयमें प्रवर्त्तनका भाव दिखाई देगा, क्योंकि समी स्थानोंमें विधिका आकार है—'कुर्यात्' 'क्रियेत्' 'कृत्स्व' इत्यादि रूप।

मोमांसादर्शनकार जैमिनिके मतसे वेद—विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय इन चार भागोंमें विभक्त है। उक्त दर्शनकारकी पूर्णमोमांसा नामक सूत्रके व्याख्या-

कर्त्ता गुरु, भट्ट और प्रभाकर इन तीन आचार्यों ने अपने "चोदनालक्षणोऽर्थोघर्माः" इस सूत्रोक्त शब्दके बदलेमें विधि शब्दका व्यवहार और निम्नलिखित प्रकारसे उसका अर्थ तथा स्थलनिर्देश किया है। चोदनाप्रवर्त्तक वाच्य ; इसका दूसरा नाम है विधि और नियोग। विधियोंके लक्षण और प्रकारभेद इस प्रकार हैं,—

प्रधान विधि—स्वतः फलहेतुक्रियाधोषकः "घान-विधिः" जो विधि आपसे ही क्रिया और उसके फलका बोध कराती है अर्थात् जो स्वयं फलजनक है, वही प्रधान विधि है। जैसे, "यजेत स्वर्गकामाः" स्वर्गकामी हो कर याग करे। अपूर्व, नियम और परिसंख्याभेदसे प्रधान विधि तीन प्रकारकी है। "अत्यन्ताप्राप्ती अपूर्णविधिः" जहाँ विधि विहित कर्म किसी तरह निषिद्ध नहीं होता वहाँ अपूर्णविधि जाननी होगी। जैसे "अहरहः सन्ध्यानुपासोत" दैनन्दिन सन्ध्याकी उपासना करे; यह उक्ति शास्त्र, इच्छा और न्यायसङ्गत है तथा किसी भी स्थानमें इस विधिकी व्यतिक्रम नहीं देखा जाता अर्थात् यह नियत कर्त्तव्य है। "पक्षतोऽप्राप्ती नियमविधिः" कारणवशतः शास्त्र वा इच्छा आदिकी अप्राप्ति होनेसे उसको नियम विधि कहते हैं। जैसे, "ऋती भार्यामुपेयात्" ऋतुकालमें भार्यामिगमन करे; यहाँ शास्त्रतः नियत विधान रहने पर भी कदाचित् इच्छाभाववशतः विहित कर्त्तव्यकी अप्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह दोषाग्रह नहीं है, क्योंकि उक्त प्रकारसे एक पक्षमें विधिकी विपर्यय होता है, इसीलिये वह नियमविधिमें गिना गया है। "विधेय तत्पत्तिपक्षयोः प्राप्ती परिसंख्याविधिः" जो शास्त्रतः तथा अनुरागवशतः मिलता है, वह परिसंख्या विधि है। जैसे "प्रोक्षितं मांसं भुञ्जेत" प्रोक्षित (पश्यायं मन्त्र द्वारा संस्कृत) मांस भोजन करे, यहाँ पर प्रोक्षित मांस भक्षणकी प्रवृत्ति शास्त्रतः तथा स्वभावतः मांसमें अनुरक्त रहने हीमें हुआ करती है।

अङ्गविधि,—"अङ्गविधिस्तु स्वतः फलहेतुक्रियायां कथमित्याकाङ्क्षायां विधायकः"। जिस विधिमें किस कारण क्रिया की जाती है यह जाननेके लिये आपे आप आकाङ्क्षा होने से इसको अङ्गविधि कहते हैं। यह अङ्ग-विधि काल, देश और कर्त्ताकी बोधकमान है। इस

कारण यह अनियत है; "अङ्गविधिस्तु कालदेशकर्त्तादि-बोधकतया अनियत एव"। कहुनेका तात्पर्य यह कि अङ्ग-विधिमात्र ही प्रधान विधिकी उपकारक अर्थात् मूलकर्मकी सहायक है। जैसे अनिहोत यज्ञमें "मोहिर्मिर्द्युतेत" मोहि द्वारा याग करे, "दध्ना जुद्योति" दधि द्वारा होम करे, इत्यादि। अर्थात् क्रियायें अङ्गयाग या अङ्गविधि है। अङ्गविधि भी प्रधान विधिकी तरह अपूर्व, नियम और परिसंख्या भेदसे तीन प्रकारकी है। क्रमशः उदाहरण, "शारदीयं पूज्यायामष्टम्यामुपवसेत्" महाष्टमीमें उपवास करे, यह दुर्गापूजाका अङ्ग होनेके कारण अङ्गविधि है तथा यह पतद्वयशास्त्र है, अपनी इच्छा अथवा न्यायानुसार किसी मतसे निषिद्ध नहीं हो सकता, अतएव अवश्य कर्त्तव्यके कारण अपूर्वविधि है। "ध्राद्रे भुञ्जीत पितृसेवितम्" ध्रादशप भोजन करे, यहाँ पर ध्रादशप भोजनके सम्बन्धमें इच्छानुसार कभी घ्याघात हो सकता है, अतएव कारणवशतः एक पक्षमें अप्राप्ति होनेसे नियम-विधि हुई। "वृद्धिध्राद्रे प्रातरामन्त्रितान् विद्यान्" वृद्धि-ध्राद्रेमें प्रातःकालमें विप्रोंको आमन्त्रण करे, यह परिसंख्या विधि है, क्योंकि यहाँ विहित प्रातःकालके निमन्त्रण अथवा पार्वणध्राद्रेकी तरह उसके पहले दिनके सायंकालका निमन्त्रण इन दोनोंको ही न्यायसङ्गत प्राप्ति हो सकती है। इस कारण प्रधान और अङ्गविधिकी अन्तर्गत अपूर्व, नियम और परिसंख्याविधिकी लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

"विधिरत्यन्तमप्राप्ती नियमः पाक्षिके एति।

तत्र चान्यत्र च प्राप्ती परिसंख्या विधीयते ॥"

(विधिरण्यम्)

किसी किसी मतसे सिद्धरूप और क्रियारूप भेदसे अङ्गविधि दो भागोंमें विभक्त हुई है। द्रव्य और संख्या आदि सिद्धरूप है; अवशिष्ट क्रियारूप है। क्रियारूप अङ्ग दो प्रकारका है, सन्निपत्योपकारक और शारादुपकारक। सिद्धरूप अङ्ग (द्रव्यादि)के उद्देशसे जो क्रिया की जाती है, वह सन्निपत्योपकारक है। "मोहीन् अवहन्ति" "सोममिपुणोति" इत्यादि वाक्योंमें मोहि और सोम-द्रव्यमें अवघात और अनियत क्रियाका विधान है। जहाँ अङ्गविधिके द्रव्यादिका उद्देश नहीं देखा जाता, फिर

भी उसमें क्रियाका विधान है, वहां यह शङ्क आरादुपकारक पूर्वोक्त सन्निपत्योपकारक कर्म प्रधान कर्मका उपकारक तथा प्रधान कर्म उसका उपकार्य है। यह उपकारक उपकार्य भाव चाषयगम्य है, प्रमाणान्तरगम्य नहीं। शोषोक्त आरादुपकारक कर्मके साथ प्रधान कर्मका उपकार्य उपकारक भाव जो है, वह प्रकरणानुसार उन्नेय है। मीमांसा देखो।

उल्लिखित प्रधान और अङ्गविधिका अन्य प्रकारमें प्रविभाग दिखाई देता है, जैसे—उत्पत्ति, विनियोग, प्रयोग और अधिकार। इनमेंसे उत्पत्ति और अधिकार प्रधान विधिंके तथा विनियोग अङ्गविधिंके अन्तर्भूत है। "कर्मस्वरूपमात्रबोधकविधिसत्प्रतिविधिः" जो केवल कर्त्तव्य कर्मको बोधक है, वही उत्पत्ति-विधि है। जैसे "अग्निहोत्रं जुहोति" "अग्निहोत्रहोमेनेत" भावपेदिह्यल विधौ कर्माणः करणत्वेनान्यथा" अग्निहोत्रहोम द्वारा अभीष्टत फलोत्पादन करे, इस उक्ति द्वारा अग्निहोत्र होम करना होगा, सिर्फ यही समझा गया, किन्तु उसमें किस फलकी उत्पत्ति होगी, इसका पता न चला, इस कारण वह उत्पत्तिविधि है। "कर्मजन्मफलसाम्यबोधको विधिरधिकारविधिः" कर्मजन्म फलभोगिताको अन्वबोधक विधिक्रा नाम अधिकारविधि है। जैसे "स्वर्गकामो यजेत" स्वर्गकामो हो कर याग करे, यहाँ पर स्वर्गके उद्देशसे यागकारोका क्रियाजन्म फलभोगितृत्व प्रतिपन्न होता है, अतएव यह अधिकारविधि है। "अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधका विधिर्विनियोगविधिः" जो अङ्ग कर्मका विधायक है, वह विनियोगविधि है। जैसे— "मोहिर्मियजेत" मोहि द्वारा याग करे, "दध्ना जुहोति" दधि द्वारा होम करे, ये सब क्रियाप्रधान अग्निहोत्रके अङ्ग बतलाये गये हैं, इस कारण वे विनियोगविधिमें निर्दिष्ट हैं। "अङ्गानां क्रमबोधका विधिः प्रयोगविधिः" जिस क्रमसे वा जिस पद्धतिसे साङ्गप्रधान यागादि कर्म क्रिया जाता है, वह प्रयोगविधि है अर्थात् अङ्गोंमें किस प्रकार किस कार्यके वा कौन कार्य करना होगा, वह प्रयोगविधि द्वारा जाना जाता है।

न्यायके मतसे विधिक्रा लक्षण इस प्रकार है—

"प्रवृत्तिः क्रतिरेवात्र सा चेच्छ्रुती यतरच सा तत्र शानं विषयस्तस्य विधित्तत्र शानकोऽप्यथा ॥"

(दुधुमाञ्जलि)

विधिवाक्य सुन कर पहले ऐसा मालूम होता है, कि यह कृतिसाध्य है अर्थात् यत्न करने पर किया जा सकता है तथा उससे अभीष्ट फल प्रातिकी भी विशेष सम्भावना है, यह श्रान हो जानेसे वे सब-विधिविहितकार्य करनेकी प्रवृत्ति होती है। इस श्रानका विषय जो है अर्थात् कार्यत्व और इष्टसाधनत्व वही विधि है। यह प्राचीन मत है। अपने मतसे उस साधनताके ह्रापक आप्त वाक्यको विधि कहा जाता है।

गदाधर मट्टाचार्यने अपने तथा मीमांसक मतसे विधिक्रा स्वरूप जो निर्णय किया है, वह इस प्रकार है—

"आध्रयत्वसम्बन्धेन प्रत्ययौपस्थापितेष्टसाधनत्वान्वितस्यार्थापरपदघटित्वाक्यत्व" विधित्वम् ॥" मीमांसकके मतसे,— "इष्टसाधनत्व" कृतिसाध्यत्वञ्च पृथक्-विध्यर्थाः ॥" (गदाधर)

जिस वाक्यमें लिङ्गवि-प्रत्यय द्वारा आध्रयत्वके सम्बन्धमें उपस्थापित तथा इष्टसाधनयुक्त और स्वार्थपर (स्वयं अर्थाप्यञ्जक) पद विद्यमान रहता है वही विधि है। जैसे "स्वर्गकामो यजेत"। यहाँ यज=याग करना, लिङ्ग वा 'इत' प्रत्यय=करणाध्यय, इत्याश्रय, चेष्टा वा प्रत्ययशोल, दोनोंके योगसे अर्थात् 'यजेत'=यागकरणाश्रय, याग करनेके लिये कार्यके प्रति यत्नशोल। यहाँ पर स्वर्गकाम व्यक्ति ही यागकरणाध्यय हुआ, अतएव इत्यय द्वारा इस पदाश्रयत्व सम्बन्धमें उपस्थापित हुआ तथा वह "स्वर्ग कामयते" स्वर्गको कामना करता है, इस व्युत्पत्ति द्वारा अपने अपने अर्थप्रकाशक और स्वर्गप्राप्ति रूप इष्टसाधनतायुक्त होता है। अतएव "स्वर्गकामो यजेत" यह एक विधिवाक्य है। मीमांसकादिके मतसे इष्टसाधनता और कृति (यज्ञ) साध्यत्वको पृथक् पृथक् विधि कहा गया है। जैसे "स्वर्गकामो यजेत" अर्थात् स्वर्गकामो बनो और याग करो, यह दोनों प्रकारकी विधि है। १४ यागोपदेशक ग्रन्थ, यह ग्रन्थ जिसमें यागयज्ञादिक्रा विषय विशेषरूपसे लिखा है। १५ अनुष्ठान। १६ नियम। १७ व्यापार। १८ आचार। १९ मङ्ग।

२० कल्पना । २१ वाक्य । २२-अर्षालङ्कारभेद । "सिद्धस्यैव विधानं प्रतु तामाहुर्विध्य लं कृतिम् ।" (च०) किसी जगह सिद्ध विषयका फिरसे विधान होने पर वहाँ विधि अलङ्कार होता है ।

विधिकर (सं० लि०) करोतीति कृ-अच् विधेः करः । विधिकारक, विधानकर्ता ।

विधिकृत (सं० लि०) विधिं करोतीति कृ-किए तुगागमाः । विधिकारक, विधानकर्ता ।

विधिज्ञ (सं० लि०) विधिं ज्ञानातीति ज्ञा-क । १ विधि-दर्शी, विधिको जाननेवाला, शास्त्रोक्त विधानको जानने-वाला । २ रीति जाननेवाला ।

विधित्व (सं० क्ली०) विधेर्भावः त्व । विधिकता भाव या धर्म, विधान ।

विधिरसा (सं० स्त्री०) विधानुमिच्छा विधा-सन्-विधित्स अच् टाप् । विधान करनेकी इच्छा, विधान-प्रणयन करनेकी अभिलाषा ।

विधिरसु (सं० लि०) विधानुमिच्छुः विधा-सन्-विधित्स सनन्तात् उ । विधान करनेमें इच्छुक ।

विधिदर्शनः (सं० लि०) विधिं दृष्टुं शोच्यमस्य दृग्-णनि । सदस्य, निधानवेत्ता । यथादि कार्योंमें एक-सदस्य यह देखनेके लिये नियुक्त किये जाते हैं, कि होता-बाचार्थ आदि ठीक ठीक विधिके अनुकूल काम कर रहे हैं या नहीं ।

विधिद्वय (सं० लि०) विधिना द्वयः । शास्त्रविहित ।

विधिदेशक (सं० पुं०) विधिं दिशतीति दिग्-ण्युल् । विधिदर्शी, सदस्य ।

विधिपाठ (सं० पुं०) मृदंगके चार चर्णोंमेंसे एक चर्ण । चारों चर्णों में हैं—पाठ, विधिपाठ, कूटपाठ और खंड-पाठ ।

विधिपुत्र (सं० पुं०) विधेः पुत्रः । ब्रह्माके पुत्र, नारद ।

विधिपुर (सं० पुं०) ब्रह्माका लोक, ब्रह्मलोक ।

विधिपूर्वक (सं० लि०) विधिः पूर्वं यस्य कन् । जो विधिके अनुसार किया जाय, नियमपूर्वक ।

विधियोधित (सं० लि०) विधिना योधितः । शास्त्रविधि द्वारा यथाया हुआ, शास्त्रसम्मत ।

विधियुक्त (सं० पुं०) विधियोधित यश्च, यद्-यश्च जिसके करनेकी विधि है । जैसे—दर्शपूर्णमास ।

विधियोग (सं० पुं०) विधेर्योगः । विधानानुरूप विधिके अनुसार ।

विधिलोक (सं० पुं०) ब्रह्मलोक, सत्यलोक ।

विधिवत् (सं० अव्यय) विधि इवाद्ये-यति । १ यथाविधि, विधिके अनुसार । कायदेके-मुताधिक । २ जैसा चाहिये, उचित रूपसे ।

विधिवद् (सं० लि०) विधिना यद्भवः । नियमयद्भव ।

विधिवधू (सं० स्त्री०) विधेर्वधूः । ब्रह्माकी पत्नी, सर-स्वती ।

विधियार्ह (सं० पुं०) ब्रह्माकी सवारी, हंस ।

विधिवित् (सं० लि०) विधिं वेत्ति विधि-विद-किप् ।

विधिज्ञ-शास्त्रज्ञ, विधि जाननेवाला ।

विधिशास्त्र (सं० क्ली०) विधिरूपं शास्त्रं । १ व्यवहार-शास्त्र, आईन । २ स्मृतिशास्त्र ।

विधिसार (सं० पुं०) राजभेदः विभिदसारः । (भागवत, १२।१।४)

विधिसंघ (सं० पुं०) सिध-घञ्, संघ, विधिश्च संघश्च । विधि और निषेध ।

विधु (सं० पुं०) विध्यति अनुसरानिति व्यध-कु । १

विष्णु । २ ब्रह्मा । ३ कर्पूर, कर्पूर । ४ एक राक्षस-का नाम । ५ आयुध । ६ वायु । (वंजितघार उपा०) विध्यति विरहिर्णं विध्यते वाहुर्नैति वा व्यध-ताड् (इ-मिदि व्यधीति । उण्, १।२५) इति कुः । ७ चन्द्रमा । ८ पापक्षालन, पाप लुडाना । ९ जल खान । (त्रि०) १० कर्ता । (अक्, १०।५।५।५)

विधुकान्त (सं० पुं०) संगीतका एक ताल । रथकान्त देखो ।

विधुग्राम—चट्टलके अस्तगत एक प्राचीन ग्राम । (भविष्यब्रह्मसं १।५।५६)

विधुत (सं० लि०) वि-धु-क । १ त्यक्त । २ कम्पित ।

विधुति (सं० स्त्री०) वि-धु-कि । १ कम्पन, कांपना । २ निराकृति, निराकरण ।

विधुदार (सं० पुं०) चन्द्रमाको स्त्री, रोहिणी ।

विधुदिन (सं० क्ली०) विधोर्दिनं । चन्द्रमाका दिन, सोमवार ।

विधुवन (सं० क्ली०) वि-धू णिच् ल्युट् लुक् च ध्रुवो-दरादित्वात् इत्ययः । कम्पन, कांपना ।

विधुना—युक्तप्रदेशके इटावा जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम, विधुना तहसीलका सदर। यह रिन्द नदीके किनारे अवस्थित है। गाँवसे एक मील दूर नदी पर एक पुल है। इष्ट इण्डिया रेलपथके आचालदा स्टेशनसे गाँव तक गई एक पक्की सड़कसे यहाँका गाणिज्य चलता है। यहाँ एक प्राचीन दुर्गका खंडहर देखा जाता है। विधुस्तुद (सं० पु०) विधुं तुदति पीडयतीति विधुं तुद (विष्यत्सुदः। पा ३।२।३५) इति ऋस्-मुम्। चन्द्रमाको दुःख देनेवाला, राहु।

विधुवज्जर (सं० पु०) विधोः पञ्जर इव तत्साद्रश्यात्। खड्ग, खाँड़ा।

विधुप्रिया (सं० स्त्री०) विधोश्चन्द्रस्य प्रिया। १ चन्द्रमाकी स्त्री, रोहिणी। २ कुमुदिनी।

विधुवन्धु (सं० पु०) कुमुदका फूल।

विधुर (सं० स्त्री०) विगताधूर्मारो यसमात्, समासे अ। १ फीवहय, मोक्ष। २ कष्ट, दुःख। ३ वियोग, जुदाई। ४ अलग होनेको किया या भाव। (पु०) ५ शत्रु, दुश्मन।

(लिट्) विगता धूः कार्णमारो यसमात्। ६ विकल, व्याकुल। ७ दुःखो। ८ असमर्थ, असक्त। ९ परित्यक्त, छोड़ा हुआ। १० विमूढ़। ११ धराराया हुआ, डरा हुआ।

विधुरता (सं० स्त्री०) विधुर-तल्-टाप्। विधुरका भाव, क्लेश।

विधुरत्व (सं० स्त्री०) विधुरता, क्लेश।

विधुरा (सं० स्त्री०) विधुर-टाप्। १ रसाला। २ कानोंके पीछेकी एक स्नायु-ग्रन्थि। 'जक्र दंमर्माणि चतुर्धो धमन्पोऽष्टी मातृका द्वे रुकाटिके द्वे विधुरे'

(सुश्रुत ३।६)

भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि दोनों कानोंके पीछे नीचे आध आध अंगुलके विधुर नामक दो स्नायुमर्म हैं। ये मर्म वैकल्पिक हैं। इनके पीड़ित या खराब होनेसे ध्रुवण-शक्तिका हास हो जाता है। ३ कातर, व्याकुल, पीड़ित। विधुरिता (सं० लिट्) विधुर तारकादित्वादितच्। विरह-विह्वला, चिरहकातर।

विधुरीकृत (सं० लिट्) निष्पिष्ट।

विधुलि—विन्ध्यपादमूलस्य एक ग्राम।

(भविष्यत्पुत्राणाम् ५।६५)

विधुवदनी (सं० स्त्री०) चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्री, सुन्दरी स्त्री।

विधुवन (सं० स्त्री०) विधु व्युट् कुटादित्वात् साधु। कम्पन, काँपना।

विधूत (सं० लिट्) विधू-क्त। १ कम्पित, काँपता हुआ। २ हिलता हुआ, डोलता हुआ। ३ त्यक्त, छोड़ा हुआ।

४ दूरीकृत, हटाया हुआ। ५ निःसारित, निकाला हुआ, बहार किया हुआ।

विधूति (सं० स्त्री०) विधू-क्तिन्। कम्पन, काँपना।

विधूनन (सं० स्त्री०) विधू-णिच्-व्युट्। कम्पन, काँपना। पर्याय—विधुवन, विधुनन।

विधूप (सं० लिट्) धूपरहित। (मार्क०पु० १।१।१०५)

विधूम (सं० लिट्) विगतो धूमो यसमात्। धूमरहित, बिना धूपका।

विधूम (सं० लिट्) धूसरवर्ण, धूमिल या मटमैले रंगका।

विधूरता (सं० स्त्री०) विधूरस्य भावः तल्-टाप्। विधुरत्व, विधुरका भाव या धर्म।

विधूत (सं० स्त्री०) विधू-क्त। विशेषरूपसे धूत, आक्रान्त।

विधूति (सं० स्त्री०) विधू-क्तिन्। १ विचारण। २ देवता।

भागवतमें लिखा है, कि सभी देवता विधूतिके पुत्र हैं; इसलिए उनके नाम धैधूतय हुए हैं। एक समय जब वेद नष्ट हो गया था, तब उन्होंने अपना तेजोबल धारण किया था।

(पु०) ३ सूर्यवंशीय एक राजाका नाम। विधूतिके पुत्र हिरण्यनाभ थे। (भागवत ६।१।२१)

विधूष्टि (सं० स्त्री०) प्रणाली, व्यवस्थित नियमादि।

(शाङ्खा० शी० ५।२।११)

विधेय (सं० लिट्) विन्ध्या (अञ्जो यत्)। पा ३।१।६७ इति यत् (ईत्-यति)। पा ३।१।६५ इति अति ईत्। १ विधानके योग्य, जिसका विधान या अनुष्ठान उचित हो।

२ जिसका विधान हो या होनेवाला हो, जो किया जाय

या क्रिया जानेवाला हो। ३ वचन या आह्राके वशीभूत, अधीन। ४ जो नियम या विधि द्वारा जाना जाय, जिसके करनेका नियम या विधि हो। ५ वह (शब्द या वाक्य) जिसके द्वारा किसीके सम्बन्धमें कुछ कहा जाय। जैसे,—“गोपाल सज्जन है” इस वाक्यमें “सज्जन है” विधेय है, क्योंकि वह गोपालके सम्बन्धमें कुछ विधान करता है अर्थात् उसकी कोई विशेषता बताता है। न्याय और व्याकरणमें वाक्यके दो मुख्य भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय। जिसके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है, वह “उद्देश्य” कहलाता है और जो कुछ कहा जाता है, वह “विधेय” कहलाता है।

विधेयता (सं० स्त्री०) विधेयस्य भावः विधेय तल् टाप् ।
१ विधानकी योग्यता या औचित्य । २ विधेयका भाव या धर्म, अधीनता ।

विधेयत्व (सं० क्ली०) विधेय-भावे त्व । विधेयता, विधेय का भाव या धर्म ।

विधेयात्मा (सं० पुं०) विष्णु । (भारत १३।२।४७६)

विधेयाविमर्ष (सं० पुं०) विधेयस्य अविमर्षो यत्न । साहित्यमें एक वाक्यद्वय । यह विधेय अंगकी अप्रधान स्थान प्राप्त होने पर होता है। जो बात प्रधानतः कहनी है, उसका वाक्य-रचनाके बीच द्वा रहना । प्रत्येक वाक्यमें विधेयकी प्रधानताके साथ निर्देश होना चाहिये। ऐसा न होना दोष है। ‘विधेय’ शब्दके समासके बीच पड़ जानेसे या विशेषणरूपसे आ जाने पर प्रायः यह दोष होता है। जैसे,—किसी वीरने विग्ग हो कर कहा—“मेरी इन व्यर्थ फूलो हुई बाहोंसे क्या।” इस वाक्यमें कहनेवालेका अविमर्ष तो यह है, कि मेरी बाहों व्यर्थ फूलों हैं; पर “फूलो हैं” के विशेषण रूपमें आ जानेसे विधेयकी प्रधानता नहीं स्वप्न होती। दूसरा उदाहरण—“सुख रामानुजके सामने राक्षस क्या उठरेगी ?” यहाँ कइना चाहिये था कि—“मे रामका अनुज हूँ” तब रामके सम्बन्धसे लक्ष्मणकी विशेषता प्रकट होती।

विधेयिता (सं० स्त्री०) विधेयता, विधेयत्व ।
(काम० नीति १६।७)

विधमापन (सं० लि०) १ अनिन्संयोगज्ञक । २ विकोरण ।
(वागभट १०।१२)

विध्य (सं० लि०) १ वेधने योग्य, छिद्ने योग्य । २ छिद्य, जिससे वेधना हो, जो छेदा जानेवाला हो ।

विध्यपराध (सं० पुं०) विधिभ्रष्ट ।
(भाववहायन शीतो ३।१०।१)

विध्यपाश्रय (सं० पुं०) १ वह जो अच्छी तरह लिलो हुई विधिकी अनुसरण करता हो । २ विधिकी आश्रय करनेवाला ।

विध्यामास (सं० पुं०) एक अर्थालङ्कार । जहाँ घोर अनिष्टकी सम्भावना दिवाते हुए अनिच्छापूर्वक विधिकी कल्पना की जाती है, उसी जगह यह अलङ्कार होता है।
(साहित्यद० १० परि०)

विध्वंस (सं० पुं०) विध्वंस-धञ् । १ विनाश, नाश, बरवादी । २ उपकार । ३ घैर । ४ अक्षर । ५ घृणा । ६ वैमनस्य ।

विध्वंसक (सं० लि०) १ अपकारक, घुराई करनेवाला । २ अपमानकारी, अपमान करनेवाला । ३ ध्वंसकारी, नाश करनेवाला ।

विध्वंसन (सं० लि०) १ ध्वंसकारी, नाश करनेवाला । (क्ली०) २ ध्वंस, नाश, बरवादी । (दिव्या० १५०।२४)

विध्वंसित (सं० लि०) विध्वंस-णिच्-क । १ नष्ट किया हुआ, बरबाद किया हुआ । २ अपकारित, अपकार किया हुआ ।

विध्वंसित् (सं० लि०) विध्वंसयितुं शीलमस्य विध्वंस-णिनि । १ नाशकारी, बरबाद करनेवाला । २ अपकारक विध्वंसितुं शील यस्य । ३ ध्वंसशील ।

विध्वस्त (सं० लि०) विध्वंस-त्-क । १ विनष्ट किया हुआ, बरबाद किया हुआ । २ अपहृत, अपकार किया हुआ ।

विनशित् (सं० लि०) विनष्टुं शील यस्य । विनाशशील, जिसका नाश हो ।

विनङ्गस (सं० पुं०) स्तोता, स्तवकारी, वह जो स्तुति करता हो ।

विनन्योतिस् (सं० लि०) १ उज्ज्वलकान्ति । २ विनय ज्योतिषका प्रामादिक पाठ ।

विनत (सं० लि०) वि-नम् क । १ प्रणत, अथनत । २ भुगत डेटा पड़ा हुआ, यक । ३ शिस्त, शिष्ट । ४ सङ्घटित,

विधुना—युकप्रदेशके इटाया जिलान्तर्गत एक गाण्डग्राम, विधुना तटसोलका सदर। यह रिन्द नदीके किनारे अवस्थित है। गाँवसे एक मील दूर नदी पर एक पुल है। इष्ट इण्डिया रेलपथके आंचालदा स्टेशनसे गाँव तक गई एक पक्की सड़कसे यहाँका वाणिज्य चलता है। यहाँ एक प्राचीन दुर्गका खंडहर देखा जाता है। विधुनुद (सं० पु०) विधुं नुदति पीडयतीति विधुंनुद (विध्यस्वोत्सुद।। पा ३।२।३५) इति लस्-मुम्। चन्द्रमाको दुःख देनेवाला, राहु।

विधुपञ्जर (सं० पु०) विधोः पञ्जर इव तत्सादृश्यात्। खड्ग, छाँड़ा।

विधुप्रिया (सं० स्त्री०) विधोश्चन्द्रस्य प्रिया। १ चन्द्रमाकी स्त्री, रोहिणी। २ कुमुदिनी।

विधुपन्धु (सं० पु०) कुमुदका फूल।

विधुर (सं० स्त्री०) विगताधूमारो यस्मात्, समासे अ। १ कैवल्य, मोक्ष। २ कष्ट, दुःख। ३ वियोग, लुटार। ४ अलग होनेको किया या भाव। (पु०) ५ शत्रु, दुश्मन।

(त्रि०) विगता धूः कार्यामारो यस्मात्। ६ विकल, व्याकुल। ७ दुःखी। ८ असमर्थ, असक्त। ९ परित्यक्त, छोड़ा हुआ। १० विमूढ़। ११ घबराया हुआ, डरा हुआ।

विधुरता (सं० स्त्री०) विधुर-तल्-टाप्। विधुरका भाव, क्रोश।

विधुरत्व (सं० स्त्री०) विधुरता, क्रोश।

विधुरा (सं० स्त्री०) विधुर-टाप्। १ रसाला। २ कानोंके पीछेकी एक स्नायु-ग्रन्थि। 'जम्बूद्वीपमर्माणि चतस्रो धमनोऽष्टौ मातृका द्वे रुकाटिके द्वे विधुरे' (छा. ३।३।६)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि दोनों कानोंके पीछे नीचे आध आध अंगुलके विधुर नामक दो स्नायुग्रन्थि हैं। ये मर्म वैकल्पिक हैं। इनके पीड़ित या खराब होनेसे श्रवण-शक्तिका ह्रास हो जाता है। ३ कातर, व्याकुल, पीड़ित। विधुरिता (सं० त्रि०) विधुर तारकादिवादिच्च। विरह-विह्वला, विरहकातर।

विधुरीकृत (सं० त्रि०) निष्पिष्ट।

विधुलि—विन्ध्यपादमूलस्थ एक ग्राम।

(भविष्यत्पत्राण० पा ६५)

विधुवदनी (सं० स्त्री०) चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्री, सुन्दरी स्त्री।

विधुवन (सं० स्त्री०) वि-धु-ल्युट् कुंटादित्वात् साधु। कम्पन, काँपना।

विधूतं (सं० त्रि०) वि-धू-क्त। १ कम्पित, काँपता हुआ।

२ हिलता हुआ, डोलता हुआ। ३ त्यक्त, छोड़ा हुआ।

४ दूरीकृत, हटाया हुआ। ५ निःसारित, निकाला हुआ, बहार किया हुआ।

विधूति (सं० स्त्री०) वि-धू-क्तिन्। कम्पन, काँपना।

विधूनन (सं० स्त्री०) वि-धू-णिच्-ल्युट्। कम्पन, काँपना। पर्याय—विधुवन, विधुनन।

विधूप (सं० त्रि०) धूपरहित। (मार्क० पु० ५।१।१०५)

विधूम (सं० त्रि०) विगतो धूमो यस्मात्। धूपरहित, बिना धूपका।

विधूप्र (सं० त्रि०) धूपस्वरवर्ण, धूमिल या मटमैले रंगका।

विधूरता (सं० स्त्री०) विधूरस्य भावः तल्-टाप्। विधुरत्व, विधुरका भाव या धर्म।

विधूत (सं० स्त्री०) वि-धू-क्त। विशेषरूपसे घृत, आक्रान्त।

विधूति (सं० स्त्री०) वि-धू-क्तिन्। १ विधारण। २ देवता।

भागवतमें लिखा है, कि सभो देवता विधूतिके पुत्र हैं; इसलिये उनके नाम विधूतय हुए हैं। एक समय जब वेद नष्ट हो गया था, तब उन्होंने अपना तेजोबल धारण किया था।

(पु०) ३ सूर्यवंशीय एक राजाका नाम। विधूतिके पुत्र हिरण्यनाभ थे। (भागवत ६।१।२३)

विधूष्टि (सं० स्त्री०) प्रणाली, व्यवस्थित नियमादि। (शाङ्खा० शी० पा २।५।३)

विधेय (सं० त्रि०) वि-धा (अच्) यत्। पा ३।१।६७ इति यत् (इत्-यत्)। पा ६।५।६ इति अति इत्। १ विधानके योग्य, जिसका विधान या अनुष्ठान उचित हो। २ जिसका विधान हो या होनेवाला हो, जो किया जाय

या क्रिया जानेवाला हो। ३ वचन या आह्राके वशीभूत, अधीन। ४ जो नियम या विधि द्वारा जाना जाय, जिसके करनेका नियम या विधि हो। ५ वह (शब्द या वाक्य) जिसके द्वारा किसीके सम्बन्धमें कुछ कहा जाय। जैसे,—“गोपाल सज्जन है” इस वाक्यमें “सज्जन है” विधेय है, क्योंकि वह गोपालके सम्बन्धमें कुछ विधान करता है अर्थात् उसकी कोई विशेषता बताता है। न्याय और व्याकरणमें वाक्यके दो मुख्य भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय। जिसके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है, वह “उद्देश्य” कहलाता है और जो कुछ कहा जाता है, वह “विधेय” कहलाता है।

विधेयता (सं० स्त्री०) विधेयस्य भावः विधेय तल्ल टापु।
१ विधानकी योग्यता या औन्नत्य। २ विधेयका भाव या धर्म, अधीनता।

विधेयत्व (सं० क्ली०) विधेय-भावे त्व। विधेयता, विधेय का भाव या धर्म।

विधेयार्त्तमा (सं० पुं०) विष्णु। (भारत १३।१४।७६)

विधेयाविवर्ण (सं० पुं०) विधेयस्य अविवर्णो यत्। साहित्यमें एक वाक्यद्वय। यह विधेय अंशको अग्रधान स्थान प्राप्त होने पर होता है। जो बात प्रधानतः कहनी है, उसका वाक्य-रचनाके बीच द्वा रहना। प्रत्येक वाक्यमें विधेयकी प्रधानताके साथ निर्देश होना चाहिये। ऐसा न होना दोष है। ‘विधेय’ शब्दके समासके बीच पड़े जानेसे या विशेषणरूपसे आ जाने पर प्रायः यह दोष होता है। जैसे,—किसी चीरने बिग्न हो कर कहा—“मेरी इन व्यर्थ फूली हुई बाँहोंसे क्या।” इस वाक्यमें कहनेवालेका अभिप्राय तो यह है, कि मेरी बाँहें व्यर्थ फूली हैं, पर ‘फूली हैं’ के विशेषण रूपमें आ जानेसे विधेयकी प्रधानता नहीं स्पष्ट होती। दूसरा उदाहरण—मुक रामानुजके सामने राक्षस क्या ठहरेंगे ?” यहां कदना चाहिये या कि—“मैं रामका अनुज हूँ” तब रामके सम्बन्धसे लक्ष्मणकी विशेषता प्रकट होती।

विधेयिता (सं० स्त्री०) विधेयता, विधेयत्व।

(काम० नीति १६।७)

विधमापन (सं० लि०) १ अनिसंयोगक। २ विकारण। (वागभट १०।१२)

विध्य (सं० लि०) १ घेधने योग्य, छिद्ने योग्य। २ छिद्य, जिसे घेधना हो, जो छेदा जानेवाला हो।

विध्यपराध (सं० पुं०) विधिघ्नत्।
(आश्वलायन शीत० ३।१०।१)

विध्यप्राधय (सं० पुं०) १ वह जो अच्छी तरह लिखी हुई विधिका अनुसरण करता हो। २ विधिका आश्रय करनेवाला।

विध्याभास (सं० पुं०) एक अर्थात्कार। जहां घोर अनिष्टकी सम्भावना दिखाने हुए अनिच्छापूर्वक विधिकी कल्पना की जाती है, उसी जगह यह अलङ्कार होता है। (साहित्यद० १० परि०)

विध्वंस (सं० पुं०) विध्वंस-धम्। १ विनाश, नाश, बरबादी। २ उपकार। ३ घैर। ४ असुर। ५ घृणा। ६ वैमनस्य।

विध्वंसक (सं० लि०) १ अपकारक, बुराई करनेवाला। २ अपमानकारी, अपमान करनेवाला। ३ ध्वंसकारी, नाश करनेवाला।

विध्वंसन (सं० लि०) १ ध्वंसकारी, नाश करनेवाला। (कौ०) २ ध्वंस, नाश, बरबादी। (विध्या० १५०।२४)

विध्वंसित (सं० लि०) विध्वंस-णिच्-क्त। १ नष्ट किया हुआ, बरबाद किया हुआ। २ अपकारित, अपकार किया हुआ।

विध्वंसित् (सं० लि०) विध्वंसयित् शीलमस्य विध्वंस-णिनि। १ नाशकारी, बरबाद करनेवाला। २ अपकारक विध्वंसित् शील यस्य। ३ ध्वंसशील।

विध्वस्त (सं० लि०) विध्वंस-क्त। १ विनष्ट किया हुआ, बरबाद किया हुआ। २ अपहत, अपकार किया हुआ।

विनिश्चिन् (सं० लि०) विनिश्चिन् शीलं यस्य। विनाशशील, जिसका नाश हो।

विनङ्कस (सं० पुं०) स्तोता, स्तवकारी, वह जो स्तुति करता हो।

विनज्योतिस (सं० लि०) १ उज्वलकाम्ति। २ विनय ज्योतिषका प्रामादिक पाठ।

विनत (सं० लि०) विनम् क। १ प्रणत, अवनत। २ भुग्न टेढ़ा पड़ा हुआ, चक। ३ शिथिल, शिथ। ४ सङ्कचित,

सिकुंडा हुआ । ५ विनीत, नम्र । (पु०) ६ सुप्रोवकी सेनाका एक बन्दर । ७ शिव, महादेव ।

विनतक (स० पु०) एक पर्वतका नाम ।

विनता (स० स्त्री०) १ दक्ष प्रजापतिकी कन्या जो कश्यपकी स्त्री और गरुड़की माता थी । २ प्रमेदपीडकामेद, एक प्रकारका फोड़ा जो प्रमेद या बहुमूलके रोगियोंकी होता है । जिस स्थान पर यह फोड़ा होता है, वह स्थान सुरदा हो जानेके कारण नील पड़ जाता है । सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रमेदके अन्तर्गत इसकी चिकित्सा लिखी है । यह प्रायः घातक होता है । इसमें अंग बहुत तेजीके साथ सड़ता चला जाता है । यदि बढ़नेके पहले ही यह स्थान काट कर अलग कर दिया जाये, तो रोगी बच सकता है । ३ एक राक्षसी जो प्याधि लाती है । (महाभारत) ४ एक राक्षसी जिसे राघवनें सीताकी सम्भानेके लिये नियुक्त किया था ।

(ति०) ५ कुबड़ी या खज्ज ।

विनतात्मज (स० पु०) १ अक्षय । २ गरुड़ ।

विनतामन्दन (स० पु०) विनतात्मज देखो ।

विनताम्र (स० पु०) सुधुम्नके पुत्रका नाम । (हरिवंश)

विनतासुनु (स० पु०) विनताया सुनु पुत्रः । १ अक्षय । २ गरुड़ ।

विनति (स० स्त्री०) १ विनय, नम्रता । २ शिष्टता, भद्रता ।

३ सुशीलता । ४ भुक्ताव । ५ निर्धारण, रोक । ६ दमन, शासन, दण्ड । ७ शिक्षा । ८ परिशोध । ९ अनुनय ।

१० विनियोग ।

विनती (स० स्त्री०) विनति देखो ।

विनतेह—सिंहलद्वीपकी राजधानी कान्दी नगरका उपकण्ठस्थित एक गण्डप्राम । यहांके प्रसिद्ध दाघोचयं शाक्यबुद्धकी चर्यास्थि प्रोथित है । इसके अलावा यहां बौद्धकीर्तिके और भी बहुतेरे निदर्शन मिलते हैं ।

विनद (स० पु०) विशेषण नदति शब्दायते पत्रफलादिनेति नदु-अच् । विन्याक वृक्ष, एक प्रकारका पेड़ ।

विनदिव्र (स० ति०) १ शब्दकारो । २ वज्रके शब्दके समान शब्द । (भारत वनपर्व)

विनमन (स० स्त्री०) १ नम्रीकरण, नम्र करना, भुक्ताना ।

२ लचाना । (सुभूत सं० ७ अ०)

विनम्र (स० स्त्री०) १ तगरका फूल । (ति०) २ भुक्ता हुआ । ३ विनीत, सुशील ।

विनम्रक—विनम्र देखो ।

विनय (स० पु०) वि-नी-अच् । १ शिक्षा । २ प्रणति, नम्रता, आजिजी । विनयगुण विधासे उत्पन्न हो कर सत्पालमें गमन करता है अर्थात् विद्वान् पुत्रके विनयी होनेसे ही उसे सत्पाल कहते हैं । संतर्बभावाम्न होनेसे धनप्राप्तिको सम्भावना तथा उस धनसे धर्म और सुख होता है । विधा रहनेसे ही जो केवल विनय स्वयं आ कर यहां उपस्थित होती है, सो नहीं, यह पूज्यतम पदों तथा सुद्धाचारो वेदविद्ब्राह्मणोंके सत्कारमें सर्वदा नियुक्त रह कर सीधना होता है । इस प्रकार क्रमशः विनीत होनेसे सारी पृथिवीको भी वशतापन्न किया जाता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं । यहां तक, कि राज्यम्रद निर्वासित व्यक्ति भी विनय द्वारा जगतको वशीभूत कर अपना राज्य पुनः प्राप्त कर सकता है । फिर जो, इसके प्रतिकूल है अर्थात् जिसमें विनय नहीं है वह चाहे कितना ही धनी क्यों न हो उसे राज्यम्रद होना ही पड़ता है ।

३ प्राधना, विनती । ४ नीति । ५ बला, हरियाण ।

(पु०) ६ धणिक, बनिया । विशिष्टो नयः नीतिः विनयं ।

७ दण्ड, शास्ति, सजा । विशिष्ट, नीतिके अवलम्बन

पर इसका विधान हुआ करता है । परस्पर विवाद

करनेवालोंमें पूर्ववर्त्ती यदि अधिक चाकपाठ्योत्पादक

हो तो भी अर्थात् उसके अत्यन्त अश्लील वाक्यादि

कहने पर भी पूर्ववर्त्ती विवाद छोड़ा करनेवालेके लिये

फटोर दण्ड कहा गया है अर्थात् ध्यूनाधिकरूपमें दोनों

को ही दण्ड होगा, क्योंकि यहां पर दोनों ही असत्कारी

हैं । फिर यदि दोनों ही एक समय विवाद आरम्भ करे,

तो दोनोंको समान दण्ड मिलेगा ।

(ति०) ८ क्षिप्त । ९ निवृत्त । १० विजितेन्द्रिय ।

विशेषण नयति प्रापयतीति विनयः । ११ विशेष प्रकार

से प्रापक । १२ पृथक्कर्त्ता । १३ विनयी । विनय-

(शास्त्रज्ञान जग्य संस्कारमेद) युक्त । १४ इन्द्रिय संयम,

जितेन्द्रिय । ५ विनति देखो ।

विनयक (स० पु०) विनायक ।

विनयकर्मज्ञ (स० स्त्री०) १ विनयविद्या । २ शिक्षा, ज्ञान ।

विनयप्राहिन (सं० लि०) विनयं गृह्णातीति विनय-प्रद-
णिनि । विधेय, वक्ष्य । 'विधेये विनयप्राहो वचने-
स्थित आश्रयः ।' (अमर)

विनयज्योतिस् (सं० पु०) एक मुनिका नाम ।

(कथास० ७२।२०१)

विनयता (सं० स्त्री०) विनयस्य भावः तत्त्वात् । विनय
का भाव या धर्म, विनय ।

विनयदेव (सं० पु०) एक प्राचीन कविका नाम ।

विनयधर (सं० पु०) पुरोहित । (दिग्वा० २१:१७)

विनयन (सं० लि०) १ विशेषरूपसे नयन । २ विनि-
मय ।

विनयपत्र (सं० स्त्री०) विनयसूत्र, दरक्षास्त ।

विनयपाल—लोकप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता ।

विनयपिटक—आदि बौद्धशास्त्रभेद । आदि बौद्धशास्त्र-
समूह तीन भागोंमें विभक्त है—विनय, सूत्र और अभि-
धर्म । ये तीनों शास्त्र विपिटक या तीन पिटारा नामसे
प्रसिद्ध हैं । इन तीन पिटारोंमें बुद्ध और बुद्धके उपदेश-
मूलक तत्त्व आदिके सम्बन्धमें जो कुछ जानने लायक
विषय हैं, वे सभी संरक्षित हैं ।

बुद्धदेव अपने शिष्यमण्डली और उनके कर्त्तव्य
अर्थात् धमण या भिक्षु धर्मके सम्बन्धमें जो उपदेश
दे गये हैं, उन्हीं उपदेशोंका विनयपिटकमें समावेश
किया गया है । किस तरह विनयपिटक सङ्कलित
हुआ, इसके सम्बन्धमें नाना बौद्ध ग्रन्थोंमें ऐसी ही बात
मिलती है—बुद्धदेवके महापरिनिर्वाणके कुछ समय
बाद उनके प्रधान शिष्य महाकश्यपने सुना, कि शारि-
पुत्रकी मृत्युके साथ ८०००० भिक्षुओं, मौरालायतकी
मृत्युके बाद ७०००० हजार भिक्षुओं और तपागतके
परिनिर्वाणके समय १८००० भिक्षुओंने देहत्याग किया
है । इस तरह प्रधान प्रधान सब भिक्षुओंके देहत्याग
करनेके बाद तपागतके उपदिष्ट विनय, सूत्र और मातृका
या धर्मधर्म फिर कोई शिक्षा नहीं करता था । इस
कारणसे बहुतसे लोग नाना रूपसे शैवारोप करते हैं । इन
गृह्यद्वेषकोंके मिटानेके लिये महाकश्यपने निर्वाण स्थान
कुशिनगरमें समीको एक करनेकी इच्छा प्रकट की ।
किन्तु इसी समय स्थविर गवांपतिके निर्वाणलाभ करने

के कारण महाकश्यपने सोचा, कि मगधपति अजातशत्रु
यहाँके एक अनुरक्त भक्त हैं । उनकी राजधानी राजगृहमें
एकत्र होनेसे भोजन आदिकी तटपारी उनके यहाँ हो
सकेगी । इस विचारके अनुसार पांच सौ स्थविर राज-
गृहके निःसंशयती वैभारशैलके सत्तपन्नो (सत्तपर्णो) गुहा-
में एकत्र हुए । इस महासभाके महाकश्यपके सभापति
हुए । उनके अनुमतिक्रमसे उपालिने बुद्धोपदिष्ट विनय
प्रकाश किया । उपालिने कहा, कि भिक्षुओंके लिये
भगवान्ने विनय प्रकाश किया है । यह विनय ही भग-
वान्का उपदेश, यही धर्म, यही नियम है । पराजिह्व,
संघातिदेश, दुष्यनियत, त्रिंशत्त्रिंशत्सर्गाव प्रापद्विचत्त, षट्-
शाब्दीय धर्म, सत्ताधिकरण ये विशेष लक्ष्य हैं । उप-
सम्पदालाभ या संघमें प्रवेश करनेकी योग्यता और
अयोग्यता, पापसोकार, निर्जनवास, भिक्षुके पालनीय
धर्म और पूजाकी विधि या विनयमें लिपिवद्ध हैं ।

उपालि और भानन्द, विनय और सूत्रके प्रवक्ता कहे
जाते थे सही, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि अन्याय्य
स्थविरोंने भी विनय और सूत्रसंग्रहमें साहाय्य किया था
इसके बाद कालाशोकके राजत्वके समय वैशालीके
बलिफाराम नामक स्थानमें ७०० भिक्षुओंने एकत्र मिल
कर फिर एक सभाका आयोजन किया । इस सभामें
पश्चिम-भारत और पूर्व भारतके भिक्षुओंमें यथेष्ट मत-
भेद उपस्थित हुआ था । वृज्जिपुत्र सब भिक्षुओंने क्रुद्ध
हो कर दलबन्धु कर ली । जो ही इस सभामें भी विनय
संगृहीत हुआ था ।

विक्रम पक्षीने और एक महासंघकी योजना की ।
इस सभामें जो सब विषय गृहीत हुए थे, उनमें कितनों
ही का इस सभामें जण्डन किया गया । इसी कारणसे
मदीशासक और महासर्वास्तिथादियोंके संकलित विनय-
के साथ महासाधिकोंके विनयमें कुछ कुछ पार्ष्वप
द्विर्थाई देता है ।

जो ही सम्राट् अशोकके समय विनयपिटक यथा-
रोति लिपिवद्ध हुआ था यह हम मियदर्शकोंके भाषा-अनु-
शासन लिपिसे जान सकते हैं । भोटके दुव्यग्रन्थमें चार
प्रकारके विनयोंका उल्लेख है । जैसे—विनयवस्तु,
विनयविमङ्ग, विनयसूत्रक और विनयोत्तरग्रन्थ । ये सभी

पाली भाषामें लिखे गये हैं। भोट और नेपालसे महा-
वस्तु नामक एक संस्कृत बौद्ध-ग्रन्थका आविष्कार हुआ
है। इस ग्रन्थके मुख्यग्रन्थके बाद "आर्य्यमहासांघिकानां
लोकोत्तरवादिनां मध्यदेशिकानां पाठेन विनयपिट-
कस्य महावस्तु आदि" वाक्य लिखा है—अर्थात् मध्य-
देशवासो लोकोत्तरवादी आर्य्य महासांघिकोंके पढ़नेके
लिपे विनयपिटककी महावस्तु आदि। इस तरह लिखा
रहनेसे महावस्तुके भी लोग विनयपिटकके अन्तर्गत ही
समझते हैं। किन्तु इस ग्रन्थमें विनयपिटकका प्रति-
पाद्य विषय विवृत न होनेसे बहुतेरे इसको विनयपिटक-
के अन्तर्गत मानने पर तय्यार नहीं हैं।

विनयमहादेवी—विकलिङ्गके गङ्गवंशिय नरपति कामार्णव-
की महिषी। ये वैदुष्यवंशीय राजकन्या थीं।

विनयवत् (सं० लि०) विनय अस्त्यथे मनुष्यस्य च।
विनयवशिष्ट, विनीत।

विनयवती (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो नम्र हो।

विनयवान (सं० लि०) विनयवत् देवो।

विनयविजय—हैमलघुप्रक्रियावृत्तिके प्रणेता तथा तेजपाल-
के पुत्र। ये जैनमतावलम्बी थे।

विनयशील (सं० लि०) विनययुक्त, नम्र, सुशील, शिष्ट।

विनयसागर—एक पण्डित। इनके पिताका नाम भीम
और शुभका कल्याणसागर था। इन्होंने कच्छके भोज-
राजके लिये भोजव्याकरण लिखा।

विनयसिंह—चम्पाके अन्तर्गत नयनी नगरके राजा।

(भविष्य ब्र० ल० १२।५५)

विनयसुन्दर—किराताज्जुनीयप्रदीपिकाके रचयिता। ये
विनयराम नामसे भी प्रसिद्ध थे।

विनयसूत्र (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी विनय और सूत्रविधि।

विनयद्वयसमिति—दशवैकालिकसूत्रवृत्तिके रचयिता।

विनयस्य (सं० लि०) विनये तिष्ठतीति स्था-क। आश्वा-
कारी। पर्याय—विधेय, आश्रय, वचनस्थित, वश्य,
प्रणय। (हेम)

विनयसोमिनी (सं० स्त्री०) एक राजकुमारीका नाम।
(कथासरित् २।४।१५५)

विनया (सं० स्त्री०) घाटयालक, बरियारा।

विनयादित्य (सं० पु०) काश्मीरराज जयापोडका एक
नाम। (राजतरङ्गणी ४।५।१६)

विनयादित्य—पश्चिम चालुक्यवंशीय एक राजा। पूर्वा-
नाम—विनयादित्य सत्याश्रय श्रोत्रुष्यीवल्लभ ई।
इन्होंने ६६६ ई०में अपने पिता १म विक्रमादित्यके सिंहा-
सन पर आरोहण किया था। अपने राजत्वकालके
ग्यारहसे १४ वर्षके बीच इन्होंने द्वितीय नरसिंह वर्म-
परिचालित पल्लवोंके और कलभ्र, केरल, ईदय, विल-
मालय, चोल, पाण्ड्य आदि जातियोंकी पदान्त किया।
ये उत्तर देश जीत कर सार्चमीम या चक्रवर्ती राजा
बन बैठे। सन् ७३३ ई०में इनकी मृत्युमें बाद इनके पुत्र
विजयादित्य-राजा हुए।

विनयादित्य—होयशालवंशीय एक राजा। इन्होंने पश्चिम
चालुक्यराज दृष्टे विक्रमादित्यके अधीनस्थ सामन्तरूपसे
कोंकण प्रदेश और भद्रद्वयल, तलकाड और सावित्र
जिलेके मध्यवर्ती प्रदेशों पर शासन किया। ये गङ्ग-
वंशीय कोङ्कनिधर्मामके समसामयिक थे। इस समय
मैसूरका गङ्गावाही जिला इनके अधिकारमें था। ये सन्
११०० ई० तक जीवित थे। इनकी पत्नीका नाम केलेश
देवी था।

विनयितृ (सं० पु०) विष्णु। (भारत १३।१५।६५)

विनयिन् (सं० लि०) वि-नी-इन्। विनययुक्त, विनीत,
शिष्ट, नम्र।

विनहिन् (सं० लि०) १ सामगानसम्बन्धी। २ उच्च
शब्दकारी, बहुत गरजने या चिल्लानेवाला।

विनवन (हि० क्रि०) विनवना देवो।

विनशन (सं० स्त्री०) विनश्यति अन्तर्धाति सरस्वत्य-
क्षेति, वि-नश-अधिकरणे ल्युट्। १ कुक्षेत्र। वि-
नश भाषे ल्युट्। २ विनाश, नष्ट होना।

विनश्वर (सं० लि०) वि-नश-वरच्। अनित्य, सप्त
दिन या बहुत दिन न रहनेवाला, नष्ट होनेवाला, ध्वंस-
शील, अचिरस्थायी।

विनश्वरता (सं० स्त्री०) विनश्वरस्य भावाः तल्लटाप।
विनश्वरत्व, अनित्यता, अचिरस्थायित्व।

विनष्ट (सं० लि०) वि-नश क, ततो परत्वं तस्य
ट। १ नाशाश्रय, नाशको प्राप्त, जो बरवाद हो गया
हो, जिसका अस्तित्व मिट गया हो। २ पतित,
जिसका आचरण विगड़ गया हो, भ्रष्ट। ३ मृत, मरा

हुआ। ४ क्षयित, जो विकृत या खराब हो गया हो, जो व्यवहारके योग्य न रह गया हो, जो निरुत्तम हो गया हो। ५ अतीत, जो बीत गया हो।

विनष्टतेजस् (सं० लि०) विनष्ट तेजोवस्थ। तेजोहीन, जिसका तेज नष्ट हो गया हो।

विनष्टि (सं० स्त्री०) चिन्नाश-क्तिच्। १ विनाश। २ लोप। ३ पतन।

विनस (सं० लि०) विगता नासिका यस्य, नासिका शब्दस्य नसादेशः। गतनासिक, नासिकाहीन, जिससे नासिका न हो, विना नाकका, नकटा। -पर्याय—विप्र, विप्र, विनाशक।

विना (सं० अर्थ०) वि (विनश्भ्यां नानाज्ञौ न सह। पा ५।२।२७) इति ना। १ यज्जन। पर्याय—पृथक्, अन्तरेण, अन्ते, द्विदक, नाना। (अमर) २ व्यतिरेक, छोड़ कर, अतिरिक्त, सिवा। ३ अभावमें, न रहनेकी अवस्थामें, दगैर।

(पृथक् विनानानामिस्तृतीयान्यतरस्यां। पा २।३।२) पृथक्, विना और नाना शब्दके योगमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है।

विनाशत (सं० लि०) विना अन्तरेण शतम्। त्यक्, छोड़ा हुआ।

विनाशति (सं० स्त्री०) त्वाग, व्यतिरेक।

विनाशद—एक प्राचीन नगरका नाम।

विनाट (सं० पुं०) चर्मनाली, शैली। (शतपथब्रा० ५।३।२।६) २ मद्यप।

विनाडिका (सं० स्त्री०) विगता नाडिका यया। एक घड़ोका सांडवाँ भाग, पल। दश गुरु अक्षर उच्चारण करनेमें जो समय लगता है, उसे प्राण कहते हैं। दश प्राणमें एक विनाडिका काल होता है।

विनाडो (सं० स्त्री०) विनाडिका नामक कालमेद। (बृहत्सं० २ अ०)

विनाथ (सं० लि०) विगतः नाथो यस्य। विगतनाथ, प्रसुरहित, जिसका कोई रक्षक न हो, अनाथ।

(रामायण ५।३५।४५)

विनादिन (सं० लि०) शब्दकारी। (भारत ६ पर्व)

विनादिन (सं० लि०) १ शब्दित। २ पुनश्चक्रित। (दिव्या ५०।१६)

विनामव (सं० पुं०) विना भू अच्। १ विनाश। २ विरह।

विनाभाव (सं० पुं०) पृथक्त्वहीन, वियोगविहीन।

विनाभाविन् (सं० लि०) व्यतिरेक भावनाकारी, भाविसुक।

विनाभात्य (सं० लि०) विनाभावयुक्त, जिसमें भाव न हो।

विनाम (सं० पुं०) वि-नम-घञ्। १ नति, भुकाव, टेढ़ापन। २ किसी पीड़ा द्वारा शरीरका झुक जाना।

विनायक (सं० पुं०) विशिष्टा नायकः। १ बुद्ध। २ गण्ड। ३ विघ्न, बाधा। ४ गुरु। ५ गणेश। स्कन्दपुराणमें विनायकके अवतारकी वर्णना लिखी है। गान्धेय और वैष्णव ये दो विनायक गण हैं।

देवताकी पूजा किये जाने पर पहले विनायककी पूजा करती होती है, विना विनायककी पूजा किये कोई पूजा ही नहीं करनी चाहिए, करनेसे वह सिद्ध नहीं होती तथा पूजाके बाद कुल देवताकी पूजा करनी पड़ती है।

६ पीठस्थान विशेष। यहाँकी शक्तिका नाम उमादेवी है। (देवीभागवत ७।३।७२)

विनायक—पहलेसे प्राचीन ग्रन्थकारोंके नाम। १ तिथिप्रकरणके प्रणेता। २ मन्त्रकोषके रचयिता। ३ विरदिणी-मन्त्रोपनिषद्के प्रणयनकर्ता। ४ वैदिकच्छन्दः प्रकाशके प्रणेता। ५ मन्दपण्डितका एक नाम। ६ एक कवि। भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख है। ७ पद्मगुरुके एकतम। ८ शाहूखायनमहाब्राह्मणभाष्यकार गोविन्दके गुरु।

विनायककेतु (सं० पुं०) गण्डध्वज, श्रीरक्षण।

विनायकचतुर्थी (सं० स्त्री०) माघ महानेकी शुक्ल-चतुर्थी, गणेशचतुर्थी, इस दिन गणेशका पूजन और व्रत होता है। सरस्वती पञ्चमीके पहलेका दिन विनायक-चतुर्थी है। भाद्रमासकी शुक्लचतुर्थी भी गणेशचतुर्थी कहलाती है। यह व्रत करनेसे बड़ा पुण्य होता है। भविष्योत्तरपुराण और स्कन्दपुराणमें विनायक व्रतका उल्लेख है। (गणेशचतुर्थी देवा)

विनायकपुर (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

(दिग्वि० ५।३।१३)

विनायकपाल—श्रायस्ती और धाराणसीके एक नरपति । तथा महाराज महेंद्रपालके द्वितीय पुत्र । ये अपने अपेष्ट और घेमात्रेय १म भोजदेवके बाद सिंहासन पर बैठे । इनकी माताका नाम था महादेवी । इन्होंने ईस्वीसन् ७६१—७६४ तक राज्य किया । महोदय या फनौज राजधानीसे उनकी दूी प्रशस्तिको देखनेसे बोध होता है, कि फनौज राज्य भी उनके कब्जेमें था ।

विनायकभट्ट—कितने पण्डितोंके नाम । १ न्यायकौमुदी-तार्किकरक्षाकी टीकाके रचयिता । २ भावसिंहप्रक्रिया नामक व्याकरणके प्रणेता । ये भट्टगोविन्द सूरिके पुत्र थे । भावसिंहके लिये इन्होंने उक्त ग्रन्थ रचा था । ३ अक्षरैतच्चन्द्रिकाके प्रणेता । ये दुण्डिराजके पुत्र थे । १८०१ ई०में इनका ग्रन्थ समाप्त हुआ । ४ वृद्धनगरके निवासो माधवभट्टके पुत्र । ये कौपितकीप्राहणभाष्यके रचयिता हैं । इन्होंने कालनिर्णय और कालादर्शका मत उद्भूत किया है ।

विनायकसनानचतुर्थी (सं० स्त्री०) चतुर्थीमतमेद ।

विनायिका (सं० स्त्री०) विनायकरूप स्त्री, भार्याथं स्त्री । गरुड़की पत्नी ।

विनायिन् (सं० त्रि०) वि नी- (हुन्यजालो षिनिस्ताच्छील्ये । पा ३।२।७८) इति णिति । विनयशील, विनयी ।

विनाय—विशालके अन्तर्गत एक गौयका नाम ।

(भविष्यव्रजस० ३६।१६१)

विनायडा (सं० स्त्री०) विना आश्रयं रोहतीति वद-क, स्त्रियां टाप् । त्रिपणिकाकन्द । (राजनि०)

विनाल (सं० पु०) नालयियुक्त । (भारत श्लोकपूर्व)

विनाश (सं० पु०) विनशनमिति वि नश घञ् । १ नाश, ध्वंस, अस्तित्वका न रह जाना, मिटना, बरबाद । २ लोप, अदर्शन । ३ विगड जानेका भाव, खराब हो जाना, निरुत्थमा हो जाना । ४ हानि, नुकसान । ५ घुरी दगा, तबाही ।

विनाशक (सं० त्रि०) वि-नश-ण्वुल । १ विनाशकर्ता, क्षय करनेवाला, संहारक । २ घातक, अपकारक, बिगाड़नेवाला, खराब करनेवाला ।

विनाशन (सं० पु०) १ नष्ट करना, ध्वस्त करना, बरबाद करना । २ संहार करना, वध करना । ३ बिगाड़ना,

खराब करना । ४ एक असुर जो कालका पुत्र था ।

विनाशान्त (सं० पु०) १ मृत्यु, मरण । २ शेष, अन्त ।

विनाशित (सं० त्रि०) नष्ट, बरबाद ।

विनाशिन् (सं० त्रि०) वि-नश-णिनि । १ विनाशक, नष्ट करनेवाला, बरबाद करनेवाला । २ वध करनेवाला, मारनेवाला । ३ बिगाड़नेवाला, खराब करनेवाला ।

विनाशी (सं० त्रि०) विनाशिन् देखो ।

विनाशोन्मुल (सं० त्रि०) विनाशाय पतनाय उन्मुलं । १ पक । २ नाशोघत ।

विनासक (सं० त्रि०) विगता नासा यस्य, बहुव्रीही क्त हुस्वश्च । गतनासिका, नासिकाहीन, विना नाकका, नकटा ।

विनासिका (सं० स्त्री०) नासिकाका अभाव ।

विनासित (सं० त्रि०) नासारहित, नकटा ।

(दिग्भा० ४६।१२)

विनाह (सं० पु०) विरोपेण नहाते अनेन वि-नह (ह्रस्व । पा ३।३।२१) इति घञ् । वह आच्छादन या ढकनी जिससे कूपका मुह ढका जाता है ।

विनास्यन् (सं० त्रि०) वि निट् सू क्त । विनिर्गत, चर्हित, निकला हुआ, जो बाहर हुआ हो ।

विनिकर्त्तव्य (सं० त्रि०) काट कर नष्ट करनेके योग्य ।

विनिकार (सं० पु०) १ शेष, क्षति, अपराध । २ विरक्ति, चेदना ।

विनिहन्तन (सं० त्रि०) विशेषरूपसे छोड़ा हुआ, काट कर नष्ट किया हुआ ।

विनिक्षण (सं० क्ली०) विशेषरूपसे चुम्बन, घेघन या मेदन । (निकृक ४।१८)

विनिक्षिप्त (सं० त्रि०) वि-नि-क्षिप्-क्त । १ विनिक्षेपाश्रय, निक्षेप या फँका हुआ । २ परित्यक्त, छोड़ा हुआ ।

विनिक्षिप्य (सं० त्रि०) वि-नि-क्षिप्-पत् । विशेष प्रकारसे निक्षेप करनेके योग्य ।

विनिगड (सं० त्रि०) शृङ्खल चिरदित ।

विनिगडोद्धत (सं० त्रि०) निगडविद्योजित ।

विनिगमक (सं० त्रि०) दो पक्षोंमेंसे किसी एक पक्षको सिद्ध करनेवाला । विनिगमना देखो ।

विनिगमना (सं० स्त्री०) १ पक्षतर पक्षपातिनी युक्ति, एक

तरावधारणा; सन्दिग्ध स्थलमें विविध युक्ति या प्रमाण-प्रदर्शनपूर्वक विचार करके जिस एक पक्षकी निश्चयता-को आती है, उसीका नाम विनिगमना है अर्थात् दो पक्षोंके सन्देहस्थलमें जिन सत्र युक्तियों या प्रमाणों द्वारा पक्षका निर्णय किया जाता है, वैशेषिक दर्शनकार लोग उसीको विनिगमना कहते हैं।

"पक्षद्वयसन्देहे एकतरपक्षपातिनी युक्तिविनिगमना।"

(वैशेषिकदर्शन)

उक्त विनिगमना या एकतरपक्षपातिप्रमाणका अभाव होने पर विरोधकी जगह किसी दूसरे उपायसे कार्य करना होता है। जैसे किसी अनिर्दिष्ट सीमा-वन्धिन्न प्रदेशमें सुवर्णादिकी खान उदपन्न होने पर वह खान किसीको सीमामें पड़ती है तथा उस पर किस व्यक्तिका अधिकार होगा, यह विनिगमनाभावमें अर्थात् किसी एकपक्षके विशेष प्रमाणभावमें वैशेषिक व्यवहारमें (वैशेषिकके मतसे सम्पत्तिके विचारानुसार) विभागका अयोग्य होनेके कारण गृह्णित्वापातादि अन्य उपाय अवलम्बन करके उसका विभाग करना होता है।

२ निश्चयोपाय । ३ सिद्धान्त, नतीजा ।

विनिगृह्यत् (सं० लि०) गोपक, छिपायेवाला ।

विनिग्रह (सं० पु०) १ नियमन, संघोज, प्रतिबन्ध । २ संयमन, अरनी किसी वृत्तिको दबा कर अधोन करना । ३ अन्वेषण, सहायण । जैसे—'सूत्रविनिग्रह' (सुभुत०) ४ व्याघात, बाधा ।

विनिग्राह्य (सं० लि०) अन्वलीलाकमसे निग्रह करनेके उपयुक्त, निपीड़नके योग्य ।

विनिघ्न (सं० लि०) १ नष्ट, बरदाद । २ गणित, गुण किया हुआ ।

विनिद्र (सं० लि०) विगता निद्रा सुद्रणा संस्य । १ उन्मो-लित । २ निद्रारहित । (क्री०) ३ अस्वका एक सांसार जिससे अस्व द्वारा निद्रित या मूर्च्छित व्यक्तिकी नींद या बेहोशी दूर होती है ।

विनिद्रक (सं० लि०) निद्रारहित, जिसकी नींद खुल गई हो, जागरित ।

विनिद्रत्व (सं० क्री०) विनिद्रस्व भावः त्व । १ विनिद्रका भाव या धर्म, प्रबोध, जागरण । २ निद्रारहितत्व ।

विनिधयस्त (सं० लि०) ध्वंसप्राप्त, जो नष्ट हो गया हो । विनिनीपु (सं० लि०) विनेतुमिच्छुः वि-नी-सन् 'सना-मांसेति' उ । विनय करनेमें इच्छुक, यिनी करने-वाला ।

विनिन्द (सं० लि०) वि-निन्द-अच् । निन्दाकारक, गिफा-यत करनेवाला ।

विनिन्दक (सं० लि०) विनिन्दयति निन्दि ष्युल् । विशेष-रूपसे निन्दाकारक, अत्यन्त निन्दा करनेवाला ।

विनिन्दा (सं० लि०) अतिशय निन्दा ।

विनिन्दित ((सं० लि०) लाञ्छित, जिसकी बहुत निन्दा हुई हो ।

विनिन्दिन् (सं० स्त्री०) वि-निन्दु गिनि । निन्दाकारक ।

विनिपतित (सं० लि०) अधाक्षित ।

विनिपात (सं० पु०) विशेषण नियतनं दिन-पत-घञ् ।

१ निपात, विनाश, बरबादी । २ वध, हत्या । ३ अयमान, अनाद, नज़रसे गिरना । ४ देवादि व्यसन ।

विनिपातक (सं० लि०) वि नि पत णिच् ष्युल् ।

१ विनिपातकारी, विनाश करनेवाला । २ सांसारकर्ता । ३ अपमानकारी ।

विनिपातित (सं० लि०) १ निक्षिप्त, फेंका हुआ ।

२ विशेषरूपसे विनष्ट । (दिव्या० ५५:१६)

विनिपातिन् (सं० लि०) वि-णि पत-गिनि । विनिपात-शील, विनाशकारी ।

विनिर्वात् (सं० क्री०) विराम । (दिव्या० ५१:१६)

विनिवारण (सं० लि०) विशेषरूपसे निवारण ।

विनिवर्द्धण (सं० लि०) ध्वंसकर, नाश करनेवाला ।

विनिवर्दिन् (सं० लि०) ध्वंसकारी ।

विनिमय (सं० पु०) वि-नि-मो-अप् । १ परिदान, परि-घरान, एक वस्तु ले कर बदलेमें दूसरी वस्तु देनेका व्यवहार, बदल बदल । २ बन्धक, गिरवी ।

विनिमेष (सं० पु०) निमेषराहित्य ।

विनियत (सं० लि०) वि-नि यम-क । १ निवारित, नियत । २ संयत । ३ बद्ध । ४ शासित ।

विनियम (सं० पु०) वि-नि-यम-घञ् । निवारण, निरोध, निषेध ।

विनियुक्त (सं० लि०) वि-नि-युज्-क । १ नियोजित,

किसी काममें लगाया हुआ । २ अर्पित । ३ प्रेरित ।
 विनियोषत् (सं० त्रि०) वि-नि-युज्ज् वृच् । नियोगकारी,
 किसी काममें लगानेवाला ।
 विनियोग (सं० पु०) वि-नि-युज्ज्-घञ् । १ किसी फलके
 उद्देश्यसे किसी वस्तुका उपयोग, किसी विषयमें लगाना,
 प्रयोग । २ किसी वैदिक कृत्यमें मन्त्रका प्रयोग । ३ प्रेषण,
 भेजना । ४ प्रवेश, घुसना ।
 विनियोजित (सं० त्रि०) वि-नि-युज्ज्-णिच्-क्त । १ विनि-
 युक्त । २ अर्पित । ३ स्थापित । ४ नियुक्त । ५ प्रेरित ।
 ६ प्रवर्तित ।
 विनियोज्य (सं० त्रि०) वि-नि-युज्ज्-णिच्-यत् । विनि-
 योगार्ह, नियोगके उपयुक्त ।
 विनिर्गत (सं० त्रि०) वि-निर्-गम-क्त । १ निःसृत,
 वहिर्गत, जो बाहर हुआ हो । २ निक्रान्त, गथा हुआ,
 जो चला गया हो । ३ अतीत, धोता हुआ ।
 विनिर्गम (सं० पु०) वि-निर्-गम-अप् । १ विनिर्गम,
 वहिर्गमन, बाहर होना, निकलना । २ प्रस्थान, चला
 जाना ।
 विनिर्घोष (सं० पु०) वि-निर्-घुष-घञ् । विशेषरूपसे
 निर्घोष, घोर शब्द ।
 विनिर्जय (सं० पु०) वि-निर्-जि-घञ् । विशेषरूपसे
 जय, पूरा फतह ।
 विनिर्जित (सं० त्रि०) वि-निर्-जि-क्त । विशेषरूपसे
 निर्जित, पराजित, पराभूत ।
 विनिर्दहन (सं० स्त्री०) वि-निर्-दह-ल्युट्, स्त्रियां ङीप् ।
 १ आरोग्यका उपाय, औषध । २ दहनकारिणी । ३ दहन-
 करण द्वारा चिकित्सा । (सुश्रुत)
 विनिर्दृश्य (सं० त्रि०) वि-निर्-दिश-यत् । विनिर्दृष्ट,
 विशेषरूपसे निर्दृष्ट ।
 विनिर्धूत (सं० त्रि०) वि-निर्-धू-क्त । दुर्वाश्राप्त, जिस-
 को हालत बड़ी बुरी हो गई हो ।
 विनिर्धन्ध (सं० पु०) वि-निर्-बन्ध-घञ् । विशेषरूप-
 से निर्धन्ध, अतिशय निर्धन्ध ।
 विनिर्दाह (सं० पु०) वह जिसकी भुजा लड़ाईमें कट गई
 हो ।
 विनिर्दिष्ट (सं० त्रि०) विशेषण निर्दिष्ट भयं वक्ष्ये ।

१ भयरहित, भयशून्य, निर्भय । (पु०) २ साध्यगण
 विशेष, देवयोनिभेद ।

विनिर्माण (सं० पु०) कल्पभेद ।

विनिर्गल (सं० त्रि०) विशेषण निर्गलः । बहुत निर्गल
 या खच्च ।

विनिर्माण (सं० स्त्री०) वि-निर्-मा-ल्युट् । विशेषरूप-
 से निर्माण, अच्छे तरह बनाना ।

विनिर्मित (सं० त्रि०) विशेषरूपसे निर्मित, खूब अच्छे
 तरह बना हुआ ।

विनिर्मिति (सं० स्त्री०) निर्-मा-क्ति निर्मिति, विशे-
 षण निर्मितिः । विशेषरूपसे निर्माण, अच्छे तरह
 बनना ।

विनिर्मुक्त (सं० त्रि०) वि-निर्-मुच्-क्त । १ वहिर्गत,
 बाहर निकला हुआ । २ अनाच्छन्न, जो खुला हो या
 ढका न हो । ३ उद्धृत, बन्धनसे रहित, छूटा हुआ ।

विनिर्मुक्ति (सं० स्त्री०) १ उद्धार । २ मोक्ष ।

विनिर्मोक (सं० पु०) १ ध्यतिरेक, अभाव । (त्रि०) विगता
 निर्मोकी यस्य । २ निर्मोक रहित, बिना पहनावेका, बख-
 रहित, परिधानशून्य ।

विनिर्मोक्ष (सं० पु०) १ निर्वाणमुक्ति । २ उद्धार ।

विनिर्मान (सं० स्त्री०) वि-निर्-या-ल्युट् । गमन, जाना ।
 (रामा० १।४।११६)

विनिर्वहण (सं० स्त्री०) ध्वंसकर ।

विनिर्वृत्त (सं० त्रि०) वि-निर्-वृत्-क्त । सम्पन्न,
 समाप्त ।

विनिर्वर्त्तन (सं० स्त्री०) वि-निर्-वृत्-ल्युट् । प्रत्यावर्त्तन,
 लौटना ।

विनिर्वर्त्तित (सं० त्रि०) वि-नि-वृत्-क्त । प्रत्यावर्त्तित,
 लौटा हुआ ।

विनिर्वर्त्तिन् (सं० त्रि०) विनिर्वर्त्तयति-वि-नि-वृत्-
 णिनि । विनिर्वर्त्तनकारक, लौटानेवाला ।

विनिवारण (सं० स्त्री०) वि-नि-वृ-णिच्-ल्युट् । विशेष-
 रूपसे निवारण, विशेष निषेध । (रामायण ३।६।२२)

विनिवार्य (सं० स्त्री०) वि-नि-वृ-ण्यत् वा । निवारणार्ह,
 निषेधके योग्य ।

विनिश्चय (सं० लि०) वि-नि-श्च-य-क । १ निश्चय-
विशिष्ट, क्षान्त । २ निरस्त । ३ प्रत्यागत ।
विनिवृत्ति (सं० स्त्री०) वि-नि-वृ-त्ति-क । विशेषरूपसे
निवृत्ति, निवारण ।
विनिवेदन (सं० स्त्री०) वि-नि-वि-वृ-ण-च-न-पु-ट् । विशेष-
रूपसे निवेदन, कथन ।
विनिवेश (सं० पु०) वि-नि-वि-श्-घञ् । प्रवेश, घुसना ।
विनिवेशन (सं० स्त्री०) १ प्रवेश, घुसना । २ अधिष्ठान,
स्थिति, वास ।
विनिवेशित (सं० लि०) वि-नि-वि-श्-ण-ि-च-क । १ प्रविष्ट,
घुसा हुआ । २ अधिष्ठित, स्थापित, ठहरा या टिका
हुआ । ३ यसा हुआ ।
विनिवेशित्वा (सं० लि०) १ प्रवेशकारी, घुसनेवाला ।
२ वासकारी, रहनेवाला ।
विनिश्चय (सं० पु०) विनिर्णय, कृतनिश्चय, विशेष
प्रकारसे निर्णय करना ।
विनिश्चय (सं० लि०) विशेष प्रकारसे निश्चय, स्थिर ।
विनिश्चायिन् (सं० लि०) १ निश्चायक । २ जिसको
मीमांसा हो चुकी हो । (सर्वदर्शनसं० ४२।२०)
विनिश्चय (सं० लि०) दोर्घनिश्चायपरित्यागकारी,
लम्बी सांसें छोड़नेवाला ।
विनिश्चय (सं० लि०) कम्परहित ।
विनिष्ठात (सं० पु०) वि-नि-नि-श्-प-त्-घञ् । १ विशेष
प्रकारसे पतन, मजबूतीसे गिरना । २ आघात, चोट ।
विनिष्ठात (सं० लि०) वि-नि-श्-प-त्-घञ् । निष्पा-
दनके योग्य ।
विनिष्पेय (सं० पु०) वि-नि-श्-प-त्-घञ् । १ पेपण,
पोसना । २ विनाश । ३ निपीड़न, निष्पेयण ।
४ अतिशय घर्षण ।
विनिष्पेयिन् (सं० लि०) घसवासकारी ।
विनिहित (सं० लि०) वि-नि-ह-य-क । १ विनष्ट,
विध्वस्त, बरबाद । २ आहत, चोट खाया हुआ । ३ मृत,
मरा हुआ । ४ लुप्त, तिरोहित ।
विनीत (सं० लि०) वि-नी-क । १ विनयपुत्र, जिसमें
उत्तम शिक्षाका संस्कार और शिष्टता हो । २ शिष्ट, नम्र,
व्यवहारमें अधीनता प्रकट करनेवाला । ३ जितेन्द्रिय ।

४ संयमी । ५ विष्णुत, दूर किया हुआ, छोड़ा हुआ ।
६ हत, ले गया हुआ । ७ शिक्षित, सिखाया हुआ ।
८ कृतदण्ड, शासित । ९ क्षित । १० धार्मिक, नीति-
पूर्णक व्यवहार करनेवाला । ११ साफ सुधरा । १२ सुन्दर
उत्तम । (पु०) १३ वणिक्, बनिया, साहु । १४ सुवहा
अथ, शिक्षित अथ, सिखाया हुआ घोड़ा । पर्याय-
साधुवादी, सुष्ठुवादनशालक । १५ पुलस्त्यके एक पुत्र-
का नाम । १६ दमनक, दौनेका पीघा । पर्याय—दाव्त,
मुनिपुत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजट, फलपत्रक ।
विनीतक (सं० पु० स्त्री०) विनीतसम्बन्धीय, वैनीतक ।
विनीतता (सं० स्त्री०) विनीतस्य भावः तत्त्वात् ।
विनीत होनेका भाव, नम्रता ।
विनीतत्व (सं० स्त्री०) विनीत होनेका भाव, नम्रता ।
विनीतदेव (सं० पु०) एक बौद्धाचार्यका नाम । ये
एक प्रसिद्ध नैयायिक थे ।
विनीतदेव भागवत—एक प्राचीन कवि ।
विनीतपुर—लिकलिङ्गाज्यमें कटकविभागके अन्तर्गत
एक नगर ।
विनीतमति (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक
व्यक्तिका नाम ।
विनीतरुचि—उत्तरभारतके उद्यान जनपदवासी एक
बौद्ध धर्मण । इन्होंने ५८२ ई०में दो बौद्धग्रन्थोंका चीन-
भाषामें अनुवाद किया ।
विनीतसेन (सं० पु०) बौद्धभेद ।
विनीतमम्र (सं० पु०) बौद्धयतिभेद ।
विनीति (सं० स्त्री०) १ विनय, सुशीलता । २ सम्मान ।
३ सद्व्यवहार ।
विनीतेश्वर (सं० पु०) देवभेद । (कश्चित्बिस्तर)
विनीय (सं० पु०) कटक । विनये देखो ।
विनील (सं० लि०) अतिशय नील । (देम)
विनीयि (सं० लि०) नीचिरहित ।
विनुकुण्डा—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गण्टूर जिलेका एक
तालुक । इसका भूपरिमाण ६४६ वर्गमील है । इस
तालुकके मोतर अग्निगुण्डुल घोगराम, घोड़ापट्टी,
बिन्तलचेरु, दोण्डपाडू, गण्डिगनमल, गरिकेपाडू,
गोकनकोण्ड, गुम्पनमपाडू, इनिमेड, ईपाक, कणुमलापुडू

काकमञ्जी, फीचर्ला, मदमञ्जिपाडू, मुकलपाडू, मुलकलु-
रुनुजण्डला, पेद्दकाञ्चर्ला, पल्लिकेलपालेम, पोटलुच,
रव्ववरम्, रेमिडिचर्ला, शानम्पुडो, शारीकोण्डपालेम,
शिवपुरम्, तलालविहारा, तिम्मापुरम्, तिम्भवपालेम, ति-
पुरापुरम्, उस्मडिचरम्, वहेमकुण्ड, घनोकुण्ड, वेलनुय,
वेलपुयपे और चनुगपालेम आदि ग्रामोंमें प्रत्नतत्त्वके
अनेक उपकरण मिले हैं। प्रत्येक ग्राममें ही प्रायः शिला-
में उत्कीर्ण लिपिमात्रा और प्रस्तरप्राचीरमण्डित
स्थान और स्मृतिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं। किसी
ग्राममें प्राचीन दुर्गोंका अनावशेष या प्राचीन मन्दिर
विद्यमान हैं। यहाँ तांबा और लोहा मिलते हैं। इस
तालुकेकी जनसंख्या प्रायः ८२४६३ है। अक्षां १५°५०'
और १६°२४' उ० तथा द्राघि० ७६°३२' और ७६°५५' पू०-
के बीच अवस्थित है।

इसमें सब मिला कर ७१ ग्राम हैं। इस तालुकेके
अधिकांश स्थलमें कालो मिट्टी दिखाई देती है और कहीं
कहीं छोटी छोटी पहाड़ी चट्टानें हैं। इसके उत्तर-
पश्चिम भागमें जंगल हैं। इस तालुकेका राजस्व प्रायः
१८७००० रु० वार्षिक है।

२ विनुकुण्डा तालुकेका सदर। इसकी जनसंख्या
७२६६ है। यह नगर शैलगात्रमें अवस्थित है। अक्षां
१६°३' उ० और प्रायः ७६°४४' पू०के मध्य अवस्थित है।
पहाड़के ऊपर किला है। इसके सम्बन्धमें अष्टाश्वर्या-
जनक कितनी ही किम्बदन्तियां सुनी जाती हैं। कहते हैं,
कि यह पर्वत समुद्रसे ६०० फीट ऊँचा है। ऊपर दुर्ग-
की रक्षाके लिये इसके शिखर पर तीन श्रेणीमें प्राकार
निर्मित हुआ है। इसके भीतर ही पूर्वमें शस्त्रभाण्डार,
जलका चढ़बच्चा आदि मौजूद हैं।

राजा वीर प्रताप पुरुषोत्तम गजपतिके (१४६२-
१४६६ ई०) अधीनमें इस प्रदेशके शासनकर्ता सागी
गन्म नायडुने यह गिरिदुर्ग और उसके निकट एक
मन्दिर निर्माण किया था। इस मन्दिरके नक्कासीका
काम बहुत ही सुन्दर हुआ है। स्थानीय रघुनाथस्वामी-
के मन्दिरमें एक शिलालिपि खुदी हुई है। इसका
ऐतिहासिक गुणत्व बहुत ही अधिक है। विजयनगर
राज छण्णदेव रायने पूर्वी किनारे पर विजय करनेके समय

इस दुर्गको जीता था। गोलकुण्डाके अधीश्वर अ-
दुल्ला कुतुबसाहबके राजत्वकालमें आरिलिया राजान का
नामक एक मुसलमान शासनकर्ताने १६४० ई०में यहाँकी
बड़ी मसजिद बनाई थी। नगरके इधर उधर बहुतरे
प्राचीन स्मृतिस्तम्भ देखे जाते हैं।

पर्वतके पश्चिमके ढालुप देगमें विनुकुण्डाका सर्व-
प्राचीन दुर्ग अवस्थित है। कहते हैं, कि यह दुर्ग पहले
पहल गजपतिवंशीय विश्वम्भरदेव द्वारा सन् ११४५ ई०में
बना था। इसके बाद कुण्डवीरुड पोलीय चेमरेडुने
उसका जीर्णोद्धार करवा था। इस स्थानमें ही पर्वत-
गात्रमें खोजित दो प्राचीन शिलालिपियां दिखाई देती हैं।
इसके कुछ नीचे पकोनिडू ग्रन्थमनोहृत्ता प्रसिद्ध किला
मौजूद है। कहते हैं, कि इस दुर्गके प्रतिष्ठाताका नाम
रेड्डो सरदार था। इस समय भी यहाँ जो राजप्रासादका
ध्वंसावशेष है, उसको देखनेसे उस समयके बनानेवालों-
की कारीगरीका पता लगता है। अबसे कोई चार सौ
वर्ष पहले इस दुर्गके पादमूलमें और एक किला बना था।
यही पूर्वकथित गन्मनायडूका दुर्ग है। प्रायः ढाई सौ
वर्ष पहले और एक दुर्ग निमित हुआ था। इसका
प्राचीर और खाई आदि नगरके चारों ओर फैली हुई हैं।
नरसिंहमन्दिरका शिलाफलकोंसे मालूम होता है, कि
सन् १४७७ ई०में सागीगन्मने इसका मण्डप-निर्माण
कराया था। इस मण्डपके दक्षिण-पूर्व डाकबगलेके
निकट एक शिलालिपि दिखाई देती है। यह विजय-
नगरराज सदाशिवके (१५६१ ई०) राजत्वकालमें
कुमार कुण्डराजदेवका दिया दानपत्र है।

पर्वतके ऊपरके क्रीदण्डरामस्वामी और रामलिङ्ग-
स्वामीका मन्दिर बहुत प्राचीन और शिल्पनेपुण्यपूर्ण
है। इसमें प्राचीनत्वके निर्दर्शनस्वरूप अनेक कीर्तियां
संयोजित हैं। मन्दिरगात्रमें शिलालिपि है। नगरके
उत्तर-पश्चिममें एक हनुमानकी मूर्ति है। प्रवाद है, कि
गोलकुण्डाके किसी मुसलमान राजाने इस मूर्ति-
की प्रतिष्ठा की थी। नगरमें और भी कितने ही मन्दिर
हैं। पर्वतके स्थान स्थानमें वीर भी कितनी शिला-
लिपियां खुदी हुई दिखाई देती हैं। इनके प्राचीनत्वमें
सन्देह करनेका कोई कारण नहीं।

विभुक्ति (सं० स्त्री०) १ प्रमांसां । २ अमिभूति और विभुक्ति नामक दो प्रकारका नाम ।

विभुद (सं० स्त्री०) विशेषकर कामचैगुण्य ।

(शुक्र २।१३।३)

विनेत् (सं० पुं०) वि-नी-त्च् । १ परिचालक, उप-देश, शिक्षक । २ राजा, शासनकर्त्ता ।

विनेत् (सं० पुं०) उपदेशक, शिक्षक ।

विनेमिदशनं (सं० त्रि०) मर-रहित ।

विनेय (सं० त्रि०) वि-नी-यत् । १ नेतव्य । २ दण्डनीय । (पुं०) ३ शिष्य, अग्नेयासो ।

विनेयकार्यं (सं० स्त्री०) दण्डकार्यं ।

(दिग्भा० २६।१६)

विनोक्ति (सं० स्त्री०) अलङ्कारविशेष । जहाँ किसी एक पदांशको छोड़ दूसरे एक और वस्तुका सौष्ठव या असी-ष्टव नहीं होता अर्थात् जहाँ किसी एक वस्तुके अभावमें प्रस्तुत दूसरो वस्तु वा वर्णनीय विषयमें हीनता या श्रेष्ठता जानी जाती है, वहाँ विनोक्ति अलङ्कार होता है ।

इस अलङ्कारमें प्रायः बिना शब्दके तथा कदाचित् बिना शब्दार्थके योगसे अभाव सूचित होता है । जैसे, "विद्या सर्वोको अमीष्ट होने पर भी यदि उसमें विनयका संश्रय न रहे, तो वह हीन अर्थात् निन्दनीय समझा जाता है ।"

फिर "हे राजेन्द्र ! आपकी यह सभा खलरहित होनेके कारण अति शोभासम्पन्न हो गई है ।" इन दोनों स्थलोंमें यथाक्रम बिना विनयके विद्याको नोचता तथा बिना खलके सभाको उच्यता वा श्रेष्ठता सूचित होती है ।

"पद्मि नोने कमी भी चन्द्रकिरण नहीं देखे, चन्द्रमाने भी जग-से कमी प्रफुल्ल कमलका मुँह नहीं देखा, अतएव दोनोंका ही जग्न निरर्थक है ।" यहाँ बिना शब्दके अर्थयोगसे विनोक्ति-अलङ्कार हुआ है । क्योंकि यहाँ पर स्पष्ट जाना जाता है, कि चन्द्रकिरण दर्शन बिना पद्मिनोकी तथा प्रफुल्लकमलके सुकदर्शन बिना चन्द्र (जग्न द्वारा दोनोंकी) की उत्पत्तिकी नोचता दिखाई गई है ।

विनोद (सं० पुं०) वि-नुद-घञ् । १ कीर्तुल्ल, तमाशा । २ कोड़ा, खेल कूद, लीला । ३ अपनयन । ४ प्रमोद, हँसी दिहगो । ५ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका आलङ्कार । ६ राजगृहविशेष, प्रासाद । तीन हाथ

लम्बा और दो हाथ चौड़ा ३० द्वार और दो कोष्ठयुक्त गृह-को विनोद कहते हैं । (युक्तिरूपतर)

विनोदगञ्ज—गया जिलास्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

(भविष्यत्पर्व ३६।१०२)

विनोदन (सं० स्त्री०) वि-नुद-घञ् । १ विनोद, आमोद प्रमोद करना, खेल कूद करना । २ हास विलास या हँसी दिहगो करना । ३ आनन्द करना ।

विनोदित (सं० त्रि०) १ हर्षित, प्रसन्न । २ कुतूहल-युक्त ।

विनोदिन् (सं० त्रि०) १ आमोद प्रमोद करनेवाला, कुतूहल करनेवाला । २ खेल कूद करनेवाला, खुदल-वाज । ३ जिसका स्वभाव आमोद-प्रमोद करनेका हो, आनन्दो । ४ प्राडागशाल, खेलकूद या हँसी उठ्ठेमें रहने-वाला ।

विनोदिनी (सं० स्त्री०) विनोदिन् देखो ।

विनोदी (सं० स्त्री०) विनोदिन् देखो ।

विन्द (सं० पुं०) १ जपसेनके एक पुत्रका नाम । २ धृ-तराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । ३ प्रांसि, लाम । ४ इन्द्र देखो । ५ विन्दु देखो । ६ पश्चिम बङ्गवासी एक जाति । (त्रि०) ७ प्रापक । ८ दर्शक ।

विन्दुकि—युक्तपदेशके फतेपुर जिलास्तर्गत एक नगर ।

विन्दमान (सं० त्रि०) १ प्रायनीय, वानेके योग्य । २ प्राज्ञ, प्रहण करनेके योग्य ।

विन्द्यात्स—एक कवि ।

विन्दु (सं० पुं०) विदि अयववे घाहुलकाटुः । १ जल-कण, बूँद । २ बिन्दु, बुँदको । ३ रंगकी विन्दी जो हाथीके मस्तक परशोभाके लिये बनाई जाती है । ४ द्रवक्षतविशेष, दाँतका लगाया हुआ क्षत । ५ दो मौद्दोंके बीचकी विन्दी । ६ रत्नागणितके अनुसार यह जिसका स्थान नियत हो पर विभाग न हो सके । ७ अनुत्कार । सारदातिलकके मतसे,—सच्चिदानन्दविभय परमेश्वर-मो शक्ति, शक्तिसे नाद तथा नादसे विन्दुसमुद्भूत है ।

'सच्चिदानन्दविभवात् सक्रमात् परमेश्वरात् ।

यावीलक्षितस्ततो नादो नादाद्विन्दुसमुद्भवा ॥'

कुञ्जिकोतम्बके मतसे,—

“भासीद्विन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिः समुद्रवा ।
नादस्वा महेशानोचिद्रूपा परमा कला ॥
नादाच्चैव समुत्पन्ना अर्द्धविन्दुर्गद्गधरि ।
साद्विगतविन्दुभ्यो भुजङ्गो कुसकुपयश्चो ॥”

विन्दु हो पहले एकमात्र था, उसके बाद नाद तथा नादसे शक्तिकी उत्पत्ति हुई है। विद्रूपा परमा कला जो महेश्वरी है, वे ही नादरूपा हैं। नादसे अर्द्धविन्दु निकला है। साढ़े तीन विन्दुसे ही कुलकुण्डलिनी भुजङ्गी हुई है।

फिर क्रियासारमें लिखा है—

“विन्दुः शिवात्मकस्तथ बीजं शक्त्यात्मकं स्पृउम् ।

तयोर्योगे भवेद्वाद्वास्तम्यो जातात्रिनात्मकः ॥”

विन्दु ही शिवात्मक और बीज ही शक्त्यात्मक है। दोनोंके योगसे नाद तथा उनसे त्रिशक्ति उत्पन्न हुई है।

८ एक घूँद परिमाण । ६ शून्य । १० रत्तीका एक होय या धब्बा । यह चार प्रकारका कहा गया है—आवरी (गोल), चर्सी (लम्बा), आरक (लाल) और पय (जौके आकारका) । ११ छोटा टुकड़ा, कण, कनी । १२ मूँज या सरकड़ेका धूँआँ ।

(लि०) विद्दं ह्यने उः नुमागमयश्च (विन्दुरिचलुः । पा ३।२।६६) । १३ घाता, घेसा, जानकार । १४ दाता । १५ वेदितव्य, जानने योग्य ।

विन्दुघृत (सं० ह्नी०) उदर रोगकी एक औषध । प्रस्तुतप्रणाली—घो चार सेर, अकथनका दूध १६ तोला, धूररका दूध ४८ तोला, हरीतकी, कमलाचूर्ण, प्रयामालता, अमलतासके फलकी मज्जा, श्वेत अपराजिताका मूत्र, नीरुशुश्र, निसीध, दन्तोमूत्र और वितामूत्र, प्रत्येक ८ तोला ले कर कुछ चूर्ण करे। पीछे उक्त घृत तथा उसमें १६ सेर जल डाल कर एकल पारु करे। जल निःशेष हो जाने पर नीचे उतार कर छान ले और एक मिट्टीके बरतनमें रख छोड़े। इस घृतके जितने विन्दु सेवन कराये जायेंगे उतने धार विरेचन होगा। इससे सभी प्रकारके उदरो तथा अन्याय्य रोग नष्ट होते हैं।

महाविन्दुघृत—वतानिका तरीका इस प्रकार है, घो २ सेर, धूररका दूध १६ तोला, कमला नीबूका चूर्ण ८

तोला, सैन्धव ४ तोला, निसीध ८ तोला, बांबलेका रस ३२ तोला, जल ४ सेर। घोमी बाँचमें पका कर पूर्वोक्त अवस्थामें उतार रखे। पत्तोहा और गुल्मरोगमें २ तोला सेवन किया जाता है। इससे अन्यान्य रोगोंका भी उपकार होता है।

विन्दुचित्रक (सं० पु०) विन्दुमिरिचइविशेषैश्वर्यक इव। मृगमेद, घद मृग जिसके शरीर पर गोल गोल सफेद बुँदिकाया होती है, सफेद चित्तिषोका हिरन। विन्दुजाल (सं० ह्नी०) विन्दुता जालम् । सफेद विन्दियोंका समूह जो हाथोंके मस्तक और खुँड़ पर बनाया जाता है।

विन्दुजालक (सं० ह्नी०) विन्दुनां जालकम् । हाथियोंका पद्मक नामक रोग।

विन्दुतन्त्र (सं० पु०) विन्दुचिन्द्रं तन्त्रं पश्य । १ तुट दूक । २ अक्ष, चौपड़ आदिकी बिसात, सारिफलक।

“विन्दुतन्त्रः पुष्पात् शारिकसके च तुरङ्गके”

विन्दुनीर्ध—काशिके प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थका नामान्तर जहाँ विन्दुमाधवका मन्दिर है, पञ्चगङ्गा

विन्दु माधव और विन्दु सर देखो।

विन्दुत्रिवेणी (सं० ह्नी०) गामेनें स्वरसाधनकी एक प्रणाली। इसमें तीन बार एक स्वरका उच्चारण करके एक बार उसके बादके स्वरका उच्चारण करते हैं। फिर तीन बार उस दूसरे स्वरका उच्चारण करके तीसरे स्वरका उच्चारण करते हैं और अन्तमें तान बार सातवें स्वरका उच्चारण करके एक बार उसके अगले सप्तकके पहले स्वरका उच्चारण करते हैं।

विन्धुघारी—उत्कलवासी वैश्वसम्प्रदाय विशेष। यह विप्रहसेवा, मच्छवदान और बङ्गालवासी अन्धाय्य गौड़ीय वैष्णवोंके अनुष्ठेय सब धर्मानुष्ठान ही करते हैं। तिलकसेवाकी विभिन्नताके कारण ही इस सम्प्रदायका नाम विन्धुघारी पड़ा। इस सम्प्रदायके लोग ललाटकी दोनों भौंहोंके बीचके कुछ ऊपर गोपीचन्दनका एक छोटा विन्दु धारण करते हैं।

विन्धुघारियोंमें ब्राह्मण, खण्डैत, कर्नाकार आदि जातियाँ हैं। इस सम्प्रदायके शूद्र जातीय लोग भेरु ले कर औरकीपीन धारण कर सकते हैं। इसके बाद तीर्थ

यात्रामें बाहर हो कर नवद्वीप, वृन्दावन आदि नाना स्थानोंका भ्रमण कर लौट आते हैं। साम्प्रदायिक मत प्रदण करनेके बाद जो इस तरह यात्रामें प्रयुक्त होते हैं, वे ही यथायथं वैष्णवपद प्राप्त कर देयपूजा और मन्त्रोपदेशदानके अधिकारी होते हैं।

ब्रह्मग-विन्दुवारियोंकी व्यवस्था कुछ और ही है। वे इस तरहकी तीर्थयात्राकी आवश्यकता नहीं समझते। किन्तु स्वपदैत प्रभृति विन्दुधारी साधारणतः इस तरहकी तीर्थयात्रा करते हैं और वे ही ब्राह्मणशूद्रादि जातियोंकी मन्त्रदोषा देते हैं।

साम्प्रदायिक किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे वे शव-देहको जलाने और यहाँकी मिट्टी कोड़ कर दूसरी जगह एक चेदी बना कर उस पर तुलसीका वृक्ष रोपते हैं। मृत्युके दिन शवके समीप वे लोग अन्न रचन कर रखने और चेदी प्रस्तुत होने पर उसके समीप एक पंजा और एक छाता रख दिया जाता है। नौ दिन तक शशोच बनाया जाता है। दशवें दिन ये आद्य श्राद्ध करते हैं और इसके उपलक्ष्यमें स्वस्वप्रदायी वैष्णव-को आमन्त्रित कर भोजन कराते हैं। किसी प्राचीन और प्रवीण व्यक्तिकी मृत्यु होने पर ये दाहके बाद मृतककी हड्डी ले कर अपनी वास्तु या उदुवास्तु भूमिमें गाड़ देते हैं और प्रति दिन दिनमें पुष्पचन्दन द्वारा उसकी अर्चना करते हैं तथा सन्ध्या उपस्थित होने पर दीप भी जलाते हैं।

विन्दुनाग—राजपुतानेके कोटा राज्यान्तर्गत शेरगढ़ राज्यके एक सामन्तका नाम।

विन्दुपत्र (सं० पु०) विन्दुः पत्रे यस्य। भूज्जं वृत्र, भोजात्रका पेड़।

विन्दुमति (सं० स्त्री०) विन्दुमती देवो।

विन्दुमती (सं० स्त्री०) राजा शशिविन्दुकी कन्याका नाम।

विन्दुमाधव—काशीकी एक विष्णुमूर्ति। एक समय भगवान् उपेन्द्र चन्द्रशेखरकी अनुमति पा कर काशी नगरीमें आये। यहाँ वे राजा द्विवेदशसकी काशीसे निकाल पारदाक तीर्थमें केशवरूपमें अवस्थान कर पञ्चनद तीर्थको मदिमा प्रचार कर रहे थे। इसी समय अग्नि-विन्दु नामक एक ऋषिने उन्हें स्नान द्वारा संतुष्ट किया। भगवान्ने उनसे घर मांगनेके लिये कहा। इस पर ऋषि

बोले, 'हे भगवन्! आप सर्वव्यापी हैं सही, फिर भी सब जीवोंकी विशेषतः मोक्षमिलायी व्यक्तियोंकी भलाईके लिये आप इस पञ्चनद तीर्थमें अवस्थान करे' तथा मेरे नामसे प्रसिद्ध हो कर भक्त और अभक्तको मुक्ति प्रदान करे।' ऋषिके वाक्य पर प्रसन्न हो कर श्रीविष्णुने कहा, 'तुम्हारा आधा नाम अपने नामके आगे जोड़ कर मैं विन्दुमाधव नामसे प्रसिद्ध हो काशीमें वास करूँगा। सर्वापापनाशक यह पञ्चनदतीर्थ आजसे तुम्हारे नाम पर 'विन्दुतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस पञ्चनद तीर्थमें जो स्नान और पितरोंका तर्पण कर विन्दुमाधवके दर्शन करते हैं, उन्हें फिर कभी भी गर्भवाच यन्त्रणाका भोग नहीं करना होता।' कार्तिक मासमें सूर्योदय कालमें ब्रह्मवर्षपरायण हो यदि कोई विन्दुतीर्थमें स्नान करे, तो उसे यमका भय नहीं रहता। यहाँ चातुर्मास्य प्रत, अमावस्यमें कार्तिकीप्रत अथवा केवल ब्रह्मवर्षका अथलभ्रमण कर विशुद्ध चित्तसे कार्तिक मास विताने, दोग दान वा विष्णुपाता करनेसे मुक्ति दूर नहीं रहती। उरधान एकादशीकी विन्दुतीर्थमें स्नान, विन्दुमाधवकी अर्चना और रात्रि जागरणपूर्वक पुराणश्रवणादि करनेसे जन्ममय नहीं रहता। (काशीख० ६० अ०)

विन्दुर (सं० पु०) किसी पदार्थ पर दूसरे रंगके लगे हुए छोटे छोटे चिह्न, बुँदकी।

विन्दुराजि (सं० पु०) राजिमान्सर्वविशेष, एक प्रकारका साँप।

विन्दुरेखक (सं० पु०) विन्दुविशिष्टा रेखा यत्त कन्। पक्षिभेद, एक प्रकारकी चिड़िया।

विन्दुल (सं० पु०) अग्निप्रकृति कीटविशेष, अगिया नामका कीड़ा तिसके छूनेसे शरीरमें फफोले निकल आते हैं।

विन्दुवासर (सं० पु०) विन्दुपातस्य वासवः। सन्तानोत्पत्तिकारक शुकगत दिन।

विन्दुसरस् (सं० स्त्री०) विन्दुनामक सरः। पुराणोक्त-सरोवरविशेष। मत्स्यपुराणके मतसे इस विन्दुसरके उत्तर फीलास, शिव और सर्वोपधिगिदि, हरितालमय गौरगिरि तथा हिरण्यशङ्खविशिष्ट सुमहान् द्वितीयोपधिमय गिरि है। उसीके नाँचे काञ्चनसन्निभ एक बड़ा दिव्य सर है, इसीका नाम विन्दुसर है। भगीरथने गङ्गाके

लानेके लिये इसी सरके किनारे तप किया था । गङ्गाजी इसी स्थानसे पूर्वकी ओर निकली हैं । सोमपादसे निकल कर यह नदी सात धाराओंमें विभक्त हो गई हैं । इसीके किनारे इन्द्रादि देवताओंने अनेक यज्ञ किये थे । देवी गङ्गा अमररोक्ष, दिव और भूलोकमें आ कर शिवके भङ्गमें लिपट योगमायासे संरुद्ध हो गई हैं । उतरते समय गङ्गाजीके जितने विन्दु पृथिवी पर गिरे, वे इसी स्थान पर गिरे थे । उन्हीं विन्दुओंसे सरोवर बन गया और विन्दुसर कहलाने लगा ।

“तस्या ये विन्दवः केचिद् भुज्यायाः पतिवा भुवि ।

कृतं तु तैर्विन्दुसरस्ततो विन्दुः सरः स्मृतम् ॥”

(मत्स्यपु० १२० श०)

यही विन्दुसर ऋग्वेदमें सरपत् तथा ममी सरो-
कूलहृद नामसे प्रसिद्ध है । हिमप्रलयके बाद यहीं पर
प्रथम आर्य्य उपनिवेश बसाया गया था ।

आर्य्य शब्द देखो ।

विन्दुसर (विन्दुहृद)—उड़ीसामें भुवनेश्वरक्षेत्रके एक
प्राचीन सरोवरका नाम । उत्कलखण्ड, कपिलसहिता,
स्वर्णाद्रिमहोदय, एकाग्रपुराण और एकाग्रचन्द्रिकासे इस
विन्दुतोर्धका महात्म्य सविस्तार वर्णित है ।

एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि पूर्वकालमें सागरके
किनारे अग्निमालीने प्रार्थना की थी; कि देवदेव मेरे तट
पर बास करे । तदनुसार स्वर्णकूट नामक गिरि पर
कोस भर विस्तृत एकाग्र नामक पृथ्वीके नीचे शिवजी आ
कर रहने लगे । उस लिङ्गसे उत्तर ४० धेनुकी दूरी पर
शङ्करने अपने चोर्थप्रमायसे कुछ परधरोंको खोद निकाला ।
उनकी साहासे वहाँ एक गहरा जलसे परिपूर्ण हृद
दत्त गया । महादेवने पातालसे यह जल निकलता देख
सत्ससागर, गङ्गादि नदी, मानस और अखण्डप्रमुख सरो-
वर अर्थात् पृथिवी पर जितने नदनदी तोर्ध हैं उनका जल
ले कर उस जलमें डाल दिया । इस प्रकार सभी तोर्धों-
के विन्दु यहाँ गिरने लगे । लिपथगा गङ्गा भी महादेव-
के कर्मण्डले उसी स्रोतसे गिरने लगी । स्वर्ध भगवान्ने
इस हृदको बनाया था, इसलिये यह शङ्करवापी तथा
विन्ध्यके सभी तोर्धोंका विन्दु इसमें मिलनेके कारण
यह विन्दुसर नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

एकाग्र क्षेत्रमें या भुवनेश्वरमें जा कर तीर्थयात्रियोंको
पहले इस विन्दुहृदमें स्नान करना होता है । स्नानमन्त्र—

“आदो विन्दु हृदे स्नात्वा हृद्यया भोपुत्रयोः काम् ।

चन्द्रचूडं समाप्तोऽयं चन्द्रचूडो भवेन्नरः ॥”

(एकाग्रपु० २३ श०)

एकाम्बानन और भुवनेश्वर शब्दमें अन्वय्य विवरण देखो ।

विन्दुसार—बौद्ध नरपतिभेद । विन्ध्यसार देखो ।

विन्ध्य (सं० पु०) विन्ध्य शब्दका प्रामाणिक पाठ ।

(मार्क० पु० ५७।५२)

विन्ध्यचूलक (सं० पु०) जातिविशेष ।

विन्ध्यपत्त (सं० पु०) विन्ध्यशलाडु, बेलसोंठ ।

विन्ध्यपत्नी (सं० स्त्री०) विन्ध्यपत्त देखो ।

विन्ध्यस (सं० पु०) अन्द्रमा । (पिका०)

विन्ध्य (सं० पु०) विध-यत्, पृषोदरादित्वात् मुम् ।

१ पर्वतविशेष, विन्ध्यपर्वत ।

यह पर्वत दक्षिण ओर अवस्थित है । भारतके उत्तर
हिमालय और मध्यमें विन्ध्यपर्वत है । इन दोनोंके
बीच पिनशन अर्थात् सरस्वती नदीकी छोड़ कुच्छेत्रके
पूर्वमें तथा प्रयागके पश्चिममें जो देश है, उसका नाम
मध्यदेश है ।

प्राचीन श्रुति इस तरह है, कि विन्ध्य पर्वतके पश्चिम
दिशासे अगार मछली खाये, तो वे पतित समझे जाते
हैं । विन्ध्यगिरि देखो ।

२ प्याथ, किरात ।

विन्ध्यकन्दर (सं० स्त्री०) विन्ध्यस्य कन्दरं । विन्ध्य-
पर्वतका कन्दर, गुहा ।

विन्ध्यकवास (सं० पु०) बौद्धभेद ।

विन्ध्यकूट (सं० पु०) विन्ध्ये कूटं माया कृतं वं वा यस्य
व्याजिन तस्यावनतोकरणादस्य तथात्वं । १ अगस्त्य
मुनिका एक नाम ।

अगस्त्यने छल करके विन्ध्यका दर्प चूर्ण किया था
इससे उनका नाम विन्ध्यकूट पड़ा है । २ विन्ध्यपर्वत ।
विन्ध्यकेतु (सं० पु०) पुष्टिन्द्राग्रभेद ।

(कथावर्तिकां १२१।२५)

विन्ध्यगिरि (सं० पु०) मध्यभारतमें उत्तर-पश्चिम-विस्तृत
एक पर्वत-श्रेणी । इसने गङ्गाकी अवधारिका भूमि या

लक्ष्मणमें आर्षाचर्यासे दक्षिणात्यको प्रायः सम्पूर्ण रूपसे विच्छिन्न किया है।

पुराणमें विन्ध्यपर्वतके सम्बंधमें कई तरहकी बातें लिखी हैं। देवगण पुराकालमें इसी शैलशिखर पर विहार करते थे। ध्यान पूर्वक पढ़नेसे मालूम होता है, कि उनकी चढ़ विचरणभूमि उस समयमें तातो और नर्मदाके मध्यवर्ती सतपुराकी सुरम्य और सुदृश्य पहाड़ी या शैलभूमि ही विन्ध्यपर्वतके नामसे प्रसिद्ध थी। किंतु इस समय केवल नर्मदाके उत्तरमें अवस्थित शाखा प्रशाखाओंमें विस्तृत पर्वतमाला ही विन्ध्यशैल नामसे परिचित है।

देवीभागवतमें लिखा है, कि यह पर्वत सभी पर्वतोंमें श्रेष्ठ और माननीय है। इसकी पीठ पर तरह तरहके वृक्षोंके विराजित रहनेसे यह निविड वनके रूपमें परिणत हुआ है। बीच बीचमें इसके कुछ स्थान लता-गुल्मनिचय पुष्पभारसे पूर्ण पुलकाङ्ग दिखाई देनेकी वजह उपवन सदृश मनोरम दिखाई देते हैं। इस वनमें हरिन, सुगर, जङ्गली भैंस, धानर, खरगोश, गोदड़, बाघ, भालु आदि वनचर जंतु निर्भीकभावसे विचरण करते हैं और देव, दानव, गंधर्व और किरात इसके नद और नदियोंमें स्नान करते हुए जलक्रीड़ा करते हैं।

एक दिन महर्षि नारदने विन्ध्यके पास आ कर कहा— हे अतुलप्रभावशाली विन्ध्य ! सुमेरु गिरिको समृद्धि देख कर मैं दङ्ग रह गया हूँ। इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदि देवगण यहाँ नाना सुख भोग कर रहे हैं। अधिक क्या कहूँ, स्वयं भगवान् विभ्यात्मा गगनविहारो मराचि माली, स रे प्रद्वों और नक्षत्रोंके साथ इस पर्वतका परिभ्रमण किया करते हैं, इसालिये चढ़ अरनेकी बड़ा और श्रेष्ठ तथा बलिष्ठ कह कर गर्व करता है।

देवर्षिके मुहसे स्वजाति सुमेरुकी ऐसी प्रशंसा सुन कर विन्ध्य ईर्ष्यापरायण हो उठा। इसने अपनी कुटिल बुद्धिसे परिचलित हो कर सूर्यकी गतिको रोक सुमेरुके गर्भको खर्ग करनेकी चेष्टा की। इसने अपनी भुजाकी शृङ्गोंको ऊंचा कर अ.काशमार्गको रोक रखा। सूर्यदेव इसको पार कर जा न सके।

सूर्यका मार्ग अवरुद्ध होने पर दिव्यलोकमें गड़बड़

मच गई। चित्रगुप्त कालनिर्णय नहीं कर सके। देव और पितृकार्य सम्पूर्णरूपसे विलुप्त हुए। मूल दात यह है, कि पृथ्वी, होमादि और धाततर्पणःदि-वर्जित हुई। पश्चिम और दक्षिणके अधिवासी सदा रात्रिका ही अनुभव करने लगे। दूसरो ओर पूर्व और उत्तरके अधिवासी अधिक सूर्योत्तापसे क्लेश पाने लगे। कोई दग्ध, कोई मरा, कोई अधमरा हो कर तड़पने लगा। चारों तरफ हाहाकार मच गया। त्रिभुवनके हाहाकारको देख इन्द्र आदि देवगण इस उपद्रवकी शान्तिको चिन्ता करने लगे।

अन्तमें देवगण प्रह्लाको अप्रसर कर कैलासमें देवदेव महादेवके शरणापन्न हुए। उन्होंने महादेवजीसे विन्ध्यकी उत्तरोत्तर उन्नतिको खर्च करनेकी प्रार्थना की। महादेवने कहा,— विन्ध्यका बल खर्च करनेकी क्षमता हम लोगोंमेंसे किसोमें नहीं है। चलो, हम सभी वैकुण्ठनाथकी शरण लें।

देवगण सोचे वैकुण्ठमें आये और उन लोगोंने परमपिता भगवान् विश्वुका स्तव किया। इस पर सन्तुष्ट हो कर विष्णुने कहा, 'विभ्यत्संसारको निर्माता देवी भगवतीके सेवक अतुल प्रभावशाली भगस्त्य मुनि इस समय श्रीकाशीधाममें अवस्थान कर रहे हैं। उनके सिया और कोई विन्ध्यकी उन्नतिमें बाधा नहीं डाल सकेगा।' तदनुसार देवगण काशीधाममें था भगस्त्य आश्रममें पधार और उन्होंने उनको ऋशभिज्ञा मांगी। उस समय लोपमुद्रापतिं अयोनिस्सभाव, यह महामुनि कालमैत्र्यकी प्रणियात पर वाराणसीसे दक्षिणकी ओर चले। निमेष भरमें विन्ध्यके समीप आ उपस्थित हुए। मुनिवर भगस्त्यकी सामने यज्ञ देख कर विन्ध्यने खूद झुक कर मानो पृथ्वीके कानोंमें कुछ कहना चाहता हो, भगस्त्यकी दृष्टयत किया। भगस्त्यने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—यस्त ! तुम्हारे इस दुरारोह प्रस्नर पर आरोहण करनेमें मैं नितान्त अक्षम हो रहा हूँ। मैं जब तक लीट कर न आऊँ तब तक तुम इसी भावसे अवस्थित रहो। मुनिवरने विन्ध्यसे ऐसा कह दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। वे श्रीशैलकी होते हुए मलयपंचल जा यहाँ आश्रम बना कर रहे।

उस दिनसे विन्ध्यने और फिर कभी शिर ऊँचा न किया।

इधर मनुपूजित देवी भगवती भी विन्ध्यपर्वत पर आ विराजीं। उस समयसे वे विन्ध्यवासिनी नामसे पूजित हो रही हैं। (देवीभागवत १०।१७ अ०)

धामनपुराणमें लिखा है, कि समय आने पर इस पर्वतने बट कर सूर्यको गतिको रोक दिया। इससे सूर्यदेवने व्याकुल हो कर अगस्त्य ऋषिके होमावसानके समय जा कर उनसे कहा—हे कुम्भम्ब ! विन्ध्यगिरिके प्रमाथने मेरे स्वर्ग जानेका पथ पूर्णरूपसे बन्द है। आप ऐसी व्यवस्था करें, जिससे मैं निर्विघ्न अपनी यात्रा तप कर सकूँ। दिखाकरके इस विनोत वाप्यको सुन कर अगस्त्यने कहा—मैं आज ही विन्ध्यगिरिको नत-मस्तक करूँगा।

यह कह कर महर्षि दण्डकारण्यसे विन्ध्याचल चले गये और विन्ध्यसे ढोले—देखो विन्ध्य ! मैं तीर्थ-यात्राको निकला हूँ। तुम्हारी इतनी ऊँचाईके कारण मैं दक्षिणकी ओर नहीं जा सकता हूँ। अतएव तुम आज नीचेकी ओर झुको। ऋषिके इस आक्षेपसे विन्ध्यगिरिके निम्न शृङ्ग होने पर अगस्त्यने पर्वत पार कर दक्षिण ओर जा फिर धराधरसे कहा,—विन्ध्य ! जब तक मैं तीर्थयात्रा करके न आऊँ तबतक तुम इसी तरह खड़े रहो। यदि तुम अन्यथा करोगे, तो तुमको मैं शाप दूँगा। यह बात कह कर ऋषि वहाँसे प्रस्थान कर देशके अन्तरीक्ष प्रदेशमें आये और वहाँ अपनी सहधर्मिणी लोपामुद्राके साथ घास करने लगे। उस समय विन्ध्य मुगिकी लौटनेकी आशा परित्याग कर प्रापभयसे चैस हो खड़ा रहा। देवी भी दानवदलनार्थ इस विन्ध्यगिरिके सर्वोच्च शृङ्ग पर अवस्थित हुईं। अक्षराओंके साथ देव सिद्ध भूत नाग और विद्याधर आदि सभीने एकत्र स्वस्ति-वाद कर उनके अहर्निशि सन्तुष्ट किया और वे अपने भी दुःख शोकविचरिजित हो कर वहाँ अवस्थान करने लगे। (धामनपुराण १८ अ०)

काशीखण्डमें लिखा है, महर्षि नारद नर्मदा नदीमें स्नान कर आंकारेश्वर महादेवकी पूजा कर विन्ध्य समीप पहुंचे। विन्ध्यके अष्टोपकरणनिर्मित अर्घ्य

द्वारा यथाविधि पूजा करने और कुशलप्रश्न पूछने पर मुनिवरने दोर्घ निश्वास परित्याग कर कहा, कि विन्ध्य ! इन पर्वतोंमें एक शैल सुमेरु ही एकमात्र तुम्हारी अवमानना करता है। यह बड़े दुःखकी बात है। और कई तरहकी बातें कर नारद वहाँसे चले गये। अर विन्ध्यको सुमेरुसे बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हुई। विन्ध्यने अष्टोप-परायण हो कर अपनी देहको ऊँचा किया और यहाँ तक ऊँचा किया, कि सुमेरुको प्रदक्षिणा सूर्य और मस्त-गण न करने पाये। इस तरह सूर्यका गमनागमन बन्द हो जाने पर स्वर्ग मर्त्य चारों ओर हाहाकार मच गया। देवोंके इच्छे हो कर जगत्में शान्ति फैलानेका उपाय पूछने पर ब्रह्माने कहा, कि अगस्त्य ऋषिके सिवा इसके प्रतिकार करनेकी प्रत्याशा किसीने नहीं है। अतएव तुम लोग शीघ्र उन विश्वेश्वरके अविमुक्तक्षेत्रमें जा कर उन मित्रावरुणके पुत्र महातपस्वी अगस्त्यके निवृत्त इसके लिये प्रार्थना करो।

ब्रह्माके इस परामर्शके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंने काशीमें आ कर अगस्त्यको विन्ध्यके उर्वरांतकी बात कही और प्रतिकारकी भी प्रार्थना की। इस पर अगस्त्य जीने भी तुरन्त इसके प्रतिकारके लिये विन्ध्यगिरिकी ओर प्रस्थान किया। विन्ध्यगिरिने जानल रहूँश मुनिका आना देख भयभीत हो कर अपने शरीरको अघनत कर विनम्र बचनोंमें कहा, प्रभो ! आप प्रसन्न हो कर जो आश देगे, उसे पालन करनेमें मैं तन मन धनसे तत्पर हूँ। इस पर अगस्त्य मुनिने कहा—विन्ध्यगिरि ! तुम साधु हो, मैं जब तक लौट न आऊँ, तुम इसी भावसे खड़े रहो यह कह कर अपनी स्त्री लोपामुद्राके साथ गोदावरी तट पर अगस्त्य मुनि रहने लगे।

इन सब पौराणिक विवरणोंसे मालूम है, कि यह विन्ध्यगिरि एक समय बहुत ऊँचा था। इसके ऊँचे शिखर पर कोई चढ़ नहीं सकता था। इसीसे यह दानव यक्ष किन्नरों की वासभूमिमें परिणत हुआ था। अकस्मात् विन्ध्यके हृदयमें ईर्ष्याकी तरङ्ग लहराई, इसने अपने शरीरको इतना बढ़ा दिया, कि सूर्यका मार्ग भी बन्द हो गया। महसा अन्धकारसे जगत् व्याप्त हुआ। विन्ध्यशैलकी इस तरह आकस्मिक देहवृद्धि और सूर्य-

गतिको रोक जगत्में अन्धकारका राज्य करनेकी पुराण-वर्णित कथाओं पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि एक समय विन्ध्यपर्वतके हृदयको भेद कर अन्तिगन्धित द्रवपदार्थोंने और धूमराशिनै निकल कर जगत्को आच्छादित कर लिया था। यह सहज ही अनुमान होता है, कि पुराणको यह वर्णन आन्वय गिरिके अन्वयुत्पातका परिचायक है और रूपक भावमें बड़ी पुराणोंमें वर्णित है। विभिन्न पुराणोंमें अगस्त्यका विभिन्न दिशाका जाना प्रमाणित होता है। अगस्त्यका दक्षिणार्ध गमन या अन्तरोक्षमें गादावरो तट पर या मलयचलमें आश्रम निर्माणसे उस समयके विन्ध्य-पादधासी आर्योंका दक्षिणात्यमें उपनिवेशस्थापन प्रसङ्गकमसे वर्णित होना सूचित करता है। आधुनिक भूतत्त्वविद्वान् भी एक स्वरसे स्वीकार किया है, कि विन्ध्यशैलके प्रस्तरस्तर और प्रशाखाओं पर विशेषरूपसे पट्टविश्लेष करनेसे मालूम होता है, कि ये आग्नेयगिरिके स्थायजात हैं।

प्राचोनकालमें यह शैलदेश नाना नद-नदियोंसे परिशीमित था और अनेक आर्य और अनार्य जाति वहां वास करती थी।

पुराणमें विन्ध्यपादसे शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्य, वासी-प्रभृति कई नदियोंको उत्पत्तिका उल्लेख दिखाई देता है।

हिन्दुओंको दृष्टिमें ये नदियां पुण्यसलिला और पुण्यतार्पीरूपमें गण्य हैं वहां आर्योंका निवास न रहनेसे ये नदियां कमो भी पुण्यसलिला नहीं कही जाती।

इस पर्वतको फीठ पर और नर्मदा तट तक दक्षिण-पादमूलमें कितनी ही असंख्य जातियोंका वास है। आज भी वहां भील आदि अनेक आदिम जातियोंका वास है। मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है—

“नाशिक्यावारच ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्मदाः।

भोजकञ्ज्याः समादेयाः सदावस्थतेरपि ॥

कामीराञ्च मुराष्टारच आबन्त्याञ्चवुदैः सह।

इत्येते क्षपराञ्चोञ्च शुशु विन्ध्यनिवासिनः॥

द्विराज्य करुवारच, केरळारचोत्कलेः सह।

उचमर्षां हशाप्यारच भोज्याः क्रिष्किन्ध्यकेः सह।

तोराशाः कोशलारचैव त्रैपुरा वेदिसस्तथा ॥
तुम्बुस्तुम्बुलारचैव पटवो नैपथैः सह।
अन्नजाटुष्टिकारारच वीतिशोभा ह्यन्नन्तयः ॥
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृथुनिवासिनः ॥”

(मार्कण्डेयपुराण ५७।५१-५५)

चामनपुराणमें भी इन स्थानोंको विन्ध्यके निम्न भागमें अवस्थित रहना लिखा है। किन्तु उक्त ग्रन्थमें दो एक स्थानोंको विपरोतता दिखाई देती है।

(चामनपुराण १३ अ०)

पुराण और स्मृत्यादि ग्रन्थोंमें यह पर्वत मध्यदेश और दक्षिणात्यकी सीमा निर्दिष्ट है। सुतरां इसके द्वारा उत्तर भारतके आर्यों और पश्चिम देशोंके साथ दक्षिणात्यके अनार्योंकी पार्श्वपर रेखा विनिर्दिष्ट हुई है।

“दिग्बद्धिन्ध्योर्मध्यं यत् प्राग्विनयनादापि।

प्रत्यगेव प्रयागान्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

आशुमदास्तु वै पूर्वार्दाशुमदास्तु पश्चिमात्।

तयो रेवान्तरं गिष्णोरार्योर्वर्त्त विदुर्बुधः ॥”

(मनुस्मृति २।२१।२२)

मिष्टर ओलडहम और मिष्टर मेडलिकेटने विन्ध्य-पर्वतके भूतत्त्वकी पट्ट्यालोचना कर लिखा है, कि यह पर्वतमाला दक्षिणात्यकी उत्तरी सीमा पर व्याप्त है। यह मानो एक त्रिकोणका मूलदेश है। पूर्व और पश्चिम घाट पर्वतमाला इसके दोनों पार्श्व हैं जो भारतके पूर्व और पश्चिम उपकूल होते हुए कुमारिका अन्तरोपके निकट परस्पर मिलते हैं। नीलगिरिकी शिखर मानो इस त्रिकोणका चूड़ागत है। गुजरात और मालयके बीचसे यह पर्वत घाट पक्षसे मध्यभारतको पार कर राज-महलके गङ्गाके उपत्यका देग तक फैला हुआ है। यह अक्षा० २२° २५' से २४° ३०' उ० और देशा० ७३° ३४' ८०' ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके साधारण ऊँचाई १५०० फीटसे ४५०० फीटके करीब है। किन्तु कहीं कहीं इसके चूड़ागतकी ऊँचाई ५००० फीट तक देवी गई है।

पश्चिममें गुजरातसे पूर्व गङ्गाकी अथवाहिनी देश तक २२ से २५ सम-अक्षांशके बीच

जित है। यह इस समय नर्मदाकी उत्तरी उपत्यकाकी सीमारूपसे विद्यमान है। इस पर्वतका अधित्यकादेश साधारणतः १५०० से २००० फीट ऊंचा है। किन्तु स्थान-स्थानमें कई शृङ्गोंने उन्नत मस्तरुसे अवस्थित हो कर प्राकृतिक सौन्दर्यको एकताको भङ्ग कर दिया है। अक्षा० २२° २४' उ० और देशा० ७३° ४१' पू०में चम्पानेर नामक शृङ्ग समुद्रपृष्ठसे २५०० फीट ऊंचा है। जामघाट २३०० फाट, भूगालका शैलशिखर २५०० फाट, डिन्दुवाड़ा २१००, पचमारी ५००० (१), दोकगुड ४८००, पट्टशङ्का और चूडादेव या चूडा-ट्ट ५०००, अमररूपटक अधित्यका ३४६३, लाञ्जोशैलका लोला नामक शिखर २३०० फीट है (अक्षा० २१° ५५' उ० और देशा० ८०° २५' पू०) उक्त पर्वतके अक्षा० २१° ४०' उ० और देशा० ८०° ३५' अंशमें २४०० फीट ऊंचा और भी एक शृङ्ग है।

पश्चिम भारतकी अधित्यका प्रदेशस्थित मालय, भूपाल आदि राज्योंकी दक्षिणी-सीमा पर प्राचीन स्वरूप यह पर्वतमाला बड़ी है और यही इसके पीछे भी है। सागर और नर्मदा प्रदेश इसके ऊंचे चूडागतांमें गिने गये हैं। इसके उत्तर भागकी अपेक्षा पश्चिम भाग कई सौ फीट ऊंचा है। विन्ध्य पर्वतकी पश्चिम सीमासे उत्तरकी ओर एक पर्वत श्रेणी चक्रमावसे राजपूतानेको पार करती हुई दिल्ली तक गई है। इसका नाम है थरायलोकी पहाड़ी। इसने पश्चिम भारतके मध्यदेशसे मध्यभारत को अलग किया है।

इस समय हम विन्ध्यपर्वतको नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त देखते हैं। ये शाखायें एक एक अलग अलग नामसे परिचित हैं। पौराणिक युगमें विन्ध्यपर्वतके दक्षिणकी सनपुरेकी पहाड़ी भी विन्ध्य नामसे परिचित है। किन्तु इस समय केवल नर्मदाके उत्तरवर्ती विस्तृत शैलश्रेणी ही विन्ध्यगिरिके नामसे पुकारे जाते हैं।

विन्ध्यपर्वतका पूर्वांग एक विस्तृत अधित्यका प्रदेश है। इसके उत्तर और दक्षिणमें-असंख्य शाखा-प्रशाखायें फैली हैं। दक्षिणकी इन शाखाओंमें उड़ीसाके विभिन्न उपत्यकायें विराजित हैं। उत्तरमें छोटा नागपुरकी अधित्यका भूमि है। यह ३००० फीट ऊंचा है। पश्चिममें सरगुजाके निकट यह और भी ऊंचा है। दजारी

बागकी ऊंचाई १८०० फीट है, किन्तु पूर्वाञ्चलमें पारनाथ पर्वतकी ऊंचाई ४५०० फीट है। इस पर्वत श्रेणीकी सर्वा पूर्वासीमा मुंगेर, भागलपुर और राजमहलके निकट गङ्गातोर तक विस्तृत है। विन्ध्यपर्वतका जो अंश मिर्जापुरमें पड़ा है, वह विन्ध्यवाचल नामसे प्रसिद्ध है। यह हिन्दुओंके लिये एक बहुत पवित्र तीर्थ गिना जाता है। विन्ध्यवालिनी और विन्ध्यपञ्च देखो।

इस पर्वतकी शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त विभिन्न उपत्यका विभिन्न देशवासियोंको आश्रयभूमि हो जानेके कारण ये राजकोय और जातिगत विभागकी सीमा रूपसे निर्दिष्ट हुई हैं। इसी कारणसे संगम विन्ध्यपर्वतका विवरण एकत्र संग्रह करनेकी सुविधा नहीं होती। इसका जो अंश जिस जिलेके अन्तर्गत है अथवा जो अंश जिस जातिको घासभूमिमें परिणत है, पर्वतका प्राकृतिक विवरण भी उन उन जातियों या जिलोंके साथ पृथक् रूपसे लिखा गया है। प्राचीन संस्कृत काव्यादि ग्रन्थोंमें इस विन्ध्यपर्वतके अंश विशेषता ही माहात्म्य वर्णित दिखाई देता है। मुगलोंके शासनकालमें राजकोय कार्य और दक्षिणात्य देशों पर आक्रमण करनेकी सुविधा होनेसे इस पर्वतके स्थानविशेषका परिचय इतिहासमें या राजकीय विवरणोंमें आया है।

भूतत्त्वके विषयमें, नर्मदातोरवर्ती विन्ध्यपर्वतकी पादभूमि प्लैतत्त्वविद्ओंके लिये जैसी आदरकी सामग्री और चिन्ताकारणकारी है, भारतके अन्य कहीं भी ऐसा स्थान दिखाई नहीं देता। यहाँ विन्ध्यपर्वत पर बालुका प्रस्तरका जो स्तर और मिला हुआ मूस्तर है (associated beds) यह अति आश्चर्य और विचित्र है, प्राकृतिक विपरीत, रासायनिक प्रक्रियासे और जलवायुके प्रभावसे इसके दक्षिण भागके प्रस्तर-स्तर अर्धवैद्युत्की प्रतीति रूप हैं। नर्मदा उपत्यकाके मूलदेशसे होती हुई क्रमसे पूर्वाकी ओर दौड़ती शोनिनेदीकी उपत्यका तथा विहार और गोरखपुर-पर्वत मालामें भी ऐसा ही प्रस्तर दिखाई देते हैं।

भूतत्त्वविद्ोंने विन्ध्यपर्वतके प्रस्तरस्तर आदिकी पट्टाधिक गठन-पट्टावलीचना की है। पूर्व-पश्चिममें सहस्ररामसे निम्न तक प्रायः ६०० मीलोंमें और उत्तर-

दक्षिणमें आगरासे होशङ्काबाद तक ३०० मीलोंने फैले हुए प्रस्तरस्तरका जो एक पार्वत्य गर्भ (Rock-basin) परिलक्षित होता है, भूपञ्जरके उस स्तरसमष्टिको साधारणतः Vindhyan Formation कहते हैं। इस विस्तोर्ण पार्वत्य-भूपञ्जरके चारों ओर बलुई पत्थर (Sand-stone) के स्तर पाये जाते हैं; उनके साथ निस्त्रिक या ट्रांजिस्सन प्रस्तरका (Transition or gneissic rocks) कोई सीसादृश्य नहीं है। किन्तु इसके पूर्व भागमें अवस्थित बुन्देलखण्ड और शोण नदीके उपत्यकादेशमें उसके समान स्तरमें जो प्रस्तरस्तर हैं, वे विपरीत भावसे गठित हुए हैं। इन प्रस्तरस्तरोंके नीचे जो स्तर भूगर्भमें प्रोथित हैं, उनकी गठनप्रणाली भी खतरने हैं। यह स्तर देख कर वैज्ञानिकतरकी आलोचनाकी सुविधाके लिये भूतत्त्वविदोंने विन्ध्यपर्वतके समग्र स्तरोंको ऊँचा और नीचा (Lower and Upper Vindhyan) नामसे अमिहित किया है। कानूँल, पालनाइ, भीमाका अधयाहिकाप्रदेश, महानदी और गोदावरी विभाग, शोण प्रवाहित पार्वत्यभूमि और बुन्देलखण्ड विभागके भीचेकी विन्ध्यधरोणीके पर्वतस्तर ही अधिक देखे जाते हैं। फिर शोण नर्मदाकी सीमा पर, बुन्देलखण्डके सीमागत पर, गङ्गातीरवर्ती पार्वत्यभूमिमें और आरावली सीमा पर ऊट्टूर्ध्वतन-विन्ध्य प्रस्तरस्तर बहुतायतसे देखे जाते हैं।

इसी ऊट्टूर्ध्व विन्ध्यपर्वतस्तरमें हीरा पाया जाता है। हीरा पानेकी चेष्टामें अनेक स्थानोंमें खान खोदी गई हैं और इनके भीतर पलिमय स्तरकी छोड़ कर बड़ा हीराका स्तर दिखाई नहीं दिया है। किन्तु रेवाराउयके अन्तर्गत ऐसे स्तरों (Rewashales) के नीचे बहुत कुछ हीरा मिला है। हीरे निकालनेके लिये खानके अधिकारियोंने विशेष परिश्रम और अर्धा नष्ट किया है। पन्ना-राउयके दक्षिण ऊपर-रेवा बलुई पत्थर (Upper Rewa Sandstone) पहाड़के टालूप देशमें अधया पर्वतकन्द्रोंमें और उक्त बलुई चट्टानोंके निम्नस्तर विन्ध्यपर्वतस्तरसे कुछ उच्च पार्वत्य प्रदेशमें ऐसे कई हीरेकी खानें खोदी गई हैं। भीम श्रुतुकी छोड़ अन्य श्रुतुओंमें खानके काम करनेमें सुविधा नहीं है।

नर्मदा नदीके किनारे विन्ध्यपर्वतांशका सुप्रसिद्ध मार्मरपर्वत (Marble rocks) है। ऐसा उजला मार्मरपर्वत भारतके और किसी स्थानमें दिखाई नहीं देता।

मर्मरप्रस्तर देखो।

विन्ध्यचूलक (सं० पु०) विन्ध्यचूषिक देखो।

विन्ध्यचूलिक (सं० पु०) विन्ध्यपर्वतके दक्षिणका प्रदेश। महाभारतके अनुसार यहाँ एक प्राचीन जंगलो जाति रहनी थी।

विन्ध्यनिलया (सं० खो०) विन्ध्ये विन्ध्यपर्वतसे निलया अवस्थानं यस्याः। विन्ध्यवासिनी दुर्गा।

विन्ध्यपर (सं० पु०) विद्याधरविशेष।

(कथासरित्सा० ३५।२२)

विन्ध्यपर्वत (सं० पु०) विन्ध्य नामके शैल। आधुनिक भूगोलमें (Vindhya Hills) नामसे वर्णित है। यह आर्षावर्षा या हिन्दुस्थानको दक्षिणात्यसे अलग करता है। विन्ध्यगिरि देखो।

विन्ध्यपालिक (सं० पु०) जातिविशेष। (विष्णुपुराण) विन्ध्यपापर्व—विन्ध्यपात्रस्य देशभाग। यहाँ विन्ध्यवासिनी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

(भविष्यद्भागवतं ८।२५, ७५)

विन्ध्यपूषिक (सं० पु०) जातिविशेष।

(मत्स्यपु० ११३।५८)

विन्ध्यमूलिक (सं० पु०) जातिविशेष। (विष्णुपुराण)

विन्ध्यमौलिय (सं० पु०) जातिविशेष।

(मार्क०पु० ५५।४०)

विन्धवावत् (सं० पु०) एक दैत्यका नाम। इसकी कन्या कुन्तलाके पतिका नाम था पुष्करमाली। शुम्भने इसका बध किया था। (मार्क०पु० २१।१५)

विन्ध्यवर्मन् (सं० पु०) मालवके परमारवंशीय एक राजा। ये पिता अश्ववर्माकी मृत्युके बाद सिंहासन पर बैठे।

विन्ध्यवासिन् (सं० पु०) विन्ध्ये वसतीति वसन्ति। १ व्याडि मुनिका एक नाम। २ एक वैद्याकरण। राय-मुकुट और चरितसिंहने इनका उल्लेख किया है। ३ एक वैद्यक ग्रंथके रचयिता। सौंदर्यदीपमें इनका नामोल्लेख मिलता है। (त्रि०) ४ विन्ध्यपर्वतवासी।

विन्ध्यवासिनो—विन्ध्याचलकी एक देवीमूर्त्तिका नाम । भगवती दाक्षायणोके दक्षालयमें देहत्याग करने पर महा-देव सती बिरहसे व्यथित और उन्मत्त हो कर उन सती-का शवदेहको कन्धे पर रख सारी पृथ्वीमें घूमते फिरते थे । उस समय भगवान विष्णुने उनको शान्त और संसार-रक्षा करनेके लिये अपने चक्र द्वारा सती देह-को टुकड़े-टुकड़े काट डाला । देवीको देहके ये टुकड़े जहां-जहां गिरे, वहां वहां शक्तिका एक एक पाठ स्थापित हुआ । इस तरह जो टुकड़ा यहां गिरा था, उससे ही विन्ध्यवासिनो देवीको उत्पत्ति है ।

वामनपुराणमें लिखा है, कि सहस्राक्षेण भगवती दुर्गा देवीका विन्ध्यपर्वत पर ले जा कर स्थापित किया है और वहां देवताओं द्वारा पूजिता होने पर विन्ध्यवासिनो नामसे प्रसिद्ध हुई है ।

फिर देवीपुराणमें लिखा है, कि भगवती दुर्गाने विन्ध्यपर्वत पर देवताओंके लिये अवतोरण हो कर महा-बोद्धा असुरोंको मारा था । उसी समयसे वहां ये अव-स्थान करती हैं ।

बहुत पुराने समयसे ही शक्ति मूर्त्तिका पूजा होती आ रही है । कुछ लोग इस मूर्त्तिका यहांकी शंकर, कोल आदि असम्भ्यजातियोंकी उपास्य देवी कहा करते हैं ।

ईस्वी सन् ८वीं शताब्दीके मध्यभागमें सुप्रसिद्ध कवि वाकपतिने अपने गौडवधकाव्यमें उस भीषणा विन्ध्य-वासिनो मूर्त्तिका वर्णन किया है । वाकपतिके प्रतिपालक महाराज यशोवर्मदेवने देवीका दर्शन कर ५२ श्लोकमें उनका स्तव किया था । उन श्लोकोंसे मालूम होता है, कि देवीके सिंहदरवाजे पर सैकड़ों घण्टे झूलते थे । (मानो कीर्ती महिषासुरवंशके गलेसे घण्टे खोल कर यहां रखे गये हों) देवीके पदतलकी किरणसे महिषासुरका मस्तक सुधाधवलित हो रहा है । (मानो हिमालयसुताके सन्तोषके लिये अपना एक तुपारखण्ड भेज दिया हो) मन्दिरके सुगन्धित चतुर्दरोंमें दलके दल भ्रमर गूँज रहे हैं । (मानो जन्म-भरण रहित मानवदेवीका स्तव कर रहे हों) विन्ध्याद्रि धन्य है, क्योंकि उसकी एक कन्दारमें देवी अवस्थित है । मन्दिरके भीतर जाने पर देवीके चरण-किङ्कनी तेल पर मान बाधुष्ट होता है । वह चरण

माना नरकपालभूषित श्मशानमें भ्रमण करनेमें प्रिय है । उनके द्वारकी प्राङ्गण-भूमि उत्कृष्ट जोगितसे सुसज्जित है । उनके मन्दिरके चारो ओर जो उद्यान है, उसमें जहां देखो कुमारके प्रिय सैकड़ों मयूर घूम फिर रहे हैं । मन्दिरके भीतर कालिमाके अन्धकारसे आवृत है । फिर भी, उसमें घोरोके लिये खुली छुरिका, बहूतरे घनुष और तलवारें शोभा पा रही हैं । मन्दिरके अति स्वच्छ प्रस्तरफलकों पर रत्नवर्ण पताकाओंका प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होनेसे सैकड़ों गोदृढ़ उसे रत्न-प्रवाह समझ कर खाटते रहते हैं । मन्दिरके भीतरी भागमें मन्द मन्द दीप जलता रहता है—मानो उत्कृष्ट शत शत नरमुण्डोंके घन कृष्णके शरागिसे ही दीपकका प्रकाश निस्तेज हो रहा है । कोली जातिकी ब्रियां नरबलिके भीषण दृश्य देखनेमें मानो अक्षम हो कर वहां नहीं जाते । इसीसे ये देवीके चरणोंमें न दे कर दूरसे ही गंध पुष्पादि अर्पण कर चलो आती हैं । यहांके वृक्ष भी मनुष्य मांसके रक्तसे अनिरञ्जित हैं । इस निशोष मन्दिरमें भी मांसविकचरूप महाकार्यकी सूचना मिल रही है । देवीको सहचरी रैवती भी देवीके पाददेशमें निपतित भीषण मनुष्यको हड्डियोंका दर्शन कर मानो खमाधत हो भीत हो रही है । हरिद्रापत्र-परिधान एक शंकरने महाराज यशोवर्माके साथमें ले कर यथा-नियमसे देवीका दर्शन कराया था ।

वाकपतिके गौडवधकाव्यमें देवीका जो चित्र और मन्दिरका जैसा वर्णन किया गया है, उससे मालूम होता है, कि ये देवी किस तरह नरमांसतिलोप्याधी । ये असम्भ्य कोली और शंकरजाति द्वारा पूजित है—शंकर ही उनका पूजा करानेवाले पण्डोंका भी काम करते थे । किंतु बहुत दिनोंसे ये देवी अनार्य जातिकी उपास्य रहने पर भी ईलो सनकी ८वीं शताब्दीके पूर्वसे ही आर्यों द्वारा भी पूजित हो रही है । यह भी गौडवध काव्यमें महाराज यशोवर्मदेवके स्तोत्र पाठ करनेसे सहज ही मालूम होता है ।

राजतरङ्गिणीमें विन्ध्य शैलस्थ इन देवीकी भ्रमर-वासिनो ही लिखा है । (राजत० ३।१६५)

आज भी हजारों यात्री देवीदर्शनके लिये विन्ध्या-चल जाते हैं । विन्ध्याचल देखो ।

विन्ध्यवासियोग (सं० पु०) यक्षमारोगको एक औषध । इसके बनानेकी तरकीब—सोँठ, पीपल, मिर्चा, शतमूली, आमलकी, हरीतकी, बीजबंद, सफेद बीजबंद प्रत्येकका चूर्ण एक तोला ले कर उसके साथ ६ तोला जारित लोहा मिला कर जल द्वारा अच्छी तरह घोंटि । पीछे २ रसी भरकी गोली बनावे । इसका सेवन करनेसे बरःश्वेत, कण्ठरोग, राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ आदि रोग प्रगमित होते हैं ।

विन्ध्यशुक (सं० स्त्री०) १ एक यवन राजाका नाम । २ वाकाटक वंशीय एक राजाका नाम । (विश्वपुराण) विन्ध्यसेन (सं० पु०) राजभेद, विम्बिसारका एक नाम । विन्ध्यस्थ (सं० पु०) विन्ध्ये विन्ध्यपर्वतं तिष्ठतीति स्था-क । १ प्याड़ी मुनिका एक नाम । (त्रि०) २ विन्ध्यपर्वतस्थितमात्र ।

विन्ध्या (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम । (वामनपुराण)

विन्ध्याचल—युक्तप्रदेशके बनारस विभागके मिर्जापुर जिलेका एक ग्राम और प्राचीन तीर्थ । यह मिर्जापुर सदरसे ७ मील दक्षिण-पश्चिम गङ्गानदीके किनारे अवस्थित है । यह स्थान मिर्जापुर तहसीलके कछिट्ट परगनेके अन्तर् है । सुप्रसिद्ध विन्ध्यगिरिका जो अंश मिर्जापुर जिलेमें आ पहुंचा है, उसी अंशका नाम विन्ध्याचल है । यह ग्राम पर्वतगाल पर अवस्थित है, इसीलिये विन्ध्याचलके नामसे यह ग्राम भी परिचित है ।

भारतवर्षके सर्वजनपूजित विन्ध्येश्वरी या विन्ध्यवासिनोदेवोके गुदामन्दिर इसी पर्वत पर अवस्थित रहनेसे यह जनसाधारणके निकट बहुत परिचित है और बहुत प्रसिद्ध है । पुराणोंमें विन्ध्याचल नगरीकी वर्णना है । इससे इस तीर्थके और देवीकी प्रतिमाके प्राचीनत्वका परिचय मिलता है । एक समय यह नगर प्राचीन म्प्यापुरकी राजधानीके अन्तर्गत था । विन्ध्यवासिनी देवी ।

पहले तीर्थयात्रियोंको मिर्जापुरमें उतर कर देवी दर्शनके लिये पैदल जाना होता था । यात्रियोंको सुविधाके लिये इंद्रप्रिण्डिया रेल कम्पनीने अब विन्ध्याचल नामका एक छोटासा स्टेशन बना दिया है । इस स्टेशनसे यह बहुत ही निकट है अर्थात् स्टेशन पर खड़ा होनेसे विन्ध्यावासिनी

देवीकी चक्रगताका दिखाई देती है । मन्दिरमें किसी विशेष शिल्पचातुर्यका परिचय नहीं मिलता । यह एक चतुष्कोण गृह भी कहा जा सकता है । देा जगह देवीकी दो प्रतिमार्थे प्रतिष्ठित हैं । पर्वतके निम्नस्तरमें एक मन्दिरमें देवीकी भोगमाया-प्रतिमा प्रतिष्ठित है और पर्वतके अत्युच्चशिखर पर स्थापित देवीमन्दिरकी मूर्त्तियाँ योगमायाके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

स्टेशनसे उतर कर रेलपथसे जाते समय दक्षिण ओर खेतोंमें एक सुन्दर शिव-मन्दिर दिखाई देना है । यह चुनारके पत्थरसे बना है । काशीश्वर महाराज इसके प्रतिष्ठता हैं । इस मन्दिरकी छोड़ कर कुछ और अप्रसर होने पर मिर्जापुरका सदर रास्ता मिलता है । इस रास्तेको पार कर लेने पर एक पहाड़ी तङ्ग रास्ता मिलता है । इस तङ्ग रास्तेमें देवी भोगमायाका मन्दिर और मन्दिरसे सटा बाजार और घाट है । देवीका मन्दिर पर्वतगाल पर ही एक समतल स्थानमें बना है । यह देखनेमें काशी मिर्जापुर आदि स्थानोंके सामान्य मन्दिरकी तरह ही है । इसमें शिल्पचातुर्य विशेष नहीं । मन्दिरके गर्भ-गृहमें देवीकी मूर्त्ति नहीं रहती । मन्दिरमें दुकानेके पथमें अग्र्यतरस्थ एक पर्वतचूड़ाके गालके एक तालके देवीका दर्शन मिलता है । ब्राह्मणके सिवा अन्य यात्री देवीके सामने नहीं जा सकता । मन्यान्व लोगोंको मन्दिर-प्राचीरके एक दो फुटके भरोखेसे देवीका दर्शन करना पड़ता है । अतः दर्शकोंको तङ्ग भरोखेके कारण बड़ी भीड़ हो जाती है । देवीकी प्रतिमा एक डेढ़ फुटके पत्थर पर खोदी गई है और काशीकी अननपूर्णा और दुर्गादेवीकी तरह मुख आदि अवयव मय सेनके बनाये गये हैं । दुर्गामन्त्रसे देवीकी पूजा और अञ्जलि दी जाती है । इस भोगमायाके मन्दिरमें ही पूजा पाठ और तीर्थ कृत्यका बड़ा आश्रय दिखाई देता है । मन्दिरके सम्मुख लीहगलाकावेष्टित एक चतूरे पर शुष्काष्ट और होम-स्थान है । ब्राह्मण यहाँ चारों ओरसे घैट कर होम और चण्डोका पाठ किया करते हैं । सभी अपने अपने सामने एक एक होमकुण्ड बना कर होम करते हैं । यहाँ अब होमकी ही अधिकता दिखाई देती है । धाम्य होम भी प्रचलित है । चतूरेके बीच

में एक साधारण होमकुण्ड भी स्थापित होता है। वण्डा ही इसे प्रज्वलित करते हैं और अनित्य स्थायी और देवी-दर्शनाथी यात्री ब्राह्मण जो चञ्चुरे पर बैठ कर होम नहीं करते। वे देवीदर्शनके बाद तीन या पांच बार आहुति दे कर चले आते हैं। इस मन्दिरमें बलिदानकी व्यवस्था बड़ी लोमहर्षण है। परिणतवयस्क पशुकी ही बलि देनेकी शास्त्रमें व्यवस्था है, किन्तु यहाँ ६-८ दिनोंके बकरेका भी बलिदान दिया जाता है। बलिदानके पशुओंमें ऐसे ही शिशु बकरोंकी संख्या सैकड़ों पीछे ७५ है। दुर्गासप्तके समय यहाँ नवराति उत्सव होता है। उस समय नौ दिनोंतक भोगमाया देवीकी प्रतिमा एक हलदीसे रंगे हुए गमछेसे ढकी रहती है। इस भोगमायाके निकट ही नानकशाही एक आस्ताना है। सन्ध्या समय इस आस्तानानामें ग्रन्थ साहबकी आरति और स्तोत्रपाठ होता है। यह स्तोत्रपाठ सुननेमें बड़ा मनोरम लगता है। भोगमाया के घाट पर खड़े हो कर बगलमें अत्युच्च विन्ध्यपशैलधीत गंगाकी तरंगलोला और दूसरी ओरमें समतल फसलवाले खेतोंके ऊपरसे गंगाकी प्रमादलोला बहुत सुन्दर दिखाई देती है।

मिर्जापुरका रास्ता पकड़ कर पक्कासे जाने पर तीन घण्टामें विन्ध्याचलके मूलशिखरमालाके पाददेश तक पहुँच जाता है। इस स्थानमें एक सुन्दर धर्मशाला है। यात्री यहाँ एक दिन एक रात रह सकते हैं। इस धर्मशालाके बगलसे योगमायाके मन्दिरके चूड़ा पर चढ़ना पड़ता है। यह चूड़ा यहाँ सबसे बड़ी ऊँची है। पथ दुःखारोह नहीं, किन्तु कहीं तो पर्वतगात्र पकड़ कर ही चढ़ना पड़ता है या कहीं कहीं स्तब्धियाँ भी बनी हैं। भोगमायाका मन्दिर जैसे जोड़ाईसे बना है वैसे योगमायाका मन्दिर नहीं बना है। योगमायाका मन्दिर एक पर्वतचूड़ाको चारों ओरसे छिल कर मंदिराकृतिका तट्यार किया गया है। इसके भीतर एक गुहामें योगमाया अवस्थित हैं। इस गुहाका द्वार बहुत तंग है। कोई आदमी खड़े हो कर इसमें प्रवेश नहीं कर सकता—शिर झुका कर जाना होता है। मोटी देवधारोंको प्रवेश करनेका कोई उपाय नहीं। वे मन्दिरके एक छिद्रमें देवीका दर्शन करते हैं। मन्दिर-गुहामें छोट आदमी बैठ सकते हैं। यहाँ भी एक दो फुट

ऊँची ४५ फुट लम्बी कुलंगीमें देवी-प्रतिमा रखी हुई है। यह भी एक पत्थरमें खुदी हुई है।

भोगमायाके मन्दिरमें फूल और जलाञ्जलि दे कर पूजा की व्यवस्था है। यहाँ केवल पुष्पाञ्जलि देने पड़ती है। यहाँ सब जातिके लोगोंका प्रवेशाधिकार है। यहाँ बलिदानमें घूपकाष्ठ हैं, किन्तु बलिको बहुलता नहीं। गुहाकी बगल इस मन्दिरमें एक शम्भूकावर्षा पथ है। उससे हो कर गर्भस्थानमें पहुँचने पर एक काली-प्रतिमा दिखाई देती है। यह मूर्ति भी पत्थर पर खुदी हुई है। पण्डोंका कहना है, कि यह काली कंस राजाकी इष्टदेवी थीं। श्रीकृष्ण जब मथुरासे द्वारका चले गये, तब डाकुओंने मथुराको लूट लिया और उन्हींके द्वारा यह मूर्ति यहाँ लाई गई है।

योगमायाके मन्दिरके चञ्चुरे पर खड़े हो कर नीचे सूताकारमें गङ्गाका प्रवाह देखनेमें बड़ा सुन्दर लगता है। योगमायाके मन्दिरसे नीचे जमीन पर रेल चलती हुई देखनेसे मालूम होता है, कि दियासलाईके डिब्बेकी ट्रेन जा रही है।

योगमायाके मन्दिरकी बगलमें सीताकुण्ड, अगस्त्य-कुण्ड और ब्रह्मकुण्ड नामके तीन तीर्थ हैं। ब्रह्मकुण्डकी चारों ओर देखने पर मालूम होता है, कि किसी समय यहाँ एक जलप्रपात था। यहाँ समतल भूमिमें खड़े हो कर ऊपरको देखनेसे भय-विस्मयसे एक अननुभूत रूति उत्पन्न होती है। जलप्रपातजात पार्वतीय स्तरनिचय द्वारा पर्वतशिखर अधिक ऊँचाई पर दिखाई देता है। नीचे समतल भूमि पर इस समय वर्षाका जलवाहित नाला गङ्गामें जा कर मिल गया है। दोनों बगलमें वृक्ष-राजिकी गभीर छायाकी वजहसे अन्धकार है। प्रपातके शीर्षस्थानमें एक लम्बे सेमरका वृक्ष मानो चूड़ा रूपमें अवस्थित है। बाधे-पथमें एक प्रसन्नवर्ण और कुण्ड है। कुण्ड भी अति सामान्य है। पर्वतको दरारसे अनवरत सुन्दर सुन्दसे जलकुण्डमें पड़ता है। यहाँ स्नानके सिवा अन्य कोई तीर्थरूप नहीं है। इससे कुछ दूर पर सीता-कुण्ड है। सीताकुण्डके निकट सीताजीकी रथन-शाला है। यह केवल एक मकानका भग्नावशेष है। सीताकुण्डका जङ्गल बड़ा उपकारी है। प्रामोंके अधिवास

इस कुण्डका जल ले जा कर पीते हैं। यह कुण्ड एक हाथ लम्बा चौड़ा और ६ इञ्च गहरा है। पर्वतगणस्थित एक पत्थरके कोनेसे इसमें समी समय बुन्दबुन्दसे जल गिरता है। ब्राह्मणोंकी बात है; कि कितना ही जल इसमें गिरे, किंतु जल उतना ही रहता है, बाहर नहीं गिरता; कितना ही जल इससे निकाला जाये; किंतु इसका जल जैसेके तैसा ही रहता है। न कम होता और न बढ़ताही है, चाहे घडेमें जल ले कर स्नान कीजिये फिर भी जल इससे कम नहीं होता।

सीताकुण्डकी वगलमें सैकड़ों सोड़ियोंको पार कर पर्येके ऊंचे स्थान पर पहुंचने हैं यहां पर्वतकी पीठका बान्द्राजा मिलता है। यह स्थान ऊंचकी पीठकी तरह है। यहां एक वृक्षके पत्तेमें नामा रेखाये होती हैं। यहांके लोगोका कहना है, कि इन पत्तों पर राम नाम लिखा है। पर्वतके इस अंशमें सीता बाघका उत्पात होता रहता है। कहने हैं, कि उक्त वृक्षके रामनामलिखित पत्तेको कानमें रखनेसे बाघका डर छूट जाता है।

विन्ध्याचल तीर्थमें महाभायाकी प्रसादी सागूदानकी तरह चीनीका दाना मिलता है। खोरा और घस यात्री पदनके साथ संप्रद कर अपने घर लाते हैं।

योगभाथाके मन्दिरमें नवतरेसे कई सोड़ियोंको पार करने पर महाकाल शिवका मन्दिर मिलता है। मन्दिरमें कुछ मो नहीं है। कितनी ही टोकी तरह पत्थरकी जुड़ाईपर तीन ओरसे प्राञ्जोर खड़े हैं। महाकालका लिङ्ग श्वेतपत्थरका बना है। गौरीपट्ट भी है। यह मालूम नहीं होता, कि उसका निम्नभाग भूषोचित है या नहीं। वगलमें छोटे बड़े कितने ही शिवालङ्ग पड़े हैं।

यहां बहुत दिनोंसे डाकुओंका उपद्रव चला आता है। सुनते हैं, कि डाकू यहां देवोंको नरखल चढ़ाया करते थे। अङ्कुरजोंके शासनसे यह प्रथा मिट गई सही, किंतु डाकेजनीकी कमी नहीं हुई है। बहुतेरे यात्रियोंका यहां यथासर्वस्व लूट लिया जाता है। इससे प्रति दिन संध्याकी यज्ञसे यात्री और लोगोको प्राणोंमें पट्टा दिये जाते हैं। बहुतेरे मनुष्य स्वास्थ्यरक्षाके लिये यहां आ कर बसे हुए हैं।

विन्ध्याचलके पूर्व एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष

है। इस भग्न दुर्ग पर खड़े हो कर पश्चिम दिशाको देखने पर उस अघित्यका देशमें बहुत दूर तक असंख्य ध्वस्तकीर्तिका निदर्शन पाया जाता है। इन सब टूटे फूटे पत्थर, ईंट और खण्डहरोंकी देख कर अनुमान होता है, कि किसी समयमें यहां बहुजनपूर्णा एक नगरी विद्यमान थी। यहांके लोगोका कहना है, कि इस ध्वस्त नगरमें किसी समय १५० मन्दिर थे। मुगल बादशाह औरङ्गजेबने ईर्ष्याके वशीभूत हो कर इन मन्दिरोंको ढहवा दिया था। प्रलतखण्डिङ्गुहरारका कहना है, कि यहांकी किम्वदन्ती अतिरञ्जित तो हो सकती है, किंतु यह बात निश्चय है, कि किसी समय यहां बहुतेरे मंदिर विद्यमान थे।

विन्ध्याचल डेढ़ पाव जमोनके बाद दक्षिणपूर्वके कोने पर कण्ठित प्राग है। यहां एक प्राचीन मसजिद है। वर्तमान समयमें इसको मरम्मत हो जानेसे यह नई मालूम हो रही है। सिवा इसके यहां एक पुराने किलोंका खण्डहर पाया जाता है। उसकी प्राचीन परगापुर राजधानीका दुर्ग होनेका अनुमान किया जाता है। इस समय इस दुर्गका कुछ भी शेष नहीं रह गया है। केवल मूर्तिका निर्मित चप्रभूमि, फाई और कहीं कहीं पत्तो दीवारका भग्नावशेष विद्यमान है।

उक्त कण्ठित प्रागके डेढ़ मील पश्चिम शिवपुर नामक एक प्राचीन प्राग है। यहां पहले एक बहुत बड़ा शिवमन्दिर था। इसका ध्वंसावशेष आज भी वर्तमान रामेश्वरनाम मन्दिरके चारो ओर इधर उधर फैला दिखाई देता है, प्राचीन मन्दिरके कई बड़े बड़े स्तम्भ और उसका शीर्षस्थान वर्तमान रामेश्वरसे सटा हुआ है। यहांके पत्थरकी प्रतिमूर्त्तियोंमें सिंहासनाधिष्ठाता, और गोदमें पुत्र लिये हुई एक रमणीकी मूर्त्ति विशेष आग्रहकी सामग्री है। यह मूर्त्ति ५ फीट २ इञ्च लम्बी और ३ फीट ८ इञ्च चौड़ी है। इसकी मोटाई १ फुट ८ इञ्च है। खो-मूर्त्तिकी मुखाकृति नष्ट होने पर भी इसके शिरके सुदृश तोषां करकी मूर्त्ति नष्ट नहीं हुई है। इस मूर्त्तिकी दाशना हाथ केहुनी तक टूट गई है और बायें हाथमें एक बालक है। इसका बायां पैर सिंहासनके नीचे तक झुकता है। इसके नीचे सिंहाकी मूर्त्ति है, इस मूर्त्तिके

पोड़े पत्रपुष्पसमन्वित एक बड़ा वृक्ष है। मूर्त्तिके दोनों जोर अनुचर हैं। इन अनुचरोंमें पांच खड़े और दो मानो दौड़ रहे हैं। यह स्त्रीमूर्त्ति इस समय सङ्काटादेवीके नामसे पूजित हो रही है। डाक्टर कनिङ्गहमका कहना है, कि यह पद्मे देवीकी प्रतिमूर्त्ति है, किन्तु प्रतनतस्वविदु फुह्ररारका कहना है, कि यह मूर्त्ति महावीर स्वामीकी माता विशला देवीकी प्रतिमूर्त्ति है।

विन्ध्याद्रि (सं० पु०) विंध्यपर्वात। (देवीभागवत)
विन्ध्याधिवासिनी (सं० स्त्री०) विंध्यपर्वातकी अधि-
ष्ठात्री देवी, दुर्गा, विंध्यवासिनी।

विन्ध्यवासिनी और विन्ध्याचक्र देखो।

विन्ध्यावली (सं० स्त्री०) दैत्यराज बलिकी स्त्री और वाण राजाकी माता। बलि वामनरूपी भगवान्की त्रिपाद्भूमि दे कर जब दक्षिणान्त न कर सके, तब भगवान्ने उन्हें बांध लिया। इस समय विंध्यराजलीने हाथ जोड़ कर भगवान्की स्तुति की और कहा, "भगवन्! आप गर्वियोंके गर्वको चूर्ण किया करते हैं। इससे आपने जो कुछ किया वह ठीक ही है। जो जगत्पति हैं, ब्रह्माण्ड जिनका क्रीडास्थान है, उनको 'यह मेरी चीज है' कह कर किसी चीजका दान करना गर्वका चूड़ान्त परिचायक है। अतः आपने कर्त्तव्यकार्य ही किया है। किन्तु प्रभो! (महाराजके लिये नहीं) भविष्यमें आपका किसी तरह बलङ्क न लगे, इसके लिये स्त्रीयुद्धिसे डर कर प्रार्थना करती हूँ, कि महाराजको बंधनमुक्त कीजिये। महाराज भी आपके भक्त हैं। उन्होंने केवल आपके पादयुगलोंकी निरीक्षण कर दुरत्यज्य त्रैलोक्यराज्य और स्वपक्षदल अनायास ही त्याग किया है। और तो क्या, आपके लिये गुप्त आज्ञाको भी अवमानना की है। इस पर गुरुने अभिशाप भी दे डाला है। अतएव भगवन्! इस क्षेत्त्रमें उनको मुक्त कर देनेसे हम लोग कृतार्थ हो सकते हैं।" विंध्यवलीके श्रुतिपूर्णा वाक्य पर प्रसन्न हो कर भगवान्ने उसके पत्रिको बंधनमुक्त किया। यज्ञ देखो।

विन्ध्यावलीपुत्र (सं० पु०) विन्ध्यावलयोः पुत्रः। वाण-
राज (पत्रिका०)

विन्ध्यावलीसुत (सं० पु०) विन्ध्यावलयोः सुतः। वाण-
राज। (जटाधर)

विंध्येश्वरी प्रसाद—एक प्रथकार। इन्होंने कथम्भूतिका नामक कुमारसम्भवकी टीका, घटकर्परकी टीका, तर्ङ्गिणी नामकी तर्कसंग्रहटीका, न्यायसिद्धांत-मुकाबली-टीका और श्रीशतक नामक ज्योतिष ग्रंथ लिखा।

विन्न (सं० लि०) विद-क (उदविति०। पा ८।२।५६)
इति नत्वं। १ विचारित। २ प्राप्त। ३ ज्ञात। ४ स्थित।
विन्नप (सं० पु०) काशिके एक राजाका नाम।

(रत्नत० ५।१२।६)

विन्नभट्ट—तर्कपरिभाषाटीकाके प्रणेता।
विन्ध्य (सं० पु०) वि-नि-इ-अप्। विनिगम, विनिगम।
विन्ध्यस्त (सं० लि०) वि-नि-अस-क। १ स्थापित, रखा
हुआ। २ यथा स्थान वैठाया हुआ, जड़ा हुआ। ३ क्षित,
डाला हुआ। ४ करोनेसे लगा हुआ।

विन्ध्यस्य (सं० लि०) वि-नस-यत्। विन्ध्यासके योग्य,
विन्ध्यासके उपयुक्त।

विन्ध्याक (सं० पु०) वि-नि-अक-घञ्। विद्वङ्क वृक्ष,
वरियारा नामका पौधा।

विन्ध्यास (सं० पु०) वि-नि-अस-घञ्। १ स्थापन, रखना,
धरना। २ यथा स्थान स्थापन, ठीक जगह पर करोनेसे
रखना या बठाना, सजाना। ३ किसी स्थान पर डालना।
४ जड़ना।

विपक्वितम (सं० लि०) विपाकेन निवृत्तः वि-पच-त्रिमक्।
विपाक द्वारा निवृत्त, अतिशय परिपक्व।

विपक्व (सं० लि०) वि-पच-क्त। १ विशेषरूपसे
परिपाकप्राप्त, खूब पका हुआ। २ पाकहीन, जो पका
न हो, कच्चा। ३ पूर्ण अवस्थाको प्राप्त।

विपक्ष (सं० पु०) विरुद्धः पक्षो यस्य। १ शत्रु पक्ष, विरोध
करनेवाला दल। २ भिन्नपक्षाश्रित, विरुद्ध पक्ष। ३ शत्रु
या विरोधीका पार्श्व। ४ प्रतिवादी या शत्रु, विरुद्ध दल
का मनुष्य। ५ व्याकरणमें किसी नियमके कुछ विरुद्ध
व्यवस्था, वाचक नियम, अपवाद। ६ किसी वातके
विरुद्धकी स्थापना, विरोध खंडन। ७ न्यायमतसे साध्य-
का अभावविशिष्ट पक्ष। न्यायमतसे किसी किसी विषय-
को मोमांस करने पर हेतु, साध्य और पक्ष स्थिर कर
करना होता है, साध्य अभावविशिष्ट ही विपक्ष कद-
लाता है।

(त्रि०) विगतः पक्षो यस्य । ८ विघट्ट, खिलाफ, प्रतिबुद्ध । ९ पक्षहीन, विना पर या डैनेका । १० विपरीत, उलटा । ११ जिसके पक्षमें कोई न हो, जिसका कोई तरफदार न हो ।

विपक्षता (सं० स्त्री०) विपक्षस्य भावः तल-टाप् । १ विपक्ष होनेका भाव, खिलाफ होना । २ विरुद्धपक्षका अवलम्बन ।

विपक्षमात्र (सं० पु०) १ विपक्षता, शत्रुता । २ घृणा । विपक्षगुरु (सं० पु०) साम्प्रदायिक नेता, दलका कर्ता । विपक्षस् (सं० त्रि०) रथके दोनों बगलमें जोता हुआ । विपक्षिन् (सं० त्रि०) १ विरुद्ध पक्षका, दूसरी तरफका । २ प्रविद्धदे, प्रतिवादी, फरीकसानो । ३ पक्षहीन, विना पंल या डैनेका ।

विपक्षोप (सं० त्रि०) विपक्ष-छ । विपक्षसम्बन्धीय, शत्रुके पक्षका ।

विपक्षिक (सं० पु०) दैवदत्त, जो मानवजीवनकी घटनाबली कह देते हो ।

विपक्षिका (सं० स्त्री०) वि-पक्षि विस्तारे ण्वुल्-स्त्रियां टाप् अत इत्वं । घोणा ।

विपक्षि (सं० स्त्री०) वि-पञ्च-अच् स्त्रियां-गौरादित्वात् ङीप् । १ एक प्रकारका बाजा जिसमें तार लगे रहते हैं, एक प्रकारकी घोणा । २ केलि, क्रीडा, खेल ।

विपण (सं० पु०) वि-पण व्णवहारे घञ्, संज्ञापूर्णाकत्वात् न वृद्धिः । विक्रय । जो सब ब्राह्मण विपण अर्थात् विक्रय द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं, हठकष्यमें उनका अधिकार नहीं है । २ विपणि ।

विपणि (सं० पु० स्त्री०) विपणवत्तेऽस्मिन्निति वि-पण- (सर्वधातुन्य इत् । उण् ५।११०) इति इत् । १ पण्य, विक्रय-शाला, विक्रयगृह, दुकान । २ हट्ट, हाट । पर्याय—पण्य-बोधिका, आपण, पण्यबोधी, पण्य, रमस, नियया, वणिक्पथ, विपण, बोधी । ३ वाणिज्य ।

विपणिन् (सं० पु०) विपणः विक्रयोऽस्यास्तीति विपण-इति । वणिक् ।

विपणी (सं० स्त्री०) विपणि या ङीप् । हट्ट, हाट ।

विपताक (सं० त्रि०) विगतताक पताका यस्मात् । पताका-शून्य, विना पताकाका ।

विपत्ति (सं० स्त्री०) वि-पद्-किन्त् । १ विपद्, कष्ट, दुःख या शोककी प्रीति, भारी रंज या तकलीफकी वा पड़ना । २ क्लेश या शोककी स्थिति, रंज या तकलीफकी हालत । ३ कठिनार्थ, कष्ट, बखेड़ा ।

विपत्तम् (सं० त्रि०) विविधगमनयुक्त या विचिह्नगमन-युक्त ।

विपथ (सं० पु०) विरुद्धः पन्था (ऋक्पूरवधूः पथामा-नक्षे । पा ५।४।७४) इति समासात् अप्रत्ययः । १ कुमार्ग, बुरा रास्ता । २ बगलका रास्ता । ३ मन्द आचरण, बुरी चाल । ४ एक प्रकारका रथ ।

विपद् (सं० स्त्री०) वि-पद्-सम्प्रदादित्वात्-किप् । विपत्ति, आफत, संकट ।

विपदा (सं० स्त्री०) विपद्-भागुरिमत-हलन्तानां टाप् । विपद्, विपत्ति, आफत ।

विपन्न (सं० त्रि०) वि-पद्-क्त । १ विपद्-कान्त, जिस पर विपत्ति पड़ी हो, सुसोबतका मारा । २ दुःखी, आर्त । ३ कठिनार्थ या कष्टमें पड़ा हुआ । ४ मृत । ५ भूला हुआ, सममें पड़ा हुआ ।

विपन्नता (सं० स्त्री०) विपन्नस्य भावः तल-टाप् । विपन्न-का भाव या धर्म, विपद्, विपत्ति ।

विपण्या (सं० स्त्री०) विस्पष्टा, अतिशय स्पष्टा । (ऋक् १०।७२।२)

विपण्यु (सं० त्रि०) १ स्तुतिकारक । (ऋक् १०।२२।१२) २ स्तुतिकाम (शुक् १।१।१५)

विपराक्रम (सं० त्रि०) विगतः पराक्रमो यस्य । विगत पराक्रम, पराक्रमरहित ।

विपरिणाम (सं० पु०) वि-परि-णम-घञ् । विशेषरूप परिणाम, विशिष्ट परिणाम । २ विपर्या, संपरिवर्तन ।

विपरिणामिन् (सं० त्रि०) वि-परि-णम-णिनि । १ परिणामविशिष्ट, परिणामयुक्त । यह जागतिक भाव विपरिणामी है, जगत्में जो कुछ परिदृश्यमान होता है, समी थोड़े समयके लिये भी अपरिणत जरूर होता है । २ वैपरीत्यविशिष्ट ।

विपरिधान (सं० स्त्री०) १ विशेषरूपसे परिधान, अच्छे तरह पहनना । २ परिधानका अभाव ।

विपरिभ्रंश (सं० पु०) विपरिणाम, विनाश ।

हैं। (साल्यकारिका) विशेष विवरण भविष्यादि शब्दमें देखो।
३ इधरका उधर, उलट पुलट। ४ भ्रम, भूल।
५ अथवस्था, गड़बड़। ६ नाश।
विपर्यस्त (सं० त्रि०) वि-परि-अस्-क्त। १ जिसका
विपर्यय हुआ हो, जो उलट पुलट गया हो। २ अस्तव्यस्त,
गड़बड़, चीपट। ३ परावृत्त।

विपर्याण (सं० त्रि०) विपर्याय, व्यक्तिक्रम।

विपर्याय (सं० पु०) विगतः पर्यायो यस्य, वि-परि-इ-घञ्।
पर्यायका व्यवहिक्रम, क्रमपरिवर्तन, नियमभंग।

विपर्यास (सं० पु०) वि-परि-अस-घञ्। १ विपर्याय,
उलट पुलट, इधरका उधर। (अमर)। २ अप्रमात्मक
बुद्धिभेद, मिथ्याज्ञान, औरका और समझना। जो
यथार्थमें यह नहीं है, उसे नहीं जान कर जो अयथा-
ज्ञान उत्पन्न होता है, उसका नाम विपर्यास है। जैसे—
रज्जु सर्प नहीं है फिर भी अप्रमात्मक ज्ञानके कारण
उसे सर्प समझते हैं। भावापरिच्छेदमें लिखा है, कि
जिस वस्तुमें जो नहीं है (जैसे शङ्खमें कभी पीतवर्ण
नहीं है) उस वस्तुमें तत्प्रकारके जो बुद्धि हैं, उसे अप्रमा
बुद्धि कहते हैं। यह अप्रमा बुद्धि अर्थात् भ्रमबहुल
पदार्थमें विस्तृत होनेसे उसका नाम विपर्यास पड़ा है।
जैसे वेदमें आत्मबुद्धि आदि। सब पूछिये तो शरीरमें
आत्माके गुणक्रियादि कुछ भी नहीं हैं, फिर भी अप्र-
मात्मक ज्ञानके कारण बहुतेरे शरीरको ही आत्मा मानते
हैं।

३ पूर्वासे विपद्य स्थिति, एक वस्तुका दूसरे स्थान पर
होना। ४ जिसो आदिपे उससे विपद्य स्थिति, औरका
और।

विपर्य्व (सं० त्रि०) विगतं पर्य्वं सन्निवस्थानं यस्य।
विच्छिन्नासांशक, जिसके शरीरका जोड़ विश्लेष हो
गया हो।

विपल (सं० क्ली०) विभक्तं पलं येन। समयका
एक अत्यन्त छोटा विभाग, एक पलका साठवां भाग
अर्थात् ६० विपलका एक पल, ६० पलका एक दण्ड, ६०
दण्डका एक अहोरात्र।

विपलायन (सं० त्रि०) पलायनकारो, भागनेवाला।
विपलाय (सं० त्रि०) पतद्दीन, विना परोका।

विपचन (सं० त्रि०) वि-पू-उयुट्। १ विशेष
पवित्र करनेवाला। (पु०) २ विशुद्ध पवन,
हवा।

विपचना (सं० स्त्री०) विशुद्धः पवनो यस्यो,
टाप्। जिसमें विशुद्ध वायु हो।

विपण्य (सं० त्रि०) वि-पू-यत् (अथो यत्। ग। ३।।
शोधनीय, शोधन करनेके योग्य।

विपणिन (सं० पु०) एक बुद्धका नाम। (हेम०)
विपशु (सं० त्रि०) पशुरहित, पशुशून्य।

विपश्चि (सं० त्रि०) विपश्चित्, परिहृत।

विपश्चिक (सं० पु०) परिहृत। (दिग्वा० ५५५)

विपश्चित् (सं० त्रि०) वि-प्र-चित् क्वि विशेषे
विप्रकृत्य चेतति चिनोति चिन्तयति वा प्रोदराति
सायुः। सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी।

अर्थात् शारत्रका यथार्थ अर्थ, जिसको नरमें
जो उत्तम ज्ञानी अर्थात् सम्पत्कूपसे तत्त्वज्ञ हो
उत्तमरूपसे चिन्तन (शास्त्रका मर्मार्थ संग्रह) कर
हो, जो उत्तम चिन्ताशाली हो, अर्थात् चिन्ता द्वारा
पदार्थका निर्णय करनेमें समर्थ हो, जो परिहृते हो
विद्वान् हो, जो स्वार्थतत्त्वदर्शी हो, वे ही विपश्चि
कहलाते हैं।

विपश्चित (सं० त्रि०) परिहृत। विपश्चित् हेतो।

विपश्यन (सं० क्ली०) बौद्ध मतसे, प्रकृत ज्ञान, पदार्थ

विपश्यना (सं० स्त्री०) सूक्ष्मदर्शीनो, दिग्बुद्धि,
यामित्त्व शक्ति।

विपश्यन् (सं० पु०) बुद्धभेद।

विपस् (सं० क्ली०) १ श्रेया, बुद्धि। २ ज्ञान, सम्

विपाशुल (सं० त्रि०) पाशुलरहित। (भारत वन)

विपाक (सं० पु०) वि-पच-भावे कर्मणि वा।

१ पचन, पाक। (भागवत ५।१।२०) २ रुचि, पसी

३ धर्मका फल। ४ फलमाला। ५ च

६ धर्म। परिणामका

विपाक है। उसका जो फल

होता है, यह तोत न
का होता है।

यह विषय विशेषरूपसे वर्णित हुआ है। यहां बहुत स'क्षेपमें उसकी आलोचना की जाती है।

अविद्या आदि पञ्चकूशे अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पांच तरहके क्लेश रहने पर धर्मविघ्नरूप कर्माशयका विपाक जाति, आयु और भोग होता है। क्लेशरूप मूलका उच्छेद होने पर और नहीं होता। जैसे धानमें जब तक छिलका मौजूद हो और उसकी बीजशक्ति दृग्ध नहीं हो, तब तक यह अन्न-कुरोत्पादनमें समर्थ होता है; किन्तु छिलका काटने या बीजशक्तिके दाह करनेसे यह समर्थ नहीं होता; वैसे ही क्लेश मिश्रित रह कर कर्माशय अदृष्ट फल जननमें समर्थ होता है, षलेज अघनीत होने पर अधवा प्रसंख्यान द्वारा षलेजरूप बीजभावका दाह करनेसे और नहीं होता। उक्त कर्मविपाक तीन प्रकारका है, जाति मनुष्य आदि, जन्म, आयु जीवनकाल, भोग और सुखदुःखका साक्षात्कार। कर्मका विपाक जाति, आयु और भोग किस तरह होता है और किस तरहके कर्मके फलोंसे ये सब भोग करने होते हैं, उनका विषय इस तरह लिखा है—

एक कर्मका क्या एक जन्मका कारण है? अथवा एक कर्म अनेक जन्म सम्पादन करता है या अनेक कर्म एक जन्मका कारण है? इसके विचारमें इस तरह लिखा है, कि एक कर्म एक जन्मका कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अनादि कालसे सञ्चित जन्मान्तरीय असंख्य अवशिष्ट कर्मके और वर्त्तमान शरीरमें जो कुछ कर्म किये गये हैं, उन सबके फलकामके अर्थात् फलोत्पत्तिका परिपोषिका नियमन रहनेसे लोगोंके धर्माभ्यासानमें अविश्वास हो जाता है, वैसे होना संगत नहीं। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि असंख्य कर्ममें यदि एक ही अनेक जन्मका कारण हो जाय, तब अवशिष्ट कर्माशयिके विपाककालका अवसर हो नहीं आता। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि अनेक कर्म अनेक जन्मका कारण है; क्योंकि वे अनेक जन्म एक समय नहीं हो सकते। अतएव क्रमशः होते हैं, ऐसा कहना होगा। उसमें पूर्वोक्त दोष अर्थात् कर्मान्तरविपाकका संशयभाव नैकता जाता है; अर्थात् जन्म

और मरणके मध्यवर्ती समयमें अनुष्ठित विचित्र कर्म प्रधान और अप्रधान भावसे अवस्थित हो कर मरण द्वारा नभिव्यक्त होने हैं अर्थात् फलजननमें अभिसुजाहृत हो जन्म प्रभृति कार्या एकत्र मिल कर एक ही जन्म सम्पादन करने हैं। सञ्चित कर्माशय प्रारब्ध द्वारा अभिमूर्त रह कर मरण समयमें सत्तापीय अनेक कर्मोंके साथ मिल कर एक जन्म उत्पादन करता है। ऐसा होनेसे फिर पूर्वोक्त दोष रह नहीं जाता; क्योंकि जैसे एक एक जन्ममें अनेक कर्म उत्पन्न होते हैं, इधर एक जन्म द्वारा भी अनेक कर्मका क्षय हो कर आय-व्यय समान हो जाता है। उक्त जन्म उक्त कर्म अर्थात् उक्त जन्मका प्रयोजन कर्म द्वारा ही पूर्य लभ करता है, अर्थात् जिस कर्मसमष्टिसे मनुष्य आदिका जन्म होता है, उसीके द्वारा जीवनकाल और सुखदुःखका भोग होता है।

पूर्वोक्त प्रकारसे कर्माशय जन्म, आयु और भोगका कारण यह त्रिविपाक अर्थात् उक्त जन्म आदि तीन प्रकारके विपाकोंका गिता कहा जाता है, इसको ही एकभविक अर्थात् एक जन्मका कारण कर्माशय कहा जाता है।

दुष्टजन्म वेदनीय कर्माशय केवल भोगका हेतु होनेसे उसकी एक विपाकारम्भक कहने हैं, जैसे नहुष राजाका आयु और भोग इन दोनोंका जनम होनेसे द्विविपाकारम्भ होता है, जैसे नन्दीश्वरका। (नन्दीश्वरको केवल आठ वर्षको आयु थी। जिसके घर-प्रदानसे अमरत्व और उसके उपयुक्त भोग मिलता है।)

गांध द्वारा सर्वावयवोंमें व्याप्त मत्स्यजालकी तरह चित्त अनादि कालसे षलेज, कर्म और विपाकके संस्कारसे परिप्लात हो कर विचित्र हो गया है। उक्त वासनापे असंख्य जन्ममें चित्तभूमिमें सञ्चित हुई हैं। जन्महेतु एकभविक यह कर्माशय नियतविपाक और अनियतविपाक होता रहता है। अर्थात् कितने ही परिणामोंका समय अवधारित रहता है। कितनेका परिणाम किस तरहसे होगा, यह ठीक नहीं कहा जा सकता।

दुष्ट जन्मवेदनीय नियतविपाक कर्माशयका ही ऐसा नियम हो सकता है, कि यह एकभविक होगा। अदृष्ट-जन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माशयका वैसा नियम हो

नहीं संकता, क्योंकि अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माशयकी तीन गतियाँ हो जाती हैं। पहले तो विपाक उत्पन्न न हो कर ही कृतकर्माशयका नाश हो सकता है। दूसरे प्रधान कर्मविपाक समयमें आवापगमन अर्थात् यागादि प्रधान कर्मके स्वर्गादिरूप विपाक होनेके समय हिंसादिवृत्त अधर्म भी कुछ दुःख पैदा करा सकता है। तीसरे नियत विपाकप्रधान कर्म द्वारा अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थित भी कर सकता है। विपाक उत्पादन न कर सञ्चित कर्माशयका नाश जैसे शुक्लकर्म अर्थात् तपस्याजनित धर्मका उद्व होने पर इसी जन्ममें ही कृष्ण अर्थात् केवल पाप अथवा पापपुण्यमिश्रित कर्माशयका नाश होता है। इस विषयमें कहा गया है,—पापचारी अनात्मक पुरुषकी असंख्य कर्माशय दो प्रकारके हैं, एक कृष्ण अर्थात् केवल अधर्म दूसरी, शुक्लकृष्ण अर्थात् पुण्य-पापमिश्रित। इन दो तरहके कर्मों को पुण्य द्वारा गठित एक कर्माशय नष्ट कर सकते हैं। अतएव सबको सुकृत शुक्लकर्मके अनुष्ठानमें तत्पर रहना उचित है।

प्रधान कर्म आवापगमन विषयमें कहा गया है, कि स्वल्पसङ्कर अर्थात् यथादि साध्यकर्मोंके स्वल्पका (योगानुकूल हिंसाजनित पापका) सङ्कर होता है, संमिश्रण भी होना है। संपरिहार अर्थात् हिंसाजनित यह अल्पमात्र अधर्म प्रायश्चित्तादि द्वारा उच्छेद कर दिया जाता है। सप्रत्ययवर्ष अर्थात् यदि प्रमाद्व्यशता प्रायश्चित्त नहीं किया जाय, तो प्रधान कर्मफलके उदयके समय यह अल्प मात्र अधर्म भी स्वकीय विपाक अर्थात् अनर्थ उत्पन्न करता है। फिर भी, इस सुखभोगके समय सामान्य दुःखवृद्धिकणिका सहा की जाती है। कुशल अर्थात् पुण्य राशिके अपकर्ष करनेमें यह अल्पमात्र अधर्म समर्था नहीं होता, क्योंकि उक्त सामान्य अधर्मकी अपेक्षा यागादिवृत्त धर्मका परिमाण अधिक है जिससे यह क्षुद्र अधर्म अप्रधानभावसे रह कर स्वर्गभोगके समय अल्प परिमाणसे दुःख उत्पन्न करता है। तृतीय गति यथानियत विपाकमें ऐसे प्रधान कर्मसे अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थान करता है; क्योंकि अदृष्टजन्मवेदनीय नियत विपाक कर्माशय ही मरण द्वारा अभिव्यक्त होती है; अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माशय वैसी मरणके समय अभिव्यक्त नहीं होती।

अदृष्टजन्मवेदनीय अनियतविपाक कर्माशय नष्ट हो भी सकती है। प्रधान कर्मविपाक समयमें आवापगमन (सहायक भावसे अवस्थान) कर भी सकता है अथवा प्रधान कर्म द्वारा अभिभूत हो कर चिरकाल अवस्थित कर सकता है, जब तक सजातीय कर्मान्तर अभिव्यक्त हो उसको फलामिमुख न करे।

अदृष्टजन्मवेदनीय अनियत विपाक कर्माशयकी ही देश, काल और निमित्तकी स्थिरता नहीं होती, इसीसे कर्मगतियाश्चर्यमें विचित्र कही गई है और भी कहा गया है, कि जन्म, आयु और भोग इनके पुण्य द्वारा सम्पादित होने पर सुखका कारण और पाप द्वारा सम्पादित होने पर दुःखका कारण होता है।

‘वे हादरतिारकताः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।’

(पातञ्जल० २।१५)

‘जन्मायुर्मोगाः पुण्यहेतुकाः सुखफलाः अपुण्यहेतुकाः दुःखफला इति।’ (भाष्य)

पूर्वक जाति, आयु आर भोग पुण्य द्वारा साधित होने पर सुखका जनक तथा पाप द्वारा साधित होने पर दुःखजनक होता है। सर्वजनप्रसिद्ध दुःखका जैसा प्रतिकूल स्वभाव है, वैसा ही वैययिक सुखके समयमें भी योगियोंको दुःख ही अनुभव होता है, अतः वे विषयसुखको दुःख ही समझते हैं।

जन्म और आयु सुख तथा दुःखके कारण हो सकते हैं, किंतु भोग कैसे कारण हो सकता है? वर ऐसी आशंका की जा सकती है, कि सुखदुःख ही विषयभावमें भोगका (अनुभवका) कारण है। इसका समाधान इस तरह—जैसे बोधनादिको भी कारक कहते हैं, फलता यह क्रियाका पर्यन्तों है। सुखों किंवाजनक नहीं है। क्रियाके जनकको ही कारक कहते हैं। फिर भी, जिस उद्देश्यसे जो क्रिया होती है, उस उद्देश्यको भी कारण कहा जाता है। भोग ही पुण्यार्थ है, सुख दुःख नहीं। भोगके निमित्त ही सुखदुःखका आविर्भाव होता है, अतएव भोगको भी सुखदुःखका कारण कहा जा सकता है।

विवेकशाली योगीके लिये विषयमात्र ही दुःखकर है, क्योंकि भोगका परिणाम अच्छा नहीं, क्रमशः इससे दुःखकी वृद्धि होती है। भोगके समय विरोधीके प्रति

विद्वेष होता है और क्रमशः ही भोगसंस्कारकी वृद्धि होती रहती है। चित्तकी सुख दुःख और मोहरूपी सब वृत्तियाँ भी परस्पर विरोधी हैं, किसो तरहसे शांति नहीं होती हैं।

योगीके लिये सभी दुःख ही दुःख हैं, यह किस तरह प्रतिपन्न किया जाये ? इसी वाशंकाको निराकरण करनेके लिये कहा गया है, कि सभीको राग- (आसक्ति-कामना)के साथ चेतन और अचेतन दोनों तरहके उपायसे सुखका अनुभव होता है। अतएव यह कहना होगा, कि कर्माशय रागजन्य ही वर्तमान है। सुतरां दुःखका कारण द्वेष और मोह है और इन द्वेष और मोहके कारण ही कर्माशय होता है। यद्यपि एक साथ ही राग, द्वेष और मोहके इन तीनोंका आविर्भाव नहीं होता, तथापि एकके आविर्भावके समय दूसरे विच्छिन्न हो जाते हैं। प्राणिजीवन न कर उपभोग सम्भोग सम्भव नहीं। अतएव दि'साकृत और शरीर (शरीरसम्प्राद्य) कर्माशय होता है। विषयसुख अविद्याजन्य होता है तृप्तिवशतः भोगविषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिके अभावको सुख कहते हैं।

चञ्चलतावशतः इन्द्रियोंकी अशांतिको दुःख कहते हैं। भोगके अभ्यास द्वारा इन्द्रियके वैतृष्य अर्थात् विषयवैराग्य नहीं होता, क्योंकि भोगाभ्यासके साथ ही साथ अनुराग और इन्द्रियोंका कौशल बँटता रहता है। अतएव भोगाभ्यास सुखका कारण नहीं, विच्छूक विपत्से भय जा कर सांपसे डँसे जाने पर जैसे मनुष्योंकी अधिकतर दुःख अनुभव होता है, वैसे ही सुखकी कामना कर विषयवैराग्य कर अन्तमें महादुःखपङ्कमें डूबना पड़ता है। प्रतिफूलखभाव इस परिणाम दुःख सुखभोगके समयमें भी योगियोंकी बलेश प्रदान करता है।

सभीको द्वेषके साथ चेतन और अचेतन इन दोनों उपायों द्वारा दुःख अनुभूत होता है, यहाँ द्वेषजन्य कर्माशय होता है। सुखकी उपाय प्रार्थना कर शरीर, वाक् और चित्त द्वारा किया करता रहता है। इससे दूसरेके प्रति अनुग्रह और निग्रह दोनों ही सम्भव हैं। इस परानुग्रह और परपीडा द्वारा धर्म और अधर्मका सञ्चार होता है। यह कर्माशय लोभ या मोहवशतः होता रहता है। इसका नाम तापदुःख है।

संस्कारदुःख क्या है ? सुखानुभवसे एक सुख या सुखका कारण पैदा संस्कार होता है। इस तरहके दुःखानुभवसे ही संस्कार उत्पन्न होता है, इस तरह फलसुख या दुःखका अनुभव होनेसे सुखसंस्कार पैदा होता है। संस्कारसे स्मृति, स्मृतिसे राग और रागसे कायिक, वाचिक और मानसिक घटनाएँ होती हैं। उससे धर्म और अधर्मरूप कर्माशय, इस कर्माशयसे जाति, आयु और भोगरूप विपाक होता है। पुनर्वाँ संस्कार उत्पन्न होता है। इस तरह अनादि प्रवहमाण दुःख द्वारा प्रतिफूल भावसे परिलक्षित हो कर योगियोंकी उद्वेग उत्पन्न होता है।

इसी लिये पहले कह आये हैं, कि मूल अर्थात् कर्माशय रहनेसे ही जाति, आयु और भोग—ये तीन प्रकारका विपाक होता है। सम्यक्ज्ञान द्वारा कर्माशय विनष्ट होने पर फिर विपाक होगा ही नहीं। जब तक कर्माशय विनष्ट न होगा तब तक जन्म, मृत्यु, भोगरूप विपाकके हाथसे रक्षा नहीं।

जीव अविद्याभिभूत हो कर वारंवार जन्मग्रहण करता है और मृत्युमुखमें पतित होता है तथा जन्मसे मृत्यु तक सुखदुःख भोग करता रहता है। कर्माशयके विनष्ट हो जाने पर इस तरहका विपाक नहीं होता। इसी लिये योगी अपनेको और अन्य साधारणको अनादि दुःखक्षोभमें बहता देख कर सारे दुःखोंका क्षयकारण सम्यक्दर्शन अर्थात् आत्मज्ञानको ही रक्षक समझ कर उनका आश्रय ग्रहण करते हैं। (पातञ्ज०)

ॐ भुक्त द्रव्यके परिपाक हो जाने पर माधुर्य्य आदि रसकी परिणति होती है। विपाकके सम्यग्धर्म आयुर्वेद शास्त्रमें कह गया है, कि रस अर्थात् द्रव्यके आस्ताद, कटु, (कड़वा)तिक्त या तीता, कषाय, मधुर, अम्ल और लवण—इन ६ भागोंमें विभक्त होने पर भी उनके विपाक प्रायः ही स्वादु, अम्ल, और कटु इन तीन प्रकारके अर्थात् भुक्त द्रव्यध्न उन छः रसोंके जडरागिके संयोगसे पक्व होने पर वे प्रकृतिके नियमानुसार जो स्वादु, अम्ल और कटु केवल इन तीन रसोंमें परिणत हो जाते हैं, उसीको धायुर्वेदमें विपाक या रसविपाक कहा है। विपाकका नियम यह है, कि लवण या मीठा द्रव्य भोजन करनेसे

द्विज विद्वान् हों या नहीं, यदि सदा सन्ध्या पूजा-
द्वारा पवित्र हों और एकान्त चित्तसे हरिके चरणोंमें प्रीति
रखते हों, तो उनको विष्णु सदृश जानना । क्योंकि, नियत
सन्ध्या पूजादिका अनुष्ठान और हरिसमें एकान्त भक्ति
रहनेसे उनकी देह और मन इतना ऊँचा होता है, कि वे
क्रिस्तोंके द्वारा द्विसित या अभिशप्त होने पर कभी भी
प्रतिहिंसा या अभिगाप देनेमें उद्यत नहीं होते । हरिभक्त
ब्राह्मण एक सौ गीनों अपेक्षा पूज्यतम हैं । इनका पादोदक
नैवेद्यस्वरूप है । नित्य इस नैवेद्यका भोजन करनेसे लोग
राजस्युष यग्यका फल पाते हैं । जो विप्र पकादशके दिन
निज्जल उपवास और सर्वदा विष्णुकी आराधना करते
हैं, उनका पादोदक जहाँ पतित होता है, वहाँ एक तीर्थरूप
समझना चाहिये । (ब्रह्मवे० पु० १।११।२६ ३३)

ब्राह्मण देखो ।

(त्रि०) २ मेधावी । ३ स्तोता, शुभकर्ता । "विप्रस्य
वा यजमानस्य वा गृहम्" (ऋक् १०।४।१४) "विप्रस्य
मेधायिनः स्तोतुर्वा" (सायण) (क्लो०) ४ अश्वत्थ, पीपल ।
५ शिरोध वृक्ष, सिरिसका पेड़ । ६ रेणुक, नापरका
पौधा । (त्रिका) ७ जो विशेषरूपसे पूरण करते हैं ।

विप्रकर्ष (सं० पु०) १ विशेषरूपसे आकर्षण । २ विक-
र्षण, दूर खींच ले जाना ।

विप्रकर्षण (सं० क्लो०) १ विकर्षण, दूर खींच ले जाना ।
कर्मकरणात्, किसी काम या कृत्यका अंत ।

विप्रकर्षणशक्ति (सं० खो०) वह शक्ति जिससे सभी
परमाणु परस्पर दूरवर्ती होते हैं ।

विप्रकार (सं० पु०) वि-प्र-कृ-घञ् । १ अपकार ।
२ तिरस्कार, अनादर । ३ खलीकार । (अथ०)
४ विविध प्रकारसे ।

विप्रकाश (सं० पु०) वि-प्र-काश-अच् । प्रकाश, अभि-
ष्यिक ।

विप्रकाष्ठ (सं० क्लो०) विप्र पूरक काष्ठं यस्य । तूल-
वृक्ष, नरमा या कपासका पौधा । (राजनि०)

विप्रकीर्ण (सं० लि०) वि-प्र-कृ-क । १ इतस्ततः विक्षिप्त,
इधर उधर पड़ा हुआ, बिखरा हुआ । २ अव्यवस्थित,
अस्त व्यस्त, गड़बड़ ।

विप्रकीर्णत्व (सं० क्लो०) विप्रकीर्णका भाव ।

विप्रकृत् (सं० लि०) अनिष्टकारी, विरुद्ध कार्यकरने-
वाला ।

विप्रकृत (सं० लि०) वि-प्र-कृ-क । अमकृत, तिरस्कृत ।

विप्रकृति (सं० खो०) वि-प्र-कृ-क्तिन् । विप्रकार देखो ।

विप्रकृष्ट (सं० लि०) वि-प्र-कृ-प-क । १ दूरवर्ती, दूरस्थ,
जो दूरी पर हो । २ विप्रकर्षित, खींच कर दूर किया
हुआ ।

विप्रकृष्टक (सं० लि०) विप्रकृष्ट एव स्वार्थे कन् । दूर-
वर्ती, जो दूरी पर हो ।

विप्रकृष्टत्व (सं० क्लो०) दूरत्व, दूरी ।

विप्रकृति (सं० खो०) १ विशेष संकल्प । २ अद्भुत
प्रकृति ।

विप्रचरण (सं० पु०) भृगुमुनिकी लातका चिह्न जो विष्णु-
के हृदय पर माना जाता है ।

विप्रचित् (सं० पु०) दानवविशेष । इसकी पत्नीका
नाम सिंहिका था । इसके द्वारा इस सिंहिकाके गर्भसे
राहुकी उत्पत्ति हुई ।

विप्रचित (सं० लि०) १ विप्रवत् । (पु०) २ दानव-
विशेष । वैप्रचित देखो ।

विप्रचित्त (सं० पु०) विप्रचित्ति देखो ।

विप्रचित्ति (सं० पु०) हनुके एक पुत्रका नाम । इसकी
पत्नी सिंहिकाके गर्भसे राहुकेतु आदि एक सौ पुत्रोंकी
उत्पत्ति हुई थी ।

विप्रजन (सं० पु०) १ उत्पत्ति । २ ब्राह्मण । ३ पुरोहित ।
४ सौरविचंशसे उत्पन्न ऋषिविशेष । (कातक २७५)

विप्रजित्ति (सं० पु०) आचार्यभेद ।
(सप्तपथब्राह्मण १।४।१।२२)

विप्रजुत (सं० पु०) विप्रौ जुतः प्राप्तः । विप्र कर्तृक
प्राप्त या प्ररित । (ऋक् १।३।१५)

विप्रजृति (सं० पु०) चातरशनगोत्रसम्भूत ऋषिभेद ।
आप एक वेदमन्त्रद्रष्टा ऋषि कह कर विख्यात थे ।

विप्रणाश (सं० पु०) १ ब्राह्मणनाश । २ विशेषरूपसे
ध्वंस ।

विप्रता (सं० लि०) ब्राह्मणत्व ।

विप्रतारक (सं० पु०) अतिशय प्रतारक, बहुत घोषा
देनेवाला ।

विप्रतारित (स० लि०) पश्चितं ।

विप्रतिकूल (स० लि०) विरुद्धाचारी ।

विप्रतिपत्ति (स० स्त्री०) वि प्रति पद् किन् । १ विरोध ।
२ संशयजनक वाक्य । "व्याहृतमेकार्थं दर्शनं विप्रति-
पत्तिः" 'व्याघातो विरोधोऽसदभाव इति । अस्त्यात्मेत्येकं
दर्शनं नास्त्यात्मेत्यपरम् न च सद्बुभावाऽसद्भावा सह
एकत्र सम्भवतः, न च अन्यतरसाधको हेतुरुपलभ्यते
तत्रतत्त्वान धारणं संश्रय इति ।'

(गीतम सु० १।१।२३ वात्स्यायनभाष्य)

जिस वाक्यमें दो पदार्थों का विरोध, असदभाव
(अर्थात् एकल अवस्थानका अभाव) दिखाई दे, यही
संशयजनक वाक्य या विप्रतिपत्ति है । जैसे कोई कहता
है, कि आत्मा (परमात्मायां ईश्वर) है, कोई कहता है,
कि नहीं है । ऐसे स्थलमें देखा जाता है, कि रहना या न
रहना इन दो पदार्थों का एक एक अवस्थान किसी तरह
सम्भव नहीं । क्योंकि युक्तिके अनुसार निर्दिष्ट है, कि
सम आयतनक्षेत्रमें एक समय उभय पदार्थोंकी अवस्थिति
हो नहीं सकती अर्थात् यत्तमानमें जहाँ एक घड़ा रखा
है, वहाँ ही उसी समय दूसरा घड़ा नहीं रह सकता ।
या घड़े का अभाव (घड़े का न रहना) हो नहीं
सकता । अतएव "आत्मा है और नहीं" ऐसा सुननेसे
आत्माका रहना या न रहना इन दोनोंका एकल अव-
स्थानका अभाव, प्रयुक्त और उनका एकल अवस्थान
एकल हो सकता या नहीं, इन सब विषयोंमें अन्यतर
युक्ति निर्णय न कर सकने पर यह श्रोताके मनमें विप्र-
तिपत्ति या संशयजनक वाक्य कहना प्रतीत होगा ।

३ विपरीत प्रतिपत्ति, अवध्याति । ४ निन्दित प्रति-
पत्ति, मन्वृष्याति, कुपशाः ।

"विप्रतिपत्तिरपत्तिपत्तिश्च निमद्वैतानम् ।"

(गो० सु० १।२।६०)

'विपरीता कृत्विवा वा प्रतिपत्तिरिप्रतिपत्तिः ।' (लभाष्य)

५ अन्यथाभाष्य । जैसे छायाविप्रतिपत्ति, स्वभाष्य-
विप्रतिपत्ति है । "अर्थात् पक्षं द्विपार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं
प्याख्यास्यामः ।" (सुश्रुत सु० ३० व०)

६ विहति । 'शब्देऽविप्रतिपत्तिः' । (कात्यायो०) प्रति-
निहित द्रव्येऽतदशब्दः योज्यः । अतद्रव्यबुद्ध्या प्रतिनिष्ठयु

पादानात्शब्दान्तर प्रयोगे द्रव्यान्तरप्रसङ्गात् ।'

(एकादशीतत्त्व)

प्रतिनिधि प्रभृति स्थलमें शब्दकी अविप्रतिपत्ति
(अविहति) होगी । अर्थात् जो द्रव्य प्रतिनिधि होगा,
प्रयोगके समय उसका नाम उच्चारित न होगा । जिसके
अभावमें यह द्रव्य प्रयुक्त होगा, उसीके नामकरणमें इस
प्रतिनिधि द्रव्यका प्रयोग करना होगा । जैसे पूजायत
आदिमें देखा जाता है, कि किसी द्रव्यका अभाव होने
पर उस स्थानमें अरवा चावल दिया जाता है ।
किन्तु कहनेके समय कहा जाता है—"एव धूपः" यह
धूप, "एव दीपः" यह दीप, "एवोऽर्घ्यः" यह अर्घ्य, "देव-
ताये नमः" देवताके उद्देशसे मैं प्रणाम करता हूँ । फलतः
सब जगह ही धूप, दीप, अर्घ्य आदिके प्रतिनिधिसवरूप
केवल अरवा चावल दिया गया, किन्तु यह प्रतिनिधि द्रव्य
(अरवाचावल) प्रयोग करनेसे ध्रुतद्रव्य ही (धूप, दीप,
अर्घ्य आदि) देते हैं, इस बुद्धिसे देना होगा । ऐसा
व्यवहार न कर यदि प्रयोगके समय इस अरवा चावलका
ही नाम लिया जाये, तब शब्दान्तरके प्रयोगहेतु द्रव्यान्तर-
का ही प्रसङ्ग आ जाता है । यदि किसी स्थलमें घृतके
बदले तेल देना हो तो ऐसा ही समझना होगा अर्थात्
मन्त्रमें तेल न कह घृत ही कहना होगा ।

विप्रतिबंधमान (स० लि०) पापकारी, पाप करनेवाला ।

विप्रतिपन्न (सं० लि०) विप्रति-पद्-पत्त । विप्रतिपत्ति-
युक्त, सन्देशयुक्त । २ अस्वीकृत । ३ अतिरक्त, जो
सावित न हुआ हो ।

विप्रतिपिद्ध (सं० लि०) वि-प्रति विध क्त । निपिद्ध, जिस-
का निषेध किया गया हो । (लुटि) २ विरुद्ध, खिलाप ।
३ निशारित, यर्जित ।

विप्रतिषेध (सं० पु०) वि-प्रति-विध-घञ् । विरोध, मेळ न
बैठना । अन्वार्थ दो प्रसङ्गोंकी, अर्थात् दो विधियोंकी
एक प्राप्ति होनेसे उसका विप्रतिषेध कहते हैं । एक समय
इस प्रकार समान बलकी दो विधियोंकी प्राप्ति होनेसे
परवर्ती विधिसे अनुसारा कार्य करना होता है ।

विधि देणे ।

विप्रतिसार (सं० पु०) वि-प्रति-सृ-घञ् वा दीर्घः ।
अनुताप, पछतावा । २ क्रोध, रोष ।

विप्रतीप (सं० त्रि०) प्रतिफूल, विपरीत ।
 विप्रत्यय (सं० पु०) काठ्याकार्य शुभशुभ और हिताहित-
 विषयमें विपरीत अभिनिवेश । (चरक ३।० ५००)
 विप्रत्यय (सं० क्ली०) विप्रका भाव या धर्म ।
 विप्रयित (सं० त्रि०) विषयात, मशहूर ।
 विप्रदह (सं० पु०) विशेषेण प्रकृष्टञ्च दहते इति दह-घ ।
 फलमूलादि शुष्क द्रव्य । (शब्दच०)
 विप्रदुष्ट (सं० त्रि०) १ पापगत । २ कामुक, कामी ।
 ३ मन्द, नष्ट ।
 विप्रदेव (सं० पु०) भूदेव, ब्राह्मण ।
 विप्रधावन (सं० त्रि०) इधर उधर पगलेकी तरह तेजीसे
 चलना ।
 विप्रधुक् (सं० त्रि०) लाभकारी, हितकर ।
 विप्रनष्ट (सं० त्रि०) विशेषरूपसे नष्ट ।
 विप्रपद (सं० पु०) भृगुसुनिको लातका चिह्न जो विष्णुके
 वक्षःस्थल पर माना जाता है, विप्रचरण ।
 विप्रपात (सं० पु०) १ विशेषरूपसे पतन, विलकुल गिर
 जाना । २ ब्रह्मपात । ३ ऊँचा ढालवाँ ढोला । ४ खाई ।
 विप्रप्रिय (सं० पु०) विप्राणां प्रियः (यक्षोपद्रुमत्वात्) ।
 १ पलाश वृक्ष, ढाकका पेड़ । २ ब्राह्मणका प्रेम-भाजन ।
 विप्रवन्धु (सं० पु०) १ गोपायन गोत्राय मन्त्रद्रष्टा ऋषि-
 नेद । २ वह ब्राह्मण जो अपने कर्मसे क्युत हो, नोच
 ब्राह्मण ।
 विप्रमुद्ग (सं० त्रि०) १ जागरित, जागा हुआ । २ ज्ञान-
 प्राप्त ।
 विप्रसोधित (सं० त्रि०) १ जागरित, जागा हुआ । २ विशेष
 रूपसे विषयात, जो साफसाफ समझाया गया हो ।
 विप्रमठ (सं० पु०) ब्राह्मणोंका मठ । (कथासरित्सा० १८।१०५)
 विप्रमत्त (सं० त्रि०) अतिशय प्रमत्त ।
 (कथासरित्सा० ३।४।२५५)
 विप्रमनस् (सं० त्रि०) अन्यमनस्क, अनमना ।
 विप्रमन्मन (सं० त्रि०) मेधाविस्तोता, मेधावीगण जिनका
 मत्तव करते हैं ।
 विप्रमाथी (सं० त्रि०) मर्धनशारी; खूब मर्दनेवाला । २
 ध्वंसे या तप करनेवाला । ३ आकुल या क्षुब्ध करनेवाला ।
 विप्रमाश्री (सं० त्रि०) १ विप्रमत्त । २ बहुत नशाशील ।
 ३ आमनोयोगी ।

विप्रमोक्ष (सं० पु०) विमुक्ति, विमोचन ।
 विप्रमोक्षण (सं० क्ली०) विमोचन, विमुक्ति ।
 विप्रमोचन (सं० त्रि०) विमोचनके योग्य ।
 विप्रमोह (सं० पु०) १ विशेषरूपसे मुग्ध होना । २ चम-
 रकार ।
 विप्रमोहित (सं० त्रि०) १ विशेषरूपसे मुग्ध । २ चमरकृत ।
 विप्रयाण (सं० क्ली०) पलायन, भागना ।
 विप्रयुक्त (सं० त्रि०) वि-प्र-युज्ज-क्त । १ विरिलष्ट, जो
 मिला न हो । २ बिलुड्डा हुआ । ३ जिसका विभाग
 हुआ हो ।
 विप्रयोग (सं० पु०) विगतः प्रकृष्टो योगो यत् । १ विप्र-
 लम्भ, वियोग, विरह । २ विसंवाद, घुरा समाचार ।
 ३ विच्छेद, अलग होना । (मनु ६।२) ४ संयोगका अभाव ।
 विप्रयोगिन् (सं० त्रि०) १ विरही । २ विसंवाद ।
 विप्रराज्य (सं० क्ली०) १ ब्राह्मणराज्य । २ विशेषरूपसे
 राजत्व ।
 विप्रराम (सं० पु०) परशुराम ।
 विप्रवि (सं० पु०) ब्रह्मणि । (भारत ५००)
 विप्रलपित (सं० त्रि०) १ विप्रलापयुक्त । २ आलोकित ।
 विप्रलप्त (सं० क्ली०) १ कथोपकथन, बातचीत । २ पर-
 स्पर वितण्डा, आपसमें तर्क वितर्क ।
 विप्रलभ्य (सं० त्रि०) विप्र-लभ-क्त । १ वञ्चित, रहित ।
 २ विरहित, शून्य । ३ विच्छिन्न, वियोग दशाप्राप्त ।
 ४ प्रतारित, जो छल द्वारा किसी लाभसे वञ्चित किया
 गया हो ।
 विप्रलब्धा (सं० स्त्री०) १ नायिकाभेद, वह नायिका जो
 सङ्केतस्थानमें त्रियको न पा कर निराश या दुःखी हो ।
 इसकी चेष्टा—निर्वन्द, निश्वास, सन्धीजनन्यायः, मय,
 मूर्च्छा, चिन्ता और अश्रुपातादि । विप्रलब्धा फिर चार
 प्रकारकी है,—मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्य-
 विप्रलब्धा ।
 विप्रलभ्यु (सं० त्रि०) प्रवञ्चक, शठ, धूर्त ।
 विप्रलभ्यक—विद्वन्ममक देवो ।
 विप्रलम्बी (सं० पु०) देववधूरक, किंकिरात वृक्ष ।
 विप्रलम्भ (सं० पु०) वि-प्र-लभ-घञ्-नुम् । १ विसं-
 वाद, विरोध । २ वञ्चना, धोखा, छल । ३ विप्रयोग,

विरह, सुदाई। ४ विच्छेद, अलग होना। ५ विपद् कर्म, बुरा काम। ६ कलह, झगड़ा। ७ अमिलन, वियोग। ८ अमिलपित वस्तुको अप्राप्ति, चाही हुई वस्तुका न मिलना। ९ शृङ्गाररसमेद। १० शृङ्गारविशेष, युवकयुवतीका विच्छेद या मिलन, जिस किसी अवस्था में अमीष्ट आलङ्कारादिका अभाव रहने पर भी यदि दोनों आनन्द प्रकट करे, तो उसे विप्रलम्भ कहते हैं। यह सम्भोगका उन्नतिकारक है।

विप्रलम्भक (सं० लि०) १ प्रतारक, घूर्त्त। २ विसंवादी। विप्रलम्भन (सं० क्लो०) १ अहुरय आचरण, विचद कर्म। २ प्रतारण, ठगना।

विप्रलम्भिन (सं० लि०) १ शठताकारी, घूर्त्त। २ वञ्चनाकारा, धोखा देनेवाला।

विप्रलय (सं० पु०) सर्वाध्वंस, विशेषरूप प्रलय।

विप्रलाप (सं० पु०) वि प्र-लप घञ्। १ प्रलापवाषय, व्यर्थ बकवाद्। २ कलह, झगड़ा। ३ वञ्चना, धोखा। ४ परस्परमें विरोध, आपसमें बुरा बचन। जैसे एकने मिठी बोलोमें कहा, क्या बक्याणो आई? दूसरेने कूकी बोलोमें जवाब दिया नहीं। ऐसे विरोधजनक आलापको विप्रलाप कहते हैं। ५ विरह प्रलाप।

विप्रलोन (सं० लि०) इतस्ततः विशिष, चारों ओर बिलरा हुआ।

विप्रलुप्त (सं० लि०) १ लुण्ठन, लूटा हुआ। २ अप-हृत, जो चुराया हुआ। ३ जो गायब किया गया हो, उड़ा दिया गया हो। ४ जिसके कार्योंमें विघ्न पहुँचाया गया हो।

विप्रलुम्पक (सं० लि०) १ अतिलोभी, बड़ा लालची। २ उत्पेहक, अपने लाभके लिये लोगोंको सतानेवाला। ३ अधिक कर लेनेवाला।

विप्रलोप (सं० पु०) १ विदकूल लोप। २ नाश।

विप्रलोभी (सं० लि०) १ अति लोभी, बड़ा लालची। २ वञ्चक, ठग, घूर्त्त। (पु०) ३ किङ्किरात वृक्ष।

विप्रयसित (सं० लि०) विदेशगत, परदेश गया हुआ।

विप्रयाद् (सं० पु०) १ विद्या, कलह, झगड़ा। २ विरोधोक्ति, बुरे बचन।

विप्रयास (सं० पु०) १ विदेशमें वास, परदेशमें रहना।

२ संन्यास आश्रममें एक अपराध जो अपने रूपड़े दूसरेको देनेसे होता है।

विप्रयासन (सं० क्लो०) विदेशमें जा कर वास करना। विप्रयाहन (सं० क्लो०) १ विश्व याहन। २ खरद्योत, तेज धार।

विप्रयाहस् (सं० लि०) मेधावीकर्त्तृक वहनीय, जो विद्वानोंसे देने लायक हो।

विप्रविद्ध (सं० लि०) अभिहत।

विप्रवीर (सं० लि०) विशेषरूप धीर्यशाली, खूब पराक्रमी।

विप्रव्रतनी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो दो पुरुषोंसे संबंध रखे।

विप्रयाजिन् (सं० लि०) विशेषरूपसे गमनशील, खूब चलनेवाला।

विप्रशस्तक (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ उस देशका अधिवासी। (मार्क० पु० ५८।३४)

विप्रश्न (सं० पु०) उपोत्थिक प्रश्नाधिकार, वह प्रश्न जिसका उत्तर फलित उपोत्थि द्वारा किया जाय।

विप्रश्निक (सं० पु०) वि-प्रश्न-उन् (अत इति ठनी। पा ५।२।११५) दीवङ्, उपोत्थि।

विप्रश्निका (सं० स्त्री०) दीवङ्गा, उपोत्थिनी।

(धमर २।६।१)

विप्रष्ट (सं० पु०) एक यादवका नाम जो बलरामजीका छोटा भाई लगता था।

विप्रसात् (सं० अर्थ०) प्राज्ञका आयत्त। (रघु ११।८५)

विप्रसारण (सं० क्लो०) विस्तारकरण, विस्तार करना, फैलाना।

विप्रहाण (सं० क्लो०) १ ह्याग। २ मुक्ति।

विप्रानुमदित (सं० लि०) सङ्गीत द्वारा उद्गासयुक्त, गीतसे प्रसन्न।

विप्रापण (सं० क्लो०) १ प्राप्ति, पाना। २ आटनसात करण, हड़पना।

विप्रापिक (सं० पु०) भक्षक, खानेवाला।

विम्रिय (सं० क्लो०) विरुद्ध प्रोणातीति वि प्रो क।

१ अपराध, कसूर। पर्याय—मन्त्र, बपलोक, भाग। (हेम)

(लि०) २ अम्रिय। ३ कटु। ४ अतिशय विष। ५ वियोग।

विप्रुट् (सं० स्त्री०) विशेषण प्रोपति दहति पापानि, वि-प्रु-प्-क्विप् । १ पानीकी छोटी छोटी बूँद या छोट्टा । "विप्रु पञ्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नमस्तलात् ।" (भारत) २ मुलनिर्गत जलविन्दु, थूकका यह छोट्टा जो वेदपाठ करनेमें उड़ता है । मनुस्मृतिके अनुसार ऐसा छोट्टा अपवित्र नहीं है । कूर्मपुराणमें लिखा है, कि भागतनके समय मुखसे जो जलविन्दु निकलती है, यह भी अपवित्र नहीं है ।
विप्रुप (सं० स्त्री०) पानीकी छोटी बूँद या छोट्टा ।

विप्रुट् देखो ।

विप्रुपत् (सं० लि०) विन्दु, वेशिष्ट ।
विप्रुक्षण (सं० स्त्री०) वि-प्र-ईक्ष ल्युट् । विशेषरूपसे दर्शन, अच्छी तरह देखना ।
विप्रेशिन (सं० लि०) दृष्ट, जो देखा गया हो ।
विप्रैत (सं० लि०) विगत, जो द्योत गया हो ।
विप्रैमन् (सं० लि०) अति प्रेमासक्त ।
विप्रैपिन (सं० लि०) विप्र-वस-क । १ प्रवासित, प्रवास-में गया हुआ । २ अनुपस्थित, गैरहाजिर ।
विप्रैपित (सं० लि०) विप्रैपित देखो ।
विप्रैपितमर्चका (सं० स्त्री०) यह स्त्री जिसका पति या प्रेमी परदेश गया हो ।

विप्रुव (सं० पुं०) वि-प्लु अप् । १ परचक्रादिका भय, दूसरे राष्ट्र द्वारा उपस्थित अशान्ति । २ उपद्रव, हंगामा । ३ राज्यके भीतर जनताकी अशान्ति और उद्वेग आचरण, बलवा । ४ अणुवस्था, उधल पुधल । ५ विपत्ति, आफत । ६ विनाश । ७ शत्रुको डगानेके लिये मचाया हुआ जोरगुल । ८ नावका डूबना । ९ जलकी बाढ़ । १० घोड़ेकी बहुत तेज चाल । ११ वेदीके अपूर्ण छान द्वारा उनका अनादर ।

विप्रुविन् (सं० लि०) वि-प्लु-णिनि । १ विप्रुवयुक्त । २ जलझाघी ।

विप्रुघ्न (सं० पुं०) वि-प्लु घञ् । १ जलझाघन, पानीकी बाढ़ । २ अथकी प्लुतगति, घोड़ेकी बहुत तेज चाल ।

विप्रुघ्नक (सं० लि०) १-जलझाघनकारी, जलकी बाढ़ लानेवाला । २ राक्षोपद्रवकारी, राज्यमें उपद्रव

मड़ा करनेवाला, बलवाई विप्लवकारी, उपद्रव प्रधात-वाला ।

विप्लाघी (सं० लि०) १ विपप्लवकारी, उपद्रव करने-वाला । २ जलझाघनजनक, जलकी बाढ़ लानेवाला ।
विप्लुन (सं० लि०) १ व्यवसर्त, व्यवसर्तके कारण किसी वस्तुके अभावमें थाकुल, पर्याय—पञ्चमद्र, व्यवसर्त । (हेम) २ विक्षिप्त, छितराया हुआ । ३ आकुल, घर-राया हुआ । ४ क्षुब्ध, दुःखी । ५ भ्रष्ट, पतित । ६ नियम प्रतिष्ठा आदिसे च्युत ।

विप्लुना (सं० स्त्री०) यानिरोगविशेष । इसका लक्षण-प्रक्षालन नहीं करनेसे योनिमें खुजली होती है और उस खुजलाहटसे रतिमें उसे अधिक आसक्ति उत्पन्न होती है । इसीका नाम विप्लुतायोनि है । योनिरोग देखो ।

विप्लुति (सं० स्त्री०) विप्लव; उपद्रव, हलचल ।

विप्लुप् (सं० पुं०) विप्रुप देखो ।

विप्ला (सं० स्त्री०) वीणा देखो ।

विफ (सं० लि०) फ-वर्णरहित । (पश्चिद्भा ० पा१५७)

विफल (सं० लि०) विगत फल, यस्य । १ निरर्थक, व्यर्थ । २ निष्फल, बेकारवा । ३ निराश, हताश । ४ फलरहित, जिसमें फल न रहता या लगा है । ५ महत-कार्य, जिसके प्रयत्नका कुछ परिणाम न हुआ हो । ६ अण्डकोपरहित । (पुं०) ७ यन्त्र्याकर्कटकीवृक्ष, बाँक ककड़ी ।

विफलता (सं० स्त्री०) १ निष्फलता । २ निराश और व्यर्थता ।

विफला (सं० स्त्री०) १ केतकी । (लि०) २ बिना फलकी, जिसमें फल न लगे । ३ जिसका कुछ परिणाम न निकले । ४ जो प्रयत्नमें कृतकार्य न हुई हो ।

विफलीभू (सं० लि०) निष्फलीभूत ।

विफाष्ट (सं० लि०) फाष्ट, कढ़ा, बनाया हुआ ।

विफाष्ट देखो ।

विबद्ध (सं० लि०) आबद्ध, बंधा हुआ ।

विबन्ध (सं० पुं०) १ आकलन, आलिङ्गन करना, गले-लिपटना । "पादोदरविबन्धः" (महाभारत ७ श्लोक) २ विशेषरूपसे बन्धन, जोरसे बांधना । ३ पौषकीक बान्धनेवा-मेव । इसका लक्षण—बाँहारेजित अणकरसे वा पुरीप

कमशः सञ्चित और विगुण वायु कर्तृक विषय हो जब ठोक तरहसे नहीं निकलता तब अनाह रोग उत्पन्न होता है। अपकरसञ्जनित अनाहमें नृणा, प्रतिश्याय, मस्तकमें उवाला, आमाशयमें शूल और गुदना, हृदयमें स्तब्धता तथा उद्गाररोग आदि लक्षण दिखाई देते हैं। मलसञ्जय-जनित अनाह रोगमें कटि और पृष्ठदेगकी स्तब्धता, मल मूलका विरोध, शूल, मूर्च्छा, विषाद्यमन, शोथ (बाधमान) पेट फूलना, अधोवायुका निरोध तथा अलसक रोगोक अन्यान्य लक्षण दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—आनाह रोगमें भी उदावर्त्त रोगकी तरह वायुका अनुलोमतासाधन तथा घस्तिर्कर्म और घस्ति-प्रयोग आदि कार्य हितकर हैं। उदावर्त्त रोगकी तरह ही इसकी चिकित्सा करनी होगी, क्योंकि दोनों हीके कारण और कार्य अर्थात् निदान लक्षणादि प्रायः एकसे हैं।

उदावर्त्त रोग देखो।

आनाह रोगकी विशेष औषध यह है—नितोथका चूर्ण २ भाग, पीपल ३ भाग, हरीतकी ५ भाग और गुड़ सबका समान भाग ले कर एक साथ घोंटे, पीछे चार आना घाँ आध तोला मात्रा में सेवन करनेसे आनाह रोगकी शान्ति होती है। वच, हर्, चितामूल, यशस्वार, पीपल, अीस, और कूटज इन सब-द्रव्योंका चूर्ण समान भागमें मिलावे। ४ या २ आना मात्रा में सेवन करानेसे आनाह रोगमें बहुत लाभ पहुँचता है। वैद्यनाथवटी, नाराचचूर्ण, इच्छामेदा-रस, गुग्गाष्टक, शुक्लमूलाद्य घृण और सिधराड्य घृत आदि औषध आनाह और उदावर्त्त रोगमें व्यवहृत होती हैं।

पथ्यापथ्य—आनाह और उदावर्त्त रोगमें वायुशान्ति-कर अन्नपानादि भोजन करे। पुराने वारोक चावलका मातं कुल घरम रहने घोके साथ रोगीको खिलावे। कई, मंशुपी, शृङ्गो और मोरला मछलीका शोरवा, धकरे आदि मुलायम मांसका जूस और शूलरोगीक तरहकरी इस रोगमें लाभजनक है। इसमें दूध भी दिया जा सकता है, किन्तु मांस और दूध एक साथ खाने न देना चाहिये। मिर्चीका शरवत, नारियलका पानी, पका पपीता, आंत, ईष, और अनार आदि भी उपकारक हैं। रानको ठोक तरहसे भूज न लगने पर जीका माँड

और दूधके साथ छावा देना चाहिये और यदि भूल खूब लगी हो, तो ऊपर कहे गये अन्न आदि भी दिये जा सकते हैं। तेलको अच्छी तरह मालिश करके कुछ उष्ण जलसे स्नान करे, किन्तु शिर पर उस जलको ठंडा करके देना होता है। क्योंकि शिर पर गरम जल देनेसे उपकार-के बरूले अपकार होता है।

उष्णजल शिरके नीचे जिस जिस अंगमें पड़ता है, उस उस अंगकी बलवृद्धि होती है और उत्तमाङ्गमें अर्थात् मस्तक पर उसका परिष्क करनेसे चक्षुरादिका बलहास होता है।

गुदपाक, उष्ण दोग्य और यक्षद्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, व्यायाम, पथपर्यटन तथा क्रोध, गोक आदि कार्य इस रोगके अनिष्टकारक हैं अतएव उनका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना उचित है।

४ मूतादिका अथरोग, कोष्ठरुद्धता।

विषय (सं० पु०) १ आनाह रोगमेदः २ विदग्धः।

विषयधन (सं० क्लो०) विशेषरूपसे वनधन; पीठ, छाती, पेट आदिके घाघ या फोड़ेकी कपडसे विशेषरूपसे बांधनेकी युक्ति या क्रिया। (सुश्रुतः)

विषयधन (सं० पु०) विषयन देखो।

विदग्धवर्ति (सं० क्लो०) घाँड़ेका शूलरोगमेदः। इसमें उनका पेशाब गाँड हो जाता है तथा पेट और नाड़ियोंमें जकड़ने-सी फोड़ा होती है।

विदग्धु (सं० क्लो०) १ वन्धुरहित, जिसके माई वन्धु न हो। २ पितृहीन, अनाथ।

विषह (सं० पु०) १ बह, मोरका पंख। (क्लो०) यह-विरहित, बिना पंख या पंखके।

विषल (सं० क्लो०) १ दुर्बल, अशक्त। २ विशेष बल-वान्। ३ बलरहित।

विषलाक (सं० क्लो०) अशनिपात रहित, जिससे विद्युत् नहीं निकलती हो।

विषाण (सं० क्लो०) वाणरहित, वाणशून्य।

विषाणज्य (सं० क्लो०) वाण तथा ज्या, तीर और डोरी।

विषाणधि (सं० क्लो०) बालधि।

विषाध (सं० क्लो०) बाधा रहित।

विषाधा (सं० क्लो०) विहेठन।

कमशः सञ्चित और विगुण चायु कर्त्तृक विषय ही जब ठीक तरहसे नहीं निकलता तब अनाह रोग उत्पन्न होता है। अपकारसञ्जनित अनाहमें तृष्णा, प्रतिश्याय, मस्तकमें उचाला, आमाशयमें शूल और गुरुता, हृदयमें स्तम्भता तथा उद्गाररोग आदि लक्षण दिखाई देते हैं। मलसञ्चय-जनित अनाहरोगमें कटि और पृष्ठदेशको स्तम्भता, मल मूलका विरोध, शूल, मूच्छा, विष्टावमन, शोथ (आधमान) पेट फूलना, अधोवायु का निरोध तथा अलसक रोगोक्त अन्यन्ध लक्षण दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—आनाह रोगमें भी उदावर्त्त रोगकी तरह चायुका अनुलोमतासाधन तथा वस्ति-कर्म और वस्ति-प्रयोग आदि कार्य दितकर हैं। उदावर्त्त रोगकी तरह ही इसकी चिकित्सा करने होगी, क्योंकि दोनों हीके कारण और कार्य अर्थात् निदान लक्षणादि प्रायः एकसे हैं।

उदावर्त्त रोगों ।

आनाह रोगको विशेष औषध यह है—निसोधका चूर्ण २ भाग, पोपल ३ भाग, हरीतकी ५ भाग और गुड़ सबका समान भाग ले कर एक साथ घोंटे, पीछे चार आना चाँ आध तोला मात्रामें सेवन करनेसे आनाह रोगको शान्ति होती है। वच, हर्, चितामूल, यवक्षार, पोपल, अीस, और कूटन इन सब द्रव्योंका चूर्ण समान भागमें मिलाये। ४ या २ आना मात्रामें सेवन करानेसे आनाह रोगमें बहुत लाम पहुँचता है। वैधनाधयटी, नाराचचूर्ण, इच्छामेद, रस, गुड़ाएक, शुष्कमूलाद्य घृत और स्थिराद्रुघृत आदि औषध आनाह और उदावर्त्त रोगमें उपयुक्त होती हैं।

पथ्यापथ्य—आनाह और उदावर्त्त रोग चायुशान्ति-कर अन्नपानादि भोजन करे। पुराने रोगके चायुका मांस कुछ गरम रहने घोके साथ रोगोको खिलावे। कई, मंशुली, श्टेकी और मोरला मूलीका शोरवा, बकरे आदि मुन्यायम मांसका जुस और बूलेरोगोक्त तरकारी इस रोगमें लाभजनक है। इसमें दूध भी दिया जा सकता है, किन्तु मांस और दूध एक साथ खाने न देना चाहिये। मिथुनका शरवत, मारियलका पानी, पक्का पपीता, भात, ईश, और अनार आदि भी उपकारक है। रातको ठीक तरहसे भूख न लगने पर, जौका, मांड

और दूधके साथ लावा देना चाहिये और यदि भूख खूब लगी हो, तो ऊपर कहे गये अन्न आदि भी दिये जा सकते हैं। तेलको अच्छों तरह मालिश करके कुछ उष्ण जलसे स्नान करे, किन्तु शिर पर उस जलका छंटा करके देना होता है। क्योंकि शिर पर गरम जल देनेसे उपकारके बड़े अपकार होता है।

उष्णजल शिरके नीचे जिस जिस अंगमें पहुँचा है, उस उस अंगकी बलवृद्धि होती है और उत्तमाङ्गमें अर्थात् मस्तक पर उसका परिपेक करनेसे चक्षुरादिका बलहास होता है।

गुरुपाक, उष्ण दवाँ और रुक्षद्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, व्यायाम, पथपर्यटन तथा क्रोध, शोक आदि कार्य इस रोगके अनिष्टकारक हैं अतएव उनका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना उचित है।

४ मूत्रादिका अवरोध, कोष्ठरुद्धता ।

विद्यन्धक (सं० पु०) १ आनाह रोगमेद । २ विद्यन्ध । विद्यन्धन (सं० क्रो०) विशेषरूपसे वन्धन; पीठ, छाती, पेट आदिके वायु या फोड़ेको कपड़से विशेषरूपसे बांधनेकी युक्ति या क्रिया । (सुश्रुत) विद्यन्धवन (सं० पु०) विद्यन्धन देखो । विद्यन्धवर्त्ति (सं० खो०) घोड़ेका शूलरोगमेद उनका पेशाब बंद हो जाता है तथा पेट और ज रुढ़ने-सो पीड़ा होती है ।

विद्यन्धु (सं० त्रि०) १ वन्धुरहित, जिसके भाई हो । २ पितृहीन, अनाथ ।

विद्यह (सं० पु०) १ बह, मोरका पंख । (त्रि०) घट विरहित, बिना पंख या पत्तेके ।

विद्यल (सं० त्रि०) १ दुर्बल, अशक्त । २ विशेष बलवान् । ३ बलरहित ।

विद्यलाक (सं० त्रि०) अशानिपात रहित, जिससे विद्युत् नदी निकलती हो ।

विद्याण (सं० त्रि०) वाणरहित, वाणशून्य ।

विद्याणज्य (सं० त्रि०) वाण तथा उषा, तीर और डोरी ।

विद्याणधि (सं० त्रि०) बालधि ।

विद्याध (सं० त्रि०) बांधारहित ।

विद्याघ्रा (सं० खो०) विहेडन ।

चीतेका पेड़ । ४ अग्नि । ५ राजा । (त्रिं०) ६ प्रकाशशैल,
प्रकाशवाला ।

विभाकर आचार्य - प्रश्नकौमुदी नामक ज्योतिषग्रन्थके रच-
यिता ।

विभाकर धर्मन्—एक प्राचीन कवि ।

विभाकर शर्मन्—एक प्राचीन कवि ।

विभाग (सं० पु०) वि-भज पञ्चः १ भाग, अंश, हिस्सा ।

२ दाय यः पैत्रक सम्पत्तिका अंश । विशेषरूपसे भाग या
स्वत्वव्यवस्थापनको विभाग कहते हैं ।

भूहिरण्यवादि अर्थात् भूमि और सोना आदि स्थावर
स्थावर सम्पत्तिमें उत्पन्न स्वत्वके किसी एक पक्षके हक
पानके विषयमें विनिगमना प्रमाणाभावसे जयात् परक-
तर पक्षपाति-प्रमाणके अभावमें वैशेषिक नियमसे उस
सम्पत्ति विभागके अनुपयुक्त होने और इसके सम्बन्धमें
सिवा इसके (वैशेषिक मतके सिवा) दूसरे किसी तरह-
की सुव्यवस्था आदि न रहनेसे गुटिकापातादि द्वारा जो
खटव निरूपण होता है, उसीका नाम विभाग है ।

अभिज्ञताके साथ विशेष विवेचनापूर्वक स्वत्वादिके
अंश निरूपणका अथवा जिससे विशेषरूपसे स्वत्वादि
परिष्कार हो सके, उसीको विभाग कहते हैं ।

देवर्षि नारदका कहना है—किसी सम्पत्तिसे पूर्व
स्वामीका स्वत्व उपरत होने पर अर्थात् किसीकी तयाज्य
सम्पत्तिमें उसके बहुत दूरके उत्तराधिकारियोंमें शास्त्र
अथवा प्रमाणानुसार नैकट्य सम्बन्धनिर्णयमें असमर्थ
होने पर देशप्रधानुयायी नियमसे गुडगोटो (गुटिकापात)
बाल कर इन सब सम्पत्तियोंका स्वत्व-निर्णय किया जाता
है, उसको ही विभाग कहते हैं ।

धर्मशास्त्रनिदग्धमें सम्पत्ति-विभागके सम्बन्धमें ऐसा
व्यवस्था दिखाई देती है—

पिताको अपनी कमाई धन सम्पत्तिमें जधे उनकी
इच्छा हो, तभी विभाग हो सकता है, किन्तु पितामहके
धनमें माताको रजोनिवृत्ति होने पर पिताका जब इच्छा
होगी, तभी उसका विभागकाल है ।

माताकी जगह यहाँ विमाताको भी समझना होगा ।
पर्योकि, विमाताके गर्भसे भी पिताका दूसरा पुत्र उत्पन्न
हो सकता है । यस्तुतः माता और विमाताके रजोनि-

वृत्ति होने पर या उनकी रजोनिवृत्तिके पूर्व पिताको
रतिशक्ति निवृत्त होने पर यदि पिताको इच्छा हो, तो
वह सम्पत्तिका विभाग कर सकता है । पितृ द्वारा विभाक
मनुष्य विभागके बाद उत्पन्न स्राताका भी भाग देगे ।

पिताके स्वोपार्जित धनमें वे अपना इच्छाके अनुसार
धनका विभाग कर सकते हैं । स्वोपार्जित धनमें पिता
सब तरहसे स्वतन्त्र है, किन्तु पितामहके उपाजित धन-
में ऐसा नहीं हो सकता । स्वोपार्जित धनसे पिता किस
पुत्रको गुणो जान कर सम्मानार्थ अथवा अयोग्य जान कर
छपासे किंवा भक्त जान कर भक्तवत्सलताके कारण अधिक
दानेच्छु हो कर न्यूनाधिक विभाग करे तो धर्मसङ्गत हो
होगा । किन्तु इस तरहके भक्तित्व आदिका कोई कारण
न रहने पर यदि पिता धनके बँटवारेमें न्यूनाधिक करते
हैं, तो वह धर्मसंगत नहीं कहा जा सकता । किन्तु पूर्वोक्त
कारणोंसे उनका ऐसा करना धर्मसंगत हो है । अत्यन्त
व्याधि और क्रोधादिके लिये आकुलचित्तताके कारण या
काम आदिके विषयमें अत्यन्त आसक्तिके कारण पिता
यदि पुत्रको अधिक या कम भाग दे अथवा कुछ भी न
दे तो उनका वह विभाग नहीं होता ।

पिता यदि पुत्रको भक्तिके कारण न्यूनाधिक भाग
दे, तो वह विभाग शास्त्रसिद्ध और धर्मसङ्गत है । पिता
यदि रोगादिसे व्याकुल हो कर न्यूनाधिक विभाग करे
या किसी पुत्रको कुछ न दे, तो वह विभाग असिद्ध है ।
किन्तु भक्त्यादिके कारण दिना और घटायादिके कारण
अहिंसाचित्तता बिना केवल स्वेच्छापूर्वक न्यूनाधिक
विभाग करे, तो वह धर्मसंगत नहीं, किन्तु सिद्ध है ।
यदि पुत्र एक समयमें विभागकी प्रार्थना करे, तो पिता
भक्त्यादिके कारण असमान भाग न करे ।

पुत्रोंको समान भाग देने पर पुत्रहीना पत्नियोंको भी
समान भाग देना होगा । भर्ता आदि स्त्रीधन न देने
पर (स्त्रियोंको) समान अंश देना उचित है । जिनकी
स्त्रीधन दिया जा चुका है, उनके समान धन अनुत्त
पत्नियोंको पिता देगे । ऐसा स्त्रीधन न रहने पर उनकी
पुत्र सम्भाग देना कर्त्तव्य है । परन्तु पुत्रोंकी कम दे
कर स्वयं अधिक लेने पर (पुत्रहीना) पत्नीको अपने
अंशसे समभाग देना कर्त्तव्य है । यदि स्त्रीधन दिया गया

हो, तो उस हिस्सेका आधा ही देनेसे काम चल जायेगा।

माया माताके पाये भागको यदि भोग द्वारा व्यय कर डाले, तो स्त्री पतिसे फिर जोविका-निर्वाहके लिये धन पानेकी हकदार है। क्योंकि वह अवश्य पोष्य है।

हां, यदि उसके भागसे कुछ धन बाकी बच गया हो फिर पतिके धनका अन्त हो गया हो, तो जैसे पुत्रोंसे वह ले सकते हैं तैसे स्त्रीसे भी फिर धन ले सकते हैं। क्योंकि दोनोंमें एक ही कारण है।

पत्नी विभागप्राप्त धन स्वाध्य कारणके बिना दान या विक्रय नहीं कर सकते हैं अथवा चण्डक भी नहीं रख सकते। यह धन यावज्जीवन भोग करते रहेंगे, उसके बाद पूर्वस्वामीके उत्तराधिकारी भीगायाशिष्ट धन पायेंगे

जो धन पिता द्वारा उपाजित होता है, वही अपना प्रकृत स्वोपाजित है। पितामहका हतधन पुनरुद्धार करने पर भी वह उसे स्वोपाजितवत् उपभोगमें ला सकते हैं। पूर्वाह्न भूमि एक आत्मा परिश्रम कर यदि उद्धार करें, तो उसको चार अंशका एक अंश दे कर दूसरे अपने अपने भाग ले लें। पैतामह स्थावरसम्पत्ति रहने पर अस्थावर पैतामह धनमें स्वोपाजितकी तरह पिता ही मालिक है। ये ही न्यूनाधिक विभाग कर सकते हैं।

पिता अपने पितासे सम्बन्धजन्म जो भूमि, निबन्ध और द्रव्य पाये हों, वह व्यवहारमें पैतामह धनमें गिना जायेगा। क्योंकि उसमें स्वोपाजित धनकी तरह पिताका प्रभुत्व नहीं है। वह धन क्रमागत पैतामह धनकी तरह व्यवहार करना चाहिये।

मातामह आदिके मरने पर जो धन मिले, उसका व्यवहार स्वोपाजितकी तरह किया जा सकता है।

पितामहके धनका जब पिता विभाग करें, तो उसका स्वयं दो अंश ले कर पुत्रोंको एक एक अंश देंगे। क्रमागत धनसे पिता दो भाग ग्रहण करें। इससे अधिककी लालसा करने पर भी वे न ले सकेंगे। पूर्वोक्त शुण्यवस्थादि कारणों से और भूमिनिबन्ध या द्विपद रूप पैतामह धनका न्यूनाधिक विभाग देनेकी क्षमता पिताको नहीं।

पिता पुत्रको जैसे उसके योग्य अंश दे, वैसे ही पितृहीन पीतृकी और पितृपितामहहीन प्रपौतृकी पितृपितामह उनके योग्य अंश दे।

पुत्रार्जित धनमें भी पिताका दो भाग है। पितृद्रव्यके उपघातमें पुत्रके उपाजित धनमें पिताको आधा तदजक पुत्रको दो अंश और अन्य पुत्रोंको एक एक अंश देना चाहिये। पितृद्रव्यके उपघात बिना अर्जित धनमें पिताको दो अंश, गर्भकपुत्रकी भी दो अंश और अन्याय्य पुत्रोंको कुछ भी अंश नहीं देना चाहिये। अथवा विधाविगुणयुक्त पिता आधा ले। विधाविहीन पिता केवल जनककी हिसियतसे ही दो अंश ले।

यदि कोई पुत्र अपने परिश्रमसे भातृघनके उपघातसे उपाजित न करे, तो उसमें पिताको दो अंश और इन दोनों पुत्रोंको एक एक अंश दे दे। यदि कोई भाईके धनसे तथा अपने परिश्रम और धनसे धन उपाजित करे, तो तदजकका दो अंश, पिताका दो अंश और धनदाताका एक अंश होगा। दोनों अवस्थामें ही अन्यान्य भ्राताओंका कुछ भी अंश नहीं है।

जिस पीतृके पिता जीवित हैं, तदजित धन पितामह न ले; किन्तु पिता ले।

मरणपातित्व या उपरनस्पृहा द्वारा या गृहश्रम त्याग करनेसे शिताका स्वत्व ध्वंस होने पर या स्वत्व रहते हुए भी उनकी इच्छा होने पर (पितृघन) विभागमें पुत्रोंका अधिकार है जाता है। अतएव उस समयसे भ्रातृविभागकाल सम्पत्तिका चाहिये। फिर भी, माताके जीवित रहते भी विभाग करना धर्म नहीं अर्थात् धर्मता सिद्ध नहीं है; किन्तु व्यवहारमें सिद्ध है। पिता माताके जीवित रहने पर पुत्रोंका एकत्र रहना ही उचित है। पिता माताके मर जाने पर या न रहने पर पुत्रक हेतुसे चर्भकी वृद्धि होती है। (न्याय) पितामाताके ऋतुच्छानमन करने पर पुत्रोंको चाहिये आगत्ये तिल कर धनका भाग कर ले। किन्तु शिताके जीवित रहने पर पुत्र उस धनका मालिक नहीं है। (गनु) फिर भी, माताका अनुमति ग्रहण कर विभाग करने पर धर्मविच्छेद नहीं होता। बहनोका विशाह कर लेना आवश्यक होगा।

पिताके कर्माक्षम होने पर पुत्र विभाग करनेमें स्वाधान है। क्योंकि हारोनका कहना है—'पिताके जीवित रहने पर धनग्रहण और व्यय तथा बन्धक विषयमें पुत्र स्वाधीन नहीं है। किन्तु पिता त्राप्रस्त हो जाये या प्रवामी हो जाये या रुग्ण हो तो उपेय पुत्र विषयकर्म

देवे।' शंखलिखित मुख्यरूपसे कहा है—'पिताके अशक्त हो जाने पर ज्येष्ठ पुत्र विपयकार्यो निर्वाह करे अथवा कार्यांशोल दूसरा भ्राता उनकी आशा ले कर उसका कार्य करे। किन्तु पिता वृद्ध, विपरीतचित्त अथवा दीर्घ रोगी होने पर भी उसको इच्छा न होने पर विभाग नहीं हो सकता। ज्येष्ठ ही पिताको तरह अन्याय्य भ्राताओं की विपयरक्षा करे, (क्योंकि) परिवारका पालन धनमूलक है। पिताके रहते वे स्वाधोन नहीं हैं, माताके रहते भी नहीं।' इम वचनसे पिताका कर्माक्षम अथवा दीर्घरोगी होने पर भी विभाग निविद्ध है। ज्येष्ठ पुत्र ही विपयको विस्तार करे या उसका छोटा भाई यदि कार्यांशु हो तो वही उसकी अनुमतिसे कार्यां चलावे। अतएव पिताकी इच्छा न होने पर विभाग नहीं हो सकता, यह कहे जानेसे पिताके कर्माक्षम होने पर जो धन विभाग होगा, वह भ्रान्ति धनतः लिखागया है।

सवर्णा भ्राताओंका विभाग उद्धारपूर्वक या समान इन दोनों तरहसे कहा गया है।

मनुके मतसे "विशोद्धार और सब द्रव्योंमें जो श्रेष्ठ है, वह ज्येष्ठका है, उसका आधा मध्यमका, और तृतीयोऽंश अर्थात् बस्ती भागमें १ भाग कनिष्ठका है। ज्येष्ठ और कनिष्ठ कथितरूपसे ही विभाग ले। ज्येष्ठ और कनिष्ठके सिवा अन्यान्य भ्राता मध्यमरूप उद्धार पायेंगे। सब तरहके धनमें जो श्रेष्ठ और जो सब उत्कृष्ट है, वे और गाय आदि दश पशुओंमें जो श्रेष्ठ है, वह ज्येष्ठ पुत्रको लेना चाहिये। जो भाई अपने कर्त्तव्यमें निपुण है, उनमें दश वस्तुओंसे श्रेष्ठोद्धार नहीं, केवल मानवद्वयके लिये ज्येष्ठको निश्चित अधिक देना होगा। यदि उद्धार उद्धृत न हो, तो इसी तरहसे उनके अंशकी बहाना करनी होगी। ज्येष्ठ पुत्रने दो भाग और उससे छोटेको डेढ़ भाग देना चाहिये और उससे सभी छोटे भाई समान एक-एक अंश ले। यही धर्मशास्त्रकी व्यवस्था है। ज्येष्ठा स्त्रीके गर्भसे कनिष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे और कनिष्ठ स्त्रीके गर्भसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे किस प्रकार विभाग करना होगा ? इस तरहके संशय होने पर ज्येष्ठ एक वृषभका उद्धार कर ले, अपने अपने

मातृक्रमसे उससे छोटा भाई उससे छोटा वृषभ पाले ले। ज्येष्ठा स्त्रीका गर्भज ज्येष्ठ पुत्र वृषभ और दूसरा गाय ले। इमके बाद अन्यान्य पुत्र अपने अपने मातृक्रमसे ले।

मनु और वृहस्पतिको कहना है, कि द्विजातियोंके ज्येष्ठ पुत्र सवर्णा स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए हों, उनमें अन्यान्य भाई ज्येष्ठको उद्धार दे कर अपने सम भाग ले।

वृहस्पतिको मत—दायादीमें दो तरहका विभाग है एक वयोव्येष्ठ क्रमसे और दूसरा समबंशकी रूपना जन्म, धिया और गुणसे जो ज्येष्ठ है, वे दायरूप धनके अंश पायेंगे और अन्यान्य भाई सम भागके सागीदा होंगे। ज्येष्ठ उनके पितृद्वय है।

वशिष्ठका कहना है—'भाइयोंमें दायका दो अंश और प्रत्येक दश दश गाय और घोडोंमें एक एक ज्येष्ठ ले और बकरा भेड़ा और एक घर कनिष्ठ तथा कृष्णलोड और गृहके उपकरण या द्रव्यादि मध्यम ले।' विष्णुके मतसे—'सवर्णा स्त्रीका गर्भज पुत्र समान भाग ले, किन्तु ज्येष्ठके श्रेष्ठ द्रव्य उद्धार कर दे।'।

हारीतके मतसे—'गो आदि पशुओंका भाग करनेके समय ज्येष्ठको एक वृषभ दे अथवा श्रेष्ठ धन दे और उग्देविमद तथा पितृगृह दे कर अन्य भ्राता बाधा निकल कर गृहनिर्माण करें। एक गृह रहने पर उसका उत्तमांश ज्येष्ठको दे और अन्य भ्राता क्रमसे (उत्तम अंश) ले।'।

आपस्तम्बने कहा है—'देशविशेषमें सुवर्ण, काले गाय, भूमिका कृष्ण शस्य और पिताके सभी पशु ज्येष्ठके हैं।'।

शङ्खलिखितके मतसे—'ज्येष्ठको एक वृषभ और कनिष्ठको पिताके अवस्थानके सिवा अन्य घर भी दिये जा सकता है।'।

गौतमको व्यवस्था है, कि '(दायका) दोस भाग एक जोड़ा (गाय), दोनों जवडोंमें दूँत हो ऐसे पशुओंसे जुना रथ और मुचिणी करनेके लिये एक ज्येष्ठको और अन्धा, वृद्धा, सिंग हूटा, घण्डा पशु मध्यम भाईका। यदि ऐसे पशु बहुत हों तो बाँध, धान्य, लौह, गृह, गाड़ी और प्रत्येक चौपायोंमें एक एक कनिष्ठोंको

और अधशिशु घनमें सबका समभाग होगा । (सवर्णा कनिष्ठा खोके गर्भसे उत्पन्न) ज्येष्ठ पुत्र एक बौल अधिक पायेगा, (सवर्णा) ज्येष्ठा खोका पुत्र १ बौल और १५ गाये ले । कनिष्ठाके गर्भज पुत्रको जो उद्धार मिलेगा, उतना ही ज्येष्ठाके कनिष्ठ पुत्रको मिलना चाहिये । ज्येष्ठ इच्छानुसार पहले एक चीज ले और पशुओंमें दश ले ।

"सबको अधिशेषरूपसे समान भाग दिया जाये अथवा ज्येष्ठ श्रेष्ठ द्रव्य या दश भागका एक भाग उद्धार कर ले, दूसरे समान भाग ले ।" यह श्रुति वैधायनके वचनमें ज्येष्ठको श्रेष्ठ द्रव्य और गाय आदि एक जातीय पशुओंमें दशमें एक देनेको कहा गया है ।

वैधायनके मतसे—'पिताके अवर्षामान रहने पर चार वर्णोंके क्रमनुसार गो, भव्य, बकरा, भेड़ा बडे भाईको मिलेगा ।"

नारदका कहना है, कि 'ज्येष्ठको अधिक भाग दातव्य है और कनिष्ठको कम । अन्यान्य भाई समान अंशके भागोदार हैं, और अविवाहिता बदन भी ऐसी ही अंशोदार हैं ।'

देवलका कहना है, कि 'समान गुणयुक्त भ्राताओंको मध्यम भाग प्राप्य है और ज्येष्ठ भाईके न्यायकारी होने पर उसके दशम भाग देना हींगा ।'

इस तरह धर्मग्रन्थकारोंने विविध ऋसे जो उद्धार विधान किया है, उसका समन्वय भी दुष्कर है, जो हो, अवस्थाविशेषमें इन सर्वोंका एक तरहसे उद्धार देनेका तारपूर्ण मालूम हो सकता है, किन्तु यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है, कि गुणान्वित भाई ही उसके उद्धारार्ह हैं । वृद्धस्वतन्त्रे यह स्पष्ट ऋसे कहा है, कि कथित विधानके अनुसार सभी पुत्र ही पितृघनकारी हैं । किन्तु उनमें जो विद्यावान् और धर्मकर्मशाल हैं, वह अधिक पानेके अधिकारी हैं । विद्या, विज्ञान, गौरव, ज्ञान, दान और सत्किया इन सब विषयोंमें जिसको कीर्ति इस लोकमें प्रतिष्ठित हो, उसी पुत्रसे पितृलोक पुत्रघन होता है । और ऐसा भग नहीं, कि निर्गुण दुष्कर्मशाली भाई केवल विंशोद्धार पानेके अयोग्य है । किन्तु दयाधिकारी भी नहीं, यथा—निम्न लिखित पंक्तियां विवाद्भङ्गार्णवसे दी जाती हैं—

जो ज्येष्ठ भाई ज्येष्ठका आचरण करते हैं, पिता भी

वही और माता भी वही हैं । ज्येष्ठका आचरण जो ज्येष्ठ नहीं करते हैं, वह बन्धुकी तरह मान्य है । फिर निर्गुण ज्येष्ठके ज्येष्ठत्वके सम्बन्धमें विंशोद्धारदि रूप अधिक भागकी प्राप्ति निषिद्ध है । इसके बाद कुर्भकारी भ्रातामातृ हो विषय घनमें भाग पानेका अधिकारी नहीं है । इस वाक्यसे गृहित कर्म करनेवाले ज्येष्ठ भादि सभी भाई विषय पानेके अनधिकारी हैं और उद्धार प्राप्तिके लिये ज्येष्ठत्व और गुणधरत्व दोनों ही आवश्यक कहे गये हैं ।

इस समय यद्यार्थमें उद्धार दानरहित ही हो गया है । फिर उद्धारार्ह भ्राताके रहने पर भी भ्राताओंके उद्धार न देने पर वे अमियोग लगा कर नहीं ले सकते ।

विवादभङ्गार्णवके रचयिताने कहा है, कि इस समय हमारे देशमें विंशोद्धारदि का व्यवहार प्रायः ही नहीं है । केवल कुछ द्रव्य, ज्येष्ठको मान-रक्षाके लिये दिया जाता है । यद्यपि ज्येष्ठ पुनरकनिष्ठारादि पिताके मदोपकार करनेके कारण अन्यान्य भ्राताओंसे कुछ अधिक पानेके अधिकारी हैं, तथापि वह दान कनिष्ठोंकी इच्छा पर ही निर्भर करता है । क्योंकि किसी ऋग्निने ऐसा कहा है, कि कनिष्ठके न देनेसे ज्येष्ठ दयाय करके ले सके ।

'यद्विर्वर्णके चरितानुसार और यमकके अत्रजगमानुसार ज्येष्ठता निश्चय नहीं—(गौतम) यद्विर्वर्ण अर्थात् शूद्र । बहुवचनके कारण शूद्रधर्मप्राही शंकरचरितमें अर्थात् सुशालतामें ज्येष्ठता होती है । अतएव ये जन्म द्वारा ज्येष्ठ कह कर उद्धारार्ह नहीं होते । वाचस्पतिक का कहना है, कि 'शूद्रजन्मके लिये ज्येष्ठताभाग नहीं होते ।' मनु कहते हैं—'शूद्रकी सजातीय मायर्णा वैध है । उसके गर्भमें सी पुत्र जन्म लेने पर भी वे सभी समान भाग पायेंगे । यहां समान अंश कहनेसे ज्येष्ठत्व प्रयुक्त उद्धार प्राप्य नहीं है वही दिखाया गया है । यदि कहा जाय, उनमें विद्वान् और कर्मशाली जो हैं वे अधिक पा सकेंगे, तो यह पृथक् पृथक् उद्धार साधारण विषयक होने पर शूद्र भी गुणशाली होनेसे यथो उद्धारार्ह होता है ? ऐसा गुण शूद्रमें होना सम्भव नहीं । अतएव—'शूद्रका कर्मी भी उद्धार प्राप्य नहीं ।"

कलिके सिंया अन्य युगमें मानव वंशके ज्येष्ठानु-

५ भाग । ६ न्यायमत्से २४ गुणान्तर्गत गुणविशेष । यह एककर्मज, द्वयकर्मज और विभागजके भेदसे तीन प्रकारका है। विभागज विभाग फिर हेतुमात्र विभाग और और हेत्वहेतुविभाग भेदसे दो प्रकारका है।

क्रमशा लक्षण और उदाहरण—

एककर्मज—केवल एक पदार्थकी क्रियाके लिये जो विभाग या संयोगवृत्ति होती है, उसका एककर्मज विभाग कहते हैं। जैसे, श्वेनशैलसंयोगका विभाग। इस विभागमें पर्वतको कोई क्रिया नहीं देखी जाती। केवलमात्र श्वेन पक्षीकी क्रिया ही दिखाई देती है। अतएव यह एककर्मज विभाग है।

द्वयकर्मज,—दो पदार्थोंकी क्रिया द्वारा उत्पन्न विभागका नाम द्वयकर्मज विभाग है। जैसे, दो भेदोंके युद्ध (अर्थात् उद्या लगने) के समय उनके दोनोंकी क्रियामें परस्परके सींगोंका संयोग होता है, जैसे ही युद्ध (दिशाके लगने) शून्य होने पर फिर उन्हीं दोनोंकी क्रियाके द्वारा उभ संयोगका वियोग अर्थात् विभाग होता है। अतएव यह विभाग द्वयकर्मज है।

हेतुमात्रविभागज—हेतु = कारण है। यह तीन तरहका है—सामवायी, असमवायी और निमित्त। घटके कपाल और कपालिका-अर्थात् तला और गला समवायी कारणोंका और उनके (इस तले और गलेका) परस्पर संयोग असमवायी कारणोंके और मृत्तिका, सलिल (जल), सूत्र, दण्ड, चक्र और कुलाल (कुम्भकार) आदिके निमित्त कारणका उदाहरण है। इन कारणत्वका वियोग या विभाग ही हेतुमात्र विभागज विभाग है।

हेत्वहेतुविभागज—हेतु = कारण = किसी कार्यके प्रति जो वस्तु लब्धवहित-नियत पूर्ववर्ती अर्थात् किसी कार्यके आरम्भके प्राक्कालमें उस कार्यके प्रति जिस वस्तुकी नितान्त आवश्यकता है या जो वस्तु न होनेसे यह काम नहीं चल सकता, उसीका नाम कारण है। जैसे घट प्रस्तुत करनेके आरम्भमें मिट्टी, जल, सूत्र, दण्ड, चक्र, कुलाल और कपाल कपालिका और उसका (कपाल और कपालिकाके संयोग) इनमें कोई एक न रहनेसे घट तय्यार नहीं हो सकता। अतः इसका सामान्यकारणमें ये सभी हेतु या कारण हैं। फिर इनमें तीन प्रकारका भेद है जो

पहले कहा जा चुका है। इन तीन प्रकारोंमें कपाल और कपालिकाको जो समवायी कारण रह गया है, उसमें साधारणतः द्रव्यके अवयवोंको ही अवयवोंका कारण कहना समझना होगा। इस समय जहाँ इस हेतु और अहेतु—इन दोनोंका वियोग या विभाग दिखाई देगा, वहाँ हेत्वहेतु विभागज विभाग कहना चाहिये। जैसे देहके (अवयवोंके) कारण हस्त (अवयव) है, इस हाथके साथ पूर्वहन संयोजित तब हा वियोग या विभागके समय तबसे हाथके साथ साथ अवयव देहका भी विभाग होता है। इससे स्पष्ट देखा जाता है, कि तबसे जो देहके विभागको कलना की गई, वह देहका कारण (हस्त) और अकारण (तब) इन दोनोंके वियोग द्वारा ही सम्पन्न हो रही है। अतएव यहाँ हेतु और अहेतु इन दोनोंके विभागजन्य विभाग कल्पना करनेको हेत्वहेतु-विभागज विभाग कहा जाता है।

"द्रव्यणि नव" क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन—ये नौ प्रकारके द्रव्य हैं। इन सब द्रव्योंमें जो द्रव्यस्वरूप धर्म है, वह सामान्य या व्यापक धर्म है और इनके परत्येकमें जो क्षितित्व जलत्व आदि धर्म है, वे विशेष या व्याप्य धर्म हैं। ये परस्पर विरुद्धधर्म हैं, क्योंकि क्षितित्व जलमें नहीं है तथा जलत्व क्षितिमें या तेज आदिमें नहीं है। किन्तु सामान्य धर्म (द्रवत्व) इन नवोंमें ही है। परन्तु विरुद्ध-व्याप्यधर्मके प्रकारसे ही द्रव्यको नौ भागोंमें विभाग करना होता है। इनके द्वारा यहाँ फलतः यह उपलब्धि होगी कि द्रव्यत्व या सामान्य धर्मविशिष्ट क्षित्वादिका परस्पर विरुद्ध क्षितित्व जलत्वादि व्याप्य धर्म द्वारा ही प्रतिपादन किया जा रहा है, कि द्रव्यके विभाग नौ प्रकार हैं। अतएव सामान्यधर्मविशिष्ट वस्तुओंके परस्पर विरुद्ध तत्त्व-व्याप्य धर्म द्वारा उनका (उन वस्तुओंका) जो प्रतिपादन होता है, उसका नाम ही विभाग है।

विभागक (सं० त्रि०) विभागकारी, बाँटनेवाला।

विभागमिन्न (सं० द्वि०) तक्र, भट्ट।

विभागवत् (सं० द्वि०) १ भागविशिष्ट। २ विभाग तुल्य, विभागके समान।

विभागशस्त्र (सं० अथ) विभागके अनुसार।

विभागात्मक नक्षत्र (स० पु०) रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवणा आदि आठ प्रकाशमय नक्षत्र ।

विभागिक (सं० त्रि०) भांशिक ।

विभागिन् (सं० त्रि०) १ विभागकारी, विभाग करनेवाला ।

२ विभाग या हिस्सा पानेवाला ।

विभागी (सं० त्रि०) विभागिन देखो ।

विभाग्य (स० त्रि०) विभाज्य, बांटने लायक ।

विभाज (स० त्रि०) १ विभक्त, बांटा हुआ । (स्त्री०)

२ पाल, बरतन ।

विभाजक (स० त्रि०) १ विभागकर्ता, बांटनेवाला ।

२ गणितमें यह संख्या जिससे किसी दूसरी संख्याको माग दे, भाजक ।

विभाजन (स० स्त्री०) १ विभागकरण, बांटनेका काम ।

२ पाल, बरतन ।

विभाजित (स० त्रि०) जिसका विभाग किया गया हो, जो बांटा गया हो ।

विभाज्य (स० त्रि०) १ विभजनीय, विभाग करने योग्य ।

२ विभागाई, जो घन पुरोंके बीच बांटा जा सके ।

विभाण्ड (सं० पु०) ऋषिभेद । (महाभारत) विभाण्डक देखो ।

विभाण्डक—१ एक ऋषि जो ऋष्यशृङ्गके पिता थे ।

ऋष्यशृङ्ग देखो ।

२ सह्याद्रि-वर्णित राजभेद । ये भरद्वाज कुलीन्य

और ललिताके भक्त थे । (सहा० ३१३)

३ सह्याद्रि-वर्णित कुलप्रवर्तक ऋषिभेद ।

(सहा० त्रि० ३४२३)

विभाण्डिका (स० स्त्री०) आहुत्य वृक्ष ।

विभाण्डो (स० स्त्री०) १ आवर्तकी लता । २ नीला-पराजिता, विष्णुकान्ता लता ।

विभात् (स० त्रि०) १ प्रभामय । (पु०) २ प्रजापतिभेद ।

विभात (स० स्त्री०) वि-भा-त् । प्रत्यय, सपेरा ।

विभाति (हि० पु०) शोभा, सुन्दरता ।

विभाता (हि० स्त्री०) १ चमकना, झलकना । २ शोभा-पाना, शोभित होना ।

विभातु (स० त्रि०) विकाशक, प्रकाशक ।

(शुक० ८५१२)

विभाव (स० त्रि०) वि-भावि-अच् । १ विविध प्रकारसे प्रकाशवान् । (पु०) २ परिचय । ३ रसके उद्दीपनादि ।

काव्य-नाटकादिमें जो सामाजिक रति आदि भावोंके उद्बोधकरूपमें सन्निवेशित होते हैं, उन्हीं विभाव कहते हैं । जैसे,—रामादि गत रतिहासादिकी उद्बोधक सीतादि । यह विभाव आलम्बन भी उद्दीपनके भेदसे दो प्रकारका है ।

आलम्बन,—नायक, नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका आदिकी ही आलम्बन विभाव कहते हैं । क्योंकि उनका आलम्बन करके ही शृङ्गार, घोर, कठणादि रसोंका उद्गम होता है । जैसे वर्णानामें भोम कंसादिकी साक्षात् घोररसका आश्रय कह कर उद्बोध होता है ।

उद्दीपनविभाव,—नायकनायिकोंकी चेष्टा अर्थात् हाथ भाव तथा रूपभूषणादि द्वारा अथवा देश, काल, स्त्र, चन्द्र, चन्द्र, कोकिलालाप, झमर झङ्कार आदिसे जिस शृङ्गारादि रसका उद्दीपन होता है, उसका नाम उद्दीपन विभाव है ।

"उद्दीपनविभावस्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।

भाष्यम्बनस्य चेष्टाया देशकालादयस्तथा ॥"

(साहित्यदर्पण ३।१६०-१६१)

यहाँ जिस जिस रसका जो जो विभाव है, नीचे क्रमानुसार यथायथ भावमें उसका उल्लेख किया जाना है ।

शृङ्गाररसमें,—दक्षिण, अनुकूल, धृष्ट और शठ नायक तथा परकीया, अननुरागिणी और देश्यासे भिन्न नायिका 'आलम्बन' है । फिर चन्द्र, चन्दन, झमरझङ्कार, कोकिलकूजन आदि 'उद्दीपन' विभाव हैं ।

रोद्ररसमें,—शत्रु, 'आलम्बन' तथा उसका मुष्टिपहार, लम्कप्रदानपूर्वक पतन, विरुतछेदन, विदारण, युद्धमें व्यग्रता आदि उद्दीपन विभाव हैं ।

घोररसमें,—विजेतव्यादि आलम्बन तथा उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव हैं ।

* दानवीर, धर्मवीर, दयावीर और युद्धवीरके भेदसे वीर चार प्रकारका है । इनमेंसे दानवीरका विजेतव्य वा आलम्बनविभाव सम्प्रदानीय ब्राह्मण्य है अर्थात् जिनको दानकिया जायेगा तथा उन की धातुा और अण्यवलावादि उद्दीपनविभाव है । धर्मवीरका-

भयानकरसका,—जिससे भय उत्पन्न होता है, उसे 'आलम्बन' तथा उस भीतिप्रद पदार्थकी विभोपिकादि अर्थात् उसकी अतिभोषणा चेष्टाको ही 'उद्दोषन' विभाव कहते हैं।

वीमत्सरसका,—दुर्गन्धित, मर्म, रुधिर, विष्टा, आदि 'आलम्बन' तथा उन सब द्रव्योंमें किमि आदि होनेसे वह 'उद्दोषन' विभाव है।

अद्भुतरसका,—अलौकिक 'वस्तु' आलम्बन तथा उस वस्तुकी गुणमहिमादि 'उद्दोषन' विभाव है अर्थात् जहां साधारण मनुष्योंके अकृतसाध्य विस्मयकर कार्य दिखाई देगा वहां वह ध्यापार आलम्बन तथा उसकी गुणावली उद्दोषन विभाव होगी।

हास्यरसका,—जिन सब वस्तुओं या व्यक्तियोंका अति कट्टप्यरूप, वाष्य और अङ्गमङ्ग आदि देख कर लोगोंको हँसी आती है, वे सब वस्तु या व्यक्ति 'आलम्बन' तथा वे सब रूप और अङ्गविकृत्यादि 'उद्दोषन' विभाव है।

कथनरसका,—शोककी विषयोभूत वस्तु अर्थात् जिसके लिये शोक मनाया जाता है, वह 'आलम्बन' है तथा उस शोच्य विषयकी दाहादिका (जैसे मृत आत्मायकी मुमुषु कालीन यन्त्रादि) अवस्था 'उद्दोषन' विभाव है।

शान्तरसका,—नश्यत्स्वरूपयुक्त इन्द्रियभोग्य वस्तुओंकी निःसारता (सारराहित्य या परमात्मस्वरूपत्व) 'आलम्बन' तथा पुण्याधम, हरिक्षेत्र, नैमिषारण्य आदि रमणीय वन और महापुरुषकी सङ्गति ये सब 'उद्दोषन' विभाव हैं।

विभावक (सं० लि०) वि-भू ण्युल् (वृणुण्युक्ती क्रियायां । पा ३।४।१०) कियार्थमिति ण्युल् । चिन्तक, चिन्ता करनेवाला ।

धर्म ही 'आलम्बन' है तथा धर्मशास्त्रादि उसका 'उद्दोषन' विभाव है। दयावीरकां—अनुकम्पनीय अर्थात् दयाका पाप, 'आलम्बन' तथा दोन अर्थात् दरिद्रादिकी कालरोक्त आदि उद्दोषन विभाव है। सुदवीरका—विजेतव्य अर्थात् पतिद्वन्द्वी व्यक्ति 'आलम्बन' तथा उसकी स्पृहादि 'उद्दोषन'।

विभावयत् (सं० क्लो०), विभावका भाव ।

विभावन् (सं० लि०) प्रकाशक, विकाराशील ।

विभावन् (सं० क्लो०) वि-भावि-ल्युट् । १ चिन्तन, विशेषरूपसे चिन्तन । विभावयति कारणं विना कार्यात्पत्तिं चिन्तयति पण्डितमिति, वि-भावि-ल्युट्-युच् वा ।

२ अलङ्कारविशेष । विना कारणके जहां कार्यात्पत्ति होती है, वहां उसे विभावना अलङ्कार कहते हैं। यह उक्त और अनुक्तके भेदसे दो प्रकारका है । ३ पालन ।

विभावना (सं० खी०) वि-भावि, युच्-टाप् । अलङ्कारविशेष । इसमें कारणके विना कार्यात्पत्ति उत्पत्ति या अपूर्ण कारणसे कार्यात्पत्ति या प्रतिबन्ध होते हुए भी कार्यकी सिद्धि या जिस कार्यके कारण नहीं हुआ करता, उससे उस कार्यात्पत्ति अथवा विरुद्ध कारणसे किसी कार्यकी उत्पत्ति या कार्यसे कारणकी उत्पत्ति दिखाई जाती है ।

विभावनीय (सं० लि०) भावना या चिन्ता करने योग्य ।

विभावरी (सं० खी०) १ रात्रि, रात । २ हरिद्रा, हल्दी ।

३ कुट्टनी, कुट्ट, इतो । ४ घक खी, टेढी चालकी औरत ।

५ मुष्करा खी, बहुत बड़बड़ करनेवाली खी । ६ विवाद-खलीमुष्की । ७ मेदाप्लस । ८ यह रात जिसमें तारे चमकते हैं । ९ मन्दार नामक विद्याधरकी एक कन्या ।

(मार्कण्डेयपु० ६।३।१४) १० प्रचेतसकी नगरीका नाम ।

विभावरीयुग (सं० क्लो०) हरिद्रा और दासहरिद्रा ।

विभावरीश (सं० पु०) अद्भुत, निशापति ।

विभावसु (सं० लि०) १ विभा या ज्योतिर्विशिष्ट, अधिक प्रभाववाला । (अक् ३।२।२) (पु०) विभा प्रमा पव

वसुसांमुद्धिर्यस्य । २ सूर्य । (भात १।७।५६) ३ अर्क-वृक्ष, आकका पौधा । ४ धनि, आम । ५ चित्रकवृक्ष, चीता । ६ चन्द्रमा । ७ एक प्रकारका हार । ८ वसुपुत्रभेद ।

(भागवत ६।६।१०) ९ सुरासुरपुत्र । (भागवत १०।१६।१२)

१० दनुके पुत्रः असुरभेद । (भागवत ६।६।३०) ११ नरक-

पुत्रभेद । १२ ऋषिभेद । (महाभारत) १३ एक गन्धर्व जिसने

गायत्रीसे वह सोम छीना था जिसे वह देवताओंके लिये ले जा रही थी । १४ गजपुत्रके एक राजा । (कथावर्ति)

विभावित (सं० लि०) १ दृष्ट, देखा हुआ । २ अनुभूत,

किया हुआ । ३ चिन्तित, विचारा हुआ ।

४ विवेचित, सोचा हुआ। ५ प्रसिद्ध, मशहूर, प्रति-
ष्ठित।

विभाविन (सं० लि०) १ चिन्तायुक्त। २ अनुभवकारो।
विभाष्य (सं० लि०) १ विचिन्त्य। २ विवेच्य। ३ भग्नीर।
४ विचारणीय।

विभाषा (सं० स्त्री०) विकल्पत्वेन भास्यते इति, वि-भा-प-
अ (गुणोच्च इक्षः। पा ३।३।१०३) ततष्टाप्। १ विकल्प।
पाणिनिके मतसे विभाषाका लक्षण इस प्रकार है,—
“न वेति विभाषा” “नेतिप्रतिषेधो वेति विकल्पः पत-
दुभयं विभाषासंबन्धं स्यात्।” (पा ३।३।४४)

“न वा शब्दस्य योऽर्थस्तस्य संज्ञा भवतीति यक-
ष्यम्।” (महाभाष्य)

‘तत्र लोके क्रियापदसन्निधाने नवाशब्दयोर्योऽर्थो-
घोत्यो विकल्पप्रतिषेधलक्षणः स संज्ञोत्यर्थः।’

(कैष्यट)

जहाँ न (निषेध अर्थात् नहीं) होगा। और वा (विकल्प-
में अर्थात् एक बार होगा) इन दोनों शब्दोंका अर्थ एक
समय बोध होगा, वहाँ पर विभाषा संज्ञा होगी। इस पर
प्रश्न हो कर सकता कि,—जहाँ निषेध किया गया कि,
‘नहीं’ होगा, वहाँ फिर किस प्रकारसे कहा जा सकता
है, एक बार होगा। महर्षि पतञ्जलिने भी महाभाष्यमें इस-
की व्याख्याकी जगह इस सम्बन्धमें स्वयं प्रश्न कर उसको
मीमांसा की है—

“किं कारणं प्रतिषेधसंज्ञाकरणत्। प्रतिषेधस्य इयं
संज्ञा क्रियते। तेन विभाषापददेशेण प्रतिषेधस्यैव संप्रत्ययः
स्यात्। सिद्धं तु प्रसज्यप्रतिषेधात्। सिद्धमेतत्।
कथं, प्रसज्यप्रतिषेधात्।”

यहाँ निषेधको संज्ञा करनेका प्रयोजन क्या है?
यदि निषेधकी संज्ञा की जाय, तो विभाषापददेशमें अर्थात्
न और वा इन दोनोंके अर्थसमावेशस्थलमें एकमात्र प्रति-
षेधकी ही सम्भासि होती है।

भगवान् पतञ्जलिने इस प्रकार प्रश्नको मजबूत करके
‘सिद्धं तु’ ‘सिद्ध होता है’ ऐसा कह कर स्वयं मीमांसा
की है, कि “प्रसज्यप्रतिषेधात्” अर्थात् इस ‘न’को निषेध-
शक्तिका प्राधान्य नहीं है; अतएव इस ‘न’के द्वारा एकदम
नहीं होगा ऐसा अर्थ हो नहीं सकता अर्थात् किसी किसी

स्थानमें होनेसे भी क्षति नहीं होगी। इसलिये इस ‘न’के
अर्थ द्वारा भी कहीं कहीं होनेकी विधि स्थिर हुई। अस्तु
यह साबित हुआ, कि जहाँ एक बार विधि और एक बार
निषेध समझा जायेगा वही विभाषा संज्ञा होगी।

व्याकरणके जिन सब सूत्रोंमें ‘वा’ निर्देश है वे विभाषा
संबन्ध सूत्र हैं अर्थात् उनका कार्य एक बार होगा और एक
बार नहीं। इस विभाषाके सम्बन्धमें व्याकरणमें कुछ
नियम लिखे हैं, संक्षेपमें उनका उल्लेख नीचे किया जाता
है,—“द्वयोर्विभाषयोर्मध्ये विधिर्नित्यः” दो विभाषाके-
मध्य जो सब विधियाँ हैं वे नित्य होंगी अर्थात् १म और
५म इन दो सूत्रोंमें यदि ‘व’ शब्द व्यवहृत होता हो, तो
२य, ३य और ४थं सूत्रका कार्य विकल्पमें न हो कर नित्य
ही होगा। (व्याकरणके शासनानुसार इन चोड़े सूत्रोंका
कार्य भी विकल्पमें होनेका कारण था, वट्टु जानिके भयसे
उसका विवरण नहीं दिया गया)। ‘वा हृषे पदत्रयं’

सन्धि आदि स्थानोंमें दो विकल्पसूत्रकी प्राप्ति होनेसे
तीन तीन करके पद होंगे। जैसे एक सूत्रमें लिखा है,—
स्वरवर्णके पीछे रहनेसे जो शब्दके ‘ओ’कारका जगह
विकल्पमें ‘अव’ होगा। फिर एक सूत्रमें है,—‘अ’कारके
पीछे रहनेसे गोशब्दकी सन्धि विकल्पमें होती है।
अतएव गो + अम्रं की जगह पूर्ण सूत्रानुसार गो + अम्रं =
+गु अव + अम्रं = गवाम्रं; शेष सूत्रानुसार ‘सन्धि
विकल्पमें होगी’ इस कारण विभाषाके लक्षणानुसार
स्पष्ट जाना जाता है, कि एक जगह सन्धिका निषेध
रहेगा, अतएव वहाँ ‘गो अम्रं’ ऐसा ही रहा। अभी यह
विचारनेकी बात है, कि अन्तिम सूत्रके विकल्प पक्षकी
सन्धि पूर्णसूत्रानुसार ‘अव’ का आदेश की जा सकती है,
किन्तु उस सूत्रमें भी फिर ‘वा’ का निर्देश करनेके कारण
उसके प्रति पक्षमें एक और किसीकी व्यवस्था नहीं करनेसे
उस सूत्रका ‘वा’ निर्देश एकदम व्यर्थ होता है। अतएव
‘प’कार अथवा ‘ओ’कारके बाद ‘ओ’कार रहनेसे उसका
लोप होगा, इस साधारण सूत्रके द्वारा ‘ओ’कारके
परस्थित ‘अ’कारका लोप करके ‘गोऽम्रं’ ऐसा एक
पद बनेगा। अतएव सूत्रमें दो ‘वा’ रहनेसे ३ पद हुए।
दूसरी जगह भी इसी प्रकार, जानना होगा। विभाषा
शब्द द्वारा सन्धिसम्बन्धमें एक और नियम प्रचलित है।

यह यह है, कि धातुके साथ उपसर्गाका योग तथा समास एकपदस्थलमें नित्य इसके सिवा अन्यत्र विकल्पमें सन्धि होगी ।

क्रमशः उदाहरण—

'प्र-अन्-अच् = प्राणः, नि-इ (या अय) -घञ् = नि-आय-घञ् = न्यायः । 'ब्रह्मा च अच्युतश्च = ब्रह्माच्युतो' 'ब्रह्मा तथा अच्युत = ब्रह्मा + अच्युतः = ब्रह्माच्युतः । अन्क्—क = अन्-क् (श्ट्) क = अङ्कित, दन्म-अच् = द'भ-अ = दम्भः । प्र-अन्, नि + आय (धातु और उपसर्गाका योग); ब्रह्मा + अच्युत (समास) ; दन् + भ् अन् + फ् (एकपद अर्थात् एक दन्म् और 'अन्क्' धातु) इन सब स्थानोंमें नित्य ही सन्धि होगी । अर्थात् सन्धि न हो कर अविकल ऐसे भावमें कुछ नहीं रह सकता, परन्तु समास स्थलमें वक्ता इच्छा करके यदि समास न करे, तो 'ब्रह्मा अच्युतके साथ जाते हैं' ऐसे भावमें सन्निकर्ण होनेसे ही सन्धि होगी सो नहीं । धातूपसर्ग और प्रकृति प्रत्ययके सम्बन्धमें भी प्रायः एक ही तरह जानना होगा अर्थात् कर्ता यदि पद प्रस्तुत करनेके अभि-प्रायसे उनका योग करे, तो नित्य सन्धि होगी । अन् + क = अङ्क, प्रस + च = प्रश्च इत्यादि स्थानोंमें प्रत्ययके साथ योग होनेके पहले ही एक पदमें नित्य सन्धि होती है ।

२ संस्कृत नाटकमें व्यवहृत प्राकृत भाषा । शाकरी, चाण्डाली, शावरी, आभीरी, शाषकी आदि विभाषा हैं ।
३ बौद्धशास्त्रग्रन्थभेद ।

विभास (सं० पु०) तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार सप्त-र्षियोंमेंसे एक । २ देवयानिभेद । (मार्क० पु० ८०।७) ३ रागका भेद । यह सवेरके समय गाया जाता है । इसे कुछ लोग भैरव रागका ही भेद मानते हैं । ४ तेज, चमक ।

विभासक (सं० त्रि०) १ प्रकाशयुक्त, चमकनेवाला ।

२ प्रकाशित करनेवाला, जाहिर करनेवाला ।

विभासिका (सं० त्रि०) चमकनेवाली ।

विभासित (सं० त्रि०) १ प्रकाशित, चमकता हुआ ।

२ प्रकट, जाहिर ।

विभासकर (सं० त्रि०) दीप्तिहीन, स्यालोकरहित ।

विभास्यन् (सं० त्रि०) अति उज्ज्वल ।

विभित्ति (सं० स्त्री०) वि-भिद्-क्तिच् । विभेद, विवाद ।
(काठक १।१६)

विभिन्दु (सं० त्रि०) १ विशेषरूपसे भेदक, सर्वभेदकारी ।
२ विख्यात । (शृक् १।११६।२० वाक्य) २ ऋग्वेदीका राज-भेद । ये राजा थे । (शृक् ८।१।४२)

विभिन्दुक (सं० पु०) असुरभेद ।

(पञ्चविंशत्तमो ११।१०।११)

विभिन्न (सं० त्रि०) १ कटा हुआ, काट कर अलग किया हुआ । २ पृथक्, जुदा । ३ अनेक प्रकारका, कई तरहका । ४ निराश, हताश । ५ औरका और किया हुआ, उलटा ।

विभिन्नता (सं० स्त्री०) पार्श्वय, भेद ।

विभिन्नदर्शी (सं० त्रि०) भिन्नदर्शी, पृथक् पृथक् देखनेवाला । (मार्क० पु० २।३।२८)

विभी (सं० त्रि०) विगतभय, निर्भीक ।

विभीत (सं० पु०) १ विभीतक, बहेड़ा । (त्रि०) २ डरा हुआ ।

विभीतक (सं० पु०) विशेषेण भीत इव-स्वार्थे-कन् बहेड़ेका वृक्ष । संस्कृत पर्याय—अश्व, तृप, कर्प फल, भूतवास, कलिद्रुम, कल्पवृक्ष, संवत्तं, तैलफल, भूतावास, संवत्तक, वासन्त, कलिवृक्ष, बहेड़क, हार्दक, विपन्न, अनिलघ्न, कासघ्न ।

वैज्ञानिक नाम—Ferminalia belerica और अङ्ग-रेजी नाम—Belleric Myrobalan है । यह वृक्ष भारत-वर्गके प्रायः सर्वत्र समतल प्रान्तरोंमें और पहाड़ोंके पाददेशमें उत्पन्न होता है । पश्चिमकी ऊसर भूमिमें यह वृक्ष अधिक नहीं होता । लङ्का और मलका द्वीपोंमें भी इस जातिके वृक्ष पर्व्याप्त हैं । सिवा इसके मारगुरा, सिंहल, यवद्वीप और मलय द्वीपमें इसका दूसरी तरहका एक वृक्ष दिखाई देता है । इसके फलके तथा भारतके बहेड़ेमें केवल सामान्य भेद है ।

भारतके नाना स्थलोंमें विभीतक (बहेड़ा) विभिन्न नामोंसे परिचित है । हिन्दीमें—भैरा, बहेड़ा, बहेरा, मेरा, भैराह, सगोना, भला, सुला, बहुरा ; यङ्गनायामें—बहेड़ा, बहेरा, बहेदि, बहिरा, भैरा, बहुक, बेहेरा, बहुरा, बहोड़ा, बवड़ा ; कोल-बोलोमें—लिङ्गुङ्ग, लुपुङ्ग ; सन्ताल-बोलो-में—लोपङ्ग, उडिया-भाषामें—भाप, बहोड़ा, बहघा ;

असामी—हुलूच, बीरो; गारो—चिरोरी; लेप्चा—कानोम, मघमायामें—सचेङ्ग; भोल—वेहेड़ा; मध्यप्रदेश—बेहरा, बिहरा, भैरा, बहेड़ा, बेहरा, टोयाण्डो; गोण्ड—तहक, तकवञ्जोर, मुकप्रदेश—बहेड़ा, बुहेड़ा, बेहाडिया; पञ्जाब—बहिडा, बहेड़ा, बोरहा, बलेला, बयड़ा, वेहेड़ा; मारवाड़—बहेड़ा; हैदराबाद—भहेड़ा, भेरा; सिन्धु—बघड़ा; दक्षिणात्य—बघड़ा, बलदा, बलरा, बतरा, बैरदा, बुल्ला, भेरदा, बेहला; बम्बई प्रान्त—बहेड़ा, बहड़ा, बेहेड़ा, बेहड़ा, भेरदा, बेहेदो, बलरा, भैरा, भेरदा; बडुङ्ग, बेल्ल, हेल, गोतिङ्ग, गेल; महाराष्ट्र—भेरदा, बेहेड़ा, बहेरा, बेला, गोतिङ्ग, बेहारा, बेहारा, सगवान, बेड़ा, हेला, बेरदा, बेहेल बेहड़ा; गुजरात (गुजरात)—सान, बेहसा, बेहेड़ा बेहेड़ान; तामिल—तनी, थनी, कट्टपल्लुपन्, तानकाय, ताण्ड, तोण्डा, चेट्टपट्टुप, तमकी, तामिकै, तानिकाइया, कट्टु-पट्टुप, बलई-मट्टु, तनिकोई, कट्टु पट्टुपी; नेलगू—तनी, तण्डी, तोयाण्डी, भानद्रा, आना, आनी, तण्डी, तोण्ड कट्टु, उलपी, तान्द्राकाय, भानडुडी, आण्डी, चहद्रहा, बहवा, बहड़ा; कनाडो—शागित, तादे, तनिकारो, तारिकारो, भेरदा, बेहेला तरो; मलयालम्—अनी, तानी; ब्रह्मदेश—धित्सिन, टिसत्सिन, बनखा, फानखासो, फागांसो, फागाह, पनगन, रहोर; सिंहली—बल्लु, बुलुगाह; अरबी—धतिलुज, घेलेपलुज, बलिलाज, फारसो—बलेता, बेलायलेह, बलिलाह।

इसका वृक्ष धन्यभूमिमें आप ही आप उत्पन्न होता है। बाणियके लिये कितने ही लोग इसकी खेती भी करते हैं। इसके वृक्षोंकी साधारण आकृति बड़ी सुन्दर है। यह मूलमें थोड़ी दूर तक सीधा आ कर पीछे शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त होता है। देखनेसे मालूम होता है, मानो एक बड़ा छाता यहां छाया विस्तार करनेके लिये ही रखा गया है। त्रिपालिक शैल पर, पेशावरमें, सिन्धुनदके किनारेकी भूमिमें, क्रोपय्यनुर और बलियाके जङ्गलमें, लङ्काके दो हजार फीट ऊंचे शैल-स्तवकमें और ग्यालपाङ्गा, सुन्ननगर, गोरखपुर, धामतोला और मोरङ्ग शैलमालामें बहेड़ेके वृक्ष बहुतायतसे देखे जाते हैं। इसके पत्ते, फल, काष्ठ (लकड़ी) और निर्यास मनुष्यके लिये विशेष उपकारो है।

वृक्षका बहकल तरास देनेसे जो निर्यास निकलता है, वह गोंद (Gum Arabic)की तरह गुणविशिष्ट होता है। यह सहजमें ही पानीमें घुल जाता है और इसमें अम्लका संयोग कर देने पर यह प्रवृत्त हो उठता है। किन्तु इससे विशेष कोई गन्ध नहीं निकलती है। फार्माकोप्राफिका इण्डिकाके रचयिताका कहना है, कि चसोरेके गोंदकी तरह ही यह है। अनेक समयमें यह देशी गोंदकी तरह विकता है। कोलजातिके कुछ आदमी इसे खाते भी हैं। यह सम्पूर्णरूपसे नहीं गलता और इसमें डाइबेलाकृति Calcium Oxalateके दाने, Sphaerocrystals और विभिन्न दानेदार चूर्ण पाये जाते हैं।

हरीतकी (हरे)की तरह इसका स्वाद भी कपाय है। इसलिये अधिक परिमाणसे इसकी रपतनी यूरोपमें होती है। भारतमें भी चमड़ा साफ करने और रंग गाढा करनेके लिये इसका बहुत प्रचार दिखाई देता है। यह बहेड़ा साधारणतः दो प्रकारका होता है—१ गोलाकार, व्यास ॥ या ॥ इञ्च; २ अश्लोकृत बड़ा, डिग्वाकार और सुँह पर कुछ चिपटा है। फल बिलकुल गोल होता है, किन्तु सूखने पर इसको पीठ पर सिक्कड़ग पड़ जातो है। इसका बीज या गुठली पञ्चकोना होती है। इस गुठलीको फाड़नेसे जो गूदो निकलतो है, वह मोठी और तैलाक होती है। चमड़ेके सिया कपड़े रंगनेमें भी इसका खूब व्यवहार किया जाता है। हजारीबागमें लोग जिस प्रणालीसे बहेड़ेसे कपड़े रंगते हैं, नीचे उसका उल्लेख किया जाता है—

एक गज कपड़ेके लिये १ पाय बहेड़ा ला कर उसे फोड़ डाले, उससे गुठली आदि निकाल कर उस चूर्णको एक सेंर पानीमें मिलावे और उसमें १ तोला अन्दाज अनारकी छाल मिला कर एक रात तक इन्हें इसी तरह जलमें छोड़ देने पर दूसरे दिन उसको उपयु परि तीन बार अन्ध पर चढ़ा कर भौंट दे। ठण्डे होने पर मोटे कपड़ेसे छान ले। इसके बाद जो कपड़ा रंगना हो, उसको पहले जलमें फोच कर सुखा लेना चाहिये। कपड़ा जब अथनुखा हो जाये, तब उसे अलग एक पात्रमें एक तोला फिटकिरी मिले हुए जलमें डुबा

इसका तबला जलमें डुबा कर रखते हैं, एवं जानेके बाद पीछे इससे दरवाजा आदि तय्यार करते हैं। मध्यप्रदेशमें जब बीजशाल लकड़ीका अभाव रहता है, तब यहांके आदमी इसी लकड़ीसे हल और जुआडा तय्यार करते हैं। दक्षिण भारतमें इससे पेकिङ्ग वषस, चाय या काफोके वषस, वेड़ा (Catamaran) और मापपात तैयार होते हैं।

बहुत दिनोंसे आर्यसमाजमें बहेड़ेका प्रचलन है। वैदिक ऋषिगण इस लकड़ीका बना पाशा व्यवहार करते थे। मालूम होता है, कि इस लकड़ीका बना पाशा हाड़के बने पाशसे खेलमें सुवाल पड़ता था। ऋग्वेद-संहिताके १० मण्डलके ३४ सूत्रमें घूतकार और अक्षका वर्णन है—

“भवे पा मो वृहो मादयन्ति प्रवतेजा इत्ये वृत्तानाः।

सोमस्यैव शीघ्रवत्स्य भद्रो विभीदको जायविमैलमच्छान् ॥”
(शुक १०।३४।१)

‘वृहतो महतो विभीतकस्य फलत्वेन सम्बन्धिनः प्रतातेजा प्रथमे देशे जाता इरिण आरुगारे वधूतानाः प्रवत्तमानाः प्रायेपाः प्रवेपिणः कम्पनशीला वक्षशा मा मां मादयन्ति हर्षयन्ति किञ्च जायुर्विजं पपराजययोर्हर्ष-शोकाभ्यां कितवानां जागरणस्य कर्ता विभीदको विभी-तकविकारोऽशो मल्लं मोमच्छान् वाच्छदत् १ (वाथय)

इसके फलके रसमें कसीस या हीराकस मिला देनेसे लिफनेकी अच्छी रियाही तय्यार होती है। बीजका तेल केशमूलको दृढ़ करता तथा केशको पड़ता है। चीनी साफ करनेमें इसकी लकड़ीकी राख सावन्तवाड़ी जिलेके लोग व्यवहार करते हैं। इसके पत्तेके कापमें मलाई (Boswellia serrata) वृक्षका तबला पाद महोने मिजाकर रखनेसे वह इतना दृढ़ हो जाता है, कि वह शीघ्र जल या कीचड़में खराब नहीं होता। इस सबससे रैल बिछानेवाला ‘श्लोपर’ या पटरेका काम भी इससे लिया जाता है। इसके वृक्ष छत्तेकी तरह छायादार होनेके रास्तेकी दोनों बगलोंमें लगाये जाते हैं। उत्तर-भारतके साधारण हिन्दुओंका विश्वास है, कि यह वृक्ष भूतप्रेतिका आवास-स्थल है। इसीलिये वे दिनके समय भी इसके नीचे बैठनेका साहस नहीं करते। मध्य और दक्षिण भारतके लोगोंका विश्वास है, कि यह

वृक्ष दुर्भाग लड़ा कर देनेवाला है और जो आदमी घरमें इसकी लकड़ीको किवाड़ी या खिड़कियां बनवा कर लगायते हैं; उनके कुल खान्दानमें कोई चिराग बन्ना करनेवाला भी नहीं रह जाता।

कार्सिकसे पीप महोने तक इसका फल अच्छी तरह पक जाता है और बाजारमें विकने लगता है। मानभूम, हजारीबाग आदि पार्वत्य प्रदेशोंमें इसका मूल्य १) रुपये तथा चट्टाम अञ्चलमें ५) रुपये मन है। हरीतकीका मूल्य इसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। रासायनिक परीक्षा द्वारा इस फल और इसके बीजके पारमाणविक पदार्थ समष्टिकी जो सूची निकली है, वह साधारणकी जानकारीके लिये नीचे दी जाती है—

पदार्थ	फसलक	बीजकीय
जलीयांग	८००	११३८
मसम	४२८	४३८
पेट्रोलियम इथर एकद्रावृ	१२	२६८२
इथर	४१	६१
इलकोहलीय	६४२	६१
जलीय	३८५६	२५२६

उक्त फलत्वचमें वर्ण (Colouring matter), गोंद (Resin), गालिक एसिड और तेल मिलता है। इनके एकद्रावृष्टसे जो पेट्रोलियम इथर उत्पन्न होता है वह सहज रंग मिले हुए पीले तेलमें सहज ही अनुभूत होता है। पलकोहलीय एकद्रावृ हरिद्रावर्ण, भंगूर, धारक और उष्ण जलमें द्रव्य होता है। जलीय या Aqueous Extract और चर्मा परिरकार करनेकी शक्ति (tannin) परिलक्षित होती है। बीजकी गूदोंमें जो तेल मिलता है, उसमें प्रायः ३०४४ अंश रसयत् पदार्थ विद्यमान है। यह घिरने पर ऊपरमें जरा सभ्र रंगका तेल और तलेमें घोंकी तरह गाढ़ा सफेद पदार्थ पाया जाता है। यह साधारणतः औषधके रूपमें व्यवहृत होता है। बीजका तेल बादाम तेलकी तरह पतला है। उसमें फोका पीले रंगका जो पेट्रोलियम इथर एकद्रावृष्ट पाया जाता है, वह सहज ही नहीं सूखता या पलकोहलीयमें द्रव्य नहीं होता। किन्तु पलकोहलीय एकद्रावृष्ट उष्ण जलमें द्रव्य हो जाता है। उसमें अम्लकी प्रतिक्रिया विद्यमान रहती है। सोयुन-चीनी या क्षारका विन्दुमात्र निर्दर्शन या आस्ताद नहीं है।

गुण—फट्ट, तिक, कपाय, उष्ण, कफनाशक, आंखकी रोगनी बढ़ानेवाला, पलितप्र, विपाकमें मधुर। इसका मज्जन गुण—तृष्णा, सर्दी, कफ और घातनाशक, मधुर, मदकारक। इसके तेलका गुण—खादु, शीतल, केश-वर्द्धक, गुरु, पित्त और वायुनाशक। (राजनि०)

विभीतिक (सं० पु०) विभीतिक, बड़ेडा।

विभोपक (सं० त्रि०) भयानक, डरानेवाला।

विभीषण (सं० पु०) विभीषयतीति विभीषि (नन्दि ग्रहपचीति। पा ३।१।२३४) इति ल्यु। १ नल्लृण, नरसल-का पीषा। (त्रि०) २ भयानक, डरानेवाला। "इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणः" (श्रुक् ५।३।४६) 'विभीषणः भयजनकः'। (सायण)

(पु०) ३ लङ्कापति रावणका कनिष्ठ भ्राता और भगवान् रामचन्द्रका परम मित्र, सुमाली राक्षसका दीहित्र। विश्रवा मुनिके औरस और कैकसी राक्षसीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था।

एक दिन सुमालीने पुष्पकरथ पर विराजमान कुबेर-का देख कर घैसा ही दीहित्रप्राप्तिकी आशासे गुणवती कन्या कैकसीको विश्रवाके पास भेज दिया। ध्यानस्थ विश्रवाने कैकसीको समीप आते देख उसका मनोगत भाव समझ कर कहा, "इस दावण समयमें तुम आई हो, अतएव इस समय तुम्हारे गर्भसे दावण राक्षस ही जन्म लेंगे।" उस समय कैकसीने सातुमय प्रार्थना की, 'प्रभो! मैं ऐसे पुत्र नहीं चाहती। मेरे प्रति आप प्रसन्न हों।' इस पर ऋषिने सन्तुष्ट हो कर कहा, 'मेरी बात अन्यथा होनेवाली नहीं। जो हो, तुम्हारे गर्भसे जो अन्तिम पुत्र होगा वह मेरे आशीर्वादसे मेरे वंशानुरूप और परम धार्मिक होगा।' ऋषिके आशीर्वादके फलस्वरूप विभीषण ही अन्तिम पुत्र हुए।

विभीषणने भी रावण और कुम्भकर्णके साथ एक सहाय वर्ष तपस्या की थी। ब्रह्मा जब वर देनेके लिये गये तब विभीषणने उनसे प्रार्थना की, "विपद्में भी मेरी धर्ममें गति हो। नित्य ब्रह्मचिन्ता हृदयमें स्फुरित हो।" ब्रह्माने वर दिया,
भी जब अधर्ममें
अमरत्व लाभ
करोगे।"
हुए।

वरलाभके बाद रावणके साथ विभीषण भी लङ्का-पुरीमें आये। गन्धर्वाधिपति शीलूपकी कन्या सरमाके साथ उनका विवाह हुआ।

सीता हरण कर जब रावण लङ्कामें लौटा तब रावण-के इस आचरणसे धार्मिक विभीषणका प्राण क्षयित हुआ। सीता साधवी सीताकी परिचर्याका भार प्रिय पतनो सरमा पर उन्होंने दिया था। इसके बाद सीताकी खोजमें हनुमान् लङ्कामें उपस्थित हुए। हनुमान्के रावण-के प्रति निन्दावाद और रामचन्द्रकी बड़ाई सुन कर रावण-का बड़ा क्रोध आया। और तो क्या, उसने हनुमान्को मार डालनेकी आशा दे दी। इस समय विभीषणने ही नीतिबिन्दु दूतवधको गहित कार्य बता कर रावणको शांत किया। इसके बाद जब विभीषणने सुना कि भगवान् रामचन्द्र सैन्य ले कर आ रहे हैं, तब उन्होंने रावणसे सीताको पुनः रामचन्द्रके पास लौटा देनेके लिये कई सौ बार अनुरोध किया, किन्तु रावणने उनकी एक भी न सुनी। उल्टे विभीषणकी पुनः पुनः हितकथासे थिकल हो कर रावणने उनसे कहा था—'विभीषण! मेरा ऐश्वर्य तथा यश तुमसे देखा नहीं जाता। रे कुलकलङ्क! तुमको बार बार धिक्कार है।' इस तरह उसने तिरस्कार कर उनको अपने यहाँसे निकाल दिया।

विभीषण बहुत धीर, फिर भी परम धार्मिक थे। उन्होंने समझ लिया था कि रावण जिस तरह पाप कार्यमें लिप्त हो रहा है उससे उसकी वचनेकी आशा नहीं। उन्होंने इस तरह तिरस्कृत हो कर चार राक्षसोंके साथ राजधानी परित्याग की। धर्मरक्षाके लिये उन्होंने आत्मोप-सजनोंके प्रति जरा दृष्टिपात भी नहीं किया। इस समय भगवान् रामचन्द्र समुद्रके उस पार बानर सैन्यों के साथ उपस्थित थे। विभीषण अपने चारों अनु-चर राक्षसोंके साथ वहाँ आये जहाँ रामचन्द्रजी मौजूद थे। पहले सुप्रिय उनको शत्रु का दूत समझ कर मार डालने पर उद्यत हुए थे, किन्तु शरणगतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रने रोक दिया। फिर भी सुभाषने कहा था, 'विपद्के समय भाईको छोड़ जो विपक्षी पक्षका भाषण लेता है उसका विश्वास नहीं करना चाहिये।' रामचन्द्र-जीने विभीषणकी मिलरूपसे ग्रहण किया था। उनसे

रामचन्द्र रावणको बलाबलका हाल जाननेमें समर्थ हुए थे। इसके फलसे उनको भविष्यमें बड़ी सुविधा हुई थी।

इसके बाद रामचन्द्रने लङ्कामें आ कर पड़ाव डाला। विभीषण सदा उनके पार्श्वचर हो कर रहे। लङ्कामें महा समर उपस्थित होने पर विभीषण एक भग्वती, सेनापति और सन्धिबिग्रहोंका काम देखने लगे। जब लक्ष्मणको शक्ति लगी थी, उस समय विभीषणने ही सुपेण वैद्यका पता बतला औपदि कराई थी। इसके बाद मायासोताका दिवा इन्द्रजित्ने जब कपिसैन्यको मोहित किया था और रामचन्द्र सीताका मृत्यु-संवाद सुन कर बहुत कातर हो गये, उस समय भी विभीषणने इन्द्रजित्का मायाजाल बतला उनका भ्रम निवारण किया था। फिर विभीषणके ही साहाय्यसे गिड्ढिमला यशगारमें इन्द्रजित्को मार डालनेमें लक्ष्मण समर्थ हुए थे। किन्तु महावीर दशरथ रामचन्द्रके शराघातसे जब भूषित हुआ तब विभीषण भ्रातृशोकमें विभोर हो उठा। धार्मिकप्राण जरेष्ठ भाईका अघघात सहन न सके। कविगुरु वाल्मीकिने विभीषणके इस समयका विलाप ऐसा सुन्दर चित्रित किया है कि उसको पढ़ कर पापाणहृदय भी द्रव्योभूत हो जाता है। अन्तमें ज्येष्ठ भ्राताके उपयुक्त प्रतिकृत्य समाप्त कर रामचन्द्रको आज्ञासे विभीषण ही लङ्काके अधिपति हुए।

पद्मपुराणके मतसे—विभीषणकी माताका नाम निकषा^१ है। हालके बङ्गोय कृतिघासी रामायणमें विभीषणके तरणीसेन नामक एक पुत्रका नाम दिखाई देना है।

जैनोंके पद्मपुराणमें विभीषणका चरित्र भिन्नभावसे चित्रित है। उसके अनुसार विभीषण एक प्रसिद्ध जिन भक्त, परमधार्मिक और संसारविरक्त पुण्य माने गये हैं।

पहले ही कह आये हैं, कि विभीषण अमर हैं। महा-भारतसे जाना जाता है कि वे सुधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित थे। उत्कलके पुण्यनोरामके जनसाधारणका विश्वास है, कि आज भी विभीषण गंभीर निशामें जगन्नाथ महाप्रभुकी पूजा करनेके लिये आते हैं।

४ आज्ञानेय-स्तोत्रके रचयिता।

विभीषणा (सं० त्रि०) १ भवानक, उरावनी। (स्त्री०) २ एक सुहृत्तका नाम।

विभीषा (सं० स्त्री०) विभेतुमिच्छा, मा सन्, विभीष अ-टाप। भय पानेकी इच्छा।

विभीषिका (सं० स्त्री०) विभीषा स्वार्थे-कन्-स्त्रियां-टाप् अत इत्वञ्च। १ मयदर्शन, डर दिखाना। २ भयङ्कर घात, मयानक दृश्य।

विभु (सं० पु०) वि-भू (विदं प्रसंभ्याद् संज्ञायां। पा ३।२।१८०) इति डु। १ प्रभु, स्वामी। २ शङ्कर, महादेव। (भारत १३।१७।१६) ३ ब्रह्म। (मंदिनी) ४ भूतय, नौकर। (त्रिका) ५ विष्णु। (भारत १३।१४।१०७) ६ जीवात्मा, आत्मा। ७ ईश्वर। (शृक् ५।६।१) (त्रि०) ८ सर्वव्यापक, जो सर्वत्र वर्त्तमान हो। जीवकी जाग्रत आदि चारों अंशस्थाओंके चार विभु माने गये हैं। जाग्रतका विभु विश्व, स्वप्नका तेजस्, सुषुप्तिका प्राण और तुरीयका ब्रह्म कहा गया है। ९ सर्वत्र गगनशोल, जो सब जगह जा सकता हो। १० नित्य, सब कालमें रहनेवाला। ११ अर्द्ध, रात दिन। १२ अत्यन्त विस्तृत, बहुत बड़ा। १३ दृढ़, चिरस्थायी। १४ महान्, ऐश्वर्ययुक्त।

विभुक्रतु (सं० त्रि०) बलशाली, शत्रुको परास्त करने-वाला।

विभुल (सं० त्रि०) वि-भुज-क्त। ईपत् भन्, कुछ टूटा-हुआ।

विभुज (सं० त्रि०) १ विवाह। २ वक्र। मूलविभुज देखो।

विभुता (सं० स्त्री०) १ विभु होनेका भाव, सर्वव्यापकता। २ ऐश्वर्य, शक्ति। ३ प्रभुता, ईश्वरता। ४ अधिकांश।

विभुत्व (सं० स्त्री०) विभोभाव एव। विभुका भाव वा धर्म, विभुका कार्य।

विभुदत्त—सुतसंश्रय महाराज हस्तिनका सान्धिबिग्र। इनके पिताका नाम सूतदत्त था।

विभुप्रमित (सं० त्रि०) विभुके समान।

विभुमत् (सं० त्रि०) विभु-अस्त्वर्थे-मतुप्। विभुत्व-युक्त, महेश्वर्युक्त। (शृक् ६८।१।१६)

विभुवरी (सं० स्त्री०) विभ्वन्। (काठक १३।३) विभ्वन् देखो।

^१ भारतीकीय रामायणके बुद्धकापडमें भी विभीषण 'निकषा नन्दन्' रूपमें अभिहित किये गये हैं। (पु०का० ६२ स०)

गुण—कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, कफनाशक, आँखकी रोगशोथ बढ़ानेवाला, पलितघ्न, विपाकमें मधुर। इसका मञ्जुन गुण—तृष्णा, सर्दी, कफ और वातनाशक, मधुर, मद्धकारक। इसके तेलका गुण—खादु, शीतल, केशवर्द्धक, गुरु, पित्त और वायुनाशक। (राजनि०)

विभोतिक (सं० पु०) विभोतिक, बड़ेड़ा।

विभोपक (सं० लि०) भयानक, डरानेवाला।

विभोपण (सं० पु०) विभोपयतीति वि भीषि (नन्दि ग्रहिवृतीति। पा ३।१।१३४) इति ल्यु। १ नल्लुण, नरसल-का पीथा। (लि०) २ भयानक, डरानेवाला। "इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभोपणः" (श्रुक् ५।३।४६) 'विभोपणः भयजनकः'। (छायण)

(पु०) ३ लङ्कापति रावणका कनिष्ठ भ्राता और भगवान् रामचन्द्रका परम मित्र, सुमाली राक्षसका दौहित्र। विश्रवा मुनिके औरस और कैकसी राक्षसीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था।

एक दिन सुमालीने पुष्पकरथ पर विराजमान कुधिर-को देख कर वैसा ही दौड़िलप्रसिद्धी आशासे गुणवती कन्या कैकसीको विश्रवाके पास भेज दिया। ध्यानस्य विश्रवाने कैकसीको समीप आते देख उसका मनोगत भाव समझ कर कहा, "इस दावण समयमें तुम आई हो, अतएव इस समय तुम्हारे गर्भसे दारुण राक्षस ही जन्म लेंगे।" उस समय कैकसीने सातुमय प्रार्थना की, 'प्रभो! मैं ऐसे पुत्र नहीं चाहती। मेरे प्रति आप प्रसन्न हों।' इस पर ऋषिने सन्तुष्ट हो कर कहा, 'मेरी बात अन्यथा होनेवाली नहीं। जो हो, तुम्हारे गर्भसे जो अस्तिम पुत्र होगा वह मेरे आशीर्वादसे मेरे वंशानुरूप और परम धार्मिक होगा।' ऋषिके आशीर्वादके फलस्वरूप विभीषण ही अन्तिम पुत्र हुए।

विभोपणने भी रावण और कुम्भकर्णके साथ एक सहस्र वर्ष तपस्या की थी। ब्रह्मा जब धर देनेके लिये गये तब विभोपणने उनसे प्रार्थना की, "विपद्दुर्गमें भी मेरी धर्ममें मति हो। नित्य ब्रह्मचिन्ता हृदयमें स्फुरित हो।" ब्रह्माने वर दिया, "राक्षसयोनिमें जन्म लेने पर भी जब अधर्ममें तुम्हारी मति नहीं है तब मेरे घरसे तुम अमरत्व लाभ करोगे।" इस तरह ब्रह्माके घरसे विभोपण अमर हुए।

वरलाभके बाद रावणके साथ विभीषण भी लङ्का-पुरीमें आये। राघवर्वाधिपति शीलूपकी कन्या सरमाके साथ उनका विवाह हुआ।

सीता हरण कर जब रावण लङ्कामें लौटा तब रावणके इस आचरणसे धार्मिक विभोपणका प्राण व्यथित हुआ। सती साधवी सीताकी परिचर्याका भार प्रिय पत्नी सरमा पर उठाने दिया था। इसके बाद सीताकी खोजमें हनुमान् लङ्कामें उपस्थित हुए। हनुमान्के रावणके प्रति निम्दावाह और रामचन्द्रकी बड़ाई सुन कर रावणके बड़ा क्रोध आया। और तो क्या, उसने हनुमान्को मार डालनेकी आज्ञा दे दी। इस समय विभोपणने ही नीतिविरुद्ध दूतवधको गहिल कार्य बता कर रावणको शांत किया। इसके बाद जब विभोपणने सुना कि भगवान् रामचन्द्र सैन्य ले कर आ रहे हैं, तब उन्होंने रावणसे सीताको पुनः रामचन्द्रजोके पास लौटा देनेके लिये कई सौ वार अनुरोध किया, किन्तु रावणने उनकी एक भी न सुनी। उल्टे विभोपणकी पुनः पुनः हितकथासे थिकल हो कर रावणने उनसे कहा था—'विभोपण ! मेरा ऐश्वर्य तथा यश तुमसे देखा नहीं जाता। २ कलकलहू ! तुमको वार वार धिक्कार है।' इस तरह उसने तिरस्कार कर उनको अपने यहाँसे निकाल दिया।

विभोपण बहुत धीर, फिर भी परम धार्मिक थे। उन्होंने समझ लिया था कि रावण जिस तरह पाप कार्यमें लिप्त हो रहा है उससे उसकी बचनेकी आशा नहीं। उन्होंने इस तरह तिरस्कृत हो कर चार राक्षसोंके साथ राजधानी परित्याग की। धर्मरक्षाके लिये उन्होंने आत्मोप-स्वजनोके प्रति जरा दृष्टिपात भी नहीं किया। इस समय भगवान् रामचन्द्र समुद्रके उस पार वातर सैन्योंके साथ उपस्थित थे। विभोपण अपने चारों अनुचर राक्षसोंके साथ वहाँ आये जहाँ रामचन्द्रजी मीरुद्ध थे। पहले सुभोच उनको शूल का दूत समझ कर मार डालने पर उद्यत हुए थे, किन्तु शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रने रोक दिया। फिर भी सुभोचने कहा था, 'विपद्दुर्गके समय भाईको छोड़ जो विपक्षी पक्षका आश्रय लेता है उसका विश्वास नहीं करना चाहिये।' रामचन्द्र-जोने विभोपणको मितकरसे प्रहण किया था। उनसे

रामचन्द्र रावणके बलाबलका हाल जाननेमें समर्थ हुए थे। इसके फलसे उनको भविष्यमें बड़ी सुविधा हुई थी।

इसके बाद रामचन्द्रने लङ्कामें आ कर पड़ाव डाला। विभीषण सदा उनके पार्श्वचर हो कर रहे। लङ्कामें महा समर उपस्थित होने पर विभीषण एक भग्नो, सेनापति और सन्धिप्रियर्होका काम देखने लगे। जद लक्ष्मणको शक्ति लगी थी, उस समय विभीषणने ही सुपेण घेघका पता बतला औपधि कराई थी। इसके बाद मायासीताकां दिखान्द्रजित्तने जव कपिलसैन्यको मोहित किया था और रामचन्द्र सीताका मृत्पुत्र-संवाद सुन कर बहुत कातर हो गये, उस समय भी विभीषणने इन्द्रजित्त्का मायाजाल बतला उनका भ्रम निवारण किया था। फिर विभीषणके ही साहाय्यसे निकुन्मिला यज्ञागारमें इन्द्रजित्त्को मार खालनेमें लक्ष्मण समर्थ हुए थे। किन्तु महायोर दशानन रामचन्द्रके शराघातसे जव भूपतित हुआ तब विभीषण ज्ञातृशोकेमें विभोर हो उठा। धार्मिकप्राण जरेपु भाईका अघात सह्य न सके। कविगुण बालमोकिने विभीषणके इस समयका विलाप पेसा सुन्दर चित्रित किया है कि उसको पढ़ कर पापाणहृदय भी द्रवीभूत हो जाता है। अन्तमें ज्येष्ठ भ्राताके उपयुक्त प्रेतदृश्य समाप्त कर रामचन्द्रको आहासे विभीषण हो लङ्काके अधिपति हुए।

पद्मपुराणके मतसे—विभीषणकी माताका नाम निकषा^१ है। हालके बङ्गोय कृनिवासी रामायणमें विभीषणके तरणोसेन नामक एक पुत्रका नाम दिखाई देता है। जैनोंके पद्मपुराणमें विभीषणका चरित्र मिन्नभावसे चित्रित है। उसके अनुसार विभीषण एक प्रसिद्ध जिन भक्त, परमधार्मिक और संसारविरक्त पुरुष माने गये हैं। पहले ही कह आये हैं, कि विभीषण अमर हैं। महा-भारतसे जाना जाता है कि वे युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित थे। उदकलके पुत्रोत्तमके जनसाधारणका विश्वास है, कि आज भी विभीषण गंभीर निशामें जगन्नाथ महाप्रभुकी पूजा करनेके लिये आते हैं।

४ भास्त्रनेय-स्तोत्रके रचयिता।

विभीषणा (सं० त्रि०) १ भवानक, डरावनी ।(स्त्री०) २ एक मुद्गलका नाम।

विभीषा (सं० स्त्री०) विभेतुमिच्छा, गो सन्, विभीष-अ-टाप् । भय पानेकी इच्छा।

विभीषिका (सं० स्त्री०) विभीषा स्वार्थे-कन्-स्त्रियां-टाप् अत इत्वञ्च । १ भयप्रदर्शन, डर दिखाना। २ भयङ्कर बात, भयानक दूरय।

विभु (सं० पु०) वि-भू (वित्प्रसंभ्योऽङ्गणयां । पा ३।३।१८०) इति ड् । १ प्रभु, स्वामी । २ शङ्कर, महादेव । (भारत १३।१७।१६) ३ प्रहल । (मंदिनी) ४ भृत्य, नौकर । (भिका) ५ विश्णु । (भारत १३।१४।१०७) ६ जीवात्मा, आत्मा । ७ ईश्वर । (शृक् ४।६।१) (त्रि०) ८ सर्वव्यापक, जो सर्वत्र यत्मान हो । जीवकी ज्ञाप्रत वादि चारों अंशस्थाओंके चार विभु माने गये हैं । ज्ञाप्रतका विभु विश्व, स्वप्नका तेजस्, सुषुप्तिका प्राण और तुरोपका प्रहल कहा गया है । ६ सर्वत्र गमनशील, जो सब जगह जा सकता हो । १० नित्य, सब कालमें रहनेवाला । ११ अर्द्ध, रात दिन । १२ अत्यन्त विस्तृत, बहुत बड़ा । १३ दृढ़, चिरस्थायी । १४ महान्, ऐश्वर्ययुक्त।

विभुकतु (सं० त्रि०) बलशाली, शक्तुको परास्त करने-वाला।

विभुन (सं० त्रि०) वि-भुज-क । ईयत् भन्, कुछ टूटा-धुवा।

विभुज (सं० त्रि०) १ विबाहु । २ धक । भूतविभुज देखो।

विभुता (सं० स्त्री०) १ विभु होनेका भाव, सर्वव्यापकता । २ ऐश्वर्य, शक्ति । ३ प्रभुता, ईश्वरता । ४ अधिकार।

विभुत्व (सं० क्तो०) विभोभाव एव । विभुका भाव या धर्म, विभुका कार्य।

विभुदत्त—गुप्तवंशीय महाराज इतिनका सान्धिप्रिय । इनके पिताका नाम सूर्यदत्त था।

विभुप्रमित (सं० त्रि०) विभुके समान।

विभुमत् (सं० त्रि०) विभु-अस्त्यर्थे-मत्तुप् । विभुत्व-युक्त, महत्त्वयुक्त । (शृक् ६८।१।६)

विभुवरी (सं० स्त्री०) विभ्वन् । (काठक ३।३)

विभ्वन् देखो।

^१ बालमीकीय रामायणके बुदकायडने भी विभीषण 'निकषा नन्दन' रूपमें अभिहित किये गये हैं। (बु०का० ६२ सं०)

विभुवर्म्मन्—राना अशुवर्माके पुत्र । ये ६४६ ई०में विद्यमान थे ।

विभूतह्रमा (सं० खी०) बहुसांख्यक ।

विभूतद्युम्न (सं० लि०) प्रभूतयशस्वी वा प्रभूत अन्न-विशिष्ट । (श्रुक् १।१५।१२)

विभूतमनस् (सं० लि०) विमनस्, उदार ।

(निष्क१०।२६)

विभूतराति (सं० लि०) रा-दाने-रा-किन् रातिः दानं, विभूतां रातिं दानं यस्य । विभूतदान । (श्रुक् ५।१६।२)

विभूति (सं० खी०) वि-भू-क्तिन् । १ दिव्य या अलौकिक शक्ति । इसके अन्तर्गत अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्य और घशित्य ये आठ सिद्धियां हैं । पातञ्जलदर्शनके विभूतिपादमें योग द्वारा किस प्रकार कौन कौन ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसका विशेष विवरण लिखा है ।

२ शिवघृतभस्म, शिवके अङ्गमें चट्टानेकी राख । शैवीभागवतके ग्यारहवें स्कन्ध-१४वें अध्यायमें विभूति-धारणमाहात्म्य तथा १५वें अध्यायमें त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वध्वं-पुण्ड्रधारणविधि विस्तारसे वर्णित है ।

३ भगवान् विष्णुका यह ऐश्वर्य जो नित्य और स्थायी माना जाता है । ४ लक्ष्मी । (श्रुक् १।३०।५) ५ भविष्यहेतु । (श्रुक् ४।६।१) 'विभूतिवर्म्मन्तो विभवहेतुः' (छाषण) ६ विविध सृष्टि । (भागवत ४।२।४३) ७ सम्पत्, धन ।

"अभिभूय विभूतिवर्म्मन्नि मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम ।

(१७० ५।३६)

८ बहुतायत, बढ़ती । ९ विभव, ऐश्वर्य । १० एक दिव्यान्न जो विश्वामित्रने रामको दिया था ।

विभूतिचन्द्र (सं० पु०) बौद्धप्रन्धकारभेद । (तारनाथ)

विभूतिद्वादशी (सं० खी०) विभूतिवर्म्मिका द्वादशी, एक व्रतका नाम । यह व्रत करनेसे विभूति बढ़ती है, इसीलिये इसका नाम विभूतिद्वादशी पड़ा है । मत्स्य-पुराणमें इसकी विधि लिखी हुई है । 'येह विष्णुका व्रत है । यह सब व्रतोंमें अधिक पापनाशक है । व्रतका विधान इस तरह है—'कार्तिक, अग्रहायण, फाल्गुन, चैत्राक्ष या आषाढ़ मास शुक्ल दशमीको रातको संयमसे रहना पड़ेगा, दूसरे दिन एकादशीका व्रत कर विष्णुकी

पूजा करनी पड़ती है । इस तरहको पूजा करके दूसरे दिन अर्थात् द्वादशीके दिन प्रातःकाल स्नानादि प्रातः-क्रियाको समाप्त कर शुद्धमास्य और अनुलेपनों द्वारा विष्णुपूजा कर निम्नोक्त रूपसे पूजा करने चाहिये—

"विभूतिदाय नमः पादावशोकाय च-जानुनी ।

नमः शिवायेत्यरूच च विश्वमूर्त्तये नमः कटिम् ॥

कन्दर्पाय नमो मेढमादित्याय नमः करो ।

दागोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनी ॥

माधवायेति हृदयं फण्डमुत्कपित्वे नमः ।

श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति नाद ॥

पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति भ्रमणी च ख्यम्ने ।

स्नानान्ना शङ्खचक्राणि गदापरशुपाण्यः ।

सर्वास्त्राने शिरोब्रह्मन् नम इत्यभिभूजयेत् ॥"

(मत्स्यपु० ५३ अ०)

"पादौ विभूतिदाय नमः" जानुनी अशोकाय नमः

इत्यादि रूपसे पूजा करनी होती है । एकादशीकी रात को एक घड़ेमें उदपलके साथ यथासाध्य भगवान् विष्णुकी मत्स्यमूर्त्ति, तद्व्यार करा कर स्थापन करना चाहिये और एक सितवस्त्र द्वारा घेड़ित तिलयुक्त गुड़का पात रहना होगा । इसी रातको भगवान् विष्णुके नाम और इतिहास सुन कर जागरण करनेकी विधि है । प्रातःकालमें एक उवकुम्भके साथ देवमूर्त्तिब्रह्मणको निकोक्त प्रार्थनापाठ कर दान करना होता है ।

'यथा न मुच्यते विष्णोः यदा सर्वविभूतिभिः ।

तथा मामुद्देशेपदुःखसंसारतागरात् ॥"

इस तरह दान कर ब्राह्मण, आत्मोय कुटुम्बको भोजन करा कर स्वयं पारण करना । यह व्रत प्रतिमास करना होता है । पहले जो मास उल्लिखित है, उनमें किसी माससे आरम्भ कर एक वर्ष तक अर्थात् बारह मास तक की बारह द्वादशीके दिन इसी तरह नियमके साथ व्रता-नुष्ठान करना होगा । एक वर्षके बाद एक छोटे नमकके पर्वतके साथ एक शय्यादान देनी चाहिये । यथाशक्ति यह अन्नवस्त्र भी दान करे । यदि अतिदरिद्र व्यक्ति ऐसे दान करनेमें असमर्थ हो, तो वे दो वर्ष तक एकादशीके दिन उपवास, पूजा और द्वादशीके दिन पूजा पारण करे । ऐसा होने पर वे सब पातकोंसे मुक्त

कर विभूति लाभ करेंगे। जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और उसके पितृगणका उद्धार होता है। शतसहस्र वर्ष उनके शरीरमें कोई व्याधि न होगी और न शोक दारिद्र्य ही होगा। बहुत दिनों तक वह स्वर्गसुख भोग करेगा।

(शशिष्यपुराण)

विभूतिमत् (सं० त्रि०) १ ऐश्वर्यवान्, शक्तिसम्पन्न ।
२ संपत्तिशाली, धनवान् ।

विभूतिमाधव—एक प्राचीन कवि ।

विभूतिमान् (सं० त्रि०) विभूतिमत् देखो ।

विभूदावन (सं० त्रि०) ऐश्वर्यदाता ।

विभूमन् (सं० त्रि०) १ शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् । (पु०)

विशिष्टी भूमा कर्मवा० । २ श्रीकृष्ण ।

विभूमा—विभूमन देखो ।

विभूरसि (सं० पु०) अग्निमूर्त्तिभेदः । (महाभारत वनप०)

विभूवसु (सं० त्रि०) बहु ऐश्वर्य वा धनविशिष्ट ।

(श्रुक् ६।८६।१०)

विभूषण (सं० त्रि०) विशेषण भूषणव्ययनेति वि-भूष

णिच्-स्युट् । १ आभरण, अलङ्कार, जेवर । २ अलंकृत

करनेकी क्रिया, गहने आदिसे सजानेका काम । किसी

किसी शब्दके आगे लग कर यह शब्द श्रेष्ठतावाचक

हो जाता है। जैसे—रघुवंश-विभूषण । (पु०) मञ्जु

श्रीका एक नाम । (पिका० १।१।२२)

विभूषणवत् (सं० त्रि०) भूषणके सदृश ।

(मृच्छकटिक ६।१।२)

विभूषणा (सं० स्त्री०) १ भूषा, अलङ्कार । २ शोभा ।

विभूषा (सं० स्त्री०) वि भूष १-अ (गुणेच्च इङ्) । पा

३।१।१०३ ततश्चात् । १ शोभा । २ आभरण, गहना ।

३ गहनों आदिकी खूब सजावट ।

विभूषित (सं० त्रि०) वि भूष-क्त ; यद्वा विभूषा संजा-

ताम्प इति विभूषा इतच् । १ अलङ्कृत, गहनों आदिसे

सजाया हुआ । २ शोभित । ३ अच्छी वस्तु, गुण

आदिसे युक्त ।

विभूषित् (सं० त्रि०) वि भूष-णिनि । १ विभूषणकारी ।

२ अलंकृत, शोभित ।

विभूषणु (सं० त्रि०) १ विभूषित्युक्त । (पु०) २ गिव ।

विभूष्य (सं० त्रि०) १ विभूषित करने योग्य, सजाने

लायक । २ जिसे गहनों आदिसे सजाना हो ।

विभूत (सं० त्रि०) वि-भू-क्त । धृत, पकड़ा हुआ । २ पुष्ट,

मोटा ताजा ।

विभूत्र (सं० त्रि०) १ नाना स्थानोंमें विहृत (श्रुक् १।६१२)

२ अग्निहोत्रकर्ममें विहरणकारी ।

(श्रुक् १।७।३ भाष्यमें वाच्य)

विभूतवन (सं० पु०) वह जो धारण या भरणपोषण करे

(श्रुक् ६।६६।१६)

विभेनद्य (सं० त्रि०) भौतिके योग्य, डरने लायक ।

विभेत्तु (सं० पु०) १ विभेदकर्त्ता, विभेद करनेवाला ।

२ ध्वंसकर्त्ता, नाश करनेवाला ।

विभेद (सं० पु०) १ विभिन्नता, अन्तर, फरक । २ अप-

गम; वियोग । ३ विभाग, दो या कई खण्डोंमें करना ।

४ मिश्रण, मिलाना । ५ विकाश, एक रूपतासे अनेक

रूपताकी प्राप्ति । ६ विद्वान्, काटना, तोड़ना या छेदना ।

७ विदारण, फाड़ना । ८ छेद कर घुसना, धंसना ।

१० छेद, दरार ।

विभेदक (सं० त्रि०) १ भेदकारी, दो वस्तुओंमें भेद

प्रकट करनेवाला । २ घुसनेवाला, धंसनेवाला । ३ भेदन

करनेवाला, काटने या छेदनेवाला । (पु०) ४ विभीतक,

यहैड़ा ।

विभेदकारी (सं० त्रि०) १ छेदने या काटनेवाला । २ भेद

या फर्क करनेवाला ३ दो व्यक्तियोंमें विरोध करने-

वाला, फूट डालनेवाला ।

विभेदन (सं० पु०) १ मिन्न करण, भेद या फर्क डालना

या तोड़ना । ३ छेद कर घुसना, धंसना । ४ काट कर

या कई खण्डोंमें करना । ५ पृथक्करण, अलग अलग

करना । ६ मिश्रण, मिलाना ।

विभेदिन् (सं० त्रि०) १ विभेदकारी, भेद या फर्क डालने

वाला । २ विच्छेदकारी, जुदा करनेवाला । ३ पृथक्-

कारी; अलग अलग करनेवाला ।

विभेदिनी (सं० त्रि०) १ छेदन या भेदन करनेवाली ।

२ छेद कर घुसनेवाली । ३ भेद या फर्क करनेवाली ।

विभेदो (सं० त्रि०) विभेदित देखो ।

विभेद्य (सं० त्रि०) भेदन या छेदनयोग्य ।

विभो (सं० पु०) विभुका सम्बोधनरूप, हे विभु !

विभ्रंश (सं० पु०) १ विनाश, ध्वंस । २ पतन, अव-
नति । ३ पर्वतका भुज, पहाड़की चोटी परका चौरस
मैदान । ४ ऊंचा कगार ।

विभ्रंशित (सं० लि०) १ विभ्रष्ट, पतित । २ विच्छिन्न ।
३ विपथसे लाया हुआ । ४ विलुप्त ।

विभ्रंशितज्ञान (सं० लि०) २ ज्ञानशून्य, बेहोश । २ बुद्धि-
भ्रष्ट, जिसकी बुद्धि मारी गई हो ।

विभ्रंशिन (सं० लि०) १ पतनशील । २ जिसका अधः-
पतन हुआ हो । ३ निःक्षेप । ४ निश्चिन्त ।

विभ्रष्ट—पर्वतभेद । (कालिकापु० ७८।३६)

विभ्रत् (सं० लि०) विभ्र-शतृ-विभ्रत्तिं यः । धारण-
पोषणकर्त्ता ।

विभ्रम (सं० पु०) वि-भ्रम-घञ् । १ हावभेद । प्रियके
मिलने पर स्त्रियों जो तरह तरहके प्रेमालाप करतीं, तरह
तरहके शृङ्गारादि द्वारा अपने शरीरको सजाती उसीका
नाम हावभाव या विभ्रम है । २ स्त्रियोंका एक भाव इसमें
वे भ्रमसे उलटे पुलटे भूषण पहन लेती हैं, तथा रह रह
कर मनवालेकी तरह कभी क्रोध कभी हर्ष आदि भाव
प्रकट करती हैं । ३ प्रियका भागमन सांवाद पा कर अत्यन्त
हर्ष और अनुरागवशतः बड़ी उतावलीसे स्त्रियोंका जहां
तहां भूषणादिका बिन्यास । जैसे तिलक पहननेको जगह
अर्धात् ललाटमें अञ्जन, अञ्जन पहनेको जगह अलकक
(महावर) और अलकक पहननेकी जगह तिलक इत्यादि ।

४ शृङ्गाररसोद्गममें चित्तवृत्तिका अनवस्थान ।
५ स्त्रियोंका वीचनज विकारविशेष । ६ भ्रान्ति, भूल ।
७ शोभा । ८ संशय, संदेह । ९ भ्रमण, फेरा । १० अस्थि-
रता, घबराहट ।

विभ्रमा (सं० स्त्री०) वादक्षय, बुढ़ापा ।

विभ्रमिन् (सं० लि०) विभ्रमयुक्त ।

विभ्राज (सं० लि०) विभ्राट् देवो ।

विभ्राज (सं० पु०) राजभेद । (हरिवंश) वैभ्राज देवो ।

विभ्राट् (सं० लि०) विशेषेण भ्राजते इति वि भ्राज-क्तिप्
(अन्येभ्यो पि ङ्यते) । पा. ३।३।१७०) १ अलङ्कारादि
द्वारा दोषिशोभ । पर्याय—भ्राजिष्णु । २ शोभायमान ।
३ दोषिमान् । ४ उपद्रव, बखेड़ा । ५ आपत्ति, संकट ।

विभ्रातव्य (सं० स्त्री०) वैमात्रेय ।

विभ्रान्त (सं० स्त्री०) वि भ्रम-क । १ विभ्रमयुक्त, भ्रम-
में पड़ा हुआ । २ घूमता हुआ, चकर खाता हुआ ।

विभ्रान्ति (सं० स्त्री०) वि-भ्रम क्तिन् । १ विभ्रम, भ्रम,
संदेह । २ फेरा, चकर । ३ हडबड़ी, घबराहट ।

विभ्राष्टि (सं० स्त्री०) १ दोषि, प्रभा । २ शोभा ।

विभ्रु (सं० पु०) वज्र, शब्दका मामादिक पाठ ।

(भारत वनपर्व)

विभ्रुप (सं० पु०) विप्रमोह ।

(भागव० श्री० १।३।१२ भाष्य)

विभ्रवष्ट (सं० लि०) विभु ब्रह्मा कर्त्तृक जगत्के आधि-
पत्य पर स्थापित । (ऋक् ३।१६।२)

विभ्रवन् (सं० लि०) १ ध्यात, फैला हुआ । "प्रकेतो
अजनिष्ट विभ्रवा" (ऋक् १।११।१) "विभ्रवा विमुच्यन्तः,
विप्रसम्भो दुःसंज्ञायामिति भवतेदुःप्रत्ययः । सुर्गं सुलु-
गित्यादिना सोरकारादेशः, ओं सुपीति यणादेशस्य न
भू सुभ्रियोरिति प्रतिषेधे प्राप्ते छन्दस्युभयश्चेति यणादेशः
(सायण) (पु०) २ सुषुप्त्वाके पुत्र । (ऋक् १०।७६।१)

विम—सुमाताके निकटवर्त्ती सुमवाया द्वीपके अन्तर्गत एक
छोटा राज्य । यह उक्त द्वीपके पूर्वमें अवस्थित है । सपि
प्रणालीके मध्यस्थ कुछ द्वीप भी इस राज्यके अन्तर्भूत
हैं । राज्यके अन्तर्गत गुनुङ्ग-अपि द्वीपमें एक ज्वालामुखी
पहाड़ है । आज भी उस पहाड़से कभी कभी आग निकल
करती है । विम उपसागरमें प्रवेशपथसे कुछ ऊपर विम
नामक छोटा-नगर प्रतिष्ठित है । यहां ओलन्दाजोंका
एक किला है । अक्षः० ८° २६' दक्षिण तथा देशा० ११८°
३८' पू०के मध्य उपसागरका प्रवेशद्वार है । यहाँके
अधिवासियोंकी भाषा एकदम नयी है । किन्तु वे लोग
सिलेबिस द्वीपवासीकी लिखित वर्णमालामें लिखते पढ़ते
हैं । उनकी स्वजातिमें जो वर्णमाला प्रचलित थी, वह
अभी बिलकुल लोप हो गई है । स्वभाव और चाल ढाल-
में ये लोग सुसभ्य सिलेबिस द्वीपवासी-सरीखे हैं ।
किन्तु उन लोगोंकी तरह विमवासी उद्यमी और कर्मठ
नहीं हैं ।

इस राज्यके अधिवासीकी संख्या प्रायः २० हजार
है । यहां चन्दनकाष्ठ, मोम और घोड़े मिलते हैं । घोड़े

कदमें छोटे होने हैं सही, पर झील झीलमें बड़े अच्छे हैं। सुनुहु अपि द्वीपके घोड़े सबसे सुन्दर होते हैं। यहांके अधिवासी उन सब घोड़ोंको बेचनेके लिये यज्ञोपमें मेज देते हैं।

विमज्जान्त (सं० त्रि०) ज़रौर । (भारत बनवर्ष)

विमएडन (सं० पु०) १ गहने आदिमें सजाना । २ अल-
ङ्कार, भूषण । ३ शृङ्गार करना, संवारना ।

विमएडल (सं० त्रि०) विगतं मएडलं यस्मात् । मएडल-
रहित, परिवेशशून्य ।

विमएडत (सं० त्रि०) १ अलंकृत, सजा हुआ । २
सुशोभित । ३ युक्त, सहित ।

विमन (सं० त्रि०) वि-मन-क्त । १ विरुद्धमतिविशिष्ट,
विरुद्ध मतवाला । (पु०) २ गोमती-तीर पर अवस्थित
एक नगर । (रामायण ३।७३।१३) ३ विपरीत सिद्धान्त,
विरुद्ध मत ।

विमति (सं० स्त्री०) वि-मन-क्त । १ विरुद्धमति, भिन्ना
राय । २ अनिच्छा, असम्मति । ३ संग्रह, संदेह ।
(दिव्या० ३२५।१) ४ कुमति, दुर्बुद्धि ।

विमतिता (सं० स्त्री०) विमतेर्भायः विमति-तल टाप् ।
विमतिके भाव या कार्य ।

विमतिमन् (सं० पु०) विमतेर्भायः (वयं ददादिभ्यः भ्यश्च)
पा ४।१।१२३ इति श्मनिच् । विमतिके भाव, विपरीत
बुद्धिके कार्य ।

विमतिविकारण (सं० पु०) १ असम्मतिप्रकाश, अनिच्छा
दिक्कलाना । २ गर्स, समाधिके लिये जमीत कौड़ना ।
३ बौद्धिके मतसे समाधिभेद ।

विमतिसमुद्धान्तिन् (सं० पु०) बौद्धराजकुमारभेद ।

विमत्सर (सं० त्रि०) विगतो मत्सरो यस्य । १ मत्सर-
रहित, अहङ्कारशून्य । (पु०) २ अधिक अहङ्कार ।

विमथितुं (सं० त्रि०) वि-मथ तृच् । विशेषरूपसे
मथनेवाला ।

विमथित (सं० त्रि०) वि मन्थ-क्त । विशेषरूपसे मथित,
विनाशित ।

विमद (सं० त्रि०) विगतः मदो यस्य । १ मदरहित,
मात्सर्प्यदोन, जो मतवाला न हो । २ जिस हाथीको
मद न रहता हो ।

विमध्य (सं० स्त्री०) विकलमध्य, जिसका मध्य भाग
पूर्णावयव न हो ।

विमनस् (सं० त्रि०) विरुद्धं मनो यस्य । चिन्तादि
व्याकुलचित्त, धनमाना, उदास । पर्याय—दुर्गमना,
अन्तर्गम्यः, दुःखितमानस । (शब्दरत्ना०)

विमनस्क (सं० त्रि०) विनिगृहीतं मनो यस्य, बहु-
प्रोद्धो कप् समासान्तः । १ विमना, अनमना । २ उदास,
रंगीदा ।

विमनापमान (सं० त्रि०) विमनस्-कच्, विमनाय-
शानच् । दुःखित, विषण्ण ।

विमनिमन् (सं० पु०) विमनसो भावः विमनस् (वर्या-
ददादिभ्यः ल्यश्च । पा ४।१।१२३) इति श्मनिच्, मनस्
शब्दस्य टेलोपः । विमनाके भाव ।

विमन्यु (सं० त्रि०) विगतः मन्युः क्रोधो यस्य । क्रोध-
रहित, रागशून्य ।

विमन्युक (सं० त्रि०) विमन्यु स्वार्थे कन् । विमन्यु,
क्रोधरहित ।

विमय (सं० पु०) वि मी 'मरच्' इत्यच् । विनिमय,
घट्टा ।

विमर्द (सं० पु०) विमृष्टतेऽसौ इति वि-मृद घञ् ।
१ कालकृत घृक्ष । २ विमर्दन, घर्षण । ३ पेयण, पोसना ।
४ मन्थन, मथना । ५ सम्पर्क । ६ युद्ध । ७ कलह,
भगड़ा । ८ परिमल, खुशबू । ९ विनाश । १० सम्बन्ध ।
विमर्दक (सं० पु०) विमर्ह एव स्वार्थे कन् । १ चक्रमर्ह,
चक्रवर्द्ध । (त्रि०) २ विमर्हनकारी, मसल डालनेवाला ।
३ चूर चूर करनेवाला । ४ नष्टप्रष्ट करनेवाला ।

विमर्दन (सं० स्त्री०) वि मृद-न्त्युट् । १ कुङ्कुमादि
मर्दन, कुमकुम आदिका मलना । पर्याय—परिमल,
विमर्ह । (शब्दरत्ना०) २ विशेषरूपसे मर्दन, अच्छी
तरह मलना दलना । ३ कुचलना, पोस डालना । ४ ध्वस्त
करना, बरबाद करना । ५ मार डालना । ६ पीड़ित
करना । ७ स्फुरदन, स्फुरण । (त्रि०) विशेषेण मृद्धाना-
तीति । वि-मृद-न्त्यु । ८ मर्दनकारी, पाड़ा देनेवाला ।

विमर्दनीय (सं० त्रि०) मर्दन करने योग्य ।

विमर्दित (सं० त्रि०) वि-मृद-क्त । १ सूष्ट, उत्पन्न ।
२ पिष्ट, पोसा हुआ । ३ दलित, कुचला हुआ । ४ मथित,

मथा हुआ । ५ चूर्णित, चूर किया हुआ । ६ संघटित ।
७ अपमानित ।

विमर्दिन् (सं० लि०) वि-मृद् इनि । विमद् नकारक,
खूब मर्दन करनेवाला । २ कुचलनेवाला, पीसनेवाला ।

३ नष्ट करनेवाला । ४ बध करनेवाला, मारनेवाला ।

विमर्द् (सं० लि०) विमर्दिन् देखो ।

विमर्द्दत्थ (सं० पु०) विमर्द्दुत्तिष्ठतीति उद्-स्था क
वद् सुगन्धि जो कुमकुम आदि मलनेसे उत्पन्न हो ।

विमर्श (सं० पु०) वि-मृश-घञ् । १ वितर्क, विचार-
रत्ना । २ तथ्यानुसन्धान, किसी तथ्यका अनुसन्धान ।

३ विवेचना, आलोचना । ४ युक्ति द्वारा परीक्षा करना ।
५ असन्तोष । ६ अधीर्य, अधीरता ।

विमर्शन् (सं० क्ली०) वि-मृश-ल्युट् । १ परामर्श, वितर्क ।
२ आलोचना, समीक्षा । ३ ज्ञान, सम्भव ।

विमर्शिन् (सं० लि०) वि-मृश-इन् । विमर्शकारक ।

विमर्ष (सं० पु०) वि-मृष-घञ् । विचारणा, विचार ।
२ असहन । ३ असन्तोष । ४ आलोचना । ५ नाट्याङ्ग-
भेद, नाटकका एक अङ्ग । अपवाद, सम्फेद, व्यवसाय,
द्रव, धुति, शक्ति, प्रसङ्ग, खेद, प्रतिषेध, विरोधन, प्ररो-
चना, आदान, और छादन ये सब विमर्षके अङ्ग हैं ।

इनका लक्षण यथा—

द्वेषकधनको अपवाद, क्रोधसे भरो वातचीतको संफेद,
कार्य निर्देशके हेतुके उद्भवको व्यवसाय, शोक आदिके
वेगमें गुरुजनोंके आदर आदिका ध्यान न रखनेको द्रव,
भय प्रदर्शन द्वारा उद्देग उत्पन्न करनेको धुति, विरोधकी
शान्तिको शक्ति, अत्यन्त गुणकीर्त्तन या दोष-दर्शनकी
प्रसङ्ग, शरीर या मनकी धकावटको खेद, अभिलषित
विषयमें रुकावटको प्रतिषेध, कार्यार्ध्वसको विरोधन,
प्रस्तावनाके समय नष्ट, नटी, नाटक या नाटककार आदि-
को प्रशंसाको प्ररोचना, संहार विषयके प्रदर्शित होनेको
आदान तथा कार्योद्धारके लिये अपमान आदि सह लेनेको
छादन कहते हैं । (साहित्यद० ६।३७८-३८०)

साहित्यदर्पणमें इन सबके उदाहरण दिये गये हैं ।
बढ़ जानेके भयसे यहाँ पर नहीं लिखा गया ।

नाटकमें विमर्षका वर्णन करनेमें इन सब अङ्गोंका
वर्णन अवश्य करना होता है ।

विमल (सं० लि०) विगतो मलो यस्मात् । १ निर्मल,
मलरहित, स्वच्छ, साफ । पर्याय—वीध, प्रपत । (शब्द-
रत्ना०) २ चाद, सुन्दर । ३ शुभ्र, सफेद । ४ निकलङ्क,
विना ऐवका । (पु०) ५ तीर्थङ्करभेद, गत उत्सर्पिणीके
५वें और वर्त्तमान अवसर्पिणीके १३वें सहस्र या
तीर्थङ्कर । जैन देखो । (हेम) ६ सुदयुक्तके एक पुत्रका
नाम । (भागवत ६।१।५१) (कौ०) ७ पद्मकाष्ठ । ८ तीर्थ,
चादी । ९ सौधव लवण, सेंधा नामक । (वैद्यकि०)
१० उपधातुविशेष । पर्याय—निर्मल, स्वच्छ, अमल,
स्वच्छधातुक । गुण—कटु, तिक्त, त्वग्दीप और व्रण-
नाशक । (राजनि०)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इस धातुशोधनका विषय इस
प्रकार लिखा है,—ओलमें माक्षिक तथा विमलको रख
कर मूत, कांजो, तेल, गोदुग्ध, कदलीरस कुलथी, कलाय
का काढ़ा, कोदो—धानका काढ़ा इनके स्वेदसे क्षार, अम्ल-
वर्षा और लवणपञ्चक, तैल और घृतके साथ तीन बार
पुट देनेसे विमल शुद्ध होता है ।

जम्बीरी नीचके रसमें स्वेद दे कर मेघशृङ्गी और
कदली रसमें एक दिन पाक करनेसे विमल विशुद्ध होता
है । (रसेन्द्रवारस० विमलशुद्धि)

इस उपरस विमलकी विना शोधन किये काममें नहीं
लाना चाहिये । लानेसे नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न
होती है ।

विमल—१ एक तांत्रिक आचार्य । शक्तिरत्नाकरमें इनका
उल्लेख है । २ शङ्करके शिष्य पद्मगादक पिता । ३ राग-
चन्द्रोदय नामक सङ्गीत ग्रंथके रचयिता । ४ तीर्थङ्कर-
भेद । ५ सहाद्विवर्णित दो राजाओंके नाम । (वर्षा०
३।५।२६, ३१) ६ एक दण्डनायक । इन्होंने अर्बुद पहाड़के
ऊपर एक मन्दिर बनाया और प्राम वसाया था । खरहर-
गच्छके अन्तर्गत प्रसिद्ध जैनसूरि यद्धमानने उस मन्दिर-
में देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी ।

विमलक (सं० पु०) १ मूल्यवान् प्रस्तरभेद, एक प्रकार-
का नग या बहुमूल्य पत्थर । २ भोजके अन्तर्गत तीर्थ-
भेद ।

विमलकीर्त्ति (सं० पु०) एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य । इन्होंने
कई सूत्रोंकी रचना की है और उन्हींके नाममें प्रसिद्ध है ।

विमलगर्भ (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद । (स्वर्द्धर्मपुण्ड०)
२ बोधिसत्त्वभेद ।

विमलचन्द्र (सं० पु०) राजभेद । (तारनाथ)

विमलता (सं० स्त्री०) विमलत्व भावः तल्लताप् । १ पवि-
रता । २ निर्मलता, स्वच्छता, सफाई । ३ रमणीयता ।
४ मनोहरता ।

विमलत्व (सं० स्त्री०) पवित्रता, निर्मलता ।

विमलदत्ता (सं० स्त्री०) राजमहिषीभेद । (स्वर्द्धर्मपुण्ड०)

विमलदान (सं० स्त्री०) विमलं विशुद्धं दानं । वह दान
जो नित्य नैमित्तिक और काम्यके अतिरिक्त हो और
केवल ईश्वरकी प्रीतिके लिये किया जाय ।

महदपुराणमें लिखा है, कि नित्य, नैमित्तिक, काम्य
और विमल ये चार प्रकारके दान हैं। अनुपकारी ब्राह्मण-
को प्रति दिन किसी फलकी कामना न करके जो दान
दिया जाता है तथा पापशान्तिके लिये विद्वान्को जो
कुछ दान किया जाता है, उस महदनुष्ठानको नैमित्तिक
दान कहते हैं। पुत्र, जय, ऐश्वर्य और स्वर्गकी कामनासे
जो दान किया जाता है, उसीका नाम विमलदान है ।

विमलध्वनि (सं० पु०) छः चरणोंका एक छन्द । यह एक
दोहे और समान सवैधेसे मिल कर बनता है ।

विमलनाथपुराण—जैनपुराणभेद । इसमें जैन तीर्थङ्कर
विमलनाथका माहात्म्य वर्णित है ।

पुराण शब्दमें विशेष विवरण देखो ।

विमलनिर्मास (सं० स्त्री०) बौद्धशास्त्र कथित समाधि-
भेद ।

विमलनेत्र (सं० पु०) बुद्धभेद ।

विमलविण्डक (सं० पु०) नागभेद । (भारत आदिपर्व)

विमलपुर (सं० स्त्री०) नगरभेद ।

(कथासरित्सा० ५५।८६)

विमलप्रदीप (सं० पु०) बौद्धशास्त्रीक समाधिभेद ।

विमलप्रम (सं० पु०) १ बुद्धभेद । २ देवपुत्र शुद्धा-
वासकाधिक । ३ समाधिभेद ।

विमलप्रभा (सं० स्त्री०) राजमहिषीभेद ।

(राजतर० ३।३८५)

विमलप्रमासभ्रतेजोराजगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

विमलबुद्धि (सं० पु०) बौद्धभेद ।

विमलबोध (सं० पु०) दुर्बोधपद्मजिनी नाम्नी महा-
भारतके एक टीकाकार । इन्होंने रामायणकी एक टीका
रची थी । अर्जुन मिश्रने इनका उल्लेख किया है । उक्त
महाभारतकी टीकामें टीकाकारने वैशम्पायनटीका और
देवस्वामीका मत उद्धृत किया है ।

विमलब्रह्मचर्यो—स्वात्मानन्दस्तोत्रके प्रणेता ।

विमलमद्र (सं० पु०) बौद्धभेद । (तारनाथ)

विमलभास (सं० पु०) समाधिभेद ।

विमलभूषण—साधनपञ्चकटीकाके रचयिता ।

विमलमणि (सं० पु०) विमलः स्वच्छो मणिः । स्फाटिक ।

विमलमणिकर (सं० पु०) बौद्ध देवताभेद ।

(कालवक ३।५०)

विमलमित्र (सं० पु०) बौद्धपतिभेद । (तारनाथ)

विमलवाहन (सं० पु०) राजभेद । (शम्भुजयमा० ३।५)

विमलवेगथी (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।

विमलव्यूह (सं० स्त्री०) उद्यानभेद । (जज्ञितविव०)

विमलश्रीगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

विमलशैल (सं० पु०) पर्वतभेद, विमलाद्रि ।

विमलसरस्वती (सं० पु०) एक प्रसिद्ध वैयाकरण ।

इन्होंने रूपमाला नामक एक व्याकरण लिखा है ।

विमल सा—एक धनधान धणिक । इन्होंने १०३२ ई०में

धनु पर्वतके ऊपर अपने नाम पर एक मन्दिर बनवाया ।

वह मन्दिर आज भी विगाहमाका मन्दिर कहलाता है ।

मन्दिर शिल्पनैपुण्यसे परिपूर्ण है । इसकी बनावट प्रशंसा-

के योग्य है । मन्दिर देखनेसे ही जैनस्थापत्यशिल्पका

निदर्शन-सा मालूम होता है । मन्दिरमें जो सब स्तम्भ

लगे हुए हैं, वे तथा छतकी चित्रावली देखने लायक है ।

यहां पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान हैं । इस मन्दिरका

प्रतिष्ठाकार्य वर्द्धमानसूरिने सम्पन्न किया था ।

विमल देखो ।

विमलसूरि—जैनसूरिभेद । इन्होंने प्रश्नोत्तररत्नमाला

नामक एक ग्रन्थ बनाया है । वह ग्रन्थ आर्या छन्दमें लिखा

है । कहते हैं, कि इन्होंने पद्मचरित नामक एक दूसरा

ग्रन्थ भी बनाया था ।

विमलस्वभाव (सं० पु०) विमलः स्वभावः । १ निर्मल-

स्वभाव। २ पर्वतभेद। (त्रि०) ३ निर्मलस्वभाव-
विशिष्ट, शुद्ध, हृदयवाला।

विमलसेन—कान्यकुब्जपति घर्माका वंशधर। ये नायक
और दलपाङ्गला उपाधिसे भूषित थे।

विमला (सं० स्त्री०) विमल-टाप्। १ सतला, सातला,
कोची। २ भूमिभेद, एक प्रकारकी जमीन। ३ देवी-
भेद। कालिकापुराणमें लिखा है, कि विमलादेवी वासु-
देवकी नायिका है।

तन्त्रचूडामणिमें लिखा है, कि उत्कल देशमें भगवतो
का नामिदेश गिरा था, इसीसे यह स्थान विरजाक्षेत्र
कहलाता है। यहाँ देवीका नाम जगन्नाथ है।

देवी-भागवतके मतसे भी देवीका नाम विमला है।

“गयाया मङ्गला प्रोक्ता विमला पुत्रोत्तमे।”

(देवीभा० ७।३०।६५)

देवीपुराणमें विमला देवीका विषय इस प्रकार
लिखा है—

“यूथालय विमला कार्यां शुद्धहरेन्दुवर्चसा।

मुपदानवप्रचारी च क्रमयदल्लुकरा वरा ॥

नावासनसमारूढा श्वेतमालयाम्बरप्रिया।

दक्षिणोरोदनाहारा कपूरमदचर्चिता।

वितपङ्कजहोमेन राष्ट्रायुर्वर्षादिनी ॥” (देवीपु०)

विमलाकर (सं० पु०) राजभेद। (कथाधरित् ७१।६७)

विमलाप्रनेत्र (सं० पु०) बुद्धभेद।

विमलात्मक (सं० त्रि०) विमलः निर्मल आत्मा यस्य।

निर्मल, शुद्ध स्वभाववाला।

विमलात्मन् (सं० त्रि०) विमलः आत्मा स्वभावा यस्य।

१ निर्मल, शुद्ध हृदयवाला। (पु०) २ चन्द्रमा।

(रामायण० ३।३५।५२)

विमलात्मा (सं० त्रि०) विमलात्मन् देखो।

विमलादित्य (सं० पु०) सूर्य।

विमलादित्य—चालुक्यवंशीय एक राजा, दानार्णवके पुत्र।

इन्होंने सूर्यवंशीय राजराजकी कन्या और राजेन्द्रचोड़की
छोटी बहन कुण्डवा देवीकी ब्याहा था। इनका शासन-
काल ६३७ से ६४४ शक तक माना जाता है।

विमलाद्रि (सं० पु०) विमलः अद्रिः। शत्रुञ्जयपर्वत।

मालूम होता है, कि तारनाथने इसे विमलसम्भव और
विमलस्वभाव कह कर उल्लेख किया है।

विमलार्थक (सं० त्रि०) विमलः स्वच्छ।

विमलानन्दनाथ—सप्तशतिकावधिके रचयिता।

विमलानन्दयोगन्द्र—स्वच्छन्दपदतिके प्रणेता, सच्चिदा-
नन्दयोगीन्द्रके गुरु।

विमलाशोक (सं० स्त्री०) तीर्थयात्री वा संन्यासी सम्प्रदाय-
का एक भेद।

विमलीकरण (सं० पु०) १ विमल करनेकी क्रिया, शुद्ध
करनेका काम। २ मनमें विचार कर ज्योति मन्त्रसे तोनों
मलोंका नाश करना। (सर्वदर्शनसंग्रह)

विमलेशगिरि—महोदयके दक्षिणसे ले कर सहायद्रि प्रान्त
पर्यन्त अवस्थित एक पर्वत। यहाँका आमलको ग्राम एक
तीर्थ समझा जाता है। (देशावली)

विमलेश्वरतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद।

विमलेश्वरपुष्करिणी संगमनतीर्थ—तीर्थभेद।

विमलोग्य (सं० स्त्री०) तन्त्रग्रन्थभेद।

विमलोदका (सं० स्त्री०) नदीभेद। यह विमलोदा नामसे
भी प्रसिद्ध है।

विमस्तकित (सं० त्रि०) द्विअण्डित मस्तक, मस्तकहीन।

विगदत् (सं० त्रि०) घुमदत्, धडुत बड़ा।

विमहस् (सं० त्रि०) अतितेजस्वी, बहुत प्रतापी।

विमहो (सं० त्रि०) विशेष रूपसे महत्, बहुत बड़ा।

(ऋक् ८।६।४४)

विमांस (सं० स्त्री०) विरुद्ध मांस। अशुद्ध मांस,
अपवित्र या न खाने योग्य मांस, जैसे कुत्ते आदिका।

विमाता (सं० स्त्री०) अपनी माताके अतिरिक्त पिताकी
दूसरी विवाहिता स्त्री, साँतेला माँ।

विमातृ (सं० स्त्री०) विमाता देखो।

विमातृज (सं० पु०) विमातृजायते इति विमातृ-जन-इ।
मातृसपत्नीपुत्र, साँतेला भाई।

विमाघ (सं० पु०) १ विशेष प्रकारसे मधन, अच्छो तरह
मधना। २ दलन या दमन करना।

विमाधिन् (सं० त्रि०) भूमि पर निक्षिप्त वा मर्दिन।

विमात (सं० पु० स्त्री०) विगत माननुपमा यस्य। १ शिव-
रथ, वाकाशमार्गसे गमनकरनेवाला रथ जो देवताओं

मादिके पास होना है। वायुयान, उड़नखटो-का। विमानपोत देखो। संस्कृत पर्याय—ध्योमयान। (समर)

“युवनाञ्जोकन प्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूये।

विज्ञोमूने विमानानां तदावातमयात् पथि ॥”

(कृ. मास० २।४५)

२ इन्द्रके एक रथका नाम। ३ सार्वभौमगृह, सात मञ्जिलका घर।

“वर्षरत्नसमाकीर्णा विमानगृहशोभितान् ॥”

(रामायण १।५।१६)

“विमानोऽस्त्री देवपाने वसभूमे च सधनि।

(रामायण १।२५।१६ टीकापूत. निपयद्)

४ घोटक, घोडा। ५ यानमाल, रथ, गाड़ी। ६ परिच्छेदक। “सोमापूया रजसा विमान” (शुक्. २।४।०३) “विमानं परिच्छेदकं सर्वमानमित्यर्थः” (सायण) ७ साधन, यज्ञादि कर्मसाधन।

“विमानमग्निर्व्युनश्च वधिताम्।” (शुक्. ३।३।४)

“विमानं विमीयतेऽनेन फलमिति विमानं यज्ञादि कर्मसाधनं” (सायण) विगतः मानो यस्य। ८ अवहगत। (भागवत ५।१३.८०) ९ असम्मान। १० परिमाण। ११ मरे हुए गृह मनुष्यको अरथी जो सज्जधजके साथ निकाली जाती है।

१२ वास्तुशास्त्रवर्णित देवायतनभेद। जिन सब मन्दिरों के शिखर पर पीरामीडकी तरह चूड़ा रहती है, प्राचीन वास्तुशास्त्रमें उसीको विमान कहा है। मानसार नामक प्राचीन वास्तुशास्त्रके १८वेंसे २८वें अध्यायमें तथा काश्यपीय वास्तुशास्त्रमें विमान बनानेकी प्रणाली सविस्तार लिखी है। मानसारके मतसे विमान एकसे बारह मंजिलका तथा काश्यपके मतसे एकसे १६ मंजिलका तथा गोल, चौपहला और अठपहलाको द्वाविड़ कहते हैं। ये सब विमान फिर शुद्ध, मिश्र और सङ्कीर्ण, इन तीन भागोंमें विभक्त हैं। जो केवल एक प्रकारके मसाले अर्थात् पत्थर वा ईंट किसी एकसे बनाया जाता है उसे शुद्ध कहते हैं। यही विमान श्रेष्ठ माना गया है। जो विमान दो प्रकारके मसालों अर्थात् ईंट और पत्थर अथवा पत्थर और धातुसे बनाया जाता है उसे मिश्र तथा जो तीन वा तीनसे अधिक उपादानोंसे अर्थात् लकड़ी,

ईंट आदि धातुओंसे बनाया जाता है उसे सङ्कीर्ण कहते हैं। इसके सिवा स्थानक, आसन और शयन तीन प्रकारकी विशेषता है। विमानकी ऊंचाईके अनुसार स्थानक, विस्तारके अनुसार आसन और लम्बके अनुसार शयन कहा जाता है। इन तीन प्रकारके विमानोंमेंसे स्थानक-विमान पर दण्डायमान देवमूर्ति, आसन-विमान पर उपविष्ट देवमूर्ति और शयन-विमान पर शायित देवमूर्ति प्रतिष्ठित करनी होगी।

विमानके आयतनके अनुसार फिर शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत और सर्वकाम ये पांच प्रकारके भेद दिखाई देते हैं।

साधारणतः विमानमें गर्भगृह, अन्तराल और अर्द्ध-मण्डप इन तीन अंशोंसे समस्त आयतन प्राचीर समेत साढ़े चार या छः अंशोंमें विभाग करना होता है। इनमेंसे गर्भगृह दो, ढाई वा तीन भाग, अन्तराल डेढ़ या दो भाग तथा अर्द्धमण्डप एक वा डेढ़ भाग होगा। बड़े विमानके सामने ३ वा ४ मण्डप होते हैं। उनके नाम हैं, अर्द्धमण्डप, महामण्डप, स्थापनमण्डप, उत्तरीमण्डप।

विमानके स्तम्भोंकी ऊंचाई ८ वा १० समान भागोंमें विभक्त करनी होगी। इनमेंसे ६, ८ वा ७ स्तम्भ द्वार-द्वेष पर देने होते हैं। उनकी चौड़ाई ऊंचाईसे आधी होगी।

विमानक (सं० पु०) विमान-स्वार्थे-कन्। विमान देखो। विमानता (सं० स्त्री०) विमानस्य भावः तल-टाप्। विमानका माप या धर्म, अपमान। विमानतय (सं० स्त्री०) विमानता देखो। विमानन (सं० स्त्री०) विमान-व्युट्। अपमान, तिरस्कार। विमानना (सं० स्त्री०) विमानन-टाप्। अपमान, तिरस्कार। विमानपाल (सं० पु०) अन्तरीक्षके पालनकर्ता देववृन्द। विमानपुर—प्राचीन नगरभेद। विमानपोत (सं० स्त्री०) आकाशमार्गसे गमन करनेवाला यान, हवाई जहाज।

जगदीश्वरने मानव जातिको ही सर्वश्रेष्ठ जीव बना कर इस जगत्में भेजा है। जिस वजहसे आज मानव

पृथिवीके अन्त्याय समी जीवीमें श्रेष्ठ हैं। उसका मूल कारण है उनकी बुद्धिमत्ता। इसी बुद्धिमत्ताके बल आज वे अप्रतिहतमायमें पृथिवीके ऊपर आधिपत्यलाभ करनेमें समर्थ हुए हैं। इसी बुद्धिमत्ताके बल पर विज्ञानशास्त्रकी सृष्टि करके उन्होंने प्रकृतिके विषय बुद्धघोषणा कर दी है। और इसी विज्ञानके चरम उत्कर्षसे विमानपोत वा आकाशयानकी सृष्टि हुई है। जब मानवजातिने देखा, कि पक्षीगण स्वच्छन्दतापूर्वक आकाशमें विचरण करते हैं, तब हम लोग—इस जगत्के श्रेष्ठ जीव, क्यों नहीं कर सकेंगे? तभीसे वे इस रहस्यके उद्घाटनमें प्रयत्न करने लगे। आखिर उन लोगोंने सफलता प्राप्त कर जगत्को दिखला दिया, कि मानवजातिके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है।

चरमान सभ्यताके युगमें विमानपोतकी सृष्टि और उसका क्रमविकाश किस प्रकार हुआ, नीचे उसी पर आलोचना की गई है।

सबसे पहले डैने तैयार करके उसीके द्वारा आकाशमें उड़ना अच्छा समझा गया। सुना जाता है, कि इसी उपायसे एक अंगरेज साधुने ११वीं सदीके मध्यभागमें स्पेनदेशके एक नगरसे प्रायः एक मीलका रास्ता तय किया था। इसके बाद १६वीं सदीके शुरुमें एक इटालियन ज्योतिषी स्काटलैण्डके राजा चतुर्थ जैम्सके विशेष अनुरोध पर छालि प्रासादसे फ्रान्सकी ओर शून्यमार्गसे उड़ें। किन्तु दुर्भाग्यवशतः कुछ समय उड़नेके बाद ही वे हठात् जमीन पर गिर पड़े जिससे उनकी टांगें टूट गईं। ठीक इसी समय ल्युनाहॉर्दा भिञ्जिने इस विषय पर घबेरे गवेषणा की। पीछे आलर्ड (Allard) और बेसनिये (Besnier) नामक दो फ्रांसियोंने यथाक्रम १६६० और १६७८ ई०में कुछ दूर उड़ कर सफलता प्राप्त की। इसके बाद भी बहुतोंने चेष्टा की, पर इस प्रकार पक्षसंयुक्त हो कर उड़ना विपज्जनक समझा इस ओरसे ध्यान बिलकुल खींच लिया। अब उन लोगोंको विज्ञान, दृष्टि दूसरी ओर दौड़े पड़े। उन लोगोंने सोचा, कि अब एक ऐसा यन्त्र बनाया जाये, जो वायुसे हलका हो और जिस पर चढ़ कर स्वच्छन्दतापूर्वक गगन विहार किया जाये। बहुत चेष्टा और गवेषणाके बाद आखिर एक

वैसा ही यन्त्रका आविष्कार किया गया। इस नये यन्त्रका नाम हुआ 'बैलून'। यह रबर या कैम्बिसका बनाया हुआ एक बड़ गोलाकार बाल जैसा यन्त्र है। इसके मध्य उदजन (Hydrogen) भरनेसे यह वायुकी अपेक्षा कहीं हलका हो जाता है तथा उसमें बैठ कर मनुष्य आसानीसे आकाश-स्रमण कर सकते हैं। फ्रान्स देशके Joseph, Michel Montgolfier और Jaques-Etienne Montgolfier नामक दो भाई इसके आविष्कर्ता माने जाते हैं। बैलून देखो।

इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक गगन पर्यटनमें मनुष्य ही सभी देशोंके वैज्ञानिकोंका मन इधर आकृष्ट हुआ। उन्हींके अटूट परिश्रम और असाधारण अध्यवसायसे इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो अन्तमें जेपेलिन नामक एक घृहत् विमानपोतकी सृष्टि हुई।

१८७७से १९०० ई०के मध्य जर्मन सैन्य उदालके काउण्ट फार्दिनाण्डभान जेपेलिनने एक बड़े विमानपोतका निर्माण किया। इसमें पांच आदमीके बैठने लायक स्थान था और उसका समूचा भाग पर्यवेष्टिमिनियम धातुका बना हुआ था। १९०६ से १९२१ ई०के मध्य विमानपोतके सभ्यत्वमें तरह तरहकी कल्पनाएँ चलती रहीं। उसके फलसे इस समय विभिन्न आकारोंके और शक्तिविशेष विमानपोतोंकी सृष्टि हुई। उनमेंसे वे परोप्लेन (Acroplane) और समुद्रपोत (Seaplane) का नाम उल्लेखनीय है। विस्तृत विवरण हवाई जहाज पत्र में देखो।

आजकल संसारके सभी सभ्य देशोंमें विशेषतः इङ्ग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और अमेरिका आदि देशोंमें दिनों दिन विमानपोतका बहुल प्रचारा देखा जाता है। इसके बनाने और चलानेके लिये एक राज्यमें करोड़ों रुपये खर्चा हो रहे हैं। इस पोतके उद्भवमें बहुतोंका विश्वास है, कि यह अभी पाश्चात्य विप्रेतताकी वैज्ञानिक उन्नतिका निदर्शन है। बहुतेरे बीस वर्ष पहले परोप्लेन, जेपेलिन आदि हवाई जहाजोंकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।

प्राचीन भारतमें विमानपोतका परिचय।

हम लोगोंके रामायण और महाभारतमें विमानपोतका कई जगह उल्लेख आया है। कुछ दिन पहले बहुतेरे लोग

इन हवाई जहाजोंकी कथा कविकल्पना-सी समझते थे। किन्तु, वर्तमान पाश्चात्य-विज्ञानकी चरम उन्नति आकाशयानको देख कर हम लोग उन पौराणिक कथाओं को कविकल्पना कह कर उड़ा नहीं सकते।

गत महायुद्धमें जेपेलिन और एरोप्लेनने जैसा कमाल किया, वह पाठकोंसे छिपा नहीं है। अभी जनसाधारणको विश्वास हो गया है, कि विमानपोतकी सहायतासे एक महादेशसे दूसरे महादेशमें जाना कोई बड़ी बात नहीं है। हमारे इस भारतवर्षमें कई हजार वर्ष पहले आर्य-समाजमें विमानपोत प्रचलित था। उसकी सहायतासे एक देशसे दूसरे देशमें आसानीसे और इच्छानुसार जहां तहां जा सकते थे। अभी जिस प्रकार विमानपोत जनसाधारणका निजल नहीं है, गवनेमेंष्टके खास विभागके अधीन है, पहले भारतवर्षमें भी उसी प्रकार यह जनसाधारणको सम्पत्ति नहीं, व्यक्तिशेषका निजल वा देवस्य सम्भवा जाता था।

। पुष्पकरय ।

रामायण, महाभारत और पुराणोंसे हमें मालूम होता है, कि देवगण विमान पर चढ़ कर भ्रमण किया करते थे। रामायणमें लिखा है, कि चतुस्रुंख ध्रुवामे यक्षराज कुचेर पर प्रसन्न हो उन्हें पुष्पकरय दे दिया था। अमरोंकी तरह यक्षराज उस पुष्पकरय पर चढ़ कर जहां इच्छा होती था जाते थे। (रामायण उत्तरकाण्ड, ३ सर्ग) कुचेरको परास्त कर लङ्काधिपति रावणने वह पुष्पकरय ले लिया था। उभ पुष्पकरयके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है --

“निर्जित्य राजतेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमनसः ।

पुष्पकं तस्य अग्राह विमानं जपतन्त्रयम् ॥

काञ्चनस्तम्भसंनोतं वैदुष्यं भाषितोरणम् ।

मुक्तावाप्तप्रतिचक्षणं सर्वकामफलप्रदम् ॥

मनोजवकामगमं कामरूपं विद्वक्त्रम् ।

मणिकण्डनगोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ॥

दोषोपवाद्भवमङ्गल्यं सदा दक्षिणःसुखम् ॥

बह्मरचम्यं भक्तिचित्रं क्लृप्या परिनिर्मितम् ॥

निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरममुक्तमम् ।

न इ शीतं न चोग्ध्यच्च सर्वैश्च सुखमुत्तमम् ॥

) रामायण्य ७।१५।२५-३२)

वर्तमान हवाई जहाज या एरोप्लेन घंटोंमें १०० या १५० मील तक जा सकता है। किन्तु उस पुष्पकरयकी गति इससे कहीं बढ़ कर थी। उत्तरकाण्डके ८३वें सर्गसे उसका प्रमाण मिलता है। श्रीरामचन्द्र लङ्कासे लौटते समय अगस्त्याश्रम अर्थात् दक्षिणात्यसे आद्य दिनमें पुष्पकरयसे अयोध्या आये थे।

बहुत दूरसे जिस प्रकार एरोप्लेनके आने जानेका शब्द लोगोंकी सुनाई देता है, पुष्पकरय भी उसी प्रकार घोर शब्द करता हुआ बड़ी तेजीसे शून्यमार्गमें उड़ता था

विमान ।

पुष्पकरयके अतिरिक्त विमानकी बात पहले ही लिखी जा चुकी है। संस्कृतकोषोंमें विमानका अर्थ 'देवयान' लिखा है। किन्तु पुराणसे हमें मालूम होता है, कि यक्ष और गन्धर्व भी विमान पर चढ़ पुरभ्रमण किया करते थे। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि गन्धर्वरमणियां विभिन्न अलङ्कारों और वस्त्रभूषणोंसे विभूषित हो विमान पर चढ़ दक्षवश देखने गई थीं। (श्रीमद्भागवत ३।३।६)

भारतीय आर्यसमाजमें चेदिराज्यके प्रतिष्ठाता महाराज चमुने ही सबसे पहले आकाशगामी स्फटिकविमानका व्यवहार किया था। महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है, कि पुष्यवंशीय वसुराजने इन्द्रके उपदेशसे चेदिराज्य ग्रहण किया था। पहले उनकी कठोर तपस्या देख कर देवगण भी भयभीत हो गये थे। इन्द्रने उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये स्फटिकविमान और वैजयन्ती माला दी थी। चेदिपति वसु स्फटिकविमान पर चढ़ कर आकाशमें घूमा करते थे, इस कारण वे 'उपरिचर वसु' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

वसुराजके बाद भी महाभारतमें शाक्यराजाके वैदायसयानका उल्लेख है। विश्वकर्माय शिल्पसंहितामें लिखा है, कि शाक्यराज मर्यादायामें दुर्लभ कामगामी यान प्राप्त कर नृत्पिण्यंशके साथ और साधनेके लिये द्वारका गये थे। वह यान इच्छानुसार भूमि, आकाश, गिरिच्छिद्र वा जलके बीच हो कर गया था।

विश्वकर्मारचित उक्त शिल्पशास्त्रमें पुष्पक यानेका भी प्रसङ्ग है। विश्वकर्माने दीतिशाली यह पुष्पक यान

वाष्पके योगसे बनाया था। वह अविच्छेदगतियुक्त, वायुवत् कामगामी और नाना उपकरणयुक्त था।

केवल पौराणिक कथामें ही नहीं, भारतके ऐतिहासिक युगमें भी हम लोग आकाशगामी विमानका प्रसङ्ग पाते हैं। बोधिसत्ववादानकल्पलतामें लिखा है, कि पुराकालमें ध्रावस्तो नगरीके जेतवनविहारमें भगवान् बुद्ध रहते थे। उनको अनुमतिसे अनापविण्डकी कन्या सुमगधाका विवाह पीण्डवर्द्धनवासो सार्धनाथके पुत्र वृषमदत्तसे हुआ था। एक दिन सास और पतोहमें किसी कारण भगङ्गा हुआ। सुमगधाने अति कातर और भक्तिभावसे बुद्धदेवका आह्वान किया। अन्तर्यामी भगवान् उसके आह्वानसे विचलित हो गये और आनन्दको बुला कर कहा, 'कल सवेरे मुझे पीण्डवर्द्धन नगर जाना है। सुमगधाने मेरी और सङ्घकी पूजा करनेके उद्ये प्रार्थना की है। पीण्डवर्द्धन पहासे छः सौ योजनसे भी दूर है, एक ही दिनमें वहां जाना होगा। जो सब प्रभावशाली मिश्र, आकाशमार्गसे जानेमें सक्षम हैं उन्हींको निमन्त्रणपत्र देना।' प्रातःकाल होने पर मिश्रगण देवताओंका रूप धारण कर विमान पर चढ़ आकाशमार्गसे पीण्डवर्द्धनमें आये। विमानविहारी उज्ज्वलमूर्त्ति मिश्रुओंको देख पीण्डवासो विस्मित हो गये थे।

जैनोंकी शेष श्रुतिकेवली भद्रवाहुका चरित पढ़नेसे मालूम होता है, कि महादुर्मिहसे जिस समय समस्त आर्यावर्त्त प्रप्राहित हो गया था उस समय मौर्यराज चन्द्रगुप्तको ले कर भद्रवाहुने विमान द्वारा दक्षिणकी ओर यात्रा की थी।

हिन्दू, जैन और बौद्ध इन तीनों प्रधान सम्प्रदायके प्रर्थोंमें विमानपोत या आकाशयानका विवरण आया है। विमान पर चढ़ कर आरौहो बहुदूरवर्ती स्थानोंको देख सकते थे, रामायण और महाभारतमें उसका भी उल्लेख है। जब राम-लक्ष्मण नागपाशसे आवद्ध हुए, तब सीताको पुष्पक पर चढ़ा कर आकाशमार्गसे सूपतित रामलक्ष्मणको दिखाया गया था। जब रामचन्द्र लङ्कासे पुष्पक द्वारा अयोध्या लौटे, तब वे पुष्पक परसे सीता देवीको अनेक स्थान दिखलाते हुए आये थे। जब प्रश्न

होता है, कि इतनी ऊँचाईसे विमान पर चढ़ भूलस्य नाना स्थानोंका दर्शन किस प्रकार सम्भव था? चर्मचक्षु द्वारा उतनी दूरसे देखना विलकुल असम्भव है। आज कल जिस प्रकार टेलीफोनोपकी सहायतासे सुन्दर आकाशमण्डलके नाना स्थान दिखाई देते हैं, पूर्वकालमें विमानयात्रियोंके साथ उसी प्रकारका कोई दूरदर्शन-यन्त्र रहता था।

भारतीय आर्यसमाजमें चेदिराज वसु ही सबसे पहले आकाशयानका व्यवहार करते थे। हम लोगोंका विश्वास है, कि यत्मानकालमें जिस प्रकार आचार्य जगदीशचन्द्र वसु महाशयने बहुतों आश्चर्यकार द्वारा वैज्ञानिक जगत्को विमुग्ध कर दिया है, उनके पूर्ववर्त्तों चेदिराज वसु भी उसी प्रकार कठोर तपस्या या असाधारण अध्यवसायके बलसे तात्कालिक मानव जगत्के असाध्य और अनधिगम्य स्फटिकविमानके आविष्कारमें समर्थ हुए थे।

विमानवित्तव्य (सं० त्रि०) विमानितव्य । विमाननाके योग्य, तिरस्कार करने लायक।

विमानुय (सं० त्रि०) विकृत मनुष्य, कुरूप आदमी।

विमान्य (सं० त्रि०) विमानियत् । विमाननाके योग्य, अपमान करने लायक।

विमाय (सं० त्रि०) विगता माया यस्य । मायाहीन, मायाशून्य। (शू० १०।७३।७)

विमार्ग (सं० पु०) मृज घञ् मार्गः विरुद्धो मार्गः । १ कश्चार, घुरो चाल । २ सम्मार्जनी, भाङ्गु । ३ कुपथ, घुरा रास्ता।

विमित (सं० त्रि०) १ परिमित, जिसकी सोमा या हृद हो। (पु०) २ वह चौकीर शाला या इमारत जो चार खों पर टिकी हो। ३ बड़ा कमरा या इमारत

विमिधुन (सं० त्रि०) विशिष्ट मिधुन, युगल।

(लघुजातक १।२०)

विमिश्र (सं० त्रि०) १ मिश्रित, मिला हुआ। २ जिसमें कई प्रकारकी वस्तुओंका मेल हो, मिलाजुला।

विमिश्रक (सं० त्रि०) मिश्रणकारी, मिलानेवाला।

विमिश्रगणित (सं० स्त्री०) यह गणित जिससे पदार्थ सम्बन्धमें राशिका निरूपण किया जाय।

विमिश्रा (स० स्त्री०) मृगगिरा, आर्द्रा, मघा और अश्लेषा नक्षत्रमें बुधकी गतिका नाम जो ३० दिनों तक रहती है ।

विमिश्रित (स० लि०) मिलाया हुआ ।

विमिश्रित लिपि (स० स्त्री०) लिपिविशेष ।

(कर्जितविस्तार)

विमुक्त (स० लि०) वि-मुच-क्त । १ विशेषरूपसे मुक्त, जो बन्धनसे अलग हुआ हो । २ मोक्षप्राप्त, जिससे मोक्ष मिल गया हो । ३ स्वतन्त्र, स्वच्छन्द । ४ जिससे किसी प्रकारका प्रतिबन्ध या रुकावट न रह गई हो । ५ हानि, दण्ड आदिसे बचा हुआ । ६ अलग किया हुआ, यरी । ७ पकड़से छूट कर खला हुआ, छोड़ा हुआ । (पु०) ८ माधवी । खियां टाप् । विमुक्ता=मुक्ता ।

(पद् विभ्रानां ५६)

विमुक्त आचार्य—दृष्टसिद्धिके प्रणेता ।

विमुक्तता (स० स्त्री०) विमुक्तस्य भावः तल टाप् ।

विमुक्तका भाव या धर्म, विमोचन ।

विमुक्तसेन (स० पु०) बौद्धाचार्यभेद । (तारनाम)

विमुक्ति (सं० स्त्री०) वि-मुच्-क्तिन् । १ विमोचन, छुट-कारा, रिहाई । २ मोक्ष, मुक्ति ।

विमुक्तिचन्द्र (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

विमुञ्ज (सं० लि०) विरुद्धं अननुकूलं मुखमस्य । १ पराङ्-मुख, जिसने किसी बातसे मुख फेर लिया हो ।

२ विरत, निवृत्त, अतत्पर । ३ अप्रसन्न, जो किसीके हितके प्रतिकूल हो । ४ निम्पृष्ट, जिससे किसी प्रकारका लोभ न हो । ५ निराश, जिसकी चाह या मांग पूरी न हुई हो ।

६ उदासीनता, जिसने मन न लगाया हो । ७ मुखरहित, जिसके मुँह न हो ।

विमुञ्जता (सं० स्त्री०) विमुञ्जस्य भावः तल टाप् । १ विरति, अतत्परता । २ परांगमुञ्जता, अप्रसन्नता ।

विमुञ्जीकृत (सं० लि०) अविमुञ्जं विमुञ्जं कृतं अद्भुत-तद्गमाये चिब । १ जो विमुञ्ज किया गया हो ।

विमुञ्जीभाव (सं० पु०) १ विरति । २ अननुरक्ति ।

विमुञ्जीभू (सं० पु०) विमुञ्जीभाव देलो ।

विमृग (सं० लि०) १ चमत्कृत । २ मोहित, आसक्त । ३ भ्रममें पड़ा हुआ । ४ घबराया हुआ, डरा हुआ । ५ उन्मत्त, मतवाला । ६ पागल, पायला । ७ बेसुध ।

विमृगक (सं० पु०) १ मोहनेवाला । २ एक प्रकारका छोटा अभिनय या नकल ।

विमृगकारी (सं० पु०) १ मोहित करनेवाला, मोहने-वाला । २ भ्रममें डालनेवाला ।

विमुच (सं० स्त्री०) वि-मुच्-क्त् । १ विमोचनकारो विमोका ।

विमुच (सं० पु०) ऋषिभेद । (भारत भव०)

विमुञ्ज (सं० लि०) विगतो मुञ्ज यस्मात् । मुञ्जरहित ।

विमुद् (सं० स्त्री०) १ संख्याभेद, एक बड़ी संख्याका नाम । (लि०) २ आनन्दरहित, उदास ।

विमुद् (सं० लि०) विगता मुद्गा मुद्गण भावो यस्य । १ प्रफुल्ल, प्रसन्न (हेम) । २ मुद्गरहित ।

विमूर्च्छन (सं० स्त्री०) वि-मूर्च्छ-न्त्युट् । १ मूर्च्छा । २ सप्तस्वरको मूर्च्छना ।

विमूढ (सं० लि०) वि-मूह-क्त । १ विमृग, अत्यन्त मोहित । २ बहुत मूर्ख, जड़ बुद्धि । ३ मोह प्राप्त, भ्रममें पड़ा हुआ ।

४ बेसुध, अचेत । ५ हान-रहित, जिससे समझ न पड़ता हो । (स्त्री०) ६ एक प्रकारका सज्जित-कला ।

विमूढगर्भ (सं० पु०) वह गर्भ जिसमें बच्चा मरा या बेहोश हो और प्रसवमें बड़ी कठिनाता हो ।

विमूर्च्छित (सं० लि०) मूर्च्छांप्राप्त । (दिव्या० ४४५३०)

विमूर्त्त (सं० लि०) वि-मूर्च्छं क्त । १ विरक्त मूर्त्तिविशिष्ट । २ मूर्त्तिविरहित ।

विमूर्द्धज (सं० लि०) मूर्द्धिर्न जायते जन-ड, विगता मूर्द्धजा यस्य । केशहीन । (महात)

विमूल (सं० लि०) १ मूलरहित, बिना जड़का । (परिव०) २ उच्छन्न, मूलसे रहित । ३ नष्ट, बरबाद ।

विमूलन (सं० स्त्री०) १ उन्मूलन, जड़से उखाड़ना । २ निनाश, ध्वंस ।

विमृग (सं० लि०) अरण्यविशिष्ट, जंगली हरिणसे भर-पूर । (रामायण १।७७।१)

विमृग्य (सं० लि०) १ अनुसरणोय, पीछा करने योग्य । २ अन्वेषणाहं, तलाश करने योग्य ।

विमृगवन् (सं० लि०) वि-मृज् क्तिप् । परिष्कार, परि-च्छन्न । स्त्रीलिङ्गमें विमृगवरो पद बनता है ।

(भगवन् १२।१।२६)

विमृत्यु (सं० लि०) विगतो मृत्युः यस्य । १ मृत्यु-
रहित । २ अमर ।

विमृध् (सं० लि०) १ सांभामकारी, योद्धा । (ऋक्
१०।१५२।२) २ शत्रु, दुश्मन ।

विमृध (सं० लि०) विशेषरूपसे नाशकारी ।

विमृधतनु (सं० लि०) इन्द्र ।

विमृश (सं० पु०) वि-मृश अच् । विमर्श, आलोचना ।

विमृश्य (सं० लि०) १ विमर्शनयोग्य, आलोचना या
समीक्षाके योग्य । (भागवत ६०।८५।१३) २ जिस पर
विवेचना या विचार करना हो, जिसको समीक्षा करनी
हो ।

विमृष्ट (सं० लि०) वि-मृज्-क्त । १ परिच्छिन्न । (शतपथब्रा०
१२।५।१।६) २ जिसको पूरी आलोचना या समीक्षा हुई
हो । ३ जिस पर तर्क वितर्क या सम्पक् विचार हुआ
हो ।

विमृष्टराग (सं० लि०) जिसका रंग साफ किया
गया हो ।

विमोक (सं० पु०) १ मुक्ति, छुटकारा, रिहाई । (शुक्
५।४।१) २ मलरहित । ३ राग-रहित, ऊपरी आवरण-
रहित । ४ स्पष्ट, साफ ।

विमोक्तम् (सं० अर्थ०) विमुक्ति, मुक्ति ।

विमोक्तव्य (सं० लि०) वि-मुञ्च-शब्द । मोचनार्ह, छोड़
 देने योग्य ।

विमोक्ता (सं० पु०) मुक्त करनेवाला, छोड़नेवाला ।

विमोक्त्वा (सं० पु०) वि-मुञ्च-त्वाच् । विमोक्ता देखो ।

विमोक्ष (सं० पु०) वि-मोक्ष-अच् । १ विमोचन, बंधन या
गांठ आदिका खुलना । २ विमुक्ति, छुटकारा, रिहाई ।
३ निर्वाण, जन्म-मरणके बन्धनसे छूटना । ४ परित्याग,
छोड़ना । ५ सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहणसे छूटना ।
६ प्रक्षेपण, किसी वस्तुका पकड़से इस प्रकार छूटना कि
यह दूर जा पड़े । ७ मेरुपर्वतका एक नाम ।

विमोक्षक (सं० लि०) वि-मोक्ष-ण्वुल् । विमोचक,
विमुक्तिदाता ।

विमोक्षण (सं० क्लो०) वि-मोक्ष-ण्वुट् । १ विमोचन, मुक्त
करना । २ परित्याग, छोड़ना । ३ बन्धन आदि खोलना ।

विमोक्षिन् (सं० लि०) वि-मोक्ष्-णिनि । मुक्तिदाता,
मोचनकारी ।

विमोघ (सं० लि०) वि-मुह-क । अमोघ, व्यर्थ न होने-
वाला, न चूकनेवाला ।

विमोचक (सं० लि०) वि-मुञ्च-ण्वुल् । १ मोचनकारी,
मुक्त करनेवाला । २ बन्धन खोलनेवाला । ३ गिराने-
वाला, छोड़नेवाला ।

विमोचन (सं० क्लो०) वि-मुञ्च-ण्वुट् । विमुक्ति, रिहा
करना । २ बंधन गांठ आदिको खोलना । ३ गाड़ी
आदिसे धैल आदिको खोलना । ४ दूरीकरण, निका-
लना, वाहर करना । ५ त्याग, इस प्रकार अलग
करना, कि कोई वस्तु दूर जा पड़े । ६ गिराना,
डालना । ७ तीर्थविशेष । (भारत ३।३।१।५०) (पु०)
८ महादेव । (भारत १३।१।७।५६)

विमोचनीय (सं० लि०) वि-मुञ्च-नीयर् । विमो-
चनार्ह, छोड़ने योग्य, मुक्त करने लायक ।

विमोच्य (सं० लि०) विमोचनीय देखो ।

विमोह (सं० पु०) वि-मुह-घञ् । १ मोह, अज्ञान, भ्रम,
भ्रान्ति । २ अचेत होना, वेसुध होना । ३ बहुत
लुभाना या मोहित होना । ४ एक नरकका नाम ।

विमोहक (सं० पु०) १ मोहनेवाला, लुभावना ।
२ मनमें लोभ उत्पन्न करनेवाला, ललचावनेवाला । ३ ज्ञान
या सुध हरनेवाला । ४ एक राग जो हिंडोल रागका
पुत्र माना जाता है ।

विमोहन (सं० क्लो०) वि-मुह-ण्वुट् । १ चैत्तित्तीकरण,
मन लुभाना । २ दूसरेका मन वशमें करना । ३ ऐसा
प्रभाव डालना कि चित्त ठिकाने न रहे । ४ कामदेवके
पांच वाणोंमेंसे एक । ५ एक नरकका नाम । (लि०)
विमोहयतीति वि-मुह-णिच्-ण्वु । ६ विमोहक, मन
लुभावनेवाला ।

विमोहनशोल (सं० लि०) १ भ्रमकारी, भ्रोजा देनेवाला ।
२ मोहित करनेवाला, लुभावनेवाला ।

विमोहना (दि० क्लि०) १ मोहित करना, लुभाना ।
२ ऐसा प्रभाव डालना कि तन मनकी सुध न रहे ।
३ भ्रान्तिमें करना, धोखेमें डालना ।

विमोहा (दि० क्लि०) एक प्रकारका छन्द । इसके प्रत्येक
चरणमें दो रंगण होते हैं । इसे 'मोहा' 'विमोहा' और
'विजोहा' भी कहते हैं । विमोहा देखो ।

विभोहित (सं० लि०) वि-मुह-णिच्-क्त । मोहयुक्त, मोहित ।

विभोहिन् (सं० लि०) वि-मुह-णिनि । विभोही देखे ।

विभोही (सं० स्त्री०) १ मोहित करनेवाला, जो लुभानेवाला । २ सुध सुध भुलानेवाला । ३ भ्रममें डालनेवाला, भ्रान्त करनेवाला । ४ मूर्च्छित या चेहरे शरनेवाला । ५ जिसे मोह या दया न हो, निष्ठुर ।

विभौट (हिं० पु०) दोमकोंका उड़ाया हुआ मिट्टेका दूद, बाँधी ।

विभौन (सं० लि०) मुनेर्भाव मोनः, विगतः मीनः । मीनरहित ।

विभौली (सं० लि०) शिरोभूया-विरहित, जिसे गिरकी भूया न हो ।

विभ्यापन (सं० स्त्री०) ग्रिथिल करना ।

विभ्य (सं० पु० स्त्री०) वी (उन्त्यादपरश्च । उण् ४।६५) इति-घन् प्रत्ययेन साधुः । १ सूर्य्यचन्द्रमण्डल । (अमर) २ मण्डलमात्र, मण्डलकी तरह गोलाकार । ३ मूर्त्ति, प्रतिविम्ब, छाया । (पु०) ४ कृकलास, गिर-गिट । ५ विम्बिकाफल, कुंदरु नामक फल ।

विम्बक (सं० स्त्री०) विम्ब स्वार्थे-कन् । १ चन्द्रसूर्य्य मण्डल । २ विम्बिकाफल, कुंदरु । ३ मञ्चक, मान्वा । ४ मुवाकृतिविशेष । (दिव्य १७२।१०)

विम्बजा (सं० स्त्री०) विम्बफलः जायतेऽस्यामिति जनश्च । विम्बिका देखो ।

विम्बट (सं० पु०) सर्पप, सरसों ।

विम्बराज—सहाद्रि-वर्णित दो राजाओंके नाम । (पद्म ३१।१८, ३३।५८)

विम्बा (सं० स्त्री०) विम्बं विम्बफलमस्त्यस्यामिति विम्ब-अच्-टाप् । विम्बिका देखो ।

विम्बागत (सं० लि०) विम्बेन आगतः । विम्बप्रातः, विम्बित ।

विम्बावितैल (सं० पु०) अबुंद रोगका उपकारक तैलबीज-विशेष । प्रस्तुत प्रणाली—कीदसका मूल, कबरीमूल और निम्बोष द्वारा पाचित तैलकी सुंघनी लेनेसे मण्डमाला दूर होती है ।

विम्बिका (सं० स्त्री०) १ विम्ब । (अमर) २ चन्द्र-सूर्यमण्डल ।

विम्बित (सं० लि०) विम्बि इत्थ च । प्रतिविम्बित, प्रति-फलित ।

विम्बिसार—एक शाक राजा । ये महाराज अशोकके प्रपितामह और अजातशत्रुके पिता थे ।

विम्बिखर शब्द देखो ।

विम्बो (सं० स्त्री०) विम्ब-गीरादित्वात् ङीप् । विम्बिका ।

विम्बु (सं० पु०) गुवाकः, सुपारी ।

विम्बोष्ट्र (सं० पु०) विम्बे-इव ओष्ठो यस्य, 'ओत्वो-ष्ट्रयोः समासे वा' इति पाक्षिकाऽकारलोपः । यह जिसके दोनों डोढ विम्बफलकी तरह लाल हों । विम्बोष्ट्र सन्धिके अनुसार अकार और ओकारमें सन्धि हो कर शुद्ध होती है तथा विम्बोष्ट्र पद बनना है । किन्तु 'ओत्वोष्ट्रयोः समासे वा' इस विशेष सूत्रके अनुसार एक जगह अकारका लोप और एक जगह शुद्धि हो कर विम्बोष्ट्र और विम्बोष्ट्र ऐसा पद बनेगा ।

विम्बोष्ट्र (सं० पु०) विम्बोष्ट्र देखो ।

विष्य—जातिविशेष ।

विष्यारिन् (सं० पु०) विषयि आकाशे चरतीति चर-णिनि । आकाशचारी ।

विष्यत् (सं० स्त्री०) विष्यच्छति न विरमतीति वि-यम (भन्त्येभ्योऽपि दरवते । पा ३।२।१७८) इति क्विप् ष्वी च सादोनामिति वि-या-शतृ विष्यत् मलोपे तुक् । १ आकाश । (लि०) २ गमनशाल ।

विष्यत्पताक (हिं० स्त्री०) विद्युत्, बिजली ।

विष्यत्पुर—चम्पारणके अन्तर्गत तिलपर्णा नदीतीरस्थ एक नगरका नाम । (मविष्य-अष्टाह ० ४२।१४६)

विषयि (सं० पु०) नहुषके एक पुत्रका नाम ।

(मागधव १।१८।१)

विषय (सं० लि०) विषयि आकाशे गच्छतीति गम-श्च । आकाशगामी ।

विषयद्रुह (सं० स्त्री०) विषयतो गृह्णा । स्वर्गगंगा, मन्दा-किनी ।

विषयद्रुति (सं० स्त्री०) विषयतोऽग्निर्मस्मेय । अग्धकार ।

विषयमणि (सं० पु०) विषयतो मणिः । सूर्य । (शाराधनी)

विषयम (सं० पु०) वि-यम-यमः सपुनरिविषु च । पा ३।३।६२) इत्यप् । १ संयम, इन्द्रियदमन । २ दुःख, क्रोध ।

हुए। इधर गोपियोंकी बात-चीत सुन श्रीहरि वहाँसे अन्तर्हित हुए। विरजाने श्रीकृष्णका अन्तर्धान और सामने राधिकामें देख भयसे प्राणत्याग किया। उस समय विरजाकी उस पवित्र देहने सरित्स्वरूप धारण किया। राधा विरजाका सरित्स्वरूप देख घर लौट गई। इधर श्रीकृष्ण आ कर विरजाकी यद् गति देख रोने लगे— तुम्हारे विरहसे मैं कैसे जो सकुंग, तुम एक वार सजीव हो कर मेरे पास आओ। श्रीहरिके इस तरह विलाप करने पर विरजा राधाकी तरह सुन्दर मूर्त्ति धारण कर श्रीकृष्णके पास जलसे निकल आई। श्रीकृष्ण उसका वा कर परम सन्तुष्ट हुए और नाना प्रकारसे उन्हींके उसका सम्भोग किया। अन्तमें विरजाके श्रीकृष्णसे गर्भ रह गया। उस गर्भसे विरजाने सात पुत्र प्रसव किये। कुछ दिन बातनेके बाद एक दिन विरजा सम्भोगकी आशामें श्रीकृष्णके साथ बैठो यो। ऐसे समय विरजाका कनिष्ठ पुत्र अन्य भाइयोंसे ताड़ित हो जो कर माताकी गोदमें बैठ गया। विरजाने पुत्रकी परित्याग किया, किन्तु द्वापयम् श्रीकृष्ण उसे गोदमें ले राधाके घर चले गये। इधर सम्भोगकातरा विरजा श्रीकृष्णकी विरह-वेदनासे प्रयोजित हो विलाप करने लगी और उन्हींके पुत्रकी श्राप दिया, कि तुम लघवण समुद्र होगो। अन्यान्य पुत्र भी माताके कोपकी बातें सुन पृच्छामें आ कर सात हीपके सात समुद्र हुए। इन्हीं समुद्रोंमें पृच्छो जस्यशालिनो होती है।

(श्रीकृष्ण जन्मश्लय)

४ उडोसेका एक प्रधान तीर्थ। इस समय यह याज्ञ-पुर और नामिगया नामसे परिचित है। याज्ञपुर देखो। एकावन पीठोंमें विरजा भी एक प्रधान पीठ है।

प्रायश्चित्तचवधृत स्कन्दपुराणके मतसे सभी तीर्थोंमें ही मुण्डन और उपवास करना होता है। किन्तु यहाँ आ कर वैसा नहीं करना होगा।

५ ब्रह्माका एक मानसपुत्र। ६ लोकाक्षिके जिष्य।

(निष्पृ० २४१२३)

विरजासु (सं० पु०) मार्कण्डेय पुराणके अनुसार एक पर्वत जो मेरुके उत्तर है।

विरजाशैल—एक प्राचीन तीर्थ। इसका वर्त्तमान नाम याज्ञपुर है।

विरजानदी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके अन्तर्गत महिसुर जिलेकी एक कृत्रिम नदी। कावेरी नदीके दाहिने किनारे बालमुनि बाँध द्वारा यह प्रायः ४० मील परिचालित हुई है। पल्लोद्वारा नगरमें जो सब चीनी और लोहेके कारखाने हैं वे इसा नदीकी स्रोतशक्तिके चलाये जाते हैं।

विरञ्च (सं० पु०) ब्रह्मा।

विरञ्चन (सं० पु०) ब्रह्मन्।

विरञ्चि (सं० पु०) ब्रह्मा, सुष्ट रचनेवाला, विधाता।

विरञ्चिसुन (सं० पु०) ब्रह्माके पुत्र, नारद।

विरञ्च्य (सं० पु०) विरञ्चिका भोग, ब्रह्माका भोग।

“भायुश्रियं विभवमैन्द्रयमाविरञ्चयात्।”

(भाग० ७।१।२४)

विरट (सं० पु०) १ स्कन्ध, कंधा। २ अगुच, अगुरुस।

विरण (सं० क्लो०) वीरण तुण, वीरन नामकी घास।

विरत (सं० लि०) विरम-क। १ निवृत्त, क्षान्त, उपरत।

२ विद्वान्त, विमुख। ३ वैराग्य, जिसने सांसारिक विषयोंसे अपना मन हटा लिया हो। ४ विशेषरूपसे रत, बहुत लीन।

विरति (सं० स्त्री०) विरम क्तिन्। १ निवृत्ति। पर्याय—आरति, अवरति, उपराम, विराम। (भाष०) २ उदासीनता, जीका उचटना। ३ वैराग्य, सांसारिक विषयोंसे जीका हटना।

विरथ (सं० लि०) विगतो रथो यस्य। १ रथशून्य, विना रथका। २ रथसे गिरा हुआ। ३ पैरल।

विरथीकरण (सं० क्लो०) युद्धमें रथ नष्ट करके शत्रुको रथहीन करना।

विरथीभूत (सं० लि०) विरथीकृत, जो रथशून्य किये गये हों।

विरथ्य (सं० लि०) रथ्या य पथहीन।

विरथ्या (सं० स्त्री०) १ विशिष्ट रथ्या। २ रूपध।

विरद् (सं० पु०) १ बड़ा नाम, लंबा चौड़ा या सुन्दर नाम। २ शयाति, प्रसिद्धि। ३ यश, कीर्ति। (लि०) ४ दन्तहीन, विना दाँतका।

विरदायलो (दि० स्त्री०) यज्ञकी कथा, प्रशंसाके गीत।
विरप्ल (सं० लि०) १ बहुविध उपचारवादी "पञ्चाहास्य

सुनुना निरप्सो गोमती मदी" (ऋक् १।८८) 'विरप्सो
बहुविधोपचारवादिनी' (सायण) २ स्तुतिकारक ।

(ऋक् १।६।१०)

विरपगिन् (सं० त्रि०) विषयशब्दकारो, "त्रिपामिविरप-
गिनः" (ऋक् १।६।१०) 'विरप् गिनः विविधं शब्दं रग
स्तीति विरपशाः स्तोतारः नृ पत्र संस्तोति विरपगिनः
यद्वा विविधं रपणं विरपशं तद्व्यामस्तीति मयतो हि
विविधं शब्दं' । कुर्वते' (सायण)

विरम (सं० पु०) वि-रम-अप् । नाग, अपगम ।

विरमण (सं० क्लो०) १ विराम, ठहरना । २ सम्भोग,
विलास । ३ रम जाना, मन लगाना । ४ अवसर
प्रदण, छुट्टी लेना । ५ निरूत होना, विरत होना ।

विरल (सं० त्रि०) १ अवकाश, जो घना न हो, जिसके
धीन धीचम आला जगह हो । पर्याय—पेड़व, तनु ।
२ दुर्लभ, जो केवल कहीं कहीं पाया जाय । ३ निर्जान,
शून्य । ४ अल्प, थोड़ा । ५ जो गाढ़ा न हो, पतला ।
(क्लो०) ६ दधि, पतला दही ।

विरलजानुक (सं० त्रि०) विरलो जानुर्यस्य, समासे
कप् । चक्रतानुविगिण, जिसका घुटना मुहा हुआ हो ।

विरलदेश—स्थानभेद । (दिग्बन्धनकाश ५४६)

विरलद्रव्य (सं० क्लो०) विरलो निर्मलो द्रव्यो यस्याः ।
शुद्धन यथागू, विरल द्रव यथागू ।

विरलिका (सं० क्लो०) चक्रवित्तोप, प्राचीनकालका एक
प्रकारका धोना या महीन वस्त्र ।

विरलित (सं० त्रि०) विरलोऽस्य जातः विरल-तारकादि-
त्वाद्भित्त् । विरलयुक्त, अथकाशगिण ।

विरलीकरण (सं० पु०) सप्रनधो विरल करना ।

विरलीकृत (सं० त्रि०) अविरलः विरलः कृतः अमृत-
तज्ञाये चिब । जो स्थान विरल न था उस स्थानको
विरल करना, जहाँ अथकाश-नदी' था उस स्थानको
अथकाश करना ।

विरलेतर (सं० त्रि०) विरलादितरः । अविरल, विरलसे
भिन्न ।

विरव (सं० पु०) १ विविध शब्द, अनेक प्रकारके शब्द ।
(त्रि०) २ शम्भरहित, नीरव ।

विरवा—वर्षा प्रदेशके अन्तर्गत हल्लार प्रान्त या काठिया-
वाड़ विभागके अधीन एक छोटा सामन्त राज्य ।
भूगर्माण ७६ घगमील है । विरवा प्राममें यहाँके
मन्त्राधिकारीका पास है । एक सरदारके ऊपर राजस्व
घसूल करनेका भार है । राजस्वकी भाग प्रायः १०००
रु० है । जिसमेंसे अंगरेजराजका वार्षिक १५० रु०
और जूनागढ़के नयावकी ४४ रु० कर देना पड़ता है ।
विरशिम (सं० त्रि०) विगतो रश्मिर्यम्य । रश्मिरहित,
बिना किरणका ।

विरस (सं० त्रि०) विगतः रसो यस्य । १ रसहीन,
फोका । २ विरक्तिजनक, जो अच्छा न लगे । ३ अर्थात्-
कर, अप्रिय । ४ जो रसहीन हो गया हो, जिसमें रसका
निर्वाह न हो सका हो । (पु०) ५ काशमें रसभंग ।
केशवने इसे 'अनरस' के पांच भेदोंमें एक माना है ।

विरसता (सं० क्लो०) विरसस्य भावः तल-टाप् वा त्व ।
१ विरसका भाव या धर्म, फोकापन । २ रसभंग,
मज्जा किरकित होना ।

विरसत्व (सं० क्लो०) विरसता देवा ।

विरसानन्तव्य (सं० क्लो०) मुलका घैरस्य, उवरादि रोगके
समय मुलमें विकृत रसका अनुभाव ।

विरसास्यत्व (सं० क्लो०) मुलका घैरस्य, मुहका फोका-
पन । (शाङ्ग फल० १।७।७०)

विरह (सं० पु०) विरह त्यागे अच् । १ विच्छेद, जुदाई ।
गर्वाय—विप्रलम्भ, विप्रयोग, विभोग । (हेम) २ अभाव ।
३ शूद्राररसकी विप्रलम्भाथय अवस्था ।

मनुगाहमें लिखा है, कि स्त्रियोंको पनि रहिन या
बिना पति था रहना एक दोष है ।

प्रिय और प्रियाके बीच परस्पर अदर्शनसे एक दूसरे-
के मनमें जो चिन्ता और ताप आदि उपस्थित होता है
साधारणतः उसीको विरह कहते हैं । प्राचीन काण्य
और नाटक आदि ग्रंथोंमें विरहके बहुतेरे निदर्शन
पाये जाते हैं । उत्तरचरितमें सोताके विरहमें राम-
चन्द्र कातर हुए थे । फिर अभिज्ञान-शकुन्तलामें दुष्यन्तके
विरहसे शकुन्तलाने भो क्षिप्रमना हो महर्षि-दुर्वासाको
अथवा की थी । नाटक नायिकाके ऐसे विरहका विशेष
माधुर्य नहीं । यह विरह जब पवित्र प्रेम्के अवस्थामे-

से परिणतिको प्राप्त होता है, तमो इसका प्रकृत माधुर्य उपलब्ध किया जाता है। महारुचि कालिदासने मेघ-दूत काव्यमें यक्षके पत्नी-विरह-वर्णनस्थलमें लिखा है—

“कश्चित् कान्ताविरहविधुरः स्वाधिकारप्रमत्तः।”

इससे मालूम होता है, कि विरदि-जन प्रियाके न देखनेसे बिलकुल उन्मत्त हो जाते हैं। यह उन्मत्तता यदि देवभावमें प्रणोदित हो अर्थात् भगवान्में आसक्ति हेतु उनकी ही प्रेम-प्राप्तिको आशासे उन्मीके चरणोंकी ओर धावमान हो, तो वह विरह निःसन्देह सर्वोत्कृष्ट कहा जायेगा।

धृन्दावनमें श्रीराधाकृष्णकी प्रेमवैचित्र्यपूर्ण लोला-कहानीमें श्रीकृष्णके अदर्शनसे श्रीराधाकी जो विरह अवस्था और उत्कृष्टा भाव उपस्थित होता है, वही विरहवी प्रकृति है और इसीलिये यह प्रेमका एक भाव या अङ्ग कहा जाता है। विद्यापति, बल्लिदास, गोविन्ददास आदि वैष्णव कवियोंने उसी विरहको प्रेमनस्वका शोर्ण-स्थान कहा है। क्योंकि विरह न होनेसे भगवान्का नाम निरन्तर हृदयमें जागरित नहीं होता या होता ही नहीं। अतः विरहभावको प्रेम (श्रृङ्गार) रसका उत्कृष्ट अव-लम्बन कहा जा सकता है।

प्रवास या अन्तरालका अवस्थान ही अदर्शनका प्रधान आश्रय है। इसीलिये यह विरहोद्रेकका प्रधान-तम कारण है। वैष्णवोंने विरहको भाषी, भयन और भूत नामसे तीन भागोंमें बाँट दिया है। कुछ लोग तो प्रवास-को ही विरहका मूल उपादान कहे गये हैं। श्रीकृष्णके अकूरके साथ मथुरामें जाने पर पुत्रारण्यमें श्रीराधा और सखियोंको जो विरह उदाम हुआ, वह वैष्णव प्रन्थोंमें माधुर कह कर परिकीर्तित हुआ। इस समयसे प्रवास यह तक राधाके हृदयमें दारुण विरहानल प्रज्वलित हुआ था। राधाका यह विरह पारिभाषिक है, इससे यह प्रेमा-त्मक है। श्रीकृष्णके मथुरागमन-विच्छेदमें नन्द यगोदाके मनमें श्रीकृष्णके अदर्शनसे जो दुःख हुआ, उसे वैष्णव कवियोंने विरह नहीं कहा है। क्योंकि नन्द यगोदाकी कृष्णानुरक्ति घाटनस्वभावपूर्ण और राधाकी कृष्णप्रीति प्रेममस्त्रवणप्रसूत है।

माधुर या प्रवास भूतविरहके अन्तर्गत है। इसमें भी छोटे कई भेद हैं।

कविकल्पलतामें लिखा हुआ है, कि विरहका वर्णन करते समय कवियोंको ताप, निश्वास, चिन्तामौन, रुग्ण-ङ्गता, रातका वर्षा बोध होना, जागरण और शीतलतामें उष्णताका बोध आदिका वर्णन करना चाहिये।

विरहा (सं० पु०) एक प्रकारका गीत जिसे अक्षर और गढ़रिप गाते हैं। विहा देखो।

विरहा—नदीभेद। तापीवक्षमें विरहाका सङ्गम एक पुण्यतीर्थ माना जाता है। (वापील० ३५१)

विरहिणो (सं० त्रि०) जिसे प्रिय या पतिका वियोग हो, जो पति या नायकसे अलग होनेके कारण दुःखी हो।

विरहिन् (सं० द्वि०) विरहोऽस्यास्तीति विरह-नि। विरहयुक्त, वियोगी।

विरहित (सं० त्रि०) वि-रह-क्त। त्यक्त, विहीन, विनी। विरहो (सं० त्रि०) जिससे प्रियाका वियोग हो, जो प्रिय-तमासे अलग होनेके कारण दुःखी हो।

विरहोत्कण्ठिता (सं० स्त्री०) नायिका भेदके अनुसार प्रियके न आनेसे दुःखी वह नायिका जिसके मनमें पूरा विश्वास हो, कि पति या नायक आवेगा, पर फिर भी किसी कारणवश यह न आवे।

विराग (सं० पु०) वि-रन्-ञ-घञ्। १ अननुराग, राग-शून्य, चाहका न होना। विषयके प्रति जो अतिशय राग होता है, उसे-मानसिक मल कहते हैं तथा विषयके प्रति जो विराग वा अनुरागशून्यता है उसीको नैर्दल्य कहा है। विषयके प्रति विराग उपस्थित होने होसे मानव प्रयत्नका अवलम्बन कर भगवान्में लीन हो जाते हैं। इसी कारण श्रुतिने कहा है,—“यद्दरेव विराज्येत तद्दरेव प्रयज्येत” (भुवि) विरागके उपस्थित होनेसे ही प्रयत्न-का अवलम्बन कर्तव्य है। २ उदासीन भाव, किसी वस्तुसे न विशेष प्रेम होना न द्वेष। ३ चोतराग, सांसा-रिक सुखोंकी चाह न रहना, विषयमग्न आदिसे निरुत्ति। ४ एकमें मिले हुए दो राग। एक रागमें जब दूसरा राग मिल जाता है तब उसे विराग कहते हैं। (त्रि०) ५ विविध रंगविशिष्ट, रंग विरंगका।

विरागता (सं० स्त्री०) विरागस्य माया-तत्-त्प। विरागका भाव या घर्म।

विरामयत् (सं० त्रि०) विरामः विद्यतेऽस्य विराम-मनुष्य-
मस्य च । विरामविशिष्ट, वैराग्ययुक्त ।

विरामाहं (सं० पु०) विराम-महं नोनि अहं-अच् । विराम-
योग्य । पर्याय—वैरङ्गिक ।

विरामित (सं० त्रि०) विरामोऽस्य जातः विराम तारका-
दित्यादितच् । विरामयुक्त, विरामविशिष्ट ।

विरामिता (सं० स्त्री०) विरामिणो भावः विरामिन् तल्
टाप् । विरामोका भाव या धर्म, विराम ।

विरामिन् (सं० त्रि०) विराम-अस्त्यर्थे इनि । विराम-
विशिष्ट, वैराग्ययुक्त ।

विराम्ज् (सं० पु०) विराट् देखो ।

विरामन् (सं० त्रि०) शोतिगालो, चमकदमकपाला ।

विरामज्ज (सं० स्त्री०) विराज्ज टुपुट् । १ शोभन, शोभित
होना । २ वर्तमान होना, मीज्ज् रदना । ३ वैठना ।

विरामज्जा (द्वि० क्ति०) १ शोभित होना, प्रकाशित होना,
सोहना । २ वर्तमान होना, मीज्ज् रदना । ३ वैठना ।

विरामज्जमान (सं० त्रि०) १ प्रकाशमान, चमकता हुआ ।
२ विद्यमान, उपस्थित ।

विरामजित (सं० त्रि०) वि-राज-क्त । १ शोभित । २ प्रका-
शित । ३ उपस्थित, विद्यमान ।

विरामित्त्वि (सं० त्रि०) विरामित्तं शीलमस्य वि राज-णिनि ।
दातिविशिष्ट, प्रकाशशील, विरामजमान ।

विराम्य (सं० स्त्री०) १ दाति, समृद्धि । २ साम्राज्य ।

विराट् (सं० पु०) वि-राज् दीप्तो क्विप् । १ क्षतिव्य ।
२ प्रह्लाका यह स्थूल स्वरूप जिसके अन्दर अखिल विश्व

है अर्थात् सम्पूर्ण विश्व जिसका शरीर है । प्रज्जवैवर्त्सो-
पुराणके प्रकृतिखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

पकार्णवसलिल (क्षीरसमुद्र) में प्रह्लाकी आयु
पर्यन्त एक डिम्ब रहता था । पीछे उस डिम्बके फूट जाने
पर उसमेंसे शतकोटि सूर्यकी तरह उज्ज्वल एक शिशु
निकला । शिशु दूधके लिये कुछ समय रो उठा । उनके
पितामता नहीं हैं, जलमें उनका बास है । जो प्रह्लाण्डके
नाथ हैं वे अनाथवत् मालूम होने लगे । वे स्थूलसे स्थूल-
तम हैं, महाविराट् नामसे प्रसिद्ध हैं । वे ही 'असंख्य
विश्वके आधार प्रकृत महाविष्णु हैं ।' उनके प्रति लोम-
कूपमें निकल विश्व अधिष्ठित हैं । स्वयं कृष्ण भी उनकी

संख्या नहीं कर सकते । प्रतिलोमकूपरूप त्रिश्रयमें प्रह्ला,
विष्णु और शिवादि विराजमान हैं । पातालसे प्रह्ला-
लोक पर्यन्त प्रह्लाण्ड उसी लोमकूपमें विराजित है ।
प्रह्लाण्डके यदिभागमें ऊपरकी ओर वैकुण्ठ है । यहाँ
सत्यस्वरूप नारायण विद्यमान हैं । उसके ऊपर पांच
सौ कोटि योजनकी दूरी पर गोलोक है । यहाँ नित्य
सत्यस्वरूप कृष्ण विराजमान हैं । इस प्रकार उस विराट्-
पुण्यके प्रति लोमकूपमें सप्तसागरसंतृता सप्तद्वीपा पशु-
मतो है । उसके ऊपर स्वर्गादि तथा नारायणके साथ
वैकुण्ठ और गोलोक विद्यमान है । एक समय इन
विराट्के ऊपरकी ओर देखा, कि उस डिम्बमें केवल शून्य
है और कुछ भी नहीं है । भूखके मारे वे रोने लगे ।
पीछे ज्ञानलाम करके उन्होंने परमपुण्य प्रह्लाज्योतिःस्वरूप
कृष्णको देख पाया । नवान्जलघरकी तरह उनका घर्ण
श्याम है । हां भुजा हैं, पोताम्बर पहने हैं, हांस रथे हैं,
हाथमें मुरली है और वे भक्तानुप्रदकारक हैं । इस रूपमें
भगवान् कृष्णने उस बालकको अपना दर्शन दे कर इससे
हुप रुदा, 'मैं प्रसन्न हो कर तुम्हें बर देता हूँ, कि तुम
भी प्रलय पर्यन्त मेरे जैसे ज्ञानयुक्त, क्षुत्पिपाशावर्जित
और असंख्य प्रह्लाण्डके आश्रय हो । इस प्रकार बर दे
कर भगवान्ने बालकके कानोंमें पङ्कश महामंत्र पढ़ दिया ।
यह विराट्कृपी बालक भगवान्का स्तव करने लगे ।
श्रोहणने उत्तरमें कहा, 'मैं जैसा हूँ, तुम भी वैसा हो
हो, असंख्य प्रह्लाका पात होने पर भी तुम्हारा पात नहीं
होगा । मेरे ही अंशसे तुम प्रति प्रह्लाण्डमें क्षुद्र विराट्
हो जा । तुम्हारे हां नामिपदसे विश्वस्रष्टा प्रह्ला उत्पन्न
होंगे, प्रह्लाके ललाटेसे शिवके अंशमें सृष्टिसञ्चारणार्थ
एकादश रुद्र होंगे, उनमें कालाग्निरुद्र एक विश्वसंहार-
कारी होगा । विश्वके पाता विष्णु भी इस क्षुद्र विराट्के
अंशमें आविर्भूत होंगे । तुम ध्यानमें मेरी कर्मनाथ
मूर्त्ति सर्वदा देख पाओगे ।' इतना कह धीकृष्ण
अपने लोकमें आ कर प्रह्लासे बोले, 'महाविराट्के लोम-
कूपमें क्षुद्र विराट् विद्यमान है, सृष्टि करनेके लिये तुम
उनके नामिपदमें जा कर उत्पन्न हो । हे महादेव !
तुम भी अंशकर्ममें प्रह्लाकलाटेसे जन्म ले ।' जगन्नाथका
इस प्रकार आदेश सुन कर प्रह्ला और शिवने प्रस्थान

क्रिया। महाविराटके लोमकूपमें, ब्रह्माण्डमें, गोलोकमें वीर एकार्णवजलमें विराटके अंशसे क्षुद्र विराट् आविर्भूत हुए थे। वे युवा, प्रथमवर्ण, पीताम्बरधारी, जलशापी, ईषत्प्रहास्ययुक्त, प्रसन्नवदन, विश्वव्यापी जनार्दन हैं। उनके नामिपदासे ब्रह्मा आविर्भूत हुए। (महातिलकपु ३ अ०)

पौराणिक और दार्शनिकरूप ब्रह्मवैवर्त्तकी विराट उत्पत्तिको अनुसरण नहीं करते। इस सम्बन्धमें वे वैदिके प्रमाण हीको मानते हैं। विराटके उत्पत्ति सम्बन्धमें ऋक्संहितामें इन प्रकार लिखा है—

"सहस्रशार्थां पुरुष सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमि विश्वतो वृत्वात्पत्तिष्ठद्दशांगुलम् ॥

पुरुषस्तेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं ।

उतामृतावस्थेशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

एतावनस्य महिमातो ज्यायोश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि विवादस्यामृतं दिभि ॥

सत्माद्विराट्प्रजापत विराजो अधिपूरुषः ।

स जानो अत्यरिच्यत पञ्चाद्मिमथो पुरः ॥"

(ऋक् १०।६०।१-५)

पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्र चक्षु और सहस्र चरण हैं। वह पृथिवीमें सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी दश अंगुल ऊपर अवस्थित है। पुरुष ही सब कुछ है, जो हुआ है और जा होगा। उनकी इतनी बड़ी महिमा है, पर वह इससे कहीं बड़े है। सम्पूर्ण विश्व और भूत एकपाद है, आकाशका अमर अंश त्रिपाद है। उससे विराट् उत्पन्न हुआ और विराटसे अधिपुरुष। उर्ध्वनि आविर्भूत हो कर सम्पूर्ण पृथिवीको आगे पीछे घेर लिया। भगवद्गोताके अनुसार भगवान्ने जो अपना विराट् स्वरूप दिलाया था। उसमें समस्त लोक, पर्वत, समुद्र, नद, नदी, देवता इत्यादि दिखाई पड़े थे। बलि को छलनेके लिये भगवान्ने जो त्रिविक्रम रूप धारण किया था उसे भी विराट् कहते हैं।

... ३ स्वायम्भुव मनु (मत्स्यपु० ३-४०)

विराट्—मत्स्य देश। यहाँ जो भारतीय व्यापार संघटित हुआ था, महाभारतके विराटपर्वमें उसीका वर्णन है। इस आश्रित जनपदके विपमर्षे कई लोग कितने प्रकारको

दाते' कहा करते हैं। किसी किसीका मत है, कि यह स्थान राजपुत्रानामें है, कितनेके मतानुसार यह वर्तमान प्रदेशके अन्तर्गत है। किसीके मतसे उत्तरी बंगाल किसीके मतसे मेदनीपुर जिलेमें एवं किसीके मतके यह मयूरभंजके पार्वत्य प्रदेशमें है।

सरस्वती और दृषद्वती, इन दोनों देवतियोंके मध्य देव-निर्मित एक देश है जो ब्रह्मावर्त्तके नामसे विख्यात है। कुरुक्षेत्र एवं मत्स्य, पञ्चाल तथा शूरसेनका देश ही ब्रह्मविं देश है, यह ब्रह्मावर्त्तसे अलग है। मनुके कथनानुसार मालूम पड़ता है, कि उत्तर-पश्चिम भारतमें, कुरुक्षेत्र वा यानेश्वरका निकटवर्ती प्रदेश, पञ्चाल वा कात्यकुरुक्षेत्रा अञ्चल, शूरसेन वा मथुरा प्रदेश, इन सब जनपदोंके समीप ही मत्स्यदेश था एवं यह महर्षिदेशके बीचमें पड़ता था।

महाभारतके भोष्मपर्वमें तीन मत्स्य देशोंका उल्लेख पाया जाता है—

१म—"मत्स्याः कुरुक्षयाः सोहत्याः कुम्भयः कान्तिशोभकाः ।

२य—वेदिमत्स्यकरुषाश्च भोजजाः सिन्धुपुत्रिन्दकाः ॥

३य—दुर्गाजाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोरालास्तया ।"

(भोष्मपर्व १० अ०)

उक्त कथनानुसार एक मत्स्यदेश पश्चिममें कुरुक्षेत्र, सुशल्य और कुरुतादेशके निकट, एक पूर्वमें वेदि (कुरुक्षेत्र) तथा करुष (ग्राहावाद् जिले के बाद एवं तृतीय वा प्रतिमत्स्य दक्षिणमें दक्षिणकोशलके निकट था।

उपरोक्त तीन मत्स्य देशोंमें पहला ही मनुका कहा हुआ आदिमत्स्य था। दूसरा सम्भवतः उत्तर बंगके दिनाजपुरका अंचल एवं तीसरा मेदनीपुर और मयूरभंजके बीचका देश ही था।

उक्त तीन देशोंके मध्य पाण्डवोंका अज्ञातवासस्थल विराट राजधानीसे भूयिष्ठ मत्स्यदेश कहा है ?

—यादि मत्स्य वा विराट ।

पांचो पाण्डव अज्ञातवासके समय जिस रास्तेसे विराटकी राजसभामें गये थे एवं मत्स्यदेशवासी योद्धाओंकी वीरता तथा साहसिकताका परिचय जिस प्रकार सर्वत्र वर्णन किया गया है, उससे ज्ञान

पड़ता है, कि शूरसेन मथुरा प्रदेशके निकटवर्ती कोई स्थान हो मनुका कहा हुआ मत्स्यदेश है।

वास्तविक मथुरा जिलेके पश्चिमांशमें एव' जो विस्तृत भाग एक समय कुशक्षेत्रके नामसे विख्यात था उसके दक्षिण राजपुत्रानेके अन्तर्गत वर्तमान जयपुर राज्यके बीच वैराट और माचाड़ी नामक दो प्राचीन स्थान अभी भी विद्यमान हैं। ये दोनों स्थान प्राचीन विराट राज्य और मत्स्य देशके नामोंकी रक्षा कर रहे हैं। विराट शहर दिल्लीसे १०५ मील दक्षिण पश्चिममें एव' जयपुर राजधानीसे ४१ मील उत्तर, रक्तवर्ण शैल-परिवेष्टित गोलकाकार उपत्यकाकाके बीचमें अवस्थित है। यह वैराट उपत्यका पूर्व-पश्चिममें ४से ५ मील लम्बी एव' उत्तर-दक्षिणमें ३से ४ मील चौड़ी है। इसके पूर्वांशके अन्तर्की अधिष्यतामें विस्तीर्ण ध्वंसावशेषके मध्य वैराट शहर है। शहरके विछले भागमें वीजक पहाड़ है। एक छोटी स्त्रोतस्वतीके किनारेसे उत्तर पश्चिममें जा कर उपत्यकाका प्रधान प्रवेश पथ मिलता है। यह स्त्रोतस्वती चाणर्मगाकी एक शाखा है।

उक्त शहरकी लम्बाई चौड़ाई आध मील एव' घेरा प्रायः ढाई मील है। वर्तमान वैराट शहर उक्त भूभागके सिर्फ पक्कचतुर्थांश स्थानमें फैला हुआ है। उसके चारों ओर 'हृषिक्षेत्र' है, उसके मध्य कई स्थानोंमें प्राचीन मृगमयपात एव' तद्विही खाने' हैं। पहले यहाँ जो तांबा पाया जाता था, उसका यथेष्ट परिचय मिलता है। प्राचीन वैराट नगर सैकड़ों वर्ष तक परित्यक्त रहा। तीन सौ वर्ष हुए, यहाँ फिरसे लोगोंका वास हो गया है। एक समय यहाँके तद्विही खान भारतमें प्रसिद्ध थी। इसीसे आईन-ए-अकबरीमें विराटका नाम पाया जाता है।

प्राचीन वैराटका पूर्वांश 'भीमजीका ग्राम' कहलाता है। इसके पास ही भीमजीका डोंगर या भीमजीकी गुफा नामक एक पहाड़ है। इसकी चोटीके अधिवासा भीमपदको दिखलाते हैं।

वैराटसे ३२ मील पूर्वांश एव' मथुरासे प्रायः ६४ मील पश्चिम माचाड़ी नामक एक प्राचीन ग्राम है। कुछ लोग अनुमान करते हैं, कि मत्स्यदेश ही अपभ्रंशमें

माचारीके नामसे विख्यात हुआ है। यहाँ भी बहुतसा प्राचीन कीर्तियोंका निदर्शन विद्यमान है। माचारीसे वैराट जानेके रास्तेमें कुशलगढ़ पड़ता है। महाभारतमें मत्स्यके समीप ही कुशल्य नामक जनपदका उल्लेख है। कुशल्य और कुशलगढ़के नाममें परस्पर कैसा सम्बन्ध है ?

चीन परिव्राजक यूएनचुयंग ईसाई ७वीं शताब्दीमें यहाँ आये थे। उन्होंने जो वो-लि-घे-तो लेखा पारिषात नामक जनपदका उल्लेख किया है, उसे ही वर्तमान प्रतत्तस्वविद्भिने प्राचीन विराट या मत्स्यदेश स्थिर किया है। चीन परिव्राजकके समय विराट वैश्य जातीय राजाके अधिकारमें था। यहाँके लोगोंको घोरता तथा रण-निपुणताका परिचय चीन परिव्राजक भी दे गये हैं। मनुस्मृतिमें भी लिखा है, कि कुशक्षेत्र मत्स्यादि देगके लोग भा रणक्षेत्रमें अग्रगामी हो कर युद्ध करते थे।

चीन परिव्राजकके आगमनकालमें यहाँ एक हजार घर ब्राह्मणोंका वास था और १२ देवमन्दिर थे। इनके अतिरिक्त ८ बौद्ध 'संघाराम और प्रायः ५ हजार बौद्ध गृहस्थोंका वास था। कनिंङम'अनुमान करते हैं, कि चीन-परिव्राजकके समय यहाँ लगभग तोस हजार लोगोंका वास था।

मुसलमानोंके इतिहाससे भी जाना जाता है, कि ४०० हिजरी अर्थात् १००६ ई०में गज़नीके सुलतान महमूदने वैराट पर आक्रमण किया था। यहाँके राजा उनको अधीनता स्वीकार करनेका वाध्य हुए। फिर ४०४ हिजरी अर्थात् १०१४ ई०में दूसरी बार यहाँ महमूदका आगमन हुआ। हिन्दुओंके साथ उनकी घमसान लड़ाई हुई। आबुलहद लिखते हैं, कि महमूदने उस नगरको विध्वंस कर डाला तथा यहाँके अधिवासी दूर दूरके देशोंमें भाग गये। फिरिस्ताके मतानुसार ४१३ हिजरी या १०२२ ई०में फीटाट (वैराट) और नारविन (नारायण) नामक पार्श्वय प्रदेशोंके अधिवासियोंको मूर्च्छापूजक जान कर उन पर शासन करने तथा उन्हें 'इस्लाम धर्म'में दोक्षित करनेके लिये मुसलमान-सेनापति अमीर अली यहाँ आये। उन्होंने शहर पर अपना अधिकार जमाया

लिया और वहाँके अधिवासियोंको घनसम्पत्ति लूट ली। उन्हें नारायणमें एक खेदो हुई लिपि मिली। उसमें लिखा था, कि नारायण-मन्दिर ज्वालोस हजार वर्ष पहले बनाया गया था। इस समयके इतिहास लेखकोंने उक्त लिपिका उल्लेख किया है। वह प्राचीन खेदित लिपि सम्राट् प्रियदर्शोंको अनुगासन कह कर प्रमाणित हुई है। इस समय वह प्राचीन अनुगासनफलक कलकत्तेकी पश्चिमाटिक सोसाइटीमें सुरक्षित है। उक्त लिपिसे जाना जाता है, कि सम्राट् प्रियदर्शोंके समयमें भी वैराटनगर समृद्धिशाली था। जो हो, राजपूतानेके वैराटके ही हम लोग आदिमत्स्य या विराट देश स्वीकार कर सकते हैं।

पूरु विराट ।

महाभारतमें कारुण्यके बाद एक मत्स्यदेशका उल्लेख है। बिहार और उड़ीसाके अन्तर्गत शाहाबाद जिला ही पहले कारुण्यदेशके नामसे प्रसिद्ध था। अतएव दूसरा मत्स्यदेश भी उक्त प्रेसिडेन्सोके अन्तर्गत है।

१२५८ सालमें प्रकाशित कालीशर्मा-विरचित "बगुड़ाका इतिहास वृत्तान्त" नामक छोटी पुस्तकके चतुर्थ अध्यायमें यह मत्स्यदेशका वृत्तान्त इस तरह लिखा है—

"मत्स्यदेशका नाम परिवर्तन हो कर इस समय यहाँ जिला संस्थापित हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर रंगपुर जिला, दक्षिण पूर्व सीमा पर बगुड़ा जिला, दक्षिण-पश्चिम सीमा पर दिनाजपुर जिला है। बगुड़ासे १८ कोसकी दूरी पर घोड़ाघाट थानासे ३ कोस दक्षिण ४५ कोस विस्तीर्ण अत्यन्त प्राचीन अरण्यानोके बीच विराट राजाकी राजधानी थी। यहाँ विराटराजाके बेटे तथा पोतेके राज्य करनेके बाद कालिके ११५३ अब्द व्यतीत होने पर जो महा जलप्लावन हुआ था, उससे विराटके वंश और कीर्ति एकदम ही ध्वंस हो गई। पीछे धीरे धीरे यह स्थान सघन जंगलमें परिणत हो गया। केवल अति उच्च मृन्मय दुर्गाका जीर्ण कलेवर इस समय भी छिन्न भिन्न हो कर बर्त्तमान है। कुछ लोगोंने मिट्टी खोदनेके समय गृह-सामग्रियां एवं सोना, चाँदी प्रभृति मूल्यवान् द्रव्य पाया है। जब इस देशके सभी लोग इस स्थानको विराटकी राजधानी कहते आ रहे हैं, जब कीचक और भीमकी कीर्त्ति इस स्थानके आस पास बर्त्तमान है और

जब भारतवर्षमें इस स्थानके अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान मत्स्यदेश नहीं कहलाता है, तब यहाँ अवश्य ही विराटकी राजधानी थी, इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं।"

उक्त इतिहास-लेखक पाण्डवोंके छत्रवेशमें विराट नगरमें आगमन, कीचक-वध, भीमकृत मामकी शोष प्रभृति कीर्त्तिका कलाप स्थापनका वर्णन करते हुए कहते हैं, "यहाँ प्रति वर्ष वैशाखके महानेमें मेला लगता था। जिस स्थान पर मेला लगता था, वह स्थान जंगलोंसे ढका था। प्रति वर्ष मेलेमें ३४ सहस्र यात्री इकट्ठे होते थे। प्रातःकालसे ले कर तृतीय प्रहर पर्यन्त मेला लगा रहता था। इस मेलेमें बाघ सामग्रियां बराबर मिलती थीं, केवल मत्स्य, घृत, हरिद्रा और काष्ठ का क्रय विक्रय नहीं होता था। यहाँ लोगोंको भोजन नहीं मिलता था इसलिये वन्य जंतुओंका भय बिल्कुल हो नहीं रहता था। इस मेलेमें एक आश्चर्याजनक घटना घटती थी। यहाँके यात्री भोजन करनेके बाद जो उच्छिष्ट पत्र या पात्र फेंक देते थे, दूसरे दिन उनका कोई चिह्न भी नहीं रहता; न जाने कौन समूचे मेलेको साफ सुथरा कर देता था।

लोग कहा करते हैं, कि देवता आ कर यह स्थान परिष्कार करते हैं। इस महारण्यके बीच रंगपुर, दिनाजपुर और बगुड़ा जिलेके साथै लोम शिकार करते आते हैं। यहाँ जिस प्रकारका बाघ है, वैसा बंगालमें और कहीं देखा नहीं जाता। जलानेकी लकड़ी (ईंधन) प्रति वर्ष रङ्गपुर, दिनाजपुर और बगुड़ा जिलेमें बिकने आती है। इस समय यहाँ कई स्थानोंमें बहुतायतसे घान पैदा होता है।"

उक्त इतिहास-लेखकने जनश्रुतिके प्रति विश्वास करते हुए जो सब अभिमत परिष्कृत किया है, उसके साथ ऐतिहासिक लोम एकता नहीं कर सकते। वरेन्द्रखंडके अन्तर्वर्त्तों सभी जनपदोंका हमने देखा है। इस विराट नामक स्थानमें महाभारतके विराट राजाकी राजधानी न होने पर भी यह अति प्राचीन जनपदका भग्नावशेष चिह्नयुक्त स्थान है, इसमें सन्देह नहीं।

वरेन्द्रखंडके मध्यस्थ उक्त विराट नामक प्राचीन जनपद बर्त्तमान रंगपुर जिलेके अन्तर्गत गोविन्द गंज नामक

पुलिश स्टेगनेसे ५ मील दूर करतोया नदीके पश्चिम तट पर अवस्थित है ।

विराटके पश्चिम-दक्षिणसे होती हुई बगुड़ा जिलेके क्षेत्रलाल या क्षेत्रनालाका सोमा आरम्भ होता है । उक्त विराट सरकार घोड़ाघाट और अलीमाम परगनेके अन्तर्गत है । विराटसे कुछ दूर सरकार घोड़ाघाटके प्राचीन जनपदका मनावशविच्छिन्न शुरु हो कर क्रमशः पश्चिम दक्षिणमें एक बहुत विस्तृत स्थानमें वर्तमान है ।

मुगल बादशाहकी अमलदरारमें घोड़ाघाटमें फौजदारा कचहरी थी । उस समय करतोया नदी विस्तोर्ण प्रवाह-शालिनी थी, इसलिये उसके तीरे पर अनेक नगर बस गये थे । मुगलोंके समय बर्द्धनकोठोके जमींदार इस अञ्चलके प्रधान जमींदार थे । मुर्शिदकुलीके शासनकालमें भी बर्द्धनकोठोके जमींदारोंका प्रभाव फैल रहा था । मुगल राजत्वकालमें भी करतोया नदीके निकटवर्ती सभी जनपद समृद्धिशाली थे, ऐसा ही विश्वास होता है । ख्रिष्टाय १०वीं शताब्दीमें ढाका नगरोंमें सुराका राजधानी स्थापित होनेके बाद घोड़ाघाटकी अवनतिका सूत्रपात हुआ । इसके बाद करतोया नदीकी धारा संशोर्ण हो जानेके कारण ये सब समृद्धिशाली जनपद धीरे धीरे जंगलमें परिणत हो गये । इस समय विराट नामक स्थानमें एक क्षमताशाली राजा या जमींदारका प्रासाद था । यहाँके सभी इष्टकरतूषोंको देखनेसे अनायास ही इसका अनुमान होता है । नगरमें कई छोटे बड़े जलाशय हैं । बगुड़ाके इतिहास-लेखकने इस स्थानको निविद्ध अरण्यानी कह कर वर्णन किया है । क्रिस्तु आश्चर्यका विषय है कि १६०७ ई०में इस विस्तोर्ण भूभागक अन्दर जंगलका चिह्न भी नहीं रहा । इस समय यहाँ जलावनका भी अभाव हो गया है, ऐसा कहनेमें भी कोई अत्युक्ति न होगी । १२८१ सालके प्रसिद्ध दुर्भिक्षके बाद क्रमशः इस प्रदेशमें बुना, संचाल तथा गारो प्रभृति असम्भ्य जातियोंने निवास करके जंगलका निर्मूल कर दिया है । ३० वर्ष पहले जिस स्थानमें बाघका शिकार किया जाता था, इस समय उस स्थानमें मनुष्योंकी घनी भावादी दृष्टिगोचर होती है ।

यहाँ जंगलादि निर्मूल हो जानेके कारण कई वर्षोंसे

एक मेला लगता है । पहले जिस समय यह स्थान निविद्ध जंगलोंसे ढका था, उस समय यहाँ प्रति रवि वारको बहुतसे यात्री भी इकट्ठे होते थे । इस समय भी रविवारको ही अधिक यात्रियोंका समागम होता है । वैशाल मासके रविवारको विराटको पुण्य भूमिमें हवि-स्थान ग्रहण करनेसे बड़ा पुण्य होता है, ऐसा ही लोगोंका विश्वास है ।

बगुड़ा जिलेके शिवगंज पुलिश स्टेगनके अन्तर्गत तथा विराटके दक्षिण कोचक नामसे जा स्थान वर्तमान है, उसमें प्राचीन कोई वस्तु उल्लेखनीय नहीं है । एक खाई कोचकके नामसे प्रसिद्ध है । दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत रानोशंकल पुलिस स्टेशन उत्तरगोगुद एवं पावना जिलेके पुलिस स्टेशन रायगंजके अन्तर्गत नोमगाछा नामक जनपद दक्षिण गोगुदके नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध है । दिनाजपुर जिलेमें अनेक बौद्ध-कीर्तियाँ हैं । जो उत्तर-गोगुदके नामसे कथित हैं, वह सम्भवतः परवर्ती बौद्धराजाओंकी दूसरी कीर्तियाँ हैं । उक्त नोमगाछा नामक स्थानमें एक बहुत बड़ा जलाशय है । उसका नाम है जयसागर । इस स्थानकी मिट्टीके नाचे कभी कभी अष्टात्रिकादिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है । एक भान मन्दिरेके द्वार पर कई एक बड़े बड़े पत्थर पड़े हैं । यह स्थान प्राचीन करतोया नदीके किनारे था । इष्ट इण्डिया कम्पनीके प्रथम समयमें नोमगाछोका जंगल अत्यन्त प्रसिद्ध था । इस स्थानके पास ही कर ही राजस्वाही जिलेका विषयात चलन-बिल आरम्भ होता है । यहाँ गा घरानेकी सुविधा रहने पर भी महाभारत-वर्णित विराटका समसामयिक स्थान मालूम नहीं पड़ता । परन्तु आदि मत्स्य या विराटके किसी राजवंश-धरने बहुत समय पहले यहाँ आ कर आधिपत्य स्थापन तथा उसके साथ साथ महाभारतीय शापयाचिका सन्निवद्ध करके इस स्थानके माहात्म्यको बढ़ानेका चेष्टा की होगी । यहाँ मिट्टी खोदनेसे एक व्यक्तिको एक पावाणमयी कालीमूर्ति और एक व्यक्तिको पीतलकी दश भुजामूर्ति प्राप्त हुई थी । इस स्थानके निकटवर्ती मघाई नगर नामक स्थानमें लक्ष्मणसेनका ताम्रनासन पाया गया है ।

लिया और वहाँके अधिवासियोंको धनमम्पत्ति लूट ली। उन्हें नारायणमें एक खोदो हुई लिपि मिली। उसमें लिखा था, कि नारायण-मन्दिर बालोस हजार वर्ष पहले बनाया गया था। इस समयके इतिहास लेखकोंने उक्त लिपिका उल्लेख किया है। वह प्राचीन खोदित लिपि सम्राट् प्रियदर्शोको अनुशासन कह कर प्रमाणित हुई है। इस समय वह प्राचीन अनुशासनफलक कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीमें सुरक्षित है। उक्त लिपिसे जाना जाता है, कि सम्राट् प्रियदर्शोके समयमें भी वैराटनगर समृद्धि-शाली था। जो हो, राजपूतानेके वैराटके ही हम लोग आदिमत्स्य या विराट देश स्वीकार कर सकते हैं।

पूर्व विराट।

महाभारतमें काश्यपके बाद एक मत्स्यदेशका उल्लेख है। विहार और उड़ीसाके अन्तर्गत शाहाबाद जिला हो पहले काश्यपदेशके नामसे प्रसिद्ध था। अतएव दूसरा मत्स्यदेश भी उक्त प्रसिद्धियोंके अन्तर्गत है।

१२५८ सालमें प्रकाशित कालोशमर्मा-विरचित "वगुड़ा-का इतिहास वृत्तान्त" नामक छोटी पुस्तकके चतुर्थ अध्यायमें नय मत्स्यदेशका वृत्तान्त इस तरह लिखा है—

"मत्स्यदेशका नाम परिवर्तन हो कर इस समय यहाँ जिला संस्थापित हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर रंगपुर जिला, दक्षिण पूर्व सीमा पर वगुड़ा जिला, दक्षिण-पश्चिम सीमा पर दिनाजपुर जिला है। वगुड़ासे १८ कोसकी दूरी पर घोड़ाघाट थानासे ३ कोस दक्षिण ४५ कोस विस्तोर्ण अत्यन्त प्राचीन अरण्यानीके बीच विराट राजाकी राजधानी थी। यहाँ विराटराजाके सेते तथा पेतके राज्य करनेके बाद कलिके ११५३ अर्द्ध व्यतीत होने पर जो महा जलप्लावन हुआ था, उससे विराटके वंश और कीर्ति एकदम ही ध्वंस हो गई। पीछे धीरे धीरे यह स्थान सघन जंगलमें परिणत हो गया। केवल अति उच्च मृन्मय दुर्गका जीर्ण कलेवर इस समय भी छिन्न भिन्न हो कर बर्चमान है। कुछ लोगोंने मिट्टी खोदनेके समय गृह-सामग्रियां एवं सोना, चाँदी प्रभृति मूल्यवान् द्रव्य पाया है। जद इस देशके सभी लोग इस स्थानको विराटकी राजधानी कहते आ रहे हैं, जय कीचक और भीमकी कीर्ति इस स्थानके आस पास बर्चमान है और

जय भारतवर्षमें इस स्थानके अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान मत्स्यदेश नहीं कहलाता है, तब यहाँ अवश्य ही विराटकी राजधानी थी, इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं।"

उक्त इतिहास-लेखक पाण्डवोंके छत्रवेशमें विराट नगरमें आगमन, कीचक-वध, भीमकृत भीमकी दोषो प्रभृति कीर्ति कराय स्थापनका वर्णन करते हुए कहते हैं, "यहाँ प्रति वर्ष वैशाखके महानेमें मेला लगता था। जिस स्थान पर मेला लगता था, वह स्थान जंगलोंसे ढका था। प्रति वर्ष मेलेमें ३४ सहस्र यात्री इकट्ठे होते थे। प्रातःकालसे ले कर तृतीय प्रहर पर्यन्त मेला लगा रहता था। इस मेलेमें ऋषि सामग्रियां बराबर मिलती थीं, केवल मत्स्य, घृत, हरिद्रा और काष्ठ का क्रय विक्रय नहीं होता था। यहाँ लोगोंकी मोड़ लगी रहती थी इसलिये घन्य जंतुओंका भय विरहूल ही नहीं रहता था। इस मेलेमें एक आश्चर्यजनक घटना घटती थी। यहाँके यात्री भोजन करनेके बाद जो उच्छिष्ट पत्र या पात्र फेंक देने थे, दूसरे दिन उनका कोई चिह्न भी नहीं रहता, न जाने कौन समूचे मेलेको साफ सुथरा कर देता था।

लोग कहा करते हैं, कि देवता आ कर यह स्थान परिकरार करते हैं। इस महारण्यके बीच रंगपुर, दिनाजपुर और वगुड़ा जिलेके साहय लोग शिकार करने आते हैं। यहाँ जिस प्रकारका बाघ है, वीसा बंगालमें और कहीं देला नहीं जाता। जलानेकी लकड़ी (ईंधन) प्रति वर्ष रङ्गपुर, दिनाजपुर और वगुड़ा जिलेमें शिकने आती है। इस समय यहाँ कई स्थानोंमें बहुतायतसे धान पैदा होता है।"

उक्त इतिहास-लेखकने जनश्रुतिके प्रति विश्वास करते हुए जो सब अभिमत परिष्कृत किया है, उसके साथ ऐतिहासिक लोग एकता नहीं कर सकते। चरेन्द्रखंडके अन्तर्गत सभी जनपदोंका हमने देला है। इस विराट नामक स्थानमें महाभारतके विराट राजकी राजधानी न होने पर भी यह अति प्राचीन जनपदका भग्नावशेष चिह्नयुक्त स्थान है, इसमें सन्देह नहीं।

चरेन्द्रखंडके मध्यस्थ उक्त विराट नामक प्राचीन जनपद बर्चमान रंगपुर जिलेके अन्तर्गत गोविन्द गंज नामक

पुलिश स्टेशनसे ५ मील दूर करतोया नदीके पश्चिम तट पर अवस्थित है।

विराटके पश्चिम-दक्षिणसे होतो हुई बगुड़ा जिलेके क्षेत्रलाल या क्षेत्रनालाका सोमा आरम्भ होता है। उक्त विराट सरकार घोड़ाघाट और अलोप्राम परगनेके अन्तर्गत है। विराटसे कुछ दूर सरकार घोड़ाघाटक प्राचीन जनपदका भग्नावशेषविशु शुक हा कर क्रमशः पश्चिम दक्षिणन एक बहुत विस्तृत स्थानमें वर्तमान है।

मुगल बादशाहकी अमलदारामें घोड़ाघाटमें फौजदारा कचहरो थी। उस समय करतोया नदी विस्तोर्ण प्रमाह-शालिनी थी, इसलिये उसके तीर पर अनेक नगर बस गये थे। मुगलोंके समय वर्द्धनकोठीके जमींदार इस सञ्चयके प्रधान जमींदार थे। मुशिंदकुलीके शासनकालमें भी वर्द्धनकोठीके जमींदारोंका प्रभाव फैल रहा था। मुगल राजत्वकालमें भी करतोया नदीके निकटवर्त्तों सभी जनपद समृद्धिशाली थे, ऐसा ही विश्वास होता है। ख्रिष्टाय १०वीं शताब्दीमें ढाका नगरमें सूबाको राजधानी स्थापित होनेके बाद घोड़ाघाटकी अव्यक्तिका सुलपात हुआ। इसके बाद करतोया नदीकी धारा संकीर्ण हो जानेके कारण ये सब समृद्धशाली जनपद धीरे धीरे जंगलमें परिणत हो गये। इस समय विराट नामक स्थानमें एक क्षमताशाली राजा या जमींदारका प्रासाद था। यहाँके सभी इष्टकस्तुवीरों देखनेसे अनायास ही इसका अनुमान होता है। नगरमें कई छोटे बड़े जलाशय हैं। बगुड़ाके इतिहास-लेखकने इस स्थानको निविड़ अरण्यानी कह कर वर्णन किया है। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि १६०० ई०में इस विस्तोर्ण भूभागक अन्दर जंगलका चिह्न भी नहीं रहा। इस समय यहाँ जलाशयका भी अभाव हो गया है, ऐसा कहनेमें भी कोई अत्युक्ति न होगी। १२२१ सालके प्रसिद्ध बुर्हानके बाद क्रमशः इस प्रदेशमें बुना, संधाल तथा गारो प्रभृति असभ्य जातियोंने निवास करके जंगलको निर्मूल कर दिया है। ३० वर्ष पहले जिस स्थानमें बाघका शिकार किया जाता था, इस समय उस स्थानमें मनुष्योंकी घनी आबादी दृष्टिगोचर होती है।

यहाँ जंगलादि निर्मूल हो जानेके कारण कई वर्षों से

एक मेला लगता है। पहले जिस समय यह स्थान निविड़ जंगलोंसे ढका था, उस समय यहाँ प्रति रवि-वारको बहुतसे यात्री गो इकट्ठे होते थे। इस समय भी रविवारको ही अधिक यात्रियोंका समागम होता है। वैशाख मासके रविवारको विराटको पुण्य भूमिमें हवि-स्थान प्रदहन करनेसे बड़ा पुण्य होता है, ऐसा दो लोगों का विश्वास है।

बगुड़ा जिलेके शिखरंज पुलिश स्टेशनके अन्तर्गत तथा विराटके दक्षिण कोचक नामसे जा स्थान वर्त्तमान है, उसमें प्राचीन कोई वस्तु उल्लेखनीय नहीं है। एक खाई कोचकके नामसे प्रसिद्ध है। दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत रानोशंकरल पुलिस स्टेशन उत्तरगोष्ट्र एवं पावना जिलेके पुलिस स्टेशन रावगंजके अन्तर्गत नोमगाछी नामक जनपद दक्षिण गोष्ट्रके नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध है। दिनाजपुर जिलेमें अनेक बौद्ध-कीर्तियाँ हैं। जो उत्तर-गोष्ट्रके नामसे कथित हैं, यह सम्भवतः परवर्त्तों बौद्धराजाओंको दूसरी कीर्ति है। उक्त नोमगाछी नामक स्थानमें एक बहुत बड़ा जलाशय है। उसका नाम है जयसागर। इस स्थानकी मिट्टीके नांचे कभी कभी अट्टाडिकादिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। एक मन्न मन्दिरके द्वार पर कई एक बड़े बड़े पत्थर पड़े हैं। यह स्थान प्राचीन करतोया नदीके किनारे था। इष्ट इण्डिया कंपनीके प्रथम समयमें नोमगाछीका जंगल अत्यन्त प्रसिद्ध था। इस स्थानके पास हो कर ही राजसाही जिलेका विद्ययात चलन-बिल आरम्भ होता है। यहाँ गो चरानेकी सुविधा रहने पर भी महाभारत-वर्णित विराटका समसामयिक स्थान मालूम नहीं पड़ता। परन्तु आदि मत्स्य या विराटके किसी राजवंश-धरने बहुत समय पहले यहाँ आ कर आधिपत्य स्थापन तथा उसके साथ साथ महाभारतीय आधिपत्यका सन्निवद्ध करके इस स्थानके माहात्म्य को बढ़ानेकी चेष्टा की होगी। यहाँ मिट्टी खोदनेसे एक व्यक्तिको एक पाषाणमयी कालीमूर्ति और एक व्यक्तिको पीतलकी दश भुजामूर्ति प्राप्त हुई थी। इस स्थानके निकटवर्त्तों मघाई नगर नामक स्थानमें लक्ष्मणसेनका ताम्रशासन पाया गया है।

वारेन्द्राण्डमें बौद्धके प्रभावकालकी कीर्तियां वर्त्तमान हैं। उसके बाद हिन्दूराजत्व-कालमें भी अनेक कीर्तियां स्थापित हुईं। उन सब कीर्तियोंका क्षीण स्मृतिके निरूट महाभारतीय आख्यानमें जड़ित होना कोई विचित्रता नहीं। षण्णिक आधुनिक बौद्ध तथा हिन्दूराजाओंके इतिहास संकलनकी जैसी स्फूटा देवी जाती है, पहले वैनी नहीं थी, मुसलमानों शासनमें सभी अपना अपनी चिन्तामें व्यस्त थे। बौद्ध तथा हिन्दू राजाओंके किसी कीर्त्तिकापना उद्वेग इस देशके शास्त्रोंमें नहीं किया गया था। सुतरां महाभारतादिका पाठ सुन कर परवर्त्तों समयमें जो कुछ ऐश्वर्यमूठक थे, वे ही पौराणिक आख्यायिकाओंमें जोड़ दिये जायेंगे, यह विचित नहीं। जो प्रगस्त ऊंचा राजपथ भोमका बांध कढ़ कर उल्लिखित है यह कैरार्त्ताराज भोम द्वारा ही बनाया गया है, ऐसा अनुमान होता। इस प्रदेशमें रानी सत्यवती और रानी भवानोके दो बांध हैं। कोई कोई निम्नभूमि भरी जा कर तीन ऊंचे टीलोंमें परिणत हो गई है।

वाणशोधो नामक स्थान षण्डुड़ा शहरसे तीन कोस उत्तर है। यहाँ वाण राजाका राजमहल था एवं श्रीकृष्णने यहाँ हा उपाका हरण किया था, ऐसी किम्बदन्ती चली आती है। किन्तु यह स्थान वास्तवमें वाण राजाकी राजधानी नहीं है। प्राममें वायन शोधो थी एवं स्थानीय भाषामें वायनको वाण उच्चारण करनेके कारण वाण-दिग्घो नामकी उत्पत्ति हुई है।

वरेन्द्राण्डमें विराटकी राजधानी थी तथा पाँचों पाण्डवोंने इस देशमें आ कर इसे पवित्र किया था, ऐसा कह कर वारेन्द्रनासी अपनेको धन्य मानते हैं। लघुभारत-कारने संस्कृत भाषामें स्थानीय 'किम्बदन्तीका अथलम्बन करके इस स्थानकी विराटकी राजधानी रूपमें वर्णन किया है। किन्तु यह स्थान आदि विराट या पञ्च पाण्डवका अज्ञातवासस्थान नहीं है, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

षण्डुड़ासे, १२ कोस उत्तर-पश्चिम तथा विराट नगरसे ४ कोस पूर्व-दक्षिण-पानोत्तरका बाजारसे एक विराट-... एक प्राचीन कूपाकार-खन्दक है, लोग उसे भोमकी कीर्त्ति इस... कहा जाता है, कि जिस

समय पञ्चपाण्डव अज्ञातवासके समय विराटके राज-भवनमें वास करते थे, उसी समय मदावलो अर्जुनने इस कूपाकी प्रतिष्ठा की थी। राजपूतानेके विराटके निरूट भो वाणगंगा प्रवाहित है; सम्भवतः उसीकी स्मृति स्थिर रखनेके लिये भोगव्रती गंगाकी सृष्टि हुई होगी। फलतः जोध और अमृत नामक कूपा वरेन्द्राण्डके अनेक प्राचीन स्थानोंमें वर्त्तमान थे। दक्षिण गोमूठ प्रभृति स्थानोंमें अर्जुनके अन्न शस्त्र रखनेका स्थान शमोदृष्ट भी प्रदर्शित होता है। राजशाही विभागके जो सब स्थान वारेन्द्रके नामसे विख्यात हैं एवं जिन सब स्थानोंमें है। ईमानिक धानके सिवाय और किसी प्रकारका अनाज पैदा नहीं होता; उन सब स्थानोंके अधिवासो मकरसंक्रान्तिके बाद नो जातिके गलेका ग्रन्थन खोल देते हैं। विराट राज्यमें गो बांधी नहीं जाती, ऐसी कहावत है।

मैदिनोपुर जिलेके गडवेता नामक स्थानमें भी यहाँके अधिवासो विराटकी कीर्त्तियां दिखाते हैं। यहाँ एक किम्बदन्ती है, कि-गडवेताके पास ही दक्षिण गोमूठ था। जिस स्थान पर कोचक तारा गया था, लोग यह स्थान भी दिखाते हैं।

दक्षिण विराट।

इनके अतिरिक्त उड़ोसाके अन्तर्गत मयूरभंज राज्यके कई स्थानोंमें विराट राजाओंको विराट कीर्त्तियोंके निर्दर्शन वर्त्तमान हैं। पूर्वमें कोईसारी गढ़, पश्चिममें पुड़ाडिहा, उत्तरमें तालडिहा एवं दक्षिणमें कपोतीपादा, इनके बीच प्रायः १२० वर्गमील विस्तृत भूमिकेन्द्रमें विराट राजाओंकी कीर्त्तियां दृष्टिगोचर हाती हैं तथा नाना प्रकारकी किम्बदन्ती सुनी जाती है। यहाँ संक्षेपमें उसका वर्णन किया जाता है—

मयूरभंजकी राजधानी वारिपदासे प्रायः २८ मील दक्षिण-पश्चिम कोईसारी प्राम है। यह प्राम एक समय विराटपुर कहलाता था। यहाँ एक, समय विराट राजाओंकी राजधानी थी। उक्त राजधानीका ध्वंसशेष इस समय 'कोईसारीगढ़' नामसे प्रसिद्ध है। इस गढ़के उत्तर तथा पूर्वमें देव नदी, दक्षिण-पूर्वमें शोण नदी, सामनेमें इन दोनों नदियोंका सङ्गम एवं पश्चिममें गढ़-

लाई है। इस स्थानको देखनेसे ही राजधानीका उप-युक्त स्थान मालूम पड़ेगा। उस घृहत् गढ़के ध्वंसावशेषके मध्य कचहरो, राजमयन तथा गिव और कनकदुर्गाके मन्दिरका ध्वंसावशेष इस समय भी लोगोंको दिखाया जाता है। राजा यदुनाथभंजके समय कोईसारी गढ़के अधिपति सर्वेश्वर मान्याता भंजाधिपसे पराजित हुए थे एवं भंजाधिपतिके आक्रमणसे कोईसारी गढ़ विध्वस्त हुआ; उसी समयसे यहाँके प्राचीन राजवंशका कीर्ति गौरव विलुप्त हो गया है। राजवंशियोंमें किसीने कीर्तोपादानं तथा किसीने नीलगिरिमें आश्रय ग्रहण किया। इस समय वैगटराजवंशीय दो बाबू घराने कोईसारी गढ़में वास करते हैं। इन लोगोंका अवस्था बड़ो शोचनीय हो रही है। ये लोग अपनेको भुजंग क्षत्रिय बताते हैं।

कोईसारी प्रममें उक्त राजवंशीय एक अत्यन्त घृष्ट कुछ दिन हुए जोवित थे। उनके कहनेसे मालूम हुआ है, कि जेठे ननु शाहका वंश कोईसारोमें, ममलैका वंश नीलगिरिमें एवं छोट्टे कुनगाहाका वंश कैतोपादानं राज्य करते थे। घसन्त वैराटके समय इस तरह राज्यका विभाग हुआ। उसके पहले कोईसारी वा वैराटपुरसे ले कर मोलगढ़ वर्तमान नीलगिरि पट्टांत देश एक वैराट नृपतिके शासनाधीन था। घसन्त वैराट प्रतिष्ठित बुवाई चण्डोकी पाषाणमयी मूर्ति नीलगिरि राज्यकी प्राचीन राजवंशी सुजनागढ़में आज भी वर्तमान है। कोईसारीकी कनकदुर्गा राजा यदुन थ भंजके समय धारिपदामें लाई गई। इस समय कोईसारीगढ़के ध्वंसावशेषके मध्य भन्न मायूरी मूर्ति विद्यमान है। उस भन्नमूर्तिमें केवल मायूरीदेवोके दो पाँच एवं उनके वाहन मयूकका मुखाग्र दृष्टिगोचर होता है। गढ़के बाहर प्रेमालयनरत चतुर्भुज महादेव तथा चतुर्भुजा गौरीकी सुवृहत् प्रस्तर मूर्ति रखी है एवं उनके पासमें ही वृक्षके नीचे एक चतुर्भुजा अपूर्व देवोमूर्ति है। देवीका निर्मांश सर्पा-

कृति एवं उपरांश नागकन्याके समान बहुरत्नालंकृता हैं। पहले देखनेसे ही यह नागकन्याकी मूर्ति मालूम पड़ती है, किन्तु नागकन्या द्विभुजा होती है और ये चतुर्भुजा हैं। स्थानीय लोग इन्हें एक पाँचवाला भैरव कहते हैं। किसी धूर्तने इन देवोमूर्तिके महादेवका भैरव प्रमाणित करनेके लिये उसके दोनों स्तनोंका बहुत कुछ तराश कर समतल बना दिया है, किन्तु तो भी उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सका। सुप्रसिद्ध प्रोक ऐतिहासिक दिवोद्वारस ईस्वी सन्में पाँच सौ वर्ष पहले लिख गये हैं, कि मध्य पश्चिमाके स्कोदिय लोग 'वह्ला', (इला) नामक एक देवी मूर्तिको पूजा करते हैं। इसी देवीका निर्मांश सर्पाकृति एवं उपरांश साधारण नारीके समान है। शक लोगोंकी अपास्य यद्वा प्राचीन देवी क्या यहाँ 'एक पाद भैरव'के नामसे विख्यात होती है? उक्त भुजङ्गवंशीय वृद्धके मुखसे और भी सुना गया, कि उक्त दोनों देवीकी मूर्तियाँ कोईसारी गढ़ तैयार होनेके बहुत पहले की हैं। ननुगाहके वंशधरने जिस समय यहाँ आ कर दुर्ग तैयार करनेके लिये मिट्टी खोदी थी, उसी समय मिट्टीके नीचेसे उक्त दोनों मूर्तियाँ बाहर हुई थीं। सुतरां ये दोनों मूर्तियाँ सहस्रों वर्ष पहलेकी थीं मालूम पड़ती हैं। इंसोसन्के दो सौ वर्ष पहलेके शक लोगोंके समयकी आदिरसघटिन जिस प्रकारकी मूर्त्त मथुरासे आविष्कृत हुई है, यहाँकी हरगौरी मूर्त्त भी उसी आकारकी एवं उसी समयकी मालूम पड़ती है। उक्त दोनों मूर्तियाँ शक वंशियोंके शासनकालमें किसी शक राजाके द्वारा बनाई गई होंगी। कोईसारीप्रामके बाहर एक बड़े पीपलवृक्षके नीचे एक प्राचीन कमानके पास गिर पर सर्पलज्जामिता एक द्विभुजा देवीकी मूर्त्त है। ये जनसाधारण उन्हें 'कोटासनो' कहते हैं। ये भुजङ्ग राजवंशकी अधिष्ठात्री देवी थीं। जहाँ देवीकी मूर्त्त है, वहाँ पहले इंद्रोका बना एक मन्दिर था। इस समय उसके ध्वंसावशेष ही इंद्र देवीके चारों ओर पड़ी देको जातो है। जो स्थान एक समय वैराटवंशकी राजधानी था, इस समय यद्वा स्थान निर्जन हो रहा है।

पूर्वोक्त कोईसारीसे प्रायः १२ मील पश्चिम दक्षिण और धारिपदासे प्रायः ४० मील दक्षिण-पश्चिममें पाट-

* १४ चतुस्रुथके दक्षिणार्ध हाथमें उमक, उकेके वाद पाव, सामोद्ध हाथमें माला, दोनों पादमें दो छत्रियाँ, पाँके नीचे एक और एक नि और एक ओर श्यामल एवं श्यामल के पोछे कलक एक बालर मूर्ति है।

राक्षस उनको आँसोंके सामने आया। यह राक्षस इन लोगोंको देख भाषण शब्द करने लगा और सीता देवीको उठा कर ले चला। कुछ दूर जा कर उसने कहा, कि तुम लोग कौन हो? देखता हूँ, तुम्हारे कंधेमें धनुष लटक रहा है। कमरमें तलवार चमक रही है, फिर मैं तुम्हारे शिर पर जटा और शरीर पर वहल हूँ। अब तुम लोग दण्डकारण्यमें आ गये हो, तब तुम्हारी अब रक्षा कहाँ? जीवनकी आशा कहाँ? दो तापसके दूक खाके साथ घास करना किस तरह हो सकता है? तुम लोग नितांत पापी और अधर्मचारी हो तुम लोगोंका यह मुनिद्वार और आचरण घाघ्राह्य है। मैं विराध नामका राक्षस हूँ। इस अरण्यमें मुनियोंका मांस भक्षण कर आनन्दसे विचरण करता रहता हूँ। यह परमा सुन्दरी नारी मेरी भार्या बनेगी और तुम लोगोंका रक्त मैं पान करूँगा। विराधने और भी कहा, 'मैं जवनामक राक्षसका पुत्र हूँ। मेरा माताका नाम शतहृदा है। मैं तप द्वारा ब्रह्मासे अच्छेच अथेच अथय रहनेका वर पा चुका हूँ। अतः वृषा युद्धको चेष्टासे रहित हो। इस कानिनोंको परित्याग कर शीघ्र शीघ्र यहाँसे तुम लोग भाग जाओ।'

रामचन्द्र विराधको यह बात सुन कर क्रोधसे उन्मत्त हो कर उसके प्रति भीषण शरद्वष्ट करने लगे। किन्तु वह भीषणकार विराध कभी हँसता कभी जंभाई करता वहाँ खड़ा रहा। रामचन्द्रके वाण उसके शरीरसे बाहर निकल कर जमीन पर गिरने लगे। इस तरह घोरतर युद्ध होने लगा, किन्तु ब्रह्माके वरसे विराधको कुछ भी कष्ट न पहुँचा। वह बलपूर्वक लड़कोंकी तरह रामलक्ष्मण दोनोंको उठा कर अपने कंधे पर रख कर वन जाने लगा और सीतादेवीको छोड़ दिया।

अब विराध इन दोनोंको हरण कर वनको ले चला तब सीतादेवी विलाप कर कहने लगे—हे विराध! तुम इन लोगोंकी छोड़ दो। इनके बदलेमें मुझको ही हरण करो। मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। सीताका यह विलाप सुन रामलक्ष्मणका बड़ा क्रोध हुआ और वे विराधको मारनेमें सचेष्ट हुए। उस समय रामने जारोंसे उस राक्षसकी दक्षिणः भुजा और लक्ष्मणने वाम भुजा तोड़ डाली। उस समय राक्षस अवसन ही मूर्च्छित ही

कर गिर पड़ा। रामलक्ष्मण उसको मार डालनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु वह किसी तरह न मरा।

तब रामने राक्षसका अवधर समक लक्ष्मणसे कहा—इस राक्षसने पेला तपस्या की है जिससे यह युद्धमें न मारा जायगा। अंतव्य हम लोगइसे जमोतमें गाड़ दें। मैं इसकी मरदन दवाता हूँ; तुम गड़ुडा ती गार करो। यह कह कर राम उसको गदन पैरले दावे खड़े हुए और लक्ष्मण गड़ुडा खोदने लगे।

विराध उस समय रामचन्द्रसे कहने लगा—पहले मैं आपके अज्ञानवश पदचान न सका। अब मैं समक गया, कि आप दशरथके पुत्र रामचन्द्र हैं। यह सीमाभ्यवृत्तो कामिना सीता और यह लक्ष्मण हैं। अनिशापवश मैंने यह भयङ्कर राक्षसवृद्ध पाई है। पहले मैं गन्धर्व था। मेरा नाम तुम्बुहू है। कुचेरने मुझे शाप दिया था; किन्तु मैंने उनसे शापमोचनको प्रार्थना की। इस पर उन्होंने कहा, कि दशरथपुत्र रामचन्द्रके युद्धमें मारने पर तुम पुनः गन्धर्वका शरीर पाओगे और इस घाममें आओगे। रम्भाके प्रति आसक्त रह कर बहुत दिनों तक उनकी सेवामें न पहुँचना मेरा अपराध था। अब आपकी कृपासे इस अभिशापसे मुक्त हो कर मैं स्वदेश गानन करूँगा। आप मुझको गड़ुडेमें फेंक कर मार डालिये। शत्रु द्वारा मेरी मृत्यु न होगी। आपका मङ्गल हो।

इसके बाद रामलक्ष्मणने बड़े आनन्दके साथ उसको उठा कर गड़ुडेमें पटक दिया। गिरते ही भीषण ध्वनि कर विराधके प्राण निकल गये। मृत्युके बाद जमीनमें गाड़ा जाना राक्षसोंका धर्म है। मृत्युके बाद जो राक्षस जमोतमें गाड़े जाते हैं, वे सनातनलोक पाते हैं। (रामायण, अरण्यकाण्ड, १-५ सं०)

२ अपकार, पीड़ा, व्यथा, पीड़न।

विराधन (सं० क्री०) विराध-स्तुति। १ अपकार करना, हानि करना। २ पीड़ित करना, सताना।

विराधान (सं० क्लो०) पीड़ा।

विराम (सं० पु०) विराम घञ्। १ शेष, निवृत्ति। पर्याय—अवसान, साति, मध्य। २ किसी क्रियाकी व्यापारका कुछ देरके लिये चंद्र हीना, रुकना या धमना। ३ चलनेकी पकापट दूर करनेके लिये रास्तेमें ठहरना,

सुस्ताना । ४ वाचपके अन्तर्गत यह स्थान जहाँ बोलते समय उठरना पड़ता है । ४ छन्दके चरणमें यह स्थान जहाँ पढ़ने समय कुछ उठरना पड़े, यति । ५ व्याकरणके मतसे परवर्णनका अभाव । पाणिनिके मतमें विराम कहने पर परवर्णनका अभाव (अर्थात् पोछे कोई वर्ण नहीं है ऐसा) समझा जायेगा ।

विरामता (सं० खी०) विरामस्य भाव, तल-टाप् ।
विरामका भाव या धर्म, विरति ।

विरामब्रह्म (सं० पु०) सङ्गीतमें ब्रह्मतालके चार भेदोंमेंसे एक भेद ।

विराल (सं० पु०) विडाल, विली ।

विराव (सं० पु०) वि-रु-घञ् । १ शब्द, कलरव, बोलो ।
२ हल्ला गुल्ला, शोरगुल । (त्रि०) विगतः रावो यस्य ।
३ रवहोन, शम्भुरहित ।

विराविणी (सं० त्रि०) १ शब्द करनेवाली । २ रेनेवाली, चिह्नानेवाली । (खी०) ३ भाङ्गू ।

विराविन् (सं० त्रि०) विरावो विद्यतेऽस्येति इन् ।
१ शब्दकारी, बोलनेवाला । २ शब्दविशिष्ट, रेनेवाला, चिल्लानेवाला । (पु०) ३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम ।
(भारत आदिप०)

विरावी (सं० त्रि०) विराविन् वेषो ।

विरापद् (सं० पु०) यमलोक । (सूक् १३१६)

विरापाद् (सं० पु०) यमलोक ।

विरिक (सं० त्रि०) वि-रिच्-क्त । १ विरेचनविशिष्ट, जिसे विरेचन दिया गया हो । २ जिसका पेट छूटा हो, जिसे दस्त आता हो ।

विरिञ्च (सं० पु०) १ ब्रह्मा । (भागवत ८।१।३६) २ विष्णु ।
३ शिव ।

विरिञ्चता (सं० खी०) ब्रह्माका कार्य, ब्रह्मत्व ।

विरिञ्चन (सं० पु०) ब्रह्मा । (हेम)

विरिञ्चि (सं० पु०) १ ब्रह्मा । (अमर) २ विष्णु । (हरिवंश)
३ शिव । (शब्दर०) ४ एक प्राचीन कवि ।

विरिञ्चिक (सं० खी०) ज्योतिषिक चक्रभेद । फलित ज्योतिषमें इसका निर्देश यों है—

विरिञ्चिक

जन्म	कृत्तिका	सम्पत्	विपद्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मित्र	अतिमित्र
उत्तरक	रेहिणी	इस्ता	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्या	अश्लेषा	मघा	पूर्वाफल्गुनी
उत्तरापाद्	ध्रुवणा	ध्रुवणा	चित्रा	स्वाति	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूला	पूर्वाषाढा
			घनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्र	उत्तरभाद्र	रेवती	जश्विनी	भरणी

उक्त चक्रमें निर्देश किया जाता है, कि कृत्तिका, उत्तर-फल्गुनी और उत्तरापादाकी जन्मसंज्ञा रेहिणी, इस्ता और ध्रुवणाकी सम्पद्; मृगशिरा, चित्रा और घनिष्ठाकी विपद्; आर्द्रा, स्वाति, और शतभिषाकी क्षेम; पुनर्वसु, विशाखा और पूर्वाभाद्रकी प्रत्यरि; पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपदकी साधक; अश्लेषा, ज्येष्ठा, और रेवतीको वध; मघा, मूला और जश्विनीको मित्र; पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा और भरणीकी अतिमित्र संज्ञा होती है । इस जन्म संज्ञक नक्षत्रलयमें शनि, क्षेम संज्ञक नक्षत्रलयमें मङ्गल और राहु तथा मित्रातिमित्रपट्टकमें रवि अवस्थित रहने पर जीवका वध और यन्त्रन हो सकता है । यदि जन्म संज्ञक तीन नक्षत्रोंमें गृहस्पति तथा क्षेम संज्ञक तीन नक्षत्रोंमें शुक्र और बुध तथा मित्र और अतिमित्र ये तीन और तीन छामें चन्द्रमाके रहने पर जीवकी मर्त्यता लाभ तथा जय और सुखभाग होता है । यदि विपद्, प्रत्यरि और वध इन तीन संज्ञाविशिष्ट नौ नक्षत्रोंमें

रोग उत्पन्न होता है तथा ये नक्षत्र शनि, रवि, मङ्गल आदि क्रूर-ग्रह द्वारा विद्ध होते हैं। ऐसा होने पर प्राणी चिररोगी या मृत्युमुखमें पतित होगा। फिर अगर साधारणतः जन्म संज्ञक तीन नक्षत्रों में ये सब क्रूर ग्रह अवस्थित हों तो मृत्यु, शुभ-ग्रहों के पड़नेसे जयलाम होता तथा शुभ और क्रूर इन दोनों ग्रहों के अवस्थानसे मिश्र अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों फल होते हैं।

(नरपतिजयचर्चा)

विरिञ्चनाथ—कुछ काव्य रचयिताके नाम।

विरिञ्चिपादशुद्ध (सं० पु०) जङ्कराचार्यका एक ग्रन्थ।

विरिञ्चिपुरम्—दक्षिण-भारतके अन्तर्गत एक नगर।

विरिञ्चे श्वर—शिवलिङ्गभेद।

विरिञ्चप्र (सं० त्रि०) विरिञ्चि-यत्। १ ब्रह्मसम्बन्धोय।

(पु०) ब्रह्माका भोग। ३ ब्रह्मलोक।

विरिञ्च (सं० पु०) स्वर।

विरुचमत् (सं० त्रि०) १ उड्डवल, दीप्तिविशिष्ट। २ विरोचनवत्। (शुक् १०।२।४ सायण)

विरुज् (सं० खी०) विशिष्ट रोग। (मागवत ६।१।६।२६)

विरुज (सं० त्रि०) १ रोगशून्य। २ रोगी।

विरुत (सं० त्रि०) १ कृजिन, रव युक्त, अल्पक शब्दयुक्त।

(छी०) २ रव।

विरुद (सं० छी०) १ प्रशस्ति, यशकीर्त्तन। विरुद दो प्रकारका है—वाशिक और कम्पित। पूर्वाचार्य कह गये हैं, कि यहाँ भी संयुक्त नियम रहेगा। विरुदमें आठ या सोलह कलिका रहती हैं। किन्तु विरुदवर्णना-कालमें साधारणतः दशसे अधिक कलिका देनी नहीं होती। इसी प्रकार कलिकामें भी भेद है। कवियोंने गुणोत्कर्षार्थ वर्णनको विरुद कहा है, विरुदके अन्तमें घोर और घोरार्थ शब्द रहेंगे। २ यश या प्रशंसास्वरूप उपाधि जो राजा लोग प्राचीन कालमें धारण करते थे। जैसे—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। इसमें चन्द्रगुप्त तो नाम है और विक्रमादित्य विरुद है। ३ यश, कीर्त्ति। ४ रघु-देवकृत ग्रन्थभेद।

विरुदपति—मन्दाज प्रदेशके तिरुनेवल्ली जिलेके अन्तर्गत सातुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ६° ३५' उ० तथा देशा० ७८° १' पू०के मध्य विस्तृत है। यहाँ दक्षिण

भारतीय रेलवेका एक स्टेशन है। इस नगरमें तरह तरह के द्रव्योंका वाणिज्य चलता है।

विरुदावली (सं० खी०) १ विरुदानामावली। २ किसीके गुण प्रताप पराक्रम आदिका सविस्तर कथन, यशकीर्त्तन, प्रशंसा।

विरुद (सं० त्रि०) विरुध-क। १ विरोधविशिष्ट।

“विरुद धर्मसमवाये भूयवां स्यात् सधर्मकत्वं॥”

(जैमिनिस्मृ)

विरुद धर्मका समवाय होने पर बाहुल्यका सधर्म-करव होता रहता है अर्थात् तिलराशियोंमें कुछ सरसों है, यहाँ तिल और सरसों विरुद है और इनका समवाय भी हुआ है। किन्तु ऐसा होने पर भी बहुत तिलके सधर्मकत्वसे यह तिलके नामसे ही अभिहित होता है। सरसों रहने पर भी उसका कुछ उल्लेख नहीं हुआ। इस तरह विरुद धर्मके समवायसे बाहुल्यका ही प्राधान्य होता है, अल्पका नहीं।

२ दशम मनु ब्रह्मसावर्णिके समयका देवताभेद। (छी०) ३ चरकके मतसे चिचाराङ्गद्वीपविशेष। जो दृष्टान्त और सिद्धान्त द्वारा विरुद-सा मालूम हो, उसका नाम विरुद है।

४ विरोधयुक्त हेतुवाभासभेद। अनेकांत, विरुद, असिद्ध, प्रतिपक्षित और कालात्ययोपार्थिव ये पांच प्रकारके हेतुवाभास हैं। जो हेतुवाभास साध्यविशिष्टमें अवस्थित नहीं, उसको विरुद कहते हैं।

५ देश, काल, प्रकृति और संयोग विपरीत है। जो द्रव्य, जिस देशके जिस समयके और जिस प्रकृतिकी विपरीत क्रिया करता है, अथवा जो देा वस्तुएं आपसमें मिल कर कोई एक विपरीत क्रिया करती हैं, आयुर्वेदविद्द द्वारा यह विरुद नामसे अभिहित है। क्रमसे उदाहरण द्वारा विपृत्त किया जाता है—

देश विरुद—जाङ्गल, अनूप और साधारण भेदसे देश तीन प्रकारका है। जाङ्गल (अल्प जलविशिष्ट वनपर्व-तावि पूर्ण) प्रदेश चातप्रधान, अनूप (प्रचुर घृक्षादिसे परिपूर्ण, बहुदक और चातातप दुर्लभ) प्रदेश कफ-प्रधान और साधारण अर्थात् ये दोनों मिश्रित प्रदेश-चातादिके समताकारक हैं।

यदि इस ज्ञानलक्ष्मणमें वायुनाशक स्निग्ध (घृत तैलादि स्नेहाक या रसाक) द्रव्यके और दिनकी निद्रादि क्रियाका व्यवहार किया जाये, तो तद्देशविषय होगा। इस तरह अनुपदेशोंमें यदि कटु, (कड़वा, रस, स्नेह-हीन) और लघुद्रव्य तथा ध्यायाम, लंघन आदि क्रियाएं देश विषय हैं और साधारण देशमें उनकी संमिश्रण-क्रिया व्यवहृत होनेसे उसको भी यथायथ भावसे तद्देश-विषय कहा जाता है। उसके द्वारा साधारणतः अच्छी तरह समझा जा सकता है, कि उष्णप्रधान देशमें शैत्य क्रिया और शीतल द्रव्यादि तथा शीतप्रधान देशमें उष्ण द्रव्य और तत्क्रियादि तद्देशविषय हैं। अतएव इससे साधारणतः स्पष्ट मालूम हो रहा है, कि सब द्रव्य या क्रियाओंके विपरीत है अर्थात् हृता या दोषनाशक है (जैसे अग्नि जलका, शीत उष्णका, निद्रा जागरणका विपरीत है) वे ही उनके विषय हैं। यह विषय द्रव्य और क्रिया द्वारा ही चिकित्सा-कार्योंको बहुत सहायता मिलती है। क्योंकि जहां घातपित्तादिवेद्य और द्रव्यकी अधिकता प्रयुक्त रोगको उत्पत्ति होती है, तत्तत्-स्थलमें उनके विषय द्रव्य और क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करने की चाहिये।

काल विषय,—काल ऋतुसे यहां संवत्सररूप और व्याधिकी क्रिया (चिकित्सा) कालादि समझने होंगे। आयुर्वेद विशारदने संवत्सरको आदान (उत्तरायण) और विसर्ग (दक्षिणायन) इन दो कालोंमें विभक्त किया है। उन्होंने माघ माससे आरम्भ कर अत्येक दो मास ऋतु मान कर यथाक्रम शिशिर (शीत), वसन्त और प्रोष्ण इन तीन ऋतुओंमें अर्थात् माघसे आषाढ़ तक उत्तरायण या आदानकाल और इसी तरह ध्रामणसे पौष तक वर्षा, शरत् और हेमन्त इन तीन ऋतुओंमें दक्षिणायन या विसर्गकाल निर्दिष्ट किया है। नैसर्गिक नियमानुसार आदानके समय शरीरके रसक्षय होनेसे जोय कुछ नित्तेज और विसर्गके समय इस रसके परिपूर्ण होनेसे उसकी अपेक्षा त्रा-सा तेज और अवस्थाविशेषमें इसकी अत्यधिक वृद्धि होनेसे ये उषर और आमवात आदि रोगोंसे आक्रान्त होते हैं। इसलिये इन दो कालोंमें यथाक्रम उनके विषय अर्थात् आदानकालके विषय मधुराम्लरस-

त्मक तर्पण पानकादि द्रव्य और दिवानिद्रादि क्रियाये तथा विसर्गकालके विषय कटु, तिक्त और कपाय रसात्मक द्रव्य तथा ध्यायाम, लंघनादि क्रियाये व्यवहृत होती हैं। मूल बात यह है, कि शीतकालमें तात्कालिक उष्ण और उष्णघोष्य द्रव्य तथा उष्णक्रिया (अग्नितापादि) तथा गर्मके समयमें जो शीतलद्रव्य व्यवहार और शैत्य-क्रियाये की जाती है, वे कालविषय हैं।

प्रकृति विषय,—घात, पित्त और कफसेइसे लोगोंकी प्रकृति तीन तरहकी होती है अर्थात् घातप्रधान = घात-प्रकृति, पित्तप्रधान = पित्तप्रकृति, श्लेष्मप्रधान = श्लेष्म-प्रकृति। घात, पित्त और कफ ये परस्परविषय पदार्थ हैं, क्योंकि इनमें दिखाई देता है, कि जो सब द्रव्य या क्रियाये (तुल्य-गुण-हेतुक) एकका (वायु या पित्तका) वर्द्धक है, वे (विपरीत गुणहेतुक) दूसरेका (श्लेष्माका) ह्रासक होती हैं*। जैसे घातवर्द्धक, कटु, तिक्त और कपायरसात्मक द्रव्य और लंघनादि क्रियाये कफको विषय हैं। कफवर्द्धक मधुराम्ललवणरसात्मक द्रव्य और दिवानिद्रादि क्रियाये वायुको विषय हैं तथा पित्त वर्द्धक अम्ल, लवणरसात्मक द्रव्य वायुके और कटुरसात्मक द्रव्य तथा लंघनादि क्रियाये कफको विषय हैं। श्लेष्मवर्द्धक मधुर और घातवर्द्धक तिक्तरसात्मक द्रव्य पित्तके विषय हैं। अतएव तत्तत्प्रकृतिक लोगोंके सम्बन्धमें भी जो वे द्रव्य और क्रियाये परस्परविषय हैं, यह निररसे प्रमाणित करना अनावश्यक है। क्योंकि घातप्रकृतिक या घातप्रधान लोगोंकी वायुके विषय मधुराम्लरसात्मक द्रव्य और दिवानिद्रादि क्रियाको व्यवस्था करनेसे ही उनकी प्रकृतिको ह्रासता या समता होती है। सुनरां पित्त और श्लेष्मप्रकृतिके लिये भी इसी तरह समझना चाहिये।

संयोगविषय—उड़द, मधु, दुग्ध या घाग्धादिके बँकुरके साथ अनुपमांस भोजन करनेसे संयोगविषय

* "वृद्धि समानैः सर्वेषां विपरीते विषयं।"

'सर्वेषां दोषघातमलानां समानैस्तुल्यगुणद्रव्यादिभिर्वृद्धिः विपरीतैर्द्रव्यादिभिर्वर्द्धनयो वृद्धिर्विपरीत्यं भवति।'

भोजन करना होता है। मृणाल, मूलक और गुड़के साथ यह मांस संयोगविरुद्ध हो जाता है। दुग्धके साथ मछलीका भोजन और भी विरुद्ध है। सब तरहके अम्ल और अम्लफलोंका दुग्धके साथ संयोग करनेसे यह संयोग-विरुद्ध कहा जाता है उड़द, वल्ल (एक तरहका धान), मकुएक (वन मूंग), चरफ (चीना), काउन, ये सब चीजें भी दुग्धके साथ व्यवहार-विरुद्ध हैं। मूली आदि शाक भक्षणके बाद दूधका व्यवहार संयोग विरुद्ध है। सजाक और सूअरके मांसका एक साथ व्यवहार संयोग-विरुद्ध है। घृत नामक हरिण और मुर्गाका मांस दहीके साथ व्यवहार संयोग विरुद्ध है। पित्तके साथ कच्चा मांस अर्थात् पित्त गल कर कच्चे मांसके भीतर प्रवेश करने पर ये मांस संयोग-विरुद्ध हो जाते हैं, इससे ये अथ्यवहार्य हैं। उड़द और मूली-दोनों मिला कर भोजन करना निषिद्ध है। भेड़के मांस कुस्म-शाकके साथ, नया धान मृणालके साथ, बड़हर, उड़दका जूस, गुड़, दुग्ध, दधि और घृत ये सब चीजें एकत्र संयोग कर भक्षण न करना चाहिये। मट्टा, दही या तालक्षीरके साथ कैला भक्षण करनेसे संयोग विरुद्ध होता है। पोपल, गोलमिर्च, मधु और गुड़के साथ मकोय शाक संयोग-विरुद्ध है। मछलीके पात्रमें पाक या सोंठके-पात्रमें सिद्ध या अन्य किसी पाकपात्रमें सिद्ध मकोय शाक संयोग-विरुद्ध है। जिस कड़ाहीमें मछली तली गई है, उसमें पोपल और सोंठ सिद्ध करनेसे संयोग-विरुद्ध होता है। इसमें और भी व्यक्त हुआ, कि मछलीकी तरकारीमें सोंठ या पोपल नहीं मिलाना चाहिये। कालिके पात्रमें दश रात तक यदि घी रखा जाये, तो वह भी व्यवहार-विरुद्ध हो जाता है। मांस पक्षीका मांस एक लोहेके ढण्डेमें छेद कर यदि पकाया जाय, तो वह विरुद्ध होता है। कमलगुड़ी तक्रमें साधित होने पर विरुद्ध होता है। पायस, मद् और कृशर इकट्ठा होनेसे विरुद्ध होता है। घृत, मधु, घसा, तेल और जल—इनमें कोई भी दो हो या तीन समान रूपसे एकमें मिलानेसे विरुद्ध होता है। मधु और घृत असमान अंशमें एकत्र करने पर भी वहां आकाशजल अनुपानविरुद्ध है। मधु और पुष्करबीज परस्पर

परस्पर विरुद्ध हैं। पायस भोजन कर मधु आदि भक्षण करना संयोग-विरुद्ध होता है। हरा शाक सरसोंके तेलमें सिद्ध करनेसे संयोग-विरुद्ध होता है। पौधके शाकमें यदि तिल पीस कर पड़ा हुआ हो, और वह खाया जाय, तो विरुद्ध संयोग होता है। इससे अतिसार रोग हो जाता है। वारुणा मधु या कुदमाप (अर्द्धसिद्ध मूंग आदि)के साथ बगलेका मांस संयोग-विरुद्ध होता है। शूकरकी चर्बी बगलेका मांस भुन कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। इस तरह तित्तिर, मयूर, गोसाय, लाया और चातक-का मांस रेड़ीके तेलमें तल कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। कदमकी लकड़ीमें गांध कर कदमकी अग्निमें हरियाल का मांस पका कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। भस्मपांशु मिश्रित मधुयुक्त हरियालका मांस सद्यःप्राणनाशक है। संशेषमें कहने पर यह कहना होगा, जो सब खाद्य-शरीरके वातादि दोषको क्लेदयुक्त कर इधर उधर सञ्चालित करते हैं और उनको निकले नहीं देते, वे संयोग विरुद्ध हैं।

विरुद्ध भोजनजनित दोषमें वस्त्यादि (पिचकारी) अथवा इसके विरुद्ध औषध या प्रक्रियादि द्वारा प्रतिकारक चेष्टा करना उचित है। किसी स्थलमें संयोग-विरुद्ध द्रव्यके भोजनका सम्भव रहनेसे यहाँ पहलेसे ही विरुद्ध खाद्यके विपरीत गुणविशिष्ट द्रव्योंके द्वारा शरीरका इस तरह संस्कार कर रक्षाना होगा, जिससे विरुद्ध खाद्य-वस्तु खानेसे भी सहसा अनिष्ट न हो सके। (जैसे हरीतकी पित्तश्लेष्मानाशक) पित्तश्लेष्मक-मछली आदि भक्षण का सम्भव होने पर उससे पहले इस हरीतकी (हरे)का अभ्यास करनेसे उक्त मछली खानेसे होनेवाले अनिष्टका भय नहीं रहता। व्यायामशील, स्निग्ध (तैलघृतादि-का-यथायथ-मर्दन और भक्षणकारी), दीप्तान्नि, तदण-चपस्क, बलवान् व्यक्तियोंके लिये पूर्वोक्त विरुद्धान्नादिसे सहसा अपकार नहीं होता। फिर निर्य विरोधिभोजन अथवा अल्प भोजन करनेवालोंके विशेष अपकार नहीं होता। (वाग भट सू० स्था० ८८ अ०)

विरुद्धकर्मा (सं० पु०) १ विरुद्धकर्मा करनेवाला, विपरीत आचरणका मनुष्य । २ केशवके अनुसार श्लेष-अलङ्कार-

का एक भेद। इसमें एक ही क्रियाके कई परस्पर-विरुद्ध फल दिखाए जाते हैं।

विरुद्धता (सं० खी०) विरुद्धत्व, भाव, तल-टाप्।

१ विरुद्धका भाव या धर्म। २ प्रतिकूलता, विपरीतता, उलटापन।

विरुद्धमतिकारिता (सं० खी०) काव्यगत दोषभेद। यह ऐसे पद या वाक्यबंध प्रयोगसे होता है जिससे वाक्यके सम्बन्धमें विरुद्ध या अनुचित बुद्धि हो सकती है। जैसे 'भवानीश' शब्दके प्रयोगसे। 'भवानी' शब्दका अर्थ ही है 'शिव'की पत्नी। उसमें ईश लगानेसे सहसा यह ध्यान हो सकता है कि "शिवकी पत्नी" का कोई और मो पति है।

विरुद्धमतिकारित्व (सं० लि०) काव्यगत दोषभेद, विरुद्ध मतिकारितादोष। (काव्यप्र०)

विरुद्धरूपक (सं० पु०) केशवके अनुसार रूपक अलङ्कारका एक भेद। इसमें कही हुई यात विलकुल 'अन-मिल' अर्थात् असंगत या असंबन्ध-सी जान पड़ती है, पर विचार करने पर अर्थात् रूपकके दोनों पक्षोंका ध्यान करने पर अर्थ सङ्गत ठहरता है। इसमें उपमेयका कथन नहीं होता, इससे यह "रूपकतिशयोक्ति" ही है।

विरुद्ध हेतुवामास (सं० पु०) न्यायमें वह हेतुवामास जहाँ साध्यके साधक होनेके स्थान पर साध्यके अभावका साधक हेतु हो। जैसे—यह द्रव्य यहिमान है, क्योंकि वह महाहृद है। यहाँ महाहृद होना यहिके होनेका हेतु नहीं है, वरन् यहिके अभावका हेतु है।

(धीकृष्णजन्मलपट्ट)

विरुद्धार्थदोषक (सं० खी०) अलङ्कारभेद। इसमें एक ही वातमें दो परस्पर विरुद्ध क्रियाओंका एक साथ होना दिखाया जाता है। जैसे,—जलकण मिली वायु प्रीण-तापकी घटाती और विरुद्ध-तापको बढ़ाती है। यहाँ पर स्पष्ट मालूम होता है कि 'वृद्धि और ह्रास करना' इन दोनों विरुद्ध क्रियाओंका समावेश एक ही आधारसे अथवा प्रभावसे होता है। उतपत्य यहाँ पर ह्रास और वृद्धि इन परस्परविरुद्ध दोनों क्रियाओंके एक ही कर्ता या कर्ममें निहित रहने तथा उससे विशेष विधिव्रतताकी उपलब्धि होनेके कारण 'विरुद्धार्थदोषकालङ्कार' हुआ।

विरुद्धाशन (सं० खी०) विरुद्ध अशन। विरुद्ध भोजन, मछली दूध आदिका खाना। मछलीके साथ दूध खानेसे विरुद्ध भोजन होता है। ऐसा भोजन बहुत हानि-कारक माना गया है। विशेष विवरण विरुद्ध शब्दमें देखो। विरुधिर (सं० लि०) १ रक्त विशिष्ट, जिसमें खून हो। २ रक्तहीन, जिसमें खून न हो।

विरुक्ष (सं० लि०) १ अति रुक्ष, बहुत रूखा। २ रुक्षता-हीन, जो रूखा न हो।

विरुक्षण (सं० लि०) १ स्नेहवर्जितकरण, रुक्षताप्रापण। २ रस क्षरण।

विरुद्ध (सं० लि०) विशेषण रोहति विरुद्ध-क। १ जात, उत्पन्न, पैदा। २ अंकुरित, बीजसे फूटा हुआ। "विरुद्ध जानन् अंकुरितधाम्यकृतमग्नं" (माध्वनि०) ३ बद्धमूल। ४ खून जमा हुआ, खून बँटा हुआ। ४ आरोग्यविशिष्ट। विरुद्धक (सं० खी०) १ अंकुरित घान्य। (पु०) २ कुम्भाएड-राजके पुत्रभेद। (क्षत्रित्विस्तर) ३ लोकपालभेद। ४ शापयकुलोत्पन्न एक राजा। ५ राजा प्रसेनजित्के पुत्रभेद। ६ इक्ष्वाकुके पुत्रभेद।

विरुपिनी (सं० खी०) वैशाख कृष्ण एकादशी। विरूप (सं० लि०) विरुतं रूपं यस्य। १ कुरिसत, कुकूप, बदसूरत। २ परिचरित, बदला हुआ। ३ कई रंगरूपका, तरह तरहका। ४ शोभाहीन, शोभारहित। ५ सम्पूर्णमिन्न, दूसरी तरहका। ६ जो अनुरूप न हो, विरुद्ध। विरूप अर्थात् विरुद्ध इन दोनों पक्षोंमें जहाँ संघटना होती है, वहाँ विपमालङ्कार होगा। (खी०) ७ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। (पु०) ७ सुमनोराजपुत्र। (काविकपु० ६० अ०)

विरूपक (सं० लि०) विरूप-स्वार्थे कन्। विरूप देखा।

विरूपकरण (सं० खी०) विरूपस्व करणं। विरूपका करण, बदसूरत बनाना।

विरूपण (सं० खी०) विरुति करण, कुकूप बनाना।

विरूपता (सं० खी०) विरूपस्य भावः तल-टाप्। १ विरूपका भाव या धर्म। २ कुरूपता, बदसूरती। ३ अहा-पन, वेदनापन।

विरूपपरिणाम (सं० पु०) एकरूपतासे अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषतासे विशेषताकी ओर परिवर्तन। सांख्यमें परि-

भोजन करना होता है। मृणाल, मूलक और गुड़के साथ यह मांस संयोगविद्युत् हो जाता है। दुग्धके साथ मछलीका भोजन और भी विद्युत् है। सब तरहके अम्ल और अम्लफलोंका दुग्धके साथ संयोग करनेसे यह संयोग-विद्युत् कदा जाता है उड़द, बल्ल (एक तरहका धान), मकुष्टक (वन मूंग), वरफ (चीना), काउन, ये सब चीजें भी दुग्धके साथ व्यवहार-विद्युत् हैं। मूली आदि शाक भक्षणके बाद दूधका व्यवहार संयोग विद्युत् है। सजास और सूअरके मांसका एक साथ व्यवहार संयोग-विद्युत् है। पृथत नामक हरिण और मुर्गाका मांस दहीके साथ व्यवहार संयोग विद्युत् है। पित्तके साथ कच्चा मांस अर्थात् पित्त गल कर कच्चे मांसके भीतर प्रवेश करने पर ये मांस संयोग-विद्युत् हो जाते हैं, इससे ये अल्पवह्यार्थ हैं। उड़द और मूली दोनों मिला कर भोजन करना निषिद्ध है। भेड़के मांस कुल्म-शाकके साथ, नया धान मृणालके साथ, वड़हर, उड़दका जूस, गुड़, दुग्ध, दधि और घृत ये सब चीजें एकत्र संयोग कर भक्षण न करना चाहिये। मट्टा, दही या तालक्षीरके साथ केला भक्षण करनेसे संयोग-विद्युत् होता है। पीपल, गोलमिर्च, मधु और गुड़के साथ मकौय शाक संयोग-विद्युत् है। मछलीके पात्रमें पाक या सोंठके-पात्रमें मिद या अन्य किसी पाकपात्रमें सिद्ध मकौय शाक संयोग-विद्युत् है। जिस कड़ाहोंमें मछली नली गई है, उसमें पीपल और सोंठ सिद्ध करनेसे संयोग-विद्युत् होता है। इसमें और भी व्यक्त हुआ, कि मछलीकी तरकारीमें सोंठ या पीपल नहीं मिलाना चाहिये। कांसिके पात्रमें दश रात तक यदि घी रखा जाये, तो वह भी व्यवहार-विद्युत् हो जाता है। मांस पक्षीका मांस एक लोहेके ढण्डेमें छेद कर यदि पकाया जाय, तो वह विद्युत् होता है। कमलगुड़ी तक्रमें साधित होने पर विद्युत् होता है। पायस, मद् और कुशर इकट्ठा होनेसे विद्युत् होता है। घृत, मधु, घसा, तेल और जल—इनमें कोई भी दो हों या तीन समान रूपसे एकमें मिलानेसे विद्युत् होता है। मधु और घृत असमान अंशमें एकत्र करने पर भी यहां आकाशजल अनुपानविद्युत् है। मधु और पुष्करवीज परस्पर विद्युत् है। मधु, खजूरका रस और चीनोसे

प्रस्तुत मद्य परस्पर विद्युत् हैं। पायस भोजन कर मद्य आदि भक्षण करना संयोग-विद्युत् होता है। हरा शाक सरसोंके तेलमें सिद्ध करनेसे संयोग-विद्युत् होता है। पोरके शाकमें यदि तिल पीस कर पड़ा हुआ हो, और वह खाया जाय, तो विद्युत् संयोग होता है। इससे अतिसार रोग हो जाता है। वाकणों मद्य या कुलमाप (अर्द्धसिद्ध मूंग आदि)के साथ बगलेका मांस संयोग-विद्युत् होता है। शूकरको चर्वीमें बगलेका मांस भुन कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। इस तरह तित्तिर, मयूर, गोसाप, लावा और चातकका मांस रेडोंके तेलमें तल कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। कदमकी लकड़ोंमें गांध कर कदमकी अगिमें हरियाल का मांस पका कर खानेसे तुरन्त ही मृत्यु होती है। भस्मपांशु मिश्रित मधुयुक्त हरियालका मांस सद्याप्राणनाशक है। संक्षेपमें कहने पर यह कहना होगा, जो सब खाद्य शरीरके घातादि दोषके फलेद्युक्त कर इधर उधर सञ्चालित करते हैं और उनके निकले नहीं देते, वे संयोग-विद्युत् हैं।

विद्युत् भोजनजनित दोषमें वस्त्यादि (पित्तकारी) अथवा इसके विद्युत् औषध या प्रक्रियादि द्वारा प्रतिकारक चेष्टा करना उचित है। किसी स्थलमें संयोग-विद्युत् द्रव्यके भोजनका सम्भव रहनेसे यहाँ पहलेसे ही विद्युत् खाद्यके विपरीत गुणविशिष्ट द्रव्योंके द्वारा शरीरका इस तरह संस्कार कर रक्षाना होगा, जिससे विद्युत् खाद्य-वस्तु खानेसे भी सहसा अनिष्ट न हो सके। (जैसे हरीतकी पित्तश्लेष्मनाशक) पित्तश्लेष्मक मछली आदि भक्षण का सम्भव होने पर उससे पहले इस हरीतकी (हरि) का सम्पास करनेसे, उक्त मछली खानेसे होनेवाले अनिष्टका भय नहीं रहता। व्यायामशौल, स्निग्ध (तेलघृतादि) का यथायथ मर्दन और भक्षणकारी, दीप्तान्नि, तदण-वयस्क, बलवान् व्यक्तियोंके लिये पूर्वोक्त विद्युत्गानादिसे सहसा अपकार नहीं होता। फिर नित्य विरोधिभोजन अथवा अल्प भोजन करनेवालोंके विशेष अपकार नहीं होता। (वाग्भट सू० स्थान ८८०)

विद्युत्कर्म (सं० पु०) १ विद्युत्कर्म करनेवाला, विपरीत भक्षणका मनुष्य। २ केशवके अनुसार श्लेष-अन्वहार-

का एक भेद। इसमें एक ही क्रियाके कई परस्पर-विरुद्ध फल दिखाए जाते हैं।

विरुद्धता (सं० स्त्री०) विरुद्धस्य भाव, तल-टाप् ।
१ विरुद्धका भाव या धर्म । २ प्रतिकूलता, विपरीतता, उलटापन ।

विरुद्धमतिकारिता (सं० स्त्री०) काथ्यगत दोषभेद । यह ऐसे पद या वाक्यके प्रयोगसे होता है जिससे वाच्यके सम्बन्धमें विरुद्ध या अनुचित बुद्धि हो सकती है। जैसे 'भवातीश' शब्दके प्रयोगसे । 'भवानो' शब्दका अर्थ ही है 'शिव'की पत्नी । उसमें ईश लगानेसे सहसा यह ध्यान हो सकता है कि 'शिवकी पत्नी' का कोई और भी पति है ।

विरुद्धमतिकृत् (सं० लि०) काथ्यगत दोषभेद, विरुद्ध मतिकारितादोष । (काव्यप्र०)

विरुद्धरूपक (सं० पु०) केशवके अनुसार रूपक अलङ्कारका एक भेद। इसमें कही हुई बात विलकुल 'अनमिल' अर्थात् असंगत या असंबन्ध-सी जान पड़ती है, पर विचार करने पर अर्थात् रूपकके दोनों पक्षोंका ध्यान करने पर अर्थ सङ्गत ठहरता है। इसमें उपमेयका कथन नहीं होता, इससे यह "रूपकातिशयोक्ति" ही है।

विरुद्ध हेतुभास (सं० पु०) न्यायमें यह हेतुभास जहाँ साध्यके साधक होनेके स्थान पर साध्यके अभावका साधक हेतु हो। जैसे—यह द्रव्य यहिमान है, क्योंकि यह महाहृद है। यहाँ महाहृद होना यहिके होनेका हेतु नहीं है, वरन् यहिके अभावका हेतु है।

(श्रीकृष्णजन्मलघु)

विरुद्धार्थदोषक (सं० स्त्री०) अलङ्कारभेद । इसमें एक ही बातसे दो परस्पर विरुद्ध क्रियाओंका एक साथ होना दिखाया जाता है। जैसे,—जलकण मिली वायु प्रोमतापकी घटाती और विरट-तापकी बढ़ाती है। यहाँ पर स्पष्ट मालूम होता है कि 'वृद्धि और ह्रास करना' इन दोनों विरुद्ध क्रियाओंका समावेश एक ही आधारसे अथवा प्रमायसे होता है। जतएय यहाँ पर ह्रास और वृद्धि इन परस्परविरुद्ध दोनों क्रियाओंके एक ही कर्ता या कर्ममें निहित रहने तथा उससे विशेष विचित्रताकी उपलब्धि होनेके कारण 'विरुद्धार्थदोषकालङ्कार' हुआ।

विरुद्धाशन (सं० स्त्री०) विरुद्ध भोजन। विरुद्ध भोजन, मछली दूध आदिका खाना। मछलीके साथ दूध खानेसे विरुद्ध भोजन होता है। ऐसा भोजन बहुत हानिकारक माना गया है। विशेष विवरण विरुद्ध शब्दमें देखो।

विरुधिर (सं० लि०) १ एक विशिष्ट, जिसमें खून हो। २ रक्तहीन, जिसमें खून न हो।

विरुक्ष (सं० लि०) १ अति रुक्ष, बहुत रुखा। २ रुक्षताहीन, जो रुखा न हो।

विरुक्षण (सं० लि०) १ स्नेहवर्जितकरण, रुक्षताप्रापण। २ रस क्षरण।

विरुद्ध (सं० लि०) विशेषेण रोहति विरुद्ध-क । १ जात, उत्पन्न, पैदा। २ अंकुरित, बोजसे फूटा हुआ। "विरुद्ध जान्ते अंकुरितधान्यकृतमर्न" (माधवनि०) ३ बद्धमूल। ४ खून जमा हुआ, खून बँटा हुआ। ४ आरोहणविशिष्ट।

विरुद्धक (सं० स्त्री०) १ अंकुरित धान्य। (पु०) २ कुम्भाण्डराजके पुत्रभेद। (कश्चित्पिस्तर) ३ लोकपालभेद। ४ शाक्यकुलोत्पन्न एक राजा। ५ राजा प्रसेनजित्के पुत्रभेद। ६ इक्ष्वाकुके पुत्रभेद।

विरुधिनी (सं० स्त्री०) वैशाख छ्त्रण एकादशी।

विरूप (सं० लि०) विरुद्धं रूपं यस्य । १ कुरितसत, कुरूप, बदसूरत। २ परिवर्तित, बदला हुआ। ३ कई रंगरूपका, तरह तरहका। ४ शोभाहीन, शोमारहित। ५ सम्पूर्णमिन्न, दूसरी तरहका। ६ जो अनुरूप न हो, विरुद्ध। विरूप अर्थात् विरुद्ध इन दोनों पक्षोंमें जहाँ संघटना होती है, वहाँ विपमालङ्कार होगा। (स्त्री०) ७ विप्लोमूल, विपमामूल। (पु०) ७ सुमनोराजपुत्र। (कश्चित्पु० ६० म०)

विरूपक (सं० लि०) विरूप-स्वार्थं कन् । विरूप देखो।

विरूपकरण (सं० स्त्री०) विरूपस्य करणं । विरूपका करण, बदसूरत बनाना।

विरूपण (सं० स्त्री०) विरुद्धि करण, कुरूप बनाना।

विरूपता (सं० स्त्री०) विरूपस्य भावः तल-टाप् । १ विरूपका भाव या धर्म। २ कुरूपता, बदसूरती। ३ महापन, येदंगापन।

विरूपपरिणाम (सं० पु०) एकरूपतासे अनेकरूपता अर्थात् निर्बिधेयतासे विशेषताकी ओर परिवर्तन। सांघयमें परि-

णामके दो भेद कहे गये हैं—स्वरूपपरिणाम और विरूप-परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृतिसे तरह तरहके पदार्थोंका विकास होता है और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थों क्रमशः अपने रूप नष्ट करते हुए प्रकृतिमें लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टिकी ओर अग्रसर होता है और दूसरा लयकी ओर।

विरूपशक्ति (सं० पु०) १ विद्याधरभेद। (कथावर्तिका० ४६।६८) २ प्रतिद्वन्द्वी शक्ति (Counteracting forces)। जैसे,—ताड़ितकी Negative शक्ति और Positive शक्ति। वे एक दूसरेके विरोधी हैं।

विरूपशर्मन् (सं० पु०) ब्राह्मणभेद।

(कथावर्तिका० ४०।२६)

विरूपा (सं० स्त्री०) विरूप-टापू। १ दुरालभा, जवासा, धमासा। २ अतिविषा। ३ धमकी एक पत्नीका नाम। (ति०) ४ कुरूप, बदसूरत।

विरूपाक्ष (सं० पु०) विरूपे अक्षिणी यस्य सकृद्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् पच् इति पच् समासान्तः। १ शिव। २ रुद्र-भेद। (जटाधर) इनकी पुरी सुमेरुपर्वतके नैऋत कोणमें अवस्थित है।

"तथा चतुर्थे दिग्भागे नैऋताधिपतेः श्रुता।

नाम्ना ऋष्यावती नाम विरूपाक्षस्य धीमतः ॥"

(वराहपु० रुद्रगीता)

३ रावणका एक सेनानायक जिसे हनुमानने प्रमोदचन उजड़ानेके समय मारा था। ४ एक राक्षसका नाम जिसे सुग्रीवने रामरावणयुद्धमें मारा था। ५ रावणका एक मन्त्री। ६ एक दिग्गजका नाम। ७ एक नागका नाम। (ति०) ८ विरूप, बदसूरत।

विरूपाक्ष—१ एक योगाचार्य। इन्होंने ऊर्ध्वार्ध्नायसे महाभोढान्यास नामक एक ग्रन्थ लिखा है। हठदीपिकामे इनका नामोल्लेख है। २ विजयनगरके एक राजाका नाम।

विरूपाक्षदेव—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू-राजा।

विरूपाक्ष शर्मन्—तत्त्वदीपिका नाम्नी चण्डीश्लोकार्धप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता। १५३१ ई०में ग्रन्थकारने ग्रन्थ-रचना समाप्त की। आप कविकण्ठाभरण आचार्य नामसे भी परिचित थे।

विरूपाश्व (सं० पु०) राजभेद। (भारत १३ पर्व)

विरूपिका (सं० स्त्री०) विकृत रूप यस्याः कन् टाप् अत इत्वं। कुरूपा स्त्री, बदसूरत औरत।

विरूपिन् (सं० लि०) विरुद्ध रूपमस्यास्तीति विरूप-इति। १ कुरूपविशिष्ट, बदसूरत। (पु०) २ जाह्नव जन्तु, गिर गिट।

विरिक (सं० पु०) वि रिच्-घञ्। विरेचन, दस्तावर, दया, जुलाब।

विरिचक (सं० लि०) मलभेदक, दस्त लानेवाला।

विरिचन (सं० क्री०) वि-रिच् व्युट्। विरेक, जुलाब।

वैद्यकमें विरेचनके विषय पर अच्छी तरह विचार किया गया है, यहाँ पर बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है। कुपित मल सभी रोगोंका निदान है। मल कुपित हो कर नाना प्रकारका रोग उत्पन्न करता है। अतएव जिससे मल न रुके, इस ओर ध्यान रखना एकान्त कर्तव्य है। मलके रुकनेसे विरेचन औषध द्वारा उसका निःसारण करना चाहिए।

भावप्रकाशमें विरेचनविधिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

स्नेहन और खेदक्रियाके बाद घमनविधि द्वारा घमन करा कर पीछे विरेचनका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। यदि पहले घमन न करा कर विरेचनका प्रयोग किया जाये, तो क्रफ अधःपतित हो कर प्रहृणो नाडीको आच्छादन कर शरीरकी शुद्धता या प्रवाहिका रोग उत्पादन करता है, इसलिये सबसे पहले घमन कराना उचित है। अथवा पाचक औषधका प्रयोग कर आमकफका परिपाक करके भी विरेचन दिया जा सकता है।

शरत् और वसन्तकालमें देहशोधनके लिये विरेचनका प्रयोग हितकर है। प्राणनाशको आशङ्का पर अन्य समय भी विरेचनका प्रयोग किया जा सकता है। पिच्छके कुपित होनेसे तथा आमजनित रोगमें उदर और आध्मान रोगमें कोष्ठशुद्धिके लिये विरेचन प्रयोग विशेष हितकर है। लङ्घन तथा पाचन द्वारा दोषके प्रशमित होनेसे वह पुनः प्रकुपित हो सकता है, किन्तु शोधन द्वारा दोष सदाके लिये दूर हो जाता है।

बालक, युद्ध, अतिशय सिन्धु, क्षत या क्षीणरोगग्रस्त,

अपार्श्व, ध्रान्त, पिपाशार्श्व, स्थूलकाय, गर्भवती नारी, नवप्रसूतानारी, मन्दान्नियुक्त, मदातपयाक्रान्त, श्लथ-पीडित और रुक्ष इन सब व्यक्तियोंको विरेचन देना उचित नहीं है। इन सब व्यक्तियोंको विरेचन देनेसे दूसरे दूसरे उपद्रव होते हैं।

जीर्णश्वर, गरदाप, वातरोग, भगन्दर, अर्ध, पाण्डु, उदर, ग्रन्थि, हृद्रोग, अस्त्रिचि, योनिव्यापद्, प्रमेह, गुल्म, श्लोधा, विद्रधि, वमि, विस्फोट, विस्त्रिचि, कुष्ठ, कर्णरोग, नासारोग, शिरारोग, मुखरोग, गुह्यरोग, मेढररोग, श्लोधा जन्मशोथ, नेत्ररोग, कृमिरोग, अग्नि और क्षारजन्यपीडा, शूल और मूत्राघात इन सब रोगियोंके लिये विरेचन बहुत फायदामन्द है।

पित्ताधिषय व्यक्ति मृदुकोष्ठ, बहुकफयुक्त व्यक्ति मध्यकोष्ठ और वाताधिषय, व्यक्ति क्रूरकोष्ठ कहलाता है। क्रूरकोष्ठसम्पन्न व्यक्ति दुर्बल है अर्थात् थोड़े घन्तसे उनको विरेचन नहीं होता। मृदुकोष्ठ व्यक्ति मृदु विरेचक द्रव्य अल्प मात्रामें, मध्यकोष्ठ व्यक्ति मध्य विरेचक औषध मध्यमात्रामें तथा क्रूरकोष्ठ व्यक्ति तीक्ष्ण विरेचक द्रव्य अधिक मात्रामें प्रयोग करना होता है।

विरेचक औषध ये सब हैं—दाबके काढ़े और रेडोके तेलसे मृदुकोष्ठ व्यक्तिका विरेचन होता है। निसोथ, कुटज और अमलतास द्वारा मध्यकोष्ठ व्यक्तिका तथा थूहरके दूध, स्वर्णक्षीरी और जपपालसे क्रूरकोष्ठ व्यक्तिका विरेचन होता है।

जिस मात्रामें विरेचनका सेवन करनेसे ३० बार दस्त उतरें, उसे पूर्णमात्रा कहते हैं। इसमें आखिर घेगके साथ कफ निकलता है। मध्यमात्रामें २० बार तथा हीनमात्रामें १० बार मलमेद हुआ करता है।

विरेचक औषधका काथ पूर्णमात्रामें दो पल, मध्यमात्रामें एक पल और हीनमात्रामें आध पल प्रयोज्य है। विरेचक कवक, मोदक और चूर्ण मधु तथा घीके साथ घट्ट कर सेवन करना उचित है। इन तीनों प्रकारकी औषधकी पूर्णमात्रा एक पल, मध्यमात्रा आध पल तथा हीनमात्रा २ तोला है। यह मात्रा जो कही गई है, यह रोगीके बलाबल, स्वास्थ्य, अवस्था आदिका अच्छी तरह

विचार कर देनी होती है। उक्त मात्रामें प्रयोग करनेसे यदि अनिष्टकी सम्भावना देखे, तो मात्राको स्थिर करके उसका प्रयोग करना होगा। पित्तप्रकोपमें दाबके काढ़ेके साथ निसोथका चूर्ण, कफप्रकोपमें त्रिफलाके काथ और गोमूत्रके साथ त्रिकटुचूर्ण तथा वायुप्रकोपमें अमलरस अथवा जंगली जानवरके मांसके जूसके साथ निसोथ, सेन्धव और सोंठके चूर्णका प्रयोग करे। रेंडुकी तेलसे दूने त्रिफलाके काढ़े या दूधके साथ पान करनेसे शोष ही विरेचन होता है।

वर्षाकालमें विरेचनके लिये निसोथ, इन्द्र जी, पीपल और सोंठ, इन सब द्रव्योंको दाबके काढ़े में मिला कर पान करे। शरत्कालमें निसोथ, जवासा, मोथा, चीनो, अतिबला, रक्तचन्दन और मुलेठी इन्हें दाबके काढ़े में मिला कर सेवन करनेसे उत्तम विरेचन होता है। हेमन्तकालमें निसोथ, चितामूल, अकवच आदि, जीरा, सरल काष्ठ, वध और स्वर्णक्षीरी, इन सब द्रव्योंको चूर्ण कर उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे विरेचन होता है। शिशिर और वसन्तकालमें पीपल, सोंठ, सेन्धव और श्यामालता इन्हें चूर्ण कर निसोथके चूर्णमें मिलावे और मधु द्वारा लेहन करे, तो विरेचन होता है। प्रोथम ऋतुमें निसोथ और चीनो समान परिमाणमें मिला कर सेवन करनेसे उत्तम विरेचन होता है।

हरीतकी, मिर्च, सोंठ, विडङ्ग, आंबला, पीपल, पीपलमूल, दारुचीनो, तैजपत्र और मोथा इन सब द्रव्योंका समान भाग ले कर उसमें तीन भाग दन्तीमूल, आठ भाग निसोथका चूर्ण तथा छः भाग चीनो मिलावे, पीछे मधु द्वारा मोदक बनाये। यह मोदक २ तोला प्रति दिन सवेरे सेवन कर शीतल जलका अनुपान करे। इस मोदकके सेवनसे यदि अधिक मलमेद हो, तो उष्ण क्रिया करनेसे यह उसी समय बंद हो जायेगा। इस मोदकके सेवनमें पान, आहार और विहारके लिये कोई बाधना भुगतनी नहीं पड़ती तथा बिषम उबर आदिमें विशेष उपकार होता है। इसका नाम अमयादि मोदक है। इसका सेवन कर उसी दिन स्नेहमर्दन और क्रोध परित्याग करना उचित है।

विरेचक औषध पान करके दोनों नेत्रमें शीतल जल

नामके दो भेद कहे गये हैं,—स्वरूपपरिणाम और विरूप-परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृतिसे तरह तरहके पदार्थोंका विकास होता है और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप नष्ट करते हुए प्रकृतिमें लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टिको ओर अप्रसर होता है और दूसरा लयको ओर।

विरूपशक्ति (सं० पु०) १ विद्याधरभेद। (कथापरित्याग ४६।६) २ प्रतिक्रमण शक्ति (Counteracting forces)। जैसे,—ताड़ितको Negative शक्ति और Positive शक्ति। ये एक दूसरेके विरोधी हैं।

विरूपशर्मन् (सं० पु०) ब्राह्मणभेद।

(कथापरित्याग ४०।२६)

विरूपा (सं० स्त्री०) विरूप-टापू। १ दुरालभा, जवासा, धमासा। २ अतिविया। ३ यमकी एक पत्नीका नाम। (ति०) ४ कुरुप, बदसूरत।

विरूपाक्ष (सं० पु०) विरूपे अक्षिणी यस्य सकृत्पशुनोः स्याद्वात् पञ्च इति पञ्च समासान्तः। १ शिव। २ रुद्र-भेद। (जटाधर) इनकी पुरी सुमेरुपर्वतके नैऋत कोणमें अवस्थित है।

"तथा चतुर्थे दिग्भागे नैऋताधिपतेः श्रुता।

नाम्ना क्रम्यावती नाम विरूपाक्षस्य धीमतः ॥"

(बराहपु० व्रतगीता)

३ रावणका एक सेनानायक जिसे हनुमानने प्रमोदवन उजड़ानेके समय मारा था। ४ एक राक्षसका नाम जिसे सुप्रोवने रामरावणयुद्धमें मारा था। ५ रावणका एक मन्त्री। ६ एक दिग्गजका नाम। ७ एक नागका नाम। (ति०) ८ विरूप, बदसूरत।

विरूपाक्ष—१ एक योगाचार्य। इन्होंने ऊर्ध्वध्वान्नायसे महायोढान्यास नामक एक ग्रन्थ लिखा है। हठदीपिकामें इनका नामोल्लेख है। २ विजयनगरके एक राजाका नाम।

विरूपाक्षदेव—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू-राजा।

विरूपाक्ष शर्मन्—तत्त्वदीपिका नामी चण्डीश्लोकार्थप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता। १५३१ ई०में ग्रन्थकारने ग्रन्थ-रचना समाप्त की। आप कविकण्ठाभरण आचार्य नामसे भी परिचित थे।

विरूपाश्व (सं० पु०) राजभेद। (भारत १३ पर्व)

विरूपिका (सं० स्त्री०) विकृत रूपं यस्याः कन् टापू अत इत्वं। कुरुपा स्त्री, बदसूरत भीरत।

विरूपिन् (सं० त्रि०) विरुद्धं रूपमस्यास्तीति विरूप-इति। १ कुरुपविशिष्ट, बदसूरत। (पु०) २ जाह्नक जन्तु, गिर गिट।

विरिके (सं० पु०) वि रिच्-घञ्। विरेचन, दस्तावर, दया, जुलाब।

विरिचक (सं० त्रि०) मलभेदक, दस्त लानेवाला।

विरिचन (सं० पत्नी०) वि-रिच् न्युट्। विरेक, जुलाब। वैद्यकमें विरेचनके विषय पर अच्छी तरह विचार किया गया है; यहाँ पर बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है। कुपित-मल सभी रोगोंका निदान है। मूल कुपित हो कर नाना प्रकारका रोग उत्पन्न करता है। अतएव जिससे मल न रुके, इस ओर ध्यान रखना एकाग्र कर्त्तव्य है। मलके रुकनेसे विरेचन औषध द्वारा उसका निःसारण करना चाहिये।

भावप्रकाशमें विरेचनविधिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

स्नेहन और खेदकियाके बाद घमनविधि द्वारा घमन करा कर पीछे विरेचनका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। यदि पहले घमन न करा कर विरेचनका प्रयोग किया जाये, तो कफ अधःपतित हो कर प्रहणे नाड़ीको आच्छादन कर शरीरकी शुद्धता वा प्रवाहिका रोग उत्पादन करता है, इसलिये सबसे पहले घमन कराना उचित है। अथवा पाचक औषधका प्रयोग कर आमकफका परिपाक करके भी विरेचन दिया जा सकता है।

शरत् और वसन्तकालमें देहशोधनके लिये विरेचनका प्रयोग हितकर है। प्राणनाशको आशङ्का पर अग्य समय भी विरेचनका प्रयोग किया जा सकता है। पित्तके कुपित होनेसे तथा आमजनित रोगमें उदर और आश्रमान रोगमें कोणशुद्धिके लिये विरेचन प्रयोग विशेष हितकर है। लङ्घन तथा पाचन द्वारा दोषके प्रशमित होनेसे वह पुनः प्रकुपित हो सकता है, किन्तु शोधन द्वारा दोष सदाके लिये दूर हो जाता है।

बालक, वृद्ध, अतिशय स्निग्ध, क्षत या क्षीणरोगग्रस्त,

भयार्स, श्रान्त, पिपाशार्स, स्पूलकाय, गर्भवती नारी, नद्यमसूतानारी, मन्दाग्निशुक्त, मदाहपयाक्रान्त, श्लथ-पीडित और रुग्ण इन सब व्यक्तियोंको विरचन देना उचित नहीं है। इन सब व्यक्तियोंको विरचन देनेसे दूसरे दूसरे उपद्रव होते हैं।

जीर्णज्वर, गरदाय, घातरोग, भगन्दर, अर्श, पाण्डु, उदर, प्रन्धि, हृद्रोग, अरुचि, घोनिष्वापद्, प्रमेह, शुक्म, झीडा, विद्रधि, घमि, विस्फोट, विचुचिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासारोग, शिरोरोग, मुखरोग, गुह्यरोग, मेढरोग, झीडा जन्थोद्य, नेत्ररोग, कृमिरोग, अग्नि और क्षारजन्थपीडा, शूल और मूत्राघात इन सब रोगियोंके लिये विरचन बहुत फायदा मंद है।

पित्ताधिष्य व्यक्ति मृदुकोष्ठ, बहुकफयुक्त व्यक्ति मध्यकोष्ठ और घाताधिष्य, व्यक्ति क्रूरकोष्ठ कहलाता है। क्रूरकोष्ठसम्पन्न व्यक्ति दुर्विरेच्य है अर्थात् थोड़े घन्तसे उनका विरचन नहीं होता। मृदुकोष्ठ व्यक्तिको मृदु-विरचक द्रव्य अल्प मात्रामें, मध्यकोष्ठ व्यक्तिको मध्य-विरचक औषध मध्यमात्रामें तथा क्रूरकोष्ठ व्यक्तिको तीक्ष्ण विरचक द्रव्य अधिक मात्रामें प्रयोग करना होता है।

विरचक औषध ये सब हैं—दाहके काढ़े और रेड्डोके तेलसे मृदुकोष्ठ व्यक्तिका विरचन होता है। निसोय, कुटज और अमलतास द्वारा मध्यकोष्ठ व्यक्तिका तथा शूहरके दूध, स्वर्णक्षीरी और जयपालसे क्रूरकोष्ठ व्यक्तिका विरचन होता है।

जिस मात्रामें विरचनका सेवन करनेसे ३० बार दस्त उतरे, उसे पूर्णमात्रा कहते हैं। इसमें आखिर वेगके साथ कफ निकलता है। मध्यमात्रामें २० बार तथा हीनमात्रामें १० बार मलमैद हुआ करता है।

विरचक औषधका फाय पूर्णमात्रामें दो पल, मध्य-मात्रामें एक पल और हीनमात्रामें आध पल प्रयोज्य है। विरचक क्वक, मोदक और चूर्ण मधु तथा घोके साथ बाँट कर सेवन करना उचित है। इन तीनों प्रकारकी औषधको पूर्णमात्रा एक पल, मध्यमात्रा आध पल तथा हीनमात्रा २ तोला है। यह मात्रा जो कहीं गई है, यह रोगीके बलाबल, स्वास्थ्य, अवस्था, आदिका अच्छे तरह

विचार कर देनी होती है। उक्त मात्रामें प्रयोग करनेसे यदि अतिशुद्धी सम्भावना देखे, तो मात्राको स्थिर करके उसका प्रयोग करना होगा। पित्तप्रकोपमें दाहके काढ़ेके साथ निसोयका चूर्ण, कफप्रकोपमें त्रिफलाके काथ और गोमूत्रके साथ त्रिकटुचूर्ण तथा वायुप्रकोपमें अमल-रस अथवा जंगली जानवरके मांसके जूसके साथ निसोय, सैन्धव और सोंठके चूर्णका प्रयोग करे। रेड्डोके तेलसे दूने त्रिफलाके काढ़े वा दूधके साथ पान करनेसे शोथ ही विरचन होता है।

वर्षाकालमें विरचनके लिये निसोय, इन्द्र जी, पोपल और सोंठ, इन सब द्रव्योंको दाहके काढ़े में मिला कर पान करे। शरत्कालमें निसोय, जवासा, मांथा, चीनो, अति-चला, रक्तचन्दन और मुलेठी इन्हें दाहके काढ़े में मिला कर सेवन करनेसे उत्तम विरचन होता है। हेमन्तकालमें निसोय, चितामूल, अकवत आदि, जीरा, सरल काष्ठ, बच और स्वर्णक्षीरी, इन सब द्रव्योंको चूर्ण कर उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे विरचन होता है। शिशिर और यस्नन्तकालमें पोपल, सोंठ, सेन्धव और श्यामालता इन्हें चूर्ण कर निसोयके चूर्णमें मिलावे और मधु द्वारा लेहन करे, तो विरचन होता है। प्रोथ ऋतुमें निसोय और चीनो समान परिमाणमें मिला कर सेवन करनेसे उत्तम विरचन होता है।

हरीतकी, मिर्च, सोंठ, विडङ्ग, आंघला, पोपल, पोपल-मूल, दारचीनी, तेजपत्र और मांथा इन सब द्रव्योंका समान भाग ले कर उसमें तीन भाग दन्तीमूल, आठ भाग निसोयका चूर्ण तथा छः भाग चीनी मिलावे, पीछे मधु द्वारा मोदक बनाये। यह मोदक २ तोला प्रति दिन सबेरे सेवन कर शीतल जलका अनुपान करे। इस मोदकके सेवनसे यदि अधिक मलमैद हो, तो उष्ण क्रिया करनेसे यह उसी समय बंद हो जायेगा। इस मोदकके सेवनमें पान, आहार और विहारके लिये कोई यत्नना भुगतनी नहीं पड़ती तथा विषम उवर आदिमें विशेष उपकार होता है। इसका नाम अमयादि मोदक है। इसका सेवन कर उसी दिन स्नेहमर्दन और क्रोध परिवर्त्याग करना उचित है।

विरचक औषध पान करके दोनों नेत्रमें शीतल जल

देना होता है। पीछे कोई सुगन्धित द्रव्य सूंघना तथा वायुरहित स्थानमें रह कर पान खाना उचित है। इसमें वेगधारण, शयन और शीतल जल स्पर्श न करे तथा लगातार उष्ण जल पीये।

वायु जिस प्रकार चमनके बाद पित्त, कफ और औषध-के साथ मिलती है उसी प्रकार विरचनके बाद भो मल, पित्त और औषधके साथ कफ मिल जाता है। जिनके अच्छी तरह विरचन न हो, उनकी नाभिकी स्तब्धता, कोष्ठ-देशमें वेदना, मल और वायुका अग्रवर्त्तन, शरीरमें कण्डु और मण्डलाकृति चिह्नोत्पत्ति, देहकी गुप्ता, विदाह, अरुचि, आधमान, भ्रम और घमि होती है। ऐसे अवस्था-पन्न चार्त्तिकी पुनः सिन्धव अथवा पाचक औषध सेवन द्वारा दोषका परिपाक करके फिरसे विरचन कराये। ऐसा करनेसे उक्त सभी उपद्रव दूर होते, अग्निकी तेजी बढ़ती और शरीर लघु होता है।

अतिरिक्त विरचन होनेसे मूर्च्छा, गुद्भ्रंश और अत्यन्त कफस्राव होता है तथा मांसर्षात जल अथवा रक्तकी तरह घमि होता है। ऐसी अवस्थामें रोगीके शरीरमें शीतल जल सेक करके शीतल तण्डुलके जलमें मधु मिला कर अल्प परिमाणमें चमन कराये। अथवा दधि या सीवीरके साथ आमका छिलका पीस कर नाभिदेशमें प्रलेप दे। इससे प्रदीप्त अतोसार भी प्रशमित होता है। भोजनके लिये छागदुग्ध और विधिकर पक्षी अथवा हरिण मांसके जूसको, शालधान, साठी और मसूरके साथ नियमपूर्वक पाक करके प्रयोग करे। इस प्रकार शीतल और संप्राही द्रव्य द्वारा भेदको दूर करना होता है।

शरीरकी लघुता, मनस्तुष्टि और वायुका अनुलोम होनेसे जब अच्छी तरह विरचन हुआ मालूम हो जाये; तब रातको पाचक औषधका सेवन कराये। विरचक औषधके सेवनेसे बल और बुद्धिकी प्रसन्नता, अग्निदीप्ति, धातुमें भी चयःक्रमकी स्थिरता आती है। अतएव सेवन करके अत्यन्त वायुसेवर्त्तन

अजीर्णकारक द्रव्य, व्यायाम करता अवश्य और मूंगसे

विधिकर पक्षीके मांसरसके साथ शालधानका मात खिलाये। (भावप्र० विरचनविधि)

सुश्रुतमें विरचनका विषय इस प्रकार लिखा है,— मूल, छाल, फल, तेल, खरस और क्षीर इन छः प्रकारके विरचनका व्यवहार करना होता है। इनमेंसे मूल विरचनमें लाल निसोथका मूत्र, त्वक्-विरचनमें लोथकी छाल, फल-विरचनमें हरीतकी फल, तैल-विरचनमें रेड्डीका तेल, खरस-विरचनमें करवल्लिका (करंले) का रस और क्षीर-विरचनमें मनसा बाजंका क्षीर श्रेष्ठतम है।

विशुद्ध निसोथमूलचूर्ण विरचन द्रव्यके रसमें भावना दे कर चूर्ण करे तथा सैन्धव लवण और सोंठका चूर्ण मिला कर प्रचुर अक्षरसके साथ मध डाले। पीछे यह वातरोगीको विरचन के लिये पान करानेसे उत्तम विरचन होता है।

गुलश्च, नीमकी छाल और त्रिफलाके काढ़ेमें अथवा त्रिकटुकके चूर्ण डाले हुए गोमूत्रमें निसोथका चूर्ण मिला कर कफज रोगमें पिलानेसे विरचन होता है। निसोथके मूल की चुकनी, इलायचोत्र के चुकनी, तेजपत्रकी चुकनी, दारचोनीकी चुकनी, सोंठका चूर्ण, पीपलकी चुकनी और मरिचकी चुकनी इन्हें पुनः गुडके साथ श्लेष्मरोगमें चाटनेसे उत्तम विरचन बनता है। दो सेंर निसोथ-मूलका रस, आधसेर निसोथ तथा सैन्धवलवण और २ तोला सोंठकी चुकनी इन्हें एक साथ पाक करे। जब यह पाक खूब घना हो जाये, तब उपयुक्त मात्रामें वातश्लेष्मरोगीको विरचनार्थ पिलाना होगा। अथवा निसोथका मूल तथा समान भाग सोंठ और सैन्धवलवण पीस कर यदि गोमूत्रके साथ चातश्लेष्मरोगीको पिलाया जाये, तो उत्तम विरचन होता है।

निसोथका मूल, सोंठ और हरीतकी, प्रत्येककी चुकनी २ भाग, एक सुपारीका फल, विडङ्गसार, मरिच, देवदास और सैन्धव प्रत्येककी चुकनी आध भाग ले कर मिलावे और गोमूत्रके साथ सेवन करे, तो विरचन

गुडिका—निसोथ आदि विरचन द्रव्यको चूर्ण कर रसमें घोंटे। पीछे विरचन द्रव्योंके पाक करे तथा घृतके साथ मई

कर गुटिका पका कर सेवन करावे। अथवा गुडके साथ निसोपचूर्णका पाक कर सुगन्धके लिये उसमें इलायची, तेजपत्र और दारचीनीका चूर्ण मिलावे। उपयुक्त मात्रामें गोली तैयार कर सेवन करनेसे विरेचन होता है।

मोदक—एक भाग निसोप आदि विरेचन द्रव्योंकी चुकनी ले कर उससे चींगुने विरेचन द्रव्यके काढ़े में सिद्ध करे। पीछे घना होने पर घीसे मला हुआ गेहूँका चूर्ण उसमें डाल दे। इसके बाद ठंडा होने पर मोदक तैयार कर विरेचनार्थ प्रयोग करे।

जूस—निसोप आदि विरेचक द्रव्योंके रसमें मूँग, मसूर आदि दालकी भावना दे सैन्धवलवण और घृतके साथ एकल जूस पाक करके यदि पान करावे तो विरेचन बनता है।

पुटपाक—ईखके एक इंचलको दो खण्ड कर उमके साथ निसोप पोस कर ईखके खण्डमें उसका प्रलेप दे तथा गांभारीके पत्तोंसे जड़ कर कुशादिकी डोरीसे उसको मजबूतीसे बांध दे। अनन्तर पुटपाकके विधानानुसार उसका पाक करके पित्तरोगीको सेवन करावे, तो विरेचन होता है।

लेह—ईखकी चीनी, बनयामानी, वंशलीचन, भुरईकुम्हड़ा और निसोप इन पांच द्रव्योंका चूर्ण समान मागमें ले कर घी और मधुके साथ उसको मिला कर चाटे, तो विरेचन होता है तथा तृष्णा, दाह और उश्न जाता रहता है।

ईखकी चीनी, मधु और निसोपकी चुकनी प्रत्येक द्रव्यका समभाग तथा निसोप चुकनीका चतुर्थांश दाह-चीनी, तेजपत्र और मरिचचूर्ण मिला कर कोमलप्रकृतिवाले व्यक्तियोंको विरेचनार्थ सेवन करने दे।

ईखकी चीनी ८ तोला, मधु ४ तोला और निसोपका चूर्ण १६ तोला, इन्हें भांचा पर चढ़ा कर एकल पाक करे। जब यह लेहवत् हो जाये, तब उसे उतार कर सेवन करावे। इससे विरेचन हो कर पित्त दूर होता है।

निसोप, विस्ताङ्क, यवशार, सोंठ और पीपल इन्हें चूर्ण कर उपयुक्त मात्रामें मधुके साथ लेह प्रस्तुत करे। यह लेह पान करनेसे विरेचक होता है।

हरीतकी, गांभारी, आमलकी, अनार और बेर इन सब द्रव्योंके काढ़े का रेड्डीके तेलमें पका कर खट्टे नोथू आदि-

का रस उसमें डाल दे। पीछे पाक करते करते जब वह घन हो जाये, तो सुगन्धके लिये उसमें तेजपत्र, दारचीनी और निसोपका चूर्ण डाल कर सेवन करावे। श्लेष्म-प्रधान धातुविगिष्ट सुकुमार प्रकृतिवाले व्यक्तियोंके लिये यह एक उत्कृष्ट विरेचन है।

निसोपका चूर्ण तीन भाग तथा हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, यवशार, पीपल और विडङ्ग प्रत्येकका समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उपयुक्त मात्रामें ले कर मधु और घृतके साथ लेहकी तरह बनावे अथवा गुडके साथ मल कर गोली तय्यार करे। यह गोली लेह अथवा सेवन करनेसे कफयातज गुल्म, श्लोधा आदि नाना प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं। इस विरेचनसे किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं होता।

विस्ताङ्क, निसोप, नीलीफल, कूटज, मोथा, दुरालभा, चर्द, इन्द्रयव, हरीतकी, आमलकी और बहेड़ा, इन्हें चूर्ण कर घृत मांसके जूस या जलके साथ सेवन करनेसे रक्ष व्यक्तियोंका विरेचन होता है।

त्वक्विरेचन—लोथकी छालका विचला हिस्सा छोड़ कर बाकीको चूर्ण करे तथा उसे तीन भागोंमें विभक्त कर दो भागका लोथकी छालके काढ़े में गला ले। बाकी एक भागका उक्त काढ़े से भावना दे कर विरलकुल सुखा डाले। सुखने पर दशमूलके काढ़े से भावना दे कर निसोपकी तरह प्रयोग करे। यह त्वक् विरेचन सेवन करनेसे उत्तम विरेचन होता है।

फल-विरेचन—दिना आठोंके हरीतकी फल और निसोपका विधानानुसार प्रयोग करनेसे सभी प्रकारके रोग दूर होते हैं। हरीतकी, विडङ्ग, सैन्धव लवण, सोंठ, निसोप और मिर्च इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे विरेचन होता है। हरीतकी, देवदारु, कूट, सुपारी, सैन्धव लवण और सोंठ इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बद्धिया विरेचन होता है।

नीलीफल, सोंठ और हरीतकी इन तीन द्रव्योंका चूर्ण कर गुडके साथ मिला सेवन करे। पीछे उष्ण जलपान पिपपली आदिके काढ़ेमें हरीतकी पोस कर सैन्धव लवण मिलावे। इसका सेवन करनेसे उसी समय विरेचन होता है। ईखके गुड, सोंठ वा सैन्धव

देना होता है। पीछे कोई सुगन्धित द्रव्य सूंघना तथा चायुरहित स्थानमें रह कर पान खाना उचित है। इसमें वेगधारण, शयन और शीतल जल स्पर्श न करे तथा लगातार उष्ण जल पीवे।

वायु जिस प्रकार वमनके बाद पित्त, कफ और औषध-के साथ मिलने ही उसी प्रकार विरेचनके बाद भो मल, पित्त और औषधके साथ कफ मिल जाता है। जिनके अच्छी तरह विरेचन न हो, उनकी नाभिकी स्तम्भता, कोष्ठ-देशमें वेदना, मल और चायुका अप्रवर्त्तन; शरीरमें कण्डु और मण्डलाकृति चिह्नोत्पत्ति, देहकी सुकृता, विदाह, अर्वाचि, आधमान, भ्रम और वमि होती है। ऐसे अवस्था-पन्न चाक्रिकी पुता सिन्धु अथवा पाचक औषध सेवन द्वारा दोषका परिपाक करके फिरसे विरेचन करावे। ऐसा करनेसे उक्त सभी उपद्रव दूर होते, अग्निकी तेजी बढ़ती और शरीर लघु होता है।

अतिरिक्त विरेचन होनेसे मूर्च्छा, गुदग्रंथ और अत्यन्त कफलाघ होता है तथा मांसघात जल अथवा रक्तकी तरह वमि होती है। ऐसी अवस्थामें रोगी-के शरीरमें शीतल जल सेक करके शीतल तण्डुलके जलमें मधु मिला कर अल्प परिमाणमें सेवन करावे। अथवा दधि वा सौवीरके साथ आमका छिलका पीस कर नाभिदेशमें प्रलेप दे। इससे प्रदीप्त अतोसार भी प्रशमित होता है। भोजनके लिये छागदुग्ध और विष्किर पक्षी अथवा हरिण मांसके जूसकी, शालिधान, साटी और मसूरके साथ नियमपूर्वक पाक करके प्रयोग करे। इस प्रकार शीतल और संप्राही द्रव्य द्वारा भेदकी दूर करना होता है।

शरीरकी लघुता, मनस्तुष्टि और चायुका अनुलोम होनेसे जब अच्छी तरह विरेचन हुआ मालूम हो जाये, तब रातको पाचक औषधका सेवन करावे। विरेचक औषधके सेवनेसे बल और बुद्धिकी प्रसन्नता, अग्निदीप्ति, धातुमें भी, वयःक्रमकी स्थिरता होती है। विरेचनका सेवन करके अत्यन्त चायुसेवन, शीतल जल, स्नेहाभ्यङ्ग, अजीर्णकारक द्रव्य, श्यायाम और स्त्रीप्रसङ्गा परित्याग करना अद्यथ्य कर्तव्य है। विरेचनके बाद शालिधान, और मूंगसे यवागू तैयार कर अथवा हरिणादि पशु या

विष्किर पक्षीके मांसरसके साथ शालिधानका भात खिलावे। (भावप्र० विरेचनविधि)

सुश्रुतमें विरेचनका विषय इस प्रकार लिखा है,— मूल, छाल, फल, तेल, खरस और क्षीर इन छः प्रकारके विरेचनका व्यवहार करना होता है। इनमेंसे मूल विरेचनमें लाल निसोथका मूत्र, त्वक्-विरेचनमें लोथकी छाल, फल-विरेचनमें हरीतकी फल, तैल-विरेचनमें रेड्डीका तेल, खरस-विरेचनमें करवाळिका (करैले)का रस और क्षीर-विरेचनमें मनसा घोड़का क्षीर श्रेष्ठतम है। विशुद्ध निसोथमूलचूर्ण विरेचन द्रव्यके रसमें भावना दे कर चूर्ण करे तथा सैन्धव लवण और सोंठका चूर्ण मिला कर प्रचुर अम्लरसके साथ मध डाले। पीछे यह चातुरोगीको विरेचन के लिये पान करावेसे उत्तम विरेचन होता है।

गुलश्च, नीमकी छाल और त्रिफलाके काढ़ेमें अथवा त्रिकटुकके चूर्ण डाले हुए गोमूत्रमें निसोथका चूर्ण मिला कर कफज रोगमें पिलानेसे विरेचन होता है। निसोथके मूलकी चुकनी, इलायचोइते चुकनी, तेजपत्तकी चुकनी, दारचोनोंकी चुकनी, सोंठका चूर्ण, पीपलकी चुकनी और मरिचकी चुकनी इन्हें पुराने गुड़के साथ श्लेष्मरोगमें चाटनेसे उत्तम विरेचन बनता है। दो सेर निसोथ-मूलका रस, आध सेर निसोथ तथा सैन्धवलवण और २ तोला सोंठकी चुकनी इन्हें एक साथ पाक करे। जब वह पाक खूब घना हो जाये, तब उपयुक्त मात्रामें चातश्लेष्मरोगी-को विरेचनार्थ पिलाना होगा। अथवा निसोथका मूल तथा समान भाग सोंठ और सैन्धवलवण पीस कर यदि गोमूत्रके साथ चातश्लेष्मरोगीको पिलाया जाये, तो उत्तम विरेचन होता है।

निसोथका मूल, सोंठ और हरीतकी, प्रत्येककी चुकनी २ भाग, पक सुपारीका फल, विडङ्गसार, मरिच, देव-दाब और सैन्धव प्रत्येककी चुकनी आध भाग ले कर मिलावे और गोमूत्रके साथ सेवन करे, तो विरेचन होता है।

गुडिका—निसोथ आदि विरेचन द्रव्यको चूर्ण कर विरेचक द्रव्यके रसमें घोंटे। पीछे विरेचन द्रव्योंके मूलके साथ उसका पाक करे तथा घृतके साथ मईन

कर गुटिका पका कर सेवन करावे। अथवा गुड़के साथ निसोधचूर्णका पाक कर सुगन्धके लिये उसमें इलायची, तेजपत्र और दारचीनीका चूर्ण मिलावे। उपयुक्त मात्रामें गोली तैयार कर सेवन करनेसे विरचन होता है।

मोदक—एक भाग निसोध आदि विरचन द्रव्योंकी बुरुनी ले कर उससे चीगुने विरचन द्रव्यके काढ़े में मिद करे। पीछे घना होने पर घीसे मला हुआ गेहूँका चूर्ण उसमें डाल दे। इसके बाद ठंडा होने पर मोदक तैयार कर विरचनार्थ प्रयोग करे।

जूस—निसोध आदि विरचक द्रव्योंके रसमें मूँग, मसूर आदि हालकी भायना दे सैन्धवलवण और घृतके साथ एकत्र जूस पाक करके यदि पान करावे तो विरचन बनता है।

पुटपाक—ईखके एक डठलकी दो खण्ड कर उमके साथ निसोध पीस कर ईखके खण्डमें उसका प्रलेप दे तथा गांभारीके पत्तोंसे जड़ कर कुशादिकी झोरीसे उसको मजबूतीसे बांध दे। अनन्तर पुटपाकके विधानानुसार उसका पाक करके विचरोगीको सेवन करावे, तो विरचन होता है।

लेह—ईखकी चीनी, बनयमाना, पंजलोचन, भुईं कुहड़ा और निसोध इन पांच द्रव्योंका चूर्ण समान भागमें ले कर घी और मधुके साथ उसको मिला कर चाटे, तो विरचन होता है तथा सृण्या, दाह और उषर जाता रहता है।

ईखकी चीनी, मधु और निसोधकी बुरुनी प्रत्येक द्रव्यका समभाग तथा निसोध बुरुनीका चतुर्थांश दारचीनी, तेजपत्र और मरिचचूर्ण मिला कर कोमलप्रकृतियोंके व्यक्तियोंको विरचनार्थ सेवन करने दे।

ईखकी चीनी ८ तोला, मधु ४ तोला और निसोधका चूर्ण १६ तोला, इन्हें आंच पर चढ़ा कर एकत्र पाक करे। जब यह लेहवत् हो जाये, तब उसे उतार कर सेवन करावे। इससे विरचन हो कर पित्त दूर होता है।

निसोध, विस्ताङ्क, यवक्षार, सोंठ और पीपल इन्हें चूर्ण कर, उपयुक्त मात्रामें मधुके साथ लेह प्रस्तुत करे। यह लेह पान करनेसे विरचक होता है।

हरीतकी, गांभारी, आमलकी, अनार और बेर इन सब द्रव्योंके काढ़े का रेड्डीके तेलमें पका कर खट्टे नोबू आदि-

का रस उसमें डाल दे। पीछे पाक करने करते जब यह घन हो जाये, तो सुगन्धके लिये उसमें तेजपत्र, दारचीनी और निसोधका चूर्ण डाल कर सेवन करावे। श्लेष्म-प्रधान घातुविशिष्ट सुकुमार प्रकृतिवाले व्यक्तियोंके लिये यह एक उत्कृष्ट विरचन है।

निसोधका चूर्ण तीन भाग तथा हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, यवक्षार, पीपल और विड़ङ्ग प्रत्येकका समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उपयुक्त मात्रामें ले कर मधु और घृतके साथ लेहकी तरह बनावे अथवा गुड़के साथ मल कर गोली तय्यार करे। यह गोली लेह अथवा सेवन करनेसे कफघातज गुल्म, मोहा आदि माना प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं। इस विरचनसे किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं होता।

विस्ताङ्क, निमोथ, नीलोफल, फूटज, मोथा, टुरा-लभा, चई, इन्द्रयव, हरीतकी, आमलकी और बहेड़ा, इन्हें चूर्ण कर घृत मांसके जूस या जलके साथ सेवन करनेसे रुक्ष व्यक्तियोंका विरचन होता है।

त्वक्विरचन—लोथकी छालका विचला हिस्सा छोड़ कर बाकीको चूर्ण करे तथा उसे तीन भागोंमें विभक्त कर दो भागको लोथकी छालके काढ़े में मला ले। बाकी एक भागको उक्त काढ़ेसे भायना दे कर विडङ्गल सुखा डाले। सूखने पर दशमूलके काढ़ेसे भायना दे कर निसोधकी तरह प्रयोग करे। यह त्वक् विरचन सेवन करनेसे उत्तम विरचन होता है।

फल-विरचन—दिना आठोंके हरीतकी फल और निसोधका विधानानुसार प्रयोग करनेसे समी प्रकारके रोग दूर होते हैं। हरीतकी, विड़ङ्ग, सैन्धवलवण, सोंठ, निसोध और मिर्चा इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे विरचन होता है। हरीतकी, देवदाह, कुट, सुपारी, सैन्धव लवण और सोंठ इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बढ़िया विरचन होता है।

नीलोफल, सोंठ और हरीतकी इन तीन द्रव्योंका चूर्ण कर गुड़के साथ मिला सेवन करे। पीछे उष्ण जलपान पिप्पली आदिके काढ़ेमें हरीतकी पीस कर सैन्धव लवण मिलावे। इसका सेवन करनेसे उसी समय विरचन होता है। ईखके गुड़, सोंठ या सैन्धव

लवणके साथ हरीतकी सेवन करनेसे विरचन हो अनि-
को वृद्धि होती है। यह विशेष उपकारी है।

पके अमलतासके फलके बालूके ढेरमें सात दिन
रख कर घूपमें सुखा लेवे। पीछे उसकी मज्जाको जलमें
निद्ध कर अथवा तिलकी तरह पीस कर तेल निकाल
ले। यह तेल बारह वर्षके बालकोंको विरचनार्थ दिया जा
सकता है।

परण्डतैल—कुट, सोंठ, पीपल और मोर्ची इन्हें चूर्ण
कर रेंडोंके तेलके साथ सेवन करे तथा पीछे गरम जल
पिलावे। इससे उत्तम विरचन हो कर वायु और कफ
प्रशमित होता है। दूने तिकलाक काढ़ेके साथ अथवा
दूध या मांसके रसके साथ रेंडोंका तेल पान करनेसे
सुचारु विरचन होता है। यह विरचन बालक, वृद्ध,
क्षत, क्षोण और सुकुमार आदि व्यक्तियोंके लिये विशेष
हितकर है।

क्षीरविरचन—तोड़ण विरचन द्रव्योंमें थूहरका दूध
हा सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु अन्न निकरसक द्वारा यह दूध
प्रयुक्त होनेसे वह विषकी तरह प्राणनाशक होता है।
यदि यह अच्छे चिकित्सक द्वारा उपयुक्त समयमें प्रयुक्त
हो, तो नाना प्रकारके दुःसाध्य रोग आरोग्य होते हैं।

महत् पञ्चमूल, गृहती और कण्टकारी, इन सब द्रव्यों-
का पृथक् पृथक् काढ़ा बना कर प्रतप्त अङ्गारके ऊपर एक
एक काढ़ेमें थूहरका दूध शोधन करे। पीछे कांजो,
दहीके पानी और सुरादिके साथ सेवन करने दे।
थूहरके दूधके साथ तण्डुल द्वारा यथागू प्रस्तुत कर
अथवा थूहरके दूधमें गेहूँकी भायना दे लेहवत् बना कर
सेवन कराये अथवा थूहर, क्षीर, घृत और ईनकी
चीनीको एकत्र मिला कर लेहवत् सेवन कराये; अथवा
पीपलचूर्ण, सैन्धव लवण, थूहरके दूधमें भायना दे। पीछे
गोली बना कर सेवन करनेसे सम्यक् विरचन बनता है।
अमलतास, शङ्खनी, दन्ता और निसोधको सात दिन
तक थूहरके दूधमें मिगे रखे। इसके बाद यदि उसे
चूर्ण कर माल्य वा घख पर बिछा कर उसका प्राण ले
या वह चूर्ण भावित रखे पढ़ने तो मृदुप्रकृतिवाले धृत्कि
पोंका यह सम्यक् विरचन होता है। निसोध, हरीतकी,
आमलकी, बह डू, विडङ्ग, पीपल और यवक्षार प्रत्येक

द्रव्यका चूर्ण आध तोला मात्रामें ले उपयुक्त परिमाणमें
घृत और मधुके साथ लेहन करने अथवा गुड़के साथ
मोदक प्रस्तुत कर उसे सेवन करनेसे कोष्ठ परिशुद्ध होता
है। यह श्रेष्ठ विरचक है। इसका सेवन करनेसे नाना
प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं।

सुदक्ष चिकित्सकोंको चाहिये, कि वे इन सब विरे-
चक औषधोंको घृत, तैल, दुग्ध, मधु, गोमूत्र और रसादि
या अन्नादि भक्ष्यद्रव्यके साथ मिला कर अथवा उनका
अवलहे तैयार कर रोगीको विरचनार्थ प्रयोग करे। क्षीर,
रस, कदरु, कषाय और चूर्ण ये सब उत्तरेत्तर लघु हैं।

(सुश्रुत सूत्रस्थान०)

चरक, याभट आदि सभी वैद्यक ग्रन्थोंमें विरचन-
प्रणाली विशेषरूपसे वर्णित हुई हैं। विस्तार हो जाने
के भयसे वह लिखा नहीं गया।

विरच्य (सं० त्रि०) वि-रिच-यत्। विरचनके योग्य,
जिस विरचन या जुलाब दिया जा सके। निम्नलिखित
रोगी विरचनके योग्य हैं,—जिनके गुल्म, अर्श, विस्फो-
टक, व्यङ्ग, कामला, जोण्डवर, उदर, गर (शरीरमविष्ट
दूषित विष आदि पड़ा विष), छर्छि (वमि), प्लीहा,
हलामक, विद्रधि, तिमिर और काच (चक्षुरोगद्रव्य),
अभिषण्ड (आँखा अना), पाकाशयमें वेदना, पौनि
और शुकृत रोग, कोष्ठगत क्रिमि, क्षतरोग, वात रक्त,
ऊर्ध्ववर्ग रक्तपित्त, मूत्राघात, कोष्ठवृद्ध, कुष्ठ, मेह, अपचा,
प्रणिय (गेठिगा), श्लोषद (फालपांघ), उन्माद, काग,
शवास, हृत्वास (उपस्थित यमनवैष वा विषमिषा),
विमपे, स्तन्यदोष और ऊर्ध्वजकरोम अर्थात् जिनके
कण्ठसे ले कर मस्तक तक रोग है, वे विरच्य हैं। साधा-
रणतः पित्त अथवा पित्तोद्वेग्न दौषसे दूषित घातक विरे-
चनीय हैं। इनके विरचन प्रयोगकी प्रणाली,—क्रूरकोष्ठ
रोगियोंको पहले यथायोग्यरूपमें स्नेह (चाहा और आभ्य-
न्तरिक) और स्वेद तथा कुष्ठ आदि (पूर्वक कुष्ठसे ले कर
ऊर्ध्ववर्ग जक्र पर्यन्त) रोगीको वमनका औषध प्रयोग करावे।
पीछे उनका कोष्ठ मृदु अवस्थामें ला कर और अमाशय-
को शोधन कर उन्हें विरचनका प्रयोग करना होगा।
कोष्ठके बहुपित्त और मृदु होनेसे वह दुग्ध द्वारा विरचित
किया जाता है। वायुप्रधान क्रूरकोष्ठमें श्यामा लिष्ट

या काली निमोषका प्रवहार करना होता है। कोष्ठमें पिप्पाधिषय द्विधाई देनेसे दुग्ध, नारियलके जल, मिर्चो के जल आदिके साथ, कफाधिषयमें अदरक आदि कटु द्रव्योंके साथ तथा घाताधिषयमें रेड्डोके तेल, उष्ण जल और सैन्धव वा विटलघणके साथ अथवा विरेचक द्रव्यके उष्ण कषायाके साथ रेड्डोके तेल आदि स्नेह और उक्त लघणके साथ विरेचन देना होता है। विरेचकके अप्रवृत्त होनेसे अर्धात् दस्त नहीं उतरनेसे गरम जल पिलाये तथा रोगीके पेट पर पुराना घो या रेड्डोके तेलकी मालिश कर किसी साहष्ण्य व्यक्तिके हाथको मृदु सन्तत कर उससे स्नेह दिलाये। विरेचक अनप प्रवृत्त होनेसे उस दिन अन्नाहार कर दूसरे दिन पुनः विरेचन पान करे। जिस व्यक्ति का कोष्ठ असम्यक् स्निग्ध है, यह दश दिनके बाद पुनः स्नेहस्वेदसे संस्नान-शरीर हो अच्छी तरह सोच विचार कर यथोपयुक्त विरेचन सेवन करे। विरेचनका असम्यक् योग होनेसे हृदय और कुक्षिकी अशुद्धि, श्लेष्म पित्तका उत्प्रेक्ष, कण्ठ, विदाह, पीडा, पीनस और वायुरोध तथा विष्टारोध होता है। इसका विपरीत होनेसे अर्धात् हृत्प, कुक्षि आदिकी शुद्धिता रहनेसे उसे सम्यक् योग कहते हैं। अतिरिक्त होनेसे विष्ट, पित्त, कफ और वायुके यथाक्रम निकलनेसे भाविर जलघ्राय होता है। उस जलमें श्लेष्मा अथवा पित्त नहीं रहता। यह श्वेत, कृष्ण वा पीतरक्त वर्ण अथवा मांसघ्नित जल अथवा मेद (चर्बी) की तरह वर्णयुक्त होता है, मलद्वार बाहर निकल आता है तथा तृणा, मम, नेत्रप्रवेशन, देहकी क्षीणता या दुर्बल बोध, दाह, कण्ठदोष और अन्धकारमें प्रविष्टकी तरह मालूम होता है। फिर इससे कठिन वायुरोग उत्पन्न होते हैं। विरेचक औषधोंका ऐसी मात्रामें सेवन करना होगा जिससे रोगीके अवस्थानुसार दग्, बीस या तीस दस्तसे अधिक न उतरे और अन्तिम बारमें कफ निकले। जिन्हें घमन, क्रियाके बाद विरेचक प्रयोग करना होगा, उन्हें फिरसे स्नेह और स्वेदयुक्त कर श्लेष्माका समय (पूर्वाह्न वा पूर्वरात्रि) शीत जाने पर कोष्ठकी अवस्था संभव कर उपयुक्त प्रकारसे सम्यक् विरेचित करे। जिस दुर्बल और अनेक दोषोंसे युक्त व्यक्तिके दोषघात होनेसे स्वयं विरेचन होता है, उसको

परबलके साग या करेलेके पत्तोंके जूस आदि मलनिःसारक भोज्यके साथ विरेचन दे। दुर्बल, वमनादि द्वारा शोधित, अल्पदोष, छाया और अज्ञातकोष्ठ व्यक्ति मृदु और अल्प औषध पान करे। यह औषध बार बार पीना अच्छा है, क्योंकि अधिकमात्रामें तीक्ष्ण औषध पीनेसे यह हानि कर सकती है। यदि अल्प औषध पुनः पुनः प्रयोग की जाय, तो यह अन्यान्य दोषोंको धीरे धीरे निकाल देती है। दुर्बल व्यक्तिके उन सब दोषोंको मृदुद्रव्य द्वारा धीरे धीरे हटाना चाहिये। उन सब दोषोंके नहीं निकलनेसे उसको हमेशा झंश रहना है। यहाँ तक कि, उसकी मृत्यु भी हो जाया करती है। मन्दाग्निकरः कोष्ठव्यक्तिके यथाक्रम क्षार और लघणयुक्त घृतके साथ दोषाग्नि और कफघातहीन कर शोधन करना चाहिये। रक्ष, अतिशय वायुयुक्त, क्रूरकोष्ठ, व्यायामशील और दीप्ताग्निदोषोंके विरेचक औषधका प्रयोग करने पर वे उसे परिपाक कर डालते हैं, इस कारण उन्हें पहले वस्त्रिप्रयोग करके पीछे स्निग्ध विरेचन (परएडतैलादि) देना उचित है। अथवा तीक्ष्ण फलवर्तिग द्वारा पहले कुछ मल निकाल कर पीछे स्निग्ध विरेचन देवे। क्योंकि यह (परएडतैलादि) प्रवृत्त मलको आसानीसे बाहर निकाल देता है। विपाक अभिघात (आघात मात्र) तथा पीडका कुष्ठ, शोथ, विसर्प, पाण्डु, वामला और प्रमेहपोडित व्यक्तियोंको कुछ स्निग्ध करके विरेचन देवे अर्थात् उन सब विषादि पीडितकोंको रक्ष अवस्थामें स्नेहविरेचकके साथ शोधन करे। फिर अति भिन्नधोंको अर्धात् जिन्हें अत्यन्त स्नेह प्रयोग किया गया है, उन्हें रक्षविरेचक (तैलाक पदार्थहीन विरेचक द्रव्य) द्वारा शोधन करे। क्षारादि द्वारा घब्रका मल

* पिचकारी द्वारा मलद्वार दो कर तरल विरेचकादि औषध प्रयोग करनेको वस्त्रिप्रयोग करते हैं। यहाँ पहले वस्त्रिप्रयोगका तात्पर्य यह है, कि वह पाकस्थलीकी पाचकाग्निके साथ जग तक संयक्त नहीं होता, तब तक परिपाक नहीं हो सकेगा।
* बकूल या जयपालके बीज आदि विरेचक फलोंकी सूज्जी तरह पीस कर पत्तीकी तरह बँतना होता है वह बरती मलद्वारमें सुवनेसे बड़ी मात्रा मल बहुत कुछ निकल पड़ता है।

निकल जाने पर वह जिस प्रकार परिशुद्ध होता है उसी प्रकार स्नेहक्षेपके साथ विरेचनवमतादि पञ्चकर्म द्वारा देहका मल (वातपित्तादि दोष) उत्क्रिय हो देहको शोधित करता है, इसी कारण उन्हें (विरेचनादिके) शोधन वा संशोधन कहते हैं। स्नेह और श्वेद विरेचनादि कार्यका सहाय है, उसका अभ्यास क्रिये बिना यदि संशोधित द्रव्य सेवन किया जाय, तो संशोधन-सेवा उसी प्रकार फट जाता है जिस प्रकार स्नेहके संयोगसे सूखी लकड़ी छुकारनेके समय फट जाती है।

उक्त नियमानुसार सम्यक् चिरिक होनेसे रोगो रक्त-शाल्याधिकृत पेयादि निम्नोक्त क्रमके अनुसार भोजन करे। क्रम इस प्रकार है,—प्रधान माताके शोधनमें अर्थात् जिस विरेचकमें ३० बार दस्त आयेगा उसमें प्रथम दिन भोजन करते समय अर्थात् मध्याह्न और रात्रि इन दोनों समय दो बार और दूसरे दिन मध्याह्नमें एक बार, ये तीन बार पेया, द्वितीय दिन रातके और तृतीय दिन दो समय ये तीन बार विलेपी, इस क्रमसे अकृतयूप (स्नेह और लवणकटुवर्जित मूंग आदिका जूस) तीन समय और कृतयूप तीन समय तथा मांसरस तीन समय कुल मिला कर १५ बार सेवन करके चौदशान्नकालमें अर्थात् अष्टम दिन रातके स्वाभाविक भोजन करे। इस प्रकार पेयादिक्रमका तात्पर्य यह है, कि लघु द्रव्यसे ले कर यथानियम गुरुद्रव्यका व्यवहार करनेसे अणुमात्र (एक चिनगारी भी) अन्तर्नि जिस प्रकार सूखी घास डालने से यह घषकने लगती है और वन पर्वत आदिको दग्ध करनेमें समर्थ होता है, संशोधित चार्किको अन्तरंगिन भी पहले पेयादि लघुपच्यके साथ धीरे धीरे सन्घुसित हो कर आखिर उसी प्रकार विष्टकादि गुरुपाक द्रव्य तकको परिपाक कर सकती है। मध्यम (२० बार) और हीन (१० बार) मात्रामें जिन्हें दस्त हुआ है, ये पेया, विलेपी, अकृतयूप, कृतयूप और मांसरस यथाक्रम दो समय और एक समय इसी प्रकार क्रमानुसार सेवन कर मध्यम मात्रा-सेवा छठे दिन मध्याह्न और हीनमात्रासेवा तीसरे दिन रातमें स्वाभाविक भोजन करे। मात्रामेदमें पृथक् व्यवस्था-का तात्पर्य यह है, कि विरेचक द्रव्यके यथाक्रम मात्रा-विष्ययज्ञतः जिसकी अग्नि जिस परिमाणमें क्षीण हुई

है, उसे उसी परिमित काल तक पेयादि लघुपच्य देना होता है। षयोर्गिक संशोधन, रक्तमेक्षण, स्नेहयोग और लङ्घनवशतः अन्तिकोमन्दता होनेसे पेयादि क्रम आचर-णोप्य है।

विरेचक औषध व्यवहारके बाद यदि दस्त न उतरे वा औषध परिपाक होनेमें विलम्ब हो तो अक्षीण चार्किको निरवच्छिन्न लङ्घन देना होगा, षयोर्गिक ऐसा करनेसे पीतौषध चार्किको उत्फलेद्य (उपस्थित वमनरोग) के कारण तथा घर्म और विरेचन औषधको दक्षताके कारण किसी तरहका फट भुगतना नहीं पड़ता। मद्यपायी तथा वातपित्ताधिक्य चार्किके लिये पेयादिवान् दितकर नहीं है। उन्हें तर्पणादि क्रमका व्यवहार करना चाहिये। (वाग्भट्ट० स्या० १८ ब०)

विलुप्त विवरण विरेचन शब्दमें देखो।

विरेपस् (सं० त्रि०) समूहसतिजनक। (उज्ज्वल ४।१८)

विरेक (सं० त्रि०) १ रेफणून्। (पु०) २ नदमात्र।

विरेमित (सं० त्रि०) विरेचक। शब्दित, शब्द विरेचक हुआ।

विरोक (सं० द्वि०) विरुच-घञ्, कुत्वम्। १ शब्दित, विरेचक। (पु०) २ सूर्यकिरण। ३ द्रोति, चमक। ४ चण्ड। ५ विष्णु। (भारत)

विरोकिन् (सं० त्रि०) किरणवाशिण।

विरोचन (सं० पु०) विशेषेण रोचने इति वि-रुच्यच्। (अनुदासोत्तरच इत्यादिः। पा. ३।२।४६) १ सूर्य। २ क्राशक। ३ अर्कवृक्ष, मदारका पीथा। ४ अग्नि, आग। ५ चन्द्रमा। ६ विष्णु। ७ रोहितक वृक्ष। ८ श्योनाकमेद। ९ धृतकरक। १० प्रहादका पुत्र, बलिका पिता। (महा-

१०) ११ श्योनाकमेद। १२ श्योनाकमेद। १३ श्योनाकमेद। १४ श्योनाकमेद। १५ श्योनाकमेद। १६ श्योनाकमेद। १७ श्योनाकमेद। १८ श्योनाकमेद। १९ श्योनाकमेद। २० श्योनाकमेद।

१ तर्पण, मन्थ प्रभृति। इनकी पस्तुत पयाजी,—तर्पण, चारीक कपड़ोंमें छाना हुआ लावेका चूर्ण ४ तोला, दालका रस ४ तोला, जल ५२ सेर, (१२८ तोला) इसके शर्करा और मधुमें भिजानेसे, तर्पण बनता है। उक्त लावेके चूर्णको प्रताक करके शीतल जल द्वारा इस प्रकार द्रव करे, कि वह न तो बहुत पतला हो और न बहुत गाढ़ा हो। ऐसा होनेसे ही मन्थ पस्तुत किया जायगा। इसमें खजूर और दालका रस डाल कर मधुर करना होता है। तर्पणसे मन्थ गुरु है।

भारत ११६११६) ११ चमकना, प्रकाशित होना । (ति०)

१२ दीप्तियुक्त, प्रकाशमान ।

विरोचनसुत (सं० पु०) बलिराज ।

विरोचना (सं० स्त्री०) विरोचन-टापु । १ स्कन्दमहात्म्ये ।

(भा०त श्लो०) २ विरजको मोता ।

विरोनिष्णु (सं० ति०) परप्रकाशक ।

विरोद्धवा (सं० ति०) विरोधयोग्य ।

विरोद्ध, (सं० ति०) १ विरुद्धकार्यकारी । (पु०)

२ कर्पूद, कपूर ।

विरोध (सं० पु०) वि-रुध-घञ् । १ शल्लुता, दुश्मनी ।

पर्याय—चैर, विह्वेप, द्वेष, द्वेषण, अनुशय, समुच्छ्राय,

पर्यवस्था, विरोधन । विरोध नाशयोज समी प्रकारके

उपद्रवोंका कारण है ।

२ विप्रतिपत्ति । (न्यायवृत्त भाष्यमें वात्स्यायन) ३ दो बातों

का एक साथ न हो सकना । ४ युद्धविग्रह । ५ धामन-

प्राप्ति । ६ अनेक्य, मतभेद । ७ उल्टी स्थिति, सर्वथा

दूसरे प्रकारकी स्थिति । ८ नाश, विपरीतभाव । ९ नाटक-

का एक अङ्ग । इसमें किसी वस्तुका घर्णन करते समय

विपत्तिका आभास दिखाया जाता है । जैसे—“मैंने अवि-

मृष्टप्रकारिताप्रयुक्त अर्घ्योंकी तरह निश्चय ही उचलन्त

अनलमें पदक्षेप किया है ।” (चण्डकौशिक)

९ अलङ्कारविशेष । जाति = मोदव, ब्राह्मणत्वेति, गुण =

श्लेष्य, शुक्लादि ; क्रिया = पाकादि ; द्रव्य = पस्तु, जाति ;

आस्थादि (जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य) चारोंके साथ,

गुण, गुणादि (गुण, क्रिया और द्रव्य) इन तीनोंके साथ,

क्रिया, क्रियादि (क्रिया और द्रव्य) दोनोंके साथ तथा

द्रव्यद्रव्यके साथ, इन दश प्रकारमें आपाततः विरुद्धभाव

दिखाई देनेसे उसको विरोचालङ्कार कहते हैं । यथाक्रम

उदाहरण,—“तुम्हारे विरहमें इसके (सखीके) समीप

मलयानिल” दावानल, चन्द्रकिरण अति उष्ण झरझर

क्षारुण हृदयविदारक तथा नलिनोदल निदाघ सूर्यकी तरह

मालूम होता है ।” यहाँ ‘नित्यानेकसमवेतत्वं जातिद्वयं’

बहुतोंका समवाय (मिलन) ही जाति है, ‘यद्यो कि मलय

पवन आदि बहुतोंका समवाय हुआ है । - उनके फिर

दावानल (जाति), उष्ण (गुण), हृदयभेदन (क्रिया)

तथा सूर्य (द्रव्य) इन चार प्रकारके साथ आपाततः

विरोधभाव दिखाई देता है अर्थात् सुननेसे लोग समझेंगे,

कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता, यद्यो कि ये विरुद्ध

पदार्थ हैं । यह सत्य है सही, पर विरहिणीके सताप उन

सब जातियोंकी गुणक्रियादि उसी आकारमें दिखाई देती

हैं; इसी कारण इसका समाधान है । गुणके साथ गुणादि-

का,—“हे महाराज ! आप जैसे राजाके रहते सर्वदा

मुपलके व्यवहारसे द्विजपत्नियोंके कठिन हाथ कीमल हो

गये हैं ।” यहां राजाकी दानशक्तिके प्रति श्लेष करके कहा

गया है, कि आपकी दानशक्तिके प्रभावसे ही ब्राह्मणोंको

पद कष्टकरवृत्ति अवलम्बन करनी पड़ी है । फिर यहां

काठिन्यगुणके साथ कीमलताका आपाततः विरोध दिखाई

देता है । किन्तु पालनोपके प्रति ऐसी दानशक्ति

दिखानेसे वह समाहित हो सकता है ।—गुणके साथ

क्रियाका,—“हे भगवान् ! आप अज (जन्मरहित)

हो कर जन्म लेते हैं तथा निद्रित (निर्लेप)

हो कर जागरूक हैं, आपका यह धार्थार्थ कौन जान

सकेगा ?” इस वर्णनमें जन्मरहितका जन्मग्रहण और

निद्रितका जाग्रतव्य ही आपाततः परस्पर अतत्त्वादिगुण-

के साथ जन्मग्रहणादिक्रियाका विरोध है । परन्तु

भगवान्के प्रमायातिशयित्व द्वारा ही इसका समा-

धान है । गुणके साथ द्रव्यका—कालाके अङ्ग न लिपटी

रहनेके कारण उस हरिणाक्षीको पूर्ण निशाकर दारुण

विपञ्चालाका उत्पादक मालूम पड़ने लगा । यहां सोम

(शीतल) गुणविशिष्ट द्रव्यवाची चन्द्रकी विपञ्चाला-

का उत्पादकत्व आपातविरुद्ध है सही, पर विरहिणीके

उसी प्रकार मालूम पड़नेके कारण उसका समाधान है ।

क्रियाके साथ क्रियाका,—“उस महविह्वलनयना कामिनी-

का अतिवृत्तिर, मनःसङ्कुचवातीत रूपमाधुरी देख कर

मेरा हृदय बहुत उल्लासित और सन्तापित होता है ।”

यहां उल्लास और सन्ताप इन दोनों क्रियाओंका एकत्र

समावेश आपाततः विरुद्ध मालूम होता है, किन्तु यथार्थ-

में कामिनीके नयनानन्दकर प्रदेनाहोपक रूप देख कर

अत्यन्त प्रीति तथा उसके (उस नारीका) न मिलनेका

मदनताप, ये दोनों क्रिया ही एक समय दिखाई देती हैं ।

विरोधक (सं० ति०) १ विरोधकारी, शत्रु । (पु०) २ नाटक-

में वे विषय जिनका वर्णन निरिद हो ।

विरोधकृत् (सं० लि०) विरोधकारी । (पु०) २ साठ संवत्सरके अन्तर्गत ४४वां वर्ष ।

विरोधक्रिया (सं० स्त्री०) शत्रुता ।

विरोधन (सं० स्त्री०) वि-रुध-स्युट् । १ विरोध करना, चैर करना । २ नाश, धरबादी । ३ नाटकमें विमर्षका एक अङ्ग । यह उस समय होता है जब किसी कारणवश कार्यध्वंसका उपक्रम (सामान) होता है । जैसे—कुचक्षेत्रयुद्धके अन्त होनेके निकट, जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीमका यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधनको न मारूँगा, तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ।" सब बात बत जाने पर भी भीमका यह कहना युधिष्ठिर आदिके मनमें यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन मारा गया, तो हम लोग भी भीमके बिना फीसे रहेंगे । यहाँ पर यही कार्यध्वंसका उपक्रम या विरोधन है ।

विरोधभाक् (सं० लि०) विरोधी ।

विरोधघत् (सं० लि०) विरोधशील, विरुद्ध ।

विरोधाचरण (सं० स्त्री०) १ शत्रुताचरण, प्रतिकूलाचरण, खिलाफ कार्यवाई । २ शत्रुताका व्यवहार ।

विरोधाभास (सं० पु०) अलङ्कारभेद । इसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्यका निषेध दिखाई पड़ता है ।
विरोध देखो ।

विरोधित (सं० लि०) जिसका विरोध किया गया हो ।

विरोधिता (सं० स्त्री०) १ शत्रुता, चैर । २ नक्षत्रोंकी प्रतिकूल दृष्टि ।

विरोधित्व (सं० स्त्री०) विरोधिता, शत्रुता ।

विरोधिन् (सं० लि०) वि-रुध-णिनि । १ विरोधकारी, शत्रु, विपक्षी । २ हितके प्रतिकूल चलनेवाला, कार्य-त्सिद्धिमें बाधा डालनेवाला । (पु०) ३. वाहस्पत्यके संवत्सरोंमेंसे पचीसवां संवत्सर ।

विरोधिनी (सं० स्त्री०) वि-रुध-णिनि-स्त्रीप् । १ विरोधकारिका, चैरिन । २ विरोध करानेवाली, दो आध्यात्मिकोंमें भ्रमहा लगानेवाली । ३ दुःसहकी कन्या । (मार्क० पु० ५११५)

विरोधीश्लेष (सं० पु०) केशवके अश्लेष श्लेष अलङ्कारका एक भेद । इसमें श्लेषके अर्थोंकी दो पदार्थोंमें भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है ।

विरोधीक्ति (सं० स्त्री०) परस्पर वचनविरोधी वचन ।
पर्याय—विप्रलाप, विरोधवाक्य, क्रीधीक्ति, प्रलाप ।

विरोधीपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद । इसमें किसी वस्तुकी उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थोंसे दी जाती है । जैसे,—“तुम्हारा मुख शारदीय चन्द्रमा और कमलके समान है”, यहाँ कमल और चन्द्रमा इन दोनों उपमानोंमें विरोध है ।

विरोध्य (सं० लि०) विरोध-यत् । १ विरोधके योग्य । २ जिसका विरोध करना हो ।

विरोपण (सं० पु०) १ लेपन, लोप करना । २ लोपना, पोतना । ३ जमीनमें पौधा लगाना, रोपना ।

विरोम (सं० लि०) रोमरहित, बिना रोपका ।

विरोप (सं० लि०) १ रोपविशिष्ट, क्रीधी । विगता रोपो यस्य बहुव्री० । २ रोपशून्य, जिसे क्रीधन हो । ३ कष्टकरहित, बिना कटिका ।

विरोह (सं० पु०) १ लतादिका प्ररोह । २ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जा कर रोपना ।

विरोहण (सं० स्त्री०) विरोपण, एक स्थानसे उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोहित (सं० लि०) १ रोहितविशिष्ट । (पु०) २ ऋषिभेद ।

विरोहिन् (सं० लि०) १ रोपणकारी, रोपनेवाला, पौधा लगानेवाला । २ रोपणशील, रोपने या लगाने लायक ।

विरोही—विरोहिन् देखो ।

विरोती (हि० स्त्री०) बाजरा, महुआ, कोदीं घग्गेहकी एक प्रकारकी जौताई जो उनके पीछे ऊँचे होने पर भी जोती जाती है ।

विल (सं० स्त्री०) विलक । १ छिद्र, छेद । २ गुहा, कन्दर । (पु०) ३ उच्चैःश्रवा घोड़ा । ४ वैतसलता ।

विलकारिन् (सं० पु०) विलं करोतीति कृ-णिनि । १ सूर्यिक, चूहा । (लि०) २ गर्तकारी, कोड़नेवाला ।

विलक्ष (सं० लि०) विशेषेण लक्षयतीति विलक्ष-पचायच् ।
१ विसमयान्निवृत्त, भावचर्चाविवृत, अचभेमें पड़ा हुआ । २ लजित । ३ घाँसे, घबराया हुआ ।

विलक्षण (सं० स्त्री०) विगलं लक्षणं आलोचनं यस्य । १ हेतुशून्य आन्या । २ निषयोजन विशेषिनी । (लि०)

विभिन्न लक्षणं यस्य । ३ साधारणते भिन्न, असाधारण, अपूर्व । विशिष्ट लक्षणं यस्याः । ४ विशेष लक्षणयुक्त, अनोखा, अनूठा ।

विलक्षणता (सं० स्त्री०) १ विशेषत्व, अनोखापन । २

विलक्षण होनेका भाव, अपूर्वता ।

विलक्षणत्व (सं० क्लो०) विशेषत्व ।

विलक्षणा (सं० स्त्री०) श्राद्धक्रम में दानमेद ।

विलक्ष्य (सं० त्रि०) विलक्ष् । विलक्ष् देलो ।

विलक्षना (हिं० कि०) दुःखो होना ।

विलक्षाना (हिं० कि०) विलक्षानाका सफ़ाकरूप, विकल करना ।

विलग (हिं० वि०) पृथक्, अलग ।

विलगना (हिं० कि०) १ अलग होना, पृथक् होना । २ पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना, विभक्त या अलग दिखाई देना ।

विलग्न (सं० त्रि०) वि० लसृज्-अच् । १ संलग्न । (क्लो०) २ मध्य, बीच । ३ जन्मलग्न । ४ मेयादि लग्नमात्र ।

विलग्राम—प्राचीन नगरमेद ।

विलङ्घन (सं० क्लो०) वि० लङ्घ-ल्युट् । १ लङ्घन, कूद या लांघ कर पार करनेकी क्रिया । २ लङ्घन करना, बात न सुनना । ३ उपवास करना । ४ किसो वस्तुके भोगसे अपने भाषको रोक रखना, वञ्चित रहना ।

विलङ्घना (सं० स्त्री०) १ लण्डन, थांधा दूर करना । २ लङ्घन, लांघना ।

विलङ्घनीय (सं० त्रि०) १ पार करने योग्य, लाघने लायक । २ परास्त करने योग्य, नीचा दिखाने लायक ।

विलङ्घित (सं० त्रि०) १ जो परास्त हुआ हो, जिसने नीचा देखा हो । २ जो विफल हुआ हो ।

विलङ्घित् (सं० त्रि०) उल्लङ्घनकारी, निघमलङ्घन करनेवाला ।

विलङ्घ्य (सं० त्रि०) वि० लङ्घ-यत् । १ अलङ्घ्य, जिसका लङ्घन न किया जाय । २ लङ्घनयोग्य, पार करने लायक । ३ परास्त होने योग्य, वशमें आने लायक । ४ करने योग्य, सहज ।

विलङ्घ्यता (सं० त्रि०) विलङ्घ्यस्य भोगः तल्-टाप् । लङ्घनकी अयोग्यता ।

विलज्ज (सं० त्रि०) वि-लज्ज-मच् । निलज्ज, लज्ज-रहित, वेदया ।

विलपन (सं० क्लो०) वि-लप-ल्युट् । १ विलाप । २ आलापन, बातचीत करना ।

विलम्ब (सं० त्रि०) १ पाया हुआ, किया हुआ । २ अलग किया हुआ ।

विलम्बि (सं० स्त्री०) वि-लम्-कि । शानिमेद ।

विलम्ब्य (सं० पु०) वि-लम्ब-घञ् । १ गौण, देरी देर । २ लम्बन । ३ प्रभवादि साठ संवत्सरोंमेंसे ३२वां वर्ष । (त्रि०) बहुत काल, देर ।

विलम्बक (सं० पु०) १ राजमेद । २ अन्नोर्णरोगमेद । (त्रि०) विलम्ब-स्वाधे-कन् । विलम्ब, देर ।

विलम्बन (सं० क्लो०) वि-लम्ब-ल्युट् । १ देर करना, विलम्ब करना । २ लटकना, टंगना । ३ सहारा पकड़ना ।

विलम्बना (हिं० कि०) १ देर करना, विलम्ब करना । २ लटकना । ३ सहारा लेना । ४ रम जाना, मन लगानेके कारण बस जाना ।

विलम्बसौपर्ण (सं० क्लो०) साममेद ।

विलम्बिका (सं० स्त्री०) विसृचिकारोगमेद । इस रोगमें कफ और वायु द्वारा छाया हुआ पदार्थ अत्यन्त सूचित हो कर भी परिपाक नहीं होता और न ऊपर या नीचेकी ओर ही चला जाता है अर्थात् घर्षि या दस्त हो कर नहीं निकलता है । इस कारण पेट धीरे धीरे फूलने लगता है और आधोर रोगोंके प्राण चले जाते हैं । इसीलिये आयुर्वेदाचार्यने इस रोगको चिकित्साका असाध्य, वा चिकित्सातीत कहा है ।

विलम्बित (सं० त्रि०) वि-लम्ब-क्त । १ अगोत्र, जिसमें विलम्ब या देर हुई है । २ लटकता हुआ, झुलता हुआ । (क्लो०) ३ मन्दत्व, सुस्ती । ४ सुस्न चलनेवाला जान-घर । जैसे—हाथो, गैडा, भैंस इत्यादि । सङ्गीतमें विलम्बित-लयका प्रयोग है ।

विभक्त्यन्तगति (सं० स्त्री०) छन्दमेद । इसके प्रत्येक चरणमें १० अक्षर रहते हैं । उनमेंसे १, ३, ४, ५, ७, ६, १०, ११, १२ और १६वां गुण और धाकी-लघु होते हैं ।

विलम्बिता (सं० स्त्री०) वि-लम्ब-क्त । लिपि-टाप् । सुदीर्घ (त्रि०) । विलम्बिचिन्धि, देरसे करनेवाला ।

विलम्बित (सं० त्रि०) १ विलम्बकारी, देर करनेवाला। विशेषण लम्बते इति वि-लम्ब-णिनि। २ लम्बमान, लट्-कृता हुआ। (क्लो०) ३ प्रभवदि साठ संवत्सरोर्मिसे ३२वां संवत्सर।

विलम्भ (सं० पु०) वि-लम्भ-घञ्-तुम्। १ अतिसर्जन, अत्यन्त दान। २ उदारता। ३ उपहार, भेंट।

विलय (सं० पु०) विशिषेण लीयन्ते पार्था असिप्रग्निति। वि-लो-ञच् (एल्)। पा ३।३।१।६) १ प्रलय। २ विनाश। ३ मृत्यु। ४ विलीन होनेकी क्रिया या भाव, लोप, अन्त। ५ विस्मयन।

विलयन (सं० त्रि०) १ लयविशिष्ट, लयकी प्राप्त होना। (क्लो०) २ दूरीकरण, अलग करना। ३ विनाशन, नाश।

विलला (सं० क्लो०) श्वेतवला, मफेद सुगंधवाला।

विलवर—आदिम जातिविशेष।

विलवास (सं० पु०) विले वासो यस्य। जाहक जन्तु, विलमें रहनेवाला जानवर।

विलवासिन (सं० पु०) विले वसतीति वस-णिनि। १ सर्प, सांप। (त्रि०) २ गर्त्तवासी, विलमें रहनेवाला।

विलशय (सं० पु०) विले शये विल-शी-ञच्। १ सर्प। (त्रि०) २ विलवासी, माँदमें रहनेवाला।

विलसत् (सं० त्रि०) वि-लस्-शत्। विलासयुक्त, विलासी।

विलसन (सं० क्लो०) वि-लस्-ल्युट्। १ विलास, प्रमोद। २ चमकनेकी क्रिया।

विलसर—युक्तप्रदेशके पटा जिलान्तर्गत एक नगर। मुसलमानी इतिहासमें यह विलसनद् या तिलसनद् नामसे परिचित है। यहां अनेक बौद्धमठ और कुमारगुप्तके स्तम्भ तथा, मन्दिरादिके स्मृतिचिह्न विद्यमान हैं।

विलखंदो (हिं० खी०) जिलेका षण्दोषस्तका संक्षिप्त प्योरा। इसमें प्रत्येक महालका नाम, काश्तकारोंके नाम और उनके लगान आदिका प्योरा लिखा होता है।

विलहर—मध्यप्रदेशके

इसका प्राचीन नाम

मन्दिरादिका ध्वंसावशेष

विलहरिया

यहां

विलाता (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

विलाता (हिं० क्लि०) विलाना देखो।

विलाप (सं० पु०) वि-लप-घञ्। १ अनुशोचन, परिदेवन। २ दुःखजनक वार्ता।

विलापन (सं० क्लो०) वि-लप-ल्युट्। १ विलाप, विलख विलख कर या विकल हो कर रोनेकी क्रिया, आर्त्तनाद।

वि-लो-णिच् ल्युट्। २ द्रव्योभाव, गलना।

विलापना (हिं० क्लि०) १ शोक करना, विलाप करना। २ वृक्ष रोपना या लगाना।

विलापिन (सं० त्रि०) वि-लप-णिनि। विलापकारी, आर्त्तनाद करनेवाला।

विलायक (सं० त्रि०) वि-लो-णिच्-ण्युल्। १ द्रवकारक, आद्रकारक। २ लयकारक, लीनताकारक।

"मनसोऽपि विलायकः।" (शुक्लयजुः २०।३५)

मनसो विलायकश्चासि विलाययति विययेभ्यो निययं-त्मनि स्थापयति विलायकः आत्मज्ञानप्रदोऽस्तीत्यर्थः यद्वा लो श्लेषणे विलाययति चक्षुरादिभिः सह श्लेषयति विलायकः सर्वेन्द्रियैः सह श्लेषयति विलायकः सर्वेन्द्रियैः सह मनः संयोजयतीत्यर्थः। (महाभर)

विलायत (अ० पु०) १ परया देश, दूसरोंका देश। २ दूरस्थ देश, दूरका देश, विशेषतः आजकलको बोलचालमें यूरोप या अमेरिकाका कोई देश।

विलायती (अ० वि०) १ विलायतका, विदेशी। २ अन्य देशका रहनेवाला, परदेशी। ३ दूसरे देशमें बना हुआ।

विलायती अनग्नास (हिं० पु०) रामबांस, रामवान। रामबां देवो।

विलायती कद्दू (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका कद्दू, जो तरकारीके काममें आता है।

विलायती कासनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कासनी जिसकी पत्तियां दवाके काममें लाती हैं।

विलायती कीकर (हिं० पु०) पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पांच हजार फुटकी ऊंचाई तक होता है। यह पाठ लोमानेके काममें आता है। जाड़ेके दिनोंमें यह खूब फूलता है और इसके फूलोंसे बहुत अच्छी महक निकलती

फूलोंसे कई प्रकारके इत् आदि बनाये जाते हैं।

को बचल भी कहते हैं।

विलायती छद्म-दर (हिं० पु०) एक प्रकारका छद्म-दर। यह इंग्लैण्डके पश्चिमी ओरके प्रदेशोंमें बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वीके नीचे सुरंगमें रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधार अधिक प्रिय होता है। इसके अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरिछे होते हैं। इसको आंखें छोटी, धुंधला लंबा और नोरुदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी श्रवणशक्ति बहुत तेज होती है। विलायती नोल (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका नीला रंग जो चीनसे आता है।

विलायती पट्टभा (हिं० पु०) लाल पट्टभा, लाल सन।

विलायती पात (हिं० पु०) रामबाँस, कृष्ण फेंकनी।

विलायती प्याज (हिं० पु०) एक प्रकारका प्याज। इसमें गाँठ नहीं होती सिर्फ गूरेदार जड़ होती है।

विलायती घेंगन (हिं० पु०) एक प्रकारका घेंगन या भंडा जो इस देशमें यूरोपसे आया है। यह क्षुप जातिकी वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। इसका क्षुप दो दाईं हाथ ऊँचा होता है। इसको डालियाँ भूमिकी ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आलूके पत्तोंके-से होते हैं। डंडियोंके बीच-बीचसे सीके निकलते हैं जिन पर गुच्छमें फूल आते हैं। ये फूल साधारण घेंगनके फूलोंके समान पर उनसे छोटे होते हैं। इसका रंग पोला होता है। फल प्रायः दोसे चार इंच तकके गोलाकार और कुछ चिपटे नारंगीके समान होते हैं। कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसको तरकारी, चटनी आदि बनती है। खाद्यमें यह कुछ कष्टान्न लिये जाता है। रासायनिक विरलेपणसे पता लगता है, कि इसमें २३ सैकड़ लोहाका अंश होता है। अतः यह रक्तवर्द्धक है। अंगरेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे डुमेटो कहते हैं।

विलायती लहसुन (हिं० पु०) एक प्रकारका लहसुन। यह मसालेके काममें आता है।

विलायती सिरिस (हिं० पु०) एक प्रकारका सिरिस जो विदेशसे यहाँ आया है पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह नोलगिरि पर्वत पर बहुतायतसे होता है। पंजाबमें यह मिलता है। इसको छाल प्रायः चमड़ा सिम्हानेके काममें आती है।

विलायती सेम (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सेम। इनकी फलियाँ साधारण सेमसे कुछ बड़ी होती हैं।

विलायन (सं० स्त्री०) १ गर्त्त, गड्ढा। २ प्राचीनकालका एक अस्त्र। कहते हैं, कि जब इस अस्त्रका उपयोग किया जाता था, तब शत्रुकी सेना विध्राम करने लगती थी।

विलारी—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। भू-परिमाण ३३३ वर्गमोल है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और विलारी तहसीलका विचार सदा। मुरादाबाद नगरसे यह ६ कोस दक्षिण-पूर्व पड़ता है। यहाँ अयोध्या रोहिलखण्ड-रेलवेका एक स्टेशन है। इसलिये यह स्थान वाणिज्यके लिए बहुत सुविषयता है। यहाँ एक दीवानी और दो फौजदारी अदालतें हैं।

विलाल (सं० पु०) वि-लाल-घञ् । १ यत्न । (शब्दच०) २ विडाल, विह्वी।

विलायली (हिं० स्त्री०) एक रागिनी जो हिंडोल रागकी स्त्री माना जाती है।

विलायिन् ((सं० लि०) वि-लप-घिनुण् (पा ३।२।१४५) विलासी, सुखभोगी।

विलास (सं० पु०) वि-लस्-घञ् । १ प्रसन्न या प्रकुलित करनेवाली क्रिया। २ सुख-भोग, आनन्दमय क्रोड़ा, मनोरंजन। ३ आनन्द, हर्ष। ४ किसी चोजका हिलना डोलना। ५ आरामतलबी, अतिशय सुखभोग। ६ सरस्वगुणज्ञात पीक्ष्य (पुष्पतय) भेद। विलासयुक्त पुद्यमं दृष्टिका गाम्भीर्यं, गतिका वैचित्र्य (मनोहारित्व) तथा पचनका हास्यभाव दिखाई देता है। जैसे "अति उदत वेशमें समरमें आये हुए इसको (कुजकी) दृष्टिसे ही मालूम होता है, कि उसमें मानो त्रिजगत्के प्राणियोंका बल सम्मिलित है और वह त्रिजगत्की तुच्छ समक्ष रहा है। इसकी गतिकी धोरता और उदतभाव देखनेसे मालूम होता है, कि यह मानो भरिलोको यिनमित कर रहा है। फिर यह (कुज) देखनेमें तो चञ्चल सुकुमार है, पर गिरिवर सद्रूप अचल और अटल मालूम होता है। अनपव यह स्वर्ण दर्प है या वीररस?" यहाँ गतिके अद्वैत और वीरत्वकी युगपत् प्रतीयमानता ही उसका

विलम्बिन् (सं० त्रि०) १ विलम्बकारी, देर करनेवाला । विशेषेण लम्बते इति विलम्ब-णिनि । २ लम्बमान, लट्-कृता हुआ । (ह्रो०) ३ प्रभवति साठ संवत्सरोर्मिसे ३२वां संवत्सर ।

विलम्ब (सं० पु०) विलम्ब-घञ्-सुप् । १ अतिसर्जन, अरपथ दान । २ उदारता । ३ उपहार, भेंट ।

विलय (सं० पु०) विशेषेण लीयन्ते पदार्थांश्चिसमिगिति । वि-ली-ञच् (एच् । पा ३।३।१।६) १ प्रलय । २ विनाश । ३ मृत्यु । ४ विलीन होनेकी क्रिया या भाव, लोप, अन्त । ५ विम्लान ।

विलयन (सं० त्रि०) १ लयविशिष्ट, लयकी प्राप्त होना । (ह्रो०) २ दूरीकरण, अलग करना । ३ विनाशन, नाश ।

विलला (सं० ह्रो०) श्रेयतवला, मफेद सुगंधवाला ।

विलवर—आदिम ज्ञातिविशेष ।

विलवास (सं० पु०) विले वासो यस्य । जाहकं जन्तु, विलमें रहनेवाला जानवर ।

विलवास्त्रिन् (सं० पु०) विले वसतीति वस-णिनि । १ सर्प, सांप । (त्रि०) २ गर्तवासी, विलमें रहनेवाला ।

विलगय (सं० पु०) विले शेते विल-गो-ञच् । १ सर्प । (त्रि०) २ विलवासी, माँवमें रहनेवाला ।

विलसत् (सं० त्रि०) विलस्-शत् । विलासयुक्त, विलासी ।

विलसन (सं० ह्रो०) विलस्-स्युट् । १ विलास, प्रमोद । २ चमकनेकी क्रिया ।

विलसर—युक्तप्रदेशके पटा जिलान्तर्गत एक नगर । मुसलमानों इतिहासमें यह विलसन्द या तिलसन्द नाममें परिचित है । यहाँ अनेक मन्दिर और कुमारगुप्तके स्तम्भ तथा मन्दिरादिके स्मृतिचिह्न विद्यमान हैं ।

विलस्यंदी (हिं० स्त्री०) जिलेका बन्दोवस्तका संक्षिप्त धोरा । इसमें प्रत्येक महालका नाम, काश्तकारोंके नाम और उनके लगान आदिका धोरा लिखा होता है ।

विलहर—मध्यप्रदेशके जम्बलपुर जिलान्तर्गत एक नगर । इसका प्राचीन नाम पुष्पावती थी । यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिरादिका ध्वंसावशेष विद्यमान होता है ।

विलहरिया—युक्तप्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक ग्राम । यहाँ बहुतसे प्राचीन मन्दिर हैं ।

विलाता (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिट्ठीपा ।

विलाना (हिं० कि०) विलाना देखो ।

विलाप (सं० पु०) विलप घञ् । १ अनुगोचन, परिदेयन । २ दुःखजनक बात ।

विलापन (सं० ह्रो०) विलप् स्युट् । १ विलाप, विलख विलख कर या विकल हो कर रोनेकी क्रिया, आर्त्तनाद । वि लो-णिच् स्युट् । २ द्रव्योभाव, गलना ।

विलापना (हिं० कि०) १ शोक करना, विलाप करना । २ वृक्ष रोपना या लगाना ।

विलापिन् (सं० त्रि०) विलप्-णिनि । विलापकारी, आर्त्तनाद करनेवाला ।

विलायक (सं० त्रि०) वि-ली-णिच्-ण्वल् । १ द्रव्यकारक, भाद्रकारक । २ लयकारक, लीनताकारक ।

"मनोऽपि विलायकः ।" (शुक्लयजुः २०।३५)

'मनसो विलायकरवांसि विलाययति त्रियेष्वपि नियतवामनि स्थापयति विलायकः आत्मज्ञानप्रदोऽस्तीत्यर्थः यदा लो श्लेषेण विलाययति चक्षुरादिभिः सह श्लेषयति विलायकः सर्वेन्द्रियैः सह श्लेषयति विलायकः सर्वेन्द्रियैः सह मनः संयोजयतीत्यर्थः ।' (महीषर)

विलायत (अ० पु०) १ पराया देश, दूसरीका देश । २ दूरस्थ देश, दूरका देश, विशेषतः आजकलकी बोलचालमें यूरोप या अमेरिकाका कोई देश ।

विलायती (अ० वि०) १ विलायतका, विदेशी । २ अन्य देशका रहनेवाला, परदेशी । ३ दूसरे देशमें बना हुआ ।

विलायती अनरनास (हिं० पु०) रामदास, रामशान । भामशिव देखो ।

विलायती कद्दू (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका कद्दू, जो तरकारीके काममें आता है ।

विलायती कासनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कासनी जिसकी पत्तियाँ दवाके काममें लाती हैं ।

विलायती कीकर (हिं० पु०) पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पांच हजार फुटकी ऊँचाई तक होता है । यह बाँट लोयानेके काममें आता है । जाड़ेके दिनोंमें यह खूब फूलता है और इसके फूलोंसे बहुत अच्छी महक निकलती है । यूरोपमें इन फूलोंसे कई प्रकारके रत्न आदि बनाये जाते हैं । इसे परसी बयूल भी कहते हैं ।

विलायती छद्म दर (हि० पु०) एक प्रकारका छद्म दर। यह इंग्लैण्डके पश्चिमी ओरके प्रदेशोंमें बहुत पाया जाता है। यह घृष्टीके नाँचे सुरंगमें रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधार अधिक प्रिय होता है। इसके अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरिके होते हैं। इसकी आँखें छोटी, धुंधला लंघा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी ध्वन्यनाक बहुत तेज होती है। विलायती नोल (हि० पु०) एक विशेष प्रकारका नीला रंग जो चीनसे आता है।

विलायती पट्टा (हि० पु०) लाल पट्टा, लाल सन।

विलायती पात (हि० पु०) रामबाँस, कृष्ण केतकी।

विलायती प्याज (हि० पु०) एक प्रकारका प्याज। इसमें गाँठ नहीं होती सिर्फ गूदेदार जड़ होती है।

विलायती बैंगन (हि० पु०) एक प्रकारका बैंगन या भंटा जो इस देशमें यूरोपसे आया है। यह क्षुप जातिकी वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। इसका क्षुप दो ड्राई हाथ ऊँचा होता है। इसको डालियाँ भूमिकी ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आलूके पत्तोंकेसे होते हैं। डंडियोंके बीच बीचसे सोंके निकलते हैं जिन पर गुच्छेमें फूल आते हैं। ये फूल साधारण बैंगनके फूलोंके समान पर उनसे छोटे होते हैं। इसका रंग पीला होता है। फल प्रायः दोसे चार इंच तकके गोलाकार और कुछ चिपटे नारंगोंके समान होते हैं। कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसकी तफारती, चटनी आदि बनती है। स्वादमें यह कुछ खट्टापन लिये जाता है। रासायनिक विश्लेषणसे पता लगता है, कि इसमें २३ सैकड़े लोहेका अंश होता है। अतः यह रक्तवद्धक है। अंगरेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे टुमेटो कहते हैं।

विलायती लहसुन (हि० पु०) एक प्रकारका लहसुन। यह मसालेके काममें आता है।

विलायती सिरिस (हि० पु०) एक प्रकारका सिरिस जो विश्वसे यहाँ आया है पर अब यहाँ भी देने लगा है। यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायतसे होता है। पंजाबमें यह मिलता है। इसको छाल प्रायः चमड़ा सिम्हानेके काममें आती है।

विलायती सेम (हि० खी०) एक प्रकारकी सेम। इसकी फलियाँ साधारण सेमसे कुछ बड़ी होती हैं।

विलायन (सं० क्लो०) १ गर्त, गड्ढा। २ प्राचीनकालका एक अस्त्र। कहते हैं, कि अब इस अस्त्रका उपयोग किया जाता था, तब शत्रुकी सेना विधाम करने लगती थी।

विलारी—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण ३३३ वर्गमोल है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और विलारी तहसीलका विचार सहर। मुरादाबाद नगरसे यह ६ कोस दक्षिणपूर्व पड़ता है। यहाँ अयोध्या रोहिलखण्ड-रेलवेका एक स्टेशन है। इसलिये यह स्थान वाणिज्यके लिए बहुत सुविधायत है। यहाँ एक दीवानी और दो फौजदारी अदालतें हैं।

विलाल (सं० पु०) वि-लल-घञ्। १ यन्त्र। (शब्दच०) २ विडाल, विल्ली।

विलावली (हि० खी०) एक रागिनी जो हिंडोल रागकी खी माना जाती है।

विलापिन ((सं० त्रि०) वि-लप-घिनुण् (पा ३।१।१४४) विलासी, सुखभोगी।

विलास (सं० पु०) विलस्-घञ्। १ प्रसन्न या प्रकुलित करनेवाली क्रिया। २ सुख-भोग, आनन्दमय फौड़ा, मनोरञ्जन। ३ आनन्द, हर्ष। ४ किसी चोजका हिलना डोलना। ५ आरामतलबो, अतिशय सुखभोग। ६ सचचयुगजात पौषप (पुष्यवृष) भेद। विलासयुक्त पुष्यमें दृष्टिका गाम्भीर्य, गतिका वैचित्र्य (मनोहारित्व) तथा वचनका हास्यभाव दिखाई देता है। जैसे "अति उद्धत देशमें समरमें आये हुये इसकी (कुशकी) दृष्टिसे ही मालूम होता है, कि उसमें मानो त्रिजगत्के प्राणियोंका बल समिलित है और वह त्रिजगत्की तुच्छ सम्भ रहा है। इसकी गतिकी घोरता और उद्धतभाव देखनेसे मालूम होता है, कि वह मानो धरित्रीकी विनमित कर रहा है। किंतु यह (कुश) देखनेमें तो अचल सुकुमार है, पर गिरिवर सद्रुश अचल और अटल मालूम होता है। अतएव यह स्वयं वर्ष है या वीररस?" यहाँ गतिके औद्धत्य और घोरत्वकी युगपत् प्रतीयमानता ही, उसका

वैचित्र्य तथा दृष्टिका तुच्छभाव प्रदर्शन ही उसका गाम्भीर्य है।

७ स्त्रियोंके यौवनसुलभ हावभावादि अट्टाईस प्रकारके स्वाभाविक धर्मसे एक धर्म। प्रियकी देख कर स्त्रियोंके गमनावस्थानोपवेगनादि तथा मुलनेलादिका जो अनिवर्चनीय भाव होता है, उसका नाम विलास है। जैसे प्राच्यने सखीसे कहा,—“उस समग्र मालतीके क्या एक अनिवर्चनीय भावका उदय हुआ; उनका वह चाग्चैचित्र्य, गात्रस्नग्म और स्वेदनिर्गमादि विकार तथा एकान्त धैर्यरुचि आदि भाव देख कर मालूम होने लगा मानो वे मन्मथसे प्रणोदित हो अपने काय्य-सम्पादनमें बड़े व्यग्र हो रहे हैं।”

८ स्फुरण। ९ प्राडुर्भाव। १० तदेकात्मरूपका अन्यतर। विलास और स्वांशके भेदसे तदेकात्मरूप दो प्रकारका है। आकृतिगत विभिन्नता रहते हुए भी शक्तिसामर्थ्यमें अभेदको कल्पना करनेसे वहाँ तदेकात्मरूप कहा जाता है। किन्तु दोनोंकी शक्तिके न्यूनाधिक्य-वशतः ही वह पूर्वोक्त दो भागोंमें विभक्त हुआ है। जहाँ दोनोंकी शक्तिकी समता मालूम होगी, वहाँ विलास होगा। जैसे,—हरि और हर। ये दोनों ही शक्ति-सामर्थ्यमें समान हैं। फिर कोई दो इन दो (हरि और हर)-के अंशरूपमें कल्पित तथा इनकी अपेक्षा न्यून और परस्पर शक्तिमें समान मालूम होनेसे वहाँ स्वांश करना होगा। जैसे,—सङ्घर्षणादि और मीनकूर्मादि।

११ नाटकोक्त प्रतिमुञ्जका बङ्गभेद। सुरतसम्भोग-विषयिणी अत्यधिका चेष्टा वा स्पृहाका नाम विलास है। जैसे,—

“देखा जाता है, कि प्रिय शकुन्तला सहजलभ्या नहीं है; परन्तु मनका भाव देखनेसे अर्थात् मेरे प्रति उसकी अनुरागव्यञ्जक विशेष चेष्टा देखनेसे बहुत कुछ आशा की जाती है, क्योंकि मनोभाव अकृतार्थ होने पर भी स्त्री और पुरुषको परस्परकी जो कामना है, उससे धीरे धीरे दोनोंमें अनुराग उत्पन्न होता है।” (शकुन्तला ३ अ०) यहाँ पर नौयिकासम्भोगविषयिणी स्पृहा दिखलाई गई है, ऐसा मालूम होता है। जहाँ नायक और नायिकामेंसे किसी एक सम्भोगमें चेष्टा वा स्पृहा देखी जायेगा वहाँ ही विलास होगा।

विलास आचार्य—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरु। ये पुरुषोत्तमाचार्यके शिष्य और स्वरूपाचार्यके गुरु थे।

विलासक (सं० त्रि०) १ भ्रमणशील, इधर उधर फिरने-वाला। २ विलास देखो।

विलासकानन (सं० क्लो०) विलासोद्यान, केलिकानन, क्रीडा-उपवन।

विलासदोला (सं० खो०) क्रीडार्थ दोलाविशेष।

विलासन (सं० क्लो०) विलास।

विलासपरायण (सं० क्लो०) शीकोन, हमेशा आमोद-प्रमोदमें रत।

विलासपुर—मध्यप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २१° ३७' से ले कर २३° ७' ३०" तथा देशा० ८१° १२' से ले कर ८३° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ७६०२ वर्गमील है। इसके उत्तर छत्तीसगढ़का समतल भूभाग तथा महानदी, दक्षिण रावपुरका उन्मुक्त प्रन्तर पूर्व और दक्षिण पूर्व रायगढ़ तथा सारनगढ़ राज्य और पश्चिम मैकाला नाम्नी पहाड़की निम्नभूमि है। विलासपुर नगर इस जिलेका विचारसदर है।

जिलेके चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है; चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। दक्षिणमें भी पहाड़ियोंका अभाव नहीं। किन्तु रावपुरकी ओर कुछ खुला हुआ है। इसी कारण इस स्थानसे रावपुरका समतल प्रान्तर सहजमें ही दृष्टिगोचर होता है। वास्तवमें विलासपुर जिला एक सुन्दर रङ्गमञ्च है। रावपुरकी ओरका खुला मैदान इसका प्रवेश-पथ है। यहाँके पर्वतोंके प्रस्तरप्रस्तर भूतत्त्वकी आलोचनाकी सामग्री है। जिलेके समग्र समतलक्षेत्रमें इसकी शाखा प्रजाघाये फैली है। बीच बीचमें एक एक शिखर इस गाम्भीर्यका भाव भङ्ग कर रहे हैं। किन्तु कहीं श्यामलशय्य पूर्ण मैदान, कहीं सुगमोर पहाड़ी खाद है, कहीं निविड़ वनमालाओंने उस पादंत्य वक्षके स्थानोंको विशेष मनोरम बना रखा है। यहाँका डाला नामक पहाड़का शिखर २६०० फीट ऊँचा है। विलासपुरके १५ मील पूर्व एक समतलक्षेत्रमें यह पहाड़ विराजित है। इससे इस पर खड़ा ही कर देखनेसे जिलेका बहुत अंश दिखाई देता है। इस पर्वत शिखरका उत्तरी अंश जङ्गलसे परिपूर्ण है और दक्षिणमें

समतल भूमि है। सूर्योत्तापमें प्रकाशित छोटे छोटे तालाब, ग्राम और आम, पीपल, शमली आदि ऊँचे वृक्षोंने डालके शिखर पर खड़े हो कर समतल क्षेत्रको एकताका मङ्गल कर दिया है। यदि किसीकी विलासपुरके प्रकृत सौन्दर्यको देख कर अपने नेत्र परिवृत्त करने हों, तो उसे चाहिये, कि समतल क्षेत्रका छोड़ कर पहाड़ों पर चढ़ जाये। वहाँ तरह तरहके वृक्ष प्रकृतिका माहात्म्य गा रहे हैं। फिर शक्ति, कवादा, माटिन और उपरोड़ा आदि १५ पहाड़ों सामन्तराज्य तथा सरकारी पतित जमीन वहाँके कृषक द्वारा आबाद होनेसे वहाँकी शोभा और भी बढ़ रही है। इन सब पहाड़ी जङ्गलोंमें हाथी पाये जाते हैं। कमी कमी भुण्डके भुण्ड हाथी उतर कर वहाँकी खेतीचारोंका नष्ट कर देते हैं। द्वास्तु नदीके किनारेवालें जङ्गलमें तथा पार्वतीय भरनोंके निकट प्रायः हाथी एकत्र होते हैं।

जिले भरमें महानदी ही एक बड़ी नदी है। धर्षामि यह दो मील तक फैल जाती है। किन्तु गर्मीके दिनोंमें गङ्गाकी तरह सूख जाती है और इसका सूखा फलेवर केवल बालुकाभय चरके रूपमें दिखाई देता है। पूर्व वर्णित पर्वतमालाकी अधिपत्यभूमिको अववाहिकासे हो कर नर्मादा और सोन नदी उद्भूत हुई हैं। महाराष्ट्रके अभ्युत्थानके पहले रत्नपुरके शैल्यवशीय राजाओं द्वारा यह स्थान शासित होता था। इस प्राचीन राजवंशका परिचय यतानेकी जरूरत नहीं, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणवेशमें इस राजवंशके राजा मयूरध्वजको छलने आये थे। शैल्यराजवंश देखो।

साधारणतः रत्नपुरके राजाओंने छत्तीसगढ़ों पर अधिकार जमाया था। इसीसे इस राज्यका छत्तीसगढ़ नाम पड़ा था। शायद ७५० ई०में इस राजवंशके बारहवें राजा सुरदेवके सिंहासनाधिकारके बाद छत्तीसगढ़राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। सुरदेव सुपुरमें रह कर समग्र उत्तर भागका शासन करते थे और भाई ब्रह्मदेव रायपुरमें राज्य स्थापन कर समग्र दक्षिण भाग पर शासन करते थे। नौ पुत्रके बाद ब्रह्मदेवका वंश लोप हुआ। ऐसे समय रत्नपुरके एक राजकुमारने आ कर रायपुरका राज्यभार ग्रहण किया। इनके पुत्रके अधिकारकालमें

महाराष्ट्र सेनाने छत्तीसगढ़ राज्य पर आक्रमण किया। उक्त छत्तीसों गढ़ वास्तवमें एक एक जमीन्दारी या ताल-लुकका सदर है। राजकार्य्य सुष्ठुल्लापूर्वक चलानेके लिये वहाँ एक एक दुर्ग बनवाया गया था। एक एक सरदारके अधीन ये सब स्थान 'खाम' या सामन्तराजकी शर्त पर शासित होते थे। साधारणतः राजाके आत्मीय ही सरदार पद पर नियुक्त होते थे। राजा सुरदेवके अंशमें जो १८ गढ़ थे, उनमें वर्तमान विलासपुर जिलेके ११ खालसा अधिकारमें और ७ जमींदारियोंको शर्तमें राजाधिकारमें थे। सन् १४८०ई०में सुरदेवके वंशधर राजा दादुरावने रेवा नरेशके हाथ अपनी कन्याको समर्पण करनेके समय अपनी सम्पत्तिकी १८वीं कर्कती (करकारो) यौतुक या उपद्रौकन रूपमें दी थी। विलासपुरके पश्चिम पाण्डारिया और कर्षादा नामक जो सामन्तराज्य हैं, वे मण्डला गोंड राजवंशके अधिकारसे विच्छिन्न कर दिये गये। सन् १५२० ई०में सरगुजाराजके अधिकृत फेरवा प्रदेश और सन् १५०० ई०में महानदीके दक्षिणके फिलाईनदके सामन्तराज्य और पूर्वमें सबलपुरके अधिकृत किकार्दा नामक खालसा भूभाग विलासपुरके अन्तर्गत लिया गया।

सुरदेवके बाद उनके पुत्र पृथ्वीदेवने राजसिंहासन पर अधिरोहण किया। मलहर और अमरकण्टकके शिलाफलक आज भी उनकी कीर्त्तियोंको घोषणा कर रहे हैं। वे शत्रुके भयोत्पादक और प्रजाके वधु थे। पृथ्वीदेवके बाद इस वंशके अनेक राजाओंने रत्नपुर सिंहासनके अलंकृत किया था। स्थानीय मन्दिर आदिमें उदकीर्ण शिलाफलकों पर इन राजाओंके कीर्त्तिलालाप विद्योपित हैं। सन् १५३६से १५७३ ई० तक राजा कल्याणग्राहीका राज्यकाल था। उक्त राजा दिव्यजीके मुगल बादशाहकी बशयता स्वीकार करने पर सम्राट्ने उनकी विशेष सम्मानसूचक उपाधि दी। इसके बाद रत्नपुरमें जिन सब राजाओंने स्वाधीनतापूर्वक राज्यशासन किया था, उनमें राजा कल्याणग्राहीको नवीं पीढ़ी नीचेके राजा राजसिंह अगुलक हुए। अपने समीपी आत्मीय और पितामहस्राता सरदार सिंहको राजसिंहासनका यथार्थ उत्तराधिकारी जान कर मो

राजा उनको राजसिंहासन देने पर राजी न हुए। ब्राह्मणमन्त्रीके परामर्शानुसार और राज्य-प्रमाणसे राज महीषीके गर्भसे ब्राह्मण द्वारा पुत्रोत्पादनकी व्यवस्था हुई। यथासमय रानी पुत्रवती हुई। इस पुत्रका नाम विश्वनाथ सिंह हुआ।

राजा विश्वनाथसिंहने देवा-राजकन्याका पाणि प्रहण किया। विवाह हो जानेके बाद राजकुमार और राजकुमारी अट्टफकीडामें रत थी। राजकुमार अपनी पत्नीकी प्रकृति जाननेके लिये कौशलसे जपलाभ कर रहे थे, यह देख राजकुमारीने उपहासच्छलसे कहा—“मैं तो हाकूंगी ही, क्योंकि आप ब्राह्मण या राजपूत नहीं हैं।” रानीके इस वाक्यने राजाके हृदयमें भारी चोट पहुंचाई। वे पहलेसे अपने जन्मके सम्बन्धमें कुछ गड़बड़ बातें सुन चुके थे। राजकुमारीके इस वाक्यने उनका रहा सदा परदा फाड़ डाला। फलतः राजाने उसी समय घरसे निकल कर अपने कलेजमें लूरे भोंक कर आत्महत्या कर ली।

राजा राजसिंह पुत्रका आकस्मिक मृत्यु-संवाद सुन कर बड़े ही शोकातुर हुए; किन्तु उस ब्राह्मण-मन्त्रीका परामर्श ही इस पुत्रशोकका कारण हुआ। यह भी वे अच्छी तरह समझ गये, कि इस ब्राह्मण-मन्त्रीके कुपरामर्शके कारण राजवंशमें कलङ्कका टीका लगा दी। यह समझ कर, उन्होंने मन्त्रिवंशका ध्वंस करनेके लिये उस ब्राह्मण-मन्त्रीको ही नहीं उसके टोलेको तोपसे उड़ा दिया। इस ब्राह्मण-मन्त्रीके साथ उस टोलेके कोई चार सौ नरनारियोंको जान गई। साथ ही राज-वंशका यथार्थ ऐतिहासिक ग्रन्थ आदि भी विनष्ट हो गया।

इसके बाद रायपुर-राजवंशके मोहनसिंह नामक एक बलवीर्यशाली राजकुमारको राजा राजसिंहने अपना उत्तराधिकारी बनाया; किन्तु ब्रह्मका लिखा कौन-मिटा नकता है। मोहनसिंह शिकार खेलनेके लिये निकल चुके थे। इसी दिन राजा राजसिंह घोड़ेसे गिर कर मृत्युसुखमें पतित हुए। फलतः मृत्युकालमें मोहनको न पाकर उन्होंने पूर्वोक्त सिंहासन पर अपना सिंहासन पकड़ा कर सन्

१७१० ई०की घटना है। राजाकी मृत्युके कई दिन बाद मोहनसिंह लौट आये। उन्होंने सिंहासन पर सरदार सिंहको बैठा देव अत्यन्त क्रोध प्रकाश किया; किन्तु उपाय न देख वे राज्य छोड़ कर चले गये।

सरदार सिंहकी मृत्युके बाद सन् १७३० ई०में उनके ६० वर्षके बूढ़े भाई रघुनाथ सिंहने राजपद प्राप्त किया; किन्तु उन्होंने निर्विरोध राज्य नहीं कर पाया। आठ वर्षके बाद महाराष्ट्र-सेनापति भास्करपण्डितने ४० हजार सेनाओंके साथ विलासपुर पर आक्रमण किया। इस समय रघुनाथसिंह पुत्र-शोकसे विह्वल हो रहे थे। इसलिये वे शीघ्रपसे भास्करकी गतिको रोक न सके। महाराष्ट्रसेनाने राजप्रासादके अंशविधोषका भी ध्वंस कर दिया। छतसे एक रानीने सन्धिचूचक पताका फेंका। सन्धि तो हुई; किन्तु साथ ही इस राज्यका राज-वंशशक्यति भी विलुप्त हो गई। मरठोंने राजासे बहुत धन लूटपाट कर ले गये और राजाको मौसले राजाके अधीन राजकार्य परिचालनका भार दिया।

इस समय प्रतिहिसा-परायण पूर्वोक्त मोहनसिंह महाराष्ट्रदलमें शामिल थे। महाराष्ट्र रघुजी मौसले उनके कार्यसे बड़े सन्तुष्ट हुए थे। इसलिये रघुनाथ सिंहकी मृत्युके बाद उन्होंने मोहनसिंहकी राजीपायि दे कर विलासपुरकी राजगद्दी पर बैठाया। सन् १७५८ ई०में पिम्प्याजी मौसले महाराष्ट्र नेतृत्व पर प्रतिष्ठित हो रत्नपुरके राजसिंहासन पर बैठे।

प्रायः ३० वर्ष तक राज्य कर वे इहलोकसे चल गये। उनकी विधवा पत्नी आनन्दी दाईने सन् १८०० ई० तक राज्यशासन किया।

इस समयसे सन् १८१८ ई०में आपा साहयकी राज्य-च्युति तक कई सूबेदारोंने अति विश्रुद्धाके साथ विलासपुरका शासन किया। इस जिलेमें उस समय एक दल महाराष्ट्र सेना रहते, पिण्डारी डाकुओंके उपद्रव और सूबेदारोंके अवधा करमारसे विलासपुर नष्ट होता-देख अङ्गरेज कम्पनीने कर्नल पगभ्यूकका यहांका तटवाय-घायक नियुक्त कर भेजा। सन् १८३० ई०में बालक रघुजी बालिग हुए। इन्होंने अपने जीवन भर राज्य किया। सन् १८५४ ई०में नागपुर अङ्गरेजोंके हाथ आया।

छत्तीसगढ़ राज्य पृथक भावसे एक डिप्टी कमिश्नर द्वारा शासन करनेका बन्दोबस्त हुआ। उस समय रायपुर ही उसका सदर माना गया था। किन्तु एक राजकर्मचारीके उक्त कार्यपरिचालनसे असमर्थ होने पर सन् १८६१ ई०में विलासपुर एक स्वतन्त्र जिलेके रूपमें परिगणित हुआ। इसके साथ ही उक्त छत्तीसगढ़का कुछ अंश अन्तर्निविष्ट हुआ था।

सुविध्यात् सन् १८५७के बलबेके समय सोनाखानके सरदारके सिवा और कोई विद्रोही न हुआ। सोनाखान दक्षिण-पूर्व दिशामें एक सामन्तराज्य है। इसका राजा डाका डाल कर हत्याओंके अपराधमें पकड़े और जेल भेजे गये थे। इस बलबेके समय जेलसे छूट कर सोनाखानके राजाने अपने तुर्मेच किलेमें प्रवेश किया। कर्नल लूसो स्मिथने बलबेके साथ उनके दुर्ग पर आक्रमण किया और उनके गिरफ्तार कर उनके राज्यको अङ्गरेजों राज्यमें मिला लिया।

बङ्गाल-नागपुर रेल-पथ इस राज्यके भीतरसे गया है। इससे यहाँ व्यवसाय वाणिज्यकी वडो सुविधा है। यहाँके पैदावारोंमें धान, ऊँद, चीनी, गेहूँ, सरसों आदि प्रधान हैं। लेामी शील और लमनो शील पर तथा सोनाखानके धन्यप्रदेशमें प्रभूत परिमाणसे शालग्रह पैदा होता है। वनभागमें तसर और लाह अधिक होते हैं। यहाँ रेशमी और सूती कपड़ेका कारोबार बहुत दिखाई देता है। सन् १८७० ई०में यहाँ प्रायः ६ हजार कर्षे चलते थे। जुलाहोंके सिवा यहाँकी पन्था जाति भी कपड़ा बुननेका काम करती है। खेती-बारी पर भी इस जातिके पैसा ही हाथ है। जिलेके अधिकांश कपड़े इसी जातिके लोगों द्वारा तैयार होते हैं। प्रायः १८६१—६२ ई०में इस पन्था जातिके मङ्गल नामके एक व्यक्तिने प्रकाशित किया था, कि उसके शरीरमें देवताका आविर्भाव हुआ है। यह संवाद चारों ओर प्रचारित होने पर लोग उसको देखनेके लिये यहाँ आने लगे। यह चुपचाप एक दीप जला कर बैठा रहता और पूजा प्रहण किया करता था। खेतीका काम करनेका समय उपस्थित हुआ। ऐसे समय मङ्गलने कहा, कि कोई खेती न बोये, क्योंकि हमारे देवताका वर है, कि

इस साल खेती आप ही आप होगी। इस विश्वास पर सभी किसान रह गये। खेती बेईन गई। फलतः फसल नहीं हुई। अन्तमें मालगुजारी बाकी पड़ गई। राजाको यह बात मालूम हुई। उन्होंने मङ्गलको गिरफ्तार कर जेलमें बन्द कर दिया। यहाँकी भाषा हिन्दी है और कुछ इसमें पहाड़ो-असम्भ्योंकी भाषा भी शामिल है। यहाँकी जनसंख्या प्रायः १०१२६७२ है। यहाँ ६ फीसैकड़े घघेली हिन्दी बोली जाती है। यहाँ सनातनधर्म और फकीरपन्थी इन दोनोंका जोर है। इस संख्यामें प्रायः १२००० मुसलमान हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २१° ४३' से ले कर २१° ७' उ० तथा देशा० ८१° १४' से ले कर ४२° ४०' पू०के बीच अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ५०८० वर्गमील है। जनसंख्या ४७२६८२ है। यहाँ तीन थाने और ७ चौकियाँ हैं।

३ विलासपुर जिलेका प्रधान नगर। यह नगर अर्पा (अरपा या अपरा) नदीके दक्षिण किनारे अवस्थित है। यह अक्षा० २२° ५' उ० और देशा० ४२° १०' पूर्वाके मध्य अवस्थित है। यह शहर बङ्गालनागपुर रेलवेसे निकट है। यह वर्षसे ७७६ मील तथा कलकत्ते से ४४५ मील पड़ता है। यहाँकी जनसंख्या १८६३७ है। इस नगरकी स्थापनाके सम्बन्धमें प्रवाद है, कि एक मछवाहेकी विलास नाम्नी एक पत्नीने इस नगरकी अपने नाम पर बसाया था। यह अबसे प्रायः सवा तीन सौ वर्षकी घटना है। पहले यह मछवाहोंका एक गांव था। एक सौ वर्ष पहले एक महाराष्ट्र राजकर्मचारीने अपने राजकार्यपरिचालनकी सुविधाके लिये रहना निश्चय कर यहाँ एक प्रासाद बनवाया। यह प्रासाद अर्पा, नदीके किनारे बना था। इस प्रासादके साथ ही यहाँ एक जिला भी बनाया गया था। उस समयसे यह नगर क्रमसे समृद्धिपूर्ण होता आ रहा है। किन्तु पिछले समयमें महाराष्ट्र जब राजपाट यहाँसे उठा रतनपुर ले गये, तब इसकी कुछ थो उतर गई थी। सन् १८६२ ई०में यह नगर अङ्गरेजों द्वारा सदररूपसे मनोनीत होने पर फिर एक चार समृद्धिपूर्ण हो उठा। यहाँ बङ्गालनागपुररेलवेका एक स्टेशन है।

विलासपुर—युक्तप्रदेशके रामपुर रियासतकी एक तहसील। यह उक्त रियासतके उत्तर पश्चिम ओर अक्षा० २८° ४४' से ले कर २६° १' उ० तथा देशा० ७६° १०' से ले कर ७६° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। इसकी जनसंख्या ७३४५० है। इसका क्षेत्रफल २०४ वर्गमोल है। यहां प्रतिवर्ष ३०८००० रुपये राजस्व वसूल होता है। यहां कई मरने और एक नहर है। ६६ वर्गमोलमें खेती होती है। इस तहसीलमें २२३ गांव और एक विलासपुर नगर है।

विलासपुर—पञ्जाबके पहाड़ी सामन्त राज्योंमें एक। इस समय इसका कहलूर नाम है। कहलूर शब्द देखो। विलासपुर उक्त राज्यकी राजधानी है। राजधानीके नाम पर कुछ लोग इस सामन्तराज्यकी विलासपुरके नामसे पुकारते हैं। यह नगर शतद्रुके किनारे समुद्रकी ऊपरी सतहसे १४५५ फीट ऊंचा है। नगरसे एक फोस पर शतद्रु को पार करनेका घाट है। इसी स्थानके द्वारा यहांका पञ्जाबसे व्यवसाय चलता है। राजप्रासाद में चौसी कोई खूबी नहीं है। नगर और बाजारके रास्ते और इमारतें पत्थरकी बनी हैं। गोरखे डाकुओंके उपद्रवसे नगर कुछ शोहीन हो गया है।

विलासभवन (सं० क्लो०) फोड़ागृह, रङ्गालय, नाचघर।

विलासमणिदर्पण (सं० ति०) शौकीनताका शीर्षस्थानीय मणिनिर्मित दर्पणके समान।

विलासमन्दिर (सं० क्लो०) विलासस्य मन्दिर। फोड़ागृह।

विलासमेखला (सं० खी०) अलङ्कारभेद।

विलासवत् (सं० त्रि०) विलासविशिष्ट, विलासी।

विलासवती (सं० खी०) राजकुलललनभेद।

(वाचवद्धा)

विलासवसति (सं० खी०) फोड़ागृह, प्रेमोद्भवन।

विलासविपिन (सं० क्लो०) विलासस्य विपिनं। फोड़ावन।

विलासविभयानस (सं० त्रि०) लुब्ध, पाया हुआ।

(जटाघर)

विलासवेश्मन् (सं० क्लो०) विलासभवन, फोड़ागृह।

विलासशय्या (सं० खी०) सुखशय्या।

विलासशील (सं० त्रि०) १ विलासा। (पु०) राजपुत्रभेद।

विलासस्वामी (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक ब्रह्मचारी और पण्डित।

विलासिका (सं० खी०) उपरूपक नाटिकाभेद। इस नाटिकाके एक अङ्गमें शृङ्गार रसकी बहुत अधिकता होगी और यह दश नृत्याङ्क द्वारा परिचूरित होगा। शृङ्गार-सहाय विद्रूपक और विट तथा प्रायः नायकके समान पोटमर्द आदि भी रखता होगा, इससे गर्भ और निमर्ष ये दो सन्धिषां तथा प्रधान कोई नायक नहीं रहेगा। इस नाटिकामें वृत्तके छन्दोबन्धकी अल्पता तथा अलङ्कार या वेशभूषा आदि बहुत रहता है। (साहित्यद० ६।५५२)

विलासिता (सं० खी०) विलासीका भाव या धर्म।

विलासित्व (सं० क्लो०) विलासिता।

विलासिन (सं० पु०) विलासीऽस्यास्तीति विलास-श्नि। १ भोगी, सुख भोगमें अनुरक्त पुरुष, कामी। २ जिसे आमोद-प्रमोद पसंद हो, फोड़ाशील, हँसोड़। ३ पेश आराम पसंद, आराम तलब। ४ सर्प, साँप। ५ कृष्ण। ६ अग्नि। ७ चन्द्रमा। ८ स्मर, कामदेव। ९ हर, महादेव। १० वरुण वृक्ष, वरुन।

विलासिनिका (सं० खी०) विलासिनी।

विलासिनी (सं० खी०) १ सुन्दरी युवा स्त्री, कामिनी।

२ चेरया, गणिका। ३ हरिट्टा, हल्दी। (राजनि०)

४ शङ्खपुष्पी। (वैयकनि०) ५ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ज, र, ज, ग, ग होते हैं।

विलासी (सं० पु०) विदासिन देखा।

विलास्य (सं० क्लो०) प्राचीनकालका एक प्रकारका राजा। इसमें वजानेके लिये तार लगे होते थे।

विलिखन (सं० क्लो०) वि-लिख-ल्युट्। १ लिखना।

२ खनन करना, छोदना। ३ खरोचना।

विलिखा (सं० खी०) मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। (वैद्यक० नि०)

विलिखित (सं० त्रि०) १ लिखा हुआ। २ खुदा हुआ।

३ खरोचा हुआ।

विलिगी (सं० खी०) नागभेद। (अथर्व० १।१३७)

विलिङ्ग (सं० क्लो०) अग्न्य लिङ्ग। (भारत समाज)

विलिनाय कवि—मदनमञ्जरी नामक नाटकके प्रणेता ।

विलिप्त (सं० त्रि०) लिपा हुआ, पुता हुआ ।

विलिप्ता (सं० स्त्री०) एक सेकेण्डका $\frac{1}{3600}$ परिमाण काल । (गणित)

विलिप्तिका (सं० स्त्री०) कालभेद । विक्षिप्ता देखो ।

विलिप्ता (सं० स्त्री०) हानलोपको अवस्था ।

(अथर्व १२।४।४१)

विलिष्ट (सं० त्रि०) १ टूटा हुआ, उखड़ा हुआ । २ अस्त-
व्यस्त, जो ठोक अवस्थामें न हो ।

विलिस्तेङ्गा (सं० स्त्री०) दानवीभेद । (काठक १३।३)

विलोक (हिं० पु०) अनुचित, नामुनासिब ।

विलोद (सं० स्त्री०) वि-लिद्-क । दृढन्यस्त ।

(अथर्व १।१८।४)

विलीन (सं० त्रि०) वि-ली-क । १ लुप्त, जो अदृश्य हो गया हो । २ क्षयप्राप्त, नष्ट । ३ छिपा हुआ । ४ जो मिल गया हो । जैसे—पानीमें नमक विलीन हो गया ।

विलीयन (सं० स्त्री०) गलना ।

(भाष्य० भोत० २।६।१० भाष्य०)

विलुण्ठन (सं० स्त्री०) वि-लुण्ठ-व्युद् । विशेष रूपसे लुण्ठन ।

विलुण्ठित (सं० स्त्री०) अवलुण्ठित ।

विलुप्त (सं० त्रि०) वि लुप्-क । १ तिरोहित, जिसका लोप हो गया हो, नष्ट । २ लुण्ठित, लूटा हुआ । ३ छिन्न । ४ आक्रान्त । ५ गृहीत ।

विलुप्तयोनि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका योनिरोग । इस रोगमें योनिमें हमेशा पीड़ा होती रहती है ।

विलुप्य (सं० त्रि०) विलोपके योग्य ।

विलुभित (सं० त्रि०) चञ्चल ।

विलुम्बक (सं० पु०) चौर, चोर ।

विलुलक (सं० त्रि०) नाश करनेवाला ।

विलुलित (सं० त्रि०) वि लुल्-क । १ चञ्चल, कल्पित, षोडशप्रमाण । २ विद्वृत्त ।

विलून (सं० त्रि०) कटा हुआ, अलग किया हुआ ।

विलेख (सं० पु०) वि-लिप्-घञ् । १ अद्भुत । २ दलबाता ।

विलेखन (सं० स्त्री०) वि-लिख-व्युद् । १ खनन,

खोदना । २ खिरोचना । ३ फाड़ना । ४ जड़ उखाड़ना ।

५ जोतना । ६ विभाग करना, बांटना ।

विलेखित (सं० त्रि०) विलेखनकारो, भेद करनेवाला ।

विलेतु (सं० त्रि०) वि-ली-वृच् । (पा ६।१।११)

१ विलयकारी, विनाश करनेवाला । २ द्रवकारी ।

विलेप (सं० पु०) वि-लिप-घञ् । १ लेप, शरीर आदि पर लुपड़ कर लगानेकी चीज । २ पलस्तर, गारा ।

विलेपन (सं० स्त्री०) विलिप्यन्तेऽङ्गाभ्यनेनेति वि-लिप-व्युद् । १ लेप करने या लगानेकी क्रिया, अच्छी तरह लोपना, लगाना । २ लगाने या लेप करनेका पदार्थ ।

जैसे—चन्दन केसर आदि ।

विलेपनिन् (सं० त्रि०) विलेपनमस्त्यस्य । विलेपन विशिष्ट ।

विलेपनी (सं० स्त्री०) वि-लिप-व्युद् कर्मणि, करणे या । १ यवागू, जीको कांजी । २ सुवेशा स्त्री ।

विलेपिका (सं० स्त्री०) विलेपी ।

विलेपिन (सं० त्रि०) विलेपयति यः वि-लिप-णिनि । लेपनकर्ता, पोतनेवाला ।

विलेपी (सं० स्त्री०) विलिप्यन्तेऽसौ इति वि लिप घञ् (कर्मणि) स्त्रियां ङीप् । यवागू ।

रोगोके पूर्वाम्यस्त आहार्यम् अन्नके अर्थात् रोग होनेके पहले दैनिक हिसाबसे जितना चावल खाया जाता है, उसका चतुर्थांश चावल ले कर गिलादि पर अच्छी तरह पोसे और चौंगुने जलमें उसका पाक करे । पाक शेष होने पर जब द्रव भाग घट जाये, तब उसे उतार ले । इस प्रकार जो अन्न प्रस्तुत किया जाता है, उसे विलेपी कहते हैं ।

विलेपी लघु होती है । इसके खानेसे अग्नि प्रदीप्त होती है । यह हृद्दरोग, व्रण (क्षत) और अक्षिरोगमें उपकारक, आमशूल, उबर और तुषानाशक है । इससे मुखकी रुचि, शरीरकी पुष्टि और शुक्रकी वृद्धि होती है । वैद्यकनिघंटुमें इसका प्रस्तुत प्रणाली और गुण इस प्रकार लिखा है—

“इता च पदगुणे तोषे विलेपी भ्राष्ट्र तपद्भ्रं ।

सा चाग्निदीपनी सन्धी हिता मूर्च्छान्धिरारप ॥”

(वैजयं०)

कुछ भुने चावलको छः गुने जलमें पाककरनेसे विलेपो बनती है । यह विलेपो लघु, अग्निवृद्धिकर तथा ज्वरनाशक है ।

विलेप्य (सं० त्रि०) वि-लिप-यत् । १ लेपनयोग्य, लेप देने लायक । (पु०) २ यवागू, जौकी कांजी ।

विलेवासिन् (सं० पु०) । विले गत्ते वसतीति विले-वस-णिनि शयवासति सप्तम्या अलुक् । (पा ६।३।१८) सर्प, सांप ।

विलेश्य (सं० पु०) विले शते विले शा-अच् अधिकरणे शतेः (पा ३।३।१५) शयवासत्यलुक् । १ सर्प, सांप । २ मूषिक, चूहा । ३ जो विल या दरारमें रहता हो । मोह, बिच्छू, शशक आदि जन्तु विलमें रहते हैं, इसलिये उन्हें विलेश्य कहते हैं । इनके मांस वायुनाशक, रस और पाकमें मधुर, मलमूत्ररोधक, उष्णवीर्य और वृंहण होते हैं ।

राजनिघण्टुमें इनका मांस भ्वास, घात और कास-नाशक तथा पित्त और दाहकारक माना गया है ।

कोकडनामक एक प्रकारका मृग होता है, वह भी विलेश्य कहलाता है । उसका मांस अतीव गरहित होता है, क्योंकि यह अत्यन्त दुर्ज्वर, गुरुपाक और अग्निमान्द्यकर होता है ।

(त्रि०) ४ गर्तमें शायित, विलमें सोया हुआ ।

विलोक (सं० पु०) १ दृष्टि । २ विशिष्ट लोक, बड़ा आदमी ।

विलोकन (सं० क्री०) वि-लोक-न्युट् । १ अथलोकन, आलोकन, देखना । २ नेत्र, जिससे देखा जाता है ।

विलोकना (हि० कि०) १ देखना । २ अथलोकन करना । विलोकना देखो ।

विलोकनि (सं० क्री०) विलोकनि देखो ।

विलोकनीय (सं० त्रि०) दर्शनीय, देखने योग्य ।

विलोकित (सं० त्रि०) वि-लोक-क्त । आलोकित, देखा हुआ ।

विलोकित् (सं० त्रि०) अथलोकनकारी, देखनेवाला ।

विलोकी (सं० त्रि०) विलोकित देखो ।

विलोष्य (सं० त्रि०) वि-लोक-यत् । अथलोकन योग्य, देखने लायक । (मार्क० पठ्यपु० ४३।३६)

विलोचन (सं० क्री०) विलोचयते दृश्यतेऽनेनेति वि-लोचि-न्युट् । १ चक्षुः, आँख । २ पुराणानुसार एक नरकका नाम । इसमें मनुष्य-अन्धा हो जाता है और न/देखने-के कारण अनेक पातनाप योगता है । ३ लोचन-रहित करनेकी क्रिया, आंखे फोड़नेकी क्रिया । (त्रि०) ४ ब्रिहत्-नयनविशिष्ट ।

विलोचनपथ (सं० पु०) नेत्रपथ, चक्षुःमार्ग ।

विलोटक (सं० पु०) वि-लुट्-ण्युट् । एक प्रकारकी मछली, वेला मछली ।

विलोटन (सं० क्री०) वि लुट्-न्युट् । विलुटन ।

विलोड (सं० पु०) आलोडन ।

विलोडन (सं० क्री०) वि लुड्-न्युट् । १ मथन । २ आलोडन ।

विलोडना (हि० कि०) विप्रोडना देखो ।

विलोडयित् (सं० त्रि०) आलोडन करनेवाला ।

विलोडित (सं० त्रि०) वि-लुड्-क्त । १ आलोडित, मथित । (क्री०) २ तक, मट्टा ।

विलोना (हि० कि०) विलोना देखो ।

विलोप (सं० पु०) वि-लुप-घञ् । १ लोप, विनाश । २ हानि, नुकसान । ३ विघ्न, बाधा । ४ अघात । ५ रुकावट । ६ किसी वस्तुको ले कर भाग जानेकी क्रिया ।

विलोपक (सं० त्रि०) १ लोपकारी, नाश करनेवाला । २ दूर करनेवाला । ३ ले कर भागनेवाला ।

विलोपन (सं० क्री०) वि-लुप-न्युट् । विलोप करनेकी क्रिया । विलोप देखो ।

विलोपना (हि० कि०) १ लोप करना, नाश करना । २ ले कर भागना । ३ विघ्न डालना, बाधा उपस्थित करना ।

विलोपित् (सं० त्रि०) वि-लुप्-णिनि । विलोपकारी, नाश करनेवाला ।

विलोपित् (सं० त्रि०) वि-लुप्-त्त् । १ विलोपकर्ता । २ ध्वंसकर्ता ।

विलोप्य (सं० त्रि०) विलोप करने या हानि करने योग्य ।

विलोम (सं० पु०) वि-लुभ-घञ् । १ प्रलोमन । २ मोह । माया, स्रम । (त्रि०) २ जिसके मनमें किसी प्रकारका लालच न हो, लोभरहित ।

विलोमन (सं० क्लो०) वि-लुम-लुपुट् । १ लोम दिलानेकी क्रिया । २ मोहित या आकर्षित करनेका व्यापार । ३ कोई घुसा कार्य करनेके लिये किसीको लोम-दिलानेका काम, ललचाना ।

विलोम (सं० लि०) १ विपरीत, उल्टा । पर्याय—प्रतिकूल, अपसव्य, अपष्टुर, वाम, प्रसव्य, विलोमक । २ लोभरहित । (पु०) ३ सर्प, साँप । ४ वरुण । ५ कुकुर, कुत्ता । ६ सङ्गीतमें ऊँचे स्वरसे नीचे स्वरकी ओर आना, स्वरका अवरोह, उतार । ७ ऊँचेकी ओरसे नीचेकी ओर आना । (क्लो०) ८ अरघट्टक, रदट ।

विलोमक (सं० लि०) वि-लोम स्वार्थे-कन् । विपरीत, प्रतिकूल ।

विलोमक्रिया (सं० खो०) यह क्रिया जो अन्तसे आदि-की ओर जाय, उल्टी ओरसे होनेवाली क्रिया ।

विलोमज (सं० लि०) विलोम-जन-ड । विलोमजात, प्रतिलोमज, अनन्तर वर्णमें न उत्पन्न हो कर विपरीतमायमें उत्पन्न । जैसे,—शूद्रके औरससे ब्राह्मणीकी गर्म-जात सम्तान ।

विलोमजात (सं० लि०) विपरीत भावमें जात, विलोमज ।

विलोमजिह्व (सं० पु०) हस्ती, हाथी ।

विलोमवैरागिक—विपरीत भावमें क्रिया हुआ वैरागिक ।

विलोमन् (सं० लि०) १ विलोम, विपरीत । २ लोभ-रहित, केशहीन । (पु०) ३ यदुवंशीय एक राजाका नाम । ये कुकुरके पुत्र थे । (भागवत १२४।१६)

विलोमपाठ (सं० पु०) उल्टा वेद पाठ करना ।

विलोमवर्ण (सं० लि०) १ विलोमजात । (पु०) २ वर्ण-संकर जाति, दोगली जाति ।

विलोमाक्षरकाव्य—रामकृष्णकाव्य । इसका अक्षर योजन विपरीतभावसे है इसलिये इसका विलोमाक्षर काव्य नाम पड़ा है ।

विलोमित (सं० लि०) १ विपरीत । २ विशेष भावमें लोमयुक्त ।

विलोमी (सं० खो०) आमलकी, आँवला ।

विलोल (सं० लि०) विशेषण लोल । १ चञ्चल, पल । २ अति लोमो, बड़ा लालची । ३ सुन्दर ।

विलोलन (सं० क्लो०) कम्पन, काँपना ।

विलोहित (सं० लि०) १ अतिगम्य लोहित, घोर लाल । (पु०) २ मर्मभेद, एक प्रकारका साँप ।

विल (सं० क्लो०) १ हियु, होंग । विल देखो । २ आल-वाल ।

विलमूला (सं० खो०) वाराहीकन्द ।

विलसू (सं० खो०) दश पुत्रकी माता, यह खो जिसके दश पुत्र हुए हैं ।

विल्व (सं० पु०) विल मेदने उः उः उः उः उः उः उः उः उः उः । १ बेल वृक्ष, बेलका पेड़ । (क्लो०) २ विल्वफल, बेल । विल्व देखो ।

विल्वजा (सं० खो०) शालघान्यविशेष । इसके रूप गुणादि यथा—यद् धान्य मागधी नामक शालघान्यके समान पोला और तद्गुणयुक्त अर्थात् ककवातज तथा रुचि और बलकारक, मूत्रदोषघ्न और श्रमापहारक होना है ।

विल्वतैल (सं० क्लो०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर, बकरीका दूध १६ सेर, गोमूत्रविष्ट बेलसोंठ १ सेर, इन सब द्रव्योंको एकत्र पाक करके नीचे उतार ले, पीछे वाधिर्य और कर्णनादरोगमें व्यवहार करे । व्यवहार करनेके पहले पुराने गुड़ और सोंठ जलकी सुँघनी ले कर उसके बाद यह तैल कानमें डालना होता है ।

दूसरा तरीका—तिलतैल १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, कच्चा बेल या बेलसोंठ १६ मोला, इन्हें एकत्र करके जब सिर्फ तैल बच जाय अर्थात् दूध और गोमूत्र दूर हो जाय, तब उसे उतार कर तैल छान ले । यह तैल कानमें देनेसे चातश्लैथ्मिक चर्घरतामें बड़ा फायदा पहुँचता है ।

विल्वपत्र (सं० क्लो०) बेलका पत्ता जो शिव पर चढ़ानेके काममें आता है । बेलपत्र ।

विल्वपर्णी (सं० खो०) वातघ्न पत्रमाकविशेष ।

(चरक सुत्र २०० २० म०)

विल्वपौञ्जिका (सं० खो०) शुभकविल्ववर्ण्ड, बेलसोंठ । यह कफ, वायु, आमशूल और प्रदोषीका प्राग्घ्न करनेवाली मानी गई है । (रामनि०)

वित्त्वमङ्गल (सं० पु०) भक्त और महाकवि सुरदासका अर्थ होनेसे पूर्वका नाम। वित्त्वमङ्गल ठाकुर देखो।

वित्त्वमध्य (सं० क्लो०) १-वित्त्वशस्य। २-वेल सांड।

वित्त्वा (सं० स्त्री०) हिंदुपत्नी।

वित्त्वादिकपाय (सं० पु०) चातुर्व्यवस्थाक कपाय (पाचन)-विशेष। वित्त्वमूल, सोतापाडा, गम्भारी, पारली, गनियारी, गुडूची, आमलकी और धनिया, इनमेंसे प्रत्येक चीअग्नी भर ले कर बाघ सेर जलमें पाक करे। जब बाघ पाय अंदाज रह जाये, तब नीचे उतार कर महीन कपड़े से छान ले। उसके पीनेसे घात-उबर नष्ट होता है।

वित्त्वान्तर (सं० पु०) १ कण्टकवृक्षविशेष। २ उगीर नामक घोरतरु, अक्ष। तेलगू भाषामें इसे वैणुतुरुचेट्टु कहते हैं। इसका फूल जानिफलके बराबर तथा सफेद, काला, लाल, बैंगनी और हल्दी बादि रंगका होता है और इसके पत्ते शमिषुक्षके पत्तेके समान होते हैं। इसका गुण—कटु, उष्ण, आम्लेय, घातरोग और सन्धिगूलनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशमें इसका गुण इस प्रकार लिखा है—

वित्त्वान्तररसमें और पाकमें तिक्त, उष्णवीर्य, कफ, मूत्राघात और अश्वरीरोगनाशक, संधाही (घारक) तथा योनि, मूत्र और वायुवीरगनाशक है। ३-जाङ्गलदेश। ४-नर्मदातट। ५-चर्मण्यती नदीके समीप।

विवंश (सं० पु०) १ विशिष्ट वंश। २ वंशरहित।

विव (हिं० वि०) १ दो। २-द्वितीय, दूसरा।

विवि देखो।

विवहृत (सं० पु०) १ बहुत बोलनेवाला, पाचाल। २-स्पष्ट बोलनेवाला। ३-वक्ता, वाग्मी।

विवधत् (सं० त्रि०) १ विशिष्ट वक्ता, बहुत बोलनेवाला। २-किसी बातको प्रकट करनेवाला। ३-दुरुस्त करने या सुधारनेवाला, संधोधन करनेवाला।

विवधत्त्व (सं० क्लो०) विशिष्ट वक्ताका भाव या धर्म।

विवधयस् (सं० त्रि०) विशिष्ट वक्ता, जो स्तुतिवाक्य कहनेमें निपुण हो।

विवक्षण (सं० त्रि०) वि वच् (वा वह) सन् ल्युट्। १-हाप नोय, कथनीय, स्तुत्य। जिसको कोई अभिप्रेत, विषय

नताया या कहा जा सके अथवा जिसकी विशेषरूपसे स्तुति की जाय, उसे विवक्षण कहते हैं।

२-प्रातश्च, पाने लायक। (शुक् ५।३।२५) ३-हवन-शील, आहुतिप्रदाता। (शुक् ५।३।२२)

विवक्षा (सं० स्त्री०) वषतुमिच्छा वि-वक्ष-सन्-अच्-त्रियं टाप्। १ कोई बात कहनेकी इच्छा, बोलनेकी इच्छा। व्याकरणमें लिखा है कि, "विवक्षावशात् कारकाणि भवन्ति" विवक्षानुसार ही कारक होते हैं अर्थात् वक्ता जिस भावमें बोलना चाहे, उसी भावमें बोल सकते हैं। पीछे उनके उसी प्रयोगानुसार कारकादिका निर्णय करना होता है। जैसे—"घनं याचते राजभ्यः" राजाओंसे घनकी जांचना करता है। "पर्युरिखनन्ति" पर्यु (हुडार) (वृक्षको) काट रहा है। प्रथम स्थलमें राजाओंको अर्थात् 'राजाओंसे' इस अर्थमें 'राजभ्यः' (चतुर्थी) वा 'राज' (द्वितीया) इन दोनोंके प्रयोगमें वक्ता "विवक्षावशात्" "कारकाणि भवन्ति" इस प्राचीन अनुशासनानुसार उसकी (उन दोनों पदोंकी) जो इच्छा होती है, वे उसीका प्रयोग कर सकते हैं। द्वितीय स्थलमें भी प्रदर्शितरूपसे अर्थात् पर्यु (स्वयं) काट रहा है। इन दोनोंका जिस प्रकार चाहे वक्ता प्रयोग कर सकते हैं। अभी इनमेंसे कहाँ पर कैसी विवक्षा का गई, वही लिखा जाता है,— प्रथम स्थलमें राज शब्द 'याचते' यह याच जाय द्विकर्मक 'याच' धातुका गौणकर्म है, इस कारण इसके उत्तरमें द्वितीया विभक्तिका हो होना उचित है। किन्तु यहां पर यदि वक्ता इच्छा करके चतुर्थी विभक्ति करे, तो फलितार्थमें जानना होगा, कि वक्ताने कर्म या द्वितीयाको जगह चतुर्थी को है। द्वितीय स्थलमें भी इसी प्रकार जानना होगा, कि करण कारकका वषत्त्व विवक्षा हुई है, क्योंकि कोई एक कर्ता नहीं रहनेसे अचेतन पदार्थ पर्युको स्वयं छेदन करनेकी शक्ति नहीं है। दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी घटनानुसार विचार कर इसी प्रकार जान लेना होगा।

२ शक्ति। (एकादशीतत्त्व)

विवक्षित (सं० त्रि०) वि वच् सन्-क्त। जिसकी आवश्यकता या इच्छा हो, इच्छित, अपेक्षित। २-शष्यार्थ।

विवक्षु (सं० त्रि०) 'प्रयः सन्नि वक्ष्पादेशे' (सनास) सभ्रिज उः) इति उ प्रत्ययः। बालनेका इच्छुक।
विवचन (सं० क्लो०) वि-वच-ल्युट्। प्रवचन, कथन।
विवत्स (सं० पु०) १ गोवत्स, गायका बछड़ा। २ शिशु, बच्चा। (त्रि०) ३ वत्सहोन, विना बच्चेका।

(भागवत १।१।१६)

विवदन् (सं० क्लो०) वि-वद-ल्युट्। १ विवाद, कलह।
२ युद्धका उपदेश।

विवदमान (सं० त्रि०) वि-वद-शानच्। विवादकर्त्ता, कलह करनेवाला।

विवदित्थ (सं० त्रि०) विवादके योग्य।

विवदिष्णु (सं० त्रि०) विवाद करनेमें इच्छुक।

विवध (सं० पु०) विविधा धधा हनत् गमन् वा यत्।
१ धीवध, धान चांचल आदि लेना। २ राजमार्ग, चौडी सडक। ३ मोहित्वादि का हरण, धान घास आदिका चुराना। ४ भार होनेको लकड़ी बंधगी। ५ भार, बोझ। ६ यह लकड़ो, जो बैलोंके कंधो पर उस समय रखी जाती है जब उन्हें कोई वस्तु खींच कर ले जानी होती है। जुआडा। ७ भूसे या अनजकी राशि।

विवधिक (सं० पु०) विवधेन हरतीति विवध थ्व्।
(विभाषा विवधीवधात्। पा ४।४।१७) वैवधिक।

विवन्दिषु (सं० त्रि०) वन्दना करनेमें इच्छुक।

विवन्धक (सं० पु०) १ रोकनेवाला। २ कोष्ठवद्धता, कक्षियत।

विवन्धन (सं० पु०) रोक, बंधन।

विषान्धक (सं० त्रि०) १ विवन्धयुक्त। २ विवधिक।

विवयन (सं० क्लो०) वयन, योना।

विषर (सं० क्लो०) वि-वृ-पचाधच्। १ छिद्र, बिल।
२ दोष, दोष। ३ अयकाश, छुट्टो। ४ विच्छेद, जुदाई।
५ पृथक्-बलग। ६ कालसंख्यामेद। ७ गर्त्त, दरार।
८ गुफा, कन्दरा।

विषरण (सं० क्लो०) वि-वृ-ल्युट्। १ व्याख्या, किसी वस्तुको स्पष्टरूपसे समझानेकी क्रिया। २ वर्णन, वृत्तान्त।
३ भाष्य, टीका। ४ अर्थप्रकाश। ५ प्रकाश।

विषरनालिका (सं० त्रि०) विषरयुक्त नाला यस्याः।
१ वेणु, बांस। २ यंत्रो, बांसुरी।

विवरिषु (सं० त्रि०) प्रकाश करनेमें इच्छुक।

विवरण (सं० त्रि०) वचनकार्य विशेष।

विवर्त्सु (सं० त्रि०) दीप्तिहोन, जिसमें चमक दमक न हो।

विवर्त्तक (सं० त्रि०) परित्यागकारी, छोड़नेवाला।

विवर्त्तन (सं० क्लो०) १ त्याग करनेकी क्रिया, परित्याग।
२ अनादर, उपेक्षा।

विवर्त्तनीय (सं० त्रि०) वि-वर्त्-अनीयर्। त्याज्य, छोड़ने लायक।

विवर्त्तित (सं० त्रि०) १ वर्त्तित, मना किया हुआ। २ उपेक्षित, अनादरित। ३ वञ्चित, रहित।

विवर्ण (सं० पु०) विवर्णो वर्णः। १ नीचजाति, होन-वर्ण। २ साहित्यमें एक भाषका नाम। इसमें भय, मोह, क्रोध, लज्जा आदिके कारण नायक या नायिकाके मुखका रंग बदल जाता है।

(त्रि०) ३ नीच, कमोना। ४ नीच जातिका। ५ नीच-पेशा या व्यवसाय करनेवाला। ६ कुजाति। ७ जिसका रंग बराब हो गया हो। ८ रंग बदलनेवाला। ९ बदरंग, घुटे रंगका। १० जिसके चेहरेका रंग उतरा हुआ हो, कान्तिहोन।

विवर्णता (सं० स्त्री०) विवर्णका भाव या धर्म, मालिन्य, दीप्तिहीनता, कान्तिशून्यता, निधमता।

विवर्णत्व (सं० क्लो०) म्लानगतरता।

विवर्णमनीकृत (सं० त्रि०) शिविवर्णननः विवर्णमनः कृतं नभूततद्भावे शिव। मलिनोक्त, कुरूप किया हुआ।

विवर्त्त (सं० पु०) वि-वृत्-घञ्। १ समुदय, समूह।
२ अवधर्शन, परिवर्त्तन। ३ मृत्यु। ४ प्रतिपक्ष। ५ परिणाम, समवायिकारणसे तदोय विसद्रष्टा (विभिन्न-रूप) कार्यको उत्पत्ति। समवायिकारण = अवयव, कार्य = अवयवी। इन सब कारणोंसे जिन सब कार्योंको उत्पत्ति होती है, वे प्रायः उन्हीं कारणोंके विसद्रष्टा हैं अर्थात् आकृतिप्रकृतिगत विभिन्नताप्राप्त है। जैसे, हस्तपदादि अङ्गप्रत्यङ्ग आदिके मेलसे उत्पन्न देहसंमष्टि, पृथक्भावमें उनमेंसे प्रत्येकके साथ आकृतिगत विभिन्न है अर्थात् सम्पूर्ण देह जो एक उंगली वा एक हाथके

समान नहीं है वह स्पष्ट दिखाने देता है। तरलशुक्र और शोणितके मेलसे जो कठिन देह बनी है, वह भी समवायिकारणसे तदीय विसदृश (भिन्नाकार) कार्यकी उत्पत्ति है। सांख्यतत्त्वकीमुदीमें इस विषयमें कुछ आभास मिलता है। वहाँ लिखा है,—'एकस्य सतो विवर्त्तः कार्यजातं ननु वस्तुमत्' कार्यजात (कार्यसमूह) अर्थात् जगत् एक नित्यपदार्थका विवर्त्तमात्र है, वस्तु (जनपदाद्य) अर्थात् वह जगत् सत् (नित्य) नहीं है।

१ भ्रान्ति, भ्रम। ७ आवर्त्त, घेरी। ८ विशेषरूपसे सिद्धि। ९ आकाश।

विवर्त्तकल्प (सं० पु०) वह कल्प जिसमें लोक कमशा उन्नतिसे अवनतिको प्राप्त होता है।

विवर्त्तन (सं० स्त्री०) वि-वृत् ल्युट्। १ परिभ्रमण, घूमना फिरना। २ पार्श्वपरिवर्त्तन, करघट लेना। ३ परिवर्त्तन, रूपान्तर। ४ नृत्य, नाच। ५ प्रत्यावर्त्तन, लौटना। ६ घूर्णन, घूमना। ७ कानोंसे मल या वायुको निकालनेके लिए कानके भीतरमें यन्त्रविशेषका घुमाना। (सुभ्रुत सं० ७ अ०)

विवर्त्तवाद (सं० पु०) वेदान्तशास्त्र वा'दर्शन। इसके अनुसार ब्रह्माके सृष्टिका मुख्य उत्पत्तिस्थान और संसारको माया मानते हैं।

विवर्त्तस्थायी कल्प (सं० पु०) वह समय जब लोक अवनतिकी पराकाष्ठाके पहुँच कर शून्य दशामें रहता है, कल्पान्त, प्रलय।

विवर्त्तित (सं० त्रि०) १ परिवर्त्तन, बदला हुआ। २ भ्रमित, घूमा हुआ। ३ प्रत्यावर्त्तित, लौटा हुआ। ४ घूर्णित, चकर मारा हुआ। ५ अपनीत, उखड़ा हुआ, सरका हुआ। ६ अंग जिसमें मोच आ गई हो।

विवर्त्तितक्ष (सं० पु०) अरुणशिखा, मुर्गा।

विवर्त्तितसन्धि (सं० पु०) सन्धिपुक्त भग्नरोगभेद। आघात या पतन आदिके कारण दृढ़रूपसे आहत होने पर यदि शरीरका कोई सन्धिस्थल वा पार्श्वदिका अपगम हो कर विषमाङ्गता और उस स्थानमें अत्यन्त वेदना हो, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं। अर्थात् किसी कारणसे आघात लगने पर शरीरका कोई सन्धिस्थान

वा पार्श्वदि यदि विवर्त्तित (उलट पलट) हो जाय, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं।

चिकित्सा।—पहले घृतप्राश्नित पट्टयस्त्रसे भग्नसन्धिस्थानको लपेट दे। पीछे उस स्थल पर कुश अर्थात् वटवृक्षादिकी छाल रख कर यथानियम बांध देना उचित है। बांधनेका नियम इस प्रकार है,—भग्नस्थानको शिथिलभावमें बांधनेसे सन्धिस्थल स्थिर नहीं रहता तथा दृढ़रूपमें बांधनेसे चमड़ा सूज जाता और वेदना होती है तथा वह स्थान पक जाता है। अतएव साधारणभावमें अर्थात् शिथिल भी नहीं और दृढ़ भी नहीं, ऐसे भावमें बांधना उचित है। सौम्य ऋतुमें अर्थात् हेमन्त और शिशिरकालमें सात दिनके बाद साधारण अर्थात् वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें पांच दिनके बाद तथा आग्नेय ऋतुमें अर्थात् ग्रीष्मकालमें तीन दिनके बाद भग्नस्थानको बांधना होता है। परन्तु वन्धन स्थानमें यदि कोई दोष रहे, तो आवश्यकतानुसार खोल कर फिरसे बांध सकते हैं।

प्रलेप।—मण्डिपा, यष्टिमधु, रक्तचन्दन और शालितण्डुल इन्हें पीस कर घीके साथ शतधीत प्रलेप देना होता है।

परिपेक।—घट, गुलर, पीपल, पाकड़, मुलेठी, आमड़ा, अजुंनवृक्ष, आम्र, कोपात्र (केवड़ा), चोरक (गन्धद्रव्य विशेष), तेजपत्र, जम्बूफल, वनजम्बू, पयार, महुआ, कटहल, बेत, कदम्ब, नाव, शालवृक्ष, लोध, सावर लोध, मिलावा, पलाश और नन्दीवृक्ष, इन सब द्रव्योंके शीतल काष्ठ द्वारा भग्नस्थान परिपेचन करना होता है। उस स्थानमें यदि वेदना रहे, तो शालपर्णी, चकवड़ी, घृहीती, कण्टकारी और गोखरू इन्हें दुग्ध द्वारा पाक कर कुछ गरम रहने वहाँ परिपेचन करे। काल और दोषका विचार कर दोषनाशक, औषधके साथ शीतल परिपेक और प्रलेपका भग्नस्थलमें प्रयोग करे। प्रथम प्रसूता गायका दूध ३२ तोला, कंकोली, क्षीरकंकोली, जीवक, ऋषभक, मूंग, उड़द, मेद (अमावसमें असर्गंध), मदा-मेद (अनन्तमूल), गुलज, कर्कटपुष्पी, व'शलोत्तन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरीकाष्ट, अदि (विजवन्द), घृद्धि (गोरख-मुँडी), दाध, जीवन्ती, और मुलेठी, कुल मिला कर २ तोला तथा जल बाध पाव ले कर पाक करे। पाक शेष

होने पर अर्थात् ३२ तोला रह जाने पर प्रक्षेप डाल भग्न रोगीको प्रातःकालमें सेवन कराना होगा ।

शरीरके किसी स्थानमें भग्न हो कर अस्थि यदि झुक गई हो, तो उसे खड़ा करके अपने स्थान पर बांध देना चाहिये । भग्नस्थानको अस्थि यदि अपने स्थानसे हट गई हो, तो लम्बित भावमें खींच कर सन्धिस्थानकी दो अस्थियोंके साथ मजबूतीसे बांध दे । किसी अस्थिके नीचे झुक जाने पर उसे ऊपरको ओर खींच यथास्थानमें बांध देना उचित है । व्याञ्छन (दीर्घा भावमें खींचना), पीड़न और सम्यक् प्रकारसे उपयुक्त स्थान सन्निवेश और बन्धन इन सब उपायोंसे बुद्धिमान् चिकित्सक शरीरको संचाल और अचल सन्धिओंका यथास्थानमें संस्थापित करते हैं ।

शरीरके भग्नअङ्गकी चिकित्सा, प्रक्रम और बन्धनादि इस प्रकार है—

नखसन्धि,—नखसन्धिसमूहियष्ट अर्थात् नृर्णित रक्तसञ्चित्त हानिसे शरीर नामक अस्त्र द्वारा उस स्थानको मथित कर वहाँका रक्त निकाल दे ।

पदतल भग्न,—पदतलके भग्न होने पर वहाँ घो लगा कर पूर्वोक्त बन्धन क्रियानुसार बांध दे । इस हालतमें कदापि व्यायाम नहीं करना चाहिये ।

अङ्गुलिभग्न,—उंगलोकें टूटने अथवा उसके सन्धि विश्लिष्ट होनेसे उस स्थानको समानभावमें स्थापित कर सूक्ष्म पट्टवस्त्र द्वारा बांध दे और उसके ऊपर घो लगा दे ।

जङ्घेदभग्न,—जङ्घा या उसके भग्न होने पर बड़ी सावधानीसे उसे दीर्घभावमें खींच कर दोनों सन्धिस्थानको संयोजित करे । पीछे बट आदि वृक्षोंकी छाल पट्टवस्त्र द्वारा वहाँ बांध दे । ऊरुदेशकी अस्थि निर्गत, स्फुटित या पिघलित होने पर बुद्धिमान् चिकित्सकको चाहिये, कि वे उस अस्थिकी चकत्तैल द्वारा प्रक्षित कर दीर्घभावमें खींच पूर्वोक्त प्रकारसे बांध दे । उक्त दो स्थानमेंसे किसी एकके टूटने पर चिकित्सकको चाहिये, कि वे पहले रोगीको शयन करावें, पीछे पांच स्थानोंको कोलकाकारमें इस प्रकार बांध दें, कि वह स्थान हिलने झोलने न पावे । अर्थात् इस बन्धनका नियम यह है, कि

सन्धिस्थलके दो ओर दो दो करके तथा तलदेशमें एक श्रोणिदेश या पृष्ठदण्डमें अथवा वक्षःस्थलमें एक तथा दोनों अक्षुमें दो बन्धनका प्रयोग करे । सब प्रकारके भग्न और सन्धिविश्लेषरोगमें पूर्ववत् कपाटशयनादि विशेष हितकर है ।

कटिभग्न,—कमरकी हड्डी टूटने पर कमरको ऊपर और नीचेकी ओर खींच सन्धिके स्वस्थानको अच्छी तरह संयोजित कर वस्तिक्रिया द्वारा चिकित्सा करे ।

पार्श्वस्थ भग्न,—पशुका अर्थात् पंजरकी हड्डीके टूटने पर रोगीको खड़ा करके घो लगावे तथा जिस ओरकी हड्डी टूटी है, उसके बन्धनस्थानको मार्जित कर उसके ऊपर कचलिका (पूर्वोक्त अश्वत्थ बकलादि) का प्रयोग करे, पीछे थैल्लितक नामक बन्धन द्वारा बड़ी होशिवारीसे बांध दे ।

स्कन्धभग्न,—स्कन्धसन्धिके विश्लिष्ट होनेसे रोगीको तैलपूर्ण कटाहमें या द्रोणीमें (चहश्चेमें) सुला कर मूसल द्वारा उसका दक्षदेश उठा ले तथा उसमें स्कन्धसन्धि संयोजित होनेसे उस स्थानको स्वस्तिक द्वारा बांध दे ।

कूर्परसन्धि भग्न,—कूर्परसन्धि अर्थात् कंहुनिके विश्लिष्ट होनेसे उस स्थानको अङ्गुष्ठ द्वारा मार्जित कर पीछे वहाँ पीड़न करे तथा उसे प्रसारित और आकुञ्चन कर यथास्थान पर बैठायें और उसके ऊपर घृतसिञ्चन करे । जानु, मुल्क और माणवन्धनके टूटने पर इसी प्रकार चिकित्सा करनी होती है ।

प्रोवाभग्न,—प्रोवादेश यदि घक हो जाये या नीचेकी ओर बैठ जाये, तो अवट्ट अर्थात् प्रोवाके पश्चात् भागका मध्यस्थल और दोनों हनु (मुखसन्धि) पकड़ कर उठावे तथा उसके चारों ओर कुज अर्थात् पूर्वोक्त बटादिकी छाल रख कर कपड़े से बांध दे और रोगीको सात रात तक अच्छी तरह सुलाये रखे ।

हनुसन्धि भग्न,—हनुसन्धिके विश्लिष्ट होनेसे उसको हड्डीको समानभावमें रख यथास्थान पर संयोजित करे और वहाँ स्वेद दे । पीछे पञ्जाङ्गी बन्धन द्वारा उसे बांध देना होगा । फिर वातघ्न भद्रदार्वादि या पूर्वोक्त

समान नहीं है वह स्पष्ट दिखई देता है। तरलशुक्र और शोणितके मेलसे जो कठिन देह बनी है, वह भी समवायिकारणसे तदीय विसद्रुश (मिन्नाकार) कार्योंकी उत्पत्ति है। सांख्यतत्त्वकौमुदीमें इस विषयमें कुछ आभास मिलता है। वहाँ लिखा है,—'एकस्य सतो विवर्त्तः कार्यजात नतु वस्तुमत्' कार्यजात (कार्यसमूह) अर्थात् जगत् एक नित्यपदार्थका विवर्त्तमान है, वस्तु (जनपदार्थ) अर्थात् वह जगत् सत् (नित्य) नहीं है।

६ भ्रान्ति, भ्रम । ७ भावर्त्त, भौरी । ८ विशेषरूपसंस्थिति । ९ आकाश ।

विवर्त्तकल्प (सं० पु०) वह कल्प जिसमें लोक क्रमशः उन्नतिसे अवनतिको प्राप्त होता है ।

विवर्त्तन (सं० क्ली०) वि-वृत् ल्युट् । १ परिभ्रमण, घूमना फिरना । २ पार्श्वपरिवर्त्तन, करवट लेना । ३ परिवर्त्तन, रूपान्तर । ४ नृत्य, नाच । ५ प्रत्यावर्त्तन, लौटना । ६ घूर्णन, घूमना । ७ कानोंसे मल या वायुको निकालनेके लिए कानके भीतरमें यन्त्रविशेषका घुमाना । (सुभ्रुत सं० ७ अ०)

विवर्त्तवाद (सं० पु०) वेदान्तशास्त्र वा दर्शन । इसके अनुसार ब्रह्माके सृष्टिका मुख्य उत्पत्तिस्थान और संसारको माया मानते हैं ।

विवर्त्तस्थायी कल्प (सं० पु०) वह समय जब लोक अवनतिको पराकाष्ठाके पहुँच कर शून्य दशामें रहता है, कल्पान्त, प्रलय ।

विवर्त्तित (सं० त्रि०) १ परिवर्त्तन, बदला हुआ । २ भ्रमित, घुमा हुआ । ३ प्रत्यावर्त्तित, लौटा हुआ । ४ घूर्णित, चकर मारा हुआ । ५ अपनीत, उखड़ा हुआ, सका हुआ । ६ अंग जिसमें मोच आ गई हो ।

विवर्त्तितक्ष (सं० पु०) अरुणशिखा, मुर्गा ।

विवर्त्तितसन्धि (सं० पु०) सन्धियुक्त भग्नरोगमेद । आघात वा पतन आदिके कारण दृढ़रूपसे आहत होने पर यदि शरीरका कोई सन्धिस्थल या पार्श्वदिका अपगम हो कर विषमाङ्गता और उस स्थानमें अत्यन्त वेदना हो, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं । अर्थात् किसी कारणसे आघात लगने पर शरीरका कोई सन्धिस्थान

वा पार्श्वदि यदि विवर्त्तित (उलट पलट) हो प्रायः, तो उसे विवर्त्तितसन्धि कहते हैं ।

चिकित्सा ।—पहले घृतप्रक्षित पट्टयत्रसे भग्नसन्धिस्थानको लपेट दे । पीछे उस स्थल पर कुश अर्थात् पट्टयत्रादिको छाल रख कर यथानियम बांध देना उचित है । बांधनेका नियम इस प्रकार है,—भग्नस्थानको शिथिलभागमें बांधनेसे सन्धिस्थल स्थिर नहीं रहता तथा दृढ़रूपमें बांधनेसे चमड़ा सूज जाता और वेदना होती है तथा वह स्थान पक जाता है । अतएव साधारणभावमें अर्थात् शिथिल भी नहीं और दृढ़ भी नहीं, ऐसे भावमें बांधना उचित है । सौम्य ऋतुमें अर्थात् हेमन्त और शिशिरकालमें सात दिनके बाद साधारण अर्थात् वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें पाँच दिनके बाद तथा आग्नेय ऋतुमें अर्थात् प्रीष्मकालमें तीन दिनके बाद भग्नस्थानको बांधना होता है । परन्तु वन्धन स्थानमें यदि कोई दोष रहे, तो आवश्यकतानुसार छोल कर फिरसे बांध सकते हैं ।

प्रलेप ।—मज्जिष्ठा, यष्टिमधु, रक्तचन्दन और शालितण्डुल इन्हें पीस कर घीके साथ शतघीत प्रलेप देना होता है ।

परिपेक ।—घट, गुलर, पीपल, पाकड़, मुलेठी, आमड़ा, अजुं नवृक्ष, आम्र, कोपात्र (केवड़ा), चारक (गन्धद्रव्य विशेष), तेजपत्र, जम्बूफल, वनजम्बु, पयार, महुआ, कटहल, वैत, कदम्ब, गांध, शालवृक्ष, लोध, सावर लोध, मिलावा, पलाश और नन्दीवृक्ष, इन सब द्रव्योंके शीतल काष्ठ द्वारा भग्नस्थान परिपेचन करना होता है । उस स्थानमें यदि वेदना रहे, तो शालपर्णी, चक्रवर्त्त, वृहती, कण्टकारी और गोखरू इन्हें दुग्ध द्वारा पाक कर कुल गरम रहते यहाँ परिपेचन करे । काल और दोषका विचार कर दोषनाशक औषधके साथ शीतल परिपेक और प्रलेपका भग्नस्थलमें प्रयोग करे । प्रथम प्रयुक्त गायका दूध ३२ तोला, कंकाली, क्षीरकंकाली, जीवक, ऋषभक, मूंग, उड़द, मेद (अभावमें असर्गंध), महामेद (अनन्तमूल), गुलच्छ, कर्कटशृङ्गी, वंशलीवन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरीको काष्ठ, ऋद्धि (विज्वन्द), वृद्धि (गोरखमुंडी), दास, जीवन्ती और मुलेठी, कुल मिला कर २ तोला तथा जल बाध पाव ले कर पाक करे । पाक शेष

होने पर अर्थात् ३२ तोला रह जाने पर प्रक्षेप डाल भग्न रोगीको प्रातःकालमें सेवन कराना होगा ।

शरीरके किसी स्थानमें भग्न हो कर अस्थि यदि झुक गई हो, तो उसे खड़ा करके अपने स्थान पर बांध देना चाहिये । भग्नस्थानको अस्थि यदि अपने स्थानसे हट गई हो, तो लम्बित भावमें खींच कर सन्धिस्थानकी दो अस्थियोंके साथ मजबूतीसे बांध दे । किसी अस्थिके नीचे झुक जाने पर उसे ऊपरकी ओर खींच यथास्थानमें बांध देना उचित है । आञ्छन (दीर्घा भावमें खींचना), पीड़न और सम्यक् प्रकारसे उपयुक्त स्थान सन्निवेश और बन्धन इन सब उपायोंसे बुद्धिमान् चिकित्सक शरीरको सचल और अचल सन्धिधियोंका यथास्थानमें संस्थापित करते हैं ।

शरीरके भग्नशङ्का चिकित्सा, प्रकम और बन्धनादि इस प्रकार है—

नलसन्धि,—नलसन्धिसमूहिएध अर्थात् चूर्णित रक्त-सञ्चित होनेसे भारी नामक अस्त्र द्वारा उस स्थानको मथित कर वहाँका रक्त निकाल दे ।

पद्मल भग्न,—पद्मलके भग्न होने पर वहाँ घी लगा कर पूर्वोक्त बन्धन क्रियानुसार बांध दे । इस हालतमें कदापि व्यायाम नदो' करना चाहिये ।

अंगुलिभग्न,—अंगुलीके टूटने अथवा उसके सन्धि-विश्लिष्ट होनेसे उस स्थानको समानभावमें स्थापित कर सूक्ष्म पट्टबन्धन द्वारा बांध दे और उसके ऊपर घी लगा दे ।

जङ्घेयभग्न,—जङ्घा वा उसके भग्न होने पर बड़ी सावधानीसे उसे दीर्घभावमें खींच कर दोनों सन्धि-स्थानको संयोजित करे । पीछे वट आदि वृक्षोंकी छाल पट्टयत्र द्वारा वहाँ बांध दे । ऊर्ध्वदेशकी अस्थि निर्गत, स्फुटित वा विधित होने पर बुद्धिमान् चिकित्सकको चाहिये, कि वे उस अस्थिको चक्रील द्वारा प्रक्षित कर दीर्घभावमें खींच पूर्वोक्त प्रकारसे बांध दें । उक्त दो स्थानमेंसे किसी एकके टूटने पर चिकित्सकको चाहिये, कि वे पहले रोगीको शयन करावें, पीछे पांच स्थानोंकी कोलकाकारमें इस प्रकार बांध दें, कि यह स्थान हिलने झोलने न पावे । अर्थात् इस बन्धनका नियम यह है, कि

सन्धिस्थलके दो ओर दो दो करके तथा तलदेशमें एक श्रोणिदेश वा पृष्ठदण्डमें अथवा वक्षस्थलमें एक तथा दोनों अक्षमें दो बन्धनका प्रयोग करे । सब प्रकारके भग्न और सन्धि-विश्लेषरोगमें पूर्ववत् कपाटजयनादि विशेष हितकर है ।

कटिभग्न,—कमरकी हड्डी टूटने पर कमरके ऊपर और नीचेकी ओर खींच सन्धिके स्वस्थानको, अच्छी तरह संयोजित कर वास्तविकता द्वारा चिकित्सा करे ।

पार्श्वस्थि भग्न,—पशुका अर्थात् पंजरेकी हड्डीके टूटने पर रोगीको खड़ा करके घी लगाये तथा जिस बोरकी हड्डी टूटी है, उसके बन्धनस्थानको मार्जित कर उसके ऊपर कवचिका (पूर्वोक्त अभ्यर्थ्य बटकलादि) का प्रयोग करे, पीछे येस्तिक नामक बन्धन द्वारा बड़ी होजियारीसे बांध दे ।

स्कन्धभग्न,—स्कन्धसन्धिके विश्लिष्ट होनेसे रोगीको तैलपूर्ण कटाहमें या द्रोणीमें (चहबचेमें) सुला कर मूसल द्वारा उसका नक्षत्र उठा ले तथा उसमें स्कन्ध-सन्धि संयोजित होनेसे उस स्थानको स्वस्तिक द्वारा बांध दे ।

कूर्परसन्धि भग्न,—कूर्परसन्धि अर्थात् कंहुनिके विश्लिष्ट होनेसे उस स्थानको अङ्गुष्ठ द्वारा मार्जित कर पीछे वहाँ पीड़न करे तथा उसे प्रसारित और व्याकुञ्चन कर यथास्थान पर बैठाये और उसके ऊपर घृतसिञ्चन करे । जानु, गुल्फ और माण्डबन्धनके टूटने पर इसी प्रकार चिकित्सा करने होती है ।

प्रोवाभग्न,—प्रोवादेश यदि बक हो जाये या नीचेकी ओर बैठ जाये, तो अथवा अर्थात् प्रोवाके पश्चात् भागका मध्यस्थल और दोनों हनु (मुखसन्धि) एकट कर उठाये तथा उसके चारों ओर कुछ अर्थात् पूर्वोक्त घटादिकी छाल रख कर कपड़े से बांध दे और रोगीको सात रात तक अच्छी तरह सुलाये रखने ।

हनुसन्धि भग्न,—हनुसन्धिके विश्लिष्ट होनेसे उसकी हड्डीको समानभावमें रख यथास्थान पर संयोजित करे और वहाँ स्वेद दे । पीछे पञ्चनी बन्धन द्वारा उसे बांध देना होगा । फिर वातघ्न मन्त्र अर्थात् या पूर्वो

काकोल्यादि मधुरगणोय द्रव्योंके काथ और कलकके साथ घृतपाक कर रोगीके नस्यरूपमें प्रहण करने दे।

कपालभग्न,—कपालके भग्न होने पर यदि मग्जका घा बाहर न निकले, तो घृत और मधु प्रदानपूर्वक उसे बांध दे तथा सात दिन तक रोगीको घृत पान करावे।

हस्ततल भग्न,—दक्षिण हस्ततलके भग्न होने पर उसके साथ दक्षिण हस्ततल अथवा दांनोंके भग्न होने पर लकड़ीका हस्ततल बना कर उसके साथ खूब मज-बूतीसे बांध दे, पीछे उस पर आमतैल (कषा तेल) लगा दे। आरोग्य होने पर पहले गोबरका गुल्ला, पीछे मिट्टीका गुल्ला और हाथमें दल आने पर पत्थरका टुकड़ा उस हाथसे पकड़ दे।

अक्षक भग्न,—प्रोवादेशस्थ अक्षक नामक सन्धिके अद्यःप्रविष्ट होनेसे मूल द्वारा उन्नत करके अथवा उन्नत होनेसे मूल द्वारा अथनत करके खूब कस कर बांध दे। बहुसन्धि भग्न होनेसे पूर्वघत् ऊरु भग्नकी तरह चिकित्सा करनी होती है।

यद्यपि पतन या अभिघात द्वारा शरीरका कोई अङ्ग क्षत न हो कर केवल फूल उठे, तो शीतल प्रलेप और परिषेक द्वारा चिकित्सा करनी होती है। बहुत दिन पहले सन्धिक्योंके विश्लेष होनेसे स्नेह प्रदानपूर्वक स्वेद प्रदान और मृदुक्रिया तथा युक्तिपूर्वक पूर्वाक समो क्रियाओंका अच्छी तरह प्रयोग करे। काण्ड अर्थात् शूल अस्थि यदि टूट जाये और कुछ दिन बाद फिरसे सजान भावसे संलग्न हो भर जाये, तो उसको फिरसे संलग्न कर भग्नकी तरह चिकित्सा करनी

विश
विधा
आघात
पर यदि
गम हो क
हो, तो उसे
कारणसे आ
विश
विधा
आघात
पर यदि
गम हो क
हो, तो उसे
कारणसे आ

रके ऊर्ध्वदेश अर्थात् मस्तकाविके भग्न होने की वत्तीसे शिरोवस्ति या कर्णपूर्णादिका होता है तथा बाहु, जङ्घा, जानु आदि अङ्गों के टूटनेसे नस्य, घृतपान और वहि-
ता है।

यदि अनाविद्ध मालूम हो, अर्थात् हिलने कादि अथवा किसी दूसरी वस्तुके टूटनेसे नस्य, घृतपान और वहि-
न आये। ७ मृदुगुमीत। ८

नाङ्ग हो अर्थात् वहाँ जितने पदार्थ थे उनमेंसे कुलका सद्भाव हो तथा वे सब स्थान यदि अच्छी तरह आकुञ्चित और प्रसारित हो सके, तो जानना चाहिये, कि सन्धि सम्पूर्णरूपसे संश्लिष्ट हो गई है। (पुशुत वि० स्थान०) विस्तृत विवरण भग्न शब्दमें देखो।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ विचर्त्तितशूल, भ्रमणशूल। २ परिवर्त्तितशूल।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ विषय। २ विशेषयय।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) वि-वृध णिच्-ल्युट्। १ बढ़ाने या वृद्धि करनेकी क्रिया। २ वृद्धि, बढ़ती। ३ छेदन। ४ खण्डन। ५ घृत। (त्रि०) ६ वृद्धिकारक।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) वि-वृध्-गनीयर्। चर्त्तित नयोप्य, बढ़ने लायक।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) विचर्त्तितुमिच्छुः वि-वृध्-णिच्-सन्-उ। विचर्त्तितेच्छुः, जिसने बहुत बढ़ानेकी इच्छा की हो।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ वृद्धि प्राप्त, बढ़ा हुआ। २ उन्नत, उन्नतिप्राप्त।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) विचर्त्तितु शीलं यस्य। १ चर्त्तित शील, बढ़नेवाला। विचर्त्तितु शीलं यस्य। २ चर्त्तित, बढ़ानेवाला।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ विशेषरूपसे वर्णन, खूब जारसे बरसना। २ वृष्टि न होना, वर्षाका अभाव।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) विचर्त्तितुमिच्छुः वि-वर्ण-सन्-उ। वर्णन करनेमें इच्छुक।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) १ दुर्बल, कमजोर। २ विशेष बल-युक्त, बलवान्।

विचर्त्तित (सं० त्रि०) विगतउच्चर, विगतताप, सन्ताप-रहित।

"वसन्त्यमन्ये मिथुना विषयी" (शुक् १०।६६।५)

विषय (सं० त्रि०) विचर्त्तित घटीति वि-वश-अच्। १ अथशीभूतात्मा, जिसकी आत्मा वशमें न हो। २ मृदु-लक्षणमें भ्रष्टवृद्धि, चर्त्तित जिसकी वृद्धि मृदुप्य आने पर भ्रष्ट हो गई हो। ३ अवाध्य, लानकार, वेवस। ४ अचेतन, निश्चेष्ट। ५ विह्वल, व्याकुल। ६ स्वाधीन, जो कर्त्तव्य न आवे। ७ मृदुगुमीत। ८

जिसमें कोई शक्ति या बल न हो । १० मृत्युकालमें निर्भौक, प्रणस्तचेता ।

विद्यशता (स० स्त्री०) विद्यशका भाव या धर्म ।

विद्यशोकृत (स० त्रि०) अविद्यशः विद्यशकृतः अभूततद्भावे चिच्चः । जिसे विद्यश किया गया हो, अवशीभूत ।

विद्यस् (स० स्त्री०) वि-यस् विद्यप् । १ तेज । २ घन ।
(शुक् १।१८७७)

विद्यसन (स० त्रि०) वसन्तरहित, विद्यख, नंगा ।

विद्यस्त (स० पु०) यज्ञहीन, जिसके शरीर पर वस्त्र न हो, नग्न, नंगा ।

विद्यस्तता (स० स्त्री०) वस्त्रभूषणका भाव या धर्म ।

विद्यस्तत् (स० पु०) विशेषेण वस्ते आच्छादयतीति वि-यस-विद्यप् । १ विद्यस् । विद्यस्तेजोऽस्यास्तीति वि-यस-मनुप् मस्य वयम् । २ सूर्य । ३ अर्कवृक्ष, अक्ववनका पौधा । ४ देवता । ५ अरुण । ६ वैव-स्यत मनु । (अजय) । ७ मनुष्य । (निषट्ट)
(त्रि०) ८ परिचरणशील ।

विद्यस्तती (स० स्त्री०) सूर्यनगरी । (मेदिनी)

विद्यस्तन् (स० त्रि०) विद्यो विविधवसनं धनमुदकलक्षणं वा तद्वाच्यं सुषो लुक अन्त्यलोपशब्दान्दसः । १ विवासन-वाच । २ विद्यद्रूपप्रकाशवाच्य । ३ धनवाच्य ।

विद्यह (स० पु०) १ सात यायुमेंसे एक । २ अन्तिकी सत अर्चि अर्थात् शिखामेंसे एक ।

विद्याक (स० त्रि०) विवेचनाकर्ता, विचारक, जो शास्त्रार्थमें दोनों पक्षोंके तर्कोंका देख कर न्याय करे ।

विद्याक्य (स० त्रि०) १ विचारार्थ, विचारने लायक । २ वाक्यहीन । (स्त्री०) ३ वाक्य ।

विद्याक् (स० फली०) १ कलह, भगड़ा । २ वितर्क । ३ विविध वाक्य । (त्रि०) ४ विविध परस्पर आह्वान ध्वनियुक्त । (शुक् १।१८७८)

विद्याचन (स० फली०) १ विविध आलाप, तरह तरह-की बातचीत । २ विवाद, भगड़ा ।

(स० त्रि०) विविध कथा या पाठयुक्त ।

(स० त्रि०) १ विवादयोग्य । २ विचारयोग्य ।

() वातरहित ।

विवाद (स० पु०) वि-यद्-घञ्, विरुद्धो वाद् । १ कलह, भगड़ा । २ वितर्क, वाक्युद्ध । ३ धर्माशास्त्रोक्त धनवि-भागादि विपयक न्यायादि, ऋणादि न्याय । मनु-संहितामें १८ प्रकारका विवादस्थान कहा है, जैसे—

१ ऋणग्रहण, २ निक्षेप, ३ अस्वामिकृत विक्रय, ४ सम्भूय समुत्थान, ५ दत्तका अनपकर्म या क्रोधादि फिरसे ग्रहण, ६ संविद्ध, ७ व्यतिक्रम, ८ क्रयविक्रयानुयायी, ९ स्वामिपाल और सामाविवाद, १० वाक्-पारुष्य, ११ दण्डपारुष्य, १२ स्तैय, १३ साहस, १४ स्त्री-संप्रह, १५ पुण्यका धर्म, १६ पैतृक धनविभाग, १७ धृत और १८ पण रण कर मेयादि पशुओंका लड़ाना ।

व्यवहार देखो ।

४ मतभेद । ५ मुकदमेवाजो, अदालतकी लड़ाई ।

विवादक (स० पु०) विवाद करनेवाला, भगड़ा ।

विवादानुगत (स० त्रि०) विवादकर्ता, भगड़ा करने-वाला ।

विवादास्पद (स० त्रि०) जिस पर विवाद या भगड़ा हो, विवादयोग्य ।

विवादिन् (स० त्रि०) विवाद-णिनि । विवादी देखो ।

विवादी (स० पु०) १ विवाद करनेवाला । २ मुकदमा लड़नेवालोंमेंसे कोई एक पक्ष, मुद्दे और मुद्दालेह । ३ सङ्गीतमें यह स्वर जिसका किसी रागमें बहुत कम व्यव-हार हो ।

विवाधिक (स० पु०) १ जो कंधे पर चीजे ढो कर ले जाय । २ घूम कर चीजे घेचनेवाला, फेरीवाला ।

विवाग (स० पु०) १ चिह्न । २ छेदनकार्य, काटनेका काम । ३ सूचोकार्य, सूईका काम ।

विवार (स० पु०) १ स्वरभेद । २ निवारण ।

विवारयिषु (स० त्रि०) विवारणेच्छु, जो बाधा टेना चाहता हो ।

विवास (स० पु०) १ निर्वासन । २ प्रवास । ३ वास । ४ उलङ्घन, नंगा ।

विवासन (स० फली०) १ निर्वासन । २ वास करना ।

विवासनयत् (स० त्रि०) निर्वासनयाश्रित, जिसे निर्वा-सन किया गया हो ।

विवासयितु (सं० लि०) निर्वासनकारयिता, जो निर्वासन कराते हैं।

विवासस् (सं० लि०) विवसन, विवस्त्र, उलङ्घन, गंगा।
विवासित (सं० लि०) १. निर्वासित। २. जिसे उलङ्घन किया गया हो।

विवास्य (सं० लि०) विवासनयोग्य, जिसे निर्वासित किया जा सके।

विवाह (सं० पु०) विशिष्टं वहनम् वि-वह-घञ्। उद्वाह, द्वारपरिग्रह, शादी, ध्याह। पर्याय—उपयम, परिणय, उर्याम, पाणिपोहन, द्वारकर्म, करंप्रह, पाणिग्रहण, निवेश, पाणिकरण। उद्वाह तथा पाणिग्रहणमें पादौष्य है। इस विषय पर पूर्णरूपसे विचार आगे किया गया है।

सृष्टिप्रवाहका संरक्षण करना प्रकृतिका प्रधानतम नियम है। जड़ और चेतन इन दोनों पदार्थोंसे ही वंश-विस्तारका विशाल प्रयास बहुत दिनोंसे परिलक्षित होता आ रहा है। रुद्रशक्तिसे सृष्ट पदार्थोंका संहार होता है, फिर ब्राह्मी शक्ति सहस्र सहस्र सृष्टिका विस्तार करती है। विष्णुशक्तिके पालन-पोषण करनेवाली क्रियासे सृष्ट पदार्थ पुष्ट होता और विशाल विश्वब्रह्माण्डमें फैलता है। उत्पत्ति और विस्तृति ब्राह्मी और वैष्णवी शक्तिकी सनातनी क्रिया है। यहाँ हम सृष्ट पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहतिके सम्बन्धमें कोई बात नहीं कहेंगे। केवल इसकी विस्तृतिके सम्बन्धमें एक प्रधान विधान तथा उपायके विषय पर आलोचना करेंगे।

बीज और शाखा आदि जमानमें रोपनेसे ही उद्भिद्-वृक्षकी वृद्धि होती है। इस बातकी प्रायः सभी जानते और अनुभव करते हैं। "पुरुषुजादि" एक प्रकारका उद्भिद् है। यह अपने शरीरकी विभक्त करके ही अपने वंशका विस्तार करता है। जीवाणुओंमें भी ऐसी ही वंशवृद्धिकी प्रक्रिया दिखाई देती है। प्रोटोजोया (Protozoa) नामक बहुत छोटे जीवाणु हमारी आँखोंसे दिखाई नहीं देते; किन्तु अणुबीक्षणयन्त्रसे यह स्पष्ट दिखाई देने हैं। अपने शरीरकी विभक्त कर इस जातिके जीवाणु अपने वंशकी वृद्धि किया करते हैं। इन सब जीवाणुओंकी इसके लिये अपना शरीर छोड़ देना पड़ता है। इसके लिये इनकी वंशवृद्धिका कोई दूसरा उपाय नहीं। इनकी

अपेक्षा ऊँचे दरजेके जीवाणुओंमें या जीवोंमें इस तरहके बहुतेरे नियम दिखाई देते हैं। इनके वंश-विस्तारके लिये प्रकृतिने खोस योगका विधान नहीं किया है। जीव जब सृष्टिके ऊँचेसे ऊँचे सोपान पर चढ़ जाता है; तब इनमें खी-पुरुषका प्रमेद दिखाई देता है। इसी अवस्थामें खी-पुरुष संयोगसे वंशविस्तार प्रक्रिया साधित होती है।

जीवके हृदयमें ब्राह्मी शक्ति और वैष्णवी शक्तिने इसी कारण अत्यन्त बलवती प्रवृत्ति देखी है। ऊँचे दरजेके प्राणिमात्रमें ही खी-पुरुष संयोगवासना दिखाई देती है। और तो क्या—पशुपक्षियोंमें भी खी-पुरुष संयोगकी बलवती स्पृहा और दोनोंको आसक्त तथा प्रीति यथेष्ट-रूपसे दिखाई पड़ती है। जीव जितने ही सृष्टिके ऊँचे सोपान पर चढ़ जाते हैं, उतने ही पुरुषोंमें खीग्रहणकी वासना बलवती हो जाती है। पशुपक्षियोंमें भी खी-ग्रहण करनेके निमित्त विविध चेष्टाएँ दिखाई देती हैं। पशु भी खीप्राप्तिके लिये आपसमें भयङ्कर द्वन्द्व मचा देते हैं। एक सिहको लिये दो सिंह प्राणान्तक युद्ध करते हैं। इस युद्धके अन्तमें जो सिंह विजय प्राप्त करता है, उसी सिंहका सिहनी अनुसरण करता है और बड़े उरसाहके साथ।

असम्य संमाजकी प्राथमिक विवाह-पद्धति।

मानव-समाजकी आदिम अवस्थामें भी इस तरह धीरधिकमसे ही खीग्रहण करनेकी प्रथा दिखाई देती है। चिपेवायान (Chippewayan) जातिके लोग खीप्राप्तिके लिये भीषण युद्धमें प्रवृत्त होते हैं। युद्धमें जो जीतता है, उसी वीरवरको खी मिलती है। टास्की (Tasli) जातिके लोगोंमें भी युद्ध करके ही खीग्रहण करनेकी प्रथा है। बूशमेन (Bushmen) जातिके लोग बलपूर्वक दूसरी खीको ला कर उसके साथ विवाह कर लेते हैं। अष्ट्रेलियाके अन्तर्गत कुइन्सलैण्डप्रवासी भाले बरछेके साथ युद्ध कर खीप्राप्ति करते हैं।

कुइन्सलैण्डके अष्ट्रेलियामें इस तरहका भी काण्ड देखा जाता है, कि एक खीके लिये चार पाँच आदिमियोंमें भगड़ा खड़ा होता है और वह खी अलग खड़ा रहती है और यह कौतुक देखा करती है। ऐसे भगड़ोंमें प्रमुख अङ्ग भङ्ग हो जाते तथा कभी कभी रक्तस्रोत भी

प्रवाहित हो जाता है। अन्तमें जो जीतता है, उसको वह स्त्री घरमाल्य पहनाती और उसीका अनुगमन करती है।

असभ्य समाजके आदिम अवस्थामें सर्वत्र ही इसी तरह स्त्री-पुरुषोंमें संयोग होता था, इसमें जरा भी सव्येह नहीं। इस समय भी इस समाजमें वह प्रथा विद्यमान है। किन्तु इस अवस्थामें नरनारियोंका समाज-बन्धन असम्भव है। वे झुण्डके झुण्ड पक्षियोंकी तरह समाजमें दल बांध कर रहते हैं, फिर भी इन सय दलोंमें आज भी सामाजिक नियम और शृङ्खला आदि दिखाई नहीं देता। मनुष्य मनुष्यमें कोई भी सम्बन्ध-बन्धन नहीं होता, नरनारियोंमें भी किसी तरहका सम्बन्ध नहीं होता। सामयिक उचाजना या सामयिक भोति द्वारा ही इस श्रेणीके असभ्य मानवदलके स्त्री-पुरुषोंके संसर्गसे सन्तानोत्पत्ति हुआ करती है। फलतः इस तरहकी प्रथा हमारे शास्त्रों द्वारा प्रवर्तित किसी तरहके विवाहके अन्तर्भूत नहीं है।

बुसमेन लोग जब कोई स्त्री प्रहण करने लगते हैं, तब वे केवल रमणोंकी अनुमति ही लेते हैं। सिवा इसके इनमें विवाहकी दूसरी कोई प्रथा नहीं है। चिपिवायनोंमें अब तक विवाह प्रचलित ही नहीं हुआ। एस्कूइमो जातिके लोगोंमें समाजबन्धन भी नहीं और न विवाह-प्रथा ही है।

अलेउट जातिके लोग पशुपक्षियोंकी तरह स्त्री-जातिमें उपगत हो कर घंशका विस्तार करते हैं, इनमें भी विवाह-बन्धन नहीं। ब्रेटके भ्रमणपुस्तकमें लिखा है, कि आरावाक (Arawak) जातिमें स्त्री-पुरुषका मिलन सामयिक मात्र है। इनमें विवाहबन्धन दिखाई नहीं देता। वेदा और निन्न कालिकोर्नियावासियोंमें विवाहबन्धन तो दूरकी बात है, इनको आपामें विवाहका अर्थवाचक कोई शब्द ही नहीं मिलता। वनवासो पशु-पक्षियोंकी तरह ये स्त्रियोंके हांसर्गसे सन्तानोत्पादन किया करते हैं।

किम्बो-किसो असभ्य जातिमें स्त्री-प्रहण करनेको जो प्रथा दिखाई देती है, यह भी विवाह-उद्देश्यकी पूरी करने-वाली नहीं, केवल सामयिक क्षणस्थायी नियम मात्र है। किसी स्थानके असभ्योंमें आज जला उसकी बगलमें घेठ बागके सामने स्त्री विवाहकी सम्मति प्रकाश करती

है। यह प्रथा हमारे वैवाहिक यज्ञकी अस्पष्ट क्षीण स्मृति मालूम होती है। टोडा जब स्त्री-प्रहण करते हैं, तब कन्या घर आते ही किञ्चिन्मात्र गार्हस्थ्य कर्मका सम्पादन करती है, वस यही उनके विवाहकी एकमात्र क्रिया है।

न्यूगिनीदेशके अधिवासियोंमें स्त्री-प्रहणकी पद्धति अतीव सहज है। कन्या स्वयं घरको अपने हाथसे पान तम्बाकू देती है और घर इसके हाथसे उपहारकी इन चीजोंको ले लेता है। यहाँ उनके विवाहका नियम है, दूसरा कुछ नहीं। नावागो (Navago) जातिके लोगोंकी विवाहपद्धति बहुत साधी है। इनको रीति यह है, कि फलसे भरा हुआ एक 'दीरा' या पात्र रख घर और कन्याके आगने सामने घेठाते हैं और उस पात्रमें रखे फलको एक साथ खाते हैं। इसी घटनासे वे विवाह-सुलभ भावद्वेष्ट हो जाते हैं। प्राचोन रोममें भी घर-कन्या एक साथ पीठा खा कर विवाह-बन्धनमें बंध जाती थी।

ये सब पद्धतियाँ ही विवाह-पद्धतिकी आदिम प्रथा हैं। स्त्री-पुरुषको एकत्र रह कर घरका काम आदि करना ही तो देवोंका एकत्र हो भोजनार्थ कर घरका काम करना होता है। इन सब पद्धतियोंके मूलमें अतिकृत और प्रच्छन्न रूपसे यह मङ्गलमय समाजहितकर उद्देश्य छिपा था तथा अविचलित भावसे असभ्य समाजमें आज भी ये सब प्रथाएँ चली आती हैं।

इस श्रेणीके असभ्योंमें जैसा विवाह-बन्धन ढीला है, पत्नित्याग भी वैसा ही सहज है। चिपिवायन बातकी बातमें स्त्रीको मार कर घरसे निकाल देते हैं। निन्न कालिकोर्नियाके परकुइ (Percue) कई स्त्रियाँ रखते हैं, वे इनसे लौंघो बाँदियोंकी तरह काम लेते हैं और जब कभी इनमें किसीसे खटपट हुई तो शौंटा पकड़ कर निकाल बाहर कर देते हैं।

टुपिस (Tupis) जातिके लोगोंमें स्त्रीत्यागकी पद्धति भी ऐसी ही दिखाई देती है। ये भी बहुतेरी स्त्रियाँ रखते हैं और सामान्य कारणों पर ही एकको निकाल दूसरी स्त्रीको रख लेते हैं। तासमेनियावासियोंमें भी ऐसी रीति प्रचलित है। कोसियोंमें आज भी विवाह-पद्धति दिखाई नहीं देती। मलय-पलिनेसिया (Malayo Polynesian) द्वीपके रहनेवाले असभ्य

होने पर भी कुछ समुन्नत हैं। फिर भी, इनमें विवाह-वन्धनकी अच्छी प्रथा दिखाई नहीं देती।

ताहेती (Taheti) आदि जातियोंमें भी इस अतीत प्रयोजनीय सामाजिक कार्योंकी कोई अच्छी प्रथा नहीं है।

किसी किसी असभ्य जातिके लोगोंमें स्त्री-ग्रहणका विषय पशुओंकी अपेक्षा भी घृणित है। इनमें पात-पात्रियोंका कुछ भी विचार नहीं है। ये समाजकी प्रथाके अनुसार अपनी बहन तथा बेटियोंके साथ भी सम्भोग-क्रिया सम्पादन कर सकते हैं। इस विषयमें चिपियायन लोग उदाहरणीय हैं। कादिवाक (Kadiak) जातिके लोगोंमें भी इस तरहकी प्रथा देखी जाती है। करेन जातिके लोगोंमें पिता पुत्रीमें, भ्राता-भगिनीमें भी स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध होते देखा जाता है। बाष्टियान (Bastian) ने लिखा है, कि अफ्रिकाके गनजल्मस और गाबून अन्तरोपके राजे अपने वंशकी शुद्धताकी रक्षा करनेके लिये अपनी कन्याको रानी बना लेते हैं। उधर रानियां पतिके मरने पर अपने उपेष्ट पुत्रको पतिका आसन दे देती हैं।

भाई बहनमें विवाह।

असभ्य जातियोंमें पातापातका विचार करनेकी पद्धति ही नहीं। पहले ही कहा जा चुका है, कि चिपियायनोंमें अपना कन्यासे विवाह कर लेनेकी प्रथा प्रचलित थी। फ्लाविजेरो (Flavijero) कहते हैं, कि पानुचिज (Panuches) जातिके लोगोंमें भाई-बहनमें भी विवाह-वन्धनकी प्रथा प्रचलित है। काली (Cali) जातिमें भतीजी, भांजोंके साथ भी विवाह प्रचलित है। इस जातिमें जासदसे प्रधान और बड़े सम्पन्नत कहे जाते हैं, वे बेरोकटोक अपनी बहनके साथ विवाह सम्बन्ध कर लेते हैं। टरकुईमिडाने न्यू स्पेनमें भाई-बहनमें इस तरहके ३१४ विवाहोंकी बात लिखी है। पेच प्रदेशमें इङ्ग जातिके लोगोंमें प्रधान सामाजिक नियमानुसार सदीदरा जैठी बहनका पाणिग्रहण कर लेते हैं। पल्लेनेसियामें भी ऐसा ही नियम है। साण्डु-इच द्वीपके अधिवासियोंमें राजवंशके लोग भी सदीदरा बहनके साथ विवाह किया करते हैं। डूरोने लिखा है, कि मालागासी (Malagasy) जातियोंमें सदीदरा

बहनके साथ विवाह कर नहीं सकते; किन्तु सौतेली बहनके साथ विवाह करनेमें इनका कुछ भी बाधा नहीं।

प्रतीच्य जगत्में भी भाई-बहनके विवाहकी प्रथाका विलकुल असम्भाव्य नहीं। इजिप्तकी टलेमी (Ptolemy) वंशमें भाई-बहनके विवाहके बहुतेरे प्रमाण हैं। स्कन्दनाममें भी ऐसा विवाह होता है। हिमस्कन्डला सागा (Heimskringla saga)में लिखा है, कि राजा निरोद (Nirod) ने अपनी बहनके साथ विवाह किया था। यह विवाह कानून द्वारा जायज था।

चचेरी बहनके विवाह वन्धनका उदाहरण तो बहुत अधिक दिखाई देता है। एब्राहमने साराके साथ विवाह किया था। कानानाइट (Cananites), मरबो, इजिप्तीय, आसीरीय और फारसवालोंमें इस तरहका विवाह प्रचलित था। स्थानविशेषमें अब भी प्रचलित है। वेदाओंकी सामाजिक रीत्यनुसार अपनी जैठी बहन और पुत्रा, मौसी आदिके साथ विवाह नहीं कर सकते, किन्तु छोटी बहनके साथ धे कर लेते हैं। इसके सिवा इनमें विवाह-वन्धनका विधान नहीं है। वे लोग कहते हैं, कि केवल मृत्यु ही एकमात्र विवाह-वन्धन तोड़नेमें समर्थ हो सकती है। किन्तु इसके पड़ोसी काण्डीय लोग विविध प्रकारसे उनको अपेक्षा उन्नत हैं, फिर भी, विवाह-वन्धनके सम्बन्धमें उनको ऐसा दृढ़ धारणा नहीं है।

स्त्रीपुरुषोंका बहुविवाह।

पयूजियन आदि कई असभ्य जातियोंके लोगोंमें कई पुरुष मिल कर एक रमणीके साथ विवाह करनेकी प्रथा है। किन्तु यह प्रथा उन्हीं लोगोंमें ही नहीं, घर-सिंहल, मलवार और तिब्बतकी उच्च श्रेणीके लोगोंमें भी यह प्रथा देखी जाती है। दूसरी ओर बहुपत्नीका ग्रहण सभी देशोंमें सब समय दिखाई देता है। बहुत ऊँचे दर्जेके लोगोंमें भी यह प्रथा जारी है। सुविषयात् प्रग्र-रचयिता मनिटिषका विश्वास है, कि यौन दुर्नीतिले समाजमें नित्य ही अशान्त मचती रहती है। किन्तु यह बात इतिहासके सिद्धांतसे सम्मत नहीं। पल्लुटिन (Aleutin) द्वीपके अधिवासी स्त्री-पुरुषोंमें नैतिक भाव

बहुत कम है; किन्तु इनमें कलह बहुत कम हो दिखाई देता है। मिष्टर कूकका कहना है, कि 'मैंने अब तक ग्रीन देशोंका भ्रमण किया है, उनके समान शान्ति प्रिय और निर्विवाद आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। यदि चरित्रकी शुद्धताका उल्लेख करना हो, तो मैं स्पदर्शके साथ कह सकता हूँ, कि वे इस सम्बन्धमें सम्बन्धजगत्के आदर्शस्वरूप हैं।'

पत्नित्व और सामाजिक शान्ति ।

हर्बर्ट स्पेन्सरका कहना है,—'यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती, कि पति-पत्नोमें प्रेम रहनेसे हो दूसरी किसी तरहकी अशान्ति न मचेगी। थेलिन्केट (Thelinket) जातिके लोग पत्नों और पुत्रोंको बड़े स्नेह ममताकी दृष्टिसे देखते हैं। इनकी स्त्रियोंमें भी यथेष्ट लज्जा, नम्रता और सतीत्व दिखाई देता है, किन्तु इनका समाज अत्यन्त जघन्य है। ये बड़े झूठे, चोर और निर्दयी होते हैं। ये दास-दासियोंकी तथा कैदियोंकी बातकी बातमें मार डालते हैं। बेचुआना (Bechuana) जातिके लोगोंका संभाव भी ऐसा ही है। ये डाकू, झूठे और नर-घातक होते हैं, किन्तु इनकी स्त्रियां लज्जावती और सती-साधवी हैं। दूसरे ओर ताहिती (Tahitians) जातिके लोग शिववादिकार्योंमें तथा सामाजिक शृङ्खलामें बहुत उन्नत हैं, किन्तु इनमें परदाग सहवास अबाधरूपसे प्रचलित है। स्त्रियोंमें पराधी पुरुषके साथ सहवास करनेमें कोई रुकावट नहीं। फिजियन लोग मथङ्कर विभासघातक और निर्दया होते हैं, इनको यदि नर राक्षस ही कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं हो सकती। किन्तु इनकी स्त्रियां सतीत्व संरक्षणमें जरा भी कसर नहीं उठा रखतीं। कहे तो कह सकते हैं, कि अधिकांश असभ्य समाजमें स्त्रियोंका धर्म उत्तमताके साथ संरक्षित रहता है।

कोमार अभिचार ।

कनिवाया जातिमें जब तक लड़कियोंका विवाह नहीं हो जाता, तब तक वे बेरोकटोक अपने-इच्छानुसार पर पुरुषोंके साथ मौज उड़ा सकती हैं। किन्तु विवाह हो जाने पर उनके सती बनना हो होगा। पर्याटक हेरेराने

लिखा है, कि कुमाना जातिकी कुमारियां विवाहके पूर्व दिन तक बहुतेरे पुरुषोंकी उपभोग्या होने पर भी वे समाज में दायो नहों गिनी जातीं। किन्तु विवाहके बाद ही पर-पुरुषका सहवास दोषावह गिना जाता है। पेरुवियोंके सम्बन्धमें पीग पिजारोने लिखा है, कि इनकी स्त्रियां हर तरहसे पत्नीकी अनुवर्तिनी हैं। पतिके सिया इनका चरित्र और किसी दूसरे पुरुषके साथ दूषित नहीं होता; किन्तु विवाहके पहले इनकी कन्यायें भी जिस किसीके साथ संसर्ग कर सकती हैं। इसमें कोई बाधा नहीं दी जाती और इनका ऐसा कर्म दोषावह भी नहीं माना जाता। चियचा जातिके लोगोंमें मो डोक ऐसी ही प्रथा प्रचलित है। विवाहके पहले इनकी भी लड़कियां सैकड़ों पुरुषोंका उपभोग्या होने पर भी लोग उनके पाणिग्रहण करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते; किन्तु विवाहके बाद यदि स्त्री परपुरुषके प्रति कुदृष्टिसे देखे, तो वह क्षमार्ह नहीं होती।

अभोग्य और समोत्र विवाह ।

इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है, कि सामाजिक शृङ्खलाकी क्रमोन्नतिके साथ पतिपत्नीके सम्बन्धकी क्रमोन्नति भी कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इन कई प्रमाणों पर किसी तरहका सिद्धान्त किया जा नहीं सकता। हम लोग समाजतत्त्वकी आलोचना कर स्वप्न देखते हैं, कि स्त्री पुरुषका सम्बन्ध यदि सुदृढ़ न हो, तो सामाजिक-सम्बन्ध किसी तरहसे दृढ़ नहीं हो सकता। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध जितना ही दृढ़ होता है, उतना ही समाज उन्नत होता है। दो चार असभ्य समाजके उदाहरण कभी प्रमाण नहीं माने जा सकते। जगत्के समस्त मानव-समाजकी क्रमोन्नतिके इतिहासके साथ विवाह-सम्बन्ध-सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। प्रत्येक सभ्य समाजमें ही पारिवारिक दृढ़ सम्बन्धके साथ साथ सामाजिक शृङ्खलाकी क्रमोन्नति अच्छी तरह दिखाई देती है। पाश्चात्य समाजतत्त्वविद् पण्डितोंने असमोत्र और समोत्र विवाहके सम्बन्धमें बड़ी आलोचना की है। हम यहां इसके सम्बन्धमें दो चार बातें कहेंगे। हम इन दोनों वैदेशिक शब्दोंका मनु-संहितामें लिखे "असमोत्र" और "समोत्र"के सच्चे प्रतिनिधि नहीं मानते। फिर यथोचित शब्दके अभाव-

होने पर भी कुछ समुन्नत हैं। फिर भी, इनमें विवाह-बन्धनका अच्छी प्रथा दिखाई नहीं देती।

ताहेतो (Taheti) आदि जातियों में भी इस अतीत प्रयोजनीय सामाजिक कार्योंकी कोई अच्छी प्रथा नहीं है।

किसी किसी असभ्य जातिके लोगोंमें स्त्री-ग्रहणका विषय पशुओंकी अपेक्षा भी घृणित है। इनमें पात-पात्रियोंका कुछ भी विचार नहीं है। ये समाजकी प्रथाके अनुसार अपनी बहन तथा बेटियोंके साथ भी सम्भोग-क्रिया सम्पादन कर सकते हैं। इस विषयमें चिपियायन लोग उदाहरणीय हैं। कादियाद (Kadiak) जातिके लोगों में भी इस तरहकी प्रथा देखी जाती है। करेन जातिके लोगोंमें गिता पुत्रीमें, भ्राता-भगिनीमें भी स्त्री-पुरुष-का सम्बन्ध होते देखा जाता है। बास्टियन (Bastian) ने लिखा है, कि अफ्रिकाके गनजल्भस और गाबून अन्तरोपके राजे अपने वंशकी शुद्धताकी रक्षा करनेके लिये अपनी कन्याको रानी बना लेते हैं। उधर रानियां पतिके मरने पर अपने उभेष्ट पुत्रको पतिका आसन दे देती हैं।

भाई बहनमें विवाह।

असभ्य जातियोंमें पातापातका विचार कानेकी पद्धति है ही नहीं। पहले ही कहा जा चुका है, कि चिपियायनोंमें अपना कन्यासे विवाह कर लेनेकी प्रथा प्रचलित थी। क्लविजेरो (Clavigero) कहते हैं, कि पानुचिज (Panuches) जातिके लोगोंमें भाई-बहनमें भी विवाह-बन्धनकी प्रथा प्रचलित है। काली (Cali) जातिमें मतीजी, भांजीके साथ भी विवाह प्रचलित है। इस जातिमें जो सबसे प्रधान और बड़े सम्पन्न कह जाते हैं, वे बेटेकोटाक अपनी बहनके साथ विवाह सम्बन्ध कर लेते हैं। टरकुईमिडाने न्यू स्पेनमें भाई-बहनमें इस तरहके ३४ विवाहोंकी बात लिखी है। पेह प्रदेशमें इङ्क जातिके लोगोंने प्रधान सामाजिक नियमानुसार सद्दोदर जेठी बहनका पाणिग्रहण कर लेते हैं। पलिनिसियोंमें भी ऐसा ही नियम है। साण्डु-इच द्वीपके अधिवासियोंमें राजवंशके लोग भी सद्दो-दर बहनके साथ विवाह किया करते हैं। झुरीने लिखा है, कि मालागांस्तो (Malagasy) जातियोंमें सद्दोदर

बहनके साथ विवाह कर नहीं सकते; किन्तु सौतेली बहनके साथ विवाह करनेमें इनका कुछ भी बाधा नहीं।

प्रतीच्य जगत्में भी भाई-बहनके विवाहकी प्रथाका बिलकुल असम्भाव नहीं। इजिप्तकी टलेमो (Ptolemy) वंशमें भाई-बहनके विवाहके बहुतेरे प्रमाण हैं। स्कन्द-नाममें भी ऐसा विवाह होता है। हिमस्कन्डला सागा (Heim skringla saga) में लिखा है, कि राजा निरोद (Nirod) ने अपनी बहनके साथ विवाह किया था। यह विवाह कानून द्वारा जायज था।

चचेरो बहनके विवाह बन्धनका उदाहरण तो बहुत अधिक दिखाई देता है। एग्नाहमने साराके साथ विवाह किया था। कानानाइट (Canaanites), बरबो, इजिप्तीय, आसीरोय और फारसवालोंमें इस तरहका विवाह प्रचलित था। स्थानविशेषमें अब भी प्रचलित है। वेदाओंकी सामाजिक रीत्यनुसार अपनी जेठी बहन और पुत्रा, मौसी आदिके साथ विवाह नहीं कर सकते, किन्तु छोटी बहनके साथ वे कर लेते हैं। इसके सिवा इनमें विवाह-बन्धनका विधान नहीं है। वे लोग कहते हैं, कि केवल मृत्यु ही एकमात्र विवाह-बन्धन तोड़नेमें समर्थ हो सकती है। किन्तु इसके पड़ोसी काण्टीय लोग विविध प्रकारसे उनको अपेक्षा उन्नत हैं, फिर भी, विवाह-बन्धनके सम्बन्धमें उनको ऐसा दृढ़ धारणा नहीं है।

जीपुष्वीका बहुविवाह।

पयूजियन आदि कई असभ्य जातियोंके लोगोंमें कई पुरुष मिल कर एक रमणीके साथ विवाह करनेकी प्रथा है। किन्तु यह प्रथा उन्हीं लोगोंमें ही नहीं, बरं सिन्डल, मलवार और तिब्बतकी उच्च श्रेणीके लोगोंमें भी यह प्रथा देखी जाती है। दूसरी ओर बहुपत्नीका ग्रहण सभी देशोंमें सब समय दिखाई देता है। बहुत ऊँचे दरजेके लोगोंमें भी यह प्रथा जारी है। सुविषयात् प्रश्र-रचयिता मनिरेथका विश्वास है, कि ग्रीन डुर्नीसिले समाजमें नित्य ही अशान्ति मचती रहती है। किन्तु यह बात इतिहासके सिद्धान्तसे सम्मत नहीं। एलिटिन (Aleutin) द्वीपके अधिवासी स्त्री-पुरुषोंमें नैतिक भाव

बहुत कम है; किन्तु इनमें कलह बहुत कम हो दिखाई देता है। मिष्टर फूकका कहना है, कि 'मैंने अब तक गिन देशोंका भ्रमण किया है, उनके समान शान्ति प्रिय और निर्विवाद आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। यदि चरित्रकी शुद्धताका उल्लेख करना हो, तो मैं स्पष्टीकरणके साथ कह सकता हूँ, कि ये इस सम्बन्धमें सम्प्रजगत्के आदर्शस्वरूप हैं।'

पत्नित्व और सामाजिक शान्ति ।

हर्बर्ट स्पेंसरका कहना है,—'यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती, कि पति-पत्नीमें प्रेम रहनेसे हो दूसरी किसी तरहकी भ्रान्ति न मचेगी। थेलिन्कट (Thelinket) जातिके लोग पत्नी और पुत्रोंको बड़ी स्नेह प्रेमताकी दृष्टिसे देखते हैं। इनकी स्त्रियोंमें भी यथेष्ट लज्जा, नम्रता और सतीत्व दिखाई देता है, किन्तु इनका समाज अत्यन्त जघन्य है। ये बड़े भूठे, चोर और निर्दयी होते हैं। ये दास-दासियोंको तथा कैदियोंको बातकी बातमें मार डालते हैं। बेचुआना (Bechuana) जातिके लोगोंका स्वभाव भी ऐसा ही है। ये डाकू, भूठे और नर-घातक होने हैं, किन्तु इनकी स्त्रियां लज्जवती और सती-साध्वी हैं। दूसरी ओर ताहिबि (Zahibans) जातिके लोग शिल्पादिकाव्योंमें तथा सामाजिक शृंखलामें बहुत उन्नत हैं, किन्तु इनमें परदाग सहवास अवाधरूपसे प्रचलित है। स्त्रियोंमें पराये पुरुषके साथ सहवास करनेमें कोई रुकावट नहीं। फिजियन लोग भयङ्कर विभ्यासघातक और निर्दयी होते हैं, इनको यदि नर राक्षस ही कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं हो सकती। किन्तु इनकी स्त्रियां सतीत्व संरक्षणमें जरा भी कसर नहीं उठा रखतीं। कहे तो कह सकते हैं, कि अधिकांश असभ्य समाजमें स्त्रियोंका धर्म उत्तमताके साथ संरक्षित रहता है।

कीमत्त व्यभिचार ।

कनियागा जातिमें अब तक लड़कियोंका विवाह नहीं हो जाता, तब तक वे 'येरे'कडेक अपने इच्छानुसार पर पुरुषोंके साथ मौज उड़ा सकती हैं। किन्तु विवाह हो जाने पर उनके सती बनना ही होगा। पर्याटक हेरेराने

लिखा है, कि कुमाना जातिकी कुमारियां विवाहके पूर्व दिन तक बहुतेरे पुरुषोंकी उपमोग्या होने पर भी वे समाज में दौपो नहीं गिनी जातीं। किन्तु विवाहके बाद ही पर-पुरुषका सहवास देवावह गिना जाता है। पेरुवियोंके सम्बन्धमें पी० पिजारेने लिखा है, कि इनकी स्त्रियां हर तरहसे पत्नीकी अनुवर्त्तनी हैं। पतिके सिवा इनका नरिख और किसी दूसरे पुरुषके साथ दूषित नहीं होता; किन्तु विवाहके पहले इनकी कन्यायें भी जिस किसीके साथ संसर्ग कर सकती हैं। इसमें कोई बाधा नहीं दी जाती और इनका ऐसा कर्म देवावह भी नहीं माना जाता। चिबचा जातिके लोगोंमें भी ठोक पेसी ही प्रथा प्रचलित है। विवाहके पहले इनकी भी लड़कियां सैकड़ों पुरुषोंका उपमोग्या होने पर भी लोग उनके पाणिप्रदण करनेमें तनिक भी नहीं दिचकते; किन्तु विवाहके बाद यदि स्त्री परपुरुषके प्रति कुदृष्टिसे देखे, तो वह क्षमाई नहीं होती।

असभ्य और सभ्य विवाह ।

इन सब प्रमाणोंसे मालूम होता है, कि सामाजिक शृंखलाकी क्रमोन्नतिके साथ पतिपत्नीके सम्बन्धका क्रमोन्नति भी कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इन कई प्रमाणों पर किसी तरहका निदान्त किया जा नहीं सकता। हम लोग समाजतत्त्वकी आलोचना कर स्पष्ट देखते हैं, कि स्त्री पुरुषका सम्बन्ध यदि सुदृढ़ न हो, तो सामाजिक-सम्बन्ध किसी तरहसे दृढ़ नहीं हो सकता। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध जितना ही दृढ़ होता है, उतना ही समाज उन्नत होता है। दो चार असभ्य समाजके उदाहरण कभी प्रमाण नहीं माने जा सकते। जपत्के समग्र मानव-समाजकी क्रमोन्नतिके इतिहासके साथ विवाह-सम्बन्ध-सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। प्रत्येक सभ्य समाजमें ही पारिवारिक दृढ़ बन्धनके साथ साथ सामाजिक शृंखलाकी क्रमोन्नति अच्छी तरह दिखाई देती है। पाश्चात्य समाजतत्त्वविद् पण्डितोंने असभ्य और सभ्य विवाहके सम्बन्धमें बड़ी आलोचना की है। हम यहाँ इसके सम्बन्धमें दो चार बातें कहेंगे। हम इन दोनों वैदेशिक गण्डोंका मनु-संहितामें लिखे "असभ्य" और "सभ्य"के सच्चे प्रतिनिधि नहीं मानते। फिर यथोचित शब्दके अभाव-

में हम Exogamy शब्दको असगोत्र विवाह और Endogamy शब्दको सगोत्र विवाह मान लेते हैं।

पाश्चात्य पण्डितोंमें मिष्टर पोहन एफ मेकलेनेनने आदिम समाजकी विवाह-प्रथा नामकी एक उपादेय पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकमें उन्होंने उक्त दोनों तरहके विवाहोंकी आलोचना की है। उनका कहना है, कि आदिम समाजमें दोनों तरहकी स्त्रीग्रहण-प्रथा दिखाई देती है। जैसे—एक श्रेणीके लोग अपनी जातिसे विवाहके लिये कन्याग्रहण नहीं करते। इसीका नाम है—Exogamy या असगोत्र विवाह और दूसरी एक श्रेणीके लोग अपनी जातिसे विवाहार्थ कन्याग्रहण किया करते हैं, इसको कहते हैं सगोत्र या Endogamy। अपहरण करके भी स्त्रीग्रहण प्रथाकी आलोचना इस ग्रन्थमें की गई है। पण्डित-प्रवर हर्वाट स्पेन्सरने मेकलेनेनके आदिम समाजका विवाह सम्बन्धीय सिद्धान्तोंका खण्डन किया है।

मेकलेनेनका यह एक सिद्धान्त है, कि आदिम समाजमें सदा सर्वदा ही लड़ाई भगड़ा और कलह हुआ करता था। इस अवस्थामें वीरोके या योद्धाओंकी ही अधिकार मिलते थे। इसलिये वे उत्पन्न पुत्रियोंको मार डालते तथा पुत्रोंको बड़े यत्नसे पालनपोषण करते थे। इस अवस्थामें समाजमें कन्याओंका बड़ा अभाव हुआ। इससे पकड़ पकड़ कर विवाह कर लेनेकी प्रथा प्रचलित हुई। और इसीलिये Exogamy या असगोत्र विवाहकी प्रथा पहले प्रचलित हुई थी तथा यह विवाह बहुत दिनों तक स्थायिरूपसे समाजमें टिक गया। अन्तमें अपने वंशका कन्याविवाह सामाजिक नियमोंमें बिलकुल ही दोषावह हो उठा। अपनी जातिके लोगोंमें कन्याओंके अभाव होनेसे जिस प्रथाकी प्रथम उत्पत्ति हुई थी, समय पा करवहीं सामाजिक विधिमें परिणत हो कर सगोत्र कन्या-विवाह धर्मविरुद्ध गिना जाने लगा। यही मिष्टर मेकलेनेनका एक सिद्धान्त है। उनका और भी कहना है, कि कन्याके अभावके कारण कई भ्रंश करके प्रथाकी भी उत्पत्ति हुई है।

कन्या अपहरण कर विवाह करनेकी प्रथा इस समय भी अनेक स्थानोंमें दिखाई देती है। जिन समाजोंसे यह

प्रथा दूर हो गई है, उन समाजोंमें इस प्रथाका आभास और पद्धति वैवाहिक घटनाओंके बहुत आनुसङ्गिक कार्योंमें दिखाई देती है। मिष्टर मेकलेनेनके बहुत सिद्धान्तोंमें पण्डित-प्रवर हर्वाट स्पेन्सरने यथेष्ट असङ्गति प्रदर्शन की है। लेनेनका कहना है, कि सम्भ्य समाजमें असगोत्र विवाह प्रथाका लोप हुआ है। स्पेन्सरने लेनेनकी युक्ति और उदाहरणोंको उद्धृत कर इस सिद्धान्तका खण्डन किया है। अति सुसम्पन्न भारतवर्षीय ब्राह्मण-सम्प्रदाय असगोत्र विवाहके ही पक्षपातों है।

लेनेनका कहना है, कि असम्भ्य समाजमें कन्याको मार डालनेकी प्रथा प्रचलित थी। इसीलिये कन्याओंका अभाव हो जाने पर कन्यापहरण किया जाता था। हर्वाट स्पेन्सरने इन दोनों सिद्धान्तोंका खण्डन किया है। उनका कहना है, कि असम्भ्य समाजमें जैसे कन्याएँ मार डाली जाती थीं, वैसे ही लड़ाई भगड़ेमें कितने ही पुरुष भी मारे जाते थे। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि फेवल कन्याओंको ही संख्या कम होती थी। जिस समाजमें कन्याओंको संख्या कम होती है, उस समाजमें बहुविवाह-प्रथा असम्भव हो जाती है। लेनेनने स्वयं ही लिखा है, कि पयुमियानगण कन्यापहरण कर विवाह किया करते हैं और उनमें बहुविवाह-प्रथा प्रचलित है। बहुविवाह कन्याओंकी कमीका द्योतक नहीं। तासमेनियांमें बहुविवाहका यथेष्ट प्रचलन है। लायड (Loyd) ने लिखा है, उनमें अपहृता कन्याओंका विवाह ही अधिक दिखाई देता है। आदिम अधिवासियोंमें अष्ट्रेलियाके अधिकांश लोगोंके पास शेर खियां हैं। कुइरसलेण्डकी मेकाडामा जातिके लोगोंमें खियोंकी संख्या अत्यधिक है। किन्तु यहाँका प्रत्येक व्यक्ति दोसे पांच तक खियां रखता है। दक्षिण-अमेरिकाकी भाफोटो जातिके लोगोंमें बहुविवाह और स्त्रीहरणकी प्रथा मौजूद है। दक्षिण अमेरिकाके ब्रेजिलियनोंमें भी ये दोनों गथायें अक्षुण्ण दिखाई पड़ती हैं। फिर कारिबोंमें भी ये दोनों प्रथायें जीतो जागती दिखाई देती हैं। हम्बोल्ट (Humboldt) ने इसके सम्बन्धमें बहुतेरे उदाहरण दिखाये हैं। अतएव यह कहा जा नहीं सकता, कि कन्याओंके अभावके कारण ही स्त्री-अपहरण करके विवाह करनेकी प्रथा प्रयत्नित हुई थी।

मेकलेनेनका दूसरा एक यह सिद्धान्त है, कि कन्या-हत्याप्रथा प्रचलित रहनेसे ही कन्याओं की कमी हुई। इसी कारण आदिम समाजमें खोहरण और बहुभर्तार (Polyandry) करनेकी प्रथा प्रवर्तित हुआ करती है। यह सिद्धान्त भी युक्तिसंगत नहीं। पर्येकि तासमेनियन, अन्ध्रे लियन, डकीटी और व्रेजिलियेनेमें आज भी बहु-भर्तृकता दिखाई नहीं देती। पर कुदुमा जातिक लोगोंने यह प्रथा प्रचलित है। किन्तु ये अब तक नहीं जानते, कि खोहरण किस चिद्विषयाका नाम है। टोटाओ-में बहुभर्तारकी प्रथा प्रचलित है सही, किन्तु इनमें अपहरणपूर्वक पाणिग्रहणप्रथा मिलकुल हो दिखाई नहीं देती। कोमाका, न्यूजोलेण्ड, लेपचा और कालिफोर्नियाके अधियासियोंमें सगोत्र और असगोत्र दोनों तरहकी प्रथाके अनुसार विवाह प्रचलित है। पयुजियन, कारिव, एस्कुदो, वारण, हटेनटट और प्राचीन ब्रिटेनेमें बहु-विवाह और बहुभर्तार करनेवाली प्रथा दिखाई देती है। इरोकोइस और कियोवा जातिके लोगोंने अब तक 'अपहरण' वाली विवाहप्रथा नहीं है।

स्पेन्सरका कहना है, कि कन्याओंका अपहरण कर खीग्रहण करनेकी प्रथा कन्याके मार डालनेके कारण कन्याओंके अभाव होनेके फलसे प्रवर्तित नहीं हुई थी। आदिम समाजमें खोरदन भी अस्थावर सम्पत्तिमें सम्मिलित था। इस तरह समाजमें युद्धविग्रहके फलसे जीतनेवाले हारनेवालोंका सभी घनरत्नोंके साथ साथ खोरदन भी अपहरण कर लेने थे। स्त्रियां दासी रूपसे, उपपत्नी रूपसे और खो-रूपसे व्यवहृत होती थीं। असभ्य समाजमें इस तरहकी नारीहरणप्रथाका अभाव नहीं था। टारनरने लिखा है—सामोयातमें विजयी पक्ष आपसमें जब लूटी हुई सम्पत्तिका बंटवारा करता था, तब स्त्रियोंका भी बंटवारा होता था। इलियाड पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्राचीन यूनानियोंने पवित्र इजियन नगरके लूट करजे स्त्रियां प्राप्त की थीं, इन्होंने आपसमें बंटका भी विभाग किया था। आधुनिक इतिहासमें भी इस तरहकी घटनाका अभाव नहीं। इससे प्रमाणित होता है, कि युद्धविजयके साथ खोहरणका कार्य नित्यकी घटना थी।

आगे चल कर इस तरहका खोहरण घोरत्वगौरव-परिचापक हो उठा। समाजमें खो-अपहरण करनेवाले विशेषरूपसे सम्मानित थे। इस तरह असभ्य विवाह समाजमें आदृत हो गया। अन्तमें साधारण विवाहमें भी इस समय यह समरसजा और धूमधाम गौरवजनक समझी जाने लगी। इसीसे आज भी हम इस देशके अनेक स्थानोंमें ही विवाहमें एक तरहसे समराट्थ्य देखते हैं। महाभारतमें कन्यापहरणपूर्वक विवाहका उदाहरण पाया जाता है। मनुसंहितामें जिन आठ तरहके विवाहोंका उल्लेख है, उनमें राक्षस और पैशाच-विवाह आदिम अवस्थाके विवाहकी ही ऐतिहासिक स्मृति है। राक्षस-विवाहके सम्बन्धमें मनुने लिखा है—

“इत्या दित्वा च मित्वा च क्रोशन्तीं वदती” यथात्।

प्रसन्न कन्याहरणं राज्ञो विधिकथये ॥” (मनु ३।३३)

मेधातिथिका कहना है, कि कन्यापक्षसे बलपूर्वक कन्याहरण करके विवाह करना राक्षस-विवाह कहा जाता है। इस अवस्थामें कन्याप्रदानमें कोई अडचन उपस्थित हो तो, वरपक्षकी चाड़िये, कि वे लाठी आदिसे मारपोट कर चहारदीवारी आदिसे सुरक्षित दुर्ग (किले) को नष्ट भ्रष्ट करके कन्यापहरण कर लें। अनाथा कन्या यह कह कर रोती है, कि तुम लोग मेरी रक्षा करो, मुझे हरण कर ले जाता है, यही राक्षस-विवाह है।

दूसरे एक विवाहका नाम पैशाच विवाह है। मनु कहते हैं—

“शुभां मत्तां प्रमत्तां वा रथो यज्ञेपगच्छति ।

व पापिष्ठो विवाहानां पैशाचम्पाशमोऽयमः ॥” (मनु ३।३४)

सुता, मत्ता या प्रमत्ता कन्याका छिप कर अभिमर्षण करना हा पैशाच-विवाह है। निद्रिता अर्थात् सोई हुई या मद्यके नशेमें मत्ता या और किसी तरहकी नशीली वस्तुओं द्वारा चेतनारहित कन्याका अभिमर्षण कर उसकी खोके रूपमें परिणत करना अत्यन्त जघन्य कार्य कहा गया है। मनुके मतसे क्षत्रिय राक्षस विवाह कर सकते हैं। किन्तु ब्राह्मणोंके लिये राक्षस और पैशाच वे दोनों तरहके विवाह ही निन्दनीय हैं। राक्षस और पैशाच विवाहमें कन्या और कन्याके अभिभावककी अनिच्छा ही रहती है। राक्षस-विवाह इनन-प्राधान्यमय,

उपभोग करना। हमलोग भी माताके निकट ऐसी ही प्रतिष्ठामें आबद्ध हुए हैं। इस प्रतिष्ठाके अनुसार द्रौपदी हम लोगोंकी रानी बनेगी।" इनको आनुपूर्विक नियमानुसार पांच भाइयोंका पाणिप्रदण करना होगा। युधिष्ठिरकी यह बात सुन कर द्रुपदने विस्मित हो कर कहा था—

"हे कुरुनन्दन! शास्त्रमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियोंके विवाह करनेका विधान दिखाई देता है, किन्तु एक स्त्रीके कई भर्तारकी बात कहीं सुनाई नहीं देती। युधिष्ठिर, तुम पवित्र और धार्मिक हो, तुमको यह लोक-विरुद्ध वेद-विरुद्ध कार्यों शोभा नहीं देगा। तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हुई?" इसके उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा, "क्या करूँ? माताकी आज्ञाकी अवहेलना हमसे न की जायगी। विशेष तौर मैं पहले ही कह चुका हूँ, कि एक समय एक स्त्रीका एक साथ पांच स्वामियोंकी सेवा करना शास्त्रविरुद्ध बात हो सकती है, किन्तु आनुपूर्विक नियम तथा समयके भेदसे द्रौपदी हमारे समीप भाइयोंकी मदियी बन सकती है। ऐसा करनेमें शास्त्रकी कोई निषेधाज्ञा नहीं दिखाई देती। धर्मकी गति बहुत सूक्ष्म है। हम इसका मर्म अच्छी तरह नहीं समझते। किन्तु माताकी आज्ञाका उल्लंघन भी नहीं कर सकते। द्रौपदी हमारे पांचों भाइयोंको सम्भोगया होगी।"

(भारत १।१६५।२७२८)

द्रुपद राजा युधिष्ठिरकी तर्कयुक्तिसे विस्मित हुए सद्यो, किन्तु उनके चित्तको सन्तोष न हुआ। उन्होंने व्यासदेवसे इस प्रश्नको पूछा—एक पत्नीका बहुत पति रहना वेद-विरुद्ध तथा लोकाचार-विरुद्ध है। ऐसा कार्य पहले कभी नहीं हुआ है और न किसी महात्माने ऐसे कार्योंका अनुष्ठान कराया है। मुझे इस विषयमें नितान्त सन्देह हुआ है, कि ऐसा कार्य धर्मसंगत है या नहीं?

धृष्टद्युम्नने द्रुपदके अभिप्रायका समर्थन किया। युधिष्ठिरने उसका प्रतिवाद कर कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, यह झूठ नहीं, अधर्मजनक भी नहीं। विशेषतः अधार्मिक कार्योंमें मैंने प्रवृत्ति नहीं होती। पुराणोंसे जाना जाता है, कि गौतमवंशीया जटिलानाम्नी कन्याका सात ऋषियों-

ने पाणिप्रदण किया था। वे अष्ट न थीं। धार्मिक व्यक्ति उनको श्रद्धा करते थे। ब्राह्मी नाम्नी मुनिकन्याने प्रवेता आदि वृज भाइयोंका पाणिप्रदण किया था। अतः ऐसा विवाह वेद या लोकविरुद्ध नहीं कहा जा सकता। सदासे बहुपतिव्यवस्था निषेध शास्त्रमें विहित है। समय भेदसे निषिद्ध नहीं है। विशेषतः माताको आज्ञा अव्यक्त चलचती है और यह हमारे लिये एकान्त पालनोप है।" इसके बाद व्यासदेव युधिष्ठिरकी बातोंका समर्थन कर द्रौपदीके पूर्वजन्मकी बात कहने लगे। द्रौपदीने देव देव महादेवसे पांच बार गुणवान् पति पानेकी प्रार्थना की थी। दयामय आशुतोष शङ्करने द्रौपदीके प्रत्येक बारकी प्रार्थनाको पूर्ण कर उनका पांच पति पानेका वर प्रदान किया। पांच पतिकी प्राप्ति करकी बात सुन कर द्रौपदीने कहा, "प्रभो! मैंने पांच पतिकी कामना कभी नहीं की। मैंने गुणवान् एक ही पतिकी प्रार्थना की थी।" महादेवने कहा, कि तुमने पांच बार वरकी प्रार्थना की है, अतः मैं एक बार भी तुम्हारी प्रार्थनाकी निष्फल न करूँगा। तुम गुणवान् पांच पति प्राप्त करोगी।

सर्वाङ्ग व्यासदेवने इस तरह द्रुपदके सन्देहात्मक प्रश्नकी मीमांसा कर दी। इससे साफ प्रकट होता है, कि किसी समय भारतके आर्योंमें भी बहु-भक्त्युक्ताकी प्रथा प्रचलित थी; किन्तु महाभारतके बहुत पहले ही इस प्रथाका अन्त हो गया था। इसका भी स्पष्ट प्रमाण द्रुपदके इस प्रश्नसे ही मिल जाता है। किन्तु दक्षिणमें कहीं कहीं अब भी यह प्रथा प्रचलित है।

तिवाङ्गोडके दक्षिण अञ्चलके घैघ और हजाम अभ्यष्ट या अम्पट्टन नामसे प्रसिद्ध है। इन्हीं अभ्यष्ट जातिके लोगोंमें आज भी बहुभक्त्युक्ता प्रचलित है। इनमें एक भाईकी स्त्री अग्यान्व भाइयोंकी भी स्त्री कहलाती है। इस प्रदेशके बड़ई आदि कारीगरोंमें भी एक भाईकी स्त्री अग्यान्व भाइयोंकी स्त्री कही जाती है। जेठाई छोटाईके हिसाबसे सम्भानका बंटवारा हो जाता है अर्थात् जेठा सम्भान जेठे भाईका, इसके बादका यानी इससे छोटा सम्भान उस जेठे भाईसे छोटे भाईका कहलायेगा। इसा

तरह वे सन्तानका बँटवारा कर लेते हैं। दूरिद्रों में ही ऐसा विवाह अधिक दिखाई देता है। एक घर में सात सहोदर वर्त्तमान हैं। सात आदमियों की सात स्त्रियोंका पालन पोषण दूरिद्रता सेवकोंके सामने अतोय कठिन कार्य है, ऐसे ही स्थलमें एक ही स्त्री सातों भाइयोंको पत्नीरूपसे व्यवहृत होती है। इस श्रेणीके लोग त्रिधाङ्गोड़ "कमानार" अर्थात् काचर नामसे पुकारे जाते हैं। मलवारके निकट किसी समय बहुभर्तृकता प्रथाका बहुत जोर था; किन्तु इस समय इसका वह जोर जाता रहा अथवा यों कहिये, कि इस प्रथाकी अव प्रायः स्मृति-मात्र ही रह गई है। अब जो यत्न तत्र यह प्रथा दिखाई देती है, वह आदिम असभ्य समाजकी बहुभर्तृकता प्रथाकी तरह इन्द्रियवृत्तिके लिये नहीं चलाई गई। इनमें तो इसके लिये कभी याद विवाह भी नहीं होने सुना गया है।

मलवारकी "नायर" जातिके लोगोंमें किसी समय इस प्रथाका थोड़ा प्रचलन था, किन्तु इस समय इसका प्रायः लेप हो रहा है। रण-दुर्मद नायर जातिके लोगोंके लिये प्रत्येकका विवाह करना कठिन था और प्रत्येकके विवाह कर लेने पर गृहसंसारमें बड़े बड़े उठ खड़े होते थे। समरप्रिय व्यक्तियोंके सम्बन्धमें इस तरहका विवाह सुविधाजनक नहीं समझा जाता। नायर सैनिक हैं। युरोपमें भी निपादियोंके विवाहका महत्त्व नहीं दिया जाता। मलवारके नायर सदा युद्धमें फंसे रहते थे। अतः इनमें प्रत्येकके विवाहका प्रयोजन नहीं समझा जाता। केवल एक भ्राताके विवाह हो जाने पर यही स्त्री सभी भाइयोंके पत्नीका काम देती थी। इससे किसीको भी संसार बन्धनमें बँधे रहनेकी आशा नहीं होती थी। इसी कारणसे मलवारके नायरोंमें बहुभर्तृकता प्रथा प्रचलित हुई थी। त्रिधाङ्गोड़की निम्न श्रेणीकी अनेक जातियोंमें यह प्रथा अब भी वर्त्तमान है। किन्तु पूर्ण की तरह कभी अब इस प्रथाका उतना जोर नहीं दिखाई देता। भारतवर्षके अग्न्याय स्थानोंमें भी बहुभर्तृकता उदाहरण आज भी दिखाई देता है। तिब्बतमें इस प्रथाका पहले बड़ा जोर था यहाँ अब भी यह मौजूद है।

टोडा जातिके लोगोंमें यह प्रथा दिखाई देती है। इनमें

चार पाँच या इससे भी अधिक सहोदर होने पर ज्येष्ठ भाई ही अपना विवाह करता है। अग्न्याय भाई जब जवान होते हैं, तब वे भी क्रमशः उसी स्त्रीको पत्नीरूपमें मानते हैं। जेठे भाईकी पत्नीको वहनें भी उसके देवरोंके साथ प्याही जा सकती है। अवस्थाविशेषमें दो दो भाइयोंमें एक या बहु स्त्री ग्रहण करनेकी प्रथा अवलम्बित है। इनमें स्त्रीपुरुष दोनोंका बहुविवाह दिखाई देता है। पयूजियन रमणियाँ भी सामाजिक प्रथाके अनुसार बहुत पुरवाँको उपभोग्य होती हैं। ताहितीय लोगोंमें स्त्रियाँ भी बहुत भर्तार और पुत्र्य भी बहुविवाह कर सकती हैं।

घुमभर्तृका रमणियाँ अधिकांश स्थानमें सहोदर भाइयोंकी पत्नियाँ होती हैं। किन्तु निःसम्पर्क स्थलमें भी इस तरहका पत्नित्व दिखाई देता है। केरिय, पस्कु इमो और चान्साँकी रमणियाँ बहुभर्तार ग्रहण करती हैं। पलिटियन द्वीपके अधिवासियोंमें तथा कनारीद्वीपके अधिवासियोंमें भी यह प्रथा प्रचलित है। लानसिरेटरकी रहनेवाली स्त्रियाँ भी बहुत भर्तार करती हैं। किन्तु इनको निर्दिष्ट समय तक एक एक स्वामीके साथ सहवास करना पड़ता है। एक एक पक्ष तक यानी १५ दिन तक। इनका एक एक पतिके साथ सहवास करनेका नियमित समय होता है। काशिया तथा स्पेरिजियन कसाकोंमें भी बहुभर्तृकता प्रथा मौजूद है। सिंहलके धनी और उच्च श्रेणीके सम्पन्न व्यक्तियोंमें एकाधिक भाइयोंमें एक साधारण पत्नी दिखाई देती है। भाइयोंमें ही साधारणता यही नियम है।

अमेरिकामें आमास और सेपेडर जातिकी रमणियाँ बहुत भर्तारकी पत्नी बनती हैं। काश्मीर, लाटक, कुनावार, कृष्णवार, मलवार और शिरमूरमें यह प्रथा प्रचलित है। अरब और प्राचीन ग्रीटनमें भी यह प्रथा प्रचलित थी।

तिब्बतमें आज भी यह प्रथा अधिकतासे प्रचलित है। फलतः तिब्बतकी तरह ऊपर भूमिमें यदि विवाह द्वारा जनसंख्या बढ़ाई जाये, तो अन्तर्भावसे देशमें भीषण अशांति मच जा सकती है। इस प्रथाके जारो रहनेसे तिब्बतका मङ्गल ही हुआ है। वाणिज्य और युद्ध-कार्योंमें जहाँ

जिन लोगोंकी स्त्री-पुत्रोंकी छोड़ कर विदेशमें भ्रमण करना पड़ता है, वहाँ इस तरहकी प्रथा समाजके लिये हितकारी ही समझी जायेगी।

हिन्दू विवाह।

इसका निर्णय करना बहुत कठिन है, कि हिन्दू-समाजमें कब विवाह-संस्कार प्रचलित हुआ। वंशप्रवाह-संरक्षणके लिये स्त्रापुरुषका संयोग व्याभाविक घटना है। किंतु वेदादि ग्रंथोंमें प्रजासृष्टिकी अन्यान्य अलौकिक प्रक्रियायें भी दिखाई देती हैं। मानस-सृष्टि आदि अधोनिःसम्भव सृष्टि इनके उदाहरण हैं। मन्त्रब्राह्मण में नारोंके उपस्थितिकी प्रजापतिका दूसरा मुख कहा गया है।

ऋग्वेद जगत्का आदि ग्रन्थ कहा जाता है। इस ऋग्वेदके समय हिन्दू-समाजमें विवाहकी प्रथायें दिखाई देती हैं। वे सुसंस्कृत सभ्य समाजकी विवाह-प्रथाके रूपमें समाहृत होने योग्य हैं। यह कहा जा नहीं सकता, कि वैदिक कालके पहले हि दुओंमें विवाह-वन्धन कैसा सुदृढ़ था।

महाभारत पढ़नेसे ज्ञात होता है, अत्यन्त प्राचीन समयमें ध्वनिनार दोषरूपमें नहीं गिना जाता था। हमने आदिम जातिके लोगोंके विवाह-वर्णनमें इन सब बातोंका उल्लेख किया है। महाभारतके ११२१२५ २६-श्लोकमें लिखा है—पाण्डु कुन्तीसे कह रहे हैं, कि हे पतिव्रते राजपुत्रि! धर्मज्ञ यही धर्म जानते हैं, कि ऋतु समय स्त्री स्वामीकी अतिक्रम न करे, अवशिष्ट अन्यान्य समयमें स्त्री स्वच्छन्दचारिणी हो सकती है। साधु लोग इसे प्राचीन धर्मका कीर्तन कहा करते हैं।

इससे मालूम होता है, कि स्त्रियाँ ऋतुकालमें स्वामीके सिवा अन्य पुरुषसे सहवास नहीं करती थीं, ऋतु कालके सिवा अन्य समयमें अन्य पुरुषसे सहवास कर सकती थीं। महाभारतके प्रागुक्त अध्यायके प्रारम्भमें पाण्डुने कुन्तीसे जो कहा था, वह महाभारतके आदि पर्वके १२३ अध्याय ३-७ श्लोकमें देखिये। यहाँ हम उसका भावार्थ देते हैं—

स्त्रियाँ पहले घरमें बन्द नहीं रखी जाती थीं। ये सबके साथ मिल-जुल

सकता था। स्त्रियाँ खनन्त्र थीं, आज्ञाध थीं। ये रति-सुखके लिये स्वच्छन्दतापूर्वक जिस किसो पुरुषसे सहवास कर सकती थीं, जिस किसो परपुरुषके यहाँ आ जा सकती थीं। ये कामार अवस्थासे हा ध्वनि-चारिणी होती थीं। उस समयके पति इनके इस कार्यमें बाधा नहीं देते थे। उन समय यह अधर्म भी गिना नहीं जाता था, वरं यह उस समय धर्म ही कहा जाता था। महाभारतके समय उत्तर-कुक्षप्रदेशमें यह प्रथा प्रचलित थी। पाण्डुने स्वयं भी उसे स्पष्टरूपसे कहा है। पाण्डुने यह भी बताया है, कि किस तरह यह प्रथा रोको गई। आदिपर्व १२२ अध्याय ६-२० श्लोक प्रष्टय।

उन्होंने कहा है—मैंने सुना है, कि उद्दालक नामक एक महर्षि थे। उनके पुत्रका नाम था श्वेतकेतु। इसी श्वेतकेतुने ही पहले पहल स्त्रियोंकी स्वच्छन्दविहारप्रथाको रोकना था। क्रोधित हो श्वेतकेतुने पैसा धरो किया, उसका विवरण सुनो। एक समय उद्दालक, श्वेतकेतु और उनकी माता एकल वैद्यो हुई थी; जैसे समय एक ब्राह्मणने आ कर श्वेतकेतुकी माताका हाथ पकड़ कर कहा, आओ चले। यह कह कर वह ब्राह्मण उसे पकान्तमें ले गया। ऋषिपुत्र श्वेतकेतु इस घटनामें बड़े असन्तुष्ट और क्रोधित हुए। उद्दालकने उन्हें बहुत तरहसे समझाया। उद्दालकने यह स्पष्ट कहा—पुत्र, तुम क्रोधित न हो, यह सनातन धर्म है। इस जगतकी सभी स्त्रियाँ अरक्षिता हैं। गायोंकी तरह मनुष्य भी अपनी अपनी जातिमें स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हैं। इस तरह ऋषिके समकालीन पर भी श्वेतकेतुके चित्तको सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने स्त्री पुरुषके इस ध्वनिचारको दूर करनेके लिये नियम बनाया। उस समयसे मानव-समाजमें यह प्रथा प्रचलित है, किन्तु अन्यान्य जन्तुओंमें वही प्राचीन धर्म अब तक बलवान है। श्वेतकेतुने यह नियम बनाया, कि आजसे जो स्त्री किसो समयमें पतिवञ्चता करेगी, वह स्रणहटवाकी तरह महा अमङ्गलजनक पापकी भागिनी बनेगी। फिर जो पुरुष बालकालमें साधुशैली पतिव्रता पतने पर अत्याचार करेगा, उसको भी इसी पापका भागी बनना

पढ़ेगा और जो शो पनि द्वारा पुत्रार्थमें निवृत्त हो कर पतिको भाङ्गाया पालन नहीं करेगा, उसको भी यही वाप लीगा। हे मयनालि ! श्वेतकेतुने बलपूर्वक प्राचीन मनसमें हम धर्मगुरुक निवसको बनाया था।

महाभारतके पढ़नेमें और भी मान्य होता है, कि उष्य ऋषिके पुत्र दीर्घव्रतमें भी श्रियाकी स्वरूप-विहारमयाके बन् किया था।

महाभारतमें यह विवरण हम तरह किया है :—
 दीर्घव्रतमाकी परतो पुत्र उतरान हो जाने पर पतिको मनुष्य नहीं कर सकता थी। दीर्घव्रतमाके कदा,—तुम मुझमें छेप बघो करती हो ! इसके उत्तरमें उनको परना प्रदे बोने कदा,—प्यामो खोका भरल पोपन करता है, इमोसे उनका 'पति' नाम हुआ ; किन्तु तुम जगाम्य हो। मैं तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रीका भरण पोपन करनेमें कठिन ज्ञान अनुभव कर रही हूँ। भर मुझमें तुम शैलीका पालन पोपन हो न करेगा। शूद्रलोकी यह बात सुन कर ऋषिने का'वाग्विन हो भवतो प्योसे कदा,—
 'मुझको राजाके यहाँ ले चले, यहाँमें पालनाम होमा।' इस पर परतो प्रदे पति कदा, "मैं तुम्हारे द्वारा उपाशित पतके नही चाहती।" तुमको जो इच्छा हो करे। मैं पहलेकी तरह तुम्हारा भरण पोपन मदा' कर सकूंगी।" इस पर क्रुड हो कर दीर्घव्रतमा कदा,—भाजमें मैं यह निवस बनाता हूँ, कि केवल पति हो श्रियाके परनाल निरकोपनके भाध्य हीम। स्वामोंके मरने पर या प्यामोंके शोपिन रहने पर शो मय पुढरमें संग नहीं कर सकेगा। यदि यह वेना करेगा तो यह पतिता मगहो जायेगी। भाजसे जो श्रियां पतिको रयाग कर दूमेरे पुढरमें मद-पाम करेगी, उनको वाप लीगा। सब तरहका धन भीजू रहने हुए मों ये इन सब पनका भोग न कर सकेगी और निरव हो भयपन सपयादकी पाली बनेगी।

महाभारतको प्रमाणोंसे मान्य होता है, कि भारत-वर्षमें पहले द्विदूतमाजमें या विवाह बंधन परमाम समवकी तरह सुदृढ़ नहीं था। श्रियां कीवार-कालमें ही इच्छा पूर्वक पर पुढरमें मदपाम कर सकती थीं। उनके इस कालमें कोई कनायट नहीं थी। साधुममाजमें भी यह बर्णितचारवर्षमें गिना नहीं जाता था।

श्रायेंदसंहिताके पढ़नेमें मान्य होता है, कि राज-कन्या श्रियुवोंसे इयाहो जाती थीं। श्रायेंदमें 'धर्म' मण्डलके दूरे 'शुक'में जिन श्यावाश्य ऋषिका उदनेष है, रथोति राजाको बन्गामे उनका विवाह हुआ था। इसके मन्त्रधर्ममें सावधाने एक मनुष्य प्रस्तापकी वर्णना को है। धर्मके पुत्र राजा रथोतिने भवियंजीव मर्चनाना-को होश्रायेंदमें वरण किया था। मर्चनानामे पिताके नामीए राजपुत्रीके देव भवने पुत्र श्यावाश्यके साथ उसका विवाह कर देनेके लिये रातासे प्रार्थना को। राजाने शानोसे यह प्रस्ताव किया। इस पर शामीने भावसि कर कदा, 'दुमारे वंशकी सगी कन्यामोंका विवाह श्रियु-वुवोंके साथ हुआ है। श्यावाश्य श्रियु महां। उनके साथ राजकन्याका विवाह नहीं हो सकता।' शामीके इस तरह सावति करने पर विवाहप्रस्तावका मण्डन हो गया। श्यावाश्य यह सुन कर श्रियुव प्राप्त करनेके लिये कडोर तवभ्यर्णामें प्रवृत्त हुए। पय्वांटनके समय श्यावाश्यकी मददगानरी भेट हो गई। मददगानने उनको श्रियुवपद प्रदान किया। इसके बाद श्यावाश्य श्रियुके साथ उस राजकन्याका विवाह हुआ। जय्यति राजा-को कन्यामें कवयन श्रियुका विवाह हुआ था। (१म मण्डल १८ शुक श्रायेंदसंहिता श्रेयो) इस तरह भस वर्णा विवाहके विनये हो उदाहरण है। फिर, श्री-मद्भागवतमें भी देया जाता है, प्रलाभिं शुककी कन्या देवधारीका विवाह क्षत्रधनु नहुपुत्र पयातिका हुआ था। कलतःशुकका उत्तम मनुना नहीं मिचता, कि भति प्रा-चीन मनसमें सवर्णा मगोवा भरगोला भादि विचार-पूर्वक विवाह-वदति मान्यवर्षमें प्रचलित भी था नहीं। शिलने समयमें सवर्णा गोला और भसपिल्ला कन्याके पाणिप्रदानको प्रया प्रवर्षित हुई।

अनुलोम भावमें भसवर्णा विवाहका विधान मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें कूट कूट कर भरा है। किन्तु कलियुगमें इसकी मनाही कर दी गई है। सवर्णा भाव्योंके सिवा मन्वांय श्रियां कायवर्तको हैं। प्यास, यज्ञिष्ट, गीतम, यम, विष्णु, हारोत, भावस्तम्य, पैडानसि, शूद्र और जाता-तप भादि संहिताके बनानेवालीने इस व्यवस्थाका सम-धर्म किया है। सगोता कन्याका विवाह इस देशके

ब्राह्मणादि उच्च वर्णों में नहीं चलता। संहिताकार भ्रम-
गोत्र विवाहके अविस्वादिता पक्षपाती हैं। मातृसपि
एडन्यके सम्बन्धमें कुछ भी मतभेद नहीं। किंतु संख्याके
गिननेमें अवश्य मतभेद है। इसके बाद उसकी आलो-
चना की जायेगी। सगोत्रः कन्याका विवाह वैदिक
और मानसिक उन्नतिके लिये शुभजनक नहीं। आधु-
निक विद्वान् द्वारा भी यह सिद्धान्त संस्थापित हुआ है।

युवती कन्याका विवाह।

वैदिक मंत्रादिके पढ़नेसे मालूम होता है,
कि वैदिक कालमें कभी भी बाल्यविवाह प्रचलित नहीं
था। सूक्त मंत्रादिमें श्रुतिके लिये जितने शब्द व्यवहृत
हुए हैं, उनमें युवतीके सिवा और कोई युक्ति बालिकाके
लिये नहीं कही गई है। फिर विवाहलक्षणयुक्ता न
होनेसे कन्याओंका विवाह नहीं होता था। ऋग्वेद-
संहितामें ऐसी भी ऋक् दिखाई देती है, कि कन्या
“नितम्भवती” होनेसे विवाहलक्षणयुक्ता समझी जाती
थी। जैसे—

“उदीष्वाताः पतिवती हेऽप्रा विश्वावसुः नमसा गोमिच्छे ।

कन्यामिच्छ पितृपदं व्यक्तं सते भागं अनुया तस्य विदि ॥”

(श्रुक् १०८५।२१।)

अर्थात् हे विश्वावसु! यहाँसे उठो। क्योंकि इस
कन्याका विवाह हो गया है। (विश्वावसु विवाहके
अधिष्ठात्री देवता हैं विवाह हो जाने पर उनका अधि-
ष्ठातृत्व नहीं रह जाता) नमस्कार और स्तवसे विश्वा-
वसुकी स्तुति की जाती है, और कहा जाता है—पितृ-
गृहमें जो कन्या विवाहलक्षणयुक्ता हुई है, उसके यहाँ
जाओ, इत्यादि।

इसके बादकी ऋकमें भी इस विषयका प्रमाण मिलता
है। जैसे—

“उदीष्वातो विश्वावसो नमस्चेच्छा महे त्वा ।

अन्यामिच्छ प्रकर्मं सं जायां पत्या सृज ॥”

(श्रुक् १०८५।२२।)

अर्थात् हे विश्वावसु! यहाँसे उठो। नमस्कार द्वारा
तुम्हारी पूजा करूँ। नितम्भवती किसी दूसरी स्त्रीके
घर जाओ और उसकी पत्नी बना उसके स्वामीकी संगिनी
बना दो।

और भी एक उदाहरणका उल्लेख किया जाता है
एक कन्या बहुत दिनोंसे कुष्ठ रोगसे पीड़िता थी। अद्वि-
कुमारद्वयने जब इसकी चिकित्सा की, तब ये यौवनका
पार कर चुकी थी। इसके बाद उसका विवाह हुआ
था। यह भी ऋग्वेदकी ही कहानी है। इससे या
स्पष्ट विदित होता है, कि युवती-कन्याका विवाह वैदिक
युगसे ही प्रचलित था। मनुने यद्यपि कन्याओंके विवाह
का समय १२ वर्ष निर्धारित किया है, किन्तु उपयुक्त
पति न मिलने तक कन्या ऋतुमती और वृद्धा हो कर म-
र्मा जाये, पर उम्र बढ़ जानेसे कैमा हू चरके साथ उसका
विवाह कर दिया जाये, इस प्रथाके मूलमें उन्होंने कुठारा-
घात भी किया है। समूचा महाभारत युवती कन्या
विवाहका ही प्रमाण ग्रन्थ है। अङ्किराका वचन भा-
कल ही प्रचलित है। किन्तु इस समय “दशपै कन्याक
प्रोक्ता अतः उद्गुर्ध्वं रजस्वला” अङ्किराके इस वचन पर
हिन्दू समाजके अधिकांश लोग ध्रुद्धा नहीं रहते। हिन्दू
भारतवर्षके कई स्थानोंमें तो कुछ लोग “अष्ट वर्षा भवेत्
गौरी” आदि मनुयाच्यका प्रमाण दे कर महा अनर्थ का-
देते हैं। दो चार वर्षकी बालिकाओंका विवाह म-
हो जाता है। कहीं कहीं तो छः छः महीनेके शिशु सन्तान
को शादी हो जाता है। कुछ निम्नश्रेणीके हिन्दुओंमें
तो गर्भस्थ बालकोंके विवाहका ही पैगाम हो जाता है।
श्वर कई वर्षोंसे देशके शुभचिन्तक इसके रोकनेको चेष्टा
कर रहे थे; किन्तु उन्हें इस काममें सफलता नहीं मिली।
अन्तमें श्रीयुक्त रायसाहब हरत्रिणास सारदा महोदयके
बालविवाहके रोकनेके लिये काँसिलमें एक बिल पेश
किया। इस बिलका मर्म इस तरह है—१४ वर्षसे कम
उम्रकी बालिकाओंका और १८ वर्षसे कम उम्रके
बालकोंका विवाह करनेवाला पिता माता या अभिमायक
दापो समझा जायेगा। यदि यह साबित हो जाये,
कि अमुकने १३ ही वर्षमें किसी कन्याका और १७ ही
वर्षमें किसी बालकका विवाह कर दिया है, तो उसको
१ महीनेकी सादी जेलकी सजा और १००० रुपये तक
जुर्माना किया जा सकता है। यदि साबित न होगा, तो
उन्हे (जिसने दूरक्षास्त दे मांमला चलाया था) १०० एक
सौ रुपये तक जुर्माना होगा। सारदा महोदयके इस बिल

पर दो वर्षों तक यज्ञ वादानुवाद हुआ। अन्तमें इस विलका उपयोगिता देख कर लोगोंने इसका सार्यभौमिक रूप किया। अब यह कानून केवल हिन्दुओं के ही लिये नहीं, वरं भारतमें बसनेवाली सभी जातियों के लिये लागू होगा। बहुत यादानुवाद होनेके बाद यह कानून सन् १६२६ ई०की अनेक काममें लाया जायेगा। इस तरह भारतमें बालविवाहका अन्त हो गया। अधिकांश हिन्दुओंमें पहले हीसे १२।३ वर्षों की कन्याओंका विवाह होता था। यहाँकी आदिम जातियोंमें तो पूर्ण यौवन प्राप्त न होने पर कन्याका विवाह होता ही न था।

चिर कुमारी।

श्रग्वेदमें ऐसा भी प्रमाण मिलता है, कि प्राचीन कालमें इस देशमें कुछ कन्यायें चिरकुमारी भावसे पितृ-लयमें रह जाती थीं और पिताके धनकी अधिकारिणी होती थीं। श्रग्वेदमें इसके प्रमाण भी मिलने हैं, जैसे—

“अमात्रुरिषिः। उवा क्वतो उमानादावदवत्कामिये भगः।
 कृषि प्रेतवपुं मास्याः भरं ददि भगं तन्वोऽजिन मामहः ॥”
 (२ मण्डल १७ सूक्ता ७ श्रृक्)

सायणभाष्यके अनुयायी इसका अनुवाद इस तरह है—

हे चन्द्र ! पतिअभिमानी हो जावजीयग पिता-माताके साथ उनको शुभ्रपामें रत रहतो, हुई दुहिता जैसे पिता-गृहके धनकी प्रार्थना करनी है, वैसे ही मैं भी तुमसे धनकी प्रार्थना करता हूँ। उस धनको तुम सबके सामने प्रकट करो, उसका परिमाण बताओ और उसका सम्पादन करो। इस धनसे तुम स्तोत्रार्थोंको सम्मानित करो।

व्यभिचारिणी।

श्रग्वेदके समयमें स्त्रियोंका स्वच्छन्द विदार बन्द हुआ था। कुमारी और विधवा अवस्थामें गुप्तरूपसे गर्भ सञ्चार होने पर व्यभिचारिणी स्त्रियों गुप्तरूपसे गर्भ गिरा देती थीं। श्रग्वेदमें इसका भी प्रमाण मिलता है। जैसे—

“धृतमता आदित्या इषिरा भारे मत्कसं रहुसूरिवागः।

धृयवतो यो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वान् अवसे हुवे वः ॥”

(२ म० २६ सू० १ श्रृक्)

अर्थात् हे प्रतकारी शीघ्र गमनशील सबके प्रार्थनीय आदित्यगण 'रहसू' अर्थात् गुप्तगर्भकी तरह मुझे दूसरे दूर देशमें फेंक दे। हे मित्र और वरुण तुम लोगोंका मङ्गल कार्या समझ कर मैं रक्षा करनेके लिये तुम लोगोंको बुलाता हूँ। तुम लोग हमारी स्तुति सुनो।

“रहसूरिच” पद मूलमें है। सायणने इसकी व्यवस्थामें लिखा है—“रहसि जनैश्चातप्रदेशे सूयते इति रहसू व्यभिचारिणी, सा यथा गर्भं पातयित्वा दूरदेशे परित्यजति तद्वत् ॥”

इससे मालूम होता है, कि जब यह श्रृक् बनी थी, तब इस देशमें कुमारी अवस्थामें ही सम्भवतः किसी किसी कन्याओंका गर्भ रह जाता था अथवा उस समय समाजमें विधवा-विवाह चारों तरफ फैला न था। व्यभिचारिणी स्त्रियोंका गुप्त गर्भ उस पुराने युगमें गिन्दित समझा जाता था। एक श्रेणीकी आदिम अमम्य जातिके लोगोंमें यह कार्या अपराधमें नहीं गिना जाता। किन्तु सुसभ्य हिन्दूसमाजमें श्रग्वेदके उस पुराने समयसे ही ऐसा व्यभिचार घुणाकी दृष्टिसे देखा जाता है। आज भी यह जघन्य कार्या हीक उस पुराने युगकी तरह होता है सदी, किन्तु आज भी यह जनसमाजमें निन्दित समझा जाता है।

विवाहमेद।

श्रग्वेदसंहितामें कई तरहके विवाहकी प्रथा दिखाई देती हैं। पिछले मन्वादि स्मार्त्त लोगोंने ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच — इन आठ तरहके विवाहोंका उल्लेख किया है। मुद्रित श्रग्वेदसंहितामें राक्षस और पैशाच विवाहका उदाहरण नहीं मिलता। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य और गान्धर्व विवाहोंका आभास बहुत दिखाई देता है।

ब्राह्मविवाहमें घरकी घरमें बुला करकन्याको सजा कर पूजाके साथ विवाह कर दिया जाता है। श्रग्वेदके समय भी घरको कन्याके घर बुलानेकी रीति थी। विवाहके समय घर और कन्याको अलङ्कृत करनेका प्रमाण श्रग्वेदमें बहुत मिलता है। यहाँ एक प्रमाण उल्लेख कर दिया जाता है। जैसे—

‘एतं वां स्तोममशियनावकम्पातितज्ञाम मृगवो न रथं ।

न्यमङ्गाम य.षणां न मत्ये’ नित्यं न सूनु’ तनयं दधानाः ।”

(ऋक् १०।३६।१४)

जैसे दामादको कन्यादान करते समय वस्त्रभूषणसे सुसज्जित कर कन्यादान किया जाता है, वैसे ही मैंने स्तवको अलंकृत किया जिससे नित्य हमारे पुत्र-पौत्र कायम रहें ।

कन्या और वरको वस्त्रभूषणसे सुसज्जित कर कन्या-के पिताके घर ब्याह करनेकी प्रथा बहुत पुराने समयसे ही उत्तम मानी जा रही है ।

द्वैव-विवाहमें भी अलंकृत कन्यादानकी प्रथा प्रचलित थी । (मनु ३ अ० २८ श्लो०)

स्वयम्बर और गान्धर्व-विवाह ।

इस समय आसुर-विवाहमें भी घर-कन्यादान करनेकी प्रथा है ।

ऋग्वेदमें स्वयंवर तथा गान्धर्व-विवाहका भी उल्लेख पाया जाता है । (१० म० २७ श्ल० १२ श्रुक्)

ऐसी कितनी ही स्त्रियां हैं जो अर्थात्की प्रतिके कारण कामुक पुष्पके प्रति अनुरक्ता होती हैं । जो स्त्रियां उत्तम हैं, जिनके शरीर सुगठित है, वे बहुत लोगोंमेंसे अपने मनके अनुरक्त मित्रवाला चुन लेती हैं ।

सुविद्ययात सायणाचार्यने इस ऋक्के भाष्यमें लिखा है—

“अपि च यदुया वधूर्मद्रा (कन्याणी) सुपेशाः (शोभनरूपा) च भवति, सा द्रौपदीदमयन्त्यादिका वधूः स्वयमात्मनैव जने चिज्जनमध्येऽवस्थितमति मिलं प्रियमञ्जुननलादिकं पतिं वनुते (याचते स्वयंवरधर्मेण प्रार्थयते) ।”

कन्या और वरकी परस्पर इच्छा द्वारा जो संयोग होता है, यही गान्धर्व-विवाह नामसे प्रसिद्ध है ।

ऋग्वेदमें और भी लिखा है, कि स्त्री अपनी आकांक्षाके अनुसार भी पति चुन लेती है ।

(१ म० ६२ सूक् ११ श्रुक् ।

अर्थात् हे दर्शनोय इन्द्र, तुम मन्त्र और नमस्कार द्वारा श्रुत हो । जो मेधावी पुरुष सनातन कर्म या धन की कामना करता है, वह बहुत प्रयास करनेके बाद तुमके

पाता है । हे बलवान इन्द्र ! जिस तरह कामयमाना परतो कामयमान पतिको पातो है, वैसे ही मेधावियोंकी स्तुतियां तुमको स्पर्श करें ।

यह प्रमाण भी प्रागुक्त मनुवचननिर्दिष्ट गान्धर्व विवाह का वैदिक प्रमाण है ।

देवरके साथ विधवा-विवाह ।

सामोके मर जाने पर देवरके साथ विधवा विवाह प्रथा भी ऋग्वेदके समयमें प्रचलित थी ।

“कूह स्विदोषा कूह वस्तोरश्वना कूहामिपित्वं कतः कूहोवतुः । को वां शपुशा विधवेव देवरं मर्यो न गोषा ह्युवे सपत्य भा ॥” (१० मयल ४० सूक् २ श्रुक्)

इसका अर्थ यह है, कि हे अश्विद्वय ! तुम लोग दिन या रातमें कहां जाते हो या कहां तुम समय बिताते हो ? विधवा जिस तरह सोनेके समय देवरका समादर करता है अथवा कामिनो अपने कांतका समादर करती है, यह आहूत-नस्यलमें कौन तुमको वैसे ही आदरके साथ बुलाता है ?

मनुसंहिताके नवें अध्यायके ६६वें श्लोककी टीका में मेधापातिने इस ऋक्को उद्धृत किया है ।

विधवाओंके सम्बन्धमें और भी एक ऋक् दिवाई दीती है ।

“उदीर्ष्वं नार्य्यंमि जीवलोके” गवाशुमेतमुप शेष त्रिह ।

हस्तप्राभस्य दिविपोस्तवेदं पत्युर्नित्वमभि सं वभूथ ॥”

(१० म० १८ सू० १८ श्रुक्)

अर्थात् हे मृतको पति ! जीवलोकेमें लौट चला । यदांस उठे । तू जिसके साथ सोने जा रहा हो, वह मर चुका है । अतः लौट आओ । जिसने तुमसे विवाह कर गमांधान किया था, उस पतिका जाय-स्व गत हो गया है । अतः सहमरणकी आवश्यकता नहीं ।

इस ऋक्के पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋग्वेदके समय भी कहीं कहीं सतीदाहकी प्रथा प्रचलित थी । किन्तु सूक्तकारने पुत्रपौत्रयुक्ता विधवाको सहमरणसे रोकनेके लिये ही इस सूक्तकी रचना की है । सायणने ‘जीवलोके’ पदकी व्याख्यानमें लिखा है, “जोवानां पुत्र-पौत्रादिनां लोकं स्थानं गृहम्” । ‘जावास्व गत हा गया’ इस पदके मूलमें भी वैसे ही भावकी बात है । यह ऋक्

विधवा-विवाह या विधवाके किसी दूसरेके साथ पाणि-
प्रदण करनेके पक्षमें नहीं है। यह सहमरणोन्मुख रम
णियोंको सात्वनामाल है। आश्वत्थानगृह्यसूत्रमें
भी देवर आदि द्वारा श्रमजानगामिनो विधवाके प्रति
इसी तरहका उपदेश दिखाई देता है। जैसे—

"ता मुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीधोऽन्तेवासी जव-
हासो वोदोष्व नादर्नाभि जीवलाकम् ॥"

(आश्वत्थानगृह्यसूत्र ४।२।१८)

दो ऋत्योंके साथ मनुस्मृतिका मिलान करनेसे यह
मालूम होता है, कि पुत्रके द्विपे वैदिक कालसे मनुके
समय या उसके बादके समय तक भी विधवाकी प्रथा
प्रचलित थी। यह नियोग कार्या देवर द्वारा ही सम्पन्न
होता था। देवरहा भीजाईके गर्भसे सन्तान उत्पन्न
करता था। समय आने पर भीजाई देवरके साथ व्याहो
जाने लगी।

देवर द्वारा पुत्रोत्पत्ति रोकोगे हैं सही, किन्तु
इस समय भी कई जगहोंमें विधवा भीजाई देवरको पति
बना लेती है। यह नियम कई देशोंमें देखा जाता है।
आदिम ममाजको विवाह-प्रथाकी आलोचनामें भी इसके
सम्बन्धमें कई दृष्टांत दिये गये हैं।

बहुपत्नी प्रथा (Polygemy)।

भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे बहुपत्नीकी प्रथा चली आती
है। ऋग्वेदके सूत्रकार दीर्घात्मा ऋषिके पुत्र कक्षीवान्
अपना अधपत्न समाप्त कर जाते समय पथके किनारे
सो गये। इसी पथसे नौकरोंके साथ राजा जा रहे
थे। राजा कक्षीवान्को देख कर बहुत संतुष्ट हुए और
उन्हें अपने भवनमें उठावा ले गये। यहाँ उन्होंने अपनी
दश कन्याओंके साथ कक्षीवान्का विवाह कर दिया।
वदेजमें उन्होंने १०० निष्क सुवर्ण, १०० घोड़े, १०० बैल
और १०६० गाड़ी और ११ रथ दिये। यही कक्षीवान् जब
युद्ध हो गये तब इनको इन्द्रने वृचा नामकी युवती पत्नी-
का दिया। इस तरह बहुपत्नीप्रथाके और भी उदाहरण
दिये जा सकते हैं।

वेदमें लिखा है—"यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति
तस्मादेको जाये विन्देत ॥"

अर्थात् जैसे यहकालमें एक यूपमें दो रस्सियां बांधी

जाती हैं उसी तरह एक पुष्प दो स्त्रियोंके साथ विवाह
कर सकता है।

इसके सम्बन्धमें एक और श्रुतिका प्रमाण है—
"तस्मादेकस्य बहो जाया भवन्ति ॥"

महाभारतमें राजा द्रुपद युधिष्ठिरसे कहते हैं—
"एकस्य बहो विहिता मद्रिथः कुचन चन ॥"

(आदिपर्व १६५ अध्याय २७ श्लोक)

ऋग्वेदसंहिताके दशवे मण्डलके १४१ सूत्रके पदने-
से मालूम होता है, प्राचीन समयमें सौत अपना अपनी
प्रतियोगिनी सौतों पर रोव जमानेके लिये मन्त्रीवधिका
प्रयोग करती थीं।

'यह जो तोम्रशकियुका लता है, यह भीवधि है, इस-
को खोद कर मैं उखाड़ रहा हूँ'। इससे सौतका क्रोध
पहुंचाया जाता है। स्वामीको प्रेमकासमें बांधा भी
जा सकता है।'

मन्वादि संहिताकारोंके साथ शास्त्रमें भी बहुपत्नी
प्रथाकी आलोचना बहुत दिखाई देती है।

द्विजातियोंके लिये पहले मवर्णा विवाह ही विहित
है। किन्तु जो रतिकामनासे विवाह करना चाहते हैं, वे
अनुलोम क्रमसे विवाह कर सकते हैं।

गङ्गा और देवल आदि स्मृतिकारोंके ग्रन्थोंमें बहु-
विवाहके प्रयोजनानुसार बहुविधान दिखाई देता है।
पुराणोंमें इसके दृष्टान्तका अभाव नहीं। श्रीकृष्णकी बहु-
तेरी रानियां थीं। यसुदेवकी भी बहुपत्नियां थीं। श्री-
मद्भागवतमें इसके प्रमाण हैं।

सत्प-युगमें धर्नामत नामक एक ऐश्वर्यशाली
व्यक्तिने बहुविवाह किया था। अभिष्ठानशकुन्तलमें:
इसका वर्णन है।

पौराणिक और आज कलके राजाओंके बहुविवाहकी
बात तो किसीसे छिपी नहीं है। पचास वर्ष पहले
बङ्गालके राष्ट्रीय कुलोंमें सौसे अधिक विवाह होते
थे। कई कह सकते हैं, कि भारतमें जितना इस प्रथा-
का प्रभाव औरों पर था, उतना और किसी भी देशमें
नहीं। फिर भी वैदिक मुसलमानोंके यहां बहुविवाह
की कमी नहीं।

बहुपत्नित्व (Polyandry)।

बहुपत्नीके अनेक उदाहरण हैं, किंतु बहुभर्त्तारकी प्रथा बहुत कम है। चंद्रमे' इस प्रथाका उदाहरण या उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेदमें भी एक स्त्रीके बहु-पतिका उल्लेख दिखाई नहीं देता। श्रुतिमें स्पष्ट ही लिखा है—

१। "नैकस्याः हव्यः सह पतयः"

अर्थात् एक स्त्रीके बहुतेरे पति नहीं होने चाहिये।

२। "यन्नेकां रश्नां ह्योयुप्याः परिव्यजति।

तस्माद्धोको द्वौ पती विन्देत।"

अर्थात् जैसे एक रस्सो दो यूपोंमें नहीं बांधी जाती है, वैसे एक स्त्री दो पति नहीं कर सकती।

प्रथम श्रुति इस विषयमें उतनी दृढ़तर नियेध-वाचक नहीं। षयो' कि "सह पतयः" शब्दका अर्थ यह है, कि एक स्त्रीके युगपत् अर्थात् एक साथ कई पति नहीं रह सकते। किन्तु भिन्न भिन्न समयमें पति रह सकते हैं। द्रौपदीके पंचपाण्डवोंके विवाहके समय आपत्ति कर द्रुपद राजाने कहा था—स्त्रियोंके लिये बहु-पतित्व वेदविरुद्ध है। इस पर राजा युधिष्ठिरने उक्त श्रुतिकी व्याख्या अच्छी तरहसे समझा दी थी। फिर युधिष्ठिरने इसके सम्यग्धमें गौतम-वंशीया जटिलाके बहु-भर्त्तारकी बातका प्रमाण दे कर इसका समर्थन किया था। उन्होंने यह भी कहा था, कि वाशो नामकी कन्याका सात ऋषियोंके साथ विवाह हुआ था। मारिया नामकी कन्याका विवाह 'प्रचेता' दश भाइयोंके साथ हुआ था।

फलतः ऋग्वेदमें हमने ऐसा एक भी उदाहरण नहीं पाया। हिन्दू-समाजकी सम्यताके विकाशके साथ साथ बहुपतिकताका विधान लुप्त हो गया। महाभारतमें द्रोघातमाप्रवर्त्तित जिस मर्यादाके स्थापनका उल्लेख है, वही स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिग्रहणका सनातन नियम है। यह नियम सब समाजमें एक समान आदृत हो रहा है। महाभारतके द्रोघातमाप्रवर्त्तित मर्यादा-स्थापन प्रसङ्गमें टोकाकार नीलकण्ठने इस विषयमें अन्तिम मोमांसा लिखिवद्ध की है। यथा—

"ननु यदेकस्मिन् यूपे द्वे रश्ने परिव्यपति तस्मादेको द्वे जापे विन्दान्ते। यन्नेकां रश्नां ह्यो यूपयोः परि-

व्यपति, तस्मान्नेका द्वौ पतो विन्देत" इत्यर्थादादिक-निषेधविधेरैकस्याः पतिद्वयस्याप्राप्तत्वात्। कथमियं द्रोघातमसा मर्यादा कियत इति चेत्तत्राह मृते इति। तस्मादेकस्य हव्यो जाया भवति नैकस्यै बहवः सह पतयः इति श्रुत्वांतरे सह शब्दात् पत्यपियेन अनेकपतित्व-प्रसङ्गात् रागतः प्राप्तत्वात्तत्रवोद्योपपत्तिः 'सह' शब्दोऽपि रागतः प्राप्तानुयाद् एव न विधायक, अन्यथा विहित-पतिसिद्धत्वात् अनेकपतित्ये वि. त्वः स्यात्। कथं तद्धि द्रौपद्याः पञ्चपाण्डवा मारियाद्युच दश प्रचेतसः। इद्वान्तनानां नीचानाञ्च द्वित्राद्युचः पतयो दृश्यन्ते इति चेन्न। "न देवचरितं चरेत्" इतिन्यायेन देवता कल्पेपु पट्टानुयोगोयोगात्; नीचानां पशुप्रायाणाञ्च चारस्याप्रमाणाच्च; अधिकारिविषयवत्त्वाच्च नियाम-स्येति दिक् ॥" (आदिपर्व १०४।३५-३६)

नीलकण्ठके सिद्धान्तका मर्म यह है, कि द्रौपदी और मारियाके बहुपति थे और इस समय नीच जातियोंमें स्त्रियोंके बहुत पति देखे जाते हैं। इन सब उदाहरणोंसे बहुभर्त्तृकता सम्य सम्राजकी विहित नियम नहीं हो सकती। शास्त्रकारोंका कहना है, कि "न देवचरितं चरेत्" अर्थात् देवताओंके आचरणके अनुसार आचरण नहीं करना चाहिये। द्रौपदी आदि देवोंमें गिनो जाती हैं। जनसमाजके लिये उनका आचार व्यवस्थापित नहीं हो सकता। दूसरी ओर पशुपायः नीच जातिके लोगोंका व्यवहार भी शिष्ट समाजके लोगोंके लिये प्रामाणिक माना नहीं जा सकता। और अधिक भी भेद-से नियोग व्यवस्थेय है। यह प्रथा समाजमें अबाधरूप चलाई नहीं जा सकती। अतः इस समय बहुभर्त्तृकता प्रथा शास्त्रसम्मत नहीं हो सकती। भारतवर्षके दक्षिण प्रांतोंके सिवा यह प्रथा कहीं भी प्रचलित नहीं।

विषया पत्नी।

हिन्दू समाजमें विषया पत्नीरूपसे ग्रहण की जाती थी। इस बातका प्रमाण और उदाहरण शास्त्रोंमें बहुत कम नहीं। फिर जिस उत्सव तथा धूमधामसे क्वारों बालिकाका विवाह होता है, उस तरह विषयाओंका विवाह सर्वसम्मत नहीं तथा धूमधामके साथ कभी हुआ है, या नहीं, यह विषय विचारणीय है। हिन्दू-समाजमें—

और तो क्या—हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के पढ़ने से मालूम होता है, कि कुछ खिपां पतिके मर जाने पर सोते समय देवरका समादर करती थीं अथवा देवरके साथ सोती थीं। जैसा कि ऋग्वेदके १० मण्डल ४० सूत्र २ में लिखा है। इसका प्रमाण हम पहले दे चुके हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें कुछ विधवायै कामसे पौड़ित हो कर या प्रेममें फस कर देवरके साथ रतिसम्भोग करती थीं। इसका कुछ पता नहीं चलता कि यह प्रथा उद्य हिन्दुओं में थी या निम्नमें अथवा यह समाजमें ब्राह्मणकारसे प्रचलित थी या नहीं। यह भी हो सकता है, कि सन्तानरहित विधवायै ऋग्वेदकालमें पतिके रूपमें देवरसे सम्भोग किया करती थीं। इसके बाद कामपौड़ित तथा प्रेममें पड़ कर देवरको पतिके स्थान दे देती थीं। फिर यह भी हो सकता है, कि सूत्रकारके चासस्थानके चारों ओर यह प्रथा इतर श्रेणियोंमें प्रचलित थी या उस समय उद्य दृजेके हिन्दुओंमें भी यह प्रचलित ना असम्भव नहीं है। जंगन्के अनेक स्थलोंमें यह प्रथा आज भी देखी जाती है। भारतमें भी नोनश्रेणिके लोगोंमें भीजाईको पत्नी रूपसे रखनेकी प्रथा चली आती है। किन्तु हमारे मनुनहारोंइस प्रथाके कष्ट विरोधी थे। मनुका कहना है—

“ज्येष्ठो यथीयथो भर्तृणां यरीयान् वामजस्त्रियम् ।

पतिके भवतो गत्वप्पतिपुत्रावपनापरि ॥” “५८”

(मनु ६ अध्याय)

विधवा-रमणीका देवरके साथ संसर्ग शायद दोषा-वद समझा नहीं जाता था ।

किन्तु इससे कुछ भी पता नहीं चलता, कि देवरके साथ विधवाका विवाह होता था या नहीं, विवाहके जितने मन्त हैं, वे सब उन्वचरित होते थे या नहीं ।

१० वें मण्डलके ६८वें सूक्तका एक ऋक् उद्धृत करते हैं—

“इमा नारीरविधाः सुपत्नी अज्जनेन सर्षिषा संविशन्तु ।

अनध्वोऽनमावा मुख्या भारोह्वज्जन्वो योनिममे ॥”

(१०।६८।७)

सायणने इसका जो भाष्य किया है, वह इस तरह है—

‘अविधवाः । धवः पतिः । अविगतपतिकाः जीवत्सुभर्तृका इत्यर्थः । सुपत्नी शोभनातिका इमा नारी नार्थे अज्जनेन सर्वथोऽज्जनसाधनेन सर्षिषा घृताक-नेत्राः सत्यः संविशन्तु । तथानध्वोऽध्वर्जिता अथ दत्वोऽनमीयाः । इत्यर्थः अमीध रोगः । नहर्जिताः मानस-दुःखवर्जिता सुरताः शोभनचनसहिता जनयः जन-यत्पत्यमिति जनयो भार्याः । ता अपरे सर्वथां प्रथमतः पय योनिं गृहमारोहन्तु । आगच्छन्तु ॥’

हम इसका अर्थ ऐसा समझते हैं, कि पहले समयमें मृत प्यक्तिके लोके साथ साथ अविधवा (रूचवा) शोभनपतिका, शोभनचनररनयुक्ता खिपां भी श्रमशानमें जाती थीं। वे विधवाओंके दुःखमें सहायुभूति दिना कर रोती और मानसिक दुःख प्रकाश करती थीं। उनके प्रति यह अभिप्राय प्रकट किया जाता है, कि वे नेत्रोंमें सम्यक् रूपसे अज्जन लगा घृताक नेत्रसे शोकाश्रु और चित्तहेश परित्याग कर सबसे पहले घरमें प्रवेश करे ।

इसके बादके ऋक्में ही मृत प्यक्तिके पत्नीको पतिके श्रमशानगध्यासे घर लीटानेके लिये देवर आदि उपदेश कर रहे हैं। यथा सायणः—

‘देवरादिकः प्रेतपत्नोमुशोर्ष्व नारीत्यनया भर्तृ-सकाशादुत्थापयेत् । सूत्रितं च—तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्वेयासी जरहासो योशोर्ष्व नार्थमि जीव लोकम्’ (आश्व ० ५६० ४।२।१८)

देवर आदि स्वजन क्या कह कर प्रेत पत्नीको उठा कर स्वामीके समीप घर लीटाने थे, सूत्रकार वही कह रहे हैं, यथा—

“उदीर्घां नार्धमि जीवकोकं गतासुमेतनु शेष एहि ।

हस्त ग्रामस्य दिधिषासु वेद पत्युर्नानित्यमणि सं वभूय ॥”

(१० म० १८ सू० ८ ऋक्)

दे मृतकी पतिन । तुम इन स्थानसे उठ कर पुत्र-पीतादिके पासस्थान गृहसंसारको ओर चलो । तुम जिनके साथ साने जा रही हो, वह तुम्हारा पति मर चुका है । जिसने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था, जिसने तुम्हारे गर्भसे पुत्र उत्पन्न किया था, उसके साथ तुम्हारा जो कर्त्तव्य था, उसका अन्त हो गया । उसका अनुसरण करनेको अब जरूरत नहीं । अब चलो ।

इन दोनों ऋकोंमें विधवा विवाह तथा विधवा-प्रदण-

के संबंधमें कुछ भी आमात्र नहीं मिलता। फिर उधे ऋक्सु से यह मालूम होता है, कि मृग व्यक्ति की विधवा पत्निका के साथ बहुतेरी संधवाये भी श्रमशान-भूमिमें जाती थीं। उसके साथ धे रोती थीं। उपस्थित व्यक्ति उन सर्वोको शोकाश्रु बर्षामें तथा अन्न और पुत्राक्त नेत्र हो कर सत्रसे पहाड़ घाटमें प्रवेश करनेको कहते थे। नेत्रमें अन्न तथा पुत्राक्त नेत्र होनेका तात्पर्य अच्छी तरहसे समझना नहीं आता। मालूम होता है, कि संधवाओं की प्रति उपदेश दिया जाता था।

आठवीं ऋक्सुका पद्यनेसे मालूम होता है, कि पुत्रवती विधवाओंके सहमरणको प्रथा न थी। जोयलोकमें या संस्कारमें रह करे सन्तान आदिका पालनपोषण करना ही उनका कर्त्तव्य और धर्म माना जाता था।

फलतः ऋग्वेदसंहितामें विधवाविवाहका कोई उदाहरण नहीं मिलता। दूसरी ओर श्रुतिमें नारियोंके लिये वदु, भर्त्ताका प्रतिषेध दिखाई देता है। विवाहके वैदिक मन्त्रोंमें विधवाविवाहका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

दूसरे मनुने लिखा है—

“नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्यते कश्चित्।

न विवाहविधायकं विधवावेदने पुनः ॥” (१, ६५)

इसकी टीकामें कुल्लुकने कहा है, कि “न विवाह विधायकशास्त्रे अभ्येन पुत्रपेणसह पुनर्निवाह उक्तः।” अर्थात् विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाहका दूसरे पुरुषके साथ फिरसे विवाह करनेका नियम नहीं। इससे स्पष्टरूपसे मालूम होता है, कि आगे चल कर भ्रातृनियोगको कोई विधवाविवाह न समझ ले, इस शंकाको निवारण करनेके लिये मनुने साफ कह दिया है, कि विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाहका कुछ भी उल्लेख नहीं।

मनुसंहितामें विधवाविवाहका विधान न रहने पर अवस्थाविशेषमें विधवाके उपपत्तिका विधान दिखाई देता है। (मनु १, ७५-१७६)

स्त्रियां पुरुषों द्वारा पारित्यक्त हो अथवा विधवा हो कर पर पुरुषोंके साथ पुत्रोत्पादन करे, तो उस पुत्रका नाम पौनर्भव होगा। यह विधवा यदि

अश्वतथोनि हो या अपने कीमार पत्तिका त्याग कर दूसरे पुरुषके साथ रह चुकी हो और फिर अपने पत्तिका साथ पुनः मिलना चाहे, तो पुनः संस्कार कर उसे ले लेना चाहिये।

अब बात यह रह गई, कि ‘पुनःसंस्कार’ क्या है। कुल्लुकका कहना है—‘पुनर्विवाहाद्यं संस्कारमर्हति।’ इसका अर्थ यह है, कि “विवाह आशय जिसका ऐसा संस्कार है” यही विवाहाद्य संस्कार है।

मनु करते हैं, कि पुनः संस्कार करना कर्त्तव्य है। मनु पुनर्विवाहकी बात नहीं कहते। विवाह विधवाओंके विवाहमें जो सब अनुष्ठान विहित है, यदि वे ही सब अनुष्ठान अश्वतथोनि विधवा अथवा आर्य गर्ह्ये स्त्रियोंके पतिग्रहण करनेमें अनुष्ठान होते तो मनु अवश्य ही विधवाविवाह शास्त्रसिद्ध कहते। किन्तु मनु महा राजने ऐसा शास्त्र प्रमाण या आचरण न देख कर ही कहा कि विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाका पुनर्विवाह नहीं लिखा है। कुल्लुकने मनुके उक्त श्लोककी टीकामें भी स्पष्टरूपसे यही कहा है। यहां कुल्लुकने जो “विवाहाद्य संस्कार” कहा है, यह यदि विवाहका ही अर्थ मान लिया जाय, तो कुल्लुकका एक उक्तिसे दूसरी उक्ति टकरा जाती है और दोनों उक्तियां अनवस्थादोषदुष्ट हो जाती हैं। अतः विवाहाद्य संस्कार कहनेसे विवाह समझमें नहीं आता, यही कुल्लुकका यथार्थ अभिप्राय है। अतएव कुल्लुकको व्याख्यानमें भी विधवाविवाहका समर्थक प्रमाण नहीं मिलता।

यह संस्कार किस तरहका है और किस तरह विधवा या दूसरेके घर गई हुई स्त्री पतनोवत् हो पौनर्भव भर्त्ताकी श्रुतिपणे घनती थी, इसका उल्लेख कहीं कुछ नहीं मिलता। यह संस्कार चाहे जैसा ही क्यों न हो, किन्तु मनुका यह वचन अवश्य ही अकाट्य प्रमाणस्वरूप है, कि विधवायें पुनः संधवाओंकी तरह श्रद्धार और संधवाकी तरह आहार-विहार करने लगती थीं। किन्तु यह बात अवश्य ही मानने लायक है, कि संधवाओंकी तरह उनका आदर मान नहीं होता था। इनके पति समाजमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते थे। (मनु ३ १६६-१६७) मेड़ा और मैं सके व्यापारों, परपूजापति, शववाहक

प्राह्मण, विगर्हित आचारवाला, अपाङ्क्ये और द्विजा धम—इन सबके साथ शुद्ध ब्राह्मण एक पंक्तिमें भोजन न करे। देवकार्यमें, यज्ञ या पितृकार्यमें यदि ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करना हो तो इन सबोंको आमन्त्रित नहीं करना चाहिये।

परपूर्वापति शब्दका अर्थ—पीनर्भवर्त्ता है। इसको पूरी व्याख्या मनुवचनोंमें ऊपर दी गई है। मेघातिथिने भी लिखा है—'परः पूर्वं यस्याः तस्याः पतिर्मत्ता या अन्यस्मै दत्ता, अन्येन वा ऊढ्वा, तां पुनर्यः संस्करोति पुनर्भवति भर्त्ता पीनर्भवो नरो भर्त्तासाविति शास्त्रेण।'

कुल्लूहने भी कहा है—'परपूर्वां पुनर्भूस्तस्याः पतिः।' विधवाको संस्कार कर गृहिणी बना लेने पर भी भर्त्ताको अपाङ्क्ये या निन्दनीय हो कर समाजमें रहना पड़ता है। यही मनुका अभिप्राय है। अपांक्त्यके अर्थमें मेघातिथिने कहा है—

"अपांक्त्याः पंक्तं नाहन्ति। भवार्थे ढक् कर्त्तव्यः। अनहृत्त्वमेवं पंक्तो भवनं प्रतीयते। अन्यैः ब्राह्मणैः सह भोजनं नाहन्ति। अतएव पंक्तिद्वयका उच्यन्ते। तैः सहोपविष्टा अन्येऽपि दूषिता भवन्ति।"

अर्थात् अपांक्त्ये ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणोंके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन कर नहीं सके। ये पंक्तिद्वयक है। इनके साथ बैठ कर भोजन करनेसे दूसरे भी निन्दनीय हो जाते हैं।

इससे साफ मालूम होता है, कि विधवाको ले जो मनुय्य शूद्र-संसारका काम चलाते थे, समाजमें वे गनाहूत और निन्दनीय होते थे। उनके साथ कोई बैठ कर भोजन नहीं करता था। असल बात यह है, कि वे जातिच्युत हो जाते थे। कलतः मनुमहाराजने स्पष्ट ही कहा है—

"न द्वितीयञ्च शास्त्रीनां क्वचिद्भर्त्तावदिरथेते।"

(मनु ५।१६२)

किन्तु विधवाको कामपत्नी या रखैलिनकी तरह रखना तथा उसके गर्भसे सन्तान उत्पन्न करना इस समय जैसा दिखाई देता है, वैसा ही पहले भी दिखाई देता था। नागराज पेशावतका पुत्रके सुवर्ण द्वारा मारे जाने पर उसकी पुत्रवधू या पत्तोह अत्यन्त शोकाकुल हो उठी। नागराज पेशावतने उस विधवा कामार्त्ता स्त्रिया-

को अर्जुनके हाथ समर्पण किया। अर्जुनने इसको भार्या बनाया और इसके गर्भसे अर्जुन द्वारा इरावान् नामक एक लड़का पैदा हुआ।

पेना व्यवहार 'सर्व देजो'में सब समय ही प्रचलित दिखाई देता है। यह केवल धर्मिचार है। इससे विधवाविवाहका समर्पण नहीं होता और इससे यह भी प्रमाणित नहीं होता था, कि महाभारतके समय विधवा-विवाह प्रचलित था।

मनु भगवान्ने विधवाको संस्कार कर उसे रत्न गृह-संसारका कार्य चलायिका एक विधान बना दिया है। फिर भी ऐसे विवाह करनेवाले निन्दित गिने जाते थे और ब्राह्मण उनके साथ बैठ कर खा पी नहीं सकते थे। किन्तु उनके द्वारा उम ह्याके गर्भसे उत्पन्न सन्तान आज कलके राजद्रो किये हुए विवाह या निकाहकी तरह अपने पिताके पिण्डदान तथा पैतृकसम्पत्तिके अधिकारी हो सकते थे। इसके कुछ दिनोंके बाद व्यवस्थापक धार्मिकोंने इसका एकदम हो गला घोट दिया है।

(वृहस्परीय)

इसी तरहके और भी वचनप्रमाणोंसे कलमें पुनर्भू-संस्कारकी मनाही कर दी गई है। पुनर्भूके गर्भसे उत्पन्न सन्तानोंको इस समय पिण्डदानका भी अधिकार नहीं। इससे ये सम्पत्तिके भी मालिक नहीं हो सकते।

और एक बात है, कि कुमारी कन्याका विवाह हो यथार्थ विवाह कहा जात है। पारस्कर, याज्ञवल्क्य, व्यास, गौतम, वशिष्ठ आदि शास्त्रकारोंने एक स्वरसे उसी विधानकी घोषणा की है।

इन सब प्रमाणों द्वारा दिखाई देता है, कि विधवा-विवाहके लिये शास्त्रकारोंने कोई भी विधान नहीं बना रखा है। मनु भगवान्ने पुनर्भूको संस्कार कर उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको जो कुछ अधिकार दिया था, उसको भी पिछले शास्त्रकारोंने छान लिया है।

कुछ लोग पराशरके एक श्लोकका उल्लेख कर उसे विधवा-विवाहका समर्थक बतलाते हैं। (पराशर)

पराशरका विधान हो कलिकालके लिये विहित माना जाता है। इस विधानमें विधवा-विवाहके समर्थक

कोई प्रमाण है या नहीं, यही ध्यान विचारणीय है। हम पराशरके तीनों श्लोकों में मनुकी पुनरुक्ति हो देखते हैं। उक्त तीनों श्लोकों के अर्थ इस तरह हैं—
स्वामीके कर्हो चले जाने, मर जाने, क्लेश होने, संसार त्याग करने, अथवा पतित हो जाने पर—स्त्रियोंको दूसरा पति करना धर्मसंगत है। स्वामीकी मृत्युके बाद जो स्त्री ब्रह्मचर्याका अवलम्बन करती है, वह देवामृतमें ब्रह्मचारियोंकी तरह स्वर्ग पाती है। जो स्त्री पतिके साथ सती हो जाती है, वह मनुष्य शरीरके साढ़े तीन करोड़ रोमोंके संख्यानुसार उतने वर्ष तक स्वर्ग-सुख पाती है।

पराशरके तीनों वचनोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्हींने नारोंके आपत्कालका ही धर्म लिखा है। उन्हींने रूपद हो कहा है—“पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरप्यो विधीयते।”

शास्त्रविहित पतिका अभाव ही हिन्दू-नारोंके लिये आपत्स्वरूप है। अतएव पाणिग्रहण करनेवाले पतिके अभावमें किसी भरणपोषण करनेवाले पालककी जरूरत होती है। इस पति शब्दका अर्थ पाणिग्रहणकारी पति नहीं; घर इसका अर्थ अन्य पति अर्थात् पालक है। महाभारतमें लिखा है—

“पासनाच्चः पतिः स्मृतः।”

अतएव पालक या रक्षक ही अन्य पतिके इस पदका वाच्य हो सकता है।

महामहोपाध्याय मेघानिधिनै मनुसंहिताके नवम अध्यायके ७६वें श्लोकको व्याख्यामें पराशरके उक्त श्लोकका उद्धृत किया है। इन्होंने लिखा है :—

“पतिशब्दा हि पालनक्रियानिमित्तको ग्रामपतिः सेनायाः पतिरिति। अतश्चास्मादवोचनैवा भक्तुं परतन्त्रास्यात्। अपि तु वातमनो जोषनार्थं सैरन्ध्रीकरणान्दि-कर्म रक्षणमाश्रयेत्।”

कुछ ले.नोंका राय है, कि वाग्दत्ता कन्याके सम्बन्धमें ही पराशरकथित व्यवस्था ठीक है।

कन्याका व्यभिचार।

व्यभिचारको बन्द करनेके लिये शास्त्रकारोंने उप-देग वाक्योंकी भरमार कर दी है। फिर भी, समाजमें

कई तरहसे व्यभिचार होता ही आता है। भारतवर्षके हिन्दू समाजने जब अतीव विग्राहकर धारण किया था, तब उस हिन्दू समाजके जो विविध आचरण अनुष्ठान होते थे, संहिनाओंके पढ़नेसे उनका कुछ आभास मिलता है। हम इससे पहले अमभ्य समाजके वैवाहिक इतिहासकी आलोचनामें दिखला चुके हैं, कि विवाहके पहले भी बहुतेरे देशों में कन्या इच्छानुसार व्यभिचार करती है। किन्तु उनका यह व्यभिचार उनके समाजमें निन्दनीय नहीं समझा जाता। हिन्दू-समाजमें भी किसी समय अवस्थाविशेषमें व्यभिचार दिखाई दिया था और वह घटना क्षमाकी दृष्टिसे परिगृहीत हुई थी। कानोन पुत्रत्व स्वीकार ही उसका अन्त्य-प्रमाण है। मनु कहते हैं—

“पितृवैरमनि कन्य तु यं पुत्रं जनयेद्रथः।

तं कानोनं वदेन्नाम्ना वेदुः। कन्याः सुदुर्मवम्॥”

(मनु ६। १७२)

अर्थात् पितृके घरमें विवाहके पहले कन्या गुप्त-भावसे जो सन्तान पैदा करती है, उस कन्याके विवाह हो जाने पर वह पुत्र उस पतिका ‘कानोन’ पुत्र कहलाता है।

केवल घटनाको देव कर ही किसी कानूनकी सृष्टि नहीं होती। कभी कभी समाजमें कानोन पुत्र देखे जाते थे। महामांरतमें सब विषयोंका उदाहरण मिल जाता है। कर्ण महाराज इसी तरह पाण्डु राजाके, कानोन पुत्र थे। इस समय ऐसे कानोन पुत्रोंका हिन्दू-समाजमें लेाप सा हो गया है। इस तरहका व्यभिचार भी इस समय देशमें दिखाई नहीं देता।

फिर ऐसी भी घटना देखो गई है, कि दूसरेसे पितृ-के घरमें कन्या गर्भिणी होती थी। गर्भावस्थामें ही कन्याका विवाह होना था। विवाह होनेके बाद सन्तान पैदा होती थी। अब इस सन्तान पर कन्याका अधिकार होना चाहिये, इसके पालन पोषणका भार किस पर अर्पित होगा, शास्त्रकारोंने इसी प्रश्नको मीमांसाकी है। मनु महाराजने इसको मीमांसा कर लिखा है—

कन्याका गर्भ जाना हुआ हो या अनजान हो, गर्भिणी कन्याका विवाह करनेवाला ही गर्भज लड़केका पालन-पोषण करेगा और उसीका इस पर अधिकार

रहेगा । ऐसा लड़का "सहोद" नामसे प्रसिद्ध होगा ।

वाकिका विवाह ।

कानोन और सहोद पुत्र विवाहके पूर्वके धर्मिचार-
के साक्षीस्वरूप समाजमें विद्यमान रहते थे । इस
अवस्थामें भी धर्मिचारिणियोंका विवाह होता था ।
इससे यह भी मालूम होता है, कि कन्यायें बहुत दिनों
तक अविवाहित अवस्थामें पिताके घर रहती थीं अर्थात्
अधिक उम्रमें विवाह होता था तथा कुछ अंशमें
स्वाधीनताका भी ये भोग किया करती थीं । मालूम
होता है, कि कानोन और सहोद पुत्रोत्पादनकी वृद्धि देख
विद्युत् शस्त्रकारोंने वाद्यविवाहका आदेश प्रचार
किया था । (अङ्गिरा)

जो कन्या अविवाहित रूपसे पिताके घरमें रहती है,
उसके पिताको ब्रह्महत्याका पाप लगता है । ऐसे स्थल-
में कन्याको स्वयं घर छोड़ कर विवाह कर लेनी चाहिये
अङ्गिराने और भी कहा है—

"माप्येव हृदशे वषे यदा कन्या न दीयते ।

तदा तस्यास्तु कन्यायाः पिता पित्रिवि क्षोयितम् ॥"

राजमार्शलण्डमें भी इसी तरहका विधान निर्दिष्ट
हुआ है । अत्रि और कश्यपने तो राजसूया कन्याको
विवाह करने पर भी पिताको अपांक्त्ये वन कर समाप्तमें
अनाहूत रहनेका विधान बनाया है ।

कन्याके विवाहकालके सम्बन्धमें जो निर्णय अङ्गिरा-
ने किया था, महाभारतमें उसका व्यतिक्रम देखा जाता
है । महाभारतमें लिखा है—

"विवाहानां षोडशब्दां भाष्यां विन्तेतननिकाम् ।

मयः प्रवृत्ते रजसि कर्त्तुं दद्यात् पिता सङ्घत् ॥"

अर्थात् तोस वर्षका युवक षोडशवर्षोंका अरजसूया
कन्याका पाणिप्रक्षण करे । इससे मालूम होता है, कि
महाभारतके समय कन्यायें सोलह वर्षसे पहले साधार-
णतः राजसूया नहीं होती थीं । किन्तु अङ्गिरा और यम-
के बचनोंको देख कर मालूम होता है, कि किसी प्रान्त-
विशेष या बह्मालकी बालिकाओंकी अवस्थाकी पर्यालो-
चना कर उन्होंने ऐसी व्यवस्था दी थी । पद्मप्रदेशमें
तो ११ वर्ष तककी कन्याको ऋतुमती होते देखा जा रहा
है ।

विधवा-विवाह मन्वादि किसी क्रमसे भी अनुमोदित
नहीं था । परागमने भी तो "नष्टे मृते प्रमज्जिते" बचनोंकी
सृष्टि नहीं की है, यह उक्त श्लोकके पद शास्त्रास्तरके
साथ एक वाक्यरूपसे अर्थात् समझनेकी चेष्टा करने पर
सहज ही समझमें आ जाता है ।

उद्धृत १५७ श्लोककी टीकामें भी मेघातिथिने लिखा
है,—

"यत् तु नष्टे मृते प्रमज्जिते ह्यिव च पतिते पतौ । पञ्च
स्वापत्सु नारीणां पतिरप्ये विधोयते । इति—ततः पाल-
नात् पतिमभ्यमाधयेत् सैरन्ध्रस्मादिनत्पत्न्यर्थं
नवमे च निपुणं निर्णोयते प्रोवितमत्तृकायाश्च म
विधिः ॥"

इसका भावार्थ यही है, कि 'नष्टे मृते' श्लोकमें जो
पति शब्दका प्रयोग है, उससे भर्तारक मृत्योपरान्त पाल
नार्थ अर्थ पति हो समझा जायेगा ।

जहां पाणिप्राप्ति पतिकी मृत्युके बाद नारियोंके जीवन-
निर्वाहका कुछ उपाय नहीं रह जाता, वहां ही उनका
आपत्काल उपस्थित हो जाता है । आपत्काल उपस्थित
होने पर उस समय आपद्दृष्टि अचलमन कर जोयिका
चलानी पड़ती है । ऐसी ही अवस्थामें दुःखिनी स्त्रियों
का अन्य पालन-पोषण करनेवालेकी शरण लेनी पड़ती
है । जोयिकामातृके शिष्य ही जो विधवायें हमारे अनि-
भावकके शरणागमन होगी, ऐसी बात नहीं है । विध-
वाओंके अरक्षिता होने पर उनके लिये धर्मरक्षा करना
भी कठिन है । इसीलिये मनुने कहा है—

"पिता रक्षति बीमारे भर्ता रक्षति योवने ।

रक्षन्ति स्थविरं पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥"

दौवज ।

महाभारतके समय "पुत्रार्थं" कियते भादर्या" इसी
नीतिका यथेष्ट प्रादुर्भाव था ऐसा मालूम होता है ।
विवाह करनेके कई उद्देश्य हैं, उनमें पुत्रोत्पत्तिका उद्देश्य
प्रधानतम कहा जाता था । पतिके किसी प्रकारकी अस-
मर्थताके कारण स्त्रीके सन्तानोत्पादनमें कोई बाधा
उपस्थित होने या सन्तानहीन पतिके मर जाने पर नियोग
द्वारा देवर या सपिण्ड व्यक्तिके सन्तानोत्पादनका
विधान था । ऐसे पुत्रकी "क्षेत्रज" पुत्र नाम रखा
जाता था ।

महाभारतमें क्षेत्रज पुत्रोंके बहुतेरे उदाहरण दिये हैं। मदाभारतके प्रधान-प्रधान कई नायक क्षेत्रज पुत्र हो कर भी जगत्में बड़े ही आदृत हुए हैं। समय पा कर यह प्रथा हिन्दू समाजसे विदा हो गई। बादके स्मृतिकारारोंने क्षेत्रज पुत्रोंके अङ्गप्रभावको खर्च करनेकी बड़ों चेष्टा की है। फलतः इस समय अब क्षेत्रज पुत्रोत्पादनकी प्रथा दिखाई नहीं देती।

पुनर्भू ।

पौनर्भय पुत्रका विषय विधवाके प्रसङ्गमें आलोचित हुआ है सही; किन्तु यहां उसके सम्बन्धमें कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। हम पुनर्भूको व्यभिचारिणो ही समझेंगे और उन्हें व्यभिचारिणियोंकी श्रेणोमें गिनेंगे। यथोक्ति मनुने कहा है—

“या पत्या वा परित्यक्ता विधवायास्त्वदेच्छया ।

उत्पादयेत् पुनर्भूत्या स पौनर्भय उच्यते ॥”

इस समय सामाजिक रीतिके अनुसार पुनर्भू स्त्रीके प्रदण करनेकी प्रथा नहीं रह गई। यदि कोई पुरुष स्वामोत्यका या विधवाके साथ सहवास करे, तो वह समाजमें निन्दनीय गिना जाता है या व्यभिचारी कहा जाता है।

“आचो न हिन्दू समाजमें इस तरह कई कार्य व्यभिचार जान कर भी समाजमें इन सब प्रथाओंको दूर करनेका विशिष्ट उपाय प्रकटित नहीं हुआ था। जो सब दोष मान्यचरितके स्वभावसिद्ध हैं, समाजसे बिलकुल जड़ उखाड़ फेंकनेमें कठिनता अनुभव कर शास्त्रकारोंने इन सब व्यभिचारोंको उच्छेद्यकृता या विश्देकृत्यामें परिणत न होने दे कर कुछ अंशमें नियमित करनेकी चेष्टा की थी। इसीलिये मनुने अज्ञतयोनि विधवा परित्यक्ता या पतित्यागिनो बर्गव्यभिचारिणियोंको दूसरे पुरुषके प्रदण करनेके समय संस्कारका विधान किया। उद्देश्य यह था, कि इस तरहके संस्कारके फलसे म्रूणदत्यादि निवारित होंगी तथा व्यभिचारके बरोंके प्रसारमें बाधा पड़ेगी। मनु भगवान्ने केवल अज्ञतयोनि कन्याओंके सम्बन्धमें इस तरहकी विधि कही थी। जैसे—

“वा चेदज्ञतयोनिः स्याद्गृहप्रत्यागतापि वा ।

गो-विं। मां वा पुनः ३५ (प्रदंति ॥) (६।१७१)

किन्तु याज्ञवल्क्य ऋषिने और अबे बड़ कर यह व्यवस्था दी—

“अक्षता वा क्षता वापि पुनर्भूः संस्कृता पुनः ॥”

इससे पुनर्भू नारियोंका प्रसार और भी बढ़ गया। अक्षता हो क्षता ही हो—फिरसे संस्कार होने पर वह पुनर्भू कही जायेगी। इस संस्कारके फलसे कामनिधोके व्यभिचारमें बहुत रुकावट हुई थी; म्रूणदत्या भी कम हो गई थी। किन्तु पौनर्भय भर्तार और पुनर्भू नारियोंके समाजमें त्रिन्दनीय होनेसे लोग इस पथको अकष्टक या प्रसरतर पथ किसी समयमें नहीं समझते थे। इसके बाद शास्त्रकारोंने समाजमें पुनर्भू या पौनर्भय पतियोंकी संख्या क्रमशः क्षोण देख कर इस विधिको समूल नष्ट कर दिया। सम्भवतः उनके चित्तमें ऐसी धारणा उत्पन्न होनी असम्भव नहीं, कि इस विधानसे विधवा रमणियोंके ब्रह्मवर्षके पुष्पतम पथकी बगलमें व्यभिचारका प्रलोभन रखा गया है। अतएव उन्होंने इसका जड़ उखाड़ना ही कर्त्तव्य समझ लिया था। चाहे जिस तरह हो। इस समय समाजमें पुनर्भू प्रथाका अस्तित्व नहीं दिखाई देता।

असवर्ण विवाहनिर्देश ।

इसका भी प्रमाण मिलता है, कि ब्राह्मण शूद्रा स्त्रियोंसे भी कामतः सन्तान उत्पन्न करने थे और वह सन्तान पारस कहे जाते थे। ब्राह्मणोंका यह दुर्लभ गुणरूपसे चलता था, कि भी उनके द्वारा उत्पन्न पारश्व सन्तान इस समय उस पापका साक्षी बन समाजके सामने नहीं दिखे देते। मन्वादि ऋषियोंके समयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी कन्याओंसे भी विवाह कर लेते थे। किन्तु इस समय वह भी विधिविधान रद्द कर दिया गया है। आदिपुत्राणां और वृद्धनादीप पुराणकी दुहाई दे कर आज कालके स्मार्त लोकोने अन्याय्य युगोंमें जो सब प्रथायें प्रचलित थीं, उन सबमें कई प्रथायें तोड़ दी हैं, उनमें असवर्ण कन्या विवाह भी एक है। फलतः बाढ़के शास्त्रकार क्रमशः एक पत्नी व्रत (Monogamy)के पक्षपाती बन गये थे तथा काल व्यभिचारका बन्द करनेमें बद्धपरिकर हुए थे। यह इनके प्यस्थित विवाह-विधानकी आलोचना करनेसे स्पष्ट

प्रमाणित होता है। मनुष्योंके हृदयसे कामभाव हटा कर धर्माधीन नर नारियोंको विवाह-वन्धनको मजबूत करनेके लिये परम कारुणिक समाज-हितैषी ऋषि जो सब नियम प्रवाह और प्रतिष्ठित कर गये हैं, उन सबको एकान्त चिन्तसे आलोचना करने पर यथाथमे विभिन्न होना पड़ना है। विवाहके मन्त्रोंको पढ़नेसे यह सहज ही मालूम होता है, कि विवाह बहुत पवित्र सामाजिक बन्धन है और यह प्रथा गार्हस्थ्यधर्म और पारमार्थिक धर्मका परम सहायक है। इसके बाद इस विषयकी यथास्थान आलोचना की जायगी।

द्विधिपति।

व्यभिचारका और एक कर्त्ता—द्विधिपूति है। नियोग विधिसे वाध्य हो कर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये देवरका नियोग करना शास्त्रसम्मत विधि है। इस नियोगका एकमात्र उद्देश्य पुत्रोत्पादन है। किन्तु नियोग काम या प्रेम विवाजित है। अतएव यह व्यभिचार नहीं कहा जाता। द्विधिपूति व्यभिचारी है। मनु कहते हैं—

“अनुपूर्वतस्य भार्याया योजुज्येत कामताः।

वर्षथापि नियुक्तायां यथां यो द्विधिपूतिः ॥”

अर्थात् मनु ज्येष्ठ भ्राताकी नियोगधर्मिणी भार्याके साथ जो वाकि कामके वशाभूत हो कर रमण करता है, वह उसका नाम द्विधिपूति होता है। मनुकी रायमें इस श्रेणीके ब्राह्मण हव्य कव्य आदि कर्त्तव्योंमें आमन्त्रणके अयोग्य हैं। परपूर्वापतिको भी कुछ स्मृतिकारोंने द्विधिपूति ही कहा है।

कुण्ड और गोलक पुत्र।

कुण्ड और गोलकपुत्र व्यभिचारके फल है। मनु कहते हैं—

“परदारैः जायते द्वी पुत्रो कृपणगोलकी।

पत्नी जीवति कृपणः स्वान्मुते भर्तारि गोलकः ॥”

अर्थात् पारस्य स्त्रीसे दो तरहके पुत्र उत्पन्न होते हैं। सपत्नी स्त्रीसे जार द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होता है, वह कुण्ड कहलाता और विधवाके गर्भसे उत्पन्न सन्तान गोलक कहा जाता है। इस तरहके दोनों सन्तान अपाङ्क्य हैं। इन सबका श्राद्धादिमें कुछ अधिकार

नहीं, फलतः पैतृकसम्पत्तिके भी ये अधिकारी नहीं। विधवा यदि पुनः संसृता हो कर सन्तान उत्पन्न करे तो, वह सन्तान पौनर्भव कहा जाता है। पौनर्भव सन्तान यदि अपाङ्क्य है, तो भी यह संतानके अधिकारसे वञ्चित नहीं है।

वृषद्वीपति।

मनुसंहिताके समय ब्राह्मण अन्यान्य तीन वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकते थे। किन्तु शास्त्रही यह बाधा थी, कि ब्राह्मण पहले सवर्णा कन्यासे विवाह करे। गार्हस्थ्य धर्मके लिये सवर्णाका पाणिप्रदान प्रथमतः कर्त्तव्य कहा जाता था; किन्तु कामुक व्यक्ति हर समय सब समाजोंमें कानूनही आह्वान मान कर नहीं चलते, वे स्वेच्छाचारके वशवर्ती हो कर काम करते हैं। मनुसंहिताके समय जो व्यक्ति विवाहके इस सनातन नियमको उपेक्षा कर पहले ही एक शूद्रासे विवाह कर बैठते थे, वे वृषद्वीपनि कहलाते थे। ब्राह्मण-समाज उनके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोगन नहीं करता था। मनुसंहिताके तोमरे अध्यायके १४वें श्लोकसे १६ श्लोक तक इस सम्बन्धमें निषेध वाक्योंकी पूर्ण-रूपसे देलना चाहिये।

परिवेत्ता।

हिन्दू समाजमें अविवाहित और विवाहके उपयुक्त ज्येष्ठ भाईके मौजूद रहते छोटे भाईका विवाह निषिद्ध है। जो इस निषेध वाक्यको उपेक्षा कर विवाह कर लेते थे, वह परिवेत्ता कहलाते थे। परिवेत्ता अपाङ्क्य होते थे और समाजमें निन्दित समझे जाते थे।

कन्यापण।

हिन्दू-समाजमें और एक बहुत बड़े दोषको दूर करनेके लिये शास्त्रकारोंने बड़ी चेष्टा की थी। इस दोषका नाम कन्यापण है। हम बहुत तरहसे इस प्रथाके अस्तित्व और इसका सूत्रच्छेद करनेकी चेष्टा देखते हैं। मनुसंहितामें जिन अष्टादश तरहके विवाहोंका उल्लेख है, उनमें आसुरिक विवाहमें कन्या शूद्रको वात सबसे पहले ही दिखाई देता है, जैसे—

“शक्तिभ्यो द्रविण्यं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तिः।

कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्मो च उच्यते ॥”

अर्थात् कन्याके पिता आदिको या कन्याको शास्त्र नियमसे अधिक धन दे कर विवाह करना ही आसुर-विवाह है।

इस तरह धनदान करनेकी प्रवृत्ति वरपक्षसे होती है। वर या वरपक्ष कन्याके या कन्याके पिता आदिको धन दे कर सुन्दरा कन्या या अपने इच्छानुसार कन्या विवाह करना आसुरविवाह का प्रमाण है। ऐसा विवाह-शास्त्रकारों के विधानमें उचित नहीं बतलाया गया था। इसीसे इस विवाहका नाम आसुर रखा था। और भी एक तरहके कन्यापणकी प्रथा दिखाई देती है। इस तरहके कन्यापणमें पिता हो इच्छापूर्वक कन्या बेच कर धन कमाता है। शास्त्रकारगण इसके घोर विरोधी थे। उन्होंने इसके रोकनेके लिये इसका बड़ा निन्दन ही है।

विक्रयदोषक कन्याके पिता कभी विक्रय कर दाम लेनेसे यह अत्यविक्रयके पातकी होता है। मनुसंहिताके नवें अध्यायमें लिखा है:—

“नानुशुभ्रम जायेतत् पूर्वव्यपि हि जन्मसु।

शुल्कवशेन मूष्येन छिन्नं दुहितविक्रयम्॥”

(मनु ६।१००)

इस श्लोकसे प्रमाणित होता है, कि प्राचीन हिन्दू-समाजमें भी कन्याका शुल्क लेना अत्यन्त निन्दनीय था। असम्भ्य समाजमें कन्या विक्रयकी प्रथा प्रचलित थी। सभ्यताके विहाराके साथ साथ कन्या-विक्रयकी प्रथा निन्दनीय समझी जाने लगी। किन्तु लोगो पिता उस समय भी अपने लोभके रोक नहीं सकते थे। ये प्रकाश्यरूपसे कन्या-विक्रय न कर अन्तमें कन्याके निमित्त कुछ रुपये ले कर कन्या बेचने लगे। सूक्ष्मदर्शी शास्त्रकारोंकी दृष्टि इस नई प्रथा पर भी पड़ी। उन्होंने नियम किया, कि कन्याके देनेके लिये शास्त्रानुसार किञ्चिन्मात्र शुल्क प्रदानकी व्यवस्था है। स्थलविशेषमें यह शुल्क-कन्याकर्त्ता कन्याके नामसे ले कर स्वयं ही इष्टय जाते थे। शास्त्रकार इसको ही “छिन्न कन्याविक्रय” कह गये हैं अर्थात् शास्त्रकारोंने भी कन्याविक्रयके अत्यन्त दोष-युक्त कहा है। (अविवाह)

क्रयक्रीता कन्या विवाह करनेसे पत्नी नामसे नहीं कही जाती। और तो क्या, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र

भी पिण्डदानका अधिकारी नहीं होता। दूध-मीमांसामें लिखा है—

‘शरीरो दुर्ग विवाहिता नारी पत्नी नदीं कही जाती। यह पितृ-काठ्या तथा देव-काठ्योंमें पतिको सहधर्मिणी नहीं बन सकती। पण्डित लोग इसे दासी कहा करते हैं।’

उदाहरणरूपसे दूध-कश्यप-वचनोंमें भी क्रयक्रीताका अपवाद दिखाई देता है।

जो लोभवशता पण (धन) ले कर कन्यादान करते हैं, वह अत्यविकरों पापात्मा महापापकारो घोर नरकमें जाते हैं और अपने ऊपरके सात पुरतको भी नरकमें फेंकते हैं। (उदाहरण) क्रियायोगसारमें लिखा है, कि वैकुण्ठवासी हरिशर्माक प्रति प्रह्लादे कहा है—

‘हे द्विज ! जो मूढ़ लोभवश कन्या विक्रय करता है, वह पुरोपहृद-नामक घात नरकमें जाता है। बेचो हुई कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह चाण्डाल होता है, उसको धर्ममें कोई अधिकार नहीं।’

(क्रियायोगसार १२वां अध्याय)

इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि शास्त्रकार कन्या-विक्रयकी अतोव-दूषित काठ्या समझते थे। ऐसी स्त्री तो पत्नी तथा इसके गर्भसे उत्पन्न लड़केको पुत्र नहीं कहा जाता था। ऐसी स्त्रियां दासी तथा उनके गर्भसे जन्मे हुए पुत्र चाण्डाल कह जाते थे। ऐसी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न सन्तान पिताके पिण्डदानका भी अधिकारी नहीं। जो व्यक्ति अर्थलोभसे कन्या बेचता है, वह सदा नरकमें घास करता है और अपने इस कार्यके फलसे अपने माता-पिताको और ऊपरकी सात पीढ़ियोंको भी नरकमें फेंकता है।

किन्तु परितापका विषय यह है, कि हिन्दुओंके प्राथमिक सुसंस्कृत समाजमें जिस कुप्रथाके विरुद्ध शास्त्रकारोंने अन्न उठाया था, जिस कुप्रथाको समाजसे दूर भगानेके लिये भीषण नारकीय चित्रको लोगोंके सामने चित्रित किया था, जिसके घोरको उखाड़ फेंकनेके लिये एक स्वरसे अकाष्ठ्य नियन्त्राणाका प्रचार किया था, आज भी यह पापकृपिणी प्रथा समाजमें मुंह फैलाये खड़ी है। यह दोष यदि समाजके निम्नस्तरमें प्रभावित रह कर आदिम-असम्भ्य समाजकी प्राचीन स्मृतिका साध

प्रदान करता, तो हम इतने विम्मित नहीं होते। किन्तु दुर्भाग्यवश बात है, कि समाजके मुख्य विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मण इस सर्पिणी प्रथाके शिकार हो रहे हैं अर्थात् अपनी दुःहिताकी चेष्टा करते हैं। अतः भी ये लोग यह खयाल नहीं करते, कि कन्याओंका क्रयविक्रय शास्त्रमें विरुद्ध वर्जित है। समाजके नेता ब्राह्मण ऐसे नीच कर्मियोंको शास्त्रानुसार शासनकी भी व्यवस्था नहीं करते। किन्तु हर्ष है, कि इस समय (कन्याविक्रय) क्रमशः कम हो गया है।

पुत्र-विक्रय।

किन्तु दूसरी ओर बङ्गीय ब्राह्मण और कायस्थ-समाजमें विवाहके लिये पुत्रविक्रयप्रथा दिनों दिन बढ़ रही है। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंमें जिस दाम पर कन्यायें विक्रयी थीं, उससे कहीं अधिक दाम पर इस समय ब्राह्मणोंमें तथा कायस्थोंमें पुत्र विक्रय रहे हैं। इन्हीं दो जातियोंमें बयो—प्रायः सभी जातियोंमें पुत्र-विक्रयकी प्रथा प्रचलित है। इतर जातियोंकी अपेक्षा यह प्रथा कायस्थकुलकी अधिक अपना शिकार बना रही है। इसकी यह हालत देख कर यह मान्य होता है, कि थोड़े-ही दिनोंमें कायस्थ-कन्याओंका विवाह असम्भव हो जायेगा।

विवाह्या और अविवाह्या कन्या।

किस लक्षणकी कन्याका विवाह करना होता है और किस लक्षणकी कन्याका विवाह नहीं, मन्वादि शास्त्रोंमें इसका विशेषरूपसे वर्णन मिलता है। उसकी संक्षिप्तरूपसे आलोचना कर देखा जाय। गुहकी आह्लासे व्रतस्नान करनेके बाद द्विज लक्षणाग्नित्वा सवर्णा स्त्रिका विवाह करे। निम्नलिखित लक्षणयुक्त स्त्रियां विवाह करने योग्य हैं—जो कुमारी माताको असपिण्डा है अर्थात् जो स्त्री सातवें पुत्र तक मातामहादि वंशजात नहीं और जो मातामहाके चौदह पुत्र तक संगोत्रा नहीं और जो पिताका संगोत्रा या सपिण्डा नहीं है अर्थात् पितृस्वप्नादि सन्तति स्वभ्रूता नहीं है ऐसी ही स्त्री विवाहयोग्य है और सम्भोग करने लायक है। (सात पुत्र तक सपिण्डा रहती है)

गौ, कर्को, भेड और धनधान्यादि द्वारा अति समृद्ध महावंश होने पर मां स्त्री-प्रदणके सम्बन्धमें निम्नलिखित

दश कुल विशेषरूपसे निम्नित हैं, जैसे—'हीनक्रिया अर्थात् जातकर्म आदि संस्कार जिस वंशमें रहित, जिस वंशमें गर्भाधान आदि दश प्रकारके संस्कार न हों, उस वंशकी कन्या कमो प्रहण न करनी चाहिये। जिस कुलमें पुत्र उत्पन्न नहीं होता केवल कन्या जन्मती है, निश्चिन्दा अर्थात् जिस वंशमें वेदाध्ययन तथा पण्डित नहीं होते, या जो अध्ययन नहीं करते, जो रामश हैं अर्थात् जिस वंशके लोग अधिक रोगयुक्त होते हैं और जिस कुलमें अर्ध, राजयत्ना, अपस्मार, श्वेत और कुष्ठरोग हो इन दश कुलोंकी कन्यायें कमो प्रहण करनी न चाहिये। ये विशेष रूपसे निषेध हैं।

जिस कन्याके शिरके बाल विङ्कल या रक्त वर्ण हो, जिसके अङ्ग बद्धे हों अर्थात् पैर या हाथका उंगलियां अधिक हों, जो सदा रोगिणी रहता हो, जिसके शरीरमें रोग नहीं हो, अत्यन्त लोम हो, जो अपारमित वाचाल हो जिसके नेत्र विङ्कल वर्णके हो ऐसी कन्यायें विवाह करने योग्य नहीं। नक्षत्र, पक्ष, नदी, भ्लेच्छ, पर्वत, पक्षा, भर्ष, और सेवक या दासादिके नाममें जिस कन्याका नाम हो, और जो कन्या भयानक नामवाली हो, ऐसी कन्यायें विवाहयोग्य नहीं। अर्थात् इन सब कन्याओंका विवाह न करना चाहिये। नाम यथा—आमलकी, नर्मदा, चर्चरी, विन्ध्या, सारिका, भुवङ्गा, चंटे, डाकिनो इत्यादि नामविशिष्टा कन्या विवाहयोग्य नहीं। जिस कन्याके भाई नहीं है, अथवा जिसके पिताका वृत्तान्त विशेषरूपसे मान्य न हो, प्रायः पुत्र्य ऐसी कन्याकी जरूरतके इतने विवाह न करे। जिस कन्याका अङ्ग विकृत नहीं हो, जिसका नाम सुलसे उच्चारण किया जा सके, हंस या गजकी तरह जिसकी गति मनोहर हो, जिसके लोम, केश और दांत बहुत मोटे न हों, ऐसी ही कामलाङ्गी कन्या विवाहके लिये योग्य है। द्वितीकी चाहिये, कि ऐसी कन्याओंसे ही विवाह करे।

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि द्विज नपुंसकत्वादि दोषग्रन्थः, मन्वन्वपूर्वा (पहले किसी दूसरेके साथ विवाहकी बातचीत भी न चली हो, और दूसरेकी उपयुक्त नहीं हो, उसीका नाम अनन्वपूर्वा है।), कागितमती, असपिण्डा (पितृव्युत्से नोचेके सात पुत्र

तक और मातृवन्धुसे नीचेके पांच पुत्र तक सपिण्ड कहलाता है। इसके सिवा, छोटी उग्रकी, नोरोगी, मातृयुका असमान प्रवरा, असगोत्रा तथा मातृपक्षसे पांच पुत्र तथा पितृ पक्षसे सात पीढ़ी परवर्त्तानो सुलक्षणा कन्याधे' ही विवाह विषयमें उपयुक्त हैं। जिस वंशमें कोढ़ आदि भयङ्कर रोग हैं, और जो वंश संस्कार विहीन है, उस वंशकी कन्याको प्रहण न करना चाहिये।

गुणवान्, दोषविवर्जित, स्वर्ण अर्थात् ब्राह्मणोंमें ब्राह्मण, क्षत्रियोंमें क्षत्रिय आदि, विद्वान्, मत्स्यविर, पुंस्त्वविषयमें परोक्षिन और जनप्रिय, व्यक्ति ही घर होनेके उपयुक्त है। इस तरह घर स्थिर कर उसके साथ कन्याका विवाह कर देना उचित है।

(याशस्क्य १४ अ०)

विवाहके पहले ही कन्याके लक्षण आदिके विषयमें अच्छी तरह जांच पड़ताल कर लेनी चाहिये। ज्योतिस्त एव और वृहत्संहितामें इसके सम्बन्धमें लिखा है—

श्यामा, सुन्दर केशवाली स्त्री, जिसके वदन में रोप कम हों, सुन्दर और सुगोला हो, चालमें अच्छी हो अर्थात् हस्तिगामिनी हो, जिसका कटिदेश घेदीकी तरह हो, जिसकी आँखें कमलकी तरह लाल हों—ऐसी लक्षणयुक्ता कन्या यदि हीनकुलमें भी हो, तो उसे प्रहण करनेमें उग्र नहीं करना चाहिये। शास्त्रमें अच्छे कुलकी कन्याके प्रहण करनेकी आशा है, किन्तु ऐसी लक्षणवाली कन्या यदि हीनकुलमें भी हो, तो उपरोक्त प्रमाणसे प्रहण की जा सकती है।

जो नारी धृष्टा, गुरे दाँतवाली, पिङ्गलाक्षी (भूरी आँखवाली) हो, जिसके सारे शरीरमें रोप हों और जिसका मध्यदेश मोटा हो यानी जिसकी कमर मोटी हो, ऐसी कन्या यदि राजकुल अथवा उच्चकुलकी भी हो, तो विवाह न करना चाहिये।

जिनके नेत्र पिङ्गल वर्णके हों अथवा रक्तशून्य और चञ्चल हों, जो दुःशोला, सम्मितयोनि, सन्दिग्ध चित्ता हो और जिसके कपोल कुपकी तरह गहरे हों, उसकी वन्धकी नारी कहते हैं। ऐसी स्त्रीसे विवाह न करना चाहिये। (ज्योतिस्तत्त्वप्रवृत्त कृत्यचिन्तामणि)

पहले मनुके वाक्योंमें कहा जा चुका है, कि नक्षत्र,

वृश्च, नदी, पर्वत, पक्षी, सर्प आदि नामवाली कन्याएं विवाह करने योग्य नहीं। किन्तु मत्स्यसूक्तमें लिखा है—ऐसा समझना भूल है, कि केवल नक्षत्रोंके नामकी कन्या होनेसे विवाह करने योग्य नहीं हो सकती। घर उसमें एक विशेषता है—

पुत्रोका नदावाचक नाम रखना नहीं चाहिये। किन्तु नदियोंमें गङ्गा, यमुना, गोमती और सरस्वती; वृक्षोंमें मालती और तुलसी तथा नक्षत्रोंमें रेवती, आश्विनी और रोहिणी नाम शुभ हैं। इन सब नामावली कन्याओंके साथ विवाह करनेसे हानि नहीं वरं शुभ हो होता है।

वृहत्संहितामें लिखा है कि मानव यदि पृथ्वीके अधिपतिरत्नकी इच्छा करे, तो वह ऐसी स्त्रीसे विवाह करे जो सुन्दर हो, जिसके पैरके नख मुलायम, उन्नतपत्र, सूक्ष्म और रक्तवर्ण हों, जिसके चरणतल या पैरके तलवे कमलके रंगको तरह मुलायम हो और दोनों पैर उसके समानरूपसे उपचित, सुन्दर अथच निगूढगुदकविशिष्ट तथा मत्स्य (मछली), अङ्गुश, शङ्ख, यव, वज्र, हल और तलयार चिह्नयुक्त और नम्र हों, जिसके दोनों जंघे हाथीकी सूँडकी तरह, शिराहीन और रोमरहित हों, जिसके घुटने समान अथच सन्धिस्थल सुन्दर हों, जिसके ऊरुद्वय रोमशून्य हो, जिसका नितम्ब विपुल, फिर भी पीपलके पत्तके आकारका हो, जिसकी श्रोणी और ललाट चौड़ा अथच कूर्मपृष्ठकी तरह उन्नत हो, जिसकी मणि अत्यन्त निगूढ हो और जो अत्यन्त रूपवती हो, ऐसी स्त्री विवाहके लिये ठीक है। ऐसी स्त्रीसे विवाह करनेसे सुखसौभाग्यकी वृद्धि होती है।

(इत्थम् ७०११)

जिस स्त्रीका नितम्ब चौड़ा, मांसीपचित और गुष्ठ हो, जिसकी नाभि गहरी और दक्षिणावर्त्त हो, जिसकी कमर पतली और रोमरहित हो, जिसके वयोधर (स्तन) गोल, घन, नतोन्नत, फिर भी कठिन (कड़े), जिसकी छाती रोमशून्य, फिर भी कोमल और जिसकी गर्दनमें शङ्खों तरह तीन रेखाएँ हों,—इस तरहकी लक्षण समन्विता नारी विवाहके लिये उत्तम है। जिसके अधर (होंठ) वधुजीव फूलकी तरह तथा विम्बफलकी तरह हों, कुन्दकुसुमकी कलियोंकी तरह जिसकी दन्ता

चलो शुभवर्ण और समान हो, जिसके वाक्प सरलतासे परिपूर्ण हो, जो स्त्री समभाव, हंस या काकिलको तरह भाषण करनेवालो और कातरसाहो न हो, जिसकी नासिका समान, समच्छिद्रयुक्त और मनेाहर तथा नील-पद्मकी तरह शोभमान हो, जिसके भ्रूयुगल आपसमें सटे हों, मोटे न हों, न लम्बे हों, धर घग्वाकार हों—ऐसी रमणी विवाहके लिये उपयुक्त हैं। जिस कामिनोका ललाट अर्द्धचन्द्राकार, नीच ऊंच न हो और जिस पर रोम न हों, जिसके कान दोनों समान और कोमल हों, जिसके केश विक्ने और घोर काले रंगके हों तथा जिसका मस्तक सममायसे अवस्थित हो,—ऐसी लक्षणयुक्ता रमणी विवाहके लिये अच्छी हैं और विवाह करनेसे सुख-समृद्धि बढ़ती है।

जिस स्त्रीके हाथ अथवा पांवमें भृङ्गार, आसन, हस्ती, रथ, धोतुल (बिल), यूर, चाण, माला, कुन्तल, चामर, अंकुश, वध, शैल, ध्वज, तोरण, मस्तक, स्वस्तिक, वेदिका, तालमृत्त, शङ्ख, छत्र, पद्म आदि चिह्नोंमें एक भां चिह्न अङ्कित हो, तो वह सौभाग्यवती है, अतः ऐसी हो कुमारियां विवाहके लिये उत्तम हैं।

जिस कुमारीके हाथका मणिवन्ध कुछ निगूढ़, जिसके हाथमें तगण कमलके बीचका भाग अङ्कित हो, जिसके हाथकी उंगलियोंके पर्वां सूक्ष्म और जिसका हाथ न बहुत गहरा और न बहुत ऊंचा हो, फिर भी उत्कृष्ट रेखायुक्त हो, ऐसी रमणी ही उत्तम और विवाहा है।

जिस स्त्रीके हाथमें मणिवन्धसे निकली एक लम्बी (ऊटुध्वं) रेखा मध्यमा उंगलीके मूल तक गई हो या जिसके चरणमें ही ऊटुध्वं रेखा हो, तो यह कन्या माभयान होगी। अंगुष्ठके मूलमें जितनी रेखायें रहती हैं, उतने ही सन्तान होते हैं। इनमें जो मोटी रेखा है, वह पुत्रकी, जो पतली रेखा है, वह पुत्रीकी है। फिर जो रेखा क्षीण नहीं हुई है, वह सन्तान धर्माजोषी तथा खण्डरेखाका सन्तान अल्पायु होता है। इन सब लक्षणोंका देख कर कन्या विवाहके लिये निश्चित करना चाहिये।

यविवाह्या नरी।

यह दुर्लक्षणा स्त्रियोंकी आलोचना की जाये। जिस स्त्रीके चलनेके समय उसके पैरकी कानो और उसकी

पासकी उंगली जमीनसे छू न जाये, वह स्त्री दुर्लक्षणा कही जाती है। जिस स्त्रीके पैरके अंगुठोकी बगलकी उंगली अंगुठोसे बड़ी हो, वह भी दुर्लक्षणसम्पन्ना है और उसके साथ विवाह करनेसे मनुष्यको फिर दुःखका ठिकाना नहीं रहता।

जिस स्त्रीके घुटनेका निचला भाग उद्ध, दोनों अङ्गुलियोंमें शिरापे तथा रोमसे भरे हों और बहुत मांस-विशिष्ट हों, जिसका नितम्ब घामावर्त्त, नीचा और छोटा हो, तथा जिसका उदर कुम्भा (घट) के समान हो—ऐसी कुनारियां दुर्लक्षणसम्पन्न हैं। यह विवाहके लिये अयोग्य है। जिस स्त्रीकी गर्दन छोटी हो वह दरिद्रा, लम्बी हो तो कुलक्षणा और मोटा हो तो प्रचण्डा होती है। जिस स्त्रीके नेत्र विङ्गलवर्ण, फिर भी चञ्चल हैं और मुस्काने पर भी जिसका गाल गहरा हो जाता है, वह दुर्लक्षणसम्पन्न है।

ललाट लम्बा होनेसे देवरका नाश, उदर लम्बा होनेसे श्वशुरका नाश और चूतड़ लम्बा होनेसे स्यामीका विनाश होता है। अतः ये भी दुर्लक्षणा हैं। जो रमणी बहुत लम्बी और जिसका अधोदेग रोमोंसे भरा हो, जिसके स्तन रोमयुक्त, मलिन और तोक्षण हों, और जिसके दोनों कान विषम हों, जिसके दांत मोटे हों, भयङ्कर और काले मांसयुक्त हों, तो वह स्त्री ठोक नहीं अर्थात् उससे विवाह करना न चाहिये। हाथ राक्षसीकी तरह अथवा सूखे हों या जिसके हाथमें शुक, काक, कङ्क, सर्प और उल्कशा चिह्न अङ्कित हो, जिसका होंठ मोटा हो और केश्याय रूखे हों, वह नारी दुर्लक्षणसम्पन्ना है।

स्त्रियोंके शुभाशुभका विचार करनेमें निम्नलिखित स्थानोंका ध्यान रखना चाहिये। १ दोनों चरण और गुल्फ, २ जङ्गा और घुटने, ३ गुहा स्थान, ४ नाभि और कमर, ५ उदर, ६ हृदय और स्तन, ७ कन्या और जत्रु, ८ होंठ और गर्दन, ९ दोनों नेत्र और भ्रू तथा १० शिरोदेग। इन स्थानोंका शुभाशुभ विशेष रूपसे स्थिर कर लेना चाहिये। (शुक्लविंदिता ७ अ०)

जिस कन्याका पैर खड़ाऊंकी तरह हो, दांत कङ्कोकी तरह और नेत्र विङ्गीकी तरह हो, तो उस स्त्रीसे भी विवाह न करना चाहिये। यह चलिंत प्रवाद है।

सामुद्रिकमें इसके शुभाशुभ लक्षण लिखे हैं। जिस स्त्रीके तलवेंमें रेखा रहती है, वह राजमहिषी और जिसकी मध्यमाङ्गुली दूसरी अङ्गुलीसे सटी रहती है, वह सदा सुखी होगी। जिस स्त्रीका अंगूठा चतुर्लाकार और मांसल तथा उसका अग्रभाग उन्नत हो, तो उसे नाना तरहके सुखसोभाग्यकी वृद्धि होगी। जिस स्त्रीका अंगूठा टेढ़ा, छोटा और चिपटा हो वह बहुत दुःखिनी होगी। जिसकी उंगली लम्बी हो वह कुलटा होगी। उंगली पतली होनेसे स्त्री दरिद्रा और छोटी होनेसे परमायु कमवाली होती है। जिस स्त्रीकी उंगलियाँ आपसमें सटी हों, वह बहुत पतियोंका विनास कर दूसरेकी लौंडी बन कर रहेगी।

जिस नारीके चरणोंके नख सभी बिकने, उठे हुए, ताम्रवर्णके, गोलाकार और सुदृश्य हों तथा जिसके पैरका ऊपरी भाग उन्नत हो, वह नाना प्रकारके सुख पायेगी। जिस नारीका पार्श्वदेश समान हो, वह सुक्षणा होगी और जिमका पार्श्वदेश पृथु है, वह दुर्गा, और जिसका उन्नत है, वह भी कुलटा, लम्ब होने पर नारी दुःखमागिनी होगी। जिसके अङ्गुलीमें रोम नहां रहने, जिमके जंघे बराबर, चिकने, चर्बुल, कमसे सूक्ष्म, सुमनोहर और गिरारहित है, वह नारी राजमहिषा हो सकती है। जिमके घुटने गोल हों, वह रमणा सौभाग्यवती और जिसके घुटनेमें मांस नहीं, जिन्का घुटना फूला हो वह ख्रा दरिद्रा और दुराचारिणी होगी। जिस नारीके ऊरुयुगल गिरारहित हों और हाथोंकी सूँडके सतान उनकी गठन हो, बिकने गोल और रोमशून्य हों, वह नारी सौभाग्यवती होती है। जिसके कटिदेशकी परिधि एक हाथ और नितम्ब समुन्नत और बिकना हो, मांसल और मोटा हो, तो वह नाना प्रकारको सुखसमृद्धिवाली होगी। इसके विपरीत होनेसे फल भी विपरीत अर्थात् दरिद्रा होगी। कुछ गहरा और दक्षिणावर्त्त हो, तो शुभ और वामावर्त्त तथा उत्तान अर्थात् गमोदरहित और व्यक्तग्रन्थी (नाभिका ऊँचा रहना) हो, तो अशुभ समझना। जिस स्त्रीके उदरका चमड़ा मृदु, पतला और गिरारहित हो, तो शुभ, जठर कुम्भाकार और मृदङ्गी तरह हो, तो अशुभ सम-

झना। जिसकी छातीमें बाल न हों और वह गहरी न हो तथा समतल हो, तो वह रमणी पेश्वर्यशास्त्रिनी और पतिकी प्रेमापाती होगी। जिस नारीके अंगुष्ठका अग्रभाग बिले हुए पद्मकी तरह क्षाणाग्र, हथेली मृदु, रक्तवर्ण, छिद्ररहित, अल्परेखायुक्त, प्रशस्त रेखाश्रित और बीचमें उठा हुआ हो, तो वह रमणी सौभाग्यवती होगी।

जिस नारीके हाथमें अधिक रेखायें हों, तो वह विधवा होगी; यदि निर्दिष्ट रेखा न हो, तो दरिद्रा और शिरायुक्ता होनेसे मिथारिण होगी। जिस नारीके हाथमें दक्षिणावर्त्त मण्डल और जिसके हाथमें मत्स्य, पद्म, गङ्गा, छत्र, चामर, अंकुश, धनुष, रथका चिह्न अङ्कित रहता है, वह सुखसौभाग्यवती होती है। जो स्त्री चलते समय धरतीको कपा देती है और जो बहुत रोमवाली है, उसका पाणिग्रहण करना उचित नहीं। जिस स्त्रीके हाथ या पैरमें घाँड़े, हाथी, घेलेयूक्ष, यूप, चाण, यव, धवज, चामर, माला, छोटा पर्वत, कर्णभूषण, वैदिका, गङ्गा, छत्र, कमल, मछली, स्वस्तिक, चतुष्पद, सर्पकणा, रथ और अंकुश एक भी चिह्न हो, तो वह स्त्री सुलक्षणा होती है।

सिवा इनके सामुद्रिकमें और भी कितने ही विह निर्दिष्ट हैं, साधारणतः पहले जो सुलक्षणा और दुर्लक्षणाकी बात कही गई है, उसके अनुसार विचार कर कन्यासे विवाह निश्चय करना चाहिये। इस तरह कन्या निकृपण कर अनेक प्रकारके सुख और समृद्धि लाभ की जा सकती है। दुर्लक्षणा कन्यासे विवाह करने पर पद पद पर कष्ट भलता पड़ता है। इसीलिये बहुतेरे लोग कन्याके विवाहसे पहले शुभाशुभ लक्षणोंका विचार कर लेते हैं।

'अनमान नोत्त-प्रवराका पाणिग्रहण करना' और 'समाननोत्त-प्रवराका नही' विवाह विषयमें ये ही दो विधियाँ हैं। इन दो विधियाँके बीचमें सामंजस्य-रक्षा किस तरह होती है? स्वर्त्त अन्धाचार्योंने इस प्रश्नकी इस तरह मीमांसा की है। विवाहादि कई कार्योंमें साधारणतः दो तरहके कार्य होते हैं—जैसे वैध और रागप्राप्त। वैध—शास्त्रीय विधिके अनुसार सभीका कर्त्तव्य है। रागप्राप्त—मृतके अथवा अर्थात्

अपनी इच्छा होनेसे जो कार्या किया जाता है और इच्छान न होनेसे जो नहीं किया जाता, वही रागप्राप्त है।

वर्णाश्रमियोंके कितने ही कार्या वैध हैं अर्थात् शास्त्रमें विहित हैं। इसीसे उन सभ्योका अनुष्ठान करना होता है, जैसे सन्ध्यावन्दनादि। और कितने ही कार्या हैं रागप्राप्त अर्थात् जो इच्छाघोन हैं, इच्छा होनेसे किये जाते हैं, नहीं होनेसे नहीं होते, जैसे भोजनादि। और कितने ही कार्या हैं—वैध और रागप्राप्त—दोनों ही। यथा-विवाह, क्योंकि संभोगच्छाको प्रबलनाके कारण पुत्र्यमातृका ही किसी एक स्त्रीको सदाके लिये अपनी बना लेनेकी इच्छा रहती है। इसीसे यह रागप्राप्त कहा जाता है। किन्तु रागप्राप्त होनेसे हम देखते हैं, कि हमारी इच्छाके अनुसार जमी तभी ऐसी वैसी स्त्रीको ला कर सदाके लिये उसे अपनी बना कर रखना शास्त्रसिद्ध विवाह नहीं होता। इसलिये विवाह वैध और रागप्राप्त दोनों ही हैं।

अब असपिएडा और असगोत्रा कन्याओंके विषयकी आलोचना की जाये।

“असगोत्रा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।

सा मशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि नैषुने ॥”

(उद्गाहत्वच)

जो कन्या माताको असपिएडा है अर्थात् सपिएड नहीं है और पिताको असगोत्रा है—ऐसी कन्या ही द्विजातियोंके विवाहके लिये योग्य है। माताकी अंमपिएडा और पिताकी असगोत्रा इन दोनोंको समझनेके लिये पहले सपिएड और असगोत्रका अर्थ समझना चाहिये।

सपिएड शब्दका अर्थ—जिनमें साक्षात् या परम्परा सम्बन्धमें पिएडघटित सम्बन्ध वर्तमान है। पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीनों साक्षात् सम्बन्धमें पिएड पाते हैं। उसके ऊपर वृद्धप्रपितामहसे ऊर्ध्वतन तीन पुरुष पिएड नहीं पाते। पिएड बनानेके समय हाथमें जो लेप रहता है ये केवल वही पाते हैं, अतएव इसके साक्षात् सम्बन्धमें पिएडप्राप्ति नहीं होती, परम्परासे होती है। श्राद्धकर्त्ताके पिएडके साथ दातृत्व सम्बन्ध है, अतएव श्राद्धकर्त्ता और उसके ऊर्ध्वतन ६ पुरुष परस्पर

सपिएड हैं। ये ही सात और इनकी सन्तान-सन्ततिमें आपसमें जो सम्बन्ध हैं, वही सपिएड सम्बन्ध है। वरकी माताके साथ जिस कन्याका वैसा सम्बन्ध नहीं, वही कन्या माताको असपिएडा है और पिताके साथ वैसा सम्बन्ध न हो तो, वह कन्या पिताकी असपिएडा कहलाती है। “असपिएडा च” इस ‘च’ अक्षर पर कुछ लोग कहते हैं, कि इससे असगोत्रा समझना होगा, माताके एक गोत्रोत्पत्ता कन्या विवाहविषयमें निषिद्धा है। यह मत सर्व-वादिसम्मत नहीं है।

सगोत्रा—सगोत्रा कहनेसे एक गोत्रकी उत्पन्न कन्याको बोध होता है। पिताको असगोत्रा पिताके साथ एक गोत्रमें उत्पन्न नहीं है, ऐसी कन्या ही विवाहा है। ‘असगोत्रा च’ इस चकार शब्दसे पिताकी असपिएड कन्या भी वर्जनीय है, ऐसा समझना होगा। क्योंकि पितृपक्षसे सप्तमी कन्या और मातृपक्षसे पञ्चमी कन्या छोड़ कर धर्मशास्त्रानुसार विवाह करना होगा। पितृपक्ष और मातृपक्षसे पिता या पितृवन्धु और माता या मातृवन्धु इन दोनों कुलसे सप्तमी और पञ्चमी कन्या परित्याग कर विवाह करना होगा।

पितृवन्धु और मातृवन्धुसे तथा पिता और मातासे क्रमशः सप्तम और पञ्चम पुरुष पर्यन्त विवाह करना न चाहिये। सगोत्रा और समानमयरा भी द्विजातिके लिये अविवाहा हैं। इन तरहका विवाह होनेसे वह सन्तान सन्ततिके साथ पतित और शूद्रत्वका प्राप्त होता है।

बन्धु—पिताका कुफेरा, मौसेरा और ममेरा भाई ये सभी पितृवन्धु हैं। माताका ममेरा भाई, कुफेरा भाई और मौसेरा भाई मातृवन्धु कहा जाता है। पितामहकी बहिनका लड़का, पितामहकी बहिनका पुत्र और पितामहकी भतीजा ये भी पितृवन्धु हैं तथा मातामहकी बहिनका पुत्र, मातामहकी बहिनका पुत्र और मातामहकी भतीजा ये मातृवन्धु हैं। इस तरह पितृमातृवन्धुका विचार कर कन्यानिर्वाण करना चाहिये।

पितृपक्षसे सप्तमी कन्या और मातृपक्षसे पञ्चमा कन्याको छोड़ कर विवाह करना चाहिये। किन्तु किसी किसीके मतसे पितृपक्षसे पञ्चमी और मातृपक्षसे तृतीया कन्या छोड़ कर विवाह कर सकते हैं। ये मत भी सर्व-वादिसम्मत नहीं हैं।

सगोत्रादि कन्या-विवाहका प्रायश्चित्त ।

सगोत्रादि अविवाह्य कन्याओंकी बात कही गई है । इस तरहकी अविवाह्य कन्याके साथ विवाह कर लेनेसे घरको प्रायश्चित्त करना होता है । शास्त्रमें बौधायन यजुर्नमें लिखा है, कि यदि अज्ञान या मोहवश सगोत्रा कन्याका पाणिप्रदण कर लिया जाये, तो उसको माताका तरह पोषण करना चाहिये । कुफेरी, मौसिरी और ममेरी बदन, मातामह-सगोत्रा तथा समानप्रवरा कन्याका विवाह कर लेने पर ब्राह्मणको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और परिणीता कन्याको स्वतः तभाचरं रख कर उसका भरण-पोषण करना उचित है । यदि कोई समान-गोत्रा और समानप्रवरा कन्यासे विवाह कर उसके गर्भसे सन्तान उत्पन्न करे, तो वह सन्तान चाखडाल सदृश और विवाहकर्त्ता ब्राह्मणत्वहीन होता है ।

प्रायश्चित्तके विवेचन करनेवालोंने धृतिमें दोषकी मीमांसा की है । जैसे—

पहले जो अविवाह्य कन्याओंकी बात शास्त्रमें कही गई है, उनसे विवाह करनेवालेको चान्द्रायणव्रत करना होता है । इसी व्रत द्वारा इस पापका नाश होगा । चान्द्रायण व्रत करके विवाहिता कन्याको स्वतः तभाचरं रख कर उसका भरण पोषण करना होगा ।

मानुस्मिणी कन्यासे विवाह नहीं किया जाता । यदि किसी कन्याका नाम माताको राशि या पुकारके नामसे मिलता जुलता हो, तो उस कन्याको मातृकन्या कहते हैं । प्रमादवश ऐसा कन्यासे विवाह करने पर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है । ऐसा करके ही उसके कर्त्तव्यकी इतिभ्रं नहीं हो जाती, वरं इस कन्याको परित्याग करना होता है । उसके साथ कोई भी दम्पति योग्य व्यवहार नहीं करना चाहिये ।

विवाहमें परिवेदनदोष ।—जेठे भाईका अविवाहित छोड़ कर यदि छोटे भाईका विवाह हो, तो परिवेदनदोष हो जाता है । यह छोटा भाई परिवेत्ता, जेठ भाई परिविन्न और परिणीता कन्या परिवेदनाया कही जाती है । सिवा इसके कन्यादान करनेवाला परिदायो और पुरोहित परिकर्त्ता कहा जाता है । ये सभी शास्त्रके अनुसार पतित होते हैं ।

शास्त्रमें परिवेदनदोषके प्रतिप्रसव भी दिखाई देता है । जेठ भाई यदि किसी दूसरे देशमें हों, छोब, पकृष्ण, सौतेला हो, घेय्यासक, पतित, शूद्रतुल्य, बहुत रोगी, जड़, मूक, अंधा, बहरा, कुबरा, धामन, आलसी, बहुत वृद्ध, बालब्रह्मचारी, खेतीके काममें संलग्न, राजसेवक, कुसोदादि द्वारा धन चर्दनेमें तत्पर, यथेच्छाचारी, किसीको दत्तक दिया गया हो तथा उन्मत्त और चोर हो, तो छोटेके विवाह कर लेने पर भी परिवेदनदोष नहीं लगता । इनमें धन बढ़ानेमें तत्पर, राजसेवक, छपक और प्रवासी ये चार तरहके जेठ भाइयोंके लिये छोटेके तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करना चाहिये । यदि परदेशमें रहनेवाला जेठ भाईका एक वर्ष तक कोई समाचार न मिले, तो छोटे भाईका चाहिये, कि वह इस समयके बाद विवाह कर ले । किंतु विवाहके बाद यदि बड़ा भाई लौट आवे, तो छोटा भाई अपने किये दोषकी शुद्धिके लिये परिवेदनदोषके निर्द्धारित प्रायश्चित्तके पादमात्रका आचरण करे ।

धर्म या अर्थ उपाार्जन करनेके लिये दूसरे देशमें गये हुए जेठ भाईका नियमित रूपसे समाचार मिला करे, तो उसके लिये बारह वर्ष तक समयकी प्रतीक्षा करना उचित है, किंतु उसके उन्मत्त, पतित और राजपक्षमा रोगयुक्त होने पर प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं । कुछ लोगोंकी रायमें ६ वर्ष तक प्रतीक्षा करनेके बाद छोटे भाईका विवाह कर लेना विधेय है । प्रायश्चित्त बतानेवालोंने मीमांसा की है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण विद्या और ब्रह्मोपाज्जनके लिये विदेशगत जेठ भाईके उद्देशसे १२, १०, ८ और ६ वर्ष यथाक्रम प्रतीक्षा कर विवाह करे । प्रतीक्षाकाल, ब्राह्मणका १२ और क्षत्रियका १० वर्ष इत्यादि क्रमसे समझ लेना होगा ।

किंतु जेठ भाई जीवित रह कर यदि स्वेच्छाक्रमसे अग्न्याधानादि न करे तो उसकी अनुमति ले कर छोटा भाई स्वयं काम कर सकेगा । फलतः जेठ भाई यदि शादी न करे और छोटे भाईकी खुशीसे शादी करनेकी आज्ञा दे दे, तो यह विवाह दोषावह नहीं होगा । किंतु ये जेठ

माई यदि छोटे भाईके विवाह हो जानेके बाद अपना विवाह कर ले, तो दोषाचर होगा।

प्रायश्चित्त निर्दिष्ट करनेवालोंके मतसे—जेठ भाईकी आशा ले कर छोटा यदि विवाह कर ले तो भी वह दोषाचर होगा। वह कहते हैं—जब अग्रज अर्थात् बड़े भाईको आश्रयसे कनिष्ठके लिये केवल अनिहोत्र प्रदण्ड ही विधान है, तब छोटा अनिहोत्र मात्र ही करे, किन्तु विवाह न करे। यदि करेगा, तो वह दोषी है।

जैसे जेठ भाईके विवाह न होने पर छोटे भाईका विवाह निषिद्ध है, वैसे ही जेठो बहनकी शादी जब तक न हो, छोटी बहनकी शादी नहीं हो सकती। कुछ लोग कहते हैं कि बच्चरत जेठो बहनके कारी रहने पर भी छोटीका विवाह कर देनेसे दोष नहीं होता। किन्तु यह युक्तिसंगत नहीं मालूम होता। विवाहके इस निषेध वाक्यको प्रसज्यप्रतिषेध कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अप्रामादिकका ही निषेध होनेसे यह सम्पूर्ण रूपसे अधौक्तिक हुआ है। अतएव यह निषेध पुरुषादास होगा। इससे ऐसा तात्पर्य दिखार देता है, कि जेठो बहन यदि बच्चरत न हो, तो उसके विवाहके पहले छोटी बहनका विवाह होने पर दोष होगा।

किन्तु शास्त्रकारके अभिप्रायके अनुसार विचार करने पर समझमें आता है, कि यह कर्ण्य सम्पूर्णरूपसे दोषजनक होगा। क्योंकि, बड़ी बहनके अविवाहिता अवस्थामें रख कर छोटी बहनका यदि विवाह किया जाये, तो इस कर्ण्यको अग्रदिधिपु और उसी तरहकी जेठो बहनको दिधिपु कहते हैं। अग्रदिधिपुका जो पाणिप्रदण्ड करेगा, उसे १२ रात छच्छ पराक्रमत आचरण करके दूसरी एक कर्ण्यमें विवाह करना होगा और उम अग्रदिधिपुको जेठो बहनके वरके हाथ सौंप देना होगा। फिर दिधिपु पाणिप्रदण्डकारको भी छच्छ और अति छच्छ में दो प्रायश्चित्त कर जेठोको छोटीके वरके हाथ सौंप देना होगा और फिर वह दूसरा एक विवाह करेगा।

छोटी कर्ण्यको बड़ी कर्ण्यके और बड़ी कर्ण्यको छोटी कर्ण्यके वरके हाथ सौंप देनेकी बात जो कही गई, यह केवल शास्त्रको मर्यादा रक्षाके लिये ही है, उप-

भोगार्थ नहीं। इन कर्ण्याओंका कोई उपयोग नहीं कर सकता। इनको स्वतन्त्ररूपसे रख कर अन्नवस्त्रादि द्वारा भरण-पोषण करना चाहिये, यही शास्त्रका अभिप्राय है। अतएव बड़ी बहन बच्चरत हो या खूबसूरत उसका विवाह न होनेसे छोटी बहनका कभी विवाह न होगा।

बड़ेका विवाह न होने तक छोटीका विवाह नहीं हो सकता। यमज सन्तानमें छोटे बड़ेका विचार इस तरह किया जाता है, कि जो पहले पैदा हुआ हो, वह बड़ा है। यमज सन्तानोंके पैदा होनेका यदि यह ठीक न मालूम हो सके, कि कौन पहले पैदा हुआ है कौन पीछे, तो माता जिसको पहले देखे, उसीको बड़ा माने।

एक दिन देा सहोदर या देा सहोदरका विवाह कर्त्तव्य नहीं। शास्त्रानुसार यह निन्दनीय और पापजनक है।

एक दिन सहोदरमें देाका विवाह और देा सहोदरकन्याका दान भी वर्जनीय है। उद्देशोपपिण्डतोंने 'वासर' पदके स्थानमें 'वत्सर' पदका निर्देश किया है। इसके अनुसार एकवर्षमें देा सहोदरोंका विवाह होगा निषिद्ध है और इसी तरहका यहां काम भी होता है। अन्यान्य विषय विवाहविधि अध्यामें देखो।

पानीकी खोज।

प्राचीनकालमें हिन्दू केवल पानीकी ही खोज नहीं करते थे, वरं उनको विवाहकी उपयुक्त सुलक्षण पानीकी खोज भी करनी पड़ती थी। पधमें कोई विप्र न हो और शीघ्र विवाहके लिये सुपात्री मिल जाये, इसके लिये देवताओंसे वे प्रार्थना करते थे। जैसे—

"अनुसूरा स्वजवः सन्तु पन्था येमिः साकयाये यन्ति नो वरये"। समर्थ्यामा संभोगो नो निनातपासुं जागमत्यं सुलममस्तु देवाः ॥"

(श्रुतदे० १० म० ८५ सूक्त २३ श्लु०)

अर्थात् जिन सब पणोंसे हमारे सबे विवाह करनेके लिये कर्ण्य ढूँढने जाये, वे पथ सेरल तथा कण्टकशून्य हो। अर्थमा और भगदये! हमें गतिविधि दे। हे देवनाथ! पतिपत्नीका सम्यग् उत्तमरूपसे स्थापित हो।

यह भी मालूम नहीं होता, कि ऋग्वेदके समयमें जैसी तैसी कन्याके पाणिप्रहणकी प्रथा प्रचलित थी। क्योंकि कन्याके खोजनेके समय वरके मित्र उषयुक्ता पात्रोंकी खोजमें बाहर निकलते थे और तो क्या—देवताओंसे वे यह प्रार्थना करते थे:—“जाम्पत्यं सुखमस्तु देवाः।”

हे देवगण! जायापति सुमिथुन हो। ऋग्वेदके समयमें कन्या निर्वाचनका कार्य सरल नहीं था। इसका प्रमाण इसी ऋक्सूत्र ही मिलता है। वरके अनुरूप कन्याका निर्वाचन करनेके लिये किस-किस विषय पर दृष्टि रखनी पड़ती थी, इसका आभास हमें ऋग्वेदमें दिखाई नहीं देता। सामवेदके मन्त्रब्राह्मणमें भी यह दिखाई नहीं दिया। किन्तु पिछले समयमें सुपात्रीलक्षणव्यञ्जक अनेक तरहके उपदेशवाक्य और चिह्न धर्मशास्त्रमें, ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्रमें अङ्कित हुए हैं। इसके बाद उन्हीं विषयोंका उल्लेख किया जायेगा।

वरके घर कन्याका विवाह।

कहीं कहीं वरके घर कन्याका विवाह होता दिखाई देता है। किन्तु ऋग्वेदसंहितामें हमने कोई भी निदर्शन नहीं देखा। मनुके कहे हुए रक्षस और पैशाच-विवाह वरके घरमें ही होता था। किन्तु ब्राह्म, दैव आदि विवाह कन्याके घर हुआ करता था। ऋग्वेदसंहितामें भी इसी तरहके कन्याके घरमें विवाह काव्ये सम्पन्न होनेकी प्रथा दिखाई देती है।

कन्याका छोड़ा हुआ पुराना कपड़ा।

इस समय देशमें वर कन्याके छोड़े हुए वस्त्र नाई ही पाते हैं। विवाहके समय नाईकी उपस्थिति प्रयोजनीय है। ऋग्वेदके समय नाई थे, किन्तु उस समय इनकी उपस्थितिकी कोई जरूरत नहीं होती थी। कन्याका छोड़ा हुआ वस्त्र नाई पाता था, वर ब्रह्मा नामक विद्वान् ऋत्विक् हों यह वस्त्र पाते थे।

पाठकोंको यह खयाल न करना चाहिये, कि यह वस्त्र-प्राप्त ब्रह्माके प्रति लाभजनक होती थी। वधू जो वस्त्र छोड़ती थी, वह वस्त्र दूयित, मलिन, विषयुक्त और अप्राह्य होता था। सुमंभतः विवाहके पहले इस तरहका वस्त्र पहनना स्त्री-आचारके अन्तर्भूत था। अथर्व-हार्थ्य वस्त्र पहननेकी प्रथा अब भी दिखाई देती है, किन्तु इस समय जो वस्त्र पहनाया जाता है, वह नाई ले जाते

हैं, इससे वस्त्र कम कीमतका ही पहनाया जाता है। वैदिक युगमें मैला, फटा और विषयुक्त वस्त्र देना पड़ता था, ब्रह्मा नामक ऋत्विक् यह ले जाते थे।

यह वस्त्र दूयित, अप्राह्य मालिन्धयुक्त और विषयुक्त है। इसका व्यवहार ठोक नहीं, जो ब्रह्मा नामक ऋत्विक् विद्वान् हैं, वही वधूके वस्त्रके पानेके अधिकारी हैं। इसके बादकी ऋक्सूत्रे मालूम होता है, कि यह छोड़ा हुआ वस्त्र तीन टुकड़ा कर विवाहार्थ प्रस्तुत कन्याके पहननेके लिये दिया जाता था। एक टुकड़ा रंग दिया जाता था, एक टुकड़ा गिर पर डालनेके लिये तथा एक पहननेके लिये दिया जाता था। इससे मालूम होता है, कि समाजकी बहुत प्राचीन दृष्टि अवस्थामें जब कन्याहरण कर विवाह करनेकी प्रथा थी, उस समय विवाहके समय कन्याके पहने हुए मलिन वस्त्रको खोलवा कर दूसरा नया वस्त्र पहननेको दिया जाता था। आगे चल कर यह प्रथा लुप्त हो गई; किन्तु मैला वस्त्र उतरवाने और नया वस्त्र पहनानेकी एक रिवाज चल निकली। इस तरह जिन कन्याका विवाह होगा, उसका पहलेका मैला वस्त्र उतरवा और नया वस्त्र पहना दिया जाने लगा। प्राचीन वैदिक सामाज्य सुसंस्कृत था सही; किन्तु विवाहकी इस कुप्राचीन पद्धतिका चढ़ छोड़ नहीं सका था। और तो क्या, हजारों वर्ष बीतने पर विविध प्रकारसे यह प्रथा आज भी कहीं कहीं विद्यमान है। (ज.तिकर्म)

वैदिककालमें विवाहके पहले और भी एक अद्भुत प्रथा थी। सामवेदीय मंत्रब्राह्मणमें इस प्रथाके मन्त्र देखे जाते हैं। वादके समयमें यह ‘घातिकर्म’ के नामसे अभिहित हुआ। सामवेदकी वर्तमान विवाहपद्धतियोंमें इसका विधान इस तरह लिखा है—विवाह-दिन कन्याके पिताकी घाति या सुहृद्द रमणियां मूंग, यव, उड़द और मसूरका चूण एकत्र कर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करते हुए कन्याके शरीरमें लगा देती थीं। मन्त्र इस तरह है—

“प्रजापतिर्ऋषिः प्रस्तावपत्किञ्चन्यः कामो देवता घातिकर्माणं कन्यायाः शरीरहृत्तने विनिधेयाः। ओम कामदेवते नाममन्वामासि समानयामु सुरा तेषवत् परमन्नजन्माम्रे तपसा निर्गितोऽसि स्वाहा।”

मन्त्रका अर्थ इस तरह है—“कामदेव, तुम्हारा नाम समो जानते हैं, तुम्हारा नाम मद् है, तुमसे हो मानसिक मत्सता उत्पन्न होती है, इसीलिये उसका नाम मद् है। तुम अब इसके धरको सम्भक्कृतसे आश्रय कर लो-उसको तुम अपने कब्जेमें करो। हे अग्निदेव ! इस कल्पामें तुम्हारा श्रेष्ठ जन्म हुआ है। तुम तपके लिये ही विधाता द्वारा स्वप्न हुए हो। इत्यादि।

इसके बाद कल्प्याके उपस्थप्लावनका विधान था, उसका मन्त्र इस तरह है—

“इमन्त उपस्थं मधुना ससृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्वितीयम्।
तेन पुनोऽभि ममामि सर्गोन्नयनविरतो रोगो रसाह ॥”

अर्थात् हे ऋषे ! तुम्हारी इन आनन्देश्वरीयों में मधुका लेन किया जाता है, यह प्रजापतिका दूसरा मुच है अर्थात् प्रजा उत्पात्त द्वारा इस इन्द्रिय प्रभावसे अन्न पुष्टांको भी घनीभूत कर सकतो हो। अतएव पतिवशकारिणी तुम पतिशुद्धीके स्वामिनो हो रहो हो। इस तरह मन्त्र द्वारा कल्प्याका उपस्थदेश पटावित करना होता है। उपस्थप्लावनका और एक मन्त्र यह है—

“ॐ अग्ने क्रव्यादमहृण्वन् गुहायाः स्थोणामुरस्थपृषयः।
पुण्यास्तेनाभ्यमहृण्वन् स्थेष्ट्रं स्वष्टं स्वयनदायधु साहा ॥”

अर्थात् “गिरिगुहायाम्नी प्राचीन ऋषयोनि स्त्रीजातिका आनन्देश्वरीयको आममालमसूक्त अग्नि कहा था और विश्वकर्मा देवताकी इच्छासे उसके संयोगसे पुष्टेन्द्रियसे प्रादुर्भूत शुक (घोष्य) को होमीय घृत कहा था। हे कल्प्य ! यह घृत तुम्हारी उपस्थानिमें पति द्वारा संस्थापित हो।”

यह सहज ही समझमें आता है, कि इस घटनाका उद्देश्य पवित्र और महान् था। यद्यपि विवाह पद्धतिमें इसका विधान है, फिर भी देशमें इसके अनुमार कार्य होता दिखाई नहीं देता। हो सकता है, कि इस विद्याल भारतमें कहीं पर यह प्रथा प्रचलित हो। विवाहके दिन दूसरे पहरमें कन्याको तेल दृष्टी आदिसे स्नान करानेकी प्रथा इन समय भी देखी जाती है। जातिधर्ममें भी स्नानकी पूरी व्यवस्था है, किंतु जातिधर्ममें ही यह मंत्रमयी प्रक्रिया इस समय इस देशमें कहीं भी दिखाई नहीं देती।

नववल्-धारण ।

उपस्थप्लावनके अन्तमें स्नान करानेके बाद कन्याको नये वल् धारण करनेकी व्यवस्था आज भी देखी जाती है। सामधेदके मंत्रग्राहणमें विवाहके लिये तट्यार कन्याको नया वल् धारण करानेका नियम और मंत्र लिखा है, यथा,—“या आहृण्वन् नवपन, या अतन्यत याश्वदेव्यो अग्नामभिता ततश्च, तास्ता देव्यो जरसा संव्यथ्वायुधमतीर्षं परिधत्सुवासा ॥”

अर्थात् जिन देवियोंने इस वल्के सूत तट्यार किये हैं, जिन देवियोंने इसको घुना है, जिन देवियोंने इसको इस आकारमें फैलाया है और जिन देवियोंने इसके दोनों किनारोंका झालर तट्यार किया है, यही देवियाँ तुमको वृदावस्था तक उतसाहके साथ वल् पहनाती रहें। हे आयुधमनि ! यह वल् पानो ॥

‘हे वल् युननेवाली स्त्रियाँ ! सौ वर्ष जीनेवाली इस कन्याके लिये मदा वल् जुटाना और आग्ने वाद देना जिससे इसकी आयु बढ़े, हे आर्षाग्ने ! तुम तेजस्विनी हो कर जीओ और सब ऐश्वर्योंका भोग करो।”

विवाहपद्धतिमें इस समय इस मंत्रका उल्लेख नहीं है।

गद्योपस्थापन ।

प्राचीन समयमें हिंदुओंके विवाहमें गद्योपस्थापन नामकी और एक प्रथा थी अर्थात् विवाहके समय एक गो बांधी जाती थी। यह प्रथा इस समय काठियावाड़में दिखाई नहीं देती; किंतु विवाहपद्धतिमें इसका मंत्र है, यह मंत्र इस समय भी पढ़ा जाता है, इसका निर्णय करना कठिन है, कि किस समय यह प्रथा आरम्भ हुई और कब यह प्रथा विदा हो गई। यह भी मालूम नहीं होता, कि प्रथा न रहने पर भी मंत्र इस समय क्यों उसमें अनर्थाक भरा पड़ा है।

सामवेदीय विवाह पद्धतिके प्ररम्भमें ही लिखा है—“हृतस्नानाः कृतवृद्धिधाद्यः सम्प्रदाता शुमलन्

* इस देशके बड़े घरानेकी स्त्रियाँ पहले हृत कान कर वल् सुनती थीं, इन मन्त्रसे इका स्वष्ट प्रमाण मिलता है। वल् सुनना उच समय केवल जोशैको ही काम न था।

समये सम्प्रदानशालायां उत्तरतः खोग्रीं चद्रुधरा त्रिष्ट-
रादिकं सज्जोहोत्य पश्चिमाभिमुखे उपविष्टस्तिष्ठेत् ॥'

अर्थात् कन्यादाता दिनमें नान्द'सुबध्राद् कर शुभ
लम्के समय कन्या-सम्प्रदान-शालामें एक गाय बाँध
रखे और त्रिष्ट आदि सजा कर पश्चिमको ओर मुँह
कर बैठे। इसके बाद वरका चरण तथा पूजा हो जाने
पर उसे भीतर घरमें भेजे तिससे स्त्रियां मङ्गलाचरण
कर सकें। आपसमें मुखन्मित्रिकाकी देखा देखी होनेके
बाद वर सम्प्रदानशालामें आये। इसके बाद कन्या-
दाता कृत्वाञ्जलि भावसे वरको लक्ष्य कर गवोपस्थापन-
का निर्मालबिन्दु मन्त्र पाठ करे—

"प्रजापतिर्ऋषिः सुष्टुप् छन्दोऽर्हणीया गोर्देवता
गवोपस्थने विनियोगः। ॐ अर्हणा पुत्रवाससा
धेनुमवद् यमे सा नः पयस्वती दुधामुत्तरामुत्तरां
समाम् ॥"

अर्थात् हे पुत्रको तरह आदरणीय अचिरप्रसूता
सवस्सा उत्तरोत्तर वर्षमें भी दूध देनेमें समर्थ (वस्स
रहित दूदा या रोहिणी नहा) यह गाय तुम्हारी पूजाके
लिये वस्त्रके साथ खड़ी हुई है। यमदेवताके कार्या-
क्षेत्रमें उपस्थित होनेके लिये अर्थात् जन्मान्तर परिग्रहण-
के लिये प्रस्तुत है।

गुणविष्णुक भावमें यद्यदि किसी किसी शश्वका
अन्यरूप अर्थ दिखाई देता है, किन्तु मूठ विषयमें जरा
भी फर्क नहीं अर्थात् इसमें जरा भी सन्देह नहीं,
कि गाय वरके श्री.समाजनके उद्देश्यसे बध करनेके लिये
खड़ी की जाती थी। गोमलगृह्यसूत्रमें (४।१०।३)
दिखाई देता है, कि आचार्य, ऋत्विक्, स्नातिक,
राजा, विवाह वर और प्रिय आतिथियोंके आने पर उनके
भोजनके लिये उनके सामने घरकी सुलक्षणा दुग्धवती
सवस्सा गाय मारी जाती थी। कन्यादानके पहले ही
कन्याकर्त्ता विषय वरके नेत्रोंके सामने इस तरहकी
सुलक्षणा गाय खड़ी कर उसी जीममें लोभ पैदा कर
अपना निष्ठाचार दिखलाता था। यजुर्वेदीय विवाह-
पद्धतिमें दिखाई देता है, कि कन्यादान करनेवाला केवल
ऋत्विक् भद्रतासे ही सन्तुष्ट नहीं होता था, वरं गाय
मारनेके लिये हाथमें तलवार ले कर खड़ा हो जाता था।

सामवेदीय विवाहमण्डपमें वैसे भीषण दृश्यका
विधान दिखाई नहीं देता। कन्यादान हो जाने पर
नाई 'गीर्गी' ध्वनि कर दामादको गौरी बात स्मरण
करा देता था; किन्तु सुगीत और सुबोध बालक
दामाद गम्भीर भावसे कहता था—

"सुञ्ज गां वरुणपाशात् द्विपन्तं मेऽमधेदि। त जये-
ऽसुग्य, चोभयोः कतस्त्रज, गामरु तृणानि, भिवत्सुः प्र॥"

अर्थात् हे नाई! वरुण देवताके पाससे गायको
विमुक्त करो और ऐसी कहना करो, कि उसी पाशसे
मेरे प्रति विद्वेषा व्यक्तिके बांधा जा रहा है। ऐसी
कहना करो, कि पाशमें बंधे मेरे उस शत्रुको और
यजमानके शत्रुको मार रहे हो, गायको छोड़ दे, वह
तृणमक्षण करे और जल पीये। इस आदेश पर नाई
गायको छोड़ देता था। उस समय सुपण्डितकी तरह
दामाद कहता था—

जो गोजाति रुद्रोंकी जननी, यसुओंकी
दुहिता, आदित्योंकी पहन और अमृतरूपी सर्वोत्तम
दूधकी खान है, तुम लोग ऐसी निरपराधा अवध्या
गायका मत मारना।

दामादके पण्डितजनोचित साधु शक्यसे विवाह-
सभामें गौवधजनित भीषण दृश्य उपस्थित नहीं होता
था। निरपराधा गाय प्राण ले कर चहाँसे चली जाती
थी।

जब आचार्य ऋत्विक्, प्रिय यनिय और विवाह
वरकी अम्पर्यनाके लिये अपनी गोशालाकी प्रधान गो
मारनेकी असम्भव रीति प्रचलित थी, तब विवाहपद्धतिमें
इस तरहका पाठ रहना स्वाभाविक ही है। किन्तु जब
अम्पर्यनाकी यह दूषित रीति विद्वुल भीरण पाप होने-
से उठा दी गई है, तब इस मतका विवाहपद्धतिमें रखने-
की क्या आवश्यकता है? जब विवाहमण्डपमें गाय ले
आनेकी प्रथा नहीं, गाय बाँधनेका नियम नहीं, तब
"ना.पतेन गीर्गी" ध्वनि मरा पड़ा है? इस तरहका
प्रयोजन और निरर्थक प्राचीन प्रथाका प्रवाद-संरक्षण
प्रयास ऋग्वेदमें भी दिखाई देता है। हम सबसे पहले
विवाहार्थ प्रस्तुता कन्याके पहननेके निमित्त मिले विषय
आदि युक्त लिखण्ड फटे चर्खोंकी बातका उल्लेख कर

सुके हैं। यह प्रथा इस समय तोड़ दी गई है। किंतु सुवैदिक समाज उस बहुत प्राचीन प्रथाको छोड़ नहीं सका है। कोई भी प्रथा जब किसी भी समाजमें जड़ पकड़ लेती है, तब उसका उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है। विवाहकी कई प्राचीन प्रथाओंकी आलेखना करने पर यह स्पष्ट ही विदित होता है।

कन्यादान।

हिंदू विवाहपद्धतिका प्रधान काम कन्यादान है। शास्त्रमें कन्यादानकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई है।

शास्त्रीय धर्मशास्त्रोंमें कन्यादानका प्रभूत महत्त्व दिखलाई देता है। इन सब धर्मशास्त्रोंमें ब्रह्मविवाहकी प्रधानता दिखलाई गई है। घरकी सुला कर यथावृत्ति उसकी पूजा कर कन्यादान करना ब्रह्मविवाहका लक्षण है। विवाह पद्धतिमें इस लक्षणके अनुसार ही कन्यादानका विधान लिखा है। कन्यादानका पहला अङ्ग वराहार्चन है। कन्यादान करनेवाले पाचवखादि द्वारा घरकी पूजा किया करते हैं। इस समय पतिपुत्रवती नारी वरके दाहने हाथके ऊपर कन्याका दाहना हाथ रख कर मङ्गलान्तरके साथ दोनोंके हाथ कुण्डसे बांध देती थी। इस समय भी हाथ बांधनेकी प्रथा है सहो, किंतु इस देशमें पतिपुत्रवती नारी द्वारा यह कार्य नहीं होता। पुरहित ही दोनों हाथोंको बांध देते हैं। यह कार्य एक सुन्दर मंत्र पढ़ कर किया जाता है—

“ओ ब्रह्मा विष्णुश्च ब्रह्मश्च चन्द्रार्कशिवायुषो।

ते मवाप्रन्थनिलयं दधतां शश्वतोः समाः ॥”

सामवेदान्तगतं कुथूमो शाखाके अंतर्भूक प्राणियोंके विवाहमें ही यह मन्त्र पठनाय है।

इसके बाद दोनों ओरसे शोलाधार होता है। इसके बाद घरके प्रतिनामद, पितामद, पिता और उसका नाम और दूसरी ओर कन्याके प्रतिनामद, पितामद, पिता और कन्याका नाम ले कर यह कार्य किया जाता है। तीन बार नामोंका उल्लेख किया जाता है। वर स्वस्तिक कह कर कन्याको प्रहण करता है। यही कन्यादानकी विधि है।

कन्यादानकी विधि तीनों वेदमें एक तरहकी होने पर भी कार्यपद्धतिमें बहुत अठगाय है। ऋग्वेदमें भी

कन्यादानके पूर्व वरकी पूजा करनेका विधान है। मधुपर्कके बाद ही ऋग्वेद विवाहपद्धतिमें कन्यादान करने का नियम दिखलाई देना है। किंतु ऋग्वेद विवाहपद्धतिका एक विशेष नियम यह है, कि कन्यादानके पूर्वक्षणमें हवनका अनुष्ठान किया जाता है। इसका सङ्कल्प यह है—

“धर्मप्रजा सम्पत्यर्थं पाषाणदद्यां करिष्ये ॥”

यह कह कर घर सङ्कटा कर हवनके लिये अग्निस्थापन करता है। पीछे वर कन्याका हाथ बांध कर पूर्वोक्त विधिसे कन्यादान किया जाता है।

यजुर्वेदकी विवाह पद्धतिमें कुश द्वारा हाथ बांधनेका नियम नहीं। किंतु दानके पूर्वक्षणमें होमान्तिस्थापनका विधान है। वैदिक मन्त्रमें कन्याको वर पहनानेका नियम है। इसके बाद घरकन्यामें जब परस्पर मुग्न देखा देओ होता है, उस समय एक श्लोक पढ़ना पड़ता है। यह यह है—

“ॐ समजन्तु विश्वे देवा समो हृदयानि नो।

सम्यात्तरिषा सन्धाता समुद्रेऽपि दधातु नो ॥”

(१० ग० ८५ सू० ५७)

इसका अर्थ यह है, कि सब देवता हम दोनोंके हृदयको मिला दें, चायु धाता चादेयो हम दोनोंको मिला दें। इसके बाद ही वर कन्याका गठवन्धन होता है। तदनन्तर वर और कन्याकी ओरसे मोतोधार होने लगता है। कामस्तुति पढ़नेके बाद कोई ब्राह्मण घरके हाथ पर कन्याका हाथ धर कर सायलोका पाठ करता है। इसके बाद कुण्डसे दोनोंका हाथ बांध दिया जाता है। पीछे दक्षिणाका वाक्योच्चारण होता है। यह कार्य हो जाने पर वरकन्याका बांधा हाथ खोल दिया जाता है। हाथ पर हाथ रख कन्यादानको जो पद्धति है, यह बहुत ही उत्तम है। इसीको बांध घरना या ‘पाणिप्रक्षण’ कहते हैं। यही विवाहकी पहली विधि है।

सामवेदो और ऋग्वेदो विवाहपद्धतिमें हस्तबंधनके पहले ही रामस्तुति पढ़ी जाती है। इसका मंत्र यह है—

“ॐ क इष्टं कस्मा नदात् कामः कामायादात् कामो

दाना कामः प्रतिप्राहोता कामः समुद्रमगधिश्च । कामेन
त्यं प्रतिपृष्टुं णामि कामैतत्से ॥”

यइ कामस्तुति विवेदोय विवाह-पद्धतिमें ही दिखाई
देती है ।

गाँठ बन्धन ।

कन्यादानका दूसरा कार्य गाँठबंधन है । साम-
वेदीय विवाहमें भी घर और कन्याका गाँठबंधन होता
है । इनको प्रचिबधन या गाँठबंधन कहते हैं । यजुर्वे-
दोय गाँठबंधनका मंत्र पहले ही लिखा जा चुका है ।

पतिके प्रति नवोद्दाहा अनुगम दृढ़ करनेके लिये
इन मंत्रोंका पाठ किया जाता था । इन मंत्रोंके कन्या-
के प्रति उपदेश दिये गये हैं । इस उपदेशमें जिन सब
पेतिहासिक पद्धिप्रता सुगन्धियोंका नामोल्लेख किया
गया है, उन्हीं सब प्रतप्रता देवियोंका नामोच्चारण
मङ्गलजनक समझा जाता था । इस तरह कन्यादानकी
विधि कर पाणिप्रदण संस्कार किया जाता था ।

विवाह और पाणिप्रदण ।

पाणिप्रदणसंस्कार होममूठक है । वैदिक मन्त्रमें
होम करके पाणिप्रदण संस्कार सम्पन्न होता है । पाणि-
प्रदण मंत्र जब तक पढ़ा नहीं जाता, तब तक विवाह
सिद्ध नहीं होती । हम इस समय विवाह, उद्दाह और
पाणिप्रदण शब्दोंको एक पर्यायके अंतर्गत मान कर
प्यवहार करते हैं । परन्तुनः विवाह या उद्दाह और
पाणिप्रदण एकार्थबोधक नहीं । रघुनन्दनके उद्दाह-
तत्त्वमें लिखा है—

“भाष्यार्थत्वसम्पादकप्रदणम्-विवाहाः ॥”

अर्थात् विष्णु आदिके वचनानुसार भाष्यार्थत्व सम्पादक
प्रदणका विवाह कहते हैं । विवाहकर्त्ताके जो हान होनेसे
कन्याका पत्नीत्व निश्चय होता है, वह हान ही विवाह
है । इसके सम्बंधमें स्मार्त्त रघुनन्दनने और भी सूक्ष्म
विचार कर अंतमें कहा है, कि ज्ञान विशेष हो विवाह
है । किंतु भाष्यार्थत्व सम्पादक पद केवल इस ज्ञानके
विशिष्ट परिचालकमात्र है । कुछ लोग कहते हैं, कि
कन्यादान ही विवाह है ।

मनु याज्ञवल्क्यने ब्राह्म-विवाहका जो लक्षण कहे
है, उनमें दान ही विवाह मालूम होता है । किन्तु इस

दानपद्धते ही प्रदण भी सम्भन्ना चाहिये । अतएव
भाष्यार्थत्व-सम्पादक प्रदण ही विवाह है । कन्यादाता
जो कन्यादान करते हैं और घर जब कन्याको भाष्यार्थ-
रूपमें प्रदण करता है, तभी विवाह सम्पन्न हो जाता है ।
किंतु तब भी जायात्व सिद्ध नहीं होता और न पाणि-
प्रदण ही सिद्ध होता है । हरिवंशमें विशङ्कु, उपाख्यान-
में लिखा है—

‘उस मूर्खने दूसरेकी विवाहिता भाष्यार्थको अपहरण
कर पाणिप्रदणके मंत्रोंको पढ़नेमें विघ्न उपस्थित किया
है ।’ इस वाक्यमें पाणिप्रदणके मंत्र पढ़नेके पहले
अपहृता कन्याको “छुनाह्याहा” अर्थात् विवाहिता कहा
गया है । मनुका कथा है—

“पाणिप्रदणसंस्कारः सवर्णासुपदिश्यते ।

असवर्णाः एवमं श्रेयो विधयद्वादकर्मण ॥”

अर्थात् यह पाणिप्रदणसंस्कार बंधल सवर्णा कन्या-
के लिये कहा गया है । असवर्णोंके साथ विवाह हो
सकता है, किन्तु उसके साथ पाणिप्रदणकी कार्यायली
नहीं हो सकती ।

पाणिप्रदण मन्त्र ।

रत्नाकरका कहना है, कि पाणिप्रदण विवाहका
अङ्गीभूत संस्कारविशेष है और पाणिप्रदणके मंत्र
विवाह कर्माङ्गीभूत हैं । पाणिप्रदणकी प्रथा बहुत पुरानी
है । ऋग्वेदके समय भी पाणिप्रदणकी प्रथा प्रचलित
थी । पाणिप्रदणके जो मंत्र सामवेदीय मंत्रग्रहणमें
और सामवेदीय विवाह-पद्धतिमें लिखे हैं, वे ऋग्वेदसे
ही लिये गये हैं । घर अपने बाँधे हाथसे धृक्का हाथ
और उसकी उँगलियाँ दाहने हाथसे पकड़ कर निम-
लिखित मंत्र पढ़ने हैं—

(१) “ओम् शुभ्नामि ते सौमगत्वाय हस्तं

मया पत्या जर्ददार्थशासः ।

भगो अर्थमा सविता पुरधीर्मह्यं

स्वाहुर्गार्दपत्याय देवाम ॥”

(१० म० ८५ सू० २६)

अर्थात् हे कन्ये ! अर्थमा भग सविता और
पुरधीने तुम्हे गार्दस्थजीवनके कार्योंका सम्पादन
करनेके लिये मुझको सतर्पण किया है । तुम मेरे साथ

आजीवन रह कर गार्हस्थ्य धर्मका पालन करो। मैं इसी सीमाव्यक्त लिये तुम्हारा पाणिप्रदण कर रहा हूँ।

(२) "ओं अघोरनक्षुरपतिद्वन्द्वे वि
जिया पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
धीरसुहृद्देषकामा स्थाना शं
नो भव द्विपदे शं चतुस्पदे ॥"

(१० म० ८५ सु० ४४)

अर्थात् हे बधू ! अफोघनेत्रा और अपतिद्वन्द्वे बनें, पशुभोंकी हितकारिणी, सहृदया बुद्धिमती बनें, तुम धीरप्रसविनी (और जीवित पुत्रप्रसविनी) बनें, देवकामा हो, मेरे और मेरे बन्धुओं तथा पशुभोंकी कल्याणकारिणी बनें।

(३) "ओं आ नः प्रजां जयतु प्रजापति-
राजरसाय समनपत्रर्धमा।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश
शं नो भव द्विपदे शं चतुस्पदे ॥"

(श्रृक् १० ८५।४३)

हे कश्ये ! प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा हम लोगोंको पुत्र पीलादि प्रदान करे, जीवन भर हम लोगोंको मेलसे रखे। हे बधू ! तुम उत्तम कल्याणकारिणी बन कर मेरे धर्ममें प्रवेश करो। मेरे आत्मीयों तथा पशुभोंके प्रति नङ्गलकारिणी बनें।

(४) "ओं इमां स्थमिन्द्र मोदयः सुपुत्रां सुभगां ह्यु।
दशास्यां पुत्राणां धेदि पतिमेकादशं ह्येष ॥"

(१०।८५।४५)

हे इन्द्र ! तुम इस बधूको पुत्रवती और सौभाग्यवती बनाओ। इसके गर्भमें दश पुत्र दे। इस तरह दश पुत्र और एक मैं कुल ग्यारह इसका रक्षक होऊँ।

(५) "ओं सप्रःसो श्युरो भव सप्रःसो श्यध्र्वां भव।
नानन्दार सप्रःसां भव सप्रःसां अधि देशु ॥"

(१०।८५।४६)

• सामवेदीय 'मन्त्रब्राह्मण'में और विवाहपद्धतिमें यही "जीवसः" नामका और भी एक अतिरिक्त पद दिखाई देता है। यजुर्वेदीय विवाह-मन्त्रमें 'जीवस' कन्ध नहीं है।

हे बधू ! तुम श्यशुरकी, सासकी, मनदकी और देवरादिकी निकटवासिनी बनें।

(६) "ओं मम प्रते ते हृदयं दद्यातु मम विस्रमनुचिस्त्रनेऽस्तु।
मम वाचा मेकमना ज्युषस्व वृहस्पतित्वा नियतवतु मष्टाम् ॥"

(मन्त्रब्राह्मण)

हे कश्ये ! अपना हृदय मेरे कर्ममें अर्पण करो। तुम्हारा विस्र मेरे विस्रके समान हो जाये अर्थात् हम लोगोंका हृदय एक हो। तुम अनश्वमनी हो कर मेरी आशाओंका पालन करो। देवताओंके गुण वृहस्पति तुम्हारे विस्रके मेरे प्रति विशेषरूपसे नियुक्त करें।

श्रावैदके दशममण्डलके ८५ सूक्तकी अन्तिम श्रृक् का भी टोक ऐसा ही अर्थ होता है। यह श्रृक् यजुर्वेदीय विवाहको गांङ-बन्धन प्रक्रियामें उल्लेख हुई है।

समञ्जतु विश्वदेवा इत्यादि ४७ संख्यक श्रृक् देखो। सतपदी गमन।

श्रावैदीय और यजुर्वेदीय विवाहपद्धतिमें भी पाणिप्रदणकाट्य और उसके लिये मन्त्र भी हैं। विष्णु सामवेदीय विवाहपद्धतिमें जितने मंत्र हैं, उतने मंत्रोंका उल्लेख नहीं है। पाणिप्रदणमंत्रका पहला मंत्र अर्थात् 'गृन्नामि ते सीमगत्वाय हस्तम्' यह मंत्र प्रत्येक वेदीय विवाहपद्धतिमें दिखाई देता है। श्रावैद और यजुर्वेदके पाणिप्रदणमंत्रोंमें केवल इस मंत्रका छोड़ कर सामवेदीय पाणिप्रदणका और एक भी मंत्र दिखाई नहीं देता। किन्तु पाणिप्रदणक मंत्र पढ़नेसे भी विवाह स्रतम नहीं होता। सप्तपद्गमनान्तर ही विवाह सिद्ध होता है।

मनुने लिखा है—पाणिप्रदणके सभी मंत्र दारव्यके अर्थव्यभिचारो विह्वस्वरूप हैं। विद्वानोंको समझना चाहिये, कि सात पैर चलनेमें सातवें पैरके बाद ही इन मंत्रोंक निष्ठा हांस्यापित हो गई। अर्थात् सात पैर चलनेके बाद ही विवाह सिद्ध हो जाता है।

लघुहारीतमें लिखा है—पाणिप्रदणकाट्य समाप्त हो जानेसे ही जायाव्य सिद्ध नहीं हो जाता; सात पैर चलनेके बाद ही जायाव्य सिद्ध होता है। जाया हो वास्तवमें धर्मपत्नी है।

मनुने लिखा है—पति की घोटकल्पमें पत्नीके गर्भमें प्रवेश कर गर्भरूपमें व्यवस्थान करता है और फिर

जन्मप्रदण करता है। इसीलिये पत्नी जाया कही जाती है।

श्रुतिका भी यह वचन है—“आत्मा वै पुत्रनामामि” अतएव जायात्वमिच्छि हो विवाहका मुख्य अङ्ग है। सात पैर न चलने तक जायात्व सिद्ध नहीं होता।

विवाह-पङ्कतिमें होमके समय सप्तपदीगमनका जो कार्यानुष्ठान होता है, मन्त्रोंके साथ उसका वर्णन किया गया है। यह इस तौर है—

वरके पाये सामने पश्चिमसे पूर्वीकी ओर छोटे छोटे सात मण्डल अङ्कन किये जाते हैं। उन्हीं मण्डलों पर वर मात वार मन्त्र पढ़ कर बधूका पैर रखवाता है।

मन्त्र यह है—

(१) “ओं एकमिषेविणुस्त्वा नयतु।”

अर्थात् हे कन्ये! अर्थलामके लिये विष्णु तुम्हारा एक पैर उठावे।

(२) “ओं द्वे उर्जोविष्णुस्त्वा नयतु।”

धनलामके लिये विष्णु तुम्हारा दूसरा पैर उठावे।

(३) “ओं त्रिणि वनाय विष्णुस्त्वा नयतु।”

कर्म-यज्ञके निमित्त तुम्हारा तीसरा पैर उठावे।

(४) “ओं चत्वारिमासो भयाय विष्णुस्त्वा नयतु।”

सौख्य प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा चौथा पैर उठावे।

(५) “ओं पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।”

पशु-प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा पांचवां पैर उठावे।

(६) “ओं यन्नाय ऋषेभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।”

धन-प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा छठा पैर उठावे।

(७) “ओं सप्त मत्स्यो विष्णुस्त्वा नयतु।”

ऋत्विक् प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा सातवां पैर उठावे।

इसके बाद वर कन्याको सम्बोधन कर कहता है—

“ओं सखा सप्तपदी भयं सद्यन्ते मयेयं सद्यन्ते मां योषाः सद्यन्ते मायोःपत्यः।”

अर्थात् हे कन्ये! तुम मेरी सहचारिणी बनो, मैं तुम्हारा सखा हुआ। इमका ध्यान रखना, कि मेरे साथ तुम्हारा जो सौख्य स्थापित हुआ, यह कोई खोता हुआ

सके। सुखकारिणी स्त्रियोंके साथ तुम्हारा सख्य स्थापित है।

यजुर्विवाहमें सप्तपदीगमनमें केवल यह अन्तिम प्रार्थना दिखाई नहीं देती। सिधा इसके सप्तपद गमनमन्त्रोंमें कोई भी पार्थक्य नहीं दिखाई पड़ता। ऋग्वेदीय विवाहमें भी उक्त प्रार्थनामन्त्र दिखाई नहीं देता। किन्तु सप्तपद गमनमन्त्रमें पार्थक्य है। यथा—

(१) “ओं इष एकपदी भव, सा मामनुव्रता भव, पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्तेःसम्पु जरदपरा।”

(२) “ओं ऊर्जो द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव” इत्यादि।

मन्त्रमें पार्थक्य रहने पर भी जिस उद्देश्यसे सप्तपदी गमन किया जाता है, उसके मूल उद्देश्यमें कोई भी पार्थक्य नहीं है। ऋग्वेदीय सप्तपदीगमनमें भी उन्हीं अर्थलाम, धनलाम आदि उद्देश्यसे ही सप्तपद गमन करने का विधान है। किन्तु इसके साथके प्रत्येक पदमें ही बधूका पत्निकी अनुव्रता होनेका और पुत्रादि लामका उपदेश है। और एक पार्थक्य है, कि ऋग्वेदीय विवाहमें सप्तपदी गमनके लिये सामवेदीय और यजुर्वेदीय प्रथाकी तरह छोटी मण्डलिका अङ्कन नहीं की जाती। सात मूठ चावल रख कर उस पर बधूका पैर क्रमशः परिचायित कर उक्त मन्त्रसे सप्तपदीगमन व्यापार सम्पन्न होता है। यह कहना चाहिये है, कि द्विविवाहमें यह सप्तपदीगमन विवाहकार्यान्ति मुख्य अङ्ग है। यह कार्यान्ति जब तक सम्पन्न नहीं होता, तब तक विवाह सिद्ध नहीं होता।

पितृगोत्रनिवृत्ति।

सप्तपदी गमनके बाद ही कन्याकी पितृगोत्रनिवृत्ति होती है और स्वामिगोत्रको प्राप्त होती है।

लघुःपारोतमें लिखा है—सप्तपदीगमनके बाद ही पितृगोत्रसे भ्रष्ट होती है। इसके बाद उसकी सतिष्ठकारि-क्रिया पतिगोत्रमें भी जायेगी।

पुद्गलपति का कहना है—पाणिग्रहणके समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे मन्त्र पितृगोत्रको अग्रहरण करनेवाले हैं। इससे बादसे पतिके गोत्रका उल्लेख करके पिण्डदान आदि क्रिया करनी होगी।

गोत्रमिलका कहना है, कि वैवाहिक मन्त्र-संस्कृतात्ती

अपने गोलका उल्टेख कर पतिको अभिवादन करेगी। गोभिलके इस वाक्यकी व्याख्या कर मठनारायणने लिखा है—सप्तपदीगमनके बाद नवोद्वा पत्नी पतिको जब अभिवादन करेगी, तब पतिके गोलका उल्टेख कर अभिवादन करेगी। पतिके अभिवादनसे सामवेदीय विवाहकी परिममाप्ति होती है।

बधूका पतिगृहमें प्रवेश।

सामवेदीय विवाह-पद्धतिमें लिखा है—

“ततो दिनान्तरे रथारूढो बधूः कृत्वा वरः स्वयम् नयेत् ॥”

विवाहके दिनके दूसरे दिन पति बधूको रथ पर चढ़ा कर अपने घर ले जाये।

इसका मंत्र यह है—

“ॐ प्रजापतिर्ऋषिः ऋष्युच्छ्रुतः कन्या देवता फलारेहणे विनियोगः। ॐ सुकिंशुकं शास्त्रलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुयुतं सुचक्रं। आ शैव सूर्य्यं अमृतस्य लोकं स्थानं पत्ये कृणुष्व।” (ऋक् १०।८५।२०)

सायणके भाष्यानुसार इसका अर्थ यह है, कि ‘हे सूर्य (यहां कहो, कि हे बधू), तुम्हारे पतिके घर जानेका रथ सुन्दर पलास तथा शासनकी (साखू) वृक्षकी लकड़ियोंका बना है। इसकी मूर्ति बहुत उत्तम और सुवर्णकी तरह प्रभाविशिष्ट और उत्तम रूपसे घिरो है। उसकी स्त्री बहुत सुन्दरी है, यह देनेका वासस्थान है। इस समय तुम पतिके घर उपयुक्त उपद्वीजन ले जाओ।

इस ऋकपाठसे मालूम होता है, कि बहुत पुराने समयसे ही इस देशमें रथका व्यवहार होता आ रहा है। बधू जिन रथ पर जातो था, वह रथ अकड़ों तरह ढका हुआ होता था। उद्देश्य यह था, कि बधूको कोई देव नहीं ले या पथकी धूलि बधू पर न पड़ सक। पिताके घरसे पतिके घर जाते समय बधूको उपद्वीजन ले जानेकी प्रथा बहुत दिनकी है अर्थात् ऋग्वेदकालमें चली आती है। इस समय भी यह प्रथा दिखाई देती है। ऋग्वेदके दशमं, अंडलके ८५वें सूक्तमें और भी कितनी ऋक्तमें बधूके पतिगृहमें जाते समय रथ और उपद्वीजनका उल्लेख है।

राहमें किसो तरहका विघ्न उपस्थित न होनेके लिये भी कितने ही मंत्र दिखाई देते हैं। जैसे—

“ॐ मा भिद्वन् परिपन्थिनो य आनोदन्ति दम्पती सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्राम्भरतयः।” (शुक् १०।८।३२)
गुणविष्णुके भाष्यानुसार इसका अनुवाद इस तरह है—

अर्थात् जो जोर डाकू आदि रास्तेमें पथिकोंकी लूटा पाटा या बटपारो किया करते हैं, ये इस दम्पतीको देव न सकें। यह दम्पती मङ्गलजनक पथमें रथ हांक कर दुर्गम पथको पार करे, शत्रु दूर हों। इसके पहलेकी ऋकका भी ऐसा ही अर्थ है। इन दो ऋक मन्त्रों द्वारा प्राचीन काश्चमें पथमें चोर डाकूओं द्वारा होनेवाले उपद्रवों तथा पथकी कठिनाइयोंका पचिचय मिलता है।

ऋग्वेदीय विवाह-पद्धतिमें रथारोहणका जो मन्त्र है, यह इस तरह है—

“ओ पूया त्वेतो नपतु हस्तगृह्याभिन त्वा प्राचहतां रथेन। गृहान्गच्छ गृहपत्ता यथासो वाशिना त्व विदयमा वदासि।”

(१० मण्डल ८५ सूक्त २६ ऋक्)

अर्थात् पूया तुम्हारा हाथ पकड़ कर यहांसे ले जाये, अग्निद्वय रथ चला कर तुमको ले जाये, घरमें जा कर तुम गृहिणी बनो। समाजकी उच्च श्रेणियोंके सम्पन्न लोगोंने विवाहमें जो राति प्रचलित थी, वैदिक मन्त्रमें उसीका आभास मिलता है।

इसके बाद जो मन्त्र पढ़ कर बधूको घरमें प्रवेश कराना होता है, वह बहुत सारगर्भ है—

“ओ इदं प्रियं प्रजापते ससृज्य तामस्मिन् गृधे गाहंप त्प्याय जागृहि। पत्ना पत्या तन्वं सं स्तृत्वाधा त्रिदयमा वदाथः।” (१० मण्डल ८५ सूक्त २७ शुक्)

इसका अर्थ यह है, कि इस स्थानमें तुम्हारे सन्तान सन्तति पैदा हों और उनमें तुम्हारी प्रीति हो। इस गृहमें रह कर तुम सावधानीसे गृहकार्योंका सम्पादन करो। पतिके साथ अपनी देह और मनको मिला कर मरणपर्यन्त गाहं स्थाय-धर्मका पालन करो।

नई बधूको सुगृहिणीमें परिणत करनेके लिये विवाहके वैदिक मन्त्रोंमें इस तरहके बहुतरे उपदेश दिये गये हैं। हिन्दू पत्नी दासी नहीं है, वह केवल विलासकी सामग्री नहीं, वह है सद्धारमणी और सच्ची गृहणी

उत्सवप्रदण करता है। इसीलिये पत्नी जाया कहो जानी है।

श्रुतिका भी यह गचन है—'अन्तमा वै पुत्रनग्रामि' अन्तपय जायात्परमिदि हो विवाहना मुख्य अङ्ग है। सात पैर न चलनेतक जायात्परमिदि नहीं होता।

विवाह-पदतिमें होमके समय सप्तपदीगमनका जो काटपानुष्ठान होता है, मन्त्रोंके साथ उसका वर्णन किया गया है। यह इस रीति है—

घरके पाये सामने परिगमने पूर्वकी ओर छोटे छोटे सात मण्डल अङ्कित किये जाते हैं। उन्हीं मण्डलों पर घर सात बार मन्त्र पढ़ कर बधूका पैर रखवाता है।

मन्त्र यह है—

(१) 'ओं एकमिषेविष्णुस्त्वा नयतु।'

अर्थात् हे कन्ये! अर्धलाभके लिये विष्णु तुम्हारा एक पैर उठावे।

(२) 'ओं द्वे उज्ज्विष्णुस्त्वा नयतु।'

धनलाभके लिये विष्णु तुम्हारा दूसरा पैर उठावे।

(३) 'ओं त्रीणि घनानि विष्णुस्त्वा नयतु।'

कर्म यज्ञके निमित्त तुम्हारा तोसरा पैर उठावे।

(४) 'ओं चतवारिणामो भगव्य विष्णुस्त्वा नयतु।'

सौख्य प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा चौथा पैर उठावे।

(५) 'ओं पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।'

पशु-प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा पांचवां पैर उठावे।

(६) 'ओं यन्नाय स्वेषाम्य विष्णुस्त्वा नयतु।'

धन प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा छठा पैर उठावे।

(७) 'ओं सप्त सप्तभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु।'

सप्तस्य कृ-प्राप्तिके लिये विष्णु तुम्हारा सातवां पैर उठावे।

इसके बाद घर कन्याको सम्बोधन कर कहता है—

'ॐ सखा सप्तपदी भय मण्डपन्ते गमेयं सषण्णते मा पोषाः सषण्णते मापोषण्यः।'

अर्थात् हे कन्ये! तुम मेरी सहचारिणी बनो, मैं तुम्हारा सखा हुआ। इसका ध्यान रखना, कि मेरे साथ तुम्हारा जो सौख्य स्थापित हुआ, यह कोई रजो तोड़ न

सके। सुखचारिणी स्त्रियोंके साथ तुम्हारा सख्य स्थापित हो।

यजुर्विवाहमें सप्तपदीगमनमें केवल यह अन्तिम प्राचीना दिखाई नहीं देती। सिधा इसके सप्तपद-गमनमन्त्रोंमें कोई भी पार्श्वपद नहीं दिखाई पड़ता। ऋग्वेदीय विवाहमें भी उक्त प्राचीनमन्त्र दिखाई नहीं देता। किन्तु सप्तपद-गमनमन्त्रमें पार्श्वपद है। यथा—

(१) 'ॐ इय एकपदी भय, सा मामनुमता भय, पुत्रान् विन्दावई बहूस्तेःसन्तु जरदृष्टाः।'

(२) 'ॐ ऊज्ज्वं द्विपदी भय सा मामनुमता भय' इत्यादि।

मन्त्रमें पार्श्वपद रहने पर भी जिस उद्देश्यसे सप्तपदी गमन किया जाता है, उसके मूल उद्देश्यमें कोई भी पार्श्वपद नहीं है। ऋग्वेदीय सप्तपदीगमनमें भी उम्मी अर्धलाभ, धनलाभ आदि उद्देश्यसे ही सप्तपद गमन करने का विधान है। किन्तु इसके साथके प्रत्येक पदमें ही बधूका पत्निकी अनुमता होनेका और पुत्रादि लाभका उपदेश है। और एक पार्श्वपद है, कि ऋग्वेदीय विवाहमें सप्तपदी गमनके लिये सामवेदीय और यजुर्वेदीय प्रणाली तब छोटी मण्डलिका अङ्कित नहीं की जाती। सात मूठ चावल रख कर उस पर बधूका पैर क्रमशः परिचारित कर उक्त मन्त्रसे सप्तपदीगमन व्यापार सम्पन्न होता है। यह कहना चाहिये है, कि द्विविवाहमें यह सप्तपदी-गमन विवाहका अन्तिम मुख्य अङ्ग है। यह काटपानुष्ठान सम्पन्न नहीं होता, तब तक विवाह सिद्ध नहीं होता।

वित्तुगोत्रनिर्दिष्ट।

सप्तपदी गमनके बाद ही कन्याकी वित्तुगोत्रनिर्दिष्टि होती है और स्वामिगोत्रको प्राप्त होती है।

लघु-प्राचीनमें लिखा है—सप्तपदीगमनके बाद ही वित्तुगोत्रसे छूट होती है। इसके बाद उसकी सगिण्डकादिक्रिया पतिगोत्रमें भी जायेगी।

गृहस्पर्शिका कहना ? —पाणिग्रहणके समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे मन्त्र वित्तुगोत्रको अग्रहरण करनेवाले हैं। इससे बादसे पतिके गोत्रका उल्लेख करके विण्डदान आदि क्रिया करनेकी होगी।

गोत्रनिर्दिष्ट कहना है, कि वैवाहिक मन्त्र-संस्कृताओं

अपने मोलका उल्लेख कर पतिको अभिवादन करेगी। गोभिलके इस वाक्यकी व्याख्या कर भट्टनारायणने लिखा है—सप्तपदीगमनके बाद नवोद्गा पत्नी पतिको जब अभिवादन करेगी, नव पतिके मोलका उल्लेख कर अभिवादन करेगी। पतिके अभिवादनसे सामवेदीय विवाहकी परिमत्ताति होती है।

वधूका पतिगृहमें प्रवेश।

सामवेदीय विवाह-पद्धतिमें लिखा है—

"तवो दिनान्तो रपाल्दा वधुं कृत्वा वरः स्वयं नयेत् ॥"

विवाहके दिनके दूसरे दिन पति वधूको रथ पर चढ़ा कर अपने घर ले जाये।

इसका मंत्र यह है—

"ॐ प्रजापतिर्ऋषिर्ऋषिर्ऋषिः कन्या देवता फलारेहणे विनियोगः। ॐ सुकिंशुकं शास्त्रलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुयुतं सुवक्रं। आ रोह सूर्य्यं अमृतस्य लोकं स्थानं पत्ये कृणुष्व।" (ऋक् १०।१५२०)

सायणके भाष्यानुसार इसका अर्थ यह है, कि 'हे सूर्य्ये (यहां कही, कि हे वधू), तुम्हारे पतिके घर जानेका रथ सुन्दर पलास तथा शालनकी (साखू) वृक्षकी लकड़ियोंका बना है। इसकी मूर्ति बहुत उत्तम और सुवर्णकी तरह प्रभाविशिष्ट और उत्तम रूपसे विरो है। उसकी स्त्री बहुत सुन्दरी है, यह क्षेत्रोंका वासस्थान है। इस समय तुम पतिके घर उपयुक्त उपड़ी बन ले जाओ।

इस ऋक्पाठसे मालूम होता है, कि बहुत पुराने समयमें ही इस देशमें रथका व्यवहार होना आ रहा है। वधू जिन रथ पर जाती थीं, वह रथ अच्छी तरह ढका हुआ होता था। उद्देश्य यह था, कि वधूको कोई दैव नहीं ले या पथकी धूलि वधू पर न पड़ सक। पिता के घरसे पतिके घर जाते समय वधूको उपड़ी बन ले जानेकी प्रथा बहुत दिनकी है अर्थात् ऋग्वेदकालसे चली आती है। इस समय भी यह प्रथा दिखाई देती है। ऋग्वेदके दशमं बंडलके ८५वें सूक्तमें और भी कितनी ऋक्तमें वधूके पतिगृहमें जाते समय रथ और उपड़ी बनका उल्लेख है।

राहमें किसी तरहका विघ्न उपस्थित न होनेके लिये भी कितने ही मन्त्र दिखाई देते हैं। जैसे—

"ॐ मा त्रिन्दु परिपन्थिनो य आमीदन्ति दम्पती सुगेभिर्दुर्गमतोतामप द्रान्त्वरातवः।" (ऋक् १०।८।३२)
गुणविष्णुके भाष्यानुसार इसका अनुवाद इस तरह है—

अर्थात् जो चोर डाकू आदि रास्तेमें पथिकोंकी लूटा पाटा या बटपारो क्रिया करते हैं, ये इस दम्पतीको देख न सकें। यह दम्पती मङ्गलजनक पथमें रथ हांक कर दुर्गम पथको पार करे, शत्रु दूर हों। इसके पहलेकी ऋक्का भी ऐसा ही अर्थ है। इन दो ऋक् मन्त्रों द्वारा प्राचीन कालमें पथमें चोर डाकूओं द्वारा होनेवाले अपद्रवों तथा पथकी कठिनाइयोंका परिचय मिलता है।

ऋग्वेदीय विवाह-पद्धतिमें रथारोदनका जो मन्त्र है, यह इस तरह है—

"ओ पूषा स्वितो नपतु हस्तगृह्याग्निन रवा प्रावहतां रथेन।
शूदान्गच्छ युषन्तं यथासो वागिनो त्व विद्यमा वदासि।"

(१० मण्डल ८५ सूक्त २६ ऋक्)

अर्थात् पूषा तुम्हारा हाथ पकड़ कर यहांसे ले जाये, अग्निद्वय रथ चला कर तुमको ले जाये, घरमें जा कर तुम गृहिणी बनो। समाजकी उच्च धरेणोके सम्मान लोकोमें विवाहमें जो रीति प्रचलित थी, वैदिक मन्त्रमें उसीका आभास मिलता है।

इसके बाद जो मन्त्र पढ़ कर वधूको घरमें प्रवेश कराना होता है, वह बहुत सारगर्भ है—

"ओ इदं प्रियं प्रजापते समृद्धं तामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। पत्न्या पत्या तर्षवं संतृप्त्वाथा विद्यमा वदाथा।" (१० मण्डल ८५ सूक्त २७ ऋक्)

इसका अर्थ यह है, कि इस स्थानमें तुम्हारे सन्तान सन्तति पैदा हो और उनमें तुम्हारी प्रीति हो। इस गृहमें रह कर तुम सावधानीसे गृहकार्योंका सम्पादन करो। पतिके साथ अपनी वैद और मनको मिला कर मरणपर्यन्त गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करो।

नई वधूको सुगृहिणीमें परिणत करनेके लिये विवाहके वैदिक मन्त्रोंमें इस तरहके बहुतेरे उपदेश दिये गये हैं। हिन्दू पत्नी दासी नहीं है, यह कैवल विलासकी सामग्री नहीं, यह है सहधर्मिणी और सचची गृहणी

बादके स्मृतिकारों तथा गौराणिकोंने स्त्रीधर्मवर्णनमें पतिप्रता पत्नियोंके लिये बहुतेरे उपदेश दिये हैं।

वधू-प्रदर्शन।

जब नई वधू घरमें जाती, तब उसके मुख दिखानेके लिये टोकर पड़ोसकी स्त्रियां बुलाई जाती हैं। वे आकर वधूको देखतीं और दम्पतीको आशीर्वाद देतीं। ये सब मदान्धार और गिष्टाचार अब भी विवाहपद्धति तथा सामाजिक व्यवहारमें दिखाई देते हैं। इस सम्बन्धमें वैदिक मंत्र यह है—

“ॐ सुमहशीरिवं वधूरिमां समेत परथत।

सोमायमस्यै वृत्ता याथास्त्वं विपरेत न ॥”

हे पद्मासियों! आप लोग एकल हो कर आये और हम नई सुमङ्गली वधूको देखें, आशीर्वाद दे और सोमाय्य प्रदान कर अपने अपने घर पधारें।

वधूका मुंह देखनेकी और आशीर्वाद देनेकी पुरानी प्रथा अब भी समाजमें प्रायः उसी तरहसे प्रचलित है, किन्तु हमके लिये बुझानेकी जरूरत नहीं होती। पड़ोसोंकी बुद्धा और युवती स्त्रियां या बालिकायें स्वतः शीकसे देखनेके लिये आती हैं।

देह संस्कार।

वधूको घर लाने पर भी सांत्त्विक अनुष्ठानकी निगृह्ण नहीं होती थी। इसके बाद देह-संस्कारके लिये हवन करना पड़ता था। इस प्रायश्चित्त होम द्वारा वधूके देहक पाप या पापजनित अमङ्गलसूचक रेखा और चिह्नादिको अशुभजनकता दूर करनेके लिये यज्ञ किया जाता था। यह यज्ञ आज भी किया जाता है। इसका मन्त्र यह है—

(१) “ओं रेवासन्धिषु पद्मखावर्त्तुषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

हे वधू! तुम्हारा रेखाङ्कित ललाटे हाथ आदि और चक्षुः इन्द्रिय परिरक्षक सभी पद्म और नाभिकूप आदि स्थानोंमें लिपटे हुए पापों या अमङ्गल चिह्नोंको मैं इस पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(२) “केशेषु पच पापकर्मक्षिते रुदिते च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

मैं तुम्हारे बालोंके समीप अशुभ चिह्नों, तुम्हारे

आंखोंको पाप और रेतके पापोंको पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(३) “शंलेषु यच्च पापकं भाषिते हतिते च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे आचार व्यवहार और भाषा (बोली) या हंसोंमें यदि कोई पाप लिपटा हो, तो हमारी इस पूर्णाहुतिसे नष्ट हो जाये।

(४) “भारोऽप्यु च दण्डेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे मसूड़ोंमें, हाँतों, हाथों तथा पावोंमें जो पाप लिपटे हुए हैं, उनका इस पूर्णाहुतिसे नाश हो जाये।

(५) “उत्तर्गणस्यै जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

हे कन्ये! तुम्हारे उत्तर्गण, योनि (जननेन्द्रिय), जंघे और घुटने आदि सन्धानस्थानोंमें सटे हुए पापोंका सर्वनाश मैंने इस पूर्णाहुतिसे कर दिया है।

इस तरह सब तरहके पापोंको दूर कर पत्नीकी देह और चित्तको विशुद्ध कर दिव्यपति उसे गृहिणी और सद्बर्हिणी बना कर इन सब मंत्रोंका पढ़नेमें दिव्य विवाहका गभोरतम सुख अविनाश लोकोकी धारणामें ला सकता है।

हिन्दू विवाहका उद्देश्य।

दिव्यविवाह एक महायज्ञ है। स्वार्थ इसकी आहुति तथा निष्काम धर्मलाभ इस यज्ञका महाफल है। पवित्रतम मंत्रभय यज्ञ हो दिव्य विवाहका एकमात्र पद्धति है। यज्ञके अनलसे इस विवाहका प्रारम्भ होता है। किन्तु श्मशानकी चिताग्नि भी इस विवाहके ध्वनको तीव्र नहीं सकती। क्योंकि शास्त्रकी आज्ञा है, कि स्वामीको मृत्यु होनेसे साधुको स्त्री ब्रह्मचर्या धारण कर पतिलोक पानेकी चेष्टामें दिन बितायेगो। विवाहके दिनसे ही नारियोंका ब्रह्मवर्षयत्त प्रारम्भ होता है। पतिके सुखमय मिलनके तीन दिन पहले भी कुसुमकोमला दिव्यालाको ब्रह्मचर्या धारण करना पड़ता है। फिर यदि भाग्यदोषसे सती साधुको स्त्री जब श्मशानके यज्ञानलमें पतिकी प्रेममयी देह डाल कर शून्य हाथ और शून्य चित्तसे श्मशान-

से गृह-श्रमशानमें लीटती है, उस समय भी उसी प्रह-
र्याकी व्यवस्था रह जाती है। अतएव हिंदूविवाहमें स्त्री
पुरुष संयोगकी एक सामाजिक रीति नहीं, इन्द्रियविलास
का सामाजिक विधिनिर्दिष्ट निर्दोष उपाय नहीं। अथवा
गार्हस्थ्यधर्मके निमित्त स्त्री-पुरुष एक सामाजिक-बन्धन
या Contract नहीं, यह एक कठोर यश और हिन्दू-
जीवनका एक महाप्रत है।

सामाजिक जीवनके यह एक महाप्रत समझ कर
संसारार्थमें विवाह अयश्व कर्त्तव्य है। इसीसे शास्त्र-
कारोंने एक वाक्यसे इसका विधान किया है। मित्याश्र-
के आचाराध्यायमें विवाहका नित्यत्व स्वीकृत हुआ
है। जैसे—“रतिपुत्रधर्मत्वेन विवाहस्त्रिविधः तत
पुत्रार्थं द्विविधः नित्याः काम्यश्च।”

अर्थात् रति, पुत्र और धर्म इन तीनोंके लिये ही विवाह
होता है। इनमें पुत्रार्थ विवाह दो प्रकार है,—नित्य और
काम्य। इसके द्वारा विवाहका नित्यत्व स्वीकृत हुआ
है। गृहस्थाश्रमके लिये पुत्रार्थ विवाह नित्य है,
उसे न करनेसे प्रत्ययाय होता है। अतएव ऋषिगण
सामाजिक दितसाधन और गार्हस्थ्य धर्म प्रतिपालनके
लिये विवाहका अवश्यकर्त्तव्यताका विधान कर गये
हैं। सब हिन्दू-शास्त्रोंमें ही विवाहके नित्यत्व प्रति-
पादनके लिये बहुतेरे शास्त्रीय प्रमाण दिखाई देते हैं।

“न रथेषु गृहस्थः स्यात्प्रायश्चित्तं वा कथ्यते गृही।

यश भाष्यां गृहं तश भाष्यांहीनं गृहं वनम् ॥”

(गृह्यसूत्राश्रमविहित ५, ७०)

केवल गृहस्थाससे तो गृहस्थ नहीं होता, भाष्याके साथ
गृहमें वास करनेसे ही गृहस्थ होता है। जहाँ भाष्या है,
वहाँ ही गृह, भाष्याहीन गृह वन तुल्य है।

(गृह्यसूत्राश्रमविहित ५, ७०)

महत्त्वपूर्ण तत्त्वमें लिखा है,—

भार्याहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसकी सब क्रियायें
निष्फल हैं, उसे देवपूजा और महापुरुषका अधिकार
नहीं। एक पहियेके रथ और एक पंखवाले पक्षीकी तरह
भार्याहीन व्यक्ति सभी कार्योंमें अयोग्य है। भार्याहीन
व्यक्तिकी सुख नहीं मिलता और न उसका घर-द्वार
हो रहता है। अतएव हे देवेशि ! सर्वाश्रयान्त होने
पर भी तुम विवाह करना।

गृहिणी और सूर्याग्नीषी।

शास्त्रीय वचनोंके प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है, कि
हिंदुओंका विवाह-संस्कार गार्हस्थ्यधर्मका धर्मसाधन-
मूलक है।

स्त्रीधर्म-निरूपणमें भी स्त्रियोंके गार्हस्थ्य धर्मके प्रति
दृष्टि आकृष्ट करनेके बहुतेरे प्रमाण दिये गये हैं। पति-
पत्निमें प्रगाढ़ प्रेम, पतिके प्रति और पत्निकी गार्हस्थ्य-
कार्यावलीके प्रति पत्नी या तोत्रमना संयोग आदिके
निमित्त बहुतेरे उपदेश शास्त्रमें दिखाई देते हैं।

आज कलके पवित्रमयी लोगोंमें बहुतेरोंका विरवास
है, कि भारतीय लोग अपनी पतिनियोंका दासी या लौंडी
समझते हैं। आज कल स्त्रियोंके प्रति उच्चतर सम्मान
हिन्दुओंमें दिखाया नहीं जाता। जो हिन्दूधर्मशास्त्रोंके
मर्मज्ञ हैं, वे जानते हैं, कि हिंदू शास्त्रकारोंने नारियोंके
प्रति कैसा उच्चतर सम्मान दिखाया है, सिवा इसके
मनुसंहितामें स्पष्ट रूपसे स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखाने-
का उपदेश दिखाई देता है। मनु कहते हैं—

पुत्र प्रदान करती हैं, इससे ये महाभाग, पुत्रनीया
और गृहकी शोभास्वरूपा हैं। गृहस्थोंके घरमें गृहिणी
और गृहलक्ष्मीमें कुछ भी प्रमेद नहीं। ये अपत्यो
त्पादन करती हैं, उत्पन्न संतानका पालन करती हैं
और नित्य लोकयात्राकी निदानस्वरूप हैं। ये ही गृह-
कार्योंकी मूलाधार हैं। अपात्योत्पादन, धर्महार्थ,
शुश्रूषा, पवित्र रति, आत्मा और पितृगणके स्वर्ग आदि
स्त्राके अधीन है। (मनु स्था अध्याय)

मनुने कहा है—कल्याणकामो गृहस्थ नारियोंको हर
तरहसे बहुत सम्मान करे। (मनु ३, १५)

पाश्चात्य समाजतत्त्वविदु कीमटी (Gomte) आदि
पंडित इसकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखानेका कोई
उत्तम उपदेश नहीं दे सकें हैं। फलतः हिंदू गृहिणीकी
साक्षात् गृहलक्ष्मी और धर्मका परम साधन समझ कर
आदर करनेकी शिक्षा दे गये हैं। पत्नी जिससे सु-
गृहिणी हो कर पतिव्रता बने, इसके लिये विवाहके दिन
ही वैसे मंत्रोपदेश दिये जाते हैं।

“ध्रुवा दौ ध्रुवा पृथ्वी ध्रुव” विश्वेन्द्रिजगत्।

ध्रुवा सपञ्चता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इषम् ॥”

(विवाह मन्त्र)

बादके स्मृतिकारों तथा गौराणिकोंने स्त्रीधर्मवर्णनमें पतिव्रता पत्नियोंके लिये बहुतेरे उपदेश दिये हैं।

वधू-प्रदर्शन।

जब नई वधू घरमें जाती, तब उसके मुख दिखानेके लिये दोन पड़ोसकी स्त्रियां बुलाई जाती हैं। वे आकर वधूको देखतीं और दम्भरतोको आशीर्वाद देतीं। ये सब मदाचार और शिष्टाचार अब भी विवाहपद्धति तथा सामाजिक व्यवहारमें दिखाई देते हैं। इस सम्बन्धमें वैदिक मंत्र यह है—

“ॐ सुमङ्गलोरियं वधूरिमां संनेत परवत।

श्रीभाग्यमस्ये दृश्या यायास्त्वन् विपरेत न ॥”

हे पड़ोसियों! आप लोग एकत्र हो कर आये और हम नई सुमङ्गली वधूको देखें, आशीर्वाद दे और श्रीभाग्य प्रदान कर अपने अपने घर पधारे।

वधूका मुंह देखनेकी और आशीर्वाद देनेकी पुरानी प्रथा अब भी समाजमें प्रायः उसी तरहसे प्रचलित है, किन्तु हमके लिये बुझानेकी जरूरत नहीं होती। पड़ोसोंकी वृद्धा और युवती स्त्रियां या बालिकायें स्वतः शीकसे देखनेके लिये आती हैं।

देह संस्कार।

वधूको घर लाने परं भी सार्वत्रिक अनुष्ठानकी निगूत्ति नहीं होती थी। इसके बाद देह-संस्कारके लिये हवन करना पड़ता था। इस प्रायश्चित्त होम द्वारा वधूके देहका पाप या पापजनित अमङ्गलसूचक रेखा और चिह्नादिको अशुभजन्मला दूर करनेके लिये यज्ञ किया जाता था। यह यज्ञ आज भी किया जाता है। इसका मन्त्र यह है—

(१) “श्रीं रेखासन्धिषु पद्मस्वावर्त्तेषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

हे वधू! तुम्हारा रेखाङ्कित ललाटे हाथ आदि और चक्षुः इन्द्रिय परिरक्षक सभी पद्म और ताम्रकूप आदि स्थानोंमें लिपटे हुए पापों या अमङ्गल चिह्नोंको मैं इस पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(२) “केशेषु पथ पापकमीक्षिते रुदिते च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

मैं तुम्हारे बालोंके समीप अशुभ चिह्नों, तुम्हारे

बालोंको पाप और रेशेके पापोंको पूर्णाहुति द्वारा प्रक्षालन कर रहा हूँ।

(३) “शोलेषु यच्च पापकं भायिते हसिते च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे आचार व्यरहार और भाषा (बोला) या हांसोंमें यदि कोई पाप लिपटा हो, तो हमारी इस पूर्णाहुतिसे नष्ट हो जाये।

(४) “भारोऽप्यु च दण्डेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्।

तानि च पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

तुम्हारे मसूड़ोंमें, हाँतों, हाथों तथा पावोंमें जो पाप लिपटे हुए हैं, उनका इस पूर्णाहुतिसे नाश हो जाये।

(५) “उर्वारोऽप्यु च जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते।

तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम् ॥”

हे कन्ये! तुम्हारे उरुद्वय, योनि (जननेन्द्रिय), जघे और घुटने आदि सन्धानोंमें सटे हुए पापोंका सर्वांगनाश मैंने इस पूर्णाहुतिसे कर दिया है।

इस तरह सब तरहके पापोंको दूर कर पत्नीकी देह और चित्तको विशुद्ध कर दिव्यपति उने यूपिणी और सहस्रमिणी बना कर इन सब मन्त्रोंका पठनेसे हिन्दू-विवाहका गभीरतम सूक्ष्म अभिप्राय लोगोंकी धारणामें आ सकता है।

हिन्दू विवाहका उद्देश्य।

हिन्दू-विवाह एक महायज्ञ है। स्वार्थ इसकी आहुति तथा निष्काम धर्मलाभ इस यज्ञका महाफल है। पवित्रतम मंत्रभय यज्ञ ही हिन्दू विवाहका एकमात्र पद्धति है। यज्ञके वनलसे इस विवाहका प्रारम्भ होता है। किन्तु श्मशानकी चितागिनी भी इस विवाहके धनको तोड़ नहीं सकती। क्योंकि शास्त्रकी आज्ञा है, कि स्वामीकी मृत्यु होनेसे साधवों को ब्रह्मचर्य धारण कर पतिलोक पानेकी चेष्टामें दिन बितायेगो। विवाहके दिनसे ही नारिणीका ब्रह्मवर्चसत आरम्भ होता है। पतिके सुखमय मिलनके तीन दिन पहले भो कुसुमकीमला हिन्दूबालाको ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता है। फिर यदि भाग्यशेपसे सती साधवों को जब श्मशानके यज्ञवनलमें पतिकी प्रेममयो देह डाल कर शूय हाथ और शूय चित्तसे श्मशान-

से गृह-श्रमशानमें लौटती है, उस समय में उसी प्रह-
चर्याको व्यवस्था रह जाती है। अतएव हिंदूविवाहमें स्त्री
पुरुष संयोगको एक सामाजिक रीति नहीं, इन्द्रियविलास
का सामाजिक विधिनिर्दिष्ट निर्दोष उपाय नहीं। मध्यया
गाहृष्ट्यधर्मके निमित्त स्त्री-पुरुष एक सामाजिक बन्धन
या Contract नहीं, यह एक कठोर यज्ञ और हिन्दू
जीवनका एक महाप्रत है।

सामाजिक जीवनके यह एक महाप्रत समझ कर
संसारधर्ममें विवाह अवश्य कर्त्तव्य है। इसीसे शास्त्र
कारोंने एक वाक्यसे इसका विधान किया है। मित्ताश्र-
क आचाराध्यायमें विवाहका नित्यत्व स्वीकृत हुआ
है। जैसे—“रतिपुत्रधर्मत्वेन विवाहस्त्रिविधः तत्र
पुत्रार्थं द्विविधः नित्या कामपश्य।”

अर्थात् रति, पुत्र और धर्म इन तीनोंके लिये ही विवाह
होता है। इनमें पुत्रार्थ विवाह दो प्रकार है,—नित्य और
काम्य। इसके द्वारा विवाहका नित्यत्व स्वीकृत हुआ
है। गृहस्थाश्रमके लिये पुत्रार्थ विवाह नित्य है,
उस न करनेसे प्रत्यघात होता है। अतएव ऋग्विण
सामाजिक दितसाधन और गाहृष्ट्य धर्म प्रतिपालनके
लिये विवाहका अवश्यकर्त्तव्यताका विधान कर गये
हैं। सब हिन्दू-शास्त्रोंमें ही विवाहके नित्यत्व प्रति-
पादनके लिये बहुतेरे शास्त्रीय प्रमाण दिखाई देते हैं।

“न गृह्य गृहस्थः स्यात्प्राथम्यं वा कथ्यते गृहो।

यत्र भाव्यां गृहं तत्र भाव्याहो न गृहं वनम्॥”

(गृहसूत्राश्रमसंहिता ५,७०)

केवल गृहवाससे तो गृहस्थ नहीं होता, भाव्याके साथ
गृहमें वास करनेसे ही गृहस्थ होता है। जहाँ भाव्या है,
वहाँ ही गृह, भाव्याहो न गृह वन तुल्य है।

(गृहसूत्राश्रमसंहिता ५,७०)

मरुस्थलक तलमें लिखा है,—

भार्याहो न व्यक्तिः क्व गतिर्नहीति, अस्मिन् सव क्रियाये
निष्कल है, उसे देवपूजा और महायज्ञका अधिकार
नहीं। एक पहियेके रथ और एक पंखवाले पक्षीकी तरह
भार्याहो न व्यक्ति सभी कार्योंमें अयोग्य है। भार्याहो न
व्यक्तिके सुख नहीं मिलता और न उसका घर-द्वार
हो रहता है। अतएव हे-देवेशि ! सर्गश्र्वान्त होने
पर भी तुम विवाह करना।

गृहिणी और गृह्यनिर्णीया।

शास्त्रीय वचनोंके प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है, कि
हिंदुओंका विवाह-संस्कार गाहृष्ट्याश्रमका धर्मसाधन-
मूलक है।

स्त्रीधर्म-निरूपणमें भी स्त्रियोंके गाहृष्ट्य धर्मके प्रति
दृष्टि बाहुल्य करनेके बहुतेरे प्रमाण दिये गये हैं। पति-
पत्निमें प्रगाढ़ प्रेम, पतिके प्रति और पतिकी गाहृष्ट्य-
कार्यावलीके प्रति पत्नी या तोदनना संयोग आदिके
निमित्त बहुतेरे उपदेश शास्त्रमें दिखाई देते हैं।

आज कलके पश्चिमीय लोगोंमें बहुतेरोंका विश्वास
है, कि भारतीय लोग अपनी पतिव्रतोंका दासी या लौंडी
समझते हैं। आज कल स्त्रियोंके प्रति उच्चतर सम्मान
हिन्दुओंमें दिखाया नहीं जाता। जो हिन्दुधर्मशास्त्रोंके
मर्मज्ञ हैं, वे जानते हैं, कि हिंदू शास्त्रकारोंने नारियोंके
प्रति कैसा उच्चतर सम्मान दिखाया है, सिवा इसके
मनुसंहितामें स्पष्ट रूपसे स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखाने-
का उपदेश दिखाई देता है। मनु कहते हैं—

पुत्र प्रदान करती हैं, इससे ये महाभागा, पूजनीया
और गृहकी शोभास्वरूपा हैं। गृहस्थोंके धर्म गृहिणी
और गृहलक्ष्मीमें कुछ भी प्रमेद नहीं। ये अत्यो
त्पादन करती हैं, उत्पन्न संतानका पालन करती हैं
और नित्य लोकयाज्ञाकी निदानस्वरूप हैं। ये ही गृह-
कार्योंको मूलाधार हैं। अपात्योत्पादन, धर्मकार्य,
शुभ्र्या, पवित्र रति, आत्मा और पितृगणके स्वर्ग आदि
छाके अधीन हैं। (मनु एवं अश्याय)

मनुने कहा है—कल्याणकामो गृहस्थ नारियोंको हर
तरहसे बहुत सम्मान करे। (मनु १,५६)

पाश्चात्य समाजतत्त्वविद् गोमटी (Gomte) आदि
पंडित इसकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रति सम्मान दिखानेका कोई
उत्तम उपदेश नहीं दे सके हैं। फलतः हिंदू गृहिणीको
साक्षात् गृहलक्ष्मी और धर्मका परम साधन समझ कर
आदर करनेकी शिक्षा दे गये हैं। पत्नी जिससे सु-
गृहिणी हो कर पतिव्रता बने, इसके लिये विवाहके दिन
ही जैसे मंत्रोपदेश दिये जाते हैं।

“ध्रुवा ही ध्रुवा पृथ्वी ध्रुव विश्वमिदं जगत्।

ध्रुवा सपत्न्यता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्॥”

(विवाह मन्त्र)

'हे प्रांध्यमान देव ! जिस तरह यह भ्रूलोक चिरस्थायो है, यह पृथ्वी चिरस्थायिनी है, यह परिदृश्यमान सारा आचार चिरस्थायो है, ये अचलराजि भी चिरस्थायो हैं—यह स्त्री भी पतिके घरमें उसी तरह चिरस्थायिनी बनें ।'

"इह धृतिरिह स्वधृतिरिह रतिरिह रमस्य ।

मयि धृतिर्मयि स्वधृतिर्मयि रमे मयि रमस्व ॥"

'हे वधू ! इस घरमें तुम्हारी प्रति स्थिर हो । इस घरमें तुम सानन्द दिन बिताओ । मुझमें तुम्हारी प्रतिस्थिर हो, आत्मीयोंके साथ तुम्हारा मिलन हो, मुझमें तुम्हारी आसक्ति हो, मेरे साथ तुम सानन्द दिन बिताओ ।'

प्रायः सभी स्मृति और पुराणादिमें स्त्रियोंके इसी गार्हस्थ्य और पातिव्रत्यधर्मपालनके लिये बहुतेरे उपदेश दिये गये हैं । ये सभी उपदेश वेदमें विवाह समयमें वधुओंके प्रति जो सब उपदेश दिये गये हैं, उन्हें उपदेशोंके आधार पर वादके स्मृतिकारोंने स्त्रीधर्मका वर्णन किया है । पाणिप्रहणके मंत्र ऋग्वेदके समयसे चले आते हैं । उसी पुराने समयमें भी इस देशका पाणिप्रहण कार्य कैसा उत्तम था, उसका प्रमाण इन मंत्रोंसे मिलता है । पाणिप्रहणके पहले मंत्रमें जो स्त्रियोंको यह उपदेश दिया जाता था जिससे उनकी गार्हस्थ्यधर्म अच्छी तरहसे प्रतिपालित और पाणिप्रहण करनेवाले व्यक्तिके संसारको सुखसीमाय बढ़ावे । दूसरे मंत्रमें यह उपदेश दिया गया है, जिससे पतिके घर जा कर स्त्री अपने क्रोधकी जलाशुक्ति दे दे, जिस क्रोधदृष्टसे पतिके प्रांत या पतिके आत्मीय स्वजनोंके प्रांत न देखे, वे पतिकी प्रतिकूलचारिणी न बने, जिससे वे पतिके पशु आदिको मङ्गलकारिणी बने, जिससे गौ भैस आदिकी सेवापरिचर्यामें उनका लक्ष हो, क्योंकि ये सब पशु गृहस्थके घरके सीमावर्द्धकके कारणस्वरूप मरने जाते थे अर्थात् भस्म, आत्मीय स्वजन और पशुओंके प्रांत नबोढाका वास्तविक प्रेम बना रहे । तीसरे मंत्रमें दूसरे मंत्रकी आंशिक पुनरुक्ति ही दिखाई देती है । चौथा मंत्र गर्भाधानके विषयमें है । यह सन्तान कामनामूलक है । पांचवें मंत्रका उद्देश्य

महान् है । पहले जमानेमें भारतवर्षमें जो एकान्तवर्तिता प्रथा प्रचलित थी और उसका उस समय बड़ा आदर होता था, यह पांचवां मन्त्र उसीका प्रमाण है । सिधा इसके पांचवें मन्त्रमें जो गूढ़ गभीर उद्देश्य है, जगतके और किसी देशमें वैसा भाव दिखाई नहीं देता । हिन्दुओंका पाणिप्रहण आत्मसुखसम्भोगके लिये हो नहीं, वरं पारिवारिक सुखसमृद्धिका उद्देश्यमूलक है । हम मन्त्रमें उसका उच्चतम प्रमाण मिलता है । इससे स्वामी नबोढा पत्नीको विवाहसंस्कारके समय अनिन्देय आदि देवताओंके सामने प्रसन्न गभीरनिनादसे कह देते थे— 'त्रियतमे ! तुमको केवल अपने सुख और सेवाके लिये मैं प्रहण नहीं कर रहा हूँ । तुम मेरे पिताकी सेवा करना, मेरी माता, बहन और भाइयोंकी सेवा करना । हिन्दुविवाहके जैसा उच्चतर लक्ष्य और किसी समाजमें दिखाई नहीं देता । यों तो हिन्दुओंके प्रत्येक कार्यमें स्वार्थविसर्जनका पवित्रचित्त देवोपमान रहता है, किन्तु विवाहका यह पुण्यतम चित्त बहुत अधिक उज्वल दिखाई देता है ।

छठा मन्त्र पतिपत्नीके एकाग्रचित्त होनेका महामन्त्र है । 'जय विधाताके विधानमें दो मिन्न मिन्न हृदय एक सूत्रमें बंधता है, तब इसके तुल्य और क्या हो सकता—मेरा जीवनव्रत तुम्हारा जीवनव्रत बने, तुम्हारा चित्त मेरे चित्तका अनुयायी हो, तुम अनन्यमना हो कर मेरे वाक्योंका प्रतिपालन करो । विश्वदेवगण हम दोनोंके हृदयको मिला दे । वायु, घाता और वायदेवी हम लोगोंको जोड़ दे ।' इत्यादि । केवल यही नहीं, इसके लिये एक और सुमन्त्र है ।

"अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृथिनता ।

चक्षुनामि सत्यप्रथितना मनश्च हृदयश्च ते ॥"

अर्थात् 'हे वधू ! तुम्हारा मन और हृदय अन्नदान रूप मणि, तुल्य पाशमें तथा प्राणरूप रत्नसूत्रमें और सत्यस्वरूप गांठसे मैं बांधता हूँ ; हिन्दुव्रति विवाहके पवित्र हौमानलको साक्षी रख, देवता ब्राह्मणको साक्षी रख अपनी सहधर्मिणी पत्नीसे कहता है—

"यदेतद्दृश्यं तव तदस्तु हृदयं मम ।

यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥"

दे देवि ! आजसे तुम्हारा हृदय मेरा हो और मेरा हृदय तुम्हारा हो । ' हिन्दू दम्पतीका बंधन उस पाश्चात्य समाजका Marriage contract नहीं है यह चिर जीवनका अविच्छेद्य दृढ़तम बन्धन है । इसका मूल ही प्रमाण है ।

विवाहना (हिं० क्ली०) व्याहना देलो ।

विवाहपटह (सं० पु०) विवाहका घाघ, व्याहके समवका बाजा ।

विवाह-विधि (सं० स्त्री०) विवाहस्य विधिः । विवाह-को विधि, विवाहका विधान । शास्त्रोंमें विवाहकी विधि निर्दिष्ट है । तदनुसार विवाहया अविवाहया कन्या स्थिर कर उद्योगिक शुभाशुभ दिन देख कर विवाहका दिन स्थिर करना चाहिये ।

मनुके मतानुसार—

"अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।

दशमे कन्यका प्रोक्ता अथ ऊर्ध्वै रजस्यशा ॥

तस्मात् संवत्सरे पूर्वे दशमे कन्यका बुधेः ।

प्रदातवशा प्रयत्नेन न दोषः कालदोषजः ॥"

आठ वर्षकी कन्याका नाम गौरी और नौ वर्षकी कन्या रोहिणी कहलाती है । दश वर्षकी लड़की होनेसे उसे कन्याका कहते हैं । इसके बादसे बालिकाके रजा-खला गिनी जाती हैं । अतएव इससे पहले ही बालिकाका विवाह कर देना चाहिये । दश वर्षसे अधिक उम्रको कन्याका विवाह करने पर कालदोषादिका विचार नहीं किया जाता । दश वर्षके बाद कन्याओंको ऋतुकी वाशङ्का कर शास्त्रकारोंने कालदोषादिमें भी विवाहकी व्यवस्था दी है ।

विवाहकालावित होनेसे दोष ।

दश वर्षके भोतर हां कन्याको वरनपूर्वक दान दे देना चाहिये । मलमास आदि कालदोष उसमें प्रति-बन्धक नहीं होते । यम-स्मृतिमें लिखा है, कि यदि कन्या बारह वर्ष तक अविवाहित अवस्थामें पिताके घरमें रह जाये, तो उसके पिता ब्रह्महत्याके पापके भागी होते हैं । ऐसे स्थानमें यह कन्या स्वयंवर ढूढ़ कर अपना विवाह कर सकती है । अङ्गिराने कहा है, कि बारह वर्षकी हो जाने पर भी कन्याका विवाह जो

पिता नहीं करता, वह रजोजनिन जोगित पान करता है । राजमार्तण्डने कहा है, कि विवाहके पूर्व कन्याके रजोदर्शन हो जाने पर पिता, बड़े भ्राता और माता तीनों नरकमें जाते हैं और उस कन्याका रजोरक्त पीते हैं । जो ब्राह्मण मद्रमत्त हो कर ऐसे कन्याका विवाह करता है, उसके साथ बैठ कर भोजन करना तथा उससे बोलना भी उचित नहीं । उसको वृषलीपति समझना चाहिये । इन वचनों द्वारा मालूम होता है, कि कन्याका रजखला हो जाने पर विवाह करनेसे पिता आदि पापके भागी होते हैं । अतः रजःप्रवृत्तिसे पहले ही कन्याका विवाह कर देना चाहिये ।

यम—"कन्या द्वादशवर्षीणि वाप्रदत्ता एहे वसेत् ।

ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत् स्वयम् ॥

अङ्गिरा—माते तु द्वादशे वर्षे यदा कन्या न दीयते ।

तदा तस्यास्तु कन्यायाः पिता पितृति शोषितम् ॥

राजमार्तण्ड—सम्प्राप्तो द्वादशे वर्षे कन्या जो न प्रयच्छति ।

मासि मासि रजस्तस्याः पिता पितृति शोषितम् ॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तद्योग च ।

प्रयस्ते नरकं यान्ति ह्यन्वृत्वा कन्यां रजस्तप्ताम् ॥

यस्तु तां विवहेत् कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ।

असम्प्राप्तो ह्यपांडकतेयः स श्रेयो वृषलीपतिः ॥

अग्नि और कश्यप कहते हैं—

पितुर्गृहे च या कन्या रजःप्रवृत्त्यसंस्कृता ।

धृयाहत्या पितु तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता ॥

यस्तु तां वरयेत् कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः ।

अभद्रे यमपांडकतेयं तं विधात् वृषलीपतिम् ॥"

इन सब वचनोंसे मालूम होता है, कि ऋतुमती कन्याका विवाह पापजनक है, अतः ऋतु होनेसे पहले ही विवाह कर देना चाहिये । हां मनुसंहितामें यह बात दिखाई देती है, कि यद्यपि ऋतुमती होनेसे मरण तक बचारी ही पिताके घर पडी रहे; किंतु अपातकी कन्या न देनी चाहिये ।

"काममामर्याचितेद् गृहे कन्यत् मत्पति ।

नचैवेनो प्रयच्छेत् गुणशोभाय कर्हिचित् ॥"

विवाहका प्रशस्त काल—स्मृतिसार नामक ग्रन्थमें

लिखा है, कि सव वर्षों के लिये सात वर्षके उपरान्त कन्याओं का विवाहकाल प्रशस्त है और भी लिखा है, कि अयुग्म वर्षमें विवाह करनेसे कन्या दुर्भगा और युग्म वर्षमें विवाह करनेसे विधवा होती है, अतएव कन्याके गर्भाश्रित युग्म वर्षमें विवाह कर देनेसे कन्यापते पतिव्रता होती है । जन्ममाससे तीन मासके ऊपर होनेसे अयुग्म वर्ष और भीतर होनेसे गर्भसे युग्म वर्ष होता है । वात्स्य आदि मुनिपेनि ज्योतिषाश्रममें जन्ममास ले कर तीन मास तक जो गर्भाश्रित युग्म वर्ष होता है, उसीको कन्याओंके विवाहके लिये शुभ दिन स्थिर किया है । यह युग्म और अयुग्मकी गणना भूमिष्ठ और गर्भाधानसे करना चाहिये अर्थात् भूमिष्ठ होनेके बादसे गणनासे अयुग्म वर्ष शुद्धकाल और गर्भाधानके बादसे गणनासे युग्म वर्ष शुद्धकाल है ।

विवाहमें अकाल आदिका दोषाभाव—कन्याके दश वर्ष बीत जाने पर उसके विवाहमें अकाल आदि दोष नहीं लगता । शास्त्रमें लिखा है—गुरु शुकेके बाल्य, वृद्ध और अस्तजनित जो अकाल आदि होते हैं, उस समय कन्याका विवाह नहीं होना चाहिये । किंतु कन्याकाल अर्थात् दश वर्षकाल बीत गया हो, तो उस कन्याके विवाहमें अकाल आदि दोष नहीं देखे जाते । पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य, मातामह और मातायें सभीको कन्यादान करनेका अधिकार है ।

पिताको स्वयं कन्यादान देना कर्त्तव्य है । स्वयं असमर्थ होने पर वह अपने ज्येष्ठ लड़केको आह्वा दे, कि वह अपनी बहनका दान करे । इन दोनोंके बाद मातामह, मामा, सकुल्य और बांधव यथाक्रम कन्यादानके अधिकारी हैं । इन सबोंके अभावमें माता ही अधिकारिणी होती है । किंतु ये सभी प्रकृतिस्थ होने चाहिये ।

विवाहके बाद कन्या पर उसके स्वामीका पूर्ण स्वामित्व हो जाता है और पिताका स्वामित्व खत्म हो जाता है, सुतरां कन्याके विवाहके बाद पतिके गोत्रानुसार उसके सब कार्य होंगे । उसको मृत्यु हो जानेके बाद ही उसके पतिके गोत्रानुसार ही विधोदकक्रिया क्रियायें

“स्वगोपाद्भ्रमरस्ते नारी विवाहात् व्रतमे पदे ।
पतिगोत्रेण कर्त्तव्या तस्याः विधोदकक्रियाः ॥”

(उदाहृतम्)

विवाहादि संस्कार कार्या नान्दीमुखश्राद्ध करके करना होगा । विवाहके दिन प्रातःकाल आम्बुदयिक श्राद्ध कर रातको कन्यादान करना होता है । विवाहके आरम्भके बाद यदि अशौच हो जाये, तो उसमें कोई प्रतिबन्धक नहीं होता । विवाहके आरम्भ शब्दसे वृद्धिश्राद्ध समझना होगा । वृद्धिश्राद्ध करनेमें प्रवृत्त होने पर यदि सुनाई दे, कि जन्म या मरण आदि किसी तरहका अशौच हुआ है, तो यह विवाह कर खालता चाहिये । इसमें कोई दोष नहीं होता । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चना और जप इन सब कर्मोंका आरम्भ हो जानेके बाद यदि अशौच हो, तो यह अशौच आरम्भ कर्मका बाधक न होगा । किन्तु आरम्भके पहले अशौच होने पर यह व्याघातक होगा । वृद्धिश्राद्ध ही विवाहका आरम्भ समझना चाहिये ।

नान्दीमुख श्राद्धका कर्त्तव्य निरूपण—विवाहादि कार्योंमें नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये । इस विषयमें शास्त्र-विधि इस तरह है—पुत्रके प्रथम विवाहमें ही पिताको नान्दीमुख श्राद्ध करना कर्त्तव्य है । पुत्रका यदि दूसरा विवाह हो, तो पुत्र स्वयं ही श्राद्धका अधिकारी होगा, पिता नहीं । अतएव इस नान्दीमुख श्राद्धमें पिताके मातामह आदिका उल्लेख न कर उनके अपने मातामहका उल्लेख करना होगा । अर्थात् जो श्राद्ध कार्य करेगा, उसीके नाता अर्थात् मातामहका उल्लेख होगा । पुत्रके विवाहमें पिताके न रदने पर वह स्वयं श्राद्धका अधिकारी है । अतः उसके मातामहादिका श्राद्ध होगा । कन्याके विवाहमें पिता ही श्राद्धका अधिकारी होता है ।

विवाहमें शान्तिकर्मा—विवाहके भावो अनर्थ प्रतिकारके लिये सुवर्णदान और प्रहोंकी शान्तिके लिये होम करनेकी विधि है । कारण, शास्त्रमें है, कि कोई इच्छा करे या न करे, अवश्यम्भावी घटना आप ही आप घट जाती है । इसीलिये अवश्यम्भावी शुभाशुभके विषयमें प्रहादि दोषको शान्तिके निमित्त विवाहके पूर्व प्रहोम और सुवर्ण आदि दान करने चाहिये ।

विवाहमें शुभाशुभ दिन—विवाहमें ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख उसी दिनको विवाह निर्दिष्ट करना चाहिये। अशुभ दिनको विवाह नहीं करना चाहिये।

विवाहोक्त मास—मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, इन्हों कई महोत्सवमें विवाह करना चाहिये। सिवा इनके अन्य महोत्सवमें विवाह होने पर वह कन्या धनधान्य और भाग्यरहिता होती है। श्रावण महोत्सवमें विवाह होनेसे कन्यायें सन्तानहीना, भाद्रमासमें वैशाख, कार्तिकमें शनिवार, पौषमासमें विधवा और वन्धुवियुक्ता तथा चैत्रमासमें विवाह करनेसे मदनोग्मादिनी होती है। इनके सिवा अन्य महीनेमें विवाह करनेसे कन्यायें पुत्रवती और समृद्धशालिनी होती हैं।

जिन निषिद्ध मासके सम्बन्धमें अभी कहा गया, उनके प्रति प्रसव ऐसा दिशाई देता है। जैसे—किसी दूसरे देशके राजा द्वारा अपना देश आक्रान्त होने पर अपना देशमें युद्ध उपस्थित होने पर या पिता माताके प्राण संशयमें पड़नेसे कन्याके विवाहके समयसे अधिक समय बत जानेसे विवाह विहित मास आदिको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। कन्याको उम्र यदि इस तरहसे बढ़ गई हो जिससे कुल और धर्मके अनिष्ट होनेकी सम्भावना हो, ऐसी अवस्थामें केवल चन्द्र और लगनका बल देख कर निषिद्ध काल आदिमें भी कन्याका विवाह कर दिया जा सकता है।

कन्याके जन्मसे दश वर्षसे पहले ही प्रहोकी शुद्धि, ताराशुद्धि, वर्षशुद्धि अर्थात् युगमायुमका विचार, मासशुद्धि, आपाद् आदि निषिद्ध मासोंका परित्याग, अयन शुद्धि, दक्षिणायन परित्याग, ऋतुशुद्धि, शरत् आदि ऋतुशुद्धि, दिनशुद्धि, शनि और मंगलवार वर्जन, इत्यादि विधियोंका अथलाकन नहीं किया जाता। पौष और चैत्र इन दो मासोंके सिवा अन्य दश मासोंमें (यदि कोई मास मलमास हो, तो उस मासमें विवाह नहीं किया जा सकता) विवाह किया जा सकता है। यद्यो शास्त्रका अनिर्णय है। ज्येष्ठ पुत्र और कन्याके सम्बन्धमें एक विशेषता है, कि अग्रहायणमासमें ज्येष्ठका विवाह किसी तरह नहीं हो सकता, किन्तु ज्येष्ठ मासके सम्बन्धमें कहा गया है, कि मासका प्रथम दश दिन छोड़ कर विवाह हो सकता है।

कन्याके जन्म मासमें विवाह प्रशस्त है। कन्याके जन्म मासमें विवाह होनेसे वह पुत्रवती, जन्ममाससे दूसरे मासमें विवाह करनेसे धनसमृद्धिशालिनी तथा जन्म नक्षत्रमें और जन्मराशिमें विवाह करनेसे सन्तति-युक्त होती है।

पुरुषके लिये जन्म मासमें विवाह निषिद्ध है; किन्तु इसमें प्रतिप्रसव इस तरह है—गर्भके मतसे जन्म मासके पहले षाठ दिन छोड़ कर विवाह किया जा सकता है। यवनके मतसे दश दिन और वशिष्ठके मतसे केवल जन्मका दिन बाद दे कर बालकका विवाह किया जा सकता है।

विवाहके उपयुक्त वार—वृहस्पति, शुक्र, बुध और सोमवार विवाहके लिये उपयुक्त दिन हैं। इन सब शुभ दिनमें विवाह करनेसे कन्या सौभाग्यवती होती है और रवि, शनि और मङ्गलवारको विवाह करनेसे कन्या कुलटा होती है। अरक्षणी कन्याके लिये रवि, शनि और मङ्गलवारको भी विवाह करना दोषावह नहीं। क्योंकि विवाह रातको होता है। अतएव विवाहमें वारदोष नहीं होता। किन्तु जब कन्या अरक्षणीया नहीं हो, तब तो वारदोषका विचार करना ही होगा।

विवाहतिथिनिषिद्ध—अमावस्या और चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथिमें और विष्टकरणमें विवाह विशेषरूपसे निषिद्ध है। किन्तु शनिवारको यदि चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, तो यह विवाह विशेषरूपसे प्रशस्त है। इसके सिवा अन्य तिथियां प्रशस्त हैं। किन्तु चंद्रदश्या, मासदश्या आदि सब तिथियोंमें समो काम वर्जित है; अतएव विवाह मा निषिद्ध समझना।

विवाहमें निषिद्ध योग—धृतीपातयोगमें विवाह होने पर कुलोच्छेद, परिघयोगमें स्वामि-नाश, वैधृति-योगमें विधवा, धृतिगण्डमें विधवा, ध्याघातयोगमें ध्याघि, हर्षणयोगमें शोक, शूलयोगमें मरणशूल, गण्डमें रोगमय, त्रिकुम्भमें सर्पदंशन और वज्रयोगमें मरण होता है। सुतरां विवाहमें ये दश योग विशेष वर्जित हैं।

विवाहमें विहित शुभ नक्षत्र—रेवती, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिरा, मूला,

अनुराधा, मघा, हस्ता और स्वाति ये सभी नक्षत्र विवाहके लिये शुभ हैं। किन्तु चित्रा, श्रवणा, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्र आपद्कालमें या यजुर्वेदीय विवाहमें समझना होगा। मघा, मूला और रेवती नक्षत्रमें एक विशेषता है, कि मघा और मूला नक्षत्रका आद्यपाद और रेवती नक्षत्रका चतुर्थपाद अवश्य छोड़ देना चाहिये। कारण इस मुहूर्त्तमें विवाह करनेसे प्रायनाश होता है।

सिवा इसके यामित्रयुतवैध, यामित्रवैध, दशयोगभङ्ग और सप्तशलाकामें विवाह न करना चाहिये।

यामित्रयुतवैध—चन्द्र पापग्रहके सप्तमस्थित होनेसे यामित्रवैध और पापयुक्त होनेसे युतवैध होता है अर्थात् कर्मकालीन राशिके सातवें यदि रवि, शनि और मङ्गल हों, तो यह यामित्रवैध होगा है।

युतयामित्रमें प्रतिप्रसव भी देखा जाता है—चंद्र यदि बुध राशिके हों, अपने घरमें या पूर्ण हों अथवा मित्रग्रह और शुभग्रहके ग्रहमें हों या शुभग्रह द्वारा देखे जाते हों, तो यामित्रवैधका दोष नहीं होता।

दशयोगभङ्ग—कर्मकालमें सूर्ययुक्त नक्षत्र और कर्मयोग्य नक्षत्र एकत्र कर यदि २७से अधिक हो, तो उनमें २७ छोड़ कर जो बाकी बचे, उनमें यदि १५, ६, ४, १, १०, १६, १८ या २० संख्या हो, तो दशयोगभङ्ग होता है। यह दशयोगभङ्ग विवाहके लिये विशेष निषिद्ध है।

सप्तशलाका—उत्तर-दक्षिण सात रेखायें और पूर्व-पश्चिम सात रेखायें खींची जाती होंगी। पीछे उत्तर और-की प्रथम रेखासे कृत्तिकादि करके अभिजित ले कर २८ रेखायें होंगी। जिस नक्षत्रमें विवाह होगा, उसमें अथवा उस रेखाके सामनेवाले नक्षत्रमें चन्द्रके सिवा अन्य कोई भी नक्षत्र रहे, तो सप्तशलाकावैध होता है। उत्तराषाढाका अन्त १५ दण्ड और श्रवणाका पहला ४ दण्ड अभिजित, अभिजितके साथ रोहिणीका, कृत्तिकाके साथ श्रवणाका और मृगशिराके साथ उत्तराषाढाका वैध होता है। इत्यादि क्रमसे वैध स्थिर कर लेना चाहिये। इस सप्तशलाकामें विवाह सम्पूर्णरूपसे वर्जित है। इसमें विवाह होने पर विवाहिता स्त्री विवाहके रंगोन बखसे ही पतिके मुखमें अनन्त रूपसे कराती है। अर्थात् तरत खानीकी भृत्यु हो जाती है।

विवाहके लिये विहित लग्न—कन्या, तुला, मिथुन और धनुका पूर्वार्द्धकाल विवाहमें प्रशस्त है। धनुलग्नका अपराद्ध निन्दित है। निन्द्य लग्नका द्विपदांश अर्थात् कन्या, तुला और मिथुनका नवांश विवाहके लिये प्रशस्त है। विवाहमें जो लग्न हो, उस लग्नके सातवें, आठवें और दशवें स्थानमें यदि शुभग्रह न हो, दूसरे, तीसरे और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र हों और तीसरे, ग्यारहवें, छठवें और आठवें स्थानमें पापग्रह हो, शुक छठवें और मङ्गल आठवें में न हों, तो यह लग्न शुभ और प्रशस्त है। चंद्र पापमध्यगत और रवि, मङ्गल, शनि शुकयुत होने पर उस लग्नका परिवर्तन कर देना चाहिये।

लग्नके इस दोषके परिहार करनेके लिये सुतद्विक्रम योगका विधान है। सुतद्विक्रम योग होने पर लग्नके ये दोष सभी विनष्ट हो जाते हैं। जिस लग्नमें विवाह होता है, उस समय यदि लग्नमें चौथे स्थानमें, पांचवें और नवें में गृहस्पति या शुक हों, तो सुतद्विक्रम योग होता है। इस योगमें विवाह होने पर सभी दोष नष्ट होते और सुखवृद्धि होती है।

यदि उत्तम लग्न आदि नहीं मिले, तो शास्त्रमें गोधूलिका विधान है। किन्तु विहित लग्न रहनेसे कभी भी गोधूलिके विवाह करना न चाहिये। जिस समय पश्चिमीय दिशा जरा लाल होती है, आकाशमें दो एक तारे दिखलाई देने लगते हैं, उसी समयको 'गोधूलिकेला' कहते हैं। विवाहमें गोधूलिके तीन तरहसे निर्दिष्ट हुए हैं। जैसे—हेमन्त और शिशिरकालमें सूर्य मन्द किरण हो गोलार्कत और चक्र गोचर होनेसे, घसन्त और प्रीत्यकालमें अर्द्ध अस्तमित होने पर और वर्षा तथा शरत् ऋतुमें सूर्यके अस्त होने पर गोधूलिके होता है। जिस समय विशुद्ध लग्न न मिले, उस समय गोधूलिके शुभ और मन्थया अशुभ समझना।

गोधूलिके और भी एक विशेषता यह है, कि अप्रहायण और माघ महानेमें गोधूलिके विवाह होने पर वैधव्य, किन्तु फाल्गुन, वैशाख, ज्यैष्ठ और आषाढ महानेमें जो विवाह होता है, वे सब शुभ हैं। शनि और गृहस्पतिवारके दिवादनमें गोधूलिके निषिद्ध है।

इसो प्रकार प्रणालीसे दिन और लग्न विपर कर विवाह-कार्य करना उचित है। दुर्दिन तथा कुलग्नमें विवाह कदापि नहीं देना चाहिये।

विवाहके समय सीरमासका उल्लेख कर कन्यादान करना उचित है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि विवाहदि संस्कार कार्योंके सङ्कल्प वाष्योमें सीरमासका हो उल्लेख करना होगा।

उद्गाहत्स्वमें लिखा है, कि दिनको विवाह नहीं करना चाहिये। क्योंकि दिनको विवाह करनेसे कन्यामें पुल-घर्जिता होती है। दिनका दान साधारण विधि है, किन्तु विवाहमें जो दान किया जाये, वह रातको ही करनेकी विधि है।

विवाहके इस दानके सम्बन्धमें एक विशेषता है। सप्त जगह दानमात्रमें ही दाता पूर्वकी ओर मुंह कर दान और गृहीता उत्तरमुखी हो कर प्रदण करते हैं, किन्तु विवाहमें इसका व्यतिक्रम दिखाई देता है। व्यतिक्रम शब्दका अर्थ—दाता पश्चिममुखी हो कर कन्यादान करे और गृहीता पूर्वकी ओर मुंह कर कन्या प्रदण करे।

दान करते समय दाता पहले वरके प्रपित्तःमहसे वर तक नाम, गोत्र और प्रवरका उल्लेख किया जाना चाहिये। इसके बाद कन्या दान की जाये।

विवाहमें वर और कन्याके परस्पर राशि, लग्न, प्रह और नक्षत्र आदिका एक दूसरेसे मेल है या नहीं, उसका भी अच्छी तरह विचार करके ही कन्या निरूपण करना चाहिये। इस तरहके निरूपणसे विवाह शुभप्रद होता है। अरिपंडुक, मितपंडुक, अरिद्विद्वादश, मितद्विद्वादश आदि देव कर राजघोटक मेलक होनेसे विवाह प्रशस्त है। इस मेलकका विषय घोटक शब्दमें देखो।

विवाहके समय कन्याके भाल पर तिलक काढ़ना होता है। यह तिलक गोरीचना, गोमूत्र, सूखे गोबर, दधि और चन्दन मिला कर कोढ़ना उचित है। इससे कन्या सौभाग्यवती और आरोग्य होती है। तिलक आदि द्वारा कन्याको अच्छो तरह सज्जित कर वर और यष्टीको समुत्त करायें।

विवाहके दिन प्रातःकाल सम्प्रदाता षष्ठी मार्कण्डेय, आदिकी पूजा, अविवास, वसुधारा और नान्दीमुख-श्राद्ध

कर रातको विहित लग्नमें वाधादि नाना उत्सवोंके साथ अग्नि, ब्राह्मण और आत्मोय खजनके सम्मुख कन्या-सम्प्रदान करना चाहिये। सम्प्रदानके बाद कुशण्डिका और लाजहाम आदि करने होते हैं। यदि विवाहको रातकी ये कार्य न हा सकें, तो विवाहके बाद जो दिन उत्तम दिवाह दे, उसो दिनको करने चाहिये।

साम, ऋक् और यजुर्वेदीय विवाह-पद्धतियों अलग अलग हैं। इनके होम आदि कार्य भी भिन्न प्रकारके हैं।

विवाहित (सं० लि०) ऊतविवाह, जिसका विवाह हो गया हो।

विवाहिता (सं० लि०) जिसका पाणिप्रहण हो चुका हो, व्याही हुई।

विवाहो (सं० लि०) १ विवाहकारी, व्याह करनेवाला। २ जिसका विवाह हो चुका हो, व्याही हुई। ३ विशेष-रूपसे वहनकारी, रूख बोध होनेवाला।

विवाह्य (सं० लि०) १ विशेषरूपसे वहन करनेके योग्य, जिमको अच्छी तरह वहन किया जा सके। २ पाणि-प्रहण करने योग्य, व्याहने लायक। (पु०) ३ जामाता।

विविंश (सं० पु०) क्षुपराजाके पौत्र। विदर्भराजकन्या नन्दिनो इनकी माता थी। (मार्कण्डेयपु० १२०।१४)

विविंजति (सं० पु०) विषयजसम्भूत नृपतिविशेष। (भागवत ६।२।२४)

विवि (हिं० वि०) १ दो। २ दूसरा।

विविक (सं० लि०) वि विच-क। १ पवित्र। २ निजन, विजन। ३ पृथक् किया हुआ। ४ विचरा हुआ। ५

त्यक्। ६ विवेकी, ज्ञानी। ७ विवेचक, विचारनेवाला। ८ शुभ। ९ एकप्र। (पु०) १० विष्णु। (भारत १३।१४।१४)

११ संन्यासी, त्यागी।

विचिकचरित (सं० लि०) जिसका आचरण बहुत अच्छा और पवित्र हो, शुद्धचरितवाला।

विविकता (सं० स्त्री०) विविकिका भाव या धर्म, विवे-कित, वैराग्य।

विविकतव (सं० स्त्री०) विविकता।

विविकनाम (सं० पु०) १ पुराणानुसार हिरण्यरेताके सात पुत्रोंमेंसे एक। २ इसके द्वारा शासित वर्षकी नाम।

विचिका (सं० स्त्री०) वि-विच् क स्त्रियां टाप् ।
दुर्मंगा ।

विचिकि (सं० स्त्री०) वि-विच्-किन् । १ विभाग । २
विच्छेद । ३ उपयुक्त सम्मान, पार्थक्यनिर्णय ।

विचिकस्तु (सं० लि०) वि-विच् क्तुः । विवेकवान्,
ज्ञानी ।

विचिक्षु (सं० लि०) शरणेच्छु, आश्रयेच्छु ।
(भाग० पु०, ६।४।५०)

विचिचार (सं० लि०) १ विचाररहित, विवेकशून्य ।
२ आचाररहित ।

विचिचारो (सं० पु०) १ अविषेकी, मूर्ख, येवकूप । २
दुश्चरित्र, दुराचारी ।

विचिचि (सं० लि०) पृथक्कृत, अलग किया हुआ ।
विचिचि (सं० स्त्री०) विशेष लाभ ।

विचिचि (सं० स्त्री०) १ आत्मतत्त्व जाननेको इच्छा,
आत्मविचार । (भाग ११।७।१७) २ जाननेकी इच्छा ।

विचिचि (सं० लि०) १ जाननेमें इच्छुक । (भाग० ३।८।३)
(पु०) २ धृतराष्ट्र के एक पुत्रका नाम । (भाग ११।१।७४)

विचिदिपि (सं० स्त्री०) विचिचि, जाननेकी इच्छा ।
विचिदिपि (सं० लि०) विचिचि, जाननेका इच्छुक ।

विचिद्युत् (सं० लि०) १ विद्युत्हीन । २ विद्युद्-
विशिष्ट ।

विचिद्य (सं० लि०) १ बहुत प्रकारका, अनेक तरहका ।
(पु०) २ एकाहभेद । (शास्त्राख्यानश्रीवल्लो १४।२।१३)

विचिध्व (सं० पु०) दानवभेद । (भारत)
विधीत (सं० पु०) १ वह स्थान जो चारों ओरसे घिरा
हो । २ प्रचुर तृणकाष्ठसे, पूर्ण राजरक्षित भू-प्रदेश ।

यह स्थान ऊँट मँसू आदि द्वारा विध्वस्त होने पर राजा
उनके पालकोंको दण्ड देता है ।

विधीतभृत् (सं० पु०) विधीतभूमिका स्वामी ।
विचिचि (सं० स्त्री०) वि घञ-क्त, स्त्रियां टाप् । दुर्मंगा ।

विचिघ (सं० पु०) १ देवता । २ पण्डित, ज्ञानी ।
विचिघपुर (सं० पु०) देवताओंका देश, इसको

विचिघमिया (सं०) प्रत्येक चरणमें, र,
'चंचली' और 'चंचल'

विचिघयन (सं० पु०) देवताओंका प्रमोद वन, नन्दनकानन ।
विचिघवैध (सं० पु०) देवताओंके चिकित्सक, अश्विनो-
कुमार ।

विचिघेय (सं० पु०) देवताओंका राजा, इन्द्र ।
विघृत् (सं० स्त्री०) अग्न ।

विघृत (सं० लि०) वि-घृ-क् । १ विस्तृत, फैला हुआ ।
(शाकन्तल १ मालक) २ खुला हुआ । (पु०) ३ ऊष्म

स्वरोके उच्चारण करनेका प्रयत्न । स्पृष्ट, रंपस्पृष्ट, विघृत
और संघृत ये चार प्रयत्न हैं । इनमेंसे ऊष्मवर्ण और

स्वरके प्रयोगकालमें, प्रक्रियादर्शमें विघृत होता है ।
विघृता (सं० स्त्री०) पैसिक क्षुद्ररोगभेद । इसमें मुँहमें

गूलरके फलके सदृश मंडलाकार फुंसियां होती हैं
तथा मुँह खून आता है । पैसिक विघृतको तरह इसको

चिकित्सा करने होती है । (भावप्र०)
विघृताक्ष (सं० पु०) विघृते अक्षिणो-यस्य । १ कुषकृत,
मुर्गा । (लि०) २ विस्तृत अक्षिविशिष्ट, बड़ी बड़ी आँखों-

वाला ।
विघृति (सं० स्त्री०) वि-घृ-क्ति । व्याख्या, टीका ।

विघृतोक्ति (सं० स्त्री०) एक अलङ्कार । इसमें श्लेषसे
छिपाया हुआ अर्थ कवि स्वयं अपने शब्दों द्वारा प्रकट

कर देता है ।
विघृत (सं० लि०) वि-घृ-क्त । चक्रवद् चलित, चक्र-

की तरह घुमा हुआ ।
विघृत्ति (सं० स्त्री०) वि-घृ-त् कि । १ चक्रवद्गमन, चक्र-

के समान घूमनेकी क्रिया । २ घूर्णन, घूमना । ३ विविध
वृत्तिलाभ ।

विघृद्दि (सं० स्त्री०) विशेषरूपसे वृद्धि ।
विघृद् (सं० पु०) आपे आप खुल जाना ।

विघृद् (सं० पु०) काश्यपके पुत्रभेद । ये ऋग्वेदके १० म
मण्डलके १६३ संख्यक सूक्तद्वारा ऋषि हैं ।

विघेक (सं० पु०) वि-विच् घञ् । १ परस्पर व्वावृत्ति
अर्थात् वाद विचार द्वारा वस्तुका स्वरूपनिश्चय । वस्तुतः

किसी प्रकारका कुतर्क न करके केवल परस्पर पर्याय
तर्क द्वारा प्रकृत निर्णय करनेका नाम ही विघेक है ।

और पुरुषकी विभिन्नताका ज्ञान । पर्याय—
विघेचन, प्रथमभाव । (अनु १।२६) ३ जल-

द्रोणी, पानी रखनेका एक प्रकारका बरतन । ४ विचार, बुद्धि, समझ । ५ मनकी यह शक्ति जिसमें भले बुरेका ज्ञान होना है, भले और बुरेको पहचाननेकी शक्ति । ६ ज्ञान । ७ वैराग्य, संसारके प्रति विराग या विरक्त-भाव । ८ स्नानागार, चढ़बच्चा । ९ भेद । १० विचारक, भले बुरेका विचार करनेवाला ।

विवेकज्ञ (सं० त्रि०) विवेक' जानाति विवेक-ज्ञा-क । जिसे भले बुरे पहचाननेका ज्ञान हो ।

विवेकज्ञान (सं० क्लो०) विवेकजनितं ज्ञानं विवेक एव ज्ञानं वा । तत्त्वज्ञान, सत्यज्ञान ।

विवेकता (सं० खो०) १ विवेकका भाव, ज्ञान । २ सत् और असत्का विचार ।

विवेकदृश्यन् (सं० त्रि०) विविक्' दृष्टवान् विवेक-दृश-कनिप् । विवेकदर्शी, तत्त्वज्ञानी, विभेकी ।

विवेक्यत् (सं० त्रि०) विवेकमस्यास्तीति विवेक-मत्तुप् मस्य यत्वम् । विवेकविशिष्ट, वैराग्ययुक्त ।

विवेकयान् (सं० पु०) १ वह जिसे सत् और असत्का ज्ञान हो, अच्छे बुरेको पहचाननेवाला । २ बुद्धिमान्, अहमन्द ।

विवेकविलास (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ ।

विवेकानन्द—१६वीं सदीके शेष भागमें जो सब महा-पुरुष बङ्गदेश और बङ्गालके शिरोमणिरूपमें प्रतिष्ठा लाभ करके पृथ्वी-पूज्य हो गये हैं, स्वामी विवेकानन्द उनमेंसे प्रधान हैं । कलकत्तेके तिमिलिया नामक स्थानमें स्वामी विवेकानन्दने १२६६ सालकी २६वीं छण्णा-सप्तमी तिथि उत्तरायण-संक्रातिके दिन (सन् १८६३ ई०की १२वीं जनवरीको) जन्मग्रहण किया था । उनके पिताका नाम था विभ्यनाथदत्त । वे कलकत्ता हाईकोर्टके पढ़ाई थे । विभ्यनाथके तीन पुत्र थे । सबसे बड़े-का नाम नरेन्द्र, मंकेलेका मदेन्द्र और छोटेका नाम भूपेन्द्र था । उपेष्ट पुत्र नरेन्द्र ही स्वामी विवेकानन्द नामसे विख्यात हुए ।

नरेन्द्र बचपनमें बड़े खिलाड़ी थे, परन्तु लुप्त नहीं थे । बचपनमें ही स्मरण शक्तिकी अधिकता, प्रत्युत्पन्नमतिव्य, सरल हृदयता आदिको देख लोग विस्मित हो जाया करते थे । नरेन्द्रको यह बात मालूम नहीं

थी, कि कुटिलता और स्वार्थपरता आदि किसका नाम है । अपने बन्धु वाग्ध्व अधया किसी पड़ोसीके किमी कष्टको देख कर शोष ही उसको कष्टसे उबारनेका प्रयत्न करने लग जाते थे ।

यद्यपि नरेन्द्र खूब तमाशा परोपकार आदि कार्योंमें लगे रहते थे, तथापि इससे वे अपना काम बन्धी भूलते नहीं थे । बीस वर्षकी उमरमें वे एक, एक की परोक्षामें उत्तरी हो बी० ए० में पढते लगे । इसी समय उनकी चित्तवृत्ति धर्मकी ओर आकृष्ट हुई । धर्मकिले कहने हैं और कौन धर्म सत्य है, इस बातका अभिपण करनेके लिये उनका हृदय व्याकुल हो उठा । हेस्टि साहब नामक एक पादरी थे । वे जनरल पसम्बली कालेजके अध्यापक थे । नरेन्द्र उन्हींके निकट प्रति दिन घंटों बैठ कर धर्म सम्बन्धी कथोपकथन किया करते थे । परन्तु इससे इनका संवेद दूर न हुआ । चारों ओर धार्मिकीकी वज्रकता देख कर वे नितान्त संशयात्मा हो गये । अन्तमें हृदयका संग्रय दूर कर वे साधारण ब्राह्मसमाजमें प्रविष्ट हुए । जिस समय नरेन्द्र धर्मानुसन्धानके चक्रमें पड़ कर इधर उधर भटकते फिरते थे, उसी समय रामकृष्णदेव परमहंसके उन्हें दर्शन हुआ । नरेन्द्रके एक मित परमहंस देवके शिष्य थे । वे ही नरेन्द्रको एक दिन दक्षिणेश्वरकी कालीबाड़ीमें परमहंस देवके समीप ले गये और परिचय करा कर बोले, 'प्रभो ! यह लड़का नास्तिक होता जा रहा है ।'

परमहंस देव श्यामाविपयक और वैदहत्व सम्बन्धी गीत बड़े प्रेमसे सुनते थे । कुछ दिर तक कथोपकथन होनेके बाद गुठकी आवाजसे नरेन्द्रके मितने उन्हें गीत गानेके लिये कहा । नरेन्द्रका कण्ठ खर बड़ा ही मधुर और हृदयग्राही था । वे अपने मितके कहनेसे परमहंस देवके सामने गाने लगे । नरेन्द्रका गाना सुन कर परमहंस देव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने नरेन्द्रसे कहा, 'नरेन्द्र ! तुम यहाँ रोज आया करो ।' परमहंस देवके आश्रुसारा प्रायः ही नरेन्द्र उनके यहाँ आते जाते और परमहंस देवसे शङ्का समाधान करते थे । परमहंस देव जो कहते थे, नरेन्द्र उसका युक्तिगोसे खण्डन कर दिया करते थे । एक दिन परमहंस देवने नरेन्द्रसे कहा था, 'नरेन्द्र ! यदि

तुम हमारी बातें मानते ही नहीं' है, तो फिर हमारे यहाँ आते क्यों हो?' नरेन्द्रने उत्तर दिया, 'मैं आपके दर्शन करने आता हूँ, न कि आपकी बातें सुनने।'।

परमहंस देवके पास जाने जानसे नरेन्द्रका संदेह कुछ कुछ दूर होने लगा। इसी समय वी० ए० परीक्षा पास करके वे कानून पढ़ने लगे। कुछ दिनोंके बाद नरेन्द्रके पिताका देहान्त हो गया। पिताकी मृत्युके बाद नरेन्द्रका स्वभाव एकदम पलट गया। वे परमहंस देवके पास जा कर बोले, 'महाराज। मुझे योग सिखाइये। मैं समाधिस्थ हो कर रहना चाहता हूँ। आप मुझे उसकी शिक्षा दें।' परमहंस देवने कहा, "नरेन्द्र! इसके लिये चिन्ता क्या है? सांख्य, वेदान्त, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थोंको पढ़ो, आप ही सब मील जाओगे। तुम तो बुद्धिमान हो। तुम्हारे जैसे बुद्धिमानोंसे धर्मसमाजका बड़ा उपकार हो सकता है।" उसी दिनसे परमहंस देवके कथनानुसार नरेन्द्र धर्मग्रन्थ पढ़ने और योग सीखने लगे।

नरेन्द्रकी माता अपने पुत्रको उदास देख उनका विवाह कर देना चाहती थी, परन्तु नरेन्द्रने विवाह करनेसे दिल्कुल इन्कार कर दिया। कहते हैं, कि परमहंसदेवने नरेन्द्रके विवाहकी बात सुन कर कालोजीसे कहा था, 'मा! इन उपद्रवोंको दूर करो, नरेन्द्रकी बच्चाओ।'।

परमहंस देवकी छुपासे नरेन्द्र महाझानी सन्यासी हो गये। परमहंस देवके परलोकवासो होने पर गुरुकी आह्वासे नरेन्द्रने अपना नाम विवेकानन्द स्वामी रखा।

परमहंस देवके शरीरत्याग करनेके बाद विवेकानन्द स्वामी हिमालयके मायावती प्रदेशमें जा कर योगसाधन करने लगे। दो वर्षके बाद तिब्बत और हिमालयके अनेक प्रदेशोंमें वे घूमे। वहाँसे पुनः स्वामीजी राजपूतानेके आनूपर्वात पर आये। वहाँ खेतड़ी महाराजके मन्त्री मुन्शी जगमोहनलाल स्वामीजीके किसी भक्तके साथ उनके दर्शनके लिये आये। मुन्शीजीने जा कर खेतड़ी महाराजसे स्वामीजीकी विद्या बुद्धि आदिभी प्रशंसा की। स्वामीजीकी प्रशंसा सुन कर खेतड़ीके महाराजने स्वामीजीका दर्शन करना चाहा। महाराजके

सम्मानकी रक्षा करनेके लिये स्वयं स्वामीजी खेतड़ी पधारे। स्वामीजीसे साक्षात् होने पर महाराजने स्वामीजीसे पूछा, 'स्वामीजी! जीवन क्या है?' स्वामीजीने उत्तर दिया, 'मानव अपना स्वरूप प्रकाशित करना चाहता है और कुछ शक्तियाँ उसको दानकी चेष्टा कर रही हैं; इन प्रतिद्वन्द्वी शक्तियोंको परास्त करनेके लिये प्रयत्न करना ही जीवन है।' महाराजने स्वामीजीसे इसी प्रकार अनेक प्रश्न किये और स्वामीजीने यथाथ उत्तर पा कर फूले न समाये। स्वामीजीके ये कट्टर भक्त हो गये। महाराजके कोई पुत्र नहीं था। उसी समय महाराजके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ, कि यदि स्वामीजी महाराज आशीर्वाद दें, तो अश्वय ही वे पुत्रवान् होंगे। यही विचार कर स्वामीजीके जानेके समय महाराजने बड़े चिन्तयसे कहा, 'स्वामीजी! यदि आप आशीर्वाद दें, तो मुझे एक पुत्र हो।' स्वामीजीने अन्तःकरणसे आशीर्वाद दिया। इसके दो वर्ष बाद स्वामीजीके आशीर्वाद्से महाराजके एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।

महाराज चाहते थे, कि स्वामीजीके आशीर्वाद्से पुत्रने जन्मग्रहण किया है, इसलिये स्वामीजी ही आ कर उसका जन्मोत्सव करें। उस समय स्वामीजी मद्राजमें थे। मुन्शी जगमोहनलाल उनको खोज करते-करते वहाँ पहुँचे और उन्होंने खेतड़ी महाराजका अभिलाष स्वामीजीसे कह सुनाया। उस समय १८६३ ई०की अमेरिकामें एक महाधर्म सम्मेलन होनेवाला था। उस सभामें संसार-भरके धर्मके प्रतिनिधि निमन्त्रित किये गये थे, परन्तु हिन्दू धर्मका कोई प्रतिनिधि उस समयमें नहीं सुलाया गया था। उस सभाका यह उद्देश था, कि संसारके धर्मोंसे तुलना करके ईसाई धर्मकी श्रेष्ठता स्थिर की जाय। उस सभाके समापति से देवरण्ड ब्यारे। ब्यारे साहबने शायद समझा था, कि हिन्दू मूर्ख होते हैं, उनको निमन्त्रण देना व्यर्थ है। इस अपमानको न सह कर कतिपय भारत सन्तानोंने स्वामी विवेकानन्दका वहाँ भेजना स्थिर किया।

मुन्शी जगमोहनलालके विशेष अनुरोध करने पर स्वामीजी खेतड़ी आये। खेतड़ीके महाराजने स्वामीजीको

बड़ा आदर स्तरेकार किया। कुछ दिनों तक खेतड़ीमें रह कर स्वामीजी अमेरिका जानेके लिये प्रस्तुत हुए। महाराजने उनके अमेरिका जानेका आग्रह प्रबन्ध कर दिये। महाराजकी आज्ञामें मुंशी जगमोहनलालजी बम्बई तक स्वामीजीके पहुँचानेके लिये गये और स्वामीजीका मन्त्र प्रबन्ध उनके अप्पोन हुआ।

बम्बईमें जा कर मुंशी जगमोहनलालने सभी सामप्रियोंका प्रबन्ध करके स्वामीजीको जहाज पर बैठा दिया। स्वामीजीको विदा करनेके लिये जो लोग जहाज पर गये थे वे लौट आये।

स्वामी विद्येकानन्द चिकागोकी धर्मसभामें हिन्दूधर्मके प्रतिनिधि बन कर गये सन्दी, परन्तु इन्हें उस सभामें निमन्त्रण नहीं मिला था। 'अमेरिकामें' इनका कोई परिचित भी नहीं था जहाँ जा कर स्वामी जी उदरने, तथापि स्वामीजीने अमेरिकाके लिये प्रस्थान कर दिया।

यथासमय जापान होता हुआ जहाज अमेरिकाके बन्दरमें पहुँचा। अन्यान्य यात्रियोंके समान स्वामीजी भी जहाजसे उतर कर चिकागो शहरकी ओर चले। स्वामीजीका वेशभूषा देख कर वहाँके वासियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े कौतुहलसे लोग स्वामीजीकी ओर देखने लगे और उनका परिचय पूछने लगे। स्वामीजीने भी अपने आनेका पूरा पूरा पृष्ठान्त उनसे कह सुनाया। उन पूछनेवालोंमें सभो बटोही ही नहीं थे, कतिपय गण्यमान्य व्यक्तियोंने स्वामीजीकी विद्वत्ता और गुणोंसे आकृष्ट हो कर उन्हें अपने यहाँ ठहराया और धर्मसभामें स्वामीजीकी भी निमन्त्रण देनेके लिये उक्त सभाके सभापति द्वारा साहबसे अनुरोध किया। पहले तो द्वारा साहब हीला हवाला करने लगे परन्तु पीछेसे उन लोगोंके विशेष दबाव डालने पर द्वारा साहबने स्वामीजीकी निमन्त्रण दिया।

धर्मसभामें अधिवेशनका समय उपस्थित हुआ। इङ्ग्लैण्ड और अमेरिकाके प्रसिद्ध पण्डित धार्मिक और धर्मशास्त्रियोंने उस सभामें अपने धर्मकी मद्दिमा गायी। ब्रह्माचारके ब्राह्मसमाजके प्रसिद्ध प्रचारक प्रताप चन्द्र मजुन्दार इस सभामें निमन्त्रित हो कर गये थे। उन्होंने भी इस सभामें व्याख्यान दिया।

ब्राह्मधर्मकी वफतुना समाप्त होते ही स्वामी विद्येकानन्द व्याख्यान मञ्च पर खड़े हुए। एक अपरिचित ब्रह्मत-नामा संन्यासी इस समारोहमें हिन्दूधर्मकी विशेषता बतलानेके लिये खड़ा हुआ ई—यह देख कर अन्यान्य विद्वान् चकित हो गये। दूसरोंकी बात क्या कही जाय, स्वयं प्रतापचन्द्र मजुन्दार भी इससे आश्चर्याग्णित हो गये।

स्वामीजीने धीरे धीरे व्याख्यान देना प्रारम्भ किया और हिन्दूधर्मकी विशेषता लोगोंको समझा दी। उन कट्टर युवकोंकी धारणा शोध हो बदल गई जो हिन्दूधर्मको धर्म धर्म और पौराणिक धर्म समझे हुए थे।

स्वामीजीकी वफतुनाशक्ति, शास्त्रज्ञान, अकाट्ययुक्ति और तर्कप्रणालीको देख कर विद्वन्मण्डली और साधुसमाजको चकित होना पड़ा था। चारों ओरसे धन्य धन्यको वीछार आने लगे। समस्त अमेरिकामें स्वामीजीकी वफतुताकी प्रशंसा होने लगी। सब लोगोंने जान लिया कि स्वामीजी सत्य सत्य ज्ञानो पुरुष हैं। अमेरिकाके सभी पत्रोंने स्वामीजीकी प्रशंसा की।

स्वामीजीकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। अमेरिकाके अन्यान्य स्थानोंसे वफतुना देनेके लिये स्वामीजीके पास निमन्त्रण आने लगे; प्रायः दो वर्ष अमेरिकाके अनेक स्थानोंमें व्याख्यान दे कर और धर्मकी सार्धजनोन्ना समझा कर "हिन्दूधर्म ही वादि और सत्य है" यह बात अमेरिकावालोंके हृदयमें हृदरूपसे अङ्कित कर अमेरिकावासो स्त्रीपुरुषोंको ब्रह्मचर्य अवलम्बन द्वारा वेदागत शिक्षा दे कर और उनकी धर्म-प्रचार कार्यमें नियुक्त कर स्वामीजी अमेरिकासे इङ्ग्लैण्ड गये।

स्वामीजीने अमेरिका जा कर पहले दो वर्ष अमेरिकावासो मैडम लुइस और मिस्टर सैण्डेस बर्गके प्रवचन प्रहण करा कर वेदागतकी शिक्षा दी। इस समय वे स्वामी अमयानन्द और स्वामी कृपानन्द नाम धारण कर अमेरिका और यूरोपमें वेदागतका प्रचार करते थे।

स्वामी विद्येकानन्द अपने कतिपय यूरोपीय गिणियोंके साथ १८६६ ईमें इङ्ग्लैण्डसे भारतवर्ष आनेके लिये रवाना हुए। भारत आने समय सिंहालवासियोंकी ओरसे उन्हें कोलम्बोमें आनेके लिये निमन्त्रणपत्र मिला।

अतएव स्वामीजीने सि'हलकी ओर प्रस्थान कर दिया ।

सि'हलकी राजधानीका नाम कोलम्बो है । स्वामी विवेकानन्दजी कोलम्बो जा कर उपस्थित हुए । उस देशके बड़े बड़े विद्वान् और धनियो'ने स्वामीजीका अभिवादन किया । सभी लोग स्वामीजीकी वस्तुता सुननेके लिये लालायित हो रहे थे । कोलम्बोमें वस्तुता दे कर स्वामीजी कान्दी नामक स्थानमें गये । कान्दी निवासियो'ने स्वामीजीको एक अभिनन्दनपत्र दिया, स्वामीजीने भी उसका उचित उत्तर दिया । तदनन्तर वहाँके दर्शनाय स्थानोंका दर्शन कर स्वामीजी दाम्बूल नामक स्थानमें पधारे । इसी प्रकार सि'हलके अनेक स्थानोंमें जा कर स्वामीजीने व्याख्यान दिया । वहाँसे स्वामीजी मन्द्राज सेतुबन्ध रामेश्वर हेतु हुए कलकत्ते आये । कलकत्तेमें उनकी अभ्यर्थनाके लिये बड़ा समा हुई । कलकत्तेमें कुछ दिन रह कर वे ढाका, चट्टग्राम और कामरूा गये ।

सन् १९०० ई०में स्वामीजी पेरिस धर्म सभासे निमन्त्रित हो कर वहाँ गये । तीन महिने रह कर वहाँसे जापान हेतु हुए स्वामीजी कलकत्ते लौट आये । इसी समयसे इनका स्वास्थ्य बिगडने लगा । इस समय इनको उमर सिर्फ ३६ वर्षका थी । इसी अल्पावस्थामें १३०६ सालकी २०वीं आयु दृष्ट कृष्ण ज्ञानुदर्शी तिथि साढ़े नौ बजे रातका (सन् १९०२ ई०की ४वीं जुलाई) गङ्गाके किनारे स्वीय प्रति-ष्ठत वैलूड मठमें स्वामीजीने नश्वर शरीरका त्याग किया ।

विवेकिता (सं० ख०) १ विवेकीका भाव या धर्म ।
२ वचनरुका कर्म ।

विद्यान्तव (सं० कृ०) विवेकिता, ज्ञान ।

विवेकिन् (सं० पु०) विवेकाऽस्त्यस्येति विवेक-नि ।

१ विवेचयुक्त, अले शुरेहा ज्ञान रखनेवाला । न्यायमतमें विवेकीका लक्षण इस प्रकार है,—

"द्वयदहनदहमानदाहृदरघनपूर्णापमाणधूनसांघातव-
विह जगति जो समते जायो स विवेकीत ।"

इस जगतमें द्वयदहनकाळोन दहमान काष्ठोद्भरघन कीटकी तरह भ्राम्यमान जीव ही (मनुष्यका जीवात्मा ही) विवेकी कहलाता है । अर्थात् दायानल प्रखलित

हो कर जब दनके वृक्षादिको दग्ध करने लगता है, तब उन वृक्ष-कीटके कीट जिस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ़ हो अत्यन्त यन्त्रणाके साथ कभी वृक्षके ऊपर और कभी नीचे जाते हैं, दूसरा कोई उपाय उन्हें सूख नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीवात्मा बार बार संसारमें आ कर विषम दुःख भोगता है; आखिर संसारकी असीम यन्त्रणा न सह कर जब वह कीटकी तरह अवस्थापन्न हो जाता है, तब उसे विवेकी कहते हैं ।*

२ विचारकर्ता, न्यायाधीश, वह जो अभियोगों आदि-
का न्याय करता हो । ३ विचारवान्, बुद्धिमान् । ४ ज्ञानी
५ न्यायशील । ६ भैरववंशोत्पन्न देवसेन राजपुत्र ।
इनकी माताका नाम केशिनी था । (काशिकापु० ६० अ०)
७ वैराग्यविशिष्ट, वैरागो ।

विवेकी (सं० पु०) विवेकिन देवो ।

विवेकव्य (सं० त्रि०) वि-विच्-तव्य । विवेचनाके योग्य ।

विवेकृ (सं० त्रि०) वि-विच्-न्तृच् । १ विवेचक । २ विचारक ।

विवेक्य (सं० त्रि०) वि-विच्-यत् । विवेक्य, विवेचनाके योग्य ।

विवेचक (सं० त्रि०) वि-विच्-ण्वुल् । १ विवेचनकारी, विवेकी । २ विचारक, न्यायाधीश ।

विवेचन (सं० क्लो०) वि-विच्-ल्युट् । १ विवेक, ज्ञान ।

२ किसी वस्तुको अली मति परीक्षा करना, जाँचना ।

३ यह देखना कि कौन-सी बात ठीक है और कौन नहीं, निर्णय । ४ व्याख्या, तर्कवितर्क । ५ अनुमन्यमान । ६ परीक्षा । ७ सत् असत्का विचार । ८ मामांसा ।

विवेचना (सं० ख०) विवेचन देवो ।

* इगसे मान्य होता है, कि वेही अवस्थाको माने विवेक तथा उस अवस्थापन्नको विवेकी कहा गया । यथार्थमें उस अवस्थाके आने पर ही विवेक वा तत्त्वज्ञान होता है ही नहीं, परन्तु जबके उस अवस्थापन्न होनेसे उसी अवस्थाके मध्य अंगकी शक्ति या आत्यन्तिक दुःखनिश्चिन्ताकी निपसा होती है । पीछे इसके साथ साथ ही तत्त्वज्ञान उपस्थित होता है । इस कारण वही अवस्था विवेक कहाती है ।

विवेचनीय (सं० त्रि०) विवेचन करने योग्य, विचार करने लायक ।

विधेयित (सं० त्रि०) १ विचारित, जिम्मेकी विवेचना की गई हो । २ सिद्ध, निश्चिन, ती किया हुआ ।

विधेय्य (सं० त्रि०) विवेचनाके योग्य ।

विधेय्यिण्यु (सं० त्रि०) वि-विद्य णिच्-सन्-उ । विशेष रूपसे जानानेमें इच्छुक, जिसने अभीष्ट विषय बतानेको इच्छा की हो ।

विधोद् (सं० त्रि०) वि-वद्-तुच् । १ वर, पति । २ बहनकर्त्ता, दोनेवाला ।

विध्याधिन् (सं० त्रि०) विशेषेण व्याधितुं शीलं यस्य वि-ध्याध-णिनि । १ उत्तेजनकारी । २ यन्धनशील, विद्ध करनेवाला ।

विद्यत (सं० त्रि०) विविध कर्मशील, नाना कार्योंमें व्यस्त ।

विद्युत् (सं० त्रि०) वि-द्रु-शत् । विद्युत् चक्ता, खिलाफ बोलनेवाला ।

विद्योक् (सं० पु०) स्त्रियोंकी शृङ्गारभाषण क्रियाविशेष । ये अशृङ्गारवशतः प्रिय वस्तुमें जो अनादर दिखलाती हैं, उसीका नाम विद्योक् है । जैसे कोई मित्र उपहासकी तौर पर अपने मित्रको आशोर्वाद देता है, "मित्र ! तुम सद्गुणानुसरणशील हो, तुम्हें जो सर्वदा दीयी बनाती है, तुम उसीको जगत्के श्रेष्ठतम पदार्थ प्राण तक भी श्योछावर कर देने हो, फिर भी वह तुम्हें प्रेमकी दृष्टिसे नहीं देखती तथा जो कार्य निन्दित नहीं है अथच तुम्हारा अत्यन्त प्रिय है ; ऐसा कार्य करनेमें जो तुम्हें सर्वदा बाधा डालती है, वह त्रैलोक्यधिसमयकर प्रकृतिशालिनी पामा तूम पर प्रसन्न हैं ।" यहाँ पर प्रस्तावित स्त्रीके गर्वातिशय सम्बन्धमें फिरसे आलोचना करना अनावश्यक है । अतएव यहाँ गर्वातिशयके कारण प्रिय वस्तु में अचया यथेष्ट अनादर दिखलानेके कारण स्त्रीका विद्योकभाष प्रकट होता है ।

"विद्योक्स्त्यतिगर्वेण वस्तुनीष्टेऽप्यनादरः ।"

(साहित्य ३।१२०)

विश (सं० स्त्री०) विश-विष्य । १ प्रजा, जातक । (पु०)

२ वैश्य, रुषि और धाणिज्यध्वमायो जातिविशय ।

३ कन्या । ४ मनुष्य । (त्रि०) ५ व्यापक ।

विश (सं० स्त्री०) विश-क । १ मृणाल, कमलकी डंठी । (रायमुकुट)

"पद्मनालं मृणालं स्यात् तथा विशमिति स्मृतम् ।"

(भावप्रकाश)

२ रीत्य, चाँदी । (पु०) ३ मनुष्य, आदमी ।

(स्त्री०) ४ कन्या । (त्रि०) ५ प्रवेशकर्त्ता, घुसनेवाला ।

६ व्यापक, फैला हुआ ।

विशंवरा (सं० स्त्री०) विशं मनुष्यं नृणोतीति विश ण्व-अच्, स्त्रियां टाप् अभिधानात् द्वितीयाया बलुक् । पत्नी, बड़ा प्राम ।

विशकण्डा (सं० स्त्री०) विशं मृणालमिव कण्डो यस्याः । बलाका, बगला ।

विशङ्क (सं० त्रि०) विगता शङ्का यस्य । शङ्कारहित, जिसे किसी प्रकारकी शंका या भय न हो ।

विशङ्कट (सं० त्रि०) वि-शङ्क-टच् (पा १।२।२८) १ विशाल, बहुत बड़ा या विस्तृत । २ भयानक, डरायना ।

विशङ्कनीय (सं० त्रि०) जिसे किसी प्रकारकी शङ्का हो, डरने लायक ।

विशङ्कमान (सं० त्रि०) वि-शङ्क-शानच् । आशङ्ककारी, शंका या भय करनेवाला ।

विशङ्का (सं० स्त्री०) १ आशङ्का, भय । २ शङ्काका अभाव । ३ अविश्वास ।

विशङ्को (सं० त्रि०) जिसे किसी प्रकारकी आशङ्का या भय हो ।

विशङ्ख्य (सं० त्रि०) १ आशङ्काके योग्य । २ अविश्वास्य । ३ निर्भयके योग्य ।

विशद (सं० त्रि०) वि-शद-अच् । १ विमल, स्वच्छ । २ स्पष्ट, साफ । ३ व्यक्त, जो दिखाई पड़ना हो । ४ शुभ्र, सफेद । ५ विविकाशय । ६ प्रसन्न, खुश । ७ अनुकूल । ८ सुंदर, मनोहर । ९ उज्वल । (पु०)

१० श्वेतवर्ण, सफेद रंग । ११ भागवतके अनुसार जयद्रथके एक पुत्रका नाम । १२ कसौती । १३ पहती, बड़ी कटाई ।

विशान (सं० स्त्री०) प्रवेशन, आगमन ।

विशानगर—बम्बई प्रदेशके बड़ीदा राज्यके अन्तर्गत एक

विशाखायां ज्ञानः। (त्रिं) २ विशाखजात, जो विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ हो।

विशाखदत्त (सं० पु०) प्रसिद्ध सुदाराक्षसके रचयिता। इनके पिताका नाम पृथु और पितामहका नाम घटेश्वर दत्त था। सद्बुक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है। १०वीं शताब्दीमें ये विद्यमान थे।

विशाखदेव (सं० पु०) ११वीं सदीके पूर्ववर्ती एक प्राचीन संस्कृत कवि।

विशाखपत्तन—मद्राज प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षां० १७°१५' से २०° ७' ३० तथा देशां० ८१° २४' से ६४° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३० लाख और भू-परिमाण १७२२२ वर्गमील है। भू-विस्तृति और जनसंख्याके आधिक्यमें यह जिला मद्राज प्रेसिडेन्सीमें प्रधान गिना जाता है। विशाखपत्तन, उत्तर गञ्जाम जिला, पूर्व बङ्गोपसागर, दक्षिण बङ्गोपसागर और पश्चिम मध्यप्रदेश द्वारा घिरा हुआ है। यह जिला चौदह जमोन्दारियां, ३७ भूसम्पत्ति और तीन सरकारी तालुकके सम्राष्टसमवायसे गठित हुआ है। इस जिलेमें १२ शहर और १२०३२ ग्राम लगते हैं। विशाखपत्तन मद्राजके उत्तर सामुद्रिक प्रदेशका एकांश है। इतिहासमें यह उत्तर सरकारके नामसे प्रसिद्ध है। यह स्थान अल्पतः पर्वत-संकुल और स्मरणीय है; किन्तु बहुत ही अस्वास्थ्यकर है। पूर्वघाट नामकी शैलश्रेणीका एक अंश इस नगरका विभाग कर वक्रभावसे इसके उत्तर पूर्वांश से दक्षिण-पश्चिमांश तक फैला हुआ है। विभक्त भूमिका एकांश पर्वतमय और दूसरा अंश सु-समतल है। शैलश्रेणीका सर्वोच्च शृङ्ग प्रायः ५००० फीट ऊंचा है। पर्वतके ढालुप अंशमें तरह तरहके पौधे और बड़े बड़े वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं। उपत्यका भूमिमें बहुतेरे सुन्दर बांस दिखाई देते हैं। कितने ही जलप्रवाह नालाकी तरह परिभ्रमण कर बङ्गोपसागरमें मिल गये हैं और कई जल-प्रवाह शाखां नदीके रूपसे गोदावरी और महानदीका कलेवर पुष्ट कर रहे हैं।

पूर्वघाट शैलश्रेणीके पश्चिमांशमें जयपुर-जमीन्दारीका अधिकांश विस्तृत है। यह साधारणतः पर्वत संकुल और जङ्गलमय है। इस जिलेके उत्तर और

उत्तर-पश्चिमांशमें कन्ध और श्वर जातिकी वस्ती है। उत्तर प्रांतमें नीलगिरि पर्वतश्रेणी अवस्थित है। नीलगिरिसे दक्षिण-पूर्वांशमें जो स्रोतस्वती प्रवाहित होती है, उसने थोकाकोल और कलिङ्गपत्तन नामक स्थानोंमें नदीका आकार धारण किया है।

विमलौरत्तन और कलिङ्गपत्तन नगर व्यवसाय-वाणिज्यमें क्रमशः उत्तम हो रहे हैं। समुद्रके तीरस्थित समतलभूमि अधिकांश ही पर्वतमय है। समुद्रकी प्रान्त भूमि और विशाखपत्तन श्वरका प्रवेशपथ बड़ा ही रमणीय है। यहां सरकारके कई वनविभाग हैं। सिवा इसके अन्यत्र स्थान जमींदारी सम्पत्ति है। जयपुर राज्यके अधिकांश स्थलमें जङ्गल है। पालकुण्डा वनमें और गोलकुण्डा तालुकके वनविभागमें बहुतेरे वृक्ष और वृक्ष-देखे जाते हैं। सर्वसिद्धि तालुकमें बहुत जमीन परती पड़ी हुई है। पार्घतीपुर इलाकेमें बहुतेरे शालवृक्ष मिलते हैं। विजागपट्टम् और विजयनगरम् शब्दोंमें विस्तृत विवरण द्रष्टव्य।

विशाखपत्तन शहरके बाहर स्वास्थ्यकर स्थानविशेषमें जेलखाना स्थापित है। इस जेलमें १७२ आदमी रह सकते हैं। जो फेरी अधिक दिनके लिये सजा पाते हैं, वे राजमहेन्द्राके सदर जेलमें रखे जाते हैं। पहाड़ी जातियोंके लिये पार्घतीपुरमें एक नया जेलखाना बना है। इसमें १००से अधिक फेरी नहीं रखे जा सकते। फेरीकी अवस्थामें इस जातिकी मृत्यु-संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है।

कई वर्ष पहले विशाखपत्तनमें शिक्षाका नामोनिशान भी न था। विजयनगरम् नगरमें महाराजके द्वारा प्रतिष्ठित एक पहाड़ी श्रेणीका कालेज है। यहां बी, ए, तर्ककी पढाई होती है। विशाखपत्तनमें एक अर्द्ध-सरकारी दूसरे दर्जाका कालेज है। सिवा इसके यहां और भी तीन ऊंचे अङ्क्रेजी, ११ मध्य अङ्क्रेजी और ८१२ प्राथमरी स्कूल हैं। विशाखपत्तन, पालकुण्डा और इलामञ्जिली नामके तीन स्थानोंमें एक एक नामल स्कूल हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानोंमें ६ बालिका-विद्यालय और विशाखपत्तनमें कई युवकों द्वारा स्थापित और परिपोषित हयक सन्तानोंके लिये एक अथैतनिक

रात्रि-पाठशाला भी है। धीरे धीरे यहांके बालक और बालिकायें शिक्षामें उन्नत हो रही हैं। यह बात मनुष्य-गणनासे स्पष्ट है।

विशाखपत्तन नगर, विमलीपत्तन, विजयनगरम् और अनोकरपल्ली जिलेमें चार अर्थात् एक म्युनिसिपल-कार्यालय है। विशाखपत्तन शहरके उपकरठमें प्रसिद्ध वाल्टियर (वैलतर्) नामक स्थान है। यह स्थान प्रधानतः श्वेताङ्गोंके अधिकारमें है। इस स्थानकी चौड़ाई तीन मील है। इस स्थानका जलवायु बहुत ही अच्छा है। विशाखपत्तन नगरमें म्युनिसिपलिट्रीका एक बहुत बड़ा आफिस है। इसके अधीन एक पुस्तकालय, पाठागार और स्थानीय समितिका कार्यालय भी प्रतिष्ठित है। यहां एक बड़ा अस्पताल और डाकूरखाना है। इसकी उन्नतिके लिये विजयनगरम्के महाराजकी ओरसे बहुत अर्ध-व्यय किया जाता है। अस्पतालके निकट ही एक अनाथाश्रम और इसके समीप ही सरकारी पागलोंकी गार्ड है। व्यवसाय भागियमें विमलीपत्तन विशेष विख्यात है। यहां अङ्गरेज और फ्रान्सीसियोंके कई कारखाने हैं और कलकत्तेसे ब्रह्मदेश तक जो ट्रेमर दौड़ता रहता है, उसका एक स्टेशन है। विमलीपत्तनमें एक अस्पताल, एक गिरजा, एक विद्यालय और एक पाठागार है और इनके सिवा विजयनगरम् जिलेकी देशीय पैदल सेनाओंके रहनेके लिये एक गढ़ है।

जलवायु—स्थानकी विभिन्नताके अनुसार सर्वत्र एक तरहका स्वास्थ्य नहीं। समुद्रके किनारेके स्थानोंका स्वास्थ्य साधारणतः मृदुमयुर और ग्लानिहारक है। कुछ दूर प्रामके भीतर जानें पर बहुत गर्म मालूम होने लगता है। पूर्वाघाट पर्वतमालाके निकटके स्थान बहुत ही ठंडे हैं और मलेरिया प्रधान है। शहरमें मलेरिया उबरका प्रादुर्भाव अधिक है। पहाड़ों प्रदेशोंमें अङ्गुली उबर या आयरामपित उबरका प्रकोप अत्यधिक है। इसके सिवा हैजा और चेचकका भी कभी कभी प्रादुर्भाव होता रहता है। समतल, विशेषतः सेतसेत स्थानोंमें धेरिपरि नामक एक प्रकारका रोग भी होता है। उसके निकटके प्रदेशमें श्वेतरोग, फील-पाघ और गुलगण्डका प्रभाव भी कम नहीं। जो हो, सर्वोपरि विशाखपत्तनका स्वास्थ्य उत्कृष्ट है।

२ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत विशाखपत्तन महकमेका एक तालुक। भूपरिमाण १४२ वर्गमील है।

३ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अधीन विशाखपत्तन जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षांश १६° ४१' ५०" उ० तथा देश ० ८३° २०' १०" पू०में अवस्थित है। यह म्युनिसिपलिट्रीके अधीन एक प्रसिद्ध शहर है। यहां एक प्रधान सेनानिवासाका कार्यालय, जज साहब, मजिस्ट्रेट और सभ-मजिस्ट्रेटकी कचहरियां, जेलखाना, पुलिस दफ्तर, पोष्ट, और टेलिग्राफ आफिस, गिरजा, स्कूल, अस्पताल, अनाथाश्रम, पागल-गारद इत्यादि बहुतेरी इमारतें मौजूद हैं।

विशाखपत्तन शहर बङ्गापसागरके किनारे स्थापित है। एक नदी शहरसे होती हुई सागरकी ओर गई है। यह शहर दुर्गकी तरह है। साधारणतः इसको विशाखपत्तन-दुर्ग भी कहते हैं। यहां बहुसंख्यक यूरोपीय पैदल सैन्य हैं।

म्युनिसिपलिट्रीकी चेष्टा और अर्थके साहाय्यसे यहांका स्वास्थ्य और रास्ता, घाट आदिकी यथेष्ट उन्नति हुई है। सिवा इसके म्युनिसिपलिट्रीके साहाय्यसे एक पाठागार, पुस्तकालय और कई स्कूल तथा पाठशालायें स्थापित हैं। शहरकी उन्नतिके लिये विजयनगरके महाराज अकातरभावसे अर्ध-व्यय करते हैं।

प्रवाद है, कि चौदहवीं शताब्दीके मध्यभागमें अफ्र राजने इस नगरको भित्ति डाली थी। मुसलमानोंकी विजयके समय कलिङ्ग प्रदेशका अवशिष्ट भाग ले कर यह नगर भी मुसलमानोंके अधिकारमें आया। १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें इष्ट-इण्डिया कम्पनीने यहां एक कौडी निर्माण की। सन् १६८६ ई०में इस कारखाने पर आक्रमण कर मुसलमानोंने यहांके कर्मचारियोंको मार डाला। इसके दूसरे वर्ष अङ्गरेजोंने इस पर पुनः अधिकार कर लिया और यहां शीघ्र ही एक किला बनवाया। १८वीं शताब्दीमें जाफर अली या उसका मराठा दल विमलीपत्तन और उसके चारों ओरके स्थानोंकी लूट-पाट करके भी विशाखपत्तनका विशेष अनिष्ट नहीं कर सका था।

इसके बाद सेनापति बुशीने कुछ दिनोंके लिये इस

नगर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद विजय-नगरम्के राजाने फ्रांसोसियोंको मार भगाया और इस नगरको अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। यह सन् १७५८ ई०की घटना है। सन् १७८० ई०में सिपाही-विद्रोहके सिवा इतिहास प्रसिद्ध और कोई घटना यहां नहीं हुई।

पहले ही कहा जा चुका है, कि विशाखपत्तन एक प्रसिद्ध बन्दर है। सुतरां वाणिज्य-व्यवसायमें यह स्थान उत्तरोत्तर उन्नत हो रहा है। आमदनी द्रव्योंमें विशेश-जात छोटा छोटी चीजे और इङ्गलैण्डकी धातु है और रफतनोमें अन्न और गुड़का व्यवसाय ही उल्लेखनीय है। यहां बहुत तरहके देशी कपड़े, कारुकार्यमय द्रव्यसम्पन्न, चन्दनकाष्ठ और रूपेकी सामग्री तम्पार होती है। इसके सिवा वषस, डेक्स, पाशाका कोट आदि चीजे तैयार होती हैं।

विशाखपत्र (सं० पु०) बालरोगभेद, बालकोंका एक प्रकारका रोग।

विशाखयुप (सं० पु०) १ एक प्राचीन राजा। २ नृसिंह-पुराणोके प्राचीन जनपदभेद। कोई कोई इसीको विशाखपत्तन मानते हैं। विशाखपत्तन देखो।

विशाखल (सं० छो०) युद्धकालमें अधिक व्यवधानमें रखा हुआ दोनों पोरका विन्यास।

विशाखा (सं० खो०) १ कठिणलक, करेला। (मेदिनी) २ अश्विनी आदि सप्तार्धस नक्षत्रोंमें १६वां नक्षत्र। इसका पर्याय—राधा। इस नक्षत्रका रूप तोरणाकार और उसमें चार तारे हैं। (गुह्यसिद्धान्तमणि) यह नक्षत्र दो भागोंमें बंटा है, इसलिये इसके दो देवता इन्द्र और अग्नि हैं। यह नक्षत्र मित्तोंके अन्तर्गत है। (श्रीवितस्त्व) इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे ज्ञातबालक सर्वदा नाना कार्योंमें अनुत्क रहता है तथा फेयल स्वर्णकारके साथ उसकी मित्रता होती है और किसीके भी साथ नहीं। (कोष्ठीप्रदीप)

३ श्वेतरके पुनर्नवा, सफेद गद्दहपूरना। (वधवनि०) ४ कृष्णा अपराजिता, काली अपराजिता। ५ कठिणलक नक्षत्र, करेलेकी लता।

विशाखा—प्राचीन जनपदभेद। चीनपरिभाषक युपेन-चुयंगने "पि सो-किआ" नाममें इस जनपदका उल्लेख किया है। चीन-परिभाषकके वर्णनसे यह मालूम होता है, कि वे कौशाम्बी दर्शन कर यहांसे १३० या १८० ली (प्रायः २५१३० मील) उत्तर आ कर विशाखा राज्यमें पहुंचे। इस राज्यका परिमाण प्रायः ४००० ली और राजधानी प्रायः १६ ली थी। यहाँ तरह तरहके अन्न और घघेष्ट फलमूल उत्पन्न होते हैं। यहांके अधियासी शिष्टशान्त, सभी अध्ययनमें निरत और मोक्षकामी हैं। चीन-परिभाषकके समय यहां २० संघाराम था और उसमें हीनयान सम्प्रदायके प्रायः ३००० श्रमण रहते थे। सिवा इसके यहां उन्होंने ५० देवमन्दिर और उसमें बहुतेरे देव-भक्त देखे थे।

राजधानीके उत्तर राजपथके वामपार्श्वमें एक बड़ा संघाराम था। यहाँ रह कर पहले अर्हत् देवशर्माने 'विज्ञानशास्त्र' लिख कर आत्मघातका खण्डन किया। यहाँ ही धर्मपाल बोधिसत्त्वने ७ दिनसे शताधिक हीनयानी आचार्योंको परास्त किया था। इसी संघारामके निकट बुद्धदेवके निर्भाल्य-परित्यक्त पुष्पगोत्रोत्पन्न एक वृक्ष विद्यमान था। बहुत दूर देशसे बौद्धयात्री इस बोधितककी देखने आते थे। कितनी ही बार ब्राह्मणोंने इस पेड़को काट डाला। फिर भी, चीनपरिभाषकके आनेके समय तक वह वृक्ष मौजूद था। इसके निकट ही चीन-परिभाषक गत ४ सुखोंकी स्मृतियां देख गये हैं। प्रव्रतस्त्वविद् कानिहमने साकंत या वर्त्तमान अयोध्याको ही चीन-परिभाषकका विशाखाराज्य स्थिर किया।

विशाखिका (सं० खो०) विशाखा देखो।
विशाखिल (सं० पु०) एक कलाशास्त्रके रचयिता।
विशातन (सं० लि०) विशत-गिन्ध-चयु। मोचनकर्ता, छुड़ानेवाला।
विशाय (सं० लि०) १ शापान्त, जापरहित। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम।

विशाम्पति (सं० पु०) विशां प्रजातां पतिः। राजा।
विशाय (सं० पु०) विशा-घञ्। (शुभयोः श्वेते पयसि) पा.

३३३३६) प्रहरीगणको पर्यायक्रमसे शयन, पहरेदारोंका
बारी बारीसे-सोता ।

विशायक (सं० पु०) लताभेद । विशाकर देखो ।

विशायिन् (सं० त्रि०) वि-शी-णिनि । १. शयनकारी,
सोनेवाला । २ जो नहीं सोता है या जाग कर पहरा देता
है ।

विशारण (सं० द्वी०) वि-शृ-णिच्-ल्युट् । मारण,
मारना ।

विशारद (सं० त्रि०) विशाल-दा क ; रलयोरभेदः इति
लस्य षः । १. विद्वान् । (मनु ७, ६३) २ प्रसिद्ध, महा-
ह्वर । ३ प्रगल्भ । ४ श्रेष्ठ, उत्तम । ५ दक्ष, निपुण । ६ अपनी
क्षमता पर विश्वासवान्, जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा
हो । ७ विस्तृत । ८ गर्वित, घमंडो । (पु०) ९
वक्रुल, मौलसिरी ।

विशारदा (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र दुरालभा, घमासा । २
क्रौञ्च, कर्वाच ।

विशारदिम्ब (सं० पु०) वैशारध, नैपुण्य, निपुणता ।

विशाल (सं० त्रि०) वि शालच् । (वेः शालच्-इडक् ।
१। ५। १। २५) यद्वा विश-प्रवेशने कालन् (वामिविकिचिङ्गिति ।
उष् १। १। ७) १ घृहत्, बड़ा । विगतःशालः स्तम्भो यस्य ।
२ स्तम्भरहित । ३ विस्तृत, चौड़ा । ४ विषयात्, महाह्वर ।
५ विस्तीर्ण, फैला हुआ । ६ जो देखनेमें सुन्दर और
भव्य हो । (पु०) ७ मृगभेद । ८ पक्षिभेद । ९ वृक्षभेद ।
१० एक पुराण-प्रसिद्ध राजा, इक्ष्वाकुके पुत्र । इन्हीं
ही विशाला नगरी स्थापित की थी । (रामायण)

११ पड़हभेद । (कात्यायनभोतवृ० २। १। १। १२) १२ तृण-
विन्मुका पुत्रभेद । (विष्णुपुराण) विशालदेश देखो ।

१३ वैदिश या विदिश नगरीके एक राजाका नाम ।
मार्कण्डेयपु० ७। ४) १४ पर्वतभेद । (मार्कण्डेयपु० १६। १। २)

विशालक (सं० पु०) १ कपिध्वज, कैपु । २ गहड़ ।
३ वृक्षभेद ।

विशालग्राम (सं० पु०) पुराणोक्त ग्रामभेद । (मार्क० पु०)
विशालता (सं० स्त्री०) विशाल तल्लु टापु । १. विस्तार ।

२ वृहस्प, प्रकाण्डता । ३ पार्श्वविस्तार ।
विशालतैलगर्भ (सं० पु०) अङ्गुठवृक्ष ।
विशालवक्त्र (सं० पु०) सप्तपर्णवृक्ष, छतितवन ।

विशालदा (सं० स्त्री०) लताभेद (Alhagi Manrarum) ।
विशालदेश—विशालराज-प्रतिष्ठित एक प्राचीन जनपद ।
मविष्य-ग्रन्थखण्डमें इसका विचरण इस तरह देख पड़ता
है—

“गङ्गा और गण्डकी नदीके बीचके भूभाग पर
विशालराजका शासनाधिकार था । इस देशके वायु
कोणमें बेतिया (वेतिय), पूर्व ओर मधुपुर, दक्षिणमें भागो-
रथी और उत्तरमें शेकम या सलामपुर था । इस प्रदेशका
सीमाविस्तार २० योजन था । विशालदेशके अधि-
वासी अधिकांश ही धार्मिक थे । इस देशमें और भी
तीन छोटे छोटे देश शामिल थे । उनमें एकका नाम
चम्पारण, दूसरेका शालीम्य, तीसरेका दीर्घद्वार था ।
यह शेषोक्त देश अपेक्षाकृत छोटा होने पर भी विशाल-
देशकी समूची घटनायें इसीके नाम पर विवृत हैं ।
यहां एक प्रसिद्ध स्थान है, जिसका नाम कसमर है ।

दीर्घद्वारदेशका संक्षिप्त विवरण—दीर्घद्वारके सभी
अधिवासी धर्मिष्ठ, परदारसे सदा विमुक्त रहनेवाले
और कृषिकार्यमें तत्पर रहते थे । यहाँके ब्राह्मण
शास्त्रनिष्ठ और धार्मिक होते थे । अधिवासियोंके
हृदयमें धर्मकारका प्रबल अनुराग भरा रहता था ।
इनमें परस्पर कगड़ा विवाद नहीं होता था । यहाँके लोग
काले और गण्डमाला तथा गलगण्ड रोगके रोगी थे । ये
गण्डकी नदीमें स्नान करते थे सदा, फिर भी कालिके
प्रभावसे इनका रोग शोक अनिवार्य था । शस्यके भीतर
यहाँ प्रचुर परिमाणसे धान पैदा होता । यहाँ तीन
जातियोंका वास था—कायस्थ, ब्राह्मण और कुरमो ।
कालिके प्रारम्भमें दीर्घद्वारमें लगातार चार राजाओंके
राजत्वकालका उल्लेख है ।

दीर्घद्वारके अर्द्धयोजन पर महादेशी अम्यिकाका अधि-
ष्ठान था । राजा विशाल इन देशोंके प्रतिष्ठाता थे । दीर्घ
द्वारके अधिवासी इनकी पूजामें तत्पर रहते थे ।

विशालदेशके द्विजातीय धेनु-चर्चामें लगे रहने थे ।
ह्वानमें, ध्यानमें, धनमें, शौर्यमें, सम्मानमें ये विशाल
नामके योग्य थे । दीर्घद्वारके अधिवासी कालिके
प्रारम्भमें वक्रुल, धनशोक, स्त्रेण और माता, पिता, शक्ति,
आर्द्र और सुहृत्, संजान, यादिका धन दर्शन कर आराम

सुखसाधनमें रत होते थे। सिधा इनके जण्डमत्त स्थानमें जिनका वास था, वे राजकीय कर देनेमें बिलकुल विमुक्त थे। कलिका एकांश धीतने पर ही इस देशमें केतुका उदय हुआ। किन्तु एक केतु नहीं, श्वेत, नील और रक्तवर्ण भेदसे लगतार चार भोपण केतु उदय हुए। ये लोकनाशके हेतुभूत कहलाते हैं। फल भी ऐसा ही हुआ—इसी समय नेपालियोंके साथ गण्डकी नदीके किनारे विशालदेशवासियोंका घोर युद्ध हुआ। यह युद्ध तीन वर्ष तक रहा। हरिहर शिवदेव उस समय विशालदेशके राजा थे। इस युद्धमें विशालदेश विध्वस्त हुआ। यही नहीं, नेपालियों द्वारा यह देश लूटा गया, लोगोंको हत्या की गई, अन्तमें इस देश पर नेपालका अधिकार हो गया। यह सब घटनायें कलिके आरम्भिक समयमें हुईं। नेपालियोंके लूट तरज मचानेसे यह विशाल देश दरिद्र हो गया। इस दरिद्रताके कारण यहांके अधिवासी यहांसे चले गये और दूसरी जगह बस गये।

कात्तिक महानेमें यहां मेला लगता है। यहां गङ्गा और गण्डकी नदीका संगम बड़ा ही पुण्यप्रद है। इसीसे यहां यात्री आ कर स्नानादि कर अपने पाप क्षालन करते हैं।

अब विशालदेशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रामोंका विवरण संक्षेपमें दिया जायगा। विशालदेशके एक ही प्रदेशमें ही कुल सात हजार ग्राम हैं। इन सात हजार ग्रामोंमें तीस ग्राम विशेष उल्लेखनीय हैं। पहला ग्राम हरिहरक्षेत्र है। यह ग्राम गण्डकी नदीके किनारे पर बसा हुआ है। यहांके अधिवासियोंमें ब्राह्मणोंकी संख्या ही अधिक है। बूढ़ आदि निम्न श्रेणीके अधिवासी बहुत कम हैं। यहां हरिहर देवका एक ऊँचा मन्दिर है। इसका दृश्य बड़ा ही मनोरम है। हर साल मेला यहां ही लगता है। इस मेलेमें अरण्य और ग्राम्य हर तरहके पशुओंको बिक्री बहुत अधिक होती है। सन् १५०५ विक्रमीय संवत्में अमोर या अमरेनगढीके अधिपति मानसिंह यवनराजके आदेशसे यशोराधिपतिकी विनाश करनेके लिये चले थे। यहां पट्टुच ज्ञानने यवना खेमां गण्डकीके किनारे छड़ा किया था। उन्होंने अपने स्वयंसे इस

हरिहर देवके मन्दिरका जोर्ण सँस्कार कराया था और देव-संघाके लिये बहुत-सी भूमि दान की थी।

ग्रामे-ग्रामके दक्षिण दीर्घाद्वार प्रदेशके अन्तर्गत शङ्करपुर एक प्रसिद्ध ग्राम है। यहां कल्याणकारी नामक एक शिवलिंग था। सुसलमानो अमलमें उसका अन्तर्धान हुआ। साथ ही साथ पापलोकसे इस ग्रामका धनवैभव भी विलुप्त हुआ। तीसरा ग्राम दुग्धल है। यहां सोमदत्त नामक एक ब्राह्मणके घर एक कपिला नाय थी। इसीलिये इसका दूसरा नाम कपिला ग्राम था। प्रवाद है, कि इस कपिला गौके प्रसादसे इस ग्रामके आदिमियोंकी भक्ष्य, भोज्य, पेय आदि सामग्रियोंका कमी अभाव होता न था। गौकी आस्था थी, कि इस ग्राममें यदि गोहत्या होगी, तो इस ग्रामका नाश अवश्यम्भावी है। परन्तु इसी ग्रामका नाम गङ्गाजल है। यह ग्राम बड़ा ही समृद्ध है। पुराणोंमें लिखा है, कि इस ग्रामके सभी ब्राह्मण त्रिसंध्या गङ्गा स्नान करते थे। कर्मवश एक ब्राह्मण पड़ेगु हो गये। गङ्गा स्नान कर न सकेगे, वह इस चिन्तासे व्याकुल हो उठे। स्नानाहार न कर उपवास रहे। रातमें ब्राह्मणने स्वप्न देखा, प्राणी गङ्गाजो कहती हैं—“जब तक तुम्हारी व्याधि अच्छी न होगी, तब तक मैं तुम्हारे घड़ेमें बास करूँगी” तभीसे इस ग्रामका नाम “गङ्गाजल” हुआ था। इस ग्रामके सम्यग्धर्म भविष्यद्वाणी है—गङ्गाजल ग्रामके ब्राह्मणोंके पापाचारसे इस ग्रामका ध्वंस होगा। इस ग्राममें सात बार अग्निकाण्ड, याद कलिकुदेवके आविर्भाव तक गहन वनमें इसको परिणत होगा।

गन्धाहार एक प्रधान ग्राम है। कलिके यह यवनाधिकारमें पतित हुआ। यहां बहुतेरे गन्धबणिजोंका आवास था। शतदल, मल्लिका, यूषिका और केतकी पुष्पोंको यंत्र द्वारा निर्गोडित कर एक तरहका सौगन्धिक रसद्रव्य तैयार करना इन बणिजोंका ध्येयसाध था। इसीसे यह ग्राम गन्धाहार नामसे सर्वत्र परिचित था। ग्राम सदा सुगन्धसे परिपूर्ण रहता था। ग्राममें प्रकाण्ड-प्रकाण्ड अश्वत्थ वृक्ष (पोयलके पेड़) थे। इस सुगन्धसे आलस्य है। कितने ही ब्राह्मणदेवोंने इन वृक्षों पर आ कर वास किया। एकमशः बणिक्-युक्तुमें पर-मल-

दैत्योंका समावेश हुआ। भूतावेशके कारण जय प्राम-वासो प्राम छोड़ कर भाग गये, तब वहाँके पुष्पाद्यान जनसमागमहीन हो कर शून्य हो गये।

और एक प्राम पानकपुर है। इस प्रामके अधिवासी अधिकांश ही याचकर अर्थात् वजिनियां थे। मलिन-वस्त्रमें, मलिनरूपसे, ही रहना उनका चिर अभ्यास था। शालिवाहन शाकके प्रारम्भमें इस प्रामका ध्वंस हुआ। विशालदेशका अन्यतम प्रधान प्राम देव या देवप्राम है। पहले यहाँ हर नरहके वृक्ष थे। यह स्थान गभीर अरण्य-मय था। इससे कोई सड़क ही इसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। विजालराजके वंशधरोंने यहाँके घन-वृक्षोंको काट कर साफ करा दिया। इसके बाद यहाँ उनके द्वारा अभ्युत्थानका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। उन्होंने अभ्युत्थानके पूजापचारको अच्छी व्यवस्था करा दी। राजाको आज्ञा पा कर यहाँ बनेक माली आ कर बस गये। अभ्युत्थानके प्रकोपसे यह प्राम भागसे नष्ट हुआ।

इसके बाद सुवर्णप्राम, गोविन्दवक, वामनप्राम, कजमरके उत्तर गोवर्द्धन और मकर प्राम थे। मकर प्राम चंद्रसेन राजा द्वारा नष्ट हुआ। इसके बाद शक्तिसिंह द्वारा प्रतिष्ठित विन्वहार, विशाल राजाका कोलिस्थान वन कोलि नामक बड़ा प्राम, भोज राजाके समयमें प्रतिष्ठित पारजाप्राम (यहाँ अकस्मात् एक कोसके अन्दाज जल-मय गभीर गाढ़हा उत्पन्न हुआ) है। और एक प्रसिद्ध स्थान तारामगर है। यहाँ तारा देवोका मन्दिर और बलिदानरत शाक ब्राह्मणोंका वास है। अदगादो नामक एक प्राम है। उपसेन राजाके यहाँ सामयक किया, और इसके उपलक्ष्यमें यहाँ कान्यकुब्जसे आये, चतुर्वेदी ब्राह्मणोंका आवास हुआ। और एक प्राम घसन्तपुर है। यहाँ विजाल-राजपुरोहितोंका आवास था। होलिका नामक एक राजसके उत्पातसे इस प्रामका ध्वंस हुआ। इस घसन्तपुरसे पूर्व ओर चार कोस पर विशाल नगरकोका ध्वंसावशेष विद्यमान है। (मविष्य ब्रह्मल० ३८-४६ अ०)

विशालका इतिहास।

मविष्य ब्रह्मण्डमें लिखा है—

सूर्यवंशमें तुणविन्दु नामके एक राजा थे। उनके

विशाल, हीनवधू और धूम्रकेतु नामके तीन पुत्र थे। इन तीनोंमें विशाल ही उद्येष्ठ थे। विशाल ही चीनके आचार आदि सीकनेके लिये उत्तरदेशको गये। गण्डकी नदीके किनारे उन्होंने एक मास तक घोर तप कर अपने नाम पर एक प्राम बसाया था। उनके रहनेके कारण यह स्थान वैशाल नामसे प्रसिद्ध हुआ था। राजा विशालके पुत्र हेमशशी, हेमशशीके धूम्राक्ष और धूम्राक्षके पुत्र संयम थे। यमादि अष्टाङ्ग योगकी सिद्धि प्राप्त होनेके कारण इनका नाम संयम पड़ा था। संयमके पुत्रका नाम महावीर कृशाश्व था। इन्हीं कृशाश्वके औरतसे और चाचश्रीलाके गर्भसे राजा सोमदत्तका जन्म हुआ। सोमदत्तने अश्वमेध यज्ञ किया। इनके पुत्रका नाम सुमति और सुमतिके पुत्रका नाम जनमेजय था। वैशाख नगरके धायुकोणकी तरफ प्रायः पांच कोस पर यहवष्टि प्राम है। यहाँ महाराज जनमेजयने सर्पयज्ञ किया था। १०८ हाथके पाषाण-निर्मित नाना चित्त-मय यहकुण्ड विद्यमान है। चंद्रविधिके अनुसार मन्त्र-विदु ब्राह्मणोंने यहाँ यहवष्टिको स्थापना की। इसीसे इसका यह यहवष्टि नाम हुआ। इस प्राममें यहवेदिकाके निकट राजा जनमेजयने याज्ञिक ब्राह्मणोंको शतप्रासाद-युक्त स्थान दान किया। कर्मो कर्मो इन मकानोंसे घनरत्नपूर्ण घड़ा मिलता था।

विशालपत्तनसे एक योजन पर दुर्गेम वशारदुर्ग है। इसमें तथा इसके निकट ५२ मनोरम जलाशय हैं। इस दुर्गमें विशालका राजवेश रहता था। उनके द्वारा प्रतिष्ठित विष्णुमूर्ति वर्त्तमान है। (अ०प्रदख० ४० अ०)
 द वैशाखी देखो।

पूर्वोक्त विवरणसे यह स्पष्ट ज्ञान जाता है, कि यह विशाल देश आज कलके बिहार प्रदेशका कुछ अंश था। इस विवरणमें विशाल देशकी जो सीमा निर्धारित की गई है, उससे यह भी पता चलता है, कि आज कलके सारन, चम्पारन और मुजफ्फरपुर जिलोंकी सीमाके अन्तर्गत ही यह विशाल देश था। विशालदेशमें दोर्घाद्वार एक प्रदेश गिना जाता था। किन्तु कालक्रमसे आज यहाँ एक विशाल प्रामके रूपमें परिणत हो गया है। 'दोर्घा द्वार' का अपभ्रंश द्वीपवारा है। पूर्वोक्त विवरणमें

दोर्घद्वार प्रदेशमें जिन बड़े बड़े ग्रामोंका उल्लेख किया गया है, वे ग्राम आज भी इस दोघवारा ग्रामके इर्द गिर्द ही अपने प्राचीन नामसे वर्तमान हैं। जैसे—आमो, गङ्गाजल, परशा, हरिहरक्षेत्र, दुग्धल (दुधैला) गोविन्दचक्र, मकोर, कश्मर, (अथ यह कोई जास ग्राम नहीं, परं इसी नामका यहां एक प्रगना है)। विलवहर, यसगतपुर आदि। दोर्घद्वार या दोघवारेमें ७०० पन० डबलयु रेलका स्टेशन भी है। इसके निकट ही कुछ मीलकी दूरी पर दक्षिण ओर स्टोमर स्टेशन भी मौजूद हैं। यहां दो स्टेशनोंके रहनेसे यहांकी उत्पन्न चीजोंकी रफ्तानी तथा बाहरकी वस्तुओंकी आमदनी होती रहती है। अतः यह ग्राम आज भी व्यवसाय धाणिज्यमें बढ़ा चढ़ा है। इसके निकट ही और भी कई ऐतिहासिक ग्राम भी हैं। शिवहारी, पकरो, शीतलपुर आदि। शिवहारीको सम्बन्धमें प्रवाद है, कि यहां शीलनोधि-राजा एक समय राज्य करते थे या उन्हींके द्वारा यह ग्राम बसाया हुआ था। इसीसे इन्हीं शीलनोधि राजाके नाम पर इस ग्रामका नाम शिवहारी हुआ। यहां उक्त राजा द्वारा प्रतिष्ठित एक शिवलिंग आज भी मौजूद है। यहां हर शिवरात्रिको दूर दूरसे यानी शिवजीको जल चढ़ानेके लिये आया करते हैं। खासकर फाल्गुन और वैशाखकी शिवरात्रिका तो यहां मेला लग जाता है। गाय बैल और अन्यान्य चीजें भी विकती हैं। इसके निकट एक पकरो ग्राम है। इस पकरो ग्रामके निकट ही उक्त शीलनोधि राजाका महल था। जिसका ध्वंस-वशेष आज भी मौजूद है। यह बीघोंमें फैला हुआ है, किन्तु किसानोंने चारों तरफसे बंट बंट लिया है। आज भी यह एक बीघेमें फैला हुआ है। इस पर घरसातके दिनेमें कभी-कभी प्राचीन सिक्के (मुद्रा) पाये जाते हैं। पकरोके सम्बन्धमें कहा जाता है, कि पहले यहां कोई घर न था। एक पाकरका बहुत बड़ा वृक्ष था। शीलनोधि-राजाका आवास होनेसे यहां भी एक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा हुई थी। राजा स्वयं यहां उपस्थित हो कर उक्त शिवलिंगकी पूजा किया करते थे; किन्तु कालक्रमसे अश्ववारसे कुछ भरद्वाज गोत्रीय द्विवेदे (दूबे) उपाधिधारी ब्राह्मणोंने आ कर इसे

आबाद किया। ये बड़े ही कर्मनिष्ठ और स्वधर्मनिरत हैं। निकट ही पूर्वोक्त शीतलपुर ग्राम है। यहां एक-सारसे आ कर पराशर गोत्रीय ब्राह्मणोंका आवास है। मदीरा ग्राम भी इस समय बहुत ही उन्नत ग्राम है। यहां अग्रजोंका एक चौकीका कारखाना है। चौकीके व्यवसायमें यह ग्राम बहुत ही उन्नति कर रहा है। विशालनगर (सं० ह्मी०) विशालराजनिर्मित नगर। विशालदेश देखो।

विशालनेत्र (सं० लि०) १ वृहत् चक्षुःविशिष्ट, बड़ी बड़ी आँखोंवाला। (पु०) २ बोधिसत्त्वभेद।

विशालपत्र (सं० पु०) विशालानि पत्राणि यस्य। १ धीतालवृक्ष। २ दिंताल। ३ मानकचयु, मानकंद।

विशालपुरी (सं० स्त्री०) नगरभेद।

विशालफलिका (सं० स्त्री०) विशाल फलं यस्याः ततः स्वार्थं कन् टापि अत इत्वं। निष्पाठो, बरसेमा।

विशाला (सं० स्त्री०) विशाल-टापु। १ इन्द्रवारुणी नामक लता, इन्द्रायन। २ उज्जयिनी। (मेदिनी) ३ उपोदको, पोइका साग। ३ महेंद्रवारुणी। (राजनि०) ४ तोर्यविशेष। शास्त्रानुसार सभी तोर्योंमें मुण्डन और उपवासका विधान है, परन्तु गया, गङ्गा, विशाला और विरजातोर्यमें मुण्डन तथा उपवास निषिद्ध बताया गया है। ५ दक्षको कन्या। ६ मुरामांसी, पकाङ्गो। ७ कलगा नामक घास। ८ गोरक्षकंदी, गवालककड़ी।

विशालाक्ष (सं० पु०) विशाले अक्षिणी यस्य समासे पच्। १ हर, महादेव। (भात १२।५।८०) २ गवड़। ३ गवड़वंशधर। ४ विष्णु। ५ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भात १।२०।१६) (लि०) ६ सुनेल, विशालचक्षुः, जिसकी आँखें बड़ी और सुन्दर हों।

विशालाक्षी (सं० स्त्री०) विशालाक्ष-स्त्रीपु। १ उत्तमा नारी। (विव०) २ नागदन्ती। (राजनि०) ३ पार्वती, दुर्गादेवी।

विशालाक्षी देवीकी पूजा तथा मन्त्रादिके विषयमें ऐसा लिखा है—

“हो विशालाक्ष्यै नमः” यही विशालाक्षी देवीका अष्टाक्षर मन्त्र है। यह मन्त्र आठ तरहकी सिद्धि प्रदान करता है। इस मन्त्रके अंगि-स्वाशिव, पंक

छन्दः, देवता विशालाक्षी, बीज ओं शक्ति ह्रीं ; यह धर्म, अर्घ, काम बीर मोक्ष चारों धगके लाभके लिये प्रयुक्त होता है।

ध्यान इस तरह है—

“ध्यायेद्देवीं विशालाक्षीं ततजाम्बूनदप्रमाम् ।

द्विमुजाम्बिकां चण्ड्रीं सद्गणेशकधारिणीम् ॥

नानात्रंकारमुमगां रक्ताम्बरधरां शुभाम् ।

सदा योद्धावपीयां प्रसन्नाख्यां त्रिलोचनाम् ॥

मुपदमाश्रयलीगम्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।

शबोपरि महादेवीं जयमुद्युतमपिटाताम् ॥

शत्रुक्षयकरां देवीं साधकाभोष्टदायिकाम् ।

सर्वसौभाग्यजननीं महासम्पत्प्रदां स्मरेत् ॥”

ऐसा ही देवीका ध्यान, अर्घ्यस्थापन और पीठ-देवता आदिको पूजा कर फिर ध्यानपूर्वक यथाशक्ति उपचार द्वारा पूजा करे। सामान्य पूजापद्धतिके निपमानुसार पूजा की जाती है। इस देवीकी मन्त्रसिद्धि करनेके लिये पुश्चरण करना होता है। उक्त मन्त्रका आठ लाय जप करनेसे पुश्चरण होता है।

विशालाक्षी देवीका यन्त्र—पहले त्रिकोण और उसके बाह्रमें अष्टदलपद्म, पृथ, चौकोन और चतुर्द्वार अङ्कन कर यन्त्र निर्माण करे। इसी यन्त्रमें सर्व-सौभाग्यदात्री विशालमुखी-विशालाक्षीदेवीको यथा-विधान आवाहन कर पूजा करे। त्रिकोणमें महादेवीको अर्चना कर बाह्यो प्रभृति अष्टमातृकाको पूजा करनी होगी। पीठे 'ओं पद्मजाड्यै नमः, ओं विष्णुषाड्यै नमः, ओं यकाड्यै नमः, ओं सुलोचनायै नमः, ओं एकनेत्रायै नमः, ओं द्विनेत्रायै नमः, ओं कोटराड्यै नमः, ओं त्रिलोचनायै नमः', इन सब देवताओंकी पूजा पञ्चाम्रमें पश्चिमादिदिक्म-से अष्टसिद्धिकृपिणी अष्टयोगिनीकी पूजा करे। चौकोनमें इन्द्रादि लोकपालको अर्चना कर उसके बाहर अथ आदिको पूजा करनी चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति मूल मन्त्रका जप कर विसर्जनान्तका कर्म करे।

४ चतुर्ग्रन्थ योगिनीके अन्तर्गत योगिनीविशेष। दुर्गापूजाके समय इनकी पूजा करनी होती है।

(दुर्गेत्सवपदति)

विशालिक (सं० पु०) अनुकम्पितो विशालदत्ता विशाल-

दत्त-दत्त (पा १।३।५४)। विशालदत्त नामक अनुकम्पा-युक्त कोई व्यक्ति है। इस अर्थमें विशालिय और विशालिन पद होने हैं।

विशाली (सं० स्त्री०) १ अन्नमोदा। (राजनि०) २ पलाशो लता।

विशालीय (सं० त्रि०) विशालिसम्बन्धोय।

विशिका (सं० स्त्री०) बालू, रेत।

विशिक्षु (सं० त्रि०) वि-गिज्ञ-कु। विशेष प्रकारसे शिक्षादाता या साधनकर्त्ता। (शृक २।१।१० वायण)

विशिक्ष (सं० पु०) विशिष्टा शिक्षा यस्य। १ शरत्पण, रामसर या भद्रमुंज नामको घास। (राजनि०) २ वाण।

३ तोमर, भालेकी तरहका एक हथियार। (मेदिनी) ४ आतुरागार वह स्थान जिसमें रोगी रहती हो।

५ चरलाका टफुआ। (त्रि०) विगता शिक्षा यस्य। ६ शिखारहित, विच्छिन्नकेश, मुण्डितकेश। धर्मशास्त्रके मतसे जिजाशून्य हो कर कोई धर्मकर्म करना निषिद्ध है।

विशिवपुङ्खा (सं० स्त्री०) शरपुङ्खा।

विशिष्ठा (सं० स्त्री०) १ खनित्री, खंता। २ रथ्या, रथोंका समूह। (भाष १।१।१७) ३ नालिका। ४ अपत्य-मार्ग। ५ कर्ममार्ग। ६ नापितकी स्त्री, नाहन।

विशिष (सं० स्त्री०) विज्ञानतयत्रेत। (यज) विटपिष्टप विशिरोक्षया। उण् ३।१।४५ इति कप्रत्ययेन निपातनात् साधुः। मन्दिर।

विशिषिय (सं० त्रि०) शिषयोः, हन्योर्नासिकायोर्वा कर्म। वि-शिष-श्रिय। जिसमें हनू या नासिकाको क्रिया नहीं है, हनू वा नासिकाचालन क्रियावाहीन कर्म।

(शुक्रपुत्रो ६।४ महीषर)

विशिरस् (सं० त्रि०) १ मस्तकहान, बिना सिरका। २ न्यूडाविहीन, बिना चोटोका। ३ मूर्ख, विद्याशुद्धि-शून्य।

विशिरस्क (सं० त्रि०) विगतं शिरो यस्य समासे कप्। शिरोहीन, बिना सिरका। (पु०) २ मेरुके पास एक पर्वतका नाम। (विहपु० ४६।४६)

विशिशासिपु (सं० त्रि०) हननोद्यत, मारनेकी तैयार।

(ऐतरेयब्रा० ७।१७ भाष्य-)

विश्विधिम (सं० लि०) १ विगत हनु, बिना दाढ़ीका ।
(पु०) २ दैत्यविशेष । (शुक श्रवण ६ सायण)

विश्विधन्य (सं० लि०) विश्वरहित, जिसके अङ्कोप न हो ।

विश्विधमिषु (सं० लि०) १ विश्राम करनेमें इच्छुक, आराम तलबी । (क्री०) २ किसी पदार्थके ऊपर विशेष लक्ष्य रखना ।

विशिष्ट (सं० लि०) विश्विष्य-क्त, या शास्त्र-क्त । १ युक्त, मिला हुआ । २ विलक्षण, अद्भुत । ३ भिन्न । ४ विशेष पतायुक्त, जिसमें किसी प्रकारकी विशेषता हो । ५ अति-शिष्ट, जो बहुत अधिक शिष्ट हो । ६ विख्यात, प्रसिद्ध । ७ यशस्वी, कीर्तिशाली । ८ सिद्ध । (पु०) ९ सीता नामक धातु । १० विष्णु ।

विशिष्टचारित (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

विशिष्टचारो (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

विशिष्टता (सं० स्त्री०) १ विशिष्टका भाव या धर्म । २ विशेषता ।

विशिष्टपत्र (सं० पु०) प्रन्थिपणों, गठियन ।

विशिष्टवयस (सं० लि०) पूर्णवयस्क, भरी जवानी ।

(दिव्यां २१६।४)

विशिष्टद्वैतवाद (सं० पु०) विशिष्टरूप अद्वैतवाद । द्वैतवाद, अद्वैतवाद और विशिष्टद्वैतवाद ये तीनों ही मत देखनेमें आते हैं । प्रकृति और पुरुष भिन्न होने पर भी दोनों मिलनरूप ब्रह्मवाद हैं । "पुरुष-स्तदतिरिक्ता प्रकृतिः किम्भूयमिलित्वा ब्रह्मरूपकद्विदल वत्, इत्थं ब्रह्मणः एकत्वं व्यवस्थितम् ।" (माधवभाष्य) अर्थात् पुरुष और प्रकृति भिन्न भिन्न हैं । किन्तु दोनों मिल कर ब्रह्म हैं । जिस प्रकार चनेमें दो दल अलग हैं और दोनों के मिलनेसे चना कहलाता है उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष परस्पर भिन्न हैं, पर दोनों मिल कर ब्रह्म हैं ।

वैद्वान्तिक आचार्यों के साधारणतः अद्वैतवादी होने पर भी उनके मध्य प्रकारान्तरमें द्वैतवादका नितान्त असङ्गाह नहीं देखा जाता । वैष्णव आचार्य प्रायः सभी विशिष्टद्वैतवादी हैं । उनका मत-यह है, कि ब्रह्म सर्वत्र सर्वशक्तियुक्त तथा निखिल कल्याणगुणके

आश्रय हैं । सभी जीवात्मा ब्रह्मके अंग परस्पर भिन्ने हैं तथा ब्रह्मके दास हैं । जगत् ब्रह्मकी शक्तिका विकास वा परिणाम है, अतएव वह सत्य है । सत्त्वस्वरादि गुणविशिष्ट ब्रह्म, सत्यत्वादि गुणविशिष्ट जगत् तथा किञ्चिज्ज्ञातव्य और धर्माधर्मादिगुणविशिष्ट जीवात्मा अभिन्न हैं अर्थात् जीवात्मा और जगत् ब्रह्मसे भिन्न हो कर भी भिन्न नहीं है । जीव भी ब्रह्मको तरह अभिन्न नहीं है, परन्तु धादित्यके प्रभावको तरह जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, किन्तु ब्रह्म जीवसे अधिक है । जिस प्रकार प्रमासे आदित्य अधिक है, उसी प्रकार जीवसे ईश्वर अधिक है । ईश्वर सर्वशक्तिमान्, समस्त कल्याण-गुणके आकर, धर्माधर्मादिशून्य है, जीव उसका विपरीत है ।

भेदाभेदवाद, द्वैतद्वैतवाद तथा अनेकान्तवाद विशिष्टद्वैतवादका नामान्तर मात्र है । इस मतका स्थूल तात्पर्य यह कि, ब्रह्म एक भी और अनेक भी है । वृक्ष जिस प्रकार अनेक शाखायुक्त होता है, ब्रह्म भी उसी प्रकार अनेक शक्तिके कारण विविध कार्य सृष्टियुक्त हैं । अतएव ब्रह्मका एकत्व और नानात्व दोनों ही सत्य हैं । वृक्ष जिस प्रकार वृक्षरूपमें एक है, शाखा-रूपमें अनेक है, समुद्र जिस प्रकार समुद्ररूपमें एक और फेनतरङ्गादिरूपमें अनेक है, मिट्टी जिस प्रकार मिट्टी-के रूपमें एक और घट गरावादि रूपमें अनेक है, ब्रह्म भी उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूप एक और जगद्रूपमें अनेक हैं । जीवब्रह्मसे अत्यन्त भिन्न होने पर भी ब्रह्मभाव नहीं हो सकता । किन्तु उपनिषदोंमें जीवकी ब्रह्मभाव कहा है । फिर जीवके भी ब्रह्मका अत्यन्त अभेद होनेसे लौकिक और शास्त्रोप सभी व्यवहार विलुप्त होते हैं । क्योंकि, सभी व्यवहार भेदसापेक्ष हैं । लौकिक प्रत्यक्षादि व्यवहार, हाता, ह्वेय और ज्ञानसाधनसे भिन्न नहीं हो सकते । धर्मानुष्ठानरूप शास्त्रीय व्यवहार और स्वर्गादि फल, कर्म, कर्त्ता, कर्मसाधन तथा कर्मोंमें अर्चनीय देवता ये सब भेदकी अपेक्षा करते हैं । भेद-युद्धि भिन्न ये सब व्यवहार नहीं हो सकते । फिर इन सब व्यवहारोंका अपलाप भी नहीं किया जा सकता । अतएव जीव, जगत् और ब्रह्म अत्यन्त

मिन्न हैं और न अमिन्न, कुछ मिन्न और कुछ अमिन्न हैं। इस कारण ब्रह्म-एक और अनेक दोनों हैं। उनमेंसे जब एकत्वशक्ति का ज्ञान होता है, तब मोक्ष वाच्यहार और जब भेदशक्ति का ज्ञान होता है, तब लौकिक और वैदिक वाच्यहार सिद्ध होता है।

श्रीवाचार्यो- तथा अद्वैतवादिषोका कहना है, कि विशिष्टाद्वैतमत जो कहा गया वह नितांत असङ्गत है। क्योंकि, दो वस्तु-एक हो समय परस्पर मिन्न और अमिन्न नहीं हो सकती। इसका वज्र यह है, कि भेद और भेद परस्पर विरोधी हैं। भेद भेदका अभाव है। भेद और भेदके अभावका एक समय एक वस्तुमें रहना असम्भव है। फिर कार्य कारण, यदि अमिन्न हो, तो जगत् ब्रह्मसे अमिन्न हो सकता है। किंतु कार्य और कारणके अमिन्नसे जिस प्रकार मृत्तिकाएँ घट शरा वादिका तथा सुवर्णरूपमें कुण्डल मुकुटादिका एकत्व कहा जाता है उन्ही प्रकार घट शरावादि और कुण्डल-मुकुटादिकारूपमें भी एकत्व क्यों नहीं कहा जाता? अर्थात् घट शरावादि और कुण्डल मुकुटादिकारूपमें जिस प्रकार नानात्व कहा जाता है, उस प्रकार उसी रूपमें एकत्व भी क्यों नहीं कहा जाता? क्योंकि मृत्तिका और घटशरावादि तथा सुवर्ण और कुण्डल मुकुटादिके अमिन्न होनेसे मृत्तिका सुवर्णादिका धर्म एकत्व घट-शरावादि और कुण्डलमुकुटादिमें तथा घटशरावादि और कुण्डल मुकुटादिका धर्म नानात्व मृत्सुवर्णादिमें अवश्य है, इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि कार्य और कारण जब एक है, तब एकत्व और नानात्वधर्म भी अवश्य कार्य और कारणगत होगा। इस स्वतःसिद्ध विषयमें और अधिक कहना अनावश्यक है।

किसी किसी आचार्यने इस दोषको हटानेके लिये अन्य प्रकारका सिद्धांत किया है। उनका कहना है, कि भेद और भेद अवस्थाभेदमें अवस्थित हैं। अर्थात् अवस्थाभेदमें एकत्व और नानात्व दोनों ही सत्य हैं। संसारावस्थामें नानात्व तथा मोक्षावस्थामें एकत्व है। अर्थात् संसारावस्थामें जीव और ब्रह्म मिन्न हैं तथा लौकिक और शास्त्रीय व्यवहार सत्य है। मोक्षावस्थामें जीव और ब्रह्म अमिन्न हैं तथा उस समय लौकिक और

शास्त्रीय समो व्यवहार निवृत्त होते हैं। उन लोगोंका यह सिद्धांत भी सङ्गत नहीं है, क्योंकि ब्रह्मात्मभाव-बोधक धृतिसमें अवस्थाविशेषका उल्लेख नहीं है। जोषका असंसारि ब्रह्मभेद सनातन है अर्थात् सर्वदा विद्यमान है, यहो धृतिसे मालूम होता है। धृतिसमें यह सिद्धकी तरह निर्दिष्ट हुआ है। धृतिवाच्यके अवस्था-विशेष-अभिप्रायकी कल्पना करना निश्चयोक्त है। 'तत्त्व-मसि' इस धृतिबोधित जोषका ब्रह्मभाव किसी प्रकार प्रयत्न या चेष्टासाध्यकारमें निर्दिष्ट नहीं होता। 'असि' इस पद द्वारा केवल स्वतःसिद्ध अर्थात् प्रमाणन क्रिया गया है।

अतएव जो कहते हैं, कि जीवका ब्रह्मभाव ज्ञान-कर्मात्मसुखसंप्राप्य है, उनका सिद्धांत भी सङ्गत नहीं। क्योंकि, छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि कोई आत्मी जब चोरके सन्देह पर राजपुरुष द्वारा पकड़ा जाता है और जब चोरका दोष स्वीकार नहीं करता, तब शास्त्रानुसार तप्त परशु द्वारा उसकी परीक्षा की जाती है। यथार्थ चोर होने पर उसका शरीर जलने लगता है और राजपुरुष उसे पकड़ लेता है। क्योंकि उसने असत्य कहा है। चोरो करके भी उसने कहा है, कि मैं चोर-नहीं। यह अनूनामिसन्धि हो उसके वचनका हेतु है।

फिर चोरो नहीं करनेसे तप्त परशु द्वारा वह नहीं जलता और राजपुरुष उसे छोड़ देता है। क्योंकि वह सत्यामिच्छ है अर्थात् उसने सत्य वचन कहा है। सत्यामिसंधि ही उसकी मुक्तिका कारण है। उसी प्रकार नानात्वदर्शा अनूनामिसन्धि होनेके कारण यह तथा एकत्वदर्शी सत्यामिसन्धि होनेके कारण मुक्त होता है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि एकत्व सत्य है, नानात्व मिथ्या है। क्योंकि एकत्व तथा नानात्व यदि दोनों ही सत्य हों, तो नानात्वदर्शी अनूनामिसन्धि नहीं हो सकता।

फिर एकत्व और नानात्व दोनोंके सत्य होने पर एकत्व ज्ञान द्वारा नानात्व निवृत्त नहीं हो सकता। क्योंकि यथार्थ ज्ञान अयथार्थ ज्ञानका तथा उस कार्यका निवृत्तक हो सकता है, यथार्थ वा सत्य वस्तुका

नियंत्रक नहीं हो सकता। रज्जु ध्यान परिकल्पित सर्पका नियंत्रक होता है, सुवर्णध्यान कुण्डलद्विका नियंत्रक नहीं होता। एतद्वय ध्यान द्वारा नानात्व नियंत्रित नहीं होनेसे मोक्ष-पदधाम में भी वन्दनावस्थाकी तरह नानात्व रहेगा। अतएव मुक्ति भी नहीं हो सकती।

वैष्णवाचार्यगण जिस प्रकार विशिष्टाद्वैतवादी हैं उसी प्रकार शैवाचार्यगण विशिष्ट शिवाद्वैतवादी हैं। उनका मन यह है, कि चित् और अचित् अर्थात् ज्ञाय और जडरूप प्रपञ्चविशिष्ट आत्मा शिव अद्वितीय हैं। वे ही कारण हैं और फिर वही कार्य हैं, इसका नाम विशिष्टाद्वैत है। विश्विद्व सभों प्रपञ्च शिवनामक ब्रह्माका शरीर है। वे जोयकी तरह शरीर होते हुए भा जोयकी तरह दुःखमोका नहीं हैं। अनिष्ट-भाग्य के प्रति शरीरसम्बन्ध कारण नहीं हैं। अर्थात् शरीरी हानिसे हो जो अनिष्ट भोग करना होगा, इसका कोई कारण नहीं है। पराधीनता अनिष्टभोगका कारण है। राजपुरव राजराधोन है। वे राजाकी आह्लाका पालन नहीं करनेसे अनिष्ट भोग करते हैं। राजा पराधीन नहीं है, स्वाधीन है। वे शरीर होते हुए अपनी अपनी अक्षय के अनुवर्तनके लिये अनिष्ट भोग नहीं करते। जीव ईश्वरपरवश है। ईश्वरकी आह्लाका पालन नहीं करनेसे उन्हें अनिष्ट भोगना पड़ता है। ईश्वर स्वाधीन है, इस कारण उनका अनिष्ट भोग नहीं है। शरीर और शरीरकी तरह गुण और गुणीकी तरह विशिष्टाद्वैतवाद् शैवाचार्योंका अनुमत है।

मृत्तिका और घटकी तरह, कार्यकारणरूपमें तथा गुण और गुणीकी तरह विशेषण विशेष्यरूपमें विनामावराहित्य ही प्रपञ्च और ब्रह्मका अनन्तत्व है। जिस प्रकार उपादान कारणके बिना कार्यका भाव अर्थात् सत्ता नहीं रहती, मृत्तिकाके बिना घट नहीं रहता, सुवर्णके बिना कुण्डल नहीं रहता, गुणीके बिना गुण नहीं रहता, उसी प्रकार ब्रह्मके बिना प्रपञ्च शक्ति नहीं रहती। उष्णताके बिना जिस प्रकार वहि जाननेका कोई उपाय नहीं उसी प्रकार शक्तिके बिना ब्रह्मकी जानना असम्भव है। जिसके बिना जो नहीं जाना जाता वह तद्विशिष्ट है। गुणके बिना गुणी नहीं जाना जाता इसलिये गुणी गुणविशिष्ट है।

प्रपञ्चशक्तिके बिना ब्रह्मको नहीं जाना जा सकता। इस कारण ब्रह्म प्रपञ्चशक्तिविशिष्ट है। यह उनका स्वभाव है। प्रपञ्च और ब्रह्मका भेद स्वाभाविक है। देवता तथा योगिगण जिस प्रकार कारणांतरनिरपेक्ष हो कर भी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे अनेक प्रकारकी सृष्टि कर सकते हैं ब्रह्म भी उसी प्रकार अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे नाना रूपों में परिणत हो सकते हैं। नाना रूपों में परिणत होने पर भी उनका एकत्व विलुप्त वा विकृतिव नहीं होता। अचिन्त्य अनन्त विविध शक्ति ब्रह्मने अवस्थित है। सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके लिये कुछ भा असंख्य और असंख्य नहीं। अतएव यह सम्मत् है और यह असंख्य, ऐसा विचार परमेश्वरके विषयमें हो नहीं सकता। लौकिक प्रमाण-द्वारा जो सब वस्तु जाना जाता है, परमेश्वर उन सब वस्तुओंसे विजातीय है। वे केवलमात्र शास्त्रगम्य हैं। शास्त्रमें वे किस प्रकार उपदिष्ट हुए हैं, वे उसी प्रकार हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। लौकिक दृष्टान्तानुसार उस विषयमें विरोधशङ्का करना करीब नहीं। क्योंकि, वे लोकातीत वा अलौकिक हैं।

अलौकिक परमेश्वरके विषयमें लौकिक दृष्टान्त कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। यह सहजमें जाना जाता है। परमेश्वरको मायाशक्ति अचिन्त्य अनन्त विविधशक्तियुक्त है। उस प्रकारके शक्तियुक्त मायाशक्ति-विशिष्ट परमेश्वर अपनी शक्तिके अंश द्वारा प्रपञ्चाकारमें परिणत तथा स्वतः वा स्वयं प्रपञ्चातीत हैं।

ब्रह्म प्रपञ्चाकारमें परिणत होते हैं; इस विषयमें प्रश्न हो सकता है, कि कृत्स्न अर्थात् समस्त ब्रह्म प्रपञ्चाकारमें परिणत होते हैं या ब्रह्मका एकदेश वा एकान्श। इसके उत्तरमें यदि कहा जाये, कि कृत्स्न ब्रह्म जगदाकारमें अर्थात् कार्याकारमें परिणत होते हैं, तो मूलोच्छेद हो जाता है तथा ब्रह्मका द्रष्टव्यत्व उपदेश और उसके उपायरूपमें अर्थगमननादि तथा शमदमादि-का उपदेश अनर्थक होता है। क्योंकि, कृत्स्न परिणामके पक्षमें कार्यातिरिक्त ब्रह्म नहीं है। कार्य अयजद्रूप है, उनके दर्शनका उपदेश अनावश्यक है। इस कारण अर्थगमननादि वा शमदमादि भी अनावश्यक हैं। धर्म समस्त कार्य देखनेके लिये पदार्थतत्त्वकी आलोचना

तथा देशभ्रमणादि कर्तव्य हो सकता है। बल्कि साधन-सम्पत्ति इसकी विरोधिनी होती है। ब्रह्म यदि मृदादि-की तरह सावयव होते, तो उनका एकदेश कार्याकारमें और एकदेश यथावदपरिणत होता, ऐसा कल्पना की जा सकती थी। ऐसा होनेसे द्रव्यत्वादिका उपदेश सार्थक होता। यथोक्ति, कार्याकारमें परिणत ब्रह्मदेशके अपरतद्रूप होने पर भी अपरिणत ब्रह्मांश अत्यन्तद्रूप नहीं। किन्तु ब्रह्मका अवयव स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि ब्रह्म निरवयव है, यह श्रुतिसिद्ध है। ब्रह्मका अवयव स्वीकार करनेसे उस श्रुतिका विरोध उपस्थित होता है।

इसके उत्तरमें शेषान्तर्यामिने कहा है, कि ब्रह्म शास्त्रैक-समाधिगम्य है, प्रमाणान्तरगम्य नहीं। शास्त्रमें कहा है, कि ब्रह्मका कार्याकारमें परिणाम और निरवयवत्व है तथा बिना कार्यके ब्रह्मका अवस्थान है, अतएव उक्त आपत्ति ही नहीं सकती।

यह विगिष्टाद्वैतवादिगो क मत संक्षेपमें कहा गया, किन्तु भगवान् शङ्कराचार्य इस विगिष्टाद्वैतवादीकी स्वीकार नहीं करते। वे निर्निशेषाद्वैतवादी हैं। उन्होने कई तरहसे नाना प्रकारकी श्रुति अदि 'माणां' द्वारा इस मतका खण्डन कर अपना मत संस्थापन किया है।

बहुन संक्षेपमें उनका मत नीचे लिखा जाता है। वे कहते हैं, कि परिणामवाद किसो भी मतसे सङ्गत नहीं हो सकता। क्योंकि, कार्याकारमें परिणाम तथा अपरिणत ब्रह्मका अवस्थान ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। एक समय एक वस्तुका परिणाम और अपरिणाम हो नहीं सकता। उन्मी प्रकार सावयवत्व और निरवयवत्व परस्पर विरुद्ध है। एक पक्ष एक समय सावयव और निरवयव होगा, यह विरुद्ध असम्भव है। असम्भव और विरुद्धका अर्थ श्रुति भी प्रतिपादन न कर सके हैं। योग्यता शब्दबोधकी अभ्यतम कारण है। अतएव शब्द बोधोप अर्थ प्रतिपादन करनेमें अक्षम है। 'प्रायाणः प्लवग्वै घनस्पतयः सलमासत' पदपर जलमें तैरता है, पृथ्वीमें पक्ष रूपा था, इत्यादि असम्भावित अर्थोंके बोधक अर्थवाद वाक्यका त्रिस प्रकार यथाश्रुत अर्थसे तात्पर्य नहीं है, दूसरे अर्थसे है, उसी

प्रकार परिणामबोधक वाक्यका भी अर्थविशेषमें तात्पर्य कहना होगा।

ब्रह्म एक अंशमें परिणत तथा दूसरे अंशमें परिणत है, यह कल्पना भी समीचीन नहीं है। अभी प्रश्न हो सकता है, कि कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न? यदि भिन्न है, तो ब्रह्मकी कार्याकारमें परिणत नहीं हुई। क्योंकि, कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश ब्रह्म नहीं, ब्रह्मसे भिन्न है। दूसरेके परिणाममें दूसरेका परिणाम नहीं कहा जा सकता। मृत्तिकाके परिणाममें सुवर्णका परिणाम नहीं होता। फिर कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश यदि ब्रह्मसे भिन्न नहीं अर्थात् अभिन्न हो, तो मूर्च्छोच्छेदकी आपत्ति उपस्थित होती है। परिणत अंश ब्रह्मसे अभिन्न होने पर परिणत अंश तथा ब्रह्म एक वस्तु होता है। अतएव सम्पूर्ण ब्रह्मका परिणाम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि कहा जाय, कि परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मने भिन्नाभिन्न है अर्थात् ब्रह्मने भिन्न भी है और अभिन्न भी। परिणत ब्रह्मांश कारणरूपमें ब्रह्मने अभिन्न है तथा कार्यरूपमें ब्रह्मसे भिन्न है। दूसरे दृष्टान्तमें कहा जा सकता है, कि कटफसु कुटादि सुवर्णरूपमें अभिन्न और कटफसु कुटादिरूपमें भिन्न है। इस सम्बन्धमें भी पहले ही ठिसा जा चुका है।

मेद और अमेद परस्पर विरुद्ध पदार्थ है। यह एक समय एक वस्तुमें नहीं रह सकता। कार्याकारमें परिणत अंश होता है, ब्रह्मने भिन्न होगा या नहीं तो अभिन्न होगा। भिन्न भी होगा और अभिन्न भी होगा, ऐसा हो नहीं सकता। फिर यह भी विचारनेकी बात है, कि ब्रह्म स्वभावतः अमृत है, वे परिणामप्रकृतसे मर्त्यता को प्राप्त होगे, यह हो नहीं सकता। कि मर्त्यज्ञोय अमृत ब्रह्म होगा, यह भी नहीं हो सकता। अमृत मर्त्य नहीं होता और न मर्त्य ही अमृत होता है। किसी भी मतसे स्वभावकी अन्यथा नहीं हो सकती। जो कहते हैं, कि शास्त्रानुसार कर्म और ज्ञान इन दोनोंके अनुष्ठान द्वारा मर्त्यज्ञोयका अमृतत्व होगा, उनका भी मत असङ्गत है। क्योंकि, स्वभावतः अमृत ब्रह्मकी भी यदि मर्त्यता हो, तो मर्त्यज्ञोयका कर्मज्ञान-समुच्चयसाध्य अमृतभाव होगा

अर्थात् मोक्षावस्था स्थायी होगी, यह दुराशामात्र है।

भगवान् शङ्कराचार्यने इत्यादिक्रमसे द्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद आदिको निराकरण करके ब्रह्मविषयसंवादा-स्थापन किया है। उनके मतसे ब्रह्म शुद्ध या निर्विशेष है, पप्रञ्च सत्य नहीं है, रज्जुसर्पादिकी तरह मिथ्या है। अतएव ब्रह्ममें कोई विशेष वा धर्म नहीं है। निर्विशेष ब्रह्म अद्वितीय है। प्रपञ्च जब मिथ्या ब्रह्मकी अतिरिक्त वस्तु है, इसलिये सत्य नहीं है; तब ब्रह्म अद्वितीय है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। जीव ब्रह्म-भिन्न नहीं है। कहा गया है कि—

“रथोक्तादेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।

ब्रह्मस्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम् ॥”

कोटिप्रथममें जो लिखा है, कि मैं श्लोकाद्वैत द्वारा उसे कहूंगा। यह इस प्रकार है,—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है। यह शुद्धाद्वैतवाद या निर्विशेषाद्वैतवाद भगवान् शङ्कराचार्यका अभिमत है।

श्रुतिमें लिखा है, कि “सदैव सौम्येदमम आसीदेकमेवाद्भितोयम्” (भुक्ति) यह जगत् सृष्टिके पहले सम्भाल था, नाम रूप कुछ भी न था, समस्त एकमात्र तथा अद्वितीय था। एक, एव, अद्वितीय इन तीन पदों द्वारा सद्बस्तुमें तीनों भेद निवारित हुए हैं। अनात्मता वा जगत्में तान प्रकारके भेद देखनेमें आते हैं, स्वगतभेद, सजातीयभेद और विजातीयभेद। अवयवके साथ अवयवोंका भेद स्वगतभेद है; पत्त, पुष्प और फलादिके साथ घृष्टका जो भेद है उसे भी स्वगतभेद कहते हैं। यहाँ यह माना गया, कि पुष्प और फलादि भी घृष्टका अवयवविशेष है। एक वृक्षका दूसरे घृष्टसे भेद अवश्य है। इस भेदका नाम है सजातीयभेद। क्योंकि, उस भेदके प्रतियोगी और अनुयोगी दोनों ही वृक्ष जातिके हैं। शिलाविले घृष्टका भेद विजातीयभेद है।

अनात्म वस्तुकी तरह आत्मवस्तुमें भी इन तीनों भेदोंकी आशङ्का हो सकती है। इस आशङ्काको दूर करनेके लिये एकमेवाद्भितोयं कहा गया है। एक इत्ये पद द्वारा स्वगतभेद, एव पद द्वारा सजातीयभेद तथा अद्वितीय इत्ये पद द्वारा विजातीयभेद निराकृत हुआ है।

जो एक है अर्थात् निरंश या निर्वयव है, उसका स्वगत

भेद नहीं हो सकता। क्योंकि, अंश या अवयव द्वारा ही स्वगतभेद हुआ करता है। सद्बस्तुके अवयव नहीं है, क्योंकि जो सावयव है, उसकी उत्पत्ति अवश्य होगी। सभी अवयवोंके परस्पर-संयोग वा सम्मिश्रणके पहले सावयव वस्तुकी उत्पत्ति होती है, यह कहना पड़ेगा। अतएव सावयव वस्तुकी उत्पत्ति है। जिसकी उत्पत्ति है वह जगत्का आदिकारण नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी उत्पत्ति कारणान्तरसापेक्ष है। अब यह सिद्ध हुआ कि आदिकारण वा सद्बस्तुके अवयव नहीं है। जिसके अवयव नहीं, उसका स्वगतभेद असम्भव है।

नाम और रूप भी सद्बस्तुके अवयवरूपमें कल्पित नहीं हो सकता। नाम वा घटशरावादि संज्ञा, रूप वा घटशरावादिका आकार, नाम और रूपके उद्भवका नाम सृष्टि है। सृष्टिके पहले नाम और रूपका उद्भव नहीं होता। अतएव नाम और रूपकी अंशरूपमें कल्पना करके उससे सद्बस्तुका स्वगतभेद समर्थन नहीं किया जा सकता।

सद्बस्तुका सजातीयभेद भी असम्भव है। क्योंकि सद्बस्तुकी सजातीय वस्तु सत्स्वरूप होगी। सत्पदार्थ एकमात्र है, कारण सत्, सत्, इस प्रकार एक आकारमें प्रतीयमान वस्तु एक ही होगा, ताना नहीं हो सकती। दो सत्पदार्थ माननेसे उनका परस्पर विलक्षण्य मानना होता है। सत्पदार्थके स्वाभाविक वैलक्षण्य नहीं है। अतएव अन्य सत्पदार्थकी कदाताना कोई प्रमाण नहीं है। सत्पदार्थके एकमात्र होनेसे, अतएव दूसरे सत्पदार्थके नहीं रहनेसे सत्पदार्थका सजातीयभेद रहना बिल्कुल असम्भव है।

स्वगतभेद तथा सजातीयभेदकी तरह सत्पदार्थका विजातीयभेद भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो सत्का विजातीय है, वह सत् नहीं असत् है, जो असत् है, उसका अस्तित्व नहीं है, वह भेदका प्रतियोगी नहीं हो सकता। जो विद्यमान है, वह दूसरी वस्तुसे भिन्न है तथा दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं हो सकती। जिसका अस्तित्व है, वह कुछ भी नहीं है। उस भेदका प्रतियोगी वा अनुयोगी कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव सत्पदार्थका विजातीयभेद अज्ञात भुक्तके नामकरणकी तरह अश्लोभ है।

फलतः सृष्टिके पूर्वाका अद्वैतस्य कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। जो वस्तुगतया अद्वैत है, वह किसी भी कालमें द्वैत नहीं हो सकता। वस्तुका अन्यथाभाव असम्भव है। आलोक कभी अन्धकार नहीं होता, अन्धकार कभी आलोक नहीं होता। वास्तविकभेद और अभेद दोनोंके परस्पर विरोधी होनेसे ये सत्य नहीं हो सकते। इसका एक सत्य और एक मिथ्या कल्पित होगा। सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर मालूम होगा, कि अभेद सत्य, भेद मिथ्या, अभेद या एकत्व और भेद नानात्व है। एकाधिक वस्तु ले कर नानात्वका व्यवहार होता है। उनमेंसे प्रत्येक वस्तु एक है, अतएव एकत्व व्यवहार अन्य निरपेक्ष और नानात्व व्यवहार एकत्व सापेक्ष है। भेद अभेदसे दुर्बल है। अतएव अभेद सत्य, भेद मिथ्या आदि अनेक प्रकारकी युक्तियों द्वारा द्वैत और विशिष्टाद्वैतवाद निराकृत हुआ है। (वेदान्तद०)

वेदान्त शब्दमें विशेष विवरण देलो।

विशिष्टाद्वैतवादिन (सं० त्रि०) विशिष्टं युक्तं मिलितं अद्वैतं यदन्ति यदणिति। जो विशिष्टाद्वैतवाद स्वीकार करते हैं, रामानुज आदि विशिष्टाद्वैतवादी।

विशिष्टी (सं० स्त्री०) शङ्कराचार्यकी माता।

विगोर्ण (सं० त्रि०) वि० श्च क। १ शुष्क, सूखा। २ कृग, दुबला, पतला। ३ बहुत पुरातन, जर्ण। ४ विशिष्ट, विघटित, पतित।

विशोर्णवर्ण (सं० पु०) विगोर्णानि पर्णानि यस्य। निम्नशुभ, नीमका पेड़।

विशाधन (सं० त्रि०) मस्तकविहीन, विना सिरका। (शतपथब्रा० ४।१।१५)

विशील (सं० त्रि०) १ दुःखी, जिसका शील या चरित-अच्छा न हो। २ दुष्ट, पापी।

विशुक (सं० पु०) श्वेताक, सफेद अकन।

विशुष्टि (सं० पु०) कश्यपके एक पुत्रका नाम।

विशुद्ध (सं० त्रि०) विशोधित शुद्ध, वि-शुध-क्त। १ शुचि, पवित्र, निर्मल, निर्दोष, जिसमें किसी प्रकारकी मिलावट न हो। पर्याय—उज्ज्वल, विमल, विशद, योध, अघदात, अनाविल, शुचि। (हेम) २-निभूत। ३ सत्य, सथा। (भजप्याद) (पु०) ४ तत्त्वके अनुसार शरीर-

के अन्दरके छः चकोरमेंसे पांचवा चक्र। यह गलेमें अवस्थित है। यह अकारादि षोडश स्वरयुक्त और घूर्णवर्णका होता है। इसमें सोलह पद्मदल होते हैं। उन १६ दलोंमें अकारादि १६ स्वरवर्ण हैं। इस चक्रमें शिव तथा आकाश निवास करते हैं। (तन्त्रसार)

विशुद्धगणित—(Pure Mathematics) वह गणित जिससे पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध न रख कर केवल राशिका निरूपण किया जाता है।

विशुद्धचरित्र (सं० पु०) १ बोधिसत्त्वभेद। (त्रि०) २ जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो।

विशुद्धचरित्र (सं० त्रि०) विशुद्धं चरति चरणिनि।

विशुद्ध भावमें विचरणकारी, शुद्धाचारी, जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो।

विशुद्धता (सं० स्त्री०) विशुद्धस्य भावः तत्त्वात्। विशुद्ध होनेका भाव या धर्म, पवित्रता, शुचिता, उज्वलता, विशुद्धि।

विशुद्धत्व (सं० त्रि०) विशुद्धता देलो।

विशुद्धासंह—बौद्धभेद।

विशुद्धि (सं० स्त्री०) वि-शुध-क्तिन्। पवित्रता, शोधन।

मनु आदि शास्त्रोंमें इसका पूरा विवरण है, कि कोई पदार्थ किसी तरह अपवित्र हो जाने पर उसकी शुद्धि किस तरह होगी। यहाँ उसकी संक्षिप्त आलोचना का जाता है।

नानाविध वस्तुओंकी शोभ्यप्रयात्री—चांदी, सोना आदि धातु द्रव्य, मरकत आदि मणिमय पदार्थ और सभा पाषाणक पदार्थ मरुम और जल अर्थात् मिट्टी या जल द्वारा शुद्ध होते हैं। शङ्ख, मुक्ता आदि पदार्थ जलज, पाषाणमय पात और रीप्यपात याद देखायुक्त न हों, तो जल द्वारा धो देनेमें शुद्ध हो जाते हैं। जल और अग्निके संयोगसे सोना चांदीकी उत्पत्ति हुई है। इसी कारणसे सोना और चांदी अपने उत्पात्तस्थान जलसे शुद्ध हो जाते हैं।

तांबा, लोहा, काँसा, पीतल, रौंदा और सोसाके पात, मरुम, खटाई और जलसे शुद्ध होते रहते हैं। अर्थात् लोहा जल द्वारा, काँसा मरुम द्वारा, तांबा और पीतल खटाईसे शुद्ध होता है। घृत तैल द्रव द्रव्य यदि काक-

कीट आदि द्वारा अशुद्ध हो गये हैं, तो प्रादेशप्रमाण कुण्डपत्र द्वारा हिला देने पर विशुद्ध हो जाते हैं । श्रृणुयादि की तरह सूत-संयुक्त संहतद्रव्य जलके छोटिसे और काष्ठ-मय द्रव्य अल्पत उपहत हो जाने पर ऊपरसे उसकी तरास देनेसे शुद्ध हो जाते हैं । यक्षीय चमस अर्थात् जलपात्रप्रद (सामलताका पात्र) और अन्यान्य पालों-को पहले हाथसे माँज कर पीछे धो देने पर विशुद्ध हो जाते हैं । चरुस्थाली, स्रुक्, स्रुघ, रूप्य, (खड्ग, गाकार काष्ठ), शूर्प, शकट, मूपल, ओषल आदि यक्षीय द्रव्य घृततैल आदिसे स्नेहाक कर गर्म जलसे धो डालने पर शुद्ध हो जाते हैं ।

धान्य भाण्डार या वस्त्र-भाण्डार किसी तरह अशुद्ध हो जाने पर जलका छोट्टा मारनेसे उनको शुद्धि हो जाती है । किन्तु यदि वे बरस मात्रा में हैं, तो उनको जलसे धो देनेसे ही शुद्ध होगा । पादुका (जूते) आदि स्पृश्य पशुचर्म और वेत बांसके बने आसन आदिकी शुद्धि वस्त्रकी तरह ही होगी । फिर शाक, मूल और फल ये धान्यकी तरह शुद्ध करने होंगे । कौषेय अर्थात् रेजामी कपड़े, आर्षक अर्थात् पशुलोमनिर्मित कम्बल आदि क्षार और मिट्टी द्वारा शुद्ध होते हैं । कुपय अर्थात् नेपाल देशका कम्बल आदि नीमफलके चूर्णसे, अंशुपट्ट (वल्कलविशेषका वस्त्र ये तके गुरेसे और क्षोम अर्थात् अतसी (तोसी)के पीधेके छिलकेसे बने वस्त्र सफेद सरसोंके चूर्णसे विशुद्ध होना है । तुग, रंघमकी लकड़ी, पलाल ये सब जलमे छोट्टा मारनेसे साफ और विशुद्ध हो जाते हैं । मार्जन और गोमयादि लेपन द्वारा गुःशुद्धि और मृपमयपात्र पुनर्धार पाक द्वारा विशुद्ध होते हैं । सम्मार्जन, गोमय आदि द्वारा विलेपन, गोमूत्रादि सिञ्चन, उल्लेखन (छिछोर कर फेंकना) और एक दिन रात गाभीरवास इन पांच प्रकारसे भूमिकी शुद्धि होती है ।

पक्षी द्वारा उच्छिष्ट, गो द्वारा आघ्रात, चख्राञ्जल या पैर द्वारा सघृष्ट, अवक्षुत अर्थात् जिसके ऊपर धुक आदि पड़ा हो और जो बाल कीड़े जू आदि द्वारा दूषित हुआ हो, ऐसा खाद्य द्रव्य मिट्टीके प्रक्षेपसे शुद्ध हो जाता है ।

विद्युत् और मूत्र द्वारा लिप्त द्रव्यमें मिट्टीसे अच्छी

तरह माँज लेनेसे शुद्ध हो जाता है । पहले तो अदृष्ट अर्थात् जिस द्रव्यका उपघात या सम्पर्क दोष मात्रम नहीं होता, दूसरे जो जल द्वारा प्रक्षालित हुआ है और तीसरा गिट्ट व्यक्तिकी जिसे पवित्र कहते हैं, वह विशुद्ध जानना होगा ।

ज्ञान, तपस्या, अग्नि, आहार, मिट्टी, मल, जल, उपान्जन अर्थात् गोमय आदि अनुलेपन, वायु, कर्म, सूर्य और काल ये ही सब देहधारियोंकी विशुद्धिके कारण हैं । देह मलादि शुद्धिकर समुदाय पदार्थोंके भीतर अर्धशुद्धि अर्थात् अर्धाञ्जन विषयमें अन्याय या स्वप्न परित्याग न करनेकी शास्त्रकारोंने परम विशुद्धि कह कर निर्देश किया है । जो अर्धाञ्जन विषयमें विशुद्ध हैं, वे ही यथार्थमें विशुद्ध नामसे अभिहित होने योग्य हैं । मिट्टी या जल द्वारा देह शुद्ध करनेकी यथार्थ शुद्धि नहीं कही जाती ।

विद्वान् व्यक्तिकी क्षमा द्वारा, अकार्यकारी दान द्वारा, प्रच्छन्न पापी जप द्वारा और वेदविद्वद्ब्रह्मणगण तपस्या द्वारा विशुद्धि लाभ करते हैं । शोषनाय चाहा द्रव्य अर्थात् यह देह मिट्टी और जल आदि द्वारा शुद्ध होता है । मल-वहा नदी स्नातयेगसे शुद्ध होती है । मनोदुष्ट अर्थात् परपुरुषमें मैथुनसङ्गृह्यके दोषमें दूषितमना रमणी रजस्वला होने पर शुद्ध होती है और त्याग द्वारा या प्रवस्था द्वारा द्विजोत्तम विशुद्ध होते हैं । जलके द्वारा देहशुद्धि, सत्यसे मनकी वृद्धि, विद्या और तपस्याके बलसे जीवात्मा शुद्ध होती है तथा ज्ञान द्वारा बुद्धिकी वृद्धि होती है ।

जातिका या गैर जातिके किसी भी रथीके साथ शर्मशानमें जाने पर वस्त्र समेत स्नान करने तथा अग्नि स्पर्श कर घृन भोजन करनेसे शुद्ध होता है । जो चीज बाजारमें बेचनेके लिये फैलाई गई है, वह तरह तरहके आर्दमियोंके छू जाने पर भी विशुद्ध है । मद्यचारी जो मिश्रा लाभ करते हैं, वह परम पवित्र हैं । (मनु ५ अ०) विष्णुसंहितामें द्रव्यादिकी शुद्धिका इस तरह विधान है—

अत्यन्तोपहत सब घातुमात्र ही अग्निमें प्रक्षिप्त होने पर विशुद्ध होता है । मणिमय, प्रस्तरमय और शङ्खमय पात्र ७ दिन भूमिमें निजात होनेसे विशुद्ध होता

है। शृङ्गमय, दन्तमय और अस्थिमय पात्र तक्षण द्वारा शुद्ध होता है और दाहमय तथा मृग्मय पात्र परितपत्र्य है अर्थात् इनको विशुद्धि नहीं होती। किसी तरहसे दूषित होनेसे पात्र फेंक देने चाहिये। सुवर्णमय, रजतमय, गङ्गामय, मणिमय और प्रस्तरमय पात्र तथा चमस इन सब पात्रोंमें निलेप होने पर अर्थात् उनमें मल न लगे रहने पर जल द्वारा शुद्ध होते हैं। धान्य, चर्म, रस्मी, तन्तुनिर्मित वस्त्र, ध्वजनादि, वेदक, सूत्र, कणस और वस्त्र—ये सब द्रव्य अधिक होनेसे प्रोक्षण द्वारा शुद्ध होते हैं। शाक, मूत्र, फल और पुष्प, मृग और काष्ठ प्रभृत् भी इसी नियमसे विशुद्ध होते हैं। ये द्रव्य यदि कम हों, तो इनको धो डालनेसे यह शुद्ध हो जाते हैं। काष्ठ-निर्मित पात्र तक्षण द्वारा, पीतल, ताँबे, राँगे सीसेके पात्र अटार्ई द्वारा साफ होते हैं। काँसे और लोहेके पात्र भस्म द्वारा साफ होते हैं। देवप्रतिमा किमी कारणवश यदि दूषित हो, तो जिस बीजके द्वारा वह निर्मित हुई हो, उस द्रव्यकी शुद्धिके नियमके अनुसार उसे विशुद्धि कर पुनः प्रतिष्ठा करनेसे उनकी शुद्धि होती है।

कीचय वस्त्र, कम्बल या पशामीने कपड़े राख मिट्टीके संयोगसे, पहाड़ी बकरेके रोएसे बने कम्बल अरिष्ट द्वारा, बलकलतन्तु निर्मित अशुद्ध विववकल द्वारा, क्षीमवस्त्र गौरसर्पय (सफेद सरसों) द्वारा, भृगुलोमजात राङ्क-वादि वस्त्र पशुबीज द्वारा विशुद्ध होते हैं।

मृन्मयकि मात्रके वाग्धवोंके साथ मिल कर अशु-पातकारी यकृति स्नान करनेसे विशुद्ध होते हैं। हड्डी एकत्र करनेसे पहले जो वस्त्र पहन कर हड्डी एकत्र की जाय, उस वस्त्रके साथ स्नान करनेसे यह व्यक्ति विशुद्ध होता है। द्विज शूद्रशयके साथ अनुगमन करने पर नदीमें जा कर गोता लगा कर तीन बार अघमर्षण जप करनेके बाद ऊपर उठ कर अष्टोत्तर सहस्र गायत्री जप करनेसे और द्विजके शयके साथ अनुगमन करने पर स्नान कर अष्टोत्तर शत गायत्री जप करनेसे विशुद्ध होते हैं। शूद्र प्रायानुगमन करे, तो केवल स्नानसे विशुद्ध हो सकता है। चित्ताधूम सेवन करनेसे सब वर्णोंको स्नान करना चाहिये, तभी वे विशुद्ध होंगे। मैथुन

करने, दुःखघ्न देखने, कण्डले रक्त निकलने, घमन, रेवन, हजामत (क्षीरकर्म) बनाने, शयस्पर्श, रजस्वलास्पर्श, चण्डालस्पर्श, घृषोटसर्गोप यूपस्पर्श, भस्मान्गन पञ्चनक्ष शयस्पर्श, घसा और मेवादिशुक्त अस्थिस्पर्श करनेके बाद स्नान करनेसे विशुद्धि प्राप्त होती है। पहने हुए वस्त्रके साथ स्नान करने पर विशुद्ध होता है। वस्त्र त्याग कर स्नान करनेसे विशुद्धि नहीं होती। रजस्वला नारी चौथे दिन स्नान करनेसे विशुद्ध होती है।

क्षयण (छोँक), मित्र, अधयनारम्भ, भोजनारम्भ, पात्र स्नान, निष्ठोवन, वस्त्रपरिधान, अधयसञ्चरण, मूत्रत्याग, पञ्चनक्षके अस्नेह अस्थिस्पर्श, चण्डाल या सुँच्छोंके साथ सम्भाषण इन सब कामोंके करनेके बाद आचमन करना चाहिये। इससे ही लोग विशुद्ध होते हैं।

(विष्णु षं० १२ अ०) शीघ्र शब्द देखो।

विशुद्धिचक्र (सं० श्लो०) चारणीनेद्र।

विशुद्धेभ्यर (सं० श्लो०) तन्त्रमेद्र।

विशुद्ध (सं० त्रि०) विद्वेषण शुष्कः। १ विशेषरूपसे शुष्क, बहुत्र सूखा। २ नीरस। ३ म्लान।

विशुद्धिका (सं० स्त्री०) विशुद्धिका रोग। विदूच्छिका देखो।

विशुष्य (सं० वि) विशेषरूपसे शुष्य।

विशुश (सं० त्रि०) १ शूद्रनाशक। २ अस्त्रविवर्जित।

विशुशूल (सं० त्रि०) विगता शूद्रज्ञा यस्य। १ शूद्रज्ञा-रहित, जिसमें शूद्रज्ञा न हो या न रह गई हो। २ अथाध्य, जो किसी प्रगट दवाया या रोकाने जा सके। ३ दुर्हान्त। ४ अयद्ध, शूद्रलशूग्य।

विशुशूला (सं० स्त्री०) विशुद्ध देखो।

विशुशू (सं० त्रि०) जिसमें शूद्र न हो, शूद्ररहित।

विशेष (सं० पु०) विशिष्ट-घट्ट। १ प्रमेद, वैलक्षण्य। २ प्रकार, किस्म। (अट्यापर) ३ नियम, कायदा। ४ वैचित्र।

५ व्यक्ति। ६ सार। ७ प्रकार। ८ तारतम्य, न्यूनताधिक्य।

९ आधिषय। १० अघयव। ११ द्रष्टव्यद्रव्य। १२ तिलक।

(हेम) १३ कणादोक्त सप्तपदार्थोंके अन्तर्गत पदार्थ

विशेष।

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव यही सात पदार्थ हैं। विशेष पदार्थोंको आलोचना रहनेसे ही कणादकृत दर्शनका नाम वैशेषिक है।

डीप । १ नागदन्तो, ह्यधीसूड । २ ब्रह्मापुरीका नाम । ३ नीली नामक पीथा । ४ ताम्बूल, पान ।
विशोधिन् (सं० लि०) वि-शुध-णिच्-णिनि । शोधन-कारक, विलकुल शुद्ध करनेवाला ।

विशोधिनो (सं० स्त्री०) १ नागदन्तो लता । २ नीली वृक्ष । (वैद्यकनि०) ३ दन्ती वृक्ष ।

विशोधिनोबीज (सं० स्त्री०) जयपाल, जमालगोटा ।

विशोध्य (सं० लि०) वि-शुध-यत् । विशोधनीय, शोधन करने लायक ।

विशोद्विशोय (सं० स्त्री०) सामभेद ।

विशोय (सं० पु०) वि-शुध घञ् । शुष्कता, नीरसता, रूपापन ।

विशोपण (सं० लि०) वि-शुध-ण्युट् । १ विशेषरूपसे शोषणकारक, अच्छो तरह सोखनेवाला । (स्त्री०) २ शुष्क-भाघ, नीरसता, रूपापन ।

विशोपिण् (सं० लि०) वि-शुध-णिनि । विशोपणकारक, सोखनेवाला । (रघु० अ० १।६२)

विशोपिण् (सं० लि०) प्रजाके ऊपर शासन फैलानेवाला । (शुक्लयजुः १०।२८ महीषर)

विश्वकद्राकर्ष (सं० पु०) कुम्भकुरशास्त्रा, वह जो कुत्ते-का शिक्षा देता और उसको रक्षा करता है ।

विश्वन् (सं० पु०) विच्छ-दीप्ति (यजमान्यतविच्छेति । पा ३।३।६०) इति नङ् । १ दीप्ति । २ गति ।

विश्वपति (सं० पु०) विश्वं पतिः । १ प्रजापालक, पृथिवीपति । (शुक १।३।७८) २ वैश्वोका पति, वैश्व-जातिका अधिपति, मुखिया या पद्व ।

(भागवत १०।२०।२४)

विश्वपत्नी (सं० स्त्री०) वणिकोंका पालन करनेवाली । (शुक २।३।२७)

विश्वपला (सं० स्त्री०) अमल्यपुरोहित खेल राजाकी स्त्री । (शुक १।११।१५)

विश्वपलावस्तु (सं० लि०) प्रजाओंके पालयिता तथा धन । (शुक १।१८।२।१)

विश्वय (सं० लि०) प्रजाभय, जो प्रजासे हो ।

(शुक १।१२।६।५)

विश्वयापर्ण (सं० पु०) विश्वन्तर नामक किसी एक राजासे

अनुष्ठित यज्ञविशेष । स्वापर्ण नामक ब्राह्मणोंकी आर्त्वाज-कर्ममें प्रती न करके अर्थात् उन्हें निराकरण पूर्वक इस यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है, इस कारण इसका नाम विश्वयापर्ण (स्वायापर्ण-विरहित) यज्ञ पडा है ।

विश्रानन (सं० स्त्री०) दान, वितरण ।

विश्रब्ध (सं० लि०) वि-श्रम्भ क । १ अनुदम, शान्त ।

२ विश्वस्त, जिसका विश्वास किया जाये । ३ आसन्न ।

(हेम) ४ गाढा, घना । (मेदिनी) ५ निर्विशङ्क, निःशङ्क, निर्भय, निडर ।

विश्रब्धनयोदा (सं० स्त्री०) साहित्यमें नयोदा नायिका का एक भेद, वह नयोदा नायिका जिसका अपने पति पर कुछ कुछ अनुराग और कुछ-कुछ विश्वास होने लगा हो । मुग्धा नायिकाको रति लज्जा और भय पराधीन है, किन्तु पीछे यह मुग्धा प्रश्रय पा कर विश्रब्धनयोदा होती है । इसको चेष्टा और क्रिया मनोहारिणी है । इसका कोप मृदु है तथा इसकी नवभूरण पर प्रबल इच्छा रहती है ।

विश्रम (सं० पु०) वि-श्रम-घञ् । वृद्धमात्र, विश्राम । (कातन्त्र कृतम् ३१)

विश्रम्म (सं० पु०) विश्रमन्-घञ् । १ विश्वास, पतवार । (अमर) २ केलिकलह, प्रेमो और प्रेमिकांमें रतिके समय होनेवाला झगडा । ३ प्रेम, मुग्धत्व । ४ हत्या, मार-झालना । ५ स्वच्छन्दविदार, स्वच्छन्दतापूर्वक घूमना फिरना ।

विश्रम्मण (सं० स्त्री०) विश्वासजनक, पतवार करने लायक ।

विश्रम्मणोय (सं० लि०) विश्वासनीय, पतवार करने लायक ।

विश्रम्मता (सं० स्त्री०) विश्वासस्वत्व, प्रणयस्वत्वादि ।

विश्रम्मिन् (सं० लि०) विश्वासशील ।

विश्रमिन् (सं० लि०) विश्रन्तुं शीलं यस्य वि-श्रमिन् इति (पा ३।२।१५७) १ सेवाशील, विशेष प्रकारसे सेवा-परायण । २ आश्रयवान् ।

विश्रमयण (सं० पु०) ऋषिभेद ।

विश्रवा (सं० पु०) पुलस्त्यमुनिका पुत्र, दूसरे जन्ममें

जाठरान्तरूपमें प्रसिद्ध भगस्त्व । ये पुलस्त्य-पत्नी हविर्भूके गर्भमें उत्पन्न हुए थे ।

भरद्वाजकी कन्या इडविडाके गर्भ और विश्रवाके औरससे धनपति कुबेरका जन्म हुआ था । महाभारतमें लिखा है, कि विश्रवा प्रजापति पुलस्त्यके साक्षात् अर्धाङ्ग-स्वरूप थे । कुबेरके प्रति ब्रह्माकी चाटु उक्ति पर क्रुद्ध हो पुलस्त्यने अपने अर्धाङ्गसे विश्रवाकी सृष्टि की । कुबेरने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये तीन राक्षसी दासी प्रदान की थीं । इन तीनोंमें पुण्डरीकटाके गर्भसे रावण और कुम्भकर्ण, मालिनोके गर्भसे विभीषण तथा राकाके गर्भसे धर और सूर्पणखाकी उत्पत्ति हुई । किन्तु रामायणके मतसे विश्रवाके औरस और सुमालिकन्या निकषा वा कैकेसीके गर्भसे रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और सूर्पणखाकी उत्पत्ति हुई । विष्णुपुराणके मतसे रावणकी माताका नाम केशिनी था ।

विश्रायान् (सं० ह्र्वा०) विश्रयण-णिच्-स्युट् । दान, वितरण ।

विश्राणित (सं० लि०) दत्त, वितरण किया हुआ ।

विश्राणित (सं० लि०) दत्त, जो दान किया हुआ हो ।

विश्रान्त (सं० लि०) १ शान्तियुक्त, थकायाँदा । २ विगत-धर्म, जो थकावट उतार चुका हो । ३ अनियत । ४ विरत, - शान्त ।

विश्रान्ति (सं० स्त्री०) १ विश्राम, आराम । २ धर्मापनयन, आराम करना । ३ तीर्थविशेष । यहाँ निश्चल जगत्पति स्वयं वासुदेव आ कर विश्राम करते हैं, इस कारण यह तीर्थ विश्रान्ति नामसे प्रसिद्ध है ।

विश्रान्ति वर्गान्—एक प्राचीन कवि ।

विश्राम (सं० पु०) विश्रम-घञ् । १ अधिक समय तक कोई काम या परिश्रम करनेके कारण थक जाने पर करना या ठहरना, थकावट दूर करना । गुण—परिश्रमके बाद विश्राम करनेसे थकावट दूर होती और पसोना जाता रहता है । २ निवृत्त, परिश्रमके बाद यथासमय जो विश्राम किया जाता है, वह सभी लोगोंके लिये बलवृद्धिकर, स्वास्थ्यप्रद और शुभजनक है । (राजवल्लभ)

२ ठहरनेका स्थान । ३ आराम, चैन, सुख ।

विश्रामगङ्गा—क्षेत्रियाण्यके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक

बड़ा प्राम । यह पहले पट्टन नामसे परिचित था । १६७६ ई०में मुगलसेनासे बड़े-जे जा कर शिवाजीने यहाँ निरापदसे विश्राम किया था, इसी कारण उन्होंने इस स्थानका नाम विश्रामगङ्गा रखा ।

विश्रामज—अनुपानमञ्जरी नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता । विश्रामशुक्र—जनिपद्धतिदर्पणके प्रणेता । इनके पिता शिवरामने कृत्यचिन्तामणि नामक एक स्मृतिग्रन्थकी रचना की थी ।

विश्रामात्मज—प्रश्नविनोद नामक ज्योतिषग्रन्थके रचयिता ।

विश्राम्योत्पेनिपद्—उपनिषद्बुधेद । यह वेदान्तसार-विश्रामोपनिषद् नामसे भी परिचित है ।

विश्राय (सं० पु०) विश्रू-घञ् (या श्वा०रश्) १ अति-प्रसिद्धि, शोहरत । २ ध्वनि । ३ क्षरण, बहना या रसना । ४ श्रोत, करना ।

विश्री (सं० स्त्री०) मृत्यु, मीत । (संक्षिप्तवार उष्ण)

विश्री (सं० लि०) विगता श्रीयस्य । १ श्रोहोन, शोभा-होन । २ कुटिलत, महा ।

विश्रुत (सं० लि०) विश्रू-क्त । १ विख्यात, मशहूर । (अमर) २ ज्ञात, जो जाना या सुना हुआ हो । ३ स्मृत, जो अति प्रसन्न हुआ हो । ४ ध्वनित, शब्द किया हुआ ।

विश्रुतदेव (सं० पु०) राजसुतमेद । (तारानाथ)

विश्रुतवत् (सं० लि०) विश्रू-क्तवत् । १ विश्रुत, ज्ञातवान् । (अमर) २ विश्रुत इव विश्रुत वत्तु इवार्थे । ३ विश्रुतकी तरह, प्रसिद्धकी भाँति । (पु०) ३ राजपुत्र-भेद, वृद्धलका भाँति । (हरिवंश)

विश्रुतारना (सं० पु०) विष्णु । (महाभारत १३।१४।३५) विश्रुति (सं० स्त्री०) विश्रू-क्ति । १ विख्याति, शोहरत । २ क्षरण, बहना या रसना । ३ श्रोत, करना । ४ नाना प्रकारका स्तव ।

विश्लय (सं० लि०) शिथिल, थका हुआ ।

(रघुवंश ६।७३)

विश्लिष्ट (सं० लि०) विश्लय-क्तः । १ शिथिल, जो थलम हो गया हो । २ विकसित, खिला हुआ । ३ प्रकाशित ।

जो प्रकट है। ४ शिथिल, थका हुआ। ५ विमुक्त, जो खुला हुआ है।

विश्वरूपसन्धि (सं० स्त्री०) १ अस्थिभङ्गविशेष, शरीर-के अङ्गोंकी किसी संधिका चोट आदिके कारण टूटना। २ सन्धिमुक्त भग्नरोगविशेष। लक्षण—चोट आदिके कारण किसी सन्धिके टूटनेसे यदि वहाँ सूजन पड़ जाय, हमेशा दर्द होता है तथा सन्धिकी क्रिया विरुद्ध हो जाये, तो उसे विश्वरूपसन्धि कहते हैं। इसकी विकिरसा आदिका विषय भग्न शब्दमें लिखा जा चुका है। भग्न देखो। विश्लेष (सं० पु०) विश्लेष-घञ् । १ विधुर, अलग होना। २ अयोग। ३ वियोग, विच्छेद। ४ शैथिल्य, थकावट। ५ विराग, किसीके ओरसे मन हट जाना। ६ विकाश, प्रकाश।

विश्लेषण (सं० क्ली०) १ धातु जन्य प्रणवेदनाविशेष, वायुके प्रकोपसे फोड़े या घावमें होनेवाली एक प्रकारकी वेदना। २ पृथक्करण, किसी पदार्थके संधोजक द्रव्योंका अलग अलग करना।

विश्लेषिन् (सं० त्रि०) विश्लेषोऽस्यास्तिति विश्लेष-इति। विच्छेदवान्, विधेःमी।

विश्लोक (सं० त्रि०) १ स्तुतिके योग्य, स्तवनीय। (पु०) २ छन्दोभेद।

विश्व (सं० क्ली०) विजति स्वकारणं इति विशः प्रवेशने विज कान् (अणु, यित्प्रतिष्ठापोति क्वन्। उण् १११५१) १ जगत्, संसार, चराचर। (मेदिनीः)

आद्यन्तशून्य स्ततःप्रवृत्त कालने जगत्के उपादान (निमित्त) विश्वरूपी आत्माकी सृष्टिकी। अर्थात् कालके साथ-साथ आत्माका प्रादुर्भाव होता है, क्योंकि आत्माके सिवा सृष्टि अमभव्य है। इसके उपरान्त अव्यक्तमूर्ति ईश्वरने। विष्णुमायोरिच्छत्र प्रसूतन्मात्रा-विशिष्ट विश्वको (इस विश्वरूपी आत्माकी) कालमें स्थूलरूप और पृथग्भावसे प्रकाशित किया। प्रकृत और वैकृतभावसे साधारणतः विश्व नी-तरहसे सृष्ट है। उनमें प्राकृत छः प्रकार और वैकृत तीन प्रकार हैं। प्राकृत छः प्रकार यह हैं—

(१) महत्, महतरः) ; यह आत्माके गुणसे वैषम्य मात्र है।

(२) अहम् (अहङ्कार) ; इससे द्रव्य-ज्ञान-और क्रियाकी उत्पत्ति होती है।

(३) तन्मात्र (पञ्चतन्मात्र) ; ये सूक्ष्म पञ्चमून हैं, इससे ही फिर स्थूलपञ्चभूतोंकी (क्षिति, जल, तेजः वायु और आकाशकी) सृष्टि होती है।

(४) इन्द्रिय ; यह ज्ञान और कर्मभेदसे दो प्रकारका है। उनमें नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये कर्णज्ञानेन्द्रिय हैं और मुख, हाथ, पैर, पायु, उदर्य ये कर्मेन्द्रिय हैं। ये इन्द्रियां ही जीवके जीवनीपाय और गति-मुक्ति हैं ; क्योंकि इनके परिचालन द्वारा विश्व संसारमें जीवका धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, सुख, दुःख, दग्ध, मुक्ति प्रभृतिका प्रवर्त्तन होता है। अर्थात् शास्त्रोदित सप्त-क्रियासे इन्द्रिय-परिचालन, धर्म, पुण्य, सुख, मुक्ति आदिके और शास्त्रविगर्हित कार्योंमें इन्द्रियपरिचालन अधर्म, पाप, दुःख और दग्ध प्रभृतिके कारण हैं।

(५) वैकारिक (इन्द्रियाधिष्ठाता) देवगण-और-मन आदि पदार्थकी दृष्टि है।

(६) तमोगुण (पञ्चपर्वा अधिष्ठा) ; यह बुद्धिके आवरण (प्रतिभानिषर्त्तक) और विशेषजनक (व्याकुलताकारक) हैं।

तीन तरहके वैकृत ये हैं, यथा—

(१) वनस्पति, ओषधि, लता, त्वकसार, चोरुध और द्रुम ये छः प्रकारके स्थावर हैं। इनमें जो पुष्पके बिना फल लगता है, वे वनस्पति, फल पकने पर जो मर जाते हैं, वह ओषधि, जो मलाविहीन हैं अर्थात् जिसके त्वकमें ही सारजन्मता है (जैसे वॉस आदि) वे त्वकसार हैं। चोरुध प्रायः लताकी तरह ही है, किन्तु लताकी अपेक्षा इसमें काठिन्य है। जिसके पुष्पसे फल उत्पन्न होता है, उसका नाम द्रुम है। ये सब स्थावर तमःप्राय (अथक चैतन्य) हैं अर्थात् ये चैतन्य रह कर भी अथक हैं और वे अन्तःस्पर्शी (अन्तरमें इनको स्पर्शा-ज्ञान है ; किन्तु बाहर नहीं) हैं। अपने आहार-द्रव्यको (रस) मूलसे ऊर्ध्वदेशमें आकर्षित करनेकी इनमें शक्ति है। इससे ये ऊर्ध्वस्रोता कहलाते हैं।

(२) तियेकंप्राणी (पशु, पक्षी, चपाआदि) हैं। ये अविदे (स्मृतिहीन अतीत-घटनादि विषयमें ज्ञानशून्य)

हैं, भूरितामः (केवल-आहारादिमें निष्ठावान्) है ; घ्राणञ्-
(गंध ग्रहणके-ही- प्रयोजनीय- विषयोंमें हानशाली)
हैं और अवेदो- (मनोभाव-वापन करनेमें- असमर्था या
दीर्घानुसन्धानशून्य) है । इसके सम्बन्धमें धृतियों भी
उल्लेख हैं ; यथा—“अघेतरेयाः पशूनामशानापिपासे
पंचाभिधानं न विज्ञातं यदन्ति न विज्ञातः पश्यन्ति न
विदुः श्वस्ततं न लोकालोकाविति ।”

उक्त-तिर्णक-जाति एकशफ- (जोड़ा खुर) विशष्ट
गर्भ, अश्व, अश्वतर (शुभ्राश्व) ये तीन तथा गौर, गरभ
और चमरी (मृग-जातीय) ये-तीन कुल छा-तरहकी,
गो, बकरो, भैंस, शूकर, गयप (नोलगाय या वन्यगाय),
कृष्ण, कद (ये दो मृगजातीय), भेड़ और ऊँट, ये द्विशफ
(द्विखण्डित खुर)-विशिष्ट नौ प्रकार और कुत्ते, स्वार,
हुँडार, व्याघ्र, बिल्ली, क्षारभोग, शजाय, सिंह, बानर,
इस्तो, कूर्म और गोघा—ये द्वादश प्रकार पञ्चनखी
(पञ्च नखाविशिष्ट) जन्तु और भकर कुम्भोर आदि
जलजन्तु तथा कडू, मृगादिः खैचर—ये दोनों तरहके
जन्तुको मान लेनेसे सब २८ प्रकारके जन्तु निर्दिष्ट
हुए हैं ।

(३) नरदेह-रजोगुणाधिक्य है, कर्मतत्पर, दुःख
में भी सुखाभिमानो और अर्वाकस्रोताः अर्थात् इनके
आहाप्य द्रव्य (अग्नादि), ऊदुर्ला- (सुख) से अथः (निम्न-
कोष्ठादिमें) सञ्चारणपूर्वक जरोर-पोषण करते हैं ।

सिखा इनके देव, दानव, गन्धर्वा, अप्सरा, यक्ष,
रक्षः, भूत, प्रेत, पिशाच, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर आदि-
देवयोनिप्राप्त और सनत्कुमारादि उभयात्मक (देवत्व
और मनुष्यत्व अर्थात् उभय लोकागत) कितने ही
लोक भी इस विश्वब्रह्माण्डमें सृज्यमान हैं । संक्षेपतः
इनकी भी-सृष्टिका-क्रम नीचे दिया जाता है ।

प्रजापति ब्रह्मणे सहस्राकं धृतिः, ब्रह्माण्डमाण्डोदर
नारायणके नामिकमलसे समुद्रमूत हो कर उन्हींके आदेश-
से अपनी प्रजाप्रतियोगिनी-छाया द्वारा तामिस्र, अन्ध-
तामिस्र, तमः, मोह और महातमः ये पञ्चपर्वरूपी अविद्या-
की सृष्टि की। इस पञ्चपर्वकी सृष्टि होनेसे जगत्-निविड
अन्धकारमय अस्तृष्णा समुत्पादक रात्रिक्रममें परिणत
हुवा और वे (ब्रह्मा) भी उसके साथ मिल गये अर्थात्

“याऽस्य तनुरासीत् तामुपाहरत् सा तमिच्छामवत्”
(धृति), उनका-शरीर भी घोर तमसे आच्छन्न हुआ।
इसके बाद-उनसे उत्पन्न यक्ष, रक्षः आदि उक्त श्रुत्वष्णा-
समुत्पादक-रात्रिको प्राप्त होनेसे वे अति क्षुधातृष्णासे
कातर-हुए और अन्य कोई आहाप्य द्रव्य न पा कर
किंकरांघ्रियमिद्रावस्थामें आहाराभ्येवणमें ब्रह्माको पा
कर उनको भक्षण करनेके मानससे उनके प्रति दीड़े और
कहने लगे, कि-“मा रक्षतेनं जक्षध्वं” तुम लोग इसको
छोड़ना नहीं; खा जाना। प्रजापति स्वयं यह बात-सुन
कर चिह्मने लगे, कि “मा मा जश्न-रक्षत अहो मे यक्ष-
रक्षांसि। प्रजा यूयं वभूविध” हे यक्षरक्षण। तुम लोग
मेरे सन्तान हो, मुझसे ही उत्पन्न हुए हो, अतएव मुझ-
को भक्षण मत करो; रक्षा करो। इस समयसे जिन्होंने
“मा रक्षत” छोड़ना नहीं, यह बात-कही थी, वे राक्षस
और जिन्होंने “जक्षध्वं” खा डालो कहा था, वे यक्ष कद-
लाने लगे। ये देवयोनि प्राप्त होने पर भी तमोबहुलावस्थामें
उत्पन्न होनेसे तिर्णगादि तामस सृष्टिके अन्तर्भूत माने
जाते हैं ।

इसके बाद-सत्त्वगुणबहुलावस्थामें द्योतमान
(सात्त्विक भावापन्न) हो जो उत्पन्न हुए, उन्होंने अपनी
अपनी प्रमासे धृतिमान् होनेके कारण-जगत्में देवता
नामसे प्रसिद्ध हो। सर्वोच्च पदवी प्राप्त की। इस समय
ब्रह्माकी जो आभा फैली-थी, उससे-दिनकी उत्पत्ति
होनेसे देवतागण-उसमें पैड कीड़ाकीतुल्य करने लगे।

इसके बाद-“स जघनादसुरानसृजत” (धृति)-प्रजा-
पतिने, अपने जघने अतिलोलुप लोलम्पट-असुरोंकी
सृष्टि की। वे-अत्यन्त-मैथुनलुब्ध-हो आत्मतृप्तिविरि-
तार्थ करतेके-दूसरे उपाय न पानेके-कारण उन पर ही-
उसके लिये दीड़े । यह देव ब्रह्मा मन-ही मन-इसने
लगे-किन्तु निर्लेज असुरोंकी भावको अच्छा न देख
कूट और भयभीत हो कर बहासे वे भागे और विष्णुके
पास जा कर-उन्होंने-सारा वृत्तान्त यथायथ भावने
बहा। विष्णुने सब दाते जान कर आदेश दिया, कि-
तुम-भावात्तरमें-अवस्थान-करो-इसके-अनुसार
“सादोरात्रयोः सन्धिर्भवत्” (धृति) “सा तेन विसृष्टाः
तनुः प्रसावस्तनो-सन्ध्या-यभूय” ब्रह्माके-शरीर परि-

वर्चन द्वारा दिव्यरूपिणी सायन्तनी सगंध्यामूर्ति धारण करने पर कामविह्वल असुर अशेष लाघवपमयी विलासै-कनिलया खोमूर्ति के सममें विभ्रमोन्मत्त हो उसके प्रति आलिङ्गन करनेके लिये दीड़ने पर उद्यत हुए और वस्तु-गत्या किसी पदार्थकी उपलब्धि न कर सकनेसे हत बुद्धिकी तरह इधर उधर घूमने लगे।

इसके बाद स्वयम्भुने अपनी लाघवपमयी कान्तिसे गन्धर्वा, अप्सर और सर्गलोकप्रिय कान्तिमयी ज्योतिरिना-की सृष्टि की। इस तरह सर्गलोकपितामह ब्रह्मर्षिने अपने आलस्यके द्वारा तन्द्रा, जृम्भा, निद्रा और उन्माद हेतुभूत प्रेत-पिशाच आदिकी सृष्टि की है। इसके बाद साध्य और पितृगणकी सृष्टि हुई, इन साध्य और पितृ-गणको लोग आज भी श्राद्धादि द्वारा अपने अपने पिता-की तरह हृद्य कव्य प्रदान करते हैं। अन्तर्धान शक्ति द्वारा सिद्ध और विद्याधरोंकी सृष्टि हुई। इसी कारणसे ही इनकी आत्मामें एक अत्यदुभुन अन्तर्धान-शक्ति उत्पन्न होती है अर्थात्पे इच्छा करनेसे किसी समयमें भी धन्तर्हित और प्रादुर्भूत हो सकती है। इसके बाद उन्होंने अपने प्रतिविम्ब (अपनी देहकान्ति)के अव-लम्ब्यसे किन्नर-किन्नरीकी सृष्टि की। पीछे सृष्टिकी और विवृद्धि न देख भगवान्ने क्रोधैरगाद्विपुक्त भोगदेह परित्याग कर दी। इस देहसे जितने बाल जमीन पर पतित हुए, उनसे सर्पोंकी उत्पत्ति हुई।

इन सबकी सृष्टि हो जानेके बाद स्वयम्भु स्वयं आत्मा-को मन्थमान समझने लगे। उस समय अपनी देह और पुत्रपकार अर्पणमें मनके द्वारा मनुष्योंकी सृष्टि की। इस-से देवगण ब्रह्माकी भूयशी प्रशंसा करने लगे। सर्पादि उन्होंने सोचा, मनुष्यों द्वारा अग्निहोत्रादि अनुष्ठित होने पर वे हविर्भागान्दि-भक्षण कर सकेंगे। इसके बाद तथा, उपासना, योग और वैराग्यैश्वर्ययुक्त समाधि-सम्पन्न ऋषियोंकी सृष्टि हुई। इनमें प्रत्येकको भी भगवान्ने अपनी देहका अंश दिया। बिल्वुत्-विबरण-जगत् और पृथ्वी शब्दमें देले।

२ सौंड। पर्वण्य—महोपच, सौंड, नागर, विश्व-मेघज। (रत्नमाला) शृङ्गवेर, कटुमद्, उपण। (भाष्य०) ३ बोल, गन्धबोल, निशादल। (पु०) ४ गणदेवताविशेष।

वस्तु, सत्य; क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुप, पुरुरवा, माद्रवा, ये दश हैं। इनमें इष्टिधादमें क्रतु और दक्ष; नान्दीमुखमें (आम्पुद्विक) धादमें सत्य और वस्तु; नैमि-त्तिक क्रियामें काल और काम; काम्यकर्मां धृति और कुप और पार्षण धादमें पुरुरवा और माद्रवाका उल्लेख करना होता है। ये धर्मा द्वारा दक्षकन्या विश्वाके गर्म-से उत्पन्न हुए। (मत्स्यपुराण ५ अ०) ५ नागर, सौंड। (विम्ब) ६ विष्णु। ७ देह। ८ शिव। (मारत १३।१७।१४५) (खी०) ९ परिमाणविशेष, ६६ रत्नी = एक तोला। १० तोला = एक पल, २० पल = विश्वा। (ज्योतिषमती) ११ स्थूल शरीरव्यापी चैतन्य, प्रत्येक शरीरावच्छिन्न जीवात्मा। (वेदान्तेश्वर) १२ दक्षकन्याभेद, विश्वदेवोंकी माता। (मत्स्यपु०) १३ अतिविद्या। १४ शतावरी, शतमूल। (त्रि०) १५ सकल, सब, समस्त। १६ बहु, बहुत, अनेक। (निचपट्ट)

विश्वक (सं० त्रि०) विश्वकन्। निखिल, समस्त। विश्वकथा (सं० खी०) १ जगत्सम्बन्धोप कथा। २ सभी धार्ते।

विश्वकट्ट (सं० पु०) १ मृगयाकुशल कुशकुर, शिकारी कुत्ता। २ शब्द, ध्यान। (त्रि०) ३ लाल, दुष्ट। विश्वकर्तृ (सं० त्रि०) १ जगत्स्रष्टा, जगत्पति, जग-दीश्वर। (भागवत ६।१०।४८) (पु०) २ बौधायन-सूत्रानुयायि-पद्धतिके प्रणेता। सकार-कीमुदीमें इस-का उल्लेख है।

विश्वकर्मा (सं० त्रि०) सर्वकर्मक्षम, जो सब प्रकारके कार्य करनेमें चतुर हो। (शुक १०।१६।१४)

विश्वकर्मां (सं० खी०) विश्वकर्माणः जायते विश्व-कर्मान्-जनन्। सूर्यकी पत्नी, संज्ञा।

विश्वकर्मांस्तुता (सं० खी०) विश्वकर्माणः-स्तुता। सूर्य-पत्नी, संज्ञा। (शब्दरत्ना०)

विश्वकर्मान (सं० पु०) विश्वेषु कर्म-वश्य। १ सूर्य। २ देवशिल्पी, एक प्रसिद्ध आचार्य्ये अथवा देवता जो सब प्रकारके शिल्प-शास्त्रके आधिष्ठाता और सबधेष्टे जाता माने जाते हैं। पर्याय—स्वप्ता-विश्वकृत, देव-वर्द्धक। (द्वेय)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्मा प्रभासके

पुत्र थे। ये प्रसाद, भवन, उद्यान आदि विषयोंमें
- शिव प्रजापति थे। (मत्स्यपुराण ५ अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि ये आठ वसुओंमेंसे
प्रसास नामक वसुके औरस वृक्षपतिकी प्रह्लावारिणी
बहनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये शिवोंके कर्त्ता तथा
देवताओंके बर्हकिये। इन्होंने ही देवताओंके विमान-
नादिको बनाया था। मनुष्य इहाँका शिव ले कर
जीविका निर्वाह करते हैं।

वेदादिमें विश्वकर्मा इन्द्र (ऋक् ८, ८५२), सूर्य
(मार्क० १० १०११), प्रजापति (यजुज, यजुः १२, ६१),
- विष्णु (भारत मीमांसा), शिव (किरणपुराण) आदि ऋत्वि-
मान् देवताओंके नामरूपमें व्यवहृत हुए हैं। पीछे
उनका विश्वरूप स्वरूपके नाममें आया है। इस
पर्यायमें विश्वकर्मा विश्वरूपका द्वितीय शिल्पो माने
गये हैं। ऋग्वेदके १०, ८१-८२ सूक्तमें लिखा है, कि 'ये
सर्पदग्धा भगवान् हैं, इनके नेत्र, यवन, बाहु और पद-
चारों मोर फेले हुए हैं। बाहु और दोनो पैरोंकी सहा-
यतासे ये स्वर्ग और मर्त्यका निर्माण करते हैं, ये पिता,
सर्गप्रभु, सर्गनिर्माता हैं, ये विश्वरूप हैं, प्रत्येक देवता
यथायोग्य नाम रखते हैं तथा नश्वर प्राणिके ध्वानातीत
पुरुष हैं। उन श्लोकोंमें यह भा लिखा है, कि ये आत्म-
दान करने हैं अथवा आप ही सब भूतोंका बलिदान लेते
हैं। इस बलिके सम्बन्धमें निरुक्तमें इस प्रकार लिखा
है,—'भुवनके, पुत्र विश्वकर्माने सर्गमिथ द्वारा जगत्की
- सृष्टि आरम्भ की तथा आत्म-बलिदान कर निर्माणकार्य
शेष किया। ऋग्वेद १० ८१-८२ सूक्तमें विस्तृत विवरण देलो।

पुराणकारोंका कहना है, कि ये वैदिक स्वरूपका कार्य
करते हैं तथा उस कार्यमें इन्हें विशेष क्षमता है। इस
कारण ये स्वरूप नामसे भी प्रसिद्ध हैं। केवल श्रेष्ठ
शिल्पी कहतेसे ही इनका परिचय शेष नहीं होता, पर
ये देवताओंके शिल्पकार हैं तथा उनके अस्त्रादि तैयार
कर देते हैं। आग्नेयस्त्र नामक मीषण युद्धास्त्र इहाँ-
का बनाया हुआ शिल्पविशेष है।- इन्होंने ही जगत्-
में स्यापत्य-वेद वा शिल्पविज्ञान प्रथम अभिषिक्त किया
था।

महाभारतमें लिखा है, कि 'ये शिल्पसमूहके श्रेष्ठ-

तम कर्त्ता हैं, सहस्र शिल्पके आविष्कारक देवकुलके
मित्रो हैं, सभी प्रकारके कारुकार्यके निर्माता हैं, शिल्प-
कुलके श्रेष्ठतम-पुत्र हैं। इन्होंने ही देवताओंका
स्वर्गोत्थ रथ प्रस्तुत कर दिया है। इन्होंने निपुणता
पर सभी लोग जाविका निर्वाह करते हैं, ये महत्
और अमर देवताविशेष हैं। इनकी सभी जीव-पूजा
करते हैं।

रामायणमें लिखा है, कि राक्षसोंके लिये इन्होंने
लङ्कापुरी बनाई थी। सेतुबन्ध तैयार करनेके लिये रामके
साहाय्यार्थ इन्होंने नल वानरको सृष्टि की थी।

महाभारतके आदिपर्यं तथा किसी किसी पुराणमें
- देखा जाता है, कि अष्टवसुओंमेंसे एक वसु प्रसासके
औरससे और उनकी पत्नी लावण्यमयी सती योगसिद्धाके
गर्भसे विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माने अपनी
कन्या संघाका विवाह सूर्यके साथ कर दिया, रूक्षा
सूर्यका प्रभर ताप सह न सकता थी, इस कारण विश्व-
कर्माने सूर्यको शानत्रक पर चढ़ा कर उनको उड्डयनता-
का अष्टमांश काट डाला। कटा हुआ अंश जो पृथिवी
पर गिरा था, उससे इन्होंने विष्णुका सुदर्शनचक्र,
शिवका त्रिशूल, कुबेरका अस्त्र, कार्तिकेयका बल्लम तथा
अन्यान्व देवताओंके अस्त्रादि निर्माण किये थे। कहते
हैं, कि प्रसिद्ध जगन्नाथ मूर्त्ति विश्वकर्माकी ही बनाई
हुई है।

सृष्टिकारक रूपमें विश्वकर्मा कर्मो कर्मो प्रजापति
नामसे पुकारे जाते हैं। ये काठ, तक्षक, देव चर्मक,
सुरपत्थर आदि नामोंसे भी प्रसिद्ध हैं।

विश्वकर्मा शिल्पसमूहके कर्त्ता होनेके कारण देव-
शिल्पी कहलाते हैं। दिव्य शिल्पी शिल्पकर्माको उन्नति-
के लिये प्रति वर्ष भाद्र मासको संक्रान्ति तिथिकी विश्व-
कर्माकी पूजा करते हैं। उस दिन वे लोग किसी भा
शिल्प यन्त्रादिको काममें नहीं लाते। ये सब यन्त्रादि
अच्छो तरह परिष्कार कर पूजाके स्थानमें रखे जाते हैं।
निम्नश्रेणीके दिव्य रूपक भी हल, कुदाल आदिकी पूजा
करते हैं।

विश्वकर्माकी पूजा इस प्रकार है,—प्रातःकालमें
नित्य कियादि समाप्त करके शुद्धासन पर बैठ

पहले स्वास्तिवाचनादि और पीछे सङ्कल्प करना होता है।

इसके बाद सङ्कल्प सूक्तिका पाठ कर सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि, भूतशुद्धि और घटस्थापनादि करके सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे गणेशादि देवताकी पूजा करनेकी होगी। अनन्तर 'वां हृदयाय नमः, यो शिरसे स्वाहा' कह कर अङ्ग और करन्यास तथा निम्नोक्त रूपसे ध्यान करना होगा।

ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"ओ द शशास्त्र महावीर सुमित्र कर्माकारक।

विश्वकृत् विश्वशुक् च त्वं वासेनामानन्दयद्बभूव ॥"

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारसे पूजा और विशेषार्घ्य स्थापन कर फिरसे ध्यान पाठ करनेके बाद आवाहन करे।

बङ्गके अनेक स्थानोंमें भाद्रपदकान्तिके विश्वकर्माके पूजोपलक्षमें एक उत्सव होते देखा जाता है। यह उत्सव निम्नश्रेणीके लोगोंमें हो सोमायुद्ध है। अधिकांश स्थलोंमें नमःशूद्राण ही इस उत्सवके नेता हैं। पूजाके दिन सभी लोग बहुत सवेरे स्नान करते हैं। नरनारीमें भारी चहल-पहल दिखाई देती है। जो धनी हैं वे आरमोय बन्धुबान्धवोंको अपने यहाँ निमन्त्रण करते हैं। पूजाके बाद सभी एक साथ बैठ कर खाते हैं। इस दिन ये लोग कम खर्चमें एक प्रकारका पिण्डाकार पिण्डक तैयार कर लेते हैं। इस पिण्डकका नाम मडुआ है। चावलका चूर और मीठा दे कर मडुआ तैयार किया जाता है जिसे बड़े चावसे खाते हैं। इसके बाद बाईच खेल शुरू होता है। ग्रामके धनी व्यक्ति इस खेलका खर्च देते हैं। उन्हींके उतसाह और नेतृत्वमें दूसरे दूसरे लोग आनन्दमें विभोर रहते हैं। छोटी लम्बी नावे सजाई जाती हैं। नायक अगला और पिछला भाग गाढ़े सिन्दूरसे लिया तथा पुष्पमालासे सजाया रहता है। जो धनी व्यक्ति हैं वे नया कपड़ा पहन कर नायक बीचमें खड़े रहते और चालकोंको जददासे चलानेके लिये उतसाह देते हैं।

इस उत्सवमें केवल निम्नश्रेणीके हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी मडुआ प्या कर बड़े हर्षसे इसमें साथ

देते हैं। बाईच खेलनेके लिये ये लोग भी सुसज्जित नायकोंले कर धनी नेताके अधीन खेलमें जमा होनेकी चेष्टा करते हैं। यह खेल प्रधानतः नदीमें या विस्तारण खालमें होता है। उत्सव-दिनके पहले ही खेल कहाँ होगा, इसकी सूचना दे दी जाती है। जो नाव सबसे पहले निकलती है, उसकी जयजयकार होती है। जिस समय नावे बड़ी तेजसे चलती हैं, उस समयका दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है। इस खेलमें लोगोंकी बड़ी मीढ़ लग जाती है। कभी कभी तो प्रतिद्वन्द्विताके फलसे हिन्दू हिन्दूमें, मुसलमान मुसलमानमें तथा हिन्दू-मुसलमानमें दङ्गा हो जाया करता है। जिसकी जीत होती है, धनी व्यक्ति उसे इनाम देते हैं। इसके बाद घर जा कर सभी मडुआ खाते हैं। ये सब नावे खेनेके लिये एक सोस तीन सौ आदमियोंकी जरूरत होती है।

विजयाके दिन प्रतिभा-विसर्जनके समय भी पूर्व-वङ्गमें इसी प्रकारका खेल होता है।

३ शिवके हजार नामोंमेंसे एक नाम 'चिरक' (किष्कण्ड ६५।११८) ४ चेतना, धातु। 'चरक'के विमान स्थानमें लिखा है, कि जीवकी चेतना धातुका नाम विश्वकर्मा है। 'चरक' सुनिने चेतनाधातुके कर्त्ता, मन्ता, वेदिता, ब्रह्मा, विश्वकर्मादि नाम रखे हैं। ('चरक विमानस्थान ४ अ०) ५ सर्वधारापरहेतु। (सूक्त १०।१७०।४) ६ बर्द्ध। ७ राज, मेमार। ८ लोहार। ९ हिलोराके अन्तर्गत स्वनाम प्रसिद्ध गुहामन्दिर। हिलोरा देखो।

विश्वकर्मा—१ वास्तुप्रकाश, वास्तुविधि, वास्तुशास्त्र, वास्तुसमुच्चय, अपराजितावास्तुशास्त्र, भायतत्त्व, विश्वकर्माय आदि प्रयोगके प्रणेता।

२ मीमांसाकारके रचयिता। ३ सह्याद्रि वर्णित राजभेद। यह राजवंश पञ्चावतोंके भक्त और सौतल मुनिकुलोद्भव थे। (खला० ३१।३०)

विश्वकर्मापुराण—उपपुराणभेद।

विश्वकर्मा शास्त्रो—सर्पक्रियाव्याप्तिसिद्धि नाम्ना प्रक्रियाकी मुद्रादीकाके प्रणेता।

विश्वकर्मा—विश्वकर्मान् देखो।

विश्वकर्माश (स० कृ०) शिवलिङ्गभेद।

विश्वकर्माश्रयलिङ्ग (स० कृ०) लिङ्गभेद। कहते हैं,

के विश्वकर्माने यहां लिङ्ग स्थापित किया था ।
(स्कन्दपुराण)

श्वका (सं० खी०) गङ्गासिन्धु, गांगचोल ।

श्वकाय (सं० पु०) विश्व हि जिसका काय अर्थात्
गरीर है, विष्णु ।

“स विश्वकायाः पुरुहुत ईशः सत्यः स्वयं ज्योतिरजः पुराणः ।”
(भागवत ८।१।२३)

श्वकाया (सं० खी०) दाक्षायणी, दुर्गा ।

श्वकारक (सं० पु०) विश्वस्य कारकः । विश्वका कर्ता,
शेवाः। (शिवपु०)

श्वकार (सं० पु०) विश्वकर्मा ।

श्वकार्य (सं० पु०) क्षुर्वाकीः सात प्रधान उद्योगियों-
का मेद ।

श्वकूट—हिमालयकी एक चोटीका नाम ।

(हिम०ख० ८।१०२)

श्वकूट (सं० पु०) विश्वं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च ।
१ विश्वकर्मा । २ ब्रह्मा । (भागवत ६।१४।८)

श्वकृष्टि (सं० खी०) जो सब लोगोंके अपने समी
सम्बन्धीके समान समभता हो ।

श्वकृतु (सं० पु०) विश्वमेव केतुः विश्वव्यापी वा
केतुर्वाच्य । १ अनिदह । (अमर) २ पर्वतमेद ।

(हिम०ख० ८।१०६)

श्वकोश (सं० पु०) विश्वं ब्रह्माण्डं वायत्पदार्थाः
कोपे आधारे यस्य । १ विश्वमण्डल, वह कोश या भण्डार

जिसमें संसार भरके सब पदार्थ आदि संगृहीत हैं ।

२ विश्वप्रकाश नामक अग्निमान, वह ग्रंथ जिसमें संसार
भरके सब प्रकारके विषयों आदिका विस्तृत विवेचन या

वर्णन हो ।

विश्वकोश—विश्वकोश देखो ।
विश्वज्ञ (सं० पु०) विश्वविनाश, प्रलयकालमें ब्रह्माण्डका
ध्वंस । (राजतर० २।१६)

विश्वसिति (सं० खी०) विश्वकृष्टि, जो सब लोगोंके
अपने समी सम्बन्धीके समान समभता हो ।

विश्वक्षेत्र (सं० पु०) १ विष्णु । २ तेरहवें मनु ।
(मत्स्यपु० ६ ख०) ३ कालिकापुराणके अनुसार एक

चतुर्भुज देवता जो जंघ, चक्र, गदा और पद्म धारण

किये रहते हैं और जो विष्णुका निर्माहयः धारण करने-
वाले माने जाते हैं । ये द्वाद्यंशमश्रु, जटाधारी और
रक्तपिङ्गल वर्ण हैं तथा श्वेतपूके ऊपर बैठे हैं ।

(काविकापु० ८२ म०)

कहो कहीं विश्वक्षेत्र इस तालम्यशकारको जगद
दन्तपसकार देखनेमें जाता है ।

विश्वक्षेत्रा (सं० खी०) प्रियंशुवृक्ष, कंगनी । यह
शब्द भा तालम्यशकारका जगद दन्तपसकार लिखा है ।

विश्वग (सं० पु०) विश्वं गच्छतीति गम-ञ । १ ब्रह्मा ।
२ पूर्णिमाका पुत्र, मराविका लड़का ।

(भागवत ४।१।२३ १४)

विश्वगङ्गा—मध्यभारतके घेराव राज्यमें प्रवाहित एक
छोटी नदी । यह अक्षा० २०°२४' उ० तथा देशा० ७६°१६'

पू०के मध्य विस्तृत है । बुलदाना जिलेके बुलदाना
नगरके समीप निकल कर नलगङ्गाके समान्तरालमें

बहती हुई पूर्णानदीमें मिलती है । इस पहाड़ी नदीमें
समा समय जल नहीं रहता, किन्तु वर्षाके समय इस

नदीसे जयपुर, बदनैरा और चाँदपुर नगर तक गमना-
गमन होता है ।

विश्वगत (सं० खी०) विश्वं गताः विश्वगामी, विश्व-
व्याप्त ।

विश्वगन्ध (सं० खी०) विश्वे सर्वस्थाने गन्धा यस्य ।
१ बौल नामक गंधद्रव्य । (पु०) २ पलाण्डु, प्याज ।

विश्वगन्धा (सं० खी०) विश्वेषु समस्तपदार्थषु मध्ये
गन्धा गन्धविशिष्ट, क्षिप्तावेव गन्ध इति न्यायादस्यास्त-
धारय । सुधिये ।

विश्वगन्धि (सं० पु०) पुराणपुत्र, पृथुका लड़का ।

विश्वगर्भ (सं० पु०) विश्वं गर्भे यस्य । १ विष्णु ।
२ शिव । ३ रैवतका पुत्रभेद । (हरिदंश)

विश्वगुरु (सं० पु०) विश्वस्य गुरुः । हरि, विष्णु ।
(भागवत १।१५ २६)

विश्वगूर्त्त (सं० खी०) १ सभी कार्यमें समर्था ।
२ उद्यतसर्वायुध, जिसके सभी भायुध उद्यत ।

(शुक् १।६।६)

विश्वगूर्त्ति (सं० खी०) सर्वोका स्तुत्यः सभी लोगोंके
स्तवयोग्य । (शुक् १।१८।२)

पहले स्वास्तिवाचनादि और पीछे सङ्कल्प करना होता है।

इसके बाद सङ्कल्प सूत्रादिका पाठ कर सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि, भूतशुद्धि और घटस्थापनादि करके सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे गणेशादि देवताकी पूजा करनेकी होगी। अनन्तर 'वां हृदयाय नमः, वीं शिरसे स्वाहा' कह कर अङ्ग और करन्यास तथा निम्नोक्त रूपसे ध्यान करना होगा।

ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"ओ दंशपात्र महावीर सुमिष कर्मकारक।

विश्वकृत् विश्वशृक् च त्वं (वाधेनामानन्दपद्मशृक् ॥"

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारसे पूजा और विशेषार्घ्य स्थापन कर फिरसे ध्यान पाठ करनेके बाद आवाहन करे।

बङ्गके अनेक स्थानोंमें भाद्रसंक्रान्तिको विश्वकर्माके पूजापक्षमें एक उत्सव होते देखा जाता है। यह उत्सव निम्नश्रेणीके लोगोंमें ही सीमापेक्ष है। अधिकांश स्थलोंमें नमःशूद्रगण ही इस उत्सवके नेता हैं। पूजाके दिन सभी लोग बहुत सवेरे स्नान करते हैं। नरनारीमें भारी चहल-पहल दिखाई देती है। जो धनी हैं वे आत्मीय वस्तुवाचधियोंको अपने यहां निमंत्रण करते हैं। पूजाके बाद सभी एक साथ बैठ कर खाते हैं। इस दिन ये लोग कम खर्चोंमें एक प्रकारका पिण्डाकार विष्टक तैयार कर लेते हैं। इस विष्टकका नाम भदुआ है। चावलका चूर और मोटा दे कर मडुआ तैयार किया जाता है जिसे बड़े चावसे खाते हैं। इसके बाद धार्च खेल शुरू होता है। ग्रामके धनी व्यक्ति इस खेलका खर्च देते हैं। उन्हींके उत्साह और नेतृत्वमें दूसरे दूसरे लोग आनन्दमें विमोह रहते हैं। छोटी लंबी नावे सजाई जाती हैं। नावका अगला और पिछला भाग गाढ़े सिन्दूरसे लिपा तथा पुष्पमालासे सजाया रहता है। जो धनी व्यक्ति हैं वे नया कपड़ा पहन कर नावके बीचमें छड़े रहते और चालकोंको जल्दीसे चलानेके लिये उत्साह देते हैं।

इस उत्सवमें केवल निम्नश्रेणीके हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी भदुआ या कर बड़े दर्जसे इसमें साथ

देते हैं। चाइच खेलनेके लिये ये लोग भी सुसज्जित नावको ले कर घनी नेताके अधीन खेलमें जमा होनेकी चेष्टा करते हैं। यह खेल प्रधानतः नदीमें या विस्तारण खालमें होता है। उत्सव-दिनके पहले ही खेल कहा होगा, इसकी सूचना दे दी जाती है। जो नाव सबसे पहले निकलती है, उसकी जयजयकार होती है। जिस समय नावे बड़ी तेजीसे चलती हैं, उस समयका दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है। इस खेलमें लोगोंकी बड़ी मीढ़ लग जाती है। कभी कभी तो प्रतिद्वन्द्विताके फलसे हिन्दू हिन्दूम, मुसलमान मुसलमानमें तथा हिन्दू-मुसलमानमें दङ्गा हो जाया करता है। जिसकी जीत होती है, धनी व्यक्ति उसे इनाम देते हैं। इसके बाद घर जा कर सभी भदुआ खाते हैं। ये सब नावे खेनेके लिये एक साथीसे तीन सौ धादमियोंकी जरूरत होती है।

विजयाके दिन प्रतिमा-विसर्जनके समय भी पूर्व-वङ्गमें इसी प्रकारका खेल होता है।

३ शिवके हजार नामोंमेंसे एक नाम (विह्वपु० ६५११८) 'चेतना, धातु। चरकके विमान स्थानमें लिखा है, कि जीवकी चेतना धातुका नाम विश्वकर्मा है। चरक मुनिने चेतनाधातुके कर्ता, मन्ता, वेदिता, प्रेक्षा, विश्वकर्मादि नाम रखे हैं। (चरक विमानस्था० ४ अ०) ५ सर्ववशांपारहेतु। (ऋक् १०१७०४) ६ बर्द्धे। ७ राज, मेमार। ८ लोहार। ९ इलोराके-अन्तर्गत स्वनाम प्रसिद्ध गुहामन्दिर। इलोरा देखो।

विश्वकर्मान्—१ वास्तुप्रकाश, वास्तुविधि, वास्तुशास्त्र, वास्तुसमुच्चय, अपरांजितावास्तुशास्त्र, आयतस्व, विश्वकर्माय आदि प्रयोगके प्रणेता।

२ मीमांसकारके रचयिता। ३ सहाद्वि वर्णित राजमेद। यह राजवंश पञ्चावर्तके भक्त और सोनल-मुनिकुलोद्भय ये (सदा० ११३०)

विश्वकर्मापुराण—उपपुराणमेद। विश्वकर्मा शास्त्री—सप्तप्रक्रियाव्याकृति नाम्नी प्रक्रिया-कीमुदीटीकाके प्रणेता।

विश्वकर्मा—विश्वकर्मान् देखो।

विश्वकर्मेण (स० कृ०) शिवलिङ्गमेद।

विश्वकर्माश्वरलिङ्ग (स० कृ०) लिङ्गमेद। कहते हैं,

किं विश्वकर्मानि यहाँ लिङ्ग स्थापित किया था ।
(स्कन्दपुराण)

विश्वका (सं० खो०) गङ्गासिद्धी, गंगाखोल ।

विश्वकाय (सं० पु०) विश्व ही जिसका काय अर्थात् शरीर है, विष्णु ।

"व विश्वकायः पुरुष इयः सत्याः स्वयं ज्योतिरजः पुराणः ।"
(भागवत ८।१।२३)

विश्वकाया (सं० खो०) दाक्षायणी, दुर्गा ।

विश्वकारक (सं० पु०) विश्वस्य कारकः । विश्वका कर्ता, शिवाः (शिवपु०)

विश्वकाठ (सं० पु०) विश्वकर्मा ।

विश्वकार्य (सं० पु०) सूर्यकी सात प्रधान उद्योगियोंका मेघ ।

विश्वकूट—हिमालयकी एक छोटीका नाम ।

(दिग्गण ८।१०२)

विश्वकृत् (सं० पु०) विश्वं करोतीति कृ-क्त्पु-त्तुक्च ।
१ विश्वकर्मा । २ ब्रह्मा । (भागवत ६।१४।८)

विश्वकृष्ट (सं० खि०) जो सब लोगोंका अपने सगे सम्बन्धीके समान समझता हो ।

विश्वकृत (सं० पु०) विश्वमेव कर्ताः विश्ववर्षायां या कर्तव्येण । १ अनिन्द्य । (अमर) २ पर्यंतमेव ।

(दिग्गण ८।१०६)

विश्वकोश (सं० पु०) विश्वं ब्रह्माण्डं यावत्पदार्थाः कोपे आधारे यस्य । १ विश्वमण्डार, वह कोश या मण्डार जिसमें संसार भरके सब पदार्थ आदि संयुद्धीत हैं ।

२ विश्वप्रकाश नामक अमिघान, वह ग्रंथ जिसमें संसार भरके सब प्रकारके विषयों आदिका विस्तृत विवेचन या वर्णन हो ।

विश्वकोप—विश्वकोश देखो ।

विश्वकृत् (सं० पु०) विश्वविनाश, प्रलयकालमें ब्रह्माण्डका ध्वंस । (राजतरंग २।१६)

विश्वसिति (सं० खि०) विश्वकृष्टि, जो सब लोगोंका अपने सगे सम्बन्धीके समान समझता हो ।

विश्वकृशेन (सं० पु०) १ विष्णु । २ तेरहवें मनु । (मत्स्यपु० ६. ५०) ३ कालिकापुराणके अनुसार एक चतुर्भुज शैवता जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण

किये रहते हैं और जो विष्णुका निर्मालय धारण करनेवाले माने जाते हैं । ये दशभूमि, जटाधारी और रक्तपिङ्गल वर्ण हैं तथा श्वेतपद्मके ऊपर बैठे हैं ।

(काविकापु० ८२ अ०)

कहो कही विश्वकृशेन इस तालव्यशकारकी जगददन्त्यसकार दक्षिणमें जाता है ।

विश्वकृशेना (सं० खो०) प्रियगुरुश, कंगनी । यह शब्द भा तालव्यशकारका जगददन्त्यसकार लिखा है ।

विश्वग (सं० पु०) विश्वं गच्छतीति गम-ङ । १ ब्रह्मा । २ पूर्णिमाका पुत्र, मर्यादका लड़का ।

(भागवत ४।१।२४ २४)

विश्वगङ्गा—मध्यभारतके घेराव राज्यमें प्रवाहित एक छोटी नदी । यह अक्षांश २०° २४' उ० तथा देशांश ७६° १६' पू०के मध्य विस्तृत है । बुलदाना जिलेके बुलदाना नगरके समीप निकल कर नलगङ्गाके समान्तरालमें बहती हुई पूर्णानदीमें मिलती है । इस पहाड़ी नदीमें सभी समय जल नहीं रहता, किन्तु वर्षाके समय इस नदीसे जयपुर, बदनैरा और चांदपुर नगर तक गमना-गमन होता है ।

विश्वगत (सं० खि०) विश्वं गतः । विश्वगामी, विश्व-व्याप्त ।

विश्वगन्ध (सं० खो०) विश्वे सर्वस्थाने गन्धो यस्य । १ शोल नामक गंधद्रव्य । (पु०) २ पलाण्डु, प्याज ।

विश्वगन्धा (सं० खो०) विश्वेषु समस्तपदार्थेषु मध्ये गन्धा गन्धविशिष्ट, क्षिप्तायेव गन्ध इति न्यायादस्यास्त-थात्वं । पृथिवी ।

विश्वगन्धि (सं० पु०) पुरजयपुत्र, पृथुका लड़का ।

विश्वगर्भ (सं० पु०) विश्वं गर्भे यस्य । १ विष्णु । २ दिव्य । ३ रैवतका पुत्रमेव । (हरिवंश)

विश्वगुरु (सं० पु०) विश्वस्य गुरुः । हरि, विष्णु । (भागवत ३।१२. २६)

विश्वगूर्ति (सं० खि०) १ सभी कार्योंमें समर्प । २ उद्यतसर्वायुध, जिसके सभी आयुध उद्यन ।

(शुक १।६१. ६)

विश्वगूर्ति (सं० खि०) सर्वोका स्तुत्यः, सभी लोगोंके स्तवयोग्य । (शुक १।१८०।२)

विश्वगत (सं० लि०) विश्वगतसम्बन्धीय ।

(शतपथब्रा० ३।१।३।५)

विश्वगत्य (सं० लि०) १ विश्वगतसंश्लिष्ट ।
२ वाद्ययुक्त । (अथर्व ५।२।१३)

विश्वगामा—विश्वगोप्तु देवो ।

विश्वगोप्तु (सं० पु०) विश्वस्य गोप्ता रक्षयिता । १
विष्णु । २ इन्द्र । (लि०) ३ विश्वपालक, समस्त
विश्वका पालन करनेवाला ।

विश्वग्रन्थि (सं० स्त्री०) १ हंसपदी लता । २ रक्त-
लज्जालुका, लाल लम्बाट ।

विश्वग्वात (सं० पु०) विश्वग्वापु देवो ।

विश्वग्वायु (सं० पु०) विश्वग्गतो वायुः । सघंता-
गामी वायु, वह वायु जो सब जगह समानरूपसे चलती
है । यह वायु अनायुष्य (आयुष्कर नहीं) देव-
वर्द्धक और नाना प्रकारका उत्पात उत्पन्न करनेवाली
मानो जाती है । सभी ऋतुओंमें यह वायु बह सकती
है ।

विश्वघ् (सं० लि०) विश्वमञ्जति अञ्ज-किप् । सर्गल-
गामी, सब जगह जानेवाला ।

विश्वङ्कर (सं० पु०) विश्वं सर्वं करोतीति प्रकाशय-
तीति छ बाहुलकात् ट, द्वितीयाया अलुक् । चक्षु, नेत्र ।

विश्वचक्र (सं० स्त्री०) विश्वतः सर्गल चक्र यस्य ।
महादानविशेष, बारह प्रकारके महादानोंमेंसे एक प्रकार-
का महादान । इसमें एक हजार पलका सोनेका एक
एक चक्र या पहिया बनवाया जाता है जिसमें सोलह
आरे होते हैं और तब यह चक्र कुछ विशिष्ट विधानोंके
अनुसार दान किया जाता है ।

विश्वचक्रात्मा (सं० पु०) विश्वचक्रं ब्रह्माण्डमेव आत्मा
स्वरूपं यस्य । विष्णु, नारायण । (मत्स्यपु० २३६ अ०)

विश्वचक्षण (सं० लि०) विश्वचक्षु देवो ।

विश्वचक्षुस् (सं० लि०) सर्वविश्वके प्रकाशक, जो
समस्त जगत्को प्रकाश करने हैं ।

विश्वचक्षुस् (सं० लि०) सर्वदर्शो, ईश्वर ।

विश्वचर्षणि (सं० लि०) सर्वमनुश्रुयुक्त, सभी यज्ञमानोंसे
पूज्य । (ऋक् १।६३)

विश्वजन (सं० पु०) सर्वजन, सभी मनुष्य ।

विश्वजनीन (सं० लि०) विश्वजनाय हितं (आत्मय विश्व-
जनमोगोत्तरपदात् खः । पा ५।१।६) इति-ख । विश्वजनका
हितकर, सभी लोगोंका हितजनक ।

विश्वजनीय (सं० लि०) विश्वजनका हितकर, सभी
लोगोंको भलाई करनेवाला ।

विश्वजनमन् (सं० लि०) विश्वस्मिन् जन्म यस्य । १ विश्व-
जात । २ विभिन्न प्रकार ।

विश्वजन्य (सं० लि०) विश्वजनाय हितं हितार्थं यत् ।
विश्वजनका हितजनक, सर्वोंकी भलाई करनेवाला ।

विश्वजयिन् (सं० लि०) विश्वं जयति जि-णिनि । विश्व-
जेता, विश्वको जीतनेवाला

विश्वजा (सं० स्त्री०) शृष्टि, स्रोत ।

विश्वजिच्छिञ्ज (सं० पु०) एकाहमेद ।

(पञ्चविंशमा० ६१।१।१)

विश्वजित् (सं० पु०) विश्वं जयति जि-ञिञप्, तुक् च् ।
१ यक्षभेद, सर्वस्वदक्षिण यक्ष । इस यक्षमें कुल धन
दक्षिणामें दे देना होता है । २ न्यायविशेष । यह
न्याय इस प्रकार है—विश्वजित्के द्वारा यक्ष करे अर्थात्
विश्वजित् यक्ष करे जहां फलकी किसी प्रकार श्रुति
अनिहित न होनेसे नित्यतब कवित्त हुआ है तथा फला-
भिधान न रहनेसे भी पीछे यक्षफल स्वर्गादि कवित्त
होता है, वहां यह न्याय होगा, 'विश्वजित् यक्ष करे, इस
उक्तिमें स्वर्गादिके सम्बन्धमें कोई बात न रहने पर भी
यज्ञानुष्ठानके बाद यक्षफल स्वर्ग आपे आप होता है, इस
कारण यह न्याय हुआ ।

३ वरुणका पाश । ४ अग्निविशेषः । (भारत ३।१२।१६)

५ दानविशेष । (भारत १२।२२७।५१) ६ सत्य-
जित्के पुत्र । (३।२०।१६) ७ विश्वजयी, विश्वजेता ।

८ सह्याद्रिपरिणत राजभेदः । (छान्द० ३।१।४६) ९
वह जिसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त का हो ।

विश्वजिन्व (सं० लि०) १ सर्वगामी, सर्वजेता ।
विश्वजीव (सं० लि०) १ सर्वान्तर्यामी । २ विश्वस्थित
जीवमात ।

विश्वजू (सं० लि०) विश्वके प्रेरयिता । (ऋक् ४।३।१५)
विश्वज्योतप (सं० पु०) गोल-प्रवर्त्तक ऋषिभेद ।

विश्वज्योतिस् (सं० लि०) १ जगज्ज्योतिः । २ पका-

भेद । (कल्पयन्तौ २२:२१८) ३ ऋषिभेद । ४ इष्टाभेद ।
(शतपथब्रा० ६।३।३।१६) ५ सामभेद ।

विश्वतनु (सं० पु०) विश्वं तनुयैस्य । भगवान् विष्णु,
यद् विश्व ही जिनका शरीर है ।

विश्वतश्चक्षुस् (सं० लि०) सर्वतोऽप्याप्तचक्षुः । जिसके
नेत्र चारों ओर परिव्याप्त हो अर्थात् जो सर्वद्रष्टा हो ।

(श्रुक् १०८:१३)

विश्वतस् (सं० अर्थ०) विश्व सप्तम्यर्थे तसिल् ।
१ सर्वतः, चारों ओर । २ सभी प्रकारका, तरह तरहका ।

“सर्वतो मयाच्च काक्षीयद्मनादिना रक्षिणः ।”

(लामो)

विश्वतस्पाणि (सं० लि०) परमेश्वर, सर्वत्र पाणिशुक्त,
चारों ओर जिसके हाथ हैं ।

विश्वतस्पाद् (सं० लि०) परमेश्वर, चारों ओर पाद-
शुक्त ।

विश्वतस्पृथ (सं० लि०) विश्वतस्पाद्, परमेश्वर ।
(मयव १३।६।२२)

विश्वतुर् (सं० लि०) सर्वशत्रुहिंसाकारी ।
(श्रुक् १।४८।१६)

विश्वतुरायह (सं० लि०) विश्वदुर् देखो ।

विश्वतुलसी (सं० स्त्री०) तुलसीशुभेद, वनतुलसी,
बहुई तुलसी । गुण—धीज शीतल ; काथ मेह, रक्षा-
तिमार और उदरामयनाशक ; पत्तेका रस कृमिघ्न और
सर्वरोगमो हितकर । (Ocimum sanctum) ।

विश्वतुप्त (सं० लि०) विश्वेन तुप्तः । विष्णु, परमेश्वर ।
विश्वतूर्ति (सं० स्त्री०) समस्त विषयगतपाप्य ।

(श्रुक् २।३।८)

विश्वतोधार (सं० लि०) विश्वतश्चतुर्दिक्षु धारा यस्य ।
चारों ओर धाराशुक्त, जगत्का धारयिता ।

विश्वतोषी (सं० लि०) समस्त जगत्का धारक ।

विश्वतोषाहु (सं० पु०) विश्वतोषाहुयैस्य । परमेश्वर, विष्णु ।

विश्वतोमुख (सं० पु०) विश्वतो मुखं यस्य । परमेश्वर ।

विश्वतोय (सं० लि०) विश्वव्याप्त जलराशि ।

विश्वतोया (सं० स्त्री०) विश्वमियः तोयो जलं यस्याः ।
गङ्गा, विश्वमियतोया । इसका जल विश्वके सभी
लोगोंका मिय है, इसीसे इसका विश्वतोया कहते हैं ।

विश्वतोवर्ष्वा (सं० लि०) १ सर्वकर्माक्षम, सभी विषयों-
में पारदर्शी । २ सभी कार्योंमें शक्तिसम्पन्न ।

विश्वत्र (सं० लि०) विश्व सप्तम्यर्थे त्र । सर्वात्र, समस्त
विश्वमें । (श्रुक् १०।६।१२५)

विश्वत्रार्चोस् (सं० पु०) सूर्यो ही मत्तश्चिमभेद ।

विश्वत्रया (सं० अर्थ०) विश्व प्रकारार्थे चाल् (प्रकारवचने
यात् । पा ५।३।२३) सर्वथा सब प्रकारसे, सभी तरहसे ।

विश्वटन्द्र (सं० पु०) अमृतभेद । (भाण शांतिपर्व)

विश्वदर्शत (सं० लि०) सर्वोके दर्शनीय । (श्रुक् १।२५।१८)

विश्वदानि (सं० पु०) जनसाधारणका व्यवहारोपयोगी
गृह वा स्थान । (तेत्ति० मा० ३।३।६।१०)

विश्वदानीम् (सं० अव्य०) विश्वकाल, सर्वदा, सब
समय ।

विश्वदाय (सं० लि०) सर्व दहनकारी, विश्वानि ।
(तेत्ति० सं० ३।३।८।२)

विश्वदायन् (सं० लि०) सर्वफलदाता ।
(अथर्व ४।३।२।६ भाष्य)

विश्वदाय्य (सं० लि०) विश्वदायसम्बन्धी, दायानि ।
(अथर्व ३।२।१।३ भाष्य)

विश्वदासा (सं० स्त्री०) अग्निकी सातों जिह्वाओंका एक
नाम ।

विश्वदृश (सं० लि०) विश्व इव दृश्यनेऽस्ती । विश्वद्रष्टा,
जो सारा संसार देखते हैं । (भागवत ४।२०।३२)

विश्वद्रष्ट (सं० लि०) जिन्होंने समस्त विश्वका दर्शन
किया है । (१।१६।१।५)

विश्वदेव (सं० पु०) विश्वेदीयतीति दिव-अच् । १ गण
देवताविशेष । नान्दीमुखश्राद्ध और पाठोणश्राद्धमें
इनकी पूजा करती होती है । (लि०) २ विश्वका
देवतास्वरूप महापुरुष ।

विश्वदेव—१ मधुसूदन सरस्वतीके परम गुरु । इनका
वनाया हुआ विश्वदेवदीक्षितोय नामक एक ग्रन्थ
मिलता है । २ चित्रपनगरके एक राजा ।

विद्यानगर देखो ।

विश्वदेवा (सं० स्त्री०) १ हृल्यगवेषुका, गोपयज्ञी ।
२ नागवला, गंगरन । ३ लाल दंडोत्पल । (रत्नमाला)

विश्वदेवता (सं० स्त्री०) विश्वदेवा । विश्वदेवा देखो ।

विश्वदेवनेत्र (सं० लि०) विश्वदेव जिनके नेता हैं ।

(शुक्लयजुः ६।३५ वेददीय)

विश्वदेवघत् (सं० लि०) विश्वदेवघ्न ।

(मयवर्ष १६।१८।२०)

विश्वदेवस्तुत् (सं० पु०) पकाहमेद ।

(भास्व० श्रौ० ६।८।७)

विश्वदेव्य (सं० लि०) १ सभी देवताओंको उपयुक्त क्रियाके साधु । (ऋक् १।१४।१) यह अग्निका विशेषण है ।

२ सभी देवताओंका समूह ।

(शुक्लयजुः १।१६)

विश्वदेव्यावत् (सं० लि०) समस्त देवतायुक्त, समस्त देवविशिष्ट, सभी देवताओंके साथ ।

विश्वदैव (सं० अच्य०) विश्वदेवाके सट्टण ।

विश्वदैव (सं० क्लो०) नक्षत्रभेद, उत्तराषाढा नक्षत्र ।

विश्वदेव इसलिये अधिष्ठातो देवता हैं इसीसे इस नक्षत्रका नाम विश्वदेव पड़ा है । (बृहत्सं० ७।२)

विश्वदैवत् (सं० क्लो०) विश्वदेवता अधिष्ठातो देवताऽस्य । उत्तराषाढानक्षत्र । (बृहत्सं० हिता ७।१।१)

विश्वदोहम् (सं० लि०) समस्त विश्वका दोहनकारी ।

(ऋक् ६।४८।१३)

विश्वद्रुच् (सं० लि०) विश्वक समस्तात् अञ्जात, गच्छति इति क्विप् । सर्वत्र गमनकर्ता, जो तमाम जानैमें समर्था हो ।

विश्वघ्न (सं० अच्य०) सर्वता, सर्वत्र, चार्गे और ।

(ऋक् १।६।१८)

विश्वधर (सं० पु०) विश्वधारणकारी, विष्णु ।

विश्वधरण (सं० क्लो०) समस्त जगत्को धारण ।

(राजतर० १।१३६)

विश्वधा (सं० लि०) विश्वधारणकारी, विष्णु ।

(शुक्लयजु० १।२)

विश्वधात् (सं० लि०) विश्वस्य धाता । विश्वधारणकारी, विष्णु ।

विश्वधाम् (सं० क्लो०) १ विश्वका आश्रमस्थान, ईश्वर ।

२ सभी लोगोंके रहनेका स्थान । ३ स्वदेश ।

(श्वेताश्वतर उप० ६।६)

विश्वधावत् (सं० लि०) समस्त जगत्का धारणकर्ता,

सारा संसार जो धारण करते हैं । (ऋक् १।७।३)

विश्वधार (सं० पु०) प्रियमत मेधातिथिके पुत्रभेद, शाकद्वीपके राजा मेधातिथिके पुत्रभेद ।

(मागवत १।२०।२५)

विश्वधारा—हिमवत्पादसे निकली हुई एक नदी ।

(हिम० ख० ४६।७६)

विश्वधारिणी (सं० स्त्री०) विश्व सर्व धरतीति घृणिनि-ङीप् । पृथिवी ।

विश्वधावीर्यं (सं० लि०) १ सर्वशक्तिशाली । २ जगद्धारणायोगी वीर्यशाली । (मयवर्ष ५।२।२३)

विश्वधृक् (सं० लि०) जगद्धारणकारी, विष्णु ।

विश्वधृत (सं० लि०) विश्व धरति, घृ-क्विप् तुक्च । विश्वधर्ता, विश्वधारणकारी ।

विश्वधेन (सं० लि०) विश्वमीणनकारी, विश्वको संतप करनेवाला । (ऋक् ४।१६।२)

विश्वधेनुः (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

विश्वधनूतैल—तैलीपधविशेष । (चिकित्साशास्त्र)

विश्वनर (सं० लि०) विश्वे सर्वे नरा यस्य । समस्त मनुष्य ही जिनका है । सङ्घाका बोध होनेसे 'विश्वानर' ऐसा पद होया । 'नरे संख्यायां' (भा ६।३।२६) इस सूत्रानुसार दीर्घ होता है ।

विश्वनाथ (सं० पु०) विश्वस्य नाथः । १ शिव, महादेव ।

२ काशीस्थित शिवालङ्ग । ३ साहित्यदर्पणक प्रणेता एक पण्डित । इनके पिताका नाम श्रीचन्द्रशेखर महाकविचन्द्र था ।

४ अणुपापरिच्छेद और उसकी टीका सिद्धान्तमुक्तावलीके प्रणेता एक पण्डित । ये विद्यानिवास महाचार्यके पुत्र थे ।

पञ्चानन इनकी उपाधि थी । विश्वनाथ कविराज और विश्वनाथ पञ्चानन शब्द देखो ।

विश्वनाथ—१ शास्त्रदीविकाके प्रणेता प्रभाकरके मुकु । २ उपदेशसारके रचयिता । ३ कोमलाटीकाके प्रणेता ।

४ जातिविवेकके प्रणेता । ५ दुष्टिप्रतापके रचयिता । इन्होंने अपने प्रतिपालक दुष्टिप्रहाराजके आदेशसे उक्त ग्रन्थकी रचना की थी ।

६ तत्त्वचिन्तामणि-शब्दखण्ड टीकाके रचयिता । ७ तर्कसंग्रहटीकाके प्रणेता । ८ दुर्वोचप्रसिद्धि नाम्नी मेघदूतटीका और राघवपाण्ड्यावटीकाके कर्ता । ९ प्रेमरसायनके प्रणेता । १० मुक्ति

यादृतीका और ऋग्यजुर्वेदिकाका रचयिता । ११ काष्ठादर्शकी रसिकरञ्जिनी नाम्नी टीकाके प्रणयनकर्ता । १२ रुद्रपद्धतिके रचयिता । १३ यादमीकित्तात्पर्यतरणि-नाम्नी रामायणःटीकाकार । १४ विदोपदिर्णयके प्रणेता । १५ ध्रौतप्रयोगके प्रणेता । १६ सङ्कोतरघु-नन्दनके रचयिता । १७ सारस'ग्रह नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता । १८ व्रतप्रकाश या व्रतराज नामक ग्रन्थके प्रणेता । इन्होंने १७३६ ई०को काशीमें बैठ कर उक्त ग्रन्थ समाप्त किया । इनके पिताका नाम था गोपाल । ये सङ्ग-मेश्वर नामसे भी परिचित थे । १९ अन्वयेष्टिपद्धति, अन्वयेष्टिप्रयोग, अशौचलि'शच्छ'लोकीटीका, औदुर्घर्णा-देहिक कल्पवल्ली, औदुर्घर्णादेहिकपद्धति और क्रियापद्धति-ग्रन्थके रचयिता । २० वृत्तकीर्तुकके प्रणेता, चतुर्भुजके पुत्र । २१ कोपकहतक नामक अभिधान और जगत् प्रकाशकाव्य तथा शत्रुशाल्यचरितकाव्यके प्रणेता । श्रीमन्महाराजाधिराज जल शल्यकी जीवनी पर २२ सर्ग-में शोथक ग्रंथ तथा मेदिनीकोपके आधार पर इन्होंने कोपकहतककी रचना की । ये नारायणके पुत्र थे । २२ एक प्रसिद्ध पाण्डित, पुढ्योत्तमके पुत्र । इन्होंने १५४४ ई०में विश्वप्रकाशपद्धति प्रणयन की थी । २३ पट्ट-चक्रविश्विनीटीका नामक एक नात्रिक ग्रन्थके प्रणेता । २४ अमृतलहरीकाव्यके रचयिता, कुण्डलजाकर और उसकी टीकाके प्रणेता ।

विश्वनाथ भाचार्य—काशोमोक्षनिर्णयके प्रणेता । विश्वनाथ उपाध्याय—दत्तकनिर्णयके रचयिता । विश्वनाथ कवि—प्रमानाम्नी वृत्तरत्नाकरटीकाके प्रणेता । विश्वनाथ कविराज—एक अद्वितीय मालङ्कारिक । बंगालके पण्डितोंका विश्वास है, कि विश्वनाथ बङ्गाली तथा वैद्यवंशोद्भव थे, किन्तु यथार्थमें ये इस देशके नहीं थे । ये उत्कलवासी और उत्कलध्रेणोके प्राहाण थे । १३वीं सदीमें, उत्कलके सुप्रसिद्ध गङ्गवंशीय राजा भातु-देवका समामें ये तथा इनके पिता चन्द्रशेखर विद्यमान थे । उत्कल राजसमामें असाधारण कवित्वशक्तिके प्रभावसे इन्होंने 'कविराज' की उपाधि पाई थी । आप कुलवार्धचरित, चन्द्रकला, प्रभावतो-परिणय, प्रगस्ति-रत्नावली, राधवविलास और साहित्यवर्षण आदि ग्रन्थ लिख गये हैं । परमायत्नीमें इनका उल्लेख है ।

विश्वनाथ चक्रवर्ती—उज्ज्वलनीलमणिकिरण, गौराङ्ग-भमणीहादशक, भक्तिरत्नामृतविन्दु, भागवतपुराण टीका राधाभाष्यवक्रचिन्तामणि, साधवसाधनकीमुद्दी, स्मरण-कममाला, 'सूतटीका' आदिके रचयिता । कोङ्कलके श्रीवर्द्धन नामक स्थानमें इनका एक मठ विद्यमान है । विश्वनाथ चित्तपावन—व्रतराज नामक ग्रन्थके प्रणेता । ये १७३६ ई०में विद्यमान थे । इनके पिताका नाम गोपाल था । विश्वनाथ चौबे—भागवतपुराणसारार्थदिग्गिनीके प्रणेता । विश्वनाथ तीर्थ—सिद्धान्तदेशसंग्रहव्याख्याके कर्ता । विश्वनाथ दीक्षित जङ्घे—प्रतिष्ठादर्श नामक दार्शनिक प्रणेता । विश्वनाथ देव—१ मृगाङ्गुलेखनाटकके प्रणेता । २ कुण्ड-मण्डपकीमुद्दी, कुण्डविधान गोरप्रवरनिर्णय आदि ग्रन्थों-के रचयिता । विश्वनाथ देवचन्द्र—एक विद्यवान् उद्योतिर्दिग्द, दिवाकर देवहके पञ्चम पुत्र । आप १६१२-१६३२ ई० के मध्य इष्टाधन, केशवजातकपद्धतयुदाहरण, केशवो-ल्लघ्वी-टीका, प्रहकीसहलोदाहरण, प्रहलाधवविवरण, प्रहलाध-घोदाहरण, चन्द्रमानतखेटीका, ताजिकपद्धतिटीका, तिथि-चिन्तामणि-उदाहरण, नीलकण्ठीटीका, पातसारणी टीका, वृहज्जातकटीका, वृहत्संहिताटीका, ध्रुवतुल्यसिद्धान्तटीका, ग्रहतुल्योदाहरण, करणकुतूहल, मिताङ्ग, सुहर्षमणि, रामविमोदोदाहरण, वर्षातन्त्रप्रकाशिका, वर्षापद्धतिटीका, वसिष्ठसंहिताटीका, विष्णु करणोदाहरण, श्रीपटयुदाहरण, पौडुशयोभाष्याय, संज्ञातन्त्रप्रकाशिका, सिद्धान्तशिरो-मणि उदाहरण गहनार्थप्रकाशिकानाम्नी सूर्यसिद्धान्त-टीका, सूर्यसिद्धान्तोदाहरण, भोमसिद्धान्तटीका, होरा-मकरन्दोदाहरण आदि लिख गये हैं । विश्वनाथ नगरी (सं० खी०) विश्वनाथस्य नगरी, विश्व-नाथकी पुरी, काशी । विश्वनाथ महादेवने इस पुरीका निर्माण किया, इसीसे इसकी विश्वनाथनगरी कहने हैं । काशी या बाराणसी देखो । विश्वनाथ नारायण—शिवस्तुतिटीकाके प्रणेता । विश्वनाथ न्यायालङ्कार—धातुचिन्तामणिके प्रणेता । विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य—बङ्गालके एक अद्वितीय

नैयायिक। ये १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें विद्यमान थे। इन्होंने छन्दोसूत्रकी पिङ्गलप्रकाशिका नाम्नी टीकामें

“विद्यानिवाससूनुः कृतिरेषा विश्वनाथस्य”

अर्थात् विद्यानिवासका पुत्र कह कर अपना परिचय दिया है। राष्ट्रीयब्राह्मणकुलप्रमथसे जाना जाता है, कि सुप्रसिद्ध आश्वलायनसंघर्षमें विश्वनाथका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम काशीनाथ विद्यानिवास तथा पितामहका नाम रत्नाकर विद्यावाचस्पति था। ये विद्यावाचस्पति सुविख्यात वासुदेव सारंगभौमके छोटे भाई थे। रुद्रवाचस्पति और नारायण नामक विश्वनाथके दो बड़े सहोदरका नाम मिलता है। भाषापरिच्छेदका कारिकावली तथा न्यायसिद्धांतमुक्तावली नामकी टीका, न्यायतत्त्वबोधिनी वा न्यायबोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वावलोक, पिङ्गलमतप्रकाश, सुवर्णतत्त्वावलोक, तर्कभाषा आदि ग्रन्थ इनके बनाये मिलते हैं। ‘न्याय-शब्द’ में इनके अन्यान्य ग्रन्थोंका परिचय दिया गया है। न्याय शब्द देखो।

विश्वनाथ पण्डित—धीरसिंहोदयजातकके रचयिता।

विश्वनाथ वाजपेयी—नुरगसिद्धिके प्रणेता।

विश्वनाथभट्ट—१ गणेशहृत तत्त्वप्रबोधिनीकी न्याय-विलासनाम्नी टीकाके प्रणेता। २ शृङ्गारवापिका नाम्नी नाटिकाके रचयिता। ३ औदुर्ध्वदेहि काकिया वा श्राद्ध-पदातिके प्रणेता। ४ श्रौतप्रायश्चित्तचन्द्रिकाके रचयिता। ५ तर्कतरङ्गिणीनाम्नी तर्कामृतटीकाके प्रणेता।

विश्वनाथ मिश्र—मेघदूतार्थमुक्तावलीके प्रणेता।

विश्वनाथ रामानुजदास—रहस्यत्रयविधिके रचयिता।

विश्वनाथ सिंहदेव—रामगीताटीका, रामचन्द्राह्निक और उसकी टीका, राममन्त्रार्थनिर्णय, वेदागतसूत्रभाष्य, सर्व-सिद्धान्त आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। आप प्रियदासके शिष्य और राजा श्रीसोतारामचन्द्र बहादुरके मन्त्री थे। कोई कोई ग्रन्थकारकी राजकुमार कहते हैं।

विश्वनाथ सूरि—आर्य्यविज्ञप्तिका रामार्थविज्ञप्ति काव्यके प्रणेता।

विश्वनाथसेन—पद्यपद्यविनिश्चय नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने महाराज प्रतापहर राजपतिके राजवैद्य-

रूपमें नियुक्त रह कर उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम नरसिंह सेन और पितामहका नाम सपन था।

विश्वनाथाश्रम—तर्कदीपिकाके प्रणेता, महादेवाश्रमके शिष्य।

विश्वनाथोन् (सं० त्रि०) विश्वनाथसम्बन्धीय, विश्वनाथ प्रोक्त या तल्लिखित।

विश्वनाथ (सं० पु०) विश्वं नामी यस्य। विष्णु, परमेश्वर।

विश्वनाथि (सं० स्त्री०) विश्वस्य नाथि। विश्वका नाथिस्वरूप, सूर्यादिका आश्रयभूत, विष्णुका चक्र। इसी चक्रका आश्रय कर सूर्यादि ग्रह अवस्थित हैं।

(भागवत २।१।५)

विश्वनाथम् (सं० पु०) १ ईश्वर। २ जगत्, संसार।

विश्वन्तर (सं० पु०) १ बुद्ध। २ सौषुम्नका गौतम राजपुत्रमेव। (शिवेयब्रा० ७।२७)

विश्वपक्ष (सं० पु०) तान्त्रिक आचार्यमेव।

(शक्तिरत्नाकर०)

विश्वपति (सं० पु०) विश्वस्य पतिः। विश्वका पति, विश्वपालक, महापुरुष, कृष्ण।

विश्वपति—१ वेदाङ्गतीर्थरत माधवविजयटीकाकी पदार्थ-दीपिका नाम्नी टीकाकार। २ प्रयोगशिक्षामणिके प्रणेता। इनके पिताका नाम केशव था।

विश्वपद्म (सं० लि०) विश्वपाता, जगदीश्वर।

(हरिवंश २५६ म०)

विश्वपर्णी (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भूईआँवला।

(राजनि०)

विश्वपा (सं० पु०) विश्वं पातीति पा-विच्। विश्वपालक, परमेश्वर।

विश्वपात्रक (सं० पु०) विश्वं पात्रयति पत्र-णिच्-ण्युल।—मगवान् विष्णु, परमेश्वर।

(मार्क० पु० ६।१।६)

विश्वपाणि (सं० पु०) ध्यानितोषिसत्त्वमेव।

विश्वपात्र (सं० त्रि०) विश्वस्य पाता। १ विश्वके पालनकर्ता, परमेश्वर। (पु०) २ विसृगममेव। वर,

घरेण्य, घरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता नीर धाता
वित्तपुष्टकं यद्दी ७ गण है ।

विश्वपादु (सं० लि०) विश्वपद् देवो ।

विश्वपादगिरोमीव (सं० लि०) विश्वमेव पादगिरोमीवा
यस्य । भगवान् विष्णु, परमेश्वर । (भा० पु० ४२।२)

विश्वपाल (सं० पु०) विश्वपालपति विश्व-पा-जिच्-
अच् । विश्वपालक, विश्वका पालन करनेवाला ।

विश्वपालक—सहाद्विघर्णित एक राजा । (अ० ३३।६)

विश्वपायन—सहाद्विघर्णित राजभेद । (अ० ३३।१५)

विश्वपायन (सं० लि०) विश्वं पाययतीति विश्व-पा-जिच्-
स्यु । १ विश्वको पयित करनेवाला । (भागवत ८।२०।१८)

(स्त्री) २ तुलसी ।

विश्वपिण्ड (सं० लि०) व्याप्तशक्ति, व्याप्त भाषणं प्रकाश-
मान, जिमकी शक्ति फैल गई हो । (अ० ७।५।७३)

विश्वपुष्प (सं० लि०) विश्वं पुष्पातीति विश्व पुष्प किप् ।
विश्वपोषक, संसारका पालन करनेवाला ।

विश्वपूजित (सं० लि०) विश्वैः सर्वैः पूजितः । सर्व-
पूजित, जगत् पूजित ।

विश्वपूजिता (सं० स्त्री०) तुलसी ।

विश्वपेगस् (सं० लि०) बहुविध रूपयुक्त, बहुरूपा ।
(अ० १।४८।१६)

विश्वप्रकाशक (सं० पु०) १ सूर्य । २ आलोक ।

विश्वप्रकाशिन (सं० लि०) विश्वं प्रकाशयतीति प्रकाश-
जनि । विश्वप्रकाशक, विश्वप्रकाशकारी ।

विश्वप्रबोध (सं० पु०) भगवान् विष्णु ।
(भागवत ४।२४।३५)

विश्वमी (सं० लि०) छेदनीयत, काटनेके लिये तथ्यार ।
(वैजयन्ती ३।११।६।६)

विश्वगन्ध (सं० पु०) विश्वं पसातीति-पसा भक्षणे
(एव उक्त्वा पूर्य प्सीहिति । उ० १।४।५८) इति कानन्
प्रत्ययेन साधु । १ अग्नि । २ चन्द्रमा । ३ देवता ।

४ विश्वकर्मा । ५ सूर्य । (शब्दरत्ना०)

विश्वपसा (सं० स्त्री०) अग्नि ।

विश्वपु (सं० लि०) बहुविध रूप, अनेक प्रकारकी
शक्त ।

विश्वपस्य (सं० लि०) प्रदरूप धन । (अ० ७।४२।६)

विश्वपु (सं० पु०) विश्वस्य वपुः । विश्वका वपुः,
महादेव, शिव ।

विश्वपादु (सं० पु०) १ विष्णु । २ महादेव ।

विश्वबीज (सं० स्त्री०) विश्वस्य बीजम् । विश्वका
बीजस्वरूप, विश्वका आदिकारण, मूलमूर्ति, माया ।

विश्वबोध (सं० पु०) विश्वस्य बोधो यस्य । युद्ध ।
(शिका०)

विश्वमद्र (सं० पु०) सर्वनामद्र ।

विश्वभरस (सं० लि०) विश्वपोषक, विश्वका पालन
करनेवाला । (अ० ४।१।१६)

विश्वभर्त्सु (सं० पु०) विदयस्य भर्त्सा । विश्वका भरण-
कारी, विश्वपालक ।

विश्वभय (सं० लि०) विश्वस्य भय उत्पाद्यत्वात् ।
जिससे विश्वकी उत्पत्ति हुई हो, ब्रह्मा ।

विश्वमानु (सं० लि०) सर्वताडवाततेजस्क, चारों ओर
जिसका तेज फैला हुआ हो । (अ० ४।१।३)

विश्वभाय (सं० लि०) विश्वभावन, परमेश्वर ।
(भागवत १०।११।१०)

विश्वभावन (सं० पु०) परमेश्वर ।

विश्वभुज (सं० लि०) विश्वं भुजति भुज-किप् । १ विश्व-
भोगकारी । (पु०) २ महापुरुष । ३ इन्द्र ।

विश्वभुजा (सं० पु०) देवीभेद । (कन्दपु०)

विश्वभू (सं० पु०) बुद्धभेद । (हेम)

विश्वभूत (सं० लि०) परमेश्वर । (शिव'श २५६ म०)

विश्वभूत् (सं० लि०) विश्वं विभर्त्सि विश्व-भू-किप् ।
अणप्रदान द्वारा पालनकर्ता ।

विश्वभेयज (सं० स्त्री०) विश्वेषां भेयजम् । शुण्ठी,
सोंठ ।

विश्वभेयजो (सं० स्त्री०) समस्त औषधयुक्त ।
(अ० १।२।२०)

विश्वभोजस (सं० पु०) विश्वभुज असि । १ सर्वभुज,
अग्नि । (लि०) २ विश्वरक्षक । (अ० ५।४।१४)

विश्वभद्रा (सं० स्त्री०) अग्निजिह्वा, अग्निकी सात
जिह्वाओंमेंसे एक जिह्वाका नाम ।

विश्वमनस् (सं० लि०) विश्वं व्याप्तं मनो यस्य ।

१. व्याप्तमनाः, अत्यन्त मनस्वी । २. सभी चराचर पदार्थों में एकप्रमनाः ।

विश्वमनुस्, (सं० पु०) सभी मनुष्य (ऋक् ६।४६।१७) विश्वमय (सं० त्रि०) विश्व स्वरूपाथं मयटः विश्व स्वरूप, सर्वांमय, सर्वस्वरूप ।

विश्वमल्ल—चघेला वंशीय एक राजपूत सरदार, वीर धवल-के पुत्र ।

विश्वमहस् (सं० त्रि०) विश्वं व्याप्तः महस्तेजो यस्य । व्याप्ततेजस्क, जिसका तेज चारों ओर फैला हो ।

(ऋक् १०।६३।२)

विश्वमहेश्वर (सं० पु०) शिव, महादेव ।

विश्वमातृ (सं० स्त्री०) विश्वस्य माता । विश्वकी माता, विश्वजननी, दुर्गा ।

विश्वमानुष (सं० पु०) विश्वं सर्वाः मानुषाः । सभी मनुष्य । (ऋक् ८।४६।४२)

विश्वमित्र (भं० पु०) मानवक । (पा ६।३।३०)

विश्वमिन्द्र (सं० त्रि०) विश्वव्यापक । (ऋक् १।६१।४)

विश्वमुखी (सं० स्त्री०) दाक्षायणी ।

विश्वमूर्त्ति (सं० पु०) विश्वमेव मूर्त्तिर्नास्य । विश्व-रूप, भगवान् विष्णु ।

विश्वमेजय (सं० पु०) विश्वके सभी शत्रु भोजे, कम्प-यिता । (ऋक् १।३।५२)

विश्वमोहन (सं० त्रि०) विश्वं मोहयतीति विश्व-मुह-णिच्-न्तु । विश्वमोहनकारी, विष्णु ।

विश्वम्बर (सं० पु०) विश्वं विभर्त्सति भू (संशयं भूद-श्नोति । पा ३।२।४६) इति मुमु, (अर्द्धिपदिति । पा ६।४।६७) इति मुमु । विष्णु, परमेश्वर । विष्णु-समस्त विश्वका भरण करते हैं, इसीसे वे विश्वम्बर कहलाते हैं ।

विश्वम्बर—१ राजभेद । (ऐतरेयब्रा० ७।२६) २ आनन्त-लहरीटाकाके प्रणेता ।

३ गयङ्गपुराणवर्णित वैश्वभेद । वैश्वद्विजके प्रति इनकी बड़ी भक्ति रहती थी । एक दिन यमदण्डके भयसे ये अपना स्त्री सत्यमेधाको ले कर तोषायात्राको निकले । राहमें लोमश ऋषिसे इनकी भेंट हो गई । लोमशने इनसे कहा, 'तुम जितने पुण्यकर्म कर चुके हो, वे सभी एकः श्वोत्सर्गके बिना निष्कल हैं । अतएव

तुम पुष्करतीर्थमें जा कर श्वोत्सर्ग करके अपने घर लौटो । इससे तुम्हारे सभी दुष्कृत नष्ट होंगे और महापुण्यका उदय होगा ।' तदनुसार विश्वम्बरने कारीरक मासमें पुष्कर जा कर लोमशवर्णित विधिवत् यज्ञ समाप्त किया । इसके बाद इन्होंने लोमशके साथ नाना तीर्थोंमें परिभ्रमण किया और अश्वि-पुण्य सञ्चय कर सुघसे जोयन विताया था । इस पुण्यके फलसे दूसरे जन्ममें इनका घोरसेन राजकुलमें जन्म हुआ और वे घोरपञ्चा-मन नामसे प्रसिद्ध हुए । (गण्ड उतर० ७।४८-२२५) विश्वम्बरक (सं० पु०) विश्वम्बर स्वार्थे कन् । विश्वम्बर । विश्वम्बरपुर—भोजराजका एक नगर ।

(भविष्यब्र० ख० २।०।८६)

विश्वम्बर मैथिलोपाध्याय—एक कवि । कधीन्द्र चन्द्री-यमें इनके रचित श्लोकादिका परिचय है ।

विश्वम्बरा (सं० स्त्री०) विश्वम्बर-टाप । पृथिवी, विश्वम्बरणके कारण पृथिवीका नाम विश्वम्बरा हुआ है ।

विश्वम्बराभुज (सं० पु०) विश्वम्बरां पृथिवीं भुजति भुज-किप् । पृथिवीभोगकारी, पृथिवीपति, राजा ।

(राजतरङ्गिणी ८।२।६२)

विश्वम्बरेश्वर—हिमालयस्थ शिवलिङ्गभेद ।

(हिमवत् ८।१०६)

विश्वम्बरोपनिषद्—उपनिषद्भेद ।

विश्वयशस् (सं० पु०) श्रुपिभेद । (पा ६।२।१०६)

विश्वयु (सं० पु०) वायु । (शब्दार्थ०)

विश्वयोनि (सं० पु० स्त्री०) विश्वस्य योनि । १ विश्वकी योनि-अर्थात् कारण, वह जिससे समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है । २. प्रज्ञा ।

विश्वरघ (सं० पु०) १ गांधिराजके पुत्रभेद । (हरिवंश) २ सहायद्विवर्णित एक राजा ।

विश्वरद (सं० पु०) मग वा भोजक ब्राह्मणोंका एक वैद-शास्त्र । इसे वैश्वे लोग अपना वैद मानते थे । यह भारतीय आर्योंके वैदोंका विराधी था (Visperad) । विश्वराज (सं० पु०) सर्वाधिपति । विश्वराज देखो । विश्वराघस् (सं० त्रि०) १ सर्वैश्वर्यसम्पन्न, प्रभूत धनशाली । (अथर्व ७।१।७।३. रायण)

विश्वरुचि (सं० पु०) १ देवयोनिमेद । (भारत द्रोणपर्व,)
२ दानवमेद । (कथासरित् ०)
विश्वरुचो (सं० स्त्री०) १ अग्निकी मात जिह्वाओंमेंसे
एक जिह्वाका नाम । (मुण्डकोपनि० १।२।४) (पु०)
२ महाभारतके अनुसार एक प्रकारकी देवयोनि । ३ एक
दानवका नाम ।

विश्वरूप (सं० स्त्री०) १ बहुविधरूप, नाना रूप । (शुक्ल-
यजुः १६।२५) राजा कार्गसिद्धिके लिये नाना प्रकारके
रूप स्वीकार करते हैं । विश्वमेधरूपं यस्य । २ विष्णु ।
(हेम) ३ महादेव । (भारत ७।२००।१२५) ४ त्वष्टृपुत्र ।
(विष्णु १।११।१२२) ५ भगवान् श्रीकृष्णका यह स्वरूप
जो उन्होंने गोताका उद्देश करने समय अर्जुनको
दिल्लाया था । श्रीमद्भगवद्गोताके अन्तर्गत अष्टाध्यायमें
यह इस प्रकार वर्णित है—

“मनेकबाहूदरधकृनेत्रं पर्यामि त्वां समतोऽन्वत्सर्पं ।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पर्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपं ॥

क्रिरीटिनं गदिनं चक्रिनम्ब तैजोराशि सर्गतोदीतिमश्रुं ।

पर्यामि त्वां दुर्निरीकं समन्तात् दीतानलकौशु तिमप्रमेयम् ॥”

(गीता ११ अ०)

अर्जुनने भगवान्की यह अष्टाध्याय पूर्व देख कर मय-
व्याकुल चित्तसे कहा था, ‘भगवन् ! मैं आपका विश्व-
रूप देख कर डर गया हूँ । आगे जाय अपना पूर्ण देवकी
दिखाइये और प्रसन्न होइये ।

“अष्टाध्यायं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रणल्पितं मनो मे ।

तदेव मे दर्शय देवरूपम् असीद देवेश जगन्निवास ॥”

(गीता ११।४५)

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको दिल्लाया था, कि
इस विश्वके चन्द्र, सूर्य, प्रह, नक्षत्र आदि उद्योतिष्क-
रण तथा प्रल्लादि देवगण जो कुछ देखनेमें आते हैं, वे
सभी मेरे स्वरूप हैं ।

६ असुरमेद । (भारत समापर्व) ७ सर्वात्मक ।

(शृक् १०।१०।०४)

विश्वरूप—१ एक मित्ररूप । ये जगन्माथ मिश्रके पुत्र
और महाप्रभु श्रीचैतन्यके अग्रज थे । चैतन्यचन्द्र शब्द देखो ।
२ एक आधिपानिक । महाेश्वर और मेदिनीकरने इनका
उल्लेख किया है । ३ एक व्यवस्थातत्त्वज्ञ । हेमाद्रिकृत

परिशेषलएडमें इनका परिचय है । बहुनेरे अनुमान करते
हैं, कि इन्होंने ही याज्ञवल्क्यस्मृतिकी टीका लिखी थी ।
विश्वनेश्वरने उस टीकाका बचन उद्धृत किया है ।

विश्वरूप आचार्य—शङ्कराचार्यके एक गिष्य । इनका पूर्ण
नाम था सर्वेश्वर ।

विश्वरूपक (सं० स्त्री०) १ कृष्णागुद, काठा अणर ।
२ राजाजन्मश, खिरनीका पेड़ ।

विश्वरूप केशव—आगमतस्वसारसंग्रह नामक तन्त्रग्रन्थके
रचयिता । तुङ्गभद्रा नदीके किनारे इनका वास था ।
कोई कोई इन्हें केशवविश्वरूप नामसे पुकारते हैं ।

विश्वरूप गणक—गणेशकृतचातुर्व्यन्त्रकी टीका, निस्-
प्रार्थद्वीती नाम्नी लीलावतीटीका, सिद्धान्तशिरोमणि
मरीचि, मिञ्जातसार्वांगीम आदि ग्रन्थोंके प्रणेता । ये
रङ्गनाथके पुत्र और बललाल देवसकें पीत थे । मुनीश्वर
उपाधिने ये सर्वत्र परिचित थे ।

विश्वरूपतीर्थ—इडनरचकीमुदीके प्रणेता, सुन्दरदेवके गुण ।

विश्वरूपतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थमेद ।

विश्वरूपदेव—विक्रमासर्जद नामक उद्योतिप्रथके प्रणेता,
ज्ञातगुणाचार्यके पुत्र ।

विश्वरूपभारतीव्यामी—एक प्रसिद्ध योगी ।

विश्वरूपवत् (सं० लि०) विश्वरूप अस्त्वर्थे मत्तुपमस्य
व । विश्वरूपयुक्त, विश्वरूपविगिष्ट, विष्णु ।

(रामायण ७।२३।१)

विश्वरूपि (सं० लि०) विश्वरूप अस्त्वर्थे इति । विश्वरूप-
विगिष्ट, भगवान् विष्णु ।

विश्वरेतस् (सं० पु०) विगे रेतः शक्त्यर्थेय । १ प्रल्ला ।
(हेम) २ विष्णु ।

विश्वरोचक (सं० पु०) विश्वयान् रोचयतीति रुच ल्यु ।
१ नाडोच शाक, नारीच नामकी साग । २ कचूर या
पेचुक नामक साग ।

विश्वलोचन (सं० स्त्री०) विश्वस्य लोचनं । १ विश्व-
चक्षु, विश्वप्रकाश । (पु०) २ सूर्य और चन्द्रमा ।

विश्वलीप (सं० पु०) शृङ्गिमेद । (तैत्तिरीयसं ३।३।८।२)

विश्वनि (सं० लि०) सर्वांगीष्टपूरक (काम) । तैत्ति-
रीयसं २।४।१।२)

विश्वान् (सं० लि०) १ विश्वयुज्य । २ विष्णु है
जिसम ।

विश्वयस (स० पु०) ऋषिमेद । (वैश्वीर्य ६।१।१५)
विश्वयसम्—कुमारगुप्तके अधीन मालवके एक सामन्त ।
४८० ई०की गान्धारराज्यमें उत्कीर्ण इनकी गिलालिय
मिलती है ।

विश्ववर्णा (स० स्त्री०) भूम्यामलकी । भुर्रांवाला ।
विश्ववलिन (स० लि०) सब प्रकारके विषय जाननेमें
समर्था ।

विश्ववद् (स० लि०) १ विश्ववहनकारी । परमेश्वर ।
विश्ववाच (स० स्त्री०) ईश्वर । (हरिवंश २६६ अ०)
विश्ववाजिन् (स० पु०) यज्ञाश्व, यज्ञका घोड़ा ।
(हरिवंश १६४ अ०)

विश्ववार (स० लि०) १ विश्ववारक, स०सारनिवर्त्तक ।
२ सभी व्यक्तियोंका पूजनोप । (शुक १।४।१३) स्त्रियां
टाप् । (पु०) ३ यज्ञोपसोमका स०स्कारविशेष ।
(शुक्लयजुः ७।१४ वेददीप)

विश्ववारा (स० स्त्री०) अतिगोत्रकी स्त्री । ये ऋग्वेदके
५म मण्डल-२८ वे सूक्तकी १मसे ६१ ऋक्की ऋषि थीं ।
इन ऋक्कीमें इनका विषय यों लिखा है,—

“अग्निं प्रज्वलितं हो कर आकाशमें दीप्ति फैलानी है
और ऊपके सामने विस्तृतभावमें प्रदीप्त होती है, विश्व-
वारा पूर्वाभिमुख हो कर देवताओंका स्तव करतीं और
हृष्यपाल ले कर (अग्निकी ओर) जाती है । हे
अग्नि ! तुम सभमकरूपसे प्रज्वलित हो कर
अमृतके ऊपर आधिपत्य करो, तुम हृष्यदाताका
कल्याण करनेके लिये उनके समीप उपस्थित रहो ; तुम
यजमानके पास वर्धमान हो, उन्हें प्रचुर धनलाभ
हो और तुम्हारे सामने वे अतिथियोग्य हव्य प्रदान
करें । हे अग्नि ! हम लोगोंके विपुत्र पेश्वरोंके लिये
शत्रुओंका दमन करो । तुम्हारी दीप्ति उत्कर्ष लाभ करे,
तुम दास्यपत्य सम्बन्ध सुश्रुद्धालावद्ध करो और शत्रुओंके
परक्रमकों खर्च कर डालो ।”

विश्ववार्द (स० लि०) विश्वकार । (शुक ८।१६।११)
विश्ववास (स० पु०) १ सर्वात्मकी आवासभूमि ।
२ जगत्, स०सार ।

विश्ववाहु (स० पु०) १ महादेव । (भा० १।३।१७।५८)
२ विष्णु । (भा० १।३।१४।५७)

विश्वविषयात् (स० लि०) जगद्विषयात्, सर्वात् प्रसिद्ध ।
विश्वविजयो (स० लि०) सर्वत्र जयशाली ।
विश्वविदु (स० लि०) १ सर्वज्ञता लाभ करनेमें समर्था ।
(शुक १।१६।१० सायण) २ सर्वज्ञ । ३ सर्वविषयके
ज्ञापक, जो विश्वकी सब बातें जानता हो, बहुत बड़ा
पण्डित । (शुक ६।७०।६ सायण) ४ ईश्वर ।

विश्वविद्यालय—जिस विद्यालयमें बहुत दूरसे छात्र आ
कर ऊँची श्रेणीकी विद्याशिक्षा प्राप्त करते हैं, उसीको
विश्वविद्यालय कहते हैं । यह “विश्वविद्यालय” शब्द इस
समयकी रचना है । सच पूछिये, तो यह अंगरेजी Uni-
versity-का ठोक अनुवाद है । क्योंकि १०६० वर्ष
पहले भारतवर्षमें यह शब्द प्रचलित नहीं था । बहुत
दिनोंसे भारतवर्षमें “परिषद्” (Council of education)
नामक एक स्वतन्त्र पदार्थ था, उससे ही वर्तमान विश्व-
विद्यालयका कार्य परिचालित होता था । उपनिषद्में
हम ऐसे परिषदोंका उल्लेख देखते हैं । भारतवर्षके
अन्तर्गत काश्मीर देशमें सर्वप्रथम परिषद् या वेदाध्या-
पनाकी ऊँची सभा प्रतिष्ठित हुई थी । शाङ्खायन-
ब्राह्मणमें इसका आभास इस तरह पाया जाता है,—

“पठ्यास्वस्तिवदोचो” दिशं प्राजानात् । वाग्वै पठ्या-
स्वस्तिः । तस्मादुदीच्यो दिशि प्रहाततरा वागुच्यते ।
उद्धे उ एव यान्तिवाचं शिक्षितुं । यो वा तत्
आगच्छति तस्य वा शुश्रुच्यते इति स्माह । पया हि
वाचो दिक्प्रहाता ।” (शाङ्ख ४।० ७, ६)

भाष्यकार विनायक मन्त्रने लिखा है—“प्रहाततरा वा-
गुच्यते काश्मीर सरस्वती कोर्यते । वदरिकाश्रमे वेद-
घोषां श्रूयते । वाचं शिक्षितुं सरस्वती प्रासादाधामुद्धे ।”

सुतरां भाष्यानुसार उक्त ब्राह्मणांशका इस तरह अनु-
वाद किया जा सकता है—“पठ्यास्वस्ति उत्तर दिशा
अर्थात् काश्मीर देश जाना जाता है । पठ्यास्वस्ति ही
वाक् अर्थात् सरस्वती है । काश्मीर ही सारस्वत स्थान
कहा जाता है । लगभग इसीलिये काश्मीरमें विद्या-
शिक्षा करने जाते हैं । प्रवाद है, कि जो लोग उस
दिशासे आते हैं, सभी “ये कहते हैं”, यह कह कर उनके
(उपदेश) सुननेकी इच्छा करते हैं । क्योंकि वहाँ ही
विद्याका स्थान है, ऐसा प्रसिद्ध है ।

इस समय जिस तरह आक्सफोर्ड, लिप्सिक आदि यूरोपीय विश्वविद्यालयोंसे उत्तीर्ण छात्र या अध्यापकोंकी बात यूरोपीय मात्र हो आदर और यत्नके साथ सुनते हैं, आज भी काशी या नवद्वीप (नदिया)-से शिक्षित और उच्च उपाधिप्राप्त पण्डितमण्डलों भारतमें सर्वाङ्ग जिस तरह आदर पाती हैं, बौद्धप्राधान्यकालमें जिस तरह नालन्दाको परिपक्वसे उत्तीर्ण और सम्मान प्राप्त आचार्यगण बौद्धजगत्के सब स्थानोंमें सम्मानलाभ करते और उनके उपदेश वेदधाष्ययन्त्र बौद्धसमाज आग्रहके साथ सुनता था, वैदिक समयमें अर्थात् ४५५ हजार वर्ष पहले भारतवासियों उसी तरह काश्मीरके आचार्योंकी बात मानते थे। इसीलिये मालूम होता है, कि काश्मीर विद्याका आदिस्थान या उसका नाम इसीलिये शारदा-पीठ है।

इस समय जिस तरह उच्च शिक्षाके लिये विभिन्न शहरों या राजधानियोंमें विश्वविद्यालयोंकी प्रतिष्ठा देखी जाती है, प्राचीन कालमें ऐसे जनबहुल स्थानों या राजधानियोंमें उस तरहकी उच्च शिक्षाकी व्यवस्था न थी। उपनयनके बाद ही द्विजातिकों निर्जैन मरण्यवेष्टित गुरुके आश्रममें जा प्रह्लाचर्य अवलम्बनपूर्वक अवस्थान करना पड़ता था। जो सब उच्च-विद्यामें पाण्डित्यलाभ करनेके अभिलाषी होते, वे ३६ वर्ष तक गुरुगृहमें रहते थे। उच्च-शिक्षाके शिक्षार्थीका आश्रम-स्थान प्रथम काश्मीरमें शारदापीठ, इसके बाद यदिकाश्रम और पौराणिक युगमें नैमिषारण्य निर्दिष्ट था। उक्त तीनों स्थानोंसे ही भारतवर्षीय सहस्र सहस्र आचार्योंका अभ्युदय हुआ था।

इस समय जैसे एक एक विश्वविद्यालयके एक एक अध्यक्ष या प्रिन्सिपल (Principal) देखे जाते हैं, पहले समयमें भी वैदिक और पौराणिक युगमें जैसे ही अध्यक्षका होना प्रमाणित होना है। ऐसे अध्यक्षोंका कुलपति नाम था। यूरोपीय या यहांके प्रिन्सिपल वेतन ले कर उच्च-शिक्षा देते हैं; किन्तु भारतके पूर्वज

कुलपति वेतन लेना तो दूर रहा, एक एक कुलपति १० हजार शिष्योंके केवल विद्यदान नहीं, छात्रकी शिक्षाकी समाप्ति या समापन तक अन्नदानादि द्वारा भरणपोषण करते थे।^१

"मुनीना दत्तारक्ष" योऽन्नदानादिपोषणात्।

अभ्यापयति विप्रिंरषी कुलपति स्मृतः ॥^२

यहां भारत पुगपादिसे अति, शौनक, उग्रश्रवा आदि मुनिको हम कुलपति आख्यासे अभिहित देखते हैं।

वैदिक और पौराणिक युगमें जिस तरह उच्चशिक्षाके लिये निर्जैन आश्रम निर्दिष्ट था, आदिबौद्धयुगमें भी पहले वैसा ही व्यवहार दिखाई देता। पीछे बौद्धयुगमें भारतके पश्चिम प्रान्तमें गाम्धार और उद्यानमें नया पूर्व-भारतमें विहारके अन्तर्गत नालन्दामें बौद्ध विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुए थे। उक्त दो स्थानोंमें जितने विहार और विद्याविहार स्थान थे, सबों पर कर्तव्य करनेको मार एक कुलपति पर निर्दिष्ट था।^३

चीनपरिभाषक यूएनचुवङ्ग ७वीं शताब्दीमें नालन्दा-में आ कर यहां कुछ दिनों तक ठहरे थे। यहां उन्होंने बहुत बौद्धशास्त्रोंका अध्ययन किया था। उस समय भी नालन्दामें ५० हजार शिक्षार्थी उपस्थित थे। चीन-परिभाषकोंके विवरणसे मालूम होता है, कि केवल भारत या चीन ही नहीं, सुदूर कोरिया और भारतमहासागरके द्वीपसूत्रसे बहुतेरे छात्र यहां उच्च शिक्षालाभ करनेके लिये आते थे। इस नालन्दाका विश्वविद्यालय देखनेके लिये आ कर कोरियाके सुप्रसिद्ध श्रमण आर्य-वर्म (A-di-y-po-mono) और होइ ये (Hoei-ye) ने प्रायः ६४० ई०में यहां ही प्राण विसर्जन किया था।^४

^१ नीलकण्ठने महामारतकी टीकामें लिखा है—“एकी दश-सहस्राणि योऽन्नदानानि भवेत्। स वै कुलपतिरिति”

(११११)

^२ “तत्र पृथिव्यां सर्वं विहारेषु कुलपतिरर्थं कियता।” मूच्छकटिक नाटकको इस अंकसे अन्तही तरह माश्रम होता है, कि ई० सन्की १९वीं शताब्दीमें भी कुलपतिकी प्रथा विलुप्त नहीं हुई थी

^३ “पट्टिशदाब्दिकं चर्यं गुते नैवेदिकं ब्रह्मन्।”

चीनपरिभाषक यूपन्सुवङ्ग नालन्दा में जब आये थे, तब शीलभद्र यहांके कुलपति थे।

वैदिक या पौराणिक युगके विश्वविद्यालय निर्जन-घन प्रदेशोंमें पर्णकुटिरमें स्थापित थे। बौद्धोंके प्राधान्य-कालके विश्वविद्यालय वैसे नहीं थे। बौद्धराजाओंके यत्नसे प्रस्तरमय सुवृहत् अष्टालिका या विहारमें विश्व-विद्यालयका कार्य सम्पन्न होता था। चीन-परिभाषक ७वें शताब्दीमें गान्धार और उद्यानमें ऐसे विश्वविद्यालयोंका ध्वंसावशेष देख गये हैं। किन्तु उस समय नालन्दाका सुवृहत् विश्वविद्यालय ध्वंससमुत्थमें पातित नहीं हुआ था। उस समय भी इसमें १० हजार छात्र एक साथ बैठ कर अध्यापककी उपदेश भरी बातें सुनते थे। प्रस्तरमयी अष्टालिकामें ऐसे सुवृहत् प्रस्तर-वेदिका विद्यमान थी। ८वें शताब्दीसे ही नालन्दाका विश्वविद्यालय परित्यक्त हुआ और ९वें शताब्दीके अन्तिम भागमें नालन्दाके (वर्तमान वराणांसके) निकटवर्ती विक्रमशिलामें (वर्तमान शिलाउ ग्राममें, गौडाधिप धर्मपालके यत्नसे अभिनव तान्त्रिक बौद्धोंके लिये नये विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई। १म महोपालके समयमें और उनके यत्नसे विक्रमशिलाकी ख्याति दिगन्त-विश्रुत हुई थी। इस गौडाधिपने दीपङ्कर श्रीहानकी विक्रमशिलाके प्रधान आचार्य्यपद पर अभिषिक्त किया था। इस समय इस स्थानमें ५० प्रधान आचार्य्य थे। मुसलमानोंके आक्रमणसे वहांकी यह प्राचीन बौद्धकीर्त्ति विध्वस्त हुई।

बौद्धयुगमें बौद्धोंके आदर्श पर हिन्दू और जैनोंके बोधमें भावात्मक सम्प्रदायोंके प्रधान प्रधान मठ उन सम्प्रदायोंके आलोच्य शास्त्रग्रन्थ पढ़नेके छोटे विश्व-विद्यालयके रूपमें गिने जाने लगे। अति प्राचीनकालमें आर्य्य हिन्दूसमाजमें जैसे आश्रमवासों शिक्षार्थियोंमें प्रह्वय्यादि पालन और पाठानयन प्रवर्तित थे, बौद्ध-विहार या विद्यालयांमें भी अधिकांश वे ही नियम प्रचलित हुए। परवर्त्ती हिन्दू और जैन मठोंमें भी उन्हीं नियमोंको सामान्य रूपसे परिवर्त्तन और समथोपयोगी बना कर चलाया गया। शङ्कर और रामानुज सम्प्रदायके मठों और गिरनार, अहमदाबाद आदि स्थानोंके

मठ भारताय छोटा विश्वविद्यालय माना जा सकता है। बहुत दूरसे विद्यार्थी आ कर यहां प्रासाच्छादन और उपयुक्त विद्याशिक्षा पाते रहे।

बौद्ध-प्रभावके अवसान और वैदिक धर्मके अभ्युदय-कालमें कान्यकुब्ज और काशीमें ही वैदिक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुए थे। मुसलमान आक्रमणमें कर्नौज विद्यालयके लुप्त होने पर काशी आज भी हिन्दू-समाजमें प्रधान शास्त्रचर्चा और शास्त्रशिक्षाका स्थान कहा जाता है। १९वें शताब्दीसे नवहोप न्यायचर्चामें सर्वप्रधान शिक्षापरिपद्द कहा जाता है। आज भी नवहोपका यह प्राधान्य अक्षुण्ण है। यहां आज तक काशी, काञ्ची, द्राविड और ता कया उत्तरके काश्मीर और दक्षिणके सुदूर सेतुबन्ध रामेश्वरसे छात्र न्यायशिक्षाके लिये आते हैं।

यूरोपीय विश्वविद्यालय ।

प्राचीन भारतमें आर्य्यभूविगण शास्त्रीय या धर्म तत्त्वादि उच्चशिक्षा प्रदानके लिये परिपद्द स्थापन कर साधारणकी शिक्षा प्रदान करते थे। उसके बादके समयमें अर्थात् बौद्धयुगमें सम्यताके प्राबल्यके साथ साथ मठादिमें भी उसी भावसे उच्चशिक्षा प्रदानकी व्यवस्था हुई थी।

विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिये ही विश्वविद्यालयोंकी प्रतिष्ठा होती है, यह बात यूरोपीय परिदृष्टों मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। इतिहासकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि ६ठी शताब्दीसे १२वें शताब्दी तक रोमक साम्राज्यके अधीनस्थ विद्यालयोंमें देवपूजकोंकी शिक्षाप्रणाली बलवती थी। वर्षों द्वारा रोमसाम्राज्य आलोहित होने पर यह शिक्षा केवल किम्बदन्तियोंमें परिणत हो गई। रोमक शताब्दीमें धर्ममन्दिरसंश्लिष्ट विद्यालय और मठ प्रतिष्ठित हुए और जनसमाजमें इन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

उपरोक्त केंचडूल स्कूलमें केवलमात्र धर्मशास्त्रोंकी उपयोगी शिक्षा दी जाता था और मठमें सन्यासी और श्रमण सम्प्रदायके उद्देशानु-रूप शिक्षाकी व्यवस्था हुई थी। उक्त दो तरहके विद्यालयोंके साथ राजविद्यालयोंमें शिक्षाप्रणालीका यथेष्ट

वैलक्षण्य दिखाई देता था। क्योंकि इन शेषोक्त विद्यामन्दिरोंमें देवपूजकोंकी मतानुसारी शिक्षा दी जाती थी। इसके निवा राजविद्यालयोंमें खृष्टान धर्मनस्वकी शिक्षा भी प्रचलित थी। क्योंकि उस समय प्राचीन धर्मपुस्तकके मिया अन्य पुस्तकोंका अधिक प्रचलन न था और शिक्षा-विस्तारके लिये उस समयके शिक्षक इन सब पुस्तकोंका परित्याग कर नहीं सके थे। कभी-कभी अरिष्टल, परफायरी, मार्टियानस, कपेला और विटियासके लेखनोपसृत तत्त्वोंकी कुछ अंशमें शिक्षा दी जाती थी।

यरोमिन्जियन् राजवंशके राजत्वकालमें फ्रांसीसी राज्यमें विद्याशिक्षाका आंगिक विलय साधित हुआ। इसके बाद थियोडोरस, विडे और आलकुइनके यत्नसे विद्याशिक्षाकी उन्नतिके विषयमें पुनरायोजन हुआ। ८वीं शताब्दी और ९वीं शताब्दीमें सम्राट् "चार्ल्स दी ग्रेट" के आशानुसार और आलकुइनके यत्नसे फ्राङ्क-लैण्डके शिक्षाविभागमें महान् संस्कार हुआ और एक ही Monastic और Cathedral school में शिक्षा देनेकी व्यवस्था विचियद हुई। उस समय राजदरवारकी अधीनतामें जो Palace school परिचालित होता था, वह उच्च शिक्षा प्रदानका एक प्रधान केन्द्र हो गया। थियोडोरस आदिकी चर्चार्थ पद्धतिका अनुसरण कर धर्मशास्त्र प्रगरी दी ग्रेटने इङ्ग्लैण्डमें भी शिक्षा-प्रणालीकी सुव्यवस्था की थी।

१०वीं शताब्दीमें रोमाधीनस्थ खृष्टान जगत्में (Latin /hristendom) घोरतर राज्यविप्लव उगस्थित होनेके साथ साथ विद्याशिक्षा-विस्तारमें भी मयानक अन्तराय उपस्थित हुआ। इसके बाद फ्रांसकी राजधानी पारी नगरमें विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा होनेके समयसे पाश्चात्य-जगत्में शिक्षा-विस्तारका प्रचार फिर बढ़ गया। किंतु इतने समयमें अर्थात् १२वींसे १२वीं शताब्दीके प्रारम्भ काल तक स्थान स्थानमें लक्षप्रतिष्ठ अध्यापक साधारणकी शिक्षा देनेमें यत्नशील थे।

पूर्वके आलकुइन साहेब स्वयं टुर्स (Tours) नगरके सेण्ट मार्टिन मठके (The Great-Abbey of St. Martin) विद्यालयके प्रधान आचार्य पद पर अधिष्ठित रह कर

शिक्षा विस्तारमें कटिबद्ध हुए। सच पूछिये, तो उनके ही यत्नसे उक्त मठ विद्यालयके आदर्श पर ही विश्व-विद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई। उर्हाने नये नये विद्यार्थियोंकी शिक्षाका प्रयासो वन उस समयके साहित्यको नये माध्यमों में संस्कृत कर लिया था और नई प्रणालीसे शिक्षा देनेकी विधिका प्रवर्तन किया।

पहले ही कहा गया है, कि १२वीं सदीमें पारी युनि-वर्सिटीके संस्कारके साथ यथाद्यमें विश्वविद्यालयकी मिस्रिका स्थापन, गठन और उन्नतिसाधन हुआ। १२वीं शताब्दीके पहले भी यहाँ न्यायशास्त्र (Logic)का आलोचना होती थी। १२वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहाँ चम्पोयासी विलियम नामके एक अध्यापकने न्यायशास्त्रका एक विद्यालय स्थापित किया। उसमें मौखिक न्यायशास्त्रीय तर्कोंकी मीमांसा होती थी। अन्यान्य अध्यापकोंकी अपेक्षा विलियमके शिक्षाकीशालसे पारी विद्यालयकी सुख्याति चारों ओर विस्तृत हो गई। विलियमके शिष्य सुविख्यात आबिलार्ड और उनके शिष्य Sentences नामक ग्रन्थके संप्रहर्ता सुप्रसिद्ध गिशाप पियर लोम्बाई (११५६ ई०)ने न्यायशास्त्रकी अध्यापनामें पारी विश्वविद्यालयकी शीर्षस्थानमें पहुँचा दिया था।

इससे पहले इटली राज्यके सालोर्णो नगरमें एक आयुर्वेद-विद्यालय प्रतिष्ठित था। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि ९वीं शताब्दीमें सरासेनोके यत्नसे यह स्थापित हुआ था। किंतु De Renzi, Puccinotti आदि ऐतिहासिकोंने विशेष अनुसन्धानके बाद स्थिर किया है, कि इस विद्यालयके साथ सरासेनोका कोई सम्बन्ध न था। क्योंकि Civitas Hippocratica-की प्रसिद्धिमें विलम्ब न होने तक भारतीय मेघजतत्त्वादि पाश्चात्य जगत्में लिये न गये।

रोमकेने यूनानियोंकी प्राचीन शिक्षापद्धतिका अनुसरण कर ही आयुर्वेदविद्याकी शिक्षा प्रचार की। १०वीं शताब्दीमें दक्षिण इटलीमें यूनानी भाषाका आदर था, ऐसा अनुमान होता है। आश्चर्यका विषय है, कि सालोर्णो और इस आयुर्वेद विद्यालयसे उत्तरोत्तरो उत्पन्न ही खियां थीं। इसके बाद पामिया नगरके लोम्बाई ला स्कूल (Schools

of Lombard Law) और रामेन्नाके रोमन ला स्कूल उल्लेखनीय है। १००० ई०में बोलोगनाका साधारण विद्यालय प्रसिद्धि लाभ कर रहा था। सन् १३१३ ई०के लगभग किसी समयमें सुप्रसिद्ध व्यवस्थातत्त्वह इरनेरियस (११००-११३० ई०) यहां दोघानो कार्य-विधिकी अध्यापना कराते थे। उनसे भी पहले प्रायः १०७६ ई०में किसी समय पिपो नामके एक अध्यापक "Digest" शिक्षा देते थे। Schulte के मतसे सन् ११४७ ई०के समकालीन प्रेसियानके डिक्रिटम और इसके बाद Corpus Juris Civilis नामक व्यवस्थाग्रन्थ संगृहीत हुए।

इस तरह रोमन विधिकी प्रबल प्रचार होने पर भी सब पूछिये, तो ११५८ ई० तक विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। १३वीं शताब्दीके मध्यभागमें व्यवस्थातत्त्वानोचनानाके विभिन्न केन्द्र एकत्र हो कर Ultramontani और Citramontani नामक दोनों Universitates के अन्तर्भूक्त कर दिये गये। इस समय Johannes de Varanis प्रथमोक्त और Pantaleon de Venetiis शोषोक्त शाखाके रेक्टर थे। सन् १२५३ ई०में ४८वां हनोसेएटने इस विश्वविद्यालयकी नई प्रशस्ति पदानके समय इनके संगठनके सम्बन्धमें कहा था, "rectores et universitas scholarium Bononiensium" १६वीं शताब्दीमें ये दो शाखाएँ एक रेक्टरकी अधीनतामें परिदक्षित हुईं।

बालकोंको बाइन शिक्षाके लिये उपयुक्त विभिन्न शिक्षा-समितियोंके सिवा बोलोगनामें चिकित्सा और साधारण शिक्षा दानके लिये लुरिए रेक्टरोंकी अधीनतामें एक रेक्टर नियुक्त था। सन् १३०६ ई०में ये सम्पूर्ण स्वाधोनमावसे विश्वविद्यालय चलानेके अधिकारी हुए। यूनिवर्सिटीरिसके सिवा उस समय वहां College of Doctors of Civil Law, College of Doctors of Canon Law, College of Doctors in Medicine and Arts और १३५२-ई०में College of Doctors in theology प्रतिष्ठित हुए।

ऊपर कहा गया है, कि पारोनगरीमें विश्वविद्यालयकी यथार्थ उन्नति हुई थी। यहां उच्चशिक्षाके सम्बन्ध-

में धर्मतत्त्व, व्यवस्थातत्त्व और चिकित्सा तथा निम्न-शिक्षाके सम्बन्धमें फ्रांस, इंग्लैण्ड पीछे जर्मनी, पिकाड्यी और नर्मण्डोकी साधारण शिक्षा दी जाती थी। सन् १२५७ ई०में रावर्ट डो० सोरबोन द्वारा पारोनगरीके सुविध्यात सोरबोन कालेज प्रतिष्ठित हुआ। उस समय विश्वविद्यालय और नामांके कालेजमें धर्मतत्त्व शिक्षाने विशेष उपाति लाभ की। सन् १२६२ ई०में पारी और बोलोगनाके प्राचीनतम विश्वविद्यालय ४८वां निकोलसके आदेशपत्र लेनेमें बहुत समुत्सुक हुए थे।

सन् ११६७-६८ ई०में इंग्लैण्डके अक्सफोर्डनगरका साधारण विद्यालय studium generaleमें परिणत हुआ। इससमय पारीसे अंग्रेजछात्र बाध्य होकर इंग्लैण्डमें लीटि और अपने अध्ययसायसे शिक्षासीकृत्यके लिये उन्हीं अक्सफोर्ड नगरके विद्यालयकी उन्नति की। यथांकि टामास वेकेटके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजा २रे हेनरीने एक आज्ञा प्रचारित कर इंग्लैण्डके सब लोगोंको फ्रान्सीसी राज्यसे इंग्लैण्डमें लीटि आनेकी कड़ा और इसकी भी मनाही कर दी, कि कोई भी इंग्लिश चैनेल पार कर फ्रान्स न जाने पाये। सुसम्भ्य फ्रान्सिसियोने भी वेकेटके साथ राजाके कलहका खयाल कर वैदेशिक छात्रोंको निकाल दिया।

सन् १६३१ ई०में आर्क बिशाप लाइने शिक्षाविभागके नेता हो कर एक अनुशासनके बल पर Hebdomadal Board अधिषेय समितिके हाथमें युनिवर्सिटीका कार्य भार सौंप दिया। १६वीं शताब्दीके मध्यभाग तक वेही परिचालक रहे। कैम्ब्रिजनगरमें उस समय Caput Senatus नामकी एक छोटी समिति थी।

सन् १८६३ ई०की राजसनदके बलसे वेल्स प्रदेशके पवारिष्टोयाइथ, कार्डिफ और वाड्वोर, कालेजको एकत्र कर वेल्सकी युनिवर्सिटी स्थापित हुई। सन् १६०० ई०में पार्लियामेण्टकी कार्टर्याविधिके अनुसार और राजसनदके बल पर पूर्वांत मेसन कालेज धर्मिडाम युनिवर्सिटी रूपमें परिवर्तित हुआ। सन् १८६८ ई०के युनिवर्सिटी आव लण्डन एक्टके अनुसार और १६०० ई०में कर्मिन्टोंके अनुशासनके बल पर लण्डनकी युनिवर्सिटी कायम हुई।

साधारण और उच्चतम शिक्षाके सिवा यूरोप महा-
देशमें वाणिज्य और गिल्डविषयक शिक्षादानका बहुत
समादर देखा जाता है। सन् १८६२ ई०में एण्टवर्प
नगरमें Institut Supérieur de Commerce सन् १८८१
ई०में पारी राजधानीमें Ecole des Hautes Etudes
Commerciales और बोर्दों, हाभाए, लिले, लिउनस,
मासाँगल, डिजों, माण्टपोलियर, न्याण्टिस, नागिस और
राउएन नगरमें वाणिज्य और गिल्डविद्याकी उच्च श्रेणी-
के विद्यालय प्रतिष्ठित हुए। ऊपर कथित वाणिज्य
विद्यामन्दिरके सिवा पारीनगरमें Institut Commer-

cial और Ecoles Supérieures de commerce, नामक
और भी दो इसी श्रेणीके उच्च विद्यालय देखे जाते हैं।
जर्मन साम्राज्यके लोपजिक्, कोलन, बाकेन, हनोवर
और फ्राङ्कफोर्ट (माइन नदीके किनारे) नगरमें
Handelhochschulen नामक विद्यागार स्थापित हैं।
राजानुप्रदसे ये सब विश्वविद्यालय अपने छात्रोंको पार-
दूर्शिताके अनुरूप उपाधि देनेमें समर्थ हैं, किन्तु
फ्रांसीसी या बेल्जियन् विद्यालयोंको इस तरहका
अधिकार नहीं।

नीचे विश्वविद्यालयों और नगरके नाम और प्रतिष्ठा-
काल लिखिये हुए।

स्थानोंके नाम	ई०षन्	स्थानोंके नाम	ई०षन्	स्थानोंके नाम	ई०षन्
आयाडिन.	१४६४	बोलोगना	११५८	काराकास	
आयो	१६४०	बम्बई	१८५७	कटानिया	१४४४
आडोलेड (१)	१८७२	बोन्न	१८१८	कार्डोवा (अर्जेन्टिना)	
आडोलेड (२)	१८७४	बोर्दों	१४४१	काहोर	१३३२
आप्रा म	१८६६	बुर्जेस्	१४६५	कलकता	१८५७
अलषयाला	१४६६	ब्रैसल्यो	१७०२	कैम्ब्रिज	१२वीं सदी
आण्टवर्प	१५७८	ब्रुसेल्स	१८३४	ख्रिश्चियाना	१८११
आमस टुर्बम	१८७७	बुदापेष्ट	१६३५	कोइम्ब्रा	१३०६
आमस्टर्डम फ्री०	१८८०	बेसानसोन (डोल नगरमें		कलम्बिया कालेज (U.S.)	१७४५
आख्रियार	१३०५	स्थानांतरित)	१४२२	कोलोन	१३८८
इलाहाबाद	१८८७	ब्यूनस परिस	***	कोर्पोल	१८६५
एथेन्स	१८३७	बुरेछाक	१८६४	कोपेन हेगेन	१४७६
आरेञ्जा	१२१५	कापन	१४३७	क्राको	१३६४
आमिगनोन	१३०३	केडिज (Medical Faculty		डिजोन	१७२२
वामबर्ग	१६४८	of Seville)	१७४८	डेम् क्विन् कालेज	१५३१
वासल	१४५६	कैगलियरो	१५६६ पुनः प्रतिष्ठित	डोरपाट	१६३२
वार्सेन	१८०६		१७२० और १७६४	डारहम	१८३२
वार्न	१८३४	कामेरिनो	१७२७ प्रतिष्ठा, १८६०से	एफस-यन्-प्राविन्स	१४०६
वार्सिलीना	१४५०	यह फ्री युनिवर्सिटी हो गया।		एडिनबर्ग	१५८२
परफार्ड	१३७५	कोनिगसबर्ग	१५४४	आफसफोर्ड	१२वीं सदी
पलाञ्जेन	१७४३	लिप्टजिक	१४०६	पाइसा	१३४३
फेरारा	१३६१	नेमवार्क	१७८४	पाडुया	१२२२
फ्लोरिन्स	१३२०	लेरिडा	१३००	प्यालेगिसिया	१२१४
फ्रांस	१७६४	लिडेन	१५७५	पालाम्बो	१७७६
फ्रान्केर	१५८५	लिमा	१५५१ और १५६१,	पारी	१२वीं सदी

स्थानिक नाम	ई०वन्	स्थानिक नाम	ई०वन्	स्थानिक नाम	ई०वन्
फ्राङ्कोर्ट (बोडरके किनारे)	१५०६	लिज्	१८१६	पार्मा	१४२२, संस्कार १८५५
फ्रि बार्ग	१४५५	लण्डन	१८२६	पामिया	१३६१
फ्रि बार्ग (स्योटजरलैण्ड)	१८८६	लीमेन	१४२६	पेन्सिल भ्यानिया	१७५१
फुन्फुर्ककेन	१३६७	लीसानो	१५३७ प्रतिष्ठा, १०६० विश्वविद्यालय	पारविमानान	१३७६
जेनिवा	१८७६	लाण्ड	१६६८	पेरजिया	१३०८
जार्जोविट्ज	१८७५	मांगोल (कनाडा)	१८२१	पियासेनजा	१२४८
चेम्प्ट	१८१६	मेसिता	१८३८	पो इटियर्श	१४३१
गिसेन	११६०७	मान्द्राज	१८५७	प्रेसवर्ग	१४६५, पीछे व मध्यको
ग्लासगो	१४५३	माडिड	१८३७	१८७५ से व्यवस्थाशास्त्र अध्ययन	
गोधेन बार्ग १८४१ (यहां केवल		मासरेटो	१५४०	के लिये रक्षित ।	
दार्शनिक शास्त्रों की आलो-		मेनज	१४७६	प्रेग	१३४७
चना और उपाधि दी जाती है ।)		मारवर्ग	१५२७	प्रिन्सटोन	१७४६
गोटिङ्गेन	१७३६	मेलबोर्ण	१८५३	पंजाब (लाहौर)	१८८२
ग्राज	१५८६	मोडेना	१२वीं सदी, बाद १६८३	किन्स युनिवर्सिटी आयरलैण्ड	१८५०
ग्रिपसवालड	१४५६	मन्टपेलियार	१२८६	किन्स युनिवर्सिटी किन्सटोन	१८४०
ग्रानाडा	१५३१	मन्टिल	१८२१	कुर्वेक	१८५२
ग्रेंनोवल	१३३६	मन्टिभिडो	१८७६	रुजिओ	१२वां जताम्ब
ग्रोणिनजेन	१६१४	मस्काउ	१७२५	रिन्टेन	१६२१
हाले (Halle)	१६६३	माफस्टार	१६२६ पोपेकी आड्रासे प्राप्त,	रेकजाविक	१६०१
हार्डरविजक	१६००	१७७१-७३में प्रतिष्ठा; १८१८		रोम	१३०३
हार्मार्ड कालेज	१६३८	ई०से इस विश्वविद्यालयमें		रएक	१४१६
हावाना	१७२१	देवदस्व और दर्शन शास्त्रीय		रायल युनिवर्सिटी आयरलैण्ड	१८८०
हिडेलबर्ग	१३८५	उपाधि दानकी व्यवस्था हुई है।		सेण्ट टामस (मानिला)	१६०५
हेल्मघाड	१५७५	म्युनिक	१८२६	सेण्ट पन्ड्रज	१४११
हेल्सिंफोर्स	१६४०	न्यान्टिस	१४६३	सेण्ट डेभिडस	
हुयेस्का	१३५४	नेपोलस	१२२५	कालेज, लाम्पिटाट	१८२२
इन्गोलघाट	१४५६	न्यूजिलैण्ड*	१८७०	सेण्टपिटार्सवर्ग	१८१६
इन्सब्रुक	१६६२	मोडेसा	१८६५	सालामास्का	१२४३
जेना	१५५८	ओभियेडो	१५७४	सासारि	१५५६
जन्महृदयकिन्स	१८६७	ओफेन	१३८६	सालेर्नो	६वां प्राताम्ब
काजान	१८०४	ओलमुट्ज	१५८१	सारामोसा	१४७४
कार्कोफ	१८०४	अरेञ्ज	१३३५	साल्ज बर्ग	१६२३
कार्यक	१८०३			साण्टियागो (स्पेन)	१५०४
किबोटा (जापान)	१८६६			, (दक्षिण अमेरिका)	१७४३
कापल	१६६५			सेमील	१२५४ व १५०२

* १८७७ ई०में यहाँ काकलेयड,

केपटार बरीबामेडिन और वेस्त्रि गटन

काट्टरमें कालेज स्थापित किया ।

स्थानिक नाम	ई०सन्	स्थानिक नाम	ई०सन्	स्थानिक नाम	ई०सन्
क्रीसनवर्ग	१८७२	ओर्लॉन्स	१३वां शताब्द	सिपना	१३५७
कोलोजमार	१८७२	ओटागो	१८६६	प्लासवर्ग	१६२१
सिवनी	१८५१	बाससाला	१४७७	विषटोरिया (कनाडा)	१८३६
डुरिन्	१४१२	उद्रेफ्ट	१६३४	मियेना	१३६४
टरन्टो	१८२७	उर्बिणो १६७१, पीछे फी युनिवर्सिटी		मिलना	१८०३
टीलुज	१२३३	उत्तमाशा अंतरीप	१८७३	ओपार्सा १८१६, १८३२ वन्य,	
ट्रिमीज	१४५०	भालेम्स	१४५२	पीछे १८६६ पुनःप्रतिष्ठा	
ट्रे मिजो	१३१८	मालेगिसया	१५०१	युजवर्ग १४०२, पीछे १५८२	
ट्रिनिटी कालेज (डबलिन)	१५६१	मालेगोलिड	१३४६	विटैनवर्ग	१५०२
ट्रिनिटी कालेज (टरन्टो)	१८५१	भासेलि	१२२८	पेल कालेज	१७०१
टोमस्क	१८८८	मिसेंजा	१२०४	जाप्राय	१८६१
टुविन्जेन्	१४७६	विषटोरिया (मंचेष्टर)	१८८०	जुरिक	१८३२
टोकियो (जापान)	१८६८				

यह बात ठोक तीरसे कही नहीं जा सकती, कि ऊपर जिन सब विश्वविद्यालयोंकी सूची प्रकाशित की गई, वे सब आज भी युनिवर्सिटी रूपमें हैं। कितने या तो बन्द हो गये हैं या कितने ही युनिवर्सिटीकी मर्यादा खो कर कालेज या स्कूलके रूपमें परिणत हो शिक्षादानमें सहयोगिता कर रहे हैं। १६वीं और १७वीं शताब्दीमें स्पेन और अग्यान्व स्थानोंके जेसुइट कालेज युनिवर्सिटी रूपमें परिगणित हुए थे सही, किन्तु वे अधिक दिनों तक अपनी मर्यादा रख न सके। १८वीं और १९वीं शताब्दीमें उनमें कितनों ही ने अपनी मर्यादा खो दी और कितने ही सामान्य स्कूलोंमें परिणत हुए।

स्पेन राज्यके इस समय Institutos नामक स्कूल-में B. A. उपाधि पानेकी व्यवस्था है। किन्तु M. A. उपाधि केवल युनिवर्सिटीसे ही मिलती है। स्पेन राजधानी में ड्रिय नगरका युनिवर्सिटी Universidad Central नामकी युनिवर्सिटीके सिवा स्पेनके किसी दूसरे कालेजमें Doctor उपाधि देनेकी विधि नहीं।

सम्पत्ता और हानालोककी धलवती याकाङ्क्षाके कारण उत्तर-अमेरिकाके युक्तराज्यमें विश्वविद्यालयका प्रसार क्रमशः बढ़ता रहा और उसी अभावकी दूर करनेके लिये यहांके हाकिम यहांके विभिन्न प्रदेशोंमें कालेज या युनिवर्सिटीकी प्रतिष्ठा कर उच्च शिक्षा देनेमें यत्नवान्

हुए। सन् १८८३-८४ ई०में शिक्षा-विभागीय विवरणीमें प्रकाशित रिपोर्टसे मालूम होता है, कि युक्तराज्यमें कुल ३० विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित थे। इनमें कितने ही सम्प्रदायविशेषके धर्ममतालोचनाके और कितने ही एक विषयके और कितने ही नाना विषयोंकी शिक्षाके चामोत्कर्ष साधनार्थ प्रतिष्ठित थे। इन सब विश्वविद्यालयोंसे आलोचित विषयोंमें उत्तीर्ण छात्रोंकी उपाधियां दी जाती हैं। साधारणको जानकारीके लिये तोचे युक्तराज्यके राज्यभाग और जनपदके नाम तथा यहांके विश्वविद्यालयोंकी सूची दी जाती है:—

विभागके नाम	कालेजोंकी संख्या	विभागके नाम	कालेजोंकी संख्या
अलाबामा	४	आर्कांसस	५
कालिफोर्निया	११	कोलोराडो	३
कनेक्टिकट	३	डेलावोयार	१
फ्लोरिडा	१	जर्जिया	६
इलिनोइस्	२६	इण्डियाना	१५
आइयोवा	१६	कन्सस	८
कण्टुकी	१५	लुइसियाना	१०
मेन्स	३	मेरीलैण्ड	१०
मासाचुसेटस	७	मिचिगन्	६
मिनेसोटा	५	मिसिसिपी	३

मिसौरी	२०	नेब्रास्का	५
न्यूहम्पसायर	१	न्यूजर्सी	४
न्यूयार्क	२६	नार्थ कारोलिना	६
ओहियो	३३	ओरेगन	६
पेन्सिलभानिया	२६	रोड आइलैण्ड	१
साउथ कारोलिना	६	टेनेसी	२०
टेक्सास	११	भार्मोण्ट	२
भर्जिनिया	७	वेष्ट भर्जिनिया	२
वोइस् फोर्गिसन्	४	डाकोटा	२
कालिफोर्निया डिप्लिक्ट	५	उटा	१
वासिङ्गटन	१		

युक्तायुक्त विभिन्न केन्द्रों में इससे अधिक संख्यक विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित रहनेसे विद्यादान विषयमें अनेक सुविधा हुई है। और तो क्या, सालाना केवल ३० डालर खर्च करनेसे ओहियो जिलेके विश्वविद्यालयमें एक वर्ष तक शिक्षा दी जा सकती है।

सन् १८८६ ई०में जाक्स हर्फोर्ड्स युनिवर्सिटीके प्रेसिडेण्ट हार्मोडिने वक्तृता देने समय विश्वविद्यालयके चार विभागोंमें बांट देनेका प्रस्ताव किया। इसके अनुसार विश्वविद्यालय (१) आदि ऐतिहासिक कालेज, (२) राजकीय विद्यालय, (३) धर्माध्यक्षों द्वारा परिचालित कालेज और (४) साधारणके चन्देसे या व्यक्ति विशेषके दानसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय, ये इस्ती तरह बांट दिये गये। उससे एक सूची तैयार होने पर विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठाके इतिहास संग्रहकी विशेष सुविधाकी सम्भावना है।

सन् १७५१ ई०में वेजामिन फ्राङ्कलिनकी प्रणोदित प्रथासे टेमास और रिचार्ड पेन्नेवेनपेन्ने सिलभानियामें जो विश्वविद्यालय स्थापित किया, उससे परीक्षोत्तीर्ण छात्र Ph D उपाधि पाते हैं। उच्च शिक्षाकी आशासे विभिन्न देशसे बहुतेरे शिक्षार्थी इस देशमें आते हैं। हार्मरफोर्ड और लफायेट कालेजोंमें और लेहार्ड युनिवर्सिटीमें कालेजशिक्षाके निर्धारित प्रयोगके अनिर्दिष्ट उच्चतम विद्यानुशोलनके लिये उन्नत उपाधियां दी जाती हैं। सन् १८६७ ई०में वाल्टिमोर नगरमें जाक्स हर्फोर्ड्स युनिवर्सिटी प्रतिष्ठित हुई। उस समयसे ही इस

विश्वविद्यालयने शिक्षा विषयमें सुख्याति लाभ की। अन्यान्य विषयोंमें शिक्षा देनेके सिवा यहां अध्यापकके कर्त्तव्योपयोगी विषय और विशिष्ट विषयोंमें शिक्षा दी जाती है। न्यूयार्क शहरके कोलम्बिया कालेज, कर्नाल युनिवर्सिटी प्रमिडेन्सकी प्राइन्स युनिवर्सिटी और प्रिन्सटन, मिचिगन, भर्जिनिया और कालिफोर्नियाकी युनिवर्सिटी इस विषयमें बहुत कुछ अपसर हैं। अमेरिकाके अधिकांश विश्वविद्यालयोंमें ही Graduate और Under graduate को पृथक् रखनेके लिये A. B. S. B. Ph. B. आदि Baccalaureate उपाधि सृष्टि हुई है भारतवर्षमें भी पाश्चात्य विश्वविद्यालयके अनुकरण पर सन् १८५७ ई०में कलकत्तेमें, १८वीं जुलाईको बम्बई और ५वीं सितम्बरको मद्राज नगरमें युनिवर्सिटीयां प्रतिष्ठित हुईं। किंतु अंगरेजी भाषाके विस्तारके व्यतीत इनके द्वारा और अन्य भाषाकी शिक्षोप्रति साधित नहीं हुई। भारतके छोटे लाट सर रिचार्ड टेम्पलने लिखा है, कि "भारतीय युनिवर्सिटीयोंमें परीक्षाधियोंकी परीक्षा ले कर उनकी उपाधि वितरण, पाठ्यपुस्तक अवधारण और शिक्षा-विषयक विधि निर्देशादि कार्योंके सिवा यहां कोई शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं। कितने ही देशीय और यूरोपीय सुशिक्षित व्यक्तियोंके तत्त्वावधानमें यह परिचालित होती है। इन सब युनिवर्सिटीयोंमें केवल साधारण शिक्षा, दर्शन, व्यवस्था, डाक्टरी, स्थापत्यविद्या और पदार्थविद्या विषयोंमें उपाधियां दी जाती हैं।"

सन् १८८२-८३ ई०में लाहौर नगरमें एजाय युनिवर्सिटी कालेज प्रतिष्ठित हुआ। उक्त वर्षसे पहले यहां उत्तीर्ण छात्रोंको केवल राईटेल दिया जाता था, डिग्री देनेकी व्यवस्था न थी। इस युनिवर्सिटीमें प्रांच्य भाषाका अधिक समावेश है और छात्र यूरोपियोंके गवर्णनामूलक वैज्ञानिक विषयोंको स्वदेशी भाषा द्वारा जान सकते हैं। इसीलिये बहुत दिनोंसे यहां B. O. L. (Bachelor of Oriental Literature) उपाधिकी सृष्टि हुई थी। इसके बाद सन् १८८७ ई०में भारतके उत्तर-पश्चिम (युक्तप्रदेश) प्रदेशके इलाहाबाद नगरमें और एक युनिवर्सिटी स्थापित हुई। इन सब विश्व-

विद्यालयोंके पुस्तक निर्वाचन और शिक्षाप्रणाली कुछ बंशमें इंग्लैण्डकी आपसफोर्ड, केम्ब्रिज और स्काटलैण्डके एडिनबराकी युनिवर्सिटियोंके अनुरूप हैं।

सन् १६०६-७ ई०में भारतके राजप्रतिनिधि लार्ड कर्जनने भारतीय शिक्षाविभागके स्कारके लिये नई विधि प्रवर्तन कर विश्वविद्यालयके इतिहासमें नये युगकी अवतारणा की है। शिक्षाविभागकी उन्नतिका साधन ही इस विधिका मूल उद्देश है; किंतु इसकी भित्ति बड़ी ही आडम्बरपूर्ण है। पहले जिस तरह कम खर्चमें विश्वविद्यालयका कार्य सम्पादित होता था, अब उस तरह कम खर्चमें कालेजोंके परिचालनका उपाय नहीं रहा। प्रति कालेजमें एक बहुत बड़ी Laboratory रखना और घन्तमान प्रणालीके अनुसार बहूतरे अध्यापकोंको नियुक्ति बहुत ही व्ययसाध्य है।

भारतकी उक्त युनिवर्सिटियोंके सिवा कुछ विनोंके भोतर और कितनों ही युनिवर्सिटियां स्थापित हुई हैं। जैसे,—बङ्गालके ढाका नगरमें एक विश्वविद्यालय, पटनेमें पटना विश्वविद्यालय, युक्तप्रदेशमें हिंदू युनिवर्सिटी, अलीगढ़में मुसलिम युनिवर्सिटी, आग्रा युनिवर्सिटी, लखनऊ युनिवर्सिटी, मैसूर युनिवर्सिटी, हैदराबादमें इस्लामिया युनिवर्सिटी, नागपुर युनिवर्सिटी, इनमें हिन्दू विश्वविद्यालयका नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इसका विशेष विषय हिन्दू विश्वविद्यालयमें देखो।

विश्वविद्वत्सु (सं० पु०) सर्वज्ञ, ईश्वर।

विश्वविधातु (सं० लि०) विश्वस्रष्टा, सृष्टिकर्ता।

विश्वविधायिन् (सं० पु०) विश्वविधाता।

विश्वविमावन (सं० पु०) १ विश्वपालन, संसारका प्रतिपालन। (भागवत ४।८।२०) २ विश्वपालक, जगतके पिता। ३ रक्तकल्पजात ब्रह्माके एक मानस-पुत्रका नाम। (ब्रह्मपु० १।२।६)

विश्वविभ्रुत (सं० लि०) जगद्विध्यात।

विश्वविज (सं० लि०) विष्णुका नामान्तर।

विश्वविसारिन् (सं० लि०) विश्वव्याप्त, जगत्प्रसारी।

विश्ववीर्य (सं० स्त्री०) विश्वका अङ्कुर स्वरूप, ईश्वर।

विश्ववृक्ष (सं० पु०) विष्णुका नामान्तर।

विश्ववृत्ति (सं० स्त्री०) साधारण ज्ञान, दैविक ज्ञान।
विश्ववेद (सं० पु०) आचार्यभेद।

विश्ववेद—ब्रह्मसूत्रभाष्यकी व्याख्या और सिद्धांतदीप नामक संक्षेपशारीकव्याख्याके प्रणेता। ये आनन्दवेदके शिष्य थे।

विश्ववेदम् (सं० लि०) विश्व वेत्ति विश्व-विदु-असुन्।
१ सर्वज्ञ। २ इन्द्रादि देवता। ३ सर्वघन, सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न। (ऋक् १।१२।६।२)

विश्ववेदिन् (सं० लि०) १ सर्वज्ञ। (पु०) २ खनित्र राजके मन्त्री।

विश्वव्यचस् (सं० लि०) १ विश्वव्याप्त, सर्वव्यापी। २ सर्वात्मक, सर्वांगामी। (शुक्लयजुः १।८।५१ महीधर) (पु०) ३ सूर्य। (शुक्लयजुः १।३।५६ मही०)

विश्वव्यापी (सं० पु०) १ ईश्वर। (लि०) २ जो सारे विश्वमें व्याप्त हो।

विश्वशम्भु (सं० लि०) विश्वका मङ्गलविधायक, संसारकी भलाई करनेवाला।

विश्वशम्भुमुनि—एकाक्षरनाममालिका नाम्नी एक क्षुद्र अभिधानके प्रणेता। अभिधानचिन्तामणिमें इनका उल्लेख है।

विश्वशर्षस् (सं० लि०) १ व्याप्तबल, विक्षिप्ततेजा। २ उरमाहयुक्त, उरसाही।

विश्वशर्मन्—प्रबोधचन्द्रिका नामक व्याकरणके प्रणेता।

विश्वशारद (सं० लि०) प्रति शरत्काल विहित।

विश्वशुक् (सं० लि०) विश्वदापक, संसारोद्धारक।

(ऋक् ७।१३।१)

विश्वश्चन्द्र (सं० लि०) विश्वका आह्लादजनक, जिससे सभीको हर्ष हो। (ऋक् ३।३।१।६)

विश्वश्रद्धाज्ञानबल (सं० स्त्री०) बुद्धकी दश शक्तियोंमेंसे एक शक्ति।

विश्वधवा (सं० पु०) एक मुनि जो कुबेर की राघव आदिके पिता थे।

विश्वसंवनन (सं० स्त्री०) ऐन्द्रजालिक शक्तिके बलसे मोहाभिभूत करना।

विश्वसत्र (सं० पु०) विश्वेयां मन्त्र। जगदन्धु, जगतका सत्ता, विश्वका हितकारी।

विश्वसत्तम (स० लि०) विश्वेयामयमतिशयेन साधुः, इति विश्व-सत्-तम । १ संसार या सर्वोंके मध्य अत्यन्त साधु । (पु०) २ श्रीकृष्ण । (महाभारत)

विश्वसन (स० क्ली०) १ विश्वास, पतवार । २ मुनियोंकी विश्रामभूमि, वह स्थान जहां ऋषि मुनि विश्राम करते हैं ।

विश्वसनीय (स० लि०) विश्वसितव्य, विश्वास्य, विश्वास करनेके योग्य, जिसका पतवार किया जा सके ।

विश्वसम्भव (स० लि०) विश्वस्य सम्भव उत्पत्तियं-स्मात् । ईश्वर, महापुरुष । (हरिवंश)

विश्वसह (स० पु०) १ सूर्यवंशीव राजा पेडुविडुके पुत्र । २ व्युपिताश्वका एक पुत्र । (ए० १८२४)

विश्वसहा (स० स्त्री०) अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक जिह्वाका नाम । (अटार)

विश्वसहाय (स० लि०) विश्वदेवा ।

विश्वसाक्षी (स० लि०) सर्गदर्शी, ईश्वर ।

विश्वसामन् (स० पु०) १ एक वैदिक ऋषिका नाम जो आत्रेय गोत्रके थे और जो ५१२१ वैदिक मंत्रोंके द्रष्टा थे । २ समस्त सामरूप । (शुक्लयजुः १८।३६ वेददीप)

विश्वसार (स० पु०) विश्वेषां सारम् । १ तंत्रमेद । २ क्षत्रीजसके पुत्रमेद ।

विश्वसारक (स० क्ली०) विश्व वृक्ष, फंकारी वृक्ष ।

विश्वसारतन्त्र—एक प्राचीन तन्त्र । तंत्रसार और शक्तिरत्नाकरमें इनका उल्लेख है ।

विश्वसाह (स० पु०) महत्त्वके एक पुत्र का नाम ।

(भागवत ६।१२।७)

विश्वसिंह (स० पु०) राजपुत्रमेद ।

विश्वसिंह—कुचविहारराजके एक प्रसिद्ध राजा । इन्होंने आसाम देशमें कुछ निष्ठावान् ब्राह्मणोंको ले जा कर बसाया था तथा उन्हें यथोपयुक्त भूमि दी थी ।

कामरूप देखो ।

विश्वसित (स० लि०) विश्वस-क । विश्वस्त, विश्वास करनेके योग्य । (नेपथ १।१३१)

विश्वसितव्य (स० लि०) विश्वसनीय, विश्वास करनेके योग्य ।

विश्वसुविद् (सं० लि०) सर्व्य ऐश्वर्यविशिष्ट, खूब धनवान् ।

विश्वसू (स० लि०) विश्वप्रसू, ईश्वर ।

विश्वसूतशृक् (स० पु०) विष्णु ।

विश्वसू (स० पु०) ईश्वर ।

विश्वसूज (स० पु०) विश्व सूजतीति विश्व-सूज-क्वि ।

१ ब्रह्मा । (लि०) २ विश्वघ्नष्टा, जगदीश्वर ।

विश्वसृष्टि (स० स्त्री०) जगदुत्पत्ति, संसारकी सृष्टि ।

विश्वसेन (स० पु०) अष्टादश मुहूर्तरामेद ।

विश्वसेनराज (स० पु०) अथसर्वाणो शाखाके १६वें अर्द्धतुके पिता । (हेम)

विश्वसौभग (स० लि०) सर्व्य ऐश्वर्यशाली, सौभाग्य-सम्पन्न । (ऋक् १।४२।६)

विश्वस्त (स० लि०) विश्वस-क । ज्ञातविश्वास, जिसका विश्वास किया जाय ।

विश्वस्ता (स० स्त्री०) विधवा । (अमर)

विश्वस्था (स० स्त्री०) विश्वतः सर्वतस्तिष्ठतीति विश्व-स्था क स्त्रियां टाप् । शतावरी, शतावर ।

विश्वस्वपशू (स० पु०) ईश्वर, महापुरुष । (हरिवंश)

विश्वस्फटिक (स० पु०) मगधराजके पुत्रमेद ।

(विश्वपु०)

विश्वस्फाटि—विश्वस्फटिकका नामान्तर ।

(विश्वपुराण)

विश्वस्फाणि—विश्वस्फाटि देखो ।

विश्वस्फाणि—विश्वस्फटिक देखो ।

विश्वस्फुर्जि (सं० पु०) स्वनामधेयात मगधराज । इन्होंने पीछे

पुरञ्जय नामसे प्रसिद्ध हो ब्राह्मणादि जातियोंको म्लेच्छ बतलाया था, जिससे वे पुलिन्द, मद्रक आदि हीन जातियोंमें गिने गये थे । (भागवत १२।१।३४) शायद ये ही

ही विष्णुपुराण-वर्णिता विश्वस्फटिक वा विश्वस्फूर्ति आदि नामधेय राजा हैं ।

विश्वस्यामी—आपस्तम्बादि कथितसूत्रके एक भाष्यकार । पुरुषोत्तमने स्वकृत गोत्रप्रवरमञ्जरी ग्रन्थमें इनका मत उद्धृत किया है ।

विश्वह (स० अर्थ०) प्रत्यह, रोज रोज ।

(ऋक् १।११।३)

विश्वहा (स० अर्थ०) विश्वह देखो ।

विश्वहृत् (सं० लि०) १ सर्वास्वापहारो । (पु०) २ शिव ।

विश्वहेतु (सं० पु०) १ जगत् कारण, जगत्का निदान या आदिकारण । २ मन्त्रो विषयोंके निमित्त या हेतु । ३ विष्णु ।

विश्या (सं० स्त्री०) विश-कन् स्त्रियां टाप् । १ अतिविषय, अतीस । २ शताघरो, शतावर । ३ पिपुल, पीपर । ४ शुण्ठी, मोड । ५ शङ्खुनी, चोरुण्ठी । ६ दक्षकी एक कन्या जो धर्मको ग्याही थी और जिससे घृत्, सत्य, अन्तु आदि दश पुत्र उत्पन्न हुए थे । (महाभारत १६५।१२)
७ एकमान जो २० पलका होता है ।

विश्याक्ष (सं० लि०) महापुरुष, ईश्वर ।

विश्याङ्ग (सं० लि०) सर्वाङ्ग, सम्पूर्णङ्ग ।

(भयर्व० १२।३।१०)

विश्याङ्ग (सं० लि०) सर्वाङ्गसम्प्रभो । (भयर्व० ६।८।४)
विश्याचार्य—निम्नार्थो सम्प्रदायके द्वितीय गुरु, श्रीनिवा-
शाचार्यके शिष्य और पुरुषोत्तमाचार्यके गुरु ।

विश्याचो (सं० स्त्री०) विश्वश्चति अन्त्य क्त् स्त्रियां ङीप् । १ अक्षरविशेष । (शुक्लश्रुतः १५।१८) षड्गुरुराण्य
गणमेद नामाण्यथ । २ बाहुरोग विशेष । इसमें वायुके
विगड़नेसे बाहुके ऊपर उमलियो तक सारा हाथ न तो
ढीलाया जा सकता और न सिकोड़ा जा सकता है ।

चिकित्सा—पहले यथोक्त विधानसे गिराधवाप
कर पीछे वातव्याधि विहित औषधादिका प्रयोग करना
होता है । चित्तमूल, सोनाछाल, गाम्भांटी, पद्दार,
गनियारो, शालपान, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर,
बाजयंद् और उड्ड, इन सब द्रव्योंके क्याथका (सायं-
कालमें भोजनके बाद) नक्ष्य लेनेसे विश्वाची और अय-
चाहुक रोग जाता रहता है । (लि०) ३ सर्वाण्यपिनी ।
(श्रृक् १०।१३।१२) ४ सर्वाज्ञामो । (श्रृक् ७।४३।३)

विश्याजिन (सं० पु०) श्रृपिमेद । (पा ६।२।१०६ वार्षिक)
विश्यातोत (सं० लि०) विश्वके अतोत, ईश्वर ।

विश्वारमक (सं० लि०) विश्वस्वरूप, विश्वमय ।

विश्वारमा (सं० पु०) विश्वमेव आत्मा यस्य विश्वस्य
आत्मा था । १ विष्णु । २ महादेव । ३ ब्रह्मा ।

विश्याडु (सं० लि०) विश्वं सर्वं अतीति विश्व-अड-
क्त् । सर्वशुक्ल अग्नि । (श्रृक् १०।१६।६)

विश्यादि (सं० पु०) [क्यायविशेष । सोंठ, सुगंधवाला,
क्षेत्रपर्पटी, घोरणमूल, मोथा और रक्तचन्दन कुल मिला
कर २ तोला, इसे शिला पर पीसे और ८२ सेर जलमें
सिद्ध करे । जब ८१ सेर जल रह जाय, तब उतार ले ।
उंडा होने पर वारिक कपड़ेमें छान डाले । तृष्णा,
दाह और घमि संयुक्त उ्वरमें जलकी तीर पर थोडा
थोडा कर पीनेसे तृष्णादिको निवृत्ति हो उ्वर उतर
जाता है । इस काथका नाम है विश्वादि पाचन या
क्याय ।

विश्याघायस् (सं० पु०) विश्वं दधाति पालयति धा-
णिच्-असुन् पूर्वोदीर्घः । देवता । (विद्वान्वकी०)
विश्याघार (सं० पु०) जगदाघार, ब्रह्माण्ड, अष्ट,
विधातो ।

विश्याधिप (सं० पु०) जगत्पति, विश्वपति, परमेश्वर ।
(श्वेताश्वतरोप० ३।४)

विश्याधिष्ठान—अन्नपूर्णापनिषदुभाष्यके प्रणेता ।

विश्यानन्दनाथ—कौलदर्शन और कौलाचारके रचयिता ।

विश्यानर—चल्लमाचार्यका नामान्तर ।

विश्यानर (सं० पु०) १ अग्निजनक विप्रमेद । वैश्वानर
शब्द देखो । २ सर्वोके नेता । (श्रृक् ७।७६।१)

विश्यानर (सं० पु०) राजमेद ।

(क्यासरिसा० ११३।६)

विश्यायुष् (सं० लि०) विश्वपोषक धन ।

(श्रृक् १।१६।२२)

विश्यापसु (सं० लि०) देवताओंका आह्वानकारी, नाना-
रूपी अग्नि । पार्थिव, वैद्युत्, जाटरादिके भेदसे अग्नि-
के अनेकरूप हैं । (श्रृक् १।१४।१)

विश्याभू (सं० पु०) सर्वोके भावयिता इन्द्र ।

विश्वामित्र (सं० पु०) चित्तमेव मित्तमस्य । (मित्रे
चर्षे । पा ६।६।१३०) इति विश्वस्याकारस्य दीर्घः ।
एक ब्रह्मर्षि । पय्याय—गाधिज, त्रिशकुयाजी, गाधेय,
कौशिक, गाधिभू । (शब्दरत्नावली)

विश्वामित्रने क्षत्रियवंशमें जन्मग्रहण कर अपने
योगबलसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था । पीछे वे सप्त ब्रह्म
महर्षियोंमें अन्यतम गिने जाने लगे । श्रृवेदके तीसरे
मण्डलके समूचे सूक्तोंके मन्त्रोंके अभिव्यक्त महर्षि

विश्वामित्र या तद्वंशिय ऋषिगण । उक्त मण्डलोंको विशेष रूपसे पर्यवेक्षण करनेसे मालूम होता है, कि वे इषीरखके अपत्य कुशिकवंशिय (ऋक् ३१) थे । राजा कुशिक कुशके अपत्य और उन्हीं राजा कुशिकके तनय गाधि (गाधि) ऋषि थे । (ऋक् ३१६-२२ सूक्त) महाराज गाधि पुष्यवंशिय और कान्यकुब्जके नरपति कहे गये हैं । इसी कारणसे हरिवंश आदि विभिन्न पुराणा-ख्यानोमें विश्वामित्र पौरव, कौशिक, गाधिज और गाधि-नन्दन आदि नामसे अभिहित किये जाते हैं ।

ऋक्संहिताके ३५३ सूक्तमें सुदास राजाके यज्ञकी बात है । वहाँ विश्वामित्र महान् और ऋषि है, वे देव-जार और देवजूत तथा नेतृगणके उपदेशक हैं । वे जल-विशिष्ट सिन्धुके वेग अर्थात् विपाट् और शतद्रु नदीके संयोगस्थलको रोकनेमें समर्थ हुए थे । (ऋक् ३३३६ माध्य) उन्होंने जब सुदास राजाके यज्ञमें पौरो-हित्य किया था, तब इन्द्रने कुशिकवंशियोंके साथ प्रिय प्यवहार किया था । (३५३६) भोजनों तथा विरूप अङ्गिराको अपेक्षा असुर आकाशके घोर पुत्रोंने विश्वामित्रको सहस्र सुयज्ञमें (अश्वमेधमें) धन दे कर उनका जीवन वर्धित किया । (३५३७) कहा गया है, कि सुदास यज्ञमें वसिष्ठके पुत्र शक्तिने विश्वामित्रके बल और वाष्य हरण कर लिये । जमदग्निगणने सूर्यद्रुहिता वाग्देवताको छुला कर विश्वामित्रको प्रदान किया । सुदास राजाका यज्ञ समाप्त कर जब विश्वामित्र घरकी लौटे तब उन्होंने सब रथाङ्गोंको स्तव किया था ।

सिवा इसके उक्त संहितामें १०१६७४ मन्त्रोंमें विश्वामित्र और जमदग्नि द्वारा इन्द्रकी स्तुति करनेका भी उल्लेख है । वहाँ इन्द्र दोनों ऋषियोंका सम्बोधन कर

कहते हैं,—“हे विश्वामित्र और जमदग्नि । तुम लोगोंके सोम प्रस्तुत करने पर जय मैं तुम लोगोंके घर जाऊँगा तब तुम लोग मेरी खूब स्तुति करना ।” उक्त दो ऋक्षोंसे स्पष्ट समझा जाता है, कि विश्वामित्र और जमदग्नि आपसमें नैकृत्य सम्बन्धवृत्तमें आवद्ध थे ।

अथर्ववेद ४२६५ और १८३१५ मन्त्रोंमें ऋषयानि विश्वामित्रकी रक्षाके लिये स्तुति की है । इससे उनको ऋषियोंके भी स्तवनोय कहा गया है । ऐनेदेव-ब्राह्मण ६१८ और ६२० मन्त्रोंमें विश्वके मित्र विश्वामित्र-द्रुष्ट सूक्तोंके वामदेव ऋषि द्वारा पढ़नेकी बात है । शतपथब्राह्मण १४।५।६, तैत्तिरयसंहिता ३।१।७।३ और ५।२।३।४, पंचविंशब्रा० १४।३।२, शंखायनधौतसूत्र १५।२।११, आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।२ आदि वैदिक-ग्रन्थोंमें विश्वामित्रका विवरण प्रकटित है ।

विश्वामित्रके जन्मके सम्बन्धमें वर्णित है, कि महाराज गाधिके सत्यवती नामकी एक कन्या थी । गाधिने भृगुवंशिय ऋचोक नामक एक पृष्ट ऋषिके साथ उस कन्याका विवाह कर दिया । इस क्षत्रिया पत्नीके गर्भसे ब्राह्मण्यगुणशाली पुत्रप्राप्तिकी वासनासे ऋचोकने उसके लिये एक चरु तय्यार कर सत्यवतीको खानेकी दिया । इस चरुके साथ क्षत्रिय गुणशाली पुत्र गर्भमें धारण करनेके लिये उन्होंने अपनी पत्नीकी माताको माँ पेसा ही और एक पात्र चरु प्रदान किया । माताकी प्ररोचनासे वाध्य हो कर सत्यवतीने माताके चरुसे अपना चरु बदल कर भक्षण किया और उसके अनुसार माता ब्राह्मण्यगुणप्रधान विश्वामित्रकी और कन्या जमदग्निकी गर्भमें धारण किया । इस जमदग्निके औरससे समय आने पर क्षत्रगुणप्रधान परशुरामका जन्म हुआ । परशुराम देखो ।

महाभारतमें अनुशासनपर्वके चौथे अध्यायमें जो विश्वामित्रकी उत्पत्ति होनेका विवरण लिखा है, उसके साथ हरिवंशका वर्णन बहुत मिलता जुलता है ।

हरिवंशमें लिखा है, कि महाराज कुशके कुशिक और कुशनाम आदि चार पुत्र हुए । कुशिकने इन्द्रसदृश पुत्रकी कामनासे हजार वर्षे कठोर तपस्या की । इन्द्रने इस तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर अंशरूपसे कुशिकपत्नी

* मूलमें “इमे भोजाः गाधिरसः विरुपाः दिव पुत्रासः बभूवुः स्व वीराः ।” यह सब पाठ है । वायपने भोजाः अर्णोंमें ‘वीरायाः क्षत्रियाः’ किया है ।

† ऋक् ३१३।१५ मन्त्रमें विश्वामित्रके वामदेवता प्राप्तिकी बात लिखी है । इसके साथ हरिश्चन्द्रापाल्यानेक विश्वामित्रकी विद्यावाचनाका सम्बन्ध है क्या ?

‡ ऋक् ३।५३।७

पौरकुटसीके गर्भसे जन्मग्रहण किया । इस पुत्रका नाम गाधि हुआ । गाधिके सत्यवती नामकी एक परम रूपवती कन्या हुई । गाधिने इस सुशीला कन्याको भृगुपुत्र ऋचीकको सम्प्रदान किया ।

ऋचीकने भार्याके प्रति प्रसन्न हो कर अपने और महाराज गाधिके पुत्रको कामनासे चर प्रस्तुत किया और अपनी पत्नी सत्यवतीको सम्बोधन कर कहा—कल्याणि ! ये दो भाग चर मैंने तय्यार किये हैं । इसमें यह चर तुम भोजन करो, दूसरा चर अपनी माताको दे देना । इस चरको भोजन करनेसे तुम्हारी माताको क्षत्रियप्रधान एक तेजस्वी पुत्र होगा । वह पुत्र सारे भरिभण्डलको पराभूत करनेमें समर्थ होगा । तुम्हारे गर्भमें भी द्विजश्रेष्ठ धैर्यशाली एक महातपाः पुत्र जन्मग्रहण करेगा ।

भृगुजन्मन ऋचीक भार्यासे यह बात कह कर नित्य-तपस्वयार्थ अरण्यमें चले गये । इसी समयमें गाधि भी तोर्णद्वारन प्रसङ्गमें कन्याको देखनेके लिये ऋचीकाश्रममें उपस्थित हुए । इधर सत्यवतीने ऋषिप्रदत्त चरको ले यत्नपूर्वक माताके हाथमें दे दिया । दैवयोगसे माताने चर भोजन करनेमें गड़बड़ी कर दी । पुत्रको चर स्वयं भोजन कर लिया और अपना चर पुत्रो को दे दिया ।

इसके बाद सत्यवतीने क्षत्रियान्तकर गर्भधारण किया । ऋचीकने योगबलसे यह बात जान ली और पत्नीसे कहा, 'भद्र ! चरका विपर्ण्य हुआ है । तुम अपनी माता द्वारा वञ्चिता हुई हो । तुम्हारे गर्भमें अति दुर्दांत हिं'स्रप्रकृति एक पुत्र पैदा होगा । और जो तुम्हारा भाई तुम्हारी माताके गर्भमें जन्म लेगा, वह ब्रह्मपरायण तपस्वानुक्त होगा । क्योंकि उसमें मैंने समस्त वेद निहित किया है ।' सत्यवतीने यह बात सुन कर नितान्त व्यथित हो कर अनेक अनुनय विनय कर स्वामीसे कहा, 'भगवन् ! आप यदि इच्छा करें, तो त्रिलोककी सृष्टि कर सकते हैं, आप ऐसा उपाय करें जिससे मेरे गर्भसे वैसा दुर्दान्त सन्तान पैदा न हो ।' इस पर ऋचीकने कहा, कि ऐसा असम्भव है । यह सुन कर सत्यवतीने कहा, 'यदि आप अग्न्या न करना चाहें, तो इतना अवश्य कौजिये, कि मेरा पुत्र न हो कर मेरा पीत हो

वैसा गुणशाली हो ।' देवीके वाक्य पर प्रसन्न हो कर ऋषिने कहा—मेरे लिये पुत्र और पीतमें कोई विशेषता नहीं । अतः जो तुमने कहा है, वही होगा । पीछे समय आने पर उस गर्भसे जन्मदग्निका जन्म हुआ । इन जन्मदग्निके पुत्र ही क्षत्रियकुन्तान्तकारी परशुराम हैं । इसके बाद सत्यवती महानदी रूपमें परिणत हो कर जगत्में कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुईं ।

इधर कुशिकनन्दन गाधिके विश्वामित्र नामके एक पुत्र हुआ । विश्वामित्र तपस्या, विद्या और शमगुण द्वारा ब्रह्मर्षिको समता लाभ कर अन्तमें सप्तर्षियोंमें गिने गये । विश्वामित्रका और एक नाम विश्वरथ है । महर्षि विश्वामित्रके देवरात, देवश्रवा, कति, हिरण्यवा, सांघति, गालव, सुदुगल, मधुच्छन्दा, जय, देवल, अष्टक, कच्छप, हारीत आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए । इन पुत्रों द्वारा ही महात्मा कुशिकका वंश विशेषरूपसे विख्यात हुआ । सिवा इनके विश्वामित्रके नारायण और नर नामके दो और पुत्र थे । इस वंशमें बहुतेरे ऋषियोंने जन्मग्रहण किये थे । पुरुवंशीय महात्माओंके साथ कुशिक वंशीय ब्रह्मर्षियोंका वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था । इनलिये दोनों वंशसे ब्राह्मणोंके साथ क्षत्रियोंका सम्बन्ध चिरप्रसिद्ध हो रहा है ।

विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशोक सबसे बड़े हैं । ये शुनःशोक मार्गव होने पर भी कौशिकतय प्राप्त हुए थे । ये राजा हरिश्चन्द्रके यक्षमें पशुरूपसे नियोजित हुए थे । किन्तु देवताओंने फिर विश्वामित्रके हाथ अर्पण किया । इसीलिये इनका नाम देवरात हुआ । (हरि० २७ अ०)

कालिकापुराणमें महर्षि विश्वामित्रका उत्पत्ति-विवरण प्रायः ऐसा ही वर्णित हुआ है । कुछ विशेषता है तो यह है, कि महर्षि भृगुने पुत्र-यधूको वर ग्रहण करनेके लिये कहा । इस पर स्त्रुया सत्यवतीने वेदवेदान्तपारंग पुत्रको प्रार्थना की । इस पर महर्षिने निश्वास परित्याग किया । इस निश्वाससे वायुके साथ दो तरहके चर उत्पन्न हुए । इन चरोंमें सत्यवतीको एक और दूसरा उसकी माताको ले लेनेकी बात कही । पीछे टैवक्रमसे चरके विपर्ण्य होनेसे पुत्रोंमें भी विपर्ण्य हुआ ।

महर्षि विश्वामित्रने क्षत्रिय हो कर जिस तरह ऋषित्व और ब्राह्मणत्व लाभ किया था, उसका विषय रामायणमें ऐसा लिखा है,—कुश नामक एक सार्वभौम राजा थे, उनके पुत्र कुशनाभ हुए। कुशनाभके नाथि नामक एक पुत्र उत्पन्न हुए। वे बहुत विख्यात हुए। विश्वामित्र उन्हींके पुत्र हैं। वे शौर्य और वीर्यमें सब राजाओंमें अग्र थे और कई सहस्र वर्ष तक पृथ्वीका पालन करते रहे।

एक बार विश्वामित्र बहुत सैन्य सामन्त ले कर पृथ्वी पर्यटन करनेमें प्रवृत्त हुए और घूमते-घूमते बहुतेरे नगर, ग्राम, राष्ट्र, सरित्, महागिरि आदि भ्रमण कर कालक्रमसे वसिष्ठाश्रम पहुँचे। यह आश्रम दूसरे ब्राह्मणलोकके समान और इस आश्रमके सभी लोग समगुणान्वित थे। मानो तपस्या मूर्त्तिमती हो कर इस आश्रमके चारों ओर विराज रही थी। विश्वामित्र इस आश्रमको देख कर बड़े प्रसन्न हुए और वसिष्ठके समीप जा कर प्रणाम किया। वसिष्ठने भी उनकी यथायोग्य सम्बर्द्धना कर कहा, 'राजन्! मैं चाहता हूँ, कि आपका इन सैन्यसामन्तोंके साथ यथाविधि अतिथि-सत्कार करूँ। आप स्वीकार करें, क्योंकि आप अतिथिश्रेष्ठ हैं, इसलिये आप पूजनीय हैं।'

वसिष्ठकी बात सुन कर विश्वामित्रने कहा,—भगवन्! आपके सत्कारानुकूल वाक्यसे हो मैं विशेष सन्तुष्ट हो गया। आप प्रसन्न हों, अब मैं जाऊँ। विश्वामित्रके इस प्रकार कहने पर वसिष्ठजीने फिर बारंबार निमन्त्रण स्वीकार कर लेनेका अनुरोध किया। अन्तमें विश्वामित्रने उनके विशेष आग्रह करने पर 'तथास्तु' कह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

वसिष्ठने तब राजाके प्रति प्रसन्न हो चित्रवर्णा होमधेनु शबलाको सम्योचन कर कहा,—शबले! राजा विश्वामित्र ससैन्य मेरे अतिथि हुए हैं। तुम आज मेरे लिये उनके सैन्योंमें छः तरहके रसोंमें जो जिस रसके इच्छुक हों, उनके लिये उसी रसकी सृष्टि करो।

शबलाने वसिष्ठके आह्वानुसार सबके इच्छानुसंग कर्मनीय भोजन-सामग्री तय्यार कर दी। उसने बहुतेरे इन्ध, मधु, लाज, मीरिय मद्य तथा अग्न्याय उत्तम मद्य और

नाना प्रकारके उत्तम खाद्यकी सृष्टि की। ये सब खाद्य वस्तुएँ चाँदीके पात्रोंमें सबके सामने रखी गईं। इससे विश्वामित्र तथा उनके सैनिक परम सन्तुष्ट हुए।

वसिष्ठके इस राजदुर्लभ सत्कारसे प्रसन्न हो कर विश्वामित्रने उनसे कहा,—ब्राह्मन्! मैं आपसे अनुरोध करता हूँ, आप मेरे इस अनुरोधकी रक्षा करें। मैं आपको एक लाख गाय देता हूँ, आप उन गायोंके परिवर्त्तनमें मुझे शबलाको प्रदान करें। शबला रत्नस्वरूपा है, राजा भी रत्नके अधिकारी हैं। अतएव न्यायानुसार यह गाय मुझे हो प्राप्त होनी चाहिये। अतः आप मुझे इसे प्रदान करें।

विश्वामित्रकी बात सुन कर वसिष्ठने कहा, 'राजन्! एक अरब गाय अथवा चाँदीका पहाड़ देने पर भी शबलाको मैं दे न सकूँगा। क्योंकि यह शबला आत्मवान् व्यक्तिकी कीर्त्तिकी तरह मेरी सहचरी है। अतः इसका परित्याग करना मेरे लिये उचित नहीं। विशेषतः हृद्य, कषय, जोषन, अग्निहोत्र, बलि, होम और विविध विद्या मेरे जो कुछ हैं, इस शबलाके अधीन ही हैं और तो क्या, मैं शपथ खा कर कहता हूँ, कि यह शबला ही मेरी सर्वस्व है और सर्वैश्वर्यकी निदान है। अतएव राजन्! मैं किसी तरह तुम्हें शबला प्रदान न करूँगा।'

विश्वामित्रने जब देखा, कि वसिष्ठने किसी तरह शबलाको नहीं दिया, तब बलपूर्वक नीकरोँसे पकड़वाना चाहा। इस समय शबलाने अत्यन्त शोक सन्तप्त हृदयसे वसिष्ठके पास जा कर कहा,—भगवन्! मैंने कौन-सा अपराध किया है, कि आप मुझें त्याग रहे हैं। आप अत्यन्त भक्तिपरायण सम्भक्त भी परित्याग करने पर उद्यत हुए? वसिष्ठने शबलाकी यह बात सुन कर दुःखितां कन्याकी तरह शोक-सन्तप्तहृदया शबलासे कहा,—शबले! तुमने मेरा कुछ भी अपराध नहीं किया और न मैं तुमको त्याग ही रहा हूँ। राजा बलवान् है, वह बलपूर्वक तुमको ले जाना चाहता है।

शबलाने वसिष्ठकी बात सुन कर कहा,—ब्राह्मन्! मनीषियोंका कहना है, कि ब्राह्मणोंसे क्षत्रियोंकी शक्ति कम है। ब्राह्मण ही बलवान् हैं। ब्राह्मणोंका विश्व-

बल क्षत्रिय-बलकी अपेक्षा अत्यन्त अधिक है। सुनरां आप अप्रमेय बलसम्पन्न हैं। आपके बलको कोई भी सहनेमें समर्थ नहीं हो सकता। आप मुझको नियुक्त कीजिये, मैं अभी इस दुरात्मा विश्वामित्रका वर्ण चूर्ण करती हूँ। वसिष्ठने शबलाको इस ज्ञानगर्भ भरी बातों को सुन कर आश्चर्यत हृदयमें उनसे कहा, 'तुमपर सैन्धविनाशक सैन्यको सृष्टि करो।' शबला उनकी यह बात सुन कर हम्भा हम्भा रय करने लगी। उसके इस रवसे सैकड़ों पहय सैन्योंको सृष्टि हुई। उन सैन्योंके विश्वामित्रके साथ युद्धमें पराजित होने पर शबलाने हुड्काररवसे कम्बोज, स्तनदेशसे बर्बर, योनि-देशसे यवन और रोम कूपोंसे हारीत और किरात आदि भलेच्छोंकी सृष्टि की। इन्होंने थोड़े ही समयमें विश्वामित्रके हाथों, घोड़े, रथ और पैदल सैन्यका विनाश कर डाला। वसिष्ठ द्वारा बहूनेरे सैन्योंका विनाश होता देख विश्वामित्र एक सौ पुत्रोंके साथ तरह तरहके अन्न शस्त्र ले वसिष्ठके प्रति दीड़े। यह देख शबलाने एक ही हुड्कारमें उनको दग्ध कर डाला।

इस तरह विश्वामित्रके सैन्य आदि विनष्ट हो जाने पर उन्होंने हतबल और हतोत्साह हो कर समग्र धनुर्वेद लाभ करनेके लिये हिमालयके पार्श्वदेशमें जा महादेयकी कठोर तपस्या करने लगे। महादेयने उनकी तपस्यासे संतुष्ट हो उनकी समग्र मंत्र और रहस्यके साथ सह्योपाङ्ग धनुर्वेद प्रदान किया।

विश्वामित्र महादेयसे समग्र धनुर्वेद लाभ कर अतिशय दर्पित हो कर वसिष्ठके आश्रममें जा उन पर कई तरहके अन्न छोड़ने लगे। इन अन्नोंसे तपोधन मानेो दग्ध होने लगा और आश्रमके सभी चारों ओर भागने पर उड़यत हुए। उस समय वसिष्ठने कालदृष्टकी तरह ब्रह्मदृष्ट ले कर कहा, 'दे क्षत्रियाधम विश्वामित्र ! तू क्षत्रिय-बलसे ब्रह्मबलको पराजित करनेका अभिलाषी हुआ है; किन्तु तू देख, इस एक ब्रह्मबलसे तेरा सारा क्षत्रियबल नाश होगा।' इसके बाद वसिष्ठके ब्रह्मदृष्टके प्रभावसे विश्वामित्रके महाघोर अन्न, जलद्वारा अग्नि की प्रगान्तिकी तरह क्षणमरमें ही सम्पूर्णतः निराकृत हुए।

इस तरह निपटरीत हो विश्वामित्रने वसिष्ठसे कहा

धा—“धिक्बलम् क्षत्रियबलम्, ब्रह्मतेजो बलो बलम्, एकेन ब्रह्मदृष्टेन ...” क्षत्रिय बलको धिक्कार है। ब्रह्मबल ही यथार्थ बल है। जिस तपसे यह ब्रह्मबल लाभ किया जाता है, मैं वही तपस्या करूँगा। यह स्थिर कर विश्वामित्र पत्नीके साथ दक्षिणकी ओर जा कर कठोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। इसी समय-उनके तीन पुत्र लाभ हुए—हविष्यन्द, मधुष्यन्द और दूदनेत्र।

इस तरह घोर तपस्यामें निरत रह कर जब उन्होंने एक हजार वर्ष बिता दिया, तब सर्गलोकपितामह ब्रह्माने उनके समीप आ कर कहा,—विश्वामित्र ! तुमने जैसी कठोर तपस्या की है, उससे तुम मेरे घरसे राजर्षि पद लाभ करोगे। यह कह कर ब्रह्मा अपने लोकको चले गये। विश्वामित्र ब्रह्माका यह वर सुन कर विशेष मर्माहत हुए और सोचने लगे, कि मेरे इस तपोऽनुष्ठानसे कुछ भी फल नहीं हुआ। अब मैं जिससे ब्राह्मणत्व लाभ कर सकूँ, ऐसी दुश्चर तपस्या करूँगा। मन ही मन यह स्थिर कर फिर यत्नके साथ तपस्या करनेमें लग गये।

इसी समय इक्ष्वाकुवंशोय राजा त्रिशङ्कु सगरोर स्वर्ग जानेको कामनासे यह करनेके लिये वसिष्ठकी शरणमें आये। वसिष्ठने उनकी प्रत्याख्यान किया। पोछे त्रिशङ्कु उनके पुत्रोंके शरणार्थी हुए; किन्तु उन्होंने भी उनका प्रत्याख्यान किया। वर उन्होंने त्रिशङ्कुको चाण्डालप्रातिका शाप दे दिया। उनके शापसे त्रिशङ्कु चाण्डालत्व प्राप्त कर विश्वामित्रके पास गये।

विश्वामित्रने उनकी ऐसी वृशामें देख कहा,—‘राजन् ! मैं दिव्यचक्षुसे देख रहा हूँ, कि आप अयोध्याके राजा त्रिशङ्कु हैं। आप शापवश चाण्डाल हुए हैं। आप अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिये। मैं आपका श्रेयसाधन करूँगा।’ उस समय चाण्डालरूपो त्रिशङ्कुने हाथ जोड़ कर कहा—‘मेरी अभिलाषा है, कि मैं ऐसा यज्ञ करूँ जिससे सशरीर स्वर्ग गमन कर सकूँ। युधदेव वसिष्ठ और उनके पुत्रोंके पास गया था; किन्तु उन्होंने मेरा प्रत्याख्यान किया और अभिशाप दिया है, उसीके फलसे आज मैं इस अवस्थामें परिणत हुआ हूँ। अब मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये।’

विश्वामित्रने जब त्रिशङ्कुके लिये यज्ञानुष्ठान किया, तब वसिष्ठके पुत्रोंने उन पर दोषारोप किया। पोछे जब यह बात विश्वामित्रको मालूम हुई, तब उन्होंने वसिष्ठके पुत्रोंको यह शाप दिया, कि जब बिना दोषके मुझ पर उन्होंने दोषारोप किया है, तब थोड़े ही दिनमें वे सब मृत्युमुलममें पतित हों और परजन्ममें कुत्तका मांस खानेवाले तथा मुर्दोंके चरख आहरण करनेवाले चाण्डाल (डोम) हों। विश्वामित्रके इस शापसे वसिष्ठके पुत्रोंने उक्त प्रकारकी दुर्गति पाई।

इधर राजा त्रिशङ्कुने विश्वामित्रके यज्ञफलसे स्वर्गारोहण किया। किन्तु इन्द्रने, स्वर्गसे उनके गिरा दिया। इस पर क्रोधसे वे अधीर हो उठे और विश्वामित्रने दूसरे स्वर्गको सृष्टिकी अभिलाषा कर दूसरे सप्तर्षि मण्डल, सत्तारहस नक्षत्र आदिकी सृष्टि की। त्रिशङ्कु उसी स्थानमें आज तक वास करते हैं*।

त्रिशङ्कु शब्दमें विशेष विवरण देखो।

पोछे विश्वामित्रने देखा कि, इच्छानुसार तपोऽनुष्ठान हो नहीं रहा है और तपमें विघ्न हो रहा है, तो दक्षिणसे चले आये। इसके बाद पश्चिमकी ओर पुष्कर तोरवत्ता विशाल तपोवनमें जा शीघ्र ही ब्राह्मणत्व प्राप्तिके लिये विश्वामित्र दुश्चर तपस्या करने लगे।

* मनु १०।१०८ विश्वामित्र द्वारा चाण्डालके हाथसे कुत्तकी जंघा भक्षणका प्रस्ताव दिखाई देता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें भी इस घटनाका उल्लेख दिखाई देता है। किन्तु विष्णुपुराण ४।३।१३-१४से मालूम किया जा सकता है, कि द्वादशवर्षीय अनाहृष्टिमें विश्वामित्र कुक्कुर भक्षण करेगे। इस आशङ्काले चाण्डालरूपी त्रिशङ्कुने उनके और उनके परिवारिके लिये गन्नातीरके न्यग्नाथ वृक्षकी शाखामें मृग मांस छटकवा रखा। उची मांससे परितृप्त हो कर विश्वामित्रने राजाको स्वर्गमें स्थापित किया था। देवीभागवत ७।१३ अष्टम्यायके अनुसार विश्वामित्र दुर्मिक्षके समय जब चाण्डालके घर श्वमांस भक्षणके लिये गये, तब उनकी पत्नी और पुत्रोंने राजर्षि सत्यमत रक्षित मृग बराह आदिका मांस भक्षण कर जीवनरक्षा की थी। उची कृतशतासे विश्वामित्रने राजाके उद्धारका उपाय किया था।

इस समय राजा अभ्यरीपने एक यज्ञ अनुष्ठान किया। इन्द्रने यज्ञके पशुका अपहरण कर लिया। यज्ञपशु अपहृत होने पर अभ्यरीपने पशुके बदले नर-बलि देना निश्चय कर जब ऋचीकके पुत्र शुनाशोकका खरीद कर ले आये, तब इस पर वह विश्वामित्रकी शरणमें गया। विश्वामित्रने इसकी प्राण-रक्षाके लिये मधुच्छन्दा प्रभृति अपने पुत्रोंसे कहा, कि तुम लोग सभी धर्मपरायण हो। यह मुनि-पुत्र मेरी शरणमें आया है, अतः तुम लोग इसके प्राण बचा कर मेरा मित्र कार्य करो। तुममें कोई स्वयं इस नर-बलिके लिये तैय्यार हो जाना जिससे उसका यह पूरा हो और इस मुनिबालककी प्राणरक्षा हो। पुत्रोंने पिताकी ऐसी बात सुन कर कहा, कि अपने पुत्रोंको परिहाराग कर परायेकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, यह अत्यन्त अन्याय और विगर्हित काण्ड है। विश्वामित्र ने पुत्रोंकी ऐसी बात सुन क्रोधित हो शाप दिया, कि तुम लोग भी वसिष्ठपुत्रोंकी तरह डोम हो।

पैतरेयब्राह्मणसे मालूम होता है, कि विश्वामित्रके एक सौ पुत्र थे। उन्होंने अपने भांजा शुनाशोकको ज्येष्ठ पुत्रका स्थान देनेकी गर्जसे अपने सब पुत्रोंकी अभिमति मांगी। इस पर छोटे पचास पुत्रोंने उनके अनुकूल सम्मति दी। इस पर प्रसन्न हो कर उन्होंने उन पुत्रोंको वर दिया कि "तुम गाय और सन्तान सन्ततिते मेरे पूरे रहो।" किन्तु शान्तिम ५० पुत्रोंकी अनुकूल सम्मति न पानेसे क्रुद्ध हो शाप दिया, कि "तुम लोगोंका वंशज पृथ्वीके दक्षिणांशमें जा कर बसे।" इसके अनुसार उनके सन्तान अन्त्यज और डाकूके रूपमें गिने गये। वे ही अन्न, पुण्ड्र, शय्यर, पुलिन्द और मूतिव कहलाते हैं। (ऐतरेयब्रा० ७।१८)

इसके बाद शरणगत शुनाशोकसे विश्वामित्रने कहा, कि अभ्यरीपके यज्ञमें बलि देनेके लिये जब तुम्हारे गलेमें रक्तमाल पहनाया जाये और तुम्हारी वेद रक्तानुलेपित कर चण्णव-यूपमें पाशबन्धन कर दी जाय, तब तुम शान्ति मग्नसे अन्निका स्तव तथा यह द्विष्टगगाया गान करना। इससे तुम्हें सिद्धि मिलेगी। शुनाशोकने यथासमय वैसा ही अनुष्ठान किया। अन्निके प्रसादसे उनकी दोषोद्युमाप्ति और राजाकी भी यज्ञसमाप्ति हुई।

इष्टर विश्वामित्रने फिर तपस्यामें एक सहस्र वर्ष विताया। ब्रह्माने देवों के साथ उनके यहां आ कर उनसे कहा,—“तुमने स्वयं अर्जित तपोबलसे आज ऋषित्व लाभ किया।” विश्वामित्रको यह वर प्रदान कर ब्रह्मा अपने लोकको चले गये। विश्वामित्रने सोचा, कि मैं अब तक भी ब्राह्मणत्व लाभ नहीं कर सका। क्षिप्र मनसे फिर कठोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए।

रामायण और महाभारतमें मेनकाके साथ विश्वामित्रके रति करनेकी बात लिखी है। विश्वामित्रके उग्र योगसाधना देख देवता अत्यन्त भयभीत हुए और इन्द्रने उनका योग भङ्ग करनेके लिये मेनका अप्सराको उनके निकट भेजा। अप्सरा विश्वामित्रके योग भङ्ग कर अपने हाव-भावमें उनकी रिक्तानेमें समर्पण हुई। मेनकाके साथ विश्वामित्रने द्वादश वर्ष तक सुखसे विता दिया और उसीके परिणामसे मेनकाके गर्भसे शकुन्तलाका जन्म हुआ। अपने इस चित्तचाञ्चल्यके लिये विश्वामित्र, पीछे अत्यन्त क्रोध हुए, और धीरतापूर्वक मेनकाको विदा कर उत्तर-दिशाकी हिमगिरिके मूलप्रदेशमें चले गये। यहां रह कर उन्होंने एक हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की।

पीछे विश्वामित्र यह स्थान तपोविघ्नकर समझ दिवाल्य वर्णत पर कौशिकी नदीके किनारे जा कामजयके लिये अति कठोर तपस्यमें प्रवृत्त हुए। इस तरह उनके सहस्र सहस्र वर्ष बीत गये। उस समय ऋषियों और देवताओंका भय हुआ। अतः वे ब्रह्माके पास गये। उन्होंने जा कर ब्रह्मासे कहा, कि विश्वामित्रकी तपस्यासे हम लोगोंको बड़ा भय हुआ है। आप उसको शीघ्र वर दे कर हमें अभय कौजिये। देवताओंको बात सुन कर ब्रह्माने तुरन्त विश्वामित्रके पान जा कर कहा, कि “वत्स! तुम्हारे तपसे मैं बहुत संस्तुष्ट हुआ हूँ। अतएव तुमको मैं ऋषिमुख्यत्व प्रदान करता हूँ।”

इस तरह वर पानेके बाद विश्वामित्र सोचने लगे, कि मैं इस वार भी ब्राह्मणत्व लाभ न कर सका। अतः उन्होंने पितामहसे कहा—“आपने जब मुझको शुभकर्मलाभ अर्थात् कह कर सम्बोधन नहीं किया, तब मैंने समझ लिया, कि आज भी मैं जितेन्द्रिय हो न सका हूँ। अतः

एव ब्राह्मण्यलाभका भी अधिकारी नहीं।” ब्रह्माने कहा तुम अब भी जितेन्द्रिय नहीं हो सके हो, जितेन्द्रिय बननेकी चेष्टा करो। यह कह ब्रह्मा अपने धामको चले गये। पीछे विश्वामित्र ऊटुर्ध्ववाहु, निरावलम्बन और वायुमुचकू हा कर तपस्या करने लगे।

विश्वामित्रको इस तरह कठोर तपस्या देख इन्द्रको बड़ा भय हुआ। उन्होंने देवताओंसे परामर्श कर इस वार तपस्या भङ्ग करनेके लिये रम्मा नाम्नी अप्सराको भेजा। रम्माने आ कर उनके तपस्याभङ्गके लिये बहु-तेरे यत्न किये, किन्तु किसी तरह उसने विश्वामित्रके मनमें विकार उत्पन्न न कर पाया।

विश्वामित्रने रम्माका अभिप्राय समझ कर क्रोधित हो अभिशाप दिया, “तुम सहस्र वर्ष तक पापाणमयी हो कर रहेगो।” इसी कोषसे विश्वामित्रकी तपस्या विनष्ट हुई। अब उन्होंने मन हो मन स्थिर किया, कि मैं कभी क्रुद्ध न होऊंगा और किसी तरह किसीको भी शाप न दूंगा। मैं सैकड़ों वर्ष तक श्वासरुद्ध कर तपश्चरण करूंगा। जितने दिनों तक मैं ब्राह्मण्य लाभ न कर सकूँ उतने दिन तपस्या द्वारा शरीर पात करूंगा।

विश्वामित्रने इस स्थानको तपोविघ्नकर समझ परिव्राम्य कर पूर्वादिशाको गमन किया और वहाँ सहस्र वर्षायापी अत्युत्तम मीनप्रत प्रदण कर दुश्चर तपस्यामें निरत हुए। इस सहस्र वर्ष वितने पर जब विश्वामित्र अन्न भोजन करनेको उद्यत हुए, तब इन्द्रने ब्राह्मणरूप धारण कर उस अन्नको पानेकी प्रार्थना को। विश्वामित्र मानी थे; इससे उन्होंने वाक्यका प्रयोग न कर अन्नको उस ब्राह्मणरूपधारी इन्द्रको दे दिया।

विश्वामित्र फिर मोनावस्थामें ही निश्वासका रोषकर तपस्यामें निरत हुए। इससे उनके मस्तकसे धूपके साथ अग्नि निकलने लगी और इसके द्वारा त्रिभुवन अग्निसन्ततकी तरह क्लृप्त हो उठा। सारा जगत् उनकी तपस्यासे अस्थिर हो उठा। देव या ऋषि समीने अस्थिर हो ब्रह्माके पास जा कर कहा, “भगवन्! विश्वामित्रके तपस्यासे निवृत्त न होने पर शीघ्र ही संसार

चिनट होगा। आप उनकी उनके अभिलषित ब्राह्मणत्व पर प्रदान कर जगत्का मङ्गल कीजिये।”

ब्रह्माने फिर विश्वामित्रके यहां जा कर उनसे कहा,—“विश्वामित्र ! तुमने आज तपोबलसे ब्राह्मणत्व लाभ किया, अब तुम्हारा मङ्गल हो।” इसके बाद चिराभिलषित वर पा कर विश्वामित्र परम प्रसन्न हो कर ब्रह्मासे कहने लगे, “भगवन् ! यदि आज मैं ब्राह्मण्य और दीर्घायु लाभ करनेमें समर्थ हुआ, तो चतुर्वेद, ओङ्कार और वपट्टकारमें ब्राह्मणकी तरह मेरा अधिकार हो तथा ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ मुझको ब्रह्मर्षि स्वीकार करें।”

विश्वामित्रके अन्तिम प्रस्तावकी मीमांसाके लिये देवताओंने वसिष्ठके पास जा कर उन्हें सन्तुष्ट किया। देवताओंके अनुरोधसे प्रसन्न हो वसिष्ठने विश्वामित्रके साथ मिलता स्थापित की और उनके ब्रह्मर्षि कह कर ब्राह्मणत्व स्वीकार किया। दूसरी ओर विश्वामित्रने भी ब्राह्मण्यविभय प्राप्त कर वसिष्ठका यथोचित सम्मान किया*। (रामायण १।५०-७० सर्ग)

इसके सिवा महाभारतमें दूसरी जगह लिखा है, कि विश्वामित्रने सरस्वती नदीके आशा दी, कि तुम वसिष्ठको मेरे यहां ला दो, मैं उसको मार डालूंगा। सरस्वती विश्वामित्रकी अवहेलना कर अन्य पथसे प्रवाहित होने लगी। यह देख विश्वामित्रने सरस्वतीके जलको रक्तवर्ण बना दिया। सरस्वती वसिष्ठके विश्वामित्रके निकटसे दूर ले गई।

महर्षि विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि वसिष्ठने बहुत दिनों तक जो प्रतियोगिता चल रही थी, वह क्षत्रिय-जीवनमें ब्राह्मण्यविरोधका श्रेष्ठतम परिचय है। इस घटनाके बहुतसे अपने अपने समाजके श्रेष्ठ प्रति-पादनार्थ ब्राह्मण और क्षत्रियका विरोध अनुमान करते हैं। ऋग्वेदमें भी इसका वारम्बार उल्लेख है। ऋग्वेदमें दोनों ऋषियोंका ही श्रेष्ठत्व निरूपित हुआ है। विश्वामित्र तृतीय मण्डलके नायत्रीयुक्त मन्त्रोंके द्रष्टा और वसिष्ठ सप्तममण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहे जाते हैं।

ये दोनों ही विभिन्न समयमें महाराज सुदासके कुल-पुरोहित थे। यह परोहित्य पद उस समयके राजा और ऋषि-समाजमें विशेष गौरव-जनक और शक्ति-साधक था। इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

समय आने पर यह परस्परों आन्तरिक विद्वेषके कारण परस्परोंके अभिशाप दे कर दोनों आपसमें शत्रुता करने लगे। वसिष्ठने निश्वास त्याग कर विश्वामित्रके सौ पुत्रोंको मार डाला। बदलेमें वसिष्ठके सौ पुत्रोंको विश्वामित्रने भी शाप दे कर मस्मीभूत कर दिया। पुराणोंमें यह घटना दूसरी तरहसे वर्णित की गई है। विश्वामित्रने योगबलसे एक नरघातक राक्षस को राजा कलनापपादकी देहमें प्रवेश करा कर उसके द्वारा वसिष्ठके सौ पुत्रोंको भक्षण करा दिया। विश्वामित्रके शापसे ये सौ पुत्र क्रमान्वसे सात सौ जन्म पतित चाण्डाल योनिमें जन्मते रहे।

पेत्रेयब्राह्मणमें लिखा है, कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा हरिश्चन्द्रने अपुत्रककी अवस्थामें एक बार प्रतिज्ञा की थी, कि जब मेरे पुत्र होगा, तो मैं वरुणदेवताको बलि-प्रदान करूंगा। समय आने पर राजा माहर्षको एक पुत्ररत्न लाभ हुआ। राजाने उसका रोहित नाम रखा। कुमार दिनों दिन चन्द्रकलाकी तरह बढ़ने लगा। कई तरहके छलसे राजा बहुत दिनों तक प्रतिज्ञा रक्षामें निश्चेष्ट रहे। श्वर रोहित पितृप्रतिज्ञा रक्षासे आत्म-वलिदान करना अस्वीकार कर छः वर्ष तक जंगल जंगल घूमता रहा। कालक्रमसे अजीमर्चा नामक एक ऋषिसे उनकी भेंट हो गई। उन्होंने १०० गो दे कर उनके बदलेमें ऋषिके मध्यम पुत्र शुनशेफकी खरीद लिया। रोहितने शुनशेफको पिताके सम्मुख लाड़ा कर दिया। वरुणदेवने रोहितके बदलेमें शुनशेफको ग्रहण करनेकी स्वीकार कर लिया। ऋषितनय वेदमन्त्रोंसे स्तुति कर दोनोंके सन्तुष्ट कर आत्मरक्षा करनेमें कृतकार्य हुए और विश्वामित्रने उसको ग्रहण किया। हरिश्चन्द्रके इस यज्ञमें विश्वामित्र ऋषि पुरोहित थे।

पेत्रेयब्राह्मणके ७।१६ मन्त्रकी पढ़नेसे प्राकृत होता है, कि राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञकालमें विश्वामित्रने स्वयं होताका कार्य किया था,—“तस्य ह

* महाभारत भादिपर्व १७५ अ० और १८६ अ०में विरवा-मित्र और ऋषिके परस्पर विरोधकी बात है।

विश्वामित्रो होतासीज्जमद्विनर ध्वव्युर्वसिष्ठो ब्रह्मा-
 ऽयास्य उद्गाता तस्मा उपाश्रुताय नियोकारं न विविदुः।”
 मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि विद्यासिद्धिके लिये
 विश्वामित्रने तपस्या आरम्भ की, विद्यायें ऋषिके योग-
 बलसे आबद्ध हो मयङ्कर चीत्कार करने लगीं। इसी
 समय हरिश्चन्द्र शिकार करनेके लिये वनमें घूम रहे थे।
 अचानक खोकण्ड-से रोदनध्वनि सुन कर वे वहां
 पहुंचे। इससे विश्वामित्रकी तपस्या भङ्ग हो गई।
 उधर विद्यायें भी भाग गईं। इस पर विश्वामित्रको
 राजा पर बड़ा क्रोध हुआ।

विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा, “तुमने राजसूय
 यज्ञ किया है। मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे दक्षिणा दो।”
 उत्तरमें राजाने कहा, “मेरी स्त्री, देह, पुत्र, जीवन,
 राज्य, धन, इनमें आप जो चाहें, ले सकते हैं और
 मैं देने पर तय्यार हूँ।” उस समय विश्वामित्रने राजा-
 का राजत्व, धनविभव सभी ले लिया। ये सब लेने
 पर इस दानको दक्षिणा विश्वामित्रने राजासे मांगी।
 उनके पास अब क्या था, वे इस दक्षिणामें अपनेको
 बेचने पर बाध्य हुए। विश्वामित्रके चक्रमें पड़ कर
 नाना कष्टोंकी सहते हुए अन्तमें श्मशानमें अपनी
 पत्नी और पुत्रके साथ मिले। राजा हरिश्चन्द्रने
 इस तरह भोवण जीवन परीक्षामें उत्तीर्ण हो देवों
 और विश्वामित्रके आशीर्षाद्से स्वर्ग लाभ किया।
 (मार्कण्डेयपुराण १।७६ और देवीभागवत ७।१२-२७ अ०)

हरिश्चन्द्र शब्दमें विलुप्त विवरण देखो।

इस यज्ञमें विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको नवतानासुद
 कर दिया था, पुराणोंमें उसका पूरा पूरा उल्लेख है।
 इस प्रसङ्गमें वसिष्ठ और विश्वामित्रने परस्परको अमि-
 शाय प्रदान किया और वे उसके अनुसार दोनों ही
 पक्षोंका नाकार धारण कर धीरतर युद्ध करनेमें प्रारंभ
 हुए। ब्रह्मने मध्वस्य हो कर उनका ऋग्गडा मिटाया
 था और उनका पूर्वाकार प्रदानपूर्वक दोनोंमें मेल
 करा दिया था।

सगवान् रामचन्द्रके साथ विश्वामित्रके सम्बन्धके
 बारेमें रामायणमें बहुतेरा वाते लिखी हैं। रावण और
 उनके अधीनस्थ राक्षसोंके उत्पातोंसे ब्राह्मणोंकी रक्षाके

ल ये विश्वामित्र दशरथसे मांग कर राम लक्ष्मणको ले
 गये। उन्होंने रामके गुरुका कार्य किया था और रामको
 ले कर अधोध्या लौटे। जनकालयमें जा कर रामने
 सोताका पाणिग्रहण किया।

महाभारत उद्योगवर्ण १०५-११८ अध्यायमें विश्वामित्र-
 की ब्राह्मणत्वप्राप्तिको बात दूसरे तरहसे लिखी है।
 उक्त ग्रन्थको पढ़नेसे मालूम होता है, कि धर्मराजने
 विश्वामित्रके योगबलसे सन्तुष्ट हो कर उनका ब्राह्मणत्व
 स्वीकार किया था।

फिर सुधिष्ठिरके प्रश्न करने पर पितामह भीष्मदेवने
 अनुशासनवर्णमें कहा था,—महर्षि ऋचोकेने ही विश्वा-
 मित्रके अन्तरमें ब्रह्मबीज निषिक्त किया था।

युधिष्ठिरने भीष्मपितामहसे पूछा, “देशान्तरमनायाद्य
 कयं व ब्रह्मयोऽभवत्” अर्थात् क्या विश्वामित्रने उसी
 देशसे या दूरसे ब्रह्मत्वलाभ किया था? इस पर उन्होंने
 उत्तरमें कहा था—

“श्रुयेः प्रतादात् राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम्।

ततो ब्राह्मण्यं वातो विश्वामित्रो महत्तया।

क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः॥”

इसी बातकी प्रतिध्वनि निम्नोक्त मनुटीकामें कुछ कने
 अभिप्रेत किया है।

मनुसंहिताके ७।४२ श्लोकमें विश्वामित्रकी ब्राह्मण्य
 प्राप्तिका उल्लेख है। उक्त श्लोकके भाष्यमें कुल्लूकने
 लिखा है—

‘गाधिपुत्रो विश्वामित्रस्य क्षत्रियः सन् ते नैवदेहेन
 ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्। राज्यलाभावसरे ब्राह्मण्यप्राप्तिर
 प्रस्तुताऽपि विनयोत्कर्षार्थंमुक्ता। ईदृजोऽयं शास्त्रानु-
 ष्ठाननिषिद्धवर्जनरूपविनयोदयेन क्षत्रियोऽपि दुर्लभं ब्राह्मण्यं
 लेभे॥’ (मनु ७।४२ टीका)

ऋक्संहिताके ७वें मण्डलके मन्त्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठ
 द्वारा दृष्ट हैं। वे राजा सुदास और उनके वंशधर
 सीदास या कल्पावपादके पुरोहित थे। ७।१।२२ २५
 मन्त्रोंमें उन्होंने सुदास राजाके यज्ञकी दान-स्तुति की
 है। इन्हीं सुदासके यज्ञमें वसिष्ठ और विश्वामित्र ऋषि-
 का जो विरोध हुआ था, उसका विवरण ३ मण्डलके
 मन्त्रसे भी कुछ भलकता है।

महाभारत आदिपर्व १७६ अध्यायसे हम जान सकते हैं, कि विश्वामित्रने इक्ष्वाकुवंशीय राजा कलमापपादके पौरोहित्यमें प्रती होनेकी इच्छा की; किन्तु राजाने वसिष्ठको मनोनीत किया था। इस पर विश्वामित्र क्रोधित हो कर वसिष्ठके घोर शत्रु हो उठे। एक बार राजाहा अवहेलनाके लिये वसिष्ठपुत्र शशिलऋषिको मारा। इस पर ऋषिपुत्रने अमिशाप दिया, "राजा राक्षस होगा।" विश्वामित्र इस अवसर पर राजाके शरीरमें एक राक्षस प्रवेश करा कर सिद्धउद्देश्य सिद्ध कर उस स्थानसे चले गये। पहले ही शशिल राजा द्वारा भुक्त हुए। इस तरहसे वसिष्ठके सभी पुत्र विश्वामित्रको आक्रान्ते मक्षित हुए थे।*

पुराणमें विश्वामित्रके योगबलका यद्येष्ट परिचय मिलता है। और तो क्या उन्होंने ब्रह्माकी तरह द्वितीय स्वर्गकी सृष्टि कर स्वयं महद्वय प्रचार किया है। किंबदंती है, कि नारियल, सहिजन आदि कई वृक्षकी सृष्टि विश्वामित्र द्वारा हुई थी। महर्षि विश्वामित्रका अध्ययसाय चर्मनिदर्शन है। वसिष्ठ शब्द देखो।

२ आयुर्वेद पारदर्शी सुधृतके पितः।

"अथ शानदशा विश्वामित्र प्रभृतयोऽविदन्।

अथ धन्वन्तरिः कारया काशिराजोऽय मुच्यते ॥

विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुभ सुमुक्तवान्।

वत्स ॥ वाराणसी गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभाम् ॥"

(भावप्र०)

विश्वस्मिन् नास्ति मितं यस्मात्। ३ परममित्र, सारे विश्वमें सर्वोपरि मित्र।

"जनके नाभिरामाय ददौ राज्यमकथकम्।

विश्वामित्रं पुरस्हृत्य वनवापं ततो ययौ ॥" (उद्भट)

विश्वामित्र—राहुचर नामक उद्योतिर्गन्धके प्रणेता।

विश्वामित्रनदी (सं० खी०) विश्वामित्रा नामकी नदी।
(भारत भीष्म०)

विश्वामित्रकपाल (सं० खी०) नारिकेलका खर्पर, नारियलका खोपड़ा। (रसेन्द्रशा० सं०)

विश्वामित्रमिय (सं० पु०) विश्वामित्रस्य मियः।
१ नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़। (शब्दरत्ना०)
२ कांचिक।

विश्वामृत (सं० त्रि०) विश्वममृतयसि जोधयसि।
विश्वका जीवनकारी।

विश्वायन (सं० त्रि०) १ सर्गाब्द, जो विश्वकी सब बातें जानता हो। २ सर्गांतगामी, सर्वांत विचरण करनेवाला।
३ विश्वामन्त्र, ब्रह्म।

विश्वायु (सं० त्रि०) सर्वाधिपति, सर्वोके मालिक, सभी मनुष्योंके ऊपर जिसका आधिपत्य है। (श्रृक् ४१२१२)
विश्वायुपोयस् (सं० त्रि०) जीवनकाल पर्यन्त देहादिका पोषक, यावज्जीवन उपभोग्य। (श्रृक् ११७६।६)

विश्वायुधेवस् (सं० त्रि०) सर्गांतबल, सर्गांत बलीयान्।
'अग्नि' विश्वायुधेवसं मय्यं न घाजिनं हितं।

(श्रृक् ८।४३।२५)

'विश्वायुधेवसं सर्गांतबलमग्नि' (सायण)

विश्वायुस् (सं० त्रि०) १ण गती विश्व-इ-उस् भावे णिच् (उष् २।११६) इति उस्। १ व्याप्तगमनशोऽय, सर्गांतगामी।

"पाहिसदमिद्विश्वायुः" (श्रृक् १।२७।३)

हे अग्ने विश्वायुर्ध्यातगमनः स त्वं। (सायण)

२ सर्गांमक्षक।

"विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः।" (श्रृक् १।६।७)

हे अग्ने विश्वायुः विश्वं सर्वमायुरन्नं यस्य स त्वम्।
(सायण)

विश्वाराज (सं० त्रि०) विश्वेषु राजते यः विश्वेषां राष्ट्रराजा इति वा। (वोषेव) विश्व-राज-क्विप् विश्वस्य घसुरादोः इति दीर्घ (पा ६।३।१२८) हलादावेवाच्यमन्यत्र विश्वराजावित्यादि। १ सर्वशासयिता, सबके ऊपर शासन करनेवाला। (तैत्ति० सं० १।३।२।१) विश्वराज देखो।
३ परमेश्वर।

विश्वायव (सं० पु०) एक विश्वस्तं राजानुचर।

(राजतर० ७।६।२८)

विश्वायवसं—मनोरथका पुत्र। शृङ्गार, भृङ्ग, मलङ्गार और मङ्गु नामक इनके चार विद्वान् पुत्र थे।

* कौमीतकीब्राह्मणके ४थे अध्यायमें बसिष्ठने "हतपुत्रोकी पुनः प्राप्तिकी कामना" कर बसिष्ठ यज्ञ किया। पञ्चविंशब्राह्मणमें भी बसिष्ठ 'पुत्रहंतः' कहे गये हैं।

विश्वावसु (सं० पु०) विश्वं वसु यस्य, विश्वेषां वसु यस्माद्वा। दीर्घः (पा ६।३।१२८) १ अमरावतीवासी गन्धर्वमेदु। २ विष्णु। (महाभारत ६।६।२।४५) ३ वत्सर-विशेष, एक संवत्सरका नाम। इस समय कपास मँहगो विकतो है। (खी०) ४ रात्रि, रात। (मेदिनी)

विश्वावसु कापालिक—भोजप्रबन्धोद्भूत एक कवि।
विश्वावास (सं० पु०) १ सर्वोंकी आवासभूमि, सभी लोगोंका वासस्थान। २ विश्वाश्रय, सर्वोंका आश्रय स्थान।

विश्वास (सं० पु०) विश्वस-घञ्। १ श्रद्धा। २ प्रत्यय, किसीके गुणों आदिका निश्चय होने पर उनके प्रति उत्पन्न होनेवाला मनका भाव, पतवार, यकीन। संस्कृत पर्याय—विश्रम्भ, आश्वास, आश्रम। ३ मनकी वह चारणा जो विषय या सिद्धान्त आदिकी सत्यताका पूरा पूरा प्रमाण न मिलने पर भी उसकी सत्यताके सम्बन्धमें होती है। ४ केवल अनुमानके आधार पर होनेवाला मनका दृढ़ निश्चय।

विश्वासकारक (सं० लि०) १ विश्वास करनेवाला। २ मनमें विश्वास उत्पन्न करनेवाला, जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

विश्वासघात (सं० पु०) किसीके विश्वासके विरुद्ध की हुई क्रिया, अपने पर विश्वास करनेवालेके साथ ऐसा कार्य जो उसके विश्वासके विलङ्घन विपरीत हो।

विश्वासघातक (सं० लि०) विश्वासं हन्ति या विश्वास-हन्-ण्डुल्। विश्वासनाशक, धोखेबाज। पर्याय—अप्रत्ययकारी, विश्वासहत्या, अधिश्वासो, प्रतारक, घञ्चक।

विश्वासदेवी (सं० स्त्री०) मिथिलाराजपत्नीमेदु। आप विद्यापतिकी प्रतिपालिका थीं। विद्यापति देखो।

विश्वास राय—महाभारत-सीकाकार अर्जुन मिश्रके प्रतिपालक। ये किसी गीड़ेश्वरके मन्त्री थे।

विश्वासन (सं० क्लो०) विश्वस-णिच्-ल्णुट्। विश्वास, पतवार, यकीन।

विश्वासपात्र (सं० पु०) जिस पर भरोसा किया जाय, विश्वास करनेके योग्य।

विश्वासस्थान (सं० क्लो०) विश्वासभाजन, वह जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वासह (सं० लि०) सर्वाभिमयकारी, शत्रुओंका दमन करनेवाला। "निश्वाताहमवसे" (ऋक् ३।४७।५)

विश्वासाह (सं० पु०) विश्वासाह देखो।

विश्वासिक (सं० लि०) विश्वासके पात्र, जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वासिन् (सं० लि०) विश्वासोऽस्यास्तीति विश्वास इति। १ प्रत्ययशोभ, जिसे विश्वास करता हो। २ जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वास्य (सं० लि०) विश्वासके योग्य, जिस पर विश्वास किया जा सके।

विश्वाहा (सं० अघ्य०) प्रतिदिन, रोज रोज। (ऋक् १।२५।१२)

विश्वाहा (सं० स्त्री०) १ शुष्ठी, सोंठ। २ बाहुशाल शुङ्ग।

विश्वेदेव (सं० पु०) १ अग्नि। २ आद्वदेव। (संज्ञित-वार० उष्या०) ३ गणदेवताविशेष।

वेदसंहितामें नौ देवताओंको एक साथ 'विश्वेदेवाः' कहा है। ये देवगण इन्द्र, अग्नि आदिसे निम्न श्रेणीके हैं और सभी मानवके रक्षक तथा सत्कर्मके पुरस्कार-दाता हैं। ऋक्संहिताके ६।५१।७ मन्त्रमें विश्वेदेवोंको विश्वके अधिपति तथा जिससे जहू गण अपने अपने शरीरके ऊपर अनिष्ट उत्पादन करते हैं, उसके प्रवर्धक कहा है। उक्त मन्त्रके १०।१२।५१ मन्त्रमें तावत् देवताको ही 'विश्वेदेवाः' बताया है। ऋक् १०।१२६ और १०।१२८ सूक्तमें विश्वेदेवाकी स्तुति की गई है। शुक्लयजुः २।२२ मन्त्रमें ये गणदेवतारूपमें माने गये हैं। परपत्नीं पौराणिकयुगमें इन देवताओंको औदुर्ध्वदेहिक क्रियाका उत्सर्गादि पान किया जाता है। अग्निपुराणमें इनकी संख्या दश बताई गई है, यथा—ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, ध्वनि, रोचक, आद्रय और पुरुषा।

४ एक असुरका नाम।

विश्वेदेव (सं० पु०) मर्गाक्षर। ('अर्थनि०')

विश्वेभोजस् (सं० पु०) विश्वे-भुज्-असि सप्तम्या अलुक्। (उष्या २।२३७) इन्द्र।

विश्वेदेवस् (सं० पु०) विश्वे विद्-अग्नि (विद्भिज्जिभ्यां विद्-वै। उण् ४।२३७) अग्नि।

विश्वेश (सं० पु०) विश्वस्य ईशः । १ शिव, महादेव ।
२ विष्णु । विश्वं ईश्वरोऽधिपतिर्यस्य । ३ उत्तरापट्टा
नक्षत्र । इस नक्षत्रके अधिपतिका नाम विश्व है ।

विश्वेशितृ (सं० पु०) विश्वका ईश्वर, सर्वेश्वर्यका
कर्त्ता ।

विश्वेश्वर (सं० पु०) विश्वस्य ईश्वरः । १ काशीस्थ
महादेव । ये काशीधाममें अविसुकोश्वर नामसे प्रसिद्ध
हैं । क्योंकि अपनी दुष्कृतिके कारण जिन्हें कभी भी
मुक्तिलाभकी आशा नहीं, वे भी यदि कायकलेशसे उक्त
धाममें देहत्याग करें, तो ये आसानीसे उन्हें मुक्तिदान
देते हैं । इसी कारण वह धाम भी अविसुकेश्वर नाम-
से जगत्में प्रसिद्ध है । विशेष विवरण काशी और वाराणसी
शब्दमें देखो ।

विश्वेश्वर—१ तत्त्वार्णव ग्रन्थके प्रणेता राघवानन्द
सरतस्वतीके परम गुरु और अद्वयानन्दके गुरु । २ प्रसिद्ध
उपोतिर्वेत्ता कमलाकरके गुरु । ३ मीमांसा कौतूहलवृत्तिके
रचयिता, वासुदेव अध्वरीके गुरु । ४ एक कवि । ५
अलङ्कारकुलप्रदीप और अलङ्कारमुक्तावलीके प्रणेता ।
६ अष्टात्मप्रदीप नामक अष्टाचक्रगीता-टीका और
गोपालतापनीकी टीकाके रचयिता । ७ गर्गमनोरमा
टीका नाम्नी ज्योतिर्ग्रन्थ और पञ्चस्वरटीकाके प्रणेता ।
८ गृहपति-धर्म नामक एक ग्रन्थके रचयिता । ९ तर्क-
कुतूहल नामक एक पुस्तक-रचयिता । १० द्रुगृहग्र-
विधेक नामक वेदान्त ग्रन्थप्रणेता । ११ निर्णयकौस्तुभ
नामक ग्रन्थ रचयिता । १२ न्यायप्रकरण नामक ग्रन्थके
प्रणेता । १३ भगवद्गीता-भाष्यकार । १४ मनोरमा-
खण्ड नामक व्याकरण-रचयिता । ५ रसचन्द्रिका नाम्नी
अलङ्कार-ग्रन्थके प्रणेता । १६ रोमावलीशतकके प्रणेता ।
१७ लीलावतयुदाहरणके रचयिता । १८ विश्वेश्वरपद्धति
नामक ग्रन्थ-प्रणेता । १९ वेद-पादस्तव-प्रणेता । २०
शार्दार्णवसुधा-निधि नाम्नी एक व्याकरणके रचयिता ।
२१ श्रुतिरत्निनी नाम्नी गीतगोविन्दके टीकाकार । २२
सप्तशती-काव्यके कवि । २३ साहित्य-सारकाव्यके प्रणेता ।
२४ सिद्धार्थशिखामणि नाम्नी तन्त्रग्रन्थके रचयिता ।
२५ संन्यासपद्धति और विश्वेश्वर-पद्धति नामक ग्रन्थके
रचयिता । इस ग्रन्थकी आनन्दतीर्थ और आनन्दाश्रम
रचित टीका भी मिलती है ।

विश्वेश्वर आचार्य—१ काशीमोक्षके प्रणेता । २ पद्-
वाष्यार्थ-पञ्जिका-नाम्नी नैपथीय टीकाकर्त्ता । ये मत्ति-
नाथके पहले विद्यमान थे ।

विश्वेश्वर काली—चमत्कारचन्द्रिका काव्यके रचयिता ।
विश्वेश्वर तन्त्र—तन्त्रभेद ।

विश्वेश्वर तीर्थ—१ सिद्धान्तकौमुदी-टीकाकर्त्ता । २ पेन-
रैयोपनिषद्ब्रह्मविवरण नामक आनन्दतीर्थकृत भाष्यकी
टीका-प्रणेता ।

विश्वेश्वर दत्त—रामनाममाहात्म्यके प्रणेता ।

विश्वेश्वरदत्त मिश्र—भास्करस्तोत्र, योगतरङ्ग और सांध्य-
तरङ्ग आदि ग्रन्थोंके प्रणेता । ये विद्यारण्यतीर्थके शिष्य
थे । संन्यासग्रहण कर इन्होंने वेदनीर्घ स्वामीका नाम-
धारण किया । १८५२ ई०को काशीधाममें इनका देहांत
हुआ ।

विश्वेश्वर दीवह—ज्योति-सारसमुच्चयके रचयिता ।

विश्वेश्वर नाथ—दुर्जनमुखचर्चिका और भागवतपुराण-
प्रामाण्य नामक दो ग्रन्थोंके प्रणेता ।

विश्वेश्वर पण्डित—१ वाष्यवृत्तिप्रकाशिका, वाष्यसुधा-
टीका और वाष्यश्रुति-अपरोक्षानुभूति नामक तीन
ग्रन्थोंके प्रणेता । ये माधवभास्करके शिष्य थे ।
२ अलङ्कारकौस्तुभ और उसकी टीका तथा व्यङ्ग्यार्थ-
कौमुदी नाम्नी रसमञ्जरी टीकाके प्रणेता ।

विश्वेश्वरवृष्यपद—वेदान्तचिन्तामणिके रचयिता शुद्ध-
मिक्षके गुरु ।

विश्वेश्वरभट्ट—१ कुण्डसिद्धिके प्रणेता । २ सुखबोधिनी
नामक एक व्याकरणके रचयिता । ३ मदनपारिजात,
महादानपद्धति, महार्णव-कर्मविषाक, विज्ञानेश्वरकृत
मिताक्षराके व्यवहाराख्यायके सुशोचिनी नामक सार-
सङ्कलन और स्मृतिकौमुदी आदिग्रन्थोंके रचयिता ।
मदनपारिजातादि शैवोक्त ग्रन्थ विश्वेश्वरस्मृति नामसे
प्रसिद्ध है । ये पेट्टि (पेडि) भट्टके पुत्र और राजा
मदनपालके आश्रित थे । ४ अशौचदोषिका, पिण्डवित्त-
यज्ञप्रयोग, प्रयोगसार, भट्टाचर्यतामणि नामक जैमिनिस्व-
टीका मीमांसाकुसुमाञ्जलि, राकागम नामक चन्द्रालोक-
टीका, शिवाकौण्डिय नामक श्लोकचार्त्तिकटीका, निरुद्ध-
पशुग्रन्थ प्रयोग तथा सुखानन्दगोप्य आदि ग्रन्थोंके प्रणेता ।

इनके सिवा बल्लाल चर्माके भादेशसे इन्होंने कायस्थ धर्म-दीप या कायस्थ-धर्मप्रकाश या कायस्थपद्धति नामक एक ग्रन्थ लिखा था। इनका बनाया हुआ जातिविवेक नामक एक दूसरा ग्रन्थ कायस्थपद्धतिका प्रथम भाग है। इनके पिताका नाम दिनकर और पितामहका नाम राषकृष्ण था। पिता दिनकरने अपने नाम पर दिनकरोद्योत ग्रन्थ लिखना आरंभ किया, परन्तु वे अपने जीवन-कालमें उसे समाप्त न कर सके, शेषाङ्क विश्वेश्वरने समाप्त किया था। निरुद्ध-पशुवन्धप्रयोगमें इन्होंने ललित आपस्तम्बपद्धतिका उल्लेख किया है। ये गागा मट्ट नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके भतीजका नाम कमलाकर था।

विश्वेश्वर भट्ट मौनिन्—एक कवि। कवीन्द्रचन्द्रोद्दयमें इनकी रचनाका उल्लेख है।

विश्वेश्वर मिश्र—एक सुपण्डित। विश्वदासलोके प्रणेता रघुदेवके पिता।

विश्वेश्वर सरस्वती—१ प्रपञ्चसार-संग्रहके प्रणेता गोर्वाणेश्वर सरस्वतीके गुरु और अमरेश्वर सरस्वतीके शिष्य। २ कलिधर्मसारसंग्रह, परमहंसपरिभाषक-धर्म-संग्रह, यतिधर्मप्रकाश, यतिधर्मसमुच्चय, यथाचारसंग्रहीय-यतिसंस्कार-प्रयोग आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये सर्वज्ञ विश्वेश्वरके शिष्य और गोविन्दसरस्वतीके प्रशिष्य तथा मधुसूदन सरस्वती और माधव सरस्वतीके गुरु थे। इनका दूसरा नाम विश्वेश्वरानन्द सरस्वती भी था। ३ महिम्नस्तवटीकाके प्रणेता।

विश्वेश्वर सूनु—रुद्रकल्पतस्मिन्ग्रन्थके रचयिता।

विश्वेश्वरस्थान (सं० ह्यो०) विश्वेश्वरस्थ स्थानम् । विश्वेश्वरका स्थान, काशीधाम। स्वयं विश्वेश्वर इस स्थानमें विराजमान हैं, इस कारण काशीधामका नाम विश्वेश्वरस्थान पड़ा।

विश्वेश्वरानन्द सरस्वती—विश्वेश्वर सरस्वती देखो।

विश्वेश्वरानन्द मुनि—सुदीपिका नामकी सारस्वतटीका- (व्याकरण) के प्रणेता। ये ब्रह्मसागरके शिष्य थे।

विश्वेश्वरानन्द—तर्कचन्द्रिकाके रचयिता। कोई कोई तर्क-दीपिकाके प्रणेता विश्वनाथाश्रमकी तथा इन्हें एक ही व्यक्ति समझते हैं।

विश्वेश्वर (सं० ह्यो०) काश्मीरके एक पवित्र तीर्थ-क्षेत्रका नाम। (राजतर० ५।४४)।

विश्वोन्नत (सं० त्रि०) व्याप्तवत् ।

(शृक् १०।५।५८ छापण)

विश्वोपय (सं० ह्यो०) विश्वोपार्मापधम् । शुरुटी, सोंठ। (राजनि०)

विश्व्या (सं० ह्यो०) सर्गत, सय जगह।

(शृक् २।४।१)

विष (सं० ह्यो०) विषक। १ जल (अमर) २ पञ्चकेसर

(अमरटीकामें रायमुकुट) ३ मृणाल ४ आमकी कोढ़ी।

५ घृतसनामविष। (पु० ह्यो०) ६ सामान्य विष। (राजनि०)

पर्व्याय,—क्ष्वेड, गरल, आह्वय, शमृत, गरद, गरल, कालकूट

कलाकूल, हारिद्र, रक्तशृङ्गिक, नील, गर, घोर, हालाहल,

हलाहल, शृङ्गिन्, भूगर, जाङ्गल, तीक्ष्ण, रस, रसायन,

गरजङ्गल, जंगुल, काकील, वटसनाम, प्रदीपन, शोचिक-

केय, ब्रह्मपुत्र। (रत्नमासा)

अमरकोषके पातालवर्गमें विष-विषयमें नौ प्रकारके

भेद निर्दिष्ट हुए हैं—

“पुंति बलीवे च काकोलकाकूटइलाहताः।

शीराण्टीकः शीरिष्केयो ब्रह्मपुत्रः प्रदीपनः ॥

दारदो वल्लनाभश्च विषमेदा अभी नम ॥” (अमर)

इसके सिवा हेमचन्द्रमें भी विष विषयमें बहुतेरे भेद दिखाने देते हैं। मोचे विषके नाम, लक्षण और गुण-गुणके विषयमें संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

विषके नाम और लक्षण।

भावप्रकाशके पूर्वखण्डमें लिखा है, कि विषके पर्व्याय दो हैं—गरल और क्ष्वेड। इसके नौ भेद हैं, जैसे—वटसनाम, हारिद्र, शकूक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृङ्गिक, कालकूट, हालाहल और ब्रह्मपुत्र। जिस विषवृक्षका पत्ता निशिन्दाके पत्तेकी तरह है, आकृति—वटसकी नाभिकी सदृश है और जिसके निरुद्धवर्ती अन्याय्य वृक्षलनादि निस्तेज हो यथोचित वृद्धि प्राप्त हो नहीं सकते, उसको वटसनाम कहा जाता है। हारिद्र—इस विषवृक्षका मूल हरिद्रा (हल्दी) के मूलकी तरह होता है। शकूक—यह विषवृक्षकी गांठोंका विचला भाग शकूक या मसूकी तरह चूर्णपदार्थोंसे भरा रहता है। प्रदीपन—यह विष लाल

रङ्गका होता है। यह क्षोत्तशील और अग्निहीन तरह प्रमाशाली है। इसके सेवनसे अत्यन्त दाह उत्पन्न होता है। सौराष्ट्रिक—सुराष्ट्रदेशके उत्पन्न सभी तरहके विष। शृङ्गकविष—इस विषको गाणके सांगमें बांध देने पर गौका दूध लाल रंगका हो जाता है। कालकूट—प्राचीन समयमें देवासुर युद्धमें पृथुमाली नामक एक दैत्य देवके हाथसे मारा गया। उसका रक्त पृथ्वीमें जब पड़ा, तब उससे पीपल वृक्षको तरह एक विषवृक्ष उत्पन्न हुआ। उसी वृक्षके निर्वासको मुनिगण कालकूट कहते हैं। यह वृक्ष शृङ्गघेर और कौकणप्रदेशोंके खेतोंमें उत्पन्न होता है। हालाहल—इस विषवृक्षके फल अंगूरकी तरह एक ही गुच्छेमें कितने ही फलते हैं। इसका पत्ता ताड़के पत्तेकी तरह होता है और इसके तेजसे निकटके वृक्ष जल जाते हैं। किष्किन्ध्या, हिमालय, दक्षिणसमुद्रके किनारेकी भूमि और कौकण देशमें इस हालाहल विषका वृक्ष उत्पन्न होता है। ब्रह्मपुत्र—यह विष कपिलवर्ण और सारारत्नक है। यह मलयवर्षात पर उत्पन्न होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके भेदसे यह विष भी चार तरहका होता है। उनमें पाण्डुवर्णका विष ब्राह्मण, रक्तवर्ण विष क्षत्रिय, पीतवर्ण विष वैश्य और कृष्णवर्ण विष शूद्रजातीय है। ब्राह्मण जातीय विष रसायन काट्टी में, क्षत्रियजातीय विष पुष्टि विषवर्ण और वैश्यजातीय कुष्ठ निवारणके लिये प्रशस्त है। शूद्रजातीय विष विनाशक है।

विषका गुणगुण्य ।

साधारणतः विषका गुण—प्राणनाशक और व्यापकी अर्थात् पहले विषका गुण सारे शरीरमें व्यक्त हो कर पोछे परिपाक होता है। विकाशी अर्थात् इसके द्वारा सदसा भोजोघातुका शोषण और सन्निवन्धन सब ढीले हो जाते हैं। यह अग्निवर्द्धक, घातघ्न और कफनाशक है। योगवाही अर्थात् जिस द्रव्यमें यह मिलाया जाता है, उसके गुणका प्राहक और मत्तताजनक अर्थात् तमोगुणाधिक्यके कारण सुद्धिविनाशक है। यह विष विषेचनाके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन किया जाये, तो यह प्राणरक्षक, रसायन, योगवाही, विदोषनाशक

शरीरके उपचायक और घोट्यवर्द्धक होता है। अनिशुद्ध विष अहितकर है—इस विषके जो सब अनिष्टजनक तीव्रतर गुण वर्णित किये गये हैं, शुद्ध करनेसे वे होनशील हो जाते हैं। सुतरां विषप्रयोग करनेसे पहले उसको शुद्ध कर लेना चाहिये।

विषका शोधन—विष (टुकड़ा टुकड़ा काट कर) तीन दिनों तक गोमूत्रमें रख छोड़ना होगा, पोछे उसका छिलका निकाल कर फेंक देना चाहिये, पोछे शुष्क करनेके बाद लाल सरसोंके तेलमें मिर्गे कपड़ेमें बांध कर तीन दिन तक रखनेसे विष शुद्ध हो जाता है।

विषके सिवा कई उपविषोंका भी उल्लेख है। घूहरका दूध, मनसाका दूध, इपलांगला, करबोर, कूच, थफाम, धनूरा और जयपालवोज—ये सात उपविष हैं।

इन्के गुणगुण्य इन्के नामकी विवरणमें देखो।

वैद्यक ग्रन्थादिके विषाधिकारमें स्यावर और जङ्गमभेदसे विष दो तरहका है। उनमें स्यावर विषके आश्रयस्थान दश हैं और जङ्गमके सोलह हैं।

स्यावर विषके दश आश्रय स्थान इस तरह हैं—मूल, पत्र, फल, पुष्प, त्वक्, क्षीर, सार, निर्वास, घातु और कन्द। पृक्षके इन दश अंशोंका आश्रय कर स्यावर विष विद्यमान रहता है; उनमें मूल-विष करबोरादि, पत्र-विष विषपत्तिकादि, फलविष कर्कटकादि, पुष्प-विष पेलादि, त्वक्, सार और निर्वास विष करण्डादि, क्षीर-विष मनसासिज आदि, घातुविष हरताल आदि और कन्दविष परसनाभादि हैं।

जङ्गम विषके १६ आश्रयस्थान इस तरह हैं—दृष्टि, निश्वास, दद्रा, नख, मूत्र, पुरोप, शुक, लाला, आर्चव, स्पर्श, सन्दंश, अघशर्द्धित (वातकर्म), गुष्प, अस्थि, पित्त और शूक। दिव्य सर्पकी दृष्टि और निश्वासमें, व्याघ्र आदिके काटने और नखोंमें, छिपकली आदिके मूत्र और पुरोपमें, चूई आदिके शुकमें, उच्चिटिकादिके लालामें, चित्रशीर्षादिके लाला, स्पर्श, मूल, पुरोप, आर्चव, शुक, मुखसंवेष्टा भातकर्म और गुष्पमें, सर्पादिकी हड्डियोंमें, शकूल मत्स्य आदिके पित्तमें और झरर आदिके शूकमें विष रहता है।

स्थावर विषका कार्य ।

अथ स्थावरविषके साधारण कार्योंके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है। मूलविषका कार्य—यह विष शरीरमें प्रविष्ट होने पर इण्डेसे मर्दन करनेकी तरहको घेदना, मोह और प्रलाप होता है। पत्र-विषका कार्य—भ्रुम्भा (जंभाई), कम्प और श्वास (दमफूलना)। फलविषका कार्य—अण्डकोषमें शोध अर्थात् बैजेका फूल जाना, दाह और अन्नभक्षणमें अनिच्छा होता। पुष्पविषका कार्य—उलटी होना, उदराध्मान और मूर्च्छा। त्वक्सार और निर्यास विषका कार्य—मुखमें दुर्गन्ध, देहमें ककशाता, शिरमें पीड़ा और कफघ्राव होता। क्षीरविषका कार्य—मुखमें फेन आना, मलमेद और जिह्वाका गुदत्व। धातुविषका कार्य—हृदयमें वेदना और तात्तूमं दाहः। उल्लिखित नौ स्थावर विषोंसे प्रायः ही कालान्तरमें प्राण विनष्ट होता है। स्थावर विषोंमें दशवां कन्द विष है—यह उपनोर्पसम्प्रभ है। यह विष तेरह तरहका होता है। इन सब विषोंको पीछे कहे गये दश गुणान्वित समझना होगा। विष स्थावर, जङ्गम या कृत्रिम चाहे किसी तरहका। शरीर न हो, यह दशगुणान्वित होनेसे शोध ही प्राण नाश करता है। उन दशोंके गुण इस तरह हैं—रक्ष, उष्ण, तोक्ष्ण, सूक्ष्म, नाशुकारी, श्ववायी, विक्राशी, विगद, लघु और अवाकी।

उक्त दशगुण युक्त विष, रक्ष गुणमें वायु और उष्ण गुणमें पित्त और रक्तको प्रकृषित करता है। तोक्ष्ण गुणमें बुद्धिभ्रंश और मर्मवर्धन छेदन करता है। सूक्ष्म गुणमें शरीरके अन्तर्गर्भमें प्रविष्ट हो कर उन्में विह्वल कर देता है। नाशुकारी गुण होनेसे यह सब कार्य शोध सुसम्पन्न होता है। श्ववायी गुणमें प्रकृति और चिक्रागी गुणमें दोष, धातु और मल विनष्ट करता है। विगद गुणमें अनिश्चय विरेचन उत्पन्न करता है। अवाकी गुणमें अजीर्ण होता है और लघुत्व गुणमें यह दुरिचकितस्व हो जाता है।

जङ्गम : विषके लक्षण ।

पहले स्थावर विषके साधारण कार्योंका उल्लेख किया गया है। अब जङ्गम विषके साधारण कार्योंका

उल्लेख किया जाता है। निद्रा, तंद्रा, कुम्भित, दाह, पोक, रोमाञ्च, शोध और अतिसार ये कई जङ्गम विषके साधारण कार्य हैं। इन सब जङ्गम विषोंमें सर्प-विष ही तोक्ष्णतर है। इससे पहले सर्पविषका उल्लेख किया जाता है। सर्प जाति चार भागोंमें विभक्त है। यथा—मोगी, मण्डली, राजिका और द्वन्द्वरूपी। मोगी अर्थात्से फणयुक्त, मण्डली सर्प मण्डलाकार चक्रशाली, राजिका श्रेणिके सर्पका गाल लम्बी रेखाओंसे घिरा रहता है और द्वन्द्वरूपी सर्प मिश्रित रूपधारां होते हैं। ये सब क्रमसे वानात्मक, पित्तात्मक, कफात्मक और द्विदोषात्मक हैं। फणयुक्त सर्प बीस तरहका होता है। मण्डली सर्प नाना रङ्गोंसे चित्रित, मोटे और घोरगामी होते हैं। ये छः प्रकारके होते हैं। अग्नि और धूपके उत्तापसे इसका विष वेगवान् होता है। राजिका सर्प स्निग्ध तिष्ठान्, गामी और नाना रङ्गकी रेखाओंसे रेखान्वित है। ये भी छः प्रकारके हैं। इसके सम्बन्धमें 'सर्पविण' शब्द देखो।

सर्पके काटे हुए स्थानका लक्षण ।

मोगी जातीय सर्पोंके काटनेसे काटा हुआ स्थान काला हो जाता है और रोगी सब तरहसे वात विकार-विशेष हो जाता है। मण्डली सर्पके काटनेका या झंसनेका स्थान पीला, शोधयुक्त और मृदु होता है और रोगी पित्तविकारप्रस्त देखा जाता है। राजिका जातीय सर्पके दंशनसे द्रष्टस्थान स्थिर, शोधयुक्त, पिच्छल, पाण्डुवर्ण, स्निग्ध और अतिशय गाढ़ रक्तयुक्त होता है तथा रोगी सब तरहसे कफविकारप्रस्त होता है।

विणक्षित : शलाघावके लक्षण ।

शत्रु द्वारा विपलित शलसे आघात पाने पर मनुष्यका वह क्षतस्थान शोध ही पक जाता है। क्षत स्थानसे रक्तघ्राव होता है और सड़ा मांस गिर पड़ता है। क्षत स्थान चारंबार पकता है और काला तथा बलेदयुक्त होता है। फिर रोगीको विवासा, अन्तर्दाह, घट्टिर्दाह और मूर्च्छा होती है। अन्य प्रकारसे उत्पन्न क्षत स्थान से विषप्रद होने पर भी ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

राजा महाराजाओंके पद पद पर शत्रु होते हैं। शत्रु प्रायः ही उनके भोजनमें गुप्त रूपमें विष मिला देनेको चेष्टा करते हैं। बुद्धिमान, शक्तिशाल, चिकित्सक

चापय, चेष्टा और मुखकी विचर्णता आदि लक्षण देख कर विषदाता शत्रु को पहचान ले ।

देव, काष्ठ और पाषाणसे सर्पविषका अवाध्यत्व ।

पीपल-वृक्षके नीचे, श्मशान, चर्मकीकके ऊपर और चतुष्पथ—इन सब स्थानोंमें, प्रभातमें और संध्या समय, भरणी और मघा नक्षत्रमें तथा शरीरके चर्मस्थानमें दंशन करनेसे यह विष असाध्य होता है । दर्वीकर नामक एक जातिके सर्प होते हैं, ये सर्प चक्रूलागुल, फणधारी और शीघ्रगामी हैं । इनके विषसे शीघ्र ही प्राण विनष्ट होता है । ये मेष, वायु और उष्णताक संयोगसे द्विगुण तेजायुक्त होते हैं ।

ऊपर जो कहे गये, उनको खोड़ और भी कई प्रकारके असाध्य विष हैं । उन सब तरहके विषोंसे प्राण संहार अनिवार्य है । अजीर्ण-प्रस्त, पित्तात्मक, रौद्र-पीडित, बालक, वृद्ध, क्षुधित, क्षीण, क्षतामियुक्त, मेह और कुष्ठरोगाकांत, वृक्ष और दुर्बल व्यक्ति या गर्भिणी इनके शरीरमें विष प्रवेश करने पर किसी तरह प्रशमित नहीं होता ।

अचिकित्स्य विष-पीडितके दृष्टव्य ।

शस्त्र द्वारा क्षत होने पर भी जिसकी देहसे रक्तक्षरण नहीं होता, लता द्वारा मारने पर भी जिसकी देहमें लताक, चिह्न निकल नहीं आता या शीतल जलसे स्नान कराने पर जिसके शरीरके रोंगटे षड़े नहीं हो जाते, ऐसे विष-पीडित व्यक्तिको चिकित्सक त्याग कर दे । जिस विषपीडित व्यक्तिका मुख स्तम्भ, केश शातन, नासिका बक, भ्रौवा (गरदन) धारणशक्तिहीन, दृष्ट स्थानकी सृजन रक्तमिश्रित और काली तथा दोनों घुटने सटे हैं वह रोगी भी परित्याज्य है । जिस विषपीडित रोगी के मुखसे गाढ़ी राल, मुख, नासिका, लिङ्ग और गुह्यद्वार आदिसे खून गिरता हो और सर्पने जिसे चार दाँतोंसे काटा हो, ऐसे व्यक्तिको चिकित्सा निष्फल है । जो विष पीडित व्यक्ति उन्मादकी तरह घोलता हो, उबर और आंतसार आदिके उपद्रवसे जिसको देह आक्रांत हो, जो घात नहीं कर सकता हो, जिसका शरीर काला हो गया हो और जिसके नासाभङ्ग आदि अरिष्ट लक्षण सम्यक् रूपसे परिस्फुट हो चुके हों, ऐसा रोगी भी चिकित्साके योग्य नहीं ।

दूषीविष ।

स्थावर और जड़म ये दोनों तरहके विष जीर्णत्व आदिके कारण दूषीविष कहलाते हैं । जो विष अत्यन्त पुराना है, विषम्र औषध द्वारा भी जीर्ण-होन या दाघानि वायु और धूप आदिके शोषणसे निर्दोष, अथवा जो स्वभावतः ही दश गुणोंमें एक, दो, तीन गुणहीन है, उसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष अल्पवर्धा है, इससे यह प्राण नष्ट नहीं करता; किन्तु कफा-सुबन्ध हो कर बहुत दिनों तक शरीरमें अवस्थान करता है । दूषीविष-प्रस्त मानवके मलमेद, म्रम, गद्गद् घाष्य, के और विरुद्ध चेष्टाके कारण नाना तरहके फलश होते हैं । शरीरके किसी स्थानमें इस दूषीविषके रहनेसे शरीरमें विभिन्न प्रकारके रोग और उपद्रव होते हैं । शीत-में और घातवर्षासे कुल दिनको दूषीविष प्रकुपित होता है । दूषीविष प्रकोपसे पहले निद्राविषय, देहकी गुफता और शिथिलता, जंभाई, रोमहर्ष तथा शरीरमें वेदना उत्पन्न होती है । दूषीविष प्रकुपित होने पर अन्न भोजन करनेमें मत्तता, अवाक, अर्धचि, गालमें मण्डला-कृति कोढ़की उत्पत्ति, मांसक्षय, हाथ और पैरोंमें सूजन के, अतिसार, श्वास, पिपासा, उबर तथा उदरी या उदररोग बढ़ता है ।

कृत्रिमविष ।

गर और दूषीविषमेदसे कृत्रिम विष दो तरहका है । उनमें दूषीविषमें विष संयुक्त रहता है, किन्तु गरविषमें वह संयुक्त नहीं रहता । छिपों अपने मतलब मानने के लिये पुष्पोंका स्वेद, रजः या अन्यान्य असङ्गत मल, अन्न आदिके साथ गरविष बिला देती हैं और शत्रु द्वारा भी ऐसा विष बिलाया जाता है । गरविष देहमें प्रवेश करने पर देह पाण्डुवर्ण और कृश हो जाती है । परशु मन्दाग्नि, उदर, प्रहणी, यक्ष्मा, गुल्म, धातुक्षय, उबर और इस तरह कई प्रकारके रोग क्रमसे उपस्थित होते हैं ।

विषचिकित्सा ।

इस समय संक्षेपमें विषकी चिकित्साका विषय वर्णित किया गया । सबसे पहले स्थावर विषकी चिकित्साके विषय पर कुछ लिखा जाता है ।

रघोशर विषसे आक्रान्त रोगीके लिये की ही प्रधान चिकित्सा है। अतः इस विषसे पीड़ित रोगीको यत्नके साथ की करा देना चाहिये। विष अत्यन्त तोषण और उष्ण है, इससे सब तरहके विषरोगमें शीतल परिषेक हितकर है। उष्णगुण और तोषण गुणमें विष अत्यधिक परिमाणमें पिक्तकी वृद्धि करता है। इसलिये की करानेके बाद शीतल जलसे रानात कराना उचित है। विषपीड़ित व्यक्तिके शीघ्र घृत और मधु द्वारा विषघ्न औषध खिलानो चाहिये। भोजनार्थ लट्टा पदार्थ तथा घर्षणार्थ काली मिर्च देनी चाहिये। जिस देशके लक्षण अधिक दिखाई दे, उसी देशकी औषध द्वारा विषरोत क्रिया करने चाहिये। विषाक्त रोगीके भोजनके लिये जालि, पट्टिक, कोशे और क'गनीके चावलका भात देना चाहिये तथा की और दस्त द्वारा ऊर्ध्वाधः शोधन करना चाहिये। सिरीषका मूल, छाल, पत्त, पुष्य और घोजकी पक्क गोमूत्र द्वारा पीस कर प्रलेप करनेसे विष शान्त होता है। दूधोविषसे पीड़ित व्यक्ति यदि निम्ब, की और हस्तावर घोज खाये, तो विष जल दूर होता है। पिप्पली, रोहिषवृण, जटांसांसे, लोध, इलायची खजि'काक्षर, मिर्चा, पाला, इलायची और सुवर्ण गीरेक इनके साथ मधु मिला कर पान करनेसे दूधोविष विनष्ट होता है।

अंगम विषकी चिकित्सा।

घो ४ सेर, कजुर्कार्प हरीतकी (छोटी हरे) मोरोचना, कुट्ट, आकन्दका पत्ता, नीलास्पल, नलमूल, घंतमूल, गरल, तुलसी, इन्द्रिय, मंजोठ, अनन्तामूल, शतमूली, सिंघाटा, लज्जालु और पन्नकेसर ये सब समभागसे मिला कर १ सेर, दूध सोलह सेर। यह घृत पाक कर ठंडा होने पर उसमें ४ सेर मधु मिला है। मात्राके अनुसार पान, अङ्गन, अम्पङ्क या पस्तिप्रयोग (विषकारो) से दुर्जय विष, गरदैप, घोजकविष, तमकअ्यास, कण्ठु, मांससाद और अचेतनता नष्ट होती है। इसके स्पृशीमात्रसे, सारा विष विनष्ट और गरदन विकृतचर्म प्रकृतस्थ हो जाता है। इसका नाम मृत्युपाशच्छेदिवृत्त।

घटूरेकी जड़ या झूठे घृक्षकी जड़ या वांस;

की जड़को दूध द्वारा पीस कर पी जानेसे कुत्तेका विष दूर हो जाता है। हरिद्रा (हलदी), बाबहरिद्रा, रक्तचन्दन, मंजोठ और नागकेसर, ये सब शीतल जलमें पीस कर उसका प्रलेप करनेसे शीघ्र लताविष दूर होता है। बासीक पीसा हुआ जीरा, घी और सैन्धव नमकमें मिला कर जटा गर्म करे। इसमें मधु भी कर अच्छी तरह घोंट डाले और काटे हुए स्थान पर लगाये तो बिच्छूका विष उतर जायेगा। सूर्यावर्षा (शूलटा) वृक्षका पत्ता मल कर उसको सूंघनेसे बिच्छूका विष दूर हो जाता है। नरमूत्रसे ढंकस्थानको धो देनेसे या उसी पर पेशाब कर देनेसे यह शीघ्र भाराम होता है। उसकी जलन या दग् दूर हो जाता है। यह दवा बहुत फायदा-मग्द है।

विषविरहितके लक्षण।

विषपीड़ित व्यक्तिके आरोग्यलाभ करने पर वातादि दोष नष्ट होता, धातुकी सामाजिक अवस्था आ जाती, शान्तिमें रहकर और मलमूत्रका भो यथायथभावसे निकलना जारी हो जाता है। इसके सिवा रोगीको वर्णप्रसन्नता, इन्द्रियपटुता और मनकी प्रयुक्तता होता तथा यह क्रम क्रमसे चेष्टाक्षम होता है।

(भावप्रकार विषाधिकार)

सिवा इसके चरक, सुश्रुत आदि चिकित्सा-ग्रंथोंमें भी विषचिकित्साकी कई प्रणालियां लिपिबद्ध हैं। विषय बढ़ जानेके भयसे यहां वे नहीं दी गईं।

परिभाषिक विष।

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि निराविष हो केवल विष नहीं। परन्तु ब्रह्मस्व और देवस्वको भी विष कहते हैं। सुतरां वे दो भी सर्वतोभावसे यत्नके साथ परित्याग करने चाहिये।

"न किं विषमित्स्याद्दुर्दृष्टं विषमुच्यते।

देवस्वच्चापि यत्नेन सदा परिहेततः ॥"

(कूर्मपुराण उपनि० १५ भ०)

नीतिशास्त्रकार चाणक्यने भी कई विषयोंको विष कहा है। उनके मतसे दुरधीत विद्या, अज्ञान अवस्था-ने भोजन, दृष्टिकं बहुत परिजन, वृद्धकी युवती स्त्री, रात्रिकालका भ्रमण, राजाकी अनुकूलता, अन्यासका

छां और अद्रष्ट-व्याधि ये सब ही विप अर्थात् विप-तुल्य हैं ।

“दुरधीता विना विद्या भजीयन्” भोजनं विभ ।

विभं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तदप्यो विपम् ॥

विपं चक्रमण्यं रामो विपं रामोऽनुकूलता ।

विपं क्षिपोऽप्यन्यद्वदो विपं व्याधिरभीक्षितः ॥”

(चाणक्य.)

पारचात्य मयसे विपके लक्षण ।

विप किसको कहते हैं, इस प्रश्नकी मीमांसाके सम्बन्धमें वैज्ञानिक पण्डितोंकी बहुतेरी आलोचनायें दिखाई देती हैं। किसीका कहना है, कि जो देहसंस्पृष्ट होने पर अथवा किसी तरह देहमें प्रसृष्ट होने पर स्वास्थ्यकी हानि या जीवन नष्ट हो सके, उसीकी विप-संज्ञा होती है। साधारण लोगोंका कहना है, कि अति अल्प मात्रामें जो पदार्थ शरीरमें प्रवेश कर जीवनका नाश करता है, वही विप है। फलतः विपकी ऐसी संज्ञा रखना उचित नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे यह अतिव्यापित या अन्याप्तित्वात्पटुष्ट होता है। अति-अल्प मात्रामें काँचका चूर्ण पेटमें पहुँचने पर प्राणनाश कर सकता है। किन्तु इतसे उसे विपकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। जो अन्न हमारे देहके लिये अत्यन्त-प्रयोजनीय है, दैहिक अवस्थाविशेषमें या परि-माणाधिक्यमें वह भी विपकी तरह कार्य कर सकता है। और तो क्या—जिस वायुके बिना हम लोग एक क्षण भी नहीं जी सकते, समय विशेषमें और देहकी किसी अवस्थामें वही वायु देहके हानि पहुँचाती है। सुतरां विपकी यथायथ संज्ञा निर्धारण करना सहज काम नहीं है।

किन्तु हमारी भाषामें व्यवहारिक प्रयोजनके लिये अनेक पदार्थ विपसंज्ञासे अभिहित होते आ रहे हैं। उन सब पदार्थोंके सम्बन्धमें हम यहाँ पर आलोचना करेंगे। पारचात्य प्रदेशोंमें भी विपके सम्बन्धमें वैज्ञानिक आलोचना दिखाई देती है। पारचात्य चिकित्सा विज्ञानमें विपविज्ञान “टॉक्सोलॉजी” (Toxology) नामकी अभिहित होता है। मेडिकल जुरिसप्रुडेंस नामक चिकित्सा-विज्ञानमें विपविज्ञान एक प्रधान अङ्ग है। चिकित्सा

व्यवसायोमात्रको यह जाननेकी बड़ी जरूरत है, कि विपक्रियाके क्या लक्षण हैं? और उन दुर्लक्षणोंकी शान्तिकी क्या व्यवस्था है?

विपकी क्रिया ।

पारचात्य चिकित्सा-विज्ञानको पढ़नेसे मालूम होता है, कि विपकी कई क्रियायें हैं। ये क्रियायें स्थानोप गौर दूरव्यापिनी हैं। विपकी स्थानोप क्रियामें किसी स्थानका चर्म विदीर्ण होता है, कहीं प्रदाह ही होता है अथवा ज्ञानजनक या गतिजनक (Sensory or motor) स्यायुके ऊपर क्रिया प्रकाश पाती है। दूरव्यापिनी क्रिया दूसरी तरहकी है। स्पृष्ट स्थानमें उसकी क्रिया प्रकाशित हो सकती या नहीं भी हो सकती है; किन्तु दूरवर्ती यन्त्रके ऊपर उसकी सविशेष क्रिया प्रकाश पाती है। इस अवस्थामें रोगके लक्षणकी तरह विपक्रियाके लक्षण दिखाई देते हैं। जब दूरव्यापिनी क्रिया प्रकाशित होती है, तब समझना चाहिये, कि विपपदार्थ शरीरमें शोषित हुआ है। सुतरां दूरवर्तीकी क्रिया प्रकाशकी प्रधानतम साधन—देहमें विपशोषण है।

विपक्रियाका न्यूनाधिक ।

सब अवस्थाओंमें विपकी क्रिया एक-तरहकी नहीं दिखाई देती। विपका मात्राधिक्य, देहमें उसका क्रमोपचय और दैहिक पदार्थके साथ-संमिश्रण और विपार्थ व्यक्तिकी शारीरिक अवस्थाके अनुसार विपकी क्रियाका तारतम्य होता रहता है।

विपका श्रेणीविभाग ।

आयुर्वेदमें विपका जिस तरह श्रेणीविभाग किया गया है, उस तरह पारचात्य विज्ञानमें नहीं हुआ है। पारचात्य विज्ञानविद् पण्डितोंका कहना है, कि विपका श्रेणीविभाग करना सहज घटना नहीं। पारचात्य विज्ञानमें निखिल विषोंको नार श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है। जैसे—

- (१) करोसियस या देहतन्तुका अपचायक ।
- (२) इरिट्रेण्टस या उम्रताकारक ।
- (३) न्यूरैकस या स्नायुशोष विकृतिवर्द्धक ।
- (४) गैसियस या वायुशोष विप ।

वेदतन्त्रुके अपचय कर विष समूह ।

इस श्रेणीके सब विषोंमें पारुड (पारा) घटित द्रव्य ही सबसे पहले उल्लेखनीय है । इसके सिवा सल-क्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, आक्जालिक एसिड, कार्बनिक एसिड, पोटाश, सोडा, पोटैशिया, चाइसलफेट आब पोटास, फटकारो, पल्टमनो, नाइट्रेट आब सिलवर और क्षार पदार्थोंके विविध कार्बनेट समूह भी इन श्रेणीके अन्तर्गत हैं ।

इन विषों द्वारा देह विपाक होने पर निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं । किसी पदार्थके गलेके नीचे जाते ही मुखमें, मुखगहरके नीचे तालुमें, और आमाशय में अरदन्त जलन पैदा होती है । फमसे वह जलन हारो अंतर्द्धियोंमें फैल जाता है । इसके बाद दुर्निर्वाच्य वमनका उपद्रव दिखाई देता है । खनिज एसिड अथवा आक्जालिक एसिड सेवन करनेसे ज्ञा के होता है, उसी कै-से निकले पदार्थ पक्का घरको सतह पर पड़नेसे उससे एसिडकी क्रिया तुरन्त दिखाई देती है । अर्थात् इस स्थान परमें शुद्धवा उठता रहता है । इस वमनमें भी किसी तरह शान्तिबोध नहीं होता । कै-के साथ रक्त-कृपा भी दिखाई देनी है और ती पया, अक्षयहानतीका मात्र इस विषमें अपचिन हो कर उसको किङ्किणें तक विच्छिन्न और विच्युत होता है और घान्त पदार्थके साथ मिल जाता है । वायुमें उदराधमान होता है । उदरके ऊपर हाथ फेरना भी रोगीको असह्य हो उठता है । भयङ्कन उबर होता है । मुखके मांस आदिमें अनेक स्थलमें स्पष्टतः क्षत दिखाई देते हैं । विषका परिमाण अधिक रागसे घेड़ी ही देरमें रोगीको मृत्यु हो जाती है । अन्त मृत्यु न होने पर भी मुखमें और अंतर्द्धियोंमें क्षत हो निदार्चण यातनाका क्लेश भोग करते करते अनश्चयसे ही रोगीके दुःखमय जीवनका अन्त होता है ।

चिकित्सा ।

इन सब विषपीडित रोगीको चिकित्सामें सबसे पहले अन्ननाली और आमाशयको घे डालनेकी बड़ी जरूरत है । इसीलिये पाश्चात्य चिकित्सकगण सुक्रोमल साइफिन नलिका यंत्रके द्वारा आमाशय घे डालनेकी व्यवस्था करते हैं । विषको क्रियासे आमाशयको

चछारदाचारी बहुत कमजोर हो जाते हैं । अतः वहाँ "छामकपम्प" व्यवहार करना युक्तिसंगत नहीं । सिन्धकारक पानीय, चालोंका जल और अफोम घटित औषधों का प्रयोग करना कर्त्तव्य है । मिन्न मिन्न विषमें मिन्न मिन्न प्रकारका द्रव्य विषचिकित्सामें व्यवहृत होता है । यद्यपि इस श्रेणीके सभी विषोंमें हो प्रायः एक समान लक्षण दिखाई देते हैं तथापि विष द्रव्य-धियोपमें चिकित्साके द्रव्यादि और प्रयोग प्रकार स्वतन्त्र यर्णिता हुप हैं । नीचे कई प्रधान और प्रचारित विष-द्रव्योंकी चिकित्सा प्रणालीका उल्लेख किया जाता है—

(१) करोसिय सयलीमेट—इसको संस्कृत और हिन्दीमें रसकपूर कह सकते हैं । किन्तु रसकपूर विशुद्ध करोसिय सयलीमेट नहीं है । इसमें बहुत परिणाममें कालोमेल मिला रहता है । आयुर्वेदीय किसी किसी औषधमें रसकपूरका प्रयोग देखा जाता है । राजारके रसकपूरमें कालोमेल और करोसिय सब लोमेटके परिणामकी स्थिरता नहीं है । किन्तु इसमें जब करोसिय सयलीमेटका परिणाम अधिक रहता है, तब इस पदार्थका अल्पमात्रामें व्यवहार करने पर भी अयानक विपलक्षण दिखाई देता है । पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रमें भी करोसिय सयलीमेट विविध रोगोंमें हाइड्रॉज पारक्लोराइड नामसे व्यवहृत होता है । इसकी मात्रा एक ग्रनेके ३२ भागसे १६ भाग तक है । किन्तु रसकपूर ८ ग्रने मात्रा तक व्यवहृत होता है । रसकपूरमें हाइड्रॉज पारक्लोराइडका भाग अपेक्षा-कृत अनेक कम रहनेसे इतनी मात्रामें व्यवहृत हो सकता है । एक ग्रने करोसिय सयलीमेट सेवन करनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती देखा जाता है । इसकी प्रतिपेधक औषध डिग्ब या अण्डेका राल-पदार्थ है । डिग्बकी राल-जलमें घोल कर तुरन्त सेवन करानेसे 'विष शोषित नहीं' हो सकता । प्रचुर परिमाणसे पुनः पुनः डिग्बकी राल सेवन करा कर वमनकारक औषधों द्वारा वमन कराना उचित है ।

(२) खनिज एसिड—सालफ्यूरिक, नाइट्रिक, हाइड्रोक्लोरिक, आदि खनिज एसिडों द्वारा विपाक होने पर क्षार, कार्बनेट और चक्रादि द्रव्य सेवन करना

उचित है। इन सब प्रक्रियाओं द्वारा एसिडकी क्रिया विनष्ट होती है।

(३) अकजालिक एसिड—यह भयङ्कर विष है। इससे १५ या ३० मिनटमें ही आदमी मर जा सकता है। अकजालिक एसिड खनिज नहीं, उद्भिज है। साधारणता हृत्पिण्ड पर इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। इस विषके सेवन करते ही रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है और सहसा मूर्च्छित हो कर प्राणत्याग करता है। इसके द्वारा विपारस होने पर सब तरहकी चमनकारक औषध सेवन करना कार्सेय है। इसके बाद फूलखड़ीका व्यवहार करनेसे अकजालिक एसिडकी विषक्रिया नष्ट होती है।

(४) क्षारद्रव्य—पोटास, सोडा और इनके कार्बोनेट और सल्फाइड सेवनसे भी क्रमिज एसिडकी तरह विषक्रिया प्रकाशित होती है। अधिकतम, इन सब द्वारा देहमें विषलक्षण विद्यमान होने पर उसके साथ अतिसार भी उसका एक आनुसाङ्गिक लक्षण रूपसे दिखाई देने लगता है। अम्लद्रव्य सेवनसे इस अवस्थाका प्रतिकार करना चाहिये।

(५) कार्बोनिक् एसिड—यह भी एक भयङ्कर विष है। यह विष देहमें जो स्थान-स्पर्श करता है, वह स्थान देखते देखते श्वेत वर्ण धारण करता है, देहतन्तु संकुचित हो जाते हैं। स्नायुकेन्द्रमें विषकी क्रिया शीघ्र ही प्रकाशित होती है। इसलिये रोगी सहसा अचेतन हो जाता है। इसका विशेष लक्षण यह है, कि इस विषके सेवनके बाद पेशाब हरे रंगका हो जाता है। इसका प्रतिकार—चूनेके जलमें खीनी मिला शरबत बना कर रोगीको खूब पिलाना चाहिये। सालफेट आय सोडा जलमें घोल कर सेवन करनेसे भी विशेष फल होता है।
उपप्रताजनक विष।

उपप्रताजनक विष उत्पत्ति स्थानमेंसे तभी तरहके होते हैं। घातक, जङ्गम और उद्भिज। इस श्रेणीके विष सेवन या मात्रमें स्पर्श करनेसे स्पष्टस्थानमें जलन पैदा होती है अर्थात् स्पष्टस्थल-रकरसादि द्वारा स्फीत (मोटा) और वेदनायुक्त हो जाता है। विषमें सबसे पहले आसन्निकका

संस्कृत भाषामें यह विष शङ्खुविषके नामसे परिचित है। हिन्दीमें इसे "संख्या" कहते हैं।

संख्या विष, रसाञ्जन, सीसा, ताँबा, दस्ता और क्रोमियम आदि भी घातक विषके अस्तित्व में हैं। उपप्रताजनक उद्भिज विषोंमें इलेटेरियम, गाम्बोज, मुसवर, कलौसिन्ध और जयपालके नाम विशेष भावसे उल्लेखनीय हैं। जङ्गम या जैव उपविष पदार्थोंमें कान्धारिज ही प्रधानतम है।

उद्भिज और जान्तव उपप्रताजनक विष खाद्य द्रव्यसे भी उत्पन्न हो सकता है। फिर वेकटेरिया (जीवाणु-विशेष) द्वारा भी देहमें विष सञ्चारित होता है। करोसिय या दैदिक उपादान-विध्वंसि विषकी अपेक्षा उपप्रताजनक विष बहुत धीरे धीरे क्रिया प्रकाशित करता है। इस जातिका विष गलेके नीचे उतरने पर मुखमें और उदरमें जलन पैदा करता है। पेट हाथ छुने पर भी रोगीको विशेष क्रोधोत्पन्न होता है। चमन, विषमिया और विपासा उपस्थित होती है। फेके बाद ही दस्त आने लगते हैं। इससे भी विष न निकल सकने पर प्रादाहिक उबर दिलाई देता है। इस उबरमें अचैतन्यावस्थाओंमें रोगीको मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणीके विषकी क्रियाके साथ कई रोगोंका यथेष्ट सादृश्य है। जैसे अमाशयिका प्रदाह (Gastritis), आमाशयिक क्षत, शूल (Colic), उदर और अंतर्द्वियोंमें प्रदाह और हैजा होता है।

१—हम सबसे पहले संख्या विषकी बात कहते हैं। जिन सब विषोंसे मनुष्योंके आमाशय और अंतर्द्वियोंमें उपप्रता उत्पन्न होता है, उनमें संख्या ही प्रधान है। संख्या विष नाना तरहसे तय्यार किया जाता है। जिस नामसे चाहे जिस प्रणालीसे वह तय्यार किया न हो, उसकी अल्प मात्रा भी मनुष्योंके लिये निदारुण हो उठती है। इसकी एक श्रेणीकी मात्रा में मनुष्योंकी मृत्यु हो सकती है। देह बहुत दुर्बल हो जाती है। मूर्च्छाको तरह मालूम होने लगती है। इसके बाद जलन पैदा होता है। चमन आरम्भ होता है, जो कुछ मुखसे जाता है, वह भी चमनके साथ बाहर निकल पेटमें उठने नहीं पाता। इस चमनसे भी

आमाशयकी पीड़ा या भारित्य बोध तिरेश्छित नहीं होता। दस्त होता है और उसके साथ खून निकलता है। पसोना निकलता है तथा व्यास लगती है। नाड़ीकी गतिमें कमजोरी तथा अनियमित भाव दिखाई देता है। अट्टारदसे बहत्तर घण्टे तकमें रोगीकी मृत्यु हो सकता है। संखिया विषकी क्रिया तथा हँजेको क्रिया प्रायः एक समान है। संखियाकी विषक्रियाके लक्षणोंमें उद्विग्नचित्त लक्षण ही विशेष हो प्रयोजनीय हैं।

संखिया विषके घूप और सूंघनेसे भी विषक्रिया उत्पन्न हो सकती है। फलतः नेत्र और अंतर्द्वियोंकी जलन और उससे होनेवालों उदरामय आदि पीड़ाये दिखाई देती हैं। संखिया विषका सेवन करनेसे अभ्यासित लोग भा देखे जाते हैं। ये अधिक मात्रामें भी संधिया विष पान कर अग्रलीला क्रमसे उसे पचा डालने हे। उपप्रजनक विषोंमें संखिया विषकी क्रिया भयानक है।

२। सोसा—जीवदेहमें सोसाका विष बहुत धीरे धीरे काम करता है। इसके फलसे लकवा या पक्षाघात और शूल रोग उत्पन्न होते हैं। चित्रकर और ग्लाम्बर आदिको मोसेके विषसे पीड़ित देखा जाता है। सोम-शूल एक बहुत कष्टदायक व्याधि है। इससे नामिकी वगलमें प्रवल घेदना होती है। दुर्निवार्य काष्ठयद्र-रोगमें रोगी यातना पाता है। माड़ीके किनारे काले काले दाग दिखाई देते हैं। रैचक औषध, अफोम और आइडाइड आव पोटासियम आदि द्वारा सोसा विषका प्रतिकार किया जाता है।

सोसा विषका और एक लक्षण यह है, कि इससे हाथ कांपता है और हाथ अवश हो जाता है तथा बाहु खूब जाती है। तद्विषयके संयोगसे इसका प्रतिकार किया जाता है। पोटासियम आइडाइड सेवन कराना आवश्यक है। इन सब प्रक्रियाओंके प्रतिकार न होनेसे दीहिक यन्त्रादि धीरे धीरे विक्षत हो कर रोगीका जीवन नष्ट होता है।

३ तांबा—तांबा भी एक भयानक विष है। तांबेसे ही तृतियाकी उत्पत्ति होती है। तृतियाके पेटमें पहुँचने पर वमनका बीराह्य आरम्भ होता है। एक तोला तृतियासे भी विषकी क्रिया होती है। दशोंके

लिये तो इसकी थोड़ी मात्रा भी अहितकर है। वमन ही तृतियाका प्रधान लक्षण है। वमनसे निकला हुआ पदार्थ तृतिया रङ्गका होता है। शिरका दर्द, पेटमें व्यथा, उदरामय आदि तृतिया विषके लक्षण हैं। तृतियासे शूलकी तरह व्यथा भी होती है। तृतिया विषसे धनुर्दकारका लक्षण दिखाई देना है। चिकि-स्सक वमन करानेके उद्देश्यसे ३५ ग्रैन तृतियाका व्यवहार करते हैं। वमनके साथ तृतिया विष भी शरीरसे बहार निकल आता है। यदि कुछ रह जाये, तो एमाकपप द्वारा आमाशय माफ कर स्निग्ध द्रव्य खानेकी देन चाहिये।

४।—जिङ्ग और बेरियम आदि भी उप्रविषकी तरह क्रिया प्रकाश करते हैं। इसके द्वारा वमन और उदरामय आदि विष लक्षण प्रकाशित होते हैं।

५।—वाक्कोमेट आव पटास—भयानक विष है। यह साधारणतः व्यवहृत नहीं होता और सब जगह यह मिलता भी नहीं। इस विषसे भी अन्नप्रदाहजनित उदरामय और आमाशय प्रदाहजनित वमनका उपद्रव होता रहता है।

६।—फसफरस भी विषश्रेणोके अन्तर्मुक्त है। इसकी यथेष्ट दाहकता शक्ति है। दृष्टोके बाहर या ऊपर हा इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। इसके उद्देश्य हेतुसे आमाशयमें और अंतर्द्वीमें जलन पैदा होती है। साथ ही घेदना भी अनुभूत होने लगती है। वमन और दस्तके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। फसफरस द्वारा ये सब दुर्लक्षणोंके घटनेको परीक्षा अन्धकार गृहमें वमन किये हुए पदार्थोंके देखनेसे होती है। वमनके साथ जो फसफरस बाहर निकलता है, अन्धकारमें यह उज्ज्वल दिखाई देता है।

फसफरसके विषमें यशु खराब हो जाता है। इससे कामलारोग उत्पन्न होता है। तारपीनका तेल इसके प्रतिकारके लिये उत्तम कहा गया है। ३० घूँद भी तेल व्यवहार किया जा सकता है। शिशु या छोटे छोटे बच्चे दो दियामलाईकी काठीको नोक पर लगे फसफरसको उद्देश्य कर लेते हैं।

७।—अवपालका तेल और इलेटेरियम आदि द्वारा भी हँजेकी तरह लक्षण दिखाई देता है।

उचित है। इन सब प्रक्रियाओं द्वारा पसिडकी क्रिया विनष्ट होती है।

(३) अकृजालिक पसिड—यह भयङ्कर विप है। इससे १५ या ३० मिनटमें ही आदमी मर जा सकता है। अकृजालिक पसिड खनिज नहीं, उद्भिज है। साधारणतः हृत्पिण्ड पर इसकी विपक्रिया प्रकाशित होती है। इस विपके सेवन करते ही रोगी अत्यन्त दुर्गल हो जाता है और सहसा मूर्च्छित हो कर प्राणत्याग करता है। इसके द्वारा विपार्च होने पर सब तरहकी यमनकारक औषध सेवन करना कर्त्तव्य है। इसके बाद फूलखड़ीका व्यवहार करनेसे अकृजालिक पसिडकी विपक्रिया नष्ट होती है।

(४) क्षारद्रव्य—पोटास, सोडा और इनके कार्बोनेट और सल्फाइड सेवनसे भी खनिज पसिडकी तरह विपक्रिया प्रकाशित होती है। अधिकतम, इन सब द्वारा देहमें विपलक्षण दिखाने देने पर उसके साथ अतिसार भी उसका एक आनुसाङ्गिक लक्षण रूपसे दिखाने देने लगता है। अम्लद्रव्य सेवनसे इस अवस्थाका प्रतिकार करना चाहिये।

(५) कार्बोनिक् पसिड - यह भी एक भयङ्कर विप है। यह विप देहमें जो स्थान-स्पर्श करता है, वह स्थान देखते देखते श्वेत वर्ण धारण करता है, वेहतन्तु संकुचित हो जाते हैं। स्नायुकेन्द्रमें विपकी क्रिया शीघ्र ही प्रकाशित होती है। इसलिये रोगी सहसा अचेतन हो जाता है। इसका विशेष लक्षण यह है, कि इस विपके सेवनके बाद पेशाब हरे रंगका हो जाता है। इसका प्रतिकार—चूनेके जलमें चीनी मिला शरबत बना कर रोगीको खूब पिलाना चाहिये। सालफेट आब सोडा जलमें घोल कर सेवन करनेसे भी विशेष फल होता है।

उप्रताजनक विप।

उप्रताजनक विप उत्पत्ति स्थानभेदसे तीन तरहके होते हैं। घातय, जङ्गम और उद्भिज। इस श्रेणीके विप सेवन या गालमें स्पर्श करनेसे स्पृष्टस्थानमें जलन पैदा होती है अर्थात् स्पृष्टस्थल रकरसादि द्वारा स्फोट (मोटा) और वेदनायुक्त हो जाता है। घातय उप्रताजनक विपमें सबसे पहले आर्सेनिकका नाम लेना चाहिये।

संस्कृत भाषामें यह विप शङ्खुविपके नामसे परिचित है। हिन्दूमें इसे "संख्या" कहते हैं।

संख्या विप, रसाज्जन, सोसा, ताँबा, दस्ता और क्रोमियम आदि भी घातय विपके अन्तर्भूक्त हैं। उप्रताजनक उद्भिज विपोंमें इलेटेरियम, गाम्बोज, सुसम्बर, क्लोसिन्ध, और जयपालके नाम विशेष भावसे उल्लेखनीय हैं। जङ्गम या जैव उप्रविप पदार्थोंमें कार्बोराजि ही प्रधानतम है।

उद्भिज और जान्तय उप्रताजनक विप खाद्य द्रव्यसे भी उत्पन्न हो सकता है। फिर बेकटेरिया (जीवाणु-विशेष) द्वारा भी देहमें विप सञ्चारित होता है। करोसिव या दैहिक उपादान-विध्वंसि विपकी अपेक्षा उप्रताजनक विप बहुत घोर घोर क्रिया प्रकाशित करता है। इस जातिका विप गलेके नीचे उतरने पर मुखमें और उदरमें जलन पैदा करता है। पेट हाथ छुने पर भी रोगीको विशेष क्लेशोद्य होता है। यमन, विवमिया और विपासा उपस्थित होती है। किके बाद ही दस्त आने लगते हैं। इससे भी विप न निकल सकने पर प्रादाहिक उवर दिवाडा देता है। इस उवरमें अचैतन्यवस्थामें रोगीको मृत्यु हो जाती है। इस श्रेणीके विपकी क्रियाके साथ कई रोगोंका यथेष्ट सादृश्य है। जैसे अमाशयका प्रदाह (Gastritis), आमाशयिक क्षत, शूल (Colic), उदर और अंतर्द्वियोंमें प्रदाह और हैजा होता है।

१—हम सबसे पहले संख्या विपकी बात कहते हैं। जिन सब विपोंसे मनुष्योंके आमाशय और अंतर्द्वियोंमें उप्रता उत्पन्न होती है, उनमें संख्या ही प्रधान है। संख्या विप नाना तरहसे तय्यार क्रिया जाता है। जिस नामसे चाहे जिस प्रणालीसे वह तय्यार क्यों न हो, उसकी अल्प मात्रा भी मनुष्योंके लिये निदायण हो उठती है। इसकी एक प्रेनकी मात्रामें मनुष्योंकी मृत्यु हो सकती है। देह बहुत दुर्बल हो जाते हैं। मूर्च्छाकी तरह मालूम होने लगती है। इसके बाद जलन पैदा होती है। यमन आरम्भ होता है, जो कुछ मुखसे खिलारा जाता है, वह भी यमनके साथ बाहर निकल जाता है, पेटमें उदरने नहीं पाता। इस यमनसे भी

आमाशयकी पीड़ा या मारित्य बोध तिरहेहित नहीं होता। दस्त होता है और उसके साथ रून निकलता है। पसोना निकलता है तथा प्यास लगती है। नाडोकी गतिमें कमजोरो तथा अनियमित भाव दिखाई देता है। अङ्गारहसे बहत्तर घण्टे तकमें रोगीकी मृत्यु हो सकता है। संखिया विषकी क्रिया तथा हैजेकी क्रिया प्रायः एक समान है। संखियाकी विषक्रियाके लक्षणोंमें उच्चिन्नलित लक्षण ही विशेष हो प्रयोजनीय हैं।

संखिया विषके घूएँ और सूँघनेसे भी विषक्रिया उत्पन्न हो सकती है। फलतः नेत्र और अंतडियोंकी जलन और उससे होनेवालो उदरामय आदि पीडायेँ दिखाई देती हैं। संखिया विषका सेवन करनेसे अभ्यासित लोग भा देखे जाते हैं। ये अधिक मात्रांमें भी संखिया विष पान कर अचलोलो प्रमसे उसे पचा डालते हैं। उग्रताजनक विषोंमें संखिया विषकी क्रिया भयानक है।

२। सोसा—जीवदेहमें सोसाका विष बहुत धीरे धीरे काम करता है। इसके फलसे लकवा या पक्षाघात और शूल रोग उत्पन्न होते हैं। चिलकर और ट्वाम्बर आदिका सोसेके विषसे पीड़ित देखा जाता है। सोम-शूल एक बहुत कष्टदायक यंत्राधि है। इससे नाभिको बगलमें प्रबल वेदना होता है। दुर्निवार्य काष्ठवेद-रोगमें रोगी यातना पाता है। माडोके किनारे काले काले दाग दिखाई देते हैं। रेवक औषध, अफोम और आइडाइड आव पोटासियम आदि द्वारा सोसा विषका प्रतिकार किया जाता है।

सोसा विषका और एक लक्षण यह है, कि इससे हाथ कांपता है और हाथ अवश हो जाता है तथा बाहु सूख जाती है। तडिन्वंत्रके संयोगसे इसका प्रतिकार किया जाता है। पोटासियम आइडाइड सेवन कराना आवश्यक है। इन सब प्रक्रियाओंके प्रतिकारन होनेसे दैहिक यन्त्राधि धीरे धीरे विकृत हो कर रोगीका जीवन नष्ट होता है।

३ तांबा—तांबा भी एक भयानक विष है। तांबेसे ही तृतिपाकी उत्पत्ति होती है। तृतिपाके पेटमें पकूचने पर घमनका वीराम्य आरम्भ होता है। एक तोला तृतिपासे भी विषकी क्रिया होती है। यथाके

लिये तो इसकी थोड़ी मात्रा भी अहितकर है। घमन ही तृतिपाका प्रधान लक्षण है। घमनसे निकला हुआ पदार्थ तृतिपा रङ्गका होता है। शिरका दर्द, पेटमें ब्याध, उदरामय आदि तृतिपा विषके लक्षण हैं। तृतिपासे शूलकी तरह ब्याध भी होती है। तृतिपा विषसे धनुत्कारका लक्षण दिखाई देता है। चिकि-स्सक घमन करानेके उद्देश्यसे ३५ प्रेन तृतिपाका व्यवहार करते हैं। घमनके साथ तृतिपा विष भी शरीरसे बहार निकल आता है। यदि कुछ रह जाये, तो छमाकपग्य द्वारा आमाशय साफ कर स्निग्ध द्रव्य खानेकी देना चाहिये।

४।—जिङ्गु और वैरियम आदि भी उप्रविषकी तरह क्रिया प्रकाश करते हैं। इसके द्वारा घमन और उदरामय आदि विष लक्षण प्रकाशित होते हैं।

५।—थारकोमेट आव पटास—भयानक विष है। यह साधारणतः प्यवहृत नहीं होता और सब जगह यह मिलता भी नहीं। इस विषसे भी अन्तप्रदाहजनित उदरामय और आमाशय प्रदाहजनित घमनका उपद्रव होता रहता है।

६।—फसफरस भी विषश्रेणोके अन्तर्भुक्त है। इसको यथेष्ट दाहकता शक्ति है। हड्डोके बाहर या ऊपर हाँ इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। इसके उदरस्थ होनेसे आमाशयमें और अंतडिमें जलन पैदा होती है। साथ ही वेदना भी अनुभूत होने लगती है। घमन और दस्तके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। फसफरस द्वारा ये सब दुर्लक्षणोंके घटनेको परीक्षा अन्धकार गृहमें घमन किये हुए पदार्थोंके देखनेसे होती है। घमनके साथ जो फसफरस बाहर निकलता है, अन्धकारमें यह उज्ज्वल दिखाई देता है।

फसफरसके विषमें यकृत चराब हो जाता है। इससे कामलारोग उत्पन्न होता है। तारपीनका तेल इसके प्रतिकारके लिये उत्तम कहा गया है। ३० घूँद भी तेल व्यवहार किया जा सकता है। शिशु या छोटे छोटे बच्चे हो दियासलाईको काठीकी नेाक पर लगे फसफरसको उदरस्थ कर लेते हैं।

७।—जयपालका नेल और इलेटेरियम आदि द्वारा भी हैजेकी तरह लक्षण दिखाई देता है।

८।—जागत्य विषोंमें केन्थेरिज विशेष कष्टदायक है। इससे वमन होता है, पेशाब करनेमें जलन होती और क्लेश अनुभव होता है। कभी कभी तो पेशाब होता ही नहीं। केन्थेरिज उदररस्य होनेसे स्तनः ही वमन होता है। स्तनाध पानोपपान इस अवस्थामें उपादेय है। अफीम इसके प्रतिकारके लिये एक-महोपध है। अधोदेशमें अफीमका सार (मर्फिया) पिचकारीकी सहायतासे प्रविष्ट करा कर मूलनालीका उपद्रव शास्त हो जाता है।

स्नायुविकारी विष।

इस श्रेणीके विष स्नायु विकार हैं। जिन सब विषको इसी श्रेणीमें भुक्त किया गया है, उन सब विषोंकी क्रियायें आपसमें इतनी पार्यायण हैं, कि उनके बहुत उपविभागमें विभक्त कर मिश्र भिन्न नामसे अमिहित किये जा सकते हैं। यहां इन सब विषोंका श्रेणीविभाग न कर उनमें कई प्रधान द्रव्योंका नामालेख और विप-लक्षण आदि विकृत किये जाते हैं।

१।—प्रासिक या हाइड्रोसियानिक एसिड—हाइड्रो-सियानिक एसिड बहुत भयङ्कर विष है। विजली जैसे जीव ही प्राण ले-लेती है, यह विष भी ठीक वैसा ही है। औषधकी दूकानों पर जो हाइड्रोसियानिक खरोदनेसे मिलता है, वह विमिश्रित अवस्थामें रहता है और उसमें साधारणतः सैकड़ २ भाग शुद्ध हाइड्रोसियानिक एसिड है। इसी परिमाणसे हाइड्रोसियानिक एसिड ही औषध के लिये व्यवहृत होता है। इसकी मात्रा पांच मिनिमसे अधिक नहीं। एक ड्रामसे कम मात्रा सेवनसे भी मृत्यु हो सकती है। एक सेकेण्ड समयमें समग्र देहमें इसकी विषक्रिया प्रकाशित होती है। मुहूर्त्तमाल श्वासकण्ड अनुभूत होनेके बाद ही हृत्पिण्डकी क्रियाका हास हो जाता है। नेत्रोंको मणि प्रसारित देहके अंग प्रत्यंग भयानक रूपसे आक्षिप्त और श्वासकी गति अनिश्चितरूपसे प्रवाहित होती है, वदनमण्डल नीलाभ रङ्ग धारण करता है। मांसपेशियोंके असाइ होनेसे विष पीड़ित प्यक्ति और मुहूर्त्त भर भी अपने वंशमें नहीं रद्द सकता। इसके बाद प्रबल श्वासकण्ड, नाड़ी-लोप और देहकी सब तरहकी क्रियायें रुक जाती हैं।

इस अवस्थामें जीव हो मृत्यु होना है। हाइड्रोसियानिक एसिडकी वृ-मृत व्यक्तिके मुंह तथा देहसे निकलती है।

प्रतिकारकी व्यवस्था—उग्र एमोनिया सूचना और पर्यायक्रमसे शीतल तथा कुछ गर्म जल पीनेको देना, अङ्ग प्रत्यङ्ग पर हाथ फेर रक्तका सञ्चालन करना तथा क्लिप्त श्वास-प्रश्वासके परिचालन करना ही इसका प्रतिकार है। चर्मके नीचे एट्रोपीनकी पिचकारीसे भी हृत्पिण्डकी क्रियाको उत्तेजित किया जा सकता है तथा उससे उपकार भी होता है।

२।—अफीम—अफीम इस देशमें आत्महत्याका एक साधन है। औषधोंमें भी अफीम मिलाई जाती है। उसमें मर्फिया ही प्रधान है। मर्फिया अफीमका सार है। अफीमसे ही एपोमरफान, कोडिन, एपोकोडिन, नारसिन, नारकोटिन आदि विविध प्रकार विपजनक सार प्राप्त होता है। इससे ही एम्मुआटाम अपियाई, एकप्रूष्ट, अपियाई, एकप्रूष्ट अपियाई लिक्विडम, अपियाई आदि प्रस्तुत होते हैं। सिवा इनके डोवर्स पाउडर आदि और भी बहुतविध औषधके साथ सम्मिश्रित अफीमजान औषध चिकित्सामें व्यवहृत होती हैं।

मर्फियासे भी कई तरहकी औषध तय्यार होती हैं। उनमें विलियम मर्फिया, मर्फिनो एसिटास, लाइकर मर्फिया एसिटेटिस, मर्फिनो हाइड्रोक्लोमाइडम्, मर्फिया हाइड्रोक्लोराइड, लाइकर मर्फिया हाइड्रोक्लोराइड, लिंटास मर्फिनो, ट्रेचिसाई मर्फिनो, मर्फिनो मिफोनस, लाइकर मर्फिनो, चाइमेकोनेटिस, मर्फिनो सालफास, लाइकर मर्फिनो सालफेटिस, मर्फिया-टारट्रास, लाइकर मर्फिनो टारट्रास आदिके नाम उल्लेखयोग्य हैं। सिवा इनके इस समय मर्फियासे डाइओनिन, हिरोइन और पेराइन आदि और भी कई औषध तय्यार हो कर व्यवहृत हो रही हैं।

अफीम पूर्ण व्यवस्कके लिये भी दो प्रेनसे अधिक मात्रामें व्यवहार करनेकी विधि नहीं। मर्फियाकी मात्रा भी साधारणतः एकतृतीयांश प्रेन है। हिरोइन आदि और भी कम मात्रामें व्यवहृत होते हैं।

अभ्यासके फलसे अफीम और मर्फिया कुछ लोग

खुब अधिक मात्रामें व्यवहृत किया करते हैं। बालकोंके लिये अफीम भयानक विष है। बहुत कम मात्रासे भी वे अचेत हो जाते हैं। छोटे छोटे बच्चोंके लिये यह बिलकुल अथवाहारी है। अफीमके विषसे पहले मस्तिष्कमें रक्तसञ्चय होता है, मुखमण्डल नीलाम हो जाता है, रक्त सञ्चालनमें बाधा उपस्थित होनेके कारण ही मुख नीलाम होता है। आँखकी पुतली संकुचित हो जाती है। देहका चमड़ा सूख जाता और नरम हो जाता है। श्वास मन्द पड़ जाता तथा भाराक्रान्त हो जाता है। चैतन्यता विलुप्त होने लगती है। इस अवस्थामें शिर पकड़ कर हिलाने तथा कानमें उच्च शब्द करनेसे चेतना आती है। इस अवस्थामें भी यदि विषकी क्रिया बिनष्ट न हो, तो घोरतर तन्द्रा उपस्थित होती है। उस समय किसी तरह चेतनता लाई नहीं जा सकती। पसीना निकलता रहता है। श्वास-गतिमें वैषम्य उपस्थित होता, नाड़ीकी द्रुतगति हो जाती है, अन्तमें बिलकुल ही विलुप्त हो जाती है। इसी तरह क्रमसे मृत्यु हो जाता है।

प्रतिकारकी व्यवस्था—इसकी पहली चिकित्सा वमन कराना है। "एमाकपम्प" द्वारा यह कार्य सुचाद-रूपसे सम्पादित होता है। विषपीड़ित रोगीको ठहलाते रहना चाहिये, जिससे वह सोने न पाये। छाती पर पर्यायक्रमसे गरम और शीतल जलका 'डूस' प्रयोग करना चाहिये। कानक निकट सदा उच्च शब्द करते रहना चाहिये। इससे 'स्नायुमण्डली' उत्तेजित होती है। भिन्ने गमछेसे हाथ और पैरों में आघात करना चाहिये। ताड़ित प्रवाह प्रयोगसे भी उपकार होता है। देहमें हाथका सञ्चालन कर रक्त सञ्चालनका संरक्षण करना उचित है। एमोनिया और अलकोहल पानीय-रूपसे श्वषदार करना चाहिये। काफोका जल भी उपकारक है। श्वास गतिमें वैषम्य उपस्थित होने पर अन्तिम श्वास प्रश्वास चलानेका उपाय करना चाहिये। पदोपिया पूर्ण मात्रासे त्यक्के नीचे प्रक्षेप करनेसे बहुत उपकार होता है। प्रोक्निया भी अफीम विषका प्रति-पेधक है।

३। प्रोक्नाइन—यह उन्मिज विष है। विविध

उन्मिजोंसे प्रोक्नियन विषको उत्पत्ति होती है। कुचिला-ने यथेष्ट परिमाणसे प्रोक्निया है। धनुष्टकारमें जो लक्षण दिखाई देते हैं, प्रोक्निया विषके भी वही सब लक्षण हैं। इससे उङ्गली, गुल्फ, उदर, हृदय, यक्ष और गला आकृष्ट होनेसे रोगीकी दृष्टि स्तम्भित हो जाती है, हनुरोध भी होता है, गलेका पिछला भाग कठिन हो जाता है, रोगी धनुषको तरह टेढ़ा हो कर आक्षिप्त हो जाता है। कुछ देर तक विराम के बाद फिर यह लक्षण दिखाई देता है। जरा सञ्चालनसे या दूसरेके स्पर्शसे तुरन्त उक्त लक्षण दिखाई देता है। अन्तमें स्नायुमण्डली अवसन्न हो कर यन्त्रादि क्रिया विलुप्त होती है। इसके बाद रोगीको शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—हाइड्रेट आय क्लोरल और क्लोरैफार्मके प्रयोग द्वारा इस विषकी चिकित्सा करना चाहिये।

४। पकोनाइट—यह भी उन्मिज विष है। पकोनाइट बहुत भयङ्कर विष है। इसके एक ग्रामके १६ भागके एक भागसे मृत्यु हो सकती है। इससे शरीरमें जलन, भ्रिम भ्रिमानी (किष्कनी), भयानक वमन, स्नायु-मण्डलीकी गति और हानिक्रियाका निवृत्त होता है। हृदयपिण्ड अवसन्न हो जाता, मूर्च्छावस्थामें रोगीकी मृत्यु हो जाती है। किन्तु कभी भी हानिका वैषम्य नहीं होता है।

प्रतिकार—डिजिटैलिस पकोनाइटकी विषक्रियाका विनाशक है। सुतरां डिजिटैलिन नामक दोष चर्मके नीचे प्रक्षेप कर (Injection) इसकी चिकित्सा करना चाहिये।

५। वेलेडाना—धतूरा जातिका एक उन्मिज विष है। इससे आँखोंकी पुतलियाँ फैल जाती, नाड़ीकी गति तेज हो जाती, चमड़ा उत्तेजित और गर्म हो जाता, किसी चीजके गलेसे घोटने पर महाक्लेश होता, अल्पधिक पिपासा और प्रलाप उपस्थित होता है। इसके धोषोंका नाम—पेटोपिन है।

प्रतिकार—एमाक पम्प द्वारा विष बाहर करना चाहिये। मर्किया इसका प्रतिपेधक है। अघस्थकमें

मर्षियाकां प्रक्षेप (Hypodermic injection) द्वारा इसमें विशेष उपकार होता है।

वायवीय विष।

१। क्लोरिन और प्रोमिन—यह दोनों वायवीय विष भयानक उपद्राजनक हैं। निःश्वसकं साथ ये दोनों कण्टके नीचे पहुँचने पर कण्टकनालीमें भयानक आक्षेप उपस्थित होता है। श्वासयन्त्रकी प्रलेम्बिक क्लिष्टीमें प्रदाह उत्पन्न होता है। इससे शीघ्र ही मृत्यु होती है।

प्रतिकार—एमोनियाका वाष्प सूँघना, बड़ा उपकारक है।

२। हाइड्रोक्लोरिक एसिड-गैस—हाइड्रोक्लोरिक और हाइड्रोक्लोरिक एसिड इन दोनों पदार्थोंके गैस ही उपद्राजनक और सांघातिक हैं। शिल्पादिके कारखानोंमें कभी कभी इस विषसे विपाक हो कर कितने ही लोग मर जाते हैं। इसकी प्रतिक्रिया भी पूर्णवत् है।

३। सल्फरस एसिड गैस—गन्धक जलानेसे यह गैस उत्पन्न होता है। यह उपद्राजनक और श्वासरोधक है। इससे भी कण्टकनाली आक्षिप्त होती है। एमोनियाका वाष्प सूँघनेसे इसका प्रतिकार होता है।

४। नाइट्रास वेपर (Vapour)—गैलमेनिक घेटीरीसे यह गैस उत्पन्न होता है। यह वाष्प फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर उसमें प्रदाह उत्पन्न होता है और शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

५। कार्बोनिक एसिड गैस—यह वायुकी अपेक्षा बहुत भारी है और वायुके साथ फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर प्राणसंघातक होता है। लकड़ी आदिके जलाते समय भी यह विष पदार्थ उत्पन्न होता है। यह भीषण विषवायु शरीरमें स्पर्श होते ही मनुष्य मृत्युसुखमें पतित होता है। पुराने कूप या बन्द मोरियोंमें यह विष सञ्चित रहता है। ऐसे स्थलमें घुसा हुआ व्यक्ति तुरन्त मर जाता है। घरमें किरासन तेल जला घरका दरवाजा बन्द कर देनेसे जो आदमी उस घरमें रहते हैं, उनकी देहमें उसका धूँआँ घुस जाता है, इससे उनकी शीघ्र ही मृत्यु होती है। बहुधा देखनेमें आता है, कि बहुतेरे व्यक्ति किरासन तेल जला कर उस कमरेका दरवाजा बन्द कर लेते हैं और इस विषके शिकार होते

हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि लालटेनमें किरासन तेल जलानेसे ऐसा नहीं होता; किन्तु यह उनकी भूल है। चाहे किसी तरह हो किरासन तेल जलाया जाय, उसका धूँआँ निकलेगा ही। इस पर यदि उसके बाहर निकलनेका पथ रुद्ध कर दिया जाये, तो यह अवश्य है, कि उससे शरीरकी भीषण क्षति होती तथा कभी कभी तो उससे मृत्यु तक हो जाती है। इसका धूँआँ श्वासके साथ साथ शरीरके भीतर पहुँच कई तरहका रोग उत्पन्न करता है। यदि दरवाजा बन्द भी न किया जाये, तो भी इसका धूँआँ नासिका या मुँहमें श्वासके साथ प्रवेश कर जाता है।

प्रतिकार—वक्षमें पर्यायकमसे शीतल और गरम जलका प्रयोग है। देहिक रक्त सञ्चालनके लिये हाथसे देह मलना और कृत्रिम श्वासका उपयोग साधन करना प्रधान कर्तव्य है।

६। कार्बोनिक अक्साइड गैस—इसमें विशुद्ध कार्बोनिक एसिड रहनेसे ही इससे विपलक्षण उपस्थित होता रहता है। कार्बोनिक अक्साइड रक्तके हिमग्लोबिनके साथ दृढ़ रूपसे विमिश्रित होता रहता है। इससे मरे आदमीके रक्तका रङ्ग अधिकतर समुज्ज्वल दिखाई देता है। इसकी प्रतिक्रिया पूर्णवत् है। कार्बोनिक अक्साइड मिश्रित वायुके आघ्राणसे तुरन्त ही मृत्यु हो जाती है।

७। कोयलेका गैस—इसके द्वारा श्वासरोध और ह्यान विलुप्त होता है। इसकी चिकित्सा कार्बोनिक एसिडके विषकी चिकित्साकी तरह है।

८। सल्फरटेड हाइड्रोजन गैस—यह भयङ्कर वायवीय विष है। यह विषवायु घनाभूतमात्रामें देहमें प्रविष्ट होने पर तुरन्त मृत्यु होती है, श्वासरोध इसका प्रधान लक्षण है। वायुके साथ विमिश्रित हो देहमें प्रविष्ट होने पर भी इसके द्वारा शूल, विषमिषा, वमन और तन्द्रा उपस्थित होती है। श्वासमन्दता और पसोना निकलना आदि दुर्लक्षण क्रमशः दिखाई देते हैं। रक्तकी लाल कणिका विश्लिष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्थामें हाथसे देह मलने, उष्णताका प्रयोग और उत्तेजक औषधादि व्यवहार्य है। कुछ लोग समझते हैं, कि क्लोरिन गैस, जब रासा-

यनिक हिंसावसे सलफाटेटेड हाइड्रोजन गैसका प्रति-
द्वन्द्वी है, तब इस क्लोरिन गैसके आघ्राणसे उसकी
विपक्रिया नष्ट हो जा सकती है। किन्तु क्लोरिन गैस
प्रयोगके समय यह भी ध्यानमें रखना चाहिये, कि क्लोरिन
गैस अपने भी मयानक विष है। सुतरां किसी तरह
उसकी अधिक मात्रामें तथा असावधानीके साथ इसका
व्यवहार न होने पावे।

६। नाइट्रस अक्साइड और क्लोरोफार्म बहुत
द्रव्य स्पर्श और चैतन्यापहारक हैं तथा उसी उद्देशसे
इनका व्यवहार भी होता है। भ्वास्त्रोघ संगठन करना
हो इन सब विषोंका कार्य है।

प्रतिकार—कृत्रिम भ्वास्त्र-प्रभ्वास्त्र और ताड़ितप्रवाह
द्वारा इस अवस्थाका प्रतिकार होता है।

१०। हाइड्रोकार्बोनोंका वाष्प—वेनजोलिन, पिट्टा-
लियम आदिसे जो वायवीय पदार्थ निकलता है, उसके
द्वारा भी विपक्रिया संगठित होती है। इन सब वायवीय
विषोंसे भ्वास्त्र रुक हो कर मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—कृत्रिम भ्वास्त्र-प्रणाली आलम्बन और
ताड़ितप्रवाहसे इस अवस्थाका प्रतिकार होता है।

दैहिक विष।

जीवदेहके अन्त्येतर ही बहुत विषपदार्थ विद्यमान
है। सुनिपुणा देह-प्रकृति अपने सुन्दर विधानके लिये
प्रतिनिपत्यके साथ विष देहसे अपसारित कर जीवोंका
मृत्युमुखसे रक्षा करती है।

कार्बोनिफ एसिड।

इन सब विषोंमें हम कार्बोनिफ एसिडको बात इससे
पहले ही कह चुके हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं,
कि देहका कार्बोनिफ एसिड बहुत संघातक पदार्थ है।
फुफ्फुस और कर्मापथसे कार्बोनिफ एसिड अधिक परि-
माणसे बाहर निकलता है, इससे हमारा स्वास्थ्य और
जीवन अत्यादन रहता है। किन्तु कारणसे कार्बोनिफ
एसिडका निकलना बन्द हो जाये, तो तुरन्त देह-राज्यमें
भोगण विशृङ्खला उपस्थित हो जाती है और सहसा
मृत्युका लक्षण दिखाई देता है।

यूरिया।

दूसरा विष-पदार्थ यूरिया है। वृक्क नामक मूत्र-

कारक पन्थद्वय अविरत देहसे मूत्रपथसे यह विष शरीर
से अपसारित किये देते हैं। यदि किसी कारणवश
दैहिक रक्तके साथ यह पदार्थ अधिक परिमाणसे
विमिश्रित हो जाता है, तो रोगी अचेतन और घोरतर
तन्मामें अमिभूत हो जाता है और उसमें प्रायः ही
मृत्यु हो जाती है।

पित्त।

दूसरा विष पित्त है। देहके रक्तके साथ पित्त
विमिश्रित होनेसे कामला आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
स्नायवीय यन्त्र विकृत हो जाते हैं। मानसिक शक्ति
विनष्ट हो जाती है। रोगी अज्ञानावस्थामें मृत्यु मृत्यु प्रत्याप
करते करते विलकुल अचेत हो जाता है।

इस तरह विविध रोगोत्पादक दैहिक उत्पादन द्वारा
भी कई तरहसे देह विषाक हो जाती है। प्राच्य और
प्रगोच्य चिकित्सकोंका सिद्धान्त है, कि दैहिक पदार्थमें
हो बहुविध रोगोंका कारण निहित है और तो क्या—
दैहिक गर्जरा आदि अतिरिक्त मात्रामें रक्तमें विमिश्रित
होने पर भी देहका स्वास्थ्य विनष्ट कर सांघातिक रोगको
सृष्टि करते हैं।

विषाणु।

इस समय बैक्टेरिओलोजी नामके जीवाणु और
उदुभिदाणुतत्त्वका जो अभिनव वैज्ञानिक आन्दोलन चल
रहा है, उसमें कई जीवाणु और उदुभिदाणु मानवदेहके
लिये भयानक विष प्रमाणित हुए हैं। उक्त वैज्ञानिकोंकी
गवेषणासे स्थिर हुआ है, कि हैजा, प्लेग, टाइफाइड
फोवर (तपेदिक ज्वर), घनघुट्टार, चेचक आदि संघातक
रोग इन सब जीवाणु और उदुभिदाणु विषके ही क्रिया-
मात्र हैं।

ये सब रोगवीजाणु आहारार्थ, पानोय या वायुके
साथ देहके भीतर प्रवेश करने मगया देहसंपृष्ट
होने पर इन सब रोगोंके लक्षण प्रकाशित होते हैं और
ये क्रमसे ही भोगणतर हो रोगोंका जीवन नाश करते
हैं। इस समय अधिकांश व्याधिर्वाही रोगवीजाणुके
देहप्रवेश विषमय फल अवधारित हुई हैं।

इन सब संघातक विषोंके कार्बोनिफ एसिडके लिये
आधुनिक वैज्ञानिक प्रक्रियासे पर्लेटो टर्क्विन सिराम

मर्फियाका प्रक्षेप (Hypodermic injection) द्वारा इसमें विशेष उपकार होता है ।

वायवीय विष ।

१। क्लोरिन और ब्रोमिन—यह दोनों वायवीय विष भयानक उप्रताजनक हैं । निश्वासके साथ ये दोनों कण्टके नीचे पहुँचने पर कण्टनालीमें भयानक आक्षेप उपस्थित होता है । श्वासयन्त्रकी एलेमिक किल्लीमें प्रदाह उत्पन्न होता है । इससे शीघ्र ही मृत्यु होती है ।

प्रतिकार—पमोनियाका वाष्प सूँघना बड़ा उपकारक है ।

२। हाइड्रोक्लोरिक एसिड-गैस—हाइड्रोक्लोरिक और हाइड्रोक्लोरिक एसिड इन दोनों पदार्थोंके गैस ही उप्रताजनक और सांघातिक हैं । शिश्पादिके कारखानोंमें कभी कभी इस विषसे विषाक्त हो कर कितने ही लोग मर जाते हैं । इसकी प्रतिक्रिया भी पूर्णवत् है ।

३। सल्फरस एसिड गैस—गन्धक जलानेसे यह गैस उत्पन्न होता है । यह उप्रताजनक और श्वासरोधक है । इससे भी कण्टनाली आक्षिप्त होती है । पमोनियाका वाष्प सूँघनेसे इसका प्रतिकार होता है ।

४। नाइट्रस सेपार (Vapour)—गैलमेनिक वेदरीसे यह गैस उत्पन्न होता है । यह वाष्प फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर उसमें प्रदाह उत्पन्न होता है और शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है !

५। कार्बनिक एसिड गैस—यह वायुकी अपेक्षा बहुत भारी है और वायुके साथ फुस्फुसमें प्रविष्ट होने पर प्राणसंघातक होता है । लकड़ों आदिके जलाते समय भी यह विष पदार्थ उत्पन्न होता है । यह भीषण विषवायु शरीरमें स्पर्श होते ही मनुष्य मृत्युमुक्षमें पतित होता है । पुराने कूप या बन्द मोरियोंमें यह मञ्चित रहता है । ऐसे स्थलमें घुसा हुआ तुरन्त मर जाता है । घरमें किरासन तेल दूरचाजा बन्द कर देनेसे जो आदमी उस घरमें उनकी देहमें उसका धूँआँ घुस जाता है, की शीघ्र ही मृत्यु होता है । बहुधा देखनेमें कि बहुतेरे व्यक्ति किरासन तेल जला कर दूरचाजा बन्द कर लेते हैं और इस विषके

हैं ।

तेल जलाने

है ।

उसका

निकल

कि उ

ता उर

साथ

करत

भी

कर

ज

दे

प्र

विष

होता

पाश्चात्य

Hocha

२०। हुरा—भारतवर्षके जङ्गलोंमें यह उद्भिद् देखा जाता है। इसका भारतीय नाम सुना नदी जाता। इससे जयपालकी तरह दस्त और कै होती है।

२१। पारासिष्य—इसकी विषक्रिया स्नायवीय वस्तु पर प्रतिफलित हो मोह आदि उत्पन्न करती है।

२२। पारायन जायन्धया रतन जौत—इसके बीजमें हैजेकी तरह दस्त और कै होता है।

हिन्दू शास्त्रमें (पैतरेयब्राह्मणमें) विषकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है, कि भगवन्नारायणने कूर्मावतारमें पीठ पर मन्दूपर्वत धारण कर धरतीका मङ्गल साधन किया था। देवों और असुरोंने दो धलोंमें पिबक हो उक्त पर्वतको मन्धनदण्ड और वासुकी (नाग)-को रस्सी बना कर समुद्रका मन्धन किया था। इसके फलसे सर्वांशेषमें विष उतारन हुआ। त्रिताप हर महादेश उम गरलको पान कर दो नीलकण्ठ हुए हैं।

समुद्रमन्थन और हलाहल शब्द दलो।

ऋषिदेश्य युगमें आर्य ऋषिगण सर्पविष और अन्यान्य विषोंका जानते थे और उन्हें इनका व्यवहार भी मालूम था। उक्त संहिताके ७।५० सूक्तके पढ़नेसे मालूम होता है, कि षसिष्ठ ऋषि मितावरुण, अग्नि, और वैश्वानरकी स्तुति करते समय कहते हैं—“कुलाय-कारो और सर्वांश वदमान, विष हमारे सामने न आये। अन्नका नामक रोगविनिष्ट दुर्दृशं न विष विनष्ट हो। छश्यामी सर्प शब्द द्वारा हमको न जान सके। जो घन्दन नामक विष नाना जन्ममें पृश्नादिके ऊपर ऋजूत होता है, वह विष पुटना और गुल्फ स्फोट करता है। द्रोत्तनान अग्निदेव यह विष दूरीभूत करे”।

(श्रुक् ७।५०।१-३)।

१।१७।१६, १०।८७।१८ और २३ मन्त्रोंका पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये सब विष दाहकारक और प्राणनाशक होता है।

अधर्ववेदके ४।६।२ मन्त्रोंमें कन्दमूलादि विषको प्रवरनाका उल्लेख है। ५।१।१० और ६।६।०२ मन्त्रोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह मनुष्योंके लिये विशेष अपकारक है। शतपथब्रा० २।४।३२, ६।१।१०; पञ्चविंशब्राह्मण ६।६।६ और तैत्तिरीय

ब्राह्मण २।१।१ आदि सधामें विषकी नामकल्प शक्तिका उल्लेख है। भगवान् मनुने लिखा है, कि स्थावर जङ्गल नामक कृत्तिम या अकृत्तिम गरादि विष कमा मो जलमें न फेकना चाहिये। (मनु ४।५६) विष वेचनेका मनाहो है। जो विष वेचता है, वह पातित और निरवगामा होता है। (मनु १०।८८)

विषकङ्कालिका (सं० खो०) वृक्षविशेष, विषकंकाल।

विषकङ्कौलिका (सं० खो०) विषकंकाल।

विषकण्ट (सं० पु०) इन्द्रो वृक्ष। (राजनी०)

विषकण्टक (सं० पु०) हुरालमा, जावा, धमासा।

विषकण्टका (सं० खो०) वन्ध्याकर्कटको, वांफ ककड़ी।

पर्याय—वन्ध्याकर्कटको, देवा, कन्या, योगेश्वरी, नागारि, नागदमनो। गुण—लघु, प्रणशोचक, तोषण तथा कफ, सर्पेर्ष, विसर्ष और विपनाशक। (भागप्रकाश)

विषकण्टालिका (सं० खो०) एक प्रसिद्ध वृक्ष।

विषकण्ठ (सं० पु०) नीलकण्ठ, शिव।

विषकण्ठिका (सं० खो०) चक्रपक्षा, वगला।

विषकन्द (सं० पु०) १ मक्षिपकंद, भैंसा कन्द। २ नीलकण्ठ। ३ इन्द्रोवृक्ष, हिंमोट।

विषकन्या (सं० खो०) वह कन्या या स्त्री जिसके शरीरमें इस आशयसे कुछ विष प्रविष्ट कर दिये गये हों, कि जो उसके साथ संभोग करे, वह मर जाय।

प्राचीन कालमें राजाओंके यहां यवपनसे ही कुछ कन्यायोंके शरीरमें अनेक प्रकारसे विष प्रविष्ट करा दिया जाते थे। इस विषके कारण उनके शरीरमें ऐसा आभास आ जाता था कि जो उसके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजाको अपने किसी शत्रुको युक्त रूपसे मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकारको विषकन्या उसके पास भेज देता था। जिसके साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

मुद्राराक्षस (४२।१६) और कथासरित्सागर (१६।८१)में विषपान द्वारा तैयारकी गई सुन्दरी ललनाका उल्लेख मिलता है। वह कन्या प्रति दिन थोड़ा विष लिला कर पाओ गई थी। जो व्यक्ति उस कन्याके साथ संभोग करता उसका मृत्यु अवश्यम्भानी थी। मन्त्री

नामके कई तरहके विषय द्रव्य तय्यार हो रहे हैं। ये सब "सिरम" पदार्थ ही इस समय उक्त संघातक रोगोंकी वैज्ञानिक विषय औषध स्थिर हुई है।

भारतमें उत्पन्न होनेवाले उद्भिज विषकी किररित ।

१। काष्ठविष—यह पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञानमें एकोनाइट नामसे प्रसिद्ध है। इस देशमें कई तरहके काष्ठविष दिखाई देते हैं। पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञान-विद् पण्डितोंने इस देशमें एकोनाइटम् फेरक्स, एकोनाइटम् नेपोलस, एकोनाइटम् पामेटम्, एकोनाइटम् हिटारोफाइलाम आदि बहुतेरे वृक्षोंमें काष्ठविष या एकोनाइटका प्रभाव देख पाया है। इस विषका विवरण इससे पहले लिखा गया है।

२। दाहमारो या वनमिर्च—इस वृक्षके पत्र दाहक-विष है। इसके पत्रसे फोड़ा पड़ जाता है।

३। काकमारो—काकमारो अल्पमात्रामें विषलक्षण प्रकाश न करने पर भी इसकी अधिक मात्राके सेवनसे इससे विषके लक्षण प्रकट होते हैं। इसके बीजमें विष रहता है। इसके बीजमें जो विष रहता है, उसका नाम पाश्को-टेकसिन है।

४। कुंकनी—यह उद्भिद् विष पञ्जाब प्रांतमें उत्पन्न होता है। यह पशुके मारनेमें काम आता है। ग्रामीण चमार इसी विषका जिला कर गाप आदि पशुओंका मार डालते हैं।

५। किरानु—पञ्जाब-प्रदेशमें यह उद्भिद् विष दिखाई देता है। इसका मूल ही विषमय है।

६। जेयचज, हिन्दीमें इसे लक्षणा कहते हैं—इसमें घट्टेका बीज है, इसीलिये इसमें विषक्रिया प्रकाशत होती है।

७। कुलबुद् या वन-सै—यह उद्भिद् शिमला शैल पर, बङ्गालमें और दक्षिणात्यमें पैदा होता है।

८। दन्तो—दन्तीका बीज उप्रताजनक है। यह सेवन करनेसे जयपालके बीजकी तरह घमन होता है। इसका दूसरा नाम तामालगोटो या जमालगोटा है। इसका तेल घातरोगमें व्यवहृत होता है।

९। चिकरो—यह एक तरहका विष क्रियाजनक उद्भिद् है। हिमालय प्रदेशमें यह उद्भिद् पैदा होता है।

१०। अलक—यह मयानक विष है। इससे दुग्धकी तरह जो पदार्थ निकलता है, उससे भ्रूणहत्या की जाती है। इसका एक ग्राम सिलानेसे १५ मिनटमें एक कुत्ता मर सकता।

११। गाँजा—इससे उन्मत्तता उत्पन्न होती है। गान्जिके बीजका नाम केनाविन है। इससे मूर्च्छा और मृत्यु होती है।

१२। डाँकुर—इससे वमन और भेद होता है और इसकी अधिकता होनेसे मृत्यु तक हो जाती है।

१३। माकेला—यह उद्भिद् मणिपुर, ब्रह्म और भूटानमें उत्पन्न होता है। यह देहमें प्रविष्ट हो जाने पर धनुष्टकारके विष लक्षण दिखाई देते हैं।

१४। जयपाल—जयपाल भयङ्कर भेदघमनकारक है। इसका वर्णन पहले चाल किया जा चुका है।

१५। घट्टा—घट्टेके विषसे मोह और उन्मत्तता उत्पन्न होती है। पश्चिम और उत्तर-भारतमें इस विषको प्रयोग विधि दिखाई देती है। यह दो तरहका है—*Datura Fastuosa* और *Datura Siramonium* आयुर्वेदमें भी इसके दो भेद देखे जाते हैं,—जैसे सादा सादा घट्टा और काला घट्टा।

१६। वनगाव—बङ्गालके जङ्गलोंमें भी यह उद्भिद् प्रचुर परिमाणसे उत्पन्न होता है। इसका फल विषमय है।

१७। वासिङ्ग—यह कुमायू जिलेमें अधिक पैदा होता है। इसका संस्कृत नाम मालूम नहीं। पाश्चात्य उद्भिद् विज्ञानमें इसका नाम *Exatcaria Agallocha* है। यह मयानक विष है। कुमायूमें कुछ रोगियोंकी चिकित्साके लिये व्यवहृत होता है।

१८। जवाशो—यह उद्भिद् भूटानमें होता है। इसका चकल अतीव विषमय है। इसका संस्कृत नाम मालूम नहीं।

१९। कालीकारी—इसका दूसरा संस्कृत नाम गर्भघातिनी है। भारतवर्षके जङ्गलोंमें यह उद्भिद् दिखाई देता है। इसका भारतीय कोई नाम मालूम नहीं। इसके द्वारा जयपालकी तरह दस्त और की होती है।

२०। दुरा—भारतवर्षके जङ्गलोंमें यह उद्भिद् देखा जाता है। इसका भारतीय नाम सुना नहीं जाता। इससे जपपालकी तरह दन्त और की होती है।

२१। पारासिक्थ—इसकी विपक्रिया स्नायवीय यन्त्र पर प्रतिफलित हो मोह आदि उत्पन्न करती है।

२२। पारायन ज्ञायमध्याय रतन जोन—इसके बांजने हैजेको तरह दस्त और की होतो है।

हिन्दू शास्त्रमें (पेतरैयब्राह्मणमें) विषकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है, कि भगवन्नारायणने कूर्मावतारमें पीठ पर मन्दरपर्वत धारण कर धरतीका मङ्गल साधन किया था। देवों और असुरोंने दो दलोंमें विभक्त हो एक पर्वतके मन्थनदण्ड और वासुकी (नाग)-को रस्सो बना कर समुद्रका मन्थन किया था। इसके फलसे सर्वाशेषमें विष उत्पन्न हुआ। त्रिताप हर महादेव उम गरलका पान कर ही नीलकण्ठ हुए हैं।

समुद्रमन्थन और दशाहो शब्द देखो।

ऋग्वेदीय युगमें आर्य्य ऋषियोग सर्पविष और अन्यान्य विषोंका जानने थे और उन्हें इनका व्ययहार भी मालूम था। उक्त संहिताके ७।५० सूक्तके पढ़नेसे मालूम होता है, कि वसिष्ठ ऋषि मित्रायण्य, अग्नि, और वैश्वानरकी स्तुति करते समय कहते हैं—“कुलाय-कारा और सर्वादा घर्द्धमान, विष हमारे सामने न आये। वज्रका नामक रोगविशिष्ट दुर्दान्त विष विनष्ट हो। छद्मगामी सर्प शब्द द्वारा हमको न जान सके। जो यन्त्र नामक विष नाना जन्ममें वृक्षादिके ऊपर ऋद्धूत होता है, वह विष पुटता और शुल्क स्फोट करता है। दोसिन्नान अग्निदेव यह विष दूरोभूत करे”।

(ऋक् ७।५०।१-३)।

१।१।७।१६, १।७।७।१८ और २३ मन्त्रको पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये सब विष दाहकारक और प्राणनाशक होता है।

अथर्ववेदके ४।६।२ मन्त्रोंमें कन्दमूलादि विषकी प्रवर्तनाका उल्लेख है। ५।१।६।१० और ६।६।०।२ मन्त्रोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह मनुष्योंके लिये विशेष अयकारक है। शतपथब्रा० २।४।३।२, ६।१।१।१०; पञ्चविंशब्राह्मण ६।६।६ और तैत्तिरीय

ब्राह्मण २।१।१ आदि स्थानोंमें विषकी नामकत्त्व शक्तिका उल्लेख है। भगवान् मनुने लिखा है, कि स्वाधर जङ्गम नामक छत्रिम या बहुरिमि गरादि विष कर्मा भी जलमें न फेरना चाहिये। (मनु ४।५६) विष वेचनेका मनाहो है। जो विष वेचता है, वह पातल और निरयगामो हांता है। (मनु १०।५८)

विषकङ्कालिका (सं० खो०) वृक्षविशेष, विषकंकाल।

विषकङ्कालिका (सं० खो०) विषकंकाल।

विषकण्ट (सं० पु०) इङ्गदो वृक्ष। (राजनी०)

विषकण्टक (सं० पु०) डुरालभा, जावा, धमासा।

विषकण्टका (सं० खो०) बन्ध्याकर्कोटका, बांक ककड़ी।

पर्याय—बन्ध्याकर्कोटका, देवा, कन्या, योगेश्वर, नागारि, नागदमनी। गुण—लघु, म्रणशीघ्रक, तोषण तथा कफ, सर्पदर्प, विसर्प और विषनाशक। (भागप्रकाश)

विषकण्टालिका (सं० खो०) एक प्रसिद्ध वृक्ष।

विषकण्ट (सं० पु०) नालकण्ट, शिय।

विषकण्टिका (सं० खो०) चकपशा, बगला।

विषकन्द (सं० पु०) १ महिषकन्द, भैंसा कन्द। २ नीलकण्ट। ३ इन्दुदो वृक्ष, हिं गोट।

विषकन्या (सं० खो०) वह कन्या या स्त्री जिसके शरीरमें इस आगयसे कुछ विष प्रविष्ट कर दिये गये हों, कि जा उसके साथ संभोग करे, वह मर जाय।

प्राचीन कालमें राजाओंके यहाँ बचपनसे ही कुछ कन्याओंके शरीरमें अनेक प्रकारसे विष प्रविष्ट करा दिया जाते थे। इस विषके कारण उनके शरीरमें ऐसा आभाव आ जाता था कि जो उसके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजाको अपने किसी शत्रुको गुप्त रूपसे मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकारकी विषकन्या उसके पास भेज देता था। जिसके साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

मुद्राराक्षस (४२।१६) और कथासरित्सागर (१।६।८१)में विषयान द्वारा तैयारकी गई सुन्दरा ललनाका उल्लेख मिलता है। यह कन्या प्रति दिन योद्धा विष खिला कर पा गो गई थी। जो व्यक्ति उस कन्याके साथ संभोग करता उसको मृत्यु अवश्यमाना थी। मन्त्री

राक्षसने जो विषकन्या प्रस्तुत की, चाणक्यने उससे पर्णतका संहार किया था ।

विषकृत (सं० त्रि०) १ विष संयोगसे प्रस्तुत । २ विष-मिश्रित । ३ विषसंशुद्ध ।

विषकृमि (सं० पु०) विषजात कृमि, वह कीड़ा जो काठ-के बीचमें उत्पन्न होता है ।

विषक्त (सं० स्त्री०) वि-सन्न-क्त । आसक्त, संलग्न । विषगन्धक (सं० पु०) हृष्य सुगन्ध तृणविशेष, एक प्रकारकी घास जिसमें भीनी भीनी गंध होती है ।

विषगन्धा (सं० स्त्री०) कृष्णगोकर्णी, काली अपराजिता । विषगिरि (सं० पु०) विष-पर्वत । इस पर उत्पन्न होने-वाले वृक्ष और पौधे आदि जहरोले होने हैं ।

(अथर्व० ४।६।७ वाक्य)

विषग्रन्थि (सं० पु०) मृणालपत्र, कमलकी नालकी गांठ ।

विषघ (सं० त्रि०) विषनाशक, विषका नाश करनेवाला ।

विषघा (सं० स्त्री०) गुलञ्ज, गुडूच ।

विषघात (सं० पु०) विष-हन-घञ् । विषनाशक ।

विषघातक (सं० त्रि०) विषनाशक, जिससे विषका प्रभाव दूर होता हो ।

विषघाती (सं० त्रि०) विष-हन-णिनि । विषनाशक, विषका प्रभाव दूर करनेवाला । (पु०) २ शिरोवपुश्च, सिरिसका पेड़ ।

विषघ्न (सं० पु०) विष' हन्तीति विष-हन-टक् । १ शिरोव-पुश्च, सिरिसका पेड़ । २ दुरालभाविशेष, जवासा । ३ विभीतक, वहेड़ा । ४ चम्पकवृक्ष । ५ भूकदम्ब । ६ गन्धतुलसी । ७ तण्डुलोप शाक (त्रि०) ८ विष-नाशक ।

मनुसंहितानामे लिखा है, कि विषघ्न रत्नौषधादि हमेशा धारण करना उचित है ; क्योंकि दैवश अथवा शत्रु द्वारा यदि विष शरीरमें प्रविष्ट हो जाये, तो इसके रहनेसे कोई अनिष्ट नहीं हो सकता । (मनु भा० ११८)

मत्स्यपुराणमें विषघ्नरत्नादि धारण तथा औषधादि व्यवहारका विषय इस प्रकार लिखा है—जंतुका, मरकत आदि मणि अथवा जीवसे उत्पन्न कोई भी मणि तथा सभी प्रकारके रत्नादिको हाथमें धारण करनेसे विष नष्ट होता है । ऐणुका, जटाभांसी, मञ्जिष्ठा, हरिद्रा, मुलेठी,

मधु, वहेड़ेकी छाल, तुलसी, लाक्षारस तथा कुत्ते और कपिला गायका पित्त-इन्हें एक साथ पीस कर धार-यन्त्र और पताकादिमें लेप देना होता है । इसके दर्शन, ध्रुवण, आघ्राणादि द्वारा विष नष्ट हो सकता है अर्थात् विषघ्न औषधादिको ऐसे स्थानमें रखना होगा जिससे उस पर दृष्टि हमेशा पड़ती रहे वा उसका आघ्राण मिलता रहे अथवा तत्संशुद्ध शब्द सुनाई दे, इससे विषका प्रभाव बहुत दूर हो सकता है (मत्स्यपु० १६२ अ०) विषघ्ना (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीस ।

विषघ्निका (सं० स्त्री०) श्वेतकिण्विहोवृक्ष, सफेद अप-मार्ग या चिचड़ा ।

विषघ्नी (सं० स्त्री०) १ हिलमोचिका या हिलंच नामक साग । २ इन्द्रवाहनो, गोपालककंठी । ३ वनवर्च-रिका, वनतुलसी । ४ हवूपाभेद । ५ भूम्यामलकी, भुरें आंघला । ६ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना । ७ हरिद्रा, हर्दी । ८ वृद्धिकालीलता । ९ महाकरञ्ज । १० पोतवर्ण दैवदाली, पोतपोषा नामकी लता । ११ काष्ठकदली, कठकेला । १२ श्वेतअपामार्ग, सफेद चिचड़ा । १३ कटकी । १४ रास्ना । १५ देवदाली । विषङ्ग (सं० पु०) वि-सन्न-घञ् । संलित, लगा हुआ । विषङ्गिन् (सं० त्रि०) प्रलित, लीपा-पोता हुआ ।

विषचक्र (सं० पु०) चकोर पक्षी ।

विषचक्रक (सं० पु०) विषचक्र ।

विषजल (सं० स्त्री०) विषमय जल, विषैला पानी ।

विषजिह्व (सं० पु०) देवताइष्टुश्च ।

विषजुष्ट (सं० त्रि०) विषमिश्रित, जहर मिला हुआ ।

विषज्वर (सं० पु०) १ ज्वरविशेष । विषके संसर्गसे उत्पन्न होनेके कारण इसको आगुल्फ ज्वर कहते हैं । इस ज्वरमें दाह होता है, भोजनकी ओर रुचि नहीं होती, व्यास बहुत लगती और रोगी मूर्च्छित हो जाता है । विषवत् प्राणनाशके ज्वरों यस्य । २ मैसा ।

विषणि (सं० पु०) सर्पभेद, एक प्रकारका सर्प ।

विषण्ड (सं० स्त्री०) मृणाल, कमलकी नाल ।

विषण्ण (सं० त्रि०) वि-सङ्ग-क्त । विषादग्राम, दुर्गन्धित, सिन्न, जिसे शोक या रंज हो ।

विषण्णता (सं० स्त्री०) १ विषण्णका भाव या धर्म ।
२ जड़ता, वैषकूफी । पर्याय—जाड्य, मीठ्या, विपाद,
अवसाद, साद । (हेम)

विषण्णाङ्ग (सं० पुं०) शिव । (भारत १३१७१२२८)
विपतरत्र (सं० क्लो०) वैद्यकके अनुसार चंद्र प्रक्रिया जिसके
द्वारा साँप आदिका विष दूर किया जाता है ।

विपंतद (सं० पुं०) कृचेलक वृक्ष, कुचला ।

विपता (सं० स्त्री०) विपका भाव या धर्म, जहरीलापन ।

विपतिन्दु (सं० पुं०) १ विपद्रुम, कुचाल, विपतेंद्र ।
२ कारस्कर वृक्ष । (राजनि०) ३ कुपोल । (भावप्रकाश)

विपतिन्दुक (सं० पुं०) विपतिन्दु देखो ।

विपतिन्दुकज (सं० क्लो०) १ मधुर तिन्दुक फल । २ कार-
स्कर फल, कुचिला फल ।

विपतिन्दुकतैल—घातरकाधिकारोक तैलोपचयिष्येय ।
प्रस्तुतप्रणाला—तिलतैल ४ सेर । काढ़के लिये कुटा हुआ
कुंचलावीन ४ सेर, पानो ३२ सेर, शोष ८ सेर, सहि
अनके मूलकी छाल २ सेर, जल १६ सेर, शोष ४ सेर,
मादेका मूल २ सेर, जल १६ सेर, शोष ४ सेर; कांला
घतूरा २ सेर, जल १६ सेर शोष ४ सेर; वरुणछाल
२ सेर, जल १६ सेर, शोष ४ सेर; चितामूल २ सेर,
जल १६ सेर, शोष ४ सेर । सभ्वालूपकका रस ४ सेर
(रसके अमायमं काढ़ा), धूहरका पत्तियाका रस ४
सेर (अमायमं भवाय), असगंधका काढ़ा ४ सेर, जयन्ता-
पलका रस ४ सेर (रसके अमायमं काढ़ा) । कक्कार्थ
लहसुन, सारलकाष्ठ, मुलेठा, कुट, सैन्धव, विट, चिता-
मूल, हरिद्रा, पीपर, प्रत्येक १ पल । इस तैलकी
मालिश करनेसे प्रबल घातव्याधि, कुष्ठ, वातरक, विष-
णता और त्वग्दोष दूर होते हैं ।

विपतैल—कुष्ठरोगाधिकारोक तैलोपचयिष्येय । प्रस्तुत-
प्रणालो—कटुतैल ४ सेर, गोमूल ४६ सेर । कक्कद्रव्य—
बदरकरञ्जबीज, हरिद्रा, शकटहरिद्रा, अरुवनका मूल,
तगरपादुका, फरवीमूल, प्रच, कुट, हाफरमालो, रक-
चन्दन, मालतोपत्र, सभ्वालूपत्र, मजोठ, छतिवनमूलकी
छालका प्रत्येक ४ तोला, विप १६ तोला । इस तैलकी
मालिश करनेसे अनेक प्रकारके कुष्ठ और मण नष्ट
होते हैं ।

विपदंश (सं० पुं०) मार्जार, बिल्ली ।

विपदंशक (सं० पुं०) विपदंश देखो ।

विपदंश्रा (सं० स्त्री०) विपयुका दंश्रा । १ सर्पदंश्रा,
साँपके दाँत । २ सर्पकङ्कालिका लता । ३ नागदमनी ।

विपद (सं० क्लो०) वि-सद्-अच् । १ पुष्पकाशीग,
होराकसोस । स्त्रियां टाप् । २ अतिविषा, अतीस । विषं
ददातीतिविपदा-क । (पु०) ३ मेघ, बादल । ४ शुक्ल-
वर्ण, सफेद रंग । (त्रि०) ५ शुक्लवर्ण विगिष्ट,
सफेद रंगका । ६ निर्मल, स्वच्छ । विपदाना, विष
देनेवाला ।

विपदन्त (सं० पुं०) विडाल, बिल्ली । (वैद्यकनिघ०)

विपदन्तक (सं० पुं०) विषं दन्ते यस्य क्व । सर्प,
साँप ।

विपदमूला (सं० स्त्री०) माकन्दो नामक पीघा जिसके
पत्तोंका साग होता है ।

विपदर्शनमृत्पुत्र (सं० पुं०) विषस्य दर्शनेन मृत्पुत्रस्य
क्व । चक्षोर पक्षी ।

विपदा (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीस ।

विपदाता (सं० त्रि०) विपादात् देखो ।

विपदावृ (सं० त्रि०) विपप्रयोक्ता, वह जो किसीको
मार डालने या वैदोश करनेके अभिप्रायसे जहर दे ।
निम्नोक्त लक्षणानुसार विपदाताको जाना जा सकता
है । जो विप देता है उसे यदि इस विषयमें कुछ पूछा
जायतो वह कुछ बोलता नहीं है, बोलनेमें मोह भा जाता
है । मूढ़की तरह यदि बोलते बोलता भी है, तो
उसका कोई गर्थ नहीं निकलता । वह केवल खड़ा
रहता और हाथकी उंगली मटकाता है तथा पैरकी
उंगलीसे धीरे धीरे जमोन कांडना है अथवा अकस्मात्
बैठ जाता है । वह हमेशा कांपना रहता है और मय-
भीत हो उगस्थित व्यक्तियोंको एक टुकसे देखता है ।
वह शोण और उसका मुख विवर्ण हो जाता है । वह
किसी एक वस्तुको नायूनसे काटता है तथा दोन भावसे
बार बार मस्तकके बालोंको स्पृश करता है । यह
कुपयसे भागनेको चेष्टा करता है तथा बार बार चारों
ओर ताकता है । यह कमी कमी विचेतन और विप-
रत स्थिमायका हो जाता है । विशेष अभिज्ञता नहीं

रहनेसे पर केवल यहो सब लक्षण देष विषदाताको पहचाना नहाना जा सकता । क्योंकि अनेक समय ऐसा भी देखा गया है, कि नितान्त सम्भ्रान्त व्यक्ति भी राजाके भयसे या राजाशासे विभ्रान्त हो इस प्रकार असत्की तरह चेष्टाय दिखलाता है ।

विषदायक (सं० पु०) विषदाता ।

विषदूषण (सं० लि०) १ विषनिवारक । "विषदूषणं विश्वस्य स्थावरजङ्गमोद्भवस्य दूषकं निवर्त्तकम् (अथर्व० ६।१००।१ शायण) २ विषदुष्ट ।

विषदुष्ट (सं० लि०) १ विषके द्वारा दूषित । २ विषमिश्रित ।

विषद्रुम (सं० पु०) कारस्कर वृक्ष, कुचला । (राजनि०)

विषधर (सं० पु०) विष धरति धृ-थच् । १ सर्प, सांप । स्त्रियां ङीप् । २ विषधरी ।

विषधर्मा (सं० स्त्री०) शूकशिवी, केवाँच ।

विषधार्ता (सं० स्त्री०) विषाणां विषधरसर्पाणां धात्री मातेय । जरत्कारमुनिको स्त्री, मनसादेवी ।

(शब्दमाला)

विषधान (सं० पु०) विषस्थान । (अथर्व २।३।२ शायण)

विषध्वंसिन (सं० पु०) नागरभोग्या । (वैद्य०निघ०)

विषनाडी (सं० स्त्री०) विषतुल्य क्षतिकर समय ।

विषनाशन (सं० पु०) विषं नाशयति नश द्यु । १ जिरीय वृक्ष, सिरिसका पेड़ । २ माणक, मानकचूचु । (लि०) ३ विषनाशक, जो विषको दूर करता हो ।

विषनाशिनो (सं० स्त्री०) विषं नाशयितुं शीलं यस्यः विष नश-पिनि स्त्रियां ङीप् । १ सर्पकङ्काली । २ चन्धवा कर्करिका, बांभककड़ी । ३ गन्धनाकुलो ।

विषनुद (सं० लि०) विषं नुदति दूरोकरोति नुद-फिप् । श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा ।

विषपत्निका (सं० लि०) १ पत्नविषमेद, कोई जहरीला पत्ता । २ जमालगोटा आदि किसी जहरीले बीजका छिलका ।

विषपन्नग (सं० पु०) विषयुक्तः पन्नगः । सविष-सर्प, जहरीला सांप ।

विषपर्वन् (सं० पु०) दैत्यमेद ।

(कयापरित्वा० ४।३।७६)

विषपादप (सं० पु०) विषवृक्ष, विषद्रुम, कुचल ।

विषपुच्छ (सं० लि०) जिसको पुच्छमें विष हो, जिसको पूँछ जहरीली हो ।

विषपुच्छो (सं० पु०) वृश्चिंक्ष, विच्छू ।

विषपुट (सं० पु०) ऋषिमेद । बहुवचनमें उक्त ऋषि-वंशधरोका बोध होता है । (पा २।४।६३)

विषपुष्प (सं० स्त्री०) १ नीलपद्म, नीला कमल । २-विष-युक्त पुष्प, जहरीला फूल । ३ अतसोपुष्प, अतसोका फूल । (पु०) ४ मदनवृक्ष, मैनाफालका पेड़ ।

विषपुष्पक (सं० पु०) विषयुक्तः पुष्पे-यस्य-कन् । १ मदनवृक्ष, मैनाफल । २ विषपुष्पक भक्षणसे होनेवाला रोग । "विषपुष्पैर्जनिताः विषपुष्पको ज्वराः" (पा १।२।६)

विषप्रशमनो (सं० स्त्री०) चन्धवाकर्कोटको बांभककड़ी । (वैद्यकनि०)

विषप्रस्थ (सं० पु०) पर्वतमेद । (महाभारत वनपर्व)

विषवशिका (सं० स्त्री०) विच्छो नामकी लता । यह लता लंबी होती और घास-पातके ऊपर चढ़ती है । शरीरके जिस अंगमें यह छू जाती है, वहां खुजली होती है । इसके पत्ते डेढ़ उंगली लंबे तथा पुष्प और फल छोटे होते हैं । फल देखनेमें आंबला जैसा मालूम होता है ।

विषभद्रा (सं० स्त्री०) घृहहन्ती, बडी दंतो ।

विषभद्रिका (सं० स्त्री०) लघुहन्ती, छोटी दंतो ।

विषभिषज् (सं० पु०) विषस्य विषचिकित्सको वा भिषक् । विषवैद्य, संपरिया ।

विषभुजङ्ग (सं० पु०) विषधरसर्प, जहरीला सांप ।

विषम (सं० लि०) १ असमान, जो बराबर न हो । २ भौवण विकट । ३ बहुत तोर, बहुत तेज । ४ जिसको मोमांसा सहजमें न हो सके ।

(स्त्री०) ५ सङ्कट, विपत्ति । ६ पद्यके तीन प्रकारके वृत्तोंमेंसे एक वृत्त । यह पद्य चतुष्पदी अर्थात् चार चरणयुक्त होता है । यह वृत्त और जातिके भेदसे दो प्रकारका है । जो पद्य अक्षर संख्यामें निर्णय है, उसका नाम वृत्त है, इस वृत्तके भी फिर तीन भेद हैं, सम, अद्व और विषम । जिसके चारों चरणोंमें समान अक्षर रहते हैं, उसका नाम समवृत्त है । प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणमें समान

समान अक्षर रहनेसे अर्द्ध तथा चारों चरणोंमें समान अक्षर नहीं रहनेसे यह विषमवृत्त कहलाता है।

(छन्दोम० १म स्तवक)

६ वर्गमूलोक ऊदुधरैरेखा । ७ अर्धालङ्कारविशेषः

प्रत्येक कार्य किसी न किसी एक कारणसे उत्पन्न होता है तथा प्रायः स्थलमें उस कारणका धर्मा (गुणक्रियादि०) कार्यमें परिणत होता है। जहां कारणका गुण या क्रिया विरुद्धभावसे कार्यमें दिखाई देती है तथा जहां आरुध्य कार्य निष्फल होता है, फिरसे उससे यदि किसी अनिष्ट संघटनकी सम्भावना रहती है और जहां विरुद्ध पदार्थका सम्मेलन देखा जाता है, वहां विषमालङ्कार हुआ करता है।

(पु०) ८ राशिका नामभेद, अयुग्मराशि। मेघ, मिथुन, सिंह, तुला, घनु और कुम्भ इन सप्त राशियोंको अयुग्म वा विषम राशि कहते हैं। (ज्योतिषतन्त्र) ६ कङ्कण नामक तालके अन्तर्गत एक प्रकारका ताल। कङ्कण नामक ताल पूर्ण, खण्ड, सम और विषमके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे विषम ताल तगण द्वारा निर्दिष्ट होता है। ६ जठराग्निविशेष। मन्द, तीक्ष्ण, विषम और समके भेदसे जठराग्नि चार प्रकारकी है। उनमेंसे मन्द, तीक्ष्ण और विषमाग्नि यथाक्रम कफ, पित्त और वायुकी अधिकतासे उत्पन्न होती है तथा इन तीनों अर्थात् कफ, पित्त और वायुकी समता अवस्थामें समाग्निकी उत्पत्ति होती है। जिसको जठराग्नि विषमत्वकी प्राप्त होती है, उसका खाया हुआ अन्न कभी तो अच्छी तरह पच जाता और कभी बिलकुल नहीं पचता। ऐसे व्यक्तिको घातज रोग उत्पन्न होता है।

विषमक (सं० त्रि०) असमान, जो बराबर न हो।

(दृष्टव ७० ८१।१६)

विषमकर्ण (सं० पु०) चारों समकोणोंवाले चतुर्भुजमें किसी दो बराबरके कोणोंके सामनेकी रेखा (Diagonal)।

विषमकर्मन् (सं० क्री०) १ धीजगणितोक्त अङ्कप्रणालीभेद। असमान प्रक्रिया द्वारा राशि-निरूपणका नाम। राशिपोंकी वर्गीक विधेयफल तथा मूलराशिधोंका योग या विधेयफल रहने पर प्रक्रियासे राशियां निकाली

जाती हैं, उसका नाम विषम कर्म है। २ असदृश कार्य।

विषमकोण (सं० क्री०) वह कोण जो सम न हो, समकोणसे भिन्न और कोई कोण। (Angles other than right angles)

विषमलता (सं० क्री०) १ गर्त, जिसका चारों किनारा असमान हो। २ वीजगणितोक्त अङ्कविशेष। (Irregular solid)

विषमप्रादि (सं० त्रि०) एकरुदेश प्रादि।

विषमचक्रवाल (सं० क्री०) वृत्त-भास (Ellipse)।

विषमचतुरन्व (सं० पु०) असमान बाहु वा कोणविशिष्ट चतुष्कोण क्षेत्र (Trapez)।

विषमचतुष्कोण (सं० पु०) वह चौकोन क्षेत्र जिसके चारों कोण समान न हों, विषमकोणवाला चतुष्कोण क्षेत्र।

विषमच्छद् (सं० पु०) विषमः अयुग्मः छन्दो यत्प्य। सप्त-च्छन्दश्च, छतिवनका पेड़।

विषमञ्जर (सं० पु०) विषम उमो ज्वरः। ज्वररोगभेद। जिस ज्वरके समयमें (प्रत्याहिक ज्वरागम समयमें), शीतमें (ज्वरागमन कालोन शीत्य प्रयुक्त कंठन आदिमें), उष्णमें गात्रताप आदिमें) और वेगमें (धमनी या नाड़ीकी गतिमें) विषमत्व न्यूनाधिष्य दिखाई देता अर्थात् जिस ज्वरमें पूर्वदिन ज्वर आनेके समयकी अपेक्षा दूसरे दिन कुछ पहले या पीछे आये और जिसमें पूर्वदिनकी अपेक्षा दूसरे दिन शीतका अंश शरीरके तापदिका भाग कुछ कम या ज्यादा हो और नाड़ीकी गतिमें भी ऐसे ही न्यूनाधिष्य अनुभव हो, उसी ज्वरको विषमञ्जर कहते हैं।

वातिकादि ज्वरके निर्दिष्ट विच्छेद समयमें अर्थात् ७।१०।२ या १।४।२०।२४ दिनको यथाक्रम वातिक, पैत्तिक और श्लेष्मिक ज्वर विच्छेद होने पर भी वातादि दोषके सम्पूर्ण लाघव होने न होते ही यदि अहित-आहार आचारादिके किये जायें, तो ये वातादि दोष ही प्रवृद्ध हो कर रसरक्तादि धातुमें किसी एक धातुका अवलम्बन कर विषमञ्जर उत्पादन करते। रसधातुका अवलम्बन कर जो विषमञ्जर होता है, उसका नाम सन्तत है, रक्तके आश्रयसे जो विषमञ्जर होता है, उसका

नाम सतत और मांसाश्रित विषमज्वरको अन्धेद्युष्क कहते हैं। तृतीयक नामक विषमज्वरमें दो धातुको और चातुर्थक ज्वर अस्थि तथा मज्जा धातुका आश्रय ले कर उत्पन्न होता है। यह चातुर्थक ज्वर मारात्मक है और झीड़ा, यकृत आदि बहुतेरे रोग उत्पन्न करता है।

जो ज्वर सप्ताह, दशाह, या द्वादशाह काल तक एकादिक्रमसे एक रूपसे अविच्छेदी अवस्थामें रह कर अन्तमें विच्छेद हो जाता है, उसका नाम सन्तत विषमज्वर है। जो दिनरातमें दो बार अर्थात् दिनमें एक बार और रातमें एक बार आता है, उसको सततक या सतत ज्वर कहते हैं। बोलचालमें इसका नाम झीकाळीन ज्वर है। अन्धेद्युष्क ज्वर दिनरातमें एक बार मात्र होता है। तृतीयक ज्वर तीन दिनोंके बाद और चातुर्थक ज्वर चार दिनके बाद एक बार होता है।

उक्त तृतीयक ज्वर चातुर्थक, वातपैत्तिक तथा कफपैत्तिक भेदसे तीन प्रकारका होता है। ज्वर आनेके समय पीठमें वेदना अनुभव होनेसे समझना होगा, कि यह वातप्रलेप्तेजन्य तृतीयक ज्वर है। विकस्थानमें (कमर, जड़ मूल आदि तीन सन्धिस्थलमें) वेदनाके साथ जो तृतीयक ज्वर होता है, वह कफपित्तजनित है। फिर जिस तृतीयकमें पहले शिरमें दृष्ट उत्पन्न होता है, वह वातपित्तज है। इसी तरह चातुर्थकज्वर भी वातिक और श्लैष्मिक भेदसे दो प्रकारका है। शिरमें वेदनायुक्त वातिक और जंघाद्वयमें वेदना उत्पन्न कर श्लैष्मिक चातुर्थकज्वरका उद्भव होता है।

सिवा सततक, इसके अन्धेद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थकविषमज्वर और वातबलासक, प्रलेपक, दाहशीतादि कई विषमज्वरका उल्लेख है। नीचे क्रमशः उनके लक्षण आदि वर्णित हैं। सततकविषमज्वर—दिनरातमें केवल दो बार विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वरभोग करता है। अन्धेद्युष्कविषमज्वर—दिनरात अरमें एक बारमात्र विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वर भोग करता है। तृतीयक विषमज्वर—यह ज्वर आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्थामें रहता है, बीचमें केवल एक दिन दिखाई देता है। चातुर्थकविषमज्वर—यह आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्था-

में रहता और बीचके दो दिन सम्पूर्णरूपसे ज्वर रहता है। वातबलासक—यह ज्वर शोथरोगाक्रान्त व्यक्तिके उपद्रवस्वरूप नित्य मन्द मन्द होता है। इससे रोगी रुझ और स्तब्धप्राण होता है अर्थात् उसको अङ्गशैथिल्य रोग उत्पन्न होता है। प्रलेपक—यह ज्वर नित्य मान्य अवस्थामें होता है। यह पसीना और शरीरके भारीपनके कारण अहरहः शरीरके बीचमें मानो प्रलित अर्थात् निवृत्त होता है। इससे रोगी शीत अनुभव करता है। यश्मिक रोगियोंको ही यह ज्वर होता है।

विदग्धपक अग्नि-रसमें अर्थात् प्रदुग्ध आहाररसमें प्रदूषित पित्त और कफ शरीरमें व्यपस्थित भावसे रह कर एक तरहके विषमज्वरको उत्पात्ति करता है। इस ज्वरमें व्यपस्थित भावसे पित्त और कफका अवस्थानहेतु अर्द्धांश श्वराकार या नरसिंहाकार रोगीकी देहका अर्द्धांश गरम तथा दूसरा अर्द्धांश शीतल रहता है। इसका कारण यह है, कि जिस अर्द्धांशमें पित्तका प्रादुर्भाव है, वहां गरम तथा जिस अर्द्धांशमें श्लेष्माका प्रादुर्भाव है, वहां शीत का अनुभव होता है। दूसरे एक विषमज्वरमें पित्त और कफ पूर्वांक रूपसे शरीरके विभिन्न स्थानमें अवस्थानपूर्वक दाह-शीत आदि उत्पन्न करता है अर्थात् जब पित्त कोष्ठाश्रित रहता है, तब श्लेष्मा हाथ पैरमें रहती है। इस तरह जब पित्त हाथ पैरमें रहता है, तब श्लेष्मा कोष्ठमें अवस्थान करती है। सुतरां पूर्वांक नियमानुसार जब जहां श्लेष्मा रहती है, तब वहां (कायमें या हाथ पैर आदिमें) शीत और जब पित्त इन स्थानोंमें रहता है, तब उन स्थानोंमें उष्णता विद्यमान रहती है।

इस ज्वरमें जब त्वकस्थित वायु और श्लेष्मा ये दोनों पहले शीत उत्पन्न कर ज्वर प्रकाशित करता है और श्वके वेगका किञ्चित् उपशम होनेके बाद पित्त द्वारा दाह उपस्थित होती है, तब 'शीतादि' और जब इस तरह त्वकस्थ पित्त पहले अत्यन्त दाह उत्पन्न कर ज्वरको अभिव्यक्त करता है और पीछे इस पित्तके किञ्चित् प्रशमित होनेसे वायु और श्लेष्मा दोनोंसे शीतका उद्भव होता है, तब इसको 'दाहादि विषमज्वर' कहते हैं। इन दाहादि और शीतादि ज्वरमें दाहपूर्व ज्वर ही विषम ज्वरशदायक और कृच्छ्रसाध्यतम है।

पहले कहा जा चुका है, कि रसरक्तादि धातुके अत्यन्त धातुका आश्रय कर विषमञ्जरकी उत्पत्ति होती है। अब जिस धातुका आश्रय करनेसे रोगीके जो जो लक्षण दिखाई देने हैं, उसका वर्णन करते हैं। रसधातुको आश्रय कर जो ज्वर होता है, उससे रोगीके यदनमें भारोपन, हृद्योत्प्लेश (उपस्थित-यमन बोध), अपसन्नता, यमन, अग्नि और दैन्य उपस्थित होता है। ज्वर रक्तधातुका आश्रय करनेसे रोगी रक्त निष्ठोपन करता है अर्थात् थूक फेंकते फेंकते रक्त भी आने लगता है। साथ ही साथ उसको दाह, मोह (मूर्च्छामेद), यमन, क्षमि (शरीर घूमना), प्रलाप, पीडाका (स्फोटकादि) और तृष्णा आदि उपसर्ग आ कर उपस्थित होते हैं। ज्वर मांसधातुगत होनेसे रोगीके जङ्घेके मांसपिण्डमें दूधसे मारनेकी-सी वेदना मालूम होती है और उसकी तृष्णा, मलमूत्रनिःसरण, वहिस्ताप, अन्तर्दाह, विशेप (हाथ पैरका पटकना) और शरीरकी ग्लानि प्रभृति लक्षण देखे जाते हैं। मेदस्थ ज्वरमें रोगीके अत्यन्त खेद (पसीना), तृष्णा, मूर्च्छा, प्रलाप, यमन, दीर्घान्ध्य, अरोचक, शारीरिक ग्लानि और असहिष्णुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अस्थिगत ज्वरमें अस्थिमें मेदवत् पीडा, कूजन (गलेमें जो खों शब्द), श्वास (दमा), विरेचन, यमन और गान्धिशेप करना अथवा हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। अकस्मात् अन्धकारमें प्रवेश करनेकी तरह बोध होना, दिक्की, खासी, जाड़ा लगना, अन्तर्दाह, महाश्वास और मर्ममेद (हृद्य, यस्ति आदि मर्मस्थानोंमें मेदवत् पीडा), ये ही मज्जागत ज्वरकी लक्षण हैं। जब ज्वर शुक्रधातुगत होता है, तब लिङ्गकी स्तब्धता, शुक्रका अधिक प्रसेक होता है। इससे सहसा रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

पूर्वोक्त तृतीयक चातुर्थाकादि ज्वरकी कोई कोई भूनामिसङ्गोत्थ विषमञ्जर कहा करते हैं। और रोग प्रशमनार्थ उसका देवरूप (बलि होम आदि) तथा दोषोचित शुक्तिरूप (कृपाय पाचनादि) क्रियाद्वयकी वायव्या क्रिया करते हैं।

जिसको देहमें वायु और कफकी समता और पित्तकी क्षीणता हो, उसको विषमञ्जर रातको और इस

तरह जिसको कफकी क्षीणता और वातपित्तकी समता दिखाई दे, उसको प्रायः दिनमें ज्वर आता है।

ज्वर यदि उत्पत्तिके साथ ही विषमत्व प्राप्त हो, तो वह शीघ्र ही रोगीका नाश करता है।

चिकित्सा—प्रायः सभी विषमञ्जरोंमें ही त्रिदोषका (वात, पित्त, कफ) अनुबन्ध है। परन्तु प्रत्येक विषमञ्जरमें ही वायुका रहना आवश्यक जानना होगा। वात यह है, कि इसमें भी वायुके प्रति ही प्रधान लक्ष्य रखना होगा। किन्तु उनमें जब जिस दोषका प्रादुर्भाव समझा जाये, तब उसके प्रति बराबर चेष्टा करनी चाहिये। श्वेतोंके सब दोषोंमें उल्लवण (अति प्रबल) दोषकी ही पहले चिकित्सा करनी चाहिये। विषमञ्जरमें ऊर्ध्वर्धावः शोघन (यमन विरेचन) करान्य है। सन्तत ज्वरमें—इन्द्रयव, परबलकी पत्ती और कटकी, इन्हीं तीन चोर्जो; सतत ज्वरमें—परबलकी पत्ती, अनन्तमूल, मोधा, आरुनादि और कटकी इन पांचों ; अन्धेयुक्तमें—नीमकी छाल, परबलकी पत्ती, आंवला, हरीतकी, बईड़ा, किसमिस, मोधा और इन्द्रयव या कुटजकी छाल इन आठों ; तृतीयकज्वरमें—चिरापता, गुडुची, रक्तचन्दन और सोंड इन चारोंका काय बना कर सेवन करनेसे आरोग्यलाभ होता है। गोपधुकी मूल और सोंडका क्वाथ पान करनेसे दो या तीन दिनोंमें शीत, कम्प और दाहयुक्त विषमञ्जर दूर होता है। वातश्लेष्म-प्रधान तथा श्वास, कास (खांसी), अर्चि और पार्श्व-वेदनायुक्त विषमञ्जरमें कष्टिकारी, गुडुची, सोंड और कुट इन कई द्रव्योंका क्वाथ उपयोगी है। इससे त्रिदोष ज्वरमें भी उपकार होता है। मोधा, आंवला, गुडुची, सोंड और कष्टकारिका, इनके क्वाथके साथ पीपलचूर्ण और मधु मिश्रित कर सेवन करनेसे विषमञ्जर भट्ट होता है। प्रातःकाल या आहार करनेसे पहले जिस समय हो, तिल तैलके साथ लहसुन अच्छी तरह पोस कर भक्षण करनेसे विषम ज्वर दूर होता है। व्याघ्रीकी चूर्ण (बना), उतनी ही हींग और सेंधा नमकके साथ शय्या सिंहकी चूर्ण पुपाना घृत और सेंधा नमकके साथ मिला कर नस्ये लेनेसे बड़ा उपकार होता है।

सेंधा नमक, पीपलचूर्ण और मनाशिला विषमञ्जर-

नाम सतत और मांसाश्रित विषमञ्जरको अन्वेष्युक्क कहते हैं। तृतीयक नामक विषमञ्जरमें देा, धातुको और चातुर्थक ज्वर अस्थि तथा मज्जा धातुका आश्रय ले कर उत्पन्न होता है। यह चातुर्थक ज्वर मारामक है और घ्नीहा, यष्टु आदि बहुतेरे रोग उत्पन्न करता है।

जो ज्वर सप्ताह, दशाह, या द्वादशाह काल तक एकादि-प्रमसे एक रूपसे अविच्छेदो अवस्थामें रह कर अन्तमें विच्छेद हो जाता है, उसका नाम सन्तत विषमञ्जर है। जो दिनरातमें देा बार अर्थात् दिनमें एक बार और रातमें एक बार आता है, उसको सततक या सतत ज्वर कहते हैं। बोलचालमें इसका नाम द्वौकालीन ज्वर है। अन्वेष्युक्क ज्वर दिनरातमें एक बार मात्र होता है। तृतीयक ज्वर तीन दिनोंके बाद और चातुर्थक ज्वर चार दिनोंके बाद एक बार होता है।

उक्त तृतीयक ज्वर वातश्लैष्मिक, वातपैत्तिक तथा कफ-पैत्तिक भेदसे तीन प्रकारका होता है। ज्वर आनेके समय पीठमें वेदना अनुभव होनेसे समझना होगा, कि यह वातश्लैष्मिजन्य तृतीयक ज्वर है। त्रिकस्थानमें (कमर, जल मूल आदि तीन सन्निवस्थानमें) वेदनाके साथ जो तृतीयक ज्वर होता है, वह कफपित्तजनित है। फिर जिस तृतीयकमें पहले शिरमें दृष्ट उत्पन्न होता है, यह वातपित्तज है। इसी तरह चातुर्थकज्वर भी वातिक और श्लैष्मिक भेदसे दो प्रकारका है। शिरमें वेदनायुक्त वातिक और जंघाद्वयमें वेदना उत्पन्न कर श्लैष्मिक नातुर्थकज्वरका उद्भव होता है।

सिवा सततक, इसके अन्वेष्युक्क, तृतीयक और चातुर्थक-विषमञ्जर और वातबलासक, प्रलेपक, दाहशीतादि कई विषमञ्जरका उल्लेख है। नीचे क्रमशः उनके लक्षण आदि वर्णित हैं। सततकविषमञ्जर—दिनरातमें केवल दो बार विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वरभोग करता है। अन्वेष्युक्कविषमञ्जर—दिनरात भरमें एक बारमात्र विच्छेद हो कर सारा दिनरात ज्वर भोग करता है। तृतीयक विषमञ्जर—यह ज्वर आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्थामें रहता है, बीचमें केवल एक दिन विद्यां देता है। चातुर्थक-विषमञ्जर—यह आद्यन्त दो दिन विच्छेद अवस्था-

में रहता और बीचके दो दिन सम्पूर्णरूपसे ज्वर रहता। वातबलासक—यह ज्वर शोधरोगान्तरण कृत्तिके उद्भवत्वरूप नियम मन्द मन्द होता है। इससे रोगी चला और स्तब्धाङ्ग होता है अर्थात् उसको अङ्गशैथिल्य-रोग उत्पन्न होता है। प्रलेपक—यह ज्वर नियम मान्य अवस्था में होता है। यह पसीना और शरीरके आरौपनके कारण अहरहः शरीरके बीचमें मानो प्रलित अर्थात् नियत होता है। इससे रोगी शीत अनुभव करता है। यक्ष्मा रोगियोंको ही यह ज्वर होता है।

विदग्धपक अन्न-रसमें अर्थात् प्रदुष्ट आहाररसमें प्रलित पित्त और कफ शरीरमें व्यवस्थित भावसे रह कर तरहके विषमञ्जरको उत्पत्ति करता है। इस ज्वरमें व्यवस्थित भावसे पित्त और कफका अवस्थानहेतु अर्द्धनाश श्वराकार या नरसिंहाकार रोगीको देहका अर्द्धांश गलित तथा दूसरा अर्द्धांश शीतल रहता है। इसका कारण यह है, कि जिस अर्द्धांशमें पित्तका प्रादुर्भाव है, वहां गलित तथा जिस अर्द्धांशमें श्लेष्माका प्रादुर्भाव है, वहां शीत का अनुभव होता है। दूसरे एक विषमञ्जरमें पित्त और कफ पूर्वोक्त रूपसे शरीरके विभिन्न स्थानमें अवस्था पूर्वक दाह-शीत आदि उत्पन्न करता है अर्थात् ज्वर पित्त-कोष्ठाश्रित रहता है, तब श्लेष्मा हाथ पैरमें रहता है। इस तरह, जब पित्त हाथ पैरमें रहता है, तब श्लेष्मा कोष्ठमें अवस्थान करतो है। सुतरां पूर्वोक्त नियमानुसार जब जहां श्लेष्मा रहती है, तब वहां (काय या हाथ पैर आदिमें) शीत्य और जब पित्त इन स्थानोंमें रहता है, तब उन स्थानोंमें उष्णता विद्यमान रहती है।

इस ज्वरमें जब स्वक स्थित वायु और श्लेष्मा दोनों पहले शीत-उत्पन्न कर ज्वर प्रकाशित करता है और इनके वेपका किञ्चित् उपशम होनेके बाद पित्त दाह उपस्थित होता है, तब 'शीतादि' और जब इस तरह स्वक श्व पित्त पहले अत्यन्त दाह उत्पन्न कर ज्वरमें अभिष्यक्त करता है और पीछे इस पित्तके किञ्चित् प्रशमन होनेसे वायु और श्लेष्मा दोनोंसे शीतका उद्भव होता है, तब-इसको 'दाहादि विषमञ्जर' कहते हैं। इस दाहादि और शीतादि ज्वरमें दाहपूर्व ज्वर ही विषमञ्जर श्वदायक और कुच्छसाध्यतम है।

पहले कहा जा चुका है, कि रसरक्तादि धातुके अत्यन्त धातुका आश्रय कर विषमञ्जरकी उत्पत्ति होती है। अब जिस धातुका आश्रय करनेसे रोगीके जो जो लक्षण दिखाई देते हैं, उसका वर्णन करते हैं। रसधातुके आश्रय कर जो उबर होता है, उससे रोगीके यदनमें भारीपन, हृद्योत्पलेश (उपस्थित-वमन योध), अवसन्नता, वमन, अरुचि और दैन्य उपस्थित होता है। ज्वर रक्तधातुका आश्रय करनेसे रोगी रक्त निष्ठोवन करता है अर्थात् थूक फेंकते फेंकते रक्त भी आने लगता है। साथ ही साथ उसको दाह, मोह (मूर्च्छाभेद), वमन, भ्रमि (शरीर घूमना), प्रलाप, पीड़ा (स्कोटाकादि) और तृष्णा आदि उपसर्ग आ कर उपस्थित होते हैं। उबर मांसधातुगत होनेसे रोगीके जङ्घेके मांसपिण्डमें दण्डेसे मारनेकी-सी वेदना मालूम होती है और उसकी तृष्णा, मलमूतनिःसरण, बहिस्ताप, अन्तर्दाह, विशेष (हाथ पैरका पटकना) और शरीरकी ग्लानि प्रभृति लक्षण देखे जाते हैं। मेदस्थ-ज्वरमें रोगीके अत्यन्त खेद (पसीना), तृष्णा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, दौर्गन्ध्य, अरोचक, शारीरिक ग्लानि और असहिष्णुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अस्थिगत ज्वरमें अस्थिमें भेदवत् पीड़ा, कूजन (गलेमें जोँ खों शब्द), श्वास (दमा), विरेचन, वमन और गात्रविशेष करना अथवा हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देने हैं। अकस्मात् अन्वकारमें प्रवेश करनेकी तरह योध होना, हिचकी, खासी, जाड़ा लगना, अन्तर्दाह, महाश्वास और मर्मभेद (हृदय, यस्ति आदि मर्मस्थानोंमें भेदवत् पीड़ा), ये ही मज्जागत ज्वरकी लक्षण हैं। जब उबर शुक्रधातुगत होता है, तब लिङ्गकी स्तम्भता, शुक्रका अधिक प्रसेक होता है। इससे सहसा रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

पूर्वाक्त तृतीयक चातुर्थाकादि ज्वरकी कोई कोई भूनामिसङ्कोच विषमञ्जर कहा करते हैं। और रोग प्रशमनार्थ उसका दैवरूप (बलि होम आदि) तथा दोषोचित युक्तिरूप (रूपाय पाचनादि) क्रियाद्वयकी यावस्था किया करते हैं।

जिसको देहमें वायु और कफकी समता और पित्त की क्षीणता हो, उसको विषमञ्जर रातकी और इस

तरह जिसको कफकी क्षीणता और वातपित्तकी समता दिखाई दे, उसको प्रायः दिनमें उबर आता है।

उबर यदि उत्पत्तिके साथ ही विषमत्व प्राप्त हो, तो वह शीघ्र ही रोगीका नाश करता है।

चिकित्सा—प्रायः सभी विषमज्वरोंमें ही त्रिदोषका (वात, पित्त, कफ) अनुबन्ध है। परन्तु प्रत्येक विषमज्वरमें ही वायुका रहना आवश्यक जानना होगा। वात यह है; कि इसमें भी वायुके प्रति ही प्रधान लक्ष्य रखना होगा। किन्तु उनमें जब जिस दोषका प्रादुर्भाव समझा जाये, तब उसके प्रति बराबर चेष्टा करनी चाहिये। क्योंकि सब दोषोंमें उल्वण (अति प्रबल) दोषकी ही पहले चिकित्सा करनी चाहिये। विषमज्वरमें ऊर्ध्वार्धाघः शोघन (वमन विरेचन) कर्त्तव्य है। सम्वत ज्वरमें—इन्द्रयव, परबलकी पत्ती और कटकी, इन्हीं तीन चोर्जा; सतत ज्वरमें—परबलकी पत्ती, अनन्तमूल, मोथा, आरुनादि और कटकी इन पांचों; अण्येषु चकमें—नीमकी छाल, परबलकी पत्ती, आंवला, हरीतकी, बड़ेड़ा, किसमिस, मोथा और इन्द्रयव या कुटजकी छाल इन आठों; तृतीयकज्वरमें—चिरापता, गुडुची, रक्तचन्दन और सेण्ड इन चारोंका काय बना कर सेवन करनेसे आरोग्यलाम होता है। गोपबलीका मूल और सेण्डका कषाघ पान करनेसे दो या तीन दिनोंमें शीत, कषय और दाहयुक्त विषमज्वर दूर होता है। वातश्लेष्म-प्रधान तथा श्वास, कास (खांसी), अरुचि और पार्श्व-वेदनायुक्त विषमज्वरमें कण्टिकारी, गुडुची, सेण्ड और कुट इन कई द्रव्योंका कषाघ उपयोगी है। इससे त्रिदोष ज्वरमें भी उपकार होता है। मोथा, आंवला, गुडुची, सेण्ड और कण्टिकारिका, इनके कषाघके साथ पीपलचूर्ण और मधु मिश्रित कर सेवन करनेसे विषमज्वर भट होता है। प्रातःकाल या आहार करनेसे पहले जिस समय हो, तिल तैलके साथ लहसुन अच्छी तरह पीस कर भक्षण करनेसे विषम ज्वर दूर होता है। व्याघ्रीकी चर्वी (बसा), उतनी ही हींग और सेंधा नमकके साथ गंधया सिंहकी चर्वी पुराना घृत और सेंधा नमकके साथ मिला कर नहंय लेनेसे बड़ा उपकार होता है।

सेंधा नमक, पीपलचूर्ण और मनःशिला विषमज्वर-

में तिलतैलके साथ उत्तमरूपसे पीस कर अञ्जनरूपसे व्यवहार करनेसे भी विषमञ्जर दूर होता है। सुग्गुल, नीमका पत्ता, घब, कुट्ट, इरीतकी, सर्पप, यव और घृत ये कई द्रव्य एकत्र कर उसके साथ ग्रहण करनेसे विषम-ञ्जर विनष्ट होता है।

ञ्जर रसघातुस्य होनेसे वमन और उपवास करना चाहिये। संक (उवरघ्न पदार्थों का वषाय द्वारा अव-सेचन), प्रदेह (उवरनाशक द्रव्योंका उत्तम रूपसे पीस कर उसका प्रलेप) और संशमन (शैवप्रशमक द्रव्य-का वषाय चूर्ण आदि) रक्तस्य उवरके लिये हितकर है। रक्तमोक्षणसे भी रक्तगत उवरमें उपकार होता है। मांस और मेदस्थित उवरमें विरेचन और उपवास प्रशस्त है। अस्थि और मज्जागत उवरमें निरूहण (कषाय द्रव्योंकी वस्ति या पिचकारी) और अनुवासन (स्नेह-वस्ति) प्रयोग करना कर्त्तव्य है। मेदस्य उवरमें मेदोघ्न क्रिया भी कर्त्तव्य है। अस्थिगत उवरमें घातविनाशक क्रिया भी विधेय है। शुकस्थानगत उवरमें "मरणं प्राणुया-त्तल शुकस्थानगते उवरे" उवर शुकस्थानगत होनेसे यलरक्षक श्रेष्ठतम घातुके अतिशय निर्गम होनेसे रोगी-को मृत्यु हो जाती है।

शीतवाहादि उवरमें शीतार्त्तकी शीतनाशक और दाहात्तकी दाहनाशकक्रिया द्वारा चिकित्सा करना कर्त्तव्य है। शीतदिउवरकात्त व्यक्तिको अत्यन्त शीत उपस्थित होनेसे तोशक या देलाई या रेजाई या कश्यक ओढ़ा कर उसका शीत निवारण करना चाहिये। इन सब क्रियाओंसे भी यदि शीत दूर न हो, तो एक प्रशस्त नितम्बिनी सुन्दर युवती स्त्रीको बगल-में सुला देना चाहिये। रमणीके स्पर्शसे स्वभावतः ही रोगीका रक्त गरम हो जायेगा और शीतका उपशम होगा। किंतु इस प्रक्रियासे शीत निवारण होनेके बाद रोगीको जब कामाद्रेक हो, तो स्त्रीको वहांसे हटा देना चाहिये। इस शीतापगमसे जब दाह उपस्थित होगा, तब परण्डपत्र या शीतल द्रव्यादि (शीतल कांसिका वरतन) शरीरमें धारण कर दाह निवारण करना होगा। लिप्त (गोबर और जल द्वारा लिपी) जमीनमें परण्डपत्र फेला कर उस पर दाहात्त रोगीको सुलानेसे उवरके

साथ दाह प्रशमित होगा। पहले दाह ही कर यदि पीछे देहमें शीतलता उपस्थित हो, तो रोगीको उक्तापक्षाके लिये फिर उसको सुग्गुि चन्दन कपूर आदि द्वारा झिलेपिततन्वा यौवनवतो वनिता द्वारा वेष्टन कराना होगा। दाहके उपशम होनेके बाद यदि रोगीको कामा-द्रेक हो, तो पूर्वयत् युवतीको हटा देना चाहिये।

गुलञ्ज (गुडनी), मोथा, चिरेता, आंवला, कष्ट-कारी, सोंठ, विह्वमूलकी छाल, सोनाछाल, गाम्भारीकी छाल, गनियारीकी छाल, फटकी, इन्द्रयव, दुरालभा, इन सबको मिला कर इससे दो तोले ले ३२ तोले जल-में मिला कर काढ़ा तप्यार करे और जब आठ तोले जल शेष रहे, तो उतार लेना चाहिये। इसे छान कर २ मासा पीपल चूर्ण और दो मासा मधु या शहद मिला कर नित्य सेवन करना चाहिये। इससे यातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, हृग्द्वज और चिरोत्पन्न रातका उवर निवारित होता है। हिंशु, गन्धक, पारद—प्रत्येक एक तोला ले पीपलके पेड़की छाल, घतूरेकी जड़, कष्टकारी-का मूल और काकमाचो—इनके प्रत्येकके रसमें तीन तीन दिन अलग अलग भाषना दे कर दो या तीन रत्तीके प्रमाणकी गोली तैयार करे। इस गोलीको दूधके साथ सेवन करनेसे शीघ्र ही रात्रिञ्जर विनष्ट होगा।

पवित्र हो गन्दी आदि अनुचर और मातृकाओंके साथ शिवदुर्गाकी अर्चना करनेसे शीघ्र ही सब तरहका विषमञ्जर दूर होता है और सहस्रमूर्द्धा जगतपति विष्णुके सहस्रनाम उच्चारण कर स्तव करनेसे भी सब तरहके उवर विनष्ट होते हैं। (महाभारत आदि ग्रन्थोंमें विष्णुके सहस्रनाम लिखे हैं)

ब्रह्मा, शश्विनोक्तुमारुद्य, इन्द्र, हुताशन, हिमाचल, गङ्गा और मरुदुणकी यथाविधि पूजा करनेसे विषमञ्जर-की शान्ति होती है। भक्तिके साथ पिता माता और गुरुजनोंकी पूजा और ब्रह्मचर्य्य, तपः, सत्य, व्रतनिपमादि, जप, होम, वेदपाठ या ध्रुवण, साधु-सन्दर्शन आदि कार्य कायमनोवाक्यसे प्रतिपालन करनेसे शीघ्र ही उवरदिले मनुष्य छुटकारा पा जाता है।

विषमञ्जरसे आक्रान्त रोगी अपने हाथसे नौ

मुझे चावल द्वारा एक पुतली तय्यार करे और उसके हल्कीके रङ्गमें रंग दे, पाछे चार हल्दी रङ्गकी पताकाये और पीपलकी पत्तीके बने दाने हरिद्रा रससे भर कर उसके चारों ओर स्थापन करे। उक्त पुतलीको घोरण चाचिहा (बेनाकी पत्तेसे बने पांच या आसन विशेष) पर "विष्णुर्गमोऽय" इत्यादि मन्त्रांसे स्तुत्य कर निम्न मन्त्रका ध्यान और मन्त्रपाठ करना चाहिये,—

"ञ्चरन्निवाद जिशिराः पाद्भुजे नवभोजनः ।

भस्ममहरण्यो रुद्रः काशान्तकपथोपमः ।"

पीछे नौ कीड़ों दे गन्ध पुष्प, धूप आदि खरोदे। तदन्तर उनसे पूजा कर सन्ध्या समय निम्नोक्त मन्त्र पाठ कर उबर लगे हुए ध्यक्तिको निर्गमण करना होगा। (तीन दिन तक ऐसा हो करनेका विधान है) मन्त्रः—

"ॐ नमो भगवते गण्डासनाय त्राम्यकाय स्वस्त्यस्तु यस्तुतः स्वाहा ॐ कं टं प रं घै नतेपाप नमः ओं ह्रीं क्षः क्षेत्पालाय नमः ओं ह्रीं ठ ठ भो भो उवर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकादिकं द्वादिकं त्रादिकं चातुर्णाकं सात्तादिकं अष्टमानिकं मासिकं नैमेयिकं मौढूरिाकं फट् फट् हं फट् हन हन हन मुखं मुखं भूर्गां गच्छ स्वाहा" यह मन्त्र पाठ समाप्त कर किसी पृष्ठमें, श्मशानमें या चतुष्पथमें उक्त पुतलीको बिसर्जन देना चाहिये और इन पूजाकी वास्तुकी दक्षिण तरफ पवित्र स्थान पर रख देनेकी विधि है।

मिया इसके सूर्यार्घ्यदान, सूर्यका स्तय, वटुक-सैरव स्तय, माहेश्वरकचच आदि पाठ और प्रक्रियादि द्वारा भी विषमञ्जरका अपनोदन किया जाता है। विषय बढ़ जानेके कारण उसका विवरण यहाँ दिया न गया।

पाश्चात्यमतसे विषमञ्जर—पाश्चात्य चिकित्सक-गण विषमञ्जरको मलेरिया उबर कहते हैं।

विषमञ्जराङ्कु श्लोह (सं० ह्रीं०) विषमञ्जरकी एक एक औषध। प्रस्तुतप्रणाली—रक्तचन्दन, सुगन्धवाला, आकनादि, घोरणमूल, पीपल, हरीतकी, लौंड, शुद्धि, आंवला, चित्रक, मोथा और विडङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, जारित लौहचूर्ण १२ तोला, इन्हें एक साथ

मिला कर जल द्वारा मर्दन करे। २ रत्तीकी गोली बना कर सेवन करनेसे विषमञ्जर नष्ट होता है।

विषमञ्जरांतकरस (सं० पुं०) विषमञ्जरकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—हिंदुनेतथ पारा और गन्धक, बराबर भाग ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें कजली बना कर पर्याप्तोत्पन्न पाक करे। यह पर्याप्तो तथा पारेका चौथाई भाग स्वर्ण, मुक्ता तथा शङ्ख और सोपकी भस्म तथा लौह, ताम्र, अन्न प्रत्येक पारेका दूना; रांगा मूंगा, प्रत्येक पारेका आधा, इन्हें एक साथ ले कर घृतकुमारीके रसमें मर्दन करे। बादमें दो सोपमें उसे भर कर करियागि (वनगोईंठकी आग) में पुटपाक विधिके अनुसार पाक करे और पीछे २ रत्तीकी गोली बनाये। इसका सेवन करनेसे विषमञ्जर, प्लीहा, यकृत, आदि नाना प्रकारके रोगोंका प्रतिकार होता है। इसका अनुपान पीपलचूर्ण, होंग और सैन्धव श्वण है।

विषमता (सं० स्त्री) १ विषम होनेका भाव, असमानता। २ वैर, विरोध, द्रोह।

विषमत्रिभुज (सं० पुं०) वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज छोटे बड़े हों, असमान हो। (Scalena triangle)

विषमत्व (सं० ह्रीं०) विषमका भाव या धर्म, विषमता।

विषमदलक (सं० पुं०) वह सोप जिसके दोनों दल असमान हो, जैसे अष्टर सोप (Oyster)।

विषमनयन (सं० पुं०) विषमगणि अयुग्मानि (त्रिणि) नयनानि यस्य। १ शिव, महादेव। (त्रि०) २ त्रिनेत्र-विशिष्ट, तीन आँखोंवाला।

विषमनेत्र (सं० पुं०) शिव, महादेव।

विषमन्त्र (सं० पुं०) विपनिवर्त्तको मन्त्रो यत्र। सर्व-धारक, सपेरा। पर्याय—जाङ्गली। (जटाधर)

विषमपद (सं० त्रि०) १ असमान पदविह्वविशिष्ट। खियां टापू। २ असमान चरणयुक्त।

(शुकप्रति० १६३६)

विषमपलाश (सं० पुं०) सप्तपलाश, छतिवनका पृष्ठ।

विषमपाद (सं० त्रि०) असमान चरणयुक्त। खियां टापू।

विषमवाण (सं० पुं०) पञ्चवाण, कामदेव।

विषमय (सं० लि०) विषयुक्त, जहरीला ।
 विषमराशि (सं० स्त्री०) अयुगमराशि ; मेघ, मिथुन, सिंह, तुला, धनुः और कुम्भ ।
 विषमरूप्य (सं० लि०) विषमादागत । विषम-रूप्य (विद्वान्तकौ०) । जो विषमसे आया हो ।
 विषमहानिका (सं० स्त्री०) विषं मृद्यतेऽनया मृद्-लघुट् स्यात् कन् । गन्धनाकुली ।
 विषमहिनी (सं० स्त्री०) गन्धनाकुली, गन्धरासना ।
 विषमवलकल (सं० पु०) करुण निम्बुक, नारंगी ।
 विषमभाग (सं० पु०) असमान अंश ।
 विषमविशिल (सं० पु०) विषमा विशिला वाणानि (पञ्च) यस्य । पञ्चवाण, कामदेव ।
 विषमवृत्त (सं० स्त्री०) वह वृत्त या छन्द जिसके चरण या पद समान न हों, असमान पदोंवाला वृत्त ।
 विषमवेग (सं० पु०) न्यूनाधिक वेग, वेगकी कमी-बेशी । (भाष्यनि०) ।
 विशमशिष्ट (सं० पु०) अनुचितानुशासन, प्रायश्चित्त आदिके लिये व्यवस्थाका एक दोष । जान बूझ कर अर्थात् इच्छानुसार भारी पाप करने पर तत्कृच्छ तथा अनिच्छासे अर्थात् अनजानमें भारी पाप करने पर चान्द्रायणव्रतकी व्यवस्था शालमें बताई है । यहाँ पर यदि विपरीत भावमें अर्थात् कामाचारीके प्रति चान्द्रायण तथा अज्ञानरुत पापोंके सम्बन्धमें तत्कृच्छ व्रतकी व्यवस्था दी जाय, तो वह व्यवस्था विषम-शिष्ट दोषसे दूषित होता है ।
 विषमशील (सं० लि०) असरलप्रकृति, उदत्त ।
 विषमसाहस (सं० लि०) अत्यधिक साहसयुक्त, बहुत साहसी ।
 विषमसिद्धि—पूर्व चालुक्यवंशीय राजा कुञ्जविष्णु-वर्द्धनका एक नाम, कौत्सिधर्मके पुत्र । चालुक्यवंश देखो ।
 विषमस्थ (सं० लि०) विषमे उन्नतानते सङ्कटे वा तिष्ठतीति विषम-स्था क । १ उन्नतानत प्रदेशका । २ सङ्कटस्थ, आपद्कालका । ३ उपप्लव्य (उपद्रव प्राप्त) देशस्थ ।
 विषमा (सं० स्त्री०) १ सौवीरवदर, फरबेरी । २ एक प्रकारका बछनाग ।

विषमाक्ष (सं० पु०) १ विषम नयन । २ शिव, महादेव । (विक्रमपट्टशेख) ।
 विषमामि (सं० पु०) जठरान्निविशेष । कहते हैं, निःसह अग्नि कमी तो खाए हुए पदार्थोंको अच्छे तरह पचा देती है और कमी बिलकुल नहीं पचाती ।
 विषमादित्य एक प्राचीन कवि ।
 विषमाशन (सं० स्त्री०) वैद्यकीके अनुसार ठीक समय पर भोजन न करके समयके पहले या पीछे अथवा छोड़ा या अधिक भोजन करना । अधिक भोजन करनेसे बालरूप, गांठगुंठता, पेटके भीतर गुडगुड़ाहट शब्द तथा अल्प भोजन करनेसे शरीरकी कृशता और बलका क्षय होता है । (भाष्य०) ।
 विषमाशुकर (सं० पु०) प्रन्धिपर्णमूल, गण्डियन ।
 विषमित (सं० लि०) १ प्रतिकूलताप्राप्त । २ कुटिलीकृत ।
 विषमीय (सं० लि०) विषमादागतम् विषम-छः (गदा-दिभ्यश्छ) । पा ४।२।१३८ विषमसे प्राप्त, सङ्कटापन्न ।
 विषमुच् (सं० लि०) विषं मृञ्चतीति विषमुच्-क्विप् । विषोद्धारणशील, जहर उगलनेवाला ।
 विषमुक्कक (सं० पु०) मदनवृक्ष, मैनफल । (वैद्यकनिर्ण) ।
 विषमुष्टि (सं० पु०) १ क्षुपविशेष, दकायन । पर्याय—केशमुष्टि, सुमुष्टि, रणमुष्टिक, क्षुपडोडमुष्टि । गुण—कड़ु, तिक्त, दोषन, रोचक तथा कफ, वात, कण्ठरोग और रक्तपित्तादिका दाहनाशक । (राजनि०) २ महानिम्ब, घोड़ा नीम । ३ कुचला । ५ जीवन्तो । ६ कलिहारी । ७ मदनवृक्ष ।
 विषमुष्टिक (सं० पु०) १ विषमुष्टि, दकायन । २ बृहत् अलग्नुधा, गोरबमुंडा । ३ कर्कटो, घनतरौरी ।
 विषमुष्टिका (सं० स्त्री०) विषमुष्टिक देखो ।
 विषमूला (सं० स्त्री०) शिरामलक, शिराईवला ।
 विषमूर्यु (सं० पु०) विषेण विषदर्शनमात्रेण मृत्पूरस्य । जोयज्ञीवपक्षी, चकोर पक्षी ।
 विषमेक्षण (सं० पु०) १ विषमनयन । २ शिव ।
 विषमेपु (सं० पु०) विषमा अयुगमानि इष्वो वाणा, (पञ्च) यस्य । पञ्चवाण । कामदेव ।
 विषमोग्नत (सं० लि०) १ क्रमोच्च निम्न, ढालधी । २ स्थपुट ।

विषमोभयकण्टक (सं० पु०) घण्टायदर ।

विषय (सं० पु०) विषिष्यन्ति स्मृतमकतया विषयिनिं निरूपयन्ति संबधनन्ति वा वि-यि अच् । १ चक्षुरादि इन्द्रियप्राह्य वस्तुज्ञात ; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि । पर्व्याय—गोचर, इन्द्रियार्थ । दृष्यणुक (मिलित दो परमाणु)-से आरम्भ करके नद, नदी, समुद्र, पर्वत तथा प्राणसे लगायत महावायु तक समस्त ब्रह्माण्ड अर्थात् जीवका भोगसाधन जागतिक पदार्थमात्र हा विषय-शब्द-वाच्य है । यह भोग कहीं तो साक्षात् सम्भव-में और कहीं परम्परा सम्भवमें हुआ करता है । फलतः विना किसी न किसी प्रयोजनके सिवा किसी पदार्थका उत्पत्ति नहीं होती । अतएव दृष्यणुकसे ब्रह्माण्ड पर्वत समी विषय अर्थात् इन्द्रियगोचर (इन्द्रियप्राह्य) कहलाते हैं ।

द्रव्याश्रित शुक्लशुभ्र आदि रूप चक्षुके विषय हैं अर्थात् चक्षुप्राह्य हैं । इसी प्रकार मधुरादि छः प्रकारके रस (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय) रसनाप्राह्य अर्थात् जिह्वाके विषय हैं ; द्रव्यनिष्ठ सुगन्ध और दुर्गन्ध घ्राणेन्द्रियका विषय है । तृगिन्द्रिय द्वारा द्रव्यके शीत, उष्ण और जोतीष्ण वा नातिशीतोष्ण इन तीन प्रकारके गुणोंका अनुभव होता, इन कारण ये तीनों प्रकारके स्पर्शगुण त्वगिन्द्रियके विषय हैं ; फिर आकाशनिष्ठ शब्दगुण श्रोत्रेन्द्रियका तथा आरमनिष्ठ सुख, दुःख, रच्छा, द्वेष, यत्न आदि, मन अर्थात् अन्तरिन्द्रियका विषय है ।

सांख्यकारने विषय शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है,—“विषिष्यन्ति विषयिणं बधनन्ति स्येन रूपेण निरूपणीयं कुच्यन्तीनि विषयाः पृथिथादयः सुखादयश्च । असपदादीनां अविषयाश्च तन्मात्रलक्षणाः योगीनां ऊर्ध्वं स्रोतसाञ्च विषयाः ।” (सांख्यतत्त्वकी०)

जो सब पदार्थ जीवके संसारमें आवद्ध करते हैं, जो इन्द्रिय (चक्षुः श्रोत्रादि) द्वारा गृहीत हो कर अपनी प्रकृतिकी अविषयकितसे विषयी (भोगी व्यक्तियों) का निर्णय करते हैं, उनका नाम विषय है । जैसे, क्षिति आदि और सुख आदि, क्योंकि इन क्षिति आदि द्रव्योंके रूपरसादि गुणों पर विमुग्ध हो जीव संसारमें आवद्ध होते हैं तथा

उन द्रव्याश्रित रूपरसादिके प्रति उनकी भोगलालसा दिनों दिन बढ़ती जाती है । अतएव ये सब द्रव्य (क्षिति आदि) तदाश्रित रूपरसादिके तथा उनके माधुर्य्य अनुभवके कारण उससे उद्वेग्य सुखादि द्वारा ही विषयी (विषयाद्यद् वा संसारवद् जीव) का व्यासनासे निर्णय किया जा सकता है । अतएव ये सब (क्षिति आदि) विषय हैं ।

यह प्रायः समी अनुमान कर सकते हैं, कि ऊर्ध्व-स्रोताः योगिगण विषयी नहीं हैं ; क्योंकि साधारण रूपरसादिके प्रति उनको जरा भी भोगलालसा नहीं है ; परंतु हम लोगोंके इन्द्रियातीत (इन्द्रिय द्वारा प्रहणासमर्था) तन्मात्रादि (रूपतन्मात्र रसतन्मात्र आदि विषयों) को उपलब्धि द्वारा वे लोग सुखका अनुभव करते हैं, इस कारण यदि सूक्ष्मविचारसे देखा जाय, तो वे लोग भी विषयी कहे जा सकते हैं ।

२ नित्यसेवित, जिसका प्रतिदिन सेवा क्रिया गया हो । ३ अव्यक्त, न प्रकट हो । (पु०) ४ शुक्ल, वर्धा, रेतः । ५ जनपद । ६ कान्तति । ७ निर्णय-मक । ८ सारोपा, आरोपाश्रय । सारोपा लक्षणा इस प्रकार है—जहां आरोप्यमाण गवादि और आरोपके विषय चाहोकादिके गोत्वयाहोक्तयादि प्रकाशमान वैधर्म रहते हुए भी दोनोंमें समानाधिकरण्य (समान-विभक्ति-कत्व) देखा जाता है, वहां सारोपालक्षणा होती है । उक्त म्बधलमें आरोप्यमाण (शकटमें निषोच्यमान) गो तथा आरोपका विषय (आश्रय) चाहोका (शकट), इन दोनोंके यथाक्रम गोत्व और चाहोक्तत्वरूप विभिन्नधर्मा-कान्त होने पर भी दोनोंके उत्तर एक ही प्रथमा विभक्ति निर्देश को गई जिससे 'सारोपालक्षणा' हुई तथा उसी (सारोपा लक्षणा) के द्वारा ही उसका (गोवाहोकाः इस प्रयोगका) पूर्णक प्रकार (गोवाहा शकट) का अर्थ प्रकाशित होता है ।

६ विचारयोग्य वाक्य अधिकरणव्यवभेद । विषय (विचार्यविषय), विनाय (संशय, सन्देह), पूर्वपक्ष (प्रश्न), उत्तर और निर्णय (सिद्धान्त) शास्त्रके इन पांच अर्थोंको अधिकरण कहते हैं । २० देश । २१ भाग्य । २२ व्याकरणके मतानुसार सामीप्य, परदेश, विषय और

व्याप्ति, इन चार प्रकारके आधारके अन्तर्गत एक । १३ क्षेत्र पदार्थ, जानने योग्य वस्तु । १४ भोग्यवस्तु, भोगसाधन द्रव्य । १५ सम्पत्ति, धन । १६ वर्णोन्नीय पदार्थ । १७ भूत । १८ गृह, आवास । १९ विश्वीय प्रदेशजात वस्तु । २० धर्मनीति । २१ स्वामी, प्रिय । २२ मुञ्जतृण, मूँज तृण, मूँज नामकी घास ।

विषयक (सं० लि०) विषय-कन् स्वार्थ । विषय देखो ।

विषयकर्मा (सं० क्ली०) सांसारिक कार्य ।

विषयप्राम (सं० पु०) विषयसमूह । (रूपरसगन्धादि)

विषयता (सं० स्त्री०) विषयका भाव या धर्म ।

विषयपति (सं० पु०) किसी जनपद वा छोटे प्रान्तका राजा वा शासक ।

विषयपुर (सं० क्ली०) नगरभेद । (दिग्बि० प्र० १५६।४)

विषयत्व (सं० क्ली०) विषयका भाव या धर्म ।

विषयवत् (सं० लि०) विषयो विद्यनेऽस्य विषय-मत्तुप् मस्य वत्त्वम् । विषयविशिष्ट, विषयी ।

विषयवर्तिन् (सं० लि०) विषयान्तर्भूत, विषयके मध्य ।

विषयवासी (सं० लि०) जनपदवासी ।

विषयसत्तमी (सं० स्त्री०) वह सत्तमी विमक्ति जो विषय अधिकरणमें होती है । जैसे, धर्ममें मति हो ।

विषयाज्ञान (सं० लि०) विषयाणां न ज्ञानं यत् । तन्द्रा ।

विषयात्मक (सं० लि०) विषयः आत्मा यस्य कप् । १ विषयस्वरूप । २ विषयाधिगत प्राण, अत्यन्त विषयासक्त ।

विषयाधिष्ठित (सं० पु०) जनपदका शासनकर्त्ता ।

विषयाधिप (सं० पु०) भूयाधिकारी, राजा, शासनकर्त्ता ।

विषयानन्तर (सं० लि०) विषयके बाद, एक प्रस्तावके ठीक बाद ।

विषयान्त (सं० पु०) राज्यका प्रान्त वा सोगा ।

विषयामिमुखोक्ता (सं० स्त्री०) १ चक्षुः श्रोत्रादि इन्द्रियोंका अपने अपने विषयके प्रति जाना । २ विषयप्रसाक ।

विषयाधिन् (सं० पु०) विषयान् अयत् प्राप्नोतीति अव-णिनि । १ राजा । २ वैयक्तिक जन, कामो पुरुष ।

३ इन्द्रिय । ४ कामदेव । ५ विषयासक्त पुरुष, विलासो आदमी । (मेदिनी)

विषयिक (सं० स्त्री०) विषयीभूत ।

विषयित्व (सं० क्ली०) विषयीका भाव या धर्म ।

विषयिन् (सं० क्ली०) विषयीऽस्त्यस्येति विषय-वि-

१ ज्ञानविशेष । २ इन्द्रिय । ३ नृपति, राजा ।

कामदेव । ५ ध्वनि, शब्द । ६ धनो, अमीर । ७ आरोग्य-

माण । (लि०) ८ विषयासक्त, विलासो, कामो ।

विषयीकरण (सं० क्ली०) गोचरीकरण, लोगोंका दिखाना ।

विषयीभाव (सं० पु०) गोचरीभाव, स्पष्ट करनेका धर्म ।

विषयीय (सं० पु०) विषय । (कुमुदाञ्जलि १५।२)

विषयेन्द्रिय (सं० क्ली०) शब्दादिप्राहक इन्द्रिय ।

विपरस (सं० पु०) विषयस्य रसं आखात् । विषय-वत् ।

विपरूपा (सं० स्त्री०) विषय मूपिकाविषं रूपयति वा-

कामति रूप-क । स्त्रियां टाप् । १ अनिविधा, अती-

२ महानिम्बूक, घोड़ा नोम । ३ अलम्बुया । ४ कर्को-

खेकसा ।

विषरोग (सं० पु०) विषाजन्त रोग ।

विषल (सं० क्ली०) विष, जहर ।

विषलता (सं० स्त्री०) १ इन्द्रियादणीलता, ग्वालककई-

२ विषप्रधान लतासमूह, जहरीली लताएँ । ३ मृणा-

कमलनाल ।

विषलाङ्गल (सं० क्ली०) क्षुपभेद, कलिहारी ।

विषलाटा (सं० स्त्री०) नगरभेद । (राजतर० ५।१७५)

विषलितक (सं० क्ली०) विषमञ्जरण, विष लगा हुआ

विषवत् (सं० लि०) विषमस्त्यस्येति विष-मत्तुप्

मस्य वत्त्वम् । १ विषविशिष्ट, विषैला । विषमिव वि-

इवाधं-वत् । २ विषतुल्य, विषके समान ।

विषवज्रपात (सं० पु०) रस ।

विषवहरी (सं० स्त्री०) विषलता ।

विषवहली (सं० स्त्री०) विषलता, इन्द्रियादणी नामकी लता ।

विषविटपिन् (सं० पु०) विषवृक्ष ।

विषविद्या (सं० स्त्री०) विषाय तन्निवृत्तये विद्या

१ विषघ्न मन्त्र आदिको सहायतासे भाङ्ग फूँक कर वि-

उतारनेकी विद्या । २ विषचिकित्साशास्त्र ।

विषविधि (सं० खो०) प्राचीन व्यवहारशास्त्रके अनुसार एक प्रकारकी परीक्षा या दिव्य जिससे यह जाना जाता था, कि अमुक व्यक्ति अपराधी है या नहीं।

दिव्य शब्द देखो।

विषवृक्ष (सं० पु०) उडुम्बरवृक्ष, गुलरका पेड़।

"विषवृक्षोऽपि संवर्ष्यै स्वयं ह्येवमसाम्प्रतम्।"

(कुमार २ अ०)

विषवैद्य (सं० पु०) विषमन्त्राभिज्ञ चिकित्सक, वह जो मन्त्र तन्त्र आदिकी सहायतासे विष उतारता है, ओषधी।
पर्याय—जांगुलिक, जाङ्गलिक, नरेन्द्र, कीशिक, कथा-प्रसङ्ग, चक्राट, व्यालप्राही, जांगुलि, जाङ्गलि, अहितुण्डिक, व्यालप्राह, गार्कंडिक। (शब्दरत्ना०)

विषवैरिणी (सं० खो०) निर्विषी घास, निर्विषा।

विषशालुक (सं० पु०) पत्रकन्द, मसौंड। गुण—गुरु, विष्ट्रमी और शोथल। (राजवल्लभ)

विषशूक (सं० पु०) विषं शूकं यस्य। भृङ्गरोल, भीम-रोल नामका कीड़ा।

विषशृङ्गिन् (सं० पु०) विषं शृङ्गमिवास्त्यस्येति विष-शृङ्ग इति। भृङ्गरोल, भीमरोल नामका कीड़ा।

विषशोकापह (सं० पु०) तण्डुलोपक्षुप।

विषसंयोग (सं० पु०) सिन्दूर, सेंडुर।

विषसूचक (सं० पु०) विषं सूचयति विषयुक्तान्नादि-दर्शने मृतः सन् क्षापयतीति सूच-णच्-ण्युल्। चकोर पक्षी।

विषसूचक (सं० पु०) विषं सूचयति यस्य। भृङ्गरोल, भीमरोल नामका कीड़ा।

विषस्फोट (सं० पु०) स्फोटकमेद।

विषह (सं० त्रि०) विष-हन-ड। १ विषघ्न, विष-नाशक। स्त्रियं टाप्। २ देषदाली। ३ निर्विषा।

विषहन्तृ (सं० पु०) १ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। २ विषनाशक।

विषहन्ता (सं० स्त्री०) १ अपराजिता। २ निर्विषा। ३ श्वेत अपराजिता।

विषहर (सं० त्रि०) हरतीति ह-अच्-विषस्य हरः। १ विषघ्न औषध मन्त्रादि, वह औषध या मन्त्र आदि जिससे विषका प्रमाय दूर होता हो। गण्डपुराणमें

लिखा है, "ओं हूं जः" यह मन्त्र पढ़नेसे सभी प्रकारके विषचूका विष विनष्ट होता है। पीपल, मूषखन, सोंठ या अदरक, सैन्धव, मिर्चा, दधि, कुट इन सब द्रव्योंका चूर्ण एक साथ मिला कर नस्य या पान करनेसे विष जाता रहता है। आंवला, हरितीकी, बहेडा, सोहागेका लावा, कुट और रक्तचन्दन इनके चूर्णको घीमें मिला कर पान करने तथा विपाक स्थानमें लेपनेसे विष उसी समय उतर जाता है। कनूरकी आंज, हरिताल और मैनसिल इनका व्यवहार करनेसे गण्डके सर्पविनाशकी तरह विष नष्ट होता है। सोंठ, पीपल, मिर्चा, सैन्धव, दधि, मधु और घृत इन्हें एक साथ मिला कर विषचूके काटे हुए स्थान पर लगानेसे विष उसी समय जाता रहता है। (गण्डपुराण १८६ अ०)

(पु०) २ प्रन्धपणंभेद, मटेउर, चोरक। ३ घृष्टकं पक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ४ हिमालय पर्वतश्रेणीके पश्चिम भागका एक अंश। पर्वतभाग प्रधानतः दाने-दार पत्थरोंसे भरा पड़ा है। यमुनोत्तरीके उच्च शिखर-देशसे लगायत भातुलके दक्षिण शतद्रु नदी तक प्रायः ६० मील विस्तृत है। विषहर पर्वतके शिखर १६६८२से २०६१६ फीट ऊंचे हैं। उसकी सर्वोच्च शिखर ही यमुनोत्तरी है। इस पर्वत पृष्ठमें १४८६१ से १६०३५ फीटके मध्य बहुतसे गिरिपथ हैं। यहाँके वाग्निदेहिन्द्री बोलते हैं। लादक देखो।

विषहरा (सं० खो०) १ देषदाली लता, बंदाल। २ निर्विषा। ३ मनसादेवी।

"जरत्काश्मिपास्वीकमाता विषहरेति च।"

(देवीभाग० ६।४७।१२)

विषहरिचर्कि (सं० खो०) सात्रिपातादि विकारमें व्य-हार्थ अज्ञनर्वात्त विशेष। प्रस्तुतप्रणाली—जयपाल (जमालगोटा) थोड़ाका मज्जाकी नीचूके रसमें इक्षीसवार अच्छी तरह पीस कर बत्तीकी तरह बनाये। पोछे मनुष्यकी रालसे उसको घिस कर अज्ञनको तरह नैत्रमें व्यवहार करनेसे सात्रिपातविकारादिमें उपकार होता है।

(रसेन्द्रनिन्ता०)

विषहरी (सं० खो०) १ मनसादेवी। विषसंहारमें श्रेष्ठ होनेके कारण इनका नाम विषहरी हुआ है।

"विषं संदृच्छंतीना या तस्माद्विषदरी स्यूता ।"

(देवीभागवत १।४७।४०) मनसा देखो ।

विषदा (सं० स्त्री०) विषं हन्ति हन-ड-स्त्रिवां टाप् । १ देव-
दाली लता, बंधाल । २ निर्विषोद्योस ।

विषदाहक (सं० पुं०) भूकदम्ब ।

विषदाहिणी (सं० स्त्री०) निर्विषा, निर्विषी नामक
वास ।

विषहृदय (सं० लि०) विषं हृदये यस्य । जिसका अन्तः-
करण विषमय हो ।

विषुह (सं० लि०) वि सह-यत् । विशेष प्रकारसे सह-
नोय, खू। सहने योग्य ।

विषा (सं० स्त्री०) १ अतिविषा, अतोस । पर्याय—
काश्मोरा, अतिविषा, श्वेता, श्यामा, गुडजा, अरुपाल ।
(रत्नमाला) विश्वा, शृङ्गो, प्रतिविषा, शुक्रकन्दा,
उपविषा, भङ्गरा घुणवदलमा । गुण—उष्णवीर्य,
कटु, तिक्त, पाचनी, दीपनी तथा कफ, पित्त, अतिसार,
आम, विष, कास, यमि और क्रिमिनाशक । (भावप्र०)
२ लाङ्गुलिका, फलिहारी । (वैद्यक निघ०) ३ कटु-
तुण्डो, कड़वा कन्दुरो । ४ कटुतुम्बो, कड़वी तरौई ।
५ काकोलो । ६ बुद्धि, अङ्ग ।

विषाक (सं० लि०) विषमिश्रित, विषयुक्त, जिसमें विष
मिला हो, जहरोला ।

विषाख्या (सं० स्त्री०) शुक्रकन्दातिविषा, सफेद अतोस ।

विषाप्रज्ञ (सं० पुं०) तलवार ।

विषाङ्कर (सं० पुं०) शलयाख, तीर । (शिकायदोष)

विषाङ्गना (सं० स्त्री०) विषनारी । विषकन्या देखो ।

विषाण (सं० लि०) १ विशेष प्रकारसे मद्दाता । (ऋक्

५।४।११) (पुं०) २ कुट या कुड नामक औषध ।

३ पशुशृङ्ग, पशुका साग । ४ हस्तिदन्त, हाथीदांत ।

(विशुभाजवध १।६०) २ वराहदन्त, सूअरका दांत ।

६ मेघशृङ्गो, मेडासिंगो । इसका फल मींगके जैसा होता

है । ७ औषधकी लता । ८ वृश्चिकालो, विच्छू नाम-

की लता । ९ क्षीरककोलो । १० चाराहोकन्द, गैडी ।

११ निम्बिडो, इमली ।

विषाणक (सं० पुं०) विषाण स्वार्थे कन् । विषाण देखो ।

विषाणका (सं० स्त्री०) वह जिससे रोग अच्छी तरह

पहचाना जाय । (अर्थ ६।४।४।३)

विषाणवत् (सं० लि०) शृङ्गो, मींगवाला ।

विषाणान्त (सं० पुं०) गणेशके दांत ।

विषाणिका (सं० स्त्री०) १ मेघशृङ्गो, मेडासिंगो ।

(रत्नमाला) २ कर्कटशृङ्गो, काकडासिंगो । पर्याय—शृङ्गो,

कर्कटशृङ्गो, कुलीर, अजशृङ्गो, रक्ता, कर्कटापवा ।

(भावप्र०) ३ सातला नामका धुहर । ४ आवर्त्तकी

भगवतबल्ला नामकी लता । ५ ऋषभक नामक

औषधि । ६ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा । ७ काकोलो ।

विषाणिन् (सं० लि०) विषाणमस्त्वस्येति विषाण इति ।

१ शृङ्गो, मींगवाला । (पुं०) २ हस्ती, हाथी । ३ शृङ्गाटक,

सिंघाड़ा । ४ ऋषभक नामकी औषधि । (राजनि०) ५

शूकर, सूअर । ६ वृष, सांड ।

विषाणो (सं० स्त्री०) १ क्षीरकाकोलो । (मेदिनी) २

वृश्चिकाली, विछातो । ३ तन्त्रिडो, इमली ।

(गर्दच०) । ५ आवर्त्तकी लता, भगवतबल्ली नामकी

लता । ६ चर्मकपा, चमरखा । ७ कदलीवृक्ष, केलेकी

पेड़ । ८ शृङ्गारक, सिंघाड़ा । ९ विष, जहर ।

विषातकी (सं० स्त्री०) विषकी संयोजनाकारिणी ।

(अर्थ ७।१।२।२)

विषाद् (सं० लि०) विषं अतीति विष-अट्ट फिक् । १

विषमक्षक, जहर खानेवाला, (पुं०) २ शिष्य, महादेव ।

विषाद (सं० पुं०) वि-सद्-घञ् । १ खेद, दुःख, रंज । २

जड़ता, जड़ या निश्चेष्ट होनेका भाव । ३ कार्यमें अनु-

त्साह या अनिच्छा, काम करनेके बिलकुल जो न

चाहना । ४ प्रवृत्ता, वेवजूफी ।

विषादन (सं० स्त्री०) विषाद, दुःख, रंज ।

विषादनो (सं० स्त्री०) विषाद तग्निवृत्तये अद्यतेऽसौ

अद्-न्युट् स्त्रियां ङाप् । १ पलाशी नामकी लता । २ इन्द्र-

वाहणी ।

विषादयन् (सं० लि०) विषादयुक्त, विषादित ।

विषादिता (सं० स्त्री०) १ विषादयुक्ता । २ विषादक

धर्म या भाव ।

विषादित्थ (सं० स्त्री०) विषण्णता, विषादयुक्तका

भाव या धर्म ।

विषादिन् (सं० लि०) विषादो विद्यतेऽस्य इति विषाद-

इति । विषादयुक्त, विषण्ण ।

विपादिनी (सं० स्त्री०) १ पलाश नामकी लता । २ इन्द्र-
वारणी ।

विपानन (सं० पु०) विषामानने यस्य । सर्प, सांप ।
(शब्दमाला)

विपान्तक (सं० पु०) विषस्यान्तक इव । १ गिय ।
(हेम) (त्रि०) २ विपनाशक, जिससे विषका नाश हो ।

विपान्न (सं० स्त्री०) विषयुक्तमन्नाम् । १ विषयुक्त
खाद्य, जहरोला भोजन । २ सर्पवादि ।

विपापवादिन् (सं० त्रि०) विपनुद्य निन्दावाच्य प्रयोग-
कारी, लगती हुई बातोंका प्रयोग करनेवाला ।

विपापह (सं० पु०) विषं अपहन्तीति अप-हन ड । १ कृष्ण-
मुष्कक वृक्ष, काला मौला नामक वृक्ष । (त्रि०) २ विष-
नाशक, जिससे विषका नाश हो ।

विपापहरण (सं० स्त्री०) । १ विपनाशन । २ विपाप-
नोदन, विष दूर करना ।

विपापहा (सं० स्त्री०) १ इन्द्रवारणी । २ निर्विषो
घास । ३ नागदमनी । ४ अर्कपत्ती, इसरौल ।
पर्याय—अर्कपत्ता, सुनन्दा, अर्कमूला । ५ सर्पकङ्क
लिका लता । (रत्नमाला) ६ त्रिपर्णी नामक महाकरु ।
(राजनि०)

विपापमावा (सं० स्त्री०) विषस्यापमावो यथा । निर्विषा,
निर्विषो घास ।

विपामृत (सं० स्त्री०) गरल और अमृत ।

विपामृतमय (सं० त्रि०) गरल और अमृतयुक्त । कथा-
सरित्सागरमें विपामृतमयी कन्याका उल्लेख है ।
(कथासरित्सा० ३६।८०)

विपापका (सं० स्त्री०) निर्विषी ।

विपापिन् (सं० त्रि०) वि-सो-णिन् (पा ३।१।१३४) ।
तीक्ष्ण, तेज ।

विपापुष (सं० पु०) विषमेवापुष यस्य । १ सर्प,
सांप । २ विषयुक्त अन्न, वह हृषियार जो जहरमें युक्तया
गया हो (त्रि०) ३ गरद, विषदाता ।

विपापुषीय (सं० त्रि०) १ सर्प-सम्बन्धीय । २
विपाकात्त्र सम्बन्धीय । ३ विषदाता सम्बन्धीय ।
(शब्द० ४०।५।४०)

विपाप (सं० पु०) विषं गच्छति विषं-श्रु-अण् । सर्प,
सांप ।

विपाराति (सं० पु०) विषस्वारातिः नाशकः । १
कृष्ण धुस्तूर, काला घतुरा । २ विपनाशक ।

विपारि (सं० पु०) विषस्वारिः । १ महाचञ्चुनाक,
चेंब नामक साग । २ घृतकरंज, घोकरंज । (त्रि०)
३ विपनाशक, जिससे विषका नाश होता हो ।

विपाला (सं० स्त्री०) मरुत्पविशेष, एक प्रकारको
मछली जिसका मांस वायु और कफको बढ़ानेवाला
माना जाता है ।

विपालु (सं० त्रि०) विषयुक्त, विपैला, जहरोला ।

विपासहि (सं० त्रि०) विशेषरूपसे अभिभवकारी ।

विपास्य (सं० पु०) विषमास्ये यस्य । १ सर्प, सांप ।
(त्रि०) २ विषयुक्त मुख ।

विपास्या (सं० स्त्री०) भल्लातक, भिलावा ।

भल्लातक देखो ।

विपास्र (सं० पु०) विषमेवास्रं यस्य । १ सर्प,
सांप । (स्त्री०) २ विषयुक्त अन्न, जहरमें युक्तया
हुआ हृषियार । ३ गरद, विषदाता ।

विपित (सं० पु०) १ प्रकृष्ट, विशिष्ट । २ विवद,
सम्बन्ध । ३ प्रक्षिप्त, विक्षिप्त ।

विपितस्तुक (सं० त्रि०) १ विशिष्ट केशसमूह । २ प्रकीर्ण-
केशसमूह, विक्षिप्त केशकलाप ।

विपितस्तुप (सं० त्रि०) सम्बन्धमायमें उच्छ्राययुक्त ।
विपिन् (सं० त्रि०) विषमस्वरूपेति इनि । विषविशिष्ट,
जहरोला ।

विषी (सं० पु०) १ विषपूर्ण वस्तु, जहरोला चीज ।
२ विषघर सर्प, जहरोला सांप । (त्रि०) ३ विपिन देखो ।

विषीभूत (सं० त्रि०) अविषं विषं भूतं । विषीकृत,
जहर डाला हुआ ।

विपु (सं० अर्थ०) १ साम्य । (भरत) २ नानारूप,
तरद तरदका । (रामाभ्रम)

विपुण (सं० पु०) विपु साम्यमस्मिन्नस्तौति (छोम-
दीति) पा ५।२।१००) विपु न-णत्वञ्च । १ विपुष ।
२ नानारूप । (शुक् ३।५।५) ३ सर्वग, सर्वैतगामी ।
४ विप्रकीर्ण, सर्वव्याप्त । (शुक् ५।१।२।५) ५ पराङ्गमुख,
विमुख । (शुक् ५।१।५)

विपुणक (सं० अर्थ०) १ विविध, नाना प्रकार ।

२ सकल, सभी। "घनोरधि विपुण-धते ध्यायन्।"

(ऋक् १।३।३४)

विपुद्रुह (स० त्रि०) विपु विश्वान् सकलान् शत्रून्
द्रुहति हिनस्ति इति विपु द्रुह-क । शर, घाण, तीर ।

"विपुद्रुह्वेव यद्गम्हसुर्गिरा" (ऋक् ८।२६।१५)

विपुप (स० क्ली०) विपुव ।

विपुरूप (स० त्रि०) १ नाना रूप, अनेक प्रकारका ।
(ऋक् १।२२।७) २ विपररूपका । (ऋक् ६।१८।१)

३ नानावर्ण, अनेक रंगका । (ऋक् ६।७।३)

विपुव (स०, क्ली०) १ समरात्रिन्द्रिय काल, वह समय
जब कि सूर्य विपुवरेखा पर पहुँचता है और दिन तथा
रात दोनों बराबर होते हैं। चैत्रमासके अन्तिम दिनमें
जब सूर्य मीनराशिको पार कर मेघराशिमें तथा उसी
प्रकार आश्विनमासके अन्तिम दिनमें जब वे कन्यराशि
को अतिक्रम कर तुलाराशिमें जाते हैं, उसी समयका
नाम 'विपुव' है; क्योंकि इस दिन दिन और रातका
मान समान रहता है। इस उल्लिखित यह विश्वास हो
सकता है, कि आजकल पञ्चक्रामें दिवारात्रिका समान
मान ६घों चैत्र और ६घों आश्विनको लिखा रहता है,
नव क्या उसी तारोक्षमें (विपुवसंक्रान्ति) होगा? अर्थात्
सूर्य उक्त मितोको ही मोनसे मेघमें तथा कन्यासे तुलामें
जायेंगे। किन्तु यथार्थमें वह नहीं है। क्योंकि, मीन-
राशिमें संक्रमणसे सूर्यको राशिभोगकालके नियमा
नुसार वहाँ (उस मोनराशिमें) एक मास तक
रहना पड़ता है। अतएव सद्दृशगतिमें ६ दिनके बाद
उनका दूसरी राशिमें जाना असम्भव है। अतएव
इसकी ठीक ठीक मीमांसा विस्तृतरूपसे नीचे को
गई है।

विपुवारम्भका नियम,—सूर्यको मेघराशि संक्रमणके
पूर्व और पश्चात्, प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा
२७ दिनके मध्य विपुव आरम्भ होता है। जिस जिस
दिन विपुव आरम्भ होता है अर्थात् सूर्य विपुवरेखाके
पूर्व पश्चिम स्पर्शीबिन्दुके मध्यगत होते हैं, उसी उसी
दिन पृथिवीके जिन सब स्थानोंमें, सूर्यका नित्य दर्शन
होता है, वहाँ दिन और रात्रिका परिमाण समान रहता
है। विपुव दो है, अश्विनी नक्षत्रके प्रारम्भमें मेघ-

राशिमें जो विपुव आरम्भ होता है, उसका नाम 'महा-
विपुव' है और चित्रा नक्षत्रके शेषार्द्धमें तुलाराशिके
प्रारम्भमें जो विपुवरेखा स्पर्श होती है उसे 'जलविपुव'
कहते हैं।

प्रतिलोम और अनुलोमका नियम—जिस प्रकाशमें
सूर्यको मेघराशि सञ्चारके दिन जब विपुव आरम्भ होता
है, तब उस शकको ३०वीं चैत्र और ३०वीं आश्विनको
दिन और रात्रिका मान समान रहता है। ६६ वर्ष
८ मास तक यही नियम चलता है। प्रतिलोम गतिकी
जगह सूर्यके मेघ और तुला संक्रमणके एक एक दिन
पहले विपुव आरम्भ होता है; अतएव इस (प्रतिलोम)
गतिमें प्रत्येक ६६ वर्ष ८ मासके बाद मेघ और तुला
संक्रमणके एक एक दिन पहले विपुव आरम्भ होनेके
कारण उन दो मासोंके (चैत्र और आश्विन) एक एक
दिन पहले अर्थात् १म ६६ वर्ष ८ मास तक ३०वीं की
२य ६६ वर्ष ८ मास २६वींकी ३य ६६ वर्ष ८ मास
२८वींकी ४थ ६६ वर्ष ८ मास २७ वींकी इत्यादि
प्रकारसे दिन और रात्रिका मान समान होता है, बीस
६६ वर्ष ८ मासके बाद या इकोस ६६ वर्ष ८ मासके
भीतर विपुव आरम्भ हो कर वर्त्तमान (१८५१ शकाब्द)
८वीं चैत्र और ६घों आश्विनके दिन और रात्रिका
मान समान भावमें चला आता है। फिर अनुलोम
गतिस्थलमें भी मेघ और तुला संक्रमणके दिन विपुव
आरम्भके बाद ऊपर कहे गयेके अनुसार ६६ वर्ष ८ मास
के अन्तर पर एक एक दिन पोछे विपुव आरम्भ होता
है। अर्थात् १म ६६ वर्ष ८ मास ३०वीं चैत्र और ३०वीं
आश्विनके २य ६६ वर्ष ८ मास, १ला वैसाख और १ला
फाल्गुणके, ३य ६६ वर्ष ८ मास २री वैशाख और २री
फाल्गुणके, इत्यादि नियमसे दिन और रात्रिका मान
समान होता है।

सूर्यको मेघराशि संक्रमणके पूर्ण और पश्चात्,
प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा २७ दिनके
मध्य विपुव आरम्भ होता है। इसका स्फुटार्थ यह
है, कि सूर्यको मेघराशि संक्रमण (३० घों चैत्र)
दिनसे ले कर पूर्ववर्त्ती २७ दिन (४घों चैत्र)
तक प्रतिलोम गतिसे तथा उस दिन (३० घों चैत्र)

से परवर्त्ती (सम्मुखवर्त्ती) २७ दिन (१ लीसे २७वीं वैशाख) तक अनुलोम गतिसे विषुव आरम्भ होता है। अर्थात् १८ (२७-२७) ५४ दिनोंमेंसे जिस किसी दिन एकादिक्रमसे ६६ वर्ष ८ मास तक सूर्य एक बार करके विषुवरेखा पर पहुँचते हैं और उस दिन द्विवारारतिका मान समान रहता है। इससे यह भी समझा जायेगा, कि ४थी आश्विनसे २७वीं कार्तिक तक ५४ दिनोंमेंसे जिस किसी दिन सूर्य एकादिक्रमसे ६६ वर्ष ८ मास तक एक बार करके विषुवरेखा पर उपस्थित होते हैं तथा उम दिन द्विवारारतिका मान समान रहेगा। इसीलिपे वर्षमें दो दिन करके दिया और रातिका मान समान देखा जाता है। फिर यह भी जानना होगा, कि ३०वीं चैत्रके पहले या पीछे जिस तारीखको सूर्य विषुवरेखा पर आने हैं, ३०वीं आश्विनके पहले और पीछे भी ठीक उम्मी तारीखको एक बार और विषुवरेखा पर आयेंगे।

उक्त प्रतिलोम और अनुलोम गतिका कारण यह है—सृष्टिके आरम्भकालमें जहाँ अश्विनी नक्षत्रके प्रारम्भ से राशिचक्र समिन्वेषित हुआ था, वहाँसे यह राशिचक्र सम्मुख और पश्चाद्भागमें अर्थात् उत्तरमें एक एक २७ अयनांश (Degree) तथा दक्षिणामें भी उसी प्रकार २७ अंश हट जाता है। यह अयनगति ७२०० वर्षोंमें सम्पूर्ण होती है; क्योंकि प्रथमतः ३०वीं चैत्रसे ४थी चैत्र तक प्रतिलोम गतिसे २७ अंश जानेमें (६६।८ × २७) १८०० वर्ष लगता है; पीछे ३०वीं चैत्र तक लीट आनेमें भी १८०० वर्ष। इस प्रकार अनुलोम गतिसे भी १ली वैशाखसे २७ वैशाख तक २७ अंश जा कर लीट आनेमें उतना ही समय अर्थात् (१८०० × २) ३६०० वर्ष लगता है, अतएव प्रतिलोम और अनुलोम गतिसे जानेमें (२७-२) ५४ अंश अथवा जाने और आनेमें अर्थात् (५४ × २) १०८ अंश तक जाने और आनेमें (६६ × १०८) ७२०० वर्ष लगता है। राशिचक्रकी इस अयनगतिवशात् सूर्यकी गतिके अनुसार दिन रातिकी कमीवेशी हुआ करती है तथा ६६ वर्ष ८ मासके बाद अयनांश परिवर्त्तित होनेसे मेघादि बारह लग्नोंके मानका भी ह्रास पृथि हो कर परिवर्त्तन होता है। एक वर्षका अयनांश मात्र ५४ विकला है। एक मासमें ४३० साटे चार विकला तथा एक दिनमें

सिर्फ ६ अनुकला होती है। नीचे अयनांश निरूपणका नियम लिखा जाता है।

४२२ शकाब्दसे ले कर जिस किसी शकाब्दका अयनांश निकालना हो, उस अङ्कमें ४२१ विभाग करे। विभागफल जो होगा, उसे दो स्थानोंमें रख एकको १०से भाग दे। भागफल जो होगा उसको दूसरेसे घटावे। इसके बाद अवशिष्ट अङ्कको ६०से भाग देने पर भागफल और भागशेषाङ्क, अयनांश और कला विकलादि रूपमें निरूपित होगा। उसे उस शकाब्दके आरम्भकालका अर्थात् १ली वैशाखक पूर्वक्षणका अयनांश जानना होगा।

उदाहरण— १८२६ शकाब्दके प्रारम्भमें अयनांश जो था, वह इस प्रकार है,— १८२६-४२१=१४०८। १४०८ ÷ १०=१४०।४८। १४०८-१४०।४८=१२६७। १२। (१२६७।१२) ÷ ६०=२१।७।१२ अर्थात् १८२६ शकसे ४२१ निकाल लेने पर १४०८ हुआ। १४०८ में १० भाग देनेसे भागफल १४०।४८ होता है। इस लब्धफलसे फिर १४०८ निकाल लेने पर अवशिष्ट १२६७ कला और १२ विकला रहा। उसमें ६० भाग दे कर अंश लानेसे २१ अंश भागफल हुआ तथा ७ कला और १२ विकला अवशिष्ट रहा। अतएव जाना गया, कि १८२६ शक (सन् १३१४ साल)के प्रारम्भमें अयनांशादि २१।७।१२ विकला निरूपित हुआ।

४२१ शकके प्रारम्भमें मेघ संक्रातिके दिन ही विषुवचरम्मण हुआ था। उस शकमें अयनांश शून्य होता है। इसके बाद ४२१ शक पूर्ण हो कर ४२२ शकके प्रारम्भमें अर्थात् महाविषुवसंक्रातिके दिन अयनांश ५४ विकला हुआ था। उक्त ४२२ शकसे प्रति वर्ष अयनांश ५४ विकला बढ़ा कर १८२६ शक (सन् १३१४ साल)के प्रारम्भमें २१।७।१२ (इकीस अंश ७ कला और १२ विकला) अयनांशादि पूर्ण हुआ है, अर्थात् २२वें अयनांश उत्तीर्ण हो कर २२वें अयनांशका ७ कला और १२ विकला हुआ है। आगामी १८८८ शक (सन् १३७३ साल)के अग्रहण मासमें ७ वारिसथां अयनांश

६ प्रति वर्ष ५४ विकला बढ़नेसे ७।२२ विकला जानेमें ८ वर्षों लगता है, अतएव (१८२६-८) १८२१ शकमें यज्ञमा

२ सकल, सभी । "घनोरधि विषुण-क्ते ध्यायन् ।"

(ऋक् १३३।४)

विषुवद्वह (स० त्रि०) विषु विश्वान् सकलान् शत्रून्
द्रुहति हिनस्ति इति विषुद्वह-क । शर, वाण, तीर ।

"विषुद्वह्व यक्ष्महथुर्गिरा" (ऋक् ८२।११५)

विषुप (स० क्ली०) विषुप ।

विषुरूप (स० त्रि०) १ नाना रूप, अनेक प्रकारका ।

(ऋक् १।१२३।७) २ विषमरूपका । (ऋक् ६।५८।२)

३ नानावर्ण, अनेक रंगका । (ऋक् ६।७०।३)

विषुव (स० क्ली०) १ समरात्रिन्दिब काल, वह समय
जब कि सूर्य विषुवरेखा पर पहुँचता है और दिन तथा
रात दोनों बराबर होते हैं । चैत्रमासके अन्तिम दिनमें
जब सूर्य मीनराशिको पार कर मेघराशिमें तथा उसी
प्रकार आश्विनमासके अन्तिम दिनमें जब घे कन्यराशि
को अतिक्रम कर तुलाराशिमें जाते हैं, उसी समयका
नाम 'विषुव' है ; क्योंकि इस दिन दिन और रातका
मान समान रहता है । इस उक्तिसे यह विश्वास हो
सकता है, कि आजकल पाँचक्रामें दिवारात्रिका समान
मान २३वीं चैत्र और २३वीं आश्विनको लिखा रहता है,
तब क्या उसी तारोक्षमें विषुवसंक्रान्ति होगी ? अर्थात्
सूर्य उक्त मितोको ही मीनसे मेघमें तथा कन्यासे तुलामें
जायगे । किन्तु यथार्थमें वह नहीं है । क्योंकि, मीन-
राशिमें संक्रमणसे सूर्यको राशिभोगकालके नियमा
नुसार बर्षा (उस मीनराशिमें) एक मास तक
रहना पड़ता है । अतएव सद्दृशगतिमें ६ दिनेके बाद
उनका दूसरी राशिमें जाना असम्भव है । अतएव
इसकी ठीक ठीक मीमांसा विस्तृतरूपसे नीचे की
गई है ।

विषुवारम्भका नियम,—सूर्यको मेघराशि संक्रमणके
पूर्व और पश्चात्, प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा
२७ दिनेके मध्य विषुव आरम्भ होता है । जिस जिस
दिन विषुव आरम्भ होता है अर्थात् सूर्य विषुवरेखाके
पूर्व पश्चिम सर्पशचिन्दुके मध्यगत होते हैं, उसी उसी
दिन पृथिवीके जिन सब स्थानोंमें सूर्यका नित्य दर्शन
होता है, वहाँ दिन और रात्रिका परिमाण समान रहता
है । विषुव दो है ; अश्विनी नक्षत्रके प्रारम्भमें मेघ-

राशिमें जो विषुव आरम्भ होता है, उसका नाम 'मेघ-
विषुव' है और चित्रा नक्षत्रके शेषार्द्धमें तुलाराशिके
प्रारम्भमें जो विषुवरेखा सर्पा होती है उसे 'जलविषुव'
कहते हैं ।

प्रतिलोम और अनुलोमका नियम—जिस शकाब्दमें
सूर्यको मेघराशि सञ्चारके दिन जब विषुव आरम्भ होता
है, तब उस शकाब्द ३०वीं चैत्र और ३०वीं आश्विनको
दिन और रात्रिका मान समान रहता है । ६६ वर्ष
८ मास तक यही नियम चलता है । प्रतिलोम गतिको
जगह सूर्यके मेघ और तुला संक्रमणके एक एक दिन
पहले विषुव आरम्भ होता है ; अतएव इस (प्रतिलोम)
गतिमें प्रत्येक ६६ वर्ष ८ मासके बाद मेघ और तुला
संक्रमणके एक एक दिन पहले विषुव आरम्भ होनेके
कारण उन दो मासोंके (चैत्र और आश्विन) एक एक
दिन पहले अर्थात् १२ ६६ वर्ष ८ मास तक ३०वीं को
२५ ६६ वर्ष ८ मास २२वींको ३५ ६६ वर्ष ८ मास
२८वींको ४५ ६६ वर्ष ८ मास २७ वींको इत्यादि
प्रकारसे दिन और रात्रिका मान समान होता है, योस
६६ वर्ष ८ मासके बाद या इकोस ६६ वर्ष ८ मासके
भीतर विषुव आरम्भ हो कर वर्चमान (१८५१ शकाब्द)
८वीं चैत्र और २३वीं आश्विनको दिन और रात्रिका
मान समान भाषमें चला आता है । फिर अनुलोम
गतिस्थलमें भी मेघ और तुला संक्रमणके दिन विषुव
आरम्भके बाद ऊपर कहे गयेके अनुसार ६६ वर्ष ८ मास
के अन्तर पर एक एक दिन पीछे विषुव आरम्भ होता
है । अर्थात् १२ ६६ वर्ष ८ मास ३०वीं चैत्र और ३०वीं
आश्विनको २५ ६६ वर्ष ८ मास, १७वीं चैत्र और १७वीं
आश्विनको, ३५ ६६ वर्ष ८ मास २२वीं चैत्र और २२वीं
आश्विनको, इत्यादि नियमसे दिन और रात्रिका मान
समान होता है ।

सूर्यको मेघराशि संक्रमणके पूर्ण और पश्चात्,
प्रतिलोम और अनुलोम गति द्वारा २७ दिनेके
मध्य विषुव आरम्भण होता है । इसका स्फुटार्थ यह
है, कि सूर्यको मेघराशि संक्रमण (३० वीं चैत्र)
दिनसे ले कर पूर्ववर्ती २७ दिन (४७ वीं चैत्र)
तक प्रतिलोम गतिसे तथा उस दिन (३० वीं चैत्र)

से परवर्त्ती (सम्मुखवर्त्ती) २७ दिन (१ लीसे २७वीं) वैशाख) तक अनुलोम गतिसे विषुव आरम्भ होता है। अर्थात् इन (२७-२७) ५४ दिनोंमेंसे जिस किसी दिन एकादिक्रमसे ६६ वर्ष ८ मास तक सूर्य एक बार करके विषुवरेखा पर पहुँचते हैं और उस दिन दिवारत्रिका मान समान रहता है। इससे यह भी समझा जायेगा, कि ४थो आश्विनसे २७वीं कार्तिक तक ५४ दिनोंमेंसे जिस किसी दिन सूर्य एकादिक्रमसे ६६ वर्ष ८ मास तक एक बार करके विषुवरेखा पर उपस्थित होते हैं तथा उस दिन दिवारत्रिका मान समान रहेगा। इसीलिये वर्षमें दो दिन करके दिवा और रात्रिका मान समान देखा जाता है। फिर यह भी जानना होगा, कि ३०वीं चैत्रके पहले या पीछे जिस तारीखको सूर्य विषुवरेखा पर आने हैं, ३०वीं आश्विनके पहले और पीछे भी ठीक उन्नी तारीखको एक बार और विषुवरेखा पर आयेंगे।

उक्त प्रतिलोम और अनुलोम गतिको कारण यह है,—सूर्यके आरम्भकालमें जहाँ अभिघनी नक्षत्रके प्रारम्भ से राशिचक्र सन्निवेशित हुआ था, वहाँसे वह राशिचक्र सम्मुख और पश्चाद्भागमें अर्थात् उत्तरमें एक एक २७ अयनांश (Degree) तथा दक्षिणामें भी उसी प्रकार २७ अंश हट जाता है। यह अयनगति ७२०० वर्षोंमें सम्पूर्ण होती है। क्योंकि प्रथमतः ३०वीं चैत्रसे ४थो चैत्र तक प्रतिलोम गतिसे २७ अंश जानेमें (६६।८ × २७) १८०० वर्ष लगता है; पीछे ३०वीं चैत्र तक लौट आनेमें भी १८०० वर्ष। इस प्रकार अनुलोम गतिसे भी १ली वैशाख-में २७ वैशाख तक २७ अंश जा कर लौट आनेमें उतना ही समय अर्थात् (१८०० × २) ३६०० वर्ष लगता है, अतएव प्रतिलोम और अनुलोम गतिसे जानेमें (२७-२७) ५४ अंश अथवा जाने और आनेमें अर्थात् (५४ × २) १०८ अंश तक जाने और आनेमें (६६ × १०८) ७२०० वर्ष लगता है।

राशिचक्रकी इस अयनगतिवशता: सूर्यकी गतिके अनुसार दिन रात्रिकी कमीवेशी हुआ करती है तथा ६६ वर्ष ८ मासके बाद अयनांश परिवर्त्तित होनेसे मेघादि षाढ़ लम्बोंके मानका भी ह्रास वृद्धि हो कर परिवर्त्तन होता है। एक वर्षका अयनांश मात्र ५४ विकला है। एक मासमें ४।३० साढ़ चार विकला तथा एक दिनमें

सिर्पा ६ अनुकला होती है। नीचे अयनांश निरूपणका नियम लिखा जाता है।

४२२ शकाब्दसे ले कर जिस किसी शकाब्दका अयनांश निकालना हो, उस षड्भूमि ४२१ वियोग करे। वियोगफल जो होगा, उसे दो स्थानोंमें रख एकको १०-से भाग दे। भागफल जो होगा उसको दूसरेसे घटावे। इसके बाद अथशिए षड्भूमि ६०से भाग देने पर भागफल और भागशेषाद्ध, अयनांश और कला विकलादि रूपमें निकलित होगा। उसे उस शकाब्दके आरम्भकालका अर्थात् १ली वैशाखके पूर्वक्षणका अयनांश जानना होगा।

उदाहरण—१८२६ शकाब्दके प्रारम्भमें अयनांश जो था, वह इस प्रकार है,—१८२६-४२१=१४०८। १४०८ ÷ १०=१४०।४८। १४०८-१४०।४८=१२६७। १२। (१२६७।१२) ÷ ६०=२१।७।१२ अर्थात् १८२६ शकसे ४२२ निकाल लेने पर १४०८ हुआ। १४०८ में १० भाग देनेसे भागफल १४०।४८ होता है। इस लब्धफलसे फिर १४०८ निकाल लेने पर अवशिष्ट १२६७ कला और १२ विकला रहा। उसमें ६० भाग दे कर अंश लानेसे २१ अंश भागफल हुआ तथा ७ कला और १२ विकला अवशिष्ट रहा। अतएव जाना गया, कि १८२६ शक (सन् १३१४ साल)के प्रारम्भमें अयनांशादि २१।७।१२ विकला निरूपित हुआ।

४२१ शकके प्रारम्भमें मेष संक्रांतिके दिन ही विषुव-आरम्भण हुआ था। उस शकमें अयनांश शून्य होता है। इसके बाद ४२१ शक पूर्ण हो कर ४२२ शकके प्रारम्भमें अर्थात् महाविषुवसंक्रांतिके दिन अयनांश ५४ विकला हुआ था। उक्त ४२२ शकसे प्रति वर्ष अयनांश ५४ विकला बढ़ा कर १८२६ शक (सन् १३१४ साल)के प्रारम्भमें २१।७।१२ (इकोस अंश ७ कला और १२ विकला) अयनांशादि पूर्ण हुआ है, अर्थात् २१वां अयनांश उत्तीर्ण हो कर २२वें अयनांशका ७ कला और १२ विकला हुआ है। आगामी १८८८ शक (सन् १३७६ साल)के अग्रहण मासमें* वाईसवां अयनांश

* प्रति वर्ष ५४ विकला बढ़नेसे ७।२२ विकला जानेमें ८ वर्षों लगता है, अतएव (१८२६-८) १८२१ शकमें वस्रवा

पूर्ण हो कर वेदिसर्वां अयनांश आरम्भ होगा तथा उस ग्रहके चैत्र मासको ८वों तारीखको विपुव आरम्भ हो कर उस दिन दिवा और रात्रिका मान समान देखा जायेगा। अर्थात् उस समय वही काल 'विपुव' निर्दिष्ट होगा।

विपुवरेखा (सं० खो०) विपुव समरात्रिन्दिष कालो यस्यां रेखायां सा। ज्योतिषके कार्योंके लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके ठीक मध्य भागमें बड़े बलमें या पूर्ण-पश्चिम पृथ्वीके चारों ओर मानी जाती है। यह रेखा दोनों मेरुओंके ठीक मध्यमें और दोनोंसे समान अन्तर पर है। इस रेखाके उत्तर मेघ, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह और कन्या ये छः राशि तथा दक्षिण ओर तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये छः राशि तिर्णकभावसे घृत्ताकारमें राशिचक्रके ऊपर अवस्थित हैं। राशिचक्र देखो।

"प्राक् पश्चिमाभिधा रेखा प्रोच्यते सममयष्टम्।

उन्मयष्टम् विपुवन्मयष्टम् परिकीर्तितम् ॥"

(विद्वांसिरो०)

पाश्चात्यमतसे पृथिवीके मध्यस्थलमें पूर्ण-पश्चिमकी ओर विस्तृत जो कल्पित रेखा है, वही विपुव रेखा है। इसका दूसरा नाम निरक्षवृत्त है अर्थात् इसकी डिग्रिका चिह्न है :। नभोदेशमें इस प्रकार कल्पित वृत्तके ऊपरसे तिर्णकभावमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर सूर्यकी प्रत्यक्षमतिपथ या रविमार्ग (line of the alicptic) अवधारित है। सूर्य देखो।

१३०६ सालके आरम्भमें अर्थात् १३०५ सालकी ३० वीं चैत्र महाविपुवसंक्रांतिके दिन वार्षिक अयनांश आरम्भ हुआ है। इसीलिये अभी देखा जाता है, कि उस १८२१ शककी १४वें वैशाखसे जब तक ६६ वर्ष ८ मास पूरा न होगा, तब तक वार्षिक अयनांश रहेगा। इस कारण (१८२१ + ६६ = १८८७) १८८७ शक उत्तोर्य हो कर १८८८ शकके ८ मास अर्थात् अगस्तमास पर्यन्त वार्षिक अयनांश अवस्थित होगी। (यह ३६० दिनोंका वर्ष मान कर यह गणना की गई, ३६५ दिनका वर्ष माननेसे और भी २१ मास तक यह अयनांश उबर सकता है।)

इस ज्योतिषकपथसे पृथिवीके एक घूर्णनेमें ३६५ दिन लगता है। यही वार्षिक गति है, इस कारण इसको एक वर्ष कहते हैं। वर्षके भीतर उत्तरायण और दक्षिणायण समयक्रमसे इस विपुवरेखाके उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तरकी ओर पृथिवीकी गति बदलती रहती है, जिससे संसारमें छः ऋतुओंका आविर्भाव होता है। इसी कारण इस कल्पित रेखाके २३° ४६' ५५" डिग्रि उत्तर तथा २३° ४६' ५५" डिग्रि दक्षिण ओर मोड़ो छोटे वृत्त कल्पित हुए हैं। उनमेंसे उत्तरो वृत्तका नाम कर्कटकान्ति (Tropic of cancer) है। सूर्यदेव कभी भी उत्तरमें कर्कटकान्ति और दक्षिणमें मकरकान्तिको सीमा पार नहीं करते। जब सूर्य विपुवरेखाके उत्तर कर्कटकान्तिकी ओर रहने हैं, तब विपुवरेखाके उत्तर दिन बड़ा और रात छोटी होती है। फिर जब सूर्य विपुवरेखाके दक्षिण जाते हैं, तब उत्तरो देशोंमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है। इस दक्षिण भागमें उसका ठीक विपरीत भाव ही दिखाई देता है। जब सूर्यकिरण विपुवरेखाके उत्तर लम्बे भावमें पड़ते हैं तब दिन और रात्रिका मान समान होता है तथा सूर्यकिरण बहुत प्रखर रहते हैं। इसी कारण उस समय उत्तर और दक्षिणकान्तिके मध्यवर्ती देशवासी शीत और ग्रीष्मकी समता अनुभव करते हैं। सूर्यदेव विपुवरेखाको गतिक्रम कर कर्कटकान्तिकी ओर ज्यों ही जाते हैं, त्यों ही उत्तरो दिशामें ग्रीष्मका प्रादुर्भाव होता है तथा उसके विपरीत विपुवके दक्षिणस्थ मकरकान्तिके सन्निहित देशोंमें शीतका प्रकोप बढ़ता है।

सूर्यदेव जब विपुवरेखासे उत्तर या दक्षिण ६०° में आते हैं, तब यथाक्रमम् हम लोगोंके देशमें ग्रीष्म और शीतकी तथा दिवा और रात्रिकी वृद्धि या हास होती है। उन दोनों स्थानोंको Summer Solstice और Winter Solstice कहते हैं। जब सूर्य उत्तर ६०° से धीरे धीरे १८०° में फिरसे विपुवरेखाके समसूत्रपातमें अर्थात् विपुवरेखाके ऊपर रहते हैं, तब शारदोय समदिवाारात्रि (autumnal equinox) तथा वहासे दक्षिण २७०°

अतिक्रम कर जब फिरसे विपुर्वरेखा पर पहुँचते हैं, तब वासन्तिक समदिनरात्रि (Vernal equinox) होती है।

सूर्य प्रायः २२वीं दिसम्बरको दक्षिणमें मकरक्रान्तिसे २३° ४६' अथवा प्रायः धीरे धीरे उत्तरकी ओर हटने लगते हैं तथा प्रायः २१वीं मार्चको विपुर्वरेखा पर पहुँचते हैं। इस दिन पृथिवीके उष्णमण्डलमें तमाम दिनरातका मान बराबर रहता है। इस दिनको वासन्तिक या महा-विपुर्वसंक्रान्ति कहते हैं। इसके दूसरे दिनसे सूर्य क्रमशः विपुर्वरेखासे उत्तरकी ओर जाने लगने हैं तथा २२वीं जूनको २३° ४६' अंश ब्रह्मावधि कर्कटकान्तिमें आकर फिरसे दक्षिण विपुर्वरेखाकी ओर अग्रसर होते हैं। इसके बाद वे २३वीं सितम्बरको विपुर्वरेखा पर पहुँचते हैं। इस दिनको शारद या जलविपुर्वसंक्रान्ति कहते हैं। अनन्तर सूर्य दक्षिणकी ओर २२वीं दिसम्बरको मकर-क्रान्ति सीमा पर आते हैं। इस प्रकार सूर्य विपुर्वरेखा के ऊपर उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तर अयनमें परिभ्रमण करते हैं। बङ्गालमें साधारणतः २३वीं चैत, २३वीं आषाढ, आश्विन और २३वीं पौषको ऐसा हुला करता है। पृथिवीके कल्पित मेरुदण्ड (Axis) का मध्यबिन्दु और विपुर्वरेखाका मध्यबिन्दु यदि एक सरल रेखासे मिला दिया जाये, तो वे दोनों रेखाएँ एक दूसरे पर लम्बरूपमें पड़ेंगी।

विपुर्वरेखा और मेरुदण्ड रेखाके संयोजक बिन्दुसे उत्तर और दक्षिणमें कर्कटकान्ति तथा मकरक्रान्ति तक जो बड़ा निर्धराक-वृत्त कल्पित होता है, उमको रविमार्ग कहते हैं। इस रेखाके किसी न किसी स्थान पर सूर्य ग्रहण वा चन्द्रग्रहणके समय सूर्य, चन्द्र और पृथिवी ये सभी समसूत्रभावमें रहते हैं। पृथिवी अपने मेरुदण्ड (Axis)के चारों ओर पश्चिमसे पूर्वाकी ओर घूमती है। इससे नभोमण्डलका पूर्वासे पश्चिमकी ओर आवर्त्तित होना दिखाई देता है।

सूर्य जब विपुर्वरेखाके ऊपर आते हैं, तब पृथ्वी भरमें दिन रात्रिका परिमाण समान (Equal) रहता है। इस कारण इस रेखाकी विपुर्वरेखा या निरक्षरेखा (Equator) कहते हैं। भौगोलिक हिसाबसे स्थानको दूरी निर्णय करनेमें विपुर्वरेखाके बाद उत्तर और दक्षिण समान्तर-

गलभावमें अक्षरेखा और द्राघिमाकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक द्राघिमा रेखा उत्तर-दक्षिण लम्बभावमें विपुर्वरेखाके ऊपर गिरी है; इसको माध्यन्दिन रेखा भी कहते हैं। प्रत्येक अक्षरेखा भी माध्यन्दिन रेखासे जहाँ लम्ब भावमें एक दूसरेसे मिलती है, वहाँ ३६० डिग्री अथवा चार समकोनोंकी उत्पत्ति हुई है।

विस्तृत विवरण विपुर्व और पृथिवी शब्दमें देखो।
विपुर्वत् (सं० क्ली०) १ विपुर्व । २ व्यापक ।

(शृक् ११८४१०)

विपुर्वकृ (सं० स्त्री०) द्विखण्डविशिष्ट, जो दो खंडोंमें विभक्त हो। (आश्व० श्रौ० १।३।२२)

विपुर्वक (सं० पुं०) विपुर्विका, विस्विका नामक रोग। विपुर्विका देखो।

विपुर्वि (सं० क्ली०) विपुर्वीन मनाः ।
(भागवत ४।२६।१६)

विपुर्विका (सं० स्त्री०) विस्विका रोग।
विपुर्विका देखो।

विपुर्वीन (सं० स्त्री०) १ इहलोकमें सर्वत्र गमनशील, इस संसारमें तमाम जानेवाला। (शृक् १।१६४।२८)
२ सर्वत्रःप्रसृत, तमाम फैला हुआ।

विपुर्व्व (सं० त्रि०) सर्वस्वगतमें परिवर्त्तमान, सभी जगह मौजूद।

विपोढ (सं० त्रि०) वि-नह क् । असहिष्णु, असहन-कारो।

विपौषधी (सं० स्त्री०) विपस्य औषधी। नागदन्ती।
(रत्नमाला)

विष्क (सं० पुं०) विष्क, यह हाथी जिसको अक्षरधा योम वर्षकी हो गई हो। (शिशुपालख १८।२७)

विष्कन्ध (सं० क्ली०) गतिनिवर्त्तक, वह जो गतिकी रोकता हो। (अथर्व १।१६।१ आय्य)

विष्कन्धदूषण (सं० त्रि०) विप्रनिवारक, विप्र-बाधा रोकनेवाला। (अथर्व २।४।१)

विष्कम्भ (सं० पुं०) १ फलितज्योतिषके अनुसार मत्सा-ईम योगमेंसे पहला योग। यह आरम्भके पाँच दंडोंको छोड़ कर शुभकार्यके लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। इस योगमें जगम लेनेवाला मनुष्य सब

पूर्ण हो कर तैईसवां अयनांश आरम्भ होगा तथा उस शकके चैत्र मासको ट्यों तारीखको विपुव आरम्भ हो कर उस दिन दिवा और रातिका मान समान देखा जायेगा । अर्थात् उस समय धर्षी काल 'विपुव' निर्दिष्ट होगा ।

विपुवरेखा (स० खी०) विपुवः समरात्रिन्दिव कालो यस्यां रेखायां सा । ज्योतिषके कार्याके लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके डीक मध्य भागमें बड़े बलमें या पूर्वा-पश्चिम पृथ्वीके चारों ओर मानी जाती है । यह रेखा दोनों मैदलोंके लोक मध्यमें और दोनोंसे समान अन्तर पर है । इस रेखाके उत्तर मेघ, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह और कन्या ये छः राशि तथा दक्षिण ओर तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये छः राशि निर्णयकाभावसे वृत्ताकारमें राशिचक्रके ऊपर अवस्थित हैं । राशिचक्र देखो ।

"म्राक पन्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममयटलम् ।

उन्मयटलत्र विपवन्मयटलं परिकीर्तितम् ॥"

(विद्वातशिरो०)

प्राग्जात्यमतसे पृथ्वीके मध्यस्थलमें पूर्वा-पश्चिम-की ओर विस्तृत जो कल्पित रेखा है, धर्षी विपुव रेखा है । इसका दूसरा नाम निरक्षवृत्त है अर्थात् इसकी डिग्रीका चिह्न है ० । नमोदेशमें इस प्रकार कल्पित वृत्तके ऊपरसे निर्णयकाभावमें पूर्वासे पश्चिमकी ओर सूर्यकी प्रत्यक्षगतिपथ या रविमार्ग (line of the alyptic) अवधारित है । सूर्य देखो ।

१३०६ सालके आरम्भमें अर्थात् १३०५ सालकी ३० वीं वैश्र महान्विपुवसंक्रातिके दिन धर्षीका अयनांश आरम्भ हुआ है । इसीलिये अभी देखा जाता है, कि उस १८२१ शककी १७ी वैशाखसे जब तक ६६ वर्ष ८ मास पूरा न होगा, तब तक धर्षीका अयनांश रहेगा । इस कारण (१८२१ + ६६ = १८८७) १८८७ शक उत्तोर्य हो कर १८८८ शकके ८ मास अर्थात् अगस्तमास पर्वन्त धर्षीसे अयनकी अवस्थिति होगी । (यह ३६० दिनोंका वर्ष मान कर यह गणना की गई, ३६५ दिनोंका वर्ष माननेसे और भी २१ मास तक वह अयनांश ठहर सकता है ।)

इस ज्योतिषकपथमें पृथ्वीके एक घूमनेमें ३६५ दिन लगता है । यही वार्षिक गति है, इस कारण इसको एक वर्ष कहते हैं । वर्षके भीतर उत्तरायण और दक्षिणायण समयक्रमसे इस विपुवरेखाके उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तरकी ओर पृथ्वीकी गति बदलती रहती है, जिससे संसारमें छः ऋतुओंका आविर्भाव होता है । इसी कारण इस कल्पित रेखाके २३ ४६५ डिग्री उत्तर तथा २३ ४६५ डिग्री दक्षिण और भी दो छोटे वृत्त कल्पित हुए हैं । उनमेंसे उत्तरो-वृत्तका नाम कर्कटक्रान्ति (Tropic of cancer) है । सूर्यदेव कभी भी उत्तरमें कर्कटक्रान्ति और दक्षिणमें मकरक्रान्तिको सीमा पार नहीं करते । जब सूर्य विपुवरेखाके उत्तर कर्कटक्रान्तिकी ओर रहने हैं, तब विपुवरेखाके उत्तर दिन बड़ा और रात छोटी होती है । फिर जब सूर्य विपुवरेखाके दक्षिण जाते हैं, तब उत्तरो देशोंमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है । इस दक्षिण भागमें उसका ठीक विपरीत भाव ही दिखाई देता है । जब सूर्यकिरण विपुवरेखाके उत्तर लम्ब भावमें पड़ता है तब दिन और रातिका मान समान होता है तथा सूर्यकिरण बहुत प्रखर रहती है । इसी कारण उस समय उत्तर और दक्षिणक्रान्तिके मध्यवर्ती देशवासों शीत और प्रोष्णको समता अनुभव करते हैं । सूर्यदेव विपुवरेखाको अतिक्रम कर कर्कटक्रान्तिकी ओर ज्यों ही जाते हैं, त्यों ही उत्तरो दिशामें प्रोष्णका प्रादुर्भाव होता है तथा उसके विपरीत विपुवके दक्षिणस्थ मकरक्रान्ति सन्निहित देशोंमें शीतका प्रकोप बढ़ता है ।

सूर्यदेव जब विपुवरेखासे उत्तर या दक्षिण ६०° में आते हैं, तब यथाक्रम हम लोगोंके देशमें प्रोष्ण और शीत की तथा दिवा और रातकी वृद्धि या ह्रास होती है । उन दोनों स्थानोंको Summer Solstice और Winter Solstice कहते हैं । जब सूर्य उत्तर ६०° से धीरे-धीरे १८०° में फिरसे विपुवरेखाके समसूत्रपातमें अर्थात् विपुवरेखाके ऊपर रहते हैं, तब शारदीयः समदिवारात्रि (autumnal equinox) तथा धर्षीसे दक्षिण २७°

अतिक्रम कर जब फिरसे विपुत्ररेखा पर पहुँचते हैं, तब वासन्तिक समदिनरात्रि (Vernal equinox) होती है।

सूर्य प्रायः २२वीं दिसम्बरको दक्षिणमें मकरक्रान्तिसे २३° ४६' ५५ अयनांग घीरे घीरे उत्तरीकी ओर हटने लगते हैं तथा प्रायः २१वीं मार्चको विपुत्ररेखा पर पहुँचते हैं। इस दिन पृथिवीके उष्णमण्डलमें तमाम दिनरातका मान बराबर रहता है। इस दिनको वासन्तिक वा मघा विपुत्रसंक्रान्ति कहने हैं। इसके दूसरे दिनसे सूर्य क्रमशः विपुत्ररेखासे उत्तरकी ओर जाने लगने हैं तथा २२वीं जूनको २३° ४६' ५५ अंश बक्राभावमें कर्कटकान्तिमें आकर फिरसे दक्षिण विपुत्ररेखाकी ओर अग्रसर होते हैं। इसके बाद वे २३वीं सितम्बरको विपुत्ररेखा पर पहुँचते हैं। इस दिनको शरद या जलविपुत्रसंक्रान्ति कहने हैं। अनन्तर सूर्य दक्षिणकी ओर २२वीं दिसम्बरकी मकरक्रान्ति सीमा पर आते हैं। इस प्रकार सूर्य विपुत्ररेखाके ऊपर उत्तरसे दक्षिण तथा दक्षिणसे उत्तर अयनमें परिभ्रमण करते हैं। बङ्गालमें साधारणतः २३वीं जून, २३वीं मार्च, आश्विन और २३वीं पीपको ऐसा हुआ करता है। पृथिवीके कल्पित मेरुदण्ड (Axis) का मध्यबिन्दु और विपुत्ररेखाका मध्यबिन्दु यदि एक सरल रेखासे मिला दिया जाये, तो वे दोनों रेखाएँ एक दूसरे पर लम्बकूपमें पड़ेंगी।

विपुत्ररेखा और मेरुदण्ड रेखाके संयोजक बिन्दुसे उत्तर और दक्षिणमें कर्कटकान्ति तथा मकरक्रान्ति तक जो बड़ा त्रिभुजक-युक्त कल्पित होता है, उसके रविमार्ग कहते हैं। इस रेखाके किसी न किसी स्थान पर सूर्य ग्रहण वा चन्द्रग्रहणके समय सूर्य, चन्द्र और पृथिवी ये सभी समसूत्रभावमें रहते हैं। पृथिवी अपने मेरुदण्ड (Axis)के चारों ओर पश्चिमसे पूर्वाकी ओर घूमती है। इससे नमीमण्डलका पूर्वासे पश्चिमकी ओर आवर्तित होना दिखाई देता है।

सूर्य जब विपुत्ररेखाके ऊपर आते हैं, तब पृथ्वी भरमें दिन रात्रिका परिमाण समान (Equal) रहता है। इस कारण इस रेखाको विपुत्ररेखा वा निरक्षरेखा (Equator) कहते हैं। भौगोलिक हिसाबसे स्थानकी दूरी निर्णय करनेमें विपुत्ररेखाके बाद उत्तर और दक्षिण समाप्त-

गालभावमें अक्षरेखा और द्राघिमाकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक द्राघिमा रेखा उत्तर-दक्षिण लम्बभावमें विपुत्ररेखाके ऊपर गिरी है; इसको माध्यबिन्दु रेखा भी कहने हैं। प्रत्येक अक्षरेखा भी माध्यबिन्दु रेखासे जहाँ लम्ब भावमें एक दूसरेसे मिलती है, वहाँ ३६० डिग्री अथवा चार सप्तकोनीकी उत्पत्ति हुई है।

वित्तुत विवरण विपुत्र और पृथिवी शब्दमें देखो।
विपुत्रवत् (सं० क्ली०) १ विपुत्रवत् २ व्यापक।
(अक्ष १८५११०)

विपुत्रकुह (सं० त्रि०) द्विखण्डविशिष्ट, जो दो खंडोंमें विभक्त हो। (भाष्य० भी० ५१३१२२)

विपुत्रक (सं० पु०) विपुत्रिका, विसृचिका नामक रोग। विसृचिका देखो।

विपुत्रि (सं० क्ली०) विपुत्रिनी मतः।
(भागवत ५१२६:१६)

विपुत्रिका (सं० स्त्री०) विसृचिका रोग।
विसृचिका देखो।

विपुत्रिनी (सं० स्त्री०) १ इहलोकमें सर्वत्र गमनशील, इस संसारमें तमाम जानेवाला। (अक्ष ११६५१२८)

२ सर्वताप्रसून, तमाम फैला हुआ।

विपुत्रवत् (सं० त्रि०) सर्वस्थलमें परिवर्तमान, सभी जगह मौजूद।

विपोढ (सं० त्रि०) वि-मह क। अमहिष्णु, असहन-कानो।

विपौषधी (सं० स्त्री०) विषस्य औषधी। नागदन्ती।
(रत्नमाला)

विष्क (सं० पु०) विष्क, वह हाथी जिसको अवस्था ब्रह्म वर्षकी हो गई हो। (शिशुपालवध १८५२०)

विष्कम्भ (सं० क्ली०) गनिनिघर्षक, वह जो गनिको रोकता हो। (अथर्व ११६६३ वाप्य)

विष्कम्भदूषण (सं० त्रि०) विघ्ननिवारक, विघ्न-वाधा रोकनेवाला। (अथर्व २५५१)

विष्कम्भ (सं० पु०) १ फलितज्योतिषके अनुसार मत्स्य-इस योगमेंसे पहला योग। यह आरम्भके पाँच ढंडोंको छोड़ कर शुभकार्यके लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। इस योगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य सब

धातोंमें स्वधीन, घर आदि बनानेमें पट्ट और भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र आदिसे सदा सुखी रहता है।

२ विस्तार। ३ प्रनिबन्ध, बाधा। ४ रूपकाङ्ग-भेद, नाटकका अङ्कविशेष।

नाटककाङ्गके प्रथम अर्धात् प्रस्तावना कालमें जो जो विषय कहा जाता है, उसे संक्षिप्तमायमें पृथक् रूपसे दिखलानेका नाम विष्कम्भ है। यह शुक्र और सङ्कीर्णके भेदसे दो प्रकार है। जहाँ एक या दो मध्यम पात्र द्वारा कार्य सम्पन्न होता है वहाँ शुद्ध, जैसे मालती माधवमें—शमशानमें कपालकुण्डला। फिर जहाँ नीच और मध्यम पात्र द्वारा क्रिया कल्पित होती है, वहाँ सङ्कीर्ण अर्धात् विमिश्र होता है, जैसे रामाभिनन्दनमें—क्षणक और कापालिक। कइनेका तात्पर्य यह कि प्रस्तावित बाहुल्य विषयके मध्यसे असार गर्भ और नीरस अर्धात् रसात्मक नहीं हैं, ऐसी अतिरिक्त वस्तुका परित्याग कर सिर्फ मूल प्रस्तावके अपेक्षित पदार्थ दिखाना ही नाटकमें विष्कम्भका कार्य है।

(साहित्यद० ६ अ०)

५ योगियोंका एक प्रकारका बन्ध। ६ वृक्ष, पेड़। ७ अर्गला, ब्यौड़ा। (भरत) ८ पर्वतभेद। पराह-पुराण ८० अध्याय तथा लिङ्गपुराण ६१।२८ श्लोकमें इसके परिमाणान्तिका विवरण है।

विष्कम्भक (सं० पु०) विष्कम्भ-स्वार्थे कन्।

विष्कम्भ देखो।

विष्कम्भिन् (सं० पु०) विष्कम्भ्नाति रुणद्धीति विष्कम्भ-णिनि। १ अर्गल, ब्यौड़ा। २ शिव, महादेव।

(भारत)

विष्कर (सं० पु०) वि-कृ-अप्-ल्युट् च। १ अर्गल, ब्यौड़ा। २ पक्षी, चिड़िया। ३ दानवभेद।

(भारत भीष्म)

विष्कल (सं० पु०) विषं विघ्नं कलयति भक्षयतीति कल-ञच्। प्राप्यशूकर, पालतू सूअर।

विष्कर (सं० पु०) विकिरन्तीति वि-कृ-विक्षेपे इगुप धातु-क, (विकिरः शक्तिविकीरो वा। पा ६।१।१।१५०) इति सुट्, परिनिविम्बइति पत्यं। १ पक्षिभेद, ये पक्षी जो अक्षको इधर उधर छितरा कर नक्षीसे कुद कर खाते

हैं। जैसे, कवूतर, सुरगा, तीतर, बटेर, लावा आदि। इनका मांस मधुरः कषाय रसात्मक, बलकारक, शुक्र-वर्द्धक, तिदोपनाशक, सुपथ्य और लघु होता है।

(माधव० पूर्व०)

सुश्रुतमें विधिकर पक्षीका विषय १५ प्रकार लिखा है—लाव, तीतर, कपिञ्जल, चत्तिय, वत्तिका, वत्सक, नमूका, धातीक, चकीर, कलविङ्क, मयूर, कृकर, उपचक्र, कुपकुट, सारङ्ग, शतपत्रक, कुत्तितिरि, कुत्वाहुक और यबलक आदि पक्षी विधिकर जातिके हैं। इनके मांसका गुण—लघु, शीतल, मधुर, कषाय और दोषशान्तकर हैं। (सुश्रुत उपस्था०)

२ दर्बिकर नामक जातिके अन्तर्गत एक प्रकारका साँप। (सुश्रुत उपस्था० ४ अ०)

विष्कुम्भ (सं० पु०) विष्कम्भ देखो।

विष्ट (सं० लि०) विष्टत। १ प्रविष्ट। २ आविष्ट। ३ आश्रित।

विष्टकर्ण (सं० लि०) विष्टः कर्णं यस्य। प्रविष्टकर्ण, जिसके कानोंमें घुस गया हो।

विष्टप् (सं० स्त्री०) स्वर्गलोक। (शुक्र १।४।३)

विष्टप (सं० स्त्री०) जगत्, भुवन।

विष्टपुर (सं० पु०) श्रद्धिभेद। (पा ४।१।२२)

विष्टप्य (सं० लि०) वि-स्तम्भ-क्त। १ प्रतिबन्ध, बाधा-युक्त। २ रुद्ध, रुका हुआ।

विष्टप्यि (सं० स्त्री०) वि-स्तम्भ-क्तिन्। विष्टम्भ।

विष्टम्भ (सं० पु०) वि-स्तम्भ-घञ्। १ प्रतिबन्ध, रुका-यट। २ आक्रमण, चढ़ाई। ३ एक प्रकारका रोग। इसमें मूल रुकनेके कारण रोगीका पेट फूल जाता है।

विशेष विवरण अनाह और विवन्ध-शब्दमें देखो।

(लि०) ४ विशेषरूपसे स्तम्भयिता, विशेषरूपमें स्तम्भकारक।

(शुक्र ६।५।३५)

विष्टम्भकर (सं० लि०) विष्टम्भं करोति कृ-अप्, यद्वा-करोतीति कर्, विष्टम्भस्य करः। विष्टम्भजनक, आधमान-कारक।

विष्टम्भन (सं० पु०) १ रोकने या संकुचित करनेकी क्रिया। २ वहाँ जो रोकता वा संकुचित करता हो।

(शुक्रभयङ्ग ६।४।५)

विष्टम्भयिषु (सं० त्रि०) स'स्तम्भयिषु, स्तम्भन करनेमें उत्सुक ।

विष्टम्भी (सं० त्रि०) विष्टम्नातीति वि-स्तम्भ-णिनि ।
१ विष्टम्भरोगजनक, जिससे पेटका मल रुके । विष्टम्भा-
ऽप्यास्तोति विष्टम्भ-इनि । २ विष्टम्भरोगविशिष्ट, जिसे
विष्टम्भरोग हुआ हो ।

विष्टर (सं० पु०) विस्तोर्यन्ते इति वि-स्तु अच् । (इत्ताव-
न्वीर्षिष्टः । पा ५।३।६३) इति निपातनात् पठ्यं ।
१ विष्टयो, वृक्ष । २ पोत्रादि स्थान । (अमर) ३ कुशा
सन, कुशका बना हुआ आसन ।

विवाहकालमें मन्मथता जामाताको विष्टरासन
देते हैं । इसका लक्षण—सादर हितय वामावर्त्तावस्थित
अधोमुख असंख्यात दर्भमुष्टि अर्थात् एक मुट्टी सामकृशा-
को उसके अप्रमाणमें वामावर्त्तसे ढाई पै'च दे कर उसके
अगले भागकी नीचेकी ओर रख देनेसे विष्टर बनता है ।
होमकालमें कुश द्वारा जो ब्रह्माको प्रस्तुत कर वहिस्था
पन करना होता है; यह ब्रह्मा भी इसी प्रकार बनाया
जाता है । किन्तु उसका अप्रमाण ऊपरकी ओर रहता
और उसमें दक्षिणावर्त्तसे ढाई पै'च देना होता है । विष्टर
और ब्रह्मामें सिर्फ इतना ही प्रमेद है । भवदेवमष्टने
कहा है, कि पचास अप्रकृशासे ब्रह्मा और पचोस साम-
कृशासे विष्टर बनाया चाहिये । किन्तु रघुनन्दन संस्कार
तत्त्वमें दस संख्याका विषय तथा विष्टरदान-कालमें द्वा
हाथसे पकड़वा देनेका विषय स्वीकार नहीं करते ।

वर्षी ५ पा ७ सामकृशासे विष्टर बनाते हुए देखा
जाता है । जब इसकी कोई निहिष्ट संख्याका नियम
नहीं है, तब इसको शास्त्रमद्वत समभन्ना होगा ।

विष्टरमाज् (सं० त्रि०) प्रासासन, जिसे आसन मिला
है ।

विष्टरश्रवा (सं० पु०) विष्टराविष श्रवसो यस्य, वा विष्टरे
अवस्थापृष्टी श्रूयते निरदां तत्र वसतीति । (उष्ण । ४।२२६)
भगवान् विष्णु, कृष्ण ।

विष्टरस्थ (सं० त्रि०) आसन पर बैठना या सोया हुआ ।

विष्टरा (सं० स्त्री०) गुण्डासिनी नामकी घास ।

विष्टराज् (सं० पु०) रोष्य, चांदी ।

विष्टराभ्य (सं० पु०) पृथुके एक पुत्रका नाम । (हरिवंश०)

विष्टरुहा (सं० स्त्री०) स्वर्णकेतकी, गोलो केतकी । कहीं
कहीं विष्टारुहा, ऐसा भी पाठ देखनेमें आता है ।

विष्टरोत्तर (सं० त्रि०) कुशाच्छादित, कुशसे मढ़ा हुआ ।
विष्टरान्त (सं० त्रि०) व्याप्तावसान, जिसका अथसान हुआ
हो । (शृक १०।६३।२३)

विष्टार (सं० पु०) १ छन्दोविशेष, पंक्ति छन्द । (छन्दो
नामि च पा ३।३।३४) "विस्तोर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणोति,
विष्टारः पंक्तिछन्दः ।" छन्दका बोध होनेसे वि स्तु
घ्रातुका पठ्य हो . २ विष्टार पद बनता है । २ विस्तृत ।
विष्टार शब्दका विस्तृत अर्थ वेदमें प्रयुक्त हुआ है ।
लौकिक प्रयोगमें छन्दः यही अर्थ होगा ।

विष्टारपंक्ति (सं० स्त्री०) पंक्तिछन्दोमेद । इसके प्रथम
और शेष चरणमें ८ तथा द्वितीय और तृतीय चरणमें
१२ पद रहने हैं । (शुक्लयजु १५।४)

विष्टारवृद्धतो (सं० स्त्री०) वैदिक छन्द । इसके प्रथम और
शेष चरणमें ८ तथा द्वितीय और तृतीय चरणमें १० पद
रहते हैं । (शृक प्राति० १६।६)

विष्टारिन् (सं० त्रि०) वि स्तु-णिनि । विस्तोर्यमाण
अवयव, जिसका आकार वडा हो । (अथर्वे० ४।१४।१)

विष्टारुहा (सं० स्त्री०) विष्टरुहा, स्वर्णकेतकी, गोलो
केतकी । (राजनि०)

विष्टार्य (सं० पु०) १ स्तोमपाठके समयका विभागमेद ।
२ विष्टुतिका एकांश । (आश्या० २।६।६)

विष्टि (सं० स्त्री०) विष किन् १ वह काम जो बिना
कुछ पुरस्कार दिये कराया जाय, बेगार । २ धैतन, तन-
श्याह । ३ कर्म, काम । ४ वर्षण, वर्षा । ५ प्रेषण,
भेजना । ६ विष्टिमद्रा । ७ फलितज्योतिषके ग्यारह
करणोंमेंसे सातवां करण । पञ्जिकामें यह करण शूणवाङ्क
द्वारा अभिहित होता है ।

विष्टिमद्राका निरूपण—विष्टिकरणको ही विष्टिमद्रा
कहते हैं । इसके अलावा तिथिविशेषमें विष्टिमद्रा
होता है । किस किस तिथिके किस किस अंगमें विष्टि-
मद्रा होती है, उमका विषय नीचे लिखा जाता है ।
शुक्लपक्षकी एकादशी और चतुर्थीके शेषार्द्धमें, अष्टमी और
पूर्णिमाके पूर्वाद्धमें, कृष्णपक्षकी तृतीया और दशमी-
के शेषार्द्धमें तथा मप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वाद्धमें विष्टि-

घातोंमें स्वामीन, घर आदि बना
स्त्री-पुत्र आदिसे सदा सुखी र
२ विस्तार। ३ प्रतिव
भेद, नाटकका अङ्कविशेष।

नाटककाङ्कके प्रथम अर्धांश
विषय कहा जाता है, उसके
दिखलानेके नाम विश्वम्भ
के भेदसे दो प्रकार है।
द्वारा कार्य सम्पन्न होता
माधवमें—शमशानमें कपाल
और मध्यम पात्र द्वारा
सङ्कीर्ण अर्थात् विमिश्र
क्षणक और कापालिक
प्रस्तावित बाहुल्य विषय
गौरव अर्थात् रसात्मक
परित्याग कर सिर्फ
दिखाना ही नाटकमें वि

५ योगियोंका एक
७ अर्गला, श्योंडा।
पुराण ८० अध्याय
इसके परिमाणिका
विश्वम्भक (सं० पु०)

विश्वम्भन् (सं० पु०
पिनि। १ अर्गल,

विश्वर (सं० पु०
श्योंडा। २ पक्षी,

विश्वक (सं० पु०
कल-अच्। प्रा

विश्वर (सं० पु०
धैतिक, (विश्व
सुट, परिनिश्व
अक्षको इधर उध

उत्थाय मूलपुरीपोंत्सर्गं कुट्यान्त,
रात्रौ दिवा चोदद्दुःखं सन्धयोश्च।”

(विष्णुसंहिता ६०)

नाम लिखा है, कि ब्राह्ममुहूर्त (रात्रिके
अन्तिम दो घण्ट) में उठ कर रातको
दिन तथा प्रातः जीर सायं-दिनरात्रिके
सन्धिकालमें उत्तरमुख हो कर विष्टाका त्याग
होता है। घाससे ढकी जमीनमें, जोते हुए खेत-
वृक्षशायामें, खारो जमीनमें, श्राद्धस्थानमें,
सुस्थानमें, गर्भमें, चत्मीकमें, पथमें, रथ-पर,
को विष्टाके ऊपर, उद्यानमें, उद्यान वा जलाशयके
उपर विष्टात्याग निषिद्ध है।

अङ्गार, भस्म, गोमय, गोष्ठ, (गाय चरनेका स्थान)
आकाश और जल आदि स्थानोंमें तथा घायु, अग्नि,
चन्द्र, सूर्य, स्त्री, गुरु तथा ब्राह्मणके सामने अनवगुण्डित
मस्तकसे विष्टात्याग न करे। विष्टात्यागके बाद ढेले
वा ईंटसे मलको मार्जन कर लिङ्ग पकड़ते हुए उठे।
पीछे उद्धृत जल और मिट्टीसे गन्धलेपक्षयकर शौच
करे। इसके बाद मिट्टीको पेशावके द्वारमें एक बार, मल-
द्वारमें तीन बार तथा बायें हाथमें दश बार, दोनों हाथमें
सात बार और दोनों तलवेमें तीन तान बार लगावे।
यह नियम गृहस्थके लिये है। यति वा ब्रह्मचारिके
लिये इसका दूना धताया गया है। गन्ध नहीं रहे, यही
शौचका उद्देश्य है, किन्तु जलादि द्वारा गन्ध जाने पर
भा उक्त प्रकारसे मुत्तिकाशौच अवश्य करना होगा।
(विष्णुसंहिता ६० अ०)

नाम लिखा है, कि उद्यान स्थानसे नीर
तौर जहाँ जा कर गिरे, उतना स्थान बाद
करना चाहिये। आयादी जगहके
नहीं। विष्टा और
नाना प्रकारके
मूलत्यागके समय
चाहिये। मालाकी
है। जूतों और
करना मना है।
जलसे शौच

किया जाता है, उस जलको छूना नहीं चाहिये। छूनेसे यह जल मूलके समान ही जाता है। यह जल पीनेसे चान्द्रायण करनेकी व्यवस्था है। (आह्निकतत्त्व)

मलमूत्रत्यागके बाद जल और मिट्टीसे शौच कर पीछे जलपात्रको गोमय या मृत्तिका द्वारा मार्जन और प्रक्षालन करे। इसके बाद जल स्पर्श कर चन्द्र, सूर्य या अग्निदर्शन करना होता है। जहां जलादि शौच होता है, वहां पवित्र जलादि द्वारा परिष्कार कर देना होता है। नहीं तो उसका शौच सिद्ध नहीं होता।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि मानवगण स्वास्थ्यरक्षार्थके लिये ब्राह्म मुहूर्तमें उठें और भगवन्नाम स्मरण कर ऊपाकालमें ही विद्या और मूत्रत्याग करें। इस नियमका प्रतिपालन करनेसे अन्तकृजन अर्थात् पेटका बोलना, आध्मान और उदरकी गुरुता उपस्थित नहीं हो सकती। मलमूत्रका वेग होनेसे कभी भी उसको रोकना नहीं चाहिये, रोकनेसे पेट गुड़ गुड़ करता, तरह तरह की वेदना होती, गुहादेशमें जलन देता, मल रुक जाता, ऊर्ध्वघात हाता तथा मुख द्वारा मल निकलता है। मलादिका वेग जिस प्रकार रोकना उचित नहीं, उसी प्रकार वेग नहीं आने पर बलपूर्वक अकालकुन्ध्यन द्वारा निःसारण करनेको चेष्टा करना भी अनुचित है।

मलमूत्रादि विसर्जनके बाद गुहा आदि मलपथोंको जलसे धो डालना चाहिये। इससे शरीरकी कान्ति बढ़ती, धमनाश होता, शरीरकी पुष्टि होता और चक्षु की ज्योति बढ़ती है। (भावप्र० पू० ख०)

भूमिकी उर्वरता बढ़ती है, इस कारण बहुतेरे लोग खेत या उद्यानमें विष्णु और गोबरको सड़ा कर खादके रूपमें देते हैं। कृषिविद्या देखो।

विद्याभुक् (सं० पु०) शूकर, सूअर।

विद्याभुशी (सं० पु०) शूकर, सूअर।

विद्याभू (सं० पु०) विद्यायां भवतीति भू-विषय्। विद्या-जात कृमि, यह कौड़ा जो पैलानेसे पैदा होता है।

विद्याभ्राजिन् (सं० त्रि०) विद्यायां प्रजति विद्या प्रज-णिनि। विद्यामें प्रमणकारी, मलमें रहनेवाला।

(शतपथब्रा० १।१।१२२)

विष्णापु (सं० पु०) विश्वक ऋषिके पुत्रः।

(शुक० १।११६।२३)

विष्णु (सं० पु०) १ अग्नि। २ शुद्ध। ३ वसुदेवता। ४ बारह आदित्योंमेंसे एक। (महाभारत १।६।१।६) ५ धर्म-शास्त्रके प्रणेता मुनिविशेष।

६ हिन्दुओंके एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टिका भरण-पोषण और पालन करनेवाले तथा ब्रह्मा-का एक विशेषरूप माने जाते हैं। "वृहत्साहित्यः"

(महाभारत १।७०।३)

विष्णुपुराणमें विष्णु शब्दको व्युत्पत्ति और भी विस्तृत देखा जाती है।

"यस्माद्रिशमि सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।

तस्या देवोच्यते विष्णुर्विशधातोः प्रवेक्षतात् ॥"

(विष्णुपु०)

संस्कृत साहित्यमें "विष्णु" शब्दका बहुत प्रचार देखा जाता है। वेद और उपनिषदमें, इतिहास और पुराणमें, साहित्य और काव्यमें सभी जगह विष्णु शब्दका विपुल व्यवहार देखनेमें आता है। परन्तु हम यहां सिर्फ वेदमें व्यवहृत "विष्णु" शब्दको आलोचना करते हैं—

१। अतो देव अयन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः। १म २२ सू १६ ऋक्।

सामवेदसंहितामें २।१।२४ मन्त्रमें यह ऋक् देखा जाती है। किन्तु सामवेदमें जो पाठ है, उसमें कुछ पृथक्ता है। वहां "पृथिव्याः सप्तधामभिः" को जगत् "पृथिव्या अधिसानभिः" पाठ देखा जाता है।

२। इत् विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।

समूहमस्य पांशुरे। (सामवेद १८ म०)

अथर्ववेदमें ७।२६।५ मन्त्रमें भी यह साम देहनेमें आता है।

३। त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाम्यः।

अतो धर्माणि धारयन्। (वाजसनेय ३।४।३)

अथर्ववेदके ७।२६।५ मन्त्रमें भी यह सामवेदके मन्त्र उद्धृत हुआ है।

४। विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यंशे।

इन्द्रस्य सुज्यः सखा। (अथर्ववेद ७।२६।६)

५। नद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दियोव चक्षुराततम्।

भद्रा होती है। यह विष्टिभद्रा सभी प्रकारके शुभ कार्योंमें वर्जनाय है अर्थात् इसमें याता, संस्कारादि कार्य या देवकर्म नहीं करना चाहिये, किन्तु इसके पुच्छमें सभी कार्योंका मङ्गल होता है। (विष्टिभद्राके शेष तीन दण्डका नाम 'पुच्छ' है।)

विष्टिभद्रास्थिति—मेष, गृध्र, मिथुन और वृश्चिक लग्नमें यदि विष्टिभद्रा हो, तो वह विष्टिभद्रा स्वर्गलोकमें वास करती है। कुम्भ, सिंह, मीन और कर्कटराशियोंमें पृथिवी पर तथा धनुः, मकर, तुला और कन्याराशियोंमें पातालमें वास करती है। विष्टिभद्रा जब जहां रहती है, तब वहां पर स्वभावसिद्ध अशुभ फल देती है। शास्त्रमें यह भी लिखा है, कि जिन राशियोंमें विष्टिभद्रा पृथिवी पर वास करती है, उस विष्टिभद्रामें शुभकार्यादि करना मना है। इसके सिवा जिन सब राशियोंमें स्वर्ग और पातालमें वास करती है, उस विष्टिभद्रामें सभी कार्य किये जा सकते हैं।

विष्टिकर (सं० पु०) १ पोड़नकारी, अत्वाचारी।
२ प्राचीन कालके राज्यका वह बड़ा सैनिक कर्मचारी जिसे अपनी सेना रखनेके लिये राज्यकी ओरसे जागार मिला करती थी।

विष्टिकृत (सं० पु०) अनिष्टकारक, विष्टिकर।

विष्टिरू (सं० स्त्री०) विस्तारण। (श्रृक् २।१३।१०)

विष्टिमत (सं० क्लो०) मतविशेष। (भविष्यपु०)

विष्टोमिन् (सं० लि०) क्लेशयुक्त, क्लेशविशिष्ट।

(शुक्लपञ्च० २।३।२६)

विष्टुति (सं० स्त्री०) विविध प्रकारसे स्तुति, नाना प्रकारका स्तव। (शुक्लपञ्च० १।३।२८)

विष्टल (सं० क्लो०) विदूर स्थल (विकुशमपरिभ्याः स्थलस्य।
पा ८।३।६६) इति पत्वम्। विदूरस्थल, दूरवर्ती स्थान।

विष्टा (सं० स्त्री०) विविधप्रकारेण विष्टिति उदरे इति वि-
स्था क, उपसर्गादिति पत्वम्। पुरीष, मैला, गुह, पात्राना
विविध प्रकारसे यह उदरमें रहती है, इसीसे इसका नाम
विष्टा हुआ है। पर्याय—उच्चार, अवस्कर, शमल, शकृत्,
गृध्र, पुरीष, वर्चस्क, विट्, वर्चोः, अमेध, दृष्ट्या, कल,
मूल, किट्ट, पूतिक। (राजनि०)

“प्राज्ञे मुहूर्ते उत्थाय मूलपुरीषोत्सर्गे कुर्वायु,
दक्षिणा मुखो रात्री दिवा चोदङ्मुखः सन्धपोश्च॥”

(विष्णुसंहिता ६०)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि प्राज्ञमुहूर्ते (रात्रिके
पिछले पहरके अन्तिम दो दण्ड) में उठ कर रातको
दक्षिणमुख, दिन तथा प्रातः और सायं दिनरात्रिके
दोनों सन्धिकालमें उत्तरमुख हो कर विष्टाका त्याग
करना होता है। घाससे ढकी जमीनमें, जोते हुए खेत-
में, यक्षीय वृक्षछावामें, खारो जमीनमें, शाद्वलस्थानमें,
प्राणियुक्त स्थानमें, गर्चोंमें, वल्मीकमें, पथमें, रथ पर,
दूसरेकी विष्टाके ऊपर, उद्यानमें, उद्यान या जलाशयके
किनारे विष्टात्याग निषिद्ध है।

अङ्गार, मसम, गोमय, गोष्ठ, (गाय चरनेका स्थान)
आकाश और जल आदि स्थानोंमें तथा वायु, अग्नि,
चन्द्र, सूर्य, स्त्री, गुरु तथा धाक्षणके सामने अनधगुणित
मस्तकसे विष्टात्याग न करे। विष्टात्यागके बाद ढेले
वा ईंटसे मलको मार्जन कर लिङ्ग पकड़ते हुए उठे।
पीछे उद्धृत जल और मिट्टीसे गन्धलेपक्षयकर शौच
करे। इसके बाद मिट्टीको पेजावके द्वारमें एक बार, मल-
द्वारमें तीन बार तथा वायु हाथमें दश बार, दोनों हाथमें
सात बार और दोनों तलघेमें तीन-तीन बार लगावे।
यह नियम गृहस्थके लिये है। यति या ब्रह्मचारीके
लिये इसका दूना धतया गया है। गन्ध नहीं रहे, यही
शौचका उद्देश्य है, किन्तु जलादि द्वारा गन्ध जाने पर
भी उक्त प्रकारसे मृत्तिकाशौच अवश्य करना होगा।
(विष्णुसंहिता ६० अ०)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि उत्थान स्थानसे नीर
फेंकने पर वह तीर जहां जा कर गिरे, उतना स्थान बाद
दे कर विष्टात्याग करना चाहिये। आवादी जगहके
समीप विष्टामूलत्याग करना उचित नहीं। विष्टा और
मूलका घेग रोकना न चाहिये। रोकनेसे नाना प्रकारके
रोग उत्पन्न होते हैं। विष्टा और मूलत्यागके समय
यक्षोपवीतको दाहिने कान पर रखना चाहिये। मालाकी
तरह गलेमें लटकानेका भी विधान है। जूता और
खड़ाऊं पहन कर विष्टा और मूलत्याग करना मना है।

विष्टा और मूलत्यागके समय जिस जलसे शौच

किया जाता है, उस जलको छूना नहीं चाहिये। छूनेसे यह जल मूलके समान ही जाता है। यह जल पीनेसे चान्द्रायण करनेकी व्यवस्था है। (आह्निकतत्व)

मलमूत्रत्यागके बाद जल और मिट्टीसे शौच कर पीछे जलपात्रको गोमय या मुत्तिका द्वारा मार्जन और प्रक्षालन करे। इसके बाद जल स्पर्श कर चन्द्र, सूर्य या अग्निदर्शन करना होता है। जहां जलादि शौच होता है, वहां पवित्र जलादि द्वारा परिष्कार कर देना होता है। नहो तो उसका शौच सिद्ध नहीं होता।

भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि मानवगण स्वास्थपरक्षाके लिये ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठें और भगवन्नाम स्मरण कर ऊप-कालमें ही विष्ठा और मूत्रत्याग करें। इस नियमका प्रतिपालन करनेसे अन्तकृजन अर्थात् पेटका बोलना, आध्मान और उदरकी गुरुता उपस्थित नहीं हो सकती। मलमूत्रका वेग होनेसे कभी भी उसको रोकना नहीं चाहिये, रोकनेसे पेट गुड़ गुड़ करता, तरद तरद की वेदना होती, गुह्यदेशमें जलन देती, मल रुक जाता, ऊर्ध्ववेधात हाता तथा मुख द्वारा मल निकलता है। मलादिका वेग जिस प्रकार रोकना उचित नहीं, उसी प्रकार वेग नहीं आने पर बलपूर्वक अकालकुन्धन द्वारा निःसारण करनेकी चेष्टा करना भी अनुचित है।

मलमूत्रादि विसर्जनके बाद गुह्य आदि मलपथोंको जलसे धो डालना चाहिये। इससे शरीरकी कान्ति बढ़ती, भ्रमनाश होता, शरीरकी पुष्टि होती और चक्षु की ज्योति बढ़ती है। (भाष्यमें पूर्वखं)

भूमिकी उन्नरता बढ़ती है, इस कारण बहुतेरे लोग खेत या उद्यानमें विष्ठा और नोबरके सड़ा कर खादके रूपमें देते हैं। इविविधा देखी।

विष्ठाभुक् (सं० पु०) शूकर, सूअर।

विष्ठाभुशां (सं० पु०) शूकर, सूअर।

विष्ठाभू (सं० पु०) विष्ठायां भवतीति भू-विषप्। विष्ठा-जात कर्म, यह कोड़ा जो पैखानेसे पैदा होता है।

विष्ठाभ्राजिन् (सं० लि०) विष्ठायां ब्रजति विष्ठा ब्रज-णिति। विष्ठामें भ्रमणकारी, मलमें रहनेवाला।

(सतपथब्रा० ५।१।११२)

विष्णापु (सं० पु०) विष्वक् ऋषिके पुत्र।

(श्रुक्-१।११६।२३)

विष्णु (सं० पु०) १ अग्नि। २ शुद्ध। ३ वसुदेवता। ४ वारह आदित्योंमेंसे एक। (महाभारत १।१।१६) ५ धर्म-शास्त्रके प्रणेता मुनिविशेष।

६ हिन्दुओंके एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टिका भरण-पोषण और पालन करनेवाले तथा ब्रह्मा-का एक विशेषरूप माने जाते हैं। "वृहत्संहिताविष्णुः"

(महाभारत ५।७०।३)

विष्णुपुराणमें विष्णु शब्दको व्युत्पत्ति और भी विस्तृत देवी जाती है।

"यस्माद्विरमि सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।

तस्या देवोच्यते विष्णुर्विशधातोः प्रवेक्षतात् ॥"

(विष्णुपु०)

संस्कृत साहित्यमें "विष्णु" शब्दका बहुत प्रचार देखा जाता है। वेद और उपनिषद्में, इतिहास और पुराणमें, साहित्य और काव्यमें सभी जगह विष्णु शब्दका विपुल व्यवहार देखनेमें आता है। परन्तु हम यहां सिर्फ वेदमें व्यवहृत "विष्णु" शब्दको आलोचना करते हैं—

१। अतो देव अयन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः। १म २२ सू १६ ऋक्।

सामवेदसंहितामें २।१।०।२४ मन्त्रमें यह ऋक् देखा जाती है। किन्तु सामवेदमें जो पाठ है, उसमें कुछ पृथक्ता है। यहां "पृथिव्याः सप्तधामभिः" की जगह "पृथिव्या अधिसानभिः" पाठ देखा जाता है।

२। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पद्म्।

समुद्गमस्य पांशुरे। (सामवेद १८ म०)

अथर्ववेदमें ७।२६।५ मन्त्रमें भी यह साम देशनेमें आता है।

३। त्राणि पदा विचक्रमे विष्णुर्नोपा अद्राम्यः।

अतो धर्माणि धारयन्। (बालमन्ये ३।४।३)

अथर्ववेदके ७।२६।५ मन्त्रमें भी यह सामवेदोक्त मन्त्र उद्धृत हुआ है।

४। विष्णोः कर्माणि पश्यन् यतो प्रतानि पश्यसौ।

इन्द्रस्य युष्वाः सखा। (अथर्ववेद ७।२६।६)

५। तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिद्योय चसूराततम्।

हे इन्द्र और विष्णु ! तुम दोनों इष्टमद हो, अतएव हुंतावशिष्ट सोमपायी यजमान तुम्हारे हीतिपूर्ण आगमनकी प्रशंसा करता है। तुम लोग मर्यादोंके लिये शत्रुविमर्दक अग्निसे प्रदेय अन्न निरन्तर भेजो।

२। "तत्तद्विद्वन्स्य पौष्यं गृणीमस्सीस्य तानुरयूकस्य विड् ह्यय।

यः पार्थिवानि त्रिभिरिन्द्रियामभिकरं क्रमिष्टोरुगागाय जीवसे।"

हम लोग सयोंके स्वामी, पालनकर्ता, शत्रुहति और सेचनसमर्थ (अर्थात् तरुण) भगवान्के पीरयकी स्तुति करते हैं। वे प्रशंसनीय हैं, लोकरक्षाके लिये उन्हेनि त्रिपदधिक्रम द्वारा त्रिभुवनका परिक्रम किया था।

३। "ता इं वदन्ति महस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतरोभुजे।

वधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम स्तुतीयमधिरेचने दिवः।"

समस्त आहुतियाँ प्रसिद्ध इन्द्रका पीरय बढ़ाती हैं। इन्द्र सबोंके नास्तुस्थानीय रैनः हैं तथा उपभोगके लिये वही सामर्थ्य प्रदान करते हैं। उनके पुत्रका नाम निकण्ट और पिताका नाम उत्कण्ट है। नीसरा (नाम) दुयुलोकके हीतिमान् प्रदेशमें है।

प्रथम मण्डलके १५६ सूक्तमें भी वेदेक भगवान्के गुणकियादि सम्बन्धमें बहुत-सी बातें लिखी हैं। जैसे,—

१। तमस्य राजा वरुणस्तमग्निना क्रतुं मचमत्त मारुतस्य वेधसः। दाघार दक्षमुत्तममहर्निदं प्रजञ्च विष्णुः सखिषां अपोणुंते।

राजा वरुण और दोनों अग्नि मरुतमान् विधाताके उस यज्ञमें शामिल होवें। दोनों अग्नि तथा भगवान् एक साथ मिल कर उत्तम महर्निदं रसधारण और मेघका आवरण उन्मोचन करें।

२। आ यो विचार सचयाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः। वेधा अजिन्वत्रियधस्य आर्षामृतस्य भागे यजमानमाभजत्।

जो स्वर्गीय अतिशय शोभनकर्मा भगवान् इन्द्रके साथ मिले हुए हैं, उन्हीं मेघावीने त्रिजगत् विक्रमी आर्यके प्रसन्न किया है तथा यजमानको यज्ञका भाग प्रदान किया है।

विष्णुपुराण और भागवतादि पुराणोंमें इन सूक्तमंत्रोंकी प्रतिध्वनि खूब सुनाई देती है। भगवान् जो देवताओंके मध्य शुद्धसत्त्वगुणोंकी विलासभूमि हैं, वेदमें उसका भी सूत्र देखनेमें आता है। यथा, ऋग्वेद प्रथम मण्डलके १८६ सूक्तकी १०वीं ऋकमें लिखा है,—

"प्रो अग्निनावयसे ह्युध्वम् प्र पूषणं स्वतवांसो हि सान्ति। अद्भयो विष्णुयात विभुश्चा अच्छा सुज्ञाय वयन्तोय देवान्।"

हे ऋदिवकृण्ण ! हम लोगोंकी रक्षाके लिये अग्निद्वय और पूषाकी स्तुति करो। द्वेपरहित भगवान् वायु और ऋनुश्चा नामक स्वाधीन बलविशिष्ट देवताओंका स्तव करो। मैं सुखके निमित्त समस्त देवताओंको लाऊंगा।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके प्रारम्भमें ही अग्निका स्तव किया गया है। उसमें अग्निके भी इन्द्र और भगवान् कहा गया है। यथा—

"त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वां विष्णुरुगागाय नमस्यः।

त्वां प्रह्ला रयिविद्वद्रात्रणपने त्वां विधत्तां सचने पुरन्ध्या।" (२य म० १ सू० ३ ऋक)

अर्थात् हे अग्ने ! तुम सत्लोकोंके अभीष्टवर्षा हो, इसलिये तुम इन्द्र हो। तुम भगवान् हो, क्योंकि तुम उरुगाय हो अर्थात् समस्त लोकोंके स्तुत्य हो। (उरुगाय शब्दका अर्थ सोयणने इस प्रकार लिखा है, "बहुमिर्गीयमानो नमस्यः नमस्कार्य्यश्च भवसि।")। तुम ब्राह्मणरूपति हो, तुम प्रह्ला हो, तुम अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करते हो तथा अनेक प्रकारके पदार्थोंमें विराज करते हो।

पुराणमें विष्णुको उपेन्द्र कहा है। ऋग्वेदमें लिखा है, कि विष्णु इन्द्रके निकट आरमोय हैं, दोनों एकत्र सोमपान करते हैं।

वेदके प्रत्येक मण्डलमें विष्णुका माहारम्य और गुणकार्यादि कीर्तित हुआ है। भाष्यकारगण और टीकाकारगण कई तरहका अर्थ लगा कर उन सब स्थलोंके अर्थबोधके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न सिद्धान्त पर पहुँचे

हैं। हम यहाँ पर तुर्नाय मण्डलसे ही दो एक ऋक् उद्धृत करने हैं। यथा—

"विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणी यामिनि भान् ।

उत्क्रमः कर्कहो यस्य पूर्वोर्न मर्दन्ति युवतयो जनिनोः। (३ म० ५४ सू० १४ ऋक्)

धनके कारणस्वरूप यह स्तोत्र और अर्चनीय मन्त्र इस यज्ञमें भगवान्के पास जाये। भगवान् उद्क्रमो हैं। पूर्वकालीना, युवतो मातास्वरूप दिशाएँ उनको लङ्घन नहीं करती।

सायणने यहाँ उद्क्रम शब्दका अर्थ ऐसा किया है—“उद्ग्रहान् क्रमः पाद्विक्षोपो यस्य सः। त्रिविक्रमावतार एकैनेव पादेन सर्वं जगद्भ्राम्य निष्ठति।”

वेदव्यास आदिने भी उद्क्रम शब्दका ऐसा ही अर्थ महाभारत और पुराणमें किया है।

भगवान् अति पराक्रमशील हैं, वह वेदमें कई जगह देखा जाता है। महाभारत और पुराणादिमें अनेक प्रकारसे भगवान्की इस पराक्रमशीलताका उदाहरण दिया गया है। महर्षि वेदव्यास वेदके विभागकर्त्ता हैं, उन्होंने महाभारत और पुराणादिमें वेदका सविस्तार अर्थ किया है। सायणने अपने भाष्यमें व्यासादिका ही सम्मत अभिप्राय लिया है।

ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, भगवान् पालनकर्त्ता और रक्ष संहारकर्त्ता हैं, यह पौराणिक सिद्धांत इस देशके आधाल धृद्धयनिता सभीको मालूम है। भगवान् जो रक्षाकर्त्ता हैं, ऋग्वेदमें कई जगह उसका उल्लेख देखनेमें आता है। जैसे—

"विष्णुर्गोपा परमं पाति पाथा

प्रिया धामान्यमृताद् धानः।

अनिष्टा विश्वा भुवतानि वेद

महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।”

(३ म० ५५ सू० ११ ऋक्)

अर्थात् भगवान् समस्त जगत्के रक्षक हैं। ये प्रियतम अक्षयघामें धारण करते हैं तथा परमस्थानकी रक्षी करते हैं। इत्यादि। ऋग्वेदमें भगवान्का “गोपा” यह विशेषण अनेक स्थलोंमें देखा जाता है। उनके धाममें

जो ऋक्विशिष्ट गाभीगण रहती हैं, वह भी पहले लिखा जा चुका है। उनका धाम जो माधुर्यका उत्सव है, वह भी पहले एक ऋक्से प्रमाणित किया जा चुका है, इन सब ऋकोंसे हम लोग आंशुव्याधन-वनविहारो आरुणका भी आभास पा सकते हैं। नित्य, सत्य और पूर्ण पदार्थ वैदिक ऋषियोंके तथा परवर्त्ती महर्षियोंके योग-नेत्रसे क्रमोत्कर्षके नियमानुसार विस्फुरित हुए थे या नहीं वह भी विशेष्य और चिन्तयितव्य है।

भगवान्को मर्त्यालोक्षमें लानेके लिये ऋग्विगण अनिले प्रार्थना करते थे—

“अर्द्योमर्णं वरुणं मितमेवामिन्द्राविष्णुमर्धतो अश्विनोत । स्वश्वो आने सुरधः सुधारा पदु वह सुहविषे जनाय ।”

(४ म० २ सू० ४ ऋक्)

अर्थात् हे अग्ने ! तुम्हारा अश्व उत्तम है, रथ उत्तम है तथा धन उत्तम है। तुम इन यज्ञमानामेने जिसके लिये उत्तम हो, उसके उद्देश्यसे अर्द्योमा वरुण मित इन्द्र भगवान् और मरुत्गणके लालो।

भगवान् जो वैदिक देवताके मध्य बहुस्तुत, बहु-कीर्त्तित हैं, वैदिक ऋषियोंके उद्घोषित ऋक् मन्त्रमें हमें वे सब स्तोत्रगालाएँ सुननेमें आती हैं। ऋग्वेदके चतुर्थमण्डलके तृतीय सूक्तकी ७वीं ऋक्में भी “विष्णव उरगायाय” कहा गया है। सायणने उसका अर्थ किया है “प्रभूतकीर्त्तये विष्णवे ।”

भगवान्का पराक्रम जो देवोंका बहु-स्तुत है उसे सभी स्वीकार करते हैं। इन्द्रने वृत्रासुरका वध करनेके लिये भगवान्से सहायता ली थी। यथा—

“उत माता महिपमन्ववेन्द्रमी त्वा जहति पुत्रदेवाः ।

अथा अश्वीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्य ।” (४ म० १८ सू० ११ ऋक्)

इन्द्रको माता महासुने इन्द्रसे पूछा, ‘हे पुत्र ! देव-ताओंने क्या तुम्हें छोड़ दिया है ? इस पर इन्द्रने भगवान्की ओर देख कर कहा, ‘सखे विष्णो ! यदि वृत्रके मारना चाहते हो तो विकमलाभ करो ।’

भगवान्के पराक्रमसे ही इन्द्रको शत्रु बृत्र मारा गया था। पुराणमें इसका विस्तृत विवरण आया है।

पूर्वादिघृत ऋक् का भाव निम्नलिखित ऋकोंमें भी पुनरुक्त हुआ है। यथा—

"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्य द्यौर्द्विलोकं वज्राय विक्रमे हनाववृत्तं रिणचाव सिंधून् इन्द्रस्य यंतु प्रसवे विष्टुष्ट।"

यहां भी इन्द्रने विष्णुको सखा कह कर सम्बोधन किया है तथा वृत्तासुरको वध करनेके लिये विष्णुको सहायता ली है। भगवान् जो इन्द्रादिके भी म पूज्य वस्तु हैं, इन सब ऋकोंमें हम उसका प्रमाण पाते हैं। इससे हमें यह भी मालूम होता है, कि भगवान् इन्द्रके सखा हैं। ऋग्वेदमें इन्द्र और विष्णुका स्तव अनेक स्थलोंमें ही एकत्र निघट्ट हुआ है।

भगवान् जो सभी जीवोंके सुखसमृद्धि देनेमें सब देवताओंसे अधिक शक्तिशाली हैं, ईष्ट मण्डलके ४८ सूक्तकी १४वीं ऋक्में हम उसका प्रमाण पाते हैं यथा—

हे पूषन् ! मैं तुम्हारा स्तव करता हूँ, तुम इन्द्रकी तरह दयालु हो, धरुणकी तरह अद्भुत शक्तिशाली हो, अर्धमाकी तरह ज्ञानी हो तथा भगवान्की तरह सब प्रकारकी भोगसम्पत्तिके दाता हो। इत्यादि।

ऋग्वेदके षष्ठमण्डलके ५० सूक्तकी १२वीं ऋक्में रुद्र सरस्वती आदि देवताओंके साथ भगवान्के समाप प्रार्थनासूचक स्तव है। यथा—

"ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मिड हृष्मत्तो विष्णुः सृङ्गन्तु वायुः। रिभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिषां नः।"

अर्थात् रुद्र सरस्वती भगवान् और वायु ये सभी सुखदाता हैं। ये हम लोगों पर कृपा वरसायें। रिभुक्षा वाज, पर्जन्य और वात हम लोगोंकी शक्ति बढ़ावें।

सप्तम मण्डलके ३५ सूक्तकी १५वीं ऋक्में, ३६ सूक्तकी ६ ऋक्में, ३६ सूक्तकी ५ ऋक्में, ४० सूक्तकी ५ ऋक्में, ४४ सूक्तकी १ ऋक्में तथा ६३ सूक्तकी ८वीं ऋक्में अन्यान्य देवताओंके साथ विष्णुका उल्लेख है।

सप्तममण्डलके ६६ सूक्तकी प्रथमसे सात ऋकोंमें विष्णुका यथेष्ट माहात्म्य कीर्तित हुआ है।

इस सूक्तकी प्रथम ऋक्की व्याख्यामें सायणने अपने

भाष्यमें विष्णुके त्रिविक्रम अवतारकी माहात्म्यविषयक कथाका उल्लेख किया है। विष्णुका परम माहात्म्य भी इस ऋक्में गया है।

द्वितीय ऋक्में लिखा है, कि विष्णुकी महिमाका अन्त नहीं है। इनकी महिमा अनन्त है। विष्णुका माहात्म्य सबोंको विदित होना असम्भव है। भगवान्ने घृलोकको ऊपर उठाये रखा है। विष्णुकी शक्तिसे ही घृलोक ऊपरसे नहीं गिर सकता। पृथिव्यादि भी भगवान् कर्त्तृक विघृत हैं। इसके द्वारा भगवान् शक्तिके बहुल कार्यकारित्व सम्बन्धमें एक आभाम पाया जा सकता है।

कोई कोई समझते हैं, कि भगवान् सूर्यके ही दूसरे नामसे ऋग्वेदमें परिचित है। यह बात अपौरुषिक और अप्रामाणिक है। भगवान्के अनेक कार्य सूर्यके सदृश हैं। किन्तु वे स्वयं सूर्य नहीं हैं, पर हां सूर्यमें अनुभविए अवश्य रहे हैं। भगवान्के ध्यानमें भी उन्हें "सावित्रोमण्डलमध्यवर्त्ती" कहा गया है। सूर्य उन्हींकी शक्तिसे शक्तिमान हैं, इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है। उद्धृत ७ मण्डलके ६६ सूक्तकी चौथी ऋक् पढ़नेसे मालूम होता है, कि "इन्द्र और भगवान् इन्होंने सूर्य, अग्नि और ऊषाको उत्पादन कर यजमानके लिये विस्तीर्ण लोक निर्माण कर रखा है।"

उद्धृत पञ्चम ऋक्में इन्द्र और भगवान्ने मिल कर असुरका संहार किया है, इसका उदाहरण दिया गया है। भगवान् द्वारा शम्बर आदिकी पुत्री-विनाशका विवरण ऋग्वेदमें सूक्ताकारमें वर्णित है। पुराणमें इसका विशेष विवरण देखनेमें आता है। घर्षिर् नामक असुरके दलबलके साथ संहार करनेका विवरण भी इस सूक्तमें दिखाई देता है।

अधिकांश स्थलोंमें "उरगाय" शब्द भगवान्के विशेषणरूपमें व्यवहृत हुआ है। श्रीमद्भागवतपुराणमें भी इस शब्दका बहुल प्रचार दिखाई देता है। उरगाय शब्दका अर्थ है बहुजन द्वारा गोपमान। विष्णु जो वैदिक देवताओंमें प्रधानतम देवता तथा सूर्य आदिके उत्पादक हैं, यह भी ऋग्वेदमें लिखा है। श्रीभागवतमें जो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वादने

सीध्य, दास्य और आत्मनिवेदन इन नौ भक्तियोंका उल्लेख है, हम इस १०० सूक्तमें उसका भी सम्बन्ध पाते हैं।

विष्णु कितने 'प्राचीन देवता है, सूक्तका ३ य ऋक्से उसका प्रमाण मिलती है। वैदिक समयसे ही उनका जो मान्य होता आ रहा है, इस ऋक्में उसका भी सम्पत्क प्रमाण है। विष्णुका रूप किरणविशिष्ट है। जो "सावित्रीमण्डलमध्यवर्ती" है वे किरणमय नहीं हैं, तो क्या है ?

"विचक्रमे पृथिवीमेव पतां क्षेत्राय विष्णुं मनुष्ये दशस्यन् ।
ध्रुवासो अथ कीरयो जनास्य ऊर्वक्षितिं सुजनिमा चकार ॥

इन भगवान्ने मनुष्यके बसनेके लिये उन्हें पृथिवी देनेकी इच्छा करके वहाँ पादक्षेप किया था। इन विष्णुके स्तोत्रात् निश्चल होवे। सुतन्मा विष्णुने निवासस्थान निर्माण किया है।

विष्णु जो केवल विश्वब्रह्माण्डके धारणकर्ता और पालनकर्ता हैं सो नहीं। उन्होंने ही इस पृथिवीको मनुष्यके रहने योग्य बना दिया है। अतएव विश्वनिर्माण भा भगवान्का कार्य है।

"किमित्ते विष्णो परिचयं भूत्स यद्वक्षे शिपिविशो अस्मि ।
मा वर्षो अस्मत्प गूढ पतद्यद्व्यरूपः समिधे वभूथ ।"

हे विष्णो ! मैं 'शिपिविष्ट' नामसे तुम्हारा स्तव करता हूँ; इसे प्रस्थापन करना क्या तुम्हें उचित है। तुमने संप्राममं अन्य रूप धारण किया है। हम लोगोंमें तुम अपना शरीर न छिपाओ।

सायण 'शिपिविष्ट' शब्दका अर्थ किरणविशिष्ट लगाने हैं। सायणके भाष्यमें लिखा है, कि पुराकालमें भगवान्ने अपना रूप त्याग कर अन्य रूप धारण किया था और संप्राममं वसिष्ठकी सहायता पहुँचाई थी। वसिष्ठने उन्हें पहचान कर इस ऋक्से उनका स्तव किया। निकटकारका कहना है, कि विष्णुका दूसरा नाम "शिपिविष्ट" है। फिर उपमन्यु कहते हैं, कि 'शिपिविष्ट' नाम भगवान्का कुरिसत नाम है। उपमन्युका यह अर्थ सुसङ्गत नहीं। कुरिसत नाम यदि होता, तो वसिष्ठ इस नामसे उनका स्तव नहीं करते। पर हाँ, उन्होंने संप्राम-

में जो दूसरा रूप धारण किया था, उसमें अपना रूप छिपा कर केवल किरण द्वारा चारों ओर समाच्छन्न कर दिया था। इसी कारण उन्हें "शिपिविष्ट" कहा गया है।

अष्टम मण्डलके निम्नलिखित स्थलोंमें भगवान्का नामोल्लेख है—६ सू—१२, १० सू—२, १२ सू—१६, १५ सू—८, २५ सू—११ और २७ सू—८, २६ सू—७, ३१ सू—१०, ३५ सू—१ और १४, ६६ सू—१० तथा ७२ सू—७ ऋक्में।

इन सब ऋक्में ६६ सूक्तकी १०वीं ऋक्का भाव कुछ अद्भुत है। यहाँ ऋक् पढ़नेसे मालूम होता है, कि भगवान् इन्द्र कर्त्तृक प्रार्थित हो कर उनके लिये एक सौ महिष और एक अयङ्कर शूकर संप्रदह कर ले गये थे। हमें इसका अर्थ समझमें न आया। फलतः वेदमन्त्र-संप्रदह और वेदार्थासंप्रदह जो बहुत कठोर काम है, यह वेदग्रन्थ पढ़नेसे सहजमें अनुमान किया जा सकता है।

नवम मण्डलके भी अनेक स्थानोंमें विष्णुका उल्लेख देखनेमें आता है। जैसे—३३ सू—३, ३४ सू—२, ५६ सू—४, ६३ सू—३, ६५ सू—२०, ६० सू—५, ६६ सू—५ तथा १०० सू—६।

दशम मण्डलके जिन सब स्थानोंमें भगवान्का उल्लेख है, नीचे उसकी तालिका दी गई है—

१ सू—३, ६५ सू—, ६६ सू—४ तथा ५, ६६ सू—११, ११३ सू—१, १२८ सू—२, १४१ सू—३, १८१ सू—१, २ और ३ तथा १८४ सूक्तकी प्रथम ऋक्में भगवान्का उल्लेख देखनेमें आता है।

आधुनिक प्रतीच्य पण्डित हम लोगोंके वेदादि ग्रन्थों में देवताओंका व्यक्तिगत स्तोत्रपाठ सुन कर कहां कहीं बड़े ही भ्रममें पड़ गये हैं। इन सब पण्डितोंमें मुद्गर साहब एक हैं। मुद्गरने जगह जगह इन्द्रका माहात्म्याधिक्य स्तोत्र पाठ कर यह समझ लिया है, कि श्रायदेदमें भगवान्को अपेक्षा इन्द्रका ही मान्य अधिक है। इस प्रकार माहात्म्यकी रचनासूचक स्तोत्र सभी देवताओंका देखा जाता है। एक सामान्य पदार्थके स्तोत्रमें भी स्तुत्यमान पदार्थको सर्वापेक्षा प्रधान कहा है। स्तोत्रादिमें इस प्रकार पृथक् पृथक् वर्णन द्वारा आपसकी

पूर्वादिभूत ऋक् भाव निम्नलिखित ऋकोंमें भी पुनरुक्त हुआ है। यथा—

"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्य घोर्हे हिलोकं वज्राय विष्कर्मै हनाचवृत्तं रिण्नाच सिंघुत् इन्द्रस्य यंतु प्रसवे विष्टुष्टः।"

यहां भी इन्द्रने विष्णुको सप्ला कह कर सम्बोधन किया है तथा वृत्तासुरको, वध करनेके लिये विष्णुको सहायता लो है। भगवान् जो इन्द्रादिके भी संपूज्य वस्तु हैं, इन सब ऋकोंमें हम उसका प्रमाण पाते हैं। इससे हमें यह भी मालूम होता है, कि भगवान् इन्द्रके सखा हैं। ऋग्वेदमें इन्द्र और विष्णुका स्तव अनेक स्थलोंमें ही एकत्र निबद्ध हुआ है।

भगवान् जो सभी जीवोंके सुखसमृद्धि देनेमें सब देवताओंसे अधिक शक्तिशाली हैं, द्रष्टृ मण्डलके ४८ सूक्तकी १४वीं ऋक्में हम उसका प्रमाण पाते हैं यथा—

हे पूषन् । मैं तुम्हारा स्तव करता हूँ, तुम इन्द्रको तरह ब्यालु हो, घरुणकी तरह अद्भुत शक्तिशाली हो, अर्धमाकी तरह हानी हो तथा भगवान्की तरह सब प्रकारकी भोगसम्पत्तिके दाता हो। इत्यादि।

ऋग्वेदके पद्यमण्डलके ५० सूक्तकी १२वीं ऋक्में रुद्र सरस्वती आदि देवताओंके साथ भगवान्के समोप प्रार्थनासूचक स्तव हैं। यथा—

"ते नो रुद्रः सरस्वती सजोया मिडुह्मसो विष्णु-सृङ्गु वायुः। रिभुसा वाजो वैष्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिपां नः।"

अर्थात् रुद्र सरस्वती भगवान् और वायु ये सभी सुखदाता हैं। ये हम लोगोंपर रूपा, वरसाये। रिभुसा वाज, पर्जन्य और वात हम लोगोंका शक्ति बढ़ावे।

सप्तम मण्डलके ३५ सूक्तकी ६वीं ऋक्में, ३६ सूक्तकी ६ ऋक्में, ३६ सूक्तकी ५ ऋक्में, ४० सूक्तकी ५ ऋक्में, ४४ सूक्तकी १ ऋक्में तथा ६३ सूक्तकी ८वीं ऋक्में अन्यान्य देवताओंके साथ विष्णुका उल्लेख है।

सप्तममण्डलके ६६ सूक्तकी प्रथमसे सात ऋकोंमें विष्णुका यथेष्ट माहात्म्य कीर्तित हुआ है।

इस सूक्तकी प्रथम ऋक्की श्राव्यामें सायणने अपने

भाष्यमें विष्णुके त्रिविक्रम अवतारकी माहात्म्यविषयक कथाका उल्लेख किया है। विष्णुका परम माहात्म्य भी इस ऋक्में गया है।

द्वितीय ऋक्में लिखा है, कि विष्णुकी महिमाका अन्त नहीं है। इनकी महिमा अनन्त है। विष्णुका माहात्म्य सबोंको विदित होना असम्भव है। भगवान्ने पृथ्वीके ऊपर उठाये रखा है। विष्णुकी शक्तिके ही पृथ्वीके ऊपरसे नहीं गिर सकता। पृथिव्यादि भी भगवान् कर्त्तृक विभूत हैं। इसके द्वारा भगवान् शक्तिके बहुल कार्यकारित्व सम्बन्धमें एक आशाम पाया जा सकता है।

कोई कोई समझते हैं, कि भगवान् सूर्यके ही दूसरे नामसे ऋग्वेदमें परिचित हैं। यह बात अशुद्धिक और अप्रामाणिक है। भगवान्के अनेक कार्य सूर्यके सदृश हैं। किन्तु वे स्वयं सूर्य नहीं हैं, पर हां सूर्यमें अनुप्रविष्ट अवश्य रहे हैं। भगवान्के ध्यानमें भी उन्हें "सायितोमण्डलमध्यवर्त्ती" कहा गया है। सूर्य उन्हींकी शक्तिके शक्तिमान हैं, इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है। उद्भूत ७ मण्डलके ६६ सूक्तकी चौथी ऋक् पदनेसे मालूम होता है, कि "इन्द्र और भगवान् इन्होंने सूर्य, अग्नि और ऊपाको उत्पादन कर यजमानके लिये विस्तीर्ण लोक निर्माण कर रखा है।"

उद्भूत पञ्चम ऋक्में इन्द्र और भगवान्ने मिल कर असुरका संहार किया है, इसका उदाहरण दिया गया है। भगवान् द्वारा शम्बर आदिकी पुरी-विनाशका विवरण ऋग्वेदमें सूत्राकारमें वर्णित है। पुराणमें इसका विशेष विवरण देखनेमें आता है। यत्किंच नामक असुरके दलबलके साथ संहार करनेका विवरण भी इस सूक्तमें दिखाई देता है।

अधिकांश स्थलोंमें "उरगाय" शब्द भगवान्के विशेषणरूपमें व्यवहृत हुआ है। श्रीमद्भागवतपुराणमें भी इस शब्दका बहुल प्रचार दिखाई देता है। उरगाय शब्दका अर्थ है, बहुजन द्वारा गोपमान। विष्णु जो वैदिक देवताओंमें प्रधानतम देवता तथा सूर्य आदिके उत्पादक हैं, यह भी ऋग्वेदमें लिखा है। श्रीभागवतमें जो श्रवण, कोसल, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, गर्दन

सौम्य, दास्य और आर्धमनिवेदन इन ती भक्तिपंथा का उल्लेख है, हम इस १०० सूक्तमें उसका भी सम्बन्धन पाते हैं।

विष्णु कितने 'प्राचीन देवता है, सूक्तकी ३ य ऋक्से उसका प्रमाण मिलता है। वैदिक समयसे ही उनका जो मान्य होता आ रहा है, इन ऋक्में उसकी भी सम्यक् प्रमाण है। विष्णुका रूप किरणविशिष्ट है। जो "सावित्रीमण्डलमध्ययत्नी" है वे किरणमय नहीं हैं, तो क्या है ?

"विचक्रमे पृथिवीमिव पतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
भ्रूयासो अस्य कीरयो जनास ऊवक्षितिं सुजनिमा चकार ॥
इन भगवान्ने मनुष्यके बसनेके लिये उन्हें पृथिवी देवकी इच्छा करके वहां पादक्षेप किया था। इन विष्णुके स्तोत्रा निश्चल होयें। सुव्रत्मा विष्णुने निवासस्थान निर्माण किया है।

विष्णु जो केवल विश्वप्रणालीके धारणकर्त्ता और चालनकर्त्ता है सो नहीं। उन्होंने ही इस पृथिवीको मनुष्यके रहने योग्य बना दिया है। अतएव विश्वनिर्माण वा भगवान्का कार्य है।

"किमिच्छे विष्णो परिचक्ष्यं भूद्र यत्प्रक्षे शिपिविष्टो अस्मि । मा वर्षी अस्मत्प गूह पतयदस्यरूपः समिधे वभूय ।"

हे विष्णो ! मैं 'शिपिविष्ट' नामसे तुम्हारा स्तव करता हूँ; इसे प्रस्थापन करना क्या तुम्हें उचित है। तुमने संप्राममे अन्य रूप धारण किया है। हम लोगोंसे तुम अपना शरीर न छिपाओ।

सायण 'शिपिविष्ट' शब्दका अर्थ किरणविशिष्ट लगाने हैं। सायणके भाष्यमें लिखा है, कि पुराकालमें भगवान्ने अपना रूप त्याग कर अन्य रूप धारण किया था और संप्राममे वसिष्ठकी सहायता पढ़ाई थी। वसिष्ठने उन्हें पहचान कर इस ऋक्से उनका स्तव किया। निरुक्तकारका कहना है, कि विष्णुका दूसरा नाम 'शिपिविष्ट' है। फिर उपमन्यु कहते हैं, कि 'शिपिविष्ट' नाम भगवान्का कुत्सित नाम है। उपमन्युका यह अर्थ सुसङ्गत नहीं। कुत्सित नाम यदि होता, तो वसिष्ठ इस नामसे उनका स्तव नहीं करते। पर हाँ, उन्होंने संप्राम-

में जो दूसरा रूप धारण किया था, उसमें अपना रूप छिपा कर केवल किरण द्वारा चारों ओर समाच्छन्न कर दिया था। इसी कारण उन्हें "शिपिविष्ट" कहा गया है।

अष्टम मण्डलके निम्नलिखित स्थलोंमें भगवान्का नामोल्लेख है—६ सू—१२, १० सू—२, १२ सू—१६, १५ सू—८, २५ सू—११ और २७ सू—८, २६ सू—७, ३१ सू—१०, ३५ सू—१ और १४, ६६ सू—१० तथा ७२ सू—७ ऋक्में।

इन सब ऋक्में ६६ सूक्तकी १०वीं ऋक्का भाव कुछ अद्भुत है। यहाँ ऋक् पढ़नेसे मान्दम होता है, कि भगवान् इन्द्र कर्त्तृक प्रार्थित हो कर उनके लिये एक सी महिष और एक मयङ्कर शूकर संप्रह कर ले गये थे। हमें इसका अर्थ समझमें न आया। फलतः वेदमन्त्रसंप्रह और वेदार्थसंप्रह जो बहुत कठोर काम है, यह वेदग्रन्थ पढ़नेसे सहजमें अनुमान किया जा सकता है।

नवम मण्डलके भी अनेक स्थानोंमें विष्णुका उल्लेख देखनेमें आता है। जैसे—३३ सू—३, ३४ सू—२, ५६ सू—४, ६३ सू—३, ६५ सू—२०, ६० सू—५, ६६ सू—५ तथा १०० सू—६।

दशम मण्डलके जिन सब स्थानोंमें भगवान्का उल्लेख है, नीचे उसकी तालिका दी गई है—

१ सू—३, ६५ सू—, ६६ सू—४ तथा ५, ६६ सू—११, ११३ सू—१, १२८ सू—२, १४१ सू—३, १८१ सू—१, २ और ३ तथा १८४ सूक्तकी प्रथम ऋक्में भगवान्का उल्लेख देखनेमें आता है।

आधुनिक प्रतीच्य पण्डित हम लोगोंके वेदादि ग्रन्थों में देवताओंका व्यक्तिगत स्तोत्रपाठ सुन कर कहीं कहीं यड़ हो भ्रममें पड़ गये हैं। इन सब पण्डितोंमें मुहर साद्वैत एक है। मुहरने जगद् जगद् इन्द्रका माहात्म्याधिष्य स्तोत्र पाठ कर गद् समझ लिया है, कि ऋग्वेदमें भगवान्की अपेक्षा इन्द्रका ही मान्य अधिक है। इस प्रकार माहात्म्यकी रचनासूचक स्तोत्र सभी देवताओंका देखा जाता है। एक सामान्य पदार्थके स्तोत्रमें भी स्तूप्रमाण पदार्थको सर्वापेक्षा प्रधान कहा है। स्तोत्रादिमें इस प्रकार पृथक् पृथक् वर्णन द्वारा आपसकी

पूर्वादिभूत ऋक् का भाव निम्नलिखित ऋकोंमें भी पुनरुक्त हुआ है। यथा—

"सखे विष्णो वितरं विक्रमम् दौर्द्धिलोकं वज्राय विश्वम् दत्ताय वृत्रं रिणचाय सिधून् इन्द्रस्य यंतु प्रसवे विद्युष्टः ।"

यहां भी इन्द्रने विष्णुको सखा कह कर सम्योधान किया है तथा वृत्रासुरको वध करनेके लिये विष्णुकी सहायता ली है। भगवान् जो इन्द्रादिके भी संपूज्य बन्तु हैं, इन सब ऋकोंमें हम उसका प्रमाण पाते हैं। इससे हमें यह भी मालूम होता है, कि भगवान् इन्द्रके सखा हैं। ऋग्वेदमें इन्द्र और विष्णुका स्तव अनेक स्थलोंमें ही एकत्र मिलव दृष्ट हुआ है।

भगवान् जो सभी जीवोंके सुखसमृद्धि देनेमें सब देवताओंसे अधिक शक्तिशाली हैं, द्रष्ट मण्डलके ४८ सूक्तकी १४वीं ऋक्में हम उसका प्रमाण पाते हैं यथा—

हे पूज्य ! मैं तुम्हारा स्तव करता हूँ, तुम इन्द्रकी तरह दयालु हो, वरुणकी तरह अद्भुत शक्तिशाली हो, अर्धमाकी तरह शानी हो तथा भगवान्की तरह सब प्रकारकी भोगसम्पत्तिके दाता हो। इत्यादि।

ऋग्वेदके पद्यमण्डलके ५० सूक्तकी १२वीं ऋक्में रुद्र सरस्वती आदि देवताओंके साथ भगवान्के समीप प्रार्थनासूचक स्तव है। यथा—

"ते नो रुद्रः सरस्वती सजोपा मिडुहुष्मत्तो विष्णु-मृडन्तु वायुः। रिभुक्षा वाजो देव्यो विधाता पर्जन्या वाता विष्यतामिषां नः ।"

अर्थात् रुद्र सरस्वती भगवान् और वायु ये सभी सुखदाता हैं। ये हम लोगोंपर रूपा दरसाधे। रिभुक्षा वाज, पर्जन्य और वात हम लोगोंकी शक्ति बढ़ावे।

सप्तम मण्डलके ३५ सूक्तकी ६वीं ऋक्में, ३६ सूक्तकी ६ ऋक्में, ३६ सूक्तकी ५ ऋक्में, ४० सूक्तकी ५ ऋक्में, ४४ सूक्तकी १ ऋक्में तथा ६३ सूक्तकी ८वां ऋक्में अन्यान्य देवताओंके साथ विष्णुका उल्लेख है।

सप्तममण्डलके ६६ सूक्तकी प्रथमसे सात ऋकोंमें विष्णुका यथेष्ट माहात्म्य कीर्तित हुआ है।

इस सूक्तकी प्रथम ऋक्की व्याख्यामें सायणने अपने

भाष्यमें विष्णुके त्रिविक्रम अवतारकी माहात्म्यविवरण कथाका उल्लेख किया है। विष्णुका परम माहात्म्य भी इस ऋक्में गया है।

द्वितीय ऋक्में लिखा है, कि विष्णुकी महिमाका अन्त नहीं है। इनकी महिमा अनन्त है। विष्णुका माहात्म्य सबोंको विदित होना असम्भव है। भगवान्ने धूलोकको ऊपर उठाये रखा है। विष्णुकी शक्तिसे ही धूलोक ऊपरसे नहीं गिर सकता। पृथिव्यादि भी भगवान् कर्त्तक विद्युत है। इसके द्वारा भगवान् शक्तिके बहुत कार्यकारित्वे सम्बन्धमें एक आभास पाया जा सकता है।

कोई कोई समझते हैं, कि भगवान् सूर्यके ही दूसरे नामसे ऋग्वेदमें परिचित है। यह बात अयौक्तिक और अप्रामाणिक है। भगवान्के अनेक कार्य सूर्यके समान हैं। किन्तु वे स्वयं सूर्य नहीं हैं, पर हां सूर्यमें अनुपविष्ट अवश्य रहे हैं। भगवान्के ध्यानमें भी उन्हें "सावित्रीमण्डलमध्यवर्ती" कहा गया है। सूर्य उन्हींकी शक्तिसे शक्तिमान् हैं, इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है। उद्धृत ७ मण्डलके ६६ सूक्तकी चौथी ऋक् पद्यनेसे मालूम होता है, कि "इन्द्र और भगवान् इन्होंने सूर्य, अग्नि और ऊपको उत्पादन कर यज्ञमानके लिये विस्तीर्ण लोक निर्माण कर रखा है।"

उद्धृत पद्यम ऋक्में इन्द्र और भगवान्ने मिल कर असुरका संहार किया है, इसका उदाहरण दिया गया है। भगवान् द्वारा शम्बर आदिकी पुत्री-विनाशका विवरण ऋग्वेदमें सूक्ताकारमें वर्णित है। पुराणमें इसका विशेष विवरण देखनेमें आता है। चर्चि नामक असुरके दलघलके साथ संहार करनेका विवरण भी इस सूक्तमें दिखाई देता है।

अधिकशः स्थलोंमें "उरगाय" शब्द भगवान्के विशेषणरूपमें व्यवहृत हुआ है। श्रीमद्भागवतपुराणमें भी इस शब्दका बहुत प्रचार दिखाई देता है। उरगाय शब्दका अर्थ है, बहुजन द्वारा गीयमान। विष्णु जो वैदिक देवताओंमें प्रधानतम देवता तथा सूर्य आदिके उत्पादक हैं, यह भी ऋग्वेदमें लिखा है। श्रीभागवतमें जो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन

स्वनी और रति ; पत्ताप्रसमूर्त्तमें पूर्वादिक्रमसे चक्र गङ्गा, गदा, पद्म, कौस्तुभ, मूसल, खड्ग, घनमाला, उसके बाहर अग्रभागमें गवड, दक्षिणमें शङ्खनिधि, वाममें पद्मनिधि, पश्चिममें ध्वज, अग्निक्लेशमें विघ्न, नैऋतमें आर्ष्या, वायुक्लेशमें दुर्गा तथा ईशानमें सेनापति इन सबको पूजा करके उसके बाहर इन्द्रादि और चन्द्रादिकी पूजा करे । अनन्तर घृष और दीप दानके बाद यथाशक्ति नैवेद्य वस्तु निवेदन करनी होती है ।

विष्णुपूजामें नैवेद्य दानमें कुछ विशेषता है । गौतमीय तन्त्रके मतसे स्वर्ण, ताम्र वा रौप्य पात्रमें अथवा पद्मपत्र पर विष्णुको नैवेद्य चढ़ाये । आगमकल्पद्रुममें लिखा है, कि राजत, कांस्य, ताम्र वा मिट्टीका बरतन अथवा पैलाशपत्र विष्णुको नैवेद्य चढ़ानेके लिये उन्नम है ।

जो हो, ऊपर कहे गये किसी एक पात्रमें विष्णुका नैवेद्य प्रस्तुत कर देबोइंशसे पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय दानके बाद 'फट' इम मूलमन्त्रसे उसे प्रोक्षण चक्रमुद्रामें अभिरक्षण, 'यं' मन्त्रसे दैत्योंका संशोधन, 'रं' मन्त्रसे दैत्यदहन तथा 'वं' मन्त्रसे अमृतोत्तरण कर भाठ बार मूल मंत्र जप करे । पीछे 'वं' इम धेनुमुद्रामें अमृतोत्तरण कर गन्धपुष्प द्वारा पूजा करनेके बाद कृतज्ञलि हो हरिसे प्रार्थना करे । अनन्तर "अस्य मुखतो महः प्रसवेत्" इस प्रकार भावना करके स्वाहा और मूलमंत्र उच्चारण करते हुए नैवेद्यमें जलदान करे । इसके बाद मूल मंत्रका उच्चारण कर तथा "पतन्नैवेद्यं अमुकदेशतायै नमः" इस मंत्रसे देवों हाथोंसे नैवेद्य पकड़ "ॐ निवेदयामि भयते ज्ञुपाणेदं हविर्हर ।" इम मन्त्रसे नैवेद्य अर्पण करे । अनन्तर 'अमृतो पस्तरण ममि' इम मंत्रसे जल देनेके बाद वामहस्तेसे प्रासमुद्रा दिखा दक्षिण हस्त द्वारा प्रणवादि सभी मुद्राएं दिखावे यथा "ॐ प्राणाय स्वाहा" यह कह कर अङ्गुष्ठ द्वारा कानिष्ठा और अनामिका, "ॐ ध्यानाय स्वाहा" इम मंत्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा मध्यमा और अनामा, "ॐ उदात्ताय स्वाहा" इस मंत्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा तर्जनी, मध्यमा और अनामा तथा 'ओं समानाय स्वाहा' कह कर अङ्गुष्ठ द्वारा सर्वाङ्गुलि स्पर्श करे । अनन्तर देवों

अङ्गुष्ठ द्वारा अनामिकाका अग्रभाग स्पर्श कर 'ओं' नमः पराय अनन्तरात्मने अनिष्टदाय नैवेद्यं कल्पयामि' कह कर नैवेद्य मुद्रा दिखावे तथा मूलमंत्रका उच्चारण कर 'अमुकदेशतां तर्पयामि' इस मन्त्रसे ४ बार स तर्पण करे । बादमें 'अमुक देवतायै पतञ्जलममृतापिधानमसि' इस मंत्रसे जलदान करनेके बाद आचमनीय आदि देने होंगे ।

विष्णुको नैवेद्यके बाद साधारण पूजा-वस्तुनिके अनुसार विमर्जन कर सभी कार्यों समाप्त करे । सोलह लाख जप करनेसे विष्णुमंत्रका पुण्यघरण होता है ।

"विकारक्षयं प्रजपेन्मनुजेनं समाहितः ।

तदशारां सरधिजेजुं हुयान्मधुपान्तुतैः ॥" (तन्त्रशास्त्र)

स्मृतिग्रन्थादिमें जो विष्णु पूजाका विवरण दिया गया है, विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया । आह्निकतरय आदि ग्रंथोंमें उनका सविस्तर विवरण आया है ।

गिनपूजामें शिवकी अष्टमूर्त्तिकी पूजा करके पीछे विष्णुकी अष्टमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है । विष्णुकी अष्टमूर्त्तिके नाम ये हैं—उग्र, महाविष्णु, उच्चलंत, सम्प्रतापन, वृसिंह, भीषण, भीम और मृदुञ्जय । इन सब नामोंमें चतुर्थी विभक्ति जोड़ कर आदिमें प्रणव तथा अंतमें 'विष्णवे नमः' कह कर पूजा करे । विष्णुकी इस अष्टमूर्त्तिका पूजन शिवलिङ्गके सम्मुखदि कमसे करना होगा । (विद्वाञ्छानि तन्त्र ७५०)

गरुडपुराणके २३२-२३४ अध्यायमें 'विष्णुभक्ति, विष्णुका नमस्कार, पूजा, स्तुति और ध्यानके सबधमें' विस्तृत आलोचना की गई है । विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया ।

विष्णु नामकी व्युत्पत्ति ।

मत्स्यपुराणमें पृथिवीके मुखमें भगवान्के कुछ नामोंकी व्युत्पत्ति इस प्रकार देखनेमें आती है । देहियोंके मध्य सिर्फ भगवान् ही अयशेष हैं; इसी कारण उनका नाम शेष हुआ है । प्रत्यादि देवनाभाका ध्वंस है, किंतु भगवान्का ध्वंस नहीं है । वे अपने स्थानसे अविच्युत हैं, इसी कारण उनका नाम अच्युत है । प्रत्या और इन्द्रादि

वां नारायणाय कान्त्यै नमः, दक्षनेत्रं इ' साधवाय तुष्ट्यै
 नमो, वामनेत्रं इ' गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः, इस प्रकार
 क्रमिक सानुस्वार वर्णका उच्चारण करने निम्नोक्त प्रकार-
 से यथायथ स्थानमें न्यास करना होगा । सबसे अन्तमें
 नमः शब्द प्रयोक्तव्य है । जैसे—दक्षकण्ठं 'विष्णवे धृत्यै'
 वामकण्ठं 'मधुसूदनाह शान्त्यै' दक्षिण नासापुटं
 'त्रिविक्रमाय क्रियायै', वामनासापुटं 'वामनाय दयायै'
 दक्षिण गण्डं 'श्रीघराय मेधायै' वामगण्डं 'हृषीके-
 प्राय हर्षायै' ओष्ठं 'पद्मनाभाय धन्यायै' अधरं 'दामो-
 दराय लज्जायै', ऊर्ध्वदन्तपिकिं 'वासुदेवाय लभ्यै'
 निम्नदन्तपिकिं 'सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै' मस्तकं 'मधु-
 भनाय प्रोत्थ्यै' मुखे 'अः अनिच्छन्नाय रते' दक्षिणकरमूल,
 मन्दिस्थान और अग्रभागदिमें 'कं चक्रिणे जयायै' 'शं
 गदिने दुर्गायै' क्रमशः 'शार्ङ्गिणे प्रगायै' 'लङ्किने सत्यायै'
 शङ्किने चण्डायै' इसी प्रकार वामकरमूलसन्धि और
 अग्रभागदिमें 'हलिने वाप्यै', 'मुपलिने विलासिन्यै'
 शूलिने विजयायै' 'पाशिने विरजायै' अ'कुशिने विश्वायै'
 दक्षिणवादमूकसन्धि और अग्रभागदिमें सुहृन्दाव
 विनशायै, नन्दजाय सुनन्दायै, नन्दिने स्मृत्यै, नराय
 ऋद्धयै नरकजिते समृद्धै ।' वामवादमूक सन्धि
 और अग्रभाग आदिमें 'हरये शुद्धयै' कृष्णाय शुद्धयै,
 मत्स्याय भृत्यै, सात्वताय मत्स्यै, सौराय क्षमायै ।
 दक्षिणपादं 'शूराय रमायै', वामपादं 'जनाईनाय'
 पृष्ठं 'भूधराय ह्येदिन्यै' नाभिं 'विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै'
 उदरं 'वैकुण्ठाय सुदायै' हृदयं 'त्वागात्मने पुष्योत्तमाय
 पशुधरायै' दक्षिणसं 'असुगात्मने धलिने परायै', ककुद्-
 ने 'मासात्मने बलानुजाय परायणायै' वाम अ'शं 'मिद
 आत्मने बलाय सुत्मायै', हृदादि दक्षिणकरं अस्थ-
 त्मने वृषटनाय सन्ध्यायै' हृदादि वामकरं 'मज्जात्मने
 घृषाय प्रशायै' हृदादि दक्षिणपादं 'शुक्रात्मने हिंसाय
 प्रमायै' हृदादि वामपादं 'प्राणात्मने घराहाय निजायै'
 हृदादि उदरं 'जोधात्मने विमलाय अमोघायै' हृदादि
 मुखं 'कोषात्मने नृसिंहाय विदुयुतायै' । इस प्रकार
 न्यास करे ।

अगस्त्यसंहितामें लिखा है, कि यदि भुक्ति-
 मुक्तिको कामना कर पूजा की जाय, तो उक्त न्यास करने-

के समय आदिमें श्री-योज जोड़ दे । यथा—'श्री
 अ' केशवाय कौस्त्यै नमः' इत्यादि ।

अन्तर तत्पन्यास, ऋष्यादिन्यास और विष्णुपञ्ज-
 रादिन्यास करना होगा । विस्तार ही जानेंके भयसे
 इन सब न्यासोंका विवरण नहीं दिया गया । उक्त पूजा
 पद्धतिको सहायतासे ये सब न्यास कर पोछे पुनः ध्यान
 करे । ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"उद्यतकोटिदिवाकराभमनिशं शंख गर्दा पङ्कजं
 चक्रं विभवंविन्दिरा वसुमती र्शयोमि, पार्श्वं द्वयम् ।
 कोटिपद्मदशरूपुडलधरं पीताम्बरं कोस्तुभो-
 दीप्तं विश्वधरं स्ववत्सि लक्ष्मिर्वत्सविद्भिः भजे ॥"

इस प्रकार ध्यान करनेके बाद मानसोपचारसे पूजा
 कर शङ्ख स्थापन करे ।

गीतमीय तन्त्रके मतसे ताम्रपात्र, शङ्ख, मृत्पात्र,
 स्वर्ण वा रजतपात्र, ये पञ्चपात्र विष्णुके अति प्रिय हैं ।
 उक्त विशुद्ध पञ्चपात्रको छोड़ कर और कोई भी पात्र
 विष्णु पूजामें काम नहीं आता* ।

शङ्खस्थापनके बाद सामान्य पीठपूजा, पीछे विमला
 दि शक्तिके साथ पीठमन्त्र पर्याप्त पूजा करके पुनर्ध्यान
 और मूकमन्त्रमें कल्पित विष्णुमूर्त्तिके प्रति आघातनादि
 पञ्चपुष्पाञ्जलि प्रदान करे । अनन्तर आवरण पूजा
 करने होगो । यथा—"ओं कूटोत्कलाय हृदयाय नमः"
 इत्यादि मन्त्रोंसे अग्न्यादि चतुष्कोणमें तथा चारों दिशा-
 ओमें पूजा करे । अनन्तर केशरसमूहमें पूर्वादि क्रमसे
 "ओं नमः, नं नमः, मेा नमः, नां नमः, रां नमः, यं नमः,
 णां नमः, यं नमः ।" दलसमूहमें पूर्वादिकी ओर 'ओं
 वासुदेवाय नमः' इस प्रकार पूजा करनेके बाद चतुर्धो
 विभक्ति जोड़ कर प्रणवादि नमःके बाद सङ्कर्षण, प्रथम,
 अनिच्छद अग्न्यादि कोणमें ; दलसमूहमें शान्ति श्री, सर-

* 'ताम्रपात्रं तु राजयै, विष्णोरादिप्रियं मत्स्यम् ।

तयैव सर्वपात्राणां मुख्यं शङ्खं प्रकीर्त्तितम् ॥

मृत्पात्रञ्च तथा प्रोक्तं स्वर्णं वा राजतं तथा ।

पद्मपात्रं हरिं शुद्धं नान्यत्तत्र नियोजयेत् ॥"

स्वनी और रति ; पद्माप्रममूर्धमें पूर्वादिकमसे चक्र, शङ्ख, गदा, पद्म, कौस्तुभ, मूसल, खड्ग, घनमाला, उमके बाहर अग्रभागमें गरुड, दक्षिणमें शङ्खनिधि, वाममें पद्मनिधि, पश्चिममें ध्वज, अग्निकोणमें विघ्न, नैऋतमें अर्घ्या, वायुकोणमें दुर्गा तथा ईशानमें सेनापति इन सबकी पूजा करके उसके बाहर इन्द्रादि और वज्रादिकी पूजा करे। अनन्तर घृष और दीप दानके बाद यथाशक्ति नैवेद्य चन्तु निवेदन करनी होती है।

विष्णुपूजामें नैवेद्य दानमें कुछ विशेषता है। गौतमीय स्मृतिके मतसे स्वर्ण, ताम्र या रीव्य पात्रमें अथवा पद्मपत्र पर विष्णुको नैवेद्य चढ़ावे। आगमकल्पद्रुममें लिखा है, कि राजत, कांस्य, ताम्र वा मिट्टीका बरतन अथवा पलाशपत्र विष्णुको नैवेद्य चढ़ानेके लिये उत्तम है।

जो हो, ऊपर कहे गये किसी एक पात्रमें विष्णुका नैवेद्य प्रस्तुत कर देवोद्देशसे पाद्य, अर्घ्य और भाच मनीय दानके बाद 'फट्' इस मूलमंत्रसे उसे प्रोक्षण चक्रमुद्रामें अभिरक्षण, 'वं' मंत्रसे 'देवो'का संशोधन, 'वं' मंत्रसे 'देव'दहन तथा 'वं' मंत्रसे अमृतोत्तरण कर आठ बार मूल मंत्र जप करे। पीछे 'वं' इस धेनुमुद्रामें अमृतोत्तरण कर गन्धपुष्प द्वारा पूजा करनेके बाद कृताञ्जलि हो हरिसे प्रार्थना करे। अनन्तर "अस्य मुखतो महाः प्रसवेत्" इस प्रकार भाचना करके स्वाहा और मूलमंत्र उच्चारण करते हुए नैवेद्यमें जलदान करे। इसके बाद मूल मंत्रका उच्चारण कर तथा "पतन् नैवेद्यं अमुकदेवतायै नमः" इस मंत्रसे दोनों हाथोंमें नैवेद्य पकड़ "ॐ निवेद्यामि भवते जुषाणेदं हविर्हर ।" इस मंत्रसे नैवेद्य अर्पण करे। अनन्तर 'अमृतो पस्तरण मसि' इस मंत्रसे जल देनेके बाद वामहस्तेसे प्रासमुद्रा दिखा दक्षिण हस्त द्वारा प्रणयादि सभी मुद्रायें दिखावे यथा "ॐ प्राणाय स्वाहा" यह कह कर अङ्गुष्ठ द्वारा कनिष्ठा और अनामिका, "ॐ व्यानाय स्वाहा" इस मंत्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा मध्यमा और अनामा, "ॐ उदात्ताय स्वाहा" इस मंत्रसे अङ्गुष्ठ द्वारा तर्जनी, मध्यमा और अनामा तथा 'श्रीं समानाय स्वाहा' कह कर अङ्गुष्ठ द्वारा सर्वाङ्गुलि स्पर्श करे। अनन्तर दोनों

अङ्गुष्ठ द्वारा अनामिकाका अग्रभाग स्पर्श कर 'श्रीं नमः पराय अन्तरात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि' कह कर नैवेद्य मुद्रा दिखावे तथा मूलमंत्रका उच्चारण कर 'अमुकदेवता तर्पयामि' इस मंत्रसे ४ बार तर्पण करे। बादमें 'अमुक देवतायै पतञ्जलममृतापिधानमसि' इस मंत्रसे जलदान करनेके बाद आचमनीय आदि देने होंगे।

विष्णुको नैवेद्यके बाद साधारण पूजा-पद्धतिके अनुसार विमर्जन कर सभी कार्यों समाप्त करे। सोलह लाख जप करनेसे विष्णुमंत्रका पुरश्चरण होता है।

"विकारक्षकं प्रवपेन्मनुजेनं समाहितः।

तद्गशां सरधैर्जुहुयान्मधुपाप्सुतेः ॥" (तन्त्रसार)

स्मृतिग्रन्थादिमें जो विष्णुपूजाका विवरण दिया गया है, विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया। आह्निकतत्त्व आदि प्रबंधोंमें उसका सविस्तर विवरण आया है।

जिनपूजामें शिवको अष्टमूर्त्तिकी पूजा करनेके पीछे विष्णुकी अष्टमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है। विष्णुकी अष्टमूर्त्तिके नाम ये हैं—उग्र, महाविष्णु, उबलंत, मग्गतापन, मृसिंह, भीषण, भोम और मृत्युञ्जय। इन सब नामोंमें चतुर्थां विभक्ति जोड़ कर आदिमें प्रणव तथा अंतमें 'विष्णवे नमः' कह कर पूजा करे। विष्णुकी इस अष्टमूर्त्तिकी पूजन शिबलिङ्गके सम्मुखादि कामसे करना होगा। (शिवाचानं तन्त्र ७५०)

गरुडपुराणके २३२-२३४ अध्यायमें 'विष्णुभक्ति, विष्णुका नमस्कार, पूजा, स्तुति और ध्यानके मन्त्रधर्म' विस्तृत आलोचना की गई है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया।

विष्णु नामकी व्युत्पत्ति।

मत्स्यपुराणमें पृथिवीके मुखमें भगवान्के कुछ नामोंकी व्युत्पत्ति इस प्रकार देखनेमें आती है। देहियोंके मध्य सिर्फ भगवान् ही अवशेष हैं, इसी कारण उनका नाम शेष हुआ है। प्रत्यादि देवताभांसा ध्वंस हैं, किंतु भगवान्का ध्वंस नहीं है। वे अपने स्थानमें अविच्युत हैं, इसी कारण उनका नाम अच्युत है। प्रत्या और इन्द्रादि

विष्णुचक्र (सं० क्री०) विष्णोश्चक्रमिव । १ हस्तस्थ रेवामय चक्रविशेष । यह चक्र जिसके हाथमें रहता है, वह व्यक्ति राजभक्तवर्ती अर्थात् सर्वभूमीभ्वर होता है तथा उसका प्रभाव अत्याहत और स्वर्ग पर्यन्त विस्तृत हो जाता है । (विष्णु पुराण १।१३)

२ सुदर्शनचक्र ।

विष्णुचन्द्र—१ भूपसमुत्थयतन्त्र और सर्वसारतन्त्र नामक दो तन्त्रोंके रचयिता । इन दोनों तन्त्रोंमें पुराण और तन्त्रसमूहसे शाक्त और शैव सम्प्रदायकी उपास्य विभिन्न देव-देवियोंकी पद्धति और मन्त्रादि लिपियद्ध हैं । ग्रन्थ की श्लोकसंख्या ५३ हजार है ।

२ वसिष्ठसिद्धान्तके प्रणेता । ब्रह्मगुप्त और भट्टोत्पलने इनका वचन उद्धृत किया है ।

विष्णुचित्त—कल्पसूत्रव्याख्या, प्रमेयसंग्रह, विष्णुपुराण-टीका और संन्यासविधि नामक ग्रन्थोंके प्रणेता । विष्णुचित्तकी कल्पसूत्रव्याख्या तथा रामाण्डार वा रामान्निचित्त कृत आपस्तम्बश्रौतसूत्रभाष्यकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि दोनों ही परस्पर संश्लिष्ट हैं । किन्तु दोनों एक व्यक्ति हैं वा नहीं कह नहीं सकते ।

विष्णुज्ञ (सं० त्रि०) विष्णुज्ञात, विष्णुसे उत्पन्न ।

(ब्राह्मण ० ४६।११)

विष्णुनख (सं० क्री०) विष्णोस्तस्वम् । विष्णुका माहात्म्य, वह ग्रन्थ जिसमें विष्णुकी मौलिकता आलोचित हुई है ।

विष्णुतपेण (सं० क्री०) विष्णुके उद्देशमें तर्पण ।

विष्णुनिधि (सं० पु० त्रि०) हरिचासर, शुक्ला एकदशी और द्वादशी तिथिमें ।

विष्णुतोष (सं० क्री०) १ संन्यासविधिक प्रणेता । स्मृत्यर्थसागरमें इनके रचित कुछ ग्रन्थोंका वचन उद्धृत है । २ स्कन्दपुराणोक्त तोषमें ।

विष्णुतैल (सं० क्री०) चातुर्थाधिरोगोक्त तैलोपधि विशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—तिलतैल ४ सेर तथा गाय और भैंस का दूध १६ सेर ले कर उसमें शिला पर पिसा हुआ गालपान, पिठवन, विजवद, गोपधली, देंडीका मूल, सुहती, कण्टिकारी, नाटाकरञ्जका मूल, शतमूली, नील-

मिंटीका मूल, प्रत्येक आठ तोला ले कर मिलाये । पीछे लोह या मिट्टीके बरतनमें ६४ सेर पानीके साथ पाक करे । पाक शय होने पर अर्थात् सिर्फ तैलके रह जाने पर उसे उतार कर छान ले । चातुर्थाधि अथवा जिस किसी वायुकी विकृति अवस्थामें इसका व्यवहार करनेसे बहुत उपकार होता है ।

विष्णुत्व (सं० क्री०) विष्णुका भाव या धर्म ।

विष्णुज्ञात—आचार्यभेद । आप विंगशास्त्रमें सुपरिद्धत थे ।

विष्णुदत्त (सं० त्रि०) विष्णुना दत्त । विष्णुप्रदत्त, विष्णुका दिया हुआ । (भागवत १।१७४)

विष्णुदत्त अनिहातो—श्राद्धाधिकारके रचयिता ।

विष्णुदास १: एक सामन्त महाराज । ये परममहाराज महाराजाधिराज २य चन्द्रगुप्तके अधीन थे । २ एक वैष्णव साधु । (मविष्णमक्ति०)

विष्णुदास (श्रीपति)—एक राजा (१६२० ई०) । ये ताजिकसारके प्रणेता सामन्तके प्रतिपालक थे ।

विष्णुदेव—१ मन्त्रदेवताप्रकाशिकाके प्रणेता । ये लक्ष्मोश के पुत्र और परमाराध्यके वीर थे । २ एक वैद्यपारम ब्राह्मण । गुप्तराज हर्षितनूने इन्हें भूमि दी थी ।

विष्णुदेवज्ञ—एक उद्योतिर्निर्द्ध । इन्होंने बृहच्चिन्तामणि टीका, विष्णुकरणोदाहरण और सूर्यपक्षरण नामक तीन ग्रन्थ लिखे ।

विष्णुदेवत (सं० त्रि०) विष्णु: देवता वा पद्वय । १ विष्णु-देवताका द्रव्योदि, जिस ग्रन्थके अधिष्ठात्री देवता विष्णु हैं । (क्री०) २ श्रवणानक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता विष्णु । (ज्योतिस्तस्व)

विष्णुदेवत्य—विष्णु देवत देखो ।

विष्णुदेवत्या (सं० स्त्री०) विष्णुदेवत्यमहर्षी: । पचादशो और द्वादशो तिथि । इन दोनों तिथियोंके अधिष्ठात्री देवता विष्णु हैं ।

विष्णुद्विप (सं० पु०) विष्णुं द्वेपि इति विष्णु द्विप द्विप । १ असुर, दैत्य, दानव इत्यादि । २ एक जैन ।

विष्णुद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम । विष्णुधर्म (सं० पु०) विष्णुप्रधानो धर्मोऽस्मिन् । १ भक्ति

प्रथमविशेष। इस ग्रन्थमें विष्णुविषयक धर्मोंका उपदेश दिया गया है। २ विष्णुको उपासनाके योग्य धर्म, यह धर्म जिसके अवलम्बन पर विष्णुकी उपासना करना होता है। ३ वैष्णवधर्म। ४ विद्याविशेष। यथाविधान इस विद्याको उपासना करनेसे इन्द्रतय लाभ होता है।

(गण्डपुराण २०१ अ०)

विष्णुधर्मोत्तर (सं० क्ली०) पुराणसंहिताविशेष। इस संहिताके प्रश्नकर्त्ता जनमेजयके पुत्र तथा यका शौनकादि ऋषिये। इसमें प्रायः एक सौ वृत्तान्त वर्णित हैं। यह विष्णुपुराणका एकांश है। कोई कोई इसे एक उपपुराण मानते हैं। बह्मलसेनने स्वकृत दानसागरमें तथा हलायुधके ब्राह्मणसर्वस्वमें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

विष्णुधारा (सं० खं०) १. तीर्थभेद। २ हिमयत्पादसे निकली हुई एक नदी। (हिम० ख० ३२, २६)

विष्णुनदी (सं० खं०) १ नदीभेद। २ विष्णुपादोद्भूय नदी।

विष्णुनन्दी—एक ब्राह्मण। गुप्तसम्राट् महाराज सर्वाभायने इन्हें भूमि दी थी।

विष्णुपञ्चर (सं० पु०) पुराणानुसार विष्णुका एक कवच। कहते हैं, कि यह कवच धारण करनेसे सब प्रकारके भय दूर हो जाते हैं।

विष्णुपाण्डित—१ गणितसारके रचयिता, दिवाकरके पाँच और गोवर्द्धनके पुत्र। इनके बड़े भाई गङ्गाधरने १४२० ई०में लोलावतीटोका लिखा। २ तात्पर्यदीपिका नामक अनन्तराघचटोकाके प्रणेता। ये शिशुपालवधटोकाके प्रणेता चन्द्रशेखरके पिता और रङ्गभट्टके पुत्र थे। ३ गोलप्रवरदीपके प्रणेता।

विष्णुपति—तत्त्वचिन्तामणि शम्भुखण्डदीपनके रचयिता। इनके पिताका नाम रामपति था।

विष्णुपत्नी (सं० खं०) १ विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी। २ अदिति। (शुक्लपत्रः २३१६०)

विष्णुपद (सं० क्ली०) विष्णोः पदं। १ आकाश। (धर्म) २ क्षीरसमुद्र। (मेदिनी) ३ पद्म, कमल।

(हेम) ४ तीर्थविशेष। इस तीर्थमें स्नान कर वामनदेवकी पूजा करनेसे सभी पाप दूर होते हैं तथा विष्णु-

लोकमें गति होती है। ५ कैलासपर्वतका स्थानविशेष। (भारत ११११, १२) ६ पर्वतविशेष। (हरिवंश ३१, ४३) ७ विष्णुका स्थान। (विष्णुपुराण २० अ०) ८ भ्रूमध्य। आसन्नमृत्यु व्यक्ति यह स्थान देख नहीं सकता। (काशीख० ४२, १३-१४)

६ विष्णुका पद। भारतके जिन सब स्थानोंमें पदविह्व विद्यमान है, वे सब स्थान एक एक तीर्थक्षेत्रमें गिने जाते हैं। गयाक्षेत्रमें विष्णुपद विराजित देखा जाता है। यूहन्नीलतन्त्रमें भी एक विष्णुपदका उल्लेख है। इसके समीप गुताकिर्तीर्ण है।

(ब्रह्मनील २१-२२ अ०)

विष्णुपदी (सं० खं०) विष्णोः पदं स्थानं यदाः गीरादित्वात् डोप्। १ गङ्गा। गङ्गा विष्णुपदसे निकली है, इस कारण इसे विष्णुपदी कहते हैं। २ संक्रान्तिविशेष। वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंहराशिमें सूर्यसंक्रमण होनेसे उसे विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं। अर्थात् जिस जिस संक्रान्तिमें सूर्य मेघराशिसे वृषमें, कर्कटसे सिंहमें, तुलासे वृश्चिकमें तथा मकरसे कुम्भराशिमें जाते हैं, उन्हें विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं। अतएव वैशाखके बाद उदैष्टमासके आरम्भमें तथा श्रावणके बाद भाद्र, कार्तिकके बाद अग्रहायण और माघके अन्तमें तथा फाल्गुन मासके प्रारम्भमें जो संक्रान्ति होती है, वह विष्णुपदीसंक्रान्ति कहलाती है। यह विष्णुपदी संक्रान्ति अतिशय पुण्यवता है। इसमें पुण्यतिथिको स्नानदानादि करनेसे लाख गुण फल होता है। (तिथितत्त्व)

विष्णुपदीचक्र (सं० क्ली०) विष्णुपद्याः संक्रान्त्याः चक्रं। उदैष्ट, अग्रहायण, भाद्र और फाल्गुन मासकी संक्रान्तिमें शुभाशुभहापक चक्र। फाल्गुनमासके अङ्गमें समी नक्षत्रोंको विन्यास कर यह चक्र निरूपण करना होता है। इस विष्णुपदीसंक्रान्तिमें जिस नक्षत्रको सूर्य संक्रमण होता है, वह नक्षत्र मुखमें तथा उससे दक्षिणवाहुमें चार, दोनों पैरोंमें तीन तीन, घामवाहुमें चार, हृदयमें पाँच दोनों चक्षुषोंमें दो दो, मूलाके पर दो तथा कुम्भमें एक, इस प्रकार समी नक्षत्रोंको विन्यास करना

करना होता है। फलं यथाक्रम रोग, भोग, वान, वन्धन, लाम, ऐश्वर्य, राजपूजा और अपमृत्यु आदि होंगे। विष्णुपरायण (स० स्त्री०) विष्णुभक्त, वैष्णव। विष्णुपर्णिका (स० स्त्री०) पृथिवीपर्णी, पिठवन। विष्णुपर्णी (स० स्त्री०) भूमिप्रामलकी, भुईं भांगला।

(वैद्यकविष०)

विष्णुपाद (स० स्त्री०) १ विष्णुका पदचिह्न। २ एक गणेशशैल। वैष्णवचूड़ामणि राजा चन्द्रने विष्णुके उद्देशसे इसके ऊपर एक ध्वज (स्तम्भ) निर्माण करा दिया है। शिलालिपि-सम्बलित वह ध्वज अभी दिल्ली के निकटवर्ती एक देशमें संरक्षित है। प्रकृत विष्णुपाद शैलका अवस्थान पुष्कर शैलके निकट है।

विष्णुपादुका—भागलपुर जिलेके अन्तर्गत चम्पानगरके समीप वीरपुरमें अवस्थित एक सुप्रसिद्ध जैनमन्दिर। कहते हैं, कि उस मन्दिरमें विष्णुपद विराजित हैं, इससे निकटवर्ती ग्रामवासी उसके प्रति विशेष भक्तिधरदा दिखलाते हैं। जैन लोग जैनसम्प्रदायके उपास्य चौवी-सर्व देवताके पदचिह्न समझ कर उसको पूजा करते हैं।

विष्णुपीठ (स० पु०) योगिनी-तन्त्रके पीठभेद।

(योगिनीतन्त्र १७)

विष्णुपुत्र (स० पु०) विष्णोः पुत्रः। विष्णुके तनय। विष्णुपुर—१ बङ्गदेशके अन्तर्गत बाङ्गुड़ा जिलेका एक उप-विभाग। यह १८७६ ई०में विष्णुपुर, कोटालपुर, इन्द्रास और सोनामोकी ले कर संगठित हुआ है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत बाङ्गुड़ा जिलेका प्राचीन नगर। यह अक्षा० २७° २४' ३०" तथा देशा० ७७° ५७' पू०के मध्य द्वारिकेश्वर नदीसे कुछ मील दक्षिणमें अध-स्थित है। यहाँ प्रायः २०००० लोगोंका वास है। यह नगर प्राचीन और समृद्धिशाली है तथा बाङ्गुड़ा जिले-का वाणिज्य प्रधान स्थान है। यहाँसे चावल, तेल, शस्य, लाख, रुई, रेशम आदिकी रफतनी तथा नाना प्रकार के घिलायती द्रव्य, लवण, तमाकू, मसाले, मरर, उड़द आदि द्रव्योंकी आमदनी होती है। इस नगरमें बहुतसे जुलाहोंका वास है। यहाँ जगद जगद हाट बाजार लगता है। यह स्थान उत्तम रेशमी वस्त्रके लिये प्रसिद्ध है। यहाँ साधारण विचारालयोंकी छोड़ विद्यालय,

हिन्दूमन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिद आदि भी हैं। एक प्रसिद्ध प्राचीन उच्च राजपथ कलकत्सेसे इस नगर होता हुआ उत्तर पश्चिमकी चला गया है। यहाँसे एक दूसरी सड़क दक्षिण मेदिनीपुरकी ओर दौड़ गई है। प्रवाद है, कि प्राचीन विष्णुपुर स्वर्गके "इन्द्रभवन"के समान मनोरम था। इस प्राचीन नगरमें जगद जगद ऊँची अट्टालिका, खाई और भित्तिनिर्माण प्रभृति-के सम्बन्धमें बहुत-सी अलौकिक किम्बदंतियां सुनी जाती हैं। यह नगर प्राचीन कालमें बहुसंख्यक सीधायली और परिवार द्वारा सुदृढ था। उसकी लम्बाई ७ मील तक थी, बीच बीचमें पुल बने हुए थे। दुर्गप्राकारके मध्य ही राजप्रासाद वर्त्तमान था। अभी जो भग्नावशेष दिखाई देता है, वह बड़ा ही कीर्तूलोहोपक और मनो-हर है। नगरके मध्य जो मन्दिर है, उनके भग्नावशेष-से प्राचीन हिंदू स्थापत्यका काफी प्रमाण मिलता है। नगरके दक्षिणी दरवाजेके समीप विशाल शस्यगारका भग्नावशेष है। दुर्गके भीतर जो अभी जंगलसे ढक गया है, सवा दश फुटकी एक बड़ी लोहेकी कमान है। कहते हैं, कि यहाँके राजाओंमेंसे एकने देवप्रासाद रूपमें इस कमानकी पाया था। इष्ट इण्डिया कम्पनीकी फिदरिश्त देखनेसे मालूम होता है, कि यह विष्णुपुरराज-पथ क समय बङ्गाल भरमें प्रसिद्ध था। आधि रैनेलके History of the East and West Indies नामक ग्रंथके मानचित्रमें (London edition 1776) विंशै नपुर (विष्णु-पुर) और कलकत्ता इन दोनों नगरोंके नाम बङ्गदेशीय लेफ्टिनाएंट गवर्नरके अधिकृत स्थानोंके मध्य बड़े अक्षरोंमें अङ्कित है। विष्णुपुर राज्य स्थापनके दिनसे ही यहाँ उस राजवंशका महान्द प्रचलित देखा जाता है। प्रवाद है, कि जयपुरके एक राजा देशपरिभ्रमण की इच्छासे खोके साथ घरसे निकले। पुहरोत्तमकी ओर जानेमें उन्हें विष्णुपुर मिला। यहाँ वे एक निविड़ अरण्यके किसी पान्थनिवासमें ठहर गये। इसी समय उनकी पत्नीने एक पुत्ररत्न प्रसूय किया। राजाने सपनाप्रसवा रात्रिकी साथ ले जाना अच्छा नहीं समझा और पुत्रके साथ उसकी चर्डी पर छोड़ आगने प्रस्थान कर दिया। कहते हैं, कि तीर्थयात्रा कालमें माता भी

नयजात शिशुको वहाँ छोड़ स्वामीकी अनुगामिनी हुईं। इस घटनाके बाद श्रीकाशमितिथा नामक चाग्द्री जाति-का एक लकड़हारा उस बच्चे को अपने वहाँ उठा ले गया और सात वर्ष तक उसका लालन-पालन किया। एक दिन किसी ब्राह्मणको उस शिशु पर नजर पड़ गई। उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध हो तथा उसे राजोचित लक्षणाक्रान्त देख घे उसको अपने वहाँ उठा ले गये। यह ब्राह्मण दारिद्र्य व्यवशतः उस बालकको गाय चराने तथा मरण-पोषणके लिये गृहकार्यमें नियुक्त करनेको बाध्य हुए थे। चाग द्वियोंने उनका नाम रघुनाथ रखा था। एक दिन रघुनाथको एक गाय अपने दलसे कहीं निकल गई। रघुनाथने जङ्गलमें उसे तमाम हूँटा, पर वह गाय नहीं मिली। आखिर भूख-प्याससे कातर हो वह उसी निर्जन वनमें एक वृक्षके नीचे सो रहा। जब वह सूत्र गाढ़ी नींदमें सो रहा था, तब एक भयङ्कर गोलुरा साँप पासवाली गुल्मलतासे निकल कर बालकके पास आया और उसके ऊपर अपना रजित फण फैला कर सुन्द-किरणको रोकने लगा था।

एक दिन नदीमें स्नान करते समय रघुनाथने सोने-का एक गोला पाया और उसे अपने मालिकको दे दिया। मालिकने उसे बालकके भविष्य उन्नतिचिह्नस्वरूप समझ बड़े हर्षसे रख लिया। इसके कुछ समय बाद वहाँके जङ्गली राजाकी मृत्यु हुई। अन्तर्प्रेषिक्रियाको तीवारी बड़ी धूमधामसे हुई। सभी देशोंके लोग निमन्त्रित हुए। दरिद्र ब्राह्मणने भी पुत्र रघुको ले दूसरे दूसरे ब्राह्मणोंके साथ राजपुरीमें प्रवेश किया। जब ब्राह्मण-भोजन हो रहा था, उसी समय स्वर्गीय राजाका स्वामी हाथी सूँड़े बढ़ाना हुआ आया और रघुनाथको अपने पीठ पर बैठा कर शून्यराजसिंहासनकी ओर अग्रसर हुआ। यह अद्भुत घटना देख पड़ले तो सभी लोग घबराहतकी तरह पड़े रहे, बादमें इसे दैविक घटना समझ उन लोगोंने आनन्दकोलाहलसे दिङ्मण्डलको युजा दिया। राजमंत्रिने बालकको राजमुकुट पहनाया और उसे राजपद पर अभिषिक्त किया। इस समय गायक, वादक, बन्दी और धर्मयाजकगण फूले न समाये और सभी अपना अपना करीब पालन करने लगे।

प्रवाद है, कि रघुनाथ ही विष्णुपुरके प्रथम मल्ल राजा थे। इस राजवंशने प्रायः ११०० वर्ष राज्य किया राजा रघुनाथ वा आदिमल्लने बड़े यत्नसे समृद्धिशाली विष्णुपुर नगरको बसाया था। बहुत समय तक विष्णु-पुर राज्य मल्लभूमि और जङ्गल महाल कह कर प्रसिद्ध रहा अभी ये सब स्थान बदलमान, बाकुड़ा और धोर-भूम जिलेके अन्तर्गत हो गया है।

विष्णुपुरके राजा अधीनस्थ वाग्द्रीघोरीकी सहायतासे महाराष्ट्रीय विद्वककालमें मुर्शिदाबादके नवाबको आसो मदद पहुँचाई थी। विष्णुपुर राजाकी सहायतासे मराठोंका दमन हुआ था। विष्णुपुरके राजा मुर्शिदाबाद नवाबके करद राजाओंमें बहुत प्रसिद्ध थे।

विष्णुपुर-राजगण महाश्रावण वंशीय क्षत्रिय हैं, अकलङ्कदेव और पुरादेवोके सेवक और राजगण साम-वेदीय कुथुमीशाखाके हैं। इनके ऋषि विश्वामित्र हैं। आज भी इन्हीं यक्षोपवीत धारणके समय पवित्र 'गाथा' मंत्र दिया जाता है। विष्णुपुरके ५६ राजाओंमें कुलका विचरण नीचे दिया जाता है।

वाग्दियोंने राज्याभिषेककालमें ११ रघुनाथसिंहको आदिमल्लकी उपाधि दी। आदिमल्लने ७१५ ई०में जन्म ग्रहण किया। ये १ मल्लाब्दमें वहाँके राजा हुए तथा ३४ वर्ष तक उन्होंने राज्य किया। उनकी रानी चन्द्र-कुमारी पश्चिम प्रदेशस्थ सूर्यवंशीय राजा इन्द्रसिंहकी कन्या थीं। उन्होंने पान्थेभ्यरीके नामसे एक मन्दिर बनवाया था। लेखप्रामाण्य उनकी राजधानी थी।

२५ राजा जयमल्ल बादमें विष्णुपुरके राजा हुए। ७४६ ई०में उनका जन्म हुआ तथा ३३ मल्लाब्दमें वे राजा हुए। ३० वर्ष राज्य करके ६४ मल्लाब्दमें उनका देहांत हुआ। उनकी रानी दीनसिंह नामक पश्चिम प्रदेशीय सूर्यवंशीय राजाकी कन्या थी। राजा जयमल्लने सात चरविहारोदेयके नाम पर एक मन्दिर बनवाया। वे क्षमताशाली राजा थे। उनके समय विष्णुपुरका सैन्य-बल बहुत बढ़ गया था।

३५ राजा (चेतुमल्ल)-का जन्म ७७६ ई०में हुआ। उन्होंने ६४ मल्लाब्दमें राजा हो कर ४१४ वर्ष तक राज्य किया। मतिपर सिंह नामक पाश्चात्य सूर्यवंशीय

राजकुमारी काञ्चनमणि उनकी पत्नी थीं। इनके पाँच पुत्र थे। ज्येष्ठपुत्र ही राज्यधिकारी हुए। किन्तु अभी उनका वंश लौप हो गया है।

१६ वें राजा जगत्मल्लने २७५ मल्लाब्द (६६० ई०) में जन्मग्रहण किया। ३१८ मल्ल शकमें (१०३३ ई०में) वे राजा हुए और ३३६ मल्लशक (१०५१ ई०में) उनका देहान्त हुआ। उन्होंने गोलकसिंहका कन्या चन्द्रावतीका पाणिग्रहण किया था। इस समय विष्णुपुर एक जगद्विख्यात नगर था, यहाँ तक कि स्वर्गके इन्द्रमन्वनसे भी यह मनारम समझा जाता था। उस समय विष्णुपुरका सौधराजि श्वेतमर्मर पत्थरकी बनी हुई थी। पुरीमें नाट्यमञ्च, तोपखाना, वासगृह, और परिच्छेदशाला विराजमान था। हस्तिशाला, सौम्यशाला, अश्वशाला, शस्त्रागार, अस्त्रागार, कोपागार और देवमन्दिर विष्णुपुरकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा जगत्मल्लके समय बहुत दूर दूर देशके वणिगोंने विष्णुपुरमें आ कर आदृत खोला था।

१३३वें राजा रायमल्ल ५६४ मल्लाब्द (१२७७ ई०) में सिंहासन पर बैठे और ५८७ म० अ० (१३०० ई०में) स्वर्गका सिंघारे। उन्होंने २३ वर्ष तक राज्य किया था। उनका पत्नी तन्दलालासिंहकी कन्या सुकुमारी चाई थी। उनके समय दुर्गकी भी बड़ी उन्नति हुई थी। इस समय अनेक प्रकारके आग्नेय अस्त्र दुर्गमें लाये और रखे गये थे। सेनाओंको सुन्दर परिच्छेदसे सजानेकी व्यवस्था थी। उनका सेनाओंके आक्रमणसे कोई भी उस समय विष्णुपुर पर आक्रमण करनेका साहस नहीं करता था।

४८वें राजा चार हम्बरीने ८६८ मल्लाब्दमें जन्म लिया। वे ८८१ म० अ० (१५६६ ई०) में राजा हुए। उन्होंने २६ वर्ष राज्य किया। उनके चार छो और २५ पुत्र थे। गृन्दावनसे श्रीनिवासाचार्य जो लाजसे अधिक वीण्यव ग्रन्थ साधने लाये थे, वे इन्हींके कौशलसे लूटे गये। आखिर वे श्रीनिवासाचार्यके निकट वीण्यव-धर्ममें दीक्षित हुए। तभीसे महाराज निवासाचार्यके वंशधरोंके मन्त्रशिष्य हैं। के समय तीन देवमन्दिर बनाये गये, दुर्ग पा-

तथा उसके प्राचीरगात्रमें कमान खड्गों को गई। उन्होंने मुर्शिदाबादके नवाबके विरुद्ध सेना भेजी थी। अन्तमें उन्हें राजरूपमें स्वीकार कर १६७०० मुद्रा राजकर देनेके बाद वे अपने राज्य लौट आये। वीर हम्बरी देखो।

५५वें राजा गोपालसिंहका जन्म ६७२ म० अ० में और देहांत १०५५ मल्लाब्द (१७०८ ई०) में हुआ। वे ३८ वर्ष तक राज्य कर गये। उन्होंने तुङ्गभूमिके राजा रघुनाथ तुङ्गको कन्यासे विवाह किया। उनके राजत्वकालमें पाँच देवमन्दिर बनाये गये। उनके राज्यकालमें भास्कर पण्डितका अधिनायकतामें परिचालित महाराष्ट्रीय सेनादलने विष्णुपुर दुर्गके दक्षिण तोरण पर आक्रमण किया। राजा सेनाओंके साथ स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित थे, किन्तु उनकी अदृष्टदेवी शत्रुके पक्षमें थी, इस कारण उनकी हार हुई। अन्तमें मदनमोहन देवकी रूपासे उन्होंने पुनः शत्रुओंको परास्त किया। कहते हैं, कि मदनमोहनकी रूपासे गोपालसिंहके आग्नेयारत्रने स्वयं ही विपक्षोदल पर अग्नि उद्धारण की थी।

किसी दूसरेका कहना है, कि राजाने इस युद्धमें अच्छा पराक्रम दिखाया तथा असाधारण शिक्षा और शक्तिवशसे अनेक विपक्षी सेनाओंको यमपुर भेज दिया था, किन्तु जब उन्होंने देखा, कि वेरणक्षेत्रमें प्रधान सेनापतिको मार, नहीं सकते तथा मराठोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेको उनमें शक्ति न रह गई, तब उन्होंने दुर्गमें आश्रय लिया। इसी समय मराठादलने असीम साहससे राजदुर्ग पर चढ़ाई कर दी, किन्तु राजाकी सुशिक्षित कमानवाही सेनादलकी लगातार अनिष्टदृष्टिसे तंग आ कर वे लौट जानेको बाध्य हुए। युद्धमें महाराष्ट्रसेनापति पञ्चत्वकी प्राप्त हुए, विष्णुपुरकी सेना विपक्षके द्रव्यादि लूट कर दुर्गमें धाविस आई। उन्हींके शासनकालमें वर्द्धमानके राजा कीर्ति चन्द्र बहादुरने विष्णुपुर पर आक्रमण कर राजाको परास्त किया। इसके कुछ समय बाद ही फिरसे दोनों विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। विष्णुपुरके सिंहासन पर बैठे तथा जामकुण्डो देश मिला।

आज भी छोटेके वंशधर उस मम्पत्तिका भोग करते हैं।

विष्णुपुर-राजवंशके इतिहासमें राजाओं द्वारा देव-मूर्तियों स्थापन वा पुष्करिण्यादि खनन कीर्तिका परिचय ही विशेषरूपसे दिया गया है। कोई कोई राजा धार्मिक्य की वृद्धि द्वारा, कोई युद्धविप्रदादि और दुर्गनिर्माण द्वारा तथा कोई राजधानीमें भिन्न स्थानगत लोगोंके स्नान दान द्वारा राज्यकी यथेष्ट उन्नति कर गये हैं। राज-सिंहासन पर केवल बड़े लड़के ही बैठते थे। राजाके अन्वय्य पुत्र राजसम्पत्तिसे भरणपोषणोपयोगी धार्मिक कृतियाँ जमीन पाते थे। बङ्गालके मुसलमान राजा या शासनकर्त्ताओंके जमानेका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह राजवंश कभी मितरूपमें, कभी शत्रु-रूपमें, कभी करद राजारूपमें मुसलमान नवाबके साथ समकक्षतासे राज्यशासन कर गये हैं। यद्यार्थमें मुर्शिदाबादके नवाब दरबारमें उन्हें कभी जाना पड़ता था। वे अङ्गरेज कम्पनीकी तरह नवाब-दरबारमें प्रतिनिधि द्वारा सभी कार्यां कराया करते थे।

इस राजवंशके पचासवें राजाने १६३७ ई०में (१६२९ मल्लाब्दमें) वंशगत 'मन्व'की उपाधि परिष्कार कर क्षत्रिय राजाओंकी चिरपरिचित सिंहा उपाधि ग्रहण का तथा परवर्त्तों गङ्गागण उसी सिंहा उपाधिसे मगधान्वित होते थे। १८वीं सदीमें इन राज-वंशधरोंकी उत्तरोत्तर अवनति होने लगी। मराठोंने लगानार विष्णुपुरराज्यको लूट कर राजाओंको निःसहाय कर दिया। इसके बाद १७७० ई०में यहां दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ जिसमें अधिवासिगण विष्णुपुरराज्यको छोड़ अन्वय्य नले गये। इस प्रकार बार बार सङ्कट आ पड़नेसे प्राचीन और समृद्ध विष्णुपुरराज्य धोहीन हो गया। बाहिर अङ्गरेजशासनकः कठोरतासे ब्रह्म-भारकृष्ट और नाना विपन्नालमें विजडिन अधस्तन राजवंशधर जमींदारोंका एकदम अधःपतन हो गया। यद्यार्थमें अभी अङ्गरेजधर्ममें घड़ी करद राजवंशधर सामान्य जमींदाररूपमें ही विद्यमान हैं।

राजा आदिमल्लके वंशधर राजा घोरसिंहने (१६५० ई०में) अनेक स कार्यां और दानके कारणसे क्यातिलाभ

की थी। बहुसंख्यक जलाशय और विष्णुपुरके अनेक बांध तथा कितने मन्दिर उन्हींकी कीर्त्तियोगण करने हैं।

इस राजवंशके चैतन्यसिंह नामक एक राजा १८वीं सदीमें जीवित थे। राजकार्यमें उनकी अच्छी प्रसिद्धि थी। उन्होंने १९ इण्डिया कम्पनीसे बाँकुड़ा जिलेके जरीप महल्लेका दशगाला बन्दोवस्त किया था। अभी उनके लड़कोंकी अमितव्ययिताके कारण वद सम्पत्ति नष्ट हो गई है, यहां तक कि बाकी राजस्वमें सरकारने उसका अधिकांश जप्त कर लिया।

प्रवाद है, कि राजा दामोदर सिंहने अर्थाभावप्रयुक्त मदनमोहन विप्रहको कलकत्तानिवासी गोकुलचन्द्र मितके यहां एक लाख रुपयेमें बन्धक रखा था। सुप्रसिद्ध मदनमोहन मूर्त्तिके इस प्रकार दूसरो जगह आने पर नगर क्रमशः श्रोहीन होता गया तथा राजाको भी आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। इसके कुछ दिन बाद हतभाग्य राजाने बड़े कष्टसे अर्थसंप्रद करके विप्रहमुक्तिकी आशासे अपने मन्त्रीकी कलकत्ता भेजा। मित महादायने रुपये तो ले लिये पर राजाकी विप्रद लौटा नहीं दिया। सुप्रिमकोर्टमें इसका विचार हुआ। राजाको उक्त विप्रहकी पुनःप्राप्तिका अधिकार मिला। गोकुलचन्द्रने ठोक घैसी हो एक दूसरो मूर्त्तिक बना कर राजाको दो और मूलमूर्त्तियाँ अपने घर रखा। लोगोंका विश्वास है, कि कलकत्ता बागबाजारमें जो मदनमोहनको मूर्त्ति है वही विष्णुपुरको प्रसिद्ध मदनमोहन है।

प्राचीन कीर्त्ति ।

विष्णुपुर प्राचीन नगर है। बहुतसे मन्दिर और प्राचीन मन्नावशेष उसका प्रमाण हैं। वे सब मन्दिर साधारणतः निम्नवङ्गमें प्रचलित गम्बूजाकृति बकछतसे प्रथित हैं। ऊपरी भागमें उतना कादकार्यादि नहीं है, केवल गालमें ईंट और टालोंके ऊपर ही द्योतितशिल्प का निदर्शन मिलता है। अनेक कादकार्यां सुन्दर हैं और आज तक खराब नहीं हुए हैं। दीवारके कादकार्यां रामायण और भारतीय युद्धविवरणको आच्छादिकाके आधार पर चित्रित हैं। अधिकांश मन्दिर कृष्ण या कृष्णशिवके नाम पर उत्सर्ग किये गये हैं। भास्करकार्ये इन्हनेसे उतना सुकविसङ्गत मालूम नहीं होता। इस

राजकुमारी काञ्चनमणि उनकी पत्नी थीं। इनके पाँच पुत्र थे। ज्येष्ठपुत्र ही राज्याधिकारी हुए। किन्तु अभी उनका वंश लोप हो गया है।

१६ वें राजा जगत्मल्लने २७५ मल्लाब्द (६६० ई०) में जन्मग्रहण किया। ३१८ मल्लशकमें (१०३३ ई०में) वे राजा हुए और ३३६ मल्लशक (१०५१ ई०में) उनका देहान्त हुआ। उन्होंने गोलकसिंहका कन्या चन्द्रावतीका पार्षणग्रहण किया था। इस समय विष्णुपुर एक जगद्विख्यात नगर था, यहाँ तक कि स्वर्गके इन्द्रमन्वनसे भी वह मनोरम समझा जाता था। उस समय विष्णुपुरकी साँघराजि श्वेतमर्मर पत्थरकी बनी हुई थी। पुरोमें नाट्यमञ्च, तोपखाना, वासगृह, और परिच्छेदगार विराजमान था। हस्तिशाला, सीन्यशाला, अश्वशाला, शस्त्रागार, अस्त्रागार, कौपागार और देवमन्दिर विष्णुपुरकी शोभा बढ़ा रहे थे। राजा जगत्मल्लके समय बहुत दूर दूर देशके वणिकोंने विष्णुपुरमें आ कर वाढत खोला था।

१३३वें राजा रायमल्ल २६४ मल्लाब्द (१२७७ ई०)में सिंहासन पर बैठे और ५८७ म० अ० (१३०० ई०में) स्वर्गको सिंघारे। उन्होंने २३ वर्ष तक राज्य किया था। उनका पत्नी नन्दलालसिंहकी कन्या सुकुमारी आई थीं। उनके समय दुर्गकी भी बड़ी उन्नति हुई थी। इस समय अनेक प्रकारके आग्नेय अस्त्र दुर्गमें लाये और रखे गये थे। सेनाओंको सुन्दर परिच्छेदसे सजानेकी व्यवस्था थी। उनका सेनाओंके आक्रमणसे कोई भी उस समय विष्णुपुर पर आक्रमण करनेका साहस नहीं करता था।

४८वें राजा चार हम्बोरने ८६८ मल्लाब्दमें जन्म लिया। वे ८८१ म० अ० (१५६६ ई०)में राजा हुए। उन्होंने २६ वर्ष राज्य किया। उनके चार स्त्री और २५ पुत्र थे। वृन्दावनसे श्रीनिवासाचार्य जो लाङ्कसे अधिक वीष्णव ग्रन्थ साथमें लाये थे, वे इन्हींके कौशलसे लूटे गये। आखिर वे श्रीनिवासाचार्यके निकट वीष्णव-धर्ममें दीक्षित हुए। तभीसे मल्लराजवंश श्रीनिवासाचार्यके वंशधरोंके मन्त्रजिण्य है। चार हम्बोरके समय तीव्र देवमन्दिर बनाये गये, दुर्ग परिवर्धामित

तथा उसके प्राचोरगात्रमें कमान खड़ी की गई। उन्होंने मुर्शिदाबादके नवाबके विरुद्ध सेना भेजी थी। अन्तमें उन्हें राजरूपमें स्वीकार कर १६७०० मुद्रा-राजकर देनेके बाद वे अपने राज्य लौट आये। चार हम्बोर देखो। ५५वें राजा गोपालसिंहका जन्म ६७२ म० अ० में और देहान्त १०५५ मल्लाब्द (१७०८ ई०)में हुआ। वे ३८ वर्ष तक राज्य कर गये। उन्होंने तुङ्गभूमिके राजा रघुनाथ तुङ्गके कन्यासे विवाह किया। उनके राजतकालमें पाँच देवमन्दिर बनाये गये। उनके राज्यकालमें भास्कर पण्डितका अधिनायकतामें परिचालित महाराष्ट्रीय सेनादलने विष्णुपुर दुर्गके दक्षिण तोरण पर आक्रमण किया। राजा सेनाओंके साथ स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित थे, किन्तु उनकी अदृष्टदेवी शत्रुके पक्षमें थी, इस कारण उनकी हार हुई। अन्तमें मदनमोहन देवकी रूपासे उन्होंने पुनः शत्रुओंको परास्त किया। कहते हैं, कि मदनमोहनको रूपासे गोपालसिंहके आग्नेयखाने स्वयं ही विपक्षोदल पर अग्नि उद्गारण की थी।

किसी दूसरेका कहना है, कि राजाने इस युद्धमें अच्छा पराक्रम दिखाया तथा असाधारण शिक्षा और शक्तिबलसे अनेक विपक्षों सेनाओंको यमपुर भेज दिया था, किन्तु जब उन्होंने देखा, कि वेरणक्षेत्रमें प्रधान सेनापतिको मार नहीं सकते तथा मराठोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेको उनमें शक्ति न रह गई, तब उन्होंने दुर्गमें आश्रय लिया। इसी समय मराठादलने असोम साहससे राजदुर्ग पर चढ़ाई कर दी, किन्तु राजाकी सुशिक्षित कमानवाही सेनादलकी लगातार अनिष्टदृष्टिसे तंग आ कर वे लौट जानेको बाध्य हुए। युद्धमें महाराष्ट्रसेनापति पञ्चत्वको प्राप्त हुए, विष्णुपुरकी सेना विपक्षके द्रव्यादि लूट कर दुर्गमें वापिस आई। उन्हींके शासनकालमें वर्द्धमानके राजा कीर्तिचन्द्र बहादुरने विष्णुपुर पर आक्रमण कर राजाको परास्त किया। इसके कुछ समय बाद ही फिरने दोनोने मिल कर मराठोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। राजाके बड़े लड़के विष्णुपुरके सिंहासन पर बैठे तथा छोटेको जागीरस्वरूप जामकुण्डो देश मिला।

आज भी छोटेके वंशधर उस सम्पत्तिका भोग करने हैं।

विष्णुपुर-राजवंशके इतिहासमें राजाओं द्वारा देव-मूर्तियाँ स्थापन या पुनरुत्थितादि खनन कीर्तिका परिचय ही विशेषरूपसे दिया गया है। कोई-कोई राजा चाण्डिय की युद्ध द्वारा, कोई युद्धविग्रहादि और दुर्गनिर्माण द्वारा तथा कोई राजधानीमें भिन्न स्थानगत लोगोंके स्नान-दान द्वारा राज्यकी यथेष्ट उन्नति कर गये हैं। राज-सिंहामन पर केवल बड़े लड्डके ही बैठते थे। राजाके अन्यान्य पुत्र राजसम्पत्तिसे भरणपोषणपोषोगी धार्मिक वृत्ति या जमीन-पाते थे। बङ्गालके मुसलमान राजा या शासनकर्त्ताओंके जमानेका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह राजवंश कभी मित्तरूपमें, कभी शत्रु-रूपमें, कभी करद राजारूपमें मुसलमान नवाबके साथ समकक्षतासे राज्यशासन कर गये हैं। यथार्थमें मुर्शिदाबादके नवाब दरबारमें उन्हें कभी आना पड़ता था। वे अङ्गरेज कम्पनीकी तरह नवाब-दरबारमें प्रतिनिधि द्वारा सभी कार्या कराया करते थे।

इस राजवंशके पंचाम्बे राजाने १६३७ ई०में (६२२ मल्लाब्दमें) वंशगत 'मङ्ग'-की उपाधि परित्याग कर क्षत्रिय राजाओंको चिरपरिचित सिंहा उपाधि ग्रहण की तथा परवर्त्तों राजगण उसी सिंहा उपाधिसे मगधान्वित होते थे। १८वें सदीमें इन राज-वंशधरोंको उत्तरोत्तर अवनति होने लगी। मराठीने लगानार विष्णुपुरराज्यका लूट कर राजाओंको नि-सहाय कर दिया। इनके बाद १७७० ई०में यहाँ दुर्मिक्ष उपस्थित हुआ जिससे अधिवासिगण विष्णुपुरराज्य-को छोड़ अथवा नले गये। इस प्रकार बार बार सङ्कट आ पड़नेमें प्राचीन और समृद्ध विष्णुपुरराज्य धोहीन हो गया। आखिर अङ्गरेजशासनके कठोरतासे ऋण-भारकृष्ट और नाना विपज्जालमें विजडित अधस्तन राजवंशधर जमोदारोंका एकदम अघातन हो गया। यथार्थमें अमा अङ्गरेजाध्यमें वही करद-राजवंशधर सामान्य जमींदाररूपमें ही विद्यमान हैं।

राजा आदिमल्लके वंशधर राजा घोरसिंहने (१६५० ई०में) अनेक स कार्या और दानके कारणसे

की थी। बहुसंख्यक जलाशय और विष्णुपुरके अनेक बांध तथा कितने मन्दिर उन्हींकी कीर्तिधापणा करते हैं।

इस राजवंशके चैतन्यसिंह नामक एक राजा १८वें सदीमें जीवित थे। राजकार्यमें उनकी अच्छी प्रसिद्धि थी। उन्होंने इष्ट इण्डिया कम्पनीसे बाँकुड़ा जिलेके जरीप महल्लेका दशगाला बन्दोवस्त किया था। अमा उनके लड्डकोंकी अमितव्ययिताके कारण वह सम्पत्ति नष्ट हो गई है, यहाँ तक कि बाकी राजस्वमें सरकारने उसका अधिकांश जधन कर लिया।

प्रवाद है, कि राजा दामोदर सिंहने अर्धाभावप्रयुक्त मदनमोहन विग्रहको कलकत्तानिवासी गोकुलचन्द्र मित्रके यहाँ एक लाख रुपयेमें बन्धक रखा था। सुप्रसिद्ध मदनमोहन मूर्त्तिके इस प्रकार दूसरो जगह आने पर नगर क्रमशः शोहीन होता गया तथा राजाको भी आर्थिक अवस्था शोचनीय हो गई। इसके कुछ दिन बाद हतभाग्य राजाने बड़े कष्टसे अर्थसंग्रह करके विग्रहमुक्तिको आशासे अपने मन्त्रोंको कलकत्ता भेजा। मित्र महाशयने रुपये तो ले लिये पर राजाको विग्रह लौटा नहीं दिया। सुप्रिमकोर्टमें इसका विचार हुआ। राजाको उक्त विग्रहको पुनःप्राप्तिका अधिकार मिला। गोकुलचन्द्रने ठोक वैसे ही एक दूसरो मूर्त्ति बना कर राजाको दो और मूलमूर्त्तियाँ अपने घर रखा। लोगोंका विश्वास है, कि कलकत्ता बागबाजारमें जो मदनमोहनको मूर्त्ति है वही विष्णुपुरकी प्रसिद्ध मदनमोहन है।

प्राचीन कीर्ति ।

विष्णुपुर प्राचीन नगर है। यद्गतसे मन्दिर और प्राचीन भग्नावशेष उसका प्रमाण है। ये सब मन्दिर साधारणतः निम्नबद्धमें प्रचलित गम्बूजाकृति चक्रछतसे श्रयित हैं। ऊपरी भागमें उतना कारुकार्यादि नहीं है, केवल गार्भमें ईंट और टालोके ऊपर ही खोदितशिल्प का निर्दर्शन मिलता है। अनेक कारुकार्या सुन्दर हैं और आज तक खराब नहीं हुए हैं। दीवारके कारुकार्या रामायण और भारतीय युद्धविवरणकी आख्यायिकाके आधार पर चित्रित हैं। अधिकांश मन्दिर कृष्ण या कृष्णप्रियाके नाम पर उदसर्ग किये गये हैं। भास्करकार्या अनेकसे उतना सुवचिसङ्गत मालूम नहीं होता।

नगरमें मुसलमानों अमलके पहले रचित एक अति प्राचीन पृथक् तोरणद्वार है। इसके सिवा एक दूसरे पहिर्द्वारका भी मग्नायशेष दिखाई देता है। उसमें मुसलमानों समयकी निर्माणप्रणाली और स्थापत्य-शिल्पका निदर्शन मिलता है।

प्रस्तुतस्वविधिमें इस स्थानके मग्नायशेष और मन्दिरादिका उत्कर्षण लिपियां देख कर अनुमान किया है, कि वे सब कीर्तियां १६वीं सदीकी बनी हैं। जीर्ण और अस्पष्ट शिलालेख खूब हृदयप्रादी हैं। प्रधान प्रधान मन्दिर और लोहित लिपिका नीचे उल्लेख किया गया है—

प्राचीन शैथकीर्तियोंमें मल्लेश्वर शिवमन्दिर उल्लेख नोय है। इस मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे मालूम होता है, कि ६२८ मल्लशकमें (१६३३ ई०में) श्रीवीर सिंहेने यह मन्दिर बनाया। वीर हम्बोरके वैष्णव-दीक्षा लेनेके बादसे बहुतेरे विष्णुमन्दिर बनाये गये। उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध मन्दिर और उत्कीर्ण शिलालिपिके निर्माण कालका उल्लेख नीचे किया गया है—

(१) राजा रघुनाथ सिंहकर्णक ६४६ मल्लशकमें प्रतिष्ठित राधाश्यामका नवरत्नमन्दिर। (२) ६६१ मल्लशकमें प्रतिष्ठित कृष्णश्यामका मन्दिर। (३) ६६२ मल्लशकमें प्रतिष्ठित कालाचन्द्रका मन्दिर। (४) ६६६ मल्लशकमें प्रतिष्ठित गिरिधर लालका नवरत्न। (५) ६७१ मल्लशकमें राजा दुर्जन सिंहकी प्रधान महिषी द्वारा प्रतिष्ठित सुरलीमोहनका मन्दिर। (६) ६७६ मल्लशकमें राजा वीरसिंह प्रतिष्ठित लालजोका मन्दिर। (७) ६७६ मल्लशकमें राजा वीरसिंह प्रतिष्ठित मदनगोपाल मन्दिर। (८) ६८६ मल्लशकमें वीरसिंह प्रतिष्ठित राधा-कृष्णका गौलमन्दिर। (९) १००० मल्लशकमें राजा दुर्जनसिंह प्रतिष्ठित मदनमोहनका मन्दिर। (१०) १०३२ मल्लशकमें राजा गोपालसिंहके समय स्थापित राधागोविन्दका सौधरत्न। (११) १०४० मल्लशकमें राजा गोपालसिंहका स्थापित महाप्रभु चैतन्यदेवका मन्दिर। (१२) १०४३ मल्लशकमें राजा श्रीकृष्णसिंहकी महिषी द्वारा प्रतिष्ठित राधामाधवका मन्दिर। (१३) १०६४ मल्लशकमें राजा चैतन्यसिंहका प्रतिष्ठित राधा-प्रथमका मन्दिर।

इसके सिवा विष्णुपुरके प्राचीन मग्नायशेषके मध्य सूत्र्यप्रराशमञ्ज अति प्रसिद्ध है और इसकी गठनप्रणाली अति आश्चर्यजनक है।

विष्णुपुराण (सं० क्र०) ७) व्यासप्रणीत महापुराणभेद। यह पुराण अठारह पुराणोंमें एक है। पुराण देखा।

विष्णुपुरो (सं० खी०) १ वैकुण्ठधाम। (पु०) २ प्रथम-कसामेद। ये वैकुण्ठपुरो नामसे भी प्रसिद्ध हैं। तोर-भुक्तिमें इनका घर था तथा मदनगोपालके ये शिष्य थे। भगवद्भक्ति, रत्नावली, भागवतामृत, चाणक्यविवरण और हरिमन्त्र-कल्पलता नामक चार ग्रन्थ इन्हींके बनाये हैं।

विष्णुपुरो गोस्वामी—विष्णुभक्तिरत्नावली नामक वैष्णव ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रायः काशीमें रहा करते थे, इस कारण पुरुषोत्तमसे स्वयं जगन्नाथदेवने उन्हें श्लेष कर एक दूतके हाथ कहला मेजा था, 'पुरो! मैंने समझ लिया, कि मुक्तिमुक्तिकी आशासे काशीमें ही आपने डेरा डाला। मैं अर्धविस्मयित बनचारी हूँ, मेरी इच्छा है, कि एक बार आपके दर्शन करूँ।' भयतपत्सल भगवान्का यह वारसत्यपूर्ण आदेश सुन कर पुरोने बड़े हर्षसे उत्तर दिया, "मैं भुक्ति, मुक्ति, गया, काशी, मथुरा, वृन्दावन कुछ भी नहीं समझता। आप भी कौन हैं और आपका तत्त्व क्या है, यह भी मुझे मालूम नहीं, परन्तु जिस दिनसे 'जगन्नाथ कृष्ण' यह नाम मेरे कानोंमें घुसा है, तभीसे उस नामकी भाजाके हृदयमें धारण कर लिया है। अभी स्वयं प्रभुने जब मुझे अपनी शरणमें बुलाया है, तब एक बार श्रोत्ररणके दर्शन अवश्य कर आऊंगा।" इस घटनाके बाद विष्णुपुरो स्वप्रणीतविष्णुभक्तिरत्नावली ग्रन्थकी साथ ले पुरुषोत्तम गये तथा जगन्नाथदेवके दर्शन कर उन्होंने उनके पादपद्ममें वह ग्रन्थ समर्पण कर दिया। (मकमाल)

विष्णुप्रिया (सं० खी०) विष्णोः प्रिया। १. विष्णुकी पत्नी, लक्ष्मी। २. तुलसीवृक्ष। ३. चैतन्यदेवकी स्त्री।

विष्णुप्रतिष्ठा (सं० खी०) विष्णुमूर्तिसंस्थापन। गोमिला-चाट्याकृत विष्णुपूजन और शैवायन-रचित विष्णु प्रतिष्ठा नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ इनके बनाये मिलते हैं।

विष्णुभक्त (सं० खी०) विष्णोर्भक्तः। विष्णुका भक्त, वैष्णव।

विष्णुभक्ति (सं० स्त्री०) विष्णो भक्तिः। भगवद्भक्ति, भगवत्सेवा।

विष्णुभट्ट—राजा विष्णुभट्ट नके पालित एक ब्राह्मण।

विष्णुभट्ट—कुछ प्राचीनग्रन्थकारोंके नाम। १ नियन्ध-चन्द्रोदयके प्रणेता, रामकृष्णसूरी अटकेड़के पुत्र। २ स्मृतिरचनाकरके रचयिता। विदुरनगर इनका जन्म स्थान था। त्रिषभट्ट इनके पिता थे। ३ पुरुषार्थविग्ता-मणिके रचयिता।

विष्णुभक्त (सं० स्त्री०) विष्णुयुक्त (गायत्री)।

(पंचविंशत्यां १३३।१)

विष्णुभक्तो (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (कथासरित् सा०)

विष्णुभक्तो—तैरभुपतके अन्तर्गत नदीभेद।

(भविष्यत् सं० ४८।२६)

विष्णुभक्त (सं० पु०) विष्णुपूजाविषयक ग्रन्थ।

विष्णुमन्दिर (सं० स्त्री०) विष्णुगृह, वह मन्दिर जिसमें विष्णुमूर्ति स्थापित हो।

विष्णुमय (सं० स्त्री०) विष्णुस्वरूप, विष्णुसे अभेद।

विष्णुमाया (सं० स्त्री०) विष्णुमाया। परमेश्वरकी अघटनघटनपट्टीयसी अविद्याजगित विशेष अथवा तद् चिदात्मः देवी दुर्गा। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० अ० ५४ अ०)

विष्णुमित्र कुमार—ऋक्षप्रातिशाख्यभाषाके प्रणेता। उवटने इन्हें उषत प्रथका आदि रचयिता बनाया है। इनके पिताका नाम देवमित्त था।

विष्णुमिश्र—सुषुप्तमकरन्द नामक पद्मनाभ दत्तकृत सु-पद्मन्याकरणकी टीका और रूपनारायणरचित सुषुप्तमम-माससंग्रहटीकाके प्रणेता।

विष्णुयतोन्द्र—गुरुपरम्परा और पुरुषोत्तमचरितके प्रणेता।

विष्णुयज्ञस् (सं० पु०) विष्णु व्यापक यज्ञो यस्य नारायणस्य गितृत्वादेश्यास्य तथायत् यद्वा विष्णुना प्रदीतप्रजन्मना यज्ञो यस्य। १ ब्रह्मयज्ञके पुत्र, माथी अथवा कदिकदेवके पिता। (कथिपु० ३० अ०) २ एक पण्डित। ये पुण्य-सूत्रमाप्यके प्रणेता अज्ञातशत्रुके शिष्य थे।

विष्णुयामल—कद्रयामलोक एक तन्त्रग्रन्थ।

विष्णुस्थ (सं० पु०) विष्णो स्थः। १ विष्णुका स्थान्दत। २ विष्णुका वाहन, गरुड।

विष्णुसद्वन्ध (सं० स्त्री०) १ एक प्राचीन पौराणिक-

ग्रन्थ। हेमाद्रिरचित व्रतखण्डमें इसका उल्लेख है। २ तन्त्रभेद।

विष्णुराज (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (वारनाथ)

विष्णुरात (सं० पु०) विष्णुना रातः रक्षितः। राजा परोक्षितका एक नाम। कहते हैं, कि द्रोणपुत्र अश्व-त्थामाने इन्हें गर्भमें ही मार डाला था, पर भूमिपुत्र होने पर भगवान् विष्णुने इन्हें फिरसे जिला दिया, इसीसे इनका नाम विष्णुरात हुआ है। (भारत भाष्य० ७० अ०)

विष्णुराम—परिभाषाप्रकाशके प्रणेता।

विष्णुराम सिद्धान्तवागोश—प्रायश्चित्तन्यासदर्शी और श्राद्धतन्त्रादर्शके रचयिता। ये जयदेव विद्यावागोशके पुत्र और कविचन्द्र भट्टाचार्यके पीत थे।

विष्णुलिङ्गो (सं० स्त्री०) वसिष्ठाका पक्षी, शंकर।

विष्णुलोक (सं० पु०) विष्णुपुर, वैकुण्ठपुरी।

विष्णुयत् (सं० स्त्री०) विष्णुना सह विद्यमानः। विष्णुके साथ विद्यमान। (श्रृक् ८।१५।१४)

विष्णुवल्लभा (सं० स्त्री०) विष्णोर्वल्लभा। १ तुलसी। २ अग्निशिखापुत्र, कलिहारी।

विष्णुवाहन (सं० स्त्री०) विष्णु वाहयति स्थानांतरं नयति विष्णु-गिञ्च-रुसु। गरुड।

विष्णुवाह्य (सं० पु०) विष्णुर्वाह्योऽस्य। गरुड।

विष्णुवृद्ध (सं० पु०) गोत्रप्रथर्नक प्राचीन ऋषिभेद। बहुवचनमें उनके दशधरका बोध होता है।

(भाष्य० भी० १२।२।२)

विष्णुशक्ति (सं० स्त्री०) विष्णोः शक्तिः। १ लक्ष्मी। (राजतर० ३।३६३) २ राजपुत्रभेद। (कथासरित्)

विष्णुगर्भम् (सं० पु०) १ तांत्रिक आचार्यभेद। शक्ति-रत्नाकरमें इनका उल्लेख है। २ पञ्चतन्त्र नामक प्रसिद्ध संस्कृत उपाख्यान ग्रन्थके रचयिता। ये ५ वीं सदीमें विद्यमान थे तथा अपने प्रतिपालक किसी हिन्दू राजाके पुत्रके नोतिकथाका उपदेश देनेकी कामनासे पण्डित-वर्त्ते यह ग्रन्थ सङ्कलन किया था। ६ठी सदीमें इसका पहली भाषामें अनुवाद हुआ। पीछे उसी ग्रन्थके आधार पर ८वीं सदीके अवदल्ला विम्-मोकावगने अरबी भाषामें तथा ९वीं सदीके कदिकोने पारसी भाषामें लिखा। कदिकोने ग्रन्थानुवादके पारिध्रमिकस्वरूप ८०

हजार विरहम सिका पाया था। इसके बाद प्रीक, द्विष्ट, आदि पाश्चात्य भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ था।

पञ्चतन्त्र देखो।

३ वनोत्सर्गके प्रणेता। ४ एक हिन्दू दार्शनिक। पञ्चपुराणमें इनका प्रसङ्ग है। उडोमाके एकाग्रकाननमें इन्होंने जन्म लिया था। पीछे कामगिरिमें जा कर ये पस गये। इनका धर्ममत व्यासदेवके मत जैसा है। इनके रचित एक स्मृति और पुष्कराविषयक ग्रन्थ मिलते हैं। यह स्मृतिग्रन्थ तथा प्रसिद्ध विष्णुस्मृतिग्रन्थ एक ही था नहीं, कह नहीं सकते।

विष्णुशर्मन् दीक्षित—संस्कारप्रदीपिकाके रचयिता।

विष्णुशर्मन् मिश्र—कर्मकौमुदी और महाद्वयपद्धतिके रचयिता।

विष्णुशास्त्रिन्—१ कण्वसंहिता होम नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ एक प्रसिद्ध संन्यासी। संन्यासाश्रम अवलम्बनके बाद ये 'माधवतीर्थ' नामसे परिचित हुए। ये आनन्दतीर्थके अनुशिष्य थे अर्थात् शिष्यानुक्रमसे इनका स्थान तीसरा था। ये १२३१ ई०में जीवित थे।

विष्णुशिला (सं० स्त्री०) विष्णुनां अधिष्ठाता शिला। गाल-प्राम शिला। ये कलि अर्द्धके दश हजार वर्ष तक पृथिवी पर रह कर पीछे अन्तर्हित होगी। (मेघतन्त्र ५म प्रकाय)

विष्णुशृङ्खल (सं० पु०) योगविशेष, श्रवणाद्वादशी। श्रवणा नक्षत्रसंयुक्त द्वादशी यदि एकादशीके साथ संपृष्ट हो, तो वैष्णवमतसे उसे विष्णुशृङ्खलयोग कहते हैं। इस योगमें यथाविधान उपवासादि करनेसे विष्णुसायुज्यकी प्राप्ति होती है अर्थात् उस जायको फिर जन्म नहीं पड़ता। (मत्स्यपु०)

विष्णुभुत (सं० लि०) विष्णुदेव श्रूयात्। १ एक प्रकारका आशीर्वाद-वचन, जिसका जन्मिप्राय है, कि यह सुन कर विष्णु तुम्हारा मंगल करें। २ ऋषिभेद।

(पा ६।२।४८)

विष्णुसंहिता—एक प्रसिद्ध स्मृतिसंहिताका नाम।

विष्णुसरस (सं० स्त्री०) तीर्थभेद। (वराहपु०)

विष्णुसर्वज्ञ (सं० पु०) आचार्यभेद। (सर्वदर्शनसं०) ये सर्वज्ञविष्णु नामसे भी परिचित हैं। ये सायणके मुक्त हैं।

विष्णुसहस्रनामन् (सं० स्त्री०) १ विष्णुका सहस्र नाम (पञ्चपुराण) २ उस नामका एक ग्रन्थ।

विष्णुसूक्त (सं० स्त्री०) ऋग्वेदीय सूक्तग्रन्थभेद।

विष्णुसूत्र (सं० स्त्री०) विष्णु कथित एक सूत्रग्रन्थ।

विष्णुस्मृति—एक प्राचीन स्मृतिग्रन्थ। यहव्यस्यप, पैठानसि आदिने इस ग्रन्थका उल्लेख किया है। १३२२ ई०में नन्दपण्डितोंने केशववैजयन्ती नामसे इसको एक टीका लिखी है। वर्तमान कालमें गद्यविष्णुस्मृति, वृद्धिष्णुस्मृति, लघुविष्णुस्मृति और वृद्धविष्णुस्मृति नामक चार ग्रन्थ देखे जाते हैं।

विष्णुस्वामिन् (सं० पु०) १ वैष्णवधर्मप्रवर्तक आचार्यभेद। २ सर्वदर्शनसंग्रहके रसेश्वरदर्शनीक एक आचार्य। ३ मागधतपुराणटीकाके रचयिता। ४ काश्मीरस्थ विष्णुमूर्तिभेद। (राजतर० ५।६६)

विष्णुहिता (सं० स्त्री०) १ तुलसीवृक्ष। २ मरुचक, मरुमा।

विष्णुहरि—एक प्राचीन कवि।

विष्णुसख (सं० पु०) विष्णुका उत्सव।

विष्णुवङ्कितस—समरकामदीपिकाके प्रणेता।

विष्णुची (सं० पु०) पक्षी, चिडिया।

विष्णुधर्मस् (सं० लि०) स्वर्ध सङ्घर्षे वि-स्पर्धा असुन्। १ स्वर्ग। (शुक्लपत्र० १।५।५ महीश्वर) २ निर्गमत्सर, मात्सर्यहीन, जिसे किसी प्रकारका मत्सर न हो। (शुक्ल ५।२।३२) ३ विविध स्वर्धा। (शुक्ल ५।२।७।४ सायण) ४ स्वर्धाविहीन, प्रगल्भरहित। (शुक्ल १।१।३।६)

विष्णुश् (सं० पु०) वि स्पश् क्विप्। विशेष प्रकारसे बाधाजनक, अच्छी तरह रोकनेवाला। (शुक्ल १।१८।६।६)

विष्णुपित (सं० स्त्री०) व्यापित, व्याप्तविगिष्ट, बहुत दूर तक फैला हुआ। (शुक्ल ७।६।७)

विष्णुलिङ्गक (सं० लि०) १ विष्णुलिङ्ग, अग्निकणा। २ सूक्ष्म चटकिका। यह विषप्रतिषेधक होता है।

विष्णुकार (सं० पु०) वि-स्फुर गिच् अच्, अच् आत् पत्यम्। धनुर्गुणाकर्षण शब्द, धनुषको टंकार।

विष्णुलिङ्ग (सं० पु०) स्फुलिङ्ग, अग्निकणा।

(मागधत ३।२।५०)

विष्य (सं० लि०) विषेण व्यध्य-विष-यत् (नीबोधभेति।

पा ४.४।६१) १ विष्यं द्वारा वधोपयुक्त, जो विष दे कर मार डालने योग्य हो । (अमर) विषेण क्रीतः विषाय हित इति या (उगवादिभ्यो यत् । पा ३।१।२) २ विष्य द्वारा क्रीत, जो विष दे कर खरीदा गया हो । ३ विष्यके लिये हित, विष्यके पक्षमें मङ्गलदायक ।

विष्यन्द् (सं० पु०) क्षरण, वहना ।

विष्यन्द्क (सं० पु०) १ विष्वग्जनकारी, क्षरणकारक । २ जनपदभेद ।

विष्यन्दन (सं० क्ली०) क्षरण, कर्णत ।

विष्यन्दिन् (सं० त्रि०) क्षरणशील ।

विष्य (सं० त्रि०) हिंन्न, खीकनाक ।

विष्यक् (सं० त्रि०) विषुं अक्षतीति विषु-अन्च्-क्विप् । १ इतस्ततः विचरणशील, इधर उधर घूमनेवाला । (क्री०) २ विषुव । विषुव देखो ।

विष्यकुपंर्णा (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुईं आँवला ।

विष्यकस्तेन (सं० पु०) १ विष्णु । (अमर) २ विष्णुका निमालवधारी । ये चतुर्भुज हैं, हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभता हैं । इनका वर्ण रक्तपिङ्गल है, बड़ा दाढ़ी मूँछ है और मस्तक पर जटा विराजित है । ये श्रेष्ठ पद्म पर बैठे हैं । चन्द्रविन्दुयुक्त स्वरान्त पवर्गत्ततीय अर्थात् 'धं' इस वोजमन्त्रसे पूजा करनी होती है । (काशिकापु० पृ२ अ०) ३ तयोदश मनु । (मत्स्यपु० ६ अ०)

विष्णुपुराणके मतसे ये १४वें मनु हैं । ४ महादेव । (भा १।१।७।५४) ५ ऋषिभेद । ६ राजभेद । ७ प्रसादक पुत्रभेद । (मागवत ८।२।२।२५) ८ गन्धर्वके पुत्रभेद । (हरिवंश) विष्वक्सेनकान्ता (सं० स्त्री०) विष्वक्सेनरूप कान्ता प्रिया । १ लक्ष्मी । (मेदिनी) २ वाराहीकन्द । ३ त्राय-माणा लता ।

विष्वक्सेना (सं० स्त्री०) प्रियंघु, फणिनी ।

विष्वग्जन (सं० क्ली०) विषुवा अक्षरं । इतस्ततः भ्रमण-शीलकी गति, इधर उधर घूमनेकी क्रिया ।

विष्वगश्च (सं० पु०) पृथुके पुत्रभेद । (भारत भादिपर्व)

विष्वगीड (सं० क्ली०) सांभभेद । (पद्मविश्रा० १०।१।११)

विष्वग्व्योतिस् (सं० पु०) शतजित्तुके पुत्रभेद ।

विष्वग्युञ्ज (सं० त्रि०) विष्वक्-युञ्ज-क्विप् । इतस्ततः गमनशीलके साथ युक्त ।

विष्वालोप (सं० पु०) १ सर्वस्वान्त । (भारत १।२।८।१५ नीलकण्ठ) (त्रि०) २ सर्वथा बाधाप्राप्त ।

विष्वग्वात सं० पु०) सर्वगामी वायु ।

(वैचिरीय स० ४।३।३२)

विष्वगवायु (सं० पु०) विश्वगवायु देखो ।

विष्वञ्च (सं० त्रि०) १ सर्वव्यापी, तमाम घूमनेवाला ।

(शुक् २।३।२) २ सर्वप्रकाशक, सर्वोका विकास करने-वाला । (शुक् १।१।४।३१)

विष्वण (सं० क्ली०) १ भोजन । (जटाधर) २ शब्द करना । (घोषदेव)

विष्वणन (सं० क्ली०) विष्वण्य देखो ।

विष्वद्रोचोन (सं० त्रि०) सर्वदा गमनशील, हमेशा चलने-वाला ।

विष्वद्रञ्च (सं० त्रि०) विश्वगश्चतीति विष्वच्-अन्च्-क्विन् । सर्वलगामी । (शुक् ७।२।११)

विष्याच् (सं० त्रि०) १ विविधगतियुक्ति, विविध चाल-वाला । (पु०) २ अक्षुरभेद । (शुक् १।१।७।६)

विष्याण (सं० पु०) भक्षण, खाना । (हेम)

विस (सं० क्ली०) मृणाल, कमलकी नाल । (अमर)

विसंक्ष (सं० त्रि०) संक्षारहित, बेहोश ।

विसंक्षान्ति (सं० स्त्री०) अत्युच्चगति, अपरिमेयगति । (छक्तिविस्तर)

विसंक्षिन (सं० त्रि०) संक्षारहित, बेहोश ।

विसंवाद (सं० पु०) विस-सं-वद-घञ् । १ विप्रलम्भ । (अमर) २ विरोध । ३ वैलक्षण्य, घेमेल । ४ प्रतारणा, डाँट उपट । (त्रि०) ५ विलक्षण, अद्भुत ।

विसंवादक (सं० त्रि०) १ प्रतिबन्धक, विरोधक । २ प्रतारक ।

विसंवादन (सं० क्ली०) विसंवाद ।

विसंवादिता (सं० स्त्री०) विसंवादकारोका भाव या धर्म ।

विसंवादिन् (सं० त्रि०) विसंवादोऽस्त्यस्येति विसं-वाद्-इति । विसंवादिक देखो ।

विसंशय (सं० त्रि०) संशयरहित, निःसंशय ।

विसंश्रुल (सं० त्रि०) विश्रुल, अथयस्थित ।

विसर्पण (स० त्रि०) सम्यक् विस्तृत, चारों ओर जानेवाला ।

विसंस्थित (स० त्रि०) असमाप्त, असम्पूर्ण ।

(काव्यायनभौ० ११।१।२७)

विसंस्थूल (स० त्रि०) विरंभद्वारा देखो ।

विसकण्ठिका (स० खी०) विससदृशाः शुभ्राः कण्ठो यस्या इति बहुप्रोही कन् टापि अत इत्वम् । क्षुद्र-जातीय वक्रपक्षी, एक प्रकारका छोटा बगला । (अमर)

विसकुसुम (स० क्ली०) विसस्य कुसुमम् । कमल, पद्म ।

विसप्रस्थि (स० पु०) पद्मका मूल, भसींह ।

विसङ्कट (स० पु०) विगिष्टः सङ्कटो यस्मात् । १ सिंह । २ इन्दुदोक्ष या हिं गोट नामक वृक्ष । (त्रि०) ३ विशाल, वृहत् ।

विसङ्कुल (स० त्रि०) जटिल, बहुत कठिन ।

विसज (स० क्ली०) विसं मृणालं तस्माज्जायते इति जन-ड । पद्म, कमल ।

विसञ्चारिन् (स० त्रि०) विषय सञ्चरणशाल, विषय-भोगी ।

विसदृश (स० त्रि०) विपाक, कर्मका विपरीत फल ।

विसदृग (स० त्रि०) १ विपरीत, विरुद्ध । २ विलक्षण, विभिन्न रूप । (शूक १।१२३।६)

विसनाभि (स० खी०) विसं नामिकृत्पत्तिस्थानं यस्याः । १ पश्चिमी, कमलिनी । २ पद्मको नाल । ३ पद्मसमूह । (भिका०)

विसन्धि (स० पु०) १ सन्धिग्रहित, दो या अनेक पदोंका मिलनाभाव । २ विशिष्ट सन्धि, शरीरके सन्धि-स्थानका विश्लेष ।

विसन्धिक (स० त्रि०) त्रिसकी सन्धि नहीं होती, जिन दोनोंका मिलन नहीं होता ।

(काव्यादर्श ३।१२५-१२६)

विमग्नाह (स० त्रि०) सन्नहनशून्य, कवच आवि युद्धसज्जासे रहित । (मनु ७।६१)

विसपीराम—मिथिलाका एक छोटा गांव । यहां कवि विद्यापतिका जन्म हुआ था । विद्यापति देखो ।

विसप्रसून (स० क्ली०) पद्म, कमल ।

(विशुपादपथ ५।२८)

विसम (स० त्रि०) असमान ! वि पम देखो ।

विसमता (स० खी०) असमानता । विपमता देखो ।

विसमाप्ति (स० खी०) विसम्-आप-क्ति । असमाप्त, असम्पूर्ण ।

विसर (स० पु०) विसरतीति वि-सृ-अच् पचादित्यात् । १ समूह । (अमर) २ प्रसर, विस्तार ।

विसरण (स० क्ली०) विसार, फैलाव ।

विसर्ग (स० पु०) वि-सृज-घम् । १ दान । (शु ५।८६) २ त्याग । (महाभा० १।३२।३) ३ मलनिर्गम, मलका त्याग करना । ४ सूर्यका एक अयन । ५ मोक्ष । (ह्यायुष) ६ विशेष । सृष्टि । ७ प्रयोग । ८ प्रलय ।

९ वियोग, विछोह । १० दांति, चमक । ११ परि-त्यक्त वस्तु । १२ व्याकरणके अनुसार एक वर्ण जिसमें ऊपर नीचे दो विश्वु (ः) होते हैं और जिनका उच्चारण प्रायः अर्द्ध ह के समान होता है । १३ वर्षा, गरद और हेमन्त ये तीनों ऋतुएँ । (त्रि०) १४ विसर्जानोय । १५ विश्व ।

विसर्गचुम्बन (स० क्ली०) नायकका वह चुम्बन जब वह रात्रिके शेषमें प्रियासे वियोग होता है ।

विसर्गिक (स० त्रि०) आकर्षणकारी, खींचने वाला ।

विसर्गिन् (स० त्रि०) १ उत्सर्गकारी, दान करनेवाला । २ आकर्षणकारी, खींचनेवाला । (भारत शान्तिपर्व)

विसर्जन (स० क्ली०) वि-सृज ल्युट् । १ दान । २ परित्याग, छोड़ना । ३ संप्रेषण, किसीको यह कह कर भेजना कि 'तुम जा कर अमुक कार्य करो ।' ४ विदा होना, चला जाना । ५ पौडुशोपचार पूजनमें अन्तिम उपचार ; अर्थात् आवाहन किए गये देवतासे पुनः स्व-स्थान-गमनकी प्रार्थना करना, देव प्रतिमा भसाना । ६ समाप्ति, अन्त । (पु०) ७ यदुर्वंशियोंमेंसे एक । (त्रि०) विशेषण सृज्यते इति कर्मणि ल्युट् । ८ उत्पा-दित ।

विसर्जानोय (स० त्रि०) वि-सृज-अनीयर् । १ दानोय, दान करने योग्य । २ परित्यज्य, छोड़ने लायक । ३ विसर्ग अर्थात् (ः) ऐसा चिह्न ।

विसर्जयित्यथ (स० त्रि०) विसर्जन करने योग्य, छोड़ने लायक ।

विसर्प (सं० त्रि०) वि सृज-यत् । विसर्पानांय, विसर्पानं करने योग्य ।

विसर्प (सं० पु०) वि-सृप-घञ् । रोगविशेष । पर्याय—विसर्पि, सचिचामय । (राजनि०) चरकमें इस रोगका विषय यों लिखा है—अग्निदेशके पृष्ठने पर आते यने कहा था, कि यह रोग मानवशरीरमें विविध प्रकारसे सर्पण करता है, इस कारण इसका नाम विसर्प हुआ है । अथवा परि अर्थात् सर्पण करनेके कारण इसे परिसर्प भी कहते हैं ।

कुपित वातादिदोषसे यह रोग सात प्रकारसे उत्पन्न होता है । रक्त, लसोका, त्वक् और मांस ये चार दूष्य हैं तथा वायु, पित्त और कफ ये तीन कुल मिला कर सात धातु विसर्प रोगकी उपादान सामग्री हैं । रक्त-लसोकादि चार धातु और वातादि तीन दोषोंसे यह रोग उत्पन्न होता है, इस कारण इसको सप्तधातुक भी कहते हैं ।

निदान—लघण, अम्ल, कटु और उष्णवर्ण रस अति-मात्रामें सेवन, अम्ल, दधि और दधिके जलसे प्रस्तुत शुक, सुरा, सौवीर, विरुत और बहुपरिमित मद्य, शाक, आद्रकादि द्रव्य, विदाहिद्रव्य, दधिकूर्चिका, तक्रकूर्चिका और दधिका अन्न सेवन, दधिरुत शिखरिणी सेवनके बाद पिण्डालुकादि सेवन, तिल, उड्ड, कुलथी, तैल, पिष्टक तथा प्राग्य और आनूपमांस सेवन, अधिक भोजन, दिवानिद्रा, अपक्वद्रव्यभोजन, अध्यशन, क्षतवन्ध प्रपतन, रीद्रानि आदिका अतिसेवन, इन सब कारणोंसे वातादिदोषवलय दूषित हो कर यह रोग उत्पन्न करते हैं ।

अहिताग्नी स्वर्णिके उक्त प्रकारसे दूषित धातापत्तादि रसरक्तादि पदार्थोंको दूषित कर शरीरमें विसर्पिन होता है । विसर्प शरीरका वहिःप्रदेश, अन्तःप्रदेश और वहिरन्तः, इन दोनों प्रदेशोंको आश्रय कर उत्पन्न होता है । ये यथाक्रम बलवान् हैं अर्थात् वहिश्रित विसर्प-को अपेक्षा अन्तःश्रित तथा उससे वहिरन्तः देशों प्रदेशाश्रित विसर्प भयङ्कर होता है । वहिर्मांश्रित विसर्प साध्य, अन्तर्मांश्रित कृच्छसाध्य तथा उभयाश्रित विसर्परोग असाध्य होता है ।

घातादिदोषवलय भीतरमें प्रकुपित हो कर अन्तर्विसर्प,

वहिर्भागमें प्रकुपित हो कर वहिर्विसर्प तथा वहिरन्तः देशों स्थानमें प्रकुपित हो कर वहिरन्तर्विसर्प रोग उत्पादन करता है ।

वक्षोमर्माका उपघात, मल, मूत्र और श्वास, प्रश्वासादिका मार्गसंरोध अथवा उनका विघटन, तृष्णाका अतियोग, मलमूत्रादिका वेग-वैषम्य तथा अग्निबलका आशुक्षय, इन सब लक्षणों द्वारा अन्तर्विसर्प सिधर करना होता है ।

इसके विपरीत लक्षण द्वारा अर्थात् वक्षोमर्माका अनुपघात, मलमूत्रादिमार्माका असंरोध और अविघटन, तृष्णाका अनतियोग, मलमूत्रादिवेगकी अयथावत्प्रवृत्ति तथा अग्निबलका असंक्षय ये सब वहिर्विसर्पके लक्षण हैं । उक्त सभी प्रकारके लक्षण तथा निम्नोक्त असाध्य लक्षण दिखाई देनेसे उसको अन्तर्वद्विविसर्प कहते हैं । जिसका निदान बलवान् है तथा उपद्रव्य अति कष्टप्रद है और जो विसर्प ममागत है वह रोगोंके प्राण लेते हैं ।

वातविसर्पका लक्षण—रुक्ष और उष्णसे अथवा वक्ष और उष्ण वस्तु अधिक परिमाणमें खानेसे वायु सञ्चित और प्रदुष्ट हो रसरक्तादि द्रव्य पदार्थोंको दूषित कर यह रोग उत्पादन करती है । उस समय भ्रम, उपताप, पिपासा, सूचीवेधवत् और शूलनिखातवत् वेदना, अङ्गकुटन, उद्रे एन, कम्प, ज्वर, तमक, कास, अस्थि-भङ्गवत् और संचिभङ्गवत्-वर्णना, विषण्णता, वमन, अर्घचि, अपरिपाक, दोनों नेत्रका आकुलत और मज्जलव्य तथा गात्रमें पिपीलिका-सञ्चरणवत् प्रतीत होती है । शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, वह स्थान काला वा लाल हो जाता है, वहां सूजन पड़ती है तथा अत्यंत वेदना हाती है । इससे सिवा उस स्थानकी श्रान्ति, सङ्कोच, हर्ष, स्फुरण ये सब लक्षण दिखाई देते हैं । इससे रोगी अत्यंत पीड़ित हो जाता है । यदि चिकित्सा न की जाय, तो वहांका चमड़ा पतला हो जाता है और लाल या काली फुंसियां निकल आती हैं । ये सब फुंसियां जलदो फट जाती हैं तथा उससे पतला विषम दाहण और अल्पस्त्राव निकलता है । रोगीका मलमूत्र और अधोवायु रुक जाती है ।

पित्तज विसर्पका लक्षण—उष्ण द्रव्यके सेवन तथा

विदाही और अम्लद्रव्यादि भोजन द्वारा पित्तसञ्चित और प्रकुपित हो कर रक्तादि दोषोंको दूषित और घमनियोंके पूर्ण कर देता है तथा पीछे पित्तजनित विसर्प रोग उत्पादन करता है। उस समय ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वमि, अर्चचि, अङ्गमेद, स्वेद, अंतर्बहि, प्रलाप, शिरो-वेदना, दोनों नेत्रकी आकुलता, अनिद्रा, अरति, भ्रम, शीतल वायु और शीतल जलमें अत्यमिलाप, मलमूत्र हरिद्रावर्ण और शीतदर्शन ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, वह स्थान पोला, नीला, काला वा लाल हो जाता है। वहां सूजन पड़ती है और काली वा लाल फुंसियां निकलती हैं। ये सब फुंसियां जल्द पक जाते हैं। उनसे पित्तानुरूप वर्णका स्राव होता है तथा वहां जलन देतो है।

कफज विसर्प लक्षण—स्वाधु, अम्ल, लघण, स्निग्ध और गुणपाक अग्निमोजन तथा विधानिद्रा द्वारा कफ सञ्चित और प्रकुपित हो कर रक्तादि दूष्यवस्तुएषको दूषित तथा समस्त अङ्गोंमें विसर्पण कर यह रोग उत्पादन करता है। उस समय शीतज्वर, गात्रगुरुता, निद्रा, तन्द्रा, अर्चचि, अपरिपाक, मुखमें मधुर रसका अनुभव, मुखस्राव, वमि, आलस्य, स्तेमिर्य, अग्निमांघ और क्षीणत्व उपस्थित होता है। शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विसर्पण करता है, वह स्थान स्फीत, पाण्डु, या अनतिरिक्त वर्णका, चिकना, स्पर्शशक्तिहीन, स्तब्ध, गुद और अक्षेपेदनायुक्त होता है। ये फोड़े कृच्छ्रपाक, चिरकारो, घनत्वक् और उपलेपविशिष्ट होते हैं और फूट जाने पर उनसे सफेद पिच्छिल तंतुविशिष्ट दुर्गन्ध गाढ़ा स्राव हमेशा निकलता रहता है। उन फोड़ोंके ऊपर सख्त फुंसियां निकलती हैं। इस विसर्प रोगमें रोगीका त्वक्, नख, नयन, यवन, मूल और मल श्वेतवर्णका हो जाता है।

घातपैक्षिक आग्नेयविसर्प—अपने अपने कारणसे वायु और पित्त अत्यंत कूपित तथा बलवान् हो कर शरीरमें शीघ्र ही आग्नेय विसर्प रोग उत्पादन करता है। इस रोगमें रोगी अपने सारे शरीरको मानो देवीप्यमान अङ्गारामि द्वारा वा ताप सप्रकता है तथा वमि, अति-

सार, मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमक, अर्चचि, अस्थिभेद, संधिभेद, तृष्णा, अपरिपाक और अङ्गमेदादि उपद्रवसे अभिभूत होता है। यह विसर्प जिस जिस स्थानमें विसर्पण करता है, वह स्थान पुष्पी हुई आगके अंगारको तरह काला अथवा अत्यन्त लाल हो जाता है। वहां जलन होती है और फोड़े निकल आते हैं। जल्द फैल जानेके कारण यह विसर्प मर्मस्थान (हृदय) में अनुसरण करता है। इससे मर्म जब उपतप्त होता, तब वायु अति बलवान् हो सभी अंगोंको भङ्गवत् पीड़ासे अतपंत पीड़ित कर डालती है, उस समय खान नहीं रहता, हिक्का, श्वास और निद्रानाश होता है, रोगी यंत्रणके मारे छटपटाता है। पीछे अति क्लिष्ट हो कर सो जाता है। कोई कोई बड़ी मुश्किलसे होशमें आता है और प्राण लेा बैठता है। यह विसर्प असाध्य है।

कर्ममाध्य विसर्प—अपने अपने प्रकापनके कारण कफ और पित्त प्रकुपित और बलवान् हो कर शरीरके किसी एक स्थानमें कर्ममाध्य विसर्प रोग उत्पादित करता है। इस विसर्पमें शीतज्वर, शिरःपीडा, स्तेमिर्य, अङ्गवासाद, निद्रा, तन्द्रा, अशब्देय, प्रलाप, अग्निमांघ, दीर्घत्व, अस्थिभेद, मूर्च्छा, पिपासा, श्रोतःसमूहकी लिप्तता, रगिद्रियोंकी जड़ता, अपषव मलमेद, अङ्गविक्षेप, अङ्गमर्द, अरति, और शीतसुषय ये सब लक्षण दिखाई देने हैं। यह विसर्प प्रायः आमाशयसे उत्पन्न होता है, किन्तु आलसो हो कर आमाशयसे किसी एक स्थल में उदरता है। वह स्थान लाल, पोला वा पाण्डुवर्णका, पीडाकाकोर्ण, मेचकाम (कृष्णवर्ण), मलिन, स्निग्ध, बहुउष्णान्वित, गुय, सितमितवेदन, शोथविशिष्ट, गभीर पाक, स्रावरहित और शीघ्र क्लेशयुक्त होता है। उस स्थानका मांस धीरे धीरे सिक्न, क्लिन्न और पृतियुक्त होता है। इस विसर्पमें वेदना कम होती है, किन्तु इससे संज्ञा और स्मृति जाती रहती है। विसर्पाकांत स्थान रगइसे अवकोर्ण होता है, दवानसे कीचडका तरह बैठ जाता है, उस स्थानसे मांस सह कर गिरता है। शिरा और स्नायु बाहर निकल आती है तथा क्षत स्थानसे सुईकी-सी गंध निकलती है। यह विसर्प रोग भी असाध्य है।

प्रग्निविसर्प—स्थिर, गुरु, कौटन, मधुर, शीतल, स्निग्ध आदि अग्निव्यन्दो अन्नपानका सेवन और भ्रमराहित्य आदि कारणोंसे श्लेष्मा और वायु कुपित होती है। यह प्रकुपित और प्रदुद्ध बलवान् श्लेष्मा और वायुरकारि द्रव्य चतुष्टयको दूषित कर प्रग्निविसर्प उत्पादन करते हैं। प्रदुष्ट कफसे जब वायुका रास्ता बन्द हो जाता है, तब यह वायु उस अयोरोधक कफको हो अनेक भागोंमें विभक्त कर कफाशयमें धीरे धीरे प्रग्निमाला उत्पादन करता है। यह प्रग्निमाला कृच्छ्रपाक है अर्थात् प्रायः नदा पकती और कृच्छ्रसाध्य हो जाती है।

इस प्रकार दूषित वायु रक्तवद्गुल अर्थात् रक्तको दूषित कर यदि शिरा, स्नायु, मांस और त्वक्में प्रग्निमाला उत्पादन करे तथा यह प्रग्निमाला तीव्र वेदनाम्यित, स्थूल, सूक्ष्म वा घृत्ताकार और रक्तवर्ण हो, तो उनके उपचारसे ज्वर, अनिद्रा, हिक्का, श्वास, कास, शोथ, मोह, घेघर्ण, अर्धचि, अपरिपाक, प्रसेक, वमि, मूर्च्छा, अङ्गभङ्ग, निद्रा, शरति और अवसाद आदि उपद्रव्य उपस्थित होते हैं। यह विसर्परोग भी असाध्य है।

साश्रिपातिकविसर्प—जो सब निदानसम्भूत, सर्धा-लक्षणयुक्त तथा सम्पूर्ण शरीर व्याप्त, सर्वधातुगन, आशुकारी और महाविप्लवनक होता है वही सान्निपातिक विसर्प है। यह भी असाध्य है।

धानज, पित्तज और कफज विसर्प साध्य है। यथा-विधान इनको चिकित्सा करनेसे उपकार होता है। अग्निविसर्प और कर्दमाध्य विसर्प पहले असाध्य कह कर उल्लिखित हुआ है, किन्तु इन दोनों विसर्पोंमें यदि ज्वरादि उपद्रवरहित वक्षोमर्म अनुपहत, गिरा, स्नायु और मांस क्लिन्नमाल हो अर्थात् मांस सड़ कर न गिरे तथा उस सबवले शिरा और स्नायु न दिखाने देती हो, तो इसमें यथाविधान स्वस्त्ययनादि दैव चिकित्सा और उपयुक्त औषधादि द्वारा साधारण चिकित्सा करनेसे आराम भी हो सकता है। प्रग्निविसर्प भी यदि ज्वरादि सारादि उपद्रवरहित हो, तो उसकी भी चिकित्सा की जा सकता है।

चिकित्सा—आमदापान्वित विसर्पके कफस्थानगत

होनेसे लङ्घन, घमन, तिषतद्रव्य सेवन तथा दक्ष और शौनल प्रलेपन प्रशस्त है। आमदापान्वित विसर्प पित्तस्थानगत होनेसे भी इसी प्रकार चिकित्सा करनी होगी, उसमें विरेचन और रक्तमोक्षण विशेष हितकर है। आमदापान्वित विसर्प पक्वाशयसम्भूत है। उसमें रश्मि और दोष रहनेसे पहले विकक्षण क्रिया करार्य है। क्योंकि आमदाप रहनेसे उसमें स्नेहनक्रिया हितजनक नहीं है। चातौलवण और पित्तोद्वण विसर्प यदि लघु-दोष हो, तो तिषतकघृत हितकर है, किन्तु यदि पैत्तिक विसर्प महादापान्वित हो, तो उसमें विरेचन प्रशस्त है। विसर्प रोगका दोषसञ्चय अधिक परिमाणमें रहनेसे घृतप्रयोग करार्य नहीं है, यहाँ विरेचन कराना आवश्यक है। क्योंकि घृतपानसे वे सञ्चितदोष उपस्तब्ध हो त्वक्, मांस और रश्मिको सड़ा देने हैं। अतएव बहु दोषाक्रान्त विसर्परोगमें विरेचन और रश्तमोक्षण विशेष प्रशस्त है। कारण, रश्मि ही विसर्पका आश्रयस्थान है। कफज, पित्तज और कफपित्तज विसर्परोगमें मुलेटो, नोम और इन्द्रजीके कपायमें मैनाफलका कलक मिला कर और पोछे उसे पिला कर घमन करावे। परबलके पत्ते और गोमके काढ़े या पीपलके काढ़े अथवा इन्द्रजीके काढ़ेमें मैनाफलका सूर मिला कर उसके गान द्वारा घमन कराने से भी उपकार होता है। मदनकदकादियोग भी इस रोगमें विशेष उपकारी है।

हाथ और पाँवका रश्मि खराब होनेसे पहले रश्मिको निकाल डाले। रश्मि यदि चातान्वित हो, तो शूङ्गु द्वारा, पित्तान्वित हो, तो जोंक द्वारा और यदि कफान्वित हो, तो अलावू द्वारा रश्तमोक्षण करे। शरीरके जिस स्थानमें विसर्प होता है, उस स्थानकी नजदीकवाली गिराओंको जल्द घेघ कर डालना चाहिये। क्योंकि यदि रश्मि नहीं निकाला जायेगा, तो रश्मिसे त्वक्, मांस और स्नायुका भी छेद उत्पन्न होगा। फोष्टादिदोष उभ्रत प्रकारसे हटा दिये जाने पर भी यदि त्वक् और मांसको आश्रय कर कुछ दोष रह जाये, तो वह अद्वयोपाक्रान्त विसर्प निर्माश्रत बाह्यक्रिया द्वारा प्रशमित होगा।

गूलरकी छाल, मुलेटो, पद्मकेशर, नोलोत्पल, नागेश्वर और प्रियंगु इन्हें एक साथ पोस घृतयुक्त कर

प्रलेप दे। घटयुक्तकी नई जड़, केले-धूम्रका गूदा और कमल नाल इन्हें एकल पोस शतधीत घृताप्लुत कर प्रलेप दे। पीतचन्दन, मुलेठी, नागकेश्वर पुष्प, कैवल्य-मुस्तक, चन्दन, पद्मकाष्ठ, तेजपत्र, त्वसकी जड़ और प्रियङ्गु इनका प्रलेप भी घृतयुक्त कर देनेसे लाम पहुँचता है। अनन्तमूल, पद्मकेश्वर, त्वसकी जड़, नीलोत्पल, मज्जीठ, चन्दन, लोथ और हरीतकी इनका भी प्रलेप हितकर है। खमकी जड़, रेणुक, लोथ, मुलेठी, नीलोत्पल, दूर्वा और घृता इन्हें घृताक कर उसका भी प्रलेप देनेसे विशेष उपकार होता है।

दूर्वाके रसमें घृतपाक कर उसे विसर्पके ऊपर लगानेसे विसर्पक्षत सूख जाता है। दाहदरिद्राका त्वक, मुलेठी, लोथ और नामेश्वर इनके चूर्णका प्रयोग करनेसे विसर्प-क्षत सूख जाता है।

परवलका पत्ता, नोम, त्रिफला, मुलेठी और नीलोत्पल इनके काढ़ेकी सेक देने अथवा इनके काढ़े वा चूरेके साथ घृतपाक कर उसे क्षतस्थानमें लगानेसे वह शीघ्र ही सूख जाता है। विसर्पके क्षतकी जगह जब कोई कायादि सिञ्चन करना होता है, तब प्रलेपको हटा देना आवश्यक है। यदि धो डालने पर भी प्रलेप अच्छी तरह न उठे, तो बार बार बहुत पतला प्रलेप देना उचित है। किन्तु कफज विसर्पमें घना प्रलेप देना होगा। प्रलेप अंगुष्ठके तिहाई भागके समान मोटा रहेगा। वह अति स्निग्ध वा अतिरुक्ष, अत्यन्त गाढ़ा वा अत्यन्त पतला न हो, समभावमें उसका रहना उचित है। वासी प्रलेप भूल कर भी नहीं देना चाहिये। जो प्रलेप एक बार दिया जा चुका है, उसका फिरसे प्रयोग करनेसे विसर्पका पलेद और शुशुनि उपस्थित होता है। खल्लण्डमें प्रलेप द्रव्यका चूर्ण रख कर पुलटिशकी तरह प्रलेप देनेसे विसर्पक्षत खिन्न होता है तथा उससे रुवेद जन्म पीड़का और कर्षण उत्पन्न होता है। खल्लण्डके ऊपर प्रलेप देनेसे जो दोष होता है, प्रलेपके ऊपर प्रलेप देनेसे भी वही दोष होता है। यदि अति स्निग्ध वा अतिद्रव प्रलेप प्रयुक्त हो, तो उस प्रलेपके चमड़ेमें अच्छी तरह मश्लिष्ट न होनेके कारण उससे दीपकी सम्पर्क शान्ति नहीं आती। यदि अत्यन्त

पतला प्रलेप दिया जाय, तो वह सूखने पर फट जाता है और औषधके रसका असर करते न करते वह सूख जाता है। अत्यन्त पतला प्रलेप देनेसे जो सब दोष होने हैं निःस्नेह प्रलेपसे भी वही दोष प्रचल भावमें दिखाई देने हैं। क्योंकि, निःस्नेह प्रलेप सूख कर व्याधिकी पीडित करता है।

लङ्घित विसर्प रोगको चोनी और मधुसंयुक्त रुद्ध, मन्थ अथवा मधुर द्रव्यसे प्रस्तुत मन्थ, अनार और आंवले आदिके रसमें थोड़ा खट्टा डाल उस मन्थको पीने दे। सिद्धजलमें सत्तुकी घोल कर वह मन्थ फालसे, किशकिश और खजूरके साथ पिलानेसे भी लाम पहुँचता है। लङ्घित विसर्प रोगको जी और भातका तृण तट्यार कर उसे घृतादि स्नेहके साथ पीने तथा उसके परिपाक होने पर मूँग आदि जूसके साथ पुराने चावलका भात खानेको देना चाहिये।

इस रोगमें परिपक्व पुरातन रक्तशालि, श्वेतशालि, महाशालि और पछिक तण्डुल (साठीधानका भात) विशेष लाभदायक है। जी, गेहूँ, चावल इनमेंसे जो जिसके लिये सम्भव है उसके लिये वही उपकारी है। विदाहजनक अन्नपान, क्षीरमत्स्यादि विरुद्ध भोजन, दिवानिद्रा, क्रोध, व्यायाम, सूर्य, अग्निसन्ताप तथा प्रचल वायुसेवन ये सब इस रोगमें विशेष उपकारी हैं।

उक्त प्रकारकी चिकित्सामें शीतवहुल चिकित्सा पैत्तिक विसर्पमें, रुक्षवहुल चिकित्सा श्लैष्मिक विसर्पमें, स्नेहिक चिकित्सा यातिक विसर्पमें, घातपित्तप्रशमन चिकित्सा अग्निविसर्पमें तथा कफपित्तप्रशमन चिकित्सा कर्दमक विसर्पमें प्रशस्त है।

रक्तपित्तोन्मथन प्रणिधिविसर्पमें प्रथमतः रुक्षण, लङ्घन, पञ्चवक्त्रकका परिपेक और प्रलेप, जलीका द्वारा रक्तमोक्षण, कपाय और तिक द्रव्यके काथ प्रयोगमें वमन और विरेचनका व्यवहार करे। वमन और विरेचन द्वारा ऊर्ध्व और अर्ध संशुद्ध होता है तथा जलीका द्वारा रक्त अवसेचित होनेसे जब रक्त और पित्तको प्रशान्ति होती है, तब पातश्लेष्महर योगोंका प्रयोग करना उचित है।

ग्रन्थ विसर्पमें शूलवत् वेदना रहनेसे उष्ण उदकारिक

(जो गेहूँ आदि को जलमें पारु कर लेह जैसा जो पदार्थों को बनाता है, उसका नाम उत्कारिका है) घृतादि स्नेहयोगसे सिग्ध कर उसके द्वारा या घेजकरादि द्वारा प्रलेप दे। दशमूलके काढ़े और ककका तेलमें पारु कर उण्या-वस्थामें वह तेल देना होगा। असमंघका ककक, सुश्री मूलोका ककक, बहुरकरझकी छालका ककक या चहेडेका ककक, इन्हें कुछ गरम करके प्रथिविसर्पण प्रलेप दे। दन्तोमूलको छाल, वितामूलको छाल, भूहरका दूध, अरुषन का दूध, गुड़, मिलायेका रस और होराकसीस, इनके काथका कुछ उरण करके प्रलेप देनेसे उपकार होना है।

पूर्वोक्त औषध द्वारा यदि ग्रन्थिविसर्पण प्रनामित न हो, तो क्षार द्वारा तप्तशय या तप्तलीह द्वारा दाह करे। भयघ्न प्रणशोषोक्त प्रणको पकानेवाली औषधसे उसे उत्पलित करना होगा। इसमें दाह वहिगमनोन्मुख रक्तको पका कर पुनः पुनः मोक्षण करे। रक्तके अपहृत होने पर घातश्लेष्मनाशक शिरोविरेचन घूमप्रयोग और परिमदन करना होगा। इस पर भी यदि दोषका प्रशाम न हो, तो प्रणशोषोक्त पाचन औषधकी व्यवस्था करे। दाह और पारु द्वारा ग्रन्थिके प्रक्षिप्त होनेसे वाह्य और अन्तर्गत शोषण तथा दोषण औषधके प्रयोग द्वारा प्रणशोषण चिकित्सा करनी होगी। कमलानीबू, विडङ्ग और दाहहृदिद्राका छिलका, इनके ककक द्वारा चोगुने जलमें तैल पाक कर ग्रन्थिघ्न पर प्रयोग करे। अमिहित योगों तथा रक्तमोक्षणके प्रति विशेष दृष्टि रख कर काम करना होगा। विशेष विशेष दोष और उपद्रव दिलाई देने पर जिससे उनकी शान्ति हो, सर्वदा उसकी चेष्टा करनी चाहिये। (चरकसंहिता चिकित्सतत्त्वा०)

भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि कुछ और अन्यान्य प्रणशोषणों में जो सब घृत और औषधादि कहे गये हैं, विसर्पणमें उनका प्रयोग भी विशेष उपकारी है। विसर्पणके पकने पर शब्द द्वारा पोषको निकाल कर प्रणकी तरह चिकित्सा करनी होती है।

विसर्पञ्जर (सं० पु०) विसर्पणोपशम्यञ्जर, वह उजर जो विसर्पणोपशम्य शंकासे होता है। विदर्प शब्द देखो।

विसर्पण (सं० क्लृ०) विस्व-व्युत् । १. प्रसरण, फैलना। २. स्फोटकादिका उत्सर्ग, फोड़े आदिका फूटना। ३. निक्षेप, फैलना, डालना।

विसर्पि (सं० पु०) विसर्प, विसर्पणम् । (राजनि०) विसर्पणा (सं० स्त्री०) रोगमेद, विसर्प ।

(बृहत्संहिता ३५१५)

विसर्पिणा (सं० स्त्री०) श्वेतसुहालता, शबनी, यवनिक्ता ।

विसर्पिन् (सं० त्रि०) विस्व-णिनि । १. विसरण शील, फैलनेवाला। २. विसर्पणयोग्य ।

विसर्पन् (सं० क्लृ०) विसरणशील, फैलनेवाला । (शूक. प्रा५२१६)

विसल (सं० क्लृ०) विसर्प लातीतिवाचकः । पक्ष्य, वृक्षका नया पत्ता ।

विसर्प (सं० पु०) विसर्पक रोग । (अथर्व, १६।१२७, १ वाष्य)

विसर्पक (सं० पु०) विस्व-वेषो ।

विसर्वर्मन् (सं० क्लृ०) वर्त्मगत नेत्ररोगमेदः । लक्षण—जिम नेत्ररोगमें त्रिदोषके प्रकोपके कारण वर्त्मके बाहर (पलकों पर) शोष उत्पन्न होता है, भीतरमें बहुत-सा छोटी छोटी फुसियाँ होती हैं और उन फुसियोंसे मल की तरह स्राव निकलता है उसे विसर्वर्मन् कहते हैं। (सु. भूत उत्तरतन्त्र० ३ अ०)

विसर्वासद (सं० पु०) जाविही ।

विसर्पणा (सं० स्त्री०) जाविती ।

विसर्पणक (सं० पु०) कमलकन्द, भसीब ।

विसर्पणी (सं० स्त्री०) कारणभाव ।

विसर्प (सं० पु०) विशेषेण सरतोति स्तृणाती, (व्यभि-मत्त्वबलेविति वक्तव्यं । पा ३।३।१७) इत्यस्य धात्किंफापत्य धञ् । १. मत्स्य, मछली। २. निर्गम, निकलना। (शूक. १।७६।१) ३. विस्तार, फैलाव। ४. प्रवाद, बहाव। ५. उत्पत्ति, पैदाइश।

विसर्पि (सं० त्रि०) विगतः सारार्थ्यस्मात् । सारधिग्न्य, विना सारधिका ।

विसर्पिणा (सं० स्त्री०) विसर्पिण्यङोप् । १. भाषणों, मन्ववर्ण । २. प्रसरणशील, फैलनेवाली ।

विसर्पित (सं० त्रि०) विस्व-णिच् क । प्रसारित, फैला हुआ ।

विसर्पिन् (सं० त्रि०) विस्व-णिनि । प्रसारणशील,

फैलनेवाला। पर्याय—विसुत्वर, विसुमय, प्रसारी।

(अमर)

विसिती (सं० स्त्री०) विसमस्त्यस्याः इति विसु पुषक
रादिभ्यश्च इति इति, डोप् । १ पक्षिनी, कमलिनी ।

२ मृणाल, कमलकी नाल ।

विसिर (सं० त्रि०) विशिर, गिरारहित ।

विसिस्मापयिषु (सं० लि०) विसमापयितुमिच्छुः नि
स्मि-णिच्-सन्-उ । विसमय करनेमें इच्छु ।

विसुकल्प (सं० पु०) राजपुत्रभेद । (तारनाथ)

विसुकृत् (सं० त्रि०) मन्दकारी, अनिष्ट करनेवाला ।

विसुकृत (सं० त्रि०) अधर्म, पाप ।

विसुख (सं० लि०) विगतं सुखं यस्य । सुखरहित ।

विसुन (सं० लि०) विगतपुत्र, सुतरहित ।

विसुष्टु (सं० त्रि०) सुष्टुद्विहीन, वन्धुररहित ।

विसुचिका (सं० स्त्री०) विशेषेण सूचयति मृत्युमिति
विसूच-अच् स्त्रियां डोप् विसूचि स्वार्थे कन् दाप्
रोगभेद, अजीर्ण रोग, इंजेके बीमारी ।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि अजीर्णके कारण किसीके
पेटमें यदि सूईके छुमनेकी तरह वेदना होने लगे, तो ऐसी
अवस्थाको लोग विसुचिका कहते हैं । जो व्यक्ति आयु
वैदशास्त्रमें व्युत्पन्न और परिमित आहार करने हैं, वे
कभी विसुचिका रोगसे पीड़ित नहीं होते । मध्याह्निक
के सम्बन्धमें अनिष्ट व्यक्ति, इन्द्रियपरवश और पशुकी
तरह अपरिमितभोजी, ये सब व्यक्ति ही उक्त रोगसे
आक्रान्त देखे जाते हैं ।

आमाजोर्ण आदि रोग अतिशय बड़े ज्ञाने पर उसीसे
विसुचिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं । अर्थात् आमा-
जोर्णसे विसुचिका, विदग्धाजोर्णसे बलसक और
विष्टग्धाजोर्णसे विलम्बिका रोग होता है ।

अत्यन्त जलपान, विषमाशन, क्षुधा और मलमूत्रादि-
का वेगधारण, दिनमें सोना और रातका जागना इन
सब कारणोंसे मानवोंका नियमित, लघु, अथवा यथा-
कालभुक्त आहार भी परिवर्षव नहीं होता । पिपासा,
भय और क्राधपीडित, लुम्बेरोगी, वैषम्यस्त और अस्वा-
कारी इन लोगोंका भी भुक्त अन्न सम्पर्करूपसे परिपाक
नहीं होता । किन्तु उपर्युक्त कारणोंमेंसे अतिमात्रमें

भोजन करना ही अजीर्ण रोगका मूल कारण है । पशु ही
तरह अपरिमित भोजन कर अनिष्ट व्यक्ति विसुचिका
आदि रोगोंके मूलोद्भूत अजीर्ण रोग द्वारा आक्रान्त होते
हैं । अजीर्णसे विसुचिका रोग होता है । आमाजोर्ण
रोगोंके शरीर और उदर गुद, विषमिषा, कपोल और चक्षु-
गोलकमें शोथ और उद्वृगारशाहुत्व होता है । किन्तु मधुर
आदि जो कुछ द्रव्य आहार किया जाये, उनसे कुछ भी
अम्ल नहीं उत्पन्न होता ।

लक्षण—विसुचिका रोगमें मूर्च्छा, अतिशय मलमेद,
घमन, पिपासा, शूल, भ्रम, हाथ और पैरमें क्लिन्नक्लिनी
और जंभाई, दाद, शरीरको विवर्णता, कम्प, हृदयमें
वेदना और शिरमें दर्द होता है ।

उपद्रव अनिद्रा, ग्लानि, कम्प, मूत्ररोध और
अज्ञानता ये पांच विसुचिकाके प्रधान उपद्रव हैं । इन
सब उपद्रवोंके होनेसे समझता चाहिये, कि रोगोंके
जीवनकी आशा बहुत कम है ।

अष्टि लक्षण—इस रोगमें यदि दांत, ओष्ठ और
नख फाले हो जायें, आंखें नीचे घस जायें और मोह,
घमन, क्षीणस्वर हो और सन्निधां शिथिल हो जायें,
तो समझना चाहिये, कि रोगोंके बचनेकी आशा कम
है । (भावप्रकाश अजीर्णरोगाधिकार)

आयुर्वेदशास्त्रमें यह रोग अजीर्ण रोगके अन्तर्भूत
माना गया है । यह अग्नि भयङ्कर और आशुप्राणनाशक
और संक्रामक है । अतिष्टि, वायुकी आर्द्रता या
स्थिरता, अतिशय उष्णवायु, अपरिष्कृत जलवायु,
अतिरिक्त परिधम, आहारका अनियम, भय, शोक या
दुःख आदि मानसिक यत्नणा, आंघक जनपूर्ण स्थानोंमें
रहना, रातका जागना, शारीरिक दुर्बलता आदि इस
रोगके निदान कहे जा सकते हैं । उदरामय नहीं हो
कर भी जिन सब व्यक्तियोंके विसुचिका रोग हो जाता
है, उनमें पहले शारीरिक दुर्बलता, भङ्गमें कम्पन, मुखशो-
की विवर्णता, उदरके ऊर्ध्वभागमें वेदना, कानमें तरह
तरहका शब्द ध्वन, शिरागुंडा और शिरका घुमेंना
आदि पूर्वरूप प्रकाशित होते देखे जाते हैं ।

इसका साधारण लक्षण युगपद् भेद और घमन है ।
इसीसे इसको भेदघमन भी कहते हैं । पहले देा पर

वार उदरामयकी तरह मलभेद और भुक्त द्रव्यका घमन हो कर पीछे पय या चावलके पषाथकी तरह अधया सड़े कुग्दड़के जलकी तरह जलवत् भेद और जल घमन होता रहता है। कर्मा कभी रषतवर्णका भेद होता देखा जाता है। उदरमें घेदना होती है। मलका घू सड़ो मछलीकी घू की तरह होती है और मूत्ररोग हो जाता है। क्रमशः नांखें नीचेकी घंस जाती हैं, होंठ मोले, नाक ऊंचो, हाथ पैरमें फिनफिनी और घे शीतल और संकुचित, उंगलीका अग्रभाग गहरा होना, शरीरका रषतशून्य हो जाना और घर्मयुक्त, नाड़ीक्षीण, शीतल, फिर भी वेगयुक्त तथा क्रम क्रमसे लुप्त, हिचकी, दाकण पिपासा, मोह, स्रम, प्रलाप, अवर, अन्तर्दाह, खरभङ्ग, अस्थिरता, अनिद्रा, शिरोघूर्णन, शिरमे दद, कर्नोमे विविध शब्दका सुनाई देना, नांखोंसे विविध प्रकारके विषयारूपदर्शन, जिह्वा और निश्वासकी शीतलता और दांतोंका बाहर निकलना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

चिकित्सा—इस रोगके होते ही इसकी चिकित्सा होनी चाहिये। किन्तु इस रोगमें पहले बलवान धारक औषध सेवन करना उचित नहीं। उससे आपाततः भेद निवारित होने पर भी घमनशुद्धि और उदराध्मान आदि उपसर्ग उत्पन्न हो सकते हैं। और भी कुछ क्षणके लिये भी भेद निवारित हो कर पीछे और अधिक परिमाणसे भेद होनेकी आशङ्का है। इसीलिये पहला अवस्थामें धारक औषध अति अल्प मात्रामें धारधार प्रयोग करना उचित है। अजोर्णताके कारण यह रोग उत्पन्न होनेसे पहले पाचक और मलवधारक औषधका प्रयोग करना आवश्यक है। नृपवल्लभ आदि औषध अजोर्णजनितविसृचिकामें बहुत उपकारक हैं।

दूमरी चिकित्सामें पहले दारचीनी, पौन तोला, कंकुम पौन तोला, लवङ्ग १/४ माने भर, छोटी इलायचीके दामे १) आने भर अलग अलग उत्तम रूपसे चूर्ण कर २५ मोले ईलकी चीनीमें अच्छी तरह मिला दे। सब मिला कर जिनना घमन होगा, उसके तीन भागोंका एक भाग फ्रुट्यङ्गी चूर्ण मिला कर रोग और रोगीके बलके अनुसार, १०से ३० रत्ती तक मात्रामें धारधार सेवन कराना चाहिये। २० वर्षके युवकसे ५० वर्ष तकके वृद्ध रोगी

को २० रत्ती इस चूर्णके साथ आध रत्ती अफीम मिला कर सेवन कराया जा सकता है। इसके कम उन्नके रोगीको अफीम न दे कर केवल चूर्ण ही दिया जाना चाहिये। रोगीके उन्न और रोगके प्राबल्यके अनुसार औषधकी आधी चौथाई मात्रा दो जा सकती है। अफीम आधी रत्ती, मरिचचूर्ण चौथाई रत्ती, हींग चौथाई रत्ती, और कपूर १ रत्ती एकत्र मिला कर एक-एक मात्रा एक बार भेद या दस्तके बाद खिलाना चाहिये। दस्त बन्द हो जाने पर दो तीन दिन तक सवेरे शाम तक तीन मात्रा सेवन कराना चाहिये। अफीमका आसव भी इस रोगका प्रशस्त औषध है। ५से १० घून्ड तक मात्रामे विवेचना कर शीतल जलके साथ प्रयोग करना चाहिये। मुस्ताघ घटी, कर्पूररस, प्रहणीकवाटरस आदि और अतीसार और प्रहणी रोगोक प्रबल अतीसारनाशक औषध भी इस रोगमें प्रयुक्त होती हैं। इन सब औषधोंके व्यवहारके समय थोड़ा मात्रामें मृतसञ्जीवनी सुरा जलमें मिला कर सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। किन्तु घमन वेग या हिचकी रहनेसे सुरा न दे सोचु पाव करायें। इससे हिनकी, घमन, पिपासा और उदराध्मान निवारित होते हैं। एक छटाक इन्द्रिय एक सेर जलमें सिद्ध कर जब एक पाव रह जाय, तो उतार ले। इसका एक तोला आध घण्टे पर सेवन कराना चाहिये, इससे भी विशेष उपकार होता है।

अपाङ्गका मूल जलके साथ पीस कर सेवन करनेसे विसृचिका रोगकी शान्ति होती है। करेलेके पत्तेके काथमें गोपलचूर्ण डाल कर सेवन करनेसे विसृचिका रोग आरोग्य होता है और जठरान्नि उद्दीपित होती है। बेलसोंठ, सोंठ इन दो चीजोंका पषाथ या इतके साथ कटफलका पषाथ मिला कर सेवन करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

के रोकने तथा पेशाव करानेका उपाय—अरयगत कै होते रहने पर एक पसर धातका लाया एक तोला चीनीमें मिला कर डेढ पाव जलमें सिंगा दे। कुछ देरके बाद छान ले और उसके जलमें खसकी जड़ मूल १ तोला छोटी इलायची आध तोला और सौंफ आध तोला पीस का दस्त बन्द घिसा हुआ १ तोला मिला देना।

चाहिये। इस जलकी आध तोला मात्रा आध घण्टे पर पान करनेसे चमन बन्द हो जाती है। सरसों पीस कर पेट पर लेप देनेसे की बन्द हो जाती है। और चमन रोगमें जो औषध बताई गई है, उनका भी प्रयोग किया जा सकता है। पेशाब करानेके लिये पण्डकुचा, हिमसागर या लोहाच्युर नामक पत्तेका रस एक तोला मात्रासे सेवन कराना चाहिये। पण्डकुचाका पत्ता और सोरा एकल पीस कर घस्तिप्रदेशमें भी प्रलेप करने से पेशाब उतरता है। हाथ पैरमें भिन्नभिन्नके निवारणके लिये तारपीनका तेल और सुरा एकल मिला कर अथवा सरसोंके तेलके साथ कपूर मिला कर मलना चाहिये। केवल सौंठका चूर्ण मलनेसे भी उपकार होता है। कुट, नमक, फांती और तिल तैल एकल पीस कर जरा गरम कर लगानेसे भिन्नभिनी छूट जाती है।

हिक्का या दिचकी निवारणके लिये सनिपात उबरोक्त हिक्कानाशक यशोंका व्यवहार करना चाहिये। अथवा कदलीके मूलके रसका नश्य लेना या सरसों पीस कर मेरुदण्डमें प्रलेप देना अथवा तारपीन तेरु उदरमें लगाना चाहिये।

रोगी जब विपासासे कातर हो, तब कपूर मिश्रित जल अथवा वरफका जल पान कराना चाहिये। अन्तिम कालकी हिमाङ्ग अवस्थामें सूचिकाभरण देनेके पहले मृगनाभि (कस्तूरी) और मकरध्वज प्रयोग करनेसे भी विशेष उपकार होगा।

इस रोगकी चिकित्साके विषयमें सर्वदा सनके रहना आवश्यक है, क्योंकि इसमें कब किस समय कौन अनिष्ट होगा उसका अनुमान किया जा नहीं सकता। रोगीका घर, शय्या और पहने हुए वस्त्र आदि साफ रहने चाहिये। घरमें कपूर, धूप और गन्धकका धूँआ करते रहने चाहिये। रोगीका मल-मूत्र बहुत दूर पर फेंकना चाहिये। (सुभुत)

पधवापध—रोगको प्रबल अवस्थामें उपवासके सिवा और कुछ भी पथ्य नहीं। पीडाका ह्रास होने पर रोगीको भूख लगने पर सिंघाड़ाका भाटा, अराकूट या सामुद्राना जलमें पका कर देना उचित है। अतीसार रोगीको ययागू भी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है।

इन सब पथ्योंमें कागजी निवृका रस दिया जा सकता है। पीडा सम्पूर्णरूपसे निवारित है अधिक क्षुधा होनेसे पुराने चावलका भात, गललीका शोरयाँ और लघुपाच द्रव्य सेवन करना चाहिये।

निषिद्धकर्म—सम्पूर्णरूपसे स्वास्थ्य लाभ न होने तक किसी तरहका गुणपाक द्रव्य, घृत या घृतपक्व भोजन, मैथून, अग्नि और धूप, व्यायाम या अन्याय्य श्रमजनक कार्य न करने चाहिये। पहले ही कहा गया है, कि अजीर्ण ही इस रोगका मूल कारण है। अतएव जिन सब चीजोंके भोजन करनेसे अजीर्ण रोग हो सकता है, उनका परित्याग करना चाहिये।

एलोपैथिक मतसे इसे कालेरा मर्वास कालेरा स्थायज मोडिका, एमियाटिक कालेरा, मैलिगनेट कालेरा या एपिडेमिक कालेरा कहते हैं।

यह अत्यन्त सफ़ामक और सांघातिक पीडा है। कभी कभी एक स्थानमें आरम्भ हो बहुतेरे स्थानोंमें फैल जाता है और कभी कभी सम्यक् रूपसे प्रादुर्भूत होते देखा जाता है। चमन और जलवत् मलत्यागके साथ शरीरका ठण्ड हो जाना ही इसका प्रधान लक्षण है। पहले यह रोग मध्य एशियामें प्रादुर्भूत हुआ। इसी-लिये इसका एक नाम एशियाटिक कालेरा है। यह सुभुतकी विस्त्रुचिकासे पृथक् है। भारतमहासागरके द्वीपसूत्रमें भी यह ग्रहामारीके रूपमें कई जताष्टियोंसे दिखाई देना आ रहा है। ईलीमन १७७०में जताष्टीके शेष भागमें यह पहले भारतमें प्रकट हुआ। इसके बाद कमशा नाना देशोंमें फैल गया, किन्तु अन्याय्य स्थानोंकी अपेक्षा एकमात्र निम्न वङ्ग ही इस रोगकी लीलास्थान कहनेसे कोई अत्युक्ति न होगी। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष महीनेसे चैत तक यहाँके लक्ष लक्ष अधिवासी हम विस्त्रुचिका रोगसे प्राण खो बैठते हैं।

सन् १७७० ई०में पहले चिकित्सक हम रोगके नामसे अनभिज्ञ थे। यह पहले भारतवर्षमें प्रकशित हुआ। इसके बाद सारे भूमण्डलमें फैला है। सन् १७८२ ई०में भारतवर्षीय सेनाध्यक्ष सर आण्डरकूटकी सेनामें यह रोग फैला था। इसके बाद सन् १८१७ ई०में चट्टग्राम, मैमनसिंह और यशोहर जिलेमें यह रोग

प्रादुर्भूत हुआ। उसी समयसे इस पीड़ाके सम्बन्धमें विशेष आलोचना हो रही है।

सन् १८२३ ई०में यह एशिया माइनर और एशिया-के कसराज्यमें फैला। इसके बाद सन् १८३० ई० तक एशियाके अन्य किसी स्थानमें इसकी प्रयत्नता दिखाई न पड़ी। शोपोक वर्धमें फारसमें और कास्पिय सागरमें उपकूल देशमें और वहाँसे यूरोपके कसी साम्राज्योंमें विस्वचिन्ताने विस्तृत हो कर मध्य और उत्तर यूरोपको जनशून्य कर दिया। पीछे १८३१ ई०में यह इङ्ग्लैण्डके सक्सेलैण्ड विभागमें और १८३२ ई०में लण्डन नगरमें कालेराका प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद यह फ्रान्स स्पेन, इटली, उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके प्रधान प्रधान जनपदोंमें फैल गया। सन् १८३५ ई०में उत्तर अफ्रिकाके नीलनदीके किनारेके जिलोंमें पहुंच गया; किन्तु इससे पहले अरब, तुर्क और मिश्र राज्यके अन्त्याय स्थानोंमें इस रोगने अपना प्रभाव फैलाया था। सन् १८३७ ई०में इसने फिर यूरोप महादेशमें प्रकट हो महामारी उपस्थित कर दी थी।

१८४१ ई०को भारत और चीनराज्योंमें विस्वचिन्ता प्रबल प्रकोपसे प्रादुर्भूत हुई। धीरे धीरे यह नाना स्थानोंमें फैल गई। १८४७ ई०को इसका पुनः रुम और जर्मनीसे इङ्ग्लैण्डमें प्रचार हुआ। पीछे वहाँसे फरान्सी गज्य होती हुई यह अमेरिका और वेष्ट-इण्डिज द्वीपमें देखी गई। १८५० ई०को एशियामें कालेरा रोगका प्रादुर्भाव हुआ। धीरे धीरे १८५३ ई०को यूरोपमें रह कर इसने क्रिमिया युद्धमें व्यापृत सेनादल पर अक्रमण कर दिया। इसके बाद १८६५-६६ ई०को यूरोपमें विस्वचिन्ता फिरसे प्रबलभावमें देखी गई थी।

इस पीड़ाका विष मल और घननमें रदता है और मच्छरों द्वारा किसी छाद्य पदार्थके स्पर्श क नेसे अथवा मलकी दुर्गन्धसे श्वास द्वारा देहमें प्रविष्ट हो जाता है। अणुमात्र यह विष पानी दूध वा खानेकी वस्तुमें मिल जानेसे और उसे उदरस्थ करनेसे यह रोग उत्पन्न हो जाता है। डाकुर पदनाकारका कहना है, कि विस्वचिन्ताका मल जमीनमें फेंकने पर जमीनकी गर्मसे यह विषाक्त पदार्थ धारकाकारमें वायुसे मिल जाता और

भूतलसे ऊपर जाता है और स्थानाभरित होता है। दूसरे मतसे यह विष एक तरहका सूक्ष्म उद्भिज्जमाल है। किन्तु डाकुर लुइस और कनिंहम अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा कर उत्तमरूपसे किसी पदार्थका अस्तित्व उपलब्ध नहीं कर सके। हालमें अर्थात् सन् १८८४ ई०में डाकुर फौजने कमावसिन्त्रस नामक एक तरहका सूक्ष्म उद्भिज्ज आविष्कार किया है। उनका कहना है, कि पीड़ाकी कठिन अवस्थामें मलमें बहुसंख्यक वेसिलस दिखाई देते हैं। अंतर्द्वारेसे ये लिथारकुन ग्लेण्ड और एपिथिलियम (एलेमिक फिल्लो) तक प्रवेश करता है। किन्तु अंतर्द्वारेके नोचेके विधानमें दिखाई नहीं देता। डाक्टर हालियरके मतसे उच्छिन्नित व्वाधिमें युरोसिष्ट एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिज्ज अंतर्द्वारोंमें प्रवेश कर वहाँ बहुसंख्यामें पिभक्त हो अंतर्द्वारोंके इपिथिलियल कोशोंको ध्वंस कर देता है अथवा अंतर्द्वारोंको बड़ा देता है। वारंवार मलत्याग होने पर रक्तका जलीयांग निकल जाता है और उससे रक्त गाढ़ा होता है। इस मतके अनुसार विषाक्त पदार्थ पहले अंतर्द्वारोंमें प्रवेश करता है। उनका और भी कहना है, कि निम्नलिखित औषधोंसे उक्त उद्भिज्ज नष्ट हो सकता है। यथा—फेरी सल्फ, कार्बोसिलिक एसिड, पारमेडूनेट आब पोटाश और मलकोहल। डाक्टर जनसन (Dr. Johnson) का कहना है, कि इस पीड़ाका विष पहले रक्तमें प्रवेश करता है और दूधिन रक्तके सञ्चालनके कारण स्नायुमण्डल और स्नाहिक स्नायु (सिम्प्लेटिक नार्भ)की क्रियामें परिवर्तन करता है और उसमें हो अंतर्द्वारोंके भासे मोटर नार्भको अवगतता उत्पन्न होती है। इस तरह अवगतताके कारण सूक्ष्म सूक्ष्म धननिधां और केशिकाओंमें रक्तका जलीय अंग अंतर्द्वारों द्वारा अधिक परिमाणसे निकलता है। इसके बाद और हिमाङ्ग आदि कठिन कठिन लक्षण उपस्थित हो रोगको विमोचिकाग्रय कर देते हैं। इनमें कुस्कुनकी समी केशिकाये संकुचित हो जाती है और रक्तसञ्चालनक्रिया सुचारुरूपसे सम्पादित नहीं होनी। कभी कभी यह पीड़ा महामारीके आकारमें (एपिडेमिक रूपसे) उपस्थित होती है और २०२५ दिनों या एक मास तक प्रबल भावसे रह कर पीछे वायुके किसी

परिवर्त्तनके कारण अकस्मात् अद्भ्य होते दिखाई देती हैं।

विशेषमाधसे पांचविध करनेसे मालूम होता है, कि इस रोगके निम्नलिखित कारण हैं—(१) अति वृष्टि, (२) वायुकी आर्द्रता या स्थिरता, (३) अत्युष्ण वायु, (४) अपरिष्कृत जल और वायु, (५) अतिरिक्त परिश्रम विशेषतः अधिक दूर जाने पर क्लृप्ति, आहारका अनियम, मनकष्ट शोक, द्रिद्रता, जनता और रात्रि जागरण आदि, (६) अधिक उम्र या शारीरिक दुर्बलता, (७) गीड़ित व्यक्तिके समीप रहना, या अधरसे मनुष्योंका आना जाना, (८) नवागन्तुक व्यक्तिका शीघ्र आर्कान होना। फुफ्फुम और अंतर्द्वियों द्वारा यह विपाक पदार्थ देहमें प्रवेश और पूर्ण विकाश पाते हैं।

रोगको अवस्थाके अनुसार रोगीके बहुतेरे शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं। शरीर ठण्डा हो जानेसे मृत्यु होने पर चमड़ा नीलाम और निम्नार्ण कुछ लाल रङ्गका तथा हाथ पैरका चर्म संकुचन हो जाता है। मृत देह शीघ्र हो कड़ी और विकृत हो जाती है। मृत्युके बाद शीघ्र ही उत्ताप कुछ बढ़ जाता है और मृतदेह कुछ देर तक गरम रहती है।

रोगाक्रमणके बाद रक्तसञ्चालनकी क्रियामें विकृति हो जाती है। हृत्पिण्डका वायामें कोटर, धमनो और चर्मकी कैशिका और दक्षिण कोटर, पालमोनरी शिराये और पालमोनरी कैशिकायें रक्तशून्य हो जाती हैं।

२ से ५ दिनों तक और कभी कभी १८ दिनों तक रोग गुस्तावस्थामें रहता है। इस अवस्थामें कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं देता। उक्त अवस्थाके सिवा इस रोगमें निम्नांक और भी चार अवस्थायें प्रकट होती हैं।

(१) आक्रमणावस्था या इनमेन्ट एंज—किसी जगह कालेरा या हैजा होने पर वहाँ बहुत आदिमियोंका उदरामय उपस्थित होता है। उनमें कई आदिमियोंका उदरामय हैजेका रूप ग्रहण करता है। उदरामय न होनेसे रोगके पूर्वका पित्त अन्यान्य लक्षणोंमें दुर्बलता, अङ्गकम्पन, मुखधरो विषर्ण उदरोद्धर्षी देशमें वेदना, कानके भीतर नाना शब्दोंका होना, गिरापीड़ा, गिरका घुमना

आदि कुछ दिनोंके लिये वस्तुमान रह सकती है।

(२) प्रकाश या दस्त और कैकी अवस्था—अङ्गरेजोंमें इनके यथाक्रम डेवलपमेण्ट अवस्था इवाक्यूपेशन एंज कहते हैं। यह पीड़ा प्रायः प्रातःकाल प्रकट होती है। पहले अधिक परिमाणसे दस्त आते हैं और उसमें मल और पित्त देखे जाते हैं। इसके साथ या एक घण्टेके बाद उससे अधिक जलवत् मलत्याग होता रहता है। २३ बार दस्त होनेके बाद इसका रङ्ग बदल जाता है। देखनेमें जलवत् और जरा सादा होता है। अङ्गरेजोंमें जिसको राहस घाटर एन्ड कहते हैं। कभी मल रक्त वर्णका हो जाता है। मलका आपेक्षिक गुणवत् १००५ से १०१० तक और इसके अधक्षेपमें निम्नलिखित चीजें दिखाई देती हैं। जैसे—पोटाश और लवण और थोड़ा प्लवुमेन। एक पाइण्ड मलमें ४ ग्रोन गाड़ अंश रहता है। अणुवीक्षण द्वारा शस्पवत् पदार्थ एपिथिलियेल कोष और कभी कभी एक तरहका सूक्ष्म उद्भिन्न देखा जाता है। इस तरह बाह्य शीघ्र शीघ्र और चारभार होता है। किन्तु मलत्यागमें सामान्य वेदना रहती है। कभी कभी रोगीके उदरोद्धर्षीदेशमें कुछ जलन मालूम होती है। ७८ बार दस्त होनेके बाद वमन चारम्भ होते देखा जाता है। पहले पाकाशयसे भक्षित द्रव्य बाहर निकलता है और उसमें पित्त मिला रहता है। क्रमशः जलवत् अवस्था पांताम तरल पदार्थ और म्यूकास पदार्थ निकलता है। किसी चीजके भक्षण तथा औषधके सेवन करनेके बाद वमनका वेग बढ़ता है। रोगीके अधिक निर्बलता बोध होने लगती है और वह शीघ्र हो जाता है। जलवत् मलत्यागके समय रोगीके क्रमशः हाथ पैरको उंगलियोंमें, उरु देशमें, और पैरके पश्चान्भागमें ऐंठन (Cramps) होने लगती है। कभी कभी उदरकी पेशी तक यह फैल जाता है। रोगीका मुखमण्डल घेंगना रङ्गका या सोसेके रङ्गका हो जाता है। उत्ताप स्वामाधिकसे कम हो जाता, नाड़ी अत्यन्त शीघ्र, अन्यान्य लक्षणोंमें विपासाधिक्य और अस्थिरता रहती है। भेद और प्रवृत्तके अनुसार शीघ्र या कुछ देरसे मृतोय अवस्था उत्पन्न होती है।

(३) हिमाङ्गवस्था या कोलाप्स एंज इस—समय

भी दस्त और कड़े कुछ अंशमें होते रहते हैं। मुख-
मण्डल अत्यन्त संकुचित और धाँहीन दिखाई देता है।
दोनों हाँड नीले वर्ण, बाँखें भीतरमें घंसी और अध-
खुली, नाक ऊँची और सर्वाङ्गमें पसीना निक-
लता रहता है। हाथ पैर संकुचित और रक्त-
शून्य अर्थात् घोषीके हाथकी तरह दिखाई देता है।
उत्ताप बहुत कम हो जाता अर्थात् ९७से ९० डिग्री तक
हो जाता है। नाड़ी अत्यन्त क्षीण और किसी किसी
स्थानमें मालूम भी नहीं होती। रक्तसञ्चालन प्रायः बन्द
हो कर श्वासरुच्छ उपस्थित होता है। किसी शिराके
काटने पर जो सामान्य रक्त दिखाई देता है, वह भी
पहले काले थलकतरेकी तरह गाढ़ा दिखाई देता है,
पीछे वायुस्पर्शसे उज्ज्वलवर्ण धारण करता है।
प्रश्वासवायु शीतल और उसमें कार्बोनिक गैसका भाग
बहुत कम रहता है। कभी कभी श्वासरुच्छ बढ़ता
है और रोगी शीतल वायु प्रदण करनेका आग्रह प्रका-
शित करता है। स्वरमद्ध, अस्थिरता, अनिद्रा, शिरका
घुमना, शिरमें दद, कानोंमें तरह तरहके शब्दोंका होना,
दृष्टिपथमें नाना वस्तुओंका दर्शन और कभी कभी कम्प
उपस्थित होता है। इस अवस्थामें लाला और पाक-
रस आदिका हास दिखाई देता है। जिह्वा शीतल, रोगी
आमहपूर्वक शीतल जलका पान करने तथा बदनके चरों-
का उतार फेंकनेकी इच्छा प्रकाश करता है। अंग
स्पर्श करने पर मृतदेहकी तरह शीतल मालूम होती है।
मलका परिमाण अल्प और इसकी घू सड़ी मछलीका
तरह होती है। मूत्र रुक जाता है। श्वास प्रायः
घर्त्तमान रहता है। किन्तु मृत्युके अथ्यवहित पहले
अचेतनादि दिखाई देती है। स्वाभाविक शरीरमें स्पर्श
द्वारा जो प्रत्यावर्त्तिक क्रिया उत्पन्न होती है, उसकी
कमी होती है। ये सब लक्षण प्रसर होनेसे रोग प्रायः
आरोग्य नहीं होता। श्वासरोध, रक्तसञ्चालनक्रिया
लोप अथवा अचेतन अवस्थामें मृत्यु हो सकती है।

(४) प्रतिक्रियाकी अवस्था या रियाकशन स्टेज—इसमें
रोगीकी मुखश्री और वर्ण क्रमशः स्वाभाविक अवस्थामें
परिवास्ति होते देखा जाता है। नाड़ी और हृत्विण्डकी
क्रिया सबल और शरीर उत्तम होने लगता है। प्रति-

क्रियाकी प्रथमावस्थामें स्पर्श करनेसे चमड़ा गरम
मालूम होता है। किन्तु उस समय भीतरके सब अंगोंके
शीतल रहनेसे थर्ममिटरमें उत्तापकी माला अधिक दिखाई
नहीं देती। निश्वास प्रश्वास निर्वाप्त और सरल
तथा पेशाव निःसारित और पुनरुत्पादित होता है।
अस्थिरता, घमन और लुण्णाका हास होता है। सामान्य
परिमाणसे दस्त होते रहते हैं तथा मलमें पित्त दिखाई
देता है। रोगीका कमी कमी निद्रा घर दशाती है।
पेशावमें सरलता होती है। किन्तु सदा पेशी सुविधा
नहीं रहती। अत्यन्त हिचकी, युरिमिया, मृदुस्वर,
कमी कमी पुनरायभेद, घमन, उदरामय, आमाराग्य,
कर्णमूल और कर्णायातमें क्षत इत्यादि नाना प्रकारके
उपसर्ग दिखाई देते हैं। इनमें प्रधान उपसर्ग युरिमिया
है। अतएव इसका सामान्य वर्णन करना उचित है।
युरिमिया होने पर घमन फिर बढ़ने लगता है तथा मल
सब्ज रंगका हो जाता है। बाँखें लाल लाल हो जाती हैं
प्रनाप, कमरमें दद, अचेतन्य और आक्षेप आदि घर्त्त
मान रहता है। २३ दिनों तक पेशाव न होने पर रोगी
कालकवलमें या टारफायेड अवस्थामें आ जाता है।
युरिमियाका उत्ताप स्वाभाविकरूपे कम हो जाता है।
किन्तु र्युमोनिया, ग्लारिसि, ज्वर आदि उपसर्ग उपस्थित
होने पर उत्तापकी वृद्धि होती है।

प्रकारभेद—(१) मुक्तप्रकार—कमी कमी सामान्य-
भेद और घमन होनेके बाद सहसा हिमाङ्गुवस्था प्राप्त
हो रोगीकी मृत्यु हो जाती है। (२) कालराजनिन डाये-
रिया या कलेरिन—इससे रोगी २४ दिनों तक बारंवार
अधिक परिमाणसे तरल और पाण्डुवर्णका मलटयाग
करता है। सामान्य घमन और कम्प्य घर्त्तमान रहता
है। रोगी इस अवस्थामें आरोग्यलाभ कर सकता है।
या एक तरहके ज्वरसे आक्रान्त हो मृत्युमुद्रमें पतित
हो सकता है। कमी कमी यह यथार्थ ईजेका रूप
धारण कर लेता है। (३) समर डायेरिया या इलिस
कालेरा—इसमें कालेराके सब लक्षण दिखाई देते हैं।
किन्तु इसकी तरह शुक्तर नहीं होता। मल और घमनमें
पित्त दिखाई देता और उदरमें अत्यन्त वेदना रहती है।
सामान्य परिमाणसे मूत्रत्याग होता है। भास्करके

अनिपमसे यह पीड़ा होती है। मृत्युसंख्या अल्प है।

निर्णयतस्व—यह प्रायः अन्य पीड़ाके साथ सम नहीं होता। कभी कभी विपपानजनित रोगके साथ सम हो सकता है। किन्तु ऐसे अवस्थामें मूलमें पित्त रहती है और सामान्य परिमाणसे पेशाब होता है। कभी कभी घनमें आर्सेनिक चूर्ण पाया जाता है।

भोगकाल—२३ घण्टेसे २३ दिन कभी कभी एक सप्ताह तक।

भविष्यफल—सर्वदा गुरुतर, भेदघमनेच्छासे नाड़ी विलुप्त होने पर और मुखमण्डलके किरी विशेष परिचर्चन न होनेसे आरोग्य होनेकी सम्भावना है। कोलाप्स श्रेष्ठमें रेडियल या ब्रकियल घमनो सामान्य भावसे स्पर्शित होनेसे और निःश्वास-प्रश्वासमें अधिक कष्ट न रहने पर आरोग्य होनेकी आशा की जाती है। किन्तु नाड़ीका सम्पूर्ण लोप, अत्यन्त पसीना, साइपेनासिस, अचैतन्य और निःश्वास-प्रश्वास बहुत आदि लक्षण गुरुतर माने जाते हैं। वृद्धवयस, अमिताचार, दुर्बलता या मूलकी कोई पीड़ा, रहनेसे व्याधि गुरुतर हो जाती है। रियाकशन्ष्टजमें २४ या २६ घण्टेमें मूत्रत्याग, कभी कभी निद्रा और आहार्य या पानोय द्रव्यका पाकाशयमें अवस्थान शुभ लक्षण है। मूत्रावरोध, नेत्रोंका लाल होना और अचैतन्य आदि टाइफाइड लक्षणोंका अशुभ मानते हैं। गुलाबी या लाहित घणों तरल मल और पाकाशयसे रक्तस्राव आदि लक्षण सांघातक माने जाते हैं। अंताङ्घ्रियोंको अवशताके लिये कभी कभी सहसा कोष्ठवद्ध होता है यह अशुभ है।

मृत्युसंख्या—इस रोगमें सैकड़ें २०, ३०, ४० या ६० मनुष्य भा मरते हैं। कालेरा फिमिडोमिकके प्रथम कई दिन मृत्युकी संख्या अधिक हाती है, किन्तु इसका क्रमशः ह्रास होने लगता है।

चिकित्सा—(१) इत्याब्यूरेसन, एंज—डॉक्टर जनसनका कहना है, कि इस पाड़ाके विषाक्त पदार्थके लिये पहले काष्टर आयल (रेंडीका तेल) देना होगा, किन्तु यह उचित नहीं। इसी समय टि. ओपियार्ड, लाइकर ओपियार्ड सिडेडिविस्, ओपियसपिल और

अन्याय्य सङ्कोचक सब औषध जैसे—प्लेग्माई पिसटैस, चकमिकश्चर और क्लोरोडाइन इत्यादि व्यवहृत हैं। चमन रोकनेके लिये इपिगेष्ट्रायमें मष्टर्ड प्लाष्टर किवा कॉल्ड काम्रेस संलान तथा आन्तरिक फ्लोरिफार्म, विषमध और चरफ आदि व्यवस्थेय है। फ्राय्मके लिये हाथ पाँवमें साँठका चूर्ण, क्लोरोफार्म लिनिमेण्ट अथवा गरम तारपीन तेलकी मालिश करनी चाहिये। उष्ण जल परिपूर्ण घोंतल हाथ पैर पर धरनेसे उपकार होता है। नाड़ों दुर्बल रहनेसे सख्य परिमाणसे ब्राण्डो और बलकर औषध देना उचित है।

(२) हिमाङ्गावस्था—इस अवस्थामें अफोमघटित औषध निषिद्ध है। डाफूर निमेयार उष्ण काफी देनेका कष्ट है। बहुतेरे डिफिउजिबल डिमिउलेण्ट यथा—स्पिट एमन परोमेट या फार्बनेट आय पमोनिया और क्लोरिक वा सलफ्यूरिक इधर व्यवहार करनेका उपदेश देते हैं। सिनेमन, काजुपटो और पिपरमेण्ट आदि औषधोंका जलके साथ व्यवहार करनेसे अधिक उपकार होता है। चरफके साथ सामान्य मोक्षमें ब्राण्डो देना कर्त्तव्य है। यदि इसके द्वारा नाड़ी उत्तेजित न हो सके, तो इसे धारंवार देना चाहिये। अधिक परिमाणसे ब्राण्डो उद्दस्थ होने पर कभी कभी रियाकसम लक्षण गुरुतर हो उठते हैं। अन्याय्य शरायोंमें सम्पेन विशेष उपकारी है। अत्यन्त पसीना होने पर उसे थपड़ेसे पोंछ देना चाहिये। विपासा शान्त करनेके लिये चरफ, सोडावाटर, लेमनेट, या क्लोरेट आय पोटास जलमें मिला कर देना चाहिये। सलफ्यूरिक इधरका इञ्जेक्शनसे फल होता है।

(३) रियाकसन एंज—रियाकसन आरम्भ होने पर मेाजनके लिये तरल और लघुपाक वस्तु देने चाहिये। इस अवस्थामें प्रचुर परिमाणसे जलका क्लोरेट आय पोटास या फार्बनेट आय सोडा सालिउसन पानार्थ देना चाहिये। इससे रक्तमें फिर लवणका सञ्चार होता है। रियाकसन सुचारु रूपसे न होने पर युरिमिया उपस्थित होती देखा जाता है। इस समय रक्तमें यथेष्ट युरिया दिखाई देता है। यद्यपि युरिया मूलकारक कहा जाता है, तथापि इससे मूलकी क्रिया सुचारु

रूपसे सम्पन्न नहीं होता। मूत्र उत्पत्ति करनेके लिये पेटासी नाइट्रस, इथर, स्फुरल, टिं कंभाराइस और तिन सुरा आदि मूलकारक औषध उपयुक्त हैं। मूलकारक औषध उपयुक्त करनेके समय दोष वातातमिक 'उजियेन प्रोमि' उल्लेख देना आवश्यक है। सम्पूर्णरूपसे कोष्ठवद्ध करना उचित नहीं। क्योंकि मल द्वारा कुछ परिमाणसे सुरिया परित्यक्त होता है।

स्थानिक—कटिदेशमें फेमिण्टेशन, माछाईं गुाएर संलग्न और शुष्क या भार्द कर्पि करना उचित है।

कभी कभी मूलत्वाम करने समय भी अत्यन्त यमन और दिवकी होता है। इसके नियारणके लिये नेकवा, विसमथ और पाइरकडिक सिप्रट आदि दिया जाता है।

स्थानिक औषधमें इपिगेट्रियम, मिटर और इस पर थापा प्रेन मर्षिया लेपन और सावांकल घारिवाके उपर म्लिष्टर देनेसे कभी कभी उपकार होता है। सुरि-मिवाके लिये निद्राघेन रहने पर गरदनमें म्लिष्टर देना उचित है। टाइफाइडके लक्षण रहनेसे सेप्टिडमलके कार्यनासकी व्यवस्था है।

विशेष चिकित्सा और औषध—कोलाप्स अवस्थामें गिरामें लक्षणजलका इन्जेक्शन करनेसे रोगीका मुख मण्डल उज्वल दिनाई देता है और अत्यान्व लक्षणोंका लाघव होता है। किन्तु यह उपकार क्षणस्थायी है। अत्यन्त काम्प रहनेसे १०० मिनिम मात्रामें नाइट्रो-ग्लिसरिन दिया जाता है। अथवा ५ प्रेन मात्रामें फेरोराल हाइड्रास चमडेमें इन्जेक्शन करना चाहिये।

प्रतिषेधक चिकित्सा—जहां कालरा या हैजा हुआ हो, वहांके अविद्यानियोंको नित्य दो बार १०१५ मिनिम मात्रामें सलप्यूरिक एसिड डिल्यूजमें में मिला कर संवनाया देना चाहिये। सुम्बाडु लाघव द्रव्य नियमितरूपसे आहार कराना चाहिये। वहांका जल या दूध कदापि पीना न चाहिये। मल और मूत्रदेहमें फार्मोलिक एसिड छिड़कना चाहिये। गरमें चूना पीत कर उसमें डिस्इन्फेक्टेण्टोंका छिंटना चाहिये।

पथ—पहले सांगूरीना बराकट, बाली, विकटी, चिकेन वषू आदि तरल जाय देना उचित है। यमननिवारण होने पर दूध दिया जा सकता है। दूध रकने पर

विकटी और ब्राइडोका पनिमा दे। टाइफाइडके लक्षण उपस्थित होने पर विकटी जगसूप और पोटी इत्यादि धलकारक आहार देना उचित है।

विसूनी (सं० खो०) विशेषण सूत्रयनि मृत्युमिनि विश्व-अव-लियां लीय। अमोर्णरीगविशेष।

विस्तृतिका देखो।

विस्तृत (सं० लि०) ससारधि, सारधियुक्त।

विस्तृत (सं० लि०) विश्वंजल, श्वंजलारहित।

(राजतर० ५१०५४)

विस्तृत (सं० खो०) छत्रमङ्ग।

विस्तृतता (सं० खो०) विष्टंजलता।

(राजतरङ्गिनी १३६१)

विस्तृत (सं० लि०) विश्वंजलयुक्त, श्वंजलारहित।

विस्तृत (सं० खो०) १ शोक, दुःख। २ चिन्ता, क्लिप्त। ३ विरक्ति, वैराग्य।

विस्तृत (सं० खो०) अनुताप, दुःख।

विस्तृता (सं० खो०) विस्तृतावधर।

विस्तृत्य (सं० लि०) सूर्यारहित। (हरिश्चंश)

विस्तृत्य (सं० लि०) सृष्टि करने योग्य।

(भागवत ७।१२२)

विस्तृत (सं० लि०) विस्तृत-विद्युत्। प्रसरणशाल, फैलानेवाला।

विस्तृत (सं० खो०) १ विस्तृत, चौड़ा। २ निर्गत, निकाला हुआ। ३ कथित, कहा हुआ।

विस्तृतवर (सं० लि०) विस्तृत-करण (एण-अति वर्त्तमान्य-वर्ण)। पा ३।२।१३ हलस्वयति तुक् प्रसरणशील, फैलानेवाला।

विस्तृत (सं० लि०) विस्तृत-विशेष। विसर्पणशाल। विस्तृति (सं० खो०) विस्तृत-क्ति। विसरण, प्रसरण-फैलाव।

विस्तृत (सं० लि०) विशेषण सरति तच्छीलः विस्तृत-वमरच् (व्यस्वदः कसच्)। पा ३।२।१३ प्रसरणशाल, फैलानेवाला। (अमर)

विस्तृत (सं० लि०) विस्तृत-क। १ विस्तृत, फैला हुआ। २ विशेष प्रकारसे सृष्टि, जिसकी सृष्टि या रचना विशेष प्रकारसे हुई हो। ३ परित्यक्त, छोड़ा हुआ।

हुआ। ४ प्रेषित, भेजा हुआ। (पु०) ५ विसर्ग,
(ः) इस प्रकार दो विन्दु। "र-सकारयोर्विस्तृष्टा"

(कातन्त्र)

विस्तृधेन (सं० त्रि०) विस्तृष्टजिह्व अर्थात् मध्यमस्वरमें
उच्चार्यमाण, याषयादि (शृक् ७।२४।२)

विस्तृष्टगति (सं० स्त्री०) रा-क्ति (कर्माणि) विस्तृष्टा
प्रदत्ता राति धनं येन। यह जो प्रार्थियोंको अर्थात् यह
करनेवालोंको धन देता हो।

विस्तृष्टवाच (सं० त्रि०) वि-स्तृष्टा वाक् येन। मीना-
घलम्बो।

विस्तृष्टि (सं० स्त्री०) विविध प्रकारकी स्तृष्टि।
(शृक् १।१२।६)

विस्मोटा (हिं० पु०) अड्डूसा।

विस्मोम (सं० त्रि०) १ सोमरहित। (शतपथब्रा० १।१।२।८)
२ अन्द्रशूम्भ।

विस्मोष्य (सं० स्त्री०) सुस्वरहितका भाव, दुःख, कष्ट।

विस्मोरभ (सं० त्रि०) १ निर्गन्ध, गन्धरहित। २ दुर्गन्ध।

विस्कम्भ (सं० पु०) विस्कम्भ देखो।

विस्त (सं० पु० स्त्री०) विस उदसमें विस-क्त। १ कर्ष
अर्थात् दो तोला मोना। २ अशीतिरक्तिका परिमित
स्वर्ण, ८० रत्ती सोना।

विस्तार (सं० पु०) वि-स्तृ-अप् (प्रयने वाचशब्दे। पा
३।३।३३ इति घञः प्रतिषेध 'भृद्योरप्' इति अप्)
१ शब्दका विस्तार या विस्तृति, विशेष वर्णन। (भाग
वत ३।३।१) वेदाङ्ग। भाग० (३।३।१) ३ विस्तार, फैलाव।
(गीता ७।१६) ४ प्रणय, प्रेम। (मेदिनी) ५ पीठ।
६ समूह। ७ आसन, शय्या। ८ संघषा। ९० आधार।
११ शिव। (भा० १।३।१।३।३६)

(त्रि०) १२ प्रचुर, बहुत, अधिक।

विस्तारक (सं० पु०) विस्तार देखो।

विस्तारणो (सं० स्त्री०) ब्राह्मण पत्नीभेद।

(मार्क०पु० ६।१।६५)

विस्तारता (सं० स्त्री०) विस्तारत्व, बहुत या अधिक
होनेका भाव।

विस्तारशस (सं० अम्य०) विस्तर-चगस घोषाथे।
अनेकानेक, बहुतों।

विस्तार (सं० पु०) वि-स्तृ-घञ् (प्रयने वाचशब्दे। पा ३।३।३३)
१ विटप, पेड़की शाखा। २ विस्तोर्णता, लंबे या चौड़े
होनेका भाव। पर्याय—विप्रह, व्यास। (अमर.) ३

स्नम्ब, गुच्छा। (मेदिनी) ४ समास वाच्य। ५ विशालता।
६ पदसमूह। ७ शिव। (भा० १।३।१।३।२५) ८ विष्णु।

(भा० १।३।१।३।५६)

विस्तारता (सं० स्त्री०) विस्तारका भाव, फैलाव।

विस्तारित (सं० त्रि०) प्रसारित, फैला हुआ।

विस्तारो (सं० त्रि०) विस्तारोऽस्त्यस्येति विस्तार-इति।
१ विस्तृत, जिसका विस्तार अधिक हो। (पु०) २ वट-
यक्ष, बरगदका पेड़। (वंशकनिष०)

विस्तोर्ण (सं० त्रि०) वि-स्तृ-क्त। (रदाभ्यामिति नः।
पा ८।२।४२) १ विपुल, बहुत अधिक। २ विस्तृत,
बहुत दूर तक फैला हुआ। ३ विशाल, बहुत बड़ा।

विस्तोर्णकर्ण (सं० पु०) हस्तो, हाथो।

विस्तोर्णता (सं० स्त्री०) विस्तोर्ण होनेका भाव, विस्तार,
फैलाव।

विस्तोर्णपर्ण (सं० स्त्री०) विस्तोर्ण पर्ण पत्रमस्य।
माणक, मानकंद।

विस्तोर्णभेद (सं० पु०) सुभेद (क्षतितविस्तर)

विस्तोर्णवती (सं० स्त्री०) १ जगद्भेद। (त्रि०) २
विस्तोर्ण विशिष्ट, जो खूब लंबा चौड़ा हो।

विस्तृत (सं० त्रि०) वि-स्तृ-क्त। १ विस्तारमुक्त, जो
अधिक दूर तक फैला हुआ हो। २ विशाल, बहुत बड़ा।
३ लम्बा। ४ चौड़ा। ५ व्याप्त, फैला हुआ। ६ यष्टि-
विवरणवाला, जिसके सब अंग या सब शक्तें बतलाई
गई हों।

विस्तृति (सं० स्त्री०) वि-स्तृ-क्तिन्। १ विस्तार, फैलाव।
२ व्याप्ति। ३ लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई या गहराई।
४ वृत्तका व्यास।

विस्पधान (सं० त्रि०) स्थानच्युत।

विस्पन्द (सं० पु०) विस्पन्द देखो।

विस्पन्दत (सं० स्त्री०) प्रस्पन्दन, विकम्पन।

विस्पधा (सं० स्त्री०) विशेष प्रकारसे स्पर्धा या
प्रगल्भता।

विस्पर्धिन् (सं० त्रि०) १ स्पर्धायुक्त, दूसरेको परास्त करनेकी इच्छा करनेवाला । २ साहस्ययुक्त, सद्गुण, समान ।

विस्पष्ट (सं० त्रि०) व्यक्त, स्फुट, प्रकाशित, सुस्पष्ट ।

विस्पृक (सं० त्रि०) आस्ताद ।

विस्फार (सं० पु०) वि-स्फुर घञ् । (स्फुरतिस्फुल्लत्योर्धञि इत्यादित्त्वम् । पा ८।३।७६)

१ दृष्टारध्वनि, कामनाका शब्द । २ स्फुरिां, तेजी । ४ उवा, धनुषकी डोरी । ४ कम्प, कांपना, बार बार हिलना । ५ विस्तार, फैलाव । ६ विकाश ।

विस्फारक (सं० पु०) घातप्रधान सन्निपात उवरका एक भेद । यह उवर बहुत मजदूर होता है । इसमें रोगीके पाँसी, मूछर्डा, मोह, प्रलाप, कम्प, पार्श्ववेदना और जंभाई होती है तथा रोगी मुलमें कपाय रसका अनुभव करता है । (भावप्र०)

विस्फारित (सं० त्रि०) १ कम्पित, कांपा हुआ, चला हुआ । २ स्फुरिायुक्त, तेज । ३ विस्तारित, फैला हुआ । ४ प्रकाशित । २ ध्वनित, शब्द किया हुआ ।

विस्फाल (सं० पु०) वि-स्फुल्ल-घञ् (पा ६।१।४७ और ८।७।७६) विस्फार देलो ।

विस्फुट (सं० त्रि०) विशय प्रकारसे व्यक्त या प्रकाशित, प्रस्फुट ।

विस्फुर (सं० त्रि०) विस्फार देलो ।

विस्फुरक (सं० पु०) विस्फारक देलो ।

विस्फुरणी (सं० स्त्री०) तिम्युकवृक्ष, तेंदूका पेड़ ।

विस्फुरित (सं० त्रि०) वि स्फुर-कृत । १ स्फुरतिविगिण्य, तेज । २ चञ्चल, अस्थिर । (क्ली०) ३ मन्मरोगविशेष ।

विस्फुल्लिङ्ग (सं० पु०) विस्फुरति वि-स्फुर ङु-विस्फु, तादृशं लिङ्गप्रत्यय । १ अम्निकण, भागको चिनगारी । २ एक प्रकारका विप ।

विस्फूर्ज (सं० पु०) विस्फूर्जय देलो ।

विस्फूर्जयु (सं० पु०) १ वज्रनिर्घोष, वज्रका शब्द । २ उद्रेक, वृद्धि, बढ़ती ।

विस्फूर्जन (सं० क्ली०) किसी पदार्थका फैलना या बढ़ना, विकास ।

विस्फूर्जनी (सं० स्त्री०) तिम्युकवृक्ष, तेंदूका पेड़ ।

विस्फूर्जित (सं० त्रि०) १ वज्रनिनादित । (पु०) २ नाग-भेद ।

विस्फाट (सं० पु०) विस्फोटतीति वि-स्फुट-अच् । विरुद्ध स्फोटक, विपफोड़ा, दुष्ट स्फोटक । पर्याय—पिटक, पिटका, चिटक, चिटका, स्फोटक, स्फोट ।

(राजनि०)

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, रुक्ष, क्षार और अजीर्णकारक द्रव्योंके मक्षण, अध्यशन, रौद्रसंवन और ऋतुपरिवर्तनके कारण वातादि क्षेपत्रय कुपित हो चर्मका आश्रय ले कर त्वक्, रक्त, मांस और अस्थिको दूषित और चमड़े पर घोरतर विस्फोटक रोग उत्पादन करता है । इस रोगके पहले उवर होता है । जिस रोगमें रक्तपित्तके प्रक्षेपजनित पीठका उवरके साथ शरीरके किसी एक स्थानमें या सारी देहमें अग्नि-दग्ध स्फोटककी तरह उत्पन्न होती है, उसको विस्फोटक कहते हैं । सब तरहके विस्फोटमें ही रक्तपित्तका प्राधान्य रहता है । इसके सम्बन्धमें भोजनका कहना है, कि वायुके साथ कुपित रक्तपित्त जब त्वक्गत होता है, तभी यह सारी देहमें अग्निदग्धका तरह स्फोटक उत्पादन करता है ।

वातिक विस्फोट—वातजन्य विस्फोटमें शिरःशूल, अत्यन्त सूचीवेधनयत् वेदना, उवर, पिपासा, पथभेद और स्फोटक काले हो जाते हैं ।

पैत्तिक विस्फोट—पित्तजनित विस्फोटमें रोगी के उवर, दाह और पिपासा होती हैं तथा स्फोटक पीत-रक्त वर्णके और उनमें वेदना होती है । ये शीघ्र ही पक जाते तथा उनसे मवाद आदि आने लगता है ।

श्लैष्मिक विस्फोट—कफज विस्फोटमें रोगीके यमन, अरुचि और वेदका जड़ता होती है । स्फोटक पाण्डुवर्ण, कठिन, खुजलाहट और अल्पवेदनायुक्त हो कर देरसे पकता है ।

वातश्लैष्मिक—वातश्लैष्मिक विस्फोटमें खुजलाहट, शरीर मारी और भार्द्रयस्त्रावगुण्डिनकी तरह मालूम होता है ।

पित्तश्लैष्मिक—रक्तपित्तजनित विस्फोटमें खुजलाहट, दाह, उवर और यमन होता है ।

वातपैतिक—वात पित्तजनित विस्फोटमें बड़ी वेदना होती है।

सान्निपातिक—त्रैदोषिक विस्फोटमें स्फोटकोंके मध्यभागमें नीचा, अन्तमें उन्नत, रक्तवर्ण, कठिन और अस्पष्टयुक्त होता है और रोगीको दाह, पिपासा, मोह, चमन, इन्द्रियमोह, उ्वर, प्रलाप, कृप और तन्द्रा उपस्थित होता है। यह असाध्य है।

रक्तज विस्फोट—रक्तजनित विस्फोट पित्तजके विस्फोट निदानसे उत्पन्न गुग्गा फलकी तरह रक्तवर्णका होता है। यह रोग सैकड़ों सिद्धयोगोंसे भी आराम नहीं होता।

इन आठ प्रकारके बाहरी विस्फोटोंकी वात कही गई। इनके सिवा भीतर भी विस्फोट उत्पन्न होने हैं। आभ्यन्तरिक विस्फोट शरीरके वहिर्भागमें निकल कर प्रकाशित होने पर रोगी सुस्थलाभ करता है। किन्तु यह वायुके प्रकोपसे उत्पन्न होने पर बाहर नहीं निकलता। ऐसी अवस्थामें वातिक विस्फोटकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

उपद्रव—पिपासा, श्वास, मांससंकोच, दाह, हिचकी, मत्तता, उ्वर, विसर्प और मर्मश्रथा ये सब विस्फोट रोगके उपद्रव हैं।

साध्यासाध्य—विस्फोट एक दोषोद्भव होने पर साध्य, द्विदोषज होने पर कष्टसाध्य और त्रैदोषिक और सारे उपद्रवयुक्त होनेसे असाध्य हो जाता है।

चिकित्सा—विस्फोटरोगमें दोषके बलावलीकी धिचेचना कर यथोपयुक्त लक्षण, चमन, पथ्यभोजन, या विरचनका प्रयोग करना चाहिये। विस्फोटमें पुराना चावल, जी, सूंग, मसूर और अरहर ये कई अन्न विशेष हिनकर हैं।

दशमूली, रासना, दाहहरिद्रा, खसखसकी जड़, दुरालभा, गुडची, घनिया, मोथा—इन सबका क्वाथ पान करनेसे वातजनित विस्फोट दूर होता है। द्राक्षा, गाम्भीरी, खजूर, परबलकी पत्ती, नीम, चासक, कूटनी, लई और दुरालभा इनके काथमें चीनी डाल कर पान करनेसे पित्तजनित विस्फोट नष्ट होता है। चिरैता, वच, अड़ूस, त्रिफला, इन्द्रयव, कूटज, नीम और परबलकी पत्ती, इनके

क्वाथमें मधु डाल कर पीनेसे सब तरहके विस्फोट नष्ट होते हैं। चिरैता, नीम, मुलेठी, मोथा, अड़ूस, परबलकी पत्ती, पित्तपापड़, खसखसकी जड़, त्रिफला और इन्द्रयव इन सब द्रव्योंका क्वाथ पान करनेसे सब तरहके विस्फोटक जल्द आराम होते हैं।

चावल घीसे हुए जलके साथ इन्द्रयव पीस कर प्रलेप करनेसे विस्फोटक नष्ट होता है। गुलज, परबलकी पत्ती, अड़ूस, नीम, पित्तपापड़, खैरकी लकड़ी और मोथा इन सबका क्वाथ पीनेसे विस्फोटक आराम होता तथा उससे होनेवाला उ्वर भी नष्ट हो जाता है। चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, मारसा साग, सिरिसकी छाल, जातौफूल इन सबका समभाग ले पीस कर प्रलेप देनेसे विस्फोटकी जलन दूर होती है। नीलकमल, चन्दन, लोध, खसखसकी जड़, अनन्तमूल, श्यामालता इन सबका समभाग ले जलसे पीस कर प्रलेप देनेसे विस्फोट और उससे होनेवाली जलनकी निवृत्ति होती है।

(भावप्रकाश विस्फोटरोगाधिकार)

विस्फोटक (सं० पु०) १ विस्फोट, फोड़ा, विधेयतः जहरीला फोड़ा। २ वह पदार्थ जो गरमी या आघातके कारण भभक उठे, भभकनेवाला पदार्थ। ३ शीतलाका रोग, चेचक।

विस्फोटउ्वर (सं० पु०) वह उ्वर जो जहरीले फोड़ेके कारण होता हो।

विस्फोटन (सं० क्ली०) १ नाद, जोरका शब्द। २ किसी पदार्थका उवाल आदिके कारण फूट बहना।

विस्मय (सं० पु०) वि-स्मि-ञच्। १ आश्चर्य, अद्भुत, ताज्जुब। पर्याय—अद्भो, हो। (अमर) २ साहित्यमें अद्भुत रसका एक स्थायी भाव। यह अनेक प्रकारके अलौकिक या विलक्षण पदार्थोंके वर्णनके कारण मनमें उत्पन्न होता है।

३ दर्प, अभिमान, शोखी। ४ सम्वेह, संशय, शक। विगतः स्मयो गर्यो यस्पैति। (त्रि०) ५ नष्टगर्व, जिसका गर्व नष्ट या सूर्य हो गया हो।

विस्मयङ्कर (सं० लि०) विस्मयं कराति विस्मयङ्क-खण्। विस्मयकारो, आश्चर्य पैदा करनेवाला।

विस्मयङ्गम (सं० लि०) विस्मयं गच्छति विस्मय-गम्-
 षञ् । विस्मयगामी, आश्चर्यान्वित ।
 विस्मयन (सं० क्ली०) वि-स्मि ल्युट् । विस्मय देलो ।
 विस्मयनीय (सं० लि०) वि-स्मि-अनीयर् । विस्मयके
 योग्य, आश्चर्यका विषय ।
 विस्मयविपादयत् (सं० लि०) विस्मय और विपादयुक्त ।
 विस्मयान्वित (सं० लि०) विस्मयेन अन्वितः युक्तः ।
 विस्मययुक्त, आश्चर्यान्वित । पर्याय—विलक्ष । (अमर)
 विस्मरण (सं० क्ली०) वि-स्मृ-च्युट् । विस्मृति, भूल
 जाना ।
 विस्मरन्त्य (सं० लि०) वि-स्मृ-तन्त्यत् । विस्मरणके
 योग्य, भूलने लायक ।
 विस्मापक (सं० लि०) विस्मयकारक, आश्चर्य पैदा
 करनेवाला ।
 विस्मापन (सं० लि०) वि-स्मि-णिच्-ल्युट् इकारस्था
 स्वम् । १ विस्मयजनक, जिसे देख कर विस्मय हो ।
 "येन मेऽहत्तं तेजो देवविस्मापनं महत् ।" (मागव० १।१५।५)
 (पु०) २ गन्धर्वांतरार । ३ कामदेव । ४ कुहक, माया ।
 ५ विस्मयप्रदर्शन ।
 विस्मापनीय (सं० लि०) विस्मय उत्पन्न करनेके योग्य,
 जिसे देख कर आश्चर्य हो सके ।
 विस्मापयनीय (सं० लि०) विस्मापनीय, विस्मापनके
 योग्य ।
 विस्मायन (सं० क्ली०) विस्मापनार्थक ।
 विस्मारक (सं० लि०) विस्मृतिजनक, भुला देनेवाला ।
 विस्मारण (सं० पु०) विलायन, लीन हो जाना, नष्ट हो
 जाना
 विस्मित (सं० लि०) वि-स्मि-क् । १ विस्मयापन्न,
 चकित । (पु०) २ प्राकृत छन्दोभेद । इसका दूसरा
 नाम मेघविसफूर्जित भी है ।
 विस्मिति (सं० स्त्री०) वि-स्मि-क्तिन् । विस्मरण, स्म-
 रण, याद न रहना, भूल जाना ।
 विस्मृत (सं० लि०) वि-स्मृ-क् । विस्मरणयुक्त ।
 विस्मृति (सं० स्त्री०) वि-स्मृ-क्तिन् । विस्मरण, भूल
 जाना ।
 विस्मर (सं० लि०) विस्मयकर, आश्चर्यजनक ।

विस्वन्द (सं० पु०) विष्पन्द देलो ।
 विस्व (सं० क्ली०) विस्-रक् । १ आमगंध, शमशान
 आदिमें मुर्दा जलनेकी गंध । कोई कोई अपक मांसकी
 गंधको भी विस्व कहते हैं । (भरत) २ चाणक्यमूलक,
 बड़ो मूलो । (ति०) २ आमगंधविशिष्ट, मुर्देकी-सी
 गंध ।
 विस्वन (सं० पु०) वि-स्वनस्-घञ् । १ पतन, गिरना ।
 २ क्षरण, बहना ।
 विस्वसन (सं० क्ली०) वि-स्वनस्-ल्युट् । विस्वन, स,
 पतन ।
 विस्वसिका (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका
 उपकरण जिसमें यक्षमें आहुति दी जाती थी ।
 विस्वसिन् (सं० लि०) वि-स्वनस्-शीलाथे णिनि । १ पतन-
 शील, गिरने लायक । २ क्षरणशील, बहने लायक ।
 विस्वक (सं० लि०) विस्व-स्वार्थे-कन् । विस्व, मुर्देकी-सी
 गन्ध ।
 विस्वगन्ध (सं० लि०) विस्वस्य गन्ध इव गन्धो यस्य । १
 विस्वकी तरह गन्धविशिष्ट, मुर्देके जलनेकी-सी गन्धवाला
 (पु०) २ पलाण्डु, प्याज । ३ गोदन्ती, हरताल ।
 विस्वगन्धा (सं० स्त्री०) विस्व गंधो यस्याः । हनुष्य,
 हाऊ बेर ।
 विस्वगन्धि (सं० पु०) विस्वामेय गंधो यस्य । गोदन्त,
 हरताल ।
 विस्वता (सं० स्त्री०) विस्वस्य भाव तल् टाप् । विस्वत्व,
 विस्वका भाव या धर्म ।
 विस्वभ्य (सं० लि०) वि-स्वनम्-क । विस्वभ्य, विश्वस्त,
 निःशङ्क ।
 विस्वभ्रम (सं० पु०) वि-स्वनम्-घञ् । १ विश्वास, यकीन ।
 २ प्रणय, प्रेम । (रत्नमात्रा) ३ केलिकलह, कलिके,
 समय स्त्री और पुत्रवमे होनेवाला ऋगडा । ४ श्व,
 हत्या ।
 विस्वभ्रमन् (सं० लि०) विस्वभ्रमे विश्वासितेति वि-स्वनम्-
 घिणुन् (वी कप्रत्तकृत्यवृत्तः : पा ३।२।१४३) १ विश्वासी ।
 २ प्रणयी ।
 विस्वय (सं० पु०) वि-स्व-अप् । क्षरण, गिरना ।
 विस्ववण (सं० क्ली०) वि-स्व-ल्युट् । १ विस्वय, बहना ।
 २ क्षरण, रसना ।

विहस्र (सं० स्त्री०) वि-स्रन्-क्विप् । नष्टकारी, ध्वंसकारी ।

विहस्रा (सं० स्त्री०) जरा, युद्धापा ।

विहस्रस्त (सं० त्रि०) वि-स्रन्-स्त क । पतित, गिरा हुआ ।

विहस्रस्थ (सं० त्रि०) ग्रन्थिसम्बन्धीय ।

(तेत्तिरोयसं ६।२।६।४)

विहसा (सं० स्त्री०) विह्र गंधोऽस्त्यस्यवा इति अच्, तन घ्राप् । १ हनुषा, हाऊयेर । २ चर्खा ।

विहसाव (सं० पु०) अन्नमण्ड, भातका माँड़ ।

विहसावण (सं० स्त्री०) वि-स्र-णिच् ल्युट् । १ क्षरण, गिरना ।

२ निकले हुए फोड़े का दर्द दूर करने तथा उसे पकने न देनेके लिये प्रक्रमविशेष । (सुधु०)

विहसाव्य (सं० त्रि०) वि-स्र-णिच्-यत् । विहसावणयोग्य । गिराने लायक ।

विहसि (सं० पु०) ऋषिभेद ।

विहस्रुत (सं० त्रि०) वि-स्रु-क्त । १ विस्मृत, भूला हुआ ।

२ प्रधावित, दौड़ा हुआ । ३ क्षरित, गिरा हुआ ।

विहस्रुति (सं० स्त्री०) वि-स्रु-फित्तन् । क्षरण, रसना, गिरना ।

विहस्रुह् (सं० स्त्री०) १ नदी । (शुक ६।७।६) २ औषध, दवा । (शुक ५।४।३)

विह्रोतस् (सं० स्त्री०) उच्च संख्याभेद ।

विह्वन (सं० पु०) वि-ह्वन-अप् । शब्द, ध्वनि ।

विह्वर (सं० पु०) १ विह्वृतस्वर । (त्रि०) २ विह्वृतस्वरयुक्त ।

विहग (सं० पु०) विहायसा गच्छतीति विहायस-गम-घ ।

(मिषवशेति । पा ३।२।३८) इत्यत्र 'डे च विहायसे विहादेशो वक्तव्यः' इति काशिकाकाः । उपत्यये विहायस-शब्दस्य विहादेशः । १ पक्षी, चिड़िया । २ बाण, तीर । ३ सूर्य । ४ चन्द्र । ५ ग्रह ।

विहगालय (सं० पु०) विहगस्य आलयः । विहगोंका आलय, घेमला ।

विहङ्ग (सं० पु०) विहायसा गच्छतीति विहायस-गम-घच् (पा ३।२।३८) इत्यत्र 'गमेः सुपोति' खच्, विहायसा विहादेशः, 'खच् चिदा वक्तव्यः' इति डित्त्व । १ पक्षी, चिड़िया । २ बाण, तीर । ३ मेघ, बादल ।

विहङ्गमा (सं० स्त्री०) ५ सूर्य । ६ नागविशेष ।

(भारत १।४।११)

विहङ्गक (सं० पु०) विहङ्गः स्वार्थे कन् । पक्षी, चिड़िया ।

विहङ्गम (सं० पु०) विहायसा गच्छतीति विहायस-गम-घच् (पा ३।२।३८) इत्यत्र 'खच् प्रकरणे सुप्युपसंभवा-नम्' इति काशिकाकाः खच्, विहायसा विहादेशः । १ विहग, पक्षी । २ सूर्य ।

विहङ्गमा (सं० स्त्री०) १ पक्षिणी, मादा पक्षी । २ सूर्य-की एक प्रकारकी किरण । ३ ग्यारहवें मनमन्त्रके देवताओंका एक गण । ४ भारपट्टि, वह गोमेकी लकड़ों जिसके दोनों सिरों पर बोक लटकवाया जाता है ।

विहङ्गमिका (सं० स्त्री०) भारपट्टि, वह गो ।

विहङ्गराज (सं० पु०) विहङ्गानां राजा राजाह इति टच् समासान्तः । गरुड ।

विहङ्गमिका (सं० स्त्री०) भारपट्टि, वह गो ।

विहङ्गराज (सं० पु०) विहङ्गानां राजा राजाह इति टच् समासान्तः । गरुड ।

विहङ्गहन (सं० पु०) विहङ्ग-हन-चिञ्च् । यथा, 'वह-लिया' ।

विहङ्गराति (सं० पु०) १ यथा, 'वहलिया' । विहङ्ग पथ अरातिः । २ पक्षीरूप शत्रु, गरुडदि ।

विहङ्गिका (सं० स्त्री०) भारपट्टि, वह गो । (अमर)

विहत् (सं० स्त्री०) गर्भोपघातिनी गर्भा । (संक्षिप्तसार उष्णादिनुक्ति)

विहत (सं० त्रि०) वि-हन-क्त । विनष्ट, व्याहत, विकल, भंग ।

विहनि (सं० स्त्री०) वि-हन-क्तिन् । विहनन, विनाश, बरवादी ।

विहनन (सं० स्त्री०) वि-हन-ल्युट् । १ विघ्न, व्याघान । २ भङ्ग । ३ हत्या । ४ हिंसा । ५ तूलपिञ्जल, कईनी बत्ती ।

विहन्तु (सं० त्रि०) वि-हन-लृच् । विहननकारी, नाश करनेवाला ।

विहन्तव्य (सं० त्रि०) विहननयोग्य, नाशके उपयुक्त ।

विहर (सं० पु०) वि-ह-अप् । १ वियोग, विकल । २ विहार ।

विहरण (सं० ल्युट् । कोड़ा । २ भ्रमण, फौलत । (

विहृत् (सं० लि०) वि-हृ-त्त्वं । विहरणकारी, विना-
शक । (भा० २।२६)

विहृत् (सं० लि०) विगतो हर्षो यस्य । हर्षविहोत,
उदास । (भारत ४।२६।२५)

विहृत् (सं० पु०) सर्गपशाकके गिता, विहृत् ।

विहृत् (सं० पु०) १ यत् । २ युद्ध, लड़ाई ।

विहृत् (सं० लि०) यक्षीय । (कात्यायनश्री० २।५।४।१८)

विहृत् (सं० लि०) १ विविध कार्यों में आहूत ।

(शुक्लयजुः ८।४६ महीधर) २ यक्षीय, यत् सम्बन्धीय ।

(अथर्व २।६।४) (पु०) ३ आङ्गिरस गोवीण ऋद्धमन्त्र

द्रष्टा ऋषिभेद । (ऋक् १०।१२८ सूक्त) ४ वर्षासके पुत्रभेद ।

(भारत १३ पर्व)

विहृत् (सं० स्त्री०) १ इष्टका भेद, एक प्रकारकी ईंट ।

(तैत्तिरीयसं० ५।४।१।३) २ यक्षीय मन्त्रभेद ।

(तैत्तिरीयसं० ३।१।७।३)

विहृत् (सं० स्त्री०) वि-हृ-स-त्क । मध्यम हास्य, यह

हास्य जो न बहुत उष्ण हो, न बहुत मधुर । (अमर)

विहृत् (सं० लि०) १ व्राकुल, घबराया हुआ । २ हस्त

हीन, विना हाथका हुआ हो । ३ अति वरापूत, बहुत

दूर तक फैला हुआ । (पु०) ४ पण्डित, विद्वान् ।

५ पण्ड, नपुंसक, द्विजड़ा ।

विहृत् (सं० स्त्री०) विहृत्स्व भावो धर्मो वा तत्त्वं ।

विहृत्स्वका भाव या धर्म ।

विहृत् (सं० लि०) वराकुलित, घबराया हुआ ।

विहृत् (सं० अव्य०) ओ हाक् ह्यगि (विधाविहृत् । उष्य

भा३।६) इति निपातनात् आ । स्वर्ग ।

विहृत् (सं० स्त्री०) वि-हा-णिच्-त्क, पु-भागमश्च ।

दान ।

विहृत् (सं० पु० स्त्री०) १ आकाश । (अमर)

(पु०) २ पक्षी, चिड़िया । (लि०) ३ महान्, बड़ा ।

विहृत् (सं० स्त्री०) १ आकाश । (भारत १।६३।१४)

(पु०) २ पक्षी । (अमरटीका भरत) ३ दान ।

विहृत् (सं० स्त्री०) आकाश । (अमरटीका मयुरे)

विहृत् (सं० पु०) वि-हृ-ञ्च् । १ भ्रमण, मन बहलानेके

लिये धीरे धीरे चलना, टहलना । २ परिक्रम, घूमना ।

३ स्कन्ध, कंधा । ४ लोला । ५ सुगतोलय, बाँधमड-

भेद । चट्टाराम देलो । ६ विक्षेप । ७ क्रीडास्थान,
रतिक्रीडा करनेकी जगह । ८ रतिक्रीडा, संभोग ।

९ विन्दुरेणक पक्षी । १० वैजयन्त । (शब्दमाला)

विहार—लेपटनाष्ट गवर्नरके शासनाधीन एक प्रदेश । यह

पहले बङ्गालमें शामिल था । सन् १६१२ ई०में बङ्गविच्छेद

के समय इसने बङ्गालसे पृथक् हो कर स्वतन्त्र होनेका

सौभाग्य प्राप्त किया । उस समयसे इस प्रदेशमें उड़ीसा

भी जोड़ दिया गया । इससे इस संयुक्तप्रदेशका नाम

विहार और उड़ीसा प्रदेश हुआ है । यह किसी अन्य

प्रदेशसे आयतनमें कम नहीं । इसकी जनसंख्या

३४७,००,००० और भू-परिमाण ८३,००० वर्गमील है । विहार

बौद्धधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र कहा जाता है । यह बौद्धधर्मके

लोगोंको पवित्र विहारभूमि है । इस प्रदेशमें बौद्धोंके

असंख्य विहारोंको देख मालूम होता है, कि इन विहारोंके

कारण ही इसका नाम विहार पड़ा है । उड़ीसाके

सिवा केवल विहारमें पहले दो विभाग थे—पटना और

भागलपुर; किन्तु इस समय इसमें एक विभाग

और भी मिला दिया गया है, उसका नाम छोटो-

नागपुर है । पटना विभागमें गया, शाहाबाद (आरा),

मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, सारन, चम्पारन, पटना

आदि जिले हैं । भागलपुर विभागमें भागलपुर, मुङ्गेर,

पूर्णिया, सन्धाल परगना और दुमका जिले हैं । नये

छोटानागपुर विभागमें रांची, हजारीबाग, पलामू,

सिंहभूम, मानभूम आदि जिले हैं । पटना इस

प्रदेशकी राजधानी है । यहाँकी जनसंख्या १३,६०,०००

है । व्यवसाय वाणिज्यकी सुविधाके कारण यह

स्थान विशेष समृद्धिशाली हो गया है । रांची

प्रदेशमें गवर्नरका प्रोथ्मावास और दानापुरमें सेना-

निवास है । गया हिन्दुओं तथा बौद्धोंका एक प्रधान

तोर्धाक्षेत्र है ।

प्राकृतिक अवस्था—विहारकी भूमि साधारणतः

समतल है । किन्तु, मुङ्गेर, राजमहल अञ्चलमें और

सन्धाल परगना तथा भागलपुरमें पहाड हैं । गयाका

मेाहर पहाड १,६२० फीट ऊँचा है । सन्धाल परगना-

में जितने पहाड हैं, उनमें जो सबसे बड़ा है, यह १,६००

फीट ऊँचा है । हजारीबाग जिलेका पारशनाथ पहाड

जैनोंका एक प्रधान तीर्थ है। इसकी उच्चता ४५०० फीट है। बुद्ध गयामें दो पहाड़ हैं—रामगिरि और प्रेतगिरि। यह गयासे तीन कोस पर अवस्थित है। यहाँ हिन्दूगण पितरोंकी पिण्डदान देनेके लिये आते हैं। इन दोनों पहाड़ों पर चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ काटी गई हैं। इन दोनोंके शिखरों पर एक एक मन्दिर है। रामगिरि पर भगवान् विष्णुका मन्दिर है। इस पर चढ़ कर देखनेसे रेलके उभये मनुष्यों द्वारा ढोनेवाला सशरीरोंसे भी छोटे दिखाई देते हैं। इस पहाड़से एक ऊरना एक तालाबमें गिरता है। यानी इसी तालाबमें स्नान करने हैं। भागलपुरमें मन्दार नामक एक बहुत बड़ा पहाड़ है। मन्दार देखो। इसके शिखर पर एक मन्दिर बिलखा पड़ा है। मूर्तियोंकी जगह चरणपादुका रखी हुई है। इस पहाड़ पर छोटे बड़े और घने वृक्ष हैं। इसमें बन्दर और अग्याम्य मेडिया आदि हिंस्र जन्तु भी देखे जाते हैं। इसकी गुफामें कितने ही साधु तपस्यानिरत दृष्टिगोचर हैं। जो नन्दनदियाँ विहार प्रदेशको चीरती हुई प्रवाहित हो रही हैं, उनमें प्रधान गङ्गा ही है। गङ्गानदीने इस प्रदेशको दो भागोंमें विभक्त किया है। इसके उत्तर-भागमें सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, पूर्णिया आदि जिले तथा दक्षिणभागमें शाहाबाद, पटना, गया और सन्धाल परगना आदि जिले वर्त्तमान हैं। इसके सिवा घाघरा, गण्डकी, कोशी, महानदी, शोने आदि नद नदियाँ इस प्रदेशसे होती हुई प्रवाहित हो रही हैं। इस प्रदेशके पिण्ड उदपन्न द्रव्यादिमें अफीम और नोल अधिक होती थी; किन्तु अब इधर कुछ वर्षों से इनकी खेती कम हो गई है। यहाँ चावल, गेहूँ आदि सभी तरहके अन्न और गन्ना पैदा होता है। खनिज पदार्थोंके भीतर कोयला, अबरक और ताँबा ही प्रधान है।

जातिके लोगोंका वास भी यहाँ दिखाई देता है। मुसलमानोंमें सिया, सुन्नी और ओढ़ादी आदि रहते हैं। ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन, ब्राह्म, यहूदी और पारसी आदि जातियाँ भी वास करती हैं। विहारमें हिन्दुओंकी ही संख्या अधिक है। यहांके अधिवासियोंमें हिन्दू मैकड़ पीछे ८४ और मुसलमान १६ हैं।

इतिहास—प्राचीन कालमें मगधके राजाओंके अधिष्ठान विशाल भूखण्ड विहार कहलाता था और वे राजे समग्र भारतवर्षके अधिपति थे। किसी समयमें विहार भारतको समृद्धिशाली राजधानीके रूपमें विद्यमान था। ईसासे सात सौ वर्ष पहलेसे भी विहारको समृद्धिका विषय इतिहासमें दिखाई देता है। सम्भवतः इससे भी बहुत पहलेसे विहार समृद्धशाली जनपद कहा जाता था। ईसाके पाँच सौ वर्ष बाद भी विहारको सौभाग्यश्री वैसे ही वर्त्तमान थी। मगधके सम्राटोंने शिल्प और शिदियोंकी श्रेष्ठिकी थी। उनके समयमें विहारमें भी नाना प्रकारके शिल्पोंकी उन्नति हुई थी। यहां शिक्षाके लिये विश्वविद्यालय भी प्रतिष्ठित हुआ था। उक्त राजाओंने भारतवर्षमें सर्वत्र बड़े बड़े राजपथ तैयार कराये थे। उन्हींके समय भारतीय वाणिज्य जहाज सागरकी तरङ्गमालाओंकी भेद कर अंधा और आली द्योप आदि स्थानोंमें आते जाते तथा भारतवर्षके शिल्पवाणिज्यका विस्तार करते थे। उनके समयमें ही हिन्दुओंने उन उन स्थानोंमें अपने उपनिवेश कायम किये थे। सेलुकसं निकेतर्के समय विहारको समृद्धिकी सर्वापेक्षा अधिक पूरि हुई थी। अशोक सिकन्दरके शासनके बाद ही विहारके सम्राट्पद पर अधिष्ठित हुए थे। सेलुकसने मेगास्थनिज नामक एक युवानो दूतको पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें अपने पद पर प्रतिष्ठित कर भेजा था।

दिया गया है। १३वें शताब्दीके प्रारम्भमें विहार मुसलमानोंके हाथमें आया। उसी समयसे यह बङ्गालके नयाबके अधीन एक सूबेके रूपमें परिणत हुआ। मन् १७६५ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने दोबानोके सम्बन्धमें विहारका शासनाधिकार प्राप्त किया। इसी समयसे विहार बङ्गदेशमें जोड़ दिया गया। पीछे १६१२ ई०में यह उड़ीसाके साथ मिल कर एक स्वतंत्र प्रदेशरूपमें गिना जाने लगा।

विहारके अन्तर्गत राजगृह, गिरिपक, पटना, गया आदि स्थानोंमें हिन्दू और बौद्धोंकी प्राचीन कौत्सीयोंके निदर्शन प्राये जाते हैं। ये सब स्थान ऐतिहासिक तस्वीरोंके एक अमूल्य भाण्डार हैं। प्रस्तुतस्वयिदों में विशेष उत्साह, अध्ययनायके साथ उन सब ध्वस्त कौत्सीयोंको खुदशा कर प्राचीन मगध, नालन्द (बहुगांव) और राजगृहके प्राचीनत्वका साक्ष्य प्रदान किया है।

राजगृह, गिरिपक, गया आदि शब्द देखो।

२ उक्त प्रदेशका एक उपविभाग। यह पटना जिलेके अन्तर्गत अक्षा० १४° ५८' से १५° १६' उ० तथा देशा० ८५° १२' से ८५° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। विहार, हिन्दुआ, आतासराय और शिलाओ धाना ले कर इस उपविभागका गठन हुआ है। इसका भूपरिमाण ७६३ वर्गमील है।

३ विहार महकमा या विहार प्रदेशके विहार उप-विभागका विचार सद्तर। यह महकमा पटने जिलेमें अवस्थित है। यह नगर पञ्जाना नदीके किनारे बसा हुआ है और विहारप्रदेशमें वाणिज्यसमृद्धिके लिये विषयात है। किसी समय पटना, गया, हजारीबाग और मुङ्गेरके वाणिज्य द्रव्यादि इसी स्थानसे हो कर आता जाता था। आज भी यहां वाणिज्यकी समृद्धि देखी जाती है। वख, चावल, अन्न, ऊई और तम्बाकू आदि हीं यहांकी उपज और वाणिज्य द्रव्य है। रेशमी और सूती कपड़े यहां तैयार होते हैं। हिन्दू और मुसलमान यात्रियोंके लिये यहां एक सराय है। इनकी इमारत पेसी बड़ी है, कि इसका जोड़ा कहीं दिखाई नहीं देता। नदीके दाहिने किनारे प्रतिष्ठित शाह मकदुमका समाधि-मन्दिर भी एक दर्शनीय वस्तु है। यहां एक मेला लगता

है जिसमें २५३० हजार लोगोंकी भीड़ होती है। यहां मुसलमानोंके मकबरे मसजिद आदि बहुत देखे जाते हैं। ये प्रायः एक हजार बोधोंमें फैले हुए हैं। सम्भवतः यही स्थान ईसाके प्रारम्भमें विहार सम्राटोंकी राजधानी था।

विहारक (सं० लि०) विहारकारो, विहार करनेवाला।
विहारक्रीडामृग (सं० पु०) विहारके लिये क्रीडामृग।
(भागवत ७।६।१७)

विहारण (सं० क्ली०) विहार, क्रीडा।

विहारदासी (सं० स्त्री०) क्रीडादासी।

(मालतीमा० ८।५)

विहारदेश—विहार देखो।

विहारमद्र (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (दशकुमारच० १८८।७)

विहारभूमि (सं० स्त्री०) विहारस्य भूमिः। विहार स्थान, क्रीडास्थान।

विहारयात्रा (सं० स्त्री०) भ्रमणके उद्देशसे दल बांध कर निकलना।

विहारवत् (सं० त्रि०) विहार-वस्तुवत् मनुष्यस्य च।
१ विहारविशिष्ट, क्रीडामृग। विहार वत्। २ विहार की तरह।

विहारवारि (सं० क्ली०) क्रीडाका जलाशय।

(रघु १।३।२८)

विहारशयन (सं० क्ली०) विहारार्थं शयन, विहारशय्या।

विहारशैल (सं० पु०) क्रीडा पर्वत। (रघु १।६।२६)

विहारस्थान (सं० क्ली०) विहारस्य स्थानं। क्रीडा-भूमि। (भागवत ३।२।२१)

विहार स्वामी (सं० पु०) यह जिसके ऊपर मठ वा विहारके धर्म-कार्यकी परिचालनाका भार सौंपा गया हो। इनके ऊपर जो मठपरिदृशक रहते हैं वे 'महाविहारस्वामी' कहलाते हैं।

विहारजित (सं० क्ली०) विहारस्य भजिरा। विहार स्थान। (भागवत १।२।५)

विहारावसथ (सं० पु०) क्रीडामृग। (भारत आदिपर्व)

विहारिरुष्णदासमित्र—पारसीप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता।

विहारिन (सं० लि०) विहार्त्तु शीलमस्मेति विह-

जैनाका एक प्रधान तीर्थ है। इस ही उद्यता ४५०० फीट है। बुद्ध गंगामें देा पहाड़ है—रामजिला और प्रेतजिला। यह गंगामें तीन कोस पर अवस्थित है। यहाँ हिन्दुगण पितरोंके विण्णदान देनेके लिये आते हैं। इन दोनों पहाड़ों पर चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ काटी गई हैं। इन दोनोंके शिखरों पर एक एक मन्दिर है। रामजिला पर भगवान् विष्णुका मन्दिर है। इस पर चढ़ कर देवनेसे रेलके उभये मनुष्यों द्वारा ढोनेवाला सवारीसे भी छाड़े दिखाई देते हैं। इस पहाड़से एक भरना एक तालाबमें गिरता है। यहाँ इसी तालाबमें स्नान करते हैं। भागलपुरमें मन्दार नामक एक बहुत बड़ा पहाड़ है। मन्दार देखो। इसके शिखर पर एक मन्दिर दिखाया पड़ा है। मूर्तियोंकी जगह चरणपादुका रखी हुई है। इस पहाड़ पर छोटे बड़े और घने वृक्ष हैं। इसमें बन्दर और भग्याभ्य भेड़िया आदि दिक्क जन्तु भी देखे जाते हैं। इसकी गुफामें कितने ही साधु तपस्थानिरत दृष्टिगोचर हैं। जो नदनदियाँ विहार प्रदेशको चौरतो हुई प्रवाहित हो रही हैं, उनमें प्रधान गङ्गा ही है। गङ्गानदीने इस प्रदेशके दो भागोंमें विभक्त किया है। इसके उत्तरभागमें सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, पूर्णिया आदि जिले तथा दक्षिणभागमें शाहाबाद, पटना, गया और सग्याल परगना आदि जिले वर्तमान हैं। इसके सिवा चायरा, गण्डकी, कोशी, महानदी, शोने आदि नदियाँ इस प्रदेशसे होती हुई प्रवाहित हो रही हैं। इस प्रदेशके विशिष्ट उत्पन्न द्रव्यादिमें अफीम और नील अधिक होता था; किन्तु अब इधर कुछ वर्षोंसे इनकी खेती कम हो गई है। यहाँ चावल, गेहूँ आदि सभी तरहके धान और गन्ना पैदा होता है। खनिज पदार्थोंके मोतर कायला, अवरक और तांबा दो प्रधान हैं।

अधियासो—यहाँ हिन्दुओंमें ब्राह्मण, राजपूत, बामन (निम्न श्रेणीके ब्राह्मण), कायस्थ, बनिया, मोदक, कुम्हार, ताती (ततवा), तेली, सुनार, लोहार, नाई, काँदू, बहीर, धानुकर, कमकर, कुमी, कुयाड़ी, सुनड़ी, मल्लाह, किरात, पासो, चमार, दुसाध आदि जातियोंका आवास है। इसके सिवा भूमिदार या भूँइदार, केच, लवार, गोंद, सम्थाल, कोल आदि आदिम अस्तम्य

जातिके लोगोंका वास भी यहाँ दिखाई देता है। मुसलमानोंमें सिया, सुन्नी और बोहाटी आदि रहते हैं। ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन, ब्राह्म, यहूदी और पारसी आदि जातियाँ भी वास करती हैं। विहारमें हिन्दुओंको ही संख्या अधिक है। यहाँके अधियासियोंमें हिन्दु नैकड़े पीछे ८४ और मुसलमान १६ हैं।

इतिहास—प्राचीन कालमें मगधके राजाओंके अधिष्ठान विशाल भूखण्ड विहार कहलाता था और वे राजे समग्र भारतवर्षके अधिपति थे। किसी समयमें विहार भारतको समृद्धिशाली राजधानीके रूपमें विद्यमान था। इसीसे सात सौ वर्ष पहलेसे भी विहारका समृद्धिका विषय इतिहासमें दिखाई देता है। सम्भवतः इससे भी बहुत पहलेसे विहार समृद्धशाली जनपद कहा जाता था। इसीके पाँच सौ वर्ष बाद भी विहारको सौभाग्यश्री वैसे ही वर्तमान थी। मगधके सम्राटोंने शिल्प और शिल्पियोंकी श्रौचृद्धि की थी। उनके समयमें विहारमें भी नाना प्रकारके शिल्पोंकी उन्नति हुई थी। यहाँ शिल्पोंके लिये विश्वविद्यालय भी प्रतिष्ठित हुआ था। उक्त राजाओंने भारतवर्षमें सर्वत्र बड़े बड़े राजपथ तैयार कराये थे। उन्हींके समय भारतीय वाणिज्य जहाज सागरकी तरङ्गमालाओंको भेद कर जावा और राली द्वीप आदि स्थानोंमें आते जाते तथा भारतवर्षके शिल्पवाणिज्यका विस्तार करते थे। उनके समयमें ही हिन्दुओंने उन उन स्थानोंमें अपने उपनिवेश कायम किये थे। सेलुकस निकेतरेके समय विहारको समृद्धि की सर्वापेक्षा अधिक पृष्टि हुई थी। अशोक सिकन्दरके साम्राज्यके बाद ही विहारके सम्राट् पद पर अधिष्ठित हुए थे। सेलुकसने मेगास्थनिज नामक एक युनानी दूतको पाटालपुत्र (पटना) नगरमें अपने पद पर प्रतिष्ठित कर भेजा था। इसीके छः सौ वर्ष पहले भी विहार बौद्धधर्मावलम्बियोंका निकेतन कह कर भारतवर्षमें प्रसिद्ध था। इसी विहारसे लङ्का, चीन, तातार, तिब्बतमें बौद्धधर्म प्रचारक भेजे जाते थे। आज भी विहार बौद्धोंको विहारभूमिके नामसे विख्यात है। विहारमें प्राचीन बौद्धमूर्ति, बौद्धमन्दिर आदि बहुतेरी बौद्धकीर्तियाँ आज भी विराजमान देखी जाती हैं। गया और बुद्धगंगामें विशेष विचारण

दिया गया है। १३वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विहार मुसलमानोंके हाथमें आया। उसी समयमें यह बङ्गालके नवाबके अधीन एक सूबेके रूपमें परिणत हुआ। सन् १७६५ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने दोबानोके सम्बन्धमें विहारका शासनाधिकार प्राप्त किया। इसी समयसे विहार बङ्गदेशमें जोड़ दिया गया। पीछे १६१२ ई०में यह उड़ीसाके साथ मिल कर एक स्वतंत्र प्रदेशरूपमें गिना जाने लगा।

विहारके अन्तर्गत राजशूह, गिरिएक, पटना, गया आदि स्थानोंमें हिन्दू और बौद्धोंकी प्राचीन कीर्तियोंके निदर्शन प्राये जाते हैं। ये सब स्थान ऐतिहासिक तथ्योद्घाटनका एक अमूल्य भाण्डार हैं। प्रत्नतत्त्वविदों में विशेष उत्साह, अध्ययनायके साथ उन सब ध्वस्त कीर्तियोंको खुदसा कर प्राचीन मगध, नालन्द (बडगांव) और राजशूहके प्राचीनत्वका साक्ष्य प्रदान किया है।

राजशूह, गिरिएक, गया आदि शब्द देखो।

२ उक्त प्रदेशका एक उपविभाग। यह पटना जिलेके अन्तर्गत अक्षा० १४° ५८' से १५° १६' उ० तथा देशा० ८५° १२' से ८५° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। विहार, हिन्दुभा, आतासराय और शिलाओ धाना ले कर इस उपविभागका गठन हुआ है। इसका भूपरिमाण ७६३ वर्गमील है।

३ विहार महकमा या विहार प्रदेशके विहार उप-विभागका विचार सदा। यह महकमा पटने जिलेमें अवस्थित है। यह नगर पञ्जाना नदीके किनारे बसा हुआ है और विहारप्रदेशमें वाणिज्यसमृद्धिके लिये विख्यात है। किसी समय पटना, गया, हजाराबाग और मुङ्गेरके वाणिज्य द्रव्यादि इसी स्थानसे ही कट आता जाता था। आज भी यहां वाणिज्यकी समृद्धि देखी जाती है। वज्र, चावल, वान, रुई और तम्बाकू आदि ही यहांकी उपज और वाणिज्य द्रव्य है। रेशमी और सूती कपड़े यहां तैयार होते हैं। हिन्दू और मुसलमान यात्रियोंके लिये यहां एक सराय है। इनकी इमारत ऐसी बड़ी है कि इसका जोड़ा कहीं दिखाई नहीं देता। नदीके दाहिने किनारे प्रतिष्ठित शाह मकदुमका समाधि-मन्दिर भी एक दर्शनीय वस्तु है। यहां एक मेला लगता

है जिसमें २५,३० हजार लोगोंकी भीड़ होती है। यहां मुसलमानोंके मकबरे मसजिद आदि बहुत देखे जाते हैं। ये प्रायः एक हजार बोधेमें फैले हुए हैं। सम्भवतः यही स्थान ईसाके प्रारम्भमें विहार सम्राटोंकी राजधानी था।

विहारक (सं० लि०) विहारकारी, विहार करनेवाला।
विहारकोडामृग (सं० पु०) विहारके लिये कोडामृग।
(भागवत ७।६।१७)

विहारण (सं० क्ली०) विहार, कोड़ा।
विहारवासी (सं० स्त्री०) कोड़ावासी।
(मालवीभा० ८।४)

विहारदेश—विहार देखो।
विहारभद्र (सं० पु०) व्यक्तित्व। (दशकुमारच० १८।७)
विहारभूमि (स्त्री० स्त्री०) विहारस्य भूमि। विहार स्थान, कोड़ास्थान।
विहारयात्रा (सं० स्त्री०) भ्रमणके उद्देशसे दल बांध कर निकलना।

विहारवत् (सं० लि०) विहार-वस्तुस्य मनुष्य-मस्य व।
१ विहारविगिष्ट, कोड़ायुक्त। विहार रव। २ विहार की तरह।

विहारवारि (सं० क्ली०) कोड़ाका जलाशय।
(रघु १।३।८)

विहारशयन (सं० क्ली०) विहारार्थं शयन, विहारशय्या।
विहारशैल (सं० पु०) कोड़ा पर्वत। (रघु १।१।२६)
विहारस्थान (सं० क्ली०) विहारस्य स्थानं। कोडा-भूमि। (भागवत ३।२।२१)

विहार स्वामी (सं० पु०) वह जिसके ऊपर मठ वा विहारके धर्म-कार्यकी परिचायनाका भार सौंपा गया हो। इनके ऊपर जो मठपरिदर्शक रहते हैं वे 'महाविहारस्वामी' कहलाते हैं।

विहारजिर (सं० क्ली०) विहारस्य जिरा। विहार स्थान। (भागवत ५।२।५)

विहारावसथ (सं० पु०) कोड़ाशूह। (भारत मादिपर्व)
विहारिहणदासमिश्र—वारसीप्रकाश नामक ग्रन्थके रचयिता।

विहारिन (सं० लि०) विहसिं, शीलमस्येति विह-

णिनि । १ परिक्रमी, परिस्रमण करनेवाला । २ विहारक, विहार करनेवाला ।

विहारी (सं० पु०) १ विहार देशके अधिवासी । २ श्री-कृष्णका एक नाम । ३ विहारित देखो ।

विहारीभाषा—विहार देशमें प्रचलित भाषा। यह नागरी, मैथिली और कायथी भाषासे स्वच्छ है । किन्तु यदि अच्छे तरह आलोचना की जाये, तो उनमें बहुत कम प्रमेय मालूम पड़ेगा । नेपालके तराई प्रदेशस्य कोशी, गण्डक, नदातटसे समस्त तिरहुत, भागलपुर, मुङ्गेर, मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, पटना, गया, शाहाबाद, छपरा, चम्पारन आदि जिलोंमें इस भाषाका प्रचार है । पाश्चात्य पण्डित प्रियारसन साहबने विहारी भाषाकी एक विस्तृत शब्द-तालिका संग्रह कर गवेषणाका यथेष्ट परिचय दिया है । विहारदेशवासी प्राचीन कवियोंके ग्रन्थोंमें भी अनेक विहारो शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है । यहाँ तक कि, विहारी भाषामें पदरचनाका भी अभाव नहीं है । विशेष विषय नागरी, मैथिली, कायथी और शब्दतत्त्वमें देखो ।

विहारीमल्ल (राजा)—अम्बर या जयपुरके कच्छवाह-वंशीय एक राजा । मुसलमानी इतिहासमें ये 'भारमल' और 'पूरणमल' नामसे भी प्रसिद्ध हैं । १५२७ ई०में इन्होंने मुगल-सम्राट् बाबरशाहकी अधीनता स्वीकार की । सम्राट् अकबरशाहके साथ भी इनकी गहरी मित्रता थी । इस मित्रताके दृढ़ रखनेके लिये राजाने सम्राट्-के हाथ अपनी कन्या समर्पण की । उसी राजपूत रमणोंके गुरुसे गुजराज सलाम (जहांगीर)का जन्म हुआ । राजा विहारीमल्ल और उनके पुत्र भगवान् दास बादशाहके सेनाविभागमें ऊँच सेनापतिके पद पर नियुक्त थे । भगवान् दास देखो ।

विहारीलाल—सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि । आप सुललित विविध पदोंकी रचना कर भारतवर्षमें यशसे ही गये हैं । इनकी रचनाका देख कर पाश्चात्य पण्डित गिल्-खाइने इन्हें 'The Thomson of the Hindus' आख्यासे सम्मानित किया है । ये सोलहवीं सदीमें जयपुरराज जयशंकाके अधीन प्रतिपालित हुए । इनकी कविता पर प्रसन्न हो कर प्रतिपालक राजाने इन्हें आजोवन मालिक पुत्ति और "सतसई" नामक ग्रन्थके लिये लाज रुपयेका

पारितोषिक दिया था । विशेष विवरण विहारीसाह नब्दमें देखो ।

विदास (सं० पु०) विगतः हासो यस्य । हास्यरहित ।

विहिंसक (सं० त्रि०) वि-हिनस-प्छुल् । विशेषरूपसे हिंसाकारी, नाशकारी, नाशक । (भागवत ११।१०.२७)
विहिंसता (सं० स्त्री०) विहिंसस्य भावो धर्मो वा तल्लटाप् । विहिंसका भाव या धर्म, अनिष्टचिन्ता ।

(भारत ३।२।२६)

विहिंसन (सं० स्त्री०) वि-हिनस ल्युट् । विहिंसा, हिंसा, अनिष्ट चेष्टा ।

विहिंसा (सं० स्त्री०) वि-हिनस-टाप् । हिंसा ।

विहिंसिन (सं० त्रि०) हिंसाकारी ।

विहिंस्र (सं० त्रि०) वि-हिनस-र । हिंसायुक्त, हिंसा विगिष्ट । (भागवत ३।२२।१६)

विहित (सं० त्रि०) वि-धा क्तः प्राप्ते हि इति हि आदेशः ।

१ विधेय, जोखमें जिसका विधान-किया गया हो । २ अनुष्ठित, कृत, किया हुआ । ३ दत्त, दिया हुआ ।

विहितसेन (सं० पु०) राजपुत्रमेद । (कथावर्तिता १७।३४)

विहिति (सं० स्त्री०) वि-धा-क्तिन् । विधान, कोई काम करनेकी आज्ञा ।

विहितिम (सं० त्रि०) वि-धा विमक् प्राप्ते हि । विधान द्वारा निर्वृत कर्म, जो काम विधानानुसार किया गया हो । (भट्टि १।१२)

विहीन (सं० त्रि०) वि-हा-क्त । १ विशेषरूपसे हीन, रहित, विना । २ त्यक्त, छोड़ा हुआ ।

विहीनता (सं० स्त्री०) विहीनस्य भावो धर्मो वा तल्लटाप् । विहीनता भाव या धर्म ।

विहीनर (सं० पु०) ऋषिमेद । पा ७।३१ ।

विहीनित (सं० त्रि०) विद्युत् ।

विह्वलन (सं० पु०) शिवानुचरमेद, भगवान्-शङ्करके एक अनुचरका नाम ।

विह्वलत् (सं० त्रि०) विशेषरूपसे हासविगिष्ट वा आह्वान-युक्त । (चक्र १।२३।६)

विहृत (सं० स्त्री०) वि-हृ-क्त । १ साहित्यमें स्त्रियोंके प्रकाशके स्वाभाविक-अलंकारोंमेंसे एक प्रकारका अलंकार । २ स्त्रियोंका विहारविशेष ।

विहति (सं० स्त्री०) वि-हृ-क्तिन् । १ विशेषरूपसे हरण वा घलात्कार, जबरदस्ती वा बलपूर्वक कुछ ले लेना वा कोई काम करना । २ विहार, क्रीड़ा । ३ उदाटन, खोलना । ४ विस्तृष्टि, फैलाव ।

विहृद्य (सं० स्त्री०) १ हृद्यहीन, साहसशून्य, कायर ।
(अथर्व १।२।११)

विहृष्ट (सं० पु०) वि-हृष्ट-अप् । विहृष्टन, हिंसा ।
विहृष्टक (सं० लि०) वि-हृष्ट-ण्युल् । १ हिंसक, हिंसा करनेवाला । २ भेदक, दलन करनेवाला ।

विहृष्टन (सं० स्त्री०) वि-हृष्ट-ञ्युट् । १ हिंसा । २ मर्दन ।
३ विह्वयन । ४ यातना, दुःख ।

विहृष्टा (सं० स्त्री०) १ क्षति, नुकसान । २ दोष ।
३ मानहानि ।

विहृष्टिन् (सं० लि०) अप्रातिहृष्टन स्रोत ।

विहृत् (सं० स्त्री०) किमिभेद, एक प्रकारका क्रोड़ा ।
(शुक्लपञ्चः २।१७)

विहृल (सं० लि०) वि-हृल-अच् । मयादि द्वारा अभिभूत, भय वा इसी प्रकारके और किसी मनोविषयके कारण जिनका चित्त ठिकाने न हो, घबराया हुआ । पर्याय—
विह्वय, विवश, अचेतन, द्रव्यभूत ।

विहृलता (सं० स्त्री०) व्याकुलता, घबराहट ।

विहृलो (सं० लि०) जो बहुत घबरा गया हो ।

घी—१ कामित । २ गति । ३ व्याप्ति । ४ क्षेप ।
५ प्रजनना ।

घी (सं० पु०) घयर्नायवि घो-गती ग्यङ्कादित्वात् साधे-
क्लिप्, अभिधानात् पुंस्त्वम् । गमन, चलना ।
(एकारकोप)

घीक (सं० पु०) अजतीति अज-कन् (अनि शुभ्रमीम्यो-
दीर्घम् । उप् ३।१७) अजेर्वोभायः । १ वायु । २ पक्षी ।
३ मन । (संक्षिप्तसार उणादि)

घीकाश (सं० पु०) विक्राशमिति वि-कश-घङ् । (क-
काशे । वा ६।३।१२३) इति चेषसर्गस्य दीर्घः । १ निभृत,
एकाग्र स्थान । २ प्रकाश, रोशनी । (अमर)

घीक्ष (सं० पु० स्त्री०) वि-ईक्ष-अच् । दृष्टि ।

घीक्षण (सं० स्त्री०) वि-ईक्ष-ञ्युट् । विशेषरूपसे ईक्षण-
दर्शन, निरीक्षण, देखनेकी क्रिया ।

घीक्षणीय (सं० लि०) वि-ईक्ष-अनीयट् । घीक्षणयोग्य,
देखने लायक ।

घीक्षा (सं० स्त्री०) वि-ईक्ष-अङ्-टाप् । वरीन, घीक्षण,
देखनेकी क्रिया ।

घीक्षापन्न (सं० लि०) घोक्षामापन्नः । विस्मयापन्न,
चकित ।

घीक्षित (सं० लि०) वि-ईक्ष-क्त । विशेषरूपसे ईक्षित,
अच्छी तरह देखा हुआ ।

घीक्षितव्य (सं० लि०) वि-ईक्ष-तव्य । दर्शनीय, जो
देखने योग्य हो ।

घीक्षित्व (सं० लि०) वि-ईक्ष-त्त्च् । घोक्षणकारा, देखने-
वाला ।

घीक्ष्य (सं० स्त्री) घोक्ष्यते इति वि-ईक्ष-ण्यप् । १ विस्मय,
आश्चर्य । २ दृश्य, वह जो कुछ देखा जाय । ३ लासक,
वह जो नाचता हो । ४ घोटक, घोड़ा । (लि०)
५ दर्शनीय, देखने योग्य ।

घीष्ठा (सं० स्त्री०) घीष्ठा देलो ।

घीष्ठा (सं० स्त्री०) सामभेद । (शब्दा० ३।४।१२)

घीष्ठा (सं० स्त्री०) घीष्ठाभिति वि-ईष्ठा । गुरोश्च हलः
इति अ-टाप् । १ शूकशिम्बी, फेंवांच । २ गतिभेद,
एक प्रकारकी चाल । ३ नर्तन, नाच । ४ अन्वगति-
भेद, घोड़ेकी एक चाल । ५ सन्धि, मेल ।
(शब्दरत्ना०)

घीचि (सं० पु० स्त्री०) वहति जलं तदे वद्धं यतीति
वे-इति । (वेदाङ्गिच उप् ४।७२) १ तरङ्ग, लहर । २ अ-
काश, बीचकी खाली जगह । ३ सुख । (मेदिनी) ४ दीति,
चमक । ५ अल्प, थोड़ा ।

घीचिमाली (सं० पु०) समुद्र ।

घीची (सं० स्त्री०) घीचि कृदिकारादिति स्त्रीप् । १
घीचि, लहर ।

घीचीकाक (सं० पु०) जलकाक, जलकीभा । मार्कण्डेय-
पुराणमें लिखा है, कि जो लवण चुराता है वह वाची-
काक अर्थात् जलकाक होता है ।

घीचोत्तरङ्ग (सं० पु०) न्यायभेद, घोचोत्तरङ्गनाय ।
न्याय उतर देखो ।

जिनि । १ परिक्रमी, परिस्रमण करनेवाला । २ विहार-रक, विहार करनेवाला ।

विहारी (सं० पु०) १ विहार-देशके अधिवासी । २ श्री-कृष्णका एक नाम । ३ विहारिव देखो ।

विहारीभाषा—विहार देशमें प्रचलित भाषा। यह नागरी, मैथिली और कायथी भाषासे स्वच्छ है । किन्तु यदि अच्छी तरह आलोचना की जाये, तो उनमें बहुत कम प्रमेय मालूम पड़ेगा । नेपालके तराई प्रदेशके कोशी, गण्डक, नदीतटसे समाप्त तिरहुत, भागलपुर, मुङ्गेर, मुमफरपुर, दरभङ्गा, पटना, गया, शाहाबाद, छपरा, बम्भारन आदि जिलोंमें इस भाषाका प्रचार है । पाश्चात्य पण्डित प्रियारसन साहबने विहारी भाषाकी एक विस्तृत शब्द-तालिका संप्रद कर गवेषणका यद्ये परिचय दिया है । विहारदेशवासी प्राचीन कवियोंके ग्रन्थोंमें भी अनेक विहारी शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है । यहां तक कि, विहारी भाषामें पदरचनाका भी अभाव नहीं है । विशेष विवरण नागरी, मैथिली, कायथी और शब्दतत्त्वमें देखो ।

विहारी मल्ल (राजा)—अम्बर या जयपुरके कच्छवा-द-प्रंशय एक राजा । मुसलमानों इतिहासमें ये 'भारमल' और 'पूरणमल' नामसे भी प्रसिद्ध है । १५२७ ई०में इन्होंने मुगल-सम्राट् बाबरशाहकी अधोभता स्वीकार की । सम्राट् अकबरशाहके साथ भी इनकी गहरो मिलता थी । इस मिलताका दृढ़ रक्षनेके लिये राजाने सम्राट्-के हाथ अपनी कन्या समर्पण की । उसी राजपूत रमणी-के गले सुबराज सलाम (जहांगीर)का जन्म हुआ । राजा विहारीमल्ल और उनके पुत्र भगवान् दास बादशाह के सेनाविभागमें ऊँच सेनापतिके पद पर नियुक्त थे ।
भगवान् दास देखो ।

विहारीलाल—सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि । आप सुललित विविध पदोंकी रचना कर भारतवर्षमें यशस्वी हो गये हैं । इनकी रचनाका देख कर पाश्चात्य पण्डित गिल्-जाइटने इन्हें 'The Thomson of the Hindus' आख्या-से सम्मानित किया है । ये सोलहवीं सदीमें जयपुरराज जयशंके अधीन प्रतिपालित हुए । इनकी कविता पर प्रसन्न हो कर प्रतिपालक राजाने इन्हें आजीवन मार्सिक पृथ्वी और "सतसई" नामक ग्रन्थके लिये लाख रुपयेका

वारितीयक दिया था । विशेष विवरण 'विहारीसाहस शब्दमें देखो ।

विहास (सं० पु०) विगतः हासो यस्य । हास्यरहित ।
विहिंसक (सं० लि०) वि-हिंस-ष्णुल् । विशेषरूपसे हिंसाकारी, नाशकारी, नाशक । (भाषाव १११०, २७)
विहिंसता (सं० खी०) विहिंसस्य भावो धर्मो वा तल्ल-टाप् । विहिंसका भाव या धर्म, अनिष्टचिन्ता ।

(भाषा ३ १२/३६)

विहिंसन (सं० क्ली०) वि-हिंस-त्स्युट् । विहिंसा, हिंसा, अनिष्ट चेष्टा ।

विहिंसा (सं० खी०) वि-हिंस-टाप् । हिंसा ।
विहिंसिन् (सं० लि०) हिंसाकारी ।

विहिंस (सं० लि०) वि-हिंस-र । हिंसायुक्त, हिंसा-विशिष्ट । (भाषाव ३ १२/१६)

विहित (सं० लि०) वि-धा क्, आभो हि' इति हि आदेशः ।
१ विधेय, शास्त्रमें जिसका विधान किया गया हो । २ अनुष्ठित, कृत, किया हुआ । ३ दत्त, दिया हुआ ।

विहितसेन (सं० पु०) रामपुत्रमेद । (कथावर्तिषा० १७/३४)
विहिति (सं० खी०) वि-धा-क्तिन् । विधान, कोई काम करनेका आह्वान ।

विहितिम (सं० लि०) वि-धा त्रिमक् घाञो हि । विधान द्वारा निवृत्त कर्म, जो काम विधानानुसार किया गया हो । (भट्टि १/१३)

विहोन (सं० लि०) वि-हान्क । १ विशेषरूपसे दोन, रहित, विना । २ त्यक्त, छोड़ा हुआ ।

विहोनता (सं० खी०) विहोनस्य माधो धर्मो वा तल्ल-टाप् । विहोनभा भाव या धर्म ।

विहोनर (सं० पु०) ऋषिमेद । पा ७/३१ ।

विहोनिता (सं० लि०) विद्युक्त ।

विहुण्डन (सं० पु०) शिवानुचरमेद, भगवान् शङ्करके एक अनुचरका नाम ।

विहुंसत् (सं० लि०) विशेषरूपसे हामविशिष्ट या आह्वान-युक्त । (शुक १/१३/४६)

विहृत (सं० क्ली०) वि-हृ-क । १ साहित्यमें स्त्रियोंके 'श' प्रकारके सामाविक-अलंकारोंमेंसे एक प्रकारका अलंकार । २ स्त्रियोंका विहारविधेय ।

विहृति (सं० खी०) वि-हृ-क्तिन् । १ विशेषरूपसे हरण वा घालाकार, जबरदस्ती या बलपूर्वक कुछ ले लेना या कोई काम करना । २ विहार, फोड़ा । ३ उदाटन, खोलना । ४ विस्तृति, फैलाप ।

विहृश्य (सं० खी०) १ हृदयहीन, साहसशून्य, कायर ।
(अथर्व ५।२।११)

विहृष्ट (सं० पु०) वि-हृष्ट-अप् । विहृष्टन, विहृसा ।
विहृष्टक (सं० लि०) वि-हृष्ट-ण्युल् । १ हिंसक, हिंसा करनेवाला । २ मेदक, बलन करनेवाला ।

विहृष्टन (सं० खी०) वि-हृष्ट-ण्युट् । १ हिंसा । २ मर्दन ।
३ विह्वलन । ४ यातना, दुःख ।

विहृष्टा (सं० खी०) १ क्षति, नुकसान । २ दोष ।
३ मानहानि ।

विहृष्टिन् (सं० लि०) अर्थात् इत स्रोत ।

विहृत् (सं० खी०) मिमिमेद, एक प्रकारका फोड़ा ।
(शुक्लयजुः २८।७)

विह्वल (सं० लि०) वि-ह्वल-अच् । भयादि द्वारा अभिभूत, भय या इसी प्रकारके और किसी मनोवैगमके कारण जिसका चित्त ठिकाने न हो, घबराया हुआ । पर्याय—
पिक्व, विघ्न, अचेतन, द्रवोभूत ।

विह्वलता (सं० खी०) व्याकुलता, घबराहट ।

विह्वली (सं० लि०) जो बहुत घबरा गया हो ।

वी—१ कागित । २ गति । ३ क्वापति । ४ क्षेप ।
५ प्रजनना ।

वी (सं० पु०) घनव्यति वी-गती श्वङ्कादित्थात् भावे क्तिप्, अभिघानात् पुंस्त्वं । गमन, चलना ।
(एकारकोप)

वीक (सं० पु०) अजतीति अज-कन् (अजि सुधूनीभ्यो दीर्घश्च । उण् ३।४७) अजघीभावः । १ वायु । २ पक्षी ।
३ मन । (संक्षिप्तकार उणादि)

वीकाश (सं० पु०) विकारात्मित वि-कश-घञ् (इका-काशे । पा ६।३।१२३) इति घेषपसर्गस्य दीर्घः । १ निभूत, एकान्त स्थान । २ प्रकाश, रोशनी । (अमर)

वीक्ष (सं० पु० खी०) वि-ईक्ष-अच् । दृष्टि ।

वीक्षण (सं० खी०) वि-ईक्ष-ण्युट् । विशेषरूपसे ईक्षण-दर्शन, निरीक्षण, देखनेकी क्रिया ।

वीक्षणीय (सं० लि०) वि-ईक्ष-अनीयट् । वीक्षणयोग्य, देखने लायक ।

वीक्षा (सं० खी०) वि-ईक्ष-अङ्-टाप् । दर्शन, वीक्षण, देखनेकी क्रिया ।

वीक्षापत्र (सं० लि०) वीक्षासाधनः । विस्मयापन्न, चकित ।

वीक्षित (सं० लि०) वि-ईक्ष-क्त । विशेषरूपसे ईक्षित, अच्छी तरह देखा हुआ ।

वीक्षितव्य (सं० लि०) वि-ईक्ष-तव्य । दर्शनाय, जो देखने योग्य हो ।

वीक्षितु (सं० लि०) वि-ईक्ष-तुच् । वीक्षणकारो, देखनेवाला ।

वीक्ष्य (सं० खी०) वीक्ष्यते इति वि-ईक्ष-ण्यट् । १ विस्मय, आश्चर्य । २ दृश्य, वह जो कुछ देखा जाय । ३ लासक, वह जो नाचता हो । ४ घोटक, घोड़ा । (लि०)
५ दर्शनीय, देखने योग्य ।

वीक्षा (सं० खी०) वीक्षा देवो ।

वीङ्क (सं० खी०) साममेद । (आश्विन ३।४।१३)

वीङ्गा (सं० खी०) वीङ्गानामित वि-ईङ्ग । गुरोश्च हलः इति अ-टाप् । १ शूकशिम्बी, केवांच । २ गतिमेद, एक प्रकारकी चाल । ३ नत्तन, नाच । ४ अश्वगति-मेद, घोड़ेकी एक चाल । ५ सन्धि, मेल ।
(शब्दरत्ना०)

वीचि (सं० पु० खी०) वृहति जलं तदे वृक्षं यतीति वे-ईस्ति । (वेना द्विव्च । उण् ४।७२) १ तरङ्ग, लहर । २ अवकाश, बीचकी खाली जगह । ३ सुख । (मेदिनी) ४ धर्मि, चमक । ५ अल्प, छोटा ।

वीचिमाली (सं० पु०) समुद्र ।

वीचो (सं० खी०) वीचि कृदिकारादिति ङीप् । १ वीचि, लहर ।

वीचोकाक (सं० पु०) जलभाक, जलकीभा । मार्कण्डेय-पुराणमे लिखा है, कि जो लवण चुराता है वह वाचोकाक अर्थात् जलकाक होता है ।

वीचोतरङ्ग (सं० पु०) न्यायमेद, वीचोतरङ्गन्यायः ।

बीज (सं० क्ली०) विशेषण कार्यरूपेण जायते अपत्य-
तया च जायते इति, वि जन 'उपसर्गं च सहायां' इति उ
अभ्येयामपीति, उपसर्गं सा दीर्घः, यद्वा विशेषेण ईजते
कुक्षिं गच्छति शरीरं वा ईज-गतिकुटसनयोः पचाद्यच्
वा बीजते गच्छति गर्भाशयमिति बीज-अच् । १ मूल
कारण । (गीता ७।१०) २ शुक्र, वीर्य ।

मनुष्यशरीरके शक्तिरूप इस शुक्र या तत्प्रवर्चित
ओजो धातु ही वीर्य नामसे पुकारा जाता है । इसी वीर्य
से जीवोत्पत्तिक्रिया परिवर्तित हुआ करती है । बिना
बीजनिपेकके सन्तानोत्पत्ति नहीं होती ।

(शुक्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

३ तेज । ४ शशाङ्का बीज, बीजा । ५ अंशुर । ६
शशाङ्गिका फल । ७ आघार । ८ निधि । ९ तत्त्व । १०
मूल । ११ तत्त्वावधान । (मेदिनी) १२ मज्जा । (राजनि०)
१३ मन्त्र । (तन्त्रशर)

देव-पूजाके निमित्त विहित मन्त्रादिके मूलतत्त्व
रूप जो संक्षिप्त मन्त्रवचन है, वही उस देवताका बीज
कहा जाता है । प्रत्येक देवताका ही एक एक बीजमन्त्र
है । उसी बीजमन्त्रसे उनको पूजा होती है । तन्त्रोक्त
दीक्षाप्रहणके समय जिस कुलके जो देवता हैं, उसी
देवताका बीज दीक्षाप्रहणकारीके नाम राशि अक्षर-यह
आदि चक्रानुसार स्थिर कर देना होता है । दीक्षित व्यक्ति
उसी बीजमन्त्रके साथ देवताकी आराधना कर सिद्धि
लाम कर सकते हैं । पुरस्चरण आदिमें भी इस मन्त्रका
जप करना होता है । तन्त्रसारमें मित्र मिन्न देवताका
बीज इस तरह लिखा है—

भुवनेश्वरीका बीज—ह्रीं । अन्नपूर्णाका बीज—ह्रीं
नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा । त्रिपुरादेवीका
बीज—श्रीं ह्रीं फलीं । स्वरिता बीज...ॐ ह्रीं हुं खे
च छे क्ष ह्रीं ह्रीं फट् । गित्या बीज पे फलीं नित्य
फलन्मे मद्द्रवे स्वाहा । वज्रप्रस्तारिणी—पे ह्रीं नित्य-
क्लिन्ने मद्द्रवे स्वाहा । दुर्गाबीज—ॐ ह्रीं हुं दुर्गायै नमः ।
महियमहिं नोबीज—ॐ महियमहिं नोः स्वाहा । जय-
दुर्गाबीज—ॐ हुमे दुर्गे रक्षणि स्वाहा । शूलिनोबीज—
ज्वल ज्वल शूलिनो दुष्टप्रह हुं फट् स्वाहा ।
वागीश्वरीबीज—वद् वद् वाग्वादिनी स्वाहा ।

पारिजातसरस्वती बीज ॐ ह्रीं ह्रसौं ॐ ह्रीं सरस्वत्यै
नमः । गणेशबीज—गं । हरम्यबीज—ओं गूं नमः ।
हरिद्रा गणेशबीज—गं । लक्ष्मीबीज श्रीं । महालक्ष्मी-
बीज—ओं पे ह्रीं श्रीं फलीं हसौं जगत्प्रसूयै नमः । सूर्य
बीज ओं घृणिसूर्यं आदित्य । श्रीरामबीज—रां रामायै
नमः । जानकीवल्लभाय हुं स्वाहा । विष्णुबीज—ओं नमो
नारायणाय । श्रीकृष्णबीज—गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।
वासुदेवबीज—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । वाल-
गोपालबीज—ओं फलीं कृष्णाय । लक्ष्मी वासुदेव
ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मी वासुदेवाय नमः ।
दधियामनबीज—ॐ नमो विष्णवे । सुरपतये
महावलाय स्वाहा । हयप्रोवबीज—

ॐ उदुगिरत प्रणवोद्गोद्य सर्वयामोश्वरेश्वर ।

"सर्वदेवमयाचिन्त्य सर्वं" घोष्य- घोष्य ॥

नृसिंहबीज—उमं वीरं महाविष्णुं ज्यक्षन्तं सर्वतोमुखम् ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥"

नरहरिबीज—आं ह्रीं क्षौं हुं फट् । हरिहरबीज—
ओं ह्रीं ह्रीं शङ्करनारायणाय नमः ह्रीं ह्रीं ऊं । पराह-
बीज—ऊं नमो भगवते वराहकृपाय भूभुञ्जः पतये भूति-
त्वं मे देहि ददापय स्वाहा । शिवबीज—ह्रीं । मृत्यु-
क्षय—ओं जूं सः । दक्षिणा मूर्त्ति—ओं नमो भगवते
दक्षिणामूर्त्तये महां मेघां प्रयच्छ स्वाहा । चिन्तामणि—
रक्ष मरय ऊं म्रं । नीलकण्ठ—ओं नीं ठः नमः
शिवाय । चण्ड—रुद्र फट् । क्षेत्रपाल—ओं क्षौं क्षेत्रपा-
लाय नमः । वटुकभैरव—ओं ह्रीं वटुकाय आपदुद्धरणाय
कुक् कुक् वटुकाय ह्रीं । त्रिपुरा—हसरें । हसकलरो
हसरीः । सम्पदप्रदभैरवी—हसरें । हसकलरो हसरें ।
कैलेशभैरवी—सहरें । सह कलरो । सहरें । सकल
सिद्धिदाभैरवी सहैः । सहकलरो सहौं । चैतन्य
भैरवी—सहै । सकल ह्रीं । सहरें । कामेश्वरीभैरवी—
सहै । सकल ह्रीं । नित्यक्लिन्ने मद्द्रवे सहरौः । पट-
कुटा भैरवी—डरल कसहौं । नित्यभैरवी—हस कलरहौं ।
ग्रदभैरवी—हसकलरें । हसकलरो । हसौः । भुवनेश्वरी
भैरवी सहै । हसकल ह्रीं । हसौः । सकलेश्वरी—सहै ।
सकल ह्रीं । सहौः । त्रिपुरावाला—पे ह्रीं सौः
नयकुटा वाला—पे ह्रीं सौः ह्रमं । हसकलरो । हसौः ।

हसरे हसकलरी हसरीः । अन्नपूर्णा भैरवी—ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरी अन्नपूर्णै स्वाहा । श्रीविद्या—कण्डलीहो । सकल हल ह्रीं । सकल ह्रीं छिन्नमस्ता—श्री ह्रीं ह्रीं ऐं व्रज वैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

श्यामा—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । गुह्यकालिका—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं गुह्यकालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । भद्रकाली—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । महाकाली—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं महाकालिके क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । श्मशानकाली—क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । तारा ह्रीं ख्रीं ह्रीं फट् । चण्डामशूलपाणि—ओं ह्रीं ह्रीं शिवाय फट् । मातङ्गिनी—ओं ह्रीं क्रीं ह्रीं मातङ्गिनी फट् स्वाहा । उच्छिष्टचाण्डालिनी—सुमुखी देवी महापिशाचिनी ह्रीं ठः ठः ठः । धूम्रावती—धूं धूं स्वाहा । भद्रकाली—ह्रीं कालि महाकालि किलि किलि फट् स्वाहा । उच्छिष्टगणेश—ओं ह्रित् पिशाच शिखे स्वाहा । घनदा—ध्रं ह्रीं श्रीं देवि रतिप्रिये स्वाहा । श्मशानकालिका—ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं । कालिके—ऐं ह्रीं ख्रीं ह्रीं । वगला—ओं ह्रीं वगलामुखि सर्वदुष्टानां धावं सुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्र्लों ओं स्वाहा । कर्णापिशाचीं—ओं कर्णापिशाचि यदानोतानागत शब्दं ह्रीं स्वाहा । मङ्गुघोष—क्रीं ह्रीं श्रीं । तारिणी—क्रीं ह्रीं शृणुदेवि ह्रीं ह्रीं ऐं । सरस्वती—ऐं । कात्यायनी—ऐं ह्रीं श्रीं चोँ चण्डिकायै नमः । दुर्गा—ह्रीं । विजालाक्षी—ओं ह्रीं विजालाक्षी नमः । गौरी—ह्रीं गौरी रुद्रदयिते योगेश्वरि ह्रीं फट् स्वाहा । ब्रह्मश्री—ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीं राजिते राजपुजिते जये विजये गौरि गांधरि त्रिभुवनशङ्करि सर्वलोकेशङ्करि सर्वलोकपुष्यवशङ्करि सुयुद्धुर्वीरराये ह्रीं स्वाहा । इन्द्र—इं इन्द्राय नमः । गरुड क्षिप ओं स्वाहा । विषहरासि—खः खः । हनुमान—हं हनुमते रुद्रात्मकाय ह्रीं फट् । वीरसाधन—हुं पवननन्दनाय स्वाहा । श्मशानभैरवी—श्मशानभैरवि नरकधरासिधयसाभक्षायि सिद्धि मे देहि मम मनोरथान् पूरय हुं फट् स्वाहा । अ्यालामालिका—ओं नमो भगवति उवालामालिनी

गुप्रगणपरिवृते हुं फट् स्वाहा । महाकाली—ओं क्रीं क्रीं क्रीं पशून्, गृह्णान् हुं फट् स्वाहा । (तन्त्रधार) इन सब वोजमन्त्रोंमें उक्त देवताओंकी पूजा करना होता है । पूजा-प्रणाली तन्त्रसारमें विशेषरूपसे वर्णित है । तत्तत् देवनाम शब्दोंमें विशेष विवरण देखो ।

बीजाभिघाततन्त्रमें धीरजके ये सब नाम निर्दिष्ट हैं, जैसे—माया, लज्जा, परा, स'वित्, त्रिगुणा, भुवनेश्वरी, हल्लेखा, शम्भू यनिता, शक्तिदेवी, ईश्वरी, शिवा, महा माया, पार्वती, संस्थानकृतकृपिणी, परमेश्वरी, भुवना, धात्री, जीवनमध्याया इत्यादि ।

तन्त्रसारमें लिखे बीजमन्त्रादिकी भी साङ्केतिक स'हाय्ये वर्णित हैं । यथा—श्रीं=कूर्च्छाबीज, पुं=मायाबीज, ह्रीं=कामबीज, ह्रूं=वधुबीज, ख्रीं=वाग्बीज, ठि=विम्बबीज । इस तरह विभिन्न धायु-बीज, इन्द्रबीज, शिवबीज, शक्तिबीज, रमाबीज, रति-बीज आदिका भी उल्लेख देखा जाता है । ये सब बीज मूलतत्त्वके संक्षेपाकार हैं । फिर भी, प्रत्येक बीजसे एक एक सन्तम्ब अर्थां संप्रह हो जाता है । सब बीजोंका अर्थां बहुत गुप्त है । इसलिये तांत्रिक आचार्योंने साधारणके लिये ये सब विशदरूपसे व्यक्त नहीं किये हैं ।

श्रीशेषाद्वैतिके नियमक्रमसे साधक सामान्यार्थ्य स्थापनादि आसनोपवेशन तक यावतोय पूजाकर्म समापन कर मूलमंत्र उच्चारण कर देवताको नमस्कार करें । इनके बाद 'फट्' इस मन्त्रसे गन्धपुष्प द्वारा करशोधन और ऊरुध्वं तालवय ध्वनित कर छोटिकामुद्रामें दशो दिशाओंको बांध कर 'रं' मन्त्रमें जलधारा द्वारा घेष्टन कर अपनी देहकी चङ्कि-प्रकारकी चिन्ता कर भूतशुद्धि करें । भूतशुद्धिसे मृतय पट्-चक्रमेद हो प्रधान अङ्ग है । पहले अपने अङ्गमें द्रोणं हाथ उत्तानभावमें स्थापन कर 'सोऽहं' इस मन्त्रसे हृदय-मध्यस्थित प्रक्षीय कालिकाकृति ओवात्माको मूलाधारस्थित कुलकुण्डलिनीके साथ युक्त कर सुषुम्ना परममें मूलाधार, अघिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आह्लाष्य पट्चक्रमेद कर शिरस्थित अधोमुख सहस्रदल कमलके कर्णिकान्तर्गत परम शिष्यमें संयोगित कर उसमें पृथिव्यादि चतुर्विंशति तत्त्वविहान हुआ है, मन ही मन इस प्रकार चिन्ता कर "धं" इस धायुबीजकी वाम नासा-

पुटमें चिन्ता और इस बीज द्वारा सोलह बार जप कर देह पूर्ण करणांतर दोनों नासापुट धारण करें। इस बीजको ६४ बार जपनेके बाद कुम्भक कर वाम कुक्षिस्थित काले पापपुटके साथ देह शोषण कर लें और बत्तीस बार इस बीजको जप कर वायु शुद्ध करें। इसके बाद दक्षिण नासिकामें रक्तवर्ण "रं" इस वह्नियोजको चित्ता कर यह बीज सोलह बार जप कर वायु द्वारा देह पूरण करें और दोनों नासिकाको पकड़ कर इस बीजको ६४ बार जप द्वारा कुम्भक कर काले पापपुटके साथ देहको मूलाधारस्थित अग्नि द्वारा वहनपूर्वक फिर इस बीजको बत्तीस बार जप द्वारा वामनासिका द्वारा वायुरेचन करें। इसके बाद शुक्लवर्ण "ठं" इस चन्द्रबीजको वाम नासिकामें ध्यान कर इस बीजको सोलह बार जप द्वारा ललाट देशमें चन्द्रको ला कर उभय नासिकाको पकड़ कर "रं" इस वरुणबीजको ६४ बार जप कर मातृकावर्णमय ललाटस्थ यंत्रसे गलित अमृत द्वारा सारी देह रचना कर "लं" इस पृथ्वीबीजको ३२ बार जप द्वारा देहको सुदृढ चिन्ता कर दक्षिण नासिकासे वायु रेचन करें।

इस तरह मातृकान्यास, कराङ्गन्यास, पीठन्यास, ऋष्यादि न्यास आदिमें भी शरीरके यथास्थानमें बीजका आधार कल्पना कर उन स्थानोंको स्पर्श करनेके समय उस उस बीजसंज्ञाकी चिन्ता करें। देवताविशेषमें करङ्गादिन्यास और बीजमन्त्रके विभिन्नत्व लिपिबद्ध हुआ है। विस्तारके भयसे उन सबोंका उल्लेख यहां नहीं किया गया। प्रत्येक देवताके नाम-शब्दमें ये सब संक्षेपमें दिये गये हैं। विशेष विवरण न्यास और णट्चक्रमें देखो।

बीजक (सं० पु०) १ मातृलुङ्गवृक्ष, विजयसार या पिया-माल नामक वृक्ष। पर्याय—पोतसार, पोतशालक, बन्धूकपुष्प, प्रियक, सर्जक, आसन। गुण—ऊष्ण, विसर्प, गेह, कृमि, श्लेष्मा और पित्तनाशक केशवृद्धिकर तथा रसायन। (भावप्र०) (ह्रीं०) बीज-स्वार्थे क्रम। २ विजौरा नोबू। ३ सफेद सहिजन। ४ बीज, बीजा। बीज देखो।

बीजकर (सं० पु०) उड़की दाल जो बहुत पुष्टिकर मानो जाती है।

बीजरुक्ति (सं० खी०) दीर्घरुक्ति, बड़ो ककड़ी।

बीजकसार (सं० पु०) १ विजयसारके बीज। २ मातृलुङ्गसार, विजौरा नोबूका सार या सस।

बीजका (सं० खी०) रूपिलद्राक्षा, मुनका।

बीजकाय (सं० खी०) बीजशरीर, आदिदेह।

बीजकाह (सं० पु०) मातृलुङ्गवृक्ष, विजौरा नोबूका पेड़।

बीजकृत (सं० ह्रीं०) बीज धोप्यं करोति घट्टं यतीति कृ-
कित्पु तुक्च। १ घट्टं औषध जिसके खानेसे घीर्ष बढ़ता है, घोट्टं घट्टानेवाली दवा। १ घोट्टंकारक, घोट्टं घट्टानेवाला।

बीजकोश (सं० पु०) बीजानां कोशः आधार इव। १ पञ्चबीजाधारचक्रिका, कमलगट्टा। पर्याय—चराटक, कर्णिका, यारिकुण्ड। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ फल जिसमें बीज रहते हैं।

बीजकोशक (सं० ह्रीं०) वृषण, अंडकाश।

(वैयकनि०)

बीजगणित (सं० ह्रीं०) अङ्कविद्याविशेष। (Algebra) जिस शास्त्रमें वर्णमालाके अक्षरोंको संघवासरूप मान कर और कई साङ्केतिक चिह्नोंके व्यवहार कर राशि-विषयके सिद्धान्तोंको युक्तिके साथ संस्थापित किया जाता है, उसका नाम बीजगणित है।

बीजगणित अङ्कशास्त्रकी एक शाखा है। इसके द्वारा पाठागणितमें प्रचलित नियमावलीसे विभिन्न और अचिन्त्यपूर्व अङ्कसाधन शिक्षा-प्रणाली सीखी जा सकती है। क्रमोत्कर्षके स्तब्ध-विचारसे इस शास्त्रके साथ पाठागणितका चाहे जिस तरहका पार्ष्वय दिखाई क्यों न दे, किन्तु पाठीगणित शास्त्रसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त पर पहुँच कर सर आइज़क न्यूटनने बीजगणितको 'सार्वत्रिक गणितविद्या' (Universal arithmetic) नामसे अभिहित किया है। यद्यपि इस नामसे इसका अर्थ परिष्कृत नहीं होता, तथापि इससे इस शास्त्रको अभिव्यक्ति बढ़ाई गई है। न्यूटनके पिछले समयके सर्वप्रधान अङ्कविद्वे पण्डित सर विलियम रोयान हेमिल्टन बीजगणितको "विशुद्ध कालविज्ञान" (Science of Pure Time) कहते हैं। जो मार्गने इस संज्ञाको परिष्कृत करनेके लिये "क्रम गणना" नाम रखा है।

शेपोक इन नामोंसे ग्यूटन की दो संघा साधारण पाठकोंके मनमें सरल मालूम होगी, ऐसी भाषा है।

पाटीगणितसे किस तरह बीजगणितका सूत्रपात और इसका क्रमविकास हुआ, उसका संक्षेप रूपसे वर्णन करना सहज बात नहीं। पाटीगणित और बीजगणितको प्रकियाके बीचमें स्थूलता जो पार्श्वव दिखार देता है, यह यह है, कि पाटीगणितकी प्रकियायें साक्षात् भावसे व्याख्यात होती हैं। किन्तु बीजगणितकी प्रकियायें अनेक बार केवल तुलना द्वारा व्याख्यान होती हैं। उदाहरणस्वरूप भग्नांशके गुणनका विषय हो लिया जाये। इटलीके लुकासु दो वागीओर इग्लैण्डके रायट रेकोर्ड आदि परिद्धतोंने भग्नांशके गुणनको साधारण गुणनके समान प्रयोगका सिद्धान्त किया है। साधारण गुणन जैसे योगका सट्टज उपाय है, दृष्टिमात्र ही इसको वैसा समझ नहीं सकती। गुणनकी धारणा कर उसके साथ भग्नांशकी सहाके संयोग करनेसे दो भग्नांश गुणनको व्याख्या हो जायेगी। दूसरी ओर चौथी शताब्दीके प्रसिद्ध पाश्चात्य परिद्धत देमोफान्तसने वियोगचिह्न व्यवहारके मूलमें बीजगणितकी मिति देखी थी। इन्होंने अपने लिये एक ग्रन्थके प्रारम्भमें ही वियोगचिह्नकी यह विशेष संज्ञा लिखिबद्ध की है, वियोगचिह्नसम्वलित राशिको वियोगसम्वलित राशि द्वारा गुणा करनेसे गुणनफल योगचिह्नविशिष्ट होगा। मूल चिह्नकी तरह इस चिह्नके अथाध व्यवहारकी कोई मौलिक क्रिया प्रणाली नहीं है। यह पाटीगणितकी नियमप्रणालीके अनुसार गठित होने पर इसका व्यवहार निश्चय ही समसंकुल हो जायेगा। गणितशास्त्रकी मौलिक नियमावलीके साथ उक्त नियमके अथाध प्रयोग द्वारा बीजगणितकी सीमा संक्षेप की गई है। विषयानुगुणितविदु युक्लिड भी स्वयं इस सीमासे दूर बढ़ जाना सम्भव पर नहीं समझें।

व्यवहार-प्रणालीके किसी विधिवद्ध नियमके अभावमें गणितशास्त्रके नियमके पार्श्वमें वियोग चिह्न संस्थापन करनेसे इसका फल नियमविरुद्ध हो जाता था। यह बात हमारा कथोलकविगत नहीं। पचास वर्ष पहलेके बीजगणितमें जै। था, इस समय सर विलियम

रोयानो हेमिल्टनने उसके साथ कुछ अंश जोड़ कर बीजगणितका उत्कर्ष साधन किया है। इस अंशको हेमिल्टनने "चतुर्क" नामसे अभिहित किया है। इन आविष्कारोंकी प्रतिष्ठा होनेसे किसी भी नियमसे अङ्कका व्यवहार निष्पन्न किया जा सकता है। गणितशास्त्रके बहुत पुराने इस स्वतः सिद्धान्तका विलोप हुआ है।

इतिहास।

पहले समयको ज्यामितिको पढ़नेसे विश्वास होता है, कि यह प्राचीन अङ्गुविदु परिद्धतोंके परिष्कार अङ्कशास्त्रसे सारांश और विशुद्ध ज्यामितिके ही अनुरूप है। प्रत्युत, वर्तमान समयमें प्रचलित बीजगणितके साथ इसका बहुत पार्श्वव दिखार देता है।

पूर्वकालके ज्यामिति-शास्त्रकारोंने बीजगणितके सारांशसे तर्कादि प्रदणपूर्वक अपने आविष्कारका पुष्टिसाधन किया है, इस विषयमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। किन्तु क्रिश्चिन्तु परवर्ती समयके प्रामाणिकोंने इस विषयमें जो क्रिश्चिन्तु उपरपत्तिलाभ किया था, वह इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे सहज ही हृदयङ्कम होता है।

चौथी सदीके मध्यभागमें अङ्गुविद्याकी खूब अवनति हुई थी। इस समयके अङ्गुविद्याने किसी तरह मौलिक प्रथं लिखनेका प्रयास न पा पूर्ववर्ती लेखकोंके लिये प्रथंके माध्य-प्रणयनमें ध्यान दिया था। इससे पूर्व समयके अङ्कशास्त्रका खूब उत्कर्ष साधित हुआ।

प्रसिद्ध परिद्धत दिमोफान्तसने गणितशास्त्रके सम्बन्धमें कई ग्रन्थोंकी रचना की। उनका मूल ग्रन्थ तेरह भागोंमें विभक्त हुआ था। इनमें पहले छः भाग और बहु अत्रविशिष्ट अङ्कके सम्बन्धमें असम्पूर्ण अन्तिम ग्रन्थ इन समय मिलता है। शेपोक ग्रन्थ ही १३वां स्थानीय कद कर गृहीत हुआ है।

उल्लिखित ग्रन्थ बीजगणितविषयक सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं मालूम होता। किन्तु इससे ही इस शास्त्रके मूलविषय सम्बन्धमें प्रकृत ज्ञानलाभ किया जा सकता है। प्रथंकारने पहले तो अपनी प्रणालीके अनुसार साधारण और विषयकर्षका या वर्गीय समीकरणका (यथा—ऐसे दो राशियाँ निकाल लो, जिनका योगफल या वियोगफल

प्रदत्त है) नियम दिखा कर नई प्रथासे विशेष ध्रुवोंके कई अङ्क निष्पादन किये हैं। इस समय इन्को ही अनिर्धारित विभाग कहते हैं।

सम्भवतः दिओफन्तास ही यूनानदेशके बीजगणितके मूलग्रन्थकार हैं। किन्तु ऐसा मालूम नहीं होता, कि उससे पूर्व उस देशके अधिवासी इस शास्त्रसे अनभिज्ञ थे। यही सम्भव है, कि मूल विषयोंका अध्ययन कर अपने बुद्धिबलसे इन्होंने इसका उत्कर्ष साधन किया है। दिओफन्तासके रनिन समीकरणोंकी महज पद्धति देख मालूम होता है, कि वे इस विषयमें पहलेसे ही पारदर्शी थे और द्वितीय पद्योंके निर्दिष्ट समीकरणोंका सम्पादन कर सकते थे। सम्भवतः उस समय यूनानमें इस शास्त्रका उत्कर्ष यहाँ तक ही हुआ था। इटलीके गिस्तासंस्कार-युगमें इसमें सम्यक् उत्कर्षलाभ किया। किन्तु उससे पहले पाश्चात्य शिक्षित जगत्के सब स्थानोंमें ही यूनानकी अपेक्षा प्रकृष्टरूपसे बीजगणितकी प्रसारबुद्धि नहीं हुई।

धिओनकी कन्या प्रसिद्धा हाइपेसियाने दिओफन्तासके लिखे ग्रन्थका एक भाग्य बनाया था। इसके सिवा इसने एपोलोनियासके सूचीकृद्द्विपयक गणितशास्त्रकी भी एक टीका की थी। दुःखका विषय है, कि इन दोनों ग्रन्थोंमें इस समय एक भी नहीं मिलता।

१६ वीं शताब्दीके मध्यभागमें प्रीकभायामें लिखी पूर्वाक्त दिओफन्तासकी प्रथावली रोमके भाटिकन पुस्तकालयमें मिली थी। सम्भवतः तुर्कीने तब कुन्तुन्तुनिया पर अधिकार किया, तब यह ग्रन्थावली यूनानसे यहाँ लाई गई। सन् १५७५ ई०में जाइलएडरने लैटिन भाषामें अनुवादित इसका एक संस्करण प्रकाशित किया था। सन् १६६१ ई०में चैकेट डी मेजेरियाक नामक फ्रेञ्च एकाडमीके एक सदस्यने इस ग्रन्थके सटीक संपूर्ण अनुवाद प्रकाशित किया। चैकेट अपने "अनिर्दिष्ट विभाग" विषयक अङ्कमें विशेष पण्डित था। उपयुक्त पाठ द्वारा ही उपयुक्त कार्यों का था। दिओफन्तासके मूल ग्रन्थका प्रायः तरहसे नष्ट हो गया था, कि चैकेटकी ग्रन्थकारका भाव ले कर या बाद पूरण कर

करना पड़ा था। इसके कई वर्ष बाद फ्रांस देशके प्रसिद्ध गणितविद् फार्माटने चैकेटके संस्करणके साथ यूनानो बीजगणितकारोंके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें स्वकृत टीका मन्त्रि-चेत्र कर चैकेटका नया संस्करण प्रकाशित किया। फार्माट स्वयं पण्डित था। सुतरां इस संस्करणको सर्वोंने प्यार किया था। यह संस्करण प्रचलित संस्करणोंमें अत्युत्कृष्ट है। यह सन् १६७० ई०में पहले पहल प्रकाशित हुआ था।

दिवोफन्तासकृत ग्रन्थावलीका उद्धार होनेसे अङ्कशास्त्रमें युगान्तर उपस्थित हुआ था सही; किन्तु यह बात कोई स्वीकार न करेगा, कि इस ग्रन्थावलीसे ही यूरोप-समाजमें बीजगणित विद्याका प्रचार हुआ है। यूरोप वासियोंने आर्थात्से ही यह विद्या तथा संस्थागणना और दार्शनिक अङ्कप्रणालीकी गिज्ञा प्राप्त की थी। विचक्षण और बुद्धिमान अरबवासी इस बीज विज्ञान शास्त्रके मर्मको समझ कर बारंबार आलोचना द्वारा जगत्में इसको उद्योतिविकोरण करते रहे। उस समय भी समग्र यूरोपखण्ड अज्ञान तिमिरमें डूब रहा था। अरबोंने विशेष अध्ययनसायसे यूनानो अङ्कविदोंकी ग्रन्थावलीको संग्रह कर मातृभाषामें उनका अनुवाद कर नानारूप भाषादिके साथ प्रकाशित किया था। अरबी भाषामें लिखी ग्रन्थावलीसे यूरोप-वासियोंने उद्योतिविकोरण उपकरण प्राप्त किया। एपोलोनियासका मूल ग्रन्थ आज कल और नहीं मिलता। ग्रन्थका कुछ अंश भी अरबी भाषासे अनुदित हो कर रखा जा रहा है।

अरबोंका कहना है, कि उनके देशमें मुहम्मद बिन मुसाने सबसे पहले बीजगणितका आविष्कार किया। ये बुद्धिमानावासी महम्मदके नामसे भी परिचित थे। इन्होंने *Algebra* प्रतिष्ठा पाई थी। अर्थात् नवीन विद्या का अर्थ है। एक ग्रन्थ भी

इस समय यह नहीं मिलना । सीमाप्यका विषय है, कि अरबी भाषामें लिखा इसका एक मूल ग्रन्थ भाषम कोर्डके यक्षलियान पुस्तकालयमें रखा है । इस ग्रन्थ का रचनाकाल १३४२ ई०क लगभग हो सकता है । ग्रन्थका संस्करण पृष्ठ देखनेसे मालूम होता है, कि ग्रन्थकार प्राचीन समयके आदिमी है । पुस्तकके पाश्चिमी लिखी लिपनीको देखनेसे ग्रन्थ अपेक्षाकृत प्राचीन मानिन हंतो है । इस ग्रन्थको देखनेसे मालूम होता है, बीजगणित शास्त्रका यही प्रथम प्राचीन ग्रन्थ है । ग्रन्थकी भूमिकामें ग्रन्थकारका परिचय लिखा है । फिर इससे यह भी जाना जाता है, कि अलमामुन द्वारा बीजगणितानुसार अङ्कगणनाके सम्बन्धमें एक संक्षिप्त ग्रन्थ लिखनेके लिये आदिप और उरसाहित किये गये थे । इसीके फलस्वरूप इन्होंने यह ग्रन्थ बनाया था । पाश्चात्य विद्वानोंका विश्वास है, कि मूसा-प्रणीत यह ग्रन्थ बीजगणितके सम्बन्धमें अरबवासियोंका प्रथम सङ्कलन है । सुतरां इसका उपादान भी किसी अन्य भाषामें लिखित पुस्तकादिसे संशुद्धीत हुआ है । यह बात सहज ही उपसर्ग्य की जाती है । इस ग्रन्थमें इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है, कि ये ग्रन्थकार हिन्दू-उद्योतिवशास्त्रके भी ज्ञाता थे । सुतरां यह कहना युक्तिसंगत न होगा, कि ये हिन्दुओंसे ही बीजगणितका उपादान संग्रह कर ले गये थे । बीजगणित शास्त्रमें अनिर्दिष्ट सम्पाद्य समाधानमें हिन्दुओंका अशेष पाण्डित्य था । यह विषय भारतीय बीजगणितके सम्बन्धमें नीचे विवृत हुआ है । इससे हम निस्सङ्कोचभावसे कह सकते हैं, कि अरबोंने भारतीयोंसे बीजगणितको-शिक्षा पाई थी ।

बीजगणितके मूलतत्त्वका परिचय पा कर अरबोंने अन्तमें अनेक प्रंथादि लिख इस शास्त्राकी अंगपुष्टि की थी । महम्मद अबुल ओमाफा नामक दूसरे एक अरबी पाण्डितने बीजगणितशास्त्रका एक विस्तृत भाष्य प्रणयन किया था । उसमें उसने अपने पूर्ववर्ती बीजगणितके लेखकोंके मतामनका विचार कर विज्ञाप्यारुष्या की है । सिवा इसके दिबोफस्तासकृत प्रंथका भी उसने अनुवाद किया था । वह अबुल ओमाफा ६२वीं शताब्दीके अन्तिम चालीस वर्षोंमें विद्यमान था ।

अरबवासी अत्यन्त आग्रहके साथ और कठोर परिश्रममें बहुत दिनों तक इस विद्याका अनुशीलन करते रहे, पर उनके हाथ इस विद्याकी उननी उन्नति नहीं हो सकी । दिबोफस्तासके प्रंथादि पढ़ कर वे अपने प्रंथमें बीजगणित सम्बन्धीय अनेक अभिनव विषय सम्निवेशित कर रहे होंगे, ऐसी आशा है । किन्तु यह आशा कार्यरूपमें परिणत नहीं हुई । अरबदेशीय पूर्वतन बीजगणित विद्वांसि आरम्भ कर अन्तिम प्रंथकार बेहोदीन तक पूर्व पद्धतिके अनुसार (लकोरके फकोर) एक ही प्रणाली पर प्रंथ लिख गये हैं । पूर्ववर्ती लेखकोंके अनुसरणका छोड़ मौलिक कोई विषय इन्होंने सम्निवेशित नहीं किया है । बेहोदीन सन् १५३—१०३३के मध्य जीवित था ।

इस विषयमें अनेक अङ्कनत्त्वविद्वांसि सुम-धारणा है, कि किम् समय और किस रीतिले यूरोपमें बीजगणित शास्त्रका प्रचलन हुआ ।

जियोनार्डो द्वारा यूरोपमें बीजगणितका प्रचलन ।

हालमें बहुत खोज पूछनेके बाद यह स्थिर किया गया है, कि पिसावासी लिओनार्डो नामक एक बणिक्ने सबसे पहले इटलीमें बीजगणित-विज्ञानका प्रचार किया । बुद्धिमान् लिओनार्डो बालकपनमें बारवारी राज्यमें वास करते थे । वहां रह कर उन्होंने भारतीय प्रणालीके अनुसार नी संख्या द्वारा गणनाप्रणाली शिक्षालाम किया । बणिज्यके उद्देशमें उनकी प्रांथगः हो मिन्न, सिरिया, यूनान, सिसली प्रदेशमें आना जाना पड़ना था । मालूम होता है, कि इन सब स्थानोंमें उन्होंने संख्यासम्बन्धी शिक्षणीय विषयोंको वाचस किया था । भारतीय गणना-प्रणाली ही उनकी सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण उन्होंने यत्नके साथ उसे सीखा था । इसी समय उन्होंने भारतीय गणना-प्रणालीके साथ युक्तिवकी ज्यामितिके मूलसूत्रके कुछ कुछ अद्भुतत्त्व संयोजन कर और उनके साथ अपनी प्रतिभाके बलसे बीजगणित-सम्बन्धीय और भी कई अभिनवतत्त्व आविष्कार कर उक्त तीनों मतोंके आधार पर एक ग्रन्थकी रचना की । इस समय लोग बीजगणितको शाखाविशेष समझते थे । यद्यार्थमें यह गणितका सारांश है । इसी शेष धात्वाके

वशवर्त्ती ही लिओनार्डोंने अपने प्रथम उभय शास्त्रके सम्बन्धमें विभिन्न भावसे विशद आलोचना की है। सन् १२०२ ई०में लिओनार्डोंने यह ग्रंथ प्रणयन किया; पीछे फिर १२२८ ई०में उन्होंने यह संशोधनपूर्वक प्रकाश किया था। मुद्रायत्न (प्रेस) के आविष्कार होनेसे २०० वर्ष पहले यह ग्रंथ लिखा गया था। मानव जाति उस समय इस विद्याके अनुशूलनमें आप्रहान्वित न होनेकी वजह यह जनसमाजमें अविदित रह सकता है, इसमें आश्चर्य ही क्या है। जो है, प्रथकारकी अन्यान्य पुस्तकोंकी तरह यह ग्रंथ भी हस्तलिखित पौथोके आकारमें रखी रहती थी। पहले किसानों भी इस मूल्यवान् ग्रंथकी खोज नहीं की; सीमाव्यक्रमसे १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें फ्लोरेंसके मेगिलियावेफिघान लाइव्हीरीसे यह ग्रंथ आविष्कृत हुआ।

अरबदेशीय प्रथकारोंकी तरह लिओनार्डोंने भी अङ्कशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की थी। ये प्रथम और द्वितीय पर्यायका समोकरण कर सकते थे। दिशो-कन्तास द्वारा आविष्कृत विभागप्रणालीमें भी इनका प्रगाढ़ परिचय था। ज्यामितिमें इनकी विशेष व्युत्पत्ति थी। इन्होंने इसी ज्यामितिके नियमानुसार वीजगणितकी नियमपद्धति सामञ्जस्य कर ली थी। अरब देशीय प्रथकारोंकी तरह ये भी विशदभावसे अपने सिद्धांत प्रकाशित कर गये हैं। किन्तु इस पथसे अङ्कशास्त्रकी विशेष उन्नति नहीं हुई है। साङ्केतिक चिह्नादिका व्यवहार और थोड़ी बातमें मर्म समझानेकी पद्धति इसके बहुत दिनोंके बाद आविष्कृत हुई है।

लिओनार्डोंके बाद और मुद्रायत्नके आविष्कृत होनेके पहले वाजगणितके अनुशूलनमें विशेष आप्रह दिखाई देता है। इस वीजगणित विद्याकी अध्यापकों द्वारा प्रकाशरूपसे शिक्षा दी जाती थी। इस समय इन शास्त्रके सम्बन्धमें अनेक ग्रंथ आदि रचे गये। अधिकतर अरबी भाषामें लिखे दो प्राचीन मूलग्रंथ इटली भाषामें अनुवादित हुए। इनमें एकका नाम 'वीजगणितका नियम' और दूसरा 'खुरासानके महम्मद बिन मूसा प्रणीत अति प्राचीन ग्रंथका अनुवाद' है।

शेपोक ग्रंथ अरबी भाषामें लिखा सर्वप्रथम गणित ग्रंथ है।

लुकास बीवर्गों।

वीजगणित विषयक सर्वप्रथम मुद्रित ग्रंथका नाम—Summa de Arithmetica, Geometria, Proportioni. et Proportionalita लुकास पेलिओलास उर्फ श्री वागों नामक एक संन्यासी इसके रचयिता है। सन् १४६४ ई०में यह ग्रंथ प्रचलित था। उन सर्वोंमें यह सर्वाङ्ग सुन्दर और सम्पूर्ण ग्रंथ कहा जाता है।

ग्रंथकारने लिओनार्डोंके प्रदर्शित पन्थानुसरण कर उन्हींके आदर्श पर इस ग्रन्थकी रचना की थी। इनके ग्रंथसे ही बादके समयमें लिओनार्डोंके लुप्त ग्रन्थको कुछ अंश उद्भूत कर जनसमाजमें प्रचारित हुआ।

सन् १५०० ई०में यूरोपमें वीजगणितकी जितनी उन्नति हुई थी, लुकास डी वागोंने उन सब विषयोंको अपने ग्रंथमें सन्निवेशित कर इस ग्रन्थकी सौष्ठवता सम्पादन की थी। सम्भवतः इस समय अरब और अफ्रिका प्रदेशमें भी वीजगणितकी अवस्था वैसी ही थी। आश्वकीय फललाभके उपायस्वरूप वीजगणितमें जो शक्ति निहित है, वह अङ्कपात द्वारा सहज ही उपलब्ध होती है। इस अङ्कपात-प्रणालीके बलसे ही आलोच्य संख्यायें सर्वदा दृष्टिपथमें रखी जा सकती हैं। किन्तु लुकास डी वागोंके समय वीजगणितमें आलोच्य विषयके संक्षेपसे अङ्कप्रतिपादनकल्पमें सहज-साध्य और सम्पूर्णान्ग कोई नियम प्रचलित न था। गणनाके लिये उस समय कई वाक्योंके या नामोंके परिचर्चनमें संक्षिप्त वाक्यावली प्रयोग की जाती थी। वही आलोच्य समयमें साङ्केतिक चिह्नरूपसे व्यवहृत था। यह केवल एक तरहकी संक्षेप-लिपि (Short hand)का अनुकरण है। इस समय जिन अङ्कपातों द्वारा बातें समझाई जाती हैं, उस समयके अङ्कपातोंमें इन बातोंका प्रकाश करना सम्भवपर नहीं होता। उस समयके वीजगणितके प्रधानुसार अङ्क सम्पादन विशेषरूपसे सीमावद्ध था। कितने ही अनान्यक संध्याविषयक प्रश्नोंके समाधान श्यतीत उस समय वीजगणितके साहाय्यसे विशेष कोई

तत्त्व निष्पादित नहीं होगा था। प्रत्युत इन प्रश्नोंसे विज्ञानके उत्कर्षोद्धारक उच्च गणिताङ्कका लक्षण भी नहीं देखा जाता था। वर्तमान समयमें इस शास्त्रके साहाय्यसे प्रतिपाद्य विषयोंके क्षेत्रमें जितना प्रसार हुआ है, उस समयके लोगोंकी अपनी धारणा करनेकी भी क्षमता न थी।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि यूरोपमें पहले पहल इटली देशमें बीजगणितका प्रचलन हुआ था। सन् १५०५ ई०में वेनोल्याके अङ्कशास्त्रके एक अध्यापक सिपियो फेरिरास तृतीय पर्यायके समीकरण सम्पादन करनेमें सक्षम हुए। इस आविष्कारके होनेके बाद ही लोगोंका मन बीजगणितके प्रति विशेषमायसे झुकने लगा। तब तब बहुनेरैका यह ख्याल था, कि बीजगणितके तृतीय पर्यायका समीकरण बड़ा कठिन है। किन्तु जब इस कठिन साध्यका समीकरण हो गया, तब इस विभागके पण्डित और भी कुछ नये आविष्कार करनेमें यत्नशील हुए।

टारटालिया।

सन् १५३५ ई०में मेनिस नगरमें वासस्थान स्थापन कर पलरिडोने इस स्थानसे प्रेसियावासों टारटालिया नामक एक पण्डितकी बीजगणितके नियमानुसार कई सम्पादकोंका समीकरण स्थिर करनेके लिये बुलाया। इस विद्यायुद्धमें पलरिडोने इस तरहके कितने ही प्रश्नोंको तैयार किया था, कि फेरियासकी आविष्कृत प्रणालीके सिवा किसी दूसरे उपायसे इनकी मोमांसा ही नहीं मकनी थी। टारटालिया इस घटनाके पांच वर्ष पहले बीजगणितके आविष्कारपथमें फेरियासके साथ बहुत दूर आगे बढ़ गये। सुतरां उनकी बुद्धिदृष्टि फेरिडोकी अपेक्षा अनेकानेक उत्कर्ष प्राप्त हुई थी, यह सहज ही अनुभव है। इस प्रतियोगिताके मैदानमें टारटालियाने फेरिडोका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और परस्परमें मोम प्रश्न पूछनेके लिये एक दिन निश्चित हुआ। इस निर्दिष्ट समयसे पहले ही टारटालियाने चतुर्थ पर्यायके समीकरणकी चर्चा छेड़ दी और पूर्वविदित दो नियमोंके सिवा अन्य दो प्रतिज्ञा सम्पादनकालमें थे और एक नई प्रणालीका भी आविष्कार करनेमें सक्षम हुए। जो ही,

निर्दिष्ट दिनको प्रतियोगिताके मैदानमें उपस्थित हो कर दोनों पण्डित आपसमें प्रश्न पूछनेमें प्रभूत हुए। फेरिडो ने ऐसे प्रश्न पूछे, कि फेरियासकी एक ही प्रणाली जाननेसे उनका उत्तर दिया जा सकता है। दूसरी ओर टारटालियाके प्रश्न प्रश्नोंका उत्तर केवल उनके अपने उद्भावित तीन नियमोंमें किसी एक नियम द्वारा दिया जा सकता है। इसके सिवा अन्य नियमोंसे यह सम्पन्न करना सम्भवपर नहीं है। फेरिडोको जो नियम मालूम था, उसके द्वारा इन प्रश्नोंका वे ठीक ठीक जवाब दे न सके। सुतरां इस विद्यायुद्धमें उनकी ही पराजय हुई। टारटालियाने दो घण्टेमें ही उनके सब प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर दे डाला।

विख्यात पण्डित कार्डन टारटालियाके समसामयिक थे। वे मिलान नगरके गणितशास्त्रके अध्यापक थे और वहाँ वे चिकित्सा भी करते थे। इन्होंने यिरोय ध्यान दे कर बीजगणितकी चर्चा छेड़ दी। टारटालियाके आविष्कृत विषयोंका अभ्यास कर कार्डनने अपनी उद्भावनीशक्तिके बलसे इससे कई नये तथ्योंका आविष्कार किया। चौथे पर्यायका समीकरण करनेके लिये टारटालियाने जिन नियमोंका आविष्कार किया था, सब पूछिये, तो वे नियम सर्वथा ठीक न थे। कार्डनने उनके द्वारा बनाई प्रणालियोंकी आलोचनाओंको पढ़ते पढ़ते उससे एक ऐसा नियम आविष्कार किया, कि उस नियमसे चौथे पर्यायका कोई भी समीकरण सहज ही निष्पादित हो सकता था। इसके बाद उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर सन् १५४५ ई०में अपनी आविष्कृत प्रणालियोंकी प्रकाशित किया। इसके छः वर्ष पहले पाटीगणित और बीजगणितके सम्बन्धमें उन्होंने जो एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित की थी, यह उसीका परिशिष्ट था। बीजगणित विषयके सुदृढ प्राचीन ग्रन्थालियोंमें यह दूसरी है। इसके एक वर्ष बाद टारटालियाने इट्टालैण्डके राजा आठवें हेनरीके नामसे उत्सर्ग कर एक बीजगणित प्रकाशित किया। दुःखका विषय है, कि जो प्रथम आविष्कारक हैं, इस जगत्में उनकी स्थाति प्रायः नहीं सुनी जाती। परं जिस व्यक्तिने उनसे विद्याशिक्षा कर उसीसे परिमार्जित हो

आकारमें प्रचारित किया, उन्हींकी प्रशंसाध्वनि दशों दिशाओंमें मुलरित हो रही है। चौथे पर्यायके समीकरण करनेवाले टारटालियाके भाग्यमें किसी तरहकी प्रशंसा बड़ी न थी। इस समय ये सब नियम कार्डेनके नामसे परिचित हो "कार्डेनके नियम" कहे जाते हैं।

कालक्रमसे चौथे पर्यायके समीकरण आविष्कृत हो जानेसे बीजगणितकी उन्नति बढ़ने लगी। इसी समय इटलीवासी एक बीजगणितविद्वाने विद्वत्समाजमें ऐसा एक प्रश्न उठाया जिससे समाधान कालमें द्विचर्गीय समीकरणके पर्यायमें परिणत होना पड़ता है। इसीलिये यह प्रचलित नियमानुसार निष्पन्न करना सम्भव पर नहीं। इन प्रश्नोंको देख कितने ही लोगोंने सोचा, कि इसका समाधान बिलकुल ही असम्भव है। किन्तु कार्डेन इस विषयमें किसी तरह निराश नहीं हुए। उन्होंने लिउस फेरादी नामक एक बीजगणित अल्पवयस्क छात्र पर इस प्रश्नके समीकरणका भार दिया। कम उम्र होने पर भी फेरादी अत्यन्त बुद्धिमान् था। विशेषतः बीजगणित शास्त्रमें उसको प्रगाढ़ स्मृत्वपत्ति थी। फेरादीने अपनी चेष्टासे एक अंक सहज ही निष्पन्न कर लिया और उसके सम्पादन कालमें उसने तृतीय पर्यायके समीकरण समाधानके लिये एक अभिनव नियमका आविष्कार किया।

इस समय इटलीदेशवासी बमबेली नामक दूसरे एक गणित विद्वाने बीजगणितको उन्नतिकी चेष्टा की थी। सन् १५७२ ई०में इसने एक बीजगणित प्रकाशित किया। जिस चतुर्थ पर्यायके समीकरण करनेमें कार्डेन अक्षम हुए थे, उसको व्याख्या इस पुस्तकमें यह लिख गया है। उस समयसे पहले जिन समीकरणोंको लोग असाध्य समझते थे, उसने अपनी प्रणालीके अनुसार उनकी समाधानसाध्यताका प्रमाण उपस्थित कर दिया है।

कार्डेन और टारटालियाके समयमें जर्मनीमें दो गणितज्ञ विद्यमान थे। १६वीं शताब्दीके मध्यभागमें इनकी फ्लोफेलियस और स्त्रुवेलियस नामक प्रणीत ग्रन्थावली प्रकाशित हुई। इटली देशमें बीजगणितकी कितनी उन्नति हुई थी, उस समय तक वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। बीजगणितके सम्बन्धमें सख्पा

पात विषयमें ही वे अधिकतर मनेयोगी हुए। योग और विद्योगके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब सांकेतिक प्रणालियोंकी आवश्यकता थी, फ्लोफेलियस उनके आदि सृष्टिकर्ता हैं।

केंब्रिज विश्वविद्यालयके गणितके अध्यापक और पदार्थविज्ञानविद् राबर्ट रेकहेनने अंगरेजी भाषामें सबसे पहले बीजगणित लिपिवद्ध किया। उस समय चिकित्सकोंके लिये गणित, फलित ज्योतिष, रसायनादि विद्या जानना आवश्यक होता था। मूरैने सबसे पहले इस प्रथाको चलाया। वे चिकित्सा और गणितशास्त्रमें पारदर्शी थे। स्पेनदेशमें बहुत दिनोंसे बीजगणितका प्रचलन था और वे चिकित्सक और बीजगणितविद्वानोंको एक ही पर्यायके अन्तर्गत समझते थे।

सिखा इसके रेकहेन एक पाठोगणित और एक बीजगणित लिख गये हैं। गणित इङ्ग्लैण्डके राजा छठे एडवर्डके नामसे उदसंग किया गया था। बीजगणित 'ह्यायट टोन आब विट्ट' नामसे परिचित है। इसी ग्रन्थमें ही उन्होंने सबसे पहले समतायोधक चिह्नोंका व्यवहार किया था।

लिओनार्डो द्वारा भित्ति स्थापित होनेके बाद विभिन्न गणितज्ञोंके हाथ पड़ कर बीजगणित धीरतासे पैर धरते हुए उन्नतिकी सोढ़ियों पर आगे बढ़ रहा था। ऐसे समय मियेटा नामक एक गणितज्ञका अम्युदय हुआ। ये गणित विद्या और अन्यान्य शास्त्रोंको बहुत उन्नति कर गये हैं। बीजगणितमें इनका ज्ञान इतना प्रबल था, कि इन्होंने जिन सब विषयोंका उस समय अपरिष्कृत भावसे आविष्कार किया था, उनमें ही वर्त्तमान समयके गणितशास्त्रके उत्कर्षका मूल निहित है। वणैमाला द्वारा व्यक्त और अव्यक्त राशि लिखनेको पद्धति इन्होंने ही पहले आविष्कार की थी। इस पद्धतिके गुफ्तव्यके सभी समझ न सकेंगे सही, किन्तु यह कहना व्यर्थ है, कि इसीसे ही बीजगणितके चरमोत्कर्षका सुलपात हुआ। बीजगणितके साहाय्यसे ज्यामितिके उत्कर्षसाधनपथके वे ही आदि पथप्रदर्शक हैं।

ज्यामितिके बीजगणितके नियम प्रचलित होनेसे

अदृशास्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई। इसके ही साहाय्यके बलसे मियेटा कोणच्छेदविषयक नियमावली आविष्कार करनेमें सक्षम हुए। इन नियमोंसे ही अधुना गिन विषयक गणिताङ्क या शिक्रणमित्तिका उद्भव हुआ है। मियेटा ने बीजगणितके समोकरणांशकी भी काफी उन्नति की थी। १५४०—१६०३ ई० तक ये जीवित थे।

मियेटाके बाद गणितज्ञ अलबर्ट जिरेार्डका अभ्युदय हुआ। इन्होंने भी मियेटाकी प्रवर्तित प्रथासे समीकरणोंका कई पद्धतियोंका आविष्कार किया था। किन्तु दुःखकी बात है, कि इन पद्धतियोंका ये लोगोंके सामने प्रकट नहीं करते थे। ज्यामितिके सम्पाद्योंके समाधानके लिये अभायसूचक चिह्न और कविवत संख्याके ये ही रूढ़िकर्ता हैं। अनुमान द्वारा ये ही पहले इस सिद्धांत पर पहुंचे, कि जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य संख्याका प्रसार सम्भवा जायेगा, प्रत्येक समोकरण ही उतने मूल स्वीकार करने हेतु। सन् १६२६ ई०में इनका बनाया बीजगणित प्रकाशित हुआ।

जिरेार्डके बाद टामस हेरियट नामक एक अंग्रेज बीजगणितकी उन्नतिका प्रयासी हुआ। अंग्रेज इसको बीजगणितके अन्यतम प्रधान आविष्कारक कह कर गर्व करते हैं। किन्तु फ्रांस देशके अङ्कविदोंका कहना है, कि मियेटा जो आविष्कार कर गये हैं, लोग उसीको हेरियटके नामसे चलाना चाहते हैं। यह भी हो सकता है, कि दोनों गणितपरिष्ठान ही परस्परकी विद्याका परिचय न पा कर भिन्न भिन्न भावसे एक ही आविष्कार कर गये हों। हेरियटका प्रधान आविष्कार बीजगणितमें श्रेष्ठ आसन पानेके योग्य है। जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य संख्याका प्रसार सम्भवा जाता है, उतने साधारण समोकरणांशका गुणनफल एक समोकरणके समान है—हेरियटने इस उत्कृष्ट नियमका आविष्कार किया था।

अद्रीड नामक और एक अंग्रेजने भी बीजगणितकी चर्चा की थी। वह हेरियटके साथ सामयिक होने पर भी उनकी मृत्युके बहुत दिन बाद तक जीवित था। इसके रचित बीजगणितविषयक ग्रन्थ बहुत दिनों तक विश्वविद्यालयोंमें पाठ्य रूपसे गण्य था।

ज्यामितिके साथ बीजगणितका सम्पर्क निर्णय कर

मियेटाके बीजगणितकी प्रयोग-प्रसारताके सम्बन्धमें लेख प्रकाशित किया। गवेषणा और विशेष अनुसन्धान रूपसे विज्ञानकी खानसे उन्हींने कोणव्यवच्छेदरूपो जो अमूल्य मणिका आविष्कृत किया था, उसके प्रति लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे आकृष्ट हुआ। किन्तु मियेटा उक्त तत्त्वके आद्यन्त आविष्कार करनेमें समर्थ नहीं हुए। इसी समय प्रसिद्ध गणिततत्त्वविदु डेकार्टे उनके उत्तराधिकारी रूपसे विज्ञानक्षेत्रमें समुदित हुए। उन्हींने अपना तीक्ष्ण बुद्धि और सूक्ष्म ज्ञान द्वारा बीजगणितको एक मौलिक विज्ञानरूपमें प्रकाशित किया था। वस्तुतः बीजगणितके उन नियमावलीकी ज्यामितिके प्रयोग कर उन्हींने एक महान आविष्कार किया है। उस समयसे गणिताध्यापक इस विषयकी आलोचनामें प्रवृत्त हैं। विगत दो शताब्दोंसे गणितविज्ञानके सम्बन्धमें क्रमोन्नतिका इतिहास साधारणमें अभिव्यक्त होता आता है।

वक् रेखागणितमें बीजगणितके नियम आदिका प्रयोग और समाधान-योग्यता प्रदर्शन कर डेकार्टेने और भी एक प्रधानतम आविष्कार किया है। भूगोलकी आलोचनाके समय निरक्षर्युक्त और मध्यरेखाके साथ तुलना कर हम जीमे पृथ्वीके स्थानोंका निर्देश करते हैं, वैसे ही उन्हींने भी निर्दिष्ट सरल रेखाविशेषके साथ तुलना कर किसी चक्रेखाके प्रत्येक स्थान पर बिन्दु निर्देश किया है।

सन् १६३७ ई०में डेकार्टेकी ज्यामिति प्रकाशित हुई। उक्त ज्यामिति ग्रन्थमें बीजगणित सर्वतोभावसे प्रयुक्त हुआ था। इसके छः वर्ष पहले हेरियट अपना ग्रंथ प्रचार कर गये हैं। डेकार्टे हेरियटके ग्रन्थसे अनेक बातें अपने नामसे लिपिवद्ध कर गये हैं। इसीलिये डाक्टर वालिस अपने बीजगणित ग्रंथमें फ्रांस देशीय बीजगणितज्ञोंकी लाञ्छित कर गये हैं। उधर फरार्सीसी भी इसके प्रतिवाद् करनेसे बाज नहीं आये। गणितके इतिहासका रचयिता मण्टूकला डेकार्टेका मत समर्पण कर गया है और हेरियटसे ऊँचा स्थान इसको दे गया है।

ज्यामितिके साथ बीजगणितका सम्बन्ध प्रकाशित होनेके बाद गणितविषयक बहुतेरे नये तत्त्व आविष्कार

आकारमें प्रचारित किया, उन्होंने प्रशसाध्वनि दशों विशाभों में मुखरित हो रही है। चौथे पर्यायके समीकरण करनेवाले टारटालियाके माध्यमें किसी तरहकी प्रशसा बढ़ी न थी। इस समय ये सब नियम कार्डेनके नामसे परिचित हो "कार्डेनके नियम" कहे जाते हैं।

कालक्रमसे चौथे पर्यायके समीकरण आविष्कृत हो जानेसे बीजगणितकी उन्नति बढ़ने लगी। इसी समय इटलीवासी एक बीजगणितविदुने विद्वत्समाजमें ऐसा एक प्रश्न उठाया जिससे समाधान कालमें द्विवर्गीय समीकरणके पर्यायमें परिणत होना पड़ता है। इसीलिये यह प्रचलित नियमानुसार निष्पन्न करना सम्भव पर नहीं। इन प्रश्नोंकी देख कितने ही लोगोंने सोचा, कि इसका समाधान बिलकुल ही असम्भव है। किन्तु कार्डेन इस विषयमें किसी तरह निराश नहीं हुए। उन्होंने लिउस फेरारी नामक एक बीजगणित अल्पवयस्क छात्र पर इस प्रश्नके समीकरणका भार दिया। कम उम्र होने पर भी फेरारी अत्यन्त बुद्धिमान् था। विशेषतः बीजगणित शास्त्रमें उसकी प्रगाढ़ ज्ञुत्पत्ति थी। फेरारीने अपनी छेदासे एक अंक सहज ही निष्पन्न कर लिया और उसके सम्पादन कालमें उसने तृतीय पर्यायके समीकरण समाधानके लिये एक अभिनव नियमका आविष्कार किया।

इस समय इटलीदेशवासी यमवेली नामक दूसरे एक गणित विदुने बीजगणितकी उन्नतिकी छेदा की थी। सन् १५७२ ई०में इसने एक बीजगणित प्रकाशित किया। जिस चतुर्थ पर्यायके समीकरण करनेमें कार्डेन अक्षम हुए थे, उसकी व्याख्या इस पुस्तकमें बड़ा लिख गया है। उस समयसे पहले जिन समीकरणोंकी लोग असाध्य समझते थे, उसने अपनी प्रणालीके अनुसार उनकी समाधानसाध्यताका प्रमाण उपस्थित कर दिया है।

कार्डेन और टारटालियाके समयमें जर्मनीमें दो गणितज्ञ विद्यमान थे। १६वीं शताब्दीके मध्यभागमें इनकी प्यॉफेलियस और स्त्यूवेलियस नामक प्रणीत ग्रन्थावली प्रकाशित हुईं। इटली देशमें बीजगणितकी कितनी उन्नति हुई थी, उस समय तक वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। बीजगणितके सम्बन्धमें सख्या

पात विषयमें ही ये अधिकतर मनोयोगी हुए। वेग और विद्योगके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब वर्णों और वर्गमूलके लिये जिन सब सांकेतिक प्रणालियोंकी आवश्यकता थी, प्यॉफेलियस उनके आदि सृष्टिकर्ता हैं।

केंम्ब्रिज विश्वविद्यालयके गणितके अध्यापक और पराधिष्ठानविदु राबर्ट रेकर्डेनने अंगरेजी भाषामें सबसे पहले बीजगणित लिपिवद्ध किया। उस समय चिकित्सकोंके लिये गणित, फलित ज्योतिष, रसायनादि विद्या जानना आवश्यक होता था। मुरैने सबसे पहले इस प्रथाको चलाया। वे निकित्सू और गणितशास्त्रमें पारदर्शी थे। स्पेनदेशमें बहुत दिनोंसे बीजगणितका प्रचलन था और वे चिकित्सक और बीजगणितविदुकी एक ही पर्यायके अन्तर्गत समझते थे।

सिया इसके रेकर्डेन एक पाटीगणित और एक बीजगणित लिख गये हैं। गणित इङ्ग्लैण्डके राजा छठे एडवर्डके नामसे उदसर्ग किया गया था। बीजगणित 'ह्यावट प्लोन आव विट्' नामसे परिचित है। इसी ग्रन्थमें ही उन्होंने सबसे पहले समताबोधक चिह्नोंका व्यवहार किया था।

लिओनार्डो द्वारा भित्ति स्थापित होनेके बाद विभिन्न गणितज्ञोंके हाथ पड़ कर बीजगणित धीरतासे पैर धरते हुए उन्नतिकी सौदियों पर आगे बढ़ रहा था। ऐसे समय भियेटो नामक एक गणितज्ञका अम्युदय हुआ। ये गणित विद्या और अन्यान्य शास्त्रोंकी बहुत उन्नति कर गये हैं। बीजगणितमें इनका छान इतना प्रखर था, कि इन्होंने जिन सब विषयोंको उस समय अपरिष्कृत भावसे आविष्कार किया था, उनमें ही वर्तमान समयके गणितशास्त्रके उदकर्षका मूल निहित है। वर्णमाला द्वारा व्यक्त और अत्यन्त राशि लिखनेकी पद्धति इन्होंने ही पहले पहल आविष्कार की थी। इस पद्धतिके मुख्यके समी समझ न सकेंगे सही, किन्तु यह कहना स्वर्ग है, कि इसीसे ही बीजगणितके सर्वोदकर्षका सुतपात हुआ। बीजगणितके साहाय्यसे ज्यामितिके उदकर्षसाधनपथके ये ही आदि पथप्रदर्शक हैं।

ज्यामितिके बीजगणितके नियम प्रचलित होनेसे

अदृशास्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई। इसके ही साहाय्यके बलसे मियेटा कोणच्छेदविषयक नियमावली आविष्कार करनेमें सक्षम हुए। इन नियमोंसे ही अच्युता शिन विषयक गणिताङ्क या त्रिकणमितिका उद्भव हुआ है। मियेटा ने बीजगणितके समीकरणशांशकी भी काफी उन्नति की थी। १५४०—१६०३ ई० तक ये जीवित थे।

मियेटाके बाद गणितज्ञ अलबर्ट जिरोर्डका अभ्युदय हुआ। इन्होंने भी मियेटाकी प्रवृत्तित प्रथासे सभी करणांशकी कई पद्धतियोंका आविष्कार किया था। किन्तु दुःखकी बात है, कि इन पद्धतियोंका ये लोगोंके सामने प्रकट नहीं करते थे। ज्यामितिके सम्पाद्योंके समाधानके लिये अभावसूचक चिह्न और कल्पित संख्याके ये ही सृष्टिकर्ता हैं। अनुमान द्वारा ये ही पहले इस सिद्धांत पर पहुंचे, कि जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य संख्याका प्रसार सम्भवा जायेगा, प्रत्येक समीकरण ही उतने मूल स्वीकार करने होंगे। सन् १६२६ ई०में इनका बनाया बीजगणित प्रकाशित हुआ।

जिरोर्डके बाद टामस हेरियट नामक एक अंग्रेज बीजगणितकी उन्नतिकी प्रयासी हुआ। अंग्रेज इसकी बीजगणितके अन्वयतम प्रधान आविष्कारक कह कर गर्व करते हैं। किन्तु फ्रांस देशके अङ्कविदोंका कहना है, कि मियेटा जो आविष्कार कर गये हैं, लोग उसीको हेरियटके नामसे चलाना चाहते हैं। यह भी हो सकता है, कि दोनों गणितपरिष्ठित ही परस्परकी विद्याका परिचय न पा कर भिन्न भिन्न भावसे एक ही आविष्कार कर गये हों। हेरियटका प्रधान आविष्कार बीजगणितमें श्रेष्ठ आसन पानेके योग्य है। जितने अङ्कों द्वारा आलोच्य संख्याका प्रसार सम्भवा जाता है, उतने साधारण समीकरणोंका गुणनफल एक समीकरणके समान है—हेरियटने इस उत्कृष्ट नियमका आविष्कार किया था।

अट्टोरी नामक और एक अंग्रेजने भी बीजगणितकी चर्चा की थी। वह हेरियटके साथ सामयिक होने पर भी उनकी मृत्युके बहुत दिन बाद तक जीवित था। इसके रचित बीजगणितविषयक ग्रन्थ बहुत दिनों तक विश्वविद्यालयोंमें पाठ्य रूपसे गण्य था।

ज्यामितिके साथ बीजगणितका सम्पर्क निर्णय कर

मियेटाने बीजगणितकी प्रयोग-प्रसारताके सम्बन्धमें लेख प्रकाशित किया। गद्येष्णा और विशेष अनुसन्धान रूपसे विज्ञानकी खानसे उन्होंने कोणच्छेदरूपी जो अमूल्य मणिका आविष्कृत किया था, उसके प्रति लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे आकृष्ट हुआ। किन्तु मियेटा उक्त तत्त्वके आद्यत आविष्कार करनेमें समर्थ नहीं हुए। इसी समय प्रसिद्ध गणिततत्त्वविद् डेकार्ट उनके उत्तराधिकारी रूपसे विज्ञानक्षेत्रमें समुदित हुए। उन्होंने अपने शीक्षण युक्ति और सूक्ष्म ज्ञान द्वारा बीजगणितको एक मौलिक विद्यारूपमें प्रकाशित किया था। वस्तुतः बीजगणितके उन नियमावलीको ज्यामितिके प्रयोग कर उन्होंने एक महान आविष्कार किया है। उस समयसे गणिताध्यापक इस विषयकी आलोचनामें प्रवृत्त हैं। विगत दो शताब्दोंसे गणितविज्ञानके सम्बन्धमें क्रमोन्नतिकी इतिहास साधारणमें अभिव्यक्त होता आता है।

एक रेखागणितमें बीजगणितके नियम आदिका प्रयोग और समाधान-योग्यता प्रदर्शन कर डेकार्टने और भी एक प्रधानतम आविष्कार किया है। भूगोलकी आलोचनाके समय निरक्षर और मध्यरेखाके साथ तुलना कर हम जैसे पृथ्वीके स्थानोंका निर्देश करते हैं, वैसे ही उन्होंने भी निर्दिष्ट सरल रेखाविशेषके साथ तुलना कर किसी चक्रेखाके प्रत्येक स्थान पर विन्दु निर्देश किया है।

सन् १६३७ ई०में डेकार्टको ज्यामिति प्रकाशित हुई। उक्त ज्यामिति ग्रन्थमें बीजगणित सर्वतोभावेसे प्रयुक्त हुआ था। इसके छः वर्ष पहले हेरियट अपना ग्रंथ प्रचार कर गये हैं। डेकार्ट हेरियटके ग्रन्थसे अनेक बातें अपने नामसे लियेवद्ध कर गये हैं। इसीलिये डाक्टर वालिस अपने बीजगणित ग्रंथमें फ्रांस देशीय बीजगणितज्ञोंको लाञ्छित कर गये हैं। उधर फ्रांसीसी भी इसके प्रतिवाद करनेसे बाज नहीं आये। गणितके इतिहासका रचयिता मण्टूकला डेकार्टका मत समर्पण कर गया है और हेरियटसे ऊँचा स्थान इसकी दे गया है।

ज्यामितिके साथ बीजगणितका सम्बन्ध प्रकाशित होनेके बाद गणितविषयक बहुतेरे नये तत्त्व आविष्कार

होने लगे। इसके बाद ही केप्लरके चक्र क्षेत्रके आवर्चित सम्पातमें घनश्रेणिके उत्पादनतत्त्व, केवेलेरियस अविभाज्य विषयक उपायमिति, बार्लिश अनन्तवशापक्रमणित, न्यूटनकी सूक्ष्मराशिकी गणनाप्रणाली और लिबनिट्ज़ की अति सूक्ष्मांश और अखण्डांशघटित गणिततत्त्व आविष्कृत हुए। इसी समय वारेन, जेम्स, फ्रेगरी, रेन, कोट्स, डेलर, हेला, डो, मयडार, मेक्रीरोन, छार्लेज, रोथार भाल, फामनर्ट, हापपेन्स, चानौलिसद्वय और पासकाल, आदि बहुनेरे गणितज्ञ व्यक्तिोंने इसकी आलोचना आरम्भ कर परस्परको पुनः पुनः तत्त्वतरङ्गमें आलोचित किया था।

लाप्रेञ्ज।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें बीजगणितके सम्बन्धमें उल्लेखनीय कई आविष्कार ही नहीं हुआ है। नये आविष्कारमें मनोयोगी न हो, सभी इस समय न्यूटन, लिबनोज और डेकार्टके आविष्कृत विषयोंकी आलोचनामें प्रवृत्त थे। इस शताब्दीके शेषांशमें लाप्रेञ्ज नामक एक गणितविदु विशेषभावसे गणितचर्चामें प्रवृत्त हुए। इन्होंने *Traite de la Resolution des Equations Numeriques* ग्रन्थमें जिस तत्त्वकी आलोचना की थी, उसीका अनुसरण कर कुदान, फुरियार, एम् और अन्यैय अङ्कविदु न्यूटन छत युनिवर्सल एरिथमेटिकके आवर्ष पर अपने अपने ग्रन्थ रच गये हैं। लाप्रेञ्जे *Theorie des fonctions analytiques* और *Calcul des fonctions* नामक ग्रन्थद्वयमें न्यूटनके सूक्ष्मांशघटित गणितविद्याकी बीजगणितका अंशभूत करनेको चेष्टा की थी और इसमें उनको सफलता भी मिली। इस समय गणितशास्त्रमें लम्घप्रतिष्ठ गुलर नामक एक मनुष्य लाप्रेञ्जके सहकारी रूपसे काम करते थे। गणितके सम्बन्धमें इन्होंने कई बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। इनके लिखे *Novi Commentarii* ग्रन्थके १६वें भागमें बीजगणितके द्विपद उपायके सम्बन्धमें कई नये तत्त्वोंका परिचय मिलता है।

१६वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक बीजगणितको उन्नतिकी सीमा यहाँ तक ही बढ़ ही गई। यहाँ तक बीजगणितने जितना उत्कर्ष प्राप्त किया, उससे ही सभी बीजगणितकी एक मोटी धारणा कर सकते हैं। वस्तुतः मूल अव-

स्थाके साथ तुलना कर देखनेसे बीजगणित अल्प समयमें बहुत दूर तक पहुँच चुका है, यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार करनेमें पड़ती है।

प्राचीन बीजगणितके रचयितांसे ले कर लाप्रेञ्ज तक सभीने एक स्वरसे स्वीकार किया है, कि प्रत्येक संख्याघटित समीकरणका ही एक मूल है अर्थात् प्रकृत ही हो या कल्पित ही हो जिस किसी संख्याघटित राशि द्वारा समीकरणकी अज्ञातराशि निर्देश की जायेगी और यह समीकरण संख्यासूचक हो उठेगा। लाप्रेञ्ज, गीस और आइभरोने गणितके सम्बन्धमें जो उपपत्तियाँ आविष्कार की हैं, उन्हींकी अवलम्बन कर गणितविदु कौचो *Journal de l'Ecole Polytechnique* और पोले *Cours d'Analyse Ulgebrique* नामक पुस्तिकाद्वयमें विशेष भावसे आलोचना कर गये हैं।

कौचीने जिन उपपत्तियोंकी आलोचना की, उससे पहले आर्गाण्ड नामक एक गणितविदु अपने रचे *Gergonne's Annales des Mathematiques* नामक ग्रन्थके पाँचवें भागमें उसका आभास दे गये हैं। कौचीका कहना है, कि जिस राशिकी शून्यके समतुल्य परिमाणमें परिवर्तित किया जा सकता है, वह ही उत्पादककी गुणनफलसे उत्पन्न है, इस तरह दिखाया जा सकता है। उक्त उत्पादकमें एक राशि निम्न संख्यामें परिणत हो नहीं सकता अर्थात् दूसरी घातमें कहा जा सकता है, कि उक्त राशिमें जो निर्दिष्ट संख्या प्रदत्त है, उससे भी कम संख्या हो सकती है। सुतराँ अङ्ककी प्रणालीके अनुसार उनके शून्यको तुल्य संख्या दी जा सकती है। कौचीकी उपपत्ति विलकुल विशुद्ध न होने पर भी अन्याय उपपत्तियोंसे यह अनेकांशमें उत्कृष्ट है।

सन् १८११ ई०में शैयनी डी रणस्की नामक एक गणितविदुने विभिन्न पदोंकी समीकरण उपपत्तिके सिद्धा संज्ञा द्वारा समाधानके लिये एक साधारण नियम आविष्कार कर उसे प्रकाशित किया। इन्होंने १८१७ ई०में लिस्बनकी एकाडमी आय सायन्समें एक घोषणा प्रकाशित की, कि जो रणस्कीकी निरूपित संज्ञाओंकी उपपत्ति स्थिर कर सकेंगे, उनको पुरस्कार दिया जायेगा।

टारियानो नामक एक गणितविदुने इसका दोष खण्डन कर इसके दूसरे धर्ममें पुरस्कार पाया था।

रुटिया एसोसिएशनको रिपोर्टके पांचवें भागमें सर डब्ल्यू भार हेमिन्टनने विपमासित करण प्रणालीके सम्बन्धमें एक गविरणापूर्णा मन्तव्य लिखा है। उस पर्यायके समीकरणको चतुर्थां पर्यायमें परिणत करनेमें यह सम्पूर्ण अक्षम है। जो हां, पहले कटाके रहने हुए भी नाना तरहसे यह प्रणाली मूल्यवान् है।

पहले तो विशय विशय आकारमें परिणत कर उच्च पर्यायके समीकरणोंका समाधान हो सकता है। डामपमारने सन् १७३७ ई०में 'फिलोसफिकल ट्रांझाक्शन' नामक पत्रिकामें एक तरहके समीकरणका समाधानप्रणाली लिपिबद्ध की है। गणितज्ञ गस द्विपदसमीकरणकी क्षमति कर गये हैं। भाएडारमोण्डेने इस विषयमें जितनी उन्नति की थी, उन्होंने उसकी अपेक्षा बहुत अधिक आविष्कार किया है। इनके रचे *Disquisitiones Arithmeticae* नामक ग्रन्थमें इस विषयका प्रमाण मिलता है। यह ग्रन्थ सन् १८०१ ई०में पहले पहल प्रकाशित हुआ। इनके बाद बरचेके रहनेवाले आघेल नामक एक गणितविदुने चर्चा आरम्भ कर दी और गसने जो आविष्कार किया था, उसीका वे उत्कर्ष साधन कर गये हैं। सन् १८३६ ई०में खृष्टियाना शहरमें आघेलकी सारी पुस्तकें एकत्र प्रकाशित की गईं। इन ग्रन्थमें द्विपद समीकरण और अन्वय गणितोंके सम्बन्ध आदि देखनेको मिलते हैं।

केवल समीकरणके समाधानके लिये जो वर्तमान ज्ञानमें बीजगणितके अङ्गको पुष्टि हुई है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। समीकरणोंका समाधान करने से पहले इनका मूल किस तरह विभक्त किया जा सकता है, उस विषयमें उसी समयसे लोग यत्नवान् होने लगे। इस विषयमें जिन्होंने पहले ग्रन्थ लिख तर्कोंको प्रकाशित किया, उनका नाम बुदन है। सन् १८०७ ई०में उन्होंने *Nouvelle methode pour la resolution des equations numeriques* नामक एक पुस्तक प्रकाशित कर उक्त विषयोंको जन

समाजके सामने रखा। उनके पूर्व भी फुरियार नामक एक गणितविदुने इस विषयमें भाषण किया था। उस समय उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। इससे बुदन ही प्रणालीके भाद्रि रचयिता कहे जाते हैं। किन्तु सच बात तो यह है, कि इसके लिये फुरियार ही सर्वोच्च आसन प्राप्त योग्य है। क्योंकि सन् १८३१ ई०में नेभियारने *Analyse des equations determinees* नाम रख कर फुरियारके बड़े ग्रन्थका प्रचार किया। समीकरणके मूल निर्धारण सम्बन्धमें बति संश्लेषमें फुरियारने जो दो उपपाद्य लिपिबद्ध किये हैं, उनमें एकको फुरियारका उपपाद्य कहते हैं। इसके सिवा उन्होंने अन्वयकीकरण नामक और एक उपपाद्यका आविष्कार किया। यह उपपाद्य ग्रन्थकारके *Theorie de la Chaleur* नामक उत्कृष्ट ग्रन्थमें यथायथावसे अन्वयित हुआ है। बुदान और फुरियारको प्रभावकी प्रकाशित होनेके मध्यकालमें सन् १८१६ ई०में 'फिलोसफिकल ट्रांझाक्शन' नामक पत्रिकामें इस विषयमें एक प्रबंध प्रकाशित हुआ। इस प्रबंधके लेखक थड्लू, जो हनार हैं। उन्होंने इस प्रबंधमें गणितविषयक समीकरणको एक अभिनव प्रणालीकी मालोचना की है। कमसे लोग हनारको इस प्रणाली पर श्रद्धाश्रित हो उठे और किसी किसी विषयमें यह फुरियारकी प्रणालीके प्रायः समतुल्य और उत्कृष्ट समझी गईं। सन् १८३८ ई०में *Memoires des savans etrangers* नामक पत्रिकामें एक नई प्रणाली प्रकाशित हुई। सरलता, सम्पूर्णता और सब विषयोंमें प्रयोगयोग्यताके सम्बन्धमें आलोचना कर देखनेसे यह शोषक प्रणाली ही समीकरणके मूल भवधारणमें सर्वोत्कृष्ट समझी गई। एम छार्म नामक एक फ्रांसोसी पण्डित उक्त प्रबंधके लेखक हैं जेनेवा नगरमें इनका जन्म हुआ था। इनके आविष्कृत उपपाद्यने बीजगणितमें उच्च स्थान अधिकार किया है। सन् १८२६ ई०में छार्मने उक्त प्रबंध 'एकादमी' में उपस्थापित किया था।

निर्धारण-प्रणाली।

प्रथम पर्यायके समसामयिक समीकरणकी समाधानप्रणाली ऐसे कई भन्नाओंके आकारमें रखी जा

सकती है, जिसके लघु और हर समीकरणकी अक्षात् राशियोंकी प्रकृतिके गुणफलसे उत्पन्न होती है। यह गुणफल साधारणतः रेजालटेरेण्ट्स नामसे परिचित है। लाङ्ग्रेने पहले पहल इस नामको स्थिर किया और सन् १८४१ ई०में भी कौची अपने लिखे Exercices d'analyse et de physique mathématique नामक ग्रंथके २५ खण्डके १६१ पृष्ठमें भी यही नाम लिख गये हैं। इस समय उसको डेटरमिनेण्ट्स या निर्धारण प्रणाली नामसे प्रचलित किया गया है। अध्यापक गौसने प्रथमतः इस प्रचलित नामका व्यवहार किया। Cours d'analyse algebrique नामक ग्रन्थमें कौचीने इसके alternate functions या परम्परा किया नामसे व्यवहार किया।

निर्धारण-प्रणालीके सम्बन्धमें लिबनिट्ज़ अपने ग्रन्थमें कुछ कुछ आभास दे गये हैं। उनके बाद प्रायः एक सौ वर्ष तक और किसीने इस विषय पर कोई आलोचना नहीं की। पीछे एतमार नामक एक परिणतने इसका परिचय पा कर अपने लिखे Analyse de lignes courbes algebriques नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख किया। यह ग्रन्थ सन् १७५० ई०में जेनोवा शहरमें प्रकाशित हुआ था। गुणके नियमानुसार गुणफल योगच्छिद्विशिष्ट या विधेयगच्छिद्विशिष्ट होगा, इस ग्रन्थमें एतमारने उसका नियम लिपिबद्ध किया है। विगत जताब्दमें विहौट्ट, लाप्लेस, लाम्ब्रेज़ और भाएडामण्डे आदि बहूतेने एतमारके ग्रन्थका अनुसरण कर ग्रंथ लिखा है। सन् १८०१ ई०में गौस प्रणीत Desquisitiones Arithmeticae प्रकाशित हुआ। एम्, पुले-डेलिसले नामक एक व्यक्तिने सन् १८०७ ई०में यह ग्रंथ फ्रान्सीसी भाषामें अनुवाद कर प्रकाशित किया।

जाकोबी।

द्वितीय और तृतीय पद्यांशके दो डिटरेमिनेण्ट या निर्धारणका गुणफल और डेटरमिनेण्ट या निर्धारण श्रेणीयुक्त—गौसने इस उत्कृष्ट उपपत्तिकी आविष्कार किया। इसके बाद विनेट कौची और अन्यान्य बीज-गणितज्ञोंके यत्नसे उक्त तन्त्र विशेषरूपसे आलोचित हुआ और ये इस गुणफलकी ज्यामितिके सम्बन्धमें

परिणत करनेमें प्रयासी हुए। सन् १८२६ ई०में जेकोबीने क्रैक्स जरनलमें इसके सम्बन्धमें कई प्रबंध प्रायः बीस वर्ष तक विशेष आलोचनाके साथ प्रकाशित किया। इस प्रसङ्गमें जेकोबी और भी कई नये तन्त्रों पर पहुँचे हैं। ये आलोच्य विषयकी विशदभावसे ध्याख्या कर रुनकार्पाई हो गणितविदोंमें प्रतिष्ठा लाभ कर गये हैं।

सिखमेन्टर और कैर्नी।

जाकोबीके दृष्टान्तोंका अवलम्बन कर अन्यान्य बहूतेरे गणितविद् भी कार्पाईशे तर्कमें आगे बढ़े। इनमें सिल-वेष्टर और केलोंका नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये वूटेनवासी थे। इन दो गणितविदोंने गवेषणापूर्ण प्रबंधावली द्वारा ट्रेजाक्सन आय दो रायल सोसाइटी, क्रैक्स जरनल, दी केम्ब्रिज एण्ड डबलिन मेथेमेटिकल जरनल, कार्टेली जरनल आय मेथेमेटिक्स आदि गणित-विषयक पत्रिकाओंके अगोको पुष्टि की है। साथ ही ये अपने अपने नाम भी गणितविद्समाजमें चिरस्मरणीय रख गये हैं। वेल्डजर-प्रणीत Theorie und Anwendung der Determinanten और अलमनकृत Higher Algebra नामक बीजगणित ग्रंथमें यह विषय सुन्दर और सरल भावसे और संक्षिप्त आकारमें आलोचित हुआ है। सिवा इसके इस सम्बन्धमें स्पट्टिशउडने सन् १८५१ ई०में, थ्रिओरुकीने सन् १८५८ ई०में, टण्टेरेने सन् १८६१ ई०में कई मूल प्रयोगोंकी रचना की।

भारतीय बीजगणित।

पार्श्वचात्य जगत्समें इस विद्याका विशेषभावमें पुष्टि-साधन होने पर भी यद्यार्थमें यह शास्त्र बहुत पहले भारतवर्षमें प्रचलित था तथा भारतवासी आर्यभट्टि और परिणतोंने जो इसकी आलोचना की थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। बीजगणितकी उत्पत्तिका इतिहास आलोचना करते समय मि० रविन यारोने कुछ प्राचीन ग्रंथोंके निर्दर्शनको यूरोपवासीके निकट उपस्थित किया, इस कारण यूरोपवासीमात्र ही कृतज्ञताके साथ उनका नाम स्मरण करेंगे। उन्होंने प्राच्य-देशसे कुछ हस्तलिखित पौधियोंको संग्रह किया। उनमेंसे बहूतेरी पुस्तक पारसी भाषामें लिखी हुई थी। इन्होंने इसका थोड़ा बहुत अनुवाद कर मूलसहित

इस्तलेषोको अपने मित्र रायेल मिलिटरी कातेजक अध्यायक मि० डालघोके हाथ समर्पण किया। डालघोने करीब १८०० ई०में रच्ये गणितशास्त्री व्यक्तियोंके निकट प्रकाशित किया।

१८१३ ई०में संस्कृत वीजगणित ग्रंथके गारमो अनुवादसे मि० एडवार्ड एन्चीने 'वीजगणित' नामसे यूरोपमें उसका अंगरेजीमें अनुवाद कर प्रकाशित किया। १८१६ ई०में डा० जान डेलरने मूलसंस्कृत भावासे 'लीलाघती'का अनुवाद कर बम्बई नगरमें उसे प्रकाशित किया था।

उक्त 'लीलाघती' ग्रंथ गणित और ज्यामितिविषयक है। उसके तथा वीजगणित नामक ग्रंथके मूल ग्रंथकार भारतके सुपरिचित गणिन्विद् भास्कराचार्य हैं। १८१७ ई०में महाप्रति हैनरी टामस कोलब्रुकने "Algebra, Arithmetic and Mensuration, from the Sanskrit of Brahmagupte and Bhascara" नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथमें संस्कृत कवितामें लिखित भास्कराचार्यका वीजगणित और लीलाघती तथा ब्रह्मगुप्तका गणिताध्याय और कुट्टकाध्याय अनूदित हो कर विशेषभावमें आलोचित हुआ है। उक्त प्रथम दो ग्रंथ भास्कर रचित सिद्धान्तशिरोमणि नामक उद्योतिशास्त्रके प्रथमांश और अवशिष्टार्थ ब्रह्मसिद्धान्त नामक उद्योतिविविषयक एक दूसरे ग्रंथके बारहवें और अष्टारहवें अध्यायसे संशुद्धित हैं।

भास्करके लेखसे जाना जाता है, कि प्रायः १०७२ तक या ११५० ई०में भास्कराचार्यने मिश्रान्तशिरोमणि ग्रंथ समाप्त किया था। भास्करने अपने वीजगणितके अन्तमें लिखा है, कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ब्रह्म, श्रीधर और पद्मनाभ विरचित विस्तृत वीजगणितसे अपना ग्रंथ बहुत संक्षेपमें संकूलन किया है। सूर्यदास और रङ्गनाथ आदि मिश्रान्तशिरोमणिके भाष्यकारोंने आर्यभट और चतुर्वेद पृथक् स्वामी आदि प्राचीन टीकाकारोंको भी अपने पूर्ववर्ती बताया है।

ब्रह्मगुप्तने ५५० तकमें ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तकी रचना की। नाना प्रकारके प्रमाणादिका उल्लेख कर मि० कोलब्रुकने लिखलाया है, कि अरबोंके मध्य गणितविधा

प्रचलनके बहुत पहले ब्रह्मगुप्तका जन्म हुआ था। अतएव अरबोंके बहुत पहले हिन्दू लोग वीजगणितके तत्त्वमें अवगत थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

ब्रह्मगुप्तका रचित ग्रंथ ही वीजगणितके सम्बन्धमें हिन्दुओंका आदि पुस्तक है, ऐसा भी नहीं कह सकते। विख्यात उद्योतिवी और गणितविद् तथा भास्करके प्रधान भाष्यकार गणेशने आर्यभटके पुस्तकसे एकांश उद्धृत कर दिखाया है, कि वीजगणित पहले 'वीज' नामसे पुकारा जाता था। उनके ग्रंथमें प्रथम पर्यायकी अनिर्दिष्ट सम्पाद्य समाधानोपयोगी कुट्टक नामक अति प्राचीन प्रणालीका भी उल्लेख है। यह कुट्टक प्रणाली आर्य हिन्दुओंको अति प्राचीन प्रणाली है।

सूर्यदास नामक भास्करके दूसरे भाष्यकारने भी आर्यभटकी पुराकालीय वीजगणित लेखकोंमें ऊंचा स्थान दिया है। हिन्दूगण वर्गपूरणके नियमानुसार वर्गीय समीकरण (Quadratic equations) का समाधान कर सकते थे। मि० कोलब्रुकका कहना है, कि आर्यभट पुस्तकमें निर्दिष्ट पर्यायका वर्गीय समीकरण भी अनिर्दिष्ट विभागका प्रथम है। यहां तक, कि द्वितीय पर्यायके समीकरणका भी नियम रहना सम्भवपर सम्भवा जाता है।

आर्यभट किस समय वर्तमान थे, उसका निर्णय करना कठिन है। मि० कोलब्रुक अनुमान करते हैं, कि करीब ५वीं सदीमें या उसके पूर्ववर्ती समयमें हिन्दुओंके ये आदि वीजगणितविद् वर्तमान थे। कोलब्रुकके मतसे आर्यभट प्रोक्गणितविद् देवफतासके समसामयिक व्यक्ति थे। देवफतासाने सत्राष्ट तुलियनके शासनकालमें प्रायः ३६० ई०को जन्मग्रहण किया था। आर्यभट देखो।

भारतीय वीजगणितविद् आर्यभट और गौसके देवफतासके साथ तुलना कर मि० कोलब्रुकने साधित किया है, कि समस्त वीजगणितशास्त्रके उत्कर्ष विषयमें आर्यभट प्रोक्गणित देवफताससे कहा उच्चासन पानेके योग्य है। उन्होंने यह भी कहा है, कि हिन्दुओंने algorithm का श्रेष्ठ और सहज उपाय आविष्कार कर ओकी पर भी प्रतिष्ठालाम किया है। इसके सिवा

निम्नोक्त नियमोंकी यदि अच्छी तरह आलोचना की जाय तो मालूम होगा, कि बीजगणित विषयमें हिन्दुओं का ही श्रेष्ठत्व है।

(१) एकाधिक अज्ञातराजिविधि संयोजनका समाधान।

(२) उच्च पर्यायके समीकरणका समाधान। इस विषयमें हिन्दूबीजगणितज्ञगण यद्यपि सम्पूर्ण नियमोंका प्रतिपालन करनेमें हलकार्य न हुए, तो भी उन्होंने जो इस विषयमें यद्येष्ट चेष्टा और बुद्धिमत्ताका परिचय दिया है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वर्त्तमानकालमें प्रचलित द्विघातीय समीकरण (biquadratics) के समाधान सम्बन्धमें आर्यहिन्दूगण पाश्चात्य जगद्वासी प्राचीन बीजगणितविदोंके बहुत पहले जगत्में इस तत्त्वका आभास झलका गये हैं।

(३) प्रथम और द्वितीय पर्यायका अनिर्दिष्ट समाधान (Indeterminate problems of the first and second degree-) समाधान। इस विषयमें हिन्दुओं ने वेदकालसे कही अधिक आविष्कार किया था तथा आजकल बीजगणितमें प्रचलित तत्त्वसम्बन्धमें अपनी धारणाको उन्होंने स्पष्टभावमें प्रकाशित करनेकी चेष्टा की।

(४) ज्योतिषशास्त्र और ज्यामितिसम्बन्धीय विषयवर्षिमें बीजगणितका नियम प्रयोग।

अभी इस विषयमें बीजगणितके जो सब तत्त्व आविष्कृत हुए हैं, हिन्दूबीजगणितज्ञ अति प्राचीनकालमें भी उन सब तत्त्वोंका मूल उद्घाटन कर गये हैं।

अरबोंने बड़ी विचक्षणतासे विद्वानालोचनानामें क्यात लाभ की है सही, परन्तु सच पूछिये तो उन लोगोंके द्वारा बीजगणित-सम्बन्धमें कुछ भी उन्नति न हुई। जिस अवस्थामें और जिस समय यह शास्त्र यूरोपमें लाया गया उस समयसे बीजगणितकी पूर्ण परिगुष्टि होनेमें कई सदी बीत गई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु पाश्चात्य जगत्में बीजगणितकी प्रवेश-प्रतिष्ठा और पूर्णगुष्टिकी यातको छोड़ कर हमें बीजगणितके प्राचीन इतिहास-सम्बन्धमें मालूम होता है, कि आर्यभट्टके बहुत पहलेसे ही भारतमें यह विद्या किसी न किसी तरह प्रचलित थी। यदि वास्तविक ज्योतिषतत्त्वके

साथ इस शास्त्रके नैकट्य सम्बन्धके विषयमें आलोचना की जाय, तो हम निःसन्देह कह सकते हैं, कि कई सदी पहलेसे ज्योतिषके साथ ही साथ इस विद्याका भी उद्भव हुआ था। *Astronomie Indienne* के प्रणेता बेलीके मतानुसरण कर अध्यापक प्लेफेयरने स्वतन्त्र *Memoir on the Astronomy of the Brahmims* ग्रन्थमें लिखा है, कि हिन्दूज्योतिषशास्त्र अति प्राचीनकालसे विद्यमान है। ईसा जन्मसे ३००० हजारसे भी बहुत पहले इस शास्त्रका आविष्कारकाल माना जाता है। उक्त तत्त्वके सम्बन्धमें संशय करके लाल्लेस, डिलाग्ने आदि यूरोपीय पण्डितोंने बहुत-सी बातें कही हैं। अध्यापक लेसलीने अपने *Philosophy of Arithmetic* ग्रन्थमें लोलायतोंके सम्बन्धमें लिखा है, कि उक्त ग्रन्थ कुछ अपरिस्फुट कविता लिखित नियमोंका संभाव्यशामल है।

एडिनबरा यूनिवर्सिटीके गणितार्थक्ष मि० फिलिप केलाण्ड और यूरोपीय किसी किसी पण्डितने लेसलीके मतानुसार लोलायतोंको अस्पष्ट और अकिञ्चित समझा है सही, पर इम उसे माननेकी तैयार नहीं। लोलायती जनसाधारणके लिये दुर्ज्ञेय और दुर्बोध्य है। मान लिया वह बीजगणितविषयक प्रकृत, ग्रन्थ नहीं है, तो भी उसमें जो वर्त्तमान बीजगणितके मौलिक गुणत्व और बीजगणित-प्रक्रियासे निष्पाद्य विभिन्न प्रकारके किन्तने विषय लिपिबद्ध हैं, उसे कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते। वर्त्तमान आलोचनानामें वे सब गुणतत्त्व उद्घाटित हुए हैं।

गणितज्ञ केलाण्ड, अध्यापक प्लेफेयरके मतानुवर्त्ती हो हिन्दूबीजगणितके प्राचीनत्वको अस्वीकार नहीं कर सकते। अध्यापक प्लेफेयरने कई सदी तक हिन्दूगणितकी अनुत्कर्षावस्था ही बातोंका उल्लेख कर निम्नोक्त भाषामें उसकी पूर्णाङ्कताका परिचय दिया है—
“In India, everything (as well as algebra) seems equally insurmountable and truth and error are equally assured of permanence in the stations they have once occupied.”

भारतीय ज्योतिष और बीजगणितकी प्राचीनता जो अविस्मर्यादित है, उसे वर्त्तमान प्ररन्ततत्त्वविदोंने एक

स्वरसे स्वीकार किया है। सुप्राचीन वैदिक युगके अतीतिस्वरकी आलोचनासे भी यह प्रमाणित होता है।

प्राचीन भारतमें एक समय जो राजनीति, व्यवस्था शास्त्र, धर्मविज्ञान और आचारपद्धतिका यथेष्ट प्रचार था, उमके भी काफी प्रमाण हैं। प्राचीन कालसे इन सब विषयोंकी आलोचना और राजशक्तिके साहाय्यभावमें आज तक यह एक ही तरह चला आता है। जिस शक्तिके बलसे भारतने एक समय इन सब विषयोंमें सफलता प्राप्त की थी, उसकी गतिमें किसी प्रकारकी दुर्निर्घाय वाधा उपस्थित होनेसे ही भारतकी अवनति हुई है, इसमें सन्देह नहीं। अथवा यह स्वीकार करना होगा, कि सभी विचक्षण अमानुषिक भ्रोशक्तिसम्पन्न आर्य्यभूविषयगण भारतमें पूर्वा विद्याका आविष्कार कर गये हैं, इसके बाद वैसे व्यक्तिका फिर इस देशमें जन्म-प्रदण नहीं हुआ, इसी कारण भारतकी आज यह दुर्दशा है।

अंकगत और प्रथम उत्पत्ति।

(१) पाटोगणितमें दश संख्या हैं, विशेष नियमानुसार इन संख्याओंके नाना प्रकारके संयोगसे किसी एक अङ्ककी राशि सम्भवी जायेगी। किन्तु गणितविषयक दुरूह तत्त्वनिर्णयमें अनेक समय इन अङ्कों द्वारा कार्य नहीं होता। इस कारण अङ्कराशिके सम्बन्धनिर्णयके लिये अङ्कपातके एक साधारण नियम आविष्कार करनेकी आवश्यकता होती है। उसीसे योजगणितकी उत्पत्ति है।

योजगणितमें कोई भी राशि साङ्केतिक संख्या द्वारा सहजमें सम्भवी जा सकती है। साधारणतः वर्णमाला द्वारा ही उक्त राशिका बोध होता है। पाटोगणित-विषयक सम्पादका समाधान करनेके लिये कुछ राशि निर्दिष्ट हैं तथा उसीके निर्धारणके लिये अन्य बहुत सी अज्ञातसंख्या निर्दिष्ट हुई हैं। वर्णमालाके आदि अक्षर क, ख, ग इत्यादि ज्ञात संख्याके बदलेमें व्यवहार किये जाते हैं तथा अन्तिम अक्षरमाला ल, ग, ह, इत्यादि द्वारा अज्ञात अनुसन्धानीय राशि लिखी जाती है।

चिह्नकी वंशा।

(२) गणितमें + (धन) का चिह्न व्यवहृत होनेसे

समझा जायगा, कि जिस राशिके पहले यह चिह्न रहता है, उसके साथ कोई एक राशि जोड़नी होगी। जैसे, क, ख, इससे क और ख की एकल समष्टि सम्भवी जाती है। ३+५, इससे ३ और ५की समष्टि अर्थात् ८ का बोध होता है।

—(विषयग) चिह्न व्यवहृत होनेसे भालूम पड़ता है, कि जिस राशिके पहले यह चिह्न बैठा है, उसे किसी दूसरी राशिसे घटाना होगा। जैसे, क—ख लिखनेसे समझा जायगा, कि क से खको घटाना होगा। ६-२ लिखनेका मतलब यह है कि, कि ६से २ विषयग करना होगा अर्थात् अवशिष्ट ४ राशि रखनी होगी।

जिन सब राशिओंके पहले + चिह्न रहता है, उसे भावात्मक (positive) और जिसके पहले—चिह्न रहता है, उसे अभावात्मक (negative) राशि कहते हैं।

किसी राशिके पहले यदि कोई चिह्न न रहे, तो + (जोड़) चिह्न मानना होगा।

जिन सब राशिओंके पहले + अथवा—चिह्न दिखाने देता है उन्हें समचिह्नविशिष्ट राशि कहने हैं। जैसे + क और + ख यह दो संख्या समचिह्नविशिष्ट हैं। फिर + क और + ग यह दोनों संख्या असमचिह्नविशिष्ट हैं।

(३) जिस राशिमें सिर्फ एक संख्या रहती है। उसे अविमिश्र राशि कहते हैं। फिर यदि कोई राशि योग या विषयग बिह्नविशिष्ट अनेक संख्याओंकी समष्टिभूत हो तो उसे मिश्रराशि (Compound) कहते हैं। + क और - ग ये अविमिश्रराशि हैं, किन्तु क + ग अथवा क + ख + ग ये मिश्रराशि हैं।

(४) संख्याका गुणनफल निकालनेमें साधारणतः उन संख्याको सटा कर रखना होता है। अथवा × चिह्न बोचमें रख उन्हें संयुक्त करना होता है, अथवा दोनोंके बीचमें × या ' चिह्न दिया जाता है। जैसे—क ख या क × ख, वा क-ख। प्रत्येकसे गुणाका बोध होता है। फिर क ख ग या क × ख × ग, या क · ख · ग इससे भी क, ख और गकी गुणसमष्टिका बोध हुआ। यदि गुणनीय राशि मिश्र पर्यायकी हों, तो उन सब राशिओंके ऊपर एक रेखा (—) और मध्यमें × चिह्न दिया जाता है। उस राशिके ऊपर जो रेखा दो

जाती है, उसे (Vinculum) कहते हैं। जैसे $k \times g + \text{घ} \times \text{ङ} - \text{च}$, इससे मालूम होता है, कि क भकेली एक राशि है। $g + \text{घ}$ का योगफल द्वितीय राशि है। तथा $\text{ङ} - \text{च}$ के वियोगफलसे जो राशि निकलती है, वह तृतीय राशि है। इन तीनों राशियों का एक साथ गुणा करना होगा। ऊपरवाली रेखा द्वारा चिह्न न करके उन सब राशियोंको बन्धनीमें भी रखा जा सकता है; जैसे, $k (g + \text{घ}) (\text{ङ} - \text{च})$ अथवा $k \times (g + \text{घ}) \times (\text{ङ} - \text{च})$ ।

घोजगणितमें प्रयुज्य इस प्रकारकी वर्णमालाके पहले यदि कोई संख्या व्यवहृत हो, तो उस संख्याको अङ्कघटित प्रकृति कहते हैं। अङ्क कितनी बार लिया जाये, इससे वही बोध होता है। जैसे, ३ क इस राशि द्वारा बोध होता है, कि 'क' को ३ बार लेना होगा।

(५) एक राशियोंकी दूसरी राशिसे भाग देने पर भागफल जो निकलेगा, वह एक रेखाके ऊपर विभाज्य राशि रख उसके नीचे भाजक रखनेसे समझा जाता है जैसे, $\frac{१२}{३}$ इस राशि द्वारा यही समझा जाता है, कि विभाज्य १२में भाजक ३का भाग देनेसे ही भागफल ४ निकलेगा; अथवा $\frac{१२}{३}$ इससे समझा जाता है, कि विभाज्य '१२' को '३' से विभाग करनेसे ही भागफल निकल आयेगा।

(६) किसी दो संख्याकी समानता मालूम होनेसे उनके बीच = (समान चिह्न) दिया जाता है। जैसे, $k + \text{ख} = g - \text{घ}$ इससे यही समझा जाता है, कि क और खका योगफल g और घके वियोगफलके समान है।

(७) अविभक्त राशि और मिश्रराशियोंकी संख्यामें एक ही वर्णमाला या वर्णमालाके समष्टोपवद्ध होनेसे उनको समष्टोपवद्धराशि कहा जाता है। जैसे $+क$ ख और -५ कख ये दो राशियां समपर्यायकी हैं। किन्तु $+क$ ख और $+क$ ख ख, ये समपर्यायकी नहीं हैं।

गणितमें अन्त्यान्य कई विषयोंके बदले दूसरे प्रकारके चिह्नदि भी व्यवहृत होते हैं। जैसे $>$ यह चिह्न अधिक संख्याह्लापक, $<$ इससे न्यून संख्याका वर्ण समझा जाता है और \circ इस चिह्नसे "इसलिये" का अर्थ सूचित होता है।

(८) घोजगणितमें राशियोंके गणितको सोमा वार करने पर भी उनमें निवद्ध वर्णमालासंख्यामें मूल राशियोंकी शक्ति सोमावद्ध नहीं रहती। राशि संज्ञा जिस तरहसे पहले अभिव्यक्त होती है, क्रमसे वह विविध संज्ञा प्राप्त होती है। जैसे $+क$ यदि क्रमों $-क$ लामांश समझा जाये, तो $-क$ उसी वागफलकी इतिका भंश समझा जायेगा। इस तरह यदि $+क$ क्रमों 'क' संज्ञक कीटमाणकी अग्रगति समझा जाये, तो $-क$ उक्त संख्यामानकी पश्चाद्गति समझी जायेगी। इससे स्पष्ट ही समझा जाता है, कि $+$ और $-$ चिह्नद्वय परस्परकी विपरीत क्रियाके समष्टिचिह्न हैं। इस तरह अनुशीलनका पक्षपाती हो हम \times और $+$ दोनों चिह्नोंका राशिचरण संज्ञाके परस्परका विपर्यायबोधक मान सकते हैं। घोजगणितमें राशियोंकी क्रियाके समाधानके लिये उक्त चार चिह्नोंके जो कार्य हैं वे निम्नके दृष्टान्तमें स्पष्टभावसे दिखाने जा सकते हैं। जैसे $+क - क = +०$ या -० ; जहाँ $+०$ रहता है, वहाँ ० द्वारा वृद्धि प्राप्त और -० की जगह ० द्वारा लघुकरत समझा जायगा। इसी तरह $\times क + क = \times १$ या $+१$; $\times १$ कहनेसे १ द्वारा गुणित और $+१$ कहनेसे १ द्वारा विभक्त करना होगा।

(९) संख्यागणितमें जिस प्रणालीसे चिह्न राशियोंके संयोग करता है, घोजगणितमें उसका व्यतिक्रम दिखाई नहीं देता। किन्तु साधारणकी सुविधाके लिये निम्नलिखित ३ नियम विवृत किये जाते हैं—

१म। $+या -$ चिह्न द्वारा राशियां परस्परका समन्वय और भावान्तर प्राप्त होने पर भी कभी भी संयुक्त राशियों द्वारा परिचालित नहीं होता।

२य। जिस किसी संख्यासे जिस किसी संख्याका योग या वियोग किया जा सके, उसको Distributive law कहते हैं।

३य। गुणन या भाग भी इसी तरह दोनों राशियोंमें किया जाता है। इसको Commutative law कहा जाता है।

सब विषयोंमें घोजगणितका प्रयोग सहजसाध्य होगा, ऐसी चिन्ताकर उपर्युक्त साधारण नियम घोज-

गणितमे सन्निवेशित किया जाता है; किंतु ३रे नियम-का निषेधन रहनेसे यह चतुष्कके विज्ञानमें वरिष्ठत हुआ है। इस तरह सीमाधीन बीजविज्ञानके नियमानुसार "क ल" या एक घस्तु हो नहीं सकती।

बीजमर्म (सं० पु०) बीजानि गर्भे अभ्यन्तरे यस्य । पटोल, परवल ।

बीजगुप्ति (सं० स्त्री०) बीजानां गुप्तिर्मत । शिम्बी, सेम ।

बीजद्रुम (सं० पु०) असुरवृक्ष, विजयसार या असन नामक वृक्ष ।

बीजधान्य (सं० स्त्री०) बीजप्रधानं धान्यं । १ धान्यक, घनियाँ । २ बीजके लिये रखा हुआ धान ।

बीजन (सं० स्त्री०) बीज्यतेऽनेनेति वि- ईज-करणे ण्युट् । १ वृजन, पंखा झलना । २ सञ्चालन । ३ ध्वजन साधन, पंखा, चामर आदि । ४ सञ्चालनघस्तु । (पु०) ५ चक्रवाक, चक्रोत्पक्षी । ६ जीवजीव पक्षी । (शरत्सत) ७ पीतलोभ्र ।

बीजपादप (सं० पु०) १ असनवृक्ष, पिपासाल, विजय सार । २ भवलातक वृक्ष, मिलायाँ ।

बीजपुरुष (सं० पु०) आदिपुरुष, वंशका प्रधान-पुरुष । जिससे वंशको प्रथम गणना की जाय अर्थात् जिससे वह वंश चला हो उसे बीजपुरुष कहते हैं ।

बीजपुष्प (सं० पु० स्त्री०) बीजप्रधानं पुष्पं यस्य । १ मखक वृक्ष, मयभा । २ मदनवृक्ष, मैनफल । ३ नाल-वृक्ष, ज्वार । (राजनि०)

बीजपुष्पक (सं० पु०) बीजपुष्पं दत्ते ।

बीजपूर (सं० पु०) धात्राणांपूरः समूहो यत् । १ फलपूर, बिजौरा, नीवू । पर्याय—बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेशर, बीजक, केजरासु, मातुलुङ्ग, सुपूरक, कवक, वृजफलक, जन्तुम, दन्तुरच्छद, पूरक, रोचनफल । इसके फलका गुण—असु, कटु, उष्ण, श्वासकास और घायुनाशक, कण्ठ शोधनकर, लघु, हृद्य, दीपन, रुचिकारक, पावन, माध्मान, सुलभ, हृद्रोग, मूत्रा और उदासराशाशक । विषम्व, हिक्का, शूल और छर्दि रोगमें यह विशेष उपकारो है । (राजनि०) २ मधुकर्दी, चकोतरा, गलगल ।

इसका गुण—स्वादित, रुचिकर, शीतल, सुह, रक्तपित्त, क्षय, श्वासकास, हिक्का और क्षमनाशक ।

बीजपूरवन—मेढके निकटवर्ती स्थानमें ।

(बिजपु० ४६३)

बीजपुराघघृत (सं० स्त्री०) शूलरोगक घृतापघवशिवे । प्रस्तुतप्रणाली—घी ४ सेर, काढे के लिये बीजपूर अर्धात् क्षकेतरा नीचूका मूल, रेंडीका मूल, रास्ता, गोजक, विजवंद प्रत्येक ५ पल, भूसा रहित जी २ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, घनियाँ, हरीतकी, तिकुटु, डिङ्ग, सचल, बिट्, सैन्धव, यवक्षार, श्वेतधूना, अमृषेतम, कूटज, अनार, वृक्षासु, जीरा, मंग-रैला, प्रत्येक २ ताला । दहीका पानी ८ सेर । घीमें आंचमें यथाविधान पाक करना होगा । यह घृत अग्निके बलानुसार उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे त्रिदोषजशूल वातशूल, यकृच्छूल आदि नष्ट होते हैं ।

(मेघप्ररत्ना० शूलाधि०)

बीजपूर्ण (सं० पु०) १ बीजपूर, बिजौरा नीवू । २ मधु-बीजपूर, शरवती नीवू । (पु०) ३ बीज द्वारा पूर्ण । बीजपेशिका (सं० स्त्री०) बीजस्य शुक्रस्य पेशिकेव । अण्डकोष ।

बीजफलक (सं० पु०) बीजप्रधानं फलं यस्य कन् । बीज पूर, बिजौरा नीवू ।

बीजमातृका (सं० स्त्री०) पद्मबीज, कमलगट्टा ।

बीजमार्गों (सं० पु०) वैष्णव सम्प्रदाय विशेष । पश्चिम-भारतके स्थान स्थानमें इनका यास है । ये अपनेकी निर्गुणका उपासक बतलाते हैं । ये कभी भी किसी देव-भूतिकी उपासना नहीं करते और न अपने भजनालयमें किसी देवताको प्रतिष्ठा दी करते हैं । नामक, दादू, कवीर, आदि जो सब पंथों हैं ये भी इसी तरहके पक पंथों समझी जाते हैं । रामात् निमात् आदि वैष्णव सम्प्रदाय इनको पाषण्डो कह कर इनसे घृणा करते हैं । ये इनके साथ बैठना तो दूर रहा इनसे अङ्गुशर्ष कर जाने पर भी अपनेकी अपचित समझते हैं । उनकी समझमें ये जहाँ था कर बैठ जाते हैं, वह स्थान भी अपचित हो जाता है ।

ये शुक्रको ही परमल कहते हैं । क्योंकि शुक्रसे ही सारे जीवोंको उत्पत्ति होती है । शुक्रका नाम बीज है इसीसे इनका नाम बीजमार्गों हुआ है । इनकी

भजन-सभाका नाम समाज और भजनालयका नाम समाज-गृह है। गोरखनाथ आदि विरचित भजनों को ये गाया करते हैं।

शैव शाक्त आदिकी तरह इनका भी एक तरहका चक्र होता है और उससे अतीव गूहा व्यापार संघटित होता है। शुक्लपक्षीय १४ को इस चक्रका अनुष्ठान होता है। कोई भी बीजमार्गी अपने घरकी किसी स्त्रीको किसी साधु अर्थात् उदासी विशेषके साथ सहवास करा कर उसका बीज निकाल लेता है।* उसी बीजको शीशीमें बन्द कर रखने और चक्रके दिन यह बीज समाजगृहमें ला कर एक वेदी पर पुष्पशय्याके बीच एक पात्रमें रखते हैं।† इसके बाद उसमें दुरध, मधु, घृत और दधि मिला कर पञ्चामृत तय्यार कर पुष्प और मिष्टान्न मिला कर उसका भोग लगाते हैं। भोग लगानेके बाद समाजके सबको वह परिचेशन किया जाता है। ये चक्रस्थलमें जाति पांतिका बिचार न करके सबका बनाया सभी खाते हैं।

गिनारके अञ्जलमें काठियावाड़में भी इनकी बस्ती है। ये अपनी मत-प्रणालीको विसामारग कहते हैं। इनके महन्त गृहस्थ हैं। सुना जाता है, कि परमार्थ-साधनाके उद्देशसे एक बीजमार्गी अन्य बीजमार्गीको भार्यासे सहवास करता है। किसीका विवाह होनेसे उसकी भार्याको महन्तके साथ तीन दिनों तक रहना पड़ता है। महन्त उस स्त्रीसे सम्भोग करते और उसे मन्त्रोपदेश देते हैं।

ये ऐसे धर्मिचारी हो कर भी सर्वथा स्वेच्छाचारो नहीं हैं। शुद्धाचारामिमानी अन्यान्य वैष्णवोंकी तरह

* इनके घर किसी साधुके आने पर अपनी स्त्री अथवा कन्याको उसकी सेवामें नियुक्त करते हैं, उसके साथ सहवास करा कर साधुका बीज अर्थात् शुक्र ग्रहण कर एक शीशीमें रख लेते हैं।

† और भी सुना गया है, कि महन्तके पास अपनी स्त्रीको भेज कर दोनोंके परस्पर सहवास करा कर बीज बाहर करा लेते हैं और वह बीज तथा पात्रस्थ बीज एकत्र मिला कर उसकी पूजा करते हैं।

गलेमें तुलसीकी माला पहनते हैं और मद्य मांसके व्यवहारसे भी दूर रहते हैं। ये अपनेको निर्गुण उपासक कहा करते हैं। फिर भी राम और कृष्णके गुण भी गान करते हैं, किन्तु राम और कृष्णको विष्णुका अवतार नहीं मानते। परब्रह्मका नाम ही राम और कृष्ण है। ये देहको कौशल्या, दश इन्द्रियोंको दश रथ, कुमति या द्वेषको कैकेयी, उदरको भरत और सत्त्वगुणको शत्रुघ्न कहते हैं। देहके अभ्यन्तरस्थित रामरस नामक पदार्थ विशेषका राम और लाहा नामक स्थान विशेषको लक्ष्मण कहते हैं।

इस सम्प्रदायकी अनुष्ठित परिक्रिया भादि पट्टुदासी सत्नामी आदिकी तरह है। पट्टुदासी देखो।

बीजरत्न (सं० पु०) बीज रत्नमिव यस्य। माप-कलाय, उड्क्री डाल।

बीजरुद् (सं० पु०) बीजात् रोहतीति रुद् इगुपधात् क। शालिधान्यादि।

बीजरैचक (सं० पु०) जयपाल, जमालगोटा।

बीजरचन (सं० क्ली०) बीजं रचनं रचकं यस्य। जयपाल, जमालगोटा।

बीजवपन (सं० क्ली०) बीजानां वपनं। क्षेत्रमें बीज डालना, जमीनमें बीज बोना।

शास्त्रमें बीजवपनका नियम इस तरह लिखा है:— पूर्वफलगुनी, पूर्वापादा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, मरणी, चित्रा, आर्द्रा और अश्लेषा भिन्न नक्षत्रोंमें, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी और अमावस्या भिन्न तिथियोंमें; मिथुन, कन्या, धनुः, मीन, वृश्चिक और मृगशिरा में शनि और मङ्गल भिन्न धारको शुभयोग और शुभकरणमें गृही अपनी चन्द्रशुद्धि अवस्थामें पवित्र देह तथा हृष्ट चित्तसे उरसाहके साथ नाचते नाचते पूर्वाभिमुखी हो जलसे भरे घड़े और सुवर्ण जलनियिक बीजको तोन मुडो ले। पीछे मन ही मन इन्द्रदेवका स्मरण कर यह बीज प्राजापत्यतीर्थ* द्वारा क्रमसे भूमिमें गिरावे और निम्न-निम्नत्वत मन्त्रका पाठ करे। बीज वपनके बाद उस दिन

* कनिशा मंगुलिके निम्नभागका नाम प्राजापत्यतीर्थ है।

वहाँ हो अपने वस्तुवाग्धर्षोंके साथ भोजनादि करना उचित है। मन्त्र यह है—

“एवं बी वगुन्धरे षोते वदुप्यकजप्रदे ।
नमस्ते मे शुभं नित्यं कृपि मेधा शुभे कुष ॥
रोरन्तु सर्वशस्त्वानि काले देवः प्रवर्षतु ।
कर्षकास्तु भवन्त्वप्रः। धान्येन च फलेन च स्वाहा ॥”

(दीपिका)

उपोतिस्तस्वमं लिखा है—बीशाख महोनेमं ही धोज वपन करता सर्वपेशा उत्तम है। ज्येष्ठमासमें जिस समय सूर्य रोहिणी नक्षत्रमें अवस्थान करते हैं, उस समय धोज वपन मध्यम है। इसके सिवा अन्य महोनेमें धोजवपन करना अधम है। किंतु ध्रायण महोनेमें धोजवपन करनेसे अशुभ ही होता है। नक्षत्रोंमें पूर्वा भाद्रपद, मूला, रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, विशाखा और शतभिषा आदि ये कई नक्षत्र बीजवपनके लिये उत्तम हैं।

स्थानभेदसे बीजवपन आदिका नियेध—हल्दी और नीलका बीज घरमें योगसे गृहको घनपुत्रसे हाथ धोना पड़ता है। किन्तु जब यह स्वयं उदपन्न हो, तो उसके प्रतिपालनमें किसी तरहका दोष नहीं होता। यदि मोहवश मरसोंका बीज गृह उपवनमें रोपण किया जाये, तो लोगोंके शत्रु से परामत्र, और यावतीय साधन और धनक्षय होता है। नील, पलाश, इमली, श्वेत अपराजिता और काञ्चन, इनका बीज कहीं भी रोपण नहीं करना चाहिये, करनेसे नितान्त अमङ्गल होता है।

धान्यादिके बीजवपनकी तरह वृक्षादि बीज रोपणकालमें भी पूर्ण ओरको मुंह कर जल पूर्ण घड़ा और सुवर्ण जलसंयुक्त धोज प्रदण कर, पीछे स्नान और शुचि हो कर “वसुधैति कुरीतेति पुण्यदेति धरेति च । नमस्ते शुभमे नित्यं द्रुमोऽयं पदं तामिति ।” यह मन्त्र पढ़ कर बीज रोपण करना होता है।

बीजघर (सं० पु०) उड़ुद, कलाय ।
बीजवाहन (सं० पु०) मदादेव । (भारत० १३।१७।३०)
बीजवृक्ष (सं० पु०) बीजादेव वृक्षो यस्य बीजप्रधानो वृक्षो वा । १ अशन, पिपासा । २ भलातक, मिलावा ।
बीजसञ्चय (सं० पु०) बीजानां वपनयोग्याध्यायीनां

सञ्चयः संग्रहः समूहः चि-अच् । वपनयोग्य धान्यादिवीजका संग्रह, धानका बोधा रखना ।

बीजवपनकी तरह धान आदिका बोधा भी शुभ दिन और क्षण देख कर करना होता है। हस्ता, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवणा और धनिष्ठा, इन मन्व नक्षत्रोंमें; मेष, कर्कट, तुला और मकर लग्नोंमें; बुध, वृहस्पति और शुक्रवारमें; माघ अथवा फाल्गुन मासमें सभी प्रकारका बीज संग्रह कर रखना कर्त्तव्य है।

बीजसंग्रहका नियम—धान आदिके पकने पर शुभ दिन क्षण देख उर्ध्वं काटे और सुरत पीट कर तय्यार करे। इसके बाद धूपमें सुखा कर उसे किसी पेड़के उच्च स्थान पर रखे जिससे भूमिकी आर्द्रताका संप्रभ न हो। क्योंकि वह बीज यदि किसी कारणवशतः आर्द्रताको प्राप्त हो जाय, तो उसमें पैसी गरमी घुस जाता है, कि भोतरके अंकुर बिलकुल नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रमें भी इसका आभास मिलता है—

“दीपान्निना च संसृष्टं वृष्ट्या चोपहतञ्च यत् ।
वज्जेयं तथा बीजं यत् स्वात् कोटसमन्वितं ॥”

प्रदोषानि संसृष्ट अर्थात् गृहवाहादिके समय या किसी दूसरे कारणसे दग्ध सुदृष्ट, वृष्टिसे उपहत या नष्ट अर्थात् सड़ा हुआ तथा कीड़ेका खाया हुआ बीज वज्जेयं नोप है।

गणेश कहना है, कि मृगशिरा, पुनर्वसु, मघा, ज्येष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरभाद्रपद इन सब नक्षत्रोंमें; मीनलग्नोंमें तथा निघन और पापप्रद वज्जित चन्द्रमें अर्थात् जिस दिन चन्द्र किसी प्रकार पापप्रद युक्त या निघनसंज्ञक न हो, उस दिन धान आदिके बीजको एक प्रकोष्ठमें रख वहाँ निम्नोक्त मन्त्र किसी पत्तादिमें लिख विन्यस्त कर देना होगा। मन्त्र इस प्रकार है—

“धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा ।
नम ईहाये ईहादेवि सर्वलोकविवर्दिनि-
कामरूपिणि धान्यं देहि स्वाहा ॥” (ज्योतिस्तत्त्व)

उपोतिस्तस्वमं इस सम्बन्धमें और भी कहा है, कि मृषिकादिको निवृत्तिके लिये पत्र अर्थात् भोजपत्र आदिमें मन्त्र लिख कर उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तर-

भाद्रपद, रेवती, धनिष्ठा और श्रवणिया नक्षत्रमें उसे धाम्यराजिके मध्य रखना होगा। विषयपुरुषको चाहिये, कि वे किसी प्रकार शस्यफलका व्यवस्था तथा अभिनवाओंसे संयोग और दक्षिणदिशाकी यात्रा न करें।

बीजसार (सं० पु०) चापविडङ्ग।

बीजसू (सं० स्त्री०) बीजानि सूते इति सू-प्रियप्। पृथ्वी।

बीजस्थापन (सं० स्त्री०) बीजस्य स्थापनं। बीज-संग्रह। बीजव्यय देखो।

बीजस्नेह (सं० पु०) पलाशवृक्ष, ढाक।

बीजा—पञ्जाब गवर्नमेण्टकी राजकीय देखरेखमें परिरक्षित सिमला-शैल पर अवस्थित एक सामन्तराज्य। यह अक्षांश ३०° ५६' ३" उ० तथा देशांश ७७° २' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४ वर्गमील है। यहाँके ठाकुर उपाधिधारी सरदार राजपूतवंशीय हैं। उस वंशके ठाकुर उभयपक्षाद १८८५-६०में विद्यमान थे। उन्होंने कसौलीमें अंग्रेजी सेनाके बसानेके लिये कुछ जमीन दी थी। उसके बदलेमें आज भी उनके वंशधर अंगरेज गवर्नमेण्टसे वार्षिक १००) रु० पाते हैं। उनका राजस्व एक हजार रु० है जिनमेंसे १८०) रु० ब्रिटिश-सरकारको करमें देना पड़ता है।

यहाँके ठाकुर जिस सनदके बल भूमि पर अधिकार करते हैं उससे वे अंगरेजराजकी स्वार्थरक्षा और पार्षातीय पधघाट आदि को रक्षा तथा प्रजाके हितकर कार्योंकी उन्नति करनेके लिये बाध्य हैं।

बीजाकृत (सं० स्त्री०) बीजेन सह कृतं कृष्टमिति बीज-डाच् (कृष्णो द्वितीयतृतीययाम्बबीजात् कृषी। पा ४।५।५८) उत्तरकृष्णम्। जो बीजके साथ क्षैतमें रोपे जा कर पीछे वहाँ प्रविष्ट हो।

बीजाख्य (सं० पु०) १ जयपाल वृक्ष, जमालगोटेका पौधा। २ जमालगोटा।

बीजाङ्कुरन्याय (सं० पु०) न्यायमेदः। पहले बीज या पहले अंकुर अथवा बीजसे अंकुर हुआ है या अंकुरसे बीज हुआ है, इस प्रकार संदेहस्थलमें यह न्याय होता है। न्याय शब्द देखो।

बीजानयन—फलित ज्योतिषोक्त प्रथमभुक्तिफालनिर्णायकी प्रक्रियाविशेष। इसमें पहले कल्पवृषिपण्डको तीन हजार-

से भाग देना होता है। भागफल जो निकलता है वह भागादि बीज कहलाता है। इसका दूसरा नाम बीजांश है। उस बीजांशाधिको चन्द्रकेन्द्रमें जोड़ना होगा। शनिको मध्यभुक्तिको तीनसे तथा बुधकी शीघ्रभुक्तिको चार से गुना कर उसमें बीजांश जोड़ दे। उक्त बीजांशको दूना करके बृहस्पतिको मध्यभुक्तिमें तथा त्रिगुणित बीजांशको शुककी शीघ्र भुक्तिमें घटानेसे उनके मध्य और शीघ्रको बीजशुद्ध जानना होगा।

बीजापुर—दक्षिणात्यका मुसलमान-शासित एक देश। इसका नाम विजयपुर है।

विशेष विवरण विजयपुर शब्दमें देखो।

बीजाभ्र (सं० स्त्री०) बीजे अभ्रोऽभ्ररसो यस्य। वृक्षाभ्र, महादा।

बीजाविक (सं० पु०) उद्ग, ऊँट।

बीजिव (सं० पु०) बीजमस्त्यस्येति बीज-इनि। १ पिता।

(हेम) २ यह जिसमें बीज हो। ३ बीलाईका साम।

बीजोदक (सं० स्त्री०) बीजमिथ कठिनमुदकं, तस्य कठिन-त्वात्साधत्वं। करका, आकाशसे गिरनेवाला झोला।

बीजोप्लिचक्र (सं० स्त्री०) बीजानामुत्तये शुभाशुभसूचक-चक्रं। बीजवचनमें शुभ अशुभ जाननेके लिये सर्पाकार-चक्र। बीज वचन करनेसे शुभ होगा या अशुभ, यह चक्र द्वारा जाना जाता है। इस चक्रका विषय उद्योतिस्तस्वमें इस प्रकार लिखा है—एक सर्पकी अङ्कित कर उसमें निम्नोक्त रूपसे नक्षत्रविन्यास करना होगा,—सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उस नक्षत्रसे आरम्भ कर सर्पके मुखमें ३, गलेमें ३, उदरमें १२, पुच्छमें ४ तथा बाहरमें ५ नक्षत्र रखने होते हैं अर्थात् सूर्य यदि आश्विनी नक्षत्रमें हो, तो सर्पके मुखमें अश्विनी, भरणा, कृत्तिका-गलेमें रोहिणीसे आद्या, उदरमें पुनर्वसुसे ज्येष्ठा, पुच्छमें मूलासे ध्रुवणा तथा बाहरमें धनिष्ठासे रेवती नक्षत्र लिखना होता है। दिनका शुभाशुभ उस दिनके नक्षत्र द्वारा ही स्थिर करना होता है। सर्पके घटनमें जो नक्षत्र रहता है, उस नक्षत्रमें बीज-वचन करनेसे चोलक (शस्यनाश), गलेमें करनेसे अङ्गार, उदरमें धान्यकी वृद्धि, पुच्छमें धान्यक्षय तथा बाहरमें इति और रोगमय होता है। अतएव उक्त चक्रानुसार निरिच्छ नक्षत्रमें बीजवचन न करना चाहिये।

वीज्य (सं० लि०) विशेषेण इज्यः पुज्यः या वीजाय हितः, (उगवादिभ्यो । पा ३।१।२) इति यत् । १ कुलोत्पन्न, त्रौ अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ है। पर्याय—कुलसंभव, वंश्य, कौलकेय, कुलज, कुलीन, कुल्य, कुलभव । (जटाधर)
२ वीजनीय, जे। वीजके योग्य है।

वीट (सं० स्त्री०) खण्डा । (विद्वान्शकीयुद्धी)
वीटा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका खेल जो हाथ भर लम्बे जौके आकारके काठके टुकड़ से खेला जाता है। 'गुली खण्डा' खेलमें जैसे गोलिका धावदार होता है, यह भी ठीक वैसा ही है। पालक एक बड़े डण्डेसे उसे मारने हुए एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जा कर खेलते हैं। यह खेल बहुत कुछ अंग्रेजी hockey खेलके जैसा है। महाभारतके टोकाकार नीलकण्ठका मत है, कि वीटा धातुका बना हुआ एक गोला है। (भारत आदिपर्व)
वीटि (सं० स्त्री०) विशेषेण घटति छायानिष्ठात पट्यादिं घेष्टयित्वा प्रवर्द्धते वि इट् (इगमत् कित् । उच् ३।१।६) इति इन्, सच कित् । १ ताम्बूलचल्लो, लगाया हुआ पानका बोड़ा।

वीटिका (सं० स्त्री०) वीटिरेव स्वार्ये कन् स्त्रियां टाप् । ताम्बूलवल्ली, लगाया हुआ पानका बोड़ा। (राजतरंगिणी ४।४३०)

वीटी (सं० स्त्री०) वीटि या डीप् । वीटि, पानका बीड़ा।

वीड् (सं० लि०) डूढ, मज्जत । (ऋक् १।३।६३)

वीड्जम् (सं० लि०) हविर्भक्षणार्थं, हविः खानेके लिये । (ऋक् ३।२।६।३)

वीड्कूपस् (सं० लि०) प्रवलराक्षसादिका द्वेषकारी । (ऋक् २।२।१।३)

वीड्पतम् (सं० लि०) बलवदुत्पत्तम् । (ऋक् १।१।६।२)

वीड्पवि (सं० लि०) दृढरधनेमि, रथका मज्जत धूरा ।

वीड्पाणि (सं० लि०) दृढपाणि, मज्जत हाथ । (ऋक् १।३।०।११)

वीड्हरस् (सं० लि०) प्रभूततेजस्क, बहुत तेजस्वी । (ऋक् १।०।१०।६।१)

विसृवङ्ग (सं० लि०) दृढाङ्ग, मज्जत अङ्ग । (ऋक् १।१।१।८)

वीण—चट्टलके अन्तर्गत ग्राममेद । (भविष्यपुराण १।५।४५)
वीणा (सं० स्त्री०) वेति वृद्धिमात्रमपगच्छतीति वी गती । (राक्षसास्त्राख्य प्लानीयाः । उच् ३।१।५) इति न निपा-
ननाडुगुणाभावो णत्वञ्च । १ विद्युन्, बिजली । (मेदिनी)

२ सनामस्थायत वाद्ययन्त्र, प्राचीनकालका एक प्रसिद्ध बाजा, जिसका प्रचार अब तक भारतके पुराने ढंगके गवैयोंमें है। पर्याय—बल्लकी, विपञ्जो, परि-
वादिनी, ध्वनिमाला, बङ्गमल्लो, विपञ्जिका, प्रोपवती, कण्ठरूणिका ।

इस यन्त्रमें बीचमें एक लम्बा पोला दण्ड होता है। दोनों सिरे पर दो बड़े घड़े तूथे लगे होते हैं। एक तूथेसे दूसरे तूथे तक बीचके दण्ड परसे होते हुए, लोहेके तीन और पीतलके चार तार लगे रहते हैं। लोहेके तार पकड़े और पीतलके कण्ठे कहलाते हैं। इन सातों तारोंको कसने या ढीला करनेके लिये सात खूंटियां रहती हैं। इन्हों तारोंको कनकार कर स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।

प्राचीन भारतके तत् जातिके बाजोंमें वीणा सबसे पुरानी और अच्छी मानी जाती है। अनेक देवताओंके हाथमें यही वीणा रहती है। मित्र मित्र देवताओं आदिके हाथमें रहनेवाली वीणाओंके नाम पृथक् पृथक् हैं। जैसे,—महादेवके हाथकी वीणा लम्बी, सरस्वतीके हाथकी कच्छपी, नारदके हाथकी महती और तुंबकके हाथकी कलावती कहलाती है। इसके सिवाय वीणाके और भी कई भेद हैं। जैसे—तितन्त्री, किररी, विपञ्जो, रञ्जनी, प्रारदी, रुद्र और नादेश्वर आदि। इन सबकी आकृति आदिमें भी थोड़ा बहुत अन्तर रहता है।

विशेष विवरण वाद्ययन्त्र शब्दमें देखो ।
वीणाकर्ण (सं० पु०) हितोपदेशार्थित व्यक्तियेद ।
वीणागणनिन् (सं० पु०) वीणावादक, वीणा बजाने-
वाला । (शमयन्त्रा १।३।४।३)
वीणागायिन् (सं० पु०) वीणावादक । (वैश्वीयन्त्रा ३।१।४।१)

वीणातन्त्र (सं० स्त्री०) तन्त्रप्रभेदे ।
वीणादण्ड (सं० पु०) वीणायाः दण्डः । वीणास्थित

अलाभपरि काष्ठदण्डः। वीणामैका लम्बा दण्ड या तुंबीका बना हुआ यह अंश जो मध्यमें होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

वीणादत्त (सं० पु०) गणधर्मदे।

(कपासविधा० १७६।१)

वीणानुबन्ध (सं० पु०) वीणायाः अनुबन्धः। उपनाह, सितारकी खूंटो जिसमें तार बंधे रहते हैं।

वीणापाणि (सं० स्त्री०) वीणा पाणी यस्य। सरस्वती। वीणा सरस्वती देवीके अतिशय प्रिय है, इसीसे वे सर्वदा अपने हाथोंमें वीणा धारण करती हैं।

सरस्वती देखो।

वीणाप्रसेव (सं० पु०) वीणाच्छादन पूर्वक रक्षाकारी, वह गिलाफ जो वीणा पर उसकी रक्षाके लिये चढ़ाया जाता है।

वीणामिद्र (सं० पु०) वीणायन्त्रभेद।

वीणारथ (सं० पु०) १ वीणाका शब्द। (त्रि०) २ वीणा-संहति।

वीणारवा (सं० स्त्री०) मक्षिकामेद, एक प्रकारकी मफली।

वीणाल (सं० त्रि०) क्षुद्र वीणाविणिष्ट।

(पा १।२।६१)

वीणावत्सराज (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (पञ्चतन्त्र)

वीणावत् (सं० त्रि०) वीणा अस्त्वर्थे मनुष्य यस्य च।

वीणायुक्त, वीणाविणिष्ट।

वीणावती (सं० स्त्री०) १ सरस्वती। २ एक अत्सराका नाम।

वीणावाद (सं० त्रि०) वीणां वादयतीति सङ्गिज्ज्ञानम्। वीणावादक, वीणकार। पर्याय—वैजिक। (अमर)

वीणावादक (सं० पु०) वीणाया वादकः। वीणावाद्यकर्त्ता, वीणकार।

वीणावादन (सं० स्त्री०) वीणाया वादनं। वीणाका वाद्य, वीणाका शब्द।

वीणावाद्य (सं० स्त्री०) वीणाया वाद्यं। वीणाकी वाद्य, वीणकी आवाज।

वीणाशिल्प (सं० स्त्री०) वीणावादनविषयक कला-विज्ञान।

वीणास्य (सं० पु०) वीणा आस्यमिव आस्यमस्य, तथैव स्फुटयानकरणात्। नारद। (भटाचर)

वीणाहस्त (सं० त्रि०) वीणां हस्ते यस्य। १ जिसके हाथमें वीणा हो। (पु०) २ शिव, महादेव।

वीण (सं० त्रि०) वीणायुक्त।

वीतस (सं० पु०) विशेषेण वहिरेव तस्मिन् भुषणे इति वि तन्स-घञ् उपसर्गस्य घञ् मनुष्ये बहुलम् इति दीर्घः (पा ३।१।२२)। वह जाल, फंदा या इसी प्रकारकी और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि फंसाए जाते हैं। वीत (सं० स्त्री०) वेति स्म वा अजति स्म, अज गतपथेति क। १ असारहस्तो और अश्व, वे हाथी, घोड़े और सैनिक आदि जा युद्ध करनेके योग्य न रह गये हों।

२ अकुशकर्म, अकुशक द्वारा मारना। (भाष १।४७)

३ सांख्योक्त अनुमान विशेष। सांख्यदर्शनके मतसे पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतोद्भूत ये तीन प्रकारके अनुमान हैं। यह भी दो प्रकार है—वीत और अवीत, इनमें वीत फिर दो प्रकारका है—पूर्ववत् और सामान्यतोद्भूत और अवीत शेषवत् कहा गया है। अनुमान बुद्धिप्रतिबिम्ब है, किस तरहकी बुद्धिप्रतिको अनुमान कहा जाता है, उसका विवरण इस तरह है—व्याप्यवशापक भाव और पक्षधर्मज्ञानसे जो बुद्धिप्रति होती है, वही अनुमान कहा जाता है। पूर्व शब्दका अर्थ कारण है, जहाँ कारण द्वारा कार्याका अनुमान हो, वह पूर्ववत् है। जो साध्य है, ठीक वैसी ही वस्तु यदि दूसरी जगह दोष पड़े तो उस साध्यमानके पूर्ववत् कहते हैं। "पर्वते वहिन्मान् धूमात्" यह जो अनुमान है, उसका नाम पूर्ववत् है। उक्त स्थलमें वहिन्साध्य है, पर्वत पक्ष है। पर्वत पर वहि दृष्टिगोचर न होने पर भी पाकशाला आदिमें वहि दिनाई देती है। अथच साध्यवहि और पाकशालाकी वहि दोनों एक रूप हैं। वहिह्य नामक ऐसा एक असाधारण धर्म दोनोंमें ही वर्तमान है, जो कहीं अनुमानके साथ और कहीं प्रत्यक्षके साथ यिज्जित है। किन्तु जो अतन्निद्रय है, प्रत्यक्षके अगोचर है, वैसे साध्यका अनुमान पूर्ववत् नहीं हो सकता। यह शेषवत् होता है, नहीं तो सामान्यतोद्भूत अनुमान होगा।

शेषवत् अनुमानके कारण साध्यके व्याप्यव्यापक-भावज्ञान नहीं। साध्यभाव और हेत्वभावके व्याप्य-व्यापक-भावज्ञान आवश्यक है। उसके फलसे साध्य-भावका निषेध होता है, सुतरां साध्यज्ञान ही उठता है।

सामान्यतोद्घट्ट अनुमान पूर्ववत्के विपरीत है। जिस साध्यके अनुमानमें प्रयुक्त हो रहा है, उसका या ठीक उसी आकारकी और वस्तुका प्रत्यक्ष कदापि नहीं होगा; किन्तु उसको तुलना प्राप्त विविध प्रकार ज्ञान पथागत यावतीय वस्तुके व्याप्यव्यापकभावज्ञान और प्रकृत हेतुमें पक्ष धर्मता ज्ञान होनेसे जो बुद्धिवृत्ति होती है, वह सामान्यतोद्घट्ट है। जैसे—इन्द्रियानुमान इन्द्रिय-प्रत्यक्ष योग्य नहीं। इन्द्रियां कभी भी किसीका भी दिखाई नहीं देतीं, उन इन्द्रियोंका जो ज्ञान है, वह सामान्यतोद्घट्ट है।

इस अनुमानकी प्रणाली इस तरह "रूपादिज्ञानं सकरणकं क्रियात्वात् छिदादिवत्" रूपादि प्रत्यक्षके भी कारण हैं; क्योंकि रूपादिका प्रत्यक्ष क्रिया है, यथा—छेदन इत्यादि। छेदनका कारण कुठार है। रूप-प्रत्यक्षका कारण किसको कहोगे, देह कारण नहीं, क्योंकि अकेला देह है, किन्तु रूप उसके प्रत्यक्षके बाहरकी चीज है। देहके कारण कहनेसे अन्धेका रूप प्रत्यक्ष होता। जिनको कारण करना चाहते हो, वही इन्द्रिय है। कोई कारण या कारणत्व प्रत्यक्षरूप होनेसे भी इन्द्रियके आकारका कारण बिंदुकुल अतीन्द्रिय है।

जो जो क्रियायें उन सबोंकी कारण हैं। इस तरहके ज्ञानके बाद ज्ञानपथागत क्रियायोंमें ही कारणके सम्बन्धमें ज्ञान होनेसे और रूपादि प्रत्यक्ष क्रिया है; ऐसा उपलब्ध होनेसे जो चित्तवृत्ति होती है, यही सामान्यतोद्घट्ट अनुमान है। इस अनुमानसे इन्द्रियका अस्तित्व निर्णय होता है, इसमें केवल इन्द्रियका अस्तित्व नहीं है, अप्रत्यक्ष अनेक वस्तुको अस्तित्वसिद्धि इस अनुमानसे होती है। यही वीत अनुमान है। (संख्यका०)

(त्रि०) ४ परित्यक्त, जिसका परित्याग कर दिया गया हो। ५ मुक्त, जो छूट गया हो। ६ विगत, जो वीत गया हो। ७ निवृत्त, जो किसी बातसे रहित हो। ८ कमनोय, सुन्दर। (श्रृक ५।१६)

वीतक (सं० पु०) वीत देवो।

वीतवश्म (सं० त्रि०) वीतसत्यको वश्मो येन सः। निरहङ्कार, जिसने दंभ या अहंकारका परित्याग कर दिया हो। पर्याय—अयत्कन।

वीतन (सं० पु०) गलेका दोनों पार्श्व। हेमचन्द्रने स्कन्धके मध्य भागको कृक और उस कृकके दोनों पार्श्वको वीतन कहा है। अतएव इसके अनुसार भी दोनों स्कन्धका ठीक मध्यभाग अर्थात् गन्धेश कृक तथा उसके दोनों पार्श्व वीतन कहलाते हैं। (हेमचन्द्र)

वीतपृष्ठ (सं० त्रि०) वीतं कान्तं पृष्ठं पश्चाद्भागो यस्य। १ जिसका पृष्ठ या पश्चाद्भाग देखनेमें अति सुन्दर और कमनोय हो। (श्रृक १।१६२७) २ विस्तारपूर्णपरिभाग, चौड़ाईका ऊपरी हिस्सा।

(मयवं ६।१२२ सायण्य)

वीतभय (सं० पु०) वीतं भयं यस्य यस्माद्वा। १ विष्णु। (भारत ११।२४।१११) (त्रि०) २ भयरहित, जिसका भय छूट गया है।

वीतभीत (सं० त्रि०) १ भयमुक्त, जिसका भय छूट गया हो। (पु०) २ असुरभेद।

वीतमल (सं० त्रि०) १ निष्पाव, जिसे कोई पाप न हो। २ निष्कलङ्क, जिसमें किसी प्रकारका कलङ्क या मल आदि न हो, विमल।

वीतराग (सं० त्रि०) वीतो रागो विषयवासना यस्य। १ विगतराग, जिसने राग या आसक्ति आदिका परित्याग कर दिया हो। (पु०) २ बुद्धका एकनाम। २ जैनोंके प्रधान देवताका नाम।

वीतरागस्तुति (सं० त्रि०) जिनको एक स्तुति। वीतवत् (सं० त्रि०) मूलमुक्त। (भारत० भी० १।८।४) वीतचारास् (सं० त्रि०) १ माश्वतल, जिसने बल पाया हो।

वीतशोक (सं० त्रि०) १ विगतशोक, जिसने शोक आदिका परित्याग कर दिया हो।

वीगः शोको यस्मात्, अशोकाष्टम्यां तत्पानेन शोकनाशत्वात्तस्य तथाश्चम्। (पु०) २ अशोकवृक्ष। वासन्ती अर्थात् चैतमासकी शुक्लाष्टमीको इसका पुष्प जलमें रख उस जलको निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर पान करनेसे सभी शोक ताय दूर होते हैं, इसी कारण इसका अशोक नाम पडा है। मन्त्र इस प्रकार है—

“स्वामशोक इरामीष्ट मयुमासवमुद्रव ।

थिवामि शोकधन्ततो मामशोकं सदा कुक् ॥” (तिथितन्त्र)

वीतसूत्र (सं० स्त्री०) यक्षीपवीत, जनेऊ ।

वीतदृष्य (सं० पुं०) १ स्वनामप्रसिद्ध अङ्गिरसवंशोद्भूतभव ऋषिभेद; एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऋषि जो अंगिराके वंशमें थे । (अर्थात् ई१३५१) २ शुनकके पुत्रका नाम । ३ एक राजाका नाम । (त्रि०) ४ दत्तहविष्क, यक्षमें आहुति देनेवाला ।

वीतहोत्र (सं० पुं०) वीतिहोत्र देखो ।

वीताशोक (सं० पुं०) अशोकवृक्षभेद ।

वीति (सं० स्त्री०) वो-क्तिन् । १ गति, चाल । २ द्योति, चमक । ३ प्रजन, गर्भ धारण करनेकी क्रिया । ४ असन, खाना । ५ धायन, दौड़ना । ६ पान, पीना । ७ प्राप्ति । ८ यज्ञ । घोटक, घोड़ा ।

वीतिका (सं० स्त्री०) यष्टिमधु, मुलेठी । २ नीलिका, नीली निर्गुंडी । (वेद्यक नि०)

वीतिन् (सं० पुं०) ऋषिभेद । बहुवचनमें उनके वंशधरका बोध होता है ।

वीतिराधस (सं० त्रि०) दत्तधन, धन देनेवाला ।

(शृक्-६।३।२६-वाच्य)

वीतिहोत्र (सं० पुं०) वी गतिकाम्यसनकाद्वेनेषु वी क्तिन्, वीतिः पुरोडाशादिः इत्येतेऽस्मिन्निति । हुयोमा-धु-मसिम्बस्वन् इति-यम (उप० ४।१२०) अथवा वीतये पानाय होत्रं हव्यं यस्य । १ अग्नि । २ सूर्य ।

३ त्रियम्बत राजाके एक पुत्रका नाम । (भागवत ५।१।२५) ४ एक राजाका नाम । (महाभारत ७।६।१०) ५ वैदिकवंशीय एक राजाका नाम । (हरिवंश ३।५०) ६ कान्तयज्ञ । (शृक् २।३८।१) (त्रि०) ७ प्रसयज्ञ, जो यज्ञ करता हो ।

वीती—वीतिन् देखो ।

वीतीशययन्ध (सं० त्रि०) उन्मुक्तप्रग्नि ।

(किरात ८।५१)

वीतोत्तर ((सं० त्रि०) उत्तर देनेमें अगिच्छु ५ ।

वीत्त (सं० त्रि०) वि-दा-क्त । वित्त, धन ।

वीथि (सं० स्त्री०) विद्ययतेऽनया विद्य-इत् इगुपधात् क्रिद्वितीन बाहुलकात् । १ पंक्ति, श्रेणी । २ गृहद्वार । ३ वर्त्म, राजपथ ।

वीथिका (सं० स्त्री०) वीथिरेव स्वार्थे कन् लटताप् ।

वीथ देखो ।

वीथी (सं० स्त्री०) विधि-लोप् घा । १ राजपथ, बड़ा रास्ता, सड़क । २ नाटकाङ्गभेद, द्वय काव्य या रूपकके २७ भेदोंमेंसे एक भेद । यह एक ही आङ्कका होता है और उत्तम, मध्यम वा अधम जिस किसी प्रकारका हो, एक ही नायक कल्पित होता है । इसमें आकाशभाषित और शृङ्गाररसकी अधिकता रहती है । अन्त्याप रस बहुत थोड़े रहते हैं । किन्तु सुखादि पञ्चाङ्ग सन्धि सार्थकताके साथ सम्पूर्णभावमें विद्यमान रहती है ।

मनोवियोगी वीथीके निम्नलिखित तेरह अंग निर्देश किये हैं, यथा—उद्बुधात्यक, अवलम्बित, प्रपञ्च, तिगत, छल, वाक्त्रलि, अधिगण्ड, गण्ड, अवश्यन्वित, नालिका, असत्प्रलाप, चावहार और मृद्व । उनके लक्षणवादि साहित्य दर्पणमें इस प्रकार लिखे हैं—

उद्बुधात्यक—दूसरेके वाच्यका प्रकृत भाव सहजमें समझमें न आयेगा, इस कारण द्वार्षा घटित शब्द द्वारा कोई वाच्य प्रयुक्त होनेसे यदि कोई उसका प्रकृत अर्थ समझ कर दूसरे पद द्वारा उसी समय उसका यथार्थ भाव व्यक्त कर दे, तो उसे उद्बुधात्यक कहते हैं । जैसे, ‘ये सब संकेत कर प्रहस सम्पूर्णमण्डल चंद्रको धल-पूर्वाक अभिभव या परास्त करनेकी इच्छा करते हैं’। मुद्राराक्षसके सूत्रधारकी इस गूढ़ार्थ-वाञ्छक उक्तिके बाद ही नेपथ्यमें कहा गया कि, ‘मेरे जीते जी कौन चन्द्रगुप्तको अभिभव या परास्त कर सकता है?’ जिस उद्देश्यसे वाच्यका प्रयोग किया गया था, दूसरे वाच्यसे ठीक वही भाव व्यक्त होनेके कारण यहाँ उद्बुधात्यकाङ्कक वीथी हुई ।

अवलम्बित—जहाँ एकत्र समावेश होनेके कारण एक कार्यके बाद दूसरे कार्यकी सूचना होती वहाँ अवलम्बिताङ्कक वीथि होती है । जैसे, ‘शकुन्तलामें नदीके प्रति सूत्रधारकी उक्तिके बाद ही राजाका प्रवेश वर्णित हुआ है ।

प्रपञ्च—परस्पर मिथ्याभूत हास्यजनक वाच्यका व्यवहार करनेसे उसको प्रपञ्च कहते हैं । जैसे, विक्रमोद्देशीमें बड़गोस्व-विद्वय और चेटोका परस्पर कथोकथन ।

लिंगत—जहाँ ध्वनिकी समता प्रयुक्त अनेक अर्थों-
की कल्पना की जाती है वहाँ लिंगताङ्क वीथी होती
है। जैसे, "हे पर्यतश्रेष्ठ ! क्या तुमसे सार्थाङ्गसुन्दरी
उर्वशी देखी गई है ?" उर्वशीविरहित पुरुरवा कर्तृक
पर्वतके निकट इस प्रकार प्रश्न होने पर प्रतिध्वनिमें भी
वे सब शब्द श्रुतिगोचर होनेके कारण देखी गई है। यह
अन्तिम शब्द माने उस प्रश्नके उत्तरमें परिणत हुआ,
अतएव यहाँ 'देखी गई है' इस शब्दके प्रयोगकालमें
तथा उसकी प्रतिध्वनिमें एक ही रूपसे ध्वनित हो एक
बार प्रश्न और दूसरी बार उसीका उत्तर कथित हुआ
है, इस कारण अनेकार्थयोजनाके कारण लिंगताङ्क
वीथी हुई।

छल—प्रियसङ्गत अग्रिय वाक्य द्वारा लोम दिखा
कर प्रतारणा करनेका नाम छल है। जैसे,—दोषो-
संहारमें भीम और अर्जुन भृष्टयोंसे कह रहे हैं, "धृ-
त-
कोड़ा और जतुगृहदाहका प्रवर्त्तक, अङ्गरोज कर्णका
मित्र, दुःशासनादिका बड़ा भारी, द्रौपदीके कैशाकर्णका
प्रयोजक और पाण्डवोंका प्रभु, यह अति अभिमानी
राजा दुर्योधन अभी कहाँ है ? तुम लोग यह कहते हो,
हम अभ्यागत नहीं, फेवल उसके साथ मिलने आये हैं।"
यहाँ प्रियभावमें पक्ष वाक्य कहनेके कारण छल सम्भवा
गया।

वाक्यलि—देा या देासे अधिक प्रत्युक्तिके द्वारा
हास्परसकी उत्पत्ति होनेसे उसका वाक्यलि कहते हैं।
जैसे, 'हे मिश्रुक ! क्या तुम मांस खाते हो ? दिना मयके
यह मांस वृषों है, तुम क्या मध पसन्द करते हो ? मध-
पान घाराङ्गणालोंके साथ ही सुसङ्गत है, किन्तु वे लोग
तो नितान्त अर्थाग्रिय हैं। तुम्हें घन कहाँ ? चोरी या
डकैतोसे ही घन मिल सकता है। तुम क्या चोरी या
डकैतो करना जानते हो ? अभाव होने पर ही सब कुछ
किया जाता है। यहाँ, प्रत्येक प्रश्नकी प्रत्युक्तियाँ
हास्परसोहायक होनेके कारण वाक्यलि हुई।

अधिबल—परस्पर स्पर्द्धाजनक वाक्यप्रयोगकी
अधिकता दिग्गनेसे अधिवलाङ्क वीथी होता है। जैसे,
प्रभावती नाटकके चरित्रात्मकी "आज्ञ तुममें किसीका
न मान कर इस वंश द्वारा घोड़े हो समयके मूध्व

पद्य इनका वक्ष और तो क्या, स्वर्ग और प्रच्छन्न तक भी
उत्पाटित करूँगा।" इस स्पर्द्धाजनक उक्तिके बाद पद्यमनमें
भी वैसा ही कहा, "रे असुराघम ! अधिक धड़नड़ मत कर।
मेरे इस भुजङ्गएडनिहिन कोएडसे निकले हुए प्रारोंसे
निहत दैत्यकुल शोणितसे आच्छुता पृथ्वी जिससे रक्त-
मांसलोलुप राक्षसोंकी हर्षवर्द्धिनी हो आज निश्चय ही
मैं वैसा ही करूँगा।" यहाँ दोनोंमें ही समान स्पर्द्धा-
जनक वाक्योंका प्रयोग किया गया है, इस कारण
अधिवल वीथी हुई।

गण्ड—यका जिस उद्देशसे एक विषय कहते हैं उस
समय यदि कोई उसका छोड़ किसी दूसरे उद्देशसे
सहसा कोई वाक्यप्रयोग करे तथा यह वाक्य पूर्वोक्त
वाक्यके साथ अर्थसङ्गत हो, तो यहाँ गण्डवीथी होगी।
जैसे, घेणोसंहारमें दुर्योधनके 'अधि ! भानुमति !
सदाके लिये ही तुम्हारी जांचके ऊपर ममोह अर्थात्
मेरा उह" इतना कहते न कहते कञ्चुकी घबराया
हुआ आया और सहसा बोल उठा, "भग्न भग्न"
यहाँ पर दुर्योधनका "ममोह विन्यस्त होगा" यहाँ तक
कहनेका उद्देश्य था तथा कञ्चुकी कहने पर था, "द्वेष !
रथकेतन भग्न हुआ है" किन्तु समयके गुणसे "ममोह"
शब्दके ठीक बाद ही 'भग्न भग्न' शब्दके क साथ
ध्वनित होनेके कारण तथा ईश्वरेच्छाके फलसे भी
यही होनेके कारण दोनों शब्द विभिन्न उद्देशसे प्रयुक्त
होने पर भी उनका अर्थ सुसङ्गत हुआ है, अतएव यहाँ
गण्डवीथी हुई।

अवस्थान्दित—जहाँ दूसरे वाक्य द्वारा स्वभावोक्त
वाक्यका स्तोय अर्थप्रकाश न करा कर यदि अन्यथा
भावमें अर्थात् दूसरे अर्थमें उसकी व्याख्या की जाय, तो
यहाँ अवस्थान्दित वीथी कही जाती है। जैसे, "माता !
रघुपति क्या हमलोगोंके पिता है ?" लयके इस प्रश्न पर
सीताने उत्तर दिया, "इस विषयमें कोई शङ्का न करो,
केवल तुम्हारे नहीं, सारी पृथिवीके पिता है।" यहाँ पर
सीताने पितृशब्दसे पालनकर्ता अर्थात् आमास दिया
है, इस कारण यह अव्ययामाथमें व्याख्यात होनेसे
अवस्थान्दितवीथी हुई।

नालिका—हास्परसयुक्त प्रहेलिका नाम नालिका

है। संवरणकारी उत्तरको प्रहेलिका कहते हैं, अतएव जहाँ कमसे कम किसी प्रकार असंज्ञत भाव दिखाई देता है तथा पीछे प्रत्युत्तर द्वारा किसी कौशलसे यदि उसका फिर संवरण किया जाय, तो वहाँ नालिका वीथी होती है। जैसे रत्नावलीमें सागरिकाके प्रति सुसंज्ञताकी उक्ति है—“सखि। तुम जिसके लिये आई हो, वह यहाँ पर है” इस पर सागरिकाने कहा, “मैं किसके लिये आई हूँ ?” इस वाक्यसे सागरिकाके भावका वैपरीत्य समझ कर सुसंज्ञताने सरल भावमें फिरसे कहा, “क्यों चित्तफलकके लिये नहीं” इस भावसंवरणसे यहाँ नालिकावीथी हुई।

असत्प्रलाप—प्रश्न या उत्तरकी जगह यदि असम्बन्ध अर्थात् पूर्वापर सम्बन्धरहित वाक्यका व्यवहार हो अथवा किसी जगह अवाच्य मूर्खोंके अकारण हितभाष्य कह कर उपदेश दिया गया हो, तो वहाँ असत्प्रलाप होता है। जैसे, प्रभावती नाटिकामें प्रद्युम्न सहकार लताके लक्ष्य कर कहता है, “अहो ! अलिकुलगुञ्जित निविडकेशा गन्धवती रसाला किशलयकमलपाणि कौकिलमापिणी मेरी वह तरङ्गी प्रियतमा यहाँ क्यों !” यहाँ पूर्वापर विशेषणोंमें गन्धवती और रसाला शब्द दो मनुष्योंके विशेषण हैं तथा प्रधानतः लताको मनुष्य जान कर उसका वर्णन किया गया है, इससे यह असत्प्रलाप हुआ। वेणीसांहारनाटकके तृतीय अङ्गमें गुणवाच्यके उल्लङ्घन करनेवाले दुर्धननादिके प्रतिगान्धारकी उक्तियाँ भी असत्प्रलाप हैं।

व्याहार—दूसरेके लिये हास्य वा लोभजनक जिस वाक्यका प्रयोग किया जाता है उसका नाम व्याहार है। जैसे मालविकाग्निमित्रमें मालविकाकी उक्तिमें नायकका हास और लोभका उदय हुआ है, इस कारण वहाँ व्याहार वीथी हुई।

मृदव—जहाँ दोनोंके गुण और गुणोंका दाय समझा जाता है वहाँ मृदववीथी होती है। जैसे, “हे प्रिय ! निष्पूरता, निःस्नेहता और कृतघ्नता आदि मेरी देहमें तुम्हारे विरहसे दायमें तथा तुम्हें देख कर गुणमें परिणत होती हैं।” अर्थात् तुम्हारे विरहसे मैं उनको दाय और तुम्हारे देखनेसे गुण समझता हूँ। यहाँ रूप और दाय

वहले गुण और पीछे दाय समझा गया, इस कारण दोनों दो जगह मृदववीथी हुई।

४ रविमार्ग, सूर्यका गमनपथ। ५ आकाशमें नक्षत्रोंके रहनेके स्थानोंके कुछ विशिष्ट भाग जो वीथी या सड़कके रूपमें माने गये हैं। आकाशमें उत्तर, मध्य और दक्षिणमें क्रमशः पुरावत, जम्बूग्वय और वैश्वानर नामक तीन स्थान हैं। इनमेंसे प्रत्येक स्थानमें तीन तीन वीथियाँ हैं। प्रत्येकका संवरण नीचे दिया जाता है।

अश्विनी, भरणी और कृत्तिका इन तीन नक्षत्रोंमें नाग-वीथी, रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्रमें गजवीथी; पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा नक्षत्रोंमें पुरावतो-वीथी हैं, ये तीनों वीथियाँ उत्तरांशको अन्तर्गत हैं। मघा, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनीमें अर्षभो; इस्ता, चित्रा और स्वाति नक्षत्रोंमें गोवीथी; विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठामें जम्बूवो हैं, ये तीनों वीथियाँ मध्यमार्गमें हैं। मूला, पूर्वाषाढा, और उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें भोज-वीथी; श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रोंमें मृगवीथी; पूर्वाभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती नक्षत्रोंमें वैश्वानरो हैं, ये तीन वीथियाँ दक्षिणपथकी अन्तर्भूक्त हैं। वीथ्यङ्ग (सं० खी०) वीथ्या अङ्गमिवाङ्गं यस्य। नाटकभेद। वीथी शब्द देखो।

वीथ्र (सं० क्ली०) विशेषेण इन्धते दीप्यते इति विश्वे (वाग्निशे)। उष्ण-२।१६ इति कृन्। १ तम, आकाश। २ वायु, हवा। ३ अग्नि, आग। (ति०) ४ विमल, निर्मल।

वीथ्यू (सं० ति०) वीथ्र-यत्। शरत्कालके निर्मल मेघसे उत्पन्न। (शुक्लस्यजु० १६।१८)

वीनाह (सं० पु०) विशेषेण नहति इति वि-नह-घञ् उपसर्गस्य दीर्घः। कूपका मुखवन्धन, वह जंगला या टकना जो कूपके ऊपर लगाया जाता है।

वीनाहिन (सं० पु०) कूप।

वीन्वर्क (सं० ति०) सूर्य और चन्द्रयुक्त।

(संज्ञातक)

वीपा (सं० खी०) विद्युत्, बिजली।

वीप्सा (सं० खी०) वि-अपि सन् अच्-टाप्। किया-

गुण द्रष्टृद्वारा युगपत् व्यापनेच्छा, सदाके लिये रहनेका चाह।

वीर (स० ६१०) अज (स्वावितत्रिंशच्चोक्ति उण् १।१३) इति रक् अजेर्वीभावः वीर अच् वा । १ शृङ्गो, सिंगिया नामिक विष । २ नङ्, नरकट । ३ काली मिर्चा । ४ पुष्कर-मूल । ५ काश्चिक, काज्जो । ६ उशोर, खस । ७ आरुक, आलूबुङ्गारा । ८ मिन्दुर । ९ लीह, लोहा । १० शालपत्री ।

(पु०) वीरयतोनि वीर विक्रान्ती पचाचच्, यद्वा विशेषेण इत्यति दुरीकरोति शत्रून् वि-ईर इगुपधात् क । अथवा अजति श्रिगनि शत्रून् अज-रक् अजेर्वी भावः । ११ जीर्णविशिष्ट, वह जो साहसी और बलवान हो । पर्याय—शूर, विक्रान्त, गम्भीर, तपस्वी । (जटाधर) १२ पुत्र, लड़का । (शुक ५।२०।४) १३ पति और पुत्र । अथवा ; पतिपुत्रहीना नारीको अथोरा कहते हैं । १४ दनायु दैत्यपुत्र । (भारत १।६।१।३) १५ जिन । १६ नट (होम) १७, विष्णु । (विष्णुसहस्रनाम) १८ शृङ्गारादि आठ प्रकारके रसके अन्तर्गत एक रस ।

इस रसमें नायक उत्तम प्रकृति, उत्साह, स्थायिभाव है। इसका अधिष्ठातृ-देवता महेन्द्र है, सुवर्ण वर्ण, विजैत-व्यादि आलम्बन विभाव, विजयादि चेष्टा उद्दीपन विभाव, सहायव्येषणादि अनुभाव, धृति, मति, गर्व, स्मृति, तक और रोमाञ्च ये सब सञ्चारिभाव हैं। दान, धर्म, युद्ध और दया आदिके भेदसे ये चार प्रकार हैं अर्थात् दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर ।

वीररस वर्णन करनेमें नायक अति उत्तम स्वभावका होगा। उसके दान, युद्ध, दया या धर्ममें उत्साह यह स्थायिभाव सबदा रहेगा। विजैतव्यादि आलम्बन-विभाव और उसको चेष्टा-उद्दीपन विभाव तथा उसके निमित्त सहायादिका अभ्येषण अर्थात् युद्धमें सैन्यसंग्रह, दान और धर्ममें उन द्रव्योंका संग्रह और दयामें त्यागशीलता आदि विद्यमान रहेंगे।

दानवीर परशुराम,—

सनसमुद्रघेष्टित पृथ्वीको अकपट भावसे दान तक

अर्थात् परशुरामने सारी पृथिवीके अकपट भावसे दान किया था। यहाँ उनके त्यागमें उत्साह स्थायी भाव और ब्राह्मणको सम्प्रदान आलम्बनविभाव वीर सत्त्वादि उद्दीपन विभाव है। सर्वस्वत्यागादि द्वारा अनुभावित वीर हर्षघृति आदि सञ्चारित भाव द्वारा पुष्टिप्राप्त हो कर दानवीरत्वका प्राप्त हुए थे।

धर्मवीर युधिष्ठिर—

'राज्य, धन, देह, भाव्या, सत्ता तथा पुत्र वीर इह लोकमें जो कुछ भेरा आयत्त है, ये सर्वदा धर्मके निमित्त निरूपित हैं।' यहाँ युधिष्ठिरके धर्ममें उत्साह और उसके लिये उनके त्यागादि आलम्बन विभावादि द्वारा धर्मवीरत्व सूचित हुआ है।

युद्धवीर भगवान् रामचन्द्र—

'मो लङ्केश्वर, जनकजा सीताको तुम लौटा दो, मैं स्वयं प्रार्थना कर रहा हूँ। क्योंकि, तुम्हारी मति मारी गई, तुम नीतिका स्मरण करो, इस समय मैंने कुछ भी नहीं किया, तुम यदि सीताको लौटा न दो, तो बर-दूषण आदिके कष्टकर द्वारा पङ्क्ति ये मेरे शर तुम्हें सहा नहीं करेंगे अर्थात् युद्धमें तुमको मार डालेंगे।'

यहाँ भी रामके युद्धमें उत्साह और भीति प्रदर्शन आदि वाक्य आलम्बन-विभावादि द्वारा युद्धवीरत्व सूचित हुआ है।

दयावीर जीमूतवाहन—

'हे गण्डु! अब भी शिराओंके मुँहसे खून टपक रहा है। मेरी देहमें अब भी प्रांस है, तब भी तुम्हारा भक्षणजनित परितोष देख नहीं रहा हूँ। क्योंकि तूम भक्षणसे विरत हो रहे हो?' यहाँ अपनी ऐसी दुर्दशा होने पर भी परदुःखहरणके लिये उत्साह पूर्णमात्रामें विद्यमान है। यह उत्साह ही स्थायिभाव है, पूर्वोक्त रूपसे आलम्बन आदिभाव स्थिर करने होंगे।

भयानक और शान्तरसके साथ वीररसका विरोध है, भयानक और शान्तरसके वर्णनप्रसङ्गमें वीररसका वर्णन नहीं करना चाहिये। ऐसा होनेसे इसका विरोध होता है।

१६ ताम्रिलकसायं विशेष । तन्मूलतमं दिव्यं, घोर और पशु ये तीन भाव हैं । साधक इनमेंसे किसी एक भावकी साधना करे ।

“भावस्तु त्रिविधः प्रोक्ता दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
गुरुस्त्वु त्रिधा चाप तत्रैव मन्त्रदेवता ॥”

(रुद्रयामल ११ पटल)

रुद्रयामलतन्त्रमें लिखा है, कि प्रथम पशुभाव, इसके बाद घोर और इसके उपरान्त दिव्य इसी तरह तीन भाव स्थिर करने होंगे । दिन आदिमें पहले दश दण्ड पशुभाव, चौथके दश दण्ड, घोरभाव और शेषके दश दिव्यभाव हैं । जो जिस भावके साधक हैं, वे उसी भावके समयानुसार कार्य करैंगे ।

यामकेश्वरतन्त्रमें लिखा है, कि जगमसे ले कर १६ वर्ष तक पशु, १६ से ५० वर्ष तक घोर और इसके बाद दिव्यभाव होता है, इस तरह तीन भाव स्थिर करने देंगे ।

२० वीराचारविशिष्ट, जो साधक वीराचारके मतसे साधना करते हैं, उसको वीर कहते हैं । वीरानारी सर्वदा कुलाचार और कुलसङ्ग बनें । सब समय संविद्ध पान करें । वे सर्वादा उद्धतमना होंगे और उनकी चेष्टा सदा उन्नतकी तरह होगी, उनका अङ्ग भस्म द्वारा भूस्वर्ण तथा वह सदा मद्यपानरत और बलिपूजा-परायण रहेंगे और अपने इष्ट देवताकी नर, बकरा, भेड़ा, भैंस आदि बलिद्वारा पूजा करेंगे । इस तरह पूजा करनेसे जो प्र उन्नतका मूल सिद्ध होगा । केवल मद्यपान करनेसे ही वीर नहीं होता, घर वीरानारीका भी मद्यपानमें निषेध है । कलिकालमें इस भारतवर्षमें घर घर मद्यपान करनेसे वर्णभ्रष्ट होता है, अतएव मद्यपान निन्दित है ।

महानिर्वाणतन्त्रमें विशेषरूपमें लिखा है, कि कलिकालमें घोर और दिव्यभाव निषिद्ध है । अर्थात् साधक इन दो भावोंकी साधना नहीं करे, केवल पशुभाव द्वारा ही साधना करे, इसीसे उनका मूल सिद्ध होगा । इस घञ्चनके अनुसार कलिकालमें दिव्य और वीरभाव बिलकुल निषिद्ध है ।

“दिव्यवीरमपोभावः कसौ नास्ति कदाचन ।

केवलं पशुभावेन मन्त्रविद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥”

(महानिर्वाणतन्त्र) वीराचार शब्द देखो ।

२१ तपहुनीय, वीलाईका साया । २२ वराहकन्द, गेठी । २३ लताकरझ । २४ करवीर, कनेर । २५ बज्रुन पृक्ष । (राजनि०) २६ यष्टामिनि । (भारत) २७ उत्तर । २८ सुभद्र, दुशियार । २९ प्रेरणाकारो, वह जो मेजता हो । ३० मल्लतक पृक्ष, भिलावा । ३१ शुक्रदेव, कुशा । ३२ पीतभ्रिष्टो, पीलो कटसरैया । ३३ भ्रूपमक नामक औषधि । ३४ काकालो । ३५ तोरई । (लि०) ३६ श्रेष्ठ । ३७ कर्मठ, कर्मशील ।

घोर आचार्य—गणितशास्त्र और गणितसारसंग्रह नामक दो पुस्तकोंके प्रणेता । आप एक जैन आचार्य थे ।

वीरक (सं० पु०) वीर एव स्वार्थे कन् । १ श्वेत करवीर, सफेद कनेर । २ विक्रान्त, शूरवीर । (शुक ८५०१२) ३ अपरुष्ट देशविशेषवासी, वह जो किसी निन्दित देशका निवासी हो । ऐसे व्यक्तिके साथ किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं रखना चाहिये । (भागवत ८।४।५२)

४ चाक्षुष मन्त्रवर्तरीय मुनिविशेष । (भागवत ८।५।८) ५ वीर देखो ।

वीरकरा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम । इसका दूसरा नाम वीरंकरा भी है ।

वीरकर्म (सं० पु०) १ रेत, चोरी । २ वह जो धोरोकी भांति काम करता हो, वीरोचित कार्य करनेवाला । ३ धोरोका कार्य ।

वीरकाटी (सं० स्त्री०) नदिया जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम ।

वीरकाम (सं० लि०) पुत्रकामना, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला ।

वीरकुक्षि (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो वीरपुत्र प्रसव करती हो ।

वीरकेतु (सं० पु०) पाञ्चाल राजपुत्रमेद ।

(महाभा० द्रोणपर्व)

वीरकेशरी (सं० पु०) वीर केशरीव । १ वीरश्रेष्ठ, जो धोरोमें श्रेष्ठ हो । २ राजपुत्रमेद ।

वीरभूरिका (सं० खी०) वूरिकाविशेष, एक प्रकारकी वुरी।

वीरगति (सं० खी०) वीरस्य गतिः। १ स्वर्ग। २ वह उत्तम गति जो वीरोंको रणक्षेत्रमें मरनेसे प्राप्त होती है। कहते हैं, कि युद्धक्षेत्रमें वीरतापूर्वक लड़ कर मरनेवाले लोग सीधे स्वर्गको जाते हैं।

वीरगोल (सं० फली०) वीरस्य गोलं। वीरका गोल, वीरका घंटा। (मार्कण्डेयपु० १२५।७)

वीरघनी (सं० खी०) वीरहा। वीरनागिनी।
(अथर्व ७।१३।२)

वीरद्वारा (सं० खी०) नदीभेद। (विष्णुपुराण)

वीरचक्रेश्वर (सं० पु०) विष्णु। (पद्मसूत्र)

वीरचक्रभूमत् (सं० लि०) विष्णु।

(रामायण ७।२३।१)

वीरचरित (सं० पु०) वीरकी जीयनी।

वीरचर्या (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (तारनाथ)

वीरचर्या (सं० खी०) वीरका कार्य।

(कथासरित्सा० ८३।३०)

वीरजयन्तिका (सं० खी०) वीरराणां जयन्तिकैव। युद्ध-क्षेत्रमें वीरोंका नृत्य।

वीरजात (सं० लि०) १ वीरसमूह। २ अपत्यजात।
(भद्रक १०।३६।११)

वीरजित् (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (कथासरित्सा०
४५।१८३)

वीरण (सं० ह्यो०) १ उशीर तृण, खस। पर्याय—कटापन, वीरतद, वीरमद्र। गुण—पाचन, शीतल, स्तम्भन, लघु, तिक्त, मधुर, उच्चर, वमन और भेदनाशक, कफ और पित्तप्रशामक, तृष्णा, अन्न, विष, विसर्प और कृच्छ्राह्वयुक्त प्रणनाशक।

२ कुशादि तृणगण; कुश, दर्भ, कांस और दूब आदि को जातिके तृण। (अर्कचि०) (पु०) ३ प्रजापति-विशेष, वीरण प्रजापति। (भारत १२।३८।१४१) इनको कण्याका नाम असित्को था। दक्ष प्रजापतिने स्वयंभुके कहनेसे उसने ब्याह किया था। इस कण्याके

गर्भसे पांच हजार वीर पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सब पुत्रोंसे सृष्टि बढी थी। (हरिवंश ३ अ०) ४ एक ऋषि, वीरणीके पिता। ५ यज्ञवेदाभिज्ञ एक आचार्य्य।

वीरणक (सं० पु०) नागभेद। (भारत भादिपर्व)

वीरणाराधय—घोलेरणुकासम्बन्धके प्रणेता।

वीरणिन् (सं० पु०) एक मुनि। ये वैदिक आचार्य माने जाते थे।

वीरतन्त्र (सं० ह्यो०) तन्त्र-विशेष।

वीरतम (सं० लि०) अथमेपामतिशयेन वीरः वीर प्रशस्त्यर्थे-नामपु। अत्यन्त वीर।

वीरतर (सं० ह्यो०) १ वीरण, उगीर, खस। २ शर, तीर। (लि०) ३ सामर्थ्यविशिष्ट, शक्तिमान्। ४ देशमें श्रेष्ठ।

वीरतरासन (सं० ह्यो०) वीरतराणां साधकश्रेष्ठानां आसनम्। आसनविशेष, वह आसन जिस पर बैठ कर श्रेष्ठ पुत्र्य साधना करते हैं।

मृदु, कोमल, संभ्राममें या किसी जीव जन्तु द्वारा मृत नररूप आसनको वीरतरासन कहते हैं। गर्भच्युत शय या नारियोंका योजित त्वक् अथवा युवतियोंका त्वकरूप आसन, यह भी वीरतरासन है। ये सब आसन सिद्धिप्रद तथा अति समृद्धिदायक हैं। इस आसन पर बैठ कर साधन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें सिद्धिर्लभ होता है।

वीरतद (सं० पु०) वीरस्नन्नाम्नाख्यातस्तदः। १ अजुं न वृक्ष। २ कोकिलाक्ष वृक्ष, तालमखाना। ३ विन्वान्तरवृक्ष। ४ मल्लोत्तक, मिलायां। ५ शरतृण, शरनामक घास। ६ प्रियाल वृक्ष, पियासार नामक वृक्ष।
(वैद्यकनि०)

वीरता (सं० खी०) वीरस्य भावः तल-टापु। वीर होनेका भाव, शूरता, बहादुरी।

वीरतापिण्डुपनिषद्—उपनिषद्भेद।

वीरतत्त (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि।

वीरदामन् (सं० पु०) शकक्षत्रप राजपुत्रभेद।

वीरदेव (सं० पु०) एक कवि। क्षेमिन्द्रने मूर्तसन्निहकमें इसका उल्लेख किया है।

वीरद्र. (सं० पु०) अर्जुन वृक्ष ।

वीरद्रुम (सं० पु०) राजपुत्रभेद । (भारत शान्तिपर्व)

वीरधन्वन् (सं० पु०) कामदेव ।

वीरनगर—बङ्गालके नदिया जिलास्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह उला नामसे प्रसिद्ध है । एक समय यह स्थान धनजनसे पूर्ण था । कालके कवलमें पड़ कर दाहण महामारीसे यह नगर जनशून्य और श्रोहीन हो गया है । प्राचीन समृद्धिके निदर्शन आज भी नाना स्थानोंमें देखे जाते हैं । उला देखो ।

वीरनाथ (सं० लि०) १ वीरश्रेष्ठ । (पु०) २ काश्मीरके ध्यक्तभेद । (राजतरङ्गिणी ६।११०)

वीरनायक (सं० पु०) १ वीरसाधक । २ उशीर, खस । (बौधकनि०)

वीरनारायण (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद । २ एक कवि । इनके बनाये कई काव्योंका उल्लेख मिलता है । ३ साहित्य-चिन्तामणि नामक बालङ्कार ग्रन्थके प्रणेता ।

वीरधर (सं० पु०) १ मयूर, मोर । २ वष्यपशुके साथ युद्ध, जंगली पशुओंके साथ होनेवाला युद्ध । ३ एक प्राचीन लक्ष्मीका नाम ।

वीरपट्ट (सं० पु०) युद्धकालका परिच्छद् विशेष, यह पहनाया जो युद्धके समय पहना जाता है ।

वीरपत्नी (सं० स्त्री०) १ वैदिक कालकी एक नदीका नाम । २ वह जो किसी वीरकी पत्नी हो ।

वीरपत्रा (सं० स्त्री०) वीरप्रियाणि पत्राणि यस्यः । विजया, भंग । यह वीरोंको बहुत प्रिय है, इसीसे इसका यह नाम पड़ा है । २ धारणी नामक महाकण्ठ ।

वीरपर्ण (सं० स्त्री०) सुरपर्णमिध सुगन्ध पत्र, माची-पत्ती ।

वीरपश्य (सं० लि०) पुत्रादियुक्त, गृहप्रद ।

(शुक ६।५४५)

वीरपाल (सं० पु०) वीराणां पालं । वीरोंके श्रमनाशके क्रिये पाल, वह पाल जो वीर लोग युद्धका भ्रम मिटानेके क्रिये करते हैं ।

'वीरपायन्तु यत्पानं वृत्ते भाविति वा रथे ।' (अमर)
(वामावकरण्याः । पा ८।५।१०) पाणिनिके इस सूत्रा-
नुसार पानशब्दका न यदि विकहरमें णत्व हो, तो
'वीरपाण' 'वीरपान' ये दो पद बनेगे ।

वीरपाण्ड्य—पाण्ड्यवंशीय राजभेद ।

वीरपाल (सं० पु०) काश्मीरके सामन्तभेद ।

(राजतर० ८।२१६३)

वीरपुर (सं० स्त्री०) १ काश्यकुञ्जराजधानी । २ हिमालय शिखर पर अवस्थित एक नगरका नाम ।

(कथावर्तिषा ५२।१६६)

वीरपुरुष (सं० पु०) वीर पुरुष । वीर्यविशिष्ट पुरुष, शूरवीर ।

वीरपुष्पो (सं० स्त्री०) घाटपालकभेद, सहर्षे । २ सिन्दूरपुष्पी, लटकन ।

वीरपेशस् (सं० लि०) १ बलिष्ठ देहयुक्त, बलशाली । (ऋक ५।१।३ लायण) २ वीर्यविशिष्ट, चमकीला ।

वीरप्रजापिनी (सं० स्त्री०) वीरप्रसविनी, वीरमाता ।

वीरप्रजावती (सं० स्त्री०) वीरप्रजा विधत्तेऽस्याः मत्तुप् मस्य घ, जिघां ङीष् । वीरस्तन्तियुक्ता, जिनके पुत्र वीर हों । (मार्क० पु० १२।५७)

वीरप्रम (सं० पु०) ध्यक्तिभेद । (कथावर्तिषा० ५६।२५)

वीरप्रमोक्ष (सं० स्त्री०) तीर्थभेद । (भारत बनव०)

वीरप्रसवा (सं० स्त्री०) वीरप्रसवकारिणी । वह स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो ।

वीरप्रसू (सं० स्त्री०) वीरान् प्रसूते प्रसू क्तिप् । वीर-प्रसविनी स्त्री, वह स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो ।

वीरवाहु (सं० पु०) वीराः संमर्धाः वाहवो यस्य १ विष्णु । २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम (भारत १।६।७।१३) ३ रावणके एक पुत्रका नाम । ४ एक प्रकारका बन्दर । (गोः रामायण ६।१७।१५)

वीरभट (सं० पु०) ताम्रलसिके एक प्राचीन राजा ।

(कथावर्तिषा० ४।५।४२)

वीरमद्र (सं० पु०) वीराणां मद्रं येन । १ सभ्यमेघ
यज्ञका घोड़ा । २ वीरश्रेष्ठ, शूरवीर । ३ वीरण, 'कस' ।
४ शिवलिङ्गविशेष । ये शिवके पुत्र और अवतार माने
जाते हैं । महाभारतमें इनकी उत्पत्तिका विवरण इस
प्रकार लिखा है । जब दक्षप्रजापतिने महादेवका अपमान
करनेके लिये शिवविहीन यज्ञका अनुष्ठान किया, तब
देवी भगवती यह संवाध पा कर बड़ी दुःखित हुई ।
उन्होंने बड़े खेदके साथ शिवजीसे कहा, 'भगवन् ! मैं
कैसा वान वा तप करके जिससे मेरे पतिको यज्ञका
आधा वा तिहाई भाग मिले । महादेव पार्वतीकी यह
केतोक्ति सुन कर बोले, 'मैं सभी यज्ञोंके ईश्वर हूँ, मेरे
बिना यज्ञ पूरा हो ही नहीं सकता । जो हो, तुम्हें मेरे
प्रति कैसा वाक्य प्रयोग करना चाहिये, वह तुम्हें
मालूम नहीं । आज तुम्हारे मोहवशतः इन्द्रादि देवता
और त्रिलोकवासी प्राणी मुग्ध हुए हैं । सभी तुम्हें
प्रसन्न करनेके लिये मैं एक महावीरकी सृष्टि करता हूँ ।'
अनन्तर महादेवने अपने मुखसे एक भयङ्कर पुरुषकी
सृष्टि की । उस महापुरुषके सृष्टि होते ही महादेवने
उसका वीरमद्र नाम रख कर कहा, "वीरमद्र !
तुम अल्प दक्ष-यज्ञमें जाओ और पार्वतीका क्रोध शांत
करनेके लिये यज्ञको नष्ट कर डालो ।' वीरमद्र तैयार हो
गये और देवीके क्रोधसे उत्पन्न महाकाली भी उनकी
अनुगामिनी हुई ।

उस समय वीरमद्रके कोपसे त्रिभुवन काँप उठा ।
पीछे वीरमद्रने अपने लोमकूपोंसे असंख्य द्रव्योंकी सृष्टि-
की । ये सब रुद्र भयानक शब्द करते हुए यज्ञस्थलमें जा
घमके और सबोंने मिल कर यज्ञको विनष्ट कर डाला ।
श्राव्यकर्मण इत् सर्वोके अयङ्कर कार्यं देव्य कर यजुर्वेदीसे
भागने लगे । सर्वदेव सुराक्षंत यज्ञदेव भी मृगरूप
धारण कर भाग रहे थे उसी समय वीरमद्रने क्रोधके
आवेशमें भूतोंकी सहायतासे उनका शिर काट डाला
और प्रफुल्ल मनसे वह घोर शब्द करने लगे । इस
सिंहनाशसे सभी धरा उठे । पृथिवी काँपने लगी ।

इसके बाद प्रह्लादि-देवताओं तथा प्रजापति दक्षने
वीरमद्रके समीप जा कर कहा, 'भगवन् ! आप कौन

हैं ?' वीरमद्रने बड़े गर्वसे उत्तर दिया, 'मैं रुद्र वा
देवो पार्वती नहीं हूँ । मैं इस यज्ञमें भीजन वा कीर्तुल-
परतन्त्र हो ब्राह्मणोंके दर्शन करने नहीं आया हूँ । देवी
पार्वतीके दुःखित होने पर सगवान् रुद्र बड़े क्रुद्ध हुए
हैं । मैं उम्होंके आदेशसे तुम्हारे इस यज्ञको नष्ट करने
आया हूँ । मेरा नाम है वीरमद्र । रुद्रदेवके क्रोधानलसे
मैं वीर देवी पार्वतीके क्रोधसे यह वीरनारी उत्पन्न हुई
है । इनका नाम मद्रकाली है । इस समय यदि तुम
अपना कल्याण चाहते हो, तो महादेवकी शरण लो,
तुम्हारी रक्षा हो भी सकती है ।' इस पर दक्षने भयभीत
हो महादेवके अधोचरसहचरनाम कीर्तन कर उनका स्तव
किया । उनके स्तवसे वायुनोपका क्रोध शांत हुआ ।
(महाभारत शान्तिपर्व गोलघ० ८५ अ०)

काशीखण्डमें लिखा है, कि दक्षकन्या पार्वतीने जब
पिताके यज्ञका विषय नारदके मुखसे सुना, तब वे बिना
बुलाये पिताके घर गई । वहाँ पतिकी निन्दा सुन कर
उन्होंने यज्ञस्थलमें प्राणत्याग कर दिया । नारदने यह
खबर महादेवको दी । महादेवने क्रोधसे भगीर ही रुद्र-
मूर्त्तिको धारण किया । उस समय उनके क्रोधानलसे
वीरमद्र उत्पन्न हुए । पीछे वीरमद्रने दक्षपत्नके पंचसं
किया । (काशीख० ८८, ९० अ०)

वायुपुराणके मतसे दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये
शिवके मुखदेशसे वीरमद्र आविर्भूत हुए । उनके
हजार मस्तक, दो हजार नेत्र और दो हजार पद् हैं ।
उनका परिधृत व्याघ्रास्त्र रक्तविमण्डित है । हाथमें
कुठार और प्रदीप्त धनुष है । दूसरे पुराणमें इन्हें शिवके
पत्नीसे उत्पन्न बतलाया है । महाराष्ट्र देशमें शिवकी
इस मूर्त्तिकी उपासना प्रचलित है । तन्त्रादिमें वीर-
मद्रके पूजामन्त्रादि लिखे हैं । दक्ष यज्ञ देखा ।

वीरमद्र—१ एक हिन्दू राजा । इनके पिताका नाम मद्रेश्वर
था । इनकी समाप्ति तर्कप्रदीपके प्रणेता कोण्डवमद्र
विद्यमान थे । २ तन्दलसारथुत एक प्रयत्नकार । ३ एक
प्राचीन कवि । ४ एक ज्योतिर्विद् । उत्पलकृत वृहत्-
संहिताटीकामें इनका उल्लेख है । ५ एक वैद्यकग्रन्थके
प्रणेता । ६ नीलकण्ठस्तोत्रके रचयिता ।

वीरमद्रक (स० छी०) वीरमद्रमेव स्वार्थे-कन् । १
वीरण, खस । २ वीरमद्र देखो ।

वीरमद्रकालिकाकवच—महोपघ धारणीमेद । इसे धारण
करनेसे रोग, भय आदि दूर होते हैं । वीरमद्रतन्त्रमें इस
मन्त्रात्मक कवचका उल्लेख है ।

वीरमद्रदेव—वघेल वंशीय एक हिन्दू राजा । इन्होंने
१५७७ ई०में कन्दर्पचूड़ामणि नामक कामसूत्रकी टीका
प्रणयन की । ग्रन्थकारने ग्रन्थमें अपना वंशपरिचय
इस प्रकार दिया है,—शालिवाहनके पुत्र वीरसिंह, धोर-
सिंहके पुत्र वीरभानु, वीरभानुके पुत्र रामचन्द्र और
इन्हीं रामचन्द्रके पुत्र कुमार वीरमद्रदेव थे । चन्द्रालोक-
टीकाके प्रणेता प्रद्योतन भट्ट इनके आश्रित और सभा-
पण्डित थे ।

वीरमद्रस (स० पु०) सन्निपातञ्चरोक्त रसोपध-
विशेष ।

वीरभवत् (स० पु०) वीर देखो । यह प्रयोग द्वितीय पुस्तक-
में हुआ है । (कथासरित्सा० १०/४४)

वीरभानु (स० पु०) राजपुत्रमेद ।

वीरभार्या (स० स्त्री०) वीरस्य भार्य्या । वीरकी स्त्री ।
वीरभुक्ति—जनपदमेद, वीरभूम ।

वीरभुज (स० पु०) राजमेद । (कथासरित्सा ३६/३)

वीरभूपति (स० पु०) विजयनगरके एक राजा । इन्होंने
१४१८से १४३४ ई० तक राज्य किया था । ये युवयुक्तके
पुत्र थे । प्रयोगरत्नमालाके प्रणेता चौण्डपगाचार्य इनके
आश्रित थे ।

